बृहन्नारदीयपुराणम्

(पूर्वभागः)

अनुवादक

तारिणीश झा

व्याकरणवेदान्ताचार्य

शक १९१० : सन् १९८९

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

बृहन्नारदीयपुराणम्

पूर्वभागः

[हिन्दी अनुवाद सहित]

⊙

अनुवादक
तारिणीश झा
व्याकरणवेदान्ताचार्य

⊙

शक १९१० : सन् १९८८
हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

बृहन्नारदीयपुराणम्

पूर्वभागः

[हिन्दी अनुवाद सहित]

अनुवादक

तारिणीश झा

व्याकरणवेदान्ताचार्य

शक १९१० : सन् १९८९

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग • इलाहाबाद

⊙

प्रकाशक
डॉ० प्रभात मिश्र शास्त्री
प्रधान मंत्री : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

⊙

प्रकाशन वर्ष : शक १९१० : सन् १९८९
प्रथम संस्करण
मूल्य : ~~२००.००~~ २२५

⊙

मुद्रक
डॉ० प्रभात मिश्र शास्त्री
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

यथा श्रेष्ठा नदी गङ्गा पुष्करं च सरो यथा ।
⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙
तथैव नारदीयं तु पुराणेषु प्रकीर्तितम् ॥
(ना० पु० अ० १२५)

हर्ष की बात है कि हमारी पुराण-प्रकाशन योजना का कार्य 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' के रहते हुए भी सुचारु रूप से चल रहा है । भगवान् की कृपा बनी रही तो आगामी कुछ वर्षों में और भी कतिपय पुराण जनताजनार्दन के करकमलों में पहुँचा देंगे ।

सम्प्रति बृहन्नारदीयपुराण (पूर्वभाग) हम प्रस्तुत कर रहे हैं । वैसे तो इस महापुराण में छन्द, ज्योतिष, तन्त्र, मन्त्र, वेदान्त आदि विविध विषयों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है, पर त्रिस्कन्ध ज्योतिष का विवरण बहुत प्रामाणिक एवं सटीक है । 'हाथ कंगन को आरसी क्या', पाठक गण स्वयं इसे पढ़कर अनुभव करेंगे ।

इस महापुराण का अनुवाद आज से ४० वर्ष पूर्व सम्मेलन के प्राण स्वनामधन्य बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन की अभिप्रेरणा से सम्मेलन ने कराया था । इस अन्तराल में सम्मेलन को कितनी उच्चावच स्थिति को देखना पड़ा, यह प्रबुद्ध जनता से छिपी हुई बात नहीं है । सम्मेलन की अवच स्थिति में पुराण-प्रकाशन-कार्य बन्द कर दिया गया था । आदाता काल के बाद पुनर्मन्त्रिमण्डल काल में हमने इस कार्य को पुनरुज्जीवित किया । तबसे कई पुराणों का सुचारु प्रकाशन अब तक हो चुका है । प्रकाशन-क्रम में यह छठा पुष्प (बृहन्नारदीय पुराण का प्रकाशन) पाठकों को समर्पित है ।

इस पुराण का अनुवाद कार्य दो अनुवादकों ने पूर्ण किया था । इस पुराण में कुल २०७ अध्याय हैं, जिनमें अध्याय १ से ५३ तक डॉ० घनश्याम त्रिपाठी ने अनुवाद किया और अध्याय ५४ से २०७ तक (कुल १५४ अध्यायों का) अनुवाद आचार्य प्रवर श्री तारिणीश झा ने किया । साथ ही संशोधन-सम्पादन कार्य भी श्री झा ने सम्पन्न किया है । अतएव हम उन्हें धन्यवाद ज्ञापित करते हैं और इस बृहत् कार्य को सम्पन्न करने में श्री झा के सहयोगी पण्डित श्री रुद्रप्रसाद मिश्र, श्री हरिमोहन पाण्डेय और विशेषकर साहित्य विभागाध्यक्ष श्री हरिमोहन मालवीय के प्रति हम धन्यवाद व्यक्त करते हैं ।

विश्वास है, सहृदय पाठकगण हमारे इस महत्त्वपूर्ण प्रकाशन को अपनाकर हमें प्रोत्साहित करेंगे ।

महाकुंभ पर्व
संवत् २०४५

डॉ प्रभात शास्त्री
प्रधान मंत्री
हिन्दी-साहित्य, सम्मेलन, प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद ।

विषय-सूची

प्रास्ताविक

पुराण

पुराण उस शास्त्र को कहते हैं, जो संसार की पूर्वावस्था का निरूपण करे, व्यास आदि मुनियों के द्वारा प्रणीत हो, वेदार्थों के वर्णन में निरत हो और 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च'—इत्यादि पाँच लक्षणों से युक्त हो। अर्थात् यह सृष्टि किससे किस प्रकार हुई ? इसका लय कहाँ और कैसे होगा ? सृष्टि के पदार्थों की उत्पत्ति का क्रम किस प्रकार है या मानव-जाति के प्रमुख ऋषि और राजा किस क्रम से अधिकारारूढ़ हुए ? उनके चरित्र कैसे थे ? और इस सृष्टि एवं प्रलय के बीच समय कितना लगता है ?—इन पाँच बातों का ज्ञान जिस शास्त्र से प्राप्त हो, वही पुराण शास्त्र है। यह पुराण शास्त्र वेदों में भी उल्लिखित है। देखिए प्रमाण—

'ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं सह यजुषा। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः ।।' अथर्व० (का० ११।६।२४) तथा 'स बृहतीं दिशमनुव्यचलत्तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्। इतिहासस्य च वै सपुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनाञ्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद' अथर्व० (का० १५ अनु० १ प्र० ६ मं० १२)। सामवेदीयगोपथब्राह्मण—'एवमिमं सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वयाख्याताः सपुराणाः सस्वराः इत्यादि गोपथपूर्वभाग (२ प्र०)। छान्दोग्योपनिषद्—'स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्' (छा० उ० प्र० ७ ख० १)। 'एवं विद्वान् वाकोवाक्यमितिहासः पुराणमित्यहरहः स्वाध्यायमधीते त एनं तृप्तास्तर्पयन्ति सर्वैः कामैः सर्वैर्भोगैः' (शतपथब्रा० ११।५।७।६)।

ऊपर के सभी वेद-वाक्यों में पुराण की चर्चा सुस्पष्ट है। अतएव जो लोग केवल वेद को ही मानते हैं, पुराण को नहीं, उन्हें इन वाक्यों का चिन्तन करना चाहिए। आगे हम बतायेंगे कि किसी माने में पुराण वेद से भी प्राचीन है। यह पुराणशास्त्र पूर्व काल में एक ही था १८ नहीं। जैसा कि मत्स्यपुराण के तिरपनवें अध्याय में कहा है—

पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरेऽनघ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ।।
निर्दग्धेषु च लोकेषु वाजिरूपेण वै मया।
अङ्गानि चतुरो वेदान् पुराणं न्यायविस्तरम् ।।
मीमांसां धर्मशास्त्रं च परिगृह्य मया कृतम्।
मत्स्यरूपेण च पुनः कल्पादावुदकार्णवे ।।
अशेषमेतत्कथितमुदकान्तर्गतेन च।
श्रुत्वा जगाद च मुनीन्प्रति देवश्चतुर्मुखः ।।

अर्थात् हे निष्पाप ! दूसरे कल्प में एक ही पुराण था, जो धर्म और काम का साधक था और सौ करोड़ श्लोकों में उसका विस्तार था। जब सभी लोक दग्ध हो गये तब मैंने (भगवान् ने) अश्व का रूप धारण

करके अंग समेत चार वेद, पुराण, न्यायशास्त्र, मीमांसा और धर्मशास्त्र को ग्रहण कर लिया। पुनः कल्प के आदि में मत्स्यरूप धारण करके मैंने जलार्णव में जल के भीतर ही अशेष वेद, पुराणादि को कह डाला, जिसे सुनकर ब्रह्मा ने मुनियों को बता दिया।

इस प्रकार मत्स्यपुराण में मत्स्यावतार भगवान् ने उक्त बातें कहकर आगे किस-किस ने किस-किस को कौन-कौन पुराण सुनाया, यह कहा। इसी प्रकार रेवामाहात्म्य में भी कहा गया है—

पुराणमेकमेवासीदस्मिन्कल्पान्तरे नृप।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥
स्मृत्वा जगाद च मुनीन् प्रति देवश्चतुर्मुखः।
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः॥
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप।
व्यासरूपं विभुः कृत्वा संहरेत्स युगे युगे॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा।
तदष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रभाष्यते॥
अद्यापि देवलोके तच्छतकोटिप्रविस्तरम्।
तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षसंक्षेपेण निवेशितः॥
पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते।'

अर्थात् पहले सौ करोड़ श्लोकों में ग्रथित एक ही पुराण था। उसका स्मरण कर ब्रह्मा ने मुनियों को उपदेश दिया। तब सभी शास्त्रों और पुराणों की प्रवृत्ति हुई। राजन्! पुराण का समय से ग्रहण करना दुष्कर समझकर भगवान् ने व्यास का रूप धारण करके प्रत्येक पुराण का संक्षेप कर दिया। प्रत्येक द्वापर में चार लाख श्लोकों के प्रमाण से उसे १८ भागों में परिणत किया। आज भी देवलोक में सौ करोड़ श्लोकों वाला पुराण विद्यमान है। उसके अर्थ को चार लाख श्लोकों में संक्षेप से सन्निविष्ट किया गया है। वही अठारह पुराणों के रूप में सम्प्रति उपलब्ध है।

प्रस्तुत नारदीय पुराण में भी ब्रह्मा ने मरीचि से उक्त प्रकार की बातें कही हैं—

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणानां समुच्चयम्।
यस्मिञ्ज्ञाते भवेज्ज्ञातं वाङ्मयं सचराचरम्॥
पुराणमेकमेवासीत् सर्वकल्पेषु मानद॥
चतुर्वर्गस्य बीजस्य शतकोटिप्रविस्तरम्॥
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणादभवत्ततः।
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य महामतिः।
हरिर्व्यासस्वरूपेण जायते च युगे युगे।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा॥
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोके निर्दिशत्यपि।
अद्यापि देवलोके तु शतकोटिप्रविस्तरम्॥
अस्त्येव तस्य सारस्तु चतुर्लक्षेण वर्ण्यते।

इतना कहकर आगे अठारह पुराणों के नाम, संख्या आदि का वर्णन किया।

इस प्रकार वेद-प्रतिपादित पुराण सर्वथा प्रामाणिक हैं और इनमें प्रतिपादित भगवान् के सगुणावतारों की कथायें भी वेदमूलक होने से प्रमाणिक हैं। वेदमंत्रों में अवतारों का उल्लेख है—

जो लोग वेद को परम प्रमाण मानते हैं, किन्तु तन्मूलक अवतारवाद को नहीं मानते, उन्हें वेद-मंत्रों में अवतारों का उल्लेख देखकर निर्णय करना चाहिए—

तैत्तिरीयसंहिता में वाराहावतार—'आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाऽचरत्स इमामपश्यत्तं वाराहो भूत्वाऽहरत्'। तैत्तिरीय ब्राह्मण में—'स वराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत स पृथिवीमध आर्छत्'। ऐतरेय ब्राह्मण में परशुरामावतार—'प्रोवाच रामो भार्गवेयो विश्वान्तराय:'। छान्दोग्य में कृष्णावतार—'कृष्णाय देवकीपुत्राय'। तैत्तिरीयारण्यक में—'नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णु: प्रचोदयात्।' ऋग्वेद के विष्णु सूक्त में—'विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं य: पार्थिवानि विममे रजांसि। यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगाय:।' प्र तद्विष्णुस्तव ते वीर्येण मृगो न भीम: कुचरो गिरिष्ठा:। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा।' उसी सूक्त में—'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे। त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्य:। अतो धर्माणि धारयन्। शतपथब्राह्मण में—'वामनो ह विष्णुरास तद्देवा न जिहीडिरे महद्वै नोऽदुर्ये नो यज्ञसंमितमदुरिति। रुद्र का वर्णन अथर्ववेद—११ काण्ड २ प्रपाठक ६६ मन्त्र में—'नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नम:। बाहुभ्यामुत ते नम:॥' तैत्तिरीयारण्यक में—'नमो हिरण्यबाहवे हिरण्यवर्णाय हिरण्यरूपाय हिरण्यपतयेऽम्बिकापतय उमापतये पशुपतये नमो नम:।' देवी का वर्णन ऋग्वेद और अथर्ववेद में—'अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवै:। अहं मित्रावरुणोभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।' इत्यादि। गणपति का वर्णन ऋग्वेद में—'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।'

इसी प्रकार सूर्यादि अन्य देवों का वर्णन भी मन्त्रों में मिलता है। अतएव वेदादि में ग्रथित देव-चरित्रों का उपबृंहण पुराणों में देखकर पुराणोक्त देवकथा को अमूल कहना हास्यास्पद है।

मत्स्यपुराण ने स्पष्ट उद्घोष किया है कि ब्रह्मा ने सभी शास्त्रों से पहले पुराणशास्त्र का स्मरण किया, पश्चात् उनके मुख से वेद निकले—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता:॥

इससे पुराण की प्राचीनता वेद से भी अधिक सिद्ध होती है। इतना ही नहीं, प्रस्तुत नारदीय पुराण वेद के अर्थ से पुराण के अर्थ को कहीं अधिक मानता है और इसीलिए समग्र वेदों को पुराणों में ही प्रतिष्ठित स्वीकारता है—

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने।
वेदा: प्रतिष्ठिता: सर्वे पुराणेष्वेव सर्वदा॥

(ना० पु० २।२४।१७)

फिर नारदीय पुराण वेद, स्मृति तथा पुराण के विषय तथा क्षेत्र के विभाग को दिखलाते हुए कहता है—वेद का क्षेत्र भिन्न-भिन्न है। वेद का प्रधान क्षेत्र है यज्ञकर्म का सम्पादन—इसी कार्य में वेद का महनीय

तात्पर्य है। गृहाश्रमियों के लिए स्मृति ही वेद है अर्थात् गृहस्थ के आचार-व्यवहार आदि के ज्ञान का प्रकाशक धर्मस्मृति ही है। ये दोनों प्रकार के ग्रन्थ पुराण में केन्द्रित रहते हैं। जिस प्रकार यह आश्चर्यमय जगत् उस पुराणपुरुष (नारायण भगवान्) से उत्पन्न हुआ है, उसी प्रकार समस्त वाङ्मय विस्तृत अर्थ में पुराण साहित्य से ही उत्पन्न हुआ है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं—

शृणु मोहिनि मद्वाक्यं वेदोऽयं बहुधा स्थितः।
यज्ञकर्म क्रिया वेदः स्मृतिर्वेदो गृहाश्रमे ॥
स्मृतिर्वेदः क्रिया वेदः पुराणेषु प्रतिष्ठितः।
पुराणपुरुषाज्जातं यथेदं जगदद्भुतम्।
तथेदं वाङ्मयं सर्वं पुराणेभ्यो न संशयः ॥

(ना० पु० २।२४।१५-१६)

पुराण की सहायता वेद भी अपने रहस्य के उपबृंहण के निमित्त सर्वदा चाहता है। वह अल्प शास्त्रों के ज्ञाता से सदा डरा करता है कि वह मुझे मार न डाले—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरेदिति ॥

(महाभारत)

देवीभागवत तो पुराण को पुरुष का हृदय बताता है। इससे बढ़कर पुराण की महिमा क्या हो सकती है?—

श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम्।
एतत्त्रयोक्त एव स्याद् धर्मो नान्यत्र कुत्रचित् ॥

(दे० भा० ११।१।२१)

ऐसे महामहिमाशाली पुराण के कतिपय तथ्यों का रहस्य बिना समझे कुछ लोग अनर्गल दोषारोपण करते हैं। उनका उत्तर देना अनुपयुक्त न होगा। रहस्यानभिज्ञ लोगों का कहना है कि पुराणों में ब्रह्मा का दुहितृगमन, चन्द्रमा का गुरुपत्नीगमन, इन्द्र का अहल्यागमन आदि कतिपय प्रसंग अश्लील एवं अनर्थकारी होने से पुराण-साहित्य अपठनीय हैं। ऐसे लोगों को समझना चाहिए कि पुराण-साहित्य समुद्र के समान दुस्तर है, किन्तु कल्याणकारी विषय-रत्न से भरपूर है। ऐसे लोगों को अपनी शंका का समाधान ढूँढ़ना चाहिए, न कि पुराणों पर आक्षेप करना चाहिए। उक्त शंकाओं का समाधान प्राचीनकाल में कुमारिल भट्ट ने अपने 'तन्त्रवार्तिक' में किया है और आधुनिककाल में माधवाचार्य ने 'पुराण-दिग्दर्शन' में और महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा ने 'पुराण-अनुशीलन, में किया है। शर्मा जी ने पहले 'ब्रह्मा का दुहितृगमन' प्रसंग का उत्तर इस प्रकार दिया है—

'श्रीमद्भागवत (३।१२।२८) में इस प्रकार आया है—

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयम्भूर्हरतीं मनः।
अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥

किन्तु इस श्लोक के वास्तविक रहस्य को नहीं समझने के कारण ही अज्ञानी लोग गलत अर्थ के शिकार होते हैं। श्रीमद्भागवत का यह श्लोक ऋग्वेद की निम्नांकित ऋचा के आधार पर ही लिखा गया है—

कामस्तदग्रे समवर्त्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।

अर्थात्, सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा को सर्वप्रथम अपने को बहुत रूपों में प्रकट करने की इच्छा हुई। ऐसी इच्छा 'काम' कहलाती है और वह 'काम' मन का रेत (वीर्य) है। इससे स्पष्ट है कि सृष्टि की कामना से पहले मन की उत्पत्ति होती है। और वह मन ही प्राणपूर्वक 'वाक्' को उत्पन्न करता है। इस कारण, मन प्रजापति कहलाया और वाक् मन की पुत्री कहलाई। फिर, मन ही उस 'वाक्' में अपना रस देता है, जो वाक् के साथ उसका समागम कहा गया है।

मन की अपेक्षा वाक् सूक्ष्म होती है, अतः वह 'तन्वी' कही गई है। काम तो मन का ही धर्म है, अतः वाक् को 'अकामा' और मन को 'सकाम' कहा गया है। सृष्टि में सर्वप्रथम मन ही उत्पन्न हुआ, अतः वह 'स्वयम्भू' भी कहा जाता है।

श्रीमद्भागवत के उक्त श्लोक के आगे वर्णन मिलता है कि मरीचि आदि मुनियों ने प्रजापति के इस कार्य का विरोध किया और प्रजापति ने भी शरीर त्याग दिया, जिससे 'नीहार' की उत्पत्ति हुई। इसका तात्पर्य यह होता है कि इच्छा को दबाना चाहिए, उसे वाणी के द्वारा प्रकट नहीं करना चाहिए। वाणी के द्वारा इच्छा जब प्रकट हो जाती है, तब वह मन नष्ट हो जाता है। इस तरह की सारी सृष्टि तमोगुण के आधिक्य से प्रकट होती है। ऐसे ही तमोगुण से नीहार की उत्पत्ति होती है। प्रजापति तो त्रिगुणात्मक है ही। उसके तीनों गुणों के ही कार्य सृष्टि में होते हैं।

इस प्रसंग का दूसरा पक्ष ब्राह्मणग्रन्थों में दिया गया है—

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायत्।
दिवमित्यन्ये आहुः उषसमित्यन्ये ॥

—ऐतरेयारण्यक।

अर्थात्, "सूर्य का प्रकाश आने से पूर्व जो प्रभा फैलती है, वह उषा कहलाती है। वह उषा सूर्य से ही उत्पन्न होती है, इसलिए वह सूर्य की पुत्री कही जाती है।" फिर, सूर्य ही उसमें प्रकाशरूप बीज देता है। यही रहस्य सूर्य का दुहितृगमन माना जाता है। सूर्य अपनी दुहिता उषा के पीछे-पीछे लगा रहता है और उषा सूर्य की कान्ति से ही पुष्ट होती है। इसका संकेत इस प्रकार मिलता है—

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।

इसका भी तात्पर्य यही है कि जिस प्रकार कोई पति अपनी स्त्री के साथ-साथ घूमता है, उसी प्रकार सूर्य भी उषा के पीछे-पीछे चलता है। ऐतरेयारण्यक की तरह इस बात को ऐतरय ब्राह्मण (१३।९) भी निम्नलिखित वाक्यों में स्पष्ट करता है—

प्रजापतिः स्वां दुहितरमभ्यध्यायत् दिवमित्यन्ये उषसमित्येके इत्यादि।

अर्थात्, "सूर्योदय से कुछ पूर्व जो प्रकाश आता है, उसे उषा कहते हैं। वह उषा सूर्य से ही पैदा होती है, इसलिए वह सूर्य की दुहिता मानी गई है।" यहाँ भी उषा में सूर्य द्वारा प्रकाश दिये जाने के कारण उसे

वीर्य-दान माना गया है एवं सर्वत्र उषा आगे-आगे चलती है और सूर्य उसके पीछे लगा रहता है, यहाँ स्त्री का अनुगमन माना गया है।

इसी प्रकार 'चन्द्रमा का गुरुपत्नीगमन' प्रसंग का उत्तर देखिए—

चन्द्रमा का अपने गुरु वृहस्पति की पत्नी के साथ सहवास का उल्लेख भी पुराणों में मिलता है। उस पर भी स्वभावतः यह आशंका होती है कि देवता होते हुए भी चन्द्रमा ने ऐसा क्यों किया ? परन्तु इस आख्यायिका का भी नक्षत्र-परक अर्थ आकाशविज्ञान के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है।

गुरु का अर्थ है—वृहस्पति। पहले के ज्योतिर्विद् विद्वान् वृहस्पति के ही सम्बन्ध से गणना आरम्भ करते थे। बाद के ज्योतिर्विदों ने चन्द्रमा के अनुसार गणना प्रारम्भ कर दी। वृहस्पति के अनुसार जो तारा-गणना होती है, वही चन्द्रमा के अनुसार भी उत्पन्न हो जाती है, जिसे पौराणिक आख्यान की शैली में कहा गया कि वृहस्पति की तारा चन्द्रमा ने छीन ली। इस प्रकार से सभी आख्यान केवल तारा-मण्डल के वर्णन-स्वरूप हैं, इसमें अश्लीलता की कोई बात नहीं।

इसी तरह 'इन्द्र का अहल्या' प्रसंग भी प्रतीकात्मक आख्यान है। इन्द्र-अहल्या का समागम भी इसी प्रकार एक प्रतीकात्मक आख्यान है। इस प्रतीकात्मक आख्यान को समझने के पहले 'अहल्या' और 'गौतम'—इन शब्दों का रहस्यार्थ जान लेना आवश्यक है। व्याकरण की रीति से 'अहल्या' शब्द का अर्थ होता है—अह्ना यम्यते, अहो यमयति वा सा अहल्या। अर्थात् जो रात्रि के द्वारा समाप्त किया जाय अथवा जिसको दिन समाप्त करे, वह अहल्या है। अतः, 'अहल्या' नाम रात्रि का हुआ। इसी प्रकार 'गौतम' शब्द का अर्थ होता है— गो = पृथ्वी से प्रादुर्भूत होने वाली काली किरणें। पृथ्वी से काली ही किरणें निकला करती हैं और वे प्रकाश से दब जाती हैं, इसलिए वे किरणें लोक में प्रतीत नहीं होतीं।

इस आख्यान में कहा गया है कि इन्द्र अहल्या के पास जब गया, तब उसने चन्द्रमा को कुक्कुट पक्षी बनाया। इतना तो सभी जानते हैं कि चन्द्रमा के दो पक्ष होते हैं, इसीलिए वह पक्षी कहा गया है। इन्द्र प्रकाश का देवता है, जिसके सम्बन्ध में श्रुति कहती है—

यथाग्निगर्भा पृथिवी यथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी।

अर्थात्, जिस प्रकार पृथिवी अग्निगर्भ है, उसी प्रकार अन्तरिक्ष इन्द्र के द्वारा गर्भवान् बना हुआ है। अतः इन्द्र प्रकाश का देवता है। दिन में तो प्रकाश का साम्राज्य रहता ही है, किन्तु अहर्या, अर्थात् रात्रि में जब इन्द्र अर्थात् प्रकाश का देवता जाने लगा, तब उसने चन्द्रमा का आधार लिया। इसी आधार के लिए उसने चन्द्रमा को पक्षी बनाया। यह तो बिलकुल स्पष्ट है कि चन्द्रमा अपने दो पक्षों के द्वारा ही प्रकाश ग्रहण करता है और देता है। चन्द्रमा के बिना अहल्या (रात्रि) इन्द्र (प्रकाश) को प्राप्त नहीं कर सकती, अर्थात् प्रकाश (इन्द्र) ही रात्रि के पास जा सकता है। अतः इस तरह प्रकाश का देवता इन्द्र चन्द्रमा के साहाय्य से अहल्या-रात्रि के साथ समागम करता है और यह समागम पूर्णिमा के दिन पूर्ण रूप से होता है। कथा में वर्णित है कि जब 'गौतम' रात समझकर लौट आये, तब अपनी स्त्री के पास इन्द्र को देखकर उन्होंने शाप दिया कि जा दुष्ट, तू ने भग के लिए ऐसा दुराचार किया है अतः तू सहस्र-भग हो जा। 'सहस्रभग' का अर्थ होता है—सहस्रेषु भेषु नक्षत्रेषु गच्छति, अर्थात् हजार ताराओं में गमन करके टिमटिमाने वाला। यही कारण है कि इन्द्र सहस्र नेत्र वाला कहा जाता है। वहाँ 'भग' नेत्र-रूप में परिणत मान लिये गये हैं। इस प्रकार यह भी ताराओं का या देवताओं का पौराणिक भाषा में चरित्र-चित्रण किया गया है। इसमें आक्षेप-योग्य कोई बात नहीं है। ऋषि ने अपनी स्त्री को शिला हो जाने का शाप दिया, उसका आशय है कि

सूर्यास्त के समय जगत् की स्थिति पाषाण-जैसी ही रहती है। अर्थात्, उस समय न प्रकाश ही रहता है, न गौतम अर्थात् अन्धकार ही।

इसी प्रकार राजपत्नी का अश्व के साथ शयन, विष्णु-वृन्दा-वृत्तान्त, अगस्त्य का समुद्र-पान आदि का रहस्य न जानने से लोग आशंका करते हैं। इन सबका उत्तर 'पुराण-परिशीलन' में द्रष्टव्य है। अतएव पूर्ण जानकारी के बिना अल्प ज्ञान के आधार पर पुराणों पर छींटाकशी करना अनुचित है।

पुराण-साहित्य महनीय है। पुराणों से ही भारतीय जीवन का आदर्श, भारत की सभ्यता, संस्कृति तथा भारत के विद्या-वैभव के उत्कर्ष का वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। पुराण न केवल साहित्य हैं अपितु इनमें विश्वकल्याणकारी त्रिविध (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक) उन्नति का मार्ग भी प्रदर्शित किया गया है। अतएव दुराग्रह एवं पक्षपात से रहित होकर पुराण-साहित्य का अध्ययन करना सबके लिए कल्याणकारी है। आगे अब प्रस्तुत पुराण का परिचय दिया जा रहा है।

पुराण-रचयिता

अष्टादशपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः (महाभारत, आदिपर्व), अष्टादश पुराणानां वक्ता सत्यवतीसुतः (शिवपुराण, रेवाखण्ड)—इत्यादि प्रमाणों से अठारहों पुराणों के रचयिता श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास माने जाते हैं। स्वयं ब्रह्मा प्रत्येक द्वापर युग के अन्त में और कलियुग के आरम्भ में व्यास के रूप में अवतीर्ण होकर अष्टादशपुराणों को सम्पादित, निर्मित एवं ग्रन्थित करते हैं। इस वाराहकल्प में द्वापर युगों की संख्या के अनुसार अब तक २८ व्यास हो चुके हैं। अन्तिम व्यास का नाम श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास था जिनकी अवशिष्ट शास्त्र-कृतियाँ आज सौभाग्यवश हमें प्राप्य हैं। २९ वें द्वापर में अर्थात् आगामी समय में जो व्यास होंगे, उनका नाम होगा श्री अश्वत्थामा व्यास।

श्रीव्यास जी का परिचय हमारे पुरातन साहित्य में विस्तार के साथ आया है। संक्षेप में व्यास का स्वरूप समझ लेना ही यहाँ पर्याप्त है। पुराणवर्म में पं० कालूराम शास्त्री ने लिखा है—

व्यास कोई एक व्यक्ति नहीं होता, प्रत्येक द्वापर में नवीन व्यास हुआ करते हैं। व्यास किसी का नाम नहीं, किन्तु पदवी है। गोलवृत्त में जो एक सीधी रेखा निकल जाती है, उसका नाम व्यास है। इसी प्रकार वेदवृत्त में जो सीधा निकल जाय उसका नाम वेदव्यास है। जितने व्यास हुए हैं, वे वेद और पुराणतत्त्व के पूर्ण ज्ञाता हुए हैं।

नारदीयपुराण

नारदोक्त पुराण ही 'नारदीय' नाम से प्रख्यात है—'नारदोक्तं पुराणं तु नारदीयं प्रचक्षते' (शिवउपपुराण) नारद ने बृहत्कल्पप्रसंग में जिन अनेक धर्म-आख्यायिकाओं को कहा है, वही २५००० श्लोकों में ग्रथित होकर नारदीयमहापुराण बना है—

यत्राह नारदो धर्मान् बृहत्कल्पाश्रयाणि च।
पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते॥

(मत्स्यपुराण ५३।२३)

किन्तु वर्तमान नारदीयपुराण में ३००० श्लोकों की कमी है, २२००० श्लोक ही मिलते हैं। इस पुराण के पूर्वभाग में सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन चार ब्रह्मपुत्रों का ब्रह्मपुत्र नारद के प्रति कथन है। किन्तु ऐसा भी माना जाता है कि नारद का ही अपने उक्त चारों भाइयों के प्रति कथन है, ऊपर आये हुए शिवउपपुराण और मत्स्यपुराण के वचनों से यही सिद्ध होता है। नारदीयपुराण में क्या विषय है ? इसका संक्षेप में इसी पुराण ने उत्तर दे दिया है—

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुराणं नारदीयकम् ।
पञ्चविंशतिसाहस्रं बृहच्चित्रकथाश्रयम् ।

पूर्वभाग—प्रथमपाद में—

सूतशौनकसंवादः सृष्टिसंक्षेपवर्णनम् ।
नानाधर्मकथाः पुण्याः प्रवृत्तेः समुदाहृताः ।
प्राग्भागे प्रथमे पादे सनकेन महात्मना ॥

पूर्वभाग-द्वितीयपाद में—

द्वितीये मोक्षधर्माख्ये मोक्षोपायनिरूपणम् ।
वेदाङ्गानाञ्च कथनं शुकोत्पत्तिश्च विस्तरात् ।
सनन्दनेन गदिता नारदाय महात्मने ॥

पूर्वभाग-तृतीयपाद में—

महातन्त्रे समुद्दिष्टं पशुपाशविमोक्षणम् ।
मन्त्राणां शोधनं दीक्षा मन्त्रोद्धारश्च पूजनम् ॥
प्रयोगाः कवचं चैव सहस्रं स्तोत्रमेव च ।
गणेशसूर्यविष्णूनां शिवशक्त्योरनुक्रमात् ।
सनत्कुमारमुनिना नारदाय तृतीयके ॥

पूर्वभाग-चतुर्थपाद में—

पुराणलक्षणञ्चैव प्रमाणं दानमेव च ।
पृथक् पृथक् समुद्दिष्टं दानकालपुरः सरम् ॥
चैत्रादिसर्वमासेषु तिथीनां च पृथक् पृथक् ।
प्रोक्तम्प्रतिपदादीनां व्रतं सर्वाघनाशनम् ॥
पूर्वभागोऽयमुदितो बृहदाख्यानसंज्ञितः ॥

उत्तरभाग में—

अस्योत्तरे विभागे तु प्रश्न एकादशीव्रते ।
वशिष्ठेनाथ संवादो मान्धातुः परिकीर्तितः ॥
रुक्माङ्गदकथा पुण्या मोहिन्युत्पत्तिकर्म च ।
वसुशापश्च मोहिन्यै पश्चादुद्धरणक्रिया ॥
गंगाकथा पुण्यतमा गयायात्रानुकीर्तनम् ।
काश्या माहात्म्यमतुलम्पुरुषोत्तमवर्णनम् ॥
यात्राविधानं क्षेत्रस्य बह्वाख्यानसमन्वितम् ।
प्रयागस्याथ माहात्म्यं कुरुक्षेत्रस्य तत्परम् ॥
हरिद्वारस्य चाख्यानं कामोदाख्यानकन्तथा ।
बदरीतीर्थमाहात्म्यं कामाख्यायास्तथैव च ॥

प्रभासस्य च माहात्म्यं पुराणाख्यानकन्तथा ।
गौतमाख्यानकं पश्चाद् वेदपादस्तवस्ततः ॥
गोकर्णक्षेत्रमाहात्म्यं नर्मदातीर्थवर्णनम् ।
अवन्त्याश्चैव माहात्म्यं मथुरायास्ततः परम् ।
वृन्दावनस्य महिमा वसोर्ब्रह्मान्तिके गतिः ।

फलश्रुति---

यः शृणोति नरो भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः ।
स याति ब्रह्मणो धाम नात्र कार्या विचारणा ॥
यस्त्वेतदिषुपूर्णायां धेनूनां सप्तकाचितम् ।
प्रदद्याद् द्विजवर्याय स लभेन्मोक्षमेव च ॥
यश्चानुक्रमणीमेतां नारदीयस्य वर्णयेत् ।
शृणुयाद्वैकचित्तेन सोऽपि स्वर्गगतिं लभेत् ॥
(ना० पु० पूर्वभाग, अ० ९७)

इस प्रकार नारदीयपुराण ने जहाँ अपने विषयों की अनुक्रमणी दी है वहीं अठारहों पुराणों की भी विस्तृत विषयानुक्रमणिका प्रस्तुत की है। यह अनुक्रमणी सभी पुराणों के विषयों को जानने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसकी सहायता से हम वर्तमान पुराणों के मूलरूप तथा प्रक्षिप्त अंश की छानबीन बड़ी सुगमता से कर सकते हैं। इस पुराण में विविध ज्ञान-विज्ञान की बातें, अनेक इतिहास-गाथायें, गोपनीय अनुष्ठान आदि का वर्णन, धर्मनिरूपण तथा भक्तिमहत्त्वपरक विलक्षण कथायें, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष, मन्त्र-विज्ञान आदि का अलौकिक और महत्त्वपूर्ण व्याख्यान संगृहीत है।

यद्यपि सभी पुराण श्रीहरि के स्वरूप ही हैं। फिर भी छह पुराण सात्त्विक माने जाते हैं। वे ये हैं—

वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम् ।
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने ॥
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै ।
(पद्मपुराणउत्तरखण्ड, २६३।८२-८३)

अतएव नारदीय पुराण सात्त्विक पुराण है। इसमें परात्पर ब्रह्म विशुद्ध सत्त्वमूर्ति श्रीहरि की लीलाओं का गायन हुआ है। यह पुराण 'भक्त्या तुष्यति माधवो न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः' इस सिद्धान्त का परिपोषक है। यह कहता है—

यथा भूमिं समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ।
तथा भक्तिं समाश्रित्य सर्वकार्याणि साधयेत् ॥
(पूर्वभाग ४।५)

किन्तु इस पुराण की दृष्टि में भक्ति के साथ वर्णाश्रमधर्म एवं शास्त्रोक्त कर्तव्यों का पालन भी अत्यावश्यक है। सदाचारपरायण, सदाचारत्यागी भक्त पर भगवान कभी प्रसन्न नहीं होते—

हरिभक्तिपरो वापि हरिध्यानरतोऽपि वा ।
भ्रष्टो यः स्वाश्रमाचारात् पतितः सोऽभिधीयते ।।
वेदो वा हरिभक्तिर्वा भक्तिर्वापि महेश्वरे ।
आचारात्पतितं मूढं न पुनाति द्विजोत्तमम् ।।

(पूर्व० ४, २४-२५)

यः स्वधर्मं परित्यज्य भक्तिमन्त्रेण जीवति ।
न तस्य तुष्यते विष्णुराचारेणैव तुष्यति ।।
तस्मात् कार्या हरेर्भक्तिः स्वधर्मस्याविरोधिनी ।
स्वधर्महीना भक्तिश्चाप्यकृतैव प्रकीर्तिता ।।

(पूर्व० १५, १५३, १५५)

यह पुराण एकादशी व्रत के अनुष्ठान का माहात्म्य बड़े विस्तार से प्रभावक शब्दों में वर्णन करता है। यहाँ परम वैष्णव रुक्मांगद राजा का उल्लेख है, जिन्होंने अपने राज्य में आठ वर्ष से लेकर अस्सी वर्ष वय वाले व्यक्तियों के लिए आदेश जारी कर रखा था कि इनमें जो एकादशी का व्रत नहीं करेगा वह वध्य माना जाएगा। यह पुराण अग्निपुराण तथा गरुडपुराण के समान समस्त विद्याओं का प्रतिपादन करने वाला विश्व-कोश के समान है। इन विद्याओं के प्रतिपादक किसी मान्य ग्रन्थ का संक्षेप यहाँ प्रस्तुत किया गया है

कृतज्ञता-ज्ञापन

लगभग ४० वर्ष पहले नारदीयपुराण (आनन्दाश्रम पूना संस्करण) का अपूर्ण हिन्दी अनुवाद हमने किया था। उसके बाद सम्मेलन में शासनतन्त्र बदल जाने से बहुत वर्षों तक पुराण-कार्य स्थगित रहा। पुनः श्री प्रभात शास्त्री के प्रशासनकाल में यह कार्य पुनरुज्जीवित हुआ। शास्त्री जी का दृढ़संकल्प है कि वे जब तक सम्मेलन में रहेंगे तब तक पुराणों का प्रकाशन निर्बाध गति से चलता रहेगा। उनके इस सत्य संकल्प के लिए जितना साधुवाद और धन्यवाद दिया जाय, वह कम ही होगा। शास्त्रीजी ने मुझे इस पुण्य कार्य का भार सौंपा, अतः मैं उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

ऊपर संकेत के अनुसार मुझे अपूर्ण हिन्दी अनुवाद को पूर्ण करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा; कारण जिस संस्करण से इसका अनुवाद किया था, वह संस्करण प्रेस में देने से पूर्व मुझे नहीं मिला। नारदीय-पुराण की खोजबीन करने पर प्रयागस्थ पं० श्री महादेवप्रसाद पाठक वैद्य जी से नारदीय पुराण (बम्बई संस्करण) की एक प्रति प्राप्त हुई। उसकी 'फोटो स्टेट' कापी कराकर हमने प्रेस में दी। पाठकजी की इस उदारता के लिए हम उनके प्रति अपना आभार प्रकट करते हैं।

अनुवाद-कार्य को पूर्ण करने में मुझे कल्याण के 'नारद विष्णु पुराण अंक' से बहुत सहायता मिली। अतः मैं 'कल्याण' के कर्णधारों के प्रति अपनी हार्दिक कार्तज्ञ्य ज्ञापित करता हूँ।

जैसा कि मैंने ऊपर संकेत किया है कि इसका अनुवाद पूना संस्करण से और संशोधन बम्बई संस्करण से किया गया है, इससे कुछ स्थलों पर पाठभिन्नता के कारण भावानुवाद ही करना पड़ा। कुछ कारणवश मंत्र-संशोधन और मन्त्रोद्धार भी सब जगह नहीं कर सका। इसके लिए मैं पाठकों से क्षमा चाहता हूँ। यदि इसके दूसरे संस्करण तक मैं क्रियाशील रहा तो इस कमी को पूर्ण करने का भरसक प्रयास करूँगा। 'करकृतमपराधं क्षन्तुमर्हन्ति सन्तः' इस अभ्यर्थना के साथ अपना निवेदन समाप्त करता हूँ।

मौनी अमावास्या
सन् १९८९

निवेदक
तारिणीश झा

ॐ श्रीगुरुभ्यो नमः ।। ॐ श्रीगणेशाय नमः ।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।।

श्रीनारदीयपुराणम्

पूर्वार्द्धम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

ओं नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ।।१।।

ओं वेदव्यासाय नमः ।।

वन्दे वृन्दावनासीनमिन्दिरानन्दमन्दिरम् । उपेन्द्रं सांद्रकारुण्यं परानन्दं परात्परम् ।।१।।
ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यं यस्यांशा लोकसाधकाः । तमादिदेवं चिद्रूपं विशुद्धं परमं भजे ।।२।।
शौनकाद्या महात्मान ऋषयो ब्रह्मवादिनः । नैमिषाख्ये महारण्ये तपस्तेपुर्मुमुक्षवः ।।३।।
जितेन्द्रिया जिताहाराः सन्तः सत्यपराक्रमाः । यजन्तः परया भक्त्या विष्णुमाद्यं सनातनम् ।।४।।
अनीर्ष्याः सर्वधर्म्मज्ञा लोकानुग्रहतत्पराः । निर्म्ममा निरहंकाराः परस्मिन्रतमानसाः ।।५।।
न्यस्तकामा विवृजिनाः शमादिगुणसंयुताः । कृष्णाजिनोत्तरीयास्ते जटिला ब्रह्मचारिणः ।।६।।

अध्याय १

पुरुषोत्तम नर और नारायण तथा भगवती सरस्वती देवी को नमस्कार करके जय शब्द का उच्चारण करना चाहिए ।।१।।

वृन्दावन में बैठे हुए, लक्ष्मी के आनन्द के धाम, इन्द्र के छोटे भाई, करुणापूर्ण, परानन्दस्वरूप, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामक भगवान् की मैं वन्दना करता हूँ। जिस परब्रह्म के लोक-साधक देव अंश रूप हैं, उस चित्स्वरूप, विशुद्ध, परम तत्त्व, आदि देव का मैं भजन करता हूँ ।।२।।

प्राचीन काल में मुक्ति की कामना से शौनक आदि ब्रह्मवादी ऋषि नैमिषारण्य क्षेत्र में तपस्या करते थे। वे ऋषि जितेन्द्रिय, परमव्रती, सत्यसन्ध और अपनी उत्कृष्ट भक्ति से आद्य सनातन भगवान् विष्णु की उपासना में रत थे ।।३।।

वे ईर्ष्या से रहित, अखिल धर्मों के मर्मज्ञ, लोक-कल्याण में निरत, निर्मम, निरभिमान और परब्रह्म के ध्यान में मग्न रहते थे। अपनी सम्पूर्ण भौतिक कामनाओं को छोड़कर, शम आदि गुणों से युक्त होकर वे जटाधारी ब्रह्मचारी कृष्णमृगचर्म को ही धारण करते थे ।।६।।

गृणन्तः परमं ब्रह्म जगच्चक्षुः समौजसः । धर्म्मशास्त्रार्थतत्त्वज्ञास्तेपुनैमिषकानने ॥७॥
यज्ञैर्यज्ञपतिं केचिज्ज्ञानैर्ज्ञानात्मकं परे । केचिच्च परया भक्त्या नारायणमपूजयन् ॥८॥
एकदा ते महात्मानः समाजं चक्रुरुत्तमाः । धर्मार्थकाममोक्षाणामुपायाञ्ज्ञातुमिच्छवः ॥९॥
षड्विंशतिसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् । तेषां शिष्यप्रशिष्याणां संख्या वक्तुं न शक्यते ॥१०॥
मुनयो भावितात्मानो मिलितास्ते महौजसः । लोकानुग्रहकर्त्तारो वीतरागा विमत्सराः ॥११॥
कानि क्षेत्राणि पुण्यानि कानि तीर्थानि भूतले । कथं वा प्राप्यते मुक्तिर्नृणां तापार्तचेतसाम् ॥१२॥
कथं हरौ मनुष्याणां भक्तिरव्यभिचारिणी । केन सिध्येत च फलं कर्मणस्त्रिविधात्मनः ॥१३॥
इत्येवं प्रष्टुमात्मानमुद्यतान्प्रेक्ष्य शौनकः । प्राञ्जलिर्वाक्यमाहेदं विनयावनतः सुधीः ॥१४॥

शौनक उवाच

आस्ते सिद्धाश्रमे पुण्ये सूतः पौराणिकोत्तमः । यजन्मखैर्बहुविधैर्विश्वरूपं जनार्दनम् ॥१५॥
स एतदखिलं वेत्ति व्यासशिष्यो महामुनिः । पुराणसंहितावक्ता शान्तो वै रोमहर्षणिः ॥१६॥
युगे युगेऽल्पकान्धर्मान्निरीक्ष्य मधुसूदनः । वेदव्यासस्वरूपेण वेदभागं करोति वै ॥१७॥
वेदव्यासमुनिः साक्षान्नारायण इति द्विजाः । शुश्रुमः सर्वशास्त्रेषु सूतस्तु व्यासशासितः ॥१८॥
तेन संशासितः सूतो वेदव्यासेन धीमता । पुराणानि स वेत्त्येव नान्यो लोके ततः परः ॥१९॥
स पुराणार्थविल्लोके स सर्वज्ञः स बुद्धिमान् । स शान्तो मोक्षधर्मज्ञः कर्मभक्तिकलापवित् ॥२०॥

इस प्रकार धर्मशास्त्रों के अर्थ एवं रहस्य को जानने वाले, सर्वदा परब्रह्म की स्तुति में ही लीन रहने वाले, सर्वद्रष्टा और समान ओज रखने वाले ऋषि उस नैमिषकानन में तपोरत थे ।।७।।

उनमें से कुछ तो यज्ञों के द्वारा यज्ञपति की, कुछ ज्ञान के द्वारा ज्ञानस्वरूप ब्रह्म की और कुछ ऋषि अपनी पराभक्ति के द्वारा नारायण की उपासना करते थे ।।८।।

एक दिन उन महात्मा मुनियों ने धर्म-अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति के साधनों को जानने की इच्छा से एक गोष्ठी का आयोजन किया। उस गोष्ठी में छब्बीस हजार ऊर्ध्वरेता, जिनके शिष्योपशिष्यों की संख्या नहीं कही जा सकती, एवं अन्यान्य महातेजस्वी और ज्ञानी मुनि सम्मिलित हुए। वे लोककल्याणकर्त्ता, वीत-राग और ईर्ष्यारहित मुनि—इस भूतल पर कौन-कौन से पवित्र तीर्थ और पुण्यदायक क्षेत्र हैं, अथवा त्रिविधताप से संतप्त मनुष्यों को कैसे मुक्ति मिल सकती है, किस प्रकार श्री विष्णु में मनुष्यों की अचल भक्ति हो सकती है और किस उपाय से त्रिविध कर्म (दैविक, दैहिक और आध्यात्मिक, अथवा कायिक, वाचिक और मानसिक) सफल हो सकते हैं, आदि प्रश्नों को महर्षि शौनक से पूछने के लिए उद्यत हुए।

उन्हें देखकर विनयावनत सुधी शौनक ने हाथ जोड़कर कहा ।। ९—१४ ।।

शौनक बोले—'सभ्यगण ! पुनीत सिद्ध आश्रम में महान् पुराण विद्या के ज्ञाता सूत जी रहते हैं। वे बहुविध यज्ञों में विश्वरूप जनार्दन की अराधना किया करते हैं। वे ही व्यास के प्रिय शिष्य, पुराण संहिता के वक्ता, शान्त, महामुनि रोमहर्षण जी इन सम्पूर्ण तत्त्वों को जानते हैं। युग-युग में धर्म का ह्रास देखकर स्वयं मधुसूदन वेदव्यास के रूप में अवतार लेकर वेदों का विभाग करते हैं। द्विजगण ! मुनि वेदव्यास साक्षात् नारायण हैं। सुना जाता है कि कृपालु व्यास जी ने सूत को सब शास्त्रों का उपदेश किया है। जब उन्ही धीमान् वेदव्यास जी ने सूत को शास्त्रों का उपदेश किया है तो मैं यह कह सकता हूँ कि इस लोक में वे ही पुराणों को जानते हैं। उनसे बढ़कर दूसरा कोई पुराणविद् नहीं है। वे ही इसलोक में पुराण के तत्त्वज्ञाता हैं। वे ही सर्वज्ञ और वे ही बुद्धिमान्

वेदवेदाङ्गशास्त्राणां सारभूतं मुनीश्वराः । जगद्धितार्थं तत्सर्वं पुराणेषूक्तवान्मुनिः ॥२१॥
ज्ञानार्णवो वै सूतस्तत्सर्वतत्त्वार्थकोविदः । तस्मात्तमेव पृच्छाम इत्यूचे शौनको मुनीन् ॥२२॥
ततस्ते मुनयः सर्वे शौनकं वाग्विदां वरम् । समाश्लिष्य सुसंप्रीताः साधु साध्विति चाब्रुवन् ॥२३॥
अथ ते मुनयो जग्मुः पुण्यं सिद्धाश्रमं वने । मृगव्रजसमाकीर्णं मुनिभिः परिशोभितम् ॥२४॥
मनोज्ञभूरुहलताफलपुष्पविभूषितम् । युक्तं सरोभिरच्छोदैरतिथ्यातिथ्यसंकुलम् ॥२५॥
ते तु नारायणं देवमनन्तमपराजितम् । यजन्तमग्निष्टोमेन ददृशू रोमहर्षणिम् ॥२६॥
यथार्हमर्चितास्तेन सूतेन प्रथितौजसः । तस्थावभृथमीक्षन्तस्तत्र तस्थुर्मखालये ॥२७॥
अधरावभृथस्नातं सूतं पौराणिकोत्तमम् । पप्रच्छुस्ते सुखासीनं नैमिषारण्यवासिनः ॥२८॥

ऋषय ऊचुः

वयं त्वतिथयः प्राप्ता आतिथेयास्तु सुव्रत । ज्ञानदानोपचारेण पूजयास्मान्यथाविधि ॥२९॥
दिवौकसो हि जीवन्ति पीत्वा चन्द्रकलामृतम् । ज्ञानामृतं भूसुरास्तु मुने त्वन्मुखनिःसृतम् ॥३०॥
येनेदमखिलं जातं यदाधारं यदात्मकम् । यस्मिन्प्रतिष्ठितं तात यस्मिन्वा लयमेष्यति ॥३१॥
केन विष्णुः प्रसन्नः स्यात्स कथं पूज्यते नरैः । कथं वर्णाश्रमाचारश्चातिथेः पूजनं कथम् ॥३२॥
सफलं स्याद्यथा कर्म मोक्षोपायः कथं नृणाम् । भक्त्या किं प्राप्यते पुंभिस्तथा भक्तिश्च कीदृशी ॥३३॥

हैं । परमशान्त, उदारचेता सूत जी ही मोक्ष धर्म के ज्ञाता तथा कर्म और भक्तितत्त्व के मर्मज्ञ हैं । मुनिवर व्यास जी ने जगत्-कल्याण के लिए वेद-वेदाङ्ग और शास्त्रों के सारभूत तत्त्व को पुराणों में कह दिया है । ज्ञान के सागर सूत जी उन सम्पूर्ण तत्त्वों के ज्ञाता हैं, अतः उन्हीं सर्वज्ञ सूत जी से इन प्रश्नों को पूछना चाहिए । शौनक जी इतना कह कर चुप हो गये ॥१५—२२॥

उपर्युक्त बातों को सुनकर वे सभी मुनि प्रेम-गद्गद हो गये । उन्होंने परमवाग्मी शौनक को छाती से लगाया और साधुवाद द्वारा सम्मानित किया । तत्पश्चात् वे मुनि वनमें उस पवित्र सिद्धाश्रम में पहुँचे, जो मृग-समूह से व्याप्त, मुनिगण से शोभायमान और मनोहर वृक्षों, लताओं, फूलों और फलों से विभूषित था । विमल जल वाले सरोवर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे । वहां आये हुए अतिथियों के आतिथ्य से विचित्र चहल पहल थी । उन मुनियों ने अग्निष्टोम यज्ञ द्वारा अनन्त, सर्वातिशायी नारायण की उपासना में तल्लीन रोमहर्षण को देखा । विख्यात तेजस्वी उन ऋषियों का सूत जी ने यथायोग्य सत्कार किया । वे मुनि भी उस यज्ञशाला में सूत जी के यज्ञ को देखने के लिए बैठ गए । जब पौराणिकप्रवर सूत जी अवभृथ स्थान (यज्ञ के बाद का स्थान) कर चुके और सुखपूर्वक अपने आसन पर बैठ गए तब नैमिषारण्यनिवासी उन मुनियों ने विनयपूर्वक पूछा ॥२३-२८॥

ऋषियों ने कहा—सुव्रत ! हम अतिथि आज आप के समीप आए हुए हैं और आप अतिथिसेवापरायण हैं । अतः आप अपने ज्ञान दान द्वारा हम लोगों की यथाविधि पूजा कीजिए । स्वर्ग में निवास करने वाले देवता चन्द्रमा की किरणों से अमृत पीकर जीते हैं और मुने ! इस धरातल के निवासी देवता (ब्राह्मण) आपके मुख चन्द्र से निकली ज्ञानसुधा को पीकर जीते हैं । किससे इस लोक की सृष्टि हुई है ? कौन इसका आधार है ? क्या इसका स्वरूप है ? तात ! किसमें यह ब्रह्माण्ड प्रतिष्ठित है ? अथवा किसमें यह अखिल लोक पुनः लीन होगा ? किस उपाय से भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं ? किस प्रकार मनुष्यों को उनकी पूजा करनी चाहिए ? वर्णाश्रमव्यवस्थानुकूल आचार किस प्रकार करनी चाहिए ? मनुष्यों को कर्म में सफलता कैसे मिलेगी ? और

वद सूत मुनिश्रेष्ठ सर्वमेतदसंशयम् । कस्य नो जायते श्रद्धा श्रोतुं त्वद्वचनामृतम् ॥३४॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे यदिष्टं वो वदामि तत् । गीतं सनकमुख्यैस्तु नारदाय महात्मने ॥३५॥
पुराणं नारदोपाख्यमेतद्वेदार्थसंमितम् । सर्वपापप्रशमनं दुष्टग्रहनिवारणम् ॥३६॥
दुःस्वप्ननाशनं धर्म्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् । नारायणकथोपेतं सर्वकल्याणकारणम् ॥३७॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुभूतं महाफलम् । अपूर्वं पुण्यफलदं शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥३८॥
महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः । श्रुत्वैतदार्षं दिव्यं च पुराणं शुद्धिमाप्नुयात् ॥३९॥
यस्यैकाध्यायपठनाद्वाजिमेधफलं लभेत् । अध्यायद्वयपाठेन राजसूयफलं तथा ॥४०॥
ज्येष्ठमासे पूर्णिमायां मूलर्क्षे प्रयतो नरः । स्नात्वा च यमुनातोये मथुरायामुपोषितः ॥४१॥
अभ्यर्च्य विधिवत्कृष्णं यत्फलं लभते द्विजाः । तत्फलं समवाप्नोति अध्यायत्रयपाठतः ॥४२॥
तत्प्रवक्ष्यामि वः सम्यक् शृणुध्वं गदतो मम । जन्मायुतार्जितैः पापैर्मुक्तः कोटिकुलान्वितः ॥४३॥
ब्रह्मणः पदमासाद्य तत्रैव प्रतितिष्ठति । श्रुत्वास्य तु दशाध्यायान्भक्तिभावेन मानवः ॥४४॥
निर्वाणमुक्तिं लभते नात्र कार्या विचारणा । श्रेयसां परमं श्रेयः पवित्राणामनुत्तमम् ॥४५॥
दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं श्रोतव्यं यत्नतो द्विजाः । श्रद्धया सहितो मर्त्यः श्लोकं श्लोकार्द्धमेव वा ॥४६॥
पठित्वा मुच्यते सद्यो महापातकराशिभिः । सतामेव प्रवक्तव्यं गुह्याद्गुह्यतरं यतः ॥४७॥
वाचयेत्पुरतो विष्णोः पुण्यक्षेत्रे द्विजान्तिके । ब्रह्मद्रोहपराणां च दम्भाचारयुतात्मनाम् ॥४८॥

मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी ? भक्ति से मनुष्य क्या प्राप्त करता है ? भक्ति का स्वरूप क्या है ? हे मुनिश्रेष्ठ सूत ! इन प्रश्नों का अवश्य समाधान कीजिये जिससे हम लोगों का संशय दूर हो । आपका वचनामृत पान करने के लिए भला किसकी श्रद्धा नहीं होगी ॥२९-३४॥

सूत बोले—ऋषिवर्यवृन्द ! एवमस्तु, कृपाकर सुनिए ? इस विषय में सनकादि प्रमुख ऋषियों ने महात्मा नारद से जिस पुराण को कहा है उसी को यहाँ कह रहा हूँ । वह वेदार्थसम्मत पुराण नारद पुराण नाम से प्रसिद्ध है । वह पापनाशक, दुष्टग्रह-शान्ति-कारक, भुक्ति-मुक्ति-प्रदाता, पुण्यवर्धक, दुःस्वप्ननाशक, भगवान् श्रीनारायण की पुण्यकथाओं से सम्पन्न एवं कल्याणप्रद है । ऐसे धर्म-अर्थ, काम और मोक्ष के हेतुभूत, महाफलदायक अपूर्व और पुण्यफलदायक पुराण आप लोग सावधान होकर सुनें ! छोटे बड़े पापों को करने वाले व्यक्ति भी इस आर्ष एवं दिव्य पुराण को सुनकर शुद्ध हो जाते हैं । इसके एक अध्याय के पाठ करने से भी मनुष्य अश्वमेध के बराबर फल पाते हैं । दो अध्याय के पाठ से तो वह राजसूय का फल पा जाता है । जेठ मास की पूर्णिमा को मूल नक्षत्र में एकाग्र भाव से यमुना में स्नान करने और मथुरा पुरी में उपवास-व्रत करके कृष्ण की विधिवत् पूजा करने से मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, वह फल इस पुराण के तीन अध्याय के पाठ से मिल जाता है । अतएव इस पुराण की कथा आज मैं भलीभाँति कह रहा हूँ, आप लोग सुनें । मनुष्य इस पुराण को सुनकर दस हजार जन्मों के किये हुए पापों से मुक्त होकर अपने करोड़ों कुलों के साथ ब्रह्म-पद को प्राप्त करता है । भक्ति पूर्वक इसके दश अध्यायों के सुनने से निर्वाण प्राप्त होता है । इसमें किसी प्रकार की शंका करने की आवश्यकता नहीं है । द्विजगण ! इस परम पवित्र, कल्याणमय, दुःस्वप्न नाशक पुण्य पुराण को यत्न पूर्वक सुनना चाहिए । श्रद्धा के सहित मनुष्य यदि एक श्लोक अथवा आधा श्लोक भी पढ़े तो भी असंख्य महापापों से छूट जाता है ३५-४६३॥ यह पुराण श्रद्धालु व्यक्ति को ही सुनाना चाहिए, क्योंकि इसका रहस्य गोपनीय है । इस पुराण को

जनानां बकवृत्तीनां न ब्रूयादिदमुत्तमम् । त्यक्तकामादिदोषाणां विष्णुभक्तिरतात्मनाम् ॥४९॥
सदाचारपराणां च वक्तव्यं मोक्षसाधनम् । सर्वदेवमयो विष्णुःस्मरतामार्तिनाशनः ॥५०॥
सद्भक्तिवत्सलो विप्रा भक्त्या तुष्यति नान्यथा । अश्रद्धयापि यन्नाम्नि कीर्तितेऽथस्मृतेपि वा ॥५१॥
विमुक्तः पातकैर्मर्त्यो लभते पदमव्ययम् । संसारघोरकान्तारदावाग्निर्मधुसूदनः ॥५२॥
स्मरतां सर्वपापानि नाशयत्याशु सत्तमाः । तदर्थद्योतकमिदं पुराणं श्राव्यमुत्तमम् ॥५३॥
श्रवणात्पठनाद्वापि सर्वपापविनाशकृत् । यस्यास्य श्रवणे बुद्धिर्जायते भक्तिसंयुता ॥५४॥
स एव कृतकृत्यस्तु सर्वशास्त्रार्थकोविदः । यदर्जितं तपः पुण्यं तन्मन्ये सफलं द्विजाः ॥५५॥
यदस्य श्रवणे भक्तिरन्यथा नहि जायते । सत्कथासु प्रवर्तन्ते सज्जना ये जगद्धिताः ॥५६॥
निन्दायां कलहे वापि ह्यसन्तः पापतत्पराः । पुराणेष्वर्थवादत्वं ये वदन्ति नराधमाः ॥५७॥
तैरर्जितानि पुण्यानि क्षयं यान्ति द्विजोत्तमाः । समस्तकर्मनिर्मूलसाधनानि नराधमः ॥५८॥
पुराणान्यर्थवादेन ब्रुवन्नरकमश्नुते । अन्यानि साधयन्त्येव कार्याणि विधिना नराः ॥५९॥
पुराणानि द्विजश्रेष्ठाः साधयन्ति न मोहिताः । अनायासेन यः पुण्यानीच्छतीह द्विजोत्तमाः ॥६०॥
श्रोतव्यानि पुराणानि तेन वै भक्तिभावतः । पुराणश्रवणे बुद्धिर्यस्य पुंसः प्रवर्तते ॥६१॥
पुरार्जितानि पापानि तस्य नश्यन्त्यसंशयम् । पुराणे वर्तमानेऽपि पापपाशेन यन्त्रितः ॥
आदरेणान्यगाथासु सक्तबुद्धिः पतत्यधः ॥६२॥

पवित्र क्षेत्र में द्विजातियों के समीप भगवान् विष्णु के सान्निध्य में सुनाना चाहिए। ब्रह्मद्रोह करने वालों, पाखण्ड में रत रहने वालों और बगुला भक्तों को तो कभी भी यह उत्तम पुराण नहीं सुनाना चाहिए। यह मोक्षदायी पुराण सदाचारपरायण, कामादिदोषरहित और विष्णु-भक्ति में तल्लीन रहने वाले महापुरुषों को सुनाना चाहिए। विप्रगण ! स्मरण करने वालों की पीड़ा दूर करने वाले, सच्ची भक्ति के स्नेही और अखिल देव स्वरूप विष्णु भक्ति से सन्तुष्ट होते हैं, अन्य प्रकार से नहीं। मनुष्य यदि बिना श्रद्धा के भी विष्णु का नाम कीर्तन अथवा स्मरण करे तो भी अपने पापों से मुक्त होकर शाश्वत पद को प्राप्त करता है। सज्जनो ! संसार रूपी घोर महा-वन के लिए वनाग्नि के समान मधुसूदन भगवान् अपने स्मरण करने वालों का सब पाप शीघ्र नष्ट कर देते हैं। उनकी महिमा को प्रकट करने वाले इस उत्तम पुराण का तो सर्वदा श्रवण करना चाहिए। इसके सुनने और स्वयं पाठ करने से मनुष्य के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। द्विजो ! जिस मनुष्य की इस पुराण के श्रवण में श्रद्धायुत बुद्धि हो जाती है, वही कृतकृत्य है वही सब शास्त्रों का ज्ञाता है। द्विजगण ! अर्जित किये हुए तप और पुण्य के फलोदय होने से इस पुराण के सुनने में भक्ति होती है, अन्यथा नहीं। सत्कथाओं को सुनने की इच्छा उन्हीं व्यक्तियों को होती है जो सज्जन और जगत् का कल्याण करने वाले हैं ।.४७-५६॥

जो दुष्ट और पापी हैं वे तो सर्वदा परनिन्दा और कलह में लगे रहते हैं। जो नराधम पुराणों पर अर्थ-वाद का दोष लगाते हैं अर्थात् पुराणों को असत्य और अत्युक्ति कहते हैं, उनके पूर्वार्जित सभी सुकृत नष्ट हो जाते हैं। समस्त कर्मों को निर्मूल करने के साधन पुराणों को अर्थवाद से युक्त कहने वाला नराधम नरक भोग करता है। मोहग्रस्त द्विजवर पुराणों को नहीं साधते हैं। द्विजश्रेष्ठो ! जो व्यक्ति अनायास पुण्य प्राप्त करना चाहते हैं, उनको अवश्य भक्तिपूर्वक पुराणों का श्रवण करना चाहिए। पुराणों के श्रवण में जिस मनुष्य की रुचि हो जाती है निःसन्देह उसके पूर्वार्जित पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। पुराणों के रहते हुए भी पाप की रस्सी में बँधा प्राणी अन्य कथाओं की ओर मन लगाकर पाप के गड्ढे में गिरता है ॥५७-६२॥

सत्सङ्गदेवार्चनसत्कथासु हितोपदेशे निरतो मनुष्यः ।
प्रयाति विष्णोः परमं पदं यद् देहावसाने- ऽच्युततुल्यतेजाः ॥६३॥
तस्मादिदं नारदनामधेयं पुण्यं पुराणं शृणुत द्विजेन्द्राः ।
यस्मिञ्छ्रुते जन्मजरादिहीनो नरो भवेदच्युतनिष्ठचेताः ॥६४॥
वरं वरेण्यं वरदं पुराणं निजप्रभाभावितसर्वलोकम् ।
संकल्पितार्थप्रदमादिदेवं स्मृत्वा व्रजेन्मुक्तिपदं मनुष्यः ॥६५॥
ब्रह्मेशविष्ण्वादिशरीरभेदैर्विश्वं सृजत्यत्ति च पाति विप्राः ।
तमादिदेवं परमं परेशमाधाय चेतस्युपयाति मुक्तिम् ॥६६॥
यो नाम जात्यादिविकल्पहीनः परः पराणां परमः परस्मात् ।
वेदान्तवेद्यः स्वजनप्रकाशः समीड्यते सर्वपुराणवेदैः ॥६७॥
तस्मात्तमीशं जगतां विमुक्तिमुपासनायालमजं मुरारिम् ।
परं रहस्यं पुरुषार्थहेतुं स्मृत्वा नरो याति भवाब्धिपारम् ॥६८॥
वक्तव्यं धार्मिकेभ्यस्तु श्रद्दधानेभ्य एव च । मुमुक्षुभ्यो यतिभ्यश्च वीतरागेभ्य एव च ॥६९॥
वक्तव्यं पुण्यदेशे च सभायां देवतागृहे । पुण्यक्षेत्रे पुण्यतीर्थे देवब्राह्मणसन्निधौ ॥७०॥
उच्छिष्टदेशे वक्तार आख्यानमिदमुत्तमम् । पच्यन्ते नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम् ॥७१॥
मृषा शृणोति यो मूढो दम्भी भक्तिविवर्जितः । सोऽपि तद्वन्महाघोरे नरके पच्यतेऽक्षये ॥७२॥
नरो यः सत्कथामध्ये संभाषां कुरुतेऽन्यतः । स याति नरकं घोरं तदेकाग्रमना भवेत् ॥७३॥
श्रोता वक्ता च विप्रेन्द्रा एष धर्मः सनातनः । असमाहितचित्तस्तु न जानाति हि किंचन ॥७४॥

इसके विपरीत जो मनुष्य सत्संग, देवार्चन, सत्कथा श्रवण और माङ्गलिक उपदेश श्रवण में निरत रहता है वह मृत्यु के बाद अच्युत के समान तेजस्वी बनकर विष्णु के परमपद को प्राप्त करता है ॥६३॥ द्विजोत्तमवृन्द ! इसलिए नारद नामक इस पुण्यदायक पुराण को तुम लोग सुनो, जिसके सुनने से मनुष्य जन्म-मरण के क्लेश से मुक्त होकर अच्युत में अचल भक्ति प्राप्त करता है। श्रेष्ठ, महनीय, वरदाता, पुराण, अपनी कान्ति से सम्पूर्ण लोक को वशीभूत करने वाले और मनोरथों को पूर्ण करने वाले आदिदेव का स्मरण कर मनुष्य मोक्ष पदवी को प्राप्त करता है। द्विजो ! जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूपों में अपने को विभक्त कर विश्व की सृष्टि, पालन और नाश करता है उस आदिदेव, परम पुरुष महाप्रभु का हृदय में ध्यान कर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है। जो नाम, जाति आदि विकल्पों से रहित, पर, परात्पर, परम से भी परम, वेदान्त (ज्ञान) द्वारा जानने योग्य और भक्तों के लिए प्रकाश स्वरूप है उसी की पूजा सब पुराणों के ज्ञाता व्यक्ति करते हैं। इसलिए उस जगत् को मुक्ति देने वाले, उपासना से प्राप्त करने योग्य, अज, पर, रहस्यमय और मोक्षदाता मुरारि का स्मरण कर मनुष्य इस संसार-सागर को पार कर जाता है। यह पुराण मुमुक्षु, यति, वीतराग, धार्मिक और श्रद्धालु जनों को ही सुनाना चाहिए। इस पुण्य पुराण का पाठ पुण्य क्षेत्र में, सभा में, देवमन्दिरों में, पवित्रतीर्थों में और देवता तथा ब्राह्मणों के समीप ही होना चाहिए। जो मूढ़ अपवित्र स्थानों में इस उत्तम कथा का उपदेश करता है वह प्रलय काल तक घोर नरक में कष्ट पाता है। इसी प्रकार जो पाखण्डी श्रोता श्रद्धाहीन होकर केवल दिखाने के लिए इस उत्तम आख्यान को सुनता है, वह भी दम्भी वक्ता के समान ही घोर नरक में यातना पाता है ॥६४-७२॥ जो नर पुराण-पाठ के समय व्यर्थ की बातें करता है, वह घोर नरक में जाता है। अतएव विप्रेन्द्रो ! श्रोता और वक्ता सबको एकाग्रमन से कथा का श्रवण या पाठ करना चाहिए। यही कथा की सनातन विधि है

तत एकमना भूत्वा पिबेद्धरिकथामृतम् । कथं संभ्रान्तचित्तस्य कथास्वादः प्रजायते ॥७५॥
किं सुखं प्राप्यते लोके पुंसा संभ्रान्तचेतसा । तस्मात्सर्वं परित्यज्य कामं दुःखस्य साधनम् ॥७६॥
समाहितमना भूत्वा कुर्यादच्युतचिन्तनम् । येन केनाप्युपायेन स्मृतो नारायणोऽव्ययः ॥७७॥
अपि पातकयुक्तस्य प्रसन्नः स्यान्न संशयः । यस्य नारायणे भक्तिर्विभौ विश्वेश्वरेऽव्यये ॥
तस्य स्यात्सफलं जन्म मुक्तिश्चैव करे स्थिता ॥७८॥
धर्मार्थकाममोक्षाख्यपुरुषार्था द्विजोत्तमाः । हरिभक्तिपराणां वै संपद्यन्ते न संशयः ॥७९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे सूतर्षिसंवादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

कथं सनत्कुमारस्तु नारदाय महात्मने । प्रोक्तवान्सकलान्धर्मान्कथं तौ मिलितावुभौ ॥१॥
कस्मिन्स्थाने स्थितौ सूत तावुभौ ब्रह्मवादिनौ । हरिगीतसमुद्गाने चक्रतुस्तद्वदस्व नः ॥२॥

और यही सनातन धर्म है। जो एकाग्रमन से कथा नहीं सुनता है, वह कथा का कुछ भी रस या रहस्य नहीं जान पाता है। इसलिए एकाग्रचित्त होकर हरिकथा रूपी अमृत का पान करना चाहिए, इधर-उधर मन दौड़ाने वाले को कैसे कथा का रस (आनन्द) प्राप्त हो सकता है ॥७३-७५॥

भ्रान्त चित्त वाले व्यक्ति को इस लोक में क्या सुख मिल सकता है? इसलिए दुःखमूलक भौतिक कामनाओं को छोड़कर एकाग्र भाव से भगवान् अच्युत का चिन्तन करना चाहिए। चाहे अत्यन्त घोर पापी ही क्यों न हो परन्तु यदि वह जिस किसी प्रकार से अव्यय नारायण का स्मरण करता है तो भगवान् पतितपावन अवश्य उस पर प्रसन्न होते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। जिस व्यक्ति को अविनाशी, विश्व के स्वामी और व्यापक नारायण में अनन्य भक्ति होती है, उसी का जन्म सफल है और मुक्ति उसके हाथ में रहती है। द्विजोत्तमवृन्द! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नाम के पुरुषार्थ हरिभक्तों को अवश्य प्राप्त हो जाते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥७६-७८॥

श्री ब्रह्मनारदीयपुराण के पूर्वार्ध के प्रथम भाग में सूत और ऋषियों के संवाद नामक पहला अध्याय समाप्त ॥१॥

अध्याय २

नारद द्वारा विष्णु की स्तुति

ऋषि बोले—महात्मा नारद को सनत्कुमार ने किस प्रकार सब धर्मों का रहस्य बतलाया? और कैसे उन दोनों महापुरुषों का मिलन हुआ? किस स्थान पर स्थित होकर उन दोनों ब्रह्मवादी महात्माओं ने भगवान् के इस पुण्य आख्यान की चर्चा की? हे सूत, इन्हें विस्तार पूर्वक हमें समझाइये ॥१-२॥

सूत उवाच

सनकाद्या महात्मानो ब्रह्मणो मानसाः सुताः । निर्ममा निरहंकाराः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः ॥३॥
तेषां नामानि वक्ष्यामि सनकश्च सनन्दनः । सनत्कुमारश्च विभुः सनातन इति स्मृतः ॥४॥
विष्णुभक्ता महात्मानो ब्रह्मध्यानपरायणाः । सहस्रसूर्यसंकाशाः सत्यसन्धा मुमुक्षवः ॥५॥
एकदा मेरुशृङ्गं ते प्रस्थिता ब्रह्मणः सभाम् । इष्टं मार्गेऽथ ददृशुः गङ्गां विष्णुपदीं द्विजाः ॥६॥
तां निरीक्ष्य समुद्युक्ताः स्नातुं सीताजलेऽभवन् । एतस्मिन्नंतरे तत्र देवर्षिर्नारदो मुनिः ॥७॥
आजगाम द्विजश्रेष्ठा दृष्ट्वा भ्रातॄन्स्वकाग्रजान् । तान्दृष्ट्वा स्नातुमुद्युक्तान्नमस्कृत्य कृतांजलिः ॥८॥
गृणन्नामानि सप्रेमभक्तियुक्तो मधुद्विषः । नारायणाच्युतानन्त वासुदेव जनार्दन ॥९॥
यज्ञेश यज्ञपुरुष कृष्ण विष्णो नमोऽस्तु ते । पद्माक्ष कमलाकान्त गङ्गाजनक केशव ॥
क्षीरोदशायिन्देवेश दामोदर नमोऽस्तु ते ॥१०॥

श्रीराम विष्णो नरसिंह वामन प्रद्युम्न संकर्षण वासुदेव ।
अजानिरुद्धामलरुङ् मुरारे त्वं पाहि नः सर्वभयादजस्रम् ॥११॥

इत्युच्चरन्हरेर्नाम नत्वा तान्स्वाग्रजान्मुनीन् । उपासीनश्च तैः सार्द्धं सस्नौ प्रीतिसमन्वितः ॥१२॥
तेषां चापि तु सीताया जले लोकमलापहे । स्नात्वा संतर्प्य देवर्षिपितॄन्विगतकल्मषाः ॥१३॥
उत्तीर्य्य संध्योपास्त्यादि कृत्वाचारं स्वकं द्विजाः । कथां प्रचक्रुर्विविधा नारायणगुणाश्रिताः ॥१४॥
कृतक्रियेषु मुनिषु गङ्गातीरे मनोरमे । चकार नारदः प्रश्नं नानाख्यानकथान्तरे ॥१५॥

सूत बोले—महात्मा सनक आदि ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं वे सभी अतिविनीत, मायारहित और ऊर्ध्वरेता हैं। उन लोगों का नाम कहता हूँ। वे सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और विभु सनातन नाम से प्रसिद्ध हैं। वे विष्णुभक्त, महात्मा ब्रह्मोपासना में निरत रहने वाले, सहस्र सूर्यों के समान कान्तिमान्, सत्यवक्ता और मुक्तिपरायण हैं। एक समय वे ब्रह्मा की सभा में सम्मिलित होने के लिए मेरुशृङ्ग की ओर चले। द्विजो! उनके मार्ग में ही विष्णु-चरण से निकलने वाली विष्णुपदी गंगा दिखाई दी। उसको देखकर वे महामुनि उस सीता (गंगा) के जल में स्नान करने के लिए प्रस्तुत हुए। उसी समय वहाँ देवर्षिनारद भी आ गये। द्विजश्रेष्ठो! स्नान करने के लिए प्रस्तुत अपने उन अग्रज भाइयों को देखकर नमस्कार करके हाथ जोड़कर प्रेम पूर्वक भक्ति से मधुसूदन का नाम कीर्तन करने लगे—नारायण! अच्युत! अनन्त! वासुदेव! जनार्दन! यज्ञेश! यज्ञपुरुष! कृष्ण! विष्णु! आपको नमस्कार है। कमललोचन! कमलापति! गंगा के जनक! केशव! क्षीरशायी! देवेश! दामोदर! आपको नमस्कार करता हूँ। श्रीराम! विष्णु! नरसिंह! वामन! प्रद्युम्न! संकर्षण! वासुदेव! अज! अनिरुद्ध! विमल कान्तिमान्! मुरारे! आप सब प्रकार के भयों से हमारी रक्षा कीजिए। इस प्रकार उच्च स्वर से हरिनाम का स्मरण कर अपने उन अग्रज मुनियों को नमस्कार करके उनके साथ प्रेम पूर्वक स्नान करने के उपरान्त बैठ गए। द्विजो! वे भी पापों को दूर करने वाले सीता के जल में विधिवत् स्नान कर देव, ऋषि और पितर के तर्पण से निवृत्त हो शुद्ध हो गये। द्विजो! इस प्रकार वे अपने नित्यकर्म और उपासना से निवृत्त हो भगवान् नारायण और उनके भक्तों की चर्चा करने लगे। उस मनोहर गंगा के तट पर जब वे मुनि अपने सान्ध्यकर्म से निवृत्त हो गये तब अवसर पाकर नारद जी ने नाना कथाओं और आख्यानों के विषय में पूछा ॥३-१५॥

नारद उवाच

सर्वज्ञाः स्थ मुनिश्रेष्ठाः भगवद्भक्तितत्पराः । यूयं सर्वे जगन्नाथा भगवन्तः सनातनाः ॥१६॥
लोकोद्धारपरान्युष्मान्दीनेषु कृतसौहृदान् । पृच्छे ततो वदत मे भगवल्लक्षणं बुधाः ॥१७॥
येनेदमखिलं जातं जगत्स्थावरजङ्गमम् । गङ्गापादोदकं यस्य स कथं ज्ञायते हरिः ॥१८॥
कथं च त्रिविधं कर्म सफलं जायते नृणाम् । ज्ञानस्य लक्षणं ब्रूत तपसश्चापि मानदाः ॥१९॥
अतिथेः पूजनं वापि येन विष्णुः प्रसीदति ।
एवमादीनि गुह्यानि हरितुष्टिकराणि च ।
अनुगृह्य च मां नाथास्तत्त्वतो वक्तुमर्हथ ॥२०॥

शौनक उवाच

नमः पराय देवाय परस्मात्परमाय च । परावरनिवासाय सगुणायागुणाय च ॥२१॥
अमायायात्मसंज्ञाय मायिने विश्वरूपिणे । योगीश्वराय योगाय योगगम्याय विष्णवे ॥२२॥
ज्ञानाय ज्ञानगम्याय सर्वज्ञानैकहेतवे । ज्ञानेश्वराय ज्ञेयाय ज्ञात्रे विज्ञानसंपदे ॥२३॥
ध्यानाय ध्यानगम्याय ध्यातृपापहराय च । ध्यानेश्वराय सुधिये ध्येयध्यातृस्वरूपिणे ॥२४॥
आदित्यचन्द्राग्निविधातृदेवाः सिद्धाश्च यक्षासुरनागसङ्घाः ।
यच्छक्तियुक्तास्तमजं पुराणं सत्यं स्तुतीशं सततं नतोऽस्मि ॥२५॥
यो ब्रह्मरूपी जगतां विधाता स एव पाता द्विजविष्णुरूपी ।
कल्पान्तरुद्राख्यतनुः स देवः शेतेंऽघ्रिपानस्तमजं भजामि ॥२६॥

नारद बोले—मुनिश्रेष्ठ ! आप लोग सर्वज्ञ और सर्वदा भगवद् भक्तों में ही लीन रहने वाले महात्मा हैं । आप सभी संसार के स्वामी, सनातन और भगवद्रूप हैं । आप लोकोद्धार में सर्वदा निरत रहने वाले और दीन जनों पर कृपा करने वाले हैं । अतः हे बुधवृन्द ! आप से मैं भगवद्-विभूति के विषय में पूछ रहा हूँ कृपाकर बतलाइये । जिन भगवान् से इस स्थावर जंगमात्मक अखिल विश्व की सृष्टि हुई है और गंगा जिनके चरणोदक (चरणों से निकली हुई) हैं, वे किस प्रकार जाने जा सकते हैं ? ज्ञान और तपस्या के लक्षण क्या हैं ? वह बताइये । अतिथि-पूजन, जिससे विष्णु प्रसन्न होते हैं वह तथा इसी प्रकार के अन्य रहस्य एवं विष्णु को प्रसन्नता के उपाय कहिए । नाथ ! आप मेरे ऊपर अनुग्रह करके इन प्रश्नों को यथार्थ रूप से समझाइये ॥१६-२०॥

शौनक बोले—श्रेष्ठ देव तथा श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतम देव को नमस्कार है । क्षुद्र से क्षुद्र और महान् से महान् पदार्थों में रहने वाले, सगुण, अगुण, मायारहित, आत्मज्ञ, माया स्वरूप और विश्वरूप को नमस्कार है । योगीश्वर, योगीरूप, योग द्वारा प्राप्त करने योग्य विष्णु को नमस्कार है । ज्ञानरूप, ज्ञान द्वारा जानने योग्य, सब ज्ञानों के एकमात्र कारण, ज्ञानेश्वर, ज्ञेय, ज्ञाता और विज्ञान सागर को नमस्कार है । ध्यानरूप, ध्यान से प्राप्त करने योग्य, ध्यान करने वालों के पाप को हरने वाले, ध्यानेश्वर, सुधी, ध्येय और ध्याता स्वरूप को नमस्कार है । जिसकी शक्ति से आदित्य, चन्द्रमा, अग्नि, विधाता, सब देवता, सिद्ध, यक्ष, असुर और नाग समूह शक्तिमान् हैं उस अज, पुराण, सत्य और सब स्तुतियों के एकमात्र ईश को सतत नमस्कार हैं । जो ब्रह्मरूप से विश्व का निर्माण करता, द्विज विष्णु के रूप में रक्षा करता और कल्पान्त में रुद्र रूप धारणकर विश्व का संहार करता

यन्नामसंकीर्त्तनतो गजेन्द्रो ग्राहोग्रबन्धान्मुमुचे स देवः ।
विराजमानः स्वपदे पराख्ये तं विष्णुमाद्यं शरणं प्रपद्ये ॥२७॥
शिवस्वरूपी शिवभक्तिभाजां यो विष्णुरूपी हरिभावितानाम् ।
संकल्पपूर्वात्मकदेहहेतुस्तमेव नित्यं शरणं प्रपद्ये ॥२८॥
यः केशिहन्ता नरकान्तकश्च बालो भुजाग्रेण दधार गोत्रम् ।
देवं च भूभारविनोदशीलं तं वासुदेवं सततं नतोऽस्मि ॥२९॥
लेभेऽवतीर्योग्रनृसिंहरूपी यो दैत्यवक्षः कठिनं शिलावत् ।
विदार्य संरक्षितवान्स्वभक्तं प्रह्लादमीशं तमजं नमामि ॥३०॥
व्योमादिभिर्भूषितमात्मसंज्ञं निरञ्जनं नित्यममेयतत्त्वम् ।
जगद्विधातारमकर्मकं च परं पुराणं पुरुषं नतोऽस्मि ॥३१॥
ब्रह्मेन्द्ररुद्रानिलवायुमर्त्यगन्धर्वयक्षासुरदेवसंघैः ।
स्वमूर्तिभेदैः स्थित एक ईशस्तमादिमात्मानमहं भजामि ॥३२॥
यतो भिन्नमिदं सर्वं समुद्भूतं स्थितं च वै । यस्मिन्नेष्यति पश्चाच्च तमस्मि शरणं गतः ॥३३॥
यः स्थितो विश्वरूपेण सङ्गीवात्र प्रतीयते । असङ्गी परिपूर्णश्च तमस्मि शरणं गतः ॥३४॥
हृदि स्थितोऽपि यो देवो मायया मोहितात्मनाम् । न ज्ञायेत परः शुद्धस्तमस्मि शरणं गतः ॥३५॥
सर्वसंगनिवृत्तानां ध्यानयोगरतात्मनाम् । सर्वत्र भाति ज्ञानात्मा तमस्मि शरणं गतः ॥३६॥
दधार मंदरं पृष्ठे निरोदेऽमृतमन्थने । देवतानां हितार्थाय तं कूर्मं शरणं गतः ॥३७॥

और अन्त में स्वयं क्षीर सागर में शयन करता है ऐसे अज का मैं भजन करता हूँ। जिसके नाम के स्मरण मात्र से गजेन्द्र ग्राह के कठोर बन्धन से मुक्त हो गया, जो देव सर्वदा अपने परम पद पर विराजमान रहते हैं, उस आदि विष्णु की शरण में मैं आया हूँ। जो शिव भक्तों के लिये शिव स्वरूप और वैष्णवों के लिए विष्णु स्वरूप हैं जो पूर्व संकल्प के अनुरूप शरीर धारण करते हैं उसी देव की शरण में मैं नित्य रहता हूँ। जिसने केशी का नाश किया, नरकासुर को यमलोक पहुँचाया, बालक होते हुए भी जिसने अंगुली पर पर्वत को उठा लिया, जिसने पृथ्वी के भार को दूर करने का स्वभाव-सा बना लिया है उस वासुदेव को सतत नमस्कार है॥२१-२९॥ जिसने सिंह रूप में अवतार लेकर शिला के समान कठिन हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को नखों से फाड़ डाला और अपने प्रिय भक्त प्रह्लाद की रक्षा की उस अज ईश को नमस्कार करता हूँ। जो आकाश आदि पंच तत्त्वों से विभूषित, आत्मा नाम से प्रसिद्ध, निर्गुण, नित्य, रहस्यमय, जगत् के स्रष्टा और कर्मशून्य है उस परमपुराण पुरुष को नमस्कार करता हूँ॥३०-३१॥ जो एक होते हुए भी ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, वायु, मनुष्य, गन्धर्व, यक्ष, असुर और देव समूह आदि अनेक रूपों में स्थित है उस आदि आत्मा को मैं भजता हूँ। जिससे ये सारे भिन्न लोक उत्पन्न हुए, जिसमें स्थित हैं और अन्त में जिसमें लीन भी होंगे उस देव की शरण में मैं प्राप्त हूँ। जो विश्व रूप में स्थित होकर इसमें लिप्त-सा जान पड़ता है, उस निर्लिप्त और परिपूर्ण देव की शरण में प्राप्त हूँ। जो पर और शुद्ध ब्रह्म सब प्राणियों के हृदय में रहता हुआ भी माया-बद्ध जीवों से नहीं जाना जाता है उस ईश की शरण में प्राप्त हूँ। जो ज्ञानरूप परमात्मा सब प्रकार की आसक्तियों से विरत और ध्यान योग में रत रहने वाले महापुरुषों को सर्वत्र प्रकाशरूप में दिखायी पड़ता है उस ज्ञान रूप भगवान् की शरण में प्राप्त हूँ। जिसने अमृत के लिये किये गये समुद्र मन्थन के समय देवों के हित के लिए मेरु को अपनी पीठ पर धारण किया उस कूर्म की शरण में प्राप्त हूँ॥३२-३७॥ जिस अनन्त ने अपने दाँतों के अग्र भाग से

दंष्ट्राङ्कुरेण योऽनन्तः समुद्धृत्यार्णवाद्धराम् । तस्थाविदं जगत्कृत्स्नं वाराहं तं नतोऽस्म्यहम् ॥३८॥
प्रह्लादं गोपयन्दैत्यं शिलातिकठिनोरसम् । विदार्य हतवान्यो हि तं नृसिंहं नतोऽस्म्यहम् ॥३९॥
लब्ध्वा वैरोचनेर्भूमिं द्वभ्यां पद्भ्यामतीत्य यः । आब्रह्मभुवनं प्रादात्सुरेभ्यस्तं नतोऽजितम् ॥४०॥
हैहयस्यापराधेन ह्येकविंशतिसंख्यया । क्षत्रियान्वयभेत्ता यो जामदग्न्यं नतोऽस्मि तम् ॥४१॥
आविर्भूतश्चतुर्द्धा यः कपिभिः परिवारितः । हतवान्राक्षसानीकं रामचन्द्रं नतोऽस्म्यहम् ॥४२॥
मूर्तिद्वयं समाश्रित्य भूभारमपहृत्य च । संजहार कुलं स्वं यस्तं श्रीकृष्णमहं भजे ॥४३॥
भूम्यादिलोकत्रितयं संतृप्तात्मानमात्मनि । पश्यन्ति निर्मलं शुद्धं तमीशानं भजाम्यहम् ॥४४॥
युगान्ते पापिनो शुद्धान्भित्त्वा तीक्ष्णसुधारया । स्थापयामास यो धर्मं कृतादौ तन्नमाम्यहम् ॥४५॥
एवमादीन्यनेकानि यस्य रूपाणि पाण्डवाः । न शक्यं तेन संख्यातुं कोट्यब्दैरपि तं भजे ॥४६॥
महिमानं तु यन्नाम्नः परं गंतुं मुनीश्वराः । देवासुराश्च मनवः कथं तं क्षुल्लको भजे ॥४७॥
यन्नामश्रवणेनापि महापातकिनो नराः । पवित्रतां प्रपद्यन्ते तं कथं स्तौमि चाल्पधीः ॥४८॥
यथाकथंचिद्यन्नाम्नि कीर्तिते वा श्रुतेऽपि वा । पापिनस्तु विशुद्धाः स्युः शुद्धा मोक्षमवाप्नुयुः ॥४९॥
आत्मन्यात्मानमाधाय योगिनो गतकल्मषाः । पश्यन्ति यं ज्ञानरूपं तमस्मि शरणं गतः ॥५०॥
साङ्ख्याः सर्वेषु पश्यन्ति परिपूर्णात्मकं हरिम् । तमादिदेवमजरं ज्ञानरूपं भजाम्यहम् ॥५१॥
सर्वसत्त्वमयं शान्तं सर्वं द्रष्टारमीश्वरम् । सहस्रशीर्षकं देवं वन्दे भावात्मकं हरिम् ॥५२॥

समुद्र-मग्न पृथ्वी को खींचकर उस सम्पूर्ण संसार की स्थापना की, उस भगवान् वाराह को नमस्कार करता हूँ। जिसने प्रह्लाद की रक्षा करते हुए चट्टान से भी कठिन छाती को फाड़कर दैत्य हिरण्यकशिपु को मार डाला उस नृसिंह को नमस्कार है। जिसने विरोचन के पुत्र बालि से भूमि का दान प्राप्त कर उसको दो ही डगों से नाप डाला और ब्रह्मलोक पर्यन्त भुवन देवों को दे दिया उस अजित वामन को नमस्कार है। हैहय के अपराध के कारण इक्कीस बार क्षत्रिय वंश का नाश करने वाले जो देव परशुराम हैं उनको नमस्कार करता हूँ। जिसने चार [1]रूपों में प्रकट होकर बन्दरों की सहायता से राक्षसों की सेना का वध किया उस रामचन्द्र को नमस्कार करता हूँ। जिसने दो रूपों में (बलराम-कृष्ण) अपने को व्यक्त कर भू-भार को दूर किया और स्वयं अपने कुल का भी संहार कर डाला उस भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है। योगी लोग अपने आत्मा में भू आदि तीनों लोकस्वरूप जिस पूर्णात्मा को देखते हैं, उस निर्मल एवं शुद्ध प्रभु का मैं भजन करता हूँ। जिस भगवान् ने युग के अन्त में (खड्ग की) तीक्ष्ण धार से अपवित्र पापियों को नष्ट कर कृतयुग के आदि में धर्म की स्थापना की उस कल्कि भगवान् को नमस्कार है ॥३८-४५॥ पाण्डवो! ऐसे जिसके अनेकों रूप हैं जिसकी गणना करोड़ों वर्षों में भी नहीं की जा सकती है, उस भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ। जिसके नामों की महिमा का मुनीश्वर, देव, असुर और मनुष्य भी पार नहीं पा सकते हैं, उसको मुझ जैसा क्षुद्र व्यक्ति कैसे भजेगा? जिसके नाम श्रवण मात्र से महापापी मनुष्य भी पवित्र हो जाते हैं, उसकी स्तुति मेरे समान क्षुद्र बुद्धि कैसे कर सकता है? जिस किसी प्रकार से जिसके नाम श्रवण या कीर्तन से पापी पापमुक्त हो जाते और शुद्ध भक्त मोक्ष पा जाते हैं और अपने में ही (अन्तःकरण-रूप परम तत्त्व में) अपना ध्यान लगाकर निष्पाप योगी जिस ज्ञानरूप ब्रह्म को देखते हैं, उस ब्रह्म की शरण में मैं प्राप्त हूँ। ज्ञानी व्यक्ति जिस परिपूर्ण ब्रह्म को चराचर में देखते हैं उस आदि देव, अजर ज्ञान रूप ब्रह्म की आराधना करता हूँ ॥४६-५१॥ सकल प्राणिमय, शान्त, सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, ईश्वर और सहस्र शिर वाले देव एवं भावरूप हरि

---

१. यहाँ चारों भाइयों से तात्पर्य है।

यद्भूतं यच्च वै भाव्यं स्थावरं जङ्गमं जगत् । दशाङ्गुलं योऽत्यतिष्ठत्तमीशमजरं भजे ॥५३॥
अणोरणीयांसमजं महतश्च महत्तरम् । गुह्याद्गुह्यतमं देवं प्रणमामि पुनः पुनः ॥५४॥
ध्यातः स्मृतः पूजितो वा श्रुतः प्रणमितोऽपि वा । स्वपदं यो ददातीशस्तं वन्दे पुरुषोत्तमम् ॥५५॥
इति स्तुवन्तं परमं परेशं हर्षाम्बुसंरुद्धविलोचनास्ते ।
मुनीश्वरा नारदसंयुतास्तु सनन्दनाद्याः प्रमुदं प्रजग्मुः ॥५६॥
य इदं प्रातरुत्थाय पठेद्वै पौरुषं स्तवम् । सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति ॥५७॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे सनत्कुमारनारसंवादे
नारदकृतविष्णुस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

नारद उवाच

कथं ससर्ज ब्रह्मादीनादिदेवः पुरा विभुः । तन्ममाख्याहि सनक सर्वज्ञोऽसि यतो भवान् ॥१॥

श्रीसनक उवाच

नारायणोऽक्षरोऽनन्तः सर्वव्यापी निरञ्जनः । तेनेदमखिलं व्याप्तं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥२॥
आदिसर्गे महाविष्णुः स्वप्रकाशो जगन्मयः । गुणभेदमधिष्ठाय मूर्त्तित्रिकमवासृजत् ॥३॥

की वन्दना करता हूँ। जो भूत, भविष्य, स्थावर तथा जंगम रूप जगत् को दश अंगुल के परिमाण मे व्याप्त करके रहता है उस वृद्धावस्था रहित प्रभु को प्रणाम करता हूँ। अणु से भी अणु (अत्यन्त सूक्ष्म) महान् से भी महान्, गुह्य से भी गुह्यतम (अत्यन्त गूढ़) देव को पुनः प्रणाम करता हूँ। जो व्यक्ति उनका स्मरण, ध्यान, पूजा, नाम-श्रवण और प्रणाम करता है उसको वे ईश अपना लोक दे देते हैं, ऐसे पुरुषोत्तम ईश की वन्दना करता हूँ।

मुनिगण ! इस प्रकार नारद सहित सनक, सनन्दन आदि मुनि परेश परम ब्रह्म की स्तुति करते हुए आनन्द मग्न हो गये। उनके नेत्रों से, आनन्दाश्रु बहने लगे। जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर इस वैष्णव स्तोत्र का पाठ करता है, वह सब पापों के मुक्त होकर विष्णु लोक को जाता है ॥५२-५७॥

श्रीनारदीयपुराण में सनत्कुमार और नारद के संवाद-प्रकरण में नारद कृत विष्णु स्तुति नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

अध्याय ३

भूगोल-वर्णन

नारद बोले—सनक जी ! सृष्टि के आदि में विभु आदि देव ने किस प्रकार ब्रह्मा आदि को उत्पन्न किया, यह मुझे बतलाइये; क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं ॥१॥

श्री सनक बोले—भगवान् नारायण अव्यय, अनन्त, सर्व व्यापक और निरंजन हैं, वे इस अखिल स्थावर जंगमात्मक जगत् में व्याप्त हैं ॥२॥ सृष्टि के आदि में जगन्मय, स्वप्रकाश, महाविष्णु ने तीनों गुणों को विभक्त किया

सृष्ट्यर्थं तु पुरा देवो दक्षिणाङ्गात्प्रजापतिम् । मध्ये रुद्राख्यमीशानं जगदन्तकरं मुने ॥४॥
पालनायास्य जगतो वामाङ्गाद्विष्णुमव्ययम् । तमादिदेवमजरं केचिदाहुः शिवाभिधम् ।
केचिद्विष्णुं सदा सत्यं ब्रह्माणं केचिदूचिरे ॥५॥
तस्य शक्तिः परा विष्णोर्जगत्कार्यप्रवर्तिनी । भावाभावस्वरूपा सा विद्याविद्येति गीयते ॥६॥
यदा विश्वं महाविष्णोर्भिन्नत्वेन प्रतीयते । तदा ह्यविद्या संसिद्धा भवेद्दुःखस्य साधनम् ॥७॥
ज्ञातृज्ञेयाद्युपाधिस्ते यदा नश्यति नारद । सर्वैकभावनाबुद्धिः सा विद्येत्यभिधीयते ॥८॥
एवं माया महाविष्णोर्भिन्ना संसारदायिनी । अभेदबुद्ध्या दृष्टा चेत्संसारक्षयकारिणी ॥९॥
विष्णुशक्तिसमुद्भूतमेतत्सर्वं चराचरम् । यस्माद्भिन्नमिदं सर्वं यच्चेङ्गेयच्च नेङ्गति ॥१०॥
उपाधिभिर्यथाकाशो भिन्नत्वेन प्रतीयते । अविद्योपाधियोगेन तथेदमखिलं जगत् ॥११॥
यथा हरिर्जगद्व्यापी तस्य शक्तिस्तथा मुने । दाहशक्तिर्यथांगारे स्वाश्रयं व्याप्य तिष्ठति ॥१२॥
उमेति केचिदाहुस्तां शक्तिं लक्ष्मीं तथा परे । भारतीत्यपरे चैनां गिरिजेत्यम्बिकेति च ॥१३॥
दुर्गेति भद्रकालीति चण्डी माहेश्वरीत्यपि । कौमारी वैष्णवी चेति वाराह्यैन्द्री च शाम्भवी ॥१४॥
ब्राह्मीति विद्याविद्येति मायेति च तथा परे । प्रकृतिश्च परा चेति वदन्ति परमर्षयः ॥१५॥

और उन गुणों के ही आधार पर त्रिमूर्ति की सृष्टि की । आदि देव ने सबसे पहले सृष्टिकार्य सम्पन्न करने के लिए अपने दाहिने अंग से प्रजापति ब्रह्मा को उत्पन्न किया । मुने ! मध्य भाग से जगत् के संहार करने वाले ईशान रुद्र को और वाम भाग से इस जगत् का पालन करने के लिए विष्णु को उत्पन्न किया । उस अजर आदि देव को कुछ लोग शिव कहते हैं, कुछ उनको विष्णु और कुछ सदा सत्य स्वरूप ब्रह्मा कहा करते हैं । उस विष्णु की जगत् रूप कार्यकर्त्री पराशक्ति है, जो भावाभाव स्वरूप और विद्या एवं अविद्या रूप कही जाती है । जब विश्व महाविष्णु से भिन्न प्रतीत होता है उस समय अविद्या का अधिकार या सिद्धि समझनी चाहिये । उस समय दुःखों के साधन (मार्ग) प्रस्तुत हो जाते हैं । नारद ! जिस समय तुम्हारी ज्ञाता, ज्ञेय आदि उपाधि (भिन्नता या विशेषता) से सम्बद्ध बुद्धि नष्ट हो जाती है (अर्थात् त्वम् अहम् आदि की भावना दूर होकर अद्वैत भावना हो जाती है) और सब पदार्थों में समभाव या एकभाव हो जाता है उस समय की बुद्धि (या ज्ञान) विद्या कहलाती है । ।३-८।। इस प्रकार महाविष्णु की माया भिन्न रूप से देखी जाने पर संसार में ढकेलती है और अभेद की तरह देखी जाने पर संसार का क्षय कर देती है । अर्थात् भेद बुद्धि से ईश्वर की उपासना करने पर संसार में आना पड़ता है और अभेद बुद्धि से की गई उपासना मोक्ष प्रदान करती है । यह सम्पूर्ण चराचर जगत् विष्णु-शक्ति से उत्पन्न हुआ है । जिससे यह सम्पूर्ण जगत् भिन्न है, जो यह सब है और जो तुम्हें प्रतीत हो रहा है । जैसे (घट, पट आदि) उपाधियों के कारण (एक ही) आकाश विभिन्न रूपों में दिखाई पड़ता है उसी तरह अविद्या रूप उपाधि के सम्बन्ध से यह सम्पूर्ण जगत् भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है । मुनि नारद ! जिस प्रकार हरि जगत्-व्यापक हैं उसी प्रकार उनकी शक्ति भी विश्वव्यापकहै । जिस प्रकार अंगारों की दाह शक्ति (जलाने की शक्ति) अपने आश्रय(अंगार में) को व्याप्त करके(अर्थात् अंगार के अणु-अणु में) विद्यमान रहती है उसी प्रकार हरि तथा उसकी शक्ति भी जगत् में व्याप्त रहती है । कोई उसको उमा, कोई शक्ति, कोई लक्ष्मी, कोई भारती और कोई गिरिजा कोई अम्बिका, कोई दुर्गा, भद्रकाली, चण्डी और महेश्वरी नाम से पुकारते हैं । कुछ लोग उसी शक्ति को कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐंद्री, शांभवी, ब्राह्मी, विद्या और अविद्या भी कहते हैं और दूसरी कोटि के लोग इसको माया कहते हैं ।।९-१४।। परम ऋषिगण इसी को

शेषशक्तिः परा विष्णोर्जगत्सर्गादिकारिणी । व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण जगद्व्याप्य व्यवस्थिता ॥१६॥
प्रकृतिश्च पुमांश्चैव कालश्चेति विधिस्थितिः । सृष्टिस्थितिविनाशानामेकः कारणतां गतः ॥१७॥
येनेदमखिलं जातं ब्रह्मरूपधरेण वै । तस्मात्परतरो देवो नित्य इत्यभिधीयते ॥१८॥
रक्षां करोति यो देवो नित्य इत्यभिधीयते
रक्षां करोति यो देवो जगतां परतः पुमान् । तस्मात्परतरं यत्तदव्ययं परमं पदम् ॥१९॥ ॥२०॥
अक्षरो निर्गुणः शुद्धः परिपूर्णः सनातनः । यः परः कालरूपाख्यो योगिध्येयः परात्परः ॥२१॥
परमात्मा परानन्दः सर्वोपाधिविवर्जितः । ज्ञानैकवेद्यः परमः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥२२॥
योऽसौ शुद्धोऽपि परमो ह्यहंकारेण संयुतः । देहीति प्रोच्यते मूढैरहोऽज्ञानविडम्बनम् ॥२३॥
स देवः परमः शुद्धः सत्त्वादिगुणभेदतः । मूर्तित्रयं समापन्नः सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥२४॥
योऽसौ ब्रह्मा जगत्कर्ता यन्नाभिकमलोद्भवः । स एवानन्दरूपात्मा तस्मान्नास्त्यपरो मुने ॥२५॥
अन्तर्यामी जगद्व्यापी सर्वसाक्षी निरञ्जनः । भिन्नाभिन्नस्वरूपेण स्थितो वै परमेश्वरः ॥२६॥
यस्य शक्तिर्महामाया जगद्विस्रम्भधारिणी । विश्वोत्पत्तेर्निदानत्वात्प्रकृतिः प्रोच्यते बुधैः ॥२७॥
आदिसर्गे महाविष्णोर्लोकान्कर्त्तुं समुद्यतः । प्रकृतिः पुरुषश्चेति कालश्चेति त्रिधा भवेत् ॥२८॥
पश्यन्ति भावितात्मानो यं ब्रह्मेत्यभिसंज्ञितम् । शुद्धं यत्परमं धाम तद्विष्णोः परमं पदम् ॥२९॥
एवं शुद्धोऽक्षरोऽनन्तः कालरूपी महेश्वरः । गुणरूपी गुणाधारो जगतामादिकृद्विभुः ॥३०॥

प्रकृति और परा भी कहते हैं । विष्णु की परा शेष शक्ति जगत् की सृष्टि आदि का कारण है जो कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इस सृष्टि में व्याप्त होकर रहती है । प्रकृति, पुरुष, काल और विधि स्थिति इनमें एक ही विश्व की सृष्टि, स्थिति और विनाश का कारण माना जाता है । जिस ब्रह्मा रूपधारी आदि पुरुष से यह अखिल लोक उत्पन्न हुआ है उससे पर देव नित्य कहे जाते हैं, जो देव रक्षा करते हैं वे भी नित्य कहे जाते हैं । जो देव जगत् की रक्षा करते हैं वे पुरुष पर हैं और उससे भी परतर जो हैं वे परमपद अव्यय कहे जाते हैं । जो योगियों के एक-मात्र ध्येय कालरूप नामक परात् पर पुरुष है, वह अक्षर, निर्गुण, शुद्ध, परिपूर्ण, सनातन,परमात्मा, परानन्द, और सब उपाधियों से रहित है ॥१५-२१३॥ वह ज्ञान से ही एकमात्र जानने योग्य परम और सच्चिदानन्द स्वरूप है । जो मूढ़ शुद्ध परम देव को 'अहंकार से युक्त देही' इस नाम से पुकारते हैं उनका यह ज्ञान एकमात्र विडम्बना है और आश्चर्य है उनके इस थोथे ज्ञान पर । वह परम शुद्ध देव सत्त्व, रज और तम भेद से तीन रूपों में अपने को विभक्त कर देता है और इस प्रकार पृथक्-पृथक् एक-एक रूप से सृष्टि, स्थिति और प्रलय करता है । जगत् के कर्त्ता ब्रह्मा जिसके नाभि कमल से उत्पन्न हुए हैं वही आनन्द रूप परमात्मा है । मुनि ! उससे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है ॥२२-२५॥

वह परमेश्वर अन्तर्यामी, जगद्व्यापक, सबका साक्षी, निरंजन और भिन्न-भिन्न रूपों से स्थित रहता है उसकी शक्ति महामाया संसार को निश्चित रूप से धारण किये रहती है । बुधगण उसको संसार की उत्पत्ति का आदि कारण होने के कारण 'प्रकृति' कहा करते हैं ।२६-२७। सृष्टि के आदि में जब महाविष्णु लोक-सृष्टि करने को उद्यत होते हैं, तब वे प्रकृति, पुरुष और काल इन तीन रूपों में विभक्त हो जाते हैं । योगीजन जिस ब्रह्म नाम से प्रसिद्ध शुद्ध परमधाम को देखते हैं या जानते हैं वही विष्णु का परम पद है। इस प्रकार शुद्ध, अक्षर, अनन्त, कालरूपी महेश्वर, विभु, गुणरूपी, गुणों के आधार और लोकों के आदि कर्त्ता हैं । जब पुरुष नामक

प्रकृतिः क्षोभमापन्ना पुरुषाख्ये जगद्‌गुरौ । महान्प्रादुरभूद्‌ बुद्धिस्ततोऽहं समवर्त्तत ॥३१॥
अहंकाराच्च सूक्ष्माणि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च । तन्मात्रेभ्यो हि जातानि भूतानि जगतः कृते ॥३२॥
आकाशवाय्वग्निजलभूमयोऽब्जभवात्मज । यथाक्रमं कारणतामेकैकस्योपयान्ति च ॥३३॥
ततो ब्रह्मा जगद्धाता तामसानसृजत्प्रभुः । तिर्यग्योनिगताञ्जन्तून्पशुपक्षिमृगादिकान् ॥३४॥
तमप्यसाधकं मत्वा देवसर्गं सनातनात् । ततो वै मानुषं सर्गं कल्पयामास पद्मजः ॥३५॥
ततो दक्षादिकान्पुत्रान्सृष्टिसाधनतत्परान् । एभिः पुत्रैरिदं व्याप्तं सदेवासुरमानुषम् ॥३६॥
भूर्भुवश्च तथा स्वश्च महश्चैव जनस्तथा । तपश्च सत्यमित्येवं लोकाः सत्योपरि स्थिताः ॥३७॥
अतलं वितलं चैव सुतलं च तलातलम् । महातलं च विप्रेन्द्र ततोऽधश्च रसातलम् ॥३८॥
पातालं चेति सप्तैव पातालानि क्रमादधः । एव सर्वेषु लोकेषु लोकनाथांश्च सृष्टवान् ॥३९॥
कुलाचलान्नदीश्चासौ तत्तल्लोकनिवासिनाम् । वर्त्तनादीनि सर्वाणि यथायोग्यमकल्पयत् ॥४०॥
भूतले मध्यगो मेरुः सर्वदेवसमाश्रयः । लोकालोकश्च भूम्यन्ते तन्मध्ये सप्त सागराः ॥४१॥
द्वीपाश्च सप्त विप्रेन्द्र द्वीपे द्वीपे कुलाचलाः । बाह्या नद्यश्च विख्याता जनाश्चामरसन्निभाः ॥४२॥
जम्बूप्लक्षाभिधानौ च शाल्मलश्च कुशस्तथा । क्रौञ्चशाकौ पुष्करश्च ते सर्वे देवभूमयः ॥४३॥
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृताः । लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरजलैः समम् ॥४४॥
एते द्वीपाः समुद्राश्च पूर्वस्मादुत्तरोत्तराः । ज्ञेया द्विगुणविस्तारा लोकालोकाच्च पर्वतात् ॥४५॥

जगद्‌गुरु के द्वारा प्रकृति क्षोभ से युक्त हो जाती है अर्थात् जब लोक-सृष्टि की इच्छा से प्रकृति (गुणों की साम्यावस्था) में कम्पन उत्पन्न होता है तब महत्तत्त्व (बुद्धि) उत्पन्न होता है और तत्पश्चात् अहङ्कार की उत्पत्ति होती है। अहङ्कार से पाँच तन्मात्राओं (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द) और एकादश इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई। तन्मात्राओं से जगत् की सृष्टि के लिए पाँच महाभूत उत्पन्न हुए।२८-३२। ब्रह्मा के पुत्र (नारद)! आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि यथाक्रम एक दूसरे के प्रति कारण होते जाते हैं अर्थात् शब्द तन्मात्रात्मक आकाश से वायु, शब्द-स्पर्शतन्मात्रात्मक वायु से अग्नि, अग्नि से रसतन्मात्रात्मक जल और जल से पृथ्वी की सृष्टि हुई। तदनन्तर जगत्स्रष्टा प्रभु ब्रह्मा ने सबसे पहले तामस सृष्टि की और तिर्यग्योनिगत जन्तुओं, पशु, पक्षी और मृग आदि को बनाया। उस प्रथम सृष्टि को असाधक (मन के प्रतिकूल) समझकर सनातन ब्रह्म से देव-सृष्टि की। तत्पश्चात् उस पद्मसम्भव ब्रह्मा ने मानव सृष्टि को प्रारम्भ किया।३३-३५। प्रारम्भ में सृष्टि कार्य में तत्पर रहने वाले दक्ष आदि मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। इन पुत्रों से ही देवता से लेकर असुर और मानवों को सम्पूर्ण सृष्टि हुई है। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य ये सात लोक सत्य पर अवलम्बित तथा ऊर्ध्व लोक हैं। विप्रेन्द्र! अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल उसके नीचे रसातल और सबसे नीचे पाताल है। इस प्रकार क्रमशः ये सातों पाताल लोक भू लोक के नीचे स्थित हैं। पुनः ब्रह्मा ने सब लोकों में लोक-पालों की रचना की। प्रत्येक लोक में कुलाचल, नदी और उन लोकों में रहने वाले जीवों एवं लोकोचित व्यवहार आदि को यथायोग्य बनाया। भूतल के मध्य भाग में सब देवताओं के एकमात्र आश्रय स्थान मेरु को, भूमि के अन्त में लोकालोक पर्वत को और मध्य में सात सागरों को स्थापित किया ॥३६-४१॥

विप्रेन्द्र! पुनः सात द्वीप, प्रत्येक द्वीप में कुलाचल प्रवाहयुक्त अति प्रसिद्ध नदियों और देवतुल्य मनुष्यों की रचना की। जम्बूद्वीप, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर द्वीप ये सभी देवभूमियाँ हैं। ये सातों द्वीप सात-सात समुद्रों से घिरे हुए हैं जो कि क्रमशः लवण, इक्षु (ईख) सुरा (मदिरा) घृत, दधि, दूध और जल से भरे रहते हैं। ये द्वीप और समुद्र लोकालोक पर्वत से पूर्व एक के बाद एक स्थित हैं जो क्रमशः विस्तार में दुगुने

क्षारोदधेरुत्तरं यद्धिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् । ज्ञेयं तद्भारतं वर्षं सर्वकर्मफलप्रदम् ॥४६॥
अत्र कर्माणि कुर्वन्ति त्रिविधानि तु नारद । तत्फलं भुज्यते चैव भोगभूमिधनक्रमात् ॥४७॥
भारते तु कृतं कर्म शुभं वाशुभमेव च । तत्फलं क्षयि विप्रेन्द्र भुज्यतेऽन्यत्र जन्तुभिः ॥४८॥
अद्यापि देवा इच्छन्ति जन्म भारतभूतले । सञ्चितं सुमहत्पुण्यमक्षय्यममलं शुभम् ॥४९॥
कदा लभामहे जन्म वर्षभारतभूमिषु । कदा पुण्येन महता यास्याम परमं पदम् ॥५०॥
दानैर्वाविविधैर्यज्ञैस्तपोभिर्वाथवा हरिम् । जगदीशं समेष्यामो नित्यानन्दमनामयम् ॥५१॥
यो भारतभुवं प्राप्य विष्णुपूजापरो भवेत् । न तस्य सदृशोऽन्योऽस्ति त्रिषु लोकेषु नारद ॥५२॥
हरिकीर्तनशीलो वा तद्भक्तानां प्रियोऽपि वा । शुश्रूषुर्वापि महतः स वेद्यो दिविजैरपि ॥५३॥
हरिपूजारतो नित्यं भक्त पूजारतोऽपि वा । भक्तोच्छिष्टान्नसेवी च याति विष्णोः परं पदम् ॥५४॥
नारायणेति कृष्णेति वासुदेवेति यो वदेत् । अहिंसादिपरः शान्तः सोऽपि वन्द्यः सुरोत्तमैः ॥५५॥
शिवेति नीलकण्ठेति शङ्करेति च यः स्मरेत् । सर्वभूतहितो नित्यं सोऽभ्यर्च्यो दिविजैः स्मृतः ॥५६॥
गुरुभक्तः शिवध्यानी स्वाश्रमाचारतत्परः । अनसूयुः शुचिर्दक्षो यः सोऽप्यर्च्यः सुरेश्वरैः ॥५७॥
ब्राह्मणानां हितकरः श्रद्धावान्वर्णधर्मयोः । वेदवादरतो नित्यं स ज्ञेयः पङ्क्तिपावनः ॥५८॥
अभेददर्शी देवेशे नारायणशिवात्मके । स वै यो ब्रह्मणा नित्यमस्मदादिषु का कथा ॥५९॥
गोषु शान्तो ब्रह्मचारी परनिन्दाविवर्जितः । अपरिग्रहशीलश्च देवपूज्यः स नारद ॥६०॥

परिमाण में हैं ।४२-४५। लवण समुद्र से उत्तर और हिमालय से दक्षिण जो प्रदेश है वह सब प्रकार के कर्मों का फल देने वाला भारत वर्ष है। नारद ! इस देश में मनुष्य त्रिविध कर्मों को करते हैं और उन कम के फल को भोग-भूमि और सम्पत्ति के क्रम से भोगते हैं। विप्रेन्द्र ! इस भारत में मनुष्य अपने किये हुए शुभ अशुभ कर्मों के क्षयशील फलों का भोग अन्य लोकों (स्वर्ग, नरक आदि) में करते हैं। अब तक भी देवतागण भारत भूतल पर संचित, महान्, अमर, अमल और शुभ पुण्य के लिए जन्म लेना चाहते हैं। वे सोचते हैं कि कब वे अपने महापुण्यों के प्रभाव से भारत वर्ष की भूमि पर जन्म लेंगे और कब वे अपने पुण्य के प्रभाव से परम पद को प्राप्त करेंगे ॥४६-५०॥ सर्वदा उनको यही इच्छा रहती है कि कब वे दान, विविध यज्ञों अथवा तपस्या से नित्य आनन्दमय जगदीश हरि के समीप जायेंगे। जो भाग्यशाली मानव भारत भूमि पर जन्म लेकर विष्णु-पूजा में रत रहता है, नारद ! उसके समान इन तीनों लोकों में कोई दूसरा नहीं है। जो हरिकीर्तन के प्रेमी, विष्णु भक्तों के प्रिय अथवा उस परम विष्णु के सेवक हैं उनका देवता भी आदर पूर्वक गुण गान करते हैं। हरि पूजा में रत रहने वाले, नित्य उनके भक्तों की सेवा में रहने वाले, और भक्तों के जूठे अन्न को खाने वाले व्यक्ति भी विष्णु के परम पद को प्राप्त करते हैं। जो अहिंसादि धर्म में रत रहने वाला व्यक्ति नारायण, कृष्ण, वासुदेव आदि नामों का कीर्तन करता है, उसकी श्रेष्ठ देवता भी पूजा करते हैं। जो शिव, नीलकण्ठ और शङ्कर, इन नामों से शिव का स्मरण करता है और लोक कल्याण में लगा रहता है, वह भी देवों द्वारा पूजित होता है। गुरुभक्त, शिव का ध्यान करने वाला, अपने आश्रमानुकूल आचार का पालन करने वाला, ईर्ष्या रहित (उदार), पवित्र और कर्मकुशल व्यक्ति भी देवों से पूजित होता है ॥५१-५७॥

ब्राह्मणों का हित करने वाला, वर्ण व्यवस्था और धर्म में श्रद्धा रखने वाला तथा नित्य ब्रह्म (ज्ञान) की चर्चा में ही समय बिताने वाला व्यक्ति पंक्ति पावन समझा जाता है। नारद ! जो देवों के प्रभु नारायण और शिव में अभेद भाव रखता है तथा सब में ब्रह्म का नित्य दर्शन करता है, उसके विषय में तो कुछ कहना ही नहीं। इन्द्रिय-संयमी, ब्रह्मचारी, पर निन्दा से विमुख रहने वाला एवं दान न लेने वाला व्यक्ति देवों से पूज्य होता है ॥५८-६०॥

स्तेयादिदोषविमुखः कृतज्ञः सत्यवाक् शुचिः । परोपकारनिरतः पूजनीयः सुरासुरैः ॥६१॥
वेदार्थश्रवणे बुद्धिः पुराणश्रवणे तथा । सत्संगेऽपि च यस्यास्ति सोऽपि वन्द्यः सुरोत्तमैः ॥६२॥
एवमादीन्यनेकानि कर्माणि श्रद्धयान्वितः । करोति भारते वर्षे संबन्धोऽस्माभिरेव च ॥६३॥
एतेष्वन्यतमो विप्रमात्मानं नारभेत्तु यः । स एव दुष्कृतिमूढो नास्त्यन्योऽस्मादचेतनः ॥६४॥
संप्राप्य भारते जन्म सत्कर्मसु पराङ्मुखः । पीयूषकलशं मुक्त्वा विषभाण्डमुपाश्रितः ॥६५॥
श्रुतिस्मृत्युदितैर्धर्मैर्नात्मानं पावयेत्तु यः । स एवात्मविघाती स्यात्पापिनामग्रणीर्मुने ॥६६॥
कर्मभूमिं समासाद्य यो न धर्मं समाचरेत् । स च सर्वाधमः प्रोक्तो वेदविद्भिर्मुनीश्वर ॥६७॥
शुभं कर्म समुत्सृज्य दुष्कर्माणि करोति यः । कामधेनुं परित्यज्य अर्कक्षीरं स मार्गति ॥६८॥
एवं भारतभूभागं प्रशंसन्ति दिवौकसः । ब्रह्माद्या अपि विप्रेन्द्र स्वभोगक्षयभीरवः ॥६९॥
तस्मात्पुण्यतमं ज्ञेयं भारतं वर्षमुत्तमम् । देवानां दुर्लभं वापि सर्वकर्मफलप्रदम् ॥७०॥
अस्मिन्पुण्ये च भूभागे यस्तु सत्कर्मसूद्यतः । न तस्य सदृशं कश्चित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥७१॥
अस्मिञ्जातो नरो यस्तु स्वकर्मक्षपणोद्यतः । नररूपपरिच्छन्नः स हरिर्नात्र संशयः ॥७२॥
परं लोकफलं प्रेप्सुः कुर्यात्कर्माण्यतन्द्रितः । निवेद्य हरये भक्त्या तत्फलं ह्यक्षयं स्मृतम् ॥७३॥
विरागी चेत्कर्मफलेष्वपि किंचिन्न कारयेत् । अर्पयेत्सुकृतं कर्म प्रीयतामिति मे हरिः ॥७४॥
आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरुत्पत्तिदायकाः । फलागृध्नुः कर्मणां तत्प्राप्नोति परमं पदम् ॥७५॥
वेदोदितानि कर्माणि कुर्यादीश्वरतुष्टये । यथाश्रमं त्यक्तुकामः प्राप्नोति पदमव्ययम् ॥७६॥

चोरी आदि पापों से विमुख रहने वाला, कृतज्ञ, सत्यवक्ता, पवित्र और नित्य परोपकार में निरत रहने वाला व्यक्ति सुर एवं असुर दोनों का पूज्य होता है। जिसकी वेदों के तत्त्व सुनने में, पुराण श्रवण में और सत्संग में श्रद्धा एवं भावना रहती है वह भी देवताओं से वन्द्य (पूज्य) होता है। जो इस भारतवर्ष में जन्म लेकर हमलोगों के आदेशानुसार श्रद्धायुक्त होकर ऐसे अनेक शुभकर्मों को करता है वह धन्य है। जो मूढ़ इन उपर्युक्त कर्मों के विरुद्ध आचरण करता है वह पापी है। उससे बढ़कर अज्ञानी इस संसार में कोई दूसरा नहीं है। जो भारतवर्ष में जन्म लेकर भी अच्छे सत्कर्म से विमुख रहता है वह अमृत कलश को छोड़कर विषकुम्भ को अपनाता है। ॥५८-६५॥ मुने। जो श्रुतिस्मृति-समस्त धर्मों के आचरण से आत्मोद्धार नहीं करता है, वही आत्मघाती और पापियों में महान् पापी है। मुनीश्वर ! जो इस कर्मभूमि (भारतभूमि) पर जन्म लेकर धर्म का आचरण नहीं करता है, उसको वेद के जानने वाले लोग सबसे अधम कहते हैं। जो शुभकर्मों को छोड़ कर दुष्कर्मों में प्रवृत्त होता है, वह कामधेनु को छोड़कर मदार के दूध को इच्छा करता है। देवता भी भारत भूमि की प्रसंशा करते हैं। विप्रेन्द्र ! ब्रह्मा आदि देवगण भी अपने (पुण्यफल) भोग के नाश से डरने वाले हैं। इसलिए भारतवर्ष को सब वर्षों से उत्तम समझना चाहिए, यह सब कर्मों के फलों को देने वाला वर्ष देवों के लिए भी दुर्लभ है ॥६६-७०॥

इस पवित्र भूभाग पर जन्म लेकर जो सत्कर्म करने में लगे रहते हैं उसके समान इस त्रिलोक में कोई दूसरा नहीं है। जो इस भारतवर्ष में जन्म लेकर अपने कर्मों के लिए उद्यत रहता है वह मनुष्य के रूप में प्रच्छन्न विष्णु है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। उत्तम लोक के फल को चाहने वाले व्यक्ति को भक्ति पूर्वक भगवदर्पण बुद्धि से आलस्य रहित होकर सत्कार्य करना चाहिए ऐसे कर्मों के फल कभी भी नष्ट नहीं होते। यदि कर्म फलों की कुछ भी इच्छा न रखने वाला व्यक्ति चाहे और कुछ भी न करे केवल 'हरि मुझ पर प्रसन्न हों (हरिः प्रीयताम्), यह कहता हुआ अपने सुकृतकर्मों को अर्पित कर दे, तो वह पुनर्जन्म को देनेवाले स्वर्ग से लेकर भूलोक को पार कर परम पद को प्राप्त करता है ॥७१-७५॥ केवल भगवत्प्रीति की इच्छा से, निष्काम होकर जो आश्रमानुकूल कर्म

निष्कामो वा सकामो वा कुर्यात्कर्म यथाविधि । स्वाश्रमाचारशून्यश्च पतितः प्रोच्यते बुधैः ॥७७॥
सदाचारपरो विप्रो वर्द्धते ब्रह्मतेजसा । तस्य विष्णुश्च तुष्टः स्याद्भक्तियुक्तस्य नारद ॥७८॥
भारते जन्म संप्राप्य नात्मानं तारयेत्तु यः । पच्यते निरये घोरे स त्वाचन्द्रार्कतारकम् ॥७९॥
वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरं तपः । वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरा गतिः ॥८०॥
वासुदेवात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तस्मादन्यन्न विद्यते ॥८१॥

स एव धाता त्रिपुरान्तकश्च स एव देवासुरयज्ञरूपः ।
स एव ब्रह्माण्डमिदं ततोऽन्यन्न किंचिदस्ति व्यतिरिक्तरूपम् ॥८२॥
यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद्यस्मादणीयान्न तथा महीयान् ।
व्याप्तं हि तेनेदमिदं विचित्रं तं देवदेवं प्रणमेत्समीड्यम् ॥८३॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे सृष्टिभरतखण्ड-
प्राशस्त्यभूगोलानां वर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

करता है वह शाश्वत पद को प्राप्त करता है। चाहे निष्काम भाव हो या सकाम, मनुष्य को विधि के अनुसार कार्य करना चाहिए; क्योंकि बुधजन अपने आश्रम-विहित आचार से विमुख रहने वाले व्यक्ति को पतित कहते हैं। नारद! सदाचार-परायण ब्राह्मण अपने ब्रह्मतेज से नित्य वृद्धि पाता है और भक्तिरत विप्र पर विष्णु सर्वदा प्रसन्न रहते हैं। जो मूढ़ भारत वर्ष में जन्म लेकर भी अपना उद्धार नहीं करता है वह जब तक चन्द्र, सूर्य और तारामण्डल से आकाश सुशोभित रहता है तब तक घोर नरक में दुःख भोग करता है। वासुदेव ही परमधर्म, परमतप, परमज्ञान और वासुदेव हो परम गति हैं ॥७६-८०॥ ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सारा स्थावर जंगात्मक जगत् वासुदेवमय है। उससे भिन्न संसार नामक कोई अन्य पदार्थ नहीं है। वही ब्रह्मा, वही त्रिपुरारि शंकर, वही देव, असुर और यज्ञरूप है। यह सारा ब्रह्माण्ड वही है। उसके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की सत्ता नहीं है। जिससे पर या अपर कोई दूसरा नहीं और जिससे सूक्ष्म या महान् कोई दूसरा नहीं अर्थात् जो महान् से भी महत्तम और सूक्ष्म से सूक्ष्मतम है, उससे यह सारा विचित्र जगत् व्याप्त है। इसलिए उस पूज्य देवाधिदेव को प्रणाम करना चाहिए ॥८१-८३॥

श्रीनारदीयपुराण में सृष्टि, भारतवर्ष, उसकी सम्पूर्ण भूभागों से श्रेष्ठता और अन्य भूभागों का वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

सनक उवाच

श्रद्धापूर्वाः सर्वधर्मा मनोरथफलप्रदाः । श्रद्धया साध्यते सर्वं श्रद्धया तुष्यते हरिः ॥१॥
भक्तिर्भक्त्यैव कर्त्तव्या तथा कर्माणि भक्तितः । कर्मश्रद्धाविहीनानि न सिध्यन्ति द्विजोत्तमाः ॥२॥
यथाऽऽलोको हि जन्तूनां चेष्टाकारणतां गतः । तथैव सर्वसिद्धीनां भक्तिः परमकारणम् ॥३॥
यथा समस्तलोकानां जीवनं सलिलं स्मृतम् । तथा समस्तसिद्धीनां जीवनं भक्तिरिष्यते ॥४॥
यथा भूमिं समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः । तथा भक्तिं समाश्रित्य सर्वकार्य्याणि साधयेत् ॥५॥
श्रद्धावाँल्लभते धर्म्मं श्रद्धावानर्थमाप्नुयात् । श्रद्धया साध्यते कामः श्रद्धावान्मोक्षमाप्नुयात् ॥६॥
न दानैर्न तपोभिर्वा यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः । भक्तिहीनैर्मुनिश्रेष्ठ तुष्यते भगवान्हरिः ॥७॥
मेरुमात्रसुवर्णानां कोटिकोटिसहस्रशः । दत्ता चाप्यर्थनाशाय यतो भक्तिविवर्जिता ॥८॥
अभक्त्या यत्तपस्तप्तं केवलं कायशोषणम् । अभक्त्या यद्धुतं हव्यं भस्मनि न्यस्तहव्यवत् ॥९॥
यत्किञ्चित्कुरुते कर्म्म श्रद्धयाप्यणुमात्रकम् । तन्नाम जायते पुंसां शाश्वतं प्रीतिदायकम् ॥१०॥

अध्याय ४

मार्कण्डेय मुनि का चरित्र-वर्णन

सनक बोले—श्रद्धापूर्वक किये गये सब धर्म ही इच्छित फल देने वाले होते हैं, श्रद्धा से ही सब कुछ सिद्ध होता है और श्रद्धा से ही भगवान् हरि प्रसन्न होते हैं। उपासना और श्रद्धा भक्तिपूर्वक होनी चाहिए। अन्य कर्म भी भक्तिपूर्वक ही करना चाहिए। द्विजोत्तमवृन्द ! श्रद्धापूर्वक न किये गये कर्म भी पूर्ण नहीं होते हैं। जिस प्रकार प्रकाश प्राणियों के कार्य करने का कारण माना जाता है उसी प्रकार सब प्रकार की सिद्धियों का परमकारण भक्ति ही है अर्थात् जिस प्रकार प्रकाश के द्वारा मनुष्य या प्राणी अपने कार्यों में लग जाते हैं उसी प्रकार भक्ति के द्वारा मनुष्य अपने कार्यों में सफल हो जाता है। जिस प्रकार समस्त प्राणियों का जल जीवन (प्राण-दाता) कहा जाता है उसी प्रकार सब सिद्धियों का जीवन भक्ति है ॥१-४॥ जिस प्रकार सकल जीवजन्तु इस पृथ्वी के सहारे जीते हैं उसी प्रकार भक्ति के बल से मनुष्य सब कार्यों को पूर्ण कर देता है। श्रद्धालु व्यक्ति ही धर्म प्राप्त करता है। वही अर्थ, वही काम और वही मोक्ष भी प्राप्त करता है। मुनिश्रेष्ठ ! भक्तिहीन मनुष्य चाहे असंख्य धन का दान, तप, या यज्ञ कर भरपूर दक्षिणा दे परन्तु उस पर भगवान् कथमपि प्रसन्न नहीं होते हैं ॥५-७॥ मनुष्य मेरु पर्वत के तुल्य करोड़ों सुवर्ण-पर्वत दान में दे दे परन्तु वह केवल धन का अपव्यय ही कहा जायगा यदि वह दान भक्ति पूर्वक नहीं दिया गया है। श्रद्धा-हीन किया हुआ तप केवल शरीर को कष्ट देना मात्र है। श्रद्धा के बिना अग्नि में दी हुई आहुतियाँ केवल भस्म में दी हुई आहुति के समान हैं ॥८-९॥ श्रद्धापूर्वक किया हुआ सत्कर्म चाहे अति क्षुद्र ही क्यों न हो परन्तु वह निश्चय ही नित्य सुख देने वाला होता है ॥१०॥ ब्रह्मन् ! वेद-विधि के अनुसार सहस्रों अश्वमेध

अश्वमेधसहस्रं वा कर्म्म वेदोदितं कृतम् । तत्सर्वं निष्फलं ब्रह्मन्यदि भक्तिविवर्जितम् ॥११॥
हरिभक्तिः परा नृणां कामधेनूपमा स्मृता । तस्यां सत्यां पिबन्त्यज्ञाः संसारगरलं ह्यहो ॥१२॥
असारभूते संसारे सारमेतदजात्मज । भगवद्भक्तसङ्गश्च हरिभक्तिस्तितिक्षुता ॥१३॥
असूयोपेतमनसां भक्तिदानादिकर्म्म यत् । अत्रैहि निष्फलं ब्रह्मंस्तेषां दूरतरो हरिः ॥१४॥
परश्रियाभितप्तानां दम्भाचाररतात्मनाम् । मृषा तु कुर्वतां कर्म तेषां दूरतरो हरिः ॥१५॥
पृच्छतां च महाधर्म्मान्वदतां वै मृषा च तान् । धर्मेष्वभक्तिमनसां तेषां दूरतरो हरिः ॥१६॥
वेदप्रणिहितो धर्म्मो वेदो नारायणः परः । तत्राश्रद्धापरा ये तु तेषां दूरतरो हरिः ॥१७॥
यस्य धर्म्मविहीनानि दिनान्यायान्ति यान्ति च । स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥१८॥
धर्मार्थकाममोक्षाख्याः पुरुषार्थाः सनातनाः । श्रद्धावतां हि सिध्यन्ति नान्यथा ब्रह्मनन्दन ॥१९॥
स्वाचारमनतिक्रम्य हरिभक्तिपरो हि यः । स याति विष्णुभवनं यद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥२०॥
कुर्वन्वेदोदितान्धर्म्मान्मुनीन्द्र स्वाश्रमोचितान् । हरिध्यानपरो यस्तु स याति परमं पदम् ॥२१॥
आचारप्रभवो धर्मः धर्म्मस्य प्रभुरच्युतः । आश्रमाचारयुक्तेन पूजितः सर्वदा हरिः ॥२२॥
यः स्वाचारपरिभ्रष्टः साङ्गवेदान्तगोऽपि वा । स एव पतितो ज्ञेयो यतः कर्मबहिष्कृतः ॥२३॥
हरिभक्तिपरो वाऽपि हरिध्यानपरोऽपि वा । भ्रष्टो यः स्वाश्रमाचारात्पतितः सोऽभिधीयते ॥२४॥

यज्ञ कर देने पर भी कुछ भी फल नहीं मिलता है यदि वह भक्ति पूर्वक नहीं किये गए हों। मनुष्यों के लिए हरि-
भक्ति सव सिद्धियों को देने वाली श्रेष्ठ कामधेनु के समान मानी गई है। आश्चर्य है कि इसके रहते हुए भी मूढ़
जन सांसारिक विषय वासना रूपी विष का बार-बार पान करते हैं ॥११-१२॥ ब्रह्मपुत्र। इस असार संसार में
केवल भगवद्भक्तों की संगति, हरिभक्ति और सहिष्णुता ही सारभूत पदार्थ हैं। ब्रह्मन्! ईर्ष्यालु मनुष्यों
के किये हुए भक्ति, दान आदि प्रत्येक कर्म को निष्फल ही समझो और उनके लिए हरि दूर से भी दूरतर हैं
॥१३-१४॥

दूसरे के ऐश्वर्य को देखकर जलने वाले और पाखण्ड में लगे रहने वाले मनुष्यों के किये हुए कर्म व्यर्थ हैं
और उनसे भगवान् उतनी ही दूर रहते हैं जितना पाताल से आकाश। किसी से परम धर्म के विषय में पूछा
जाय—और यदि वह जिज्ञासु जनों को व्यर्थ के उपदेश दे तो ऐसे धर्म में श्रद्धा न रखने वाले व्यक्तियों से भगवान्
सर्वदा दूर रहते हैं। धर्म वेद प्रतिपादित हैं, अर्थात् धर्म की व्याख्या वेद ही करते हैं और वेद नारायण को ही
परम धर्म मानते हैं, ऐसे नारायण और नारायण परक वेद और धर्म में श्रद्धा न रखने वाले व्यक्ति से भगवान्
सर्वदा दूर रहते हैं ॥१५-१७॥

जिसके दिन धर्माचरण में नहीं बीतते हैं यों ही व्यर्थ आते-जाते हैं, वह व्यक्ति लुहार की भाथी (धौंकनी)
के समान श्वास लेता हुआ भी मृतक के समान है। ब्रह्मनन्दन! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये ही सनातन चार
पुरुषार्थ माने गए हैं; परन्तु ये केवल श्रद्धालुजनों को ही प्राप्त होते हैं श्रद्धाहीनों को नहीं। जो अपने कुलाचार
को न छोड़ता हुआ हरिभक्ति में तल्लीन रहता है वह उस विष्णुलोक को प्राप्त करता है, जिसको ज्ञानी लोग
अपनी ज्ञानदृष्टि से देखा करते हैं। मुनीन्द्र! वेदोक्त एवं अपने आश्रम के योग्य धर्म का पालन करते हुए जो
व्यक्ति हरिभक्ति में रत रहते हैं ॥१८-२०॥ वे परम पद को पा जाते हैं। धर्म से ही आचार उत्पन्न होता है और
धर्म के प्रभु (स्वामी, आदि कारण) अच्युत हरि हैं। अतः आश्रमानुकूल आचार पालन से प्रभु सर्वदा प्रसन्न होते हैं।
साङ्गोपाङ्ग वेदों का अध्ययन करने वाला व्यक्ति भी यदि अपने कुलाचार से हीन है तो उसे भी पतित ही समझना
चाहिये; क्योंकि वह भगवान् के प्रिय कर्मों से च्युत है। चाहे कोई व्यक्ति हरिभक्ति और उसके ध्यान में अनन्य

वेदो वा हरिभक्तिर्वा भक्तिर्वापि महेश्वरे । आचारात्पतितं मूढं न पुनाति द्विजोत्तम ॥२५॥
पुण्यक्षेत्राभिगमनं पुण्यतीर्थनिषेवणम् । यज्ञो वा विविधो ब्रह्मंस्त्यक्ताचारं न रक्षति ॥२६॥
आचारात्प्राप्यते स्वर्ग आचारात्प्राप्यते सुखम् । आचारात्प्राप्यते मोक्ष आचारात्किं न लभ्यते ॥२७॥
आचाराणां तु सर्वेषां योगानां चैव सत्तम । हरिभक्तेरपि तथा निदानं भक्तिरिष्यते ॥२८॥
भक्त्यैव पूज्यते विष्णुर्वाञ्छितार्थफलप्रदः । तस्मात्समस्तलोकानां भक्तिर्मातेति गीयते ॥२९॥
जीवन्ति जन्तवः सर्वे यथा मातरमाश्रिताः । तथा भक्तिं समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति धार्म्मिकाः ॥३०॥
स्वाश्रमाचारयुक्तस्य हरिभक्तिर्यदा भवेत् । न तस्य त्रिषुलोकेषु सदृशोऽस्त्यजनन्दन ॥३१॥
भक्त्या सिध्यन्ति कर्म्माणि कर्म्मभिस्तुष्यते हरिः । तस्मिंस्तुष्टे भवेज्ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षमवाप्यते ॥३२॥
भक्तिस्तु भगवद्भक्तसङ्गेन खलु जायते । तत्सङ्गं प्राप्यते पुम्भिः सुकृतैः पूर्वसञ्चितैः ॥३३॥
वर्णाश्रमाचाररता भगवद्भक्तिलालसाः । कामादिदोषनिर्मुक्तास्ते सन्तो लोकशिक्षकाः ॥३४॥
सत्सङ्गः परमो ब्रह्मन्न लभ्येताकृतात्मनाम् । यदि लभ्येत विज्ञेयं पुण्यं जन्मान्तरार्जितम् ॥३५॥
पूर्वार्जितानि पापानि नाशमायान्ति यस्य वै । सत्सङ्गतिर्भवेत्तस्य नान्यथा घटते हि सा ॥३६॥
रविर्हि रश्मिजालेन दिवा हन्ति बहिस्तमः । सन्तः सूक्तिमरीच्योघैश्चान्तर्ध्वान्तं हि सर्वदा ॥३७॥

निष्ठा रखता हो परन्तु यदि वह अपने आचार से भ्रष्ट है तो भी उसको पतित ही कहा जाता है ॥२१-२४॥ द्विजवर्य ! साक्षात् वेद, हरिभक्ति या शिवभक्ति कोई भी अभागे आचार-भ्रष्ट को पवित्र नहीं कर सकता। ब्रह्मन् ! पवित्र क्षेत्रों में जाना, पुण्य तीर्थों की सेवा अथवा विविध यज्ञ ये कभी भी आचार-पतित की रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकते ॥२५-२६॥ आचार से स्वर्ग प्राप्त होता है, आचार से ही सुख मिलता है और आचार से ही मोक्ष भी प्राप्त होता है। इस प्रकार कौन ऐसी वस्तु है जो आचार से नहीं मिल सकती है ? सज्जनों में श्रेष्ठ ! सब प्रकार के आचारों, योगों और हरि भक्ति का भी एकमात्र आदि कारण भक्ति (श्रद्धा) ही है। सब मनः कामनाओं को पूर्ण करने वाले विष्णु भक्ति के द्वारा ही पूजे जाते हैं या प्रसन्न होते हैं। इसीलिए भक्ति सब लोकों की माता कही जाती है। जिस प्रकार सभी जन्तु या प्राणी माता के सहारे जीते हैं उसी प्रकार सभी धार्मिक भक्ति के सहारे जीवित रहते हैं ॥२७-३०॥ ब्रह्मनन्दन ! जब अपने आश्रम के अनुसार आचरण करने वाले व्यक्ति हरिभक्तिपरायण हो जाते हैं तो उनके समान भाग्यशाली और पुण्यवान् व्यक्ति तीनों लोक में दूसरा नहीं रहता। भक्ति के द्वारा ही सब कर्म सफल होते हैं और कर्मों से ही भगवान् प्रसन्न होते हैं, भगवान् की प्रसन्नता (कृपा) से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है ॥३१-३२॥

भगवद्भक्तों की संगति से ही भक्ति उत्पन्न होती है और सत्सङ्गति पूर्व सञ्चित शुभकर्मों से ही मनुष्य को प्राप्त होती है। ऐसे सन्त व्यक्ति ही लोक-शिक्षक या लोक-गुरु हैं जो कि वर्णाश्रम धर्म के पालन में लगे रहते, जिनकी सत्सङ्गति में रुचि होती और जो कामक्रोधादि दोषों से मुक्त रहते हैं। ब्रह्मन् ! सत्सङ्ग के समान उत्तम पदार्थ अजितेन्द्रिय व्यक्ति को कभी भी प्राप्त नहीं होता। यदि कोई ऐसा व्यक्ति पा जाय तो उसको उसके पूर्व जन्म के सञ्चित कर्मों का फल समझना चाहिए। जिसके पूर्व जन्म के किये पाप नष्ट हो जाते हैं उसीको सत्सङ्गति का सौभाग्य मिलता है; अन्यथा पापियों को सत्सङ्गति कथमपि प्राप्त नहीं हो सकती। सूर्य अपनी किरणों से दिन में जगद्व्यापी अन्धकार को दूर कर देता है और सज्जन मनुष्य अपने सदुपदेश रूपी किरणों के समूह से अज्ञानियों के अन्तःकरण के अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं ॥३३-३७॥ इस लोक में भगवद्भक्ति में श्रद्धा एवं

दुर्लभाः पुरुषा लोके भगवद्भक्तिलालसाः । तेषां सङ्गो भवेद्यस्य तस्य शान्तिर्हि शाश्वती ॥३८॥

नारद उवाच

किंलक्षणा भागवतास्ते च किं कर्म्म कुर्वते । तेषां लोको भवेत्कीदृक्तत्सर्वं ब्रूहि तत्त्वतः ॥३९॥
त्वं हि भक्तो रमेशस्य देवदेवस्य चक्रिणः । एतन्निगदितुं शक्तस्त्वत्तो नास्त्यधिकोऽपरः ॥४०॥

सनक उवाच

शृणु ब्रह्मन्परं गुह्यं मार्कण्डेयस्य धीमतः । यमुवाच जगन्नाथो योगनिद्राविमोचितः ॥४१॥
योऽसौ विष्णुः परं ज्योतिर्देवदेवः सनातनः । जगद्रूपी जगत्कर्त्ता शिवब्रह्मस्वरूपवान् ॥४२॥
युगान्ते रौद्ररूपेण ब्रह्माण्डग्रासबृंहितः । जगत्येकार्णवीभूते नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥४३॥
भगवानेव शेषात्मा शेते वटदले हरिः । असंख्याताब्जजन्माद्यैराभूषिततनूरुहः ॥४४॥
पादाङ्गुष्ठाग्रनिर्यातगङ्गाशीताम्बुपावनः । सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरो देवो ब्रह्माण्डग्रासबृंहितः ॥४५॥
वटच्छदे शयानोऽभूत्सर्वशक्तिसमन्वितः । तस्मिन्स्थाने महाभागो नारायणपरायणः ।
मार्कण्डेयः स्थितस्तस्य लीलाः पश्यन्महेशितुः ॥४६॥

ऋषय ऊचुः

तस्मिन्काले महाघोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे । हरिरेकः स्थित इति मुने पूर्वं हि शुश्रुम ॥४७॥
जगत्येकार्णवीभूते नष्टे स्थावरजंगमे । सर्वग्रस्तेन हरिणा किमर्थं सोऽवशेषितः ॥४८॥

लालसा रखने वाले पुरुष दुर्लभ हैं, ऐसे भगवद्भक्तों की सङ्गति जिसको प्राप्त हो जाती है, उसको शाश्वत शान्ति मिल जाती है ॥३८॥

नारद बोले—भगवद् भक्तों के लक्षण क्या हैं? वे कैसे कर्म करते हैं? उन लोगों को कौन से लोक प्राप्त होते हैं? इन बातों को आप यथार्थ रूप से कहिए। आप महाप्रभु, देव-देव, चक्रधर विष्णु के भक्त हैं। आपसे बढ़ कर कोई ऐसा व्यक्ति नहीं, जो इन विषयों पर साधिकार कुछ कह सके ॥३९-४०॥

सनत्कुमार बोले—ब्रह्मन्! (इस विषय में) योगनिद्रा का त्याग कर विष्णु ने मार्कण्डेय से जो गुप्त बात कही थी, वह सुनिए। जो विष्णु पर, ज्योतिः स्वरूप, सनातन, देव-देव, जगत्स्वरूप, जगत् के कर्त्ता, शिव और ब्रह्म रूप धारण करने वाले हैं, वे ही युगान्त में रुद्ररूप धारण कर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को ग्रस लेते हैं। जब सारा ब्रह्माण्ड एकार्णव रूप में हो जाता है और स्थावर, जंगम सब नष्ट हो जाते हैं तब केवल भगवान् हरि ही शेष रह जाते हैं और अक्षयवट के पत्ते पर सोते हैं। उस समय उनके प्रत्येक रोम अगणित ब्रह्मा आदि से सुशोभित रहते हैं। (अपने) पैर के अंगूठे के अगले भाग से निकली गंगा के शीतल जल को पवित्र करने वाले तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप धारण करते हुए भी वे ब्रह्माण्ड को अपने में छिपाकर महान् से महान् बने रहते हैं। इस प्रकार सर्वशक्ति-सम्पन्न हरि उस वट पत्र पर सोये हुए थे। उसी स्थान पर नारायणभक्तमहासौभाग्यशाली मार्कण्डेय उस महाप्रभु की लीला को देखकर आश्चर्य-चकित-से स्थित थे ॥४१-४६॥

ऋषिगण बोले—उस महाभयंकर काल में स्थावर-जंगम आदि नष्ट हो गए थे, केवल भगवान् हरि ही बचे थे, ऐसा हम लोगों ने अभी सुना है। पुनः उस प्रलयकाल में जबकि सारा जगत् एकार्णवाकार था, स्थावर, जंगम आदि सब पदार्थ नष्ट हो गए थे तब सर्वसंहारकारी विष्णु ने मार्कण्डेय मुनि को कैसे छोड़ दिया?

परं कौतूहलं ह्यत्र वर्त्ततेऽतीव सूत नः । हरिकीर्तिसुधापाने कस्यालस्यं प्रजायते ॥४९॥

सूत उवाच

आसीन्मुनिर्महाभागो मृकण्डुरिति विश्रुतः । शालग्रामे महातीर्थे सोऽतप्यत महातपाः ॥५०॥
युगानामयुतं ब्रह्मन्गृणन्ब्रह्म सनातनम् । निराहारः क्षमायुक्तः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥५१॥
आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यन्विषयनिःस्पृहः । सर्वभूतहितो दान्तस्तताप सुमहत्तपः ॥५२॥
तत्तपःशङ्किताः सर्वे देवा इन्द्रादयस्तदा । परेशं शरणं जग्मुर्नारायणमनामयम् ॥५३॥
क्षीराब्धेरुत्तरं तीरं संप्राप्य त्रिदिवौकसः । तुष्टुवुर्देवदेवेशं पद्मनाभं जगद्गुरुम् ॥५४॥

देवा ऊचुः

नारायणाक्षरानन्त शरणागतपालक । मृकण्डुतपसा त्रस्तान्पाहि नः शरणागतान् ॥५५॥
जय देवाधिदेवेश जय शङ्खगदाधर । जयो लोकस्वरूपाय जयो ब्रह्माण्डहेतवे ॥५६॥
नमस्ते देवदेवेश नमस्ते लोकपावन । नमस्ते लोकनाथाय नमस्ते लोकसाक्षिणे ॥५७॥
नमस्ते ध्यानगम्याय नमस्ते ध्यानहेतवे । नमस्ते ध्यानरूपाय नमस्ते ध्यानसाक्षिणे ॥५८॥
केशिहन्त्रे नमस्तुभ्यं मधुहन्त्रे परात्मने । नमो भूम्यादिरूपाय नमश्चैतन्यरूपिणे ॥५९॥
नमो ज्येष्ठाय शुद्धाय निर्गुणाय गुणात्मने । अरूपाय स्वरूपाय बहुरूपाय ते नमः ॥६०॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥६१॥
नमो हिरण्यगर्भाय नमो ब्रह्मादिरूपिणे । नमः सूर्यादिरूपाय हव्यकव्यभुजे नमः ॥६२॥

सूत जी ! इस विषय में हमलोगों को अत्यन्त कौतूहल हो रहा है, आप कृपा कर इसको समझाइये । भगवान् के गुणगान रूपी अमृत के पान करने-में, कौन ऐसा अभागा होगा जिसको आलस्य होगा ? ॥४७-४९॥

सूत जी बोले—मृकण्डु नाम से विख्यात एक महाभाग्यवान् मुनि थे । उस महातपस्वी ने शालग्राम नामक महान् तीर्थ में घोर तप किया । सहस्रों युगों तक उस सत्यसंध, जितेन्द्रिय, क्षमाशील सब प्राणियों के हित में लगे रहने वाले सबमें आत्मभावना रखने वाले उदार मुनि ने निराहार रहकर और विषय-वासनाओं से निःस्पृह होकर महान् तप किया । उनकी तपस्या से भयभीत होकर इन्द्र आदि सब देवता परम प्रभु, निर्विकार नारायण की शरण में गए । क्षीर सागर के उत्तर तट पर जाकर वे स्वर्गवासी देवता जगद्गुरु पद्मनाभ की स्तुति करने लगे ॥५०-५४॥

देवगण बोले—नारायण ! अक्षर ! अनन्त ! शरणागतों का पालन करने वाले ! मृकण्डुमुनि की तपस्या से भयभीत हम लोगों की रक्षा कीजिए । देवाधिदेवेश ! आपकी जय हो । शङ्ख-गदाधारी ! जय हो । लोक स्वरूप की जय हो । ब्रह्माण्ड के आदि कारण की जय हो । देवदेवेश ! आपको नमस्कार है । लोक पावन ! नमस्कार है । लोकनाथ को नमस्कार हैं । लोकसाक्षी को नमस्कार है । ध्यान से प्राप्त करने योग्य को नमस्कार है । ध्यान के हेतु को नमस्कार है । ध्यानरूप और ध्यान के साक्षी को नमस्कार है । केशी के हन्ता ! तुमको नमस्कार है । परात्मा मधुसूदन को नमस्कार है । भू सृष्टि के आदि रूप को नमस्कार है । चैतन्य रूप को नमस्कार है ॥५५-५९॥ ज्येष्ठ, शुद्ध, निर्गुण और सगुण ईश को नमस्कार है । अरूप, सरूप, और बहुरूप को नमस्कार है । विप्र वेद रक्षक देव को, गो ब्राह्मणों के हित करने वाले, जगत् के कल्याणकर्त्ता कृष्ण गोविन्द को नमस्कार है, हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप धारण करने वाले को नमस्कार है । सूर्य आदि रूप वाले, हव्य (देवाहुति) कव्य (पितृ

नमो नित्याय वन्द्याय सदानन्दैकरूपिणे । नमः स्मृतार्तिनाशाय भूयो भूयो नमो नमः ॥६३॥
एवं देवस्तुतिं श्रुत्वा भगवान्कमलापतिः । प्रत्यक्षतामगात्तेषां शङ्खचक्रगदाधरः ॥६४॥
विकचाम्बुजपत्राक्षं सूर्यकोटिसमप्रभम् । सर्वालङ्कारसंयुक्तं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥६५॥
पीताम्बरधरं सौम्यं स्वर्णयज्ञोपवीतिनम् । स्तूयमानं मुनिवरैः पार्षदप्रवरावृतम् ॥६६॥
तं दृष्ट्वा देवसंघास्ते तत्तेजोहततेजसः । नमश्चक्रुर्मुदा युक्ता अष्टांगैरवनिं गताः ॥६७॥
ततः प्रसन्नो भगवान्मेघगंभीरनिस्वनः । उवाच प्रीणयन्देवान्नतानिन्द्रपुरोगमान् ॥६८॥

श्रीभगवानुवाच

जाने वो मानसं दुःखं मृकण्डुतपसोद्गतम् । युष्मान्न बाधते देवाः स ऋषिः सज्जनाग्रणी ॥६९॥
संपद्भिः संयुता वापि विपद्भिश्चापि सज्जनाः । सर्वथान्यं न बाधन्ते स्वप्नेऽपि सुरसत्तमाः ॥७०॥
सततं बाध्यमानोऽपि विषयाख्यैररातिभिः । अविधायात्मनो रक्षामन्यान्द्वेष्टि कथं सुधीः ॥७१॥
तापत्रयाभिधानेन बाध्यमानो हि मानवः । अन्यं क्रीडयितुं शक्तः कथं भवति सत्तमः ॥७२॥
कर्मणा मनसा वाचा बाधते यः सदा परान् । नित्यं कामादिभिर्युक्तो मूढधीः प्रोच्यते तु सः ॥७३॥
यो लोकहितकृन्मर्त्यो गतासूयो विमत्सरः । निःशङ्कः प्रोच्यते सद्भिरिहामुत्र च सत्तमाः ॥७४॥
सशङ्कः सर्वदा दुःखी निःशङ्कः सुखमाप्नुयात् । गच्छध्वं स्वालयं स्वस्थाः क्रीडयिष्यति वो न सः ॥७५॥

निमित्त दिये हुए पदार्थ) को ग्रहण करने वाले को नमस्कार है। नित्य, पूज्य, सर्वदा आनन्द स्वरूप को नमस्कार है। भक्तजनों की बाधा दूर करने वाले को बार-बार नमस्कार है ॥६०-६३॥

देवों की ऐसी स्तुति सुनकर भगवान् कमलापति शंख, चक्र और गदाधारी रूप में उनके सम्मुख प्रकट हुए, जिनके नेत्र विकसित कमल के समान उत्फुल्ल थे, शरीर से कोटि-कोटि सूर्य की प्रभा निकल रही थी, अङ्ग-अङ्ग पर अलङ्कार सुशोभित हो रहे थे, जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्स से अङ्कित था, जो पीताम्बरधारी और सुवर्ण के यज्ञोपवीत पहने हुए थे, जिनकी मुनिवरगण स्तुति कर रहे थे और जो अपने उत्तम पार्षदों से घिरे हुए थे। देव-समूह उस तेजोमय को देखकर हततेज हो गए, आनन्दविभोर हो देवों ने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। विनम्र देवों पर प्रसन्न होकर भगवान् ने इन्द्र आदि देवों को सम्बोधित करते हुए मेघ के समान गम्भीर स्वर से कहा ॥६४-६८॥

श्री भगवान् बोले—मुनि मृकण्डु को तपस्या के कारण जो मानसिक दुःख तुम देवों को हो गया है उसको मैं भलीभाँति जानता हूँ; परन्तु देववृन्द! वह ऋषि उच्चकोटि के सज्जन हैं। तुम लोगों को उससे किसी प्रकार की बाधा न होगी। सुरश्रेष्ठो! सज्जन चाहे वैभव से युक्त हो अथवा विपत्तियों से घिरा हो वह स्वप्न में भी किसी प्रकार से दूसरों को कष्ट नहीं पहुँचाता है। वह विषय-वासना रूपी महान् शत्रुओं से बार-बार कष्ट पाता हुआ भी स्वयं की रक्षा न करके वह विद्वान् कैसे दूसरों से द्वेष कर सकता है? त्रिताप नाम के महान् शत्रु से पीड़ित सज्जन पुरुष किस प्रकार दूसरे को पीड़ित करने का साहस कर सकता है? जो मन, वचन और कर्म से सर्वदा दूसरों को कष्ट पहुँचाता रहता है, वह नित्य काम, क्रोध आदि के वश में रहने वाला सज्जन नहीं प्रत्युत मूढ़ बुद्धि कहा जाता है ॥६९-७३॥ सज्जनवृन्द! जो लोकहितकारी मनुष्य ईर्ष्या-हीन और मात्सर्य से विरक्त रहता है, वह इस लोक में तथा परलोक में निःशङ्क रहता है, ऐसा ज्ञानी जन कहते हैं। सशङ्क प्राणी सर्वदा दुःखी रहते हैं और निःशङ्क सर्वदा सुखभोग करते हैं, इसलिए तुम लोग

भवतां रक्षकश्चाहं विहरध्वं यथासुखम् । इति दत्वा वरं तेषामतसीकुसुमप्रभः ॥७६॥
पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत । तुष्टात्मानः सुरगणा ययुर्नाकं यथागतम् ॥७७॥
मृकण्डोरपि तुष्टात्मा हरिः प्रत्यक्षतामगात् । अरूपं परमं ब्रह्म स्वप्रकाशम् निरञ्जनम् ॥७८॥
अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम् । दिव्यायुधधरं दृष्ट्वा मृकण्डुर्विस्मितोऽभवत् ॥७९॥
ध्यानादुन्मील्य नयनं अपश्यद्धरिमग्रतः । प्रसन्नवदनं शान्तं धातारं विश्वतेजसम् ॥८०॥
रोमाञ्चितशरीरोऽसावानन्दाश्रुविलोचनः । ननाम दण्डवद्भूमौ देवदेवं सनातनम् ॥८१॥
अश्रुभिः क्षालयंस्तस्य चरणौ हर्षसंभवैः । शिरस्यञ्जलिमाधाय स्तोतुं समुपचक्रमे ॥८२॥

मृकण्डुरुवाच

नमः परेशाय परात्मरूपिणे परात्परस्मात्परतः पराय ।
अपारपाराय परानुकर्त्रे नमः परेभ्यः परपारणाय ॥८३॥
यो नामजात्यादिविकल्पहीनः शब्दादिदोषव्यतिरेकरूपः ।
बहु स्वरूपोऽपि निरञ्जनो यस्तमीशमीड्यं परमं भजामि ॥८४॥
वेदान्तवेद्यं पुरुषं पुराणं हिरण्यगर्भादिजगत्स्वरूपम् ।
अनूपमं भक्तिजनानुकम्पिनं भजामि सर्वेश्वरमादिमीड्यम् ॥८५॥
पश्यन्ति यं वीतसमस्तदोषा ध्यानैकनिष्ठा विगतस्पृहाश्च ।
निवृत्तमोहाः परमं पवित्रं नतोऽस्मि संसारनिवर्त्तकं तम् ॥८६॥
स्मृतार्तिनाशनं विष्णुं शरणागतपालकम् । जगत्सेव्यं जगद्धाम परेशं करुणाकरम् ॥८७॥

शान्त होकर यहाँ से जाओ । वह मुनि कथमपि तुम लोगों को कष्ट नहीं पहुँचायेंगे । मैं आप देवों का रक्षक हूँ । आप सुखपूर्वक विहार कीजिए । यह वर देकर अलसी के पुष्प के समान कान्तिमान् भगवान् देवों के देखते ही देखते अन्तर्हित हो गये । सुरगण भी भगवान् का आश्वासन पाकर प्रसन्न हो गये और जहाँ से आये थे उसी स्वर्ग लोक को लौट गए । भगवान् विष्णु भी मृकण्डु की तपस्या से प्रसन्न होकर प्रकट हुए । उस अरूप, परम ब्रह्म, स्वप्रकाश, निरंजन, पीताम्बर, अलसी पुष्प के समान नील वर्ण, अच्युत और दिव्य शस्त्रधारी भगवान् को देखकर मुनि विस्मित हो गए । ध्यान से विरत होकर जब उन्होंने आँख खोली तो सामने प्रसन्नमुख, शान्त, धाता और अत्यन्त तेजस्वी भगवान् को देखा । देखते ही उनको आनन्द से रोमाञ्च हो गया । नेत्रों से आनन्द की अश्रुधार बह चली । सनातन देवाधिदेव हरि को दण्डवत् प्रणाम किया । आनन्दातिरेक से निकली हुई अश्रुधार से भगवान् के युगल-चरण को धोते हुए, शिर पर अञ्जलि बाँधकर स्तुति करने लगे ॥७४-८२॥

मृकण्डु बोले—परेश, परात्मरूपी, पर-से-पर और उस परात्पर से पर को नमस्कार है, अपार संसार से परे रहने वाले, पर का अनुकरण करने वाले या दूसरों पर अनुग्रह करने वाले तथा दूसरों को संसार-सागर के उस पार पहुँचा देने वाले को नमस्कार है । जो नाम (संज्ञा) जाति आदि विविधताओं (उपाधियों) से रहित, शब्द आदि दोषों से शून्य रूप वाले (शब्दाबोध्य) तथा बहुस्वरूप होते हुए भी निरंजन है, उस पूज्य ईश की स्तुति करता हूँ । वेदान्त वेद्य, पुराण पुरुष, हिरण्यगर्भ, जगत् के आदि स्वरूप (कारण), अनुपम, भक्तों पर कृपा करने वाले पूज्य सर्वेश्वर को नमस्कार है ॥८३-८५॥ जिस परम पवित्र तथा संसार की माया को दूर करने वाले को समस्त दोषों से शून्य, ध्यानपरायण और निःस्पृह साधक देखते हैं, उस

एवं स्तुतः स भगवान्विष्णुस्तेन महर्षिणा । अवाप परमां तुष्टिं शङ्खचक्रगदाधरः ।।८८।।
अथालिङ्ग्य मुनिं देवश्चतुर्भिर्दीर्घबाहुभिः । उवाच परमं प्रीत्या वरं वरय सुव्रत ।।८९।।
प्रीतोऽस्मि तपसा तेन स्तोत्रेण च तवानघ । मनसा यदभिप्रेतं वरं वरय सुव्रत ।।९०।।

मृकण्डुरुवाच

देवदेव जगन्नाथ कृतार्थोऽस्मि न संशयः । त्वद्दर्शनमपुण्यानां दुर्लभं च यतः स्मृतम् ।।९१।।
ब्रह्माद्या यं न पश्यन्ति योगिनः संशितव्रताः । धर्मिष्ठा दीक्षिताश्चापि वीतरागा विमत्सराः ।।९२।।
तं पश्यामि परं धाम किमतोऽन्यं वरं वृणे । एतेनैव कृतार्थोऽस्मि जनार्दन जगद्गुरो ।।९३।।
यन्नामस्मृतिमात्रेण महापातकिनोऽपि ये । तत्पदं परमं यान्ति ते दृष्ट्वा किमुताच्युत ।।९४।।

श्रीभगवानुवाच

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मप्रीतोऽस्मि तव पण्डित । मद्दर्शनं हि विफलं न कदाचिद्भविष्यति ।।९५।।
विष्णुर्भक्तकुटुम्बीति वदन्ति विबुधाः सदा । तदेव पालयिष्यामि मज्जनो नानृतं वदेत् ।।९६।।
तस्मात्त्वत्तपसा तुष्टो यास्यामि तव पुत्रताम् । समस्तगुणसंयुक्तो दीर्घजीवी स्वरूपवान् ।।९७।।
मम जन्म कुले यस्य तत्कुलं मोक्षगामि वै । मयि तुष्टे मुनिश्रेष्ठ किमसाध्यं जगत्त्रये ।।९८।।
इत्युक्त्वा देवदेवेशो मुनेस्तस्य समीक्षतः । अंतर्दधे मृकण्डुश्च तपसः समवर्तत ।।९९।।

इति श्री बृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे भक्तिवर्णनप्रसङ्गेन मार्कण्डेयचरितारम्भो नाम चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

जगत्सेव्य, जगत् के आश्रय दाता, परेश, करुणासागर, भक्तजनों की पीड़ा हरने वाले और शरणागत-रक्षक विष्णु की मैं स्तुति करता हूँ ।

शंख, चक्र और गदा धारण करने वाले भगवान् विष्णु महर्षि की ऐसी स्तुति सुनकर परम प्रसन्न हो गए । अपनी चारों भुजाओं से मुनि को हृदय से लगाकर भगवान् प्रसन्नतापूर्वक बोले—'सुव्रत ! वर माँगो । अनघ ! तुम्हारी इस तपस्या और मोहिनी स्तुति से प्रसन्न हूँ । सुव्रत ! तुम्हारी जो कुछ मनःकामना हो माँगो ।।८८-९०।।

मृकण्डु बोले—देवदेव ! जगन्नाथ ! मैं कृतार्थ हो गया, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं; क्योंकि आपका दर्शन पुण्यहीनों के लिये दुर्लभ कहा गया है । जिसको ब्रह्मा आदि देव, व्रतनिष्ठ, योगी, धर्मप्रेमी, दीक्षित (यज्ञ-दीक्षित) वीतराग और विमत्सर नहीं देख पाते हैं, उस परम पुरुष को आज नेत्रों के सामने पा रहा हूँ । इससे बढ़कर और क्या वर मागूँ ? जगद्गुरो ! जनार्दन ! इतने से ही मैं कृतार्थ हूँ । अच्युत ! जिसके नाम स्मरण मात्र से महापापी भी उस परम पद को पा जाते हैं, उसको देखकर भी कौन सी अतिरिक्त वस्तु माँगी जाय ।।९१-९४।।

श्री भगवान् बोले—ब्रह्मन् ! तुमने उचित कहा । पंडित ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ; मेरा दर्शन कभी विफल नहीं होता है । विष्णु भक्तों के कुटुम्बी हैं, ऐसा देवता या पंडित जन कहा करते हैं । मैं भी उसी कथन को सत्य प्रमाणित करूँगा; क्योंकि मेरे प्रियजन कभी भी असत्य नहीं बोलते । अतएव तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न मैं तुम्हारा वह पुत्र बनूँगा, जो समस्त गुणों से युक्त, रूपवान् और दीर्घजीवी होगा । मेरा जन्म जिस कुल में होगा वह कुल तो अनायास मोक्ष प्राप्त करेगा । मुनिश्रेष्ठ ! मेरे प्रसन्न हो जाने पर इस त्रिलोकी में कौन-सा पदार्थ अप्राप्य और कौन-सा कार्य असाध्य है ? यह कहकर देवदेवेश हरि मृकण्डु मुनि के सक्षम ही अन्तर्धान हो गए और मुनि भी तपस्या में लग गए ।।९५-९९।।

श्रीनारदीयपुराण के पूर्वभाग-प्रथमपाद-भक्तिवर्णनप्रसंग में मार्कण्डेयचरितारम्भ नामक चौथा अध्याय समाप्त ।।४।।

पञ्चमोऽध्यायः

नारद उवाच

ब्रह्मन्कथं स भगवान्मृकण्डोः पुत्रतां गतः । किं चकार च तद्ब्रूहि हरिर्भार्गववंशजः ॥१॥
श्रूयते च पुराणेषु मार्कण्डेयो महामुनिः । अपश्यद्वैष्णवीं मायां चिरंजीव्यस्य संप्लवे ॥२॥

सनक उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि कथामेतां सनातनीम् । विष्णुभक्तिसमायुक्तां मार्कण्डेयमुनिं प्रति ॥३॥
तपसोऽन्ते मृकण्डुस्तु भार्यामुद्वाह्य सत्तमः । गार्हस्थ्यमकरोद्धृष्टः शान्तो दान्तः कृतार्थकः ॥४॥
तस्य भार्या शुचिर्दक्षा नित्यं पतिपरायणा । मनसा वचसा चापि देहेन च पतिव्रता ॥५॥
काले दधार सा गर्भं हरितेजोंऽशसंभवम् । सुषुवे दशमासान्ते पुत्रं तेजस्विनं परम् ॥६॥
स ऋषिः परमप्रीतो दृष्ट्वा पुत्रं सुलक्षणम् । जातकं कारयामास मङ्गलं विधिपूर्वकम् ॥७॥
स बालो ववृधे तत्र शुक्लपक्ष इवोडुपः । ततस्तु पञ्चमे वर्षे उपनीय मुदान्वितः ॥८॥
शिक्षां चकार विप्रेन्द्र वैदिकीं धर्मसंहिताम् । नमस्कार्या द्विजाः पुत्र सदा दृष्ट्वा विधानतः ॥९॥
त्रिकालं सूर्यमभ्यर्च्य सलिलाञ्जलिदानतः । वैदिकं कर्म कर्तव्यं वेदाध्ययनपूर्वकम् ॥१०॥

अध्याय ५

मार्कण्डेय मुनि की कथा

नारद बोले—ब्रह्मन् ! क्यों भगवान् हरि मृकण्डु के पुत्र हुए ? भार्गव-वंश में पुत्र रूप से जन्म लेकर क्या किया ? इस बात को कहिए । पुराणों में ऐसा सुना जाता है कि मुनि मार्कण्डेय ने प्रलय काल में चिरजीवी विष्णु की माया का प्रत्यक्ष दर्शन किया था ॥१-३॥

सनक बोले—नारद ! मार्कण्डेय मुनि से सम्बन्ध रखने वाली, विष्णुभक्ति से ओत-प्रोत उस सनातन कथा को अब कह रहा हूँ सुनो । उस घोर तपस्या के बाद प्रसन्न, शान्त और उदार मृकण्डु मुनि ने विवाह किया और कृतार्थ होकर भार्या के साथ गृहस्थ जीवन बिताने लगे । उनकी भार्या पवित्र, कुशल और नित्य पति सेवा में लगी रहती थी, शरीर, मन और वचन से भी वह पतिव्रता थी । कुछ समय बाद उसने विष्णु कलांश से युक्त गर्भ धारण किया और दसवें महीने के अन्त में परम तेजस्वी पुत्र को उत्पन्न किया । ऋषि उस सर्व-लक्षण-सम्पन्न पुत्र को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और विधि पूर्वक मांगलिक जातक संस्कार किया ॥४-७॥ वह बालक शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भाँति दिनानुदिन बढ़ने लगा । इसके बाद पाँचवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार कर प्रसन्न चित्त से उस बालक को वैदिक धर्म संहिता की शिक्षा देने लगे कि पुत्र ! द्विज को देखकर सर्वदा विधिपूर्वक नमस्कार करना चाहिये । तीनों काल सूर्य को सूर्यार्घ्य देकर वेदाध्ययन पूर्वक वैदिक कर्म करना चाहिये । ब्रह्मचर्य और तपस्या

ब्रह्मचर्येण तपसा पूजनीयो हरिः सदा । निषिद्धं वर्जनीयं स्याद्दुष्टसंभाषणादिकम् ॥११॥
साधुभिः सह वस्तव्यं विष्णुभक्तिपरैः सदा । न द्वेषः कस्यचित्कार्यः सर्वेषां हितमाचरेत् ॥१२॥
इज्याध्ययनदानानि सदा कार्याणि ते सुत । एवं पित्रा समादिष्टो मार्कण्डेयो मुनीश्वरः ॥१३॥
चचार धर्मं सततं सदा संचिन्तयन्हरिम् । मार्कण्डेयो महाभागो दयावान्धर्मवत्सलः ॥१४॥
आत्मवान्सत्यसन्धश्च मार्तण्डसदृशप्रभः । वशी शान्तो महाज्ञानी सर्वतत्त्वार्थकोविदः ॥१५॥
तपश्चचार परममच्युतप्रीतिकारणम् । आराधितो जगन्नाथो मार्कण्डेयेन धीमता ॥१६॥
पुराणसंहितां कर्तुं दत्तवान्वरमच्युतः । मार्कण्डेयो मुनिस्तस्मान्नारायण इति स्मृतः ॥१७॥
चिरजीवी महाभक्तो देवदेवस्य चक्रिणः । जगत्येकार्णवीभूते स्वप्रभावं जनार्दनः ॥१८॥
तस्य दर्शयितुं विप्रास्तं न संहृतवान्हरिः । मृकण्डुतनयो धीमान्विष्णुभक्तिसमन्वितः ॥१९॥
तस्मिञ्जले महाघोरे स्थितवाञ्जीर्णपत्रवत् । मार्कण्डेयः स्थितस्तावद्यावच्छेते हरिः स्वयम् ॥२०॥
तस्य प्रमाणं वक्ष्यामि कालस्य वदतः शृणु । दशभिः पञ्चभिश्चैव निमिषैः परिकीर्तिता ॥२१॥
काष्ठातास्त्रिंशतो ज्ञेया कला पद्मजनन्दन । तास्त्रिंशतः क्षणो ज्ञेयस्तैः षड्भिर्घटिका स्मृता ॥२२॥
तद्द्वयेन मुहूर्तं स्याद्दिनं तास्त्रिंशता भवेत् । त्रिंशद्दिनैर्भवेन्मासः पक्षद्वितयसंयुतः ॥२३॥
ऋतुर्मासद्वयेन स्यात्तत्त्रयेणायनं स्मृतम् । तद्द्वयेन भवेदब्दः स देवानां दिनं भवेत् ॥२४॥
उत्तरं दिवसं प्राहू रात्रिर्वै दक्षिणायनम् । मानुषेणैव मासेन पितॄणां दिनमुच्यते ॥२५॥
तस्मात्सूर्येन्दुसंयोगे ज्ञातव्यं कल्पमुत्तमम् । दिव्यैर्वर्षसहस्रैर्द्वादशभिर्दैवतं युगम् ॥२६॥
दैवे युगसहस्रे द्वे ब्राह्मः कल्पौ तु तौ नृणाम् । एकसप्ततिसंख्यातैर्दिव्यैर्मन्वन्तरं युगैः ॥०७॥

से हरि की सर्वदा पूजा करनी चाहिए । कटुभाषण आदि निषिद्ध कर्म सर्वथा वर्ज्य हैं । विष्णुभक्तिपरायण साधुओं की संगति करनी चाहिए । किसी से द्वेष नहीं करना चाहिए; प्रत्युत सर्वहित साधन में लीन रहना चाहिए ।।८-१२।। पुत्र ! यज्ञ, अध्ययन और दान आदि शुभ कर्म सर्वदा करना चाहिए । पिता से इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर मुनीश्वर मार्कण्डेय सर्वदा हरि का ध्यान करते हुए धर्माचरण करते थे । महाभाग्यशाली, दयावान्, धर्मवत्सल, आत्मज्ञ, सत्यव्रत, सूर्य के समान तेजस्वी, जितेन्द्रिय, शान्त, महाज्ञानी और सब तत्त्वों को जानने वाले मार्कण्डेय भगवान् अच्युत को प्रसन्न करने की इच्छा से तपस्या करने लगे । धीमान् मार्कण्डेय की आराधना से प्रसन्न होकर अच्युत ने मुनि को पुराण संहिता रचने का वर दिया । इस कारण मुनि मार्कण्डेय नारायण कहे गए और वे देवाधिदेव विष्णु के परम भक्त चिरंजीवी हुए । विप्रो ! जनार्दन हरि ने संसार के एकार्णवाकार हो जाने पर अपना प्रभाव दिखलाने के लिए ही उनका संहार नहीं किया । उस महाभयंकर जल में मृकण्डु-पुत्र विष्णुभक्त, धीमान् मार्कण्डेय जर्जर पत्र के समान वर्तमान रहे । जब तक स्वयं भगवान् हरि सोये रहे तब तक तक मुनि वहाँ उपस्थित थे । उस काल का प्रमाण मैं कह रहा हूँ, उसको सुनो—पंद्रह निमेषों की एक कला कही जाती है ।।१३-२१।। हे ब्रह्मपुत्र ! तीस काष्ठा की एक कला और तीस कला का एक क्षण होता है । छह क्षणों की एक घटिका और दो घटिका (घड़ी) का एक मुहूर्त होता है । तीस मुहूर्त का एक दिन और तीस दिन का एक मास होता है जो दो पक्षों कृष्ण और शुक्ल में विभक्त रहता है । दो महीनों का एक ऋतु और तीन ऋतु का एक अयन होता है । दो अयन का एक वर्ष जो देवताओं का एक दिन होता है । उत्तरायण तो देवों का दिन और दक्षिणायन देवों की रात्रि माना जाता है । मानव मास ही पितरों का दिन कहा जाता है । इसलिए सूर्य और चन्द्र के संयोग काल को उत्तम कल्प समझा जाता है । देवों के बारह हजार वर्षों का दैवत युग होता है । चार हजार दैव युग काल में मनुष्यों के दो कल्प होते हैं और इकहत्तर चतुर्युगी का एक मन्वन्तर होता है

चतुर्दशभिरेतैश्च ब्रह्मणो दिवसं मुने । यावत्प्रमाणं दिवसं तावद्रात्रिः प्रकीर्तिता ॥२८॥
नाशमायाति विप्रेन्द्र तस्मिन्काले जगत्त्रयम् । मानुषेण सहस्रेण यत्प्रमाणं भवेच्छृणु ॥२९॥
चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिवसं मुने । तद्वन्मासो वत्सरश्च ज्ञेयस्तस्यापि वेधसः ॥३०॥
परार्द्धद्वयकालस्तु तन्मतेन भवेद्द्विजाः । विष्णोरहस्तु विज्ञेयं तावद्रात्रिः प्रकीर्त्तिता ॥३१॥
मृकण्डुतनयस्तावत्स्थितः संजीर्णपर्णवत् । तस्मिन्घोरे जलमये विष्णुशक्त्युपबृंहितः ॥
आत्मानं परमं ध्यायन्स्थितवान्हरिसन्निधौ ॥३२॥
अथ काले समायाते योगनिद्राविमोचितः । सृष्टवान्ब्रह्मरूपेण जगदेतच्चराचरम् ॥३३॥
संहृतं तु जलं वीक्ष्य सृष्टं विश्वं मृकण्डुजः । विस्मितः परमप्रीतो ववन्दे चरणौ हरेः ॥३४॥
शिरस्यञ्जलिमाधाय मार्कण्डेयो महामुनिः । तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः सदानन्दैकविग्रहम् ॥३५॥

मार्कण्डेय उवाच

सहस्रशिरसं देवं नारायणमनामयम् । वासुदेवमनाधारं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥३६॥
अमेयमजरं नित्यं सदानन्दैकविग्रहम् । अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रणतोऽस्मि दनार्दनम् ॥३७॥
अक्षरं परमं नित्यं विश्वाक्षं विश्वसम्भवम् । सर्वतत्त्वमयं शान्तं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥३८॥
पुराणं पुरुषं सिद्धं सर्वज्ञानैकभाजनम् । परात्परतरं रूपं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥३९॥
परं ज्योतिः परं धाम पवित्रं परमं पदम् । सर्वैकरूपं परमं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥४०॥
तं सदानन्दचिन्मात्रं पराणां परमं पदम् । सर्वं सनातनं श्रेष्ठं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥४१॥

॥२२-२७॥ चौदह मन्वन्तरों का ब्रह्मा का एक दिन होता है। जितने समय परिमाण का दिन उतने की रात्रि भी होती है। विप्रेन्द्र ! रात्रिकाल में त्रिलोकी का नाश हो जाता है। मानव सहस्र का जो प्रमाण होता है उसको सुनो—

मुने ! सहस्र चतुर्युग का ब्रह्मा का एक दिन होता है। उसी प्रकार उस ब्रह्म के मास और वत्सर (वर्ष) का प्रमाण समझना चाहिए ॥२८-३०॥ द्विजो ! इस मत से दो परार्द्ध काल होता है। द्विपरार्द्ध काल विष्णु का एक दिन और उतने ही काल की उनकी रात्रि भी होती है। मृकण्डु-पुत्र विष्णु के रात्रि काल पर्यन्‍त वहाँ जीर्ण पत्र के समान स्थित रहे। उस घोर एकार्णव में विष्णु शक्तिमान् बनकर परम आत्मतत्त्व का ध्यान करते हुए हरि के समीप रहे। सृष्टि आ जाने पर भगवान् की योगनिद्रा भङ्ग हुई और ब्रह्मरूप से उन्होंने इस चराचर जगत् की सृष्टि की। मृकण्डुतनय जल को नष्ट और नूतन विश्व की सृष्टि देखकर विस्मित हो गए, फिर परम प्रसन्न होकर हरिचरणों की वन्दना की। महामुनि मार्कण्डेय शिर पर दोनों हाथों से अञ्जलि बाँधकर सदा आनन्द स्वरूप हरि की अपनी अभीष्ट वाणी से स्तुति करने लगे ॥३१-३५॥

मार्कण्डेय बोले—सहस्र शिर वाले, निर्विकार, नारायण, अनाधार जनार्दनदेव को प्रणाम करता हूँ। अमेय, अजर, नित्य, सदानन्दमय शरीर वाले, अचिन्त्य और तर्कों से न पाने योग्य जनार्दन को नमस्कार करता हूँ। अक्षर, परम, नित्य, विश्वनेत्र, विश्व के कारण, सर्वतत्त्वमय और शान्त जनार्दन को नित्य प्रणाम करता हूँ। पुराण, पुरुष, सिद्ध, सब प्रकार के ज्ञान के एकमात्र आधार, पर से भी श्रेष्ठ रूप वाले जनार्दन को नमस्कार करता हूँ ॥३६-३९॥ परज्योति, परमधाम, पवित्र, परम पद, सर्वैकरूप (विश्वरूप) और परम जनार्दन को नमस्कार करता हूँ। उस सत्, चित् और आनन्द स्वरूप, परों के भी परम पद, सर्व, श्रेष्ठ, सनातन और जनार्दन

सगुणं निर्गुणं शान्तं मायाऽतीतं सुमायिनम् । अरूपं बहुरूपं तं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥४२॥
यत्र तद्भगवान्विश्वं सृजत्यवति हन्ति च । तमादिदेवमीशानं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥४३॥
परेश परमानन्द शरणागतवत्सल । त्राहि मां करुणासिन्धो मनोतीत नमोऽस्तु ते ॥४४॥
एवं स्तुवन्तं विप्रेन्द्रं मार्कण्डेयं जगद्गुरुम् । उवाच परया प्रीत्या शङ्खचक्रगदाधरः ॥४५॥

श्रीभगवानुवाच

लोके भागवता ये च भगवद्भक्तमानसाः । तेषां तुष्टो न सन्देहो रक्षाम्येतांश्च सर्वदा ॥४६॥
अहमेव द्विजश्रेष्ठ नित्यं प्रच्छन्नविग्रहः । भगवद्भक्तरूपेण लोकान्रक्षामि सर्वदा ॥४७॥

मार्कण्डेय उवाच

किंलक्षणा भागवता जायन्ते केन कर्म्मणा । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कौतूहलपरो यतः ॥४८॥

श्रीभगवानुवाच

लक्षणं भागवतानां शृणुष्व मुनिसत्तम । वक्तुं तेषां प्रभावं हि शक्यते नाब्दकोटिभिः ॥४९॥
ये हिताः सर्वजन्तूनां गतासूया अमत्सराः । वशिनो निस्पृहाः शान्तास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥५०॥
कर्म्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते । अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवताः स्मृताः ॥५१॥
सत्कथाश्रवणे येषां वर्तते सात्त्विकी मतिः । तद्भक्तविष्णुभक्ताश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥५२॥
मातापित्रोश्च शुश्रूषां कुर्वन्ति ये नरोत्तमाः । गङ्गाविश्वेश्वरधिया ते वै भागवतोत्तमाः ॥५३॥
ये तु देवार्चनरता ये तु तत्साधकाः स्मृताः । पूजां दृष्ट्वानुमोदन्ते ते वै भागवतोत्तमाः ॥५४॥
व्रतिनां च यतीनां च परिचर्यापराश्च ये । वियुक्तपरनिन्दाश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥५५॥

नमस्कार करता हूँ। सगुण, निर्गुण, शान्त, मायातीत, अतिमायापटु, अरूप और ब्रह्मरूप उस जनार्दन को प्रणाम करता हूँ। वे भगवान् जिन तीन रूपों में अपने को विभक्त कर विश्व की सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं, उन आदि ईशान देव को नमस्कार करता हूँ। परेश ! परमानन्द ! शरणागतवत्सल ! करुणासिन्धु ! मेरी रक्षा करो। मन से परे ! आपको नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार स्तुतिपरायण, जगद्गुरु, विप्रेन्द्र, मार्कण्डेय से शङ्ख, चक्र और गदाधारी विष्णु प्रसन्नतापूर्वक बोले—

भगवान् बोले—इस लोक में जो भगवान् के भक्त तथा भगवद्भक्तों के प्रेमी हैं, उनसे प्रसन्न रहता हूँ और सर्वदा उनकी रक्षा करता हूँ, इसमें सन्देह नहीं। द्विजश्रेष्ठ ! मैं ही नित्य प्रच्छन्न शरीर होकर भगवद्भक्त के रूप से लोगों की सर्वदा रक्षा करता हूँ॥४०-४७॥

मार्कण्डेय बोले—भागवतों के क्या लक्षण हैं ? किन शुभ कर्मों से वे भक्त उत्पन्न होते हैं ? इन बातों को सुनने की इच्छा हो रही है, क्योंकि मेरे हृदय में महान् कौतूहल है ॥४८॥

श्रीभगवान् बोले—मुनिवर्य ! भागवतजनों के लक्षण सुनो। उनके प्रभाव का वर्णन वस्तुतः कोटि वर्षों में भी सम्भव नहीं है। जो सब प्राणियों के हित में लगे रहते, जो ईर्ष्या-मात्सर्य-रहित, जितेन्द्रिय, निःस्पृह और शान्त होते हैं, वे ही परम भागवत हैं जो मन, वचन और कर्म से दूसरे को पीड़ा नहीं पहुँचाते, जो परिग्रह शील (संचयशील) नहीं हैं वे ही भागवत कहे गये हैं। जिसकी सात्त्विक भावना सर्वदा सत्कथाओं के सुनने में लगी रहती है, जो विष्णु-भक्त और भक्तों के प्रेमी हैं वे निश्चय ही परम भागवत हैं ॥४९-५२॥ जो नरपुंगव माता पिता की शुश्रूषा में उनको गंगा और विश्वेश्वर समझकर तल्लीन रहते हैं वे ही परम भागवत हैं। जो देवार्चन में सदा रत रहते हैं, जो उनकी पूजा के समर्थक हैं और भगवदर्चा को देखकर सदा उसका समर्थन और सराहना करते हैं वे ही परम भागवत हैं। जो व्रतपरायण और यतिजनों की सेवा में लगे रहते हैं और पर निन्दा से सर्वथा

सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमाः । ये गुणग्राहिणो लोके ते वै भागवताः स्मृताः ॥५६॥
आत्मवत्सर्वभूतानि ये पश्यंति नरोत्तमाः । तुल्याः शत्रुषु मित्रेषु ते वै भागवतोत्तमाः ॥५७॥
धर्म्मशास्त्रप्रवक्तारः सत्यवाक्यरताश्च ये । सतां शुश्रूषवो ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥५८॥
व्याकुर्वते पुराणानि तानि शृण्वन्ति ये तथा । तद्वक्तरि च भक्ता ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥५९॥
ये गोब्राह्मणशुश्रूषां कुर्वते सततं नराः । तीर्थयात्रापरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥६०॥
अन्येषामुदयं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः । हरिनामपरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥६१॥
आरामारोपणरतास्तडागपरिरक्षकाः । कासारकूपकर्त्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥६२॥
ये वै तडागकर्त्तारो देवसद्मानि कुर्वते । गायत्रीनिरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥६३॥
येऽभिनन्दन्ति नामानि हरेः श्रुत्वाऽतिहर्षिताः । रोमाञ्चितशरीराश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥६४॥
तुलसीकाननं दृष्ट्वा ये नमस्कुर्वते नराः । तत्काष्ठाङ्कितकर्णा ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥६५॥
तुलसीगन्धमाघ्राय सन्तोषं कुर्वते तु ये । तन्मूलमृत्तिकां ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥६६॥
आश्रमाचारनिरतास्तथैवातिथिपूजकाः । ये च वेदार्थवक्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥६७॥
शिवप्रियाः शिवासक्ताः शिवपादार्च्चने रताः । त्रिपुण्ड्रधारिणो ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥६८॥
व्याहरन्ति च नामानि हरेः शम्भोर्महात्मनः । रुद्राक्षालङ्कृता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥६९॥
ये यजन्ति महादेवं क्रतुभिर्बहुदक्षिणैः । हरिं वा परया भक्त्या ते वै भागवतोत्तमाः ॥७०॥
विदितानि च शास्त्राणि परार्थं प्रवदन्ति ये । सर्वत्र गुणभाजो ये ते वै भागवताः स्मृताः ॥७१॥

दूर रहते हैं वे उत्तम भागवत हैं। जो नरोत्तम सबके कल्याण के शब्द कहते हैं और जो गुणग्राही हैं वे ही भागवतोत्तम हैं। जो सब भूतों (जीवों) में आत्म-भावना रखते हैं, जो शत्रु और मित्र के प्रति समान भाव रखते हैं वे निश्चय ही भागवतोत्तम हैं। जो धर्मशास्त्र के वक्ता, सत्य-भाषण में रत और जो सज्जनों के सेवक हैं वे ही परम भागवत हैं ॥५३-५८॥ जो पुराणों की व्याख्या करते हैं, जो श्रद्धापूर्वक उस व्याख्या को सुनते हैं और जो पुराणोपदेशक में श्रद्धा रखते हैं वे परमभागवत हैं। जो नर गो-ब्राह्मण की सर्वदा शुश्रूषा करते और तीर्थ-यात्रा के प्रेमी होते हैं वे परम भागवत हैं। जो मानव दूसरे के अभ्युदय को देखकर उसका अभिनन्दन करते हैं और हरिनामोच्चारण में तत्पर रहते हैं वे भागवतों में उत्तम हैं। जो उद्यान और वृक्षों को लगाते हैं, जो तड़ागों को लगाते हैं, जो तड़ागों को रक्षा पर ध्यान देते हैं, सरोवर, झील और कुयें को खुदवाते हैं वे परम भागवत हैं। जौ तालाव और देवमन्दिरों को बनवाते और गायत्री जप में तत्पर रहते हैं वे परम भागवत हैं ॥५९-६३॥ जो हरिनाम ध्वनि को सुनकर अति प्रसन्न होते और उस कीर्तन का अभिनन्दन करते एवं आनन्द से पुलकित हो उठते हैं वे परम भागवत हैं। जो मनुष्य तुलसी के उपवन को देखकर नमस्कार करते हैं और तुलसी की माला या काठ को कान में पहनते हैं वे परम भागवत हैं। जो तुलसी के सुगन्ध को सूंघकर प्रसन्नता एवं संतोष व्यक्त करते हैं और तुलसी की जड़ की मिट्टी को शिर चढ़ाते हैं वे भागवतोत्तम हैं जो आश्रमानुकूल आचार में रत रहते हैं, जो अतिथि पूजक और वेदार्थ के व्याख्याता हैं वे भागवतोत्तम हैं। जो शिव के प्रिय, शिव में निष्ठा रखने वाले, शिवचरण चर्चा में निरत और त्रिपुण्ड्रधारी हैं वे परम भागवत हैं जो हरि और महात्मा शम्भु के नाम का उच्चारण करते हैं और रुद्राक्ष माला को सर्वदा धारण करते हैं वे परम भागवत हैं ॥६४-६९॥ जो प्रचुर दक्षिणा वाले यज्ञों से महादेव की पूजा करते हैं अथवा परा भक्ति के द्वारा विष्णु की आराधना करते हैं वे परम भागवत हैं। जो शस्त्रों का स्वयं गम्भीरज्ञान रखते हुए दूसरों को उसका उपदेश देते हैं और जो

शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि । समबुद्ध्या प्रवर्त्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः ॥७२॥
शिवाग्निकार्यनिरताः पञ्चाक्षरजपे रताः । शिवध्यानरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥७३॥
पानीयदाननिरता येऽन्नदानरतास्तथा । एकादशी व्रतरता ते वै भागवतोत्तमाः ॥७४॥
गोदाननिरता ये च कन्यादानरताश्च ये । मदर्थं कर्म्मकर्त्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥७५॥
एते भागवता विप्र केचिदत्र प्रकीर्त्तिताः । मयाऽपि गदितुं शक्या नाब्दकोटिशतैरपि ॥७६॥
तस्मात्त्वमपि विप्रेन्द्र सुशीलो भव सर्वदा । सर्वभूताश्रयो दान्तो मैत्रो धर्म्मपरायणः ॥७७॥
पुनर्युगान्तपर्य्यन्तं धर्म्मं सर्वं समाचरन् । मन्मूर्त्तिध्याननिरतः परं निर्वाणमाप्स्यसि ॥७८॥
एवं मृकंडुपुत्रस्य स्वभक्तस्य कृपानिधिः । दत्त्वा वरं स देवेशस्तत्रैवांतरधीयत ॥७९॥
मार्कण्डेयो म्हाभागो हरिभक्तिरतः सदा । चचार परमं धर्ममीजे च विधिवन्मखैः ॥८०॥
शालग्रामे महाक्षेत्रे तताप परमं तपः । ध्यानक्षपितकर्मा तु परं निर्वाणमाप्तवान् ॥८१॥
तस्माज्जन्तुषु सर्वेषु हितकृद्धरिपूजकः । ईप्सितं मनसा यद्यत्तत्तदाप्नोत्यसंशयम् ॥८२॥

सनक उवाच

एतत्सर्वं निगदितं त्वया पृष्टं द्विजोत्तम । भगवद्भक्तिमाहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥८३॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे मार्कण्डेयवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

सर्वत्र गुणग्राहक एवं स्वयं गुण के पात्र बनते हैं वे परम भागवत हैं। जो परमेश शिव, और परात्मा विष्णु में सम बुद्धि से आस्था रखते हैं वे निश्चय ही परम भागवत हैं। जो शिव और अग्नि कार्य (यज्ञ) में रत रहते हैं, सर्वदा पंचाक्षर जप में लगे रहते हैं और शिव के ध्यान में निरत रहते हैं वे परम भागवत हैं। जो दूसरों को जल पिलाने में तत्पर रहते, दूसरों को अन्न दान करते हैं और एकादशी का व्रत सर्वदा किया करते हैं वे परम भागवत हैं। जो गोदान करते, कन्यादान करते और भगवदर्पण बुद्धि से प्रत्येक कार्य करते हैं वे परम भागवत हैं ॥७०-७५॥ यहाँ कुछ भागवत पुरुषों का लक्षण कहा गया है; परन्तु वे अनन्त हैं। उनके लक्षणों का कीर्तन शत कोटि वर्षों में भी मैं नहीं कर सकता। इसलिए विप्रेन्द्र! तुम भी सर्वदा सुशील रहो, सब प्राणियों के हितचिन्तक, उदार, मित्र और धर्मपरायण रहो। पुनः युगान्त तक सब धर्मों का पालन करते हुए मेरे रूप के ध्यान में निरत रहो। ऐसा करने से तुम परम मोक्ष पद प्राप्त करोगे ॥७६-७८॥

इस प्रकार अपने परम प्रिय भक्त मृकण्डु-पुत्र को कृपानिधि भगवान् हरि वर प्रदान कर वहीं अन्तर्हित हो गए। महाभाग्यशाली मार्कण्डेय ने सदा हरि भक्ति में निरत रहकर परम धर्म का अनुष्ठान किया और विधि-पूर्वक यज्ञों से भगवान् का भजन किया। फिर उन्होंने महापुण्य क्षेत्र शालग्राम में परम तपस्या करके ध्यान योग से अपने कर्मों का नाश कर अन्त में मोक्ष पद प्राप्त किया। इसलिए अखिल प्राणियों का कल्याण करने वाला तथा हरि की पूजा करने वाला व्यक्ति मन से जो कुछ चाहता है, उसे अवश्य प्राप्त करता है, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं ॥७९-८२॥

सनक बोले—द्विजोत्तम! आपने जो कुछ पूछा उसके विषय में यह सब बातें कह दीं। अब कौन सा दूसरा माहात्म्य सुनना चाहते हैं, वह पूछिए ॥८३॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वभाग के प्रथमपाद में मार्कण्डेयवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥५॥

●

षष्ठोऽध्यायः

सूत उवाच

भगवद्भक्तिमाहात्म्यं श्रुत्वा प्रीतस्तु नारदः । पुनः पप्रच्छ सनकं ज्ञानविज्ञानपारगम् ॥१॥

नारद उवाच

क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं तीर्थानां च तथोत्तमम् । परया दयया तथ्यं ब्रूहि शास्त्रार्थपारग ॥२॥

सनक उवाच

शृणु ब्रह्मन्परं गुह्यं सर्वसंपत्करं परम् । दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं धर्म्यं पापहरं शुभम् ॥३॥
श्रोतव्यं मुनिभिर्नित्यं दुष्टग्रहनिवारणम् । सर्वरोगप्रशमनमायुर्वर्द्धनकारणम् ॥४॥
क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं तीर्थानां च तथोत्तमम् । गङ्गायमुनयोर्योगं वदन्ति परमर्षयः ॥५॥
सितासितोदकं तीर्थं ब्रह्माद्याः सर्वदेवताः । मुनयो मनवश्चैव सेवन्ते पुण्यकाङ्क्षिणः ॥६॥
गङ्गा पुण्यनदी ज्ञेया यतो विष्णुपदोद्भवा । रविजा यमुना ब्रह्मंस्तयोर्योगः शुभावहः ॥७॥
स्मृतार्तिनाशिनी गङ्गा नदीनां प्रवरा मुने । सर्वपापक्षयकरी सर्वोपद्रवनाशिनी ॥८॥
यानि क्षेत्राणि पुण्यानि समुद्रान्ते महीतले । तेषां पुण्यतमं ज्ञेयं प्रयागाख्यं महामुने ॥९॥

अध्याय ६

गंगा-महात्म्य-वर्णन

सूत बोले—भगवद्भक्ति की महिमा सुनकर नारद परमानन्दित हुए और पुनः ज्ञान-विज्ञान के पारगामी विद्वान् सनक से पूछने लगे ॥१॥

नारद बोले—हे शास्त्रों के पारंगत विद्वान् सनक ! जो क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र और तीर्थों में उत्तम तीर्थ है, उसको तथ्यतः कहने की परम कृपा करें ॥२॥

सनक बोले—ब्रह्मन् ! उस परम गुह्य, सर्वसिद्धिदाता, परमतत्त्व, दुःस्वप्ननाशक, पवित्र, धर्मसम्मत, शुभ और पापनाशक आख्यान को सुनो । ऐसे दुष्टग्रहों के प्रभाव से रक्षा करने वाले, सर्वरोग नाशक तथा आयु बढ़ाने वाले पुनीत आख्यान का श्रवण मुनियों को नित्य प्रति करना चाहिए । क्षेत्रों में परमोत्तम क्षेत्र तथा तीर्थों में परमोत्तम तीर्थ गंगा यमुना का संगम ही है, ऐसा परमर्षिगण स्वीकार करते हैं । उस स्वच्छ और नील जल से सुशोभित तीर्थ की सेवा पुण्य की आकांक्षा करने वाले सब ब्रह्मा आदि देवता, मनुष्य और मुनिवृन्द करते हैं ॥३-६॥ गंगा शुभ पुण्यप्रद नदी मानी जाती है, क्योंकि वह विष्णु के चरण कमल से निकली हुई है। ब्रह्मन् ! यमुना भी सूर्यतनया है । इस प्रकार ऐसी पुनीत नदियों का संगम अत्यन्त कल्याणदायी है । मुने ! नदियों में परम श्रेष्ठ यह नदी गंगा स्मरण मात्र से सब पापों को भी नष्ट कर देती है और सारे उपद्रवों को

इयाज वेधा यज्ञेन यत्र देवं रमापतिम् । तथैव मुनयः सर्वे चक्रुश्च विविधान्मखान् ।।१०।।
सर्वतीर्थाभिषेकाणि यानि पुण्यानि तानि वै । गङ्गाबिन्द्वभिषेकस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।।११।।
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शते स्थितः । सोऽपि मुच्येत पापेभ्यः किमु गङ्गाभिषेकवान् ।।१२।।
विष्णुपादोद्भवा देवी विश्वेश्वरशिरः स्थिता । संसेव्या मुनिभिर्देवैः किं पुनः पामरैर्जनैः ।।१३।।
यत्सैकतं ललाटे तु ध्रियते मनुजोत्तमैः । तत्रैव नेत्रं विज्ञेयं विधवर्द्धाधः समुज्ज्वलत् ।।१४।।
यन्मज्जनं महापुण्यं दुर्लभं त्रिदिवौकसाम् । सारूप्यदायकं विष्णोः किमस्मात्कथ्यते परम् ।।१५।।
यत्र स्नाताः पापिनोऽपि सर्वपापविवर्जिताः । महद्विमानमारूढाः प्रयान्ति परमं पदम् ।।१६।।
यत्र स्नाता महात्मानः पितृमातृकुलानि वै । सहस्राणि समुद्धृत्य विष्णुलोके व्रजन्ति वै ।।१७।।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु यो गङ्गां स्मरति द्विज । पुण्यक्षेत्रेषु सर्वेषु स्थितवान्नात्र संशयः ।।१८।।
यत्र स्नातं नरं दृष्ट्वा पापोऽपि स्वर्गभूमिभाक् । मदङ्गस्पर्शमात्रेण देवानामधिपो भवेत् ।।१९।।
तुलसीमूलसंभूता द्विजपादोद्भवा तथा । गङ्गोद्भवा तु मृल्लोकान्नयत्यच्युतरूपताम् ।।२०।।
गङ्गा च तुलसी चैव हरिभक्तिरचञ्चला । अत्यन्तदुर्ल्लभा नृणां भक्तिर्द्धर्मप्रवक्तरि ।।२१।।
सद्धर्मवक्तुः पदसंभवा मृदं गङ्गोद्भवां चैव तथा तुलस्याः ।।
मूलोद्भवां भक्तियुतो मनुष्यो धृत्वा शिरस्येति पदं च विष्णोः ।।२२।।
कदा यास्याम्यहं गङ्गां कदा पश्यामि तामहम् । वाञ्छत्यपि च यो ह्येवं सोऽपि विष्णुपदं व्रजेत् ।।२३।।
गङ्गाया महिमा ब्रह्मन्वक्तुं वर्षशतैरपि । न शक्यते विष्णुनापि किमन्यैर्बहुभाषितैः ।।२४।।

दूर हटा देती है। महामुनि ! समुद्रान्त पृथ्वी तल पर जितने पुण्य क्षेत्र विद्यमान हैं उनमें यह प्रयाग नामक तीर्थ अत्यन्त पुण्यतम है; जहाँ स्वयं ब्रह्मा ने यज्ञ से रमापति हरि का यजन किया और उसी के अनुसार जहाँ मुनियों ने विविध यज्ञों को सम्पन्न किया ।।७-१०।। सब तीर्थों के स्नान से जो कुछ पुण्य होते हैं वे सभी पुण्य इस प्रयागवाहिनी गंगा के अभिषेकजन्य पुण्य के सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं है। जो सैकड़ों योजन दूर रह कर भी गंगा ! गंगा ! उच्चारण करता है वह भी पापों से मुक्त हो जाता है। तब जो व्यक्ति इसके जल में डुबकी लगाते हैं उनके विषय में तो कहना ही क्या। विष्णु के चरणों से निकलने वाली और शंकर की जटा में रहने वाली इस पुण्य गंगा देवी की सेवा मुनि और देवता भी करते हैं, पुनः पामरजनों की क्या गणना है। जो मानवपुङ्गव गंगा की वालुका को ललाट पर लगाते हैं वह मानों वहीं (उनके ललाट पर) भासमान अर्ध चन्द्र है। जिसका स्नान महापुण्यदायक तथा देवदुर्लभ विष्णु का सारूप्य पद प्रदान कर देता है इससे बढ़कर उसकी महिमा का क्या बखान किया जा सकता है ।।११-१५।। जिस प्रयाग में स्नान करने से पापी भी सब पापों से मुक्त होकर महान् विमान पर चढ़कर परम पद को प्राप्त कर लेते हैं, जहाँ स्नान कर महात्मागण अपने माता-पिता के भी सहस्रों पीढ़ियों का उद्धार कर विष्णु लोक में चले जाते हैं उसके विषय में क्या कहा जाय ! द्विज ! जो गंगा का स्मरण करता है मानों उसने सब तीर्थों में स्नान कर लिया और निःसन्देह सब पुण्य क्षेत्रों में उसने निवास कर लिया ।।१६-१८।। उस प्रयाग में स्नान करने वाले मनुष्य को देखकर पापी भी स्वर्ग का अधिकारी हो जाता है, उसके शरीर के स्पर्शमात्र से मनुष्य देवों का स्वामी इन्द्र बन जाता है। तुलसी के मूल की मिट्टी, ब्राह्मणो की चरणरेणु और गंगा की मिट्टी मनुष्य को विष्णु-सारूप्य प्रदान करती है ।।१९-२०।।

गंगा, तुलसी, अच्युतचरणों में अचल भक्ति और धर्मोपदेशकों में श्रद्धा मानव के लिए दुर्लभ है। मनुष्य सद्धर्मोपदेशकों के चरण की धूलि, गंगा की बालुका और तुलसी के मूल की मिट्टी को शिर पर चढ़ाकर विष्णु लोक को प्राप्त करता है। मैं कब गंगा के समीप जाऊँगा, कब गंगा का दर्शन करूँगा, ऐसी जो इच्छा करता है वह भी विष्णु-पद को प्राप्त करता है। ब्रह्मन् ! गंगा की महिमा स्वयं विष्णु भी सौ वर्षों में वर्णन नहीं कर सकते,

अहो माया जगत्सर्वं मोहयत्येतदद्भुतम् । यतो वै नरकं यान्ति गङ्गानाम्नि स्थितेऽपि हि ॥२५॥
संसारदुःखविच्छेदि गङ्गानाम प्रकीर्तितम् । तथा तुलस्या भक्तिश्च हरिकीर्तिप्रवक्तरि ॥२६॥
सकृदप्युच्चरेद्यस्तु गङ्गेत्येवाक्षरद्वयम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२७॥
योजनत्रितयं यस्तु गङ्गायामधिगच्छति । सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोकं समेति हि ॥२८॥
सेयं गङ्गा महापुण्या नदी भक्त्या निषेविता । मेषतौलिमृगांकेषु पावयत्यखिलं जगत् ॥२९॥
गोदावरी भीमरथी कृष्णा रेवा सरस्वती । तुङ्गभद्रा च कावेरी कालिन्दी बाहुदा तथा ॥३०॥
वेत्रवती ताम्रपर्णी सरयूश्च द्विजोत्तम । एवमादिषु तीर्थेषु गङ्गा मुख्यतमा स्मृता ॥३१॥
यथा सर्वगतो विष्णुर्जगद्व्याप्य प्रतिष्ठितः । तथेयं व्यापिनी गङ्गा सर्वपापप्रणाशिनी ॥३२॥
अहो गङ्गा जगद्धात्री स्नानपानादिभिर्जगत् । पुनाति पावनीत्येषा न कथं सेव्यते नृभिः ॥३३॥
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम् । वाराणसीति विख्यातं सर्वदेवनिषेवितम् ॥३४॥
एव श्रवणे धन्ये संविदाते बहुश्रुतम् । इह श्रुतिमतां पुंसां काशी याभ्यां श्रुताऽसकृत् ॥३५॥
ते ये स्मरन्ति संस्थानमविमुक्तं द्विजोत्तमम् । निर्धूतसर्वपापास्ते शिवलोकं व्रजन्ति वै ॥३६॥
योजनानां शतस्थोऽपि अविमुक्तं स्मरेद्यदि । बहुपातकपूर्णोऽपि पदं गच्छत्यनामयम् ॥३७॥
प्राणप्रयाणसमये योऽविमुक्तं स्मरेद्द्विज । सोऽपि पापविनिर्मुक्तः शैवं पदमवाप्नुयात् ॥३८॥
काशीस्मरणजं पुण्यं भुक्त्वा स्वर्गं तदन्ततः । पृथिव्यामेकराड् भूत्वा काशीं प्राप्य च मुक्तिभाक् ॥३९॥
बहुनात्र किमुक्तेन वाराणस्या गुणान्प्रति । नामापि गृह्णतां काश्याश्चतुर्वर्गो न दूरतः ॥४०॥

इस विषय में अधिक क्या कहा जाय ! अहो ! यह आश्चर्य की बात है कि माया संसार को मोह लेती है और ऐसी परम पुनीत गंगा के नाम रहते हुए भी लोग नरक में गिरते हैं। गंगा का नामोच्चारण संसार के दुःखों का नाश करने वाला है। इसी प्रकार वैष्णवों को तुलसी की भक्ति भी संसार से मुक्त कर देती है। जो एक बार भी गंगा इन दो अक्षरों का उच्चारण करता है वह सब पापों से छूट कर विष्णु लोक को चला जाता है ॥२१-२८॥ जो गंगा के प्रवाह में तीन योजन तक जाता है वह पाप मुक्त होकर सूर्य लोक को चला जाता है। मेष, तुला और सिंह के संक्रान्ति-काल में यदि भक्तिपूर्वक महापुण्यदायिनी गंगा की सेवा (स्नान या कल्पवास) की जाय तो वह अखिल लोक के पाप को दूर कर देती है। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, नर्मदा, सरस्वती, तुङ्गभद्रा, कावेरी, अति पुण्यशीला यमुना, वेत्रवती (बेतवा), ताम्रपर्णी, सरयू आदि तीर्थों में गंगा मुख्य तीर्थ है। जिस प्रकार भगवान् विष्णु व्यापक होने के कारण सर्वत्र स्थित हैं उसी प्रकार यह त्रिभुवनपावनी गंगा सब पापों को नष्ट करने वाली है। अहो ! गंगा जगन्माता है। इसमें स्नान और इसके जल का पान करने से यह पावनी संसार को पवित्र कर देती है तो ऐसी गंगा की सेवा लोग क्यों नहीं करते ? सब देवों का एकमात्र वासस्थान वाराणसी पुरी सम्पूर्ण तीर्थों में उत्तम तीर्थ, सब क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र प्रसिद्ध है ॥२६-३४॥

उस काशी का नाम सुनने वालों के कान ही धन्य हैं जिनके द्वारा काशी का नाम बहुत बार सुना गया है। जो इस अविमुक्त परम तीर्थ वाराणसी क्षेत्र का स्मरण करते हैं वे सब पापों से मुक्त होकर शिवलोक को चले जाते हैं। जो सौ योजन दूर रहकर भी उस अविमुक्त क्षेत्र का स्मरण करते हैं वे अनगिनत पापों से युक्त होते हुए भी परमशाश्वत पद को प्राप्त करते हैं। द्विज ! मृत्यु के समय भी जो अविमुक्त क्षेत्र का स्मरण करता है वह भी पापों से छुटकारा पाकर शिवलोक को चला जाता है। ॥३५-३६॥ वह काशी स्मरण के कारण प्राप्त पुण्यों का स्वर्ग में उपभोग कर पुनः उसके क्षीण हो जाने पर पृथ्वी का एक क्षत्रपति सम्राट् होता है और पुनः काशी का दर्शन कर मुक्ति प्राप्त करता है। अथवा वाराणसी की महिमा या गुणवर्णन के विषय में अधिक क्या कहा जाय, केवल काशी के नाम स्मरण से भी चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) दूर या दुर्लभ नहीं रह जाता।

गङ्गायमुनयोर्योगोऽधिकः काश्या अपि द्विज । यस्य दर्शनमात्रेण नरा यान्ति परां गतिम् ॥४१॥
मकरस्थे रवौ गङ्गा यत्र कुत्रावगाहिता । पुनाति स्नानपानाद्यैर्नयन्तीन्द्रपुरं जगत् ॥४२॥
यो गङ्गां भजते नित्यं शंकरो लोकशंकरः । लिङ्गरूपो कथं तस्या महिमा परिकीर्त्यते ॥४३॥
हरिरूपधरं लिङ्गं लिङ्गरूपधरो हरिः । ईषदप्यन्तरं नास्ति भेदकृच्चानयोः कुधीः ॥४४॥
अनादिनिधने देवे हरिशंकरसंज्ञिते । अज्ञानसागरे मग्ना भेदं कुर्वन्ति पापिनः ॥४५॥
यो देवो जगतामीशः कारणानां च कारणम् । युगान्ते निगदन्त्येतद्रुद्ररूपधरो हरिः ॥४६॥
रुद्रो वै विष्णुरूपेण पालयत्यखिलं जगत् । ब्रह्मरूपेण सृजति प्रान्तेऽत्त्येतत्त्रयं हरः ॥४७॥
हरिशंकरयोर्मध्ये ब्रह्मणश्चापि यो नरः । भेदं करोति सोऽभ्येति नरकं भृशदारुणम् ॥४८॥
हरं हरिं विधातारं यः पश्यत्येकरूपिणम् । स याति परमानन्दं शास्त्राणामेष निश्चयः ॥४९॥
योऽसावनादिः सर्वज्ञो जगतामादिकृद्विभुः । नित्यं संनिहितस्तत्र लिङ्गरूपी जनार्दनः ॥५०॥
काशीविश्वेश्वरं लिङ्गं ज्योतिर्लिङ्गं तदुच्यते । तं दृष्ट्वा परमं ज्योतिराप्नोति मनुजोत्तमः ॥५१॥
काशीप्रदक्षिणा येन कृता त्रैलोक्यपावनी । सप्तद्वीपा साब्धिशैला भूः परिक्रमितामुना ॥५२॥
धातुमृद्दारुपाषाणलेख्याद्या मूर्तयोऽमलाः । शिवस्य वाच्युतस्यापि तासु संनिहितो हरिः ॥५३॥
तुलसीकाननं यत्र यत्र पद्मवनं द्विज । पुराणपठनं यत्र तत्र संनिहितो हरिः ॥५४॥
पुराणसंहितावक्ता हरिरित्यभिधीयते । तद्भक्ति कुर्वतां नृणां गङ्गास्नानं दिने दिने ॥५५॥
पुराणश्रवणे भक्तिर्गङ्गास्नानसमा द्विज । तद्वक्तरि च या भक्तिः सा प्रयागोपमा स्मृता ॥५६॥

द्विज ! गंगा और यमुना का संगम काशी से भी अधिक पुण्यप्रद है जिसके दर्शनमात्र से मनुष्य परमगति को पा जाता है। ॥३७-४१॥ मकर संक्रान्ति के समय गंगा में जहाँ कहीं भी स्नान, पान करने से सभी मनुष्य पवित्र हो जाते हैं। जो गंगा को नित्य भजता है और लोक कल्याण करने वाले लिङ्ग रूपी शंकर की महिमा का स्मरण करता है उसकी बड़ाई कैसे की जा सकती है। लिङ्ग (शिव) विष्णु रूप हैं और विष्णु शिव लिङ्ग रूप हैं, इन दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं है, जो भेद बुद्धि रखता है वह दुर्बुद्धि है। केवल अज्ञान के समुद्र में सर्वदा निमग्न रहने वाले पापी जन ही अनादि अमर हरि और शंकर में भेद बुद्धि रखते है। कहा जाता है कि जो देवेश हरि जगत् के स्वामी हैं कारण के भी कारण हैं। वही युगान्तकाल में रुद्र रूप धारण करते हैं। ॥४२-४६॥ रुद्र ही विष्णु रूप से अखिल लोक का पालन करते हैं, ब्रह्मा रूप से इसकी सृष्टि करते हैं और अन्त में इस त्रिलोकी का संहार करते हैं। जो हरि, हर और ब्रह्मा में भेद रखता है वह पापी अत्यन्त घोर नरक में गिरता है। जो हरि, हर और विधाता को एक रूप से देखता है वह परमानन्द को प्राप्त करता है ऐसा शास्त्रों का निर्णय है। जो यह अनादि जगत् का आदि स्रष्टा, सर्वज्ञ, विभु शंकर हैं वह जनार्दन (विष्णु) भी उसी लिङ्ग रूप में सर्वदा सन्निहित रहते हैं ॥४७-५०॥ काशी विश्वेश्वर लिङ्ग को ज्योतिर्लिङ्ग भी कहते हैं, उस लिङ्ग का दर्शन कर श्रेष्ठ मनुष्य परमज्योति लोक को प्राप्त करता है ॥५१॥

जिसने त्रिभुवन पावनी काशी की परिक्रमा करली वह मानो ससागरा और सशैला पृथ्वी की परिक्रमा कर दी। विष्णु और शंकर की मूर्ति चाहे धातु, मिट्टी, लकड़ी या पत्थर किसी भी पदार्थ की हो उसमें विष्णु सर्वदा निवास करते हैं। जहाँ तुलसी कानन है जहाँ कमल वन है अथवा जहाँ पर पुराण पाठ होता है वहाँ भगवान् विष्णु सर्वदा निवास करते हैं। पुराण का वक्ता भी हरि कहा जाता है उसकी भक्ति करने वाला मनुष्य प्रतिदिन गंगा स्नान का फल पाता है। द्विज ! पुराण श्रवण में श्रद्धा रखना गंगा स्नान के समान माना जाता है और पुराण वक्ता में श्रद्धा या भक्ति प्रयाग के समान मानी जाती है। जो महात्मा मोह सागर में निमग्न

पुराणधर्मकथनैर्यः समुद्धरते जगत् । संसारसागरे मग्नं स हरिः परिकीर्तितः ॥५७॥
नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः । नास्ति विष्णुसमं देवं नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥५८॥
वर्णानां ब्राह्मणः श्रेष्ठस्तारकाणां यथा शशी । यथा पयोधिः सिन्धूनां तथा गङ्गा परा स्मृता ॥५९॥
नास्ति शान्तिसमो बन्धुर्नास्ति सत्यात्परं तपः । नास्ति मोक्षात्परो लाभो नास्ति गङ्गासमा नदी ॥६०॥
गङ्गायाः परमं नाम पापारण्यदवानलः । भवव्याधिहरा गङ्गा तस्मात्सेव्या प्रयत्नतः ॥६१॥
गायत्री जाह्नवी चोभे सर्वपापहरे स्मृते । एतयोर्भक्तिहीनो यस्तं विद्यात्पतितं द्विज ॥६२॥
गायत्री छन्दसां माता माता लोकस्य जाह्नवी । उभे ते सर्वपापानां नाशकारणतां गते ॥६४॥
यस्य प्रसन्ना गायत्री तस्य गङ्गा प्रसीदति । विष्णुशक्तियुते ते द्वे समकामप्रसिद्धिदे ॥६४॥
धर्मार्थकामरूपाणां फलरूपे निरञ्जने । सर्वलोकानुग्रहार्थं प्रवर्तेते महोत्तमे ॥६५॥
अतीव दुर्लभा नृणां गायत्री जाह्नवी तथा । तथैव तुलसीभक्तिर्हरिभक्तिश्च सात्त्विकी ॥६६॥
अहो गङ्गा महाभागा स्मृता पापप्रणाशिनी । हरिलोकप्रदा दृष्टा पीता सारूप्यदायिनी ॥६७॥
यत्र स्नाता नरा यान्ति विष्णोः पदमनुत्तमम् ॥६७॥
नारायणो जगद्धाता वासुदेवः सनातनः । गङ्गास्नानपराणां तु वाञ्छितार्थफलप्रदः ॥६८॥
गङ्गाजलकणेनापि यः सिक्तो मनुजोत्तमः । सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम् ॥६९॥
यद्बिन्दुसेवनादेव सगरान्वयसम्भवः । विसृज्य राक्षसं भावं संप्राप्तः परमं पदम् ॥७०॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे गङ्गामाहात्म्यं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

संसार का पुराणोपदेश द्वारा उद्धार करता है वह हरि रूप कहा जाता है। गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं, मान के समान गुरु नहीं, विष्णु के समान कोई देवता नहीं और गुरु से बढ़कर कोई रहस्य या तत्त्व नहीं है ॥५२-५८॥ जिस प्रकार नक्षत्रों में चन्द्रमा, वर्णों में ब्राह्मण और जलाशयों में समुद्र श्रेष्ठ है उसी प्रकार गंगा सब नदियों और तीर्थों में श्रेष्ठ है। जिस प्रकार शान्ति के समान बन्धु नहीं, सत्य से बढ़कर कोई दूसरा तप नहीं, मोक्ष से बढ़कर कोई दूसरा लाभ नहीं उसी प्रकार गंगा के समान कोई नदी नहीं है। गंगा का उत्कृष्ट नाम पाप रूपी वन को भस्म करने के लिए दावाग्नि के समान है और संसार की व्याधियों को नष्ट करने वाली गंगा नदी ही है। अतः मनुष्य को गंगा की आराधना करनी चाहिए। गायत्री और जाह्नवी दोनों पापनाशक मानी जाती हैं। द्विज ! इन दोनों की उपासना से जो विमुख रहता है, उसको पतित समझना चाहिए ॥५६-६२॥ गायत्री छन्दों की माता है और गंगा लोक की माता है। ये दोनों ही लोक के सब पापों को नष्ट करने वाली हैं। जिसके ऊपर गायत्री प्रसन्न है उसके ऊपर गंगा स्वयं प्रसन्न हो जाती है। विष्णु की ये दोनों शक्तियाँ मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाली हैं। ये दोनों धर्म, अर्थ और कामरूप फल को देने वाली और निरञ्जन रूप हैं और ये अति उत्तम शक्तियाँ सब लोक के कल्याण के लिए सर्वदा उद्यत रहती हैं ॥६३-६५॥ मनुष्यों के लिए गायत्री और जाह्नवी दोनों अति दुर्लभ हैं। इसी प्रकार तुलसी की भक्ति और विष्णु की सात्त्विक अनन्य भक्ति भी अत्यन्त दुर्लभ है। अहो ! महापुण्यवती गंगा के स्मरण से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। इसके दर्शन से हरि लोक की प्राप्ति होती और गंगाजल के पीने से सारूप्य मुक्ति मिलती है। गंगा में स्नान करने से मनुष्य परमोत्तम विष्णु लोक को प्राप्त करता है। गंगा में नित्य स्नान करने वाले को जगत्पालक सनातन वासुदेव सब प्रकार के अभीष्ट पदार्थ प्रदान करते हैं। जो मनुष्य गंगा जल के एक विन्दु से भी अभिषिक्त होता है वह तत्काल सब प्रकार के पापों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त करता है। जिसके जल विन्दु के स्पर्श मात्र से ही सगर वंश की साठ सहस्र संतति राक्षस भाव को छोड़कर मुक्त हो गई उसके प्रभाव का वर्णन कैसे किया जा सकता है ॥६६-७०॥

श्रीनारदीयपुराण में गंगा माहात्म्यनामक छठा अध्याय समाप्त ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

नारद उवाच

कोऽसौ राक्षसभावाद्धि मोचितः सगरान्वये । सगरः को मुनिश्रेष्ठ तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥१॥

सनक उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् । यज्जलस्पर्शमात्रेण पावितं सागरं कुलम् ॥
गतं विष्णुपदं विप्र सर्वलोकोत्तमोत्तमम्
आसीद्रविकुले जातो बाहुर्नाम वृकात्मजः । बुभुजे पृथिवीं सर्वां धर्मतो धर्मतत्परः ॥२॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ये च जन्तवः । स्थापिताः स्वस्वधर्मेषु तेन बाहुविशांपतिः ॥३॥
अश्वमेधैरियाजासौ सप्तद्वीपेषु सप्तभिः । अतर्पयद्भूमिदेवान् गोभूस्वर्णांशुकादिभिः ॥४॥
अशासन्नीतिशास्त्रेण यथेष्टं परिपन्थिनः । मेने कृतार्थमात्मानमन्यातपनिवारणम् ॥५॥
चन्दनानि मनोज्ञानि बलिं यत्सर्वदा जनाः । भूषिता भूषणैर्दिव्यैस्तद्राष्ट्रे सुखिनो मुने ॥६॥
अकृष्टपच्यां पृथिवी फलपुष्पसमन्विता ॥७॥
ववर्ष भूमौ देवेन्द्रः काले काले मुनीश्वर । अधर्मनिरताराये प्रजा धर्मेण रक्षिताः ॥८॥

अध्याय ७

गंगा माहात्म्य-वर्णन

नारद बोले—मुनिश्रेष्ठ ! सगर के वंश में कौन था जो राक्षस भाव से मुक्त हुआ, सगर कौन थे ? इस आख्यान को कृपा कर मुझसे कहिए ॥१॥

सनक बोले—मुनिशार्दूल ! जिस गंगा के पुनीत जल के स्पर्श मात्र से सगर कुल पवित्र हो गया और विष्णु पद को प्राप्त कर लिया उस गंगा के परमोत्तम माहात्म्य को सुनिए । सूर्य वंश में वृक का पुत्र बाहु नामक राजा उत्पन्न हुआ । इस धार्मिक राजा ने न्याय पूर्वक सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन किया और अपने बाहु-बल से ब्राह्मण-क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्य समस्त प्रजाओं को अपने धर्मों एवं कर्त्तव्यों में लगाया, सातों द्वीपों में सात अश्वमेध यज्ञ किये, ब्राह्मणों की गौ, स्वर्ण, भूमि और वस्त्रदान से संतुष्ट किया एवं अपने शत्रुओं को इच्छानुसार नीति पूर्वक पराजित किया । उसने मनोहर चन्दन वृक्ष के समान दूसरों के कष्ट दूर करने के कारण अपने को कृत-कृत्य समझा । प्रजा सर्वदा उसके मनोनुकूल आचरण करती थी । मुने ! उसके राज्य में मनुष्य सर्वदा दिव्य आभूषणों से भूषित और सुखी रहते थे ॥२-७॥ पृथ्वी अनायास अन्न देती और फल पुष्पों से सुशोभित रहती थी । मुनीश्वर ! इन्द्र समय-समय पर पृथ्वी पर वर्षा कर देते थे । प्रत्येक बाधाओं और अन्याय से राजा धर्मपूर्वक प्रजा की रक्षा करता था । एक दिन उसके हृदय में सम्पत्ति का नाश करने वाला, राज्य

एकदा तस्य भूपस्य सर्वसंपद्विनाशकृत् । अहंकारो महाञ्जज्ञे सासूयो लोपहेतुकः ॥१०॥
अहं राजा समस्तानां लोकानां पालको बली । कर्त्ता महाक्रतूनां च मत्तः पूज्योऽस्ति कोऽपरः ॥११॥
अहं विचक्षणः श्रीमाञ्जिताः सर्वे मयारयः । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो नीतिशास्त्रविशारदः ॥१२॥
अजेयोऽव्याहतैश्वर्यो मत्तः कोऽन्योऽधिको भुवि । अहंकारपरस्यैवं जातासूया परेष्वपि ॥१३॥
असूयातोऽभवत्कामस्तस्य राज्ञो मुनीश्वर । एषु स्थितेषु तु नरो विनाशं यात्यसंशयम् ॥१४॥
यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता । एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥१५॥
तस्यासूया नु महती जाता लोकविरोधिनी । स्वदेहनाशिनी विप्र सर्वसंपद्विनाशिनी ॥१६॥
असूयाविष्टमनसि यदि संपत्प्रवर्त्तते । तुषाग्नि वायुसंयोगमिव जानीहि सुव्रत ॥१७॥
असूयोपेतमनसां दम्भाचारवतां तथा । परुषोक्तिरतानां च सुखं नेह परत्र च ॥१८॥
असूयाविष्टचित्तानां सदा निष्ठुरभाषिणाम् । प्रिया वा तनया वापि बान्धवा अप्यरातयः ॥१९॥
मनोभिलाषं कुरुते यः समीक्ष्य परस्त्रियम् । स स्वसंपद्विनाशाय कुठारो नात्र संशयः ॥२०॥
यः स्वश्रेयोविनाशाय कुर्याद्यत्नं नरो मुने । सर्वेषां श्रेयसं दृष्ट्वा स कुर्यान्मत्सरं कुधीः ॥२१॥
मित्रापत्यगृहक्षेत्रधनधान्यपशुष्वपि । हानिमिच्छन्नरः कुर्यादसूयां सततं द्विज ॥२२॥
अथ तस्याविनीतस्य ह्यसूयाविष्टचेतसः । हैहयास्तालजंघाश्च बलिनोऽरातयोऽभवन् ॥२३॥
यस्यानुकूलो लक्ष्मीशः सौभाग्यं तस्य वर्द्धते । स एव विमुखो यस्य सौभाग्यं तस्य हीयते ॥२४॥

सत्ता मिटा देने वाला और ईर्ष्या युक्त अहंकार उत्पन्न हो गया । वह सोचने लगा कि मैं समस्त लोगों का स्वामी हूँ, पालक हूँ और सर्व शक्तिसम्पन्न हूँ, बड़े-बड़े यज्ञों का कर्त्ता हूँ । मुझसे बढ़कर दूसरा कौन पूज्य है ? ॥८-११॥ मैं विद्वान् हूँ श्रीमान् हूँ, सब शत्रुओं को मैंने जीत लिया है, वेद-वेदाङ्गों के तत्त्व को जानने वाला और नीति कुशल मैं ही हूँ । मैं अजेय हूँ समस्त ऐश्वर्य मेरे यहाँ केन्द्रीभूत है । मुझसे बढ़कर इस पृथ्वी पर दूसरा कौन है ? इस प्रकार अहंकार हो जाने पर दूसरों के प्रति भी उसको असूया होने लगी । मुनीश्वर ! इस प्रकार असूया बुद्धि (गुणों में दोषों का देखना) हो जाने पर उस राजा के हृदय में काम (इच्छा) जागरित हो गया । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि इस प्रकार असूया होने पर मनुष्य का नाश अवश्यम्भावी है । युवावस्था, सम्पत्ति, अधिकार मद, अज्ञान इनमें से प्रत्येक अनर्थ की सृष्टि करते हैं । फिर जहाँ ये चारों जुट जाँय वहाँ तो कुछ कहना ही नहीं । उसके हृदय में इस प्रकार की लोकविरोधिनी, स्वदेहनाशिनी और सब सम्पत्तियों को धूल में मिला देने वाली असूया उत्पन्न हो गई ॥१२-१६॥

सुव्रत ! ऐसी असूया रखने वाले व्यक्ति के पास धन हो जाता है तब तो समझो कि तुषाग्नि सुलगती हुई को वायु के झोंक मिल गये । ईर्ष्यालु, दम्भी, और कटुभाषी व्यक्ति को कभी भी लोक और परलोक में सुख नहीं मिलता है । असूया से भरे हृदय वाले और सर्वदा अप्रिय वचन बोलने वाले व्यक्तियों के भाई बन्धु यहाँ तक कि भार्या भी शत्रु हो जाती है । जो दूसरे की स्त्री को देख कर मन में बुरी भावना रखता है वह अपनी संपत्ति नाश का एक मात्र कारण (कुठार) बन जाता है । मुने ! यदि कोई अपने कल्याण का नाश करना चाहे तो वह मूर्ख दूसरों की सम्पत्ति देखकर ईर्ष्या करना सीखे । द्विज ! यदि कोई मित्र, सन्तान, भवन, क्षेत्र, धन, अन्न और पशुओं का नाश चाहता हो तो वह सर्वदा ईर्ष्या करे ॥१७-२२॥ उस राजा की उद्दण्डता और मात्सर्य भाव को देखकर हृदय, ताल जङ्घ आदि बली पड़ोसी राजा शत्रु हो गए । लक्ष्मीपति विष्णु जिसके अनुकूल होते हैं उसकी विभूति बढ़ती है परन्तु वही जिसके प्रतिकूल हो जाते हैं तो उसका सारा वैभव शीघ्र नाशोन्मुख हो जाता है । नारद !

तावत्पुत्राश्च पौत्राश्च धनधान्यगृहादयः । यावदीक्षेत लक्ष्मीशः कृपापाङ्गेन नारद ॥२५॥
अपि मूर्खान्धबधिरजडाः शूरा विवेकिनः । श्लाघ्या भवन्ति विप्रेन्द्र प्रेक्षिता माधवेन ये ॥२६॥
सौभाग्यं तस्य हीयेत यस्यासूयादिलाञ्छनम् । जायते नात्र संदेहो जन्तुद्वेषो विशेषतः ॥२७॥
सततं यस्य कस्यापि यो द्वेषं कुरुते नरः । तस्य सर्वाणि नश्यन्ति श्रेयांसि मुनिसत्तम ॥२८॥
असूया वर्द्धते यस्य तस्य विष्णुः पराङ्मुखः । धनं धान्यं मही संपद्विनश्यति ततो ध्रुवम् ॥२९॥
विवेकं हन्त्यहंकारस्त्वविवेकात्तु जीविनाम् । आपदः संभवन्त्येवेत्यहंकारं त्यजेत्ततः ॥३०॥
अहंकारो भवेद्यस्य तस्य नाशोऽतिवेगतः । असूयाविष्टमनसस्तस्य राज्ञः परैः सह ॥३१॥
आयोधनमभूद्घोरं मासमेकं निरन्तरम् । हैहयैस्तालजङ्घैश्च रिपुभिः स पराजितः ॥३२॥
स तु बाहुस्ततो दुःखी अन्तर्वत्न्या स्वभार्यया । अवाप परमां तुष्टिं तत्र दृष्ट्वा महत्सरः ॥३३॥
असूयोपेतमनसस्तस्य भावं निरीक्ष्य च । सरोगतविहङ्गास्ते लीनाश्चित्रमिदं महत् ॥३४॥
अहो कष्टमहो रूपं घोरमत्र समागतम् । विशन्तस्त्वरया वासमित्यूचुस्ते विहङ्गमाः ॥३५॥
सोऽवगाह्य सरो भूपः पत्नीभ्यां सहितो मुदा । पीत्वा जलं च सुखदं वृक्षमूलमुपाश्रितः ॥३६॥
तस्मिन्बाहौ वनं याते तेनैव परिरक्षिताः । दुर्गुणान्विगणय्यास्य धिग्धिगित्यब्रुवन्प्रजाः ॥३७॥
यो वा को वा गुणी मर्त्यः सर्वश्लाघ्यतरो द्विजः । सर्वसंपत्समायुक्तोऽप्यगुणी निंदितो जनैः ॥३८॥

मनुष्य की धन-सम्पत्ति-पुत्र, पौत्र, धान्य और गृह आदि तभी तक बढ़ते हैं जब तक उसके ऊपर भगवान् की कृपा दृष्टि बनी रहती है ॥२३-२५॥ विप्रेन्द्र ! जब तक माधव की कृपा दृष्टि मनुष्य पर बनी रहती है तब तक चाहे वह मूर्ख, अन्धा, बहिरा, भी क्यों न हो परन्तु वह विवेकी, शूर और लोक में आदरणीय रहता है। उस मनुष्य का सौभाग्य शीघ्र नष्ट हो जाता है जो असूया रूपी कलंक से अथवा विशेष रूप से प्राणी-ईर्ष्या से कलंकित हो जाता है। जो मनुष्य जिस किसी व्यक्ति से सर्वदा द्वेष करता रहता है उसके सारे श्रेय नष्ट हो जाते हैं। मुनिश्रेष्ठ ! जिसके हृदय में असूया रहती है उससे भगवान् असन्तुष्ट हो जाते हैं और उसके बाद धन-धान्य, भूमि, संपत्ति आदि शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, यह ध्रुव सत्य है ॥२६-२९॥ अहंकार विवेक को नष्ट कर देता है। अविवेक से आपत्तियाँ आ जाती हैं। इसलिए अहंकार को कभी भी पास नहीं फटकने देना चाहिए। जिसको अहंकार हो जाता है, उसका शीघ्र नाश हो जाता है। उस असूया के कारण उस ईर्ष्यालुराजा से शत्रुओं ने घोर युद्ध किया। हैहय-तालजङ्घ आदि रिपुओं से एक मास तक सतत युद्ध होता रहा, जिसमें वेह राजा पराजित हुआ। ॥३०-३२॥

निदान, दुःखी होकर वह राजा अपनी गर्भिणी पत्नी को साथ लेकर भटकता हुआ एक बहुत बड़े सरोवर के पास पहुँचा। सरोवर को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ परन्तु उसकी असूया-भावना को देखकर उस तालाब के पक्षी आदि जीव छिप गए, यह आश्चर्य जनक घटना हुई। उस राजा को देख कर पक्षी आपस में कहने लगे कि 'अहा ! बड़ा अनर्थ हुआ यहाँ महाभयङ्कर प्राणी आ गया तुम लोग शीघ्र सरोवर में घुस जाओ। वह राजा प्रसन्नता पूर्वक पत्नी सहित सरोवर में स्नान कर और जल पान कर एक वृक्ष की सुखद छाया में बैठ गया। ॥३३-३६॥ उस बाहु राजा के इस प्रकार वन में चले जाने पर उनके ही शासन और रक्षा में रहने वाली प्रजा उनके अवगुणों का स्मरण कर धिक्कारने लगी। द्विज ! चाहे मनुष्य गुणवान् हो या न हो परन्तु सम्पत्तिशाली होने पर वह आदरणीय समझा जाता है। वही जब विभवहीन हो जाता है तब मनुष्यों द्वारा निन्दित होता है। इस संसार में अपयश के समान मृत्यु भी कष्ठकर नहीं है। जब राजा बाहु बन को चला गया तब उससे राग करने

अपकीर्तिसमो मृत्युर्लोकेऽप्यन्यो न विद्यते । यदा बाहुर्वनं यातस्तदा तद्रागगा जनाः ॥३९॥
निन्दितो बहुशो बाहुर्मृतवत्कानने स्थितः । निहत्य कर्म च यशो लोके द्विजवरोत्तम ॥४०॥
नास्त्यकीर्तिसमो मृत्युर्नास्ति क्रोधसमो रिपुः । नास्ति निंदासमं पापं नास्ति मोहसमासवः ॥४१॥
नास्त्यसूयासमा कीर्तिर्नास्ति कामसमोऽनलः । नास्ति रागसमः पाशो नास्ति सङ्गसमं विषम् ॥४२॥
एवं विलप्यबहुधा बाहुरत्यन्तदुःखितः । जीर्णाङ्गो मनसस्तापाद् वृद्धभावादभूदसौ ॥४३॥
गते बहुतिथे काले और्वाश्रमसमीपतः । स बाहुर्व्याधिना ग्रस्तो ममार मुनिसत्तम ॥४४॥
तस्य भार्या च दुःखार्ता कनिष्ठा गर्भिणी तदा । चिरं विलप्य बहुधा सह गन्तुं मनोदधे ॥४५॥
समानीय च सैधांसि चितां कृत्वातिदुःखिता । समारोप्य तमारूढं स्वयं समुपचक्रमे ॥४६॥
एतस्मिन्नन्तरे धीमानौर्वस्तेजोनिधिर्मुनिः । एतद्विज्ञातवान्सर्वं परमेण समाधिना ॥४७॥
भूतं भव्यं वर्त्तमानं त्रिकालज्ञा मुनीश्वराः । गतासूया महात्मानः पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ॥४८॥
तपोभिस्तेजसां राशिरौर्वपुण्यसमो मुनिः । संप्राप्तस्तत्र साध्वी च यत्र बाहुप्रिया स्थिता ॥४९॥
चितामारोढुमुद्युक्तां तां दृष्ट्वा मुनिसत्तमः । प्रोवाच धर्ममूलानि वाक्यानि मुनिसत्तमः ॥५०॥

और्व उवाच

राजवर्यप्रिये साध्वि मा कुरुष्वातिसाहसम् । तवोदरे चक्रवर्ती शत्रुहन्ता हि तिष्ठति ॥५१॥
बालापत्याश्च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा । रजस्वला राजसुते ! नारोहन्ति चितां शुभे ॥५२॥

वाले लोगों ने उसी प्रकार शक्ति का अनुभव किया जैसे जलन मिट जाने पर लोग करते हैं ॥३७-३९॥ लोक से अनेक प्रकार का अयश पाकर वह राजा बन में मृतक के समान रहने लगा । उसका यश और पूर्व सत् कर्म सभी लुप्त-से हो गए । द्विज ! इस संसार में अपयश के समान मृत्यु नहीं, न तो क्रोध के समान कोई दूसरा शत्रु ही है । निन्दा के समान कोई पाप नहीं और मोह के समान कोई दूसरा नशा भी नहीं है । असूया के समान कोई अयश और काम के समान भस्म करने वाला अग्नि भी नहीं है । अनुराग के समान इस लोक में दूसरा बन्धन नहीं और संग (लोकासक्ति) के समान कोई विष नहीं है । इस प्रकार अपनी हीन दशा पर रोकर वह राजा अत्यन्त दुःखी हो गया । मानसिक संताप के कारण वह दिन प्रति दिन शिथिल होने लगा और असमय में ही बूढ़ा हो गया ॥४०-४३॥ मुनिश्रेष्ठ ! बहुत समय बीत जाने पर वह राजा बाहु और्व ऋषि के आश्रम के समीप व्याधि-ग्रस्त होकर मर गया । उसकी छोटी भार्या, जो उस समय गर्भिणी थी, दुःख से कातर हो गई । ब ुत विलाप करने के बाद उसने सती होने का निश्चय किया । उस दुःखी रानी ने इधर-उधर से लकड़ियाँ लाकर चिता बनाई । उस पर अपने पति का शव रखकर स्वयं चिता में भस्म होने को उद्यत हुई । इसी बीच परम तेजोनिधि और ज्ञानी मुनि और्व ने अपनी परम समाधि के द्वारा सारी बातें जान लीं । क्योंकि त्रिकालज्ञ, उदार और महात्मा मुनीश्वर अपने ज्ञान चक्षु से भूत, भविष्यत् और वर्तमान सब कुछ जान लेते हैं ॥४४-४८॥ तपस्या और तेज-पुंज के विधान पर पुण्यवान् मुनि और्व उस स्थान पर आये जहाँ वह साध्वी बाहु की प्रिय पत्नी सती होने को प्रस्तुत थी । चिता पर आरुढ़ होने के लिए प्रस्तुत उस साध्वी को देखकर मुनिवर्य और्व धर्म-सम्मत उपदेश देने लगे ॥४९-५०॥

और्व बोले—'बाहु की प्रिय भार्या ! सती ! ऐसा घोर साहस मत करो । तुम्हारे उदर में शत्रुओं का नाश करने वाला चक्रवर्ती सम्राट् है । शुभे ! राजसुते ! जिसका बच्चा छोटा हो, जो गर्भिणी हो, जिसको अभी

ब्रह्महत्यादिपापानां प्रोक्ता निष्कृतिरुत्तमैः । दम्भिनो निंदकस्यापि भ्रूणघ्नस्य न निष्कृतिः ।
नास्तिकस्य कृतघ्नस्य धर्मोपेक्षाकरस्य च । विश्वासघातकस्यापि निष्कृतिर्नास्ति सुव्रते ॥५३॥
तस्मादेतन्महत्पापं कर्तुं नार्हसि शोभने । यदेतद् दुःखमुत्पन्नं तत्सर्वं शांतिमेष्यति ॥५४॥
इत्युक्ता मुनिना साध्वी विश्वस्य तदनुग्रहम् । विललापातिदुःखार्ता निगृह्यचरणौ मुनेः ॥५५॥
और्वोऽपि तां पुनः प्राह सर्वशास्त्रार्थकोविदः । मारोदीराजतनये श्रियमग्ये गमिष्यसि ॥५६॥
मा मुंचास्त्रं महाभागे प्रेतो दाह्योऽद्य सज्जनैः । तस्माच्छोकं परित्यज्य कुरु कालोचितां क्रियाम् ॥५७॥
पंडिते वापि मूर्खे वा दरिद्रे वा श्रियान्विते । दुर्वृत्ते वा सुवृत्ते वा मृत्योः सर्वत्र तुल्यता ॥५८॥
नगरे वा तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते ॥५९॥
यद्यत्पुरातनं कर्म तत्तदेव ह युज्यते । कारणं दैवमेवात्र मन्ये सोपाधिका जनाः ॥६०॥
गर्भे वा बाल्यभावे वा यौवने वापि वार्द्धके । मृत्योर्वशे प्रयातव्यं जन्तुभिः कमलानने ॥६१॥
हन्ति पाति च गोविन्दो जन्तून्कर्मवशे स्थितान् । प्रवादं रोपयन्त्यज्ञा हेतुमात्रेषु जन्तुषु ॥६२॥
तस्माद्दुःखं परित्यज्य सुखिनी भव सुव्रते । कुरु पत्युश्च कर्माणि विवेकेन स्थिरा भव ॥६३॥
एतच्छरीरं दुःखानां व्याधीनामयुतैर्वृतम् । सुखाभासं बहुक्लेशं कर्मपाशेन यन्त्रितम् ॥६४॥
इत्याश्वास्य महाबुद्धिस्तया कार्याण्यकारयत् । त्यक्तशोका च सा तन्वी नता प्राह मुनीश्वरम् ॥६५॥
किमत्र चित्रं यत्सन्तः परार्थफलकाङ्क्षिणः । नहि द्रुमाश्च भोगार्थं फलन्ति जगतीतले ॥६६॥ ॥६७॥

रजोदर्शन न होता हो और जो ऋतुमती हो उसको सती होने के लिए शास्त्र आज्ञा नहीं देता है । महान् व्यक्तियों ने ब्रह्महत्या आदि पापों के लिए प्रायश्चित्त कहा है; परन्तु पाखण्डी, परनिन्दक, और भ्रूणहत्या करने वालों का प्रायश्चित्त नहीं है । सुव्रते ! नास्तिक, कृतघ्न, धर्म की उपेक्षा करने वाले और विश्वासघात करने वाले के पापों का भी प्रायश्चित्त नहीं है । इसलिए शोभने ! तुम इस महापाप को करने का साहस मत करो । जो यह विपत्तियाँ आई हुई हैं सब दूर हो जायँगी ॥५१-५५॥ मुनि की इन बातों को सुनकर उनके अनुग्रह पर उस साध्वी को विश्वास हुआ । परन्तु दुःख से व्याकुल वह मुनि के चरण पकड़ कर विलाप करने लगी । तब सब शास्त्रों के मर्मज्ञ मुनि और्व पुनः उसको सान्त्वना देते हुए बोले—राजकुमारी ! मत रोओ । तुम भविष्य में कल्याण प्राप्त करोगी । महाभाग्यशालिनी ! आँसू मत बहाओ । देखो, इस समय सज्जनों के आदेशानुसार इस प्रेत की दाह क्रिया करो । तुम लौकिक मोह छोड़कर कालोचित क्रिया करो । मृत्यु पण्डित, मूर्ख, दरिद्र, धनी, आचार-हीन या सदाचारी, नगर में हो या वन में सबको समान दृष्टि से देखती है । यहाँ दैन्य अधिक है, ऐसा मानता हूँ, परन्तु इसमें किसी का दोष नहीं । मनुष्य के जो पूर्वजन्म के कर्म हैं वे ही यहाँ प्राप्त होते हैं । संसार में प्रत्येक कार्य का कारण दैव ही है । मनुष्य केवल निमित्त मात्र या बहाने हैं ॥५६-६१॥ कमल के समान सुन्दर मुख वाली ! चाहे प्राणी गर्भ में रहे या बालक या युवा या बुड्ढा कोई भी हो परन्तु काल वश वह मृत्यु का ग्रास बनता ही है । गोविन्द ही अपने कर्म के बन्धन में बँधे प्राणियों की रक्षा या नाश करते हैं । वे मूर्ख हैं जो निमित्त मात्र बने दूसरों को दोष लगाते हैं । सुव्रते ! इसलिए दुःख को छोड़कर शान्त हो जाओ । अपने विवेक से शान्त होकर पति की अन्त्येष्टि क्रिया करो । अपने कर्म के बन्धनों से बँधा यह शरीर असंख्य व्याधियों से घिरा है । इसको बहुत क्लेश के बाद सुख नहीं प्रत्युत केवल सुख का आभास मिलता है ॥६२-६५॥ इस प्रकार ज्ञानी मुनि ने उसको ढाढस बँधा कर उसके द्वारा सारी प्रेत-क्रिया कराई । स्वयं आश्वासन पाकर इस कोमलाङ्गी रानी ने नम्र होकर मुनीश्वर से कहा—यदि सज्जन परोपकार को ही अपने जीवन का उद्देश्य समझते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? इस भूतल पर वृक्ष स्वयं अपने भोग के लिए नहीं फलते हैं ! जो दूसरों को दुःखी जानकर

योऽन्यदुःखानि विज्ञाय साधुवाक्यैः प्रबोधयेत् । स एव विष्णुस्सत्त्वस्थो यतः परहिते स्थितः ॥६८॥
अन्य दुःखेन यो दुःखी योऽन्यहर्षेण हर्षितः । स एव जगतामीशो नररूपधरो हरिः ॥६९॥
सद्भिः श्रुतानि शास्त्राणि परदुःखविमुक्तये । सर्वेषां दुःखनाशाय इति सन्तो वदन्ति हि ॥७०॥
यत्र सन्तः प्रवर्त्तन्ते तत्र दुःखं न बाधते । वर्तते यत्र मार्तण्डः कथं तत्र तमो भवेत् ॥७१॥
इत्येवं वादिनी सा तु स्वपत्युश्चापराः क्रियाः । चकार तत्सरस्तीरे मुनिप्रोक्तविधानतः ॥७२॥
स्थिते तत्र मुनौ राजा देवराडिव संज्वलन् । चितामध्याद्विनिष्क्रम्य विमानवरमास्थितः ॥
प्रवेदे परमं धाम नत्वा चोर्वं मुनीश्वरम् ॥७३॥
महापातकयुक्ता वा युक्ता वा चोपपातकैः । परं पदं प्रयान्त्येव महद्भिरवलोकिताः ॥७४॥
कलेवरं वा तद्भस्म तद्धूमं वापि सत्तम । यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परां गतिम् ॥७५॥
पत्युः कृतक्रिया सा तु गत्वाश्रमपदं मुनेः । चकार तस्य शुश्रूषां सपत्न्या सह नारद ॥७६॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे गङ्गामाहात्म्यं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अपने उचित और प्रिय वचनों से ढाढस बँधाता है वही मानवरूप में विष्णु हैं, क्योंकि वह परोपकार में लीन हैं ।।६६-६९।। जो दूसरे के दुःख को देखकर दुःखी होता है और सुखी देखकर स्वयं सुखी होता है वह मनुष्य नहीं प्रत्युत मनुष्यरूपधारी संसार का पालक हरि हैं। सज्जनों के मुख से सुने गए शास्त्र दूसरों के दुःख दूर करने में कारण बनते हैं परन्तु सज्जन सबके दुःखों के नाश के कारण होते हैं, ऐसा कहा जाता है। जहाँ सज्जन रहते हैं वहाँ दुःखों से बाधा नहीं पहुँचती; क्योंकि जहाँ स्वयं सूर्य विद्यमान है वहाँ अन्धकार कैसे टिक सकता है ? इस प्रकार मुनि की स्तुति करने के बाद उस रानी ने मुनि की बतायी हुई विधि के अनुसार उस सरोवर के तट पर अपने पति की श्राद्ध-क्रिया सम्पन्न की ।।७०-७२।। उस मुनि की उपस्थिति में ही वह राजा इन्द्र के समान जाज्वल्यमान शरीर धारण कर उस चिता-भस्म से निकला और मुनीश्वर को प्रणाम कर उत्तम विमान पर आरूढ़ होकर परम धाम को चला गया। चाहे महापापी हो या उपपापों का करने वाला हो परन्तु वह सज्जनों की पावन दृष्टि के पड़ते ही परम पद को पा जाता है। सज्जन-श्रेष्ठ ! केवल शव-शरीर, भस्म अथवा चिता धूम को भी यदि सज्जन देख लें तो भी वह मृत प्राणी परम पद को पा जाता है। नारद ! इस प्रकार अपने पति की श्राद्ध क्रिया समाप्त कर वह रानी अपनी सौत के साथ मुनि के आश्रम में गई और मुनि की सेवा में रत रह कर दिन विताने लगी ।।७३-७७।।

श्रीनारदीयमहापुराण में गंगामाहात्म्यप्रकरण में बाहु
का मृत्यु वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।।७।।

अष्टमोऽध्यायः

सनक उवाच

एवमौर्वाश्रमे ते द्वे बाहुभार्ये मुनीश्वर । चक्राते भक्तिभावेन शुश्रूषां प्रतिवासरम् ॥१॥
गते वर्षार्द्धके काले ज्येष्ठा राज्ञी तु या द्विज । तस्याः पापमतिर्जाता सपत्न्याः संपदं प्रति ॥२॥
ततस्तया गरो दत्तः कनिष्ठायै तु पापया । न स्वप्रभावं चक्रे वै गरो मुनिनिषेवया ॥३॥
भूलेपनादिभिः सम्यग्यतः सानुदिनं मुनेः । चकार सेवां तेनासौ जीर्णपुण्येन कर्मणा ॥४॥
ततो मासत्रयेऽतीते गरेण सहितं सुतम् । सुषाव सुशुभे काले शुश्रूषानष्टकिल्बिषा ॥५॥
अहो सत्संगतिर्लोके किं पापं न विनाशयेत् । न ददातिसुखं किं वा नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥६॥
ज्ञानाज्ञानकृतं पापं यच्चान्यत्कारितं परैः । तत्सर्वं नाशयत्याशु परिचर्या महात्मनाम् ॥७॥
जडोऽपि याति पूज्यत्वं सत्संगाज्जगतीतले । कलामात्रोऽपि शीतांशुः शंभुना स्वीकृतो यथा ॥८॥
सत्संगतिः परामृद्धिं ददाति हि नृणां सदा । इहामुत्र च विप्रेन्द्र सन्तः पूज्यतमास्ततः ॥९॥
अहो महद्गुणान्वक्तुं कः समर्थो मुनीश्वर । गर्भं प्राप्तो गरो जीर्णो मासत्रयमहोऽद्भुतम् ॥१०॥

अध्याय ८

गंगा माहात्म्य-वर्णन

सनक बोले--मुनीश्वर ! इस प्रकार राजा बाहु की दोनों स्त्रियाँ आश्रम में प्रति दिन मुनि की सेवा करने लगीं। द्विज ! जब वर्षा ऋतु का आधा भाग बीत गया तब ज्येष्ठ रानी के मन में अपने सौत के प्रति ईर्ष्या जाग उठी। उस पापिनी ने अपनी छोटी गर्भिणी सौत को विष दे दिया। परन्तु मुनि की सेवा के प्रभाव से उस विष का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि वह प्रति दिन (आश्रम में) भली-भाँति भूमिलेपन आदि कार्यों से मुनि की सेवा करती थी। उसी पुण्य के प्रभाव से उसका बाल भी बाँका नहीं हुआ। तत्पश्चात् तीन मास बीत जाने पर उस रानी ने शुभ मुहूर्त्त में गर के (विष के) साथ ही पुत्र को उत्पन्न किया। मुनि की सेवा के कारण उस विष का प्रभाव नष्ट हो चुका था, अतः बालक को किसी प्रकार की हानि नहीं हुई ॥१-५॥ अहो सत्संगति मनुष्य के किस पाप को नष्ट नहीं कर देती है या मनुष्यों को पुण्य कर्मों के फलस्वरूप कौन-सा सुख नही देता है ? महात्माओं की सेवा से जाने अनजाने अथवा दूसरों के द्वारा कराये गये पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इस भूतल पर मूर्ख भी सत्संगति के प्रभाव से पूज्य हो जाता है, जैसे शंभु कला मात्र अवशिष्ट चन्द्रमा को भी स्वीकार करते हैं। सत्संगति मनुष्यों को सर्वदा उत्तम वैभव प्रदान करती हैं। विप्रेन्द्र ! इसीलिए सन्त इस लोक या परलोक में सर्वत्र पूजित होते हैं। मुनीश्वर ! सत्संगति के महान् गुणों का वर्णन कोई कैसे कर सकता है ? क्योंकि तीन महीने तक गर्भ में रहकर भी वह विष प्रभावकर नहीं हुआ प्रत्युत जीर्ण-शीर्ण हो गया, यह आश्चर्य की बात है।

गरेण सहितं पुत्रं दृष्ट्वा तेजोनिधिर्मुनिः । जातकर्म चकारासौ तन्नाम सगरेति च ॥११॥
पुपोष सगरं बालं तन्माता प्रीतिपूर्वकम् । चौलोपवीतकर्माणि तथा चक्रे मुनीश्वरः ॥१२॥
शास्त्राण्यध्यापयामास राजयोग्यानि मंत्रवित् । समर्थं सगरं दृष्ट्वा किंचिदुद्भिन्नशैशवम् ॥१३॥
मन्त्रवत्सर्वशस्त्रास्त्रं दत्तवान्स मुनीश्वरः । सगरः शिक्षितस्तेन सम्यगौर्वर्षिणा मुने ॥१४॥
बभूव बलवान्धर्मी कृतज्ञो गुणवान्सुधीः । धर्मज्ञः सोऽपि सगरो मुनेरमिततेजसः ॥ ॥१५॥
समित्कुशांबुपुष्पादि प्रत्यहं समुपानयत्
स कदाचिद्गुणनिधिः प्रणिपत्य स्वमातरम् । उवाच प्रांजलिर्भूत्वा सगरो विनयान्वितः ॥१६॥

सगर उवाच

मातर्गतः पिता कुत्र किंनामा कस्य वंशजः । तत्सर्वं मे समाचक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम ॥१७॥ ॥१८॥
पित्रा विहीना ये लोके जीवंतोऽपि मृतोपमाः
दरिद्रोऽपि पिता यस्य ह्यास्ते स धनदोपमः । यस्य माता पिता नास्ति सुखं तस्य न विद्यते ॥१९॥
धर्महीनो यथा मूर्खः परत्रेह च निन्दितः । मातापितृविहीनस्य अज्ञस्याप्यविवेकिनः ॥ ॥२०॥
अपुत्रस्य वृथा जन्म ऋणग्रस्तस्य चैव हि
चन्द्रहीना यथा रात्रिः पद्महीनं यथा सरः । पतिहीना यथा नारी पितृहीनस्तथा शिशुः ॥२१॥
धर्महीनो यथा जन्तुः कर्महीनो यथा गृही । पशुहीनो यथा वैश्यस्तथा पित्रा विनार्भकः ॥२२॥
सत्यहीनं यथा वाक्यं साधुहीना यथा सभा । तपो यथा दयाहीनं तथा पित्रा विनार्भकः ॥२३॥

॥६-१०॥ तेजःपुंज मुनि ने जब यह देखा कि उस बालक के साथ गर (विष) भी उत्पन्न हुआ है तब उसका जात कर्म संस्कार करने के बाद 'सगर' नाम रख दिया । उस बालक की माता बालक का पालन करने लगी और उस मुनीश्वर ने चूड़ाकर्म और यज्ञोपवीत संस्कार कराये । उस मन्त्रज्ञ मुनि ने राजाओं के योग्य समस्त शास्त्रों का उपदेश भी कर दिया । जब उस मुनीश्वर ने देखा कि अब यह सगर समर्थ (समझदार) हो गया है कुछ शिशुता भी दूर हो चली है तब उन्होंने मन्त्रपूर्वक सारे अस्त्र-शस्त्र भी सिखा दिये । मुने ! ऋषि और्व ने वटु सगर को भली-भाँति शिक्षा दी । वह बालक सगर भी, मुनि के अमित तेज के प्रभाव से बलवान्, धार्मिक, कृतज्ञ, विद्वान्, गुणी और धर्म का ज्ञाता हुआ । वह प्रति-दिन परम तेजोनिधि मुनि के लिए समिधा, कुश, जल और पुष्प आदि ला दिया करता था । एक दिन वह गुणी बालक माता को प्रणाम करके हाथ जोड़कर नियम पूर्वक अपनी माता से बोला ॥११-१६½॥

सगर ने कहा—माँ ! मेरे पिता कहाँ चले गए ? उनका नाम क्या था ? और वे किसके वंशज थे ? मुझसे सारी बातें कहो, मुझे इन बातों को सुनने के लिए कौतूहल हो रहा है । जो इस संसार में पिता से हीन हैं उनका जीना भी मरने के समान हैं । जिसके पिता जीवित हैं वह दरिद्र होता हुआ भी कुबेर के समान है । जिसके माता और पिता नहीं हैं उसको जीवन में कभी भी सुख नहीं मिलता । जिस प्रकार धर्म रहित अज्ञानी व्यक्ति की इस लोक में और पर लोक में सर्वत्र निन्दा होती है उसी प्रकार उस अविवेकी मूर्ख की भी निन्दा होती है जो माता-पिता से हीन है । ॥१७-२०॥ जिस ऋण के भार से दबे और पुत्र से रहित व्यक्ति का जन्म व्यर्थ है । जिस प्रकार चन्द्र से शून्य रात्रि की, कमल से हीन सरोवर की और पति हीन नारी की शोभा नहीं होती उसी प्रकार पिता से हीन बालक की भी शोभा नहीं होती । जिस प्रकार धर्म से विमुख प्राणी, कर्मच्युत गृहस्थ और पशु से हीन कृषक का जीवन निरर्थक है उसी प्रकार बालक पिता के बिना निरर्थक है । जिस प्रकार सत्य से हीन वाक्य,

वृक्षहीनं यथारण्यं जलहीना यथा नदी । वेगहीनो यथा वाजी तथा पित्रा विनार्भकः ॥२४॥
यथा लघुतरो लोके मातर्याचकापरो नरः । तथा पित्रा विहीनस्तु बहुदुःखान्वितः सुतः ॥२५॥
इतीरितं सुतेनैषा श्रुत्वा निःश्वस्य दुःखिता । संपृष्टं तद्यथावृत्तं सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥२६॥
तच्छ्रुत्वा सगरः क्रुद्धः कोपसंरक्तलोचनः । हनिष्यामीत्यरातीन्स प्रतिज्ञामकरोत्तदा ॥२७॥
प्रदक्षिणीकृत्य मुनिं जननीं च प्रणम्य सः । प्रस्थापितः प्रतस्थे च तेनैव मुनिना तदा ॥२८॥
और्वाश्रमाद्विनिष्क्रान्तः सगरः सत्यवाक् शुचिः । वशिष्ठं स्वकुलाचार्यं प्राप्तः प्रीतिसमन्वितः ॥२९॥
प्रणम्य गुरवे तस्मै वशिष्ठाय महात्मने । सर्वं विज्ञापयामास ज्ञानदृष्ट्या विजानते ॥३०॥
ऐन्द्रास्त्रं वारुणं ब्राह्ममाग्नेयं सगरो नृपः । तेनैव मुनिनाऽवाप खड्गं वज्रोपमं धनुः ॥३१॥
ततस्तेनाभ्यनुज्ञातः सगरः सौमनस्यवान् । आशीर्भिरर्चितः सद्यः प्रतस्थे प्रणिपत्य तम् ॥३२॥
एकेनैव तु चापेन स शूरः परिपन्थिनः । सपुत्रपौत्रान्सगणानकरोत्स्वर्गवासिनः ॥३३॥
तच्चापमुक्तबाणाग्निसंतप्तास्तदरातयः । केचिद्विनष्टा संत्रस्तास्तथा चान्ये प्रदुद्रुवुः ॥३४॥
केचिद्विशीर्णकेशाश्च वल्मीकोपरि संस्थिताः । तृणान्यभक्षयन्केचिन्नग्नाश्च विविशुर्जलम् ॥३५॥
शकाश्च यवनाश्चैव तथा चान्ये महीभृतः । सत्वरं शरणं जग्मुर्वशिष्ठं प्राणलोलुपाः ॥३६॥
जितक्षितिर्बाहुपुत्रो रिपून्गुरुसमीपगान् । चारैर्विज्ञातवान्सद्यः प्राप्तश्चाचार्यसन्निधिम् ॥३७॥

सज्जनों से हीन सभा, करुणा से हीन तपस्या की कुछ भी सार्थकता नहीं उसी प्रकार पिता से रहित बालक का जीवन निरर्थक है। जिस प्रकार वृक्ष विहीन वन, जल हीन नदी, वेग हीन (विना चाल के) अश्व का कुछ भी मूल्य नहीं उसी प्रकार उस बालक का कुछ भी महत्त्व नहीं जिसके पिता का कुछ पता न हो। माता! जिस प्रकार याचक का जीवन संसार में तुच्छ है उसी प्रकार पितृ विहीन बालक का जीवन दुःखों से ही घिरा रहता है। ॥२१-२५॥ बालक सगर की उपर्युक्त बातों को सुनकर माता अत्यन्त दुःखी हुई। उसने लम्बी साँस लेकर जैसा पुत्र ने प्रश्न किया था तदनुरूप सारी घटना कह सुनाई। सारी घटनायें सुन कर सगर क्रुद्ध हो उठा। उसके नेत्र क्रोध से लाल हो गए। उसने तत्काल शत्रुओं के मारने की प्रतिज्ञा की। तदनन्तर वह मुनि और माता की प्रदक्षिणा कर उसी मुनि की आज्ञा और योजना के अनुसार वहाँ से चल पड़ा। सत्यवादी और पवित्र वह सगर मुनि और्व के आश्रम को छोड़कर कुल गुरु वशिष्ठ के आश्रम में आया। स्वकुलाचार्य गुरु के आश्रम को देखकर उसको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥२६-२९॥

गुरु को प्रणाम कर उसने ज्ञान दृष्टि से सब कुछ जान लेने वाले गुरु वशिष्ठ से सारी कथा कह दी। गुरु के अनुग्रह से राजा सगर ने उसी गुरु मुनि से ऐन्द्र, वारुण, ब्राह्म और आग्नेयास्त्र भी प्राप्त कर लिया और उसी मुनि से उसने एक खड्ग और वज्र के समान एक धनुष भी प्राप्त किया। तदनन्तर गुरु का आशीर्वाद पाकर मनस्वी सौम्य सगर तत्क्षण गुरु को प्रणाम कर उनकी कृपा का वरदान प्राप्त कर शत्रु संहार के लिए चल पड़ा। उसी एक धनुष से उस शूर ने अपने सभी शत्रुओं को कुटुम्ब सहित यमलोक पहुँचा दिया ॥३०-३३॥ उसके धनुष से छूटे हुए बाणों की ज्वाला से कितने शत्रु नष्ट हो गए, कुछ भयत्रस्त हो गए और कितने तो देश छोड़कर भाग निकले। कितने शिर केश मुँड़वा कर डर के मारे वल्मीक पर जा बैठे, कितने शत्रुओं ने दाँतों तले तृण रखकर अधीनता स्वीकार की और कुछ नंगे होकर जल में छिप गए। प्राण रक्षा के लाभ से कितने शक, यवन एवं अन्य दूसरे राजा शीघ्र गुरु वसिष्ठ की शरण में गए। बाहु-पुत्र सगर ने जब सारी पृथ्वी जीत ली तब वह गुप्तचरों के द्वारा यह जान कर कि आचार्य वसिष्ठ के समीप शत्रु छिपे हुए हैं शीघ्र गुरु के समीप पहुँचा। मुनि वसिष्ठ ने

समागतं बाहुसुतं निशम्य मुनिर्वशिष्ठः शरणागतांस्तान्
त्रातुं च शिष्याभिहितं च कर्तुं विचारयामास तदा क्षणेन ॥३८॥
चकार मुण्डाञ्शबरान्यवनाँल्लम्बमूर्द्धजान् । अन्धांश्च श्मश्रुलान्सर्वान्मुण्डान्वेदबहिष्कृतान् ॥३९॥
वसिष्ठमुनिना तेन हतप्रायान्निरीक्ष्य सः । प्रहसन्प्राह सगरः स्वगुरुं तपसो निधिम् ॥४०॥

सगर उवाच

भो भो गुरो दुराचारानेतान्रक्षसि तान्वृथा । सर्वथाहं हनिष्यामि मत्पितुर्देशहारकान् ॥४१॥
उपेक्षेत समर्थः सन्धर्मस्य परिपन्थिनः । स एव सर्वनाशाय हेतुभूतो न संशयः ॥४२॥
बाधन्ते प्रथमं मत्ता दुर्जनाः सकलं जगत् । त एव बलहीनाश्चेद्भजन्तेऽत्यन्तसाधुताम् ॥४३॥
अहो मायाकृतं कर्म खलाः कश्मलचेतसः । तावत्कुर्वन्ति कार्याणि यावत्स्यात्प्रबलं बलम् ॥४४॥
दासभावं च शत्रूणां वारस्त्रीणां च सौहृदम् । साधुभावं च सर्पाणां श्रेयस्कामो न विश्वसेत् ॥४५॥
प्रहासं कुर्वते नित्यं यान्दन्तान्दर्शयन्खलाः । तानेव दर्शयन्त्याशु स्वसामर्थ्यविपर्यये ॥४६॥
पिशुना जिह्वया पूर्वं परुषं प्रवदन्ति च । अतीव करुणं वाक्यं वदन्त्येव तथाबलाः ॥४७॥
श्रेयस्कामो भवेद्यस्तु नीतिशास्त्रार्थकोविदः । साधुत्वं समभावं च खलानां नैव विश्वसेत् ॥४८॥
दुर्जनं प्रणतिं यान्तं मित्रं कैतवशीलिनम् । दुष्टां भार्यां च विश्वस्तो मृत एव न संशयः ॥४९॥
मा रक्ष तस्मादेतान्वै गोरूपव्याघ्रकर्मिणः । हत्वैतानखिलान् दुष्टांस्त्वत्प्रसादान्महीं भजे ॥५०॥
वशिष्ठस्तद्वचः श्रुत्वा सुप्रीतो मुनिसत्तमः । कराभ्यां सगरस्याङ्गं स्पृशन्निदमुवाच ह ॥५१॥

बाहु पुत्र सगर का आश्रम में आना सुना तो शीघ्र ही शरणागत शत्रुओं की रक्षा का उपाय और शिष्य की प्रार्थना का उत्तर सोच निकाला। लम्बे-लम्बे केश रखने वाले शबर और यवनों के बाल मुँड़वा दिये और वेद विमुख उन दाढ़ी रखने वाले अन्धों की दाढ़ी मुँड़वा कर मुण्डो बना दिया। मुनि वशिष्ठ द्वारा शत्रुओं की यह दशा देखकर राजा ने उनको मरा सा समझ लिया और हँसकर तपोनिधि गुरु वसिष्ठ से कहा ॥३४-४०॥

सगर बोला—हे गुरुदेव! आप इन दुराचारी शत्रुओं की क्यों व्यर्थ में रक्षा कर रहे हैं? मेरे पिता का सर्वस्व अपहरण करने वाले इन शत्रुओं को अवश्य मारूँगा। जो समर्थ होते हुए भी धर्मद्रोही शत्रुओं की उपेक्षा करता है अन्त में वे ही शत्रु उसके सर्वनाश का कारण बनते हैं। (बल से) उन्मत्त दुर्जन व्यक्ति पहले तो सारे संसार को कष्ट पहुँचाते हैं, पर बलहीनदशा में वे ही अत्यन्त साधु बन जाते हैं। अहो! दुष्ट हृदय पामर जनों की विचित्र माया है। वे तब तक ही अच्छे कार्य करते हैं जब तक उनकी शक्ति नहीं बढ़ जाती है। कल्याणेच्छु व्यक्ति को शत्रुओं के दास-भाव, वेश्याओं की सहृदयता और साँपों की सरलता पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए ॥४१-४५॥ दुष्ट जन विभव-काल में जिन दाँतों को दिखाकर (अट्टहास कर) दूसरों की हँसी उड़ाते हैं, हीन दशा आ जाने पर उन्हीं दाँतों को दिखाकर अपनी दीनता को दिखाते हैं। धूर्त शत्रु जिस जिह्वा से पहले बढ़-चढ़ कर बातें करते हैं, निर्बल हो जाने पर उसी जीभ से करुण वाक्य बोलते हैं। जो श्रेय चाहने वाले व्यक्ति नीति कुशल होते हैं वे दुष्टों के साधुभाव और उनके सौम्य व्यवहार पर कभी भी विश्वास नहीं करते हैं। नम्र होने वाले शत्रु, कपट परायण मित्र एवं दुष्ट भार्या पर जो विश्वास करता है, वह मरा हुआ ही है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥४६-४९॥ इसलिए गुरुदेव! आप इन बाघ के समान हिंसक परन्तु इस समय गाय के समान दीन शत्रुओं की रक्षा मत कीजिए। आज मैं आपकी कृपा से इन दुष्टों का बधकर सम्पूर्ण पृथ्वी का उपभोग करूँगा। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ शिष्य की नीतियुक्त बातों को सुनकर प्रसन्न हो गए और हाथ से सगर के अंगों को स्नेहपूर्वक सहलाते हुए यह बोले ॥५०-५१॥

वसिष्ठ उवाच

साधु साधु महाभाग सत्यं वदसि सुव्रत । तथापि मद्वचः श्रुत्वा परां शान्ति लभिष्यसि ॥५२॥
मयैते निहताः पूर्वं त्वत्प्रतिज्ञाविरोधिनः । हतानां हनने कीर्तिः का समुत्पद्यते वद ॥५३॥
भूमीश जन्तवः सर्वे कर्मपाशेन यन्त्रिताः । तथापि पापैर्निहताः किमर्थं हंसि तान्पुनः ॥५४॥
देहस्तु पापजनितः पूर्वमेवैनसा हतः । आत्मा ह्यभेद्यः पूर्णत्वाच्छास्त्राणामेष निश्चयः ॥५५॥
स्वकर्मफलभोगानां हेतुमात्रा हि जन्तवः । कर्माणि दैवमूलानि दैवाधीनमिदं जगत् ॥५६॥
यस्माद्दैवं हि साधूनां रक्षिता दुष्टशिक्षिता । ततो नरैरस्वतन्त्रैः किं कार्यं साध्यते वद ॥५७॥
शरीरं पापसंभूतं पापेनैव प्रवर्तते । पापमूलमिदं ज्ञात्वा कथं हन्तुं समुद्यतः ॥५८॥
आत्मा शुद्धोऽपि देहस्थो देहीति प्रोच्यते बुधैः । तस्मादिदं वपुर्भूप पापमूलं न संशयः ॥५९॥
पापमूलवपुर्हन्तुः का कीर्तिस्तव बाहुज । भविष्यतीति निश्चित्य नैतान्हिंसीस्ततः सुत ॥६०॥
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं विरराम स कोपतः । स्पृशन्करेण सगरं नन्दनं मुनयस्तदा ॥६१॥
अथाथर्वनिधिस्तस्य सगरस्य महात्मनः । राज्याभिषेकं कृतवान्मुनिभिः सह सुव्रतैः ॥६२॥
भार्याद्वयं च तस्यासीत्केशिनी सुमतिस्तथा । काश्यपस्य विदर्भस्य तनये मुनिसत्तम ॥६३॥
राज्ये प्रतिष्ठिते दृष्ट्वा मुनिरौर्वस्तपोनिधिः । वनादागत्य राजानं संभाष्य स्वाश्रमं ययौ ॥६४॥
कदाचित्तस्य भूपस्य भार्याभ्यां प्रार्थितो मुनिः । वरं ददावपत्यार्थमौर्वो भार्गवमन्त्रवित् ॥६५॥

वशिष्ठ बोले—महाभाग ! धन्य हो धन्य हो ! सुव्रत ! ठीक हो कह रहे हो। फिर भी मेरी बातों को सुनो, तुमको परम शान्ति मिलेगी। तुम्हारी प्रतिज्ञा के विरुद्ध आचरण करने वाले इन शत्रुओं को तो मैंने पहले ही मार डाला है। सोचो तो सही इन जीवन हीनों को पुनः मारने से कौन सा यश प्राप्त करोगे। भूपति ! सब प्राणी अपने कर्मों के बन्धन से बँधे हुए हैं। इसके अतिरिक्त ये अपने पापों से स्वयं मार डाले गए हैं। अब पुनः इनको क्यों मारना चाहते हो ? पाप से प्राप्त शरीर तो पापों के कारण पहले ही नष्ट हो गया, केवल आत्मा अभिन्न अविनाशी है, ऐसा शास्त्रों का एकमात्र निर्णय है। ये प्राणी तो अपने पूर्व कृत कर्मों को भोगने के लिए एक निमित्त मात्र हैं, कर्म दैव के अधीन हैं। इस प्रकार यह सारा जगत् दैवाधीन है ॥५२-५६॥ यतः दैव ही साधुओं का रक्षक और दुष्टों को शिक्षा देने वाला है अतः दैवाधीन, परतन्त्र मनुष्य क्या कर सकते हैं, यह बताओ। यह शरीर पाप से ही उत्पन्न हुआ है और पाप की प्रेरणा से ही प्रत्येक कार्यों को करता है तो इन सम्पूर्ण कार्य कलापों को पाप पर ही आश्रित समझ कर क्यों इनका वध करने पर तुले हुए हो ? शुद्ध-बुद्ध होता हुआ भी यह आत्मा देहस्थ होने के कारण विद्वानों द्वारा देही (शरीर वाला) कहा जाता है। इसलिए भूपाल ! यह शरीर ही पापों का मूल है इसमें कुछ सन्देह नहीं। बाहुतनय ! इस पाप मूल शरीर को मारकर तुम कौन सी कीर्ति प्राप्त करोगे ? यह सोच समझ कर तुम निश्चय कर लो, तब इनको मारो ॥५७-६०॥ गुरु की इन बातों को सुनकर वह सगर क्रोध से विरत हो गया। शिष्य की शान्ति मुद्रा को देखकर मुनि अपने प्रिय शिष्य के अंगों का स्नेह से स्पर्श करने लगे। इसके पश्चात् अथर्ववेद के ज्ञाता गुरु ने तपस्वी मुनियों के सहयोग से उस महात्मा सगर का राज्याभिषेक किया। मुनिश्रेष्ठ ! उस राजा की दो स्त्रियाँ थीं। एक का नाम केशिनी और दूसरी का नाम सुमति था। दोनों विदर्भ नरेश काश्यप की कन्या थीं। तपोनिधि मुनि और्व राजा सगर को राज्यासन पर प्रतिष्ठित जानकर वन से आये और उसको उपदेश देकर अपने आश्रम को लौट गए ॥६१-६४॥ किसी समय उन दोनों राजपत्नियों ने पुत्र कामना से और्व मुनि को प्रार्थनापूर्वक बुलाया।

क्षणं ध्यानस्थितो भूत्वा त्रिकालज्ञो मुनीश्वरः। केशिनीं सुमतिं चैव इदमाह प्रहर्षयन् ॥६६॥

और्व उवाच

एका वंशधरं चैकमन्या षड्युतानि च। अपत्यार्थं महाभागे वृणुतां च यथेप्सितम् ॥६७॥
अथ श्रुत्वा वचस्तस्य मुनेरौर्वस्य नारद। केशिन्येकं सुतं वव्रे वंशसन्तानकारणम् ॥६८॥
तथा षष्टिसहस्राणि सुमत्या ह्यभवन्सुताः। नाम्नासमंजाः केशिन्यास्तनयो मुनिसत्तम ॥६९॥
असमंजास्तु कर्माणि चकारोन्मत्तचेष्टितः। तं दृष्ट्वा सागराः सर्वे ह्यासन्दुर्वृत्तचेतसः ॥७०॥
तद्बालभावं संदुष्टं ज्ञात्वा बाहुसुतो नृपः। चिन्तयामास विधिवत्पुत्रकर्म विगर्हितम् ॥७१॥
अहो कष्टतरा लोके दुर्जनानां हि संगतिः। कारुकैस्ताड्यते वह्निरयःसंयोगमात्रतः ॥७२॥
अंशुमान्नाम तनयो बभूव ह्यसमंजसः। शास्त्रज्ञो गुणवान्धर्मी पितामहहिते रतः ॥७३॥
दुर्वृत्ताः सागराः सर्वे लोकोपद्रवकारिणः। अनुष्ठानवतां नित्यमन्तराया भवन्ति ते ॥७४॥
हुतानि यानि यज्ञेषु हवींषि विधिवद्द्विजैः। बुभुजे तानि सर्वाणि निराकृत्य दिवौकसः ॥७५॥
स्वर्गादाहृत्य सततं रम्भाद्या देवयोषितः। भजन्ति सागरास्ता वै कचग्रहबलात्कृताः ॥७६॥
पारिजातादिवृक्षाणां पुष्पाण्याहृत्य ते खलाः। भूषयंति स्वदेहानि मद्यपानपरायणाः ॥७७॥
साधुवृत्तीः समाजह्रुः सदाचाराननाशयन्। मित्रैश्च योद्धुमारब्धा बलिनोऽत्यन्तपापिनः ॥७८॥
एतद्दृष्ट्वातिदुःखार्ता देवा इंद्रपुरोगमाः। विचारं परमं चक्रुरेतेषां नाशहेतवे ॥७९॥
निश्चित्य विबुधाः सर्वे पातालान्तरगोचरम्। कपिलं देवदेवेशं ययुः प्रच्छन्नरूपिणः ॥८०॥

भार्गव मंत्र के ज्ञाता मुनि ने उन दोनों को पुत्र प्राप्ति का वर दिया। क्षण भर ध्यान मग्न होकर त्रिकालज्ञ मुनि ने केशिनी और सुमति को प्रसन्न करते हुए कहा ॥६५-६६॥

और्व बोले—महाभागे ! एक को वंश बढ़ाने वाला एक पुत्र और दूसरे को साठ हजार बलशाली पुत्र होंगे, इनमें से इच्छानुसार वरदान स्वयं स्वीकार कर लो। नारद ! जितेन्द्रिय और्व मुनि की आज्ञा को सुनकर केशिनी ने वंश विस्तार करने वाले एक पुत्र होने का वर माँगा। और सुमति के साठ हजार पुत्र हुए। मुनिश्रेष्ठ ! केशिनी के पुत्र का नाम असमंजस् रखा गया। असमंजस् अपने राजमद के कारण अनर्थाचरण करने लगा। उसके अनुचित कार्यों को देखकर सगर के और पुत्र भी उपद्रवी हो गए। बाहुसुत राजा सगर पुत्रों की यह स्थिति देखकर उनके बुरे कर्मों पर विचार करने लगा। 'अहो ! दुर्जनों की संगति संसार में अत्यन्त कष्टप्रद है; क्योंकि लोहे की छेनी के पा जाने से ही शिल्पी पत्थर पर चोट मारता और अग्नि उत्पन्न करता है ॥६७-७२॥ असमंजस् के अंशुमान् नामक पुत्र हुआ जो अत्यन्त गुणी, शास्त्रज्ञ, धार्मिक और पितामह की सेवा में लगा रहता था। इधर वे दुष्ट सगर-पुत्र लोक में उपद्रव मचाने लगे, नित्यप्रति यज्ञ करने वाले याज्ञिकों के यज्ञानुष्ठान में बाधा डालने लगे। द्विजगण यज्ञों में विधिपूर्वक जो कुछ हवन करते थे, उसको देवताओं का अनादर करके वे दुष्ट स्वयं खा जाते थे। स्वर्ग से रम्भा आदि अप्सराओं को केश पकड़ कर हठात् खींच लाते थे और उनका यथेच्छ भोग करते थे। वे दुष्ट मद्यपान कर मतवाले रहते थे पारिजात आदि देव वृक्षों के फूल तोड़ लाते थे और उससे अपने को सजाते थे ॥७३-७७॥ साधु आचरण सर्वथा लुप्त हो गए, सदाचार का उन दुष्टों ने नाश कर दिया। अत्यन्त पापी और बली वे मित्रों से ही युद्ध करने लगे। यह अनर्थ देखकर इन्द्र आदि प्रमुख देवता दुःख से कातर हो उठे और उन दुष्टों के नाश के उपाय सोचने लगे। आपस में विचार विनिमय कर वे देवता गुप्त रूप से पाताल में निवास करने वाले कपिल मुनि के पास गए, जो परम आनन्द के

ध्यायन्तमात्मनात्मानं परानंदैकविग्रहम् । प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तुष्टुवुस्त्रिदशास्ततः ॥८१॥

देवा ऊचुः

नमस्ते योगिने तुभ्यं साङ्ख्ययोगरताय च । नररूपप्रतिच्छन्नविष्णवे जिष्णवे नमः ॥८२॥
नमः परेशभक्ताय लोकानुग्रहहेतवे । संसारारण्यदावाग्ने धर्मपालनसेतवे ॥८३॥
महते वीतरागाय तुभ्यं भूयो नमो नमः । सागरैः पीडितानस्मांस्त्रायस्व शरणागतान् ॥८४॥

कपिल उवाच

ये तु नाशमिहेच्छंति यशोबलधनायुषाम् । त एव लोकान्बाधन्ते नात्राश्चर्यं सुरोत्तमाः ॥८५॥
यस्तु बाधितुमिच्छेय जनान्निरपराधिनः । तं विद्यात्सर्वलोकेषु पापभोगरतं सुराः ॥८६॥
कर्मणा मनसा वाचा यस्त्वन्यान्बाधते सदा । तं हन्ति दैवमेवाशु नात्र कार्या विचारणा ॥८७॥
अल्पैरहोभिरेवैते नाशमेष्यन्ति सागराः । इत्युक्ते मुनिना तेन कपिलेन महात्मना ।
प्रणम्य तं यथान्यायं गता नाकं दिवौकसः ॥८८॥
अत्रान्तरे तु सगरो वसिष्ठाद्यैर्महर्षिभिः । आरेभे हयमेधाख्यं यज्ञं कर्तुमनुत्तमम् ॥८९॥
तद्यज्ञे योजितं सप्तिमपहृत्य सुरेश्वरः । पाताले स्थापयामास कपिलो यत्र तिष्ठति ॥९०॥
गूढविग्रहशक्रेण हृतमश्वं तु सागराः । अन्वेष्टुं बभ्रमुर्लोकान् भूरादींश्च सुविस्मिताः ॥९१॥
अदृष्टसप्तयस्ते च पातालं गन्तुमुद्यताः । चख्नुर्महीतलं सर्वमेकैको योजनं पृथक् ॥९२॥
मृत्तिकां खनितां ते चोदधितीरे समाकिरन् । तद्द्वारेण गताः सर्वे पातालं सगरात्मजाः ॥९३॥

एकमात्र आधार परमात्मा के ध्यान में निमग्न थे। यह देखकर देवताओं ने साष्टांग दण्डवत् किया और स्तुति करने लगे ॥७८-८१॥

देवगण बोले—सांख्य योग में सर्वदा लीन रहने वाले तुम योगेश्वर को नमस्कार है। नर रूप में गुप्त रूप से रहने वाले जयशील विष्णु को नमस्कार है। परम प्रभु के भक्त, लोक पर अनुग्रह करने वाले, संसाररूपी अरण्य में, जो माया मोह रूपी अधर्म की दावाग्नि से जल रहा है, केवल स्वयं धर्म की प्रतिष्ठा करने वाले मुनि को नमस्कार है। तुम वीतराग महान् मुनि को बार-बार नमस्कार है। महामुनि ! सगर के पुत्रों से त्रस्त पीड़ित अपने इन शरणागत भक्तों की रक्षा कीजिए ॥८२-८४॥

कपिल बोले—सुरोत्तमवृन्द ! जो अपने यश, बल, धन और आयु का नाश चाहते हैं वे ही लोक को पीड़ा पहुँचाते हैं, अतः आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है। देवगण ! जो निरपराध प्राणियों को बाधा पहुँचाना चाहता है, उसे सब लोकों में पाप-भोग करने में निरत समझना चाहिए। जो सर्वदा पूज्यों को मन, वचन और कर्म से पीड़ा पहुँचाते हैं उनको शीघ्र दैव विनष्ट कर देता है, इसमें शंका नहीं करनी चाहिए। ये सगर-पुत्र थोड़े दिनों में ही नष्ट हो जायेंगे, उस महात्मा कपिल मुनि की बातों को सुनकर वे देववृन्द यथोचित रीति से मुनि को प्रणाम कर स्वर्ग चले गये ॥८५-८८॥ इसी बीच राजा सगर वशिष्ठ आदि महर्षियों की अनुज्ञा से परमोत्तम अश्वमेध यज्ञ करने लगे। उस यज्ञ में अभिषिक्त अश्व को देवेन्द्र गुप्त रूप से चुराकर पाताल में जहाँ कपिल मुनि रहते थे, बाँध आये। यह देखकर सगर-पुत्र परम विस्मित हुए और पृथ्वी आदि लोकों को घोड़े का पता पाने के लिए छान डाले। घोड़े का पता न पाकर वे पाताल लोक जाने की तैयारी करने लगे। पृथक्-पृथक् एक-एक योजन भूतल को खोद कर खोदी हुई मिट्टी को समुद्र तट पर फैला दिया। उसी विवर द्वार से वे उद्धत सगर पुत्र पाताल में पहुँच गए ॥८९-९३॥ वहाँ मदोन्मत्त की भाँति विवेक को तिलाञ्जलि

विचिन्वन्ति हयं तत्र मदोन्मत्ता विचेतसः । तत्रापश्यन्महात्मानं कोटिसूर्यसमप्रभ ॥९४॥
कपिलं ध्याननिरतं वाजिनं च तदन्तिके ॥९५॥
ततः सर्वे तु संरब्धा मुनिं दृष्ट्वाऽतिवेगतः । हन्तुमुद्युक्तमनसो विद्रवन्तः समासदन् ॥९६॥
हन्यतां हन्यतामेव वध्यतां वध्यतामयम् । गृह्यतां गृह्यतामाशु इत्युचुस्ते परस्परम् ॥९७॥
हृताश्वं साधुभावेन बकवद्ध्यानतत्परम् । सन्ति चाहो खला लोके कुर्वन्त्याडम्बरं महत् ॥९८॥
इत्युच्चरन्तो जहसुः कपिलं ते मुनीश्वरम् । समस्तेंद्रियसंदोहं नियम्यात्मानमात्मनि ॥९९॥
आस्थितः कपिलस्तेषां तत्कर्म ज्ञातवान्नहि ॥१००॥
आसन्नमृत्यवस्ते तु विनष्टमतयो मुनिम् । पद्भिः संताडयामासुर्बाहू च जगृहुः परे ॥१०१॥
ततस्त्यक्तसमाधिस्तु स मुनिर्विस्मितस्तदा । उवाच भावगम्भीरं लोकोपद्रवकारिणः ॥१०२॥
ऐश्वर्यमदमत्तानां क्षुधितानां च कामिनाम् । अहंकारविमूढानां विवेको नैव जायते ॥१०३॥
निधेराधारमात्रेण मही ज्वलति सर्वदा । तदेव मानवा भुक्त्वा ज्वलंतीति किमद्भुतम् ॥१०४॥
किमत्र चित्रं सुजनं बाधन्ते यदि दुर्जनाः । महीरुहांश्चानुतटे पातयन्ति नदीरयाः ॥१०५॥
यत्र श्रीर्यौवनं वापि शारदा वापि तिष्ठति । तत्राश्रीवृद्धता नित्यं मूर्खत्वं चापि जायते ॥१०६॥
अहो कनकमाहात्म्यमाख्यातुं केन शक्यते । नामसाम्यादहो चित्रं धत्तूरोऽपि मदप्रदः ॥१०७॥
भवेद्यदि खलस्य श्रीः सैव लोकविनाशिनी । यथा सखाग्नेः पवनः पन्नगस्य यथा विषम् ॥१०८॥
अहो धनमदान्धस्तु पश्यन्नपि न पश्यति । यदि पश्यत्यात्महितं स पश्यति न संशयः ॥१०९॥

देकर यज्ञाश्व को ढूंढ़ने लगे । वहाँ उन मूढ़ों ने करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी ध्यान-मग्न कपिल मुनि को देखा जिनके पास ही वह अश्व बँधा था । तदनन्तर उस मुनि को देखकर वे क्रोध से पागल हो गए और बड़े वेग से उनको मारने की इच्छा से मुनि को ओर दौड़ पड़े और परस्पर इसको मारो मारो, पकड़ो पकड़ो, आदि अनुचित बातें कह कर चिल्लाने लगे । आश्चर्य है कि संसार में खल लोग व्यर्थ के महान् आडम्बर फैलाये रखते हैं ॥९४-९८॥ यह खल भी स्वयं घोड़े को चुराकर बक ध्यान लगाए हुए है, ऐसी कटु बातें कहकर उस कपिल मुनि की, जो समस्त इन्द्रियों को आत्मा के वश में कर ध्यान मग्न थे, खिल्ली उड़ाने लगे । मुनि तो ध्यानमग्न थे । उन्होंने इन दुष्टों के अपकर्मों को सर्वथा न जाना; परन्तु वे दुर्बुद्धि, जिनके शिर पर मौत नाच रही थी, उस मुनि को पैरों से मारने लगे और कुछ लोगों ने उनके हाथ पकड़ लिए । तदनन्तर मुनि की समाधि भङ्ग हुई और उनको आश्चर्य हुआ । तब उन्होंने गम्भीर मुद्रा धारण कर, संसार में उपद्रव मचाने वाले उन राजपुत्रों से कहा—ऐश्वर्य के मद में चूर, भूख से व्याकुल, कामार्त्त और अहंकार के कारण ज्ञान-शून्य व्यक्तियों को विवेक बुद्धि नहीं रह जाती है । निधि के धारण मात्र से पृथ्वी सर्वदा जलती रहती है । उसी निधि का उपभोग कर यदि मनुष्य भी जलता है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं ॥९९-१०४॥ यदि दुर्जन व्यक्ति सज्जनों को पीड़ा पहुँचाते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? नदी के वेग तटवर्ती वृक्षों को तो सर्वदा गिराते ही रहते हैं । जहाँ सम्पत्ति, यौवन अथवा सरस्वती रहती है वहीं दरिद्रता वृद्धता और मूर्खता भी होती है । अहो ! इस कनक (सुवर्ण) की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ? क्योंकि केवल नाममात्र की समता से धतूरा (कनक) भी मद उत्पन्न कर देता है । यदि मूर्खों को धन मिल जाता है तो वह लोक-नाश का कारण बनता है, जिस प्रकार अग्नि अपने सहायक वायु और सर्प विष को पाकर लोक को कष्ट पहुँचाने वाले हो जाते हैं । अहो ! धन के मद से अन्धा व्यक्ति नेत्र रहते हुए भी नहीं देख पाता है । यदि वह आत्महित की ओर ध्यान देता है तो अवश्य

इत्युक्त्वा कपिलः क्रुद्धो नेत्राभ्यां ससृजेऽनलम् । स वह्निः सागरान्सर्वान्भस्मसादकरोत्क्षणात् ११०॥
यन्नेत्रजानलं दृष्ट्वा पातालतलवासिनः । अकालप्रलयं मत्वा चुक्रुशुः शोकलालसाः ॥१११॥
तदग्नितापिता सर्वे दन्दशूकाश्च राक्षसाः । सागरं विविशुः शीघ्रं सतां कोपो हि दुःसहः ॥११२॥
अथ तस्य महीपस्य समागम्याध्वरं तदा । देवदूत उवाचेदं सर्वं वृत्तं हि यक्षते ॥११३॥
एतत्समाकर्ण्य वचः सगरः सर्ववित्प्रभुः । दैवेन शिक्षिता दुष्टा इत्युवाचाति हर्षितः ॥११४॥
माता वा जनको वापि भ्राता वा तनयोऽपि वा । अधर्मं कुरुते यस्तु स एव रिपुरिष्यते ॥११५॥
यस्त्वधर्मेषु निरतः सर्वलोकविरोधकृत् । तं रिपुं परमं विद्याच्छास्त्राणामेष निर्णयः ॥११६॥
सगरः पुत्रनाशेऽपि न शुशोच मुनीश्वर ! । दुर्वृत्तनिधनं यस्मात्सतामुत्साहकारणम् ॥११७॥
यज्ञेष्वनधिकारत्वादपुत्राणामिति स्मृतेः । पौत्रं तमंशुमन्तं हि पुत्रत्वे कृतवान्प्रभुः ॥११८॥
असमञ्जस्सुतं तं तु सुधियं वाग्विदांवरम् । युयोज सारविद्भूयो ह्यश्वानयनकर्मणि ॥११८॥
स गतस्तद्बिलद्वारे दृष्ट्वा तं मुनिपुङ्गवम् । कपिलं तेजसां राशिं साष्टाङ्गं प्रणनाम ह ॥१२०॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनयेनाग्रतः स्थितः । उवाच शान्तमनसं देवदेवं सनातनम् ॥१२१॥

अंशुमानुवाच

दौःशील्यं यत्कृतं ब्रह्मन्मत्पितृव्यैः क्षमस्व तत् । परोपकारनिरताः क्षमासारा हि साधवः ॥१२२॥
दुर्जनेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः । नहि संहरते ज्योत्स्नां चंद्रश्चांडालवेश्मनः ॥१२३॥
बाध्यमानोऽपि सुजनः सर्वेषां सुखकृद्भवेत् । ददाति परमां तुष्टिं भक्ष्यमाणोऽमरैः शशी ॥१२४॥

वह देखता है ॥९९-१०९॥ यह कहकर कपिल मुनि ने क्रुद्ध होकर अपने नेत्रों से महानल उत्पन्न किया जिसने तत्काल उन सगर पुत्रों को जला कर भस्म कर दिया। उस ऋषि के नेत्रों से उत्पन्न उस अग्नि को देखकर सभी पातालवासी प्राणी अकाल प्रलय समझ कर शोकमग्न होकर हाहाकार करने लगे। उस अग्नि की ज्वाला से दग्ध होकर सभी नाग और राक्षस शीघ्र ही समुद्र में घुस गए क्योंकि सज्जनों का कोप सबके लिए दुःसह होता है ॥११०-११२॥

तदनन्तर देवदूत ने उस राजा सगर के यज्ञ में आकर उन सारी घटनाओं को कह सुनाया। इन बातों को सुनकर सर्वज्ञ भूमिपति सगर यह कहकर कि स्वयं दैव ने ही उन दुष्टों को अच्छी शिक्षा दी; अति प्रसन्न हुए। माता-पिता-भाई या पुत्र चाहे कोई हो यदि वह अधर्म करता है तो वह शत्रु ही समझा जाता है। सब लोकों का विरोधी जो व्यक्ति सर्वदा पापकर्म में निरत रहता है उसको बहुत बड़ा शत्रु समझना चाहिए, ऐसा शास्त्रों का निर्णय है ॥११३-११६॥ मुनीश्वर ! सगर पुत्रनाश को देखकर भी शोकातुर नहीं हुए, क्योंकि दुराचारियों की मृत्यु सज्जनों के उत्साह का ही कारण है। 'यज्ञों में पुत्ररहित का अधिकार नहीं है' इस स्मृति-वचन का स्मरण कर राजा ने अंशुमान् को ही अपना पुत्र बनाया। उस तत्त्वविद् सगर ने असमंजस् के उस परम विनीत और विद्वान् पुत्र को पुनः अश्व लाने के कार्य में नियुक्त किया। वह उस बिल द्वार से पाताल पहुँचा और तेजोनिधान उस मुनि श्रेष्ठ को देखकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वह हाथ जोड़कर विनीत भाव से उस मुनि के सम्मुख उपस्थित हुआ और शान्त सनातन देव-देव की स्तुति करने लगा ॥११७-१२१॥

अंशुमान् बोला—ब्रह्मन् ! मेरे पितृव्यों ने जो कुछ अविनय दिखाया है उसको आप क्षमा कर दें, क्योंकि सर्वदा परोपकार में रत रहने वाले साधुजन क्षमा की मूर्ति होते हैं। साधुजन दुष्टप्राणियों पर भी दया दिखाते हैं। चन्द्र चाण्डालों के घर पर से अपनी किरणें नहीं हटाते हैं। सज्जन दूसरों से कष्ट पाने पर भी सबको सुखी ही बनाते हैं; क्योंकि देवताओं का भक्ष्य बनकर भी चन्द्रमा उनको सुखी ही बनाता है। चन्दन स्वयं भग्न होकर और कटकर भी अपनी सुगन्ध से दूसरों को सुगन्धित ही करता है।

दारितश्छिन्न एवापि ह्यामोदेनैव चन्दनः । सौरभं कुरुते सर्वं तथैव सुजनो जनः ॥१२५॥
क्षान्त्या च तपसाचारैस्तद् गुणज्ञा मुनीश्वराः । संजातं शासितुं लोकांस्त्वां विदुः पुरुषोत्तम ॥१२६॥
नमो ब्रह्मन्मुने तुभ्यं नमस्ते ब्रह्ममूर्त्तये । नमो ब्रह्मण्यशीलाय ब्रह्मध्यानपराय च ॥१२७॥
इति स्तुतो मुनिस्तेन प्रसन्नवदनस्तदा । वरं वरय चेत्याह प्रसन्नोऽस्मि तवानघ ॥१२८॥
एवमुक्ते तु मुनिना ह्यंशुमान्प्रणिपत्य तम् । प्रापयास्मत्पितॄन्ब्राह्मं लोकमित्यभ्यभाषत ॥१२९॥
ततस्तस्यातिसंतुष्टो मुनिः प्रोवाच सादरम् । गङ्गामानीय पौत्रस्ते नयिष्यति पितॄन्दिवम् ॥१३०॥
त्वत्पौत्रेण समानीता गङ्गा पुण्यजला नदी । कृत्वैतान्धूतपापान्वै नयिष्यति परं पदम् ॥१३१॥
प्रापयैनं हयं वत्स यतः स्यात्पूर्णमध्वरम् । पितामहान्तिकं प्राप्य साश्वं वृत्तं न्यवेदयत् ॥१३२॥
सगरस्तेन पशुना तं यज्ञं ब्राह्मणैः सह । विधाय तपसा विष्णुमाराध्याप पदंहरेः ॥१३३॥
जज्ञे ह्यंशुमतः पुत्रो दिलीप इति विश्रुतः । तस्माद्भागीरथो जातो यो गङ्गामानयद्दिवः ॥१३४॥
भगीरथस्य तपसा तुष्टो ब्रह्मा ददौ मुने । गङ्गां भागीरथ्यायाः चिंतयामास धारणे ॥१३५॥
ततश्च शिवमाराध्य तद्द्वारा स्वर्णदीं भुवम् । आनीय तज्जलैः स्पृष्ट्वा पूतान्निन्ये दिवं पितॄन् ॥१३६॥
भगीरथान्वये जातः सुदासो नाम भूपतिः । तस्य पुत्रो मित्रसहः सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥१३७॥
वसिष्ठशापात्प्राप्तः स सौदासो राक्षसीं तनुम् । गङ्गाबिन्दुनिषेकेण पुनर्मुक्तो नृपोऽभवत् ॥१३८॥ ॥ ८ ॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे गङ्गामाहात्म्यं नाम अष्टमोऽध्यायः

ऐसा ही सज्जनों का भी स्वभाव होता है ॥१२२-१२५॥ आपके गुणों के जानने वाले मुनिवर आपको पुरुषोत्तम समझते हैं—जो कि अपनी शान्ति, तपस्या और सदाचार से लोक को शिक्षा देने के लिए यहां आए हुए हैं। ब्रह्मन् ! मुने ! ब्रह्ममूर्ति आपको नमस्कार है । ब्राह्मणों के रक्षक ब्रह्मध्यानपरायण आपको नमस्कार करता हूँ।

अंशुमान् की इस प्रकार की स्तुति सुनकर मुनि प्रसन्न हो गए और कहा कि अनघ ! वर मांगो । मैं तुमसे प्रसन्न हूँ ! मुनि की ऐसी बातें सुनकर अंशुमान् उनके चरणों पर गिर पड़ा और कहा कि किसी प्रकार मेरे पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाइये । अंशुमान् की प्रार्थना सुनकर मुनि प्रसन्न हो गए और आदर पूर्वक बोले—तुम्हारा पौत्र गंगा को पृथ्वी पर लाकर तुम्हारे पितरों को स्वर्ग पहुँचा देगा ॥१२६-१३०॥ तुम्हारे पौत्र से लाई हुई पुण्यसलिला गंगा इन मृत पितरों को निष्पाप बनाकर परम पद पर पहुँचा देगी । वत्स ! इस अश्व को तुम अपने यहाँ ले जाओ जिससे कि यज्ञ पूर्ण हो जाय । अंशुमान् ने अपने पितामह के निकट जाकर अश्व और पितरोद्धार की सारी कथा कह दी । सगर ने ब्राह्मणों की सहायता से उस पशु के द्वारा यज्ञ समाप्त किया और विष्णु की आराधना कर विष्णुलोक को प्राप्त किया अंशुमान् से दिलीप नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, दिलीप से भगीरथ हुआ, जिसने गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर उतारा । मुने ! भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने गंगा को तो दे दिया परन्तु 'गंगा को कौन धारण करेगा ?' इसकी चिन्ता करने लगे । तब भगीरथ ने शिव की आराधना की उनकी सहायता से देवनदी गंगा को पृथ्वी पर लाकर उसके जल से अपने पितरों को पवित्र किया और उनको स्वर्ग पहुँचाया । उस भगीरथ के कुल में सुदास नामक भूपति उत्पन्न हुआ । उसका पुत्र मित्रसह विश्व में विख्यात हुआ । वसिष्ठ के शाप से मित्रसह को राक्षस-शरीर प्राप्त हो गया था, परन्तु गंगाजल के स्पर्श से वह भूपति-श्रेष्ठ पुनः शुद्ध हो गया ॥१३१-१३७॥

श्रीनारदीयपुराण में गंगामाहात्म्य-वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ॥८॥

●

नवमोऽध्यायः

नारद उवाच

शप्तः कथं वसिष्ठेन सौदासो नृपसत्तमः । गङ्गाबिन्दुभिषेकेण पुनः शुद्धोऽभवत्कथम् ॥१॥
सर्वमेतदशेषेण भ्रातर्मे वक्तुमर्हसि । शृण्वतां वदतां चैव गङ्गाख्यानं शुभावहम् ॥२॥

सनक उवाच

सौदासः सर्वधर्मज्ञः सर्वज्ञो गुणवाञ्छुचिः । बुभुजे पृथिवीं सर्वां पितृवद्रञ्जयन्प्रजाः ॥३॥
सगरेण यथा पूर्वं महीयं सप्तसागरा । रक्षिता तद्वदमुना सर्वधर्माविरोधिना ॥४॥
त्रिंशदब्दसहस्राणि बुभुजे पृथिवीं युवा
सौदासस्त्वेकदा राजा मृगयाभिरतिर्वनम् । विवेश सबलः सम्यक् शोधितं ह्याप्तमन्त्रिभिः ॥५॥
निषादैः सहितस्तत्र विनिघ्नन्मृगसंचयम् । आससाद नदीं रेवां धर्मज्ञः स पिपासितः ॥६॥
सुदासतनयस्तत्र स्नात्वा कृत्वाह्निकं मुने । भुक्त्वा च मन्त्रिभिः सार्द्धं तां निशां तत्र चावसत् ॥७॥
ततः प्रातः समुत्थाय कृत्वा पौर्वाह्निकीं क्रियाम् । बभ्राम मन्त्रिसहितो नर्मदातीरजे वने ॥८॥

अध्याय ९

गंगाजल के सम्पर्क से राजा सौदास का शापोद्धार

नारद बोले—वसिष्ठ ने सौदास को क्यों शाप दिया और पुनः गंगाजल के अभिषेक से वह कैसे शुद्ध हो गया ? भाई ! इस आख्यान को पूर्णरूप से आप कहिए, गंगा की कथा सुनने वाले और कहने वाले दोनों के लिए मङ्गलदायक होता है ॥१-२॥

सनक बोले—सौदास सब धर्मों का ज्ञाता, सर्वज्ञ, गुणी और सदाचारी था । उसने अपने पिता के समान प्रजा का पालन कर सम्पूर्ण पृथ्वी का उपभोग किया । जिस प्रकार प्राचीनकाल में इस सप्त-समुद्रा पृथ्वी की रक्षा सगर ने की थी उसी प्रकार इसने न्याय और धर्म पूर्वक पृथ्वी की रक्षा की । उस युवक ने अपने पुत्र-पौत्रों के साथ सब प्रकार के वैभवों का उपभोग करते हुए तीस हजार वर्षों तक पृथ्वी का शासन किया ॥३-५॥ एक दिन मृगया-प्रेमी राजा सौदास अपने सैनिकों के साथ वन में गया जिस वन की पहले से ही विश्वस्त मन्त्रियों ने भली भाँति परीक्षा कर ली थी । वह धर्मज्ञ राजा निषादों को साथ लेकर अनेकों जंगली पशुओं का शिकार करता हुआ प्यास से व्याकुल होकर गोदावरी नदी के तट पर गया ॥६-७॥ मुने ! सुदास-पुत्र ने नर्मदा में स्नान कर सन्ध्या-वन्दनादि नित्य क्रिया की और मंत्रियों के सहित भोजन कर उस रात को वहीं रह गया । तदनन्तर प्रातः काल उठकर प्रातःकालीन क्रियाओं को समाप्त कर मन्त्रियों के साथ नर्मदा

वनाद्वनान्तरं गच्छन्नेक एव महीपतिः । आकर्णाकृष्टबाणः सन् कृष्णसारं समन्वगात् ॥१०॥
दूरसैन्योऽश्वमारूढः स राजानुव्रजन्मृगम् । व्याघ्रद्वयं गुहासंस्थमपश्यत्सुरते रतम् ॥११॥
मृगपृष्ठं परित्यज्य व्याघ्रयोः संमुखं ययौ । धनुःसंहितबाणेन तेनासौ शरशास्त्रवित् ॥१२॥
तां व्याघ्रीं पातयामास तीक्ष्णाग्रनतपर्वणा । पतमाना तु सा व्याघ्री षट्त्रिंशद्योजनायता ॥१३॥
तडित्वद्घोरनिर्घोषा राक्षसी विकृताभवत् । पतितां स्वप्रियां वीक्ष्य द्विषन्स व्याघ्रराक्षसः ॥१४॥
प्रतिक्रियां करिष्यामीत्युक्त्वा चांतर्दधे तदा । राजा तु भयसंविग्नो वने सैन्यं समेत्य च ॥१५॥
तद्वृत्तं कथयन्सर्वान्स्वांपुरीं स न्यवर्तत् । शङ्कमानस्तु तद्रक्षःकृत्याद्राजा सुदासजः ॥१६॥
परितत्याज मृगयां ततः प्रभृति नारद । गते बहुतिथे काले हयमेधमखं नृपः ॥१७॥
समारेभे प्रसन्नात्मा वशिष्ठाद्यमुनीश्वरैः । तत्र ब्रह्मादिदेवेभ्यो हविर्दत्त्वा यथाविधि ॥१८॥
समाप्य यज्ञनिष्क्रांतो वशिष्ठः स्नातकोऽपि च । अत्रान्तरे राक्षसोऽसौ नृपहिंसितभार्यकः ॥
कर्तुं प्रतिक्रिया राज्ञे समायातो रुषान्वितः ॥१९॥

स राक्षसस्तस्य गुरौ प्रयाते वशिष्ठवेषं तु तदैव धृत्वा । ॥२०॥
राजामभ्येत्य जगाद भोक्ष्ये मांसं समिच्छाम्यहमित्युवाच
भूयः समास्थाय स सूदवेषं पक्वामिषं मानुषमस्य चादात् । ॥२१॥
स्थितश्च राजापि हिरण्यपात्रे धृत्वागुरोरागमनं प्रतीक्षन् ॥२२॥

तन्मांसं हेमपात्रस्थं सौदासो विनयान्वितः । समागताय गुरवे ददौ तस्मै स सादरम् ॥२३॥
तं दृष्ट्वा चिन्तयामास गुरुः किमिति विस्मितः

हुए राजा को मृग मिला । घोड़े पर सवार होकर उस मृग के पीछे दौड़ता हुआ अपने सैनिकों से बहुत दूर निकल गया । उसी समय उसने किसी गुफा में रति क्रीड़ा करते हुए व्याघ्र-युग्म को देखा । वह शीघ्र मृग का पीछा छोड़कर उन बाघों के सामने गया । धनुर्विद्या में प्रवीण उस राजा ने धनुष पर चढ़े हुए उस बाण से जो अत्यन्त तीक्ष्ण और जिसका फल आगे की ओर कुछ झुका हुआ था—मादा बाघ को मार गिराया । गिरते समय वह व्याघ्री छत्तीस योजन विस्तृत शरीर वाली एक भयङ्कर राक्षसी हो गई जिसने बादल के समान भयङ्कर चीत्कार किया ॥८-१३॥ अपनी प्रिय स्त्री को इस प्रकार मरते देखकर वह व्याघ्र आकार वाला राक्षस क्रुद्ध हो गया और द्वेषपूर्वक यह कहता हुआ कि इसका बदला लूंगा, उस समय अन्तर्हित हो गया । यह घटना देखकर राजा भय से व्याकुल हो गया अपनी सेना के पास आकर सारी घटना कह दी और अपनी राजधानी को लौट आया । नारद ! उस राक्षस की प्रतिक्रिया के भय से उस दिन से राजा ने आखेट करना बन्द कर दिया । बहुत दिन बीत जाने पर प्रसन्न होकर राजा ने वसिष्ठ आदि मुनियों के साथ अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया । उस यज्ञ में विधिपूर्वक देवों को हवि प्रदान किया गया ॥१४-१८॥ यज्ञ समाप्त होने पर वसिष्ठ जी स्नातकों के साथ चले गये । इसी बीच अवसर पाकर वह राक्षस—जिसकी भार्या को राजा ने मार डाला था—अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए क्रुद्ध होकर आया । वह राक्षस राजगुरु वसिष्ठ के चले जाने पर गुरु का ही वेष धारण कर राजा के पास आया और बोला—'मैं मांस भोजन करना चाहता हूँ' । पुनः शीघ्र ही वह पाचक (रसोइयों) का वेष धारण कर मनुष्य का मांस पकाकर राजा को दे दिया । राजा भी उस पक्व मांस को सोने के वर्तन में परस कर गुरु के आने की प्रतीक्षा करने लगा । राजा सुदास ने आगत गुरु को बड़े आदर के साथ उस सोने के पात्र में परसे हुए मांस को दे दिया ॥१९-२२॥ उस को देखकर गुरु वसिष्ठ विस्मित हो गए सोचने लगे कि यह क्या है । अपनी ज्ञानदृष्टि द्वारा उन्होंने उस मांस को देख लिया । 'अहो ! राजा

तटवर्ती वनमें घूमने लगा । धनुष की डोरी कान तक खींचे हुए तथा अकेले ही एक वन से दूसरे वन में जाते

अपश्यन्मानुषं मांसं परमेण समाधिना । अहोऽस्य राज्ञो दौःशील्यमभक्ष्यं दत्तवान्मम ॥२४॥
इति विस्मयमापन्नः प्रमन्युरभवन्मुनिः । अभोज्यं मद्विघाताय दत्तं हि पृथिवीपते ॥२५॥
तस्मात्तवापि भवतु ह्येतदेव हि भोजनम् । नृमांसं रक्षसामेव भोज्यं दत्तं मम त्वया ॥२६॥
तथाहि राक्षसत्वं त्वं तदाहारोचितं नृप । इति शापं ददत्यस्मिन्सौदासो भयविह्वलः ॥२७॥
आज्ञप्तो भवतैवेति सकंपोऽस्य व्यजिज्ञपत् । भूयश्च चिन्तयामास वशिष्ठस्तेन नोदितः ॥२८॥
रक्षसा वंचितं भूपं ज्ञातवान् दिव्यचक्षुषा । राजापि जलमादाय वशिष्ठं शप्तुमुद्यतः ॥२९॥
समुद्यतं गुरुं शप्तं दृष्ट्वा भूयो रुषान्वितम् । मदयंती प्रिया तस्य प्रत्युवाचाथ सुव्रता ॥३०॥

मदयंत्युवाच

भो क्षत्रियदायाद कोपं संहर्तुमर्हसि । त्वया यत्कर्म भोक्तव्यं तत्प्राप्तं नात्र संशयः ॥३१॥
गुरुं तुंकृत्य हुंकृत्य यो वदेन्मूढधीर्नरः । अरण्ये निर्जले देशे स भवेद्ब्रह्मराक्षसः ॥३२॥
जितेन्द्रिया जितक्रोधा गुरुशुश्रूषणे रताः । प्रयान्ति ब्रह्मसदनमिति शास्त्रेषु निश्चयः ॥३३॥
तयोक्तो भूपतिः कोपं त्यक्त्वा भार्यां ननन्द च । जलं कुत्र क्षिपामीति चिन्तयामास चात्मना ॥३४॥
तज्जलं यत्र संसिक्तं तद्भवेद्भस्म निश्चितम् । इति मत्वा जलं तत्तु पादयोर्न्यक्षिपत्स्वयम् ॥३५॥
तज्जलस्पर्शमात्रेण पादौ कल्माषतां गतौ । कल्माषपाद इत्येवं ततः प्रभृति विश्रुतः ॥३६॥
कल्माषपादो मतिमान् प्रिययाश्वासितस्तदा । मनसा सोऽतिभीतस्तु ववन्दे चरणं गुरोः ॥३७॥
उवाच च प्रपन्नस्तं प्राञ्जलिर्नयकोविदः । क्षमस्व भगवन्सर्वं नापराधः कृतो मया ॥३८॥

की यह नीचता कि इसने अभक्ष्य मांस मुझे भोजन के लिए दे दिया ! यह सोचकर आश्चर्य-चकित मुनि को अत्यन्त क्रोध हुआ । 'पृथ्वीपति ! तुमने मेरे सर्वनाश के लिए अभक्ष्य मांस दिया है, अतः तुम्हारा भी यही भोजन होगा मनुष्य का मांस राक्षसों का ही भोजन है, वही आज तुमने मुझे दिया इसलिये राजन् ! तुम उसी आहार के योग्य 'राक्षस' बनो, गुरु को इस प्रकार शाप देते देखकर राजा सौदास भय से विह्वल हो गया ॥२३-२७॥ कांपते हुए उसने कहा 'आपने ही तो ऐसी आज्ञा दी है । उसके ऐसा कहने पर वसिष्ठ जी पुनः सोचने लगे । अपनी दिव्य दृष्टि से उन्होंने जान लिया कि राक्षस ने राजा को ठग लिया । राजा भी हाथ में जल लेकर गुरु को शाप देने के लिए तैयार हो गया । क्रोधान्ध पति को गुरु को शाप देने के लिए उद्यत देखकर उसकी प्रिय व्रतशील भार्या मदयन्ती ने कहा ॥२८-३०॥

मदयंती बोली—क्षत्रिय-दायाद ! तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिए, जो कुछ भोगना है वही इस समय प्राप्त हुआ है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । जो मूर्ख मनुष्य गुरु से 'तुम कह कर, या हुँ कह कर' कुछ कहता है वह वनमें जलशून्य स्थान में ब्रह्मराक्षस होता है । इन्द्रियनिग्रही, परमशान्त और गुरु की शुश्रूषा में लीन रहने वाले मनुष्य ब्रह्मलोक में स्थान पाते हैं, ऐसा शास्त्रों का निर्णय है । पत्नी के इस प्रकार समझाने पर भूपति ने क्रोध छोड़ दिया और भार्या पर प्रसन्न हो गया । अपने मनमें सोचने लगा कि इस शाप जल को कहाँ फेंकूँ, जहाँ यह जल फेंका जायगा वह तो अवश्य जल कर भस्म हो जायगा यह निश्चित है । यह सोचकर उस जल को अपने पैरों पर छोड़ दिया ॥३१-३५॥ उस जल के गिरते ही दोनों पैर काले हो गए । तभी से उसका नाम कल्माषपाद ही प्रसिद्ध हो गया । मतिमान् कल्माषपाद ने प्रिया के इस प्रकार समझाने पर कुछ आश्वस्त हुआ और मन में अत्यन्त भय से त्रस्त होकर गुरु के चरणों पर गिर पड़ा । नीति-विशारद राजा ने हाथ जोड़ कर विनीत भाव से कहा । भगवन् ! क्षमा कीजिए मैंने जान बूझकर अपराध नहीं किया है । मुनि ने राजा को

ह्यविवेकपरायणम् ॥३९॥
तच्छ्रुत्वोवाच भूपालं मुनिर्निःश्वस्य दुःखितः । आत्मानं गर्हयामास ह्यविवेकपरायणम् ॥३९॥
अविवेको हि सर्वेषामापदां परमं पदम् । विवेकरहितो लोके पशुरेव न संशयः ॥४०॥
राज्ञा त्वजानता नूनमेतत्कर्मोचितं कृतम् । विवेकरहितोऽज्ञोऽहं यतः पापं समाचरेत् ॥४१॥
विवेकनियतो याति यो वा को वापि निर्वृतिम् । विवेकहीनमाप्नोति को वा यो वाप्यनिर्वृतिम् ॥४२॥
इत्युक्त्वा चात्मनात्मानं प्रत्युवाच मुनिर्नृपम् । नात्यन्तिकं भवेदेतद्द्वादशाब्दं भविष्यति ॥४३॥
गङ्गाबिन्द्वभिषिक्तस्तु त्यक्त्वा वै राक्षसीं तनुम् । पूर्वरूपं त्वमापन्नो भोक्ष्यसे मेदिनीमिमाम् ॥४४॥
तद्बिन्दुसेकसंभूतज्ञानेन गतकल्मषः । हरिसेवापरो भूत्वा परां शान्तिं गमिष्यसि ॥४५॥
इत्युक्त्वाथर्वविद्भूपं वशिष्ठः स्वाश्रमं ययौ । राजापि दुःखसंपन्नो राक्षसीं तनुमाश्रितः ॥४६॥
क्षुत्पिपासाविशेषार्तो नित्यं क्रोधपरायणः । कृष्णक्षपाद्युतिर्भीमो बभ्राम विजने वने ॥४७॥
मृगांश्च विविधांस्तत्र मानुषांश्च सरीसृपान् । विहङ्गमान्प्लवङ्गांश्च प्रशस्तांस्तानभक्षयत् ॥४८॥
अस्थिभिर्बहुभिर्भूयः पीतरक्तकलेवरैः । रक्तान्त्रप्रेतकेशैश्च चित्रासीद्भूर्भयंकरी ॥४९॥
ऋतुत्रये स पृथिवीं शतयोजनविस्तृताम् । कृत्वातिदुःखितां पश्चाद्वनान्तरमुपागमत् ॥५०॥
तत्रापि कृतवान्नित्यं नरमांसाशनं सदा । जगाम नर्मदातीरं मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥५१॥
विचरन्नर्मदातीरे सर्वलोकभयंकरः । अपश्यत्कंचन मुनिं स्मरन्तं प्रियया सह ॥५२॥
क्षुधानलेन संतप्तस्तं मुनिं समुपाद्रवत् । जग्राह चातिवेगेन व्याधो मृगशिशुं यथा ॥५३॥

विवेकहीनता को कोसते हुए राजा से बोले—
बातें सुनकर लंबी साँस ली और दुःखी होकर अपनी विवेकहीनता को कोसते हुए राजा से बोले— इस लोक में विवेकशून्य प्राणी पशु के तुल्य है; इसमें
'अविवेक सब आपत्तियों का एक मात्र स्थान है, इस लोक में विवेकशून्य प्राणी पशु के तुल्य है; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥३९-४०॥ राजा ने तो अज्ञान वश ऐसा कर्म किया है जो कि सबसे हो सकता है, किन्तु
कुछ भी सन्देह नहीं ॥३९-४०॥ राजा ने तो अज्ञान वश ऐसा कर्म किया है जो कि सबसे हो सकता है, किन्तु मैं तो विवेक शून्य, अज्ञ हूँ कि सब कुछ जानता हुआ भी ऐसा पाप कर्म कर डाला । विवेक से युक्त कोई भी
मैं तो विवेक शून्य, अज्ञ हूँ कि सब कुछ जानता हुआ भी ऐसा पाप कर्म कर डाला । विवेक से युक्त कोई भी मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है और विवेकहीन को सांसारिक बंधन प्राप्त होता है ॥४१-४२॥
मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है और विवेकहीन को सांसारिक बंधन प्राप्त होता है ॥४१-४२॥ 'यह शाप अधिक दिनों
इस प्रकार स्वयं अपने प्रति पश्चात्ताप सूचक बातें कहकर मुनि ने राजा से कहा 'यह शाप अधिक दिनों तक नहीं केवल बारह वर्ष तक ही रहेगा'। पुनः गंगाजल के अभिषेक से अपने राक्षस शरीर को छोड़कर पूर्व
तक नहीं केवल बारह वर्ष तक ही रहेगा'। पुनः गंगाजल के अभिषेक से अपने राक्षस शरीर को छोड़कर पूर्व शरीर प्राप्त कर लोगे और तब इस साम्राज्य का उपभोग करोगे। उस गंगाजल के अभिषेक से ज्ञान प्राप्त
शरीर प्राप्त कर लोगे और तब इस साम्राज्य का उपभोग करोगे। उस गंगाजल के अभिषेक से ज्ञान प्राप्त होगा और तब निष्पाप होकर हरिसेवा में रुचि होगी जिसके फलस्वरूप परम शान्ति पा जाओगे ॥४३-४५॥
होगा और तब निष्पाप होकर हरिसेवा में रुचि होगी जिसके फलस्वरूप परम शान्ति पा जाओगे ॥४३-४५॥ राजा भी राक्षस शरीर पाकर दुःखी
राजा से यह कहकर अथर्व-ज्ञाता वसिष्ठ जी अपने आश्रम को चले गए। राजा भी राक्षस शरीर पाकर दुःखी हो गया। भूख-प्यास से व्याकुल होकर नित्य प्रति क्रोध में ही जलता रहता था, उसका शरीर अमावस्या
हो गया। भूख-प्यास से व्याकुल होकर नित्य प्रति क्रोध में ही जलता रहता था, उसका शरीर अमावस्या की रात्रि के समान कृष्ण वर्ण और भयङ्कर हो गया। इस प्रकार वह राक्षस बन कर विजन वन में इधर-उधर
की रात्रि के समान कृष्ण वर्ण और भयङ्कर हो गया। इस प्रकार वह राक्षस बन कर विजन वन में इधर-उधर भटकने लगा। वन में विविध पशुओं मनुष्यों और रेंगकर चलने वाले जीवों, पक्षियों, बन्दरों एवं अन्य जीवों
भटकने लगा। वन में विविध पशुओं मनुष्यों और रेंगकर चलने वाले जीवों, पक्षियों, बन्दरों एवं अन्य जीवों को खाता फिरता था। वन की सारी भूमि मरे हुए जीवों की अनगिनत हड्डियों, पीले और लाल रंग के कटे हुए
को खाता फिरता था। वन की सारी भूमि मरे हुए जीवों की अनगिनत हड्डियों, पीले और लाल रंग के कटे हुए अंगों, मृतकों के रक्त से सने बालों से अद्भुत और भयंकर बन गई ॥४६-४९॥ तीनों ऋतुओं में वह सौ योजन विस्तृत
अंगों, मृतकों के रक्त से सने बालों से अद्भुत और भयंकर बन गई ॥४६-४९॥ तीनों ऋतुओं में वह सौ योजन विस्तृत भू भाग को अपने अत्याचार से प्राणि-हीन बना दूसरे वनमें चला गया। वहाँ भी वह नित्य मनुष्यों की हत्या
भू भाग को अपने अत्याचार से प्राणि-हीन बना दूसरे वनमें चला गया। वहाँ भी वह नित्य मनुष्यों की हत्या कर सर्वदा नर मांस खाता फिरता था। एक दिन सारे संसार को भयभीत करने वाला वह राक्षस नर्मदा तट
कर सर्वदा नर मांस खाता फिरता था। एक दिन सारे संसार को भयभीत करने वाला वह राक्षस नर्मदा तट पर घूमता हुआ सिद्धों और मुनियों के प्रदेश में पहुँचा। वहाँ उसने किसी मुनि को प्रिया के साथ विहार
पर घूमता हुआ सिद्धों और मुनियों के प्रदेश में पहुँचा। वहाँ उसने किसी मुनि को प्रिया के साथ विहार करते हुए देखा। क्षुधा-ज्वाला से जला वह उस मुनि की ओर बड़े वेग से झपटा और जिस
करते हुए देखा। क्षुधा-ज्वाला से जला वह उस मुनि की ओर बड़े वेग से झपटा और जिस

ब्राह्मणी स्वपतिं वीक्ष्य निशाचरकरस्थितम् । शिरस्यञ्जलिमाधाय प्रोवाच भयविह्वला ॥५४॥

ब्राह्मण्युवाच

भो भो नृपतिशार्दूल त्राहि मां भयविह्वलाम् । प्रियप्राणप्रदानेन कुरु पूर्णमनोरथाम् ॥५५॥
नाम्ना मित्रसहस्त्वं हि सूर्यवंशसमुद्भवः । न राक्षसस्ततोऽनाथां पाहि मां विजने वने ॥५६॥
या नारी भर्त्तृरहिता जीवत्यपि मृतोपमा । तथापि बालवैधव्यं किं वक्ष्याम्यरिमर्दन ॥५७॥
न मातापितरौ जाने नापि बंधुं च कंचन । पतिरेव परो बंधुः परमं जीवनं मम ॥५८॥
भवान्वेत्त्यखिलान्धर्मान्योषितां वर्त्तनं यथा । त्रायस्व बन्धुरहितां बालापत्यां जनेश्वर ॥५९॥
कथं जीवामि पत्यास्मिन्हीना हि विजने वने । दुहिताहं भगवतस्त्राहि मां पतिदानतः ॥६०॥
प्राणदानान्नात्परं दानं न भूतं न भविष्यति । वदन्तीति महाप्राज्ञाः प्राणदानं कुरुष्व मे ॥६१॥
इत्युक्त्वा सा पपातास्य राक्षसस्य पदाग्रतः । एवं संप्रार्थ्यमानोऽपि ब्राह्मण्या राक्षसो द्विजम्
अभक्षयत्कृष्णसारशिशुं व्याघ्रो यथा बलात् । ॥६२॥
ततो विलप्य बहुधा तस्य पत्नी पतिव्रता । पूर्वशापहतं भूपमशपत्क्रोधिता पुनः ॥६३॥
पतिं मे सुरतासक्तं यस्माद्विध्वंसितवान्बलात् । तस्मात्स्त्रीसङ्गमं प्राप्तस्त्वमपि प्राप्स्यसे मृतिम् ॥६४॥
शप्त्वैवं ब्राह्मणी क्रुद्धा पुनः शापान्तरं ददौ । राक्षसत्वं ध्रुवं तेऽस्तु मत्पतिर्भक्षितो यतः ॥६५॥
सोऽपि शापद्वयं श्रुत्वा तया दत्तं निशाचरः । प्रमन्युः प्राह विसृजन्कोपादङ्गारसंचयम् ॥६६॥
दुष्टे कस्मात्प्रदत्तं मे वृथा शापद्वयं त्वया । एकस्यैवापराधस्य शापस्त्वेको ममोचितः ॥ ६७॥

प्रकार व्याध मृगशावक को पकड़ लेता है उसी प्रकार मुनि को उसने पकड़ लिया । ब्राह्मणी अपने पति को राक्षस के पंजे में फंसा देखकर भयविह्वल हो गई और हाथ जोड़कर राक्षस से बोली ॥५०-५४॥

ब्राह्मणी बोली—'हे भूपश्रेष्ठ ! भय से व्याकुल मेरी रक्षा करो, मेरे पति के प्राणों को देकर मुझे कृतकृत्य करो । तुम सूर्य वंश के मित्रसह नामक नरपाल हो, राक्षस नहीं हो अपः भूपाल होने के नाते इस निर्जन वन में मेरी रक्षा करो । जो नारी पतिहीन है वह जीते हुए भी मरे के समान है, तिस पर बालवैधव्य तो और ही कष्टकर है । अरिसूदन ! इस विषय में और क्या कहूँ । इस समय न तो मेरे माता-पिता अथवा कोई बन्धु हो हैं, केवल पति ही मेरे सर्वस्व और एक मात्र आधार हैं । आप सब धर्म तत्त्वों को जानते हैं और यह भी जानते हैं कि नारी जीवन का आधार क्या है, नरपाल ! असहाय शिशु सन्तान वाली, मेरी रक्षा करो, इस निर्जन वन में पति के अवलम्ब के बिना कैसे जी सकूँगी ? मैं आपकी पुत्री हूँ मुझे पतिदान देकर रक्षा कीजिए ॥५५-६०॥ प्राणदान से बढ़कर कोई दूसरा दान न तो है न होगा, ऐसा महाबुद्धिमान् व्यक्ति कहते हैं । यह कहकर वह राक्षस के चरणों के समीप गिर पड़ी । ब्राह्मणी के इस प्रकार प्रार्थना करने पर भी उस राक्षस ने कुछ ध्यान नहीं दिया और उस ब्राह्मण को इस प्रकार खा गया जिस प्रकार बाघ काले मृग छौने को हठात् खा जाता है ॥६१-६२॥ इसके बाद उसकी पतिव्रता ब्राह्मणी बहुत विलाप करने लगी और क्रुद्ध होकर पहले से ही शाप प्राप्त उस राजा को शाप दे दिया कि जिस लिए तुमने रति आसक्त मेरे पति को क्रूरता पूर्वक मार डाला है इसलिए तुम भी जभी स्त्री प्रसङ्ग करोगे तभी मर जाओगे । तुमने मेरे पति को खा लिया है इसलिए तुम्हारा यह राक्षस भाव सर्वदा के लिए स्थिर रहेगा । वह निशाचर भी ब्राह्मणी के दिये हुए दो शापों को सुनकर क्रोधान्ध हो गया और क्रोध से अग्नि की ज्वाला बरसाता हुआ सा बोला—

दुष्टे ! तुमने व्यर्थ मुझे दो शाप क्यों दे दिये । एक अपराध के लिए एक ही शाप उचित था परन्तु

यस्मात्क्षिपसि दुष्टाग्रे मयि शापान्तरं ततः । पिशाचयोनिमद्यैव याहि पुत्रसमन्विता ॥६८॥
तेनैवं ब्राह्मणी शप्ता पिशाचत्वं तदा गता । क्षुधार्ता सुस्वरं भीमा रुरोदापत्यसंयुता ॥६९॥
राक्षसश्च पिशाची च क्रोशन्तौ निर्जने वने । जग्मतुर्नर्मदातीरे वनं राक्षससेवितम् ॥७०॥
औदासीन्यं गुरौ कृत्वा राक्षसीं तनुमाश्रितः । तत्रास्ते दुःखसंतप्तः कश्चिल्लोकविरोधकृत् ॥७१॥
राक्षसं च पिशाचीं दृष्ट्वा स्ववटमागतौ । उवाच क्रोधबहुलो वटस्थो ब्रह्मराक्षसः ॥७२॥
किमर्थमागतौ भीमौ युवां मत्स्थानमीप्सितम् । ईदृशो केन पापेन जातौ मे ब्रुवतां ध्रुवम् ॥७३॥
सौदासस्तद्वचः श्रुत्वा तया यच्चात्मना कृतम् । सर्वं निवेदयित्वास्मै पश्चादेतदुवाच ह ॥७४॥

सौदास उवाच

कस्त्वं वद महाभाग त्वया वै किं कृतं पुरा । सख्युर्ममातिस्नेहेन तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥७५॥
करोति वञ्चनं मित्रे यो वा को वापि दुष्टधीः । स हि पापफलं भुंक्ते यातनास्तु युगायुतम् ॥७६॥
जन्तूनां सर्वदुःखानि क्षीयन्ते मित्रदर्शनात् । तस्मान्मित्रेषु मतिमान्न कुर्याद्वंचनं कदा ॥७७॥
कल्मावपादेनेत्युक्तो वटस्थो ब्रह्मराक्षसः । उवाच प्रीतिमापन्नो धर्मवाक्यानि नारद ॥७८॥

ब्रह्मराक्षस उवाच

अहमासं पुरा विप्रो मागधो वेदपारगः । सोमदत्त इति ख्यातो नाम्ना धर्मपरायणः ॥७९॥
प्रमत्तोऽहं महाभाग विद्यया वयसा धनैः । औदासीन्यं गुरोः कृत्वा प्राप्तवानीदृशीं गतिम् ॥८०॥
न लभेऽहं सुखं किंचिन्नराहारोऽतिदुःखितः । मया तु भक्षिता विप्राः शतशोऽथ सहस्रशः ॥८१॥

तुमने मुझ दुष्ट के ऊपर दूसरा शाप भी रख दिया इसलिए तुम अभी अपने पुत्र के सहित पिशाच योनि को प्राप्त हो जाओ ॥६३-६८॥ उस राक्षस से इस प्रकार शाप पाकर वह ब्राह्मणी तत्काल राक्षसी हो गई । पुत्र सहित वह भयङ्कर आकार वाली राक्षसी भूख प्यास से व्याकुल होकर जोर-जोर से चिल्लाने लगी । रोते चिल्लाते हुए वे दोनों राक्षस और पिशाची उस निर्जन वनमें घूमने लगे । घूमते हुए वे दोनों नर्मदा-तटवर्ती उस वनमें गए जहाँ गुरु की अवज्ञा के कारण राक्षस बन कर एक दूसरा दुःखी लोकविरोधी राक्षस रहता था । उस राक्षस और पिशाची को अपने वट की ओर आते देख कर उस वट पर रहने वाले ब्रह्म राक्षस ने क्रोध पूर्वक कहा ॥६९-७२॥

भयङ्कर आकार वाले तुम दोनों क्यों मेरे इस प्रिय निवास स्थान पर आए ? ऐसा कौन सा पाप किया जिससे तुम दोनों राक्षस हो गए, सारी बातें मुझसे पूर्ण रूप से कहो । सौदास ने स्वयं और उस पिशाची ने जो कुछ किया था कह दिया और उसके बाद उस ब्रह्मराक्षस से पूछा ॥७३-७४॥

सौदास बोला—महाभाग ! तुम कौन हो, तुमने इसके पूर्व कौन सा पाप किया, कहो । तुम मेरे सखा हो, इसलिए प्रेमपूर्वक सारी बातें तुम अवश्य कहो । जो कोई दुष्टबुद्धि अपने मित्र के प्रति वंचना करता है वह दस हजार युगों तक उस पाप का फल भोगता है । प्राणियों के सभी दुःख मित्रदर्शन से नष्ट हो जाते हैं । इसलिये बुद्धिमान् व्यक्ति मित्रों के प्रति कभी भी कपट व्यवहार नहीं करते हैं । कल्माषपाद के ऐसा कहने पर वट-निवासी ब्रह्मराक्षस ने प्रसन्न होकर धर्म युक्त बातें कहीं ॥७५-७८॥

ब्रह्मराक्षस बोला—मैं पहले सोमदत्त नामक परम धार्मिक वेदज्ञ और मगध देश का रहने वाला ब्राह्मण था । महाभाग ! विद्या, युवावस्था और धन के मद से मतवाला होकर गुरु का अपमान कर दिया जिससे इस गति को प्राप्त हुआ हूँ । मित्र ! इस अवस्था में कहीं भी किसी प्रकार का सुख नहीं पा रहा हूँ, केवल निराहार

क्षुत्पिपासापरो नित्यमन्तस्तापेन पीडितः । जगत्त्रासकरो नित्यं मांसाशनपरायणः ।।८२।।
गुर्वज्ञा मनुष्याणां राक्षसत्वप्रदायिनी । मयानुभूतमेतद्धि ततः श्रीमान्न चाचरेत् ।।८३।।

कल्माषपाद उवाच

गुरुस्तु कीदृशः प्रोक्तः कस्त्वया श्लाघितः पुरा । तद्वदस्व सखे सर्वं परं कौतूहलं हि मे ।।८४।।

ब्रह्मराक्षस उवाच

गुरवः सन्ति बहवः पूज्या वन्द्याश्च सादरम् । तानहं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमनाः सखे ।।८५।।
अध्यापकश्च वेदानां वेदार्थयुक्तिबोधकः । शास्त्रवक्ता धर्मवक्ता नीतिशास्त्रोपदेशकः ।।८६।।
मन्त्रोपदेशव्याख्याकृद्व दसंदेहहृत्तथा । व्रतोपदेशकश्चैव भयत्रातान्नदो हि च ।।८७।।
श्वशुरो मातुलश्चैव ज्येष्ठभ्राता पिता तथा । उपनेता निषेक्ता च संस्कर्त्ता मित्रसत्तम ।।८८।।
एते हि गुरवः प्रोक्ता पूज्या वन्द्याश्च सादरम् ।।८९।।

कल्माषपाद उवाच

गुरवो बहवः प्रोक्ता एतेषां कतमो वरः । तुल्याः सर्वेऽप्युत सखे तद्यथावद्धि ब्रूहि मे ।।९०।।

ब्रह्मराक्षस उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ यत्पृष्टं तद्वदामि ते । गुरुमाहात्म्यकथनं श्रवणं चानुमोदनम् ।।९१।।
सर्वेषां श्रेय आधत्ते तस्माद्वक्ष्यामि सांप्रतम् । एते समानपूजार्हाः सर्वदा नात्र संशयः ।।९२।।

रहकर दुःखमय जीवन बिता रहा हूँ। मैंने सैकड़ों हजारों दीन ब्राह्मणों को अपना आहार बना डाला। अतः नित्य प्रति भूखा प्यासा रह कर भूख की ज्वाला से जलता रहता हूँ। नित्य प्रति मांस-भक्षण में ही लगा रहता और संसार को त्रस्त करता रहता हूँ। गुरु का अपमान मनुष्य को राक्षस बना देता है, इसका पूर्ण रूप से अनुभव मुझे हो गया है। इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति कभी भी गुरु का अपमान न करें। ।।७९-८३।।

कलमाषपाद बोला—गुरु किसे कहते हैं? कौन तुम्हारे गुरु थे, जिसके प्रति पहले पूज्य भावना थी? मित्र! सारी बातें मुझसे कहो; मुझे महान् कौतूहल हो रहा है।

ब्रह्मराक्षस बोला—सखे! गुरु बहुत प्रकार के होते हैं जो आदर पूर्वक पूजने और बन्दना करने के योग्य हैं, उनके विषय में मैं कह रहा हूँ सावधान होकर सुनो। वेदों को पढ़ाने वाले, वेदार्थ की अर्थ संगति बताते वाले, शास्त्रोपदेशक, नीतिशास्त्र का उपदेश देने वाले, मन्त्रोपदेशक, भाष्यकार, सन्देह निवारण करने वाले, व्रतोपदेशक, भय से रक्षा करने वाले, अन्नदाता, पत्नी के पिता, मामा, बड़े भाई, पिता (पालक), उपनयन करने वाला, उत्पादक (जन्मदाता), और संस्कार करने वाला इतने गुरु कहे गये हैं जो सर्वथा वन्दनीय और पूजनीय हैं ।।८४-८९।।

कलमाषपाद बोला—गुरु तो बहुत से कहे गए हैं; इनमें कौन श्रेष्ठ हैं? अथवा सभी समान हैं? इसको अपनी बुद्धि के अनुसार मुझसे कहो।

ब्रह्मराक्षस बोला—महाप्राज्ञ! तुम धन्य हो! धन्य हो! तुमने जो पूछा है उसको अवश्य कहूँगा। गुरु की महिमा का वर्णन करना और उसको सुनना सब को कल्याण प्रदान करते हैं। इसलिए इस समय गुरु-

अध्यापकाश्च वेदानां मन्त्रव्याख्याकृतस्तथा ॥९३॥
तथापि शृणु वक्ष्यामि शास्त्राणां सारनिश्चयम् । एतेषामपि भूपाल शृणुष्व प्रवरं गुरुम् ॥९४॥
पिता च धर्मवक्ता च विशेषगुरवः स्मृताः । यः पुराणानि वदति धर्मयुक्तानि पण्डितः ॥९५॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञैर्भाषितं प्रवदामि ते । देवपूजार्हकर्माणि देवतापूजने फलम् ॥९६॥
संसारपाशविच्छेदकरणानि स उत्तमः । सर्ववेदार्थसाराणि पुराणानीति भूपते ॥९७॥
जायते च पुराणेभ्यस्तस्मात्तानीह देवताः । यः संसारार्णवं तर्त्तुमुद्योगं कुरुते नरः ॥९८॥
वदन्ति मुनयश्चैव तद्वक्ता परमो गुरुः । प्रोक्तवान्सर्वधर्मांश्च पुराणेषु महीपते ॥९९॥
शृणुयात्स पुराणानि इति शास्त्रविभागकृत् । पुराणानि महाबुद्धे इहामुत्र सुखाय हि ॥१००॥
तर्कस्तु वादहेतुः स्यान्नीतिस्त्वैहिकसाधनम् । तस्य स्यान्निर्मला बुद्धिर्भूयो धर्मपरायणः ॥१०१॥
यः शृणोति पुराणानि सततं भक्तिसंयुतः । विष्णुभक्तनृणां भूप धर्मबुद्धिः प्रवर्तते ॥१०२॥
पुराणश्रवणाद्भक्तिर्जायते श्रीपतौ शुभा । धर्मार्थकाममोक्षाणां ये फलान्यभिलिप्सवः ॥१०३॥
धर्मात्पापानि नश्यन्ति ज्ञानं शुद्धं च जायते । अहं तु गौतममुनेः सर्वज्ञब्रह्मवादिनः ॥१०४॥
शृणुयुस्ते पुराणानि प्राहुरित्थं पुराविदः । कदाचित्परमेशस्य पूजां कर्त्तुमहं गतः ॥१०५॥
श्रुतवान्सर्वधर्माथं गङ्गातीरे मनोरमे । स तु शान्तो महाबुद्धिर्गौतमस्तेजसां निधिः ॥१०६॥
उपस्थितायापि तस्मै प्रणामं न ह्यकारिषम् । यस्त्वर्चितो मया देवः शिवः सर्वजगद्गुरुः ॥१०७॥
मन्त्रोदितानि कर्माणि करोतीति मुदं ययौ । ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि योऽवज्ञां कुरुते गुरोः ॥१०८॥
गुर्ववज्ञा कृता येन राक्षसत्वे नियुक्तवान् ।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। फिर भी शास्त्रों में जो कुछ महिमा कह रहा हूँ। ये सभी गुरु समान भाव से पूज्य हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। फिर भी शास्त्रों में जो कुछ तत्त्व-निर्णय किया गया है उसको कह रहा हूँ, सुनो। वेद पढ़ाने वाले, मन्त्र की व्याख्या करने वाले, पिता और धर्मोपदेशक विशेष (उत्तम) गुरु कहे गये हैं। इनमें भी जो परमोत्तम गुरु है उनको सुनो ॥९०-९४॥ सब शास्त्रों के तत्त्वों के ज्ञाता पण्डितों ने इस विषय में जो कुछ कहा है उसको तुमसे बता रहा हूँ। पुराणों से संसार के बन्धनों से मुक्ति दिलाने वाली विधियाँ, देव-पूजन प्रकार, उनके फल आदि जाने जाते हैं अतः वे पुराण देवता हैं और इन धार्मिक पुराणों के प्रवक्ता पण्डित ही उत्तम गुरु हैं। भूपते ! पुराण सब वेदों के सारभूत हैं और उनके वक्ता परम गुरु हैं ऐसा मुनिगण कहते हैं। जो इस संसार सागर से पार पाने का उद्योग करते हैं वे पुराणों को अवश्य सुनें; ऐसा शास्त्रों के विभाग करने वाले पण्डितों ने कहा है। राजन् ! पुराणों में सब प्रकार के धर्म कहे गए हैं। तर्क शास्त्र केवल विवाद में सहायक होता है, नीतिशास्त्र केवल सांसारिक सुख प्रदान करता है; परन्तु हे महाबुद्धिमान् ! पुराण लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के कल्याण देने वाले हैं ॥९५-१००॥ जो सर्वदा भक्ति पूर्वक पुराणों का श्रवण करता है उसकी बुद्धि निर्मल होती है और वह परम धार्मिक हो जाता है। पुराणों के सुनने से श्रीपति विष्णु में अचल भक्ति होती है। भूप ! विष्णुभक्तों की धर्माचरण में रुचि बढ़ती है। धर्म से पाप नष्ट हो जाते हैं और शुद्ध ज्ञान प्राप्त हो जाता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का फल जो प्राप्त करना चाहते हैं उनको अवश्य पुराण श्रवण करना चाहिए, ऐसा पुराणविद् कहते हैं। गंगा के मनोरम तट पर मैंने सर्वज्ञ, ब्रह्मवादी गौतम मुनि से सब धर्मों का सार सुना था। एक दिन मैं परम प्रभु (शिव) की पूजा करने के लिए गया। ॥१०१-१०५॥ उपस्थित होते हुए भी गौतम मुनि को मैंने प्रणाम नहीं किया; परन्तु वे परम तेजस्वी शान्त मुनि यह सोचकर कि यह मन्त्रानुकूल कर्म को कर रहा है, प्रसन्न होकर चले गए। परन्तु मैं जिन देवेश जगद्गुरु शंकर की पूजा कर रहा था उन्होंने गुरु-अपमान के कारण मुझको इस राक्षस-योनि में भेज दिया। जान-बूझ कर या अनजान रूप से भी जो गुरु का तिरस्कार करता है उसकी बुद्धि, विद्या, धन, पुत्र तथा सारी क्रियायें

तस्यैवाशु प्रणश्यन्ति धीविद्यार्थात्मजैःक्रियाः। शुश्रूषां कुरुते यस्तु गुरूणां सादरं नरः ॥१०९॥
तस्य संपद्भवेद्भूप इति प्राहुर्विपश्चितः। तेन शापेन दग्धोऽहमन्तश्चैव क्षुधाग्निना ॥११०॥
मोक्षं कदा प्रयास्यामि न जाने नृपसत्तम। एवं वदति विप्रेन्द्र वटस्थेऽस्मिन्निशाचरे ॥१११॥
धर्मशास्त्रप्रसंगेन तयोः पापं क्षयं गतम्। एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः कश्चिद्विप्रोऽतिधार्मिकः ॥११२॥
कलिङ्गदेशसंभूतो नाम्ना गर्ग इति स्मृतः। वहन्गङ्गाजलं स्कंधे स्तुवन् विश्वेश्वरं प्रभुम् ॥११३॥
गायन्नामानि तस्यैव मुदा हृष्टतनूरुहः। तमागतं मुनिं दृष्ट्वा पिशाचीराक्षसौ च तौ ॥११४॥
प्राप्ता नः पारणेत्युक्त्वा प्राद्रवन्नूर्ध्वबाहवः। तेन कीर्तितनामानि श्रुत्वा दूरे व्यवस्थिताः।
अशक्तास्तं धर्षयितुमिदमूचुश्च राक्षसाः ॥११५॥
अहो विप्र महाभाग नमस्तुभ्यं महात्मने। नामकीर्तनमाहात्म्याद्राक्षसा दूरगा वयम् ॥११६॥
अस्माभिर्भक्षिताः पूर्वं विप्राः कोटिसहस्रशः। नामप्रावरणं विप्र रक्षति त्वां महाभयात् ॥११७॥
नामश्रवणमात्रेण राक्षसा अपि भो वयम्। परां शान्ति समापन्ना महिम्ना ह्यच्युतस्य वै ॥११८॥
सर्वथा त्वं महाभाग रागादिरहितो ह्यसि। गंगाजलाभिषेकेण पाह्यस्मात्पातकोच्चयात् ॥११९॥
हरिसेवापरो भूत्वा यश्चात्मानं तु तारयेत्। स तारयेज्जगत्सर्वमिति शंसन्ति सूरयः ॥१२०॥
अपहाय हरेर्नाम घोरसंसारभेषजम्। केनोपायेन लभ्येत मुक्तिः सर्वत्र दुर्लभा ॥१२१॥
लोहोडुपेन प्रतरन्निमज्जत्युदके यथा। तथैवाकृतपुण्यास्तु तारयन्ति कथं परान् ॥१२२॥
अहो चरित्रं महतां सर्वलोकसुखावहम्। यथा हि सर्वलोकानामानन्दाय कलानिधिः ॥१२३॥

नष्ट हो जाती हैं। जो मनुष्य आदर पूर्वक गुरु की शुश्रूषा करता है, भूपाल ! उसको अवश्य सम्पत्ति मिलती है और वह सुखी रहता है, ऐसा विद्वान् कहते हैं। उस शाप से ही मैं नष्ट हो गया और इस प्रकार भूख की ज्वाला से सदा जलता रहता हूँ ॥१०९-११०॥

नृपसत्तम ! कब इस योनि से छुटकारा मिलेगा, मैं नहीं जानता। विप्रेन्द्र ! इस प्रकार वट पर रहने वाले निशाचर से वार्तालाप करने पर धर्मशास्त्र की चर्चा के प्रभाव से उन दोनों के पाप क्षीण हो गए। इसी बीच कलिङ्ग देश का रहने वाला गर्ग नामक अति धार्मिक ब्राह्मण वहाँ आया जो कन्धे पर गंगाजल लिए हुए था और विश्वेश्वर प्रभु की स्तुति कर रहा था। भगवान् के नामों का उच्चारण करता हुआ वह भक्त आनन्दातिरेक से पुलकित हो जाता था। उस मुनि को अपनी ओर आते देखकर वे दोनों पिशाची और राक्षस 'आज हम लोगों को भोजन मिल गया, यह कह कर हाथ ऊपर उठाए हुए उस मुनि की ओर दौड़े परन्तु उसके नामोच्चारण को सुनकर दूर ही ठिठक गए। उस मुनि पर आक्रमण करने में अपने को असमर्थ पाकर उन दोनों राक्षसों ने कहा ॥१११-११५॥ हे महाभाग विप्र ! आप महात्मा को नमस्कार है, आपके नाम संकीर्तन के प्रभाव से हम दोनों राक्षस दूरस्थ ही हैं। पहले हम लोगों ने हजारों करोड़ों ब्राह्मणों को अपना आहार बना डाला परन्तु आज तुमको भगवन्नामोच्चारण रूपी कवच महाभय (मृत्यु) से बचा रहा है। नाम श्रवण मात्र से राक्षस होते हुए भी हम दोनों भगवान् अच्युत की महिमा से परम शान्ति का अनुभव कर रहे हैं ॥११६-११८॥ महाभाग ! तुम तो सर्वथा रागादि दोषों से शून्य हो, अतः गंगाजल के अभिषेक से हमें इस महापाप से बचाओ। जो हरिसेवा में निरत रह कर आत्मोद्धार करता है वह सारे संसार का उद्धार कर सकता है, ऐसा मनीषीजन कहते हैं। हरिनाम को छोड़ कर इस कराल माया से मुक्ति दिलाने वाली कोई दूसरी ओषधि नहीं है। इसको छोड़ कर किसी दूसरे उपाय से नहीं प्राप्त की जा सकती है। वह तो सर्वथा और सर्वदा परम दुर्लभ है। जिस प्रकार लोहे की बनी नौका के सहारे तैरने का साहस करने वाला बीच में डूब जाता है। उसी प्रकार अकृतपुण्य (पापी) कैसे

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पवित्राणि द्विजोत्तम। तानि सर्वाणि गङ्गायाः कणस्यापि समानि न ॥१२४॥
तुलसीदलसंमिश्रमपि सर्षपमात्रकम्। गङ्गाजलं पुनात्येव कुलानामेकविंशतिम् ॥१२५॥
तस्माद्विप्र महाभाग सर्वशास्त्रार्थकोविद। गङ्गाजलप्रदानेन पाह्यस्मान्पापकर्मिणः ॥१२६॥
इत्याख्यातं राक्षसैस्तैर्गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्। निशम्य विस्मयाविष्टो बभूव द्विजसत्तमः ॥१२७॥
एषामपीदृशी भक्तिर्गङ्गायां लोकमातरि। किमु ज्ञानप्रभावाणां महतां पुण्यशालिनाम् ॥१२८॥
अथासौ मनसा धर्मं विनिश्चित्य द्विजोत्तमः। सर्वभूतहितो भक्तः प्राप्नोतीति परं पदम् ॥१२९॥
ततो विप्रः कृपाविष्टो गङ्गाजलमनुत्तमम्। तुलसीदलसंमिश्रं तेषु रक्षःस्वसेचयत् ॥१३०॥
राक्षसास्तेन सिक्तास्तु सर्षपोपमबिंदुना। विसृज्य राक्षसं भावमभवन्देवतोपमाः ॥१३१॥
ब्राह्मणी पुत्रसंयुक्ता सोमदत्तस्तथैव च। कोटिसूर्यप्रतीकाशा बभूवुर्विबुधर्षभाः ॥१३२॥
शंखचक्रगदाचिह्ना हरिसारूप्यमागताः। स्तुवंतो ब्राह्मणं सम्यक्ते जग्मुर्हरिमन्दिरम् ॥१३३॥
राजा कल्माषपादस्तु निजरूपं समास्थितः। जगाम महतीं चिन्तां दृष्ट्वा तान्मुक्तिगानघान् ॥१३४॥
तस्मिन् राज्ञि सुदुःखार्ते गूढरूपा सरस्वती। धर्ममूलं महावाक्यं बभाषेऽगाधया गिरा ॥१३५॥
भो भो राजन्महाभाग न दुःखं गन्तुमर्हसि। राजंस्तवापि भोगान्ते महच्छ्रेयो भविष्यति ॥१३६॥
सत्कर्मधूतपापा ये हरिभक्तिपरायणाः। प्रयान्ति नात्र सन्देहस्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥१३७॥
सर्वभूतदयायुक्ता धर्ममार्गप्रवर्तिनः। प्रयान्ति परमं स्थानं गुरुपूजापरायणाः ॥१३८॥

दूसरों का उद्धार कर सकते हैं ? अहो ! महान् व्यक्तियों का चरित्र उसी प्रकार सब लोगों के लिए सुख दायक होता है जिस प्रकार चन्द्रमा का उदय सब प्राणियों के लिए आनन्ददायक होता है। द्विजवर्य ! इस भूतल के जितने पवित्र तीर्थ हैं वे सभी गंगाजल के क्षुद्र अंश की भी समानता नहीं कर सकते ॥११९-१२४॥ तुलसी दल से मिला गंगाजल का एक सरसों के बराबर बिन्दु भी इक्कीस कुल परम्परा का उद्धार करता है। इसलिए हे सब शास्त्रों के तत्त्वज्ञ ! महाभाग विप्र ! गंगाजल को देकर हम पापियों का उद्धार करो। इस प्रकार उन राक्षसों ने गंगा का उत्तम माहात्म्य कह कर सुनाया ॥१२५-१२७॥

इस बातों को सुनकर वह द्विज आश्चर्य चकित हो गया कि जब इन पाप परायण जनों की भी लोक-माता गंगा में यह श्रद्धा है तब तो ज्ञानी महात्माओं के विषय में क्या कहा जाय ? द्विजोत्तम ! इसके अनन्तर उस भद्र पुरुष ने विचार पूर्वक अपना कर्त्तव्य निश्चित किया कि सब प्राणियों की हित कामना में रत रहने वाला भक्त अवश्यमेव परम पद को प्राप्त करता है। तदन्तर उस विप्र ने कृपा करके तुलसीदल मिश्रित गंगा जल उन राक्षसों पर छिड़का। केवल सरसों के बराबर गंगाजल-बिन्दु के अभिषेक मात्र से वे सब राक्षस शरीर को छोड़कर देवता के समान हो गए। ।१२८-१३१॥ पुत्र के सहित वह ब्राह्मणी और सोमदत्त कोटि सूर्य के समान तेजोमय शरीर वाले देवता हो गए और शंख, चक्र, गदा धारी हरि के समान रूप पा गए। वे उस ब्राह्मण की भलीभाँति स्तुति करने के बाद भगवान् के मन्दिर में गए। राजा कल्माषपाद अभी अपने को राक्षस रूप में ही पाकर और उन पापी सहयोगियों को मुक्त देखकर घोर चिन्ता करने लगा। राजा को इस प्रकार चिन्तातुर देखकर सरस्वती ने अप्रत्यक्ष रूप से गम्भीर स्वर में धर्म-सम्मत बातें कहीं। हे राजन् ! महाभाग ! दुःखी होने की आवश्यकता नहीं, राजन् तुम भी कर्म-भोग के अनन्तर महान् श्रेय प्राप्त करोगे ॥१३२-१३६॥ जिन्होंने सत्कर्मों के द्वारा अपने पापों को विनष्ट कर दिया है और हरि पूजा में जो सर्वथा लीन हैं वे अवश्यमेव परम पद को प्राप्त करते हैं। निखिल प्राणिसमूह पर दया करने वाले धर्म की प्रतिष्ठा करने वाले और गुरुपूजा में निरत रहने वाले परम स्थान को प्राप्त करते हैं। सरस्वती की इन

इतीरितं समाकर्ण्य भारत्या नृपसत्तमः। मनसा निर्वृतिं प्राप्य सस्मार च गुरोर्वचः ॥१३९॥
स्तुवन्गुरुं च तं विप्रं हरिं चैवातिहर्षितः। पूर्ववृत्तं च विप्राय सर्वं तस्मै न्यवेदयत् ॥१४०॥
ततो नृपस्तु कालिंगं प्रणम्य विधिवन्मुने। नामानि व्याहरन्विष्णोः सद्यो वाराणसीं ययौ ॥१४१॥
षण्मासं तत्र गङ्गायां स्नात्वा दृष्ट्वा सदाशिवम्। ब्राह्मणीदत्तशापात्तु मुक्तो मित्रसहोऽभवत् ॥१४२॥
ततस्तु स्वपुरीं प्राप्तो वसिष्ठेन महात्मना। अभिषिक्तो मुनिश्रेष्ठ स्वकं राज्यमपालयत् ॥२४३॥
पालयित्वा महीं कृत्स्नां भुक्त्वा भोगान्स्त्रियं विना। वसिष्ठात्प्राप्य सन्तानं गतो मोक्षं नृपोत्तमः ॥१४४॥
नैतच्चित्रं द्विजश्रेष्ठ विष्णोर्वाराणसीगुणान्। गृणञ्छृण्वन्स्मरन्गङ्गां पीत्वा मुक्तो भवेन्नरः ॥१४५॥
तस्मान्महिम्नो विप्रेन्द्र गङ्गायाः शक्यते नहि। पारं गन्तुं सुराधीशैर्ब्रह्मविष्णुशिवैरपि ॥१४६॥
यन्नामस्मरणादेव महापातककोटिभिः। विमुक्तो ब्रह्मसदनं नरो याति न संशयः ॥१४७॥
गङ्गा गङ्गेति यन्नाम सकृदप्युच्यते यदा। तदैव पापनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥१४८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे गङ्गामाहात्म्ये नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

बातों को सुनकर नृप को कुछ मन में संतोष हुआ और गुरु के कथन का स्मरण किया। बड़ी प्रसन्नता से अपने गुरु की, उस ब्राह्मण की और भगवान् की स्तुति करने लगा और उस विप्र से अपने जीवन की पूर्णकालीन सारी घटना कह सुनाई ॥१३७-१४०॥ मुनिश्रेष्ठ ! स्तुति के बाद राजा ने विधि पूर्वक उस कलिङ्ग देश वासी ब्राह्मण को प्रणाम किया और हरिनाम का उच्चारण करता हुआ शीघ्र वाराणसी चला गया। वहाँ छह महीनें तक गंगा स्नान और सदाशिव का दर्शन कर वह मित्रसह राजा ब्राह्मणी के शाप से मुक्त हुआ। इस प्रकार पाप-मुक्त होकर वह अपनी राजधानी में गया और महात्मा वशिष्ठ से पुनः अभिषिक्त होकर अपने राज्य का पालन करने लगा। ॥१४१-१४३॥ उस नृपवर्य ने सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन और भोगों का भोग किया परन्तु शाप-भय से स्त्री-भोग से अपने को बचाये रहा। वसिष्ठ द्वारा क्षेत्रज्ञ पुत्रों को उत्पन्न करा कर अन्त में वह मोक्ष का भी अधिकारी हुआ। द्विजश्रेष्ठ ! इसमें आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं, मनुष्य भगवान् विष्णु और गंगा की महिमा का वर्णन और श्रवणकर एवं गंगाजल का पान कर अवश्य मुक्त हो जाता है। विप्रेन्द्र ! इसलिए गंगा की महिमा के वर्णन करने में देवेन्द्र ब्रह्मा, विष्णु और शंकर भी सफल नहीं हो सकते हैं। गंगा के नाम स्मरण मात्र से मनुष्य अपने करोड़ों पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को चला जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। जो एक बार भी 'गंगा, गंगा, ऐसा उच्चारण करता है वह तत्काल पाप मुक्त होकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है ॥१४४-१४८॥

श्री नारदीय पुराण में गंगा-महात्म्य-वर्णन नामक
नवाँ अध्याय समाप्त ॥९॥

दशमोऽध्यायः

नारद उवाच

विष्णुपादाग्रसंभूता या गङ्गेत्यभिधीयते। तदुत्पत्तिं वद भ्रातरनुग्राह्योऽस्मि ते यदि ॥१॥

सनक उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि गङ्गोत्पत्तिं तवानघ। वदतां शृण्वतां चैव पुण्यदां पापनाशनीम् ॥२॥
असीदिन्द्रादिदेवानां जनकः कश्यपो मुनिः। दक्षात्मजे तस्य भार्ये दितिश्चादितिरेव च ॥३॥
अदितिर्देवमातास्ति दैत्यानां जननी दितिः। ते तयोरात्मजा विप्र परस्परजयैषिणः ॥४॥
सदा सपूर्वदेवास्तु यतो दैत्याः प्रकीर्तिताः। आदिदैत्यो दितेः पुत्रो हिरण्यकशिपुर्बली ॥५॥
प्रह्लादस्तस्य पुत्रोऽभूत्सुमहान्दैत्यसत्तमः। विरोचनस्तस्य सुतो बभूव द्विजभक्तिमान् ॥६॥
तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी बलिरासीत्प्रतापवान्। स एव वाहिनीपालो दैत्यानामभवन्मुनेः ॥७॥
बलेन महता युक्तो बुभुजे मेदिनीमिमाम्। विजित्य वसुधां सर्वां स्वर्गं जेतुं मनो दधे ॥८॥

गजाश्च यस्यायुतकोटिलक्षास्तावन्त एवाश्वरथा मुनीन्द्र ।
गजे गजे पंचशती पदातेः किं वर्ण्यते तस्य चमूर्वरिष्ठा ॥९॥

अध्याय १०

राजा बलि से देवताओं की पराजय

नारद बोले—भाई ! यदि आप का मेरे ऊपर अनुग्रह है तो कृपा कर विष्णु के चरणों के निकली हुई गंगा नदी की उत्पत्ति कथा कहिए ॥१॥

सनक बोले—निष्पाप ! सुनो । आज तुमसे श्रोता और वक्ता दोनों के पापों को नष्ट करने वाली गंगा की उत्पत्ति कथा कह रहा हूँ । इन्द्र आदि देवताओं को उत्पन्न करने वाले कश्यप नामक एक मुनि थे, उनकी दक्षपुत्री दिति और अदिति नाम की दो भार्याएँ थीं । अदिति देवों की माता और दिति दैत्यों की जननी थी । विप्र ! उनके ये पुत्र परस्पर सर्वदा एक दूसरे को जीतना चाहते थे क्योंकि दैत्य सर्वदा से देवों के अग्रज कहे गए हैं । दिति पुत्र बली हिरण्यकशिपु आदि दैत्य था । उसका दैत्य-प्रवर महातेजस्वी प्रह्लाद नामक पुत्र हुआ । प्रह्लाद का विरोचन नामक परम ब्राह्मण-भक्त पुत्र हुआ । उसका भी महाबलवान्, तेजस्वी बलि नामक पुत्र हुआ, जो स्वयं दैत्य-वाहिनी का एक मात्र पालक और रक्षक था ॥२-७॥ उसने अपने सैन्य बल से इस मेदिनी को वश में किया और पृथ्वी को जीत लेने के बाद स्वर्ग-विजय की भी कामना करने लगा । मुनीन्द्र ! जिसकी सेना में दश सहस्र करोड़ लड़ाकू हाथी उतने ही अश्व और रथ, एवं प्रत्येक हाथी के पीछे पचास पैदल सिपाही थे तब उसकी विशाल वाहिनी का क्या वर्णन किया जाय । उसके मंत्रि-समूह में अग्रगण्य दो मंत्री थे, जिनमें एक का नाम

अमात्यकोट्यग्रसरावमात्यौ कुम्भाण्डनामाप्यथ कूपकर्णः ।
पित्रा समं शौर्यपराक्रमाभ्यां बाणो बलेः पुत्रशताग्रजोऽभूत् ॥१०॥
बलिः सुराञ्जेतुमनाः प्रवृत्तः सैन्येन युक्तो महता प्रतस्थे ।
ध्वजातपत्रैर्गगनाम्बुराशेस्तरङ्गविद्युत्स्मरणं प्रकुर्वन् ॥११॥
अवाप्यवृत्रारिपुरं सुरारी रुरोध दैत्यैर्मृगराजगाढैः ।
सुराश्च युद्धाय पुरात्तथैव विनिर्ययुर्वज्रकरादयश्च ॥१२॥
ततः प्रववृते युद्धं घोरं गीर्वाणदैत्ययोः । कल्पांतमेघनिर्घोषं डिंडिमध्वानसंभ्रमम् ॥१३॥
मुमुचुः शरजालानि दैत्याः सुमनसां बले । देवांश्च दैत्यसेनासु संग्रामेऽत्यन्तदारुणे ॥१४॥
जहि दारय भिंधीति छिंधि मारय ताडय । इत्येवं सुमहान्घोषो वदतां सेनयोरभूत् ॥१५॥
शरदुन्दुभिनिध्वानैः सिंहनादैः सुरद्विषाम् । भाङ्कारैः स्यन्दनानां च बाणक्रेङ्कारनिःस्वनैः ॥१६॥
अश्वानां ह्रेषितैश्चैव गजानां बृंहितैस्तथा । टङ्कारैर्धनुषां चैव लोकः शब्दमयोऽभवत् ॥१७॥
सुरासुरविनिर्मुक्तबाणनिष्पेषजानले । अकालप्रलयं मेने निरीक्ष्य सकलं जगत् ॥१८॥
बभौ देवद्विषां सेना स्फुरच्छस्त्रौघधारिणी । चलविद्युन्निभा रात्रिश्छादिता जलदैरिव ॥१९॥
तस्मिन्युद्धे महाघोरैर्गिरीन् क्षिप्तान् सुरारिभिः । नाराचैश्चूर्णयामासुर्देवास्ते लघुविक्रमाः ॥२०॥
केचित्संताडयामासुर्नागैर्नागान्रथान्रथैः । अश्वैरश्वांश्च केचित्तु गदादण्डैरथार्दयन् ॥२१॥
परिघैस्ताडिताः केचित्पेतुः शोणितकर्द्दमे । समुत्क्रांतासवः केचिद्विमानानि समाश्रिताः ॥२२॥
ये दैत्या निहता देवैः प्रसह्य सङ्गरे तदा । ते देवभावमापन्ना दैतेयान्समुपाद्रवन् ॥२३॥

कुंभाण्ड और दूसरे का नाम कूपकर्ण था। शूरता और पराक्रम में पिता के ही समान बलि का सौ भाइयों में ज्येष्ठ बाण नामक पुत्र भी था ॥८-१०॥ जब बलि के मन में देवों को जीतने की इच्छा हुई तब वह अपनी महा सैन्य शक्ति के साथ रणाभियान के लिए स्वर्ग की ओर प्रस्थित हुआ। उसकी सेना की असंख्य ध्वजाओं और छत्रों की चमक ऐसी प्रतीत होती थी मानों आकाशवर्त्ती मेघों के बीच चमचमाती हुई विद्युत् की रेखा हो। इन्द्र पुर के पास जाकर उस असुर ने अपने सिंह सदृश पराक्रमी राक्षस सैनिकों से घेरा डाल दिया। यह देख कर देवता भी, वज्र आदि अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर नगर से निकल गये। क्षण भर में देवों और दैत्यों में तुमुल युद्ध छिड़ गया, प्रलय कालीन मेघ के समान भयङ्कर घोष करने वाले युद्ध-वाद्य बजने लगे ॥११-१३॥

दैत्यों ने देवताओं की सेना पर भयङ्कर शस्त्र-समूहों की वर्षा की। देवता भी असुर सैनिकों को अपने अस्त्र प्रहार से भूनने लगे। परस्पर लड़ने वाले सैनिकों के मारो, फाड़ डालो, तोड़ दो, टूक-टूक कर दो, मारो, पटको, आदि कोलाहल से तुमुल घोष होने लगा। धनुष और दुन्दुभियों की ध्वनि से, राक्षसों की गर्जना से, रथों की भनभनाहट से, बाणों की कड़कड़ाहट से, घोड़ों की हिनहिनाहट से, हाथियों के चिग्घाड़ से और धनुष की टंकारों से आकाश-पाताल गूंज उठा ॥१४-१७॥ देव-दानवों के छोड़े गए बाणों के संघर्ष से भयङ्कर अग्नि-ज्वाला निकलने लगी जिसको देखकर सारा संसार अकाल प्रलय की कल्पना करने लगा। चमचमाते अस्त्र-शस्त्रों को धारण करने वाली राक्षसों की सेना ऐसी जान पड़ती थी मानों बादलों से घिरी रात्रि चंचल बिजली की चमक से सुशोभित है। उस घोर संग्राम में दुर्दम राक्षसों से फेंके हुए पर्वतों को वे फुर्तीले देव अपने नाराचों से चूर-चूर कर देते थे ॥१८-२०॥ कुछ देवों ने अपने हाथियों द्वारा हाथियों को, रथों से रथों को और अश्वों से शत्रु के अश्वों को क्षति पहुँचाई। दूसरों ने अपनी गदाओं की मार से शत्रुओं को आहत किया। कुछ असुर परिघों की मार से रक्त के कीचड़ में गिर पड़ते थे और कुछ मर कर शीघ्र देव रूप धारण कर विमानों पर विहार करने लगते थे। उस

अथ दैत्यगणाः क्रुद्धास्ताड्यमानाः सुरैर्भृशम् । शस्त्रैर्बहुविधैर्देवान्निजघ्नुरतिदारुणाः ।।२४।।
दर्वादिर्भिर्भिन्दिपालैश्च खड्गैः परशुतोमरैः । परिघैश्छुरिकाभिश्च कुन्तैश्चक्रैश्च शङ्कुभिः ।।२५।।
मुसलैरङ्कुशैश्चैव लाङ्गलैः पट्टिशैस्तथा । शक्त्योपलैः शतघ्नीभिः पाशैश्च तलमुष्टिभिः ।।२६।।
शूलैर्नालीकनाराचैः क्षेपणीयैस्समुद्गरैः । रथाश्वनागपदगैः सङ्कुलो ववृधे रणः ।।२७।।
देवाश्च विविधास्त्राणि दैतेयेभ्यः समाक्षिपन् । एवमब्दसहस्राणि युद्धमासीत्सुदारुणम् ।।२८।।
अथ दैत्यबले वृद्धे पराभूता दिवौकसः । सुरलोकं परित्यज्य सर्वे भीताः प्रदुद्रुवुः ।।२९।।
नररूपपरिच्छन्ना विचेरुरवनीतले । वैरोचनिस्त्रिभुवनं नारायणपरायणः ।।३०।।
बुभुजेऽव्याहतैश्वर्यप्रवृद्धश्रीर्महाबलः । इयाज चाश्वमेधैः स विष्णुप्रीणनतत्परः ।।३१।।
इन्द्रत्वं चाकरोत्स्वर्गे दिक्पालत्वं तथैव च । देवानां प्रीणनार्थाय यैः क्रियन्ते द्विजैर्मखाः ।।३२।।
तेषु यज्ञेषु सर्वेषु हविर्भुङ्क्ते स दैत्यराट् । अदितिः स्वात्मजान्वीक्ष्य देवमातातिदुःखिता ।।३३।।
वृथात्र निवसामीति मत्वागाद्धिमवद्गिरिम् । शक्रस्यैश्वर्यमिच्छंती दैत्यानां च पराजयम् ।।३४।।
हरिध्यानपरा भूत्वा तपस्तेपेऽतिदुष्करम् । किंचित्कालं समासीना तिष्ठंती च ततः परम् ।।३५।।
पादेनैकेन सुचिरं ततः पादाग्रमात्रतः । कंचित्कालं फलाहारा ततः शीर्णदलाशना ।।३६।।
ततो जलाशना वायुभोजनाहारवर्जिता । सच्चिदानन्दसन्दोहं ध्यायत्यात्मानमात्मना ।।३७।।
दिव्याब्दानां सहस्रं सा तपोऽतप्यत नारद । दुरन्तं तत्तपः श्रुत्वा दैतेया मायिनोऽदितिम् ।।३८।।

समय युद्ध में देवताओं से जो राक्षस मारे जाते थे वे स्वयं देवता बनकर राक्षसों पर आक्रमण करते थे। जब असुर गण इस प्रकार देवों से बुरी तरह आहत होने लगे तब क्रुद्ध हो गए और बड़ी निष्ठुरता से विभिन्न शस्त्रों से देवों पर प्रहार करने लगे।२१-२४।। वह देवासुर-संग्राम पत्थरों की वर्षा से, भिंदिपाल, खड्ग, परशु, तोमर, परिध, छुरिका, भालों, चक्र; शंकु, मुशल, अंकुश, लांगूल, पट्टिश, वेग से पत्थरों की वर्षा करने वाले यन्त्रों, शतघ्नी (तोप) पाश, तलमुष्टि, (?), शूल, नाराच, और फेंके जाने वाले मुद्गरों के प्रहार से रथ, अश्व, हाथी और पैदल सैनिकों की घोर, भयङ्कर मार-काट से अत्यन्त भयानक हो गया। देवों ने भी विविध अस्त्रों के प्रहार से राक्षसों को व्याकुल कर दिया। इस प्रकार वह महाभयङ्कर संग्राम एक हजार वर्षों तक चलता रहा ।।२५-२८।।

अन्त में दैत्यों की सेना प्रबल हो गई, देवगण पराजित हो गए, सभी देवता देवलोक छोड़कर इधर-उधर डर कर भाग निकले, मनुष्यों का रूप धारण कर पृथ्वी पर भटकने लगे। नारायण भक्त वैरोचन बलि अपने अमित ऐश्वर्य और सतत श्री वृद्धि का उपयोग करने लगा। विष्णु की उपासना में सर्वदा सचेष्ट रहने वाले उस असुर ने अनेक अश्वमेध यज्ञ किए। उसने स्वर्ग में इन्द्र का अधिकार इसी प्रकार दिक्पालों का भी अधिकार भी प्राप्त कर लिया। ब्राह्मण गण देवों की प्रीति के लिए जिन-जिन यज्ञों को करते थे उनमें वह स्वयं जाकर हवि ग्रहण करता था। देव माता अदिति अपने पुत्रों की अति दीन-दशा देख कर अति दुःखी हो गई ।।२९-३३।। मैं व्यर्थ ही यहाँ दिन बिता रही हूँ, यह सोचकर वह हिमालय पर्वत की ओर चली गई। वहाँ जाकर अपने पुत्र इन्द्र की विभव कामना और दैत्यों के पराजय की इच्छा से भगवान् की सेवा में तल्लीन हो कठोर तप करने लगी। कुछ समय तक बैठकर पुनः खड़ी होकर, कुछ समय तक एक पैर पर स्थित होकर और कुछ समय पैर की अँगुलियों के सहारे खड़ी होकर तपस्या की। इसी प्रकार कुछ समय तक फलाहार कर तत्पश्चात् गिरी हुई सूखी पत्तियों पुनः जल और केवल वायु का ही आहार कर अपनी तपस्या को और कठिन कर दिया। नारद ! आनन्दमय सच्चिदानन्द का अपने अन्तःकरण में ध्यान करती हुई उस देव-जननी ने एक सहस्र दिव्य वर्ष बिता दिये। अदिति के उस घोर तप का पता पाकर मायावी दैत्यों ने देवता का रूप बनाकर बलि के कहे हुए शब्दों

देवतारूपमास्थाय संप्रोचुर्बलिनोदिताः । किमर्थं तप्यते मातः शरीरपरिशोषणम् ॥३९॥
यदि जानन्ति दैतेया महद्दुःखं ततो भवेत् । त्यजेदं दुःखबहुलं कायशोषणकारणम् ॥४०॥
प्रयाससाध्यं सुकृतं न प्रशंसन्ति पण्डिताः । शरीरं यत्नतो रक्ष्यं धर्मसाधनतत्परैः ॥४१॥
ये शरीरमुपेक्षन्ते ते स्युरात्मविघातिनः । सुखं त्वं तिष्ठ सुभगे पुत्रानस्मान्न खेदय ॥४२॥
मात्रा हीना जना मातर्मृतप्राया न संशयः । गावो वा पशवो वापि यत्र गावो महीरुहाः ॥४३॥
न लभन्ते सुखं किंचिन्मात्रा हीना मृतोपमाः । दरिद्रो वापि रोगी वा देशान्तरगतोऽपि वा ॥४४॥
मातुर्दर्शनमात्रेण लभते परमां मुदम् । अन्ने वा सलिले वापि धनादौ वा प्रियासु च ॥४५॥
कदाचिद्विमुखो याति जनो मातरि कोऽपि न । यस्य माता गृहे नास्ति यत्र धर्मपरायणा
साध्वी च स्त्री पतिप्राणा गन्तव्यं तेन वै वनम् ॥४६॥

धर्मश्च नारायणभक्तिहीनो धनं च सद्भोगविवर्जितं हि ।
गृहं च भार्यातनयैर्विहीनं यथा तथा मातृविहीनमर्त्यः ॥४७॥

तस्माद्देवि परित्राहि दुःखार्तानात्मजांस्तव । इत्युक्ताप्यदितिर्दैत्यैर्न चचाल समाधितः ॥४८॥
एवमुक्त्वासुराः सर्वे हरिध्यानपरायणाम् । निरीक्ष्य क्रोधसंयुक्ता हन्तुं चक्रुर्मनोरथम् ॥४९॥
कल्पान्तमेघनिर्घोषाः क्रोधसंरक्तलोचनाः । दंष्ट्राग्रैरसृजन्वह्निं सोऽदहत्काननं क्षणात् ॥५०॥
शतयोजनविस्तीर्णं नानाजीवसमाकुलम् । तेनैव दग्धा दैतेया ये प्रधर्षयितुं गताः ॥५१॥

में कहा—हे माता ! शरीर को सुखा देने वाले इस तप को क्यों कर रही हो ॥३४-३६॥ यदि दैत्य इस रहस्य को जान जायेंगे तब तो और अधिक कष्ट होगा । इस कष्टसाध्य और काय को क्लेश पहुँचाने वाले दुःखकर तप को छोड़ दो । पण्डित जन कष्टसाध्य पुण्य कर्म की प्रशंसा नहीं करते । धर्म साधना में तत्पर रहने वाले मनुष्यों को इस शरीर की बड़े यत्न से रक्षा करनी चाहिए ॥४०-४१॥ जो अपने शरीर को इस प्रकार कष्ट देते हैं वे आत्मघाती कहे जाते हैं । सुशीले ! तुम सुख पूर्वक रहो अपने पुत्रों को इस घोर तपस्या से खिन्न मत करो । माता ! मातृ हीन मनुष्य मरे हुए के समान है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । गायें हों या पशु हों वे पशुओं तथा घास से युक्त स्थान में रह कर भी मातृ हीन होने पर मृतक तुल्य हैं तथा कुछ भी सुख नहीं पाते हैं । दरिद्र, रोगी अथवा विदेश गया हुआ पुत्र केवल अपनी माता का दर्शन पाकर ही परम आनन्द प्राप्त करता है । कदाचित कोई मनुष्य अन्न, जल, धन आदि अथवा स्त्री की ओर से भी विमुख हो जाता है

परन्तु माता से विमुख होने वाला सम्भवतः कोई भी नहीं देखा जाता ॥४२-४५॥ जिसके घर में धर्म परायण माता और पतिव्रता साध्वी स्त्री न हो उसको घर छोड़कर वन चला जाना चाहिए । नारायण को भक्ति के विना धर्म, सत्कार्य में न व्यय किये गये धन और स्त्री पुत्र से रहित घर की जो मर्यादा है वही मातृहीन व्यक्ति की है । देवि ! इसलिए अपने शोक और दुःख से व्याकुल पुत्रों की रक्षा करो, दैत्यों के इस कूट वचन को सुनकर भी अदिति अपनी समाधि से विचलित नहीं हुई ॥४६-४८॥ अपने को विफल देखकर वे राक्षस क्रुद्ध हो गए, और विष्णु के ध्यान में मग्न अदिति को मारने के लिए उद्यत हो गए । उनके लोचन क्रोध से रक्त हो गए और प्रलय कालीन मेघ के समान वे भयङ्कर चीत्कार करने लगे, उनके भयङ्कर दाँतों से अग्नि की ज्वाला निकल पड़ी जिससे वह सारा शत-योजन विस्तीर्ण और अनेक जीवों से व्याप्त कानन क्षणभर में जलकर भस्म हो गया । उसी अग्नि से वे दैत्य भी, जो कि अदिति को हानि पहुँचाने आये हुए थे, जलकर भस्म हो गए । सौ देव वर्षों से अच्युत के ध्यान

सैवावशिष्टा जननी सुराणामदहच्छतादच्युतसक्तचित्ता ।
संरक्षिता विष्णुसुदर्शनेन दैत्यान्तकेन स्वजनानुकम्पिना ॥५२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे गङ्गोत्पत्तौ बलिकृतदेवपराजयवर्णनन्नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

नारद उवाच

अहो ह्यत्यद्भुतं प्रोक्तं त्वया भ्रातरिदं मम । स वह्निरदितिं मुक्त्वा कथं तानदहत्क्षणात् ॥१॥
वदादितेर्महासत्त्वं विशेषाश्चर्यकारणम् । परोपदेशनिरताः सज्जना हि मुनीश्वराः ॥२॥

सनक उवाच

शृणु नारद माहात्म्यं हरिभक्तिरतात्मनाम् । हरिध्यानपरान्साधून्कः समर्थः प्रबाधितुम् ॥३॥
हरिभक्तिपरो यत्र तत्र ब्रह्मा हरिः शिवः । देवाः सिद्धा मुनीशाश्च नित्यं तिष्ठंति सत्तमाः ॥४॥
हरिरास्ते महाभाग हृदये शान्तचेतसाम् । हरिनामपराणां च किमु ध्यानरतात्मनाम् ॥५॥
शिवपूजारतो वाऽपि विष्णुपूजापरोऽपि वा । यत्र तिष्ठति तत्रैव लक्ष्मीः सर्वाश्च देवताः ॥६॥

में लगी रहने वाली केवल जननी अदिति ही केवल, अपने भक्तों पर कृपा दृष्टि रखने वाले, दैत्य संहारक विष्णु के सुदर्शन की कृपा से रक्षित होने के कारण बच गई ॥४९-५२॥

श्रीनारदीयपुराण के पूर्वभाग—प्रथम पाद में गंगोत्पत्ति के प्रसंग में बलि-कृत देव-पराजय वर्णन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

अध्याय ११

गङ्गोत्पत्ति-वर्णन

नारद बोले—भाई ! तुमने तो अत्यन्त आश्चर्यजनक यह आख्यान सुनाया । उस अग्नि ने कैसे अदिति को छोड़कर सब को क्षण भर में जला दिया ? अदिति के आश्चर्य चकित कर देने वाले उस महा तेज और प्रभाव का वर्णन करो, क्योंकि मुनीश्वर सर्वदा दूसरों को उपदेश देने में ही निरत रहते हैं ॥१॥

सनक बोले—नारद ! हरि-भक्ति में सर्वदा लीन रहने वाले भक्तों की महिमा सुनो । हरि के ध्यान में मग्न रहने वाले साधुओं को कौन कष्ट देने का साहस कर सकता है ? जहाँ हरिभक्त रहते हैं वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवगण, सिद्ध मुनीश्वर, श्रेष्ठ जीव सर्वदा विराजमान रहते हैं । महाभाग ! परमशान्त, हरिनाम-परायण भक्तों के हृदय में भगवान् सर्वदा विराजमान रहते हैं, तो पुनः हरि ध्यान में निमग्न रहने वाले योगी भक्तों के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं । शिवपूजन में रत रहने वाले विष्णु की पूजा में लीन रहने वाले भक्त जहाँ निवास करते हैं वहाँ साक्षात् लक्ष्मी और सब देवता सर्वदा निवास करते हैं ॥२-६॥ जहाँ विष्णु पूजा में तल्लीन

यत्र पूजापरो विष्णोर्वह्निस्तत्र न बाधते । राजा वा तस्करो वापि व्याधयश्च न सन्ति हि ॥७॥
प्रेताः पिशाचाः कूष्माण्डग्रहा बालग्रहास्तथा । डाकिन्यो राक्षसाश्चैव न बाधन्तेऽच्युतार्चकम् ॥८॥
परपीडारता ये तु भूतवेतालकादयः । नश्यन्ति यत्र सद्भक्तो हरिलक्ष्म्यर्चने रतः ॥९॥
जितेन्द्रियः सर्वहितो धर्मकर्मपरायणः । यत्र तिष्ठति तत्रैव सर्वतीर्थानि देवताः ॥१०॥
निमिषं निमिषार्द्धं वा यत्र तिष्ठन्ति योगिनः । तत्रैव सर्वश्रेयांसि तत्तीर्थं तत्तपोवनम् ॥११॥
यन्नामोच्चारणादेव सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः । स्तोत्रैर्वाप्यर्हणाभिर्वा किमु ध्यानेन कथ्यते ॥१२॥
एवं तेनाग्निना विप्र दग्धं सासुरकाननम् । सादितिर्नैव दग्धाभूद्विष्णुचक्राभिरक्षिता ॥१३॥
ततः प्रसन्नवदनः पद्मपत्रायतेक्षणः । प्रादुरासीत्समीपेऽस्याः शङ्खचक्रगदाधरः ॥१४॥
ईषद्धास्यस्फुरद्दन्तप्रभाभाषितदिङ्मुखः । स्पृशन्करेण पुण्येन प्राह कश्यपवल्लभाम् ॥१५॥

श्रीभगवानुवाच

देवमातः प्रसन्नोऽस्मि तपसाराधितस्त्वया । चिरं श्रान्तासि भद्रं ते भविष्यति न संशयः ॥१६॥
वरं वरय दास्यामि यत्ते मनसि रोचते । मा भैर्भद्रे महाभागे ध्रुवं श्रेयो भविष्यति ॥१७॥
इत्युक्ता देवमाता सा देवदेवेन चक्रिणा । तुष्टाव प्रणिपत्यैनं सर्वलोकसुखावहम् ॥१८॥

अदितिरुवाच

नमस्ते देवदेवेश सर्वव्यापिञ्जनार्दन । सत्त्वादिगुणभेदेन लोकव्यापारकारण ॥१९॥

रहने वाले भक्त रहते हैं वहाँ अग्नि किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचा सकते। राजा, चोर अथवा व्याधियाँ उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकते; प्रेत, पिशाच, डाकिनी, कूष्माण्डग्रह (दुष्टग्रह) बाल ग्रह और राक्षस आदि उस विष्णु भक्त की छाया का भी स्पर्श नहीं कर सकते। पर पीड़ा में आसक्त रहने वाले भूत, बेताल आदि वहाँ जाकर स्वयं भस्म हो जाते हैं जहाँ विष्णु भक्ति में तत्पर रहने वाले भक्त विद्यमान रहते हैं। जितेन्द्रिय सबका मङ्गल करने वाले और धर्म, सत्कर्म आदि में लीन रहने वाले महात्मा जहाँ रहते हैं वहाँ सब देवता और तीर्थ स्वयं आकर निवास करते हैं ॥३-११॥ एक पल अथवा उसके आधे समय तक जहाँ योगीजन निवास करते हैं वहीं सभी तीर्थ और अखिल कल्याण आ जाते हैं एवं वही पुनीत तपोवन हो जाता है। जिसके मात्र नामोच्चारण स्तोत्र पाठ अथवा पूजादिसे सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं, उसके ध्यान की महिमा का क्या वर्णन किया जाय? इस कारण उस अग्नि से असुरों के सहित सारा कानन भस्महो गया, परन्तु वह अदिति पूर्णतया सुरक्षित रही। क्योंकि विष्णु का सुदर्शन उसकी रक्षा के लिए उद्यत था ॥१२-१३॥ उसकी घोर तपस्या को देखकर पद्मलोचन शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् प्रसन्नता पूर्वक वहाँ उस जननी अदिति के सम्मुख प्रत्यक्ष हुए। उनके मन्द हास्य में खुली दन्तपंक्ति की प्रभा से सारा दिङ्मण्डल प्रकाशित हो गया, अपने पुनीत करों से देवमाता कश्यपपत्नी का स्पर्श करते हुए बोले ॥१४-१५॥

श्री भगवान् बोले—देवमाता! मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ, तुम बहुत श्रान्त हो गई हो, निःसन्देह तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हारी जो इच्छा हो, माँगो। भद्रे! डरो मत, महाभागे! निश्चित रूप से तुम्हारा कल्याण होगा। देवाधिदेव, चक्री विष्णु की इतनी सान्त्वना पाकर अदिति अखिल लोक को सुखी करने वाले भगवान् के चरणों में गिर पड़ी और स्तुति करने लगी ॥१४-१८॥

अदिति बोली—देवदेवेश! सर्वव्यापी! जनार्दन! अपको नमस्कार है, सत्त्व आदि त्रिगुण भेद से लोक

नमस्ते बहुरूपायारूपाय च महात्मने । सर्वैकरूपरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥२०॥
नमस्ते लोकनाथाय परमज्ञानरूपिणे । सद्भक्तजनवात्सल्यशालिने मङ्गलात्मने ॥२१॥
यस्यावताररूपाणि ह्यर्चयन्ति मुनीश्वराः । तमादिपुरुषं देवं नमामि ह्यर्थसिद्धये ॥२२॥
श्रुतयो यं न जानन्ति न जानन्ति च सूरयः । ते नमामि जगद्धेतुं समायं चाप्यमायिनम् ॥२३॥
यस्यावलोकनं चित्रं मायोपद्रवकारणम् । जगद्रूपं जगद्धेतुं तं वन्दे सर्ववन्दितम् ॥२४॥
यत्पादाम्बुजकिञ्जल्कसेवारक्षितमस्तकाः । अवापुः परमां सिद्धिं तं वन्दे कमलाधवम् ॥२५॥
यस्य ब्रह्मादयो देवा महिमानं न वै विदुः । अत्यासन्नं च भक्तानां तं वन्दे भक्तसंगिनम् ॥२६॥
यो देवस्त्यक्तसङ्गानां शान्तानां करुणार्णवः । करोति ह्यात्मनः सङ्गं तं देवं सङ्गवर्जितम् ॥२७॥
यज्ञेश्वरं यज्ञकर्म यज्ञकर्मसुनिष्ठितम् । नमामि यज्ञफलदं यज्ञकर्मप्रबोधकम् ॥२८॥
अजामिलोऽपि पापात्मा यन्नामोच्चारणादनु । प्राप्तवान्परमं धाम तं वन्दे लोकसाक्षिणम् ॥२९॥
हरिरूपी महादेवः शिवरूपी जनार्दनः । इति लोकस्य नेता यस्तं नमामि जगद्गुरुम् ॥३०॥
ब्रह्माद्या अपि देवेशा यन्मायापाशयन्त्रिताः । न जानन्ति परं भावं तं वन्दे सर्वनायकम् ॥३१॥
हृत्पद्मस्थोऽपि योग्यानां दूरस्थ इव भासते । प्रमाणातीतसद्भावस्तं वन्दे ज्ञानसाक्षिणम् ॥३२॥
यन्मुखाद्ब्राह्मणो जातो बाहुभ्यां क्षत्रियोऽजनि । ऊर्वोर्वैश्यः समुत्पन्नः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत ॥३३॥
मनसश्चन्द्रमा जातो जातः सूर्यश्च चक्षुषः । मुखादग्निस्तथेन्द्रश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥३४॥

सृष्टि के आदि कारण ! नमस्कार है । बहुरूप, अरूप और महात्मा को नमस्कार करती हूँ सबमें एक रूप से रहने वाले, निर्गुण और सगुण भगवान् को नमस्कार है । लोकस्वामी, परमज्ञानरूपी, सद्भक्तों पर वात्सल्य भाव रखने वाले, मंगलरूप को नमस्कार है । जिनके अवतार रूपों की मुनीश्वर अर्चना करते हैं उस आदि पुरुष देव को अपनी मनोरथ सिद्धि के लिए नमस्कार करती हूँ । जिसको, श्रुतियाँ और विद्वान् मनुष्य नहीं जान पाते हैं, उस जगत् के आदि कारण, माया युक्त और पुनरपि माया रहित देव को नमस्कार है । जिसका अवलोकन माया के उपद्रव को शान्त करने का कारण है, उस सर्वज्ञ, और सर्वज्ञेय, जगद्रूप और जगदादिकारण को नमस्कार करती हूँ ॥१६-२४॥ जिसके चरण कमल के पराग की सेवा में सर्वदा शिर-झुकाये रहने वाले अतएव रक्षित भक्तजनों ने परम सिद्धि को प्राप्त किया उस कमलापति को नमस्कार है । जिसकी महिमा को ब्रह्मा आदि देवगण भी न जान सके उसी भक्तरक्षक और भक्तों के अति निकट रहने वाले भक्त वत्सल को नमस्कार है । जो करुणासागर देवता शान्त और संसार से सर्वथा दूर रहने वाले जनों से अपना संपर्क स्थापित करता है उस अनासक्त देव को नमस्कार है ॥२६-२७॥ उस यज्ञेश्वर, यज्ञकर्म और यज्ञकार्य में अपनी निष्ठा रखने वाले, यज्ञफल दाता और यज्ञकर्मों को प्रेरणा प्रदान करने वाले देव को नमस्कार करती हूँ । पापात्मा अजामिल भी जिसके नामोच्चारण मात्र से तत्काल परम पद को प्राप्त हो गया, उस लोक-साक्षी की वन्दना करती हूँ, जो हरि रूपी महादेव और शिवरूपी जनार्दन अपने अद्वैत भाव से लोक के अग्रणी हैं उन जगद्गुरु को नमस्कार करती हूँ । ब्रह्मा आदि देव प्रभु भी जिस माया पति के माया-पाश में बँध कर उसके परम रूप को नहीं जान पाते हैं उस अखिल-जीव-नायक की वन्दना करती हूँ, जो हृदय कमल में रहता हुआ भी योगिजनों की दृष्टि में दूरस्थ की भांति दीख पड़ता है जिसकी स्थिति या सद्भाव को प्रमाणों द्वारा भी सिद्ध नहीं किया जा सकता है । तथा उस ज्ञान साक्षी की वन्दना करती हूँ, जिसके मुख से ब्राह्मण और बाहुओं से क्षत्रिय उत्पन्न हुए, ऊरु से वैश्य और चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई ॥२८-३३॥ मन से चन्द्रमा और चक्षु से सूर्य, मुख से अग्नि तथा इन्द्र और प्राण से वायु की उत्पत्ति हुई,

ऋग्यजुः सामरूपाय सत्यस्वरगतात्मने । षडङ्गरूपिणे तुभ्यं भूयोभूयो नमो नमः ॥३५॥
त्वमिन्द्रः पवनः सोमस्त्वमीशानस्त्वमन्तकः । त्वमग्निर्निरृतिश्चैव वरुणस्त्वं दिवाकरः ॥३६॥
देवाश्च स्थावराश्चैव पिशाचाश्चैव राक्षसाः । गिरयः सिद्धगंधर्वा नद्यो भूमिश्च सागराः ॥३७॥
त्वमेव जगतामीशो यत्रासि त्वं परात्परः । त्वद्रूपमखिलं देव तस्मान्नित्यं नमोऽस्तु ते ॥३८॥
अनाथनाथसर्वज्ञ भूतदेवेन्द्रविग्रह । दैतेयैर्बाधितान्पुत्रान्मम पाहि जनार्दन ॥३९॥
इति स्तुत्वा देवमाता देवं नत्वा पुनः पुनः । उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा हर्षाश्रुक्षालितस्तनी ॥४०॥
अनुग्राह्यास्मि देवेश त्वया सर्वादिकारण । अकण्टकां श्रियं देहि मत्सुतानां दिवौकसाम् ॥४१॥
अन्तर्यामिञ्जगद्रूप सर्वज्ञ परमेश्वर । अज्ञातं किं तव श्रीश किं मामीहयसि प्रभो ॥४२॥
तथापि तव वक्ष्यामि यन्मे मनसि रोचते । वृथापुत्रास्मि देवेश दैतेयैः परिपीडिता ॥४३॥
तान्न हिंसितुमिच्छामि यस्तेतेऽपि सुता मम । तानहत्वा श्रियं देहि मत्सुतेभ्यः सुरेश्वर ॥४४॥
इत्युक्तो देवेदेवेशः पुनः प्रीतिमुपागतः । उवाच हर्षयन्विप्र देवमातरमादरात् ॥४५॥

श्रीभगवानुवाच

प्रीतोऽस्मि देवि भद्रं ते भविष्यामि सुतो ह्यहम् । यतः सपत्निपुत्रेषु वात्सल्यं देवि दुर्लभम् ॥४६॥
त्वया तु यत्कृतं स्तोत्रं तत्पठन्ति नरास्तु ये । तेषां संपद्वरा पुत्रा न हीयन्ते कदाचन ॥४७॥
स्वात्मजे वान्यपुत्रे वा यः समत्वेन वर्तते । न तस्य पुत्रशोकः स्यादेव धर्मः सनातनः ॥४८॥

उस ऋक् यजु और सामरूप, सत्य स्वर को प्राप्त आत्मावाले षडङ्ग ब्रह्म को बार बार नमस्कार है। तुम इन्द्र ही, पवन, ईशान, सोम और यम हो, तुम अग्नि, निरृति, वरुण और दिवाकर भी हो, देव, स्थावर, पिशाच राक्षस, गिरि सिद्ध, गन्धर्व, नदियाँ, भूमि, सागर आदि तुम्हीं हो ॥३४-३७॥ समस्त जगत् के ईश और परात्पर ब्रह्म भी तुम्हीं हो। देव ! यह समस्त जगत् तुम्हारा ही रूप है, इसलिए तुमको सतत नमस्कार है। अनाथों के नाथ ! सर्वज्ञ ! सब प्राणियों और देवेन्द्र के रूप में रहने वाले ! जनार्दन ! दैत्यों से पीड़ित मेरे पुत्रों की रक्षा करो। ।३८-३९॥ देवमाता ने इस प्रकार भगवान् की स्तुति की और बार बार भगवान् को प्रणाम किया। फिर हाथ जोड़कर आनन्दाश्रु से अपने हृदय को धोती हुई वह बोली—देवेश ! सबके आदि कारण ! इस समय तुम्हारे अनुग्रह का एकमात्र पात्र मैं हूँ, मेरे स्वर्गस्थ पुत्रों (देवों) को अक्षय श्री प्रदान करो। जगद्रूप ! सर्वज्ञ ! परमेश्वर ! श्रीश ! तुमसे कौन सा रहस्य अज्ञात है ? अतः प्रभो ! तुम मुझसे क्या पूछ रहे हो ? तथापि मेरे मन को जो अच्छा लग रहा है,उसको कह रही हूँ। देवेश ! इस समय मैं दैत्यों से पीड़ित पुत्रों की माता हूँ, जिनकी शक्ति व्यर्थ सी हो गई है। उन दैत्यों का वध नहीं चाहती क्योंकि वे भी मेरे पुत्र हैं; परन्तु उनकी हिंसा न करते हुए भी आप मेरे पुत्रों को ऐश्वर्य और इन्द्र पद प्रदान कीजिए। देवदेवेश इतनी बातें सुनकर पुनः और अधिक प्रसन्न हो गए। विप्रनारद ! तब वे आदर पूर्वक देवमाता का हर्ष बढ़ाते हुए बोले ॥४०-४५॥

श्री भगवान् बोले--देवि ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हारा सौत के पुत्रों पर भी अनुपम वात्सल्य है, अतः मैं स्वयं तुम्हारा पुत्र बनूँगा। तुमने जिस स्तोत्र से मेरा स्तवन किया है उस स्तोत्र को जो मनुष्य पढ़ेंगे उनकी भी श्रेष्ठ सम्पत्ति और सन्तति का क्षय कभी भी नहीं होगा। जो अपने और दूसरे के पुत्रों पर समान भाव रखता है उसको कभी भी पुत्रशोक नहीं होता, यह एक सनातन नियम है ॥४६-४८॥

अदितिरुवाच

नाहं वोढुं क्षमा देव त्वामाद्यं पुरुषं परम् । असंख्याताण्डरोमाणं सर्वेशं सर्वकारणम् ॥४९॥
यत्प्रभावं न जानन्ति श्रुतयः सर्वदेवताः । तमहं देवदेवेशं धारयामि कथं प्रभो ॥५०॥
अणोरणीयांसमजं परात्परतरं प्रभुम् । धारयामि कथं देव त्वामहं पुरुषोत्तमम् ॥५१॥
महापातकयुक्तोऽपि यन्नामस्मृतिमात्रतः । मुच्यते स कथं देवो ग्राम्येषु जनिमर्हति ॥५२॥
यथा शूकरमत्स्याद्या अवतारास्तव प्रभो । तथायमपि को वेद तव विश्वेश ! चेष्टितम् ॥५३॥
त्वत्पादपद्मप्रणता त्वन्नामस्मृतितत्परा । त्वामेव चिंतये देव ! यथेच्छसि तथा कुरु ॥५४॥

सनक उवाच

तयोक्तं वचनं श्रुत्वा देवदेवो जनार्दनः । दत्त्वाभयं देवमातुरिदं वचनमब्रवीत् ॥५५॥

श्रीभगवानुवाच

सत्यमुक्तं महाभागे त्वया नास्त्यत्र संशयः । तथापि शृणु वक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं शुभे ॥५६॥
रागद्वेषविहीना ये मद्भक्ता मत्परायणाः । वहन्ति सततं ते मां गतासूया अदाम्भिकाः ॥५७॥
परोपतापविमुखाः शिवभक्तिपरायणाः । मत्कथाश्रवणासक्ता वहन्ति सततं हि माम् ॥५८॥
पतिव्रताः पतिप्राणाः पतिभक्तिपरायणाः । वहन्ति सततं देवि स्त्रियोऽपि त्यक्तमत्सराः ॥५९॥
मातापित्रोश्च शुश्रूषुर्गुरुभक्तोऽतिथिप्रियः । हितकृद्ब्राह्मणानां यः स मां वहति सर्वदा ॥६०॥

अदिति बोली——देव ! आदि, परम पुरुष तुमको मैं गर्भ में धारण करने में समर्थ नहीं हूँ। जिसके रोम-रोम में असंख्य ब्रह्माण्ड झूलते रहते, जो सर्वेश और सब का आदि कारण है, जिसकी महिमा को श्रुतियाँ और सब देवता नहीं जान पाते हैं, प्रभो ! उस देवदेवेश को मैं कैसे गर्भ में धारण कर सकती हूँ ? ॥४९-५०॥ देव ! अणु से भी अणुतम, अज, परात्पर, प्रभु और पुरुषोत्तम देव तुमको कैसे मैं धारण कर सकती हूँ ? जिसके नाम स्मरण मात्र से महापापों में फँसा प्राणी भी शीघ्र मुक्त हो जाता है वह आदि देव किस प्रकार मेरे समान ग्राम्य मानवी की कुक्षि से उत्पन्न हो सकता है ? प्रभो ! जिस प्रकार शूकर, मत्स्य (मछली) आदि तुम्हारे अन्य अवतार हुए हैं इसी प्रकार यह तुम्हारा कोई अवतार होगा ? भला तुम्हारे रहस्यमय व्यापार को कौन जान सकता है ? देव ! मैं तो केवल तुम्हारे चरण-कमलों में ही सर्वदा विनत रहने वाली, तुम्हारे नामों के रटने में ही लीन रहने वाली और सर्वदा तुम्हारा ही चिन्तन करने वाली एक किङ्करी हूँ, तुम्हारी जैसी इच्छा हो करो ॥५१-५४॥

सनक बोले——उसकी कही हुई बातों को सुनकर देवाधिदेव जनार्दन ने देवमाता को अभय वरदान दिया और कहा——॥५५॥

श्री भगवान् बोले——महाभाग्यशालिनि ! तुमने जो कुछ कहा सत्य है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। फिर भी शुभे ! सुनो, आज तुमको अत्यन्त रहस्यमय तत्त्व बता रहा हूँ। जो राग द्वेष से हीन मेरे भक्त, मुझमें ही विरत रहने वाले तथा ईर्ष्या और दंभ से रहित हैं, वे सर्वदा मुझको ढोते रहते हैं। दूसरों को पीड़ा न पहुँचाने वाले, शिव-भक्ति में अनन्य भाव रखने वाले और मेरी कथा में सर्वदा तल्लीन रहने वाले भक्त सर्वदा मुझको ढोते हैं। पतिव्रता, पतिप्रिया, पतिभक्ति को ही अपना सर्वस्व समझने वाली और ईर्ष्या से सर्वथा दूर रहने वाली स्त्रियाँ भी मुझको अपने हृदय में रखती है ॥५६-५९॥ माता पिता की सेवा करने वाला, गुरुभक्त, अतिथिसेवी और ब्राह्मणों का हित करने वाला मनुष्य सर्वदा मुझको ढोता है। नित्य पुण्य तीर्थों में रत रहने वाला, सत्संग

पुण्यतीर्थरता नित्यं सत्सङ्गनिरतास्तथा । लोकानुग्रहशीलाश्च सततं ते वहन्ति माम् ॥६१॥
परोपकारनिरताः परद्रव्यपराङ्मुखाः । नपुंसकाः परस्त्रीषु ते वहन्ति च मां सदा ॥६२॥
तुलस्युपासनरताः सदा नामपरायणाः । गोरक्षणपरा ये च सततं मां वहन्ति ते ॥६३॥
प्रतिग्रहनिवृत्ता ये परान्नविमुखास्तथा । अन्नोदकप्रदातारो वहन्ति सततं हि माम् ॥६४॥
त्वं तु देवि ! पतिप्राणा साध्वी भूतहिते रता । संप्राप्य पुत्रभावं ते साधयिष्ये मनोरथम् ॥६५॥
इत्युक्त्वा देवदेवेशो ह्यदिति देवमातरम् । दत्त्वा कण्ठगतां मालामभयं च तिरोदधे ॥६६॥
सा तु संहृष्टमनसा देवसूर्दक्षनन्दिनी । प्रणम्य कमलाकान्तं पुनः स्वस्थानमाव्रजत् ॥६७॥
ततोऽदितिर्महाभागा सुप्रीता लोकवन्दिता । असूत समये पुत्रं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥६८॥
शङ्खचक्रधरं शान्तं चन्द्रमण्डलमध्यगम् । सुधाकलशदध्यन्नकरं वामनसंज्ञितम् ॥६९॥
सहस्रादित्यसंकाशं व्याकोशकमलेक्षणम् । सर्वाभरणसंयुक्तं पीताम्बरधरं हरिम् ॥७०॥
स्तुत्यं मुनिगणैर्युक्तं सर्वलोकैकनायकम् । आविर्भूतं हरिं ज्ञात्वा कश्यपो हर्षविह्वलः ।
प्रणम्य प्राञ्जलिर्भूत्वा स्तोतुं समुपचक्रमे ॥७१॥

कश्यप उवाच

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय नमोनमस्तेऽखिलपालकाय ।
नमो नमस्तेऽमरनायकाय नमो नमो दैत्यविनाशनाय ॥७२॥
नमो नमो भक्तजनप्रियाय नमोनमः सज्जनरंजिताय ।
नमो नमो दुर्जननाशनाय नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय ॥७३॥

में लगातार रहने वाला और सर्वदा लोक पर अनुग्रह करने वाला व्यक्ति मुझको अपने हृदय में ढोता रहता है। परोपकार-परायण, पर की थोड़ी भी आकांक्षा न रखने वाले और परस्त्री के प्रति नपुंसक-सा व्यवहार करने वाले मुझे सर्वदा ढोते हैं ॥६०-६२॥ तुलसी की उपासना में सर्वदा लगे रहने वाले हरिनाम का उच्चारण करने वाले और गोरक्षक सर्वदा मुझको ढोते रहते हैं। जो दान लेने का नाम तक नहीं लेते, जो दूसरों के दिये अन्न की इच्छा नहीं रखते और जो स्वयं अन्न और जल का दान करते हैं वे सर्वदा मुझको ढोते रहते हैं ॥६३-६४॥ देवि ! तुम तो पतिव्रता, साध्वी और सब प्राणियों के हित में निरत रहने वाली हो मैं तुम्हारा पुत्र बनकर तुम्हारे सब मनोरथों को पूर्ण करूँगा ॥६५॥ देवदेवेश ने देवमाता अदिति से इस प्रकार कहकर अपने कंठ की माला उसको दे दी और अभय वददान देकर स्वयं अन्तर्हित हो गए। वह देव-जननी, दक्षकन्या अदिति प्रसन्न मन से कमलापति को प्रणाम कर अपने स्थान पर लौट आई ॥६६-६७॥ तदन्तर अनुकूल समय पर महाभाग्यशालिनी, प्रसन्नवदना और लोकपूज्या अदिति ने सबलोकों से वन्दित, शंखचक्रधारी, शान्त, चन्द्रमण्डल (प्रभामण्डल) से आवृत, सुधा कलश एवं दधि मिश्रित अन्न हाथ में लिये हुए वामन नामक पुत्र को उत्पन्न किया जो सहस्रसूर्य के समान तेजस्वी, विकसित कमल के समान नेत्र वाला सब प्रकार के आभूषणों से सुशोभित, पीताम्बरधारी, मुनिगणों से वन्द्य और सब लोकों के नायक स्वयं हरि थे। भगवान् को अपने पुत्ररूप में प्रकट हुए देखकर महात्मा कश्यप ने आनन्द विभोर हो प्रणाम किया और हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे ॥६८-७१॥

कश्यप बोले—अखिल जगत के कारण हरि को नमस्कार है। अखिल लोक के पालक को बार-बार नमस्कार करते हैं। देवेश, दैत्य-विनाशक को नमस्कार है। भक्त जनों के प्रिय को नमस्कार है। सज्जन को सुख

नमोनमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय ।
सशाङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥७४॥
नमः पयोराशिनिवासनाय नमोऽस्तु सद्धृत्कमलस्थिताय ।
नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय नमोनमः पुण्यकथागताय ॥७५॥
नमोनमोऽऽर्केन्दुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय ।
नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय ॥७६॥
नमो जगत्कारणकारणाय नमोस्तु शब्दादिविवर्जिताय ।
नमोऽस्तु ते दिव्यसुखप्रदाय नमो नमो भक्तमनोगताय ॥७७॥
नमोऽस्तु ते ध्वान्तविनाशकाय नमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय ।
नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय ॥७८॥
नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलान्तकाय ।
नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय ॥७९॥
नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने । स्मृतार्तिनाशिने तुभ्यं भूयो भूयो नमोनमः ॥८०॥
यज्ञेश यज्ञविन्यास यज्ञविघ्नविनाशन । यज्ञरूप यजद्रूप यज्ञाङ्ग त्वां यजाम्यहम् ॥८१॥
इति स्तुतः स देवेशो वामनो लोकपावनः । उवाच प्रहसन्हर्षं वर्द्धयन्कश्यपस्य सः ॥८२॥

श्रीभगवानुवाच

तात तुष्टोऽस्मि भद्रं ते भविष्यति सुरार्चित ! । अचिरात्साधयिष्यामि निखिलं त्वन्मनोरथम् ॥८३॥

देने वाले को नमस्कार है। दुष्ट जनों के नाश करने वाले को बार-बार नमस्कार है। जगदीश्वर को नमस्कार करते हैं। जगत् के आदि कारण वामन को नमस्कार करते हैं। अमित विक्रम शील नारायण को नमस्कार है। धनुष के सहित चक्र, खड्ग और गदा के धारण करने वाले को नमस्कार है। उस पुरुषोत्तम को नमस्कार है। ॥७४॥ अगाध जल राशि में निवास करने वाले को नमस्कार है। सज्जनों के हृदय-कमल में निवास करने वाले को नमस्कार है। सूर्य से भी अधिक प्रभावान् को नमस्कार है। पुण्य कथा स्थान पर सर्वदा निवास करने वाले को हमारा नमस्कार है। सूर्य और चन्द्र रूपी नेत्र वाले को नमस्कार करते हैं। यज्ञ फल को देने वाले तुमको हमारे असंख्य नमस्कार हैं। यज्ञांग से सुशोभित और सज्जनों के प्रिय को हम नमस्कार करते हैं। जगत् के आदि कारण के भी कारण को नमस्कार है। शब्दादि विषयों के अविषय को नमस्कार है। स्वर्गीय सुखों के देने वाले तुमको हमारा नमस्कार है। भक्तों के मन में रहने वाले को नमस्कार है। अज्ञान तिमिर का नाश करने वाले तुमको नमस्कार है। मन्दराचल को धारण करने वाले कूर्म को नमस्कार है। यज्ञ वराह नाम से प्रसिद्ध, हिरण्याक्ष को विदीर्ण करने वाले को नमस्कार है ॥७२-७८॥ वामन रूप धारण करने वाले, क्षत्रिय कुल के विनाशक को नमस्कार है। रावण का मर्दन करने वाले को नमस्कार है। नन्द के पुत्र कृष्ण के अग्रज बलराम को नमस्कार है। कमलाकान्त ! तुमको नमस्कार है। सुखदाता को नमस्कार है। स्मरण मात्र से दुःखों को दूर कर देने वाले तुमको बार बार नमस्कार है। यज्ञेश ! यज्ञविन्यास ! यज्ञविघ्नहर ! यज्ञरूप ! यज्ञविधि ! यज्ञांग ! तुम्हारी हम वन्दना कर रहे हैं। इस प्रकार कश्यप ने लोक पावन देवेश वामन की स्तुति की। यह सुनकर कश्यप के आनन्द को और बढ़ाते हुए वामन ने हँसकर कहा ॥७९-८२॥

श्री भगवान् बोले—तात ! मैं प्रसन्न हूँ, सुर पूजित ! आपका कल्याण होगा, आपके सब मनोरथों को

अहं जन्मद्वये त्वेवं युवयोः पुत्रतां गतः । अस्मिञ्जन्मन्यपि तथा साधयाम्युत्तमं सुखम् ॥८४॥
अत्रान्तरे बलिर्दैत्यो दीर्घसत्रं महामखम् । आरेभे गुरुणा युक्तः काव्येन च मुनीश्वरैः ॥८५॥
तस्मिन्मखे समाहूतो विष्णुर्लक्ष्मीसमन्वितः । हविः स्वीकरणार्थाय ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥८६॥
प्रवृद्धैश्वर्यदैत्यस्य वर्त्तमाने महाक्रतौ । आमंत्र्य मातापितरौ स बटुर्वामनो ययौ ॥८७॥
स्मितेन मोहयँल्लोकं वामनो भक्तवत्सलः । हविर्भोक्तुमिवायातो बलेः प्रत्यक्षतो हरिः ॥८८॥
दुर्वृत्तो वा सुवृत्तो वा जडो वा पण्डितोऽपि वा । यो भक्तियुक्तस्तस्यान्तः सदा संनिहितो हरिः ॥८९॥
आयान्तं वामनं दृष्ट्वा ऋषयो ज्ञानचक्षुषः । ज्ञात्वा नारायणं देवमुद्ययुः सभ्यसंयुताः ॥९०॥
एतज्ज्ञात्वा दैत्यगुरुरेकांते बलिमब्रवीत् । स्वसारमविचार्यैव खलाः कार्याणि कुर्वते ॥९१॥

शुक्र उवाच

भो भो दैत्यपते सौम्य ह्यपहर्ता तव श्रियम् । विष्णुर्वामनरूपेण ह्यदितेः पुत्रतां गतः ॥९२॥
तवाध्वरं स आयाति त्वया तस्यासुरेश्वर । न किंचिदपि दातव्यं मन्मतं शृणु पण्डित ॥९३॥
आत्मबुद्धिः सुखकरी गुरुबुद्धिर्विशेषतः । परबुद्धिर्विनाशाय स्त्रीबुद्धिः प्रलयंकरी ॥९४॥
शत्रूणां हितकृद्यस्तु स हन्तव्यो विशेषतः ॥९५॥

बलिरुवाच

एवं गुरो न वक्तव्यं धर्ममार्गविरोधतः । यदादत्ते स्वयं विष्णुः किमस्मादधिकं वरम् ॥९६॥
कुर्वन्ति विदुषो यज्ञान्विष्णुप्रीणनकारणात् । स चेत्साक्षाद्धविर्भोगी मत्तः कोऽप्यधिको भुवि ॥९७॥

मैं पूरा करूँगा। मैं इस प्रकार और दो जन्मों में आपका पुत्र बन चुका हूँ। इस जन्म में भी पूर्व की ही भाँति आपको उत्तम सुख प्रदान करूँगा। इसी बीच दैत्यराज बलि ने गुरु शुक्र और महामुनियों की सहायता से अधिक दिनों तक चलने वाला महायज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञ में लक्ष्मी के सहित विष्णु भी हवि ग्रहण करने के लिए ब्रह्मवादी ऋषियों द्वारा आवाहित थे। अनेकों ऐश्वर्य-शाली राक्षसों से भरे हुए उस यज्ञ में माता-पिता की अनुमति लेकर बटु वामन भी गये ॥८७॥ उस भक्तवत्सल बटु के मन्द हास्य से संसार मोहित हो गया। मानों बलि की हवि ग्रहण करने के लिए हरि स्वयं ही वहाँ आ गए। दुराचारी, सदाचारी, मूर्ख अथवा पंडित जो कोई भी हो उसको, भक्ति को देखकर भगवान् सर्वदा उसके समीप उपस्थित रहते हैं। ज्ञान-चक्षु ऋषियों ने साक्षात् नारायण को वामन रूप में वहाँ आते देखकर बड़े सम्मान के साथ उनका सत्कार किया। दैत्य-गुरु शुक्र इस रहस्य को ताड़ गए, उन्होंने एकान्त में बलि से कहा, क्योंकि दुष्ट जन अपनी शक्ति को समझे बिना ही कार्य करते हैं। ॥८८-९१॥

शुक्र बोले—दैत्यपते! सौम्य! तुम्हारी सम्पत्ति को अपहरण करने वाले विष्णु वामन के रूप में अदिति के पुत्र हुए हैं। असुरेश्वर! वही तुम्हारे यज्ञ में आ रहे हैं, परन्तु उनको कुछ भी न देना। पंडित! मेरे सुझाव को सुनो, अपना विवेक सुखकर होता है, किन्तु गुरु का उपदेश और भी कल्याणप्रद होता है। दूसरे की बुद्धि से काम करने वाला विनष्ट होता है और स्त्री की बुद्धि तो प्रलय मचा देती है। जो शत्रुओं का हितैषी हो उसे विशेष रूप से मारना चाहिए ॥९२-९५॥

बलि बोला—गुरुदेव! इस प्रकार स्वयं आप धर्म विरोधी चर्चा न करें। स्वयं विष्णु यदि मेरे अतिथि या याचक बनें तो इससे बढ़कर दूसरा क्या वर या श्रेय हो सकता है। विद्वान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए ही

तदेव परमं दानं दत्तं भवति चाक्षयम् ॥९८॥
दरिद्रेणापि यत्किंचिद्दीयते विष्णवे गुरो। येन केनाप्यर्चितश्चेद्ददाति परमां गतिम् ॥९९॥
स्मृतोऽपि परया भक्त्या पुनाति पुरुषोत्तमः। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥१००॥
हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। स विष्णुलोकमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१०१॥
जिह्वाग्रे वसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्। स याति विष्णुभवनमिति प्राहुर्मनीषिणः ॥१०२॥
गोविंदेति सदा ध्यायेद्यस्तु रागातिवर्जितः। हरिभक्त्या महाभाग तेन विष्णुः प्रसीदति ॥१०३॥
अग्नौ वा ब्राह्मणे वापि हूयते यद्धविर्गुरो! कृतार्थोऽस्मि न संशयः ॥१०४॥
अहं तु हरितुष्ट्यर्थं करोम्यध्वरमुत्तमम्। स्वयमायाति चेद्विष्णुः हुतवह्निमनोरमम् ॥१०५॥
एवं वदति दैत्येन्द्रे विष्णुर्वामनरूपधृक्। प्रविवेशाध्वरस्थानं प्रत्यगृह्णात्कृताञ्जलिः ॥१०६॥
तं दृष्ट्वा कोटिसूर्याभं योग्यावयवसुन्दरम्। वामनं सहसोत्थाय परमां मुदमाप्तवान् ॥१०७॥
दत्त्वासनं च प्रक्षाल्य पादौ वामनरूपिणम्। सकुटुम्बो वहन्मूर्ध्ना हर्षाश्रुनयनोऽब्रवीत् ॥१०८॥
विष्णवेऽस्मै जगद्धाम्ने दत्त्वार्घ्यं विधिवद्बलिः। रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा

बलिरुवाच

जीवितं सफलं मेऽद्य कृतार्थोऽस्मि न संशयः ॥१०९॥
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलो मखः। त्वदागमनमात्रेण ह्यनायासो महोत्सवः ॥११०॥
अमोघामृतवृष्टिर्मे समायातातिदुर्लभा। यैः पूर्वं हि तपस्तप्तं तदद्य सफलं प्रभो ॥१११॥
एते च ऋषयः सर्वे कृतार्था नात्र संशयः।

यज्ञ करते हैं। यदि मेरे यज्ञ में वही साक्षात् हवि के भोक्ता बन जायं तो मुझसे बढ़कर संसार में और दूसरा कौन भाग्यवान् होगा? दरिद्र भी जो कुछ गुरु विष्णु को देता है वही परम दान है, वही अक्षय होताहै। अनन्य भाव से स्मरण करने पर भी पुरुषोत्तम लोगों को पवित्र करते हैं। चाहे कोई किसी प्रकार से भगवान् की पूजा करे उसे हरि अवश्य परमगति देते हैं ॥९६-९९॥ दुष्ट चित्त लोगों के स्मरण करने पर भी हरि उनके पापों को दूर कर देते हैं, क्योंकि विना इच्छा के भी छू देने पर अग्नि जला ही देती है। जिसकी जिह्वा पर दो अक्षरों का हरि-नाम सदा वास करता है, वह उस विष्णुलोक को प्राप्त करता है जहां से पुनः लौटना नहीं पड़ता। जो राग-द्वेष दूर रह कर गोविन्द का ध्यान करता है वह विष्णु-भवन को प्राप्त करता है, ऐसा मनीषो कहते हैं। गुरुदेव! अग्नि या ब्राह्मण के मुख में जो हवि भगवद्-भक्ति पूर्वक दी जाती है, उससे भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥१००-१०३॥ मैं तो केवल भगवत्-प्रीति के लिए ही उस उत्तम यज्ञ को कर रहा हूं। यदि विष्णु स्वयं मेरे यज्ञ में आ रहे हैं। तब तो मैं कृतार्थ हो गया, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं! इस प्रकार दैत्यपति बलि की गुरु जी से वार्ता हो रही थी कि इतने में प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी वामन रूप धारी विष्णु यज्ञमण्डप में चले आये। करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी वामन के परम मनोहर रूप को देखकर बलि बड़ी शीघ्रता से उठकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और आसन पर बैठाकर भगवान् वामन के चरणों को धोया, भगवान् के चरणोदक को कुटुम्ब सहित अपने शिर पर चढ़ा परम आनन्द प्राप्त किया। तत्पश्चात् विधि पूर्वक जगद्धाम विष्णु को अर्घ्य प्रदान कर आनन्द-मग्न हो गया। उसके नेत्रों से आनन्द के आंसू बहने लगे और रोमाञ्च हो आया। किसी प्रकार अपने को सम्हाल कर बोला ॥१०४-१०८॥

आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरा यज्ञ सफल हो गया, मेरा जीवन सफल हो गया और मैं कृतार्थ हो गया, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। अति दुर्लभ अमोघ अमृत की वर्षा मेरे यहाँ हो गई। तुम्हारे आगमन मात्र से ही अनायास महोत्सव हो गया। ये सभी ऋषि भी आज कृतार्थ हो गए। प्रभो! जिन ऋषियों ने तपस्या

कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि न संशयः । तस्मात्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः ॥११२॥
त्वदाज्ञया त्वन्नियोगं साधयामीति मन्मनः । अत्युत्साहसमायुक्तं समाज्ञापय मां प्रभो ॥११३॥
एवमुक्तो दीक्षितेन प्रहसन्वामनोऽब्रवीत् । देहि मे तपसि स्थातुं भूमिं त्रिपदसंमिताम् ॥११४॥
एतच्छ्रुत्वा बलिः प्राह राज्यं याचितवान्नहि । ग्रामं वा नगरं वापि धनं वा किं कृतं त्वया ॥११५॥
तन्निशम्य बलिं प्राह विष्णुःसर्वशरीरभृत् । आसन्नभ्रष्टराज्यस्य वैराग्यं जनयन्निव ॥११६॥

श्रीभगवानुवाच

शृणुदैत्येन्द्र वक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतमं परम् । सर्वसंगविहीनानां किमर्थैः साध्यते वद ॥११७॥
अहं तु सर्वभूतानामन्तर्यामीति भावय । मयि सर्वमिदं दैत्य ! किमन्यैः साध्यते वद ॥११८॥
रागद्वेषविहीनानां शान्तानां त्यक्तमायिनाम् । नित्यानंदस्वरूपाणां किमन्यैः साध्यते धनैः ॥११९॥
आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यतां शान्तचेतसाम् । अभिन्नमात्मनः सर्वं को दाता दीयते च किम् ॥१२०॥
पृथ्वीयं क्षत्रियवंशा इति शास्त्रेषु निश्चितम् । तदाज्ञायां स्थिताः सर्वे लभन्ते परमं सुखम् ॥१२१॥
दातव्यो मुनिभिश्चापि षष्ठांशो भूभुजे बले ! । महीयं ब्राह्मणानां तु दातव्या सर्वयत्नतः ॥१२२॥
भूमिदानस्य माहात्म्यं न भूतं न भविष्यति । परं निर्वाणमाप्नोति भूमिदो नात्र संशयः ॥१२३॥
स्वल्पामपि महीं दत्त्वा श्रोत्रियायाहिताग्नये । ब्रह्मलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१२४॥
भूमिदः सर्वदः प्रोक्तो भूमिदो मोक्षभाग्भवेत् । अतिदानं तु तज्ज्ञेयं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१२५॥
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः । दशहस्तां महीं दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१२६॥

की थी उनकी तपस्या सफल हो गई, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं । मैं कृतार्थ हो गया, इसमें सन्देह नहीं, इसलिए भगवन् ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है, बार-बार नमस्कार है । आपकी आज्ञा के अनुसार आप के आदेशों का पालन करूँ, यही मेरी इच्छा है । प्रभो ! मुझ सेवक को आज्ञा दीजिए, मैं उत्साह के साथ पालन करूँगा । ॥१०९-११३॥ यजमान की ऐसी बातें सुनकर भगवान् वामन हँसते हुए बोले—

तो मुझे तपस्या करने के लिए केवल तीन पग भूमि दे दो । यह सुनकर बलि ने कहा 'न तो आपने राज्य मांगा, न ग्राम, न नगर और न धन ही; आपने यह क्या किया ? बलि की बातें सुनकर अखिल जीव को धारण और पोषण करने वाले विष्णु ने बलि से इस प्रकार कहा मानो निकट भविष्य में राज्यच्युत होने वाले को आश्वासन देने के लिए वे वैराग्य उत्पन्न कर रहे हों ॥११४-११६॥

श्रीभगवान् बोले—दैत्येन्द्र ! सुनो, आज मैं परम गुह्य रहस्य को कह रहा हूँ । सब प्रकार की आसक्तियों से परे रहने वालों का धन से कौन सा प्रयोजन सिद्ध हो सकता है ? बताओ ! मैं सब प्राणियों का अन्तर्यामी हूँ, ऐसा समझो । दैत्य ! यह सारा जगत् मुझमें ही स्थित है, तो बताओ, मुझे अन्य वस्तुओं से क्या लाभ होगा ? राग द्वेष से रहित, शान्त, मायामुक्त और नित्यानन्द-स्वरूप व्यक्तियों को अन्य धन से क्या लाभ होगा ? सब प्राणियों को अपने समान देखने वाले, शान्तचित्त और सबको अपने से अभिन्न समझने वाले के लिए कौन दाता है और क्या दे सकता है ? यह पृथ्वी क्षत्रियों के अधिकार में रहती है, ऐसा शास्त्रों में निश्चित किया गया है । उसी क्षत्रिय की आज्ञा में रहकर सारे प्राणी सुख प्राप्त करते हैं । बलि ! मुनियों को भी भूमिपति राजा को उपज का छठा भाग देना चाहिए । ब्राह्मणों के लिए यह पृथ्वी दान में सब प्रकार से देनी चाहिए । भूमिदान का बहुत बड़ा महत्त्व है, ऐसा दान न तो हुआ है न होगा । भूमिदाता परममोक्ष को प्राप्त करता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥११७-१२३॥ किसी श्रोत्रिय अग्निहोत्र करने वाले ब्राह्मण को थोड़ा भी भूदान करने से दाता आवागमन से रहित ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है । भूमि दाता ही सब कुछ का दाता कहा जाता है ।

सत्पात्रे भूमिदाता यः सर्वदानफलं लभेत् । भूमिदानसमं नान्यत्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥१२७॥
द्विजाय वृत्तिहीनाय यः प्रदद्यान्महीं बले । तस्य पुण्यफलं वक्तुं न क्षमोऽब्दशतैरहम् ॥१२८॥
सक्ताय देवपूजासु वृत्तिहीनाय दैत्यप । स्वल्पामपि महीं दद्याद्यः स विष्णुर्न संशयः ॥१२९॥
इक्षुगोधूमतुवरीपूगवृक्षादिसंयुता । पृथ्वी प्रदीयते येन स विष्णुर्नात्र संशयः ॥१३०॥
वृत्तिहीनाय विप्राय दरिद्राय कुटुम्बिने । स्वल्पामपि महीं दत्त्वा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥१३१॥
सक्ताय देवपूजासु विप्रायाढकिकां महीम् । दत्त्वा लभेत गङ्गायां त्रिरात्रस्नानजं फलम् ॥१३२॥
विप्राय वृत्तिहीनाय सदाचाररताय च । द्रोणिकां पृथिवीं दत्त्वा यत्फलं लभते शृणु ॥१३३॥
गङ्गातीर्थाश्वमेधानां शतानि विधिवन्नरः । कृत्वा यत्फलमाप्नोति तदाप्नोति स पुष्कलम् ॥१३४॥
ददाति खारिकां भूमिं दरिद्राय द्विजाय यः । तस्य पुण्यं प्रवक्ष्यामि वदतो मे निशामय ॥१३५॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । विधाय जाह्नवीतीरे यत्फलं तल्लभेद्ध्रुवम् ॥१३६॥
भूमिदानं महादानमतिदानं प्रकीर्त्तितम् । सर्वपापप्रशमनमपवर्गफलप्रदम् ॥१३७॥
अत्रेतिहासं वक्ष्यामि शृणु दैत्यकुलेश्वर । यच्छ्रुत्वा श्रद्धया युक्तो भूमिदानफलं लभेत् ॥१३८॥
असीत्पुरा द्विजवरो ब्राह्मकल्पे महामतिः । दरिद्रो वृत्तिहीनश्च नाम्ना भद्रमतिर्बले ॥१३९॥
श्रुतानि सर्वशास्त्राणि तेन वेदविदानिशम् । श्रुतानि च पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥१४०॥
अभवंस्तस्य षट्पत्न्यः श्रुतिः सिन्धुर्यशोवती । कामिनी मालिनी चैव शोभा चेति प्रकीर्तिताः ॥१४१॥

योग्य व्यक्ति को भूमि दान करने से दाता सब दानों का फल पा जाता है। भूमिदान के समान तीनों लोकों में कोई दान नहीं है ॥१२४-१२७॥ बलि ! जीविकाहीन ब्राह्मण को जो भूमि दान करता है, उसके पुण्य फल को सौ वर्षों में भी मैं नहीं कह सकता हूँ ।१२८। दैत्यपति ! जीविकाहीन और सर्वदा देवाराधन में लगा रहने वाले ब्राह्मण को थोड़ी सी भी पृथ्वी का दान देने से दाता विष्णुतुल्य हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। ईख, गेहूँ, अरहर और सुपारी के वृक्ष से युक्त पृथ्वी का जो दान करता है वह विष्णुरूप हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥१२९-१३०॥ जीविकाहीन, दरिद्र और बहुकुटुम्बी ब्राह्मण को थोड़ी सी भी पृथ्वी का दान देने से मनुष्य विष्णुलीन हो जाता है। देवाराधन में तत्पर रहने वाले विप्र को अरहर वाली भूमि देने से गंगा में तीन रात्रि स्नान करने के समान फल मिलता है। जीविकाहीन, सदाचारी विप्र को द्रोणिका (एक नाप) परिमित भूमि देने से जो फल मिलता है उसको सुनो—गंगा तीर्थ और विधिपूर्वक सौ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करने से जो अक्षय फल मनुष्य को मिलता है वह फल उस दानी को मिलता है। जो दरिद्र ब्राह्मण को खारिका परिमित भूमि प्रदान करता है उसके पुण्य को मैं बतला रहा हूँ सुनो—गंगा तट पर सहस्र अश्वमेध, सौ वाजपेय करने से जो फल प्राप्त होता है वह उसको मिलता है, यह ध्रुव है ॥१३१-१३६॥ भूमिदान, महादान और परमोत्कृष्ट दान कहा गया है, यह सब पापों को मिटाने वाला और मोक्ष फल देने वाला है। दैत्य कुल के स्वामी ! सुनो, मैं इस विषय में एक प्राचीन आख्यान सुना रहा हूँ जिसको श्रद्धापूर्वक सुनने से भी भूमिदान का फल मिलता है ॥१३७-१३८॥

बले ! प्राचीन काल में ब्राह्मकल्प में भद्रमति नामक एक महाबुद्धिमान् ब्राह्मण था। वह अति दरिद्र और आश्रयहीन था। वह रात-दिन सब शास्त्रों का अध्ययन किया करता था, और सब धर्मशास्त्रों तथा पुराणों का भी श्रवण करता था। उसकी श्रुति, सिन्धु, यशोवती, कामिनी, मालिनी और शोभा नाम की छः पत्नियाँ थीं। असुरश्रेष्ठ !

आसु पत्नीषु तस्यासञ्चत्वारिंशच्छतद्वयम् । पुत्राणामसुरश्रेष्ठ सर्वे नित्यं बुभुक्षिताः ॥१४२॥
अकिञ्चनो भद्रमतिः क्षुधार्त्तानात्मजान्प्रियाः । पश्यन्स्वयं क्षुधार्त्तश्च विललापाकुलेन्द्रियः ॥१४३॥
धिग्जन्म भाग्यरहितं धिग्जन्म धनवर्जितम् । धिग्जन्म धर्मरहितं धिग्जन्म ख्यातिवर्जितम् ॥१४४॥
नरस्य बह्वपत्यस्य धिग्जन्मैश्वर्यवर्जितम् । अहो गुणाः सौम्यता च विद्वत्ता जन्म सत्कुले ॥१४५॥
दारिद्र्याम्बुधिमग्नस्य सर्वमेतन्न शोभते । प्रियाः पुत्राश्च पौत्राश्च बान्धवा भ्रातरस्तथा ॥१४६॥
शिष्याश्च सर्वमनुजास्त्यजन्त्यैश्वर्यवर्जितम् । चाण्डालो वा द्विजो वापि भाग्यवानेव पूज्यते ॥१४७॥
दरिद्रः पुरुषो लोके शववल्लोकनिन्दितः । अहो संपत्समायुक्तो निष्ठुरो वाप्यनिष्ठुरः ॥१४८॥
गुणहीनोऽपि गुणवान्मूर्खो वाप्यथ पण्डितः । ऐश्वर्यगुणयुक्तश्चेत्पूज्य एव न संशयः ॥१४९॥
अहो दरिद्रता दुःखं तत्राप्याशातिदुःखदा । आशाभिभूताः पुरुषा दुःखमश्नुवतेऽक्षयम् ॥१५०॥
आशाया दासा ये दासास्ते सर्वलोकस्य । आशा दासी येषां तेषां दासायते लोकः ॥१५१॥
मानो हि महतां लोके धनमक्षयमच्यते । तस्मिन्नाशाख्यरिपुणा माने नष्टे दरिद्रता ॥१५२॥
सर्वशास्त्रार्थवेत्तापि दरिद्रो भाति मूर्खवत् । नैष्किञ्चन्यमहाग्राहग्रस्तानां को विमोचकः ॥१५३॥
अहो दुःखमहो दुःखमहो दुःखं दरिद्रता । तत्रापि पुत्रभार्याणां बाहुल्यमतिदुःखदम् ॥१५४॥
एवमुक्त्वा भद्रमतिः सर्वशास्त्रार्थपारगः । अन्यमैश्वर्यदं धर्मं मनसाऽचिन्तयत्तदा ॥१५५॥
भूमिदानं विनिश्चित्य सर्वदानोत्तमोत्तमम् । दानेन योऽनुमंताति स एव कृतवान्पुरा ॥१५६॥
प्रापकं परमं धर्मं सर्वकामफलप्रदम् । दानानामुत्तमं दानं भूदानं परिकीर्तितम् ॥१५७॥

इन पत्नियों से उसको दो सौ चालीस पुत्र हुए जो द्रव्याभाव के कारण सर्वदा भूखे रह जाते थे ॥१३९-१४२॥ दरिद्र और क्षुधातुर भद्रमति अपने पुत्रों और प्रिय पत्नियों को भूख से पीड़ित देखकर घबराकर विलाप करने लगा १४३॥ भाग्यहीन जीवन को धिक्कार है । धनहीन जीवन को धिक्कार है । इसी प्रकार यशहीन और अधार्मिक जीवन को भी धिक्कार है । अधिक पुत्रवाले परन्तु दरिद्र पिता के जीवन को धिक्कार है । अहो ! दरिद्रता के समुद्र में डूबे हुए व्यक्ति के लिए उसके सद्गुण, सौम्य स्वभाव, विद्वत्ता और उत्तम कुल में जन्म आदि सब कुछ व्यर्थ है । प्रिय पत्नी, पुत्र, पौत्र, बन्धु तथा भाई, शिष्य और सभी मनुष्य दरिद्र व्यक्ति को सर्वथा छोड़ देते हैं । भाग्यवान् चाहे चाण्डाल हो या ब्राह्मण उसी को पूजा होती है ॥१४४-१४७॥ इस लोक में दरिद्र व्यक्ति शव के समान निन्दित होता है । आश्चर्य है कि धनी व्यक्ति कठोर होते हुए भी दयालु है, गुणहीन होते हुए भी गुणी है और मूर्ख होते हुए भी पण्डित है । सत्य भी है, ऐश्वर्य रूपी गुण के कारण वह पूज्य ही है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । अहो ! दरिद्रता भी क्या महान् दुःख है ? इस पर भी आशा तो और अधिक दुःखदायिनी है । आशा से ग्रस्त मानव सर्वदा दुःख का ही भोग करता है । जो आशा के दास हैं वे सबके दास हैं, और आशा जिसकी दासी है (अर्थात् जो आशा हीन हैं) उनका सारा संसार दास है । संसार में प्रतिष्ठा हो अक्षय धन कहा गया है । आशारूपी शत्रु के द्वारा उस मान के नष्ट हो जाने पर दरिद्रता निश्चित रूप से आ जाती है ॥१४८-१५२॥ सब शास्त्रों का ज्ञाता भी दरिद्र होने के कारण मूर्ख के समान ही है । दरिद्रतारूपी महाग्राह के मुख में फँसे व्यक्ति का कौन उद्धारक है ? अहो ! दरिद्रता भी क्या ही दुःख है ? दुःख ही नहीं, महान् दुःख है, तिस पर भी अधिक पुत्र और पत्नी का होना तो और कष्टकर है ।' इस प्रकार कहकर सब शास्त्रों का पारगामी विद्वान् भद्रमति ऐश्वर्य देने वाला कौन-सा धर्म है, इसको सोचने लगा ॥१५३-१५५॥ निश्चय किया कि भूमिदान ही सब दानों में उत्तम दान है । जो पहले दान के द्वारा दूसरों को सन्तुष्ट करता है वही कृतकृत्य होता है । दानों में सर्वोत्तम दान भूमि दान ही कहा गया है । यही सब कामनाओं को देनेवाला, परम पुण्यप्रद धर्म है, जिसको देकर मनुष्य अपने

इति निश्चित्य मतिमान्धीरो भद्रमतिर्बले ।।१५८।।
यद्दत्वा समवाप्नोति यद्यदिष्टतमं नरः । सुघोषं नामविप्रेन्द्रं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ।।१५९।।
कौशाम्बींनाम नगरीं कलत्रापत्ययुग्ययौ । सुघोषो धर्मनिरतस्तं निरीक्ष्य कुटुम्बिनम् ।।१६०।।
गत्वा याचितवान्भूमिं पञ्चहस्तायतां वले । कृतार्थोऽहं भद्रमते सफलं मम जन्म च ।।१६१।।
मनसा प्रीयमाणेन समभ्यर्च्येदमब्रवीत् । इत्युक्त्वा तं समभ्यर्च्य सुघोषो धर्मतत्परः ।।१६२।।
मत्कुलं पावनं जातं त्वदनुग्रहतो द्विज । पृथिवी वैष्णवी पुण्या पृथिवी विष्णुपालिता ।।१६३।।
पञ्चहस्तमितां भूमिं ददौ तस्मै महामतिः । मन्त्रेणानेन दैत्येन्द्र सुघोषस्तं द्विजोत्तमम् ।।१६४।।
पृथिव्यास्तु प्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः । सोऽपि भद्रमतिर्विप्रो धीमता याचितां भुवम् ।।१६५।।
विष्णुबुद्ध्या समभ्यर्च्य तावतीं पृथिवीं ददौ । सुघोषो भूमिदानेन कोटिवंशसमन्वितः ।।१६६।।
दत्तवान्हरिभक्ताय श्रोत्रियाय कुटुम्बिने । बले भद्रमतिश्चापि यतः प्रार्थितवाञ्छ्रियम् ।।१६७।।
प्रपेदे विष्णुभवनं यद् गत्वा न शोचति । तथैव ब्रह्मसदने स्थित्वा कोटियुगायुतम् ।।१६८।।
स्थितवान्विष्णुभवने सकुटुम्बो युगायुतम् । ततो भुवं समासाद्य सर्वैश्वर्यसमन्वितः ।।१६९।।
ऐन्द्रं पदं समासाद्य स्थितवान्कल्पपञ्चकम् । ततो भद्रमतिर्दैत्यो निष्कामो विष्णुतत्परः ।।१७०।।
जातिस्मरो महाभागो बुभुजे भोगमुत्तमम् । तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा तत्त्वैश्वर्यमनुत्तमम् ।।१७१।।
पृथिवीं वृत्तिहीनेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः प्रदत्तवान् । तस्माद्दैत्यपते मह्यं सर्वधर्मपरायण ।।१७२।।
कोटिवंशसमेतस्य ददौ मोक्षमनुत्तमम् । वैरोचनिस्ततो हृष्टः कलशं जलपूरितम् ।।१७३।।
तपश्चरिष्ये मोक्षाय देहि मे त्रिपदां महीम् । विष्णुः सर्वगतो ज्ञात्वा जलधारावरोधिनम् ।।१७४।।
आददे पृथिवीं दातुं वर्णिने वामनाय हि ।

अभीष्ट को प्राप्त करता है । बलि ! इस प्रकार मतिमान् भद्रमति अपने मन में निश्चय कर अपनी स्त्री और सन्तति के साथ कौशाम्बी नगर में गया । बलि ! जहाँ जाकर सब ऐश्वर्यों से विभूषित सुघोष नामक विप्रेन्द्र के पास जाकर पाँच हाथ परिमित भूमि की याचना की । धार्मिक सुघोष उस बहुकुटुम्बी ब्राह्मण को देखकर मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ और उस सौम्य अतिथि की पूजा कर बोला—

'भद्रमति ! आज मैं कृतार्थ हो गया, मेरा जन्म सफल हो गया ।।१५६-१६१।। द्विज ! तुम्हारे इस अनुग्रह से मेरा कुल पवित्र हो गया ।' यह कहकर धार्मिक सुघोष ने उस विप्र की पूजा की और उस महामति ने— 'पृथ्वी वैष्णवी है, पवित्र और और विष्णु द्वारा रक्षित है, इस पृथ्वी के दान से जनार्दन मेरे ऊपर प्रसन्न हों' इस मन्त्र को पढ़कर विष्णु भावना से उस द्विजवर की पूजा कर उतनी भूमि दे दी । उस भद्रमति ने भी उस दान में प्राप्त पृथ्वी को किसी कुटुम्बी वेदपाठी हरि भक्त को दे दिया ।।१६२-१६५।। सुघोष ने उस भूदान के प्रभाव से करोड़ों वंशजों से युक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त किया जहाँ जाकर मनुष्य शोक-मोह से मुक्त हो जाता है । बलि ! यतः भद्रमति ने भी लक्ष्मी की कामना की अतः वह विष्णुलोक में कुटुम्ब सहित दस हजार वर्ष तक निवास किया, उसी प्रकार ब्रह्मलोक में दस हजार करोड़ युग तक रहने के बाद पाँच कल्प तक इन्द्र-पद पाकर सुख भोगता रहा । तदनन्तर पृथ्वी पर आकर सब प्रकार के विभवों का भोग करने वाला ब्राह्मण हुआ, पूर्व पुण्य के प्रभाव से उसको इस जीवन में भी पूर्व जन्मों का ज्ञान था । अनेकों प्रकार के भोग करने के बाद उस विष्णुभक्त भद्रमति निष्काम भावना में जीविकाहीन दरिद्र ब्राह्मणों को पृथ्वी का दान किया । उस पर विष्णु प्रसन्न हो गए और उन्होंने करोड़ वंश सन्तति सहित उस ब्राह्मण को परमोत्तम मोक्ष रूपी ऐश्वर्य दे दिया । इसलिए दैत्यपति ! सर्व-धर्म-परायण ! मैं मोक्ष के लिए तपस्या करूँगा, तुम मुझे तीन डग परिमित भूमि दे दो । बलि यह सुनकर प्रसन्न हो गया और उसने जल से भरे कमण्डल को उस ब्रह्मचारी वामन को

काव्यं हस्तस्थदर्भाग्रं तच्छरे संन्यवेशयत् । दर्भाग्रेऽभून्महाशस्त्रं कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥१७५॥
अमोघं ब्राह्ममत्युग्रं काव्याक्षिग्राससोलुपम् । आदाय भार्गवसुरानसुरानेकचक्षुषा ॥१७६॥
पश्येति व्यादिदेशे च दर्भाग्रं शस्त्रसन्निभम् । बलिर्ददौ महाविष्णोर्महीं त्रिपदसंमिताम् ॥१७७॥
ववृधे सोऽपि विश्वात्मा आब्रह्मभुवनं तदा । अमिमीत महीं द्वाभ्यां पद्भ्यां विश्वतनुर्हरिः ॥१७८॥
स आब्रह्मकटाहांतपदान्येतानि सप्रभः । पादाङ्गुष्ठाग्रनिर्भिन्नं ब्रह्माण्डं द्विधिदे द्विधा ॥१७९॥
तद्वारा बाह्यसलिलं बहुधारं समागतम् । धौतविष्णुपदं तोयं निर्मलं लोकपावनम् ॥१८०॥
अजाण्डबाह्यनिलयं धारारूपमवर्त्तत । तज्जलं पावनं श्रेष्ठं ब्रह्मादीन्पावयत्सुरान् ॥१८१॥
सप्तर्षिसेवितं चैव न्यपतन्मेरुमूर्द्धनि ॥१८२॥
एतद्दृष्ट्वाद्भुतं कर्म ब्रह्माद्या देवतागणाः । ऋषयो मनवश्चैव ह्यस्तुवन्हर्षविह्वलः ॥१८३॥

देवा ऊचुः

नमः परेशाय परात्मरूपिणे परात्परायापररूपधारिणे ।
ब्रह्मात्मने ब्रह्मरतात्मबुद्धये नमोऽस्तु तेऽव्याहतकर्मशीलिने ॥१८४॥
परेश परमानन्द परमात्मन्परात्पर । सर्वात्मने जगन्मूर्त्ते प्रमाणातीत ते नमः ॥१८५॥
विश्वतश्चक्षुषे तुभ्यं विश्वतो बाहवे नमः । विश्वतः शिरसे चैव विश्वतो गतये नमः ॥१८६॥
एवं स्तुतो महाविष्णुर्ब्रह्माद्यैः सर्वदिवौकसाम् । दत्त्वाभयं च मुमुदे देवदेवः सनातनः ॥१८७॥

पृथ्वी दान देने के लिए हाथ में पकड़ा। सर्वज्ञ विष्णु ने जलधारा को रोकने के लिए कमण्डल के छिद्र पर बैठे शुक्र को जान लिया और अपने हाथ के कुश के अग्रभाग को उस कमण्डलु की नलिका में चुभो दिया उस कुश की नोक कोटि सूर्य के समान प्रभावान्, अति कठोर, अमोघ तथा शुक्राचार्य के नेत्र को कवलित करने के लिए लोलुप ब्रह्म अस्त्र के समान कोई महान् शस्त्र हो गई। तब शस्त्र के समान उस कुश के अग्रभाग को वामन ने यह कहते हुए कि हे शुक्राचार्य ! देवों और असुरों को एक आंख से देखो, शुक्राचार्य के नेत्र में घुसेड़ दिया। तब बलि ने महाविष्णु को तीन पद परिमित पृथ्वी दे दी ॥१६६-१७७॥ तत्पश्चात् विश्वात्मा हरि ने ब्राह्म लोक तक अपना आकार बढ़ा दिया और उस विश्वरूप हरि ने दो ही डगों से पृथ्वी को नाप डाला। उस परम तेजस्वी ने अपने डगों से सारे ब्रह्माण्ड को नाप दिया। उसी समय उसके पैर के अंगूठे के नख से ब्राह्माण्ड दो भागों में बँट गया। उस ब्रह्माण्ड के मध्य से जल की अनेक धारायें बह निकलीं। विष्णु के चरण को धोने वाली जलधारा ब्रह्माण्ड के बाह्य आश्रयभूत धारा रूप में बहने लगी और वह पुनीत धारा ब्रह्मा आदि सुरों को पवित्र करती हुई सप्तर्षि से सुशोभित सुमेरु पर्वत के शिखर पर गिरी ॥१७८-१८२॥ इस आश्चर्य-जनक कार्य को देखकर देवगण, ऋषि, मुनि और मनुगण आनन्द से से विह्वल होकर भगवान् की स्तुति करने लगे ॥१८३॥

देवगण बोले—महाप्रभु, परात्मस्वरूप, परात्पर और अपर रूपधारी को नमस्कार है। ब्रह्मस्वरूप, ज्ञानरत, आत्मबुद्ध और अबाध कर्म करने वाले को नमस्कार है। परेश ! परमानन्द ! परमात्मन् ! परात्पर ! प्रमाण से परे ! जगन्मूर्ति ! सर्वात्मा ! प्रमाणातीत ! आपको नमस्कार है। विश्वतश्चक्षु (चारों ओर दृष्टि रखने वाले) विश्वतो बाहु (अनन्त भुजवाले) तुमको नमस्कारहै। विश्वतः शिरस् (अनन्त शिर वाले)सर्वत्र गति वाले तुमको नमस्कार है। ब्रह्मा आदि देवों की ऐसी स्तुति सुनकर देवाधिदेव सनातन देव प्रसन्न हो गए और देवताओं को अभय वर दिया। अब तृतीय डग के लिए उपयुक्त भूमि न पाकर उन्होंने बलि को बांध दिया। इस प्रकार बलि को सर्वथा शरणागत

विरोचनात्मजं दैत्यं पदैकार्थं बबन्ध ह । ततः प्रपन्नं तु बलिं ज्ञात्वा चास्मै रसातलम् ।
ददौ तद्द्वारपालश्च भक्तवश्यो बभूव ह ॥१८८॥

नारद उवाच

रसातले महाविष्णुर्विरोचनसुतस्य वै । किं भोज्यं कल्पयामास घोरे सर्पभयाकुले ॥१८९॥

सनक उवाच

अमन्त्रितं हविर्यत्तु हूयते जातवेदसि । अपात्रे दीयते यच्च तद्घोरं भोगसाधनम् ॥१९०॥
हुतं हविरशुचिना दत्तं सत्कर्म यत्कृतम् । तत्सर्वं तत्र भोगार्हमधःपातफलप्रदम् ॥१९१॥
एवं रसातलं विष्णुर्बलये सासुराय तु । दत्त्वाभयं च सर्वेषां सुराणां त्रिदिवं ददौ ॥१९२॥
पूज्यमानोऽमरगणैः स्तूयमानो महर्षिभिः । गन्धर्वैर्गीयमानश्च पुनर्वामनतां गतः ॥१९३॥
एतद्दृष्ट्वा महत्कर्म मुनयो ब्रह्मवादिनः । परस्परं स्मितमुखाः प्रणेमुः पुरुषोत्तमम् ॥१९४॥
सर्वभूतात्मको विष्णुर्वामनत्वमुपागतः । मोहयन्निखिलं लोकं प्रपेदे तपसे वनम् ॥१९५॥
एवं प्रभावा सा देवी गङ्गा विष्णुपदोद्भवा । यस्याः स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ॥१९६॥
इदं तु गङ्गामाहात्म्यं यः पठेच्छृणुयादपि । देवालये नदीतीरे सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥१९७॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे गङ्गोत्पत्तिर्गङ्गामाहात्म्यं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

समझकर उसको रसातल भेज दिया और उसका द्वारपाल बनकर उस भक्त की सेवा भी स्वीकार की ॥१८४-१८८॥

नारद बोले—महाविष्णु ने सर्पों से भरे अतएव भयङ्कर उस रसातल में विरोचन पुत्र बलि के लिए भोजन की क्या व्यवस्था की ? ॥१८९॥

सनक बोले—बिना मन्त्र के जिस हवि को अग्नि में छोड़ा जाता है, अथवा अपात्र को जो दान दिया जाता है वही बलि के लिये भयंकर भोग का साधन बनता है। अपवित्र भाव से हवन में दी हुई हवि और किये हुए सत्कर्म, जो अधःपतन रूप फल के देने वाले हैं, बलि के लिए भोगोपयोगी होते हैं। इस प्रकार बलि को रसातल पहुँचाकर विष्णु ने सब देवों को निर्भय करके स्वर्गलोक का अधिकारी बना दिया। पुनः देवगणों ने उनकी पूजा की, महर्षियों ने स्तुति की और गन्धर्वों ने उनका यशोगान किया। इस प्रकार भक्तों से आदर प्राप्त कर पुनः उन्होंने अपना वामनरूप बना लिया ॥१९०-१९३॥ विष्णु के इस महान् अद्भुत कार्य को देखकर ब्रह्मज्ञानी मुनिगण परस्पर एक दूसरे को देखकर मुस्कराने लगे और उन पुरुषोत्तम को प्रणाम किया। इस प्रकार सब प्राणियों के रूप में और अन्तःकरण में विराजमान रहने वाले विष्णु अपना वामन रूप धारण कर सब लोकों को मन्त्र-मुग्ध करते हुए तपस्या के लिए वन को चले गये। विष्णु के चरणों से निकलने वाली गंगा का ऐसा प्रभाव है, जिसके स्मरणमात्र से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। जो कोई इस गंगा-माहात्म्य को नदी तीर पर अथवा देवालय में सुनता है वह भी अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥१९४-१९७॥

श्रीनारदीयपुराण में गंगा-माहात्म्य-वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

नारद उवाच

श्रुतं तु गङ्गामाहात्म्यं वाञ्छितं पापनाशनम् । अधुना लक्षणं ब्रूहि भ्रातर्मे दानपात्रयोः ॥१॥

सनक उवाच

सर्वेषामेव वर्णानां ब्राह्मणः परमो गुरुः । तस्मै दानानि देयानि दत्तस्यानन्त्यमिच्छता ॥२॥
ब्राह्मणः प्रतिगृह्णीयात्सर्वतो भयवर्जितः । न कदापि क्षत्रविशौ गृह्णीयातां प्रतिग्रहम् ॥३॥
चण्डस्य पुत्रहीनस्य दम्भाचाररतस्य च । स्वकर्मत्यागिनश्चापि दत्तं भवति निष्फलम् ॥४॥
परदाररतस्यापि परद्रव्याभिलाषिणः । नक्षत्रसूचकस्यापि दत्तं भवति निष्फलम् ॥५॥
असूयाविष्टमनसः कृतघ्नस्य च मायिनः । अयाज्ययाजकस्यापि दत्तं भवति निष्फलम् ॥६॥
नित्यं याच्ञापरस्यापि हिंसकस्य खलस्य च । रसविक्रयिणश्चैव दत्तं भवति निष्फलम् ॥७॥
वेदविक्रयिणश्चापि स्मृतिविक्रयिणस्तथा । धर्मविक्रयिणो विप्र दत्तं भवति निष्फलम् ॥८॥
गानेन जीविका यस्य यस्य भार्या च पुंश्चली । परोपतापिनश्चापि दत्तं भवति निष्फलम् ॥९॥
असिजीवी मषीजीवी देवलो ग्रामयाजकः । धावको वा भवेत्तेषां दत्तं भवति निष्फलम् ॥१०॥

अध्याय १२

धर्माख्यान-प्रसंग

नारद बोले--भाई ! पापों को नष्ट करने वाले अभीष्ट गंगा-महात्म्य को तो सुन लिया, अब दान और दानयोग्य पात्रों का लक्षण कहिये ॥१॥

सनक बोले--ब्राह्मण सब बर्णों का परमश्रेष्ठ गुरु माना गया है। इसलिए अपने दान को अनन्त बनाने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को ब्राह्मण को अवश्य दान देना चाहिए। ब्राह्मण बिना किसी प्रकार के भय के सबसे दान ले सकता है। क्षत्रिय और वैश्य कभी भी दान न लें। अत्यन्त क्रोधी, पुत्रहीन, पाखण्ड में लीन रहने वाले और अपने कर्त्तव्य से विमुख व्यक्ति को दिया हुआ दान व्यर्थ होता है। परस्त्रीगामी, परद्रव्य-लोभी और ज्योतिषी को दिया हुआ दान व्यर्थ हो जाता है। ईर्ष्यालु, कृतघ्न, मायावी और अनधिकारी को यज्ञ कराने वाले को दान देना व्यर्थ हो जाता है। सर्वदा भिक्षा मांगने वाले, हिंसक, दुष्ट और रस बेचने वाले को दिया हुआ दान व्यर्थ जाता है ॥२-७॥ वेद-विक्रयी, स्मृति और धर्म के विक्रेता (पैसे लेकर वेद-स्मृति और धर्म का उपदेश करने वाले) ब्राह्मण को दान देना निष्फल होता है। गाकर जीविका चलाने वाला, जिसकी भार्या आचारहीन हो और जो दूसरो को पीड़ा पहुँचावे ऐसे विप्र को दान देना व्यर्थ होता है। तलवार के सहारे जीने वाले (सैनिक), लिपिक (क्लर्क), पुजारी, ग्राम पुरोहित और हरकारे को दिया हुआ दान निष्फल होता है ॥८-

निष्फलम् ॥११॥
पाककर्तुः परस्यार्थं कवये गदहारिणे । अभक्ष्यभक्षकस्यापि दत्तं भवति निष्फलम् ॥१२॥
शूद्रान्नभोजिनश्चैव शूद्राणां शवदाहिनः । पौंश्चलान्नभुजश्चापि दत्तं भवति निष्फलम् ॥१३॥
नामविक्रयिणो विष्णोः संध्याकर्मोज्झितस्य च । दुष्प्रतिग्रहदग्धस्य दत्तं भवति निष्फलम् ॥१४॥
दिवाशयनशीलस्य तथा मैथुनकारिणः । संध्याभोजिन एवापि दत्तं भवति निष्फलम् ॥१५॥
महापातकयुक्तस्य त्यक्तस्य ज्ञातिबान्धवैः । कुण्डस्य चापि गोलस्य दत्तं भवति निष्फलम् ॥१६॥
परिवित्तः शठस्यापि परिवेत्तुः प्रमादिनः । स्त्रीजितस्यातिदुष्टस्य दत्तं भवति निष्फलम्
मद्यमांसाशिनश्चापि स्त्रीविटस्यातिलोभिनः । चोरस्य पिशुनस्यापि दत्तं० ॥१७॥
ये केचित्पापनिरता निन्दिताः सुजनैः सदा । न तेभ्यः प्रतिगृह्णीयान्न च दद्याद्द्विजोत्तम ।
॥१८॥
सत्कर्मनिरतायापि देयं यत्नेन नारद
यद्दानं श्रद्धया दत्तं तथा विष्णुसमर्पणम् । याचितं वापि पात्रेण भवेत्तद्दानमुत्तमम् ॥१९॥
परलोकं समुद्दिश्य ह्यैहिकं वापि नारद । यद्दानं दीयते पात्रे तद्दानं मध्यमं स्मृतम् ॥२०॥
दम्भेन चापि हिंसार्थं परस्याविधिनापि च । क्रुद्धेनाश्रद्धयापात्रे तद्दानं मध्यमं स्मृतम् ॥२१॥
अधमं बलितोऽप्य मध्यमं स्वार्थसिद्धये । उत्तमं हरिप्रीत्यर्थं प्राहुर्वेदविदां वराः ॥२२॥

१०॥ दूसरे का भोजन बनाने वाले (रसोइया) कवि (भाँट), वैद्य और अभक्ष्य-भक्षक को दान देना व्यर्थ होता है । शूद्रों का अन्न खाने वाले, शूद्रों के शव का दाह करने वाले और वेश्या का अन्न खाने वाले विप्र को दान देना निष्फल है । विष्णु के नाम को बेचने वाले (पैसे लेकर हरिकीर्तन करने वाले), सन्ध्या न करने वाले, अनुचित दान रूपी अग्नि में अपने आचार और जीवन को जला देने वाले विप्र को दान देना व्यर्थ हो जाता है । दिन में सोने वाले और स्त्री भोग करने वाले, संध्या समय भोजन करनेवाले ब्राह्मण को दिया हुआ दान निरर्थक है । महापापी, बन्धु-बान्धवों से बहिष्कृत, कुण्ड[1] और गोलक[2] को दान देना निष्फल होता है ॥११-१५॥

परिवेत्ता, शठ, परिवित्त[3], प्रमादी स्त्री के वश में रहने वाले और अतिदुष्ट विप्र को दान देना निष्फल होता है । मद्य मांस खाने वाले, अति लोभी, स्त्रीविट (स्त्रियों के दलाल) चोर और अति लोभी को दान देना निष्फल होता है । द्विजोत्तम ! जो कोई पाप करने पर ही तुले रहते अथवा सर्वदा सज्जन जिसकी निन्दा करते हैं उनसे भी न तो दान लेना चाहिए और न देना ही चाहिए । नारद ! सत्कर्म करने वाले विप्र को प्रयत्नपूर्वक ढूंढ कर दान देना चाहिए, श्रद्धापूर्वक जो दान दिया जाता है अथवा जो विष्णु को समर्पित किया जाता है, अथवा स्वयं सत्पात्र की याचना पर जो दिया जाता है वह उत्तम दान कहा जाता है ॥१६-१९॥ नारद ! परलोक अथवा संसार सुख की कामना से जो दान सत्पात्र को दिया जाता है, वह काम्य दान है और वह मध्यम श्रेणी का है । दम्भ-पूर्वक, दूसरे की हिंसा के लिए (दूसरे को चिढ़ाने की दृष्टि से अथवा कष्ट देने की दृष्टि से), अविधि पूर्वक, क्रोधपूर्वक, अश्रद्धा से अपात्र में दिया हुआ दान मध्यम कोटि का माना गया है । बलि के लिए दिया हुआ दान अधम कोटि का और स्वार्थ सिद्धि के निमित्त दिया हुआ दान मध्यम कोटि का होता है । वेदज्ञों में श्रेष्ठ पण्डितों ने विष्णु प्रीति के लिए दिये हुए दान को उत्तम माना है । दान, भोग और विनाश

---

१. पति के रहते अन्यपति से उत्पन्न पुत्र ।
२. पति के मर जाने पर उत्पन्न किया हुआ पुत्र
३. वह बड़ा भाई जिससे पहले उसके छोटे भाई ने ब्याह कर लिया हो ।

दानभोगविनाशाश्च रायः स्युर्गतयस्त्रिधा ॥२३॥
यो ददाति च नो भुंक्ते तद्धनं नाशकारणम् । धनं धर्मफलं विप्र धर्मो माधवतुष्टिकृत् ॥२४॥
तरवः किं न जीवन्ति तेऽपि लोके परार्थकाः । यत्र मूलफलैर्वृक्षाः परकार्यं प्रकुर्वते ॥२५॥
मनुष्या यदि विप्राग्र्य न परार्थास्तदा मृताः । परकार्यं न ये मर्त्याः कायेनापि धनेन वा ॥२६॥
मनसा वचसा वापि ते ज्ञेयाः पापकृत्तमाः । अत्रेतिहासं वक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वतः ॥२७॥
यत्र दानादिकानां तु लक्षणं परिकीर्तितम् । गङ्गामाहात्म्यसहितं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२८॥
भगीरथस्य धर्मस्य संवादं पुण्यकारम् । आसीद्भगीरथो राजा सगरान्वयसंभवः ॥२९॥
शशास पृथिवीमेतां सप्तद्वीपां ससागराम् । सर्वधर्मरतो नित्यं सत्यसंधः प्रतापवान् ॥३०॥
कन्दर्पसदृशो रूपे यायजूको विचक्षणः । प्रालेयाद्रिसमो धैर्ये धर्मे धर्मसमो नृपः ॥३१॥
सर्वलक्षणसंपन्नः सर्वशास्त्रार्थपारगः । सर्वसंपत्समायुक्तः सर्वानन्दकरो मुने ॥३२॥
आतिथ्यप्रयतो नित्यं वासुदेवार्चने रतः । पराक्रमी गुणनिधिर्मंत्रः कारुणिकः सुधीः ॥३३॥
एतादृशं तं राजानं ज्ञात्वा हृष्टो भगीरथम् । धर्मराजो द्विजश्रेष्ठ कदाचिद्द्रष्टुमागतः ॥३४॥
समागतं धर्मराजमर्हयामास भूपतिः । शास्त्रदृष्टेन विधिना धर्मः प्रीत उवाच तम् ॥३५॥

धर्मराज उवाच

राजन्धर्मविदां श्रेष्ठ प्रसिद्धोऽसि जगत्त्रये । धर्मराजोऽथ कीर्ति ते श्रुत्वा त्वां द्रष्टुमागतः ॥३६॥
सन्मार्गनिरतं सत्यं सर्वभूतहिते रतम् । द्रष्टुमिच्छन्ति विबुधास्तवोत्कृष्टगुणप्रियाः ॥३७॥

यही तीन धन की उपयोग-विधियाँ हैं । जो धन दान या भोग में नहीं लगाया जाता है वह यों ही नष्ट हो जाता है । विप्र ! धन के द्वारा धर्म किया जाता है और धर्म से विष्णु प्रसन्न होते हैं । वृक्ष क्या इस संसार में नहीं जीते हैं ? वे भी तो दूसरों के लिए ही हैं, जो (वृक्ष) अपने मूल और फलों से सर्वदा परोपकार किया करते हैं ॥२०-२५॥ विप्रवर्य ! मनुष्य यदि परोपकार नहीं करते तो वे मृततुल्य हैं जो मनुष्य शरीर धन से अथवा मन और वचन से परोपकार नहीं करते हैं वे पापी समझे जाते हैं । नारद ! इस विषय में एक इतिहास बतला रहा हूँ, सुनो, जिसमें दान आदि के लक्षण और सब पापों को नष्ट करने वाले गंगा-माहात्म्य का वर्णन भी प्रसङ्गवश हो जाता है । यह आख्यान भगीरथ और धर्म के पुण्य जनक संवाद से सम्बन्ध रखता है । सगर-वंश में उत्पन्न भगीरथ नाम के राजा थे, उन्होंने सप्त सागर पर्यन्त पृथ्वी पर शासन किया । वे नित्य धर्म कार्यों में निरत रहने वाले, प्रतापी और सत्यप्रतिज्ञ थे ॥२६-३०॥ रूप में कामदेव के समान, धैर्य में हिमालय के समान और धर्म में साक्षाद् धर्म के समान एवं विद्वान् और अनेकों यज्ञों के करने वाले थे । मुने ! वे सब लक्षणों से युक्त, सब शास्त्रों के पारगामी विद्वान्, सब ऐश्वर्यों से सम्पन्न और सब के आनन्द देने वाले थे । अतिथि सत्कार में विशेष ध्यान देने वाला, पराक्रमी, गुणवान्, मन्त्रियों से सर्वदा परामर्श करने वाला, कारुणिक और बुद्धिमान् राजा सर्वदा वासुदेव की पूजा में लगा रहता था । द्विजवर्य ! ऐसे भगीरथ राजा का यश सुनकर धर्मराज किसी समय उनसे मिलने के लिए आये । भूपाल ने अतिथिरूप से आये हुए धर्मराज का शास्त्रोक्त विधि से सत्कार किया । धर्मराज स्वागत विधि से प्रसन्न हो बोले ॥३१-३५॥

धर्मराज बोले—राजन् ! धर्मज्ञों में श्रेष्ठ ! तुम जगद् विख्यात हो, इसीलिए तुम्हारी कीर्ति को सुनकर मैं (धर्मराज) (तुमको देखने के लिए) तुमसे मिलने के लिए आया हूँ । तुम्हारे उत्कृष्ट गुणों से प्रसन्न होकर देवता भी सन्मार्ग और सब प्राणियों के हित में तत्पर रहने वाले सत्य-प्रेमी तुमको देखना चाहते हैं । भूपते ! जहाँ

देवताः ॥३८॥
कीर्तिर्नीतिश्च संपत्तिर्वर्तते यत्र भूपते । वसन्ति तत्र नियतं गुणास्सन्तश्च दुर्लभम् ॥३९॥
अहो राजन्महाभाग शोभनं चरितं तव । सर्वभूतहितत्वादि मादृशामपि
इत्युक्तवन्तं तं धर्मं प्रणिपत्य भगीरथः । प्रोवाच विनयाविष्टः संहृष्टः श्लक्ष्णया गिरा ॥४०॥

भगीरथ उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ समदर्शिन् सुरेश्वर । कृपया परयाविष्टो यत्पृच्छामि वदस्व तत् ॥४१॥
धर्मा कीदृग्विधाः प्रोक्ताः के लोका धर्मशालिनाम् । ॥४२॥
क्रियत्यो यातनाः प्रोक्ताः केषां ताः परिकीर्तिताः
त्वया संमाननीया ये शासनीयाश्च ये यथा । तत्सर्वं मे महाभाग विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥४३॥

धर्मराज उवाच

साधु साधु महाबुद्धे मतिस्ते विमलोर्जिता । धर्माधर्मान्प्रवक्ष्यामि तत्त्वतः शृणु भक्तितः ॥४४॥
धर्मा बहुविधाः प्रोक्ताः पुण्यलोकप्रदायकाः । तथैव यातनाः प्रोक्ता असंख्या घोरदर्शनाः ॥४५॥
विस्तराद्गदितुं नालमपि वर्षशतायुतैः । तस्मात्समासतो वक्ष्ये धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥४६॥
वृत्तिदानं द्विजानां वै महापुण्यं प्रकीर्तितम् । तथैवाध्यात्मविदुषो दत्तं भवति चाक्षयम् ॥४७॥
कुटुम्बिनं वा शास्त्रज्ञं श्रोत्रियं वा गुणान्वितम् । यो दत्त्वा स्थापयेद्वृत्तिं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥४८॥
मातृतः पितृतश्चैव द्विजः कोटिकुलान्वितः । निर्विश्य विष्णुभवनं कल्पं तत्रैव मोदते ॥४९॥
गण्यन्ते पांसवो भूमेर्गण्यन्ते वृष्टिबिन्दवः । न गण्यन्ते विधात्रापि ब्रह्मवृत्तिफलानि वै ॥५०॥

करते हैं। अहो !
कीर्ति, नीति के साथ सम्पत्ति रहती है वहाँ सभी गुण, सज्जन पुरुष और देवगण सर्वदा निवास करते हैं। अहो ! राजन् ! महाभाग ! आपका चरित्र परमशोभन है। सब प्राणियों की रक्षा आदि गुण मेरे समान देवों में भी दुर्लभ हैं। धर्म के इस प्रकार कहने पर भगीरथ उनके चरणों पर गिर पड़े और प्रसन्न होगर विनम्र भाव से मधुर शब्दों में बोले ॥३६-४०॥

भगीरथ बोले—भगवन् ! सब धर्मों के जानने वाले समदर्शी ! सुरेश्वर ! मैं जो पूछ रहा हूँ, वह कृपया बताइए। धर्म कितने प्रकार के हैं, धर्माचरण करने वालों को कौन लोक प्राप्त होते और यातनाएँ (नरक) कितनी होती हैं, किन लोगों को यातनाएँ दी जाती हैं, आपका किसके ऊपर सम्मान भाव रहता और किसको आप दण्ड देते हैं ? हे महाभाग ! आप इन विषयों की विस्तृत व्याख्या कीजिए ॥४१-४३॥

धर्मराज बोले—महाबुद्धिमान् ! धन्य हो, धन्य हो क्योंकि तुमने विमल बुद्धि प्राप्त की है, मैं धर्म और अधर्म की यथार्थ रूप से व्याख्या कर रहा हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो। पुण्य लोकों के देने वाले धर्म बहुत प्रकार के कहे गये हैं। उसी प्रकार अत्यन्त भयङ्कर दीखने वाली यातनायें (नरक) भी असंख्य कही गयी हैं। इस विषय पर विस्तार पूर्वक कुछ कहना सैकड़ों, हजारों वर्षों में भी सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए संक्षेप में धर्म और अधर्म का दिग्दर्शन करा रहा हूँ। ब्राह्मणों को जीविका निर्वाह के लिए कुछ देना अत्यन्त पुण्य-प्रद कहा गया है। उसी प्रकार अध्यात्मज्ञाताओं को भी दिया हुआ दान अक्षय पुण्य को देने वाला होता है। जो किसी कुटुम्बी शास्त्रज्ञ अथवा गुणी वेदपाठी को कुछ देकर उसकी जीविका का स्थायी प्रबन्ध कर देता है, उसके पुण्य के फल को सुनो—वह व्यक्ति मातृकुल और पितृकुल के करोड़ों पुरखों सहित विष्णु लोक को जाता है और वहाँ कल्प पर्यन्त सुख भोग करता है ॥४४-४६॥ पृथ्वी के रेणुकण गिने जा सकते हैं और वर्षा की बूँदें भी गिनी जा सकती हैं परन्तु ब्रह्मा भी

समस्तदेवतारूपो ब्राह्मणः परिकीर्तितः । जीवनं ददतस्तस्य कः पुण्यं गदितुं क्षमः ॥५१॥
यो विप्रहितकृन्नित्यं स सर्वान्कृतवान्मखान् । स स्नातः सर्वतीर्थेषु तप्तं तेनाखिलं तपः ॥५२॥
यो ददस्वेति विप्राणां जीवनं प्रेरयेत्परम् । सोऽपि तत्फलमाप्नोति किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥५३॥
तडागं कारयेद्यस्तु स्वयमेवापरेण वा । वक्तुं तत्पुण्यसंख्यानं नालं वर्षशतायुषा ॥५४॥
एकश्चेदध्वगो राजंस्तडागस्य जलं पिबेत् । तत्कर्तुः सर्वपापानि नश्यन्त्येव न संशयः ॥५५॥
एकाहमपि यत्कुर्याद्भूमिस्थमुदकं नरः । स मुक्तः सर्वपापेभ्यः शतवर्षं वसेद्दिवि ॥५६॥
कर्तुं तडागं यो मर्त्यः साह्यकः शक्तितो भवेत् । सोऽपि तत्फलमाप्नोति तुष्टः प्रेरक एव च ॥५७॥
मृदं सिद्धार्थमात्रां वा तडागाद्यो बहिः क्षिपेत् । तिष्ठत्यब्दशतं स्वर्गे विमुक्तः पापकोटिभिः ॥५८॥
देवता यस्य तुष्यन्ति गुरवो वा नृपोत्तम । तडागपुण्यभाक्स स्यादित्येषा शाश्वती श्रुतिः ॥५९॥
इतिहासं प्रवक्ष्यामि तवात्र नृपसत्तम । यं श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥६०॥
गौडदेशेऽतिविख्यातो राजासीद्वीरभद्रकः । महाप्रतापी विद्यावान्सदा विप्रप्रपूजकः ॥६१॥
वेदशास्त्रकुलाचारयुक्तो मित्रविवर्धनः । तस्य राज्ञी महाभागा नाम्ना चम्पकमञ्जरी ॥६२॥
तस्य राज्ञो महामात्याः कृत्याकृत्यविचारणाः । धर्माणां धर्मशास्त्रैस्तु सदा कुर्वन्ति निश्चयम् ॥६३॥
प्रायश्चित्तं चिकित्सां च ज्योतिषे धर्मनिर्णयम् । विना शास्त्रेण यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥६४॥
इति निश्चित्य मनसा मन्वादीरितधर्मकान् । आचार्येभ्यः सदा भूपः शृणोति विधिपूर्वकम् ॥६५॥

ब्राह्मण को वृत्ति देने के फल की गणना नहीं कर सकते । ब्राह्मण सब देवताओं का रूप कहा गया है, उसको जीविका देने वाले पुरुष के पुण्यों को कौन गिनने में समर्थ हो सकता है ? जो सर्वदा ब्राह्मणों का हित करता है उसने मानो सब यज्ञों का अनुष्ठान कर लिया, सब तीर्थों में स्नान कर लिया और सम्पूर्ण तपस्यायें भी कर लीं। जो ब्राह्मणों को कुछ देने के लिए दूसरों को प्रेरित करता है वह भी दान का फल पाता है । अत्र इस विषय में अधिक क्या कहा जाय ? जो स्वयं तालाब बनाता या दूसरों से बनवाता है, उसके पुण्यों की गिनती सौ वर्ष की पूरी आयु में नहीं हो सकती है ॥५०-५४॥

एक भी पथिक यदि उस तालाब का जल पी लेगा तो उसको बनाने वाले के सारे पाप धुल जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं । जो एक दिन के लिए भी जल को किसी गड्ढे या निम्न भूमि में रहने के योग्य बना देता है, वह अपने पापों से मुक्त हो जाता और सौ वर्ष तक स्वर्ग में रहता है । जो मनुष्य तालाब बनवाने में अपनी शक्ति के अनुसार सहायता पहुँचाता है वह भी तालाब बनाने वाले के समान ही फल पाता है और उस कार्य को देखकर प्रसन्न होने वाला या प्रेरित करने वाला भी वही फल पाता है । जो तालाब से थोड़ी सी भी मिट्टी बाहर फेंक देता है वह अपने कोटि पापों से मुक्त हो कर सौ वर्षों तक स्वर्ग में निवास करता है ॥५५-५८॥ नृपोत्तम ! जिसके ऊपर देवता या गुरु प्रसन्न होते हैं, वही तडाग बनवाने का यश प्राप्त करता है, ऐसी श्रुति-परम्परा सुनी जाती है । नृपसत्तम ! इस विषय में तुमसे एक प्राचीन इतिहास कह रहा हूँ, जिसको सुनकर निःसन्देह मनुष्य पापों से छूट जाता है । गौड़ देश में अति विख्यात वीरभद्रक नामक राजा था। वह महाप्रतापी, विद्वान् और ब्राह्मणों का पूजक था ॥५६-६१॥ वह वेद-शास्त्रों तथा अपने कुलाचार से युक्त था और मित्रों को बढ़ाने वाला था। उसकी महाभाग्यशालिनी रानी का नाम चंपकमंजरी था । उस राजा के कर्त्तव्या-कर्त्तव्य का विवेक करने वाले महामन्त्री थे । वे धर्मशास्त्रों के अनुसार न्याय का निर्णय करते थे । प्रायश्चित्त, चिकित्सा और ज्यौतिष शास्त्र सम्बन्धी धर्मनिर्णय जो शास्त्र के अनुकूल नहीं करता है, उसको ब्रह्मघाती कहा जाता है, ऐसा मन में निश्चय कर वह आचार्यों से मनु आदि धर्माचार्यों के बारे में सर्वदा विधिपूर्वक

न कोऽप्यन्यायवर्ती च तस्य राज्येऽवरोऽपि च । धर्मेण पाल्यमानस्य तस्य देशस्य भूपतेः ॥६६॥
जातं समत्वं स्वर्गस्य सौराज्यस्य शुभावहम् । स चैकदा तु नृपतिर्मृगयायां महावने ॥६७॥
मन्त्र्यादिभिः परिवृतो बभ्राम मध्यभास्करम् । दैवादाखेटशून्यस्य ह्यतिश्रान्तस्य यत्र वै ॥६८॥
नृपतीतस्य संजातं सरसो दर्शनं नृप । ततः शुष्कां तु सरसीं दृष्ट्वा तत्र व्यचिन्तयत् ॥६९॥
किमयं सरसी भृङ्ग भुवः केन विनिर्मिता । कथं जलं भवेदत्र येन जीवेदयं नृपः ॥७०॥
ततो बुद्धिः समभवत्खाते तस्या नृपोत्तम । हस्तमात्रं ततो गर्त्तं खात्वा तोयमवाप्तवान् ॥७१॥
तेन तोयेन पीतेन राज्ञस्तृप्तिरजायत । मन्त्रिणश्चापि भूमीश बुद्धिसागरसंज्ञिनः ॥७२॥
स बुद्धिसागरो भूपं प्राह धर्मार्थकोविदः । राजन्नियं पुष्करिणी वर्षाजलवती पुरा ॥७३॥
अथैनां बद्धवप्रां च कर्त्तुं जाता मतिर्मम । तद्भवान्मोदतां देव दत्तादाज्ञां च मेऽनघ ॥७४॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य मन्त्रिणो नृपसत्तमः । मुमुदेऽतितरां भूपः स्वयं कर्तुं समुद्यतः ॥७५॥
तमेव मन्त्रिणं तत्र युयोज शुभकर्मणि । ततो राजाज्ञया सोऽपि बुद्धिसागरको मुदा ॥७६॥
सरसीं सागरं कर्त्तुमुद्यतः पुण्यकृत्तमः । धनुषां चैव पञ्चाशत्सर्वतो विस्तृतायताम् ॥७७॥
सरसीं बद्धसुशिलां चकरागाधशम्बराम् । तां विनिर्माय सरसीं राज्ञे सर्वं न्यवेदयत् ॥७८॥
तस्यां ततः प्रभृति वै सर्वेऽपि वनचारिणः । पान्थाः पिपासिता भूप लभन्ते स्म जलं शुभम् ॥७९॥
कदाचित्स्वायुषश्चान्ते स मन्त्री बुद्धिसागरः । प्रमृतो गतवाँल्लोकं लोकशास्तुर्मम प्रभो ॥८०॥
तदर्थं तु मया पृष्टो धर्मो धर्मलिपिकरः । चित्रगुप्तस्तु तत्कर्म मह्यं सर्वं न्यवेदयत् ॥८१॥

सुना करता था ॥६१-६५॥ धर्म पूर्वक प्रजापालन करने वाले उस भूपति के देश में कोई भी अन्याय नहीं करता था और न कोई अधम था । उसका राज्य शुभ दायक स्वर्ग की कोटि में गिना जाने लगा । वह राजा एक दिन मृगया के लिए महावन में गया । वहाँ दुपहरी में मन्त्रियों के साथ इधर उधर घूमने लगा । दैवयोग से आखेट न पाकर अपने अनुचरों के सहित वह थक गया । उसी समय उसको एक सरोवर दिखाई दिया । उस सरोवर को सूखा देखकर सभी विचार करने लगे कि इस ऊँची भूमि पर किसने इस सरोवर को बनवाया । किस प्रकार इस सरोवर में जल प्राप्त किया जा सकता है, जिससे कि यह राजा अपनी पिपासा शान्त कर जीवित रह सके । नृपोत्तम ! शीघ्र ही उनको उसको खनने की युक्ति सूझ गई । तदनन्तर एक हाथ भूमि के खनने से जल निकल आया ॥६६-७१॥ उस जल को पीकर राजा तृप्त हो गया । भूमीश ! उसके बुद्धिसागर नामक मन्त्री को भी उस पानी के पीने से तृप्ति हुई । उस धर्मतत्त्वों के जानने वाले बुद्धिसागर ने राजा से कहा—

राजन् ! यह पुष्करिणी (पोखरी) पहले वर्षा के जल से भरी हुई थी । आज इसको चारों ओर से बाँध कर उत्तम बनवाने की मेरी इच्छा हो रही है, देव ! आप भी इसका अनुमोदन करें और हे अनघ ! इसके लिये मुझे आदेश दें ॥७२-७४॥ नृपसत्तम अपने मन्त्री की बातों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुये और स्वयं उस निर्माण कार्य के लिए तैयार हो गए और शुभ कर्म में उसी मन्त्री को नियुक्त कर दिया । तत्पश्चात् वह पुण्यशील मन्त्री बुद्धिसागर भी प्रसन्न होकर उस सरसी को सागर (झील) बनाने के लिए उद्यत हो गया । चारों ओर पचास धनुष लम्बा और उतना ही चौड़ा सरोवर खनवाया और चारों ओर पत्थर से उसको बँधवा कर अगाध जल से परिपूर्ण करा दिया । इस प्रकार उस सरसी को सागर बनवा देने के बाद राजा से निवेदन किया । तब से उस सागर के स्वच्छ जल को सभी प्यासे जंगली जीव और पथिक पीने लगे । कुछ दिनों के अनन्तर आयु के क्षीण हो जाने से वह मन्त्री बुद्धिसागर मर गया और लोकों पर शासन करने वाले मेरे लोक में आया । उसके विषय में मैंने धर्मलिपिक चित्रगुप्त से पूछा । उसने उसके कर्मों को मुझसे कहा कि इसने

उपदेष्टा स्वयं चासौ धर्मकार्यस्य भूपतेः । तस्माद्धर्मविमानं तु समारोढुमिहार्हति ॥८२॥
इत्युक्ते चित्रगुप्तेन समाज्ञतो मया नृप । विमानं धर्मसंज्ञं तु आरोढुं बुद्धिसागरः ॥८३॥
अथ कालान्तरे राजन्स राजावीरभद्रकः । मृतो गतो मम स्थानं नमश्चक्रे मुदान्वितः ॥८४॥
मया तु तत्र तस्यापि पृष्टं कर्माखिलं नृप । कथितं चित्रगुप्तेन धर्मं संसर्गसंभवम् ॥८५॥
तदा सम्यङ्मया राजा बोधितोऽनूद्यथा शृणु । अचिन्त्यकार्यां भूपाल सैकतस्य गिरेः पुरा ॥८६॥
लावकेनामुना चञ्च्वा खातं द्व्यङ्गुलमम्बुनि । ततः कालान्तरे तेन वाराहेण नृपोत्तम ॥८७॥
खनितं हस्तमात्रं तु जलं तुण्डेन चात्मनः । ततोऽन्यदाऽमुया काल्या हस्तयुग्ममितः कृतः ॥८८॥
खातो जले महाराज तोयं मासद्वयं स्थितम् । पीतं क्षुद्रैर्वनचरैः सत्त्वैस्तृष्णासमाकुलैः ॥८९॥
ततो वर्षत्रयान्ते तु गजेनानेन सुव्रत । हस्तत्रयमितः खातः कृतस्तत्राधिकं जलम् ॥९०॥
मासत्रयं स्थितं तच्च पयो जीवैर्वनेचरैः । भवांस्तत्र समायातो चलशोषादनन्तरम् ॥९१॥
मासे तत्र तु संप्राप्तं हस्तं खात्वा जलं नृप । ततस्तत्रोपदेशेन मन्त्रिणो नृपते त्वया ॥९२॥
पञ्चाशद्धनुरुत्खातं जातं तत्र महाजलम् । पुनः शिलाभिः सुदृढं बद्धं जातं महत्सरः ।
वृक्षाश्च रोपितास्तत्र सर्वलोकोपकारिणः ॥९३॥
तेन स्वस्वेन पुण्येन पञ्चैते जगतीपते । विमानं धर्म्यमारूढास्त्वमप्येनं समारुह ॥९४॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य मम राजा स भूमिप । आरुरोह विमानं तत्षष्ठो राजा समांशभाक् ॥९५॥

स्वयं भूपति को धर्म कार्य करने का उपदेश दिया है, अतः इस पुण्य के प्रभाव से यह धर्म-विमान पर आरोहण करने का अधिकारी है ॥७५-८२॥ चित्रगुप्त के ऐसा कहने पर मैंने बुद्धिसागर को धर्मनामक विमान पर आरूढ़ होने का आदेश दे दिया। राजन् ! कुछ काल वीत जाने पर वह राजा वीरभद्रक भी मरकर मेरे यहाँ गया और प्रसन्नतापूर्वक मेरे सामने प्रस्तुत हुआ। नृप ! मैंने भी उसके सब कर्त्तव्यों का लेखा पूछा। चित्रगुप्त ने उस सागर सम्बन्धी पुण्य को वताया ! उस समय हे राजन् ! मैंने जो कुछ उस राजा से कहा उसको भली भाँति सुनो ॥८३-८५½॥

भूपाल ! पहले इस लावक पक्षी ने जल में अपनी चोंच से दो अङ्गुल का गड्ढा खोद दिया, नृपोत्तम कुछ समय के अनन्तर एक वाराह ने अपने थूथन से उसको एक हाथ लम्बा खोद डाला। तदनन्तर अन्य समय इस काली ने उसको बढ़ाकर दो हाथ का बना डाला। उस गड्ढे में जो जल इकट्ठा हुआ उसको वन के प्यासे क्षुद्र जीवों और अन्य प्राणी दो महीने तक पीते रहे। उत्तम व्रत वाले ! तदनन्तर तीन वर्ष बीत जाने पर इस हाथी ने उसको तीन हाथ और अधिक खनकर बढ़ा दिया जिससे उसमें और अधिक जल इकट्ठा हो गया ॥८६-९०॥ उस जल से तीन मास तक जल के आधार पर जीने वाले जंगली पशुओं की प्यास बुझती रही। यानी सूख जाने के बाद आप वहाँ पर आये। नृप ! उस समय उसको एक हाथ और खोदा गया और उसके जल से अनुचरों की प्यास बुझाई गई। तत्पश्चात् नृपते ! उस समय मन्त्री के उपदेश से तुमने उसको पचास धनुष (दो सौ-हाथ) लम्बा और उतना चौड़ा खुदवा दिया और वह झील के रूप में हो गया। पुनः पत्थरों से चारों ओर बँध जाने के कारण वह एक वहुत बड़ा और रमणीय सरोवर हो गया। पुनः सबका भला करने वाले वृक्ष भी किनारे पर लगा दिये गये ॥९१-९३॥ जगतीपते ! अपने-अपने उस पुण्य के प्रभाव से ये सभी धर्म विमान पर आरूढ़ हो गये हैं। तुम भी इस विमान पर चढ़ो। मेरी इन बातों को सुनकर वह राजा, जो उस पुण्य के समान अंश का छठा अधिकारी था, उस विमान पर आरूढ़ हुआ। तुमसे मैंने तड़ाग बनवाने से कुछ फल होता है, उसको इस कथा के द्वारा कह दिया। इस आख्यान को सुनकर मनुष्य अपने जन्म-मरण के बन्धन में

इति ते सर्वमाख्यातं तडागजनितं फलम् । श्रुत्वैतन्मुच्यते पापादाजन्ममरणान्तिकात् ॥६६॥
यो नरः श्रद्धया युक्तो व्याख्यातं शृणुयात्पठेत् । सोऽप्याप्नोत्यखिलं पुण्यं सरोनिर्माणसंभवम् ॥६७॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे धर्माख्याने द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

धर्मराज उवाच

देवतायतनं यस्तु कुरुते कारयत्यपि । शिवस्यापि हरेर्वापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥१॥
मातृतः पितृतश्चैव लक्षकोटिकुलान्वितः । कल्पत्रयं विष्णुपदे तिष्ठत्येव न संशयः ॥२॥
मृदैव कुरुते यस्तु देवतायतनं नरः । यावत्पुण्यं भवेत्तस्य तन्मे निगदतः शृणु ॥३॥
दिव्यदेहधरो भूत्वा विमानवरमास्थितः । कल्पत्रयं विष्णुपदे तिष्ठत्येव न संशयः ॥४॥
मृदैव कुरुते यस्तु देवतायतनं नरः । यावत्पुण्यं भवेत्तस्य तन्मे निगदतः शृणु ॥५॥
दिव्यदेहधरो भूत्वा विमानवरमास्थितः । कल्पत्रयं विष्णुपदे स्थित्वा ब्रह्मपुरं व्रजेत् ॥६॥
कल्पद्वयं स्थितस्तत्र पुनः कल्पं वसेद्दिवि । ततस्तु योगिनामेव कुले जातो दयान्वितः ॥७॥
वैष्णवं योगमास्थाय मुक्तिं व्रजति शाश्वतीम् । दारुभिः कुरुते यस्तु तस्य स्याद्द्विगुणं फलम् ॥८॥

डालने वाले पापों से छूट जाता है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस आख्यान को पढ़ता है, वह भी सरोवर बनवाने से जो कुछ फल मिलता है उसको प्राप्त करता है ॥६४-६८॥

श्रीनारदीयमहापुराण में धर्माख्यान नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

अध्याय १३

धर्मराज बोले—जो मनुष्य शिव अथवा विष्णु का मन्दिर बनवाता है या बनाता है, उसको कौन सा पुण्य फल मिलता है, इसको सुनो ॥१॥

वह व्यक्ति मातृ और पितृ कुलकी लाखों पीढ़ियों के सहित तीन कल्प तक विष्णु लोक में रहता है, इसमें सन्देह नहीं। जो केवल मिट्टी से ही देव-मन्दिर बनवाता है, उससे जो पुण्य होता है, उसको कह रहा हूँ सुनो—वह व्यक्ति दिव्य रूप धारण कर उत्तम विमान पर आरूढ़ होता है और तीन कल्पों तक विष्णुलोक में सुखोपभोग कर पुनः ब्रह्मलोक में चला आता है ॥२-६॥ वहाँ दो कल्प तक रहकर पुनः स्वर्ग में चला आता और एक कल्प तक वहाँ रहता है। पुनः वह भाग्यशाली वहाँ से मृत्युलोक में आकर योगिकुल में जन्म लेता है और वैष्णव योग को प्राप्त कर शाश्वत मुक्ति को प्राप्त करता है। जो लकड़ी से मन्दिर बनवाता है उसको दूना फल मिलता है। ईंटों से मन्दिर बनवाने वाले को तिगुना और पत्थर से बनवाने वाले को चौगुना फल मिलता हैं, स्फटिक शिला से बनाने वाले को दशगुना फल मिलता है। ताम्रपत्र से बनवाने वाले को सौगुना

त्रिगुणं चेष्टकाभिस्तु शिलाभिस्तच्चतुर्गुणम् । स्फाटिकाभिः शिलाभिस्तु ज्ञेयं दशगुणोत्तरम् ॥९॥
ताम्रीभिस्तच्छतगुणं हेम्ना कोटिगुणं भवेत् । देवालयं तडागं वा ग्रामं वा पालयेत्तु यः ॥१०॥
कर्तुः शतगुणं तस्य पुण्यं भवति भूपते । देवालयस्य शुश्रूषां लेपसेचनमंडनैः ॥११॥
कुर्याद्यस्सततं भक्त्या तस्य पुण्यमनन्तकम् । वेतनाद्विष्टितो वापि पुण्यकर्मप्रवर्त्तिताः ॥१२॥
ते गच्छंति धराधाराः शाश्वतं वैष्णवं पदम् । तडागार्द्धफलं राजन्कासारे परिकीर्तितम् ॥१३॥
कूपे पादफलं ज्ञेयं वाप्यां पद्माकरोन्मितम् । वापीशतगुणं प्रोक्तं कुल्यायां भूपतेः फलम् ॥१४॥
दृषद्भिस्तु धनी कुर्यान्मृदा निष्किञ्चनो जनः । तयोः फलं समानं स्यादित्याह कमलोद्भवः ॥१५॥
दद्यादाढ्यस्तु नगरं हस्तमात्रमकिंचनः । ध्रुवं तयोः समफलं प्राहुर्वेदविदो जनाः ॥१६॥
धनाढ्यः कुरुते यस्तु तडागं फलसाधनम् । दरिद्रः कुरुते कूपं समं पुण्यं प्रकीर्तितम् ॥१७॥
आश्रमं कारयेद्यस्तु बहुजन्तूपकारकम् । स याति ब्रह्मभुवनं कुलत्रयसमन्वितः ॥१८॥
धेनुर्वा ब्राह्मणो वापि यो वा को वापि भूपते । क्षणार्द्धं तस्य छायायां तिष्ठन्स्वर्गं नयत्यमुम् ॥१९॥
आरामकारका राजन्देवतागृहकारिणः । तडागग्रामकर्त्तारः पूज्यन्ते हरिणा सह ॥२०॥
सर्वलोकोपकारार्थं पुष्पारामं जनेश्वर । कुर्वते देवतार्थं वा तेषां पुण्यफलं शृणु ॥२१॥
तत्र यावन्ति पर्णानि कुसुमानि भवन्ति च । तावद्वर्षाणि नाकस्थो मोदते कुलकोटिभिः ॥२२॥
प्राकारकारिणस्तस्य कंटकावरणप्रदाः । प्रयान्ति ब्रह्मणः स्थानं युगानामेकसप्ततिम् ॥२३॥
तुलसीरोपणं ये तु कुर्वते मनुजेश्वर । तेषां पुण्यफलं राजन्वदतो मे निशामय ॥२४॥

और सुवर्ण से बनवाने वाले को करोड़ गुना फल मिलता है। जो बने हुए तड़ाग, मन्दिर या ग्राम की रक्षा या पुनः निर्माण कराता है उसको बनवाने वाले की अपेक्षा सौगुना अधिक फल मिलता है ॥७-१०½॥ जो स्वच्छता लिपाई और सजावट के द्वारा देव मन्दिर की भक्ति से सेवा करता है, उसको तो असंख्य पुण्य मिलता है। जो स्वयं अपनी इच्छा से अथवा प्रतियोगिता को भावना से पुण्य कर्मों में प्रवृत्त होते हैं वे पृथ्वी को सुशोभित करने करने वाले महापुरुष शाश्वत वैष्णव पद को प्राप्त करते हैं। राजन्! तडाग को अपेक्षा कासार (छोटा तालाब) बनवाने में आधा फल, कुआँ बनवाने में चौथाई और बावली बनवाने में सरोवर-निर्माण तुल्य फल मिलता है। भूपते! बावली से सौगुना फल कुल्या बनवाने से मिलता है। धनी लोग यदि पत्थर से बँधे घाट वाले तालाब आदि बनवावें और साधारण व्यक्ति मिट्टी का ही बनवावें तो भी दोनों को समान ही फल मिलता है, ऐसा स्वयं ब्रह्मा ने कहा है ॥११-१५॥ वेदज्ञों ने बतलाया है कि धनी व्यक्ति बड़े नगर का दान करे और दरिद्र व्यक्ति यदि एक हाथ भूमि का दान करे तो भी बराबर ही फल मिलता है। जो धनाढ्य व्यक्ति पुण्य देने वाले तड़ाग को बनवाता है उसको भी उतना ही फल मिलता है जितना एक साधारण व्यक्ति को कुआँ बनवाने से। जो बहुत लोगों की भलाई के लिए सत्यता पूर्वक किसी वस्तु की स्थापना करता है वह अपनी तीन पीढ़ियों के साथ ब्रह्म लोक को चला जाता है। धेनु और ब्राह्मण चाहे कैसा ही क्यों न हो, उस (वृक्ष आदि) की छाया में क्षण भर रह प्रतिष्ठापक को स्वर्ग को प्राप्त कराता है। राजन्! वाटिका लगाने वाले, देवमन्दिर बनवाने वाले तड़ाग और गाँव बनवाने वाला व्यक्ति विष्णु के साथ पूजित होता है ॥१६-२०॥ जो सबकी भलाई के लिए या देवता की पूजा के लिए पुष्पवाटिका निर्माण कराता है उनके पुण्य फल को सुनो ॥२१॥

उस पुष्प वाटिका में जितनी पत्तियाँ या फूल होते हैं उतने वर्षों तक अपने कोटि वंशों के साथ आनन्द पूर्वक स्वर्ग में निवास करता है। उस वाटिका की रक्षा के लिए चहारदीवारी बनवाने वाले या कँटीले तार से घेर कर सुरक्षित बनाने वाले इकहत्तर युग तक ब्रह्म लोक में रहते हैं। मनुजेश्वर! जो तुलसी का पौधा लगाते

नारायणपदे नृप ॥२५॥
सप्तकोटिकुलैर्युक्तो मातृतः पितृतस्तथा । वसेत्कल्पशतं साग्रं
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो यस्तु तुलसीमूलमृत्स्नया । गोपिकाचन्दनेनापि वा चित्रकूटमृदापि वा ।
गङ्गामृत्तिकया चैव तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२६॥
विमानवरमारूढो गन्धर्वाप्सरसां गणैः । संगीयमानचरितो मोदते विष्णुमंदिरे ॥२७॥
यत्राणि तुलसीमूलाद्यावन्ति पतितानि वै । तावन्ति ब्रह्महत्यादिपातकानि हतानि च ॥२८॥
तुलस्यां सेचयेद्यस्तु जलं चुलुकमात्रकम् । क्षीरोदवासिना सार्द्धं वसेदाचंद्रतारकम् ॥२९॥
ददाति ब्राह्मणानां यः कोमलं तुलसीदलम् । स याति ब्रह्मसदने कुलत्रितयसंयुतः ॥३०॥
शालग्रामेऽर्पयेद्यस्तु तुलस्यास्तु दलानि च । स वसेद्विष्णुभवने यावदाभूतसंप्लवम् ॥३१॥
कण्टकावरणं यस्तु प्राकारं वापि कारयेत् । सोऽप्येकविंशतिकुलैर्मोदते विष्णुमंदिरे ॥३२॥
योऽर्चयेद्धरिपादाब्जं तुलस्याः कोमलैर्दलैः । न तस्य पुनरावृत्तिर्विष्णुलोकान्नरेश्वर ॥३३॥
द्वादश्यां पौर्णमास्यां यः क्षीरेण स्नापयेद्धरिम् । कुलायुतयुतः सोऽपि मोदते वैष्णवे पदे ॥३४॥
प्रस्थमात्रेण पयसा यः स्नापयति केशवम् । कुलायुतायुतयुतः सोऽपि विष्णुपुरे वसेत् ॥३५॥
घृतप्रस्थेन यो विष्णुं द्वादश्यां स्नापयेन्नरः । कुलकोटियुतो राजन्सायुज्यं लभते हरेः ॥३६॥
पञ्चामृतेन यः स्नानमेकादश्यां तु कारयेत् । विष्णोः सायुज्यकं तस्य भवेत्कुलशतायुतैः ॥३७॥
एकादश्यां पौर्णमास्यां द्वादश्यां वा नृपोत्तम । नालिकेरोदकैर्विष्णुं स्नापयेत्तत्फलं शृणु ॥३८॥
दशजन्मार्जितैः पापैर्विमुक्तो नृपसत्तम । शतद्वयकुलैर्युक्तो मोदते विष्णुना सह ॥३९॥

हैं राजन् ! उनके पुण्यों को बता रहा हूँ सुनो ॥२२-२४॥ हे नृप ! वह माता और पिता कुल की सात करोड़ पीढ़ियों के सहित सौ कल्पों तक नारायण लोक में निवास करता है। जो तुलसी मूल की मिट्टी से ऊर्ध्व पुण्ड्र लगाता है, अथवा गोपी चन्दन या चित्रकूट की मिट्टी या गंगा की मिट्टी का चन्दन लगाता है उसके पुण्य फल को सुनो—वह श्रेष्ठ विमान पर आरूढ़ होकर गन्धर्व और अप्सराओं के द्वारा अपनी स्तुति सुनता हुआ विष्णु भवन में आनन्द प्राप्त करता है। तुलसी वृक्ष के मूल से जितनी पत्तियाँ गिरती हैं उतने ब्रह्महत्यादि पातक नष्ट हो जाते हैं। जो तुलसी की जड़ को एक चुल्लू जल से भी सींचता है, वह प्रलय पर्यन्त क्षीरशायी विष्णु के साथ निवास करता है ॥२५-२६॥ जो ब्राह्मणों को तुलसी की कोमल पत्तियाँ प्रदान करता है वह अपनी तीन पीढ़ियों के साथ ब्रह्मलोक में निवास करता है। जो शालग्राम की मूर्ति पर तुलसी पत्र समर्पित करता है, वह कल्प पर्यन्त विष्णु भवन में रहता है। जो काँटेदार तार से घेराव करा देता या चहारदीवारी बनवा देता है वह अपनी इक्कीस कुल परम्परा के साथ विष्णु मन्दिर में आनन्द पूर्वक निवास करता है। जो भगवान् के कमलवत् चरणों की तुलसी की कोमल पत्तियों से पूजा करता है, नरेश्वर ! उसको पुनः विष्णु लोक से लौटना नहीं पड़ता ॥३०-३३॥ द्वादशी और पूर्णमासी के दिन जो दूध से भगवान् को नहलाता है वह अपने दश हजार कुलों के सहित विष्णुलोक में सुख भोग करता है। जो केशव को एक प्रस्थ (सेर) दूध से स्नान कराता है वह भी अपनी एक लाख वंश परम्परा के साथ विष्णु लोक में निवास करता है। जो मनुष्य एक सेर घी से द्वादशी के दिन विष्णु को स्नान करता है, वह अपने कोटि कुल के साथ विष्णु की सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है। जो एकादशी के दिन पंचामृत से विष्णु भगवान् को नहलाता है वह अपने सौ कुल के साथ विष्णु की सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है ॥३४-३७॥ नृपोत्तम ! जो एकादशी, द्वादशी और पूर्णिमा के दिन नारियल के जल से विष्णु को स्नान कराता है उसका फल सुनो—नृपोत्तम ! वह अपने दश जन्म के पापों से मुक्त होकर अपनी दो सौ कुल परम्परा के साथ विष्णुलोक में भगवान् के साथ परमानन्द प्राप्त करता है। भूपते ! गन्ने के

इक्षुतोयेन देवेशं यः स्नापयति भूपते । केशवं लक्षपितृभिः सार्द्धं विष्णुपदं व्रजेत् ॥४०॥
पुष्पोदकेन गं विन्दं तथा गन्धोदकेन च । स्नापयित्वा हरिं भक्त्या वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥४१॥
जलेन वस्त्रपूतेन यः स्नापयति माधवम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुना सह मोदते ॥४२॥
क्षीराद्यैः स्नापयेद्यस्तु रविसंक्रमणे हरिम् । स वसेद्विष्णुसदने त्रिसप्तपुरुषैः सह ॥४३॥
शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्यां पूर्णिमादिने ॥४४॥
एकादश्यां भानुवारे द्वादश्यां पञ्चमीतिथौ । सोमसूर्योपरागे च मन्वादिषु युगादिषु ॥४५॥
अर्द्धोदये च सूर्यस्य पुष्यार्के रोहिणीबुधे । तथैव शनिरोहिण्यां भौमाश्विन्यां तथैव च ॥४६॥
शन्यां भृगुमृगे चैव भृगुरेवतिसङ्गमे । तथा बुधानुराधायां श्रवणार्के तथैव च ॥४७॥
तथा च सोमश्रवणे हस्तयुक्ते बृहस्पतौ । बुधाष्टम्यां बुधाषाढे पुण्ये चान्ये दिने तथा ॥४८॥
स्नापयेत्पयसा विष्णुं शान्तिमान् वाग्यतः शुचिः । घृतेन मधुना वापि दध्ना वा तत्फलं शृणु ॥४९॥
सर्वयज्ञफलं प्राप्य सर्वपापविवर्जितः । वसेद्विष्णुपुरे सार्द्धं त्रिसप्तपुरुषैर्नृप ॥५०॥
तत्रैव ज्ञानमासाद्य योगिनामपि दुर्लभम् । मोक्षमाप्नोति नृपते पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥५१॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां सोमवारे च भूपते । शिवं संस्नाप्य दुग्धेन शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥५२॥
नालिकेरोदकेनापि शिवं संस्नाप्य भक्तितः । अष्टम्यामिन्दुवारे वा शिवसायुज्यमश्नुते ॥५३॥
शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्यां वापि भूपते । घृतेन मधुना स्नाप्य शिवं तत्साम्यतां व्रजेत् ॥५४॥
तिलतैलेन संस्नाप्य विष्णुं वा शिवमेव च । स याति तत्तत्सारूप्यं पितृभिः सह सप्तभिः ॥५५॥
शिवमिक्षुरसेनापि यः स्नापयति भक्तितः । शिवलोके वसेत्कल्पं स सप्तपुरुषैः सह ॥५६॥

रस से जो देवेश विष्णु को को नहलाता है वह अपने लाख पितरों के सहित विष्णुलोक को जाता है। जो पुष्प मिश्रित जल और सुगन्धित जल से हरि को भक्ति पूर्वक स्नान कराता है वह वैष्णव पद को प्राप्त करता है। ॥३८-४१॥ जो मनुष्य कपड़े से छने हुए जल से माधव को नहलाता है वह सब पापों से मुक्त होकर विष्णु के साथ आनन्द प्राप्त करता है। जो सूर्य ग्रहण के समय दूध आदि से भगवान् हरि को नहलाता है, वह इक्कीस कुल पुरुषों के साथ विष्णुलोक में निवास करता है ॥४२-४३॥

शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णमासी एकादशी, रविवार, द्वादशी और पंचमी तिथि को, एवं चन्द्र और सूर्य के ग्रहण के समय, मन्वादि काल, युगादिकाल, सूर्य के अर्द्धोदय काल में, पुष्य के सूर्य, रोहिणी के बुध और शनि, अश्विनी के मंगल, शनि के शुक्र और चन्द्रमा, रेवती और शुक्र के संगम, अनुराधा के बुध, श्रवण के सूर्य एवं चन्द्रमा, हस्तनक्षत्र के बृहस्पति अष्टमीतिथि को बुध पड़ने पर, आषाढ़ में बुध के दिन अथवा अन्य पुण्य पर्वों पर जो मनुष्य शान्त और मौन होकर पवित्र भाव से दूध, घी, मधु या दही से भगवान् विष्णु को नहलाता हैं, उसका फल सुनो ॥४४-४९॥ नृप! वह व्यक्ति सब पापों से मुक्त हो जाता और सब यज्ञों का फल पाकर अपने इक्कीस कुलों के साथ विष्णुलोक में निवास करता है। वहीं योगियों के लिए भी दुर्लभ ज्ञान को प्राप्त कर आवागमन से रहित निर्वाण को प्राप्त करता है। भूपते! कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी और सोमवार के दिन शिव को दूध से नहलाने से शिवसायुज्य प्राप्त होता है। अष्टमी या सोमवार को भक्ति पूर्वक नारियल के जल से शिव को नहलाने से शिव सायुज्य प्राप्त होता है। शुक्ल-पक्ष की चतुर्दशी या अष्टमी को घृत और मधु से शिव को स्नान कराने से शिव साम्य प्राप्त होता है ॥५०-५४॥ तिल के तेल से विष्णु अथवा शिव को नहलाने से वह व्यक्ति अपनी सात पीढ़ियों के साथ शिव या विष्णु का सारूप्य प्राप्त करता है। जो शिव को गन्ने के रस से भक्ति पूर्वक स्नान कराता है, वह कल्पान्त तक सात कुलों के साथ शिव लोक में निवास करता है। जो देवोत्थान एकादशी और

घृतेन स्नापयेल्लिङ्गमुत्थाने द्वादशीदिने । क्षीरेण वा महाभाग तत्फलं शृणु मद्गिरा ॥५७॥
जन्मायुतकृतैः पापैर्विमुक्तो मनुजो नृप । कोटिसंख्यं समुद्धृत्य स्वकुलं शिवतां व्रजेत् ॥५८॥
सम्पूज्य गन्धकुसुमैर्विष्णुं विष्णुतिथौ नृपः । जन्मायुतार्जितैः पापैर्मुक्तो व्रजति तत्पदम् ॥५९॥
पद्मपुष्पेण यो विष्णुं शिवं वा पूजयेन्नरः । स याति विष्णुभवनं कुलकोटिसमन्वितः ॥६०॥
हरिं च केतकीपुष्पैः शिवं धत्तूरजैर्निशि । संपूज्य पापनिर्मुक्तो वसेद्विष्णुपुरे युगम् ॥६१॥
हरिं तु चाम्पकैः पुष्पैरर्कपुष्पैश्च शंकरम् । समभ्यर्च्य महाराज तत्तत्सालोक्यमाप्नुयात् ॥६२॥
शंकरस्याथवा विष्णोर्घृतयुक्तं च गुग्गुलुम् । दत्त्वा धूपो नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६३॥
तिलतैलान्वितं दीपं विष्णोर्वा शंकरस्य वा । दत्त्वा नरः सर्वकामान्संप्राप्नोति नृपोत्तम ॥६४॥
घृतेन दीपं यो दद्याच्छंकरायाथ विष्णवे । स मुक्तः सर्वपापेभ्यो गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥६५॥
ग्राम्येण वापि तैलेन राजन्नन्येन वा पुनः । दीपं दत्त्वा महाविष्णोः शिवस्यापि फलं शृणु ॥६६॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितः । तत्तत्सालोक्यमाप्नोति त्रिःसप्तपुरुषान्वितः ॥६७॥
यद्यदिष्टतमं भोज्यं तत्तदीशाय विष्णवे । दत्त्वा तत्तत्पदं याति चत्वारिंशत्कुलान्वितः ॥६८॥
यद्यदिष्टतमं वस्तु तत्तद्विप्राय दापयेत् । स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥६९॥
भ्रूणहा स्वर्णदानेन शुद्धो भवति भूपते । अन्नतोयसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥७०॥
अन्नदः प्राणदः प्रोक्तः प्राणदश्चापि सर्वदः । सर्वदानफलं यस्मादन्नदस्य नृपोत्तम ॥७१॥

द्वादशी के दिन दूध अथवा घी से शिवलिंग को नहलाता है, महाभाग, उसके फल को मैं कह रहा हूँ सुनो। नृप ! वह मनुष्य हजार जन्म के पापों से मुक्त होकर अपने करोड़ कुलों का उद्धार कर शिव स्वरूप हो जाता है। ॥५५-५८॥नृप ! जो विष्णु-तिथि (एकादशी) को गंध और फूल से विष्णु की पूजा करता है वह हजार जन्म के पापों से मुक्त होकर विष्णु पद को प्राप्त करता है। जो मनुष्य कमल पुष्प से विष्णु या शिव की पूजा करता है, वह अपने करोड़ कुलों के सहित विष्णु लोक को जाता है। जो विष्णु को केवड़े के फूल से और शिव को धतूरे के फूल से रात में पूजा करता है वह अपने पापों से मुक्त होकर युग पर्यन्त विष्णु लोक में निवास करता है। ॥५९-६०॥ महाराज ! जो हरि की चम्पे के फूल से और शिव की मदार के फूल से पूजा करता है वह उसकी सालोक्य रूप मुक्ति पाता है। जो मनुष्य घृत युक्त गुग्गुल से विष्णु या शिव को भक्ति पूर्वक धूप देता है वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। नृपोत्तम ! जो तिल-तैल से भरे हुए दीपक से विष्णु अथवा शंकर को दीप दिखलाता है वह अपने सब मनोरथों को प्राप्त करता है। जो शंकर अथवा विष्णु को घी का दीपक देता है, वह सब पापों से मुक्त होकर गंगा-स्नान का फल पाता है। राजन् ! जो ग्राम्य या किसी अन्य तेल से विष्णु या शिव को दीपक दिखाता है, उससे जो फल मिलता है, उसको सुनो ॥६१-६६॥

वह व्यक्ति सब प्रकार के पापों से छूट जाता और सब प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त कर अपने इक्कीस कुलों के साथ उन देवों का सालोक्य प्राप्त करता है ॥६७॥ अपने जो प्रिय भोज्य पदार्थ हैं उनको अपने इष्ट देवता शिव या विष्णु के लिए अर्पित करने से मनुष्य अपने चालीस कुलों के सहित शिव और विष्णुलोक को जाता है। जो पदार्थ अपने को प्रिय लगते हैं उन उनको ब्राह्मणों के लिए अर्पित कर देना चाहिए, ऐसा करने से वह व्यक्ति आवागमन से रहित विष्णुलोक को प्राप्त कर लेता है। भूपते ! भ्रूण हत्या करने वाला व्यक्ति सुवर्णदान से पुनीत हो जाता है। भूपते ! जल और अन्न दान के समान कोई भी दान इस संसार में नहीं है। अन्न दान करने वाला प्राणदाता कहा गया है और जो प्राणदाता है वह सर्वदाता है। नृपोत्तम ! इसलिये अन्न दान करने वाले को सब दानों का फल प्राप्त होता है ॥६८-७१॥ अन्नदाता अपने परिवार सहित ब्रह्मलोक को जाता है। वह संसार

अन्नदो ब्रह्मसदनं याति वंशायुतान्वितः । न तस्य पुनरावृत्तिरिति शास्त्रेषु निश्चितम् ॥७२॥
सद्यस्तुष्टिकरं ज्ञेयं जलदानं यतोऽधिकम् । अन्नदानान्नृपश्रेष्ठ निर्दिष्टं ब्रह्मवादिभिः ॥७३॥
महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः । जलदो मुच्यते तेभ्य इत्याह कमलोद्भवः ॥७४॥
शरीरमन्नजं प्राहुः प्राणानप्यन्नजान्विदुः । तस्मादन्नप्रदो ज्ञेयः प्राणदः पृथिवीपते ॥७५॥
यद्यत्तुष्टिकरं दानं सर्वकामफलप्रदम् । तस्मादन्नसमं दानं नास्ति भूपाल भूतले ॥७६॥
अन्नदस्य कुले जाता आसहस्रं नृपोत्तम । नरकं ते न पश्यन्ति तस्मादन्नप्रदो वरः ॥७७॥
पादाभ्यङ्गं भक्तियुक्तो यऽतिथेः कुरुते नरः । स स्नातः सर्वतीर्थेषु गङ्गास्नानपुरःसरम् ॥७८॥
तैलाभ्यङ्गं महाराज ब्राह्मणानां करोति यः । स स्नातोऽष्टशतं साग्रं गङ्गायां नात्र संशयः ॥७९॥
रोगितान्ब्राह्मणान्यस्तु प्रेम्णा रक्षति रक्षकः । स कोटिकुलसंयुक्तो वसेद्ब्रह्मपुरे युगम् ॥८०॥
यो रक्षेत्पृथिवीपाल रङ्कं वा रोगिणम् नरम् । तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा सर्वान्कामान्प्रयच्छति ॥८१॥
मनसा कर्मणा वाचा यो रक्षेदामयान्वितम् । सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वपापविवर्जितः ॥८२॥
यो ददाति महीपाल निवासं ब्राह्मणाय वै । तस्य प्रसन्नो देवेशः स्वलोकं संप्रयच्छति ॥८३॥
ब्राह्मणाय ब्रह्मविदे यो दद्याद्गां पयस्विनीम् । स याति ब्रह्मसदनमन्येषामतिदुर्लभम् ॥८४॥
अन्येभ्यः प्रतिगृह्यापि यो दद्याद्गां पयस्विनीम् । तस्य पुण्यफलं वक्तुं नाहं शक्तोऽस्मि पण्डित ॥८५॥
कपिलां वेदविदुषे यो ददाति पयस्विनीम् । स एव रुद्रो भूपाल सर्वपापविवर्जितः ॥८६॥
विप्राय वेदविदुषे दद्यादुभयतोमुखीम् । यस्तस्य पुण्यं संख्यातुं न शक्तोऽब्दशतैरपि ॥८७॥

के आवागमन से मुक्त हो जाता है, ऐसा शास्त्रों का निर्णय है। यतः जल दान से मनुष्य को शीघ्र प्यास बुझ जाती है और उसको सन्तोष मिलता है, अतः हे नृपश्रेष्ठ ! ब्रह्मवादियों ने उसको अन्नदान से भी श्रेष्ठ माना है। महापापों अथवा उप पातक करने वाला मनुष्य जल का दान करने से अपने पापों से मुक्त हो जाता है, ऐसा ब्रह्माजी ने स्वयं कहा है ॥७२-७४॥ शरीर को अन्न से उत्पन्न (बना हुआ) कहा जाता है और प्राणों की उत्पत्ति अन्न से ही बताई गई है। इसलिये, पृथ्वीपते ! अन्नदाता को प्राणदाता समझना चाहिए। भूपाल ! जिन-जिन दानों से मनुष्य की तृप्ति होती है वह दान सब मनोरथों को सिद्ध करने वाला माना जाता है। अतएव अन्नदान के समान इस भूतल पर कोई दान नहीं है ॥७५-७६॥ नृपोत्तम ! अन्नदान करने वाले के कुल में हजार पीढ़ी तक जो उत्पन्न होते हैं, वे भी नरक नहीं देखते हैं। इसलिए अन्नदाता इस संसार में श्रेष्ठ माना गया है। जो मनुष्य भक्ति पूर्वक अतिथि का पैर धोता है, वह मानों गंगा सहित सब तीर्थों में स्नान कर चुका। महाराज ! जो व्यक्ति ब्राह्मणों के शरीर में तेल लगाता है, वह तत्काल गंगा में एक सौ आठ बार स्नान का फल पा लेता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। जो रोगी ब्राह्मण को प्रेम पूर्वक सेवा-शुश्रूषा द्वारा रक्षा करता है, वह युगों तक करोड़ों कुलों के साथ ब्रह्मलोक में निवास करता है ॥७७-८०॥ पृथ्वीपाल ! जो मनुष्य दरिद्र अथवा रोगी की रक्षा करता है उसके ऊपर विष्णु प्रसन्न होकर उसके सब मनोरथों को पूर्ण कर देते हैं। जो मन, वचन और कर्म से किसी रोगी की रक्षा करता है वह अपने सब पापों से मुक्त होकर सब मनोरथों को प्राप्त करता है। महीपाल ! जो ब्राह्मण को रहने के लिए घर देता है, विष्णु उसके ऊपर प्रसन्न होकर अपना लोक उसको दे देते हैं। जो वेदज्ञ ब्राह्मण को दुधार गौ देता है वह ब्रह्मलोक को जाता है, जो दूसरों के लिए दुर्लभ है। पण्डित ! जो दूसरे से दान लेकर भी दुधार गौ का दान करता है, उसके पुण्य का वर्णन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ ॥८१-८५॥

जो वेद-विद् ब्राह्मण को कपिला गाय देता है, भूपाल ! वही रुद्र है और वही पाप मुक्त धार्मिक पुरुष है। जो मनुष्य द्विमुखी गौ (जो बच्चा जन रही हो) किसी ब्राह्मण को देता है और उससे उसको जो पुण्य मिलता

तस्य पुण्यफलं राजञ्छृणु वक्ष्यामि तत्त्वतः। एकतः क्रतवः सर्वे समग्रवरदक्षिणाः ॥८८॥
एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम्। संरक्षति महीपाल यो विप्रं भयविह्वलम् ॥८९॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। वस्त्रदो रुद्रभवनं कन्यादो ब्रह्मणः पदम् ॥९०॥
हेमदो विष्णुभवनं प्रयाति स्वकुलान्वितः। यस्तु कन्यामलंकृत्य ददात्यध्यात्मवेदिने ॥९१॥
शतवंशसमायुक्तः स व्रजेद्ब्रह्मणः पदम्। कार्तिक्यां पौर्णमास्यां वा आषाढ्यां वापि भूपते ॥९२॥
वृषभं शिवतुष्ट्यर्थमुत्सृजेत्तत्फलं शृणु। सप्तजन्मार्जितैः पापैर्विमुक्तो रुद्ररूपभाक् ॥९३॥
कुलसप्ततिसंयुक्तो रुद्रेण सह मोदते। शिवलिङ्गाङ्कितं कृत्वा महिषं यः समुत्सृजेत् ॥९४॥
न तस्य यातनालोको भवेन्नृपतिसत्तम। ताम्बूलदानं यः कुर्याच्छक्तितो नृपसत्तम ॥९५॥
तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा ददात्यायुर्यशः श्रियम्। क्षीरदो घृतदश्चैव मधुदो दधिदस्तथा ॥९६॥
दिव्याब्दायुतपर्यंतं स्वर्गलोके महीयते। प्रयाति ब्रह्मसदनमिक्षुदाता नृपोत्तम ॥९७॥
गन्धदः पुण्यफलदः प्रयाति ब्रह्मणः पदम्। गुडेक्षुरसदश्चैव प्रयाति चोत्तमोत्तमम् ॥९८॥
घटानां जलदो याति सूर्यलोकमनुत्तमम्। विद्यादानेन सायुज्यं माधवस्य व्रजेन्नरः ॥९९॥
विद्यादानं महीदानं गोदानं चोत्तमोत्तमम्। नरकादुद्धरत्येव जपवाहनदोहनात् ॥१००॥
सर्वेषामपि दानानां विद्यादानं विशिष्यते। विद्यादानेन सायुज्यं विष्णोर्याति नृपोत्तम ॥१०१॥
नरस्त्विन्धनदानेन मुच्यते ह्युपपातकैः। शालग्रामशिलादानं महादानं प्रकीर्तितम् ॥१०२॥

है, उसकी गणना मैं सौ वर्षों में भी नहीं कर सकता हूँ। राजन् ! उसके पुण्य फल को संक्षेप में कह रहा हूँ सुनो— एक ओर अत्यन्त विपुल दक्षिणा वाले यज्ञों का फल और दूसरी ओर भयभीत प्राणियों की प्राण रक्षा करने का फल, दोनों कदाचित् ही तुलना प्राप्त कर सकें। महीपाल ! जो भयाकुल विप्र की रक्षा करता है वह सब तीर्थों में स्नान करने का और सब यज्ञों में दीक्षित होने का फल पा जाता है। वस्त्र दान देने वाला, रुद्रलोक को और कन्यादान करने वाला ब्रह्मलोक को जाता है ॥८६-९०॥ सुवर्ण दान करने वाला अपने कुल के सहित विष्णुलोक को चला जाता है। जो कन्या को अलङ्कारों से भूषित करके अध्यात्मज्ञानी ब्राह्मण को अर्पित कर देता है, वह अपने सौ कुलों के सहित ब्रह्मलोक को चला जाता है। भूपते ! जो कार्तिक पूर्णिमा और आषाढ़ी पूर्णिमा को शिव की प्रसन्नता के लिए साँड़ को छोड़ता है, उसके फल को सुनो—वह अपने सात जन्मों के पापों से मुक्त हो कर रुद्र रूप हो जाता है और सत्तर कुलों के सहित रुद्रलोक में रुद्र के साथ आनन्द प्राप्त करता है ॥९१-९३½॥ नृपतिवर ! जो शिव लिंग का चिह्न भैंसे के शरीर पर बनाकर उसको छोड़ देता है उसको किसी लोक में (नरक में) यातना नहीं दी जाती। नृपश्रेष्ठ ! जो शक्ति के अनुसार ताम्बूल दान करता हैं, उसके ऊपर विष्णु प्रसन्न होकर उसको दीर्घायु, यश और सम्पत्ति प्रदान करते हैं। दूध दान करने वाला घी, मधु और दही का दान करने वाला व्यक्ति सहस्र दिव्य वर्षों तक स्वर्ग लोक में पूजित होता है। नृपोत्तम ! गन्ना दान करने वाला ब्रह्मलोक को जाता है, गन्ध और पवित्र फलों का दान करने वाला ब्रह्मपद को प्राप्त करता है। गुड़, गन्ना और रस का दान करने वाला उत्तमोत्तम लोक को प्राप्त करता है ॥९४-९८॥ घड़ों का जल दान करने वाला उस परमोत्तम सूर्यलोक को जाता है जहाँ वीर रणभूमि में मर कर जाते हैं। नर विद्या दान से माधव का सायुज्य प्राप्त करता है। विद्या दान, भूदान और गोदान परमोत्तम दान हैं। जप, वाहन तथा दोहन दान से नरक से उद्धार होता ही है। सब दानों में विद्यादान उत्तम दान है। नृपोत्तम ! विद्या दान से मनुष्य विष्णु का सायुज्य प्राप्त करता है। मनुष्य इन्धन (लकड़ी) दान से सब उपपातकों से छूट जाता है। शालिग्राम शिला (वह पत्थर जिससे विष्णु की मूर्ति बनती है)दान महादान कहा गया है। उस दान को देकर मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है। इसी प्रकार शिव लिङ्ग

यद्दत्वा मोक्षमाप्नोति लिङ्गदानं तथा स्मृतम् । ब्रह्माण्डकोटिदानेन यत्फलं लभते नरः ॥१०३॥
तत्फलं समवाप्नोति लिङ्गदानान्न संशयः । शालग्रामशिलादाने ततोऽपि द्विगुणं फलम् ॥१०४॥
शालग्रामशिलारूपी विष्णुरेवेति विश्रुतः । यो ददाति नरो दानं गृहेषु महतां प्रभो ॥१०५॥
गङ्गास्नानफलं तस्य निश्चितं नृप जायते । रत्नान्वितसुवर्णस्य प्रदानेन नृपोत्तम ॥१०६॥
भुक्तिमुक्तिमवाप्नोति महादानं यतः स्मृतम् । नरो माणिक्यदानेन परं मोक्षमवाप्नुयात् ॥१०७॥
ध्रुवलोकमवाप्नोति वज्रदानेन मानवः । स्वर्गं विद्रुमदानेन रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥१०८॥
प्रयाति यानदानेन मुक्तादानेन चैन्दवम् । वैदूर्यदो रुद्रलोकं पुष्परागप्रदस्तथा ॥१०९॥
पुष्परागप्रदानेन सर्वत्र सुखमश्नुते । अश्वदो ह्यश्वसांनिध्यं चिरं व्रजति भूमिप ॥११०॥
गजदानेन महता सर्वान्कामानवाप्नुयात् । प्रयाति यानदानेन स्वर्गं स्वर्यानमास्थितः ॥१११॥
महिषीदो जयत्येव ह्यपमृत्युं न संशयः । गवां तृणप्रदानेन रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥११२॥
वारुणं लोकमाप्नोति महीश लवणप्रदः । स्वाश्रमाचारनिरताः प्रयान्ति सदनं हरेः ॥११३॥
अदाम्भिका गतासूयाः प्रयान्ति ब्रह्मणः पदम् । परोपदेशनिरता वीतरागा विमत्सराः ॥११४॥
हरिपादार्चनरताः प्रयान्ति सदनं हरेः । सत्सङ्गाह्लादनिरताः सत्कर्मसु सदोद्यताः ॥११५॥
परापवादविमुखाः प्रयान्ति हरिमन्दिरम् । नित्यं हितकरा ये तु ब्राह्मणेषु च गोषु च ॥११६॥
परस्त्रीसङ्गविमुखा न पश्यन्ति यमालयम् । जितेन्द्रिया जिताहारा गोषु क्षान्ताः सुशीलिनः ॥११७॥
ब्राह्मणेषु क्षमाशीलाः प्रयांति भवनं हरेः । अग्निशुश्रूषवश्चैव गुरुशुश्रूषकास्तथा ॥११८॥

दान का भी महत्त्व कहा गया है । कोटि ब्रह्माण्ड के दान से मनुष्य को जो फल मिलता है, वह फल निःसन्देह शिव लिङ्ग के दान से प्राप्त हो जाता है । शालग्राम शिला के दान से उससे भी दूना फल मिलता है ॥९९-१०४॥

शालग्राम शिला विष्णु का ही रूप है, ऐसा प्रसिद्ध है । प्रभो ! जो मनुष्य देव मन्दिरों में अपना अंश (पाई हुई सम्पत्ति) दान करता है, नृप ! उसको अवश्य ही गंगा स्नान का फल मिलता है । नृप ! रत्न सहित सुवर्ण के दान से मनुष्य भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त करता है; क्योंकि वह महादान माना गया है । मनुष्य माणिक्य के दान से परम मोक्ष को प्राप्त करता है ॥१०५-१०७॥ मानव वज्रमणि के दान से ध्रुव लोक को, विद्रुम (मूँगा) के दान से स्वर्ग को, यान दान से रुद्र लोक को और मुक्ता दान से इन्द्र-पद को प्राप्त करता है । वैदूर्य मणि और पुष्पराग मणि के दान से रुद्र लोक की प्राप्ति होती है—और सर्वत्र सुख मिलता है । भूमिप ! अश्व का दान करने से मनुष्य चिर काल तक अश्व पाता रहता है । महान् गज के दान से सब कामनायें पूरी होती हैं । सवारी के दान देने से मनुष्य स्वर्गीय विमानों पर आरूढ़ होकर स्वर्ग को जाता है ॥१०८-१११॥ भैंस का दान करने वाला अकाल मृत्यु से बचा रहता है और गौवों को घास खिलाने से रुद्र लोक मिलता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । महीश ! नमक का दान करने से वरुण लोक प्राप्त होता और अपने कुलाचार को पालन करने वाले, सब प्राणियों के हित में लगे रहने वाले, शुद्ध हृदय, निष्कपट और उदार व्यक्ति ब्रह्मलोक को प्राप्त करते है । परोपदेश में लीन रहने वाले वीतराग, मात्सर्य हीन और हरि की पूजा में सदा तत्पर रहने वाले जन विष्णु लोक को पाते हैं । सत्संग सुख के भोग करने तथा सत्कर्म करने के लिए सदा उद्यत रहने वाले और पर निन्दा से विमुख रहने वाले विष्णु-भवन में स्थान पाते हैं ॥११२-११५½॥

गो ब्राह्मण का नित्य हित करने वाले और पर स्त्री को माता के समान समझने वाले कभी भी यमलोक को नहीं जाते हैं । जितेन्द्रिय, क्षुधा को वश में करने वाले, गौओं पर कभी भी क्रोध न करने वाले, सुशील और ब्राह्मणों पर सर्वदा क्षमा का व्यवहार करने वाले व्यक्ति हरि-भवन को जाते हैं । अग्नि की पूजा एवं गुरु सेवा में

पतिशुश्रूषणरता न वै संसृतिभागिनः । सदा देवार्चनरता हरिनामपरायणाः ॥११९॥
प्रतिग्रहनिवृत्ताश्च प्रयान्ति परमं पदम् । अनाथं विप्रकुणपं ये दहेयुर्नृपोत्तम ॥१२०॥
अश्वमेधसहस्राणां फलमश्नुवते सदा । पत्रैः पुष्पैः फलैर्वापि जलैर्वा मनुजेश्वर ॥१२१॥
पूजया सहितं लिङ्गमर्चयेत्तत्फलं शृणु । अप्सरोगणगन्धर्वैः स्तूयमानो विमानगः ॥१२२॥
प्रयाति शिवसान्निध्यमित्याह कमलोद्भवः । चुलुकोदकमात्रेण लिङ्गं संस्नाप्य भूमिप ॥१२३॥
लक्षाश्वमेधजं पुण्यं संप्राप्नोति न संशयः । पूजया रहितं लिङ्गं कुसुमैर्योऽर्चयेत्सुधीः ॥१२४॥
अश्वमेधायुतफलं भवेत्तस्य जनेश्वर । भक्ष्यैर्भोज्यैः फलैर्वापि शून्यं लिङ्गं प्रपूज्य च ॥१२५॥
शिवसायुज्यमाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् । पूजया रहितं विष्णुं योऽर्चयेदर्कवंशज ॥१२६॥
जलेनापि स सालोक्यं विष्णोर्याति नरोत्तम । देवतायतने यस्तु कुर्यात्संमार्जनं सुधीः ॥१२७॥
यावत्पांसु युगावासं वैष्णवे मन्दिरे लभेत् । शीर्णं स्फटिकलिङ्गं तु यः संदध्यान्नृपोत्तम ॥१२८॥
शतजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते स तु मानवः । यस्तु देवालये राजन्नपि गोचर्ममात्रकम् ॥१२९॥
जलेन सिञ्चेद्भूभागं सोऽपि स्वर्गं लभेन्नरः । गन्धोदकेन यः सिञ्चेद्देवतायतने भुवम् ॥१३०॥
यावत्कणानुकल्पं तु तिष्ठेत देवसन्निधौ । मृदा धातुविकारैर्वा यो लिम्पेद्देवतागृहम् ॥१३१॥
स कोटिकुलमुद्धृत्य याति साम्यं मधुद्विषः । शिलाचूर्णेन यो मर्त्यो देवागारं तु लेपयेत् ॥१३२॥

संसार-बन्धन में नहीं पड़ते । नृपोत्तम ! कभी भी दान न लेने वाला व्यक्ति परम पद को प्राप्त करता है और जो अनाथ ब्राह्मण के शव दाह करता है वह सर्वदा सहस्र अश्वमेघ का फल भोगता है । मनुजेश्वर ! जो पत्र, पुष्प, फल अथवा केवल जल से भी भक्ति पूर्वक शिवलिङ्ग की पूजा करता है, उसका फल सुनो ॥११६-१२१½॥ वह विमान पर आरूढ़ होकर शिव के समीप जाता है और अप्सरा एवं गन्धर्व उसकी स्तुति करते हैं, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है । भूमिपाल ! केवल एक चुल्लू जल से जो ऐसे शिवलिङ्ग की, जिसकी पूजा न होती हो–पूजा करता है वह लाख अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है । जो बुद्धिमान् ऐसे लिङ्ग की, जिसकी पूजा न होती हो, फूलों से पूजा करता है, उसको सहस्र अश्वमेघ का फल मिलता है । फल अथवा किसी प्रकार के भोजन योग्य पदार्थं से जो शून्य[1] लिङ्ग की पूजा करते हैं वे आवागमन से रहित शिव की सायुज्य मुक्ति प्राप्त करते हैं । सूर्य-वंश में उत्पन्न ! इसी प्रकार ऐसी विष्णु मूर्ति की, जिसकी बहुत दिनों से जो पूजा न होती हो, जल से पूजा करता है, नरोत्तम ! वह विष्णु का सालोक्य प्राप्त करता है । जो सुधी मन्दिर में सफाई का कार्य करता है वह धूलि के कणों के बराबर युग तक विष्णु मन्दिर में निवास करता है ॥१२२-१२७½॥ नृपोत्तम ! जो मनुष्य टूटे हुए स्फटिक के शिव लिङ्ग को पुन: जोड़ कर यथारूप कर देता है वह अपने सौ जन्म के पापों से भी छूट जाता है । राजन् ! जो व्यक्ति देवालय में गोचर्म परिमित (एक चरसा) भूमि को जल से सींचता है वह भी स्वर्ग को जाता है । जो सुगन्धित जल से देव मन्दिर के अन्तःकक्ष या आंगन को सींचता है वह देव विष्णु के समीप उस देव भूमि के कण परिमाण के बराबर कल्प तक रहता है । जो देव मन्दिर को मिट्टी या किसी धातु विकार (गेरु) आदि से लीपते हैं वे अपने करोड़ कुलों का उद्धार कर मधुसूदन के समान रूप पाते हैं । जो मनुष्य शिला चूर्ण (पत्थर के चूने) से देव मन्दिर को लीपता या लिपवाता है या स्वस्तिक चिह्न आदि बनवाता है उसको अनन्त पुण्य मिलता है ।

---

१. जो एकान्त में पड़ा हो, जिस पर कभी पूजन की सामग्री न चढ़ी गई हो ।

स्वस्तिकादीनि वा कुर्यात्तस्य पुण्यमनन्तकम् । यः कुर्याद्दीपरचनां देवलायतने नृप ॥१३३॥
तस्य पुण्यं प्रसंख्यातुं नोत्सहेऽब्दशतैरपि । अखण्डदीपं यः कुर्याद्विष्णोर्वा शंकरस्य च ॥१३४॥
क्षणे क्षणेऽश्वमेधस्य फलं तस्य न दुर्लभम् । अर्चितं शंकरं दृष्ट्वा विष्णुं वापि नमेत्तु यः ॥१३५॥
स विष्णुभवनं प्राप्य मोदते च युगायुतम् । देव्याः प्रदक्षिणाञ्चैकां सप्त सूर्यस्य भूमिप ॥१३६॥
तिस्रो विनायकस्यापि चतस्रो विष्णुमन्दिरे । कृत्वा तत्तद्गृहं प्राप्य मोदते युगलक्षकम् ॥१३७॥
यो विष्णोर्भक्तिभावेन तथैव गोद्विजस्य च । प्रदक्षिणां चरेत्तस्य ह्यश्वमेधः पदे पदे ॥१३८॥
काश्यां माहेश्वरं लिङ्गं संपूज्य प्रणमेत्तु यः । न तस्य विद्यते कृत्यं संसृतिर्नैव जायते ॥१३९॥
शिवं प्रदक्षिणं कृत्वा सव्येनैव विधानतः । नरो न च्यवते स्वर्गाच्छंकरस्य प्रसादतः ॥१४०॥
स्तुत्वा स्तोत्रैर्जगन्नाथं नारायणमनामयम् । सर्वान्कामानवाप्नोति मनसा यद्यदिच्छति ॥१४१॥
देवतायतने यस्तु भक्तियुक्तः प्रनृत्यति । गायते वा स भूपाल रुद्रलोके च मुक्तिभाक् ॥१४२॥
ये तु वाद्यं प्रकुर्वन्ति देवतायतने नराः । ते हंसयानमारूढा व्रजन्ति ब्रह्मणः पदम् ॥१४३॥
करतालं प्रकुर्वन्ति देवतायतने तु ये । ते सर्वपापनिर्मुक्ता विमानस्था युगायुतम् ॥१४४॥
देवतायतने ये तु घण्टानादं प्रकुर्वते । तेषां पुण्यं निगदितुं न समर्थः शिवः स्वयम् ॥१४५॥
भेरी मृदङ्गपटहमुरजैश्च सडिण्डिमैः । संप्रीणयन्ति देवेशं तेषां पुण्यफलं शृणु ॥१४६॥
देवस्त्रीगणसंयुक्ताः सर्वकामैः समर्चिताः । स्वर्गलोकमनुप्राप्य मोदन्ते कल्पपञ्चकम् ॥१४७॥
देवतामन्दिरे कुर्वन्नरः शङ्खरवं नृप । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुना सह मोदते ॥१४८॥

नृप ! जो देव मन्दिर में दीप रचना करता है, उसके पुण्य की गणना सौ वर्षों में भी नहीं की जा सकती है। ॥१२८-१३३॥

जो विष्णु या शंकर के समीप अखण्ड दीप जलाता है, उसके लिए क्षण-क्षण में अश्वमेध का फल मिलना दुर्लभ नहीं है अर्थात् उसको क्षण-क्षण में अश्वमेध-फल मिलता है। जो पूजित शंकर या विष्णु की प्रतिमा को देखकर प्रणाम करता है, वह विष्णु लोक में जाकर सहस्र युग तक आनन्द प्राप्त करता है। भूमिप ! जो देवी की एक बार, सूर्य की सात बार, गणेश की तीन बार और विष्णु मन्दिर में चार बार प्रदक्षिणा करता है, वह लाख युगों तक उन-उन देव लोकों में आनन्द पूर्वक निवास करता है ॥१३४-१३७॥ जो व्यक्ति भक्ति पूर्वक विष्णु, गौ, और ब्राह्मण की प्रदक्षिणा करता है वह पग-पग में अश्वमेध का फल प्राप्त करता है। जो काशी में विश्वनाथ की पूजा कर प्रणाम करता है, उसके पुण्य की गणना नहीं की जा सकती और वह कभी भी संसार में जन्म नहीं लेता। जो विधान पूर्वक दक्षिण विधि से शिव की प्रदक्षिणा करता है, वह शंकर की कृपा से कभी भी स्वर्ग से च्युत नहीं होता है। मनुष्य निर्विकार नारायण जगन्नाथ की स्तोत्रों से स्तुति करता है वह उन अपनी सभी मनः कामनाओं को प्राप्त करता है ॥१३८-१४१॥ भूपाल ! जो देव मन्दिरों में भक्ति पूर्वक नाचता या गाता है वह मुक्ति लाभ कर रुद्रलोक में जाता है। जो मनुष्य देव मन्दिर में बाजा बजाता है, वह हंसयान पर आरूढ़ होकर ब्रह्मलोक को जाता है। जो देव मन्दिर में ताली बजाते हैं वे सब पापों से मुक्त होकर सहस्र युग तक विमानारोही देवता होते हैं। जो देव मन्दिर में घण्टा बजाते हैं उनके पुण्यों को स्वयं शिव भी कहने में समर्थ नहीं हैं ॥१४२-१४५॥ जो भी मृदङ्ग, पटह, मुरज और ढोल से देवेश को प्रसन्न करते हैं, उनके पुण्य-फल को सुनिए। वे देव कन्याओं के सहित अपनी मनः कामनाओं को प्राप्त करते हैं और स्वर्ग में जाकर पांच कल्प तक निवास करते हैं। नृप ! जो मनुष्य देव मन्दिर में शंख बजाता है, वह अपने सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में निवास करता है।

तालकांस्यादिनिनदं कुर्वन् विष्णुगृहे नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥१४९॥
यो देवः सर्वदृग्विष्णुर्ज्ञानरूपी निरञ्जनः । सर्वधर्मफलं पूर्णं संतुष्टः प्रददाति च ॥१५०॥
यस्य स्मरणमात्रेण देवदेवस्य चक्रिणः । सफलानि भवन्त्येव सर्वकर्माणि भूपते ॥१५१॥
परमात्मा जगन्नाथः सर्वकर्म्मफलप्रदः । सत्कर्मकर्तृभिर्नित्यं स्मृतः सर्वार्तिनाशनः ॥
तमुद्दिश्य कृतं यच्च तदानन्त्याय कल्पते ॥१५२॥
धर्माणि विष्णुश्च फलानि विष्णुः कर्माणि विष्णुश्च फलानि भोक्ता ।
कार्यं च विष्णुः करणानि विष्णुरस्मान्न किंचिद्व्यतिरिक्तमस्ति ॥१५३॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे धर्मानुकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

धर्मराज उवाच

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं वर्णानामनुपूर्वशः । प्रब्रवीमि नृपश्रेष्ठ तं शृणुष्व समाहितः ॥१॥
यो भुञ्जानोऽशुचिर्वापि चाण्डालं पतितं स्पृशेत् । क्रोधादज्ञानतो वापि तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥२॥
त्रिरात्रं वाथ षड्रात्रं यथासंख्यं समाचरेत् । स्नानं त्रिषवणं विप्र पञ्चगव्येन शुध्यति ॥३॥
भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्स्रवते गुदम् । उच्छिष्टत्वेऽशुचित्वे च तस्य शुद्धिं वदामि ते ॥४॥

मनुष्य विष्णु मन्दिर में ताल, कांस्य (झाल) आदि बाजे बजाकर सब पापों से छूट जाता है और विष्णुलोक को प्राप्त करता है। जो विष्णु ज्ञान स्वरूप, निरञ्जन और सब को देखने वाले हैं वे प्रसन्न होने पर सब धर्म-फलों को पूर्ण रूप से प्रदान करते हैं ॥१४६-१५०॥ भूपते ! जिस देवाधि-देव चक्रधर विष्णु के स्मरण मात्र से सब कार्य पूर्ण हो जाते हैं और जो देव परमात्मा, जगन्नाथ, सब मनोरथों को देने वाले और जिनके स्मरण मात्र से सत्कर्म करने वाले मनुष्यों की सारी विपदायें नष्ट हो जाती हैं, उनके उद्देश्य से जो कुछ कार्य किया जाता है वह अनन्त फल को प्रदान करने में समर्थ होता है। विष्णु ही सब धर्म, सब फल, सब कर्म और सब फलों के भोग करने वाले हैं। वे ही कार्य और वे ही कारण भी हैं। इस भगवान् विष्णु को छोड़कर इस संसार में दूसरा कुछ नहीं है। ॥१५१-१५३॥

"श्री नारदीय महापुराण में धर्मानुकथन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥१३॥

अध्याय १४

पापों का प्रायश्चित्त तथा श्राद्ध-पञ्चक निरूपण

धर्मराज बोले--नृपश्रेष्ठ ! अब मैं श्रुतिस्मृति में कहे गए वर्णों के धर्म को अक्षरशः कह रहा हूँ, उसको ध्यान पूर्वक सुनो। जो भोजन करते समय क्रोध-वश या अज्ञान-वश अपवित्र, पतित या चाण्डाल को छू देता है, उसका प्रायश्चित्त कहता हूँ। वह तीन रात या छह रात्रि तक व्रत रखे और तीनों काल स्नान करे और पंच गव्य पान करे तब वह शुद्ध होता है ॥१-३॥ यदि कदाचित् भोजन करते समय किसी ब्राह्मण को मल स्राव हो जाय

पूर्वं कृत्वा द्विजः शौचं पश्चादप उपस्पृशेत् । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥५॥
निगिरन्यदि मेहेत भुक्त्वा वा मेहने कृते । अहोरात्रोषितो भूत्वा जुहुयात्सर्पिषाऽनलम् ॥६॥
यदा भोजनकाले स्यादशुचिर्ब्राह्मणः क्वचित् । भूमौ निधाय तं ग्रासं स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ॥७॥
भक्षयित्वा तु तद् ग्रासमुपवासेन शुध्यति । अशित्वा चैव तत्सर्वं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥८॥
अश्नतश्चेद्वमिः स्याद्वै ह्यस्वस्थस्त्रिशतं जपेत् । स्वस्थस्त्रीणि सहस्राणि गायत्र्याः शोधनं परम् ॥९॥
चाण्डालैः श्वपचैः स्पृष्टो विण्मूत्रे च कृते द्विजः
त्रिरात्रं तु प्रकुर्वीत भुक्तोच्छिष्टः षडाचरेत् । उदक्यां सूतिकां वापि संस्पृशेदन्त्यजो यदि ॥१०॥
त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्यादिति शातातपोऽब्रवीत् । रजस्वला तु संस्पृष्टा श्वभिर्मातङ्गवायसैः ॥११॥
निराहारा शुचिस्तिष्ठेत्काले स्नानेन शुद्धयति । रजस्वले यदा नार्यावन्योन्यं स्पृशतः क्वचित् ॥१२॥
शुध्येते ब्रह्मकूर्चेन ब्रह्मकूर्चेन चोपरि । उच्छिष्टेन च संस्पृष्टो यो न स्नानं समाचरेत् ॥१३॥
ऋतौ तु गर्भं शङ्कित्वा स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् । अनृतौ तु स्त्रियं गत्वा शौचं मूत्रपुरीषवत् ॥१४॥
उभावप्यशुची स्यातां दम्पती याभसंगतौ । शयनादुत्थितानारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥१५॥
भर्तुः शरीरशुश्रूषां दौरात्म्यादप्रकुर्वती । दण्ड्या द्वादशकं नारी वर्षं त्याज्या धनं विना ॥१६॥
त्यजन्तो पतितान्बन्धून्दण्ड्यानुत्तमसाहसम् । पिता हि पतितः कामं न तु माता कदाचन ॥१७॥
॥१८॥

तो उसकी शुद्धि का प्रकार बता रहा हूँ सुनो । वह पहले शौच से निवृत्त होकर आचमन करे और दिन रात उपवास कर पंच गव्य पान करे तब वह शुद्ध हो जाता है । भोजन करते समय यदि मूत्र त्याग हो जाय या मूत्र त्याग के पश्चात् भोजन कर ले तो वह ब्राह्मण दिन रात उपवास कर घृत से अग्नि में हवन करे । यदि कहीं भोजन करते समय ब्राह्मण अपवित्र हो जाय तो ग्रास (कवल) को भूमि पर रख दे और वह स्नान करने से से शुद्ध हो जाता है ॥४-७॥ उस अपवित्र अवस्था में यदि उस ग्रास को खा जाय तब वह उपवास से शुद्ध होता है । यदि उस परसे भोजन को खा जाय तब वह तीन रात तक अशुद्ध रहता है । भोजन करते समय यदि वमन हो जाय तो अस्वस्थ अवस्था में तीन सौ बार गायत्री मंत्र का जप करने से और स्वस्थावस्था में तीन हजार गायत्री के जप से शुद्धि होती है । द्विज मल त्याग या मूत्र त्याग किये हुए या चाण्डाल या श्वपच से छू जाय तो तीन रात्रि तक उपवास करे । यदि भोजन करके जूठे ही पश्चात् छू जाय तो छह दिन तक उपवास करे । यदि अन्त्यज ऋतु-मती या सूतिका स्त्री को छू दे तो तीन रात्रि के उपवास से उसकी शुद्धि होती है, ऐसा शातातप ने कहा है ॥८-११½॥ रजस्वला स्त्री यदि कुकुर, हाथी या कौए से छू जाय तो निराहार रहे तदन्तर ऋतु स्नान के बाद वह शुद्ध हो जाती है । दो रजस्वला स्त्रियों का यदि परस्पर स्पर्श हो जाय तो वे ब्रह्मकूर्च व्रत करने से शुद्ध हो जाती हैं । उच्छिष्ट (जूठा) के स्पर्श हो जाने पर जो स्नान नहीं करता वह अशुद्ध रहता है । ॥१२-१४॥ ऋतु स्नाता स्त्री से सहवास करने वाला पुरुष गर्भ स्थिति का निश्चय हो जाने पर केवल स्नान से शुद्ध हो जाता है । इसके अतिरिक्त काल में स्त्री सहवास करने पर मूत्रोत्सर्ग या शौच त्याग के समान शुद्धि कार्य करना चाहिए । सम्भोग के समय स्त्री पुरुष दोनों अपवित्र हो जाते हैं; परन्तु स्त्री केवल शय्या त्याग से ही शुद्ध हो जाती है और पुरुष (तब तक) अपवित्र रहता है (जब तक वह स्नान नहीं कर लेता) । जो स्त्री अपनी दुष्टता के कारण पति की सेवा नहीं करती, उसको बारह वर्ष का गृह-निर्वासन दण्ड देना चाहिए और उसको धन से सहायता भी नहीं करनी चाहिए ॥१५-१७॥

अपतित बन्धुओं को त्यागने वाले पुरुष को एक हजार पण या उससे कोई बड़ा दण्ड देना चाहिए । पिता

आत्मानं घातयेद्यस्तु रज्ज्वादिभिरुपक्रमैः । मृते मेध्येन लेप्तव्यो जीवतो द्विशतं दमः ॥१९॥
दण्डयास्तत्पुत्रमित्राणि प्रत्येकं पाणिकं दमम् । प्रायश्चित्तं ततः कुर्युर्यथाशास्त्रप्रचोदितम् ॥२०॥
जलाग्न्युद्बन्धनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः । विषप्रपतनध्वस्ताः शस्त्रघातहताश्च ये ॥२१॥
न चैते प्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः । चान्द्रायणेन शुद्धयन्ति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा ॥२२॥
उभयावसितः पापश्यामच्छबलकाच्च्युतः । चान्द्रायणाभ्यां शुद्धयेत दत्त्वा धेनुं तथा वृषम् ॥२३॥
श्वशृगालप्लवङ्गाद्यैर्मानुषैश्च रतिं विना । स्पृष्टः स्नात्वा शुचिः सद्यो दिवा संध्यासु रात्रिषु ॥२४॥
अज्ञानाद्वा तु यो भुक्त्वा चाण्डालान्नं कथंचन । गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्धयति ॥२५॥
गोब्राह्मणगृहं दग्ध्वा मृतं चोद्बद्बन्धनादिना । पाशं छित्वा तथा तस्य कृच्छ्रमेकं चरेद्द्विजः ॥२६॥
चाण्डालपुल्कसानां च भुक्त्वा हत्वा च योषितम् । कृच्छ्रार्द्धमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्दवद्वयम् ॥२७॥
कापालिकान्नभोक्तॄणां तन्नारीगामिनां तथा । अगम्यागमने विप्रो मद्यगोमांसभक्षणे ॥२८॥
तप्तकृच्छ्रपरिक्षिप्तो मौर्वीहोमेन शुद्धयति । महापातककर्त्तारश्चत्वारोऽथ विशेषतः ॥२९॥
अग्निं प्रविश्य शुद्धयन्ति स्थित्वा वा महति क्रतौ । रहस्यकरणोऽप्येवं मासमभ्यस्य पूरुषः ॥३०॥
अघमर्षणसूक्तं वा शुद्धयेदन्तर्जले जपन् । रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च ॥३१॥
कैवर्त्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते ह्यन्त्यजाः स्मृताः । भुक्त्वा चैषां स्त्रियो गत्वा पीत्वा यः प्रतिगृह्यते ॥३२॥

भले पतित हो सकता है किन्तु माता कभी पतित नहीं हो सकती है। जो रस्सी आदि का फन्दा लगाकर आत्म-हत्या करता है, उसके मरने पर पवित्र वस्तु (चन्दन आदि) से उसके शरीर को लिप्त कर देना चाहिए और यदि वह जीवित रह जाय तो उसके ऊपर दो सौ पणों का दण्ड लगाना चाहिए। उसके पुत्र-मित्रों को भी पण का दण्ड देना चाहिए। फिर वे लोग शास्त्रनिर्देशानुसार प्रायश्चित्त करें। जो जल, अग्नि तथा फाँसी लगाकर मरने से बच जाते हैं, संन्यास नष्ट करने से बच जाते हैं, विष तथा शस्त्राघात से बच जाते हैं, उनका प्रायश्चित्त नहीं है। वे सब लोगों से बहिष्कृत हैं। अथवा एक चान्द्रायण व्रत और दो तप्तकृच्छ्र व्रत करने से वे शुद्ध हो सकते हैं। जो जितेन्द्रियहीनता के कारण चित्र-विचित्र पाप-कर्मों से विरत नहीं हो सका, वह दो चान्द्रायण व्रत तथा धेनु और वृष दान करने से शुद्ध हो जाता है। विना प्रेम के कुत्ते, सियार, बन्दर तथा मनुष्य से स्पर्श हो जाने पर दिन, सन्ध्यासमय तथा रात्रि में सद्यः स्नान करने से शुद्धि होती है ॥१८-२४॥ जो भूल से चाण्डाल का अन्न खा ले वह एक पक्ष तक गोमूत्र और कुल्थी का आहार करने से शुद्ध होता है। जो गौ और ब्राह्मण का घर जला दे और उसके कारण कोई बँधा हुआ पशु मर जाय तो वह ब्राह्मण पहले उसका बन्धन तोड़े और उसकी शान्ति के लिए कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करे। चाण्डाल और पुल्कस का अन्न खाने और किसी स्त्री की हत्या करने पर यदि जान बूझ कर यह कार्य हुआ हो तब तो अर्द्धकृच्छ्र चान्द्रायण करे और यदि बिना जाने हो गया हो तो दो सोम व्रत करे। कापालिक का अन्न खाने वाला और उसकी स्त्री से भोग करने वाला अथवा मद्यप, मांस भोजी और अगम्यागमन करने वाला ब्राह्मण तप्तकृच्छ व्रत से और मौर्वी होम से शुद्ध होता है ॥२५-२८½॥

विशेष रूप से चार प्रकार के महापाप करने वाले अग्नि में प्रवेश से शुद्ध होते अथवा महान् यज्ञ (अश्वमेध, सोमयाग आदि यज्ञों को) करने से भी वह शुद्ध होता है। इसी प्रकार मनुष्य कोई गुप्त भेद या पाप कर्म में सहायता पहुँचाने पर जल के भीतर डूबकर 'अघमर्षण' मन्त्र का जाप करने से शुद्ध होता है। धोबी, चमार, नट, बुरु, केवट, मेद और भिल्ल ये सात अन्त्यज कहे गए हैं। जानबूझकर इनका अन्न खाने, इनकी स्त्रियों के साथ सहवास करने, इनका जल पीने और दान लेने पर विप्र अर्द्धकृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करने से शुद्ध होता है और यदि अनजान से हुआ हो तब तो दो बार सोमव्रत करने से शुद्धि होती है। माता, गुरुपत्नी,

कृच्छ्रार्द्धमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैन्दवद्वयम् । मातरं गुरुपत्नीं च दुहितृभगिनीस्नुषाः ॥३३॥
संगम्य प्रविशेदग्निं नान्या शुद्धिर्विधीयते । राज्ञीं प्रव्रजितां धात्रीं तथा वर्णोत्तमामपि ॥३४॥
गत्वा कृच्छ्रद्वयं कुर्यात्सगोत्रामभिगम्य च । अमूषु पितृगोत्रासु मातृगोत्रगतासु च ॥३५॥
परदारेषु सर्वेषु कृच्छ्रार्द्धं तपनं चरेत् । वेश्याभिगमने पापं व्यपोहन्ति द्विजास्तथा ॥३६॥
पीत्वा सकृत्सुतप्तं च पञ्चरात्रं कुशोदकम् । गुरुतल्पगतो कुर्याद्ब्रह्मणो विधिवद्व्रतम् ॥३७॥
गोघ्नस्य केचिदिच्छन्ति केचिच्चैवावकीर्णिनः । दण्डादूर्ध्वं प्रहारेण यस्तु गां विनिपातयेत् ॥३८॥
द्विगुणं गोव्रतं तस्य प्रायश्चित्तं विशोधयेत् । अङ्गुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रप्रमाणकः ॥३९॥
सार्द्रकस्सपलाशश्च गोदण्डः परिकीर्त्तितः । गवां निपातने चैव गर्भोऽपि संभवेद्यदि ॥४०॥
एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं एषा गोघ्नस्य निष्कृतिः । बन्धने रोधने चैव पोषणे वा गवां रुजाम् ॥४१॥
संपद्यते चेन्मरणं निमित्तेनैव लिप्यते । मूर्च्छितः पतितो वापि दण्डेनाभिहतस्तलः ॥४२॥
उत्थाय षट्पदं गच्छेत्सप्त पञ्चदशापि वा । ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वापि पिबेद्यदि ॥४३॥
सर्वव्याधिप्रनष्टानां प्रायश्चित्तं न विद्यते । काष्ठलोष्टाश्मभिर्गावः शस्त्रैर्वा निहता यदि ॥४४॥
प्रायश्चित्तं स्मृतं तत्र शस्त्रे शस्त्रे निगद्यते । काष्ठे सान्तपनं प्रोक्तं प्राजापत्यं तु लोष्टके ॥४५॥
तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकम् । औषधं स्नेहमाहारं दद्याद्गोब्राह्मणेषु च ॥४६॥

कन्या, वहिन और पतोहू इनसे संगम करने से मनुष्य के लिए केवल अग्नि में जलकर मर जाना ही एक मात्र प्रायश्चित्त है और कोई दूसरी शुद्धि नहीं ॥२९-३३॥

रानी, संन्यासिनी धाय, और उत्तम वर्ण की स्त्री अथवा सगोत्रा से सहवास करने पर मनुष्य दो कृच्छ्र व्रत करे। पितृ गोत्र ओर मातृ गोत्र वाली स्त्री के साथ संगम करने वाले के लिए यही प्रायश्चित्त है। पर स्त्रियों के साथ सहवास करने पर अर्द्धकृच्छ्र व्रत का पालन करना चाहिए। वेश्यागमन करने से ब्राह्मण पाँच रात्रि तक एक-एक बार बहुत गर्म कुश-जल से स्नान करने से उस पाप से मुक्त हो सकता है। गुरुपत्नीगामी ब्राह्मण विधिपूर्वक व्रत का पालन करे। कोई कहते हैं कि गोहन्ता को जो व्रत करना चाहिए वही व्रत गुरुपत्नीगामी भी करे। और किन्हीं का कहना है कि ब्रह्मचर्यव्रत-भंग करने पर जो प्रायश्चित्त होता है वही उसको करना चाहिए। जो डंडे से मारकर गौ को गिरा दे उसकी शुद्धि दूने गोव्रत से होती है ॥३४-३८॥ एक अंगुल मोटा एक हाथ लम्बा पलाश या और किसी गीली लकड़ी का दण्ड गोदण्ड कहा गया है। गौ यदि सभर्गा हो और वह चोट खाकर गिर जाय तो प्रत्येक जीव के लिए एक-एक बार कृच्छ्र व्रत करे, यही गोहत्या करने वाले के लिए प्रायश्चित्त है। बाँधने से, घर में बन्द करने से, उसको चारा खिलाने से या रोग दूर करने के लिए ओषधि देने से यदि गौ मर जाय तो भी निमित्त (मृत्युकारण) का दोष लगता है ॥३९-४१½॥

डंडा मारने से यदि गाय मूर्च्छित होकर-गिर जाय और फिर इसके बाद छह पग या दश पन्द्रह पग चले, या घास खाने लगे या पानी पीने लगे तो दण्ड प्रहार जन्य पीड़ा के शीघ्र नष्ट हो जाने से कोई प्राय-श्चित्त नहीं कहा गया है। काठ, पत्थर, ढेला या शस्त्र की मार से यदि गाय मर जाय तो इसके लिए भिन्न भिन्न प्रकार से प्रायश्चित्त कहा गया है ॥४२-४४½॥ काठ के डंडे के मारने पर शान्तपन और ईंट से मारने पर प्राजापत्य, पत्थर से मारने पर तप्तकृच्छ्र और शास्त्र से मारने पर अति कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। गौ और ब्राह्मण को ओषधि, तेल अथवा भोजन देने से यदि कोई घटना हो जाय तो उसके लिए प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार तेल या ओषधि पिलाने या खिलाने से यदि कोई अप्रिय घटना हो जाय तो उसके

दीयमाने विपत्तिः स्यात्प्रायश्चित्तं तदा नहि । तैलभेषजपाने च भेषजानां च भक्षणे ॥४७॥
निःशल्यकरणे चैव प्रायश्चित्तं न विद्यते । वत्सानां कण्ठबन्धेन क्रियया भेषजेन तु ॥४८॥
सायं संगोपनार्थं च त्वदोषो रोधबन्धयोः । पादे चैवास्य रोमाणि द्विपादे श्मश्रु केवलम् ॥४९॥
त्रिपादे तु शिखावर्जं मूले सर्वं समाचरेत् । सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलद्वयम् ॥५०॥
एवमेव तु नारीणां मुण्डनं शिरसः स्मृतम् । न स्त्रिया वपनं कार्यं न च वीरासनं स्मृतम् ॥५१॥
न च गोष्ठे निवासोऽस्ति न गच्छन्तीमनुव्रजेत् । राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ॥५२॥
अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् । केशानां रक्षणार्थं च द्विगुणं व्रतमादिशेत् ॥५३॥
द्विगुणे तु व्रते चीर्णे द्विगुणा व्रतदक्षिणा ॥५४॥
पापं न क्षीयते हन्तुर्दाता च नरकं व्रजेत् । अश्रौतस्मार्तविहितं प्रायश्चित्तं वदन्ति ये ॥५५॥
तान्धर्मविघ्नकर्तॄंश्च राजा दण्डेन पीडयेत् । न चैतान्पीडयेद्राजा कथंचित्काममोहितः ॥५६॥
तत्पापं शतधा भूत्वा तमेव परिसर्पति । प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥५७॥
विंशतिर्गा वृषं चैकं दद्यात्तेषां च दक्षिणाम् । क्रिमिभिस्तृणसंभूतैर्मक्षिकादिनिपातितैः ॥५८॥
कृच्छ्रार्द्धं स प्रकुर्वीत शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् । प्रायश्चित्तं च कृत्वा वै भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥५९॥
सुवर्णमानिकं दद्यात्ततः शुद्धिर्विधीयते । चाण्डालश्वपचैः स्पृष्टे निशि स्नानं विधीयते ॥६०॥
न वसेत्तत्र रात्रौ तु सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति । वसेदथ यदा रात्रावज्ञानादविचक्षणः ॥६१॥
तदा तस्य तु तत्पापं शतधा परिवर्तते । उद्गच्छन्ति च नक्षत्राण्युपरिष्टाच्च ये ग्रहाः ॥६२॥

लिए प्रायश्चित्त नहीं कहा गया है । गाय के शरीर से काँटे आदि निकालने में भी प्रायश्चित्त नहीं है ॥४५-४७½॥ बछड़ों के गले में रस्सी बाँधने, ओषधि पिलाने तथा सायंकाल सुरक्षा के लिए उन्हें बाँधने या उन पर क्रोध करने में भी कोई दोष नहीं है । एकपाद प्रायश्चित्त में कुछ रोम कटावे, द्विपाद प्रायश्चित्त में केवल दाढ़ी-मूँछ कटावे, त्रिपाद प्रायश्चित्त में शिखा छोड़कर मुंडन करावे और पूर्ण प्रायश्चित्त में यथोक्त सब विधियों का पालन करे । सभी केशों को पकड़कर दो अंगुल परिमाण में कटा दे । इसी प्रकार नारियों के सिर का मुंडन भी करावे अर्थात् उनके दो अंगुल बालों को कटावे । क्योंकि स्त्रियों के लिए केश-वपन और वीरासन वर्जित हैं । स्त्री गोष्ठ में निवास न करे तथा चलती हुई गाय के पीछे भी न चले ।

राजा, राजपुत्र या बहुज्ञ ब्राह्मण के लिए बिना केशवपन के ही प्रायश्चित्त का विधान है । केश की रक्षा की दृष्टि से इनके लिए दूने व्रत का विधान है । व्रत पालन हो जाने के अनन्तर दूनी दक्षिणा देने की भी विधि है ॥४८-५३॥ जो व्यक्ति श्रुति-स्मृति के विरुद्ध प्रायश्चित्त बतलाते हैं, वे तो स्वयं नरक में गिरते ही हैं उस गोहत्या करने वाले के पाप भी नष्ट नहीं होते । ऐसे धर्म में विघ्न डालने वाले को राजा दण्ड देकर पीड़ित करे । यदि कदाचित् राजा इच्छा वश या किसी पक्षपात वश ऐसा नहीं करता तो वह पाप सौगुना होकर उसी के मत्थे पड़ जाता है । प्रायश्चित्त हो जाने पर ब्राह्मण-भोजन परमावश्यक है और ऐसे कार्य में बीस गायें और एक बैल दक्षिणा में देना आवश्यक है ॥५४-५७½॥ घास के कीड़ों से यदि गाय की मृत्यु हो जाय तो आधा कृच्छ्र व्रत करे और यथाशक्ति दक्षिणा दे । प्रायश्चित्त के उपरान्त उत्तम ब्राह्मणों को भोजन कराकर उनको सुवर्ण की गुरिया देनी चाहिए तभी शुद्धि होती है ॥५८-५९½॥

चाण्डाल और श्वपच के स्पर्श हो जाने से रात्रि में स्नान का विधान है । उस रात्रि को वह यों न रहे प्रत्युत तत्काल स्नान कर ले । ऐसा करने से वह शीघ्र शुद्ध हो जाता है । यदि कोई अज्ञानी व्यक्ति यों ही रह जाय तो वह पाप सौगुना होकर बढ़ता जाता है । जो ग्रह और नक्षत्र आकाश में उगे रहते

वृष्टे रश्मिभिस्तेषामुदकस्नानमाचरेत् । याश्चान्तर्जलवल्मीकमूषिकोषरवर्त्मसु ॥६३॥
श्मशाने शौचशेषे च न ग्राह्याः सप्त मृत्तिकाः । इष्टापूर्तं तु कर्तव्यं ब्राह्मणेन प्रयत्नतः ॥६४॥
इष्टेन लभते स्वर्गं मोक्षं पूर्त्तेन चाप्नुयात् । वित्तक्षेपो भवेदिष्टं तडागं पूर्त्तमुच्यते ॥६५॥
आरामश्च विशेषेण देवद्रोण्यस्तथैव च । वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ॥६६॥
पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्वफलमश्नुते । शुक्लाया आहरेन्मूत्रं कृष्णाया गोः शकृत्तथा ॥६७॥
ताम्रायाश्च पयो ग्राह्यं श्वेतायाश्च दधि स्मृतम् । कपिलाया घृतं ग्राह्यं महापातकनाशनम् ॥६८॥
कुशैस्तीर्थनदीतोयैः सर्वद्रव्यं पृथक् पृथक् । आहृत्य प्रणवेनैव उत्थाप्यं प्रणवेन च ॥६९॥
प्रणवेन समालोड्य प्रणवेनैव संपिबेत् । पालाशे मध्यमे पर्णभाण्डे ताम्रमये शुभे ॥७०॥
पिबेत्पुष्करपर्णे वा मृन्मये वा कुशोदकम् । सूतके तु समुत्पन्ने द्वितीये समुपस्थिते ॥७१॥
द्वितीये नास्ति दोषस्तु प्रथमेनैव शुध्यति । जातेन शुध्यते जातं मृतेन मृतकं तथा ॥७२॥
गर्भसंस्रवणे मासे त्रीण्यहानि विनिर्दिशेत् ॥७३॥
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्ध्यति । रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥७४॥
स्वगोत्राद्भ्रश्यते नारी विवाहात्सप्तमे पदे । स्वामिगोत्रेण कर्त्तव्यास्तस्याः पिण्डोदकक्रियाः ॥७५॥
उद्देश्यं पिण्डदाने स्यात्पिण्डे पिण्डे द्विनामतः । षण्णां देयास्त्रयः पिण्डा एवं दाता न मुह्यति ॥७६॥
स्वेन भर्त्रा सहस्राब्दं माता भुक्ता सुदैवतम् । पितामह्यपि स्वेनैव स्वेनैव प्रपितामही ॥७७॥

हैं उनकी किरणों से अशुद्ध अवस्था में स्पर्श हो जाने पर जल से स्नान करना चाहिए। जल के भीतर की मिट्टी, वल्मीक (दीमकों का घर), चूहे के बिल की मिट्टी, ऊसर भूमि, मार्ग, श्मशान और शौच के लिए ली हुई मिट्ठी इन सात प्रकार को मिट्टियों को उपयोग में नहीं लाना चाहिए। ब्राह्मण को यत्नपूर्वक इष्ट और पूर्त कार्य करना चाहिए। इष्ट से स्वर्ग प्राप्त होता है और पूर्त कर्म से मोक्ष मिलता है। धन से सम्पन्न किये जाने वाले यज्ञ, आतिथ्य आदि इष्ट कर्म और तडाग आदि बनवाना पूर्त्तक हो जाता है ॥६०-६५॥ आराम (वाटिका), देवद्रोणी, वावली, कुएँ, तड़ाग और देव-मन्दिरों का पुनरुद्धार करने से पूर्व-वर्णित फल प्राप्त होते हैं। पञ्चगव्य की विधि बता रहे हैं—शुक्ल गौ का मूत्र, कृष्णा गौ का गोबर, लाल गौ का दूध-धवल गौ का दधि और कपिला गौ का घृत लेना चाहिए। ये महापापों के नाशक हैं। कुश, तीर्थ और नदी के जल से इन सब द्रव्यों को पृथक्-पृथक् 'ओंकार' उच्चारण कर के ले आना चाहिए ॥६६-६९॥ उनको प्रणवोच्चारण से ही एक में मिलाना चाहिए और प्रणव उच्चारण पूर्वक ही उसको पी जाना चाहिए। पलाश के मध्य के पत्ते में, स्वच्छ ताँबे के वर्तन, कमल-पत्र अथवा मिट्टी के पात्र में कुशोदक पीना चाहिए। एक सूतक के आ जाने पर यदि बीच में दूसरा भी सूतक आ जाय तो दूसरे के लिए पृथक् शुद्धि नहीं प्रत्युत पहले से ही दोष-शान्ति हो जाती है। प्रथम जनन शौच से द्वितीय जनन शौच और प्रथम मृत शौच से द्वितीय की भी शुद्धि हो जाती है ॥७०-७२॥ जिस मास में गर्भस्राव हो तो गर्भस्राव के पश्चात् तीन दिन तक दोष रहता है, मास के अनुकूल अर्थात् जितने मास के गर्भ होने के अनन्तर गर्भस्राव हो उतनी रात्रि तक दोष रहता है। तदनन्तर वह शुद्ध हो जाती है। रजस्वला स्त्री रजस्राव के अनन्तर स्नान करने से शुद्ध हो जाती है। विवाह के समय सप्तपदी हो जाने से स्त्री अपने गोत्र से च्युत हो जाती है, अतः पति के गोत्र से ही स्त्री का श्राद्ध करना चाहिए, प्रत्येक पिण्ड में दो नामों का निर्देश करना चाहिए। छह को तीन पिण्ड देना चाहिए, ऐसा करने से भी दाता को कोई दोष नहीं लगता ॥७३-७६॥ माता अपने पति के साथ सहस्र वर्षों तक स्वर्ग सुख भोगती है। इसी प्रकार दादी (पितामही) और प्रपितामही (परदादी) भी अपने अपने पति के साथ स्वर्ग में निवास करती हैं। अतः वर्ष-वर्ष में माता-पिता का श्राद्ध करना चाहिए। श्राद्ध में ज्योतिषी को नहीं

वर्षे वर्षे तु कुर्वीत मातापित्रोस्तु सत्कृतिम् । अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥७८॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धमथापरम् । पार्वणं चेति विज्ञेयं श्राद्धं पञ्चविधं बुधैः ॥७९॥
ग्रहोपरागे संक्रान्तौ पर्वोत्सवमहालये । निर्वपेत्त्रीन्नरः पिण्डानेकमेव मृतेऽहनि ॥८०॥
अनूढा न पृथक्कन्या पिण्डे गोत्रे च सूतके । पाणिग्रहणमन्त्राभ्यां स्वगोत्राद्भ्रश्यते ततः ॥८१॥
येन येन तु वर्णेन या कन्या परिणीयते । तत्समं सूतकं याति तथा पिण्डोदकेऽपि च ॥८२॥
विवाहे चैव संवृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु । एकत्वं सा व्रजेद्भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके ॥८३॥
प्रथमेऽह्नि द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्थके । अस्थिसंचयनं कार्यं बन्धुभिर्हितबुद्धिभिः ॥८४॥
चतुर्थे पञ्चमे चैव सप्तमे नवमे तथा । अस्थिसंचयनं प्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः ॥८५॥
एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः । मुच्यते प्रेतलोकात्स स्वर्गलोके महीयते ॥८६॥
नाभिमात्रे जले स्थित्वा हृदयेन तु चिन्तयेत् । आगच्छन्तु मे पितरो गृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन् ॥८७॥
हस्तौ कृत्वा तु संयुक्तौ पूरयित्वा जलेन च । गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये विनिःक्षिपेत् ॥८८॥
आकाशे च क्षिपेद्वारि वारिस्थो दक्षिणामुखः । पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणादिक् तथैव च ॥८९॥
आपो देवगणाः प्रोक्ता आपः पितृगणास्तथा । तस्मादस्य जलं देयं पितॄणां हितमिच्छता ॥९०॥
दिवासूर्यांशुसंतप्तं रात्रौ नक्षत्रमारुतैः । सन्ध्ययोरप्युभाभ्यां च पवित्रं सर्वदा जलम् ॥९१॥
स्वभावयुक्तमव्यक्तममेध्येन सदा शुचिः । भाण्डस्थं धरणीस्थं वा पवित्रं सर्वदा जलम् ॥९२॥

खिलाना चाहिए और श्राद्ध में उन लोगों के निमित्त एक पिण्ड देना चाहिए। नित्य-नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि और पार्वण ये पांच श्राद्ध पंडितों ने बतलाये हैं ॥७७-७९॥ ग्रहण, संक्रान्ति, पर्वोत्सव, और महालय (पितृ-पक्ष) में मनुष्य मृत्युदिन को तीन पिण्ड तीनों के निमित्त दे। अविवाहित कन्या पिण्डकर्म, गोत्र और सूतक आदि में पृथक् नहीं समझी जाती, जब पाणिग्रहण के मन्त्र पढ़े जाते तभी वह गोत्र से पृथक् होकर पति-गोत्र की हो जाती है। जो कन्या जिस वर्ण के पति से ब्याही जाती है उसी पति के गोत्रानुकूल सूतक और श्राद्ध-क्रिया होती है। विवाह हो जाने पर चौथे दिन के रात्रि से वह पति के गोत्रानुसार सूतक, पिण्ड और गोत्र में एक हो जाती है। मरने के पश्चात् पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे दिन में मृतक को हितदृष्टि से बन्धुओं को मृतक के लिए अस्थिसंचयन कर्म करना चाहिए ॥८०-८४॥

वर्णों के क्रमानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय क्रम से चौथे, पांचवें, सातवें और नवें दिन अस्थि-संचयन करना करना चाहिए। एकादशाह के दिन जिस के निमित्त 'वृषोत्सर्ग'[1] किया जाता वह शीघ्र यमलोक से छूट कर स्वर्गलोक में आदरपूर्वक चला जाता है। नाभि पर्यन्त गहरे जल में जाकर हृदय से प्रेत के स्मरण करने के पश्चात् 'आगच्छन्तु मे पितरो गृहृणन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन्, 'मेरे पितर आओ इस जलांजलि को ग्रहण करो' इस मन्त्र से अञ्जलि बांधकर उसको जल से पूर्णकर गौ के सींग की ऊँचाई से जल में छोड़ दे। जल में रहकर ही दक्षिण की ओर मुंह कर आकाश में जल छोड़ना चाहिए क्योंकि पितरों का स्थान आकाश है और दक्षिण दिशा पितरों की दिशा है ॥८५-८९॥ जल देवगण है और जल को ही पितृगण कहा गया है, अतएव पितरों का हितेच्छु, मनुष्य पितृहित के लिए जल दे। दिन में सूर्य की किरणों से तपने के कारण और रात्रि में नक्षत्र और और वायु के स्पर्श से, संध्याकाल में सूर्य-चन्द्रमा दोनों के स्पर्श से जल सर्वदा पवित्र रहता है। प्राकृतिक अव्यक्त जल

---

१. श्राद्ध में त्रिशूल और चक्र से चिह्नित करके वृषभ छोड़ा जाता है इसी से वृषोत्सर्ग कहते हैं।

देवतानां पितृणां च जलं दद्याज्जलाञ्जलीन् । असंस्कृतप्रमीतानां स्थले दद्याद्विचक्षणः ॥६३॥
श्राद्धे हवनकाले च दद्यादेकेन पाणिना । उभाभ्यां तर्पणे दद्यादेष धर्मो व्यवस्थितः ॥६४॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे धर्मशान्तिनिर्देशो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

धर्मराज उवाच

पापभेदान्प्रवक्ष्यामि यथा स्थूलाश्च यातनाः । शृणुष्व धैर्यमास्थाय रौद्रा ये नरका यतः ॥१॥
पापिनो ये दुरात्मानो नरकाग्निषु सन्ततम् । पच्यन्ते येषु तान्वक्ष्ये भयंकरफलप्रदान् ॥२॥
तपनो वालुकाकुम्भो महारौरवरौरवौ । कुम्भीपाको निरुच्छ्वासः कालसूत्रः प्रमर्दनः ॥३॥
असिपत्रवनं घोरं लालाभक्षो हिमोत्कटः । मूषावस्था वसाकूपस्तथा वैतरणी नदी ॥४॥
भक्ष्यन्ते मूत्रपानं च पुरीषह्रद एव च । तप्तशूलं तप्तशिला शाल्मलीद्रुम एव च ॥५॥
तथा शोणितकूपश्च घोरः शोणितभोजनः । श्वमांसभोजनं चैव वह्निज्वालानिवेशनम् ॥६॥
शिलावृष्टिः शस्त्रवृष्टिर्वह्निवृष्टिस्तथैव च । क्षारोदकं चोष्णतोयं तप्तायः पिण्डभक्षणम् ॥७॥

सर्वदा पवित्र होता है। पात्र में रखा हुआ और पृथ्वीतल का, सरोवर, तडाग आदि का जल सर्वदा पवित्र रहता है। देवता और पितरों को जलांजलि देनी चाहिए। संस्कार तथा प्रमाण से हीन व्यक्तियों के लिए भूमि पर जल छोड़ना चाहिए। श्राद्ध और हवनकाल में एक हाथ से जल देना चाहिए और तर्पण में दोनों हाथ से जल देना चाहिए ॥६०-६४॥

श्रीनारदीयपुराण के धर्मशान्तिनिर्देश नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४॥

अध्याय १५

नरकयातना तथा गंगानयनवर्णन

धर्मराज बोले—हे राजन्! अब पापों के भेद और तदनुकूल घोर नरकों की यातनाओं को बता रहा हूँ, धैर्यपूर्वक सुनो! क्योंकि नरक अत्यन्त भयङ्कर होते हैं। जो दुरात्मा पापी जन हैं वे सदा जिन नरकों की ज्वाला में जलते रहते हैं, उन भयङ्कर फल देने वाले नरकों का वर्णन कर रहा हूँ ॥१-२॥ तपन, बालुकाकुम्भ, महारौरव, रौरव, कुम्भीपाक, निरुच्छ्वास (?) कालसूत्र, प्रमर्दन, घोर असिपत्रवन, लालाभक्ष, हिमोत्कट, मूषावस्था, वसाकूप और वैतरणी नदी ये कुछ नरकों के नाम हैं। पुरीषह्रद (विष्ठा के तालाब) में मूत्रपान और विष्ठा का भक्षण करना पड़ता है। तप्तशूल, तप्तशिला (जलती हुई चट्टानों का नरक) शाल्मलीद्रुम ॥३-५॥ शोणितकूप (रक्त का कुँआ), घोर शोणितभोजन, श्वमांसभोजन (कुत्ते का मांस खाना), वह्निज्वालानिवेशन, शिलावृष्टि, शस्त्रवृष्टि, वह्निवृष्टि, क्षारोदक (खारा जल), उष्णतोय (गरम जल), तप्तायःपिण्डभक्षण[1], शिरःशोषण, मरुत्प्रपतन,

---

१. जलते लोहे का गोला खाना।

अथ शिरःशोषणं च मरुत्प्रपतनं तथा। तथा पाषाणवर्षं च कृमिभोजनमेव च ॥८॥
क्षारोदपानं भ्रमणं तथा क्रकचदारणम्। पुरीषलेपनं चैव पुरीषस्य च भोजनम् ॥९॥
रेतः पानं महाघोरं सर्वसन्धिषु दाहनम्। धूमपानं पाशबन्धं नाना शूलानुलेपनम् ॥१०॥
अङ्गारशयनं चैव तथा मुसलमर्द्दनम्। बहूनि काष्ठयन्त्राणि कर्षणं छेदनं तथा ॥११॥
पतनोत्पतनं चैव गदादण्डादिपीडनम्। गजदन्तप्रहरणं नानासर्पैश्च दंशनम् ॥१२॥
शीताम्बुसेचनं चैव नासायां च मुखे तथा। घोरक्षाराम्बुपानं च तथा लवणभक्षणम् ॥१३॥
स्नायुच्छेदं स्नायुबन्धमस्थिच्छेदं तथैव च। क्षाराम्बुपूर्णरन्ध्राणां प्रवेशं मांसभोजनम् ॥१४॥
पित्तपानं महाघोरं तथैव श्लेष्मभोजनम्। वृक्षाग्रात्पातनं चैव जलान्तर्मज्जनं तथा ॥१५॥
पाषाणधारणं चैव शयनं कण्टकोपरि। पिपीलिकादंशनं च वृश्चिकैश्चापि पीडनम् ॥१६॥
व्याघ्रपीडा शिवापीडा तथा महिषपीडनम्। कर्दमे शयनं चैव दुर्गन्धपरिपूरणम् ॥१७॥
बहुशश्चार्धशयनं महातिक्तनिषेवणम्। अत्युष्णतैलपानं च महाकटुनिषेवणम् ॥१८॥
कषायोदकपानं च तप्तपाषाणतक्षणम्। अत्युष्णशीतस्नानं च तथा दशनशीर्णनम् ॥१९॥
तप्तायः शयनं चैव ह्ययोभारस्य बन्धनम्। एवमाद्या महाभाग यातना कोटिकोटिशः ॥२०॥
अपि वर्षसहस्रेण नाहं निगदितुं क्षमः। एतेषु यस्य यत्प्राप्तं पापिनः क्षितिरक्षक ॥२१॥
तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु। ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥२२॥
महापातकिनस्त्वेते तत्संसर्गी च पञ्चमः। पंक्तिभेदी वृथापाकी नित्यं ब्राह्मणदूषकः ॥२३॥
आदेशी वेदविक्रेता पञ्चैते ब्रह्मघातकाः। ब्राह्मणं यः समाहूय दास्यामीति धनादिकम् ॥
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातिनम् ॥२४॥

पत्थरवर्षा, कृमिभोजन, क्षारोदपान, भ्रमण, क्रकचदारण, पुरीषलेपन, पुरीषभोजन, रेतः (वीर्य) पान, महाघोर सब सन्धियों (जोड़ों) में दाहन, धूमपान, पाशबन्ध, नानाशूलानुलेपन, ॥६-१०॥ अंगारशयन, मुसलमर्दन, बहुत से काठ के बने यन्त्रों में दबाना और काटना, पतनोत्पतन, गदा, दण्ड आदि से पीड़ित करना, गजदन्तप्रहरण, नानासर्पदंशन (अनेक सापों से कटवाना) नाक में और मुंह में शीतल जल छोड़ना, अतिकड़वा जल पिलाना, नमक खिलाना स्नायुओं को काटना, स्नायुबन्ध, अस्थिच्छेदन, खारे जल से भरी नालियों में घुसाना, मांस खिलाना, पित्त पिलाना, महाघोर श्लेष्मभोजन, ऊंचे वृक्ष से गिराना, जल में डुबाना, शिला से दबाना, कांटे पर सुलाना, चींटियों से कटाना, बिच्छू से डंसवाना, बाघ और सियारों से नुचवाना, भैंसे से दबवाना, कीचड़ में सुलाना, दुर्गन्ध से भरे स्थान में बन्द करना ॥११-१७॥ अति तिक्त पदार्थों को खिलाना, देर तक मुर्गा बनाना, खौलता तैल पिलाना, अति कटु पदार्थों को खिलाना, कसैला जल पिलाना, जलते पत्थरों को कटवाना, अत्यन्त खौलते और अत्यन्त शीतल जल से नहलाना, दाँतों को तोड़ देना, जलते लोहे पर सुलाना और जलते लोहे के भार में बांधना ॥१८-१९॥ महाभाग ! ऐसी अनेक करोड़ों यातनायें हैं, जिनको हजारों वर्षों में भी मैं नहीं कह सकता। भूमिरक्षक ! जो पापी जिन नरकों में जाते हैं, उनको कह रहा हूं, सुनो। ब्रह्महत्या करने वाला, शराबी, सुवर्ण चुराने वाला और गुरुपत्नीगामी ये महापापी हैं। पाँचवां महापापी इन चारों प्रकार के महापापियों के निकट रहने वाला भी है। पंक्ति भेद करने वाला (एक पंक्ति में बैठाकर भिन्न-भिन्न प्रकार का भोजन देने वाला), अमेध्य पदार्थ पकाने वाला, सर्वदा ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला, ब्राह्मणों को आज्ञा देने वाला, वेद विक्रेता ये पाँच ब्रह्मघातक हैं। जो पहले ब्राह्मणों को धन देने के लिए बुलावे और पीछे 'मेरे पास नहीं है' ऐसा कहकर लौटा दे, उसको भी ब्रह्मघाती कहा जाता है ॥२०-२४॥ जो स्नान या पूजा के लिए जाते

स्नानार्थं पूजनार्थं वा गच्छतो ब्राह्मणस्य यः । समायात्यंतरायत्वं तमाहुर्ब्रह्मघातिनम् ॥२५॥
परनिन्दासु निरतश्चात्मोत्कर्षरतश्च यः । असत्यनिरतश्चैव ब्रह्महा परिकीर्तितः ॥२६॥
अधर्मस्यानुमन्ता च ब्रह्महा परिकीर्तितः । अन्योद्वेगरतश्चैव अन्येषां दोषसूचकः ॥२७॥
दम्भाचाररतश्चैव ब्रह्महेत्यभिधीयते । नित्य प्रतिग्रहग्रस्तस्तथा प्राणिवधे रतः ॥२८॥
अधर्मस्यानुमन्ता च ब्रह्महा परिकीर्तितः । ब्रह्महत्यासमं पापमेवं बहुविधं नृप: ॥२९॥
सुरापानसमं पापं प्रवक्ष्यामि समासतः । गणान्नभोजनं चैव गणिकानां निषवणम् ॥३०॥
पतितान्नादनं चैव सुरापानसमं स्मृतम् । उपासनापरित्यागो देवलानां च भोजनम् ॥३१॥
सुरापयोषित्संयोगः सुरापानसमः स्मृतः । यः शूद्रेण समाहूतो भोजनं कुरुते द्विजः ॥३२॥
सुरापी स हि विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः । यः शूद्रेणाभ्यनुज्ञातः प्रेष्यकर्म करोति च ॥३३॥
सुरापानसमं पापं लभते स नराधमः । एवं बहुविधं पापं सुरापानसमं स्मृतम् ॥३४॥
हेमस्तेयसमं पापं प्रवक्ष्यामि निशामय । कन्दमूलफलानां च कस्तूरीपटवाससाम् ॥३५॥
सदा स्तेयं च रत्नानां स्वर्णस्तेयसमं स्मृतम् । ताम्रायस्त्रपुकांस्यानामाज्यस्य मधुनस्तथा ॥३६॥
स्तेयं सुगन्धद्रव्याणां स्वर्णस्तेयसमं स्मृतम् । क्रमुकस्यापि हरणमम्भसां चन्दनस्य च ॥३७॥
पर्णरसापहरणं स्वर्णस्तेयसमं स्मृतम् । पितृयज्ञपरित्यागो धर्मकार्यविलोपनम् ॥३८॥
यतीनां निन्दनं चैव स्वर्णस्तेयसमं स्मृतम् । भक्ष्याणां चापहरणं धान्यानां हरणं तथा ॥३९॥
रुद्राक्षहरणं चैव स्वर्णस्तेयसमं स्मृतम् । भगिनीगमनं चैव पुत्रस्त्रीगमनं तथा ॥४०॥
रजस्वलादिगमनं गुरुतल्पसमं स्मृतम् । हीनजात्याभिगमनं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ॥४१॥

हुए ब्राह्मण को विघ्न पहुँचाता है, उसको भी ब्रह्मघाती कहा गया है। जो सदा दूसरे की निन्दा और अपनी व्यर्थ बड़ाई में लगा रहता है और जो अधर्म कार्य का समर्थन या बढ़ावा देता है वह भी ब्रह्मघाती है। सदा दूसरों को उद्विग्न करने वाला, दूसरों के दोष देखने वाला और पाखण्डी भी ब्रह्मघाती कहे गए हैं। नित्य दान लेने वाला, प्राणिहत्या करने वाला और अधर्म का समर्थक भी ब्रह्मघाती कहा गया है। नृप ! ब्रह्म-हत्या के समान और भी बहुत से पाप हैं। अब सुरापान के समान पापों को संक्षेप में कह रहा हूँ। समूह का अन्न खाना, गणिकाओं की सेवा और पापी का अन्न लेना ये भी सुरापान के समान कहे गये हैं ॥२५-३०॥ उपासना का परित्याग, पुजारियों का अन्न खाना और सुरा पीने वाली स्त्री के साथ संयोग करना भी सुरापान के समान पाप हैं। जो शूद्र के 'हे ब्राह्मण ! मेरे यहाँ भोजन करो, इस प्रकार बुलाने पर जाकर भोजन करे वह भी सब धर्मों से बहिष्कृत सुरापी समझा जाता है। जो शूद्रों की आज्ञा से दास्यकर्म करता है, वह अधम ब्राह्मण भी सुरापान के समान पाप का भागी है। इस प्रकार सुरापान के समान बहुत से पाप होते हैं ॥३१-३४॥

अब सुवर्ण-स्तेय के समान पापों को कह रहा हूँ, सुनो। कंद, मूल, फल, कस्तूरी और रेशमी वस्त्र तथा रत्नों को चुराना सुवर्ण स्तेय के समान है। तांबा, लोहा, रांगा, कांसा, घी, मधु और सुगन्धित द्रव्यों को चुराना सुवर्ण-स्तेय के समान है। सुपारी चुराना, चन्दन और जल चुराना, पान और रस आदि चुराना भी सुवर्ण स्तेय के ही समान है। पितृ-यज्ञ का त्याग, धर्म कार्यों को लुप्त करना और संन्यासी की निन्दा भी स्वर्णस्तेय की कोटि के पाप हैं। भोजन का अपहरण, अन्न और रुद्राक्ष माला को चुराना भी सुवर्णस्तेय ही है। बहिन और पुत्र-स्त्री के साथ दुष्कर्म और रजस्वला स्त्री के साथ गमन भी गुरुपत्नीगमन के समान कहा गया है ॥३५-४०॥ निम्नवर्ण की स्त्रियों से सहवास, मद्यपान करने वाली स्त्री और परनारी के साथ संभोग भी

परस्त्रीगमनं चैव गुरुतल्पसमं स्मृतम् । भ्रातृस्त्रीगमनं चैव वयस्यस्त्रीनिषेवणम् ॥४२॥
विश्वस्तागमनं चैव गुरुतल्पसमं स्मृतम् । अकाले कर्मकरणं पुत्रीगमनमेव च ॥४३॥
धर्मलोपः शास्त्रनिन्दा गुरुतल्पसमं स्मृतम् । इत्येवमादयो राजन्महापातकसंज्ञिताः ॥४४॥
एतेष्वेकतमेनापि सङ्गकृत्तत्समो भवेत् । यथाकथंचित्पापानामेतेषां परमर्षिभिः ॥४५॥
शान्तैस्तु निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तादिकल्पनैः । प्रायश्चित्तविहीनानि पापानि शृणु भूपते ॥४६॥
समस्तपापतुल्यानि महानरकदानि च । ब्रह्महत्यादिपापानां कथंचिन्निष्कृतिर्भवेत् ॥४७॥
ब्राह्मणं द्वेष्टि यस्तस्य निष्कृतिर्नास्ति कुत्रचित् । विश्वस्तघातिनां चैव कृतघ्नानां नरेश्वरः ॥४८॥
शूद्रस्त्रीसङ्गिनां चैव निष्कृतिर्नास्ति कुत्रचित् । शूद्रान्नपुष्टदेहानां वेदनिन्दारतात्मनाम् ॥४९॥
सत्कथानिन्दकानां च नेहामुत्र च निष्कृतिः ॥५०॥
बौद्धालयं विशेद्यस्तु महापद्यपि वै द्विजः । न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तशतैरपि ॥५१॥
बौद्धाः पाषण्डिनः प्रोक्ता यतो वेदविनिन्दकाः । तस्माद्द्विजस्तान्नेक्षेत यतो धर्मबहिष्कृताः ॥५२॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि द्विजो बौद्धालयं विशेत् । ज्ञात्वा चेन्निष्कृतिर्नास्ति शास्त्राणामिति निश्चयः ॥५३॥
एतेषां पापबाहुल्यान्नरकं कोटिकल्पकम् । प्रायश्चित्तविहीनानि प्रोक्तान्यन्यानि च प्रभो ॥५४॥
पापानि तेषां नरकान्गदतो मे निशामय ॥५५॥
महापातकिनस्तेषु प्रत्येकं युगवासिनः । तदन्ते पृथिवीमेत्य सप्तजन्मसु गर्दभाः ॥५६॥
ततः श्वानो विद्धदेहा भवेयुर्दशजन्मसु । आशताब्दं विट्कृमयः सर्पा द्वादशजन्मसु ॥५७॥

गुरु-तल्प-गमन के समान है। भाई की स्त्री, मित्र की स्त्री के साथ सहवास और विधवा स्त्री के साथ संगम भी गुरुतल्पगमन ही है। शास्त्रवर्जित समय में कोई कर्म करना, पुत्री-गमन, धर्म का लोप करना और शास्त्रों की निन्दा गुरुतल्पगमन के समान है। राजन्! ऐसे ही पाप महापाप कहे गए हैं। ऐसे महापाप करने वाले पापियों से संसर्ग रखने वाले भी वैसे ही पापी समझे जाते हैं। महर्षियों ने पापों के लिए प्रायश्चित्तादि के द्वारा किसी प्रकार से निवृत्ति पाने का आदेश दिया है। परन्तु भूपते! कुछ ऐसे भी पाप हैं जिनके लिए प्रायश्चित्त का विधान नहीं कहा गया है, उनको सुनो ॥४१-४६॥

महान् नरक में ले जाने वाले सब पाप समान हैं। ब्रह्महत्या आदि पापों से किसी प्रकार मनुष्य को प्रायश्चित्त आदि से छुटकारा मिल जाता है, परन्तु ब्राह्मणों से जो द्वेष करता है उसके लिए कहीं कोई प्रायश्चित्त नहीं। नरेश्वर! विश्वासघाती, कृतघ्न और शूद्र स्त्री के साथ सहवास करने वालों के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है। शूद्रों के अन्न से जीने वाले, वेद-निन्दा में लीन रहने वाले और सत्कथा की निन्दा करने वाले के लिए न तो इस लोक में और न परलोक में ही कोई उद्धार का मार्ग है ॥४७-५०॥ जो ब्राह्मण घोर विपत्ति पड़ने पर भी बौद्ध मठों में निवास करता है उसका सैंकड़ों प्रायश्चित्त करने पर भी क्या उद्धार हो सकता है? बौद्ध पाखण्डी हैं, क्योंकि वे वेद-निन्दक हैं। अतः द्विज उनको देखे तक नहीं वे धर्म से बहिष्कृत व्यक्ति हैं। जो ब्राह्मण जान बूझकर या अनजान में बौद्ध मठ में प्रवेश करता है; उसमें भी यदि जान बूझकर जाता है तब तो उसके लिए कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है, ऐसा शास्त्रों का निर्णय है और यदि अनजान में जाता है तो ऐसे पापी को पाप की अधिकता के कारण कोटि कल्प तक नरक में रहना पड़ता है। प्रभो! ऐसे पाप जिनके लिए प्रायश्चित्त नहीं कहे गए हैं और दूसरे पापों के कारण जो जो नरक मिलते हैं उनको सुनो—उन नरकों में महापापी युगों तक रहते हैं। तदनन्तर पृथ्वी पर आकर सात जन्म तक गधे बनते हैं। पुनः दश जन्म तक रोगी और छिन्न शरीर वाले कुत्ते बनते हैं ॥५१-५६॥ सौ वर्षों तक विष्ठा के कीड़े और तत्पश्चात् बारह जन्म तक सर्प बनते हैं ॥५७॥ नृप! तदनन्तर सहस्र जन्म तक मृग आदि पशु योनियों

ततः सहस्रजन्मानि मृगाद्याः पशवो नृप । शताब्दं स्थावराश्चैव ततो गोधाशरीरिणः ॥५८॥
ततस्तु सप्तजन्मानि चाण्डालाः पापकारिणः । ततः षोडश जन्मानि शूद्राद्या हीनजातयः ॥५९॥
ततस्तु जन्मद्वितये दरिद्रा व्याधिपीडिताः । प्रतिग्रहपरा नित्यं ततो निरयगाः पुनः ॥६०॥
असूयाविष्टमनसो रौरवे नरके स्मृतम् । तत्र कल्पद्वयं स्थित्वा चाण्डालाः शतजन्मसु ॥६१॥
मा ददस्वेति यो ब्रूयाद्गवाग्निब्राह्मणेषु च । शुनां योनिशतं गत्वा चाण्डालेषूपजायते ॥६२॥
ततो विष्ठाकृमिश्चैव ततो व्याघ्रस्त्रिजन्मसु । तदंते नरकं याति युगानामेकविंशतिम् ॥६३॥
परनिन्दापरा ये च ये च निष्ठुरभाषिणः । दानानां विघ्नकर्त्तारस्तेषां पापफलं शृणु ॥६४॥
मुशलोलूखलाभ्यां तु चूर्ण्यन्ते तस्करा भृशम् । तदन्ते तप्तपाषाणग्रहणं वत्सरत्रयम् ॥६५॥
ततश्च कालसूत्रेण भिद्यन्ते सप्त वत्सरान् । शोचन्तः स्वानि कर्माणि परद्रव्यापहारकाः ॥६६॥
कर्मणा तत्र पच्यन्ते नरकाग्निषु सन्ततम् ॥६७॥
परस्वसूचकानां च नरकं शृणु दारुणम् । यावद्युगसहस्रं तु तप्तायःपिण्डभक्षणम् ॥६८॥
संपीड्यते च रसना संदंशैर्भृशदारुणैः । निरुच्छ्वासं महाघोरे कल्पार्द्धं निवसन्ति ते ॥६९॥
परस्त्रीलोलुपानां च नरकं कथयामि ते । तप्तताम्रस्त्रियस्तेन सुरूपाभरणैर्युताः ॥७०॥
यादृशीस्तादृशीस्ताश्च रमन्ते प्रसभं बहु । विद्रवन्तं भयेनासां गृह्णन्ति प्रसभं च तम् ॥७१॥
कथयन्तश्च तत्कर्म नयन्ते नरकान्क्रमात् । अन्यं भजन्ते भूपाल पतिं त्यक्त्वा च याः स्त्रियः ॥७२॥
तप्तायः पुरुषास्तास्तु तप्तायः शयने बलात् । पातयित्वा रमन्ते च बहुकालं बलान्विताः ॥७३॥
ततस्तैर्मोचितो मुक्ता हुताशनसमोज्ज्वलम् । अयःस्तम्भं समाश्लिष्य तिष्ठन्त्यब्दसहस्रकम् ॥७४॥

में रहते हैं। सौ वर्षों तक स्थावर (वृक्ष) और पुनः गोह (गोधा) योनि में जाते हैं। सात जन्म तक पाप कर्म करने वाले चाण्डाल और तदनन्तर सोलह जन्म तक शूद्र आदि हीन जाति में जन्म लेते हैं। तत्पश्चात् दूसरे जन्म में व्याधिपीड़ित दरिद्र मनुष्य होते हैं, जो सर्वदा दूसरों के दान पर ही जीवित रहते हैं और अन्त में पुनः नरकगामी होते हैं। सर्वदा ईर्ष्या करने वाले जीव रौरव नरक के भागी होते हैं। वहाँ वे दो कल्प तक रहकर पुनः सौ जन्म चाण्डाल बनते हैं ॥५७-६१॥ जो 'गो ब्राह्मण को कुछ मत दो'—ऐसा कहते हैं वे सौ जन्म तक कुत्ते की योनि में रहकर पुनः चाण्डाल-योनि में उत्पन्न होते हैं। तदनन्तर वे विष्ठा के कीड़े होते और पुनः तीन जन्म तक तक बाघ बनते हैं। इस योनि से छूटकर इक्कीस युगों तक नरक में निवास करते हैं। ॥५८-६३॥ जो दूसरों की निन्दा करते रहते, जो निष्ठुरभाषी होते और जो दान में विघ्न पहुँचाते हैं, उनके पाप-फल को सुनो। चोर मूसल और ओखली में डालकर अत्यन्त चूर-चूर बनाये जाते हैं, तदनन्तर तपे पत्थर में तीन वर्ष तक चिपकाये जाते हैं और उस यातना के अनन्तर कालसूत्र से सात वर्ष तक काटे जाते हैं। दूसरों का शोषण करने वाले और दूसरों का धन चुराने वाले अपने पापों के फलस्वरूप नरक-कुण्ड में सर्वदा घोर पीड़ा पाते रहते हैं ॥६४-६७॥ दूसरों के धन का चोरों को पता बताने वाले पापियों के फल को सुनो—हजार युगों तक उनको जलता हुआ लोहे का गोला खाना पड़ता है और उनकी जिह्वा को अत्यन्त दारुण चिमटे से दबाया जाता है और वे महाघोर नरक-कुण्ड में तीव्र श्वास खींचते हुए आधे कल्प तक रहते हैं ॥६८-६९॥ परस्त्रीलोलुपों को जो नरक मिलते हैं उनको कह रहा हूँ, सुनो—उनको ताँबे की बनी स्त्री-प्रतिमा के साथ जो अत्यन्त रूपवती, सब आभूषणों सुसज्जित और पूर्वजन्म की-सी आकृति की होती है हठात् रमण करना पड़ता है। उनके भय से जब वे भागने लगते तब उनको बलात् पकड़ लिया जाता है और उनके पापों का उल्लेख कर क्रमशः नरकों में डाला जाता है। भूपाल! जो स्त्रियाँ अपने पति को छोड़कर अन्यपुरुष से प्रेम करती हैं उनको तप्त लौह की बनी पुरुषमूर्तियाँ जलती शय्या पर बलात् गिराकर बहुत समय तक सहवास करती हैं ॥७०-७३॥ तदन्तर उनसे मुक्त होकर अग्नि के समान उज्ज्वल लौह-स्तम्भ का आलिङ्गन कर एक हजार

ततः क्षारोदकस्नानं क्षारोदकनिषेवणम् । तदन्ते नरकान् सर्वान् भुञ्जतेऽब्दशतं शतम् ॥७५॥
यो हन्ति ब्राह्मणं गां च क्षत्रियं च नृपोत्तमम् । स चापि यातनाः सर्वा भुङ्क्ते कल्पेषु पञ्चसु ॥७६॥
यः शृणोति महन्निन्दां सादरं तत्फलं शृणु । तेषां कर्णेषु दाप्यन्ते तप्तायःकीलसंचयाः ॥७७॥
ततश्च तेषु छिद्रेषु तैलमत्युष्णमुल्बणम् । पूर्यते च ततश्चापि कुम्भीपाकं प्रपद्यते ॥७८॥
नास्तिकानां प्रवक्ष्यामि विमुखानां हरे हरौ । अब्दानां कोटिपर्यन्तं लवणं भुञ्जते हि ते ॥७९॥
ततश्च कल्पपर्यन्तं रौरवे तप्तसैकते । भज्यंते पापकर्माणोऽन्येष्वप्येवं नराधिप ॥८०॥
ब्राह्मणान्ये निरीक्षन्ते कोपदृष्टया नराधमाः । तप्तसूचीसहस्रेण चक्षुस्तेषां प्रसूर्यते ॥८१॥
ततः क्षाराम्बुधाराभिः सेच्यन्ते नृपसत्तम । ततश्च क्रकचैर्घोरैर्भिद्यन्ते पापकर्म्मणः ॥८२॥
विश्वासघातिनां चैव मर्यादाभेदिनां तथा । परान्नलोलुपानां च नरकं शृणु दारुणम् ॥८३॥
स्वमांसभोजिनो नित्यं भक्ष्यमाणाः श्वभिस्तु ते। नरकेषु समस्तेषु प्रत्येकं ह्यब्दवासिनः ॥८४॥
प्रतिग्रहरता ये च ये वै नक्षत्रपाठकाः । ये च देवलकान्नानां भोजिनस्ताञ्शृणुष्व मे ॥८५॥
राजन्नाकल्पपर्यन्तं यातनास्वासु दुःखिताः । पच्यन्ते सततं पापाविष्टा भोगरताः सदा ॥८६॥
ततस्तैलेन पूर्यन्ते कालसूत्रप्रपीडिताः । ततः क्षारोदकस्नानं मूत्रविष्ठानिषेवणम् ॥८७॥
तदन्ते भुवमासाद्य भवन्ति म्लेच्छजातयः । अन्योद्वेगरता ये तु यान्ति वैतरणीं नदीम् ॥८८॥
त्यक्तपञ्चमहायज्ञा लालाभक्षं व्रजन्ति हि । उपासनापरित्यागो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥८९॥

वर्ष तक रहती हैं । इस घोरयातना को भोगने के पश्चात् उनके खारे जल से स्नान करना पड़ता और वही पीना पड़ता है ॥७०-७५॥

जो किसी ब्राह्मण, गौ और उत्तम क्षत्रिय राजा को मारता है वह भी पाँच कल्प तक सब प्रकार की यातनाओं को भोगता है । जो दूसरे की निन्दा बड़े चाव से सुनता है उसका फल सुनो—उनके कानों में जलते लोहे की कीलें डाल दी जाती हैं और उनके छिद्रों को खौलते हुए तेल से भर दिया जाता है और पुनः उनको कुंभीपाक में छोड़ा जाता है । जो नास्तिक विष्णु अथवा शंकर से विमुख रहते उनके पापों का वर्णन कह रहा हूँ सुनो—वे करोड़ वर्षों तक नमक खाते रहते हैं और पुनः कल्पान्त तक तप्त बालुका से भरे रौरवनरक में रहते हैं ॥७६-७९॥ नराधिप ! उसी प्रकार अन्य पापों के करने वाले भी विभिन्न नरकों का भोग करते हैं । जो नराधम ब्राह्मणों को कोप दृष्टि से देखते हैं उनकी आँखों में जलती हजारों सुइयाँ चुभोई जाती हैं । नृपसत्तम ! पुनः उनकी आँखों में खारे जल की धार गिराई जाती है और पापों के अनुसार वे आरे से फाड़े जाते हैं । अब विश्वासघाती, लोकमर्यादा भङ्ग करने वाले और परान्नलोलुप पापियों के दारुण नरकों का वर्णन सुनो ॥८०-८३॥ वे सर्वदा अपना ही मांस नोच-नोच कर खाते रहते हैं और कुत्ते भी उनको नोच कर खाते हैं । पुनः प्रत्येक नरक में करोड़ों वर्षों तक उन्हें रहना पड़ता है । जो सर्वदा दूसरों से दान ही लिया करते हैं और जो ज्योतिषी तथा पुजारियों का अन्न खाया करते हैं उनके पापों को मुझसे सुनो । राजन् ! कल्पान्त तक वह उपर्युक्त यातनामय नरकों में दुःख भोग करते और सर्वदा अपने पापों के फल-भोग में निरत रहते हैं । तदनन्तर कालसूत्र से पीड़ित होकर जलते तेल से भरे कुण्ड में छोड़े जाते और पुनः खारे जल से स्नान करने के बाद मूत्र और विष्ठा को खाते हैं । भोग के अनन्तर इस पृथ्वी पर आकर म्लेच्छ जाति में जन्म लेता है । जो दूसरों को उद्विग्न करने में लगे रहते हैं वे वैतरणी नदी में गिराये जाते हैं ॥८४-८८॥ जो पञ्चमहायज्ञ[1] नहीं करते वे

---

१. स्वाध्याय, अग्नि होत्र, अतिथि पूजन, पितृ तर्पण और बलिकर्म ।

विप्रग्रामकरादानं कुर्वतां शृणु भूपते । यातनास्वासु पच्यन्ते यावदाचन्द्रतारकम् ॥९०॥
ग्रामेषु भूपालवरो यः कुर्यादधिकं करम् । स सहस्रकुलो भुङ्क्ते नरकं कल्पपञ्चसु ॥९१॥
विप्रग्रामकरादाने योऽनुमन्ता तु पापकृत् । स एव कृतवान् राजन्ब्रह्महत्यासहस्रकम् ॥९२॥
कालसूत्रे महाघोरे स वसेद्द्विचतुर्युगम् । अयोनौ च वियोनौ च पशुयोनौ च यो नरः ॥९३॥
त्यजेद्रेतो महापापी स रेतोभोजनं लभेत् । वसाकूपं ततः प्राप्य स्थित्वा दिव्याब्दसप्तकम् ॥९४॥
रेतोभोजी भवेन्मर्त्यः सर्वलोकेषु निन्दितः । उपवासदिने राजन्दन्तधावनकृन्नरः ॥९५॥
स घोरं नरकं याति व्याघ्रपक्षं चतुर्युगम् । यः स्वकर्मपरित्यागी पाषण्डीत्युच्यते बुधैः ॥९६॥
तत्संगकृतमोघः स्यात्तावुभावतिपापिनौ । कल्पकोटिसहस्रेषु प्राप्नुतो नरकान्क्रमात् ॥९७॥
देवद्रव्यापहर्त्तारो गुरुद्रव्यापहारकाः । ब्रह्महत्याव्रतसमं दुष्कृतं भुञ्जते नृप ॥९८॥
अनाथधनहर्त्तारो ह्यनाथं ये द्विषन्ति च । कल्पकोटिसहस्राणि नरके ते वसन्ति च ॥९९॥
स्त्रीशूद्राणां समीपे तु ये वेदाध्ययने रताः । तेषां पापफलं वक्ष्ये शृणुष्व सुसमाहितः ॥१००॥
अधः शीर्षोर्ध्वपादाश्च कीलिताः स्तम्भकद्वये । धूम्रपानरता नित्यं तिष्ठन्त्याब्रह्मवत्सरम् ॥१०१॥
जले देवालये वापि यस्त्यजेद्देहजं मलम् । भ्रूणहत्यासमं पापं संप्राप्नोत्यतिदारुणम् ॥१०२॥
दन्तास्थिकेशनखरान्ये त्यजन्त्यमरालये । जले वा भुक्तशेषं च तेषां पापफलं शृणु ॥१०३॥
प्रासप्रोता हलैर्भिन्ना आर्त्तरावविराविणः । अत्युष्णतैलपाकेऽतितप्यन्ते भृशदारुणे ॥१०४॥
कुर्वन्ति दुःखसंतप्तास्ततोऽन्येषु व्रजन्ति च । ब्रह्म संहरते यस्तु गन्धकाष्ठं तथैव च ॥१०५॥

लालाभक्ष में जाते हैं। देव उपासना न करने वाला रौरव नरक में जाता है भूपते ! जो ब्राह्मणों के गाँव से कर लेता है उनके पाप-फल को सुनो वे इन नरकों में कल्पान्त तक रहते हैं। भूपाल ! जो ब्राह्मण-ग्रामों पर अधिक कर बढ़ा देते हैं वे अपने सहस्र कुलों के सहित पाँच कल्प तक नरक भोग करते हैं। राजन् ! जो ब्राह्मणों की बस्ती से कर लेने में अपनी अनुमति देता है उसने मानो हजारों ब्रह्महत्यायें कर दीं और वह महाघोर कालसूत्र में दो चतुर्युगों तक रहता है। जो मनुष्य अयोनि, वियोनि और पशुयोनि में वीर्य त्याग करता है। वह महापापी उसी वीर्य को पीता है। तदन्तर वसाकूप नरक में जाकर देवताओं के वर्ष के प्रमाण से सात वर्ष तक रहता है। फिर वीर्यभोजी मनुष्य होकर सब लोकों में निन्दित होता है। जो व्रत के दिन दातून करता है वह चारयुग तक व्याघ्र पक्ष नामक घोर नरक में पड़ता है। जो अपने शास्त्रविहित कर्मों को नहीं करता, उसको पंडित जन पाखण्डी कहते हैं ॥८९-९६॥ जो उस पापी की संगति करता है, वह भी अति पापी कहा जाता है। वे दोनों हजार करोड़ कल्प तक क्रम-क्रम से नरकों में गिराये जाते हैं। नृप ! देव-द्रव्य और गुरुद्रव्य के चुराने वाले ब्रह्महत्या के समान पापों का भोग करते हैं। जो अनाथों का द्रव्य हरते और अनाथों से द्वेष करते हैं, वे हजार कोटि कल्प तक नरक में रहते हैं ॥९७-९९॥ जो स्त्री और शूद्रों के समीप वेद अध्ययन करते हैं उनके पापों को बतला रहा हूँ ध्यानपूर्वक सुनो ॥१००॥ उनका शिर नीचे और पैर ऊपर कर दो खम्भों में कील से जड़ दिये जाते हैं और इसी स्थिति में उनको ब्रह्मा के एक वर्ष तक धुँआ पीकर रहना पड़ता है। जो जल या देवालय में अपने शरीर के मल को फेंकता है वह भ्रूण हत्या के समान अति दारुण पापों का भोग करता है। जो देवालय में दाँत, हड्डी, केश, नख, अथवा अन्य अपवित्र पदार्थों को छोड़ते अथवा जल में अपना जूठा फेंकते हैं, उनके पाप-फल को सुनो ॥१०१-१०३॥ वे भाले से मारे जाते, हल से फाड़े जाते और आर्तनाद करने वाले उन लोगों को पुनः अति घोर तप्त तैलपाक में झोंक दिया जाता है। इस प्रकार दुःखों से कष्ट पाकर पुनः अन्य घृणित योनियों में भेजे जाते हैं। जो वेदों को चुराता या नष्ट करना और

स याति नरकं घोरं यावदाचन्द्रतारकम् । ब्रह्मस्वहरणं राजन्निहामुत्र च दुःखदम् ॥१०६॥
इह संपद्विनाशाय परत्र नरकाय च । कूटसाक्ष्यं वदेद्यस्तु तस्य पापफलं शृणु ॥१०७॥
स याति यातनाः सर्वा यावदिन्द्राश्चतुर्दश । इह पुत्राश्च पौत्राश्च विनश्यन्ति परत्र च ॥१०८॥
रौरवं नरकं भुङ्क्ते ततोऽन्यानपि च क्रमात् । ये चातिकामिनो मर्त्या ये च मिथ्याप्रवादिनः ॥१०९॥
तेषां मुखे जलौकास्तु पूर्यन्ते पन्नगोपमाः । एवं षष्टिसहस्राब्दे ततः क्षाराम्बुसेचनम् ॥११०॥
ये वृथामांसनिरतास्ते यान्ति क्षारकर्दमम् । ततो गजैर्निपात्यन्ते मरुत्प्रपतनं यथा ॥१११॥
तदन्ते भवमासाद्य हीनाङ्गाः प्रभवन्ति च । यस्त्वृतौ नाभिगच्छेत स्वस्त्रियं मनुजेश्वर ॥११२॥
स याति रौरवं घोरं ब्रह्महत्यां च विन्दति । अन्याचाररतं दृष्ट्वा यः शक्तो न निवारयेत् ॥११३॥
तत्पापं समवाप्नोति नरकं तावुभावपि । पापिनां पापगणनां कृत्वान्येभ्यो दिशन्ति च ॥११४॥
अस्तित्वे तुल्यपापास्ते मिथ्यात्वे द्विगुणा नृप । अपापे पातकं यस्तु समारोप्य विनिन्दति ॥११५॥
स याति नरकं घोरं यावच्चंद्रार्कतारकम् । पापिनां निन्द्यमानानां पापार्द्धं क्षयमेति च ॥११६॥
यस्तु व्रतानि संगृह्य असमाप्य परित्यजेत् । सोऽसिपत्रेऽनुभूयाति हीनाङ्गो जायते भुवि ॥११७॥
अन्यैः संगृह्यमाणानां व्रतानां विघ्नकृन्नरः । अतीव दुःखदं रौद्रं स याति श्लेष्मभोजनम् ॥११८॥
न्याये च धर्मशिक्षायां पक्षपातं करोति यः । न तस्य निष्कृतिर्भूयः प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥११९॥

चन्दन आदि को चुराता है वह कल्पान्त तक घोर नरक में रखा जाता है। ब्राह्मणों की सम्पत्ति छीनना लोक परलोक दोनों में दुःखदायी होता है। उससे अपनी सम्पत्ति का नाश तो होता ही है अन्त में नरक का भी भोग करना पड़ता है। जो झूठी गवाही देता है उसके पापफल को सुनो ॥१०४-१०७॥ वह जब तक चौदहों इन्द्रों का भोग काल रहता है तब तक सब नरकों का भोग करता है। उसके सब पुत्र और पौत्र तो नष्ट हो ही जाते हैं; इसके अतिरिक्त उसको परलोक में रौरव नरक और अन्यान्य नरकों का क्रमशः भोग करना पड़ता है। जो अत्यन्त कामी, मिथ्या बोलने वाले होते हैं उनके मुख सांप के समान जोंकों से भर दिये जाते हैं। इसके पश्चात् साठ हजार वर्ष तक खारे जल से नहलाया जाता है ॥१०८-११०॥ जो सदा व्यर्थ में (यज्ञ के अतिरिक्त) मांस खाते रहते वे क्षारकर्द्दम नरक में गिराये जाते हैं। तदनन्तर हाथियों पर से गिराये जाते और पुनः आंधियों में उनको लुढ़काया जाता है। इतने भोग के अनन्तर वे संसार में आकर लंगड़े-लूले और काने होते हैं। मुनेश्वर! जो ऋतुकाल में अपनी स्त्री के समीप नहीं जाते वे रौरव नरक को जाते हैं और ब्रह्महत्या के समान पाप भोग करते हैं। जो समर्थ होते हुये भी किसी को दुराचार से नहीं रोकता वह भी उसी के समान पापभागी होता और वे दोनों नरक भोग करते हैं ॥१११-११४॥ नृप! जो पापियों के पापों की गणना करके दूसरों से कहता है, यदि वे पाप सत्य हैं तब तो तुल्यपाप का भागी होता है यदि असत्य हैं तब तो दूने पापों का भोग करना पड़ता है। जो सच्चरित्र व्यक्ति पर पापों का आरोप कर उसकी निन्दा करता है, वह कल्पपर्यन्त घोर नरक में निवास करता है और पापियों की निन्दा करने से पापियों के आधे पाप धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं ॥११५-११६॥ जो व्रत को प्रारम्भ कर बिना समाप्त किये छोड़ देते हैं वे असिपत्र वन नामक नरक को भोगने के पश्चात् मृत्युलोक में हीनाङ्ग होकर जन्म लेते हैं। जो दूसरों के व्रत पालन में विघ्न उपस्थित करता है वह अतीव दुःखदायी घोर श्लेष्मभोजन नामक नरक में गिराया जाता है। जो न्याय अथवा धर्म शिक्षा में पक्षपात करता है उसके पापों का नाश दस सहस्र प्रायश्चित्त करने पर भी नहीं होता है। अभोज्य भोजन करने वाला और गोमांस खाने वाला विशेषरूप से हजार वर्ष तक

अभोज्यभोजी संप्राप्य विड्भोज्यं तु समायुतम् । ततश्चाण्डालयोनौ तु गोमांसाशी सदा भवेत् ॥१२०॥
अवमान्य द्विजान्वाग्भिर्ब्रह्महत्यां च विन्दति । सर्वाश्चयातना भुक्त्वा चाण्डालो दशजन्मसु ॥१२१॥
विप्राय दीयमाने तु यस्तु विघ्नं समाचरेत् । ब्रह्महत्यासमं तेन कर्त्तव्यं व्रतमेव च ॥१२२॥
अपहृत्य परस्यार्थं यः परेभ्यः प्रयच्छति । अपहर्त्ता तु निरयी यस्यार्थस्तस्य तत्फलम् ॥१२३॥
प्रतिश्रुत्याप्रदानेन लालाभक्षं व्रजेन्नरः । यतिनिन्दापरो राजन् शिलामात्रे प्रयाति हि ॥१२४॥
आरामच्छेदिनो यान्ति युगानामेकविंशतिम् । श्वभोजनं ततः सर्वा भुञ्जते यातनाः क्रमात् ॥१२५॥
देवतागृहभेत्तारस्तडागानां च भूपते । पुष्पाराममभिदश्चैव यां गतिं यान्ति तच्छृणु ॥१२६॥
यातनास्वासु सर्वासु पच्यन्ते वै पृथक् पृथक् । ततश्च विष्ठाकृमयः कल्पानामेकविंशतिम् ॥१२७॥
यतश्चाण्डालयोनौ तु शतजन्मानि भूपते । ग्रामविध्वंसकानां तु दाहकानां च लुम्पताम् ॥१२८॥
महत्पापं तदादेष्टुं न क्षमोऽहं निजायुषा । उच्छिष्टभोजिनो ये च मित्रद्रोहपराश्च ये ॥१२९॥
एतेषां यातनास्तीव्रा भवन्त्याचन्द्रतारकम् । उच्छिन्नपितृदेवेज्या वेदमार्गबहिःस्थिताः ॥१३०॥
पाषण्डा इति विख्यातास्तातेषां वै सर्वयातनाः । एवं बहुविधा भूप यातनाः पापकारिणाम् ॥१३१॥
तेषां तासां च संख्यानं कर्त्तुं नालमहं प्रभो । पापानां यातनानां च धर्माणां चापि भूपते ॥१३२॥
संख्यां निगदितुं लोके कः क्षमो विष्णुना विना । एतेषां सर्वपापानां धर्मशास्त्रविधानतः ॥१३३॥
प्रायश्चित्तेषु चीर्णेषु पापराशिः प्रणश्यति । प्रायश्चित्तानि कार्याणि समीपे कमलापतेः ॥१३४॥

विड्भोज्य नरक में रहने के बाद चांडाल योनि में जन्म लेता है ॥११७-१२०॥ ब्राह्मणों को वाणी द्वारा अपमानित कर ब्रह्म हत्या के बराबर दोषभागी होना पड़ता है वह सब नरकों को भोगकर दश जन्म तक चाण्डाल बनता है। जो ब्राह्मणों को दान देने के समय बाधा पहुँचाता है उसको ब्रह्महत्या के समान प्रायश्चित्त करना पड़ता है। जो दूसरे का धन छीन कर दूसरे को दे देता है, तो वह अपहरण करने वाला नरक भोगता है परन्तु जिसको धन मिलता है वह अवश्य पापफल भोगता है। दान की प्रतिज्ञा कर जो दान नहीं देता वह मनुष्य लालाभक्ष नरक में जाता है। राजन्! संन्यासियों की निन्दा करने वाला शिलामात्र नामक नरक में जाता है। उपवन या वाटिका के विनाशक इक्कीस युगों तक श्वभोजन नरक में जाते हैं और क्रमशः सब नरकों का भोग करते हैं ॥१२१-१२५॥

भूपते! देव मन्दिरों और तालाबों को हानि पहुँचाने वाले साथ ही, पुष्प वाटिका को क्षति पहुँचाने वाले जिस गति को प्राप्त करते, उसको सुनो! वे उपर्युक्त नरकों में पृथक्-पृथक् कष्ट पाते हैं। पुनः इक्कीस कल्पों तक विष्ठा के कृमि होकर रहते हैं। भूपते! इतने पर भी अन्त में सौ जन्मों तक उनको चाण्डाल योनि में रहना पड़ता है ॥१२६-१२७॥ ग्राम-विध्वंसक, ग्राम जलाने वाले और गाँवों को लूटने वाले मनुष्यों के पापों की गणना मैं अपने जीवन काल तक नहीं कर सकता हूँ। जो जूठा खाने वाले, मित्रद्रोही हैं उनको तीव्र यातनायें कल्पपर्यन्त भोगनी पड़ती हैं। पितृकर्म और देवयज्ञों को न करने वाले और वेदमार्ग पर न चलने वाले पाखण्डी कहे गये हैं। उनको सब प्रकार की यातनायें दी जाती हैं। प्रभो! उन पापियों, पापों और उन नरकों की गणना करने में मैं समर्थ नहीं हूँ ॥१२८-१३१॥ भूपते! पाप, नरक और धर्म की गणना इस विश्व में विष्णु को छोड़कर और कोई करने में समर्थ नहीं है। ऐसे सभी पापों का धर्मशास्त्रों के अनुसार प्रायश्चित्त करने से पापराशि अवश्य क्षीण हो जाती है। प्रायश्चित्तों को कमलापति विष्णु के समीप करना चाहिए, क्योंकि इससे न्यूनाधिक दोषों की पूर्ति हो जाती है। गंगा, तुलसी, सत्संग और हरिकीर्तन, इसी

न्यूनातिरिक्तकृत्यानां संपूर्तिकरणाय च । गङ्गा च तुलसी चैव सत्सङ्गो हरिकीर्त्तनम् ॥१३५॥
अनसूया ह्यहिंसा च सर्वेष्येते हि पापहा । विष्ण्वर्पितानि कर्माणि सफलानि भवन्ति हि ॥१३६॥
अनर्प्पितानि कर्माणि भस्मविन्यस्तहव्यवत् । नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्चान्यन्मोक्षसाधनम् ॥१३७॥
विष्णौ समर्पितं सर्वं सात्त्विकं सफलं भवेत् । हरिभक्तिः परा नृणां सर्वपापप्रणाशिनी ॥१३८॥
सा भक्तिर्दशधा ज्ञेया पापारण्यदवोपमा । तामसी राजसैश्चैव सात्त्विकैश्च नृपोत्तम ॥१३९॥
यच्चान्यस्य विनाशार्थं भजनं श्रीपतेर्नृप । सा तामस्यधमा भक्तिः खलभावधरा यतः ॥१४०॥
योऽर्चयेत्कैतवधिया स्वैरिणी स्वपतिं यथा । नारायणं जगन्नाथं तामसी मध्यमा तु सा ॥१४१॥
देवपूजापरान्दृष्ट्वा मात्सर्याद्योऽर्चयेद्धरिम् । सा भक्तिः पृथिवीपाल तामसी चोत्तमा स्मृता ॥१४२॥
धनधान्यादिकं यस्तु प्रार्थयन्नर्चयेद्धरिम् । श्रद्धया परया युक्तः सा राजस्यधमा स्मृता ॥१४३॥
यः सर्वलोकविख्यातकीर्तिमुद्दिश्य माधवम् । अर्चयेत्परया भक्त्या सा मध्या राजसी मता ॥१४४॥
सालोक्यादि पदं यस्तु समुद्दिश्यार्चयेद्धरिम् । सा राजस्युत्तमा भक्तिः कीर्तिता पृथिवीपते ॥१४५॥
यस्तु स्वकृतपापानां क्षयार्थं प्रार्चयेद्धरिम् । श्रद्धया परयोपेतः सा सात्त्विक्यधमा स्मृता ॥१४६॥
हरेरिदं प्रियमिति शुश्रूषां कुरुते तु यः । श्रद्धया संयुतो भूयः सात्त्विकी मध्यमा तु सा ॥१४७॥
विधिबुद्ध्यार्चयेद्यस्तु दासवच्छ्रीपतिं नृप । भक्तीनां प्रवरा सा तु उत्तमा सात्त्विकी स्मृता ॥१४८॥
महिमानं हरेर्यस्तु किञ्चित्कृत्वा प्रियो नरः । तन्मयत्वेन संतुष्टः सा भक्तिरुत्तमोत्तमा ॥१४९॥
अहमेव परो विष्णुर्मयि सर्वमिदं जगत् । इति यः सततं पश्येत्तं विद्यादुत्तमोत्तमम् ॥१५०॥

प्रकार अनसूया (उदारता) और अहिंसा ये भी पाप-विनाशक हैं। विष्णु को अर्पित किये हुए सभी शुभ कर्म सफल होते हैं। विष्णु को न अर्पित किये हुए कर्म उसी प्रकार निष्फल होते जैसे भस्म में दी हुई आहुति। नित्य, नैमित्तिक, काम्य अथवा और जितने मोक्षदायक कर्म हैं वे विष्णु को अर्पित करने से सात्त्विक फल प्रदान करते हैं। परा हरिभक्ति मनुष्यों के सभी पापों को नष्ट कर देती है ॥१३२-१३८॥ नृपोत्तम! यह पाप रूपी वन को दावानल के समान भस्म करने वाली भक्ति तामस, राजस और सात्त्विक भेदों से इस प्रकार की होती है। नृप! दूसरे के विनाश के लिए जो विष्णु का भजन किया जाता है वह तामसी अधमा भक्ति है, क्योंकि यह दुष्टजनों की भक्ति के समान है। जिस प्रकार कुलटा स्त्री अपने पति के प्रति कपट प्रेम दिखलाती है, उसी प्रकार जो व्यक्ति कपट भाव से नारायण जगन्नाथ की पूजा करता है, उसकी भक्ति मध्यमा तामसी है ॥१३९-१४१॥ जो दूसरे को देवपूजा में देखकर ईर्ष्यावश स्वयं ईश्वर की पूजा करता है वह उत्तमा तामसी भक्ति कही जाती है। जो धन सम्पत्ति आदि की इच्छा से परम श्रद्धापूर्वक भगवान् की पूजा करता है, वह अधमा-राजसी भक्ति है। जो सारे संसार में विख्यात-यश प्राप्त करने के लिए परमश्रद्धा से माधव की पूजा करता है वह भक्ति मध्यम राजसी कही जाती है। पृथ्वीपते! जो सालोक्य आदि पद को पाने के लिए हरि की उपासना करता है, वह उत्तम राजसी भक्ति मानी गई है। जो अति श्रद्धा से अपने पापों के क्षय के लिए हरि की अर्चा करता है, वह अधम सात्त्विक भक्ति कही गई है।।१४२-१४६॥ जो हरि को यह मेरा कार्य प्रिय है इस बुद्धि से श्रद्धायुत होकर हरि की शुश्रूषा करता है वह मध्यम सात्त्विक भक्ति बताई गई है। नृप! जो विधि (शास्त्राज्ञा या कर्त्तव्य) बुद्धि से दास की भाँति श्रीपति विष्णु की पूजा करता है वह भक्तियों में श्रेष्ठ उत्तम सात्त्विक भक्ति है। जो मनुष्य हरि की महिमा का स्मरणकर तन्मय होकर प्रसन्नतापूर्वक भगवान् की पूजा करता है उस भक्ति को उत्तमोत्तम भक्ति कहते हैं। मैं ही परम विष्णु हूँ मुझमें यह सारा जगत् व्याप्त है, इस प्रकार की भावना जिसके हृदय में रहती है उसको उत्तमोत्तम भक्त कहा जाता है। इस प्रकार की दशविध भक्ति संसार की माया

एवं दशविधा भक्तिः संसारच्छेदकारिणी । तत्रापि सात्त्विकी भक्तिः सर्वकामफलप्रदा ॥१५१॥
तस्माच्छृणुष्व भूपाल संसारविजिगीषुणा । स्वकर्मणो विरोधेन भक्तिः कार्या जनार्दने ॥१५२॥
यः स्वधर्मं परित्यज्य भक्तिमात्रेण जीवति । न तस्य तुष्यते विष्णुराचारेणैव तुष्यते ॥१५३॥
सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते । आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥१५४॥
तस्मात्कार्या हरेर्भक्तिः स्वधर्मस्याविरोधिनी । सदाचारविहीनानां धर्मा अप्यसुखप्रदाः ॥१५५॥
स्वधर्महीना भक्तिश्चाप्यकृतेव प्रकीर्तिता । यत्तु पृष्टं त्वया भूयस्तत्सर्वं गदितं मया ॥१५६॥
तस्माद्धर्मपरो भूत्वा पूजयस्व जनार्दनम् । नारायणमणीयांसं सुखमेष्यसि शाश्वतम् ॥१५७॥
शिव एव हरिः साक्षाद्धरिरेव शिवः स्वयम् । द्वयोरन्तरदृग्याति नरकान्कोटिशः खलः ॥१५८॥
तस्माद्विष्णुं शिवं वापि समं बुद्ध्वा समर्चय । भेदकृद्दुःखमाप्नोति इह लोके परत्र च ॥१५९॥
यदर्थमहमायातस्त्वत्समीपं जनाधिप । तत्ते वक्ष्यामि सुमते सावधानं निशामय ॥१६०॥
आत्मघातकपाप्मानो दग्धा कपिलकोपतः । वसन्ति नरके ते तु राजंस्तव पितामहाः ॥१६१॥
तानुद्धर महाभाग गङ्गानयनकर्मणा । गङ्गा सर्वाणि पापानि नाशयत्येव भूपते ॥१६२॥
केशास्थिनखदन्ताश्च भस्मापि नृपसत्तम । नयति विष्णुसदनं स्पृष्टा गाङ्गेन वारिणा ॥१६३॥
यस्यास्थि भस्म वा राजन् गङ्गायां क्षिप्यते नरैः । स सर्वपापनिर्मुक्तः प्रयाति भवनं हरेः ॥१६४॥
यानि कानि च पापानि प्रोक्तानि तव भूपते । तानि सर्वाणि नश्यन्ति गङ्गाबिन्द्वभिषेचनात् ॥१६५॥

का नाश करने वाली है, इनमें सात्त्विक भक्ति सब प्रकार की कामनाओं को देने वाली है ॥१४७-१५१॥ भूपाल ! इसलिए सुनो—सांसारिक अभाव या बन्धनों पर विजय पाने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति अपने आश्रम धर्म का निर्वाह करता हुआ भगवान् जनार्दन में अपनी निष्ठा रखे। जो अपने धर्म का त्याग कर केवल भक्ति मात्र से जीवित रहता या जीविका चलाता है उसके ऊपर भगवान् प्रसन्न नहीं होते वे तो केवल आचार पालन से ही प्रसन्न रहते हैं। आचार ही सब प्रकार के धर्मों की प्राप्ति का प्रथम कारण है। आचार द्वारा ही धर्म की रक्षा होती है और धर्म के प्रभु भगवान् हैं। अतएव हरि की भक्ति अपने अपने आचार धर्म के पालन के साथ ही (अविरोधभाव से) करनी चाहिए। सदाचारहीन व्यक्ति के लिए धर्म भी कष्टप्रद ही होता है ॥१५२-१५५॥ अपने धर्म से हीन भक्ति केवल प्राकृत भक्ति कही गई है। तुमने मुझसे जो कुछ पूछा, उसको मैंने सम्पूर्ण रूपसे कह दिया। इसलिए तुम धर्म पूर्वक अणुस्वरूप भगवान् जनार्दन की पूजा करो तभी तुम शाश्वत सुख प्राप्त करोगे। चाहे हरि को पूजा करो या शिव को दोनों में कोई भेद नहीं, क्योंकि शिव ही साक्षात् हरि और हरि ही साक्षात् शंकर हैं, इन दोनों में भेद बुद्धि रखने वाला दुष्टमानव करोड़ों नरकों में जाता है ॥१५६-१५८॥ इसलिए समभाव से विष्णु या शिव की पूजा करो। भेद भाव रखने वाला दुष्टभक्त न तो इस लोक में ही सुख पाता है न पर लोक में। जनाधिप ! जिसलिए मैं यहाँ तुम्हारे निकट आया हूँ, उसको कह रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। राजन् ! तुम्हारे आत्मघाती पापी पितामह कपिल के क्रोधानल से भस्म होकर अब तक नरक में पड़े हुए हैं। महाभाग ! गंगा को यहाँ लाकर उनका उद्धार करो। भूपते ! गंगा मनुष्य के पापों को नष्ट कर ही देती हैं ॥१५९-१६२॥ नृपश्रेष्ठ ! मृत व्यक्तियों के केश, हड्डियाँ, नख, दाँत यहाँ तक कि केवल श्मशान भस्म भी यदि गंगा जल से छू जाय तो मृत व्यक्ति अवश्य विष्णुलोक को चला जाता है। राजन् ! मानव यदि किसी मृत व्यक्ति की हड्डी अथवा शव भस्म को ही गंगा में फेंक दे तो वह मृत व्यक्ति सब पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को चला जाता है। भूपते ! जो कुछ पाप तुम्हारे सामने कहे गये हैं वे सभी पाप गंगाजल के अभिषेक मात्र से नष्ट हो जाते हैं ॥१६३-१६५॥

सनक उवाच

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूल महाराजं भगीरथम् । धर्मात्मानं धर्मराजः सद्यश्चान्तर्दधे तदा ॥१६६॥
स तु राजा महाप्राज्ञः सर्वशास्त्रार्थपारगः । निक्षिप्य पृथिवीं सर्वां सचिवेषु ययौ वनम् ॥१६७॥
तुहिनाद्रौ ततो गत्वा नरनारायणाश्रमात् । पश्चिमे तुहिनाक्रान्ते शृङ्गेषोडशयोजने ॥१६८॥
तपस्तप्त्वानयामास गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम् ॥१६९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे धर्माख्याने धर्मराजोपदेशेन भगीरथस्य गङ्गानयनोद्यमवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

नारद उवाच

हिमवगिरिमासाद्य किं चकार महीपतिः । कथमानीतवान्गङ्गामेतन्मे वक्तुमर्हसि ॥१॥

सनक उवाच

भगीरथो महाराजो जटाचीरधरो मुने । गच्छन्हिमाद्रिं तपसे प्राप्तो गोदावरीतटम् ॥२॥
तत्रापश्यन्महारण्ये भृगोराश्रममुत्तमम् । कृष्णसारसमाकीर्णं मातङ्गगणसेवितम् ॥३॥

सनक बोले—मुनिशार्दूल ! इस प्रकार धर्मात्मा महाराज भगीरथ से कहकर धर्मराज तत्काल अन्तर्हित हो गए। वह परम बुद्धिमान्, सब शास्त्रों का पारगामी विद्वान् राजा मन्त्रियों को पृथ्वी का शासनभार सौंपकर वन को चला गया। इसके पश्चात् हिमालय पर्वत पर नर-नारायणाश्रम के पश्चिम दिशा के सोलह योजन विस्तीर्ण हिमाच्छन्न शिखर पर घोर तपस्या कर इस पृथ्वीपर त्रिभुवन पावनी गंगा को ले आया ॥१६६-१६९॥

श्रीनारदीयपुराण में धर्मराजोपदेश और भगीरथ द्वारा गङ्गाआनयन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१५॥

अध्याय १६

गङ्गा का आनयन और अपने कुल का उद्धार

नारदजी बोले—महीपति ने हिमालय पर्वत पर जाकर क्या किया और किस प्रकार गंगा को पृथ्वी पर लाया, इस आख्यान को मुझसे कहिए ॥१॥

सनक बोले—मुने ! जटा, वल्कल धारणकर महाराज भगीरथ तपस्या करने के लिए हिमालय में गोदावरी के तट पर गए। वहाँ उन्होंने उस महावन में भृगु के उत्तम आश्रम को देखा, जहाँ कृष्णसार मृग इधर-उधर क्रीड़ा कर रहे थे, मतवाले हाथी निःशङ्क होकर झूम रहे थे, चञ्चल भौंरों की गुंजार और कलकूजन

भ्रमद्भ्रमरसंघुष्टं कूजद्विहगसंकुलम् । व्रजद्वराहनिकरं चमरीपुच्छवीजितम् ॥४॥
नृत्यन्मयूरनिकरं सारङ्गादिनिषेवितम् । प्रवर्द्धितमहावृक्षं मुनिकन्याभिरादरात् ॥५॥
शालतालतमालाढ्यं नूनहिन्तालमण्डितम् । मालतीयूथिकाकुन्दचम्पकाश्वत्थभूषितम् ॥६॥
उत्फुल्लकुसुमोपेतमृषिसङ्घनिषेवितम् । वेदशास्त्रमहाघोषमाश्रमं प्राविशद्भृगोः ॥७॥
गृणन्तं परमं ब्रह्मावृतं शिष्यगणैर्मुनिम् । तेजसा सूर्यसदृशं भृगुं तत्र ददर्श सः ॥८॥
प्रणनामाथ विप्रेन्द्रं पादसंग्रहणादिना । आतिथ्यं भृगुरप्यस्य चक्रे सम्मानपूर्वकम् ॥९॥
कृतातिथ्यक्रियो राजा भृगुणा परमर्षिणा । उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा विनयान्मुनिपुङ्गवम् ॥१०॥

भगीरथ उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद । पृच्छामि भवभीतोऽहं नृणामुद्धारकारणम् ॥११॥
भगवांस्तुष्यते येन कर्मणा मुनिसत्तम । तन्ममाख्याहि सर्वज्ञ अनुग्राह्योऽस्मि ते यदि ॥१२॥

भृगुरुवाच

राजंस्तवेप्सितं ज्ञातं त्वं हि पुण्यवतां वरः । अन्यथा स्वकुलं सर्वं कथमुद्धर्त्तुमर्हसि ॥१३॥
यो वा को वापि भूपाल स्वकुलं शुभकर्मणा । उद्धर्त्तुकामस्तं विद्यान्नररूपधरं हरिम् ॥१४॥
कर्मणा येन देवेशो नृणामिष्टफलप्रदः । तत्प्रवक्ष्यामि राजेन्द्र शृणुष्व सुसमाहितः ॥१५॥
भव सत्यपरो राजन्न हिंसानिरतस्था । सर्वभूतहितो नित्यं मानृतं वद वै क्वचित् ॥१६॥

करने वाले पक्षियों को मधुर ध्वनि से वह आश्रम मुखरित था। कहीं एक ओर वराहयूथ इधर-उधर घूम रहे हैं तो कहीं चँवरी गायें अपनी मनोहर पूँछों को हिला रही हैं ॥२-४॥ नाँचते हुए मयूरों और सारंगपक्षियों से वह वन सुशोभित है। जहाँ मुनि-कन्यायों ने बड़े आदर से सींच-सींचकर वट आदि वृक्षों को बड़ा बनाया है। शाल, ताल और तमाल वृक्षों से वह आश्रम व्याप्त है। हिंताल से युक्त वह मालती, जूही, कुंद, चंपा और पीपल के वृक्षों से सुशोभित है ॥५-६॥ ऐसे पुष्पित कुसुमों, तेजस्वी ऋषियों से व्याप्त उस भृगु के आश्रम में भगीरथ ने प्रवेश किया जहाँ चारों आर वेद और शास्त्रों की ही ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। उस आश्रम में राजा अपने तेज से सूर्य के समान भृगु मुनि को देखा जिनके चारों ओर परम ब्रह्म की चर्चा में लीन शिष्य-गण उपस्थित थे। मुनि को देखकर राजा ने चरणों पर गिर कर उस विप्रेन्द्र को प्रणाम किया, भृगु ने भी सम्मानपूर्वक राजा का आतिथ्य सत्कार किया। परम ऋषि भृगु का आतिथ्य स्वीकार करने के अनन्तर राजा हाथ जोड़कर विनीत-भाव से मुनिपुंगव भृगु से बोला ॥७-१०॥

भगीरथ बोले—भगवन्! सर्वधर्मज्ञ! सर्वशास्त्रविशारद! सांसारिक दुःखों से भयभीत मैं मनुष्यों के उद्धार का मार्ग पूछ रहा हूँ। यदि आप का मेरे ऊपर अनुग्रह है तो हे मुनिश्रेष्ठ! सर्वज्ञ! आप जिन कर्मों से भगवान् सन्तुष्ट होते हैं उनको कृपा कर मुझको बतलाइये मैं आपका कृपापात्र हूँ ॥११-१२॥

भृगु बोले—राजन्! मैंने तुम्हारा अभिप्राय समझ लिया। तुम पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ हो, अन्यथा अपने कुल का उद्धार करने के लिये कैसे प्रस्तुत होते? भूपाल! जो कोई मनुष्य अपने शुभ कर्मों से अपने कुल का उद्धार करना चाहता है उसको नररूपधारी हरि समझना चाहिए। राजेन्द्र! जिन कर्मों से प्रसन्न होकर देवेश मनुष्यों को इष्ट फल प्रदान करते हैं, उनको बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। राजन्! सत्यवादी बनो, सर्वदा अहिंसा का पालन करो, सारे प्राणियों के उपकार में ही लीन रहो और कभी भी कहीं पर असत्य वचन मत

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् । कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर विष्णुं सनातनम् ॥१७॥
कुरु पूजां महाविष्णोर्याहि शान्तिमनुत्तमाम् । द्वादशाष्टाक्षरं मन्त्रं जप श्रेयो भविष्यति ॥१८॥

भगीरथ उवाच

सत्यं तु कीदृशं प्रोक्तं सर्वभूतहितं मुने । अनृतं कीदृशं प्रोक्तं दुर्जनाश्चापि कीदृशाः ॥१९॥
साधवः कीदृशाः प्रोक्तास्तथा पुण्यं च कीदृशम् । स्मर्तव्यश्च कथं विष्णुस्तस्य पूजा च कीदृशी ॥२०॥
शान्तिश्च कीदृशी प्रोक्ता को मंत्रोऽष्टाक्षरो मुने । को वा द्वादशवर्णश्च मुने तत्त्वार्थकोविद ॥२१॥
कृपां कृत्वा मयि परां सर्वं व्याख्यातुमर्हसि ।

भृगुरुवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ तव बुद्धिरनुत्तमा । ॥२२॥
यत्पृष्टोऽहं त्वया भूप तत्सर्वं प्रवदामि ते । यथार्थकथनं यत्तत्सत्त्वमाहुर्विपश्चितः ॥२३॥
धर्माविरोधतो वाच्यं तद्धि धर्मपरायणैः । देशकालादि विज्ञाय स्वधर्मस्याविरोधतः ॥२४॥
यद्वचः प्रोच्यते सद्भिस्तत्सत्यमभिधीयते । सर्वेषामेव जंतूनामक्लेशजननं हि तत् ॥२५॥
अहिंसा सा नृप प्रोक्ता सर्वकामप्रदायिनी । कर्मकार्यसहायत्वमकार्यपरिपन्थिता ॥२६॥
सर्वलोकहितत्वं वै प्रोच्यते धर्मकोविदैः । इच्छानुवृत्तकथनं धर्माधर्मविवेकिनः ॥२७॥
अनृतं तद्धि विज्ञेयं सर्वश्रेयोविरोधि तत् । ये लोके द्वेषिणो मूर्खाः कुमार्गरतबुद्धयः ॥२८॥
ते राजन्दुर्जना ज्ञेयाः सर्वधर्मबहिष्कृताः । धर्माधर्मविवेकेन वेदमार्गानुसारिणः ॥२९॥

बोलो । दुर्जन का संग छोड़ दो, साधुओं की संगति करो, रात दिन पुण्य कार्य करो सनातन विष्णु का स्मरण निरन्तर करो । महाविष्णु को पूजा करो शान्ति प्राप्त करोगे । द्वादशाक्षर (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) और अष्टाक्षर मंत्र (ओं नमो वासुदेवाय) का जप करो तुम्हें श्रेय प्राप्त होगा ॥१३-१८॥

भगीरथ बोले—मुने ! सत्य का स्वरूप कैसा कहा गया है ? सर्व-प्राणि-हित क्या है ? अनृत किसे कहते हैं ? दुर्जनों की परिभाषा क्या है ? साधु किसे कहते हैं ? पुण्य कैसा होता है ? विष्णु का स्मरण किस प्रकार करना चाहिए ? उनको पूजा को विधि क्या है ? शान्ति किसे कहते हैं ? अष्टाक्षर मन्त्र कौन सा है ? द्वादशवर्ण मन्त्र कौन है ? मुने ! तत्त्वार्थ के ज्ञाता ! मुझ पर अत्यधिक कृपा कर इन विषयों की व्याख्या कीजिए ॥१९-२१॥

भृगुजी बोले—महाप्राज्ञ ! धन्य हो, धन्य हो, तुम्हारी बुद्धि असाधारण है । तुमने जो कुछ मुझसे पूछा है उसको कह रहा हूँ । जो यथार्थ कथन है उसी को विद्वानों ने सत्य कहा है अर्थात् यथार्थ कथन को ही सत्य कहा जाता है । उस सत्य को धर्मपरायण व्यक्ति धर्म के अविरोध रूप से कहें । सज्जन व्यक्ति देश काल का ध्यान रखकर समन्वयात्मक दृष्टि से जो कुछ कहते हैं वही सत्य कहा जाता है । नृप ! सब प्राणियों को जिस कार्य से कष्ट न हो उसी को सब अभीष्ट वस्तुओं को देने वाली अहिंसा कहा गया है ॥२२-२५॥ धर्मतत्त्व के मर्मज्ञ जन लोक-व्यवहार में जिससे सहायता मिले और लोक-विरोध जिससे शान्त हो उसी को सर्वलोकहित कहते हैं । धर्म अधर्म का पूर्ण ज्ञान रखने वाले मनीषी जिसको अपने विवेक से अनुचित ठहराते हैं, उसको सब श्रेयों को नष्ट करने वाला अनृत समझना चाहिए । राजन् ! इस संसार में जो द्वेष करने वाले, मूर्ख, कुमार्ग में ही सर्वदा लीन रहने वाले हैं, उन सब धर्मों से पराङ्मुख रहने वालों को ही दुर्जन समझना चाहिए ॥२६-२८॥ धर्माधर्म के विवेक से वेदमार्ग का अनुसरण करने वाले और लोक-हितों में लगे रहने वाले व्यक्ति ही साधु माने जाते हैं । हरिभक्ति

सर्वलोकहितासक्ताः साधवः परिकीर्तिताः । हरिभक्तिकरं यत्तत्सद्भिश्च परिरञ्जितम् ॥३०॥
आत्मनः प्रीतिजनकं तत्पुण्यं परिकीर्तितम् । सर्वं जगदिदं विष्णुर्विष्णुः सर्वस्य कारणम् ॥३१॥
अहं च विष्णुर्यज्ज्ञानं तद्विष्णुस्मरणं विदुः । सर्वदेवमयो विष्णुर्विधिना पूजयामि तम् ॥३२॥
इति या भवति श्रद्धा सा तद्भक्तिः प्रकीर्तिता । सर्वभूतमयो विष्णुः परिपूर्णः सनातनः ॥३३॥
इत्यभेदेन या बुद्धिः समता सा प्रकीर्तिता । समता शत्रुमित्रेषु वशित्वं च तथा नृप ॥३४॥
यदृच्छालाभसंतुष्टिः सा शान्तिः परिकीर्तिता । एते सर्वे समाख्यातास्तपःसिद्धिप्रदा नृणाम् ॥३५॥
समस्तपापराशीनां तरसा नाशहेतवः । अष्टाक्षरं महामन्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥३६॥
वक्ष्यामि तव राजेन्द्र पुरुषार्थैकसाधनम् । विष्णोः प्रियकरं चैव सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥३७॥
नमो नारायणायेति जपेत्प्रणवपूर्वकम् । नमो भगवते प्रोच्य वासुदेवाय तत्परम् ॥३८॥
प्रणवाद्यं महाराज द्वादशार्णमुदाहृतम् । द्वयोः समं फलं राजन्नष्टद्वादशवर्णयोः ॥३९॥
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च साम्यमुद्दिष्टमेतयोः । शङ्खचक्रधरं शान्तं नारायणमनामयम् ॥४०॥
लक्ष्मीसंश्रितवामाङ्कं तथाभयकरं प्रभुम् । किरीटकुण्डलधरं नानामण्डनशोभितम् ॥४१॥
भ्राजत्कौस्तुभमालाढ्यं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् । पीताम्बरधरं देवं सुरासुरनमस्कृतम् ॥४२॥
ध्यायेदनादिनिधनं सर्वकामफलप्रदम् । अन्तर्यामी ज्ञानरूपी परिपूर्णः सनातनः ॥४३॥
एतत्सर्वं समाख्यातं यत्तु पृष्टं त्वया नृप । स्वस्ति तेऽस्तु तपःसिद्धिं गच्छ लब्धुं यथासुखम् ॥४४॥
एवमुक्तो महीपालो भृगुणा परमर्षिणा । परमां प्रीतिमापन्नः प्रपेदे तपसे वनम् ॥४५॥

की ओर मन को प्रेरित करने वाले, सज्जनों को आनन्दित करने वाले और अपने को आनन्द देने वाले जो शुभ कर्म हैं, वे पुण्य कहे गए हैं। सारा विश्व विष्णु है विष्णु ही सब के कारण हैं। मैं स्वयं विष्णु हूँ, ऐसे ज्ञान को ही विष्णु स्मरण कहा जाता है। 'विष्णु सर्वदेवमय हैं। उनकी विधिपूर्वक पूजा करूँगा' इस प्रकार की जो श्रद्धा होती है उसी को भक्ति कहा जाता है ॥२९-३२॥ 'विष्णु सब पदार्थों में व्याप्त हैं, परिपूर्ण और सनातन हैं, ऐसी जो विश्व और विष्णु में अभेद बुद्धि है, उसी को समता कहते हैं। नृप ! शत्रु और मित्र में समान भाव रखना, आत्मसंयम और जो कुछ मिल जाय उसी पर प्रसन्न रहना ही शान्ति कही जाती है। ये सभी धर्म मनुष्यों के लिए तपस्या के समान सिद्धिप्रद बतलाये गए हैं ॥३३-३५॥ हठात् सम्पूर्ण पापराशि को नष्ट करने वाला अष्टाक्षर नामक महामन्त्र है। राजेन्द्र ! पुरुषार्थ के एक मात्र साधन, सब सिद्धियाँ देने वाले और भगवान् के परम प्रिय मन्त्र को कह रहा हूँ। प्रणव पूर्वक 'नमो नारायणाय' मन्त्र को जपना चाहिए। प्रणव (ओं) आदि में लगाकर 'नमो भगवते' कहने के पश्चात् वासुदेवाय का उच्चारणकरे। महाराज ! इसी को द्वादशाक्षर मन्त्र कहा जाता है। राजन् ! इन द्वादशाक्षर और अष्टाक्षर मन्त्रों का समान फल कहा गया है ॥३६-३९॥ ये प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों मार्गों के लिये समान रूप से साधक हैं। शंख-चक्र-धारी, शान्त, निर्विकार, नारायण, लक्ष्मी से सुशोभित वाम भाग वाले, अभय प्रद, प्रभु, किरीट-कुण्डल-धारी, अनेक प्रकार से सुसज्जित, कौस्तुभधारी और अनेक मालाओं से विभूषित, श्रीवत्स से सुशोभित वक्षःस्थल वाले, पीताम्बरधारी, सुर और असुरों से पूजित, अनादि, अनन्त और सब मनोरथों को देने वाले भगवान् विष्णु का ध्यान करे। भगवान् अन्तर्यामी, ज्ञानस्वरूप, परिपूर्ण और सनातन हैं। ॥४०-४३॥ नृप ! तुमने जो कुछ पूछा उसके विषय में ये सारी बातें बता दी गयीं। तुम्हारा कल्याण हो। अब सुख पूर्वक तपः सिद्धि प्राप्त करने के लिये जाओ। परम ऋषि भृगु की ऐसी आज्ञा और आशीर्वाद सुनकर राजा अति प्रसन्न हो गया और तपस्या के लिये वन में गया। हिमालयपर्वत के एक

हिमवद्गिरिमासाद्य पुण्यदेशे मनोहरे। नादेश्वरे महाक्षेत्रे तपस्तेपेऽतिदुश्चरम् ॥४६॥
राजा त्रिषवणस्नायी कन्दमूलफलाशनः। कृतातिथ्यर्हणश्चापि नित्यं होमपरायणः ॥४७॥
सर्वभूतहितः शान्तो नारायणपरायणः। पत्रैः पुष्पैः फलैस्तोयैस्त्रिकालं हरिपूजकः ॥४८॥
एवं बहुतिथं कालं नीत्वा चात्यन्तधैर्यवान्। ध्यायन्नारायणं देवं शीर्णपर्णाशनोऽभवत् ॥४९॥
प्राणायामपरो भूत्वा राजा परमधार्मिकः। निरुच्छ्वासं तपस्तप्तुं ततः समुपचक्रमे ॥५०॥
ध्यायन्नारायणं देवमनन्तमपराजितम्। षष्टिवर्षसहस्राणि निरुच्छ्वासपरोऽभवत् ॥५१॥
तस्य नासापुटाद्राज्ञो वह्निर्जज्ञे भयंकरः। तं दृष्ट्वा देवताः सर्वे वित्रस्ता वह्नितापिताः ॥५२॥
अभिजग्मुर्महाविष्णुं यत्रास्ते जगतां पतिः। क्षीरोदस्योत्तरं तीरं संप्राप्य त्रिदशेश्वराः।
अस्तुवन्देवदेवेशं शरणागतपालकम् ॥५३॥

देवा ऊचुः

नताः स्म विष्णुं जगदेकनाथं स्मरत्समस्तार्तिहरं परेशम्।
स्वभावशुद्धं परिपूर्णभावं वदन्ति यज्ज्ञानतनुं च तज्ज्ञाः ॥५४॥
ध्येयः सदा योगिवरैर्महात्मा स्वेच्छाशरीरैः कृतदेवकार्यः।
जगत्स्वरूपो जगदादिनाथस्तस्मै नताः स्मः पुरुषोत्तमाय ॥५५॥
यन्नामसंकीर्तनतो खलानां समस्तपापानि लयं प्रयान्ति।
तमीशमीड्यं पुरुषं पुराणं नताः स्म विष्णुं पुरुषार्थसिद्ध्यै ॥५६॥

मनोहर पुण्य भूमि नादेश्वर नामक क्षेत्र में अति दुष्कर तप करने लगा ॥४४-४६॥ राजा त्रिकाल स्नान करता और कन्द मूल फल खाकर समय बिताता था। नित्य प्रति अतिथिसेवा और हवन करता था। प्राणियों का हितैषी, शान्त और नारायण का सेवक वह पत्र, पुष्प और फल से तीनों काल हरि की पूजा किया करता था। इस प्रकार परम धीर उस राजा ने बहुत समय व्यतीत किया। तदनन्तर नारायण देव का ध्यान करता हुआ पेड़ से गिरी हुई पत्तियों को चुन चुन कर खाने लगा। पुनः इससे भी सन्तोष न पाकर वह परम धार्मिक राजा प्राणायाम साधना करता हुआ श्वास रोक कर तपस्या करने लगा। ॥४७-५०॥ इस प्रकार साठ हजार वर्षों तक अनन्त, अपराजित नारायण देव का श्वास निरोध पूर्वक ध्यान करता रहा। अन्त में उस राजा के नथने से भयङ्कर ज्वाला उत्पन्न हुई। उसको देखकर सभी देवता भयत्रस्त हो गये, वे अग्निज्वाला से सन्तप्त होकर वहाँ गये जहाँ जगन्नाथ महाविष्णु थे। देवता क्षीरसागर के उत्तर तीर पर जाकर शरणागतरक्षक देवदेवेश की स्तुति करने लगे ॥५१-५३॥

देवगण बोले-- संसार के एकमात्र प्रभु, स्मरण मात्र से समस्त पीड़ाओं को दूर करने वाले, स्वभावशुद्ध और परम पूर्ण स्वरूप विष्णु को नमस्कार करते हैं। जिसको ब्रह्मज्ञानी ज्ञान रूप कहते हैं। अपनी इच्छा से शरीर धारण कर (अवतार लेकर) जो देवों का कार्य किया करते, जिस महात्मा का सर्वदा ध्यान करते, जो जगत्स्वरूप और संसार के आदि नाथ हैं उस पुरुषोत्तम को नमस्कार है। जिसके नाम-कीर्तन से समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं उस पूज्य परमेश पुराण पुरुष को अपनी कामना सिद्धि के लिए प्रणाम करते हैं। ॥५४-५६॥ जिसके प्रकाश से सूर्य, चन्द्र आदि सर्वदा प्रकाश पूर्ण रहते और जिसके आदेश का कभी भी उल्लंघन नहीं करते उस पुरुषार्थस्वरूप, देवेश कलात्मक विष्णु को हम नमस्कार करते हैं। जिसके अनुग्रह से कमलयोनि ब्रह्मा लोक-

यत्तेजसा भान्ति दिवाकराद्या नातिक्रमन्त्यस्य कदापि शिक्षाः ।
कालात्मकं तं त्रिदशाधिनाथं नमामहे वै पुरुषार्थरूपम् ॥५७॥
जगत्करोऽत्यब्जभवोऽत्ति रुद्रः पुनाति लोकाञ्श्रुतिभिश्च विप्राः ।
तमादिदेवं गुणसन्निधानं सर्वोपदेष्टारमिताः शरण्यम् ॥५८॥
वरं वरेण्यं मधुकैटभारिं सुरासुराभ्यर्चितपादपीठम् ।
सद्भक्तसंकल्पितसिद्धिहेतुं ज्ञानैकवेद्यं प्रणताः स्म देवम् ॥५९॥
अनादिमध्यान्तमजं परेशमनाद्यविद्याख्यतमोविनाशम् ।
सच्चित्परानन्दघनस्वरूपं रूपादिहीनं प्रणताः स्म देवम् ॥६०॥
नारायणं विष्णुमनन्तमीशं पीताम्बरं पद्मभवादिसेव्यम् ।
यज्ञप्रियं यज्ञकरं विशुद्धं नताः स्म सर्वोत्तमसव्ययं तम् ॥६१॥
इति स्तुतो महाविष्णुर्देवैरिन्द्रादिभिस्तदा । चरितं तस्य राजर्षेर्देवानां संन्यवेदयत् ॥६२॥
ततो देवान्समाश्वास्य दत्त्वाभयमनञ्जनः । जगाम यत्र राजर्षिस्तपस्तपति नारद ॥६३॥
शङ्खचक्रधरो देवः सच्चिदानन्दविग्रहः । प्रत्यक्षतामगात्तस्य राज्ञः सर्वजगद्गुरुः ॥६४॥
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं भाभासितदिगन्तरम् । अतसीपुष्पसंकाशं स्फुरत्कुण्डलमण्डितम् ॥६५॥
स्निग्धकुन्तलवक्त्राब्जं विभ्राजन्मुकुटोज्ज्वलम् । श्रीवत्सकौस्तुभधरं वनमालाविभूषितम् ॥६६॥
दीर्घबाहुमुदाराङ्गं लोकेशार्चितपत्कजम् । ननाम दण्डवद्भूमौ भूपतिर्नम्रकंधरः ॥६७॥
अत्यन्तहर्षसंपूर्णः सरोमाञ्चः सगद्गदः । कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति श्रीकृष्णेति समुच्चरन् ॥६८॥
तस्य विष्णुः प्रसन्नात्मा ह्यन्तर्यामी जगद्गुरुः । उवाच कृपयाविष्टो भगवान्भूतभावनः ॥६९॥

सृष्टि करते, अतिरुद्र समस्त संसार को पवित्र करते, विप्रगण वेदमन्त्रों द्वारा जिसका स्तवन करते उस गुणनिधान सबको उपदेश देने वाले, आदि देव और शरणागतपालक को शरण में हम सभी देवता आये हुए हैं। ॥५७-५८॥ वर, वरेण्य, मधुकैटभ के शत्रु, सद्भक्तों के मनोरथों को सिद्ध करने वाले ज्ञान से ही एक मात्र गम्य देव को नमस्कार है, जिसके चरणों को देव और असुर सभी पूजा करते हैं। अनादि, अमध्य, अनन्त, अज, परेश और अनादि अविद्या रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले, रूप रहित (निर्गुण) और सच्चिदानन्द घन स्वरूप देव को नमस्कार है। ॥५९-६०॥ अनन्त, ईश, पीताम्बरधारी, ब्रह्मा, शिव आदि देव के पूज्य, यज्ञप्रिय, यज्ञकर, सर्वोत्तम, विशुद्ध और अव्यय देव को नमस्कार है। इस प्रकार इन्द्र सहित सब देवताओं ने महाविष्णु की स्तुति की और उस राजर्षि भगीरथ का चरित्र कह दिया। यह सुनकर निरंजन भगवान् ने देवों को आश्वासन दिया और अभयवर प्रदानकर वे स्वयं वहाँ गये जहाँ राजर्षि भगीरथ तपस्या कर रहे थे। ॥६१-६३॥ नारद ! शंख चक्र धारी, सच्चिदानन्द स्वरूप और सब लोकों के गुरु जब उस राजा के समीप गये तब उस भूपति ने कमलनयन, अलसी के पुष्प समान मनोहर वर्ण अपनी प्रभा से समस्त दिङ्मण्डल को आलोकित करने वाले, वनमाला से विभूषित, महाबाहु, श्रीवत्स और कौस्तुभ से सुशोभित, लोकपालों से पूजित चरणकमल वाले उज्ज्वल मणि जटित मुकुट से सुशोभित शिर वाले, प्रभा पूर्ण कुण्डलों से सुशोभित और उदार अंग वाले भगवान् को विनम्र भाव से दण्डवत् प्रणाम किया और अत्यन्त आनन्द से पुलकित होकर गद् गद् वाणी से कृष्ण !, कृष्ण ! कृष्ण ! श्रीकृष्ण !!! का उच्चारण किया। अन्तर्यामी, जगद्गुरु, भूतभावन भगवान् भगीरथ को भक्ति भावना को देखकर प्रसन्न होकर कृपा पूर्वक बोले ॥६४-६९॥

श्रीभगवानुवाच

भगीरथ महाभाग तवाभीष्टं भविष्यति । आगमिष्यन्ति मल्लोकं तव पूर्वपितामहाः ॥७०॥
मम मूर्त्यन्तरं शम्भुं राजन्स्तोत्रैः स्वशक्तितः । स्तुहि ते सकलं कामं स वै सद्यः करिष्यति ॥७१॥
यस्तु जग्राह शशिनं शरणं समुपागतम् । तस्मादाराधयेशानं स्तोत्रैः स्तुत्यं सुखप्रदम् ॥७२॥
अनादिनिधनो देवः सर्वकामफलप्रदः । त्वया संपूजितो राजन्सद्यः श्रेयो विधास्यति ॥७३॥
इत्युक्त्वा देवदेवेशो जगतां पतिरच्युतिः । अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठ उत्तस्थौ सोऽपि भूपतिः ॥७४॥
किमिदं स्वप्न आहोस्वित्सत्यं साक्षाद्द्विजोत्तम । भूपतिर्विस्मयं प्राप्तः किं करोमीति विस्मितः ॥७५॥
अथान्तरिक्षे वागुच्चैः प्राह तं भ्रान्तचेतसम् । सत्यमेतदिति व्यक्तं न चिन्तां कर्तुमर्हसि ॥७६॥
तन्निशाम्यावनीपाल ईशानं सर्वकारणम् । समस्तदेवताराजमस्तौषीद्भक्तितत्परः ॥७७॥

भगीरथ उवाच

प्रणमामि जगन्नाथं प्रणतार्तिप्रणाशनम् । प्रमाणागोचरं देवमीशानं प्रणवात्मकम् ॥७८॥
जगद्रूपमजं नित्यं सर्गस्थित्यंतकारणम् । विश्वरूपं विरूपाक्षं प्रणतोऽस्म्युग्ररेतसम् ॥७९॥
आदिमध्यान्तरहितमनन्तमजमव्ययम् । समामनन्ति योगीन्द्रास्तं वन्दे पुष्टिवर्धनम् ॥८०॥
नमो लोकाधिनाथाय वञ्चते परिवञ्चते । नमोऽस्तु नीलग्रीवाय पशूनां पतये नमः ॥८१॥
नमश्चैतन्यरूपाय पुष्टानां पतये नमः । नमोऽकल्पप्रकल्पाय भूतानां पतये नमः ॥८२॥
नमः पिनाकहस्ताय शूलहस्ताय ते नमः । नमः कपालहस्ताय पाशमुद्गरधारिणे ॥८३॥

भगवान् बोले—भगीरथ ! महाभाग ! तुम्हारी मनःकामना सिद्ध होगी और तुम्हारे पूर्वज पितामह मेरे लोक को अवश्य प्राप्त करेंगे। परन्तु राजन् ! तुम अपनी शक्ति के अनुसार मेरी अपर मूर्ति शंकर की स्तोत्रों से स्तुति करो। वे तुम्हारे सब मनोरथों को तत्काल पूर्ण करेंगे। जिसने शरणागत चन्द्रमा को शरण दी, उस सुखप्रद, पूज्य ईशानदेव की आराधना करो ॥७०-७२॥ वे अनादि और अनन्त देव सब मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं। राजन् ! तुम्हारी पूजा से प्रसन्न होकर वे शीघ्र तुम्हें कल्याण प्रदान करेंगे। यह कह कर जगत्पति, अच्युत, देवदेवेश अन्तर्हित हो गये और मुनिश्रेष्ठ ! वह भूपति भी उठा और आश्चर्य चकित होकर सोचने लगा कि यह सत्य है या स्वप्न ! अब क्या करूँ ? इस प्रकार वह अत्यन्त विस्मित हो गया। भ्रान्त राजा को इस प्रकार आकाशवाणी सुनाई पड़ी कि यह सत्य है, इस विषय में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। आकाशवाणी सुनकर भूमिपाल भगीरथ सबके एक मात्र कारण सब देवताओं के स्वामी ईशान की भक्ति पूर्वक स्तुति करने लगे ॥७३-७७½॥

भगीरथ बोले—जगन्नाथ ! भक्तों की पीड़ा दूर करने वाले, (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द) प्रमाणों से परे और ओंकार रूप ईशान देव को प्रणाम करता हूँ। जगत्स्वरूप, अज, नित्य, सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने वाले, विश्वरूप, विरूपाक्ष और उग्रवीर्य को प्रणाम है। आदि, मध्य और अन्त से हीन, अनन्त, अज, अव्यय और योगीन्द्र लोग जिसकी वन्दना करते हैं, उस पुष्टिवर्धन को नमस्कार है। लोकाधिनाथ और लोक को मायावश करने वाले परम वंचक को नमस्कार है। नीलग्रीव को नमस्कार है। पशुपति को नमस्कार है ॥७८-८१॥ चैतन्यरूप शिव को नमस्कार है। पुष्टों (भूतों) के पति को नमस्कार है। कल्प के रचयिता को नमस्कार है। भूतों के पति को नमस्कार है। पिनाकपाणि को नमस्कार है। शूलहस्त को नमस्कार है। कपालपाणि को नमस्कार है। पाश और मुद्गर धारण करने वाले को प्रणाम है। सर्वभूत को नमस्कार है। घंटाहस्त को

नमस्ते सर्वभूताय घण्टाहस्ताय ते नमः । नमः पञ्चास्यदेवाय क्षेत्राणां पतये नमः ॥८४॥
नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते । अनेकरूपरूपाय निर्गुणाय परात्मने ॥८५॥
नमोगणाधिदेवाय गणानां पतये नमः । नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यपतये नमः ॥८६॥
हिरण्यरेतसे तुभ्यं नमो हिरण्यवाहवे । नमो ध्यानस्वरूपाय नमस्ते ध्यानसाक्षिणे ॥८७॥
नमस्ते ध्यानसंस्थाय ध्यानगम्याय ते नमः । येनेदं विश्वमखिलं चराचरविराजितम् ॥८८॥
वर्षेवाभ्रेण जनितं प्रधानपुरुषात्मना ॥८९॥
स्वप्रकाशं महात्मानं परं ज्योतिः सनातनम् । यमामनन्ति तत्त्वज्ञाः सवितारं नृचक्षुषाम् ॥९०॥
उमाकांतंनन्दिकेशं नीलकण्ठं सदाशिवम् । मृत्युंजयं महादेवं परात्परतरं विभुम् ॥९१॥
परं शब्दब्रह्मरूपं तं वन्देऽखिलकारणम् । कपर्दिने नमस्तुभ्यं सद्योजाताय वै नमः ॥९२॥
भवोद्भवाय शुद्धाय ज्येष्ठाय च कनीयसे । मन्यवे त इवे त्रय्याः पतये यज्ञतन्तवे ॥९३॥
ऊर्जे दिशां च पतये कालायाघोररूपिणे । कृशानुरेतसे तुभ्यं नमोऽस्तु सुमहात्मने ॥९४॥

यतः समुद्राः सरितोऽद्रयश्च गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घाः ।
स्थाणुर्चरिष्णुर्महदल्पकं च असच्च सज्जीवमजीवमास ॥९५॥
नतोऽस्मि तं योगिनतांघ्रिपद्मं सर्वान्तरात्मानमरूपमीशम् ।
स्वतंत्रमेकं गुणिनां गुणं च नमामि भूयः प्रणमामि भूयः ॥९६॥

इत्थं स्तुतो महादेवः शंकरो लोकशंकरः । आविर्बभूव भूपस्य संतप्ततपसोग्रतः ॥९७॥
पञ्चवक्त्रं दशभुजं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् । त्रिलोचनमुदाराङ्गं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥९८॥

नमस्कार है। पाँच मुख वाले को नमस्कार है। क्षेत्रों के पति को नमस्कार है ॥८२-८४॥ भू को धारण करने वाले और समस्त भूतों के आदि भूत को नमस्कार है। अनेक अनेक रूपों को धारण करने वाले, निर्गुण, परात्मन्, गणाधिदेव को नमस्कार है। गणों के स्वामी को नमस्कार है। हिरण्यगर्भ को नमस्कार है। हिरण्यपति को नमस्कार है। हिरण्यरेतस् तुमको नमस्कार है। हिरण्यबाहु के लिए नमस्कार है। ध्यानस्वरूप को नमस्कार है। ध्यानसाक्षी को नमस्कार है। ध्यानस्थ को नमस्कार है। ध्यानगम्य को नमस्कार है। जिससे यह अखिल चराचरात्मक जगत् व्याप्त है ॥८५-८८॥

जिस जगत् को प्रधान पुरुष (शिव) ने मेघों से उत्पन्न वर्षा की भाँति उत्पन्न किया, उसको नमस्कार है। स्वप्रकाश, परं ज्योति, सनातन, महात्मा और जो मनुष्यों के नेत्र हैं उस सविता सूर्य को नमस्कार है। उमाकान्त, नन्दिकेश, नीलकण्ठ, सदाशिव, मृत्युंजय, महादेव, परात्पर, विभु, वाणी से अगोचर और अखिल सृष्टि के कारण ब्रह्म की वन्दना करता हूँ। कपर्दी! तुमको नमस्कार है। सद्यःजात को नमस्कार है ॥८९-९२॥ भव के आदि कारण, शुद्ध, ज्येष्ठ, सबसे छोटे, क्रोधस्वरूप, सर्वव्यापक, वेदपति, यज्ञ के प्रवर्द्धक, ऊर्ज (बल), दिक्पति, काल, अघोर रूप, अग्निरेतस् और महात्मा तुमको नमस्कार है। समुद्र, नदियाँ, पहाड़, गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्धसंघ, चर, स्थावर, महान्, लघु, असत् और सत् भी जिससे उत्पन्न हुए हैं, उस सर्वान्तरात्मा, अरूप, ईश, स्वतन्त्र, एक, गुणशील और गुणरूप शंकर को प्रणाम करता हूँ। जिसके चरणकमलों में योगी जन नतमस्तक रहते हैं, ऐसे देव को पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ ॥९३-९६॥ लोककल्याणकारी शंकर की इस प्रकार स्तुति करने पर शंकर जी उस तपोजर्जर भूप के सामने प्रकट हुए। नारद! इस प्रकार पंचमुख, दशभुज, द्वितीया के चन्द्रमा को शिर पर धारण किये, त्रिनेत्र, उदाररूप, सर्प का यज्ञोपवीत पहने हुए, विशाल वक्षःस्थल वाले, कैलाश के समान गौर वर्ण, गज-

विशालवक्षसं देवं तुहिनाद्रिसमप्रभम् । गजचर्माम्बरधरं सुरार्चितपदाम्बुजम् ॥९९॥
दृष्ट्वा पपात पादाग्रे दण्डवद्भुवि नारद । तत उत्थाय सहसा शिवाग्रे विहिताञ्जलिः ॥१००॥
प्रणनाम महादेवं कीर्तयन्शंकराह्वयम् । विज्ञाय भक्तिं भूपस्य शंकरः शशिशेखरः ॥१०१॥
उवाच राज्ञे तुष्टोऽस्मि वरं वरय वाञ्छितम् । तोषितोऽस्मि त्वया सम्यक् स्तोत्रेण तपसा तथा ॥१०२॥
एवमुक्तः स देवेन राजा संतुष्टमानसः । उवाच प्राञ्जलिर्नत्वा जगतामीश्वरेश्वरम् ॥१०३॥

भगीरथ उवाच

अनुग्राह्योऽस्मि यदि ते वरदानान्महेश्वर । तदा गङ्गां प्रयच्छास्मत्पितॄणां मुक्तिहेतवे ॥१०४॥

श्रीशिव उवाच

दत्ता गङ्गा मया तुभ्यं पितॄणां ते गतिः परा । तुभ्यं मोक्षः परश्चेति तमुक्त्वान्तर्दधे शिवः ॥१०५॥
कपर्दिनो जटास्रस्ता गङ्गा लोकैकपाविनी । पावयन्ती जगत्सर्वमन्वगच्छद्भगीरथम् ॥१०६॥
ततः प्रभृति सा देवी निर्मला मलहारिणी । भागीरथीति विख्याता त्रिषु लोकेष्वभून्मुने ॥१०७॥
सगरस्यात्मजाः पूर्वं यत्र दग्धाः स्वपाप्मना । तं देशं प्लावयामास गङ्गा सर्वसरिद्वरा ॥१०८॥
यदा संप्लावितं भस्म सागराणां तु गङ्गया । तदैव नरके मग्ना उद्धृताश्च गतैनसः ॥१०९॥
पुरा संक्रुश्यमानेन ये यमेनातिपीडिताः । त एव पूजितास्तेन गङ्गाजलपरिप्लुताः ॥११०॥
गतपापान्स विज्ञाय यमः सगरसंभवान् । प्रणम्याभ्यर्च्य विधिवत्प्राह तान्प्रीतमानसः ॥१११॥
भो भो राजसुता यूयं नरकाद् भृशदारुणात् । मुक्ता विमानमारुह्य गच्छध्वं विष्णुमन्दिरम् ॥११२॥
इत्युक्तास्ते महात्मानो यमेन गतकल्मषाः । दिव्यदेहधरा भूत्वा विष्णुलोकं प्रपेदिरे ॥११३॥

चर्म का वस्त्र धारण करने वाले और सुरों से पूजित चरण वाले भगवान् शंकर को सामने उपस्थित देखकर भगीरथ ने दण्डवत् प्रणाम किया । तत्पश्चात् शीघ्र उठकर शंकर के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए ॥९७-१००॥ महादेव शंकर का गुणगान करते हुए बार-बार प्रणाम करने लगे । चन्द्रशेखर शंकर राजा की भक्ति देखकर बोले, राजन् ! प्रसन्न हूँ, अभीष्ट वर मांगो, तुम्हारी स्तुति और तपस्या के वशीभूत हूँ । भगवान् शंकर की ऐसी बातें सुनकर राजा संतुष्ट हो गया । उसने हाथ जोड़कर जगदीश्वर से बोला—महेश्वर ! यदि आप वरदान के द्वारा मुझे अनुगृहीत करना चाहते हैं तो कृपा कर मुझे गंगाजी को दे दें जिनसे मेरे मृत पितरों को मुक्ति प्राप्त हो ॥१०१-१०४॥

शिव बोले—मैंने तुमको गंगा दे दी, जिससे तुम्हारे पितरों को परमगति की प्राप्ति होगी, तुम्हें भी परम मोक्ष प्राप्त होगा, ऐसा वर देकर शिव अन्तर्हित हो गए । तदनन्तर कपर्दी शंकर की जटा से निकलकर लोक को पवित्र करने वाली गंगा सारे संसार को पवित्र करती हुई भगीरथ के पीछे-पीछे चली । मुने ! उसी समय से वह मलहारिणी निर्मल गंगा इस त्रिभुवन में भागीरथी नाम से विख्यात हो गयीं ॥१०५-१०७॥ परम पवित्र (श्रेष्ठ) नदी गंगा ने उस स्थान को जहाँ अपने पापों के कारण सगरपुत्र भस्म हो गए थे —जलमग्न कर दिया । ज्योंही गंगाजल से सगर पुत्रों के शरीर-भस्म का स्पर्श हुआ त्योंही नरक में डूबे हुए वे पापमुक्त हो कर स्वर्ग को चले गए । जिन सगर पुत्रों को यम ने क्रुद्ध होकर पीड़ा पहुँचाई थी, गंगाजल के स्पर्श से वे ही उनके द्वारा पूजे गए । यम ने सगर पुत्रों को पाप मुक्त जानकर उनकी विधिवत् पूजा की और प्रसन्न होकर कहा ॥१०८-१११॥

हे राजपुत्रो ! तुम लोग अब इस घोर दारुण नरक से मुक्त हो गए । इस विमान पर चढ़कर विष्णुलोक को चले जाओ । महात्मा यम की बातों को सुनकर वे निष्पाप सगर-पुत्र दिव्यरूप धारणकर विष्णुलोक को

एवंप्रभावा सा गङ्गा विष्णुपादाग्रसंभवा । सर्वलोकेषु विख्याता महापातकनाशिनी ॥११४॥
य इदं पुण्यमाख्यानं महापातकनाशनम् । पठेच्च शृणुयाद्वापि गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥११५॥
यस्त्वेतपुण्यमाख्यानं कथयेद्ब्राह्मणाग्रतः । स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥११६॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे गङ्गामाहात्म्ये भगीरथगङ्गानयनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

ऋषय ऊचुः

साधु सूत महाभाग त्वयातिकरुणात्मना । श्रावितं सर्वपापघ्नं गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् ॥१॥
श्रुत्वा तु गङ्गामाहात्म्यं नारदो देवदर्शनः । किं पप्रच्छ पुनः सूत सनकं मुनिसत्तमम् ॥२॥

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे नारदेन सुरर्षिणा । पृष्टं पुनर्यथा प्राह प्रवक्ष्यामि तथैव तत् ॥३॥
नानाख्यानेतिहासाढ्यं गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् । श्रुत्वा ब्रह्मसुतो भूयः पृष्टवानिदमादरात् ॥४॥

नारद उवाच

अहोऽतिधन्यं सुकृतैकसारं श्रुतं मया पुण्यमसंवृतार्थम् ।
गाङ्गेयमाहात्म्यमघप्रणाशि त्वत्तो मुने कारुणिकादभीष्टम् ॥५॥

चले गए। इस प्रकार के प्रभाव वाली और विष्णु चरणों से उत्पन्न होने वाली गंगा सब लोकों में महापातकनाशिनी नाम से विख्यात हो गई। जो मनुष्य इस महापातकनाशक परमपुण्यप्रद आख्यान को सुनता है अथवा पाठ करता है वह गंगास्नान का फल प्राप्त करता है। जो इस पुण्य आख्यान को ब्राह्मणों को सुनाता है वह मुक्ति धाम विष्णु लोक को चला जाता है। ॥११२-११६॥

श्री बृहन्नारदीयपुराण के पूर्वभाग के प्रथम पाद में गंगामाहात्म्यवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

अध्याय १७

उद्यापन सहित शुक्लपक्षीय द्वादशीव्रत-निरूपण

ऋषिगण बोले—महाभाग! धन्य हो, तुमने बड़ी कृपा की जो आज परम उत्तम तथा सब पापों को नष्ट करने वाला यह गंगा माहात्म्य सुना दिया। सूत! देवदर्शन नारद जी ने गंगा-माहात्म्य सुनने के बाद पुनः मुनिश्रेष्ठ सनक जी से क्या पूछा इसको अब बतलाओ। ॥१॥

सूतजी बोले—ऋषिगण! सुनो। देवर्षिनारद ने पुनः जो कुछ पूछा और सनक जी ने जो कुछ उत्तर दिया, उसको पूर्णरूप से कह रहा हूँ। अनेकों इतिहास और आख्यानों से भरे उत्तम गंगा माहात्म्य को सुनकर ब्रह्मपुत्र नारद ने आदर पूर्वक सनक जी से पूछा—॥२-४॥

नारद जी बोले—अहा! मुने! आज मैंने परम कृपालु आप से धन्य, सम्पूर्ण सुकृतों का सारभूत, पवित्र,

ये साधवः साधु भजन्ति विष्णुं स्वार्थं परार्थं च यतन्त एव । ॥६॥
नानोपदेशैः सुविमुग्धचित्तं प्रबोधयन्ति प्रसभं प्रसन्नम्
ततः समाख्याहि हरेर्व्रतानि कृतैश्च यैः प्रीतिमुपैति विष्णुः । ॥७॥
ददाति भक्ति भजतां दयालुर्मुक्तिस्तु तस्या विदिता हि दासी
ददाति मुक्ति भजतां मुकुन्दो व्रतार्चनध्यानपरायणानाम् । ॥८॥
भक्तानुसेवासु महाप्रयासं विमृश्य कस्यापि न भक्तियोगम्
प्रवृत्तं च निवृत्तं च यत्कर्म हरितोषणम् । तदाख्याहि मुनिश्रेष्ठ विष्णुभक्तोऽसि मानद ॥९॥

सनक उवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठ भवतस्त्वं पुरुषोत्तमे । भूयो भूयो यतः पृच्छेश्चरित्रं शार्ङ्गधन्वनः ॥१०॥
व्रतानि ते प्रवक्ष्यामि लोकोपकृतिमन्ति च । प्रसीदति हरिर्यैस्तु प्रयच्छत्यभयं तथा ॥११॥
यस्य प्रसन्नो भगवान्यज्ञलिङ्गो जनार्दनः । इहामुत्र सुखं तस्य तपोवृद्धिश्च जायते ॥१२॥
येन केनाप्युपायेन हरिपूजापरायणाः । प्रयान्ति परमं स्थानमिति प्राहुर्महर्षयः ॥१३॥
मार्गशीर्षे सिते पक्षे द्वादश्यां जलशायिनम् । उपोषितोऽर्चयेत्सम्यङ् नरः श्रद्धासमन्वितः ॥१४॥
स्नात्वा शुक्लाम्बरधरो दन्तधावनपूर्वकम् । गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपैर्नैवेद्यपूर्वकैः ॥१५॥
वाग्यतो भक्तिभावेन मुनिश्रेष्ठार्चयेद्धरिम् । केशवाय नमस्तुभ्यमिति विष्णुं च पूजयेत् ॥१६॥
अष्टोत्तरशतं हुत्वा वह्नौ घृततिलाहुतीः । रात्रौ जागरणं कुर्याच्छालग्रामसमीपतः ॥१७॥

विशद फल देने वाला, अभीष्ट और पापनाशक गंगा का माहात्म्य सुना इससे कृतार्थ हो गया । जो साधु होते हैं वे विष्णु का अनन्य भाव से भजन करते हैं और अपने स्वार्थ (भक्ति) और परोपकार दोनों की सिद्ध करते हैं, वे अपने मनोहर उपदेशामृत से पामरजनों को भी प्रसन्न कर ज्ञान का ज्योति प्रदान करते हैं । अब इसके बाद भगवान् के उन व्रतों और अनुष्ठानों को कहिए जिससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं । कृपालु भगवान् भजन करने वालों को अपनी भक्ति प्रदान करते हैं । मुक्ति भक्ति की दासी कही गयी है । मुकुन्द भगवान् व्रत, पूजा और ध्यानोपासना में लीन रहने वाले भक्त जनों को मुक्ति देते हैं । भक्तों की सेवा में महान् प्रयास करना पड़ता है ऐसा सोचकर वे भक्तियोग किसी को नहीं देते । मुनिशिरोमणि ! प्रवृत्त, निवृत्त और जिन कर्मों से भगवान् प्रसन्न होते हैं उन कर्मों को आप बतलाइए, मानद ! आप विष्णु भक्त हैं, आप ही इन बातों को जानते है ॥५-९॥

सनकजी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो, धन्य हो, तुम पुरुषोत्तम के अनन्य भक्त हो; क्योंकि बार-बार विष्णु के चरित्र को ही तुम पूछ रहे हो । तुमसे लोक के उपकार करनेवाले उन व्रतों को कह रहा हूँ जिनके अनुष्ठान से विष्णु प्रसन्न होते हैं और अभय वर प्रदान करते हैं । जिसके ऊपर यज्ञपुरुष जनार्दन प्रसन्न होते हैं, उसको लोक एवं परलोक में सुख तो मिलेगा ही है, साथ ही उसकी तपस्या भी अक्षय हो जाती है । जिस किसी प्रकार से भगवान् की पूजा में लीन रहने वाले व्यक्ति परम उत्तम लोक को पाते हैं, ऐसा ऋषियों ने कहा है ॥१०-१३॥ अगहन मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी को मनुष्य श्रद्धापूर्वक क्षीरशायी भगवान् की विधिपूर्वक अर्चा करें । पहले दन्तधावन आदि नित्यकर्मों को समाप्त कर स्नान करें और श्वेतवस्त्र धारणकर गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप और नैवेद्य से मौन होकर भक्तिपूर्वक हरि की पूजा करे । केशवाय नमस्तुभ्यम्, (केशव को नमस्कार है) इस मन्त्र से विष्णु की पूजा करनी चाहिए । तदनन्तर घृत और तिल की एक सौ आठ आहुतियाँ अग्नि में देनी चाहिए, रात में शालिग्राम के समीप ही जागरण करना चाहिए और फिर एक पसेरी दूध से निर्विकार

स्नापयेत्प्रस्थपयसा नारायणमनामयम् । गीतैर्वाद्यैश्च नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्यैश्च केशवम् ॥१८॥
त्रिकालं पूजयेद्भक्त्या महालक्ष्म्या समन्वितम् । पुनः कल्ये समुत्थाय कृत्वा कर्म यथोचितम् ॥१९॥
पूर्ववत्पूजयेद्देवं वाग्यतो नियतः शुचिः । पायसं घृतसंमिश्रं नारिकेरफलान्वितम् ॥२०॥
मन्त्रेणानेन विप्राय दद्याद्भक्त्या सदक्षिणम् । केशवः केशिहा देवः सर्वसंपत्प्रदायकः ॥२१॥
परमान्नप्रदानेन मम स्यादिष्टदायकः । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छक्तितो बन्धुभिः सह ॥२२॥
नारायणपरो भूत्वा स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः । इति यः कुरुते भक्त्या केशवार्चनमुत्तमम् ॥२३॥
स पौंडरीकयज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत् । पौषमासे सिते पक्षे द्वादश्यां समुपोषितः ॥२४॥
नमो नारायणायेति पूजयेत्प्रयतो हरिम् । पयसा स्नाप्य नैवेद्यं पायसं च समर्पयेत् ॥२५॥
रात्रौ जागरणं कुर्यात्त्रिकालार्चनतत्परः । धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्गन्धैः पुष्पैर्मनोरमैः ॥२६॥
तृणैश्च गीतवाद्याद्यैः स्तोत्रैश्चाप्यर्चयेद्धरिम् । कृशरान्नं च विप्राय दद्यात्सघृतदक्षिणम् ॥२७॥
सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्वव्यापी सनातनः । नारायणः प्रसन्नः स्यात्कृशरान्नप्रदानतः ॥२८॥
मंत्रणानेन विप्राय दत्त्वा वै दानमुत्तमम् । द्विजांश्च भोजेयच्छक्त्या स्वयमद्यात्स बान्धवः ॥२९॥
एवं संपूजयेद्भक्त्या देवं नारायणं प्रभुम् । अग्निष्टोमाष्टकफलं स संपूर्णमवाप्नुयात् ॥३०॥
माघस्य शुक्लद्वादश्यां पूर्ववत्समुपोषितः । नमस्ते माधवायेति हुत्वाष्टौ च घृताहुतीः ॥३१॥
पूर्वमानेन पयसा स्नापयेन्माधवं तदा । पुष्पगन्धाक्षतैरर्चेत्सावधानेन चेतसा ॥३२॥
रात्रौ जागरणं कुर्यात्पूर्ववद्भक्तिसंयुतः । कल्यकर्म च निर्वर्त्य माधवं पुनरर्चयेत् ॥३३॥
प्रस्थं तिलानां विप्राय दद्याद्वै मन्त्रपूर्वकम् । सदक्षिणं सवस्त्रं च सर्वपापविमुक्तये ॥३४॥

नारायण का अभिषेक करना चाहिए ॥१४-१७॥ इस प्रकार लक्ष्मी के सहित भगवान् की नैवेद्य और अन्यान्य भोज्यपदार्थों, एवं गीत वाद्य आदि से तीनों काल भक्ति पूर्वक पूजा करनी चाहिए। फिर प्रातःकाल उठकर विधिपूर्वक नित्यकर्मों को समाप्त कर पहले की ही भाँति समय पूर्वक पवित्र भाव से पूजा करे। 'केशव केशिहन्ता और सब प्रकार की सम्पत्ति को देने वाले भगवान् इस मधुर भोजन के दान से प्रसन्न होकर मेरे मनोरथों को पूर्ण करें' इस मन्त्र से दूध, घी और नारिकेल से बने पदार्थों को दक्षिणा सहित ब्राह्मणों को दे। पश्चात् यथा शक्ति ब्राह्मणों को भोजन करावे और स्वयं भाई बन्धुओं के साथ भगवान् का ध्यान करते हुए भोजन करे। इस प्रकार विधिपूर्वक जो केशव की पूजा करता है वह पौण्डरीक यज्ञ का आठगुना फल पाता है ॥१८-२३॥ पूस मास में शुक्ल पक्ष की द्वादशी को निराहार रहकर 'नमो नारायणाय' इस मन्त्र से भक्ति पूर्वक भगवान् को दुग्ध से स्नान कराकर पायस और नैवेद्य अर्पित करे। तीनों काल भगवान् की पूजा में निरत रहकर रात में तो जागरण करे और धूप, दीप, नैवेद्य, गन्ध और मनोहर फूल और पत्तियों से हरि की पूजा करे। पुनः स्तोत्र पाठ और गीत वादन से भगवान् का मनोरंजन करे, ब्राह्मणों को 'सर्वात्मा, सब लोकों के प्रभु, सर्वव्यापक सनातन नारायण इस कृशरान्न (खिचड़ी) के दान से प्रसन्न होवें' इस मन्त्र से घी और दक्षिणा सहित खिचड़ी दे ॥२४-२८॥ शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराकर पश्चात् स्वयं भाई बन्धुओं के साथ भोजन करे। इस प्रकार भक्ति पूर्वक विधिवत् प्रभुनारायण की पूजा करने से आठ अग्निष्टोम यज्ञ करने का फल मिलता है। माघ शुक्ल द्वादशी को पहले की भाँति निराहार व्रत रहकर 'नमस्ते माधवाय' इस मन्त्र से घी की छह आहुतियाँ देकर एक पसेरी दूध से माधव को स्नान करावे। पुनः सावधान होकर पुष्प, गंध, अक्षत से भगवान् की पूजा करे और पूर्व की भाँति भक्तिपूर्वक रात में जागरण करे। कल्प-सूत्रानुसार कर्मों को समाप्त कर पुनः माधव की पूजा करे ॥२९-३३॥ साथ ही वस्त्र और दक्षिणा के साथ मन्त्र पढ़ता हुआ हुआ एक पसेरी तिल

माधवः सर्वभूतात्मा सर्वकर्मफलप्रदः । तिलदानेन महता सर्वान्कामान्प्रयच्छतु ॥३५॥
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या संस्मरन्माधवं प्रभुम् ॥३६॥
मन्त्रेणानेन विप्राय दत्त्वा भक्तिसमन्वितः । वाजपेयशतस्यासौ संपूर्णं फलमाप्नुयात् ॥३७॥
एवं यः कुरुते भक्त्या तिलदाने व्रतं मुने । गोविन्दाय नमस्तुभ्यमिति संपूजयेद्व्रती ॥३८॥
फाल्गुनस्य सिते पक्षे द्वादश्यां समुपोषितः । पूर्वमानेन पयसा गोविन्दं स्नापयेच्छुचिः ॥३९॥
अष्टोत्तरशतं हुत्वा घृतमिश्रतिलाहुतीः । प्रातःकृत्यं समाप्याथ गोविन्दं पूजयेत्पुनः ॥४०॥
रात्रौ जागरणं कुर्यात्त्रिकालं पूजयेत्तथा । नमो गोविन्द सर्वेश गोपिकाजनवल्लभ ॥४१॥
व्रीह्याढकं च विप्राय दद्याद्वस्त्रं सदक्षिणम् । एवं कृत्वा व्रतं सम्यक् सर्वपापविवर्जितः ॥४२॥
अनेन धान्यदानेन प्रीतो भव जगद्गुरो । चैत्रमासे सिते पक्षे द्वादश्यां समुपोषितः ॥४३॥
गोमेदमखजं पुण्यं सम्पूर्णं लभते नरः । क्षीरेण स्नापयेद्विष्णुं पूर्वमानेन शक्तितः ॥४४॥
नमोऽस्तु विष्णवे तुभ्यमिति पूर्ववदर्चयेत् । कृत्वा जागरणं रात्रौ पूजयेत्पूर्ववद्व्रती ॥४५॥
तथैव स्नापयेद्विप्र घृतप्रस्थेन सादरम् । अष्टोत्तरशतं हुत्वा मध्वाज्यतिलमिश्रितम् ॥४६॥
ततः कल्ये समुत्थाय प्रातःकृत्यं समाप्य च । प्राणरूपो महाविष्णुः प्राणदः सर्ववल्लभः ॥४७॥
सदक्षिणं च विप्राय दद्याद्वै तण्डुलाढकम् । एवं कृत्वा नरो भक्त्या सर्वपापविवर्जितः ॥४८॥
तण्डुलाढकदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः । वैशाखशुक्लद्वादश्यामुपोष्य मधुसूदनम् ॥४९॥
अत्यग्निष्टोमयज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत् । त्रिकालार्चनसंयुतम् ॥५०॥
द्रोणक्षीरेण देवेशं स्नापयेद्भक्तिसंयुतः । जागरं तत्र कर्त्तव्यं

अपने सब पापों से मुक्त होने के लिए ब्राह्मण को दे। माधव सब पदार्थों में व्यापक और सब कर्मों के फल प्रभु माधव का स्मरण करता हुआ
को देने वाले हैं। वे इस मन्त्रवाक्य से भक्ति पूर्वक ब्राह्मण को तिलदान देकर जो व्यक्ति तिलदान से भगवान्
यथा शक्ति ब्राह्मणों को खिलावे ॥३४-३६॥ मुनिनारद ! इस प्रकार भक्ति पूर्वक की शुक्ल-पक्ष-द्वादशी को निराहार
को संतुष्ट करता है, वह सौ वाजपेय यज्ञों का फल पाता है। फागुन मास देकर एक पसेरी
रहकर व्रती 'गोविन्दाय नमस्तुभ्यम्' इस मन्त्र से घी मिले तिल को एक सौ आठ आहुतियाँ प्रातःकालीन पूजा समाप्त
दूध से गोविन्द को स्नान करावे। तीनों काल विधिवत् पूजा कर रात में जागरण करे। 'गोविन्द ! सर्वेश !
हो जाने पर उसी प्रकार शेष दोनों समय गोविन्द की पूजा करे और वस्त्र दक्षिणा सहित इस वाक्य से एक
गोपिकाजनबल्लभ ! आपको नमस्कार है। जगद्गुरु ! धान्य दान से प्रसन्न होइए' पापों से मुक्त होकर
आढ़क धान विप्र को दे। इस प्रकार विधि पूर्वक व्रत को करने से मनुष्य अपने सम्पूर्ण विधि से 'नमोस्तु
गोमेधयज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥३७-४३½॥

चैत महीने में शुक्लपक्ष-द्वादशी के दिन निराहार व्रत रहकर यथाशक्ति पूर्वोक्त एक पसेरी घी से स्नान
विष्णवे तुभ्यम्' इस मन्त्र से दूध से विष्णु को स्नान करावे। विप्र ! फिर आदर पूर्वक प्रातःकालीन क्रिया
कराकर रात भर जागरण कर पूर्वोक्त विधि से ही पूजा करे। तदनन्तर प्रातःकाल उठकर प्राणदाता और
समाप्त करने के बाद मधु, घी और तिल से एक सौ आठ बार आहुति दे। 'महाविष्णु प्राणरूप, ब्राह्मण को
सब के स्वामी भगवान् जनार्दन मेरे इस एक आढ़क चावल के दान से प्रसन्न हों, इस वाक्य से युक्त होकर
दक्षिणा में एक आढ़क चावल भी दे ॥४४-४७½॥ इस प्रकार व्रत करने से मनुष्य अपने सब पापों से मधुसूदन को एक
अग्निष्टोम यज्ञ का अठगुना फल पाता है। वैशाख-शुक्ल-द्वादशी के दिन निराहार रहकर देवेश जागरण भी करे और
द्रोण दूध से स्नान करावे, तीनों काल विधिपूर्वक भगवान् की पूजाकर रात्रि में आहुतियाँ दे। इस प्रकार
'नमस्ते मधु हन्त्रे' (मधु हन्ता को नमस्कार है) इत मन्त्र से घी की एक सौ आठ

नमस्ते मधुहन्त्रे च जुहुयाच्छक्तितो घृतम् । अष्टोत्तरशतं प्राच्यं विधिवन्मधुसूदनम् ॥५१॥
विपापो ह्यश्वमेधानामष्टानां फलमाप्नुयात् । ज्येष्ठमासे सिते पक्षे द्वादश्यामुपवासकृत् ॥५२॥
क्षीरेणाढकमानेन स्नापयेद्यस्त्रिविक्रमम् । नमस्त्रिविक्रमायेति पूजयेद्भक्तिसंयतः ॥५३॥
जुहुयात्पायसेनैव ह्यष्टोत्तरशताहुतीः । कृत्वा जागरणं रात्रौ पुनः पूजां प्रकल्पयेत् ॥५४॥
अपूपविंशतिं दत्त्वा ब्राह्मणाय सदक्षिणम् । देवदेव जगन्नाथ प्रसीद परमेश्वरः ॥५५॥
उपायेन च संगृह्य ममाभीष्टप्रदो भव । ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥५६॥
एवं यः कुरुते विप्र व्रतं त्रैविक्रमं परम् । सोऽष्टानां नरमेधानां विपापः फलमाप्नुयात् ॥५७॥
आषाढशुक्लद्वादश्यामुपवासी जितेन्द्रियः । वामनं पूर्वमानेन स्नापयेत्पयसा व्रती ॥५८॥
नमस्ते वामनायेति दूर्वाज्याष्टोत्तरं शतम् । हुत्वा च जागरं कुर्याद्वामनं चार्चयेत्पुनः ॥५९॥
सदक्षिणं च दध्यन्नं नालिकेरफलान्वितम् । भक्त्या प्रदद्याद्विप्राय वामनार्चनशीलिने ॥६०॥
वामनो बुद्धिदो होता द्रव्यस्थो वामनः सदा । वामनस्तारकोऽस्माच्च वामनाय नमो नमः ॥६१॥
अनेन दत्त्वा दध्यन्नं शक्तितो भोजयेद्द्विजान् । कृत्वैवमग्निष्टोमानां शतस्य फलमाप्नुयात् ॥६२॥
श्रावणस्य सिते पक्षे द्वादश्यामुपवासकृत् । क्षीरेण मधुमिश्रेण स्नापयेच्छ्रीधरं व्रती ॥६३॥
नमोऽस्तु श्रीधरायेति गन्धाद्यैः पूजयेत्क्रमात् । जुहुयात्पृषदाज्येन शतमष्टोत्तरं मुने ॥६४॥
कृत्वा च जागरं रात्रौ पुनः पूजां प्रकल्पयेत् । दातव्यं चैव विप्राय क्षीराढकमनुत्तमम् ॥६५॥
दक्षिणां च सवस्त्रां वै प्रदद्याद्धेमकुण्डले । मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र सर्वकामार्थसिद्धये ॥६६॥

भक्ति पूर्वक मधुसूदन को पूजा करने से मनुष्य पाप मुक्त होकर आठ अश्वमेघ का फल प्राप्त करता है ॥४८-५१॥

जेठ मास की शुक्लपक्ष द्वादशी के दिन निराहार रहकर एक आढ़क दूध से भगवान् त्रिविक्रम की 'नमः त्रिविक्रमाय' इस मन्त्र से भक्ति पूर्वक पूजा करे और खीर की एक सौ आठ आहुतियाँ भी दे। रात्रि में जागरण कर पुनः सविधि पूजा कर 'देवदेव ! जगन्नाथ ! प्रसन्न होइए परमेश्वर ! इस उपहार से आप प्रसन्न होकर मेरे अभीष्ट फल को प्रदान कीजिए' इस वाक्य से बीस पूए ब्राह्मणों को दक्षिणा के साथ दे। स्वयं शक्ति के अनुसार ब्राह्मण को भोजन कराकर मौन हो स्वयं भी भोजन करे। विप्र ! जो इस प्रकार त्रिविक्रम का परमोत्तम व्रत करता है वह निष्पाप होकर आठ नरमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥५२-५७॥ आषाढ़ शुक्ल द्वादशी के दिन जो जितेन्द्रिय व्रती निराहार रहकर एक द्रोण या एक आढ़क दूध से भगवान् वामन को स्नान कराता है और 'नमस्ते वामनाय' इस मन्त्र से दूब एवं घी की एक सौ आठ आहुतियाँ देकर रात भर जागरण करता है, फिर दक्षिणा, दही, अन्न और नारियल आदि से भगवान् की पूजाकर वामन के भक्त किसी ब्राह्मण को 'भगवान् वामन बुद्धि देने वाले, होता, सर्वदा सब द्रव्यों में रहने वाले और इस संसार-सागर से पार लगाने वाले हैं, ऐसे पूज्य वामन को नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है। इस वाक्य से यथाशक्ति दही मिला अन्नदान करता है वह इस प्रकार व्रत करने से ही अग्निष्टोम यज्ञ के समान फल पा जाता है ॥५८-६२॥ व्रती सावन की शुक्लपक्ष वाली द्वादशी को निराहार रहकर मधुमिश्रित दूध से भगवान् श्रीधर को स्नान करावे। 'नमस्ते श्रीधराय' इस मन्त्र से गन्ध आदि पूजन सामग्री से क्रमशः पूजन करे। मुने ! घी से एक सौ आठ बार हवन करने के अनन्तर रात भर जागरण करे और फिर पूजा करे। अपने सब मनोरथों की सिद्धि के लिए किसी ब्राह्मण को एक आढक शुद्ध दूध, वस्त्र, दक्षिणा और दो सुवर्ण के कुण्डल देने चाहिए। विप्रेन्द्र, दूध दान करते समय यह वाक्य पढ़ना चाहिए "क्षीरसागरशायी ! देवेश ! रमाकान्त ! जगत्पते ! इस क्षीर दान से आप प्रसन्न हों और सब

क्षीराब्धिशायिन्देवेश रमाकान्त जगत्पते । क्षीरदानेन सुप्रीतो भव सर्वसुखप्रदः ॥६७॥
सुखप्रदत्वाद्विप्रांश्च भोजयेच्छक्तितो व्रती । एवं कृत्वाश्वमेधानां सहस्रस्य फलं लभेत् ॥६८॥
मासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादश्यां समुपोषितः । स्नापयेद्द्रोणपयसा हृषीकेशं जगद्गुरुम् ॥६९॥
हृषीकेशं नमस्तुभ्यमिति संपूजयेन्नरः । चरुणा मधुयुक्तेन शतमष्टोतरं हुनेत् ॥७०॥
जागरादीनि निर्वर्त्य दद्यादात्मविदे ततः । सार्धाढकं च गोधूमान्दक्षिणां हेमशक्तितः ॥७१॥
हृषीकेश नमस्तुभ्यं सर्वलोकैकहेतवे । मह्यं सर्वसुखं देहि गोधूमस्य प्रदानतः ॥७२॥
भोजयेद्ब्राह्मणाञ्शक्त्या स्वयं चाश्नीत वाग्यतः । सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्ममेधफलं लभेत् ॥७३॥
आश्विने मासि शुक्लायां द्वादश्यां समुपोषितः । पद्मनाभं च पयसा स्नापयेद्भक्तितः शुचिः ॥७४॥
नमस्ते पद्मनाभाय होमं कुर्यात्स्वशक्तितः । तिलव्रीहियवाज्यैश्च पूजयेच्च विधानतः ॥७५॥
जागरं निशि निर्वर्त्य पुनः पूजां समाचरेत् । दद्याद्विप्राय कुडवं मधुनस्तु सदक्षिणम् ॥७६॥
पद्मनाभ नमस्तुभ्यं सर्वलोकपितामह । मधुदानेन सुप्रीतो भव सर्वसुखप्रदः ॥७७॥
एवं यः कुरुते भक्त्या पद्मनाभव्रतं सुधीः । ब्रह्ममेधसहस्रस्य फलमाप्नोति निश्चितम् ॥७८॥
द्वादश्यां कार्तिके शुक्ले उपवासी जितेन्द्रियः । क्षीरेणाकढकमानेन दध्ना वाज्येन तावता ॥७९॥
नमो दामोदरायेति स्नापयेद्भक्तिभावतः । अष्टोत्तरशतं हुत्वा मध्वाज्याक्ततिलाहुतीः ॥८०॥
जागरं नियतः कुर्यात्त्रिकालार्चनतत्परः । प्रातः संपूजयेद्देवं पद्मपुष्पैर्मनोरमैः ॥८१॥
पुनरष्टोत्तरशतं जुहुयात्सघृतैस्तिलैः । पञ्चभक्ष्ययुतं चान्नं दद्याद्विप्राय भक्तितः ॥८२॥

सुखों को प्रदान कीजिए । व्रती इस प्रकार पूजा समाप्त कर सुख प्राप्ति के लिए यथाशक्ति ब्रह्मण भोजन करावे । इस प्रकार सविधि व्रत के अनुष्ठान से मनुष्य को एक हजार अश्वमेध का फल मिलता है ॥६३-६८॥

भादों मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी को निराहार रहकर एक द्रोण दूध से जगद्गुरु हृषीकेश को 'हृषीकेश नमस्तुभ्यम्' इस मन्त्र से स्नान कराकर मधु युक्त चरु से एक सौ आठ बार हवन करे । रात्रि जागरण आदि विधि समाप्त कर किसी ज्ञानी ब्राह्मण को शक्ति के अनुसार सोना और दक्षिणा के सहित गेहूँ दे । दान देते समय 'हृषीकेश ! सारे संसार के एक मात्र कारण आपको नमस्कार है इस गेहूँ के दान से आप मुझे सम्पूर्ण सुख दें' इस वाक्य को कहे । इस प्रकार पूजा समाप्त कर यथा शक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्वयं मौन होकर भोजन करे । इस विधि से व्रत का अनुष्ठान करने से व्रती सब पापों से मुक्त होकर 'ब्रह्ममेध' का फल प्राप्त करता है ॥६९-७३॥ कुआर के शुक्लपल की द्वादशी को व्रती उपवास करे, पवित्र होकर श्रद्धापूर्वक भगवान् पद्मनाभ को दूध से नहलावे । 'नमस्ते पद्मनाभाय' इस मन्त्र से तिल, चावल, घी और उसकी आहुति दे । शास्त्रविधि से पूजा करने के अनन्तर रातभर जागरण करे और पुनः विधिवत् पूजा कर किसी ब्रह्मण को दक्षिणा सहित एक पाव मधु का दान दे । दान करते समय 'सब लोकों के पितामह ! पद्मनाथ ! आपको नमस्कार है' इस मधुदान से आप प्रसन्न होकर सब सुखों को प्रदान करें । इस वाक्य का उच्चारण करे। नारद ! इस प्रकार जो बुद्धिमान् व्यक्ति भक्ति पूर्वक पद्मनाभ व्रत का अनुष्ठान करता है वह एक हजार ब्रह्ममेध यज्ञ का फल पाता है ॥७४-७८॥ कार्तिक-शुक्ल-द्वादशी को व्रती संयम पूर्वक निराहार व्रत रहे। 'नमो दामोदराय' इस मन्त्र से श्रद्धा-भाव से एक आढक दूध, दही अथवा उतने ही घी से भगवान् दामोदर को नहलावे। स्नान कराने के पश्चात् मधु, घी से मिश्रित तिल की एक सौ आठ बार आहुति दे ! नियम पूर्वक तीनों समय पूजा कर रात्रि में जागरण करे । दूसरे दिन प्रातःकाल भगवान् को मनोहर कमलपुष्प से अनन्य भाव से पूजा करे और पुनः घी मिश्रित तिल से एक सौ आठ बार आहुति दे । व्रत की निर्विघ्न समाप्ति के लिए पाँचों प्रकार के भक्ष्य पदार्थ सहित अन्न किसी वेदपाठी कुटुम्बी ब्राह्मण को दे । दान का मन्त्र यह है 'दामोदर ! जगन्नाथ !

दामोदर जगन्नाथ सर्वकारणकारण । त्राहि मां कृपया देव शरणागतपालक ॥८३॥
अनेन दत्त्वा दानं च श्रोत्रियाय कुटुम्बिने । दक्षिणां च यथाशक्त्या ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥८४॥
एवं गत्वा व्रतं सम्यगश्नीयाद्बन्धुभिः सह । अश्वमेधसहस्राणां द्विगुणं फलमश्नुते ॥८५॥
एवं कुर्याद्व्रती यस्तु द्वादशीव्रतमुत्तमम् । संवत्सरं मुनिश्रेष्ठ स याति परमं पदम् ॥८६॥
एकमासे द्विमासे वा यः कुर्याद्भक्तितत्परः । तत्तत्फलमवाप्नोति प्राप्नोति च हरेः पदम् ॥८७॥
पूर्णं संवत्सरं कृत्वा कुर्यादुद्यापनं व्रती । मार्गशीर्षासिते पक्षे द्वादश्यां च मुनीश्वर ॥८८॥
स्नात्वा प्रातर्यथाचारं दन्तधावनपूर्वकम् । शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥८९॥
मण्डपं कारयेद्दिव्यं चतुरस्रं सुशोभनम् । घण्टाचामरसंयुक्तं किङ्किणीरवशोभितम् ॥९०॥
अलंकृतं पुष्पमालैर्वितानध्वजराजितम् । छादितं शुक्लवस्त्रेण दीपमालाविभूषितम् ॥९१॥
तन्मध्ये सर्वतोभद्रं कुर्यात्सम्यगलंकृतम् । तस्योपरि न्यसेत्कुम्भान्द्वादशाम्बुप्रपूरितान् ॥९२॥
एकेन शुक्लवस्त्रेण सम्यक्संशोधितेन च । सर्वानाच्छादयेत्कुम्भान्पञ्चरत्नसमन्वितान् ॥९३॥
लक्ष्मीनारायणं देवं कारयेद्भक्तिमान्व्रती । हेम्ना वा रजतेनापि तथा ताम्रेण वा द्विज ॥९४॥
स्थापयेत्प्रतिमां तां च कुम्भोपरिससंयमी । तन्मूल्यं वा द्विजश्रेष्ठ काञ्चनं च स्वशक्तितः ॥९५॥
सर्वव्रतेषु मतिमान्वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् । यदि कुर्यात्क्षयं यान्ति तस्यायुर्धनसंपदः ॥९६॥
अनन्तशायिनं देवं नारायणमनामयम् । पञ्चामृतेन प्रथमं स्नापयेद्भक्तिसंयुतः ॥९७॥

सकल कारणों के कारण ! शरणागतपालक ! देव ! कृपा कर मेरी रक्षा कीजिए । दक्षिणा सहित अन्नदान के बाद व्रती श्रद्धापूर्वक यथा शक्ति ब्राह्मणों को खिलावे और दक्षिणा भी दे । इस प्रकार व्रत सम्पन्न करके व्रती स्वयं परिवार सहित भोजन करे । नारद ! इस प्रकार जो व्रती द्वादशी व्रत का अनुष्ठान करता है वह सहस्रों अश्वमेध यज्ञों का द्विगुण फल पाता है ॥७९-८५॥

मुनिश्रेष्ठ ! जो व्रती उपर्युक्त विधि से एक वर्ष तक इस उत्तम द्वादशी व्रत का अनुष्ठान करता है वह परम पद को प्राप्त कर लेता है । जो केवल एक मास या दो मास तक भक्तिपूर्वक इस व्रत को करता है वह पूर्वोक्त फल के साथ भगवान् के लोक भी प्राप्त कर लेता है । व्रती एक-एक वर्ष तक व्रत को पूरा कर इसका उद्यापन[1] करे ॥८६-८७॥ मुनीश्वर ! अगहन मास के कृष्ण पक्ष की द्वादशी को प्रातःकाल आचार के अनुसार दन्तधावन कर स्नान करे, श्वेत वस्त्र पहन कर श्वेत सुगन्धित चन्दन लगावे । इस प्रकार स्वयं पवित्र होकर भूमि पर एक चौकोर दिव्य मण्डप बनावे । घंटा चँवर से सुशोभित कर बीच में किंकिणी लटकावे, जिसकी मधुर ध्वनि से सारा मण्डप गुंजित रहे । चारों ओर पताकाओं, फूलों की माला और चँदवे से उसको सजाकर श्वेत वस्त्र से उसको आच्छादित कर दे और चारों ओर दीप जलाकर रख दे । उस मण्डप के मध्य में अति मनोहर सर्वतोभद्र चक्र बनाकर उस पर जल से परिपूर्ण बारह कलश रख दे ॥८८-९२॥ उन कलशों में पंच रत्न छोड़कर एक ही भलीभाँति शुद्ध किए हुए श्वेत वस्त्र से सबको ढक दे । द्विज ! भक्त व्रती अपनी शक्ति के अनुसार सोना, चाँदी या ताँबे की लक्ष्मी-नारायण की मूर्ति बनवावे ॥९३-९४॥ उसके प्रतिमा को वह संयमी भक्त कलश के ऊपर रखे । यदि मूर्ति न बनी हो तो मूर्ति का मूल्य अथवा सोना ही यथा शक्ति उस पर रख दे । द्विजवर्य ! बुद्धिमान् व्यक्ति सभी प्रकार के व्रतों में कृपणता न करे, यदि ऐसा करेगा तो उसकी आयु, धन-सम्पत्ति आदि सब कुछ नष्ट हो जायगा । सबसे पहले भक्ति पूर्वक शेषशायी, निर्विकार, भगवान् नारायण को पंचामृत

---

१. यह विधि इस उद्देश्य से की जाती है कि पुनः व्रत न करना पड़े । इसे 'व्रत का बैठाना' कहा जाता है ।

नामभिः केशवाद्यैश्च ह्युपचारान्प्रकल्पयेत् । रात्रौ जागरणं कुर्यात्पुराणश्रवणादिभिः ॥९८॥
जितनिद्रो भवेत्सम्यक्सोपवासो जितेन्द्रियः । त्रिकालमर्चयेद्देवं यथाविभवविस्तरम् ॥९९॥
ततः प्रातः समुत्थाय प्रातः कृत्यं समाप्य च । तिलहोमान्व्याहृतिभिः सहस्रं कारयेद्द्विजैः ॥१००॥
ततः संपूजयेद्देवं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् । देवस्य पुरतः कुर्यात्पुराणश्रवणं ततः ॥१०१॥
दद्याद्द्वादशविप्रेभ्यो दध्यन्नं पायसं तथा । अपूपैर्दशभिर्युक्तं सघृतं च सदक्षिणम् ॥१०२॥
देवदेवजगन्नाथ भक्तानुग्रहविग्रह । गृहाणोपायनं कृष्ण सर्वाभीष्टप्रदो भव ॥१०३॥
अनेनोपायनं दत्त्वा प्रार्थयेत्प्राञ्जलिः स्थितः । आधाय जानुनी भूमौ विनयावनतो व्रती ॥१०४॥
नमो नमस्ते सुरराजराज, नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास ।
कुरुष्व संपूर्णफलं ममाद्य, नमोऽस्तु तुभ्यं पुरुषोत्तमाय ॥१०५॥
इति संप्रार्थयेद्विप्रान्देवं च पुरुषोत्तमम् । दद्यादर्घ्यं च देवाय महालक्ष्मीयुताय वै ॥१०६॥
लक्ष्मीपते नमस्तुभ्यं क्षीरार्णवनिवासिने । अर्घ्यं गृहाण देवेश लक्ष्म्या च सहितः प्रभो ॥१०७॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु । न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥१०८॥
इति विज्ञाप्य देवेशं तत्सर्वं संयमी व्रते । प्रतिमां दक्षिणायुक्तामाचार्याय निवेदयेत् ॥१०९॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् । भुञ्जीत वाग्यतः पश्चात्स्वयं बंधुजनैर्वृतः ॥११०॥
आसायं शृणुयाद्विष्णोः कथां विद्वज्जनैः सह । इत्येवं कुरुते यस्तु मनुजो द्वादशीव्रतम् ॥१११॥
सर्वान्कामान्स आप्नोति परत्रेह च नारद । त्रिसप्तकुलसंयुक्तः सर्वपापविवर्जितः ॥
प्रयाति विष्णुभवनं यत्र गत्वा न शोचति ॥११२॥

स्नान करावे । केशव आदि नामों का कीर्तन करता हुआ विभिन्न उपचारों से पूजन करो । रात को पुराण श्रवण के द्वारा जग कर ही बिता दे ॥९५-९८॥ वह संयमो व्रती निद्रा को वश में कर निराहार रहकर अपने वैभव के अनुसार तीनों काल भगवान् का पूजन करे । तदनन्तर दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर नित्यक्रिया से निवृत्त हो ब्राह्मणों के द्वारा व्याहृति मंत्रों से तिल का हवन करावे । पुनः यथाक्रम गन्ध, पुष्प आदि से भगवान् की पूजा कर उनके सामने ही पुराण का श्रवण करे । बारह ब्राह्मणों को दही, खीर, घो और दक्षिणा सहित दस पूये का दान करे । (दानका मन्त्र यह है--) ॥९९-१०२॥ 'देवदेव ! जगन्नाथ ! भक्तों पर कृपा करने वाले ! कृष्ण ! मेरे सब मनोरथों को पूर्ण कीजिए' । इस प्रकार उपहार दान के पश्चात् व्रती पृथ्वी पर घुटने टेक कर विनम्र भाव से हाथ जोड़ कर भगवान् की स्तुति करे 'सुरराज ! आपको नमस्कार है । देव ! जगन्निवास ! नमस्कार है । आज मेरी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण कीजिए । पुरुषोत्तम ! आप को नमस्कार है' ॥१०३-१०५॥ इस प्रकार विप्रों और भगवान् की प्रार्थना के बाद महालक्ष्मी सहित भगवान् को अर्घ्य दे । अर्घ्य का मन्त्र यह है 'लक्ष्मीपते ! क्षीरसागर में सोने वाले आप को नमस्कार है, देवेश ! प्रभो ! लक्ष्मी के सहित आप मेरे इस अर्घ्य को ग्रहण करे । जिसके स्मरण और नाम कोर्तन से तप, यज्ञ आदि अनुष्ठान को न्यूनतायें अतिशीघ्र दूर हो जाती हैं उस अच्युत देव को नमस्कार है' इस प्रकार भगवान् को स्तुति कर वह व्रती प्रतिमा सहित उन सब सामग्रियों का आचार्य के लिए अर्पित कर दे । यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा देकर मौन होकर भोजन करे और भाई-बन्धुओं के सहित व्रत को समाप्त कर दे ॥१०६-१११॥ इसके बाद स्वयं सायंकाल तक विद्वज्जनों के साथ बैठकर पुराण कथा सुने । नारद ! जो मनुष्य इस विधि से द्वादशी का व्रत करता है वह लौकिक पारलौकिक सभी कामनाओं का प्राप्त करता है । वह अपने इक्कोस कुलों के उस

य इदं शृणुयाद्विप्र द्वादशीव्रतमुत्तमम् । वाचयेद्वापि स नरो वाजपेयफलं लभेत् ॥११३॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे व्रताख्याने मार्गशीर्षशुक्लद्वादशीव्रतकथनं नाम
सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

सनक उवाच

अन्यद्व्रतवरं वक्ष्ये शृणुष्व मुनिसत्तम । सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदुःखनिबर्हणम् ॥१॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां योषितां तथा । समस्तकामफलदं सर्वव्रतफलप्रदम् ॥२॥
दुःस्वप्ननाशनं धर्म्यं दुष्टग्रहनिवारणम् । सर्वलोकेषु विख्यातं पूर्णिमाव्रतमुत्तमम्
येन चीर्णेन पापानां राशिकोटिः प्रशाम्यति ॥३॥
मार्गशीर्षे सितेपक्षे पूर्णायां नियतः शुचिः । स्नानं कुर्याद्यथाचारं दन्तधावनपूर्वकम् ॥४॥
शुक्लाम्बरधरः शुद्धो गृहमागत्य वाग्यतः । प्रक्षाल्य पादावाचम्य स्मरन्नारायणं प्रभुम् ॥५॥
नित्यं देवार्चनं कृत्वा पश्चात्संकल्पपूर्वकम् । लक्ष्मीनारायणं देवमर्चयेद्भक्तिभावतः ॥६॥
आवाहनासनाद्यैश्च गन्धपुष्पादिभिर्व्रती । नमो नारायणायेति पूजयेद्भक्तितत्परः ॥७॥

विष्णुलोक को चला जाता है जहाँ जाकर किसी प्रकार का शोक नहीं होता । विप्र ! जो इस उत्तम द्वादशी व्रत की कथा को सुनता या सुनाता है वह मनुष्य वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥११२-११३॥

श्री नारदीयपुराण में द्वादशी-माहात्म्यवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

अध्याय १८

उद्यापन विधि सहित लक्ष्मीनारायणव्रत का वर्णन

सनक बोले—मुनिवर्य ! अब सब पापों का नाश करने वाले, पुण्यदायक और सब दुःखों को दूर करने वाले श्रेष्ठव्रत को कह रहा हूँ, सुनो ॥१॥

पूर्णिमा का व्रत सब व्रतों में उत्तम, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्रियों की भी सब कामनाओं का पूर्ण करने वाला, सब व्रतों के फल को देने वाला, बुरे स्वप्नों के कुफल से बचाने वाला, धर्मप्रद, दुष्टग्रहों का निवारण करने वाला और लोक-विख्यात है, जिसके अनुष्ठान से पापों की असंख्य ढेरियाँ नष्ट हो जाती हैं ॥२-३॥ अगहन मास की पूर्णिमा को व्रती आचारानुकूल दातौन आदि नित्य क्रिया से निवृत्त हो संयम पूर्वक पवित्र भाव से स्नान करे। धुले श्वेत वस्त्र धारण कर मौन हो घर आकर पैरों को धोवे और प्रभु नारायण का स्मरण करता हुआ आचमन कर प्रति दिन की भाँति अपनी नित्य देव-पूजा समाप्त करे। फिर-संकल्पपूर्वक भक्तिभाव से भगवान् लक्ष्मीनारायण की पूजा करे ॥४-६॥ व्रती 'नमो नारायणाय' इस मन्त्र से श्रद्धापूर्वक आवाहन, आसनदान और गन्ध, पुष्प आदि सामग्री से भगवान् की पूजा करे । वह व्रती एकाग्रभाव से गीत,

व्रतकृत्सुसमाहितः ॥८॥
गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च पुराणपठनादिभिः । स्तोत्रैर्वाराधयेद्देवं
देवस्य पुरतः कृत्वा स्थण्डिलं चतुरस्रकम् । अरत्निमात्रं तत्राग्निं स्थापयेद्गृह्यमार्गतः ।
आज्यभागान्तपर्यन्तं कृत्वा पुरुषसूक्ततः । चरुणा च तिलैश्चापि घृतेन जुहुयात्तथा ॥९॥
एकवारं द्विवारं वा त्रिवारं वापि शक्तितः । होमं कुर्यात्प्रयत्नेन सर्वपापनिवृत्तये ॥१०॥
प्रायश्चित्तादिकं सर्वं स्वगृह्योक्तविधानतः । समाप्य होमं विधिवच्छान्तिसूक्तं जपेद्बुधः ॥११॥
पश्चाद्देवं समागत्य पुनः पूजां प्रकल्पयेत् । तथोपवासं देवाय ह्यर्पयेद्भक्तिसंयुतः ॥१२॥
पौर्णमास्यां निराहारः स्थित्वा देव तवाज्ञया । भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष परेऽह्नि शरणं भव ॥१३॥
इति विज्ञाप्य देवाय ह्यर्घ्यं दद्यात्तथैन्दवे । जानुभ्यामवनीं गत्वा शुक्लपुष्पाक्षतान्वितः ॥१४॥
क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिगोत्रसमुद्भव । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रोहिणीनायक प्रभो ।
एवमर्घ्यं प्रदायेन्दोः प्रार्थयेत्प्राञ्जलिस्ततः ॥१५॥
तिष्ठन्पूर्वमुखो भूत्वा पश्यन्निन्दुं च नारद ॥१६॥
नमः शुक्लांशवे तुभ्यं द्विजराजाय ते नमः । रोहिणीपतये तुभ्यं लक्ष्मीभ्रात्रे नमोऽस्तु ते ॥१७॥
ततश्च जागरं कुर्यात्पुराणश्रवणादिभिः । जितेन्द्रियश्च संशुद्धः पाषण्डालोकवर्जितः ॥१८॥
ततः प्रातः प्रकुर्वीत स्वाचारं च यथाविधि । पुनः संपूजयेद्देवं यथा विभववित्तरम् ॥१९॥
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या ततश्च प्रयतो नरः । बन्धुभृत्यादिभिः सार्धं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥२०॥
एवं पौषादिमासेषु पूर्णमास्यामुपोषितः । अर्चयेद्भक्तिसंयुक्तो नारायणमनामयम् ॥२१॥
एवं संवत्सरं कृत्वा कार्तिक्यां पूर्णिमादिने । उद्यापनं प्रकुर्वीत तद्विधानं वदामि ते ॥२२॥

बाद्य, नृत्य, पुराणपाठ और स्तोत्र आदि से भगवान् की आराधना करे ॥७-८॥ इसके बाद भगवान् के आगे एक अरत्नि (बँधी मुट्ठी वाला हाथ) लम्बी वर्गाकार वेदी बनाकर गृह्य सूत्रोक्त विधि से अग्नि स्थापन करे। आज्य भाग तक की विधि सम्पन्न कर सब पापों की निवृत्ति के लिए पुरुष सूक्तों के मन्त्रों से एक बार, दो बार तथा तीन बार तक शक्ति के अनुसार चरु, तिल और घी का यत्नपूर्वक हवन करे। ज्ञानी व्रती अपने गृह्यसूत्रों की विधि से हवन और प्रायश्चित्तादि कर्म समाप्त कर विधि पूर्वक शान्ति सूक्त का जप करे ॥९-११॥ इतनी विधि करने के पश्चात् पुनः भगवान् की पूजाकर अपने उपवास आदि व्रत को भक्तिपूर्वक भगवान् को ही 'देव! निराहार रहकर पूर्णिमा व्रत का अनुष्ठान करने के बाद दूसरे दिन भोजन करूँगा, पुण्डरीकाक्ष! आप मेरे शरणदायक होइए' यह कह कर अर्पित करे। तत्पश्चात् भगवान् को अर्घ्य दे और पृथ्वी पर घुटने टेक कर हाथ में श्वेत पुष्प, अक्षत लेकर 'क्षीर सागर से उत्पन्न! अत्रिवंशज! रोहिणीनायक! प्रभो! मेरे दिये अर्घ्य को ग्रहण कीजिए।' इस मन्त्र से चन्द्रमा को अर्घ्य दे ॥१२-१५॥ नारद! इस प्रकार चन्द्रमा को अर्घ्य देने के बाद हाथ जोड़कर पूर्वाभिमुख हो चन्द्रमा को देखता हुआ इस मन्त्र से प्रार्थना करे। मन्त्र—'श्वेत किरणों वाले तुमको नमस्कार है, द्विजराज को नमस्कार है, रोहिणी के पति और लक्ष्मी के भ्राता तुमको नमस्कार है।' इतनी क्रिया समाप्त करने के अनन्तर वह संयमी, पवित्र, व्रती पाषण्ड और दुर्जन की संगति से अपने को अलग रख कर पुराण श्रवण, कीर्तन आदि से रात्रि को जागरण करे ॥१६-१८॥ प्रातःकाल यथाविधि अपनी नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर पुनः अपने विभव के अनुकूल भगवान् की पूजा कर यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन करावे। तदनन्तर स्वयं व्रती भाई और सेवकों के सहित भोजन करे। इसी प्रकार पौष आदि मासों में पूर्णिमा के दिन निराहार रहकर भक्तिपूर्वक निर्विकार नारायण की पूजा करे ॥१९-२१॥

इस प्रकार वर्ष भर पूर्णिमा का व्रत करने के बाद कार्तिक की पूर्णिमा को व्रत का उद्यापन करना

मण्डपं कारयेद्दिव्यं चतुरस्रं सुमङ्गलम् । शोभितं पुष्पमालाभिर्वितानध्वजराजितम् ॥२३॥
बहुदीपसमाकीर्णं किङ्किणीजालशोभितम् । दर्पणैश्चामरैश्चैव कलशैश्च समावृतम् ॥२४॥
तन्मध्ये सर्वतोभद्रं पञ्चवर्णविराजितम् । जलपूर्णं ततः कुम्भं न्यसेत्तस्योपरि द्विज ॥२५॥
पिधाय कुम्भं वस्त्रेण सुसूक्ष्मेणातिशोभितम् । हेम्ना वा रजतेनापि तथा ताम्रेण वा द्विज ।
लक्ष्मीनारायणं देवं कृत्वा तस्योपरि न्यसेत् ॥२६॥
पञ्चामृतेन संस्नाप्याभ्यर्च्य गन्धादिभिः क्रमात् । भक्ष्यैर्भोज्यादिनैवेद्यैर्भक्तितः संयतेन्द्रियः ॥२७॥
जागरं च तथा कुर्यात्सम्यक्छ्रद्धासमन्वितः । परेऽह्नि प्रातर्विधिवत्पूर्ववद्विष्णुमर्चयेत् ॥२८॥
आचार्याय प्रदातव्या प्रतिमा दक्षिणान्विता । ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या विभवे सत्यवारितम् ॥२९॥
तिलदानं प्रकुर्वीत यथाशक्त्या समाहितः । कुर्यादग्नौ च विधिवत्तिलहोमं विचक्षणः ॥३०॥
एवं कृत्वा नरः सम्यक् लक्ष्मीनारायणव्रतम् । इह भुक्त्वा महाभोगान्पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥३१॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः कुलायुतसमन्वितः । प्रयाति विष्णुभवनं योगिनामपि दुर्लभम् ॥३२॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे व्रताख्याने मार्गशीर्षपौर्णिमायां लक्ष्मीनारायणव्रतं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

चाहिए। व्रत उद्यापन की जो विधि है उसको कह रहा हूँ सुनो। पहले चौकोर, शुभ और दिव्य मण्डप बनावे। उसको, फूलों की माला, चँदवा और ध्वजाओं से सजावे। दीपक, किंकिणी, दर्पण, चामर और कलशों से भली भाँति सुशोभित करे। मध्य भाग में पाँच रंगों से रंगा हुआ सर्वतोभद्र चक्र बनावे ॥२२-२४॥ द्विज! उस चक्र पर जल से भरा एक मंगल-कलश रख कर उसको अति सूक्ष्म वस्त्र से ढँक दे। द्विज! सोना, चाँदी अथवा अथवा ताँबे की लक्ष्मीनारायण की मूर्ति बनाकर उसे कलश के ऊपर रखे। संयम रखने वाला वह व्रती भक्ति पूर्वक पंचामृत से भगवान् को नहलाकर गंध, पुष्प, नैवेद्य आदि नाना मधुर भोज्य पदार्थों से पूजन करे। रात्रि में श्रद्धा पूर्वक कीर्तन, पाठ आदि करता हुआ जागरण करे और दूसरे दिन प्रातःकाल पूर्व की भाँति विधिवत् पूजा करे फिर दक्षिणा के सहित उस प्रतिमा को आचार्य के हाथ दान कर दे ॥२५-२८॥ सम्पत्ति रहने पर यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराने के बाद वह विद्वान् व्रती शक्ति के अनुसार एकाग्रभाव से तिल दान करे और विधिवत् हवन भी करे। इस विधि से भली भाँति लक्ष्मीनारायण-व्रत का अनुष्ठान कर मनुष्य इस लोक में पुत्र, पौत्र आदि के सहित लौकिक भोगों को भोगता है और मृत्यु के बाद अपने दश सहस्र कुलों के साथ पाप-मुक्त होकर योगियों के लिए भी दुर्लभ विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥२९-३२॥

श्रीनारदीय पुराण के व्रताख्यान प्रकरण में मार्गशीर्ष पूर्णिमा को किये किये जाने वाले लक्ष्मीनारायणव्रत का वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

सनक उवाच

सर्वपापहरं पुण्यं विष्णुप्रीणनकारणम् ॥१॥
अन्यद्व्रतं प्रवक्ष्यामि ध्वजारोपणसंज्ञितम् । संपूज्यते विरिञ्च्याद्यैः किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥२॥
यः कुर्याद्विष्णुभवने ध्वजारोपणमुत्तमम् । तत्फलं तुल्यमात्रं स्याद्ध्वजारोपणकर्मणः ॥३॥
हेमभारसहस्रं तु यो ददाति कुटुम्बिने । अथवा तुलसीसेवा शिवलिङ्गप्रपूजनम् ॥४॥
ध्वजारोपणतुल्यं स्याद्गङ्गस्नानमनुत्तमम् । सर्वपापहरं कर्म ध्वजारोपणसंज्ञितम् ॥५॥
अहोऽपूर्वमहोऽपूर्वमहोऽपूर्वमिदं द्विज । तानि सर्वाणि वक्ष्यामि शृणुष्व गदतो मम ॥६॥
सन्ति वै यानि कार्याणि ध्वजारोपणकर्मणि । स्नानं कुर्यात्प्रयत्नेन दन्तधावनपूर्वकम् ॥७॥
कार्तिकस्य सिते पक्षे दशम्यां प्रयतो नरः । धौताम्बरधरः शुद्धो विप्रो नारायणाग्रतः ॥८॥
एकाशी ब्रह्मचारी च स्वपेन्नारायणं स्मरन् । नित्यकर्माणि निर्वर्त्य पश्चाद्विष्णुं समर्चयेत् ॥९॥
ततः प्रातः समुत्थाय स्नात्वाचम्य यथाविधि । नान्दीश्राद्धं प्रकुर्वीत ध्वजारोपणकर्मणि ॥१०॥
चतुर्भिर्ब्राह्मणैः सार्द्धं कृत्वा च स्वस्तिवाचनम् । सूर्यं च वैनतेयं च हिमांशुं तत्परोऽर्चयेत् ॥११॥
ध्वजस्तम्भौ च गायत्र्या प्रोक्षयेद्वस्त्रसंयुतौ । हरिद्राक्षतगन्धाद्यैः शुक्लपुष्पैर्विशेषतः ॥१२॥
धातारं च विधातारं पूजयेद्ध्वजदण्डके ।

अध्याय १९

विष्णु-मन्दिर में ध्वजारोपण

सनक बोले--दूसरे ध्वजारोपण नामक व्रत के विषय में, जो सब पापों को नष्ट करने वाला, पुण्यदा-
यक और भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाला है, कह रहा हूँ। जो मनुष्य विष्णु मन्दिर में भली भाँति ध्वजा-
रोपण कर्म करता है वह ब्रह्मा आदि देवताओं से भी पूजित होता है, इसके विषय में और अधिक क्या कहा
जाय। जो व्यक्ति किसी परिवार वाले ब्राह्मण को एक हजार भार सोना दान में देता है, उसके बराबर फल
ध्वजारोपण कर्म से प्राप्त होता है। ध्वजारोपण कर्म परमोत्तम गंगास्नान, तुलसीसेवा अथवा शिवलिङ्ग की पूजा के
समान फल को देने वाला है ॥१-४॥ द्विज ! क्या ही यह अपूर्व कर्म है, अपूर्वकर्म है, अपूर्वकर्म है, यह ध्वजा-
रोपण नामक कर्म सब पापों को दूर करने वाला है, इस ध्वजारोपण कर्म की जितनी विधियाँ हैं, उनको कह रहा
हूँ, सुनो ॥५-६॥

कार्तिक-शुक्ल-दशमी को मनुष्य संयम पूर्वक रहे, दातौन आदि से छुटकारा पाकर भली भाँति स्नान करे।
विप्र ! ब्रह्मचर्य और एकाहार व्रत धारण कर वह व्रती शुद्धता के साथ स्वच्छ वस्त्र पहने और भगवान् नारायण
के सामने ही नामस्मरण करता हुआ सोये। प्रातः काल उठकर यथा विधि आचमन, स्नान आदि नित्य कर्मों से
निवृत्त होने के बाद विष्णु की पूजा करे। ध्वजारोपण कर्म में सबसे पहले चार ब्राह्मणों के साथ स्वस्ति पाठ कर
नान्दी-श्राद्ध करे ॥७-१०॥ गायत्री मन्त्र से दो ध्वज-स्तम्भों को, जिनमें वस्त्र लपेटे गये हों, नहलाये।
तदनन्तर सूर्य, गरुड़ और चन्द्रमा की पूजा करे। ध्वज-दण्ड पर हल्दी, गंध, अक्षत और विशेष रूप से श्वेत पुष्प

ततो गोचर्ममात्रं तु स्थण्डिलं चोपलिप्य वै । आधायाग्निं स्वगृह्योक्त्याह्याज्यभागादिकं क्रमात् ॥१३॥
जुहुयात्पायसं चैव साज्यमष्टोत्तरं शतम् । प्रथमं पौरुषं सूक्तं विष्णोर्नुकमिरावतीम् ॥१४॥
ततश्च वैनतेयाय स्वाहेत्यष्टाहुतीस्तथा । सोमो धेनुमुदुत्यं च जुहुयाच्च ततो द्विज ॥१५॥
सौरमन्त्राञ्जपेत्तत्र शान्तिसूक्तानि शक्तितः । रात्रौ जागरणं कुर्यादुपकण्ठं हरेः शुचिः ॥१६॥
॥१७॥
ततः प्रातः समुत्थाय नित्यकर्म समाप्य च । गन्धपुष्पादिभिर्देवमर्चयेत्पूर्ववत्क्रमात् ॥१८॥
ततो मङ्गलवाद्यैश्च सूक्तपाठैश्च शोभनम् । नृत्यैश्च स्तोत्रपठनैर्नयेद्विष्णवालये ध्वजम् ॥१९॥
देवस्य द्वारदेशे वा शिखरे वा मुदान्वितः । सुस्थिरं स्थापयेद्विप्रध्वजं सुस्तम्भसंयुतम् ॥२०॥
गन्धपुष्पाक्षतैर्देवं धूपदीपैर्मनोहरैः । भक्ष्यभोज्यादिसंयुक्तैर्नैवेद्यैश्च हरिं यजेत् ॥२१॥
एवं देवालये स्थाप्य शोभनं ध्वजमुत्तमम् । प्रदक्षिणमनुव्रज्य स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥२२॥
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥२३॥
येनेदमखिलं जातं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् । लयमेष्यति यत्रैवं तं प्रपन्नोऽस्मि केशवम् ॥२४॥
न जानन्ति परं भावं यस्य ब्रह्मादयः सुराः । योगिनो यं न पश्यन्ति तं वन्दे ज्ञानरूपिणम् ॥२५॥
अन्तरिक्षं तु यन्नाभिर्द्यौर्मूर्द्धा यस्य चैव हि । पादोऽभूद्यस्य पृथिवी तं वन्दे विश्वरूपिणम् ॥२६॥
यस्य श्रोत्रे दिशः सर्वा यच्चक्षुर्दिनकृच्छशी । ऋक्सामयजुषी येन तं वन्दे ब्रह्मरूपिणम् ॥२७॥
यन्मुखाद्ब्राह्मणा जाता यद्बाहोरभवन्नृपाः । वैश्या यस्योरुतो जाताः पद्भ्यां शूद्रो व्यजायत ॥

से धाता और विधाता की पूजा करे । इतनी क्रिया के बाद गौ के चमड़े के बराबर विस्तार वाली भूमि को भली भाँति लीपकर अपने गृह्य सूत्र की विधि से अग्नि स्थापन और क्रमशः आज्य भाग आदि विधियाँ करे । एक सौ आठ बार खीर की आहुतियाँ दे । पहले पुरुष सूक्त से विष्णु, ब्रह्मा और लक्ष्मी के लिए हवन करे । तत्पश्चात् वैनतेयाय स्वाहा, इस मन्त्र से आठ आहुतियाँ दे । द्विज ! इसके बाद चन्द्रमा, कामधेनु और सूर्य के निमित्त आहुतियाँ दे ॥११-१५॥ वहाँ हरि के समीप शक्ति के अनुसार सौर मन्त्र और शान्ति सूक्त का जप करे। उसी मन्दिर में भगवान् के समीप ही जागरण के द्वारा रात को बितावे । प्रातः काल उठकर नित्य क्रिया से निवृत्त होकर क्रमशः गंध, पुष्प आदि से भगवान् की पूजा करे । पूजन के बाद मांगलिक बाजे बजाते हुए, नृत्य-गीत गाते हुए सूक्त, स्तोत्र का पाठ करते हुए विष्णु मन्दिर में उस ध्वजा को ले जाना चाहिए ॥१६-१८॥ विप्र ! देव-मन्दिर के द्वार पर अथवा मन्दिर के शिखर पर प्रसन्नता के साथ किसी स्तम्भ से मिलाकर उसको स्थिरतापूर्वक स्थापित करना चाहिए । गंध, पुष्प, अक्षत और मनोहर धूप, दीप और सुस्वादु भोज्य पदार्थों के सहित मधुर अन्न से विष्णु की पूजा करनी चाहिए। इस विधि से देवालय में उत्तम सुन्दर ध्वजा की स्थापना करने के पश्चात प्रदक्षिणा कर स्तोत्र पाठ करना चाहिए—पुण्डरीकाक्ष ! तुमको नमस्कार है, विश्वव्यापक ! नमस्कार है, हृषीकेश ! महापुरुषों के पूर्वज ! नमस्कार है ॥१९-२२॥ जिससे यह सारा विश्व उत्पन्न हुआ, जिसमें यह स्थित और जिसमें पुनः लीन होता है उस केशव की शरण में हूँ । जिसके परम तत्त्व को ब्रह्मा आदि देवता नहीं जान पाते हैं, योगी जिसको नहीं देख पाते हैं उस ज्ञान स्वरूप ब्रह्म को नमस्कार है । अन्तरिक्ष जिसकी नाभि, आकाश मूर्द्धा और पृथ्वी जिसका चरण है उस विश्वरूप को नमस्कार है । जिसके दोनों कान दिशायें, सूर्य और चन्द्रमा जिसके नेत्र और ऋक् यजुस् और साम जिससे व्याप्त हैं उस वेद रूप भगवान् की वन्दना करता हूँ ॥२३-२६॥ माया के संसर्ग मात्र से जिसके मुख से ब्राह्मण और भुजाओं से सब क्षत्रिय उत्पन्न हुए, जिसके ऊरु (जंघा) से वैश्य और चरणों

स्वभावविमलं शुद्धं निर्विकारं निरञ्जनम् ॥२८॥
मायासङ्गमात्रेण वदन्ति पुरुषं त्वजम् । सद्भक्तवत्सलं विष्णुं भक्तिगम्यं नमाम्यहम् ॥२९॥
क्षीराब्धिशायिनं देवमनन्तमपराजितम् । सूक्ष्मासूक्ष्माणि येनासंस्तं वन्दे सर्वतोमुखम् ॥३०॥
पृथिव्यादीनि भूतानि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च । निर्गुणं परमं सूक्ष्मं प्रणतोऽस्मि पुनः पुनः ॥३१॥
यद्ब्रह्म परमं धाम सर्वलोकोत्तमोत्तमम् । यमामनन्ति योगीन्द्राः सर्वकारणकारणम् ॥३२॥
अविकारमजं शुद्धं सर्वतोबाहुमीश्वरम् । निर्गुणः परमात्मा च स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥३३॥
यो देवः सर्वभूतानामन्तरात्मा जगन्मयः । निर्गुणः परमात्मा च स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥३४॥
हृदयस्थोऽपि दूरस्थो मायया मोहितात्मनाम् । ज्ञानिनां सर्वगो यस्तु स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥३५॥
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च । हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥३६॥
ज्ञानिनां कर्मिणां चैव तथा भक्तिमतां नृणाम् । गतिदाता विश्वसृग्यः स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥३७॥
जगद्धितार्थं ये देहा ध्रियन्ते लीलया हरेः । तानर्चयन्ति विबुधाः स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥३८॥
यमामनन्ति वै सन्तः सच्चिदानन्दविग्रहम् । निर्गुणं च गुणाधारं स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥३९॥
इति स्तुत्वा नमेद्विष्णुं ब्राह्मणांश्च प्रपूजयेत् । आचार्यम् पूजयेत्पश्चाद्दक्षिणाच्छादनादिभिः ॥४०॥
ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या भक्तिभावसमन्वितः । पुत्रमित्रकलत्राद्यैः स्वयं च सह बन्धुभिः ।
कुर्वीत पारणं विप्र नारायणपरायणः ॥४१॥
यस्त्वेतत्कर्म कुर्वीत ध्वजारोपणमुत्तमम् । तस्य पुण्यफलं वक्ष्ये शृणुष्व सुसमाहितः ॥४२॥
पटो ध्वजस्य विप्रेन्द्र यावच्चलति वायुना । तावन्ति पापजालानि नश्यन्त्येव न संशयः

जो निर्विकार, निरंजन, क्षीरसागरशायी, देव, अनन्त, अपराजित, सद्भक्तवत्सल कहते हैं, और जो भक्ति से प्राप्त करने योग्य है उस विष्णु को नमस्कार करता हूँ। जिससे पृथ्वी आदि पंच महाभूत, गन्ध आदि तन्मात्रायें,[1] सब इन्द्रियाँ, सूक्ष्म और असूक्ष्म पदार्थ उत्पन्न हुए, उस सर्वतोमुख की वन्दना करता हूँ ॥२७-३०॥ जो ब्रह्म परम धाम, सब लोकों में परमोत्तम, निर्गुण, परम और सूक्ष्म है उसको बार-बार नमस्कार करता हूँ। सब कारणों के भी कारण, निर्विकार, अज, शुद्ध, सर्वतोबाहु और ईश्वर जिसको योगीन्द्र प्रणाम करते है, जो देव सब प्राणियों के अन्तरात्मा, जगन्मय, निर्गुण, परमात्मा हैं, वे विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥३१-३३॥ जो माया मोहित जनों के हृदय में रहते हुए भी उनसे दूर है, जो ज्ञानी मनुष्यों के लिए सर्वथा प्राप्य हैं वे विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हों। जो चार, चार, दो-दो और पाँच आहुतियों से हविस् ग्रहण करते हैं अर्थात् जिसके निमित्त सर्वप्रथम चार-चार, दो-दो और पाँच बार आहुतियाँ दी जाती हैं वे विष्णु मुझ पर प्रसन्न हों ॥३४-३५॥ जो ज्ञानी, कर्मी और भक्त जनों के गति-दाता, विश्व के एकमात्र प्राप्य हैं वे विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हों। भगवान् विष्णु जगत्कल्याण के लिए लीलापूर्वक जिन शरीरों को धारण करते हैं, देवता जिनकी पूजा करते हैं, वे विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हों। सन्त लोग जिस सच्चिदानन्द स्वरूप धारण करने वाले भगवान् की पूजा करते हैं, जो निर्गुण, निराधार हैं वे विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥३६-३८॥ इस प्रकार विष्णु की स्तुति करने के बाद उन्हें नमस्कार करे; फिर ब्राह्मणों की पूजा के अनन्तर आचार्य की दक्षिणा, वस्त्र आदि से विधिवत् पूजा करनी चाहिए। विप्र! भक्तिभाव से यथा शक्ति ब्राह्मण भोजन करा कर स्वयं पुत्र, मित्र, स्त्री और बन्धुजनों के साथ नारायण-परायण होकर पारण करना चाहिए। ॥३९-४०॥

विप्र! जो व्यक्ति इस उत्तम ध्वजारोपण कर्म को करता है, उसके पुण्य-फल को कह रहे हैं, सावधान होकर सुनो। विप्रेन्द्र! उस ध्वजा का वस्त्र जितने दिनों तक वायु से फहराता रहता है उसके उतने ही पाप-समूह

---

१. गन्ध, रूप, रस, स्पर्श और रूप तन्मात्रा कहलाते हैं।

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः । ध्वजं विष्णुगृहे कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥४३॥
यावद्दिनानि तिष्ठेत ध्वजो विष्णुगृहे द्विज । तावद्युगसहस्राणि हरिसारूप्यमश्नुते ॥४४॥
आरोपितं ध्वजं दृष्टवा येऽभिनन्दन्ति धार्मिकाः । तेऽपि सर्वे प्रमुच्यन्ते महापातककोटिभिः ॥४५॥
आरोपितो ध्वजो विष्णुगृहे धुन्वन्पटं स्वकम् । कर्तुः सर्वाणि पापानि धुनोति निमिषार्द्धतः ॥४६॥
यस्त्वारोप्य गृहे विष्णोर्ध्वजं नित्यमुपाचरेत् । स देवयानेन दिवं यातीव सुमतिर्नृपः ॥४७॥
इति श्री बृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे व्रताख्याने ध्वजारोपणन्नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

नारद उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग । सर्वकर्मवरिष्ठं च त्वयोक्तं ध्वजधारणम् ॥१॥
यस्तु वै सुमतिर्नाम ध्वजारोपपरो मुने । त्वयोक्तस्तस्य चरितं विस्तरेण ममादिश ॥२॥

सनक उवाच

शृणुष्वैकमनाः पुण्यमितिहासं पुरातनम् । ब्रह्मणा कथितं मह्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥३॥

नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं । महापापों से युक्त अथवा सब पापों के करने वाले व्यक्ति विष्णु मन्दिर में ध्वजारोपण कर सब पापों से छूट जाते हैं ॥४१-४३॥ जितने दिनों तक वह ध्वजा रहती है वह उतने हजार युगों तक विष्णु का सारूप्य मोक्ष प्राप्त करता है । जो धार्मिक आरोपित ध्वजा को देखकर नमस्कार करते हैं, वे भी अपने करोड़ों महापापों से मुक्त हो जाते हैं । विष्णु-मन्दिर में आरोपित हुआ ध्वज अपने वस्त्र को हिलाता हुआ कर्ता के सब पापों को एक पल में नष्ट कर देता है । जो सुमति नामक राजा विष्णु के मन्दिर में ध्वज की स्थापना कर नित्य प्रति पूजा करता था वह आज भी देव-विमान से स्वर्ग लोक को जाता हुआ सा प्रतीत होता है ॥४४-४७॥

श्रीनारदीयपुराण में ध्वजारोपण नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

अध्याय २०

सोमवंशी राजा सुमति का अपने पूर्वजन्म का इतिहास-कथन

नारद बोले--भगवन् ! सब धर्मों के जानने वाले ! सब शास्त्रों के पारगामी ! आपने ध्वजारोपण को सब कर्मों में श्रेष्ठ कहा है । मुनिवर ! ध्वजारोपण करने वाले सुमति नामक जिस राजा के चरित्र का वर्णन अभी किया है उसको विस्तार पूर्वक मुझसे कहिए ॥१-२॥

सनक बोले--उस पुरातन, सब पापों को दूर करने वाले पुण्यदायक इतिहास को एकाग्र होकर सुनो, जिस को ब्रह्मा ने स्वयं मुझसे कहा है बहुत पहले, कृत युग में सोमवंशी सुमति नामक राजा था, जो श्रीमान्, सातों

श्रीमान्सप्तद्वीपैकनायकः ॥४॥
आसीत्पुरा कृतयुगे सुमतिर्नाम भूपतिः । सोमवंशोद्भवः सर्वसंपद्विभूषितः ॥५॥
धर्मात्मा सत्यसंपन्नः शुचिर्वंश्योऽतिथिप्रियः । सर्वलक्षणसंपन्नः शुश्रूषुर्निरहंकृतिः ॥६॥
सदा हरिकथासेवी हरिपूजापरायणः । हरिभक्तपराणां च कीर्तिमांस्तथा ॥७॥
पूज्यपूजारतो नित्यं समदर्शी गुणान्वितः । सर्वभूतहितः शान्तः कृतज्ञः सत्यमतिर्मुने ॥८॥
तस्य भार्या महाभागः सर्वलक्षणसंयुता । पतिव्रता पतिप्राणा नाम्ना सत्यमतिर्मुने ॥८॥
तावुभौ दम्पती नित्यं हरिपूजापरायणौ । जातिस्मरौ महाभागौ सत्यज्ञौ सत्परायणौ ॥९॥
अन्नदानरतौ नित्यं जलदानपरायणौ । तडागारामवप्रादीनसंख्यातान्वितेनतुः ॥१०॥
सा तु सत्यमतिर्नित्यं शुचिर्विष्णुगृहे सती । नृत्यत्यत्यन्तसन्तुष्टा मनोज्ञा मञ्जुवादिनी ॥११॥
सोऽपि राजा महाभागो द्वादशीद्वादशीदिने । ध्वजमारोपयत्येव मनोज्ञं बहुविस्तरम् ॥१२॥
एवं हरिपरं नित्यं राजानं धर्मकोविदम् । प्रियां सत्यमतिं चास्य देवा अपि सदास्तुवन् ॥१३॥
त्रिलोके विश्रुतौ ज्ञात्वा दम्पती धर्मकोविदौ । आययौ बहुभिः शिष्यैर्द्रष्टुकामो विभाण्डकः ॥१४॥
तमायांतं मुनिं श्रुत्वा स तु राजा विभाण्डकम् । प्रत्युद्ययौ सपत्नीकः पूजाभिर्बहुविस्तरम् ॥१५॥
कृतातिथ्यक्रियं शान्तं कृतासनपरिग्रहम् । नीचासनस्थितो भूपः प्राञ्जलिर्मुनिमब्रवीत् ॥१६॥

राजोवाच

भगवन्कृतकृत्योऽस्मि त्वदभ्यागमनेन वै । सतामागमनं सन्तः प्रशंसन्ति सुखावहम् ॥१७॥
यत्र स्यान्महतां प्रेम तत्र स्युः सर्वसम्पदः । तेजः कीर्तिर्धनं पुत्रा इति प्राहुर्विपश्चितः ॥१८॥

द्वीपों का एकमात्र शासक, धर्मात्मा, सत्यप्रेमी, शुद्ध परिवार वाला, अतिथिसेवक, सब लक्षणों से युक्त और सब ऐश्वर्यों से सम्पन्न था ॥३-५॥ वह सर्वदा हरि-कथा में मग्न और भगवान् की पूजा को ही अपना लक्ष्य समझता था। अहंकार-रहित होकर हरि-भक्तों की सेवा किया करता था। समदर्शी, गुणी वह राजा पूज्यों की पूजा करता तथा सब प्राणियों के हित में लगा रहता था। वह परम शान्त, कृतज्ञ और यशस्वी था ॥६-७॥

मुनि ! उस राजा को सत्यमति नाम की सौभाग्यवती, सब शुभ लक्षणों से युक्त, पतिव्रता और पति को प्राणों से भी बढ़कर समझने वाली स्त्री थी। वे दोनों पति-पत्नी सर्वदा विष्णु की पूजा किया करते थे। सौभाग्यशाली, सत्य के जानने वाले और सत्यपरायण उन दोनों को पूर्व जन्म की बातों का भी ज्ञान था। वे नित्य अन्न और जल का दान करते थे और असंख्य, तालाब, वाटिका और धर्मशाला आदि बनवाते थे। वह मंजुभाषिणी सत्यमति प्रति दिन पवित्र भाव से विष्णु मन्दिर में प्रसन्न होकर नृत्य करती थी ॥८-११॥ वह राजा भी प्रति द्वादशी को मनोहर और बहुत बड़ी ध्वजा की स्थापना किया करता था। ऐसे हरिभक्त, धर्मज्ञ, राजा और उसकी रानी सत्यमति की देवता भी सर्वदा स्तुति किया करते थे। उस धर्मज्ञ दम्पती का तीनों लोकों में यश सुनकर अनेकों शिष्यों के साथ विभांडक ऋषि मिलने के लिए आये। राजा ने मुनि विभांडक का आगमन सुनकर पत्नी सहित बड़े समारोह के साथ अगवानी की। बड़ी श्रद्धा से अतिथिसत्कार कर उस शान्त मुनि को आसन पर बैठाया। राजा स्वयं मुनि के समीप एक लघु आसन पर बैठकर हाथ जोड़कर मुनि से बोला ॥१२-१६॥

राजा बोला---भगवन् ! आपके इस शुभागमन से मैं कृतकृत्य हूँ, सज्जन व्यक्ति सुखदायक सज्जन सन्तों के आगमन की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। जिस व्यक्ति पर पुण्यात्माओं का स्नेह होता है उसको सारी संपत्तियाँ, तेज, यश, धन, और पुत्र आदि सब कुछ प्राप्त होते हैं, ऐसा विद्वानों ने कहा है। मुनिवर्य ! प्रभो ! जिस पर सज्जनों

तत्र वृद्धिमुपायान्ति श्रेयांस्यनुदिनं मुने । यत्र सन्तः प्रकुर्वन्ति महतीं करुणां प्रभो ॥१९॥
यो मूर्ध्नि धारयेद्ब्रह्मन्महत्पादजलं रजः । स स्नातः सर्वतीर्थेषु पुण्यात्मा नात्र संशयः ॥२०॥
मम पुत्राश्च दाराश्च संपत्त्वयि समर्पिताः । मामाज्ञापय विप्रेन्द्र किं प्रियं करवाणि ते ॥२१॥
विनयावनतं भूपं स निरीक्ष्य मुनीश्वरः । स्पृशन्करेण तं प्रीत्या प्रत्युवाचातिहर्षितः ॥२२॥

ऋषिरुवाच

राजन्यदुक्तं भवता तत्सर्वं त्वत्कुलोचितम् । विनयावनतः सर्वो बहुश्रेयो लभेदिह ॥२३॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्च नृपसत्तम । विनयाल्लभते मर्त्यो दुर्लभं किं महात्मनाम् ॥२४॥
प्रीतोऽस्मि तव भूपाल सन्मार्गपरिवर्त्तिनः । स्वस्ति ते सततं भूयाद्यत्पृच्छामि तदुच्यताम् ॥२५॥
पूजाबहुविधाः सन्ति हरितुष्टिविधायिकाः । तासु नित्यं ध्वजारोपे वर्तसे त्वं सदोद्यतः ॥२६॥
भार्यापि तव साध्वीयं नित्यं नृत्यपरायणा । किमर्थमेतद्वृत्तान्तं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥२७॥

राजोवाच

शृणुष्व भगवन्सर्वं यत्पृच्छसि वदामि तत् । आश्चर्यभूतं लोकानामावयोश्चरितं त्विह ॥२८॥
अहमासं पुरा शूद्रो मालिनिर्नाम सत्तम । कुमार्गनिरतो नित्यं सर्वलोकाहिते रतः ॥२९॥
पिशुनो धर्मविद्वेषी देवद्रव्यापहारकः । गोघ्नश्च ब्रह्महा चौरः सर्वप्राणिवधे रतः ॥३०॥
नित्यं निष्ठुरवक्ता च पापी वेश्यापरायणः । एवं स्थितः कियत्कालमनादृत्य महद्वचः ॥३१॥
सर्वबन्धुपरित्यक्तो दुःखी वनमुपागतः । मृगमांसाशनो नित्यं तथा पान्थविलुम्पकः ॥३२॥

की महान् कृपा होती है, उसके श्रेय और पुण्य दिनों दिन बढ़ते हैं। ब्रह्मन् ! जो महापुरुषों के चरणोदक और चरणरज को अपने शिर पर धारण करता है उस पुण्यात्मा ने मानो सब तीर्थों में स्नान कर लिया, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं। मेरे पुत्र, स्त्री और सारा कोश आपकी सेवा में अर्पित है। विप्रेन्द्र ! मुझे आज्ञा दीजिए, कौन सी आपकी प्रिय सेवा करूँ। वे मुनिश्वर उस विनीत राजा को देखकर उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए बड़े प्रेम से बोले ॥१७-२२॥

ऋषि बोले––राजन् ! जो कुछ तुमने कहा, वह सब तुम्हारे कुल के सर्वथा अनुरूप है, इस संसार में विनयशील व्यक्ति को सब श्रेय प्राप्त होते हैं नृपवर्य ! मनुष्य विनय के द्वारा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सब कुछ प्राप्त करता है, महापुरुषों के लिए इस संसार में दुर्लभ क्या है ? भूपाल ! सन्मार्ग का प्रदर्शन करने वाले तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ,तुम्हारा सर्वदा कल्याण हो, आज मैं जो कुछ पूछ रहा हूँ, उसका उत्तर दो। भगवान् को प्रसन्न करने वाली बहुत सी पूजा-विधियाँ हैं, परन्तु तुम उनमें सर्वदा ध्वजारोपण ही उत्साह के साथ किया करते हो, तुम्हारी वह साध्वी भार्या भी नित्य मन्दिर में नृत्य किया करती है, इस विषय में मुझे यथार्थ बात बतलाओ ॥२३-२७॥

राजा ने कहा–– भगवन् ! आप जो कुछ-पूछ रहे हैं, उसको मैं बता रहा हूँ, सुनिए। इस संसार में हम दोनों का चरित्र लोक के लिए आश्चर्यजनक है। मुनिसत्तम ! मैं पहले मालिनि नामक शूद्र था। सर्वदा मैं कुमार्ग में लगा रहता और प्राणियों का अहित किया करता था। सदा धर्म से द्वेष करना, देव सम्पत्ति का अपहरण करना, चुगली करना, गोहत्या, ब्रह्महत्या, चोरी और प्राणिवध मेरा काम था ॥२८-३०॥ निष्ठुर बातें करना, वेश्यागमन और पापाचरण ही मेरे नित्य के प्रिय कार्य थे। कुछ काल तक महापुरुषों की बातों के अनादर कर इसी प्रकार असत्कर्म करता रहा। निदान मैं सब बान्धवों और परिवार को छोड़कर दुःखी हो वन में चला गया। उस निर्जन वन में मृग मांस खाकर दिन बिताता और प्रति दिन पथिकों को लूटता था, इस प्रकार अकेला उद्वेगजनक कार्यों को करता हुआ वन में रहने लगा। एक दिन भूख-प्यास से व्याकुल ग्रीष्म की ज्वाल

पिपासितः ॥३३॥
एकाकी दुःखबहुलो न्यवसन्निर्जने वने । एकदा क्षुत्परिश्रान्तो निदाघार्त्तः
जीर्णं देवालयं विष्णोरपश्यं विजने वने । हंसकारण्डवाकीर्णं तत्समीपे महत्सरः ॥३४॥
पर्यन्तवनपुष्पौघच्छादितं तन्मुनीश्वर । अपिबं तत्र पानीयं तत्तीरे विगतश्रमः ॥३५॥
फलानि जग्ध्वा शीर्णानि स्वयं क्षुच्च निवारिता । तस्मिञ्जीर्णालये विष्णोर्निवासं कृतवानहम् ॥३६॥
जीर्णस्फुटितसंधानं तस्य नित्यमकारिषम् । पर्णैस्तृणैश्च काष्ठौघैर्गृहं सम्यक् प्रकल्पितम् ॥३७॥
स्वसुखार्थं तु तद्भूमिर्मया लिप्ता मुनीश्वर । तत्राहं व्याधवृत्तिस्थो हत्वा बहुविधान्मृगान् ॥३८॥
आजीवं वर्तयन्नित्यं वर्षाणां विंशतिः स्थितः । अथेयमागता साध्वी विन्ध्यदेशसमुद्भवा ॥३९॥
निषादकुलजा विप्र नाम्ना ख्याताऽवकोकिला । बन्धुवर्गपरित्यक्ता दुःखिता जीर्णविग्रहा ॥४०॥
क्षुत्तृड्घर्मपरिश्रान्ता शोचन्ती स्वकृतं ह्यघम् । दैवयोगात्समायाता भ्रमन्ती विजने वने ॥४१॥
ग्रीष्मतापार्दिता बाह्ये स्वान्ते चाधिनिपीडिता । इमां दुःखार्दितां दृष्ट्वा जाता मे विपुला दया ॥४२॥
दत्तं मया जलं चास्यै मांसं वन्यफलानि च । गतश्रमा त्वियं ब्रह्मन्मया पृष्टा यथातथम् ॥४३॥
अवेदयत्स्ववृत्तान्तं तच्छृणुष्व महामुने । नाम्नावकोकिला चाहं निषादकुलसम्भवा ॥४४॥
दारुकस्य सुता चाहं विन्ध्यपर्वतवासिनी । परस्वहारिणी नित्यं सदा पैशुन्यवादिनी ॥४५॥
पुंश्चलीत्येवमुक्त्वा तु बन्धुवर्गैः समुज्झिता । कियत्कालं ततः पत्या भृताहं लोकनिन्दिता ॥४६॥
दैवात्सोऽपि गतो लोकं यमस्यात्र विहाय माम् । कान्तारे विजने चैका भ्रमन्ती दुःखपीडिता ॥४७॥
दैवात्त्वत्सविधं प्राप्ता जीविताहं त्वयाधुना । इत्येवं स्वकृतं कर्म मह्यं सर्वं न्यवेदयत् ॥४८॥

से संतप्त और थका हुआ सा इधर-उधर घूम रहा था, इतने में उस निर्जन वन में एक विष्णु का टूटा हुआ मन्दिर दिखलायी दिया ॥३१-३३½॥ उसके समीप ही हंस और कारंडव पक्षियों से सुशोभित एक महान् सरोवर था। मुनीश्वर! उसका तट प्रदेश वन्य पुष्पों से आच्छादित था। वहाँ मैंने पानी पिया और तीर पर बैठकर सारी थकावट दूर की। भूमि पर गिरे पके फलों को खाकर अपनी भूख मिटाई। उस जीर्ण शीर्ण देव-मन्दिर में मैंने अपना निवास-स्थान बनाया ॥३४-३६॥ प्रतिदिन उसकी जीर्ण और फटी दरारों को स्वयं जोड़ना प्रारम्भ किया। पत्तियों, घासों और लकड़ियों से एक अच्छा घर भी बना लिया। मुनीश्वर! अपने सुख के लिए उस भूमि को लीप पोत कर रहने के योग्य बनाया। वहाँ मैं व्याध की भाँति अनेक प्रकार के पशुओं को मारकर अपनी जीविका चलाता था, इस प्रकार वहाँ रहकर बीस वर्ष बिताये। विप्र! इसके अनन्तर विन्ध्य प्रदेश की रहने वाली, निषाद कुल की यह साध्वी जिसका नाम अवकोकिला था—आई। अपने बन्धु जनों से छोड़ी हुई, दुःखी, दुबली-पतली, भूख-प्यास और धूप से व्याकुल, अपने किये पापों पर पश्चात्ताप करती हुई दैव योग से उस विजन वन में घूमती हुई वहाँ आई ॥३७-४१॥ उस समय धूप से जली हुई वह स्त्री शारीरिक और मानसिक पीड़ा से अत्यन्त पीड़ित थी। दुःख से पीड़ित इसको देखकर मुझे बड़ी दया आई। मैंने इसको पानी, मांस और जंगली फलों को खाने के लिए दिया। ब्रह्मन्! जब इसकी थकावट दूर हो गई तब इससे जो कुछ पूछा और इसने जो कुछ अपना वृत्तान्त कहा उसको उसी रूप में कह रहा हूँ महामुने! उसको सुनिए ॥४२-४४॥

मैं निषाद कुल में उत्पन्न हुई हूँ, मेरा नाम अवकोकिला है, मैं दारुक की पुत्री हूँ और विन्ध्य पर्वत पर निवास करती हूँ। पहले मैं सर्वदा चुगली खाती और दूसरे के धन को चुराया करती थी। परिवार वालों ने मुझे पुंश्चली कह कर घर से अलग कर दिया। कुछ समय तक पति ने लोक-निन्दित मेरा भरण-पोषण किया। दैव योग से वह भी यहाँ मुझको अकेली छोड़कर यमलोक को चला गया। मैं दुःखी अकेली इस विजन वन में भटकती हुई दैव योग से यहाँ आपके पास आई हूँ, आपने मुझे इस समय जीवन दान दिया, इस प्रकार इसने अपने किये हुए सब कर्मों को मुझसे कह सुनाया ॥४५-४८॥ इसके अनन्तर हम दोनों उस देव-मन्दिर में दम्पति बन कर दस

ततो देवालये तस्मिन्दम्पतीभावमाश्रितौ । स्थितौ वर्षाणि दश च आवां मांसफलाशिनौ ॥४९॥
एकदा मद्यपानेन प्रमत्तौ निर्भरं मुने । तत्र देवालये रात्रौ मुदितौ मांसभोजनात् ॥५०॥
तनुवस्त्रापरिज्ञानौ नृत्यं चक्रव मोहितौ । प्रारब्धकर्मभोगान्तमावां युगपदागतौ ॥५१॥
यमदूतास्तदायाताः पाशहस्ता भयंकराः । नेतुमावां नृत्यरतौ सुघोरां यमयातनाम् ॥५२॥
ततः प्रसन्नो भगवान्कर्मणा मम मानद । देवावसथसंस्कारसंज्ञितेन कृतेन नः ॥५३॥
स्वदूतान्प्रेषयामास स्वभक्तावनतत्परः । ते दूता देवदेवस्य शङ्खचक्रगदाधराः ॥५४॥
सहस्रसूर्यसंकाशाः सर्वे चारुचतुर्भुजाः । किरीटकुण्डलधरा हारिणो वनमालिनः ॥५५॥
दिशो वितिमिरा विप्र कुर्वन्तः स्वेन तेजसा । भयंकरान्पाशहस्तान्दंष्ट्रिणो यमकिङ्करान् ॥५६॥
आवयोर्ग्रहणे यत्तानूचुः कृष्णपरायणः ॥५७॥

विष्णुदूता ऊचुः

भो भो क्रूरा दुराचारा विवेकपरिवर्जिताः । मुञ्चध्वमेतौ निष्पापौ दम्पती हरिवल्लभौ ॥५८॥
विवेकस्त्रिषु लोकेषु संपदामादिकारणम् । अपापे पापधीर्यस्तु तं विद्यात्पुरुषाधमम् ॥५९॥
पापे त्वपापधीर्यस्तु तं विद्यादधमाधमम् ॥६०॥

यमदूता ऊचुः

युष्माभिः सत्यमेवोक्तं किं त्वेतौ पापिसत्तमौ । यमेन पापिनो दण्ड्यास्तन्नेष्यामो वयं त्विमौ ॥६१॥
श्रुतिप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः । धर्माधर्मविवेकोऽयं तन्नेष्यामो यमान्तिकम् ॥६२॥

वर्ष बिताये, प्रति दिन मांस और वन्य फलों का ही भोजन होता था । मुनिवर ! एक दिन हम लोग अधिक मदिरा पी लेने से मतवाले हो गए, रात में उस देव मन्दिर में मांस भोजन कर अत्यन्त आनन्द मनाया । मद विह्वल हो शरीर और वस्त्र की सुध बुध खोकर हम दोनों नाचने लगे । अकस्मात् एक ही साथ हम दोनों के प्रारब्ध कर्म के भोग का अन्त भी आ गया ॥४९-५१॥ उस समय भयंकर यमदूत हाथ में पाश लिए हुए नृत्य-रत हम दोनों को घोर नरक यातना में ले जाने के लिए आये । हे मानदाता ! अपने भक्तों की रक्षा करने में तत्पर रहने वाले, भगवान् हम दोनों पर देवमन्दिर के संस्कार आदि के करने के कारण प्रसन्न होकर अपने दूतों को भेजा । देवाधिदेव भगवान् के वे दूत शंख, चक्र और गदा हाथ में लिए हुए, किरीटकुण्डलधारी, वनमाला और हार गले में पहने हुए, सहस्र सूर्य के समान तेजस्वी और सुन्दर चार भुजा वाले थे । विप्र ! कृष्ण रूप धारी दूत अपने तेज से सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए उन भयंकर, और बड़े-बड़े दाँतों वाले यम दूतों से बोले जो हाथ में पाश लेकर हम दोनों को बाँधने के लिए उद्यत थे ॥५२-५७॥

विष्णु दूत बोले—अरे क्रूर, दुराचारी, विवेकहीन यमदूतो ! इस भगवद्भक्त, निष्पाप स्त्री-पुरुष को छोड़ दो । देखो विवेक ही तीनों लोकों में सम्पत्ति का एक मात्र कारण माना गया है । जो पाप-रहित प्राणियों को पापी समझता है, उसको नराधम समझना चाहिए । इसी प्रकार जो पापी को पुण्यात्मा समझता है उसको परम अधम समझना चाहिए, ॥५८-६०॥

यमदूत बोले— तुम लोगों ने सत्य ही कहा, किन्तु ये दोनों तो घोर पापी हैं । प्रभु यम द्वारा पापी दण्ड पाते हैं, इस लिए हम इन दोनों को अवश्य ले जायेंगे । वेदों की आज्ञायें ही धर्म हैं और वेद-विरुद्ध बातें ही अधर्म कही जाती हैं । धर्म और अधर्म के विषय में यही निर्णय है । अतः हम अवश्य इन दोनों को यम के समीप

एतच्छ्रुत्वातिकुपिता विष्णुदूता महौजसः । प्रत्यूचुस्तान्यमभटानधर्मे धर्ममानिनः ॥६३॥

विष्णुदूता ऊचुः

अहो कष्टं धर्मदृशामधर्मः स्पृशते सभाम् । सम्यग्विवेकशून्यानां निदानं ह्यापदां महत् ॥६४॥
तर्कणाद्यविशेषेण नरकाध्यक्षतां गताः । यूयं किमर्थमद्यापि कर्तुं पापानि सोद्यमाः ॥६५॥
स्वकर्मक्षयपर्यन्तं महापातकिनोऽपि च । तिष्ठन्ति नरके घोरे यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥६६॥
पूर्वसंचितपापानामदृष्ट्वा निष्कृतिं वृथा । किमर्थं पापकर्माणि करिष्येऽथ पुनः पुनः ॥६७॥
श्रुतिप्रणिहितो धर्मः सत्यं सत्यं न संशयः । किन्त्वाभ्यां चरितान्धर्मान्प्रवक्ष्यामो यथातथम् ॥६८॥
एतौ पापविनिर्मुक्तौ हरिशुश्रूषणे रतौ । हरिणा त्राणमाणौ च मुञ्चध्वमविलम्बितम् ॥६९॥
एषा च नर्तनं चक्रे तथैव ध्वजरोपणम् । अन्तकाले विष्णुगृहे तेन निष्पापतां गतौ ॥७०॥
अन्तकाले तु यन्नाम श्रुत्वोक्त्वापि च वै सकृत् । लभते परमं स्थानं किमु शुश्रूषणे रताः ॥७१॥
महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः । कृष्णसेवी नरोऽन्तेऽपि लभते परमां गतिम् ॥७२॥
यतीनां विष्णुभक्तानां परिचर्यापरायणा । ते दूताः सहसा यान्ति पापिनोऽपि परां गतिम् ॥७३॥
मुहूर्तं वा मुहूर्तार्द्धं यस्तिष्ठेद्धरिमन्दिरे । सोऽपि याति परं स्थानं किमु द्वात्रिंशवत्सरान् ॥७४॥
उपलेपनकर्त्तारौ संमार्जनपरायणौ । एतौ हरिगृहे नित्यं जीर्णशीर्णाधिरोपकौ ॥७५॥
जलसेचनकर्त्तारौ दीपदौ हरिमन्दिरे । कथमेतौ महाभागौ यातनाभोगमर्हथ ॥७६॥

ले जायेंगे । यह सुनकर वे महातेजस्वी विष्णुदूत कुपित होकर अधर्म को ही धर्म मानने वाले उन यम-दूतों से बोले ॥६१-६३॥

विष्णुदूत बोले—अहो ! यह बड़े दुःख की बात है कि धर्म निर्णायकों की सभा में यह अधर्म (अन्धेर) फैल रहा है । सम्यक् विवेक से रहितों का निर्णय महान् अनर्थों की जड़ है । तुम लोग विशेष विवेक और तर्क से शून्य होने के कारण ही नरक के अध्यक्ष बनाये गये हो, क्यों अब भी पाप कर्म करने के लिए तत्पर हुए हो । महापापी भी अपने पापों के क्षीण होने तक घोर नरक में कल्पान्त तक रहते हैं । पूर्व संचित पापों को बिना देखे फल के विषय में सोचना व्यर्थ है । तुम लोग क्यों बार-बार पाप कर्म कह रहे हो ?॥६४-६७॥ वेदविहित धर्म है, यह सत्य है सत्य है, इसमें सन्देह नहीं किन्तु इन दोनों के किये हुए धर्मों को मैं यथार्थ रूप से कह रहा हूँ । हरि की शुश्रूषा में लीन रहने वाले ये दोनों निष्पाप हैं । इनको शीघ्र छोड़ दो, क्योंकि भगवान् इनकी रक्षा का स्वयं ध्यान रखते हैं । इस स्त्री ने विष्णु मन्दिर में नृत्य किया है और इस पुरुष ने जीवन की अन्तिम घड़ियों में विष्णु मन्दिर में ध्वजारोपण किया है । इसलिए इस धर्माचरण से दोनों निष्पाप हो गये । मृत्यु के समय जब भगवान् के नाम को एक बार सुनकर या उच्चारण कर मनुष्य परम स्थान को पा जाता है तब जो भगवान् की सेवा में तत्पर हों उनके विषय में क्या कहा जाय ॥६८-७१॥ महापापों का करने वाला या उप पापों से युक्त व्यक्ति भी अन्तिम समय में भी कृष्ण की सेवा से परम गति को पा जाता है । दूतो ! यतियों और विष्णु-भक्तों की सेवा करने वाले पापी भी एकाएक परा गति को प्राप्त कर लेते हैं । जो हरि मन्दिर में एक क्षण या आधे क्षण तक रहता है वह भी परम स्थान को चला जाता है तो जिसने बत्तीस वर्ष तक निवास किया उसके विषय में क्या कहा जाय । ये दोनों प्रति दिन जीर्ण शीर्ण मन्दिर का जीर्णोद्धार करते थे, श्रद्धापूर्वक झाड़ू लगाते और लीपते थे । नित्य प्रति मन्दिर में जल छिड़कते और भगवान् को दीपक दिखाते थे । तुम्हीं बताओ, क्या ये दोनों भाग्यशाली किसी भी दृष्टि से यम-यातना के योग्य हैं ? ॥७२-७६॥

इत्युक्त्वा विष्णुदूतास्ते छित्त्वा पाशांस्तदैव हि । आरोप्यावां विमानाग्र्यं ययुर्विष्णोः परं पदम् ॥७७॥
तत्र सामीप्यमापन्नौ देवदेवस्य चक्रिणः । दिव्यान्भोगान्भुक्तवन्तौ तावत्कालं मुनीश्वर ॥७८॥
दिव्यान्भोगगांस्तु तत्रापि भुक्त्वा यातौ महीमिमाम् । अत्रापि संपदतुला हरिसेवाप्रसादतः ॥७९॥
अनिच्छया कृतेनापि सेवनेन हरेर्मुने । प्राप्तमीदृक् फलं विप्र देवानामपि दुर्लभम् ॥८०॥
इच्छयाराध्य विश्वेशं भक्तिभावेन माधवम् । प्राप्स्यावः परमं श्रेय इति हेतुर्निरूपितः ॥८१॥
अवशेनापि यत्कर्म कृतं स्यात्सुमहत्फलम् । जायते भूमिदेवेन्द्र किं पुनः श्रद्धया कृतम् ॥८२॥
एतदुक्तं निशम्यासौ स मुनींद्रो विभाण्डकः । प्रशस्य दम्पती तौ तु प्रययौ स्वतपोवनम् ॥८३॥
तस्माज्जानीहि देवर्षे देवदेवस्य चक्रिणः । परिचर्या तु सर्वेषां कामधेनूपमा स्मृता ॥८४॥
हरिपूजापराणां तु हरिरेव सनातनः । ददाति परमं श्रेयः सर्वकामफलप्रदः ॥८५॥
य इदं पुण्यमाख्यानं सर्वपापप्रणाशनम् । पठेच्च शृणुयाद्वापि सोऽपि याति परां गतिम् ॥८६॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे सुमतिनृपकथावर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

यह कह कर उन विष्णुदूतों ने तत्काल यम पाश को तोड़ डाला और हम दोनों को उत्तम विमान पर बैठाकर विष्णु के परम लोक में पहुँचा दिया । मुनीश्वर ! वहाँ हमको देवाधिदेव चक्रधर विष्णु की सामीप्य-मुक्ति प्राप्त हुई, उचित समय तक दिव्य भोगों का भी भोग किया । वहाँ से दिव्य भोगों को भोग कर इस पृथ्वी पर आया और यहाँ भी हरि-सेवा के प्रसाद से अतुल सम्पत्ति प्राप्त हुई ॥७७-७९॥ मुने ! इच्छा के बिना भी की गई हरि भक्ति के कारण यह देव-दुर्लभ फल प्राप्त हुआ तो इच्छा से भक्तिभावपूर्वक माधव की आराधना कर परम श्रेय हम प्राप्त करेंगे, यह कारण बता दिया । भूदेवेन्द्र ! जब अनिच्छा से भी किये हुए कर्म से ऐसा उत्तम फल मिलता है तब श्रद्धा से किये हुए कर्मों का क्या फल होगा, इसके विषय में क्या कहा जाय ? ॥८०-८२॥

वे मुनीन्द्र विभांडक सुमति की कही हुई इन बातों को सुनकर उन दोनों पति-पत्नियों के भाग्य की प्रशंसा कर अपने तपोवन को चले गए । इसलिए, देवर्षि नारद ! देवाधिदेव चक्रधर की सेवा सबको कामधेनु के समान फल देने वाली कही गयी है, ऐसा जानो । विष्णुपूजापरायण भक्तों को स्वयं सब मनोरथों को पूर्ण करने वाले सनातन हरि ही परम श्रेय प्रदान करते हैं । जो सब पापों को नष्ट करने वाली इस पुण्य कथा को सुनता है अथवा पढ़ता है वह भी परा गति को प्राप्त करता है ॥८३-८६॥

श्रीनारदीयमहापुराण में सुमति भूप की कथा का वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

सनक उवाच

अन्यद्व्रतं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वतः। दुर्लभं सर्वलोकेषु विख्यातं हरिपञ्चकम् ॥१॥
नारीणां च नराणां च सर्वदुःखनिवारणम्। धर्मकामार्थमोक्षाणां निदानं मुनिसत्तम ॥२॥
सर्वाभीष्टप्रदं चैव सर्वव्रतफलप्रदम्। मार्गशीर्षे सिते पक्षे दशम्यां नियतेन्द्रियः ॥३॥
कुर्यात्स्नानादिकं कर्म दन्तधावनपूर्वकम्। कृत्वा देवार्चनं सम्यक्तथा पञ्च महाध्वरान् ॥४॥
एकाशी च भवेत्तस्मिन् दिने नियममास्थितः। ततः प्रातः समुत्थाय ह्येकादश्यां मुनीश्वर ॥५॥
स्नानं कृत्वा यथाचारं हरिं चार्चयेद्गृहे। स्नापयेद्देवदेवेशं पञ्चामृतविधानतः ॥६॥
अर्चयेत्परया भक्त्या गन्धपुष्पादिभिः क्रमात्। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलैश्च प्रदक्षिणैः ॥७॥
संपूज्य देवदेवेशमिमं मन्त्रमुदीरयेत्। नमस्ते ज्ञानरूपाय ज्ञानदाय नमोऽस्तु ते ॥८॥
नमस्ते सर्वरूपाय सर्वसिद्धिप्रदायिने। एवं प्रणम्य देवेशं वासुदेवं जनार्दनम् ॥९॥
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण ह्युपवासं समर्पयेत्। पञ्चरात्रं निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव ॥१०॥
त्वदाज्ञया जगत्स्वामिन्ममाभीष्टप्रदो भव। एवं समर्प्य देवस्य उपवासं जितेन्द्रियः ॥११॥
रात्रौ जागरणं कुर्यादेकादश्यामथो द्विज। द्वादश्यां च त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां जितेन्द्रियः ॥१२॥
पौर्णमास्यां च कर्त्तव्यमेवं विवर्चनं मुने। एकादश्यां पौर्णमास्यां कर्त्तव्यं जागरं तथा ॥१३॥

अध्याय २१

हरिपंचरात्रव्रत का वर्णन

सनक बोले— नारद ! दूसरे व्रत को यथार्थ रूप से कह रहा हूँ सुनो। हरिपंचक व्रत परम दुर्लभ और सब लोकों में प्रसिद्ध व्रत है। मुनिवर्य ! यह व्रत नर-नारी सबके दुःखों को दूर करने वाला, धर्म, अर्थ, काम मोक्ष का एकमात्र कारण है ॥१-२॥ सब मनोरथों और सब व्रतों के फल को देने वाला है। अगहन महीने की शुक्ल पक्ष की दशमी को इन्द्रिय संयम पूर्वक दातौन, स्नान आदि नित्य कर्म तथा भली भाँति पंचमहायज्ञ और देवार्चन कर के उस दिन नियमपूर्वक एकाहार व्रत करे। मुनीश्वर ! दूसरे दिन एकादशी को प्रातः काल उठकर स्नान करे और आचारानुकूल घर पर ही विष्णु को पूजा करे, देवदेवेश को विधि पूर्वक पंचामृत से स्नान करावे और अत्यन्त श्रद्धा से पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और ताम्बूल से क्रमशः पूजन कर प्रदक्षिणा करे ॥३-७॥ देवदेवेश की पूजा कर आगे कहे गए मन्त्रों का उच्चारण करे। मन्त्र—'ज्ञान रूप को नमस्कार है, ज्ञानदाता को नमस्कार हैं, सर्वरूप, सब सिद्धियों को देने वाले को नमस्कार करता हूँ' इस प्रकार देवेश, वासुदेव, जनार्दन को प्रणामकर आगे कहे गये मन्त्र से अपने उपवास व्रत को भगवदर्पण करे 'केशव ! आज से तुम्हारी आज्ञा से पाँच रात्रि तक निराहार रहूँगा, जगन्नाथ ! मेरे मनोरथों को प्रदान कीजिए, द्विज ! वह जितेन्द्रिय इस प्रकार भगवान् को अपना उपवास व्रत अर्पित कर एकादशी को रात्रि में जागरण करे। मुने ! इसी प्रकार द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा को वह संयमी व्रती विष्णु को पूजा करे। एकादशी और पूर्णिमा को जागरण करना चाहिए और पाँचों दिन पंचामृत आदि से सामान्य रूप से पूजा करनी चाहिए, परन्तु पूर्णिमा के दिन अपनी शक्ति के अनुसार दूध

पञ्चामृतादिपूजा तु सामान्या दिनपञ्चसु । क्षीरेण स्नापयेद्विष्णुं पौर्णमास्यां तु शक्तितः ।
तिलहोमञ्च कर्त्तव्यस्तिलदानं तथैव च ॥१४॥
ततः षष्ठे दिने प्राप्ते निर्वर्त्य स्वाश्रमक्रियाम् । संप्राश्य पञ्चगव्यं च पूजयेद्विधिवद्धरिम् ॥१५॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्विभवे सत्यवारितम् । ततः स्वबन्धुभिः सार्द्धं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥१६॥
एवं पौषादिमासेषु कार्त्तिकान्तेषु नारद । शुक्लपक्षे व्रतं कुर्यात्पूर्वोक्तविधिना नरः ॥१७॥
एवं संवत्सरं कार्यं व्रतं पापप्रणाशनम् । पुनः प्राप्ते मार्गशीर्षे कुर्यादुद्यापनं व्रती ॥१८॥
एकादश्यां निराहारो भवेत्पूर्वमिव द्विज । द्वादश्यां पञ्चगव्यं च प्राशयेत्सुसमाहितः ॥१९॥
गन्धपुष्पादिभिः सम्यग्देवदेवं जनार्दनम् । अभ्यर्च्योपायनं दद्याद्ब्राह्मणाय जितेन्द्रियः ॥२०॥
पायसं मधुसंमिश्रं घृतयुक्तं फलान्वितम् । सुगन्धजलसंयुक्तं पूर्णकुम्भं सदक्षिणम् ॥२१॥
वस्त्रेणाच्छादितं कुम्भं पञ्चरत्नसमन्वितम् । दद्यादध्यात्मविदुषे ब्राह्मणाय मुनीश्वर ॥२२॥
सर्वात्मन् सर्वभूतेश सर्वव्यापिन्सनातन । परमान्नप्रदानेन सुप्रीतो भव माधव ॥२३॥
अनेन पायसं दत्वा ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः । शक्तितो बन्धुभिः सार्द्धं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥२४॥
व्रतमेतत्तुयः कुर्याद्धरिपञ्चकसंज्ञितम् । न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन ॥२५॥
व्रतमेतत्प्रकर्त्तव्यमिच्छद्भिर्मोक्षमुत्तमम् । समस्तपापकान्तारदावानलसमं द्विज ॥२६॥
गवां कोटिसहस्राणि दत्वा यत्फलमाप्नुयात् । तत्फलं लभ्यते पुम्भिरेतस्मादुपवासतः ॥२७॥
यस्त्वेतच्छृणुयाद्भक्त्या नारायणपरायणः । स मुच्यते महाघोरैः पातकानां च कोटिभिः ॥२८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे व्रताख्याने मार्गशीर्षशुक्लैकादशीमारभ्य पञ्चरात्रिव्रतं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

से भगवान् को नहलाना चाहिए। तिल का हवन और तिल का दान भी यथा शक्ति करना श्रेयस्कर है ॥८-१४॥ तदनन्तर छठे दिन अपनो नित्य क्रिया से निवृत्त हो, पंचगव्य का पान कर विधिवत् हरि की पूजा करनी चाहिए। पूजा के अनन्तर विभवानुकूल अनिवार्य रूप से ब्राह्मण भोजन करावे। पश्चात् स्वयं अपने भाई-बन्धुओं के साथ मौन होकर भोजन करे। नारद ! इस प्रकार पौष आदि मासों में तथा कार्तिक के अन्त में प्रति शुक्ल पक्ष में पूर्वोक्त विधि से व्रत करे ॥१५-१७॥ इस प्रकार एक वर्ष तक इस पापनाशक व्रत का अनुष्ठान करे, पुनः अगहन आने पर व्रती व्रतोद्यापन करे। द्विज ! पूर्व की ही भाँति एकादशी को निराहार रहे, द्वादशी के दिन सावधान होकर पंचगव्य पान करे। गंध, पुष्प आदि से देवाधिदेव जनार्दन की पूजा कर वह जितेन्द्रिय ब्राह्मणों को उपहार दे ॥१८-२०॥ मुनीश्वर अध्यात्मज्ञानी विद्वान् ब्राह्मण को मधु, घृत और फल के सहित खीर, सुगन्धित जल से भरा दक्षिणा सहित पूर्ण कलश और वस्त्र से ढँक कर पंचरत्न सहित एक कलश देना चाहिए। सर्वात्मन् ! सर्वभूतेश ! सर्वव्यापक ! सनातन ! माधव ! इस उत्तम अन्न के दान से प्रसन्न होइए, इस मन्त्र से खीर का दान करने के बाद शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को खिलावे, स्वयं भी शान्त होकर भाई बन्धुओं के साथ भोजन करे। इस हरिपंचक नामक व्रत का जो अनुष्ठान करता है, वह कभी भी ब्रह्मलोक से नहीं लौटता ॥२१-२५॥ द्विज ! उत्तम मोक्ष पाने की इच्छा करने वाले को अवश्य यह व्रत करना चाहिए, यह व्रत समस्त पाप रूपी महावन के लिए दावानल के समान है। सहस्र कोटि गौओं के दान से जो फल मिलता है वह फल इस उपवासव्रत से मनुष्यों को प्राप्त होता है। जो नारायण की सेवा में तल्लीन रहकर भक्ति पूर्वक इस व्रत कथा को सुनता है, वह करोड़ों घोर महापापों से मुक्त हो जाता है ॥२६-२८॥

"श्रीनारदीयमहापुराण में पंचरात्रव्रतकथन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

सनक उवाच

अन्यद् व्रतवरं वक्ष्ये तच्छृणुष्व समाहितः । सर्वपापहरं पुण्यं सर्वलोकोपकारकम् ॥१॥
आषाढे श्रावणे वापि तथा भाद्रपदेऽपि च । तथैवाश्विनके मासे कुर्यादेतद्व्रतं द्विज ॥२॥
एतेष्वन्यतमे मासे शुक्लपक्षे जितेन्द्रियः । प्राशयेत्पञ्चगव्यं च स्वपेद्विष्णुसमीपतः ॥३॥
ततः प्रातः समुत्थाय नित्यकर्म समाप्य च । श्रद्धया पूजयेद्विष्णुं वशीक्रोधविवर्जितः ॥४॥
विद्वद्भिः सहितो विष्णुमर्चयित्वा यथोचितम् । संकल्पं तु ततः कुर्यात्स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥५॥
मासमेकं निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव । मासान्ते पारणं कुर्वे देवदेव तवाज्ञया ॥६॥
तपोरूप नमस्तुभ्यं तपसां फलदायक । ममाभीष्टप्रदं देहि सर्वविघ्नान्निवारय ॥७॥
एवं समर्प्य देवस्य विष्णोर्मासव्रतं शुभम् । ततः प्रभृति मासान्तं निवसेद्धरिमन्दिरे ॥८॥
प्रत्यहं स्नपयेद्देवं पञ्चामृतविधानतः । दीपं निरन्तरं कुर्यात्तस्मिन्मासे हरेर्गृहे ॥९॥
प्रत्यहं खादयेत्काष्ठं ह्यपामार्गं समुद्भवम् । ततः स्नायीत विधिवन्नारायणपरायणः ॥१०॥
ततः संस्नापयेद्विष्णुं पूर्ववत्प्रयतोऽर्चयेत् । ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या भक्तियुक्तः सदक्षिणम् ॥११॥
स्वयं च बन्धुभिः सार्द्धं भुञ्जीत प्रयतेन्द्रियः । एवं मासोपवासांश्च व्रती कुर्यात्त्रयोदश ॥१२॥
वर्षान्ते वेदविदुषे गां प्रदद्यात्सदक्षिणाम् । भोजयेद्ब्राह्मणांस्तत्र द्वादशैव विधानतः ॥
शक्त्या च दक्षिणां दद्याद्ब्राह्मण्याभरणानि च ॥१३॥

अध्याय २२

विशेष मास में व्रत करने का वर्णन

सनक बोले—अब सब पापों को दूर करने वाले, पुण्यप्रद और लोकोपकारक दूसरे उत्तम व्रत के विषय में कह रहा हूँ, उसको सावधान होकर सुनो । ॥१॥ इनमें से

द्विज ! आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद अथवा आश्विन मास में इस व्रत को करना चाहिए । किसी मास के शुक्ल पक्ष में जितेन्द्रिय व्यक्ति पंचगव्य पिये और विष्णु के समीप ही सोये । प्रातः काल उठकर नित्य क्रिया से निवृत्त हो वह वशी शान्ति पूर्वक अनन्य भाव से विष्णु की पूजा करे ॥२-४॥ विद्वानों के साथ यथाविधि विष्णु की पूजा कर स्वस्तिपाठ और संकल्प करे । मन्त्र—'केशव ! आपकी आज्ञा से आज एक मास तक निराहार व्रत रहूँगा, देवाधिदेव ! मास के अन्त में व्रत का पारण करूँगा, तपरूप ! आपको नमस्कार है, तपस्या के फल देने वाले ! मेरे मनोरथों को पूर्ण करो, सब प्रकार विघ्नों से मुझको बचाओ, इस प्रकार शुभ मास व्रत को देवाधिदेव विष्णु की सेवा में अर्पितकर उसी दिन से मास के अन्त तक हरि-मन्दिर में ही निवास करे ॥५-८॥ प्रतिदिन पंचामृत विधान से देव को स्नान करावे, उस मास में भगवान् के मन्दिर में निरन्तर दीपक जलावे । प्रतिदिन चिचिड़ा की दातौन कर विधिपूर्वक नारायणपरायण होकर स्नान करे । तदनन्तर पूर्व की भाँति सावधान हो विष्णु को स्नान करावे, भक्ति पूर्वक यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन करावे और दक्षिणा भी दे । तत्पश्चात् स्वयं संयमपूर्वक बन्धु-बान्धवों के साथ भोजन करे । व्रती इस प्रकार तेरह बार मासोपवास व्रत करे ॥९-१२॥ वर्ष के अन्त में किसी वेदज्ञ ब्राह्मण को दक्षिणा के सहित एक गाय दान करे । विधान के अनुसार

मासोपवासत्रितयं यः कुर्यात्संयतेन्द्रियः । आप्तोर्यामस्य यज्ञस्य द्विगुणं फलमश्नुते ॥१४॥
चतुः कृत्वः कृतं येन पाराकं मुनिसत्तम । स लभेत्परमं पुण्यमष्टाग्निष्टोमसंभवम् ॥१५॥
पञ्चकृत्वो व्रतमिदं कृतं येन महात्मना । अत्यग्निष्टोमजं पुण्यं द्विगुणं प्राप्नुयान्नरः ॥१६॥
मासोपवासषट्कं यः करोति सुसमाहितः । ज्योतिष्टोमस्य यज्ञस्य फलं सोऽष्टगुणं लभेत् ॥१७॥
निराहारः सप्तकृत्वो नरो मासोपवासकान् । अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत् ॥१८॥
मासोपवासान्यः कुर्यादष्टकृत्वो मुनीश्वर । नरमेधाख्ययज्ञस्य फलं पञ्चगुणं लभेत् ॥१९॥
यस्तु मासोपवासांश्च नवकृत्वः समाचरेत् । गोमेधमखजं पुण्यं लभते त्रिगुणं नरः ॥२०॥
दशकृत्वस्तु यः कुर्यात्पराकं मुनिसत्तम । स ब्रह्ममेधयज्ञस्य त्रिगुणं फलमश्नुते ॥२१॥
एकादश पराकांश्च यः कुर्यात्संयतेन्द्रियः । स याति हरिसारूप्यं सर्वभोगसमन्वितम् ॥२२॥
त्रयोदश पराकांश्च यः कुर्यात्प्रयतो नरः । स याति परमानन्दं यत्र गत्वा न शोचति ॥२३॥
मासोपवासनिरता गङ्गास्नानपरायणाः । धर्ममार्गप्रवक्तारो मुक्ता एव न संशयः ॥२४॥
अवीराभिश्च नारीभिर्यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः । मासोपवासः कर्त्तव्यो वनस्थैश्च विशेषतः ॥२५॥
नारी वा पुरुषो वापि व्रतमेतत्सुदुर्लभम् । कृत्वा मोक्षमवाप्नोति योगिनामपि दुर्लभम् ॥२६॥
गृहस्थो वानप्रस्थो वा व्रती वा भिक्षुरेव वा । मूर्खो वा पण्डितो वापि श्रुत्वैतन्मोक्षभाग्भवेत् ॥२७॥
इदं पुण्यं व्रताख्यानं नारायणपरायणः । शृणुयाद्वाचयेद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२८॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे व्रताख्याने मासोपवासवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

बारह ब्राह्मणों को भोजन कराकर यथाशक्ति ब्राह्मणों को दक्षिणा और आभूषण दे। जो संयमी व्यक्ति तीन मासोपवास व्रत को करता है वह आप्तोर्याम यज्ञ का दुगुना फल पाता है। मुनिसत्तम! जो चार बार पारण-पूर्वक इस व्रत का अनुष्ठान करता है उसको आठ अग्निष्टोम यज्ञ के तुल्य फल प्राप्त हो जाता है। जो महात्मा पाँच बार इस व्रत का अनुष्ठान करता उस मनुष्य को अत्यग्निष्टोम यज्ञ का दूना फल मिलता है। जो एकाग्र होकर छह मासोपवास व्रत करता है वह ज्योतिष्टोम यज्ञ का अठगुना फल पाता है ॥१३-१७॥ निराहार रहकर जो मनुष्य सात बार इस व्रत का अनुष्ठान करता है वह अश्वमेध यज्ञ का अठगुना फल पाता है। जो आठ बार इस व्रत को करता है वह नरमेध यज्ञ का पंचगुना फल पाता है। जो नव बार इस मासोपवास व्रत को करता है वह मनुष्य तीन गोमेधयज्ञ के बराबर फल पाता है। मुनिसत्तम! जो दशबार इस व्रत का अनुष्ठान करता है, वह ब्रह्म (ज्ञान) मेध यज्ञ का तिगुना फल पाता है ॥१८-२१॥ जो संयमी ग्यारह बार इस व्रत को करता है वह हरिसारूप्य प्राप्त कर सब भोगों का भोग भी करता है। जो संयमी व्यक्ति तेरह बार इस व्रत को करता है वह उस परमआनन्द को प्राप्त करता है जहाँ जाकर किसी प्रकार का शोक नहीं रह जाता। मासोपवास व्रत करने वाले, गंगा स्नान परायण और धर्म मार्ग का उपदेश करने वाले मनुष्य निःसन्देह मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥२२-२४॥ पति-पुत्र-हीन स्त्री, संन्यासी, ब्रह्मचारी और विशेष रूप से वानप्रस्थाश्रमी को यह व्रत अवश्य करना चाहिए। प्रत्येक नारी या नर इस सुलभ व्रत का अनुष्ठान करके योगि-दुर्लभ फल को प्राप्त करते हैं। गृहस्थ, वानप्रस्थ, व्रती, भिक्षुक, मूर्ख अथवा पंडित सभी इस व्रत-कथा को सुनकर मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं। नारायण का भक्त इस पुण्यदायक व्रत के पाठ या श्रवण के द्वारा सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥२५-२८॥

श्रीनारदीयपुराण में मासोपवास-वर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

सनक उवाच

इदमन्यत्प्रवक्ष्यामि व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् । सर्वपापप्रशमनं सर्वकामफलप्रदम् ॥१॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां चैव योषिताम् । मोक्षदं कुर्वतां भक्त्या विष्णोः प्रियतरं द्विज ॥२॥
एकादशीव्रतं नाम सर्वाभीष्टप्रदं नृणाम् । कर्त्तव्यं सर्वथा विप्रविष्णुप्रीतिकरं यतः ॥३॥
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि । यो भुंक्ते सोऽत्र पापीयान्परत्र नरकं व्रजेत् ॥४॥
उपवासफलं लिप्सुर्जह्याद्भुक्तिचतुष्टयम् । पूर्वापरदिने रात्रावहोरात्रं तु मध्यमे ॥५॥
एकादशीदिने यस्तु भोक्तुमिच्छति मानवः । स भोक्तुं सर्वपापानि स्पृहयालुर्न संशयः ॥६॥
एकादश्यां निराहारो यदि मुक्तिमभीप्सति । भवेद्दशम्यामेकाशी द्वादश्यां च मुनीश्वर ॥७॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च । अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति तानि विप्र हरेर्दिने ॥८॥
एकादश्यां तु यो भुङ्क्ते तस्य नैवास्ति निष्कृतिः । ब्रह्महत्यादिपापानां कथंचिन्निष्कृतिर्भवेत् ॥९॥
एकादश्यां निराहारः स्थित्वा याति परां गतिम् । महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥१०॥
एकादशी महापुण्या विष्णोः प्रियतमा तिथिः । संसेव्या सर्वथा विप्रैः संसारच्छेदलिप्सुभिः ॥११॥

अध्याय २३

भद्रशील ब्राह्मण का उपाख्यान

सनक बोले—अब लोक-विख्यात, सब पापों को दूर करने वाले, सब मनोरथों को पूर्ण करने वाले दूसरे व्रत को कह रहा हूँ। द्विज ! यह व्रत भक्तिपूर्वक व्रत करने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्री सबको मोक्ष देने वाला और भगवान् को अत्यन्त प्रिय है। विप्र ! एकादशी व्रत मनुष्यों के सब मनोरथों को निश्चित रूप से पूर्ण कर देता है। मनुष्य को यह व्रत अवश्य करना चाहिए क्योंकि यह विष्णु को प्रसन्न करने वाला व्रत है ॥१-३॥ दोनों पक्षों की एकादशी को भोजन नहीं करना चाहिए। जो भोजन करता है, वह पापी है और परलोक में नरक का भागी होता है। उपवास-फल का इच्छुक व्यक्ति चार वेला का भोजन दशमी और द्वादशी की रात को और एकादशी के दिन और रात को त्याग दे। जो मनुष्य एकादशी के दिन भोजन करना चाहता है वह निःसन्देह सब पापों का भोग करना करना चाहता है। मुनीश्वर ! यदि कोई मुक्ति चाहता है तो वह अवश्य दशमी और द्वादशी को एकाहार करे और एकादशी को निराहार रहे ॥४-७॥ विप्र ! जो कुछ ब्रह्महत्या आदि पाप हैं वे एकादशी के दिन अन्न पर आ जाते हैं। ब्रह्महत्या आदि पापों का प्रायश्चित्त किसी प्रकार नहीं होता। जो एकादशी के दिन भोजन करते हैं उनके पापों का तो कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है ॥८-९॥ महापाप या सब पापों का कर्त्ता भी एकादशी के दिन निराहार रहकर परागति को प्राप्त कर लेता है। एकादशी अतिपुण्यप्रद और विष्णु की अति प्रिय तिथि है। इसलिए संसार से मुक्ति पाने के इच्छुक ब्राह्मण सर्वथा इस व्रत को अपनावें ॥१०-११॥

दशम्यां प्रातरुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम् । स्नापयेद्विधिवद्विष्णुं पूजयेत्प्रयतेन्द्रियः ॥१२॥
एकादश्यां निराहारो निगृहीतेन्द्रियो भवेत् । शयीत सन्निधौ विष्णोर्नारायणपरायणः ॥१३॥
एकादश्यां तथा स्नात्वा सपूज्य च जनार्दनम् । गन्धपुष्पादिभिः सम्यक् ततस्त्वेवमुदीरयेत् ॥१४॥
एकादश्यां निराहारः स्थित्वाद्याहं परेऽहनि । भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥१५॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य देवदेवस्य चक्रिणः । भक्तिभावेन तुष्टात्मा उपवासं समर्पयेत् ॥१६॥
देवस्य पुरतः कुर्याज्जागरं नियतो व्रती । गीतैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च पुराणश्रवणादिभिः ॥१७॥
ततः प्रातः समुत्थाय द्वादशीदिवसे व्रती । स्नात्वा च विधिवद्विष्णुं पूजयेत्प्रयतेन्द्रियः ॥१८॥
पञ्चामृतेन संस्नाप्य एकादश्यां जनार्दनम् । द्वादश्यां पयसा विप्र हरिसारूप्यमश्नुते ॥१९॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव । प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥२०॥
एवं विज्ञाप्य विप्रेन्द्र माधवं सुसमाहितः । ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दद्याद्वै दक्षिणां तथा ॥२१॥
ततः स्वबन्धुभिः सार्द्धं नारायणपरायणः । कृतपञ्चमहायज्ञः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥२२॥
एवं यः प्रयतः कुर्यात्पुण्यमेकादशीव्रतम् । स याति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥२३॥
उपवासव्रतपरो धर्मकार्यपरायणः । चाण्डालान्पतितांश्चैव नेक्षेदपि कदाचन ॥२४॥
नास्तिकान्भिन्नमर्यादान्निन्दकान्पिशुनांस्तथा । उपवासव्रतपरो नालपेच्च कदाचन ॥२५॥
वृषलीसूतिपोष्टारं वृषलीपतिमेव च । अयाज्ययाजकं चैव नालपेत्सर्वदा व्रती ॥२६॥
कुण्डाशिनं गायकं च तथा देवलकाशिनम् । भिषजं काव्यकर्त्तारं देवद्विजविरोधिनम् ॥२७॥

दशमी के दिन प्रातःकाल उठकर स्वयं दातौन आदि से निवृत्त हो संयमपूर्वक भगवान् को विधिवत् स्नान करावे। एकादशी के दिन निराहार रहकर अपनी इन्द्रियों को वश में रखे और नारायण का ही ध्यान करता हुआ विष्णु के समीप ही शयन करे। एकादशी के दिन इस प्रकार स्नान कर, गन्ध, पुष्प आदि से भली भाँति जनार्दन की पूजा करने के अनन्तर हाथ जोड़कर कहे 'पुण्डरीकाक्ष ! आज एकादशी के दिन निराहार रह कर कल भोजन करूँगा। अच्युत ! मुझे शरण दीजिए।' इस प्रकार देवाधिदेव चक्रधर के सम्मुख मन्त्र का उच्चारण कर भक्तिपूर्वक प्रसन्न होकर अपना उपवास भगवान् को ही अर्पित कर दे ॥१२-१६॥ व्रती नियमपूर्वक देव के ही सम्मुख गीत, वाद्य, नृत्य और पुराण श्रवण आदि करता हुआ जागरण करे। तत्पश्चात् व्रती द्वादशी के दिन उठकर स्वयं स्नान आदि से निवृत्त हो संयम पूर्वक भगवान् की पूजा करे। विप्र ! एकादशी के दिन भगवान् को पंचामृत से और द्वादशी को दूध से स्नान करा कर मनुष्य हरि का सामीप्य प्राप्त करता है ॥१७-१९॥ 'केशव ! इस व्रत से आप सन्तुष्ट हों, कृपा कीजिए और अज्ञान रूपी अन्धकार में भटकने वाले मुझको ज्ञान-दृष्टि प्रदान कीजिए। विप्रेन्द्र ! इस प्रकार एकाग्र हो भगवान् माधव से आत्मनिवेदन करके यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन करावे और दक्षिणा भी दे। तत्पश्चात् स्वयं पाँच महायज्ञों को समाप्त कर नारायण का ध्यान करता हुआ मौन होकर भाई-बन्धुओं के साथ भोजन करे। इस प्रकार जो अनन्य भाव से पुण्यदायक एकादशी व्रत को करता है वह आवागमन से रहित होकर विष्णुलोक को चला जाता है। उपवास व्रत करने वाला, धर्मकार्यपरायण व्यक्ति चाण्डाल और पतितों को कभी भी न देखे ॥२०-२४॥ उपवासव्रतपरायण व्यक्ति नास्तिक, समाज-बहिष्कृत, निन्दक और पिशुन से कभी भी बातचीत न करे। व्रती वृषली (शूद्रा) के सन्तान का पालन करने वाले, वृषलीपति और अनधिकारी को यज्ञ कराने वाले से कभी वार्तालाप न करे। व्रती कुण्ड[1] का अन्न खाने वाले, गायक, पुजारियों का अन्न खाने वाले, वैद्य, कवि (भाट), देवब्राह्मण-विरोधी, परान्नलोलुप, और

१. पति के जीवित रहने पर अन्य पति से उत्पन्न किया हुआ पुत्र।

वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥२८॥
परान्नलोलुपं चैवं परस्त्रीनिरतं तथा । व्रतोपवासनिरतो भूत्वा परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२९॥
इत्येवमादिभिः शुद्धो वशी सर्वहिते रतः । उपवासपरो भूत्वा परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२९॥
इत्येवमादिभिः शुद्धो वशी सर्वहिते रतः । नास्ति विष्णुसमं दैवं तपो नानशनात्परम् ॥३०॥
नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः । नास्ति विष्णुसमं दैवं तपो नानशनात्परम् ॥३०॥
नास्ति क्षमासमा माता नास्ति कीर्तिसमं धनम् । नास्ति ज्ञानसमो लाभो न च धर्मसमः पिता ॥३१॥
न विवेकसमो बन्धुर्नैकादश्याः परं व्रतम् । अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ॥३२॥
संवादं भद्रशीलस्य तत्पितुर्गालवस्य च । पुरा हि गालवो नाम मुनिः सत्यपरायणः ॥३३॥
उवास नर्मदातीरे शान्तो दान्तस्तपोनिधिः । बहुवृक्षसमाकीर्णे गजभल्लुनिषेविते ॥३४॥
सिद्धचारणगन्धर्वयक्षविद्याधरान्विते । कन्दमूलफलैः पूर्णे मुनिवृन्दनिषेविते ॥३५॥
गालवो नाम विप्रेन्द्रो निवासमकरोच्चिरम् । तस्याभवद्भद्रशील इति ख्यातः सुतो वशी ॥३६॥
जातिस्मरो महाभागो नारायणपरायणः । बालक्रीडनकालेऽपि भद्रशीलो महामतिः ॥३७॥
मृदा च विष्णोः प्रतिमां कृत्वा पूजयते क्षणम् । वयस्यान्बोधयेच्चापि विष्णुः पूज्यो नरैः सदा ॥३८॥
एकादशीव्रतं चैव कर्त्तव्यमपि पण्डितैः । एवं ते बोधितास्तेन शिशवोऽपि मुनीश्वर ॥३९॥
हरिं मृदैव निर्माय पृथक्संभूय वा मुदा । अर्चयन्ति महाभागा विष्णुभक्तिपरायणाः ॥४०॥
नमस्कुर्वन्भद्रमतिः विष्णवे सर्वविष्णवे । सर्वेषां जगतां स्वस्ति भूयादित्यब्रवीदिदम् ॥४१॥
क्रीडाकाले मुहूर्तं वा मुहूर्तार्द्धमथापि वा । एकादशीति संकल्प्य व्रतं यच्छति केशवे ॥४२॥
एवं सुचरितं दृष्ट्वा तनयं गालवो मुनिः । अपृच्छद्विस्मयाविष्टः समालिंग्य तपोनिधिः ॥४३॥

परस्त्रीगामी की चर्चा भी न चलावे। इन नियमों का पालन करने वाला, शुद्ध, जितेन्द्रिय और सब प्राणियों की भलाई करने वाला व्रती उपवासपरायण होकर परम सिद्धि को प्राप्त करता है ॥२५-२९॥

गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं, माता के समान कोई गुरु नहीं, विष्णु के समान कोई देवता नहीं और उपवास से बढ़कर कोई तपस्या नहीं है। क्षमा के समान माता नहीं और कीर्ति के समान धन नहीं है। इसी प्रकार विवेक के समान कोई बन्धु नहीं और एकादशी से बढ़कर कोई व्रत नहीं है। इस व्रत के विषय में एक पुरातन इतिहास, जो भद्रशील और उनके पिता गालव के संवाद के रूप में है, सुना रहा हूँ ॥३०-३२॥ प्राचीन काल में गालव नाम के एक सत्यवादी मुनि थे। वे शान्त, दान्त और तपोनिधि मुनि नर्मदा तट पर एक घने वन में रहते थे। जंगली हाथी और भालुओं से भरा वह वन सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष और विद्याधरों का क्रीड़ा स्थल था ॥३३-३४॥ कंद, मूल और फलों से परिपूर्ण और मुनियों से सुशोभित उस वन में वे विप्रशिरोमणि गालव चिरकाल तक निवास करते रहे। उनको भद्रशील नामक एक संयमी पुत्र उत्पन्न हुआ। वह नारायण का भक्त, महासौभाग्यशाली और अपने पूर्वजन्म की घटनाओं का ज्ञाता था। वह महामति भद्रशील बालकों के साथ खेलने के समय भी विष्णु की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर कुछ देर तक पूजा करता था और अपने साथियों को समझाता था कि मनुष्य को विष्णु की सर्वदा पूजा करनी चाहिए ॥३५-३८॥ ज्ञानी को भी एकादशी व्रत करना चाहिए। मुनीश्वर ! इस प्रकार उसके द्वारा उपदेश पाये हुए वे भाग्यशाली बालक भी मिलजुलकर या अलग प्रेमपूर्वक मिट्टी की विष्णु-प्रतिमा बनाते थे और विष्णुभक्तिपरायण होकर भगवान् की पूजा करते थे। सबके रक्षक विष्णु को नमस्कार करते समय वह भद्रमति 'सारे विश्व का कल्याण हो' यही कहता था। क्रीड़ा के समय क्षणभर या आधे क्षण तक एकादशी व्रत का संकल्प कर भगवान् को अर्पण करता था। मुनि गालव पुत्र के शुभ चरित्र को देखकर आश्चर्यचकित हो गए। उस तपोनिधि ने पुत्र को छाती से लगाकर पूछा ॥३९-४३॥

गालव उवाच

भद्रशील महाभाग भद्रशीलोऽसि सुव्रत । चरितं मंगलं यत्ते योगिनामपि दुर्लभम् ॥४४॥
हरिपूजापरो नित्यं सर्वभूतहितेरतः । एकादशीव्रतपरो निषिद्धाचारवर्जितः ॥४५॥
निर्द्वन्द्वो निर्ममः शान्तो हरिध्यानपरायणः ॥४५॥
एवमेतादृशी बुद्धिः कथं जाताऽर्भकस्य ते । विनापि महतां सेवां हरिभक्तिर्हि दुर्लभा ॥४६॥
स्वभावतो जनस्यास्य ह्यविद्याकामकर्मसु । प्रवर्त्तते मतिर्वत्स कथं तेऽलौकिकी कृतिः ॥४७॥
सत्सङ्गेऽपि मनुष्याणां पूर्वपुण्यातिरेकतः । जायते भगवद्भक्तिस्तदहं विस्मयं गतः ॥४८॥
पृच्छामि प्रीतिमापन्नस्तद्भवान्वक्तुमर्हसि । भद्रशीलो मुनिश्रेष्ठः पित्रैवं सु विकल्पितैः ॥४९॥
जातिस्मरः सुकृतात्मा हृष्टप्रहसिताननः । स्वानुभूतं यथावृत्तं सर्वं पित्रे न्यवेदयत् ॥५०॥

भद्रशील उवाच[1]

शृणु तात मुनिश्रेष्ठ ह्यनुभूतं मया पुरा । जातिस्मरत्वाज्जानामि यमेन परिभावितम् ॥५१॥
एतच्छ्रुत्वा महाभागो गालवो विस्मयान्वितः । उवाच प्रीतिमापन्नो भद्रशीलं महामतिम् ॥५२॥

गालव उवाच

कस्त्वं पूर्वं महाभाग किमुक्तं च यमेन ते । कस्य वा केन वा हेतोस्तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥५३॥

गालव बोले--भद्रशील ! महाभाग ! सुव्रत ! तुम सचमुच भद्रशील हो, क्योंकि तुम्हारा शुभ चरित्र योगियों के लिए भी दुर्लभ है। तुम नित्य हरि की पूजा करते, सब प्राणियों के हित में लगे रहते, एकादशी व्रत करते और निषिद्ध कर्मों से सदा दूर रहते हो। तुम शान्त, निर्मम, निर्द्वन्द्व और भगवान् के ध्यान में मग्न रहते हो। तुम बालक को ऐसी बुद्धि कैसे हो गई ? बिना महात्माओं की सेवा के हरि-भक्ति दुर्लभ है ॥४४-४६॥ स्वभावतः मनुष्यों की बुद्धि अविद्या, काम आदि दुष्कर्मों की ओर हो झुकती है, परन्तु वत्स ! तुममें यह अलौकिक क्रियाशीलता कैसे आई ? सत्संगति में भी पूर्वजन्म के पुण्यों की अधिकता से ही भगवद्भक्ति प्राप्त होती है, परन्तु तुम्हारे सदाचार को तो देखकर मैं आश्चर्यचकित हूँ। मैं अत्यन्त प्रसन्न होकर पूछ रहा हूँ, तुम अवश्य मुझसे कहो ॥४७-४८॥

मुनिश्रेष्ठ भद्रशील पिता के इस प्रकार के शुभ विकल्पों को सुनकर प्रसन्न हो गया। सुकृतशील, पूर्व जन्म का ज्ञान रखने वाले उस बालक ने अपने पूर्वानुभूत रहस्यों को यथावत् रूप से पिता से कह दिया ॥४९॥

भद्रशील बोला--'तात ! मुनिश्रेष्ठ ! मुझे पूर्वकाल को जो अनुभूति है, उसको सुनो। मैं जातिस्मर होने के कारण उन सब बातों को जानता हूँ जिनको यम ने कहा था।

महाभाग्यशाली गालव इतनी बातें सुनकर विस्मित हो गए और प्रसन्न हो महामति भद्रशील से बोले ॥५०-५२॥

महाभाग ! तुम पूर्व जन्म में कौन थे ? यम ने क्यों किसलिए और क्या कहा ? इसको पूर्णरूप से मुझसे कहो ॥५३॥

१--पूर्व जन्म का ज्ञान रखने वाला।

भद्रशील उवाच

अहमासं पुरा तात राजा सोमकुलोद्भवः । धर्मकीर्तिरिति ख्यातो दत्तात्रेयेण शासितः ॥५४॥
नव वर्षसहस्राणि महीं कृत्स्नामपालयन् । अधर्माश्च तथा धर्मा मया तु बहवः कृताः ॥५५॥
ततः श्रिया प्रमत्तोऽहं बह्वधर्ममकारिषम् । पाखण्डजनसंसर्गात्पाखण्डचरितोऽभवम् ॥५६॥
पुरार्जितानि पुण्यानि मया तु सुबहून्यपि । पाखण्डैर्बाधितोऽहं तु वेदमार्गं समत्यजम् ॥५७॥
मखाश्च सर्वे विध्वस्ता कूटयुक्तिविदा मया । अधर्मनिरतं मां तु दृष्ट्वा मद्देशजाः प्रजाः ॥५८॥
सदैव दुष्कृतं चक्रुः षष्ठांशस्तत्र मेऽभवत् । एवं पापसमाचारो व्यसनाभिरतः सदा ॥५९॥
मृगयाभिरतो भूत्वा ह्येकदा प्राविशं वनम् । ससैन्योऽहं वने तत्र हत्वा बहुविधान्मृगान् ॥६०॥
क्षुत्तृट्परिवृतः श्रांतो रेवातीरमुपागमम् । रवितीक्ष्णातपक्लांतो रेवायां स्नानमाचरम् ॥६१॥
अदृष्टसैन्य एकाकी पीड्यमानः क्षुधा भृशम् ॥६२॥
समेतास्तत्र ये केचिद्रेवातीरनिवासिनः । एकादशीव्रतपरा मया दृष्टा निशामुखे ॥६३॥
निराहारश्च तत्राहमेकाकी तज्जनैः सह । जागरं कृतवांश्चापि सेनया रहितो निशि ॥६४॥
अध्वश्रमपरिश्रांतः क्षुत्पिपासाप्रपीडितः । तत्रैव जागरन्तेऽहं तात पंचत्वमागतः ॥६५॥
ततो यमभटैर्बद्धो महादंष्ट्राभयंकरैः । अनेकक्लेशसंपन्नमार्गेणाप्तो यमांतिकम् ॥६६॥
दंष्ट्राकरालवदनमपश्यं समवर्तिनम्
अथ कालश्चित्रगुप्तमाहूयेदमभाषत । अस्य शिक्षाविधानं च यथावद्वद पंडित ॥६७॥
एवमुक्तश्चित्रगुप्तो धर्मराजेन सत्तम । चिरं विचारयामास पुनश्चेदमभाषत ॥६८॥

भद्रशील बोला--तात ! मैं पहले सोमवंशीय राजा था । धर्मकीर्ति मेरा नाम और दत्तात्रेय द्वारा मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ था । मैंने नौ हजार वर्ष तक इस सम्पूर्ण भूमण्डल का शासन किया । इस बीच बहुत से धर्म और अधर्म भी किये । पाखण्डी जनों की कुसंगति में पड़कर स्वयं मैं पाखण्डी बन गया ॥५४-५६॥ यद्यपि मैंने पूर्व जन्म में बहुत से पुण्य किये थे, तथापि पाखण्ड से विवश होकर वेदमार्ग का त्याग कर दिया । कूटनीति के सहारे मैंने सारे यज्ञों को ध्वस्त कर दिया । मुझको पापकर्म करते देखकर मेरी प्रजा भी सर्वदा दुष्कर्म ही करती रही, जिसका छठा भाग मुझको मिला । इस प्रकार पापाचरण में लीन रहने वाला, व्यसनशील मैं एक दिन आखेट खेलने के लिए वन में गया । सैनिकों के सहित मैंने उस वन में बहुविध पशुओं का बध किया ॥५७-६०॥ भूख प्यास से व्याकुल और थका हुआ मैं रेवा (नर्मदा) के तीर पर पहुँचा । उस समय सूर्य के असह्य ताप से मेरा शरीर झुलस गया था । अकेला ही रेवा में नहाकर सैनिकों के दृष्टिपथ से दूर चला गया । मैं भूख से उस समय अत्यन्त पीड़ित था । सायंकाल देखा कि नर्मदा तीर निवासी सभी एकादशी व्रत कर रहे हैं । मैं भी उन्हीं लोगों के साथ रात्रि में अकेला ही निराहार रह गया और जागरण भी करता रहा । मेरे सैनिक तो पीछे ही छूट गये थे ॥६१-६४॥ तात ! रास्ता चलते-चलते थक जाने, भूखप्यास से पीड़ित होने के कारण जागरण के बाद वहीं मेरी मृत्यु हो गई । तदनन्तर महाभयङ्कर दाँतों वाले यमदूतों ने मुझे बाँधा और अनेक कष्टों से युक्त मार्ग से यमराज के समीप ले आये । वहाँ मैंने भयङ्कर दाँत और मुख वाले, समीप में बैठे हुए अनेक समान आकार वाले यमदूतों से घिरे हुए यमराज को देखा । यमराज ने चित्रगुप्त को बुलाकर कहा ।

पंडित ! इसके किये कर्मों का लेखा यथार्थ रूप से प्रस्तुत करो ॥६५-६७॥ सज्जनाग्रणी ! धर्मराज की इस प्रकार की आज्ञा पाकर चित्रगुप्त बहुत देर तक सोचता रहा । अन्त में उसने कहा

असौ पापरतः सत्यं तथापि शृणु धर्मप । एकादश्यां निराहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६९॥
एष रेवातटे रम्ये निराहरो हरेर्दिने । जागरं चोपवासं च कृत्वा निष्पापतां गतः ॥७०॥
यानि कानि च पापानि कृतानि सुबहूनि च । तानि सर्वाणि नष्टानि ह्युपवासप्रभावतः ॥७१॥
एवमुक्तो धर्मराजश्चित्रगुप्तेन धीमता । ननाम दंडवद् भूमौ ममाग्रे सोऽनुकंपितः ॥७२॥

धर्मराज उवाच

पूजयामास मां तत्र भक्तिभावेन धर्मराट् । ततश्च स्वभटान्सर्वानाहूयेदमुवाच ह ॥७३॥
शृणुध्वं मद्वचो दूता हितं वक्ष्याम्यनुत्तमम् । धर्ममार्गरतान्मर्त्यान्मानयध्वं समान्तिकम् ॥७४॥
ये विष्णुपूजनरताः प्रयताः कृतज्ञाश्चैकादशीव्रतपरा विजितेन्द्रियाश्च ।
नारायणाच्युतहरे शरणं भवेति शान्ता वदन्ति सततं तरसा त्यजध्वम् ॥७५॥
नारायणाच्युत जनार्दन कृष्ण विष्णो पद्मेश पद्मजपितः शिव शंकरेति ।
नित्य वदंत्यखिललोकहिताः प्रशान्ता दूराद्भटास्त्यजत तान्न ममैषु शिक्षा ॥७६॥
नारायणार्पितकृतान्हरिभक्तिभाजः स्वाचारमार्गनिरतान् गुरुसेवकांश्च ।
सत्पात्रदाननिरतांश्च सुदीनपालान्दूतास्त्यजध्वमनिशं हरिनामसक्तान् ॥७७॥
पाषंडसङ्गरहितान्द्विजभक्तिनिष्ठान्सत्संगलोलुपतरांश्च तथातिथेयान् ।
शंभौ हरौ च समबुद्धिमतस्तथैवदूतास्त्यजध्वमुपकारपराञ्जनानाम् ॥७८॥
ये वर्जिता हरिकथामृतसेवनैश्च नारायणस्मृतिपरायणमानसैश्च ।
विप्रेंद्रपादजलसेचनतोऽप्रहृष्टांस्तान्पापिनो मम भटा गृहमानयध्वम ॥७९॥

यद्यपि यह पापी है तथापि धर्मराज ! सुनिए। एकादशी के दिन निराहार रहने से मनुष्य सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है। यह तो नर्मदा तट पर एकादशी के दिन निराहार रहा, रात्रि में जागरण करने और उपवास करने से यह तो निष्पाप हो गया। इसने जो अत्यधिक पाप किये थे वे तो व्रत के प्रभाव से नष्ट हो गये। धीमान् चित्रगुप्त के इस प्रकार कहने पर धर्मराज ने बड़ी कृपा की और मेरे सामने ही दण्डवत् प्रणाम किया। धर्मराज ने भक्तिपूर्वक मेरी पूजा की और अपने अनुचरों को बुलाकर कहा ॥६८-७२॥

धर्मराज बोले—दूतो ! मेरी बातें सुनो, मैं तुम लोगों के हित की उत्तम बातें कह रहा हूँ। धर्म मार्ग में निरत रहने वाले मनुष्यों को मेरे समीप मत लाओ। सम्पूर्ण लोक का हित चाहने वाले उन शान्त महापुरुषों को जो प्रतिदिन नारायण! अच्युत ! जनार्दन ! कृष्ण ! विष्णु ! पद्मेश ! शिव ! शंकर ! आदि कहा करते हैं उनको दूर से ही प्रणाम करो और उनको मेरे पास न ले आओ यही मेरी इन लोगों के विषय में शिक्षा है ॥७३-७६॥ नारायण को ही अपना सब कुछ अर्पित करने वाले, भगवद्भक्ति के प्रेमी, अपने कुलाचार का पालन करने वाले, गुरुसेवक, सत्पात्र को दान देने वाले, दीनों का पालन करने वाले और हरिनाम स्मरण करने वाले सज्जनों को सर्वदा छोड़ दो। दूतो ! उसी प्रकार पाखण्डियों की संगति न करने वालों, ब्राह्मण-भक्तों, सत्संगति-प्रेमियों, अतिथि-सेवकों, शम्भु और विष्णु में समान भाव रखने वालों और उपकार-परायण जनों को भी छोड़ दिया करो। मेरे सेवको ! जो भगवत्कथा रूपी अमृत के पान से अपने को दूर रखते, नारायण के स्मरण में दिन रात लगे रहने वालों से दूर रहते और जो विप्रेन्द्रों के चरणोदक के अभिषेक से प्रसन्न नहीं होते उन पापियों को ही मेरे यहाँ

ये मातृतातपरिभर्त्सनशीलिनश्च लोकद्विषो हितजनाहितकर्मणश्च ।
देवस्वलोभनिरताञ्जननाशकर्तॄन्तत्रानयध्वमपराधपरांश्च दूताः ॥८०॥
एकादशीव्रतपराङ्मुखमुग्रशीलं लोकापवादनिरतं परनिंदकं च ।
ग्रामस्य नाशकरमुत्तमवैरयुक्तं दूताः समानयत विप्रधनेषु लुब्धम् ।
ये विष्णुभक्तिविमुखाः प्रणमंति नैव नारायणं हि शरणागतपालकं च ॥८२॥
विष्ण्वालयं च नहि यांति नराः सुमूर्खास्तानानयध्वमतिपापरतान्प्रसह्य ।
एवं श्रुतं यदा तत्र यमेन परिभाषितम् । मयानुतापदग्धेन स्मृतं तत्कर्म निंदितम् ॥८३॥
असत्कर्मानुतापेन सद्धर्मश्रवणेन च । तत्रैव सर्वपापानि निःशेषाणि गतानि मे ॥८४॥
पापशेषाद्विनिर्मुक्तं हरिसारूप्यतां गतम् । सहस्रसूर्यसंकाशं प्रणनाम यमश्च तम् ॥८५॥
एवं दृष्ट्वा विस्मितास्ते यमदूता भयोत्कटाः । विश्वासं परमं चक्रुर्यमेन परिभाषिते ॥८६॥
ततः संपूज्य मां कालो विमानशतसंकुलम् । सद्यः संप्रेषयामास तद्विष्णोः परमं पदम् ॥८७॥
विमानकोटिभिः सार्द्धं सर्वभोगसमन्वितैः । कर्मणा तेन विप्रर्षे विष्णुलोके मयोषितम् ॥८८॥
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । स्थित्वा विष्णुपदं पश्चादिंद्रलोकमुपागमम् ॥८९॥
तत्रापि सर्वभोगाढ्यः सर्वदेवनमस्कृतः । तावत्कालं दिवि स्थित्वा ततो भूमिमुपागतः ॥९०॥
अत्रापि विष्णुभक्तानां जातोऽहं भवतां कुले । जातिस्मरत्वाज्जानामि सर्वमेतन्मुनीश्वर ॥९१॥
एकादशीव्रतमिदमिति न ज्ञातवान्पुरा ॥९२॥
तस्माद्विष्णवर्चनोद्योगं करोमि सह बालकैः ।

लाओ ॥७७-७९॥ दूतो ! जो माता-पिता को झिड़कियाँ सुनाते, जो लोकद्वेषी, शुभचिन्तकों का अहित करने वाले, देव-धन का अपहरण करने वाले, अपराधी और जनता की हत्या करने वाले पापी हैं उनको यहाँ लाओ। दूतो ! एकादशी व्रत न करने वाले, उग्रस्वभाव, मेरे-निन्दक, लोकापवाद-प्रेमी, ग्राम हित को हानि पहुँचाने वाले, ब्राह्मणों की सम्पत्ति हड़प जाने वाले और कट्टर शत्रुता करने वाले को यहाँ लाओ ॥८०-८१॥ जो विष्णु-भक्ति से विमुख रहते और शरणागत-पालक नारायण को प्रणाम नहीं करते अथवा जो महामूर्ख और हरि-मन्दिर में नहीं जाते उन घोर पापियों को हठपूर्वक यहाँ लाओ।

जिस समय वहाँ यम की कही हुई इन बातों को सुना मेरा हृदय पश्चात्ताप की ज्वाला से जल उठा, अपने किये हुये निन्दित कर्मों का स्मरण करके दुःखी हो गया ॥८२-८३॥ असत्कर्मों के लिये पश्चात्ताप करने और धर्म की उत्तमोत्तम बातें सुनने से वहीं मेरे सम्पूर्ण पाप निःशेष हो गए। अशेष पापों के नष्ट हो जाने से मुझे हरि का सारूप्य प्राप्त हो गया। यमराज ने सहस्र सूर्य के समान तेजोमय उस रूप को देखकर प्रणाम किया। यह देखकर वे भयंकर यमदूत विस्मित हो गए। उनको यम की बातों पर पूर्णरूप से विश्वास हो गया। तदनन्तर यम ने मेरी पूजा की और तत्काल सैकड़ों देव विमानों के साथ मुझे विष्णु के परम पद को भेज दिया ॥८४-८७॥

विप्रर्षि ! उस सत्कर्म के प्रभाव से करोड़ों देव-विमानों और सब प्रकार के भोगों का उपभोग करता हुआ वहाँ रहने लगा। असंख्य कल्पों तक उस विष्णु लोक में निवास करने के बाद इन्द्रलोक में आया। वहाँ भी उतने ही कल्पों तक सब देवताओं की श्रद्धा का पात्र बनकर मैंने सम्पूर्ण दिव्य भोगों का उपभोग किया। तत्पश्चात् मैं इस पृथ्वी पर आया। यहाँ भी आप के समान विष्णु भक्त के कुल में ही उत्पन्न हुआ। मुनीश्वर ! जातिस्मर होने के कारण ही मैं इन बातों को जानता हूँ ॥८८-९१॥ इसलिए मैं बालकों के साथ विष्णु-पूजा के लिये प्रयत्न किया करता हूँ। पहले इस एकादशी व्रत की उत्कृष्टता को नहीं जानता था; परन्तु इस समय पूर्वजन्म के ज्ञान के

जातिस्मृतिप्रभावेण तज्ज्ञातं सांप्रतं मया । अत्र स्वेनापि यत्कर्म कृतं तस्य फलं त्विदम् ॥६३॥
एकादशीव्रतं भक्त्या कुर्वतां किमुत प्रभो । तस्माच्चरिष्ये विप्रेंद्र शुभमेकादशीव्रतम् ॥६४॥
विष्णुपूजां चाहरहः परमस्थानकांक्षया । एकादशीव्रतं यत्तु कुर्वंति श्रद्धया नराः ॥६५॥
तेषां तु विष्णुभवनं परमानंददायकम् । एवं पुत्रवचः श्रुत्वा संतुष्टो गालवो मुनिः ॥६६॥
अवाप परमां तुष्टिं मनसा चातिहर्षितः । मज्जन्म सफलं जातं मद्वंशः पावनीकृतः ॥६७॥
यतस्त्वं मद्गृहे जातो विष्णुभक्तिपरायणः । इति संतुष्टचित्तस्तु तस्य पुत्रस्य कर्मणा ॥६८॥
हरिपूजाविधानं च यथावत्समबोधयत् । इत्येतत्ते मुनिश्रेष्ठ यथावत्कथितं मया ।
संकोचविस्तराभ्यां च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥६९॥

इति श्रीबृहन्नारदीये पुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे व्रताख्याने एकादशीव्रतमहिमानुवर्णनंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

प्रभाव से सब कुछ जान लिया है। यहाँ अनिच्छया जो कुछ किया उसका यह फल मिला। प्रभो! तो भक्तिपूर्वक एकादशी व्रत करने वाले को कितना फल मिलता होगा। विप्रेन्द्र! इसीलिए इस शुभ एकादशी व्रत को मैं करता हूँ। श्रद्धा पूर्वक जो मनुष्य परम पद पाने की अभिलाषा से प्रतिदिन विष्णु की पूजा करते और एकादशी व्रत को करते हैं, उनको अवश्य परमानन्ददायक विष्णु-पद प्राप्त होता है॥६२-६५॥

पुत्र की इन बातों को सुनकर मुनि गालव सन्तुष्ट हो गये। उनको परमानन्द प्राप्त हो गया। वे अन्तःकरण से अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—

मेरा जन्म सफल हो गया, मेरा वंश पवित्र हो गया क्योंकि तुम्हारे समान विष्णु भक्त मेरे घर में उत्पन्न हो गया है।

उस पुत्र के कर्त्तव्यों से प्रसन्न होकर उन्होंने पूर्णरूप से हरि-पूजन की विधि बता दी।

मुनिश्रेष्ठ! ये सारी बातें तुमसे संक्षेप और विस्तार से भी ज्यों की त्यों कह दी। अब और क्या सुनना चाहते हो॥६६-६९॥

श्रीनारदीयमहापुराण में एकादशीव्रतकथन नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

सूत उवाच

एतन्निशम्य सनकोदितमप्रमेयं पुण्यं हरेर्दिनभवं निखिलोत्तमं च ।
पापौघशांतिकरणं व्रतसारमेवं ब्रह्मात्मजः पुनरभाषत हर्षयुक्तः ॥१॥

नारद उवाच

कथितं भवता सर्वं मुने तत्त्वार्थकोविद । व्रताख्यानं महापुण्यं यथावद्धरिभक्तिदम् ॥२॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि वर्णाचारविधिं मुने । तथा सर्वाश्रमाचारं प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥३॥
एतत्सर्वं महाभाग सर्वतत्त्वार्थकोविद । कृपया परया मह्यं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥४॥

सनक उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल यथा भक्तप्रियंकरः । वर्णाश्रमाचारपरैः पूज्यते हरिरव्ययः ॥५॥
मन्वाद्यैरुदितं यच्च वर्णाश्रमनिबंधनम् । तत्ते वक्ष्यामि विधिवद्भक्तोऽसि त्वमधोक्षजे ॥६॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चत्वार एव ते । वर्णा इति समाख्याता एतेषु ब्राह्मणोऽधिकः ॥७॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या द्विजाः प्रोक्तास्त्रयस्तथा । मातृतश्चोपनयनाद्द्विजत्वं प्राप्यते त्रिभिः ॥८॥
एतैर्वर्णैः सर्वधर्माः कार्या वर्णानुरूपतः । स्ववर्णधर्मत्यागेन पाषंडः प्रोच्यते बुधैः ॥९॥
स्वगृह्यचोदितं कर्म द्विजः कुर्वन्कृती भवेत् । अन्यथा पतितो भूयात्सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥१०॥

अध्याय २४

ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के सदाचार-वर्णन

सूत बोले—सनक जी ने पाप-समूहों को नष्ट करने वाले, सम्पूर्ण व्रतों के सारभूत एकादशी व्रत के परमोत्तम असंख्य पुण्यों को कहा। ब्रह्मा के पुत्र नारद जी इस रहस्य को सुनकर आनन्दित होकर फिर पूछने लगे ॥१॥

नारद बोले—मुनिवर ! तत्त्वार्थ के ज्ञाता ! आपने अत्यन्त पुण्यदायक हरिभक्ति प्रदान करने वाले व्रताख्यान को पूर्ण रूप से कह दिया। मुने ! अब मैं वर्ण-धर्म, सब आश्रमों के आचार और प्रायश्चित्त विधि को सुनना चाहता हूँ। महाभाग ! सब रहस्यों के ज्ञाता ! आप अत्यन्त कृपा करके इन सब तत्त्वों को यथार्थ रूप से मुझसे कहिए ॥२-४॥

सनक बोले—मुनिवर ! सुनो। वर्ण और आश्रम के आचारों का पालन करने वाले सज्जन जिस विधि से भक्तों के प्रिय कार्य करने वाले, अव्यय, हरि की पूजा करते हैं और मनु आदि धर्माचार्यों ने वर्णाश्रम धर्म के जिन नियमों को बनाया है उनको विधिपूर्वक कह रहा हूँ, सुनो; क्योंकि तुम भगवान् हरि के भक्त हो। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण कहे गये हैं। इनमें ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन द्विज कहे जाते हैं। इन तीनों ने मातृजन्म और उपनयन के कारण द्विजत्व प्राप्त किया है। इन वर्णों के लोगों को अपने वर्णों के अनुरूप सब धर्मों का पालन करना चाहिए। बुधजन अपने वर्णानुकूल धर्म के त्याग को 'पाखण्ड' कहते हैं ॥५-९॥ अपने गृह्यसूत्रों के अनुसार कर्म को करने वाला द्विज कृती होता है, अन्यथा वह अपने धर्मों से

युगधर्मः परिग्राह्यो वर्णैरेतैर्यथोचितम् । देशाचारास्तथाग्राह्याः स्मृतिधर्माविरोधतः ॥११॥
कर्मणा मनसा वाचा यत्नाद्धर्म्मं समाचरेत् । अस्वर्ग्यं लोक विद्विष्टं धर्म्यमप्याचरेन्न तु ॥१२॥
समुद्रयात्रास्वीकारः कमंडलुविधारणम् । द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा ॥१३॥
देवराच्च सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः । मांसादनं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा ॥१४॥
दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं वराय च । नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं च नरमेधाश्वमेधकौ ॥१५॥
महाप्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मखः । एतान्धर्मान्कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः ॥१६॥
देशाचाराः परिग्राह्यास्तत्तद्देशगतैर्नरैः । अन्यथा पतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥१७॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च द्विजोत्तम । क्रियाः सामान्यतो वक्ष्ये तच्छृणुष्व समाहितः ॥१८॥
दानं दद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तथा यज्ञैर्यजेत्सुरान् । वृत्त्यर्थं याचयेच्चैव अन्यानध्यापयेत्तथा ॥१९॥
याजयेद्यजने योग्यान्विप्रो नित्योदकी भवेत् । कुर्य्याच्च वेदग्रहणं तथाग्नेश्च परिग्रहम् ॥२०॥
ग्राह्ये द्रव्ये च पारक्ये समबुद्धिर्भवेत्तथा । सर्वलोकहितं कुर्यान्मृदुवाक्यमुदीरयेत् ॥२१॥
ऋतावभिगमः पत्न्यां शस्यते ब्राह्मणस्य वै । न कस्याप्यहितं ब्रूयाद्विष्णुपूजापरो भवेत् ॥२२॥
दद्याद्दानानि विप्रेभ्यः क्षत्रियोऽपि द्विजोत्तम । कुर्य्याच्च वेदग्रहणं यज्ञैर्देवान्यजेत्तथा ॥२३॥
शस्त्राजीवी भवेच्चैव पालयेद्धर्मतो महीम् । दुष्टानां शासनं कुर्य्याच्छिष्टानां पालनं तथा ॥२४॥
पाशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिश्च द्विजसत्तम । वेदस्याध्ययनं चैव वैश्यस्यापि प्रकीर्त्तितम् ॥२५॥
कुर्याच्च दारग्रहणं धर्मांश्चैव समाचरेत् । क्रयविक्रयजैर्वापि धनैः कारुक्रियोद्भवैः ॥२६॥
दद्याद्दानानि शूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेन्न च । ब्राह्मणक्षत्रियविशां शुश्रूषानिरतो भवेत् ॥२७॥

बहिष्कृत होकर पतित हो जाता है। इन द्विजों को उचित रूप से अपने युगधर्मों का आचरण करना चाहिए और स्मृतियों के अनुकूल ही देशाचार को अपनाना चाहिए। मन, वचन और कर्म से यत्न पूर्वक धर्म का आचरण करना चाहिए। लोक-विरुद्ध और स्वर्ग प्राप्ति में सहायता न पहुँचाने वाले कर्मों को, चाहे वह धर्मसंगत ही क्यों न हो, नहीं करना चाहिए ॥१०-१२॥ मनीषियों ने कलियुग में समुद्र-यात्रा करना, संन्यास ग्रहण करना, असवर्ण कन्याओं के साथ द्विजों का विवाह, देवर से पुत्र उत्पन्न करना, मधुपर्क में पशुओं का वध, श्राद्ध में मांस-भोजन, वानप्रस्थाश्रम, एक बार की दी हुई अक्षत कन्या का पुनर्विवाह, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, नरमेध, अश्वमेध, महाप्रस्थानगमन (सती प्रथा) गोमेध-यज्ञ, इन धर्मों को कलियुग के लिए निषिद्ध कहा है। तत्तद्देशीय मनुष्यों को उन देशों के आचारों को ही अपनाना चाहिए, अन्यथा वह सब धर्मों से बहिष्कृत होकर पतित समझा जाता है ॥१३-१७॥ द्विजोत्तम ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्मों का सामान्य रूप से वर्णन कर रहा हूँ, उसको सावधान होकर सुनो। दान ब्राह्मणों को ही देना चाहिए और यज्ञों द्वारा देवताओं की पूजा करनी चाहिए। ब्राह्मण जीविका के लिए याचना करे और दूसरों को पढ़ावे। ब्राह्मण यज्ञाधिकारी जनों को यज्ञ करावे और सर्वदा सन्ध्यातर्पण आदि करे। वेदाध्ययन और अग्न्याधान अवश्य करे ॥१८-२०॥ ग्राह्य द्रव्य और पराये द्रव्य में समान भाव रखे। लोक हित में सर्वदा लीन रहे और प्रिय भाषण करे। ब्राह्मण का ऋतुकाल में स्वस्त्रीगमन प्रशंसनीय है। किसी के अहित की बात न सोचे, न तो बोले ही, सर्वदा विष्णु पूजा में लवलीन रहे। द्विजवर्य ! क्षत्रिय भी ब्राह्मणों को ही दान दे। वह भी वेद का अध्ययन करे और यज्ञों द्वारा देवों को पूजा करे। वह शस्त्र द्वारा जीविका चलावे और पृथ्वी का पालन करे। दुष्टों का शासन और सज्जनों का पालन क्षत्रिय का धर्म है ॥२१-२४॥ पशु पालन, व्यापार, कृषि और वेदाध्ययन वैश्य का धर्म माना गया है। विवाह करना और धर्माचरण वैश्य के लिए प्रशस्त हैं। क्रय-विक्रय अथवा शिल्प के द्वारा धनोपार्जन करे। शूद्र भी दान दे परन्तु पाक-यज्ञ न करे। वह ब्राह्मण, क्षत्रिय,

ऋतुकालाभिगामी च स्वदारेषु भवेत्तथा । सर्वलोकहितैषित्वं मंगलं प्रियवादिता ॥२८॥
अनायासो मनोहर्षस्तितिक्षा नातिमानिता । सामान्यं सर्ववर्णानां मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥२९॥
सर्वे च मुनितां यांति स्वाश्रमोचितकर्मणा । ब्राह्मणः क्षत्रियाचारमाश्रयेदापदि द्विज ॥३०॥
क्षत्रियोऽपि च विड्वृत्तिमत्यापदि समाश्रयेत् । नाश्रयेच्छूद्रवृत्तिं तु अत्यापद्यपि वै द्विजः ॥३१॥
यद्याश्रयेद्द्विजो मूढस्तदा चांडालतां व्रजेत् । ब्राह्मणक्षत्रियविशां त्रयाणां मुनिसत्तम ॥३२॥
चत्वार आश्रमाः प्रोक्ताः पंचमो नोपपद्यते । ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो भिक्षुश्च सत्तम ॥३३॥
चतुर्भिराश्रमैरेभिः साध्यते धर्म उत्तमः । विष्णुस्तुष्यति विप्रेंद्र कर्मयोगरतात्मनः ॥३४॥
निःस्पृहाशांतमनसः स्वकर्मनिरतस्य च । ततो याति परं स्थानं यतो नावर्त्तते पुनः ॥३५॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे सदाचारो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

सनक उवाच

वर्णाश्रमाचारविधिं प्रवक्ष्यामि विशेषतः । शृणुष्व तन्मुनिश्रेष्ठ सावधानेन चेतसा ॥१॥
यः स्वधर्मं परित्यज्य परधर्मं समाचरेत् । पाषंडः स हि विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥२॥
गर्भाधानादिसंस्काराः कार्या मंत्रविधानतः । स्त्रीणाममंत्रतः कार्या यथाकालं यथाविधि ॥३॥
सीमंतकर्म प्रथमं चतुर्थे मासि शस्यते । षष्ठे वा सप्तमे वापि अष्टमे वापि कारयेत् ॥४॥

वैश्यों की शुश्रूषा में निरत रहे ॥२५-२७॥ अपनी स्त्री के निकट ऋतुकाल में जाय और सर्वदा लोकमंगल की इच्छा करे। प्रिय भाषण, स्वभाविक प्रसन्नता, तितिक्षा और निरभिमानता ये सामान्यतः सब वर्णों के कर्त्तव्य हैं। सब अपने वर्ण और आश्रमोचित कर्त्तव्यों के पालन के द्वारा मुनि का पद पा जाते हैं। द्विज! आपत्ति-काल में ब्राह्मण क्षत्रिय का कार्य कर सकता है क्षत्रिय वैश्य का। परन्तु ब्राह्मण आपत्ति काल में भी शूद्र वृत्ति न अपनावे। यदि कोई मूढतावश द्विज ऐसा करता है तो वह चाण्डाल सा हो जाता है ॥२८-३२॥

मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनों के चार आश्रम कहे गये हैं, पाँचवां कोई आश्रम नहीं है। सज्जनों में अग्रणी! ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये ही चार व्रत हैं। इन चतुराश्रमों के द्वारा उत्तम धर्म को प्राप्त किया जाता है। विप्रेन्द्र! कर्मयोगी, निःस्पृह, शान्त चित्त और स्वकर्म निरत जनों पर ही भगवान् प्रसन्न होते हैं। उनकी प्रसन्नता से वे उस लोक को चले जाते हैं जहाँ से पुनः लौटना नहीं होता। ॥३३-३५॥

श्री नारदीय महापुराण में सदाचार वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४॥

अध्याय २५

सनक बोले—वर्णाश्रमाचार विधि को विशेष रूप से कह रहा हूँ, मुनिश्रेष्ठ! उसको ध्यान पूर्वक सुनो। जो अपने धर्म को छोड़कर दूसरे के धर्म को अपनाता है, उस व्यक्ति को सब धर्मों से बहिष्कृत पाखण्डी समझना चाहिए। गर्भाधान आदि संस्कार मन्त्र विधि से करना चाहिए। स्त्रियों के ये संस्कार यथा समय, बिना मन्त्रोच्चारण के ही विधि पूर्वक होने चाहिए। सीमन्त संस्कार चौथे महीने में श्रेष्ठ माना गया है, परन्तु छठे, सातवें या

जाते पुत्रे पिता स्नात्वा सचैलं जातकर्म च । कुर्याच्च नांदीश्राद्धं च स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥५॥
हेम्ना वा रजतेनापि वृद्धिश्राद्धं प्रकल्पयेत् । अन्नेन कारयेद्यस्तु स चंडालसमो भवेत् ॥६॥
कृत्वाभ्युदयिकं श्राद्धं पिता पुत्रस्य वाग्यतः । कुर्वीत नामनिर्देशं सूतकांते यथाविधि ॥७॥
अस्पष्टमर्थहीनं च ह्यतिगुर्वक्षरान्वितम् । न दद्यान्नाम विप्रेंद्र तथा च विषमाक्षरम् ॥८॥
तृतीयवर्षे चौलं च पंचमे षष्ठसम्मिते । सप्तमे चाष्टमे वापि कुर्याद् गृह्योक्तमार्गतः ॥९॥
दैवयोगादतिक्रांते गर्भाधानादिकर्मणि । कर्तव्यः पादकृच्छ्रो वै चौले त्वर्द्धं प्रकल्पयेत् ॥१०॥
गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे बटुकस्योपनायनम् । आषोडशाब्दपर्यंतं गौणं कालमुशंति च ॥११॥
गर्भैकादशमेऽब्दे तु राजन्यस्योपनायनम् । आद्वाविंशाब्दपर्यंतं कालमाहुर्विपश्चितः ॥१२॥
वैश्योपनयनं प्रोक्तं गर्भाद्द्वादशमे तथा । चतुर्विंशाब्दपर्यन्तं गौणमाहुर्मनीषिणः ॥१३॥
एतत्कालावधेर्यस्य द्विजस्यातिक्रमो भवेत् । सावित्रीपतितं विद्यात्तं तु नैवालपेत्कदा ॥१४॥
द्विजोपनयने विप्र मुख्यकालव्यतिक्रमे । द्वादशाब्दं चरेत्कृच्छ्रं पश्चाच्चांद्रायणं तथा
सांतपनद्वयं चैव कृत्वा कर्म समाचरेत् ॥१५॥
अन्यथा पतितं विद्यात्कर्त्तापि ब्रह्महा भवेत् । मौंजी विप्रस्य विज्ञेया धनुर्ज्या क्षत्रियस्य तु ॥१६॥
आवी वैश्यस्य विज्ञेया श्रूयतामजिनं तथा । विप्रस्य चोक्तमैणेयं रौरवं क्षत्रियस्य तु ॥१७॥
आजं वैश्यस्य विज्ञेयं दंडान्वक्ष्ये यथाक्रमम । पालाशं ब्राह्मणस्योक्तं नृपस्यौदुम्बरं तथा ॥१८॥

आठवें महीने में भी यह किया जा सकता है ॥१-४॥ पुत्र उत्पन्न हो जाने पर पिता सचैल स्नान जात कर्म करे साथ साथ स्वस्तिवाचन पूर्वक नान्दी श्राद्ध भी करे। नान्दी श्राद्ध सोना अथवा चाँदी से करना चाहिए। जो अन्न से श्राद्ध करता है, वह चाण्डाल के समान समझा जाता है। पिता पुत्र के लिए आभ्युदयिक श्राद्ध करने के बाद वाणी का संयम करते हुए अनन्तर विधि पूर्वक नामकरण करे। विप्रेन्द्र! अस्पष्ट, निरर्थक, दीर्घ अक्षरों और विषम अक्षरों वाला नाम नहीं रखना चाहिए। तीसरे वर्ष, पाँचवें, छठे, सातवें या आठवें वर्ष गृह्य सूत्रों के अनुसार चौल संस्कार करना चाहिए। ॥५-९॥ दैवयोग से यदि गर्भाधान आदि संस्कार न हुआ हो तो पाद कृच्छ्रव्रत करे। चौल संस्कार के न करने पर अर्द्ध कृच्छ्रव्रत करे। गर्भ से आठवें वर्ष में ब्राह्मण वटुक का उपनयन संस्कार होना चाहिए। सोलहवें वर्ष तक उपनयन का काल मुनियों ने मध्यम कोटि का माना है ॥१०-११॥ क्षत्रिय का गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में उपनयन होना उत्तम है; परन्तु विद्वानों ने अठ्ठाईस वर्ष तक क्षत्रियों का उपनयन-काल स्वीकार किया है और वैश्यों का उपनयन गर्भ से बारहवें वर्ष तक हो जाना उत्तम है, परन्तु मनीषियों ने चौबीस वर्ष तक गौण काल माना है। जिस द्विज का इस अवधि तक उपनयन नहीं होता, उसको सावित्रीपतित समझना चाहिए और कभी भी उससे बातचीत न करे। विप्र! द्विजों के उपनयन संस्कार में उचित समय का उल्लंघन कर देने पर बारह वर्ष तक कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करे। तत्पश्चात् दो बार सान्तपन व्रत कर उपनयन करे ॥१२-१५॥ अन्यथा वह व्यक्ति पतित हो जाता है और उपनयन कराने वाला भी ब्रह्म हत्या का भागी होता है। विप्र के लिए मूंज की मेखला, क्षत्रिय के लिए धनुष की डोरी की और वैश्य के लिए भेंड़ के ऊन की बनी मेखला प्रशस्त समझी जाती है। अब अजिन के विषय में सुनो। विप्र का अजिन मृगचर्म का, क्षत्रिय का कृष्ण मृग का और वैश्य का अजा चर्म का होना चाहिए। अब क्रमशः दण्ड को कह रहा हूँ। ब्राह्मण का दण्ड पलाश का क्षत्रिय का गूलर का और वैश्य का विल्व का होना चाहिए। अब उसकी लम्बाई बतला रहा हूँ सुनो। ब्राह्मण का

बैल्वं वैश्यस्य विज्ञेयं तत्प्रमाणं शृणुष्व मे । विप्रस्य केशमानं स्यादाललाटं नृपस्य च ॥१९॥
नासाग्रसंमितं दण्डं वैश्यस्याहुर्विपश्चितः । तथा वासांसि वक्ष्यामि विप्रादीनां यथाक्रमम् ॥२०॥
कषायं चैव मांजिष्ठं हारिद्रं च प्रकीर्तितम् । उपनीतो द्विजो विप्र परिचर्यापरो गुरोः ॥२१॥
वेदग्रहणपर्यंतं निवसेद् गुरुवेश्मनि । प्रातःस्नायी भवेद्वर्णी समित्कुशफलादिकान् ॥२२॥
गुर्वर्थमाहरेन्नित्यं कल्ये कल्ये मुनीश्वर । यज्ञोपवीतमजिनं दंडं च मुनिसत्तम ॥२३॥
नष्टे भ्रष्टे नवं मंत्राद्धृत्वा भ्रष्टं जले क्षिपेत् । वर्णिनो वर्त्तनं प्राहुर्भिक्षान्नेनैव केवलम् ॥२४॥
भिक्षा च श्रोत्रियागारादाहरेत्प्रयतेन्द्रियः । भवत्पूर्वं ब्राह्मणस्य भवन्मध्यं नृपस्य च ॥२५॥
भवदंत्यं विशः प्रोक्तं भिक्षाहरणकं वचः । सायंप्रातर्वह्निकार्यं यथाचारं जितेन्द्रियः ॥२६॥
कुर्यात्प्रतिदिनं वर्णी ब्रह्मयज्ञं च तर्पणम् । अग्निकार्यपरित्यागी पतितः प्रोच्यते बुधैः ॥२७॥
ब्रह्मयज्ञविहीनश्च ब्रह्महा परिकीर्तितः । देवताभ्यर्चनं कुर्याच्छुश्रूषानुपदं गुरोः ॥२८॥
भिक्षान्नं भोजयेन्नित्यं नैकान्नाशी कदाचन । आनीयानिन्द्यविप्राणां गृहाद्भिक्षां जितेन्द्रियः ॥२९॥
निवेद्य गुरवेऽश्नीयाद्वाग्यतस्तदनुज्ञया । मधुस्त्रीमांसलवणं ताम्बूलं दंतधावनम् ॥३०॥
उच्छिष्टभोजनं चैव दिवास्वापं च वर्जयेत् । छत्रपादुकगंधांश्च तथा माल्यानुलेपनम् ॥३१॥
जलकेलिं नृत्यगीतवाद्यं तु परिवर्जयेत् । परिवादं चोपतापं विप्रलापं तथांजनम् ॥३२॥
पाखण्डजनसंयोगं शूद्रसंगं च वर्जयेत् । अभिवादनशीलः स्याद् वृद्धेषु च यथाक्रमम् ॥३३॥
ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धा वयोवृद्धा इति त्रयः । आध्यात्मिकादिदुःखानि निवारयति यो गुरुः ॥३४॥

दण्ड शिर के केश तक, क्षत्रिय का ललाट तक और वैश्य का दण्ड नासिका के अग्र भाग तक का होना चाहिए ॥१६–१९३॥

अब मैं ब्राह्मण आदि के वस्त्रों को क्रमानुसार कह रहा हूँ। कषाय, मजीठ और पीला वस्त्र क्रमशः वर्णानुसार होना चाहिए।

विप्र ! उपनीत द्विज गुरु की सेवा करता हुआ वेदाध्ययन काल तक गुरु-गृह में ही निवास करे। मुनीश्वर। ब्रह्मचारी नित्य प्रातःकाल स्नान कर गुरु के लिए उसी समय समिधा, कुशा और फल आदि लावे ॥२०-२२॥ मुनिश्रेष्ठ ! यज्ञोपवीत, अजिन और दण्ड के टूट जाने या अशुद्ध हो जाने पर पुनः मन्त्र पढ़कर नवीन धारण करना चाहिए और पुराने को किसी जलाशय में फेंक देना चाहिए। ब्रह्मचारी को केवल भिक्षान्न के द्वारा ही प्रति दिन का भोजन चलाना चाहिए ॥२३-२४॥ भिक्षा संयत होकर किसी श्रोत्रिय के घर से लानी चाहिए। भिक्षा माँगते समय ब्राह्मण ब्रह्मचारी भवान् (आप) शब्द का पहले ही प्रयोग करें, क्षत्रिय मध्य में और वैश्य अन्त में करें। यही भिक्षा काल का वाक्य होना चाहिए। वर्णी प्रतिदिन संयमपूर्वक आचारानुकूल हवन, ब्रह्मयज्ञ और तर्पण करे। अग्नि कार्य (हवन) का परित्याग करने वाले को पंडितों ने पतित कहा है ॥२५-२७॥ ब्रह्म यज्ञ को न करने वाला ब्रह्मघाती कहा गया है। गुरु की शुश्रूषा के पश्चात् देवपूजा करनी चाहिए। प्रतिदिन भिक्षान्न भोजन करे और कभी भी एक ही अन्न न खाये। जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी अनिंद्य ब्राह्मणों के घर से भिक्षा लाकर गुरु को अर्पित करे पुनः उनकी आज्ञा से स्वयं वाक्संयमी होकर भोजन करे। ब्रह्मचारी के लिए मद्य, स्त्री, मांस, नमक, ताम्बूल, दातौन, जूठा भोजन और दिन का सोना वर्जित है। उसको छाता, जूता सुगन्धित पदार्थ, माला, लेप, जल-क्रीड़ा, नृत्य, गीत और बाजा बजाना सर्वथा छोड़ देना चाहिए। निन्दा, अनुताप, व्यर्थालाप, अंजन, धूर्तों की संगति और शूद्रों की संगति नहीं करनी चाहिए। सर्वदा वृद्धजनों का क्रमानुसार अभिवादन करे ॥२८-३३॥ ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध और वयोवृद्ध तीन वृद्ध हैं। जो गुरु वेदशास्त्रों के उपदेश से मानसिक दुःखों को दूर कर देता है, उसको

वेदशास्त्रोपदेशेन तं पूर्वमभिवादयेत् । असावहमिति ब्रूयाद्द्विजो वै ह्यभिवादने ॥३५॥
नाभिवाद्याश्च विप्रेण क्षत्रियाद्याः कथंचन । नास्तिकं भिन्नमर्यादं कृतघ्नं ग्रामयाजकम् ॥३६॥
स्तेनं च कितवं चैव कदाचिन्नाभिवादयेत् । पाषण्डं पतितं व्रात्यं तथा नक्षत्रजीविनम् ॥३७॥
तथा पातकिनं चैव कदाचिन्नाभिवादयेत् । उन्मत्तं च शठं धूर्तं धावन्तमशुचिं तथा ॥३८॥
अभ्यक्तशिरसं चैव जपन्तं नाभिवादयेत् । विवादशीलिनं चंडं वमंतं जलमध्यगम् ॥३९॥
भिक्षान्नधारिणं चैव शयानं नाभिवादयेत् । भर्तृघ्नीं पुष्पिणीं जारां सूतिकां गर्भपातिनीम् ॥४०॥
कृतघ्नीं च तथा चंडीं कदाचिन्नाभिवादयेत् । सभायां यज्ञशालायां देवतायतनेष्वपि ॥४१॥
प्रत्येकं तु नमस्कारो हंति पुण्यं पुराकृतम् । श्राद्धं व्रतं तथा दानं देवताभ्यर्चनं तथा ॥४२॥
यज्ञं च तर्पणं चैव कुर्वंतं नाभिवादयेत् । कृतेऽभिवादने यस्तु न कुर्यात्प्रतिवादनम् ॥४३॥
नाभिवाद्यः स विज्ञेयो यथा शूद्रस्तथैव सः । प्रक्षाल्य पादावाचम्य गुरोरभिमुखः सदा ॥४४॥
तस्य पादौ च संगृह्य अधीयीत विचक्षणः । अष्टकासु चतुर्दश्यां प्रतिपत्पर्वणोस्तथा ॥४५॥
महाभरण्यां विप्रेंद्र श्रवणद्वादशीदिने । भाद्रपदापरपक्षे द्वितीयायां तथैव च ॥४६॥
माघस्य शुक्लसप्तम्यां नवम्यामाश्विनस्य च । परिवेषं गते सूर्ये श्रोत्रिये गृहमागते ॥४७॥
वंचिते ब्राह्मणे चैव प्रवृद्धकलहे तथा । संध्यायां गर्जिते मेघे ह्यकाले परिवर्षणे ॥४८॥
उल्काशनिप्रपाते च तथा विप्रेऽवमानिते । मन्वादिषु च देवर्षे युगादिषु चतुर्ष्वपि ॥४९॥
नाधीयीत द्विजः कश्चित्सर्वकर्मफलोत्सुकः । तृतीया माधवे शुक्ला भाद्रे कृष्णा त्रयोदशी ॥५०॥
कार्तिके नवमी शुद्धा माघे पंचदशी तिथिः । एता युगाद्याः कथिता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥५१॥

सबसे पहले अभिवादन करना चाहिए। द्विज अभिवादन के समय असौ (यह) अहम् (मैं) ऐसा कहे ॥३४-३५॥ किसी भी अवस्था में क्षत्रिय आदि जाति के मनुष्य विप्रों के अभिवादन के योग्य नहीं हैं। नास्तिक, सामाजिक मर्यादा भङ्ग करने वाले, कृतघ्न, पुरोहित, चोर और धूर्त का कभी भी अभिवादन नहीं करना चाहिये। पाखण्डी, पतित व्रात्य, ज्यौतिषी और पापी का कभी भी अभिवादन नहीं करना चाहिए। उन्मत्त, शठ, धूर्त, दौड़ते हुए व्यक्ति, अपवित्र, तैल से भीगे हुए शिर वाले और जप करते हुए व्यक्ति को प्रणाम नहीं करना चाहिए। बकवादी, उद्धत, वमन करते हुए, जल में खड़े, भिक्षुक और सोते हुए को प्रणाम सर्वथा निषिद्ध है ॥३६-३९॥ इसी प्रकार पति को हत्या करने वाली, ऋतुमती, व्यभिचारिणी, सूतिका, गर्भपात करने वाली, कृतघ्न तथा उद्धत स्त्री को भी नमस्कार करना उचित नहीं है। सभा, यज्ञशाला और देवमन्दिर में किया हुआ प्रत्येक व्यक्ति का नमस्कार पूर्वकृत पुण्यों का नाश करता है श्राद्ध, व्रत, दान, देवार्चन, यज्ञ और तर्पण करते हुए व्यक्ति का अभिवादन नहीं करना चाहिए। जो अभिवादन करने पर भी प्रत्यभिवादन (आशीर्वाद आदि) नहीं करता, उसको अभिवादन के अयोग्य समझना चाहिए। वह तो शूद्र के समान है ॥४०-४३॥ बुद्धिमान् शिष्य सर्वदा पाद प्रक्षालन और आचमन कर गुरु के सम्मुख बैठकर उनके चरणों को छूकर पढ़ना प्रारम्भ करे। विप्रेन्द्र ! सब कर्मों के फल को चाहने वाला कोई भी द्विज अष्टमी, चतुर्दशी, प्रतिपदा, पर्वतिथि, महाभरणी, श्रावण की द्वादशी, भाद्र शुक्ल द्वितीया, माघ शुक्ल सप्तमी, आश्विन की नवमी, सूर्य के चारों ओर मण्डलाकार चिह्न दिखाई देने के दिन, श्रोत्रिय के घर आने पर, ब्राह्मण के वंधन में पड़ने पर, कलह बढ़ जाने पर, सायंकाल मेघ-गर्जन होने पर, अकालवृष्टि होने पर उलका और बिजली गिरने पर, ब्राह्मण के अपमानित होने पर, देवर्षे ! चारों युगों के आर मन्वन्तरों के प्रारम्भ के दिन में न पढ़े। वैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया) भाद्र कृष्ण त्रयोदशी, कार्तिक शुक्ल नवमी, माघी पूर्णिमा, ये तिथियाँ युग-प्रारम्भ की तिथियाँ हैं। इन तिथियों में दिया हुआ दान

अक्षयुक्छुक्लनवमी कार्तिके द्वादशी सिता ॥५२॥
मन्वादींश्च प्रवक्ष्यामि शृणुष्व सुसमाहितः । आषाढशुक्लदशमी सिता माघस्य सप्तमी ॥५३॥
तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च । फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी सिता ॥५४॥
श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा । मन्वादयः समाख्याता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥५५॥
कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पंचदशी सिता । श्राद्धे निमंत्रिते चैव ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः ॥५६॥
द्विजैः श्राद्धं च कर्त्तव्यं मन्वादिषु युगादिषु । गलग्रहे दुर्दिने च नाधीयीत कदाचन ॥५७॥
अयनद्वितये चैव तथा भूकंपने मुने । अधीयतां सुमूढानां प्रजां प्रज्ञां यशः श्रियम् ॥५८॥
एवमादिषु सर्वेषु अनध्यायेषु नारद । अनध्याये तु योऽधीते तं विद्याद्ब्रह्मघातकम् ॥५९॥
आयुष्यं बलमारोग्यं निकृंतति यमः स्वयम् । कुण्डगोलकयोः केचिज्जडादीनां च नारद ॥६०॥
न तं संभाषयेद्विप्र न तेन सह संवसेत् । अनधीत्य तु यो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥६१॥
वदंति चोपनयनं तत्पुत्रादिषु केचन । अनधीतश्रुतिर्विप्र आचारं प्रतिपद्यते ॥६२॥
शूद्रतुल्यः स विज्ञेयो नरकस्य प्रियोऽतिथिः । नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्चान्यत्कर्म वैदिकम् ॥६३॥
नाचारफलमाप्नोति यथा शूद्रस्तथैव सः । शब्दब्रह्ममयो विष्णुर्वेदः साक्षाद्धरि स्मृतः ॥६४॥
अनधीतस्य विप्रस्य सर्वं भवति निष्फलम् । ॥६५॥
वेदाध्यायी ततो विप्रः सर्वान्कामानवाप्नुयात्

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे स्मार्ताचारेषु वर्णाश्रमधर्मध्व-
ध्ययनादिधर्मनिरूपणं नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

अक्षय होता है ॥४४-५१॥ अब मैं मन्वादि तिथियों को बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो । आश्विन शुक्ल की नवमी, कार्तिक शुक्ल की द्वादशी, चैत्र और भाद्र पद की तृतीया, आषाढ़ शुक्ल दशमी, माघ शुक्ल सप्तमी, श्रावण-कृष्णाष्टमी, आषाढ़ी पूर्णिमा, फाल्गुन की अमावस्या, पौष शुक्ल एकादशी, कार्तिक, फाल्गुन, चैत्र और ज्येष्ठ की पूर्णिमा, ये मन्वादि तिथियाँ हैं । इन पर्वों को दिया हुआ दान अक्षय होता है ॥५२-५५॥ मन्वादि और युगादि तिथियों में द्विजों को श्राद्ध अवश्य करना चाहिए । मुनि ! श्राद्ध में निमन्त्रित होने पर, चन्द्र और सूर्य ग्रहण के समय, दोनों अयनों के समय, भूकम्प, गलग्रह और दुर्दिन में कभी भी अध्ययन नहीं करना चाहिए ॥५६-५७॥ नारद ! इन उपर्युक्त अनध्याय के दिनों में अध्ययन करने वाले अविवेकी जनों की सन्तति, प्रज्ञा, यश, लक्ष्मी, आयु, बल, आरोग्य इन सबको यम स्वयं नष्ट कर देते हैं । जो अनध्याय के दिन पढ़ता है उसको ब्रह्मघातक समझना चाहिए । विप्र ! न तो उनके साथ बातचीत करनी चाहिए और न उनके साथ रहना ही चाहिए । नारद ! कुछ लोग कुण्ड, गोलक और जड़ पुरुषों का भी उपनयन करना चाहते हैं और कुछ उनके पुत्रों का । जो विप्र वेदों का अध्ययन न कर दूसरे विषयों में व्यर्थ परिश्रम करता है वह शूद्र के समान है और वह नरकगामी होता है ॥५८-६१½॥

जो विप्र वेदों को विना पढ़े आचार पालन करता है वह कभी भो आचार पालन का फल नहीं पाता है वह तो उसी प्रकार है जैसे शूद्र । अशिक्षित विप्रों का नित्य नैमित्तिक, काम्य अथवा जो कुछ वैदिक कर्म हैं वे सब निष्फल होते हैं । विष्णु शब्द ब्रह्ममय हैं, वेद साक्षात् हरि कहे गए हैं और वेदाध्यायी विप्र सब मनोरथों को प्राप्त करता है ॥६२-६५॥

श्री नारदीय महापुराण में स्मार्ताचार और आश्रम धर्म निरूपण नामक पचीसवाँ
अध्याय समाप्त ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

सनक उवाच

वेदग्रहणपर्यंतं शुश्रूषानियतो गुरोः । अनुज्ञातस्ततस्तेन कुर्यादग्निपरिग्रहम् ॥१॥
वेदाश्च धर्मशास्त्राणि वेदाङ्गान्यपि च द्विजः । अधीत्य गुरवे दत्त्वा दक्षिणां संविशेद्गृहम् ॥२॥
रूपलावण्यसंपन्नां सगुणां सुकुलोद्भवाम् । द्विजः समुद्वहेत्कन्यां सुशीलां धर्मचारिणीम् ॥३॥
मातृतः पंचमीं धीमान्पितृतः सप्तमीं तथा । द्विजः समुद्वहेत्कन्यामन्यथा गुरुतल्पगः ॥४॥
रोगिणीं चैव वृत्ताक्षीं सरोगकुलसंभवाम् । अतिकेशामकेशां च वाचालां नोद्वहेद्बुधः ॥५॥
कोपनां वामनां चैव दीर्घदेहां विरूपिणीम् । न्यूनाधिकाङ्गीमुन्मत्तां पिशुनां नोद्वहेद्बुधः ॥६॥
स्थूलगुल्फां दीर्घजंघां तथैव पुरुषाकृतिम् । श्मश्रुव्यंजनसंयुक्तां कुब्जां चैवोद्वहेन्न च ॥७॥
वृथाहास्यमुखीं चैव सदान्यगृहवासिनीम् । विवादशीलां भ्रमितां निष्ठुरां नोद्वहेद्बुधः ॥८॥
बह्वाशिनीं स्थूलदंतां स्थूलोष्ठीं घुर्घुरस्वनाम् । अतिकृष्णां रक्तवर्णां धूर्तां नैवोद्वहेद्बुधः ॥९॥
सदारोदनशीलां च पांडुराभां च कुत्सिताम् । कासश्वासादिसंयुक्तां निद्राशीलां च नोद्वहेत् ॥१०॥
अनर्थभाषिणीं चैव लोकद्वेषपरायणाम् । परापवादनिरतां तस्करां नोद्वहेद्बुधः ॥११॥
दीर्घनासां च कितवां तनूरुहविभूषिताम् । गर्वितां बकवृत्तिं च सर्वथा नोद्वहेद्बुधः ॥१२॥
बालभावादविज्ञातस्वभावामुद्वहेद्यदि । प्रगल्भां वाऽगुणां ज्ञात्वा सर्वथा तां परित्यजेत् ॥१३॥

अध्याय २६

द्विजातियों के वेदाध्ययन आदि धर्मों का निरूपण

सनक जी बोले—वेदाध्ययन काल तक ब्रह्मचारी गुरु की सेवा करे । तत्पश्चात् गुरु की आज्ञा पाकर अग्न्याधान करे । द्विज वेद, धर्मशास्त्र और वेदांगो का अध्ययन कर गुरु को दक्षिणा देने के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे । द्विज रूप-सौन्दर्य से युक्त, गुणी, कुलीन, सुशीला और धर्म-चारिणी कन्या से विवाह करे । बुद्धिमान् द्विज मातृ-कुल से पाँच और पितृ-कुल से सात पीढ़ी छोड़कर ही किसी कन्या से विवाह करे अन्यथा वह गुरु पत्नीगामी होगा ॥१-४॥ बुद्धिमान् व्यक्ति रोगी, वृत्ताक्षी (गोल आँखों वाली) रोगी कुल में उत्पन्न, अतिकेशा, अकेशा और वाचाल कन्या से विवाह न करे । क्रोधी, बौनी, अधिक लम्बी, कुरूप, न्यूनाधिक अंगों वाली, उन्मत्त और पिशुन कन्या से विवाह न करे । मोटे टखनों वाली, दीर्घजंघा, पुरुष के रूप वाली, दाढ़ी मूँछ के चिह्नों से युक्त और कुबड़ी स्त्री से विवाह न करे । व्यर्थ हँसी हँसने वाली, सदा दूसरे के घर रहने वाली, बकवादी, घर-घर घूमने वाली, और निष्ठुर कन्या से विवाह न करे ॥५-८॥ बहुत भोजन करने वाली, स्थूलदन्त, स्थूलोष्ठी, घुर्घुर शब्द करने वाली, अत्यन्त काली, रक्तवर्णा और धूर्त स्त्री से विवाह न करे । सदा रोती रहने वाली, पीली, कुत्सित, कास (दमा) रोग वाली, और बहुत अधिक सोने वाली से विवाह न करे । व्यर्थ बोलने वाली, लोक से द्वेष करने वाली, दूसरों की निन्दा करने वाली और चोर कन्या से विवाह न करे । बुधजन बड़ी नाक वाली, धूर्त, अधिक रोम वाली, गर्वीली, और बगुले के समान कपटी स्त्री से पंडित कभी भी विवाह न करे । यदि कोई कुमारी अवस्था में उसके स्वभाव का परिचय न पाने के कारण विवाह कर ले और बाद में वह ढीठ और गुणहीन निकले तो उसको सर्वथा छोड़ दे ॥९-१३॥

भर्तृपुत्रेषु या नारी सर्वदा निष्ठुरा भवेत् । परानुकूलिनी या च सर्वथा तां परित्यजेत् ॥१४॥
विवाहाश्चाष्टधा ज्ञेया ब्राह्माद्या मुनिसत्तम । पूर्वः पूर्वो वरो ज्ञेयः पूर्वाभावे परः परः ॥१५॥
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः । गांधर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमो मतः ॥१६॥
ब्राह्मेण च विवाहेन वैवाह्यो वै द्विजोत्तमः । दैवेनाप्यथवा विप्र केचिदार्षं प्रचक्षते ॥१७॥
प्राजापत्याद्यो विप्र विवाहाः पंच गर्हिताः । अभावेषु तु पूर्वेषां कुर्यादेव परान्बुधः ॥१८॥
यज्ञोपवीतद्वितयं सोत्तरीयं च धारयेत् । सुवर्णकुण्डले चैव धौतवस्त्रद्वयं तथा ॥१९॥
अनुलेपनलिप्तांगः कृत्तकेशनखः शुचिः । धारयेद्वैणवं दंडं सोदकं च कमंडलुम् ॥२०॥
उष्णीषममलं छत्रं पादुके चाप्युपानहौ । धारयेत्पुष्पमाल्ये च सुगंधं प्रियदर्शनः ॥२१॥
नित्यं स्वाध्यायशीलः स्याद्यथाचारं समाचरेत् । परान्नं नैव भुञ्जीत परवादं च वर्जयेत् ॥२२॥
पादेन नाक्रमेत्पादमुच्छिष्टं नैव लंघयेत् । न संहताभ्यां हस्ताभ्यां कंडूयेदात्मनः शिरः ॥२३॥
पूज्यं देवालयं चैव नापसव्यं व्रजेद्द्विजः । देवार्चाचमनस्नानव्रतश्राद्धक्रियादिषु ॥२४॥
न भवेन्मुक्तकेशश्च नैकवस्त्रधरस्तथा । नारोहेद्दुष्टयानं च शुष्कवादं च वर्जयेत् ॥२५॥
अन्यस्त्रियं न गच्छेच्च पैशुन्यं परिवर्जयेत् । नापसव्यं व्रजेद्विप्र गोऽश्वत्थानलपर्वतान् ॥२६॥
चतुष्पथं चैत्यवृक्षं देवखातं नृपं तथा । असूयां मत्सरत्वं च दिवास्वापं च वर्जयेत् ॥२७॥
न वदेत्परपापानि स्वपुण्यं न प्रकाशयेत् । स्वकं नाम स्वनक्षत्रं मानं चैवातिगोपयेत् ॥२८॥
न दुर्जनैः सह वसेन्नाशास्त्रं शृणुयात्तथा । आसवद्यूतगीतेषु द्विजस्तु न रतिं चरेत् ॥२९॥

जो स्त्री पति और पुत्र से सर्वथा निष्ठुर और दूसरे के अनुकूल रहे तो उसको सदा के लिए छोड़ दे ॥१०-१४॥

मुनिश्रेष्ठ ! ब्राह्म आदि आठ प्रकार के विवाह बतलाये गए हैं । इनमें पर की अपेक्षा पूर्व को श्रेष्ठ माना गया है । पूर्व के अभाव में पर वाला ही ग्राह्य होता है । ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और आठवाँ पैशाच विवाह है । द्विजोत्तम ब्राह्म विवाह विधि से ही विवाह करे । विप्र ! अथवा किसी के मत से दैव और आर्ष भी ब्राह्मण के लिए ग्राह्य माना गया है । विप्र ! प्राजापत्य आदि पाँच विवाह निन्दित हैं, परन्तु पूर्व के अभाव में पर को ही बुधजन अपनायें ॥१५-१८॥ बुध जन दो यज्ञोपवीत, उत्तरीय वस्त्र सहित दो धोतियाँ और सोने के कुण्डल धारण करें । अंगों में सर्वदा सुगन्धित लेप लगावे, केश और नख को कटा कर सर्वदा पवित्र रहे । बाँस की छड़ी, शुद्ध कमण्डलु, स्वच्छ पगड़ी, छाता, खड़ाऊँ और जूता पहने, पुष्प या पुष्प माला धारण करे सदा सुगंधित द्रव्य (इत्र आदि) लगाकर अपने को सौम्य और प्रिय दर्शन बनाये रहे । सर्वदा स्वाध्याय करता रहे और देशानुकूल आचरण करे । दूसरे का अन्न न खाये और दूसरों की निन्दा तो सर्वथा ही छोड़ देनी चाहिए ॥१९-२२॥

अपने पैर से पैर को न मारे और न तो जूठे भोजन को ही लाँघे। अपने शिर को मिले हुए दोनों हाथों से न खुजलाये । द्विज पूज्य मन्दिरों में अपसव्य (उलटा) होकर न जाये । देवार्चन, आचमन, स्नान, व्रत और श्राद्ध में केशों को न बिखेरे तथा केवल एक वस्त्र ही न पहने । ऊँट की सवारी न करे । और न तो शुष्कवाद ही करे । पर स्त्री के पास न जाय और न तो चुगली करे । विप्र ! अपसव्य होकर गौ, अश्वत्थ, अग्नि और पर्वत के समीप न जाय ॥२३-२६॥ चौराहा, चैत्यवृक्ष (बोधिवट और बुद्ध समाधि के समीप के वृक्ष), देव कुण्ड अथवा गुफा, राजा, छिद्रान्वेषण, मात्सर्य और दिन का सोना सर्वथा छोड़ देना चाहिए । दूसरों के पापों को न कहे और न अपने पुण्य को प्रकट करे । नाम, नक्षत्र और मान को गुप्त ही रखना चाहिए । दुर्जनों के साथ न रहे, न तो

॥३०॥
आर्द्रास्थि च तथोच्छिष्टं शूद्रं च पतितं तथा । सर्पं च भषणं स्पृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत् ॥३१॥
चितिं च चितिकाष्ठं च यूपं चांडालमेव च । स्पृष्ट्वा देवलकं चैव सवासा जलमाविशेत् ॥३२॥
दीपखट्वातनुच्छायाकेशवस्त्रकटोदकम् । अजामार्जनिमार्जाररेणुर्द्वं शुभं हरेत् ॥३३॥
शूर्पवातं प्रेतधूमं तथा शूद्रान्नभोजनम् । वृषलीपतिसङ्गं च दूरतः परिवर्जयेत् ॥३४॥
असच्छास्त्रार्थमननं खादनं नखकेशयोः । तथैव नग्नशयनं सर्वदा परिवर्जयेत् ॥३५॥
शिरोभ्यंगावशिष्टेन तैलेनांगं न लेपयेत् । ताम्बूलमशुचिं नाद्यात्तथा सुप्तं न बोधयेत् ॥३६॥
नाशुद्धोऽग्निं परिचरेत्पूजयेद्गुरुदेवताः । न वामहस्तेनैकेन पिबेद्वक्त्रेण वा जलम् ॥३७॥
न चाक्रमेद्गुरोश्छायां तदाज्ञां च मुनीश्वर । न निंदेद्योगिनो विप्रान्व्रतिनोऽपि यतींस्तथा ॥३८॥
परस्परस्य मर्माणि न कदापि वदेद्द्विजः । दर्शे च पौर्णमास्यां च यागं कुर्याद्यथाविधि ॥३९॥
उपासनं च होतव्यं सायं प्रातर्द्विजातिभिः । उपासनपरित्यागी सुरापीत्युच्यते बुधैः ॥४०॥
अयने विषुवे चैव युगादिषु चतुर्ष्वपि । दर्शे च प्रेतपक्षे च श्राद्धं कुर्याद्गृही द्विजः ॥४१॥
मन्वादिषु मृताहे च अष्टकासु च नारद । नवधान्ये समायाते गृही श्राद्धं समाचरेत् ॥४२॥
श्रोत्रिये गृहमायाते ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः । पुण्यक्षेत्रेषु तीर्थेषु गृही श्राद्धं समाचरेत् ॥४३॥
यज्ञो दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् । वृथा भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुंड्रं विना कृतम् ॥४४॥
ऊर्ध्वपुंड्रं च तुलसीं श्राद्धे नेच्छंति केचन । वृथाचारः परित्याज्यस्तमाच्छ्रेयोऽर्थिभिर्द्विजैः ॥४५॥
इत्येवमादयो धर्माः स्मृतिमार्गप्रचोदिताः । कार्या द्विजातिभिः सम्यक्सर्वकर्मफलप्रदाः

शास्त्र विरुद्ध बातों को ही सुने । द्विज जुआ और अश्लील गीतों में रुचि न रखे । गीली हड्डी, जूठा भोजन, शूद्र, पतित, साँप और कुत्ते के छू जाने पर सचैल स्नान करना चाहिए ॥२७-३०॥ चिता, चिता का काठ, यूप, चाण्डाल, पुजारी के स्पर्श हो जाने पर जल में वस्त्र सहित डुबकी लगावे । दीपक, खटिया, परछाईं, केश, वस्त्र और चटाई का जल, बकरी, झाड़ू और बिल्ली के शरीर को धूलि मनुष्य के भाग्य और कल्याण को नष्ट कर देती है । सूप की वायु, प्रेत (चिता) का धुआं, शूद्रान्न-भोजन, शूद्रा-पति का साथ दूर से छोड़ देना चाहिए । गन्दी पुस्तकों का पढ़ना, नख और केश को मुख से चबाना और नंगे ही सोना सर्वदा निषिद्ध है । शिर पर लगाने से बचे हुए तेल को अपने शरीर में नहीं लगाना चाहिए, न तो अशुद्ध पान ही खाना चाहिए । सोये हुए को जगाना भी उचित नहीं ॥३१-३५॥ स्वयं अशुद्ध रहकर अग्नि, गुरु और देवता की पूजा नहीं करनी चाहिए । बायें हाथ से, एक हाथ से अथवा पात्र को मुंह में लगाकर नहीं पीना चाहिए । मुनीश्वर ! गुरु की छाया और आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए । योगी, व्रती, ब्राह्मण और संन्यासियों की निन्दा नहीं करनी चाहिए । द्विज एक दूसरे के रहस्य या मर्मपीड़ा पहुँचाने वाली बातें न करे । शास्त्रानुसार पूर्णिमा और अमावास्या को पौर्णमास और दर्श यज्ञ करे ॥३६-३९॥ द्विज प्रातः और सायंकाल की सन्ध्या तथा हवन करे । सन्ध्या न करने वाले को पंडित मद्यप कहते हैं । नारद ! गृहस्थ द्विज अयन, विषुव, चारों युगादि तिथियों को, अमावस्या और पितृपक्ष में अवश्य श्राद्ध करे । किसी श्रोत्रिय गृहस्थ, मन्वादितिथियों में, मृत्यु के दिन, अष्टमी और नया अन्न घर आने पर श्राद्ध अवश्य करे । बिना ऊर्ध्व के घर आने पर चन्द्र और सूर्य ग्रहण के समय, पुण्य क्षेत्रों और तीर्थों में गृहस्थ अवश्य श्राद्ध करे । कुछ विद्वान् पुंड्र तिलक लगाये यज्ञ, दान, तप, होम, स्वाध्याय और पितृतर्पण आदि कर्म निष्फल हो जाते हैं । कुछ विद्वान् द्विज ऊर्ध्व पुंड्र तुलसी की माला को श्राद्ध के लिए अपेक्षित नहीं समझते । इसलिए श्रेय की कामना करने वाले द्विज व्यर्थ के आचारों का सर्वथा परित्याग कर दें ॥४०-४४॥ ये उपर्युक्त धर्म स्मृतिमार्ग के अनुकूल

सदाचारपरा ये तु तेषां विष्णुः प्रसीदति । विष्णौ प्रसन्नतां याते किमसाध्यं द्विजोत्तम ॥४६॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे स्मार्त्तधर्मेषु वेदाध्ययनादिकस्य गृहस्थधर्मस्य च निरूपणं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

सनक उवाच

गृहस्थस्य सदाचारं वक्ष्यामि मुनिसत्तम । यद्व्रतां सर्वपापानि नश्यंत्येव न संशयः ॥१॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पुरुषार्थाविरोधिनीम् । वृत्तिं संचिंतयेद्विप्र कृतकेशप्रसाधनः ॥२॥
दिवासंध्यासुकर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः । कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥३॥
शिरः प्रावृत्य वस्त्रेण ह्यंतर्द्धाय तृणैर्महीम् । वहन्काष्ठं करेणैकं तावन्मौनी भवेद्द्विजः ॥४॥
पथि गोष्ठे नदीतीरे तडागगृहसन्निधौ । तथा वृक्षस्यच्छायायां कांतारे वह्निसन्निधौ ॥५॥
देवालये तथोद्याने कृष्टभूमौ चतुष्पथे । ब्राह्मणानां समीपे च तथा गोगुरुयोषिताम् ॥६॥
तुषांगारकपालेषु जलमध्ये तथैव च । एवमादिषु देशेषु मलमूत्रं न कारयेत् ॥७॥
शौचे यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः । शौचाचारविहीनस्य समस्तं कर्म निष्फलम् ॥८॥

और सब कर्म फलों के देने वाले हैं । अतएव द्विज इनका अवश्य पालन करें । द्विजोत्तम ! सदाचारी व्यक्ति पर विष्णु सदा प्रसन्न रहते हैं, विष्णु के प्रसन्न हो जाने पर संसार में असाध्य ही क्या है ॥४५-४६॥

श्री नारदीय महापुराण में वेदाध्ययन और गृहस्थधर्म निरूपण नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२६॥

अध्याय २७

गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी के धर्म का निरूपण

सनक बोले—मुनिश्रेष्ठ ! गृहस्थ के सदाचारों का वर्णन कर रहा हूँ । जिसके कथन मात्र से मनुष्यों के सब पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं । विप्र ! प्रातःकाल उठकर पहले अपने केशों को कंघी करे और तब पुरुषार्थ के अनुकूल कार्यों पर विचार करे । दिन में और सन्ध्या समय उत्तराभिमुख होकर कान पर यज्ञोपवीत चढ़ाकर और रात्रि में दक्षिणाभिमुख होकर लघुशंका आदि करे ॥१-३॥ उस समय वस्त्र से अपना शिर ढँक ले, घास या तृण को पृथ्वी पर रखकर एक हाथ में काठ ले और मूत्रत्याग आदि करते समय तक मौन रहे। मार्ग में, गोशाला में, नदी तोर में, तालाब और घर के समीप, वृक्षों की छाया में, वन में, अग्नि के समीप, देवालय में, उद्यान में, जुती भूमि पर, चौराहे पर, ब्राह्मणों के समीप, गाय, गुरु और स्त्रियों के पास, भूसा, अंगार, कपाल, जल के बीच और अन्य पवित्र स्थानों में मलमूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। पवित्रता पर सर्वदा ध्यान देना चाहिए। क्योंकि द्विज पवित्रता के ही कारण श्रेष्ठ माने गये हैं । शुद्धता और आचार से हीन व्यक्ति के सारे कार्य निष्फल

शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यंतरं तथा । मृज्जलाभ्यां बहिः शुद्धिर्भावशुद्धिस्तथांतरम् ॥९॥
गृहीतशिश्नश्चोत्थाय शौचार्थं मृदमाहरेत् । न मूषकादिखनितां फालोत्कृष्टां तथैव च ॥१०॥
वापीकूपतडागेभ्यो नाहरेदपि मृत्तिकाम् । शौचं कुर्यात्प्रयत्नेन समादाय शुभां मृदम् ॥११॥
लिंगे मृदेका दातव्या तिस्रो वा मेढ्रयोर्द्वयोः । एतन्मूत्रसमुत्सर्गे शौचमाहुर्मनीषिणः ॥१२॥
एका लिंगे गुदे पंच दश वामे तथोभयोः । सप्त तिस्रः प्रदातव्याः पादयोर्मृत्तिकाः पृथक् ॥१३॥
एतच्छौचं विडुत्सर्गे गंधलेपापनुत्तये । एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥१४॥
त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां तच्चतुर्गुणम् । स्वस्थाने पूर्णशौचं स्यात्पथ्यर्द्धं मुनिसत्तम ॥१५॥
आतुरे नियमो नास्ति महापदि तथैव च । गंधलेपक्षयकरं शौचं कुर्याद्विचक्षणः ॥१६॥
स्त्रीणामनुपनीतानां गंधलेपक्षयावधि । व्रतस्थानां तु सर्वेषां यतिवच्छौचमिष्यते ॥१७॥
विधवानां च विप्रेंद्र एतदेव निगद्यते । एवं शौचं तु निर्वर्त्य पश्चाद्वै सुसमाहितः ॥१८॥
प्रागास्य उदगास्यो वाप्याचामेत्प्रयतेंद्रियः । त्रिश्चतुर्वा पिबेदापो गंधफेनादिवर्जिताः ॥१९॥
द्विर्मार्जयेत्कपोलं च तलेनोष्ठौ च सत्तम । तर्जन्यंगुष्ठयोगेन नासारंध्रद्वयं स्पृशेत् ॥ २०॥
अंगुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुः श्रोत्रे यथाक्रमम् । कनिष्ठांगुष्ठयोगेन नाभिदेशे स्पृशेद्द्विजः ॥२१॥
तलेनोरःस्थलं चैव अंगुल्यग्रैः शिरः स्पृशेत् । तलेन चांगुलाग्रैर्वा स्पृशेदंसौ विचक्षणः ॥२२॥
एवमाचम्य विप्रेन्द्र शुद्धिमाप्नोत्यनुत्तमाम् । दंतकाष्ठं ततः खादेत्सत्वचं शस्तवृक्षजम् ॥२३॥

होते हैं ॥४-८॥ शौच दो प्रकार का होता है, शारीरिक और मानसिक। मिट्टी और जल से शरीर की और भावनाओं द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि होती है। मूत्रेन्द्रिय को हाथ से पकड़कर उठे और शुद्धि के लिए मिट्टी लावे। चूहों के बिल की मिट्टी, फाल से जोती हुई, बावली, कुँआ और तालाब से मिट्टी न ले। अच्छी मिट्टी लेकर यत्नपूर्वक शुद्धि करनी चाहिए। मूत्रेन्द्रिय में एक बार दोनों अण्डकोषों में तीन बार मिट्टी लगानी चाहिए। मनीषी मूत्र त्याग के समय यही शुद्धि बतलाते हैं ॥९-१२॥

जननेन्द्रिय में एक बार, गुदा में पाँच, बायें हाथ में दश, दोनों हाथों में सात और पैरों में तीन बार मिट्टी लगानी चाहिए। मलत्याग करने पर दुर्गन्ध मिटाने के लिए इस प्रकार शुद्धि के नियम हैं। गृहस्थों के लिए शुद्धता के ये नियम हैं परन्तु ब्रह्मचारी के दुगुना परिमाण बताया गया है। वानप्रस्थ के लिए तीन गुना और संन्यासियों के लिए चौगुना कहा गया है ॥१३-१४½॥ अपने घर पर तो इसका पालन पूर्ण रूप से होना चाहिए, परन्तु मार्ग में इसका आधा और रोग अथवा आपत्ति के समय इस पर विशेष विचार नहीं रखा जाता। स्त्रियों और उपनयन से रहितों को दुर्गन्धि मिटने तक मिट्टी लगानी चाहिए। व्रतपालन के समय प्रत्येक को यति के समान शौच के नियमों का पालन करना चाहिए। विप्रेन्द्र! विधवाओं के लिए भी यही नियम कहे गये हैं। इस प्रकार पवित्र हो जाने के बाद भली भाँति संयम पूर्वक पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर तीन बार या चार बार कुल्ली करे। कुल्ली करने या पीने का जल गंध तथा फेन से रहित होना चाहिए। मुनिश्रेष्ठ! दो बार कपोलों को धोना चाहिए और हथेली से ओठों को, तर्जनी और अंगूठे को मिलाकर दोनों नासा छिद्रों को छूना चाहिए ॥१५-२०॥ अंगूठा और अनामिका से आँख और कान को क्रमशः स्पर्श करना चाहिए। द्विज कनिष्ठा और अंगूठे को मिलाकर नाभि का स्पर्श करे। हथेली से छाती और अंगुलियों से शिर का स्पर्श करे। विद्वान् मनुष्य हथेली से या अंगुलियों के अग्र भाग से दोनों कंधों को छूवे। विप्रेन्द्र! इस प्रकार आचमन करने से अत्यन्त शुद्धि प्राप्त होती है ॥२१-२२½॥

इसके अनन्तर वल्कल के सहित किसी उत्तम वृक्ष की दातौन करनी चाहिए। बिल्व, असन वृक्ष, अपामार्ग

मंत्रेणाप्यभिमंत्रितम् ॥२४॥
बिल्वासनापामार्गाणां निम्बाम्रार्कादिशाखिनाम् । प्रक्षाल्य वारिणा चैव
आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च । ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो धेहि वनस्पते ॥२५॥
कनिष्ठाग्रसमं स्थौल्ये विप्रः खादेद्दशांगुलम् । नवांगुलं क्षत्रियश्च वैश्यश्चाष्टांगुलोन्मितम् ॥२६॥
शूद्रो वेदांगुलमितं वनिता च मुनीश्वर । अलाभे दंतकाष्ठानां गंडूषैर्भानुसंमितैः ॥२७॥
मुखशुद्धिर्विधीयेत तृणपत्रसमन्वितैः । करेणादाय वामेन संचर्वेद्वामदंष्ट्रया ॥२८॥
द्विजान्संघर्ष्य गोदोहं ततः प्रक्षाल्य पाटयेत् । जिह्वामुल्लिखय ताभ्यां तु दलाभ्यां नियतेन्द्रियः ॥२९॥
प्रक्षाल्य प्रक्षिपेद् दूरे भूयश्चाचम्य पूर्ववत् । ततः स्नानं प्रकुर्वीत नद्यादौ विमले जले ॥३०॥
तटं प्रक्षाल्य दर्भांश्च विन्यस्य प्रविशेज्जलम् । प्रणम्य तत्र तीर्थानि आवाह्य रविमंडलात् ॥३१॥
गंधाद्यैर्मंडलं कृत्वा ध्यात्वा देवं जनार्दनम् । स्नायान्मंत्रान्स्मरन्पुण्यांस्तीर्थानि च विरिंचिज ॥३२॥
गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिंधुकावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ॥३३॥
पुष्कराद्यानि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा । आगच्छंतु महाभागाः स्नानकाले सदा मम ॥३४॥
अयोध्या मथुरा माया काशी कांची ह्यवंतिका । पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥३५॥
ततोऽघमर्षणं जप्त्वा यतासुर्वारिसंप्लुतः । स्नानांगं तर्पणं कृत्वाचम्यार्घ्यं भानवेऽर्पयेत् ॥३६॥
ततो ध्यात्वा विवस्वंतं जलान्निर्गत्य नारद । परिधायाहतं धौतं द्वितीयं परिवीय च ॥३७॥
कुशासने समाविश्य संध्याकर्म समारभेत् । ईशानाभिमुखो विप्र गायत्र्याचम्य वै द्विज ॥३८॥

(चिचिड़ा) नीम, आम और अर्क आदि वृक्षों की दातौन करनी चाहिए। पहले उसको पानी से धोकर मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिए। मन्त्र—वनस्पते ! तुम हमको आयु, बल, यश, तेज, संतति, पशु, धन, ज्ञान, प्रज्ञा और मेधा प्रदान करो। विप्र ! कनिष्ठा के अगले भाग के समान और दश अंगुल लम्बी मोटी दातौन करे। मुनीश्वर ! क्षत्रिय नव अंगुल लम्बी, वैश्य आठ अंगुल, शूद्र और स्त्री चार अंगुल लम्बी दतुअन करे। दातौन न मिलने पर बारह बार कुल्ली करके तृण अथवा पत्तियों से मुख शुद्धि करनी चाहिए २३-२७॥ बायें हाथ से दातौन लेकर उसको बायीं ओर के दातों से ही चबाना चाहिए। फिर दातों को भली भाँति रगड़कर मसूड़ों को भी धीरे-धीरे रगड़े और धोवे। उस दातौन के चीरे से जीभ को भली भाँति साफ कर उसको पानी से धोवे और उस दातौन को दूर फेंक दे। पुनः पूर्व की भाँति आचमन करे॥२८-२९॥

इतनी क्रिया के बाद नदी या स्वच्छ जल वाले तालाब में स्नान करना चाहिए। पहले तट को धोकर उस पर कुशों को रख देना चाहिए। तब जल में नहाने के लिए घुसना चाहिए। उस जल में सब तीर्थों का आवाहन कर प्रणाम करना चाहिए। ब्रह्मा के पुत्र ! उस जल में गंध आदि से मण्डल बनाकर भगवान् जनार्दन का ध्यान करना चाहिए। तत्पश्चात् पुण्यप्रद मन्त्रों और तीर्थों का स्मरण करते हुए स्नान करना चाहिए ॥३०-३२॥ मन्त्र—गंगे ! यमुने ! गोदावरि ! सरस्वति ! नर्मदे ! सिन्धु और कावेरि ! इस जल में निवास करो। हे महाभाग पुष्कर आदि तीर्थो ! गंगा आदि नदियों ! सदा मेरे लिए स्नान के समय आप लोग आइए। अयोध्या मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका, और द्वारिका पुरी ये सात मोक्ष देने वाली पुरी समझी जाती हैं। इसके बाद अघमर्षण मन्त्र को जपकर उसी जल में रहकर ही स्वस्थ भाव से स्नान करे। तदनन्तर तर्पण और आचमन कर सूर्य को अर्घ्य दे ॥३३-३६॥ इतनी क्रियायें स्नान में ही सम्मिलित हैं। नारद ! स्नान के बाद सूर्य का ध्यान कर जल से बाहर आवे। भीगे वस्त्र को छोड़कर दूसरा स्वच्छ वस्त्र पहने और कुशासन पर बैठकर सन्ध्या करे। विप्र ! ईशानाभिमुख होकर गायत्री मन्त्र से आचमन करे। बुद्धिमान् व्यक्ति 'ऋतञ्च सत्यम्' इस मन्त्र से पुनः आचमन करे। तदनन्तर जल से अपने को परिवेष्टित कर अभिषेक करे (जल छिड़के)। संकल्प करने के बाद

ऋतमित्यभिमंत्र्याथ पुनरेवाचमेद् बुधः। ततस्तु वारिणात्मानं वेष्टयित्वा समुक्ष्य च ॥३९॥
संकल्प्य प्रणवान्ते तु ऋषिच्छंदःसुरान्स्मरन्। भूरादिभिर्व्याहृतिभिः सप्तभिः प्रोक्ष्य मस्तकम् ॥४०॥
न्यासं समाचरेन्मंत्री पृथगेव करांगयोः। विन्यस्य हृदये तारं भूः शिरस्यथ विन्यसेत् ॥४१॥
भुवः शिखायां स्वश्चैव कवचे भूर्भुवोऽक्षिषु। भूर्भुवः स्वस्तथास्त्रं दिक्षु तालत्रयं न्यसेत् ॥४२॥
तत आवाहयेत्संध्यां प्रातः कोकनदस्थिताम्। आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि ॥४३॥
गायत्रि च्छंदसां मातर्ब्रह्मयोने नमोऽस्तु ते। मध्याह्ने वृषभारूढां शुक्लांबरसमावृताम् ॥४४॥
सावित्रीं रुद्रयोनिं चावाहयेद्रुद्रवादिनीम्। सायं तु गरुडारूढां पीताम्बरसमावृताम् ॥४५॥
सरस्वतीं विष्णुयोनिमाह्वयेद्विष्णुवादिनीम्। तारं च व्याहृतीः सप्त त्रिपदां च समुच्चरन् ॥४६॥
शिरः शिखां च संपूर्य कुम्भयित्वा विरेचयेत्। वाममध्यात्परैर्वायुं क्रमेण प्राणसंयमे ॥४७॥
द्विराचामेत्ततः पश्चात्प्रातः सूर्यश्चमेति च। आपः पुनंतु मध्याह्ने सायमग्निश्चमेति च ॥४८॥
आपोहिष्ठेति तिसृभिर्मार्जनं च ततश्चरेत्। सुमित्रिया न इत्युक्त्वा नासास्पृष्टजलेन च ॥४९॥
द्विषद्वर्गं समुत्सार्य द्रुपदां शिरसि क्षिपेत्। ऋतं च सत्यमेतेन कृत्वा चैवाघमर्षणम् ॥५०॥
अंतश्चरसि मंत्रेण सकृदेव पिबेदपः। ततः सूर्याय विधिवद्गन्धं पुष्पं जलांजलिम् ॥५१॥
क्षिप्त्वोपतिष्ठेद् वर्षं भास्करं स्वस्तिकांजलिम्। ऊर्ध्वबाहुरधोबाहुः क्रमात्कल्यादिके त्रिके ॥५२॥

प्रणाम करे और ऋषि, छन्द तथा देवता का स्मरण करते हुए भूः आदि सात व्याहृतियों से मस्तक पर जल छिड़के ॥३७-४०॥ मन्त्र पढ़कर भुजाओं या अन्य अंगों पर पृथक्-पृथक् न्यास करना चाहिए। हृदय पर 'तार (ॐ) का न्यास कर शिर पर भूः, शिखा पर भुवः, कवच में (दोनों हाथों से कन्धों को छूना) स्वः और दोनों नेत्रों पर भूर्भुवः का न्यास करे। और भूर्भुवः स्वः को पढ़कर अस्त्राय फट् को और दिशाओं में तीन ताल का न्यास करे अर्थात् तीन चुटकी बजावे ॥४१-४२॥

यह न्यास कर चुकने पर प्रातःकाल अरुण कमल पर बैठी हुई सन्ध्या देवी का आवाहन करे। 'देवि! वरदायिनि! आओ, अक्षरे! ब्रह्मवादिनि! गायत्रि! छन्दों की माता! ब्रह्मयोनि! (ज्ञानदात्री!) तुमको नमस्कार है। दोपहर को बैल पर चढ़ी हुई श्वेत वस्त्र से सुशोभित रुद्रयोनि और रुद्रवादिनी सावित्री का आवाहन करे। ॥४३-४४॥ सायं गरुड़ पर चढ़ी हुई पीतांवर से सुशोभित, विष्णुवादिनी, विष्णुयोनि सरस्वती का आवाहन करे। ॐ, सप्तमहाव्याहृति और त्रिपदागायत्री का उच्चारण करता हुआ शिर और शिखा को पूरक (प्राणयाम) द्वारा पूर्णकर कुम्भक और तत्पश्चात् रेचक (प्राणायाम) करे। पहले बायीं नाड़ी से (पिंगला) प्राणायाम के समय वायु को खींच कर मध्यनाड़ी (सुषुम्ना में) स्थापित करे पुनः इड़ा (दाहिनी नाड़ी दाहिना नासिका छिद्र) से उसको बाहर निकाल दे। तदनन्तर प्रातः काल 'सूर्यश्च मामन्युश्च, इस मन्त्र से दो बार आचमन करे 'मध्याह्न में 'आपः पुनन्तु, इस मन्त्र से और सायं 'अग्निश्च मामन्युश्च, इस मन्त्र से आचमन करे ॥४५-४८॥ आचमन के अनन्तर 'आपोहिष्ठामयोभुवः, इस मन्त्र से तीन बार मार्जन करना चाहिए। 'सुमित्रिया न, यह मन्त्र पढ़ कर नासिका से जल छुआ कर, शत्रुओं का ध्यान कर उनका निःसारण करना चाहिए। फिर 'द्रुपदादिव, मन्त्र पढ़कर शिर पर जल छिड़के। 'ऋतञ्च सत्यम्' इस मन्त्र से अघमर्षण करके 'अन्तश्चरसि, इस मन्त्र से एक बार आचमन करना चाहिए। तदनन्तर सूर्य को विधिपूर्वक गन्ध, पुष्प और जल का अर्घ्य देकर स्वस्तिकांजलि के साथ सूर्योपस्थान करना चाहिए। सूर्योपस्थान के समय तीनों काल क्रमशः ऊर्ध्वबाहु और अधोबाहु रहना चाहिए ॥४९-५२॥ नारद! 'उदुत्यं जात, चित्रं देवानाम्,

उदुत्यं चित्रं तच्चक्षुरित्येतत्त्रितयं जपेत् । सौराञ्छैवान्वैष्णवांश्च मंत्रानन्यांश्च नारद ॥५३॥
तेजोऽसि गायत्र्यसीति प्रार्थयेत्सवितुर्महः । ततोऽङ्गानि त्रिरावर्त्य ध्यायेच्छक्तीस्तदात्मिकाः ॥५४॥
ब्रह्माणी चतुराननाक्षवलया कुम्भं करैः स्रुक्स्रुवौ, बिभ्राणा त्वरुणेंदुकांतिवदना ऋग्रूपिणी बालिका ।
हंसारोहणकेलिखणखणमणेर्बिबार्चिता भूषिता, गायत्री परिभाविता भवतु नः संपत्समृद्ध्यै सदा ॥५५॥
रुद्राणी नवयौवना त्रिनयना वैयाघ्रचर्मांबरा, खट्वांगत्रिशिखाक्षसूत्रवलयाऽभीतिश्रियै चास्तु नः ।
विद्युद्दामजटाकलापविलसद्बालेंदुमौलिर्मुदा, सावित्री वृषवाहना सिततनुर्ध्येया यजूरूपिणी ॥५६॥
ध्येया सा च सरस्वती भगवती पीतांबरालंकृता, श्यामा श्यामतनुर्जरोपरिलसद्गात्रांचिता वैष्णवी ।
तार्क्ष्यस्था मणिनूपुरांगदलसद्ग्रैवेयभूषोज्ज्वला, हस्तालंकृतशंखचक्रसुगदापद्मा श्रियै चास्तु नः ॥५७॥
एवं ध्यात्वा जपेत्तिष्ठन्प्रातर्मध्याह्नके तथा । सायंकाले समासीनो भक्त्या तद्गतमानसः ॥५८॥
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् । त्रिपदां प्रणवोपेतां भूर्भुवः स्वरुपक्रमाम् ॥५९॥
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् । त्रिपदां प्रणवोपेतां भूर्भुवः स्वरुपक्रमाम् ॥५९॥
षट्तारः संपुटो वापि व्रतिनश्च यतेर्जपः । गृहस्थस्य सतारः स्याज्जप्य एवंविधा मुने ॥६०॥
षट्तारः संपुटो वापि व्रतिनश्च यतेर्जपः । गृहस्थस्य सतारः स्याज्जप्य एवंविधा मुने ॥६१॥
ततो जप्त्वा यथाशक्ति सवित्रे विनिवेद्य च । गायत्र्यै च सवित्रे च प्रक्षिपेदंजलिद्वयम् ॥६२॥
ततो विसृज्य तां विप्र उत्तरे इति मंत्रतः । ब्रह्मणेशेन हरिणानुज्ञाता गच्छ सादरम् ॥६३॥
दिग्भ्यो दिग्देवताभ्यश्च नमस्कृत्य कृतांजलिः । प्रातरादेः परं कर्म कुर्यादपि विधानतः ॥६३॥

तच्चक्षुः आदि तीन मन्त्रों का जप करना चाहिए । इसके अतिरिक्त सूर्य के अथवा शिव और विष्णु के मन्त्रों का जप करना भी श्रेयस्कर है । 'तेजोसि गायत्र्यसि' इस मन्त्र से दिन में सूर्य की प्रार्थना करे । तदनन्तर अपने अंगों को तीन बार जल से परिवेष्टित कर काल के अनुरूप शक्ति का ध्यान करना चाहिए ॥५३-५४॥ ध्यान के मन्त्र—जो ब्रह्माणी चार मुख वाली, अक्ष का कंकण धारण करने वाली, हाथ में कलश, स्रुक् और स्रुवा को धारण करने वाली, बाल चन्द्रमा की कान्ति के समान मुख-कान्ति वाली, ऋक्स्वरूप और बालिका हैं, हंस पर आरोहण करते समय जिसके माला-मणियों से झन्कार की ध्वनि निकलती है, मणिबिम्बों से सुशोभित वे गायत्रीरूपिणी देवी सर्वदा हम लोगों को समृद्धि और विभव प्रदान करें ॥५५॥ नवयौवन से सुशोभित, तीन नेत्रों वाली, व्याघ्रचर्म का वस्त्र धारण करने वाली रुद्राणी—जिनके हाथों में खट्वांग अस्त्र, अग्नि और अक्षसूत्र का वलय है—हम लोगों को अभय और श्री प्रदान करें बिजली की भाँति चमकीले केशों से सुशोभित बाल चन्द्रमा को शिर पर धारण करने वाली यजुर्वेद स्वरूपिणी श्वेताङ्गी और बैल पर चढ़ी हुई सावित्रीदेवी का ध्यान करना चाहिए ॥५६॥ वह ध्यान करने योग्य, पीताम्बर से सुशोभित, मणि, नूपुर, अंगद (विजायठ) और हार से आभूषित, हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करने वाली श्यामा, वृद्धावस्था के लक्षणों से सुशोभित श्याम शरीर वाली और गरुड़ पर आरुढ़ वैष्णवी सरस्वती देवी हमारी श्री वृद्धि करें । इस विधि से गायत्री का ध्यान कर एकाग्र भाव से प्रातः और मध्याह्न काल में तो खड़ा होकर जप करे और सायंकाल आसन पर बैठकर जप करे । गायत्री का एक हजार जप परमोत्तम, एक सौ मध्यम तथा दश तृतीय श्रेणी का जप है । ओंकार और भूः भुवः स्वः से युक्त त्रिपदा गायत्री का ही जप उचित है ॥५७-५९॥ व्रतशील यति के लिए षट् ओंकार से युक्त अथवा संपुटित गायत्री मन्त्र विहित है । मुने ! गृहस्थ के लिए केवल एक ओंकार से युक्त मन्त्र को ही श्रेष्ठ माना गया है । तदनन्तर यथा शक्ति जप कर सूर्य की प्रार्थना करे और गायत्री तथा सावित्री को दो अञ्जलि प्रदान करे । विप्र ! इस प्रकार संध्या समाप्त करने के बाद 'उत्तरे शिखरे' इस मन्त्र से गायत्री का विसर्जन करे और कहे कि ब्रह्मा, ईश और हरि की आज्ञा से आप आदर पूर्वक यहाँ से प्रस्थान करें । तत्पश्चात् दिशाओं और दिग्देवताओं को हाथ जोड़कर नमस्कार करे और अन्य कार्यों को विधान पूर्वक करे ॥६०-६३॥

प्रातर्मध्यंदिने चैव गृहस्थः स्नानमाचरेत् । वानप्रस्थश्च देवर्षे स्नायात्त्रिश्रवणं यतिः ॥६४॥
आतुराणां तु रोगाद्यैः पांथानां च सकृन्मतम् । ब्रह्म यज्ञं ततः कुर्याद्दर्भपाणिर्मुनीश्वर ॥६५॥
दिवोदितानि कर्माणि प्रमादादकृतानि चेत् । शर्वर्याः प्रथमे यामे तानि कुर्याद्यथाक्रमम् ॥६६॥
नोपास्ते यो द्विजः संध्यां धूर्तबुद्धिरनापदि । पाखंडः स हि विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥६७॥
यस्तु संध्यादिकर्माणि कूटयुक्तिविशारदः । परित्यजति तं विद्यान्महापातकिनां वरम् ॥६८॥
ये द्विजा अभिभाषन्ते त्यक्तसंध्यादिकर्मणः । ते यांति नरकान्घोरान्यावच्चंद्रार्कतारकम् ॥६९॥
देवार्चनं ततः कुर्याद्वैश्वदेवं यथाविधि । तत्रत्यमतिथिं सम्यगन्नाद्यैश्च प्रपूजयेत् ॥७०॥
वक्तव्या मधुरा वाणी तेऽप्यभ्यागतेषु तु । जलान्नकंदमूलैर्वा गृहदानेन चार्चयेत् ॥७१॥
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते । स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥७२॥
अज्ञातगोत्रनामानमन्यग्रामादुपागतम् । विपश्चितोऽतिथिं प्राहुर्विष्णुवत्तं प्रपूजयेत् ॥७३॥
स्वग्रामवासिनं त्वेकं श्रोत्रियं विष्णुतत्परम् । अन्नाद्यैः प्रत्यहं विप्र पितॄनुद्दिश्य तर्पयेत् ॥७४॥
पंचयज्ञपरित्यागी ब्रह्महेत्युच्यते बुधैः । कुर्यादहरहस्तस्मात्पंचयज्ञान्प्रयत्नतः ॥७५॥
देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञस्तथैव च । नृयज्ञो ब्रह्मयज्ञश्च पंचयज्ञान्प्रचक्षते ॥७६॥
भृत्यमित्रादिसंयुक्तः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः । द्विजानां भोज्यमश्नीयात्पात्रं नैव परित्यजेत् ॥७७॥
संस्थाप्य स्वासने पादौ वस्त्रार्द्धं परिधाय च । मुखेन वमितं भुक्त्वा सुरापीत्युच्यते बुधैः ॥७८॥
खादितार्द्धं पुनः खादेन्मोदकांश्च फलानि च । प्रत्यक्षं लवणं चैव गोमांसाशीति गद्यते ॥७९॥

गृहस्थ प्रातः और दोपहर को स्नान करे, परन्तु देवर्षि ! यति और वानप्रस्थाश्रमी तीनों काल स्नान करे। रोग आदि से पीड़ित और पथिक के लिए एक काल का स्नान भी मान्य है । मुनीश्वर ! इसके अनन्तर हाथ में कुशा लेकर ब्रह्मयज्ञ करना चाहिए । यदि प्रमाद वश दैनिक कर्म न हो पायें तो उन कर्मों को रात्रि के प्रथम प्रहर में क्रम पूर्वक करना चाहिए ॥६४-६६॥ जो धूर्त बुद्धि स्वस्थ रहकर भी सन्ध्योपासना नहीं करता उसको पाखण्डी और सब धर्मों से बहिष्कृत समझना चाहिए । जो कूटनीतिज्ञ सन्ध्यादि नित्य कर्मों को नहीं करता है उसको बहुत बड़ा महापातकी समझना चाहिए । जो द्विज सन्ध्या आदि कर्मों को त्यागे हुए द्विजों से बात करते हैं वे कल्पान्त तक घोर नरक में रहते हैं । सन्ध्या करने के अनन्तर यथा विधि वैश्व देव और देव पूजन करना चाहिए । और यदि कोई अतिथि आ जाय तो विधिवत् अन्न आदि सामग्री से उसकी सेवा करनी चाहिए ॥६७-७०॥ अतिथियों के आने पर मधुरवाणी द्वारा स्वागत करना चाहिए और जल, अन्न कन्द, मूल, फल अथवा अपने यहाँ रहने के लिए स्थान देकर उनकी सेवा करनी चाहिए। जिसके घर से कोई अतिथि निराश होकर चला जाता है वह उस गृहस्थ को अपना पाप दे देता और स्वयं उसके पुण्य को लेकर चला जाता है । दूसरे गाँव से आये हुए अज्ञात गोत्र और नाम वाले, व्यक्ति को ही विद्वान् लोग अतिथि कहते हैं । उसको विष्णु के समान समझकर सत्कार करना चाहिए ॥७१-७३॥ अपने ग्राम के एक श्रोत्रिय और विष्णुभक्त विप्र को प्रति दिन पितरों की तृप्ति के उद्देश्य से अन्न आदि से तृप्त करना चाहिए। पंच यज्ञ को न करने वाला व्यक्ति ब्रह्मघाती कहा जाता है । इसलिए प्रतिदिन यत्न पूर्वक पंच यज्ञों को करना चाहिए । देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, नृयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ ये ही पंचयज्ञ कहे जाते हैं। स्वयं मौन होकर भृत्य और मित्र आदि के साथ भोजन करना चाहिए । द्विजों का भोज्य अन्न ही भोजन करना चाहिए । सत्पात्र का अनादर नहीं करना चाहिए ॥७४-७७॥

अपने आसन पर दोनों पैरों को रखकर, आधा वस्त्र पहन कर भोजन करने से और उगले हुए अन्न को पुनः खाने से मनुष्य मद्यप कहा जाता है, ऐसा पंडित लोग कहते हैं । मिठाई फल आदि को पहले आधा खाकर

शब्दं न कारयेद्विप्रस्तं कुर्वन्नारकी भवेत् ॥८०॥
अपोशाने वाचमने अद्यद्रव्येषु च द्विजः । अमृतोपस्तरणमसि अपोशानं भुजेः पुरः ॥८१॥
पथ्यमन्नं प्रभुञ्जीत वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् । प्राणाद्या आहुतीर्दत्त्वाचम्य भोजनमाचरेत् ॥८२॥
अमृतापिधानमसि भोज्यान्तेऽपः सकृत्पिबेत् । रात्रावपि यथाशक्ति शयनासनभोजनैः ॥८३॥
ततश्चाचम्य विप्रेन्द्र शास्त्रचिंतापरो भवेत् । यदाऽऽचारपरित्यागी प्रायश्चित्ती तदा भवेत् ॥८४॥
एवं गृही सदाचारं कुर्यात्प्रतिदिनं मुने । पुत्रेषु भार्यां निःक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥८५॥
वलितां स्वतनुं दृष्ट्वा पलिताद्यैश्च सत्तम । अधःशायी ब्रह्मचारी पञ्चयज्ञपरायणः ॥८६॥
भवेत्त्रिषवणस्नायी नखश्मश्रुजटाधरः । दयावान्सर्वभूतेषु नारायणपरायणः ॥८७॥
फलमूलाशनो नित्यं स्वाध्यायनिरतस्तथा । अष्टौ ग्रासांश्च भुञ्जीत न कुर्याद्रात्रिभोजनम् ॥८८॥
वर्जयेद्ग्रामजातानि पुष्पाणि च फलानि च । व्यवायं वर्जयेच्चैव निद्रालस्ये तथैव च ॥८९॥
अत्यन्तं वर्जयेत्तैलं वानप्रस्थसमाश्रमी । वानप्रस्थः प्रकुर्वीत तपश्चांद्रायणादिकम् ॥९०॥
शंखचक्रगदापाणिं नित्यं नारायणं स्मरेत् । यदा मनसि वैराग्यं जातं सर्वेषु वस्तुषु ॥९१॥
सहेत शीतातपादिं वह्निं परिचरेत्सदा । वेदांताभ्यासनिरतः शांतो दांतो जितेंद्रियः ॥९२॥
तदैव संन्यसेद्विप्र पतितस्त्वन्यथा भवेत् । शमादिगुणसंयुक्तः कामक्रोधविवर्जितः ॥९३॥
निर्द्वंद्वो निरहंकारो निर्ममः सर्वदा भवेत् । समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ॥९४॥
नग्नो वा जीर्णकौपीनो भवेन्मुंडो यतिर्द्विजः ।

फिर उसको दुबारा खाने वाला और नमक को बिना किसी भोज्य पदार्थ में मिलाकर खाने वाला व्यक्ति गोमांस-
भोजी समझा जाता है ॥७८-७९॥ आपोशान (आचमन) करते समय भोजन और जल पीते समय किसी प्रकार
की बातचीत न करे अन्यथा वह व्यक्ति पापी होता है। मौन होकर स्वास्थप्रद भोजन करना चाहिए। भोज्य
अन्न की निन्दा नहीं करनी चाहिए। भोजन के पहले 'अमृतोपस्तरणमसि' इस मन्त्र से आचमन करना चाहिए।
भोजन के बाद 'अमृतापिधानमसि' इस मन्त्र को पढ़कर एक बार जल पीना चाहिए। 'प्राणाय स्वाहा' आदि
मन्त्र पढ़कर पाँच बार अग्नि में आहुति देकर भोजन करना चाहिए ॥८०-८३॥ भोजनोपरान्त आचमन कर
शास्त्र चिन्तन करना चाहिए। रात्रि में भी यथाशक्ति शयन, आसन और भोजन के साथ साथ नियमों का पालन
करना चाहिए। मुने! इस प्रकार गृहस्थ प्रति दिन सदाचार का पालन करे। जिस समय गृहस्थ आचार
का त्याग कर देता है उस समय वह प्रायश्चित्त का भागी होता है। मुनिवर्य! अपने शरीर में बुढ़ापे का
लक्षण दिखाई पड़े तब अपने पुत्र पर स्त्री का भार छोड़कर या उसको साथ लेकर वन में चला जाय ॥८३-८५॥
वानप्रस्थाश्रम ग्रहण कर लेने पर तीनों काल स्नान करे, नख, जटा और दाढ़ी रखे, भूमि पर ही सोये और ब्रह्म-
चर्य का पालन करे। पंचयज्ञों को करता हुआ नित्य फलमूल भोजन करे और स्वाध्याय में लगा रहे। नारायण
का ध्यान करता हुआ सब प्राणियों पर दया भाव रखे। ग्राम्य पुष्पों और फलों का उपयोग न करे, केवल आठ
कौर भोजन करे। रात्रि में भोजन करना उसके लिए सर्वथा निषिद्ध है। वानप्रस्थाश्रमी तैल का स्पर्श तक न
करे, (मैथुन) निद्रा और आलस्य का सर्वथा परित्याग कर दे ॥८६-८९॥ नित्यप्रति शंख-चक्र-गदाधारी नारायण
का स्मरण करे। वानप्रस्थ में चान्द्रायण आदि का तप करना चाहिए। सदा शीत, आतप आदि सहे और अग्नि
परिचर्या (हवन) करे ॥९४-९०॥

विप्र! जिस समय सब वस्तुओं से मन में वैराग्य हो जाय उसी समय संन्यास लेना चाहिए अन्यथा वह
व्यक्ति पतित हो जाता है। संन्यासी वेदान्त के अध्ययन और मनन में लगा रहे। वह शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय
अहंकार रहित, निर्द्वन्द्व और निर्मम रहे। यति द्विज शम, दम आदि गुणों से युक्त होकर काम क्रोध आदि से दूर
रहे ॥९०-९३॥ या तो वह नग्न रहे या पुराने वस्त्रों का कौपीन पहने और सर्वदा मुण्डी रहे। शत्रु और मित्र के

एकात्रं वसेद्ग्रामे त्रिरात्रं नगरे तथा । भैक्षेण वर्त्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेद्यतिः ॥९५॥
अनिंदितद्विजगृहे व्यंगारे भुक्तिवर्जिते । विवादरहिते चैव भिक्षार्थं पर्यटेद्यतिः ॥९६॥
भवेत्त्रिषवणस्नायी नारायणपरायणः । जपेच्च प्रणवं नित्यं जितात्मा विजितेंद्रियः ॥९७॥
एकान्नादी भवेद्यस्तु कदाचिल्लंपटो यतिः । न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥९८॥
लोभाद्यदि यतिर्विप्र तनुपोषपरो भवेत् । स चंडालसमो ज्ञेयो वर्णाश्रमविगर्हितः ॥९९॥
आत्मानं चिंतयेद्देवं नारायणमनामयम् । निर्द्वंद्वं निर्ममं शांतं मायातीतममत्सरम् ॥१००॥
अव्ययं परिपूर्णं च सदानन्दैकविग्रहम् । ज्ञानस्वरूपममलं परं ज्योतिः सनातनम् ॥१०१॥
अविकारमनाद्यंतं जगच्चैतन्यकारणम् । निर्गुणं परमं ध्यायेदात्मानं परतः परम् ॥१०२॥
पठेदुपनिषद्वाक्यं वेदान्तार्थांश्च चिंतयेत् । सहस्रशीर्षं देवं च सदा ध्यायेज्जितेंद्रियः ॥१०३॥
एवं ध्यानपरो यस्तु यतिर्विगतमत्सरः । स याति परमानंदं परं ज्योतिः सनातनम् ॥१०४॥
इत्येवमाश्रमाचारान्यः करोति द्विजः क्रमात् । स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥१०५॥
वर्णाश्रमाचाररताः सर्वपापविवर्जिताः । नारायणपरा यांति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥१०६॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे सदाचारेषु गृहस्थवानप्रस्थयति-
धर्मनिरूपणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

प्रति एवं मान एवं अपमान में सम भाव रखे। किसी भी ग्राम में एक रात ही रहे। नगर में तीन रात तक रह सकता है। वह नित्य प्रति भिक्षा द्वारा ही अपना भोजन प्राप्त करे, एकान्न भोजन न करे। यति अनिन्दित द्विज के घर, व्यंगार (रसोई बनने के बाद) भोजन के उपरान्त जहाँ किसी प्रकार का कलह न हो भिक्षा के लिए जाय ।९४-९६॥ वह जितात्मा संयमपूर्वक नारायण के ध्यान में मग्न हो तीनों काल स्नान करे और ओंकार का जप करे। जो एक प्रकार का ही अन्न भोजन करने वाला यदि कदाचित् लम्पट हो जाय तो उसका निस्तार दश हजार प्रायश्चित्तों के द्वारा भी नहीं हो सकता। विप्र ! जो यति लोभ वश केवल अपने शरीर के भरण पोषण में ही लगा रहता है वह वर्णाश्रम धर्म को कलंकित करता है और वह चाण्डाल के समान पतित है ॥९७-९९॥ संन्यासी सर्वदा आत्मस्वरूप, अनामय, निर्द्वन्द्व, निर्मम, शान्त, मायातीत, मात्सर्यरहित, सदानन्द स्वरूप, ज्ञानरूप, अमल, पर और सनातन, ज्योतिः स्वरूप नारायण का चिन्तन करे। अविकार, आदिअन्तहीन, जगत् चैतन्य का एक मात्र कारण, निर्गुण, परम, परात्पर आत्मा का ध्यान करे ॥१००-१०२॥ सर्वदा उपनिषद् वाक्यों को पढ़े और वेदान्तार्थ का चिन्तन करे। जितेन्द्रिय संन्यासी सहस्र शिर वाले देव का सदा ध्यान करे। जो उदार संन्यासी इस भाँति ध्यानमग्न रहता है वह परमानन्द स्वरूप परम सनातन ज्योति को प्राप्त करता है। जो द्विज इस प्रकार कहे गए आश्रमाचारों का पालन करता है, वह उस परमस्थान को प्राप्त करता है जहाँ जाकर किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रह जाती। वर्णाश्रमाचारों का पालन करने वाले, सब पापों से रहित और नारायण परायण व्यक्ति विष्णु के परमधाम को प्राप्त करते हैं ॥१०३-१०६॥

श्रीनारदीयमहापुराण में आश्रमधर्मनिरूपण नामक
सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

सनक उवाच

यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१॥
शृणुष्व मुनिशार्दूल श्राद्धस्य विधिमुत्तमम् । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो निशि विप्रान्निमंत्रयेत् ॥२॥
क्षयाहपूर्वदिवसे स्नात्वा चैकाशनो भवेत् । अधःशायी ब्रह्मचारी निशि विप्रान्निमंत्रयेत् ॥३॥
दन्तधावनतांबूले तैलाभ्यंगं तथैव च । रत्योषधिपरान्नानि श्राद्धकर्त्ता विवर्जयेत् ॥४॥
अध्वानं कलहं क्रोधं व्यवायं च धुरं तथा । श्राद्धकर्त्ता च भोक्ता च दिवास्वापं च वर्जयेत् ॥५॥
श्राद्धे निमंत्रितो यस्तु व्यवायं कुरुते यदि । ब्रह्महत्यामवाप्नोति नरकं चापि गच्छति ॥६॥
श्राद्धे नियोजयेद्विप्रं श्रोत्रियं विष्णुतत्परम् । यथास्वाचारनिरतं प्रशांतं सत्कुलोद्भवम् ॥७॥
रागद्वेषविहीनं च पुराणार्थविशारदम् । त्रिमधुत्रिसुपर्णज्ञं सर्वभूतदयापरम् ॥८॥
देवपूजारतं चैव स्मृतितत्त्वविशारदम् । वेदांततत्त्वसंपन्नं सर्वलोकहिते रतम् ॥९॥
कृतज्ञं गुणसंपन्नं गुरुशुश्रूषणे रतम् । परोपदेशनिरतं सच्छास्त्रकथनैस्तथा ॥१०॥
एते नियोजितव्या वै श्राद्धे विप्रा मुनीश्वर । श्राद्धे वर्ज्यान्प्रवक्ष्यामि शृणु तान्सुसमाहितः ॥११॥
न्यूनांगश्चाधिकांगश्च कदर्यो रोगितस्तथा । कुष्ठी च कुनखी चैव लंबकर्णः क्षतव्रतः ॥१२॥
नक्षत्रपाठजीवी च तथा च शवदाहकः । कुवादी परिवेत्ता च तथा देवलकः खलः ॥१३॥
निंदकोऽमर्षणो धूर्तस्तथैव ग्रामयाजकः । असच्छास्त्राभिनिरतः परान्ननिरतस्तथा ॥

अध्याय २८

सनक बोले—मुनिशार्दूल ! सुनो । अब मैं श्राद्ध की उत्तम विधि का वर्णन कर रहा हूँ । जिसको सुन कर निःसन्देह मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है । क्षयाह (निधन तिथि) के पूर्व दिन स्नान कर एक समय हो भोजन करे, रात में भूमि पर सोये और उसी दिन ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे । श्राद्ध करने वाला दातौन, पान, तेल मर्दन, रति, ओषधि और परान्न भोजन छोड़ दे । श्राद्धकर्त्ता और श्राद्धभोजी दोनों के लिए, मार्ग (रास्ता चलना), कलह, क्रोध, मैथुन भार (वहन) और दिन का सोना वर्जित है ॥१-४॥ श्राद्ध में निमन्त्रित होने पर भी यदि वह व्यक्ति स्त्री संभोग करता है तो वह ब्रह्म-हत्या का भागी और नरक गामी होता है । श्राद्ध में वेदाध्यायी, विष्णुभक्त, कुलीन, सदाचारी और शान्त ब्राह्मण को निमन्त्रित करना चाहिए । मुनीश्वर ! राग-द्वेष से हीन, पुराणवेत्ता त्रिमधु (ऋग्वेद का एक अंश) और त्रिसुपर्ण (ऋग्वेद के दशम मंडल के तीन विशिष्ट मन्त्र का ज्ञाता, सब पर दया करने वाला, देव पूजा में निरत रहने वाला, स्मृतितत्त्वज्ञ, वेदान्त के तत्त्वों का ज्ञाता, लोकहितैषी, कृतज्ञ, गुणी, गुरु-सेवक, सत् शास्त्रों का उपदेशक—इतने विप्र श्राद्ध में निमन्त्रित करने के योग्य हैं । अब श्राद्ध में किनको निमन्त्रण नहीं देना चाहिए, इसको कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ॥५-१०॥

हीनाङ्ग, अधिकांग, कायर, रोगी, कोढ़ी, कुनखी, लंबकर्ण, व्रत को भंग करने वाला, ज्यौतिषी, शवदाह करने वाला, कुतर्क करने वाला, परिवेत्ता (अविवाहित बड़े भाई के रहते विवाहित छोटा भाई) पुजारी, दुष्ट, निंदक, क्रोधी, धूर्त, ग्राम-पुरोहित, असत् शास्त्रों (के अध्ययन) में निरत, पराान्नभोजी, शूद्रा की सन्तानों का

वृषलीसूतिपोष्टा च वृषलीपतिरेव च । कुंडश्च गोलकश्चैव ह्ययाज्यानां च याजकः ॥१४॥
दंभाचारो वृथामुंडी ह्यन्यस्त्रीधनतत्परः । विष्णुभक्तिविहीनश्च शिवभक्तिपराङ्मुखः ॥१५॥
वेदविक्रयिणश्चैव व्रतविक्रयिणस्तथा । स्मृतिविक्रयिणश्चैव मंत्रविक्रयिणस्तथा ॥१६॥
गायकाः काव्यकर्त्तारो भिषक्छास्त्रोपजीविनः । वेदनिंदापरश्चैव ग्रामारण्यप्रदाहकः ॥१७॥
तथातिकामुकश्चैव रसविक्रयकारकः । कूटयुक्तिरतश्चैव श्राद्धे वर्ज्याः प्रयत्नतः ॥१८॥
निमंत्रयीत पूर्वेद्युस्तस्मिन्नेव दिनेऽथवा । निमंत्रितो भवेद्विप्रो ब्रह्मचारी जितेंद्रियः ॥१९॥
श्राद्धे क्षणस्तु कर्त्तव्यः प्रसादश्चेति सत्तम । निमंत्रयेद्द्विजं प्राज्ञं दर्भपाणिर्जितेंद्रियः ॥२०॥
ततः प्रातः समुत्थाय प्रातःकृत्ये समाप्य च । श्राद्धं समाचरेद्विद्वान्काले कुतपसंज्ञिते ॥२१॥
दिवसस्याष्टमे काले यदा मंदायते रविः । स कालः कुतपस्तत्र पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥२२॥
अपराह्णः पितॄणां तु दत्तः कालः स्वयंभुवा । तत्काल एव दातव्यं कव्यं तस्माद्द्विजोत्तमैः ॥२३॥
यत्कव्यं दीयते द्रव्यैरकाले मुनिसत्तम । राक्षसं तद्धि विज्ञेयं पितॄणां नोपतिष्ठति ॥२४॥
कव्यं प्रत्तं तु सायाह्ने राक्षसं तद्भवेदपि । दाता नरकमाप्नोति भोक्ता च नरकं व्रजेत् ॥२५॥
क्षयाहस्य तिथिर्विप्र यदि दंडमितिर्भवेत् । विद्धापराह्णिकायां तु श्राद्धं कार्यं विजानता ॥२६॥
क्षयाहस्य तिथिर्या तु ह्यपराह्णद्वये यदि । पूर्वे क्षये तु कर्त्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ॥२७॥
मुहूर्त्तद्वितये पूर्वदिने स्यादपरेऽहनि । तिथिः सायाह्नगा यत्र परा कव्यस्य विश्रुता ॥२८॥
किंचित्पूर्वदिने प्राहुर्मुहूर्त्तद्वितये सति । नैतन्मतं हि सर्वेषां कव्यदाने मुनीश्वर ॥२९॥

पालन करने वाला, वृषली-पति, कुंड (पति के जीवित रहते अन्य पुरुष से उत्पन्न किया हुआ पुत्र), गोलक (पति के मर जाने पर अन्य से उत्पन्न किया हुआ पुत्र) अपात्रों से यज्ञ करने वाला, दम्भी, व्यर्थ ही मुण्डन कराने वाला अन्यस्त्रीधनलोलुप, विष्णुभक्तिशून्य, शिवभक्ति-पराङ्मुख, वेदविक्रयी, व्रतविक्रयी, स्मृति और मंत्र विक्रयी, गायक, भाट, वैद्य, वेद-निन्दक, गाँव और वन में आग लगाने वाला, अति कामुक, रस-विक्रेता, कूटनीतिपरायण, इतने लोगों को श्राद्ध में किसी भी प्रकार से निमन्त्रण नहीं देना चाहिए ॥११-१८॥ श्राद्ध के एक दिन पहले अथवा उसी दिन निमन्त्रण दे देना चाहिए। निमन्त्रित विप्र को भी ब्रह्मचारी और संयमी होना चाहिए। मुनिवर्य ! श्राद्ध में उत्सव और आनन्द भी मनाना चाहिए। जितेन्द्रिय श्राद्धकर्त्ता हाथ में कुशा लेकर विज्ञ ब्राह्मण को निमन्त्रण दे। तदनन्तर प्रातः काल उठकर प्रातः कालीन क्रिया समाप्त करने के बाद विद्वान् व्यक्ति कुतप नामक काल में श्राद्ध करे ॥१९-२१॥ आठ घड़ी दिन बीतने पर जब सूर्य मन्द होने लगता तब वही काल कुतप कहलाता है। उस समय पितरों के उद्देश्य से दिया हुआ पदार्थ अक्षय हो जाता है। ब्रह्मा ने पितरों के लिए अपराह्ण काल ही निश्चित किया। इसलिए उत्तम द्विज उसी समय पितरों को कव्य (पितरों को देय पदार्थ) प्रदान करें। मुनिश्रेष्ठ ! जो कव्य पदार्थ अकाल में दिये जाते हैं वे रासक्षों के योग्य हो जाते हैं और पितरों को प्राप्त नहीं होते ॥२२-२४॥ सायंकाल का दिया हुआ कव्य रासक्षों के योग्य तो हो ही जाता है साथ ही उसका दाता और भोक्ता भी नरकलोक में जाता है। यदि क्षयाह तिथि केवल एक दण्ड ही रहे तो विद्वान् व्यक्ति उसी दिन अपराह्ण काल में श्राद्ध करें। क्षयाह की तिथि यदि दो अपराह्णकाल में हो तो पूर्व क्षयाह तिथि में कुछ श्राद्ध क्रिया कर दे और शेष कर्म दूसरे दिन अपराह्ण में करे। यदि क्षयाह की तिथि पहले दिन अपराह्ण में दो मुहूर्त्त हो तो सायंकाल में पड़ने वाली तिथि के दिन ही कव्य दान श्रेष्ठ माना गया है ॥२५-२८॥ मुनीश्वर ! कुछ लोग पहले दिन को ही दो मुहूर्त क्षयतिथि के रहने पर भी कव्य के लिए श्रेष्ठ मानते हैं परन्तु यह सर्वमान्य मत नहीं है।

प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा तेभ्योऽनुज्ञां समाहरेत् ॥३०॥
निमंत्रितेषु विप्रेषु मिलितेषु द्विजोत्तम । उभौ च विश्वेदेवार्थं पित्रर्थं त्रीन्यथाविधि ॥३१॥
श्राद्धार्थं समनुज्ञातो विप्रान्भूयो निमंत्रयेत् । श्राद्धार्थं समनुज्ञातः कारयेन्मंडलद्वयम् ॥३२॥
देवतार्थं च पित्रर्थमेकैकं वा निमंत्रयेत् । वैश्यस्य वर्तुलं ज्ञेयं शूद्रस्याभ्युक्षणं भवेत् ॥३३॥
चतुरस्रं ब्राह्मणस्य त्रिकोणं क्षत्रियस्य वै । आत्मानं वा नियुंजीत न विप्रं वेदवर्जितम् ॥३४॥
ब्राह्मणानामभावे तु भ्रातरं पुत्रमेव च । यथावदर्चनं कुर्यात्स्मरन्नारायणं प्रभुम् ॥३५॥
प्रक्षाल्य विप्रपादांश्च ह्याचांतानुपवेश्य च । अपहता इत्यृचा वै कर्त्ता तु विकिरेत्तिलान् ॥३६॥
ब्राह्मणानां तु मध्ये च द्वारदेशे तथैव च । दत्त्वेति भूयो दद्याच्च दैवे क्षणप्रतीक्षणम् ॥३७॥
यवैर्दर्भैश्च विश्वेषां देवानामिदमासनम् । अन्नदाने चतुर्थी स्याच्छेषाः संबुद्धयः स्मृताः ॥३८॥
अक्षय्यासनयोः षष्ठी द्वितीयावाहने स्मृता । तत्पात्रे सेचयेत्तोयं शन्नोदेवीरयृचा ततः ॥३९॥
आसाद्य पात्रद्वितयं दर्भशाखासमन्वितम् । आवाहयेत्ततो देवान्विश्वे देवास इत्यृचा ॥४०॥
यवोसीति यवान् क्षिप्त्वा गंधपुष्पे च वाग्यतः । धूपदीपैर्यजेत्ततः ॥४१॥
या दिव्या इतिमंत्रेण दद्यादर्घ्यं समाहितः । गंधैश्च पत्रपुष्पैश्च दद्यात्तेषां सदासनम् ॥४२॥
देवैश्च समनुज्ञातो यजेत्पितृगणांस्तथा । तिलसंयुक्तदर्भैश्च तिलोसीति तिलान्क्षिपेत् ॥४३॥
पात्राण्यासादयेत्त्रीणि ह्यर्घाय पूर्ववद्द्विजः । शन्नो देव्या जलं क्षिप्त्वा दद्यादर्घ्यं च पूर्ववत् ॥४४॥
उशन्त इत्यृचावाह्य पितॄन्विप्रः समाहितः । या दिव्या इति मंत्रेण यथाविभवमर्चयेत् ॥४५॥
गंधैश्च पत्रपुष्पैश्च धूपदीपैश्च सत्तम । वासोभिर्भूषणैश्चैव तेभ्योऽनुज्ञां समाहरेत् ॥४६॥
ततोऽन्नाग्रं तमादाय घृतयुक्तं विचक्षणः । अग्नौ करिष्य इत्युक्त्वा

द्विजोत्तम ! निमन्त्रित विप्रों के आने पर प्रायश्चित्त से शुद्ध आत्मा वाला वह श्राद्ध-कर्त्ता उनसे आदेश प्राप्त करे। विधि के अनुसार विश्वेदेव के लिए दो और पितृकार्य के लिए तीन विप्रों को निमन्त्रण दे ॥२९-३१॥ अथवा देवता और पितृकार्य के लिए एक-एक ब्राह्मण को ही निमन्त्रण दे। श्राद्ध के निमित्त आज्ञा पाकर दो मण्डलों को बनाना चाहिए। ब्राह्मण का मण्डल चौकोना, क्षत्रिय के लिए त्रिकोना, वैश्य का गोल और शूद्र के लिए तो केवल जलसिंचन से पवित्र की हुई भूमि हो पर्याप्त है। यदि श्राद्ध-कार्य के लिए कोई ब्राह्मण न मिले तो अपने भाई या पुत्र को ही उस पद पर नियुक्त करे। अथवा स्वयं ही श्राद्धकर्म करे परन्तु किसी वेद विमुख विप्र को उस कार्य में न लगावे ॥३२-३४॥

पहले ब्राह्मण के चरण धोये फिर आचमन कराकर आसन पर बैठाये तत्पश्चात् प्रभु नारायण का स्मरण करता हुआ यथाविधि उसकी पूजा करे। कर्त्ता ब्राह्मणों के मध्य में और द्वार देश पर 'अपहता.........' इस ऋचा से इधर-उधर तिल फेंक दे। सब देवताओं को यव और कुशों का आसन दे। इसके अनन्तर पुनः दैवेक्षण, और प्रतीक्षण (देख-रेख) करने का दायित्व सौंपे। अक्षय्य पान और आसन प्रदान करने में षष्ठी तिथि विहित है। आवाहन में द्वितीया, अन्नदान में चतुर्थी और सम्बोधन करने में अन्य तिथियों का उपयोग करना चाहिए। कुशशाखा से युक्त दो पात्रों को लेकर 'शन्नो देवी' इस मन्त्र को पढ़कर उस पात्र में जल छोड़े। 'यवोऽसि' इस मन्त्र से यव छिड़ककर मौन होकर गन्ध और पुष्प अर्पित करे। तदनन्तर 'विश्वे देवाःस' इस ऋचा से देवों का आवाहन करे ॥३५-३९॥ एकाग्र होकर 'या दिव्या' इस मन्त्र से अर्घ्य दे। फिर गन्ध, पत्र, पुष्प, धूप और दीप से उन आवाहित देवों की पूजा करे। देवों की पूजा से निवृत्त होकर उनसे आदेश लेकर पितरों की पूजा प्रारम्भ करे। पहले इनको तिल से युक्त कुशा का आसन दे। वह द्विज पूर्व की भाँति अर्घ के लिए तीन पात्रों को रखे। 'शन्नो देव्या' इस मन्त्र से जल छिड़ककर 'तिलोऽसि' इस मन्त्र से तिल छिड़के ॥४०-४३॥ सावधान होकर वह विप्र 'उशन्तः' इस ऋचा से पितरों का आवाहन कर 'या देव्या' इस मंत्र से

करवै करवाणीति चापृष्टा ब्राह्मणा मुने। कुरुष्व क्रियतां वेति कुर्विति ब्रूयुरेव च ॥४७॥
उपासनाग्निमाधाय स्वगृह्योक्तविधानतः। सोमाय च पितृमते स्वधा नम इतीरयेत् ॥४८॥
अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नम इतीह वा। स्वाहांतेनापि वा प्राज्ञो जुहुयात्पितृयज्ञवत् ॥४९॥
आभ्यामेवाहुतिभ्यां तु पितृणां तृप्तिरक्षया। अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणौ होमो विधीयते ॥५१॥
यथाचारं प्रकुर्वीत पाणावग्नौ च वा द्विज। नह्यग्निर्दूरगः कार्यः पार्वणे समुपस्थिते ॥५२॥
संधायाग्निं ततः कार्यं कृत्वा तं विसृजेत्कृती। यद्यग्निर्दूरगो विप्र पार्वणे समुपस्थिते ॥५३॥
भ्रातृभिः कारयेच्छ्राद्धं साग्निकैर्विधिवद्द्विजैः। क्षयाहे चैव संप्राप्ते स्वस्याग्निर्दूरगो यदि ॥५४॥
तथैव भ्रातरस्तत्र लौकिकाग्नावपि स्थिताः। उपासनाग्नौ दूरस्थे समीपे भ्रातरि स्थिते ॥५५॥
यद्यग्नौ जुहुयाद्वापि पाणौ वा स हि पातकी। उपासनाग्नौ दूरस्थे केचिदिच्छंति वै द्विजाः ॥५६॥
तच्छेषं विप्रपात्रेषु विकिरेत्संस्मरन्हरिम्। भक्ष्यैर्भोज्यैश्च लेह्यैश्च स्वाद्यैर्विप्रान्प्रपूजयेत् ॥५६॥
अन्नत्यागं ततः कुर्यादुभयत्र समाहितः। आगच्छंतु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः ॥५७॥
ये यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवंतु ते। इति संप्रार्थयेद्देवान्ये देवास ऋचा नु वै ॥५८॥
तथा संप्रार्थयेद्विप्रान्ये च हेति ऋचा पितॄन्। अमूर्तानां मूर्तानां च पितॄणां दीप्ततेजसाम् ॥५९॥
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां योगचक्षुषाम्। एवं पितॄन्नमस्कृत्य नारायणपरायणः ॥६०॥
दत्तं हविश्च तत्कर्म विष्णवे विनिवेदयेत्। ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे भुञ्जीरन्वाग्यता द्विजाः ॥६१॥

पूर्व की भाँति अर्घ्य दे। मुनिश्रेष्ठ! गन्ध, पुष्प, धूप, वस्त्र, आभूषण आदि से अपने विभव के अनुसार उन आवाहित पितरों की सविधि पूजा करे। तत्पश्चात् वह विचक्षण घी मिला अन्नाग्र लेकर 'अग्नौ करिष्ये' (अग्नि में हवन करना चाहता हूँ) यह कहकर उनसे आज्ञा प्राप्त करे। मुने! 'करवै या करवाणि' (क्या मैं करूँ) यह कहकर ब्राह्मण से पूछे। कुरुष्व क्रियताम् अथवा कुरु (करो) ऐसा वे ब्राह्मण कहें ॥४४-४७॥ अपने गृह्य सूत्र के विधान से उपासना-अग्नि का आधान कर 'सोमाय नमः' और 'पितृमते स्वधा' ऐसा कहे। 'अग्नये नमः' 'कव्यवाहनाय स्वधा' ऐसा कहकर अथवा स्वाहान्त मन्त्र से (अग्नये स्वाहा, कव्यवाहनाय स्वाहा) पितृयज्ञ के समान हवन करे। इन्हीं दो आहुतियों को पितरों की तृप्ति के लिए अग्नि में हवन करे। अग्नि के अभाव में विप्र के हाथ में भी हवन करने की विधि है ॥४८-५०॥ द्विज! आचार के अनुसार अग्नि अथवा ब्राह्मण के हाथ में हवन करना चाहिए। पार्वण श्राद्ध के समय अग्नि दूर नहीं रहनी चाहिए। कृती अग्नि-स्थापन के अनन्तर हवन कर उसका विसर्जन कर दे। विप्र! पार्वण श्राद्ध के दिन यदि अग्नि दूर रहे तो अग्निहोत्री ब्राह्मणों और भाइयों से विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिए। क्षयाह के आ जाने पर यदि उपासनाग्नि दूर हो और उसी प्रकार भाई भी दूर रहें तो लौकिक अग्नि में भी हवन कर ले। यदि उपासनाग्नि दूर हो और भाई समीप हो तो जो व्यक्ति अग्नि में या ब्राह्मण के हाथ में हवन करे वह पातकी है। कोई द्विज उपासनाग्नि को दूर रखना ही पसन्द करते हैं ॥५१-५५॥ शेष अन्न को हरि का स्मरण करते हुए विप्रपात्रों में छोड़ देना चाहिए। भक्ष्य, भोज्य और लेह्य आदि स्वादिष्ठ पदार्थों से विप्रों की पूजा करनी चाहिए। तदनन्तर दोनों पात्रों में अन्न छोड़े और 'महाभाग महाबल विश्वेदेव आयें। श्राद्ध में जो जिस स्थान के अधिकारी माने गये हैं वे अपने स्थान पर श्राद्धकर्म को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए सावधान हो जायें, इस मन्त्रवाक्य से प्रार्थना कर 'ये देवास—इस ऋचा से देवों की प्रार्थना करे। 'ये च हेति' इस मन्त्र से विप्रों की और 'अमूर्त, मूर्त और दीप्त तेज वाले, और योगचक्षु ध्यान परायण पितरों को नमस्कार करता हूँ ॥५६-५९½॥ इस वाक्य से पितरों को नमस्कार कर स्वयं नारायण का स्मरण करते हुए दी हुई आहुति को और उस श्राद्ध कर्म को विष्णु के निमित्त अर्पण कर दे। इसके पश्चात् वे निमन्त्रित ब्राह्मण वाणी को संयत कर उस श्राद्धान्न को खायें। यदि भोजन के समय कोई हँसे या बातचीत करे तो वह हविष्यान्न

यथाचारं प्रदेयं च मधुमांसादिकं तथा ॥६२॥
हसते वदते कोऽपि राक्षसे तद्भवेद्धविः । यदि पात्रं त्यजेत्कोऽपि ब्राह्मणः श्राद्धयोजितः ॥६३॥
पाकादि च प्रशंसेरन् वाग्यता धृतभाजनाः । भुंजानेषु च विप्रेषु ह्यन्योन्यं संस्पृशेद्यदि ॥६४॥
श्राद्धहंता स विज्ञेयो नरकायोपपद्यते । भुज्यमानेषु विप्रेषु कर्त्ता श्रद्धापरायणः ॥६५॥
तदन्नमत्यजन्भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् । रक्षोघ्नान्वैष्णवांश्चैव पैतृकांश्च विशेषतः ॥६६॥
स्मरेन्नारायणं देवमनंतमपराजितम् । त्रिमधु त्रिसपर्णं च पावमानं यजूंषि च ॥६७॥
जपेच्च पौरुषं सूक्तं नाचिकेतत्रयं तथा । इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि चैव हि ॥६८॥
सामान्यपि तथोक्तानि वदेत्पुण्यप्रदांस्तथा । ब्राह्मणेषु च भुक्तेषु विकिरं विक्षिपेत्तथा ॥६९॥
भुंजीरन्ब्राह्मणा यावत्तावदेताञ्जपेद्द्विज । स्वयं च पादौ प्रक्षाल्य सम्यगाचम्य नारद ॥७०॥
शेषमन्नं वदेच्चैव मधुसूक्तं च वै जपेत् । स्वस्तिवाचनकं कुर्यादक्षय्योदकमेव च ॥७१॥
आचांतेषु च विप्रेषु पिंडं निर्वापयेत्ततः । अचालयित्वा पात्रं तु स्वस्ति कुर्वंति ये द्विजाः ॥७२॥
दत्त्वा समाहितः कुर्यात्तथा विप्राभिवादनम् । दातारो नोऽभिवर्द्धंतामित्याद्यैः स्मृतिभाषितैः ॥७३॥
वत्सरं पितरस्तेषां भवंत्युच्छिष्टभोजिनः । दद्याच्च दक्षिणां शक्त्या तांबूलं गंधसंयुतम् ॥७४॥
आशीर्वचो लभेत्तेभ्यो नमस्कारं चरेत्ततः । वाजेवाजे इति ऋचा पितृन्देवान्विसर्जयेत् ॥७५॥
न्युब्जपात्रमथानीय स्वधाकारमुदीरयेत् । तथा स्वाध्यायमध्वानं प्रयत्नेन परित्यजेत् ॥७६॥
भोक्ता च श्राद्धकृत्तस्यां रजन्यां मैथुनं त्यजेत् । आमश्राद्धं प्रकुर्वीत हेम्ना वास्पृश्यभार्यकः ॥७७॥
अध्वगश्चातुरश्चैव विहीनश्च धनैस्तथा । पैतृकेन तु सूक्तेन होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥७८॥
द्रव्याभावे द्विजाभावे ह्यन्नमात्रं च पाचयेत् ।

मांस आदि भी दिया जा सकता है ॥६०-६२॥
राक्षस हो जाता है । उस समय उन विप्रों को आचारानुसार मधु, मांस आदि भी दिया जा सकता है। उस समय उन विप्रों को आचारानुसार मधु, मौन होकर भोजन करें । यदि
वे विप्र उन भोजन-पात्रों को हाथ में लेकर पाक आदि की प्रशंसा करते हुये, मौन होकर भोजन करें । यदि
श्राद्ध-निमन्त्रित कोई ब्राह्मण उस पात्र को भोजन के समय छोड़ दे तो वह नरकगामी होता है । भोजन करते
समय यदि वे ब्राह्मण एक दूसरे को छू दें तो उस अन्न को खा लेने के बाद एक सौ आठ बार गायत्री का जप
करे ॥६३-६४½॥ उन विप्रों के भोजन करते समय श्राद्धकर्त्ता श्रद्धापूर्वक अपराजित अनन्त नारायणदेव का
स्मरण करे, विशेष रूप से राक्षसीय बाधाओं को दूर करने वाले वैष्णव और पितर सम्बन्धी मन्त्रों को जपे।
पुरुष सूक्त, नाचिकेतत्रय, त्रिमधु, त्रिसुपर्ण, पावमान और यजुर्मन्त्रों का अथवा साममन्त्रों और पुण्यप्रद मन्त्रों
का पाठ करे । द्विज ! जब तक ब्राह्मण भोजन करते रहें तब तक इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र और पूर्व कथित
मन्त्रों का जप करना चाहिए । ब्राह्मण जब भोजन कर चुकें तब शेष अन्न का विकिर दे (अर्थात् शेषान्न को
बिखेर दे) और मधुसूक्त का जप करे । नारद ! स्वयं पैर धोकर और आचमन कर जब वे ब्राह्मण भी आचमन कर
लें तब पिंड निर्वपण करे ॥६५-७०½॥ स्वस्तिपाठ और अक्षय्योदक करने के अनन्तर सावधान हो विप्रों का
अभिवादन करे । जो द्विज पात्र को बिना हिलाये स्वस्ति, ऐसा कहते हैं उनके पितर एक वर्ष तक जूठा भोजन
करते हैं । श्राद्ध कर्त्ता उन ब्राह्मणों से 'दातारो नोऽभिवर्द्धन्ताम्' (हमारे दाता सदा विभवशाली रहें) आदि स्मृति
में कहे गए आशीर्वाद प्राप्त करे और उनको नमस्कार करे । आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद यथाशक्ति उन
ब्राह्मणों को ताम्बूल और सुगन्धित पदार्थ के सहित दक्षिणा दे । न्युब्जपात्र को लाकर स्वधाकार कहे और 'वाजे
वाजे' इस ऋचा से पितरों और देवों का विसर्जन करे ॥७१-७५॥

श्राद्ध भोजन करने वाला और श्राद्धकर्त्ता उस रात्रि को मैथुन न करें, स्वाध्याय और मार्ग का चलना
विशेष रूप से छोड़ दें । रास्ता चलने वाला, रोगी और धनहीन श्राद्धकर्त्ता आम श्राद्ध (कच्चे अन्न से किया जाने
वाला श्राद्ध) करे अथवा भार्या सहित सोने का स्पर्श करे । द्रव्य के अभाव में अथवा किसी ब्राह्मण के न मिलने

अत्यंतहव्यशून्यश्चेत्स्वशक्त्या तु तृणं गवाम् । स्नात्वा च विधिवद्विप्र कुर्याद्वा तिलतर्पणम् ॥७९॥
अथवा रोदनं कुर्यादत्युच्चैर्विजने वने । दरिद्रोऽहं महापापी वदन्निति विचक्षणः ॥८०॥
परेद्युः श्राद्धकृन्मर्त्यो यो न तर्पयते पितॄन् । तत्कुलं नाशमायाति ब्रह्महत्यां च विंदति ॥८१॥
श्राद्धं कुर्वंति ये मर्त्याः श्रद्धावंतो मुनीश्वर । न तेषां संततिच्छेदः संपन्नास्ते भवंति च ॥८२॥
पितॄन्यजंति ये श्राद्धे तैस्तु विष्णुः प्रपूजितः । तस्मिंस्तुष्टे जगन्नाथे सर्वास्तुष्यंति देवताः ॥८३॥
पितरो देवताश्चैव गंधर्वाप्सरसस्तथा । यक्षाश्च सिद्धा मनुजा हरिरेव सनातनः ॥८४॥
येनेदमखिलं जातं जगत्स्थावरजंगमम् । तस्माद्दाता च भोक्ता च सर्वं विष्णुः सनातनः ॥८५॥
यदस्ति विप्र यन्नास्ति दृश्यं चादृश्यमेव च । सर्वं विष्णुमयं ज्ञेयं तस्मादन्यन्न विद्यते ॥८६॥
आधारभूतो विश्वस्य सर्वभूतात्मकोऽव्ययः । अनौपम्यस्वभावश्च भगवान्हव्यकव्यभुक् ॥८७॥
परब्रह्माभिधेयो य एक एव जनार्दनः । कर्त्ता कारयिता चैव सर्वं विष्णुः सनातनः ॥८८॥
इत्येवं ते मुनिश्रेष्ठ श्राद्धस्य विधिरुत्तमः । कथितः कुर्वतामेवं पापं सद्यो विलीयते ॥८९॥
य इदं पठते भक्त्या श्राद्धकाले द्विजोत्तमः । पितरस्तस्य तुष्यंति संततिश्चैव वर्द्धते ॥९०॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे श्राद्धक्रियावर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

पर स्वयं केवल अन्न पकावे और वह विचक्षण व्यक्ति पैतृक सूक्त से हवन करे। यदि किसी भी प्रकार हवन करने में असमर्थ हो तो अपनी शक्ति के अनुसार गायों को घास खिला दे अथवा विप्र स्नान करके विधिपूर्वक तिल से तर्पण कर दे ॥७६-७९॥ अथवा किसी विजन वन में जाकर वह बुद्धिमान् व्यक्ति 'मैं महापापी हूँ दरिद्र हूँ' यह कहता हुआ उच्च स्वर से रोये। जो श्राद्धकर्त्ता दूसरे दिन पुनः पितरों का तर्पण नहीं करता है उसका कुल नष्ट हो जाता और वह ब्रह्महत्या का भागी होता है। मुनीश्वर ! जो श्रद्धालु व्यक्ति श्राद्ध करते हैं उनका वंशच्छेद कभी नहीं होता और वे सदा धनवान् रहते हैं। जो श्राद्ध में पितरों की पूजा करते हैं वे स्वयं विष्णु की पूजा करते हैं और विष्णु के प्रसन्न रहने पर सभी देवता स्वयं प्रसन्न हो जाते हैं ॥८०-८३॥ पितर, देवता, गन्धर्व, अप्सरायें, यक्ष, सिद्ध और सभी मनुष्य, ये सनातन हरि के ही रूप हैं। जिससे यह सारा स्थावर जंगमात्मक जगत् उत्पन्न हुआ है, अतएव दाता या भोक्ता सब कुछ वही सनातन विष्णु ही हैं। विप्र ! इस संसार में जो कुछ भाव या अभाव दृश्य या अदृश्य पदार्थ है, सबको विष्णुमय ही समझना चाहिए। इसलिए विष्णु के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस विश्व के आधारभूत वे ही सर्वभूतात्मक, अव्यय, अनुपम प्रकृति वाले, हव्यकव्यभोजी भगवान् विष्णु हैं ॥८४-८७॥ परब्रह्म कहाने वाले जो जनार्दन हैं वे एक ही हैं। कर्त्ता और कारयिता सब कुछ वही सनातन विष्णु हैं। मुनिश्रेष्ठ। यही श्राद्ध की उत्तम विधि है जो तुम्हारे सामने मैंने व्यक्त कर दी। जो इस विधि से श्राद्ध करते हैं उनके पाप तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं। जो द्विजश्रेष्ठ श्राद्ध के समय भक्तिपूर्वक इस (अध्याय) का पाठ करता है उसके पितर प्रसन्न होते हैं और उसकी सन्तान-वृद्धि होती है ॥८८-९०॥

श्रीनारदीयमहापुराण में श्राद्धवर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

सनक उवाच

तिथीनां निर्णयं वक्ष्ये प्रायश्चित्तविधिं तथा । शृणुष्व तन्मुनिश्रेष्ठ कर्मसिद्धिर्यतो भवेत् ॥१॥
श्रौतं स्मार्त्तं व्रतं दानं यच्चान्यत्कर्म वैदिकम् । अनिर्णीतासु तिथिषु न किंचित्फलति द्विज ॥२॥
एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चतुर्द्दशी । अमावस्या तृतीया च ह्युपवासव्रतादिषु ॥३॥
परविद्धाः प्रशस्ताः स्युर्न ग्राह्याः पूर्वसंयुताः । नागविद्धा तु या षष्ठी शिवविद्धा तु सप्तमी ॥४॥
दशम्येकादशीविद्धा नोपोष्याः स्युः कदाचन । दर्शं च पौर्णमासीं च सप्तमीं पितृवासरम् ॥५॥
पूर्वविद्धं प्रकुर्वाणो नरकायोपपद्यते । कृष्णपक्षे पूर्वविद्धां सप्तमीं च चतुर्दशीम् ॥६॥
प्रशस्तां केचिदाहुश्च तृतीयां नवमीं तथा । व्रतादीनां तु सर्वेषां शुक्लपक्षो विशिष्यते ॥७॥
अपराह्णाच्च पूर्वाह्णं ग्राह्यं श्रेष्ठतरं यतः । असंभवे व्रतादीनां यदि पौर्वाह्णिकी तिथिः ॥८॥
मुहूर्तद्वितयं ग्राह्यं भगवत्युदिते रवौ । प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा ॥९॥
उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः । तिथिनक्षत्रसंयोगविहितव्रतकर्मणि ॥१०॥
प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या त्वन्यथा निष्फलं भवेत् । अर्द्धरात्रादधो या तु नक्षत्रव्यापिनी तिथिः ॥११॥

अध्याय २९

तिथियों का निर्णय

सनक बोले—तिथियों का निर्णय और प्रायश्चित्त विधि को अब कह रहा हूँ। मुनिश्रेष्ठ ! उसको सुनो, जिससे कर्मसिद्धि प्राप्त होती है। द्विज ! श्रौत तथा स्मार्तव्रत, दान अथवा जो अन्य वैदिक कर्म हैं, उन्हें अनिर्णीत तिथियों में करने से कुछ भी फल नहीं होता है। एकादशी, अष्टमी, षष्ठी, पूर्णिमा, चतुर्दशी, अमावस्या और तृतीया यदि पर तिथि से (आगे की तिथि से) विद्ध हो तो उपवास, व्रत आदि में प्रशस्त मानी जाती हैं; परन्तु पूर्वविद्ध ये तिथियाँ ग्राह्य नहीं हैं ॥१-३॥ नाग से विद्ध षष्ठी, शिव विद्ध सप्तमी, दशमी विद्ध एकादशी को कभी भी उपवास नहीं करना चाहिए। दर्श (अमावस्या), पूर्णिमा, सप्तमी और पितृदिवस ये यदि पूर्वतिथियों से विद्ध हों तो उस दिन उपवास या व्रत करने से मनुष्य नरकगामी होता है। कुछ लोग कृष्णपक्ष की पूर्वविद्ध सप्तमी, चतुर्दशी, तृतीया और नवमी को प्रशस्त मानते हैं। सब व्रत आदि शुभ कर्मों के लिए शुक्लपक्ष प्रशस्त माना जाता है ॥४-७॥ अपराह्ण तिथि की अपेक्षा पूर्वाह्ण की तिथि ग्राह्य है, क्योंकि वह श्रेष्ठ है। व्रतादि को पूर्वाह्णकालिक तिथि यदि असम्भव हो तो सूर्योदयकाल की दो मुहूर्त की तिथि भी व्रत के लिए ग्राह्य है। रात्रिकालीन व्रत में प्रदोषव्यापिनी तिथि ही ग्राह्य है। जिस व्रत में तिथि और नक्षत्र दोनों का संयोग विहित है उसमें जिस नक्षत्र में सूर्यास्त हो उसी नक्षत्र को मानकर उपवास करना चाहिए। प्रदोषव्यापिनी तिथि ही रात्रिकालीन व्रत के लिए ग्राह्य है, अन्यथा वह निष्फल है ॥८-१०॥ मुनिश्रेष्ठ ! जो नक्षत्रव्यापिनी तिथि आधी रात के बाद तक रहती है वही नक्षत्रविहित व्रत के लिए ग्राह्य है। यदि दोनों दिन की आधी रात तक वह इष्ट

सैव ग्राह्या मुनिश्रेष्ठ नक्षत्रविहितव्रते । यद्यर्द्धरात्रयोर्व्याप्तं नक्षत्रं तु दिनद्वये ॥१२॥
तत्पुण्यं तिथिसंयुक्तं नक्षत्रं ग्राह्यमुच्यते । अर्द्धरात्रद्वये स्यातां नक्षत्रं च तिथिर्यदि ॥१३॥
क्षये पूर्वा प्रशस्ता स्याद्वृद्धौ कार्या तथोत्तरा । अर्द्धरात्रद्वये व्याप्ता तिथिर्नक्षत्रसंयुता ॥१४॥
ह्रासवृद्धिविशून्या चेद् ग्राह्या पूर्वा तथा परा । ज्येष्ठासंमिश्रितंमूलं रोहिणी वह्निसंयुता ॥१५॥
मैत्रेण संयुता ज्येष्ठा संतानादिविनाशिनी । ततः स्युस्तिथयः पुण्याः कर्मानुष्ठानतो दिवा ॥१६॥
रात्रिव्रतेषु सर्वेषु रात्रियोगो विशिष्यते । तिथिर्नक्षत्रयोगेन या पुण्या परिकीर्तिता ॥१७॥
तस्यां तु तद्व्रतं कार्यं सैव कार्या विचक्षणैः । उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रवणद्वादशी व्रते ॥१८॥
सूर्येन्दुग्रहणे यावत्तावद् ग्राह्या जपादिषु । संक्रांतिषु तु सर्वासु पुण्यकालो निगद्यते ॥१९॥
स्नानदानजपादीनां कुर्वतामक्षयंफलम् । तत्र कर्कटको ज्ञेयो दक्षिणायनसंक्रमः ॥२०॥
पूर्वतो घटिकास्त्रिंशत्पुण्यकालं विदुर्बुधाः । वृषभे वृश्चिके चैव सिंहे कुम्भे तथैव च ॥२१॥
पूर्वमष्टमुहूर्तास्तु ग्राह्याः स्नानजपादिष । तुलायां चैव मेषे च पूर्वतः परतस्तथा ॥२२॥
ज्ञेया दशैव घटिका दत्तास्याक्षयतावहाः । कन्यायां मिथुने चैव मीने धनुषि च द्विज ॥२३॥
घटिकाः षोडश ज्ञेया परतः पुण्यदायिकाः । माकरं संक्रमं प्राहुरुत्तरायणसंज्ञकम् ॥२४॥
परास्त्रिंशच्च घटिकाश्चत्वारिंशच्च पूर्ववत् । आदित्यशीतकिरणौ ग्राह्यावस्तंगतौ यदि ॥२५॥
स्नात्वा भुंजीत विप्रेन्द्र परेद्युः शुद्धमंडलम् । दृष्टचंद्रा सिनीवाली नष्टचंद्रा कुहूः स्मृता ॥२६॥
अमावस्या द्विधा प्रोक्ता विद्वद्भिर्धर्मलिप्सुभिः । सिनीवाली द्विजैर्ग्राह्या साग्निकैः श्राद्धकर्मणि ॥२७॥

नक्षत्र रहे तो वही तिथिसंयुक्त नक्षत्र पुण्यप्रद और ग्राह्य है। यदि दो आधी रात तक नक्षत्र और तिथि दोनों रहें तो (तिथि के) क्षय में पूर्वा तिथि प्रशस्त है और वृद्धि में उत्तरा तिथि। यदि कोई तिथि (एक) नक्षत्र से युक्त रहकर दो अर्धरात्रि तक चले और उसमें क्षय तथा वृद्धि न हो तो पूर्वा और परा दोनों तिथियाँ ग्राह्य हैं। ज्येष्ठा से युक्तमूल, वह्नि से युक्त रोहिणी और मैत्र नक्षत्र से युक्त ज्येष्ठा नक्षत्र में होने वाले कर्म संतान आदि के नाश हैं। इसके अतिरिक्त सारी तिथियाँ पुण्य तिथि हैं यदि कर्मानुष्ठान दिन को विहित हो ॥११-१६॥ सब रात्रिव्रतों में रात्रियोग ही विशिष्ट माना गया है। तिथि और नक्षत्र के योग से जो तिथि पुण्य तिथि मानी गई है उसीमें बुद्धिमान् व्यक्ति को वह व्रत करना चाहिए। व्रत में उदय व्यापिनी श्रवण द्वादशी ग्राह्य है। जप आदि कर्मों के लिए जब तक सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण रहे तब तक का काल ग्राह्य है। सब संक्रान्तियों में पुण्य काल माना जाता है ॥१७-१९॥ उस समय स्नान, दान और जप करने से अक्षय फल मिलता है। संक्रान्ति को दक्षिणायन काल समझा जाता है। बुधजन उसके पूर्व की तीस घड़ी को पुण्यकाल मानते हैं। वृष, वृश्चिक, सिंह और कुम्भ की संक्रान्ति के पूर्व के आठ मुहूर्त्त स्नान और जप के लिए ग्राह्य हैं। तुला और मेष संक्रान्ति के पूर्व और पर काल दोनों ग्राह्य हैं। द्विज ! कन्या, मिथुन, मीन और धन संक्रान्ति के पूर्व की दश ही घड़ियाँ ग्राह्य हैं ॥२०-२३॥ मकर संक्रान्ति को उत्तरायण काल कहते हैं उसका सोलह घड़ी का पर काल ही पुण्य काल माना जाता है। सूर्य और चन्द्रमा यदि ग्रहणावस्था में ही अस्त हो जाँय तो सूर्य के अस्त होने के बाद की तीस घड़ियाँ और चन्द्रमा के अस्त होने के पूर्व की चालीस घड़ियाँ पुण्यकाल मानी गई हैं ॥२४-२५॥ विप्रेन्द्र ! दूसरे दिन अपने अपने गृह-मण्डल को पवित्र कर स्नान के बाद भोजन करना चाहिए। जिस अमावस्या को चन्द्रमा दीख पड़ता है, उसको सिनीवाली और जिस दिन नहीं दिखाई पड़ता उसको कुहू कहते हैं। इस प्रकार धर्मप्रेमी विद्वानों ने दो प्रकार की अमावस्या बतलाई है। श्राद्ध कर्म में अग्निहोत्री द्विजों के लिए सिनीवाली ग्राह्य मानी गई है ॥२६-२७॥ स्त्री, शूद्र और अग्नि स्थापन न करने वाले द्विजों के लिए कुहू ही ग्राह्य है। यदि दो अपराह्ण

अपराह्णद्वयव्यापिन्यमावास्या तिथिर्यदि ॥२८॥
कुहूः स्त्रीभिस्तथा शूद्रैरपिवानग्निकैस्तथा । अमावास्या प्रतीता चेन्मध्याह्नात्परतो यदि ॥२९॥
क्षये पूर्वा तु कर्त्तव्या वृद्धौ कार्या तथोत्तरा । अत्यंतक्षयपक्षे तु परेद्युर्नापराह्णगा ॥३०॥
भूतविद्धेति विख्याता सद्भिः शास्त्रविशारदैः । अर्वाचीनक्षये चैव सायाह्नव्यापिनी तथा ॥३१॥
तत्र ग्राह्या सिनीवाली सायाह्नव्यापिनी तिथिः । अत्यंततिथिवृद्धौ तु भूतविद्धां परित्यजेत् ॥३२॥
सिनीवाली परा ग्राह्या सर्वथा श्राद्धकर्मणि । यथार्वाचीनवृद्धौ तु संत्याज्या भूतसंयुता ॥३३॥
ग्राह्या स्यादपराह्णस्था कुहूः पैतृककर्मणि । मध्याह्नद्वितये व्याप्ता ह्यमावस्या तिथिर्यदि ॥३४॥
परेद्युर्विबुधश्रेष्ठैः कुहूर्ग्राह्या पराह्णगा । अन्वाधानं प्रवक्ष्यामि संतः संपूर्णपर्वणि ॥३५॥
तत्रेच्छया च संग्राह्या पूर्वा वाथ पराथवा । पर्वणो यश्चतुर्थांश आद्याः प्रतिपदस्त्रयः ॥३६॥
प्रतिपद्दिवसे कुर्याद्यागं च मुनिसत्तम । मध्याह्नद्वितये स्याताममावस्या च पूर्णिमा ॥३७॥
॥३८॥
यागकालः स विज्ञेयः प्रातरुक्तो मनीषिभिः । सद्यः कालः परेद्युः स्याज्ज्ञेयमेवं तिथिक्षये ॥३९॥
परेद्युरेव विप्रेन्द्र सद्यः कालो विधीयते
पूर्वद्वये परेद्युः स्यात्संगवात्परतो यदि । दशमीसंयुता हंति पुण्यं जन्मत्रयार्जितम् ॥४०॥
सर्वैरेकादशी ग्राह्या दशमीपरिवर्जिता । द्वादशी च त्रयोदश्यामस्ति चेत्सा परा स्मृता ॥४१॥
एकादशी कलामात्रा द्वादश्यां तु प्रतीयते । त्रयोदशी च रात्र्यंते तत्र वक्ष्यामि निर्णयम् ॥४२॥
संपूर्णैकादशी शुद्धा द्वादश्यां च प्रतीयते । गृहस्थाः सिद्धिमिच्छंति यतो मोक्षं यतीश्वराः ॥४३॥
पूर्वा गृहस्थैः सा कार्य्या ह्युत्तरा यतिभिस्तथा । तदानीं दशमीविद्धाप्युपोष्यैकादशी तिथिः ॥४४॥
द्वादश्यां तु कलायां वा यदि लभ्येत पारणा ।

दूसरे अपराह्ण में करना चाहिए । काल तक अमावस्या रहे तो क्षयाह श्राद्ध पूर्व अपराह्ण में और वृद्धि श्राद्ध दूसरे अपराह्ण में करना चाहिए । यदि मध्याह्न के बाद अमावस्या तिथि पड़ती हो तो शास्त्रविज्ञों ने उसको भूतविद्धा कहा है । अत्यन्त क्षय पक्ष में दूसरे दिन की अमावस्या तिथि ही ग्राह्य है अपराह्ण वाली नहीं । वहाँ सायंकाल तक रहने वाली सिनीवाली तिथि लेनी चाहिए । उसी प्रकार नवीन क्षय पक्ष में भी सायंकाल तक रहने वाली सिनीवाली तिथि ग्राह्य है ॥२८-३१॥ श्राद्धकर्म में परा सिनीवाली सर्वथा ग्राह्य है, अत्यन्त तिथि की वृद्धि होने पर भूतविद्धा तिथि को छोड़ देना चाहिए । पितृकर्म में अपराह्णस्थ कुहू ग्राह्य है । नवीन वृद्धि में चतुर्दशी से विद्ध सिनीवाली सर्वथा त्याज्य है । पर दिन में पराह्ण में आने वाली कुहू श्रेष्ठ पंडितों द्वारा ग्राह्य है । यदि अमावस्या तिथि दो मध्याह्न तक हो तो इच्छानुसार पूर्व या पर दोनों का ग्रहण किया जा सकता है । मुनिवर्य ! अन्वाधान कर्म को अब बता रहा हूँ—संपूर्ण पर्व में प्रतिपदा के दिन यज्ञ करना चाहिए । पर्व के चौथे भाग को प्रतिपदा के आदि के तीन चरण को विद्वानों ने यज्ञ काल कहा है ॥३२-३६॥ अमावस्या और पूर्णिमा यदि दो मध्याह्न तक रहे तो विप्रेन्द्र! पर दिन ही पुण्य काल माना जाता है । किन्तु दो दिनों में पर दिन तब लिया जाय जब प्रातः स्नान के तीन मुहूर्त्त बाद तक उक्त तिथि रहे । इस प्रकार सभी तिथि क्षयों में पर दिन ग्रहण के सम्बन्ध में समझना चाहिए । दशमी से अविद्ध एकादशी सबके लिए ग्राह्य है, दशमी से युक्त एकादशी तीन जन्म के अर्जित पुण्य को भी नष्ट कर देती है । यदि द्वादशी में कलामात्र भी एकादशी को प्रतीति हो और द्वादशी त्रयोदशी में कलामात्र संयुक्त हो तो वह परा कही गई है ॥३७-४१॥

सम्पूर्ण एकादशी यदि द्वादशी में मिली जान पड़ती हो और रात्रि के अन्त में त्रयोदशी हो तो उसका निर्णय मैं कह रहा हूँ । गृहस्थ पूर्व एकादशी व्रत को करे और यति के लिए उत्तर एकादशी ही ग्राह्य है क्योंकि गृहस्थ इष्ट सिद्धि चाहते और यति लोग मुक्ति । यदि द्वादशी में पारण हो जाय तो दशमीविद्धा एकादशी भी उपवास के

शुक्ले वा यदि वा कृष्णे भवेदेकादशीद्वयम् । गृहस्थानां तु पूर्वोक्ता यतीनामुत्तरा स्मृता ॥४५॥
द्वादश्यां विद्यते किंचिद्दशमीसंयुता यदि । दिनक्षये द्वितीयैव सर्वेषां परिकीर्तिता ॥४६॥
विद्धाप्येकादशी ग्राह्या परतो द्वादशी न चेत् । अविद्धापि निषिद्धैव परतो द्वादशी यदि ॥४७॥
एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी । द्वादशद्वादशीपुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणे ॥४८॥
एकादशी कलामात्रा विद्यते द्वादशीदिने । द्वादशी च त्रयोदश्यां नास्ति वा विद्यतेऽथवा ॥४९॥
विद्धाप्येकादशी तत्र पूर्वा स्याद्गृहिणां तदा । यतिभिश्चोत्तरा ग्राह्या ह्यवीराभिस्तथैव च ॥५०॥
संपूर्णैकादशी शुद्धा द्वादश्यां नास्ति किंचन । द्वादशी च त्रयोदश्यामस्ति तत्र कथं भवेत् ॥५१॥
पूर्वा गृहस्थैः कार्यात्र यतिभिश्चोत्तरा तिथिः । उपोष्यैव द्वितीयेति केचिदाहुश्च भक्तितः ॥५२॥
एकादशी यदा विद्धा द्वादश्यां न प्रतीयते । द्वादशी च त्रयोदश्यामस्ति तत्रैव चापरे ॥५३॥
उपोष्या द्वादशी शुद्धा सर्वैरेव न संशयः । केचिदाहुश्च पूर्वां तु तन्मतं न समंजसम् ॥५४॥
संक्रांतौ रविवारे च पातग्रहणयोस्तथा । पारणं चोपवासं च न कुर्यात्पुत्रवान्गृही ॥५५॥
अर्केऽह्नि पर्वरात्रौ च चतुर्दश्यष्टमी दिवा । एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥५६॥
आदित्यग्रहणे प्राप्ते पूर्वयामत्रये तथा । नाद्याद्वै यदि भुंजीत सुरापेन समो भवेत् ॥५७॥
अन्वाधानेष्टिमध्ये तु ग्रहणं चंद्रसूर्ययोः । प्रायश्चित्तं मुनिश्रेष्ठ कर्त्तव्यं तत्र याज्ञिकैः ॥५८॥
चंद्रोपरागे जुहुयाद्दशमे सोम इत्यृचा । आप्यायस्व ऋचा चैव सोमपास्त इति द्विज ॥५९॥
सूर्योपरागे जुहुयादुदुत्यं जातवेदसम् । आसत्येनोद्वयं चैव त्रयो मंत्रा उदाहृताः ॥६०॥

लिए ग्राह्य है । शुक्ल पक्ष में अथवा कृष्ण पक्ष में यदि दो दिन एकादशी हो तो पूर्व की एकादशी गृहस्थों के लिए और पर यतियों के लिए ग्राह्य मानी गई है ॥४२-४५॥ यदि दशमी से युक्त एकादशी द्वादशी के दिन भी पड़े तो उस दिन सूर्यास्त द्वादशी में होने के कारण वह सम्पूर्ण तिथि द्वादशी ही मानी जाती है ऐसा सभी मानते हैं। विद्धा एकादशी भी ग्राह्य होती है यदि पर काल में द्वादशी न हो और अविद्धा एकादशी भी अग्राह्य है यदि पर काल में द्वादशी हो । यदि एक ही दिन एकादशी द्वादशी दोनों हों और रात्रि के अन्त में त्रयोदशी हो तथा पारण भी त्रयोदशी में ही जाय तो उस दिन व्रत रहने से बाहर द्वादशी का पुण्य मिलता है ॥४६-४८॥ द्वादशी के दिन एकादशी कला मात्र भी हो और द्वादशी त्रयोदशी के दिन हो या न हो, तो विद्धा एकादशी भी गृहस्थों के लिए ग्राह्य है। यतियों और पति-पुत्र-रहित स्त्रियों के लिए पर एकादशी ही ग्राह्य मानी गई है। पूरे दिन तक रहने वाली शुद्ध एकादशी यदि द्वादशी से सर्वथा अविद्ध हो और द्वादशी त्रयोदशी में हो तो वहाँ क्या निर्णय होगा इसको सुनो ॥४९-५१॥ उसमें पूर्व तिथि गृहस्थों के लिए और यतियों के लिए उत्तर तिथि ग्राह्य है। कुछ लोग कहते हैं कि द्वितीय तिथि ही भक्ति पूर्वक उपवास के लिए ग्राह्य है। विद्धा एकादशी यदि द्वादशी में थोड़ी भी न हो और उसी दिन द्वादशी त्रयोदशी में हो तो अपर व्यक्ति कहते हैं कि वह द्वादशी सब के लिए ग्राह्य है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। कुछ लोग पूर्व को ही ग्राह्य मानते हैं परन्तु उनका मत उचित नहीं जान पड़ता ॥५२-५४॥ संक्रान्ति और रविवार के दिन यदि पात और ग्रहण हो तो पुत्रवान् गृहस्थ के लिए उस दिन पारण या उपवास करना उचित नहीं है। रविवार, पर्व की रात्रि, चतुर्दशी और अष्टमी के दिन में, एकादशी को रात्रि और दिन दोनों समय भोजन करने से चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥५५-५६॥ सूर्य ग्रहण लगने पर ग्रहण के पूर्व तीन पहर के भीतर भोजन नहीं करना चाहिए। यदि भोजन करे तो वह मदिरा पान के समान होता है। मुनिश्रेष्ठ ! अन्वाधान, इष्टि, चन्द्र और सूर्य ग्रहण के समय याज्ञिक प्रायश्चित्त अवश्य करें । चन्द्र ग्रहण के समय 'दशमे सोम, इस मन्त्र से या 'आप्यायस्व' अथवा 'सोमपास्त' इस मन्त्र से हवन करना चाहिए। सूर्य ग्रहण में 'उदुत्यं जातवेदसम्,

एवं तिथिं विनिश्चित्य स्मृतिमार्गेण पंडितः । यः करोति व्रतादीनि तस्य स्यादक्षयं फलम् ॥६१॥
वेदप्रणिहितो धर्मो धर्मैस्तुष्यति केशवः । तस्माद्धर्मपरा यांति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥६२॥
धर्मान्ये कर्त्तुमिच्छंति ते वै कृष्णस्वरूपिणः । तस्मात्तांस्तु भवव्याधिः कदाचिन्नैव बाधते ॥६३॥
इतिश्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे तिथ्यादिनिर्णयो नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः

सनक उवाच

प्रायश्चित्तविधिं वक्ष्ये शृणु नारद सांप्रतम् । प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा सर्वकर्मफलं लभेत् ॥१॥
प्रायश्चित्तविहीनैस्तु यत्कर्म क्रियते मुने । तत्सर्वं निष्फलं प्रोक्तं राक्षसैः परिसेवितम् ॥२॥
कामक्रोधविहीनैश्च धर्मशास्त्रविशारदैः । प्रष्टव्या ब्राह्मणा धर्मं सर्वधर्मफलेच्छुभिः ॥३॥
प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखैः । न निष्पुनंति विप्रेन्द्र सुराभांडमिवापगाः ॥४॥
ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी च गुरुतल्पगः । महापातकिनस्त्वेते तत्संसर्गी च पंचमः ॥५॥
यस्तु संवत्सरं ह्येतैः शयनासनभोजनैः । संवसेत्सह तं विद्यात्पतितं सर्वकर्मसु ॥६॥
अज्ञानाद्ब्राह्मणं हत्वा चीरवासाजटी भवेत् । स्वेनैव हतविप्रस्य कपालमपि धारयेत् ॥७॥

आसत्येनो द्वयम्' इस मन्त्र से हवन करना चाहिए। यही सूर्य के तीन मंत्र बतलाए गए हैं ॥५७-६०॥ इस प्रकार स्मृति के अनुसार तिथियों का निर्णय कर जो पंडित व्रत आदि करता है, उसको अक्षय फल मिलता है। धर्म वेद-विहित है। केशव धर्म से ही प्रसन्न होते है। इसलिए धर्मपरायणजन विष्णु के परम पद को प्राप्त करते हैं। जो धर्माचरण करना चाहते हैं वे कृष्णस्वरूप हैं। इसलिए उनको सांसारिक व्याधियों से कुछ भी कभी भी पीड़ा नहीं होती ॥६१-६३॥

श्रीनारदीयमहापुराण में तिथिनिर्णयवर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२९॥

अध्याय ३०

प्रायश्चित्त विधि का निरूपण

सनक बोले— नारद ! अब प्रायश्चित्त विधि बता रहा हूँ। प्रायश्चित्त के द्वारा विशुद्ध आत्मा वाले सब कर्म फलों को प्राप्त करते हैं। मुने ! प्रायश्चित्त के बिना मनुष्य जो कुछ कर्म करता है सब निष्फल जाता है और उसके सब कर्म राक्षसों से घिरे रहते हैं। काम क्रोध से हीन, धर्मशास्त्रज्ञ और सब धर्मों के फल के इच्छुक व्यक्ति को चाहिए कि वे ब्राह्मणों से ही धर्म की बातें पूछें ॥१-३॥ विप्रेन्द्र ! जिस प्रकार नदियाँ मदिरापात्र को पवित्र करने में सर्वथा असमर्थ हैं, उसी प्रकार नारायण से विमुख रहने वाले व्यक्तियों को उनके किये हुए प्रायश्चित्त भी। ब्रह्मघातक, मदिरा पान करने वाला, चोर, गुरुपत्नीगामी ये चार महापातकी हैं और इनके संसर्ग में रहने वाला व्यक्ति भी पाँचवाँ महापापी है ॥४-५॥ जो इन महापातकियों के साथ एक वर्ष तक सोता, बैठता और भोजन करता है उसको सब कर्मों से च्युत समझना चाहिए ॥६॥

अज्ञान से किसी ब्राह्मण की हत्या कर देने पर उस हत्यारे को जटा और वल्कलधारी होना चाहिए। यदि जानबूझ कर उसने ब्राह्मणवध किया हो तब तो उसको कपाल भी धारण करना चाहिए। अन्यथा वह

तदभावे मुनिश्रेष्ठ कपालं वान्यमेव वा । तद्द्रव्यं ध्वजदंडे तु धृत्वा वनचरो भवेत् ॥८॥
वन्याहारो वसेत्तत्र वाग्मेकं मिताशनः । सम्यक्संध्यामुपासीत त्रिकालं स्नानमाचरेत् ॥९॥
अध्ययनाध्यापनादीन्वर्जयेत्संस्मरेद्धरिम् । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं गंधमाल्यादि वर्जयेत् ॥१०॥
तीर्थान्यनुवसेच्चैव पुण्यांश्चैवाश्रमांस्तथा । यदि वन्यैर्न जीवेत ग्रामे भिक्षां समाचरेत् ॥११॥
द्वादशाब्दं व्रतं कुर्यादेवं हरिपरायणः । ब्रह्महा शुद्धिमाप्नोति कर्मार्हश्चैव जायते ॥१२॥
व्रतमध्ये मृगैर्वापि रोगैर्वापि निपीडितः । गोनिमित्तं द्विजार्थं वा प्राणान्वापि परित्यजेत् ॥१३॥
यद्वा दद्याद्द्विजेन्द्राणां गवामयुतमुत्तमम् । एतेष्वन्यतमं कृत्वा ब्रह्महा शुद्धिमाप्नुयात् ॥१४॥
दीक्षितं क्षत्रियं हत्वा चरेद्धि ब्रह्महव्रतम् । अग्निप्रवेशनं वापि मरुत्प्रपतनं तथा ॥१५॥
दीक्षितं ब्राह्मणं हत्वा द्विगुणं व्रतमाचरेत् । आचार्यादिवधे चैव व्रतमुक्तं चतुर्गुणम् ॥१६॥
हत्वा तु विप्रमात्रं च चरेत्संवत्सरं व्रतम् । एवं विप्रस्य गदितः प्रायश्चित्तविधिर्द्विज ॥१७॥
द्विगुणं क्षत्रियस्योक्तं त्रिगुणं तु विशः स्मृतम् । ब्राह्मणं हंति यः शूद्रस्तं मुशल्यं विदुर्बुधाः ॥१८॥
राज्ञैव शिक्षा कर्तव्या इति शास्त्रेषु निश्चयः । ब्राह्मणीनां वधे त्वर्द्धं पादः स्यात्कन्यकावधे ॥१९॥
हत्वा त्वनुपनीतांश्च तथा पादव्रतं चरेत् । हत्वा तु क्षत्रियं विप्रः षडब्दं कृच्छ्रमाचरेत् ॥२०॥
संवत्सरत्रयं वैश्यं शूद्रं हत्वा तु वत्सरम् । दीक्षितस्य स्त्रियं हत्वा ब्राह्मणीं चाष्टवत्सरान् ॥२१॥
ब्रह्महत्याव्रतं कृत्वा शुद्धो भवति निश्चितम् । प्रायश्चितविधानं तु सर्वत्र मुनिसत्तम ॥२२॥

कपाल अथवा अन्य वस्तु को ध्वज दण्ड में बाँधकर रखे और वनवासी हो जाय। और दिन में एक बार थोड़ा सा वन्य-फल मूलों का ही आहार करता हुआ वनवासी जीवन बितावे ॥७-८½॥ त्रिकाल स्नान और सन्ध्योपासना करे, अध्ययन, अध्यापन आदि से मुख मोड़कर केवल हरि स्मरण में ही लगा रहे। नित्य ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे और सुगन्धित पदार्थ या माला का सर्वथा त्याग कर दे। सर्वदा पवित्र तीर्थों और आश्रमों में रहे। यदि वन्य फलों से जीना असम्भव हो तो गाँव में भिक्षा माँगकर जीवन बितावे ॥९-११॥ इस प्रकार हरिपराय[ण] होकर बारह वर्ष तक व्रत पालन करने से ब्रह्मघाती शुद्ध और कर्मों का अधिकारी हो जाता है। व्रत पालन-काल में यदि किसी वन्य पशु के द्वारा या रोग से मृत्यु हो जाय, गौ अथवा ब्राह्मण-रक्षार्थ प्राण त्याग कर दे अथवा ब्राह्मणों को दश हजार उत्तम गायों का दान कर दे तो वह ब्रह्मघाती शुद्ध हो जाता है। यज्ञदीक्षित क्षत्रिय की हत्या करने पर ब्रह्महत्या के समान ही प्रायश्चित करना चाहिए ॥१२-१४½॥ अग्नि में प्रवेश कर (जलकर) या पहाड़ से गिरकर अथवा प्राणवायु को रोककर प्राणत्याग करना इसके लिए उत्तम प्रायश्चित्त है। दीक्षित ब्राह्म[ण] की हत्या करने से दुगुना प्रायश्चित करना चाहिए और आचार्य आदि के वध करने पर चौगुना। द्विज ! विप्र की हत्या करने पर उक्त संवत्सर व्रत करना चाहिए। विप्र के लिए इस प्रकार का प्रायश्चित विहित है। क्षत्रिय [के] लिए दूना, वैश्य के लिए तिगुने प्रायश्चित का विधान है। जो शूद्र ब्राह्मण का वध करता है उसको पंडितों [ने] मुशल्य (मुशल से मारकर चूर्ण करने योग्य) माना है ॥१५-१८॥ राजा ही दण्ड (शिक्षा) का निर्णय करे ऐसा शास्त्रों का निर्णय है। ब्राह्मणीवध में आधा प्रायश्चित (छह वर्ष तक) और कन्यावध में चौथाई (तीन वर्ष तक) प्रायश्चित्त करना चाहिए। अविवाहित की हत्या कर देने पर चौथाई प्रायश्चित्त का ही विधान है ॥१९॥ ब्राह्म[ण] यदि क्षत्रिय की हत्या कर दे तो उसको छह वर्ष तक कृच्छ्र चान्द्रायण करना चाहिए। वैश्य का वध कर तीन व[र्ष] और शूद्र की हत्या करने पर एक वर्ष का प्रायश्चित्त करना शास्त्रों में विहित है। यज्ञदीक्षित व्यक्ति की ब्राह्म[ण] पत्नी की हत्या करने पर आठ वर्ष तक ब्रह्महत्या का प्रायश्चित करने से ही मनुष्य शुद्ध होता है। मुनिसत्तम ! सर्वत्र मुनियों ने बूढ़ा रोगी और स्त्री के लिए आधा ही प्रायश्चित्त कहा है ॥२०-२२॥

वृद्धातुरस्त्रीबालानामर्द्धमुक्तं मनीषिभिः । गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ॥२३॥
चातुर्वर्ण्यैरपेया स्यात्तथा स्त्रीभिश्च नारद । क्षीरं घृतं वा गोमूत्रमेतेष्वन्यतमं मुने ॥२४॥
स्नात्वार्द्रवासा नियतो नारायणमनुस्मरन् । पयस्त्रायसनिभं कृत्वा पिबेच्चैवोदकं ततः ॥२५॥
तत्तु लौहेन पात्रेण ह्यायसेनाथवा पिबेत् । ताम्रेण वाथ पात्रेण तत्पीत्वा मरणं व्रजेत् ॥२६॥
सुरापी शुद्धिमाप्नोति नान्यथा शुद्धिरिष्यते । अज्ञानादात्मबुद्ध्या तु सुरां पीत्वा द्विजश्चरेत् ॥२७॥
ब्रह्महत्याव्रतं सम्यक्तच्चिह्नपरिवर्जितः । यदि रोगा निवृत्यर्थमौषधार्थं सुरा पिबेत् ॥२८॥
तस्योपनयनं भूयस्तथा चांद्रायणद्वयम् । सुरासंस्पृष्टपात्रं तु सुराभांडोदकं तथा ॥२९॥
सुरापानसमं प्राहुस्तथा चन्द्रस्य भक्षणम् । तालं च पानसं चैव द्राक्षं खार्जूरसंभवम् ॥३०॥
माधुकं शैलमारिष्टं मैरेयं नालिकेरजम् । गौडी माध्वी सुरा मद्यमेवमेकादश स्मृताः ॥३१॥
एतेष्वन्यतमं विप्रो न पिबेद्धि कदाचन । एतेष्वन्यतमं यस्तु पिबेदज्ञानतो द्विजः ॥३२॥
तस्योपनयनं भूयस्तप्तकृच्छ्रं चरेत्तथा । समक्षं वा परोक्षं वा बलाच्चौर्येण वा तथा ॥३३॥
परस्वानामुपादानं स्तेयमित्युच्यते बुधैः । सुवर्णस्य प्रमाणं तु मन्वाद्यैः परिभाषितम् ॥३४॥
वक्ष्ये शृणुष्व विप्रेंद्र प्रायश्चित्तोक्तिसाधनम् । गवाक्षागतमार्तण्डरश्मिमध्ये प्रदृश्यते ॥३५॥
त्रसरेणुप्रमाणं तु रज इत्युच्यते बुधैः । त्रसरेण्वष्टकं निष्कस्तत्त्रयं राजसर्षपः ॥३६॥
गौरसर्षपस्तत्त्रयं स्यात्तत्षट्कं यव उच्यते । यवत्रयं कृष्णलः स्यात्माषस्तत्पंचकं स्मृतः ॥३७॥
माषषोडशमानं स्यात्सुवर्णमिति नारद । हृत्वा ब्रह्मस्वमज्ञानाद्द्वादशाब्दं तु पूर्ववत् ॥३८॥

गौडी, पैष्टी माध्वी ये तीन प्रकार की मदिरायें मानी गई हैं। नारद ! ये सब प्रकार की मदिरायें चारों वर्णों और स्त्रियों के लिए अपेय हैं । मुने ! मदिरा पान करने पर दूध, घी या गोमूत्र इनमें से किसी को जलते हुए लोहे के समान गरम कर, स्नान करने के बाद भीगी धोती पहने हो एकाग्र भाव से हरि का स्मरण करता हुआ पी जावे ऊपर से पानी भी पी ले। उस जलते हुए पदार्थ को लोहे के पात्र या ताँबे के पात्र से पीकर प्राण छोड़ दे ॥२३-२६॥ सुरा पान करने वाला इसी प्रकार शुद्ध होता है और दूसरा शुद्धि का उपाय इसके लिए उपयुक्त नहीं। कोई द्विज यदि अज्ञान वश मदिरा पी ले तो पैरों में बेड़ियाँ लगाकर ब्रह्महत्या के समान प्रायश्चित करे, केवल उसके चिह्न (कपाल आदि) न धारण करे। यदि रोग से छूटने के लिए या ओषधि के रूप में मदिरा पान करना पड़े तो पुनः उसका यज्ञोपवीत हो और दो चान्द्रायण व्रत करे । सुरा से छुये गए पात्र, मदिरा पात्र का जल या आर्द्र भक्षण ये भी सुरा पान के समान ही माने जाते हैं ॥२७-२९½॥ ताल, पानस (कटहल की बनी मदिरा) द्राक्षा, खजूर, मधु और पत्थर से बनी मदिरा, आरिष्ट, मैरेय, नारिकेल से बनी गुड़, मधु से बना हुआ मद्य, ये ग्यारह प्रकार की मदिरायें होती हैं। ब्राह्मण इनमें से किसी प्रकार की मदिरा न पीये ॥३०-३१½॥ कोई द्विज यदि इनमें से किसी को अज्ञान वश पी ले तो पुनः उसका यज्ञोपवीत हो और वह तप्त कृच्छ्र व्रत करे ॥३२½॥

पंडितों ने दूसरे के धन को प्रत्यक्ष या गुप्त रूप से, बलात् या चोरी से ले लेने को ही 'स्तेय' कहा है। मनु आदि स्मृतिकारों ने सुवर्ण के प्रमाण की परिभाषा बताई है। विप्रेन्द्र ! उसी के अनुसार मैं प्रायश्चित्त कह रहा हूँ, सुनो । खिड़की से होकर आने वाली सूर्य की किरणों के बीच जो त्रसरेणु प्रमाण का धूलि कण दिखाई देता है उसको पंडितों ने रज कहा है। आठ त्रसरेणु के बराबर निष्क और तीन निष्क का राजसर्षप होता है ॥३३-३६॥ तीन राजसर्षप का एक गौर सर्षप और छः गौर सर्षप का एक यव होता है। तीन यव का एक कृष्णल और पाँच कृष्णल का एक माष होता है। नारद ! सोलह माष के बराबर सुवर्ण होता है। अज्ञानवश

॥३९॥
कपालध्वजहीनं तु ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् । गुरूणां यज्ञकर्तॄणां धर्मिष्ठानां तथैव च ॥४०॥
श्रोत्रियाणां द्विजानां तु हृत्वा हेमैवमाचरेत् । कृतानुतापो देहे च संपूर्णं लेपयेद् घृतम् ॥४१॥
करीषच्छादितो दग्धःस्तेयपापाद्विमुच्यते । ब्रह्मस्वं क्षत्रियो हृत्वा पश्चात्तापमवाप्य च ॥४२॥
पुनर्ददाति तत्रैव तद्विधानं शृणुष्व मे । तत्र सांतपनं कृत्वा द्वादशाहोपवासतः ॥४३॥
शुद्धिमाप्नोति देवर्षे ह्यन्यथा पतितो भवेत् । रत्नासनमनुष्यस्त्रीधेनुभूम्यादिकेषु च ॥४४॥
सुवर्णसदृशेष्वेषु प्रायश्चितार्द्धमुच्यते । त्रसरेणुसमं हेम हृत्वा कुर्यात्समाहितः ॥४५॥
प्राणायामद्वयं सम्यक् तेन शुद्ध्यति मानवः । प्राणायामत्रयं कुर्याद्धृत्वा निष्कप्रमाणकम् ॥४६॥
प्राणायामाश्च चत्वारो राजसर्षपमात्रके । गौरसर्षपमानं तु हृत्वा हेम विचक्षणः ॥४७॥
स्नात्वा च विधिवज्जप्याद्गायत्र्यष्टसहस्रकम् । यवमात्रसुवर्णस्य स्तेयाच्छुद्धो भवेद्द्विजः ॥४८॥
आसायं प्रातरारभ्य जप्त्वा वै वेदमातरम् । हेमकृष्णलमात्रं तु हृत्वा सांतपनं चरेत् ॥४९॥
माषप्रमाणे हेम्नस्तु प्रायश्चित्तं निगद्यते । गोमूत्रपक्वयवभुग्वर्षेणैकेन शुद्ध्यति ॥५०॥
संपूर्णस्य सुवर्णस्य स्तेयं कृत्वा मुनीश्वर । ब्रह्महत्याव्रतं कुर्याद्द्वादशाब्दं समाहितः ॥५१॥
सुवर्णमानान्न्यूने तु रजतस्तेयकर्मणि । कुर्यात्सांतपनं सम्यगन्यथा पतितो भवेत् ॥५२॥
दशनिष्कांतपर्यंतमूर्ध्वं निष्कचतुष्टयात् । हृत्वा च रजतं विद्वान्कुर्याच्चांद्रायणं मुने ॥५३॥
दशादिशतनिष्कांतं यः स्तेयी रजतस्य तु । चांद्रायणद्वयं तस्य प्रोक्तं पापविशोधकम् ॥५४॥
शतादूर्ध्वं सहस्रांतं प्रोक्तं चांद्रायणत्रयम् । सहस्रादधिकस्तेये ब्रह्महत्याव्रतं चरेत्

ब्राह्मण का धन चुरा लेने पर बारह वर्ष तक पूर्व की भाँति ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करना चाहिए, केवल कपाल ध्वज नहीं धारण करना चाहिए ॥३७-३८॥ गुरु, यज्ञकर्त्ता, धर्मिष्ठ, श्रोत्रिय और द्विजों का सुवर्ण चुराने से इस प्रकार प्रायश्चित्त किया जाता है कि पहले अपने पाप पर पश्चात्ताप करे और अपने शरीर पर घी का लेप कर करसी की आग में जल कर मर जाय। इस प्रकार वह चोरी के पाप से छूट जाता है। क्षत्रिय यदि ब्राह्मण के धन को चुरा कर पुनः पश्चात्ताप करे और उसी ब्राह्मण को लौटा दे तब उसको जो प्रायश्चित्त करना पड़ता है उसको मुझसे सुनो ॥३९-४१॥ इस दशा में बारह दिन तक उपवासकर सान्तपन करे तभी वह शुद्ध हो सकता है देवर्षि ! अन्यथा वह पतित कहा जाता है। रत्नासन, मनुष्य, स्त्री, धेनु, और भूमि आदि का चुराना सुवर्णस्तेय के समान ही माना जाता है, परन्तु इसके लिए सुवर्ण-स्तेय का आधा प्रायश्चित्त कहा गया है। त्रसरेणु के बराबर सोना चुरा लेने पर एकाग्र हो दो प्राणायाम करे तभी वह मनुष्य भली भाँति शुद्ध होता है। निष्क परिमित सोना चुराने पर तीन प्राणायाम करे। राजसर्षप मात्र सोना चुराने पर चार प्राणायाम करे। विज्ञ व्यक्ति गौर सर्षप परिमित सोना चुरा लेने पर विधिपूर्वक स्नान कर आठ हजार गायत्री का जप करे ॥४२-४६॥ यव मात्र सोना चुराने पर द्विज प्रातः काल से लेकर सायङ्काल वेदमाता गायत्री का जप करने पर शुद्ध होता है। कृष्णल (गुँजा) मात्र सोना चुराने पर सान्तपन व्रत करे। माष प्रमाण सुर्वण की चोरी करने पर प्रायश्चित्त कहा गया है कि वह व्यक्ति एक वर्ष तक गोमूत्र में यव पकाकर खाय तभी वह शुद्ध होता है ॥४७-४९॥ मुनीश्वर ! सम्पूर्ण सुवर्ण के चुराने पर सावधान हो बारह वर्ष तक ब्रह्महत्या व्रत करे। सुवर्णमान से कम चाँदी के चुराने पर विधिवत् सान्तपन व्रत करे अन्यथा वह पतित हो जाता है। मुने ! चार निष्क (१६ माशे का परिमाण) से दश निष्क तक चाँदी की चोरी करने पर चान्द्रायण व्रत करे। दश निष्क से लेकर सौ निष्क तक की चाँदी जो चुराता है उसके पापों का संशोधन दो चान्द्रायण व्रत करने से ही होता है ॥५०-५२॥ सौ निष्क से अधिक हजार निष्क तक चुराने पर तीन बार चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। हजार निष्क से अधिक चुराने पर ब्रह्महत्या व्रत करना पड़ता है। कांस्य,

कांस्यपित्तलमुख्येषु ह्ययस्कांते तथैव च । सहस्रनिष्कमाने तु पराकं परिकीर्तितम् ॥५५॥
प्रायश्चित्तं तु रत्नानां स्तेये राजतवत्स्मृतम् । गुरुतल्पगतानां च प्रायश्चित्तमुदीर्यते ॥५६॥
अज्ञानान्मातरं गत्वा तत्सपत्नीमथापि वा । स्वयमेव स्वमुष्कं तु छिद्यात्पापमुदीरयन् ॥५७॥
हस्ते गृहीत्वा मुष्कं तु गच्छेद्वै नैर्ऋतीं दिशम् । गच्छन्मार्गे सुखं दुःखं न कदाचिद्विचारयेत् ॥५८॥
अपश्यन्गच्छतो गच्छेत्प्राणान्तं यः स शुद्ध्यति । मरुत्प्रपतनं वापि कुर्यात्पापमुदाहरन् ॥५९॥
स्ववर्णोत्तमवर्णस्त्रीगमने त्वविचारतः । ब्रह्महत्याव्रतं कुर्याद्द्वादशाब्दं समाहितः ॥६०॥
अमत्याभ्यासतो गच्छेत्सवर्णां चोत्तमां तथा । कारीषवह्निना दग्धः शुद्धिं याति द्विजोत्तम ॥६१॥
रेतःसेकात्पूर्वमेव निवृत्तो यदि मातरि । ब्रह्महत्याव्रतं कुर्याद्रेतःसेकेऽग्निदाहनम् ॥६२॥
सवर्णोत्तमवर्णासु निवृत्तो वीर्यसेचनात् । ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यान्नवाब्दान्विष्णुतत्परः ॥६३॥
वैश्यायां पितृपत्न्यां तु षडब्दं व्रतमाचरेत् । गत्वा शूद्रां गुरोर्भार्यां त्रिवर्षं व्रतमाचरेत् ॥६४॥
मातृष्वसारं च पितृष्वसारमाचार्यभार्यां श्वशुरस्य पत्नीम् ।
पितृव्यभार्यामथ मातुलानीं पुत्रीं च गच्छेद्यदि काममुग्धः ॥६५॥
दिनद्वये ब्रह्महत्याव्रतं कुर्याद्यथाविधि । एकस्मिन्नेव दिवसे बहुवारं त्रिवार्षिकम् ॥६६॥
एकं वारं गते ह्यब्दं व्रतं कृत्वा विशुद्ध्यति । दिनत्रये गते वह्निदग्धः शुध्येत नान्यथा ॥६७॥
चांडालीं पुष्कसीं चैव स्नुषां च भगिनीं तथा । मित्रस्त्रियं शिष्यपत्नीं यस्तु वै कामतो व्रजेत् ॥६८॥
ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यात्स षडब्दं मुनीश्वर । अकामतो व्रजेद्यस्तु सोऽब्दकृच्छ्रं समाचरेत् ॥६९॥
महापातकिसंसर्गे प्रायश्चित्तं निगद्यते । प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा सर्वकर्मफलं लभेत् ॥७०॥

पित्तल और अयस्कान्त आदि की यदि हजार निष्क मात्रा में चोरी की जाय तो उस चोर को पराक व्रत करना चाहिए । रत्नों की चोरी में भी चाँदी की चोरी के समान ही प्रायश्चित्त कहा गया है ॥५३-५६॥

गुरुतल्प गमन का प्रायश्चित्त कह रहा हूँ सुनो । अनजाने माता या माता की सौत से मैथुन करने वाला व्यक्ति स्वयं अपने पापों की घोषणा करते हुए अपने अण्डकोश को काट दे । अविचार अज्ञानवश अपने वर्ण से उत्तम वर्ण वाली स्त्री से संभोग करने पर बारह वर्ष तक सावधानी से ब्रह्म हत्या व्रत करना चाहिए ॥५७-६०॥ द्विजोत्तम ! अविवेक और अभ्यास के कारण यदि सवर्ण या उत्तम वर्ण की कन्या से सम्भोग करे तो वह करसी की आग में जल कर ही शुद्ध हो सकता है । मातृयोनि में वीर्य पात करने के पूर्व ही यदि मैथुन त्याग कर दे तब तो वह ब्रह्म हत्या व्रत करे और वीर्य पात करने पर तो अग्नि में भस्म हो जाना ही प्रायश्चित्त है । सवर्ण अथवा उत्तम वर्ण में वीर्य पात करने के पूर्व हो मैथुन से हट जाने पर नव वर्ष तक भगवान् की पूजा में एकनिष्ठ हो ब्रह्महत्या व्रत करे ॥६१-६३॥ पिता की वैश्या पत्नी से व्यभिचार करने पर छह वर्ष तक व्रत पालन करे और गुरु की शूद्र भार्या से भोग करने पर तीन वर्ष तक, मौसी, फुआ, आचार्य-भार्या, श्वशुर की स्त्री, चाचा की स्त्री, मामी और पुत्री से यदि कामविह्वल होकर दो दिन मैथुन कर दे तो यथा विधि ब्रह्महत्या व्रत करे । एक ही दिन कई बार संभोग करने पर तीन वर्ष तक और एक बार करने पर एक वर्ष तक व्रत करे तभी वह शुद्ध हो सकता है । तीन दिन मैथुन करने पर केवल अग्नि में भस्म होने पर ही शुद्धि हो सकती है, अन्यथा नहीं ॥६४-६७॥ मुनीश्वर ! चाण्डाली, पुष्कसी पुत्रवधू, बहिन, मित्रस्त्री, शिष्यपत्नी से जो काम-भावना से भोग करता है वह छह वर्ष तक ब्रह्म-हत्या व्रत करे, जो अकामभाव से ऐसा करे, वह एक वर्ष तक कृच्छ्रव्रत करे ॥६८-६९॥

अब महापापी की संगति से जो-जो पाप लगते हैं उनके लिए प्रायश्चित्त कह रहा हूँ । प्रायश्चित्त करने से मनुष्य का आत्मा शुद्ध होता है और वह सब कर्म फलों का अधिकारी होता है । जिसका उपर्युक्त चार प्रकार के

यस्य येन भवेत्संगो ब्रह्महादिचतुर्ष्वपि । तत्तद्व्रतं स निर्वर्त्य शुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥७१॥
अज्ञानात्पंचरात्रं तु संगमेभिः करोति यः । कायकृच्छ्रं चरेत्सम्यगन्यथा पतितो भवेत् ॥७२॥
द्वादशाहे तु संसर्गे महासांतपनं स्मृतम् । संगंकृत्वार्द्धमासं तु द्वादशाहमुपावसेत् ॥७३॥
पराको माससंसर्गे चांद्रमासत्रये स्मृतम् । कृत्वा संगं तु षण्मासं चरेच्चान्द्रायणद्वयम् ॥७४॥
किंचिन्नयूनाब्दसंगे तु षण्मासव्रतमाचरेत् । एतच्च त्रिगुणं प्रोक्तं ज्ञानात्संगे यथाक्रमम् ॥७५॥
मंडूकं नकुलं काकं वराहं मूषकं तथा । मार्जाराजाविकं श्वानं हत्वा कुक्कुटकं तथा ॥७६॥
कृच्छ्रार्द्धमाचरेद्विप्रोऽतिकृच्छ्रं चाश्वहा चरेत् । तप्तकृच्छ्रं करिवधे पराकं गोवधे स्मृतम् ॥७७॥
कामतो गोवधे नैव शुद्धिर्दृष्टा मनीषिभिः । पानं शय्यासनाद्येषु पुष्पमूलफलेषु च ॥७८॥
भक्ष्यभोज्यापहारेषु पंचगव्यविशोधनम् । शुष्ककाष्ठतृणानां च द्रुमाणां च गुडस्य च ॥७९॥
चर्मवस्त्रामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् । टिट्टिभं चक्रवाकं च हंसं कारडवं तथा ॥८०॥
उलूकं सारसं चैव कपोतं जलपादकम् । शुकं चाषं बलाकं च शिशुमारं च कच्छपम् ॥८१॥
एतेष्वन्यतमं हत्वा द्वादशाहमभोजनम् । प्राजापत्यव्रतं कुर्याद्रेतोविण्मूत्रभोजने ॥८२॥
चांद्रायणत्रयं प्रोक्तं शूद्रोच्छिष्टस्य भोजने । रजस्वलां च चांडालं महापातकिनं तथा ॥८३॥
सूतिकां पतितं चैव उच्छिष्टं रजकादिकम् । स्पृष्ट्वा सचैलं स्नायीत घृतं संप्राशयेत्तथा ॥८४॥
गायत्रीं च विशुद्धात्मा जपेदष्टशतं द्विज । एतेष्वन्यतमं स्पृष्ट्वा अज्ञानाद्यदि भोजने ॥८५॥

महापापियों में किसी से संसर्ग हो जाता है उसकी उसी महापाप के अनुकूल व्रत करने से शुद्धि होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं । जो अज्ञान वश पाँच रात्रि तक इनमें से किसी के साथ रहता है वह कायकृच्छ्रव्रत करे अन्यथा वह पतित हो जाता है । बारह दिन की संगति में तो महासान्तपन व्रत करना ही उचित माना गया है। आधे महीने तक संगति करने से बारह दिन तक उपवास करना चाहिए। एक महीने तक साथ रहने पर पराक व्रत और तीन महीने के संसर्ग में चान्द्रायण व्रत करना श्रेयस्कर कहा जाता है । छह महीने के साहचर्य में दो चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥६९-७४॥ एक वर्ष से कुछ कम समय तक साथ रहने से षाण्मास व्रत करना चाहिए। जान बूझकर संगति करने पर क्रमशः इनका तिगुना प्रायश्चित्त करना चाहिए ऐसा शास्त्रकारों का कहना है ॥७५॥

मेढक, नेवला, कौआ, सूअर, चूहा, बिल्ली, बकरी, भेड़, कुत्ता और मुर्गा इतने जीवों की हत्या करने पर ब्राह्मण को अर्द्ध कृच्छ्र करना चाहिए । अश्व वध करने वाले को अति कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। हाथी के वध में तप्तकृच्छ्र और गोवध में पराक व्रत कहा गया है। मनीषियों ने जान बूझकर गोहत्या करने वालों पर किसी प्रकार का प्रायश्चित नहीं बतलाया है ॥७६-७७॥ पीने योग्य वस्तु रस, शरबत आदि, खटिया, आसन और फल फूल मूल अथवा भक्ष्य भोज्य आदि के चुरा लेने पर पंचगव्य से शुद्धि कही गई है। सूखी लकड़ी, तृण, वृक्ष, गुड़, चमड़ा वस्त्र और मांस को चुरा लेने पर तीन रात तक उपवास करना चाहिए। टिटिहिरी, चक्रवाक, हंस, कारंडव, उल्लू, सारस, कपोत, जलपादक (एक प्रकार का हंस), सुग्गा, चाष, बगुला, शिशुमार, कछुआ इनमें से किसी की हत्या करने पर बारह दिन तक भोजन नहीं करना चाहिए। वीर्य, विष्ठा और मूत्र भोजन करने पर प्राजापत्य व्रत करना चाहिए ॥७८-८२॥ शूद्र का जूठा भोजन करने पर तीन बार चान्द्रायण व्रत का विधान है। रजस्वला स्त्री, चाण्डाल, महापापी सूतिका (जच्चा) पतित, जूठा भोजन, धोबी आदि छू जाने पर सचैल (वस्त्र-सहित) स्नान करने और घृत प्राशन भी करे । द्विज ! इस प्रकार विशुद्ध हो आठ सौ गायत्री का जप करे। यदि इनमें से किसी को छू कर अनजाने अज्ञान वश भोजन कर ले तो द्विज ! वह व्यक्ति तीन रात

। स्नानदानजपादौ च भोजनादौ च नारद ॥८६॥
त्रिरात्रोपोषणाच्छुद्ध्येत्पंचगव्याशनाद्द्विज । उद्वमेद्भुक्तमन्नं तत्स्नात्वा चोपवसेत्तथा ॥८७॥
एषामन्यतमस्यापि शब्दं यः शृणुयाद्वदेत् । व्रतादिमध्ये यद्येषां शृणुयाद्ध्वनिमप्युत ॥८८॥
द्वितीयेऽह्नि घृतं प्राश्य शुद्धिमाप्नोति नारद । पापानामधिकं पापं द्विजदैवतनिंदनम् ॥८९॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु जपेद्वै वेदमातरम् । महापातकतुल्यानि यानि प्रोक्तानि सूरिभिः ॥९०॥
न दृष्ट्वा निष्कृतिस्तस्य सर्वशास्त्रेषु नारद । प्रायश्चित्तानि यः कुर्यान्नारायणपरायणः ॥९१॥
प्रायश्चित्तं तु तेषां च कुर्यादेवं यथाविधि । यस्तु रागादिनिर्मुक्तो ह्यनुतापसमन्वितः ॥९२॥
तस्य पापानि नश्यंति ह्यन्यथा पतितो भवेत् । महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥९३॥
सर्वभूतदयायुक्तो विष्णुस्मरणतत्परः । नारायणमनाद्यंतं विश्वाकारमनामयम् ॥९४॥
विमुक्त एव पापेभ्यो ज्ञेयो विष्णुपरो यतः । स्मृतो वा पूजितो वापि ध्यातः प्रणमितोऽपि वा ॥९५॥
यस्तु संस्मरते मर्त्यः स मुक्तः पापकोटिभिः । संपर्काद्यदि वा मोहाद्यस्तु पूजयते हरिम् ॥९६॥
नाशयत्येव पापानि विष्णुर्हृद्गमनः सताम् । सकृत्संस्मरणाद्विष्णोर्नश्यंति क्लेशसंचयाः ॥९७॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः स प्रयाति हरेः पदम् । मानुषं दुर्लभं जन्म प्राप्यते यैर्मुनीश्वर ॥९८॥
स्वर्गादिभोगप्राप्तिस्तु तस्य विप्रानुमीयते । तस्मात्तडिल्लतालोलं मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ॥९९॥
तत्रापि हरिभक्तिस्तु दुर्लभा परिकीर्त्तिता । सर्वेऽन्तराया नश्यंति मनःशुद्धिश्च जायते ॥१००॥
हरिं संपूजयेद्भक्त्या पशुपाशविमोचनम् ।

नारद ! स्नान, दान, जप अथवा
तक उपवास करने से शुद्ध होता है अथवा पंचगव्यका पान करे ॥८३-८५½॥ बातचीत करे तो वही व्यक्ति खाया
भोजन आदि के समय यदि इनमें से किसी का शब्द सुन ले या स्वयं इनसे दिन सविधि घृतप्राशन करने पर वह
हुआ अन्न उगल दे और स्नान कर उस दिन उपवास करे । नारद ! दूसरे तो एक हजार आठ बार वेद माता
शुद्ध होता है । व्रत आदि के मध्यकाल में यदि इनकी बोली भी सुन ले पाप है । नारद ! सब
गायत्री का जप करे ॥८६-८८½॥ द्विज और देवताओं की निन्दा सब पापों से बढ़ कर गये हैं उनके लिए इस
शास्त्रों में इसका कोई प्रायश्चित्त नहीं लिखा है । महापापों के बराबर जो पाप कहे प्रायश्चित्त करता है
प्रकार का प्रायश्चित्त विधिपूर्वक करना चाहिए जो व्यक्ति नारायण का स्मरण करता हुआ पश्चात्ताप करता और
उसके पाप नष्ट हो जाते हैं, अन्यथा वह पतित हो रहता है । जो राग आदि से मुक्त हो सब पापों से
सब प्राणियों पर दया भाव रखकर विष्णु के स्मरण में लगा रहता है, वह महापातकी हो चाहे ॥८९-९३½॥ जो
युक्त क्यों न हो, उसको सब पापों से मुक्त समझना चाहिए । क्योंकि वह विष्णु का सेवक है मुक्त हो जाता है ।
मनुष्य, अनन्त, विश्वरूप निर्विकार नारायण का स्मरण करता है वह अपने करोड़ों पापों से उसके पापों को
भगवान् विष्णु के स्मरण, पूजा, ध्यान प्रणाम से सज्जनों के हृदय में निवास करने वाले भगवान् मुक्त हो विष्णु-
नष्ट कर देते हैं । जो साहचर्य या मोह वश भी भगवान् की पूजा करता है वह भी सब पापों से ॥९४-९७॥
लोक को चला जाता है । भगवान् का एक बार भी स्मरण करने से सभी क्लेश नष्ट हो जाते हैं मुनीश्वर ! पहले तो
विप्र ! स्वर्ग आदि भोग-प्राप्ति का तो अनुमान ही किया जा सकता है । इसलिए विद्युत् के समान
मानुष जन्म पाना ही दुर्लभ है, मानव जीवन में हरि भक्ति का पाना और दुर्लभ है । स्मरण करना चाहिए । ऐसा
चंचल मानुष शरीर पाकर पशु-पाश से विमुक्त करने वाले भगवान् का भक्ति पूर्वक की पूजा करने पर परम
करने से सब प्रकार की बाधायें दूर हो जातीं हैं और हृदय शुद्ध हो जाता है । जनार्दन

परं मोक्षं लभेच्चैव पूजिते तु जनार्दने । धर्मार्थकाममोक्षाख्याः पुरुषार्थाः सनातनाः ॥१०१॥
हरिपूजापराणां तु सिध्यन्ति नात्र संशयः । पुत्रदारगृहक्षेत्रधनधान्याभिधावतीम् ॥१०२॥
लब्ध्वेमां मानुषीं वृत्तिं रे रे दर्पं तु मा कृथाः । सन्त्यज्य कामं क्रोधं च लोभं मोहं मदं तथा ॥१०३॥
परापवादं निंदां च भजध्वं भक्तितो हरिम् । व्यापारान्सकलांस्त्यक्त्वा पूजयध्वं जनार्दनम् ॥१०४॥
निकटा एव दृश्यंते कृतांतनगरद्रुमाः । यावन्नायाति मरणं यावन्नायाति वै जरा ॥१०५॥
यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावदेवार्चयेद्धरिम् । धीमान्न कुर्याद्विश्वासं शरीरेऽस्मिन्विनश्वरे ॥१०६॥
नित्यं सन्निहितो मृत्युः संपदत्यंतचंचला । आसन्नमरणो देहस्तस्माद्दर्पं विमुंचत ॥१०७॥
संयोगा विप्रयोगांताः सर्वं च क्षणभंगुरम् । एतज्ज्ञात्वा महाभाग पूजयस्व जनार्दनम् ॥१०८॥
आशया व्यथते चैव मोक्षस्त्वत्यंतदुर्लभः । भक्त्या यजति यो विष्णुं महापातकवानपि ॥१०९॥
सोऽपि याति परं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति । सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च सांगा वेदाश्च सत्तम ॥११०॥
नारायणार्चनस्यैते कलां नार्हन्ति षोडशीम् । किं वै वेदैर्मखैः शास्त्रैः किंवा तीर्थनिषेवणैः ॥१११॥
विष्णुभक्तिविहीनानां किं तपोभिर्व्रतैरपि ॥११२॥

यजंति ये विष्णुमनंतमूर्तिं निरीक्ष्य चाकारगतं वरेण्यम् ।
वेदांतवेद्यं भवरोगवैद्यं ते यांति मर्त्याः पदमच्युतस्य ॥११३॥
अनादिमात्मानमनंतशक्तिमाधारभूतं जगतः सुरेड्यम् ।
ज्योतिःस्वरूपं परमच्युताख्यं स्मृत्वा समभ्येति नरः सखायम् ॥११४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे प्रायश्चित्तविधिर्नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

मोक्ष भी प्राप्त हो जाता है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये सनातन पुरुषार्थ हैं जो हरि भक्तों को निःसन्देह प्राप्त हो जाते हैं ॥९८-१०१½॥ अरे मनुष्यो ! पुत्र, स्त्री, घर, क्षेत्र, धनधान्य आदि की ओर दौड़ने वाली मानवीय वृत्ति को पाकर तुम व्यर्थ में दर्प मत करो । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, पर-निन्दा, अपवाद को छोड़कर भक्ति पूर्वक हरि का स्मरण करो । सब व्यापारों को छोड़कर जनार्दन की पूजा करो, देखो, यमपुरी के वृक्ष समीप दिखाई दे रहे हैं अर्थात् मृत्यु अत्यन्त सन्निकट है । जब तक मृत्यु निकट नहीं आयी, बुढ़ापा गला नहीं पकड़ती, जब तक इन्द्रियाँ शिथिल नहीं होतीं तब तक ही भगवान् की पूजा कर लो । इस संसार में बुद्धिमान् कभी भी इस भंगुर शरीर पर विश्वास नहीं करते ॥१०२-१०६॥ मृत्यु सर्वदा निकट रहती है, यह लौकिक संपत्ति अत्यन्त चंचल है, यह शरीर मृत्यु के अति निकट है, इसलिए दर्प को छोड़ो । महाभाग ! संयोग का अवसान वियोग में होता है, सारे पदार्थ क्षणभंगुर हैं, यह जानकर जनार्दन की पूजा करो । यह संसार आशा से ही व्यथा पा रहा है, मोक्ष तो अत्यन्त दुर्लभ है परन्तु जो व्यक्ति भक्ति पूर्वक विष्णु की पूजा करता है, वह महा पापी ही क्यों न हो—वह परम स्थान को प्राप्त कर लेता है जहाँ जाकर उसको कोई शोक नहीं रह जाता । महाभाग ! सारे तीर्थ, यज्ञ, अंग सहित वेद-ये सभी विष्णु पूजन को सोलहवीं कला के बराबर नहीं है ॥१०७-११०½॥ उनके वेदाध्ययन, शास्त्र, तीर्थ-सेवन, तप और व्रत से क्या लाभ जो विष्णु भक्ति से विमुख हैं । जो अनन्त मूर्ति, वरेण्य, वेदान्त-वेद्य, सांसारिक रोगों के एक मात्र वैद्य विष्णु की मूर्ति को देखकर उनकी पूजा करते हैं, वे मनुष्य उस अच्युत हरि के लोक को चले जाते हैं । मनुष्य अनादि, परमात्मा, अनंत शक्तिशाली संसार के आधारभूत, देवपूज्य, ज्योतिः स्वरूप, परम और अच्युत नामक भगवान् का स्मरण करता है वह उनका मित्र बन जाता है ॥१११-११४॥

श्रीनारदीयमहापुराण में प्रायश्चित्त विधि नामक
तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

कथितो भवता सम्यग्वर्णाश्रमविधिर्मुने । इदानीं श्रोतुमिच्छामि यममार्गं सुदुर्गमम् ॥१॥

सनक उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि यममार्गं सुदुर्गमम् । सुखदं पुण्यशीलानां पापिनां भयदायकम् ॥२॥
षडशीतिसहस्राणि योजनानि मुनीश्वर । यममार्गस्य विस्तारः कथितः पूर्वसूरिभिः ॥३॥
ये नरा दानशीलास्तु ते यांति सुखिनो द्विज । धर्मशून्या नरा यांति दुःखेन भृशमर्दिताः ॥४॥
अतिभीता विवस्त्राश्च शुष्ककंठौष्ठतालुकाः । क्रंदंतो विस्वरं दीनाः पापिनो यांति तत्पथि ॥५॥
हन्यमाना यमभटैः प्रतोदाद्यैस्तथायुधैः । इतस्ततः प्रधावंतो यांति दुःखेन तत्पथि ॥६॥
क्वचित्पंकः क्वचिद्वह्निः क्वचित्संतप्तसैकतम् । क्वचिद्दावरूपेण तीक्ष्णधाराः शिलाः क्वचित् ॥७॥
क्वचित्कंटकवृक्षाश्च दुःखारोहशिला नगाः । गाढांधकाराश्च गुहाः कंटकावरणं महत् ॥८॥
वप्राग्रारोहणं चैव कन्दरस्य प्रवेशनम् । शर्कराश्च तथा लोष्टाःसूचीतुल्याश्च कण्टकाः ॥९॥
शैवालं च क्वचिन्मार्गे क्वचित्कीचकपंक्तयः । क्वचिद्व्याघ्राश्च गर्जंते वर्धंते च क्वचिज्ज्वराः ॥१०॥

अध्याय ३१

यमदूतों के कृत्य का वर्णन

नारद बोले--मुने ! आपने वर्णाश्रम विधि का वर्णन भली भाँति कर दिया । अब मैं अत्यंत दुर्गम यम, मार्ग का वर्णन सुनना चाहता हूँ ॥१॥

सनक बोले-- विप्र ! सुनो, मैं उस दुर्गम यम मार्ग का वर्णन कर रहा हूँ जो पुण्य शील जनों के लिए सुखद और पापियों के लिए भयदायक है । मुनीश्वर ! पूर्व आचार्यों ने यम मार्ग का विस्तार छियासी हजार योजन बतलाया है ॥२-३॥ द्विज ! जो दानशील हैं वे व्यक्ति सुखपूर्वक उस मार्ग से चले जाते हैं । परन्तु जो धार्मिक नहीं हैं वे उस मार्ग पर बड़ी पीड़ा और कष्ट से जाते हैं । पापी लोग उस पथ पर चलते समय भयत्रस्त हो जाते, उनके वस्त्र गिर जाते, कण्ठ, ओठ और तालू सूख जाते हैं । वे दीन करुण स्वर से रोते चिल्लाते हैं । उस पथ पर चलते समय यमदूत कोड़े और शस्त्रों से मारते हैं । वे इधर उधर भागते और बड़े कष्ट से चलते हैं ॥४-६॥ उस मार्ग में कहीं तो कीचड़ है, कहीं अग्नि, कहीं जलती हुई बालुका और कहीं तीखी धार वाली शिलायें शस्त्र के रूप में सीधी खड़ी हैं । कहीं काँटेदार वृक्ष, कहीं ऐसे पहाड़ हैं जिनकी चट्टानों पर पैर रखकर चलना अत्यन्त कष्टकर है । कहीं बड़ी बड़ी गुफायें हैं जिनमें सदा अन्धकार रहता और जो काँटों से ढँकी रहती है ॥७-८॥ वहाँ ऊँची ऊँची चोटियों पर चढ़ना पड़ता तो कभी कन्दराओं में घुसना पड़ता है । कहीं छोटी-छोटी कंकड़ियाँ, ढेले, कहीं सुई के समान काँटे तो कहीं मार्ग में सेवार और बाँसों की पाँत खड़ी रहती हैं । कहीं बाघ गुर्राते तो कहीं

एवं बहुविधक्लेशाः पापिनो यांति नारद । क्रोशंतश्च रुदन्तश्च ग्लायंतश्चैव पापिनः ॥११॥
पाशेन यंत्रिताः केचित्कृष्यमाणास्तथांकुशः । शस्त्रास्त्रैस्ताड्यमानीश्च पृष्ठतो यांति पापिनः ॥१२॥
नासाग्रपाशकृष्टाश्च केचिदंत्रैश्च वंधिताः । वहंतश्चायसां भारं शिश्नाग्रेण प्रयांति वै ॥१३॥
अयोभारद्वये केचिन्नासाग्रेण तथापरे । कर्णाभ्यां च तथा केचिद्वहंतो यांति पापिनः ॥१४॥
केचिच्च स्खलिता यांति ताड्यमानास्तथापरे । अत्यथोच्छ्वसिताः केचित्केचिदाच्छन्नलोचनाः ॥१५॥
छायाजलविहीने तु पथि यात्यतिदुःखिताः । शोचन्तः स्वानि कर्माणि ज्ञानाज्ञानकृतानि च ॥१६॥
ये तु नारद धर्मिष्ठा दानशोला सुबुद्धयः । अतीव सुखसंपन्नास्ते यांति धर्ममंदिरम् ॥१७॥
अन्नदास्तु मुनिश्रेष्ठ भुंजतः स्वादु यांति वै । नीरदा यांति सुखिनः पिबंतः क्षीरमुत्तमम् ।
तक्रदा दधिदाश्चैव तत्तद्भोगं लभंति वै । घृतदा मधुदाश्चैव क्षीरदाश्च द्विजोत्तम ॥१८॥
सुधापानं प्रकुर्वंतो यांति वै धर्ममंदिरम् । शाकदाः पायसं भुंजन्दीपदो ज्वलयन्दिशः ॥१९॥
वस्त्रदो मुनिशार्दूल याति दिव्याम्बरावृतः । पुराकरप्रदो याति स्तूयमानोऽमरैः पथि ॥२०॥
गोदानेन नरो याति सर्वसौख्यसमन्वितः । भूमिदो गृहदश्चैव विमाने सर्वसंपदि ॥२१॥
अप्सरोगणसंकीर्णे क्रीडन्याति वृषालयम् । हयदो यानदश्चापि गजदश्च द्विजोत्तम ॥२२॥
धर्मालयं विमानेन याति भोगान्वितेन वै । अनडुहो मुनिश्रेष्ठ यानारूढः प्रयाति वै ॥२३॥
फलदः पुष्पदश्चापि याति संतोषसंयुतः । ताम्बूलदो नरो याति प्रहृष्टो धर्ममंदिरम् ॥२४॥
मातापित्रोश्च शुश्रूषां कृतवान्यो नरोत्तमः । स याति परितुष्टात्मा पूज्यमानो दिविस्थितैः ॥२५॥

ज्वर का ही प्रकोप बढ़ता रहता है । नारद ! इस प्रकार पापी भाँति भाँति के क्लेश पाते हैं, वे कभी रोते कभी चिल्लाते और मलिन मुख रहते हैं । कोई पाश में बँधे रहते तो किसी को अंकुश से पकड़ कर यमदूत खींचते हैं । कोई पापी शस्त्रास्त्रों से आहत होते हुए पीठ के बल जाते हैं । किसी पापी का नासाग्र पाश में बाँधकर खींचा जाता तो कोई आन्त्र जाल अँतड़ी या रस्सी से बँधा है । कोई अपने लिंग के अग्रभाग से लोहे का भार ढो रहा है तो कोई नाक के अग्रभाग पर दोनों ओर लोहे का भार लटकाये जा रहा है तो कोई पापी कानों से ही लोह भार ढोते हुए चल रहा है । कोई मार्ग में गिर पड़ते हैं तो दूसरे पीटे जाते हैं, कितने पीड़ा के कारण हाँफ रहे हैं, तो कितने अपनी आखों को ढके हुए जा रहे हैं । उस छाया और जल से शून्य मार्ग पर अपने ज्ञान या अज्ञानवश किये हुए कर्मों पर पश्चात्ताप करते हुए दुःखी होकर पापी चलते हैं ॥९-१६॥ नारद ! जो दानशील, धर्मिष्ठ और सज्जन हैं वे तो अत्यन्त सुखपूर्वक यम-मन्दिर को जाते हैं । मुनिश्रेष्ठ ! अन्न दान करने वाले स्वादिष्ठ भोजन करते हुए और जल दान करने वाले उत्तम क्षीर पान करते हुए जाते हैं । तक्र (छाछ) और दही का दान करने वाला छाछ पीते और दही खाते जाते हैं । द्विजोत्तम ! घी, मधु और क्षीर का दान करने वाले सुधापान करते हुए यमपुरी को जाते हैं । शाक दान करने वाले खीर खाते हुए और दीप दान करने वाले अपने तेज से दिशाओं को प्रकाशित करते हुए जाते हैं ॥१७-१९॥ मुनिशार्दूल ! वस्त्र दान करने वाले दिव्य वस्त्र पहनकर जाते हैं । पुर और खान का दान करने वाले व्यक्ति को देवतागण यम-पथ में स्तुति करते हुए लिवा जाते हैं ॥२०॥ गोदान करने वाला मनुष्य सब सुखों का भोग करता हुआ जाता है । भूमिदान और गृहदान करने वाला सब सुख सामग्रियों से भरे विमान पर आरूढ़ हो अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करता हुआ जाता है । द्विजोत्तम ! घोड़ा, सवारी या हाथी का दान करने वाला सब भोगों से परिपूर्ण विमान से यम-नगर को जाता है । बैल का दान करने वाला यान पर आरूढ़ होकर जाता है ॥२१-२३॥ फल और फूल का दान करने वाला सन्तोष पूर्वक उस पथ पर जाता है । तांबूल का दान करने वाला नर प्रसन्नता पूर्वक धर्ममन्दिर को जाता है ॥२४॥ जिस व्यक्ति ने माता पिता की सेवा की वह संतुष्टात्मा देवों से पूज्यमान हो यम-मन्दिर

द्विजाग्र्यब्राह्मणानां च स यात्यति सुखान्वितः ॥२६॥
शुश्रूषां कुरुते यस्तु यतीनां व्रतचारिणाम् । सर्वभोगान्वितेनासौ विमानेन प्रयाति च ॥२७॥
सर्वभूतदयायुक्तः पूज्यमानोऽमरैर्द्विजः । पुराणपाठको याति स्तूयमानो मुनीश्वरैः ॥२८॥
विद्यादानरतो याति पूज्यमानोऽब्जसूनुभिः । यमश्चतुर्मुखो भूत्वा शंखचक्रगदासिभृत् ॥२९॥
एवं धर्मपरा यांति सुखं धर्मस्य मंदिरम् । भो भो बुद्धिमतां श्रेष्ठ नरकक्लेशभीरवः ॥३०॥
पुण्यकर्मरतं सम्यक्स्नेहान्मित्रमिवार्चति । मनुष्यजन्म यः प्राप्य सुकृतं न करोति च ॥३१॥
युष्माभिः साधितं पुण्यमत्रामुत्रसुखावहम् । अनित्यं प्राप्य मानुष्यं नित्यं यस्तु न साधयेत् ॥३२॥
स एव पापिनां श्रेष्ठ आत्मघातं करोति च । शरीरं यातनारूपं मलाद्यैः परिदूषितम् ॥३३॥
स याति नरकं घोरं कोऽन्यस्तस्मादचेतनः । सर्वेषु प्राणिनः श्रेष्ठास्तेषु वै बुद्धिजीविनः ॥३४॥
तस्मिन्यो याति विश्वासं तं विद्यादात्मघातकम् । ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ॥३५॥
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणास्तथा । ब्रह्मवादिष्वपि तथा श्रेष्ठो निर्मम उच्यते ॥३६॥
कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥३७॥
एतेभ्योऽपि परो ज्ञेयो नित्यं ध्यानपरायणः । गच्छ स्वपुण्यैर्मत्स्थानं सर्वभोगसमन्वितम् ॥३८॥
सर्वत्र पूज्यते जंतुर्धर्मवान्नात्र संशयः । एवं यमस्तमभ्यर्च्य प्रापयित्वा च सद्गतिम् ॥३९॥
अस्ति चेद्दुष्कृतं किंचित्पश्चादत्रैव भोक्ष्यसे । प्रलयांबुदनिर्घोषो ह्यंजनाद्रिसमप्रभः ॥४०॥
आहूय पापिनश्चैव कालदंडेन तर्जयेत् ।

वह अत्यन्त सुखपूर्वक जाता है ॥२६॥ को जाता है ॥२५॥ जो व्रती यतियों और उत्तम ब्राह्मणों की शुश्रूषा करता है, वह अत्यन्त सुखपूर्वक जाता है ॥२६॥ सब सुख सामग्रियों से पूर्ण विमान पर जो द्विज सब प्राणियों पर दया दृष्टि रखता है वह देवों से पूजित हो सब सुख सामग्रियों से पूर्ण विमान पर आरूढ़ होकर जाता है ॥२७॥ विद्या दान करने वाला व्यक्ति ब्रह्मा से पूज्यमान होकर जाता है, पुराण का पाठ करने वाला व्यक्ति जब चलता है तो मुनीश्वर उसकी स्तुति करते चलते हैं ॥२८॥ इस प्रकार धार्मिक जन सुखपूर्वक धर्म मन्दिर को जाते हैं। वहाँ यमराज चतुर्मुख का रूप धारण कर हाथ में शंख, चक्र, गदा और तलवार लेकर पुण्यकर्मों में रुचि रखने वाले उन महापुरुषों की भली-भाँति प्रेम पूर्वक मित्र के समान सम्मान करते हैं। वे कहते हैं कि हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! तुम लोग नरक के भय से पुण्य कर्मों को किया है इसीलिए वे कर्म दोनों लोकों के लिए सुखदायक सिद्ध हुए ॥२९-३०½॥ जो मानव जन्म पाकर भी शुभ कर्म नहीं करता है वही महान् पापी है, वह आत्म-हनन करता है। जो इस अनित्य मानुष योनि को पाकर नित्य तत्त्व (धर्म), की साधना नहीं करता वह घोर नरक में जाता हैं। उससे बढ़कर चेतनाहीन कौन हो सकता है ? ॥३१-३२½॥ यह शरीर यातना की मूर्ति है, मल आदि से दूषित है ऐसे शरीर पर जो विश्वास करता अर्थात् इसको नित्य और सुख का साधन समझता है उसको आत्मघातक समझना चाहिए। सारी सृष्टि में प्राणी श्रेष्ठ हैं, प्राणियों में बुद्धिजीवी श्रेष्ठ है, बुद्धिजीवियों (चेतन) में मनुष्य श्रेष्ठ हैं, मनुष्यों में ब्राह्मण, ब्राह्मणों में विद्वान् और विद्वानों में कृतबुद्धि (विवेकी), कृत बुद्धियों में कर्त्ता और कर्त्ताओं (कर्मपरायणों) में ब्रह्मवादी और ब्रह्मवादियों में निर्मम व्यक्ति श्रेष्ठ माना जाता है ॥३३-३६॥ इनसे भी नित्य धर्मपरायण व्यक्ति श्रेष्ठ माना जाता है। इसलिए सब प्रकार से धर्म संग्रह करना चाहिए। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि धर्मवान् व्यक्ति सर्वत्र पूजित होता है। इसलिए अपने पुण्य से उपार्जित मेरे पुण्य स्थान पर जाओ, जहाँ सारे ऐश्वर्य भरे पड़े हैं ॥३७-३८॥

यदि कोई दुष्कृत होगा तो उसको भी पुण्य भोग के अनन्तर यहीं भोगना पड़ेगा। इस प्रकार पुण्यात्माओं की पूजाकर उनको सब गति दे देने के पश्चात महाराज यम पापियों को बुलाकर अपने कालदण्ड से तर्जन करते हैं। उस समय यम प्रलय कालीन मेघ के समान गर्जन करने लगते हैं। उनका आकार अंजन (नील) गिरि के

नारद उवाच

विद्युत्प्रभायुधैर्भीमो द्वात्रिंशद्भुजसंयुतः । योजनत्रयविस्तारो रक्ताक्षो दीर्घनासिकः ॥४१॥
दंष्ट्राकरालवदनो वापीतुल्याग्रलोचनः । मृत्युज्वरादिभिर्युक्तश्चित्रगुप्तोऽपि भीषणः ॥४२॥
सर्वे दूताश्च गर्जंति यमतुल्यविभीषणाः । ततो ब्रवीति तान्सर्वान्कंपमानांश्च पापिनः ॥४३॥
शोचन्तः स्वानि कर्माणि चित्रगुप्तो यमाज्ञया । भो भो पापा दुराचारा अहंकारप्रदूषिताः ॥४४॥
किमर्थमर्जितं पापं युष्माभिरविवेकिभिः । कामक्रोधादिदुष्टेन सगर्वेण तु चेतसा ॥४५॥
यद्यत्पापतरं तत्तत्किमर्थं चरितं जनाः । कृतवंतः पुरा यूयं पापान्यत्यंतहर्षिताः ॥४६॥
तथैव यातना भोज्याः किं वृथा ह्यतिदुःखिताः । भृत्यमित्रकलत्रार्थं दुष्कृतं चरितं यथा ॥४७॥
तथा कर्मवशात्प्राप्ता यूयमत्रातिदुःखिताः । युष्माभिः पोषिता ये तु पुत्राद्या अन्यतो गताः ॥४८॥
युष्माकमेव तत्पापं प्राप्तं किं दुःखकारणम् । यथा कृतानि पापानि युष्माभिः सुबहूनि वै ॥४९॥
तथा प्राप्तानि दुःखानि किमर्थमिह दुःखिताः । विचारयध्वं यूयं तु युष्माभिश्चरितं पुरा ॥५०॥
यमः करिष्यते दंडमिति किं न विचारितम् । दरिद्रेऽपि च मूर्खे च पंडिते वा श्रियान्विते ॥५१॥
कांदिशीके च वीरे च समवर्ती यमः स्मृतः । चित्रगुप्तेरितं वाक्यं श्रुत्वा ते पापिनस्तदा ॥५२॥
शोचंतः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठंति भीषिताः । यमाज्ञाकारिणः क्रूराश्चंडा दूता भयानकाः ॥५३॥
चंडालाद्याः प्रसह्य तान्नरकेषु क्षिपंति च । स्वदुष्कर्मफलं ते तु भुक्त्वांते पापशेषतः ॥५४॥
महीतलं च संप्राप्य भवंति स्थावरादयः । भगवन्संशयो जातो मच्चेतसि दयानिधे ॥५५॥

समान हो जाता है। अपनी बत्तीस भुजाओं में विद्युत् के समान चमकने वाले अस्त्रों को धारण करने से महा भयंकर जान पड़ते हैं। उनकी काया तीन योजन विस्तृत सी जान पड़ती है। उनकी लाल-लाल आँखे, बड़ी लंबी नाक, भयानक दाढ़ों वाला भयानक मुख और बावली के समान आँखें बड़ी ही भयंकर जान पड़ती है। मृत्यु-ज्वर और घातक रोगों और भीषण आकृति वाले लिपिक चित्रगुप्त के साथ तो और डरावने हो जाते हैं ॥३९-४२॥ यम के समान भयंकर सब यमदूत घोर गर्जन करने लगते हैं इसके अनन्तर यम का आदेश पाकर चित्रगुप्त अपने पाप कर्मों पर अनुताप करने वाले उन पापियों से, जो भय से काँपते रहते हैं, कहता है कि—

अरे पापियो! दुराचारियो! अहंकार में पड़कर तुम अविवेकियों ने क्यों पाप किया ? काम, क्रोध आदि के वश में होकर गर्वोन्मत्त तुम पापियों ने पापकर्म क्यों किये ? अत्यन्त प्रसन्न हो-हो कर तुम लोगों ने जैसे बहुत से पाप किये हैं वैसी ही यातनायें तुमको भोगनी पड़ेंगी। अब क्यों व्यर्थ दुःखी हो रहे हो ? ॥४३-४६॥ जिस प्रकार सेवक, मित्र और स्त्री के लिए तुम लोगों ने दुष्कर्म किए हैं, उसी प्रकार कर्मवश यहां दुःख भोगने के लिए आये हुए हो देखो, जिन पुत्र आदि को तुम लोगों ने पालन किया वे तो तुम्हें छोड़कर चले गए। अब उन पापों को तुम लोगों को ही भोगना है। इसमें दुःख करने की क्या आवश्यकता है ॥४७-४८½ ॥ तुम लोगों ने जैसे अत्यन्त घोर पापों को किया है वैसे ही दुःख अब प्राप्त हुए हैं, तो अब यहां दुःखी क्यों हो रहे हो ? विचारो तो सही, पहले जिस समय पाप कर्म किये उस समय 'यम इसका दंड अवश्य देगें' इसका विचार क्या नहीं किया ? यम दरिद्र, मूर्ख, पंडित, धनी, भय-भीत कायर और वीर सबके प्रति समान न्याय करते हैं ॥४९-५१½॥

उस समय चित्र गुप्त की उन बातों को सुनकर के पापी अपने पाप-कर्मों पर अनुताप करते हुए भयभीत हो चुप चाप बैठे रहते हैं ॥५२½॥ यम के आज्ञापालक, क्रूर, भयानक चण्ड, चाण्डाल आदि दूत उन पापियों को पकड़कर बलात् नरक कुण्डों में फेंक देते हैं। वहाँ अपने पापों को वे भलीभाँति भोगते और कुछ शेष रह जाने पर इस भूतल पर आकर स्थावर आदि योनियों में जन्म लेते हैं ॥५३-५४½॥

नारद उवाच

त्वं समर्थोऽसि तच्छेत्तुं यतो नो ह्यग्रजो भवान् । धर्माश्च विविधाः प्रोक्ताः पापान्यपि बहूनि च ॥५६॥
चिरभोज्यं फलं तेषामुक्तं यद्विदा त्वया । दिनांते ब्रह्मणः प्रोक्तो नाशो लोकत्रयस्य वै ॥५७॥
परार्द्धद्वितयांते तु ब्रह्माण्डस्यापि संक्षयः । ग्रामदानादिपुण्यानां त्वयैव विधिनंदन ॥५८॥
कल्पकोटिसहस्रेषु महान्भोग उदाहृतः । सर्वेषामेव लोकानां विनाशः प्राकृते लये ॥५९॥
एकः शिष्यत एवेति त्वया प्रोक्तं जनार्दनः । एष मे संशयो जातस्तं भवाञ्छेत्तुमर्हति ॥६०॥
पुण्यपापोपभोगानां समाप्तिर्नास्ति संप्लवे ।

सनक उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ गुह्याद्गुह्यतमं त्विदम् ॥६१॥
पृष्टं तत्तेऽभिधास्यामि श्रृणुष्व सुसमाहितः । नारायणोऽक्षरोऽनंतः परं ज्योतिः सनातनः ॥६२॥
विशुद्धो निर्गुणो नित्यो मायामोहविवर्जितः । निर्गुणोऽपि परानन्दो गुणवानिव भाति यः ॥६३॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैस्तु भेदवानिव लक्ष्यते । गुणोपाधिकभेदेषु त्रिष्वेतेषु सनातन ॥६४॥
संयोज्य मायामखिलं जगत्कार्यं करोति च । ब्रह्मरूपेण सृजति विष्णुरूपेण पाति च ॥६५॥
अंते च रुद्ररूपेण सर्वमत्तीति निश्चितम् । प्रलयांते समुत्थाय ब्रह्मरूपी जनार्दनः ॥६६॥
चराचरात्मकं विश्वं यथापूर्वमकल्पयत् । स्थावराद्याश्च विप्रेन्द्र यत्र यत्र व्यवस्थिता ॥६७॥
ब्रह्मा तद्वज्जगत्सर्वं यथापूर्वं करोति वै । तस्मात्कृतानां पापानां पुण्यानां चैव सत्तम ॥६८॥
अवश्यमेव भोक्तव्यं कर्मणां ह्यक्षयं फलम् । नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥६९॥

नारद ने कहा—भगवन् ! दयानिधे ! मेरे मन में सन्देह हो रहा है । आप ही उसको दूर करने में समर्थ हैं, क्योंकि आप हमारे अग्रज हैं । बहुज्ञ आपने बहुविध धर्म, बहुत से पाप और उनके चिर काल तक भोगने के योग्य फलों को कहा और यह भी बताया कि ब्रह्मा के दिन के अन्त में तीनों लोकों का नाश हो जाता है ॥५६-५७॥ दो परार्द्ध के बीत जाने पर ब्रह्माण्ड का भी नाश हो जाता है । विधिनन्दन ! आपने अभी ग्राम दान आदि पुण्य कर्मों का करोड़ों कल्पों तक महान् भोग कहा, फिर यह ब्रह्म ही शेष रह जाता है । यही मुझे सन्देह हो गया है, आप ही उसे दूर कर सकते हैं । क्या उस प्रलय में भी पाप और पुण्यों का नाश नहीं होता ? ॥५८-६०½॥

सनक बोले—महाप्राज्ञ ! धन्य हो, धन्य हो । यह तो अत्यन्त गूढ़ प्रश्न पूछा, इसलिए तुमसे कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो । नारायण अक्षर, अनन्त, परम ज्योति, सनातन, विशुद्ध, निर्गुण, नित्य माया-मोह से रहित और परानन्द हैं जो निर्गुण होते हुए भी सगुण से जान पड़ते हैं ॥६१-६३॥ वही सनातन ब्रह्म ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि रूपों में भिन्न-भिन्न जान पड़ता है । यद्यपि इन तीनों में केवल गुण और उपाधि का ही भेद है ॥६४॥ वह माया से युक्त होकर अखिल जगत् का कार्य करता है वह ब्रह्मरूप से सृष्टि करता, विष्णुरूप से पालन करता और अन्त में रुद्र रूप से सम्पूर्ण सृष्टि को उदरस्थ कर लेता है, यह निश्चित है ॥६५॥ प्रलय काल बीत जाने पर वही ब्रह्मरूपी जनार्दन पूर्व की भाँति चराचरात्मक विश्व की रचना करता है । विप्रेन्द्र ! पूर्व सृष्टि में स्थावर आदि पदार्थ जहाँ जिस रूप में व्यवस्थित थे, तदनुरूप ही ब्रह्मा ने उन सब के साथ सारे जगत् को बनाया ॥६६-६७॥ सज्जन ! इस कारण कृत पापों और पुण्यों का फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है । कर्मों के फल अक्षय हैं । बिना उन कर्मों का भोग किए करोड़ों कल्पों में भी वे नष्ट नहीं होते । अपने किये शुभ-अशुभ कर्मों

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् । यो देवः सर्वलोकानामंतरात्मा जगन्मयः ।
सर्वकर्मफलं भुङ्क्ते परिपूर्णः सनातनः ॥७०॥
योऽसौ विश्वंभरो देवो गुणभेदव्यवस्थितः । सृजत्यवति चात्त्येतत्सर्वं सर्वभुगव्ययः ॥७१॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे यमदूतकृत्यनिरूपणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

सनक उवाच

एवं कर्मपाशनियंत्रितजंतवः स्वर्गादिपुण्यस्थानेषु पुण्यभोगमनुभूय यातनासु चातीव दुःखतरं पापफलमनुभूय प्रक्षीणकर्मावशेषेणामुं लोकमागत्य सर्वभयविह्वलेषु मृत्युबाधासंयुतेषु स्थावरादिषु जायंते ।
वृक्षगुल्मलतावल्लीगिरयश्च तृणानि च । स्थावराइति विख्याता महामोहसमावृताः ॥१॥
स्थावरत्वे पृथिव्यामुप्तबीजानि जलसेकानुपदं सुसंस्कारसामग्रीवशादंतरूष्मप्रपाचितान्युच्छूनत्वमापद्य
ततो मूलभावं तन्मूलादंकुरोत्पत्तिस्तस्मादपि पर्णकांडनालादिकं
कांडेषु च प्रसवमापद्यते तेषु च पुष्पसंभवः ॥२॥
तानि पुष्पाणि कानिचिदफलानि कानिचित्फलहेतुभूतानि तेषु पुष्पेषु वृद्धभावेषु सत्सु तत्पुष्पमूलतस्तुषोत्पत्तिर्जायते तेषु तुषु भोक्तॄणां प्राणिनां संस्कारसामग्रीवशाद्धिमरश्मिकिरणा-

का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है । जो जगन्मय, सर्वलोकान्तरात्मा, परिपूर्ण सनातन देव है, वे सब कर्मों का फल भोग करते हैं । जो ये विश्वम्भर देव हैं, जो गुण-भेद से स्थित हैं, वे सर्वभुक् अव्यय इस सारी सृष्टि को बनाते और पालते हैं ॥६८-७१॥

श्रीनारदीयमहापुराण में यमदूतकृत्यनिरूपण नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३१॥

अध्याय ३२

भवाटवी का वर्णन

सनक बोले—इस प्रकार कर्म पाश में बँधा हुआ जीव स्वर्गादि पुण्य स्थानों में पुण्य भोग का अनुभव कर, यातना स्थानों में अति कष्टप्रद पाप-फलों का अनुभव करके कुछ कर्मों के शेष रह जाने पर इस लोक में आते हैं और सब प्रकार के भय से युक्त, मृत्यु बाधा से विजड़ित स्थावरादि योनियों में उत्पन्न होते हैं । वृक्ष, झुरमुट, लता, वल्लरी, पहाड़ और तृण ये स्थावर नाम से प्रसिद्ध हैं जो महामोह से आवृत हैं ॥१॥ स्थावर की दशा में पृथ्वी में बोये गए बीज सिञ्चन के बाद अपने संस्कारवश, अन्तः उष्णता के कारण कुछ आर्द्र होकर बढ़ जाते हैं । फिर उनमें से जड़ें निकलतीं, जड़ों से अंकुर, अंकुर से पत्तियाँ, डंठल और नाल आदि निकलते हैं । कांडों से प्रसव (कलियाँ) और इससे फूल निकलते हैं ॥२॥ उन फूलों में से कुछ तो फल देने में असमर्थ, कुछ फल देने के योग्य होते हैं । वे फूल जब पूर्ण रूप से विकसित हो जाते हैं तब पुष्प मूल से तुष (रस) निकलता है उन तुषों में भोक्ता प्राणी के संस्कारवश चन्द्रमा की किरणों के संयोग से उसका ओषधि-रस तुष के भीतर मिल

सन्नतया तदोषधिरसस्तुषांतः प्रविश्य क्षीरभावं समेत्य स्वकाले तंडुलाकारतामुपगम्य प्राणिनां
भोगसंस्कारवशात्संवत्सरे फलिनः स्युः ॥३॥
स्थावरत्वेऽपि बहुकालं वानरादिभिर्भुज्यमाना हि च्छेदनदवाग्निदहनशीतातपादिदुःखमनुभूय
म्रियंते । ततश्च क्रिमयो भूत्वा सदादुःखबहुलाः क्षणार्द्धं जीवंत क्षणार्द्धं म्रियमाणा बलवत्प्रा-
णिपीडायां निवारयितुमक्षमाः शीतवातादिक्लेशभूयिष्ठा नित्यं क्षुधाक्षुधिता मलमूत्रादिषु
संचरंतो दुःखमनुभवंति ॥४॥
तत एव पशुयोनिमागत्य बलवद्बाधोद्वेजिता वृथोद्वेगभूयिष्ठाः क्षुत्क्षांता नित्यं वनचारिणो
मातृष्वपि विषयातुरा वातादिक्लेशबहुलाः कस्मिंश्चिज्जन्मनि तृणाशनाः कस्मिंश्चिज्जन्मनि
मांसामेध्याद्यदनाः कस्मिंश्चिज्जन्मनि कंदमूलफलाशना दुर्बलप्राणिपीडानिरता दुःखमनुभवंति ॥५॥
अंडजत्वेऽपि वाताशनामांसा मेध्याद्यशनाश्च परपीडापरायणा नित्यं दुःखबहुला ग्राम्यपशुयोनि-
मागता अपि स्वजातिवियोगभारोद्वहनपाशादिबंधनताडनहलादिधारणादिसर्वदुःखान्यनुभवंति ॥६॥
एवं बहुयोनिषु संभ्रांताः क्रमेण मानुषं जन्म प्राप्नुवंति केचिच्च
पुण्यविशेषाद्युत्क्रमेणापि मनुष्यजन्माश्नुवते ॥७॥
मनुष्यजन्मनापि च चर्मकारचंडालव्याधनापितरजककुंभकारलोहकारतंतुवायसौचिकजटिल-
सिद्धधावकलेखकभृतकशासनहारिनीचभृत्यदरिद्रहीनांगाधिकांगत्वादिदुःखबहुलज्वरतापशीत-
श्लेष्मगुल्मपादाक्षिशिरोगर्भपार्श्ववेदनादिदुःखमनुभवंति ॥८॥

कर क्षीर के रूप में परिणत हो जाता है। समय पाकर वह क्षीर तण्डुल के रूप में हो जाता है। इस प्रकार प्राणियों के भोग संस्कारवश वर्ष भर में फल देते हैं ॥३॥ स्थावर बन जाने पर भी बहुत समय तक वानर आदि जीव उसको खाते हैं, काटने, जलाने और शीतातप के सहने के कारण उसको दुःख सहन करना पड़ता, इस प्रकार दुःखों का अनुभव कर मर जाते हैं। तदनन्तर कृमि होकर सदा अधिक दुःखों को ही सहते, क्षणभर जीवित रहते तो क्षण भर में ही मर जाते हैं। बली प्राणियों की पीड़ा से अपने को बचाने में सर्वथा असमर्थ होकर शीत, आतप, वायु आदि से घोर कष्ट सहते हैं। नित्यप्रति भूख से व्याकुल होकर मल-मूत्र आदि में घूमते और दुःख का अनुभव करते हैं ॥४॥ पशु-योनि में जन्म लेकर प्रबल बाधाओं से उद्विग्न होकर व्यर्थोद्वेग से कष्ट पाते रहते हैं। भूख-प्यास से व्याकुल हो नित्य वन में घूमते रहते, माता के प्रति भी विषय-वासना की भावना रखते, वात आदि अनेकों क्लेश को सहते, किसी जन्म में तृण खा कर रहते तो किसी जन्म में मांस आदि अमेध्य पदार्थ खाते तो किसी जन्म में कन्द, मूल, फल खाकर ही जीते और दुर्बल प्राणियों को पीड़ा दे देकर स्वयं भी दुःख का अनुभव करते हैं ॥५॥ अंडज योनि में आने पर भी कभी वायु के सहारे जीते तो कभी मांस आदि अमेध्य भोज्य पदार्थ खाकर रहते और सदा अनेकों कष्ट सहते रहते हैं। ग्राम्य पशु योनि में जन्म लेने पर अपनी जाति से वियोग, भार-वहन, पाश-बन्धन और हल में जोतने आदि के दुःख से पीड़ित रहते हैं ॥६॥ इस प्रकार अनेक योनियों में भ्रमण करने के बाद जीव मानव जन्म प्राप्त करता है। कुछ ऐसे भी भाग्यवान् होते हैं जो अपने पुण्य-विशेष के प्रभाव से बहुत योनि में भ्रमण करने के बिना भी मानव जन्म का भोग प्राप्त करते हैं ॥७॥ मनुष्य जन्म में भी चमार, चाण्डाल, व्याधा, नाई, धोबी, कुम्हार, लोहार, सोनार, जुलाहा, दर्जी, जटिल, सिद्ध, सन्देश-वाहक, लिपिक, सेवक टहलुआ, नीच-सेवक, हीनांग, अधिकांग, आदि होकर अत्यन्त क्लेश सहता और ज्वर, ताप, शीत, श्लेष्म, गुल्म, पादरोग, नेत्र और शिरोरोग, उदर और पार्श्वशूल आदि रोगों से व्यथित रहते हैं ॥८॥

मनुष्यत्वेऽपि यदा स्त्रीपुरुषयोर्व्यवायस्तत्समये रेतो यदा जरायुं प्रविशति तदैव कर्मवशाज्जंतुः
शुक्रेण सह जरायुं प्रविश्य शुक्रशोणितकलले वर्तते ॥९॥
तद्वीर्यं जीवप्रवेशात्पञ्चाहात्कललं भवति अर्द्धमासे पललमासेकेन मासे प्रादेशमात्रत्वमापद्यते ॥१०॥
ततः प्रभृति वायुवशाच्चैतन्याभावेऽपि मातुरुदरे दुःसहतापक्लेशतत्त्वैकत्र स्थातुमशक्यत्वाद्भ्रमति ॥११॥
मासे द्वितीये पूर्णे पुरुषाकारमात्रतामुपगम्य मासत्रितये पूर्णे करचरणाद्यवयवत्वमुपगम्य
चतुर्षु मासेषु गतेषु सर्वावयवानां संधिभेदपरिज्ञाने पंचस्वतीतेषु नखानामभिव्यंजकता
षट्स्वतीतेषु नखसंधिपरिस्फुटतामुपगम्य नाभिसूत्रेण पुष्यमाणममेध्यमूत्रसिक्तांगं जरायुणा बंधि-
तरक्तास्थिक्रिमिवसामज्जास्नायुकेशादिदूषिते कुत्सिते शरीरे निवासिनं स्वयमप्येवं परिदूषितदेहं
मातुश्च कट्वम्ललवणात्युष्णभुक्तदह्यमानमात्मानं दृष्ट्वा देही पूर्वजन्मस्मरणानुभावात्पूर्वानुभूत-
नरकदुःखानि च स्मृत्वा तद्दुःखेन च परिदह्यमानो मातुर्देहातिमूत्रादिरूक्षेण दह्यमान एवं
मनसि प्रलपति ॥१२॥
अहोऽत्यंतपापोऽहं पूर्वजन्मनि भृत्यापत्यमित्रयोषिद्गृहक्षेत्रधनधान्यादिष्वत्यंतरागेण कलत्रपोषणार्थं
परधनक्षेत्रादिकं पश्यतो हरणाद्युपायैरपहृत्य कामांधतया परस्त्रीहरणादिकमनुभूय महा-
पापान्याचरंस्तैः पापैरहमेक एवंविधनरकाननुभूय पुनः स्थावरादिषु महादुःखमनुभूय संप्रति
जरायुणा परिवेष्टितोऽन्तर्दुःखेन बहिस्तापेन च दह्यामि ॥१३॥
मया पोषिता दाराश्च स्वकर्मवशादन्यतो गताः ॥१४॥
अहो दुःखं हि देहिनाम् ॥१५॥

मनुष्य होने पर भी जब स्त्री पुरुष का संयोग होता है और उस समय जब वीर्य जरायु में प्रवेश करता है उसी समय कर्मवश जन्तु शुक्र के साथ जरायु में जाकर शुक्र, शोणित और कलल के रूप में परिवर्तित हो जाता है। उस वीर्य में जीव के प्रवेश से पांच दिन बाद कलल होता, आधे महीने में पलल और एक महीने में प्रादेश मात्र का पिण्ड हो जाता है। तत्पश्चात् चेतनता के अभाव में भी वायु के कारण माता के उदर में दुःसह ताप के सहने में असमर्थ हो इधर उधर चलता रहता है ॥९-११॥ दो मास बीत जाने पर पूर्णरूप से पुरुषाकार हो जाता है। तीसरे महीने में पूर्ण रूप से हाथ, पैर आदि अंग स्पष्ट होने लगते हैं। चार मास बीत जाने पर सब अवयवों का सन्धि भेद स्फुट हो जाता है। पांच मास बाद नख निकल आते, छह मास बीतने पर नख सन्धि परिस्फुट हो जाती और नाभि नाल से उसका पोषण होता है। अशुद्ध मूत्र आदि पदार्थों से उसका अंग ढका रहता है। जरायु से बँधा, रक्त, अस्थि, कृमि, वसा, मज्जा, स्नायु, केश आदि से दूषित उस कुत्सित शरीर में अपने को अवस्थित तथा माता के कटु, अम्ल, लवण और अत्युष्ण भोजन से जलाये जाते हुए स्वयं को देखकर वह देही पूर्व जन्म की स्मृति तथा अनुभवों और पूर्वानुभूत नरक-दुखों का स्मरण कर अन्तर्वेदना से व्यथित हो माता के मूत्र आदि रूक्ष पदार्थों से जलकर विलाप करने लगता है ॥१२॥ आह ! महापापी मैंने पूर्वजन्म में भृत्य, पुत्र, मित्र, स्त्री, घर, धन, धान्य आदि के मोह में पड़कर स्त्री-पालन के लिए दूसरे के धन क्षेत्र आदि कूटोपायों से अपहरण किया। कामान्ध हो पर-स्त्री हरण आदि महापापों को किया। दूसरों के लिए पापाचरण किया, परन्तु अकेला ही अनेकों घोर नरकों का अनुभव कर पुनः स्थावर आदि योनियों में अनेक प्रकार के कष्ट सहा। इस समय जरायु में बँधकर अन्तस्ताप और बाह्य ताप दोनों से जल रहा हूँ ॥१३॥ मेरे द्वारा पाली गई स्त्री भी अपने कर्मवश, अन्यत्र चली गई। अहो, देहधारियों के लिए केवल कष्ट ही कष्ट है ॥१४-१५॥ देह पाप

वेहस्तु पापात्संजातस्तस्मात्पापं न कारयेत् । भृत्यमित्रकलत्रार्थमन्यद्द्रव्यं हृतं मया ॥१६॥
तेन पापेन दह्यामि जरायुपरिवेष्टितः । दृष्ट्वान्यस्य श्रियं पूर्वं संतप्तोऽहमसूयया ॥१७॥
गर्भाग्निनानुदह्येयमिदानीमपि पापकृत् । कायेन मनसा वाचा परपीडामकारिषम्
तेन पापेन दह्यामि त्वहमेकोऽतिदुःखितः ॥१८॥
एवं बहुविधं गर्भस्थो जंतुर्विलप्य स्वयमेव वा ॥१९॥
आत्मानमाश्वास्य उत्पत्तेरनंतरं सत्संगेन विष्णोश्चरित श्रवणेन च विशुद्धमना कृत्वा सत्कर्माणि
निर्वर्त्य अखिलजगदंतरात्मनः सत्यज्ञानानंदमयस्य शक्तिमात्रानुष्ठितविश्वप्रपंचस्य लक्ष्मी-
पतेर्नारायणस्य सकलसुरासुरयक्षगंधर्वराक्षसपन्नगमुनिकिन्नरसमूहार्चितचरणकमलयुगं भक्तितः
समभ्यर्च्य दुःसह संसारच्छेदस्य कारणभूतं वेदरहस्योपनिषद्भिः परिस्फुटं सकललोकपरायणं
हृदि निधाय दुःखतरमिमं संस्कारागारमतिक्रमिष्यामीति मनसि भावयति ॥२०॥
यतस्तन्मातुः प्रसूतिसमये सति गर्भस्थो देही नारदमुने वायुनापरिपीडितो मातुश्चापि दुःखं
कुर्वन्कर्मपाशेन बलाद्योनिमार्गान्निष्क्रामन्सकलयातनाभोगमेककालभवमनुभवति ॥२१॥
तेनातिक्लेशेन योनियंत्रपीडितो गर्भान्निष्क्रांतो निःसंज्ञतां याति ॥२२॥
तं तु बाह्यवायुः समुज्जीवयति । बाह्यवायुस्पर्शसमनंतरमेव नष्टस्मृतिपूर्वानु-
भूताखिलदुःखानि वर्त्तमानान्यपि ज्ञानाभावादविज्ञायात्यंतदुःखमनुभवति ॥२३॥
एवं बालत्वमापन्नो जंतुस्तत्रापि स्वमलमूत्रलिप्तदेह आध्यात्मिकादिपीड्यमानोऽपि
वक्तुमशक्तः क्षुत्तृषपीडितो रुदिते सति स्तनादिकं देयमिति मन्वानाः प्रयतन्ते ॥२४॥

के कारण ही प्राप्त होती है, इसलिए पाप नहीं करना चाहिए। सेवक, मित्र और स्त्री के लिए दूसरों का धन लूटा। उसी पाप से आज जरायु में बँधकर भस्म हो रहा हूँ। दूसरे के धन को देखकर ईर्ष्यावश जलता रहा उसी पाप के कारण पापी मैं इस समय भी गर्भाग्नि से जल रहा हूँ। शरीर, मन और वचन से दूसरे को पीड़ित करता रहा । उस पाप से आज अकेला दुःखी होकर जल रहा हूँ ॥१६-१८॥

इस प्रकार गर्भस्थ जीव विलाप कर स्वयं अपने द्वारा अपने को आश्वासन देने लगता है कि मैं उत्पन्न होने के बाद सत्संग के द्वारा शुद्धचित्त होकर सत्कर्म करूँगा। अखिल जगदन्तरात्मा, सत्यज्ञानानन्दमय स्वशक्ति के प्रभाव से स्वर्ग लोक को प्रतिष्ठित करने वाले लक्ष्मीपति नारायण के उन युगल चरणारविन्दों की जिनकी सब सुर, असुर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, नाग, मुनि और किन्नरवर्ग पूजा करते हैं, भक्तिपूर्वक पूजा करूँगा। और वेद, रहस्य साधना तथा उपनिषदों से परिस्फुट सकल लोकों के एक मात्र परम आधार भगवान् का हृदय में ध्यान कर इस दुःखमय संस्कार के बन्धन से अपने को मुक्त करूँगा। इस प्रकार वह अपने मन में भावना करता है ॥१९-२०॥ नारदमुनि ! यतः जन्म समय वह गर्भस्थ देही स्वयं वायु से पीड़ित होता माता को भी पीड़ा पहुँचाता, कर्मपाश से बँधा वह बलात् योनिमार्ग से निकलते समय सब प्रकार की यातनाओं के भोग का अनुभव उसी समय करता है ॥२१॥ अतः योनि-यन्त्र से अत्यन्त पीड़ित होने के कारण गर्भ से निकलते ही अचेत हो जाता है। इस दशा में उसको बाहर की वायु द्वारा चेतना प्राप्त होती है। बाह्य वायु के स्पर्श करते ही पूर्व जन्म की स्मृति नष्ट हो जाती है। उस समय पूर्व जन्म के अनुभूत दुःख संस्कार रूप में वर्त्तमान रहते हैं। तो भी ज्ञानशून्य होने से उसको भूलकर वह जीव स्वयं दुःख का अनुभव करता है ॥२२-२३॥ इस प्रकार जीव बालक बन कर अपने मलमूत्र में लिपटा रहता है। उसको मानसिक पीड़ा होती रहती है, परन्तु कुछ कह नहीं सकता है। क्षुत्पिपासा से पीड़ित होकर जब रोने लगता है तब माता 'स्तन पान कराना चाहिए', ऐसा सोचकर स्तनपान कराती है ॥२४॥

एवमनेकं देहभोगमन्याधीनतयानुभूयमानो दंशादिष्वपि निवारयितुमशक्तः ॥२५॥
बाल्यभावमासाद्य मातापित्रोरुपाध्यायस्यां ताडनं सदा पर्यटनशीलत्वं पांशुभस्मपंकादिषु
क्रीडनं सदा कलहशीलत्वमशुचित्वं बहुव्यापाराभासकार्यनियतत्वं तदसंभव आध्यात्मिकदुः-
खमेवंविधमनुभवति ॥२६॥
ततस्तु तरुणभावेन धनार्जनमर्जितस्य रक्षणं तस्य नाशव्ययादिषु चात्यंतदुःखिता मायया मोहिताः
कामक्रोधादिदुष्टमनसः सदासूयापरायणाः परस्वपरस्त्रीहरणोपायपरायणाः पुत्रमित्रकलत्रादि-
भरणोपायचिंतापरायणाः वृथाहंकारदूषिताः पुत्रादिषु व्याध्यादिपीडितेषु सत्सु सर्वमपि
परित्यज्य रोगादिभिः क्लेशितानां समीपे स्वयमाध्यात्मिकदुःखेन परिप्लुता वक्ष्यमाणप्रकारेण
चिंतामश्नुवते ॥२७॥
गृहक्षेत्रादिकं कर्म किंचिन्नापि विचारितम् । समृद्धस्य कुटुम्बस्य कथं भवति वर्त्तनम् ॥२८॥
मम मूलधनं नास्ति वृष्टिश्चापि न वर्धति । अश्वः पलायितः कुत्र गावः किं नागता मम ॥२९॥
बालापत्या च मे भार्या व्याधितोऽहं च निर्धनः । अविचारात्कृषिर्नष्टा पुत्रा नित्यं रुदंति च ॥३०॥
भग्नं छिन्नं तु मे सद्म बांधवा अपि दूरगाः । न लभ्यते वर्त्तनं च राजबाधातिदुःसहा ॥३१॥
रिपवो मां प्रधावंते कथं जेष्याम्यहं रिपून् । व्यवसायाक्षमश्चाहं प्राप्ताः प्राघूर्णका अमी ॥३२॥

इस भाँति वह बालक परवश होने के कारण अनेक शारीरिक भोगों को भोगता है, मच्छर आदि उसको काटते हैं, परन्तु वह हटा नहीं पाता है। धीरे-धीरे जब वह किशोरावस्था को प्राप्त होता है तब माता, पिता और उपाध्याय की डाँट-फटकार और ताड़ना प्रारम्भ होती है, वह सदा इधर-उधर घूमता रहता, धूल राख और कीचड़ से खेलने लगता, प्रति दिन लड़ता-झगड़ता और अनेकों अशिष्ट व्यवहारों तथा अशुचि कार्यों में ही लगा रहता है। जब इन कार्यों में किसी प्रकार की बाधा पहुँचती तब उसको मानसिक कष्ट का अनुभव होने लगता है।।२५-२६॥

किशोरावस्था बीत जाने के बाद जब वह तरुण हो जाता है तब वह जीव धन कमाने लगता। अर्जित धन की रक्षा, उसके नाश और व्यय की चिन्ता से अधिक दुःखी रहता है। मायामोहित, उस जीव का मन काम-क्रोध आदि से दूषित हो जाता है। सर्वदा असूया-परायण होकर परद्रव्य परस्त्री के हरण की युक्ति ही सोचा करता है। पुत्र, मित्र, कलत्र आदि के भरण-पोषण की चिन्ता में तल्लीन होकर व्यर्थ के अहंकार से उसका मन दूषित हो जाता है। पुत्र आदि के रोग-ग्रस्त होने पर वह सारी क्रियाओं को छोड़कर रोगादि से पीड़ित स्वजनों के समीप रहता और स्वयं मानसिक दुःख से दुःखी होकर अनेकों प्रकार की चिन्ताओं से चिन्तित हो जाता है ॥२७॥ सोचता है कि घर, खेती बारी आदि की ओर मैंने कुछ भी ध्यान नहीं दिया, इतने बड़े कुटुंब का भरण-पोषण कैसे होगा? मेरे पास मूलधन भी नहीं है। वर्षा भी नहीं हो रही है। घोड़ा कहाँ भाग गया? मेरी गायें अबतक नहीं आईं। मेरी भार्या की गोद में छोटा-सा बच्चा है, व्याधि पीड़ित मैं निर्धन हो गया। मेरे अविचार के कारण कृषि भी नष्ट हो गई। पुत्र सर्वदा रोते रहते हैं ॥२८-३०॥ घर भी गिर गया, टूट गया, बन्धु भी दूर हैं। कोई जीविका का साधन भी प्राप्त नहीं है। ऊपर से अति दुःसह राजा का शुल्क संबन्धी भय है ॥३१॥ शत्रु चारों ओर से चढ़े आ रहे हैं। कैसे शत्रुओं को वश में कर सकूँगा? कोई व्यवसाय करने की भी क्षमता नहीं है। इतने अतिथि भी आ गए ॥३२॥ इस प्रकार अत्यन्त चिन्ताकुल हो अपने-अपने दुःखों

एवमत्यंतचिन्ताकुलः स्वदुःखानि निवारयितुमक्षमो
धिग्विधिं भाग्यहीनं मां किमर्थं विदधे इति दैवमाक्षिपति ॥३३॥

तथा वृद्धत्वमापन्नो ह्रीयमान सारो जरापलितादिव्याप्तदेहो व्याधिबाध्यत्वादिकमापन्नः । प्रकंपमानावयवश्वासकासादिपीडितो लोलाविललोचनः श्लेष्मव्याप्तकंठः पुत्रदारादिभिर्भर्त्स्यमानः कदा मरणमुपयामीति चिंताकुलो मयि मृते सति मदर्जितं गृहक्षेत्रादिकं वस्तु पुत्रादयः कथं रक्षंति कस्य वा भविष्यति ॥३४॥

मद्धने परैरपहृते पुत्रादीनां कथं वर्त्तनं भविष्यतीति ममतादुःखपरिप्लुतो गाढं निःश्वस्य स्वेन वयसा कृतानि कर्माणि पुनः पुनः स्मरन् क्षणे विस्मरति च संततस्त्वासन्नमरणो ॥३५॥

व्याधिपीडितोऽन्तस्तापार्तः क्षणं शय्यायां क्षणं मंचे च ततस्ततः पर्यटन् क्षुत्तृट्परिपीडितः किञ्चिन्मात्रमुदकं देहीत्यतिकार्पण्येन याचमानस्तत्रापि ज्वराविष्टानामुदकं न श्रेयस्करमिति ब्रुवतः मनसातिद्वेषं कुर्वन्मंदचैतन्यो भवति ॥३६॥

ततश्च हस्तपादाकर्षणे न तु क्षमो रुदद्भिर्बंधजनैर्वेष्टितो वक्तुमक्षमः स्वार्जितधनादिकं कस्य भविष्यतीति चिंतापरो बाष्पाविलविलोचनः कंठे घुरघुरायमाणे सति शरीरान्निष्क्रांतप्राणो यमदूतैर्भर्त्स्यमानः पाशयंत्रितो नरकादीन्पूर्ववदश्नुते ॥३७॥

आमलप्रक्षयाद्यद्वदग्नौ ध्माम्यंति धातवः । तथैव जीविनः सर्व आकर्मप्रक्षयाद् भृशम् ॥३८॥

को दूर करने में अपने को असमर्थ पाकर 'विधाता को धिक्कार है, क्यों मुझ भाग्यहीन का अन्त नहीं कर देता' आदि कह कर भाग्य को ही दोष देता है ।।३३।। फिर जब वह बूढ़ा हो जाता है, केश झड़ जाते, बुढ़ापा और रोग से शरीर व्याप्त हो जाता तब व्याधियों और कष्टों से घिर जाता है। उसके शरीर में कँपकँपी होने लगती है । श्वास-कास आदि रोगों से पीड़ित हो जाता । गले में कफ की अधिकता हो जाती और उसकी आँखें मन्द तथा चंचल हो जाती हैं । पुत्र, स्त्री आदि जब उसको झिड़कने लगते तब यही सोचता है कि कब मेरी मृत्यु होगी । परन्तु फिर यह सोचने लगता कि मेरी मृत्यु के बाद मेरे घर, खेत आदि की रक्षा मेरे पुत्र कैसे करेंगे ? अथवा कौन इसको प्राप्त करेगा ? ।।३४।। दूसरे जब मेरी सम्पत्ति को चुरा लेंगे तब पुत्रादि का निर्वाह कैसे होगा ? इस प्रकार मोह और दुःख से व्याकुल होकर आहें भरने लगता और अपने जीवन में किये गए कर्मों का बार-बार स्मरण कर क्षण भर में ही अपने को भूल जाता है । जब मृत्यु निकट आती तब व्याधि-पीड़ित और अन्तस्ताप तथा वेदना से आर्त होकर क्षणभर शय्या पर तो क्षण भर मंच पर लुढ़कता है । इधर-उधर घूमता हुआ जब भूख-प्यास से पीड़ित हो जाता तब 'अरे ! थोड़ा जल दो' यह कह कर बड़ी दीनता से जल माँगने लगता है । उस समय जब उसके कुटुम्बी 'ज्वराक्रान्त व्यक्ति के लिए जल लाभदायक नहीं होता' यह कहते हैं तब तो वह मन ही मन उन पर ईर्ष्या करने लगता और अचेत हो जाता है ।।३५-३६।। तदनन्तर उसमें हाथ पैर हिलाने की शक्ति नहीं रह जाती, रोते हुए बन्धुओं से घिरा वह स्वयं कुछ कहने में असमर्थ हो जाता है । उसकी स्वार्जित सम्पत्ति किसके अधिकार में जायगी, इसकी चिन्ता से उसकी आँखें आँसू से भर जाती हैं । धीरे-धीरे कण्ठ से घर्र-घर्र की ध्वनि होने लगती और उसके प्राण शरीर से निकल जाते हैं । मृत्यु के अनन्तर यमदूतों की झिड़कियाँ सहता हुआ, यमपाश में बँधकर पूर्व की भाँति नरकों का भोग करता है ।।३७।।

जिस प्रकार धातुएं तब तक जलती रहती हैं जब तक उनका दोष क्षय नहीं हो जाता उसी प्रकार सभी जीव कर्मक्षय होने तक अत्यन्त दारुण भोग भोगते हैं । द्विजश्रेष्ठ ! इसलिए संसार रूपी दावानल से

तस्मात्संसारदावाग्नितापार्तो द्विजसत्तम । अभ्यसेत्परमं ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥३९॥
ज्ञानशून्या नरा ये तु पशवः परिकीर्तिताः । तस्मात्संसारमोक्षाय परं ज्ञानं समभ्यसेत् ॥४०॥
मानुष्यं चैव संप्राप्य सर्वकर्मप्रसाधकम् । हरिं न सेवते यस्तु कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥४१॥
अहो चित्रमहो चित्रमहो चित्रं मुनीश्वराः । आस्थिते कामदे विष्णौ नरा यान्ति हि यातनाम् ॥४२॥
नारायणे जगन्नाथे सर्वकामफलप्रदे । स्थितेऽपि ज्ञानरहिताः पच्यन्ते नरकेष्वहो ॥४३॥
स्रवन्मूत्रपुरीषे तु शरीरेऽस्मिन्नशाश्वते । शाश्वतं भावयंत्यज्ञा महामोहसमावृताः ॥४४॥
कुत्सितं मांसरक्ताद्यैर्देहं संप्राप्य यो नरः । संसारच्छेदकं विष्णुं न भजेत्सोऽतिपातकी ॥४५॥
अहो कष्टमहो कष्टमहो कष्टं हि मूर्खता । हरिध्यानपरो विप्र चाण्डालोऽपि महासुखी ॥४६॥
स्वदेहान्निस्सृतं दृष्ट्वा मलमूत्रादिकिल्बिषम् । उद्वेगं मानवा मूर्खाः किं न यान्ति हि पापिनः ॥४७॥
दुर्लभं मानुषं जन्म प्रार्थ्यते त्रिदशैरपि । तल्लब्ध्वा परलोकार्थं यत्नं कुर्याद्विचक्षणः ॥४८॥
अध्यात्मज्ञानसम्पन्ना हरिपूजापरायणाः । लभन्ते परमं स्थानं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥४९॥
यतो जातमिदं विश्वं यतश्चैतन्यमश्नुते । यस्मिंश्च विलयं याति स संसारस्य मोचकः ॥५०॥
निर्गुणोऽपि परोऽनंतो गुणवानिव भाति यः । तं समभ्यर्च्य देवेशं संसारात्परिमुच्यते ॥५१॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे भवाटवीनिरूपणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

सन्तप्त प्राणी परम ज्ञान का अभ्यास करे, ज्ञान से ही वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है ॥३८-३९॥ जो ज्ञान-शून्य मनुष्य हैं वे पशु कहे गए हैं, इसलिए संसार से मुक्ति पाने के लिए ज्ञान का अभ्यास करना चाहिए ॥४०॥ जो सब कर्मों का आधार भूत मानव-जीवन पाकर भी हरि की सेवा नहीं करता, उससे बढ़कर चेतनाहीन कौन होगा ? मुनीश्वरवृन्द ! यह आश्चर्य है कि मनोरथदाता विष्णु के रहते हुए भी अज्ञानी नर यातना पाते हैं ॥४१॥ अहो ! सब मनोरथों के देने वाले जगत्पति नारायण के रहने पर भी ज्ञानहीन मूढ़ नरक में पाप भोगते हैं ॥४२॥ अज्ञ मनुष्य महामोह में फँसकर इस मलमूत्र से भरे अनित्य शरीर को ही नित्य समझते हैं ॥४३॥ जो मनुष्य मांस, रक्त आदि से युक्त इस कुत्सित शरीर को पाकर संसार से उद्धार करने वाले विष्णु का भजन नहीं करता वह महापापी है ॥४४॥ विप्र ! सर्वदा हरि की उपासना करने वाला चाण्डाल भी महासुखी है। कष्ट है, कष्ट है, महाकष्ट है इस प्रकार चिल्लाना मूर्खता है ॥४५॥ आश्चर्य है कि मूर्ख पापी मानव शरीर से निकलते हुए मल-मूत्रादि अशुद्ध पदार्थों को देखकर भी इसको अशुचि समझकर घृणा क्यों नहीं करता ? ॥४६॥ देवता भी दुर्लभ मानव-जीवन प्राप्त करने की प्रार्थना किया करते हैं। इसलिए ऐसे दुर्लभ मानुष जन्म को पाकर बुद्धिमान् व्यक्ति अवश्य परलोक सुधारने का प्रयत्न करे ॥४७॥ अध्यात्म-ज्ञान-सम्पन्न और हरिपूजापरायण व्यक्ति उस परम स्थान को प्राप्त करते हैं जहाँ से पुनरागमन नहीं होता ॥४८॥ जिससे यह सारा विश्व उत्पन्न हुआ, जिससे यह चैतन्य प्राप्त करता और जिसमें लय हो जाता है वही संसार का उद्धारकर्त्ता है ॥४९॥ जो अनन्तनिर्गुण होता हुआ भी सगुण के समान जान पड़ता है उस देवेश की पूजा करने से ही संसार से मुक्ति प्राप्त होती है ॥५०॥

श्री नारदीय महापुराण में भवाटवी निरूपण
नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

भगवन्सर्वमाख्यातं यत्पृष्टं विदुषा त्वया । संसारपाशबद्धानां दुःखानि सुबहूनि च ॥१॥
अस्य संसारपाशस्य च्छेदकः कतमः स्मृतः । येनोपायेन मोक्षः स्यात्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥२॥
प्राणिभिः कर्मजालानि क्रियंते प्रत्यहं भृशम् । भुज्यंते च मुनिश्रेष्ठ तेषां नाशः कथं भवेत् ॥३॥
कर्मणा देहमाप्नोति देही कामेन बध्यते । कामाल्लोभाभिभूतः स्याल्लोभात्क्रोधपरायणः ॥४॥
क्रोधाच्च धर्मनाशः स्याद्धर्मनाशान्मतिभ्रमः । प्रनष्टबुद्धिर्मनुजः पुनः पापं करोति च ॥५॥
तस्माद्देहं पापमूलं पापकर्मरतं तथा । यथा देहभ्रमं त्यक्त्वा मोक्षभाक्स्यात्तथा वद ॥६॥

सनक उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ मतिस्ते विमलोर्जिता । यस्मात्मसंसारदुःखान्नो मोक्षोपायमभीप्ससि ॥७॥
यस्याज्ञया जगत्सर्वं ब्रह्मा सृजति सुव्रत । हरिश्च पालको रुद्रो नाशकः स हि मोक्षदः ॥८॥
अहमादिविशेषांता जाता यस्य प्रभावतः । तं विद्यान्मोक्षदं विष्णुं नारायणमनामयम् ॥९॥
यस्याभिन्नमिदं सर्वं यच्चेंगति च नेंगति । तमुग्रमजरं देवं ध्यात्वा दुःखात्प्रमुच्यते ॥१०॥

अध्याय ३३

योग-निरूपण

नारद बोले—भगवन् ! महाज्ञानी आप से जो कुछ पूछा गया उसको आपने कह दिया । इस संसार-पाश में बँधे प्राणियों को अनेक दुःख हैं ॥१॥ तपोधन ! इस संसार-पाश को छिन्न करने वाला कौन है ? और जिस उपाय से मनुष्य को मोक्ष प्राप्त होता है उसको मुझसे कहिए ॥२॥ समस्त प्राणी सदा कर्म करते रहते हैं और उसका भोग भी करते हैं, परन्तु मुनिश्रेष्ठ ! उन कर्मों का नाश कैसे होता है, इसको कृपा कर बतलाइए ॥३॥ कर्म से ही देह प्राप्त होती है और देही इच्छाओं से बँध जाता है, काम से वह लोभाभिभूत हो जाता है, लोभ से क्रोधी स्वभाव का होना स्वाभाविक है । क्रोध से धर्मनाश होता और धर्मनाश से बुद्धि-भ्रम हो जाता है । नष्ट-बुद्धि मनुष्य बार-बार पाप करता है । सारांश यह है कि यह देह पाप मूल है और देही सदा पापकर्मों में लीन रहता है । इसलिए जिस प्रकार मनुष्य शरीर-भ्रम को छोड़कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है उस उपाय को बतलाइए ॥४-६॥

सनक बोले—महाप्राज्ञ ! धन्य हो, धन्य हो, तुमने अत्यंत विमल बुद्धि पाई है, क्योंकि इसीलिए तुम सांसारिक दुःख से मुक्ति पाने के उपाय की ही इच्छा करते हो ॥७॥ व्रती ! जिसकी आज्ञा से ब्रह्मा समस्त विश्व की सृष्टि करते, विष्णु पालन करते और रुद्र संहार करते हैं, वही मोक्षदाता हैं ॥८॥ अहम् आदि तत्त्व से लेकर विशेष पर्यन्त सारे पदार्थ जिससे उत्पन्न हुए हैं उसी अनामय, विष्णु नारायण को मोक्षदाता समझना चाहिए ॥९॥ जिससे यह संसार भिन्न नहीं अर्थात् जो विश्व रूप है, जो स्वयं सचेष्ट और निश्चेष्ट (अकाम-सकाम) दोनों हैं उसी उग्र अजर देव का ध्यानकर मानव दुःखों से मुक्ति पाता है ॥१०॥ उस अविकार

अविकारमजं शुद्धं स्वप्रकाशं निरंजनम् । ज्ञानरूपं सदानंदं प्राहुर्वै मोक्षसाधनम् ॥११॥
यस्यावताररूपाणि ब्रह्माद्या देवतागणाः । समर्चयंति तं विद्याच्छाश्वतस्थानदं हरिम् ॥१२॥
जितप्राणा जिताहाराः सदा ध्यानपरायणाः । हृदि पश्यंति यं सत्यं तं जानीहि सुखावहम् ॥१३॥
निर्गुणोऽपि गुणाधारो लोकानुग्रहरूपधृक् । आकाशमध्यगः पूर्णस्तं प्राहुर्मोक्षदं नृणाम् ॥१४॥
अध्यक्षः सर्वकार्याणां देहिनो हृदये स्थितः । अनूपमोऽखिलाधारस्तं देवं शरणं व्रजेत् ॥१५॥
सर्वं संगृह्य कल्पांते शेते यस्तु जले स्वयम् । तं प्राहुर्मोक्षदं विष्णुं मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥१६॥
वेदार्थविद्भिः कर्मज्ञैरिज्यते विविधैर्मखैः । स एव कर्मफलदो मोक्षदोऽकामकर्मणाम् ॥१७॥
हव्यकव्यादिदानेषु देवतापितृरूपधृक् । भुंक्ते य ईश्वरोऽव्यक्तस्तं प्राहुर्मोक्षदं प्रभुम् ॥१८॥
ध्यातःप्रणमितो वापि पूजितो वापि भक्तितः । ददाति शाश्वतं स्थानं तं दयालुं समर्चयेत् ॥१९॥
आधारः सर्वभूतानामेको यः पुरुषः परः । जरामरणनिर्मुक्तो मोक्षदः सोऽव्ययो हरिः ॥२०॥
संपूज्य यस्य पादाब्जं देहिनोऽपि मुनीश्वर । अमृतत्वं भजंत्याशु तं विदुः पुरुषोत्तमम् ॥२१॥
आनन्दमजरं ब्रह्म परं ज्योतिः सनातनम् । परात्परतरं यच्च तद्विष्णोः परमं पदम् ॥२२॥
अद्वयं निर्गुणं नित्यमद्वितीयमनौपमम् । परिपूर्णं ज्ञानमयं विदुर्मोक्षप्रसाधकम् ॥२३॥
एवंभूतं परं वस्तु योगमार्गविधानतः । य उपास्ते सदा योगी स याति परमं पदम् ॥२४॥
सर्वसंगपरित्यागी शमादिगुणसंयुतः । कामाद्यैर्वर्जितो योगी लभते परमं पदम् ॥२५॥

अज, शुद्ध, स्वप्रकाश निरंजन, ज्ञानरूप और सदानन्द को ही मोक्ष-साधन कहा जाता है ॥११॥ जिसके अवतार रूपों की ब्रह्मा आदि देवतागण अर्चा करते हैं उसी हरि को शाश्वत मोक्षदाता जानना चाहिए ॥१२॥ जितप्राण, जिताहार और सदा ध्यानपरायण साधुजन ही जिस ब्रह्म को हृदय में दर्शन कर लेते हैं उसी सुखदायक सत्य को मुक्तिप्रद जानो ॥१३॥ जो निर्गुण होता हुआ भी गुणाधार है जो लोकानुग्रह के लिए अवतार रूप धारण करने वाला, पूर्ण और आकाशमध्यचारी है वही मनुष्यों का मोक्षदाता कहा जाता है ॥१४॥ वह सब कार्यों का अध्यक्ष, प्राणियों के हृदय में स्थित रहने वाला, अनुपम और निखिल विश्व का आधार है, उस देव के ही शरण में जाना चाहिए ॥१५॥ जो कल्पान्त में सारी सृष्टि को अपने में लीन कर जल में शयन करता है, तत्त्वदर्शी मुनि उसी विष्णु को मोक्षप्रद कहते हैं ॥१६॥ कर्म और वेद के तत्त्वज्ञाता लोग विविध यज्ञों से जिसकी उपासना करते हैं, वही निष्काम कर्म करने वाले मनुष्यों को कर्मफल प्रदान करता है ॥१७॥ जो अव्यक्त ईश्वर हव्य कव्य आदि दान में देवता और पितरों का रूप धारण कर दिये हुये पदार्थों को भोग करता है, उसी प्रभु को मोक्षद कहते हैं ॥१८॥ जो भक्ति पूर्वक ध्यान, प्रणाम, पूजा करने से शाश्वत स्थान प्रदान करता है, उस दयालु की भक्ति पूर्वक पूजा करनी चाहिए ॥१९॥ जो सब भूतों का एक मात्र आधार है, जो श्रेष्ठ पुरुष, जरा-मरण से रहित अव्यय हरि है वह मोक्ष देने वाला है ॥२०॥ मुनीश्वर, जिसके चरण कमल की पूजा कर मरण-शील मानव भी अमर बन जाता है उसको पुरुषोत्तम समझते हैं ॥२१॥ जो आनन्द, अजर, परब्रह्म सनातन ज्योति और पर से भी पर है वह विष्णु का परम पद है ॥२२॥ अद्वैत, निर्गुण, नित्य, अद्वितीय, अनुपम, परिपूर्ण, ज्ञानमय ब्रह्म ही मोक्ष के देने वाले हैं ॥२३॥ जो योगी सदा ऐसे पर वस्तु की योग विधि से उपासना करता है वह परमपद को प्राप्त करता है ॥२४॥ सब प्रकार की आसक्ति से रहित, शम आदि गुणों से युक्त और काम आदि गुणों से मुक्त रहने वाला योगी परम पद को प्राप्त करता है ॥२५॥

नारद उवाच

कर्मणा केन योगस्य सिद्धिर्भवति योगिनाम् । तदुपायं यथातत्त्वं ब्रूहि मे वदतां वर ॥२६॥

सनक उवाच

ज्ञानलभ्यं परं मोक्षं प्राहुस्तत्त्वार्थचिंतकाः । यज्ज्ञानं भक्तिमूलं च भक्तिः कर्मवतां तथा ॥२७॥
दानानि यज्ञा विविधास्तीर्थयात्रादयः कृताः । येन जन्मसहस्रेषु तस्य भक्तिर्भवेद्धरौ ॥२८॥
अक्षयः परमो धर्मो भक्तिलेशेन जायते । श्रद्धया परया चैव सर्वं पापं प्रणश्यति ॥२९॥
सर्वपापेषु नष्टेषु बुद्धिर्भवति निर्मला । सैव बुद्धिः समाख्याता ज्ञानशब्देन सूरिभिः ॥३०॥
ज्ञानं च मोक्षदं प्राहुस्तज्ज्ञानं योगिनां भवेत् । योगस्तु द्विविधः प्रोक्तः कर्मज्ञानप्रभेदतः ॥३१॥
क्रियायोगं विना नृणां ज्ञानयोगो न सिध्यति । क्रियायोगरतस्माच्छ्रद्धया हरिमर्चयेत् ॥३२॥
द्विजभूम्यग्निसूर्याम्बुधातुहृच्चित्रसंज्ञिताः । प्रतिमाः केशवस्यैता पूज्य एतासु भक्तितः ॥३३॥
कर्मणा मनसा वाचा परपीडापराङ्मुखः । तस्मात्सर्वगतं विष्णुं पूजयेद्भक्तिसंयुतः ॥३४॥
अहिंसा सत्यमक्रोधो ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ । अनीर्ष्या च दया चैव योगयोरुभयोः समाः ॥३५॥
चराचरात्मकं विश्वं विष्णुरेव सनातनः । इति निश्चित्य मनसा योगद्वितयमभ्यसेत् ॥३६॥
आत्मवत्सर्वभूतानि ये मन्यंते मनीषिणः । ते जानंति परं भावं देवदेवस्य चक्रिणः ॥३७॥
यदि क्रोधादिदुष्टात्मा पूजाध्यानपरो भवेत् । न तस्य तुष्यते विष्णुर्यतो धर्मपतिः स्मृतः ॥३८॥
यदि कामादिदुष्टात्मा देवपूजापरो भवेत् । दंभाचारः स विज्ञेयः सर्वपातकिभिः समः ॥३९॥

नारद बोले--हे वक्ताओं में श्रेष्ठ ! योगियों को किस कर्म से योग-सिद्धि प्राप्त होती है ? उसका उपाय तत्त्वतः बताइए ॥२६॥

सनक बोले--तत्त्वार्थ चिन्तकों ने पर मोक्ष को ज्ञानलभ्य कहा है। उस ज्ञान का मूल भक्ति है, जो कर्मशील व्यक्ति को ही प्राप्त होती है ।॥२७॥ जिसने सहस्रों जन्म में दान यज्ञ और विविध तीर्थ-यात्रायें की हैं, उसको हरि चरणों में भक्ति होती है ॥२८॥ भक्ति के लेश मात्र से भी अक्षय परम धर्म प्राप्त होता है और अति उत्तम श्रद्धा से सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥२९॥ सब पापों के नष्ट हो जाने पर बुद्धि निर्मल हो जाती है। विद्वानों ने उसी निर्मल बुद्धि को ज्ञान नाम से कहा है ॥३०॥ ज्ञान को मोक्ष देने वाला कहा गया है। वह ज्ञान योगियों को प्राप्त होता है। कर्म और ज्ञान भेद से योग दो प्रकार का कहा गया है ॥३१॥ मनुष्यों को कर्म योग के बिना ज्ञान योग सिद्ध नहीं होता। इसलिए कर्म योग में लीन रह कर श्रद्धापूर्वक हरि की उपासना करनी चाहिए ॥३२॥ ब्राह्मण, भूमि, अग्नि, सूर्य, जल, धातु की बनी मूर्ति, हृदय और केशव का चित्र इतनी केशव की प्रतिमायें हैं। इन प्रतिमाओं में केशव की भक्ति पूर्वक पूजा करनी चाहिए ॥३३॥ इसलिए मन, कर्म और वचन से किसी को पीड़ा न देते हुए भक्तिपूर्वक, सर्वव्यापक विष्णु की पूजा करे ॥३४॥ अहिंसा, सत्य, अक्रोध, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अनीर्ष्या (सहानुभूति) और दया दोनों योगों में समानरूप से आवश्यक है ॥३५॥ यह सारा चराचरात्मक विश्व विष्णु का ही रूप है, ऐसा मन में निश्चय कर दोनों योगों का अभ्यास करना चाहिए ॥३६॥ जो मनीषी सब प्राणियों को आत्मवत् समझते हैं वे देवाधिदेव चक्रधर विष्णु के परम रहस्य को जानते हैं ॥३७॥ यदि क्रोध आदि से मलिन आत्मा वाला व्यक्ति पूजा और ध्यान करता है उस पर विष्णु कभी प्रसन्न नहीं होते, क्योंकि वे धर्मपति कहे जाते हैं ॥३८॥

यदि कोई कामादि दोषों से दूषित अन्तः करण वाला व्यक्ति देवपूजा करता है, उसको दम्भी समझना चाहिए

तपः पूजाध्यानपरो यस्त्वसूयारतो भवेत् । तत्तपः सा च पूजा च तद्ध्यानं हि निरर्थकम् ॥४०॥
तस्मात्सर्वात्मकं विष्णुं शमादिगुणतत्परः । मुक्त्यर्थमर्चयेत्सम्यक् क्रियायोगपरो नरः ॥४१॥
कर्मणा मनसा वाचा सर्वलोकहिते रतः । समर्चयति देवेशं क्रियायोगः स उच्यते ॥४२॥
नारायणं जगद्योनिं सर्वान्तर्यामिणं हरिम् । स्तोत्राद्यैः स्तौति यो विष्णुं कर्मयोगी स उच्यते ॥४३॥
उपवासादिभिश्चैव पुराणश्रवणादिभिः । पुष्पाद्यैश्चार्चनं विष्णोः क्रियायोग उदाहृतः ॥४४॥
एवं भक्तिमतां विष्णौ क्रियायोगरतात्मनाम् । सर्वपापानि नश्यंति पूर्वजन्मार्जितानि वै ॥४५॥
पापक्षयाच्छुद्धमतिर्वांछति ज्ञानमुत्तमम् । ज्ञानं हि मोक्षदं ज्ञेयं तदुपायं वदामि ते ॥४६॥
चराचरात्मके लोके नित्यं चानित्यमेव च । सम्यग् विचारयेद्धीमान्सद्भिः शास्त्रार्थकोविदैः ॥४७॥
अनित्यास्तु पदार्था वै नित्यमेको हरिः स्मृतः । अनित्यानि परित्यज्य नित्यमेव समाश्रयेत् ॥४८॥
इहामुत्र च भोगेषु विरक्तश्च तथा भवेत् । अविरक्तो भवेद्यस्तु स संसारे प्रवर्तते ॥४९॥
अनित्येषु पदार्थेषु यस्तु रागी भवेन्नरः । तस्य संसारविच्छित्तिः कदाचिन्नैव जायते ॥५१॥
शमादिगुणसम्पन्नो मुमुक्षुर्ज्ञानमभ्यसेत् । शमादिगुणहीनस्य ज्ञानं नैव च सिध्यति ॥५२॥
रागद्वेषविहीनो यः शमादिगुणसंयुतः । हरिध्यानपरो नित्यं मुमुक्षुरभिधीयते ॥५३॥
चतुर्भिः साधनैरेभिर्विशुद्धमतिरुच्यते । सर्वगं भावयेद्विष्णुं सर्वभूतदयापरः ॥५४॥
क्षराक्षरात्मकं विश्वं व्याप्य नारायणः स्थितः । इति जानाति यो विप्र तज्ज्ञानं योगजं विदुः ॥५५॥
योगोपायमतो वक्ष्ये संसारविनिवर्त्तकम् । योगं ज्ञानं विशुद्धं स्यात्तज्ज्ञानं मोक्षदं विदुः

और वह सब प्रकार के पापियों के बराबर है ॥३९॥ जो तप, ध्यान और पूजा करता हुआ भी असूया का त्याग नहीं करता है, उसकी वह तपस्या, पूजा और ध्यान निरर्थक है ॥४०॥ इसलिए कर्मयोगी विधिपूर्वक शम, दम आदि गुणों से युक्त होकर सर्वात्मक विष्णु की मुक्ति के लिए पूजा करे ॥४१॥ मन, वचन और कर्म से जो लोक-कल्याण में लीन रहता है; वह मानो देवेश की भली भाँति अर्चा करता है और उसी को क्रिया-योग कहते हैं ॥४२॥ जो जगत् के आदि कारण, सर्वान्तर्यामी, हरि, विष्णु की स्तोत्र आदि से स्तुति करता है, वह कर्मयोगी कहा जाता है ॥४३॥ उपवास आदि व्रत, पुराण-श्रवण और पुष्प, धूप आदि से विष्णु का अर्चन ही क्रियायोग कहा गया है ॥४४॥ इस प्रकार भक्ति पूर्वक क्रिया योग में रत रहने वाले भक्तों के पूर्व जन्मार्जित सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥४५॥ पाप-क्षय से शुद्ध बुद्धि वाले व्यक्ति उत्तम ज्ञान की ही कामना करते हैं । ज्ञान मोक्ष देने वाला है । इसलिए ज्ञान प्राप्ति का उपाय तुमको बतला रहा हूँ ॥४६॥

धीमान् व्यक्ति शास्त्र-तत्त्व जानने वाले सज्जनों से उपदेश प्राप्त कर इस चराचरात्मक लोक में नित्य, अनित्य को पहचाने ॥४७॥ संसार के सब पदार्थ अनित्य हैं, केवल एक हरि ही नित्य हैं । अनित्य को छोड़कर नित्य को ही अपनाना चाहिए ॥४८॥ लौकिक और स्वर्गीय भोगों से सदा विरक्त रहना चाहिए । जो भोगों से विरक्त नहीं रहता, वह संसार में जन्म लेता है ॥४९॥ जो मनुष्य अनित्य पदार्थों से अनुराग करता है, उसका संसार के माया-बन्धन से वियोग नहीं होता । वह उसी से बँधा रहता है ॥५०॥ मुक्ति के इच्छुक शम, दम आदि गुणों से युक्त होकर ज्ञान का अवश्य अभ्यास करें । शम, दम आदि गुणों से हीन व्यक्ति को ज्ञान-प्राप्ति कभी नहीं होती ॥५१॥ राग-द्वेष से हीन, शम आदि गुणों से युक्त और नित्य प्रति भगवान् का चिन्तन करने वाला व्यक्ति ही मुमुक्षु कहा जाता है ॥५२॥ इन चार साधनों से ही विमल बुद्धि होती है, ऐसा शास्त्रीय कथन है । सब प्राणियों के प्रति दया भाव रखकर सर्वत्र व्यापक विष्णु का ध्यान करना चाहिए ॥५३॥ विप्र ! भगवान् नारायण क्षराक्षरात्मक (जड चेतनमय) संसार में व्याप्त होकर रहते हैं ऐसा जिसको ज्ञान हो जाता है, उसको योगज ज्ञान कहते हैं ॥५४॥ इसके आगे अब संसार से मुक्ति दिलाने वाले योगोपाय को बतला रहा हूँ । विशुद्ध ज्ञान ही योग

आत्मानं द्विविधं प्राहुः परापरविभेदतः । द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये इति चाथर्वणी श्रुतिः ॥५६॥
परस्तु निर्गुणः प्रोक्तो ह्यहंकारयुतोऽपरः । तयोरभेदविज्ञानं योग इत्यभिधीयते ॥५७॥
पंचभूतात्मके देहे यः साक्षी हृदये स्थितः । अपरः प्रोच्यते सद्भिःपरमात्मा परः स्मृतः ॥५८॥
शरीरं क्षेत्रमित्याहुस्तत्स्थः क्षेत्रज्ञ उच्यते । अव्यक्तः परमः शुद्धः परिपूर्ण उदाहृतः ॥५९॥
यदा त्वभेदविज्ञानं जीवात्मपरमात्मनोः । भवेत्तदा मुनिश्रेष्ठ पाशच्छेदोऽपरात्मनः ॥६०॥
एकः शुद्धोऽक्षरो नित्यः परमात्मा जगन्मयः । नृणां विज्ञानभेदेन भेदवानिव लक्ष्यते ॥६१॥
एकमेवाद्वितीयं यत्परं ब्रह्म सनातनम् । गीयमानं च वेदांतैस्तस्मान्नास्ति परं द्विज ॥६२॥
न तस्य कर्म कार्यं वा रूपं वर्णमथापि वा । कर्तृत्वं वापि भोक्तृत्वं निर्गुणस्य परात्मनः ॥६३॥
निदानं सर्वहेतूनां तेजो यत्तेजसां परम् । किमप्यन्यद्यतो नास्ति तज्ज्ञेयं मुक्तिहेतवे ॥६४॥
शब्दब्रह्ममयं यत्तन्महावाक्यादिकं द्विज । तद्विचारोद्भवं ज्ञानं परं मोक्षस्य साधनम् ॥६५॥
सम्यग्ज्ञानविहीनानां दृश्यते विविधं जगत् । परमज्ञानिनामेतत्परब्रह्मात्मकं द्विज ॥६६॥
एक एव परानन्दो निर्गुणः परतः परः । भाति विज्ञानभेदेन बहुरूपधरोऽव्ययः ॥६७॥
मायिनो मायया भेदं पश्यन्ति परमात्मनि । तस्मान्मायां त्यजेद्योगान्मुमुक्षुर्द्विजसत्तम ॥६८॥
नासद्रूपा न सद्रूपा माया नैवोभयात्मिका । अनिर्वाच्या ततो ज्ञेया भेदबुद्धिप्रदायिनी ॥६९॥
मायैव ज्ञानशब्देन बुद्ध्यते मुनिसत्तम । तस्मादज्ञानविच्छेदो भवेद्वै जितमायिनाम् ॥७०॥
सनातनं परं ब्रह्म ज्ञानशब्देन कथ्यते । ज्ञानिनां परमात्मा वै हृदि भाति निरन्तरम् ॥७१॥

है, वही ज्ञान मोक्ष दाता कहा गया है ॥५५॥ पर और अपर भेद से आत्मा के दो प्रकार कहे गये हैं । 'दो ब्रह्म जानने योग्य हैं' ऐसा अथर्ववेद का वचन है ॥५६॥ निर्गुण को पर और महंकार से युक्त आत्मा को अपर कहा गया है । उन दोनों में अभेद बुद्धि रखना ही योग है ॥५७॥ इस पंचभूतात्मक देह में जो साक्षी रूप से हृदय में निवास करता है उसको सज्जन अपर कहते हैं और परमात्मा को पर कहते हैं ॥५८॥ शरीर को क्षेत्र और शरीरस्थ आत्मा को क्षेत्रज्ञ कहते हैं । वह अव्यक्त, पूर्ण परम और शुद्ध है ॥५९॥ मुनिश्रेष्ठ ! जिस समय मनुष्य को जीवात्मा और परमात्मा का अभेद ज्ञान हो जाता है उस समय अपरात्मा (जीव) को मुक्ति प्राप्त हो जाती है ॥६०॥ एक शुद्ध, अक्षर, नित्य, जगन्मय परमात्मा ही ज्ञान भेद से मनुष्य को भिन्न सा प्रतीत होता है ॥६१॥ द्विज ! जिस एक, अद्वितीय, पर सनातन ब्रह्म का वेदान्तों ने वर्णन किया है उससे पर दूसरा कोई पदार्थ नहीं है ॥६२॥ उस निर्गुण परमात्मा का कर्म, कार्य, रूप अथवा वर्ण कुछ भी नहीं है, और न तो वह कर्त्ता या भोक्ता ही है । वह सब कारणों का कारण और सब उत्कृष्ट तेज से भी उत्कृष्ट तेज है । जिसके अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ नहीं है वही पर ब्रह्म मुक्ति-प्राप्ति के लिये ज्ञेय (कारण) है ॥६३-६४॥ द्विज ! शब्द ब्रह्म के समर्थक जितने महावाक्य हैं उनके विवेचन से प्राप्त पर ज्ञान ही मोक्ष का साधन है । द्विज ! परब्रह्मस्वरूप यह जगत् सम्यग्ज्ञान से शून्य अथवा अज्ञानियों को ही विविधरूपों में दिखाई पड़ता है ॥६५-६६॥ एक ही परानन्द, निर्गुण, परतः पर अव्यय विज्ञान भेद से बहुरूपधारी जान पड़ता है ॥६७॥ मायाबद्ध मनुष्य माया के प्रभाव से परमात्मा में भिन्नता देखते हैं । इसलिए, द्विजवर्य ! मुमुक्षु योग द्वारा माया को छोड़े ॥६८॥ माया न तो सद्रूप है, न असद्रूप और न सदसद्रूपा ही है, उस भेद बुद्धि प्रदान करने वाली माया को अनिर्वचनीय समझना चाहिए । मुनिश्रेष्ठ ! ज्ञान के द्वारा माया को ही पहचाना जाता है । तभी जितमायी (विज्ञानी) का अज्ञान दूर होता है ॥६९-७०॥ ज्ञान शब्द से सनातन पर ब्रह्म का ही निर्देश है । ज्ञानियों के हृदय में परमात्मा सर्वदा विराजमान रहता है । मुनिवर्य ! योगी अपने योगबल से अज्ञान का नाश करे ॥७१-२॥

अज्ञानं नाशयेद्योगी योगेन मुनिसत्तम । अष्टांगैः सिद्धयते योगस्तानि वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥७२॥
यमाश्च नियमाश्चैव आसनानि च सत्तम । प्राणायामः प्रत्याहारो धारणा ध्यानमेव च ॥७३॥
समाधिश्च मुनिश्रेष्ठ योगाङ्गानि यथाक्रमम् । एषां संक्षेपतो वक्ष्ये लक्षणानि मुनीश्वर ॥७४॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ । अक्रोधश्चानसूया च प्रोक्ताः संक्षेपतो यमाः ॥७५॥
सर्वेषामेव भूतानामक्लेशजननं हि यत् । अहिंसा कथिता सद्भिर्योगसिद्धिप्रदायिनी ॥७६॥
यथार्थकथनं यच्च धर्माधर्मविवेकतः । सत्यं प्राहुर्मुनिश्रेष्ठ अस्तेयं शृणु साम्प्रतम् ॥७७॥
चौर्येण वा बलेनापि परस्वहरणं हि यत् । स्तेयमित्युच्यते सद्भिरस्तेयं तद्विपर्ययम् ॥७८॥
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रकीर्त्तितम् । ब्रह्मचर्यपरित्यागाज्ज्ञानवानपि पातकी ॥७९॥
सर्वसंगपरित्यागी मैथुने यस्तु वर्तते । स चंडालसमो ज्ञेयः सर्ववर्णबहिष्कृतः ॥८०॥
यस्तु योगरतो विप्र विषयेषु स्पृहान्वितः । तत्संभाषणमात्रेण ब्रह्महत्या भवेन्नृणाम् ॥८१॥
सर्वसंगपरित्यागी पुनः संगी भवेद्यदि । तत्संगसंगिनां संगान्महापातकदोषभाक् ॥८२॥
अनादानं हि द्रव्याणामापद्यपि मुनीश्वर । अपरिग्रह इत्युक्तो योगसंसिद्धिकारकः ॥८३॥
आत्मनस्तु समुत्कर्षादतिनिष्ठुरभाषणम् । क्रोधमाहुर्धर्मविदो ह्यक्रोधस्तद्विपर्ययः ॥८४॥
धनाद्यैरधिकं दृष्ट्वा भृशं मनसि तापनम् । असूया कीर्तिता सद्भिस्तत्त्यागो ह्यनसूयता ॥८५॥
एवं संक्षेपतः प्रोक्ता यमा विबुधसत्तम । नियमानपि वक्ष्यामि तुभ्यं ताञ्छृणु नारद ॥८६॥
तपःस्वाध्यायसंतोषाः शौचं च हरिपूजनम् । संध्योपासनमुख्याश्च नियमाः परिकीर्त्तिताः ॥८७॥

योग अष्टांगों द्वारा ही सिद्ध होता है उनको अब यथार्थ रूप से बतला रहा हूँ। मुनिश्रेष्ठ! यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये ही क्रमशः योग के अंग हैं। मुनीश्वर! संक्षेप में इनका लक्षण कह रहा हूँ ॥७२-७४॥ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अक्रोध और अनसूया ये ही संक्षेप में यम कहे गए हैं ॥७५॥ मनीषियों ने कहा है कि सभी प्राणियों को किसी प्रकार का कष्ट देना ही अहिंसा है जो कि मनुष्य को योगसिद्धि प्रदान करने वाली है ॥७६॥ मुनिश्रेष्ठ! धर्म अधर्म का विचार कर जिसको जैसे देखा जाय उसको उसी रूप में कह देना ही सत्य है। अब अस्तेय की परिभाषा सुनिए। शिष्ट पुरुषों ने कहा है कि चोरी से या बलपूर्वक किसी का धन छीन लेना ही स्तेय है, इसके विपरीत अस्तेय है ॥७७-७८॥ कहीं किसी भी अवस्था में मैथुन न करना ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य के त्याग से ज्ञानी भी पापी है ॥७९॥ सब संग (आसक्ति) का परित्याग करने वाला व्यक्ति भी यदि मैथुन करता है तो वह सब वर्णों से बहिष्कृत है, उसको चाण्डाल के समान जानना चाहिए ॥८०॥ विप्र! जो योगरत रहने पर भी विषय वासना की इच्छा करता है उससे बातचीत करने से भी मनुष्य को ब्रह्महत्या का पाप लगता है। सब प्रकार की आसक्तियों का त्याग करने वाला व्यक्ति यदि फिर रागी बन जाय उसके सहकर्मी या संगियों की संगति से भी महापाप का दोषभागी बनना पड़ता है ॥८१-८२॥ मुनीश्वर! आपत्ति में भी किसी दूसरे से कुछ न लेना अपरिग्रह कहा गया है जिसके पालन से योगसिद्धि मिल जाती है ॥८३॥ अपने उत्कर्ष के अभिमान से जो निष्ठुर भाषण किया जाता है उसको क्रोध कहते हैं इसके विपरीत अक्रोध कहा जाता ॥८४॥ धनादि से किसी को अपने से अधिक देखकर जो मन में अधिक सन्ताप होता है उसको असूया कहते हैं, उसका परित्याग करना अनसूया कहा जाता है। ॥८५॥ बुधश्रेष्ठ! इस प्रकार संक्षेप में यमों का वर्णन कर दिया गया, नारद! अब नियमों को बता रहा हूँ उसको सुनो ॥८६॥

तप, स्वाध्याय, सन्तोष, शौच, हरिपूजन और मुख्यरूप से सन्ध्योपासन ये नियम कहे गए हैं ॥८७॥

चांद्रायणादिभिर्यत्र शरीरस्य विशोषणम् । तपो निगदितं सद्भिर्योगसाधनमुत्तमम् ॥८८॥
प्रणवस्योपनिषदां द्वादशार्णस्य च द्विज । अष्टाक्षरस्य मंत्रस्य महावाक्यचयस्य च ॥८९॥
जपः स्वाध्याय उदितो योगसाधनमुत्तमम् । स्वाध्यायं यस्त्यजेन्मूढस्तस्य योगो न सिध्यति ॥९०॥
योगं विनापि स्वाध्यायात्पापनाशो भवेन्नृणाम् । स्वाध्यायैस्तोष्यमाणाश्च प्रसीदंति हि देवताः ॥९१॥
जपस्तु त्रिविधः प्रोक्तो वाचिकोपांशुमानसः । त्रिविधेऽपि च विप्रेन्द्र पूर्वात्पूर्वात्परो वरः ॥९२॥
मंत्रस्योच्चारणं सम्यक्स्फुटाक्षरपदं यथा । जपस्तु वाचिकः प्रोक्तः सर्वयज्ञफलप्रदः ॥९३॥
मंत्रस्योच्चारणे किंचित्पदात्पदविवेचनम् । स तूपांशुर्जपः प्रोक्तः पूर्वस्माद्द्विगुणोऽधिकः ॥९४॥
विधाय ह्यक्षरश्रेण्यां तत्तदर्थविचारणम् । स जपो मानसः प्रोक्तो योगसिद्धिप्रदायकः ॥९५॥
जपेन देवता नित्यं स्तुवतः संप्रसीदति । तस्मात्स्वाध्यायसंपन्नो लभेत्सर्वान्मनोरथान् ॥९६॥
यदृच्छालाभसंतुष्टिः संतोष इति गीयते । संतोषहीनः पुरुषो न लभेच्छर्म कुत्रचित् ॥९७॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । इतोऽधिकं कदा लप्स्य इति कामस्तु वर्द्धते ॥९८॥
तस्मात्कामं परित्यज्य देहसंशोषकारणम् । यदृच्छालाभसंतुष्टो भवेद्धर्मपरायणः ॥९९॥
बाह्याभ्यन्तरभेदेन शौचं तु द्विविधं स्मृतम् । मृज्जलाभ्यां बहिः शुद्धिर्भावशुद्धिस्तथान्तरम् ॥१००॥
अन्तःशुद्धिविहीनैस्तु येऽध्वरा विविधाः कृताः । न फलंति मुनिश्रेष्ठ भस्मनि न्यस्तहव्यवत् ॥१०१॥
भावशुद्धिविहीनानां समस्तं कर्म निष्फलम् । तस्माद्रागादिकं सर्वं परित्यज्य सुखी भवेत् ॥१०२॥
मृदा भारसहस्रैस्तु कुम्भकोटिजलैस्तथा । कृतशौचोऽपि दुष्टात्मा चंडालसदृशः स्मृतः ॥१०३॥

चान्द्रायण आदि व्रत द्वारा शरीर के शोषण को महात्माओं ने उत्तम योग साधन और तप कहा है ॥८८॥ ओंकार उपनिषद्, द्वादशाक्षर मन्त्र, अष्टाक्षर मन्त्र और जिस (सम्प्रदाय) के जो महावाक्य हैं, उनका जप ही स्वाध्याय है जो कि उत्तम योग साधन है। जो मूढ़ स्वाध्याय का त्याग कर देता है उसका योग कभी भी सिद्ध नहीं होता ॥८९-९०॥ बिना योग के भी केवल स्वाध्याय से मनुष्यों के पाप नष्ट हो जाते हैं। स्वाध्याय के द्वारा जिन देवताओं की स्तुति की जाती है, वे अवश्य प्रसन्न होते हैं ॥९१॥ जप, वाचिक उपांशु, और मानस भेद से तीन प्रकार का होता है। इस त्रिविध जप में पूर्वापेक्षा पर श्रेष्ठ माना गया है ॥९२॥ जिस जप में मन्त्र के अक्षरों, पदों का स्फुट रूप से भलीभाँति उच्चारण किया जाता है उसको वाचिक जप कहा जाता है, ऐसा जप सब यज्ञों के फल को देने वाला है। जिस जप में मन्त्रोच्चारण करते समय मंत्रपदों का कुछ विवेचन किया जाता है उसको उपांशु जप कहते हैं। यह पूर्व वाचिक जप से दुगुना अधिक फल देने वाला है। अक्षरों की पृथक्-पृथक् श्रेणी बनाकर उसके अर्थों पर ध्यान देकर मन में ही जप करना मानस जप कहा है। यह जप योगसिद्धि को देने वाला है। जप द्वारा देवताओं की स्तुति करने पर देवता शीघ्र प्रसन्न होते हैं। इसलिए स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति अपने सब मनोरथों को प्राप्त करता है ॥८३-९६॥ जो कुछ मिल जाय उसी पर प्रसन्न रहना सन्तोष कहा जाता है। संतोष हीन व्यक्ति कभी और कहीं सुख नहीं पा सकता ॥९७॥ विषयोपभोग से कभी भी इच्छा-तृप्ति नहीं होती। इसमें तो 'इससे अधिक कब प्राप्त करूंगा' ऐसी इच्छा बनी ही रहती है, जिससे दिनों दिन काम (इच्छा) बढ़ता ही रहता है। इसलिए देह को सुखा देने वाले को छोड़कर सर्वदा श्रम से जो कुछ मिल जाय उसी पर सन्तोष करना चाहिए ॥९८-९९॥

बाह्य और आभ्यन्तर भेद से शौच दो प्रकार का होता है। मिट्टी और जल से की हुई शुद्धि बाह्य-शुद्धि और भावशुद्धि आभ्यन्तर शुद्धि है ॥१००॥ मुनिश्रेष्ठ! अन्तःशुद्धि विहीन मनुष्यों के किए हुए विविध-यज्ञ राख में दी हुई आहुति की भाँति कभी भी फलदायक नहीं होते ॥१०१॥ बिना भावशुद्धि के सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं। इस लिए रागादि का परित्याग करके ही मनुष्य सुखी होता है ॥१०२॥ हजारों मन मिट्टी और करोड़ों घड़ों के जल से शुद्धि करने पर भी दुष्टात्मा व्यक्ति चाण्डाल के समान ही माना जाता

अंतःशुद्धिविहीनस्तु देवपूजापरो यदि । तमेव दैवतं हंति नरकं च प्रपद्यते ॥१०४॥
अंतःशुद्धिविहीनश्च बहिः शुद्धि करोति यः । अलंकृतः सुराभाण्ड इव शांति न गच्छति ॥१०५॥
मनःशुद्धिविहीना ये तीर्थयात्रां प्रकुर्वते । न तान्पुनंति तीर्थानि सुराभांडमिवापगा ॥१०६॥
वाचा धर्मान्प्रवदति मनसा पापमिच्छति । जानीयात्तं मुनिश्रेष्ठ महापातकिनां वरम् ॥१०७॥
विशुद्धमानसा ये तु धर्ममात्रमनुत्तमम् । कुर्वंति तत्फलं विद्यादक्षयं सुखदायकम् ॥१०८॥
कर्मणा मनसा वाचा स्तुतिश्रवणपूजनैः । हरिभक्तिर्दृढा यस्य हरिपूजेति गीयते ॥१०९॥
यमाश्च नियमाश्चैव संक्षेपेण प्रबोधिताः । एभिर्विशुद्धमनसां मोक्षं हस्तगतं विदुः ॥११०॥
यमैश्च नियमैश्चैव स्थिरबुद्धिर्जितेन्द्रियः । अभ्यसेदासनं सम्यग्योगसाधनमुत्तमम् ॥१११॥
पद्मकं स्वस्तिकं पीठं सैंहं कौक्कुटकौंजरे । कौर्मं वज्रासनं चैव वाराहं मृगचैलिकम् ॥११२॥
क्रौञ्चं च नालिकं चैव सर्वतोभद्रमेव च । वार्षभं नागमात्स्ये च वैयाघ्रं चार्द्धचंद्रकम् ॥११३॥
दंडवातासनं शैलं स्वभ्रं मौद्गरमेव च । माकरं त्रैपथं काष्ठं स्थाणुं वैकर्णिकं तथा ॥११४॥
भौमं वीरासनं चैव योगसाधनकारणम् । त्रिंशत्संख्यान्यासनानि मुनीन्द्रैः कथितानि वै ॥११५॥
एषामेकतमं बद्ध्वा गुरुभक्तिपरायणः । उपासको जयेत्प्राणान्द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ॥११६॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि तथा प्रत्यङ्मुखोऽपि वा । अभ्यासेन जयेत्प्राणान्निःशब्दे जनवर्जिते ॥११७॥
प्राणो वायुः शरीरस्थ आयामस्तस्य निग्रहः । प्राणायाम इति प्रोक्तो द्विविधः स प्रकीर्त्तितः ॥११८॥

है ॥१०३॥ अन्तः शुद्धि के बिना जो व्यक्ति देवपूजा करता है, देवता उसी का सर्वनाश करते हैं और वह नरकगामी भी होता है ॥१०४॥ जो अन्तःशुद्धि के बिना बाह्यशुद्धि पर ही ध्यान देता है वह ऊपर से सजाये हुए मदिरा पात्र के समान है और ऐसे दम्भी को शान्ति कभी भी नहीं मिलती ॥१०५॥ जो व्यक्ति बिना मन को शुद्ध किए तीर्थ यात्रा करता है, उसको तीर्थ उसी प्रकार पवित्र करने में असमर्थ होता है, जिस प्रकार देव-सरिता मदिरा से भरे पात्र को ॥१०६॥ जो वाणी द्वारा धर्म का उपदेश देता है और हृदय से पाप करना चाहता है, मुनिश्रेष्ठ ! उसको महापापियों में शिरोमणि समझना चाहिए ॥१०७॥ जो विशुद्ध अन्तःकरण वाला व्यक्ति केवल उत्तम धर्म का पालन करता है, उसको अक्षय सुखदायक फल प्राप्त होता है ॥१०८॥ मन, वाणी, क्रिया, स्तुति, नामश्रवण और पूजा के द्वारा भगवान् में अचल भक्ति रखने को ही हरिपूजा कहते हैं। यम और नियमों को इस प्रकार संक्षेप में कह दिया। इन यम-नियमों के पालन से मनुष्यों का अन्तःकरण विशुद्ध होता है और विशुद्ध अन्तःकरण वालों को मोक्ष अनायास प्राप्त हो जाता है ॥१०९-११०॥ जितेन्द्रिय व्यक्ति यम-नियमों के अभ्यास से स्थिर बुद्धि होकर आसनों का अभ्यास भली भाँति करे, जो कि उत्तम योगसाधन हैं। मुनिवरों ने पद्मक, स्वस्तिक, पीठ, सिंह, कुक्कुट, कुंजर, कूर्म, वज्र, वाराह, मृग, चैलिक, क्रौञ्च, नालिक, सर्वतोभद्र, वार्षभ (वृषभासन), नाग, मत्स्य, व्याघ्र, अर्द्धचन्द्र, दण्डवातासन, शैल, स्वभ्र, मौद्गर, मकर, त्रिपथ, काष्ठ, स्थाणु, वैकर्णिक, भौम और वीरासन नामक तीस आसनों का वर्णन किया है ॥१११-११५॥ इसमें से किसी एक आसन का अभ्यास करके भी गुरुभक्तिनिष्ठ उपासक प्राण पर अधिकार कर सकता और मात्सर्य तथा द्वन्द्व को जीत सकता है। नीरव और निर्जन स्थान में पूर्व उत्तर या पश्चिमाभिमुख हो आसन लगाकर अभ्यास के द्वारा प्राण वायु पर अधिकार करना चाहिए ॥११६-११७॥

शरीर-सञ्चारी वायु को प्राण कहा जाता है। आयाम का अर्थ उसका निग्रह करना है। इस प्रकार प्राण को वश में करना ही प्राणायाम कहा जाता है। यह दो प्रकार का होता है; अगर्भ और सगर्भ। इनमें

अगर्भश्च सगर्भश्च द्वितीयस्तु तयोर्वरः । जपध्यानं विनागर्भः सगर्भस्तत्समन्वितः ॥११९॥
रेचकः पूरकश्चैव कुंभकः शून्यकस्तथा । एवं चतुर्विधः प्रोक्तः प्राणायामो मनीषिभिः ॥१२०॥
जंतूनां दक्षिणा नाडी पिंगला परिकीर्तिता । सूर्यदैवतका चैव पितृयोनिरिति श्रुता ॥१२१॥
देवयोनिरिति ख्याता इडा नाडी त्वदक्षिणा । तत्राधिदैवतं चंद्रं जानीहि मुनिसत्तम ॥१२२॥
एतयोरुभयोर्मध्ये सुषुम्णा नाडिका स्मृता । अतिसूक्ष्मा गुह्यतमा ज्ञेया सा ब्रह्मदैवता ॥१२३॥
वामेन रेचयेद्वायुं रेचनाद्रेचकः स्मृतः । पूरयेद्दक्षिणेनैव पूरणात्पूरकः स्मृता ॥१२४॥
स्वदेहपूरितं वायुं निगृह्य न विमुंचति । संपूर्णकुंभवत्तिष्ठेत्कुम्भकः स हि विश्रुतः ॥१२५॥
न गृह्णाति न त्यजति वायुमंतर्बहिःस्थितम् । विद्धि तच्छून्यकं नाम प्राणायामं यथास्थितम् ॥१२६॥
शनैःशनैर्विजेतव्यः प्राणो मत्तगजेन्द्रवत् । अन्यथा खलु जायन्ते महारोगा भयंकराः ॥१२७॥
क्रमेण योजयेद्वायुं योगी विगतकल्मषः । स सर्वपापनिर्मुक्तो ब्रह्मणः पदमाप्नुयात् ॥१२८॥
विषयेषु प्रसक्तानि चेन्द्रियाणि मुनीश्वरः । समाहृत्य निगृह्णाति प्रत्याहारस्तु स स्मृतः ॥१२९॥
जितेन्द्रिया महात्मानो ध्यानशून्या अपि द्विज । प्रयान्ति परमं ब्रह्म पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१३०॥
अनिर्जितेंद्रियग्रामं यस्तु ध्यानपरो भवेत् । मूढात्मानं च तं विद्याद्ध्यानं चास्य न सिध्यति ॥१३१॥
यद्यत्पश्यति तत्सर्वं पश्येदात्मवदात्मनि । प्रत्याहृतानीन्द्रियाणि धारयेत्सा तु धारणा ॥१३२॥
योगाज्जितेंद्रियग्रामस्तानि हृत्वा दृढं हृदि । आत्मानं परमं ध्यायेत्सर्वधातारमच्युतम् ॥१३३॥

दूसरा श्रेष्ठ है। जप-ध्यान के बिना किया हुआ प्राणायाम अगर्भ और जप के सहित सगर्भ है ॥११८-११९॥ मनीषियों ने प्राणायाम के रेचक, पूरक, कुंभक और शून्यक ये चार भेद बताये हैं ॥१२०॥ जीवों की दक्षिणनाड़ी पिंगला कही गई है। सूर्य इसका देवता और पितर योनि है। मुनिसत्तम! वामनाड़ी इड़ा नाम से प्रसिद्ध है। चन्द्रमा इसका देवता और देव योनि है ॥१२१-१२२॥ इन दोनों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी है। यह अति सूक्ष्म, गुह्यतम और ब्रह्मदैवत है। वाम नाड़ी से वायु को छोड़े। रेचन के कारण ही प्राणायाम की तीसरी क्रिया को रेचक कहा गया है, दक्षिण से वायु को खींचे। उसी क्रिया में वायु द्वारा शरीर को पूरण किया जाता है इसलिए उसको पूरक कहा जाता है ॥१२३-१२४॥ अपनी देह में वायु को भरकर उसको छोड़ा न जाय और भरे हुए कुंभ (घड़े) के समान स्थिर रखा जाय तो इस क्रिया को कुंभक कहते हैं ॥१२५॥ शरीर के भीतर की वायु को न निकाला जाय और बाहर की वायु को न भीतर खींचा जाय ऐसी स्थिति वाली क्रिया को शून्यक नामक प्राणायाम कहते हैं ॥१२६॥ धीरे-धीरे मतवाले हाथी की भाँति प्राण को वश में करना चाहिए, अन्यथा महान् भयंकर रोग हो जाते हैं ॥१२७॥ शुद्धहृदय योगी क्रमशः वायु को वश में करे। ऐसा करने से वह सब पापों से मुक्त होकर ब्रह्मपद को प्राप्त करता है ॥१२८॥

विषयों की ओर झुकी हुई इन्द्रियों को उधर से हटाकर अपने वश में करना प्रत्याहार कहा जाता है ॥१२९॥ द्विज! जितेन्द्रिय महात्मा ध्यानशून्य रहने पर भी परम ब्रह्म पद को प्राप्त करते हैं जहाँ से पुनरागमन नहीं होता ॥१३०॥ जो इन्द्रियों पर विना अधिकार किये ध्यान परायण होता है उसको मूढात्मा (पाखण्डी) समझना चाहिए और उसका ध्यान कभी भी सफल नहीं होता ॥१३१॥

जो जो वस्तुयें दिखाई देती हैं उनको आत्मवत् देखे। सम्पूर्ण इन्द्रियों को विषयों से हटाकर अन्तःकरण में ही धारण करने को धारणा कहते हैं ॥१३२॥ योग के द्वारा इन्द्रियों को जीतकर हृदय में अच्युत, विश्वरूप, सब लोकों के एक कारण, सबके प्रतिपालक, परम आत्मा विष्णु का ध्यान करे। विकसित कमल के समान नेत्र

सर्वविश्वात्मकं विष्णुं सर्वलोकैककारणम् । विकसत्पद्मपत्राक्षं चारुकुण्डलभूषितम् ॥१३४॥
दीर्घबाहुमुदाराङ्गं सर्वालङ्कारभूषितम् । पीताम्बरधरं देवं हेमयज्ञोपवीतिनम् ॥१३५॥
बिभ्रतं तुलसीमालां कौस्तुभेन विराजितम् । श्रीवत्सवक्षसं देवं सुरासुरनमस्कृतम् ॥१३६॥
अष्टारे हृत्सरोजे तु द्वादशांगुलविस्तृते । ध्यायेदात्मानमव्यक्तं परात्परतरं विभुम् ॥१३७॥
ध्यानं सद्भिर्निगदितं प्रत्ययस्यैकतानता । ध्यानं कृत्वा मुहूर्तं वा परं मोक्षं लभेन्नरः ॥१३८॥
ध्यानात्पापानि नश्यन्ति ध्यानान्मोक्षं च विंदति । ध्यानात्प्रसीदति हरिर्ध्यानात्सर्वार्थसाधनम् ॥१३९॥
यद्यद्रूपं महाविष्णोस्तत्तद्ध्यायेत्समाहितम् । तेन ध्यानेन तुष्टात्मा हरिर्मोक्षं ददाति वै ॥१४०॥
अचञ्चलं मनः कुर्याद्ध्येयवस्तुनि सत्तम । ध्यानं ध्येयं ध्यातृभावं यथा नश्यति निर्भरम् ॥१४१॥
ततोऽमृतत्वं भवति ज्ञानामृतनिषेवणात् । भवेन्निरन्तरं ध्यानादभेदप्रतिपादनम् ॥१४२॥
सुषुप्तिवत्परानन्दयुक्तश्चोपरतेन्द्रियः । निर्वातदीपवत्संस्थः समाधिरभिधीयते ॥१४३॥
योगी समाध्यवस्थायां न शृणोति न पश्यति । न जिघ्रति न स्पृशति न किंचिद्वक्ति सत्तम ॥१४४॥
आत्मा तु निर्मलः शुद्धः सच्चिदानन्दविग्रहः । सर्वोपाधिविनिर्मुक्तो योगिनां भात्यचञ्चलः ॥१४५॥
निर्गुणोऽपि परो देवो ह्यज्ञानाद्गुणवानिव । विभात्यज्ञाननाशे तु यथापूर्वं व्यवस्थितम् ॥१४६॥
परं ज्योतिरमेयात्मा मायावानिव मायिनाम् । तन्नाशे निर्मलं ब्रह्म प्रकाशयति पंडित ॥१४७॥
एकमेवाद्वितीयं च परं ज्योतिर्निरंजनम् । सर्वेषामेव भूतानामंतर्यामितया स्थितम् ॥१४८॥

वाले, मनोहर कुण्डलों से विभूषित, दीर्घ भुजा वाले, उदार अंगों वाले, सब अलंकारों से अलंकृत, पीताम्बर-धारी सुवर्ण का यज्ञोपवीत धारण करने वाले, तुलसी माला को धारण किए हुए कौस्तुभमणि और श्रीवत्स से सुशोभित वक्षःस्थल वाले, सुर और असुरों से पूजित, अव्यक्त, परात्पर विभु विष्णु का बारह अंगुल विस्तृत और आठ पंखुड़ियों वाले हृदय-कमल में ध्यान करना चाहिए ॥१३३-१३७॥ सज्जनों ने प्रत्यय की एकतानता (ईश्वर में एकनिष्ठ हो जाने के भाव) को ही ध्यान कहा है । मनुष्य क्षण भर के ध्यान से भी पर मोक्ष को पा जाता है ॥१३८॥ ध्यान से पाप नष्ट होते और ध्यान से ही मोक्ष मिलता है । ध्यान से भगवान् प्रसन्न होते और ध्यान से सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं । महाविष्णु के जो जो रूप हैं उन उन रूपों को एकाग्र होकर ध्यान करना चाहिए । हरि इस प्रकार के ध्यान से प्रसन्न होकर मोक्ष प्रदान करते हैं ॥१३९-१४०॥ मुनिवर्य ! ध्येय वस्तु में अपने मन को स्थिर करना चाहिए । जब ध्यान, ध्येय और ध्यातृ-भाव का सर्वथा नाश हो जाता है तब उसके बाद ज्ञान रूपी अमृत के निरन्तर पान करने से अमृतत्व की प्राप्ति होती है । निरन्तर ध्यान से अभेद ज्ञान होता है ॥१४१-१४२॥ जब मनुष्य सुषुप्ति अवस्था के समान परानन्द युक्त हो इन्द्रिय व्यापारों से स्वतः विमुख हो जाता है और उसका मन निर्वात दीप के समान स्थिर हो जाता है तो उसकी उस अवस्था को समाधि कहते है ॥१४३॥ योगी समाधि अवस्था में कुछ भी सुनता नहीं है, देखता और सूंघता भी नहीं है, उसे स्पर्श ज्ञान भी नहीं रह जाता और न तो कुछ बोलता ही है । योगियों का अन्तः करण निर्मल और शुद्ध रहता है वे स्वयं सच्चिदानन्द स्वरूप और सर्वोपाधि से मुक्त हो पर्वत की भाँति अचल रहते हैं ॥ १४४-१४५॥ अज्ञानावस्था में पर देव निर्गुण होता हुआ भी गुणवान् के समान जान पड़ता है । वही अज्ञान नष्ट हो जाने पर अपने पूर्व रूप में ही दिखाई पड़ने लगता है ॥१४६॥ पंडित ! मायाबद्ध जीवों को अमेयात्मा परज्योति माया-बद्ध सा जान पड़ता है और वही मायामुक्त हो जाने पर निर्गुण पर ब्रह्म के रूप में दिखलाई पड़ने लगता है ॥१४७॥ परब्रह्म एक, अद्वितीय, परज्योति और निरंजन स्वरूप है जो कि सब प्राणियों का अन्तर्यामी

अणोरणीयान्महतो महीयान्सनातनात्माखिलविश्वहेतुः ।
पश्यंति यज्ज्ञानविदां वरिष्ठाः परात्परस्मात्परमं पवित्रम् ॥१४९॥
अकारादिक्षकरांतवर्णभेदव्यवस्थितः । पुराणपुरुषोऽनादिः शब्दब्रह्मेति गीयते ॥१५०॥
विशुद्धमक्षरं नित्यं पूर्णमाकाशमध्यगम् । आनन्दं निर्मलं शांतं परं ब्रह्मेति गीयते ॥१५१॥
योगिनो हृदि पश्यन्ति परात्मानं सनातनम् । अविकारमजं शुद्धं परं ब्रह्मेति गीयते ॥१५२॥
ध्यानमन्यत्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व मुनि सत्तम । संसारतापतप्तानां सुधावृष्टिसमं नृणाम् ॥१५३॥
नारायणं परानन्दं स्मरेत्प्रणवसंस्थितम् । नादरूपमनौपम्यमर्द्धमात्रोपरिस्थितम् ॥१५४॥
अकारं ब्रह्मणो रूपमुकारं विष्णुरूपवत् । मकारं रुद्ररूपं स्यादर्द्धमात्रं परात्मकम् ॥१५५॥
मात्रास्तिस्रः समाख्याता ब्रह्मविष्णुशिवाधिपाः । तेषां समुच्चयं विप्र परब्रह्मप्रबोधकम् ॥१५६॥
वाच्यं तु परमं ब्रह्म वाचकः प्रणवः स्मृतः । वाच्यवाचकसंबन्धो ह्युपचारात्तयोर्द्विज ॥१५७॥
जपन्तः प्रणवं नित्यं मुच्यन्ते सर्वपातकैः । तदभ्यासेन संयुक्ताः परं मोक्षं लभन्ति च ॥१५८॥
जपंश्च प्रणवं मन्त्रं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् । कोटिसूर्यसमं तेजो ध्यायेदात्मनि निर्मलम् ॥१५९॥
शालग्रामशिलारूपं प्रतिमारूपमेव वा । यद्यत्पापहरं वस्तुतत्तद्वा चिन्तयेद्धृदि ॥१६०॥
यदेतद्वैष्णवं ज्ञानं कथितं ते मुनीश्वर । एतद्विदित्वा योगीन्द्रो लभते मोक्षमुत्तमम् ॥१६१॥
यस्त्वेतच्छृणुयाद्वापि पठेद्वापि समाहितः । स सर्वपापनिर्मुक्तो हरिसालोक्यमाप्नुयात् ॥१६२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे योगनिरूपणं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

है ॥१४८॥ वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम और महान् से भी महत्तर है। सनातनात्मा और अखिलविश्व का एक मात्र कारण है, जिसको तत्त्वज्ञानियों मे श्रेष्ठ महात्मा परात्पर से भी परम पवित्र समझते हैं ॥१४९॥ वह पुराण पुरुष अनादि है और अकार के लेकर क्षकार तक वर्ण भेद के रूप में व्यवस्थित रह कर शब्द ब्रह्म के नाम से वर्णित होता है ॥१५०॥ उसको विशुद्ध, अक्षर, नित्य, पूर्ण, आकाशमध्यगामी, आनन्दमय, निर्मल, शान्त और परब्रह्म कहते हैं ॥१५१॥ उस परात्मा सनातन को योगी जन अपने हृदय में देखते हैं और उस पर ब्रह्म को अविकार, अज और शुद्ध कहते हैं ॥१५२॥

मुनिवर्य! अब मैं दूसरे प्रकार के ध्यान को कह रहा हूँ सुनो, जो इस संसार की ज्वाला में दग्ध मानवों के लिए अमृत वर्षा के समान है ॥१५३॥ परानन्द नारायण को अनुपम नाद रूप में, अर्द्ध मात्रा के ऊपर स्थित तथा प्रणव में स्थित रूप में स्मरण करना चाहिए ॥१५४॥ अकार ब्रह्मा का रूप है, उकार विष्णु का, मकार रुद्र का और अर्द्धमात्रा परब्रह्म का रूप है। ये तीनों मात्रायें ब्रह्मा, विष्णु और शिव देवता वाली कही जाती हैं। विप्र! इन तीनों का समुच्चय पर ब्रह्म का वाचक है ॥१५५-१५६॥ परब्रह्म वाच्य (अर्थ) और प्रणव वाचक (शब्द) है। द्विज! उनका यह वाच्य-वाचक संबन्ध केवल उपचार (आरोपित) मात्र है। वस्तुतः इन दोनों में अभेद संबन्ध है। नित्य प्रति प्रणव का जप करने से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और प्रणव साधना में लीन रहने वाले तो पर मोक्ष को प्राप्त करते हैं ॥१५७-१५८॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिवात्मक प्रणव मंत्र का जप करते समय कोटि सूर्य के समान प्रभाशाली तेज पुंज का ध्यान करना चाहिए। शालिग्राम शिला रूप, अथवा प्रतिमारूप अथवा जो जो पापों को दूर करने वाली वस्तुएँ हैं उनका हृदय में ध्यान करना चाहिए ॥१५९-१६०॥ मुनीश्वर! यह जो वैष्णव ज्ञान तुमसे मैंने कहा है, इसको जानकर योगीन्द्र उत्तम मोक्ष प्राप्त करते हैं। जो व्यक्ति एकाग्र होकर इस ज्ञान को सुनता है या स्वयं पढ़ता है, वह अपने सब पापों से मुक्त होकर हरि-सालोक्य मोक्ष को प्राप्त करता है ॥१६१-१६२॥

श्रीनारदीयमहापुराण में योग निरूपण नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

समाख्यातानि सर्वाणि योगाङ्गानि महामुने । इदानीमपि सर्वज्ञ यत्पृच्छामि तदुच्यताम् ॥१॥
योगो भक्तिमतामेव सिध्यतीति त्वयोदितम् । यस्य तुष्यति सर्वेशस्तस्य भक्तिश्च शाश्वतम् ॥२॥
यथा तुष्यति सर्वेशो देवदेवो जनार्दनः । तन्ममाख्याहि सर्वज्ञ मुने कारुण्यवारिधे ॥३॥

सनक उवाच

नारायणं परं देवं सच्चिदानन्दविग्रहम् । भज सर्वात्मना विप्र यदि मुक्तिमभीप्ससि ॥४॥
रिपवस्तं न हिंसन्ति न बाधंते ग्रहाश्च तम् । राक्षसाश्च न वेक्षन्ते नरं विष्णुपरायणम् ॥५॥
भक्तिर्दृढा भवेद्यस्य देवदेवे जनार्दने । श्रेयांसि तस्य सिध्यन्ति भक्तिमन्तोऽधिकास्ततः ॥६॥
पादौ तौ सफलौ पुंसां यौ विष्णुगृहगामिनौ । तौ करौ सफलौ ज्ञेयौ विष्णुपूजापरौ तु यौ ॥७॥
ते नेत्रे सुफले पुंसां पश्यतो ये जनार्दनम् । सा जिह्वा प्रोच्यते सद्भिर्हरिनामपरा तु या ॥८॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते । तत्त्वं गुरुसमं नास्ति न देवः केशवात्परः ॥९॥
सत्यं वच्मि हितं वच्मि सारं वच्मि पुनः पुनः । असारेऽस्मिस्तु संसारे सत्यं हरिसमर्चनम् ॥१०॥

अध्याय ३४

हरिभक्त के लक्षणों का निरूपण

नारद बोले--महामुनि ! आपने समस्त योगांगों का वर्णन कर दिया, सर्वज्ञ ! अब जो कुछ मैं पूछ रहा हूं उसको कहिए ॥१॥ आपने अभी कहा है कि, योग भक्तों को ही सिद्ध होता है और शाश्वत भक्ति उसी को प्राप्त होती है जिस पर सर्वेश प्रसन्न रहते हैं । सर्वज्ञ ! करुणा-सागर ! मुने ! अब देवाधिदेव जनार्दन कैसे प्रसन्न होते हैं, इसको आप कहिए ॥२-३॥

सनक बोले--विप्र ! यदि तुम मुक्ति चाहते हो तो सच्चिदानन्द स्वरूप, पर देव ब्रह्म का सब प्रकार से भजन करो ॥४॥ जो नर विष्णु में सर्वदा अपनी निष्ठा रखता है उसको शत्रु नहीं मार सकते, ग्रह-पीड़ा भी पास नहीं फटकती और राक्षस उसकी ओर आँख नहीं उठा सकते हैं ॥५॥ जिसकी देवाधिदेव जनार्दन में दृढ़ भक्ति हो जाती है उसको सब कल्याण प्राप्त होते हैं और वह अधिकाधिक भक्तिमान् हो जाता है ॥६॥ उस व्यक्ति के ही पैर सफल हैं जिनसे विष्णु मन्दिर में जाया जाता है, जो हाथ विष्णु की पूजा में लगे रहते हैं वे ही धन्य हैं । नेत्र वे ही कृतकृत्य हैं जो जनार्दन का दर्शन करते हैं । उसी जिह्वा की मनीषी लोग प्रशंसा करते हैं जो सर्वदा हरिनामोच्चारण में लगी रहती है ॥७-८॥ मैं दोनों हाथ उठाकर कह रहा हूँ कि यह सत्य है, सत्य है, सत्य है कि, गुरु के समान दूसरा कोई तत्त्व नहीं और न तो केशव से बढ़कर कोई देवता ही है ॥९॥ मैं सत्य कह रहा हूँ, श्रेय कह रहा हूँ और बार बार सार कह रहा हूँ कि, इस असार संसार

संसारपाशे सुदृढं महामोहप्रदायकम् । हरिभक्तिकुठारेण छित्त्वात्यन्तसुखी भव ॥११॥
तन्मनः संयुतं विष्णौ सा वाणी मत्परायणा । ते श्रोत्रे तत्कथासारपूरिते लोकवंदिते ॥१२॥
आनन्दमक्षरं शून्यमवस्थां त्रितयैरपि । आकाशमध्यगं देवं भज नारद संततम् ॥१३॥
स्थानं न शक्यते यस्य स्वरूपं वा कदाचन । निर्देष्टुं मुनिशार्दूल द्रष्टुं वाथ कृतात्मभिः ॥१४॥
समस्तैः करणैर्युक्तो वर्त्ततेऽसौ यदा तदा । जाग्रदित्युच्यते सद्भिरन्तर्यामी सनातनः ॥१५॥
यदान्तःकरणैर्युक्तः स्वेच्छया विलत्यसौ । स्वपन्नित्युच्यते ह्यात्मा यदा स्वापविवर्जितः ॥१६॥
न बाह्यकरणैर्युक्तो न चान्तःकरणैस्तथा । अस्वरूपो यदात्मासौ पुण्यापुण्यविवर्जितः ॥१७॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तो ह्यानंदो निर्गुणो विभुः । परब्रह्ममयो देवः सुषुप्त इति गीयते ॥१८॥
भावनामयमेतद्वै जगत्स्थावरजङ्गमम् । विद्युद्विलोलं विप्रेन्द्र भज तस्माज्जनार्दनम् ॥१९॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ । वर्तते यस्य तस्यैव तुष्यते जगतां पतिः ॥२०॥
सर्वभूतदयायुक्तो विप्रपूजापरायणः । तस्य तुष्टो जगन्नाथो मधुकैटभमर्द्दनः ॥२१॥
सत्कथायां च रमते सत्कथां च करोति यः । सत्सङ्गो निरहंकारस्तस्य प्रीतो रमापतिः ॥२२॥
नामसंकीर्त्तनं विष्णो क्षुत्तृट्प्रस्खलितादिषु । करोति सततं यस्तु तस्य प्रीतो ह्यधोक्षजः ॥२३॥
या तु नारी पतिप्राणा पतिपूजापरायणा । तस्यास्तुष्टो जगन्नाथो ददाति स्वपदं मुने ॥२४॥
असूयारहिता ये तु ह्यहंकारविवर्जिताः । देवपूजापराश्चैव तेषां तुष्यति केशवः ॥२५॥

में हरि पूजा ही सत्य है ॥१०॥ यह संसार का पाश अत्यन्त सुदृढ़ है और महामोह में डालने वाला है । इसलिए हरिभक्ति रूपी कुल्हाड़ी से इसको काटकर अत्यन्त सुखी हो जाओ ॥११॥ वही मन प्रशंसनीय है जो विष्णु में लगा रहता है, वही वाणी वाणी है जो प्रभु का गुणगान करती रहती है। वे ही कान धन्य है जो विष्णु के कथासार से भरे रहते हैं ॥१२॥ नारद ! तीनों अवस्थाओं (जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति) में आनन्द, अक्षर, शून्य और आकाश मध्यगामी देव (विष्णु) का सर्वदा भजन करो। मुनिशार्दूल ! उस ब्रह्म के स्थान, स्वरूप का निर्देश अवश्यात्मा जन कभी भी नहीं कर सकते हैं, (उनके लिए) दर्शन पाना तो दूर की वस्तु है ॥१३-१४॥ जिस समय सनातन अन्तर्यामी आत्मा समस्त इन्द्रियों से युक्त रहता है उस अवस्था को सज्जन जाग्रत कहते हैं ॥१५॥ जिस समय आत्मा अन्तःकरण के साथ इच्छा पूर्वक इधर उधर विचरता रहता है सोता नहीं उसको स्वप्नावस्था कहते हैं ॥१६॥ बाह्य और अन्तः करण से सर्वथा विमुक्त रहकर यह आत्मा जब अस्वरूप, पुण्यापुण्य से रहित हो जाता है तो उस अवस्था को सुषुप्ति कहते हैं। सब उपाधियों से मुक्त, आनन्द, निर्गुण, विभु, पर ब्रह्ममय देव ही सुषुप्त कहा जाता है ॥१७-१८॥ इसलिए हे विप्रेन्द्र ! यह स्थावर जंगमात्मक जगत् चंचला के समान चंचल है, इसलिए तुम अपनी भावना में सर्वदा ईश्वर का भजन करो ॥१९॥ जिसके पास अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह की निधि है उसी पर लोक-प्रभु प्रसन्न रहते हैं ॥२०॥ सब प्राणियों पर दया करने वाले, विप्र-पूजा परायण व्यक्ति पर मधु कैटभसंहारी विष्णु सर्वदा प्रसन्न रहते हैं ॥२१॥ जो सत्कथा में सर्वदा रमता रहता, सर्वदा सत्कथा को ही सुनता रहता और अहंकार रहित होकर सत्संगति से प्रेम करता है उसके ऊपर रमापति भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥२२॥

जो भूख, प्यास और वाक् स्खलन के समय भी विष्णु का नाम स्मरण करता है, उसके ऊपर भगवान् अधोक्षज प्रसन्न रहते हैं ॥२३॥ मुने ! जो नारी पतिव्रता और पतिपूजा परायण होती है, उस पर भगवान् प्रसन्न होकर परमपद दे देते है ॥२४॥ जो ईर्ष्या और अहंकार से दूर रह कर देव-पूजा में सर्वदा लगे रहते

तस्माच्छृणुष्व देवर्षे भजस्व सततं हरिम् । मा कुरुष्व ह्यहंकारं विद्युल्लोलश्रिया वृथा ॥२६॥
शरीरं मृत्युसंयुक्तं जीवितं चातिचञ्चलम् । राजादिभिर्धनं बाध्यं सम्पदः क्षणभंगुराः ॥२७॥
किं न पश्यसि देवर्षे ह्यायुषार्द्धं तु निद्रया । हृतं च भोजनाद्यैश्च कियदायुः समाहृतम् ॥२८॥
कियदायुर्बालभावाद्वृद्धभावात्कियद्वृथा । कियद्विषयभोगैश्च कदा धर्मान्करिष्यति ॥२९॥
बालभावे च वार्द्धक्ये न घटेताच्युतार्चनम् । वयस्येव ततो धर्मान्कुरु त्वमनहंकृतः ॥३०॥
मा विनाशं व्रज मुने मग्नः संसारगह्वरे । वपुर्विनाशनिलयमापदां परमं पदम् ॥३१॥
शरीरं भोगनिलयं मलाद्यैः परिदूषितम् । किमर्थं शाश्वतधिया कुर्यात्पापं नरो वृथा ॥३२॥
आसारभूते संसारे नानादुःखसमन्विते । विश्वासो नात्र कर्त्तव्यो निश्चितं मृत्युसंकुले ॥३३॥
तस्माच्छृणुष्व विप्रेन्द्र सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् । देहयोगनिवृत्त्यर्थं सद्य एव जनार्दनम् ॥३४॥
मानं त्यक्त्वा तथा लोभं कामक्रोधविवर्जितः । भजस्व सततं विष्णुं मानुष्यमतिदुर्लभम् ॥३५॥
कोटिजन्मसहस्रेषु स्थावरादिषु सत्तम । संभ्रांतस्य तु मानुष्यं कथंचित्परिलभ्यते ॥३६॥
तत्रापि देवताबुद्धिर्दानबुद्धिश्च सत्तम । भोगबुद्धिस्तथा नृणां जन्मान्तरतपःफलम् ॥३७॥
मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य यो हरिं नार्चयेत्सकृत् । मूर्खः कोऽस्ति परस्तस्माज्जडबुद्धिरचेतनः ॥३८॥
दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं नार्चयन्ति च ये हरिम् । तेषामतीव मूर्खाणां विवेकः कुत्र तिष्ठति ॥३९॥
आराधितो जगन्नाथो ददात्यभिमतं फलम् । कस्तं न पूजयेद्विप्रसंसाराग्निप्रदीपितः ॥४०॥

हैं उन पर केशव सदा प्रसन्न रहते हैं ॥२५॥ इसलिए, देवर्षिनारद ! सुनो, तुम सर्वदा हरि को भजो, विद्युत् के समान क्षणभंगुर सम्पत्ति को पाकर कभी भी अहंकार न करो ॥२६॥ यह शरीर सर्वदा मृत्यु से घिरा रहता है, जीवन अत्यन्त चंचल है, राजा आदि से प्राप्त धन और संपत्ति सब कुछ क्षणभंगुर है ॥२७॥ देवर्षि ! क्या यह नहीं देखते कि आयु का आधा भाग निद्रा में ही चला जाता है, भोजन आदि में आयु का कितना अंश बीत जाता है यह भी प्रत्यक्ष ही है ॥२८॥ शैशव और बुढ़ापे में कितना व्यर्थ समय बीत जाता है ? कितना अंश तो विषय भोग में ही नष्ट हो जाता है तो बताओ कब तुम धर्माचरण करोगे ? ॥२९॥ बचपन और बुढ़ापे में भगवान् की पूजा तो हो नहीं सकती, इसलिए तुम युवावस्था में ही धर्माचरण करो ॥३०॥ मुनिवर ! इस संसार-कुण्ड में मग्न होकर आत्मविनाश मत करो। यह शरीर विनाश का घर है और आपत्तियों का परम स्थान है ॥३१॥ यह शरीर विषय भोग का अड्डा है और मलमूत्र आदि से दूषित है। इसलिए मनुष्य व्यर्थ में इसको शाश्वत समझकर क्यों पाप करे ? ॥३२॥ इस असार, नाना दुःखों से भरे और मृत्यु पाश में बंधे हुए संसार का विश्वास नहीं करना चाहिए ॥३३॥ विप्रेन्द्र ! इसलिए सुनो, तुमसे यथार्थ बात बता रहा हूँ। इस जन्म मृत्यु से मुक्ति पाने के लिए तत्काल अहंकार और लोभ को छोड़कर कामक्रोध को दूर हटाकर जनार्दन विष्णु को सर्वदा भजो। मानव-जीवन सचमुच ही अत्यन्त दुर्लभ है ॥३४-३५॥ मुनिश्रेष्ठ ! स्थावरादि योनियों में करोड़ों जन्म तक भ्रमण करने के बाद कहीं किसी प्रकार मानव-जीवन प्राप्त होता है। इस जीवन में भी देवों में श्रद्धा, दान की प्रवृत्ति और भोगबुद्धि मनुष्यों को जन्मान्तर की तपस्या से प्राप्त होती है ॥३६-३७॥ जो दुर्लभ मनुष्य देह प्राप्त करके हरि की एक बार भी पूजा नहीं करता उससे बढ़कर जड़बुद्धि, चेतनाहीन और मूर्ख कौन होगा ? ॥३८॥ जो दुर्लभ मानव जीवन को पाकर हरि की पूजा नहीं करते उन प्रचण्ड मूर्खों का विवेक कहाँ रहता है ? ॥३९॥ पूजा द्वारा भगवान् जगन्नाथ संतुष्ट होकर मनुष्य को इष्ट फल प्रदान करते हैं, विप्र ! तो कौन ऐसा होगा जो संसार ज्वाला से दग्ध होकर भी भगवदाराधना करना नहीं चाहेगा ? ॥४०॥ मुनिश्रेष्ठ ! चाण्डाल

चंडालोऽपि मुनिश्रेष्ठ विष्णुभक्तो द्विजाधिकः । विष्णुभक्तिविहीनश्च द्विजोऽपि श्वपचाधमः ॥४१॥
तस्मात्कामादिकं त्यक्त्वा भजेत हरिमव्ययम् । यस्मिंस्तुष्टेऽखिलं तुष्येद्यतः सर्वगतो हरिः ॥४२॥
यथा हस्तिपदे सर्वं पदमात्रं प्रलीयते । तथा चराचरं विश्वं विष्णावेव प्रलीयते ॥४३॥
आकाशेन यथा व्याप्तं जगत्स्थावरजंगमम् । तथैव हरिणा व्याप्तं विश्वमेतच्चराचरम् ॥४४॥
जन्मनो मरणं नृणां जन्म वै मृत्युसाधनम् । उभे ते निकटे विद्धि तन्नाशं हरिसेवया ॥४५॥
ध्यातः स्मृतः पूजितो वा प्रणतो वा जनार्दनः । संसारपाशविच्छेदी कस्तं न प्रतिपूजयेत् ॥४६॥
यन्नामोच्चारणादेव महापातकनाशनम् । यं समभ्यर्च्य विप्रर्षे मोक्षभागी भवेन्नरः ॥४७॥
अहो चित्रमहो चित्रमहो चित्रमिदं द्विज । हरिनाम्नि स्थिते लोकः संसारे परिवर्त्तते ॥४८॥
भूयोभूयोऽपि वक्ष्यामि सत्यमेतत्तपोधन । नीयमानो यमभटैरशक्तो धर्मसाधनैः ॥४९॥
यावन्नेन्द्रियवैकल्यं यावद्व्याधिर्न बाधते । तावदेवार्चयेद्विष्णुं यदि मुक्तिमभीप्सति ॥५०॥
मातुर्गर्भाद्विनिष्क्रान्तो यदा जन्तुस्तदैव हि । मृत्युः संनिहितो भूयात्तस्माद्धर्मपरो भवेत् ॥५१॥
अहो कष्टमहो कष्टमहोकष्टमिदं वपुः । विनश्वरं समाज्ञाय धर्मं नैवाचरत्ययम् ॥५२॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते । दम्भाचारं परित्यज्य वासुदेवं समर्चयेत् ॥५३॥
भूयो भूयो हितं वच्मि भुजमुद्धृत्य नारद । विष्णुः सर्वात्मना पूज्यस्त्याज्यासूया तथानृतम् ॥५४॥
क्रोधमूलो मनस्तापः क्रोधः संसारबन्धनम् । धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥५५॥

भी यदि विष्णु भक्त है तो वह ब्राह्मणों से श्रेष्ठ है, विष्णु भक्ति के बिना ब्राह्मण श्वपच (चाण्डाल) से भी गया बीता है ॥४१॥ इन कामादि दोषों को छोड़कर अव्यय हरि का भजन करना चाहिए, जिसके प्रसन्न हो जाने पर सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं क्योंकि विष्णु तो सर्वदेवमय और व्यापक हैं ॥४२॥ जिस प्रकार हाथी के पैर में सब जन्तुओं के पैर विलीन हो जाते हैं अर्थात् बड़े होने के कारण उसके पदचिह्न में सब जन्तुओं के पद चिह्न समाविष्ट हो जाते हैं ॥४३॥ जिस प्रकार आकाश से सारा स्थावर जंगमात्मक जगत् व्याप्त है उसी प्रकार भगवान् से यह सचराचर जगत् व्याप्त है ॥४४॥ मनुष्यों का जन्म मृत्यु का और मृत्यु जन्म का साधन है। इन दोनों का निकटतम संबन्ध है। इस जन्म मृत्यु का नाश केवल हरि की सेवा से ही हो सकता है ॥४५॥ जनार्दन के ध्यान, स्मरण, पूजा और वन्दना से संसार बन्धन से छुटकारा अवश्य मिल जाता है। इसलिए कौन ऐसा अभागा होगा जो उसकी पूजा नहीं करेगा ? जिसके नामोच्चारण मात्र से महापातक नष्ट हो जाते हैं, विप्रर्षि ! जिसकी अर्चना करने से मनुष्य मोक्षभागी होता है उसकी पूजा मनुष्य क्यों न करे ॥४६-४७॥ द्विज ! यह आश्चर्य की बात है, अत्यन्त आश्चर्य है कि हरिनाम के रहते हुए भी मनुष्य संसार सागर में डूबता रहता है। तपोधन ! यह मैं बार-बार जोर देकर कहा रहा हूँ यह सत्य है कि धर्म साधन से हीन प्राणी यम दूतों द्वारा ले जाया जाता है ॥४८-४९॥ जब तक इन्द्रियाँ शिथिल नहीं है, जब तक शरीर रोग ग्रस्त नहीं है तब तक ही मोक्षाभिलाषी मनुष्य विष्णु की पूजा कर ले ॥५०॥ ज्यों ही जीव माता के गर्भ से बाहर आता है त्योंही मृत्यु उसके पीछे लग जाती है इसलिए सर्वदा धर्म तत्पर रहना चाहिए ॥५१॥ यह अत्यन्त खेद का विषय है कि इस शरीर को नश्वर समझकर भी मनुष्य धर्माचरण नहीं करता है ॥५२॥ मैं भुजा उठाकर यह घोषणा करता हूँ कि मनुष्य दंभाचार को छोड़ कर वासुदेव की पूजा करे यह एक चिर सत्य सिद्धान्त है ॥५३॥ नारद ! मैं भुजा उठाकर बार बार इस हितकर वचन को कह रहा हूँ कि विष्णु की सर्वतोभावेन पूजा करनी चाहिए, असूया और असत्य को पास नहीं फटकने देना चाहिए ॥५४॥ क्रोध से मनः सन्ताप होता है और क्रोध ही संसार-बन्धन का कारण है। क्रोध से ही धर्म क्षय भी होता है, काम इस जन्म का कारण है और काम ही पाप का कारण है। यश को नष्ट करने वाला भी काम

काममूलमिदं जन्म कामः पापस्य कारणम् । यशः क्षयकरः कामस्तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥५६॥
समस्तदुःखजालानां मात्सर्यं कारणं स्मृतम् । नरकाणां साधनं च तस्मात्तदपि संत्यजेत् ॥५७॥
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । तस्मात्तदभिसंयोज्य परात्मनि सुखी भवेत् ॥५८॥
अहो धैर्यमहो धैर्यमहो धैर्यमहो नृणाम् । विष्णौ स्थिते जगन्नाथे न भजंति मदोद्धता ॥५९॥
अनाराध्य जगन्नाथं सर्वधातारमच्युतम् । संसारसागरे मग्नाः कथं पारं प्रयांति हि ॥६०॥
अच्युतानंदगोविंदनामोच्चारणभेषजात् । नश्यंति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥६१॥
नारायण जगन्नाथ वासुदेव जनार्द्दन । इतीरयन्ति ये नित्यं ते वै सर्वत्र वन्दिताः ॥६२॥
अद्यापि च मुनिश्रेष्ठ ब्रह्माद्या अपि देवताः । यत्प्रभावं न जानन्ति तं याहि शरणं मुने ॥६३॥
अहो मौर्ख्यमहो मौर्ख्यमहो मौर्ख्यं दुरात्मनाम् । हृत्पद्मसंस्थितं विष्णुं न विजानन्ति नारद ॥६४॥
शृणुष्व मुनिशार्दूल भूयो भूयो वदाम्यहम् । हरिः श्रद्धावतां तुष्येन्न धनैर्न च बान्धवैः ॥६५॥
बन्धुमत्त्वं धनाढ्यत्वं पुत्रवत्त्वं च सत्तम । विष्णुभक्तिमतां नृणां भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥६६॥
पापमूलमयं देहः पापकर्मरतस्तथा । एतद्विदित्वा सततं पूजनीयो जनार्द्दनः ॥६७॥
पुत्रमित्रकलत्राद्या बहवः स्युश्च संपदः । हरिपूजारतानां तु भवत्येव न संशयः ॥६८॥
इहामुत्र सुखप्रेप्सुः पूजयेत्सततं हरिम् । इहामुत्रासुखप्रेप्सुः परनिन्दापरो भवेत् ॥६९॥
धिग्जन्म भक्तिहीनानां देवदेवे जनार्द्दने । सत्पात्रदानशून्यं यत्तद्धनं धिक्पुनः पुनः ॥७०॥
न नमेद्विष्णवे यस्य शरीरं कर्मभेदिने । पापानामाकरं तद्वै विज्ञेयं मुनिसत्तम ॥७१॥

ही है, इसलिए काम को कभी भी पास न आने दो ॥५५-५६॥ मात्सर्य समस्त दुःख-समूह का एक मात्र कारण है। यही नरकों की ओर भी ले जाने वाला है। इसलिए इसको भी छोड़ दो ॥५७॥ मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है इसलिए इसको परमात्मा में लगा कर सुखी होना चाहिए ॥५८॥ अहो ! यह मनुष्यों की आश्चर्य जनक जड़ता या धीरता है कि जगत्पति विष्णु के रहते हुए भी मनुष्य मदोद्धत होकर उनका भजन नहीं करते ॥५९॥ सबके पालक जगन्नाथ की आराधना के बिना संसार-सागर में डूबे हुए मनुष्य कैसे भवसागर के पार जा सकते हैं ? ॥६०॥ यह सत्य कह रहा हूँ, सत्य कह रहा हूँ कि अच्युतानन्द, गोविन्दनामोच्चारण रूपी ओषधि से ही संसार के सब रोग नष्ट होते हैं ॥६१॥ नारायण, जगन्नाथ, वासुदेव, जनार्दन आदि नामों का जो उच्चारण करते हैं वे सर्वत्र सम्मानित होते हैं ॥६२॥ मुनिश्रेष्ठ ! आजतक ब्रह्मा आदि देवता जिसके प्रभाव को नहीं जानते हैं, मुने ! उसी की शरण में जाओ ॥६३॥ नारद ! दुष्टों की यह कितनी बड़ी मूर्खता है कि हृदय रूपी कमल में स्थित विष्णु को वे नहीं जानते ॥६४॥ मुनिशार्दूल ! सुनो, मैं यह बार बार कह रहा हूँ कि भगवान् श्रद्धालु भक्तों पर ही प्रसन्न होते हैं धन और बड़े परिवार वाले मनुष्य पर नहीं ॥६५॥ सज्जनाग्रणी ! विष्णु-भक्तों को जन्म जन्मान्तर में कुटुम्ब, धन, पुत्र आदि प्राप्त होते हैं ॥६६॥ यह मानव शरीर पापों का मूल है और इसके द्वारा सर्वदा पाप कर्मों में अभिरुचि बनी रहती है, यह जानकर जनार्दन की सर्वदा पूजा करनी चाहिए ॥६७॥ पुत्र, मित्र, कलत्र आदि और बहुत प्रकार की संपत्तियाँ हरिपूजापरायण व्यक्तियों को अवश्य प्राप्त होती हैं ॥६८॥ लोक, परलोक सर्वत्र सुख चाहने वाला व्यक्ति हरि की सर्वदा पूजा करे और कष्ट चाहने वाला दूसरों की निन्दा किया करे ॥६९॥ देवाधिदेव जनार्दन की भक्ति न करने वाले व्यक्ति के जीवन को धिक्कार है और सत्पात्र को दान न देने वाले के धन को बार बार धिक्कार है ॥७०॥ मुनिश्रेष्ठ ! कर्म बन्धन से छुटकारा दिलाने वाले विष्णु के सामने जिसका शरीर नहीं झुका उसको पापों की खान समझना चाहिए ॥७१॥

सत्पात्रदानरहितं यद्द्रव्यं येन रक्षितम् । चौर्येण रक्षितमिव विद्धि लोकेषु निश्चितम् ॥७२॥
तडिल्लोलश्रिया मत्ताः क्षणभंगुरशालिनः । नाराधयंति विश्वेशं पशुपालविमोचकम् ॥७३॥
सृष्टिस्तु द्विविधा प्रोक्ता दैवासुरविभेदतः । हरिभक्तियुता दैवी तद्धीनाह्यासुरी मता ॥७४॥
तस्माच्छृणुष्व विप्रेंद्र हरिभक्तपरायणाः । श्रेष्ठाः सर्वत्र विख्याता यतो भक्तिः सुदुर्लभा ॥७५॥
असूयारहिता ये च विप्रत्राणपरायणाः । कामादिरहिता ये च तेषां तुष्यति केशवः ॥७६॥
संमार्जनादिना ये तु विष्णुशुश्रूषणे रताः । सत्पात्रदाननिरताः प्रयांति परमं पदम् ॥७७॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे हरिभक्तिलक्षणं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

सनक उवाच

पुनर्वक्ष्यामि माहात्म्यं देवदेवस्य चक्रिणः । पठतां शृण्वतां सद्यः पापराशिः प्रणश्यति ॥१॥
शांता जितारिषड्वर्गा योगेनाप्यनहंकृताः । यजंति ज्ञानयोगेन ज्ञानरूपिणमव्ययम् ॥२॥
तीर्थस्नानैर्विशुद्धा ये व्रतदानतपोमखैः । यजंति कर्मयोगेन सर्वधातारमच्युतम् ॥३॥

दान न देकर जिस द्रव्य को सुरक्षित रखा गया उसको संसार में चोर की कमाई हुई और उसके द्वारा रक्षित संपत्ति समझना चाहिए ॥७२॥

बिजली के समान चंचल शोभा वाली लक्ष्मी को पाकर मदमत्त हो जाने वाले मरणशील प्राणी पशु आदि योनियों से मुक्त करने वाले विश्वेश की आराधना नहीं करते हैं, यह एक दुर्भाग्य की बात है ॥७३॥ दैव और आसुर भेद से सृष्टि दो प्रकार की होती है। हरि भक्ति से युक्त सृष्टि दैवी और इससे शून्य सृष्टि आसुरी मानी जाती है ॥७४॥ विप्रेन्द्र ! इसलिए सुनो, हरिभक्तिपरायण मनुष्य सर्वत्र आदर पाते हैं; क्योंकि भक्ति संसार में अत्यन्त दुर्लभ पदार्थ है ॥७५॥ जो ईर्ष्या द्वेष से दूर रहते, और सदा ब्राह्मणों को रक्षा करने के लिए प्रस्तुत रहते हैं और काम आदि दोषों से अलग रहते हैं उनसे केशव सदा प्रसन्न रहते हैं ॥७६॥ जो मन्दिर की झाड़ू आदि से सफाई कर भगवान् को सेवा किया करते हैं और सत्पात्रों को दान दिया करते हैं, वे परम पद को प्राप्त करते हैं ॥७७॥

श्रीनारदीयमहापुराण में हरिभक्तिलक्षणवर्णन नामक चौतीसवां अध्याय समाप्त ॥३४॥

अध्याय ३५

ज्ञान का निरूपण

सनक बोले—अब इसके बाद फिर मैं देवों के देव भगवान् विष्णु का माहात्म्य कह रहा हूं जिसको सुनने और पढ़ने से शीघ्र ही पाप-समूह नष्ट हो जाता है ॥१॥ शान्त, काम, क्रोध आदि छह शत्रुओं को जीतने वाले और योग के द्वारा अहंकार पर विजय पाने वाले महापुरुष ज्ञान योग के द्वारा ज्ञान रूप अव्यय परमात्मा की आराधना करते हैं ॥२॥ जिनका तीर्थ, स्नान, व्रत, दान, तपस्या और यज्ञों से अन्तःकरण विशुद्ध है वे कर्मयोग से निखिल भुवन पालक भगवान् की आराधना करते हैं ॥३॥

लुब्धा व्यसनिनोऽज्ञाश्च न यजंति जगत्पतिम् । अजरामरवन्मूढास्तिष्ठंति नरकीटकाः ॥४॥
तडिल्लेखाश्रिया मत्ता वृथाहंकारदूषिताः । न यजंति जगन्नाथं सर्वश्रेयोविधायकम् ॥५॥
हरिधर्मरताः शांता हरिपादाब्जसेवकाः । दैवात्केऽपीह जायंते लोकानुग्रहतत्पराः ॥६॥
कर्मणा मनसा वाचा यो यजेद्भक्तितो हरिम् । स याति परमं स्थानं सर्वलोकोत्तमोत्तमम् ॥७॥
अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥८॥
तत्प्रवक्ष्यामि चरितं यज्ञमालिसुमालिनोः । यस्य श्रवणमात्रेण वाजिमेधफलं लभेत् ॥९॥
कश्चिदासीत्पुरा विप्र ब्राह्मणो रैवतेंऽतरे । वेदमालिरिति ख्यातो वेदवेदांगपारगः ॥१०॥
सर्वभूतदयायुक्तो हरिपूजापरायणः । पुत्रमित्रकलत्रार्थं धनार्जनपरोऽभवत् ॥११॥
अपण्यविक्रयं चक्रे तथा च रसविक्रयम् । चंडालाद्यैरपि तथा संभाषी तत्प्रतिग्रही ॥१२॥
तपसां विक्रयं चक्रे व्रतानां विक्रयं तथा । परार्थं तीर्थगमनं कलत्रार्थमकारयत् ॥१३॥
कालेन गच्छता विप्र जातौ तस्य सुतावुभौ । यज्ञमाली सुमाली च यमलावतिशोभनौ ॥१४॥
ततः पिता कुमारौ तावतिस्नेहसमन्वितः । पोषयामास वात्सल्याद्बहुभिः साधनैस्तदा ॥१५॥
वेदमालिर्बहूपायैर्धनं संपाद्य यत्नतः । स्वधनं गणयामास कियत्स्यादिति वेदितुम् ॥१६॥
निधिकोटिसहस्राणां कोटिकोटिगुणान्वितम् । विगणय्य स्वयं हृष्टो विस्मितश्चार्थचिंतया ॥१७॥

लोभी, व्यसनप्रिय और अज्ञानी जगत्पति की पूजा नहीं करते । ऐसे नरपशु उलटे अपने को अजर-अमर समझकर जड़ की भाँति पड़े रहते हैं । विद्युल्लेखा के समान चंचल लक्ष्मी से मतवाले और व्यर्थ अहंकार से दूषित लोग सर्वकल्याणकारी संसार के स्वामी भगवान् की पूजा नहीं करते हैं ।।४।। भगवान् की कृपा से ही वैष्णव, शान्त, भगवान्, के चरण कमल की सेवा करने वाले, तथा लोककल्याणकारी कुछ महापुरुष इस लोक में जन्म लेते है ।।५-६।। जो मन, वचन और कर्म से भगवान् हरि की उपासना करते हैं वे सब लोकों से श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करते हैं ।।७।। इस विषय में एक पुरातन इतिहास को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिसके पठन और श्रवण से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। मैं उस यज्ञमाली और सुमाली के चरित्र को सुना रहा हूँ जिसके सुनने से ही अश्वमेध का फल प्राप्त हो जाता है ।।८-९।। विप्र ! बहुत दिनों की बात है, रैवत प्रदेश में एक ब्राह्मण रहता था । उसका नाम वेदमालि था जो वेद-वेदांगों का पारगामी विद्वान् था । वह हरि-पूजा का प्रेमी और सब प्राणियों पर दया करने वाला व्यक्ति था । कुछ समय के बाद वह पुत्र, मित्र और स्त्री के पालन के लिए धन कमाने के फेर में पड़ा ।।१०-११।। अपने कुल-धर्म की ओर ध्यान न देकर उसने निषिद्ध वस्तुओं और रस (मद्य) को बेचा । लोभ में पड़कर चाण्डाल आदि से बात-चीत करता और उनसे दान भी लेता था । पैसे के लिए दूसरे के निमित्त तीर्थ यात्रा भी करता था ।।१२-१३।। विप्र ! कुछ समय बीतने पर उसको यज्ञमाली और सुमाली नामक दो अत्यन्त सुन्दर जुड़वां पुत्र उत्पन्न हुए । तन्दनन्तर वेदमाली ने उन दोनों पुत्रों को बड़े प्यार से प्रत्येक सम्भवसाधनों से पालन पोषण किया ।।१४-१५।। उसने बड़े परिश्रम से अनेकों उपायों से धन कमाया । एक दिन वह अपनी उपार्जित सम्पति का ठीक ठीक परिमाण जानने के लिए अपने धन को गिनने लगा । हजारों करोड़ों की संख्या में अपनी संपत्ति को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और फिर भी अर्थलोभ की ओर अपने मन को खिचाव देखकर विस्मित होकर सोचने लगा ।।१६-१७।।

असत्प्रतिग्रहैश्चैव अपण्यानां च विक्रयैः । मया तपो विक्रयाद्यैरेतद्धनमुपार्जितम् ॥१८॥
नाद्यापि शांतिमापन्ना मम तृष्णातिदुःसहा । मेरुतुल्यसुवर्णानि ह्यसंख्यातानि वांछति ॥१९॥
अहो मन्ये महाकष्टं समस्तक्लेशसाधनम् । सर्वान्कामानवाप्नोति पुनरन्यच्च कांक्षति ॥२०॥
जीर्यंति जीर्यतः केशा दंता जीर्यंति जीर्यतः । चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका तरुणायते ॥२१॥
ममेंद्रियाणि सर्वाणि मंदभावं व्रजंति च । बलं हृतं च जरसा तृष्णा तरुणतां गता ॥२२॥
कष्टाशा वर्त्तते यस्य स विद्वानथ पंडितः । सुशांतोऽपि प्रमन्युः स्याद्धीमानप्यतिमूढधीः ॥२३॥
आशा भंगकरी पुंसामजेयारातिसन्निभा । तस्मादाशां त्यजेत्प्राज्ञो यदीच्छेच्छाश्वतं सुखम् ॥२४॥
बलं तेजो यशश्चैव विद्यां मानं च वृद्धताम् । तथैव सत्कुले जन्म आशा हंत्यतिवेगतः ॥२५॥
नृणामाशाभिभूतानामाश्चर्यमिदमुच्यते । किंचिद्दातापि चांडालस्तस्मादधिकतां गतः ॥२६॥
आशाभिभूता ये मर्त्या महामोहा महोद्धताः । अवमानादिकं दुःखं न जानंति कदाप्यहो ॥२७॥
मयाप्येवं बहुक्लेशैरेतद्धनमुपार्जितम् । शरीरमपि जीर्णं च जरसापहृतं बलम् ॥२८॥
इतः परं यतिष्यामि परलोकार्थमादरात् । एवं निश्चित्य विप्रेंद्र धर्ममार्गरतोऽभवत् ॥२९॥
तदैव तद्धनं सर्वं चतुर्द्धा व्यभजत्तथा । स्वयं तु भागद्वितयं स्वार्जितार्थादपाहरत् ॥३०॥
शेषं च भागद्वितयं पुत्रयोरुभयोर्ददौ । स्वेनार्जितानां पापानां नाशं कर्तुमनास्तदा ॥३१॥
प्रपातडागारामांश्च तथा देवगृहान्बहून् । अन्नादीनां च दानानि गंगातीरे चकार सः ॥३२॥

"आश्चर्य है कि मैंने असत् पात्रों से दान लिया, निषिद्ध वस्तुओं को बेंचा और अपनी तपस्या को बेंचा। इसप्रकार मैंने इतनी संपत्ति प्राप्त की। परन्तु अब तक मुझको शान्ति नहीं मिली प्रत्युत दिनानुदिन दुःसह तृष्णा होती जाती है। सुमेरु के बराबर असंख्य सुवर्ण राशि की इच्छा होती है ॥१८-१९॥ अहो! यह बड़े कष्ट की बात है और समस्त दुःखों का यही एक मात्र कारण है कि मनुष्य ज्यों-ज्यों अपने मनोरथों को पाता जाता है त्यों-त्यों नई-नई आकांक्षायें बढ़ती जाती हैं। बुढ़ापे में बाल सफेद हो जाते, दांत टूट जाते, आँखें और कान भी जवाब दे देते हैं परन्तु केवल एक तृष्णा ही तरुण होती जाती है, अर्थात् बुढ़ापे में सब अंग तो शिथिल हो जाते पर तृष्णा बढ़ती ही जाती है ॥२०-२१॥ मेरी सब इन्द्रियाँ तो धीरे-धीरे शिथिल हो रही हैं, बुढ़ापे के कारण शक्ति भी नहीं रह गई परन्तु केवल तृष्णा नवीन होती जा रही है जिसको यह कष्ट दायिनी आशा (तृष्णा) हो जाती है चाहे वह विद्वान् हो, पंडित हो, परमधीर हो परन्तु वह भी क्रोधी हो जाता है, बुद्धिमान् भी इसके आगे मूढ़ हो जाता है ॥२२-२३॥ आशा पुरुषों को विनष्ट करने वाली है, अजेय है और शत्रु के समा नघातक है; इसलिए शाश्वत सुख की इच्छा करने वाले मनस्वी जन यदि अपना कल्याण चाहते हों तो तृष्णा को अवश्य छोड़ दें ॥२४॥ बल, तेज, यश, विद्या, गर्व, वृद्धता और उसी प्रकार कुलीनता आदि को आशा शीघ्र नष्ट कर देती है ॥२५॥ आशा के बन्धन में बँधे मनुष्यों की स्थिति देखकर आश्चर्य के साथ कहना पड़ता है कि थोड़ा धन दान करने वाले चाण्डाल से दान लेकर उन्होंने अपने को चाण्डाल से भी हीन बना दिया ॥२६॥ जो मनुष्य आशा से अभिभूत, महामोह में पड़े मदोद्धत हैं वे अपमान आदि के दुःखों को कभी भी नहीं जानते हैं ॥२७॥ मैंने इसी प्रकार अत्यन्त कष्ट सहकर इतनी प्रचुर संपत्ति कमाई है, इसी कार्य में शरीर भी जीर्ण हो गया, बुढ़ापे से सारी शक्ति भी नष्ट हो गई ॥२८॥ अब इसके बाद मैं अवश्य श्रद्धापूर्वक परलोक-कल्याण के लिए प्रयत्न करूँगा। विप्रेन्द्र! ऐसा निश्चय कर वह धर्म-कार्यों में लग गया ॥२९॥ उसी समय उसने अपने धन को चार भागों में बाँटा। अपनी अर्जित संपत्ति में से दो भाग स्वयं लिये और शेष दो भाग अपने दोनों पुत्रों को दे दिये। अपने किये हुए पापों को नष्ट करने के उद्देश्य से उसने बहुत स्थानों पर प्याऊ बैठाए, धर्मशालायें, उपवन और देवमन्दिर बनवाये,

एवं धनमशेषं च विश्राण्य हरिभक्तिमान् । नरनारायणस्थानं जगाम तपसे वनम् ॥३३॥
तत्रापश्यन्महारम्यमाश्रमं मुनिसेवितम् । फलितैः पुष्पितैश्चैव शोभितं वृक्षसंचयैः ॥३४॥
गृणद्भिः परमं ब्रह्म शास्त्रचिंतापरैस्तथा । परिचर्यापरैर्वृद्धैर्मतिभिः परिशोभितम् ॥३५॥
शिष्यैः परिवृतं तत्र मुनिं जानंति संज्ञकम् । गृणंतं परमं ब्रह्म तेजोराशिं ददर्श ह ॥३६॥
शमादिगुणसंयुक्तं रागादिरहितं मुनिम् । शीर्णपर्णाशनं दृष्ट्वा वेदमालिर्ननाम तम् ॥३७॥
तस्य जानन्तिरागंतोः कल्पयामास चार्हणम् । कंदमूलफलाद्यैस्तु नारायणधिया मुने ॥३८॥
कृतातिथ्यक्रियस्तेन वेदमाली कृतांजलिः । विनयावनतो भूत्वा प्रोवाच वदतां वरम् ॥३९॥
भगवन्कृतकृत्योऽस्मि विगते कल्मषं मम । मामुद्धर महाभाग ज्ञानदानेन पंडित ॥४०॥
एवमुक्तस्ततस्तेन जानतिर्मुनिसत्तमः । प्रोवाच प्रहसन्वाग्मी वेदमालिं गुणान्वितम् ॥४१॥
शृणुष्व विप्रशार्दूल संसारच्छेदकारणम् । प्रवक्ष्यामि समासेन दुर्लभं त्वकृतात्मनाम् ॥४२॥
भज विष्णुं परं नित्यं स्मर नारायणं प्रभुम् । परापवादं पैशुन्यं कदाचिदपि मा कृथाः ॥४३॥
परोपकारनिरतः सदा भव महामते । हरिपूजाकरश्चैव त्यज मूर्खसमागमम् ॥४४॥
कामं क्रोधं च लोभं च मोहं च मदमत्सरौ । परित्यज्यात्मवल्लोकं दृष्ट्वा शांतिं गमिष्यसि ॥४५॥
असूयां परनिन्दां च कदाचिदपि मा कुरु । दंभाचारमहंकारं नैष्ठुर्यं च परित्यज ॥४६॥
दयां कुरुष्व भूतेषु शुश्रूषां च तथा सताम् । त्वया कृतांश्च धर्मान्वै मा प्रकाशय पृच्छताम् ॥४७॥

गंगा के तट पर अन्नदान की व्यवस्था की ॥३०-३२॥ इस प्रकार अपना सारा धन हरिभक्तों को बाँट दिया और स्वयं नरनारायण के स्थान की ओर (बदरिकाश्रम) में तपस्या करने के लिए चला गया ॥३३॥ वहाँ वन में जाकर उसने मुनियों से सुशोभित अत्यन्त रमणीय आश्रम को देखा, जो फलफूलों से लदे हुए मनोहर वृक्षों से और अधिक रम्य जान पड़ता था ॥३४॥ उस आश्रम में परम ब्रह्म के गुणगान में निरत, शास्त्र चिन्तन में तल्लीन, भगवदाराधना में बेसुध वृद्ध तपस्वी मुनियों और शिष्यों से घिरे हुए जानंति नामक मुनि को देखा जिनकी सभी सेवा कर रहे थे। और जो स्वयं परम ब्रह्म का नाम जप करते हुए तेज पुंज के समान थे ॥३५-३६॥ हे मुनि ! शम आदि गुणों से युक्त, रागमुक्त और केवल सूखी पत्तियों को खाकर ही जीवन बिताने वाले उस मुनि को देखकर वेदमालि ने उन्हें प्रणाम किया और जानन्ति ने भी उस अतिथि वेदमाली का नारायण-भाव से कन्द मूल फल आदि के द्वारा सत्कार किया। वेदमाली मुनि का आतिथ्य स्वीकार करने के पश्चात् हाथ जोड़कर विनम्र भाव से उस वाग्मी शिरोमणि मुनि से बोला ॥३७-३९॥

भगवन् ! मैं कृतकृत्य हो गया, आपके दर्शन से मेरे सारे पाप दूर हो गए। पंडित ! महाभाग ! अब आप ज्ञान की दीक्षा देकर मेरा उद्धार कीजिए ॥४०॥ वेदमाली की इतनी बातें सुनकर वाग्मी मुनिवर हँस पड़े और उन्होने उस गुणी अतिथि से कहा—॥४१॥

विप्रशार्दूल ! सुनो मैं भव बन्धन से मुक्त करने वाले उस ज्ञान को संक्षेप में सुना रहा हूँ, जो अविवेकियों के लिए सर्वथा दुर्लभ है। विष्णु का नित्य प्रति भजन करो, प्रभु नारायण का स्मरण करो और परनिन्दा तथा पिशुनता कभी भी न करो ॥४२-४३॥ महामति ! सदा परोपकार में लगे रहो, हरि पूजा को ही ध्येय समझो और मूर्खों की संगति न करो ॥४४॥ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य को छोड़कर संसार को आत्मवत् समझो, ऐसे करने से तुम अवश्य शान्ति प्राप्त करोगे ॥४५॥ असूया और परनिन्दा कभी न करो। दंभ, अहंकार एवं निठुरता को छोड़ दो, प्राणियों पर दया करो, सज्जनों की सेवा करो और अपने किये हुए धर्मों को पूछने पर अपने मुँह से न कहो ॥४६-४७॥ अपने सामने अनाचार होते देखकर शक्ति

अनाचारपरान्दृष्ट्वा नोपेक्षां कुरु शक्तितः । पूजयस्वातिथिं नित्यं स्वकुटुंबाविरोधतः ॥४८॥
पत्रैः पुष्पैः फलैर्वापि दूर्वाभिः पल्लवैरथ । पूजयस्व जगन्नाथं नारायणमकामतः ॥४९॥
देवानृषीन्पितॄश्चापि तर्पयस्व यथाविधि । अग्नेश्च विधिवद्विप्र परिचर्यापरो भव ॥५०॥
देवतायतने नित्यं संमार्जनपरो भव । तथोपलेपनं चैव कुरुष्व सुसमाहितः ॥५१॥
शीर्णस्फटितसंधानं कुरु देवगृहे सदा । मार्गशोभां च दीपं च विष्णोरायतने कुरु ॥५२॥
कंदमूलफलैर्वापि सदा पूजय माधवम् । प्रदक्षिणनमस्कारैः स्तोत्राणां पठनैस्तथा ॥५३॥
पुराणश्रवणं चैव पुराणपठनं तथा । वेदांतपठनं चैव प्रत्यहं कुरु शक्तितः ॥५४॥
एवं स्थिते तव ज्ञानं भविष्यत्युत्तमोत्तमम् । ज्ञानात्समस्तपापानां मोक्षो भवति निश्चितम् ॥५५॥
एवं प्रबोधितस्तेन वेदमालिर्महामतिः । तथा ज्ञानरतो नित्यं ज्ञानलेशमवाप्तवान् ॥५६॥
वेदमालिः कदाचित्तु ज्ञानलेशप्रचोदितः । कोऽहं मम क्रिया केति स्वयमेव व्यचिंतयत् ॥५७॥
मम जन्म कथं जातं रूपं कीदृग्विधं मम । एवं विचारणपरो दिवानिशमतंद्रितः ॥५८॥
अनिश्चितमतिर्भूत्वा वेदमालिर्द्विजोत्तमः । पुनर्जानंतिमागम्य प्रणम्येदमुवाच ह ॥५९॥

वेदमालिरुवाच

ममचित्तमतिभ्रांतं गुरो ब्रह्मविदां वर । कोऽहं मम क्रिया का च मम जन्म कथं वद ॥६०॥

जानंतिरुवाच

सत्यं सत्यं महाभाग चित्तं भ्रांतं सुनिश्चितम् । अविद्यानिलयं चित्तं कथं सद्भावमेष्यति ॥६१॥

रहते उपेक्षा न करो। अपने कुटुम्ब को कुछ हानि किये बिना अतिथि की नित्य सेवा करो। निष्काम भाव से पत्र, पुष्प, फल, दूर्वा और पल्लव से विधिपूर्वक भगवान् की पूजा करो। विधिपूर्वक देव, ऋषि और पितरों का तर्पण करो। विप्र ! विधिवत् अग्नि की पूजा करो ।।४८-५०।। देवमन्दिर में जाकर नित्य प्रति झाड़ू लगाओ और एकाग्र होकर उसको लीपो-पोतो। सदा देवमन्दिर की दरार या जीर्ण भाग की मरम्मत करो, विष्णु-मन्दिर में दीपक जलाओ और वन्दनबार लगाकर द्वारों को सजाओ ।।५१-५२।। कन्दमूल, फल, प्रदक्षिणा नमस्कार, स्तुतिपाठ आदि से माधव की पूजा करो। प्रतिदिन शक्ति के अनुसार पुराण श्रवण, पुराण पाठ और वेदान्त का अध्ययन करना चाहिए। ऐसा करने पर तुमको परमोत्तम ज्ञान प्राप्त होगा और ज्ञान द्वारा समस्त पापों से मुक्ति मिल जाती है यह निश्चित है ।।५३-५५।।

मुनि से इस प्रकार का उपदेश पाकर महामति वेदमालि जो पहले अज्ञानान्धकार में ही डूबा रहता था, ज्ञान का एक हल्का सा प्रकाश पा गया। किसी समय वह अपने उसी स्वल्पज्ञान की प्रेरणा से, मैं कौन हूँ, मेरा कर्त्तव्य क्या है, आदि बातों पर विचार करने लगा ।।५६-५७।। (अनन्तर वह) प्रतिदिन आलस्य त्यागकर यही सोचा करता था कि 'मेरा जन्म कैसे हुआ, मेरा स्वरूप क्या है ? द्विजवर वेदमालि इन प्रश्नों का कोई निश्चित उत्तर न पाकर पुनः जानंति के पास आया और प्रणाम करके पूछा--।।५८-५९।।

वेदमालि ने पूछा—ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ! गुरुदेव ! मेरा कर्त्तव्य क्या है, मुझे सन्देह हो गया है कि मैं कौन हूँ, मेरा जन्म कैसे हुआ और आप कृपा करके इस सन्देह का निराकरण कीजिए ।।६०।।

जानन्ति बोले---महाभाग ! यह सत्य है, तुम्हारा चित्त भ्रम में पड़ गया यह निश्चित ही है। अज्ञान का स्थान चित्त भला कैसे सद्भाव प्राप्त करेगा ।।६१।। जो 'यह मेरा है' ऐसा कहा जाता है यह भी भ्रम है।

ममेति गदितुं यत्तु तदपि भ्रांतिरिष्यते । अहंकारो मनोधर्म आत्मनो नहि पंडित ॥६२॥
पुनश्च कोऽहमित्युक्तं वेदमाले त्वया तु यत् । मम जात्यादि शून्यस्य कथं नाम करोम्यहम् ॥६३॥
अनौपम्यस्वभावस्य निर्गुणस्य परात्मनः । नीरूपस्याप्रमेयस्य कथं नाम करोम्यहम् ॥६४॥
परज्योतिःस्वरूपस्य परिपूर्णाव्ययात्मनः । अविच्छिन्नस्वभावस्य कथ्यते च कथं क्रिया ॥६५॥
स्वप्रकाशात्मनो विप्र नित्यस्य परमात्मनः । अनंतस्य क्रिया चैव कथं जन्म च कथ्यते ॥६६॥
ज्ञानैकवेद्यमजरं परं ब्रह्म सनातनम् । परिपूर्णं परानंदं तस्मान्नान्यदिह द्विज ॥६७॥
तत्त्वमस्यादिवाक्येभ्यो ज्ञानं मोक्षस्य साधनम् । ज्ञाने त्वनाहते सिद्धे सर्वं ब्रह्ममयं भवेत् ॥६८॥
एवं प्रबोधितस्तेन वेदमालिर्मुनीश्वर । मुमोद पश्यन्नात्मानमात्मन्येवाच्युतं प्रभुम् ॥६९॥
उपाधिरहितं ब्रह्म स्वप्रकाशं निरंजनम् । अहमेवेति निश्चित्य परां शांतिमवाप्तवान् ॥७०॥
ततश्च व्यवहारार्थं वेदमालिर्मुनीश्वरम् । गुरुं प्रणम्य जानंति सदा ध्यानपरोऽभवत् ॥७१॥
गते बहुतिथे काले वेदमालिर्मुनीश्वर । वाराणसीपुरं प्राप्य परं मोक्षमवाप्तवान् ॥७२॥
य इमं पठतेऽध्यायं शृणुयाद्वा समाहितः । स कर्मपाशविच्छेदं प्राप्य सौख्यमवाप्नुयात् ॥७३॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे ज्ञाननिरूपणं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

पंडित ! अहंकार मन का धर्म है आत्मा का नहीं ॥६२॥ वेदमाले ! फिर तुमने जो यह पूछा है कि 'मैं कौन हूँ' तो जाति आदि से शून्य आत्मा का नामकरण मैं कैसे कर सकता हूँ ॥६३॥ अनुपम स्वभाव वाले, निर्गुण, नीरूप, अप्रमेय परात्मा का नाम मैं कैसे बताऊँ ॥६४॥ परज्योतिस्वरूप, परिपूर्ण, अव्ययात्मा, और अविच्छिन्न प्रकृति वाले आत्मा की क्रिया को कैसे बताया जाय ? ॥६५॥ विप्र ! स्वप्रकाशात्मा, नित्य और अनन्त परमात्मा के जन्म कर्म के विषय में कैसे कहा जा सकता है ॥६६॥ द्विज ! ज्ञान के द्वारा ही एक मात्र जानने योग्य, अजर, अमर, परिपूर्ण, परानन्द सनातन ब्रह्म के अतिरिक्त कोई भी पदार्थ इस संसार में नहीं है ॥६७॥ 'तत्त्वमसि' [तुम (आत्मा) वही ब्रह्म हो] इत्यादि वाक्यों से प्राप्त ज्ञान ही मोक्ष सिद्धि का प्रधान कारण है और इस नित्य ज्ञान के सिद्ध हो जाने पर सारा विश्व ब्रह्ममय दिखाई पड़ता है। मुनीश्वर ! इस प्रकार मुनि के ज्ञानोपदेश से उद्बुद्ध वेदमालि अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने अपने में ही उपाधिरहित, निर्गुण, निरंजन, स्वप्रकाश ब्रह्म को देखा और 'वह ब्रह्म मैं ही हूँ' ऐसा निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त कर उसको अत्यधिक शान्ति मिली ॥६८-७०॥ इसके अनन्तर व्यवहार निर्वाह के लिए गुरु मुनीश्वर को प्रणाम कर वह सदा ध्यानमग्न रहने लगा। मुनीश्वर ! बहुत समय बीत जाने पर वह वेदमाली वाराणसीपुरी में गया जहाँ से उसको पर मोक्ष प्राप्त हो गया। जो व्यक्ति ध्यानपूर्वक इस अध्याय को पढ़ता है या सुनता है, वह भी अपने कर्म बन्धन को तोड़कर परम सौख्य (मुक्ति) पाता है ॥७१-७३॥

श्रीनारदीय महापुराण में ज्ञान-निरूपण नामक पैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥३५॥

अथ षट्‌त्रिंशोऽध्यायः

सनक उवाच

वेदमालेः सुतौ प्रोक्तौ यावुभौ मुनिसत्तम । यज्ञमाली सुमाली च तयोः कर्माधुनोच्यते ॥१॥
तयोराद्यो यज्ञमाली विभेद पितृसंचितम् । धनं द्विधा कनिष्ठस्य भागमेकं ददौ तदा ॥२॥
सुमाली च धनं सर्वं व्यसनाभिरतः सदा । अपादानादिभिश्चैव नाशयामास भो द्विज ॥३॥
गीतवाद्यरतो नित्यं मद्यपानरतोऽभवत् । वेश्याविभ्रमलुब्धोऽसौ परदाररतोऽभवत् ॥४॥
सर्वस्मिन्नाशमायाते हिरण्ये पितृसंचिते । अपहृत्य परं द्रव्यं वारस्त्रीनिरतोऽभवत् ॥५॥
दृष्ट्वा सुमालिनः शीलं यज्ञमाली महामतिः । बभूव दुःखितोऽत्यर्थं भ्रातरं चेदमब्रवीत् ॥६॥
अलमत्यंतकष्टेन वृत्तेनास्मत्कुलेऽनुज । त्वमेक एव दुष्टात्मा महापापरतोऽभवः ॥७॥
एवं निवारयंतं तं बहुशो ज्येष्ठसोदरम् । हनिष्यामीति निश्चित्य खड्गहस्तः कचेऽग्रहीत् ॥८॥
ततो महारवो जज्ञे नगरे भृशदारुणः । बबंधुर्नागराश्चैनं कुपितास्ते सुमालिनम् ॥९॥
यज्ञमाली ह्यमेयात्मा पौरान्संप्रार्थ्य दुःखितः । बंधनान्मोचयामास भ्रातृस्नेहविमोहितः ॥१०॥
यज्ञमाली पुनश्चापि विभिदे स्वधनं द्विधा । आददे स्वयमर्द्धं च ददावर्द्धं यवीयसे ॥११॥
सुमाली त्वतिमूढात्मा तद्धनं चापि नारद । मूर्खैः पाखंडचंडालैर्बुभुजे च सहोद्धतः ॥१२॥
असतामुपभोगाय दुर्जनानां विभूतयः । पिचुमंदः फलाढ्योऽपि काकैरेवोपभुज्यते ॥१३॥

अध्याय ३६

यज्ञमाली और सुमाली को उत्तम लोक की प्राप्ति

सनक बोले--मुनिश्रेष्ठ ! वेदमालि के जिन यज्ञमाली और सुमाली नामक दो पुत्रों की चर्चा हुई है, अब इन दोनों के कर्मों के विषय में कह रहा हूँ ।।१।। उन दोनों में से ज्येष्ठ पुत्र यज्ञमाली ने पितृसंचित संपत्ति को दो भागों में बाँट दिया । उनमें से एक भाग कनिष्ठ भ्राता सुमाली को दे दिया ।।२।। द्विज, सर्वदा व्यसन में ही लगे रहने वाले सुमाली ने अपनी सारी संपत्ति व्यर्थ में लुटा दी । नित्य प्रति वह गाने बजाने में लगा रहता था । मदिरापान में निरत रहता था वेश्याओं के विलास में फँसने के कारण परस्त्री गमन भी करता था ।।३-४।। पिता के द्वारा संचित सब धन नष्ट हो जाने पर दूसरों का धन हरण कर वह वेश्यागमन में निरत रहने लगा ।।५।। सुमाली के इस स्वभाव को देखकर महामति यज्ञमाली अत्यन्त दुःखी हो गया । उसने अपने भाई से कहा—'हे भाई, इस कुल-विरुद्ध पापाचरण से अपने को रोको । देखो, तुम्हीं एक ऐसे अपने कुल में दुष्ट निकले जो इस प्रकार पापपरायण हो गए ।।६-७।। ज्येष्ठ सहोदर के इस प्रकार बार बार मना करने पर उसने बड़े भाई को मार डालने का निश्चय कर हाथ में खड्ग लेकर केश पकड़ लिया ।।८।। यह देखकर नगर में दारुण कोलाहल मच गया । नागरिकों ने कुपित होकर उस दुष्ट को बाँध दिया ।।९।। भाई के प्रेम से वशीभूत होकर विशुद्ध मति ने नागरिकों को समझा बुझाकर भाई को छुड़ा दिया ।।१०।। फिर उसने अपनी संपत्ति को दो भागों में बाँटा एक भाग तो स्वयं अपने ले लिया और शेष आधा भाग छोटे भाई को दे दिया ।।११।। नारद ! मूढ़ात्मा सुमाली ने उस धन को पाकर मूर्ख, पाखंडी और चाण्डालों मे उसे उड़ा दिया । क्योंकि दुष्टों की संपत्ति का भोग प्रायः दुर्जन ही करते हैं, जैसे फल से लदे हुए नीम की निबौरी कौओं के ही काम आती है ।।१२-१३।।

॥१४॥ भ्रात्रा दत्तं धनं तच्च सुमाली नाशयन्मुने । मद्यपानप्रमत्तश्च गोमांसादीन्यभक्षयत्
॥१५॥ त्यक्तो बंधुजनैः सर्वैश्चांडालस्त्रीसमन्वितः । राज्ञापि बाधितो विप्र प्रपेदे निर्जनं वनम्
॥१६॥ यज्ञमाली सुधीर्विप्र सदा धर्मरतोऽभवत् । अवारितं ददावन्नं सत्सङ्गतकल्मषः
॥१७॥ पित्रा कृतानि सर्वाणि तडागादीनि सत्तम । अपालयत्प्रयत्नेन सदा धर्मपरायणः
॥१८॥ विश्राणितं धनं सर्वं यज्ञमालेर्महात्मनः । सत्पात्रदाननिष्ठस्य धर्ममार्गप्रवर्तिनः
॥१९॥ अहो सदुपभोगाय सज्जनानां विभूतयः । कल्पवृक्षफलं सर्वममरैरेव भुज्यते
॥२०॥ धनं विश्राण्य धर्मार्थं यज्ञमाली महामतिः । नित्यं विष्णुगृहे सम्यक्परिचर्यापरोऽभवत्
॥२१॥ कालेन गच्छता तौ तु वृद्धभावमुपागतौ । यज्ञमाली सुमाली च ह्येककाले मृतावुभौ
॥२२॥ हरिपूजारतस्यास्य यज्ञमालिमहात्मनः । हरिः संप्रेषयामास विमानं पार्षदावृतम्
॥२३॥ दिव्यं विमानमारुह्य यज्ञमाली महामतिः । पूज्यमानः सुरगणैः स्तूयमानो मुनीश्वरैः
॥२४॥ गंधर्वैर्गीयमानश्च सेवितश्चाप्सरोगणैः । कामधेन्वा पुष्यमाणश्चित्राभरणभूषितः
॥२५॥ कोमलैस्तुलसीमाल्यैर्भूषितस्तेजसां निधिः । गच्छन्विष्णुपदं दिव्यं मनुजं पथि दृष्टवान्
। ताड्यमानं यमभटैः क्षुत्तड्भ्यां परिपीडितम् । प्रेतभूतं विवस्त्रं च दुःखितं पाशवेष्टितम्
॥२६॥ इतस्ततः प्रधावन्तं विलपंतमनाथवत्
॥२७॥ क्रोशन्तं च रुदंतं च दृष्ट्वा मनसि विव्यथे
॥२८॥ यज्ञमालादयायुक्तो विष्णुदूतान्समीपगान् । कोऽयं भटैर्बाध्यमानं इत्यपृच्छत्कृतांजलिः

मुनिवर ! भाई की दी हुई संपत्ति को भी उस माली ने उड़ाना प्रारम्भ किया । मदिरापान से मतवाला होकर वह गोमांस-भक्षण और चाण्डाल-स्त्री-गमन भी करने लगा । यह देखकर कुटुम्ब के लोगों ने उसका बहिष्कार कर दिया । राज-बाधा या दण्ड के भय से विवश होकर अन्त में उसको वन की शरण लेनी पड़ी ॥१४-१५॥

उसका ज्येष्ठ भाई महामति यज्ञमाली सर्वदा धर्मानुष्ठान में ही लगा रहता था । सदा अन्न दान देने और सत्संगति के प्रभाव से उसके सारे पाप नष्ट हो गए ॥१६॥ वह धर्मप्रेमी सदा, पिता के बनवाए हुए सारे तड़ाग आदि की भलीभाँति यत्नपूर्वक रक्षा किया करता था ॥१७॥ उसने अपनी सारी संपत्ति महात्माओं, धर्म प्रेमियों और सत्पात्रों को दान कर दी । सच है, सज्जनों की संपत्ति सज्जनों के उपभोग में ही आती है, कल्पवृक्ष का फल सर्वदा देववृन्दों के ही काम आता है ॥१८-१९॥ इस प्रकार महामति यज्ञमाली ने अपना सारा धन धर्मकार्य में ही खर्च कर दिया और नित्य विष्णु मंदिर में परिचर्या करने लगा । कुछ समय बाद दोनों भाई वृद्धावस्था को प्राप्त हुए और दोनों एक ही साथ मृत्यु को प्राप्त हुए ॥२०-२१॥ हरिपूजा में रत महात्मा यज्ञमाली के लिए भगवान् विष्णु ने सेवकों के सहित एक दिव्यविमान उसके निकट भेजा । महामति यज्ञमाली जिसकी देवगण आराधना कर रहे थे, मुनिवर स्तुति कर रहे थे, गन्धर्व गुणगान कर रहे थे और अप्सरायें जिसकी सेवा कर रही थीं, कामधेनु जिसको भोग-सामग्री दे रही थी, जो स्वयं विविध आभूषणों से विभूषित, तेजस्वी तथा सुन्दर तुलसी की मालाओं से शोभित था उस विमान पर चढ़कर दिव्य विष्णु लोक को चला गया ॥२२-२५॥ उसने मार्ग में एक मनुष्य को देखा, जो भूख-प्यास से व्याकुल था । यमदूत उसे मार रहे थे । वस्त्र उसके फटे हुए थे । वह प्रेत के समान भयंकर था और पाश में बंधा हुआ था । वह दुःख से कातर होकर अनाथ की भाँति रो रहा था और इधर-उधर दौड़ रहा था ॥२६॥ उसको इस प्रकार रोते-चिल्लाते देखकर यज्ञमाली को अपार मानसिक व्यथा हुई। उसने दयार्द्र हो हाथ जोड़कर साथ चलने वाले विष्णुदूतों से पूछा—'यह कौन है जिसकी दुर्दशा यमदूत कर रहे हैं ? ॥२७-२८॥

अथ ते हरिदूतास्तं यज्ञमालिमहौजसम् । असौ सुमाली भ्राता ते पापात्मेति समब्रुवन् ॥२९॥
यज्ञमाली समाकर्ण्य व्याख्यातं विष्णुकिंकरैः । मनसा दुःखमापन्नः पुनः पप्रच्छ नारद ॥३०॥
कथमस्य भवेन्मोक्षः संचितैःपापसंचयैः । तदुपायं वदध्वं मे यूयं हि मम बांधवाः ॥३१॥
सख्यं साप्तपदीनं स्यादित्याहुर्धर्मकोविदाः । सतां साप्तपदी मैत्री सत्सतां त्रिपदी तथा ॥३२॥
सत्सतामपि ये संतस्तेषां मैत्री पदे पदे ॥३३॥
तस्मान्मे बांधवा यूयं मां नेतुं समुपागताः । यतोऽयं मम भ्रातपि मुच्यते तदिहोच्यताम् ॥३४॥
यज्ञमालिवचः श्रुत्वा विष्णुदूता दयालवः । पुनः स्मितमुखाः प्रोचुर्यज्ञमालिहरिप्रियम् ॥३५॥

विष्णुदूता ऊचुः ।

यज्ञमालिन्महाभाग नारायणपरायण । उपायं तव वक्ष्यामः सुमालिप्रेममुक्तिदम् ॥३६॥
कृतं यत्सुमहत्कर्म त्वया प्राक्तनजन्मनि । प्रवक्ष्यामः समासेन तच्छृणुष्व समाहितः ॥३७॥
पुरा त्वं वैश्यजातीयो नाम्ना विश्वंभरः स्मृतः । त्वया कृतानि पापानि महांत्यगणितानि वै ॥३८॥
सुकर्मवासनाहीनो मातापित्रोर्विरोधकृत् । एकदा बंधुभिस्त्यक्तः शोकसंतापपीडितः ॥३९॥
क्षुधाग्निनापि संतप्तः प्राप्तवान्हरिमंदिरम् । तदा वृष्टिरभूत्तत्र तत्स्थानं पंकिलं ह्यभूत् ॥४०॥
दूरीकृतस्त्वया पंकस्तत्स्थाने स्थातुमिच्छया । उपलेपनतां प्राप्तं तत्स्थानंविष्णुमंदिरे ॥४१॥
त्वयोषितं तु तद्रात्रौ तस्मिन्देवालये द्विज । दंशितश्चैव सर्पेण प्राप्तं पञ्चत्वमेव च ॥४२॥
तेन पुण्यप्रभावेण उपलेपकृतेन च । विप्रजन्म त्वया प्राप्तं हरिभक्तिस्तथाचला ॥४३॥

महातेजस्वी यज्ञमाली के प्रश्न को सुनकर विष्णुदूतों ने कहा कि, 'यह तुम्हारा पापी भाई दुरात्मा सुमाली है; नारद ! विष्णु दूतों के मुख से 'यज्ञमाली' ऐसा नाम सुनकर उसके मन में अत्यन्त पीड़ा हुई। उसने फिर पूछा ॥२९-३०॥

इसके संचित पापों से इसकी मुक्ति कैसे होगी, इसका उपाय तुम लोग बताओ, तुम लोग अब मेरे बन्धु हो गए। धर्ममर्मज्ञों ने कहा कि सात पग साथ चलने पर सज्जनों की मैत्री हो जाती है, यह साधारण नियम है। जो सज्जन होते हैं उनकी मैत्री साप्तपदी होती है, उनसे भी जो अधिक सज्जन होते हैं उनकी मैत्री तीन डग के साथ ही हो जाती है परन्तु जो सर्वश्रेष्ठ सज्जन हैं उनसे मित्रता एक डग साथ चलने से हो हो जाती है ॥३१।३२॥ इसलिए तुम लोग मेरे बन्धु हो और मुझे ले जाने के लिए आये हो, अतएव जिस प्रकार मेरे भाई का उद्धार हो वही उपाय बतलाओ। यज्ञमाली की बातें सुनकर इन दूतों को भी दया आ गई, फिर मुसकराकर उन्होंने विष्णु-प्रिय यज्ञमाली से कहा॥३३-३५॥

विष्णुदूत बोले--महाभाग ! नारायणपरायण ! यज्ञमालिन् ! हम ऐसा उपाय बता रहे हैं जिसके द्वारा तुम्हारे भाई को पापों से मुक्ति मिल जायगी। इसके पूर्व तुमने पूर्व जन्म में जो महान् शुभ कर्म किया है, उसको संक्षेप में सुना रहा हूँ, सावधान होकर सुनो--॥३६-३७॥

पहले तुम वैश्य कुल में उत्पन्न हुए थे, विश्वम्भर तुम्हारा नाम था, तुमने अगणित महापाप किए थे, शुभ कर्म के संस्कार सर्वथा तुममें नहीं थे तुम माता-पिता के विरोधी थे। एक दिन जब तुमको तुम्हारे परिवार के लोगों ने घर से निकाल दिया, तब तुम शोक सन्तप्त और भूख-प्यास से व्याकुल हो घूमते-फिरते एक हरिमन्दिर में आए। उसी समय जोरों की वर्षा हुई जिससे यह स्थान कीचड़ से भर गया ॥३८-४०॥ तुमने वहाँ रहने की इच्छा से वहाँ से कीचड़ हटा दिया, जिससे अनायास उस मन्दिर का उपलेपन हो गया। द्विज ! तुम रात भर उस देवालय में रहे, अकस्मात् साँप के काटने से तुम्हारी मृत्यु हो गई ॥४१-४२॥ उसी मन्दिर के लीपने के पुण्य-प्रभाव से तुमको इस जन्म में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने का सौभाग्य और हरि-चरणों में एकान्त प्रेम मिला है ॥४३॥

कल्पकोटिशतं साग्रं संप्राप्य हरिसन्निधिम् । वसाद्य ज्ञानमासाद्य परं मोक्षं गमिष्यसि ॥४४॥
अनुजं पातकिश्रेष्ठं त्वं समुद्धर्त्तुमिच्छसि । उपायं तव वक्ष्यामस्तं निबोध महामते ॥४५॥
गोचर्ममात्रभूमेस्तु उपलेपनजं फलम् । दत्त्वोद्धर महाभाग भ्रातरं कृपयान्वितः ॥४६॥
एवमुक्तो विष्णुदूतैर्यज्ञमाली महामतिः । तत्फलं प्रददौ तस्मै भ्रात्रे पापविमुक्तये ॥४७॥
सुमाली भ्रातृदत्तेन पुण्येन गतकल्मषः । बभूव यमदूतास्तु तं त्यक्त्वा प्रपलायिताः ॥४८॥
विमानं चागतं सद्यः सर्वभोगसमन्वितम् । तदा सुमाली स्वर्यानमारुह्य मुमुदे मुने ॥४९॥
तावुभौ भ्रातरौ विप्र सुरवृंदनमस्कृतौ । अवापतुर्भृशं प्रीतिं समालिंग्य परस्परम् ॥५०॥
यज्ञमाली सुमाली च स्तूयमानौ महर्षिभिः । गीयमानौ च गंधर्वैर्विष्णुलोकं प्रजग्मतुः ॥५१॥
अवाप्य हरिसालोक्यं सुमाली मुनिसत्तम । यज्ञमाली चोषतुस्तौ कल्पमेकं मुदान्वितौ ॥५२॥
भुक्त्वा भोगान्बहूंस्तत्र यज्ञमाली महामतिः । तत्रैव ज्ञानसंपन्नः परं मोक्षमुपागतः ॥५३॥
सुमाली तु महाभागो विष्णुलोके मुदान्वितः । स्थित्वा भूमिं पुनः प्राप्य विप्रत्वं समुपागतः ॥५४॥
अतिशुद्धे कुले जातो गुणवान्वेदपारगः । सर्वसंपत्समोपेतो हरिभक्तिपरायणः ॥५५॥
व्याहरन्हरिनामानि प्रपेदे जाह्नवीतटम् । तत्र स्नातश्च गंगायां दृष्ट्वा विश्वेश्वरं प्रभुम् ॥५६॥
अवाप परमं स्थानं योगिनामपि दुर्लभम् । उपलेपनमाहात्म्यं कथितं ते मुनीश्वर ॥५७॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संपूज्यो जगतांपतिः । अकामादपि ये विष्णोः सकृत्पूजां प्रकुर्वते ॥५८॥
न तेषां भवबंधस्तु कदाचिदपि जायते । हरिभक्तिरतान्यस्तु हरिबुद्धया समर्चयेत् ॥५९॥

इस समय तो तुम करोड़ों कल्प तक हरि के समीप रहो; पुनः ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष का अधिकार प्राप्त करना । तुम अपने पाप शिरोमणि भाई का उद्धार करना चाहते हो तो महामते ! सुनो, हम उपाय बता रहे हैं ॥४४-४५॥

महाभाग ! तुम अपने पुण्य-पुंज में से गोचर्म के बराबर भूमि के लेपन से जो फल मिलता है उतना ही पुण्य फल देकर कृपा पूर्वक अपने भाई का उद्धार करो ॥४६॥

महामति यज्ञमाली ने विष्णुदूतों की इतनी बातें सुनकर उतना अपना पुण्यफल भ्राता के पापों से उद्धार के लिए उसको दे दिया ॥४७॥ भाई के दिये हुए पुण्य फल को पाकर सुमाली निष्पाप हो गया । यमदूत यह देखकर उसको छोड़कर दूर भाग गये ॥४८॥ तत्काल वहाँ सब उपभोग और प्रसाधन सामग्री से सज्जित देवविमान आया । मुनि ! उस समय उस दिव्य विमान पर चढ़कर सुमाली अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥४९॥ विप्र ! देवों द्वारा आदृत वे दोनों भाई परस्पर गले मिलकर अत्यधिक प्रसन्न हुए ॥५०॥ इस प्रकार वे दोनों भाई विष्णुलोक को चले गये, मार्ग में महर्षियों ने उनकी प्रशंसा की और गन्धर्वों ने अपने मधुर गीत सुनाए ॥५१॥ मुनिवर्य ! हरि-सालोक्य पाकर एक कल्प तक वे यज्ञमाली और सुमाली दोनों भाई बड़े सुख से वहाँ रहे ॥५२॥ वहाँ महामति यज्ञमाली ने विविध भोगों का उपभोग किया और ज्ञान प्राप्त कर पर मोक्ष प्राप्त कर लिया ॥५३॥ परन्तु महाभाग सुमाली उस लोक में आनन्द पूर्वक रहकर पुनः इस मृत्युलोक में आया और ब्राह्मणकुल में जन्म ग्रहण किया ॥५४॥ उस शुद्ध कुल में जन्म पाकर वह वेदों का पारगामी विद्वान्, गुणी, धनी और हरिभक्त हुआ ॥५५॥ हरिनाम का स्मरण करता हुआ वह जीवन के अन्तिम भाग में गंगा तट पर पहुँचा । वहाँ गंगा में स्नान किया और प्रभु विश्वेश्वर का दर्शन कर उस परम लोक को प्राप्त किया जो योगियों के लिए भी दुर्लभ है ॥५६॥ मुनीश्वर ! देवालय के लीपने से जो पुण्य मिलता है उसका माहात्म्य तो कह दिया । इसलिए सब प्रकार से लोकनाथ की पूजा करनी चाहिए । जो अनिच्छा से भी भगवान् की पूजा करता है उसको कभी जन्म-मृत्यु के बन्धन का भय नहीं

तस्य तुष्यंति विप्रेंद्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । हरिभक्तिपराणां तु संगिनां संगमात्रतः ॥६०॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो महापातकवानपि । हरिपूजापराणां च हरिनामरतात्मनाम् ॥६१॥
शुश्रूषानिरता यांति पापिनोऽपि परां गतिम् ॥६२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे विष्णुसेवाप्रभावो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

सनक उवाच

भूयः शृणुष्व विप्रेंद्र माहात्म्यं कमलापतेः । कस्य नो जायते प्रीतिः श्रोतुं हरिकथामृतम् ॥१॥
नराणां विषयान्धानां ममताकुलचेतसाम् । एकमेव हरेर्नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥२॥
सकृद्वा न नमेद्यस्तु विष्णुं पापहरं नृणाम् । श्वपचं तं विजानीयात्कदाचिन्नालपेच्च तम् ॥३॥
हरिपूजाविहीनं तु यस्य वेश्म द्विजोत्तम । श्मशानसदृशं तद्धि कदाचिदपि नो विशेत् ॥४॥
हरिपूजाविहीनाश्च वेदविद्वेषिणस्तथा । गोद्विजद्वेषनिरता राक्षसाः परिकीर्त्तिताः ॥५॥
यो वा को वापि विप्रेन्द्र विप्रद्वेषपरायणः । समर्चयति गोविंदं तत्पूजा विफला भवेत् ॥६॥

रहता । जो व्यक्ति भगवद् भावना से हरि-भक्तों का सम्मान करता है, विप्रेन्द्र, उसके ऊपर ब्रह्मा, विष्णु और महेश सब प्रसन्न हो जाते हैं । हरि-भक्तों के संगीजनों के संसर्ग, मात्र से बड़े पापी भी सब पापों से मुक्त हो जाते हैं । हरि पूजा के प्रेमी और संकीर्तन प्रेमी भक्तों की सेवा में निरत रहने वाले घोर पापी भी परम गति को पा जाते हैं ॥५७-६२॥

श्रीनारदीयमहापुराण में विष्णु-सेवा-प्रभाव वर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३६॥

अध्याय ३७

विष्णु का माहात्म्य वर्णन

सनक बोले— विप्रेन्द्र, फिर और भी भगवान् कमलापति का माहात्म्य सुनो । कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो हरि कथा रूपी अमृत का पान करना न चाहेगा ॥१॥ विषयासक्त, मोह से व्याकुल रहने वाले मनुष्यों के सब पापों को दूर करने वाला एकमात्र हरि नाम ही है ॥२॥ जिसने मनुष्यों के सब पापों को दूर करने वाले विष्णु को एक बार भी प्रणाम नहीं किया उसको चाण्डाल समझना चाहिए । और ऐसे व्यक्ति से कभी बातचीत नहीं करनी चाहिए ॥३॥ द्विजोत्तम ! जिसके घर में कभी हरि की पूजा नहीं होती उसको श्मशान समझकर कभी उस घर में प्रवेश नहीं करना चाहिए ॥४॥ हरि पूजा से विमुख, वेद निन्दक और गौ, ब्राह्मण से द्वेष करने वाले व्यक्ति राक्षस कहे जाते हैं ॥५॥ विप्रेन्द्र ! जो कोई भी व्यक्ति ब्राह्मण द्वेष करते हुए गोविन्द की पूजा करता है उसकी

अन्यश्रेयोविनाशार्थं येऽर्चयंति जनार्दनम् । सा पूजैव महाभाग पूजकानाशु हंति वै ॥७॥
हरिपूजाकरो यस्तु यदि पापं समाचरेत् । तमेव विष्णुद्वेष्टारं प्राहुस्तत्त्वार्थकोविदाः ॥८॥
ये विष्णुनिरताः संति लोकानुग्रहतत्पराः । धर्मकार्यरताः शश्वद्विष्णुरूपास्तु ते मताः ॥९॥
कोटिजन्मार्जितैः पुण्यैर्विष्णुभक्तिः प्रजायते । दृढभक्तिमतां विष्णौ पापबुद्धिः कथं भवेत् ॥१०॥
जन्मकोट्यर्जितं पापं विष्णुपूजारतात्मनाम् । क्षयं याति क्षणादेव तेषां स्यात्पापधीः कथम् ॥११॥
विष्णुभक्तिविहीना ये चंडालाः परिकीर्तिताः । चंडाला अपि वै श्रेष्ठाः हरिभक्तिपरायणाः ॥१२॥
नराणां विषयांधानां सर्वदुःखविनाशिनी । हरिसेवेति विख्याता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥१३॥
संगात्स्नेहाद्भयाल्लोभादज्ञानाद्वापि यो नरः । विष्णोरुपासनं कुर्यात्सोऽक्षयं सुखमश्नुते ॥१४॥
हरिपादोदकं यस्तु कणमात्रं पिबेदपि । स स्नातः सर्वतीर्थेषु विष्णोः प्रियतरो भवेत् ॥१५॥
अकालमृत्युशमनं सर्वव्याधिविनाशनम् । सर्वदुःखोपशमनं हरिपादोदकं स्मृतम् ॥१६॥
नारायणं परं धाम ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम् । ये प्रपन्ना महात्मानस्तेषां मुक्तिर्हि शाश्वती ॥१७॥
अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥१८॥
आसीत्पुरा कृतयुगे गुलिको नाम लुब्धकः । परदारपरद्रव्यहरणे सततोद्यतः ॥१९॥
परनिंदापरो नित्यं जन्तूपद्रवकृत्तथा । हतवान्ब्राह्मणान् गाश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥२०॥
देवस्य हरणे नित्यं परस्वहरणे तथा । उद्युक्तः सर्वदा विप्र कीनाशानामधीश्वरः ॥२१॥

पूजा विफल होती है ॥६॥ अन्य लोगों के कल्याण के विनाश के लिए जो भगवान् की पूजा करता है वह पूजा ही उस पूजक को नष्ट कर देती है ॥७॥ हरि पूजा करने वाला व्यक्ति यदि पापाचरण करता है, उसी को तत्त्वज्ञ जन विष्णु-द्वेष्टा कहते हैं ॥८॥ जो विष्णु की सेवा में तथा लोक कल्याण में तत्पर रहकर धर्म संपादन करते हैं, उनको विष्णु रूप ही जानना चाहिए ॥९॥ करोड़ों जन्मों के संचित पुण्य के प्रभाव से ही विष्णु भक्ति प्राप्त होती है, और जिनको विष्णु में दृढ़ भक्ति होगी उनकी पापों की ओर प्रवृत्ति कैसे होगी ? ॥१०॥ विष्णु पूजा में सर्वदा लीन रहने वाले व्यक्ति के कोटि जन्म के पाप स्वतः तत्काल नष्ट हो जाते है। तब उनके मन में पाप वासना कैसे रह सकती है ? ॥११॥ जो विष्णु भक्ति से विमुख हैं वे चाण्डाल कहे जाते हैं, और चाण्डाल भी यदि विष्णु भक्ति में लगा रहता है तो वह श्रेष्ठ है ॥१२॥ विषयान्ध मनुष्यों के सब दुःखों को दूर करने वाली और उनको भुक्ति और मुक्ति देने वाली हरि-सेवा ही है यह लोक-प्रसिद्ध है ॥१३॥ साहचर्य, स्नेह, भय, लोभ अथवा अज्ञान से भी जो मनुष्य विष्णु की उपासना करता है वह अक्षय सुख का उपभोग करता है ॥१४॥ जो व्यक्ति विष्णु-पादोदक का एक बिन्दु भी पी लेता है वह सब तीर्थों में स्नान करने का फल पाता है और वह विष्णु का प्रिय बन जाता है ॥१५॥ विष्णु का चरण-जल सब दुःखों को दूर करने वाला, अकाल मृत्यु से बचाने वाला और सब व्याधियों से मुक्त करने वाला है ॥१६॥ जो पर धाम, उत्तम प्रकाश, भगवान् नारायण की शरण में जाते हैं वे महात्मा अवश्य शाश्वत पद पा जाते हैं ॥१७॥ इस विषय में एक पुरातन इतिहास सुना रहा हूँ, जिसके पाठ और श्रवण से सब पाप अनायास नष्ट हो जाते हैं ॥१८॥

आज से बहुत पहले कृत युग में गुलिक नामक एक व्याध रहता था। वह सदा दूसरे का धन और स्त्रियाँ छीन लिया करता था ॥१९॥ नित्य प्रति दूसरे की निन्दा करने वाले और जन्तुओं को आंतकित करने वाले उस व्याध ने सैकड़ों, हजारों गायों और ब्राह्मणों की हत्या की थी ॥२०॥ वह यमराज देव-संपत्ति और दूसरे मनुष्यों के धन को लूटने के लिए सदा तैयार रहता था ॥२१॥

तेन पापान्यनेकानि कृतानि सुमहांति च । न तेषां शक्यते वक्तुं संख्या वत्सरकोटिभिः ॥२२॥
स कदाचिन्महापापो जन्तूनामन्तकोपमः । सौवीरराज्ञो नगरं सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥२३॥
योषिद्‌भिर्भूषिताभिश्च सरोभिर्निर्मलोदकैः । अलंकृतं विपणिभिर्ययौ देवपुरोपमम् ॥२४॥
तस्योपवनमध्यस्थं रम्यं केशवमंदिरम् । छादितं हेमकलशैर्दृष्ट्वा व्याधो मुदं ययौ ॥२५॥
हराम्यत्र सुवर्णानि बहूनीति विनिश्चितम् । जगामाभ्यंतरं तस्य कीनाशश्चौर्यलोलुपः ॥२६॥
तत्रापश्यद्द्विजवरं शांतं तत्त्वार्थकोविदम् । परिचर्यापरं विष्णोरुत्तंकं तपसां निधिम् ॥२७॥
एकाकिनं दयालुं च निस्पृहं ध्यानलोलुपम् । चौर्यान्तरायकर्तारं तं दृष्ट्वा लुब्धको मुने ॥२८॥
द्रव्यजातं तु देवस्य हर्तुकामोऽतिसाहसी । उत्तंकं हंतुमारेभे विधृतासिर्मदोद्धतः ॥२९॥
पादेनाक्रम्य तद्वक्षो जटाः संगृह्य पाणिना । हंतुं कृतमतिं व्याधमुत्तंकः प्रेक्ष्य चाब्रवीत् ॥३०॥

उत्तंक उवाच

भो भो साधो वृथा मां त्वं हनिष्यसि निरागसम् । मया किमपराद्धं ते तद्वदस्व महामते ॥३१॥
कृतापराधिनां लोके शक्ताः शिक्षां प्रकुर्वते । नहि सौम्य वृथा घ्नंति सज्जना अपि पापिनः ॥३२॥
विरोधिष्वपि मूर्खेषु निरीक्ष्यावस्थितान् गुणान् । विरोधं नहि कुर्वंति सज्जनाः शांतचेतसः ॥३३॥
बहुधा बोध्यमानोऽपि यो नरः क्षमयान्वितः । तमुत्तमं नरं प्राहुर्विष्णोः प्रियतरं सदा ॥३४॥
सुजनो न याति वैरं परहितबुद्धिर्विनाशकालेऽपि । छेदेऽपि चंदनतरुः सुरभयति मुखं कुठारस्य ॥३५॥

उस पापी ने इतने अधिक महान् पापों को किया था कि उसकी गणना करोड़ों वर्षों में भी नहीं हो सकती है ॥२२॥ किसी समय प्राणियों के लिए यमराज के समान वह महापापी व्याध सब ऐश्वर्यों से परिपूर्ण देवनगरी के समान सौवीर राजा के नगर में गया । वहाँ की स्त्रियाँ आभूषणों से सुशोभित थीं । विमल जल वाली वावलियाँ और सजी हुई दूकानों से उस नगर की शोभा दुगनी हो जाती थी। उस नगर के किसी उपवन के बीच एक रम्य केशव मन्दिर को, जो सुवर्णकलश से सुशोभित था, देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हो गया । वह यमराज "आज इस सुवर्ण-राशि को चुराऊँगा" ऐसा दृढ़ निश्चय कर चोरी के लोभ से उस मन्दिर के भीतर गया ॥२३-२६॥ वहां उसने एक परम तत्त्व के जानने वाले तपोनिधि, परम शान्त उत्तंक नामक ब्राह्मण को देखा जो विष्णु की अराधना में तल्लीन था। मुने! उस निःस्पृह ध्यानलोलुप, दयालु और असहाय विप्र को चोरी में बाधक समझ कर उसे देव-संपत्ति को चुराने की इच्छा करने वाले साहसी मदोद्धत व्याध ने हाथों में खड्ग लेकर मारने को उद्यत हुआ ॥२७-२९॥ जब वह उसकी छाती पर पैर रखकर जटा को हाथ में पकड़कर मारने को तैयार हुआ तो उसको देखकर उत्तंक ने कहा ॥३०॥

उत्तंक बोले--हे साधो! क्यों व्यर्थ में मुझ निरपराध को मार रहे हो? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? हे महामति उसको बताओ ॥३१॥ इस लोक में बलवान् व्यक्ति अपराधी को दण्ड देते हैं, और सज्जन पापियों को भी व्यर्थ दण्ड नहीं देते हैं ॥३२॥ जो सज्जन शान्त स्वभाव के होते हैं अपने विरोधी में भी चाहे वह मूर्ख ही क्यों न हो-गुणों को देखकर उसका विरोध नहीं करते ॥३३॥ जो बहुधा उत्तेजित करने पर क्षमा का त्याग नहीं करता उसी को उत्तम व्यक्ति कहा जाता है और सदा विष्णु का प्रिय पात्र बना रहता है ॥३४॥ विनाश काल में भी परोपकार की भावना रखने वाले सुजन वैर नहीं करते। चन्दन वृक्ष काटा जाने पर भी कुठार के मुख को सुगन्धित ही बनाता है ॥३५॥ अहो, दैव बड़ा प्रबल है

अहो विधिः सुबलवान्बाधते बहुधा जनान् । सर्वसंगविहीनोऽपि बाध्यते हि दुरात्मना ॥३६॥
अहो निष्कारणं लोके बाधंते बहुधा जनान् । सर्वसंगविहीनोऽपि बाध्यते पिशुनैर्जनैः
॥३७॥
तत्रापि साधून्बाधते न समानान्कदाचन
मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनाम् । लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति ॥३८॥
अहो बलवती माया मोहयत्यखिलं जगत् । पुत्रमित्रकलत्रार्थं सर्वं दुःखेन योजयेत् ॥३९॥
परद्रव्यापहारेण कलत्रं पोषितं त्वया । अंते तत्सर्वमुत्सृज्य एक एव प्रयाति वै ॥४०॥
मम माता मम पिता मम भार्या ममात्मजाः । ममेदमिति जंतूनां ममता बाधते वृथा ॥४२॥
यावदर्जयति द्रव्यं बांधवान्तावदेव हि । धर्माधर्मौ सहैवास्तामिहामुत्र न चापरः ॥४३॥
धर्माधर्मार्जितैर्द्रव्यैः पोषिता येन ये नराः । मृतमग्निमुखे हुत्वा घृतान्नं भुंजते हि ते ॥४४॥
गच्छंतं परलोकं च नरं तु ह्यनुतिष्ठतः । धर्माधर्मो न च धनं न पुत्रा न च बांधवाः ॥४५॥
कामः समृद्धिमायाति नराणां पापकर्मिणाम् । कामः संक्षयमायाति नराणां पुण्यकर्मणाम्
॥४६॥
वृथैव व्याकुला लोका धनादीनां सदार्जने
यद्भावि तद्भवत्येव यदभाव्यं न तद्भवेत् । इति निश्चितबुद्धीनां न चिंता बाधते क्वचित् ॥४७॥
दैवाधीनमिदं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् । तस्माज्जन्म च मृत्युं च दैवं जानाति नापरः ॥४८॥
यत्र कुत्र स्थितस्यापि यद्भाव्यं तद्भवेद् ध्रुवम् । लोकस्तु तत्र विज्ञाय वृथायासं करोति हि ॥४९॥
अहो दुःखं मनुष्याणां ममताकुलचेतसाम् । महापापानि कृत्वापि परिपुष्यंति यत्नतः ॥५०॥

जो कि प्रायः सब सज्जनों को कष्ट देता रहता है, क्यों कि किसी से कुछ भी संबन्ध न रखने वाले को भी दुष्ट पीड़ा पहुँचाते रहते हैं ॥३६॥ आश्चर्य है कि प्रायः संसार में अकारण लोगों को कष्ट दिया जाता है। किसी का कुछ भी न बिगाड़ने वालों को दुष्ट जन व्यर्थ में पीड़ा पहुँचाते रहते हैं। दुष्ट केवल साधुजन को पीड़ित करते हैं, अपने समान दुष्ट का वे कुछ बिगाड़ नहीं पाते ॥३७॥ तृण, जल और केवल सन्तोष पर ही जीवन बिताने वाले मृग, मछली और सज्जनों का व्याध, मल्लाह और चुगलखोर अकारण बैरी होते होते हैं ॥३८॥ माया भी कितनी प्रबल होती है जो सारे संसार को वश में कर लेती है, जिससे सभी पुत्र मित्र और स्त्री के लिए दुःख उठाते हैं ॥३९॥ तुमने दूसरों का धन चुरा कर स्त्री का पालन किया, परन्तु अन्त में सबको छोड़कर तुमको अकेला ही जाना पड़ेगा ॥४०॥ यह मेरी माता, यह मेरे पिता, यह मेरी स्त्री और ये मेरे पुत्र हैं, ऐसी ममता व्यर्थ में होती है क्योंकि जब तक लोग धन कमाते रहते हैं तभी तक सब भाई-बन्धु हैं। इस लोक और परलोक दोनों में केवल धर्म और अधर्म ही साथ रहते हैं ॥४१-४२॥ धर्म अथवा अधर्म से कमाई हुई संपत्ति से मनुष्य जिनका पोषण करता है वे ही उसके मर जाने पर उसे अग्नि के मुख में डालकर घृतान्न खाते हैं ॥४३॥ परलोक जाते हुए मनुष्य का धर्म और अधर्म ही अनुगमन करते हैं, धन, पुत्र और बान्धव नहीं। पापी मनुष्यों की इच्छायें सदा बढ़ती रहती हैं और पुण्य कर्म करने वाले की इच्छायें स्वयं शान्त हो जाती हैं ॥४४-४५॥ मनुष्य व्यर्थ ही सर्वदा धन कमाने के लिए व्याकुल रहते हैं। जो होने को होगा वह होगा ही और जो नहीं होने को है वह प्रयत्न करने पर भी नहीं होगा। इस प्रकार का विश्वास रखने वालों को चिन्ता कभी नहीं सताती है ॥४६-४७॥ जगत् के सब स्थावर जंगम दैव के ही अधीन हैं। इसलिए जन्म और मृत्यु को केवल दैव ही जानता है दूसरा कोई नहीं ॥४८॥ जहाँ कहीं रहने पर भी मनुष्य को उसके भाग्य की वस्तुयें निश्चय ही मिल जाती हैं। संसार इन बातों को जानकर भी व्यर्थ परिश्रम करता है ॥४९॥ माया से आतुर मनुष्यों की दशा देखकर, दुःख होता है कि मनुष्य महापाप

अर्जितं च धनं सर्वं भुंजते बांधवाः सदा । स्वयमेकतमो मूढस्तत्पापफलमश्नुते ॥५१॥
इति ब्रुवाणं तमृषिं विमुच्य भयविह्वलः । गुलिकः प्रांजलिः प्राह क्षमस्वेति पुनः पुनः ॥५२॥
सत्संगस्य प्रभावेण हरिसन्निधिमात्रतः । गतपापो लुब्धकश्च ह्यनुतापीदमब्रवीत् ॥५३॥
मया कृतानि पापानि महांति सुबहूनि च । तानि सर्वाणि नष्टानि विप्रेंद्र तव दर्शनात् ॥५४॥
अहोऽहं पापधीर्नित्यं महापापमुपाचरम् । कथं मे निष्कृतिर्भूयो यामि कं शरणं विभोः ॥५५॥
पूर्वजन्मार्जितैः पापैर्लुब्धकत्वमवाप्तवान् । अत्रापि पापजालानि कृत्वा कां गतिमाप्नुयाम् ॥५६॥
अहो ममायुः क्षयमेति शीघ्रं पापान्यनेकानि समर्जितानि ।
प्रतिक्रिया नैव कृता मयैषां गतिश्च का स्यान्मम जन्म किं वा ॥५७॥
अहो विधिः पापशताकुलं मां किं सृष्टवान्पापतरं च शश्वत् ।
कथं च यत्पापफलं हि भोक्ष्ये कियत्सु जन्मस्वहमुग्रकर्मा ॥५८॥
एवं विनिंदन्नात्मानमात्मना लुब्धकस्तदा । अंतस्तापाग्निसंतप्तः सद्यः पंचत्वमागतः ॥५९॥
उत्तंकः पतितं प्रेक्ष्य लुब्धकं तं दयापरः । विष्णुपादोदकेनैवमभ्यषिंचन्महामतिः ॥६०॥
हरिपादोदकस्पर्शाल्लुब्धको गतकल्मषः । दिव्यं विमानमारुह्य मुनिमेतदथाब्रवीत् ॥६१॥

गुलिक उवाच

उत्तंक मुनिशार्दूल गुरुस्त्वं मम सुव्रत । विमुक्तस्त्वत्प्रसादेन महापातककंचुकात् ॥६२॥
गतस्त्वदुपदेशान्मे संतापो मुनिपुंगव । तथैव सर्वपापानि विनष्टान्यतिवेगतः ॥६३॥

के द्वारा अपने आश्रित जनों का बड़े यत्न से पालन करता है । सदा उसकी कमाई हुई संपत्ति का उसके बन्धु जन उपभोग करते हैं, परन्तु पाप का फल उस मूर्ख को अकेले भोगना पड़ता ॥५०-५१॥

ऋषि के उपर्युक्त उपदेश को सुनकर उस गुलिक व्याधने उस ऋषि को छोड़ दिया और भय-विह्वल हो हाथ जोड़कर बार-बार क्षमा माँगने लगा ॥५२॥ सत्संग और विष्णु सानिध्य के प्रभाव से वह लुब्धक निष्पाप हो गया, अपने किये पापों का स्मरण कर पछताने लगा । उसने उत्तंक ऋषि से कहा ॥५३॥—

विप्रेन्द्र ! मैंने बहुत अधिक महापाप किये हैं परन्तु आपके दर्शन से मेरे वे सब पाप नष्ट हो गये ॥५४॥ आह ! मैं पापात्मा आजतक नित्य महापाप करता रहा, अब मेरा उद्धार कैसे होगा ? विभो ! अब किसको शरण में जाऊँ ॥५५॥ पूर्व जन्म के पापों के कारण मुझे व्याध योनि मिली, और इस जन्म में भी मैंने केवल पाप राशि ही कमाई तो अब किस योनि में जाऊँगा ? ॥५६॥ आह ! शीघ्र ही मेरा जीवन भी समाप्त होने वाला है । अब तक अनेक पाप ही कमाये और पापों के लिए कोई प्रायश्चित्त भी नहीं किया । तब मेरी क्या गति होगी और कौन सा जन्म पाऊँगा ॥५७॥ विधि ने सैकड़ों पाप करने वाले मेरे लिए किस शाश्वत पाप योनि को चुना है, जो कुछ मेरे पाप फल हैं उनको भोगने के लिए क्रूर कर्म करने वाले मुझको कितने जन्म ग्रहण करने पड़ेंगे ? ॥५८॥ इस प्रकार स्वयं अपने पापों पर पश्चात्ताप कर ही रहा था कि तत्काल अन्तःकरण के पश्चात्ताप रूपी अग्नि में जलकर वह मर गया ॥५९॥ महामति ऋषि उत्तंक उस व्याध को इस प्रकार भूमि पर गिरते देखकर दयार्द्र हो गये और भगवान् के चरणोदक को उसके ऊपर छिड़क दिया ॥६०॥ भगवान् के चरणोदक के स्पर्श से वह लुब्धक निष्पाप हो गया और दिव्य विमान पर चढ़कर मुनि से बोला ॥६१॥

उत्तंक ! मुनिशार्दूल ! सुव्रत ! तुम मेरे गुरु हो, मुनिपुंगव ! तुम्हारे उपदेश से महापाप के बन्धन से छुटकारा मिला ॥६२॥ मुनिशार्दूल ! तुम्हारे उपदेशों से मेरा संताप दूर हो गया । इसी प्रकार मेरे सब पाप

हरिपादोदकं यस्मान्मयि त्वं सिक्तवान्मुने । प्रापितोऽस्मि त्वया तस्मात्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥६४॥
त्वयाहं तारितो विप्र पापादस्माच्छरीरतः । तस्मान्नतोऽस्मि ते विद्वन्मत्कृतं तत्क्षमस्व च ॥६५॥
इत्युक्त्वा देवकुसुमैर्मुनिश्रेष्ठं समाकिरन् । प्रदक्षिणात्रयं कृत्वा नमस्कारं चकार सः ॥६६॥
ततो विमानमारुह्य सर्वकामसमन्वितम् । अप्सरोगणसंकीर्णः प्रपेदे हरिमंदिरम् ॥६७॥
एतद्दृष्ट्वा विस्मितोऽसौ ह्युत्तंकस्तपसांनिधिः । शिरस्यंजलिमाधाय तुष्टाव कमलापतिम् ॥६८॥
तेन स्तुतो महाविष्णुर्दत्तवान्वरमुत्तमम् । वरेण तेनोत्तंकोऽपि प्रपेदे परमं पदम् ॥६९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे विष्णुमाहात्म्ये
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

किं तत्स्तोत्रं महाभाग कथं तुष्टो जनार्दनः । उत्तंकः पुण्यपुरुषः कीदृशं लब्धवान्वरम् ॥१॥

सनक उवाच

उत्तंकस्तु तदा विप्रो हरिध्यानपरायणः । पादोदकस्य माहात्म्यं दृष्ट्वा तुष्टाव भक्तितः ॥२॥

शीघ्र नष्ट हो गये । मुने ! तुमने विष्णु के चरणोदक से मेरा अभिषक किया है इसलिए तुमने मुझे विष्णु के परम पद में पहुँचा दिया ॥६३-६४॥ विप्र ! तुमने इस पापमय शरीर से मुझको मुक्त कर दिया इसलिए मैं आपको प्रणाम करता हूँ। विद्वन् ! आप मेरे अपराधों को क्षमा कर दें, । यह कह कर उस गुलिक ने उस मुनिपुंगव की— जिसके ऊपर देव गण पुष्प वृष्टि कर रहे थे, तीन प्रदक्षिणा की और हाथ जोड़कर नमस्कार किया ॥६५-६६॥ इसके अनन्तर सब इष्ट पदार्थों से भरे हुए और अप्सराओं से सुशोभित विमान पर चढ़कर हरिलोक को चला गया ॥६७॥

यह देखकर तपोनिधि उत्तंक को परम विस्मय हुआ । उन्होंने शिर पर अंजलि बाँध कर कमलापति की स्तुति की । उस स्तुति से प्रसन्न होकर उन्होंने उत्तम वर प्रदान किया । उस वर के प्रभाव से वह ऋषि भी अनुपम लोक को चला गया ॥६८-६९॥

श्रीनारदीयमहापुराण में विष्णुमाहात्म्य-वर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३७॥

अध्याय ३८

विष्णु–माहात्म्य-वर्णन

नारद बोले— महाभाग ! वह कौन-सा स्तोत्र है जिससे हरि प्रसन्न हो जाते हैं ? पुण्य पुरुष उत्तंक ने कैसा वर प्राप्त किया ? ॥१॥

सनक बोले— विप्र ! उस समय हरिध्यान-परायण उत्तंक ने पादोदक का माहात्म्य देखकर भक्तिपूर्वक भगवान् की स्तुति की ॥२॥

उत्तंक उवाच

नतोऽस्मि नारायणमादिदेवं जगन्निवासं जगदेकबंधुम् ।
चक्राब्जशार्ङ्गासिधरं महांतं स्मृतार्तिनिघ्नं शरणं प्रपद्ये ॥३॥
यन्नाभिजाब्जप्रभवो विधाता सृजत्यमुं लोकसमुच्चयं च ।
यत्क्रोधजो हंति जगच्च रुद्रस्तमादिदेवं प्रणतोऽस्मि विष्णुम् ॥४॥
पद्मापतिं पद्मदलायताक्षं विचित्रवीर्यं निखिलैकहेतुम्
वेदांतवेद्यं पुरुषं पुरांण तेजोनिधिं विष्णुमहं प्रपन्नः ॥५॥
आत्माक्षरः सर्वगतोऽच्युताख्यो ज्ञानात्मको ज्ञानविदां शरण्यः ।
ज्ञानैकवेद्यो भगवाननादिः प्रसीदतां व्यष्टिसमष्टिरूपः ॥६॥
अनंतवीर्यो गुणजातिहीनो गुणात्मको ज्ञानविदां वरिष्ठः ।
नित्यः प्रपन्नार्तिहरः परात्मा दयांबुधिर्मे वरदस्तु भूयात् ॥७॥
यः स्थूलसूक्ष्मादिविशेषभेदैर्जगद्यथावत्स्वकृतं प्रविष्टः ।
त्वमेव तत्सर्वमनंतसारं त्वत्तः परं नास्ति यतः परात्मन ॥८॥
अगोचरं यत्तव शुद्धरूपं मायाविहीनं गुणजातिहीनम् ।
निरञ्जनं निर्मलमप्रमेयं पश्यंति सन्तः परमार्थसंज्ञम् ॥९॥
एकेन हेम्नैव विभूषणानि यातानि भेदत्वमुपाधिभेदात् ।
तथैव सर्वेश्वर एक एव प्रदृश्यते भिन्न इवाखिलात्मा ॥१०॥

उत्तंक बोले— नारायण, आदिदेव, जगन्निवास और जगद्बन्धु को नमस्कार है। चक्र, कमल, धनुष, और खड्ग को धारण करने वाले और-स्मरण मात्र से सब बाधाओं को दूर करने वाले भगवान् की शरण में हूँ ॥३॥ जिसके नाभिकमल से उत्पन्न होकर ब्रह्मा इस त्रिलोकी की सृष्टि करता है, जिसके क्रोध से उत्पन्न होकर रुद्र सारे संसार को जला देते हैं उस आदिदेव विष्णु को प्रणाम करता हूँ ॥४॥ पद्मापति, पद्मदल के समान बड़ी-बड़ी आँखों वाले, विचित्र प्रभाव और पराक्रम वाले, वेदान्त वेद्य, अखिल लोक के एक मात्र कारण तेजो निधि विष्णु की शरण में आया हूँ॥५॥ समष्टि और व्यष्टि उभय रूपवाले, आत्मा, अक्षर, सर्वव्यापक, अच्युत, ज्ञानरूप, ज्ञानियों के आश्रय तथा केवल ज्ञान से प्राप्त होने योग्य अनादि भगवान् प्रसन्न हो जाइए ॥६॥ अनन्त पराक्रम-शील, गुण जाति हीन, गुण रूप, ज्ञानियों में श्रेष्ठ, नित्य, भक्तों की पीड़ा दूर करने वाले, परात्मा, दया-सागर आप मुझे वर प्रदान करें ॥७॥ तुम स्थूल, सूक्ष्म आदि अनेक रूपों में जगत् का निर्माण कर पुनः अपनी सृष्टि में प्रवेश कर जाते हो, और तुम्हीं अनन्त तत्त्वों से परिपूर्ण सम्पूर्ण पदार्थ हो। परात्मन् ! तुमसे बढ़कर इस संसार में और कोई पदार्थ नहीं ॥८॥ जो तुम्हारा अगोचर माया, गुण, जाति से हीन शुद्ध रूप है उसी निरंजन, निर्मल, अप्रमेय परमार्थ नामक तुमको सन्त सर्वदा देखते हैं ॥९॥ जिस प्रकार एक ही सुवर्ण से अनेक आभूषण बनते हैं और उपाधि (विशेषण) भेद से उसके अनेक नाम हो जाते हैं उसी प्रकार अखिल पदार्थों में रहने वाला एक ही सर्वेश्वर एक होता हुआ भी अनेक दिखाई पड़ता है ॥१०॥ जिसकी माया से मोहित होकर मनुष्य उस प्रसिद्ध

यन्मायया मोहितचेतसस्तं पश्यंति नात्मानमपि प्रसिद्धम् । ॥११॥
त एव मायारहितास्तदेव पश्यन्ति सर्वात्मकमात्मरूपम् ॥१२॥
विभुं ज्योतिरनौपम्यं विष्णुसंज्ञं नमाम्यहम् । समस्तमेतदुद्भूतं यतो यत्र प्रतिष्ठितम् ॥१३॥
यतश्चैतन्यमायातं यद्रूपं तस्य वै नमः । अप्रमेयमनाधारमाधाराधेयरूपकम् ॥१४॥
परमानन्दचिन्मात्रं वासुदेवं नतोऽस्म्यहम् । हृद्गुहानिलयं देवं योगिभिः परिसेवितम् ॥१५॥
योगानामादिभूतं तं नमामि प्रणवस्थितम् । नादात्मकं नादबीजं प्रणवात्मकमव्ययम् ॥१६॥
सद्भावं सच्चिदानन्दं तं वन्दे तिग्मचक्रिणम् । अजरं साक्षिणं त्वस्य ह्यवाङ्मनसगोचरम् ॥१७॥
निरञ्जनमनंताख्यं विष्णुरूपं नतोऽस्म्यहम् । इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः ॥१८॥
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च । विद्याविद्यात्मकं प्राहुः परात्परतरं तथा ॥१९॥
अनादिनिधनं शांतं सर्वधातारमच्युतम् । ये प्रपन्ना महात्मानस्तेषां मुक्तिर्हि शाश्वती ॥१९॥
वरं वरेण्यं वरदं पुराणं सनातनं सर्वगतं समस्तम् । नतोऽस्मि भूयोऽपि नतोऽस्मि भूयो नतोऽस्मि भूयोऽपि नतोऽस्मि भूयः ॥२०॥

यत्पादतोयं भवरोगवैद्यो यत्पादपांशुर्विमलत्वसिद्ध्यै । यन्नाम दुष्कर्मनिवारणाय तमप्रमेयं पुरुषं भजामि ॥२१॥

सद्रूपं तमसद्रूपं सदसद्रूपमव्ययम् । तत्तद्विलक्षणं श्रेष्ठं श्रेष्ठाच्छ्रेष्ठतरं भजे ॥२२॥
निरञ्जनं निराकारं पूर्णमाकाशमध्यगम् । परं च विद्याविद्याभ्यां हृदंबुजनिवासिनम् ॥२३॥
स्वप्रकाशमनिर्देश्यं महतां च महत्तरम् । अणोरणीयांसमजं सर्वोपाधिविवर्जितम् ॥२४॥

आत्मा को भी नहीं देख पाते और वे ही मनुष्य जब भगवत्कृपा से मायामुक्त हो जाते हैं तब तत्काल सब प्राणियों में व्याप्त आत्मा के रूप को देखने लगते हैं ॥११॥ व्यापक, ज्योति, अनुपम विष्णु नामक परमात्मा को नमस्कार करता हूँ, जिससे यह सारा संसार उत्पन्न हुआ है और जिसमें यह प्रतिष्ठित है। ॥१२॥ विष्णु के उस रूप को नमस्कार करता हूँ जिससे चैतन्य की प्राप्ति होती है। अप्रमेय, अनाधार, आधाराधेय रूप परानंद चिन्मात्र वासुदेव को नमस्कार है। हृदयरूपी गुहा में रहने वाले, योगियों से पूजित और योगों के एक मात्र आदि आधार, प्रणव में रहने वाले, नादात्मक, नादबीज, प्रणवरूप, अव्यय, सद्भाव, तीक्ष्ण चक्र धारण करने वाले सच्चिदानन्द की वन्दना करता हूँ ॥१३-१५३॥ भगवान् के अजर साक्षी, वाणी और मन की पहुँच से परे रहने वाले, निरंजन, अनन्त नामक विष्णु रूप को नमस्कार करता हूँ। इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि सत्व, तेज, बल, धृति क्षेत्र (शरीर) और क्षेत्रज्ञ (आत्मा) सब वासुदेव के ही रूप हैं और वही विद्याविद्यात्मक परात्परतर है ॥१६-१८॥ जो महात्मा उस अनादि, अनन्त, शान्त, सबके पालक की शरण में जाते हैं उनको अवश्य शाश्वत मुक्ति मिल जाती है ॥१९॥ वर, वरेण्य, वरद, पुराण, सनातन, सर्व व्यापक भगवान् को नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ और बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥२०॥ जिसका चरणोदक संसार की आधियों को नष्ट करने के लिए एक वैद्य है, जिसकी चरणरेणु मानव को निर्मल बुद्धि प्रदान करती है और जिसका नाम दुष्कर्मों के निवारण के लिए समर्थ है उस अप्रमेय पुरुष की वन्दना करता हूँ ॥२१॥ सद्रूप असद्रूप, सदसद्रूप, अव्यय, सदसद्विलक्षण, श्रेष्ठ और श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ को नमस्कार है ॥२२॥ निरंजन, निराकार, पूर्ण आकाश के मध्य विचरण करने वाले, स्वप्रकाश, अनिर्देश्य, महान् से भी महान्,

यन्नित्यं परमानन्दं परं ब्रह्म सनातनम् । विष्णुसंज्ञं जगद्धामतमस्मि शरणं गतः ॥२५॥
यं भजन्ति क्रियानिष्ठा यं पश्यन्ति च योगिनः । पूज्यापूज्यतरं शांतं गतोऽस्मि शरणं प्रभुम् ॥२६॥
यं न पश्यन्ति विद्वांसो य एतद्व्याप्य तिष्ठति । सर्वस्मादधिकं नित्यं नतोऽस्मि विभुमव्ययम् ॥२७॥
अन्तःकरणसंयोगाज्जीव इत्युच्यते च यः । अविद्याकार्यरहितः परमात्मेति गीयते ॥२८॥
सर्वात्मकं सर्वहेतुं सर्वकर्मफलप्रदम् । वरं वरेण्यमजनं प्रणतोऽस्मि परात्परम् ॥२९॥
सर्वज्ञं सर्वगं शांतं सर्वान्तर्यामिणं हरिम् । ज्ञानात्मकं ज्ञाननिधिं ज्ञानसंस्थं विभुं भजे ॥३०॥

नमाम्यहं वेदनिधिं मुरारिं वेदांतविज्ञानसुनिश्चितार्थम् ।
सूर्येंदुवत्प्रोज्ज्वलनेत्रमिन्द्रं खगस्वरूपं श्वपतिस्वरूपम् ॥३१॥

सर्वेश्वरं सर्वगतं महांतं वेदात्मकं वेदविदां वरिष्ठम् ।
तं वाङ्मनोऽचिंत्यमनंतशक्तिं ज्ञानैकवेद्यं पुरुषं भजामि ॥३२॥

इन्द्राग्निकालासुरपाशिवायुसोमेशमार्तण्डपुरंदराद्यैः ।
यः पाति लोकान्परिपूर्णभावस्तमप्रमेयं शरणं प्रपद्ये ॥३३॥

सहस्रशीर्षं च सहस्रपादं सहस्रबाहुं च सहस्रनेत्रम् ।
समस्तयज्ञैः परिजुष्टमाद्यं नतोऽस्मि तुष्टिप्रदमुग्रवीर्यम् ॥३४॥

कालात्मकं कालविभागहेतुं गुणत्रयातीतमहं गुणज्ञम् ।
गुणप्रियं कामदमस्तसंगमतींद्रियं विश्वभुजं वितृष्णम् ॥३५॥

निरीहमग्र्यं मनसाप्यगम्यं मनोमयं चान्नमयं निरूढम् ।
विज्ञानभेदं प्रतिपन्नकल्पं न वाङ्मयं प्राणमयं भजामि ॥३६॥

अणु से भी अणु, अज, सब उपाधियों से रहित, नित्य परमानन्द, परब्रह्म सनातन विष्णु हैं उनकी शरण में हूँ ॥२५॥ जिसको केवल क्रियानिष्ठ व्यक्ति ही भजते हैं, जिसको योगी जन ही देख पाते हैं, उस परमपूज्य शान्त भगवान् की शरण में हूँ ॥२६॥ जिसको विद्वान् जन भी नहीं देख सकते, जो सर्वव्यापक हैं, जो सबसे अधिक नित्य, विभु और अव्यय हैं उसको नमस्कार है ॥२७॥ जो अन्तःकरण के संयोग से जीव और अविद्या कार्य से रहित परमात्मा कहा जाता है, जो सर्वात्मक, सबका कारण, सब कर्मफलों को देने वाला, वर, वरेण्य, अजन और पर से पर है उसको नमस्कार है ॥२८-२९॥ सर्वज्ञ, सर्वग, शान्त, सब के अन्तर्यामी, ज्ञानरूप, ज्ञाननिधि और ज्ञानस्थ व्यापक हरि को भजता हूँ ॥३०॥ मैं वेदनिधि, मुरारि, वेदान्त के ज्ञान से निश्चित अर्थ के रूप में प्रतीत होने वाले, सूर्य-चन्द्र रूप नेत्रवाले, इन्द्र, खग स्वरूप, श्वपति स्वरूप, सर्वेश्वर, सर्वगत, महान्, वेद स्वरूप, वेद ज्ञाताओं में श्रेष्ठ, वाणी और मन के चिन्तन से परे रहने वाले, अनन्तशक्ति और एकमात्र ज्ञान से ही जानने योग्य को नमस्कार करता हूँ ॥३१-३२॥ जो परिपूर्ण भाव वाले, परमात्मा, इन्द्र, अग्नि, काल, असुर, वरुण, वायु, सोम, सूर्य, पुरन्दर आदि रूपों से विश्व की रक्षा करते हैं, उन अप्रमेय पुरुष की शरण में आया हूँ ॥३३॥

सहस्र शिर, चरण, बाहु और नेत्र वाले, सब यज्ञों के एक मात्र पूजनीय, आदि, तुष्टि देने वाले उग्र पराक्रमी, कालात्मक, काल विभाग के कारण, त्रिगुणातीत, गुणज्ञ, गुणप्रिय, मनोरथदाता, निर्लेप, अतीन्द्रिय, विश्वभोक्ता, तृष्णा रहित, निरीह, श्रेष्ठ, मन से परे, मनोमय, अन्नमय, अत्यन्त रूढ, विज्ञानभेद, आदृत, वाङ्मय से परे और प्राणमय को नमस्कार करता हूँ ॥३४-३६॥ जिसके रूप नहीं, जिसके बल, प्रभाव,

न यस्य रूपं न बलप्रभावो न यस्य कर्माणि न यत्प्रमाणम्
जानंति देवा कमलोद्भवाद्यास्तोष्याम्यहं तं कथमात्मरूपम् ॥३७॥
संसारसिंधौ पतितं कदर्यं मोहाकुलं कामशतेन बद्धम् ।
अकीर्तिभाजं पिशुनं कृतघ्नं सदाशुचिं पापरतं प्रमन्युम् ।
दयांबुधे पाहि भयाकुलं मां पुनः पुनस्त्वां शरणं प्रपद्ये ॥३८॥
इति प्रसादितस्तेन दयालुः कमलापतिः । प्रत्यक्षतामगात्तस्य भगवांस्तेजसां निधिः ॥३९॥
अतसीपुष्पसंकाशं फुल्लपङ्कजलोचनम् । किरीटिनं कुण्डलिनं हारकेयूरभूषितम् ॥४०॥
श्रीवत्सकौस्तुभधरं हेमयज्ञोपवीतिनम् । नासाविन्यस्तमुक्ताभवर्धमानतनुच्छविम् ॥४१॥
पीतांबरधरं देवं वनमालाविभूषितम् । तुलसीकोमलदलैरर्चितांघ्रिं महाद्युतिम् ॥४२॥
किंकिणीनूपुराद्यैश्च शोभितं गरुडध्वजम् । दृष्ट्वा ननाम विप्रेन्द्रो दण्डवत्क्षितिमण्डले ॥४३॥
अभ्यषिचद्धरेः पादावुत्तंको हर्षवारिभिः । मुरारे रक्ष रक्षेति व्याहरन्नान्यधीस्तदा ॥४४॥
तमुत्थाप्य महाविष्णुरालिलिंग दयापरः । वरं वृणुष्व वत्सेति प्रोवाच मुनिपुङ्गवम् ॥४५॥
असाध्यं नास्ति किंचित्ते प्रसन्ने मयि सत्तम । इतीरितं समाकर्ण्य ह्युत्तंकश्चक्रपाणिना ।
पुनः प्रणम्य तं प्राह देवदेवं जनार्दनम् ॥४६॥
किं मां मोहयसीश त्वं किमन्यैर्देव मे वरैः । त्वयि भक्तिर्दृढा मेऽस्तु जन्मजन्मांतरेष्वपि ॥४७॥
कीटेषु पक्षिषु मृगेषु सरीसृपेषु रक्षःपिशाचमनुजेष्वपि यत्र तत्र
जातस्य मे भवतु केशव ते प्रसादात्त्वय्येव भक्तिरचलाव्यभिचारिणी च ॥४८॥

कर्म और प्रमाण का ज्ञान नहीं, जिसको ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं जानते उस आत्मरूप की स्तुति कैसे कर सकता हूँ ॥३७॥ हे दयासागर ! इस संसार-सागर में डूबे हुए, मेरे समान कायर, मोहाकुल, अनेकों कामनाओं में फँसे, निन्दित, चुगलखोर, कृतघ्न, अपवित्र, पाप में रत, क्रोधी और भयत्रस्त की आप रक्षा करें और मुझे अपनी शरण में रखें ॥३८॥

महामुनि उत्तंक की इतनी प्रार्थना सुनकर दयालु, तेज निधि भगवान् कमलापति प्रसन्न होकर उसके सामने प्रकट हुए । उसने अतसी-कुसुम के समान नील वर्ण, खिले कमल के समान नेत्र वाले, किरीट, कुण्डल, केयूर और हार से सुशोभित, श्रीवत्स और कौस्तुभ को धारण किये हुए, सोने का यज्ञोपवीत पहने हुए, नाक में पहने हुए मोती की आभा से बढ़ती हुई शोभा वाले, पीताम्बरधारी भगवान् गरुड़ध्वज को देखा, जो वनमाला, किंकिणी और नूपुर से सुशोभित थे, जिनके युगल चरण तुलसी की कोमल पत्तियों से पूजित थे, जिनकी देह-कान्ति चारों ओर फैल रही थी । विप्रवर्य ने भगवान् को देखकर पृथ्वी पर गिरकर साष्टांग दण्डवत् किया और अपने आनन्द के आसुओं से उनके चरणों को धो दिया ॥३९-४३॥ उस समय अनन्य भाव से हे मुरारे ! रक्षा करो, रक्षा करो, यही शब्द उसके मुँह से निकले । दयालु महाविष्णु ने उठाकर उस मुनि को गले लगाया और कहा कि 'वत्स ! वर मांगो ॥४४-४५॥ सज्जनवर्य ! मेरे प्रसन्न हो जाने पर तुम्हारे लिए कुछ भी असाध्य नहीं । भगवान् चक्रपाणि की इन बातों को सुनकर उत्तंक ने फिर प्रणाम किया और देव-देव जनार्दन से कहा ॥४६॥

ईश, देव ! तुम मुझको अन्य वरदान का लोभ दिखाकर क्यों मोह में डाल रहे हो ? जन्मजन्मान्तर में भी तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में अचला भक्ति बनी रहे ॥४७॥ केशव ! कीट, पक्षी, राक्षस, पिशाच, मृग, सरीसृप, मनुष्य आदि किसी भी योनि में जन्म ग्रहण करूँ, परन्तु तुम्हारी कृपा से तुम में ही मेरी अटल दृढ़ भक्ति बनी

एवमस्त्विति लोकेशः शङ्खप्रांतेन संस्पृशन् । दिव्यज्ञानं ददौ तस्मै योगिनामपि दुर्लभम् ॥४९॥
पुनः स्तुवन्तं विप्रेन्द्रं देवदेवो जनार्दनः । इदमाह स्मितमुखो हस्तं तच्छिरसि न्यसन् ॥५०॥

श्रीभगवानुवाच

आराधाय क्रियायोगैर्मां सदाद्विजसत्तम । नरनारायणस्थानं व्रज मोक्षं गमिष्यसि ॥५१॥
त्वया कृतमिदं स्तोत्रं यः पठेत्सततं नरः । सर्वान्कामानवाप्यांते मोक्षभागी भवेत्ततः ॥५२॥
इत्युक्त्वा माधवो विप्रं तत्रैवांतर्दधे मुने । नरनारायणस्थानमुत्तंकोऽपि ततो ययौ ॥५३॥
तस्माद्भक्तिः सदा कार्या देवदेवस्य चक्रिणः । हरिभक्तिः परा प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा ॥५४॥
उत्तंको भक्तिभावेन क्रियायोगपरो मुने । पूजयन्माधवं नित्यं नरनारायणाश्रमे ॥५५॥
ज्ञानविज्ञानसंपन्नः संछिन्नद्वैतसंशयः । आवाप दुरवापं वै तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५६॥
पूजितो नमितो वापि संस्मृतो वापि मोक्षदः । नारायणो जगन्नाथो भक्तानां मानवर्द्धनः ॥५७॥
तस्मान्नारायणं देवमनंतमपराजितम् । इहामुत्र सुखप्रेप्सुः पूजयेद्भक्तिसंयुतः ॥५८॥
यः पठेदिदमाख्यानं शृणुयाद्वा समाहितः । सोऽपि सर्वाघनिर्मुक्तः प्रयाति भवनं हरेः ॥५९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे विष्णुमाहात्म्यं नामाष्टत्रिंशोध्यायः ॥३८॥

रहे ॥४८॥ लोक पति ने शंख से उसको छूते हुए कहा 'ऐसा ही होगा, और योगियों के लिए भी दुर्लभ दिव्य ज्ञान को दिया ॥४९॥ फिर स्तुतिपरायण उस विप्र के शिर पर हाथ फेरते हुए देवदेव जनार्दन ने हँसकर कहा ॥५०॥

द्विजश्रेष्ठ ! कर्मयोग के द्वारा मेरी आराधना करो, नर-नारायण के आश्रम में जाओ, मोक्ष अवश्य पा जाओगे ॥५१॥ जो मनुष्य तुम्हारे इस स्तोत्र का पाठ करेगा, वह सब मनोरथों को प्राप्त कर अन्तकाल में मोक्ष प्राप्त करेगा ॥५२॥ मुने ! यह कह कर माधव वहीं अन्तर्हित हो गये। इसके अनन्तर उत्तंक भी नर-नारायण-आश्रम को गया ॥५३॥ इसलिए देवदेव चक्रधर की भक्ति सदा करनी चाहिए। हरि-भक्ति अत्यन्त उत्कृष्ट और सब फलों को देने वाली है ॥५४॥ मुने ! उत्तंक ने नारायण-आश्रम में जाकर क्रियायोगपरायण होकर भक्ति-पूर्वक माधव की पूजा की, ज्ञान विज्ञान से युक्त हो द्वैत भाव पर विजय प्राप्त की और दुर्लभ विष्णु के दुर्लभ परमपद को प्राप्त किया ॥५५-५६॥ भक्तों के मान बढ़ाने वाले नारायण जगन्नाथ की पूजा, स्तुति, नमस्कार, अथवा स्मरण करने पर अवश्य मोक्ष प्राप्त होता है। इसलिए उभय लोक में सुख की कामना करने वाला व्यक्ति अवश्य अनन्त, अपराजित नारायण की पूजा करे ॥५७-५८॥ जो व्यक्ति इस आख्यान को ध्यानपूर्वक पढ़ता है या सुनता है वह भी सब पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को जाता है ॥५९॥

श्रीनारदीयमहापुराण में विष्णुमाहात्म्यवर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३८॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

सनक उवाच

भूयः शृणुष्व विप्रेंद्र माहात्म्यं परमेष्ठिनः । सर्वपापहरं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥१॥
अहो हरिकथालोके पापघ्नी पुण्यदायिनी । शृण्वतां वदतां चैव तद्भक्तानां विशेषतः ॥२॥
हरिभक्तिरसास्वादमुदिता ये नरोत्तमाः । नमस्करोम्यहं तेभ्यो यत्संगान्मुक्तिभाङ्नरः ॥३॥
हरिभक्तिपरा ये तु हरिनामपरायणाः । दुर्वृत्ता वा सुवृत्ता वा तेभ्यो नित्यं नमो नमः ॥४॥
संसारसागरं तर्तुं य इच्छेन्मुनिपुङ्गव । स भजेद्धरिभक्तानां भक्तान्वै पापहारिणः ॥५॥
दृष्टः स्मृतः पूजितो वा ध्यातः प्रणमितोऽपि वा । समुद्धरति गोविंदो दुस्तराद्भवसागरात् ॥६॥
स्वपन्भुंजन् व्रजंस्तिष्ठन्नतिष्ठंश्च वदंस्तथा । चिंतयेद्यो हरेर्नाम तस्मै नित्यं नमो नमः ॥७॥
अहो भाग्यमहो भाग्यं विष्णुभक्तिरतात्मनाम् । येषां मुक्तिः करस्थैव योगिनामपि दुर्लभा ॥८॥
अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । वदतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥९॥
आसीत्पुरा महीपालः सोमवंशसमुद्भवः । जयध्वज इति ख्यातो नारायणपरायणः ॥१०॥
विष्णोर्देवालये नित्यं संमार्जनपरायणः । दीपदानरतश्चैव सर्वभूतदयापरः ॥११॥

अध्याय ३९

विष्णु-माहात्म्य-वर्णन

सनक बोले— विप्रेन्द्र ! अब पुनः परमेष्ठी के माहात्म्य को सुनो, जो मनुष्यों के सब पापों को हरने वाला, पवित्र और भुक्ति मुक्ति दोनों को देने वाला है ॥१॥ इस लोक में हरि-कथा पापों को हरने वाली और पुण्य प्रदान करने वाली है । इस कथा को श्रवण करने वाले, पाठ करने वाले और इसके भक्तों को विशेष फल मिलता है ॥२॥ जो नरपुंगव हरि-भक्ति का रसास्वादन कर सर्वदा मुदित रहते हैं, उनकी मैं वन्दना करता हूँ, उनकी संगति मात्र से मनुष्य मुक्ति पा जाता है ॥३॥ जो हरिभक्ति में रत रहने वाले या हरि नाम का स्मरण करने वाले हैं उनकी भी मैं वन्दना करता हूँ चाहे वे दुराचारी हों या सदाचारी ॥४॥ मुनिपुंगव ! जो इस संसार-सागर को पार करना चाहते हैं, वे हरि-भक्तों का सम्मान अवश्य करें । क्योंकि भक्त मनुष्यों के सब पापों के हरने वाले हैं ॥५॥ गोविन्द की पूजा, दर्शन, ध्यान और प्रणाम करने से वे इस दुस्तर भवसागर से अवश्य पार लगा देते हैं ॥६॥ जो सोते, खाते, चलते, बैठते और बोलते समय हरि-नाम का चिन्तन करते हैं उनको नित्य नमस्कार है ॥७॥ विष्णु-भक्ति में निष्ठा रखने वाले महापुरुषों के भाग्य की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है, जिनके लिए योगिदुर्लभ मुक्ति भी हस्तामलकवत् है ॥८॥ इस विषय में एक पुरातन इतिहास को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करता हूँ जिसके श्रवण और पाठ से सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥९॥

प्राचीन काल में जयध्वज नामक सोमवंशीय राजा था, जो विष्णु में अटल भक्ति रखता था ॥१०॥ वह प्रति दिन विष्णु मन्दिर में अपने हाथ से झाड़ू लगाता, दीप जलाता और सब प्राणियों पर दया भाव

स कदाचिन्महीपालो रेवातीरे मनोरमे। विचित्रकुसुमोपेतं कृतवान्विष्णुमंदिरम् ॥१२॥
स तत्र नृपशार्दूलः सदा संमार्जने रतः। दीपदानपरश्चैव विशेषेण हरिप्रियः ॥१३॥
हरिनामपरो नित्यं हरिसंसक्तमानसः। हरिप्रणामनिरतो हरिभक्तजनप्रियः ॥१४॥
वीतिहोत्र इति ख्यातो ह्यासीत्तस्य पुरोहितः। जयध्वजस्य चरितं दृष्ट्वा विस्मयमागतः ॥१५॥
कदाचिदुपविष्टं तं राजानं विष्णुतत्परम्। अपृच्छद्वीतिहोत्रस्तु वेदवेदांगपारगः ॥१६॥

वीतिहोत्र उवाच

राजन्परमधर्मज्ञ हरिभक्तिपरायण। विष्णुभक्तिमतां पुंसां श्रेष्ठोऽसि भरतर्षभ ॥१७॥
संमार्जनपरो नित्यं दीपदानरतस्तथा। तन्मे वद महाभाग किं त्वया विदितं फलम् ॥१८॥
संपादनेन वर्त्तीनां तैलसंपादनेन च। संयुक्तोऽसि सदा भद्र यद्विष्णोर्गृहमार्जने ॥१९॥
कर्माण्यन्यानि सन्त्येव विष्णोः प्रीतिकराणि च। तथापि किं महाभाग एतयोः सततोद्यतः ॥२०॥
सर्वात्मना महापुण्य नरेश विदितं च यत्। तद्ब्रूहि मे गुह्यतमं प्रीतिर्मयि तवास्ति चेत् ॥२१॥
पुरोधसैवमुक्तस्तु प्रहसन्स जयध्वजः। विनयावनतो भूत्वा प्रोवाचेदं कृतांजलिः ॥२२॥

जयध्वज उवाच

शृणुष्व विप्रशार्दूल मयैवाचरितं पुरा। जातिस्मरत्वाज्जानामि श्रोतॄणां विस्मयप्रदम् ॥२३॥
आसीत्पुरा कृतयुगे ब्रह्मन्स्वारोचिषेऽन्तरे। रैवतो नाम विप्रेंद्रो वेदवेदांगपारगः ॥२४॥
अयाज्ययाजकश्चैव सदैव ग्रामयाजकः। पिशुनो निष्ठुरश्चैव ह्यपण्यानां च विक्रयी ॥२५॥

रखता था ॥११॥ किसी समय उसने विचित्र फूलों से सुशोभित नर्मदा के मनोहर तट पर एक विष्णु-मन्दिर बनवाया ॥१२॥ वह हरिभक्त नृपशार्दूल सदा उस देव मन्दिर की सफाई किया करता और भगवान् को दीपक दिखाया करता था ॥१३॥ इस प्रकार वह अपनी साधना से भगवान् का परम प्रिय भक्त हो गया। वह नित्य हरि-नाम का जप करता, हरि का ही ध्यान करता और भगवान् को स्तुति किया करता था ॥१४॥ उस हरिभक्त-प्रेमी राजा का वीतिहोत्र नामक एक पुरोहित था। वह जयध्वज का चरित्र देखकर आश्चर्यचकित था। एक दिन वेद-वेदांग के पारगामी उस पुरोहित ने विष्णु-सेवा में लगे हुए उस राजा से पूछा ॥१५-१६॥

वीतिहोत्र बोले—परमधर्म के ज्ञाता, हरि-भक्ति में निष्ठा रखने वाले हे राजन्! तुम विष्णु-भक्तों में श्रेष्ठ हो, प्रतिदिन मन्दिर की सफाई में लगे रहते हो और दीपक भी दिखाते हो ॥१७॥ इसलिए इस दीर्घ साधना से क्या फल मिला, यह मुझे बताओ ॥१७-१८॥ भद्र! तुम सदा बत्तियाँ बनाने, तेल जुटाने और मन्दिर में झाड़ू लगाने में लगे रहते हो ॥१९॥ महाभाग! हरि-सेवा तो और प्रकार से भी को जा सकती है तथापि तुम क्यों इन्हीं कार्यों में सदा लगे रहते हो ॥२०॥ यदि तुम्हारा मेरे प्रति कुछ प्रेम है तो नरेश! अपने अब तक के अनुभव से जो कुछ अत्यन्त श्रेष्ठ पुण्य जान पाये हो उसको कहो ॥२१॥ पुरोहित की उपर्युक्त बातों को सुनकर जयध्वज हँस पड़ा और हाथ जोड़कर विनम्र भाव से बोला ॥२२॥

जयध्वज बोले—प्राचीन काल में मैंने जो कुछ किया है उसको सुनो। जातिस्मर के कारण मैं पूर्व जन्म की उन बातों को जानता हूँ जिनको सुनकर पाठकों को आश्चर्य होगा॥२३॥ ब्रह्मन्! स्वारोचिष मन्वन्तर में कृतयुग में वेद-वेदांगों का ज्ञाता रैवत नामक एक विप्र था। वह सदा अपात्रों से यज्ञ कराता

निषिद्धकर्माचरणात्परित्यक्तः स बन्धुभिः । दरिद्रो दुःखितश्चैव शीर्णांगो व्याधितोऽभवत् ॥२६॥
स कदाचिद्धनार्थं तु पृथिव्यां पर्यटन् द्विजः । ममार नर्मदातीरे श्वासकासप्रपीडितः ॥२७॥
तस्मिन्मृते तस्य भार्या नाम्ना बन्धुमती मुने । कामचारपरा सा तु परित्यक्ता च बन्धुभिः ॥२८॥
तस्यां जातोऽस्मि चण्डालो दण्डकेतुरिति श्रुतः । महापापरतो नित्यं ब्रह्मद्वेषपरायणः ॥२९॥
परदारपरद्रव्यलोलुपो जन्तुहिंसकः । गावश्च विप्रा बहवो निहता मृगपक्षिणः ॥३०॥
मेरुतुल्यसुवर्णानि बहून्यपहृतानि च । मद्यपानरतो नित्यं बहुशो मार्गरोधकृत् ॥३१॥
पशुपक्षिमृगादीनां जन्तूनामन्तकोपमः । कदाचित्कामसंतप्तो गंतुकामो रतिस्त्रियः ॥३२॥
शून्यं विष्णुगृहं दृष्ट्वा प्रविष्टश्च स्त्रिया सह । निशि रामोपभोगार्थं शयितं तत्र कामिना ॥३३॥
ब्रह्मन्स्ववस्त्रप्रांतेन कियद्देशः प्रमार्जितः । यावंत्यः पांशुकणिकास्तत्र संमार्जिता द्विज ॥३४॥
तावज्जन्मकृतं पापं तदैव क्षयमागतम् । प्रदीपः स्थापितस्तत्र सुरतार्थं द्विजोत्तम ॥३५॥
तेनापि मम दुष्कर्म निःशेषं क्षयमागतम् । एवं स्थिते विष्णुगृहे ह्यागताः पुरपालकाः ॥३६॥
जारोऽयमिति मां तां च हतवंतः प्रसह्य वै । आवां निहत्य ते सर्वे निवृत्ताः पुररक्षकाः ॥३७॥
यदा तदैव संप्राप्ता विष्णुदूताश्चतुर्भुजाः । किरीटकुंडलधरा वनमालाविभूषिताः ॥३८॥
तैस्तु संप्रेरितावावां विष्णुदूतैरकल्मषैः । दिव्यं विमानमारुह्य सर्वभोगसमन्वितम् ॥३९॥
दिव्यदेहधरौ भूत्वा विष्णुलोकमुपागतौ । तत्र स्थित्वा ब्रह्मकल्पशतं साग्रं द्विजोत्तम ॥४०॥
दिव्यभोगसमायुक्तौ तावत्कालं दिवि स्थितौ । ततश्च भूमिभागेषु देवयोगेषु वै क्रमात् ॥४१॥

निषिद्ध वस्तुओं को बेंचता तथा ग्राम याजक का कार्य करता था, वह बहुत बड़ा चुगलखोर और क्रूर था ॥२४-२५॥ निषिद्ध आचरण से उसके भाइयों ने उसको निकाल दिया जिससे थोड़ी ही दिनों में वह दरिद्र, दुःखी और रोगग्रस्त हो गया । उसकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं ॥२६॥ किसी समय वह धन की खोज में इधर-उधर भटकता हुआ नर्मदा तट पर पहुँचा । वहाँ दमे से पीड़ित होकर मर गया ॥२७॥ मुने ! उसकी मृत्यु के बाद उसकी स्त्री बन्धुमती भी स्वेच्छाचारिणी हो गई जिससे तंग आकर परिवार वालों ने उसको भी घर से निकाल दिया ॥२८॥ उसी के गर्भ से चाण्डाल-कुल में दण्डकेतु नाम से मैं उत्पन्न हुआ । चाण्डाल होकर मैं सदा महापाप करता और ब्राह्मणों से द्वेष करता था ॥२९॥ परायी स्त्रियों और पराये धन का लोलुप रहता और जीवहिंसा करता था । मैंने बहुत से ब्राह्मणों, गायों, मृगों, और पक्षियों का वध किया । सुमेरु के समान बहुत से स्वर्ण का अपहरण किया । नित्य प्रति मदिरा पीना, लोगों के मार्ग में अनेक प्रकार से बाधा उपस्थित करना मेरा काम था ॥३०-३१॥ पशु-पक्षी और जीवों के लिए तो यमराज के समान था । एक दिन काम से सन्तप्त होकर भोग की इच्छा से पूँश्चली स्त्री के निकट गया ॥३२॥ एक शून्य विष्णु मन्दिर को देखकर स्त्री के साथ उस मन्दिर में घुस गया । रात में कामान्ध मैं स्त्री से भोग करने के लिए उसी मन्दिर में सोया ॥३३॥ ब्रह्मन् ! अपने वस्त्र के छोर से थोड़ी सी भूमि झाड़ दी । द्विज ! जितने धूलिकण (मैंने झाड़ू या सफाई करते समय जितने धूलिकण) हटाये उसी समय तत्काल उतने जन्म के पाप नष्ट हो गए । द्विजवर्य ! रतिकाल में जो सुरत-दीप जलाया उस से भी मेरे शेष पाप भी नष्ट हो गए ॥३४-३५½॥ ऐसा करने के बाद वहां नगर-रक्षक घूमते हुए आए । मुझको जार समझ कर उन लोगों ने मुझको और मेरी जार पत्नी को हठात् मार डाला । हम दोनों को मार कर जब वे पुररक्षक चले गए, तब तत्काल चार भुजा-वाले, किरीट, कुण्डल और वनमाला से सुशोभित विष्णु के दूत आए ॥३६-३८॥ उन निष्पाप विष्णुदूतों की प्रेरणा से सब भोग-सामग्रियों से सुसज्जित दिव्य विमान पर चढ़कर हम दोनों देवरूप होकर विष्णु लोक को गए ॥३९½॥ वहां पर सौ कल्प तक रह कर दिव्य भोगों को भोगते हुए उतने ही समय तक देवलोक में रहे । इसके बाद क्रमशः देवोपयुक्त लोकों में सुख भोगकर उसी पुण्य के प्रभाव से पुनः यदुवंश में जन्म हुआ । उसी पुण्य

तेन पुण्यप्रभावेण यदूनां वंशसंभवः । तेनैव मेऽच्युता संपत्तथा राज्यमकंटकम् ॥४२॥
ब्रह्मन्कृत्वोपभोगार्थमेव श्रेयो ह्यवाप्तवान् । भक्त्या कुर्वंति ये संतस्तेषां पुण्यं न वेद्म्यहम् ॥४३॥
तस्मात्संमार्जने नित्यं दीपदाने च सत्तम । यतिष्ये परया भक्त्या ह्यहं जातिस्मरो यतः ॥४४॥
यः पूजयेज्जगन्नाथमेकाकी विगतस्पृहः । सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम् ॥४५॥
अवशेनापि यत्कर्म कृत्वेमां श्रियमागतः । भक्तिमद्भिः प्रशांतैश्च किं पुनः सम्यगर्चनात् ॥४६॥
इति भूपवचः श्रुत्वा वीतिहोत्रो द्विजोत्तमः । अनंततुष्टिमापन्नो हरिपूजापरोऽभवत् ॥४७॥
तस्माच्छृणुष्व विप्रेंद्र देवो नारायणोऽव्ययः । ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि पूजकानां विमुक्तिदः ॥४८॥
अनित्या बांधवाः सर्वे विभवो नैव शाश्वतः । नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥४९॥
अज्ञो लोको वृथा गर्वं करिष्यति महोद्धतः । कायः संनिहितापायो धनादीनां किमुच्यते ॥५०॥
जन्मकोटिसहस्रेषु पुण्यं यैः समुपार्जितम् । तेषां भक्तिर्भवेच्छुद्धा देवदेवे जनार्दने ॥५१॥
सुलभं जाह्नवीस्नानं तथैवातिथिपूजनम् । सुलभाः सर्वयज्ञाश्च विष्णुभक्तिः सुदुर्लभा ॥५२॥
दुर्लभा तुलसीसेवा दुर्लभः संगमः सताम् । सर्वभूतदया वापि सुलभा यस्य कस्यचित् ॥५३॥
सत्संगस्तुलसीसेवा हरिभक्तिश्च दुर्लभा । दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं न तथा गमयेद् बुधः ॥५४॥
अर्चयेद्धि जगन्नाथं सारमेतद्द्विजोत्तम ॥५५॥
ततुं यदीच्छति जनो दुस्तरं भवसागरम् । हरिभक्तिपरो भूयादेतदेव रसायनम् ॥५६॥

के प्रभाव से मुझे यह सम्पत्ति और निष्कंटक राज्य प्राप्त हुआ ॥४०-४२॥ ब्रह्मन् ! इतनी सुख-सामग्री के साथ श्रेयःप्राप्ति उसी पुण्य के प्रभाव से हुई है। जो भक्त भक्तिपूर्वक भगवान् की उपासना करते हैं उनके पुण्य को मैं नहीं जानता ॥४३॥ इसलिए मैं नित्यप्रति मंदिर के संमार्जन और दीप-दर्शन में परम निष्ठा के साथ लगा रहता हूँ क्योंकि मुझे पूर्वजन्म की बातों का ज्ञान है ॥४४॥ जो एकान्त भाव से निःस्पृह होकर जगन्नाथ की पूजा करता है वह सब पापों से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त करता है ॥४५॥ जब इच्छा के बिना भी भगवदर्चन करने से इस प्रकार की श्री प्राप्त होती है तो भक्ति पूर्वक शान्त भाव से भगवान् की अर्चना करने से कितना पुण्य होगा, उसके विषय में क्या कहा जाय ॥४६॥

राजा की इतनी बातें सुनकर द्विजोत्तम वीतिहोत्र अत्यन्त प्रसन्न हो गया और भगवदाराधना में लग गया ॥४७॥ विप्रेन्द्र ! सुनो, कहने का सार यह है कि भगवान् नारायण जान-बूझकर या अनजाने किसी प्रकार से भी पूजा करने पर अपने भक्तों को अवश्य मुक्ति प्रदान करते हैं ॥४८॥ सारे बन्धुबांधव अनित्य हैं, ऐश्वर्य भी नित्य नहीं, तिस पर मृत्यु सदा शिर पर सवार रहती है, ऐसी अवस्था में धर्मसंग्रह अवश्य करना चाहिए ॥४९॥ व्यर्थ ही मूर्ख लोग मदमत्त होकर गर्व करते हैं। जब शरीर ही क्षण-भंगुर और बाधाओं से पूर्ण है, तब धन-ऐश्वर्य के विषय में निश्चित रूप से क्या कहा जा सकता है ॥५०॥ जो हजार करोड़ जन्मों तक पुण्य संचय करते हैं उनकी देव-देव जनार्दन में शुद्ध भक्ति होती है ॥५१॥ गंगास्नान सुलभ है, अतिथि पूजन भी सुलभ है, सब यज्ञ भी सुलभ हैं, परन्तु हरिभक्ति अत्यन्त दुर्लभ है ॥५२॥ तुलसी की सेवा दुर्लभ है, सत्संगति भी दुर्लभ ही है और सब प्राणियों पर दया करना भी जिस किसी के लिए सुलभ नहीं है ॥५३॥ जब तुलसी-सेवा, हरि-भक्ति और सत्संग दुर्लभ है तब विद्वान् का यह कर्त्तव्य है कि दुर्लभ मानव-जीवन को पाकर उसको व्यर्थ न गँवायें। द्विजोत्तम ! सब का सार यह है कि यदि मनुष्य इस दुस्तर भवसागर को पार करना चाहता है तो वह अवश्य भगवान् की पूजा करे। मनुष्य हरिभक्तिपरायण हो, यही एक रसायन है ॥५४-५६॥ भाई ! गोविन्द

भ्रातराश्रय गोविंदं मां विलंबं कुरु प्रिय । आसन्नमेव नगरं कृतांतस्य हि दृश्यते ॥५७॥
नारायणं जगद्योनिं सर्वकारणकारणम् । समर्चयस्व विप्रेंद्र यदि मुक्तिमभीप्ससि ॥५८॥
सर्वाधारं सर्वयोनिं सर्वांतर्यामिणं विभुम् । ये प्रपन्ना महात्मानस्ते कृतार्था न संशयः ॥५९॥
ते वंद्यास्ते प्रपूज्याश्च नमस्कार्या विशेषतः । येऽर्चयंति महाविष्णुं प्रणतार्तिप्रणाशनम् ॥६०॥
ये विष्णुभक्ता निष्कामा यजन्ति परमेश्वरम् । त्रिःसप्तकुलसंयुक्तास्ते यांति हरिमंदिरम् ॥६१॥
विष्णुभक्ताय यो दद्यान्निष्कामाय महात्मने । पानीयं वा फलं वापि स एव भगवत्प्रियः ॥६२॥
विष्णुभक्तिपराणां तु शुश्रूषां कुर्वते तु ये । ते यांति विष्णुभुवनं यावदाभूतसंप्लवम् ॥६३॥
ये यजंति स्पृहाशून्या हरिभक्तान् हरिं तथा । त एव भुवनं सर्वं पुनंति स्वांघ्रिपांशुना ॥६४॥
देवपूजापरो यस्य गृहे वसति सर्वदा । तत्रैव सर्वदेवाश्च तिष्ठन्ति श्रीहरिस्तथा ॥६५॥
पूज्यमाना च तुलसी यस्य तिष्ठति वेश्मनि । तत्र सर्वाणि श्रेयांसि वर्द्धंत्यहरहर्द्विज ॥६६॥
शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशवः । न बाधंते ग्रहास्तत्र भूतवेतालकादयः ॥६७॥
शालग्रामशिला यत्र तत्तीर्थं तत्तपोवनम् । यतः संनिहितस्तत्र भगवान्मधुसूदनः ॥६८॥
यद्गृहे नास्ति देवर्षे शालग्रामशिलार्चनम् । श्मशानसदृशं विद्यात्तद् गृहं शुभवर्जितम् ॥६९॥
पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राणि च द्विज । सांगा वेदास्तथा सर्वे विष्णोरूपं प्रकीर्तितम् ॥७०॥
भक्त्या कुर्वंति ये विष्णोः प्रदक्षिणचतुष्टयम् । तेऽपि यांति परं स्थानं सर्वकर्मनिबर्हणम ॥७१॥
इति बृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे विष्णुमाहात्म्यं नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

की शरण में जाओ, विलम्ब मत करो। प्रिय ! देखो, यमराज का नगर सामने समीप ही दिखाई दे रहा है (मृत्यु समीप है) ॥५७॥ इसलिए यदि मुक्ति चाहते हो तो जगत् के आदि कारण, सब कारणों के कारण नारायण की अर्चना करो ॥५८॥ सर्वाधार, सर्वयोनि, सब के अन्तर की बात जानने वाले, विभु की शरण में जो जाते हैं उनका जन्म सफल है, वे महात्मा हैं इसमें संशय नहीं है ॥५९॥ वे वन्दनीय हैं, पूजनीय हैं और विशेष रूप से नमस्कार के योग्य हैं। जो भक्त जनों के कष्ट को दूर करने वाले महाविष्णु की पूजा करते हैं, जो विष्णुभक्त निष्काम भाव से परमेश्वर की सेवा करते हैं वे अपनी इक्कीस कुल परम्परा के साथ विष्णु लोक को जाते हैं ॥६०-६१॥ जो निष्काम महात्मा विष्णु भक्त को जल और फल देते हैं वे ही भगवान् के प्रिय पात्र हैं ॥६२॥ जो विष्णुभक्ति में लीन रहने वाले भक्तों की शुश्रूषा करते हैं वे कल्पान्त तक विष्णुलोक में निवास करते हैं ॥६३॥ जो निःस्पृह होकर हरि भक्तों और हरि की सेवा करते हैं वे ही अपनी चरणरेणु से समस्त भुवन को पवित्र करते हैं ॥६४॥ जिसके घर में एक भी सदा देव-पूजा-परायण व्यक्ति रहता है, उस घर में ही स्वयं भगवान्, लक्ष्मी और सब देवता सदा निवास करते हैं ॥६५॥ जिसके घर तुलसी की नित्यप्रति पूजा होती है, द्विज, उसके घर नित्य प्रति सब श्रेय बढ़ते रहते हैं ॥६६॥ जहाँ विष्णु शालग्राम शिला के रूप में रहते हैं, वहाँ ग्रहों से कोई कष्ट नहीं होता और न तो भूत-बेताल ही कोई बाधा पहुँचा सकते हैं ॥६७॥ जहाँ शालग्रामशिला रहती है वह स्थान तीर्थ है, तपोवन है, क्योंकि वहाँ भगवान् मधुसूदन सदा सन्निहित रहते हैं ॥६८॥ देवर्षि-नारद ! जिस घर में शालग्राम का पूजन नहीं होता उस घर को अमंगलमय श्मशान समझना चाहिए ॥६९॥ द्विज ! पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र और सब सांगोपांग वेद ये विष्णु के ही रूप हैं ॥७०॥ जो भक्ति पूर्वक विष्णु की चार बार प्रदक्षिणा करते हैं, वे भी सब कामों से मुक्त करने वाले उत्तम स्थान को जाते हैं ॥७१॥

श्री नारदीयमहापुराण में विष्णुमाहात्म्यवर्णन नामक उनतालीसवां अध्याय समाप्त ॥३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

सनक उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि विभूतिं वैष्णवीं मुने । यां शृण्वतां कीर्तयतां सद्यः पापक्षयो भवेत् ॥१॥
वैवस्वतेंऽतरे पूर्वं शक्रस्य च बृहस्पतेः । संवादः सुमहानासीत्तं वक्ष्यामि निशामय ॥२॥
एकदा सर्वभोगाढ्यो विबुधैः परिवारितः । अप्सरोगणसंकीर्णो बृहस्पतिमभाषत ॥३॥

इन्द्र उवाच

बृहस्पते महाभाग सर्वतत्त्वार्थकोविद । अतीतब्रह्मणः कल्पे सृष्टिः कीदृग्विधा प्रभो ॥४॥
इन्द्रस्तु कीदृशः प्रोक्तो विबुधाः कीदृशाः स्मृताः । तेषां च कीदृशं कर्म यथावद्वक्तुमर्हसि ॥५॥

बृहस्पतिरुवाच

न ज्ञायते मया शक्र पूर्वेद्युश्चरितं विधेः । वर्तमानदिनस्यापि दुर्ज्ञेयं प्रतिभाति मे ॥६॥
मनवः समतीताश्च तान्वक्तुमपि न क्षमः । यो विजानाति तं तेऽद्य कथयामि निशामय ॥७॥
सुधर्म इति विख्यातः कश्चिदास्ते पुरे तव । भुञ्जानो दिव्यभोगांश्च ब्रह्मलोकादिहागतः ॥८॥
स वा एतद्विजानाति कथयामि निशामय । एवमुक्तस्तु गुरुणा शक्रस्तेन समन्वितः ॥९॥
देवतागणसंकीर्णः सुधर्मनिलयं ययौ ॥१०॥

अध्याय ४०

विष्णुमाहात्म्य-वर्णन

सनक बोले—मुनिवर ! अब इसके बाद वैष्णवी विभूति का वर्णन कर रहा हूँ, जिसके सुनने और कीर्तन करने से सद्यः पापक्षय हो जाता है ॥१॥ प्राचीन काल में वैवस्वत मन्वन्तर में इन्द्र और बृहस्पति के बीच जो महत्त्वपूर्ण वार्तालाप हुआ उसी को दुहरा रहा हूँ, सुनो ॥२॥ एक दिन इन्द्र सब भोग-सामग्री से परिपूर्ण इन्द्रपुरी में देवताओं के मध्य बैठे हुए थे । अप्सराओं से देवसभा भरी हुई थी । उन्होंने बृहस्पति से पूछा ॥३॥

इन्द्र बोले—बृहस्पते ! महाभाग ! सब तत्त्वों के जानने वाले ! अतीत ब्रह्म कल्प में सृष्टि किस प्रकार की थी ? इन्द्र कौन और कैसे थे ? देवगण कैसे थे ? और उनके कर्त्तव्य कैसे थे ? इसको भली-भाँति कहिए ॥४-५॥

बृहस्पति बोले—शक्र ! विधि के पूर्वकालीन चरित्र का ज्ञान मुझे नहीं है । यही नहीं, वर्त्तमान कल्प की बातें भी कठिनता से जानी जा सकती हैं । जो मनु बीत गए उनकी चर्चा करने में मैं समर्थ नहीं हूँ । जो इस विषय को जानता है, उसे मैं बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो ॥६-७॥

तुम्हारे इसी देवपुर में सुधर्म नामक देवता है । वह ब्रह्मलोक से दिव्य सुखों को भोगने के बाद यहाँ आया है । वही इन बातों को भली-भाँति जानता है । गुरुदेव की बातों को सुनकर इन्द्र गुरुदेव और देवताओं को साथ

समागतं देवपतिं बृहस्पतिसमन्वितम् । दृष्ट्वा यथार्हं देवर्षे पूजायामास सादरम् ॥११॥
सुधर्मणार्चितः शक्रो दृष्ट्वा तच्छ्रियमुत्तमाम् । मनसा विस्मयाविष्टः प्रोवाच विनयान्वितः ॥१२॥

इन्द्र उवाच

अतीतब्रह्मकल्पस्य वृत्तांतं वेत्सि चेद्बुध । तदाख्याहि सकायात एतत्प्रष्टुं सयाजकः ॥१३॥
गतनिद्रांश्च देवांश्च येन जानासि सुव्रत । तद्वदस्वाधिकः कस्मादस्मद्भचोऽपि दिवि स्थितः ॥१४॥
तेजसा यशसा कीर्त्या ज्ञानेन च परंतप । दानेन वा तपोभिर्वा कथमेतादृशः प्रभो ॥१५॥
इत्युक्तो देवराजेन सुधर्मा प्रहसंस्तदा । प्रोवाच विनयाविष्टः पूर्ववृत्तं यथाविधि ॥१६॥

सुधर्म उवाच

चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते । एकस्मिन् दिवसे शक्र मनवश्च चतुर्दश ॥१७॥
इंद्राश्चतुर्दश प्रोक्ता देवाश्च विविधाः पृथक् । इंद्राणां चैव सर्वेषां मन्वादीनां च वासव ॥१८॥
तुल्यता तेजसा लक्ष्म्या प्रभावेण बलेन च । तेषां नामानि वक्ष्यामि शृणुष्व सुसमाहितः ॥२०॥
स्वायंभुवो मनुः पूर्वं ततः स्वारोचिषस्तथा । उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥२१॥
वैवस्वतो मनुश्चैव सूर्यसावर्णिरष्टमः । नवमो दक्षसावर्णिः सर्वदेवहिते रतः ॥२२॥
दशमो ब्रह्मसावर्णिर्धर्मसावर्णिकस्ततः । ततस्तु रुद्रसावर्णी रोचमानस्ततः स्मृतः ॥२३॥
भौत्यश्चतुर्दशः प्रोक्त एते हि मनवः स्मृताः । देवानिंद्रांश्च वक्ष्यामि शृणुष्व विबुधर्षभ ॥२४॥

लेकर सुधर्म के घर पर गया ॥८-१०॥ देवर्षि नारद ! इन्द्र को बृहस्पति के साथ अपने घर पर आया हुआ देखकर उसने आदरपूर्वक यथायोग्य सब की पूजा की ॥११॥ सुधर्म का सम्मान और आतिथ्य ग्रहण करने के बाद, उसके उत्तम वैभव को देखकर इन्द्र को मन ही मन बड़ा विस्मय हुआ । उन्होंने विनम्रभाव से पूछा ॥१२॥

इन्द्र बोले—हे बुद्धिमन् ! यदि तुम अतीत कल्प की बातें जानते हो तो कहो । यही बात पूछने के लिए मैं गुरु के साथ आया हूँ । सुव्रत ! जिस कारण तुम निद्रा को जीतने वाले देवों को जानते हो उसको कहो । यह भी बताओ कि कौन ऐसा महान तप है जिसके कारण इस स्वर्ग में रहकर भी तुम हम सबों से श्रेष्ठ समझे जाते हो ॥१३-१४॥ शत्रुंजय ! तेज, यश, कीर्ति, ज्ञान, दान या तप इनमें से किसके प्रभाव से तुम इस प्रकार श्रेष्ठ हो गए ॥१५॥ देवराज इन्द्र की कही हुई इन बातों को सुनकर सुधर्मा हँसने लगा । उसने बड़ी विनम्रता से पूर्व की बीती हुई घटनाओं को यथाविधि कहना प्रारम्भ किया । १६॥

सुधर्मा ने कहा—सहस्र चतुर्युग ब्रह्मा का एक दिन है । इन्द्र ! ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु होते हैं ॥१७॥ इन्द्र भी चौदह ही हैं । देवता तो पृथक्-पृथक् अनेकों हैं । वासव ! इन्द्र और सब मनु लक्ष्मी, तेज, प्रभाव और बल में समान ही होते हैं । अब मन्वन्तरों का नाम क्रमशः सुना रहा हूँ, तुम शान्त और एकाग्रभाव से इसको सुनो ॥१८-१९॥ पहले स्वायम्भुव मनु उसके बाद और स्वारोचिष मनु हुए । उसके अनन्तर उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष तथा वैवस्वत मनु हुए । सूर्यसावर्णि आठवें और नवें दक्षसावर्णि हैं जो सदा सब देवों के हित में लगे रहते हैं । दसवाँ ब्रह्मसावर्णि, ग्यारहवाँ धर्मसावर्णि, बारहवाँ रुद्रसावर्णि, तेरहवाँ मनु रोचमान और चौदहवाँ भौत्य मनु हैं । ये ही चौदह मनु कहे गए हैं । विबुधर्षभ ! अब देवों और इन्द्रों को बतला रहा हूँ, सुनो ॥२०-२३॥ स्वायम्भुव

यामा इति समाख्याता देवाः स्वायंभुवेंऽतरे । शचीपतिः समाख्यातस्तेषामिंद्रो महामतिः ॥२४॥
पारावताश्च तुषिता देवाः स्वारोचिषेंऽतरे । विपश्चिन्नाम देवेन्द्रः सर्वसंपत्समन्वितः ॥२५॥
सुधामानस्तथा सत्याः शिवाश्चाथ प्रतर्दनाः । तेषामिंद्रः सुशांतिश्च तृतीये परिकीर्तितः ॥२६॥
सुताः पाराहराश्चैव सुत्याश्चासुधियस्तथा । तेषामिंद्रः शिवः प्रोक्तः शक्रस्तामसकेंऽतरे
विभुनामा देवपतिः पञ्चमः परिकीर्तितः ॥२७॥
अमिताभादयो देवाः षष्ठेऽपि च तथा शृणु । आर्याद्या विबुधाः प्रोक्तास्तेषामिंद्रो मनोजवः ॥२८॥
आदित्यवसुरुद्राद्या देवा वैवस्वतेंऽतरे । इन्द्रः पुरंदरः प्रोक्तः सर्वकामसमन्वितः ॥२९॥
अप्रमेयाश्च विबुधाः सुतपाद्याः प्रकीर्तिताः । विष्णुपूजाप्रभावेण तेषामिंद्रो बलिः स्मृतः ॥३०॥
पाराद्या नवमे देवा इन्द्रश्चाद्भुत उच्यते । सुवासनाद्या विबुधा दशमे परिकीर्तिताः ॥३१॥
शांतिर्नाम च तत्रेंद्रः सर्वभोगसमन्वितः । विहंगमाद्या देवाश्च तेषामिंद्रो वृषः स्मृतः ॥३२॥
एकादशे द्वादशे तु निबोध कथयामि ते । ऋभुनामा च देवेंद्रो हरिनाभास्तथा सुराः ॥३३॥
सुत्रामाद्यास्तथा देवास्त्रयोदशतमेऽन्तरे । दिवस्पतिर्महावीर्यस्तेषामिंद्रः प्रकीर्तितः ॥३४॥
चतुर्दशे चाक्षुषाद्या देवा इन्द्रः शुचिः स्मृतः । एवं ते मनवः प्रोक्ता इंद्रा देवाश्च तत्त्वतः ॥३५॥
एकस्मिन्ब्रह्मदिवसे स्वाधिकारं प्रभुंजते ॥३६॥
लोकेषु सर्वसर्गेषु सृष्टिरेकविधा स्मृता । कर्त्तारो बहवः संति तत्संख्यां वेत्ति कोविदः ॥३७॥
मयि स्थिते ब्रह्मलोके ब्रह्माणो बहवो गताः । तेषां संख्यां न संख्यातुं शक्तोऽस्म्यद्य द्विजोत्तम ॥३८॥
स्वर्गलोकमपि प्राप्य यावत्कालं शृणुष्व मे । चत्वारो मनवोऽतीता मम श्रीश्चातिविस्तरा ॥३९॥
स्थातव्यं च मयात्रैव युगकोटिशतं प्रभो । ततः परं गमिष्यामि कर्मभूमिं शृणुष्व मे ॥४०॥

स्वायंभुव मन्वन्तर में देवता याम नाम से प्रसिद्ध थे । उनके इन्द्र महामति शचीपति थे ॥२४॥ स्वारोचिष में पारावत तुषिता देवता थे । उनके इन्द्र सब ऐश्वर्यों के उपभोक्ता विपश्चित् नाम के थे ॥२५॥ तीसरे मन्वन्तर में सुधाम, सत्य, शिव और प्रतर्दन देवता थे । उनका इन्द्र सुशान्ति था ॥२६॥ तामस मन्वन्तर में सुत, पाराहर, सुत्य और सुधी नाम के देवता थे । उनके इन्द्र शक्र, शिव हुए । पाँचवें विभुनामक देवेन्द्र हुए । देवताओं की संज्ञा अमिताभ थी । छठे मन्वन्तर का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो—आर्या देवताओं का नाम और उनके इन्द्र का नाम मनोजव था ॥२७-२८॥ वैवस्वत में आदित्य, वसु और रुद्र आदि देवता हैं, सब इष्ट साधनों से सम्पन्न पुरन्दर इन्द्र हैं ॥२९॥ आठवें मन्वन्तर में अप्रमेय, विबुध, सुतपाद्य देवता और विष्णु पूजा के प्रभाव से बलि इन्द्र हैं ॥३०॥ नवें में पराद्य देवता तथा 'अद्भुत' इन्द्र कहे गए हैं । दसवें मन्वन्तर के सुवामन आदि देवता और सब भोगों के भोक्ता इन्द्र शान्ति हैं । ग्यारहवें के विहंगम देवता और वृष उनके इन्द्र हैं ॥३१-३२॥ बारहवें के जो देवता हैं उनको सुनो—ऋभु नामक देवेन्द्र और हरिनाभ नामक देवता हैं ॥३३॥ तेरहवें में सुत्राम आदि देवता तथा महा पराक्रमी दिवस्पति इन्द्र कहे जाते हैं ॥३४॥ चौदहवें में चाक्षुष आदि देवता और शुचि इन्द्र हैं । इस प्रकार तुमसे मनु, इन्द्र, देवता आदि के विषय में यथार्थतः कह दिया ॥३५॥ ब्रह्मा के एक दिन में ये सब अपने अपने अधिकार का उपभोग करते हैं । लोको में तथा सभी सर्गों में सृष्टि एक ही ढंग से होती है । इनके कर्त्ता बहुत से हैं जिनका ज्ञान केवल विज्ञों को ही है ॥३६-३७॥ जब मैं ब्रह्मलोक में था तो बहुत से ब्रह्माओं का कार्य समाप्त हुआ । द्विजोत्तम ! उनकी संख्या की ठीक ठीक गणना करने में मैं तो समर्थ नहीं हूँ ॥३८॥ इस स्वर्गलोक में मैंने जितना समय बिताया है उसको सुनो—चार मनु तो बीत गये, अभी मेरी श्री उसी प्रकार विस्तृत रूप से फैली है ॥३९॥ प्रभो ! अभी यहाँ सौ करोड़ युगों तक रहना है । इसके अनन्तर कर्म भूमि को जाऊँगा, इसका भी वर्णन मुझ से सुनो ॥४०॥

मया कृतं पुरा कर्म वक्ष्यामि तव सुव्रत । वदतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥४१॥
अहमासं पुरा शक्र गृध्रः पापो विशेषतः । स्थितश्च भूमिभागे वै अमेध्यामिषभोजनः ॥४२॥
एकदाहं विष्णुगृहे प्राकारे संस्थितः प्रभो । पतितो व्याधशस्त्रेण सायं विष्णोर्गृहांगणे ॥४३॥
मयि कंठगतप्राणे भषणो मांसलोलुपः । जग्राह मां स्ववक्त्रेण श्वभिरन्यैश्चरन्द्रुतः ॥४४॥
वहन्मां स्वमुखेनैव भीतोऽन्यैर्भषणैस्तथा । गतः प्रदक्षिणाकारं विष्णोस्तन्मदिरं प्रभो ॥४५॥
तेनैव तुष्टिमापन्नो ह्यपरात्मा जगन्मयः । मम चापि शुनश्चापि दत्तावन्परमं पदम् ॥४६॥
प्रदक्षिणाकारतया गतस्यापीदृशं फलम् । संप्राप्तं विबुधश्रेष्ठ किं पुनः सम्यगर्चनात् ॥४७॥
इत्युक्तो देवराजस्तु सुधर्मेण महात्मना । मनसा प्रीतिमापन्नो हरिपूजारतोऽभवत् ॥४८॥
तथापि निर्जराः सर्वे भारते जन्मलिप्सवः । समर्चयंति देवेशं नारायणमनामयम् ।
तानर्चयन्ति सततं ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥४९॥

नारायणानुस्मरणोद्यतानां महात्मनां त्यक्तपरिग्रहाणाम् ।
कथं भवत्युग्रभवस्य बंधस्तत्सङ्गलुब्धा यदि मुक्तिभाजः ॥५०॥
ये मानवाः प्रतिदिनं परिमुक्तिसङ्गा नारायणं गरुडवाहनमर्चयन्ति ।
ते सर्वपापनिकरैः परितो विमुक्ता विष्णोः पदं शुभतरं प्रतियांति हृष्टाः ॥५१॥
ये मानवा विगतरागपरावरज्ञा नारायणं सुरगुरुं सततं स्मरंति ।
ध्यानेन तेन हतकिल्बषचेतनास्ते मातुः पयोधररसं न पुनः पिबन्ति ॥५२॥

सुव्रत ! मैंने पहले जो कुछ कर्म किये हैं उनको कह रहा हूँ, जिसके श्रवण और पठन से सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥४१॥ शक्र ! पहले मैं एक विशेष रूप से पाप करने वाला गिद्ध था। सर्वदा पृथ्वी पर रहता और गन्दा मांस खाता था ॥४२॥ प्रभो ! एक दिन विष्णु मन्दिर की चहारदीवारी पर बैठा था। सायं काल किसी बहेलिये के बाण से घायल होकर उस मन्दिर के आँगन में गिर पड़ा ॥४३॥ अभी मेरे प्राण कण्ठ में ही थे कि एक मांस लोलुप कुत्ता आया और अपने मुँह में मुझको दबा लिया। यह देखकर और भी कुत्ते आगये और उसका पीछा करने लगे ॥४४॥ प्रभो ! उन कुत्तों के भय से वह मुझको मुँह में दबाये ही मन्दिर के चारों ओर घूमने लगा जिससे कि मन्दिर की प्रदक्षिणा हो गयी ॥४५॥ केवल इतने से ही जगन्मय परात्मा सन्तुष्ट हो गये और मुझको तथा उस कुत्ते को भी परमगति दे दी ॥४६॥ जब केवल प्रदक्षिणा करने से इतना फल मिला तब भगवान् को भली-भाँति पूजा करने से कितना फल मिलेगा ॥४७॥ महात्मा सुधर्म की इतनी बातें सुनकर इन्द्र प्रसन्न हो गये और हरिपूजा करने लगे ॥४८॥ उस स्वर्ग लोक में रहकर भी सब देवता भारतवर्ष में जन्म पाने की इच्छा से निर्विकार देवेश नारायण की पूजा करते हैं। ब्रह्मा आदि देवगण उन भक्त देवों की पूजा करते हैं ॥४९॥ नारायण के ध्यान में लीन रहने वाले, किसी का परिग्रह (दान) न लेने वाले भक्तों को इस संसार का कठोर बन्धन कैसे प्राप्त हो सकता है, जबकि उनकी संगति में रहने वाले मनुष्य भी मुक्ति के अधिकारी हो जाते हैं ॥५०॥ जो मनुष्य प्रति दिन विषयों में अनासक्त रहकर गरुड़ध्वज नारायण की पूजा करते हैं, वे सब पाप-समूहों से सर्वथा मुक्त होकर बड़ी प्रसन्नता से विष्णु के शुभलोक को जाते हैं ॥५१॥ जो ब्रह्मज्ञानी वीतराग होकर सुर-गुरु नारायण का सर्वदा स्मरण करते हैं, वे अपने ध्यान के प्रभाव से निष्पाप और विमल बुद्धि हो जाते हैं एवं पुनः माता का दूध नहीं पीते अर्थात् जन्म

ये मानवा हरिकथाश्रवणास्तदोषाः कृष्णांघ्रिपद्मभजने रतचेतनाश्च ।
ते वै पुनंति च जगंति शरीरसंगात् संभाषणादपि ततो हरिरेव पूज्यः ॥५३॥
हरिपूजापरा यत्र महांतः शुद्धबुद्धयः । तत्रैव सकलं भद्रं यथा निम्ने जलं द्विज ॥५४॥
हरिरेव परो बन्धुर्हरिरेव परा गतिः । हरिरेव ततः पूज्यो यतश्चैतन्यकारणम् ॥५५॥
स्वर्गापवर्गफलदं सदानंदं निरामयम् । पूजयस्व मुनिश्रेष्ठ परं श्रेयो भविष्यति ॥५६॥
पूजयन्ति हरिं ये तु निष्कामाः शुद्धमानसाः । तेषां विष्णुः प्रसन्नात्मा सर्वान्कामान् प्रयच्छति ॥५७॥
यस्त्वेतच्छृणुयाद्वापि पठेद्वा सुसमाहितः । स प्राप्नोत्यश्वमेधस्य फलं मुनिवरोत्तम ॥५८॥
इत्येतत्ते समाख्यातं हरिपूजाफलं द्विज । संकोचविस्तराभ्यां तु किमन्यत्कथयामि ते ॥५९॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे विष्णुमाहात्म्ये चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

ग्रहण नहीं करते ॥५२॥ जिन मनुष्यों के सारे पाप हरिकथा के सुनने से दूर हो गए हैं, जो सदा कृष्ण के चरण-कमल के ध्यान में लगे रहते हैं, वे अपने शरीर के स्पर्श और वाणी से समस्त संसार को पवित्र कर देते हैं, इसलिए हरि की ही पूजा करनी चाहिए ॥५३॥ द्विज! जहाँ हरि-पूजापरायण, शुद्धबुद्धि महात्मा रहते हैं वहाँ सारे कल्याण उसी प्रकार इकट्ठे हो जाते हैं जिस प्रकार नीची भूमि में जल ॥५४॥ हरि ही सत्य-बन्धु और हरि ही एकमात्र परम गति हैं। वही सब के पूज्य हैं। क्योंकि चैतन्य कारण वही हैं ॥५५॥ मुनिवर्य ! स्वर्ग और मोक्ष को देने वाले, सदानन्द, निरामय भगवान् की पूजा करो, तुम्हारा परम कल्याण होगा ॥५६॥ जो शुद्ध हृदय व्यक्ति निष्काम भाव से हरि की पूजा करते हैं, उन पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर सारी कामनाओं को पूर्ण कर देते हैं ॥५७॥ मुनिवरोत्तम ! जो ध्यान पूर्वक इस अध्याय को पढ़ता या सुनता है उसको अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है ॥५८॥ द्विज ! इस प्रकार तुमको हरिपूजा का फल संक्षेप और विस्तार से कह सुनाया। अब तुमको और क्या सुनाऊँ? ॥५९॥

श्रीनारदीयमहापुराण में विष्णुमाहात्म्यवर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

आख्यातं भवता सर्वं मुने तत्त्वार्थकोविद । इदानीं श्रोतुमिच्छामि युगानां स्थितिलक्षणम् ॥१॥

सनक उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ मुने लोकोपकारक । युगधर्मान्प्रवक्ष्यामि सर्वलोकोपकारकान् ॥२॥
धर्मो विवृद्धिमायाति काले कस्मिंश्चिदुत्तम । तथा विनाशमायाति धर्म्म एव महीतले ॥३॥
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् । दिव्यैर्द्वादशभिर्ज्ञेयं वत्सरैस्तत्र सत्तम ॥४॥
संध्यासन्ध्यांशयुक्तानि युगानि सदृशानि वै । कालतो वेदितव्यानि इत्युक्तं तत्त्वदर्शिभिः ॥५॥
आद्ये कृतयुगं प्राहुस्ततस्त्रेताविधानकम् । ततश्च द्वापरं प्राहुः कलिमंत्यं विदुः क्रमात् ॥६॥
देवदानवगंधर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । नासन्कृतयुगे विप्र सर्वे देवसमाः स्मृताः ॥७॥
सर्वे हृष्टाश्च धर्मिष्ठा न तत्र क्रयविक्रयौ । वेदानां च विभागश्च न युगे कृतसंज्ञके ॥८॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राः स्वाचारतत्पराः । सदा नारायणपरास्तपोध्यानपरायणाः ॥१०॥
कामादिदोषनिर्मुक्ताः शमादिगुणतत्पराः । धर्मसाधनचित्ताश्च गतासूया अदांभिकाः ॥११॥
सत्यवाक्यरताः सर्वे चतुराश्रमधर्मिणः । वेदाध्ययनसंपन्नाः सर्वशास्त्रविचक्षणाः ॥१२॥

अध्याय ४१

नारद बोले--मुने ! तत्त्वार्थविज्ञ ! आपने सब कुछ कह दिया, अब युगों की स्थिति और धर्म के विषय में सुनना चाहता हूँ ॥१॥

सनक ने कहा-- मुने ! लोकोपकारक ! महाबुद्धिमान् ! धन्य हो, धन्य हो । मैं सब लोक का उपकार करने वाले युग धर्म को कह रहा हूँ ॥२॥ उत्तम ! किसी समय धर्म की वृद्धि होती तो कभी इस पृथ्वी तल पर उसका ह्रास हो जाता है ॥३॥ कृत, त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग हैं । सज्जनश्रेष्ठ ! दिव्य बारह वर्षों तक ये चार युग स्थित रहते हैं ॥४॥ तत्त्वदर्शियों ने कहा है कि चारों युगों में सन्ध्या और सन्ध्यांश काल नियमपूर्वक होते हैं और समय के अनुसार ये जाने जाते हैं । सब से पहले कृतयुग तब त्रेता और इसके बाद द्वापर युग आता है । क्रम में कलि अन्तिम युग है ॥५-६॥ विप्र ! कृतयुग में देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नाग आदि नहीं थे । सब देव कोटि के ही माने जाते थे । सब प्रसन्न और बलवान् थे । क्रय-विक्रय का व्यवहार न था । उस कृत नामक युग में वेदों का विभाग नहीं हुआ था ॥७-८॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य-शूद्र सब अपने आचार-पालन में तत्पर रहते थे । वे सदा नारायण की पूजा करते और तप, ध्यान में लगे रहते थे ॥९॥ वे काम आदि दोषों से मुक्त, शम आदि गुणों में तत्पर, धर्म-साधन के प्रेमी, असूया और दम्भ से सदा दूर रहने वाले होते थे ॥१०॥ सब सत्य बोलने वाले, आश्रम-धर्म का पालन करने वाले, वेदाध्ययनपरायण और सब शास्त्रों के ज्ञाता होते थे ॥११॥

चतुराश्रमयुक्तेन कर्मणा कालयोनिना । अकामफलसंयोगाः प्रयांति परमां गतिम् ॥१२॥
नारायणः कृतयुगे शुक्लवर्णः सुनिर्मलः । त्रेताधर्मान्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व सुसमाहितः ॥१३॥
धर्मः पांडुरतां याति त्रेतायां मुनिसत्तम । हरिस्तु रक्ततां याति किंचित्क्लेशान्विता जनाः ॥१४॥
क्रियायोगरताः सर्वे यज्ञकर्मसु निष्ठिताः । सत्यव्रता ध्यानपराः सदाध्यानपरायणाः ॥१५॥
द्विपादो वर्तते धर्मो द्वापरे च मुनीश्वर । हरिः पीतत्वमायाति वेदश्चापि विभज्यते ॥१६॥
असत्यनिरताश्चापि केचित्तत्र द्विजोत्तमाः । ब्राह्मणाद्याश्च वर्णाः स्युः केचिद्रागादिदुर्गुणाः ॥१७॥
केचित्स्वर्गापवर्गार्थं विप्रयज्ञान्प्रकुर्वते । केचिद्धनादिकामाश्च केचित्कल्मषचेतसः ॥१८॥
धर्माधर्मौ समौ स्यातां द्वापरे विप्रसत्तम । अधर्मस्य प्रभावेण क्षीयंते च प्रजास्तथा ॥१९॥
अल्पायुषो भविष्यन्ति केचिच्चापि मुनीश्वर । केचित्पुण्यरतान् दृष्ट्वा असूयां विप्रकुर्वते ॥२०॥
कलिस्थितिं प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहितः । धर्मः कलियुगे प्राप्ते पादेनैकेन वर्तते ॥२१॥
तामसं युगमासाद्य हरिः कृष्णत्वमेति च । यः कश्चिदपि धर्मात्मा यज्ञाचारान्करोति च ॥२२॥
यः कश्चिदपि पुण्यात्मा क्रियायोगरतो भवेत् । नरं धर्मरतं दृष्ट्वा सर्वेऽसूयां प्रकुर्वते ॥२३॥
व्रताचाराः प्रणश्यंति ज्ञानयज्ञादयस्तथा । उपद्रवा भविष्यन्ति ह्यधर्मस्य प्रवर्तनात् ॥२४॥
असूयानिरताः सर्वे दंभाचारपरायणाः । प्रजाश्चाल्पायुषः सर्वा भविष्यंति कलौ युगे ॥२५॥

नारद उवाच

युगधर्माः समाख्यातास्त्वया संक्षेपतो मुने । कलिं विस्तरतो ब्रूहि त्वं हि धर्मविदां वरः ॥२६॥

सामयिक चारों आश्रमों के कर्म के पालन से वे अकाम भाव से फल को प्राप्त कर परमगति को प्राप्त करते थे ॥१२॥ कृत युग में नारायण शुक्ल वर्ण के और निर्मल होते हैं। इसके बाद त्रेता के धर्मों का वर्णन करता हूँ, उसको ध्यानपूर्वक सुनो ॥१३॥ मुनिश्रेष्ठ ! त्रेता में धर्म पाण्डुर वर्ण का हो जाता है, हरि रक्तवर्ण के हो जाते हैं और मनुष्य कुछ क्लेश पाने लगते हैं ॥१४॥ सब क्रिया-योग में लगे रहते, यज्ञों का अनुष्ठान करते, सभी सत्यव्रत, ध्यान-परायण और सदा ईश्वर-चिन्तन में तल्लीन रहा करते हैं ॥१५॥ मुनीश्वर ! द्वापर में धर्म दो चरणों का ही रह जाता है । हरि भी पीले रंग के हो जाते हैं और वेदों का विभाग हो जाता है ॥१६॥ कुछ द्विजोत्तम व्यक्ति भी असत्य व्यवहार करने लगते और ब्राह्मण आदि वर्ण के लोग भी राग आदि दुर्गुणों में फँस जाते हैं ॥१७॥ कुछ लोग तो स्वर्ग और मुक्ति के लिए यज्ञ करते हैं, कुछ केवल धन के ही इच्छुक होते और कुछ का तो हृदय ही कल्मष से भरा रहता है ॥१८॥ विप्रवर्य ! द्वापर में धर्म और अधर्म बराबर होते हैं । प्रजा अधर्म के कारण क्षीण होती जाती है ॥१९॥ मुनीश्वर ! कुछ लोग अल्पायु भी हो जाते हैं । विप्र ! कुछ तो दूसरों को पुण्य करते देख उसकी निन्दा या उससे ईर्ष्या करने लगते हैं ॥२०॥ अब कलियुग की स्थिति का वर्णन करता हूँ, उसको ध्यानपूर्वक सुनो । कलियुग के आने पर धर्म का केवल एक चरण शेष रह जाता है ॥२१॥ उस तामस युग के आ जाने पर हरि भी कृष्ण वर्ण के जाते हैं । जो कोई धर्मात्मा यज्ञ करता है या जो कोई पुण्यात्मा क्रियायोग का पालन करता है, उस धार्मिक मनुष्य को देख कर सब उससे ईर्ष्या करने लगते हैं ॥२२-२३॥ सारे व्रताचार और ज्ञान-यज्ञ आदि नष्ट हो जाते हैं, अधर्म के बढ़ जाने से नाना उपद्रव होने लगते हैं । सब असूया और दम्भाचार में लगे रहते हैं और उस कलियुग में सारी प्रजा अल्पायु हो जाती है ॥२४-२५॥

नारद बोले—मुने ! आपने संक्षेप में युग-धर्मों का वर्णन किया । अब आप कृपा कर कलियुग का विस्तार-

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तम । किमाहाराः किमाचाराः भविष्यंति कलौ युगे ॥२७॥

सनक उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल सर्वलोकोपकारक । कलिधर्मान्प्रवक्ष्यामि विस्तरेण यथातथम् ॥२८॥
सर्वे धर्मा विनश्यन्ति कृष्णे कृष्णत्वमागते । तस्मात्कलिर्महाघोरः सर्वपातकसंकरः ॥२९॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा धर्मपराङ्मुखाः । घोरे कलियुगे प्राप्ते द्विजा वेदपराङ्मुखाः ॥३०॥
व्याजधर्मरताः सर्वे असूयानिरतास्तथा । वृथाहंकारदुष्टाश्च सत्यहीनाश्च पंडिताः ॥३१॥
अहमेवाधिक इति सर्वेऽपि विवदंति च । अधर्मलोलुपाः सर्वे तथा वैतंडिका नराः ॥३२॥
अतः स्वल्पायुषः सर्वे भविष्यन्ति कलौ युगे । अल्पायुष्यान्मनुष्याणां न विद्याग्रहणं द्विज ॥३३॥
विद्याग्रहणशून्यत्वादधर्मो वर्तते पुनः । व्युत्क्रमेण प्रजाः सर्वा म्रियंते पापतत्पराः ॥३४॥
ब्राह्मणाद्यास्तथा वर्णाः संकीर्यंते परस्परम् । कामक्रोधपरा मूढा वृथासंतापपीडिताः ॥३५॥
शूद्रतुल्या भविष्यन्ति सर्वे वर्णा कलौ युगे । उत्तमा नीचतां यांति नीचाश्चोत्तमतां तथा ॥३६॥
राजानो द्रव्यनिरतास्तथा ह्यन्यायवर्त्तिनः । पीडयन्ति प्रजाश्चैव करैरत्यर्थयोजितैः ॥३७॥
शववाहा भविष्यन्ति शूद्राणां च द्विजातयः । धर्मस्त्रीष्वपि गच्छंति पतयो जारधर्मिणः ॥३८॥
द्विषंति पितरं पुत्रा भर्तारं च स्त्रियोऽखिलाः । परस्त्रीनिरता सर्वे परद्रव्यपरायणाः ॥३९॥
मत्स्यामिषेण जीवंति दुहंतश्चाप्यजीविकाम् । घोरे कलियुगे विप्र सर्वे पापरता जनाः ॥४०॥

पूर्वक वर्णन कीजिए, क्योंकि आप धर्मज्ञों में श्रेष्ठ हैं ॥२६॥ मुनिश्रेष्ठ ! कलियुग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों का आचरण और आहार कैसा होगा, इसको कहिए ॥२७॥

सनक बोले—मुनिश्रेष्ठ ! सर्वलोकोपकारक ! सुनो, अब विस्तारपूर्वक यथार्थ रूप से कलियुग के धर्मों का वर्णन कर रहा हूँ ॥२८॥ हरि के कृष्ण वर्ण (काला) हो जाने पर सारे धर्म नष्ट हो जाते हैं। यही कारण है कि कलि महाघोर युग है। सब पापों का इस युग में नग्न रूप देखने को मिलता है ॥२९॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र धर्म से विमुख हो जाते और घोर कलि के आने पर विप्र भी वेदविमुख हो जाते हैं ॥३०॥ सभी कपट और असूया में प्रवीण हो जाते हैं और पंडित वृथाहंकार से दूषित तथा सत्यविमुख हो जाते हैं ॥३१॥ सभी अपने को ही श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए विवाद करते हैं। सब अधर्म करने के लिए लालायित रहते और वितंडावादी होते हैं ॥३२॥ इसलिए कलियुग में सब अल्पायु होते हैं। अल्पायु होने के कारण विद्योपार्जन करना संभव नहीं होता ॥३३॥ अविद्या के कारण अधर्म बढ़ जाता है। धर्म-व्यतिक्रम के कारण सब प्रजायें पाप कर्म करती और अकाल मृत्यु को प्राप्त करती हैं ॥३४॥ ब्राह्मण आदि सब वर्ण परस्पर संकरदोष से दूषित हो जाते हैं। सब मूढ़, काम-क्रोध-परायण और दूसरों को व्यर्थ कष्ट देने में कुशल हो जाते हैं ॥३५॥ कलियुग में सब वर्ण शूद्र के समान हो जाते हैं, उत्तम तो नीच हो जाते और नीच उत्तम हो जाते हैं ॥३६॥ राजा केवल धनापहरण को ही कर्तव्य समझते, अन्याय व्यवहार करते तथा प्रजा को पीड़ित कर अनेकों कर वसूल करते हैं ॥३७॥ द्विजाति शूद्रों के मुर्दे ढोते हैं। व्यभिचारी पति धर्मस्त्रियों का सतीत्व नष्ट कर देते हैं ॥३८॥ सब पुत्र अपने पिता से द्वेष करने लगते हैं। स्त्रियाँ अपने भर्ता को शत्रु समझने लगती हैं। सब परस्त्री और परद्रव्य के अपहरण में ही लगे रहते हैं ॥३९॥ मछली, मांस खाकर ही जीते हैं और अनुचित जीविका को भी अपनाने में हिचकते नहीं। इस प्रकार विप्र ! घोर कलियुग में सब लोग पाप कर्म करने लगते हैं ॥४०॥ सज्जनों की निन्दा और उनका उपहास

सतामसूयानिरतां उपहासं प्रकुर्वते । सरित्तीरेषु कुद्दालैर्वापयिष्यन्ति चौषधीः ॥४१॥
पृथ्वी निष्फलतां याति बीजं पुष्पं विनश्यति । वेश्यालावण्यशीलेषु स्पृहां कुर्वंति योषितः ॥४२॥
धर्मविक्रयिणो विप्राःस्त्रियश्च भगविक्रयाः । वेदविक्रयकाश्चान्ये शूद्राचाररता द्विजाः ॥४३॥
साधूनां विधवानां च वित्तान्यपहरंति च । न व्रतानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणा द्रव्यलोलुपाः ॥४४॥
धर्माचारं परित्यज्य वृथावादैर्विषज्जिताः । द्विजाः कुर्वन्ति दंभार्थं पितृश्राद्धादिकाः क्रियाः ॥४५॥
आपात्रेष्वेव दानानि प्रयच्छन्ति नराधमाः । दुग्धलोभनिमित्तेन गोषु प्रीतिं च कुर्वते ॥४६॥
न कुर्वंति तथा विप्राः स्नानशौचादिकाः क्रियाः । अकाले कर्मनिरता भविष्यंति द्विजाधमाः ॥४७॥
साधुनिंदापराश्चैव विप्रनिंदापरास्तथा । न कस्यापि मनो विप्र विष्णुभक्तिपरं भवेत् ॥४८॥
यज्विनश्च द्विजानैव धनार्थं राजकिंकराः । ताडयंति द्विजान्दुष्टाः कृष्णे कृष्णत्वमागते ॥४९॥
दानहीना नराः सर्वे घोरे कलियुगे मुने । प्रतिग्रहं प्रकुर्वंति पतितानामपि द्विजाः ॥५०॥
कलेः प्रथमपादेऽपि विनिंदंति हरिं नराः । युगान्ते च हरेर्नाम नैव कश्चिद्वदिष्यति ॥५१॥
शूद्रस्त्रीसंगनिरता विधवासंगलोलुपाः । शूद्रान्नभोगनिरता भविष्यंति कलौ द्विजाः ॥५२॥
विहाय वेदसन्मार्गं कुपथाचारसंगताः । पाखंडाश्च भविष्यन्ति चतुराश्रमनिंदकाः ॥५३॥
न च द्विजातिशुश्रूषां कुर्वंति चरणोद्भवाः । द्विजातिधर्मान्गृह्णन्ति पाखण्डलिङ्गिनोऽधमाः ॥५४॥
काषायपरिवीताश्च जटिला भस्मधूलिताः । शूद्रा धर्मान्प्रवक्ष्यंति कूटयुक्तिपरायणाः ॥५५॥
द्विजाःस्वाचारमुत्सृज्य परपाकान्नभोजिनः । भविष्यंति दुरात्मानः शूद्राः प्रव्रजितास्तथा ॥५६॥

सब करते हैं। नदी तट को फावड़े से खोदकर अन्न बो दिया जाता है ॥४१॥ इस युग में पृथ्वी में अन्न पैदा करने की शक्ति नहीं रह जाती। स्त्रियाँ सुन्दर वेश्याओं का सौन्दर्य और सजावट देखकर उनका ही अनुकरण करने लगती हैं ॥४२॥ ब्राह्मण धर्म बेचते और स्त्रियाँ अपना सतीत्व बेंचती हैं। दूसरे विप्र वेद-विक्रय करते और शूद्रों के समान आचरण करते हैं ॥४३॥ ब्राह्मण इतने अधिक धनलोलुप हो जाते हैं कि व्रत आदि का पालन तो करते नहीं, उलटे साधुओं और विधवाओं की संपत्ति ठग लेते हैं ॥४४॥ द्विज धर्माचार को छोड़कर व्यर्थ के बकवाद में लगे रहते हैं। द्विज केवल दंभ की दृष्टि से ही पितृ श्राद्ध आदि क्रियाओं को करते हैं ॥४५॥ दुष्ट लोग केवल अपात्रों को ही दान देते हैं। गौओं का पालन अथवा उससे प्रेम केवल दूध के लोभ से ही लोग करते हैं, धर्म दृष्टि से नहीं ॥४६॥ विप्रगण स्नान, शौच आदि कर्म शास्त्र और समय के अनुसार नहीं करते हैं और अधम ब्राह्मण अकाल में ही कर्म करते हैं ॥४७॥ विप्र! साधु ब्राह्मणों की निन्दा सब करते हैं। किसी का भी विष्णु भक्ति में मन नहीं लगता ॥४८॥

कोई ब्राह्मण यज्ञ करने वाले नहीं रह जाते, सब धन के लोभ में पड़कर राजसेवक बन जाते हैं। कृष्ण के कृष्ण वर्ण हो जाने पर दुष्टजन ब्राह्मणों को मारते हैं ॥४९॥ मुने! घोर कलियुग के आ जाने पर मनुष्य दान देना नहीं चाहते हैं। द्विज इतने पतित हो जाते हैं कि वे पतितों से भी दान लेते हैं ॥५०॥ कलि के प्रथम चरण में ही मनुष्य हरि की निन्दा करने लगते हैं। युग के अन्त में कोई भगवान् का नाम भी नहीं लेता ॥५१॥ शूद्र-स्त्री के साथ रमण करने लगते और विधवा की संगति के विशेष इच्छुक हो जाते हैं। कलि में द्विज शूद्रान्न भक्षण करेंगे ॥५२॥ अधम पाखंडी लोग ब्राह्मणवेश बनाकर धर्म के नाम पर पाखंड करेंगे। काषाय वस्त्र पहनकर भस्म लेप कर मुण्डी बनकर लोग वेद सम्मत मार्ग छोड़कर कुपथ की ओर लगेंगे। चारों आश्रमों की निन्दा करने वाले पाखंडी होंगे। शूद्र द्विजाति की सेवा नहीं करेंगे। कूट और कपट कुशल शूद्र धर्म का प्रवचन करेंगे ॥५३-५५॥ ब्राह्मण अपने कुलाचार को छोड़कर दूसरे के बनाये अन्न को ही खायेंगे। दुष्ट शूद्र ही संन्यासी

उत्कोचजीविनस्तत्र भविष्यन्ति कलौ मुने । धर्महीनास्तु पाखंडाः कापाला भिक्षवोऽधमाः ॥५७॥
धर्मविध्वंसशीलानां द्विजानां द्विजसत्तम । शूद्रा धर्मान्प्रवक्ष्यन्तिह्यधिरुह्योत्तमासनम् ॥५८॥
एते चान्ये च बहवः नग्नरक्तपटादिकाः । पाखंडाः प्रचरिष्यंति प्रायो वेदविदूषकाः ॥५९॥
गीतवादित्रकुशलाः क्षुद्रधर्मसमाश्रयाः । भविष्यंति कलौ प्रायो धर्मविध्वंसका नराः ॥६०॥
अल्पद्रव्या वृथालिंगा वृथाहंकारदूषिताः । हर्तारः परवित्तानां भवितारो नराधमाः ॥६१॥
प्रतिग्रहपरा नित्यं जगदुन्मार्गशीलिनः । आत्मस्तुतिपराः सर्वे परनिंदापरास्तथा ॥६२॥
विश्वस्तघातिनः क्रूरा दयाधर्मविवर्जिताः । भविष्यंति नरा विप्र कलौ चाधर्मबांधवाः ॥६३॥
परमायुश्च भविता तदा वर्षाणि षोडश । घोरे कलियुगे विप्र पंचवर्षा प्रसूयते ॥६४॥
सप्तवर्षाष्टवर्षाश्च युवानोऽतः परे जरा । स्वकर्मत्यागिनः सर्वे कृतघ्ना भिन्नवृत्तयः ॥६५॥
याचकाश्च द्विजा नित्यं भविष्यन्ति कलौ युगे । परावमाननिरताःप्रहृष्टाः परवेश्मनि ॥६६॥
तत्रैव निंदानिरता वृथाविश्रम्भिणो जनाः । निंदां कुर्वन्ति सततं पितृमातृसुतेषु च ॥६७॥
वदंति वाचा धर्मांश्च चेतसा पापलोलुपाः । धनविद्यावयोमत्ताः सर्वदुःखपरायणाः ॥६८॥
व्याधितस्करदुर्भिक्षैः पीडिता अतिमायिनः । प्रपुष्यंति वृथैवामी न विचार्य च दुष्कृतम् ॥६९॥
धर्ममार्गप्रणेतारं तिरस्कुर्वंति पापिनः । धर्मकार्ये रतं चैव वृथाविश्रंभिणो जनाः ॥७०॥
भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते राजानो म्लेच्छजातयः । शूद्रा भैक्ष्यरताश्चैव तेषां शुश्रूषणे द्विजाः ॥७१॥
न शिष्यो न गुरुः कश्चिन्न पुत्रो न पिता तथा । न भार्या न पतिश्चैव भवितारोऽत्र संकरे ॥७२॥

बनेंगे और उपदेश द्वारा जीविका निर्वाह करेंगे ॥५६॥ हे मुने ! कलियुग में लोग खूब रिश्वत लेंगे । द्विजश्रेष्ठ ! धर्महीन, पाखंडी, कापालिक तथा अधम शूद्र भिक्षु धर्मविमुख द्विजों को उत्तम धर्मासन पर बैठकर धर्मोपदेश करेंगे ॥५७-५८॥ ऐसे पाखण्डपरायण और दूसरे बहुत से, नंगे तथा लाल वस्त्र पहनने वाले कापालिक प्रायः वेद विरुद्ध प्रचार करेंगे ॥५६॥ कलियुग में प्रायः लोग नाचने-गाने में प्रवीण और क्षुद्र धर्म के ही मानने वाले होंगे । उस युग में मनुष्य धर्म-विध्वंसक, दरिद्र, कपट वेष धारण करने वाले और व्यर्थ अहंकार करने वाले होंगे । अधम मानव पर-धन को चुराने वाले होंगे ॥६०-६१॥ प्रतिग्रह लेने वाले और सर्वदा कुपथगामी होंगे । सब आत्मस्तुति करने वाले, पर-निन्दा-परायण, विश्वासघाती, क्रूर, दया धर्म से शून्य और पाप के ही प्रेमी होंगे ॥६२-६३॥ घोर कलियुग आने पर लोगों की परमायु सोलह वर्ष की होगी और पांच वर्ष की कन्यायें पुत्र प्रसव करेंगी ॥६४॥ सात, आठ वर्ष तक ही युवावस्था रहेगी इसके बाद बुढ़ापा आ जायगा सब ब्राह्मण कुलाचार त्यागी,-कृतघ्न, कुल-प्रतिकूल व्यवहार करने वाले और केवल भिखमंगे होंगे । दूसरों को अपमानित करने में लगे रहने वाले दूसरों के घर से ही प्रसन्न रहेंगे ॥६५-६६॥ वहां दूसरों की निन्दा करेंगे और सदा अपनी धाक जमाने का प्रयत्न करेंगे । पिता, माता और पुत्र की निन्दा करेंगे ॥६७॥ और मुँह से तो धर्म की बातें करेंगे परन्तु हृदय से पाप करने के ही लिए उत्सुक रहेंगे । सब लोग धन, विद्या और युवावस्था के मद से मतवाले, पर-पीड़ा-परायण, अतिमायावी और सर्वदा रोग, चोर और दुर्भिक्ष से पीड़ित रहेंगे । अपने दुष्कर्मों पर कुछ भी विचार न कर उसका ही समर्थन करेंगे ॥६८-६९॥ पापी लोग धर्म मार्ग का उपदेश करने वाले धर्माचार्यों का तिरस्कार करेंगे । धर्मकार्य की ओर रुचि रखने वाले की व्यर्थ आडम्बर जमाने वाले निन्दा करेंगे ॥७०॥ राजा म्लेच्छ जाति के ही होंगे । शूद्र भिक्षावृत्ति (साधु बन कर भीख माँगना) अपनायेंगे और द्विज उनकी सेवा करेंगे ॥७१॥ न किसी का कोई गुरु होगा न शिष्य । न कोई अपने पिता की अपेक्षा करेगा, न पिता पुत्र

कलौ गते भविष्यन्ति धनाढ्या अपि याचकाः । रसविक्रयिणश्चापि भविष्यन्ति द्विजातयः ॥७३॥
धर्मकंचुकसंवीता मुनिवेषधरा द्विजाः । अपण्यविक्रयरता अगम्यागामिनस्तथा ॥७४॥
वेदनिंदापराश्चैव धर्मशास्त्रविनिंदकाः । शूद्रवृत्त्यैव जीवंति नरकार्हा द्विजा मुने ॥७५॥
अनावृष्टिभयं प्राप्ता गगनासक्तदृष्टयः । भविष्यन्ति कलौ मर्त्याः सर्वे क्षुद्भयकातराः ॥७६॥
कंदपर्णफलाहारास्तापसा इव मानवाः । आत्मानं तारयिष्यंति अनावृष्ट्यातिदुःखिताः ॥७७॥
कामार्ता ह्रस्वदेहाश्च लुब्धाश्चाधर्मतत्पराः । कलौ सर्वे भविष्यंति स्वल्पभाग्याबहुप्रजाः ॥७८॥
स्त्रियः स्वपोषणपरा वेश्या लावण्यशीलिकाः । पतिवाक्यमनादृत्य सदान्यगृहतत्पराः ॥७९॥
दुःशीला दुष्टशीलेषु करिष्यन्ति सदा स्पृहाम् । असद्वृत्ता भविष्यंति पुरुषेषु कुलांगनाः ॥८०॥
चौरादिभयभीताश्च काष्ठयंत्राणि कुर्वते । दुर्भिक्षकरपीडाभिरतीवोपद्रुता जनाः ॥८१॥
गोधूमान्नयवान्नाढ्ये देशे यास्यंति दुःखिताः । निधाय हृद्यकर्माणि प्रेरयंति वचः शुभम् ॥८२॥
स्वकार्यसिद्धिपर्यंतं बंधुतां कुर्वते जनाः । भिक्षवश्चापि मित्रादिस्नेहसंबंधयन्त्रिताः ॥८३॥
अन्नोपाधिनिमित्तेन शिष्यान्गृह्णन्ति भिक्षवः ॥८४॥
उभाभ्यामथ पाणिभ्यां शिरःकंडूयनं स्त्रियः । कुर्वंत्यो गुरुभर्तृणामाज्ञामुल्लंघयंति च ॥८५॥
पाषण्डालापनिरता पाषण्डजनसंगिनः । यदा द्विजा भविष्यंति तदा वृद्धिं कलिर्व्रजेत् ॥८६॥
यदा प्रजा न यक्ष्यंति न होष्यंति द्विजातयः । तदैव तु कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥८७॥

की। भार्या और पति की मर्यादा सर्वथा लुप्त हो जायगी। कलि के अन्तिमचरण में धनी भी भिखमंगे होंगे। द्विजाति रसविक्रयी होंगे ॥७२-७३॥

द्विज धर्म की ओट में अधर्म आचरण और ऋषि मुनि का वेष धारण कर प्रवंचना करेंगे। प्रायः मनुष्य निषिद्ध वस्तुओं का विक्रय करेंगे। अगम्यागमन, वेदनिन्दा और धर्मशास्त्रों की कटु आलोचना नित्य प्रति का कार्य होगा। मुने! नरक के अधिकारी द्विज शूद्रवृत्ति से ही जीविका निर्वाह करेंगे ॥७४-७५॥ सब अनावृष्टि के भय से दुःखी होकर आकाश की ओर ही आँख लगाए रहेंगे। सब मनुष्य भूख और भय से व्याकुल हो तपस्वी की भाँति केवल कंद, पत्तियाँ और फल खाकर रहेंगे। अनावृष्टि के कारण अति दुःखित होकर लोग किसी प्रकार जीवनयापन करेंगे ॥७६-७७॥ सब कामी, लघुकाय, हत्यारे, अधर्म करने वाले होंगे। इस युग में प्रायः सब दरिद्र परन्तु अधिक सन्तान वाले होंगे ॥७८॥ स्त्रियाँ केवल उदर-पोषण को ही अपना ध्येय समझेंगी और सुन्दरी स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति को ही अपनायेंगी। वे पति के कथन को तुच्छ समझ कर सदा दूसरे के घर में तत्पर रहेंगी और ये दुःशील स्त्रियाँ दुष्टों को ही अधिक चाहेंगी। कुलांगनायें भी पुरुषों के प्रति असद् व्यवहार ही करेंगी ॥७९-८०॥ लोग चोरों के डर से सदा काठ के यन्त्र किवाड़ और ताला आदि आत्मरक्षा के लिए बनायेंगे। लोग दुर्भिक्ष और राजकर से पीड़ित होकर गेहूँ और जौ से समृद्ध देशों में भाग जायेंगे। हृदय में अकर्म की योजना रखकर शुभ वाणी मुँह से कहेंगे, परन्तु उनकी वह बन्धुता केवल काम बनने तक ही रहेगी। भिक्षु (संन्यासी) भी मित्र, बन्धु आदि की ममता में फँसे रहेंगे ॥८१-८३॥ वे अन्न और सम्मान के लिए अपने लोगों को शिष्य बनायेंगे ॥८४॥ स्त्रियाँ दोनों हाथों से शिर खुजलाती हुई गुरुजनों एवं पति की आज्ञा का उल्लंघन करेंगी ॥८५॥ जब द्विज पाखण्ड प्रदर्शन करने लगेंगे सदा धूर्तों की संगति में रहेंगे तब कलियुग की घोरता का अनुमान लग जायगा ॥८६॥ जब प्रजा यज्ञ करना और द्विज लोग हवन करना छोड़ देंगे तब बुद्धि-

अधर्मवृद्धिर्भविता बालमृत्युरपि द्विज । सर्वधर्मेषु नष्टेषु याति निःश्रीकतां जगत् ॥८८॥
एवं कलेः स्वरूपं ते कथितं विप्र सत्तम । हरिभक्तिपरानेष न कलिर्बाधते क्वचित् ॥८९॥
ततः परं कृतयुगे त्रेतायां ध्यानमेव च । द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥९०॥
यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां शरदा च यत् । द्वापरे यच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ ॥९१॥
ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् । यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥९२॥
अहोरात्रं हरेर्नाम कीर्तयंति च ये नराः । कुर्वंति हरिपूजां वा न कलिर्बाधते च तान् ॥९३॥
नमो नारायणायेति कीर्तयंति च ये नराः । निष्कामा वा सकामा वा न कलिर्बाधते च तान् ॥९४॥
हरिनामपरा ये तु घोरे कलियुगे द्विज । त एव कृतकृत्याश्च न कलिर्बाधते हि तान् ॥९५॥
हरिपूजापरा ये च हरिनामपरायणाः । त एव शिवतुल्याश्च नात्र कार्या विचारणा ॥९६॥
समस्तजगदाधारं परमार्थस्वरूपिणम् । घोरे कलियुगे प्राप्ते विष्णुं ध्यायन्न सीदति ॥९७॥
अहो अति सुभाग्यास्ते सकृद्वै केशवार्चकाः । घोरे कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवर्जिते ॥९८॥
न्यूनातिरिक्तदोषाणां कलौ वेदोक्तकर्मणाम् । हरिस्मरणमेवात्र संपूर्णत्वविधायकम् ॥९९॥
हरे केशव गोविंद वासुदेव जगन्मय । इतीरयंति ये नित्यं नहि तान्बाधते कलिः ॥१००॥
शिव शंकर रुद्रेश नीलकंठ त्रिलोचन । इति जल्पंति ये वापि कलिस्तान्नापि बाधते ॥१०१॥
महादेव विरूपाक्ष गंगाधर मृडाव्यय । इत्थं वदंति ये विप्र ते कृतार्था न संशयः ॥१०२॥

मानों को समझ लेना चाहिए कि अब घोर कलियुग आ गया ॥८७॥ द्विज ! उस समय अधर्म बढ़ जायगा। बालकों की मृत्यु होगी। सब धर्मों के नष्ट हो जाने पर सारा संसार श्रीहीन हो जायगा ॥८८॥

विप्रश्रेष्ठ, इस भाँति तुमको कलियुग का स्वरूप बता दिया, परन्तु हरिभक्ति के प्रभाव से यह कलियुग कृष्णा-भक्तों का कुछ भी न बिगाड़ सकेगा ॥८९॥ इसके अतिरिक्त कृतयुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में अर्चन और कलियुग में दान ही कलि के प्रभाव को नष्ट करते हैं ॥९०॥ कृतयुग में दश वर्ष तक, त्रेता में एक वर्ष तक और द्वापर में एक मास तक कार्य करने से जो फल मिलता है वही कलि में एक रात और दिन के शुभ कर्म से मिल जाता है ॥९१॥ कृतयुग में ध्यान से, त्रेता में यज्ञ से, द्वापर में हरि-पूजा से जो फल मिलता है वही कलियुग में केवल केशव नाम के कीर्तन से प्राप्त हो जाता है ॥९२॥ जो मनुष्य दिन रात हरिनाम कीर्तन और हरि पूजा करते हैं उनपर कलियुग का प्रभाव नहीं पड़ता ॥९३॥ जो निष्काम या सकाम भाव से 'नमो नारायणाय' इस मन्त्र का जप करते हैं उनको कलियुग पीड़ा नहीं पहुँचा सकता ॥९४॥ द्विज, घोर कलियुग में जो हरिनाम के प्रेमी हैं उनका ही जन्म सफल है और उन पर कलि का प्रभाव नहीं पड़ता ॥९५॥ जो हरिनाम के उपासक हैं, जो हरिपूजा के प्रेमी हैं वे ही शिव के समान हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥९६॥ घोर कलि में समस्त जगत् के आधार परमार्थस्वरूप विष्णु का ध्यान करने से कलि कष्ट नहीं दे पाता ॥९७॥ उस घोर कलि में जबकि कहीं किसी प्रकार के धर्म का पता नहीं चलता जो एक बार भी केशव की पूजा कर देते हैं वे अतीव भाग्यशाली हैं ॥९८॥ जो इस युग में वेदोक्त कर्मों का न्यूनाधिक दोष केवल हरि स्मरण मात्र से दूर होकर पूर्ण हो जाता है ॥९९॥ जो हरि, केशव, गोविन्द, वासुदेव, जगन्मय आदि नामों का उच्चारण नित्य प्रति करते हैं उन पर कलि का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता ॥१००॥ जो शिव, शंकर, रुद्रेश, त्रिलोचन इन नामों का भी उच्चारण करते हैं उनको भी कलि पीड़ा नहीं पहुँचा पाता ॥१०१॥ विप्र ! जो महादेव, विरूपाक्ष, गंगाधर, मृड, अव्यय आदि नामों को जपते हैं वे निस्सन्देह कृतार्थ हो जाते हैं ॥१०२॥जो जनार्दन, जगन्नाथ, पीताम्बर, अच्युत आदि भगवन्नामों का उच्चारण

जनार्दन जगन्नाथ पीतांबरधराच्युत । इति वाप्युच्चरंतीह न च तेषां कलेर्भयम् ॥१०३॥
संसारे सुलभाः पुंसां पुत्रदारधनादयः । घोरे कलियुगे विप्र हरिभक्तिस्तु दुर्लभा ॥१०४॥
कर्मश्रद्धाविहीना ये पाषंडा वेदनिंदकाः । अधर्मनिरता नैव नरकार्हाहरिस्मृतेः ॥१०५॥
वेदमार्गबहिष्ठानां जनानां पापकर्मणाम् । मनः शुद्धिविहीनानां हरिनाम्नैव निष्कृतिः ॥१०६॥
दैवाधीनं जगत्सर्वमिदं स्थावरजंगमम् । यथाप्रेरितमेतेन तथैव कुरुते द्विज ॥१०७॥
शक्तितः सर्वकर्माणि वेदोक्तानि विधाय च । समर्पयेन्महाविष्णौर्नारायणपरायणः ॥१०८॥
समर्पितानि कर्माणि महाविष्णौ परात्मनि । संपूर्णतां प्रयांत्येव हरिस्मरणमात्रतः ॥१०९॥
हरिभक्तिरतानां च पापबंधो न जायते । अतोऽतिदुर्लभा लोके हरिभक्तिर्दुरात्मनाम् ॥११०॥
अहो हरिपरा ये तु कलौ घोरे भयंकरे । ते सुभाग्या महात्मानः सत्संगरहिता अपि ॥१११॥
हरिस्मरणनिष्ठानां शिवनामरतात्मनाम् । सत्यं समस्तकर्माणि यांति संपूर्णतां द्विज ॥११२॥
अहो भाग्यमहो भाग्यं हरिनामरतात्मनाम् । त्रिदशैरपि ते पूज्याः किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥११३॥
तस्मात्समस्तलोकानां हितमेव मयोच्यते । हरिनामपरान्मर्त्यान्न कलिर्बाधते क्वचित् ॥११४॥
हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् । कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥११५॥

सूत उवाच

एवं स नारदो विप्राः सनकेन प्रबोधितः । परां निर्वृतिमापन्नः पुनरेतदुवाच ह ॥११६॥

करते हैं उनको किसी प्रकार का कलि से भय नहीं होता ॥१०३॥ संसार में पुत्र, स्त्री और धन आदि पाना सुलभ है परन्तु विप्र ! इस घोर कलियुग में हरिभक्ति दुर्लभ वस्तु है ॥१०४॥ जो कर्म और श्रद्धा से हीन हैं, अधार्मिक, पाखण्डी और वेद-निन्दक हैं, वे भी हरि-स्मरण के कारण नरक से बच जाते हैं ॥१०५॥ वेदमार्ग-विरोधी, पाप करने वाले और कलुषित हृदय वाले मनुष्य का भी हरिनाम के द्वारा प्रायश्चित्त हो जाता है ॥१०६॥ यह सारा स्थावर जंगमात्मक जगत् दैव के अधीन है और जैसी उसकी प्रेरणा होती है वैसा कार्य मनुष्य करता है ॥१०७॥ इसलिए शक्ति के अनुसार वेदोक्त विधि से सब कार्यों को करके नारायणपरायण होकर महाविष्णु को समर्पण कर देना चाहिए ॥१०८॥ इस विधि से महाविष्णु को समर्पण करने पर केवल हरि-स्मरण मात्र से सारी न्यूनतायें पूरी हो जाती हैं ॥१०९॥ हरिभक्ति में लीन रहने वाले लोगों को पाप का बन्धन नहीं लगता। अतएव दुष्टों के लिए इस संसार में हरि-भक्ति अत्यन्त दुर्भभ है ॥११०॥ घोर भयंकर कलियुग में जो व्यक्ति हरि-सेवा-परायण रहते हैं वे महात्मा सौभाग्यशाली हैं चाहे उनको सत्संगति प्राप्त हो या न हो ॥१११॥ द्विज ! हरिस्मरण में लगे रहने वाले और शिवनाम का जप करने वाले मनुष्यों के समस्त कर्म अवश्य पूर्ण हो जाते हैं ॥११२॥

हरिनाम में रत रहने वाले सज्जनों के भाग्य की कितनी सराहना की जाय, वे जब देवों के भी पूज्य हैं तब इस विषय में अधिक क्या कहा जाय ॥११३॥ इसलिए मैं सब के हित की ही बात कह रहा हूँ कि हरिनाम प्रेमियों को कलि की बाधा कभी भी नहीं सता सकती ॥११४॥ मेरा तो हरिनाम ही जीवन है, हरिनाम ही सर्वस्व और एक मात्र आधार है, कलि में इसके अतिरिक्त दूसरी कोई गति (आधार) नहीं, यह ध्रुव सत्य है ॥११५॥

सूत बोले—विप्रगण ! सनकजी ने इस प्रकार नारद को उपदेश दिया जिससे वे परमानन्दमग्न हो गए और फिर बोले—॥११६॥

नारद उवाच

भगवन्सर्वशास्त्रज्ञ त्वयातिकरुणात्मना । प्रकाशितं जगज्ज्योतिः परं ब्रह्म सनातनम् ॥११७॥
एतदेव परं पुण्यमेतदेव परं तपः । यः स्मरेत्पुंडरीकाक्षं सर्वपापविनाशनम् ॥११८॥
ब्रह्मन्नानाजगच्चैतदेकंचित्संप्रकाशितम् । त्वयोक्तं तत्प्रतीयेऽहं कथं दृष्टांतमंतरा ॥११९॥
तस्माद्येन यथा ब्रह्म प्रतीतं बोधितेन तु । तदाख्याहि यथाचित्तं सीदत्स्थितिमवाप्नुयात् ॥१२०॥
एतच्छ्रुत्वा वचो विप्रा नारदस्य महात्मनः । सनकः प्रत्युवाचेदं स्मरन्नारायणं परम् ॥१२१॥

सनक उवाच

ब्रह्मन्नहं ध्यानपरो भवेयं सनंदनं पृच्छ यथाभिलाषम् । ॥१२२॥
वेदांतशास्त्रे कुशलस्तवायं निवर्तयेद्वा परमार्थवंद्यः समुपचक्रमे ॥१२३॥
इतीरितं समाकर्ण्य सनकस्य स नारद । सनंदनं मोक्षधर्मान्प्रष्टुं

श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे प्रथमपादे नाममाहात्म्यन्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

नारद बोले--भगवन् ! सर्वशास्त्रज्ञ ! आपने करुणा से द्रवित होकर पर ब्रह्म सनातन ज्योति प्रकाशित कर दी ॥११७॥ जो सब पापों को दूर करने वाले पुण्डरीकाक्ष का स्मरण करता है। यही परम पुण्य है और यही परमतप है ॥११८॥ ब्रह्मन् ! यह नानारूप में प्रतिभासित होने वाला जगत् केवल एक परम ज्योति से ही प्रकाशित होता है इस तथ्य को बिना उदाहरण के मैं कैसे हृदयंगम कर सकता हूँ ॥११९॥ इसलिए जिस ज्ञानी ने जिस रूप से ब्रह्म का साक्षात्कार किया उसको कहिए जिससे कि मेरा भ्रान्त चित्त शान्ति प्राप्त करे ॥१२०॥

विप्रो ! महात्मा नारद की इन बातों को सुनकर सनक ने परम नारायण का स्मरण करते हुए बोले-- ॥१२१॥

सनक बोले--ब्रह्मन् ! इस समय मैं ध्यानस्थ हो रहा हूँ, तुम सनन्दन से अपनी इच्छा के अनुसार पूछो। वे नारद जी यह वेदान्तशास्त्र में कुशल और वन्दनीय है, यह निश्चित ही तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति कर देगा। ॥१२२-१२३॥ सनक की इन बातों को सुनकर सनन्दन से मोक्ष धर्म पूछने के लिए प्रस्तुत हुए ॥१२४॥

श्रीनारदीयमहापुराण में विष्णु-नाम-माहात्म्य-वर्णन नामक
इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४१॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीनारद उवाच

कुतः सृष्टमिदं ब्रह्मञ्जगत्स्थावरजंगमम् । प्रलये च कमभ्येति तन्मे ब्रूहि सनन्दन ॥१॥
ससागरः सगगनः सशैलः सबलाहकः । सभूमिः साग्निपवनो लोकोऽयं केन निर्मितः ॥२॥
कथं सृष्टानि भूतानि कथं वर्णविभक्तयः । शौचाशौचं कथं तेषां धर्माधर्मविधिः कथम् ॥३॥
कीदृशो जीवतां जीवः क्व वा गच्छंति ये मृताः । अस्माल्लोकादमुं लोकं सर्वं शंसतु मे भवान् ॥४॥

सनंदन उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि चेतिहासं पुरातनम् । भृगुणाभिहितं शास्त्रं भरद्वाजाय पृच्छते ॥५॥
कैलासशिखरे दृष्ट्वा दीप्यमानं महौजसम् । भृगुं महर्षिमासीनं भरद्वाजोऽन्वपृच्छत ॥६॥

भरद्वाज उवाच

कथं जीवो विचरति नानायोनिषु संततम् । कथं मुक्तिश्च संसाराज्जायते तस्य मानद ॥७॥
यश्च नारायणः स्रष्टा स्वयंभूर्भगवान्स्वयम् । सेव्यसेवकभावेन वर्तते इति तौ सदा ॥८॥
प्रविशंति लये सर्वे यमीशं सचराचराः । लोकानां रमणः सोऽयं निर्गुणश्च निरंजनः ॥९॥
अनिर्देश्योऽप्रतर्क्यश्च कथं ज्ञायेत कैर्मुने । कथमेनं परात्मानं कालशक्तिदुरत्ययम् ॥१०॥

अध्याय ४२

सृष्टि-वर्णन

श्रीनारद बोले—ब्रह्मन् ! इस स्थावर जंगममय जगत् की उत्पत्ति किससे हुई और प्रलय में फिर किस में इसका लय होगा, इसको हे सनन्दन ! कृपाकर कहिए ॥१॥ सागर, आकाश, पर्वत, मेघ, पृथ्वी, अग्नि और वायु सहित इस विश्व की रचना किसने की ॥२॥ प्राणियों की सृष्टि कैसे हुई, वर्णव्यवस्था कैसे हुई, उनमें धर्म-अधर्म शौचाशौच की विधियां कैसे प्रचलित हुई ॥३॥ जीवित जीवों के प्राण का स्वरूप क्या है, इन सब बातों को पूर्ण रूप से आप मुझसे कहिए ॥४॥

सनन्दन बोले—नारद ! सुनो, इस विषय में एक पुरातन इतिहास को कह रहा हूँ, जिसको भरद्वाज के पूछने पर भृगु ने कहा था ॥५॥ कैलास शिखर पर महातेजस्वी ज्योति के समान जगमगाते हुये भृगु मुनि को बैठे देखकर भरद्वाज ने पूछा ॥६॥

भरद्वाज बोले—मानद ! जीव किस प्रकार और क्यों सदा नाना योनियों में चक्कर लगाता है, इस संसार से उसकी मुक्ति कैसे होती है ? ॥७॥ जो नारायण और स्रष्टा भगवान् स्वयंभू हैं वे और जीव सर्वदा सेव्य-सेवक भाव से विराजमान रहते हैं। जिनमें समस्त चर-अचर प्रलयकाल में प्रवेश कर जाते हैं, जो स्वयं लोक में रमण करने वाले, निर्गुण और निरंजन हैं, जो अनिर्देश्य और तर्क से अगम्य हैं, उनको कोई कैसे जान सकता है ? ॥८-९½॥ महान् आत्मा, और शक्ति से परे, अगम्य चरित भगवान् की स्तुति वेद कैसे आदरपूर्वक करते

अतर्क्यंचरितं वेदाः स्तुवन्ति कथमादरात् । जीवो जीवत्वमुल्लंघ्य कथं ब्रह्म समन्वयात् ॥११॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तन्मे ब्रूहि कृपानिधे । एवं स भगवान्पृष्टो भरद्वाजेन संशयम् ॥१२॥
महर्षिर्ब्रह्मसंकाशः सर्वं तस्मै ततोऽब्रवीत् ।

भृगुरुवाच ॥१३॥

मानसो नाम यः पूर्वो विश्रुतो वै महर्षिभिः
अनादिनिधनो देवस्तथा तेभ्योऽजरामरः । अव्यक्त इति विख्यातः शाश्वतोऽथाक्षयोऽव्ययः ॥१४॥
यतः सृष्टानि भूतानि जायंते च म्रियंति च । सोऽसृजत्प्रथमं देवो महांत नाम नामतः ॥१५॥
आकाशमिति विख्यातं सर्वभूतधरः प्रभुः । आकाशादभवद्वारि सलिलादग्निमारुतौ ॥१६॥
अग्निमारुतसंयोगात्ततः समभवन्मही । ततस्तेजोमयं दिव्यं पद्मं सृष्टं स्वयंभुवा ॥१७॥
तस्मात्पद्मात्समभवद्ब्रह्मा वेदमयो विधिः । अहंकार इति ख्यातः सर्वभूतात्मभूतकृत् ॥१८॥
ब्रह्मा वै स महातेजा य एते पंच धातवः । शैलास्तस्यास्थिसंघास्तु मेदो मांसं च मेदिनी ॥१९॥
समुद्रास्तस्य रुधिरमाकाशमुदरं तथा । पवनश्चैव निश्वासस्तेजोऽग्निर्निम्नगाः शिराः ॥२०॥
अग्नीषोमौ च चंद्रार्कौ नयने तस्य विश्रुते । नभश्चोर्ध्वशिरस्तस्य क्षितिः पादौ भुजौ दिशः ॥२१॥
दुर्विज्ञेयो ह्यचिन्त्यात्मा सिद्धैरपि न संशयः । स एष भगवान्विष्णुरनन्त इति विश्रुतः ॥२२॥
सर्वभूतात्मभूतस्थो दुर्विज्ञेयोऽकृतात्मभिः । अहंकारस्य यःस्रष्टा सर्वभूतभवाय वै ॥२३॥
ततः समभवद्विश्वं पृष्टोऽहं यदिह त्वया

हैं। जीव अपने जीव भाव को छोड़कर किस प्रकार ब्रह्म पद को प्राप्त करता है? ॥१०-११॥ कृपानिधान! इन सब बातों को मैं सुनना चाहता हूँ। कृपाकर मुझको समझाइये! भरद्वाज ने इस प्रकार भृगु से अपनी शंकाओं को पूछा। ब्रह्मा के समान उस महर्षि ने इन प्रश्नों को सुनकर सारी बातें भरद्वाज को बता दीं ॥१२½॥

भृगु बोले—मानस नामक जिस देव के विषय में महर्षियों ने पहले ही कहा है जो अनादि, अनन्त, अजर, अमर, अव्यक्त, शाश्वत, अक्षय और अव्ययनाम से विख्यात है ॥१३-१४॥ जिससे समस्त भूत उत्पन्न हुए हैं और जिससे सारे प्राणी नष्ट भी होते हैं उस देव ने सर्वप्रथम नाम (शब्द) से महान् नामक तत्त्व को उत्पन्न किया ॥१५॥ वह समस्त भूतों को धारण करने वाला समर्थ 'आकाश' नाम से प्रसिद्ध है। आकाश से जल, जल से अग्नि और अग्नि से वायु उत्पन्न हुए ॥१६॥ तदनन्तर अग्नि और वायु के संयोग से पृथ्वी उत्पन्न हुई। स्वयम्भू ने पुनः एक तेजोमय दिव्य कमल को उत्पन्न किया ॥१७॥ उस पद्म से वेदमय ब्रह्मा उत्पन्न हुए। समस्त भूतों का उत्पादक 'अहंकार' भी उसका नाम है ॥१८॥ वे महातेजस्वी ब्रह्मा और पंच धातु सब उसके ही रूप हैं। सब पर्वत उस विराट् की हड्डियाँ हैं, मेदिनी मज्जा और मांस है ॥१९॥ समुद्र उसका रक्त और आकाश उदर है। पवन और तेज उस देव का निःश्वास है, नदियाँ उसकी शिरायें (नाड़ियाँ), अग्नि तथा सोम, चन्द्र तथा सूर्य उसके नेत्र हैं, आकाश उसका कपाल, पृथ्वी चरण और दिशायें उसकी भुजायें हैं ॥२०-२१॥ उस अचिन्त्य आत्मा को सिद्ध भी कठिनाई से ही जान सकते हैं। वही भगवान् विष्णु अनन्त नाम से प्रसिद्ध है ॥२२॥ सब भूतों में व्याप्त रहने वाले इस परमात्मा को अविवेकी कभी नहीं जान सकते हैं। वह अहंकार तत्त्व का स्रष्टा और समस्त भूतों का एक मात्र आदि कारण है। उससे ही विश्व उत्पन्न हुआ है। तुमने जो कुछ पूछा उसका सारभूत उत्तर यही है ॥२३॥

भरद्वाज उवाच

गगनस्य दिशां चैव भूतलस्यानिलस्य च । कान्यत्र परिमाणानि संशयं छिंधि तत्त्वतः ॥२४॥

भृगुरुवाच

अनंतमेतदाकाशं सिद्धदैवतसेवितम् । रम्यं नानाश्रयाकीर्णं यस्यांतो नाधिगम्यते ॥२५॥
ऊर्ध्वं गतेरधस्तात्तु चंद्रादित्यौ न पश्यतः । तत्र देवाः स्वयंदीप्ता भास्कराभाग्निवर्चसः ॥२६॥
ते चाप्यन्तं न पश्यंति नभसः प्रथितौजसः । दुर्गमत्वादनंतत्वादिति मे वद मानद ॥२७॥
उपरिष्टोपरिष्टात्तु प्रज्वलद्भिः स्वयंप्रभैः । निरुद्धमेतदाकाशं ह्यप्रमेयं सुरैरपि ॥२८॥
पृथिव्यंते समुद्रास्तु समुद्रांते तमः स्मृतम् । तमसोंऽते जलं प्राहुर्जलस्यांतेऽग्निरेव च ॥२९॥
रसातलांते सलिलं जलांते पन्नगाधिपाः । तदंते पुनराकाशमाकाशांते पुनर्जलम् ॥३०॥
एवमंतं भगवतः प्रमाणं सलिलस्य च । अग्निमारुततोयेभ्यो दुर्ज्ञेयं दैवतैरपि ॥३१॥
अग्निमारुततोयानां वर्णाः क्षितितलस्य च । आकाशसदृशा ह्येते भिद्यंते तत्त्वदर्शनात् ॥३२॥
पठंति चैव मुनयः शास्त्रेषु विविधेषु च । त्रैलोक्ये सागरे चैव प्रमाणं विहितं यथा ॥३३॥
अदृश्यो यस्त्वगम्यो यः कः प्रमाणमुदीरयेत् । सिद्धानां देवतानां च परिमीता यदा गतिः ॥३४॥
तदागण्यमनंतस्य नामानंतेति विश्रुतम् । नामधेयानुरूपस्य मानसस्य महात्मनः ॥३५॥

भरद्वाज बोले—आकाश, दिशा, पृथ्वी और वायु का परिमाण क्या है, यह मेरा संशय दूर कीजिए ॥२४॥

भृगु बोले—यह सिद्ध और देवताओं से सेवित आकाश अनन्त है, अनेक रमणीय आश्रय-स्थानों से व्याप्त इस आकाश का अन्त नहीं जाना जा सकता ॥२५॥ गति के ऊपर चले जाने पर जहाँ से नीचे की ओर देखने से चन्द्रमा और सूर्य नहीं दिखाई देते हैं, वहाँ रहने वाले अपनी देहकान्ति से सूर्य और अग्नि के समान प्रकाशमान देव भी प्रसिद्ध तेजस्वी आकाश का अन्त नहीं जान पाते हैं ॥२६½॥ आकाश के दुर्गम और अनन्त होने के कारण जब देवताओं से भी वह अगम्य और अजेय है तब हे मानद ! तुम्हीं कहो दूसरा कौन उसका परिमाण बता सकता है ? उत्तरोत्तर अपने तेज से दीप्त देवताओं से घिरे हुए इस आकाश के परिमाण को देवता भी नहीं जान सकते हैं ॥२७-२८॥ पृथ्वी के अन्त में समुद्र हैं, समुद्र के अन्त में अन्धकार और अन्धकार के अन्त में जल है, जल के पश्चात् अग्नि वर्तमान है ॥२९॥ इसी प्रकार रसातल के अन्त में सलिल और उसके बाद नागपति शेषनाग है। तत्पश्चात् फिर आकाश और आकाश के बाद पुनः जल है ॥३०॥ इस प्रकार अनन्त शक्तिशाली आकाश और जल का प्रमाण अग्नि, वायु और जल भी नहीं बता सकते, देवताओं की तो कोई गणना ही नहीं ॥३१॥ अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी के वर्ण में कोई प्रत्यक्ष अन्तर नहीं है । वे आकाश के समान हैं, केवल सूक्ष्म रूप से तत्त्वतः देखने पर ही भिन्नता जानी जाती है ॥३२॥ मुनियों ने विविध शास्त्रों में तीनों लोकों और समुद्रों का विस्तार प्रमाण बताया है परन्तु जो अदृश्य है, अगम्य है, उसका प्रमाण कौन बता सकता है । सिद्धो और देवों की गति परिमित है उनसे भी अज्ञेय होने के कारण आकाश का अनन्त नाम प्रसिद्ध है ॥३३-३४½॥ नाम के अनुरूप महात्मा मानस की भी यही दशा है । जब उस देव का दिव्य रूप बढ़ता और घटता है तो उसके समान जो अपर देव हैं

यदा तु दिव्यं यद्रूपं ह्रसते वर्द्धते पुनः । कोऽन्यस्तद्वेदितुं शक्यो योऽपि स्यात्तद्विधोऽपरः ॥३६॥
ततः पुष्करतः सृष्टः सर्वज्ञो मूर्तिमान्प्रभुः । ब्रह्मा धर्ममयः पूर्वः प्रजापतिरनुत्तमः ॥३७॥

भरद्वाज उवाच

पुष्करो यदि संभूतो ज्येष्ठं भवति पुष्करम् । ब्रह्माणं पूर्वजं चाह भवान्संदेह एव मे ॥३८॥

भृगुरुवाच

मानसस्येह या मूर्तिर्ब्रह्मत्वं समुपागता । तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते ॥३९॥
कर्णिका तस्य पद्मस्य मेरुर्गगनमुच्छ्रितः । तस्य मध्ये स्थितो लोकान्सृजत्येष जगद्विधिः ॥४०॥

भरद्वाज उवाच

प्रजाविसर्गं विविधं कथं स सृजति प्रभुः । मेरुमध्ये स्थितो ब्रह्मा तद्बहिर्द्विजसत्तम ॥४१॥

भृगुरुवाच

प्रजाविसर्गं विविधं मानसो मनसाऽसृजत् । संरक्षणाय भूतानां सृष्टं प्रथमतो जलम् ॥४२॥
यत्प्राणाः सर्वभूतानां सृष्टं प्रथमतो जलम् । यत्प्राणाः सर्वभूतानां वर्द्धते येन च प्रजाः ॥४३॥
परित्यक्ताश्च नश्यंति तेनेदं सर्वमावृतम् । पृथिवी पर्वता मेघा मूर्तिमंतश्च ये परे ॥४४॥
सर्वं तद्वारुणं ज्ञेयमापस्तस्तंभिरे पुनः

भरद्वाज उवाच

कथं सलिलमुत्पन्नं कथं चैवाग्निमारुतौ । कथं वा मेदिनी सृष्टेत्यत्र मे संशयो महान् ॥४५॥

वे भी किस प्रकार उसकी यथार्थ स्थिति को जान सकते हैं ॥३५-३६॥ सर्वज्ञ प्रभु ने पुष्कर (कमल) से पहले मूर्तिमान् धर्ममय अनुपम प्रजापति ब्रह्मा को उत्पन्न किया ॥३७॥

भरद्वाज बोले—यदि पहले पुष्कर उत्पन्न हुआ तब तो पुष्कर ही ज्येष्ठ है परन्तु आपने तो ब्रह्मा को पूर्वज कहा है, इस विषय में सन्देह हो रहा है ॥३८॥

भृगु बोले—मानस की जो मूर्ति ब्रह्मा के रूप में प्रकट हुई उसी के आसन के लिए पृथ्वी पद्म कही गई है ॥३९॥ उस पद्म की कर्णिका मेरु है जो आकाश को चूमता रहता है। ब्रह्मा उसके मध्य में स्थित होकर लोकों की सृष्टि करता है ॥४०॥

भरद्वाज बोले—द्विजवर्य ! ब्रह्मा मेरु के मध्य रहकर, बाहर किस प्रकार विविध प्रजाओं की सृष्टि करता है ? ॥४१॥

भृगु बोले—मानस ने विविध प्रजासृष्टि को पहले अपने मन से बना डाला। सब प्राणियों की रक्षा के लिए पहले जल उत्पन्न किया गया ॥४२॥ सब प्राणी जिसके सहारे जीते हैं, जिसके द्वारा सब प्राणी बढ़ते हैं और जिसके बिना सब प्राणी नष्ट हो जाते हैं, उससे यह सम्पूर्ण विश्व आवृत है। पृथ्वी, पर्वत, मेघ अथवा जितने मूर्तिमान् पदार्थ हैं ये सब जल के ही विभिन्न रूप हैं, जो घनीभूत होकर इस रूप में हो गए हैं ॥४३-४४॥

भरद्वाज बोले—जल कैसे उत्पन्न हुआ, अग्नि, वायु और पृथ्वी कैसे उत्पन्न हुई, इसको कृपाकर बतलाइए। मुझे महान् सन्देह हो रहा है ॥४५३॥

भृगुरुवाच

ब्रह्मकल्पे पुरा ब्रह्मन् ब्रह्मर्षीणां समागमे। लोकसंभवसंदेहः समुत्पन्नो महात्मनाम् ॥४६॥
तेऽतिष्ठन्ध्यानमालंब्य मौनमास्थाय निश्चलाः। त्यक्ताहाराः स्पर्द्धमाना दिव्यं वर्षशतं द्विजाः ॥४७॥
तेषां ब्रह्ममयी वाणी सर्वेषां श्रोत्रमागमत्। दिव्या सरस्वती तत्र संबभूव नभस्तलात् ॥४८॥
पुरास्तिमितमाकाशमनंतमचलोपमम्। नष्टचंद्रार्कपवनं प्रसुप्तमिव संबभौ ॥४६॥
ततः सलिलमुत्पन्नं तमसीव तमः परम्। तस्माच्च सलिलोत्पीडादुदतिष्ठत मारुतः ॥५०॥
यथाभवनमच्छिद्रं निःशब्दमिव लक्ष्यते। तच्चांभसा पूर्यमाणं सशब्दं कुरुतेऽनिलः ॥५१॥
तथा सलिलसंरुद्धे नभसोऽन्तं निरंतरे। भित्त्वार्णवतलं वायुः समुत्पतति घोषवान् ॥५२॥
एष वै चरते वायुरर्णवोत्पीडसंभवः। आकाशस्थानमासाद्य प्रशांतिं नाधिगच्छति ॥५३॥
तस्मिन्वाय्वम्बुसंघर्षे दीप्ततेजा महाबलः। प्रादुरासीदूर्ध्वशिखः कृत्वा निस्तिमिरं तमः ॥५४॥
अग्निः पवनसंयुक्तः खं समाक्षिपते जलम्। तदग्निवायुसंपर्काद्घनत्वमुपपद्यते ॥५५॥
तस्याकाशं निपतितः स्नेहात्तिष्ठति योऽपरः। स संघातत्वमापन्नो भूमित्वमनुगच्छति ॥५६॥
रसानां सर्वगंधानां स्नेहानां प्राणिनां तथा। भूमिर्योनिरियं ज्ञेया यस्याः सर्वं प्रसूयते ॥५७॥

भरद्वाज उवाच

य एते धातवः पंच रक्ष्या यानसृजत्प्रभुः। आवृता यैरिमे लोका महाभूताभिसंज्ञितैः ॥५८॥

भृगु बोले—पहले ब्रह्म-कल्प में ब्रह्मर्षिगण एक दिन इकट्ठे हुए। उन महात्माओं के मन में इसी प्रकार लोक-सृष्टि के विषय में सन्देह हुआ। वे मौन होकर निश्चल भाव से ध्यानस्थ हो गए। इस रहस्य को जानने की उत्सुकता में उन लोगों ने भोजन तक छोड़ दिया ॥४६-४७॥ इस प्रकार उन महर्षियों ने सौ दिव्य वर्ष बिता दिये ॥४८॥ निदान उनको ब्रह्ममयी वाणी सुनाई दी और आकाश से दिव्य सरस्वती प्रकट हुई ॥४८॥ उसके प्रकट होते ही आकाश शान्त, निःशब्द और अचल के समान हो गया। चन्द्र, सूर्य और पवन के बिना उस समय आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो सो गया हो ॥४६॥ तदनन्तर जल उत्पन्न हुआ, जैसे अन्धकार से ही अन्धकार की उत्पत्ति हुई हो उस जल के संघर्ष या दबाव से वायु उत्पन्न हुआ ॥५०॥ जिस प्रकार छिद्ररहित भवन निःशब्द-सा लगता है और उसे जल से भरे जाने पर, वायु शब्द के सहित कर देता है। उसी प्रकार जल से संरुद्ध आकाश में समुद्र तल का भेदन कर शब्दवान् वायु ऊपर उठता है। इस प्रकार वह वायु समुद्र की हलचल से उत्पन्न होकर गतिमान् होता है। वह आकाश में जाकर शान्त नहीं होता ॥५१-५३॥ उस वायु और जल के संघर्ष से महाशक्तिशाली तेजस्वी अग्नि उत्पन्न हुआ, जिसकी लपटें ऊपर को उठ रही थीं और जिसकी प्रभा से सारा आकाश तमोहीन हो गया था ॥५४॥ अग्नि वायु की सहायता से आकाश में जल उछालता है, उस समय अग्नि और वायु के संयोग से जल धीरे-धीरे जमने लगता है और ठोस होकर बादल के रूप में परिणत हो जाता है ॥५५॥ वह जब आकाश में ऊपर उड़ता और जलीय भाग को बरसा देता है तो उसका दूसरा स्नेह-भाग रुक जाता है और वही एक में मिलते-मिलते भूमि के रूप में परिणत हो जाता है। रस, सब प्रकार के गन्ध स्नेह और प्राणियों का उत्पत्ति-स्थान यही भूमि है जिससे यह पदार्थ उत्पन्न होते हैं ॥५६-५७॥

भरद्वाज बोले—जो ये पांच रक्षणीय धातु हैं जिनकी रचना प्रभु ने की है, जो महाभूत नाम से प्रसिद्ध

यदाऽसृजत्सहस्राणि भूतानां स महामतिः । पश्चात्तेष्वेव भूतत्वं कथं समुपपद्यते ॥५९॥

भृगुरुवाच

अमितानि महाष्टानि यांति भूतानि संभवम् । अतस्तेषां महाभूतशब्दोऽयमुपपद्यते ॥६०॥
चेष्टा वायुः खमाकाशमूष्माग्निः सलिलं द्रवः । पृथिवी चात्र संघातः शरीरं पांचभौतिकम् ॥६१॥
इत्यतः पंचभिर्युक्तैर्युक्तं स्थावरजंगमम् । श्रोत्रे घ्राणो रसः स्पर्शो दृष्टिश्चेंद्रियसंज्ञिताः ॥६२॥

भरद्वाज उवाच

पंचभिर्यदि भूतैस्तु युक्ताः स्थावरजंगमाः । स्थावराणां न दृश्यंते शरीरे पंच धातवः ॥६३॥
अनूष्मणामचेष्टानां घनानां चैव तत्त्वतः । वृक्षाणां नोपलभ्यन्ते शरीरे पंच धातवः ॥६४॥
न शृण्वंति न पश्यंति न गंधरसवेदिनः । न च स्पर्शं हि जानंति ते कथं पंच धातवः ॥६५॥
अद्रवत्वादनग्नित्वाद्भूमित्वादवायुतः । आकाशस्याप्रमेयत्वाद्वृक्षाणां नास्ति भौतिकम् ॥६६॥

भृगुरुवाच

घनानामपि वृक्षाणामाकाशोऽस्ति न संशयः । तेषां पुष्पफलव्यक्तिर्नित्यं समुपपद्यते ॥६७॥
ऊष्मतो म्लायते पर्णं त्वक्फलं पुष्पमेव च । म्लायते शीर्यते चापि स्पर्शस्तेनात्र विद्यते ॥६८॥
वाय्वग्न्यशनिनिर्घोषैः फलं पुष्पं विशीर्यते । श्रोत्रेण गृह्यते शब्दस्तस्माच्छृण्वंति पादपाः ॥६९॥
वल्ली वेष्टयते वृक्षान्सर्वतश्चैव गच्छति । नह्यदृष्टश्च मार्गोऽस्ति तस्मात्पश्यंति पादपाः ॥७०॥
पुण्यापुण्यैस्तथा गंधैर्धूपैश्च विविधैरपि । अरोगाः पुष्पिताः संति तस्माज्जिघ्रंति पादपाः ॥७१॥

हैं और जिनसे सारे लोक ढके हैं जब उस महामति ने सहस्रों भूत (प्राणी) बनाये तो क्यों उन पाँचों को ही भूत की उपाधि मिली और उन्हीं में भूतत्त्व कैसे संगत हुआ ? ॥५८-५९॥

भृगु बोले—इन्हीं पाँचों पदार्थों से असीम महान् अष्ट भूत उत्पन्न होते हैं, अतएव उनकी महाभूत संज्ञा युक्तियुक्त है। प्राणियों की चेष्टा वायु है, शरीर के स्थान आकाश, ऊष्मा-अग्नि इसके द्रव पदार्थ रक्त आदि जल और ठोस पदार्थ पृथ्वी है। इस प्रकार इन पाँचों महाभूतों का मिलित रूप ही पाञ्चभौतिक शरीर है ॥६०-६१॥ इन पाँचों से ही सारे स्थावर-जंगम बने हुए हैं। श्रोत्र, नासिका, रसना, स्पर्श (त्वक्) और दृष्टि (नेत्र) इन्द्रियाँ कहलाती हैं ॥६२॥

भरद्वाज बोले—यदि सारे स्थावर-जंगम पंच महाभूतों से युक्त रहते हैं तो स्थावर पदार्थों के शरीर में ये पाँच धातु क्यों नहीं दिखाई देते ? ॥६३॥ चेष्टा और ऊष्मा से शून्य वृक्षों के शरीर में तो तत्त्वतः पंच धातु नहीं पाये जाते ॥६४॥ वे न तो सुनते हैं, न देखते हैं। उन्हें न तो गन्ध और रस का ज्ञान रहता है और न स्पर्श का ही। तब उनमें पंच धातु का सम्मिश्रण कैसे माना जाय ॥६५॥ अतएव उनमें द्रवत्व, अग्नित्व, वायुत्व और भूमित्व न होने के कारण और आकाश के अप्रमेय होने के कारण वे भौतिक नहीं हैं ॥६६॥

भृगु बोले—अत्यन्त घने (ठोस) वृक्षों में भी आकाश है इसमें सन्देह नहीं। उनमें फूल-फल सर्वदा निकलते हैं, गर्मी लगने से उनकी पत्तियाँ, वल्कल (छाल), फल और पुष्प मुरझा जाते हैं, मलिन हो जाते हैं, सूख कर गिर जाते हैं तो क्या उनमें स्पर्श ज्ञान नहीं है ? ॥६७-६८॥ वायु, अग्नि और बिजली की कड़कड़ाहट के शब्द से उनके फल और फूल टूटकर गिर जाते हैं कान से शब्द सुना जाता है; अतः वृक्ष भी सुनते हैं ॥६९॥ लतायें वृक्षों से लिपट जाती हैं, इधर-उधर फैलती भी हैं। बिना नेत्र के मार्ग कैसे दिखाई दे सकता है ? अतः वृक्ष भी देखते हैं ॥७०॥ पुण्य-अपुण्य, विविध गंध और धूप (किरणों) से ये वृक्ष नीरोग रहते और फूलते हैं। इससे जान

सुखदुःखयोर्ग्रहणाच्छिन्नस्य च विरोहणात् । जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्यं न विद्यते ॥७२॥
तेन तज्जलमादत्ते जरयत्यग्निमारुतौ । आहारपरिणामाच्च स्नेहो वृद्धिश्च जायते ॥७३॥
जंगमानां च सर्वेषां शरीरे पंच धातवः । प्रत्येकशः प्रभिद्यंते यैः शरीरं विचेष्टते ॥७४॥
त्वक् च मांसं तथास्थीनि मज्जा स्नायुश्च पंचमः । इत्येतदिह संघातं शरीरे पृथिवीमये ॥७५॥
तेजो ह्यग्निस्तथा क्रोधश्चक्षुरूष्मा तथैव च । अग्निर्जनयते यच्च पंचाग्नेयाः शरीरिणः ॥७६॥
श्रोत्रं घ्राणं तथास्यं च हृदयं कोष्ठमेव च । आकाशात्प्राणिनामेते शरीरे पंच धातवः ॥७७॥
श्लेष्मा पित्तमथ स्वेदो वसा शोणितमेव च । इत्यापः पंचधा देहे भवति प्राणिनां सदा ॥७८॥
प्राणात्प्रीणयते प्राणी व्यानाद्व्यायच्छते तथा । गच्छत्यपानोऽधश्चैव समानो हृद्यवस्थितः ॥७९॥
उदानादुच्छ्वसितीति पञ्च (प्रति) भेदाच्च भाषते । इत्येते वायवः पंच वेष्टयंतीह देहिनम् ॥८०॥
भूमेर्गंधगुणान्वेत्ति रसं चाद्भ्यः शरीरवान् । तस्य गंधस्य वक्ष्यामि विस्तराभिहितान्गुणान् ॥८१॥
इष्टश्चानिष्टगंधश्च मधुरः कटुरेव च । निर्हारी संहतः स्निग्धो रूक्षो विशद एव च ॥८२॥
एवं नवविधो ज्ञेयः पार्थिवो गंधविस्तरः । ज्योतिः पश्यति चक्षुर्भ्यां स्पर्शं वेत्ति च वायुना ॥८३॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसश्चापि गुणाः स्मृताः । रसज्ञानं तु वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥८४॥
रसो बहुविधः प्रोक्त ऋषिभिः प्रथितात्मभिः । मधुरो लवणस्तिक्तः कषायोऽम्लः कटुस्तथा ॥८५॥
एष षड्विधविस्तारो रसो वारिमयः स्मृतः । शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च त्रिगुणं ज्योतिरुच्यते ॥८६॥
ज्योतिः पश्यति रूपाणि रूपं च बहुधा स्मृतम् । ह्रस्वो दीर्घस्तथा स्थूलश्चतुरस्रोऽणुवृत्तवान् ॥८७॥
शुक्लः कृष्णस्तथा रक्तो नीलः पीतोऽरुणस्तथा । कठिनश्चिक्कणः श्लक्ष्णः पिच्छिलो मृदु दारुणः ॥८८॥

पड़ता है कि वृक्ष सूँघते हैं ॥७१॥ पेड़ों को सुख-दुःख का अनुभव होता है, काटे जाने पर वे बढ़ते भी हैं। अतः उनमें जीव है और चेतनता भी ॥७२॥ इसीलिए वे जल पीते हैं, अग्नि और वायु के प्रभाव से वृद्ध भी होते हैं। आहार के अनुसार उनमें रस उत्पन्न होता और वे बढ़ते भी हैं ॥७३॥ और सब जंगमों के शरीर में पांच धातुयें हैं। भिन्न-भिन्न प्रकार की शारीरिक चेष्टाओं द्वारा प्रत्येक धातुओं की अभिव्यक्ति होती है ॥७४॥ इस पृथ्वीमय शरीर में त्वक्, मांस, अस्थि, मज्जा और पाँचवें स्नायु का संयोग है ॥७५॥ तेज, अग्नि, क्रोध, चक्षु और ऊष्मा इनको अग्नि उत्पन्न करता है। अतः ये पाँचों देह के आग्नेय तत्त्व हैं ॥७६॥ कान, नासिका, मुख, हृदय और कोष्ठ ये शरीर में आकाश से उत्पन्न होते हैं ॥७७॥ प्राणियों के शरीर में कफ, पित्त, स्वेद, वसा (चर्बी) और रक्त ये जल के पाँच रूप हैं ॥७८॥ प्राण वायु से प्राणी तृप्त होता, व्यान से अंग प्रसारण करता, अपान शरीर के अधो भाग से बाहर निकलता है, समान हृदय में रहता और उदान से मनुष्य उच्छ्वास छोड़ता है। इस प्रकार वायु के पाँच भेद हैं। ये पाँच वायु देही को घेरे रहते हैं ॥७९-८०॥ शरीर भूमितत्त्व के कारण गन्ध ग्रहण करता और जल से रस का आस्वादन करता है। उस गन्ध के गुणों को विस्तार के साथ कह रहा हूँ ॥८१॥ इष्ट, अनिष्ट, मधुर, कटु, निर्हारी, संहत, स्निग्ध, रुक्ष और विशद ये नव पार्थिव गन्ध के भेद हैं ॥८२½॥ नेत्र से ज्योति देखी जाती है, वायु से स्पर्श का ज्ञान होता है। शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये गुण हैं। अब मैं रस का ज्ञान बता रहा हूँ, उसको मुझसे सुनो ॥८३-८४॥

प्रसिद्ध ज्ञानी ऋषियों ने रस के बहुत से भेद कहे हैं। मधुर, लवण, तिक्त, कषाय, अम्ल, कटु ये रस के छह भेद हैं जो जल के ही विकृत रूप हैं ॥८५½॥ शब्द, स्पर्श और रूप ये तीनों गुण ज्योति कहे गये हैं। ज्योति से ही रूप का दर्शन होता है। रूप विविध प्रकार के हैं। ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल, चौकोर, अणु, शुक्ल, कृष्ण, रक्त, नील, पीत, अरुण, कठिन, चिकना, कोमल, पिच्छिल (फिसलने योग्य), मृदु, दारुण (कठोर)

एवं षोडशविस्तारो ज्योतीरूपगुणः स्मृतः । तत्रैकगुणमाकाशं शब्द इत्येव तत्स्मृतम् ॥८६॥
तस्य शब्दस्य वक्ष्यामि विस्तरं विविधात्मकम् । षड्जो ऋषभगांधारौ मध्यम धैवतस्तथा ॥६०॥
पंचमश्चापि विज्ञेयस्तथा चापि निषादवान् । एष सप्तविधः प्रोक्तो गुण आकाशसंभवः ॥६१॥
ऐश्वर्य्येण तु सर्वत्र स्थितोऽपि पटहादिषु । मृदंगभेरीशंखानां स्तनयित्नो रथस्य च ॥६२॥
एवं बहुविधाकारः शब्द आकाशसंभवः । वायव्यस्तु गुणः स्पर्शः स्पर्शश्च बहुधा स्मृतः ॥६३॥
उष्णः शीतः सुखं दुःख स्निग्धो विशद एव च । तथा खरो मृदुः श्लक्ष्णो लघुर्गुरुतरोऽपि च ॥६४॥
शब्दस्पर्शौ तु विज्ञेयौ द्विगुणौ वायुरित्युत । एवमेकादशविधो वायव्यो गुण उच्यते ॥६५॥
आकाशजं शब्दमाहुरेभिर्वायुगुणैः सह । अव्याहतैश्चेतयते नवेति विषमा गतिः ॥६६॥
आप्यायंते च ते नित्यं धातवस्तैस्तु धातुभिः । आपोऽग्निर्मारुतश्चैव नित्यं जाग्रति देहिषु ॥६७॥
मूलमेते शरीरस्य व्याप्य प्राणानिह स्थिताः । पार्थिवं धातुमासाद्य यथा चेष्टयते बली ॥६८॥
श्रितो मूर्द्धानमग्निस्तु शरीरं परिपालयेत् । प्राणो मूर्द्धनि वाग्नौ च वर्तमानो विचेष्टते ॥६६॥
स जंतुः सर्वभूतात्मा पुरुषः स सनातनः । मनो बुद्धिरहंकारो भूतानि विषयश्च सः ॥१००॥
एवं त्विह स सर्वत्र प्राणैस्तु परिपाल्यते । पृष्ठतस्तु समानेन स्वां स्वां गतिमुपाश्रितः ॥१०१॥
वस्तिमूलं गुदं चैव पावकं समुपाश्रितः । वहन्मूत्रं पुरीषं वाप्यपानः परिवर्तते ॥१०२॥
प्रयत्ने कर्मनियमे य एकस्त्रिषु वर्तते । उदान इति तं प्राहुरध्यात्मज्ञानकोविदाः ॥१०३॥
संधिष्वपि च सर्वेषु संनिविष्टस्तथानिलः । शरीरेषु मनुष्याणां व्यान इत्युपदिश्यते ॥१०४॥

इस प्रकार ज्योतिग्राह्य रूप के षोडश गुण हैं। इन महाभूतों में आकाश का एक गुण होता है जिसको 'शब्द' कहते हैं ॥८६-८९॥ उस शब्द के विविध रूपों का विस्तार के साथ वर्णन कर रहा हूँ। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, धैवत, पंचम और निषाद ये सात प्रकार के आकाश-संभव गुण कहे जाते हैं।।९०-९१॥ आकाशोत्पन्न शब्द पटह आदि में सर्वत्र गरिमा के साथ स्थित होने पर भी मृदंग, भेरी, शंख, बादल और रथ के भेद से अनेक प्रकार का हो जाता है ॥९२½॥

वायु का गुण स्पर्श ही माना गया है। उष्ण, शीत, सुख, दुःख, स्निग्ध, विशद, खर, मृदु, श्लक्ष्ण, लघु और गुरुतर, ये स्पर्श के भेद हैं ॥९३-९४॥ अथवा वायु के शब्द और स्पर्श ये दो गुण समझने चाहिए। इस प्रकार वायु के गुण ग्यारह होते हैं।.९५॥ शब्द को आकाशज कहा गया है। वह उन वायुगुणों के साथ अबाध रूप से चेतना प्रदान करता है कि नहीं, यह एक विचारणीय विषय है ॥९६॥ वे धातु अन्य धातुओं के संसर्ग से आप्यायित होते हैं। प्राणियों में जल, अग्नि और वायु सर्वदा जाग्रत रहते हैं ॥९७॥ ये शरीर के मूल-तत्त्व हैं और प्राणों में व्याप्त होकर रहते हैं। जैसे बलवान् वायु पार्थिव धातु को प्राप्त कर क्रियाएँ उत्पन्न करता है उसी तरह अग्नि मस्तक का आश्रय लेकर शरीर का पालन करता है। प्राण मूर्द्धा अथवा अग्नि से संयुक्त होकर गतिमान होता है ॥९८-९९॥ वह जीव सब भूत का आत्मा, सनातन पुरुष, मन, बुद्धि, अहंकार, प्राणी और विषय भी है ॥१००॥ इस प्रकार वह इस शरीर में सब प्रकार से प्राणों द्वारा परिपालित होता है। पीछे की ओर वह समान वायु के साथ अपनी गति को प्राप्त करता है ॥१०१॥ वस्तिमूल, गुदा और शरीराग्नि से संपृक्त होकर अपान वायु मूत्र और मल को शरीर से बाहर निकालता है ॥१०२॥ जो वायु शारीरिक प्रयत्न और कर्मनियम (कर्म-संगठन) में प्रवृत्त रहता है उसको अध्यात्मज्ञान के पंडितों ने उदान वायु कहा है ॥१०३॥ मनुष्यों के शरीर की प्रत्येक संधियों में रहने वाला वायु उदान कहा जाता है ॥१०४॥ अग्नि बाँहों में समान के द्वारा प्रेरित होकर

बाहुष्वग्निस्तु विततः समानेन समीरितः । रसान्बाहूंश्च दोषांश्च वर्तयन्नतिचेष्टते ॥१०५॥
अपानप्राणयोर्मध्ये प्राणापानसमीहितः । समन्वितस्त्वधिष्ठानं सम्यक् पचति पावकः ॥१०६॥
आस्यं हि पायुपर्यंतमंते स्याद्गुदसंज्ञिते । रेतस्तस्मात्प्रजायंते सर्वस्रोतांसि देहिनाम् ॥१०७॥
प्राणानां सन्निपाताच्च सन्निपातः प्रजायते । ऊष्मा चाग्निरिति ज्ञेयो योऽन्नं पचति देहिनाम् ॥१०८॥
अग्निवेगवहः प्राणो गुदांते प्रतिहन्यते । स ऊर्ध्वमागम्य पुनः समुत्क्षिपति पावकम् ॥१०९॥
पक्वाशयस्त्वधो नाभ्या ऊर्ध्वमामाशयः स्मृतः । नाभिमूले शरीरस्य सर्वे प्राणाश्च संस्थिताः ॥११०॥
प्रस्थिता हृदयात्सर्वे तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा । वहंत्यन्नरसान्नाड्यो दशप्राणप्रचोदिताः ॥१११॥
एष मार्गोऽपि योगानां येन गच्छंति तत्पदम् । जितक्लमाः समा धीरा मूर्द्धन्यात्मानमादधन् ॥११२॥
एवं सर्वेषु विहितप्राणापानेषु देहिनाम् । तस्मिन्समिध्यते नित्यमग्निः स्थाल्यामिवाहिताः ॥११३॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे द्वितीयपादे भृगुभरद्वाजसंवादे जगदुत्पत्तिवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

फैलता है। यह वायु रसों, बाहों और दोषों से सम्बद्ध होकर क्रियाशील रहता है ॥१०५॥ अपान और प्राण के के मध्य में प्राण तथा अपान से प्रेरित एवं समन्वित होकर अग्नि अधिष्ठान (भुक्त द्रव्य) को भली भाँति पकाता है ॥१०६॥ मुख से गुदा तक भुक्त द्रव्य को पहुँचाना अग्नि तथा वायु का ही कार्य है। अन्न-पाचन के बाद वीर्य बनता है और उससे प्राणियों के सब स्रोत उत्पन्न होते हैं। प्राणों के सन्निपात (सम्बन्ध) से सन्निपात रोग होता है। ऊष्मा को अग्नि कहते हैं, जो प्राणियों के खाये हुए अन्न को पकाता है ॥१०७-१०८॥ अग्निवेग से प्रेरित होकर प्राण वायु गुदा के अन्तिम भाग से टकराता है। वह पुन. वहाँ से ऊपर लौटकर पावक को ऊपर की ओर फेंकता है ॥१०९॥ नाभि के नीचे पक्वाशय और ऊपर की ओर आमाशय है, और नाभि के मूल में सब प्राण स्थित हैं ॥११०॥ सभी हृदय केन्द्र से ऊपर, नीचे और तिरछे जाते हैं। नाड़ियाँ प्राणवायु से प्रेरित होकर अन्न रस को इधर-उधर ले जाती हैं ॥१११॥ योगियों के लिए भी यही 'प्राण' मार्ग है जिससे वे ब्रह्म पद को जाते हैं। मूर्धा में आत्मा को व्यवस्थित कर बाह्य बाधाओं को जीत कर वीर योगीजन आत्मपद को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार प्राणियों के शरीर में प्राण, अपान आदि की व्यवस्था है, जिसमें शरीराग्नि स्थाली में रखे हुए अग्नि के समान नित्य प्रज्वलित रहती है ॥११२-११३॥

श्रीनारदीय महापुराण में जगदुत्पत्ति-वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

भरद्वाज उवाच

यदि प्राणपतिर्वायुर्वायुरेव विचेष्टते । श्वसित्याभावते चैव ततो जीवो निरर्थकः ॥१॥
य ऊष्मभाव आग्नेयो वह्निनैवोपलभ्यते । अग्निर्जरयते चैतत्तदा जीवो निरर्थकः ॥२॥
जंतोः प्रम्रियमाणस्य जीवो नैवोपलभ्यते । वायुरेव जहात्येनमूष्मभावश्च नश्यति ॥३॥
यदि वायुमयो जीवः संश्लेषो यदि वायुना । वायुमंडलवत्पश्येद्गच्छेत्सह मरुद्गणैः ॥४॥
संश्लेषो यदि वा तेन यदि तस्मात्प्रणश्यति । महार्णवविमुक्तत्वादन्यत्सलिलभाजनम् ॥५॥
कूपे वा सलिलं दद्यात्प्रदीपं वा हुताशने । क्षिप्रं प्रविश्य नश्येत यथा नश्यत्यसौ यथा ॥६॥
पंचधारणके ह्यस्मिञ्छरीरे जीवितं कृतम् । येषामन्यतराभावाच्चतुर्णां नास्ति संशयः ॥७॥
नश्यंत्यापो ह्यनाहाराद्वायुरुच्छ्वासनिग्रहात् । नश्यते कोष्ठभेदार्थमग्निर्नश्यत्यभोजनात् ॥८॥
व्याधिव्रणपरिक्लेशैर्मेदिनी चैव शीर्यते । पीडितेऽन्यतरे ह्येषां संघातो याति पंचताम् ॥९॥
तस्मिन्पंचत्वमापन्ने जीवः किमनुधावति । किं खेदयति वा जीवः किं शृणोति ब्रवीति च ॥१०॥
एषा गौः परलोकस्थं तारयिष्यति मामिति । यो दत्वा म्रियते जंतुः सा गौः कं तारयिष्यति ॥११॥

अध्याय ४३

जीव की गति और द्विज का आचार निरूपण

भरद्वाज बोले--यदि वायु ही प्राणपति है, वही चेष्टायें करता, श्वास वही लेता और बोलता भी वही है तो जीव निरर्थक है ॥१॥ जो ऊष्म भाव अग्नि का ही गुण है वह अग्नि से ही प्राप्त हो जाता है और अग्नि ही बुढ़ापा भी ला देता है तो जीव का क्या अस्तित्व माना जाय ॥२॥ प्राणी के मृत्यु-काल में जीव का निकलना तो देखा नहीं जाता। वायु ही शरीर को छोड़ देता है, जिससे शरीर का ऊष्मभाव नष्ट हो जाता है ॥३॥ यदि जीव वायुमय है, वह वायु से ही चिपका रहता है, वायुमण्डल के समान देखता है, मरुद्गणों के साथ जाता है, यदि उसी (वायु) के साथ उस (जीव) का दृढ़ संयोग है और उससे वियुक्त होने पर उसी तरह नष्ट हो जाता है, जैसे महासागर से अलग हुआ जल अन्य जल-स्थान में या कूप में डाला जाने पर और दीपक अग्नि में डाला जाने पर नष्ट हो जाते हैं ॥४-६॥ जीव इस पाँच भौतिक शरीर में जीवित रहता है। उन पाँच भूतों में एक के अभाव से चारों का अभाव हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥७॥ अनाहार के कारण जल तत्त्व नष्ट हो जाता है। श्वास के निरोध से वायु, भोजन न करने से अग्नि, व्याधि, व्रण आदि शारीरिक क्लेश से पृथ्वी तत्त्व नष्ट हो जाता है। इनमें से एक के भी पीड़ित होने पर इनका समूह भी नष्ट हो जाता है। ॥८-९॥ शरीर के छूट जाने पर जीव किसके पीछे जाता है? अथवा उसको किस बात का खेद रहता है? क्या सुनता और क्या बोलता है? ॥१०॥ 'दान में दी हुई यह गाय परलोक में मेरा उद्धार करेगी' यह सोचकर जो जन्तु गाय का दान कर मर जाता है वह गाय किसको तारेगी? ॥११॥ जब गाय, दाता और प्रतिग्रहीता समान रूप से यहीं

गौश्च प्रतिग्रहीता च दाता चैव समं यदा । इहैव विलयं यांति कुतस्तेषां समागमः ॥१२॥
विहगैरुपभुक्तस्य शैलाग्रात्पतितस्य च । अग्निना चोपयुक्तस्य कुतः संजीवनं पुनः ॥१३॥
छिन्नस्य यदि वृक्षस्य न मूलं प्रतिरोहति । जीवन्यस्य प्रवर्तेत मृतः क्व पुनरेष्यति ॥१४॥
जीवमात्रं पुरा सृष्टं यदेतत्परिवर्तते । मृता मृताः प्रणश्यंति बीजाद्बीजं प्रणश्यति ॥१५॥
इति मे संशयो ब्रह्मन्हृदये परिधावति । ते निवर्तय सर्वज्ञ यतस्त्वामाश्रितो ह्यहम् ॥१६॥

सनंदन उवाच

एवं पृष्टस्तदानेन स भृगुर्ब्रह्मणः सुतः । पुनराह मुनिश्रेष्ठ तत्संदेहनिवृत्तये ॥१७॥

भृगुरुवाच

न प्राणाः सन्ति जीवस्य दत्तस्य च कृतस्य च । याति देहान्तरं प्राणी शरीरं तु विशीर्यते ॥१८॥
न शरीराश्रितो जीवस्तस्मिन्नष्टे प्रणश्यति । समिधामग्निदग्धानां यथाग्निर्दृश्यते तथा ॥१९॥

भरद्वाज उवाच

अग्नेर्यथा तस्य नाशात्तद्विनाशो न विद्यते । इन्धनस्योपयोगांते स चाग्निर्नोपलभ्यते ॥२०॥
नश्यतीत्येव जानामि शांतमग्निमनिन्धनम् । गतिर्यस्य प्रमाणं वा संस्थानं वा न विद्यते ॥२१॥

भृगुरुवाच

समिधामुपयोगांते स चाग्निर्नोपलभ्यते । नश्यतीत्येव जानामि शांतमग्निमनिन्धनम् ॥२२॥

मर जाते हैं तब उनका फिर संयोग कैसे होता है ? ॥१२॥ चिड़ियों से खाये जाने पर, पहाड़ की चोटी से गिर कर मरने पर और अग्नि में जल जाने पर जीव को पुनः जीवन कैसे प्राप्त होता है ? ॥१३॥ यदि कटे हुए वृक्ष से जड़ें नहीं निकलतीं या उसकी जड़ पुनः नहीं पनपती है तो प्राणी मरने पर पुनः कैसे जीवन धारण करेगा ॥१४॥ पूर्व काल में जिनकी सृष्टि की गई ऐसे जीव मात्र मर-मर कर नष्ट होते हैं और बीज से बीज उत्पन्न होकर नष्ट होता है। इस प्रकार के सन्देह मेरे हृदय में उठ रहे हैं सर्वज्ञ ! उनको आप दूर कीजिए क्योंकि मैं इसीलिए आपकी शरण में आया हूँ ॥१५-१६॥

सनन्दन ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार भरद्वाज के पूछने पर ब्रह्मपुत्र भृगुजी ने उनकी शंकाओं को दूर करने के लिए कहा ॥१७॥—

भृगु बोले—ईश्वर निर्मित या दत्त जीव के प्राण नहीं होते जीव मृत्यु के पश्चात् दूसरे शरीर को पा जाता है केवल शरीर नष्ट हो जाता है ॥१८॥ जिस प्रकार काष्ठ के अग्नि में जल जाने पर भी अग्नि उस (दग्ध काष्ठ) में दिखाई पड़ता है उसी तरह शरीराश्रित जीव शरीर के नष्ट हो जाने पर भी नष्ट नहीं होता ॥१९॥

भरद्वाज बोले—जिस प्रकार काष्ठ के नष्ट हो जाने पर अग्नि नष्ट नहीं होता परन्तु इन्धन के अभाव में अग्नि नहीं पाया जाता, काष्ठ के बिना शान्त अग्नि को नष्ट ही समझते हैं क्योंकि (इन्धन के अभाव में) उस (अग्नि) की गति, प्रमाण एवं अवस्थान का पता नहीं चलता है ॥२०-२१॥

भृगु बोले—समिधा न रहने पर अग्नि नहीं जलता, न तो उसकी स्थिति ही संभव है और उसको नष्ट

यथाग्निर्नोपलभ्यते ॥२३॥
गतिर्यस्य प्रमाणं वा संस्थानं वा न विद्यते । समिधामुपयोगांते यथाग्निर्नोपलभ्यते ॥२४॥
आकाशानुगतत्वाद्धि दुर्ग्राह्यो हि निराश्रयः । तथा शरीरसंत्यागे जीवो ह्याकाशवत्स्थितः ॥२५॥
न नश्यते सुसूक्ष्मत्वाद्यथा ज्योतिर्न संशयः । प्राणान्धारयते ह्यग्निः स जीव उपधार्यताम् ॥२६॥
वायुसंधारणो ह्यग्निर्नश्यत्युच्छ्वासनिग्रहात् । तस्मिन्नष्टे शरीराग्नौ ततो देहमचेतनम् ॥२७॥
पतितं याति भूमित्वमयनं तस्य हि क्षिति । जंगमानां हि सर्वेषां स्थावराणां तथैव च ॥२८॥
आकाशं पवनोऽन्वेति ज्योतिस्तमनुगच्छति । तेषां त्रयाणामेकत्वाद्द्वयं भूमौ प्रतिष्ठितम् ॥२९॥
यत्र खं तत्र पवनस्तत्राग्निर्यत मारुतः । अमूर्तयस्ते विज्ञेया मूर्तिमंतः शरीरिणः

भरद्वाज उवाच

मेऽनघ ॥३०॥
यद्यग्निमारुतौ भूमिः खमापश्च शरीरिषु । जीवः किंलक्षणस्तत्रेत्येतदाचक्ष्व ॥३१॥
पंचात्मके पञ्चरतौ पञ्चविज्ञानसंज्ञके । शरीरे प्राणिनां जीवं वेत्तुमिच्छामि यादृशम् ॥३२॥
मांसशोणितसंघाते मेदःस्नाय्वस्थिसंचये । भिद्यमाने शरीरे तु जीवो नैवोपलभ्यते ॥३३॥
यद्यजीवशरीरं तु पञ्चभूतसमन्वितम् । शरीरे मानसे दुःखे कस्तां वेदयते रुजम् ॥३४॥
शृणोति कथितं जीवः कर्णाभ्यां न शृणोति तत् । महर्षे मनसि व्यग्रे तस्माज्जीवो निरर्थकः ॥३५॥
सर्वं पश्यंति यद्दृश्यं मनोयुक्तेन चक्षुषा । मनसि व्याकुले चक्षुः पश्यन्नपि न पश्यति ॥३६॥
न पश्यति न चाघ्राति न शृणोति न भाषते । न च स्पर्शमसौ वेत्ति निद्रावशगतः पुनः

नहीं चलता है। जिस
हुआ ही समझते हैं; क्योंकि इन्धन के अभाव में उसकी गति, स्थान या प्रमाण का पता निराधार वस्तु
प्रकार इन्धन के उपयोग के बिना या उसकी समाप्ति के बाद अग्नि देखा नहीं जाता क्योंकि आकाश की
आकाशानुगत होने के कारण ग्रहण करने योग्य नहीं होती, उसी प्रकार जीव शरीर त्याग के अनन्तर जैसे अग्नि,
भांति स्थित रहता है ॥२२-२४॥ अतएव वह अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण उसी तरह नष्ट नहीं होता वायु के आधार
यह निःसन्देह है। अग्नि प्राणों को धारण करता है अतएव अग्नि को ही जीव समझ लो ॥२५॥ देह चेतना
पर ही टिकने वाला अग्नि श्वास के रुक जाने पर दिखाई नहीं देता। शरीराग्नि के नष्ट हो जाने पर भूमि ही है।
शून्य हो जाती है ॥२६॥ शरीर नष्ट होकर भूमि में मिल जाता है क्योंकि उसका आवास स्थान और अग्नि
सभी जंगम और स्थावरों का भी आवास स्थान वही है ॥२७॥ वायु आकाश का अनुसरण करता है पवन रहता
पवन का। उन तीनों में एकता होने के कारण वे भूमि में प्रतिष्ठित हैं ॥२८॥ जहाँ आकाश है वहीं ॥२९॥
है और जहाँ पवन है वहीं अग्नि की स्थिति होती है। वे अमूर्त्त हैं, परन्तु शरीरधारी प्राणी मूर्तिमान् हैं, तो

भरद्वाज बोले--यदि शरीर-धारियों में अग्नि, वायु, भूमि, आकाश और जल यही पाँच तत्त्व हैं, विज्ञाना
जीव का क्या स्वरूप है? अनघ, इस रहस्य को आप मुझसे कहिए ॥३०॥ पंचात्मक, पंचरति और पंच स्नायु,
त्मक प्राणियों के शरीर में जीव का जो रूप है उसको जानना चाहता हूँ ॥३१॥ इस मांस, शोणित, मेद, पाँचभौतिक
और अस्थि-पुंज शरीर के भेदन करने पर जीव का तो कहीं पता नहीं चलता ॥३२॥ यदि यह महर्षे!
शरीर जीव हीन है तो शारीरिक और मानसिक दुःख के समय पीड़ा का अनुभव कौन करता है ॥३३॥ जीव निर-
कही हुई बातों को जीव सुनता है, किन्तु मन के व्याकुल रहने पर वह कानों से भी नहीं सुनता, इसलिए भी नहीं
र्थक है। मन से युक्त नेत्रों से सब दृश्य पदार्थ को देखते हैं परन्तु मन के व्याकुल रहने पर आँखें देखती हुई और न तो
देखतीं। एक और बात है कि निद्रा दशा में जीव न तो देखता है, न सुनता है, न सूँघता है, न बोलता है

हृष्यति कुद्धयते कोऽत्र शोचत्युद्विजते च कः । इच्छति ध्यायति द्वेष्टि वाक्यं वाचयते च कः ॥३७॥

भृगुरुवाच

तं पंचसाधारणमत्र किंचिच्छरीरमेको वहतेंऽतरात्मा ।
स वेत्ति गंधांश्च रसाञ्छ्रुतीश्च स्पर्शं च रूपं च गुणांश्च येऽन्ये ॥३८॥
पंचात्मके पंचगुणप्रदर्शी स सर्वगात्रानुगतोंऽतरात्मा ।
सदेति दुःखानि सुखानि चात्र तद्विप्रयोगात्तु न वेत्ति देहम् ॥३९॥

यदा न रूपं न स्पर्शो नोष्मभावश्च पावके । तदा शांते शरीराग्नौ देहत्यागेन नश्यति ॥४०॥
आपोमयमिदं सर्वमापोमूर्तिः शरीरिणाम् । तत्रात्मा मानसो ब्रह्मा सर्वभूतेषु लोककृत् ॥४१॥
आत्मानं तं विजानीहि सर्वलोकहितात्मकम् । तस्मिन्यः संश्रितो देहे ह्यब्बिंदुरिव पुष्करे ॥४२॥
क्षेत्रज्ञं तं विजानीहि नित्यं लोकहितात्मकम् । तमोरजश्च सत्त्वं च विद्धि जीवगुणानिमान् ॥४३॥

अचेतनं जीवगुणं वदंति स चेष्टते चेष्टयते च सर्वम् ।
अतः परं क्षेत्रविदो वदंति प्रावर्तयद्यो भुवनानि सप्त ॥४४॥
न जीवनाशोऽस्ति हि देहभेदे मिथ्यैतदाहुर्मृत इत्यबुद्धाः ।
जीवस्तु देहांतरितः प्रयाति दशार्द्धतस्तस्य शरीरभेदः ॥४५॥

एवं भूतेषु सर्वेषु गूढश्चरति सर्वदा । दृश्यते त्वग्र्‌यया बुद्ध्या सूक्ष्मया तत्त्वदर्शिभिः ॥४६॥
तं पूर्वापररात्रेषु युंजानः सततं बुधः । लब्धाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥४७॥

उसको स्पर्श का ही ज्ञान रहता है। इस शरीर में कौन क्रोध करता है? हर्ष, शोक और उद्वेग का अनुभव कौन करता है? इच्छा, ध्यान और द्वेष कौन करता है? वाक्योच्चारण किसका कार्य है? ॥३४-३७॥

भृगु ने कहा--इस पांचभौतिक शरीर में एक अन्तरात्मा है जो इस शरीर का वहन करता है। वह गंध, रस को जानता है। सुनता वही है। स्पर्श, रूप और अन्य गुणों का अनुभव करने वाला वही है ॥३८॥ सब अंगों में व्याप्त रहने वाला वह अन्तरात्मा इस पंचात्मक शरीर में पाँच गुणों (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द) का दर्शन करता है। उसी के कारण शरीर सदा सुख-दुःख का अनुभव करता है और जिसके वियोग के कारण शरीर को किसी वस्तु का अनुभव नहीं होता ॥३९॥ जब रूप, स्पर्श नहीं रहता, अग्नि में उष्ण स्पर्श नहीं रह जाता, उस समय देहाग्नि के शान्त हो जाने पर आत्मा शरीर को छोड़ देता है तथा शरीर नष्ट हो जाता है ॥४०॥ सब कुछ जलमय है। शरीर भी जलमय है। सब प्राणियों के इस जलमय शरीर में लोकस्रष्टा मानस ब्रह्मा निवास करता है ॥४१॥ उसको सब लोकों का हित करने वाला आत्मा समझो। वह इस शरीर में कमल-पत्र पर पड़े जल बिन्दु के समान निर्लिप्त रहता है ॥४२॥ नित्य लोकहित करने वाले उसको क्षेत्रज्ञ समझो। सत्त्व, रज, तम ये जीव के गुण हैं, जीव का गुण अचेतन है। वह आत्मा जब इच्छा करता है तभी सारे पदार्थों में कम्पन होता है। इसके अनन्तर जो सातों लोकों का अधिष्ठाता है उसके विषय में केवल क्षेत्रज्ञ ही जानता है ॥४३-४४॥ देह-नाश होने पर जीव का नाश नहीं होता, इसको मिथ्या कहने वाले अज्ञानी हैं। जीव दूसरे शरीर में जाता है परन्तु उस जीव और इस पांचभौतिक शरीर में सर्वथा अन्तर है ॥४५॥ इस प्रकार जीव सब प्राणियों में गुप्त रूप से गमनागमन करता है जिसको केवल तत्त्वदर्शी अपनी सूक्ष्म कुशल बुद्धि से ही देख सकते हैं ॥४६॥ उसको पूर्व अपर रात्रि में अर्थात् सर्वदा योग युक्त होकर अनायास प्राप्त आहार पर ही संतोष कर जीवन यापन करने वाले विशुद्धात्मा बुध जन ही अपने अन्तःकरण में देखते हैं ॥४७॥ अपने चित्त की प्रसन्नता से

चित्तस्य हि प्रसादेन हित्वा कर्म शुभाशुभम् । प्रसन्नात्मात्मनि स्थित्वा सुखमानंत्यमश्नुते ॥४८॥
मानसोऽग्निः शरीरेष जीव इत्यभिधीयते । सृष्टिः प्रजापतेरेषा भूताध्यात्मविनिश्चये ॥४९॥
असृजद्ब्राह्मणानेव पूर्वं ब्रह्मा प्रजापतिः । आत्मतेजोऽभिनिर्वृत्तान्भास्कराग्निसमप्रभान् ॥५०॥
ततः सत्यं च धर्मं च तथा ब्रह्म च शाश्वतम् । आचारं चैव शौचं च स्वर्गाय विदधे प्रभुः ॥५१॥
देवदानवगंधर्वा दैत्यासुरमहोरगाः । यक्षराक्षसनागाश्च पिशाचा मनुजास्तथा ॥५२॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राणामसितस्तथा ।

भरद्वाज उवाच

॥५३॥
चातुर्वर्ण्यस्य वर्णेन यदि वर्णो विभिद्यते
स्वेदमूत्रपुरीषाणि श्लेष्मा पित्तं सशोणितम् । त्वन्तः क्षरति सर्वेषां कस्माद्वर्णो विभज्यते ॥५४॥
जंगमानामसंख्येयाः स्थावराणां च जातयः । तेषां विविधवर्णानां कुतो वर्णविनिश्चयः ॥५५॥

भृगुरुवाच

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्रह्ममयं जगत् । ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मणा वर्णतां गतम् ॥५६॥
कामभोगाः प्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधताप्रियसाहसाः । त्यक्तस्वकर्मरक्तांगास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः ॥५७॥
गोभ्यो वृत्ति समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः । स्वधर्मान्नानुतिष्ठंते ते द्विजा वैश्यतां गताः ॥५८॥
हिंसानृतपरा लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः । कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥५९॥
इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः । ब्राह्मणा धर्मतन्त्रस्थास्तपस्तेषां न नश्यति ॥६०॥

जीवन के शुभ-अशुभ कर्मों को छोड़कर प्रसन्नात्मा अपने में ही ध्यानस्थ होकर अनन्त सुख का अनुभव करता है ॥४८॥ शरीर में मानस अग्नि को ही जीव कहते हैं, प्रजापति ने भूत (दृश्यमान पदार्थ) और अध्यात्म (परोक्ष-तत्त्व) के निश्चय के लिये इसकी सृष्टि की है ॥४९॥ पहले प्रजापति ब्रह्मा ने अपने तेज से प्रदीप्त एवं सूर्य, अग्नि के समान तेजस्वी ब्राह्मणों को उत्पन्न किया ॥५०॥ तदनन्तर प्रभु ने सत्य, धर्म, शाश्वत ब्रह्म (वेद), आचार और शौच को स्वर्ग प्राप्ति के लिए बनाया ॥५१॥ देव, दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, महासर्प, यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच, मनुष्य और उनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और चाण्डालों को बनाया ॥५२½॥

भरद्वाज बोले--चारों वर्णों का विभाग यदि वर्ण-भेद के कारण होता है तो यह उचित नहीं; क्योंकि सब वर्णों के लोग एक ही प्रकार से पसीना छोड़ते, मूत्र, मल, कफ आदि का त्याग करते और पित्त, शोणित में भी समानता है तब क्यों वर्ण-भेद की सृष्टि की गई। असंख्य स्थावर और जंगमों की अनगिनत जातियाँ हैं। उनके विविध वर्णों को देखते हुए वर्ण का निश्चय तो असम्भव जान पड़ता है ॥५३-५५॥

भृगु बोले--वर्णों में कोई विशेषता नहीं, सारा संसार ब्रह्ममय है। ब्रह्मा के पूर्व सृष्ट अपने कर्मों की भिन्नता से भिन्नवर्ण का हो गया। जो द्विज इच्छानुसार भोग करने वाले, उग्र प्रकृति के क्रोधी, साहसी और अपने कर्मों को छोड़ने वाले हुए वे रक्तवर्ण के मनुष्य क्षत्रियत्व को प्राप्त हुए ॥५६-५७॥ जो द्विज अपने द्विजत्व को छोड़कर गौओं का पालन कर जीविका चलाते थे, कृषि-व्यापार जिनको प्रिय थे और जिनको स्वधर्मानुष्ठान में रुचि नहीं थी वे वैश्यत्व को प्राप्त हुए ॥५८॥ जो द्विज हिंसक, असत्यवादी, वधिक, प्रत्येक पाप कर्म से अपनी जीविका चलाने वाले थे, वे शौच और आचार भ्रष्ट, कृष्णवर्ण के द्विज शूद्रत्व को प्राप्त हुए ॥५९॥ इस प्रकार उपर्युक्त कर्मों के कारण ही द्विज भिन्न वर्णों को प्राप्त हुए। ब्राह्मण धर्मप्रिय और तपस्वी होते हैं। उनकी तपस्या

ब्रह्म धारयतां नित्यं व्रतानि नियमांस्तथा । ब्रह्म चैव पुरा सृष्टं येन जानंति तद्विदः ॥६१॥
तेषां बहुविधास्त्वन्यास्तत्र तत्र द्विजातयः । पिशाचा राक्षसाः प्रेता विविधा म्लेच्छजातयः
सा सृष्टिर्मानसी नाम धर्मतंत्रपरायणा ॥६२॥

भरद्वाज उवाच

ब्राह्मणः केन भवति क्षत्रियो वा द्विजोत्तम । वैश्यः शूद्रश्च विप्रर्षे तद्ब्रूहि वदतां वर ॥६३॥

भृगुरुवाच

जातकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः । वेदाध्ययनसंपन्नो ब्रह्मकर्मस्ववस्थितः ॥६४॥
शौचाचारस्थितः सम्यग्विघसाशी गुरुप्रियः । नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते ॥६५॥
सत्यं दानमथोऽद्रोह आनृशंस्यं कृपा घृणा । तपस्यां दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥६६॥
क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययनसंगतः । दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते ॥६७॥
विशत्याशु पशुभ्यश्च कृष्यादानरतिः शुचिः । वेदाध्ययनसंपन्नः स वैश्य इति संज्ञितः ॥६८॥
सर्वभक्षरतिर्नित्यं सर्वकर्मकरोऽशुचिः । त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः ॥६९॥
शूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते । न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो ब्राह्मणो न च ॥७०॥
सर्वोपायैस्तु लोभस्य क्रोधस्य च विनिग्रहः । एतत्पवित्रं ज्ञातानां तथा चैवात्मसंयमः ॥७१॥
वर्ज्यौ सर्वात्मना तौ हि श्रेयोघातार्थमुद्यतौ । नित्यक्रोधाच्छ्रियं रक्षेत्तपो रक्षेत्तु मत्सरात् ॥७२॥

कभी नष्ट नहीं होती ॥६०॥ ब्रह्म (वेद ज्ञान) के धारण करने वाले उनके व्रत और नियम कभी भंग नहीं होते। पहले ब्रह्म की ही सृष्टि हुई, जिसका ज्ञान केवल वेदज्ञ ज्ञानियों को ही है ॥६१॥ उसी श्रेणी को अनेकों प्रकार की द्विजातियाँ यत्र-तत्र हैं। पिशाच-राक्षस, प्रेत और विविध म्लेच्छ जातियाँ भी इसी प्रकार द्विजाति से भ्रष्ट हैं। वह ब्राह्मण सृष्टि धर्म का ही अनुशासन मानने वाली मानसी सृष्टि है ॥६२॥

भरद्वाज बोले—द्विजोत्तम, किस कर्म से ब्राह्मण होते हैं, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म क्या हैं, विप्रर्षे! श्रेष्ठ वाग्मी! इसको कहिए ॥६३॥

भृगु बोले—जो जाति कर्म आदि से और संस्कारों से संस्कृत और शुचि है, जो वेदाध्ययन में लगा रहता, ब्रह्मकर्म का पालन करता, पवित्र आचारों को ही अपनाता है, सर्वदा गुरु की सेवा में लीन रहकर भली भाँति विद्या का अभ्यास करता है, जो सत्य-परायण और नित्य प्रति व्रतों का अनुष्ठान करता है वही ब्राह्मण कहा जाता है ॥६४-६५॥ सत्य, दान, अद्रोह, कोमलता, कृपा, अघृणा और तपस्या जिस व्यक्ति में दिखाई दे उसको ब्राह्मण कहा जाता है ॥६६॥ जो क्षत्रियोचित कर्मों को वेदाध्ययनपूर्वक करते हैं, दान के लिए आदान (कर लेने) में जिसकी रुचि हो उसको क्षत्रिय कहते हैं ॥६७॥ जो पशुपालन और कृषि द्वारा जीवन-निर्वाह करता जिसकी दान में विशेष रुचि रहती और जो वेदाध्ययन किये हुए हो उसको वैश्य कहा जाता है ॥६८॥ भक्ष्याभक्ष्य का विचार न करने वाला, सब भले-बुरे कामों को करने वाला, अशुचि, वेद मर्यादा को न मानने वाला और आचारहीन शूद्र कहा जाता है ॥६९॥ शूद्र में ये सभी लक्षण होते हैं और द्विज में ये लक्षण नहीं होते हैं। यदि शूद्र में उक्त शूद्र के लक्षण न हों तो वह शूद्र नहीं है और ब्राह्मण में ब्राह्मण के लक्षण न हों तो वह ब्राह्मण नहीं है। सब उपायों से क्रोध और लोभ को वश में करना चाहिए। ज्ञानियों का यह पवित्र धर्म है, आत्मसंयम ही ज्ञानी का मुख्य कर्त्तव्य है ॥७०-७१॥ इन कल्याण के शत्रु क्रोध और लोभ को सर्वथा दूर रखना चाहिए। नित्य क्रोध से श्री की रक्षा और मात्सर्य से तप की रक्षा करनी चाहिए ॥७२॥ मान और अपमान

॥७३॥

विद्यां मानापमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः

यस्य सर्वे समारंभा निराशीर्बंधना द्विज । त्यागे यस्य हुतं सर्वं स त्यागी स च बुद्धिमान् ॥७४॥
अहिंस्रः सर्वभूतानां मैत्रायणगतश्चरेत् । परिग्रहात्परित्यज्य भवेद्बुद्ध्या जितेंद्रियः ॥७५॥
अशोकस्थानमातिष्ठेदिह चामुत्र चाभयम् । तपोनित्येन दांतेन मुनिना संयतात्मना ॥७६॥
अजितं जेतुकामेन व्यासंगेषु ह्यसंगिना । इन्द्रियैर्गृह्यते यद्यत्तत्तद्व्यक्तमिति स्थितिः ॥७७॥
अव्यक्तमिति विज्ञेयं लिंगग्राह्यमतींद्रियम् । अविश्रंभेण मंतव्यं विश्रंभे धारयेन्मनः ॥७८॥
मनः प्राणेन गृह्णीयात्प्राणं ब्रह्मणि धारयेत् । निर्वेदादेव निर्वाणं न च किंचिद्विचिंतयेत् ॥७९॥
सुखं वै ब्राह्मणो ब्रह्मन्निर्वेदेनाधिगच्छति । शौचे तु सततं युक्तः सदाचारसमन्वितः ॥८०॥
स्वनुक्रोशश्च भूतेषु तद्द्विजातिषु लक्षणम् । सत्यं व्रतं तपः शौचं सत्यं विसृजते प्रजा ॥८१॥
सत्येन धार्यते लोकः स्वः सत्येनैव गच्छति । अनृतं तमसो रूपं तमसा नीयते ह्यधः ॥८२॥
तमोग्रस्तानि पश्यंति प्रकाशं तमसावृताः । सुदुष्प्रकाश इत्याहुर्नरकं तम एव च ॥८३॥
सत्यानृतं तदुभयं प्राप्यते जगतीचरैः । तत्राप्येवंविधा लोके वृत्तिः सत्यानृते भवेत् ॥८४॥
धर्माधर्मौ प्रकाशश्च तमो दुःखसुखं तथा । शरीरैर्मानसैर्दुःखैः सुखैश्चाप्यसुखोदयैः ॥८५॥
लोकसृष्टं प्रपश्यन्तो न मुह्यंति विचक्षणाः । तत्र दुःखविमोक्षार्थं प्रयतेत विचक्षणः ॥८६॥
सुखं ह्यनित्यं भूतानामिह लोके परत्र च । राहुग्रस्तस्य सोमस्य यथा ज्योत्स्ना न भासते ॥८७॥
तथा तमोभिभूतानां भूतानां नश्यते सुखम् ॥८८॥

से विद्या की और प्रमाद से अपनी रक्षा करनी चाहिए ॥७३॥ द्विज ! जो आशा और फलेच्छा को छोड़कर सब कार्य करता है और जिसने त्याग के अग्नि में अपने सब स्वार्थों की आहुति दे दी वही त्यागी और बुद्धिमान् है ॥७४॥ जो सब प्राणियों के प्रति हिंसा की भावना नहीं रखता, सबके प्रति मैत्री का व्यवहार करता है, जो धन इकट्ठा करने के फेर में न पड़कर विवेकपूर्वक जितेन्द्रिय बनता है वही बुद्धिमान् है ॥७५॥ लोक और परलोक शोक-रहित और अभय स्थान को अपनाना चाहिए। नित्य तपस्या करने वाले मन को वश में रखने वाले, संयमी मुनि अजित को जीतने की इच्छा से, आसक्ति को विराग से जीतने की कामना से इन्द्रियों से जिस-जिस वस्तु को ग्रहण करते हैं उन सब को व्यक्त कहते हैं ॥७६-७७॥ अव्यक्त उसको कहते हैं जो अतीन्द्रिय और लिंग-ग्राह्य अर्थात् अभास मात्र से जानने योग्य हो। सब से पहले मन को अविश्वास से हटाकर विश्वास में लगावे। मन को प्राण से वश में करे और प्राण को ब्रह्म में स्थिर करे। निर्वेद (संसार को असार समझने) से ही निर्वाण प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त दूसरी वस्तु का चिन्तन नहीं करना चाहिए ॥७८-७९॥ ब्रह्मन् ! ब्राह्मण निर्वेद से ही सुख पाता है। वह सर्वदा पवित्र और सदाचार पालन में लीन रहे ॥८०॥ प्राणियों पर दया-भाव रखना ही द्विजाति का लक्षण है। सत्य, व्रत, तप और पवित्रता से ही प्रजा की सृष्टि हुई है ॥८१॥ सत्य से ही यह लोक टिका हुआ है। सत्य से ही स्वर्लोक भी प्राप्त होता है। अनृत (असत्य) अन्धकार-स्वरूप है। अन्धकार से ही मनुष्य निम्न स्थान की ओर जाता है ॥८२॥ अन्धकार से घिरा और इसमें डूबा मनुष्य प्रकाश का पता नहीं पाता है। प्रकाश को स्वर्ग और अन्धकार को ही नरक कहा जाता है ॥८३॥ सांसारिक प्राणियों को सत्य और असत्य दोनों प्राप्त होते हैं। साथ ही संसार में सत्य और असत्य में लोक-व्यवहार चलता है। धर्म-अधर्म, प्रकाश-अन्धकार, सुख-दुःख से यह लोक व्याप्त है। शारीरिक और मानसिक दुःखों एवं परिणामतः कष्टदायक सुखों से व्याप्त इस लोक-सृष्टि को देखते हुए सुधीजन मोह में नहीं पड़ते, प्रत्युत दुःखों से मुक्ति पाने के लिए यत्न करते हैं ॥८४-८६॥ इस लोक और परलोक में सुख अनित्य है। राहु से ग्रस्त चन्द्रमा की प्रभा शोभा नहीं पाती। उसी प्रकार तम से आच्छन्न

तत्खलु द्विविधं सुखमुच्यते शारीरं मानसं च। इह खल्वमुष्मिंश्च लोके वस्तुप्रवृत्तयः सुखार्थमभिधीयन्ते नहीतः परत्रापवर्गफलाद्वि शिष्टतरमस्ति। स एव काम्यो गुणविशेषो धर्मार्थगुणारंभस्त द्धेतुरस्योत्पत्तिः सुखप्रयोजनार्थमारंभाः। ॥८८॥

भरद्वाज उवाच

यदेतद्भवताभिहितं सुखानां परमा स्थितिरिति ॥८९॥
न तदुपगृह्णीमो न ह्येषामृषीणां महति स्थितानाम् ॥९०॥
अप्राप्य एव काम्यगुणविशेषो न चैनमभिशीलयंति। तपसि श्रूयते
त्रिलोककृद्ब्रह्मा प्रभुरेकाकी तिष्ठति ब्रह्मचारी न कामसुखेष्वात्मानमवदधाति ॥९१॥
अपि च भगवान्विश्वेश्वर उमापतिः काममभिवर्तमानमनंगत्वेन सममनयत् ॥९२॥
तस्माद्ब्रूमो न तु महात्मभिरंजयति गृहीतो न त्वेष तावद्विशिष्टो गुणविशेष इति ॥९३॥
नैतद्भगवतः प्रत्येमि भवता तूक्तं सुखानां परमाः स्त्रिय इति
लोकप्रवादो हि द्विविधः फलोदयः सुकृतात्सुखमवाप्यतेऽन्यथा दुःखमिति ॥९४॥

भृगुरुवाच

अत्रोच्यते अनृतात्खलु तमः प्रादुर्भूतं ततस्तमोग्रस्ता अधर्ममेवानुवर्तंते न धर्मं क्रोधलोभमोहहिंसानृतादिभिरवच्छन्नाः खल्वस्मिंल्लोकेनामुत्र सुखमाप्नुवंति विविधव्याधिरुजोपतापैरवकीर्यन्ते

जीवों का सुख नष्ट हो जाता है ॥८७-८८॥ वह सुख दो प्रकार का है शारीरिक और मानसिक। इस लोक और परलोक में सुख के लिए ही प्रत्येक वस्तुओं की ओर प्राणी का झुकाव होता है। लोक-परलोक में मुक्ति से बढ़कर कोई फल नहीं है। उसी विशेष फल को सभी चाहते हैं। धर्म के लिए ही अपवर्ग गुण की सृष्टि हुई है। सारे आरम्भ सुख के लिए हैं।

भरद्वाज बोले—आपने कहा है कि सुख ही लोक में एकमात्र परम काम्य है परन्तु सुख तो मिलता ही नहीं, न तो महत्तत्त्व में रमने वाले महर्षियों को ही प्राप्त होता है। यह काम्य (सुख) प्रायः दुष्प्राप्य है, इस गुणविशेष की योगी आकांक्षा भी नहीं करते। ऐसा सुना जाता है कि लोककर्ता ब्रह्मा अकेले तपस्या-मग्न रहते हैं। वे ब्रह्मचारी ब्रह्मा काम-सुख को तुच्छ समझते हैं ॥८९-९१॥ इसके विपरीत उमापति विश्वेश्वर ने काम के पीछे पड़कर उसको भस्म करके अनङ्ग बना दिया ॥९२॥ अतएव इस लोक में सुख की ओर महात्माओं का अनुराग नहीं, न तो परम सुख को विशिष्ट गुण ही लोग मानते हैं ॥९३॥ अतः आपकी इस बात में भी कुछ शंका हो जाती है। आपने कहा कि सुख का कारण स्त्रियाँ हैं, ऐसा लोक-प्रसिद्ध है। लोक में फल-प्राप्ति भी दो रूपों में देखी जाती है। शुभ कर्मों से सुख मिलता और अशुभ कर्मों से दुःख ॥९४॥

भृगु बोले—इस विषय में कहता हूँ, सुनिये। अनृत से अन्धकार उत्पन्न हुआ। तदनन्तर अन्धकार में पड़े हुए प्राणी अधर्म को ही अपनाते हैं, धर्म को नहीं। क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा, असत्य आदि से विमूढ़ मानव लोक-परलोक कहीं सुख नहीं पाते। वे तो विविध व्याधि, रोग और संताप से ग्रस्त रहते हैं। हत्या, बंधन, क्लेश, भूख, प्यास, श्रम से उत्पन्न रोगों से संतप्त रहते हैं। वर्षा, वायु, सर्दी-गर्मी और शारीरिक दुःखों से कष्ट पाते रहते हैं,

वधबन्धनपरिक्लेशादिभिश्च क्षुत्पिपासाश्रमकृतैरुपतापैरुपतप्यंते वर्षवाता-
त्युष्णातिशीतकृतैश्च प्रतिभयैः शारीरैर्दुःखैरुपतप्यंते बंधुधनविनाश-
विप्रयोगकृतैश्च मानसैः शोकैरभिभूयंते जरामृत्युकृतैश्चान्यैरिति यस्त्वेतैः ॥९५॥
शारीरं मानसं नास्ति न जरा न च पातकम् । नित्यमेव सुखं स्वर्गे सुखं दुःखमिहोभयम् ॥९६॥
नरके दुःखमेवाहुः सुखं तत्परमं पदम् । पृथिवी सर्वभूतानां जनित्री तद्विधाः स्त्रियः ॥९७॥
पुमान्प्रजापतिस्तत्र शुक्रं तेजोमयं विदुः । इत्येतल्लोकनिर्माता धर्मस्य चरितस्य च ॥९८॥
तपसश्च सुतप्तस्य स्वाध्यायस्य हुतस्य च । हुतेन शाम्यते पापं स्वाध्याये शांतिरुत्तमा ॥९९॥
दानेन भोगानित्याहुस्तपसा स्वर्गमाप्नुयात् । दानं तु द्विविधं प्राहुः परत्रार्थमिहैव च ॥१००॥
सद्भ्यो यद्दीयते किंचित्तत्परत्रोपतिष्ठते । असद्भ्यो दीयते यत्तु तद्दानमिह भुज्यते ॥१०१॥
यादृशं दीयते दानं तादृशं फलमश्नुते

भरद्वाज उवाच

किं कस्य धर्माचरणं किं वा धर्मस्य लक्षणम् । धर्मः कतिविधो वापि तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥१०२॥

भृगुरुवाच

स्वधर्माचरणे युक्ता ये भवंति मनीषिणः । तेषां स्वर्गफलावाप्तिर्योऽन्यथा स विमुह्यते ॥१०३॥

भरद्वाज उवाच

यदेतच्चातुराश्रम्यं ब्रह्मर्षिविहितं पुरा । तेषां स्वे स्वे समाचारास्तन्मे वक्तुमिहार्हसि ॥१०४॥

बन्धुओं और धन के विनाश तथा वियोग से उत्पन्न मानसिक चिन्ता से चिन्तित रहते हैं ॥९५॥ स्वर्ग में शारीरिक अथवा मानसिक किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। वहाँ पाप और बुढ़ापे का भय नहीं। वहाँ सदा सुख ही सुख है। इस भूलोक में सुख-दुःख दोनों हैं ॥९६॥ नरक में केवल दुःख ही है। अतः नित्य सुख ही परम पद है, पृथ्वी सब प्राणियों की जननी है। उसी प्रकार स्त्रियाँ प्रजा की जननी हैं ॥९७॥ पुरुष प्रजापति है। उसका वीर्य तेजोमय है। इस प्रकार प्रजापति ब्रह्मा ने लोक-निर्माण किया है। धर्म, चरित्र, तपस्या, स्वाध्याय और हवन की व्यवस्था उसने ही की है। हवन से सारे पाप नष्ट होते हैं। स्वाध्याय से परम शान्ति प्राप्त होती है ॥९८-९९॥ दान से भोग मिलता और तपस्या से स्वर्ग। दान दो प्रकार के होते हैं—एक तो परलोक में फल देता, दूसरा यहीं फल दे देता है। सत्पात्र को दिया हुआ दान परलोक में फलदायक होता है परन्तु असत्पात्र में दिया हुआ यहीं फल दे देता है। जैसा दान दिया जाता है वैसा ही फल मिलता है ॥१००-१०१॥

भरद्वाज बोले—धर्म का लक्षण क्या है, किसके प्रति किस प्रकार का धर्माचरण करना चाहिए और धर्म के कितने भेद हैं? इसको आप कृपा पूर्वक कहिए ॥१०२॥

भृगु ने कहा—जो मनीषी अपने धर्म के पालन में लगे रहते हैं वे स्वर्ग के भागी होते हैं जो ऐसा नहीं करते वे मूढ़ हैं ॥१०३॥

भरद्वाज बोले—ये जो चार आश्रम हैं, जिनकी प्राचीन काल में ब्रह्मर्षि ने व्यवस्था की है, उनके आचारों को आप कृपया कहिए ॥१०४॥

भृगुरुवाच

पूर्वमेव भगवता ब्रह्मणा लोकहितमनुतिष्ठता । धर्मसंरक्षणार्थमाश्रमाश्चत्वारोऽभिनिर्दिष्टाः ॥१०५॥

तत्र गुरुकुलवासमेव प्रथममाश्रममाहरंति सम्यगत्र
शौचसंस्कारनियमव्रतविनियतात्मा उभे संध्ये भास्करा-
ग्निदैवतान्युपस्थाय विहाय तद्ध्यालस्यं गुरोरभिवाद-
नवेदाभ्यासश्रवणपवित्रीकृतांतरात्मा त्रिषवणमुपस्पृश्य
ब्रह्मचर्याग्निपरिचरणगुरुशुश्रूषानित्याभिक्षाभैक्ष्यादिसर्व-
निवेदितांतरात्मा गुरुवचननिदेशानुष्ठानाप्रतिकूलो
गुरुप्रसादलब्धस्वाध्यायतत्परः स्यात् ॥१०६॥
भवति चात्र श्लोकः ।
गुरुं यस्तु समाराध्य द्विजो वेदमवाप्नुयात् ।
तस्य स्वर्गफलावाप्तिः सिद्धयते चास्य मानसम् । ॥१०७॥
इति गार्हस्थ्यं खलु द्वितीयमाश्रमं वदंति
तस्य सदाचारलक्षणं सर्वमनुव्याख्यास्यामः । समावृतानां ॥१०८॥
सदाचाराणां सहधर्मचर्यफलार्थिनां गृहाश्रमो विधीयते
धर्मार्थकामावाप्तिर्ह्यत्र त्रिवर्गसाधनमपेक्ष्यागर्हितकर्मणा
धनान्यादाय स्वाध्यायोपलब्धप्रकर्षेण वा ब्रह्मर्षिनिर्मितेन
वा अद्भिः सागरगतेन वा द्रव्यनियमाभ्यासदैवत-
प्रसादोपलब्धेन वा धनेन गृहस्थो गार्हस्थ्यं वर्तयेत् ॥१०९॥

भृगु बोले—पहले ही लोक-व्यवस्थापक ब्रह्मा ने विचारपूर्वक धर्म-रक्षा के लिए चार आश्रमों की व्यवस्था की ॥१०५॥ उनमें गुरुकुलवास (ब्रह्मचर्य) पहला आश्रम है । उस आश्रम में रहकर बालक को शौच, संस्कार, नियम, व्रत आदि का पालन करना पड़ता है । प्रतिदिन दोनों काल में सूर्य, अग्नि को पूजा कर निरलस भाव से गुरु का अभिवादन करे; वेदाभ्यास और वेदशिक्षा द्वारा अन्तःकरण को पवित्र करे; त्रिषवन (तीनों संध्या) आचमन कर ब्रह्मचर्य, अग्नि-परिचर्या तथा गुरुसेवा में तत्पर रहकर प्रतिदिन भिक्षा करे और भिक्षा में पाये हुए द्रव्य और अपने को सर्वात्मना गुरु की सेवा में अर्पित कर दे । गुरु की आज्ञा का अक्षरशः पालन करता हुआ, गुरु-कृपा से प्राप्त विद्या और उपदेश को हृदयङ्गम करे ॥१०६॥ इस विषय में एक श्लोक भी है—जो द्विज गुरु की सेवा कर वेदाध्ययन करता है उसको स्वर्ग मिलता है और उसकी सारी मनःकामनायें पूरी होती हैं । इसके बाद दूसरा गृहस्थाश्रम है ॥१०७॥ इस आश्रम के आचारों को कह रहा हूँ । ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों का पालन करने के उपरान्त स्त्री के साथ धर्म पालन करने के इच्छुक के लिए यह आश्रम है ॥१०८॥ इस आश्रम में धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति होती है । त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) को दृष्टि में रखकर सत्कर्म द्वारा, अपनी विद्या या ज्ञान के उत्कर्ष द्वारा, ब्रह्मर्षि निर्मित साधन द्वारा, समुद्र यात्रा या सागरगत द्रव्यों के व्यापार द्वारा या अन्य किसी द्रव्योपार्जन के साधन द्वारा अथवा किसी देवता की कृपा से धन प्राप्त कर गृहस्थ अपने आश्रमोचित कार्यों को

तद्धि सर्वाश्रमाणां मूलमुदाहरंति गुरुकुलनिवासिनः
परिव्राजका येऽन्ये संकल्पितव्रतनियमधर्मानुष्ठानिन- ॥११०॥
स्तेषामप्यंतरा च भिक्षाबलिसंविभागाः प्रवर्तंते
वानप्रस्थानां च द्रव्योपस्कार इति प्रायशः खल्वेते साधवः
साधुपथ्योदनाः स्वाध्यायप्रसंगिनस्तीर्थाभिगमनदेशदर्श- ॥१११॥
नार्थं पृथिवीं पर्यटंति
तेषां प्रत्युत्थानाभिगमनमनसूयावाक्यदानसुखसत्कारासन- ॥११२॥
सुखशयनाभ्यवहारसत्क्रिया चेति

भवति चात्र श्लोकः

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते । स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥११३॥
अपि चात्र यज्ञक्रियाभिर्देवताः प्रीयंते निवापेन पितरो ॥११४॥
विद्याभ्यासश्रवणधारणेन ऋषयः अपत्योत्पादनेन प्रजापतिरिति

श्लोकौ चात्र भवतः

वात्सल्यं सर्वभूतेभ्यो वाचोः श्रोत्रस्तथा गिरा । परितापोपघातश्च पारुष्यं चात्र गर्हितम् ॥११५॥
अवज्ञानमहंकारो दंभश्चैव विगर्हितः । अहिंसा सत्यमक्रोधं सर्वाश्रमगतं तपः ॥११६॥
अपि चात्र माल्याभरणवस्त्राभ्यंगनित्योपभोगनृत्यगीत-
वादित्रश्रुतिसुखनयनस्नेहरामादर्शनानां प्राप्तिर्भक्ष्यभोज्य ॥११७॥
लेह्यपेयचोष्याणामभ्यवहार्य्याणां विविधानामुपभोगः

करे ॥१०६॥ इस आश्रम को सब आश्रमों का मूल कहा गया है। गुरुकुल निवासी, परिव्राजक अथवा अन्य जो संकल्पित व्रत का अनुष्ठान करने वाले हैं सभी इस आश्रम से भिक्षा और बलि भाग पा जाते हैं ॥११०॥ वानप्रस्थाश्रम में द्रव्योपार्जन की भावना छोड़ दी जाती है। प्रायः वानप्रस्थाश्रमी साधु सात्त्विक भोजन करते, सज्जनों के अन्न एवं आतिथ्य को ग्रहण करते, स्वाध्याय और हरिचर्चा में लीन रहकर देशभ्रमण और तीर्थयात्रा के उद्देश्य से पृथ्वी पर इधर-उधर घूमते हैं ॥१११॥ ऐसे साधुओं का, आने पर उठकर और पास जाकर स्वागत करना, प्रियवाक्य, दान, सुखदायक सत्कार, आसन और सुखपूर्वक सोने की व्यवस्था, मधुर भोजन आदि द्वारा सम्मान करना चाहिए ॥११२॥ इस विषय में भी एक श्लोक है, जिसके घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है वह उस घर वाले को अपना सारा पाप देकर उसके पुण्य को लेकर चला जाता है ॥११३॥ एक बात और है, यज्ञ क्रिया द्वारा देवता प्रसन्न होते हैं; तर्पण और श्राद्ध से पितर, विद्याभ्यास और वेदोपदेश सुनने से ऋषि और पुत्रोत्पादन से प्रजापति प्रसन्न होते हैं ॥११४॥ दो श्लोक और कहे गए हैं कि—सब प्राणियों पर दया, प्राण, वाणी एवं अन्य किसी इन्द्रिय द्वारा किसी को कष्ट न देना प्रत्युत सबके कष्टों को दूर करना, किसी से कठोर व्यवहार न करना यह जीवन की तपस्या है। अपमान, अहंकार और दम्भ अत्यन्त निन्दनीय हैं। अहिंसा, सत्य और अक्रोध सब आश्रमों के लिए विहित तप है। गृहस्थ जीवन में माला, आभरण एवं वस्त्र धारण करना चाहिए। अंगों में अंगराग या लेप लगाना, प्रतिदिन सुखोपभोग करना, नृत्य, श्रुति सुखद गीत और मधुर वाद्य सुनना, नयनों में अंजन लगाना, मनोहर रमणियों का दर्शन, विविध स्वादु भोज्य, लेह्य, पेय और चोष्य खाद्य

स्वविहारसंतोषः कामसुखावाप्तिररिति । त्रिवर्गगुणनिर्वृत्तिर्यस्य
नित्यं गृहाश्रमे । स सुखान्यनुभूयेह शिष्टानां गतिमाप्नुयात् ॥११८॥
उंछवृत्तिर्गृहस्थो यः स्वधर्मंचरणे रतः । त्यक्तकामसुखारंभः स्वर्गस्तस्य न दुर्लभः ॥११९॥
वानप्रस्थाः खल्वपि धर्ममनुसरंतः पुण्यानि तीर्थानि
नदीप्रस्रवणानि स्वभक्त्वेरण्येषु मृगवराहमहिषशार्दूल
वनगजाकीर्णेषु तपस्यंते अनुसंचरंति ॥१२०॥
त्यक्तग्राम्यवस्त्राभ्यवहारोपभोगा वन्यौषधिफलमूलपर्णप-
रिमितविचित्रनियताहाराः स्थानासनिनोभूपाषाणसि-
कताशर्करावालुकाभस्मशायिनः काशकुशचर्मवल्कलसंवृ-
तांगाः केशश्मश्रुनखरोमधारिणो नियतकालोपस्पर्शनाः
शुष्कबलिहोमकालानुष्ठायिनः । समित्कुशकुसुमापहारसं-
मार्जनलब्धविश्रामाःशीतोष्णपवनविष्टंभविभिन्नसर्वत्वचो
विविधनियमयोगचर्यानुष्ठानविहीनपरिशुष्कमांसशोणित-
त्वगस्थिभूता धृतिपराः सत्त्वयोगाच्छरीराण्युद्वहंते ॥१२१॥
यस्त्वेतां नियतचर्यां ब्रह्मर्षिविहितां चरेत् । स दहेदग्निवद्दोषाञ्जयेल्लोकांश्च दुर्जयान् ॥१२२॥

पदार्थों का सेवन, स्वविहार में सन्तोष और कामसुख की प्राप्ति होती है। जिस गेही के आश्रम में धर्म, अर्थ और काम का नित्य सम्पादन होता है, वह समस्त सांसारिक सुखों का अनुभव कर सज्जनों की गति पाता है ॥११५-११८॥ जो गृहस्थ उञ्छवृत्ति द्वारा अपने आश्रम का पालन करता है और जिसने सब सुखदायक पदार्थों और कर्मों का त्याग कर दिया है उसके लिए स्वर्ग दुर्लभ नहीं है ॥११९॥ वानप्रस्थाश्रमी लोग धर्म का पालन करते हुए पुण्य-तीर्थ, नदी, उद्गम स्थान आदि में तथा मृग, वाराह, महिष, व्याघ्र और जंगली हाथियों से भरे वनों में आसन लगाकर तपस्या करें ॥१२०॥ सभी ग्रामीण वस्त्र और भोजन आदि का त्याग कर जंगली ओषधियों, फल, मूल, पत्तियों को परिमित मात्रा में खायें। एक स्थान पर आसन लगाकर बैठें। पृथ्वी, पत्थर, बालू, कंकड़ी अथवा धूल आदि से भरे स्थान पर सो जायें। कास, कुश, चर्म अथवा वल्कल से अंगों को ढक लें। शिर के केश, दाढ़ी, मूँछ और नख न कटवायें। नियत समय पर स्नान, आचमन आदि करें। हवन काल में शुष्क बलि वैश्व और हवन करें। समिधा, कुश और फूल आदि सामग्री लाकर स्वयं आश्रम में झाड़ू लगायें इसमें सुख का अनुभव करें। सर्दी, वायु, लू से उनके शरीर की त्वचाएँ फटी हों, विविध नियम, योग और विहित अनुष्ठान से मांस, रक्त एवं चमड़ा सूखकर शरीर केवल अस्थिमात्र शेष रह जाय, इस प्रकार घोरता धरण कर सत्वगुण-प्रधान योग-साधना द्वारा समय बितायें ॥१२१॥

जो इस प्रकार ब्रह्मर्षि द्वारा विहित नियत आचार का पालन करता है वह अपने सब पापों को अग्नि की भाँति जलाकर दुर्जय लोकों को भी जीत लेता है ॥१२२॥ अब संन्यास आश्रम के नियमों को बता रहा हूँ।

परिव्राजकानां पुनराचारः तद्यथा। विमुच्याग्निं धनकल॰
त्रपरिबर्हसंगेष्वात्मानं स्नेहपाशानवधूय परिव्रजंति। ॥१२३॥
समलोष्टाश्मकांचनास्त्रिवर्गप्रवृत्तेष्वसक्तबुद्धयः
अरिमित्रोदासीनानां तुल्यदर्शनाः स्थावरजरायुजांडजस्वे-
दजानां भूतानां वाङ्मनः कर्मभिरनभिद्रोहिणोऽनिकेताः
पर्वतपुलिनवृक्षमूलदेवायतनान्यनुसंचरंतो वासार्थमुपेयुर्न-
गरं ग्रामं वा न क्रोधदर्पलोभमोहकार्पण्यदंभपरिवादाभि- ॥१२४॥
माननिवृत्तहिंसा इति

भवंति चात्र श्लोकः

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः। न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते क्वचित् ॥१२५॥
कृत्वाग्निहोत्रं स्वशरीरसंस्थं शरीरमग्निं स्वमुखे जुहोति ।
विप्रस्तु भैक्षोपगतैर्हविर्भिश्चिताग्निना संव्रजते हि लोकान् ॥१२६॥
मोक्षाश्रमं यश्चरते यथोक्तं शुचिः स्वसंकल्पितयुक्तबुद्धिः ।
अनिंधनं ज्योतिरिव प्रशांतं स ब्रह्मलोकं श्रयते द्विजातिः ॥१२७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे द्वितीयपादे भृगुभारद्वाजसंवादे
ब्राह्मणाचारनिरूपणं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

तीन आश्रमों का पालन करने के बाद मनुष्य अग्नि, धन, स्त्री, सब सामग्रियों और बन्धु जनों से स्नेह संबन्ध तोड़ कर संन्यास ग्रहण कर लेते हैं। इस आश्रम में मिट्टी, पत्थर और सोने को समान समझ कर, त्रिवर्गसाधन से सर्वथा विरक्त हो जाना चाहिए ॥१२३॥ शत्रु, मित्र या तटस्थ सब के प्रति समान भाव रखना चाहिए। संन्यासियों को स्थावर, जरायुज, अंडज, स्वेदज अर्थात् किसी भी प्राणी के प्रति मन, वचन और कर्म से भी द्रोहबुद्धि नहीं करनी चाहिए। अपने रहने के लिए घर न बनाकर पर्वत, नदीतट, पेड़ों की छाया अथवा देव-मन्दिर में रहकर अथवा ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में घूमते हुए वे (अपना) समय बितायें। उनके हृदय में क्रोध, अभिमान, लोभ, मोह, संकीर्णता, दंभ, निन्दाभावना और हिंसा न रहे ॥१२४॥ इस विषय में कहा गया है कि जो मुनि सब प्राणियों को अभय दान देता है उसको कहीं पर किसी जीव से भय नहीं होता है ॥१२५॥ जो विप्र अग्नि-होत्र करने के बाद अपने शरीरस्थ अग्नि में मुख के द्वारा भिक्षा द्वारा प्राप्त हविष्य अन्न का हवन करता है वह उत्तम लोकों को प्राप्त करता है ॥१२६॥ जो द्विजाति पवित्र होकर दृढ़ संकल्प कर संन्यासाश्रम का पालन करता है, वह स्वयं प्रकाशमान ज्योति की भाँति ब्रह्मलोक में निवास करता है ॥१२७॥

श्रीनारदीयमहापुराण में ब्राह्मणाचार निरूपण नामक
तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४३॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

भरद्वाज उवाच

आस्मल्लोकात्परो लोकः श्रूयते नोपलभ्यते । तमहं ज्ञातुमिच्छामि तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥१॥

भृगुरुवाच

उत्तरे हिमवत्पार्श्वे पुण्ये सर्वगुणान्विते । पुण्यः क्षेम्यश्च काम्यश्च स परो लोक उच्यते ॥२॥
तत्र ह्यपापकर्माणः शुचयोऽत्यंतनिर्मलाः । लोभमोहपरित्यक्ता मानवा निरुपद्रवाः ॥३॥
स स्वर्गसदृशो देशः तत्र ह्युक्ताः शुभा गुणाः । काले मृत्युः प्रभवति स्पृशंति व्याधयो न च ॥४॥
न लोभः परदारेषु स्वदारनिरतो जनः । नान्यो हि वध्यते तत्र द्रव्येषु च न विस्मयः ॥५॥
परो ह्यधर्मो नैवास्ति संदेहो नापि जायते । कृतस्य तु फलं तत्र प्रत्यक्षमुपलभ्यते ॥६॥
यानासनाशनोपेताः प्रसादभवनाश्रयाः । सर्वकामैर्वृताः केचिद्धेमाभरणभूषिताः ॥७॥
प्राणधारणमात्रं तु केषांचिदुपपद्यते । श्रमेण महता केचित्कुर्वंति प्राणधारणम् ॥८॥
इह धर्मपराः केचित्केचिन्नैष्कृतिका नरा । सुखिता दुःखिताः केचिन्निर्धना धनिनो परे ॥९॥
इह श्रमो भयं मोहः क्षुधा तीव्रा च जायते । लोभश्चार्थकृतो नृणां येन मुह्यंत्यपंडिताः ॥१०॥

अध्याय ४४

ध्यानयोग-निरूपण

भरद्वाज बोले—इस लोक से परे दूसरा लोक है ऐसा सुना जाता है परन्तु देखा नहीं जाता, इसलिए उस लोक के विषय में मैं जानना चाहता हूँ। आप कृपाकर कहिए ॥१॥

भृगु बोले—उत्तर दिशा में सब गुणों से युक्त, पवित्र, हिमालय के पार्श्व में एक पवित्र, क्षेमकर, काम्य लोक है उसी को परलोक कहते हैं ॥२॥ वहाँ पुण्यशील, पवित्र, अत्यन्त शुद्ध हृदय, लोभ-मोह से दूर रहने वाले शान्त प्राणी रहते हैं ॥३॥ वह स्वर्गोपम देश है । वहाँ उपर्युक्त शुभगुण सदा रहते हैं। वहाँ समय आने पर ही मृत्यु होती है। रोग तो किसी को होता ही नहीं ॥४॥ किसी को परस्त्रीगमन की इच्छा नहीं होती। सभी स्वस्त्री से ही प्रेम करते हैं। कोई किसी की हत्या नहीं करता और किसी की संपत्ति देखकर दूसरे को आश्चर्य नहीं होता ॥५॥ किसी प्रकार का अधर्म वहाँ नहीं है। न तो किसी के प्रति किसी को सन्देह ही रहता है। किये हुए कर्मों का सबको प्रत्यक्षफल मिलता है ॥६॥ सब बड़े-बड़े महलों में रहते और सवारी, स्थान और भोजन की सुविधा प्रत्येक व्यक्ति को है। सब लोग सभी कामनाओं से पूर्ण रहते हैं। कुछ लोग तो स्वर्णाभरणों से आभूषित रहते हैं। इसके विपरीत इस भूलोक में कुछ तो धर्मपरायण होते और कुछ पाप कर्म को ही इष्ट कर्म ही समझते हैं। यहाँ कोई सुखी है तो कोई दुःखी। कुछ धनी हैं तो कुछ निर्धन ॥७-९॥ यहाँ थकावट, भय, मोह तथा भूख-प्यास लगती है। धन का लोभ मनुष्यों को अत्यधिक है, जिससे अज्ञ जन सर्वदा मोहवश धन की ओर

परिवादोऽभ्यसूयता ॥११॥
यस्तद्वेदोभयं प्राज्ञः पाप्मना न स लिप्यते । सोपधे निकृतिः स्तेयं तपस्तस्य प्रहीयते ॥१२॥
परोपघातो हिंसा च पैशुन्यमनृतं तथा । एतान्संसेवते यस्तु कर्मणः ॥१३॥
यस्त्वेतानाचरेद्विद्वान्न तपस्तस्य वर्द्धते । इह चिंता बहुविधा धर्माधर्मस्य तथाशुभमथान्यथा ॥१४॥
कर्मभूमिरियं लोके इह कृत्वा शुभाशुभम् । शुभैः शुभमवाप्नोति ब्रह्मलोकमुपाश्रिताः ॥१५॥
इह प्रजापतिः पूर्वं देवाः सर्षिगणास्तथा । इष्टेष्टतपसः पूता जनाः ॥१६॥
उत्तरः पृथिवीभागः सर्वपुण्यतमः शुभः । इहस्थास्तत्र जायंते ये वै पुण्यकृतो पृथिवीतले ॥१७॥
यदि सत्कारमिच्छंति तिर्यग्योनिषु चापरे । क्षीणायुधस्तथा चाज्ये नश्यन्ति दिशम् ॥१८॥
अन्योन्यभक्षणासक्ता लोभमोहसमन्विताः । इहैव परिवर्त्तन्ते न च यान्त्युत्तरां मनीषिणः ॥१९॥
गुरूनुपासते ये तु नियता ब्रह्मचारिणः । पंथानं सर्वलोकानां विजानंति ॥२०॥
इत्युक्तोऽयं मया धर्मः संक्षिप्तो ब्रह्मनिर्मितः । धर्माधर्मौ हि लोकस्य यो वै वेत्ति स बुद्धिमान् ॥२०॥

भरद्वाज उवाच

अध्यात्मं नाम यदिदं पुरुषस्येह चिन्त्यते । यदध्यात्मं यथा चैतत्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥२१॥

भृगुरुवाच

अध्यात्ममिति विप्रर्षे यदेतदनुपृच्छसि । तद्व्याख्यास्यामि ते तात श्रेयस्करतमं सुखम् ॥२२॥
सृष्टिप्रलयसंयुक्तमाचार्यैः परिदर्शितम् । यज्ज्ञात्वा पुरुषो लोके प्रीतिं सौख्यं च विंदति ॥२३॥

खिचे रहते हैं। जिसको दोनों लोकों का ज्ञान है वह प्राज्ञ है। जो शठता, चोरी, निन्दा, ईर्ष्या, हिंसा, चुगली, असत्य दूसरे के साथ विश्वासघात, दुष्कर्मों आदि को करता है उसकी सारी तपस्या का क्षय हो जाता है ॥१०-१२॥ जो विद्वान् इन दुष्कर्मों को नहीं करता है उसकी तपस्या में वृद्धि होती है। इस लोक में धर्म-अधर्म की अनेकों चितायें (व्यवस्थायें) हैं। इस भूलोक में भारतवर्ष कर्मभूमि है, यहाँ मनुष्य शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार शुभ-अशुभ फलों को पाता है ॥१३-१४॥ इस लोक में पूर्वकाल में प्रजापति, देवता और ऋषिगणों ने इच्छानुकूल इष्ट तप करके ब्रह्मलोक को प्राप्त किया है ॥१५॥ पृथ्वी का उत्तरीय भाग शुभ और सबसे अधिक पुण्य भूमि है। इस भूभाग के रहने वाले जो मनुष्य शुभ कर्म करते हैं और शुभ फल चाहते हैं, वे ही वहाँ जन्म पाते हैं ॥१६॥ जो लोग शुभ की इच्छा करते हैं परन्तु शुभ कर्म करते नहीं वे उस लोक में तिर्यग्योनि में जन्म पाते हैं। इसके विपरीत जो अन्य व्यक्ति हैं वे यहीं अल्पायु होकर इसी पृथ्वी तल पर नष्ट हो जाते हैं ॥१७॥ एक-दूसरे की हत्या करने वाले, लोभ और मोह के बन्धन में फँसे रहने वाले मनुष्य इसी लोक में बार-बार जन्म पाते हैं कभी उत्तर दिशा में जन्म नहीं पाते ॥१८॥ जो नियमित रूप से ब्रह्मचारी रहकर गुरु की उपासना करते हैं वे मनीषी सब लोकों के मार्ग जानते हैं; अर्थात् सब लोकों में जा सकते हैं ॥१९॥ इस प्रकार मैंने ब्रह्मनिर्मित धर्म का संक्षेप में वर्णन किया है जो मनुष्य लौकिक धर्म और अधर्म को जानता है वह बुद्धिमान् है ॥२०॥

भरद्वाज बोले—तपोधन! पुरुष के अध्यात्म की चर्चा प्रायः चलती है, उसके अध्यात्म का चिन्तन प्रायः किया जाता है, उस अध्यात्म का जो रूप है और उसको जो परिभाषा है, उसको आप कृपा कर कहिए ॥२१॥

भृगु बोले—विप्रर्षे! जो तुमने अध्यात्म के विषय में पूछा है, उसकी व्याख्या कर रहा हूँ जो कि श्रेयस्कर सुख को देने वाला है ॥२२॥ अध्यात्म को आचार्यों ने सृष्टि-प्रलय से युक्त बतलाया है, जिसका ज्ञान प्राप्त

फललाभश्च तस्य स्यात्सर्वभूतहितं च तत् । पृथिवी वायुमाकाशमापो ज्योतिश्च पंचमम् ॥२४॥
महाभूतानि भूतानां सर्वेषां प्रभवाप्ययौ । यतः सृष्टानि तत्रैव तानि यान्ति लयं पुनः ॥२५॥
महाभूतानि भूतेभ्यः सागरस्योर्मयो यथा । प्रसार्य च यथांगानि कूर्मः संहरते पुनः ॥२६॥
तद्वद् भूतानि भूतात्मा सृष्टानि हरते पुनः । महाभूतानि पंचैव सर्वभूतेषु भूतकृत् ॥२७॥
अकरोत्तेषु वै सम्यक् तं तु जीवो न पश्यति । शब्दः श्रोत्रं तथा खानि त्रयमाकाशयोनिजम् ॥२८॥
वायोः स्पर्शस्तथा चेष्टा त्वक्चैव त्रितयं स्मृतम् । रूपं चक्षुस्तथा पाकस्त्रिविधं तेज उच्यते ॥२९॥
रसाः क्लेदश्च जिह्वा च त्रयो जलगुणाः स्मृता । घ्रेयं घ्राणं शरीरं च एते भूमिगुणास्त्रयः ॥३०॥
महाभूतानि पंचैव षष्ठं च मन उच्यते । इन्द्रियाणि मनश्चैव विज्ञातान्यस्य भारत ॥३१॥
सप्तमो बुद्धिरित्याहुः क्षेत्रज्ञः पुनरष्टमः । श्रोत्रं वै श्रवणार्थाय स्पर्शनाय च त्वक् स्मृताः ॥३२॥
रसादानाय रसना गन्धानादाय नासिका । चक्षुरालोकनायैव संशयं कुरुते मनः ॥३३॥
बुद्धिरध्यवसानाय क्षेत्रज्ञः साक्षिवत्स्थितः । उर्ध्वं पादतलाभ्यां यदवाक्चोदक्च पश्यति ॥३४॥
एतेन सर्वमेवेदं विभुना व्याप्तमन्तरम् । पुरुषैरिन्द्रियाणीह वेदितव्यानि कृत्स्नशः ॥३५॥
तमो रजश्च सत्त्वं च तेऽपि भावास्तदाश्रिताः । एतां बुद्धिं नरो भूतानामगतिं गतिम् ॥३६॥
समवेक्ष्य शनैश्चैवं लभते शममुत्तमम् । गुणैर्विनश्यते बुद्धिर्बुद्धेरेवेंद्रियाण्यपि ॥३७॥

कर मनुष्य इस लोक में सुखी और प्रसन्न होता है ॥२३॥ वह ज्ञान सब प्राणियों का हित करने वाला और फलदायक है। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और पाँचवाँ तेज ये पंच महाभूत हैं जिनसे सब भूतों (पदार्थ या प्राणियों) की सृष्टि और नाश होता है। इनकी जिससे सृष्टि होती है उसी में ये लीन भी होते हैं ॥२४॥ जिस प्रकार सागर से लहरें उत्पन्न होकर पुनः उसी में विलीन होती हैं उसी प्रकार ये महाभूत भूतों से ही उत्पन्न होते हैं और उनमें ही विलीन होते हैं। जिस प्रकार कछुवा अपने अंगों को फैलाकर पुनः सिकोड़ लेता है उसी प्रकार भूतात्मा भूतों को प्रसारित करता और समेट लेता है उसी प्रकार भूतात्मा उत्पन्न किये गये उन भूतों को अपने में लीन कर लेता है ॥२५-२६॥ सब भूतों का निर्माण करने वाले ये ही पाँच महाभूत हैं जो उन्हीं भूतों (पदार्थ) में व्याप्त रहते हैं। परमात्मा उनमें ही प्राणियों की रचना करता है, परन्तु जीव उसको देख नहीं पाता ॥२७½॥ शब्द, श्रोत्रेन्द्रिय और आकाश तीनों आकाश से उत्पन्न होते हैं, वायु से स्पर्श, चेष्टा और त्वक् उत्पन्न हुए हैं, रूप, चक्षु, और पाक (जठराग्नि) ये तेज के तीन रूप हैं ॥२८-२९॥ रस, क्लेद और जीभ ये जल के गुण हैं। गन्ध, नासिका और शरीर ये तीनों भूमि के गुण हैं ॥३०॥ इन्द्रियरूप में पांच महाभूत होते हैं, छठा मन है। भारत ! इन्द्रियों और मन का ज्ञान कराया गया, सातवीं बुद्धि है और क्षेत्रज्ञ आठवां है। श्रोत्र (कान) सुनने के लिये है, त्वक् से स्पर्श का ज्ञान होता है। रस का ग्रहण रसनेन्द्रिय से और नासिका से गन्ध का ग्रहण होता है। नेत्र देखने के लिए और मन संशय (ऊहा, तर्क) करता है ॥३१-३३॥ बुद्धि निर्णय के लिए और क्षेत्रज्ञ (आत्मा) साक्षी रूप में स्थित है जो पादतल से ऊपर उत्तर-दक्षिण चारों ओर देखता है ॥३४॥ इस व्यापक आत्मा से सारा शरीर व्याप्त है। इस लोक में मनुष्य को सब इन्द्रियों का भली भाँति ज्ञान होना चाहिए ॥३५॥ रज, सत्त्व और तम ये तीनों भाव आत्मा से ही संबद्ध हैं। ज्ञानी मनुष्य अपनी बुद्धि से भूतों की गति और अगति को जान कर क्रमशः शान्ति पाता है ॥३६॥ इन गुणों के चक्कर में पड़कर बुद्धि नष्ट हो जाती है, बुद्धि के नष्ट हो जाने पर इन्द्रियाँ और मन के सहित पंचभूत भी नष्ट हो जाते हैं। बुद्धि के न रहने पर गुण कैसे रह

मनः षष्ठानि भूतानि बुद्धयभावे कुतो गुणाः । इति तन्मयमेवैतत्सर्वं स्थावरजंगमम् ॥३८॥
प्रलीयते चोद्भवति तस्मान्निर्दिश्यते तथा । येन पश्यति तच्चक्षुः शृणोति श्रोत्रमुच्यते ॥३९॥
जिघ्रति घ्राणमित्याहुः रसं जानाति जिह्वया । त्वचा स्पर्शयति स्पर्शं बुद्धिर्विक्रियते सकृत् ॥४०॥
येन प्रार्थयते किंचित्तदा भवति तन्मनः । अधिष्ठानानि बुद्धेर्हि पृथगर्थानि पंचधा ॥४१॥
इंद्रियाणीति तान्याहुस्तान्यदृश्योऽधितिष्ठति । पुरुषे तिष्ठती बुद्धिस्त्रिषु भावेषु वर्तते ॥४२॥
कदाचिल्लभते प्रीतिं कदाचिदुपशोचति । न सुखेन न दुःखेन कदाचिदपि वर्तते ॥४३॥
एवं नराणां मनसि त्रिषु भावेषु वर्तते । सेयं भावात्मिका भावांस्त्रीनेतानतिवर्तते ॥४४॥
सरितां सागरो भर्ता वेलानामिव वारिधिः । अतिभावगता बुद्धिर्भावैर्मनसि वर्तते ॥४५॥
वर्तमानो मुनिस्त्वेवं स्वभावमनुवर्तते । इंद्रियाणि हि सर्वाणि प्रवर्तयति सा सदा ॥४६॥
प्रीतिः सत्त्वं रजः शोकस्तमः क्रोधस्तु ते त्रयः । ये ये च भावा लोकेऽस्मिन्सर्वेऽप्येतेषु वै त्रिषु ॥४७॥
इति बुद्धिगताः सर्वा व्याख्यातास्तव भावनाः । इंद्रियाणि च सर्वाणि विजेतव्यानि धीमता ॥४८॥
सत्त्वं रजस्तमश्चैव प्राणिनां संश्रिताः सदा । त्रिविधा वेदनाश्चैव सर्वसत्त्वेषु दृश्यते ॥४९॥
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति मानद । सुखस्पर्शः सत्त्वगुणो दुःखस्पर्शो रजोगुणः ॥५०॥
तमोगुणेन संयुक्तौ भवतो व्यावहारिकौ । तव यत्प्रीतिसंयुक्तं काये मनसि वा भवेत् ॥५१॥
वर्तते सात्त्विको भाव इत्याचक्षीत तत्तथा । अथ यद्दुःखसंयुक्तमप्रीतिकरमात्मनः ॥५२॥

सकते हैं ॥३७½॥ ये सम्पूर्ण स्थावर-जंगम जगत् आत्ममय हैं, उसी से यह उत्पन्न होता और उसी में विलीन होता है, इसलिए इसका उसी रूप में निर्देश किया जाता है ॥३८½॥ जिससे वह (आत्मा) देखता उसको चक्षु, जिससे सुनता उसको श्रोत्र (कान) और जिससे सूंघता उसको नासिका कहते हैं। वह जिह्वा के द्वारा रस का स्वाद लेता और त्वचा के द्वारा स्पर्श का ज्ञान करता है। बुद्धि में बार-बार विकार होता है ॥३९-४०॥ पुरुष जिससे कुछ इच्छा करता है, वह मन है। बुद्धि इन सबका अधिष्ठान है। अतः पाँच विषय और पाँच इन्द्रियाँ उससे पृथक् कही गई हैं। इन सब का अधिष्ठाता चेतन क्षेत्रज्ञ इनसे नहीं देखा जाता। पुरुष में रहती हुई बुद्धि तीन भावों में विद्यमान रहती है ॥४१-४२॥ पुरुष कभी प्रसन्न होता तो कभी शोक करता है। एकान्ततः न तो उसको सुख ही होता है न दुःख ही ॥४३॥ इस प्रकार मनुष्यों का मन तीनों भावों में वर्तमान रहता है। वह भावात्मिका बुद्धि इन तीनों भावों को उसी तरह अपने अधीन कर लेती है जैसे नदियों का स्वामी समुद्र नदियों को आत्मसात् कर लेता है ॥४४½॥ उच्च भाव को प्राप्त बुद्धि भावों द्वारा मन में वर्तमान रहती है। वर्तमान मुनि इस प्रकार स्वभाव का अनुसरण करता है और बुद्धि सदा सकल इन्द्रियों को प्रेरित करती रहती है। प्रीति सत्त्व का रूप है, शोक रज का और क्रोध तम का रूप है। इस लोक में जो भाव हैं वे सब इन तीनों गुणों में ही सन्निहित हैं ॥४५-४७॥

इस प्रकार तुम्हारी बुद्धिस्थ सब भावनाओं की व्याख्या कर दी गई। धीमान् मनुष्य सब इन्द्रियों को अपने वश में करे ॥४८॥ सत्त्व, रज और तम ये तीनों प्राणियों में सर्वदा वर्तमान रहते हैं। त्रिविध (सात्त्विक राजस, तामस) वेदनायें भी प्राणियों में सदा देखी जाती हैं ॥४९॥ मानद ! सत्त्वगुण सुखद स्पर्श वाला है और रजोगुण दुःखद ॥५०॥ जब वे दोनों तमोगुण से मिलते हैं तभी व्यवहारोपयोगी होते हैं। जब तुम्हारे मन में या शरीर में प्रसन्नता का अनुभव हो तब यह समझना कि तुम्हारे मन या शरीर में सत्त्वगुण का प्रवेश हुआ है। मुनि-श्रेष्ठ ! जब मन में कुछ अप्रीतिकर या दुःख की अनुभूति हो तो रजोगुण का उद्रेक हो गया

प्रवृत्तं रज इत्येव जानीहि मुनिसत्तम । अथ यन्मोहसंयुक्तमव्यक्तविषयं भवेत् ॥५३॥
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् । प्रहर्षः प्रीतिरानंदः सुखं वा शान्तचित्तता ॥५४॥
कथंचिदभिवर्तन्त इत्येते सात्त्विका गुणाः । अतुष्टिः परितापश्च शोको लोभस्तथा क्षमा ॥५५॥
लिंगानि रजसस्तानि दृश्यंते देहहेतुभिः । अपमानस्तथा मोहः प्रमादः स्वप्नतंद्रिते ॥५६॥
कथंचिदभिवर्तंते विविधास्तामसा गुणाः । दूषणं बहुधागामि प्रार्थनासंशयात्मकम् ॥५७॥
मनः स्वनियतं यस्य स सुखी प्रेत्य चेह च । सत्त्वक्षेत्रज्ञयोरेतदन्तरं यस्य सूक्ष्मयोः ॥५८॥
सृजते च गुणानेक एको न सृजते गुणान् । मशकोदुंबरौ वापि संप्रयुक्तौ यथा सदा ॥५९॥
अन्योन्यमेतौ स्यातां च संप्रयोगस्तथोभयोः । पृथग्भूतौ प्रकृत्या तौ संप्रयुक्तौ च सर्वदा ॥६०॥
यथा मत्स्यो जलं चैव संप्रयुक्तौ तथैव तौ । न गुणा विदुरात्मानं स गुणान्वेत्ति सर्वशः ॥६१॥
परिद्रष्टा गुणानां तु संस्रष्टा मन्यते तथा । इन्द्रियैस्तु प्रदीपार्थं कुरुते बुद्धि सत्तमैः ॥६२॥
निर्विचेष्टैरजानद्भिः परमात्मा प्रदीपवान् । सृजते हि गुणान्सत्त्वं क्षेत्रज्ञः परिपश्यति ॥६३॥
संप्रयोगस्तयोरेव सत्त्वक्षेत्रज्ञयोर्ध्रुवम् । आश्रयो नास्ति सत्त्वस्य क्षेत्रज्ञस्य च कश्चन ॥६४॥
सत्त्वं मनः संसृजते न गुणान्वै कदाचन । रश्मींस्तेषां स मनसा यदा सम्यङ्नियच्छति ॥६५॥
तदा प्रकाशतेऽस्यात्मा घटे दीपो ज्वलन्निव । त्यक्त्वा यः प्राकृतं कर्म नित्यमात्मरतिर्मुनिः ॥६६॥
सर्वभूतात्मभूतस्मात्स गच्छेदुत्तमां गतिम् । यथा वारिचरः पक्षी सलिलेन न लिप्यते ॥६७॥
एवमेव कृतप्रज्ञो भूतेषु परिवर्तते । एवं स्वभावमेवैतत्स्वबुद्ध्या विहरेन्नरः ॥६८॥

ऐसा जानो ॥५२½॥ इसके अनन्तर जब मन मोहाकुल हो जाय और किसी विषय का प्रत्यक्षानुभव न हो, तर्क और ज्ञान से कुछ निश्चय न हो तो समझो कि तमोगुण ने शरीर में अपना प्रभाव दिखलाया है ॥५३½॥ प्रहर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख अथवा शान्ति ये सात्त्विक गुण हैं जो कभी किसी प्रकार मनुष्य को प्राप्त होते हैं ॥५४½॥ असन्तोष, परिताप-शोक, लोभ और क्रोध ये रजोगुण के चिह्न हैं। जिनका अनुभव देहधारी करते हैं ॥५५½॥ अपमान, मोह, प्रमाद, निद्रा और तन्द्रा (आलस्य) ये विविध भाव तामस गुण हैं जो किसी भाँति शरीर में व्याप्त हो जाते हैं ॥५६½॥ बहुधा शरीर में दोष आ जाते हैं, जो कि अधिकतर आकांक्षा संशय के कारण उत्पन्न होते हैं। जिसका मन अपने वश में है वही लोक और परलोक में सुख पाता है ॥५७½॥ सूक्ष्म सत्त्व (जीव) और क्षेत्रज्ञ में यह अन्तर है कि एक (क्षेत्रज्ञ) गुणों की सृष्टि करता है और एक गुण की सृष्टि नहीं करता। जिस प्रकार मशक (कीड़ा) और गूलर परस्पर मिले रहते हैं, उसी प्रकार ये दोनों मिले रहते हैं ॥५८-५९½॥ प्रकृतितः ये दोनों पृथक्-पृथक् हैं परन्तु सदा ये मिले ही रहते हैं। जिस प्रकार मछली और जल सर्वदा परस्पर संबद्ध रहते हैं उसी प्रकार ये दोनों ॥६०½॥ गुण आत्मा को नहीं जानते परन्तु आत्मा गुणों को जानता है। यद्यपि पुरुष गुणों का द्रष्टा मात्र है, तथापि बुद्धि के संसर्ग से वह अपने को उनका स्रष्टा मानता है। इस प्रकार सत्त्व और पुरुष का संसर्ग हुआ है, किन्तु इनका पार्थक्य निश्चित है। जब बुद्धि मन के द्वारा इन्द्रियरूपी घोड़ों की रास खींचती है और भली भाँति वश में रखती है उस समय घड़े में रखे हुए प्रज्वलित दीपक की भाँति आत्मा प्रकाशित होने लगता है ॥६१-६५½॥

जो मुनि प्राकृत कर्मों का परित्याग कर नित्य आत्मा से ही प्रेम करता है वह सब प्राणियों के अन्तरात्मा की बातें जानता है और उत्तम गति को प्राप्त करता है। जैसे जल में रहने वाला पक्षी जल से लिप्त नहीं होता उसी प्रकार प्रज्ञावान् व्यक्ति सब भूतों के मध्य रहकर भी उनमें आसक्त नहीं होता ॥६६-६७½॥ मनुष्य इसी प्रकार निर्लिप्त भाव से इच्छानुकूल विचरण करे। बिना शोक और हर्ष के, ईर्ष्या का त्याग कर समान

अशोचन्नप्रहृष्यंश्च समो विगतमत्सरः । भावयुक्तया प्रयुक्तस्तु स नित्यं सृजते गुणान् ॥६९॥
ऊर्णनाभिर्यथा सूत्रं विज्ञेयास्तंतुवद्गुणाः । प्रध्वस्ता न निवर्तन्ते निवृत्तिर्नोपलभ्यते ॥७०॥
प्रत्यक्षेण परोक्षं तदनुमानेन सिद्धयति । एवमेके व्यवस्यंति निवृत्तिरिति चापरे ॥७१॥
उभयं संप्रधार्यैतद्व्यवस्येत यथामति । इतीमं हृदयग्रंथिं बुद्धिचिन्तामयं दृढम् ॥७२॥
विमुच्य सुखमासीत न शोचेच्छिन्नसंशयः । मलिनाः प्राप्नुयुः शुद्धिं यथा पूर्णां नदीं नराः ॥७३॥
अवगाह्य सुविद्वांसो विद्धि ज्ञानमिदं तथा । महानद्या हि पारज्ञस्तप्यते न तरन्यथा ॥७४॥
न तु तप्यति तत्त्वज्ञः कुलज्ञस्तु तरत्युत । एवं ये विदुरध्यात्मं कैवल्यं ज्ञानमुत्तमम् ॥७५॥
एवं बुद्धा नरः सर्वो भूतानामगतिं गतिम् । अवेक्ष्य च शनैर्बुद्धया लभते च शमं ततः ॥७६॥
त्रिवर्गो यस्य विदितः प्रेक्ष्य यश्च विमुंचति । अन्विष्य मनसा युक्तस्तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः ॥७७॥
न चात्मा शक्यते द्रष्टुमिंद्रियेषु विभागशः । तत्र तत्र विसृष्टेषु दुर्जयेष्वकृतात्मभिः ॥७८॥
एतद् बुद्धा भवेद् बुद्धः किमन्यद् बुद्धलक्षणम् । विज्ञाय तद्धि मन्यन्ते कृतकृत्या मनीषिणः ॥७९॥

न भवति विदुषां ततो भयं यदविदुषां सुमहद्भयं भवेत् । ॥८०॥
नहि गतिरधिकास्ति कस्यचित्सति हि गुणे प्रवदत्यतुल्यताम्
यः करोत्यनभिसंधिपूर्वकं तच्च निर्दहति यत्पुराकृतम् । ॥८१॥
नाप्रियं तदुभयं कुतः प्रियं तस्य तज्जनयतीह कुर्वतः

भाव से रहे। प्रज्ञावान् व्यक्ति (जीव) भावयुक्त हो नित्य प्रति गुणों की सृष्टि करता है। जिस प्रकार मकड़ी
अपने मुँह से सूत्र निकालती है उसी प्रकार यह भी गुणों को सृष्टि करता है। वे गुण ध्वस्त होते रहते हैं परन्तु
यह उनकी सृष्टि करता ही रहता है, विराम नहीं करता। उस जीव का कर्तव्य प्रत्यक्ष सृष्टि द्वारा सिद्ध होता
है और उस परोक्ष की अनुमान द्वारा सिद्धि होती है। इस प्रकार कुछ लोग मानते हैं कि वह नित्य प्रति व्यव-
साय में लगा रहता है, और अन्य लोगों का मत है कि वह इस कार्य से विरत भी होता है। इन दोनों सिद्धान्तों
का विवेचन कर मनुष्य यथामति उद्योग करे। इस प्रकार हृदय की उलझन को बुद्धि और विचारपूर्वक
दृढ़ता से दूर कर सुखपूर्वक रहे और अपने संशय को दूर कर किसी प्रकार का शोक न करे। जिस प्रकार मैला-
कुचैला मनुष्य स्वच्छ जल से पूर्ण नदी में नहा कर शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार विद्वान् व्यक्ति ज्ञान की सरिता
में नहा कर शुद्ध हो जाते हैं। जैसे तैराक महानदी को पार करते समय कष्ट का अनुभव नहीं करता वैसे ही कुल
और तत्त्व के ज्ञाता को इस संसार में कष्ट नहीं होता, वह अनायास इस संसार-सागर को पार कर जाता है।
इस प्रकार जो उत्तम कैवल्यदायक अध्यात्म ज्ञान को जानते हैं, वे ज्ञानी प्राणियों की गतिविधि को अपने ज्ञान
द्वारा जानकर शान्ति प्राप्त करते हैं। जिसको त्रिवर्ग का ज्ञान है जो संसार को देखकर भी उसमें लिप्त नहीं
होता, जो तत्त्वदर्शी मन से पदार्थों का सूक्ष्म निरीक्षण कर शान्त भाव से योग-युक्त होता है, उसे शान्ति मिलती
है। जो अज्ञानी हैं वे तत्तत् विषयों में आसक्त इन्द्रियों में आत्मा को अलग-अलग करके नहीं देख सकते। आत्मज्ञ
और ज्ञानी व्यक्ति ही बुद्ध कहा जाता है। इसके अतिरिक्त बुद्ध का दूसरा लक्षण क्या हो सकता है? मनीषी व्यक्ति इस
प्रकार ज्ञान प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाते हैं इस प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जाने पर विद्वान् को वहाँ पर भी भय नहीं लगता
जहाँ अज्ञानी को अत्यधिक भय लगता है। जो फल की इच्छा और आसक्ति का त्याग करके कर्म करता है, वह अपने पूर्व-
कृत कर्म-बन्धन को जला देता है।६८-८०½। ऐसा पुरुष यदि कर्म करता है तो उसका किया हुआ कर्म प्रिय अथवा अप्रिय

लोकमायुरभिद्रुयते जनस्तस्य तज्जनयतीह कुर्वतः।
तत्र पश्य कुशलान्न शोचते जायते यदि भयं पदं सदा ॥८२॥

भरद्वाज उवाच

ध्यानयोगं समाचक्ष्व मह्यं तत्पदसिद्धये। यज्ज्ञात्वा मुच्यते ब्रह्मन्नरस्त्रिविधतापतः ॥८३॥

भृगुरुवाच

हंत ते संप्रवक्ष्यामि ज्ञानयोगं चतुर्विधम्। यं ज्ञात्वा शाश्वतीं सिद्धिं गच्छन्तीह महर्षयः ॥८४॥
यथा स्वनुष्ठितं ध्यानं तथा कुर्वन्ति योगिनः। महर्षयो ज्ञानतृप्ता निर्वाणगतमानसाः ॥८५॥
नावर्तंते पुनश्चापि मुक्ताः संसारदोषतः। जन्मदोषपरिक्षीणाः स्वभावे पर्यवस्थिताः ॥८६॥
निर्द्वन्द्वा नित्यसत्त्वस्था विमुक्ता निष्परिग्रहाः। असंगान्यविवादीनि मनः शांतिकराणि च ॥८७॥
तत्र ध्यानेन संक्लिष्टमेकाग्रं धारयेन्मनः। पिंडीकृत्येन्द्रियग्राममासीनः काष्ठवन्मुनिः ॥८८॥
शब्दं न विदेच्छ्रोत्रेण त्वचा स्पर्शं न वेदयेत्। रूपं न चक्षुषा विद्याज्जिह्वया न रसांस्तथा ॥८९॥
घ्रेयाण्यपि च सर्वाणि जह्याद्ध्यानेन तत्त्ववित्। पंचवर्गप्रमाथीनि नेच्छेच्चैतानि वीर्यवान् ॥९०॥
ततो मनसि संगृह्य पंचवर्गं विचक्षणः। समादध्यान्मनो भ्रांतमिंद्रियैः सह पञ्चभिः ॥९१॥
विसञ्चारि निरालम्बं पंचद्वारं बलाबलम्। पूर्वध्यानपथे धीरः समादध्यान्मनस्त्वरा ॥९२॥
इन्द्रियाणि मनश्चैव यदा पिण्डीकरोत्ययम्। एष ध्यानपथः पूर्वो मया समनुवर्णितः ॥९३॥

फल नहीं उत्पन्न नहीं कर सकता। यदि मनुष्य अपनी आयु भर लोक को सताता है, तो कर्म में लगे हुए उस पुरुष का वह अशुभ कर्म उसके लिए यहाँ फल ही उत्पन्न करता है। देखो, कुशल (पुण्य) कर्म करने से कोई भी शोक में नहीं पड़ता, परन्तु यदि उससे पाप बनता है तो सदा के लिए भयपूर्ण स्थान प्राप्त होता है ॥८१-८२॥

भरद्वाज बोले—ब्रह्मन्! आप ब्रह्मपद पाने के लिए उपयुक्त ध्यान योग को कहिए, जिसको जान कर मनुष्य त्रिविध ताप से मुक्त हो जाता है ॥८३॥

भृगु बोले—बहुत अच्छा, मैं अब चार प्रकार के ज्ञान योग को कह रहा हूँ, जिसको जानकर महर्षि शाश्वत पदवी को पा जाते हैं ॥८४॥ योगी जैसे हो वैसे भली भाँति ध्यान याग को साधना करते हैं। ज्ञान से तृप्त और मुक्ति में ही रमने वाले योगी संसार के दोष से मुक्त हो कर पुनः उस बन्धन में नहीं पड़ते ॥८५॥ वे जन्म के दोषों के सहज पापों को नष्ट कर स्वभाव (आत्मभाव) में ही स्थिर हो जाते हैं। सुख दुःख से परे, नित्य सात्त्विक वृत्ति में स्थित, विमुक्त और परिग्रह से विमुख योगी आवागमन के चक्कर में नहीं पड़ता। अनासक्ति आदि गुण मन को शान्ति देने वाले ध्यान के द्वारा अपने पीड़ित मन को एकाग्र करे। मुनि काष्ठ की भाँति अटल होकर बैठ जाय और सम्पूर्ण इन्द्रियों को विषयों की ओर से हटाकर, कानों से किसी प्रकार का शब्द न सुने, जिह्वा से रस और सब प्रकार के सूँघने योग्य पदार्थों को तत्त्वज्ञ व्यक्ति ध्यान के द्वारा छोड़ दे। इसके अनन्तर पराक्रमी योगी पाँचों इन्द्रियों को चंचल कर देने वाले विषयों की इच्छा न करे। विद्वान् मन में पंच वर्ग को वशीभूत कर पाँचों इन्द्रियों के साथ इधर-उधर भ्रमण करने वाले मन को एकाग्र करे। धीर व्यक्ति शीघ्र ही संचरणशील, निरालम्ब, पंच द्वार को (पाँचों इन्द्रियों को) पूर्व (कथित) ध्यान-पथ में समाधिस्थ करे ॥८६-९२॥ पाँचों इन्द्रियों और मन एक केन्द्र में (आत्मा में) केन्द्रित हो जाते हैं तब वह साधन ध्यान-

तस्य तत्पूर्वसंरुद्ध आत्मषष्ठमनंतरम् । स्फुरिष्यति समुद्रांता विद्युदम्बुधरे यथा ॥९४॥
जलबिंदुर्यथा लोलः पर्णस्थः सर्वतश्चलः । एवमेवास्य चित्तं च भवति ध्यानवर्त्मनि ॥९५॥
समाहितं क्षणं किंचिद्ध्यानवर्त्मनि तिष्ठति । पुनर्वायुपथं भ्रांतं मनो भवति वायुवत् ॥९६॥
अनिर्वेदो गतक्लेशो गततंद्रो ह्यमत्सरी । समादध्यात्पुनश्चेतो ध्यानेन ध्यानयोगवित् ॥९७॥
विचारश्च वितर्कश्च विवेकश्चोपजायते । मुनेः समाधियुक्तस्य प्रथमं ध्यानमादितः ॥९८॥
मनसा क्लिश्यमानस्तु समाधानं च कारयेत् । न निर्वेदं मुनिर्गच्छेत्कुर्यादेवात्मनो हितम् ॥९९॥
पांशुभस्मकरीषाणां यथा वै राशयश्चिताः । सहसा वारिणा सिक्ता न यांति परिभावनाः ॥१००॥
किंचित् स्निग्धं यथा च स्याच्छुष्कं चूर्णमभावितम् । क्रमेण तु शनैर्गच्छेत्सर्वं तत्परिभावनम् ॥१०१॥
एवमेवेन्द्रियग्रामं शनैः शं परिभावयेत् । संहरेत्क्रमशश्चैव सम्यक् तत्प्रशमिष्यति ॥१०२॥
स्वयमेव मनश्चैवं पंचवर्गं मुनीश्वर । पूर्वं ध्यानपथे स्थाप्य नित्ययोगेन शाम्यति ॥१०३॥
न तत्पुरुषकारेण न च दैवेन केनचित् । सुखमेष्यति तत्तस्य यदेवं संयतात्मनः ॥१०४॥
सुखेन तेन संयुक्तो रंस्यते ध्यानकर्मणि । गच्छंति योगिनो ह्येवं निर्वाणं तु निरामयम् ॥१०५॥

सनंदन उवाच

इत्युक्तो भृगुणा ब्रह्मन्भरद्वाजः प्रतापवान् । भृगुं परमधर्मात्मा विस्मितः प्रत्यपूजयत् ॥१०६॥
एष ते प्रसवो विद्वन् जगतः संप्रकीर्तितः । निखिलेन महाप्राज्ञ किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१०७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे द्वितीयपादे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

पथ कहा जाता है जिसका वर्णन पहले मैंने किया है। इसके अनन्तर पहले से वश में किये हुए मन में छठी आत्म-शक्ति का स्फुरण उसी प्रकार होता है जिस प्रकार समुद्र के गर्भ में रहने वाली विद्युत का स्फुरण मेघों के बीच होता है। जैसे चंचल जलबिन्दु पत्ते (कमल) पर कभी स्थिर नहीं रहता, सर्वदा इधर-उधर हिलता रहता है उसी प्रकार योगी का चित्त ध्यान मार्ग में चंचल होता है। वह कुछ क्षण तक एकाग्र होकर ध्यान-मार्ग पर स्थिर रहता है, पुनः वायु पथ पर वायु की भाँति चंचल हो जाता है। इस अवस्था में ध्यानयोगविद् योगी निर्वेद, आलस्य, क्लेश और मात्सर्य से मुक्त होकर ध्यान के द्वारा पुनः मन को एकाग्र करे। समाधि युक्त मुनि को ध्यान के साथ ही विचार, वितर्क और विवेक उत्पन्न हो जाता है। उस समय मन में उठे हुए तर्कों का किसी प्रकार समाधान करे। उस समय मुनि किसी प्रकार के दुःख का अनुभव न करे प्रत्युत आत्म-हित की ओर ही ध्यान दे। जिस प्रकार धूलि, राख, और करसी की राशि और चिता जल से सींची जाने पर भी एकाएक शान्त नहीं होती, प्रत्युत पहले कुछ भीगती है, कुछ सूखी रहती है तब फिर धीरे-धीरे गीली बनती है। उसी प्रकार इन्द्रिय-समूह को धीरे-धीरे शान्त करे। क्रमशः इनको विषयों की ओर से हटाये फिर वे भली भाँति स्वयं शान्त हो जायँगी। मुनीश्वर! स्वयम् ही मन और इन्द्रिय-समूह को ध्यान पथ पर आरूढ़ करे, तत्पश्चात् ये स्वयं नित्ययोग के द्वारा शान्त हो जायँगे। वह सुख न तो पौरुष से अथवा दैव से ही प्राप्त हो सकता है जो सुख संयमी को अपनी इस ध्यान-साधना से प्राप्त हो सकता है। योगी उस सुख में मग्न हो कर ध्यान कर्म में रमता हुआ निरामय निर्वाण को प्राप्त करता है ॥९३-१०५

सनन्दन बोले—ब्रह्मन्! इस प्रकार भृगु ने प्रतापी भरद्वाज से कहा। परम धर्मात्मा भरद्वाज भी भृगु की ज्ञान-गरिमा को देखकर विस्मित हो गए और उन्होंने उनकी पूजा की। विद्वान्! यही जगत् की उत्पत्ति की सम्पूर्ण कथा है। महाप्राज्ञ! अब तुम क्या सुनना चाहते हो? ॥१०६-१०७॥

श्री नारदीयमहापुराण के पूर्वार्ध में चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

सूत उवाच

सनंदनवचः श्रुत्वा मोक्षधर्माश्रितं द्विजाः । पुनः पप्रच्छ तत्त्वज्ञो नारदोऽध्यात्मसत्कथाम् ॥१॥

नारद उवाच

श्रुतं मया महाभाग मोक्षशास्त्रं त्वयोदितम् । न च मे जायते तृप्तिर्भूयोभूयोऽपि शृण्वतः ॥२॥
यथा संमुच्यते जंतुरविद्याबंधनान्मुने । तथा कथय सर्वज्ञ मोक्षधर्म सदाश्रितम् ॥३॥

सनंदन उवाच

अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । यथा मोक्षमनुप्राप्तो जनको मिथिलाधिपः ॥४॥
जनको जनदेवस्तु मिथिलाया अधीश्वरः । और्ध्वदेहिकधर्माणामासीद्युक्तो विचिंतने ॥५॥
तस्य तु शतमाचार्या वसंति सततं गृहे । दर्शयंतः पृथग्धर्मान्नानापाषंडवादिनः ॥६॥
स तेषां प्रेत्यभावे च प्रेत्य जातो विनिश्चये । आगमस्थः स भूयिष्ठमात्मतत्त्वेन तुष्यति ॥७॥
तत्र पंचशिखो नाम कापिलेयो महामुनिः । परिधावन्महीं कृत्स्नां जगाम मिथिलामथ ॥८॥
सर्वसंन्यासधर्माणः तत्त्वज्ञानविनिश्चये । सुपर्यवसितार्थश्च निर्द्वंद्वो नष्टसंशयः ॥९॥

अध्याय ४५

पञ्चशिख का राजा जनक को उपदेश

सूत बोले—द्विजगण ! मोक्ष धर्म से युक्त सनन्दन की वाणी सुनकर तत्त्वज्ञ नारद मुनि ने पुनः अध्यात्म की सत् चर्चा छेड़ी ॥१॥

नारद बोले—महाभाग ! आपके मुख से मोक्ष का रहस्य सुन लिया, परन्तु बार-बार सत्कथा को सुनने पर भी मुझे तृप्ति नहीं हो रही है ॥२॥ मुने ! अविद्या के बन्धन से जीव को जिस उपाय से मुक्ति होती है उसको कहिए । सर्वज्ञ ! आप ही मोक्ष धर्म के ज्ञाता एवं पालक हैं ॥३॥

सनन्दन ने कहा—इस विषय में जिस प्रकार मिथिलापति जनक ने मोक्ष प्राप्त किया था, सुधीजन उस पुरातन इतिहास को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करते हैं । राजा जनक मिथिला के अधीश्वर थे जिनको प्रजा देवता के समान मानती थी । वे सदा एकाग्र होकर परलोक धर्म (श्राद्ध या यम-विद्या) के विषय में चिन्तन किया करते थे ॥४-५॥ उनके यहाँ नाना प्रकार के तर्क करने वाले इस विद्या के ज्ञाता आचार्य रहा करते थे जो इस विद्या के सम्बन्ध में नाना प्रकार के धर्म (मत) प्रस्तुत करते थे । वह राजा उनके साथ, प्रेत्य भाव और मृत्यु के अनन्तर जाति ज्ञान के निर्णय के विषय में शास्त्रानुसार निश्चय कर उस आत्मतत्त्व के निर्णय से अत्यन्त प्रसन्न होते थे ॥६-७॥ किसी समय उनकी मिथिला पुरी में महामुनि पंचशिख कापिलेय (कपिल के पुत्र) सम्पूर्ण पृथ्वी को परिक्रमा करते हुए पहुँचे ॥८॥ वे मुनि सब प्रकार के संन्यास धर्म के तत्त्वज्ञान के निर्णायक थे । उनको तत्त्वार्थ ज्ञान के कारण किसी प्रकार का संशय नहीं था ॥९॥ वे स्वयं द्वन्द्वातीत थे । ऋषियों

सुखमत्यंतमन्विच्छन्स सुदुर्लभम् ॥१०॥
ऋषीणामाहुरेकं यं कामादवसितं नृषु । शाश्वतं सुखमत्यंतमन्विच्छन्स सुदुर्लभम् ॥११॥
यमाहुः कपिलं सांख्याः परमर्षिप्रजापतिम् । स मन्ये तेन रूपेण विख्यापयति हि स्वयम् ॥१२॥
आसुरेः प्रथमं शिष्यं यमाहुश्चिरजीविनम् । पंचस्रोतसि यः सत्रमास्ते वर्षसहस्रकम् ॥१३॥
पंचस्रोतसमागम्य कापिलं मंडलं महत् । पुरुषावस्थमव्यक्तं परमार्थं न्यवेदयत् ॥१४॥
इष्टिमंत्रेण संयुक्तो भूयश्च तपसा सुरिः । क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्व्यक्तिं बिबुधे देहदर्शनः ॥१५॥
यत्तदेकाक्षरं ब्रह्म नानारूपं प्रदृश्यते । आसुरिर्मंडले तस्मिन्प्रतिपेदे तमव्ययम् ॥१६॥
तस्य पंचशिखः शिष्यो मानुष्या पयसा भृतः । ब्राह्मणी कपिली नाम काचिदासीत्कुटुम्बिनी ॥१७॥
तस्याः पुत्रत्वमागत्य स्त्रियाः स पिबति स्तनौ । ततश्च कापिलेयत्वं लेभे बुद्धिं च नैष्ठिकीम् ॥१८॥
एतन्मे भगवानाह कापिलेयस्य संभवम् । तस्य तत्कापिलेयत्वं सर्ववित्त्वमनुत्तमम् ॥१९॥
सामात्यो जनको ज्ञात्वा धर्मज्ञो ज्ञानिनं मुने । उपेत्य शतमाचार्यान्मोहयामास हेतुभिः ॥२०॥
जनकस्त्वभिसंरक्तः कापिलेयानुदर्शनात् । उत्सृज्य शतमाचार्यान्पृष्ठतोऽनुजगाम तम् ॥२१॥
तस्मै परमकल्याणं प्रणताय च धर्मतः । अब्रवीत्परमं मोक्षं यत्तत्सांख्यं विधीयते ॥२२॥
जातिनिर्वेदमुक्त्वा स कर्मनिर्वेदमब्रवीत् । कर्मनिर्वेदमुक्त्वा च सर्वनिर्वेदमब्रवीत्

में एक थे। उन्होंने मानव-जीवन में शाश्वत, सुदुर्लभ सुख की इच्छा से काम इच्छा को जीत लिया था। सांख्य के अनुयायी परमर्षि प्रजापति को कपिल कहते हैं। वे कपिल ही स्वयं को मानो उसी (पंचशिख) रूप में विख्यापित करते थे। उन्हें लोग आसुरि के प्रथम शिष्य और चिरंजीवी कहते हैं। उन्होंने पंचस्रोत में हजार वर्ष तक यज्ञ किया था ॥१०-१२॥ पंचस्रोत में महान् कापिल-मण्डल (कपिल मतानुयायी मुनि मण्डली) को उन्होंने सब में विशेष अन्तर्यामी रूप से स्थित परमार्थस्वरूप अव्यक्त ब्रह्म के विषय में निवेदन किया था और क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ की विशेषता को जान लिया था। जो एकाक्षर ब्रह्म नाना रूपों में देखा जाता है, आसुरि ने उस मण्डल में उस अव्यय ब्रह्म को प्राप्त कर लिया था। उसी आसुरि का पंचशिख नामक शिष्य था जिसका पालन-पोषण मानुषी के दूध से हुआ। कोई कपिली नामकी एक गृहस्थ ब्राह्मणी थी। उस स्त्री के गर्भ से उत्पन्न होकर वह उसके स्तन को पीता था। इसके अनन्तर उसको कापिलेयत्व और नैष्ठिक बुद्धि प्राप्त हुई। कापिलेय की उस उत्पत्ति कथा को भगवान् ने मुझसे कहा था ॥१३-१७½॥

मुने! धर्मज्ञ जनक उस मुनि का कापिलेयत्व एवं सर्वोत्तम सर्वज्ञत्व जानकर मन्त्री के सहित सौ आचार्यों को साथ लेकर उस मुनि के समीप आये और अपने तर्क और हेतुवाद से उस मुनि को प्रसन्न कर दिया। राजा जनक उस कापिलेय के दर्शन से इतने अधिक प्रसन्न हो गए कि अपने सौ आचार्यों को छोड़कर उनके पीछे-पीछे चल पड़े। उन्होंने उस विनीत जनक को कल्याणमय परममोक्ष की व्याख्या सुनाई, जिसको सांख्ययोग कहते हैं। उसने प्रारम्भ में जाति-निर्वेद[1] को कहा फिर कर्मनिर्वेद[2] की व्याख्या की। कर्मनिर्वेद की व्याख्या के पश्चात् सर्वनिर्वेद[3]

---

१. जन्म के गर्भवास आदि के कारण जो कष्ट होना है, उस पर विचार करके शरीर से वैराग्य होना 'जातिनिर्वेद' है।

२. कर्मजनित क्लेश—नाना योनियों की प्राप्ति एवं नरकादि यातना का विचार करके पाप तथा काम्य कर्मों से विरत होना 'कर्मनिर्वेद' है।

३. इस जगत् की छोटी-से छोटी वस्तुओं से लेकर ब्रह्म-लोक तक के भोगों की क्षणभंगुरता और दुःखरूपता का विचार करके सब ओर से विरक्त होना 'सर्वनिर्वेद' कहलाता है।

यदर्थं धर्मसंसर्गः कर्मणा च फलोदयः। तमनाश्वासिकं मोहं विनाशि चलमध्रुवम् ॥२३॥
दृश्यमाने विनाशे च प्रत्यक्षे लोकसाक्षिके। अगमात्परमस्तीति ब्रुवन्नपि पराजितः ॥२४॥
अनात्मा ह्यात्मनो मृत्युः क्लेशो मृत्युर्जरामयः। आत्मानं मन्यते मोहात्तदसम्यक् परं मतम् ॥२५॥
अथ चेदेवमप्यस्ति यल्लोके नोपपद्यते। अजरोऽयममृत्युश्च राजासौ मन्यते यथा ॥२६॥
अस्ति नास्तीति चाप्येतत्तस्मिन्नसितलक्षणे। किमधिष्ठाय तद् ब्रूयाल्लोकयात्राविनिश्चयम् ॥२७॥
प्रत्यक्षं ह्येतयोर्मूलं कृतान्ते ह्येतयोरपि। प्रत्यक्षो ह्यागमो भिन्नः कृतान्तो वा न किंचन ॥२८॥
यत्र तत्रानुमानेऽस्मिन्कृतं भावयतेऽपि च। अन्यो जीवः शरीरस्य नास्तिकानां मते स्थितः ॥२९॥
रेतोवटकणीकायां घृतपाकाधिवासनम्। जातिस्मृतिरयस्कान्तः सूर्यकान्तोऽम्बुभक्षणम् ॥३०॥
प्रेतभूतप्रियश्चैव देवता ह्युपयाचनम्। मृतकर्मनिवृत्तिं च प्रमाणमिति निश्चयः ॥३१॥
नन्वेते हेतवः सन्ति ये केचिन्मूर्तिसंस्थिताः। अमूर्तस्य हि मूर्तेन सामान्यं नोपलभ्यते ॥३२॥

का रहस्योद्घाटन किया। उन्होंने कहा—'जिसके लिए धर्म का आचरण किया जाता है, जो कर्मों के फल का उदय होने पर प्राप्त होता है, वह इहलोक या परलोक का भोग नश्वर है। उस पर आस्था करना उचित नहीं। वह मोहरूप चंचल और अस्थिर है ॥१९-२३॥

कुछ नास्तिक ऐसा कहा करते हैं कि 'देहरूपी आत्मा का विनाश प्रत्यक्ष देखा जा रहा है, सम्पूर्ण लोक इसका साक्षी है; फिर भी यदि कोई शास्त्र-प्रमाण की ओट लेकर देह से भिन्न आत्मा की सत्ता का प्रतिपादन करता है तो वह परास्त ही है, क्योंकि उसका कथन लोकानुभव के विरुद्ध है। आत्मा के स्वरूप का अभाव हो जाना ही उसकी मृत्यु है। जरारोगमय क्लेश मृत्यु है। जो लोग मोहवश आत्मा को देह से भिन्न मानते हैं, उनकी वह मान्यता ठीक नहीं है ॥२४-२५॥ यदि ऐसी वस्तु का भी अस्तित्व मान लिया जाय, जो लोक में संभव नहीं है, अर्थात् यदि शास्त्र के आधार पर यह स्वीकार किया जाय कि शरीर से भिन्न कोई अजर-अमर आत्मा है, जो स्वर्ग आदि लोकों में दिव्य सुख भोगता है, तब बंदी लोग, जो राजा को अजर-अमर कहते हैं, उनकी वह बात भी ठीक माननी पड़ेगी। सारांश यह है कि जैसे बंदी लोग आशीर्वाद में उपचारतः राजा को अजर-अमर कहते हैं, उसी प्रकार शास्त्र का वह वचन भी औपचारिक ही है। नीरोग शरीर को ही अजर-अमर और यहाँ के प्रत्यक्ष सुख-भोग को ही स्वर्गीय सुख कहा गया है। यदि आत्मा है या नहीं यह संशय उपस्थित होने पर अनुमान से उसके अस्तित्व का साधन किया जाय तो इसके लिए कोई ऐसा ज्ञापक हेतु नहीं उपलब्ध होता, जो कहीं व्यभिचरित न होता हो; फिर किस अनुमान का आश्रय लेकर लोक-व्यवहार का निश्चय किया जा सकता है? अनुमान और आगम—इन दोनों प्रमाणों का मूल्य प्रत्यक्ष प्रमाण है। आगम या अनुमान यदि प्रत्यक्ष अनुभव के विरुद्ध है तो वह कुछ भी नहीं है, उसकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं की जा सकती। जिस किसी भी अनुमान में ईश्वर, अदृष्ट अथवा नित्य आत्मा की सिद्धि के लिए की हुई भावना भी व्यर्थ है; अतः नास्तिकों के मत में शरीर से भिन्न जीव का अस्तित्व नहीं है, यह बात स्थिर हुई ॥२६-२९॥ जैसे वटवृक्ष के बीज में पत्र, पुष्प, फल, मूल तथा त्वचा आदि अन्तर्हित होते हैं, जैसे गाय के द्वारा खायी हुई घास में घी, दूध आदि प्रकट हो जाते हैं तथा जिस प्रकार अनेक ओषध द्रव्यों का पाक एवं अधिवासन करने से उसमें नशा पैदा करने वाली शक्ति आ जाती है उसी प्रकार वीर्य से ही शरीर आदि के साथ चेतनता भी प्रकट होती है।

[उक्त मत का खण्डन—] मरे हुए शरीर में जो चेतनता का अतिक्रमण देखा जाता है, वही देहातिरिक्त आत्मा के अस्तित्व में प्रमाण है। यदि चेतनता देह का ही धर्म होता तो मृतक शरीर में भी उसकी उपलब्धि

अविद्या कर्म तृष्णा च केचिदाहुः पुनर्भवम् । तस्मिन्नष्टे च दग्धे च चित्ते मरणधर्मिणि ॥३३॥
अन्योऽस्माज्जायते मोहस्तमाहुः सत्त्वसंक्षयम् । यदा सरूपतश्चान्यो जातितः श्रुततोऽर्थतः ॥३४॥
कथमस्मिन्स इत्येव संबंधः स्यादसंहितः । एवं सति च का प्रीतिर्ज्ञानविद्यातपोबलैः ॥३५॥
यदस्याचरितं कर्म सामान्यात्प्रतिपद्यते । अपि त्वयमिहैवान्यैः प्राकृतैर्दुःखितो भवेत् ॥३६॥
सुखितो दुःखितो वापि दृश्यादृश्यविनिर्णयः । यथा हि मुशलैर्हन्युः शरीरं तत्पुनर्भवेत् ॥३७॥
वृथा ज्ञानं यदन्यच्च येनैतन्नोपलभ्यते । ऋतुसंवत्सरौ तिष्यः शीतोष्णोऽथ प्रियाप्रिये ॥३८॥
यथा तातानि पश्यंति तादृशः सत्त्वसंक्षयः । जरयाभिपरीतस्य मृत्युना च विनाशितम् ॥३९॥
दुर्बलं दुर्बलं पूर्वं गृहस्येव विनश्यति । इन्द्रियाणि मनो वायुः शोणितं मांसमस्थि च ॥४०॥
आनुपूर्व्या विनश्यंति स्वं धातुमुपयाति च । लोकयात्राविघातश्च दानधर्मफलागमे ॥४१॥
तदर्थं वेदशब्दाश्च व्यवहाराश्च लौकिकाः । इति सम्यङ् मनस्येते बहवः संति हेतवः ॥४२॥
एतदस्तीति नास्तीति न कश्चित्प्रतिदृश्यते । तेषां विमृशतामेव तत्सम्यगभिधावताम् ॥४३॥
क्वचिन्निवसते बुद्धिस्तत्र जीर्यति वृक्षवत् । एवमर्थैरनर्थैश्च दुःखिताः सर्वजंतवः ॥४४॥
आगमैरपकृष्यंते हस्तिपैर्हस्तिनो यथा । ॥४५॥

होती। मृत्यु के पश्चात् कुछ काल तक शरीर तो रहता है, पर उसमें चेतना नहीं रहती। अतः चेतन आत्मा शरीर से भिन्न है—यह सिद्ध होता है। नास्तिक भी रोग आदि की निवृत्ति के लिए मन्त्र-जप तथा तान्त्रिक पद्धति से देवता आदि की आराधना करते हैं। वह देवता क्या है? यदि पाँचभौतिक है तो घर आदि की भाँति उसका दर्शन होना चाहिए और यदि वह भौतिक पदार्थों से भिन्न है तो चेतन की सत्ता स्वतः सिद्ध हो गया। अतः देह से भिन्न आत्मा है—यह प्रत्यक्ष अनुभव से सिद्ध हो जाता है; और देह ही आत्मा है, यह प्रत्यक्ष अनुभव के विरुद्ध जान पड़ता है। यदि शरीर की मृत्यु के साथ आत्मा का मृत्यु मान ली जाय तब तो उसके किए हुए कर्मों का भी नाश मानना पड़ेगा; फिर तो उसके शुभाशुभ कर्मों का फल भोगने वाला कोई नहीं रह जायगा और देह की उत्पत्ति में अकृताभ्यागम (बिना किये हुए कर्म का ही भोग प्राप्त हुआ ऐसा) मानने का प्रसंग उपस्थित होगा। ये सब प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि देहातिरिक्त चेतन आत्मा की सत्ता अवश्य है। नास्तिकों की ओर से जो हेतुभूत दृष्टान्त दिये गये हैं, वे मूर्त पदार्थ हैं। मूर्त जड़-पदार्थ से मूर्त जड़-पदार्थ की ही उत्पत्ति होती है यही उनके द्वारा सिद्ध होता है। जैसे काष्ठ से अग्नि का उत्पत्ति आदि।

पञ्चभूतों से आत्मा की उत्पत्ति की भाँति यदि मूर्त से अमूर्त की उत्पत्ति मानी जाय तो पृथ्वी आदि मूर्त भूतों से अमूर्त आकाश की भी उत्पत्ति स्वीकार करनी पड़ेगी, जो असम्भव है, अतः स्थूल भूतों के संयोग से अमूर्त चेतन आत्मा की उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है।

आत्मा की सत्ता न मानने पर लोकयात्रा का निर्वाह नहीं होगा। दान, धर्म के फल की प्राप्ति के लिए कोई आस्था नहीं रहेगी, क्योंकि वैदिक शब्द तथा लौकिक व्यवहार सब आत्मा को ही सुख देने के लिए हैं। इस प्रकार मन में अनेक तर्क उठते हैं और उन तर्कों तथा युक्तियों से आत्मा की सत्ता या असत्ता का निर्धारण कुछ भी होता नहीं दिखायी देता। इस प्रकार विचार करते हुए भिन्न-भिन्न मतों की ओर दौड़ने वाले लोगों की बुद्धि कहीं एक जगह प्रवेश करती है और वहीं वृक्ष की भाँति जड़ जमाये जीर्ण ही जाती है। इस प्रकार अर्थ और अनर्थ से सभी प्राणी दुःखी रहते हैं ॥३०-४४॥ केवल शास्त्र ही उन्हें खींचकर राह पर लाते हैं, ठीक उसी तरह

अर्थांस्तथा हंति सुखावहांश्च लिहंत एते बहवोपशुष्काः ।
महत्तरं दुःखमभिप्रपन्ना हित्वामिषं मृत्युवशं प्रयांति ॥४६॥
विनाशिनो ह्यध्रुवजीवितः किं किं बंधुभिर्मित्रपरिग्रहैश्च ।
विहाय यो गच्छति सर्वमेव क्षणेन गत्वा न निवर्तते च ॥४७॥
भूव्योमतोयानलवायवोऽपि सदा शरीरं प्रतिपालयंति ।
इतीदमालक्ष्य रतिः कुतो भवेद्विनाशिनाप्यस्य न शर्म विद्यते ॥४८॥
इदमनुपधिवाक्यमच्छलं परमनिरामयमात्मसाक्षिकम् ।
नरपतिरभिवीक्ष्य विस्मितः पुनरनुयोक्तुमिदं प्रचक्रमे ॥४९॥

जनक उवाच

भगवन्यदि न प्रेत्य संज्ञा भवति कस्यचित् । एवं सति किमज्ञानं ज्ञानं वा किं करिष्यति ॥५०॥
सर्वमुच्छेदनिष्ठं स्यात्पश्य चैतद्द्विजोत्तम । अप्रमत्तः प्रमत्तो वा किं विशेषं करिष्यति ॥५१॥
असंसर्गो हि भूतेषु संसर्गो वा विनाशिषु । कस्मै क्रियेत कल्पेत निश्चयः कोऽत्र तत्त्वतः ॥५२॥

सनंदन उवाच

तमसा हि मतिच्छन्नं विभ्रांतमिव चातुरम् । पुनः प्रशमयन्वाक्यैः कविः पंचशिखोऽब्रवीत् ॥५३॥

पंचशिख उवाच

उच्छेदनिष्ठा नेहास्ति भावनिष्ठा न विद्यते । अयं ह्यपि समाहारः शरीरेंद्रियचेतसाम् ॥५४॥
वर्तंते पृथगन्योन्यमप्युपाश्रित्य कर्मसु । धातवः पंचधा तोयं खे वायुर्ज्योतिषो धरा ॥५५॥
तेषु भावेन तिष्ठंति वियुज्यंते स्वभावतः । आकाशं वायुरूष्मा च स्नेहो यश्चापि पार्थिवः ॥५६॥
एष पञ्चसमाहारः शरीरमपि नैकधा । ज्ञानमूष्मा च वायुश्च त्रिविधः कायसंग्रहः ॥५७॥
इंद्रियाणींद्रियार्थाश्च स्वभावश्चेतनामनः । प्राणापानौ विकारश्च धातवश्चात्र निःसृताः ॥५८॥
श्रवणं स्पर्शनं जिह्वा दृष्टिर्नासा तथैव च । इंद्रियाणीति पंचैते चित्तपूर्वंगमा गुणाः ॥५९॥

जैसे महावत हाथी पर अंकुश रखकर उन्हें काबू में किये रहते हैं। बहुत से शुष्क हृदय वाले लोग ऐसे विषयों की लिप्सा रखते हैं, जो अत्यन्त सुखदायक हों; किन्तु इस लिप्सा में भारी से भारी दुःखों का सामना करना पड़ता है और वे अन्त में भोगों को छोड़कर मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। जो एक दिन नष्ट होने वाला है, जिसके जीवन का कुछ ठिकाना नहीं, ऐसे अनित्य शरीर को पाकर इन बन्धु-बान्धवों तथा स्त्री-पुत्रादि से क्या लाभ है ? यह सोचकर जो मनुष्य इन सबको क्षण भर में वैराग्यपूर्वक त्याग कर चल देता है, उसे मृत्यु के बाद फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु ये सदा शरीर की रक्षा करते रहते हैं, इस बात को अच्छी तरह समझ लेने पर इसके प्रति आसक्ति कैसे हो सकती है ? जो एक दिन मृत्यु के मुख में पड़ने वाला है, ऐसे शरीर से सुख कहाँ ?

जो लोग मुक्ति के लिए प्रयत्नशील हों, उनको चाहिए कि सम्पूर्ण सकाम कर्मों तथा धन आदि का भी त्याग करें। जो त्याग किये बिना व्यर्थ ही विनीत (शमदमादि साधनों में तत्पर) होने का मिथ्या दावा करते हैं,

तत्र विज्ञानसंयुक्ता त्रिविधा चेतना ध्रुवा । सुखदुःखेति यामाहुरदुःखासुखेति च ॥६०॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च मूर्त्यर्थमेव ते त्रयः । एते ह्यामरणात्पंच सद्गुणा ज्ञानसिद्धये ॥६१॥
तेषु कर्माणि सिद्धिश्च सर्वतत्त्वार्थनिश्चयः । तमाहुः परमं शुद्धं बुद्धिरित्यव्ययं महत् ॥६२॥
इमं गुणसमाहारमात्मभावेन पश्यतः । असम्यग्दर्शनैर्दुःखमनंतं नोपशाम्यति ॥६३॥
अनात्मेति च यद्दृष्टं तेनाहं न ममेत्यपि । वर्तते किमधिष्ठानात्प्रसक्ता दुःखसंततिः ॥६४॥
तत्र सम्यग्जनो नाम त्यागशास्त्रमनुत्तमम् । शृणुयात्तत्र मोक्षाय भाष्यमाणं भविष्यति ॥६५॥
त्याग एव हि सर्वेषामुक्तानामपि कर्मणाम् । नित्यं मिथ्याविनीतानां क्लेशो दुःखावहो मतः ॥६६॥
द्रव्यत्यागे तु कर्माणि भोगत्यागे व्रतानि च । सुखत्यागे तपो योगं सर्वत्यागे समापना ॥६७॥
तस्य मार्गोऽयमद्वैधः सर्वत्यागस्य दर्शितः । विप्रहाणाय दुःखस्य दुर्गतिर्हि तथा भवेत् ॥६८॥
पंच ज्ञानेंद्रियाण्युक्त्वा मनः षष्ठानि चेतसि । बलषष्ठानि वक्ष्यामि पंच कर्मेंद्रियाणि तु ॥६९॥
हस्तौ कर्मेंद्रियं ज्ञेयमथ पादो गतींद्रियम् । प्रजननानंदयोर्मेढ्रो विसर्गो पायुरिंद्रियम् ॥७०॥
वाक्च शब्दविशेषार्थमिति पंचान्वितं विदुः । एवमेकादशैतानि बुद्ध्या त्वसृजेन्मनः ॥७१॥
कर्णौ शब्दश्च चित्तं च त्रयः श्रवणसंग्रहे । तथा स्पर्शे तथा रूपे तथैव रसगंधयोः ॥७२॥
एवं पंच त्रिका ह्येते गुणस्तदुपलब्धये । येनायं त्रिविधो भावः पर्यायात्समुपस्थितः ॥७३॥
सात्त्विको राजसश्चापि तामसश्चापि ते त्रयः । त्रिविधा वेदना येषु प्रसृता सर्वसाधिनी ॥७४॥
प्रहर्षः प्रीतिरानंदः सुखं संशान्तचित्तता । अकुतश्चित्कुतश्चिद्वा चित्ततः सात्त्विको गुणः ॥७५॥
अतुष्टिः परितापश्च शोको लोभस्तथाऽक्षमा । लिंगानि रजसस्तानि दृश्यंते हेत्वहेतुतः ॥७६॥
अविवेकस्तथा मोहः प्रमादः स्वप्नतंद्रिता । कथंचिदपि वर्तंते विविधास्तामसा गुणाः ॥७७॥

उन्हें दुःख देने वाले अविद्या रूप क्लेश प्राप्त होते रहते हैं। शास्त्रों में द्रव्य का त्याग करने के लिए यज्ञ आदि कर्म, भोग का त्याग करने के लिए व्रत, दैहिक सुखों के त्याग के लिए तप और सब कुछ त्यागने के लिए योग के अनुष्ठान को आज्ञा दी गई है। यही त्याग की सीमा है। सर्वस्व-त्याग का यह एकमात्र मार्ग ही दुःखों से छुटकारा पाने के लिए उत्तम बताया गया है। इसका आश्रय न लेने वालों को दुर्गति भोगनी पड़ती है।

छठे मन सहित पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ बतायी हैं, जिनकी स्थिति बुद्धि में है। [पाँच कर्मेन्द्रियाँ ये हैं—] दोनों हाथ काम करने वाली इन्द्रिय हैं। पैर चलने-फिरने का कार्य करने वाली इन्द्रिय हैं। लिंग मैथुन-सुख और सन्तानोत्पादन आदि के लिए है। गुदा का कार्य मलत्याग करना है। वाक् इन्द्रिय शब्द-विशेष का उच्चारण करने के लिए है। मन को इन पाँचों से संयुक्त माना गया है। इस प्रकार पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और मन-ये सब मिलाकर ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। इन सब को मन रूप जानकर बुद्धि के द्वारा शीघ्र इनका त्याग कर देना चाहिए ॥४५-७१॥ श्रवणकाल में श्रोत्र रूपी इन्द्रिय, शब्द रूपी विषय और चित्त रूपी कर्ता—इन तीन का संयोग होता है। इसी प्रकार स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध के अनुभव-काल में भी इन्द्रिय, विषय एवं मन का संयोग अपेक्षित है। इस तरह तीन-तीन के पाँच समुदाय हैं। ये सब गुण कहे गये हैं। इनसे शब्दादि विषयों का ग्रहण होता है और इसी के लिए ये कर्ता, कर्म और करण रूपी त्रिविध भाव बारी-बारी से उपस्थित होते हैं। इनमें से एक-एक के सात्त्विक, राजस और तामस तीन-तीन भेद हैं। हर्ष, प्रीति, आनन्द, सुख और चित्त की शान्ति—ये सब भाव बिना किसी कारण के हों या किसी कारणवश हों, सात्त्विक गुण माने गये हैं ॥७२-७५॥ असंतोष, संताप, शोक, लोभ तथा क्षमा का अभाव—ये किसी कारण से हों या अकारण—रजोगुण के चिह्न हैं। अविवेक, मोह, प्रमाद, स्वप्न और आलस्य—किसी तरह भी क्यों न हों, तमोगुण के ही नाना रूप हैं।

इमां च यो वेद विमोक्षबुद्धिमात्मानमन्विच्छति चाप्रमत्तः ।
न लिप्यते कर्मफलैरनिष्टैः पत्रं बिसस्येव जलेन सिक्तम् ॥७८॥
दृढैर्हि पाशैर्विविधैर्विमुक्तः प्रजानिमित्तैरपि दैवतैश्च ।
यदा ह्यसौ दुःखसौख्ये जहाति मुक्तस्तदाऽग्र्यां गतिमेत्यलिंगः ॥७९॥
श्रुतिप्रमाणागममंगलैश्च शेते जरामृत्युभयादतीतः ।
क्षीणे च पुण्ये विगते च पापे ततोनिमित्ते च फले विनष्टे ॥८०॥
अलेपमाकाशमलिंगमेवमास्थाय पश्यंति महत्यशक्ताः ।
यथोर्णनाभिः परिवर्तमानस्तंतुक्षये तिष्ठति पात्यमानः ॥८१॥
तथा विमुक्तः प्रजहाति दुःखं विध्वंसते लोष्टमिवाद्रिमृच्छन् ।
यथा रुरुः शृंगमथो पुराणं हित्वा त्वचं वाप्युरगो यथा च ॥८२॥
विहाय गच्छन्ननवेक्षमाणस्तथा विमुक्तो विजहाति दुःखम् ।
मत्स्यं यथा वाप्युदके पतंतमुत्सृज्य पक्षी निपतत्यशक्तः ॥८३॥
तथा ह्यसौ दुःखसौख्ये विहाय मुक्तः परार्द्ध्यां गतिमेत्यलिंगः ॥८४॥
इदममृतपदं निशम्य राजा स्वयमिह पंचशिखेन भाष्यमाणम् ।
निखिलमभिसमीक्ष्य निश्चितार्थः परमसुखी विजहार वीतशोकः ॥८५॥

जो इस मोक्ष-विद्या को जानकर सावधानी के साथ तत्त्व का अनुसन्धान करता है, वह जल से कमल के पत्ते की भाँति कर्म के अनिष्ट फलों से कभी लिप्त नहीं होता। सन्तानों के प्रति आसक्ति और भिन्न-भिन्न देवताओं के लिए सकाम यज्ञों का अनुष्ठान—ये सब मनुष्य के लिए नाना प्रकार के दृढ़ बन्धन हैं। जब वह इन बन्धनों से छूटकर दुःख-सुख की चिन्ता छोड़ देता है, उस समय सर्वश्रेष्ठ गति (मुक्ति) प्राप्त कर लेता है। श्रुति के महावाक्यों का विचार और शास्त्र में बताये हुए मंगलमय साधनों का अनुष्ठान करने से मनुष्य जरा तथा मृत्यु के भय से रहित होकर सुख से रहता है। जब पुण्य और पाप का क्षय तथा उनसे मिलने वाले सुख-दुःखादि फलों का नाश हो जाता है, उस समय सब वस्तुओं की आसक्ति से रहित पुरुष आकाश के समान निर्लेप एवं निर्गुण आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है। जो शरीर में आसक्ति न रखकर उसके प्रति अपनेपन का अभिमान त्याग देता है, वह दुःख से छूट जाता है। जैसे वृक्ष के प्रति आसक्ति न रखने वाला पक्षी जल में गिरते हुए वृक्ष को छोड़कर उड़ जाता है, उसी प्रकार जो शरीर की आसक्ति को छोड़ चुका है, वह मुक्त पुरुष सुख और दुःख दोनों का त्याग करके उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥७६-८४॥

पञ्चशिख के बताये हुए इस अमृतमय ज्ञान को सुनकर राजा जनक उसे पूर्ण रूप से विचार करके एक निश्चित सिद्धान्त पर पहुँच गए और शोक-रहित होकर बड़े सुख से रहने लगे ॥८५॥ फिर तो उनकी स्थिति ऐसी

अपि च भवति मैथिलेन गीतं नगरमुपाहितमग्निनाभिवीक्ष्य ।
न खलु मम हि दह्यतेऽत्र किंचित्स्वयमिदमाह किल स्म भूमिपालः ॥८६॥
इमं हि यः पठति विमोक्षनिश्चयं महामुने सततमवेक्षते तथा ।
उपद्रवाननुभवते ह्यदुःखितः प्रमुच्यते कपिलमिवैत्य मैथिलः ॥८७॥

इतिबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने
द्वितीयपादे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा नारदो विप्रा मैथिलाध्यात्ममुत्तमम् । पुनः पप्रच्छ तं प्रीत्या सनंदनमुदारधीः ॥१॥

नारद उवाच

आध्यात्मिकादित्रिविधं तापं नानुभवेद्यथा । प्रब्रूहि तन्मुने मह्यं प्रपन्नाय दयानिधे ॥२॥

हो गई कि एक बार मिथिला नगरी को आग से जलती देखकर भूपाल ने स्वयं यह उद्‌गार प्रकट किया कि 'इस नगर के जलने से मेरा कुछ भी नहीं जलता।' महामुनि नारदजी, इस अध्याय में मोक्षतत्त्व का निर्णय किया गया है। जो सदा इसका स्वाध्याय और चिन्तन करता है, वह दुःख-शोक से रहित हो कभी किसी प्रकार के उपद्रव का अनुभव नहीं करता तथा जिस प्रकार राजा जनक पञ्चशिख के समागम से इस ज्ञान को पाकर मुक्त हो गए थे, उसी प्रकार वह भी मोक्ष प्राप्त करता है ॥८६-८७॥

श्रीनारदीयमहापुराण के पूर्वभाग में पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४५॥

नोट--इस अध्याय का अनुवाद दूसरे संस्करण से किया गया है, जो गीता प्रेस के सौजन्य से हमें प्राप्त हुआ। अतः गीता प्रेस के प्रति हम कृतज्ञता प्रकट करते हैं और पाठक के प्रति क्षमाभ्यर्थना, क्योंकि मूलानुगामी अनुवाद न होने पर भी विषयानुकूल होने से हमने इसे उद्धृत किया है। [अनुवादक]

अध्याय ४६

त्रिविध तापों से छूटने के उपाय आदि का प्रतिपादन

सूत बोले—विप्रगण! उदार बुद्धि नारद ने जनक के उस उत्तम अध्यात्मज्ञान को सुनकर पुनः प्रसन्न हो सनन्दन से पूछा--॥१॥

नारद बोले—दयानिधि! मुनिवर! जिस उपाय से आध्यात्मिक आदि त्रिविध तापों से कष्ट न मिले ऐसा उपाय आप मुझको बतलाइये, मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥२॥

सनंदन उवाच

तदस्य त्रिविधं दुःखमिह जातस्य पंडित । गर्भे जन्मजराद्येषु स्थानेषु प्रभविष्यतः ॥३॥
निरस्तातिशयाह्लादसुखभावैकलक्षणा । भेषजं भगवत्प्राप्तिरेका चात्यंतिकी मता ॥४॥
तस्मात्तत्प्राप्तये यत्नः कर्तव्यः पंडितैर्नरैः । तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्तं महामुने ॥५॥
आगमोत्थं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तथोच्यते । शब्दब्रह्मागममयं परं ब्रह्म विवेकजम् ॥६॥
मनुरप्याह वेदार्थं स्मृत्वायं मुनिसत्तमः । तदेतच्छ्रूयतामत्र सुबोधं गदतो मम ॥७॥
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत् । शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥८॥
द्वे विद्ये वेदितव्ये चेत्याह चाथर्वणी श्रुतिः । परमा त्वक्षरप्राप्तिर्ऋग्वेदादिमया परा ॥९॥
यत्तदव्यक्तमजरमनीहमजमव्ययम् । अनिर्देश्यमरूपं च पाणिपादादिसंयुतम् ॥१०॥
विभुं सर्वगतं नित्यं भूतयोनिमकारणम् । व्याप्यं व्याप्तं यतः सर्वं तं वै पश्यंति सूरयः ॥११॥
तद्ब्रह्म तत्परं धाम तद्ध्येयं मोक्षकांक्षिभिः । श्रुतिवाक्योदितं सूक्ष्मं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥१२॥
तदेव भगवद्वाच्यं स्वरूपं परमात्मनः । वाचको भगवच्छब्दस्तस्योद्दिष्टोऽक्षयात्मनः ॥१३॥
एवं निगदितार्थस्य यत्तत्त्वं तस्य तत्त्वतः । ज्ञायते येन तज्ज्ञानं परमन्यत्त्रयोमयम् ॥१४॥
अशब्दगोचरस्यापि तस्य वै ब्रह्मणो द्विज । पूजायां भगवच्छब्दः क्रियते ह्यौपचारिकः ॥१५॥
शुद्धे महाविभूत्याख्ये परे ब्रह्मणि वर्त्तते । भगवन्भगवच्छब्दः सर्वकारणकारणे ।
ज्ञेयं ज्ञातेति तथा भकारोऽर्थद्वयात्मकः । तेनागमयिता स्रष्टा गकारोऽयं तथा मुने ॥१६॥

सनन्दन ने कहा—पंडित ! जन्मजरादि के स्थान इस संसार में उत्पन्न जीव के साथ इन त्रिविध तापों का सम्बन्ध गर्भ में आने के साथ ही हो जाता है ॥३॥ इस त्रिविध ताप के शमन की एक मात्र औषधि अत्यन्त सुख को तिरस्कृत करने वाली भाव-लक्षणा भगवत्प्राप्ति ही है ॥४॥ इसलिए पंडित मनुष्य उस भगवान् को पाने का प्रयत्न करें । महामुने ! उसको पाने का साधन भी ज्ञान और कर्म है ॥५॥ ज्ञान भी दो प्रकार का है, शास्त्राध्ययन द्वारा प्राप्त और विवेक द्वारा प्राप्त । शब्दब्रह्म अर्थात् वेद का ज्ञान शास्त्रज्ञान है और परब्रह्म परमात्मा का बोध विवेकजन्य ज्ञान है ॥६॥ मुनिश्रेष्ठ ! मनु ने भी वेदार्थ का स्मरण कर इसी बात का समर्थन किया है । यहाँ उस ज्ञान को कह रहा हूँ सुनो ॥७॥ दो प्रकार के ब्रह्म—शब्द ब्रह्म और परब्रह्म को जानना आवश्यक है । शब्द ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने वाला पर-ब्रह्म को प्राप्त कर लेता हैं ॥८॥ आथर्वणी श्रुति भी कहती है 'दो विद्याओं को अवश्य जानना चाहिए—परा और अपरा । परा अक्षर प्राप्ति को कहते हैं और अपरा ऋग्वेदादिमयी है ॥९॥ जो अव्यक्त, अजर, अनीह, अज, अव्यय, अनिर्देश्य, अरूप, पाणिपाद से युक्त, विभु, सर्वगत, नित्य, प्राणियों का उत्पादक, अकारण, और जिससे सारा जगत् व्याप्त है उस ब्रह्म का सुधीजन सर्वदा दर्शन करते हैं ॥१०-११॥ मोक्ष के इच्छुक जनों को उस ब्रह्म, परमधाम का ध्यान करना चाहिए । श्रुतियों ने उस विष्णु के सूक्ष्म परम पद का वर्णन किया है ॥१२॥ वही भगवान् नाम से प्रसिद्ध है, परमात्मा का वही स्वरूप है । उस अविनाशी का वाचक भगवान् शब्द है ॥१३॥ इस प्रकार जिसकी व्याख्या की गई है उसका जो सार है उसको जिस साधन से जानते हैं वही पर ज्ञान है और दूसरा त्रयी (वेदत्रयी) मय जो है वह अपर ज्ञान (आगममय) है ॥१४॥ द्विज ! यद्यपि वह ब्रह्म किसी शब्द या वाणी का गोचर नहीं है परन्तु उसकी पूजा के लिए भगवान् शब्द औपचारिक (आरोपित) प्रयोग है अन्यथा उसका स्मरण या पूजा कैसे संभव होती ॥१५॥ भगवन् ! शुद्ध, सर्वकारणकारण, महाविभूति परब्रह्म के लिए भगवान् शब्द का प्रयोग किया जाता है । मुने ! भकार के दो अर्थ हैं—ज्ञेय और ज्ञाता ।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥१७॥
वसंति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि । सर्वभूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽव्ययः ॥१८॥
एवमेव महाशब्दो भगवानिति सत्तम । परमब्रह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यगः ॥१९॥
तत्र पूज्यपदार्थोक्तिः परिभाषासमन्वितः । शब्दोऽयं नोपचारेण चान्यत्र ह्युपचारतः ॥२०॥
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥२१॥
ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः । भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥२२॥
सर्वाणि तत्र भूतानि वसंति परमात्मनि । भूतेषु वसनादेव वासुदेवस्ततः स्मृतः ॥२३॥
खांडिक्यं जनकं प्राह पृष्टः केशिध्वजः पुरा । नामव्याख्यामनंतस्य वासुदेवस्य तत्त्वतः ॥२४॥
भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसंत्यत्र च तानि यत् । धाता विधाता जगतां वासुदेवस्ततः प्रभुः ॥२५॥

स सर्वभूतप्रकृतिं विकारं गुणादिदोषांश्च मुने ह्यतीतः । ॥२६॥
अतीतसर्वावरणोऽखिलात्मा तेनास्तृतं यद्भुवनांतरालम्
समस्तकल्याणगुणं गुणात्मको हित्वातिदुःखावृतभूतसर्गः । ॥२७॥
इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः संसाधिताशेषजगद्धितोऽसौ
तेजोबलैश्वर्यमहावबोधं स्ववीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः । ॥२८॥
परः पराणां सकला न यत्र क्लेशादयः संति परावरेशे

गकार के तीन अर्थ हैं—गमयिता (प्रेरक), नेता (संचालक) तथा स्रष्टा । भ और ग के योग से भग शब्द बनता है, जिसका अर्थ इस प्रकार है सम्पूर्ण ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, वैराग्य, ज्ञान इन छह अर्थों में भग शब्द का प्रयोग कहा गया है ॥१६-१७॥ उस अखिलात्मा और भूतात्मा में सब भूत (पदार्थ) रहते हैं और वह अशेष पदार्थों में रहता है । वकार का अर्थ अव्यय है ॥१८॥ महात्मन् ! भगवान् इस महाशब्द का ऐसा ही अर्थ है। परम ब्रह्मभूत वासुदेव का द्योतक और शब्द नहीं है ॥१९॥ पूज्य पद का जो अर्थ है, उसको सूचित करने की परिभाषा से युक्त यह भगवत् शब्द परमात्मा के लिए तो प्रधान रूप से प्रयुक्त होता है और दूसरों के लिए गौण रूप से । जो उत्पत्ति, प्रलय, भूतों की गति-अगति और विद्या-अविद्या को जानता है उसको ही भगवान् कहा जाता है ॥२१॥ ज्ञानशक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और अशेष तेज ये भगवत् शब्द के अर्थ हैं । बिना इन गुणों के भगवत् शब्द का प्रयोग कैसे किया जा सकता है ॥२२॥ उस परमात्मा में सब भूत निवास करते हैं और वह समस्त भूतों में वास करता है, इसलिए उसको वासुदेव कहा जाता है ॥२३॥ पहले खाण्डिक्य जनक के पूछने पर केशिध्वज ने उनसे इसी वासुदेव के नाम-माहात्म्य को तत्त्वतः कहा था ॥२४॥ वह सब भूतों में रहता है और सारे पदार्थ उसमें रहते हैं । वह संसार का धाता और विधाता है, अतः उसको प्रभु वासुदेव कहते हैं ॥२५॥ मुने ! वह सब भूतों की प्रकृति, विकृति और गुण आदि के दोषों से परे है । वह अखिलांतरात्मा सब आवरणों से मुक्त है । उससे सम्पूर्ण भुवन-मण्डल व्याप्त है ॥२६॥ सम्पूर्ण कल्याणमय गुण उसके स्वरूप हैं । उन्होंने अपनी शक्ति के लेशमात्र से सम्पूर्ण भूतसमुदाय को व्याप्त कर रखा है । वे अपनी इच्छा मात्र से मन के अनुकूल अनेक शरीर धारण करते रहते हैं और सारे जगत् का हित साधन करते रहते हैं ॥२७॥ और तेज, बल, ऐश्वर्य, महाज्ञान, वीर्य, शक्ति और सब गुणों की वह एक राशि है । वे प्रकृति आदि से भी परे हैं और उन समस्त कार्यकारणों के स्वामी परमेश्वर में किसी प्रकार का क्लेश नहीं है ॥२८॥

स ईश्वरो व्यष्टिसमष्टिरूपोऽव्यक्तस्वरूपः प्रकटस्वरूपः ।
सर्वेश्वरः सर्वनिसर्गवेत्ता समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः ॥२९॥
स ज्ञायते येन तदस्तदोषं शुद्धं परं निर्मलमेव रूपम् ।
संदृश्यते चाप्यवगम्यते च तज्ज्ञानमज्ञानमतोऽन्यदुक्तम् ॥३०॥
स्वाध्यायसंयमाभ्यां स दृश्यते पुरुषोत्तमः । तत्प्राप्तिकारणं ब्रह्म तदेतत्प्रतिपद्यते ॥३१॥
स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत् । स्वाध्याययोगसंपत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥३२॥
तदीक्षणाय स्वध्यायश्चक्षुर्योगस्तथापरम् । न मांसचक्षुषा द्रष्टुं ब्रह्मभूतः स शक्यते ॥३३॥

नारद उवाच

भगवंस्तमहं योगं ज्ञातुमिच्छामि तं वद । ज्ञाते यन्नाखिलाधारं पश्येयं परमेश्वरम् ॥३४॥

सनंदन उवाच

केशिध्वजो यथा प्राह खांडिक्याय महात्मने । जनकाय पुरा योगं तथाहं कथयामि ते ॥३५॥

नारद उवाच

खांडिक्यः कोऽभवद्ब्रह्मन्को वा केशिध्वजोऽभवत् । कथं तयोश्च संवादो योगसंबन्धवानभूत् ॥३६॥

सनंदन उवाच

धर्मध्वजो वै जनकस्तस्य पुत्रोऽमितध्वजः । कृतध्वजोऽस्य भ्राताभूत्सदाध्यात्मरतिर्नृपः ॥३७॥
कृतध्वजस्य पुत्रोऽभूद्धन्यः केशिध्वजो द्विजः । पुत्रोऽमितध्वजस्यापि खांडिक्यजनकाभिधः ॥३८॥

जो ईश्वर व्यष्टि और समष्टि स्वरूप, अव्यक्त और व्यक्त स्वरूप, सर्वेश्वर, सर्वप्रकृतिज्ञाता, समस्त शक्ति से युक्त परमेश्वर है ॥२९॥ उसको जैसे जाना जाता है और उसके निर्दोष, शुद्ध, पर, निर्मल रूप को जिसके द्वारा जाना जाता है या देखा जाता है उसको ज्ञान और उससे अतिरिक्त को अज्ञान कहते हैं ॥३०॥ वह पुरुषोत्तम स्वाध्याय और संयम के द्वारा प्राप्त होता है। उसकी प्राप्ति का कारण जो ब्रह्म (शब्द ब्रह्म) है उसका प्रतिपादन किया जा रहा है ॥३१॥ स्वाध्याय से योग को संयुक्त करे और योग से स्वाध्याय को। इस प्रकार स्वाध्याय और योग की सम्मिलित शक्ति से परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन होता है ॥३२॥ उसके दर्शन के लिए स्वाध्याय और योग ही नेत्र हैं। इन स्थूल नेत्रों से वह ब्रह्मभूत पुरुषोत्तम देखा नहीं जा सकता ॥३३॥

नारद बोले—भगवन् ! जिसके जान लेने पर मैं सर्वाधार परमेश्वर का दर्शन कर सकूं, उस योग को जानना चाहता हूँ। कृपा करके उसका वर्णन कीजिए ॥३४॥

सनन्दन ने कहा—प्राचीन काल में केशिध्वज ने महात्मा खांडिक्य जनक से इस योग के विषय में जो कुछ कहा था उसी को यहाँ कह रहा हूँ ॥३५॥

नारद बोले—ब्रह्मन् ! खांडिक्य कौन थे, केशिध्वज का परिचय क्या है, किस प्रकार उन दोनों में योग संबन्धी वार्ता हुई—इसको कहिए ॥३६॥

सनन्दन ने कहा—जनक धर्मध्वज नामक एक राजा था। उसके पुत्र का नाम अमितध्वज था। उस अमित ध्वज का भ्राता कृतध्वज था, जो सदा अध्यात्म-चिन्तन में ही लगा रहता था। कृतध्वज का यशस्वी पुत्र केशिध्वज हुआ। अमितध्वज का भी खांडिक्य जनक नामक पुत्र था। खांडिक्य को राजा केशिध्वज ने सिंहासन से उतार

कर्ममार्गे हि खांडिक्यः स्वराज्यादवरोपितः । पुरोधसा मंत्रिभिश्च समवेतोऽल्पसाधनः ॥३९॥
राज्यान्निराकृतः सोऽथ दुर्गारण्यचरोऽभवत् । इयाज सोऽपि सुबहून् यज्ञाञ्ज्ञानव्यपाश्रयः ॥४०॥
ब्रह्मविद्यामधिष्ठाय ततुं मृत्युमपि स्वयम् । एकदा वर्तमानस्य यागे योगविदां वर ॥४१॥
तस्य धेनुं जघानोग्रः शार्दूलो विजने वने । ततो राजा हतां ज्ञात्वा धेनुं व्याघ्रेण चर्त्विजः ॥४२॥
प्रायश्चित्तं स पप्रच्छ किमत्रेति विधीयताम् । ते चोचुर्न वयंविद्मः कशेरुः पृच्छ्यतामिति ॥४३॥
कशेरुरपि तेनोक्तस्तथेति प्राह नारद । शुनकं पृच्छ राजेन्द्र नाहं वेद स वेत्स्यति ॥४४॥
स गत्वा तमपृच्छच्च सोऽप्याह नृपतिं मुने । न कशेरुर्नचैवाहं न चान्यः सांप्रतं भुवि ॥४५॥
वेत्त्येक एव त्वच्छत्रुः खांडिक्यो यो जितस्त्वया । स चाह तं व्रजाम्येष प्रष्टुमात्मरिपुं मुने ॥४६॥
प्राप्त एव मया यज्ञे यदि मां स हनिष्यति । प्रायश्चित्तं स चेत्पृष्टो वदिष्यति रिपुर्मम ॥४७॥
ततश्चाविकलो योगो मुनिश्रेष्ठ भविष्यति । इत्युक्त्वा रथमारुह्य कृष्णाजिनधरो नृपः ॥४८॥
वनं जगाम यत्रास्ते खांडिक्यः स महीपतिः । तमायांतं समालोक्य खांडिक्यो रिपुमात्मनः ॥४९॥
प्रोवाच क्रोधताम्राक्षः समारोपितकार्मुकः ॥

खांडिक्य उवाच ॥५०॥

कृष्णाजिनत्वक्कवचभावेनास्मान्हनिष्यसि
कृष्णाजिनधरे वेत्सि न मयि प्रहरिष्यति । मृगाणां वद पृष्ठेषु मूढ कृष्णाजिनं न किम् ॥५१॥

दिया। राज्य से निष्कासित होकर खांडिक्य थोड़े-से पुरोहित, मंत्री और थोड़ी-सी सामग्री के साथ राज्य से बाहर घने जंगलों में रहने लगा। इधर केशिध्वज ने भी बहुत से ज्ञानपूर्वक यज्ञ किये ॥३७-३९॥ स्वयं ब्रह्म-विद्या के अभ्यास से संसार-सागर को पार करने का उपाय सोच लिया। योगिवर ! एक दिन वह राजा योग-साधन में तल्लीन था कि उसकी गाय को निर्जन वन में एक बाघ ने मार डाला ॥४०½॥ ऋत्विज राजा ने जब यह सुना कि बाघ ने गाय की हत्या कर दी है तो उसने ऋषियों से पूछा कि कौन-सा प्रायश्चित्त करना चाहिए। उन लोगों ने कहा कि हम लोग नहीं जानते। आप ऋषि कशेरु से पूछिए ॥४१-४२॥ नारद ! जब कशेरु से यह बात पूछी गई तो उन्होंने कहा कि राजेन्द्र ! शुनक से पूछिए। मैं नहीं जानता, वही जानते हैं ॥४३॥

मुने ! राजा ने जाकर शुनक से पूछा तो उसने भी कहा 'न तो मैं जानता हूँ, न कशेरु और न तो इस समय इस पृथ्वी पर दूसरा ही कोई है जो इस रहस्य को जानता हो। एक ही व्यक्ति ऐसा है जो इसको जानता है, वह है तुम्हारा शत्रु खांडिक्य जिसे तुमने परास्त किया था ॥४४½॥ यह सुनकर उसने कहा—मुने ! मैं अभी यह बात पूछने के लिए अपने उस शत्रु के पास जाऊँगा। यदि वह इस अवस्था में मुझे मार देगा तो भी मुझे यज्ञफल ही प्राप्त होगा और यदि पूछने पर प्रायश्चित्त विधि को बता देगा तब तो हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरी योग-साधना पूरी हो ही जायगी ॥४५-४६॥ यह कहकर वह राजा कृष्ण मृगचर्म को धारण कर रथ पर बैठ कर उस वन में गया जहाँ महामति खांडिक्य विराजमान था। खाण्डिक्य अपने शत्रु को अपनी ओर आते देखकर क्रोध से आँखें लाल कर धनुष पर बाण चढ़ाता हुआ बोला ॥४७-४८½॥

'तुम आज कृष्णमृगचर्म का कवच पहन कर हमलोगों को मारोगे क्या ? क्या तुम यह सोचते हो कि कृष्ण मृगचर्म पहन लेने के कारण तुमको कोई नहीं मारेगा ? कहो तो सही मृगों की पीठ पर कृष्णाजिन नहीं

येषां मत्वा वृथा चोग्राः प्रहिताः शितसायकाः । स त्वामहं हनिष्यामि न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ॥५२॥
आततायग्यसि दुर्बुद्धे मम राज्यहरो रिपुः ।

केशिध्वज उवाच

खांडिक्य संशयं प्रष्टुं भवंतमहमागतः ॥५३॥
न त्वां हंतुं विचार्यैतत्कोपं बाणं च मुंच वा । ततः स मंत्रिभिः सार्द्धमेकांते सपुरोहितः ॥५४॥
मंत्रयामास खांडिक्यः सर्वैरेव महामतिः । तमूचुर्मंत्रिणो वध्यो रिपुरेव वशंगतः ॥५५॥
हतेऽत्र पृथिवी सर्वा तव वश्या भविष्यति । खांडिक्यश्चाह तान्सर्वानेवमेव न संशयः ॥५६॥
हते तु पृथिवी सर्वा मम वश्या भविष्यति । परलोकजयस्तस्य पृथिवी सकला मम ॥५७॥
न हन्मि चेल्लोकजयो मम तस्य वसुंधरा । परलोकजयोऽनंतः स्वल्पकालो महीजयः ॥५८॥
तस्मान्नैनं हनिष्येऽहं यत्पृच्छति वदामि तत् । ततस्तमभ्युपेत्याह खांडिक्यो जनको रिपुम् ॥५९॥
प्रष्टव्यं यत्त्वया सर्वं तत्पृच्छ त्वं वदाम्यहम् । ततः प्राह यथावृत्तं होमधेनुवधं मुने ॥६०॥
ततश्च तं स पप्रच्छ प्रायश्चित्तं हि तद्व्रतम् । स चाचष्ट यथान्यायं मुने केशिध्वजाय तत् ॥६१॥
प्रायश्चित्तमशेषं हि यद्वै तत्र विधीयते । विदितार्थः स तेनैवमनुज्ञातो महात्मना ॥६२॥
यागभूमिमुपागत्य चक्रे सर्वां क्रियां क्रमात् । क्रमेण विधिवद्यागं नीत्वा सोऽवभृथाप्लुतः ॥६३॥
कृतकृत्यस्ततो भूत्वा चिंतयामास पार्थिवः । पूजिता ऋत्विजः सर्वे सदस्या मानिता मया ॥६४॥

होता है क्या ? जिनको जानकर भी तुम व्यर्थ में उनके ऊपर अपने तीखे बाणों को फेंकते हो । आज तुम्हारा शत्रु मैं तुमको अवश्य मारूँगा, मेरे जीते जी तुम आज बच नहीं सकोगे । दुर्बुद्धे ! तुम मेरे राज्य के छीनने वाले आततायी शत्रु हो ॥४९-५१½॥

केशिध्वज बोला—खाण्डिक्य ! तुमसे कुछ अपनी शंकाओं का समाधान पूछने के लिए आया हूँ, तुमको मारने के लिए नहीं । अतएव यह जानकर तुम शान्त हो जाओ । अपने बाण को धनुष से उतार दो । यह सुनकर महामति खाण्डिक्य ने एकान्त में अपने सब मंत्रियों और पुरोहितों से परामर्श किया ॥५२-५३॥ मन्त्रियों ने कहा कि यह शत्रु इस समय वश में आया हुआ है, अतः इसका वध अवश्य करना चाहिए । इसको मार देने पर सारा राज्य तुम्हारे अधिकार में आ जायगा ॥५४½॥

खाण्डिक्य ने कहा—इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसा करने से सारा राज्य मेरे अधिकार में आ जायगा । उसकी हत्या करने से पृथ्वी तो मेरे वश में हो जायगी, परन्तु वस्तुतः परलोक-विजयी वही होगा ॥५५-५६॥ यदि नहीं मारता तो परलोक विजय का श्रेय मुझको प्राप्त होगा और उसके अधिकार में केवल पृथ्वी रहेगी । परलोक-जय अनन्त काल तक रहेगा, परन्तु लौकिक विजय क्षण भर ही ॥५७॥ इसलिए इसका वध नहीं करूँगा । यह जो कुछ पूछ रहा है, उसका उत्तर अवश्य दूँगा । इतना निश्चय करने के बाद जनक खाण्डिक्य अपने शत्रु के पास आया और कहा—तुमको जो कुछ पूछना हो पूछो, मैं बताऊँगा ॥५८॥ मुने ! ऐसा आश्वासन पाकर उसने होमधेनु के वध की कथा कह दी । इसके बाद उसने उसके लिए प्रायश्चित्त व्रत पूछा । मुने ! उसने न्यायानुकूल प्रायश्चित्त की विधि बता दी और उससे सम्बन्ध रखने वाली अन्य शेष क्रियाओं को भी बता दिया ॥५९-६०½॥ उस महात्मा से इस प्रकार सब तत्त्व को जानकर वह उसकी आज्ञा लेकर यज्ञ भूमि में आया और क्रमशः सारी विधियाँ समाप्त कीं । क्रमशः सारी याज्ञिक क्रियाओं के करने के अनन्तर उसने अवभृथ-स्नान किया ॥६१-६२॥ सब कार्यों से निवृत्त होकर वह राजा सोचने लगा, मैंने सब ऋत्विजों की पूजा की सदस्यों का सम्मान भी किया,

तथैवार्थिजनोऽप्यर्थैर्योजितोऽभिमतैर्मया । यथाहं मर्त्यलोकस्य मया सर्वं विचेष्टितम् ॥६५॥
अनिष्पन्नक्रियं चेतस्तथा न मम किं यथा । इत्थं तु चिंतयन्नेव सस्मार स महीपतिः ॥६६॥
खांडिक्याय न दत्तेति मया वै गुरुदक्षिणा । स जगाम ततो भूयो रथमारुह्य पार्थिवः ॥६७॥
स्वायंभुवः स्थितो यत्र खांडिक्योऽरण्यदुर्गमम् । खांडिक्योऽपि पुनर्दृष्ट्वा तमायान्तं धृतायुधः ॥६८॥
तस्थौ हंतुं कृतमतिस्तमाह स पुनर्नृपः । अहं तु नापकाराय प्राप्तः खांडिक्य मा क्रुधः ॥६९॥
गुरोर्निष्कृतिदानाय मामवेहि समागतम् । निष्पादितो मया यागः सम्यक् त्वदुपदेशतः ॥७०॥
सोऽहं ते दातुमिच्छामि वृणीष्व गुरुदक्षिणाम् । इत्युक्तो मंत्रयामास स भूयो मंत्रिभिः सह ॥७१॥
गुरोर्निष्कृतिकामोऽयं किमयं प्रार्थ्यतां मया । तमूचुर्मंत्रिणो राज्यमशेषं याच्यतामयम् ॥७२॥
कृतिभिः प्रार्थ्यते राज्यमनायासितसैनिकैः । प्रहस्य तानाह नृपः स खांडिक्यो महीपतिः ॥७३॥
स्वल्पकालं महीराज्यं मादृशैः प्रार्थ्यते कथम् । एतमेतद्भवतोऽत्र स्वार्थसाधनमंत्रिणः ॥७४॥
परमार्थः कथं कोऽत्र यूयं नात्र विचक्षणाः । इत्युक्त्वा समुपेत्यैनं स तु केशिध्वजं नृपम् ॥७५॥
उवाच किमवश्यं त्वं दास्यसि गुरुदक्षिणाम् । बाढमित्येव तेनोक्तः खांडिक्यस्तमथाब्रवीत् ॥७६॥
भवानध्यात्मविज्ञानपरमार्थविचक्षणः । यदि चेद्दीयते मह्यं भवता गुरुनिष्क्रयः ॥७७॥
तत्क्लेशप्रशमायालं यत्कर्म तदुदीरय

साथ ही याचकों को उनकी इच्छा के अनुसार दान भी दिया। मैंने जिस प्रकार मर्त्यलोक की विधियाँ होती हैं उनको पूरा कर दिया, परन्तु फिर भी मेरे चित्त में कुछ कार्य सिद्ध न होने के समान असंतोष क्यों हो रहा है ॥६३-६४½॥ इस प्रकार वह विचार कर ही रहा था कि उस भूपाल को यह स्मरण हो गया कि ओह! मैंने खाण्डिक्य को अब तक गुरु दक्षिणा नहीं दी ॥६५½॥ फिर वह भूपाल रथ पर आरूढ़ होकर उस दुर्गम वन में गया, जहाँ स्वायंभुव खाण्डिक्य रहता था। पुनः उसको वन की ओर आते देखकर खाण्डिक्य ने धनुष उठा लिया और उसको मारने के अभिप्राय से तैयार हो गया ॥६६-६७½॥

यह देखकर राजा ने उससे कहा—खाण्डिक्य; क्रोध मत करो, मैं तुम्हारे किसी अपकार की इच्छा से नहीं आया हूँ। गुरुदक्षिणा देने के लिए मैं आया हूँ, ऐसा समझो। तुम्हारे उपदेश के अनुसार मैंने अपने यज्ञ को विधिपूर्वक समाप्त किया है। अतः मैं गुरुदक्षिणा देना चाहता हूँ, माँगो ॥६८-६९½॥

यह सुनकर खाण्डिक्य ने फिर मन्त्रियों से मन्त्रणा की कि यह गुरु का ऋण चुकाने के अभिप्राय से यहाँ आया हुआ है। कहो, क्या माँगा जाय। मन्त्रियों ने राजा से कहा कि इससे सम्पूर्ण राज्य माँगा जाय। जो नीतिपटु होते हैं वे बिना सैनिक सहायता के राज्य पाना चाहते हैं ॥७०-७१½॥

महामति वह नृपति खांडिक्य अदूरदर्शी मंत्रियों की मन्त्रणा सुनकर हँसता हुआ बोला—'क्षण स्थायी पृथ्वी का राज्य मेरे समान विवेकी व्यक्ति कैसे माँग सकता है। आप लोग ऐसे ही केवल स्वार्थ-साधन करने का उपदेश देने वाले मन्त्री हैं। यहाँ परमार्थ क्या है इस बात को जानने में आप कुशल नहीं हैं ॥७२-७३½॥ यह कह कर वह केशिध्वज राजा के पास आया और कहा—"तुम मुझे अवश्य गुरुदक्षिणा देना चाहते हो क्या ?" "अवश्य" केशिध्वज ने कहा—यह निश्चय सुनकर खाण्डिक्य ने कहा ॥७४-७५॥ आप अध्यात्म विज्ञान के परमार्थ जानने वाले विद्वान् हैं। यदि आप मुझको गुरुदक्षिणा देना चाहते हैं तो सांसारिक दुःखों से मुक्ति दिलाने वाले जो कर्म हैं उनको कहिए ॥७६½॥

केशिध्वज उवाच

न प्रार्थितं त्वया कस्मान्मम राज्यमकंटकम् ॥७८॥
राज्यलाभाद्धि नास्त्यन्यत्क्षत्रियाणामतिप्रियम् ।

खांडिक्य उवाच

केशिध्वज निबोध त्वं मया न प्रार्थितं यतः ।
राज्यमेतदशेषेण यन्न गृध्नंति पंडिताः । क्षत्रियाणामयं धर्मो यत्प्रजापरिपालनम् ॥७९॥
वधश्च धर्मयुद्धेन स्वराज्यपरिपंथिनाम् । यत्राशक्तस्य मे दोषो नैवास्त्यपकृते त्वया ॥८०॥
बंधायैव भवत्येषा ह्यविद्या चाक्रमोज्झिता । जन्मोपभोगलिप्सार्थमियं राज्यस्पृहा मम ॥८१॥
अन्येषां दोषजानेव धर्ममेवानुरुध्यते । न याच्ञा क्षत्रबंधूनां धर्मायैतत्सतां मतम् ॥८२॥
अतो न याचितं राज्यमविद्यांतर्गतं तव । राज्यं गृध्नंत्यविद्वांसो ममत्वाकृष्टचेतसः ॥८३॥
अहंमानमहापानमदमत्ता न मादृशाः ॥

केशिध्वज उवाच

॥८४॥
अहं च विद्यया मृत्युं तर्तुकामः करोमि वै
राज्यं यज्ञांश्च विविधान्भोगे पुण्यक्षयं तथा । तदिदं ते मनो दिष्ट्या विवेकैश्वर्यतां गतम् ॥८५॥
श्रूयतां चाप्यविद्यायाः स्वरूपं कुलनंदन । अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या ह्यस्वे स्वविषया मतिः ॥८६॥
अविद्यातरुसंभूतं बीजमेतद्द्विधा स्थितम् । पंचभूतात्मके देहे देही मोहतमोवृतः ॥८७॥

केशिध्वज बोला--तुमने मुझसे अंकटक राज्य क्यों नहीं माँगा ? राज्य-प्राप्ति के अतिरिक्त क्षत्रियों के लिए कोई अति प्रिय वस्तु नहीं है ॥७७॥

खांडिक्य ने कहा--केशिध्वज ! मैंने तुम्हारा सम्पूर्ण राज्य क्यों नहीं माँगा, इसका कारण सुनो। विद्वान् पुरुष राज्य की इच्छा नहीं करते। प्रजा का पालन करना और धर्मयुद्ध से अपने राज्य के शत्रुओं का वध करना क्षत्रियों का धर्म है। मैं इस कर्तव्य के पालन में असमर्थ हो गया था, इसलिए यदि आपने मेरे राज्य का अपहरण कर लिया है तो इसमें कोई दोष की बात नहीं है ॥७८-८०॥ यह राजकार्य अविद्या है, जो केवल बन्धन में ही डालने वाली है। मेरी राज्याकांक्षा केवल जन्म के उपभोग की लिप्सा होगी, कल्याण का कारण नहीं ॥८१॥ दूसरों का दोष-दर्शन धर्म में बाधा पहुँचाता है। माँगना क्षत्रियों का नहीं, प्रत्युत क्षत्रबन्धुओं (धर्मभ्रष्ट क्षत्रियों) का कार्य है, ऐसा सज्जन लोग कहते हैं ॥८२॥ यही कारण है कि अविद्या की श्रेणी में आने वाले तुम्हारे राज्य की याचना मैंने नहीं की। वे अज्ञानी व्यक्ति राज्य का लोभ करते हैं जिनका चित्त मोह के वशीभूत हो जाता है और जो अहंकार और मान के नशे में मतवाले होते हैं; मेरे जैसे राज्य का लोभ नहीं करते हैं ॥८३½॥

केशिध्वज ने कहा--मैं विद्या के द्वारा मृत्यु से पिण्ड छुड़ाने के लिए राज्य और विविध कर्म करता हूँ। यज्ञों को करता हूँ। भोग करने से सब पुण्यों का क्षय हो जाता है। तुम्हारा मन निष्कलुष होकर परमविवेकी बन गया है। कुलनन्दन ! अविद्या की परिभाषा सुनो ॥८४-८५½॥ अविद्या रूपी वृक्ष की उत्पत्ति का जो बीज है, वह दो प्रकार का है--अनात्मा में आत्मबुद्धि और जो अपना नहीं है उसे अपना मानना (अर्थात् अहंता और ममता)। इस पाँच भौतिक शरीर में आत्मा मोह के अन्धकार से ढका रहता है। मूर्ख अज्ञानवश 'मैं यह हूँ' ऐसी उच्च

अहमेतदितीत्युच्चैः कुरुते कुमतिर्मतिम् । आकाशवाय्वग्निजलपृथिवीभिः पृथक् स्थिते ॥८८॥
आत्मन्यात्ममयं भावं कः करोति कलेवरे । कलेवरोपभोग्यं हि गृहक्षेत्रादिकं च यत् ॥८९॥
अदेहे ह्यात्मनि प्राज्ञो ममेदमिति मन्यते । इत्थं च पुत्रपौत्रेषु तद्देहोत्पादितेषु च ॥९०॥
करोति पंडितः स्वाम्यमनात्मनि कलेवरे । सर्वदेहोपभोगाय कुरुते कर्म मानवः ॥९१॥
देहं चान्यद्यदा पुंसस्सदा बंधाय तत्परम् । मृण्मयं हि यथा गेहं लिप्यते वै मृदंभसा ॥९२॥
पार्थिवोऽयं तथा देहो मृदंभोलेपनस्थितिः । पंचभोगात्मकैर्भोगैः पंचभोगात्मकं वपुः ॥९३॥
आप्यायते यदि ततः पुंसो गर्वोऽत्र किंकृतः । अनेकजन्मसाहस्रं संसारपदवीं व्रजन् ॥९४॥
मोहश्रमं प्रयातोऽसौ वासनारेणुगुंठितः । प्रक्षाल्यते यदा सौम्य रेणुर्ज्ञानोष्णवारिणा ॥९५॥
तदा संसारपांथस्य याति मोहश्रमः शमम् । मोहश्रमे शमं याते स्वच्छांतः करणः पुमान् ॥९६॥
अनन्यातिशयाधारः परं निर्वाणमृच्छति । निर्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः ॥९७॥
दुःखाज्ञानमया धर्माः प्रकृतेस्ते तु नात्मनः । जलस्य नाग्निना संगः स्थालीसंगात्तथापि हि ॥९८॥
शब्दोद्रेकादिकान्धर्मान्करोति हि यथा बुधः । तथात्मा प्रकृतेः संगादहंमानादिदूषितः ॥९९॥
भजते प्राकृतान्धर्मान्न्यस्तस्तंभो हि सोऽव्ययः । तदेतत्कथितं बीजमविद्याया मया तव ॥१००॥
क्लेशानां च क्षयकरं योगादन्यन्न विद्यते ॥१०१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४६॥

स्वर से घोषणा करते हैं ॥८६-८७॥ परन्तु आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तत्त्व के पृथक् हो जाने पर 'अहम्' कहाँ रह जाता है ? कौन विवेकी अपने शरीर को आत्मा समझने की मूर्खता करेगा ? ॥८८॥ सारा गृह, क्षेत्र आदि केवल शरीर के उपभोग के लिए हैं। प्रज्ञावान् शरीर से पृथक् आत्मा को ही अपना समझता है ॥८९½॥ पण्डित इस प्रकार अपने शरीर से उत्पन्न किए हुए पुत्र, पौत्र आदि में अधिक ममता नहीं रखनी चाहिए। पण्डित आत्मा से अतिरिक्त शरीर पर अपना अधिकार रखते हैं ॥९०½॥ मानव देह के उपभोग के लिए ही सब कर्म करते हैं। आत्मा से अतिरिक्त जो देह है उसमें ही लिप्त रहकर मानव सदा अपने को मोह बन्धन में ही बाँधने का प्रयत्न करता है ॥९१॥ जिस प्रकार मिट्टी से बने घर को मिट्टी और जल से लीपते हैं उसी प्रकार मनुष्य का मोह में पड़ा रहना इस पार्थिव शरीर को मिट्टी और जल से लीपने के समान है ॥९२½॥ इस पाँच भौतिक शरीर को पंच भोगात्मक भोग में ही लिप्त रखा जाय तो उस समय कौन सा अभिमान करने के योग्य कार्य हुआ ॥९३½॥ सौम्य ! अनेक सहस्र जन्म के पश्चात् संसार में आकर मनुष्य मोह में फँसकर वासना की धूलि में लिपट जाता है ॥९४½॥ इसलिए जब ज्ञान के उष्ण जल से उसको धोया जायगा तभी संसार-पथ पर चलने वाले पथिकों का मोह दूर हो सकेगा ॥९५½॥ मोह के दूर हो जाने पर मनुष्य का अन्तःकरण स्वच्छ हो जाता है, तभी वह एकमात्र ईश्वर का सहारा प्राप्त कर निर्वाण को प्राप्त करता है ॥९६½॥ आत्मा निर्वाणमय, ज्ञानमय और निर्मल है। दुःख और अज्ञान प्रकृति के धर्म हैं, आत्मा के नहीं ॥९७½॥ जल का अग्नि के साथ कोई साहचर्य नहीं परन्तु स्थाली के साथ है ॥९८॥ जिस प्रकार बुध जन शब्द आदि गुणों को ग्रहण करता है उसी प्रकार आत्मा भी प्रकृति के संसर्ग से अहंकार आदि से दूषित हो जाता है ॥९९॥ और वह अव्यय प्राकृत धर्मों का अपना स्वभाव छोड़कर उपभोग करता है। इस प्रकार आज मैंने अविद्या का रहस्य तुमको बता दिया। योग को छोड़कर कोई अन्य उपाय क्लेशों को दूर करने वाला नहीं है ॥१००-१०१॥

श्रीनारदीयमहापुराण छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

सनन्दन उवाच

एतदध्यात्ममानाढ्यं वचः केशिध्वजस्य सः । खांडिक्योऽमृतवच्छ्रुत्वा पुनराह तमीरयन् ॥१॥

खांडिक्य उवाच

तद् ब्रूहि त्वं महाभाग योगं योगविदुत्तम । विज्ञातयोगशास्त्रार्थस्त्वमस्यां निमिसंततौ ॥२॥

केशिध्वज उवाच

योगस्वरूपं खांडिक्य श्रूयतां गदतो मम । यत्र स्थितो न च्यवते प्राप्य ब्रह्मलयं मुनिः ॥३॥
मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः । बंधस्य विषयासंगि मुक्तेर्निर्विषयं तथा ॥४॥
विषयेभ्यः समाहृत्य विज्ञानात्मा बुधो मनः । चिंतयेन्मुक्तये तेन ब्रह्मभूतं परेश्वरम् ॥५॥
आत्मभावं नयेत्तेन तद्ब्रह्मध्यापनं मनः । विकार्यमात्मनः शक्त्या लोहमाकर्षको यथा ॥६॥
आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः । तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते ॥७॥
एवमत्यंतवैशिष्ट्ययुक्तधर्मोपलक्षणम् । यस्य योगः स वै योगी मुमुक्षुरभिधीयते ॥८॥
योगयुक् प्रथमं योगी युंजमानोऽभिधीयते । विनिष्पन्नसमाधिस्तु परब्रह्मोपलब्धिमान् ॥९॥

अध्याय ४७

मुक्तिप्रद योग का वर्णन

सनन्दन बोले—केशिध्वज की उपर्युक्त अध्यात्म ज्ञान से पूर्ण सुधामयी वाणी को सुनकर पुनः उत्सुक हो खाण्डिक्य ने उससे पूछा ॥१॥

खाण्डिक्य ने कहा—महाभाग ! तुम इस योग को कहो । तुम योगियों में श्रेष्ठ हो । तुम्हीं निमिवंश में एकमात्र योगशास्त्र के रहस्य को जानने वाले हो ॥२॥

केशिध्वज ने कहा—खाण्डिक्य ! मैं योग-स्वरूप का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो । योगस्थ होने पर मुनि ब्रह्म का सान्निध्य प्राप्त कर लेता और पुनः कभी च्युत नहीं होता ॥३॥ मनुष्यों का मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है । विषयों में आसक्त मन बन्धन का और निर्विषय मन मुक्ति का कारण है ॥४॥ विज्ञानी व्यक्ति मन को विषयों की ओर से हटाकर उससे ब्रह्मस्वरूप परमात्मा का मुक्ति प्राप्ति के लिए चिन्तन करे ॥५॥ जिस प्रकार चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींच लेता है उसी प्रकार आत्मशक्ति के द्वारा विकारशील मन को विषयों की ओर से हटावे और ब्रह्मचिन्तन के सहारे उसको आत्म-भाव की ओर ले जाय ॥६॥ आत्म-प्रयत्न से मन की जो विशेष गति (स्पन्दन) होती है उस गति का ब्रह्म में युक्त होना ही योग कहा जाता है ॥७॥ इस प्रकार जिसका योग अत्यन्त वैशिष्ट्य युक्त धर्म से उपलक्षित होता है वही योगी मुमुक्षु कहा जाता है ॥८॥ पहले पहल योग की साधना करने वाला योगी युञ्जान कहा जाता है । समाधि को प्राप्त करने वाला परब्रह्म को पाने वाला समझा

यद्यंतरायदोषेण दूष्यते नास्य मानसम् । जन्मांतरैरभ्यसनान्मुक्तिः पूर्वस्य जायते ॥१०॥
विनिष्पन्नसमाधिस्तु मुक्तिस्तत्रैव जन्मनि । प्राप्नोति योगी योगाग्निदग्धकर्मचयोऽचिरात् ॥११॥
ब्रह्मचर्यमहिंसां च सत्यास्तेयापरिग्रहान् । सेवेत योगी निष्कामो योगितां स्वमनो नयन् ॥१२॥
स्वाध्यायशौचसंतोषतपांसि नियमान्यमान् । कुर्वीत ब्रह्मणि तथा परस्मिन्प्रवणं मनः ॥१३॥
एते यमाश्च नियमाः पंच पञ्चप्रकीर्तिताः । विशिष्टफलदाः काम्या निष्कामानां विमुक्तिदाः ॥१४॥
एवं भद्रासनादीनां समास्थाय गुणैर्युतः । यमाख्यैर्नियमाख्यैश्च युंजीत नियतो यतिः ॥१५॥
प्राणाख्यमवलंबस्थमभ्यासात्कुरुते तु यत् । प्राणायामः स विज्ञेयः सबीजोऽबीज एव च ॥१६॥
परस्परेणाभिभवं प्राणापानौ यदा निलौ । कुरुतः सद्विधानेन तृतीयः संयमात्तयोः ॥१७॥
तस्य चालंबनवतस्थूलं रूपं द्विजत्पते । आलंबनमनंतस्य योगिनोऽभ्यसतः स्मृतम् ॥१८॥
शब्दादिष्वनुरक्तानि निगृह्याक्षाणि योगवित् । कुर्याच्चित्तानुकारीणि प्रत्याहारपरायणः ॥१९॥
वश्यता परमा तेन जायते निश्चलात्मनाम् । इंद्रियाणामवश्यैस्तैर्न योगी योगसाधकः ॥२०॥
प्राणायामेन पवनैः प्रत्याहरेण चेंद्रियैः । वशीकृतैस्ततः कुर्यात्स्थिरं चेतः शुभाश्रये ॥२१॥

खांडिक्य उवाच

कथ्यतां मे महाभाग चेतसो यः शुभाश्रयः । यदाधारमशेषं तु हंति दोषसमुद्भवम् ॥२२॥

जाता है ॥९॥ यदि विघ्नबाधाओं या दोषों से योगी का मन दूषित नहीं होता है तो उसको दूसरे जन्म के पुण्य प्रभाव से प्रथम अवस्था में ही मुक्ति मिल जाती है ॥१०॥ जिसको समाधि-अवस्था प्राप्त हो जाती है वह योगी योगाग्नि से सब कर्मों के भस्म हो जाने से शीघ्र उसी जन्म में मुक्ति पा जाता है ॥११॥ योगी निष्काम होकर ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह का सेवन करता हुआ योगिधर्म की ओर अपने मन को लगावे ॥१२॥ स्वाध्याय, शौच, संतोष, तप, सुनियम और यम का अभ्यास करे और परब्रह्म में अपने मन को लगावे ॥१३॥ इसी प्रकार ये यम और नियम पाँच-पाँच हैं, जो निष्काम योगियों को काम्य फल एवं मुक्ति देने वाला है ॥१४॥ योग साधना भद्रासन आदि आसनों को लगाकर शुभ गुणों से युक्त होकर योगी यम, नियम आदि से नियमपूर्वक योग साधना करे ॥१५॥ अभ्यास द्वारा प्राण वायु को स्थिर करने को ही प्राणायाम कहा जाता है। प्राणायाम दो प्रकार का होता है--सबोज (आलम्बनयुक्त) और निर्बीज (आलम्बन रहित)। जब योगी के प्राण और अपान वायु एक-दूसरे का पराभव करते (दबाते हैं,) तब क्रमशः रेचक और पूरक नामक दो प्राणायाम होते हैं। और इन दोनों का एक ही समय संयम (निरोध) करने से कुम्भक नामक तीसरा प्राणायाम होता है ॥१७॥ राजन्! जब योगी सबीज प्राणायाम का अभ्यास करता है तब उसका आलम्बन सर्वव्यापी अनन्त स्वरूप भगवान् विष्णु का साकार रूप होता है ॥१८॥ प्रत्याहार की साधना करने वाला योगी शब्दादि विषयों में आसक्त इन्द्रियों को खींचकर मन के वश में करे ॥१९॥ इस प्रकार निश्चल चित्तवाले योगियों की बुद्धि स्थिर हो जाती है। योग-साधक योगी इन्द्रियों को बिना वश में किये योग-साधन नहीं कर सकता ॥२०॥ प्राणायाम के द्वारा प्राणवायु को और प्रत्याहार के द्वारा इन्द्रियों को वश में करने के बाद योगी चित्त को शुभ आश्रय में स्थिर करे ॥२१॥

खाण्डिक्य ने कहा--महाभाग! चित्त का जो शुभाश्रय है उसको कहिए, जिसका अवलम्बन सम्पूर्ण दोष जन्य विकारों को नष्ट कर देता है ॥२२॥

केशिध्वज उवाच

आश्रयश्चेतसो ज्ञानिन् द्विधा तच्च स्वरूपतः । रूपं मूर्तममूर्तं च परं चापरमेव च ॥२३॥
त्रिविधा भावना रूपं विश्वमेतत्त्रिधोच्यते । ब्रह्माख्या कर्मसंज्ञा च तथा चैवोभयात्मिका ॥२४॥
कर्मभावात्मिका ह्येका ब्रह्मभावात्मिकापरा । उभयात्मिका तथैवान्या त्रिविधा भावभावना ॥२५॥
सनकाद्या सदा ज्ञानिन् ब्रह्मभावनया युताः । कर्मभावनया चान्ये देवाद्याः स्थावराश्चराः ॥२६॥
हिरण्यगर्भादिषु च ब्रह्मकर्मात्मिका द्विधा । अधिकारबोधयुक्तेषु विद्यते भावभावना ॥२७॥
अक्षीणेषु समस्तेषु विशेषज्ञानकर्मसु । विश्वमेतत्परं चान्यद्भेदभिन्नदृशां नृपः ॥२८॥
प्रत्यस्तमितभेदं यत्सत्तामात्रमगोचरम् । वचसामात्मसंवेद्यं तज्ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥२९॥
तच्च विष्णोः परं रूपमरूपस्याजनस्य च । विश्वस्वरूपवैरूप्यलक्षणं परमात्मनः ॥३०॥
न तद्योगयुजा शक्यं नृप चिंतयितुं यतः । ततः स्थूलं हरे रूपं चिंत्यं यच्चक्षुगोचरम् ॥३१॥
हिरण्यगर्भो भगवान्वासवोऽथ प्रजापतिः । मरुतो वसवो रुद्रा भास्करास्तारका ग्रहाः ॥३२॥
गन्धर्वा यक्षदैत्याश्च सकला देवयोनयः । मनुष्याः पशवः शैला समुद्राः सरितो द्रुमाः ॥३३॥
भूप भूतान्यशेषाणि भूतानां ये च हेतवः । प्रधानादिविशेषांताश्चेतनाचेतनात्मकम् ॥३४॥
एकपादं द्विपादं च बहुपादमपादकम् । मूर्तमेतद्धरे रूपं भावनात्रितयात्मकम् ॥३५॥
एतत्सर्वमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम् । परब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोः शक्तिसमन्वितम् ॥३६॥
विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा । अविद्याकर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ॥३७॥
येयं क्षेत्रज्ञशक्तिः सा चेष्टिता नृप कर्मजा । असारभूते संसारे प्रोक्ता तत्र महामते ॥३८॥

केशिध्वज बोला--ज्ञानिन् ! चित्त के आश्रय (ब्रह्म) के दो स्वरूप हैं--मूर्त और अमूर्त अथवा पर और अपर ॥२३॥ सम्पूर्ण रूप की त्रिविध भावना होती है--ब्रह्म, कर्म और उभयात्मक । एक भावना कर्म-भावात्मिका, दूसरी ब्रह्म-भावात्मिका और तीसरी कर्म-ब्रह्मोभयात्मिका है । यही त्रिविध भाव भावना है ॥२४-२५॥ ज्ञानी ! सनक आदि सर्वदा ब्रह्म-भावना में ही तल्लीन रहते हैं । अन्य देव आदि और स्थावर, चर कर्म-भावना के ही पुजारी हैं ॥२६॥ अधिकार और ज्ञान-सम्पन्न हिरण्यगर्भ आदि में ब्रह्मकर्मोभयात्मिका भावना रहती है । अधिकार और ज्ञान से युक्त प्राणियों में केवल भावात्मक-भावना रहती है । नृप ! समस्त विशेष ज्ञान और कर्म के विद्यमान रहने पर भेद-भाव और भिन्न रूपों में ही यह विश्व दृष्टिगोचर होता है ॥२७-२८॥ जहाँ समस्त भेद-भाव नष्ट हो जाते हैं, जो केवल सत् है और वाणी का अविषय है तथा जो स्वयं ही अनुभव-स्वरूप है, उसी को ब्रह्मज्ञान कहते हैं ॥२९॥ वही अज, अरूप, परमात्मा विष्णु का परम स्वरूप है जो उनके विश्वरूप से विलक्षण होता है ॥३०॥ नृप ! चूँकि उस रूप का योगी चिन्तन नहीं कर सकते इसलिए उसका जो नेत्रगोचर रूप है, उसी का चिन्तन करना चाहिए ॥३१॥ हिरण्यगर्भ भगवान्, इन्द्र, प्रजापति, मरुत्, वसु, रुद्र, भास्कर, तारक, ग्रह, गन्धर्व, यक्ष, दैत्य, सब देव योनि, मनुष्य, पशु, पर्वत, समुद्र, नदियाँ, वृक्ष और सब प्राणी, (प्रकृति) प्रधान से लेकर विशेष तक सम्पूर्ण भूतों के कारण, चेतन-अचेतन, एक पैर दो पैर वाले, बहुत पैर वाले अथवा बिना पैर के जितने जीव हैं ये तीनों भावनाओं से मिले हुए भगवान् के मूर्त रूप हैं ॥३२-३५॥ यह जो चराचरात्मक सम्पूर्ण जगत् है सो परब्रह्म विष्णु की शक्ति से युक्त है ॥३६॥ विष्णु की शक्ति परा कहलाती है, क्षेत्रज्ञा अपरा नाम की दूसरी शक्ति है और तीसरी अविद्या कर्म शक्ति है ॥३७॥ नृप ! जो यह क्षेत्रज्ञा शक्ति है, महामते, वह इस असार संसार में कर्मशक्ति से आवृत रहती है । मनुष्य शक्ति के द्वारा संसार के सब तापों का अनुभव करता

संसारतापानखिलानवाप्नोत्यनुसंज्ञितान् । तया तिरोहितत्वात्तु शक्तिः क्षेत्रज्ञसंज्ञिता ॥३९॥
सर्वभूतेषु भूपाल तारतम्येन लक्ष्यते । अप्राणवत्सु खल्वल्पा स्थावरेषु ततोऽधिका ॥४०॥
सरीसृपेषु तेभ्योऽन्याप्यतिशक्त्या पतत्त्रिषु । पतत्त्रिभ्यो मृगास्तेभ्यः स्वशक्त्या पशवोऽधिकाः ॥४१॥
पशुभ्यो मनुजाश्चातिशक्त्या पुंसः प्रभाविताः । तेभ्योऽपि नागगंधर्वयक्षाद्या देवता नृप ॥४२॥
शक्रः समस्तदेवेभ्यस्ततश्चातिप्रजापतिः । हिरण्यगर्भोऽपि ततः पुंसः शक्त्युपलक्षितः ॥४३॥
एतान्यशेषरूपाणि तस्य रूपाणि पार्थिव । यतस्तच्छक्तियोगेन युक्तानि नभसा यथा ॥४४॥
द्वितीयं विष्णुसंज्ञस्य योगिध्येयं महामते । अमूर्तं ब्रह्मणो रूपं यत्सदित्युच्यते बुधैः ॥४५॥
समस्ताः शक्तयश्चैता नृप यत्र प्रतिष्ठिताः । नहि स्वरूपरूपं वै रूपमन्यद्धरेर्महत् ॥४६॥
समस्तशक्तिरूपाणि तत्करोति जनेश्वर । देवतिर्यङ्मनुष्यादिचेष्टावंति स्वलीलया ॥४७॥
जगतामुपकाराय तस्य कर्मनिमित्तजा । चेष्टा तस्याप्रमेयस्य व्यापिन्यविहतात्मिका ॥४८॥
तद्रूपं विश्वरूपस्य चिंत्यं योगयुजा नृप । तस्य ह्यात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकिल्बिषनाशनम् ॥४९॥
यथाग्निरुद्धतशिखः कक्षं दहति सानिलः । तथा चित्तस्थितो विष्णुर्योगिनां सर्वकिल्बिषम् ॥५०॥
तस्मात्समस्तशक्तीनामाधारे तत्र चेतसः । कुर्वीत संस्थितं साधु विज्ञेया शुद्धलक्षणा ॥५१॥
शुभाश्रयः सचित्तस्य सर्वगस्य तथात्मनः । त्रिभावभावनातीतो मुक्तये योगिनां नृप ॥५२॥
अन्ये तु पुरुषव्याघ्र चेतसो ये व्यपाश्रयाः । अशुद्धास्ते समस्तास्तु देवाद्याः कर्मयोनयः ॥५३॥

है। भूपाल ! उस अविद्या शक्ति से तिरोहित होने के कारण यह शक्ति सब प्राणियों में तारतम्य से देखी जाती है ॥३८-३९½॥ प्राणशून्य पदार्थों में यह अत्यन्त स्वल्प रहती, परन्तु स्थावरों में उससे कुछ अधिक रहती है ॥४०॥ रेंगकर चलने वाले जीवों में कुछ और अधिक और उनसे अधिक पक्षियों में रहती है। पक्षियों की अपेक्षा मृगों में वह शक्ति अधिक मात्रा में पाई जाती है। मृगों की अपेक्षा पशुओं में अधिक और पशुओं से अधिक मनुष्यों में वह शक्ति देखी जाती है। नृप ! मनुष्यों से भी अधिक नाग, गन्धर्व, यक्ष, देवता आदि में उस शक्ति की अधिकता है ॥४१-४२॥ सब देवों से अधिक इन्द्र में उस शक्ति को देखते हैं। शक्र से अधिक प्रजापति शक्तिशाली और प्रजापति की अपेक्षा हिरण्यगर्भ पुरुष में वह शक्ति अधिक पाई जाती है ॥४३॥

पार्थिव ! उस पुरुष शक्ति के ये ही सम्पूर्ण रूप हैं। जिस प्रकार आकाश से सारे पदार्थ ढके हुए हैं, उसी प्रकार सारे पदार्थ उससे युक्त हैं ॥४४॥ महामति ! दूसरा योगिध्येय परब्रह्म विष्णु का अमूर्त रूप है, जिसको बुधजन सत् कहते हैं ॥४५॥ जिसमें ये समस्त शक्तियाँ एकत्र हैं वह भगवान् हरि का दूसरा स्वरूप रूप या महत् रूप नहीं है ॥४६॥ जनेश्वर ! सब शक्तियों को वही सत् रूप संचालित या प्रकट करता है। वही देव, तिर्यक् और मनुष्यों को अपनी लीला से क्रियाशील बनाता है ॥४७॥ संसार के कल्याण के लिए उस अप्रमेय सत् की कर्म-निमित्तजा शक्ति सर्वत्र व्यापक और गतिशील रहती है ॥४८॥ नृप ! योगी जन आत्म-शुद्धि और सब पापों को नष्ट करने के लिए उस विश्व के इस रूप का ही चिन्तन करें ॥४९॥ जिस प्रकार अग्नि की चंचल लपटें वायु के सहयोग से अत्यन्त तीव्र होकर समीप के कक्ष को जला देती हैं उसी प्रकार योगी के हृदय में स्थित विष्णु उसके सब कलुष को भस्म कर देते हैं ॥५०॥ अतएव साधु अपने चित्त को समस्त शक्तियों के आधारभूत उस भगवान् में लगा दे, यही शुद्ध लक्षणा (भावना) है ॥५१॥ नृप ! आत्मा, चंचल चित्त का त्रिभाव भावना से रहित जो शुभाश्रय है वही योगी की मुक्ति का कारण बनता है ॥५२॥ पुरुषव्याघ्र ! चित्त के अन्य जो आश्रय (आधार) हैं वे अशुद्ध हैं और वे हैं देवता आदि जो कर्मयोनि हैं ॥५३॥ भगवान् के मूर्त रूप का सब आश्रयों की ओर से

मूर्त्तं भगवतो रूपं सर्वापाश्रयनिस्पृहः । एषा वै धारणा ज्ञेया यच्चित्तं तत्र धार्यते ॥५४॥
तत्र मूर्त्तं हरे रूपं यादृक् चिंत्यं नराधिप । तच्छ्रूय तामनाधारे धारणा नोपपद्यते ॥५५॥
प्रसन्नचारुवदनं पद्मपत्रायतेक्षणम् । सुकपोलं सुविस्तीर्णं ललाटफलकोज्ज्वलम् ॥५६॥
समकर्णांसविन्यस्तचारुकर्णोपभूषणम् । कम्बुग्रीवं सुविस्तीर्णश्रीवत्सांकितवक्षसम् ॥५७॥
वलित्रिभंगिना भुग्ननाभिना चोदरेण वै । प्रलंबाष्टभुजं विष्णुमथवापि चतुर्भुजम् ॥५८॥
समस्थितोरुजघनं सुस्थिरांघ्रिकरांबुजम् । चिंतयेद्ब्रह्मभूतं तं पीतनिर्मलवाससम् ॥५९॥
किरीटचारुकेयूरकटकादिविभूषितम् । शार्ङ्गशंखगदाखड्गप्रकाशवलयांचितम् ॥६०॥
चिंतयेत्तन्मयो योगी समाधायात्ममानसम् । तावद्यावद् दृढीभूता तत्रैव नृपधारणा ॥६१॥
वदतस्तिष्ठतो यद्वा स्वेच्छया कर्म कुर्वतः । नापयाति यदा चित्तात्सिद्धां मन्येत तां तदा ॥६२॥
ततः शंखगदाचक्रशार्ङ्गादि रहितं बुधः । चिंतयेद्भगवद्रूपं प्रशांतं साक्षसूत्रकम् ॥६३॥
सा यदा धारणा तद्वदवस्थानवती ततः । किरीटकेयूरमुखैर्भूषणैरहितं स्मरेत् ॥६४॥
तदेकावयवं चैवं चेतसा हि पुनर्बुधः । कुर्यात्ततोऽवयविनि प्रणिधानपरो भवेत् ॥६५॥
तद्रूपप्रत्यये चैकसंततिश्चान्यनिःस्पृहा । तद्ध्यानं प्रथमैरंगैः षड्भिर्निष्पाद्यते नृप ॥६६॥
तस्यैवं कल्पनाहीनं स्वरूपग्रहणं हि यत् । मनसा ध्याननिष्पाद्यं समाधिः सोऽभिधीयते ॥६७॥
विज्ञानं प्रापकं प्राप्ये परे ब्रह्मणि पार्थिव । प्रापणीयस्तथैवात्मा प्रक्षीणाशेषभावनः ॥६८॥

निस्पृह होकर ध्यान करना चाहिए। यही धारणा कही जाती है, जहाँ चित्त को एकाग्र किया जाता है अथवा जहाँ चित्त को एक आधार प्राप्त होता है ॥५४॥ नराधिप ! भगवान् के मूर्त रूपों में भी जिस रूप का चिन्तन करना चाहिए उसको भी सुनो; क्योंकि अनाधार में ध्यान-धारणा नहीं हो सकती ॥५५॥ प्रसन्न, शुभ मुख और कमल पत्र के समान बड़ी आँखों वाले, सुन्दर कपोल, देदीप्यमान विशाल ललाट से सुशोभित, मनोहर कर्णाभरण से आभूषित कर्ण वाले, कम्बुग्रीव, चौड़े, श्रीवत्स से चिह्नित वक्षःस्थल और त्रिवली से मुक्त, वृत्ताकार गहरी नाभि और चढ़ाव-उतार वाले उदर से युक्त और प्रलम्बबाहु-चतुर्भुज विष्णु का अथवा ऊरु और जंघे को स्थिरता के साथ आसनबद्ध करके घुटने पर अपने कर कमल को रखे हुए, पीले, निर्मल वस्त्र से सुशोभित योगि-रूप में स्थित, किरीट, केयूर और वलय से सुशोभित, शार्ङ्ग, शंख, गदा और प्रभा-वलय मे मंडित ब्रह्म का तन्मय होकर योगी अपने मन को वश में करके चिन्तन करे ॥५६-६०½॥ इस क्रम को तब तक जारी रखे जब तक कि उसमें दृढ़ धारणा न हो जाय ॥६१॥ ठहरने, बोलने अथवा स्वेच्छापूर्वक काम करने के समय भी यदि मन से वह रूप लुप्त न हो तो धारणा को सिद्ध समझना चाहिए ॥६२॥ इस अवस्था को प्राप्त कर लेने के उपरान्त धीमान् योगी शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग से रहित केवल अक्ष सूत्र से युक्त भगवान् के रूप का ध्यान करे ॥६३॥ ऐसी धारणा भी जब पूर्ववत् स्थिर हो जाय तब किरीट, केयूर आदि आभरणों से शून्य रूप का ध्यान करे ॥६४॥ फिर जब इस प्रकार की धारणा स्थिर हो जाय तब वह ज्ञानी योगी उनके किसी एक अवयव का ही ध्यान करे। फिर वह उपासनापरायण होकर अवयवी का ध्यान करे ॥६५॥ उनके रूप का एकान्त ध्यान करने पर और उस पर दृढ़ विश्वास हो जाने पर अन्य विषयों की ओर स्पृहा नहीं रह जाती। नृप ! सज्जन इस प्रकार ध्यान यम-नियमादि छह अंगों से निष्पन्न होता है। उसी प्रभु के जब अवयव की कल्पना से रहित रूप का मन के द्वारा ध्यान किया जाता है तब उस ध्यान को समाधि कहा जाता है ॥६६-६७॥ विज्ञान उस प्राप्त करने योग्य पर ब्रह्म को प्राप्त कराने वाला है, तथा अशेष भावनाओं से रहित आत्मा प्राप्त करने वाला है। क्षेत्रज्ञ कर्ता है और ज्ञान

क्षत्रज्ञकरणीज्ञानं करणं तेन तस्य तत् । निष्पाद्य मुक्तिकार्यं वै कृतकृत्यो निवर्तते ॥६९॥
तद्भावभावनापन्नस्ततोऽसौ परमात्मनः । भवत्यभेदी भेदश्च तस्याज्ञानकृतो भवेत् ॥७०॥
विभेदजनके ज्ञाने नाशमात्यंतिकं गते । आत्मनो ब्रह्मणाभेदं संमतं कः करिष्यति ॥७१॥
इत्युक्तस्ते मया योगः खांडिक्यं परिपृच्छतः । संक्षेपविस्तराभ्यां तु किमन्यत्क्रियतां तव ॥७२॥

खांडिक्य उवाच

कथितो योगसद्भावः सर्वमेव कृतं मम । तवोपदेशात्सकलो नष्टश्चित्तमलो मम ॥७३॥
ममेति यन्मया प्रोक्तमसदेतन्न चान्यथा । नरेंद्र गदितुं शक्यमपि विज्ञेयवेदिभिः ॥७४॥
अहं ममेत्यविद्येयं व्यवहारस्तथानयोः । परमार्थस्त्वसंलाप्यो वचसां गोचरो न यः ॥७५॥
तद्गच्छ श्रेयसे सर्वं ममैतद्भवता कृतम् । यद्विमुक्तिपरो योगः प्रोक्तः केशिध्वजाव्ययः ॥७६॥

सनन्दन उवाच

यथार्हपूजया तेन खांडिक्येन स पूजितः । आजगाम पुरं ब्रह्मंस्ततः केशिध्वजो नृप ॥७७॥
खांडिक्योऽपि सुतं कृत्वा राजानं योगसिद्धये । विशालामगमत्कृष्णे समावेशितमानसः ॥७८॥
स तत्रैकांतिको भूत्वा यमादिगुणसंयुतः । विष्ण्वाख्ये निर्मले ब्रह्मण्यवाप नृपतिर्लयम् ॥७९॥
केशिध्वजोऽपि मुक्त्यर्थं स्वकर्मक्षपणोन्मुखः । बुभुजे विषयान्कर्म चक्रे चानभिसंधितम् ॥८०॥
स कल्याणोपभोगैश्च क्षीणपापोऽमलस्ततः । अवाप सिद्धिमत्यंतत्रितापक्षपणीं मुने ॥८१॥

करण है; अतः उस ज्ञान रूपी करण के द्वारा वह योगी मुक्ति रूप कार्य सिद्ध करके कृतकृत्य होकर सर्वश्रेष्ठ हो जाता है ॥६८-६९॥ भगवान् के रूप ध्यान में तन्मय होकर वह उससे अभिन्न (तद्रूप) हो जाता है। उससे अपने को भिन्न समझना तो अज्ञान है ॥७०॥ विभेदमूलक ज्ञान के आत्यन्तिक नाश हो जाने पर आत्मा और ब्रह्म का भेद रह ही नहीं जाता है, इसका समर्थन कौन कर सकता है ॥७१॥ खाण्डिक्य ! तुम्हारे प्रश्न के अनुसार मैंने इस प्रकार कहीं पर तो संक्षेप में और कहीं विस्तार के साथ योग का वर्णन कर दिया। अब तुम्हारा कौन सा प्रिय कार्य है, जिसको करूं ॥७२॥

खाण्डिक्य ने कहा—तुमने मेरे ऊपर अनुग्रह करके सम्पूर्ण योग का वर्णन कर दिया और तुम्हारे उपदेश से मेरे मन का सब मल नष्ट हो गया ॥७३॥ मैंने जो 'यह मेरा है' ऐसा समझ रखा था, वह असद्ज्ञान था, इसमें सन्देह का कुछ भी अवसर नहीं। ज्ञेय तत्त्व को जानने वाले व्यक्ति ही इस विषय को कह सकते हैं ॥७४॥ मैं और मेरा का व्यवहार अविद्या (अज्ञान) है। इसका परमार्थ तत्त्व अनिवर्चनीय और वाणी से परे है। केशिध्वज जी, अब तुम जा सकते हो, जो कुछ तुमने उपदेश दिया और जो कुछ मुक्ति-विषयक योग को बतलाया वह मेरे कल्याण के लिए पर्याप्त है ॥७५-७६॥

सनन्दन बोले—ब्रह्मन् ! खांडिक्य से केशिध्वज यथायोग्य पूजा पाकर अपनी राजधानी में चला आया ॥७७॥ खांडिक्य भी अपने पुत्र को राज्य देकर अपने मन में कृष्ण का ध्यान करता हुआ विशाला नगरी में आया ॥७८॥ वहाँ वह यम-नियमादि का पालन करता हुआ एकान्त भाव से निर्मल परब्रह्म विष्णु में लीन हो गया ॥७९॥ केशिध्वज भी अपने कर्मों को नष्ट कर मुक्ति पाने के अभिप्राय से राजकीय विषयों का उपभोग करता हुआ अनासक्त भाव से कर्म करता रहा ॥८०॥ मुने ! उसने शुभ भोगों के द्वारा अपने पापों को नष्ट कर त्रिताप

एतत्ते कथितं सर्वं यन्मां त्वं परिपृष्टवान् । तापत्रयचिकित्सार्थं किमन्यत्कथयामि ते ॥८२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे द्वितीयपादे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

नारद उवाच

श्रुतं मया महाभाग तापत्रयचिकित्सितम् । तथापि मे मनो भ्रांतं न स्थितिं लभतेंऽजसा ॥१॥

आत्मव्यतिक्रमं ब्रह्मन्दुर्जनाचरितं कथम् । सोढुं शक्येत मनुजैस्तन्ममाख्याहि मानद ॥२॥

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा नारदेनोक्तं ब्रह्मपुत्रः सनंदनः । उवाच हर्षसंयुक्तः स्मरन्भरतचेष्टितम् ॥३॥

सनंदन उवाच

अत्र ते कथयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् । यं श्रुत्वा त्वन्मनो भ्रांतमास्थानं लभते भृशम् ॥४॥

आसीत्पुरा मुनिश्रेष्ठ भरतो नाम भूपतिः । आर्षभो यस्य नाम्नेदं भारतं खण्डमुच्यते ॥५॥

को नष्ट करने वाली सिद्धिमती भूमिका प्राप्त की । इस प्रकार त्रिताप को नष्ट करने वाली योग विद्या के लिए तुमने जो उपाय पूछा था, वह सब मैंने बता दिया । अब और क्या कहूँ ॥८१-८२॥

श्रीनारदीयमहापुराण के पूर्वभाग में सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४७॥

अध्याय ४८

ज्ञान-चर्चा-प्रसंग में राजा भरत का उपाख्यान

नारद बोले—महाभाग ! त्रिताप को दूर करने वाले योग-रहस्य को तो सुना फिर भी मेरा मन भ्रम में ही पड़ा हुआ है, किसी प्रकार पूर्णरूप से शान्ति नहीं मिल रही है ॥१॥ ब्रह्मन् ! मानद ! अब यह बताने का कष्ट करें कि दुष्टों के विपरीत आचरण को मनुष्य किस प्रकार सह सकता है ॥२॥

सूत बोले—नारद के प्रश्न को सुनकर ब्रह्म-पुत्र सनन्दन प्रसन्न होकर राजा भरत के चरित्र का स्मरण करते हुए बोले ॥३॥

इस विषय में तुमको एक प्राचीन इतिहास सुना रहा हूँ जिसको सुनकर तुम्हारा भ्रान्त मन भली-भाँति शान्ति प्राप्त करेगा ॥४॥ मुनिश्रेष्ठ ! प्राचीन काल में ऋषभ-पुत्र भरत नाम का एक राजा था, जिसके नाम

स राजा प्राप्तराज्यस्तु पितृपैतामहं क्रमात् । पालयामास धर्मेण पितृवद्रंजयन् प्रजाः ॥६॥
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्भगवंतमधोक्षजम् । सर्वदेवात्मकं ध्यायन्नानाकर्मसु तन्मतिः ॥७॥
ततः समुत्पाद्य सुतान्विरक्तो विषयेषु सः । मुक्त्वा राज्यं ययौ विद्वान्पुलस्त्यपुलहाश्रमम् ॥८॥
शालग्रामं महाक्षेत्रं मुमुक्षुजनसेवितम् । तत्रासौ तापसो भूत्वा विष्णोराराधनं मुने ॥९॥
चकार भक्तिभावेन यथालब्धसपर्यया । नित्यं प्रातः समाप्लुत्य निर्मलेंऽभसि नारद ॥१०॥
उपतिष्ठेद्रविं भक्त्या गृणन्ब्रह्माक्षरं परम् । अथाश्रमे समागत्य वासुदेवं जगत्पतिम् ॥११॥
समाहृतैः स्वयं द्रव्यैः समित्कुशमृदादिभिः । फलैः पुष्पैस्तथा पत्रैस्तुलस्याः स्वच्छवारिभिः ॥१२॥
पूजयन्प्रयतो भूत्वा भक्तिप्रसरसंप्लुतः । स चैकदा महाभागः स्नात्वा प्रातः समाहितः ॥१३॥
चक्रनद्यां जपंस्तस्थौ मुहूर्तत्रयमंबुनि । अथाजगाम तत्तीरं जलं पातुं पिपासिता ॥१४॥
आसन्नप्रसवा ब्रह्मन्नेकैव हरिणी वनात् । ततः समभवत्तत्र पीतप्राये जले तया ॥१५॥
सिंहस्य नादः सुमहान् सर्वप्राणिभयंकरः । ततः सा सिंहसन्नादादुत्प्लुता निम्नगातटम् ॥१६॥
अत्युच्चारोहणेनास्या नद्यां गर्भः पपात ह । तमुह्यमानं वेगेन वीचिमालापरिप्लुतम् ॥१७॥
जग्राह भरतो गर्भात्पतितं मृगपोतकम् । गर्भप्रच्युतिदुःखेन प्रोत्तुंगाक्रमणेन च ॥१८॥
मुनीन्द्र सा तु हरिणी निपपात ममार च । हरिणीं तां विलोक्याथ विपन्नां नृपतापसः ॥१९॥
मृगपोतं समागृह्य स्वमाश्रममुपागतः । चकारानुदिनं चासौ मृगपोतस्य वै नृपः ॥२०॥

से यह देश भारतखण्ड कहलाता है ॥५॥ उस राजा ने कुल-परम्परा से राज्य को प्राप्त कर धर्मपूर्वक अपने पूर्वजों की भाँति प्रजा का पालन किया और प्रजा को सन्तुष्ट रखा ॥६॥ अपने शासन-काल में उसने विविध यज्ञों से इन्द्रियातीत भगवान् विष्णु की पूजा की। सर्वदा सब देवों के आत्मा भगवान् का ध्यान करते हुए उसने भिन्न कर्मों को किया ॥७॥ तदनन्तर वह पुत्रों को उत्पन्न कर विषयों से विरक्त हो अपने राज्य को त्याग कर वह विद्वान् पुलस्त्य और पुलह ऋषि के आश्रम में गया ॥८॥ वहाँ शालग्राम नामक एक महाक्षेत्र था जहाँ अन्य मुमुक्षुजन भी योग-साधना किया करते थे। मुने ! वहाँ तपस्वी बन कर यथा प्राप्त सामग्री से भक्ति-पूर्वक उसने विष्णु की आराधना प्रारम्भ की ॥९½॥ नारद ! नित्यप्रति वह जल में डुबकी लगाकर स्नान करता तथा भक्ति-पूर्वक ब्रह्म नाम का उच्चारण करता हुआ सूर्योपस्थान करता था ॥१०½॥ इसके अनन्तर आश्रम में आकर स्वयं लाई हुई समिधा, कुश, मृत्तिका, फल, पुष्प, तुलसी पत्र और स्वच्छ जल से भक्ति-भावना में तन्मय होकर एकाग्र भाव से जगत्पति वासुदेव की पूजा करता था ॥११-१२½॥ एक दिन जब उस महाभाग ने प्रातःकाल चक्र नदी के जल में स्नान किया और उस जल में ही एकनिष्ठ होकर तीन मुहुर्त्त तक भगवान् का जप किया ॥१३½॥ उसी समय उस नदी के तट पर एक प्यासी हुई आसन्नप्रसवा हरिणी बन से आई। जब वह जल पी चुकी तो उसी समय सब प्राणियों को डराने वाला सिंहनाद सुनाई पड़ा ॥१४-१५½॥ सिंह की गर्जना सुनकर वह नदी तट उसके पार जाने के लिए उछली। अधिक ऊँचाई से कूदने के कारण उसका गर्भ नदी में ही गिर पड़ा ॥१६½॥ गर्भ से गिरा हुआ वह मृगशावक नदी की धारा में पड़कर वेग से बह चला। मुनि भरत ने उसको उठा लिया ॥१७½॥ मुनीन्द्र ! गर्भपात की पीड़ा और ऊँची भूमि पर छलांग मारने के कारण वह हरिणी गिर पड़ी और मर गई ॥१८½॥ नृप तपस्वी वह भरत हरिणी को इस प्रकार मरते देखकर उस मृगशावक को लेकर आश्रम में चला आया ॥१९½॥ वह राजा प्रति दिन उस मृग की देखभाल करता था। मुने ! इस प्रकार राजा द्वारा

पोषणं पुष्यमाणश्च स तेन ववृधे मुने । चचाराश्रमपर्यंतं तृणानि गहनेषु सः ॥२१॥
दूरं गत्वा च शार्दूलत्रासादभ्याययौ पुनः । प्रातर्गत्वातिदूरं च सायमायात्यथाश्रमम् ॥२२॥
पुनश्च भरतस्याभूदाश्रमस्योटजांतरे । तस्य तस्मिन्मृगे दूरसमीपपरिवर्तिनि ॥२३॥
आसीच्चेतः समासक्तं न तथा ह्यच्युते मुने । विमुक्तराज्यतनयः प्रोज्झिताशेषबांधवः ॥२४॥
ममत्वं स चकारोच्चैस्तस्मिन्हरिणपोतके । किं वृकैर्भक्षितो व्याघ्रैः किं सिंहेन निपातितः ॥२५॥
चिरायमाणे निष्क्रांते तस्यासीदिति मानसम् । प्रीतिप्रसन्नवदनः पार्श्वस्थे चाभवन्मृगे ॥२६॥
समाधिभंगस्तस्यासीन्ममत्वाकृष्टमानसः । कालेन गच्छता सोऽथ कालं चक्रे महीपतिः ॥२७॥
पितेव सास्रं पुत्रेण मृगपोतेन वीक्षितः । मृगमेव तदाद्राक्षीत्त्यजन्प्राणानसावपि ॥२८॥
मृगो बभूव स मुने तादृशीं भावनां गतः । जातिस्मरत्वादुद्विग्नः संसारस्य द्विजोत्तम ॥२९॥
विहाय मातरं भूयः शालग्राममुपाययौ । शुष्कैस्तृणैस्तथा पर्णैः स कुर्वन्नात्मपोषणम् ॥३०॥
मृगत्वहेतुभूतस्य कर्मणो निष्कृतिं ययौ । तत्र चोत्सृष्टदेहोऽसौ जज्ञे जातिस्मरो द्विजः ॥३१॥
सदाचारवतां शुद्धे योगिनां प्रवरे कुले । सर्वविज्ञानसंपन्नः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥३२॥
अपश्यत्स मुनिश्रेष्ठः स्वात्मानं प्रकृतेः परम् । आत्मनोऽधिगतज्ञानाद्देवादीनि महामुने ॥३३॥
सर्वभूतान्यभेदेन ददर्श स महामतिः । न पपाठ गुरुप्रोक्तं कृतोपनयनः श्रुतम् ॥३४॥

पालन-पोषण प्राप्त कर वह मृग बढ़ने लगा ॥२०½॥ धीरे-धीरे वह आश्रम में इधर-उधर घूमने लगा और घास चरने लगा। जब कभी वह गहन वन में दूर जाता था तब सिंह के भय से फिर लौट आता था ॥२१½॥ प्रातःकाल जंगल में बहुत दूर चरने के लिए चला जाता था, परन्तु सायंकाल आश्रम में लौट आता था और मुनि भरत की कुटिया में विश्राम करता था ॥२२½॥ मुनिवर ! उस मुनि का उस मृग के प्रति चाहे वह समीप रहता था या दूर इतनी अधिक आसक्ति हो गई कि भगवान् की ओर भी इतनी आसक्ति न रही ॥२३½॥ राज्य, पुत्र और सब बन्धु-बान्धवों को छोड़ने वाले उस मुनि की उस हरिण के प्रति अत्यधिक ममता हो गई ॥२४½॥ उसके बाहर जाने पर यदि लौटने में विलम्ब होता था तो मुनि के मन में चिन्ता होती थी कि कहीं मृग को भेड़िये ने तो नहीं मार डाला, बाघ ने कहीं अपना आहार तो नहीं बना डाला अथवा सिंह ने उसको अपना भक्ष्य तो नहीं बना डाला। मृग जब उसकी बगल में बैठा रहता तब तो वह प्रसन्न मुख रहता था ॥२५-२६॥ मृग की ममता से खिंच जाने पर मुनि की समाधि भी भग्न हो जाती थी। धीरे-धीरे समय बीतता गया और उस महीपति का अन्तिम समय आ गया ॥२७॥ मृत्यु के समय जिस प्रकार पुत्र पिता को आंसुओं से युक्त होकर देखता है उसी प्रकार उस मृग-पोत ने मुनि को देखा। मुनि ने भी ममतावश मृत्यु के समय भी मृग को ही देखा ॥२८॥ मुने ! वैसी मृगमय भावना होने के कारण वह जन्मान्तर में मृग ही हुआ। द्विजोत्तम ! उस योनि में भी पूर्व जन्म का ज्ञान होने के कारण वह संसार से उद्विग्न रहता था ॥२९॥ अन्त में वह अपनी माता को छोड़कर शालग्राम के समीप रहने लगा और सूखी पत्तियों और घास को खाकर जीवन बिताने लगा ॥३०॥ इस प्रकार उसके मृग-योनि के कारणीभूत कर्मों का भोग द्वारा नाश हो गया। उस मृग शरीर को छोड़ने के बाद वह जन्मान्तर में सदाचारी और शुद्ध योगी कुल में जातिस्मर (पूर्व जन्म का ज्ञान रखने वाला) ब्राह्मण हुआ ॥३१½॥ वह सब शास्त्रों का मर्मज्ञ, सर्वविज्ञानविद् मुनि श्रेष्ठ ब्राह्मण अपने को प्रकृति (संसार) से परे समझता था ॥३२½॥ महामुने ! वह अध्यात्म ज्ञान के कारण देवता और सब प्राणियों में समान भाव रखता था ॥३३½॥ यज्ञोपवीत होने पर जब गुरुजी उसको शास्त्र पढ़ाते थे तब भी उस पाठ को नहीं पढ़ता था। उसने न तो किसी कर्म का अनुष्ठान ही किया और न तो शास्त्रों का अध्ययन ही ॥३४½॥ बहुत कुछ कहने पर जड़ की भाँति कुछ बोल

न ददर्श च कर्माणि शास्त्राणि जगृहे न च । उक्तोऽपि बहुशः किंचिज्जडं वाक्यमभाषत ॥३५॥
तदप्यसंस्कारगुणं ग्रामभाषोक्तिसंयुतम् । अपध्वस्तवपुः सोऽपि मलिनांबरधृङ् मुने ॥३६॥
क्लिन्नदंतांतरः सर्वैः परिभूतः स नागरैः । संमानेन परां हानिं योगर्द्धेः कुरुते यतः ॥३७॥
जनेनावमतो योगी योगसिद्धिं च विंदति । तस्माच्चरेत वै योगी सतां धर्ममदूषयन् ॥३८॥
जना यथावमन्येयुर्गच्छेयुर्नैव संगतिम् । हिरण्यगर्भवचनं विचिंत्येत्थं महामतिः ॥३९॥
आत्मानं दर्शयामास जडोन्मत्ताकृतिं जने । भुंक्ते कुल्माषवटकान् शाकं वन्यफलं कणान् ॥४०॥
यद्यदाप्नोति स बहूनत्ति वै कालसंभवम् । पितर्युपरते सोऽथ भ्रातृभ्रातृव्यबांधवैः ॥४१॥
कारितः क्षेत्रकर्मादि कदन्नाहारपोषितः । सरूक्षपीनावयवो जडकारी च कर्मणि ॥४२॥
सर्वलोकोपकरणं बभूवाहारवेतनः । तं तादृशमसंस्कारं विप्राकृतिविचेष्टितम् ॥४३॥
क्षत्ता सौवीरराज्यस्य विष्टियोग्यममन्यत । स राजा शिबिकारूढो गंतुं कृतमतिर्द्विज ॥४४॥
बभूवेक्षुमतीतीरे कपिलर्षेर्वराश्रमम् । श्रेयः किमत्र संसारे दुःखप्राये नृणामिति ॥४५॥
प्रष्टुं तं मोक्षधर्मज्ञं कपिलाख्यं महामुनिम् । उवाह शिबिकामस्य क्षत्तुर्वचनचोदितः ॥४६॥
नृणां विष्टिगृहीतानामन्येषां सोऽपि मध्यगः । गृहीतो विष्टिना विप्र सर्वज्ञानैकभाजनम् ॥४७॥
जातिस्मरोऽसौ पापस्य क्षयकाम उवाह ताम् । ययौ जडगतिस्तत्र युगमात्रावलोकनम् ॥४८॥
कुर्वन्मतिमतां श्रेष्ठस्ते त्वन्ये त्वरितं ययुः । विलोक्य नृपतिः सोऽथ विषमं शिबिकागतम् ॥४९॥

देता था सो भी शुद्ध वाक्य नहीं; प्रत्युत ग्रामीणों की भाँति ग्राम्य भाषा का ही प्रयोग करता था। मुने! वह सदा मैले-कुचैले कपड़े पहन कर लँगड़े-लूले की भाँति बना रहता था ॥३५-३६॥ नागरिक प्रायः उसका अपमान करते थे। यहाँ तक कि मारकर लोगों ने उसके दाँत तोड़ दिये। चूँकि सम्मान से योग सिद्धि में बाधा पड़ती है और लोक से अपमानित योगी सिद्धि प्राप्त करता है। अतएव योगी सज्जनों द्वारा आदृत धर्म की रक्षा करता हुआ आचरण करे ॥३७-३८॥ लोग जितना ही अधिक उसका अपमान करेंगे और उसकी संगति से बचेंगे उतना ही उसका कल्याण होगा। महामति वह योगी भरत ब्रह्मा के इस आदेश का चिन्तन कर लोक में अपने को मूर्ख जड़ की भाँति रखता था ॥३९½॥ स्वयं उड़द की रोटी, शाक और जंगली फलों और मोटे अन्न को खाता था। जो कुछ भोजन के समय मिल जाता था उसी को बहुत मानकर खा लेता था। पिता के मर जाने पर उसके भाई-बन्धुओं ने कदन्न खिला-खिलाकर उससे खेती का काम भली-भाँति कराया। रूखे और पुष्ट अंगों वाले बेचारे भरत से, जिसकी इच्छा होती थी वही केवल भोजन मात्र देकर अपना काम कराता था ॥४०-४२½॥

एक दिन सौवीरराज के सारथि ने उस विप्र के समान आकृति और चेष्टा करने वाले मैले-कुचैले भरत को डोली ढोने (कहार) के योग्य समझा। द्विज! उस राजा ने सोचा कि डोली पर चढ़कर इक्षुमती के तीर पर कपिल मुनि के श्रेष्ठ आश्रम में चलना चाहिए। इस दुःखमय संसार में मनुष्य का कल्याण कैसे हो सकता है, इसी प्रश्न को पूछने के लिए महामुनि कपिल के पास जाना चाहता था। सारथि की आज्ञा के अनुसार वह ब्राह्मण डोली ढोने लगा ॥४३-४६॥ बिना मजदूरी के काम करने वाले कहारों के साथ वह सर्वज्ञ ब्राह्मण भी पकड़ा गया। पूर्व जन्म का ज्ञानी वह ब्राह्मण अपने पापों के क्षय के लिए उस कर्म को उचित समझकर पालकी ढोने लगा। बुद्धिमानों में श्रेष्ठ वह ब्राह्मण पालकी के डंडे तक आगे की भूमि देखता हुआ मन्द गति से चलता था। अन्य लोग तेजी से चल रहे थे ॥४७-४८½॥ पालकी की चाल में कुछ विषमता देखकर राजा ने कहा—यह क्या, ऐ कहारो, सीधी चाल से चलो। फिर पालकी की गति में वैसी ही विषमता

किमेतदित्याह समं गम्यतां शिबिकावहाः । पुनस्तथैव शिबिकां विलोक्य विषमां हसन् ॥५०॥
नृपः किमेतदित्याह भवद्भिर्गम्यतेऽन्यथा ।
भूपतेर्वदतस्तस्य श्रुत्वेत्थं बहुशो वचः ।
शिबिकावाहकाः प्रोचुरयं यातीत्यसत्वरम् ॥५१॥

राजोवाच

किं श्रांतोऽस्यल्पमध्वानं त्वयोढा शिबिका मम । किमायाससहो न त्वं पीवा नासि निरीक्ष्यसे ॥५२॥

ब्राह्मण उवाच

नाहं पीवा न चैवोढा शिबिका भवतो मया । न श्रांतोऽस्मि न चायासो बोढान्योऽस्ति महीपते ॥५३॥

राजोवाच

प्रत्यक्षं दृश्यते पीवा त्वद्यापि शिबिका त्वयि । श्रमश्च भारोद्वहने भवत्येव हि देहिनाम् ॥५४॥

ब्राह्मण उवाच

प्रत्यक्षं भवता भूप यद्दृष्टं मम तद्वद । बलवानबलश्चेति वाच्यं पश्चाद्विशेषणम् ॥५५॥
त्वयोढा शिबिका चेति त्वय्यद्यापि च संस्थिता । मिथ्या तदप्यत्र भवान् शृणोतु वचनं मम ॥५६॥
भूमौ पादयुगे चाथ जंघे पादद्वये स्थिते । ऊरू जंघाद्वयावस्थौ तदाधारं तथोदरम् ॥५७॥
वक्षःस्थलं तथा बाहू स्कंधौ चोदरसंस्थितौ । स्कंधाश्रितेयं शिबिका ममाधारोऽत्र किंकृतः ॥५८॥
शिबिकायां स्थितं चेदं देहं त्वदुपलक्षितम् । तत्र त्वमहमप्यत्रेत्युच्यते चेदमन्यथा ॥५९॥

देखकर राजा हँसता हुआ बोला––क्यों, क्या बात है ? तुम लोग क्यों समगति से नहीं चलते ? राजा के बार-बार वैसा कहने पर जड़ भरत की ओर संकेत करके कहारों ने कहा––यह धीरे-धीरे चलता है ॥४९-५१॥

राजा बोला––क्यों थक गए हो क्या ? अरे ! अभी तो थोड़ी ही दूर पालकी आई है ? क्या तुम परिश्रम से थक जाते हो ? देखने में तो मोटे दिखाई दे रहे हो ?॥५२॥

ब्राह्मण बोला––न तो मैं मोटा हूँ और न मैंने तुम्हारी पालकी ढोई, न थका हुआ हूँ और न मुझे कोई खेद ही है । महीपते ! पालकी को ढोने वाला तो कोई दूसरा ही है ॥५३॥

राजा ने कहा—स्पष्टतः तुम मोटे दिखाई देते हो, पालकी भी अब तक तुम्हारे कन्धे पर पड़ी हुई है और बोझा ढोने में प्राणी को श्रम होता ही है ॥५४॥

ब्राह्मण बोला—भूप, तुमने जो कुछ प्रत्यक्ष देखा है वह कहो, पीछे बली और दुर्बल विशेषण लगाना ॥५५॥ तुमने जो अभी कहा कि मैंने पालकी ढोई है और अब तक पालकी मेरे कन्धे पर है, यह सब मिथ्या है । कैसे ? इसके लिए भी मेरी बातें सुनो ॥५६॥ ये दोनों पैर भूमि पर हैं, दोनों जंघे पैर पर स्थित हैं, कटि और नितम्ब जंघे पर अवलम्बित हैं, कटि भी उदर का आधार है, उदर छाती का, दोनों भुजायें और कन्धे उदर के ही सहारे पर हैं । शिविका कन्धे पर है, तो इसमें मैं किसका आधार हूँ ? ॥५७-५८॥ पालकी में स्थित तुम्हारा शरीर है ऐसा जो समझते हो यह भी भ्रम ही है । उस पालकी में तुम हो, मैं हूँ, यह कहना भी अनुपयुक्त है । पार्थिव ! मैं, तुम आदि का जो व्यवहार यहाँ किया जा रहा है वह भी मिथ्या ही है । पार्थिव ! मैं, तुम और

अहं त्वं च तथान्ये च भूतैरुह्याश्च पार्थिव । गुणप्रवाहपतितो भूतवर्गोऽपि यात्ययम् ॥६०॥
कर्मवश्या गुणाश्चैते सत्त्वाद्याः पृथिवीपते । अविद्यासंचितं कर्म तच्चाशेषेषु जंतुषु ॥६१॥
आत्मा शुद्धोऽक्षरः शांतो निर्गुणः प्रकृतेः परः । प्रवृद्धयपचयौ न स्त एकस्याखिलजन्तुषु ॥६२॥
यदा नोपचयस्तस्य नचैवापचयो नृप । तदापि बालिशोऽसि त्वं कया युक्त्या त्वयेरितम् ॥६३॥
भूपादजंघाकटच्रुजठरादिषु संस्थिता । शिविकेयं यदा स्कंधे तदा भारः समस्त्वया ॥६४॥
तथान्यजंतुभिर्भूप शिविकोढा न केवलम् । शैलद्रुमगृहोत्थोऽपि पृथिवीसंभवोऽपि च ॥६५॥
यथा पुंसः पृथग्भावः प्राकृतैः करणैर्नृप । सोढव्यः सुमहान्भारः कतमो नृप ते मया ॥६६॥
यद्द्रव्यो शिबिका चेयं तद्द्रव्यो भूतसंग्रहः । भवतो मेऽखिलस्यास्य समत्वेनोपबृंहितः ॥६७॥

सनंदन उवाच

एवमुक्त्वाऽभवन्मौनी स वहञ्छिबिकां द्विजः । सोऽपि राजाऽवतीर्योर्व्यां तत्पादौ जगृहे त्वरन् ॥६८॥

राजोवाच

भो भो विसृज्य शिबिकां प्रसादं कुरु मे द्विज । कथ्यतां को भवानत्र जाल्मरूपधरः स्थितः ॥६९॥
यो भवान्यदपत्यं वा यदागमनकारणम् । तत्सर्वं कथ्यतां विद्वन्मह्यं शुश्रूषवे त्वया ॥७०॥

ब्राह्मण उवाच

श्रूयतां कोऽहमित्येतद्वक्तुं भूप न शक्यते । उपयोगनिमित्तं च सर्वत्रागमनक्रिया ॥७१॥
सुखदुःखोपभोगौ तु तौ देहाद्युपपादकौ । धर्माधर्मोद्भवौ भोक्तुं जंतुर्देहादिमृच्छति ॥७२॥

दूसरे सभी प्राणी सभी भूतों (पंच महाभूतों) द्वारा ढोये जाते हैं। पृथ्वीपते ! यह भूत-समूह भी गुण-प्रवाह के वश में होकर कार्यसंचालन करता है ॥५६-६०॥ सत्त्व आदि गुण-प्रवाह भी कर्म के वश में रहते हैं। अविद्या-संचित कर्म अशेष जन्तुओं में रहता है ॥६१॥ आत्मा शुद्ध, अक्षर, शान्त, निर्गुण और प्रकृति से परे है। वह एक ही सम्पूर्ण जीवों में व्याप्त है। उसकी वृद्धि अथवा ह्रास कभी नहीं होता ॥६२॥ नृप ! जब उस आत्मा में ह्रास और वृद्धि नहीं होती, तब तुमने किस युक्ति से ऐसा कहा है कि तुम मोटे हो ॥६३॥ यदि क्रमशः पृथ्वी, पैर, जंघा, ऊरु, कटि तथा उदर आदि अंगों पर स्थित हुए कंधे के ऊपर रखी हुई यह शिविका मेरे लिए भार रूप हो सकती है तो उसी प्रकार तुम्हारे लिए भी तो हो सकती है ॥६४॥ राजन् ! इस युक्ति से तो अन्य समस्त जीवों ने भी न केवल पालकी उठा रखी है, बल्कि सम्पूर्ण पर्वत, वृक्ष, गृह और पृथ्वी आदि का भार भी अपने ऊपर ले रखा है। राजन् ! जिस द्रव्य से यह पालकी बनी हुई है, उसी से यह तुम्हारा, मेरा अथवा अन्य सबका शरीर भी बना है, जिसमें सबने ममता बढ़ा रखी है ॥६५-६७॥

सनन्दन बोले—यह कह कर वह ब्राह्मण मौन हो गया और शिविका को पूर्व की भाँति ढोने लगा। उस राजा ने भी पृथ्वी पर उतर कर शीघ्र ही उस ब्राह्मण के पैर पकड़ लिये ॥६८॥

राजा ने कहा—हे द्विज ! पालकी को छोड़ दीजिए और मेरे ऊपर कृपा कीजिए। कहिए आप कौन हैं जो इस कपट वेश में छिपे हुए हैं ॥६९॥ आप कौन हैं आपके पिता का नाम क्या है, आप किसलिए इधर-उधर घूम रहे हैं ? विद्वन् ! आप इन सब बातों का उत्तर मुझ सेवक को दीजिए ॥७०॥

ब्राह्मण बोला—भूप ! सुनो। मैं कौन हूँ, यह कह नहीं सकता। सर्वत्र सबका आगमन किसी प्रयोजन से ही होता है ॥७१॥ सुख-दुःख का उपभोग ही शरीर धारण करने का कारण है। जीव धर्म और अधर्म से

सर्वस्यैव हि भूपाल जंतोः सर्वत्र कारणम् । धर्माधर्मौ यतस्तस्मात्कारणं पृच्छ्यते कुतः ॥७३॥

राजोवाच

धर्माधर्मौ न संदेहः सर्वकार्येषु कारणम् । उपभोगनिमित्तं च देहाद्देहांतरागमः ॥७४॥
यत्त्वेतद्भवता प्रोक्तं कोऽहमित्येतदात्मनः । वक्तुं न शक्यते श्रोतुं तन्ममेच्छा प्रवर्तते ॥७५॥
योऽस्ति योऽहमिति ब्रह्मन्कथं वक्तुं न शक्यते । आत्मन्येव न दोषाय शब्दोऽहमिति यो द्विज ॥७६॥

ब्राह्मण उवाच

शब्दोऽहमिति दोषाय नात्मन्येवं तथैव तत् । अनात्मन्यात्मविज्ञानं शब्दो वा भ्रुतिलक्षणः ॥७७॥
जिह्वा ब्रवीत्यहमिति दंतौष्ठतालुकं नृप । एतेनाहं यतः सर्वे वाङ्निष्पादनहेतवः ॥७८॥
किं हेतुभिर्वदत्येषा वागेवाहमिति स्वयम् । तथापि वागहमेतद्वक्तुमित्थं न युज्यते ॥७९॥
पिंडः पृथग्यतः पुंसः शिरः पाण्यादिलक्षणः । ततोऽहमिति कुत्रैनां संज्ञां राजन्करोम्यहम् ॥८०॥
यद्यन्योऽस्ति परः कोऽपि मत्तः पार्थिवसत्तम । न देहोऽहमयं चान्ये वक्तुमेवमपीष्यते ॥८१॥
यदा समस्तदेहेषु पुमानेको व्यवस्थितः । तदा हि को भवान्कोऽहमित्येतद्विफलं वचः ॥८२॥
त्वं राजा शिविका चेयं वयं वाहाः पुरःसराः । अयं च भवतो लोको न सदेतन्नृपोच्यते ॥८३॥
वृक्षाद्दारु ततश्चेयं शिविका त्वदधिष्ठिता । क्व वृक्षसंज्ञा वै तस्या दारुसंज्ञाथवा नृप ॥८४॥
वृक्षारूढो महाराजो नायं वदति ते जनः । न च दारुणि सर्वस्त्वां ब्रवीति शिविकागतम् ॥८५॥

उत्पन्न सुख-दुःख के भोग के लिए शरीर प्राप्त करता है ॥७२॥ भूपाल ! सब जन्तुओं की उत्पत्ति के कारण धर्म और अधर्म ही हैं। तो फिर कारण क्यों पूछ रहे हो ? ॥७३॥

राजा बोला—निस्सन्देह धर्म और अधर्म सब कार्यों के कारण हैं और केवल उपभोग ही जन्मान्तर प्राप्त करने का कारण है ॥७४॥ आपने अभी जो यह कहा है कि 'मैं कौन हूँ यह नहीं कह सकता' सो इसको सुनने की इच्छा प्रबल रूप से हो रही है ॥७५॥ ब्रह्मन् ! जो आपका परिचय है, उसको कहने में आप क्यों नहीं समर्थ हो रहे हैं ? द्विज ! अपने विषय में मैं ऐसा हूँ, यह कहने से कुछ दोष नहीं होता ॥७६॥

ब्राह्मण बोला—अहम् (मैं) शब्द का प्रयोग आत्मा के विषय में करने से कुछ दोष नहीं, परन्तु अनात्मा में आत्मविज्ञान हो जाने के कारण भ्रमात्मक ज्ञान हो जाने से 'मैं' शब्द का प्रयोग भ्रान्ति है। नृप ! जीभ 'मैं' ऐसा कहती है, परन्तु दाँत, ओठ और तालु सब शब्दोच्चारण में सहायक हैं। तो क्या वाणी अपने को 'मैं' ऐसा कहती है ? तथापि मैं वाणी हूँ, यह कहना सर्वथा अनुचित है ॥७७-७९॥ इसके अतिरिक्त 'अहम्' ऐसा कहना सर्वथा अनुचित है, क्योंकि शिर, हाथ आदि से युक्त शरीर-पिंड से मनुष्य का आत्मा सर्वथा पृथक है, राजन् ! तो मैं 'मैं' शब्द का प्रयोग किसके लिए करूँ। यदि मुझसे अतिरिक्त कोई और भी सजातीय आत्मा हो तो भी 'यह मैं हूँ और यह अन्य है'—ऐसा कहना उचित हो सकता था। जब समस्त शरीर में एक ही पुरुष विराजमान है तब आप कौन हैं, मैं कौन हूँ, इस विषय में कुछ कहना व्यर्थ होगा ॥८०-८२॥ तुम राजा हो, यह पालकी है, हम सभी इसके ढोने वाले हैं, यह राज्य आपका है, ये सब बातें सत्य नहीं कही जा सकती हैं ॥८३॥ वृक्ष से लकड़ी आई, उसकी पालकी बनी जिस पर तुम बैठे हो। नृप ! तुम्हीं बताओ कि इसका नाम वृक्ष रखना ठीक होगा या लकड़ी ॥८४॥ महाराज वृक्ष पर बैठे हैं ऐसा तुम्हारे सेवक नहीं कहते हैं और न तो शिविका में बैठने के कारण तुमको लकड़ी पर बैठा हुआ ही कहा जाता है। शिविका दारु का समूह है और अपने लिए एक विशेष नाम का

शिबिकादारुसंघातो स्वनामस्थितिसंस्थितः । अन्विष्यतां नृपश्रेष्ठानन्ददा शिविका त्वया ॥८६॥
एवं छत्रं शलाकाभ्यः पृथग्भावो विमृश्यताम् । क्व जातं छत्रमित्येष न्यायस्त्वयि तथा मयि ॥८७॥
पुमान्स्त्री गौरजा वाजी कुंजरो विहगस्तरुः । देहेषु लोकसंज्ञेयं विज्ञेया कर्महेतुषु ॥८८॥
पुमान्न देवो न नरो न पशुर्न च पादपः । शरीराकृतिभेदास्तु भूपैते कर्मयोनयः ॥८९॥
वस्तु राजेति यल्लोके यच्च राजभटात्मकम् । तथान्यच्च नृपेत्थं तन्न सत्यं कल्पनामयम् ॥९०॥
यस्तु कालांतरेणापि नाशसंज्ञामुपैति वै । परिणामादिसंभूतं तद्वस्तु नृप तच्च किम् ॥९१॥
त्वं राजा सर्वलोकस्य पितुः पुत्रो रिपो रिपुः । पत्न्याः पतिः पिता सूनोः कस्त्वं भूप वदाम्यहम् ॥९२॥
त्वं किमेतच्छिरः किं तु शिरस्तव तथोदरम् । किमु पादादिकं त्वेतन्नैव किं ते महीपते ॥९३॥
समस्तावयवेभ्यस्त्वं पृथग्भूतो व्यवस्थितः । कोऽहमित्यत्र निपुणं भूत्वा चिंतय पार्थिव ॥९४॥
एवं व्यवस्थिते तत्त्वे मयाहमिति भावितुम् । पृथक्चरणनिष्पाद्यं शक्यं तु नृपते कथम् ॥९५॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वि० पा० अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

आश्रय लेकर स्थित है। नृपश्रेष्ठ! इसलिए तुम दारु-समूह से अलग आनन्ददायक पालकी ढूँढ़ो। इसी प्रकार शलाकादि से पृथक् छत्र भी ढूँढ़ो। छत्र कहाँ गया, यह प्रश्न तुम्हारे और मेरे लिए भी समान है ॥८५-८७॥ पुरुष, स्त्री, गौ, बकरी, अश्व, हाथी, पक्षी और वृक्ष आदि संज्ञायें कर्म के द्वारा प्राप्त शरीर की ही हैं ॥८८॥ भूप! वस्तुतः पुरुष, मनुष्य, पशु और वृक्ष आदि संज्ञायें केवल शरीर और आकृति के भेद के कारण हैं, जो कि कर्म के कारण है ॥८९॥ इस लोक में राजा, राजसेवक तथा अन्य जो संज्ञायें हैं ये सब केवल कल्पना ही हैं सत्य नहीं ॥९०॥ जो कालान्तर में नष्ट हो जाते और पुनः नवीन संज्ञा (नाम) प्राप्त करते हैं। नृप! परिणाम आदि के कारण नयी संज्ञा नहीं प्राप्त करती वही परमार्थ वस्तु है। वह क्या है इसको तो देखो! तुम अखिल लोक के राजा हो, किसी पिता के पुत्र हो, किसी शत्रु के शत्रु हो, किसी पत्नी के पति और किसी पुत्र के पिता हो, अब तुम को बता रहा हूँ कि तुम कौन हो। तुम क्या यह शिर हो? नहीं, शिर तो तुम्हारा है और उदर भी तुम्हारा ही है। महीपते! क्या ये पैर, हाथ आदि तुम्हारे नहीं है? वस्तुतः तुम इन समस्त शरीरावयवों से पृथक् स्थित हो। पार्थिव! तुम कौन हो, इस विषय को सावधान हो कर विचारो। इस प्रकार रहस्यमय होने के कारण 'मैं कौन हूँ' इस विषय में मैं 'चरण आदि शरीर अवयवों से पृथक हूँ' ऐसा कहना कैसे सरल कहा जा सकता है ॥९१-९५॥

श्रीनारदीय महापुराण के पूर्वार्द्ध में अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४८॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सनंदन उवाच

निशम्य तस्येति वचः परमार्थसमन्वितम् । प्रश्रयावनतो भूत्वा तमाह नृपतिर्द्विजम् ॥१॥

राजोवाच

भगवन्यत्त्वया प्रोक्तं परमार्थमयं वचः । श्रुते तस्मिन्भ्रमंतीव मनसो मम वृत्तयः ॥२॥
एतद्विवेकविज्ञानं यदि शेषेषु जंतुषु । भवता दर्शितं विप्र तत्परं प्रकृतेर्महत् ॥३॥
नाहं वहामि शिविकां शिविका मयि न स्थिता । शरीरमन्यदस्मत्तो येनेयं शिविका धृता ॥४॥
गुणप्रवृत्तिर्भूतानां प्रवृत्तिः कर्मचोदिता । प्रवर्तंते गुणाश्चैते किं ममेति त्वयोदितम् ॥५॥
एतस्मिन्परमार्थज्ञ मम श्रोत्रपथं गते । मनो विह्वलतामेति परमार्थार्थितां गतम् ॥६॥
पूर्वमेव महाभाग कपिलर्षिमहं द्विज । प्रष्टुमभ्युद्यतो गत्वा श्रेयः किंत्वत्र संशये ॥७॥
तदंतरे च भवता यदिदं वाक्यमीरितम् । तेनैव परमार्थार्थं त्वयि चेतः प्रधावति ॥८॥
कपिलर्षिर्भगवतः सर्वभूतस्य वै किल । विष्णोरंशो जगन्मोहनाशाय समुपागतः ॥९॥
स एव भगवान्नूनमस्माकं हितकाम्यया । प्रत्यक्षतामनुगतस्तथैतद्भवतोच्यते ॥१०॥
तन्मह्यं मोहनाशाय यच्छ्रेयः परमं द्विज । तद्वदाखिलविज्ञानजलवीच्युदधिर्भवान् ॥११॥

अध्याय ४९

परमार्थ का निरूपण

सनंदन बोले--भरत की उपर्युक्त परमार्थ तत्त्व से भरी हुई व्याख्या को सुनकर राजा ने नम्र होकर पुनः उनसे पूछा ॥१॥

राजा ने कहा--भगवन्, आपने जो कुछ परम तत्त्व की बात कही उसको सुनकर मेरे मन की वृत्तियां अभी भ्रम में पड़ी हुई सी हैं ॥२॥ इस प्रकार का विवेक-विज्ञान यदि शेष जन्तुओं के विषय में हो जाय तब तो यह प्रकृति से परे का ज्ञान है ॥३॥ मैं पालकी नहीं ढोता, न तो वह मुझ पर अवस्थित है । शरीर हमसे पृथक् है, जिसने इस पालकी को धारण किया है । भूतों की प्रवृत्ति गुणों की प्रेरणा है और गुण कर्म से प्रेरित होकर प्रवृत्त होते हैं । इसलिए मेरा कर्त्तव्य क्या है, यह आपने कहा है । परमार्थज्ञ ! इस गूढ़ तत्त्व के सुन लेने से परमार्थ के ज्ञान के पूर्व से ही उत्सुक मेरा मन इस समय और अधिक विह्वल हो रहा है ॥४-६॥ द्विज ! मैं पहले ही संशय में पड़कर श्रेयस्कर तत्त्व को पूछने के लिए कपिल ऋषि के यहां जा रहा था । इसी बीच आपने ऐसी रहस्यमय बातें सुनाईं । इस कारण अब आपसे ही परमार्थ तत्त्व को जानने की इच्छा से मेरा मन आप ही की ओर उन्मुख हो रहा है ॥७-८॥ कपिल ऋषि अखिल प्राणियों के ईश विष्णु के अंश हैं, जो जगत् का मोह दूर करने के लिए इस लोक में आए हुए हैं । इसलिए आप ऐसी बातें कहते हैं ॥९-१०॥ द्विज ! इसलिए हमारे मोह नाश के लिए जिस परम श्रेय को आप उचित समझते हों, उसको कहिए । क्योंकि आप सम्पूर्ण विज्ञानरूपी तरंगों से परिपूर्ण समुद्र हैं ॥११॥

ब्राह्मण उवाच

भूयः पृच्छसि किं श्रेयः परमार्थेन पृच्छसि । श्रेयांसि परमार्थानि ह्यशेषाण्येव भूपते ॥१२॥
देवताराधनं कृत्वा धनसंपदमिच्छति । पुत्रानिच्छति राज्यं च श्रेयस्तस्यैव तन्नृप ॥१३॥
विवेकिनस्तु संयोगः श्रेयोऽसौ परमात्मना । कर्मयज्ञादिकं श्रेयः स्वलोकफलदायि यत् ॥१४॥
श्रेयः प्रधानं च फले तदेवानभिसंहिते । आत्मा ध्येयः सदा भूप योगयुक्तैस्तथा परैः ॥१५॥
श्रेयस्तस्यैव संयोगः श्रेयो यः परमात्मनः । श्रेयांस्येवमनेकानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥१६॥
संत्यत्र परमार्थास्तु न त्वेते श्रूयतां च मे । धर्मोऽयं त्यजते किं तु परमार्थो धनं यदि ॥१७॥
व्ययश्च क्रियते कस्मात्कामप्राप्त्युपलक्षणः । पुत्रश्चेत्परमार्थाख्यः सोऽप्यन्यस्य नरेश्वर ॥१८॥
परमार्थभूतः सोऽन्यस्य परमार्थो हि नो पिता । एवं न परमार्थोऽस्ति जगत्यत्र चराचरे ॥१९॥
परमार्थो हि कार्याणि करणानामशेषतः । राज्यादिप्राप्तिरत्रोक्ता परमार्थतया यदि ॥२०॥
परमार्था भवंत्यत्र न भवंति च वै ततः । ऋग्यजुः सामनिष्पाद्यं यज्ञकर्म मतं तव ॥२१॥
परमार्थभूतं तत्रापि श्रूयतां नदतो मम । यत्तु निष्पाद्यते कार्यं मृदा कारणभूतया ॥२२॥
तत्कारणानुगमनाज्जायते नृप मृन्मयम् । एवं विनाशिभिर्द्रव्यैः समिदाज्यकुशादिभिः ॥२३॥
निष्पाद्यते क्रिया या तु सा भवित्री विनाशिनी । अनाशी परमार्थस्तु प्राज्ञैरभ्युपगम्यते ॥२४॥
यत्तु नाशि न संदेहो नाशिद्रव्योपपादितम् । तदेवाफलदं कर्म परमार्थो न भेदवान् ॥२५॥
मुक्तिसाधनभूतत्वात्परमार्थो न साधनम् । ध्यानमेवात्मनो भूप परमार्थार्थशब्दितम् ॥२६॥

ब्राह्मण बोला—फिर तुम श्रेय क्या है, इसको पूछ रहे हो, यदि परमार्थतः पूछते हो तब तो हे भूपते ! सम्पूर्ण परमार्थ ही श्रेय हैं। नृप ! देवता की उपासना से धन, सम्पत्ति, पुत्र और राज्य की जो इच्छा करते हैं उनके लिए वही श्रेय है ॥१२-१३॥ ज्ञानी पुरुषों के लिए परमात्मा का संयोग (प्राप्ति) ही श्रेय है। कर्मयज्ञ आदि भी श्रेय ही हैं, क्योंकि वे स्वर्ग लोकरूपी फल को देने वाले हैं ॥१४॥ निकट न रहने वाले परम फल में श्रेय की प्रधानता रहती है। भूपाल ! अन्य योगियों ने आत्मा को ही सदा अपना ध्येय माना है तो परमात्मा का जो संयोग है वही उनका श्रेय है ॥१५॥ इस प्रकार श्रेय के अनेकों (सैकड़ों और सहस्रों) भेद हैं। श्रेय इतने हैं, परन्तु ये परमार्थ श्रेय नहीं हैं। जो परमार्थ है, उसको मुझसे सुनो ॥१६½॥ यदि धन को परमार्थ माना जाय तो धर्म के लिए उसका त्याग क्यों किया जाता तथा काम प्राप्ति के लिए धन का व्यय क्यों किया जाता है ? तब नरेश्वर ! पुत्र को परमार्थ कैसे माना जाय, क्योंकि वह भी तो दूसरे का परमार्थभूत है। इसी प्रकार पिता भी परमार्थ भूत नहीं है, वह भी अन्य का ही परमार्थ है। इसलिए नरेश्वर ! इस चराचर जगत् में परमार्थ नहीं है ॥१७-१९॥ परमार्थ अशेष कारणों का एकमात्र कार्य है अर्थात् संसार का एकमात्र प्राप्य है। यदि राज्य आदि का पाना परमार्थ माना जाय तो ऋग्-यजुस् और साम द्वारा प्रतिपादित यज्ञादि कर्म परमार्थ की श्रेणी में नहीं आते ॥२०-२१॥ परमार्थ भूत जो तत्त्व है, उसको मैं कह रहा हूँ, सुनो। राजन् ! कारणभूत मिट्टी से जो कार्य (घट) उत्पन्न होता है, वह कारण का अनुगमन करने से मृत्तिका स्वरूप ही समझा जाता है। इसी प्रकार समिधा, कुश आदि विनाशशील कारणों से जो कार्य उत्पन्न होगा वह भी विनश्वर होगा ॥२२-२३½॥ प्राज्ञ व्यक्ति परमार्थ को अनश्वर मानते हैं। जो क्षणभंगुर पदार्थों से ही बनता है, वह अवश्य ही क्षणभंगुर होता है। तो यह मेरा मत है कि जो किसी प्रकार के फल (प्रत्यक्ष) को न देने वाला कर्म है, वही परमार्थ है। परमार्थ स्वयं मुक्ति का साधनभूत होने के कारण अन्य किसी का साधन नहीं है। भूप ! यदि आत्मा के ध्यान

भेदकारि परेभ्यस्तु परमार्थो न भेदवान् । परमार्थात्मनोर्योगः परमार्थ इतीष्यते ॥२७॥
मिथ्यैतदन्यद्द्रव्यं हि नैतद्द्रव्यमयं यतः । तस्माच्छ्रेयांस्यशेषाणि नृपैतानि न संशयः ॥२८॥
परमार्थस्तु भूपाल संक्षेपाच्छ्रूयतां मम । एको व्यापी समः शुद्धो निर्गुणप्रकृतेः परः ॥२९॥
जन्मवृद्ध्यादिरहित आत्मा सर्वगतो नृप । परिज्ञानमयो सद्भिर्नामजात्यादिभिर्विभुः ॥३०॥
न योगवान्न युक्तोऽभून्नैव पार्थिव योक्ष्यति । तस्यात्मपरदेहेषु सतोऽप्येकमयं हि तत् ॥३१॥
विज्ञानं परमार्थोऽसौ वेत्ति नोऽतथ्यदर्शनः । वेणुरंध्रविभेदेन भेदः षड्जादिसंज्ञितः ॥३२॥
अभेदो व्यापिनो वायोस्तथा तस्य महात्मनः । एकत्वं रूपभेदश्च वाह्यकर्मप्रवृत्तिजः ॥३३॥
देवादिभेदमध्यास्ते नास्त्येवावरणो हि सः । शृणवत्र भूप प्राग्वृत्तं यद्गीतमृभुणा भवेत् ॥३४॥
अवबोधं जनयतो निदाघस्य द्विजन्मनः । ऋभुर्नामाऽभवत्पुत्रो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥३५॥
विज्ञाततत्त्वसद्भावो निसर्गादेव भूपते । तस्य शिष्यो निदाघोऽभूत्पुलस्त्यतनयः पुरा ॥३६॥
प्रादादशेषविज्ञानं स तस्मै परया मुदा । अवाप्तज्ञानतत्त्वस्य न तस्याद्वैतवासना ॥३७॥
स ऋभुस्तर्कयामास निदाघस्य नरेश्वर । देविकायास्तटे वीर नागरं नाम वै पुरम् ॥३८॥
समृद्धमतिरम्यं च पुलस्त्येन निवेशितम् । रम्योपवनपर्यंतं स तस्मिन्पार्थिवोत्तम ॥३९॥
निदाघनामयोगज्ञस्तस्य शिष्योऽभवत्पुरा । दिव्ये वर्षसहस्रे तु समतीतेऽस्य तत्पुरम् ॥४०॥
जगाम स ऋभुः शिष्यं निदाघमवलोकितुम् । स तस्य वैश्वदेवांते द्वारालोकनगोचरः ॥४१॥

को ही परमार्थ शब्द का अर्थ माना जाय तो वह दूसरे से आत्मा का भेद करने वाला है; किन्तु परमार्थ में भेद नहीं होता। परमार्थ और आत्मा का योग ही परमार्थ कहा जाता है। अन्य द्रव्य मिथ्या है क्योंकि परमार्थ द्रव्यमय नहीं है। अतः राजन्! निःसन्देह ये सब श्रेय ही हैं, परमार्थ नहीं। भूपाल! अब मैं संक्षेप से परमार्थ का वर्णन करता हूँ, सुनो ॥२४-२८½॥

नरेश्वर! आत्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृति से परे है। उसमें जन्म और वृद्धि आदि विकार नहीं हैं। वह सर्वत्र व्यापक तथा परम ज्ञानमय है। असत् नाम और जाति आदि से उस सर्वव्यापक परमात्मा का न कभी संयोग हुआ, न है और न होगा ही। वह अपने और दूसरे के शरीर में विद्यमान रहते हुए भी एक ही है ॥२९-३१॥ इस प्रकार का जो विशेष ज्ञान है वही परमार्थ है। द्वैत भावना रखने वाले पुरुष तो अपरमार्थदर्शी ही हैं। जैसे बाँसुरी में एक ही वायु अभेद भाव से व्याप्त है, किन्तु उसके छिद्रों के भेद से उसमें षड्ज, ऋषभ आदि स्वरों का भेद हो जाता है, उसी प्रकार उस एक ही परमात्मा के देव, मनुष्य आदि अनेक भेद प्रतीत होते हैं। उस भेद की स्थिति तो अविद्या के आवरण तक ही सीमित है ॥३२-३३½॥

भूपाल! इस विषय में ऋभु ऋषि का जो प्राचीन ऐतिहासिक उपाख्यान है, उसको सुनो। द्विजन्मा निदाघ को ज्ञान का प्रकाश देने वाले ऋभु परमेष्ठी ब्रह्मा के पुत्र थे ॥३४-३५॥ भूपते! स्वभाव से ही समस्त तत्त्वों के ज्ञाता थे। प्राचीन काल में पुलस्त्य-तनय निदाघ उनका शिष्य था ॥३६॥ उन्होंने प्रसन्न होकर अपने शिष्य को सम्पूर्ण ज्ञान दे डाला। परन्तु सम्पूर्ण तत्त्वों को जान लेने पर भी निदाघ में अद्वैत भावना नहीं हुई ॥३७॥ नरेश्वर! ऋभु ने निदाघ की इस स्थिति को ताड़ लिया। वीर! देविका नदी के तट पर नागर नाम का एक विशाल नगर था। वह अत्यन्त मनोहर और समृद्धिशाली था जिसको पुलस्त्य ने बसाया था ॥३८½॥ नृपवर्य! रम्य उपवनों से सुशोभित उस नगर में वह योगविद् निदाघ रहता था। एक दिन दिव्य हजार वर्ष बीत जाने पर ऋषि ऋभु अपने शिष्य निदाघ को देखने के लिए उस पुर में गए। उसने वैश्वदेव विधि करने के उपरान्त गुरुदेव को द्वार पर आया हुआ देखा और आदर के साथ उनका स्वागत कर घर में ले गया ॥३९-४१½॥

स्थितस्तेन गृहीतार्घो निजवेश्म प्रवेशितः। प्रक्षालितांघ्रिपाणिं च कृतासनपरिग्रहम् ॥४२॥
उवाच स द्विजश्रेष्ठो भुज्यतामिति सादरम्।

ऋभुरुवाच ॥४३॥

भो विप्रवर्य भोक्तव्यं यदत्र भवतो गृहे
तत्कथ्यतां कदन्नेषु न प्रीतिः सततं मम।

निदाघ उवाच

सक्तुयावकव्रीहीनामपूपानां च मे गृहे। ॥४४॥
यद्रोचते द्विजश्रेष्ठ तावद्भुंक्ष्व यथेच्छया।

ऋभुरुवाच ॥४५॥

कदन्नानि द्विजैतानि मिष्टमन्नं प्रयच्छ मे
संयावपायसादीनि चेक्षुका रसवंति च।

निदाघ उवाच ॥४६॥

गृहे शालिनि मद्गेहे यत्किंचिदतिशोभनम्
भोज्येषु साधनं मिष्टं तेनास्यान्नं प्रसाधय। इत्युक्ता तेन सा पत्नी मिष्टमन्नं द्विजस्य तत् ॥४७॥
प्रसाधितवती तद्वै भर्तुर्वचनगौरवात्। तं भुक्तवंतमिच्छातो मिष्टमन्नं महामुनिम् ॥४८॥
निदाघः प्राह भूपाल प्रश्रयावनतः स्थितः।

निदाघ उवाच ॥४९॥

अपि ते परमा तृप्तिरुत्पन्ना पुष्टिरेव च

हाथ और पैर को धो कर उसने गुरु जी को उच्च आसन दिया। जब गुरुजी आसनासीन हो गए तब उस द्विज-श्रेष्ठ ने आदरपूर्वक भोजन करने के लिए कहा ॥४२½॥

ऋभु बोले—विप्रवर्य ! जो तुम्हारे घर में है उसी को खाना चाहिए। तो कहो मैं क्या खाऊँ ? कदन्न से तो मुझे कभी भी प्रीति नहीं रही।

निदाघ बोला—द्विजश्रेष्ठ ! मेरे घर में सत्तू, जौ की लपसी और बाटी बनी हैं। इनमें से जो अच्छा लगे उसको आप यथेच्छ भोजन कीजिए ॥४३-४४½॥

ऋभु ने कहा—द्विज ! ये तो कदन्न हैं, मुझे मीठा अन्न भोजन के लिए दो। हलुआ, खीर और खाँड़ के बने हुए पदार्थ भोजन कराओ ॥४५½॥

निदाघ ने कहा—गृहिणी ! मेरे घर में जो कुछ उत्तम अन्न और मीठे पदार्थ हैं उनका स्वादु भोजन बनाकर द्विजवर को परसो। पत्नी पति के कहने के अनुसार आदरपूर्वक अपने पति के वचन के अनुकूल ही स्वादु भोजन द्विज के आगे परोस दिया। भूपाल ! जब महामुनि इच्छानुकूल मधुर अन्न खा चुके तब निदाघ ने विनय नम्र होकर पूछा ॥४६-४८½॥

'द्विज ! क्या आपको इस मधुर भोजन से पर्याप्त तृप्ति हुई ? कुछ शरीर में शक्ति आई ? अथवा इस

अपि ते मानसं स्वस्थमाहारेण कृतं द्विज । क्व निवासी भवान्विप्र क्व वा गंतुं समुद्यतः ॥५०॥
आगम्यते च भवता यतस्तच्च निवेद्यताम् ।

ऋभुरुवाच

क्षुधितस्य च भुक्तेऽन्ने तृप्तिर्ब्रह्मन्विजायते ॥५१॥
न मे क्षुधा भवेत्तृप्तिः कस्मान्मां द्विज पृच्छसि । वह्निना पार्थिवेनादौ दग्धे वै क्षुत्समुद्भवः ॥५२॥
भवत्यंभसि च क्षीणे नृणां तृष्णासमुद्भवः । क्षुत्तृष्णे देहधर्माख्ये न ममैते यतो द्विज ॥५३॥
ततः क्षुत्संभवाभावात्तृप्तिरस्त्येव मे सदा । मनसः स्वस्थता तुष्टिश्चित्तधर्माविमौ द्विज ॥५४॥
चेतसो यस्य यत्पृष्टं पुमानेभिर्न युज्यते । क्व निवासस्तवेत्युक्तं क्व गंतासि च यत्त्वया ॥५५॥
कुतश्चागम्यते त्वेतत्त्रितयेऽपि निबोध मे । पुमान्सर्वगतो व्यापीत्याकाशवदयं यतः ॥५६॥
कुतः कुत्र क्व गंतासीत्येतदप्यर्थवत्कथम् । सोऽहं गंता च चागंता नैकदेशनिकेतनः ॥५७॥
त्वं चान्ये च न च त्वं त्वं नान्ये नैवाहमप्यहम् । मिष्टान्ने मिष्टमित्येवा जिह्वा सा मे कृता तव ॥५८॥
किं वक्ष्यतीति तत्रापि श्रूयतां द्विजसत्तम । मिष्टमेव यदामिष्टं तदेवोद्वेगकारणम् ॥५९॥
अमिष्टं जायते मिष्टं मिष्टादुद्विजते जनः । आदिमध्यावसानेषु किमन्नं रुचिकारणम् ॥६०॥
मृण्मयं हि मृदा यद्वद्गृहं लिप्तं स्थिरीभवेत् । पार्थिवोऽयं तथा देहः पार्थिवैः परमाणुभिः ॥६१॥
यवगोधूममुद्गादिघृतं तैलं पयो दधि । गुडः फलानीति तथा पार्थिवाः परमाणवः ॥६२॥

आहार से कुछ मानसिक तुष्टि प्राप्त हुई ? ॥४९½॥ विप्र ! आप कहाँ के रहने वाले हैं ? इस समय कहाँ के लिए प्रस्थान किया है और कहाँ से आपका शुभागमन हुआ है ? कृपा कर मुझसे कहिए ॥५०॥

ऋभु ने कहा—भूखे व्यक्ति को भोजन करने से तृप्ति होती है । द्विज ! मुझे तो क्षुधा लगती नहीं तो फिर तुम तृप्ति के विषय में क्यों पूछते हो ? पार्थिव अग्नि से जलने पर भूख लगती है और जल के नष्ट होने पर मनुष्य में तृष्णा उत्पन्न होती है । द्विज ! क्षुधा और तृष्णा देह के धर्म हैं, मेरे नहीं । इसलिए क्षुधा के सर्वथा अभाव से मुझे तो सर्वदा तृप्ति रहती ही है ॥५१-५३½॥ द्विज ! मन का स्वास्थ्य और तुष्टि ये दोनों चित्त के धर्म हैं । तो जब ये चित्त के धर्म हैं तो पुरुष इनसे कभी भी युक्त नहीं होता ॥५४½॥ तुमने जो यह पूछा है कि कहाँ निवास स्थान है, कहाँ जाओगे और कहाँ से आ रहे हो, तो इन तीनों प्रश्नों का उत्तर भी मुझसे सुनो । चूंकि यह पुरुष आकाश की भाँति सर्वगत और सर्वव्यापक है इसलिए कहाँ से आये हो और कहाँ जाओगे, ये प्रश्न भी सार्थक कैसे हो सकते हैं ? ऐसा मैं न तो कहीं जाता हूँ, न आता हूँ और न तो किसी एक देश में मेरा निवास-स्थान ही है ॥५५-५७॥ तुम और दूसरे न तुम तुम हो न दूसरे दूसरे हैं और न मैं मैं हूँ । तुम्हारे मिष्टान्न को मेरी जिह्वा ने मीठा समझकर खाया है ॥५८॥ द्विजसत्तम ! इस विषय में मेरी जिह्वा कहा करती है उसको सुनो । यदि मीठे को मीठा न कहा जाय तो वही उद्वेग का कारण बन जाता है ॥५९॥ कभी कड़वा ही मीठा बन जाता और कभी मीठा ही मनुष्य को अरुचिकर हो जाता है । आदि, मध्य और अन्त में कभी ऐसा हो जाता है तो अन्न के रुचिकर होने में क्या कारण है इसको सुनो ॥६०॥ जिस प्रकार मिट्टी का घर मिट्टी से लीपने पर स्थिर (पुष्ट) होता है उसी प्रकार यह पार्थिव शरीर पार्थिव परमाणुओं से पुष्ट होता है ॥६१॥ यव, गेहूँ, उड़द, घी, तेल, दूध, दही, गुड़ और फल ये पार्थिव परमाणु हैं ॥६२॥ इसलिए आप मीठे और कड़वे का रहस्य

तदेतद्भवता ज्ञात्वा मिष्टामिष्टविचारि यत् । तन्मनः शमनालंबि कार्यं प्राप्यं हि मुक्तये ॥६३॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य परमार्थाश्रितं नृप । प्रणिपत्य महाभागो निदाघो वाक्यमब्रवीत् ॥६४॥
प्रसीद मद्धितार्थाय कथ्यतां यस्त्वमागतः । नष्टो मोहस्तवाकर्ण्य वचांस्येतानि मे द्विज ॥६५॥

ऋभुरुवाच

ऋभुरस्मि तवाचार्यः प्रज्ञादानाय ते द्विज । इहागतोऽहं दास्यामि परमार्थं सुबोधितम् ॥६६॥
एक एवमिदं विद्धि न भेदि सकलं जगत् । वासुदेवाभिधेयस्य स्वरूपं परमात्मनः ॥६७॥

ब्राह्मण उवाच

तथेत्युक्त्वा निदाघेन प्रणिपातपुरःसरम् । पूजितः परया भक्त्यानिच्छितः प्रययौ विभुः ॥६८॥
पुनर्वर्षसहस्रांते समायातो नरेश्वर । निदाघज्ञानदानाय तदेव नगरं गुरुः ॥६९॥
नगरस्य बहिः सोऽथ निदाघं दृष्टवान् मुनिम् । महाबलपरीवारे पुरं विशति पार्थिवे ॥७०॥
दूरस्थितं महाभागे जनसंमर्दवर्जकम् । क्षुत्क्षामकण्ठमायांतमरण्यात्ससमित्कुशम् ॥७१॥
दृष्ट्वा निदाघं स ऋभुरुपागत्याभिवाद्य च । उवाच कस्मादेकांते स्थीयते भवता द्विज ॥७२॥

निदाघ उवाच

भो विप्र जनसंमर्दो महानेष जनेश्वरे । प्रविविक्षौ पुरे रम्ये तेनात्र स्थीयते मया ॥७३॥

जानकर अपने मन को स्थिर कीजिए और मुक्ति के उपायों को प्राप्त कीजिए ॥६३॥ नृप ! ऋभु की इस परमार्थ से भरी हुई वाणी को सुनकर महाभाग निदाघ उनके चरणों पर गिर पड़ा और बोला ॥६४॥

द्विज ! प्रसन्न होइए, मेरे कल्याण के लिए आप बतलाइए कि आप कौन हैं, जो यहाँ आये हुए हैं ? आपकी इन बातों को सुनकर मेरा सारा मोह नष्ट हो गया ॥६५॥

ऋभु बोले—मैं तुम्हारा आचार्य ऋभु हूँ। द्विज ! तुमको ज्ञान दान करने के लिए यहाँ आया हूँ। तुमको उचित और स्पष्ट परमार्थ ज्ञान दूंगा ॥६६॥ यह समस्त संसार परमात्मा वासुदेव का रूप है, एक है, और अभिन्न है ॥६७॥

ब्राह्मण बोला—निदाघ ने गुरु का उपदेश स्वीकार किया और अत्यन्त निष्ठा से गुरु का चरणवन्दन कर उनकी पूजा की। ऋभु गुरु भी उसकी पूजा से प्रसन्न होकर चले गए ॥६८॥ फिर एक हजार वर्ष बीत जाने पर गुरु जी इसी नगर में अपने शिष्य को ज्ञान देने के लिए आये ॥६९॥ उस समय उन्होंने नगर के बाहर मुनि निदाघ को बैठे हुए देखा। उसी समय राजा भी अपने सैनिकों और राजपुरुषों के साथ नगर में प्रवेश कर रहा था। मुनि निदाघ अरण्य से समिधा और कुश लिए हुए आ रहा था। भूख-प्यास से उसका कण्ठ सूख गया था और भीड़ से बचने के लिए वह दूर खड़ा था ॥७०-७१॥ ऋभु उसको देखकर समीप आये और अभिवादन कर पूछा—"द्विज ! आप यहाँ एकान्त में क्यों बैठे हैं ?" ॥७२॥

निदाघ बोला—विप्र ! आज नरेश्वर इस रम्य पुर में समारोह के साथ प्रवेश कर रहे हैं जिससे अधिक भीड़ हो गई है इसीलिए मैं यहाँ बैठा हूँ ॥७३॥

ऋभुरुवाच

नराधिपोऽत्र कतमः कतमश्चेतरो जनः । कथ्यतां मे द्विजश्रेष्ठ त्वमभिज्ञो मतो मम ॥७४॥

निदाघ उवाच

योऽयं गजेन्द्रमुन्मत्तमद्रिशृंगसमुच्छ्रयम् । अधिरूढो नरेन्द्रोऽयं परितो यस्तथेतरः ॥७५॥

ऋभुरुवाच

एतौ हि गजराजानौ दृष्टौ हि युगपन्मया । भवता निर्विशेषेण पृथग्वेदोपलक्षितौ ॥७६॥
तत्कथ्यतां महाभाग विशेषो भवतानयोः । ज्ञातुमिच्छाम्यहं कोऽत्र गजः को वा नराधिपः ॥७७॥

निदाघ उवाच

गजो योऽयमधो ब्रह्मन्नुपर्यस्यैव भूपतिः । वाह्यवाहकसंबंधं को न जानाति वै द्विज ॥७८॥

ऋभुरुवाच

ब्रह्मन्यथाहं जानीयां तथा मामवबोधय । अधः सत्त्वविभागं किं किं चोर्ध्वमभिधीयते ॥७९॥

ब्राह्मण उवाच

इत्युक्त्वा सहसारुह्य निदाघः प्राह तं ऋभुम् । श्रूयतां कथयाम्येष यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥८०॥
उपर्यहं यथा राजा त्वमधः कुंजरो यथा । अवबोधाय ते ब्रह्मन्दृष्टांतो दर्शितो मया ॥८१॥

ऋभु बोले—इसमें नरेन्द्र कौन हैं और इतर जन कौन हैं, द्विजवर ! आप बताइए, जान पड़ता है कि आप अवश्य भली-भाँति परिचित हैं ॥७४॥

निदाघ बोला—जो पहाड़ की चोटी के समान ऊँचे मतवाले गजेन्द्र पर बैठे हुए हैं वे नरेन्द्र हैं और उनके चारों ओर इतर जन हैं ॥७५॥

ऋभु बोले—मैंने इन दोनों गजराज और राजा को पहले एक साथ ही देख लिया और आपने तो पृथक्-पृथक् भली भाँति देखा है तो महाभाग ! आप कुछ इन दोनों की विशेषता बतलाइए। मैं तो यह जानना चाहता हूँ कि कौन गज है और कौन राजा ॥७६-७७॥

निदाघ ने कहा—ब्रह्मन् ! जो नीचे है वह तो हाथी है और इसके ऊपर जो स्थित है वह राजा है। द्विज ! इस छोटी सी बात को-वाह्य-वाहक संबन्ध को कौन नहीं जानता ? ॥७८॥

ऋभु बोले—ब्रह्मन् ! जिस प्रकार मैं भली भाँति जान सकूँ उस प्रकार मुझे समझाओ। यहाँ दोनों पदार्थ में विभाग कैसे किया जाय ? इसलिए बतलाओ कि किसको अधः (नीचे) कहा जाय और किसको ऊर्ध्व (ऊपर) ॥७९॥

ब्राह्मण बोला—यह कह कर निदाघ एकाएक ऋभु के ऊपर चढ़ गया और कहा—सुनो बता रहा हूँ जो तुम मुझसे पूछ रहे हो। जिस प्रकार मैं ऊपर हूँ वैसे राजा हाथी के ऊपर है और तुम हाथी की भाँति नीचे हो। ब्रह्मन् ! तुमको भली भाँति समझाने के लिए यह दृष्टान्त के रूप में दिखलाया है ॥८०-८१॥

ऋभुरुवाच

त्वं राजेव द्विजश्रेष्ठ स्थितोऽहं गजवद्यदि । तदेवं त्वं समाचक्ष्व कतमस्त्वमहं तथा ॥८२॥

ब्राह्मण उवाच

इत्युक्तः सत्वरस्तस्य चरणावभिवंद्य सः । निदाघः प्राह भगवन्नाचार्यस्त्वमृभुर्मम ॥८३॥
नान्यस्याद्वैतसंस्कारसंस्कृतं मानसं तथा । यथाचार्यस्य तेन त्वां मन्ये प्राप्तमहं गुरुम् ॥८४॥

ऋभुरुवाच

तवोपदेशदानाय पूर्वशुश्रूषणात्तव । गुरुस्नेहादृभुर्नाम निदाघं समुपागतः ॥८५॥
तदेतदुपदिष्टं ते संक्षेपेण महामते । परमार्थसारभूतं यत्तदद्वैतमशेषतः ॥८६॥

ब्राह्मण उवाच

एवमुक्त्वा ददौ विद्यां निदाघं स ऋभुर्गुरुः । निदाघोऽप्युपदेशेन तेनाद्वैतपरोऽभवत् ॥८७॥
सर्वभूतान्यभेदेन ददृशे स तदात्मनः । तथा ब्रह्मतनौ मुक्तिमवाप परमां द्विजः ॥८८॥
तथा त्वमपि धर्मज्ञ तुल्यात्मरिपुबांधवः । भव सर्वगतं ज्ञानमात्मानमवनीपते ॥८९॥
सितनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते नभः । भ्रांत दृष्टिभिरात्मापि तथैकः सन्पृथक् पृथक् ॥९०॥

ऋभु बोले—द्विजश्रेष्ठ ! तुम यदि राजा के समान हो और मैं गज के समान हूँ तो बताओ कि तुम कौन हो और मैं कौन हूँ ॥८२॥

ब्राह्मण बोला—यह सुनकर वह शीघ्र ही गुरु के चरणों की वन्दना कर बोला, भगवन् ! आप निश्चय ही मेरे गुरु ऋभुदेव हैं, क्योंकि आचार्य को छोड़कर दूसरे की ऐसी अद्वैत भावना से परिष्कृत बुद्धि नहीं है। इसलिए मुझे विश्वास है कि आज मैं अपने गुरु को पा गया हूँ ॥८३-८४॥

ऋभु ने कहा—तुम्हारी पूर्व की शुश्रूषा से प्रसन्न होकर मैं (ऋभु) तुम (निदाघ) को उपदेश देने के लिए वात्सल्य से आकृष्ट हो यहाँ आया हूँ। इसलिए महामते ! जो सम्पूर्ण तत्त्वों का सार अद्वैत तत्त्व है उसको इस प्रकार संक्षेप में पूर्णरूप से सुना दिया है ॥८५-८६॥

ब्राह्मण बोला—इस प्रकार गुरु ऋभु ने अपने शिष्य निदाघ को परम अद्वैत विद्या का उपदेश दिया। निदाघ भी गुरु के उस उपदेश से अद्वैत परायण हो गया। उस समय से वह अपने और इतर सब प्राणियों को अभेद भावना से देखने लगा। इस प्रकार उसने ब्राह्मण के शरीर में परम मुक्ति प्राप्त कर ली ॥८७-८८॥ धर्मज्ञ ! इसलिए तुम भी शत्रु और बन्धुओं में समान दृष्टि रखने वाले समदर्शी बनो । भूमिपते ! अपने को सबके रूप में देखने वाला आत्मज्ञानी बनो ॥८९॥ जिस प्रकार एक ही नभ श्वेत, नील आदि भेद से अनेक दिखाई पड़ता है उसी प्रकार भ्रान्तदृष्टि व्यक्ति एक आत्मा को पृथक्-पृथक् रूपों में देखता है ॥९०॥ यहाँ जो कुछ दिखाई देता है वह समस्त अच्युत से अतिरिक्त और कुछ नहीं। वह, मैं और तुम यह सब केवल मायातीत आत्मा की ही विभूति है ॥९१॥

सनंदन उवाच

एकः समस्तं यदिहास्ति किंचित्तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत् ।
सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेतदात्मा स्वयं भात्यपभेदमोहः ॥९१॥

सनंदन उवाच

इतीरितस्तेन स राजवर्यस्तत्याज भेदं परमार्थदृष्टिः ।
स चापि जातिस्मरणावबोधस्तत्रैव जन्मन्यपवर्गमाप ॥९२॥
परमार्थाध्यात्ममेतत्तुभ्यमुक्तं मुनीश्वर । ब्राह्मणक्षत्रियविशां श्रोतॄणां चापि मुक्तिदम् ॥९३॥
यथा पृष्टं त्वया ब्रह्मंस्तथा ते गदितं मया । ब्रह्मज्ञानमिदं शुद्धं किमन्यत्कथयामि वै ॥९४॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वि० पा० एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूत उवाच

श्रुत्वा सनंदनस्येत्थं वचनं नारदो मुनिः । असंतुष्ट इव प्राह भ्रातरं तं सनंदनम् ॥१॥

सनन्दन ने कहा—ब्राह्मण के मुख से इस प्रकार का उपदेश सुनकर राजा ने सारे भेद-भाव का त्याग कर परमार्थ दृष्टि प्राप्त कर ली और उसको जातिस्मर का ज्ञान हो जाने के कारण उसी जन्म में मुक्ति भी मिल गई ॥९२॥ मुनीश्वर ! इस परमार्थ अध्यात्म को तुमसे मैंने कह दिया जिसका सुनना ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सबको मुक्ति देने वाला है । ब्रह्मन् ! तुमने जैसे पूछा मैंने तदनुकूल उत्तर भी दे दिया, यही शुद्ध ब्रह्मज्ञान है । अब कहो और मैं क्या कहूँ ॥९३-९४॥

श्रीनारदीय महापुराण में उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥४९॥

अध्याय ५०

शिक्षा-निरूपण

सूत जी बोले—सनन्दन की बातों को सुनकर नारद असन्तुष्ट-से रहे और फिर अपने भाई सनन्दन से कहा ॥१॥

नारद उवाच

भगवन्सर्वमाख्यातं यत्पृष्टं भवतो मया । तथापि नात्मा प्रीयेत शृण्वन्हरिकथां मुहुः ॥२॥
श्रूयते व्यासपुत्रस्तु शुकः परमधर्मवित् । सिद्धिं सुमहतीं प्राप्तो निर्विण्णोऽवांतरं बहिः ॥३॥
ब्रह्मन्पुंसस्तु विज्ञानं महतां सेवनं विना । न जायते कथं प्राप्तो ज्ञानं व्यासात्मजः शिशुः ॥४॥
तस्य जन्मरहस्यं मे कर्मचाप्यस्य शृण्वते । समाख्याहि महाभाग मोक्षशास्त्रार्थविद्भवान् ॥५॥

सनंदन उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि शुकोत्पत्तिं समासतः । यां श्रुत्वा ब्रह्मतत्त्वज्ञो जायते मानवो मुने ॥६॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बंधुभिः । ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥७॥

नारद उवाच

अनूचानः कथं ब्रह्मन्पुमान्भवति मानद । तन्मे कर्म समाचक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम ॥८॥

सनंदन उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि ह्यनूचानस्य लक्षणम् । यज्ज्ञात्वा सांगवेदानामभिज्ञो जायते नरः ॥९॥
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषं तथा । छंदःशास्त्रं षडेतानि वेदांगानि विदुर्बुधाः ॥१०॥
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः । वेदाश्चत्वार एवैते प्रोक्ता धर्मनिरूपणे ॥११॥
सांगान्वेदान्गुरोर्यस्तु समधीते द्विजोत्तमः । सोऽनूचानः प्रभवति नान्यथा ग्रंथकोटिभिः ॥१२॥

भगवन् ! मैंने जो कुछ आपसे पूछा, उसको आपने बता दिया; परन्तु इतनी अधिक हरि-कथा को बार-बार सुनकर भी मुझे प्रसन्नता नहीं हो रही है ॥२॥ सुना जाता है कि परम धर्मज्ञ व्यास-पुत्र शुक ने बिना किसी प्रकार के बाह्य और आभ्यन्तर साधना के ही परम सिद्धि प्राप्त कर ली थी ॥३॥ भगवन् ! पुरुष को बिना महात्माओं की सेवा के विज्ञान की प्राप्ति नहीं होती; किन्तु व्यास पुत्र शिशु शुक ने कैसे अनायास प्राप्त कर लिया ॥४॥ उनके जन्म के रहस्य और कर्म को कहिए महाभाग ! आप मोक्ष शास्त्र के ज्ञाता हैं। कृपाकर मुझ श्रोता को सुनाइए ॥५॥

सनन्दन बोले—विप्र ! सुनो, मैं तुमको संक्षेप में शुकोत्पत्ति को सुना रहा हूँ। मुने ! जिस कथा को सुनकर मानव ब्रह्म तत्त्व का ज्ञाता हो जाता है ॥६॥ न तो वयोवृद्ध होने से, न केश पकने से, न तो धन, और परिवार द्वारा महत्ता प्राप्त की जाती है। वस्तुतः ऋषियों ने कहा है कि जो अनूचान है वही महान् है ॥७॥

नारद बोले—सम्मान देने वाले ! मनुष्य अनूचान कैसे होता है, उसके कर्म को बतलाइए, मुझे सुनने के लिए कौतूहल हो रहा है ॥८॥

सनंदन बोले—नारद, सुनो, मैं अनूचान का लक्षण बता रहा हूँ जिसको जानकर मनुष्य अंग-सहित सब वेदों को जान जाता है ॥९॥ शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द शास्त्र इन्हीं को विद्वानों ने वेदांग कहा है ॥१०॥ धर्म निरूपण में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, ये चार वेद ही प्रमाण कहे गये हैं। जो उत्तम ब्राह्मण गुरु से अंग सहित वेदों का अध्ययन करता है, उसको अनूचान कहते हैं अन्यथा करोड़ों ग्रन्थों के पढ़ने से द्विज अनूचान नहीं हो सकता ॥११-१२॥

नारद उवाच

अंगानां लक्षणं ब्रूहि वेदानां चापि विस्तरात् । त्वमस्मासु महाविज्ञः सांगेष्वेतेषु मानद ॥१३॥

सनंदन उवाच

प्रश्नभारोऽयमतुलस्त्वया मम कृतो द्विज । संक्षेपात्कथयिष्यामि सारमेषां सुनिश्चितम् ॥१४॥
स्वरः प्रधानः शिक्षायां कीर्त्तितो मुनिभिर्द्विजैः । वेदानां वेदविद्भिस्तु तच्छृणुष्व वदामि ते ॥१५॥
आर्चिकं गाथिकं चैव सामिकं च स्वरान्तरम् । कृतांते स्वरशास्त्राणां प्रयोक्तव्यं विशेषतः ॥१६॥
एकांतरः स्वरो ह्यृक्षु गाथासु द्व्यंतरः स्वरः । सामसु त्र्यंतरं विद्यादेतावत्स्वरतोऽन्तरम् ॥१७॥
ऋक्सामयजुरंगानि ये यज्ञेषु प्रयुंजते । अविज्ञानाद्धि शिक्षायास्तेषां भवति विस्वरः ॥१८॥

मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेंद्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥१९॥

उरः कंठः शिरश्चैव स्थानानि त्रीणि वाङ्मये । सवनान्याहुरेतानि साम वाप्यर्द्धतोंऽतरम् ॥२०॥

नारद बोले--मानद ! आप सम्पूर्ण सांगोपाङ्ग वेदों के महान् पंडित हैं। इसलिये विस्तारपूर्वक अंगों और वेदों के लक्षण कहिये ॥१३॥

सनंदन बोले--द्विज ! तुमने तो बहुत बड़ा प्रश्न किया। इसलिए इनको संक्षेप में सिद्धान्त रूप से कह रहा हूँ ॥१४॥ वेदज्ञ ब्राह्मण मुनियों ने शिक्षा में स्वर की प्रधानता बताई है, उसको सुनो, मैं तुमसे कह रहा हूँ ॥१५॥ स्वर शास्त्रों के निश्चय के अनुसार विशेष रूप से आर्चिक (ऋक्-सम्बन्धी), गाथिक (गाथा-सम्बन्धी) और सामिक (साम-सम्बन्धी) स्वर व्यवधान का प्रयोग करना चाहिए। ॠचाओं में एक का अन्तर देकर स्वर होता है। गाथाओं में दो के व्यवधान से और साम-मन्त्रों में तीन के व्यवधान से स्वर होता है। स्वरों का इतना ही व्यवधान सर्वत्र जानना चाहिए ।१६-१७॥ ऋक्, साम और यजुर्वेद के अंगभूत जो याज्य, स्तोत्र, करण और मन्त्र आदि याज्ञिकों द्वारा यज्ञों में प्रयुक्त होते हैं, शिक्षा शास्त्र का ज्ञान न होने से उनमें विस्वर (विरुद्ध स्वर का उच्चारण) हो जाता है। स्वर और वर्ण से हीन मन्त्र और उसका मिथ्या प्रयोग जो कि यथार्थ अर्थ को न कहे यजमान का उसी प्रकार नाश कर देता है जिस प्रकार इन्द्र-शत्रु (वृत्र) का इन्द्रशत्रु शब्द के अशुद्ध स्वर प्रयोग के अपराध से नाश हो गया[1] ॥१८-१९॥ वाङ्मय में उर, कण्ठ और शिर शब्दोच्चारण के तीन मूल स्थान माने जाते हैं। इनको ही सवन कहते हैं। अर्थात् वक्षः स्थान में नीच स्वर से जो शब्दोच्चारण होता है, उसे प्रातः सवन कहते हैं; कण्ठस्थान में मध्यम स्वर से किये हुए शब्दोच्चारण का नाम माध्यन्दिन सवन है तथा मस्तक रूप स्थान में उच्च स्वर से जो शब्दोच्चारण होता है, उसे तृतीय सवन कहते हैं। अधरोत्तर भेद से सप्त-

---

१. तैत्तिरीय शाखा की कृष्णयजुः संहिता के द्वितीय काण्ड में पञ्चम प्रपाठक के द्वितीय अनुवाक की प्रथम पञ्चशती में मन्त्र आया है--'स्वाहेन्द्रशत्रुर्वर्धस्व'। पौराणिक गाथा के अनुसार त्वष्टा प्रजापति ने 'इन्द्र के शत्रु वृत्र के अभ्युदय के लिए इस मंत्र' का उच्चारण किया था। 'इन्द्रस्य शत्रुः' इस विग्रह के अनुसार षष्ठी समास में समासान्त प्रयुक्त अन्तोदात्त का उच्चारण अभीष्ट था; परन्तु प्रयोग में पूर्वपदप्रकृतिस्वर--आद्युदात्त बोला गया; अतः वह बहुव्रीहि के अर्थ का प्रकाशक हो गया। इसलिए 'इन्द्र है शत्रु (संहारक) जिसका वह' ऐसा अर्थ निकलने के कारण वृत्रासुरही इन्द्र के हाथ से मारा गया।

उरः सप्तविचारं स्यात्तथा कंठस्तथा शिरः । न च शक्तोऽसि व्यक्तस्तु तथा प्रावचनो विधिः ॥२१॥
कठकालापवृत्तेषु तैत्तिराह्वरकेषु च । ऋग्वेदे सामवेदे च वक्तव्यः प्रथमः स्वरः ॥२२॥
ऋग्वेदस्तु द्वितीयेन तृतीयेन च वर्तते । उच्चमध्यमसंघातः स्वरो भवति पार्थिवः ॥२३॥
तृतीये प्रथमक्रुष्टाः कुर्वंत्याह्वरकान् स्वरान् । द्वितीयाद्यास्तु मद्रांतास्तैत्तिरीयाश्चतुःस्वरान् ॥२४॥
प्रथमश्च द्वितीयश्च तृतीयोऽथ चतुर्थकः । मंद्रः क्रुष्टो मुनीश्वर एतान्कुर्वंति सामगाः ॥२५॥
द्वितीयप्रथमावेतौ नांडिभाल्लविनौ स्वरौ । तथा शातपथावेतौ स्वरौ वाजसनेयिनाम् ॥२६॥
एते विशेषतः प्रोक्ताः स्वरा वै सार्ववैदिकाः । इत्येतच्चरितं सर्वं स्वराणां सार्ववैदिकम् ॥२७॥
सामवेदे तु वक्ष्यामि स्वराणां चरितं यथा । अल्पग्रंथं प्रभूतार्थं सामवेदांगमुत्तमम् ॥२८॥
तानरागस्वरग्राममूर्च्छनानां तु लक्षणम् । पवित्रं पावनं पुण्यं यथा तुभ्यं प्रकीर्तितम् ॥२९॥
शिक्षामाहुर्द्विजातीनामृग्यजुःसामलक्षणम् । सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनास्त्वेकविंशतिः ॥३०॥
ताना एकोनपंचाशदित्येतत्स्वरमंडलम् । षड्जश्च ऋषभश्चैव गांधारो मध्यमस्तथा ॥३१॥
पंचमो धैवतश्चैव निषादः सप्तमः स्वरः । षड्जमध्यमगांधारास्त्रयो ग्रामाः प्रकीर्तिताः ॥३२॥
भूर्ल्लोकाज्जायते षड्जो भुवर्लोकाच्च मध्यमः । स्वर्गाभ्राच्चैव गांधारो ग्रामस्थानानि त्रीणि हि ॥३३॥

स्वरात्मक साम के भी पूर्वोक्त तीन ही स्थान हैं। उरोभाग, कण्ठ तथा सिर—ये सातों स्वरों के विचरण-स्थान हैं। किन्तु उर:स्थल में मन्द्र और अतिस्वार की अभिव्यक्ति न होने से उसे सातों स्वरों का विचरणस्थल नहीं कहा जा सकता, तथापि अध्ययनाध्यापन के लिए वैसा विधान किया गया है। (ठीक अभिव्यक्ति न होने पर भी उपांशु या मानस प्रयोग में वर्ण तथा स्वर का सूक्ष्म उच्चारण होता है) ॥२०-२१॥

कठ, कालाप, तैत्तिरीय तथा आह्वरक शाखाओं में और ऋग्वेद एवं सामवेद में प्रथम स्वर का प्रयोग करना चाहिए ॥२२॥ ऋग्वेद द्वितीय और तृतीय स्वर से भी परिगीत होता है। उच्च और मध्यम का संघात पार्थिव (लौकिक) स्वर होता है ॥२३॥ आह्वरक शाखा वाले तृतीय तथा प्रथम में उच्चारित स्वरों का प्रयोग करते हैं। तैत्तिरीय शाखा वाले द्वितीय से लेकर पञ्चम तक चार स्वरों का उच्चारण करते हैं। सामगान करने वाले विद्वान् प्रथम (षड्ज), द्वितीय (ऋषभ), तृतीय (गान्धार), चतुर्थ (मध्यम), मन्द्र (पञ्चम), क्रुष्ट (धैवत) तथा अतिस्वार (निषाद)—इन सातों स्वरों का प्रयोग करते हैं। द्वितीय और प्रथम—ये ताण्डी (ताण्ड्यपञ्चविंशादि ब्राह्मण के अध्येता कौथुम आदि शाखा वाले) तथा भाल्लवी (छन्दोग शाखा वाले) विद्वानों के स्वर हैं। शतपथ ब्राह्मण में आये हुए ये दोनों स्वर वाजसनेयी शाखा वालों के द्वारा भी प्रयुक्त होते हैं। ये सब वेदों में प्रयुक्त होने वाले स्वर विशेष रूप से बताए गए हैं। इस प्रकार सार्ववैदिक स्वर-संचार कहा गया है ॥२४-२७॥

अब सामवेद में स्वरों का जैसा प्रयोग होता है उसको कह रहा हूँ। सामवेद को थोड़े शब्दों में अत्यधिक अर्थ को व्यक्त करने वाला उत्तम वेद समझना चाहिए ॥२८॥ तान, राग, स्वर, ग्राम और मूर्च्छना का लक्षण पवित्र, पावन और पुण्यदायक है जैसा कि मैंने तुमसे पहले कहा था। द्विजाति के लिये ही ऋक्, यजु और साम संबन्धी शिक्षा कही गई है ॥२९३॥

सात स्वर, तीन ग्राम और मूर्च्छना इक्कीस प्रकार की होती है, तान उनचास प्रकार के होते हैं; इनको स्वर-मण्डल कहा गया है। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद ये सात स्वर हैं। षड्ज, मध्यम और गान्धार ये तीन ग्राम हैं ॥३०-३२॥ भूःलोक से षड्ज उत्पन्न होता है, भुव:लोक से मध्यम और स्वर्ग एवं मेघलोक से गान्धार उत्पन्न होता है। तीन ग्राम-स्थान हैं। स्वरों के विशेष रूप से ग्राम राग

स्वराणां च विशेषेण ग्रामरागा इति स्मृताः। विंशतिर्मध्यमग्रामे षड्ग्रामे चतुर्दश ॥३४॥
तानान्पंचदशेच्छंति गांधारे सामगायिनाम्। नदी विशाला सुमुखी चित्रा चित्रवती मुखा ॥३५॥
बला चाप्यथ विज्ञेया देवानांसप्त मूर्च्छनाः। आप्यायिनी विश्वभृता चंद्रा हेमा कपर्दिनी ॥३६॥
मैत्री च बार्हती चैव पितॄणां सप्त मूर्च्छनाः। षड्जे तूत्तरमंद्रा स्यादृषभे चाभिरूहता ॥३७॥
अश्वक्रांता तु गांधारे तृतीया मूर्च्छना स्मृता। मध्यमे खलु सौवीरा हृषिका पंचमे स्वरे ॥३८॥
धैवते चापि विज्ञेया मूर्च्छना तूत्तरा मता। निषादे रजनीं विद्यादृषीणां सप्त मूर्च्छनाः ॥३९॥
उपजीवंति गंधर्वा देवानां सप्त मूर्च्छनाः। पितॄणां मूर्च्छनाः सप्त तथा यक्षा न संशयः ॥४०॥
ऋषीणां मूर्च्छनाः सप्त यास्त्विमा लौकिकाः स्मृताः। षड्जः प्रीणाति वै देवानृषीन्प्रीणाति चर्षभः ॥४१॥
पितॄन् प्रीणाति गांधारो गंधर्वान्मध्यमः स्वरः। देवान्पितॄनृषींश्चैव स्वरः प्रीणाति पंचमः ॥४२॥
यक्षान्निषादः प्रीणाति भूतग्रामं च धैवतः। गानस्य तु दशविधा गुणवृत्तिस्तु तद्यथा ॥४३॥

रक्तं पूर्णमलंकृतं प्रसन्नं व्यक्तं विक्रुष्टं श्लक्ष्णं समं सुकुमारं मधुरमिति गुणास्तत्र रक्तं नाम वेणुवीणास्वराणामेकीभावं रक्तमित्युच्यते पूर्णं नाम स्वरश्रुतिपूरणाच्छंदः पादाक्षरं संयोगात्पूर्णमित्युच्यते अलंकृतं नामोरसि शिरसि कंठयुक्तमित्यलंकृतं प्रसन्नं नामापगतागद्गदनिर्विशंकं प्रसन्नमित्युच्यते व्यक्तं नाम पदपदार्थप्रकृतिविकारगमनोप-कृतद्धितसमासधातुनिपातोपसर्गस्वरलिंगं वृत्तिवार्त्तिकविभक्त्यर्थवचनानां सम्यगुपपादनं व्यक्तमित्युच्यते विक्रुष्टं नामोच्चैरुच्चारितं व्यक्तपदाक्षरं विक्रुष्टमित्युच्यते श्लक्ष्णं नामाद्रुतमविलंबितमुच्चनीचप्लुतसमाहारहेलतालोपनयादिभि-

---

कहे गए हैं। साम गाने वाले व्यक्ति मध्यम ग्राम में बीस, षड्ज में चौदह और गान्धार में पन्द्रह तान का प्रयोग करना चाहते हैं ॥३३-३४½॥ नंदी, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रवती, मुखा और बला ये देवों की सात मूर्च्छनायें मानी गई हैं ॥३५॥ आप्यायनी, विश्वभृता, चन्द्रा, हेमा, कपर्दिनी, मैत्री और बार्हती ये पितरों की सात मूर्च्छनायें हैं ॥३६॥ षड्ज में उत्तरमन्द्रा, ऋषभ में अभिरूढता और गान्धार में अश्वक्रान्ता नाम की तीसरी मूर्च्छना है ॥३७॥ मध्यम में सौवीरा, पंचम स्वर में हृषीका और धैवत में उत्तरा नाम की मूर्च्छना होती है। निषाद में रजनी नाम की मूर्च्छना समझनी चाहिए। इस प्रकार ऋषियों की ये सात मूर्च्छनायें हैं ॥३८-३९॥ गन्धर्व देवों की सात मूर्च्छनाओं को प्रयोग में लाते हैं और यक्ष पितरों की सात मूर्च्छनाओं को, इसमें सन्देह नहीं ॥४०॥ ऋषियों की जो सात मूर्च्छनायें हैं, उनका प्रयोग लौकिक गायक करते हैं। षड्ज देवों को प्रसन्न करता, ऋषभ ऋषियों को और गान्धार पितरों को, मध्यम स्वर गन्धर्वों को प्रसन्न करता है। पंचम स्वर देव-पितर और ऋषियों को प्रसन्न करता है ॥४१-४२॥

निषाद यक्षों को और धैवत सब प्राणियों को श्रुतिसुखद जान पड़ता है। गान की दस प्रकार की गुण-वृत्ति होती है ॥४३॥ उसका जैसा रूप है सुनो—रक्त-वर्ण, पूर्णअलंकृत, प्रसन्न, व्यक्त, विक्रुष्ट, श्लक्ष्ण, सम, सुकुमार और मधुर ये दस गुण हैं। वेणुवीणा, और पुरुष के स्वरों का एकीभाव हो जाने से रक्त कहा जाता है। स्वर और श्रुति को पूर्ण करने से, छन्द एवं पादाक्षरों के संयोग से द्वितीय को पूर्ण कहा जाता है। उर, शिर और कण्ठ को अलंकृत करने के कारण तृतीय को अलंकृत कहते हैं। प्रसन्न उसको कहते हैं जो कंठ के गद्गद्भाव से रहित और निर्विशंक हो। पद, पदार्थ, प्रकृति, विकार, आगमन, कृत, तद्धित, समास, धातु, निपात, उपसर्ग, स्वर, तिङन्त, वृत्ति, वार्तिक, विभक्त्यर्थ और वचन, का भली-भांति विचारपूर्वक उपपादनपूर्वक गान करने को व्यक्त कहते हैं। स्पष्टरूप से पदों और अक्षरों का उच्चारण करते हुए गान करने को विक्रुष्ट कहते हैं। द्रुत और विलम्बित दोषों से रहित उच्च-नीच, प्लुत, समाहार, हेल, ताल और उपनय आदि का उपपादान से

रुपषादनाभिः श्लक्ष्णमित्युच्यते समं नामावापनिर्वापप्रदेशे प्रत्यंतरस्थानानां समासः सममित्युच्यते सुकुमारं नाम मृदुपदवर्णस्वरकुहरणयुक्तं सुकुमारमित्युच्यते मधुरं नाम स्वभावोपनीतललितपदाक्षरगुणसमृद्धं मधुरमित्युच्यते एवमेतैर्दशभिर्गुणैर्युक्तं गानं भवति ॥१॥
भवन्ति चात्र श्लोकाः। काकस्वरं मूर्द्धगतं तथा स्थानविवर्जितम्। ॥४४॥
शंकितं भीषणं भीतमुद्घुष्टमनुनासिकम्
विस्वरं विरसं चैव विश्लिष्टं विषमाहतम्। व्याकुलं तालहीनं च गीतिदोषाश्चतुर्दश ॥४५॥
आचार्याः सममिच्छंति पदच्छेदं तु पंडिताः। स्त्रियो मधुरमिच्छंति विक्रुष्टमितरे जनाः ॥४६॥
पद्मपत्रप्रभः षड्ज ऋषभः शुकपिंजरः। कनकाभस्तु गांधारो मध्यमः कुंदसन्निभः ॥४७॥
पंचमस्तु भवेत्कृष्णः पीतकं धैवतं विदुः। निषादः सर्ववर्णः स्यादित्येताः स्वरवर्णताः ॥४८॥
पंचमो मध्यमः षड्ज इत्येते ब्राह्मणाः स्मृताः। ऋषभो धैवतश्चापीत्येतौ वै क्षत्रियावुभौ ॥४९॥
गांधारश्च निषादश्च वैश्यावर्द्धेन वै स्मृतौ। शूद्रत्वं विधिनार्द्धेन पतितत्वान्न संशयः ॥५०॥
ऋषभो मूर्च्छितवर्जितो धैवतसहितश्च पंचमो यत्र। निपतति मध्यमरागे स निषादं षाड्जवं विद्यात् ॥५१॥
यदि पंचमो विरमते गांधारश्चांतरस्वरो भवति। ऋषभो निषादसहितस्तं पंचममीदृशं विद्यात् ॥५२॥
गांधारस्याधिपत्येन निषादस्य गतागतैः। धैवतस्य च दौर्बल्यान्मध्यमग्राम उच्यते ॥५३॥
ईषत्पृष्टो निषादस्तु गांधारश्चाधिको भवेत्। धैवतः कंपितो यत्र स षड्जग्राम ईरितः ॥५४॥

युक्त गीत को श्लक्ष्ण कहा जाता है। स्वरों के अवाप और निर्वाप (उतार-चढ़ाव) प्रदेश में प्रत्यन्तर स्थानों का समास सम कहा जाता है। मृदुपद, वर्ण, सर और कुहरण से मुक्त गान को सुकुमार कहा जाता है। स्वभाव से ही ललित पद, अक्षर और गुणों से युक्त गान विधि की मधुर संज्ञा है इस प्रकार दस गुणों से गान होता है। इस विषय में और भी श्लोक कहे गए हैं—जिसका अभिप्राय यह है कि शंकित, भीषण, भीति, उद्घुष्ट, अनुनासिक, काकस्वर, मूर्द्धगत, स्थानवर्जित, विस्वर, विरस, विश्लिष्ट, विषमाहत, व्याकुल, तालहीन, ये चौदह गीति के दोष हैं ।४४-४५।। आचार्य सम स्वर को अधिक प्रिय समझते हैं, पंडित पदच्छेद को, स्त्रियाँ मधुर स्वर को और अन्य लोग विक्रुष्ट को उत्तम समझते हैं। ।।४६।।

षड्ज पद्मपत्र के समान और ऋषभ शुक के समान कुछ पीलापन लिए हुए हरे रंग का, गांधार सोने के और समान कान्तिवाला और मध्यम कुंद के समान श्वेत वर्ण का होता है ।।४७।। पंचम काले रंग का धैवत पीले रंग का और निषाद सब रंगों के मिले-जुले रंग का होता है। ये ही स्वरों के वर्ण (रंग) हैं ।।४८।। पंचम, मध्यम और षड्ज ब्राह्मण वर्ण कहे जाते हैं, ऋषभ और धैवत क्षत्रिय, गांधार और निषाद आधा वैश्य और आधा शूद्र वर्ण के होते हैं क्योंकि ये पतित स्वर हैं (उच्चारण करने वाले अंगों के नीचे के भाग से निकलते हैं) ।।४९-५०।। जहाँ मूर्च्छना से रहित ऋषभ, धैवत सहित पंचम, मध्यम राग में मिलते हैं उस निषाद स्वरग्राम को षाड्जव जानना चाहिए ।।५१।। यदि मध्यम स्वर में पंचम का विराम हो और अन्तर स्वर गान्धार हो जाय तथा उसके बाद क्रम से ऋषभ, निषाद एवं पंचम का उदय हो तो उस पंचम को भी ऐसा ही (षाडव या षाड्जव) समझना चाहिए ।।५२।। गांधार की प्रधानता हो, निषाद बार-बार आता-जाता रहे और धैवत अप्रधान रूप से हो तो इसको मध्यम ग्राम कहा जाता है ।।५३।। निषाद का ईषत् स्पर्श हो, गांधार का अधिक हो और धैवत कंपित हो तो उसको षड्ज ग्राम कहा जाता है ।।५४।। जहाँ अन्तर स्वर से युक्त काकली (सूक्ष्म ध्वनि) दिखाई देती हो

अंतरस्वरसंयुक्तः काकलिर्यत्र दृश्यते । तं तु साधारितं विद्यात्पंचमस्थं तु कैशिकम् ॥५५॥
कैशिकम् भावयित्वा तु स्वरैः सर्वैः समंततः । यस्मात्तु मध्यमे न्यासस्तस्मात्कैशिकमध्यमः ॥५६॥
काकलिर्दृश्यते यत्र प्राधान्यं पंचमस्य तु । कश्यपः कैशिकं प्राह मध्यमग्रामसंभवम् ॥५७॥
गेति गेयं विदुः प्राज्ञा धेति कारुप्रवादनम् । वेति वाद्यस्य संज्ञेयं गंधर्वस्य प्ररोचनम् ॥५८॥
यः सामगानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्वरः । यो द्वितीयः स गांधारस्तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः ॥५९॥
चतुर्थः षड्ज इत्याहुः पंचमो धैवतो भवेत् । षष्ठो निषादो विज्ञेयः सप्तमः पंचमः स्मृतः ॥६०॥
षड्जं मयूरो वदति गावो रंभंति चर्षभम् । अजाविके तु गांधारं क्रौंचो वदति मध्यमम् ॥६१॥
पुष्पसाधारणे काले कोकिला वक्ति पञ्चमम् । अश्वस्तु धैवतं वक्ति निषादं वक्ति कुंजरः ॥६२॥
कंठादुत्तिष्ठते षड्जः शिरसस्त्वृषभः स्मृतः । गांधारस्त्वनुनासिक्य उरसो मध्यमः स्वरः ॥६३॥
उरसः शिरसः कंठादुत्थितः पंचमः स्वरः । ललाटाद्धैवतं विद्यान्निषादं सर्वसन्धिजम् ॥६४॥
नासा कंठमुरस्तालुजिह्वादन्तांश्च संश्रितः । षड्भिः संजायते यस्मात्तस्मात्षड्ज इति स्मृतः ॥६५॥
वायुः समुत्थितो नाभेः कंठशीर्षसमाहतः । नर्दत्यृषभवद्यस्मात्तस्मादृषभ उच्यते ॥६६॥
वायुः समुत्थितो नाभेः कंठशीर्षसमाहतः । वाति गंधवहः पुण्यो गांधारस्तेन हेतुना ॥६७॥
वायुः समुत्थितो नाभेरुरौ हृदि समाहतः । नाभिप्राप्तो मध्यवर्ती मध्यमत्वं समश्नुते ॥६८॥
वायुः समुत्थितो नाभेरुरोहृत्कंठकाहतः । पंचस्थानोत्थितस्यास्य पंचमत्वं विधीयते ॥६९॥

उसको साधारित समझना चाहिए, पंचमस्थ यदि काकलि हो तो उसको कैशिक कहा जाता है। जब कैशिक को चारों ओर से सब स्वरों से भावित कर मध्यम में न्यस्त किया जाता है तब उसको कैशिक मध्यम कहा जाता है ॥५५-५६॥ जहाँ काकलि तो हो परन्तु पंचम की प्रधानता हो उसको कश्यप ने मध्यमग्राम से उत्पन्न कैशिक कहा है ॥५७॥ विद्वान् पुरुष 'गा' का अर्थ गेय मानते हैं, 'ध' का अर्थ कलापूर्वक वाद्य बजाना कहते हैं और रेफसहित 'व' का अर्थ वाद्य सामग्री है। यही 'गान्धर्व' शब्द का लक्ष्यार्थ है ॥५८॥ सामगायकों का जो प्रथम स्वर है वह वेणु का मध्यम स्वर है। जो उनका दूसरा है उसको गान्धार तथा उनके तीसरे को ऋषभ कहते हैं। चौथे को षड्ज और पाँचवें को धैवत कहते हैं। छठें को निषाद और सातवें को पंचम कहते हैं ॥५९-६०॥ मयूर षड्ज में बोलता और गायें ऋषभ स्वर में बोलती हैं। भेड़-बकरियाँ गांधार स्वर में मिमियाती और क्रौंच मध्यम स्वर में कूजता है ॥६१॥ साधारण रूप से जब वसन्त के आगमन काल में फूल खिलते हैं, उस समय कोकिला पंचम स्वर में कूकती है। अश्व धैवत स्वर में हिनहिनाता है और हाथी निषाद स्वर में चिंघाड़ता है ॥६२॥ कण्ठ से षड्ज स्वर उठता और शिर से ऋषभ। गान्धार अनुनासिक से उत्पन्न होता और उरस् (छाती) से मध्यम स्वर निकलता है ॥६३॥ उरस्, शिर और कण्ठ तीनों से पंचम स्वर निकलता है। ललाट से धैवत और सब सन्धियों से निषाद स्वर उत्पन्न होता है। ॥६४॥ नासा, कण्ठ, उरस्, तालु, जिह्वा और दाँत इन छह स्थानों से षड्ज स्वर निकलता है ॥६५॥ नाभि से वायु ऊपर को उठता और कण्ठ से शिर से धक्का खाकर वह स्वर ऋषभ (बैल) के समान हुँकारता है इसलिए उसको ऋषभ स्वर कहते हैं ॥६६॥ नाभि से वायु ऊपर उठकर जब कण्ठ और शिर से टकरा कर गंधवाही वायु के समान सन सनाता हुआ निकलता है तब उसको गांधार कहते हैं ॥६७॥ नाभि सेवायु ऊपर उठकर ऊरु और हृदय से टकराकर नाभिस्थान में मध्यवर्ती होता है, अतः उससे निकले हुए स्वर को मध्यम कहा जाता है ॥६८॥ नाभि से ऊपर उठा हुआ वायु जब ऊरु, हृदय, कण्ठ और शिर से टकराकर बाहर निकलता है तब पाँच स्थानों से निकलने वाले स्वर को पंचम

धैवतं च निषादं च वर्जयित्वा तु तावुभौ । शेषान्पंच स्वरांस्त्वन्ये पंचस्थानोत्थितान्विदुः ॥७०॥
पंचस्थानस्थितत्वेन सर्वस्थाना न धार्यते । अग्निगीतस्वरः षड्ज ऋषभो ब्रह्मणोच्यते ॥७१॥
सोमेन गीतो गांधारो विष्णुना मध्यमः स्वरः । पंचमस्तु स्वरो गीतस्त्वयैवेति निधारय ॥७२॥
धैवतश्च निषादश्च गीतौ तुंबुरुणा स्वरौ । आद्यस्य दैवतं ब्रह्मा षड्जस्याप्युच्यते बुधैः ॥७३॥
तीक्ष्णदीप्तप्रकाशत्वादृषभस्य हुताशनः । गावः प्रणीते तुष्यंति गांधारस्तेन हेतुना ॥७४॥
श्रुत्वा चैवोपतिष्ठंति सौरभेया न संशयः । सोमस्तु पंचमस्यापि दैवतं ब्रह्मराट् स्मृतम् ॥७५॥
निह्रासो यस्य वृद्धिश्च ग्राममासाद्य सोमवत् । अतिसंधीयते यस्मादेतान्पूर्वोत्थितान्स्वरान् ॥७६॥
तस्मादस्य स्वरस्यापि धैवतत्वं विधीयते । निषीदंति स्वरा यस्मान्निषादस्तेन हेतुना ॥७७॥
सर्वाश्चाभिभवत्येष यदादित्योऽस्य दैवतम् ॥७८॥
दारवी गात्रवीणा च द्वे वीणे गानजातिषु ॥७९॥
सामनी गात्रवीणा तु तस्यास्त्वं श्रृणु लक्षणम् । गात्रवीणा तु सा प्रोक्ता यस्यां गायंति सामगाः ॥८०॥
स्वरव्यंजनसंयुक्ता अंगुल्यंगुष्ठरंजिता । हस्तौ तु संयतौ धार्यौ जानुभ्यामुपरिस्थितौ ॥८१॥
गुरोरनुकृतिं कुर्याद्यथान्या न मतिर्भवेत् । प्रणवं प्राक्प्रयुंजीत व्याहृतीस्तदनंतरम् ॥८२॥
सावित्रीं चानुवचनं ततो वै गानमारभेत् । प्रसार्य चांगुलीः सर्वा रोपयेत्स्वरमंडलम् ॥८३॥
न चांगुलीभिरंगुष्ठमंगुष्ठेनांगुलीः स्पृशेत् । विरला नांगुलीः कुर्यान्मूले चैतां न संस्पृशेत् ॥८४॥

कहा जाता है ॥६९॥ अन्य विद्वान् धैवत और निषाद को छोड़कर शेष पाँच स्वरों को पाँच स्थानों से उत्पन्न मानते हैं ॥७०॥ पाँच स्थानों में स्थित होने के कारण वह सब स्थानों में धारण किया जाता है । षड्ज स्वर अग्नि द्वारा गाया जाता है । ब्रह्मा ऋषभ का गान करते हैं; सोम गान्धार का और विष्णु मध्यम स्वर का गान करते हैं । पंचम स्वर का गान तुम्हीं करते हो ऐसा समझो ॥७१-७२॥ तुम्बुरु धैवत और निषाद स्वर में गाते हैं । आदि स्वर के देवता ब्रह्मा हैं और षड्ज के भी देवता वही माने गए हैं । तीक्ष्ण और जाज्वल्यमान होने के कारण ऋषभ के अग्नि देवता हैं । गायें गान्धार स्वर को सुनकर प्रसन्न होती हैं; गायें उस गान्धार को सुनकर उपस्थित हो जाती हैं ॥७३-७४॥ पंचम स्वर के देवता सोम हैं, जिन्हें ब्राह्मणों का राजा कहा गया है । जैसे चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में बढ़ता है और कृष्ण पक्ष में घटता है, उसी प्रकार स्वरग्राम में प्राप्त होने पर जिस स्वर का ह्रास होता और वृद्धि होती है तथा इन पूर्वोत्पन्न स्वरों की अतिसंधि होती है वह धैवत है । इसी से उसके धैवतत्व का विधान किया गया है । निषाद में सब स्वरों का निषादन (अन्तर्भाव) होता है, इसलिए वह निषाद कहलाता है । यह सब स्वरों को अभिभूत कर लेता है ठीक उसी तरह, जैसे सूर्य सब नक्षत्रों को अभिभूत करता है, क्योंकि सूर्य ही इसके अधिदेवता हैं ॥७५-७८॥

काठ की वीणा और गात्रवीणा दो प्रकार की वीणाएं गान में प्रयुक्त होती हैं । जो सामकी गात्रवीणा है उसका लक्षण सुनो । गात्रवीणा उसको कहते हैं जिस पर साम के गाने वाले गान करते हैं ॥७९॥ यह वीणा घुटनों के ऊपर रख कर बजाई जाती है । सबसे पहले वीणा को दो हाथों के बीच में भली भाँति रख कर उसको स्वर व्यंजन के अनुकूल अंगुलियों से बजाया जाता है ॥८०-८१॥ इस विषय में गुरु का ही अनुकरण करना चाहिए जिससे बुद्धि कहीं इतर वस्तु की ओर न जाय । पहले प्रणव को तत्पश्चात् सात महा व्याहृतियों को उस वीणा पर बजाना चाहिए । फिर सावित्री को स्तुति तब गान का प्रारम्भ करना चाहिए । पाँचों अंगुलियों को फैलाकर स्वरों पर रखना चाहिए ॥८२-८३॥ अंगुलियों से अंगूठे का और अंगूठे से अंगुलियों

अंगुष्ठाग्रेण ता नित्यं मध्यमे पर्वणि स्पृशेत् । मात्राद्विमात्रवृद्धानां विभागार्थं विभागवित् ॥८५॥
अंगुलीभिर्द्विमात्रं तु पाणेः सव्यस्य दर्शयेत् । त्रिरेखा यस्य दृश्येत संधिं तत्र विनिर्दिशेत् ॥८६॥
स पर्व इति विज्ञेयः शेषमंतरमंतरम् । पर्वांतरं सामसु च ऋक्षु कुर्यात्तिलांतरम् ॥८७॥
स्वरान्मध्यमपर्वसु सुनिविष्टं निवेशयेत् । न चात्र कंपयेत्किंचिदंगस्यावयवं बुधः ॥८८॥
अधस्तनं मृदं न्यस्य हस्तमात्रे यथाक्रमम् । अभ्रमध्ये यथा विद्युद्दृश्यते मणिसूत्रवत् ॥८९॥
पृथक्छेदविवृत्तीनां यथा बालेषु कर्तरी । कूर्मोऽङ्गानि च संहृत्य चेतोदृष्टिं दिशन्मनः ॥९०॥
स्वस्थः प्रशांतो निर्भीको वर्णानुच्चारयेद्बुधः । नासिकायास्तु पूर्वेण हस्तं गोकर्णवद्धरेत् ॥९१॥
निवेश्य दृष्टिं हस्ताग्रे शास्त्रार्थमनुचिंतयेत् । सम्यक्प्रचारयेद्वाक्यं हस्तेन च मुखेन च ॥९२॥
यथैवोच्चारयेद्वर्णांस्तथैवैनां समापयेत् । नात्याहन्यान्न निर्हण्यान्न प्रगायेन्न कंपयेत् ॥९३॥
समं सामानि गायेत व्योम्नि श्येनगतिर्यथा । यथा सुचरतां मार्गो मीनानां नोपलभ्यते ॥९४॥
आकाशे वा विहंगानां तद्वत्स्वरगता श्रुतिः । यथा दधिनि सर्पिः स्यात्काष्ठस्थो वा यथाऽनलः ॥९५॥

का स्पर्श नहीं होना चाहिए। अंगुलियों को अधिक फैलाना नहीं चाहिए और न तो मूल में स्पर्श ही होना चाहिए ॥८४॥ अंगूठे के अगले भाग से उनके मध्य पर्व पर आघात करना चाहिए। विभाग के ज्ञाता पुरुष को चाहिए कि मात्रा-द्विमात्रावृद्धि के विभाग के लिए बायें हाथ की अंगुलियों से द्विमात्रा का दर्शन करता रहे। जहाँ त्रिरेखा देखी जाय, वहाँ संधि का निर्देश करे; वह पर्व है, ऐसा जानना चाहिए। शेष अन्तर-अन्तर है। साम मंत्र में (प्रथम और द्वितीय स्वर के बीच) जौ के बराबर अन्तर करे तथा ऋचाओं में तिल बराबर अन्तर करे ॥८५-८७॥ मध्यम पर्वों में भली भाँति निविष्ट किये हुए स्वरों का ही निवेश करे। विद्वान् पुरुष यहाँ शरीर के किसी अवयव को कँपाये नहीं ॥८८॥ नीचे के अंग—ऊरु, जंघा आदि को सुखपूर्वक रखकर उन पर दोनों हाथों को प्रचलित परिपाटी के अनुसार रखे (अर्थात् दाहिने हाथ को गाय के कान के समान रखे और बायें को उत्तान भाव से रखे।) जैसे बादलों में बिजली मणिमय सूत्र की भाँति चमकती दिखायी देती है, यही विवृत्तियों (पदादि विभागों) के छेद--बिलगाव—स्पष्ट निर्देश का दृष्टान्त है। जैसे सिर के बालों पर कैंची चलती है और बालों को पृथक् कर देती है, उसी प्रकार अन्य सब चेष्टाओं को विलीन करके मन और दृष्टि देकर विद्वान् पुरुष स्वस्थ, शान्त तथा निर्भीक होकर वर्णों का उच्चारण करे ॥८९-९०½॥ मन्त्र का उच्चारण करते समय नाक की सीध में पूर्व दिशा की ओर गोकर्ण के समान आकृति में हाथ को उठाये रखे, और हाथ के अग्रभाग पर दृष्टि रखते हुए शास्त्र के अर्थ का निरन्तर चिन्तन करता रहे। मन्त्रवाक्य को हाथ और मुख दोनों से साथ-साथ भली-भाँति प्रचार करे ॥९१-९२॥

वर्णों का जिस प्रकार द्रुतादि वृत्ति से आरम्भ में उच्चारण करे, उसी प्रकार उन्हें समाप्त भी करे। (एक ही मन्त्र में दो वृत्तियों की योजना न करे।) अभ्याघात, निर्घात, प्रगान तथा कम्पन न करे, समभाव से साममन्त्रों का गान करे। जैसे आकाश में श्येनपक्षी समगति से उड़ता है, जैसे जल में विचरती हुई मछलियों अथवा आकाश में उड़ते हुए पक्षियों के मार्ग का विशेष रूप से पता नहीं चलता, उसी प्रकार सामगान में स्वरगत श्रुति के विशेष स्वरूप का अवधारण नहीं होता, सामान्यतः गीतमात्र की उपलब्धि होती है ॥९३-९४½॥ जैसे दही में घी अथवा काठ के भीतर अग्नि छिपा रहता है और प्रयत्न से उसकी उपलब्धि भी होती है, उसी प्रकार स्वरगत श्रुति भी गीत में छिपी रहती है, प्रयत्न से उसके विशेष स्वरूप की भी उपलब्धि होती है ॥९५½॥ प्रथम

प्रयत्नेनोपलभ्येत तद्वत्स्वरगता श्रुतिः । स्वरात्स्वरस्य संक्रामं स्वरसंधिमनुल्बणम् ॥९६॥
अविच्छिन्नं समं कुर्यात्कासूक्ष्मच्छायातपोपमम् । अनागतमतिक्रांतं विच्छिन्नं विषमाहतम् ॥९७॥
तन्वंतमस्थितांतं च वर्जयेत्कर्षणं बुधः । स्वरः स्थानाच्च्युतोयस्तु स्वं स्थानमतिवर्तते ॥९८॥
विस्वरं सामगा ब्रूयुर्विरक्तमिति वीणिनः । अभ्यासार्थे द्रुतां वृत्तिं प्रयोगार्थे तु मध्यमाम् ॥१००॥
शिष्यणामुपदेशार्थं कुर्याद्वृत्तिं विलंबिताम् । गृहीतग्रंथ एवं तु ग्रंथोच्चारणशैक्षकान् ॥१०१॥
हस्ते नाध्यापयेच्छिष्यान् शैक्षेण विधिना द्विजः । क्रुष्टस्य मूर्द्धनि स्थानं ललाटे प्रथमस्य तु ॥१०२॥
भ्रुवोर्मध्ये द्वितीयस्य तृतीयस्य तु कर्णयोः । कंठस्थानं चतुर्थस्य मंद्रस्य रसनोच्यते ॥१०३॥
अतिस्वरस्य नीचस्य हृदि स्थानं विधीयते । अंगुष्ठस्योत्तमे क्रुष्टो ह्यंगुष्ठ प्रथमः स्वरः ॥१०४॥
प्रदेशिन्या तु गांधार ऋषभस्तदनंतरम् । अनामिकायां षड्जस्तु कनिष्ठायां तु धैवतः ॥१०५॥
तस्याधस्ताच्च योन्यास्तु निषादं तत्र निर्दिशेत् । अपर्वत्वादमध्यत्वादव्ययत्वाच्च नित्यशः ॥१०६॥
मंद्रो हि मंदीभूतस्तु परिस्वार इति स्मृतः । क्रुष्टेन देवा जीवंति प्रथमेन तु मानुषाः

स्वर से दूसरे स्वर पर जो स्वर-संक्रमण होता है, उसे प्रथम स्वर से संधि रखते हुए करे, विच्छेद करके न करे और न वेग से ही करे। जैसे छाया एवं धूप सूक्ष्म गति से धीरे-धीरे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं—न तो पूर्व स्थान से सहसा सम्बन्ध तोड़ते हैं और न नये स्थान पर ही वेग से जाते हैं, उसी प्रकार स्वर-संक्रमण भी सम तथा अविच्छिन्न भाव से करे ॥९६॥ जब प्रथम स्वर को खींचते हुए द्वितीय स्वर होता है, तब उसे 'कर्षण' कहते हैं। विद्वान् पुरुष निम्नांकित छह दोषों से युक्त कर्षण का त्याग करे। अनागत तथा अतिक्रान्त अवस्था में कर्षण न करे। द्वितीय स्वर के आरंभ से पहले उसकी अनागत अवस्था है, प्रथम स्वर का सर्वथा व्यतीत हो जाना उसकी अतिक्रान्त अवस्था है; इन दोनों स्थितियों में प्रथम स्वर का कर्षण न करे। प्रथम मात्रा का विच्छेद करके भी कर्षण न करे। उसे विषमाहत—कम्पित करके भी द्वितीय स्वर पर न जाय। कर्षणकाल में तीन मात्रा में अधिक स्वर का विस्तार न करे। अस्थितान्त का त्याग करे अर्थात् द्वितीय स्वर में भी त्रिमात्रायुक्त स्थिति करनी चाहिए, न कि दो मात्रा से ही युक्त। जो स्वरस्थान से च्युत होकर अपने स्थान का अतिवर्तन (लंघन) करता है, उसे सामगान करने वाले विद्वान् 'विस्वर' कहते हैं और वीणा बजा कर गाने वाले गायक उसे 'विरक्त' नाम देते हैं ॥९७-९८॥ स्वयं अभ्यास करने के लिए द्रुतवृत्ति से मन्त्रोच्चारण करे। प्रयोग के लिए मध्यमवृत्ति का आश्रय ले और शिष्यों के उपदेश को लिए विलम्बित वृत्ति का अवलम्बन करे ॥९९॥

इस प्रकार गुरु स्वयं हाथ में पुस्तक लेकर ग्रन्थ का उच्चारण करने वाले शिष्यों को हाथ को घुमा-घुमा कर शिक्षण विधि के अनुसार शिक्षा दे ॥१००॥ क्रुष्ट का मूर्द्धा में स्थान है, प्रथम का ललाट में, द्वितीय का भौंहों के बीच में और तृतीय का कानों में है। चतुर्थ का स्थान कण्ठ और मन्द्र का रसना स्थान है, नीच अतिस्वार का हृदय में स्थान है ॥१०१-१०२॥ अंगूठे के ऊपरी भाग में क्रुष्ट, अंगूठे में प्रथम स्वर, प्रदेशिनी (तर्जनी) में गांधार और उसके बाद की अंगुली अर्थात् मध्यमा में ऋषभ, अनामिका में षड्ज तथा कनिष्ठा में धैवत रहता है ॥१०३-१०४॥ धैवत के नीचे निषाद का स्थान कहा गया है। अपर्व, अमध्य और नित्य अव्यय होने के कारण मंदीभूत स्वर मन्द्र को परिस्वार कहा जाता है ॥१०५½॥

क्रुष्ट से देवता जीते हैं, प्रथम से मानुष, द्वितीय से पशु और तृतीय से गन्धर्व और अप्सरायें जीती हैं।

यशवस्तु द्वितीयेन गंधर्वाप्सरसस्त्वनु । अंधजाः पितरश्चैव चतुर्थस्वरजीविनः ॥१०७॥
मंद्रत्वेनोपजीवंति पिशाचासुरराक्षसाः । अतिस्वरेण नीचेन जगत्स्थावरजंगमाः ॥१०८॥
सर्वाणि खलु भूतानि धार्यंते सामिकैः स्वरैः । दीप्तायताकरुणानां मृदुमध्यमयोस्तथा ॥१०९॥
श्रुतीनां योऽविशेषज्ञो न स आचार्य उच्यते । दीप्ता मंद्रे द्वितीये च प्रचतुर्थे तथैव च ॥११०॥
अतिस्वरे तृतीये च क्रुष्टे तु करुणा श्रुतिः । श्रुतयो या द्वितीयस्य मृदुमध्यायताः स्मृताः ॥१११॥
तासामपि तु वक्ष्यामि लक्षणानि पृथक् पृथक् । आयतात्वं भवेन्नीचे मृदुता तु विपर्यये ॥११२॥
स्वे स्वरे मध्यमात्वं तु तत्समीक्ष्य प्रयोजयेत् । द्वितीये विरता या तु क्रुष्टश्च परतो भवेत् ॥११३॥
दीप्तां तां तु विजानीयात्प्राथम्येन मृदुः स्मृतः । अत्रैव विरता या तु चतुर्थेन प्रवर्तते ॥११४॥
तथा मंद्रे भवेद्दीप्ता साम्नश्चैव समापने । नातितारश्रुतिं कुर्यात्स्वरयोर्नापि चांतरे ॥११५॥
तं च ह्रस्वे च दीर्घे च न चापि घुटसंज्ञके । द्विविधा गतिः पदांतस्थितसंधिः सहोष्मभिः ॥११६॥
स्थानेषु पंचस्वेतेषु विज्ञेयं घुटसंज्ञकम् । स्वरांतराविरतानि ह्रस्वदीर्घघुटानि च ॥११७॥
स्थितिस्थानेष्वशेषाणि श्रुतिवत्स्वरतो वदेत् । दीप्तामुदात्ते जानीयाद्दीप्तां च स्वरिते विदुः ॥११८॥

अंधकार से उत्पन्न योनि वाले और पितर चतुर्थ स्वरजीवी हैं ॥१०६-१०७॥ मन्द्र से पिशाच, असुर और राक्षस जीते हैं। नीच स्वर अतिस्वार से जगत् के स्थावर-जंगम जीवित होते हैं। सब भूत (प्राणी) सामिक स्वर से जीवित रहते हैं ॥१०८॥ दीप्त, आयत, करुण, मृदु, मध्यम और श्रुतियों का जो विशेषज्ञ नहीं होता है उसको आचार्य नहीं कहते हैं। मन्द्र, द्वितीय और चतुर्थ में दीप्ता श्रुति, अतिस्वार, तृतीय और क्रुष्ट में करुणा श्रुति होती है ॥१०९-११०॥ द्वितीय की जो मृदु, मध्य और आयत श्रुतियाँ हैं, उनके लक्षण पृथक्-पृथक् कहता हूँ। नीच में अर्थात् तृतीय स्वर परे रहने पर आयता, विपर्यय में (चतुर्थस्वर परे रहने पर) मृदु और अपने स्वर में मध्यमा श्रुति होती है, इनकी भली-भाँति समीक्षा कर प्रयोग में लाना चाहिए ॥१११-११२॥ क्रुष्ट स्वर होने पर द्वितीय स्वर में स्थित जो श्रुति है, उसको दीप्ता समझना चाहिए। प्रथम स्वर में तो मृदु समझना चाहिए। यदि चतुर्थ स्वर में हो तो वही श्रुति मृदु कहलाती है तथा मन्द्र स्वर में हो तो दीप्ता होती है। साम की समाप्ति होने पर जिस किसी भी स्वर में स्थित श्रुति दीप्ता ही होती है। स्वर के समाप्त होने से पहले आयतादि श्रुति का प्रयोग न करे। स्वर समाप्त होने पर भी जब तक गान का विच्छेद न हो जाय, दो स्वरों के मध्य में श्रुति का प्रयोग न करे ॥११३-११५॥ ह्रस्व तथा दीर्घ अक्षर का गान होते समय भी श्रुति नहीं करनी चाहिए। (केवल प्लुत में ही श्रुति का प्रयोग न करे।) तथा जहाँ घुट-संज्ञक स्वर हो, वहाँ श्रुति का प्रयोग न करे। तालव्य इकार का 'आ' 'इ' भाव होता है और 'आ' 'उ' भाव होता है, ये दो प्रकार की गतियाँ हैं। तथा ऊष्म वर्ण 'श ष स' के साथ जो त्रिविध पदान्त सन्धि है—ये सब मिलकर पाँच स्थान हैं; इन स्थानों में घुट संज्ञक स्वर जानना चाहिए (इनमें श्रुति नहीं करनी चाहिए)। श्रुति-स्थानों में जहाँ स्वर और स्वरान्तर समाप्त न हुए हों तथा जो ह्रस्व, दीर्घ एवं घुट-संज्ञक स्थल हैं, वे सब श्रुति से रहित हैं, उनमें श्रुति नहीं करनी चाहिए। वहाँ स्वर से ही श्रुतिवत् कार्य होता है ॥११६-११७½॥

(समासव्यतिरिक्त स्थलों में) उदात्त स्वर में 'दीप्ता' नाम वाली श्रुति को जाने। स्वरित में भी विद्वान् लोग 'दीप्ता' की ही स्थिति मानते हैं। अनुदात्त में 'मृदु' श्रुति जाननी चाहिए। गान्धर्व गान में श्रुति का अभाव होने

अनुदात्ते मृदुर्ज्ञेया गंधर्वाः श्रुतिसंपदे । उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितप्रचिते तथा ॥११९॥
निघातश्चेति विज्ञेयः स्वरभेदश्च पंचधा । अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि आर्चिकस्य स्वरत्रयम् ॥१२०॥
उदात्तश्चानुदात्तश्च तृतीयः स्वरितः स्वरः । य एवोदात्त इत्युक्तः स एव स्वरितात्परः ॥१२१॥
प्रचयः प्रोच्यते तज्ज्ञैर्न चात्रान्यत्स्वरांतरम् । वर्णस्वरोऽतीतस्वरः स्वरितो द्विविधः स्मृतः ॥१२२॥
मात्रिको वर्ण एवं तु दीर्घस्तूच्चारितादनु । स तु सप्तविधो ज्ञेयः स्वरः प्रत्ययदर्शनात् ॥१२३॥
पदेन तु स विज्ञेयो भवेद्यो यत्र यादृशः । सप्तस्वरान्प्रयुंजीत दक्षिणं श्रवणं प्रति ॥१२४॥
आचार्यैर्विहितं शास्त्रं पुत्रशिष्यहितैर्षिभिः । उच्चादुच्चतरं नास्ति नीचान्नीचतरं तथा ॥१२५॥
वैस्वर्यंस्वरसंज्ञायां किंस्थानः स्वार उच्यते । उच्चनीचस्य यन्मध्ये साधारणमिति श्रुतिः ॥१२६॥
तं स्वारं स्वारसंज्ञायां प्रतिजानंति शैक्षिकाः । उदात्ते निषादगांधारावनुदात्ते ऋषभधैवतौ ॥१२७॥
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपंचमाः । यत्र कखपरा ऊष्मा जिह्वामूलप्रयोजनाः ॥१२८॥
तानप्याज्ञापयेन्मात्राप्रकृत्यैव तु सा कला । जात्यः क्षैप्रोऽभिनिहित स्तैरव्यंजन एव च ॥१२९॥
तिरोविरामः प्रश्लिष्टोऽपादवृत्तश्च सप्तमः । स्वाराणामहमेतेषां पृथग्वक्ष्यामि लक्षणम् ॥१३०॥

पर भी स्वर को ही श्रुति के समान करना चाहिए। वहाँ स्वर में ही श्रुति का वैभव निहित है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रचय[1] तथा निघात[2]--ये पाँच स्वरभेद होते हैं ॥११८-११९½॥

इसके बाद मैं आर्चिक के तीन स्वरों का प्रतिपादन करता हूँ! पहला उदात्त, दूसरा अनुदात्त और तीसरा स्वरित हैं। जिसको उदात्त कहा गया है, वही स्वरित से परे हो तो विद्वान् पुरुष उसे प्रचय कहते हैं। वहाँ दूसरा कोई स्वरान्तर नहीं होता। स्वरित के दो भेद हैं--वर्णस्वर और अतीतस्वर ॥१२०-१२२॥ इसी प्रकार वर्ण भी मात्रिक एवं उच्चरित के पश्चात् दीर्घ होता है। प्रत्यय-स्वरूप प्रत्यय का दर्शन होने से उसे सात प्रकार का जानना चाहिए ॥१२३॥ वह क्या, कहाँ और कैसा है, इसका ज्ञान पद से प्राप्त करना चाहिए। दाहिने कान में सातों स्वरों का श्रवण करावे ॥१२४॥ आचार्यों ने पुत्रों और शिष्यों के हित की इच्छा से ही इस शिक्षाशास्त्र का प्रणयन किया है। उच्च (उदात्त) से कोई उच्चतर नहीं है और नीच (अनुदात्त) से नीचतर नहीं है, उसमें स्वर का क्या स्थान है? (इसके उत्तर में कहते हैं--) उच्च (उदात्त) और नीच (अनुदात्त) के मध्य में जो 'साधारण' यह श्रुति है, उसी को शिक्षाशास्त्र के विद्वान् स्वार-संज्ञा में 'स्वार' नाम से जानते हैं ॥१२५-१२६½॥ उदात्त में निषाद और गान्धार स्वर हैं, अनुदात्त में ऋषभ और धैवत स्वर में हैं। और ये--षड्ज, मध्यम तथा पञ्चम--स्वरित में प्रकट होते हैं ॥१२७½॥ जिसके परे 'क' और 'ख' हैं तथा जो जिह्वामूलीय रूप प्रयोजन को सिद्ध करने वाली है, उस 'ऊष्मा' (क ख) को 'मात्रा' जाने। वह अपने स्वरूप से ही 'कला' है (किसी दूसरे वर्ण का अवयव नहीं है। इसे उपध्मानीय का भी उपलक्षण मानना चाहिए) ॥१२८½॥

जात्य, क्षैप्र, अभिनिहित, तैरव्यञ्जन, तिरोविराम, प्रश्लिष्ट तथा सातवाँ अपादवृत्त--ये सात स्वार हैं। अब मैं इन सब स्वारों का पृथक्-पृथक् लक्षण बतलाता हूँ ॥१२९-१३०॥ लक्षण कहकर उन सबके यथायोग्य

---

१. स्वरित से आगे स्वरित ही हो तो उनकी 'प्रचय' संज्ञा होती है।

२. प्रचय परे हो तो स्वरित का आहनन होने से उसकी 'निघात' संज्ञा होती है। प्रचय न हो, तब तो शुद्ध 'स्वरित' ही रहता है।

उद्दिष्टानां तथा न्याय्यमुदाहरणमेव च । सयकारं सवं वापि ह्यक्षरं स्वरितं भवेत् ॥१३१॥
न चोदात्तं पुरो यस्य जात्यः स्वारः स उच्यते । इउवर्णौ यदोदात्तावापद्येते यवौ क्वचित् ॥१३२॥
अनुदात्तं प्रत्यये तु विद्यात्क्षैप्रस्य लक्षणम् । एओआभ्यामुदात्ताभ्यामकारो निहितश्च यः ॥ १३३॥
अकारो यत्र लुंपति तमभिनिहितं विदुः । उदात्तपूर्वं यत्किंचिच्छंदसि स्वरितं भवेत् ॥१३४॥
एष सर्वबहुस्वारस्तैरव्यंजन उच्यते । अवग्रहात्परं यत्र स्वरितं स्यादनंतरम् ॥१३५॥
तिरोविरामं तं विद्यादुदात्तो यद्यवग्रहः । इकारं यत्र पश्येयुरिकारेणैव संयुतम् ॥१३६॥
उदात्तमनुदात्तेन प्रश्लिष्टं तं विचारय । स्वरे चेत्स्वरितं यत्र विवृता यत्र संहिता ॥१३७॥
एतत्पादांतवृत्तस्य लक्षणं शास्त्रनोदितम् । तान्यः स्वारः स जात्येन श्रुत्यग्रे क्षैप्र उच्यते ॥१३८॥
ते मन्वताभिनिहितस्तैरव्यञ्जन ऊतये । तिरोविरामो विष्कभिते प्रश्लिष्टो ह्रीईगिर्वणः ॥१३९॥
पादवृत्तः कंदविदे स्वराः सप्तैवमादयः । उच्चादेकाक्षरात्पूर्वात्स्वरं यद्यविहाक्षरम् ॥१४०॥
स्वाराणां जात्यवर्जानामेषा प्रकृतिरुच्यते । चत्वारस्त्वादितः स्वाराः कंपं कुर्वन्ति शास्त्रतः ॥१४१॥
उदात्ते चैकनीचे वा जुह्वोऽग्निस्तन्निदर्शनम् । इकारांते पदे पूर्वं उकारे परतः स्थिते ॥१४२॥
ह्रस्वं कंपं विजानीयान्मेधावी नात्र संशयः । इकारांते पदे चैवोकारद्वयं परे पदे ॥१४३॥

उदाहरण भी बताऊँगा। जो अक्षर 'य' कार और 'व' कार के साथ स्वरित होता है तथा जिसके आगे उदात्त नहीं होता, वह 'जात्य' स्वार कहलाता है ॥१३१½॥ जब उदात्त 'इ' वर्ण और 'उ' वर्ण कहीं पदादि अनुदात्त अकार परे रहते सन्धि होने पर 'य' 'व' के रूप में परिणत हो स्वरित होते हैं तो वहाँ सदा 'क्षैप्र' स्वार का लक्षण समझना चाहिए ॥१३२½॥ 'ए' और 'ओ' इन दो उदात्त स्वरों से परे जो वकारसहित अकारनिहित (अनुदात्त रूप में निपातित) हो और उसका जहाँ लोप (एकार या उकार में अनुप्रवेश) होता है, 'अभिनिहित' स्वार माना जाता है ॥१३३½॥ छन्द में जहाँ-कहीं या जो कोई भी ऐसा स्वरित होता है, जिसके पूर्व में उदात्त हो, वह सर्व बहुस्वार (सर्वत्र बहुलता से होने वाला स्वर) 'तैरव्यञ्जन' कहलाता है ॥१३४½॥ यदि उदात्त अवग्रह हो और अवग्रह से परे अनन्तर स्वरित हो, तो उसे 'तिरोविराम' समझना चाहिए ॥१३५½॥ जहाँ उदात्त इकार को अनुदात्त इकार से संयुक्त देखिए, वहाँ विचार लीजिए कि 'प्रश्लिष्ट' स्वार है। जहाँ स्वर अक्षर अकारादि में स्वरित हो और पूर्वपद के साथ संहिता विभक्त हो, उसे पादवृत्त स्वार का शास्त्रोक्त लक्षण समझना चाहिए ॥१३६-१३७½॥

'जात्य' स्वार' का उदाहरण है—'सजात्येन' इत्यादि। श्रुष्टि + अग्ने = श्रुष्ट्यग्ने आदि स्थलों में 'क्षैप्र' स्वार है। 'ते मन्वत' इत्यादि में अभिनिहित' स्वार जानना चाहिए। उ + ऊतये = ऊतये, वि + ईतये = वीतये इत्यादि में 'तैरव्यञ्जन' नामक स्वार है। 'विस्कभिते विस्कभिते' आदि स्थलों में 'तिरोविराम' है। 'हि इन्द्र गिर्वणः' = 'हीन्द्र०' इत्यादि में प्रश्लिष्ट स्वार है। 'क ईम् कईं वेद' इत्यादि में 'पादवृत्त' नामक स्वार है। इस प्रकार ये सब सात स्वार हैं ॥१३८-१३९½॥

जात्य स्वरों को छोड़कर एक पूर्ववर्ती उदात्त अक्षर से परे जो भी अक्षर हो, उसकी स्वरित संज्ञा होती है। यह स्वरित का सामान्य लक्षण बताया जाता है। पूर्वोक्त चार स्वार उदात्त अथवा एक अनुदात्त परे रहने पर शास्त्रतः 'कम्प' उत्पन्न करते हैं। (जिसका स्वरूप चल हो, उस स्वार का नाम कम्प है) इसका उदाहरण है 'जुह्वग्निः'। 'उप त्वा जुहू', 'उप त्वा जुह्वो मम' इत्यादि ॥१४०-१४१½॥ पूर्वपद इकारान्त हो और परे उकार की स्थिति हो तो मेधावी पुरुष वहाँ 'ह्रस्व कम्प' जाने, इसमें संशय नहीं। यदि उकारद्वय युक्त पद परे हो तो इकारान्त पद में दीर्घ कम्प जानना चाहिए। इसका दृष्टान्त है—'शग्ध्यूषू' इत्यादि ॥१४२-१४३½॥ तीन

दीर्घं कंपं विजानीयाच्छाखध्रूवेति निदर्शनम् । त्रयो दीर्घास्तु विज्ञेया ये च संध्यक्षरेषु वै ॥१४४॥
मन्या पथ्या न इंद्राभ्यां शेषा ह्रस्वाः प्रकीर्तिताः । अनेकानामुदात्तानामनुदात्तः प्रत्ययो यदि ॥१४५॥
शिवकंपं विजानीयादुदात्तः प्रत्ययो यदि । यत्र द्विप्रभृतीनि स्युरुदात्तान्यक्षराणि तु ॥१४६॥
नीचं वोच्चं च परतस्तत्रोदात्तं विदुर्बुधाः । न रेफे वा हकारे वा द्विर्भावो जायते क्वचित् ॥१४७॥
न च वर्गद्वितीयेषु न चतुर्थे कदाचन । चतुर्थं तु तृतीयेन द्वितीयः प्रथमेन तु ॥१४८॥
आद्यमंत्यं च मध्यं च स्वाराक्षरेण पीडयेत् । अनंत्यश्च भवेत्पूर्वो ह्यंतश्च परतो यदि ॥१४९॥
तत्र मध्ये यमस्तिष्ठेत्स्ववर्णः पूर्ववर्णयोः । वर्गांत्यान् शषसैः सार्द्धमंतस्थैर्वापि संयुतान् ॥१५०॥
दृष्ट्वा यमा निवर्तंते अदेशिक्रमिवाध्वगाः । तृतीयश्च चतुर्थश्च चतुर्थादिपरं पदम् ॥१५१॥
द्वौ तृतीयो हकारश्च हकारादिपरं पदम् । अनुस्वारोपधामूला तान् क्वचित्क्रमतः परम् ॥१५२॥
रहपूर्वं संयुते चाप्युत्तरं क्रमतेऽक्षरम् । संयोगो यत्र दृश्येत व्यंजनं विरते पदे ॥१५३॥
पूर्वांगमादितः कृत्वा परांगादौ निवेशयेत् । संयोगे स्वरितं यत्र उद्वातः प्रतनं तथा ॥१५४॥
पूर्वांगंतद्विजानीयाद्येनारंभः परं हि तत् । संयोगात्तु विजानीयात्परं संयोगनायकम् ॥१५५॥

दीर्घ कम्प जानने चाहिए, जो सन्ध्यक्षरों में होते हैं। उनके क्रमशः उदाहरण ये हैं—मन्या, पथ्या, न इन्द्राभ्याम्। शेष ह्रस्व कहे गए हैं ॥१४४½॥ जब अनेक उदात्तों के बाद कोई अनुदात्त प्रत्यय हो तो एक उदात्त परे रहते दूसरे-तीसरे उदात्त की 'शिवकम्प' संज्ञा होती है अर्थात् वह शिवकम्पसंज्ञक आद्युदात्त होता है ॥१४५½॥ किन्तु वह उदात्त प्रत्यय होना चाहिए। जहाँ दो, तीन, चार आदि उदात्त अक्षर हों, नीच—अनुदात्त हो और उससे पूर्व उच्च अर्थात् उदात्त हो और वह भी पूर्ववर्ती उदात्त या उदात्तों से परे हो तो वहाँ विद्वान् पुरुष 'उदात्त' मानते हैं ॥१४६½॥ रेफ या हकार में कहीं द्वित्व नहीं होता—दो रेफ या दो हकार का प्रयोग एक साथ नहीं होता ॥१४७½॥

कवर्ग आदि वर्गों के दूसरे और चौथे अक्षरों में भी कभी द्वित्व नहीं होता। वर्ग के चौथे अक्षर को तीसरे के द्वारा और दूसरे को प्रथम के द्वारा पीडित न करे, आदि, मध्य और अन्त्य (क, ग, ङ आदि को अपने ही अक्षर से पीडित (संयुक्त) करे ॥१४८½॥ यदि संयोगदशा में अन्त्य (जो अन्तिम वर्ण नहीं हैं, वह गकार आदि) वर्ण पहले हो और नकार आदि अनन्त्य वर्ण बाद में हो तो मध्य में यम (य व र ल व म ङ ण न) अक्षर स्थित होता है, वह पूर्ववर्ती अक्षर का सवर्ण हुआ करता है। पूर्ववर्ती श ष स तथा य र ल व—इन अक्षरों से संयुक्त वर्गान्त्य वर्णों को देखकर यमनिवृत्त हो जाते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे चोर-डाकुओं को देखकर राही अपने मार्ग से लौट जाते हैं ॥१४९-१५०½॥ संहिता में जब वर्ण के तीसरे और चौथे अक्षर संयुक्त हो तो पदकाल में चतुर्थ अक्षर से ही आरंभ करके उत्तर पद होगा। दूसरे, तीसरे और हकार—इन सबका संयोग हो तो उत्तर पद हकारादि ही होगा ॥१५१½॥ अनुस्वार, उपध्मानीय तथा जिह्वामूलीय के अक्षर किसी पद में नहीं जाते, उनका दो बार उच्चारण नहीं होता। यदि पूर्व में र या ह अक्षर से संयोग हो तो परवर्ती अक्षर का द्वित्व हो जाता है ॥१५२½॥ जहाँ संयोग में स्वरित हो तथा उद्धृत (नीचे से ऊपर जाने) में और पतन (ऊँचे से नीचे जाने) में स्वरित हो, वहाँ पूर्वांग को आदि में करके (नीच में उच्चत्व लाकर) परांग के आदि में स्वरित का संनिवेश करे ॥१५३½॥ संयोग के विरत (विभक्त) होने पर जो उत्तर पद से असंयुक्त व्यञ्जन दिखाई दे, उसे पूर्वांग जानना चाहिए तथा जिस व्यञ्जन से उत्तरपद का आरंभ हो, उसे परांग समझे ॥१५४½॥ संयोग से परवर्ती भाग को स्वरयुक्त करना चाहिए; क्योंकि वह उत्तम एवं संयोग का नायक है। वहीं प्रधानतया स्वर की विश्रान्ति होती है। तथा व्यञ्जन-संयुक्त वर्ण का पूर्व अक्षर स्वरित है, उसे बिना स्वर के ही बोलना चाहिए।

संयुक्तस्य तु वर्णस्य तत्परं पूर्वमक्षरम् । अनुस्वारः पदतश्च क्रमजं प्रत्यये स्वके ॥१५६॥
स्वरभक्तिस्तथारेफः पूर्वपूर्वांगमुच्यते । पादादौ च पदादौ संयोगावग्रहेषु च ॥१५७॥
य्यशब्द इति विज्ञेयो योऽन्यः सय इति स्मृतः । पादादावप्यविच्छेदे संयोगान्ते च तिष्ठताम् ॥१५८॥
वर्जयित्वा रहयाणामुपादेशः प्रदृश्यते । स्वसंयुक्तो गुरुर्ज्ञेयः सानुस्वाराग्रिम स्फुटः
अणुशेषो ह्लिगो वापि युगलादिरविस्फुटः ॥१५९॥
यदुदात्तमुदात्तं तद्यत्स्वरितं तत्पदे भवेत । यन्नीचं नीचमेव तद्यत्प्रचयस्थं तदपि नीचम् ॥१६०॥
अग्निः सुतो मित्रमिदं तथा वयमयावहाः । प्रियं दूतं घृतं चित्तमतिशब्दस्तु नीचतः ॥१६१॥
अर्केष्वेव सुतेष्वेव यज्ञेषु कलशेषु च । शतेषु सपवित्रेषु नीचादुच्चार्यते श्रुतिः ॥१६२॥
हारिवरुणवरेण्येषु धारापुरुषेषु स्वरतिरेफः । विश्वानरोनकारश्च शेषास्तु स्वरिता नराः ॥१६३॥

द्वो वरुणो वस्वरित उदुत्तमंत्वं वरुणधार चौरुधारामुरुधारेस्वदोहते ।
मात्रिकं वा द्विमात्रं वा स्वर्यते यदिहाक्षरम् ।
तस्यादितोऽर्द्धमात्रं वै शेषं तु परतो भवेत् ।
अदीर्घं दीर्घवत्कुर्याद्द्विस्वरं यत्प्रयुज्यते ॥१६४॥
कंपोत्स्वरिताभिगीतं ह्रस्वकर्षणमेव च । निमेषकाला मात्रा स्याद्विद्युत्कालेति चापरे ॥१६५॥

अनुस्वार, पदान्त, प्रत्यय तथा सवर्ण पद परे रहने पर होने वाला द्वित्व तथा रेफस्वरूप स्वरभक्ति—यह सब पूर्वांग कहलाता है ॥१५५-१५६½॥ पादादि में, पदादि में, संयोग तथा अवग्रहों में भी 'य' कार के द्वित्व का प्रयोग करना चाहिए, उसे 'य्य' शब्द जानना चाहिए। अन्यत्र 'य' केवल 'य' के रूप में ही रहता है ॥१५७½॥ पदादि में रहते हुए भी विच्छेद (विभाग) न होने पर अथवा संयोग के अन्त में स्थित होने पर र् ह् रेफविशिष्ट य—इनको छोड़कर अन्य वर्णों का अयादेश (द्वित्वाभाव) देखा जाता है ॥१५८½॥

स्वयं संयोगयुक्त अक्षर को गुरु जानना चाहिए। अनुस्वारयुक्त तथा विसर्गयुक्त वर्ण का गुरु होना तो स्पष्ट ही है। शेष अणु (ह्रस्व) है। 'ह्लि' 'गोः' इनमें प्रथम संयुक्त और दूसरा विसर्गयुक्त है। संयोग और विसर्ग दोनों के आदि अक्षर का गुरुत्व भी स्पष्ट है ॥१५८-१५९॥ जो उदात्त है, वह उदात्त ही रहता है; जो स्वरित है, वह पद में नीच (अनुदात्त) होता है। जो अनुदात्त है, वह तो अनुदात्त रहता ही है; जो प्रचयस्थ स्वर है, वह भी अनुदात्त हो जाता है। विभिन्न मन्त्रों में आये हुए 'अग्निः' 'सुतः' 'मित्रम्' 'इदम्' 'वयम्' 'मया' 'प्रियम्' 'दूतम्' 'घृतम्' 'चित्तम्' तथा 'अभि'—ये पद नीच (अर्थाद् अनुदात्त से आरम्भ) होते हैं ॥१६०-१६१॥ 'अर्क' 'सुत' 'यज्ञ' 'कलश' 'शत' तथा 'पवित्र'—इन शब्दों में अनुदात्त से श्रुति का उच्चारण प्रारंभ किया जाता है ॥१६२॥ 'हरि' 'वरुण' 'वरेण्य' 'धारा' तथा 'पुरुष'—इन शब्दों में रेफयुक्त स्वर ही स्वरित होता है। 'विश्वानर' शब्द में नकारयुक्त और अन्यत्र 'नर' शब्दों में रेफयुक्त स्वर ही स्वरित होता है ॥१६३॥ परन्तु 'उदुत्तमं त्वं वरुण' इत्यादि वरुण-सम्बन्धी दो मन्त्रों में 'व' कार ही स्वरित होता है, रेफ नहीं। 'उरु धारा मरं कृतम्' 'उरु धारेव दोहने' इत्यादि मन्त्रों में 'धारा' का 'धाकार' ही स्वरित होता है, रेफ नहीं। (यह पूर्व नियम का अपवाद है) ह्रस्व या दीर्घ जो अक्षर यहाँ स्वरित होता है, उसकी पहली आधी मात्रा उदात्त होती है और शेष आधी मात्रा उससे परे अनुदात्त होती है (पाणिनि ने भी यही कहा है—'तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम्'।) कम्प, उत्स्वरित और अभिगीत के विषय में जो द्विस्वर का प्रयोग होता है, वहाँ ह्रस्व को दीर्घ के समान करे और ह्रस्व कर्षण करे। पलक मारने में जितना समय लगता है, वह एक मात्रा है। दूसरे आचार्य ऐसा मानते हैं कि बिजली चमककर जितने समय में अदृश्य हो जाती है, वह एक मात्रा का मान है ॥१६४-१६५॥ कुछ विद्वानों का ऐसा

॥१६६॥

ऋक्स्वरा तुल्ययोगा वा कैश्चिदेवमुदीर्यते

समासेऽवग्रहं कुर्यात्पदं चात्रानुसंहितम् । यतोऽक्षरादिकरणं पदांतस्येति तं विदुः ॥१६७॥

(सर्वत्रमित्रपुत्रसखिशब्दा अहिशतक्रतोरवग्राह्याः ।

आदित्यविप्रजातवेदाश्च सत्पतिगोपतिवृत्रहासमुद्राश्च ।

स्वरयुपुवोदेवयुवश्चाऽरतिं देवतातये) चिकितिश्चुक्रुधं चैव नावगृह्णंति पंडिताः ।

॥१६८॥

विवृतयश्चतस्रो वै विज्ञेया इति मे मतम् ॥१६९॥

अक्षराणां नियोगेन तासां नामानि मे शृणु । ह्रस्वादिवत्सानुसृता वत्सानुसारिणी चाग्रे ॥१७०॥

पाकवत्युभयोर्ह्रस्वा दीर्घा वृद्धा पिपीलिकाः । चतसृणां विवृतीनामंतरं मात्रिकं भवेत् ॥१७१॥

अर्द्धमात्रिकमन्येषामन्येषामणुमात्रिकम्

आपद्यते मकारो रेफोष्मसु प्रत्ययेऽप्यनुस्वारम् । यवेषु परसवर्णं स्पर्शेषु चोत्तमापत्तिम् ॥१७२॥

नकारांते पदे पूर्वे स्वरे च परतः स्थिते । अकारं रक्तमित्याहुस्तकारेण तु रज्यते ॥१७३॥

नकारांते पदे पूर्वे व्यंजनैश्च यवोहिषु । अर्द्धमात्रा तु पूर्वस्य रज्यते त्वणुमात्रया ॥१७४॥

नकारस्वरसंयुक्तश्चतुर्युक्तो विधीयते । रेफो रंगश्च लोपश्च सानुस्वारोऽपि वा क्वचित् ॥१७५॥

मत है। कि ऋ, छ, अथवा श के उच्चारण में जितना समय लगता है, उतने काल की एक मात्रा होती है ॥१६६॥ क्योंकि वहाँ समास में यदि अवग्रह (विग्रह या पद-विच्छेद) करे तो उसमें समासपद को संहितायुक्त ही रखे। जिससे अक्षरादिकरण होता है, उसी स्वर को उस समास-पद का अन्त मानते हैं ॥१६७॥ सर्वत्र पुत्र, मित्र, सखि, अद्रि, शतक्रतु, आदित्य, प्रजातवेद, सत्पति, गोपति, वृत्रहा, समुद्र—ये सभी शब्द अवग्राह्य (अवग्रह के योग्य) हैं। 'स्वर्युव:', 'देवयुव:' अरतिम्' 'देवतातये' 'चिकिति:' 'चुक्रुधम्'—इन सब में एक पद होने के कारण पण्डित लोग अवग्रह नहीं करते। अक्षरों के नियोग से चार प्रकार की विवृत्तियाँ जाननी चाहिए, ऐसा मेरा मत है ॥१६८॥ अब तुम मुझसे उनके नाम सुनो—वत्सानुसृता, वत्सानुसारिणी, पाकवती और पिपीलिका। जिसके पूर्वपद में ह्रस्व और उत्तरपद में दीर्घ है, वह ह्रस्वादि रूप बछड़ों से अनुगत होने के कारण 'वत्सानुसृता' विवृत्ति कही गई है। जिसमें पहले ही पद में दीर्घ और उत्तरपद में ह्रस्व हो, वह 'वत्सानुसारिणी' विवृत्ति है। जहाँ दोनों पदों में ह्रस्व हो, वह 'पाकवती' कहलाती है तथा जिसके दोनों पदों में दीर्घ है, वह 'पिपीलिका' कही गई है। इन चारों विवृत्तियों में एक मात्रा का अन्तर होता है। दूसरों के मत में यह अन्तर आधा मात्रा है और किन्हीं के मत में अणु मात्रा है ॥१६९-१७१॥ रेफ तथा श ष स—ये जिनके आदि में हों, ऐसे प्रत्यय परे होने पर 'मकार' अनुस्वार भाव को प्राप्त होता है। य व ल परे हों तो वह परसवर्ण होता है और स्पर्शवर्ण परे हों तो उन-उन वर्गों के पञ्चम वर्ण को प्राप्त होता है ॥१७२॥ नकारान्त पद पूर्व में हो और स्वर परे हो तो नकार के द्वारा पूर्ववर्ती आकार अनुरंजित होता है, अतः उसे 'रक्त' कहते हैं (यथा 'महाँ ३ असि' इत्यादि) ॥१७३॥ यदि नकारान्त पद पूर्व में हो और य व हि आदि व्यञ्जन परे हों तो पूर्व की आधी मात्रा—अणु मात्रा अनुरंजित होती है ॥१७४॥ पूर्व में स्वर से संयुक्त हलन्त नकार यदि पदान्त में स्थित हो और उसके परे भी पद हो तो वह चार रूपों से युक्त होता है। कहीं वह रेफ होता है, कहीं रंग (या रक्त) बनता है कहीं उसका लोप और कहीं उसका अनुस्वार हो जाता है। (यथा 'भवांश्चिनोति' में रेफ होता है। 'महाँ ३ असि' में रंग है। 'रंग' हृदय से उठता 'महाँ इन्द्र' में न का लोप हुआ है। पूर्व का अनुनासिक या अनुस्वार हुआ है ॥१७५॥

हार्दूयादुत्तिष्ठते रंगः कांस्येन तु समन्वितः । मृदुश्चैव द्विमात्रश्च दधन्वांइति निदर्शनम् ॥१७६॥
यथा सौराष्ट्रिका नारी अरां इत्यभिभाषते । एवं रंगः प्रयोक्तव्यो नारदैतन्मतं मम ॥१७७॥
स्वरा गडदबाश्चैव ङणनमाः सहोष्मभिः । चतुर्णां पदजतीनां पदांता दश कीर्तिताः ॥१७८॥
स्वरः उच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित एव च । व्यंजना न तु वर्तन्ते यत्र तिष्ठति स स्वरः ॥१७९॥
स्वरप्रवादं त्रैस्वर्यमाचार्याः प्रतिजानते । मणिवद्व्यंजनं विद्यात्सूत्रवच्च स्वरं विदुः ॥१८०॥
दुर्बलस्य यथा राष्ट्रं हरते बलवान्नृपः । दुर्बलं व्यजनं तद्वद्धरेत बलवान्स्वरः ॥१८१॥
उभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च । जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥१८२॥
स्वरप्रत्यया विवृत्तिः संहितायां तु या भवेत् । विसर्गस्तत्र मंतव्यस्तालव्यश्चात्र जायते ॥१८३॥
संध्यक्षरे परे संधौ प्राप्तलुप्तौ यवौ यदि । व्यञ्जनाख्या विवृत्तिस्तु स्वराख्या प्रतिसंहिता ॥१८४॥
ऊष्मांतं विरते यत्र संभावो भवति क्वचित् । विवृत्तिर्या भवेत्तत्र स्वराख्यां तां विनिर्दिशेत् ॥१८५॥
यद्योभावप्रसंधानमृकारादिपरं पदम् । स्वरांतं तादृशं विद्याद्यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः ॥१८६॥
प्रथमा उत्तमाश्चैव पदांतेषु यदि स्थिताः । द्वितीयं स्थानमापन्नाः शषसप्रत्यया यदि ॥१८७॥
प्रथमानूष्मसंयुक्तान् द्वितीयानिव दर्शयेत् । न चैतान्प्रतिजानीयाद्यथा मत्स्यः क्षुरोप्सराः ॥१८८॥
छंदोमानं च वृत्तं च पादस्थानं त्रिकारणम् । ऋचः स्वच्छंदवृत्तास्तु पादास्त्वक्षरमानतः ॥१८९॥

है, कांस्य के वाद्य की भाँति उसकी ध्वनि होती है । वह मृदु तथा दो मात्रा का (दीर्घ) होता है । दधन्वां २ यह उदाहरण है । नारद ! जैसे सौराष्ट्र देश की नारी 'अरां' बोलती है उसी प्रकार 'रंग' का प्रयोग करना चाहिए—यह मेरा मत है ॥१७६-१७७॥ नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात—इन चार प्रकार के अन्त पदों में स्वरपूर्वक ग ड द ब ङ ण न म ष स—ये दस अक्षर 'पदान्त' कहे गए हैं ॥१७८॥ उदात्त स्वर, अनुदात्त स्वर और स्वरित स्वर जहाँ भी स्थित हों, व्यञ्जन उनका अनुसरण करते हैं । आचार्य लोग तीनों स्वरों की ही प्रधानता बताते हैं । व्यञ्जनों को तो मणियों के समान समझे और स्वर को सूत्र के समान ॥१७९-१८०॥ जैसे बलवान् राजा दुर्बल के राज्य को हड़प लेता है, उसी प्रकार बलवान् स्वर दुर्बल व्यञ्जन को हर लेता है ॥१८१॥ ओभाव, विवृत्ति श ष स र, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय—ये ऊष्मा की आठ गतियाँ हैं । ऊष्मा (सकार) इन आठ भावों में परिणत होता है ॥१८२॥ संहिता में जो स्वर-प्रत्यया विवृत्ति होती है, वहाँ विसर्ग समझे अथवा उसका तालव्य होता है । जिसकी उपधा में संध्यक्षर (ए, ओ, ऐ, औ) हों ऐसी सन्धि में यदि य और व लोप को प्राप्त हुए हों तो वहाँ व्यञ्जन नामक विवृत्ति और स्वर नामक प्रतिसंहिता होती है ॥१८३-१८४॥ जहाँ ऊष्मान्त विरत हो और सन्धि में 'व' होता हो, वहाँ जो विवृत्ति होती है, उसे 'स्वरविवृत्ति' नाम से कहना चाहिए ॥१८५॥ यदि 'ओ' भाव का प्रसन्धान हो तो उत्तरपद ऋकारादि होता है, वैसे प्रसन्धान को स्वरान्त जानना चाहिए । इससे भिन्न ऊष्मा का प्रसन्धान होता है 'यथा 'वायो ऋ' इति । यहाँ ओ भाव का प्रसन्धान है । 'क इ ह' यहाँ ऊष्मा का प्रसन्धान है ॥१८६॥ जब श ष स आदि परे हों उस समय यदि प्रथम (वर्ग के पहले अक्षर) और उत्तम (वर्ग के अन्तिम अक्षर) पदान्त में स्थित हों तो वे द्वितीय स्थान को प्राप्त होते हैं ॥१८७॥ ऊष्मसंयुक्त होने पर अर्थात् सकारादि परे होने पर प्रथम जो तकार आदि अक्षर हैं, उनको द्वितीय (थकार आदि) की भाँति दिखाये—थकार आदि की भाँति उच्चारण करे, उन्हें स्पष्टतः थकार आदि के रूप में ही न समझ ले । उदाहरण के लिए—'मत्स्यः' 'क्षुरः' और 'अप्सराः' आदि उदाहरण हैं ॥१८८॥ लौकिक श्लोक आदि में छन्द का ज्ञान कराने के लिए तीन हेतु हैं—छन्दोमान, वृत्त और पादस्थान (पदान्त) परन्तु ऋचाएँ स्वभावतः गायत्री आदि छन्दों से आवृत हैं । उनकी पाद-गणना या गुरु, लघु एवं अक्षरों की गणना तो छन्दोविभाग को समझने के लिए ही

ऋग्वर्य्यान् स्वरभक्ति च छन्दोमानेन निर्दिशेत् । प्रत्ययेत सहारेफमिमीते स्वरभक्तया ॥१९०॥
ऋवर्णं तु पृथग्रेफः प्रत्ययस्तु वृथा भवेत् । विद्याल्लघुमृकारं तु यदि तूष्माणसंयुतः ॥१९१॥
ऊष्मणैव हि संयुक्त ऋकारो यत्र पीड्यते । गुरुवर्णः स विज्ञेयस्तृचं चात्र निदर्शनम् ॥१९२॥
ऋषभं च गृहीतं च बृहस्पति पृथिव्यां च । निर्ऋतिपंचमा ह्यत्र ऋकारा नात्र संशयः ॥१९३॥
शषसहरादौ रेफः स्वरभक्तिर्जायते द्विपदसंधौ । इउवर्णाभ्यां हीना क्वचिदेकपदाक्रमवियुक्ता ॥१९४॥
स्वरभक्तिर्द्विधा प्रोक्ता ऋकारे रेफ एव च । स्वरोदा व्यञ्जनोदा च विहिताक्षरचिंतकैः ॥१९५॥
शषसेषु स्वरोदयां हकारे व्यञ्जनोदयाम् । शषसेषु विवृत्तां तु हकारे संवृतां विदुः ॥१९६॥
स्वरभक्ति प्रयुंजानस्त्रीन्दोषान्परिवर्जयेत् । इकारं चाप्युकारं च ग्रस्तदोषं तथैव च ॥१९७॥
संयोगपरं छपरं विसर्जनीयं द्विमात्रकं चैव । अथ सान्तिकं च नङ्मसानुस्वारं घुटतं च ॥१९८॥
यस्याः पादः प्रथमो द्वादशमात्रस्तथा तृतीयोऽपि । अष्टादशो द्वितीयः समापन्नः पञ्चदशमात्रः । ॥१९९॥
यस्या लक्षणमुक्तं या त्वन्या सा स्मृता विपुला ॥२००॥
अक्षराणां लघुह्रस्वमसंयोगपरं यदि । तत्संयोगोत्तरं विद्याद् गुरुदीर्घाक्षराणि तु ॥२०१॥
विवृत्तिर्यत्र दृश्येत स्वारस्यैवाग्रतः स्थितः ॥२०२॥
गुरुस्वारः सविज्ञेयः क्षैप्रस्तत्र न विद्यते । अष्टप्रकारं विज्ञेयं पदानां स्वरलक्षणम्

हैं; उन लक्षणों के अनुसार ही ऋचायें हों, यह नियम नहीं है । लौकिक छन्द ही पाद और अक्षर-गणना के अनुसार होते हैं ॥१८९॥ ऋवर्ण और स्वरभक्ति में जो रेफ है, उसे अक्षरान्तर मानकर छन्द की अक्षर-गणना या मात्रागणना में सम्मिलित करे । किन्तु स्वरभक्तियों में प्रत्यय के साथ रेफसहित अक्षर की गणना करे ॥१९०॥ ऋवर्ण में रेफरूप व्यञ्जन की प्रतीति पृथक् होती है और स्वररूप अक्षर की प्रतीति अलग होती है । यदि 'ऋ' से ऊष्मा का संयोग न हो तो उस ऋकार को लघु अक्षर जाने ॥१९१॥ जहाँ ऊष्मा (शकार आदि) से संयुक्त होकर ऋकारपीडित होता है, उस ऋवर्ण को ही स्वर होने पर भी गुरु समझना चाहिए । यहाँ 'तृचम्' उदाहरण है। (यहां ऋकार लघु है) ॥१९२॥ ऋषभ, गृहीत, बृहस्पति, तथा निर्ऋति--इन पाँच शब्दों में ऋकार स्वर ही है, इसमें संशय नहीं है ॥१९३॥ श, ष, स, ह, र—ये जिसके आदि में हो, ऐसे पद में द्विपद सन्धि होने पर कहीं 'इ' और 'उ' से रहित एकपदा स्वरभक्ति होती है, वह क्रमवियुक्त होती है ॥१९४॥

स्वरभक्ति दो प्रकार की कही गई है---ऋकार तथा रेफ । उसे अक्षर-चिन्तकों ने क्रमशः 'स्वरोदा' और 'व्यञ्जनोदा' नाम दिया है ॥१९५॥ श, ष, स के विषय में स्वरोदया एवं विवृता स्वरभक्ति मानी गई है और हकार के विषय में विद्वान् लोग व्यञ्जनोदया एवं संवृता स्वरभक्ति निश्चित करते हैं । (दोनों के क्रमशः उदाहरण हैं—'ऊर्षति, अर्हति) ॥१९६॥ स्वरभक्ति का प्रयोग करने वाला पुरुष तीन दोषों को त्याग दे---इकार, उकार तथा ग्रस्त दोष । जिससे परे संयोग हो और जिससे परे छ हों, जो विसर्ग से युक्त हो, द्विमात्रिक (दीर्घ) हो अवसान में हो, अनुसार हो तथा घुडन्त हो---ये सब लघु नहीं माने जाते ॥१९७-१९८॥

पथ्या (आर्या) छन्द के प्रथम और तृतीय पाद बारह मात्रा के होते हैं । द्वितीय पाद अठारह मात्रा का होता है । यह पथ्या का लक्षण बताया गया है; जो इससे भिन्न है, उसका नाम विपुला है ॥१९९॥ अक्षर में जो ह्रस्व है, उससे परे यदि संयोग न हो तो उसको 'लघु' संज्ञा होती है । यदि ह्रस्व से परे संयोग हो तो उसे गुरु समझे तथा दीर्घ अक्षरों को भी गुरु जाने ॥२००॥ जहाँ स्वर के आते ही विवृति देखी जाती हो, वहाँ गुरु स्वर जानना चाहिए; वहाँ लघु की सत्ता नहीं है । पदों के जो स्वर हैं, उनके आठ प्रकार जानने चाहिए—

अंतोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्तं नीचस्वरितम् ।
मध्योदात्तं स्वरितं द्विरुदात्तमित्येता अष्टौ पदसंज्ञाः ॥२०३॥
अग्निः सोमः प्रवो वीर्यं हविषा स्ववर्नस्पतिः ।
अंतर्मध्यमयोताम्युदमनुनिपात्य आद्यात्स्वरितमुपसर्गे द्विनो च-
माख्यात इति स्वरितात्पराणि यानि स्युर्धार्याक्षराणि तु ।
सर्वाणि प्रचयस्थान्युपोदात्तं निहन्यते ॥२०४॥
प्रचयो यत्र दृश्येत तत्र हन्यात्स्वरं बुधः । स्वरितः केवलो यत्र मृदुस्तत्र निपातयेत् ॥२०५॥
पंचविधमाचार्यकं नाम सुखं न्यासः करणं प्रतिज्ञोच्चारणा । अत्रोच्यते श्रेयः खलु वैश्याः-
प्रतिज्ञातोच्चारणा यस्य कस्यचिद्वर्णस्य करणं नोपलभ्यते प्रतिज्ञा तत्र वोढव्याकरणं हि तदात्मकम् ॥२०६॥
तुंबुरुभवद्विशिष्टविश्वावस्वादयश्च गंधर्वाः । सामसु निभृतं करणं स्वरसौक्ष्म्यान्नैव जानीयुः ॥२०७॥
कौक्षेयाग्निं सदा रक्षेदश्नीयादशनं हेतुम् । जीर्णो हारः बुद्धः खलूषसिब्रह्म चिंतयेत् ॥२०८॥
शरद्विषुवतोतीताद्रुषस्युत्थानमिष्यते । यावद्वासंतिकी रात्रिर्मध्यमा पर्युपस्थिता ॥२०९॥
आम्रपालाशबिल्वानामपामार्गशिरीषयोः । वाग्यतः प्रातरुत्थाय भक्षयेद् तधावनम् ॥२१०॥
खादिरश्च कदम्बश्च करवीरकरंजयोः । सर्वे कंटकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः ॥२११॥

अन्तोदात्त, आद्युदात्त, उदात्त, अनुदात्त, नीच स्वरित, मध्योदात्त, स्वरित तथा द्विरुदात्त—ये आठ पद संज्ञायें हैं ॥२०१-२०३॥ 'अग्निर्वृत्राणि' इसमें 'अग्निः' अन्तोदात्त है। 'सोमः पवते' इसमें 'सोमः' आद्युदात्त है। 'प्र वो ह्वम्' इसमें 'प्र' उदात्त और 'व' अनुदात्त है, 'हविषा विधेम' इसमें 'हविषा' मध्योदात्त है। 'भूर्भुवः स्वः' इसमें 'स्वः' स्वरित है। 'वनस्पतिः' में 'व' कार और 'स्प' दो उदात्त होने से यह द्विरुदात्त का उदाहरण है। नाम में अन्तर एवं मध्य में उदात्त होता है। निपात में अनुदात्त होता है। उपसर्ग में आद्य स्वर से परे स्वरित होता है तथा आख्यात में दो अनुदात्त होते हैं। स्वरित से परे जो धार्य अक्षर हैं (यथा 'निहोता सत्सि' इसमें 'ता' स्वरित है, उससे परे 'सत्सि' ये धार्य अक्षर हैं), वे सब प्रचयस्थान हैं; क्योंकि 'स्वरित' प्रचित होता है। वहाँ आदिस्वरित का निघात स्वर होता है ॥२०४॥ जहाँ प्रचय देखा जाय, वहाँ विद्वान् पुरुष स्वर का निघात करे। जहाँ केवल मृदु स्वरित हो, वहाँ निघात न करे ॥२०५॥ आचार्य-कर्म पाँच प्रकार का होता है—मुख, न्यास, करण, प्रतिज्ञा तथा उच्चारण। इस विषय में कहते हैं, सप्रतिज्ञ उच्चारण ही श्रेय है। जिस किसी भी वर्ण का करण (शिक्षादि शास्त्र) नहीं उपलब्ध होता हो, वहाँ प्रतिज्ञा (गुरु परम्परागत निश्चय) का निर्वाह करना चाहिए। क्योंकि करण प्रतिज्ञा रूप ही है ॥२०६॥ नारद! तुम, तुम्बुरु, वसिष्ठजी तथा विश्वावसु आदि गन्धर्व भी साम के विषय में शिक्षा शास्त्रोक्त सम्पूर्ण लक्षणों को स्वर की सूक्ष्मता के कारण नहीं जान पाते ॥२०७॥

जठराग्नि की सदा रक्षा करे। हितकर (पथ्य) भोजन करे। भोजन पच जाने पर उषःकाल में नींद से उठ जाय और ब्रह्म का चिन्तन करे। शरत्काल में जो विषुवद्योग (जिस समय दिन-रात बराबर होते हैं) आता है, उसके बीतने के बाद जब तक वसन्त ऋतु की मध्यम रात्रि उपस्थित न हो जाय तब तक वेदों के स्वाध्याय के लिए उषःकाल में उठना चाहिए ॥२०८-२०९॥

आम, पलाश, अपामार्ग (चिचिड़ा) और शिरीष की दतौन को प्रातः काल उठकर मौन हो करना चाहिए। खैर, कदम्ब, करवीर, करंज सब काँटेदार वृक्षों की दतौन पुण्य देने वाली और दूध वाले वृक्षों की

तेनास्य करणे सौक्ष्म्यं माधुर्यं चोपजायते । वर्णांश्च कुरुते सम्यक्प्राचीनौदवतिर्यथा ॥२१२॥
त्रिफलां लवणाख्येन भक्षयेच्छिष्यकः सदा । अग्निमेधाजनन्येषा स्वरवर्णकरी तथा ॥२१३॥
कृत्वा चावश्यकान्धर्माञ्जाठरं पर्युपास्य च । पीत्वा मधु घृतं चैव शुचिर्भूत्वा ततो वदेत् ॥२१४॥
मंत्रेणोपक्रमेत्पूर्वं सर्वशाखास्वयं विधिः । सप्तमंत्रानतिक्रम्य यथेष्टां वाचमुत्सृजेत् ॥२१५॥
न तां समीरयेद्वाचं न प्राणमुपरोधयेत । प्राणानामुपरोधेन वैस्वर्यं चोपजायते ।
स्वरव्यंजनमाधुर्यं लुप्यते नात्र संशयः ॥२१६॥
कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णैश्च भक्षितम् । न तस्य परिमोक्षोऽस्ति पपाहेरिव किल्बिषात् ॥२१७॥
सुतीर्थादागतं जग्धं स्वाम्नातं सुप्रतिष्ठितम् । सुस्वरेण स्ववक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजति ॥२१८॥
न करालो न लंबोष्ठो न च सर्वानुनासिकः ॥२१९॥
गद्गदो बद्धजिह्वश्च प्रयोगान्वक्तुमर्हति
एकचित्तो निरुद्धांतः स्नातो गानविवर्जितः । स तु वर्णान्प्रयुंजीत दंतोष्ठं यस्य शोभनम् ॥२२०॥
पञ्च विद्यां न गृह्णंति चंडा स्तब्धाश्च ये नराः । अलसाश्च सरोगाश्च येषां च विसृतं मनः ॥२२१॥
शनैर्विद्यां शनैरर्थानारोहेत्पर्वतं शनैः । शनैरध्वसु वर्तेत योजनानां परं व्रजेत् ॥२२२॥
योजनानां सहस्रं तु शनैर्याति पिपीलिका । अगच्छन्वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति ॥२२३॥

दतुअन यश देने वाली होती है । दतौन करने से वाणी में सूक्ष्मता और स्वर में मधुरता उत्पन्न होती है । वह वर्णों का स्पष्ट उच्चारण कर लेता है । जैसी कि प्राचीनौदवति आचार्य की मान्यता है ॥२१०-२१२॥ सदा कुशल शिष्य नमक से त्रिफला को खाये । इसके सेवन से जठराग्नि और मेधा-शक्ति उद्दीप्त होती हैं; स्वर और वर्णोच्चारण में मृदुता आती है ॥२१३॥ आवश्यक कार्यों को करके और भोजन से निवृत्त होकर मधु पान करना चाहिए । तदनन्तर घी पीकर पवित्र होकर वेदाध्ययन या गाना प्रारम्भ करना चाहिए ॥२१४॥ पहले मन्त्र स्वर से प्रारम्भ करना चाहिए, यही विधि प्रत्येक शाखाओं में कही गई है । सात मन्त्रों के पाठ के बाद इच्छानुकूल वाणी उच्चारण करना चाहिए ॥२१५॥ उस समय वाणी पर किसी प्रकार की बाधा अथवा श्वासरोध नहीं करना चाहिए, ऐसा करने से स्वर भंग हो जाता है और स्वर-व्यंजन का जो माधुर्य है वह नष्ट हो जाता है ॥२१६॥ कुतीर्थ से प्राप्त हुई दग्ध (अपवित्र) वस्तु को जो दुर्जन पुरुष खा लेते हैं, उनका उसके दोष से उद्धार नहीं होता—ठीक उसी तरह, जैसे पाप रूप सर्प के विष से जीवन की रक्षा नहीं हो पाती । इसी प्रकार कुतीर्थ (बुरे अध्यापक) से प्राप्त हुआ जो दग्ध (निष्फल) अध्ययन है, उसे लोग अशुद्ध वर्णों के उच्चारणपूर्वक भक्षण (ग्रहण) करते हैं, उनका पाप रूपी सर्प की भाँति पापी उपाध्याय से मिले हुए उस कुत्सित अध्ययन के दोष से छुटकारा नहीं होता ॥२१७॥ उत्तम आचार्य से प्राप्त अध्ययन को ग्रहण करके अच्छी तरह अभ्यास में लाया जाय तो वह शिष्य में सु-प्रतिष्ठित होता है और उसके द्वारा सुन्दर मुख एवं शोभन स्वर से उच्चारित वेद की बड़ी शोभा होती है ॥२१८॥ विकराल मुखवाला, लम्बोष्ठ, नाक से बोलने वाला, हकलाने वाला और बँधे गले वाला व्यक्ति शब्दों का भली भाँति उच्चारण नहीं कर सकता ॥२१९॥ एकाग्र होने वाला, नियमपूर्वक स्नान करने वाला, जिसका अन्तःकरण वश में हो, जो गाता नहीं और जिसके दाँत और ओठ सुन्दर हों वे ही वर्णों का भली भाँति उच्चारण कर सकते हैं ॥२२०॥ क्रोधी डरपोक, आलसी, रोगी और जिनका मन इधर-उधर लगा है, ये पाँच प्रकार के मनुष्य विद्या प्राप्त करने के योग्य नहीं हैं ॥२२१॥ विद्या अध्ययन, धनोपार्जन और पर्वतारोहण धीरे-धीरे करना चाहिए । मार्ग में भी धीरे-धीरे चलना चाहिए । एक योजन से अधिक नहीं चलना चाहिए ॥२२२॥ चींटी धीरे-धीरे चलकर सैकड़ों योजन चली जाती है परन्तु द्रुतगामी गरुड़ न चलने से एक पग भी आगे नहीं जा

नहि पापहता वाणी प्रयोगान्वक्तुमर्हति । बधिरस्येव जल्पस्य विदग्धा वामलोचना ॥२२४॥
उपांशुचरितं चैव योऽधीते वित्रसन्निव । अपि रूपसहस्रेण संदेहेष्वेव वर्तते ॥२२५॥
पुस्तकप्रत्ययाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ । राजते न सभामध्ये जारगर्भेव कामिनी ॥२२६॥
अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य तु संचयम् । अवंध्यं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मसु ॥२२७॥
यत्कीटैः पांशुभिः श्लक्ष्णैर्वल्मीकः क्रियते महान् । न तत्र बलसामर्थ्यमुद्योगस्तत्र कारणम् ॥२२८॥
सहस्रगुणिता विद्या शतशः परिकीर्तिता । आगमिष्यति जिह्वाग्रे स्थलान्निम्नमिवोदकम् ॥२२९॥
हयानामिव जात्यानामर्द्धं रात्रार्द्धशायिनाम् । नहि विद्यार्थिनां निद्रा चिरं नेत्रेषु तिष्ठति ॥२३०॥
न भोजनविलंबी स्यान्न च नारीनिबंधनः । समुद्रमपि विद्यार्थी व्रजेद्गरुडहंसवत् ॥२३१॥
अहिरिव गणाद्भीतः साहित्यान्नरकादिव । राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधिगच्छति ॥२३२॥
न शठाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्न क्लीबा न च मानिनः । न च लोकरवा दीना न च श्वःश्वःप्रतीक्षकाः ॥२३३॥
यथा खनन्खनित्रेण भूतलं वारि विंदति । एवं गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥२३४॥
गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा । अथवा विद्यया विद्या ह्यन्यथा नोपपद्यते ॥२३५॥

सकता ॥२२३॥ भली भाँति उच्चारण न करने से वाणी उचित अर्थों का बोध उसी प्रकार नहीं करा सकती है, जिस प्रकार बहरे पति को वामलोचना का मधुर प्रेमालाप कुछ भी भाव बोध नहीं करा सकता ॥२२४॥ जो डरा हुआ सा धीरे-धीरे पढ़ता है वह हजार आवृत्ति करने पर भी सन्देह में ही पड़ा रहता है ॥२२५॥ जो गुरु से न पढ़कर केवल अपने मन से पुस्तकों का अध्ययन करता है वह पंडितों की सभा में उसी प्रकार शङ्कित रहता है जिस प्रकार जार पति से गर्भ धारण करने वाली स्त्री ॥२२६॥ प्रतिदिन व्यय किये जाने पर अंजन की पर्वतराशि का भी क्षय हो जाता है और दीमकों के द्वारा थोड़ी-थोड़ी मिट्टी के संग्रह से भी बहुत ऊँचा बल्मीक बन जाता है, इस दृष्टान्त को सामने रखते हुए मनुष्य को दिन रात, अध्ययन और कर्त्तव्य में श्रम करना चाहिए । छोटे-छोटे कीड़े इतने बड़े वल्मीक को बना देते हैं तो क्या इसमें उनका बल कारण है ? नहीं, केवल उद्योग ही कारण है ॥२२७-२२८॥

विद्या का सहस्र बार पाठ करने से और सौ बार आवृत्ति करने से वह पाठक की जिह्वा पर उसी प्रकार स्वयं चली आती है जिस प्रकार जल ढालू या नीची भूमि पर ॥२२९॥ विद्या प्रेमी को उत्तम जाति के घोड़े के समान आधीरात के आधे भाग तक अर्थात् एक पहर सोना चाहिए । विद्यार्थियों की आँखों पर निद्रा चिर काल तक नहीं रहती है ॥२३०॥ विद्यार्थी को भोजन में विलम्ब नहीं करना चाहिए और न तो नारी में आसक्त होना चाहिए । विद्यार्थी गरुड़ और हंस की भाँति विद्योपार्जन के लिए समुद्र तक चला जाय ॥२३१॥ वह समूह से सर्प की भाँति डरे और शृङ्गार चर्चा (या दोस्ती बढ़ाने) को नरककुण्ड के समान समझे । इसी प्रकार जो स्त्रियों को राक्षसी की भाँति समझकर दूर से ही त्याग देता है वही विद्या प्राप्त करता है ॥२३२॥ दुष्ट व्यक्ति विद्योपार्जन या धनोपार्जन नहीं कर सकता और न तो नपुंसक (कायर) या अभिमानी ही सफल मनोरथ होते हैं । लोकापवाद से डरने वाले या लोक निन्दित और भाग्य के भरोसे रहने वाले, हमेशा कल की प्रतीक्षा करने वाले कभी भी विद्या नहीं प्राप्त कर सकते ॥२३३॥ जिस प्रकार खन्ती से भूतल को खोदता हुआ खनक पानी अवश्य प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार गुरु की शुश्रूषा करने वाला शिष्य गुरु से विद्या प्राप्त कर लेता है ॥२३४॥ विद्या गुरुशुश्रूषा, प्रचुर सम्पत्ति और परस्पर विद्या के दान-आदान से ही प्राप्त होती है; इनके अतिरिक्त विद्या

शुश्रूषारहिता विद्या यद्यपि मेधागुणैः समुपयाति । वन्ध्येव यौवनवती न तस्य साफल्यवती भजते ॥२३६॥
इति दिङ्मात्रमुद्दिष्टं शिक्षाग्रंथं मया तव । ज्ञात्वा वेदांगमाद्यं तु ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२३७॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

अथातः संप्रवक्ष्यामि कल्पग्रंथं मुनीश्वर । यस्य विज्ञानमात्रेण स्यात्कर्मकुशलो नरः ॥१॥
नक्षत्रकल्पो वेदानां संहितानां तथैव च । चतुर्थः स्यादांगिरसः शांतिकल्पश्च पंचमः ॥२॥
नक्षत्राधीश्वराख्यानं विस्तरेण यथातथम् । नक्षत्रकल्पे निर्दिष्टं ज्ञातव्यं तदिहापि च ॥३॥
वेदकल्पे विधानं तु ऋगादीनां मुनीश्वर । धर्मार्थकाममोक्षाणां सिद्ध्यै प्रोक्तं सविस्तरम् ॥४॥
मंत्राणामृषयश्चैव छंदांस्यथ च देवताः । निर्दिष्टाः संहिताकल्पे मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥५॥
तथैवांगिरसे कल्पे षट्कर्माणि सविस्तरम् । अभिचारविधानेन निर्दिष्टानि स्वयंभुवा ॥६॥

प्राप्ति के दूसरे साधन नहीं हैं ॥२३५॥ यद्यपि गुरु शुश्रूषा के बिना भी विद्या मेधा के प्रभाव से मनुष्य को प्राप्त हो जाती है, परन्तु बन्ध्या युवती के समान वह सफल नहीं होती है । इस प्रकार मैंने संकेत रूप में शिक्षा ग्रन्थ की यहाँ चर्चा की है । इस आद्य वेदांग को जान कर मनुष्य ब्रह्म (ज्ञान) प्राप्त करता है ॥२३६-२३७॥

श्रीनारदीय महापुराण में पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥५०॥

अध्याय ५१

वेद के द्वितीय अंग कल्प, गणेशपूजन, ग्रहशान्ति तथा श्राद्ध का निरूपण

मुनीश्वर ! अब इसके बाद कल्प-ग्रन्थ का वर्णन कर रहा हूँ, जिसके ज्ञान मात्र से मनुष्य कर्म-कुशल हो जाता है ॥१॥ कल्प पाँच प्रकार के माने गये हैं—नक्षत्र कल्प, वेद कल्प, संहिता कल्प आंगिरस चौथा और शान्ति कल्प पाँचवाँ है ॥२॥ विस्तारपूर्वक यथार्थ रूप से नक्षत्राधिपति का आख्यान नक्षत्र कल्प में कहा गया है । उसी को यहाँ कह रहा हूँ, जो प्रत्येक विप्र के लिए जानने योग्य है ॥३॥ मुनीश्वर ! वेद कल्प में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए ऋग्यजुस् और साम आदि वेदों के विधान को विस्तार के साथ कहा गया है ॥४॥ तत्त्वदर्शी मुनियों ने संहिता कल्प में मन्त्रों के ऋषियों, छन्दों और देवताओं का निर्देश किया है ॥५॥ उसी प्रकार आंगिरस कल्प में स्वयम्भु ने मारण, मोहन, उच्चारण आदि अभिचार विधान से षड्कर्मों का वर्णन किया है ॥६॥

शांतिकल्पे तु दिव्यानां भौमानां मुनिसत्तम । तथांतरिक्षोत्पातानां शांतयो ह्युदिताः पृथक् ॥७॥
संक्षेपेणैतदुद्दिष्टं लक्षणं कल्पलक्षणे । विशेषः पृथगेतेषां स्थितः शंखांतरेषु च ॥८॥
गृह्यकल्पे तु सर्वेषामुपयोगितयाऽधुना । वक्ष्यामि ते द्विजश्रेष्ठ सावधानतया शृणु ॥९॥
ओंकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा । कंठं भित्वा विनिर्यातौ तस्मान्मांगल्यकाविमौ ॥१०॥
कृत्वा प्रोक्तानि कर्माणि तदूर्द्धानि करोति यः । सोऽथशब्दं प्रयुंजीत तदानंत्यार्थमिष्यते ॥११॥
कुशाः परिसमूहाय व्यस्तशाखाः प्रकीर्तिताः । न्यूनाधिका निष्फलाय कर्मणोऽभिमतस्य च ॥१२॥
कृमिकीटपतंगाद्या भ्रमंति वसुधातले । तेषां संरक्षणार्थाय प्रोक्तं परिसमूहनम् ॥१३॥
रेखाः प्रोक्ताश्च यास्तिस्रः कर्तव्यास्ताः समा द्विज । न्यूनाधिका न कर्त्तव्या इत्येव परिभाषितम् ॥१४॥
मेदिनी मेदसा व्याप्ता मधुकैटभदैत्ययोः । गोमयेनोपलेप्येयं तदर्थमिति नारद ॥१५॥
वंध्या दुष्टा च दीनांगी मृतवत्सा च या भवेत् । यज्ञार्थं गोमयं तस्या नाहरेदिति भाषितम् ॥१६॥
ये भ्रमंति सदाऽऽकाशे पतंगाद्या भयंकराः । तेषां प्रहरणार्थाय मतं प्रोद्धरणं द्विज ॥१७॥
स्रुवेण च कुशेनापि कुर्यादुल्लेखनं भुवः । अस्थिकंटकसिद्धयर्थं ब्रह्मणा परिभाषितम् ॥१८॥
आपो देवगणाः सर्वं तथा पितृगणा द्विज । तेनाद्भिरुक्षणं प्रोक्तं मुनिभिर्विधिकोविदैः ॥१९॥
अग्नेरानयनं प्रोक्तं सौभाग्यस्त्रीभिरेव च । शुभदे मृण्मये पात्रे प्रोक्ष्याद्भिस्तं निधापयेत् ॥२०॥

मुनिवर्य ! शान्ति कल्प में दिव्य, भौम और अन्तरिक्ष सम्बन्धी उत्पात की शान्ति के विधान हैं ॥७॥ संक्षेप में मैंने कल्प और उनके लक्षणों को कहा है। इनके सम्बन्ध में विशेष ज्ञान की बातें अन्य शाखाओं में कही गई हैं ॥८॥

द्विजश्रेष्ठ ! सबके उपकार और उपयोग की दृष्टि से गृह्यकल्प की उपयोगी बातों को कह रहा हूँ, उसको सावधान होकर सुनो ॥९॥ सृष्टि के आदि में ब्रह्मा के कण्ठ से ओंकार और अथ ये दो शब्द निकले । इसलिये दोनों ही मांगलिक शब्द माने जाते हैं ॥१०॥ जो अपने कल्प-प्रोक्त कर्मों को समाप्त कर पुनः आगे भी कर्म करना चाहता है वह अवश्य अथ-शब्द का प्रयोग करे । ऐसा करने से वह अनन्त फल को प्राप्त करता है ॥११॥ परिसमूहन के लिए परिगणितकुशों की शाखा बनानी चाहिए । इसमें न्यूनता या अधिकता करने से अभीष्ट कर्म निष्फल हो जाते हैं ॥१२॥ कीड़े-मकोड़े और पतङ्ग आदि पृथ्वी पर घूमते रहते हैं । उनको रक्षा के लिए परिसमूहन कर्म करना चाहिए ॥१३॥ द्विज, जिन तीन रेखाओं को खींचने को कहा है, उनको बराबर बनाना चाहिए । वे न्यून या अधिक न हों, ऐसी ही शास्त्रों की आज्ञा है ॥१४॥ नारद ! यह पृथ्वी दैत्य मधु कैटभ की चर्बी से लिप्त है, अतः उसको गोबर से लीपकर शुद्ध कर लेना चाहिए ॥१५॥ परन्तु बन्ध्या, दुष्ट, दुबली और मृतवत्सा गाय का गोबर यज्ञ के कामों में नहीं लाना चाहिए ॥१६॥ द्विज ! सर्वदा आकाश में जो भयंकर कीट-पतंग उड़ा करते हैं उनको दूर करने लिए प्रोद्धरण किया जाता है ॥१७॥ ब्रह्मा ने बतलाया है कि हड्डी और काँटों का शोधन करने के लिए स्रुव अथवा कुश के मूल से पृथ्वी पर रेखा खींचनी चाहिए ॥१८॥ द्विज ! सब देवता और पितर जल-रूप हैं इसलिए विधिज्ञ मुनियों ने जल सिंचन करने के लिए कहा है ॥१९॥ सौभाग्यशाली स्त्रियों के द्वारा ही अग्नि का आनयन शुभदायक मिट्टी के पात्र में होना चाहिए । सबसे पहले उस आनीत पात्र अग्नि का जल से प्रोक्षण कर तदुपरान्त यज्ञ कुण्ड में रखना चाहिए ॥२०॥ ब्रह्माआदि सब देवताओं ने अमृत का क्षय

अमृतस्य क्षयं दृष्ट्वा ब्रह्माद्यैः सर्वदेवतैः । वेद्यां निधापितस्तस्मात्समिद्गर्भो हुताशनः ॥२१॥
दक्षिणस्यां दानवाद्याः स्थिता यज्ञस्य नारद । तेभ्यः संरक्षणार्थाय ब्रह्माणं तद्दिशि न्यसेत् ॥२२॥
उत्तरे सर्वपात्राणि प्रणीताद्यानि पश्चिमे । यजमानः पूर्वतः स्युर्द्विजाः सर्वेऽपि नारद ॥२३॥
द्यूते च व्यवहारे च यज्ञकर्मणि चेद्भवेत् । कर्तोदासीनचित्तस्तत्कर्म नश्येदिति स्थितिः ॥२४॥
ब्रह्माचार्यौ स्वशाखौ हि कर्त्तव्यौ यज्ञकर्मणि । ऋत्विजां नियमो नास्ति यथालाभं समर्चयेत् ॥२५॥
द्वे पवित्रे त्र्यंगुले स्तः प्रोक्षिणी चतुरंगुला । आज्यस्थाली त्र्यंगुलाथ चरुस्थाली षडंगुला ॥२६॥
द्व्यंगुलं तूपयमनमेकं संमार्जनांगुलम् । स्रुवं षडंगुलं प्रोक्तं स्रुचं सार्द्धत्र्यांगुलम् ॥२७॥
प्रादेशमात्राः समिधः पूर्णपात्रं षडंगुलम् । प्रोक्षिण्या उत्तरे भागे प्रणीतापात्रमष्टभिः ॥२८॥
यानि कानि च तीर्थानि समुद्राः सरितस्तथा । प्रणीतायां समासन्नास्तस्मात्तां पूरयेज्जलैः ॥२९॥
वेदिका वस्त्रहीना च नग्ना संप्रोच्यते द्विज । परिस्तीर्य्य ततो दर्भैः परिदध्यादिमां बुधः ॥३०॥
इंद्रवज्रं विष्णुचक्रं वामदेवत्रिशूलकम् । दर्भरूपतया त्रीणि पवित्रच्छेदनानि च ॥३१॥
प्रोक्षणी च प्रकर्तव्या प्रणीतोदकसंयुता । तेनातिपुण्यदं कर्म पवित्रमिति कीर्तितम् ॥३२॥
आज्यस्थाली प्रकर्तव्या पलमात्रप्रमाणिका । कुलालचक्रघटितं आसुरं मृण्मयं स्मृतम् ॥३४॥
तदेव हस्तघटितं स्थाल्यादि दैविकं भवेत् । स्रुवे च सर्वकर्माणि शुभान्यप्यशुभानि च ॥३५॥
तस्य चैव पवित्रार्थं वह्नौ तापनमीरितम् । अग्रे धृतेन वैधव्यं मध्ये चैव प्रजाक्षयः

देखकर समिद्गर्भ (समिधायुक्त) अग्नि को वेदी के मध्य में रखा ॥२१॥ नारद ! यज्ञ के दक्षिण भाग में राक्षस, दानव आदि रहते हैं। उनसे रक्षा के लिए उस दिशा में ब्रह्मा को स्थापित करना चाहिए ॥२२॥ नारद ! उत्तर दिशा में प्रणीता आदि सब पात्रों को रखना चाहिए। वेदी के पश्चिम ओर यजमान और पूर्व की ओर सब ब्राह्मण बैठें ॥२३॥ जुआ खेलने, व्यापार या परस्पर व्यवहार में और यज्ञ में जो कर्ता उदासीन रहता है उसका वह कर्म अवश्य नष्ट हो जाता है ॥२४॥ यज्ञ कर्म में ब्रह्मा और आचार्य को अपनी शाखा का ही होना चाहिए, ऋत्विजों के लिए कोई नियम नहीं है। यथालाभ उनकी पूजा कर यज्ञ करना चाहिए ॥२५॥ पवित्री (कुश की बनी हुई) दो अंगुल की, प्रोक्षणी चार अंगुल की, आज्यस्थाली तीन अंगुल की और चरुस्थाली छह अंगुल की होनी चाहिए ॥२६॥ उपयमन कुशा दो अंगुल का और संमार्जन कुशा एक अंगुल का होना चाहिए। स्रुवा छह अंगुल का और किसी के मतसे साढ़े तीन अंगुल का होना चाहिए ॥२७॥ समिधा प्रादेश मात्र की और पूर्णपात्र छह अंगुल का होना श्रेयस्कर है। प्रोक्षणी के उत्तर भाग में आठ अंगुल की प्रणीता रखना चाहिए ॥२८॥ द्विज ! जितने तीर्थ, समुद्र और नदियां हैं वे प्रणीता में स्थित रहती हैं, अतः उसको जल से भर देना चाहिए ॥२९॥ कुश वस्त्रहीन वेदी नग्न कही जाती है। इसलिए विद्वान् व्यक्ति उस वेदी को कुशों को फैलाकर ढक दे ॥३०॥ कुश के ही इन्द्रवज्र, विष्णु चक्र और शिव त्रिशूल और ये तीनों कुश रूप से पवित्र छेदन होते हैं ॥३१॥ प्रोक्षणी को प्रणीता के जल से संयुक्त कर देना चाहिए। इस विधि से किया हुआ कर्म अति पवित्र और पुण्यप्रद कहा गया है ॥३२॥ आज्यस्थाली एक पल की होनी चाहिए। कुम्हार के चक्के का बना मिट्टी का पात्र आसुर कहा जाता है। वही पात्र यदि हाथ का बना हो तो दैविक होता है ॥३३½॥

स्रुवा में शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्म रहते हैं। इसीलिए उसको पवित्र करने के लिए तपाना चाहिए, ऐसा कहा गया है ॥३४½॥ स्रुवा का अगला भाग पकड़ने से स्वामी का नाश, बीच में पकड़ने से पुत्र का नाश और मूल पकड़ने से होता की मृत्यु होती है। अतएव भली भांति विचारपूर्वक उसको पकड़ना

मूले च म्रियते होता तस्माद्धार्यं विचार्य तत् । अग्निः सूर्यश्च सोमश्च विरिंचिरनिलो यमः ॥३६॥
स्रुवे षडेते देवास्तु प्रत्यंगुलमुपाश्रिताः । अग्निर्भोगार्थनाशाय सूर्यो व्याधिकरो भवेत् ॥३७॥
निष्फलस्तु स्मृतः सोमो विरिंचिः सर्वकामदः । अनिलो वृद्धिदः प्रोक्तो यमो मृत्युप्रदो मतः ॥३८॥
संमार्जनोपयमनं कर्त्तव्यं च कुशद्वयम् । पूर्वं तु सप्तशाखं स्यात्पंचशाखं तथापरम् ॥३९॥
श्रीपर्णी च शमी तद्वत्खदिरश्च विकंकतः । पलाशश्चैव विज्ञेयाः स्रुवे चैव तथा स्रुचि ॥४०॥
हस्तोन्मितं स्रुवं शस्तं त्रिंशदंगुलिकं स्रुचम् । विप्राणां चैतदाख्यातं ह्यन्येषामंगुलोनकम् ॥४१॥
शूद्राणां पतितानां च खरादीनां च नारद । दृष्टिदोषविनाशार्थं पात्राणां प्रोक्षणं स्मृतम् ॥४२॥
अकृते पूर्णपात्रे तु यज्ञच्छिद्रं समुद्भवेत् । तस्मिन्पूर्णीकृते विप्र यज्ञसंपूर्णता भवेत् ॥४३॥
अष्टमुष्टिर्भवेत्किंचित्पुष्कलं तच्चतुष्टयम् । पुष्कलानि तु चत्वारि पूर्णपात्रं विदुर्बुधाः ॥४४॥
होमकाले तु संप्राप्ते न दद्यादासनं क्वचित् । दत्तेऽतृप्तो भवेद्वह्निः शापं दद्याच्च दारुणम् ॥४५॥
आघारौ नासिके प्रोक्तौ आज्यभागौ च चक्षुषी । प्राजापत्यं मुखं प्रोक्तं कटिर्व्याहृतिभिः स्मृता ॥४६॥
शीर्षहस्तौ च पादौ च पंचवारुणमीरितम् । तथा स्विष्टकृतं विप्र श्रोत्रे पूर्णाहुतिस्तथा ॥४७॥
द्विमुखं चैकहृदयं चतुःश्रोत्रं द्विनासिकम् । द्विशीर्षकं च षण्नेत्रं पिंगलं सप्तजिह्वकम् ॥४८॥
सव्यभागे त्रिहस्तं च चतुर्हस्तञ्च दक्षिणे । स्रुक्स्रुवौ चाक्षमाला च या शक्तिर्दक्षिणे करे ॥४९॥
त्रिमेखलं त्रिपादं च घृतपात्रं द्विचामरम् । मेषारूढं चतुःशृंगं बालादित्यसमप्रभम् ॥५०॥

चाहिए ॥३५३ ॥ स्रुवा में एक-एक अंगुल पर अग्नि, सूर्य, सोम, ब्रह्मा, वायु और यम—ये छह देवता रहते हैं। अग्नि भोगार्थ के नाश के लिए, सूर्य रोग उत्पन्न करने के लिए, चन्द्र निष्फल कहा गया है। ब्रह्मा सब कामनाओं को सिद्ध करने के लिए स्थित रहते हैं। इसी प्रकार वायु श्रीवृद्धि करने वाले और यम मृत्युदाता हैं ॥३६-३८॥ (अतः स्रुवा को मूल भाग की ओर तीन अंगुल छोड़कर चौथे-पाँचवें अंगुल पर पकड़ना चाहिए।) संमार्जन और उपयमन नामक दो कुश बनाने चाहिए। पहला सात शाखाओं सहित रहे, परन्तु दूसरा केवल पाँच पत्तियों से ही युक्त हो ॥३९॥ स्रुव और स्रुक् श्रीपर्णी (गंभारी) शमी, खैर, विकंकत (कँटाई) और पलाश का होना चाहिए ॥४०॥ एक हाथ स्रुव और तीस अंगुल लम्बा स्रुक् प्रशस्त माने गए हैं। विप्र यजमान के लिए ऐसी विधि है अन्यों के लिए एक अंगुल का ही प्रमाण माना गया है ॥४१॥ शूद्र, पतित और गदहे आदि के दृष्टिदोष को दूर करने के लिए पात्रों का प्रोक्षण करना चाहिए ॥४२॥ पूर्णपात्र को न रखने पर यज्ञ फल में त्रुटि हो जाती है, विप्र! उसको पूर्ण कर देने पर यज्ञ पूर्ण फलदायक होता है ॥४३॥ आठ मुट्ठी का 'किञ्चित्' कहा जाता है। चार 'किञ्चित्' का 'पुष्कल' और उसके चौगुने को पूर्ण पात्र कहते हैं ॥४४॥ होमकाल आ जाने पर कहीं पर आसन नहीं देना चाहिए अर्थात् खाट आदि नहीं बिछाना चाहिए। ऐसा करने पर अग्नि अतृप्त होते और होता को दारुण शाप देते हैं। आघार (देवता को घी की आहुति देना) अग्नि देव की नासिका, आज्य भाग नेत्र, प्राजापत्य मुख, व्याहृतियाँ कटि, पंच वारुणी शिर, हाथ और पैर हैं। विप्र! इसी प्रकार स्विष्टकृत और पूर्णाहुति कान हैं ॥४५-४७॥

अग्नि देव द्विमुख, एक हृदय, चार कान वाले, दो नासिका, दो शिर, छः नेत्र, पिंगलवर्ण और सात जीभ वाले हैं ॥४८॥ बायें भाग की ओर तीन हाथ और दक्षिण की ओर चार हाथ हैं। दक्षिण करों में स्रुव स्रुक्, अक्षमाला और शक्ति रहती है। तीन मेखला, तीन चरणों घृतपात्र दो चँवर और चार सींगों से युक्त अग्नि देव भेंड़ पर सवार रहते हैं। बाल सूर्य के समान अरुणवर्ण अग्नि यज्ञोपवीत, जटा और कुण्डल से सुशोभित रहते हैं।

उपवीतसमायुक्तं जटाकुंडलमंडितम् । ज्ञात्वैवमग्निदेहं तु होमकर्मसमाचरेत् ॥५१॥
पयो दधि घृतं चैव स्नेहपक्वं तथैव च । जुहुयाद्यस्तु हस्तेन स विप्रो ब्रह्महा भवेत् ॥५२॥
यदन्नं पुरुषोऽश्नाति तदन्नं तस्य देवताः । सर्वकामसमृद्धयर्थं तिलाधिक्यं हविर्मतम् ॥५३॥
होमे मुद्रात्रयं प्रोक्तं मृगी हंसी च सूकरी । अभिचारे सूकरी स्यान्मृगी हंसी शुभात्मके ॥५४॥
सर्वांगुलीभिः क्रौडी स्याद्धंसी मुक्तकनिष्ठिका । मध्यमानामिकांगुष्ठैर्मृगी मुद्रा प्रकीर्तिता ॥५५॥
पूर्वप्रमाणयाहुत्या पंचांगुलिगृहीतया । दधिमध्वाज्यसंयुक्तै ऋत्विग्भिर्जुहुयात्तिलैः ॥५६॥
कुशास्त्वनामिकासक्ताः कार्याः स्युः पुण्यकर्मणि ॥५७॥
विनायकः कर्मविघ्नसिद्धयर्थं विनियोजितः । गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥५८॥
तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोध मे । स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुंडांश्च पश्यति ॥५९॥
काषायवाससश्चैव क्रव्यादांश्चाधिरोहति । अंत्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रैः सहैकत्रावतिष्ठते ॥६०॥
व्रजन्नपि तथात्मानं मन्यतेऽनुगतं परैः । विमना विफलारंभः संसीदत्यनिमित्ततः ॥६१॥
तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनंदनः । कुमारी न च भर्तारमपत्यं गर्भमंगना ।
आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा ॥६२॥
वणिग्लाभं न चाप्नोति कृषिं चापि कृषीवलः । स्नपने तस्य कर्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ।

इस प्रकार अग्नि के रूप का परिचय प्राप्त करके ही हवन कर्म करना चाहिए ॥४९-५१॥ दूध, दही, घी और घी या तेल से पकाई हुई वस्तु को जो हाथ से उठाकर हवन करता है वह ब्राह्मण ब्रह्महत्या का भागी होता है ॥५२॥ मनुष्य जो अन्न स्वयं खाता है उसके देवता भी वही अन्न खाते हैं। परन्तु सब कामों की सिद्धि के लिए हवि में तिल की अधिकता ही श्रेयस्कर है ॥५३॥ होम में मृगी, हंसी और सूकरी ये तीन प्रकार की मुद्रायें विहित हैं। अभिचार (मारण मोहन आदि) में सूकरी मुद्रा और शुभ कार्यों में शेष दो मुद्रायें प्रशस्त मानी गई हैं ॥५४। सब अंगुलियों को मिला देने से सूकरी मुद्रा और मध्यमा अनामिका तथा अंगूठे को मिला देने से मृगी मुद्रा बनती है ॥५५॥ केवल कनिष्ठिका को छोड़ देने से हंसी मुद्रा बनती है। ऋत्विज पूर्व में कहे गये प्रमाण के अनुसार पाँचों अंगुलियों से निकाल कर मधु, दधि, घी से मिश्रित तिलों से हवन करें ॥५६॥ पुण्य कर्मों में कुश को अनामिका से सटाये रखे ॥५७॥

रुद्र और ब्रह्मा ने विनायक को विघ्नों के विनाश के लिए गणों का आधिपत्य दिया। विनायक से बाधा पहुँचने पर कौन-कौन उपद्रव होते हैं, उनके लक्षण मुझसे सुनो ॥५८½॥ उनके क्रुद्ध होने पर वह व्यक्ति स्वप्न में अपने को जल में डूबता हुआ देखता है। फिर मूँड़ मुड़ाये मनुष्यों को तथा गेरुआ वस्त्र धारण करने वाले पुरुषों को वह देखता है। कच्चा मांस खाने वाले गृध्रादि पक्षियों तथा व्याघ्र आदि पशुओं पर वह चढ़ता है। एक स्थान पर अन्त्यज, गदहे और ऊँटों के बीच अपने को पाता है ॥५९-६०॥ जब चलता है तो ऐसा जान पड़ता है मानो उसके पीछे और लोग भी आ रहे हैं। स्वयं अन्यमनस्क-सा रहता है। उसके सभी प्रयत्न विफल हो जाते हैं और अकारण उसको असफलतायें प्राप्त हो जाती हैं ॥६१॥ विनायक के प्रकोप से राजपुत्र राज्य नहीं प्राप्त कर सकता। न तो कोई कुमारी कन्या योग्य पति ही प्राप्त कर सकती और न तो कोई गर्भिणी स्त्री पुत्र पा सकती है। इसी प्रकार कोई श्रोत्रिय आचार्य पद को, विद्यार्थी विद्या को, बनिया व्यापार में लाभ तथा कोई किसान अच्छी खेती का फल नहीं पाता है ॥६२½॥

गौरसर्षपकल्केन स्वस्ति वाच्या द्विजैः शुभाः ॥६३॥
अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्संगमाद्ध्रदात् । मृत्तिकां रोचनां गंधान् गुग्गुलं चाशु निक्षिपेत् ॥६४॥
पात्यात्हृता ह्येकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्ह्रदात् । चर्मण्यानुडुहे रक्ते स्थाप्यं भद्रासनं ततः ॥६५॥
सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम् । तेन त्वामभिषिंचामि पावमान्याः पुनंतु ते ॥६६॥
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः । भगमिंद्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥६७॥
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमंते यच्च मूर्द्धनि । ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तुदंतु सर्वदा ॥६८॥
स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण तु । जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान्सव्येन परिगृह्य च ॥६९॥
मितश्च संमितश्चैव तथा शालकटंकटौ । कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यंते स्वाहासमन्वितैः ॥७०॥
नामभिर्बलिमंत्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः । दद्याच्चतुष्पथे सूर्पे कुशानास्तीर्य सर्वतः ॥७१॥
कृता कृतांस्तंडुलांश्च पललौदनमेव च । मत्स्यान्पक्वांस्तथैवामान्मांसमेतावदेव तु ॥७२॥
पुष्पं चित्रं सुगंधं च सुरां च त्रिविधामपि । मूलकं पूरिकापूपांस्तथैवोंडेरकस्रजोऽपि च ॥७३॥
दध्यन्नं पायसं चैव गुडपिष्टं समोदकम् । एतान्सर्वानुपाहृत्य भूमौ कृत्वा ततः शिरः ॥७४॥
विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम् । दूर्वासर्षपपुष्पाणां दत्वार्घ्यं पूर्णमञ्जलिम् ॥७५॥
रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥७६॥

ऐसे व्यक्ति को, जिसके ऊपर गणेश का कोप हो गया हो, किसी पुण्य तिथि के दिन विधिपूर्वक अभिषेक करना चाहिए। पहले उसके शरीर पर श्वेत सरसों का उबटन लगाना चाहिए। उस समय ब्राह्मण स्वस्ति पाठ करें ॥६३॥ अश्वशाला, गजशाला, बल्मीक (बाँबी), नदीसंगम (अथवा चौराहा) और तालाब की मिट्टी लाकर उसमें रोचन, गंध और गुग्गुल मिलावे ॥६४॥ वे और एक ही प्रकार के चार कलशों में तालाब से जल लाकर उसमें उपर्युक्त मिश्रित पदार्थ को मिला दे। फिर लाल वृषभचर्म पर भद्रासन लगाकर उस पर 'सहस्राक्षं शतधारं ऋषिभिः पावनं कृतम्। तेन त्वांमभिषिञ्चामि पावमान्याः पुनन्तु ते।' इस मन्त्र से उसके ऊपर कलश में से जल छिड़के ॥६५-६६॥ 'राजा वरुण तुमको ऐश्वर्य दें, सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु और सप्तर्षि तुमको ऐश्वर्य दें इस अर्थ वाले 'भगंते वरुणो राजा…'इत्यादि मन्त्र को और 'तुम्हारे केशों में जो दुर्भाग्य है, शिर, सीमन्त, मूर्द्धा ललाट, कान और नेत्र में जो दुर्भाग्य है उसको वरुण देवता अथवा यह जल दूर करे' इस अर्थ वाले 'यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं….' इत्यादि मंत्र को पढ़ते हुए जल से अभिषेक करने के अनन्तर गूलर के बने स्रुवा को साथ ही दाहिने हाथ में कुश पकड़ कर 'मिताय स्वाहा, संमिताय स्वाहा, शालाय स्वाहा, कटंकटाय स्वाहा, कूष्माण्डाय स्वाहा, राजपुत्राय स्वाहा' इन मन्त्रों से उस अभिषिक्त व्यक्ति के शिर पर सरसों के तेल का हवन करे अर्थात् शिर पर सरसों का तेल छोड़े ॥६७-७०॥ अनन्तर यजमान चौराहे पर और मदार के वृक्ष पर कुश चारों ओर फैला कर नमस्कार करता हुआ, नामोच्चारण और बलिमन्त्र को पढ़ता हुआ (तण्डुल पका चावल), मांस, भात मछली का पका मांस अथवा कच्चा मांस इनकी बलि दे ॥७१-७२॥

चित्र विचित्र फूल, तीन प्रकार की सुरा, मूली, पूड़ी, पूआ, धूप, माला, दही मिला अन्न, पायस, गुड़ पीठी और मिठाई इन सामग्रियों को इकट्ठा कर पृथ्वी पर शिर नवा कर विनायक, जननी-अम्बिका (गौरी) को पूजा करे और दूब, सरसों और फूलों का अञ्जलि पूर्ण अर्घ्य देकर 'हे भगवति मुझे रूप दो, यश दो, पुत्र दो, धन दो और सभी कामनाएँ पूर्ण करो।' इस प्रकार भगवती दुर्गा का उपस्थान करके धूप, दीप, नैवेद्य, गन्ध, माल्य और

उपस्थाय शिवां दुर्गामुमापतिमथार्चयेत् । धूपदीपैश्च नैवेद्यैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥७७॥
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ॥७८॥
एवं विनायकं पूज्य ग्रहाँश्चैव प्रपूजयेत् । श्रीकामः शांतिकामो वा पुष्टिवृद्ध्यायुवीर्यवान् ॥७९॥
सूर्यः सोमो महीपुत्रो बुधो जीवो भृगुः शनिः । राहुकेतू नवाप्येते स्थापनीया ग्रहाः क्रमात् ॥८१॥
ताम्रकाद्रजताद्रक्तचंदनात्स्वर्णकादपि । हेम्नो रजतादयसः सीसात्कार्या शुभाप्तये ॥८२॥
स्ववर्णैर्वा पटे लेख्या गंधैर्मंडलकेषु च । यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च ॥८३॥
गंधाश्च वलयश्चैव धूपो देयश्च गुग्गुलुः । कर्त्तव्या मंत्रवंतश्च चरवः प्रतिदैवतम् ॥८४॥
आकृष्णेन इमं देवा अग्निर्मूर्द्धादिवः ककुत् । उद्बुध्यस्वाति यदर्यंणस्तथैवान्नात्परिस्रुतः ॥८५॥
शन्नोदेवीस्तथा कांडात्केतुं कृण्वन्नकेतवः ॥८६॥
अर्कः पलाशः खदिरस्त्वपामार्गोऽथपिप्पलः । उदुंबरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात् ॥८७॥
एकैकस्मादष्टशतमष्टाविंशतिरेव च । होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना क्षीरेण वा पुनः ॥८८॥
गुडौदनं पायसं च हविष्यंक्षीरषाष्टिकम् । दध्योदनं हविश्चूर्णं माषं चित्रान्नमेव च ॥८९॥
दद्याद्ग्रहक्रमादेतद्द्विजेभ्यो भोजनं बुधः । शक्तितोऽपि यथा लाभं सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥९०॥
धेनुः शंखस्तथाऽनड्वान्हिमवासो हयः क्रमात् । कृष्णा गौरायसं छाग एता वै दक्षिणाः स्मृताः ॥९१॥
यस्य यस्य तु यद्द्रव्यं पलेनार्च्यः स तेन च । ब्रह्मणैषां वरो दत्तः पूजिताः पूजयिष्यथ ॥९१॥

अनुलेपन से भगवान् शंकर की पूजा करे। तत्पश्चात् शुक्ल वस्त्र, श्वेतमाला और अनुलेपन धारण करके ब्राह्मणों को भोजन कराकर गुरु को एक जोड़ा वस्त्र दे। इस प्रकार विनायक को पूजा करने के अनन्तर श्री, शान्ति, पुष्टि, वृद्धि तथा आयु चाहने वाला पराक्रमी व्यक्ति नवग्रहों की पूजा करे। सूर्य, सोम, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु इन नवग्रहों की क्रमशः ताँबा, चाँदी, लाल चन्दन, स्वर्ण, हेम, रजत, लोह और सीसे की मूर्ति बनाव ॥७३-८१॥ अथवा किसी वस्त्रपर सुवर्ण अथवा गंध से मण्डल बनाकर उनमें ग्रहों की आकृति बनावे। प्रत्येक ग्रहों के वर्ण के अनुसार वस्त्र, पुष्प, गन्ध, बलय, धूप और गुग्गुल चढावें और प्रति देवताओं के मन्त्र के अनुसार चरु प्रदान करे ॥८२-८३॥

इन ग्रहों के मन्त्र इस प्रकार हैं 'आकृष्णेन रजसा' इत्यादि मन्त्र सूर्य का' 'इमं देवा' इत्यादि मन्त्र सोम का, 'अग्निमूर्द्धा दिवः ककुत्' इत्यादि मन्त्र मंगल का 'उद्बुध्यस्व' इत्यादि मन्त्र बुध का, 'बृहस्पते अतियदर्य' इत्यादि मन्त्र बृहस्पति का 'अन्नात्परि स्रुतः' इत्यादि मन्त्र शुक्र का, शन्नो देवी 'इत्यादि मन्त्र शनि का, कांडात इत्यादि मन्त्र राहु का, 'केतुं कृण्वन्नकेतवः' इत्यादि मन्त्र केतु का है। अर्क, पलाश, खैर, चिचिड़ा (अपामार्ग), पीपल, गूलर, शमी, दुर्वा और कुश ये क्रमशः सूर्यादि की समिधायें हैं। ॥८४-८६॥ एक-एक से एक सौ आठ बार अथवा अट्ठाईस बार मधु, घी, दही, दूध आदि से हवन करना चाहिए। पुनः क्रमशः नव ग्रहों को गुड़ मिला चावल, पायस, हविष्य, दूध मिला हुआ साठी के चावल का भात, दही भात, घी भात, तिल चूर्ण मिश्रित भात, उड़द युक्त भात, और चित्रान्न (खिचड़ी) ये वस्तुएँ ग्रह के क्रमानुसार विद्वान् व्यक्ति शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन के लिये दे, और अपनी आय के अनुसार विधिपूर्वक उनका सत्कार करके क्रमशः धेनु, शंख, बैल, सोना, वस्त्र; अश्व, काली गाय, लोहा और बकरी की दक्षिणा सूर्यादिग्रह के लिये दे ॥८७-९०॥ जिस ग्रह के लिए जो द्रव्य विहित है उसका एक पल परिमाण लेकर पूजा करनी चाहिए। ब्रह्मा ने इन ग्रहों को वर दिया है कि जो तुम्हारी पूजा करे उनकी तुम भी पूजा (मनोरथपूर्ति) करना ॥९१॥ राजाओं का विभव, वंश-वृद्धि,

ग्रहाधीना नरेंद्राणां धनजात्युच्छ्रयास्तथा । भावाभावौ च जगतस्तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ॥९२॥
आदित्यस्य सदा पूजा तिलकं स्वामिनस्तथा । महागणपतेश्चैव कुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥९३॥
कर्मणा सफलत्वं च श्रियं वाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥९४॥
अकृत्वा मातृयागं तु यो ग्रहार्चां समारभेत् । कुप्यंति मातरस्तस्य प्रत्यूहं कुर्वते तथा ॥९५॥
वसोः पवित्रमंत्रेण वसोर्धारां प्रकल्प्य च । गौर्याद्या मातरः पूज्या मांगलयेषु शुभार्थिभिः ॥९६॥
गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया । देवसेना स्वधा स्वाहा मातृका वैधृतिर्धृतिः ॥९७॥
पुष्टिर्हृष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेवतया सह । गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्यास्तु षोडश ॥९८॥
आवाहनं तथा पाद्यमर्घ्यं स्नानं च चंदनम् । अक्षतांश्चैव पुष्पाणि धूपं दीपं फलानि च ॥९९॥
नैवेद्याचमनीयं च तांबूलं पूगमेव च । नीराजनं दक्षिणां च क्रमाद्दद्याच्च तुष्टये ॥१००॥
पितृकल्पं प्रवक्ष्यामि धनसंततिवर्द्धनम् । अमावस्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षायनद्वयम् ॥१०१॥
द्रव्यं ब्राह्मणसंपत्तिर्विषुवत्सूर्यसंक्रमः । व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चंद्रसूर्ययोः ॥१०२॥
श्राद्धं प्रतिरुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः । अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु श्रोत्रियो ब्रह्मविद्युवा ॥१०३॥
वेदार्थविज्ज्येष्ठसामा त्रिमधुस्त्रिसपर्णकः । स्वस्रीय ऋत्विग्जामाता याज्यश्वशुरमातुलाः ॥१०४॥
त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसंबंधिबांधवाः । कर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाः पंचाग्निब्रह्मचारिणः ॥१०५॥

राज्य की प्राप्ति और नाश यथा जगत् की जन्म-मृत्यु भी सब ग्रहों के ही अधीन है। इसलिए ग्रह सबसे अधिक पूज्य हैं ॥९२॥ सर्वदा सूर्य की पूजा महागणपति और स्वामी (स्कन्ध) की पूजा और तिलक अथवा सेवा करने से सिद्धि, कार्यों में सफलता और उत्तम श्री प्राप्त होती है। जो व्यक्ति मातृयोग के बिना ग्रह पूजा प्रारम्भ करता है उसके ऊपर मातृकाएँ कुपित हो जाती हैं और विघ्न बाधायें करती हैं ॥९३-९५॥ इसलिये 'वसो पवित्र' इस मन्त्र से वसुधारा की क्रिया कर शुभाकांक्षी जन शुभ कार्यों में गौरी आदि माताओं की पूजा करें ॥९६॥ जो गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातृकाएँ, वैधृति, धृति, पुष्टि, हृष्टि, तुष्टि इन सोलह माताओं की अपनी कुल देवी तथा गणेश के सहित पूजा करता है उसकी श्री वृद्धि होती है। इनका आवाहन करने के अनन्तर पाद्य-अर्घ्य और स्नान के लिए जल देना चाहिए फिर चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, फल, गुड़ अर्पित कर आचमन, ताम्बूल, पुंगी-फल, नीराजन और दक्षिणा देनी चाहिए ॥९७-१००॥

अब धन और वंश की वृद्धि करने वाले पितृकल्प को कह रहा हूँ। अमावस्या, अष्टका, वृद्धि, कृष्णपक्ष, दोनों अयनों के आरंभ का दिन, श्राद्धीय द्रव्य की उपस्थिति, उत्तम ब्राह्मण की प्राप्ति, विषुवत् योग, सूर्य की संक्रांति, व्यतीपात योग, गजच्छाया, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण तथा श्राद्ध के लिए रुचि का होना—ये सभी श्राद्ध के समय अथवा अवसर कहे गए हैं। सब वेदों में अग्रणी, श्रोत्रीय, ब्रह्मज्ञानी युवक, वेदार्थज्ञ, ज्येष्ठ साम का गायक, त्रिमधु,[1] त्रिसुपर्ण[2] भानजा, ऋत्विक्, जामाता, यजमान, श्वशुर, मामा, त्रिणाचिकेत[3] कन्या का पुत्र (नाती)[4] शिष्य, संबन्धी, बान्धव, कर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ, पंचाग्नि-सेवी[5] ब्रह्मचारी और पिता-माता के भक्त ब्राह्मण श्राद्ध की सम्पत्ति माने गये हैं ॥१०१-१०५½॥

१. 'मधुवाता' इत्यादि तीन ऋचाओं का जप और तदनुकूल व्रत का आचरण करने वाला। २. त्रिसौपर्णी ऋचाओं का अध्येता और तत्सम्बन्धी व्रत का पालन करने वाला। ३. त्रिणाचिकेतसंज्ञक त्रिविध अग्निविद्या को जानने वाला और तदनुकूल व्रत का पालक। ४. सभ्य, आवसथ्य तथा त्रिणाचिकेत—इन पाँच अग्नियों का उपासक।

पितृमातृपराश्चैव ब्राह्मणाः श्राद्धसंपदः । रोगी न्यूनातिरिक्तांगः काणः पौनर्भवस्तथा ॥१०६॥
अवकीर्णी कुंडगोलौ कुनखी श्यावदंतकः । भृतकाध्यापकः क्लीबः कन्यादूष्यभिशस्तकः ॥१०७॥
मित्रध्रुक् पिशुनः सोमविक्रयी परिविन्दकः । मातृपितृगुरुत्यागी कुंडाशी वृषलात्मजः ॥१०८॥
परपूर्वापतिः स्तेनः कर्मभ्रष्टाश्च निंदिताः । निमंत्रयीत पूर्वेद्युर्ब्राह्मणानात्मवान् शुचिः ॥१०९॥
तैश्चापि संयतैर्भाव्यं मनोवाक्कायकर्मभिः । अपराह्णे समभ्यर्च्य स्वागतेनागतांस्तु तान् ॥११०॥
पवित्रपाणिराचांतानासने चोपवेशयेत् । विप्रान्दैवे यथाशक्ति पित्र्येऽयुग्मांस्तथैव च ॥१११॥
पराश्रिते शुचौ देशे दक्षिणाप्रवणं तथा । द्वौ दैवे प्राक् त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव च ॥११२॥
मातामहानामप्येवं तत्र वा वैश्वदैविकम् । पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थं कुशानपि ॥११३॥
आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा । यवैरन्वावकीर्याथ भाजने सपवित्रके ॥११४॥
शन्नो देव्या अपः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा । या दिव्या इति मंत्रेण हस्ते पाद्यं विनिःक्षिपेत् ॥११५॥
दत्त्वोदकं गंधमाल्यं प्रदायान्नं सदीपकम् । अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणां सप्रदक्षिणम् ॥११६॥
द्विगुणांस्तु कुशान्दत्त्वा ह्य् शंतस्त्वेत्यृचा पितॄन् । आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायंतु नस्ततः ॥११७॥

रोगी, न्यून और अतिरिक्त अंग वाले, काना, पौनर्भव, अवकीर्णी (क्षतव्रत) कुण्ड, गोलक, कुनखी, श्यावदन्तक (काले दांत वाले), भृतकाध्यापक (घर पर पैसे लेकर पढ़ाने वाले), नपुंसक, कन्या दूषक, अभिशतक (जिस पर व्यभिचार का दोषारोप हो), मित्रद्रोही, चुगलखोर, सोमविक्रयी, परिविन्दक (बड़े भाई के अविवाहित रहते हुए विवाह करने वाला छोटा भाई) माता-पिता और गुरु का त्याग करने वाला, कुण्ड[1] का अन्न खाने वाला, वृषल का पुत्र, पूर्व पति को छोड़कर आयी स्त्री से विवाह करने वाला, चोर और कर्मभ्रष्ट ये यज्ञ में निन्दित हैं ॥१०६-१०८½॥

श्राद्ध में एक दिन पहले ही आत्मज्ञ पवित्र श्राद्धकर्ता ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे दे। वे निमन्त्रित ब्राह्मण भी मन, वाणी और कर्म से संयमी हों। अपराह्ण काल में स्वागतपूर्वक उन आगत ब्राह्मणों को आचमन करने के बाद यजमान, पवित्र पाणि होकर आसन पर बैठावे। देव कार्य में युग्म ब्राह्मणों और पितर कार्य में यथा शक्ति अयुग्म (विषम संख्या) ब्राह्मणों को निमंत्रित करना चाहिए ॥१०९-१११॥ सब ओर से घिरे हुए पवित्र स्थान में, दक्षिण दिशा की ओर नीची भूमि में श्राद्ध करना चाहिए। वैश्वदेव श्राद्ध में दो ब्राह्मणों को पूर्वाभिमुख और पितृ कार्य में तीन ब्राह्मणों को उत्तराभिमुख अथवा दोनों में एक-एक ब्राह्मण को ही सम्मिलित करे। इसी प्रकार मातामह के श्राद्ध और वैश्वदेव कर्म में करना उचित है। हस्त प्रक्षालन के लिए जल देकर विष्टर के लिए कुश देना चाहिए ॥११२-११३॥ पुनः आज्ञा लेकर 'विश्वेदेवास...' इस ऋचा से आवाहन करे। पहले यव छोड़कर पवित्रक युक्त पात्र में 'शन्नो देव्या...., इस मन्त्र से जल छोड़े 'यवोऽसि'... इस मन्त्र से यव बिखेरे। 'या दिव्या आपः' इस मन्त्र से हाथ में पाद्य के लिए जल दे ॥११४-११५॥ जल, गन्ध, माला और अन्न देकर दीपक दिखावे। तत्पश्चात् अपसव्य होकर बिना प्रदक्षिणा किये दो कुश आसन के लिए बिछाकर 'उशन्त....', इस मन्त्र इस ऋचा से पितरों का आवाहन कर उनसे आवाहित ब्राह्मण से आज्ञा लेकर 'आयन्तु नः पितर....' इस मन्त्र ला जप करे। यव के स्थान पर पितृ कर्म में तिल का प्रयोग करना चाहिए, अर्घ्य आदि पूर्व की ही भाँति दे।

---

१. अपने पति के रहते दूसरे पति से उत्पन्न किया हुआ पुत्र।

यवार्थास्तु तिलैः कार्याः कुर्यादर्घ्यादि पूर्ववत् । दत्त्वार्घ्यं संस्रवांस्तेषां पात्रे कृत्वा विधानतः ॥११८॥
पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः । अग्नौ करिष्यन्नादाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम् ॥११९॥
कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो दत्त्वाग्नौ पितृयज्ञवत् । हुतशेषं प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहितः ॥१२०॥
यथालाभोपपन्नेषु रौप्येषु च विशेषतः । दत्त्वान्नं पृथिवीपात्रमिति पात्राभिमंत्रणम् ॥१२१॥
कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजांगुष्ठं निवेशयेत् । सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इति त्र्यृचम् ॥१२२॥
जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यताः । अन्नमिष्टं हविष्यं च दद्यादक्रोधनोऽत्वरः ॥१२३॥
आतृप्तेस्तु पवित्राणि जप्त्वा पूर्वजपं तथा । अन्नमादाय तृप्ताःस्थ शेषं चैवानुमान्य च ॥१२४॥
तदन्नं विकिरेद्भूमौ दद्याच्चापः सकृत्सकृत् । सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः ॥१२५॥
उच्छिष्टसन्निधौ पिंडान्दद्याद्वै पितृयज्ञवत् । मातामहानामप्येवं दद्यादाचमनं ततः ॥१२६॥
स्वस्तिवाचं ततः कुर्यादक्षय्योदकमेव हि । दत्त्वा च दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत् ॥१२७॥
वाच्यतामित्यनुज्ञातः प्रकृतेभ्यः स्वधोच्यताम् । ब्रूयुरस्तु स्वधेत्युक्ते भूमौ सिंचेत्ततो जलम् ॥१२८॥
विश्वेदेवाश्च प्रीयंतां विप्रैश्चोक्त इदं जपेत् । दातारो नोऽभिवर्द्धंतां वेदाः संततिरेव च ॥१२९॥
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्त्विति । इत्युक्त्वोक्ताः प्रिया वाचः प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥१३०॥
वाजेवाजे इति प्रीतः पितृपूर्वं विसर्जनम् । यस्मिंस्ते संस्रवाः पूर्वमर्घ्यपात्रे निवेशिताः ॥१३१॥

विधान के अनुसार पात्र में यव आदि रखकर अर्घ्य देने के अनन्तर 'पितृभ्यः स्थानमसि' इस मन्त्र से न्युब्ज पात्र को नीचे उलट दे ॥११६-११८½॥ अग्नि में पृथक् अन्न को हवन करने के लिये 'अग्नौ करिष्ये' ऐसा ब्राह्मण से पूछे। 'करो' ऐसी आज्ञा पाकर पितृ यज्ञ की भाँति उस अग्नि में हवन करके, हवन से बची सामग्री को उस पात्र में एकाग्र होकर रखे और उस समय वह पात्र यथाशक्ति किसी उत्तम धातु का होना चाहिए। यदि चाँदी का हो तो उत्तम है। अन्न देकर 'पृथ्वी ते पात्रम्' इस मन्त्र से अभिमान्त्रित करे ॥११९-१२१॥ ऐसा करने के बाद 'इदं विष्णुः' यह कह कर उस अन्न में ब्राह्मण के अंगूठों का स्पर्श कराये। 'व्याहृति सहित गायत्री और 'मधुव्वाता....' इस ऋचा को जपकर आदरपूर्वक उनको भोजन करने के लिए कहे। वे ब्राह्मण भी मौन होकर भोजन प्रारम्भ करें। उस समय यजमान (श्राद्धकर्ता) क्रोध और जल्दीबाजी को त्यागकर शान्तिपूर्वक ब्राह्मण को प्रिय अन्न और हविष्यभोजन विधिपूर्वक परसे जब तक ब्राह्मण भोजन से तृप्त न हों तब तक 'पवित्राणि....' मंत्र को अथवा पूर्व के मन्त्रों का जप करता रहे। उन ब्राह्मणों के तृप्त हो जाने पर अथवा उनको तृप्त जानकर शेष अन्न को पृथ्वी पर बिखेर दे। और एक-एक बार जल दे। पुनः शेष बचे हुए सब अन्न को जूठी भूमि में समीप पितृ यज्ञ की भाँति पिण्ड दे ॥१२२-१२५½॥

इसी प्रकार मातामहों के श्राद्ध में भी करे। तदन्तर आचमन कर स्वस्ति वाचन करे और अक्षय्योदक दे। यथाशक्ति उन ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर स्वधाकार कहे ॥१२६-१२७॥ "वाच्यताम्" ऐसी आज्ञा पाने पर "प्रकृतेभ्यः स्वधा" ऐसा कहे। 'वपुरस्तु स्वधा' यह कहने पर पृथ्वी पर जल छिड़के ॥१२८॥ जब विप्र 'विश्वेदेवाश्च प्रीयन्ताम्' कहें तो वह यजमान 'दातारो नोऽभिवर्द्धन्ताम् वेदाः सन्ततिरेव च, श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयं च नोऽस्त्विति' अर्थात् मेरे बंश में दाता, वेद के अध्ययन करने वाले, वंश को बढ़ाने वाले हों, श्रद्धा से कभी दूर न हों, हम सर्वदा श्रद्धालु रहें, हमें दान देने के लिए पर्याप्त धन हो, ऐसा कह कर प्रिय वाणी से सत्कार कर प्रणाम करके विसर्जन करे। पहले प्रसन्नतापूर्वक 'वाजे वाजे' इस मन्त्र से पितरों का बिसर्जन करे। पहले जिस अर्घ्य पात्र में संस्रव का जल डाला गया था उस पात्र का उत्थापन कर विप्रों को विसर्जित करे। पुनः विप्रों की प्रदक्षिणा

पितृपात्रं तदुत्थानं कृत्वा विप्रान्विसर्जयेत् । प्रदक्षिणमनुव्रज्य भुंजीत पितृसेवितम् ॥१३२॥
ब्रह्मचारी भवेत्तां तु रजनीं ब्राह्मणैः सह । एवं प्रदक्षिणावृत्त्या वृद्धौ नांदीमुखान्पितॄन् ॥१३३॥
यजेत दधिकर्कंधुमिश्रान्पिडान्यवैः कृतान् । एकोद्दिष्टं देवहीनमेवार्घ्यैकपवित्रकम् ॥१३४॥
आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् । उपतिष्ठतामक्षय्यस्थाने विप्रविसर्जने ॥१३५॥
अभिरम्यतामिति वदेद् ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्म ह । गंधोदकं तिलैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ॥१३६॥
अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् । ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥१३७॥
एतत्सपिंडीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि । अर्वाक्सपिंडीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत् ॥१३८॥
तस्याप्यन्नं सोदकुंभं दद्यात्संवत्सरं द्विजे । मृतेऽहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम् ॥१३९॥
प्रतिसंवत्सरं चैव मासमेकादशेऽहनि । पिंडांश्चगोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा ॥१४०॥
प्रक्षिपेत्सत्सु विप्रेषुद्विजोच्छिष्टं न मार्जयेत् । हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम् ॥१४१॥
मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः । ऐणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमम् ॥१४२॥
मासवृद्ध्याभितृप्यंति दत्तैरिह पितामहाः । खड्गामिषं महाकल्पं मधु मुन्यन्नमेव च ॥१४३॥
लोहामिषं महाशाकं मांसं वाध्रीणसस्य च । यो ददाति गयास्थश्च सर्वमानंत्यमश्नुते ॥१४४॥

कर उनको थोड़ी दूर तक पहुँचा दे। इतनी क्रिया समाप्त कर पितृ यज्ञ निमित्त सामग्री में से स्वयं भोजन करे ॥१२९-१३२॥ उस दिन श्राद्धकर्ता और ब्राह्मण भी रात में ब्रह्मचारी रहे।

इस प्रकार पुत्र-जन्म और विवाहादि के अवसर पर प्रदक्षिणावृत्ति से नान्दीमुख पितरों का यजन करे। दही और बेर मिले हुए अन्न का पिण्ड दे और सारी क्रियायें यव से करे। एकोद्दिष्ट श्राद्ध में किसी देवता की पूजा नहीं होती। केवल एक पिंड पवित्रक (कुशा) के साथ दिया जाता है ॥१३३-१३४॥ इस श्राद्ध में अपसव्य होकर आवाहन और अग्नि स्थापन नहीं किया जाता। विप्र विसर्जन के समय अक्षय्यमस्तु के स्थान में 'उपतिष्ठताम्' ऐसा कहा जाता है। पहले विप्रों से 'अभिरम्यताम्' ऐसा कहे, यह सुनकर वे कहें कि "अभिरताः स्म" ॥१३५-३॥

पहले गंधोदक और तिल से युक्त चार पात्र रखे। अर्घ्य के लिए पितृ पात्रों में जल छोड़े और प्रेत पात्र को केवल जल से सींच दे। 'ये समाना...' इस मन्त्र से दो पात्रों में पिण्ड दे और शेष क्रिया पूर्व की भाँति करे ॥१३६-१३७॥ यह सपिण्डीकरण और एकोद्दिष्ट स्त्रियों का भी होना चाहिए। जिसका सपिण्डीकरण श्राद्ध वर्ष पूर्ण होने से पहले हुआ हो उसके लिए संवत्सर पर्यन्त जल कलश के सहित अन्न देना चाहिए। मृत्यु वाले दिन को प्रतिमास श्राद्ध करना चाहिए। यह क्रिया एक वर्ष तक होती रहे ॥१३८-१३९॥ प्रति वर्ष मृत्यु के ग्यारहवें दिन श्राद्ध करके गो या बकरी या इच्छुक विप्र को पिण्ड दे दे। अर्थात् दत्त श्राद्धपिण्ड उनको खिला दे, या अग्नि अथवा जल में फेंक दे ॥१४०॥ जब तक ब्राह्मण लोग भोजन करके वहाँ से उठ न जायँ तब तक उच्छिष्ट स्थान पर झाड़ू न लगाये। पितर हविष्य का पिण्ड देने से एक महीने तक और पायस से एक वर्ष तक तृप्त रहते हैं ॥१४१॥ मछली, मृग, भेड़, पक्षी, बकरी, चितकबरा हरिण, सामान्य हरिण, कृष्ण मृग, वाराह, शशक इनके मांस का पिण्ड देने से पितर क्रमशः एक-एक माह की वृद्धि से अधिक काल तक तृप्त रहते हैं। जो गैंडे का मांस श्राद्ध में पितरों को देता है, उसके पितर महाकल्प पर्यन्त तृप्त रहते हैं। जो गया में पितरों को मधु, लाल बकरे के माँस, महाशाक, वाध्रीणस (गैंडे) का माँस का विशेषकर भाद्रपद कृष्ण को मघा का योग होने पर

तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च विशेषतः । कन्यां कन्यावेदिनश्च पशून्वै सत्सुतानपि ॥१४५॥
द्यूतं कृषिं च वाणिज्यं द्विशफैकशफांस्तथा । ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रान्स्वर्णरूप्ये सकुप्यके ॥१४६॥
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं सर्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा । प्रतिपत्प्रभृतिष्वेकां वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ॥१४७॥
शस्त्रेण तु हता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते । स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा ॥१४८॥
पुत्रान् श्रेष्ठांश्च सौभाग्यं समृद्धिं मुख्यतां शुभम् । प्रवृत्तं चक्रतां चैव वाणिज्यप्रभृतीनि च ॥१४९॥
अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम् । धनं विद्यां भिषक्सिद्धिं कुप्यगा अप्यजाविकम् ॥१५०॥
अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं संप्रयच्छति । कृत्तिकादिभरण्यंतं सकामानाप्नुयादिमान् ॥१५१॥
आस्तिकः श्रद्दधानश्च व्यपेतमदमत्सरः । वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः ॥१५२॥
प्रीणयंति मनुष्याणां पितॄन् श्राद्धेन तर्पिताः । आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥१५३॥
प्रयच्छंति तथा राज्यं नृणां प्रीताः पितामहाः । इत्येवं कथितं किंचित्कल्पाध्याये विशेषतः ॥१५४॥
ज्ञातव्यं वैदिके तंत्रे पुराणांतरकेऽपि च । य इमं चिंतयेद्विद्वान्कल्पाध्यायं मुनीश्वर ॥१५५॥
स भवेत्कर्मकुशल इहान्यत्र गतिं शुभाम् । यः शृणोति नरो भक्त्या दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥१५६॥
कल्पाध्यायं स लभते दैवपित्र्यक्रियाफलम् । धनं विद्यां यशः पुत्रान्परत्र च गतिं पराम् ॥१५७॥
अतः परं व्याकरणं तुभ्यं वेदमुखाभिधम् । कथयिष्ये समासेन शृणुष्व सुसमाहितः ॥१५८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे एकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

पितरों को देते हैं वे अनन्त काल तक अपने इष्ट पदार्थ को पाते हैं ॥१४२-१४४॥ एक चतुर्दशी को छोड़कर प्रतिपदा से अमावस्या तक की चौदह तिथियों में श्राद्ध करने वाला व्यक्ति क्रमशः सदा रूप शीलयुक्त कन्या, बुद्धिमान् व रूपवान् दामाद, पशु, सत्पुत्र, द्यूत, कृषि, व्यापार में लाभ, दो खुर वाले पशु (गाय, बकरी), एक खुर वाले (घोड़ा आदि), ब्रह्मवर्चस्वी पुत्र, सोना, चाँदी, कुप्यक (त्रपु सीसा आदि) कुल में श्रेष्ठता तथा सब इच्छानुकूल पदार्थों को प्राप्त करता है ॥१४५-१४७॥ गया में चतुर्दशी तिथि को केवल शस्त्र से मारे गए पितर के निमित्त पिण्ड दिया जाता है। जो विधिपूर्वक श्राद्ध करता है वह स्वर्ग, संतान, ओज, शौर्य, क्षेत्र, बल, श्रेष्ठ पुत्र, सौभाग्य, समृद्धि, समाज में सम्मानित पद, शुभ स्वभाव, चक्रवर्तित्व, व्यापार में लाभ, स्वास्थ्य, यश, शोकहीनता, परमगति (मुक्ति), धन, विद्या, ओषधि, प्रयोग में निपुणता, कुप्य (त्रपु-सीसा आदि) गौ, बकरी, भेड़, अश्व और दीर्घायु प्राप्त करता है। जो आस्तिक, श्रद्धालु, विनम्र और संयमी व्यक्ति कृत्तिका से भरणी नक्षत्र के अन्त तक श्राद्ध करता है वह क्रमशः उपर्युक्त पदार्थों को प्राप्त करता है। श्राद्ध से तृप्त होकर वसु, रुद्र, आदित्य, ये श्राद्ध देवता पितर मनुष्यों के पितरों को प्रसन्न करते हैं। और ऐसे मनुष्य पर पितामह प्रसन्न होकर उसको आयु, धन, प्रजा, विद्या, स्वर्ग, राज्य, मोक्ष और सुख प्रदान करते हैं ॥१४८-१५३½॥ इस प्रकार संक्षेप में मैंने इस कल्पाध्याय में कुछ कहा है। इस विषय का विशेष ज्ञान, वैदिक तन्त्रों तथा अन्य पुराणों द्वारा विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ॥१५४॥ मुनीश्वर ! जो विद्वान् व्यक्ति इस कल्पाध्याय का चिन्तन करता है वह कार्य कुशल हो जाता और लोक-परलोक दोनों में शुभ गति प्राप्त करता है ॥१५५½॥ जो दैव और पितृ कर्म के समय इस कल्पाध्याय को सुनता है वह दैव और पितृ क्रिया का अशेष फल पाता है। साथ ही वह धन, विद्या, यश, पुत्र, आदि लौकिक सुखों को और मृत्यु के बाद परा गति को प्राप्त करता है ॥१५६-१५७॥ अब इसके अनन्तर तुमको वेद मुख का कहे जाने वाले व्याकरण शास्त्र का सूक्ष्म रूप में वर्णन करूंगा उसको सावधान होकर सुनना ॥१५८॥

श्रीनारदीयमहापुराण के पूर्वभाग के द्वितीय पाद में इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त ॥५१॥

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सनन्दन उवाच

अथ व्याकरणं वक्ष्ये संक्षेपात्तव नारद । सिद्धरूपप्रबंधेन मुखं वेदस्य सांप्रतम् ॥१॥
सुप्तिङंतं पदं विप्र सुपां सप्त विभक्तयः । स्वौजसः प्रथमा प्रोक्ता सा प्रातिपदिकात्मिका ॥२॥
संबोधने च लिंगादावुक्ते कर्मणि कर्तरि । अर्थवत्प्रातिपदिकं धातुप्रत्ययवर्जितम् ॥३॥
अमौसशौ द्वितीया स्यात्तत्कर्म क्रियते च यत् । द्वितीया कर्मणि प्रोक्तान्तरांतरेण संयुते ॥४॥
टाभ्यांभिस्तृतीया स्यात्करणे कर्तरीरिता । येन क्रियते तत्करणं स कर्ता स्यात्करोति यः ॥५॥
ङेभ्यांभ्यसश्चतुर्थी स्यात्सम्प्रदाने च कारके । यस्मै दित्सा धारयेद्वै रोचते संप्रदानकम् ॥६॥
पंचमी स्यान्ङसिभ्यांभ्यो ह्यपादाने च कारके । यतोऽपैति समादत्ते अपदत्ते च यं यतः ॥७॥
ङसोसामश्च षष्ठी स्यात्स्वामिसंबंधमुख्यके । ङ्योस्सुपः सप्तमी तु स्यात्सा चाधिकरणे भवेत् ॥८॥
आधारे चापि विप्रेंद्र रक्षार्थानां प्रयोगतः । इप्सितं चानीप्सितं यत्तदपादानकं स्मृतम् ॥९॥
पंचमी पर्युपाङ्योगे इतरर्तेऽन्यदिङ्मुखे । एतैर्योगे द्वितीया स्यात्कर्मप्रवचनीयकैः ॥१०॥

अध्याय ५२

व्याकरण शास्त्र का वर्णन

सनन्दन बोले—नारद ! अब तुमको संक्षेप में व्याकरण की शिक्षा दे रहा हूं जो कि सिद्ध शब्दों के प्रबन्ध, क्रम
पूर्वक व्याख्या करने के कारण व्याकरण वेद का मुख कहा जाता है ॥१॥ विप्र ! सुबन्त और तिङन्त को
पद कहते हैं। सुप् प्रत्याहार में सात विभक्तियाँ होती हैं। सु, औ, जस् प्रथमा है जो प्रातिपदिक स्वरूप
मानी गयी है। यह प्रथमा विभक्ति संबोधन, लिङ्ग, वचन आदि में प्रधान कर्म और कर्त्ता में होती है।
धातु और प्रत्यय से रहित अर्थवान् शब्द को प्रातिपदिक संज्ञा है ॥२॥ अम्, औ, शस् द्वितीया है, और जो
किया जाता है उसको कर्म कहते हैं। कर्म में और अन्तरा अन्तरेण के संयोग में द्वितीया होती है ॥३॥ टा,
भ्याम्, भिस् तृतीया कहलाती है। अप्रधान कर्ता और करण में तृतीया होती है ॥४॥ जिससे काम किया
जाता है उसको करण और जो करता है उसको कर्ता कहते हैं ॥५॥ ङे, भ्याम्, भ्यस् चतुर्थी है जो संप्रदान
कहलाता है ॥५-६॥ ङस्-भ्याम्, भ्यस् पंचमी की विभक्तियाँ हैं जो अपादान कारक में होती हैं। जहाँ से कोई
जाता है जिससे कोई वस्तु पृथक् होती है। जिससे कोई वस्तु प्राप्त होती है, उसको अपादान कहते हैं ॥७॥
ङस्, ओस्, आम् षष्ठी है जो सेवक-स्वामि आदि संबन्ध में होती है। ङि, ओस्, सुप् सप्तमी है जो अधिकरण में
होती है ॥८॥ विप्रेन्द्र ! रक्षार्थ धातुओं के प्रयोग में, ईप्सित और अनीप्सित को अपादान कहते हैं ॥९॥ परि,
अप और आङ् के योग में पञ्चमी होती है। इतर, ऋत, अन्य और दिग्वाचक शब्दों के योग में पञ्चमी होती

लक्षणेत्थंभूतोऽभिरभागे चानुपरिप्रति । अंतरेषु सहार्थे च हीने ह्युपश्च कथ्यते ॥११॥
द्वितीया च चतुर्थी स्याच्चेष्टायां गतिकर्मणि । अप्राणिषु विभक्ती द्वे मन्यकर्मण्यनादरे ॥१२॥
नमःस्वस्तिस्वधास्वाहालंवषड्योग ईरिता । चतुर्थी चैव तादर्थ्ये तुमर्थाद्भाववाचिनः ॥१३॥
तृतीयासहयोगे स्यात्कुत्सितेऽङ्गे विशेषणे । काले भावे सप्तमी स्यादेतैर्योगे च षष्ठ्यपि ॥१४॥
स्वामीस्वराधिपतिभिः साक्षिदायादसूतकैः । निर्धारणे द्वे विभक्ती षष्ठी हेतुप्रयोगके ॥१५॥
स्मृत्यर्थकर्मणि तथा करोतेः प्रतियानके । हिंसार्थानां प्रयोगे च कृतिकर्मणि कर्तरि ॥१६॥
न कर्तृकर्मणोः षष्ठी निष्ठादिप्रतिपादिका । गता वै द्विविधा ज्ञेयाः सुबादिषु विभक्तिषु
भूवादिषु तिङन्तेषु लकारा दश वै स्मृताः ॥१७॥
तिप्तसंतीति प्रथमो मध्यमः सिप्थस्थोत्तमः । मिब्वस्मसः परस्मै तु पादानां चा मपनेदम् ॥१८॥
त आतेंऽते प्रथमो मध्यः से आथे ध्वे तथोत्तमः । ए वहे मह आदेशा ज्ञेया ह्यन्ये लिङादिषु ॥१९॥
नाम्नि प्रयुज्यमाने तु प्रथमः पुरुषो भवेत् । मध्यमो युष्मदि प्रोक्त उत्तमः पुरुषोऽस्मदि ॥२०॥
भूवाद्या धातवः प्रोक्ताः सनाद्यन्तास्तथा ततः । लडीरितो वर्तमाने भूतेऽनद्यतने तथा ॥२१॥
मास्मयोगे च लङ् वाच्यो लोडाशिषि च धातुतः । विध्यादौ स्यादाशिषि च लिङितो द्विविधो मुने ॥२२॥

है। कर्मप्रवचनीय में लक्षण, इत्थंभूताख्यान, भाग, वीप्सा अर्थों में प्रति, परि, अनु को कर्म प्रवचनीय संज्ञा—द्वितीया होती है। इसी तरह सहायक, अन्तर, हीन अर्थों में उप की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है ॥१०-११॥ चेष्टा और गति कर्म में द्वितीया और चतुर्थी दोनों होती हैं। अनादर सूचित होने पर मन् धातु अप्राणिबोधक कर्म में द्वितीया और चतुर्थी दोनों होती हैं ॥१२॥ नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं और वषट् योग में तादर्थ्य, तुमर्थ भाववाचक में चतुर्थी होती है ॥१३॥

सह के योग में, कुत्सित अंग में और विशेषण में तृतीया होती है। काल में और भाव में सप्तमी होती है। स्वामी, ईश्वर, अधिपति, साक्षी, दायाद्, सूतक (प्रसूत) इनके योग में सप्तमी षष्ठी दोनों होती हैं। निर्धारण में भी दोनों विभक्तियाँ होती हैं। हेतु शब्द के प्रयोग में षष्ठी होती है। स्मृति अर्थ को बताने वाले शब्दों के योग में कर्ता और कर्म से षष्ठी होती है। निष्ठा, लकारादेश, अव्यय, खलर्थ और तृन् प्रत्याहार के योग में षष्ठी नहीं होती है। सुप् आदि विभक्तियों में कही गयी उपर्युक्त प्रथमा आदि विभक्तियाँ दो प्रकार की हैं अर्थात् कथित अर्थों की अपेक्षा अन्य अर्थों में भी विवक्षा द्वारा वे हो सकती हैं। भू आदि धातुओं से तिङन्त में दश लकार होते हैं ॥१४-१७॥ तिङन्त प्रत्यय में आगे कही हुई विभक्तियाँ होती हैं। तिप्, तस् (अन्ति) को प्रथम पुरुष कहते हैं। सिप्, थस्, थ को मध्यम और मिप्, वस्, मस् को उत्तम पुरुष कहते हैं। ये सब परस्मैपद हैं। आत्मनेपद में त आताम् अन्त प्रथम पुरुष है, से आथाम्, ध्वम् मध्यम पुरुष और इ, वहि, महि उत्तम पुरुष। इनके अतिरिक्त लिङ आदि में और भी आदेश होते हैं, युस्मद्, अस्मद् से अस्मद् से अतिरिक्त संज्ञा शब्दों के प्रयोग में प्रथम पुरुष, युष्मद् के प्रयोग में मध्यम पुरुष और अस्मद् के प्रयोग में उत्तम पुरुष होता है ॥१८-२०॥

भू आदि को, सनाद्यन्त को धातु कहते हैं। उन धातुओं से वर्तमान काल में लट् होता है। अनद्यतन भूत और स्म, मा के योग में लङ् होता है। मुने! आशीर्वाद में धातु से लोट् लकार होता है। विध्यादि अर्थ में और

लिडतीते परोक्षे स्यात् श्वस्तने लुङ् भविष्यति । स्यादनद्यतने लृट् च भविष्यति तु धातुतः ॥२३॥
भूते लुङ् तिपस्यपौ च क्रियायां लृङ् प्रकीर्तितः । सिद्धोदाहरणं विद्धि संहिताविपुरःसरम् ॥२४॥
दंडाग्रं च दधीदं च मधूदकं पित्रर्षभः । होतृकारस्तथा सेयं लांगलीषा मनीषया ॥२५॥
गंगोदकं तवल्कार ऋणार्णं च मुनीश्वर । शीतार्तश्च मुनिश्रेष्ठ सेंद्रः सौकार इत्यपि ॥२६॥
वध्वासनं पित्रर्थो नायको लवणस्तथा । त आद्या विष्णवे ह्यत्र तस्मा अर्घो गुरा वधः ॥२७॥
हरेऽव विष्णोऽवेत्येषादसोमादप्यमी अघाः । गौरी एतौ विष्णु इमौ दुर्गे अमू नो अर्जुनः ॥२८॥
आ एवं च प्रकृत्यैते तिष्ठंति मुनिसत्तम । षडन्न षण्मातरश्च वाक्छुरो वाग्घरिस्तथा ॥२९॥
हरिश्शेते विभशिचत्यस्तच्छेषो यच्चरस्तथा । प्रश्नस्त्वथ हरिष्षष्ठः कृष्णष्टीकत इत्यपि ॥३०॥
भवान्षष्ठश्च षट् सन्तः षट्ते तल्लेप एव च । चक्रिंश्छिधि भवाञ्छौरिर्भवाञ्शौरिरित्यपि ॥३१॥
सम्यङ्ङनंतोंगच्छाया कृष्णं वंदे मुनीश्वर । तेजांसि मंस्यते गङ्गा हरिश्छेत्ता मरश्शिवः ॥३२॥
राम ॢ काम्यः कृप ॢ पूज्यो हरिः पूज्योऽर्च्य एव हि । रामो दृष्टोऽबला अत्र सुप्ता इष्टा इमा यतः ॥३३॥
विष्णुर्नम्योरविरयं गी)(फलं प्रातरच्युतः । भक्तैर्वंद्योऽप्यंतरात्मा भो भो एष हरिस्तथा । ॥३४॥
एष शार्ङ्गी सैष रामः संहितैवं प्रकीर्तिता ॥३५॥
रामेणाभिहितं करोमि सततं रामं भजे सादरम् । रामेणापहृतं समस्तदुरितं रामाय तुभ्यं नमः ।

आशीर्वाद में लिङ् लकार होता है। इस प्रकारलिङ् लकार के विधि लिङ्और आशीर्लिङ् दो भेद होते हैं। परोक्ष भूत में लिट् लकार होता है। कल होने वाले अर्थात् अनद्यतन भविष्यत् में लुट् लकार होता है। धातु से भविष्यत काल में लृट लकार का प्रयोग होता है। भूतार्थ में लुङ् और क्रिया की अनिष्पत्ति में लृङ् लकार होता है। २१-२३½॥

अब संहिताओं (सन्धियों) को सिद्ध शब्दों के उदाहरण द्वारा समझा रहा हूँ, सुनो। मुनिश्रेष्ठ! दण्डाग्रम्, दधीदम्, मधूदकम्, पित्रर्षभः, वध्वासनम्, पित्रर्थः, होतृकार और लांगलीषा, मनीषा, गंगोदकम्, तवल्कारः, ऋणार्णम्। शीतार्तः सेन्द्रः, सौकारः ये सन्धियों के उदाहरण हैं। वध्वासनम्, पित्रर्थः, नायकः, लवणः, ते आद्या, विष्णवे, ह्यत्र, तस्मा अर्घः, गुरावध, हरेऽव, विष्णोऽव, इत्येव ये भी सन्धि के उदाहरण हैं। अदसो॰ मात् इस सूत्र से अमी अघाः, गौरी एतौ, विष्णूइमौ, दुर्गे अमू, नो अर्जुनः, आ एवम् यहाँ पर प्रकृति भाव ही होता है, कोई सन्धि नहीं होती। षडत्र, षण्मातरः, वाक्छुरः, वाग्घरिः, हरिश्शेते विभुश्चिन्त्यः तच्छेषः, यच्चरः, प्रश्नः, हरिष्षष्ठः, कृष्णष्टीकते ये भी उदाहरण हैं। भवान्षष्ठश्च, षट्सन्तः, षट्ते, तल्लेपः, चक्रिंश्छिन्धि, भवाञ्शौरिः, भवाञ्छौरिः ये भी सन्धियों के उदाहरण हैं। मुनीश्वर! सम्यङ्ङनन्तः, गजच्छाया, कृष्णं वन्दे, तेजांसि, मंस्यते, गङ्गा, हरिश्छेत्ता, अमरश्शिवः, रामः काम्यः, कृपः पूज्यः, हरिः पूज्योऽर्च्य एव, रामो दृष्टः, अबला अत्र सुप्ताः, दृष्टाः, इमाः विष्णुर्नम्यः, रविरयम्, गीः फलम्, प्रातरच्युतः, भक्तैर्वन्द्योऽप्यन्तरात्मा और भो भो एष हरिः, एष शार्ङ्गी, सैषरामः इन उदाहरणों से संहिताओं का वर्णन किया गया है ॥२४-३४॥ "रामो राजमणिः[2] सदा विजयते रामं भजे सादरम्, रामेणापहृतं समस्तदुरितं रामाय तुभ्यं नमः। रामान्मुक्तिमभीप्सिता मम सदा रामस्य दासोऽस्म्यहम्, रामे रंजतु मे मनः सुविशदं हे राम! तुभ्यं नमः। इस श्लोक में प्रथमा से लेकर सप्तमी तक का उदाहरण है।

---

१. एष चिन्त्यः पाठः। २. यहपाठरामरक्षास्तोत्र में पाया जाता है।

सर्वं इत्यादिका गोपाः सखा चैव पतिर्हरिः ॥३६॥
सुश्रीर्भानुः स्वयंभूश्च कर्ता रौ गौस्तु नौरिति । अनड्वान्गोधुग्लिट् च द्वे त्रयश्चत्वार एव च ॥३७॥
राजा पन्थास्तथा दंडी ब्रह्महा पंच चाष्ट च । अष्टौ अयं मुने सम्राट् सविभ्रद्वपुड्मनः ॥३८॥
प्रत्यङ् पुमान्महान् धीमान् विद्वान्षट् पिपठीश्च दोः । उशनासाविमे पुंसि स्युरक्तबलविरामकाः ॥३९॥
राधा सर्वा गतिर्गोपी स्त्री श्रीर्धेनुर्वधूः स्वसा । गौर्नौरुपान द्युर्गौः क्षुत् ककुप्संवित्तु वा क्वचित् ॥४०॥
रुग्विड्दुद्भाः स्त्रियास्तपः कुलं सोमपमक्षि च । ग्रामण्यंबुखलप्वेवं कर्तृ चातिरि वातिनु ॥४१॥
स्वनडुच्च विमलद्यु वाश्चत्वारीदमेव च । एतद्ब्रह्माहश्च दंडी असृक्किचित्त्यदाधि च ॥४२॥
एतद्वे भिद्गवाक्गवाङ् गोअक् गोङ्गोक् गोङ् । तिर्यग्यकृच्छकृच्चैव ददद्भवत्पचत्तुदत् ॥४३॥
दीव्यद्धनुश्च पिपठीः पयोऽदःसुपुमांसि च । गुणद्रव्यक्रियायोगास्त्रिलिंगाश्च कति ब्रुवे ॥४४॥
शुक्लः कीलालपाश्चैव शुचिश्च ग्रामणीः सुधीः । पटुः स्वयंभुः कर्ता च माता चैव व पिता च ना ॥४५॥
सत्यानायुस्तथा पुंसो मतभ्रमरदीर्घपात् । धनाढ्यसोमौ चागर्हस्तादृगथोस्वर्णबहू ॥४६॥
रिमषन्विवाद्वं द्वजातानहो तथा सर्वं विश्वोभये चोभौ अन्यांतरेतराणि च ॥४७॥
उत्तरश्चोत्तमो नेमस्त्वसमोऽथ समा इषः । पूर्वोत्तरोत्तराश्चैव दक्षिणश्चोत्तराधरौ ॥४८॥

अब सुबन्त शब्दों का उदाहरण दिया जाता है। सर्वः आदि, गोपाः, सखा, पतिः, हरिः, सुश्रीः, भानुः, स्वयम्भूः, कर्ता, राः, गौः, नौः, अनड्वान्, गोधुक्, लिट् द्वे, त्रयः, चत्वारः, राजा, पन्थाः, दण्डी, ब्रह्महा, पंच, अष्ट, अष्टौ, अयम्, सम्राट्, सुराट्, वपुष्मान्, प्रत्यङ, पुमान्, महान्, धीमान्, विद्वान्, षट्, पिपठीः, दोः और उशना—ये अजन्त (स्वरान्त) और हलन्त पुलिंग शब्द कहे गए हैं ॥३६-३९॥

राधा, सर्वा, गतिः, गोपी, स्त्री, श्रीः, धेनुः, वधूः, स्वसा, गौः, नौः, उपानत्, द्यौः, क्षुत्, ककुप्, संवित्, रुक्, विट्, उद्भाः—ये स्त्रीलिंग शब्द हैं।

तपः, कुलम्, सोमपम्, अक्षि, ग्रामणि, अम्बु, खलपु (खलिहान साफ करने वाला), कर्तृ, अतिरि (धन की सीमा को लाँघने वाला कुल), अतिनु (जिसे नाव से पार करना असंभव हो), स्वनडुत् (जिसके कुल या गृह में गाड़ी खींचने वाले अच्छे बैल हों), विमलद्यु (निर्मल आकाश वाला दिन), वाः (जल), चत्वारि, इदम्, एतत्, ब्रह्म, अहः, दण्डि, असृक् (रक्त), किम्, चित्, त्यत्, एतत्, बेभित्, गवाक्—गवाग्—गोअक्—गोअग्—गोक्—गोग्—गवाङ्—गोअङ्—गोङ् (गाय के पास जाने वाला, पूजा पक्ष में अर्थ गोपूजक), तिर्यक् (पशु-पक्षी), यकृत् (कलेजा तथा उससे सम्बद्ध रोग), शकृत् (विष्ठा), ददतु भवत्, पचत्, तुदत्, दीव्यत्, धनुः, पिपठीः, पय, अदः, सुपुम्—ये नपुंसकलिंग शब्द हैं।

अब ऐसे शब्दों का वर्णन किया जा रहा है जो गुण, द्रव्य और क्रिया के सम्बन्ध से तीनों लिंगों में प्रयुक्त होते हैं। शुक्लः, कीलालपाः, शुचिः, ग्रामणीः, सुधीः, पटुः, स्वयम्भूः, कर्ता, माता, पिता, ना, सत्यः, अनायुः, अपुमान्, मतः, भ्रमरः, दीर्घपात्, धनाढ्यः, सोमः, अगर्हः, तादृक्, स्वर्णः, बहुः—ये शब्द तीनों लिंगों में प्रयुक्त होते हैं ॥४०-४६॥

अब सर्वनाम शब्दों को सूचित करते हैं—सर्व, विश्व, उभय, उभ, अन्य, अन्यतर, इतर, उतर, उत्तम, नेम, त्व, त्वत्, सम, सिम्, पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अधर, अपर, स्व, अन्तर, त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, किम्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्। ये सर्वनाम हैं और इनके रूप प्रायः सर्व शब्द

अपरश्चतुरोऽप्येतद्यावत्तत्किमसौ द्वयम् । युष्मदस्मच्च प्रथमश्चरमोऽल्पस्तथार्धकः ॥४९॥
नेरः कतिपयो द्वे च त्रयो शुद्धादयस्तथा । स्वेकाभुविरोधपरि विपर्ययश्चाव्ययास्तथा ॥५०॥
तद्धिताश्चाप्यपत्यार्थं पांडवाः श्रैधरस्तथा । गार्ग्यो नाडायनात्रेयो गांगेयः पैतृष्वस्रीयः ॥५१॥
देवतार्थे चेदमर्थे ह्यैन्द्र ब्राह्मो हविर्बली । क्रियायुजोः कर्मकर्त्रोर्धौरेयः कौङ्कुमं तथा ॥५२॥
भवाद्यर्थे तु कानीनः क्षत्रियो वैदिकः स्वकः । स्वार्थे चौरस्तु तुल्यार्थे चंद्रवन्मुखमीक्षते ॥५३॥
ब्राह्मणत्वं ब्राह्मणता भावे ब्राह्मण्यमेव च । गोमान्धनी च धनवानस्त्यर्थे प्रमितौ कियान् ॥५४॥
जातार्थे तुंदिलः श्रद्धालुरौन्नत्ये तु दंतुरः । स्रग्वी तपस्वी मेधावी मायाव्यस्त्यर्थ एव च ॥५५॥
वाचाटो वाचालश्चैव बहुकुत्सितभाषिणि । ईषदपरिसमाप्तौ कल्पब्देशीय एव च ॥५६॥
कविकल्पः कविदेश्यः प्रकारवचने तथा । पटुजातीयः कुत्सायां वैद्यपाशः प्रशंसने ॥५७॥
वैद्यरूपो भूतपूर्वे मतो दृष्टचरो मुने । प्राचुर्यादिष्वन्नमयो मृण्मयः स्त्रीमयस्तथा ॥५८॥
जातार्थे लज्जितोऽत्यर्थं श्रेयाञ्छ्रेष्ठश्च नारद । कृष्णतरः शुक्लतमः किम आख्यानतोऽव्ययान् ॥५९॥
किंतरां चैवातितरामभिह्युच्चैस्तरामपि । परिमाणे जानुदघ्नं जानुद्वयसमित्यपि ॥६०॥
जानुमात्रं च निर्द्धारे बहूनां व द्वयोः कमात् । कतमः कतरः संख्येयविशेषावधारणे ॥६१॥
द्वितीयश्च तृतीयश्च चतुर्थः षष्ठपंचमौ । एकादशः कतिपथः कतिथः कति नारद ॥६२॥

के समान ही हैं। प्रथम, चरम, तय, अल्प, अर्ध, कतिपय और नेम——इन शब्दों के प्रथमा के बहुबचन में दो रूप होते हैं। स्वरादि और निपात तथा उपसर्ग, विभक्ति एवं स्वर के प्रतिरूपक शब्द अव्ययसंज्ञक होते हैं ॥४७-५०॥

तद्धित के उदाहरण ये हैं—पांडवाः श्रैधरः, गार्ग्यः, नाडायनः, आत्रेयः, गांगेयः, पैतृष्वस्रीयः। देवता अर्थ में, इदम् अर्थ में ऐन्द्र और ब्राह्म शब्द बनते हैं। क्रिया से युक्त रहने वाले कर्म और कर्ता में तद्धित प्रत्यय होते हैं, जैसे धौरेय और कौङ्कुम। भवादि अर्थ में कानीन, क्षत्रिय, और वैदिक निष्पन्न होते हैं। स्वकः में स्वार्थ में कन् प्रत्यय हुआ है। चौर में भी स्वार्थ में ही अ प्रत्यय हुआ है। तुल्यार्थ में चन्द्रवन् मुखमीक्षते में वत् प्रत्यय है। ब्राह्मणत्व, ब्राह्मणता, ब्राह्मण्य यहाँ भाव में प्रत्यय हैं। गोमान्, धनी और धनवान् में अस्त्यर्थ में प्रत्यय हुआ है। प्रमिति अर्थ में कियान् शब्द बनता है। जातार्थ में तुन्दिलः, श्रद्धालुः बनते हैं। औन्नत्यार्थ में दन्तुर होता है। स्रग्वी, तपस्वी, मेधावी और मायावी अस्त्यर्थ में ही होते हैं। अधिक और अनापशनाप बकने वाले के अर्थ में वाचाल और वाचाट बनते हैं। अल्प और असमाप्ति के अर्थ में कल्पप्, देश्य तथा देशीय प्रत्यय होते हैं। कविकल्पः, कविदेश्यः इसके उदाहरण हैं। प्रकार वचन में पटुजातीयः, कुत्सा में वैद्यपाशः, प्रशंसा अर्थ में वैद्यरूपः प्रयोग बनता है। मुने! भूतपूर्व इस अर्थ में दृष्टचर होता है। प्राचुर्य आदि अर्थ में अन्नमय, मृण्मय और स्त्रीमय होता है। नारद! जातार्थ में लज्जित, अत्यर्थ में श्रेयान् और श्रेष्ठ बनता है। इसी प्रकार अपेक्षाकृत अधिक अर्थ में कृष्णतर तथा शुक्लतम प्रयोग होते हैं। किम्, क्रियावाचक शब्द (तिङन्त) और अव्यय से परे जो तर और तम प्रत्यय हैं, उनके अन्त में आम् लग जाता है। उदाहरण के लिए किन्तराम्, अतितराम् तथा उच्चैस्तराम् आदि प्रयोग हैं ॥५१-५८½॥

प्रमाण में जानुदघ्नम्, जानुद्वयसम् और जानुमात्रम् बनता है। बहुतों में से एक का निर्धारण करने और दो में से एक का निर्धारण करने में कतमः कतरः बनता है। नारद! संख्येय विशेष के निश्चय में द्वितीयः, तृतीयः, चतुर्थः, षष्ठः, पंचम, एकादशः, कतिपयः, कतिथः, कति, विंशः, विंशतितमः और शततमः बनते हैं।

विंशश्च विंशतितमस्तथा शततमादयः । द्वेधा द्वैधा द्विधा संख्या प्रकारेऽथ मुनीश्वर ॥६३॥
क्रियावृत्तौ पंचकृत्वो द्विस्त्रिर्बहुश इत्यपि । द्वितयं त्रितयं चापि संख्यायां हि द्वयं त्रयम् ॥६४॥
कुटीरश्च समीरश्च शुंडारोऽल्पार्थके मतः । स्त्रैणः पौष्णस्तुंडिभश्च वृंदारककृषीवलौ ॥६५॥
मलिनो विकटो गोमी मौरिकीविधमुत्कटम् । अवटीटोवणाटे च निबिडं चेक्षुशाकिनम् ॥६६॥
निबिरीसमैषुकारी वित्तोविद्याच्चणस्तथा । विद्याचुंचुर्बहुतिथं पर्वतः श्रृंगिणस्तथा ॥६७॥
स्वामी विषमरूप्यं चोपत्यकाधित्यका तथा । चिल्लश्च चिपिटं चिक्वं वातूलः कुतपस्तथा ॥६८॥
वल्लश्च हिमेलुश्च कहोडश्चोपडस्ततः । ऊर्णायुश्च मरूतश्चैकाकी चर्मण्वती तथा ॥६९॥
ज्योत्स्ना तमिस्रा ष्ठीवश्च कक्षीवच्चर्मण्वती । आसंदीवच्च चक्रीवत्तूष्णीकां जल्पतक्यपि ॥७०॥
कंभश्च कंयुः कंवश्च नारदकेतिः कंतुः कंतकंपौ शंवस्तथैव च ।
शंतः शंतिः शंयशंतौ शंयोहंयुः शुंभयुवत् ॥७१॥
भवति बभूव भविता भविष्यति भवत्वभवद्भवेच्चापि ॥७२॥
भूयादभूदभविष्यल्लादावेतानि रूपाणि । अत्ति जघासात्तात्स्यत्यत्स्वाददद्यादघसदात्स्यत् ॥७३॥
जुहोति जुहाव जुहवांचकार होता होष्यति जुहोतु ।
अजुहोज्जुहुयाद्धूयादहौसीदहोष्यदात्व्यति ॥७४॥
दिदेव देविता देविष्यति च अदीव्यद्दीव्येद्दीव्याद्वै ।
अदेवीददेवोष्यत्सुनोति सुषाव सोता सोष्यति वै ॥७५॥
सुनोत्वसुनोत्सुनुयात्सूयादसावीदसोष्यत्तुदति च ।
तुतोद तोत्ता तोत्स्यति तुदत्वतुदत्तुदेत्तुद्याद्धि ॥७६॥
अतौत्सीदतोत्स्यदिति च रुणद्धि रुरोध रोद्धा रोत्स्यति वै

मुनीश्वर ! संख्यावाची शब्दों से प्रकार अर्थ में द्वेधा, द्वैधा, द्विधा बनते हैं। क्रिया आवृत्ति के पंचकृत्वः, द्विः, त्रिः और बहुशः उदाहरण हैं। द्वितय त्रितय और द्वयम्, त्रयम् संख्या में होते हैं। कुटीर, समीर और शुण्डार अल्पार्थक हैं। स्त्रैणः, पौंस्नः, तुंडिभः, वृन्दारकः, कृषीवलः, मलिनः, विकटः, गोमी, मौरिकी विधम्, उत्कटम्, अवटीटः, अवनाटः, निबिडम्, इक्षुशाकिनम्, निविरीसम्, ऐषुकारिभक्तम्, विद्याचणः, विद्या चञ्चुः, बहुतिथम्, पर्वतः, शृङ्गिणः, स्वामी, विषमरूप्यम्, उपत्यका, अधित्यका, चिल्लः, चिपिटम्, चिक्कम्, वातूलः, कुतुपः, बलूलः, हिमेलुः, कहिकः, उपडः, ऊर्णायुः, मरुत्तः, एकाकी, चर्मण्वती, ज्योत्स्ना, तमिस्रा, अष्ठीवत्, कक्षीवत्, चर्मण्वती, आसन्दीवत्, चक्रीवत्, तूष्णीकाम्, जल्पतकि, कंवः, कंभः, कंयुः, कन्तिः, कन्तुः, कन्तः, कंयः, शंवः, शम्भः, शन्तिः, शन्तुः, शंतः, अहंयुः, शुभंयुः ॥६०-७१॥

अब तिङन्त के रूप कहे जाते हैं, सुनो--भवति, बभूव, भविता, भविष्यति, भवतु, अभवत्, भवेत्, भूयात्, अभूत्, अभविष्यत्—भू धातु के नौ लकार में इतने रूप होते हैं। अत्ति, जघास, अत्ता, अत्स्यति, अत्तु, आदत्, अद्यात्, अघसत्, आत्स्यत्—ये अद् के रूप हैं। जुहोति, जुहाव, जुहवांचकार, होता, होष्यति, जुहोतु, अजुहोत्, जुहुयात्, हूयात्, अहौसीत्, अहोष्यत्—ये हु धातु के रूप हैं। दीव्यति, दिदेव, देविता, देविष्यति, अदीव्यत्, दीव्येत्, दीव्यात्, अदेवीत्, अदेविष्यत्—ये दिव् धातु के रूप हैं। सुनोति, सुषाव, सोता, सोष्यति, सुनोतु, असुनोत्, सुनुयात्, सूयात्, असावीत्, असोष्यत्—ये सु के रूप हैं। तुदति, तुतोद, तोत्ता, तोत्स्यति, तुदतु, अतुदत्, तुदेत्, तुद्यात्, अतौत्सीत्, अतोत्स्यत्—ये तुद् के नव लकारों के रूप हैं। रुणद्धि, रुरोध, रोद्धा, रोत्स्यति, रुणद्धु, अरुणत्, रुन्ध्यात्, रुध्यात्, अरौत्सीत् अरोत्स्यत्—ये रुध् धातु के रूप हैं।

रुणद्धु अरुणद्रुध्यादरौत्सीदरोत्स्यच्च । तनोति ततान तनिता तनिष्यति तनोत्वतनोत्तनुयाद्धि ॥७७॥
अतनीच्चातानीदतनिष्यत्क्रीणाति चिक्राय क्रेता क्रेष्यति क्रीणात्विति च ।
अक्रीणात्क्रीणीयात्क्रीयादक्रैषीदक्रेष्यच्चोरयति चोरयामास चोरयिता चोरयिष्यति चोरयतु ॥७८॥
अचोरयच्चोरयेच्चोर्यात् अचूचुरदचोरिष्यदित्येवं दश वगणाः ।
प्रयोजके भावयति सनीच्छायां बुभूषति ॥७९॥
क्रियासमभिहारे तु पंडितो बोभूयते मुने ।
तथा यङ्लुकि बोभवीति च पठ्यते ।
पुत्रीयतीत्यात्मनीच्छायां तथाचारेऽपि नारद ॥८०॥
अनुदात्तजितो धातोः क्रियाविनिमये तथा ।
निविशादेस्तथा विप्र विजानीह्यात्मनेपदम् । परस्मैपदमाख्यातं शेषात्कर्तरि शाब्दिकैः ॥८१॥
जित्स्वरितेतश्च उभे यक्च स्याद्भावकर्मणोः । सौकर्यातिशयं चैव यदा द्योतयितुं मुने ॥८२॥
विवक्ष्यते न व्यापारो लक्ष्ये कर्तुस्तदापरे । लभंते कर्तृतां पश्य पच्यते ह्योदनः स्वयम् ॥८३॥
साधु वासिश्छिनत्त्येवं स्थाली पचति वै मुने । धातोः सकर्मकाद्भावे कर्मण्यपि लप्रत्ययाः ॥८४॥
तस्मै वाकर्मकाद्विप्र भावे कर्तरि कीर्तितः । फलव्यापारयोरेकनिष्ठतायामकर्मकः ॥८५॥
धातुस्तयोर्द्धर्मिभेदे सकर्मक उदाहृतः । गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम् ॥८६॥
बुद्धिभक्षार्थयोः शब्दकर्मकाणां निजेच्छया । प्रयोज्य कर्मण्यन्येषांण्यंतानां लादयो मताः ॥८७॥

तनोति, ततान, तनिता, तनिष्यति, तनोतु, अतनोत्, तनुयात्, तन्यात्, अतानीत् अतनिष्यत्—ये तनु के रूप हैं। क्रीणाति, चिक्राय, क्रेता, क्रेष्यति; क्रीणातु, अक्रीणात्, क्रीणीयात्, क्रीयात्, अक्रैषीत्, अक्रेष्यत्—ये क्री के रूप हैं। चोरयति, चोरयामास, चोरयिता, चोरयिष्यति, चोरयतु, अचोरयत्, चोरयेत्, चोर्यात्, अचूचुरत्, अचोरयिष्यत्—ये चुर् धातु के रूप हैं। इस प्रकार ये धातुओं के दस गण माने गये हैं ॥७९-८८॥

मुने! प्रयोजक (प्रेरणा) में भावयति, सनीच्छा में बुभूषति, क्रियासमभिव्याहार में बोभूयते और यङ्लुक् में बोभवीति होता है। नारद! आचार अर्थ और इच्छा अर्थ में पुत्रीयति होता है। हे विप्र! अनुदात्तेत धातु तथा ङकार इत्संज्ञक धातु से आत्मनेपद होता है। जहाँ क्रिया का विनिमय होता हो वहाँ भी आत्मनेपद होता है। निपूर्वक विश् धातु से आत्मनेपद होता है। आत्मनेपद के जितने निमित्त हैं, उन्हें छोड़कर शेष धातुओं से कर्ता में परस्मैपद होता है, ऐसा वैयाकरणों का कथन है। ङित् तथा स्वरितेत् धातु से उभयपद होता है। भाव और कर्म में यम् प्रत्यय होता है। मुने! अत्यन्त सौकर्य व्यक्त करने के लिए जब कर्ता के व्यापार की विवक्षा नहीं की जाती तब कर्ता से अतिरिक्त भी कर्ता के समान हो जाते हैं। जैसे ओदनः स्वयमेव पच्यते। असिः साधु छिनत्ति (खड्गस्वयं काटता है)। स्थाली पचति (बटलोई पकाती है)। सकर्मक धातुओं से कर्म और भाव में लप्रत्यय होते हैं, अकर्मक से भाव और कर्ता में। जब फल और व्यापार एकनिष्ठ होते हैं तब धातु अकर्मक होता है और जब ये दोनों धर्मिभेद में अर्थात् दो में रहते हैं तब वह धातु सकर्मक होता है। द्विकर्मक दुह् आदि के गौण कर्म में और नी, हृ, कृष्, वह् के प्रधान कर्म में, बुद्धि भक्षणार्थक एवं शब्द कर्मक धातुओं के दोनों कर्मों में इच्छानुसार प्रत्यय होते हैं अन्य ण्यन्त धातुओं के प्रयोज्य कर्म में लकारादि

फलव्यापारयोर्धातुराश्रये तु तिङ स्मृताः । फले प्रधानं व्यापारस्तिङर्थस्तु विशेषणम् ॥८८॥
एधितव्यमेधनीयमिति कृत्ये निदर्शनम् । भावे कर्मणि कृत्याः स्युः कृतः कर्तरि कीर्तिताः ॥८९॥
कर्ता कारक इत्याद्या भूते भूतादि कीर्तितम् । गम्यादिगम्ये निर्दिष्टं शेषमद्यतने मतम् ॥९०॥
अधिस्त्रीत्यव्ययीभावे यथाशक्ति च कीर्तितम् । रामाश्रितस्तत्पुरुषे धान्यार्थो यूपदारु च ॥९१॥
व्याघ्रभी राजपुरुषोऽक्षशौंडो द्विगुरुच्यते । पंचगवं दशग्रामी त्रिफलेति तु रूढितः ॥९२॥
नीलोत्पलं महाषष्ठी तुल्यार्थे कर्मधारयः । अब्राह्मणो नञि प्रोक्तः कुंभकारादिकः कृता ॥९३॥
अन्तार्थे तु बहुव्रीहौ ग्रामः प्राप्तोदको द्विजः । पंचगू रूपवद्भार्यो मध्याह्नः ससुतादिकः ॥९४॥
समुच्चये गुरुं चेशं भजस्वान्वाचये त्वट । भिक्षामानय गां चापि वाक्यमेवानयोर्भवेत् ॥९५॥
इतरेतरयोगे तु रामकृष्णौ समाहृतौ । रामकृष्णं द्विज द्वे द्वे ब्रह्म चैकमुपास्यते ॥९६॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे
व्याकरणनिरूपणं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

प्रत्यय होते हैं। धातु का अर्थ फल और व्यापार हैं, आश्रय तिङ् का अर्थ है। फल और व्यापार दोनों में व्यापार ही प्रधान होता है, तिङर्थ सदा विशेषण होता है ॥८९-८८॥

[अब कृदन्त प्रकरण प्रारंभ करते हैं] एधितव्यम् और एधनीयम् ये कृत्य प्रत्यय के उदाहरण हैं। कृत्य प्रत्यय भाव और कर्म में होते हैं और कृत् प्रत्यय कर्ता में होते हैं। कर्ता, कारक इत्यादि कृत् के उदाहरण हैं। भूत में भूत आदि उदाहरण कहे गए हैं। गम्य आदि शब्द भविष्यत् अर्थ में निर्दिष्ट हुए हैं। शेष शब्द वर्तमानकाल में प्रयुक्त होने योग्य माने गये हैं।

[अब समास का प्रकरण आरंभ करते हैं—]

अधिस्त्रि, यथाशक्ति अव्ययीभाव है। रामाश्रितः, धान्यार्थः, यूपदारु, व्याघ्रभीः, राजपुरुषः, अक्षशौण्डः तत्पुरुष समास हैं। पंचगवम्, दशग्रामी, त्रिफला द्विगु के उदाहरण हैं। नीलोत्पलम् और महाषष्ठी में तुल्यार्थ में कर्मधारय है। अब्राह्मणः में नञ् समास है। कुम्भकारादि में कृदुपपद के साथ समास होता है। अन्यार्थ में बहुव्रीहि समास होता है, जिसके उदाहरण प्राप्तोदको ग्रामः, पंचगुः रूपवद्भार्यः हैं। मध्याह्नः और ससुतः आदि भी समास के उदाहरण हैं। (द्वन्द्वसमास में) समुच्चय में 'गुरुं चेशं भजस्व' इत्यादि में और 'अट भिक्षां गां चानय' इस अन्वाचय में वाक्य ही रहेगा, समास नहीं होगा। इतरेतरयोग द्वन्द्व का 'रामकृष्णौ' उदाहरण है। समाहार द्वन्द्व में नपुंसकलिंग होता है, विप्रवर। इतरेतरयोग में राम और कृष्ण दोनों दो हैं और समाहार में उनकी एकता है, इसलिए ब्रह्मरूप से उन्हें एक मानकर उनकी उपासना की जाती है ॥८९-९६॥

श्रीनारदीयमहापुराण में बावनवां अध्याय समाप्त ॥५२॥

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सनंदन उवाच

निरुक्तं ते प्रवक्ष्यामि वेदं श्रोत्रांगमुत्तमम् । तत्पंचविधमाख्यातं वैदिकं धातुरूपकम् ॥१॥
क्वचिद्वर्णागमस्तत्र क्वचिद्वर्णविपर्ययः । विकारः क्वापि वर्णानां वर्णनाशः क्वचिन्मतः ॥२॥
तथा विकारनाशाभ्यां वर्णानां यत्र नारद । धातोर्योगातिशायी च संयोगः परिकीर्तितः ॥३॥
सिद्धेद्वर्णागमाद्धंसः सिंहो वर्णविपर्ययात् । गूढोत्मा वर्णविकृतेर्वर्णनाशात्पृषोदरः ॥४॥
भ्रमरादिषु शब्देषु ज्ञेयो योगो हि पञ्चमः । बहुलं छन्दसीत्युक्तमत्र वाच्यं पुनर्वसु ॥५॥
नभस्वद्वृषणश्वश्चापरस्मैपदि चापि हि । परं व्यवहिताश्चापि गतिसंज्ञास्तु याडि आ ॥६॥
विभक्तीनां विपर्यासो यथा दध्ना जुहोति हि ।
अभ्युत्सादयामकेतुर्ध्वनयीत्प्रमुखास्तथा ॥७॥
निष्टभ्यास्तथोक्ताश्च गृभायेत्यादिकास्तथा ।
सुप्तिङुपग्रहलिंगनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङां च ॥८॥
व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सोऽपि च सिद्ध्यति बाहुलकेन ॥९॥
रात्री विभ्वी च कद्रूश्चाविष्ट्वो वाजसनेयिनः

अध्याय ५३

निरुक्त-निरूपण

सनन्दन बोले--अब मैं वेद के श्रोत्राङ्ग रूप निरुक्त का वर्णन कर रहा हूँ। वैदिक धातु रूप की निरुक्ति पाँच प्रकार से की गई है उसमें कहीं तो वर्णागम होता, कहीं वर्णों में विपर्यय (उलटफेर), कहीं वर्ण-विकार और कहीं वर्ण-विनाश ॥१-२॥ नारद ! जहाँ वर्णनाश और वर्णविकार दोनों की आवश्यकता पड़ती है वहाँ वैसा भी किया जाता। कहीं धातु का योगातिशायो संयोग भी कहा गया है ॥३॥ वर्णागम से हंस की सिद्धि होती है वर्ण विपर्यय से सिंह की (अर्थात् हिंस में स के विपर्यय से सिंह शब्द बनता है)। गूढोत्मा में वर्णविकृति और पृषोदर में वर्ण नाश से सिद्धि हुई है ॥४॥ भ्रमर आदि शब्दों में पाँचवाँ योग है। वेद में लौकिक नियमों का विकल्प या विपर्यय कहा गया है। इसका उदाहरण 'पुनर्वसु' है जो नित्य द्विवचनान्त होने पर वेद में एकवचनान्त होकर प्रयुक्त हुआ है ॥५॥ कहीं आत्मनेपद के स्थान पर परस्मैदी प्रयोग वेद में होते हैं। नभस्वत्, वृषणश्व, भी इसके उदाहरण है। प्रआदि उपसर्ग वेद में धातु के बाद या व्यवधान से आने पर भी उपसर्ग एवं गति संज्ञक होते हैं जैसे गाहि आ ॥५-६॥

विभक्ति विपर्यय 'दध्ना जुहोति' में है। अभ्युत्सादयामकः, 'ध्वनयीत्' 'निष्टभ्क्यं' और 'गृभाय' आदि वैदिक उदाहरण है ॥७॥ शास्त्रकार सुप्, तिङ्, उपग्रह (परस्मैपद, आत्मनेपद) लिङ्ग, पुरुष, काल, हल्, अच्, स्वर, कर्ता और यङ् इनमें व्यत्यय करना चाहते हैं परन्तु यह सब कुछ बाहुलक के द्वारा सिद्ध हो जाता है ॥८॥ रात्री, विभ्वी, कद्रूः, आविष्टयः, वाजसनेयिनः, कर्णेभिः, यशोभाग्यः चतुरक्षरम्, देवासः, सर्वदेवताति, त्वावतः,

कर्णेभिश्च यशोभाग्य इत्याद्याश्चतुरक्षरम् । देवासोऽथो सर्वदेवतातित्वावत इत्यपि ॥१०॥
उभयाविनमाद्याश्च प्रलयाद्याश्च स्तृचं तथा । अपस्पृधेथां नो अव्यादापो अस्मान्मुखास्तथा ॥११॥
सगभ्योऽष्टापदी ऋत्व्योरजिष्टं त्रिपंचकम् । हिरण्ययेन नरं च परमे व्योमनित्यपि ॥१२॥
उर्विया स्वप्नया वारवश्वाददुह्लवैवधी । यजध्वैनमेमसि च स्नात्वी गत्वायचाश्थभिः ॥१३॥
गोनांचापरिहृवृत्ताश्चातुरिर्ग्रसितादिका । पश्वेदधद्बभूथापि प्रमिणातीत्यवीवृधत् ॥१४॥
मित्रयुश्च दुरस्युर्वा हीत्वा सुधितमित्यपि । दाधर्त्याद्या स्ववद्भिश्च ससुवेति च धिष्व च ॥१५॥
प्रप्राये च हरिवतेक्षण्वन्तः सुपथिन्तरः । स्थीतरी निषताद्या अम्बर्भुवरथो इति ॥१६॥
ब्रूह्याद्यादेः परस्याप्यौ श्रावयेत्यादिके प्लुतः । दाश्वांश्च स्वतवान्यापौत्रिभिष्ट्वं च नृभिष्टुतः ॥१७॥
अभीषुण ऋतावाहं न्यषीदन्नृमणा अपि । चतुर्विधाद्बाहुलकात्प्रवृत्तेरप्रवृत्तितः ॥१८॥
विभाषयान्यथाभावात्सर्वं सिद्ध्येच्च वैदिकम् । भूवाद्या धातवो ज्ञेयाः परस्मैपदि नःस्मृताः ॥१९॥
एधाद्या आत्मनेभाषा उदात्ताः षट्त्रिंशसंख्यकाः । अतादयोऽष्टत्रिंशच्च परस्मैपदिनो मुने ॥२०॥
शोक्पूर्वा द्विचत्वारिंशदुक्ता च ह्यात्मने पदे । उदात्तेतस्तु पंचाशत्फक्काद्याः परिकीर्तिताः ॥२१॥
वर्चाद्या अनुदात्तेत एकविंशतिरीरिताः । गुपादयो द्विचत्वारिंशदुदात्तेता समीरिताः ॥२२॥
घिण्यादयोऽनुदात्तेतो दश प्रोक्ता हि शाब्दिकैः । अणादयोप्युदात्तेतः सप्तविंशतिधातवः ॥२३॥
अमादयःसमुद्दिष्टाश्चतुस्त्रिंशद्धिशाब्दिकैः । द्विसप्ततिमितामव्यमुखाश्चोदात्तबंधनाः ॥२४॥
स्वरितेद्धावुधातुस्तु एक एव प्रकीर्तितः । क्षुधादयोऽनुदात्तेतो द्विपंचाशदुदाहृताः ॥२५॥
घुषिराद्या उदात्तेतोऽष्टाशीतिर्धातवो मताः । द्युताद्या अनुदात्तेतो द्विविंशतिरतो मताः ॥२६॥
षितस्त्रयोदश घटादिष्वनुदात्तेत ईरितः । ततो ज्वलदुदात्तेतो द्विपंचाशन्मितास्तथा ॥२७॥

रजिष्ठम् उभयाविनम्, प्रत्नथा, तृचम्, अपस्पृधेथाम्, नो अव्यात्, आपो अस्मान्, सगभ्यः, अष्टापदी, ऋत्व्यम्, त्रिपञ्चम्, हिरण्ययेन, इतरम्, परमे व्योमन्, उर्विया, स्वप्नया, वारवश्वात्, आदुह्ल, वैवघो, पश्य, इदधद्, बभूथाः, प्रमिणोति, वधीं, वृत्रम्, यजध्वैनम्, एमसि, स्नात्वी, गत्वाय, अस्थभिः, गोनाम्, अपरिहृवृताः, ततुरिः, जगुरिः, ग्रसिताम्, पश्वे, दधत्, बभूथ, प्रमिणन्ति, अवीवृधत्, मित्रयुः, दुरस्युः, द्रविणस्युः, हित्वा, हीत्वा, सुधितम्, दाधर्ति, दर्धर्ति, दर्धषि, स्ववद्भिः, ससूव, धिस्व, प्रप्रायमग्निः, हरिवतं, अक्षण्वन्तः, सुपथिन्तरः, रथीतरः, निषत्तः, अम्बः, भुवरथो, अग्नयेऽनुब्रूहि, ओ ३ श्रा ३ वयं, दाश्वान्, स्वतवाँः पायुरग्ने, त्रिभिष्ट्वं देव सवितः, अभीषुणः, न्यषीदत्, नृमणाः—ये प्रयोग भी वैदिक प्रक्रिया से सिद्ध होते हैं ॥९-१८½॥

भू वा आदि परस्मैपदी धातु हैं। एध् आदि उदात्त और आत्मनेपदी धातु हैं जो कि संख्या में छत्तीस हैं। मुने ! अत् आदि अड़तीस धातु परस्मैपदी हैं १९-२१॥ शोक् (लोक्) आदि बयालीस धातु आत्मनेपदी है। फक्क् आदि पचास धातु उदात्तेत् हैं ॥२०॥ वर्च आदि इक्कीस धातु अनुदात्तेत् हैं। गुप् आदि बयालीस धातु उदात्तेत् कहे गए हैं ॥२२॥ वैयाकरणों ने घिणि आदि दश धातुओं को अनुदात्तेत् कहा है। अण् आदि सत्ताइस धातु उदात्तेत् हैं ॥२३॥ शाब्दिकों ने अम् आदि चौंतीस धातुओं को तथा मव्य आदि बहत्तर को उदात्तेत् कहा है ॥२४॥ केवल एक धाव् धातु स्वरितेत् है। क्षुध् आदि बावन धातु अनुदात्तेत् हैं ॥२५॥ घुषिर् आदि अस्सी धातु उदात्तेत् हैं। द्युत् आदि बाईस धातु अनुदात्तेत् हैं ॥२६॥ घटादि में तेरह षित् और अनुदात्तेत् हैं। ज्वल् आदि बावन धातु उदात्तेत् हैं ॥२७॥ राज् धातु स्वरितेत् है। भ्राश्ठ और भ्लाश्ठ

स्वरितेद्राजसंप्रोक्तस्तनाहिर्भ्राजतस्त्रयः । अनुदात्तेत अख्याता आद्युदात्ता इतः स्यमात् ॥२८॥
सहोऽनुदात्तेदेकस्तु रमेंकोऽप्यात्मनेपदी । सदस्त्रय उदात्तेतः कुचाद्येदा उदात्त इत् ॥२९॥
स्वरितेतः पञ्चत्रिंशद्धिक्काद्याश्च ततः परम् । स्वरितेच्छिञ्भृञाद्याश्चत्वार स्वरितेत्ततः ॥३०॥
घेटः परस्मैपदिनः षट्चत्वारिंशदुदीरिताः । अष्टादश स्मिङाद्यास्तु आमनेपदिनो मताः ॥३१॥
ततस्त्रयोऽनुदात्तेतः पूङाद्याः परिकीर्तिताः । हृपरस्मैपदी चात्मनेभाषास्तु गुपास्त्रयः ॥३२॥
रमद्यब्द्यनुदात्तेतो ञिक्ष्विदोदात्त इन्मतः । परस्मैपदिनः पंचदश स्कंम्भ्वादयस्तथा ॥३३॥
कितधातुरुदात्तेच्च दानशानोभयात्मकौ । स्वरितेतः पचाद्यंकाः परस्मैपदिनो मताः ॥३४॥
स्वरितेतस्त्रयश्चैतौ वदवचौ परिभाषिणौ । भ्वाद्या एते षडधिकं सहस्रं धातवो मताः ॥३५॥
परस्मैपदिनः प्रोक्ता वदाश्चाप हनेति च । स्वरितेतो द्विषाद्यास्तु चत्वारो धातवो मताः ॥३६॥
चक्षिङेकः समाख्यातो धातुरत्रात्मनेपदी । इरादयोऽनुदात्तेतो धातवस्तु त्रयोदश ॥३७॥
आत्मनेपदिनौ प्रोक्तौ षूङ्शीङ्द्वौ शाब्दिकैर्मुने । परस्मैपदिनः प्रोक्ता षुमुखाः सप्त धातवः ॥३८॥
स्वरितेदूर्णुञाख्यातो धातुरेको मुनीश्वर । घुमुखास्त्रय उद्दिष्टाः परस्मैपदिनस्तथा ॥३९॥
ष्टुञेकस्तु समाख्यातः स्मृतो नारद शाब्दिकैः ॥४०॥
अष्टादश राप्रभृतयः परस्मैपदिनः स्मृताः । इङ्ङात्मनेपदी प्रोक्तो धातुर्नारद केवलः ॥४१॥
विदादयस्तु चत्वारः परस्मैपदिनो मताः । जिष्वप्शये समुद्दिष्टः परस्मैपदिकस्तथा ॥४२॥
षरस्मैपदिनश्चैव ते मयोक्ताः श्वसादयः । दीधीङ्वेवीङ् स्मृतौ धातू आत्मनेपदिनौ मुने ॥४३॥
षसादयस्त्रयश्चापि उदात्तेतः प्रकीर्तिताः । चर्करीतं च ह्नुङ्प्रोक्तोऽनुदात्तेन्मुनिसत्तम ॥४४॥
त्रिसप्तति समाख्याता धातवोऽदादिके गणे । दादयो धातवो वेदाः परस्मैपदिनो मताः ॥४५॥

स्तन अहि ये स्वरितेत् है। स्यम् से आगे के धातु भा आदि उदात्त हैं ॥२८॥ सह अनुदात्तेत् है, केवल एक रम् आत्मनेपदी है, सद् आदि तीन उदात्तेत्, कुच् आदि चार उदात्तेत् हैं ॥२९॥

इसके अनन्तर हिक्क् आदि पैंतीस धातु स्वरितेत् हैं। श्रिञ् और भृञ् आदि चार स्वरितेत् हैं ॥३०॥ धेट् आदि छत्तीस परस्मैपदी हैं। स्मिङ् आदि अठारह धातु आत्मनेपदी हैं ॥३१॥ पूङ् आदि तीन अनुदात्तेत् हैं। हृञ् धातु परस्मैपदी है। गुप् से लेकर तीन धातु आत्मनेपदी हैं ॥३२॥ रभ् आदि धातु अनुदात्तेत् हैं। ञिक्ष्विदा उदात्तेत् हैं। स्कम्भु आदि पन्द्रह परस्मैपदी हैं ॥३३॥ कित् धातु उदात्तेत् है। दान् शान् स्वरितेत् उभयपदी हैं। पच् आदि नव परस्मैपदी हैं ॥३४॥ परिभाषणार्थक वद् और वच् आदि तीन स्वरितेत् हैं। ये एक हजार छः भ्वादि धातु हैं ॥३५॥

वद् और हन् परस्मैपदी हैं। द्विष् आदि चार धातु स्वरितेत् हैं ॥३६॥ यहाँ एक चक्षिङ् धातु आत्मनेपदी है। इर आदि तेरह अनुदात्तेत् हैं ॥३७॥ मुने! वैयाकरणों ने षूङ् और शीङ् दोनों धातुओं को आत्मनेपदी कहा है। षु आदि सात परस्मैपदी हैं ॥३८॥ मुनिवर! ऊर्णु धातु स्वरितेत् कहा गया है। घु आदि तीन परस्मैपदी हैं ॥३९॥ नारद! ष्टुञ् को भी शाब्दिकों ने परस्मैपदी माना है ॥४०॥ रा प्रभृति अठारह परस्मैपदी हैं। नारद! केवल इङ् धातु आत्मनेपदी है ॥४१॥ विद् आदि चार धातु परस्मैदी हैं। जिष्वप् शये परस्मैपदी धातु है ॥४२॥ श्वस् आदि धातु उदात्तेत् हैं। मुनिश्रेष्ठ! 'चर्करीतं च' यह यङ्लुगन्त का प्रतीक है। यह अदादि माना गया है। ह्नुङ् अनुदात्तेत् हैं अदादि गण में तिहत्तर धातु परिगणित हैं।

दा आदि चार धातु परस्मैपदी हैं ॥४३-४५॥ भृञ् धातु स्वरितेत् और ओहाक् उदात्तेत् है। माङ्, हाङ् औ

स्वरितेद्वै भृञाख्यात उदात्तेद्वाक् प्रकीर्तितः । माङ्हाङ्द्वावनुदात्तेतौ स्वरितेद्वानधातुषु ॥४६॥
णिजिराद्यास्त्रयश्चापि स्वरितेत उदाहृताः । घमुखा द्वादश तथा परस्मैपदिनो मताः ॥४७॥
द्वाविंशतिरिहोद्दिष्टा धातवो ह्वादिके गणे । परस्मैपदिनः प्रोक्ता दिवाद्याः पंचविंशतिः ॥४८॥
आत्मनेपदिनौ धातू पूङ्दूङ्द्वावपि नारद । ओदितः पूङ्मुखाः सप्त आत्मनेपदिनो मताः ॥४९॥
आत्मनेपदिनो विप्र दीङ्मुखास्त्विह कीर्तिताः । स्यतिप्रभृतयो वेदाः परस्मैपदिनो मताः ॥५०॥
जन्यादयः पंचदश आत्मनेपदिनो मुने । मृषाद्याः स्वरितेतस्तु धातवः पंच कीर्तिताः ॥५१॥
एकादश पदाद्यास्तु ह्यात्मनेपदिनो मताः । राधोः कर्मक एवात्र वृद्धौ स्वादिचुरादिके ॥५२॥
उदात्तेतस्तुदाद्यास्तु त्रयोदश समीरिताः । परस्मैपदिनोऽष्टात्र रधाद्याःपरिकीर्तिताः ॥५३॥
समाद्याश्चाप्युदात्तेतः षट्चत्वारिंशदुदीरिताः । चत्वारिंशच्छतं चापि दिवादौ धातवो मताः ॥५४॥
स्वादयः स्वरितेत्तोक्ता धातवः परिकीर्तिताः । सप्ताख्यातो दुनोतिस्तु परस्मैपदिनो मुने ॥५५॥
अष्टिघावनुदात्तेतौ धातू द्वौ परिकीर्तितौ । परस्मैपदिनस्त्वत्र तिकाद्यास्तु चतुर्दश ॥५६॥
द्वात्रिंशद्धातवः प्रोक्ता विप्रेन्द्र स्वादिके गणे । स्वरितेतः षडाख्यातास्तुदाद्या मुनिसत्तम ॥५७॥
ऋष्युदात्तेज्जुषीपूर्वा आत्मनेपदिनोर्णवाः । व्रश्चादय उदात्तेतः प्रोक्ताः पंचाधिकं शतम् ॥५८॥
गुर्युदात्तेदिहोद्दिष्टो धातुरेको मुनीश्वर । णूमुखाश्चैव चत्वारः परस्मैपदिनो मताः ॥५९॥
कुङाख्यातोऽनुदात्तेच्च कुटाद्याः पूर्तिमागताः । पृङ् मृङ् चात्मनेभाषौ षट् परस्मैपदे रिषेः ॥६०॥
आत्मनेपदिनौ धातू दृङ्धृङ्द्वौ चाप्युदाहृतौ । प्रच्छादिषोडशाख्याताः परस्मैपदिनो मुने ॥६१॥
स्वरितेतः षट् ततश्च प्रोक्ता मिलमुखा मुने । कृतीप्रभृतयश्चापि परस्मैपदिनस्त्रयः ॥६२॥

धातुयें अनुदात्तेत् हैं स्वरितेत् धातुओं से आनच् प्रत्यय होता है ॥४६॥ णिजिर् आदि तीनों धातु स्वरितेत् हैं। घृ आदि बारह धातु परस्मैपदी है ॥४७॥ जुहोत्यादि गण में बाईस धातुयें हैं।

दिव् आदि पचीस धातु परस्मैपदी हैं ॥४८॥ नारद ! षूङ् और दूङ् दोनों आत्मनेपदी धातु धातु हैं। पूङ् आदि सात ओदित धातु आत्मपदी हैं ॥४९॥ विप्र ! दीङ् प्रभृति धातु आत्मनेपदी हैं। षो आदि चार धातु परस्मैपदी हैं ॥५०॥ मुने ! जनी आदि पन्द्रह धातु आत्मनेपदी हैं। मृष् आदि पांच धातु स्वरितेत् हैं ॥५१॥ पद् आदि ग्यारह धातु आत्मनेपदी हैं। अकर्मक राध् धातु से वृद्धि अर्थ में श्यन् प्रत्यय होता है। यह स्वादि और चुरादि भी है ॥५२॥

तुद् आदि तेरह धातु उदात्तेत् हैं। रध् आदि आठ धातु परस्मैपदी हैं ॥५३॥ सम् आदि छियालीस धातु उदात्तेत् हैं। दिवादि गण में एक सौ चालीस धातु हैं ॥५४॥ सु आदि नव धातु स्वरितेत् हैं। मुने ! दु आदि सात धातु परस्मैपदी हैं ॥५५॥ अश् और टिघ् धातु अनुदात्तेत् हैं। तिक् आदि चौदह धातु परस्मैपदी हैं ॥५६॥ विप्रेन्द्र ! स्वादि गण में बत्तीस धातु हैं। मुनिवर्य ! तुद् आदि छः धातु स्वरितेत् हैं ॥५७॥

ऋषि धातु उदात्तेत् है और जुष् आदि चार धातु आत्मनेपदी हैं। व्रश्च् आदि एक सौ पाँच धातु उदात्तेत् हैं ॥५८॥ मुनीश्वर ! केवल गुरी धातु उदात्तेत् है। णू आदि चार धातु परस्मैपदी हैं ॥५९॥ कुङ् अनुदात्तेत् है कुट् भी अनुदात्तेत् ही है। पृङ् मृङ् आत्मनेपदी तथा रि और पि आदि छः परस्मैपदी हैं ॥६०॥ दृङ् और धृङ् दो धातु आत्मनेपदी हैं। मुने ! प्रच्छ् आदि सोलह धातु परस्मैपदी हैं ॥६१॥ मुने ! इसके अनन्तर मिल् आदि सोलह धातु स्वरितेत् हैं। कृत् आदि तीन धातु परस्मैपदी हैं। तुदादि गण में एक सौ सत्तावन धातु हैं ॥६२॥

सप्त पंचाशदधिकास्तुदादौ धातवः शतम् । स्वरितेतो रुधोनंदा परस्मैभाषितः कृती ।।६३।।
जिइंधीतोऽनुदातेतस्त्रयो धातव ईरिताः । उदात्तेतः शिषपिषरुधाद्याः पंचविंशतिः ।।६४।।
स्वरितेतस्तनोः सप्त धातवः परिकीर्तिताः । मनुवन्वात्मनेभाषौ स्वरितेत्कृञुदाहृतः ।।६५।।
ततो द्वौ कीर्तितौ विप्र धातवो दश शाब्दिकैः । क्र्याद्याः सप्तोभयेभाषाः सौत्राः स्तंभ्वादिकास्तथा ।।६६।।
परस्मैपदिनः प्रोक्ताश्चत्वारोऽपि मुनीश्वर । द्वाविंशतिरुदात्तेतः क्रुधाद्या धातवो मताः ।।६७।।
वृङात्मनेपदी धातुः श्रेयाद्याश्चैकविंशतिः । परस्मैपदिनश्चाथ स्वरितेद्ग्रह एव च ।।६८।।
क्र्यादिकेषु द्विपंचाशद्धातवः कीर्तिता बुधैः । चुराद्या धातवो ज्यन्ता षट्त्रिंशदधिकं शतम् ।।६९।।
चित्याद्यष्टादशाख्याता आत्मनेपदिनो मुने । चर्चाद्या आवृषीयास्तु ज्यंता वा परिकीर्तिताः ।।७०।।
अदंता धातवश्चैव चत्वारिंशत्तथाष्ट च । पदाद्यास्तु दश प्रोक्ता धातवो ह्यात्मनेपदे ।।७१।।
सूत्राद्या अष्ट चाप्यत्र ज्यन्ता प्रोक्ता मनीषिभिः । धात्वर्थे प्रातिपदिकादबहुलं चेष्ठवन्मतम् ।।७२।।
तत्करोति तदाचष्टे हेतुमत्यपि णिर्मतः । धात्वर्थे कर्तृकरणाच्चित्राद्याश्चापि धातवः ।।७३।।
अष्ट संग्राम आख्यातोऽनुदात्तेच्छाब्दिकैर्बुधैः । स्तोमाद्याः षोडश तथा अदंतस्य निदर्शनम् ।।७४।।
तथा बाहुलकादन्ये सौत्रलौकिकवैदिकाः । सर्वे सर्वगणीयाश्च तथानेकार्थवाचिनः ।।७५।।
सनाद्येता धातवश्च तथा वै नामधातवः । एवमानंत्यमुद्भाव्यं धातूनामिह नारद । ।।७६।।
संक्षेपोऽयं समुद्दिष्टो विस्तरस्तत्र तत्र च

रुध् और नंद धातु स्वरितेत् हैं। कृती धातु परस्मैपदी है। त्रिइन्धी आदि तीन धातु अनुदात्तेत् हैं। शिष्, पिष्, रुध् आदि पचीस धातु उदात्तेत् हैं ।।६३-६४।।

तनु आदि सात धातु स्वरितेत् हैं। वनु और मनु धातु आत्मनेपदी हैंकृञ् को स्वरितेत् कहा गया है। विप्र ! इसके अनन्तर वैयाकरणों ने तनादिगण में दस धातुओं की गणना की है ।।६५½।।

क्री आदि सात उभयपदी हैं। सूत्र में पढ़े गए स्तंभु आदि चार धातु भी परस्मैपदी हैं। मुनीश्वर ! क्रुध् आदि बाईस धातु उदात्तेत् हैं ।।६६-६७।। वृङ् धातु आत्मनेपदी है और श्रंथ् आदि इक्कीस धातु परस्मैपदी हैं। ग्रह धातु स्वरितेत् है। विद्वानों ने क्र्यादिगण में बावन धातु पढ़े हैं ।।६८½।।

चुरादि गण में णित् धातु तक एक सौ छत्तीस धातु हैं। मुने ! चिती आदि अठारह धातु आत्मनेपदी हैं। चर्च से लेकर घृषी धातु तक धातु णिन्त कहे गए हैं ।।६९-७०।। अदन्त अडतालीस धातु भी उभयपदी हैं तथा पद आदि दश धातु आत्मनेपदी हैं ।।७१।। मनीषियों ने सूत्र आदि आठ धातुओं को णित् कहा है। धात्वर्थ में प्रातिपदिक से णिच् और इष्ठवद्भाव विकल्प से होता है ।।७२।। तत्करोति, (उसको करता है) और तदाचष्टे (करने की इच्छा रखता है) अर्थ में, प्रेरणार्थक क्रियाओं से णिच् प्रत्यय होता है। धात्वर्थ की विवक्षा में कर्त्ता और करण से भी णिच् प्रत्यय होता है। चित्र आदि आठ धातु उदात्तेत् है। इनसे णिच् प्रत्यय होता है। विद्वान वैयाकरणों ने संग्राम आदि आठ धातुओं को अनुदात्तेत् कहा है। स्तोम आदि सोलह और अदन्त धातुओं से जो णिच् कहा गया है यह निदर्शन केवल बाहुलक है ।।७३-७४।। इसके अतिरिक्त और भी धातु हैं, जिनसे णिच् प्रत्यय होता है। इसी प्रकार बाहुलक के बल से अन्य सूत्र में पढ़े गए और लोक वेद प्रसिद्ध धातुओं से भी णिच् प्रत्यय होता है। अथवा यों कहा जाय कि बाहुलक से सब धातु सब गणों में कहे गए हैं और सभी अनेकार्थ वाची हैं ।।७५।। नारद ! इन धातुओं के अतिरिक्ति सन्, क्यच्, काम्यच् आदि प्रत्यय जिनके अन्त में हों, उनकी भी धातु संज्ञा होती है। नाम धातु भी धातु ही हैं। नारद ! इस प्रकार अनन्त धातुओं की उद्भावना हो सकती है। यहाँ संक्षेप से सब कुछ बताया गया है। इसका विस्तार तत्सम्बधी ग्रन्थों में है ।।७६।।

ऊदृदंतैर्यौति रुक्ष्णुशीङ्स्नुनुक्षुश्विडीङ्श्रिभिः । वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजंतेषु निहताः स्मृताः ॥७७॥
शक्लप्पच्मुच्रिच्वच्विच्सिच्प्रच्छित्यज्निजिर्भजः । भञ्ज्भुज्भ्रस्ज्मस्जियज्युज्रुज्रञ्ज्-
विजिर्स्वञ्जिसञ्जसृजः ॥७८॥
अद्क्षुद्खिद्छिद्तुदिनुदः पद्यभिद्विद्यतिर्विनद् । शद्सदी स्विद्यतिरस्कन्दिर्हदी क्रुधक्षुधि-
बुध्यती ॥७९॥
बंधिर्युधिरुधीराधिव्यध्शुधः साधिसिध्यती । मन्यहन्नाप्क्षिप्छुपितप्तिपस्तृप्यतिदृप्यती ॥८०॥
लिब्लुब्वप्शप्स्वप्सृपियरभरभलभगमनम् यमो रमिः । कुशिर्दंशिदिशि दृश्मृश्रिश्रुश्लिश्-
विश्स्पृशः कृषिः ॥८१॥
त्विष्तुष्दुष्पुष्पिष्विष्शिष्शुष्श्लिष्यतयो घसिः । वसतिर्दह्दिहिदुहो नह्मिह्रुह्लिह्-
वहिस्तथा ॥८२॥
अनुदात्ता हलंतेषु धातवो द्व्यधिकं शतम् । चाद्या निपाता गतयः प्राद्याः दिग्देशकालजाः ॥८३॥
शब्दाः प्रोक्ता ह्यनेकार्थाः सर्वलिंगा अपि द्विज । गणपाठः सूत्रपाठो धातुपाठस्तथैव च ॥८४॥
पाठोऽनुनासिकानां च परायणमिहोच्यते । शब्दाः सिद्धा वैदिकास्तु लौकिकाश्चापि नारद ॥८५॥
शब्दपरायणं तस्मात्कारणं शब्दसंग्रहे । लघुमार्गेण शब्दानां साधूनां संनिरूपणम् ॥८६॥
प्रकृतिप्रत्ययादेशलोपागममुखैः कृतम् । इत्थमेतत्समाख्यातं निरुक्तं किंचिदेव ते ॥८७॥
कात्स्न्र्येन वक्तुमानंत्यात्कोऽपि शक्तो न नारद

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे निरुक्तलक्षणनिरूपणं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

अजन्त धातुओं में जकारान्त, ऋकारान्त, यु, रु क्ष्णु, शीङ् स्नु, नु, क्षु, श्वि, डीङ्, श्रि, वृङ्, वृञ् इनको छोड़कर शेष धातु, अनुदात्तेत् हैं ॥७७॥ ककारान्तों में शक्, चकारान्तों में पच्, मुच्, रिच, वच्, विच्, सिच्, छान्त में केवल प्रच्छ्, जान्तो में त्यज्, निज्, भज्, भञ्ज्, भुज्, भ्रस्ज्, मस्ज्, यज्, युज्, रुज्, रञ्ज्, विजिर्, स्वञ्जि, सञ्ज् और सृज्, ॥७८॥ दान्तों में अद्, क्षुद्, खिद्, छिद्, तुद्, नुद्, पद्, भिद्, विद् (सत्ता) विद्, (विचारणे) शद्, सद्, स्विद्, स्कन्दिर्, हदी; धान्तों में क्रुध्, क्षुध्, बुध् ॥७९॥ बन्धि, युधि, रुध्, राध् व्यध्, शुध्, साधि, सिध्; नान्तो में मन्, हन्; पान्तधातुओं में आप्, क्षुप्, क्षिप्, तप्, तिप्, तृप्, दृप्, ॥८०॥ लिप्, लुप्, वप्, शप्, स्वप्, सृपि; भान्तों में यभ्, लभ्; मान्तों में गम्, नम्, यम्; शान्तधातुओं में, क्रुशि, दंश्, दिश्, मृश्, रिश्, रुश्, लिश्, विश्, स्पृश; षान्तों में कृष्, त्विष्, तुष्, द्विष्, दुष्, पुष्, पिष्, विष्, शिष्, श्लिष्, सान्तों में घस्, वस्; हान्तों में ह, दिह्, ह, दुह्, नह्, मिह्, रुह्, लिह् तथा वह् ॥८१-८२॥ हलन्तों में इतने एक सौ दो धातु अनुदात्त हैं। 'च' आदि को निपात संज्ञा होती है। 'प्र' आदि उपसर्ग 'गति' कहलाते हैं। भिन्न-भिन्न दिशा, देश और काल में प्रकट हुए शब्द अनेक अर्थों के बोधक होते हैं। विप्रवर ! वे देश कालों के भेद से सब स्त्री-लिंगों में प्रयुक्त होते हैं। गणपाठ, सूत्रपाठ, धातुपाठ और अनुनासिकों का पाठ यहाँ आवृत्ति-रूप में कहा गया हैं ॥८३-८४½॥ नारद ! वैदिक और लौकिक सभी शब्द नित्य सिद्ध हैं। इसलिए ऐसे सिद्ध (बने बनाये) शब्दों के ज्ञान के लिए पारायण पाठ आवश्यक है ॥८५½॥ सिद्ध शब्दों का ही प्रकृति, प्रत्यय, आदेश और आगम आदि के द्वारा लघुमार्ग से सम्यक् निरूपण किया जाता है। नारद ! इस प्रकार यहाँ सूक्ष्म रूप में शब्दों की निरुक्ति कही गई है। इसका पूर्ण रूप से वर्णन तो कोई नहीं कर सकता; क्योंकि शब्द अनन्त हैं ॥८६-८८॥

श्रीनारदीयमहापुराण में तिरपनवां अध्याय समाप्त ॥५३॥

अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सनंदन उवाच

ज्योतिषांगं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा । यस्य विज्ञान मात्रेण धर्मसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥१॥
त्रिस्कंधं ज्यौतिषं शास्त्रं चतुर्लक्षमुदाहृतम् । गणितं जातकं विप्र संहितास्कंधसंज्ञिताः ॥२॥
गणिते परिकर्मादि खगमध्यस्फुटक्रिये । अनुयोगश्चंद्रसूर्यग्रहणं चोदयास्तकम् ॥३॥
छाया शृङ्गोन्नतियुती पातसाधनमीरितम् । जातके राशिभेदाश्च ग्रहयोनिश्च योनिजम् ॥४॥
निषेकजन्मारिष्टानि ह्यायुर्दायो दशाक्रमः । कर्माजीवं चाष्टवर्गो राजयोगाश्च नाभसाः ॥५॥
चन्द्रयोगाः प्रव्रज्याख्या राशिशीलं च दृक्फलम् । ग्रहभावफलं चैवाश्रययोगप्रकीर्णके ॥६॥
अनिष्टयोगाः स्त्रीजन्मफलं निर्याणमेव च । नष्टजन्मविधानां च तथा द्रेष्काणलक्षणम् ॥७॥
संहिताशास्त्ररूपं च ग्रहचारोऽब्दलक्षणम् । तिथिवासरनक्षत्रयोगतिथ्यर्द्धसंज्ञकाः ॥८॥

अध्याय ५४

ज्योतिष वर्णन

सनन्दन बोले—अब मैं ज्योतिष शास्त्र का वर्णन कर रहा हूँ जिसका वर्णन पहले ब्रह्मा ने स्वयं किया है। और जिसके ज्ञानमात्र से मनुष्यों को धर्मसिद्धि प्राप्त हो जाती है। ज्योतिष शास्त्र तीन स्कन्धोंवाला है और चार लाख श्लोकों में वर्णित है। गणित, जातक (होरा) और संहिता इसके तीन स्कन्ध हैं। गणित में परिकर्म[1] ग्रहों की चाल और स्फुट क्रिया का वर्णन है। अनुयोग (देश, दिशा और काल ज्ञान) चन्द्र और सूर्य ग्रहण, उदय, अस्त, छायाधिकार, चन्द्रशृंगोन्नति,[2] ग्रहयुति (ग्रहों का योग) तथा पात (महापात-सूर्यचन्द्रमा के क्रान्तिसाम्य) का साधन-प्रकार कहा गया है ॥१-३½॥ जातकस्कन्ध में राशि भेद, ग्रहयोनि (ग्रहों की जाति, रूप और गुण आदि) वियोनिज (मानवता) जन्म-फल), गर्भाधान, जन्म, अरिष्ट, आयुर्दाय, दशाक्रम, कर्माजीव (आजीविका), अष्टकवर्ग, राजयोग, नाभसयोग, चन्द्रयोग, प्रव्रज्यायोग, राशिशील, ग्रहदृष्टिफल, ग्रहों के भावफल, आश्रययोग, प्रकीर्ण, अनिष्टयोग, स्त्रीजातकफल, निर्याण (मृत्युविषयक विचार), नष्ट-जन्म-विधान (अज्ञात जन्म-काल को जानने का प्रकार) तथा द्रेष्काणों के (राशि के तृतीय भाग (१० अंश) की 'द्रेष्काण' संज्ञा है) स्वरूप—इन सब विषयों का वर्णन है ॥४-७॥

अब संहितास्कन्ध के स्वरूप का परिचय दिया जाता है। उसमें ग्रहचार (ग्रहों की गति), वर्षलक्षण, तिथि, दिन, नक्षत्र, योग, करण, मुहूर्त, उपग्रह, सूर्य-संक्रान्ति, ग्रहगोचर, चन्द्रमा और तारा

---

१. योग, अन्तर; गुणन, भजन, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल—ये परिकर्म कहे गये हैं।

२. द्वितीया को चन्द्रोदय होता है, उसमें कभी चन्द्रमा का दक्षिण सींग और कभी उत्तर सींग (नोक) ऊपर को उठा रहता है, उसी को 'चन्द्रशृंगोन्नति' कहा गया है। ज्योतिष में उसके परिणाम का विचार किया गया है।

मुहूर्तो ग्रहाः सूर्यसंक्रांतिर्गोचरःक्रमात् । चंद्रताराबलं चैव सर्वलग्नार्तवाह्वयः ॥९॥
आधानपुंससीमंतजातनामान्नभुक्तयः । चौलङ्कर्णग्रयणं मौंजी क्षुरिकाबंधनं तथा ॥१०॥
समावर्तनवैवाहप्रतिष्ठासद्मलक्षणम् । यात्राप्रवेशनं सद्योवृष्टिः कर्मविलक्षणम् ॥११॥
उत्पत्तिलक्षणं चैव सर्वं संक्षेपतो ब्रुवे । एकं दश शतं चैव सहस्रायुतलक्षकम् ॥१२॥
प्रयुतं कोटिसंज्ञां चार्बुदमब्जं च खर्वकम् । निखर्वं च महापद्मं शंकुर्जलधिरेव च ॥१३॥
अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च संज्ञा दशगुणोत्तराः । क्रमादुत्क्रमतो वापि योगः कार्योत्तरं तथा ॥१४॥
हन्याद्गुणेन गुण्यं स्यात्तेनैवोपांतिमादिकान् । शुद्धेद्धरोयद्गुणश्च भाज्यांत्यात्तफलं मुने ॥१५॥
समांकतोऽथो वर्गःस्यात्तमेवाहुः कृतिं बुधः । अंत्यात्तु विषमात्यक्त्वा कृतिं मूलं न्यसेत्पृथक् ॥१६॥
द्विगुणोनामुना भक्ते फलं मूले न्यसेत्क्रमात् । तत्कृतिं च त्यजेद्विप्र मूलेन विभजेत्पुनः ॥१७॥

का बल, सम्पूर्ण लग्नों तथा ऋतुदर्शन का विचार, गर्भाधान, पुंसवन, सोमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्न-प्राशन, चूडाकरण, कर्णवेध, उपनयन, मौञ्जोबन्धन (वेदारम्भ), क्षुरिकाबन्धन, समावर्तन, विवाह, प्रतिष्ठा, गृहलक्षण, यात्रा, गृहप्रवेश, तत्काल वृष्टिज्ञान, कर्मवैलक्षण्य तथा उत्पत्ति का लक्षण—इन सब विषयों का संक्षेप से वर्णन करूँगा ॥८-११½॥

[अब गणित का प्रकरण प्रारंभ किया जाता है—] एक (इकाई), दस (दहाई), शत (सैकड़ा), सहस्र (हजार), अयुत (दस हजार), लक्ष (लाख), प्रयुत (दस लाख), कोटि करोड़, अर्बुद (दस करोड़), अब्ज (अरब), खर्व (दस अरब), निखर्व, (खर्व), महापद्म (दस खर्व), शंकु (नील), जलधि (दस नील), अन्त्य (पद्म), मध्य (दस पद्म), परार्ध (शंख) इत्यादि संख्याबोधक संज्ञाओं को उत्तरोत्तर दस गुना माना गया है। यथास्थानीय अंकों का योग या अन्तर क्रम या व्युत्क्रम से करें ॥१२-१४॥ गुण्य के अन्तिम अंक को गुणक से गुणा करें। फिर उसके पार्श्ववर्ती अंक को भी उसी गुणक से गुणा कर दें। इस तरह आदि अंक तक गुणा करने पर गुणनफल प्राप्त हो जाता है। मुने! इसी प्रकार भागफल जानने के लिए भी यत्न करना चाहिए जितने अंक से भाजक के साथ गुणा करने पर भाज्य में से घट जाय, वही अंक लब्धि अथवा भागफल होता है ॥१५॥ दो समान अंकों के गुणनफल को वर्ग कहा गया है। विद्वान् पुरुष उसी को कृति कहते हैं। (जैसे ४ वर्ग का ४×४=१६ और ९ का वर्ग ९×९=८१ होता है) [वर्गमूल जानने के लिए दाहिने अंक से लेकर बायें अंक तक अर्थात् आदि से अन्त तक विषम और सम का चिह्न कर देना चाहिए। खड़ी लकीर को विषम का और पड़ी को सम का चिह्न माना गया है]। अन्तिम विषम में जितने वर्ग घट सकें उतने घटा देना चाहिए। उस वर्ग का मूल लेकर उसे पृथक् रख देना चाहिए ॥१६॥ फिर द्विगुणित मूल से सम अंक में भाग दे और जो लब्धि आये उसका वर्ग विषम में घटा दे। फिर उसे दूना करके पंक्ति में रख दे। मुनीश्वर! इस प्रकार बार-बार करने से पंक्ति का आधा वर्गमूल होता है ॥१७½॥ समान तीन अंकों के गुणनफल को घन कहा गया है।

अब घनमूल निकालने की विधि बतायी जाती है—दाहिने के प्रथम अंक पर घन या विषम का चिह्न (खड़ी लकीर के रूप में) तथा उसके वामभाग में पार्श्ववर्ती दो अंकों पर (पड़ी लकीर के रूप में) अघन या सम का चिह्न लगावे। इसी प्रकार अन्तिम अंक तक एक घन (विषम) और दो अघन (सम) के चिह्न लगाने चाहिए। अन्तिम या विषम घन में जितने घन घट सकें उतने घटा ले। उस घन को अलग रखे। उसका घनमूल ले और उस घनमूल का वर्ग मरे, फिर उसमें तीन से गुणा करे। उससे आदि अंक में भाग दे, लब्धि को अलग लिख

एवं मुहुर्वर्गमूलं जायते च मुनीश्वर । समत्र्यङ्कहतिः प्रोक्तो घनस्तंत्रविधिः पदे ॥१८॥
प्रोच्यते विषमं त्वाद्यं समे द्वे च ततः पदम् । विशोध्यं विषमादंत्याद्घनं तन्मूलमुच्यते ॥१९॥
त्रिघ्नाद्भजेन्मूलकृत्या समं मूले न्यसेत्फलम् । तत्कृतिस्त्वेन निहतान्त्रिघ्नीं चापि विशोधयेत् ॥२०॥
घनं च विषमादेवं घनमूलं मुहुर्भवेत् । अन्योन्यहारनिहतौ हरांशौ तु समुच्छिदा ॥२१॥
लवा लवघ्नाश्च हरा हरघ्ना हि सवर्णनम् । भागप्रभागे विज्ञेयं मुने शास्त्रार्थचिंतकैः ॥२२॥
अनुबंधेऽपवाहे चैकस्य चेदधिकोनकः । भागास्तलस्थहारेण हरं स्वांशाधिकेन तान् ॥२३॥
ऊनेन चापि गुणयेद्धनर्णं चिंतयेत्तथा । कार्यस्तुल्यहरांशानां योगश्चाप्यंततो मुने ॥२४॥
अहारराशौ रूपं तु कल्पयेद्धरमप्यथा । अंशाहतिश्छेदघातहृद्भिन्नगुणने फलम् ॥२५॥
छेदं चापि लवं विद्वन्परिवर्त्य हरस्य च । शेषः कार्यो भागहारे कर्तव्यो गुणनाविधिः ॥२६॥
हारांशयोः कृती वर्गे घनौ घनविधौ मुने । पदसिद्ध्यै पदे कुर्यादथो स्वं सर्वतश्चस्वम् ॥२७॥
छेदं गुणं गुणं छेदं वर्गं मूलं पदं कृतिम् । ऋणं स्वं स्वमृणं कुर्याद्दृश्ये राशिप्रसिद्धये ॥२८॥

ले, उस लब्धि का वर्ग करे और और उसमें अन्त्य (प्रथम मूलाङ्क) एवं तीन से गुणा करे, फिर उसके बाद के अंक में उसे घटा दे तथा अलग रखी हुई लब्धि के घन को अगले घन अंक में घटा दे । इस प्रकार बार-बार करने से घनमूल सिद्ध होता है ॥१८-२०½॥

भिन्न अंकों के परस्पर हर से हर (भाजक) और अंश (भाज्य) दोनों को गुणा कर देने से सबके नीचे बराबर हर हो जाता है । भागप्रभाग में अंश को अंश से और हर से गुणा करना चाहिए । भागानुबन्ध एवं भागापवाह में यदि एक अंक अपने अंश से अधिक या ऊन हो तो तलस्थ हर ऊपर वाले हर को गुणा कर देना चाहिए । उसके बाद अपने अंश से अधिक ऊन किये हुए हर से (अर्थात् भागानुबन्ध में हर अंश का योग करके और भागापवाह में हर अंश का अन्तर करके) अंश को गुणा कर देना चाहिए ।

ऐसा करने से भागानुबन्ध और भागापवाह का फल सिद्ध होगा । जिसके नीचे हर न हो उसके नीचे एक हर मान लेना चाहिए । भिन्न गुणन-साधन में अंश-अंश का गुणन करना और हर-हर के गुणन से भाग देना चाहिए । इससे भिन्न का गुणन—फल प्राप्त होगा । (यथा $\frac{२}{७} \times \frac{३}{८}$ यहाँ २ और ३ अंश हैं और ७, ८ हर हैं, फिर इनमें अंश-अंश से गुणा करने पर २ × ३ = ६ हुआ और हर-हर के गुणन से ७ × ८ = ५६ हुआ । फिर ६ ÷ ५६ करने से $\frac{६}{५६}$ जिसे दो से काटने पर $\frac{३}{२८}$ उत्तर हुआ) ॥२१-२५॥

विद्वन् ! भिन्न-संख्या के भाग में भाजक के हर और अंश को परिवर्तित कर (हर को अंश और अंश को हर बनाकर) फिर भाज्य के हर-अंश के साथ गुणन-क्रिया करना चाहिए, इससे भागफल सिद्ध होता है। (यथा $\frac{३}{८} \div \frac{४}{५}$ में हर और अंश के परिवर्तन से $\frac{३}{८} \times \frac{५}{४} = \frac{१५}{३२}$ यही भागफल हुआ) ॥

भिन्नांक के वर्गादि-साधन में यदि वर्ग करना हो तो हर और अंश दोनों का वर्ग करे तथा घन करना हो तो दोनों का घन करे। इसी प्रकार वर्गमूल निकालना हो तो दोनों का वर्गमूल और घनमूल निकालना हो तो भी दोनों का घनमूल निकालना चाहिए। (यथा—$\frac{३}{७}$ का वर्ग $\frac{९}{४९}$ और मूल होगा $\frac{३}{७}$, इसी प्रकार $\frac{३}{७}$ का घन और $\frac{२७}{३४३}$ मूल $\frac{३}{७}$ होगा) ॥२६-२७॥

विलोमविधि से राशि जानने के लिए दृश्य में हर को गुणक, गुणक को हर, वर्ग को मूल, मूल को वर्ग, ऋण को धन और धन को ऋण बनाकर अन्त में उलटी क्रिया करने से राशि (इष्ट संख्या) प्राप्त होती है।

अथ स्वांशाधिकोने तु लवाढ्योनो हरो हरः । अंशस्त्वविकृतस्तत्र विलोमे शेषमुक्तवत् ॥२९॥
उद्दिष्टराशिः संक्षिप्तो हृतोंऽशै रहितो युतः । इष्टघ्नदृष्टेनैतेन भक्तराशिरनीशितः ॥३०॥
योगोन्तरेणोनयुतोद्वितोराशीतसंक्रमे । राश्यंतरहृतं वर्गोत्तरं योगसुतश्च तौ ॥३१॥
गजघ्नेष्टकृतिर्व्येका दलिता चेष्टभाजिता । एकोऽस्य वर्गो दलितः सैको राशिः परो मतः ॥३२॥
द्विगुणेष्टहृतं रूपं श्रेष्ठं प्राग्रूपकं परम् । वर्गयोगांतरे व्येके राश्योर्वर्गौस्त एतयोः ॥३३॥
इष्टवर्गकृतिश्चेष्टघनोष्टघ्नौ च सैकको । एपीस्यातामुभे व्यक्ते गणित व्यक्तमेव च ॥३४॥
गुणघ्नमूलोनयुतः सगुणार्द्धे कृतं पदम् । दृष्टस्य च गुणार्द्धो न युतं वर्गीकृतं गुणः ॥३५॥
यदा लघोनयुग्राशिर्दृश्यं भागोनयुग्भुवा । भक्तं तथा मूलगुणं ताभ्यां साध्योथ व्यक्तवत् ॥३६॥

विशेषता यह है कि जहाँ अपना अंश जोड़ा गया हो, वहाँ हर में अंश को घटाकर हर कल्पना करे और अंश ज्यों का त्यों रहे। फिर दृश्य राशि में विलोम क्रिया उक्त रीति से करे तो अभीष्ट राशि होती है ॥२८-२९॥

अभीष्ट संख्या जानने के लिए इष्ट राशि की कल्पना करनी चाहिए। फिर प्रश्नकर्ताके कथनानुसार उस राशि को गुणा या भाग करना चाहिए। कोई अंश घटाने को कहा गया हो तो जोड़ दे अर्थात् प्रश्न में जो-जो क्रियायें कही गई हों, वे इष्ट राशि में करके फिर जो निष्पन्न हो, उससे कल्पित इष्ट-गुणित दृष्ट में भाग दे, उससे जो लब्धि प्राप्त हो, वही इष्ट राशि है ॥३०॥

संक्रमण-गणित में (यदि दो संख्याओं का योग और अन्तर ज्ञात हो तो) योग को दो जगह लिखकर एक जगह अन्तर को जोड़कर आधा करे तो एक संख्या प्राप्त होगी और दूसरी जगह अन्तर को घटाकर आधा करे तो दूसरी संख्या प्राप्त होगी—इस प्रकार दोनों राशियाँ (संख्यायें) ज्ञात हो जातीं वर्गसंक्रमण में (यदि दो संख्याओं का वर्गान्तर तथा अन्तर ज्ञात हो तो) वर्गान्तर में अन्तर से भाग देने पर जो लब्धि आती है, वही उनका योग है; योग का ज्ञान हो जाने पर फिर पूर्वोक्त प्रकार से दोनों संख्याओं का ज्ञान करना चाहिए ॥३१॥

वर्गकर्मगणित में इष्ट का वर्ग करके उसमें आठ से गुणा करे, फिर एक घटा दे, उसका आधा करे। तत्पश्चात्—उसमें इष्ट से भाग देने से एक राशि प्राप्त होगी। फिर उसका वर्ग करके आधा करे और उसमें एक जोड़ दे तो दूसरी संख्या प्राप्त होगी। अथवा कोई इष्ट कल्पना करके उस द्विगुणित इष्ट से १ में भाग देकर लब्धि में इष्ट को जोड़े तो प्रथम संख्या होगी और दूसरी संख्या १ होगी। ये दोनों संख्यायें वे ही होंगी, जिनके वर्गों के योग और अन्तर में एक घटाने पर भी वर्गाङ्क ही शेष रहता है। किसी इष्ट के वर्ग का वर्ग तथा पृथक् उसी का घन करके दोनों को पृथक्-पृथक् आठ से गुणा करे। फिर पहले में एक जोड़े तो दोनों संख्यायें ज्ञात होंगी। यह विधि व्यक्त और अव्यक्त दोनों गणितों में उपयुक्त है ॥३२-३४॥

गुणकर्म में अपने इष्टाङ्कगुणित मूल से ऊन या युक्त होकर यदि कोई संख्या दृश्य हुई तो मूल गुणक के आधे का वर्ग दृश्य-संख्या में जोड़कर मूल लेना चाहिए। उसमें क्रम से मूल गुणक का आधा जोड़ना और घटाना चाहिए। (अर्थात् जहाँ इष्टगुणित मूल से ऊन होकर दृश्य हो वहाँ गुणार्ध को जोड़ना तथा यदि इष्टगुणित मूल युक्त होकर दृश्य हो तो उक्त मूल में गुणकार्ध घटाना चाहिए।) फिर उसका वर्ग कर लेने से प्रश्नकर्ता की को अभीष्ट राशि (संख्या) सिद्ध होती है। यदि राशि मूलोन या मूलयुक्त होकर पुनः अपने किसी भाग से भी ऊन या युत होकर दृश्य हो तो उस भाग को १ में ऊन या युत कर (यदि भाग ऊन हुआ हो तो घटा करके और यदि युत हुआ हो तो जोड़ करके) उसके द्वारा पृथक्-पृथक् दृश्य और मूल गुणक में भाग दे; फिर इस नूतन दृश्य और मूल गुणक से पूर्ववत् राशि का साधन करना चाहिए ॥३५-३६॥

प्रमाणेच्छे सजातीये आद्यंते मध्यगं फलम् । इच्छन्नमाद्यहृत्सेष्टं फलं व्यस्ते विपर्ययात् ॥३७॥
पंचरास्यादिकेऽन्योन्यपक्षं कृत्वा फलच्छिदाम् । बहुराशिवधे भक्ते फलं स्वल्पवधेन च ॥३८॥
इष्टकर्मवधेमूलं च्युतं मिश्रात्कलांतरे । मानघ्नकालश्चातीतकालाघ्नफलसंहृताः ॥३९॥
स्वयोगभक्तानिघ्नाः स्युः संप्रयुक्तदलानि च । बहुराशिफलात्स्वल्पराशिमासफलं बहु ॥४०॥
चेद्राशिविवरं मासफलांतरहृतं च यः । क्षेपा मिश्रहताः क्षेपयोगभक्ताः फलानि च ॥४१॥
भजेच्छिदोंशैस्तैर्मिश्रै रूपं कालश्च पूर्तिकृत् । पूर्णो गच्छेत्समेध्यव्येसमेवर्गोद्धितेत्यतः ॥४२॥

(त्रैराशिक में) प्रमाण और इच्छा ये समान जाति के होते हैं। इन्हें आदि और अन्त में रखना चाहिए। फल भिन्न जाति का है, अतः उसे मध्य में रखना चाहिए। फल को इच्छा से गुणा करके प्रमाण के द्वारा भाग देने से लब्धि इष्टफल होती है। (यह क्रम त्रैराशिक में बताया गया है)। व्यस्त त्रैराशिक में इससे विपरीत क्रिया करनी चाहिए। अर्थात् प्रमाण फल को प्रमाण से गुणा करके इच्छा से भाग देने पर लब्धि इष्टफल होती है। (प्रमाण, प्रमाण-फल और इच्छा—इन तीन राशियों को जानकर इच्छाफल जानने की क्रिया को त्रैराशिक कहते हैं) ॥३७॥

पञ्चराशिक, सप्तराशिक (नवराशिक, एकादशराशिक) आदि में फल और हरों को परस्पर पक्ष में परिवर्तन करके (प्रमाण पक्ष वाले को इच्छा-पक्ष में और इच्छा पक्ष वाले को प्रमाण-पक्ष में रखकर) अधिक राशियों के घात में अल्पराशि के घात से भाग देने पर जो लब्धि आये, वही इच्छाफल है ॥३८॥ मिश्रधन को इष्ट मानकर इष्टकर्म से मूल-धन का ज्ञान करे, उसको मिश्रधन में घटाने से कालान्तर (सूद) प्राप्त होता है। अपने-अपने प्रमाण धन से अपने-अपने काल को गुणा करना, उसमें अपने-अपने व्यतीत काल और फल के घात (गुणा) से भाग देना, लब्धि को पृथक् रहने देना, उन सब में उन्हीं के योग का पृथक्-पृथक् भाग देना तथा सबको मिश्रधन से गुणा कर देना चाहिए, फिर क्रम से प्रयुक्त व्यापार में लगाये हुए धन खण्ड के प्रमाण ज्ञात होते हैं ॥३९½॥

पञ्चराशिकादि में फल और हर को अन्योन्यपक्षनयन करने से इच्छा-पक्ष में फल के चले जाने से इच्छा-पक्ष बहुराशि और प्रमाणपक्ष स्वल्पराशि माना गया है। इसी गणित के उदाहरण में जब इच्छाफल जानकर मूलधन प्राप्त करना हो तो फलों को परस्पर पक्ष में परिवर्तन करने प्रमाणपक्ष (स्वल्पराशि) का फल ही बहुराशि (इच्छाफल) से अधिक होगा। यहाँ राशिजफल को इष्टमास और प्रमाण-फल के गुणन से भाग देने पर मूलधन होता है ४०½॥

प्रक्षेप (पूंजी के अंशों) को पृथक्-पृथक् मिश्रधन से गुणाकर देना और उसमें प्रक्षेप के योग से भाग देना चाहिए। इससे पृथक्-पृथक् फल प्राप्त होते हैं। वापी आदि पूरण के प्रश्न में—अपने-अपने अंशों से हर में भाग देना, फिर उन सबके योग से १ में भाग देने पर वापी के भरने के समय का ज्ञान होता है ॥४१½॥

(द्विगुणचयादि-वृद्धि में फल का साधन)—(जहाँ द्विगुण-त्रिगुण आदि चय हो वहाँ) पद यदि विषम संख्या (३, ५, ७ आदि) हो तो उसमें १ घटाकर गुणक लिखना चाहिए। यदि पद सम हो तो आधा करके वर्ग-चिह्न लिखना चाहिए। इस प्रकार एक घटाने और आधा करने में भी जब विषमांक हो तब गुणकचिह्न, जब समांक हो तब वर्ग-चिह्न करना एवं जब तक पद की कुल संख्या समाप्त न हो जाय तब तक करते रहना

व्यस्तं गच्छतं फलं यद् गुणवर्गं भचहि तत् । व्येकं व्येकगुणाप्तं च प्राघ्नं मानं गुणोत्तरे ॥४३॥
भुजकोटिकृतियोगमूलं कर्णश्च दोर्भवेत् । श्रुतिकृत्यंतरपदं कोटिर्दोः कर्णवर्गयोः ॥४४॥
विवरात्तत्कर्णपदं क्षेत्रे त्रिचतुरस्रके । राश्योरंतरवर्गं च द्विघ्ने घाते युते तयोः ॥४५॥
वर्गयोगोथ योगांतहृतिर्वर्गांतरं भवेत् । व्यास आकृतिसंक्षण्णोव्यासास्यात्परिधिमुने ॥४६॥
ज्याव्यासयोगविवराहतमूलोनितोऽर्द्धितः । व्यासः शरः शरोनाच्च व्यासाच्छरगुणात्पदम् ॥४७॥
द्विघ्नं जीवाथ जीवार्द्धवर्गे शरहृते युते । व्यासोष्टतेभवेदेवं प्रोक्तं गणितकोविदैः ॥४८॥
चापोननिघ्नः परिधिः प्रागाङ्कः परिधेः कृते । तुर्यांशेन शरघ्नेनाद्ये निनाद्यं चतुर्गणम् ॥४९॥
व्यासघ्नं प्रभजेद्विप्र ज्या काशं जायते स्फुटा । ज्यांघ्रीबुघ्नोवृत्तवर्गोब्धिघ्नव्यासाढ्यमौर्विहृत् ॥५०॥

चाहिए। फिर अन्त्य चिह्न से उलटा गुणज और वर्गफल साधन करके आद्य चिह्न तक जो फल हो, उसमें १ घटाकर शेष में एकोन गुणक से भाग देना चाहिए। लब्धि को आदि अंक से गुणा करने पर सर्वधन होता है ॥४२-४३॥

(क्षेत्रव्यवहार—रेखागणित-प्रकरण)—भुज (लम्ब) और कोटि (आधार) के वर्गों के योग का मूल कर्ण होता है, भुज और कर्ण के वर्गान्तर का मूल कोटि होता है तथा कोटि एवं कर्ण के वर्गान्तर का मूल भुज होता है। यह बात त्रिभुज अथवा चतुर्भुज क्षेत्र के लिए कही गई है। अथवा भुज और कोटि की राशियों के अन्तरवर्ग में उन्हीं दोनों राशियों के गुणनफल का दूना जोड़ दे तो उन राशियों के वर्गों का योग होता है अथवा उन्हीं दोनों राशियों के योग और अन्तर का गुणनफल उनके वर्गों का अन्तर होता है ॥४४-४५½॥

(अब वृत्त के विषय में बताते हैं।)

मुने! व्यास को २२ से गुणा करना और ७ से भाग देना चाहिए। इससे स्थूल परिधि का ज्ञान होता है ॥४६॥ वृत्त की ज्या (जीवा) और व्यास का योग एक जगह रखना और अन्तर को दूसरी जगह रखना चाहिए। फिर इन दोनों का (गुणा) करना चाहिए। उस गुणनफल का वर्ग मूल लेकर उसको व्यास में घटा देना चाहिए। फिर उसका आधा करे, वही 'शर' होगा। व्यास में शर को घटाना, अन्तर को शर से गुणा करना, उसका मूल लेकर उसका दूना करना चाहिए, तो 'जीवा' हो जायगी। जीवा का आधा करें उसका वर्ग करें, शर से भाग देना और लब्धि में शर को जोड़ दें तो व्यास का मान होगा ॥४७-४८॥

परिधि और चाप की नाप ज्ञात होने पर जीवा की लम्बाई निकालना।

परिधि से चाप को घटाकर शेष में चाप से ही गुणा करने पर गुणनफल 'प्रथमाङ्क' कहलाता है। परिधि का वर्ग करें, उसका चौथा भाग लें, उसे पाँच से गुणा करें और उसमें 'प्रथम' को घटा दे; यह भाजक होगा। चतुर्गुणित व्यास को प्रथम से गुणा करने पर भाज्य प्राप्त हुआ। भाज्य में भाजक से भाग देने पर जीवा सात हो जायगी ॥४९½॥

व्यास को चार से गुणा करके उसमें जीवा को जोड़ दें, यह भाजक हुआ। परिधि के वर्ग को जीवा की चौथाई और पाँच से गुणा करें, यह भाज्य हुआ। भाजक से भाज्य में भाग दें, जो लब्धि आवे, उसे परिधि के वर्ग के चतुर्थांश में घटा दें और शेष का मूल लें, उसे वृत्त (परिधि) के आधे में घटा देने पर धनु (चाप) प्राप्त होगा ॥५०½॥

लब्धोनवृत्तवर्गाद्विपदेर्धात्पतिते धनुः । स्थूलमध्यापृवन्नवेधो वृत्तांकाशेषभागिकः ॥५१॥
वृत्तांगाशकृतिर्वेधनिघ्रीयनकरामितौ । वारिव्यासहतं दैर्घ्यंवेधांगुलहतं पुनः ॥५२॥
खखेंदुरामविहतं मानं द्रोणादिवारिणः । विस्तारायामवेधानामंगुल्योन्योन्यनाडिघ्नाः ॥५३॥
रसांकाभ्राब्धिभिर्भक्ता धान्ये द्रोणादिकामितिः । उत्सेधव्यासदैर्घ्याणामंगुल्यान्यस्य नो द्विज ॥५४॥
मिथोघ्नाति भजेत्खाक्षेशैर्द्रोणादिर्मितिर्भवेत् । विस्ताराद्यंगुलान्येवं मिथोघ्नान्यपसां भवेत् ॥५५॥
वाणेभमार्गणैर्लब्धं द्रोणाद्यं मानमादिशेत् । दीपशंकुतलच्छिद्रघ्नः शंकुर्भवंभवेन्मुने ॥५६॥
नरो न दीपकशिखौच्यभक्तो ह्यथ भोद्गने । शंकौनृदीपाधश्छिद्रघ्नैर्दीपौच्चयं नरान्विते ॥५७॥
विशंकुदीपौच्चयगुणाच्छाया शंकूद्धृता भवेत् । दीपशंक्वंतरं चाथ च्छायाग्रविवरघ्नभा ॥५८॥
मानांतरद्गृद्भूमिः स्यादथोभूनराहृतिः । प्रभाप्ता जायते दीपशिखौच्चयं स्यात्त्रिराशिकात् ॥५९॥
एतत्संक्षेपतः प्रोक्तं गणिते परिकर्मकम् । ग्रहमध्यादिकं वक्ष्ये गणिते नातिविस्तरात् ॥६०॥
युगमानं स्मृतं विप्र खचतुष्करदार्णवाः । तद्दशांशास्तु चत्वारः कृताख्यं पादमुच्यते ॥६१॥
त्रयस्त्रेता द्वापरः द्वौ कलिरेकः प्रकीर्तितः । मनुं कृताब्दसहिता युगानामेकसप्ततिः ॥६२॥
विधेर्दिने स्युर्विप्रेंद्र मनवस्तु चतुर्दश । तावत्येव निशा तस्य विप्रेंद्र परिकीर्तिता ॥६३॥

(अन्नादि राशि-व्यवहार) राशि-व्यवहार में स्थूल, मध्यम, सूक्ष्म, अन्नराशियों में क्रमशः उनकी परिधि का नवमांश, दशमांश और एकादशांश वेध होता है। परिधि का षष्ठांश लेकर उसका वर्ग करना चाहिए और उसे वेध से गुणा कर देना चाहिए। उसका नाम 'घनहस्त' होगा। जल के व्यास (चौड़ाई) से लम्बाई को गुणा कर देना फिर उसी को गहराई के अंगुल मान से गुणा कर देना तथा ३१०० से भाग देना चाहिए। इससे जल का द्रोणात्मक मान ज्ञात होगा ॥५१-५२½॥ चौड़ाई, गहराई और लम्बाई के अंगुलात्मक मान को परस्पर गुणा कर उसमें ४०९६ से भाग दें तो अन्न का द्रोणादि मान प्राप्त होगा। ऊँचाई, व्यास (चौड़ाई) और लम्बाई के अंगुलात्मक मान को परस्पर गुणा करके ११५० से भाग देना चाहिए; वह पत्थर का द्रोणात्मक मान होगा। विस्तार आदि के अंगुलात्मक मान को परस्पर गुणा करके ५८५ से भाग देना चाहिए, तो लब्धि लोहे के द्रोणात्मक मान का सूचक होती है ॥५३-५५½॥

छाया-साधन में प्रदीप और शंकुतल का जो अन्तर हो, उससे शंकु को गुणा कर देना और दीपक की ऊंचाई में शंकु को घटाकर उससे उस गुणित शंकु में भाग देने से छाया का मान प्राप्त होगा। शंकु और दीपतल के अन्तर से शंकु को गुणा कर दें और छाया से भाग दें; फिर लब्धि में शंकु को जोड़ दें तो दीपक की ऊँचाई ज्ञात हो जायगी। शंकुरहित दीपक की ऊँचाई से छाया को गुणा करें और शंकु से भाग दें तो शंकु तथा दीपक का अन्तर ज्ञात होगा। छायाग्र के अन्तर से छाया को गुणा करें और छाया के प्रमाणान्तर से भाग दें तो 'भू' होगी। 'भू' और शंकु का घात (गुणा) करें और छाया से भाग दें तो दीपक की ऊँचाई ज्ञात होगी। उपर्युक्त सब बातों का ज्ञान त्रैराशिक से ही होता है। यह परिकर्मगणित मैंने संक्षेप से कहा। अब ग्रह का मध्यादिक गणित बताता हूँ, वह भी अधिक विस्तार से नहीं ॥५६-६०॥

विप्र! चारों युगों का सम्मिलित मान तेंतालीस लाख बीस हजार वर्ष बतलाया गया है। उसके दशांश में चार का गुणा करने पर सत्ययुग नामक पाद होगा। (उसका मान १७ लाख २८ हजार वर्ष है)। दशांश में तीन का गुणा करने पर (१२९६००० वर्ष) त्रैता नामक पाद होता है। दशांश में दो का गुणा करने पर (८६४००० वर्ष) द्वापर नामक पाद होता है और उक्त दशांश को एक-गुना ही रखने पर (४३२००० वर्ष) कलियुग नामक पाद कहा गया है। कृताब्दसहित (एक सत्ययुग अधिक) इकहत्तर चतुर्युग का एक मन्वन्तर होता है ॥६१-६२॥ ब्रह्मन्! ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु होते हैं और उतने ही समय को ब्रह्मा की एक रात्रि होती

स्वयंभुवा शरगतानब्दान्संपिडच्य नारद । खचरानयनं कार्यमथ वेष्टयुगादितः ॥६४॥
युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः । कुजार्किगुरुशुक्राणां भगणाःपूर्वयायिनाम् ॥६५॥
इंदोरसाग्नित्रित्रीषु सप्त भूधरमार्गणाः । दस्त्रत्र्यष्टरसांकाशिवलोचनानि कुजस्य तु ॥६६॥
बुधशीघ्रस्य शून्यर्तु खाद्रित्र्यंकनगेंदवः । बृहस्पतेः खदस्राक्षिवेदषड्वह्नयस्तथा ॥६७॥
सितशीघ्रस्य षट्सप्तत्रियमाश्विखभूधराः । शनेर्भुजगषट्पञ्चरसवेदनिशाकराः ॥६८॥
चंद्रोच्चस्याग्निशून्याक्षिवसुसर्पार्णवा युगे । वामं पातस्य वस्वग्नियमाश्विभूधराःशर ॥६९॥
उदयादुदयं भानोर्भूमेः सावनवासराः । वसुद्व्यष्टाद्रिरूपांकसप्ताद्रितिथयो युगे ॥७०॥
षड्वह्नित्रिहुताशांकतिथयश्चाधिमासकाः ॥७१॥ तिथिक्षयायमार्थाक्षिद्व्यष्टव्योमशराश्विनः ॥७२॥
खचतुष्का समुद्राष्टकुपञ्चरविमासकाः । षट्त्र्यग्नित्र्यग्निवेदाग्निपंचशुभ्रांशुमासकाः ॥७३॥
प्राग्गतेः सूर्यमंदस्य कल्पेसप्ताष्टवह्नयः । कौजस्य वेदखयमा बौधस्याष्टर्तुवह्नयः ॥७४॥
खखरंध्राणि जैवस्य शौक्रस्यार्थगुणेषवः । गोग्नयः शनिमंदस्य पातानामथ वामतः ॥७५॥
मनुदस्रास्तु कौजस्य बौधस्याष्टाष्टसागराः । कृताद्रिचंद्रा जैवस्य शौक्रस्याग्निखनंदकाः ॥७६॥
शनिपातस्य भगणाः कल्पे यमरसर्तवः । वर्तमानयुगे यातावत्सराभगणाभिधाः ॥७७॥
मासीकृतायुता मासैर्मधुशुक्लादिभिर्गतैः । पृथक्स्थासिधिमासघ्रासूर्यमासविभाजिताः ॥

है ॥६३॥ नारद ! ब्रह्मा के वर्तमान कल्प में जितने वर्ष बीत गये हैं, उन्हें एकत्र करके ग्रहानयन (ग्रहसाधन) करना चाहिए। अथवा इष्ट युगादि से ग्रह-साधन करना चाहिए ॥६४॥ एक युग में अपनी कक्षा में पूर्व दिशा को ओर चलते हुए सूर्य बुध और शुक्र के ४३२०००० 'भगण' होते हैं। तथा मंगल, शनि और बृहस्पति के शीघ्रोच्च गण भी उतने ही होते हैं ॥६५॥ एक युग में चन्द्रमा के भगण ५७७५३३३६ होते हैं। भौम के २२९६८३२ बुध के शीघ्रोच्च के १७९३७०६०, बृहस्पति के ३६४२२०, शुक्र के शीघ्रोच्च के ७०२२३७६, शनि के १४६५६८ तथा चन्द्रमा के उच्च के भगण ४८८२०३ होने हैं। चन्द्रमा के पात की वामगतिसम्बन्धी भगणों को संख्या २३२२३८ है ॥६६-६९॥

सूर्य के एक उदय से दूसरे उदय पर्यन्त जो दिन का मान होता है, उसे भौमवासर या सावनवासर कहते हैं। एक महायुग (चतुर्युग) में १५७७९१७८२८ सावनदिन होते हैं। (चान्द्र दिवस १६०३०००080) होते हैं)। अधिमास १५९३३३६ होते हैं तथा तिथिक्षय २५०८२२५२ होते हैं ॥७०-७१॥ एक युग में रविमासों को संख्या ५१८४०००० है तथा चान्द्र मासों को संख्या ५३४३३३३६ होती हैं ॥७२॥ पूर्वाभिमुख गति के क्रम से एक कल्प में सूर्य के मन्दोच्च भगण ३८७, मंगल के मन्दोच्च भगण २०४, बुध के मन्दोच्च ३६८, गुरु के मन्दोच्च ९००, शुक्र के मन्दोच्च ५३५ तथा शनि के मन्दोच्च भगण ३९ होते हैं। अब मंगल आदि ग्रहों के पातों की विलोम गति (पश्चिम गमन) के अनुसार एक कल्प में होने वाले भगण बताये जाते हैं ॥७३-७४॥ भौमपात के भगण २१४, बुधपात के भगण ४८८, गुरुपात के भगण १७४, शुक्रपात के भगण ९०३ तथा शनिपात के भगण ६६२ होते हैं ॥७५½॥

वर्तमान युग (जिस युग में, जिस समय के अहर्गण या ग्रहादि का ज्ञान करना हो उस समय) में सृष्ट्यादि काल या युगादि काल से अब तक जितने वर्ष बीत चुके हों, वे सूर्य के भगण होते हैं। भगण को बारह से गुणा करके मास बनाना चाहिए। उसमें 'वर्तमान वर्ष' के चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से लेकर वर्तमान मास तक जितने मास बीते हों, उनको संख्या जोड़कर योगफल को दो स्थानों में रखना चाहिए। द्वितीय स्थान में रखे हुए मासगण को

अथाधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विताः । द्विस्थास्तिथिक्षयाभ्यस्ताश्चांद्रवासरभाजिताः ॥७८॥
लब्धोनरात्रिरहितालंकायामर्द्धरात्रिकः । सावनोद्युगणोऽर्कादिर्दिनमासाब्दपास्ततः ॥७९॥
सप्तभिःक्षयितः शेषः सूर्याद्योवासरेश्वरः । मासाब्ददिनसंख्याप्तंद्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम् ॥८०॥
सप्तोद्धृतावशेषौ तौ विज्ञेयौ मासवर्षपौ । खेहस्य भगणाभ्यस्तो दिन राशिः कुवासरैः ॥८१॥
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत् । एवं स्वशीघ्रमंदोच्चाये प्रोक्ताः पूर्वयायिनः ॥८२॥
विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद्विशोधिताः । योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणः स्मृतः ॥८३॥
तद्वर्गतो दशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत् । लंबज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः ॥८४॥

युग के उपर्युक्त अधिमासों की संख्या से गुणा करके गुणनफल में युग के सूर्यमासों की संख्या से भाग देना चाहिए। फिर जो लब्धि हो, उसे अधिमास की संख्या मानना चाहिए। अब उसको प्रथम स्थानस्थित मासगण में जोड़ देना चाहिए। (योगफल वोते हुए चान्द्रमासों की संख्या होती है)। उस संख्या को तीस से गुणा करे (तो गुणनफल तिथि-संख्या होगी), उसमें वर्तमान मास को शुक्ल-प्रतिपदा से इष्टतिथि की संख्या जोड़े, (जोड़ने से चान्द्र दिनों की संख्या ज्ञात होती है)। इसको भी दो स्थानों में रखकर दूसरे स्थान में स्थित संख्या को युग के लिए कथित तिथिक्षय-संख्या से गुणा करे। गुणनफल में युग को चान्द्रदिनों (तिथियों की संख्या से भाग दे तो अभीष्ट दिन का लंकार्धरात्रिकालिक सावन दिनगण (अहर्गण) होता है। इससे दिनपति, मासपति और वर्षपति का ज्ञान करना चाहिए ॥७६-७९॥

यथा—दिनगण में ७ से भाग देने पर शेष बचे हुए १ आदि संख्या के अनुसार सूर्य आदि वारेश समझने चाहिए। तथा दिनगणमें ३० से भाग देकर लब्धि को २ से गुणा करके गुणनफल में १ जोड़ दे। फिर उसमें ७ से भाग देकर १ आदि शेष होने पर सूर्य आदि मासेश समझने चाहिए। इसी प्रकार दिनगण में ३६० से भाग देकर लब्धि को ३ से गुणा करके गुणनफल में १ जोड़े, फिर उसमें ७ से भाग देने पर १ आदि शेष संख्या के अनुसार सूर्य आदि 'वर्तमान' वर्षेश होते हैं ॥८०½॥

मध्यमग्रहज्ञान—युग के लिए कथित भगण की संख्या से दिनगण को गुणा करे। गुणनफल में युग की कुदिन (सावनदिन)—संख्या से भाग देने पर भगणादिन ग्रह लंकार्धरात्रिकालिक होता है। इसो प्रकार पूर्वाभिमुख गति वाले जो शीघ्रोच्च और मन्दोच्च कहे गये हैं, उनके भगण में द्वारा उनका भी साधन होता है ॥८१-८२॥ विलोम (पश्चिमाभिमुख) गति वाले जो ग्रहों के पातभगण कहे गये हैं, उनके द्वारा इसी प्रकार जो पात सिद्ध हों, १२ राशि में घटाने से शेष मेषादि क्रम से राश्यादिपात होते हैं ॥८२½॥

(भूपरिधिप्रमाण)—पृथ्वी का व्यास १६०० योजन है। इस (१६००) के वर्ग को १० से गुणा करके गुणनफल का वर्ग मूल भूमध्यपरिधि होता है; अर्थात् वर्गमूल की जो संख्या हो, उतने योजन पृथ्वी की परिधि समझनी चाहिए। इस भूमध्यपरिधि की संख्या को अपने-अपने लम्बांशज्या से गुणा करके उसमें त्रिज्या (३४३८) से भाग देकर जो लब्धि हो, वह स्पष्ट भूपरिधि का मान होता है ॥८३-८४॥

(ग्रहों में देशान्तर-संस्कार)—ग्रह की कलादि मध्यम गति को देशान्तर-योजन (रेखा-देश से जितने योजन पूर्व या पश्चिम इष्ट स्थान हो उस) से गुणा करके गुणन-फल में 'स्पष्टभूपरिधि-योजन' के द्वारा भाग देने पर जो लब्धि हो, वह कला आदि है। उस लब्धि को रेखा से पूर्व देश में पूर्वसाधित ग्रह में घटाने से और पश्चिम देश में जोड़ने से स्वस्थानीय अर्धरात्रिकालिक ग्रह होता है ॥८५½॥

तेन देशांतराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता । कलादितत्फलं प्राच्यां ग्रहेभ्यः परिशोधयेत् ॥८५॥
रेखाप्रतीचिसंस्थाने प्रक्षिपेत्स्युः स्वदेशतः । राक्षसालयदेवौकःशैलयोर्मध्यसूत्रगाः ॥८६॥
अवंतिकारोहितिकं तथा सन्निहितं सरः । वारप्रवृत्तिःप्राग्देशे क्षपार्द्धेभ्यधिको भवेत् ॥८७॥
तद्देशांतरनाडीभिः पश्चादूने विनिर्दिशेत् । इष्टनाडीगुणा भुक्तिः षष्ट्या भक्ता कलादिकम् ॥८८॥
गते शोद्ध्यं तथा योज्ये गम्ये तात्कालिको ग्रहः । भचक्रलिप्ताशीत्यंशः परमं दक्षिणोत्तरम् ॥८९॥
विक्षिप्यते स्वपातेन स्वक्रांत्यंतादनुष्णगुः । तन्न वासं द्विगुणितंजीवस्त्रिगुणितं कुजः ॥९०॥
बुधशुक्रार्कजाः पातैर्विक्षिप्यंते चतुर्गुणम् । राशिलिप्ताष्टमो भागः प्रथमं ज्यार्द्धमुच्यते ॥९१॥
ततो द्विभक्तलब्धोनमिश्रितं तद्द्वितीयकम् । आद्येनैव क्रमात्पिडान्भक्ताल्लब्धोनितैर्युतान् ॥९२॥
खंडकाः स्युश्चतुर्विंशा ज्यार्द्धपिडाःक्रमादमी । परमापक्रमज्या तु सप्तरंध्रगुणेंदवः ॥९३॥
तद्गुणज्या त्रिजीवाप्ता तच्चापं क्रांतिरुच्यते । ग्रहं संशोध्य मंदोच्चत्तथा शीघ्राद्विशोध्य च ॥९४॥
शेषं केंद्रपदंतस्माद्भुजज्या कोटिरेव च । गताद्भुजज्याविषमे गम्यात्कोटिः पदे भवेत् ॥९५॥

(रेखा-देश) भूमध्यरेखा से पूर्वदेश में रेखा-देशीय मध्यरात्रि से, देशान्तर घटीतुल्य पूर्व हो वारप्रवृत्ति (रवि-आदि वारों का आरंभ) होती है ॥८७½॥

(इष्टकाल में मध्यम ग्रह जानने की विधि)--मध्यरात्रि से जितनी घड़ी बाद ग्रह बनाना हो, उस संख्या से ग्रह की कलादि गति को गुणा करके गुणनफल में ६० से भाग देकर लब्धितुल्य कलादि फल को पूर्वसाधित ग्रह में जोड़ने से; तथा जितनी घड़ी मध्यरात्रि से पूर्व ग्रह बनाना हो, उतनी संख्या से गति को गुणा करके गुणनफल में ६० से भाग देकर कलादि फल को पूर्वसाधित ग्रह में घटाने से इष्टकालिक ग्रह होता है ॥८८½॥

(चन्द्रादि ग्रहों के परम विक्षेप)—भचक्रकला (२१६००) के ८०वाँ भाग अर्थात् २७० कलापर्यन्त क्रान्तिवृत्त (सूर्य के मार्ग) से परम दक्षिण और उत्तर चन्द्रमा विक्षिप्त होता (हटता) है। एवं गुरु ६० कला, मंगल ९० कला, बुध, शुक्र और शनि—ये तीनों १२० कला पर्यन्त क्रान्तिवृत्त से दक्षिण और उत्तर हटते रहते हैं ॥८९-९०½॥

(अभीष्ट जीवासाधन के लिए उपयोगी २४ जीवासाधन)—१ राशि-कला १८०० का आठवाँ भाग (२२५ कला) प्रथम जीवार्ध कहा जाता है। उस (प्रथम जीवार्ध) से प्रथम जीवार्ध में भाग देकर लब्धि को प्रथम जीवार्ध में ही घटाकर शेष (प्रथमखण्ड) को प्रथम जीवार्ध में ही जोड़ने से द्वितीय जीवार्ध होता है। इसी प्रकार प्रथम जीवा से ही द्वितीय जीवा में भाग देकर लब्धि को द्वितीय खंड में घटाकर शेष को द्वितीय जीवार्ध में जोड़ने से तृतीय जीवार्ध होता है। इसी तरह आगे भी क्रिया करने से क्रमशः २४ जीवार्ध सिद्ध होते हैं ॥९१-९२½॥

इस प्रकार सूर्य की परमक्रान्तिज्या १३९७ होती है। इस (परमक्रान्तिज्या) से ग्रह को ज्या (भुजज्या) को गुणा करके त्रिज्या के द्वारा भाग देने से 'इष्टक्रान्ति-ज्या' प्राप्त होती है। उसका चाप बनाने से 'इष्टक्रान्ति' (मध्यमा) कहलाती है ॥९३½॥

('भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनाने की रीति) ग्रहों को अपने-अपने मन्दोच्च में घटाने से शेष उस ग्रह का 'मन्द केन्द्र' तथा शीघ्रोच्च में घटाने से शेष उस ग्रह का 'शीघ्र केन्द्र' कहलाता है। उस राश्यादि केन्द्र की 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनानी चाहिए। विषम (१,३) पद में 'गत' चाप की जीवा भुजज्या और 'गम्य' चाप की जीवा कोटिज्या कहलाती है। सम (२,४) पद में 'गम्य' चाप की जीवा 'भुजज्या' और गत' चाप की जीवा 'कोटिज्या' होती है ॥९४-९५½॥

समेति गम्याद्बाहुज्या कोटिज्यानुगता भवेत् । लिप्तास्तत्त्वयमैर्भक्ता लब्धज्या पिंडकं गतम् ॥९६॥
गतगम्यांतराभ्यस्तं विभजेत्तत्त्वलोचनैः । तदवाप्तफलं योज्यं ज्यापिंडे गतसंज्ञके ॥९७॥
स्यात्क्रमज्याविधिश्चैवमुत्क्रमज्यास्वपि स्मृतः । ज्यां प्रोह्य शेषं तत्त्वाश्विहतं तद्विवरोद्धृतम् ॥९८॥
संख्यातत्त्वाश्विसंवर्ग्यं संयोज्यं धनुरुच्यते । रवेर्मंदपरिध्यंशा मनवः शीतगोरदाः ॥९९॥
युग्मांते विषमांते तु नखलिप्तोनितास्तयोः । युग्मांतेर्थाद्रयः स्वाग्निसुराः सूर्या नवार्णवाः ॥१००॥
ओजेद्व्यगा वसुयमारदारुद्रागजाब्धयः । कुजादीनामतः शीघ्र्या युग्मांतेर्थाग्निदस्रकाः ॥१०१॥
गुणाग्निचंद्राः खनगाद्रिरसाक्षीणि गोऽग्नयः । ओजांते द्वित्रियमलाद्विविश्वेयमपर्वताः ॥१०२॥
खर्तुदस्रावियद्वेदाः शीघ्रकर्मणि कीर्तिताः । ओजयुग्मांतरगुणाभुजज्यात्रिज्ययोद्धृताः ॥१०३॥
युग्मवृत्तेधनर्णंश्यादोजादूनेऽधिके स्फुटम् । तद्गुणे भुजकोटिज्ये भगणांशविभाजिते ॥१०४॥

(इष्टज्यासाधनविधि)—जितने राश्यादि चाप को जीवा बनानी हो, उसकी कला बनाकर उसमें २२५ से भाग दें जो लब्धि हों, उसे (सिद्ध २४ ज्या-पिण्ड में) गत ज्यापिण्ड की संख्या समझें। शेष कला को 'गतज्या' और 'गम्यज्या' के अन्तर से गुणा करें, उसमें २२५ से भाग देकर लब्ध कलादि को 'गतज्या'-पिण्ड में जोड़ने 'अभीष्ट ज्या' प्राप्त होती है। 'उत्क्रमज्या' भी इसी विधि से ज्ञात की जाती है ॥९६-९७½॥

(जीवा से चाप बनाने की विधि)—इष्ट जीवा की कला में सिद्ध जीवापिण्डों में से जितनी संख्या वाली जीवा घटे, उसको घटाना चाहिए। शेष कला को २२५ से गुणा करके गुणनफल में गत और गम्य जीवा के अन्तर से भाग देकर जो लब्धि कलादि प्राप्त हो, उसको घटायी हुई सिद्ध-जीवा-संख्या से गुणित २२५ में जोड़ने से इष्टज्या का चाप होता है ॥९८½॥

(रवि और चन्द्रमा के मन्दपरिध्यंश)—समपद के अन्त में सूर्य के १४ अंश और चन्द्रमा के ३२ अंश मन्दपरिधि मान होते हैं। और विषम पद के अन्त में २० कला कम अर्थात् सूर्य के १३।४० अंशादि और चन्द्रमा के ३१।४० अंशादि मन्दपरिध्यंश के मान होते हैं ॥९९½॥

(मङ्गलादि ग्रहों की मन्द और शीघ्र परिधि)—समपदान्त में मंगल के ७५, बुध के ३०, गुरु के ३३, शुक्र के १२ और शनि के ४९ तथा विषमपदान्त में मंगल के ७२, बुध के २८, गुरु के ३२, शुक्र के ११ और शनि के ४८ मन्द परिध्यंश हैं'। इसी प्रकार समपद के अन्त में मंगल के २३५, बुध के १३३, गुरु के ७०, शुक्र के २६२ और शनि के ३९ तथा विषमपदान्त में मंगल के २३२, बुध के १३२, गुरु के ७२, शुक्र के २६० और शनि के ४० शीघ्र परिध्यंश होते हैं ॥१२०-१०२½॥

(अभीष्ट स्थान में परिधिसाधन)—अभीष्ट स्थान में मन्द या शीघ्र परिधि बनानी हो तो उस ग्रह की भुजज्या को विषम पदान्त और समापदान्त-परिधि के अन्तर से गुणा करके गुणा करके गुणनफल में त्रिज्या (३४३८) से भाग देकर जो अंशादि लब्धि हो, उसको समपदान्त-परिधि में जोड़ने या घटाने से इष्टस्थान में क्रमशः स्पष्ट मन्द परिध्यंश या शीघ्र-परिध्यंश होते हैं ॥१०३½॥

(भुजफल-कोटिफल-साधन)—इस प्रकार से सिद्ध की गयी स्पष्ट परिधि से ग्रह की 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' को पृथक्-पृथक् गुणा करके भगणांश (३६०) से भाग देकर लब्ध (भुजज्या से निकालने पर) भुजफल और (कोटिज्या) से निकालने पर) कोटिफल होते हैं। इसी प्रकार मन्द परिधि द्वारा मन्दफल और शीघ्र परिधि द्वारा शीघ्र फल का मान ज्ञात करना चाहिए। यहाँ मन्द परिधिवश भुजज्या द्वारा जो भुजफल आये, उसका चाप बनाने से मन्द कलादि फल प्राप्त होता है ॥१०४½॥

तद्भुजज्याफलधनुर्मांदं लिप्तादिकं फलम् । शैघ्र्यकोटिफलं केंद्रे मकरादौ धनं स्मृतम् ॥१०५॥
संशोध्यं तु त्रिजीवायां कर्कादौ कोटिजं फलम् । तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूलकर्णश्चलाभिधः ॥१०६॥
त्रिज्याभ्यस्तं भुजफलं चलकर्णविभाजितम् । लब्धस्य चापं लिप्तादि फलं शैघ्र्यमिदं स्मृतम् ॥१०७॥
एतदाद्ये कुजादीनां चतुर्थे चैव कर्मणि । मांद्यं कर्मैकमर्केंद्वोर्भौमादीनामथोच्यते ॥१०८॥
शैघ्र्यं मांद्यं पुनर्मांद्यं शैघ्र्यं चत्वार्यनुक्रमात् । अजादिकेंद्रे सर्वेषां मांद्ये शैघ्र्ये च कर्मणि ॥१०९॥
धनं ग्रहाणां लिप्तादि तुलादावृणमेव तत् । अर्कबाहुफलाभ्यस्ता ग्रहभुक्तिविभाजिताः ॥११०॥
भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ताः कार्या ग्रहेऽर्कवत् । स्वमन्दभुक्तिसंशुद्धा मध्यभुक्तिर्निशापतेः ॥१११॥
दोर्ज्यान्तरादिकं कुत्वा भुक्तावृणधनं भवेत् । ग्रहभुक्तेः फलं कार्यं ग्रहवन्मंदकर्मणि ॥११२॥
कर्कादौ तद्धनं तत्र मकरादावृणं स्मृतम् । दोर्ज्यान्तरगुणाभुक्तिस्तत्त्वनेत्रोद्धृता पुनः ॥११३॥
स्वमंदपरिधिक्षुण्णा भगणांशोद्धृताःकलाः । मंदस्फुटकृता भुक्तिः प्रोह्य शीघ्रोच्चभुक्तितः ॥११४॥

(शीघ्र कर्णसाधन)—पूर्व विधि से शीघ्र परिधि द्वारा जो कोटिफल प्राप्त हो, उसको मकरादि केन्द्र होने पर त्रिज्या (३४३८) में जोड़े तथा कर्कादि केन्द्र होने पर घटाये। जोड़ने या घटाने पर जो फल प्राप्त हो, उसके वर्ग में शीघ्र भुजफल के वर्ग को जोड़ दे। फिर उसका मूल लेने से शीघ्र कर्ण प्राप्त होता है ॥१०५-१०६॥

शीघ्र फलसाधन—पूर्वविधि से साधित शीघ्र भुजफल को त्रिज्या से गुणा करके शीघ्र कर्ण के द्वारा भाग देने पर जो कलादि लब्धि हो, उसके चाप बनाने से शीघ्र 'भुजफल' प्राप्त होता है। यह शीघ्रफल मंगलादि ५ ग्रहों में प्रथम और चतुर्थ कर्म में संस्कृत (धन या ऋण) किया जाता है ॥१०७½॥

रवि और चन्द्रमा में केवल एक ही मन्दफल का संस्कार (धन या ऋण) किया जाता है। मुने! अब मंगलादि ५ ग्रहों के संस्कार का वर्णन करता हूँ। उनमें प्रथम शीघ्रफल का, द्वितीय मन्दफल का, तृतीय भी मन्दफल का और चतुर्थ शीघ्रफल का संस्कार किया जाता है ॥१०८½॥

संस्कारविधि—शीघ्र या मन्द्र केन्द्र मेषादि (६ राशि के भीतर) हो तो शीघ्रफल और मन्दफल जोड़ना चाहिए। यदि तुलादि केन्द्र (६ राशि से ऊपर) हो तो घटाना चाहिए।

रविभुजफल-संस्कार—प्रत्येक ग्रह की गतिकला को पृथक्-पृथक् सूर्य के मन्द भुजफल-कला से गुणा करके उसमें २१६०० के द्वारा भाग देने से जो कलादि लब्धि हो, उसको पूर्वसाधित उदयकालिक ग्रहों में रविमन्दफलवत् संस्कार (मन्दफल धन हो तो धन, ऋण हो तो ऋण) करने से स्पष्ट सूर्योदयकालिक ग्रह होते हैं ॥११०½॥

स्पष्टग्रहगतिसाधनार्थं गतिफल—चन्द्रमध्यगति में चन्द्रमन्दोच्च गति को घटाकर उससे (अर्थात् चन्द्रकेन्द्रगति से) तथा अन्य ग्रहों की स्वल्पान्तर से अपनी-अपनी गति से ही मन्दस्पष्टगतिसाधन में फल साधन करना चाहिए। यथा—उक्त गति (चन्द्र की केन्द्रगति और अन्य ग्रहों की गति) को दोर्ज्यान्तर (गम्यज्या और गतज्या के अन्तर) से गुणा करके उसको २२५ के द्वारा भाग देकर लब्धि को अपनी-अपनी मन्दपरिधि से गुणा करके भगणांश (३६०) के द्वारा भाग देने से जो कलादि फल लब्धि हो, उसको यदि कर्कादि (३ से ऊपर ९ राशि के भीतर) केन्द्र हो तो मध्यगति में धन कर दें (जोड़ दें) तथा मकरादि (९ राशि से ऊपर ३ राशि तक) केन्द्र हो तो घटा दें, यह मन्दस्पष्ट गति होती है ॥११३½॥ पुनः इस मन्दस्पष्ट गति को अपनी शीघ्रोच्च गति में घटाकर शेष को त्रिज्या तथा अन्तिम शीघ्रकर्ण के अन्तर से गुणा करके पूर्वसाधित शीघ्रकर्ण के द्वारा भाग देने से जो लब्धि (कलादि) हो, उसको, यदि कर्ण त्रिज्या से अधिक हो तो मन्दस्पष्ट गति में धन करें (जोड़ने

तच्छेषं विवरेणाथ हन्यात्त्रिज्यांत्यकर्णयोः । चलकर्णहृतं भुक्तौ कर्णे त्रिज्याधिके धनम् ॥११५॥
ऋणमूनेऽधिके प्रोह्य शेषं वक्रगतिर्भवेत् । कृततर्चंद्रैर्वेदैः शून्यत्र्येकैर्गुणाष्टभिः ॥११६॥
शररुद्रैश्चतुर्थाशुकेंद्रांशैर्भूसुताइयः ॥११७॥
। वक्रिणश्चक्रशुद्धैस्तैरंशैरुज्झन्तिवक्रताम् ॥११८॥
क्रमज्या विषुवद्भाघ्नी क्षितिज्या द्वादशोद्धृता । त्रिज्यागुणा दिनव्यासभक्ता चापं च रासवः ॥११९॥
तत्कार्मुकमुदक्क्रांतौ धनहानौ पृथक्स्थिते । स्वाहोरात्रचतुर्भागे दिनरात्रिदले स्मृते ॥१२०॥
याम्यक्रांतौ विपर्यस्ते द्विगुणैते दिनक्षये । भभोगोऽष्टशतीलिप्ताः खाश्विशैलास्तथातिथेः ॥१२१॥
ग्रहलिप्ता भभोगाप्ताभानि भुक्त्यादिनादिकम् । रवींदुयोगलिप्तास्तु योगाभभोगभाजिताः ॥१२२॥
गतगम्याश्च षष्ठिघ्ना भुक्तियोगाप्तनाडिकाः । अर्कोनचंद्रलिप्तास्तु तिथयो भोगभाजिताः

और अल्प हो तो घटा दें; यह स्पष्ट गति होती है यदि साधित ऋणगतिफल मन्दस्पष्ट गति से अधिक हो तो उसी (ऋणगतिफल) में मन्दस्पष्ट गति को घटाना चाहिए; जो शेष आवे, वह वक्रगति होती है। इस स्थिति में वह ग्रह वक्रगति रहता है। ११४-११५½॥

ग्रहों की वक्र केन्द्रांश-संख्या—मंगल अपने चतुर्थ शीघ्र केन्द्रांश १६४ में, बुध १४४ केन्द्रांश में, गुरु १३० केन्द्रांश में, शुक्र १६२ केन्द्रांश में और शनि ११५ शीघ्र केन्द्रांश में वक्रगति होता है। अपने-अपने वक्रकेन्द्रांश को ३६० में घटाने से शेष के तुल्य केन्द्रांश होने पर पुनः वह ग्रह मार्ग-गति-वाला होता है ॥११७॥

कालज्ञान--रवि-क्रान्तिज्या को पलभा (३० घड़ी का दिन हो तो उस दिन के दोपहर में १२ अंगुल शंकु की छाया को 'पलभा कहा जाता है) से गुणा करके गुणनफल में १२ से भाग देने पर लब्धि क्षितिज्या या कुज्या' होती है। उस (कुज्या) को त्रिज्या से गुणा करके अहोरात्रार्धरूप कर्ण (द्युज्या क्रान्ति की कोटिज्या) से भाग देने से लब्धि चरज्या होती है। उसके चाप बनाने से चरासु होते हैं। उस चर-चाप को यदि उत्तर क्रान्ति हो तो १५ घटी में जोड़ने से दिनार्ध और १५ घटी में घटाने से रात्र्यर्ध होता है। दक्षिणक्रान्ति हो तो विपरीत (याने १५ घटी में घटाने से दिनार्ध और जोड़ने से रात्र्यर्ध) होता है। दिनार्ध को दुगना करने से दिनमान और रात्र्यर्ध को दूना करने से रात्रिमान प्राप्त होता है ॥११८-११९½॥

पञ्चाङ्ग साधन—८०० कला एक-एक नक्षत्र का और ७२० कला एक-एक तिथि को भोगमान होता है। (अतः ग्रह किस नक्षत्र में है, यह जानने के लिये) राश्यादि ग्रह को कलात्मक बनाकर उसमें भभोग (८००) के द्वारा भाग देने से जो लब्धि आये; उसके अनुसार अश्विनी आदि गतनक्षत्र समझने चाहिए। शेष कलादि से ग्रह की गति के द्वारा उसको गत और गम्यघटी जानना चाहिए ॥१२०½॥

उदयकालिक स्पष्टरवि और चन्द्र का योग करके उसकी कला में भभोग (८००) के द्वारा भाग देकर लब्धितुल्य विष्कम्भ आदि योग होते हैं। शेष वर्तमान योग की गत-कला है। उसको ८०० में घटा देने से गम्य-कला होती है। उस गत और गम्यकला को ६० से गुणा करके उससे रवि और चन्द्र की गतिकला के योग से भाग देने पर गत और गम्यघटी होती है ॥१२१॥

स्पष्ट चन्द्र में स्पष्ट सूर्य को घटाकर शेष राश्यादि को कला बनाकर उसमें तिथिभोग (७२०) से भाग देने पर लब्धि गततिथि-संख्या होती है। शेष वर्तमान तिथि की गतकला है। उसको ७२० में घटाने से गम्यकला होती है। गत और गम्यकला को पृथक् ६० से गुणाकर चन्द्र और रवि के स्पष्ट गत्यन्तर से भाग देकर लब्धि-क्रम से मुक्त (गत) और गम्य घटी होती हैं। (पञ्चांग में वर्तमान तिथि के आगे गम्यघटी लिखी जाती है) ॥१२२½॥

गतगम्याश्च षष्ठिघ्ना नाड्यो भुक्तन्तरोद्धताः । तिथयः शुक्लप्रतिपदो द्विघ्नाः सैका न गाहताः ॥१२३॥
शेषं बवो बालवश्च कौलवस्तैतिलो गरः । वणिजोऽभ्र भवेद्विष्टिः कृष्णभूतापरार्द्धतः ॥१२४॥
शकुनिर्नागश्च चतुष्पदं किस्तुघ्नमेव च । शिलातलेव संशुद्धे वज्रलेपेतिवासमे ॥१२५॥
तत्र शकांगुलैरिष्टैः सममंडलमालिखेत् । तन्मध्ये स्थापयेच्छंकुं कल्पनाद्द्वादशांगुलम् ॥१२६॥
तच्छायाग्रं स्पृशेद्यत्र दत्तं पूर्वापराह्णयोः । तत्र बिंदु विधायोभौ वृत्ते पूर्वपराभिधौ ॥१२७॥
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्तव्या दक्षिणोत्तरा । याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा ॥१२८॥
दिग्मध्यमत्स्यैः संसाध्या विदिशस्तद्वदेव हि । चतुरस्रं बहिः कुर्यात्सूत्रैर्मध्याद्विनिःसृतैः ॥१२९॥
भुजसूत्रांगुलैस्तत्र दत्तैरिष्टप्रभा मता । प्राक्पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममंडलम् ॥१३०॥
भूमंडले च विषुवन्मंडलं परिकीर्तितम् । रेखा प्राच्यपरा साध्या विषुवद्भाग्रया तथा ॥१३१॥

तिथि में करण ज्ञात करने की विधि--शुक्ल पक्ष की प्रतिपदादि गततिथि संख्या को दूना करके ७ के द्वारा भाग देने से १ आदि शेष प्राप्त होने पर क्रम से १ बव, २ बालव, ३ कौलव, ४ तैतिल, ५ गर, ६ वणिज, ७ विष्टि (भद्रा)—ये करण वर्तमान तिथि के पूर्वार्ध में होते हैं। (ये ७ करण शुक्ल प्रतिपदा के उत्तरार्ध से कृष्ण १४ के पूर्वार्ध तक (२८) तिथियों ८ आवृत्ति कर आते हैं। इसलिए ये ७ चर करण कहलाते हैं।) कृष्णपक्ष १४ के उत्तरार्ध से शुक्ल प्रतिपदा के पूर्वार्ध तक, क्रम से १ शकुनि, २ नाग, ३ चतुष्पद और ४ किंस्तुघ्न—ये चार स्थिर करण होते हैं ॥१२३-१२४½॥

दिक्साधन--जल से संशोधित (परीक्षित) शिलातल या वज्रलेप (सिमेंट) से सम बनाये हुए भूतल में जिस अंगुलमान से शंकु बनाया गया हो, उसी अंगुलमान से अभीष्ट (मध्याह्न कालिक छाया से अधिक) त्रिज्यांगुल से वृत्त बनाकर उसके मध्य (केन्द्र) में बने हुए शंकु की स्थापना करे। उस शंकु की छाया का अग्रभाग दिन के पूर्वार्ध में जहाँ वृत्त-परिधि में स्पर्श करे, वहाँ पश्चिम बिन्दु समझना चाहिए और दिन के उत्तरार्ध में फिर उसी शंकु की छाया का अग्रभाग जहाँ वृत्त की परिधि का स्पर्श करे, वहाँ पूर्व बिन्दु समझना चाहिए। इस प्रकार पूर्व और पश्चिम बिन्दु का ज्ञान करे। अर्थात् उन दोनों बिन्दुओं में एक सरल रेखा खींचकर दोनों अग्रों को केन्द्र मानकर दो वृत्तार्ध बनाने से मत्स्याकार होगा। उसके मुख एवं पुच्छ में रेखा करने से दक्षिणोत्तर-रेखा होगी। यह दक्षिणोत्तर रेखा केन्द्रबिन्दु में होकर जाती है। यह रेखा जहाँ वृत्त में स्पर्श करे, वहाँ दक्षिण तथा उत्तर दिशा के बिन्दु समझो। फिर इस दक्षिणोत्तर रेखा पर पूर्वोक्त प्रकार से मत्स्योत्पादन द्वारा पूर्वापर रेखा बनाये तो यह रेखा केन्द्रबिन्दु में होकर ठीक पूर्व और पश्चिम-बिन्दु का वृत्त में स्पर्श करेगी। इस प्रकार चार दिशाओं को जानकर पुनः दो-दो दिशाओं के मध्यबिन्दु से मत्स्योत्पादन द्वारा विदिशाओं (कोणों) का ज्ञान करना चाहिए ॥१२५-१२८½॥

(इस प्रकार वृत्त में दिशाओं का ज्ञान होने पर) वृत्त के बाहर चारों दिशाओं के बिन्दुओं से स्पर्श रेखा द्वारा चतुरस्र (चतुर्भुज) बनाये। वृत्त के मध्यकेन्द्र से भुजांगुलतुल्य (भुज की दिशा में उत्तर या दक्षिण बिन्दु पर छायारेखा होती है। उस छायारेखा को पूर्वापर-रेखा के समानान्तर बनाये। पूर्वापर-रेखा पूर्वापर-वृत्त, उन्मण्डल और नाडी वृत्त के धरातल में होती है। इसलिए क्षितिज धरातलगत वृत्त के केन्द्र से पूर्वापर रेखा खींचकर फिर पलभाग्र बिन्दुगत पूर्वापर के समानान्तर रेखा बनाये। इस प्रकार इष्ट-छायाग्रगत तथा पलभा रेखा के बीच (अन्तर) को 'अग्रा' कहते हैं ॥१२९-१३१½॥

इष्टच्छायाविषुवतोर्मध्येह्यग्राभिधीयते । शंकुच्छायाकृतियुतेर्मूलं कर्णोऽथ वर्गतः ॥१३२॥
प्रोह्य शंकुकृते मूलं छाया शंकुविपर्ययात् । त्रिंशत्कृत्योयुगे भानां चक्रं प्रावपरिलंबते ॥१३३॥
तद्गुणाद्भदिनैर्भक्त्या द्युगणाद्यदवाप्यते । तद्दोस्त्रिघ्नादशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधाः ॥१३४॥
तत्सम्वकृताद्ग्रहात्क्रांतिच्छायाचरदलादिकम् । शंकुच्छायाहते त्रिज्ये विषुवत्कर्णभाजिते ॥१३५॥
लंबाक्षज्ये तयोश्चापे लंबाक्षौ दक्षिणौ सदा । साक्षार्कापक्रमयुतिर्दिक्साम्येंतरमन्यथा ॥१३६॥
शेषह्यानांशाः सूर्यस्य तद्बाहुज्याथ कोटिजाः । शंकुमानांगुलाभ्यस्ते भुजत्रिज्ये यथाक्रमम् ॥१३७॥
कोटीज्ययाविभज्याप्ते छाया कर्णाबहिर्दले । स्वाक्षार्कनतभागानां दिक्साम्येंऽतरमन्यथा ॥१३८॥
दिग्भेदोपक्रमः शेषस्तस्य ज्या त्रिज्यया हता । परमोपक्रमज्याप्त चापमेषादिगो रविः ॥१३९॥
कर्कादौ प्रोह्यचक्रार्द्धात्तुलादौ भार्द्धसंयुतात् । मृगादौ प्रोह्यचक्रात्तु मध्याह्नेऽर्कः स्फुटो भवेत् ॥१४०॥

शंकु (१२) के वर्ग में छाया के वर्ग को जोड़कर मूल लेने से छायाकर्ण होता है और छायाकर्ण के वर्ग में शंकु के वर्ग को घटाने से मूल छाया होती है तथा छाया के वर्ग घटाने से मूल शंकु होता है ॥१३२½॥

अयनांश-साधन—एक युग में राशिचक्र सृष्ट्यादि स्थान से पूर्व और पश्चिम को ६०० बार चलित होता है। जो उसके भगण कहलाते हैं। इसलिए अहर्गण को ६०० से गुणा करके युग के सावनदिन संख्या से भाग देने से लब्ध राश्यादि फल से भुज बनाये। उस भुज को ३ से गुणा करके १० के द्वारा भाग देने से लब्धि तुल्य अयनांश जानना चाहिए। इस अयनांश को अहर्गण द्वारा साधित ग्रह में जोड़कर क्रान्ति, छाया और चर खण्ड आदि ज्ञात करना चाहिए ॥१३३-१३४½॥

लम्बांश और अक्षांश-साधन—शंकु (१२) और पलभा को पृथक्-पृथक् त्रिज्या से गुणा करके उसमें पल-कर्ण से भाग देने पर लब्धि क्रमशः 'लम्बज्या' और 'अक्षज्या' होती है। दोनों के चाप बनाने से 'लम्बांश' और 'अक्षांश' होते हैं। इनकी दिशा सर्वदा दक्षिण होती है ॥१३५½॥

सूर्य-ज्ञान से मध्याह्न-छाया-साधन—अपने अक्षांश और सूर्य के क्रान्त्यंश दोनों एक दिशा की और हों तो योग करने से और यदि भिन्न दिशा के हों तो दोनों को अन्तर करने से शेष मध्याह्न में सूर्य का 'नतांश' होता है। उस 'नतांश' की 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनाये। नतांश की भुजज्या और त्रिज्या को पृथक्-पृथक् शंकुमान (१२) से गुणा करके उसमें कोटिज्या से भाग देने पर लब्धि क्रमशः मध्याह्नकाल में छाया और छाया-कर्ण होती है ॥१३६-१३७½॥

मध्याह्न-छाया से सूर्यसाधन—अपने 'अक्षांश' और मध्याह्नकालिक सूर्य के 'नतांश' दोनों एक दिशा के हों तो अन्तर करने से और यदि भिन्न दिशा के हों तो योग करने से जो फल प्राप्त हो, वह सूर्य की क्रान्ति होती है। 'क्रान्तिज्या' को 'त्रिज्या' से गुणा करके उसमें 'परमक्रान्तिज्या' (१३९७) से भाग देने पर लब्धि सूर्य हों तो वही स्पष्ट सूर्य की 'भुजज्या' होती है। उसके चाप बनाकर मेषादि ३ राशि में सूर्य हों तो वही स्पष्ट सूर्य होता है। कर्कादि ३ राशि में हों तो उस चाप को ६ राशि में घटाने से, तुलादि ३ राशि में हों तो ६ राशि में जोड़ने से और मकरादि ३ राशि में हों तो १२ राशि में घटाने से जो योग या अन्तर हो, वह मध्याह्न में स्पष्ट सूर्य होता है। उस स्पष्ट सूर्य से विपरीत क्रिया द्वारा मन्दफलसाधन कर बार-बार संस्कार करने से मध्यम सूर्य का ज्ञान होता है ॥१३८-१४०½॥

तन्मंदमसकृद्वामं फलं मध्यो दिवाकरः । ग्रहोदयाः प्राणहताः खखाष्टैकोद्धता गतिः ॥१४१॥
चक्रासवो लब्धयुतो स्वाहोरात्रासवः स्मृताः । त्रिभयुकर्णार्द्धगुणा स्वाहोयत्रार्द्धभाजिताः ॥१४२॥
क्रमादेकद्वित्रिभाज्य तच्चापानि पृथक्पृथक् । स्वाधोधः प्रविशोध्याथ मेषाल्लंकोदयासवः ॥१४३॥
स्वागाष्टयोधगोगैकाः शसयेकं हिमांशवः । स्वदेशचरखंडोना भवंतीष्टोदयासवः ॥१४४॥
व्यस्ताव्यस्तैर्युतास्तैस्तैः कर्कटाद्यास्ततस्तु यः । उत्क्रमेण षडेवैते भवंतीष्टास्तुलादयः ॥१४५॥
गतभोग्यासवः कार्याः सायनास्स्वेष्टभास्कराः । स्वोदयात्सुहता भक्ता भक्तभोग्याः स्वमानतः ॥१४६॥
अभीष्टघटिकासुभ्यो भोग्यासून्प्रविशोधयेत् । तद्वदेवैष्यलग्नासूनेवं व्याप्तास्तथा क्रमात् ॥१४७॥
शेषं त्रिशत्कसाद्धचस्तमशुद्धेन विभाजितम् । भागयुक्तं च हीनं च व्ययनांशं तनुः कुजे ॥१४८॥
प्राक्पश्चान्नतनाडीभ्यस्तद्वल्लंकोदयासुभिः । भानौ क्षयधने कृत्वा मध्यलग्नं तदा भवेत् ॥१४९॥

ग्रहों के अहोरात्र-मान--जिस राशि में तत्काल ग्रह हो, उस राशि के उदयमान से उस ग्रह की गति को गुणा करके उसमें १८०० से भाग देने पर लब्ध असु को 'अहोरात्रासु' (२१६००) में जोड़ने पर उस ग्रह का अहोरात्रमान होता है। (असु से पल और घड़ी बना लेनी चाहिए ॥१४१½॥

राशियों के उदयमान—१ राशि, २ राशि, ३ की ज्या को पृथक्-पृथक् 'परमाल्पद्युज्या' (परमक्रान्ति की कोटिज्या) से गुणा करके उसमें अपनी-अपनी द्युज्या (क्रान्तिकोटिज्या) से भाग देकर लब्धियों के चाप बनाये। उनमें प्रथम चाप मेष का उदय (लङ्कोदय)-मान होता है। प्रथम चाप को द्वितीय चाप में घटाने पर शेष वृष का उदयमान होता है एवं द्वितीय चाप को तृतीय चाप में घटाकर जो शेष रहे, वह मिथुन का लंकोदयमान होता है। यथा—१६७० असु मेष का, १७९५ वृष का तथा १९३५ मिथुन का सिद्ध लंकोदयमान है। इन तीनों में क्रम से अपने देशीय तीनों चरखंडों को घटाने पर क्रमशः तीनों अपने देश के मेष आदि तीन राशियों के उदयमान प्राप्त होते हैं। पुनः उन्हीं तीनों लंकोदयमानों को उत्क्रम से रखकर—इन तीनों में अपने देश के तीनों चरखंडों को उत्क्रम से जोड़ने पर कर्क आदि ३ राशियों के स्वदेशोदयमान होते हैं एवं मेषादि कन्यापर्यन्त ६ राशियों के उदयमान सिद्ध होते हैं। पुनः ये ही उत्क्रम से तुलादि ६ राशियों के मान होते हैं ॥१४२-१४५॥

लग्नसाधन---इष्टकालिक सायन सूर्य के भुक्तांश और भोग्यांश द्वारा भुक्तपल और भोग्यपल का साधन करना चाहिए। जैसे--भुक्तांश को सायन सूर्य के स्वदेशीय उदयमान से गुणा करके उसमें ३० के द्वारा भाग देने पर लब्धि 'भोग्यपल' होते हैं। इष्ट घटी के 'पल' बनाकर उसमें 'भोग्यपल' को घटाये, घटाने पर जो शेष बचे, उसमें अग्रिम राशियों में से जितने के स्वदेशोदयमान घटें, उतने घटाये। (अथवा) इसी प्रकार 'इष्टपल' में 'भुक्तपल' घटाकर शेष में, गत राशियों के उत्क्रम से उनके जितने स्वदेशोदयमान घट सकें उतने घटाये। जिस राशि तक का मान घट जाय, वहाँ तक 'शुद्ध' और जिसका मान नहीं घटे, वह 'अशुद्ध' कही जाती है। बचे हुए 'इष्टपल' को ३० से गुणा करके अशुद्धराशि के उदयमान से भाग देकर लब्ध अंशादि को (भोग्य-क्रम-विधि हो तो) शुद्ध राशि-संख्या में जोड़ने और (भुक्त-उत्क्रम-विधि हो तो) अशुद्ध राशि की संख्या में घटाने से फलादेश के लिये उपयुक्त उदयलग्न का मान होता है ॥१४६--१४८॥

मध्य-दशम लग्न-साधन—इसी प्रकार पूर्व 'नतकाल के पल' से लंकोदय द्वारा अंशादि साधन करके उसको सूर्य में घटाने से तथा पश्चिम 'नतकाल के पल' और लंकोदय द्वारा (त्रैराशिक से) अंशादि साधन करके सूर्य में जोड़ने से मध्य (दशम = आकाशमध्य) लग्न प्राप्त होता है ॥१४९॥

भोग्यासून्नूनकस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च । सपिंडयांतरलग्नासूनेवं स्यात्कालसाधनम् ॥१५०॥
विराह्वर्कभुजांशाश्चेदिंद्राल्पाः स्याद् ग्रहो विधोः । तेषां शिवघ्नाः शैलाप्ता व्याघर्कांजः ॥१५१॥
शरोंगुलैः
अर्क विधुर्विधुं भूभा छादयत्यथ छन्नकम् । छाद्यछादकमानार्धं शरोन ग्राह्यवर्जितम् ॥१५२॥
तत्स्वच्छन्नं च मानैक्यार्द्धाशषष्ठं दशाहतम् । छन्नघ्नमस्मान्मूलं तु स्वांगोनग्लौवपुर्हृतम् ॥१५३॥
स्थित्यर्द्धं घटिकादिस्याद्व्यगव्राह्वंशसंमितैः । इष्टैः पलैस्तदूनाढ्यं व्यगावूनेऽर्कषड्गुणः ॥१५४॥
तदन्यथाधिके तस्मिन्नेवं स्पष्टे सुखांत्यगे । ग्रासेन स्वाहते च्छाद्यमानाप्ते स्युर्विशोपकाः ॥१५५॥
पूर्णांत मध्यमत्र स्याद्दर्शांतजं त्रिभोनकम् । पृथक्तत्क्रांत्यक्षभागसंस्कृतौ स्युर्नतांशकाः ॥१५६॥

(लग्न और स्पष्ट सूर्य को जानकर इष्टकाल-साधन—लग्न और सूर्य इन दोनों में जो कम (पीछे) हो, उसके 'भोग्यांश' द्वारा 'भोग्यपल' और जो अधिक (आगे) हो उसके भुक्तांश द्वारा 'भुक्तपल' साधन कर दोनों को जोड़कर तथा उसमें उन दोनों (लग्न और सूर्य) के बीच में जो राशियाँ हों, उनके उदयासुओं को जोड़ने से 'इष्टकालासु' होने हैं ॥१५०॥

ग्रहण-साधन—पर्वान्त काल में स्पष्ट सूर्य, चन्द्र और राहु का साधन करना चाहिए। सूर्य में राहु को घटाकर जो शेष बचे, उसके भुजांश यदि १४ से अल्प हो तो चन्द्रग्रहण की संभावना समझे। उन भुजांशों को ११ से गुणाकर ७ से भाग देने पर लब्धि-अंक अंगुलादि 'शर' होता है ॥१५१॥

सूर्य को चन्द्रमा और चन्द्रमा को भूभा (पृथिवी की छाया) छादित करती है। इसलिए सूर्यग्रहण में सूर्य छाद्य और चन्द्रमा छादक तथा चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा छाद्य, भूभा छादक (ग्रहणकर्त्री होती है। अब छन्न (ग्रास) मान कहते हैं—छाद्य और छादक के बिम्बमानों का योग करके उसके आधे में 'शर' घटाने से 'छन्न' (ग्रास) मान प्राप्त होता है। यदि ग्रासमान ग्राह्य (छाद्य) से अधिक हो तो उसमें छाद्य को घटानेपर जो शेष बचे, उतना खच्छन्न (खग्रास) समझना चाहिए।

मानैक्यार्ध (छाद्य-छादक के बिम्बमानों के योग का आधा) में शर जोड़कर १० से गुणा करे। फिर ग्रासमान से गुणा करके गुणनफल के मूल में अपना षष्ठांश घटाकर शेष में चन्द्र-बिम्ब से भाग देने पर लब्धि-प्राप्त घटी आदि को स्थित्यर्ध जानना चाहिए। इस स्थित्यर्ध को दो स्थानों में रखे। व्यगु (व्यगवर्क—राहु घटाया हुआ सूर्य) यदि ६ या १२ राशि से कम हो तो द्विगुणित व्यगु भुजांशतुल्य पल को प्रथम स्थानगत स्थित्यर्ध में घटाये और द्वितीय स्थान वाले में जोड़े। व्यगु भुजांशतुल्य पल को प्रथम स्थानगत स्थित्यर्ध में घटाना और द्वितीय स्थान वाले में जोड़ना चाहिए। यदि व्यगु ६ या १२ से अधिक हो तो विपरीत क्रम से (प्रथम स्थान में जोड़ने और द्वितीय स्थान में घटाने से) स्पर्श और मोक्षकालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध होते हैं ॥१५२-१५४½॥

(ग्रहण का विशोपक 'बिस्वा' फल)—अंगुलादि ग्रासमान को २० से गुणा करके गुणनफल में अंगुलात्मक छाद्यमान से भाग दे, इस प्रकार लब्धि विशोपक फल होता है ॥१५५॥

सूर्यग्रहण में विशेष लम्बन-घटी-साधन—पर्वान्त काल में ग्रहण का मध्य होता है। सूर्यग्रहण में दर्शान्त कालिक लग्न बनाकर उसमें तीन राशि घटाने से प्राप्त फल 'वित्रिभ' या 'त्रिभोन' लग्न कहलाता है। उसको पृथक् रखकर उसकी क्रान्ति और अक्षांश के संस्कार (एक दिशा में योग, भिन्न दिशा में अन्तर) करने से 'नतांश' प्राप्त होता है। उसका २२वाँ भाग करके वर्ग करना चाहिए। यदि २ कम हो तो उसी में, यदि २ से

तद्विघ्नांशकृतिद्वय्नाद्धर्कियुता हरिः । त्रिभानांगार्कविश्लेषांशोंशोनघ्नाः पुरंदराः ॥१५७॥
हराप्तालंबनं स्वर्णं वित्रिभेर्काधिकोनके । विश्वघ्नलंबनकलाढ्योनस्तु तिथिवद्यगुः ॥१५८॥
शरोनोलंवनषडघ्ने तल्लवाढ्योनवित्रिभात् । नतांशास्तजांसाने प्राधृतस्तद्विर्वाजतः ॥१५९॥
शब्देंदुलिप्तैः षड्भिस्तु भक्तानतिर्नतांशदिक् । तयोर्नाटद्योर्हभिन्नैकदिक्शरः स्फुटतां व्रजेत् ॥१६०॥
ततश्छन्नस्थितिदले साध्ये स्थित्यर्द्धंषट्त्रिभिः । अंशस्तैर्वित्रिभंद्विस्थंलंबनेतयोः पूर्ववत् ॥१६१॥
संस्कृतेस्ताभ्यां स्थित्यर्द्धे भवतः स्फुटे । ताभ्यां हीनयुतो मध्यदर्शः कालौ मुखांतगौ ॥१६२॥
अर्काद्यूना विश्व ईशा नवपंचदशांशकाः । कलांशास्तैरूनयुक्ते रवौ ह्यस्तोदयौ विधोः ॥१६३॥
दृष्ट्वा ह्यादौ खेटबिंबं दृगौच्चये लंबमीक्ष्य च । तल्लंबपार्वबिंबांतदृगौ व्यासरविघ्नभाः ॥१६४॥
अस्ते सावयवा ज्ञेया गतैष्यास्तिथयो बुधैः । व्यस्ते युक्रांतिभागैश्च द्विघ्नतिथ्याहृता स्फुटम् ॥१६५॥

अधिक हो जाय तो २ घटाकर शेष के आधे को उसी (वर्ग) में जोड़कर पुनः १२ में जोड़ने से 'हार' होता है। 'त्रिभोन' लग्न और सूर्य के अन्तरांश के दशमांश को १४ में घटाकर शेष को उसी दशमांश से गुणा करे। उसमें पूर्वसाधित हार से भाग देने पर लब्धितुल्य घट्यादि लम्बन होता है। यह (लम्बन) यदि वित्रिभ सूर्य से अधिक हो तो धन, न्यून हो तो ऋण होता है। अर्थात् साधित दर्शान्तिकाल में इस लम्बन को जोड़ने-घटाने से पृष्ठस्थानीय दर्शान्तिकाल प्राप्त होता है ॥१५६-१५७½॥

घट्यादि लम्बन को १३ से गुणा करने पर गुणनफल कलादि होता है। उसको व्यग्वर्क में जोड़ या घटाकर 'शर' बनाने से (पृष्ठीय दर्शान्तकालिक) शर (स्पष्ट) होता है। तथा घट्यादि लम्बन को ६ से गुणा करके गुणनफल को अंशादि मानकर वित्रिभ में जोड़ या घटाकर नतांश-साधन करे। नतांश के दशमांश को १८ में घटाकर शेष को उसी दशांश से गुणा करे; गुणनफल को ६ अंश १८ कला में घटाकर जो शेष बचे, उससे गुणनफल में ही भाग देने से लब्धि अंगुलादि नतांश की दिशा की नति होती है। इस नति और पूर्वसाधित शर दोनों के संस्कार (भिन्न दिशा हो तो अन्तर, एक दिशा हो तो योग करने) से स्पष्ट शर होता है। सूर्य-ग्रहण में उसी शर से ग्रास और स्थित्यर्ध को ६ से गुणा करके अंशादि गुणनफल को वित्रिभ में घटाये और दूसरे स्थान में जोड़े। इन दोनों पर से पूर्वविधि से पृथक् लम्बसाधन करके क्रमशः पूर्वविधि से साधित स्पर्श और मोक्षकाल में संस्कार करने से स्पष्ट पृष्ठस्थानीय स्पर्श और मोक्षकाल होते हैं ॥१५८-१६२॥

ग्रहों के उदयास्तकालांश—१२, १७, १३, ११, ९, १५ ये क्रमशः चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि के कलांश हैं। अपने-अपने कलांश तुल्य सूर्य से पीछे ग्रह होते हैं तो अस्त और कलांशतुल्य सूर्य से आगे होते हैं तो उदय होता है। (अर्थात् ग्रह अपने-अपने कलांश के भीतर सूर्य से पीछे या आगे जब तक रहते हैं, तब तक सूर्य-सान्निध्यवश अस्त (अदृश्य) रहते हैं ॥१६३॥

ग्रहों के प्रतिबिम्ब द्वारा छायासाधन—समतल भूमि में रखे हुए दर्पण आदि में ग्रहों के प्रतिबिम्ब को देखकर दृष्टि स्थान से भूमि पर्यन्त लम्ब पातकर दृष्टि को ऊँचाई का मान समझे। लम्बमूल और प्रतिबिम्ब के अन्तर प्रमाण को दृष्टि की ऊँचाई से भाग देकर लब्धि को १२ से गुणा करने से प्राप्त फल उस समय उस ग्रह की छाया का प्रमाण होता है ॥१६४॥

चन्द्रशृङ्गोन्नति-ज्ञान—सूर्यास्त समय में सावयव गत और एष्य तिथि का साधन करे। उस सावयव तिथि को १६ से गुणा करे। गुणनफल में १५ से भाग देकर लब्धि (फल) की दिशा उत्तर समझे। उसमें सूर्य की क्रान्ति का यथोक्त संस्कार (एक दिशा होने पर योग, भिन्न दिशा में होने पर अन्तर) करे। तथा चन्द्रमा के शर और क्रान्ति का विपरीत संस्कार करके जो फल हो उसमें द्विगुणित तिथि से भाग देने पर जितनी

संस्कारादिकलंबनमंगुलाद्यं प्रजायते । सेष्वंशोनाः सितं तिथ्यो बलन्नाशोन्नतं विधोः ।।१६६।।
शृङ्गमन्यत्र उद्वाच्यं वलनांगुललेखनात् । पंचर्तवोऽगोंकविशिखाः शेषकर्णहताः पृथक् ।।१६७।।
विकुज्यकांगसिद्धाग्निभक्तालब्धोनसंयुताः । त्रिज्याधिकोने श्रवणे वपूंषि स्युर्हृताः कुजात् ।।१६८।।
ऋज्वोरनृज्वोर्विवरं गत्यंतरविभाजितम् । वक्रत्वोर्गतियोगाप्तं गम्येऽतीते दिनादिकम् ।।१६९।।
खनत्यासंस्कृतोव्वेषूदक्साम्येन्येंतरं युतिः । याम्योदक्खेटविवरं मानैक्याद्धोल्पकं यदा ।।१७०।।
यदा भेदोलंबनाद्यं स्फुटार्थं सूर्यपर्ववत् । एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा ।।१७१।।
तयुते मंडले क्रांत्यौ तुल्यत्वे वै धृताभिधः । विपरीतायनगतौ चंद्राकौं क्रांतिलिप्तिकाः ।।१७२।।
समास्तदा व्यतीपातो भगणार्द्धे तयोयुतौ । भास्करेंद्वोर्भचक्रांतचक्रार्द्धावधिसंस्थयोः ।।१७३।।

लब्धि हो, उतना अंगुल संस्कार-दिशा का वलन होता है। चन्द्रमा से जिस दिशा में सूर्य रहता है, वही संस्कार की दिशा समझी जाती है। तिथि में अपना पञ्चमांश घटाने से शुक्ल (चन्द्र के श्वेत भाग) का अंगुलादि मान होता है। वलन की जो दिशा होती है, उस दिशा का चन्द्रशृङ्ग उन्नत और अन्य दिशा में नत होता है। उसके अनुसार परिलेख करना चाहिए ।।१६५-१६६½।।

ग्रहयुति-ज्ञानार्थ मंगलादि पाँच ग्रहों के बिम्ब-साधन—मंगलादि के ग्रहों के ५, ६, ७, ९, ५ इन मध्यमबिम्बमानों को क्रम से मंगलादि ग्रहों के कर्णशेष (त्रिज्या और अपने-अपने शीघ्र कर्ण के अन्तर) से गुणा करके गुणनफल को २ स्थानों में रखे। एक स्थान में मंगलादि ग्रह के क्रम से २१, १२, ६, २४ और ३ का भाग देकर लब्धि को द्वितीय स्थान में स्थित गुणनफल में, यदि कर्ण त्रिज्या से अधिक हो तो घटाये, यदि त्रिज्या से अल्प हो तो जोड़े, फिर उसमें ३ से भाग दे तो क्रमशः मंगलादि ग्रहों के बिम्ब-प्रमाण होते हैं ।।१६७-१६८।।

ग्रहों की युति के गत-गम्य दिन-साधन—जिन दो ग्रहों के युतिकाल का ज्ञान करना हो, वे दोनों मार्गी हों, अथवा दोनों वक्री हों तो दोनों को गतियोगकला से भाग देना चाहिए। फिर जो लब्धि आए, वह ग्रह युति के गत या गम्य दिनादि होते हैं ।।१६९।।

ग्रहों की युति में भेद-ज्ञान—जिन दो ग्रहों की युति होती हो, उन दोनों के अपनी-अपनी नति से संस्कृत शर (भूपृष्ठस्थानाभिप्रायिक शर) एक दिशा के हों तो अन्तर, यदि भिन्न दिशा के हों तो योग करने से दोनों ग्रहों का अन्तर (दक्षिणोत्तरान्तर) होता है। यह अन्तर यदि दोनों के बिम्बमान योगार्ध से अल्प हो तो उनके उनके योग में भेद (एक से दूसरा आच्छादित) होता है। इसलिए इनमें नीचे वाले को छादक और ऊपर वाले को छादक और ऊपर वाले को छाद्य मानकर सूर्यग्रहण के समान ही लम्बन, ग्रासमान आदि करना चाहिए ।।१७०-१७१½।।

पाताधिकार-पात की संज्ञा—जब सूर्य और चन्द्रमा दोनों एक ही अयन (याम्यायन—दक्षिणायन अथवा सौम्यायन—उत्तरायण) में हों तथा उन दोनों के राश्यादि योग १२ राशि हो तो उस स्थिति में दोनों के क्रान्तिसाम्य होने पर वैधृति नाम का पात कहता है। तथा जब दोनों भिन्न (पृथक्पृथक्) अयन में हों और दोनों का योग ६ राशि हो तो उस स्थिति में दोनों के क्रान्तिसाम्य होने पर व्यतीपात नामक पात होता है ।।१७२-१७३½।।

दृक्कल्पसाधितांशादियुक्तयोः स्वावपक्रमौ । अथोजपदगम्येंदोः क्रांतिर्विक्षेपसंस्कृता ॥१७४॥
यदि स्यादधिका भानोः क्रांतेः पातो गतस्तदा । न्यूना चेत्स्यात्तदा भावी वामं युग्मपदस्य च ॥१७५॥
यदान्यत्वं विधोः क्रांतिः क्षेपाच्चेद्यदि शुद्धयति । क्रांत्योर्ज्ये त्रिज्ययाभिस्ते परमापक्रमोद्धृते ॥१७६॥
तच्चापांतरमर्द्धंवायोज्यंभाविनशीतगौ । शोध्यं चंद्राद्गते पाते तत्सूर्यगतिताडितम् ॥१७७॥
चंद्रभुक्त्या हृते भानौ लिप्तादिशशिवत्फलम् । तद्वच्छशांकपातस्य फलं देयं विपर्ययात् ॥१७८॥
कर्मैतदसकृत्तावत्क्रांती यावत्समेतयोः । क्रांत्योः समत्वे पातोऽथ प्रक्षिप्तांशोनिते विधौ ॥१७९॥
हीनेऽर्द्धरात्रिकाद्यातो भावो तात्कालिकेऽधिका । स्थिरीकृतार्द्धरात्राद्धौ द्वयोर्विवरलिप्तकाः ॥१८०॥
षष्टिघ्नाचंद्रभुक्ताप्ता पातकालस्य नाडिकाः । रवींद्वोर्मानयोगार्द्धं षष्ट्या संगुण्य भाजयेत् ॥१८१॥

जब सूर्य-चन्द्र का अन्तर चक्र शून्य या ६ राशि हो उस समय में तात्कालिक अयनांशादि से युक्त सूर्य और चन्द्रमा की अपनी-अपनी क्रान्ति का साधन करे। चन्द्रमा के विषम पद में होने पर यदि चन्द्रमा की क्रान्ति सूर्य की क्रान्ति से अधिक हो तो पात को रात समझना चाहिए तथा यदि चन्द्रमा की क्रान्ति सूर्य को क्रान्ति से अल्प हो तो पात को भावी समझना चाहिए। चन्द्रमा के समपद में स्थित होने पर विपरीत (चन्द्रमा की क्रान्ति सूर्य की क्रान्ति से अधिक हो तो पात को भावी, यदि अल्प हो गत) समजना चाहिए। यदि क्रान्तिशर-संस्कार (स्पष्टक्रान्ति बनाने) में चन्द्र की मध्या क्रान्ति, शर में घटायी जाय तो चन्द्रमा के स्थानीय पद और बिम्बीय पद में भिन्नता होती ॥१७३-१७५½॥

दोनों की 'क्रान्तिज्या' को त्रिज्या से गुणा करके उसमें परम क्रान्तिज्या से भाग देकर जो लब्धियाँ हों, उन दोनों के चाप बनाकर उन दोनों चापों के अन्तर को सम्पूर्ण या अर्ध (कुछ न्यून) करके गम्य पात हो तो चन्द्रमा में जोड़े; गतपात हो तो घटाये। इस प्रकार पात मध्य कालासन्न चन्द्र होता है। पुनः उपर्युक्त चाप के अन्तर या उसके अर्ध को सूर्य की गति से गुणा करके गुणनफल में चन्द्रगति से भाग देकर जो लब्धि (कलादि) हो, उसको चन्द्रमा के समान ही सूर्य में संस्कार करे (गतपात में जोड़े, गम्य पात में घटाये) तो पातकालासन्न समय का सूर्य, होता है। चन्द्रपात का सूर्यफलसाधन के समान (पूर्वोक्त लब्ध चापान्तर या उसके आधे को चन्द्रपात गति से गुणा करके चन्द्रगति से भाग दे) प्राप्त फल को चन्द्रपात में विपर्यय (गम्यपात को चन्द्रपात से घटाये, गतपात में जोड़े) करने पर पातकालासन्न समय का चन्द्रपात होता है। फिर इन तीनों (रवि चन्द्र और चन्द्रपात) के द्वारा उपर्युक्त क्रिया को तब तक बार-बार करता रहे जब तक दोनों की क्रान्ति सम न हो जाय ॥१७६-१७८½॥ इस प्रकार क्रान्ति-साम्य होने पर पात समझना चाहिए। यदि उपर्युक्त क्रिया द्वारा प्राप्त अंशादि से युक्त या हीन किया हुआ चन्द्रमा अर्धरात्रिकालिक साधित चन्द्रमा से अल्प (पीछे) हो तो पातकाल को 'गत' समझे और यदि अधिक (आगे) हो तो पातकाल को भावी समझे ॥१७९½॥

(अर्धरात्रि से गत, गम्य पातकाल का ज्ञान)—उपर्युक्त क्रिया द्वारा स्थिरीकृत (पातकालिक) चन्द्रमा और अर्धरात्रिकालिक चन्द्रमा जो हों इन दोनों की अन्तरकला को ६० से गुणा करके गुणनफल में चन्द्र की गति-कला से भाग देने पर जो लब्धि हो, उतनी घटी अर्धरात्रि से पीछे या आगे (गत पात में पीछे, गम्य पात में आगे) तक पातकाल की घड़ी समझी जाती है ॥१८०½॥

(पात के स्थितिकाल, आरंभ तथा अन्तकाल का साधन)—सूर्य तथा चन्द्रमा के बिम्बयोगार्ध को ६० से गुणा करके गुणनफल में सूर्य-चन्द्र की गत्यन्तरकला से भाग देकर जो लब्धि हो, वह पात की स्थित्यर्ध घड़ी

तयोर्भुक्त्यंतरेणाप्तं स्थित्यमर्द्धं नाडिकादिवत् । पातकालः स्फुटो मध्यः सोऽपि स्थित्यर्द्ध- ॥१८२॥
वर्जितः
तस्य संभवकालः स्यात्तत्संयोगेत्तसंज्ञकः । आद्यंतकालयोर्मध्ये कालो ज्ञेयोऽतिदारुणः ॥१८३॥
प्रज्वलज्ज्वलनाकारः सर्वकर्मसु गर्हितः ।
इत्येतद्गणिते किंचित्प्रोक्तं संक्षेपतो द्विज । ॥१८४॥
जातकं वच्मि समयाद्राशिसंज्ञापुरःसरम्

इति श्रीबृहन्नादीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे
ज्योतिषवर्णनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

•

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सनंदन उवाच

मूर्द्धास्यबाहुहृत्क्रोडांतर्बस्तिव्यंजसोनखः । जानुजंघांघ्रियुगलं कालांगानि क्रियादयः ॥१॥
भौमास्फुजिबुधेंदुश्च रविसौम्यसिताः कुजः । गुरुमंदार्किगुरवो मेषादीनामधीश्वराः ॥२॥

होती है। इसको पात के स्पष्ट मध्यकाल में घटाने से पात का आरम्भकाल होता है और जोड़ने से अन्तकाल अन्तकाल होता है। पात के आरंभकाल से अन्तकाल तक जो मध्य का काल है, वह प्रज्वलित अग्नि के समान अत्यन्त भयानक होता है। जो सब कार्य में निषिद्ध है। ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने गणितस्कन्ध में संक्षेप से कुछ (उपयोगी) विषयों का प्रतिपादन किया है। अब (अगले अध्याय में) राशियों के संज्ञादि कथनपूर्वक जातक का वर्णन करूंगा ॥१८१-१८४॥

श्रीनारदीयपुराण के पूर्वभाग के द्वितीयपाद में ज्योतिषवर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त ॥५४॥

अध्याय ५५

त्रिस्कन्ध ज्यौतिष का जातकस्कन्ध

सनन्दन बोले—नारद! मेष आदि राशियाँ कालपुरुष के क्रमशः मस्तक, मुख, बाहु, हृदय, उदर, कटि, वस्ति (पेंडू), लिंग, ऊरु, जानु, जंघा और दोनों चरण हैं ॥१॥ मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि, शनि तथा गुरु—ये क्रमशः मेष आदि राशियों के अधीश्वर (स्वामी) हैं ॥२॥ विषम राशियों

होरे विषमभेऽर्केन्दोः समभे शशिसूर्ययोः । आदिपञ्चनवाधीशाद्द्रेष्काणशाः प्रकीर्तिताः ॥३॥
पंचेष्टाष्टाद्रिपंचाशा कुजार्कीज्यज्ञशुक्रगाः । ओजे विपर्ययाद्युग्मे त्रिशांशेशाः समीरिताः ॥४॥
क्रियेणतौलिकर्काद्या मेषादिङ्‌ नवांशकाः । स्वभाद्द्वादशभागेशाः षडर्गं राशिपूर्वकम् ॥५॥
गोजाश्च कर्कयुग्मेन रात्र्याख्या पृष्ठकोदयाः । शेषा दिनाख्यास्तूभयं तिमिः क्रूरः सौम्यः पुमान् ॥६॥
पुमान् स्त्री च क्लीबश्चरस्थिरद्विःस्वभावकाः । मेषाद्याः पूर्वतोदिक्स्थाः स्वस्वस्थानचरास्तथा ॥७॥
अजोक्षेणांगनाकीटझबजूका इनादितः । उच्चानि द्वित्रिमनुयुक्तिथीषुभनखांशकैः ॥८॥
तत्तत्सप्तमनीचानि प्राङ्मध्यांत्यांशकाः क्रमात् । वर्गोत्तमाश्च राधेषुभावाद्द्वादश मूर्तिमान् ॥९॥

में पहले सूर्य की, फिर चन्द्रमा की होरा होती है तथा सम राशियों में पहले चन्द्रमा की, फिर सूर्य की होरा होती है। आरम्भ के दश अंश तक उसी राशि का द्रेष्काण होता है और उस राशि के स्वामी ही उस द्रेष्काण के स्वामी होते हैं। ग्यारह से बीसवें अंश तक उस राशि से पाँचवीं राशि का द्रेष्काण होता है और उसी के स्वामी उस द्रेष्काण के स्वामी कहे गये हैं। इक्कीसवें से तीसवें अंश तक उस राशि से नवीं राशि का द्रेष्काण होता है और उसी के स्वामी उस द्रेष्काण के स्वामी होते हैं ॥३॥

विषम राशियों में पहले पाँच अंश तक मंगल, फिर पाँच अंश तक शनि, फिर आठ अंश तक बृहस्पति, फिर सात अंश तक बुध और अन्तिम पाँच अंश तक शुक्र त्रिशांशेश कहे गये हैं। सम राशियों में इसके विपरीत क्रम से पहले पाँच अंश तक शुक्र, फिर सात अंश तक बुध, फिर आठ अंश तक बृहस्पति, फिर पाँच अंश तक शनि और अन्तिम पाँच अंश तक मंगल त्रिशांशेश कहे गये हैं ॥४॥ मेष आदि राशियों के नवमांश मेष, मकर, तुला और कर्क से प्रारम्भ होते हैं। (यथा—मेष, सिंह, धनु का मेष से; वृष, कन्या, मकर का मकर से; मिथुन, तुला और कुम्भ का तुला से तथा कर्क, वृश्चिक और मीन का नवमांश कर्क से चलते हैं)। २½ अंश के द्वादशांश होते हैं, जो अपनी राशि से प्रारंभ होकर अन्तिम राशि पर पूर्ण होते हैं और उन-उन राशियों के स्वामी ही उन द्वादशांश के स्वामी कहे गये हैं। इस प्रकार ये राशि, होरा आदि षड्वर्ग कहलाते हैं ॥५॥

वृष, मेष, धनु, कर्क, मिथुन और मकर—ये रात्रि-संज्ञक हैं अर्थात् रात में बली माने गये हैं—ये पृष्ठ भाग से उदय होने के कारण पृष्ठोदय राशियाँ कहलाती हैं (किन्तु मिथुन पृष्ठोदय नहीं है)। शेष राशियों की दिन संज्ञा है (वे दिन में बली और शीर्षोदय माने गये हैं); मीन राशि को उभयोदय कहा गया है। मेष आदि विषम राशियाँ क्रम से क्रूर और सौम्य (अर्थात् मेष आदि विषमराशियाँ क्रूर और वृष आदि सम राशियाँ सौम्य हैं) ॥६॥ मेष आदि' राशियाँ क्रम से पुरुष, स्त्री और नपुंसक होती हैं (नवीन मत में दो विभाग हैं, मेष आदि विषम राशियाँ पुरुष और वृष आदि सम राशियाँ स्त्री हैं)। इसी प्रकार मेष आदि राशियाँ क्रमशः चर, स्थिर और द्विस्वभाव में विभाजित हैं (अर्थात् मेष चर, वृष स्थिर, और मिथुन द्विस्वभाव हैं, कर्क चर, सिंह स्थिर और कन्या द्विस्वभाव हैं। इसी क्रम से अन्य राशियों को भी समझना चाहिए। मेष आदि राशियाँ क्रमशः पूर्व आदि दिशाओं में स्थित हैं (यथा—मेष, सिंह, धनु पूर्व में। वृष कन्या, मकर दक्षिण में; मिथुन, तुला, कुम्भ पश्चिम में और कर्क, वृश्चिक, मीन उत्तर में स्थित हैं)। ये सब अपनी-अपनी दिशा में रहती हैं ॥७॥ सूर्य मेष, में चन्द्रमा वृष में, मंगल मकर में, बुध कन्या में, गुरु कर्क में, शुक्र मीन में, तथा शनि तुला में उच्च होता है। सूर्य का मेष में, १० अंश, चन्द्रमा का वृष में ३ अंश, मंगल का मकर में २८ अंश, बुध का कन्या में १५ अंश, गुरु का कर्क में ५ अंश, शुक्र का मीन में २७ अंश तथा शनि का तुला में २० अंश उच्चांश (परमोच्च) होता है ॥८॥ सूर्यादि ग्रहों की जो उच्चराशियाँ कही गई हैं, उनसे सातवीं राशि उन ग्रहों का नीच स्थान है। चर राशि में प्रथमनवमांश वर्गोत्तम है। स्थिर राशि में मध्य पाँचवाँ नवमांश और द्विस्वभाव राशि में अन्तिम (नवाँ) नवमांश वर्गोत्तम है। तनु (लग्न)

॥१०॥
सिंहोक्षाविस्रश्चतौलिकुंभाः सूर्यात्त्रिकोणभम् । चतुरस्रं तूर्यमृत्युत्रिकोणं नवपंचमम् ॥११॥
रिःफाष्टषट्कं त्रिकभं केंद्रं प्राक्तुर्यसप्तखम् । नृपादः कीटपशवो बलाढ्याः केंद्रगाः क्रमात् ॥१२॥
केंद्रात्परं पणफरमापोक्लिमतः परम् । रक्तः श्वेतः शुकनिभः पाटलो धूम्रपांडुरौ ।
चित्रः कृष्णः पीतपिंगौ बभ्रुः स्वच्छः प्रभाक्रियात् ॥१३॥
साम्याशाख्यप्लवत्वं स्याद्द्वितीये वेशिरर्कभात् ।
कालात्मार्को मनश्चंद्रः कुजः सत्वं वचो बुधः ॥१४॥
जीवो ज्ञानं सुखं शुक्रः कामो दुःखं दिनेशजः ॥१५॥
नृपौ रवीन्दू नेतासृक् कुमारो ज्ञः कवीज्यकौ । सचिवो सूर्यजः प्रेष्यो मतो ज्योतिर्विदांवरैः ॥१६॥
ताम्रशुक्लरक्तहरित्पीतचित्रासिता रवेः । वर्णा वअव्यहहरींद्रा शचीकौधिपारवेः ॥१७॥
रविशुक्रारराह्वर्केन्दुविदोज्या दिगीश्वराः । क्षीणेंद्वर्कारररविजाः पापा पापयुतो बुधः ॥१८॥
क्लीबौ बुधार्को शुक्रेन्दू स्त्रियौ शेषा नराः स्मृताः । शिखिभूमिपयोवारिवासिनो भूसुतादयः

आदि बारह भाव हैं ॥९॥ सूर्य का सिंह, चन्द्रमा का वृष, मंगल का मेष, बुध का कन्या, गुरु का धन, शुक्र का तुला और शनि का कुम्भ मूल त्रिकोण कहा गया है। चतुर्थ और अष्टमभाव की चतुरस्र संज्ञा है। नवम और पञ्चम की त्रिकोणसंज्ञा है ॥१०॥ द्वादश, अष्टम और षष्ठ का नाम त्रिक है; लग्न चतुर्थ, सप्तम और दशम को केन्द्र कहा जाता है। द्विपद, जलचर, कीट और पशु—ये राशियाँ क्रमशः केन्द्र में बली होती हैं (अर्थात् द्विपद लग्न में, जलचर चतुर्थ में, कीट सातवें में और पशु दसवें में बली होता हैं) ॥११॥ केन्द्र के बाद के स्थान (२, ५, ८, ११ ये) 'पणफर' कहे गये हैं। और पणफर के बाद के स्थान (३, ६, ९, १२—ये) आपोक्लिम कहलाते हैं। मेष का स्वरूप रक्तवर्ण, वृष का श्वेत, मिथुन का शुक के समान हरित, कर्क का पाटल (गुलाबी), सिंह का धूम्रवर्ण, कन्या का पाण्डुवर्ण (गौर), तुला का चितकबरा, वृश्चिक का कृष्णवर्ण, धनु का पीत वर्ण, मकर का पिंग वर्ण, कुम्भ का बभ्रु (भूरा) और मीन का स्वच्छ वर्ण है। इस प्रकार मेष से लेकर सब राशियों की कान्ति का वर्णन किया गया है। सभी राशियाँ अपने स्वामी की दिशा की ओर झुकी रहती हैं। सूर्याधिष्ठित राशि से दूसरे का नाम 'वेशि' है ॥१२-१३॥

ग्रहों के शील, गुण आदि का निरूपण—सूर्यदेव कालपुरुष के आत्मा, चन्द्रमा मन, मंगल पराक्रम, बुध वाणी, गुरु ज्ञान एवं सुख, शुक्र काम और शनैश्चर दुःख हैं ॥१४॥ सूर्य चन्द्रमा राजा, मंगल सेनापति, बुध राजकुमार बृहस्पति तथा शुक्र मंत्री और शनैश्चर सेवक या दूत हैं। यह ज्योतिष शास्त्र के श्रेष्ठ विद्वानों का कथन है ॥१५॥ सूर्यादि ग्रहों के वर्ण इस प्रकार हैं। सूर्य का ताम्र, चन्द्रमा का शुक्ल, मंगल का रक्त, बुध का हरित, बृहस्पति का पीत, शुक्र का चित्र (चितकबरा) तथा शनैश्चर का काला है। अग्नि, जल, कार्तिकेय, हरि, इन्द्र, इन्द्राणी और ब्रह्मा—ये सूर्यादि ग्रहों के स्वामी हैं ॥१६॥ सूर्य, शुक्र, मंगल, राहु, शनि, चन्द्रमा, बुध तथा बृहस्पति—ये क्रमशः पूर्व, अग्निकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्यकोण, पश्चिम, वायव्यकोण, उत्तर तथा ईशानकोण के स्वामी हैं। क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मंगल और शनि—ये पापग्रह हैं—पापग्रह से युक्त होने पर बुध भी पापग्रह हो जाता है ॥१७॥ बुध और शनि नपुंसक; शुक्र और चन्द्रमा स्त्री तथा शेष सभी (रवि, मंगल, गुरु) ग्रह पुरुष हैं। मंगल, बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि—ये क्रमशः अग्नि, भूमि, आकाश, जल तथा वायु—इन तत्त्वों के

कवीज्यौकुजसूर्यौ च वेदो ज्ञो वर्णपाःक्रमात् । सौरोऽन्त्यजाधिपः प्रोक्तोराहुर्म्लेच्छाधिपस्तथा ॥१९॥
चंद्रार्कजीवाज्ञसितौ कुजार्की सात्त्विकादिकाः । देवतेंद्वग्निखेलाभूकोसखायोपराधिपाः ॥२०॥
वस्त्रं स्थलं नवं वह्निकहतं मध्यदं तथा । स्फुटितं रवितस्ताम्रं तारं ताम्रपुनिस्तथा ॥२१॥
हेमकांस्यायसी त्र्यंशैः शिशिराद्याः प्रकीर्तिताः । सौरशुक्रारचंद्रज्ञगुरुषूद्यतसु च क्रमात् ॥२२॥
त्र्याशात्रिकोणतुर्याष्टसप्तमान्येन वृद्धितः । सौरेज्यारापरे पूर्णं क्रमात्पश्यंति नारद ॥२३॥
अयनक्षणघस्रतु मासार्द्धशरदो रवेः । कटुतिक्तक्षारमिश्रमधुराम्लकषायकाः ॥२४॥
त्रिकोणात्सांत्यधाधर्मायुः सुखखोद्यपः सुहृत् । जीवो जीवज्ञौ सितज्ञौ त्र्यर्का त्र्याराः क्रमादमी ॥२५॥
वींद्वर्का विकुजेंद्वर्काः सुहृदोऽन्येरवेधृताः । मिथोधनव्ययायत्रिबंधुव्यापारगः सुहृत् ॥२६॥

स्वामी हैं ॥१८॥ शुक्र और गुरुब्राह्मण वर्ण के स्वामी हैं। भौम तथा रवि क्षत्रिय वर्ण के स्वामी हैं। चन्द्रमा वैश्य वर्ण के तथा बुध शूद्र वर्ण के अधिपति हैं। शनि अन्त्यजों के तथा राहु म्लेच्छों के स्वामी हैं ॥१९॥ चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति सत्त्वगुण के, बुध और शुक्र रजोगुण के तथा मंगल और शनैश्चर तमोगुण के स्वामी हैं। सूर्य देवताओं के, चन्द्रमा जल के, मंगल अग्नि के, बुध क्रीडा-विहार के, बृहस्पति भूमि के, शुक्र कोष के, शनैश्चर शयन के तथा राहु ऊसर के स्वामी हैं ॥२०॥ स्थूल (मोटे सूत से बना हुआ), नवीन, अग्नि से जला हुआ, जल से भीगा हुआ, मध्यम (न नया न पुराना), सुदृढ़ (मजबूत) तथा फटा हुआ, इस प्रकार क्रम से सूर्य आदि ग्रहों के वस्त्र है। ताम्र (तांबा), मणि, सुवर्ण, कांसा, चांदी, मोती और लोहा—ये क्रमशः सूर्य आदि ग्रहों के धातु हैं। शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद और हेमन्त—ये क्रम से शनि, शुक्र, मंगल, चन्द्र, बुध तथा गुरु की ऋतु हैं। लग्न में जिस ग्रह का द्रेष्काण हो, उस ग्रह की ऋतु समझी जाती है ॥२१-२२॥

(ग्रहों की दृष्टि—) नारद ! सभी ग्रह अपने-अपने आश्रित स्थान से तीसरे व दसवें ३, १० स्थान को एक चरण से; ५वें, ९वें स्थान को दो चरण से ४थे, ८वें स्थान को तीन चरण से और सप्तम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। किन्तु ३, १० स्थान को शनि; ५, ९ को गुरु तथा ४, ८ को मंगल पूर्ण दृष्टि से देखते हैं ॥२३॥

(ग्रहों के कालमान—) अयन (६ मास), मुहूर्त (२ घड़ी), अहोरात्र, ऋतु, (२ मास), मास, पक्ष तथा वर्ष—ये क्रम से सूर्य आदि ग्रहों के कालमान हैं। तथा कटु (मिर्च आदि), लवण, तिक्त (निम्बादि), मिश्र (सब रसों का मेल), मधुर, अम्ल (खट्टा) और कषाय (कसैला) ये क्रमशः सूर्य आदि ग्रहों के रस हैं ॥२४॥

(ग्रहों की स्वाभाविक बहुसम्मत मैत्री—) ग्रहों के जो अपने-अपने मूल त्रिकोण स्थान कहे गये हैं, उस (मूल त्रिकोण) स्थान से २, १२, ५, ९, ८, ४ इन स्थानों के तथा अपने उच्च स्थानों के स्वामी ग्रहमित्र होते हैं और इनसे भिन्न (मूल त्रिकोण से १, ३, ६, ७, १०, ११) स्थानों के स्वामी शत्रु होते हैं।

(मतान्तर से ग्रह मैत्री—) अन्य विद्वानों के मत से सूर्य का बृहस्पति, चन्द्र के गुरु बुध, मंगल के शुक्र-बुध, बुध के रवि को छोड़कर शेष सब ग्रह, गुरु के मंगल को छोड़कर सब ग्रह, शुक्र के चन्द्र-रवि को छोड़कर अन्य सब ग्रह, और शनि के मंगलचन्द्र-रवि को छोड़कर शेष सभी ग्रह मित्र होते हैं। ।२५½॥

(ग्रहों की तात्कालिक मैत्री—) उस-उस समय जो-जो दो ग्रह २, १२। ३, ११। ४, १०—इन स्थानों में हों वे भी परस्पर तात्कालिक मित्र होते हैं। (इनसे भिन्न स्थान में स्थित ग्रह तात्कालिक शत्रु होते हैं) इस

ध्येकानुक्ता मयान् ज्ञात्वा मिश्रीदींत्सहजान्मुने । मत्कालोधिसुहृन्मित्रपूर्वकान्कल्पयेत्पुनः ॥२७॥
स्वोच्चत्रिकोणगेहा प्तनवांशेस्थानजं बलम् । दिक्षु सौम्येज्ययोः सूर्यारयोः सौरे सिताब्जयोः ॥२८॥
खाद्तूदगनेन्ये तु वक्त्रे च समागमे । उत्तरस्था दीप्तकराश्चेष्टा वीर्ययुता मताः ॥२९॥
निशींदुकुजसौराश्च सर्वदा ज्ञोह्नि चापरे । क्रूराः कृष्णे सिते सौम्याः मतं कालबलं बुधैः ॥३०॥
सौरारज्ञेज्यशुक्रेंदुसूर्याधिक्यं परस्परम् । पापास्तु बलिनः सौम्या विवक्षाः कण्टकोपगे ॥३१॥
क्लीबे तद्दूशनाद्वापि चंद्रार्कांशसमं जनुः । स्वांशे पापाः परांशस्थाः सौम्यालग्नं वियोनिजम् ॥३२॥
निर्बलं च तदादेश्यं वियोनेर्जन्म पंडितैः । शीर्षं वक्त्रगले पादावंसौ पृष्ठमुरस्तथा ॥३३॥
पार्श्वे कुक्षी त्वपानांघ्री मेढ्रमुष्कौ तथा स्फिजौ । पुच्छं चतुष्पदांगेषु मेषाद्या राशयः स्मृताः ॥३४॥

प्रकार स्वाभाविक मैत्री में (मूल त्रिकोण से जिन स्थानों के स्वामी को मित्र कहा गया है—उनमें) २ स्थानों के स्वामी को मित्र, एक स्थान के स्वामी को सम और अनुक्त स्थान के स्वामी को शत्रु समझे। तदनन्तर तात्कालिक मित्र और शत्रु का विचार करके दोनों के अनुसार अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु और अधिशत्रु का निश्चय करना चाहिए ॥२६-२७॥

(ग्रहों के बल का कथन—)अपने-अपने उच्च, मूल-त्रिकोण, गृह और नवमांश में ग्रहों के स्थान सम्बन्धी बल होते हैं। बुध और गुरु को पूर्व (उदय-लग्न) में, रवि और मंगल को दक्षिण (दशम भाव) में, शनि को पश्चिम (सप्तम भाव) में और चन्द्र तथा शुक्र को उत्तर (चतुर्थ भाव) में दिक्सम्बन्धी बल प्राप्त होता है। रवि और चन्द्रमा उत्तरायण (मकर से ६ राशि) में रहने पर तथा अन्य ग्रह वक्र और समागम में (चन्द्रमा के साथ) होने पर चेष्टाबल से युक्त समझे जाते हैं। तथा जिन दो ग्रहों में युति होती है, उनमें उत्तर दिशा में रहने वाला भी चेष्टाबल से सम्पन्न समझा जाता है ॥२८-२९॥ चन्द्रमा, मंगल और शनि रात्रि में, बुध दिन और रात्रि दोनों में तथा अन्य ग्रह (रवि, गुरु और शुक्र) दिन में बली होते हैं। कृष्णपक्ष में पापग्रह और शुक्लपक्ष में शुभग्रह बली होते हैं। इस प्रकार विद्वानों ने ग्रहों का कालसम्बन्धी बल माना है ॥३०॥ शनि, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्रमा तथा रवि—ये उत्तरोत्तर बली होते हैं। इस प्रकार यह ग्रहों का नैसर्गिक बल है ॥३०½॥

(वियोनि जन्मज्ञान—) (प्रश्न, आधान या जन्म-समय में) यदि पापग्रह निर्बल हों, शुभग्रह बलवान् हों नपुंसक (बुध, शनि) केन्द्र में हों तथा लग्न पर शनि या बुध की दृष्टि हो तो तात्कालिक चन्द्रमा जिस राशि के द्वादशांश में हो, उस राशि के सदृश वियोनि (मानवेतर प्राणी) का जन्म जानना चाहिए। अर्थात् चन्द्रमा यदि वियोनि राशि के द्वादशांश में हो तब वियोनि प्राणियों का जन्म समझना चाहिए। अथवा पापग्रह अपने नवमांश में और शुभग्रह अन्य ग्रहों के नवमांश में हो तथा निर्बल वियोनि राशि लग्न में हो तो भी विद्वान् पुरुष को वियोनि या मानवेतर जीव के ही जन्म का आदेश करना चाहिए ॥३१-३२½॥

(वियोनि के अंगों में राशि-स्थान—)१ मस्तक २ मुख, गला, (गर्दन), ३ पैर, कंधा, ४ पीठ, ५ हृदय, ६ दोनों पार्श्व, ७ पेट, ८ गुदा-मार्ग, ९ पिछले पैर, १० लिंग, ११ अंडकोश, १२ चूतड़, तथा पुच्छ—इस प्रकार चतुष्पद आदि (पशु-पक्षी) के अंगों में मेषादि राशियों के स्थान हैं ॥३३-३४॥

(वियोनि वर्ण-ज्ञान—) लग्न में जिस ग्रह का योग हो उस ग्रह के समान और यदि किसी का योग न हो लग्न के नवमांश (राशि-राशिपति) के समान वियोनि का वर्ण (श्याम, गौर आदि रंग) कहना चाहिए। बहुत से ग्रहों के योग या दृष्टि हों तो उनमें जो बली हो या जितने बली हों, उनके सदृश वर्ण कहना चाहिए। लग्न के

लग्नांशाद्ग्रहयुग्दृष्ट्वा वर्णांन्बलयुताद्वदेत् । दृक्समानप्रमाणांश्च इष्टे रेखां स्मरस्थितैः ॥३५॥
खगत्र्यंशे बलाग्नेगे चरमांशे ग्रहान्विते । वांशे स्थलांबुजः सौरेंद्वीक्षायोगभवा द्विजाः ॥३६॥
विबलैस्तनुचंद्रेज्यार्कैस्तरूणां जनिं वदेत् । स्थलांबुभेदोशकृतश्चेतरेषामुदाहृतः ॥३७॥
स्थलांबु च पतिः खेटो लग्नाद्यावन्मिते गृहे । तावंत एव तरवः स्थलजा जलजास्तथा ॥३८॥
अंतःसारा रवौ सौरे दुर्भगाः क्षीरिणो विधौ । भौमे कंटकिनो वृक्षा ईज्ये ज्ञे सफलाफलौ ॥३९॥
पुष्पिता भार्गवे स्निग्धाश्चंद्रेऽथ कटुकाः कुजे । अशुभर्क्षे शुभः खेटः शुभं वृक्षं कुभूमिजम् ॥४०॥
कुर्याद्विलोमगो वापि स्वांशोक्तपरगैः समम् । कुजेंदुहेतुकं स्त्रीणां प्रतिमासमिहार्तवम् ॥४१॥
नेष्टस्थेज्येऽन्यथास्ते स्त्रीपुंक्तासन्नरेक्षिते । पापयुक्तेक्षिते द्यूने रुषा प्रीत्या शुभग्रहैः ॥४२॥
शुक्रार्केंदुजैः स्वांशस्थैरीज्य चांगत्रिकोणगे । भवेदपत्यं विप्रेन्द्र पुंसां सद्वीर्यशालिनाम् ॥४३॥

सप्तम भाव में ग्रह हो तो उस ग्रह के समान (उस ग्रह का जैसा वर्ण कहा गया है वैसा) चिह्न उस वियोनि के पीठ आदि अंगों में जानना चाहिए ॥३५॥

(पक्षि जन्म ज्ञान--) ग्रहयुत लग्न में पक्षिद्रेष्काण हो अथवा बुध का नवमांश हो या चर राशि का नवमांश हो तथा उस पर शनि या चन्द्रमा अथवा दोनों की दृष्टि हो तो क्रमशः शनि और चन्द्रमा की दृष्टि से स्थलचर और जलचर पक्षी का जन्म समझना चाहिए ॥३६॥

(वृक्षादि जन्म-ज्ञान--) यदि लग्न, चन्द्र, गुरु और सूर्य—ये चारों निर्बल हों तो वृक्षों का जन्म जानना चाहिए। स्थल या जल-सम्बन्धी वृक्षों के भेद लग्नांश के अनुसार जानने चाहिए। उस स्थल या जलचर नवांश का स्वामी लग्न से जितने नवमांश आगे हो उतनी ही स्थल या जलसम्बन्धी वृक्षों की संख्या जाननी चाहिए ॥३७-३८॥ यदि उक्त अंश के स्वामी सूर्य हों तो अन्तः सार (सखुआ, शीशम आदि), शनि हो तो दुर्भंग (किसी उपयोग में न आने वाले कुर्कुस, फरहद आदि खोटे वृक्ष), चन्द्रमा हो तो दूध वाले वृक्ष, मंगल हो तो काँटे वाले, गुरु हो तो फलवान् (आम आदि), बुध हो तो विफल (जिसमें फल नहीं होते ऐसे) वृक्ष, शुक्र हो तो पुष्प के वृक्षों (गेंदा, गुलाब आदि) का जन्म समझना चाहिए। चन्द्रमा के अंशपति होने पर समस्त चिकने वृक्ष (देवदारु आदि) तथा मंगल के अंशपति होने पर कड़ुए वृक्ष (निम्बादि) का भी जन्म समझना चाहिए। यदि शुभग्रह अशुभ राशि में हो तो खराब भूमि से सुन्दर वृक्ष और पापग्रह शुभ राशि में हो तो सुन्दर भूमि में खराब वृक्ष का जन्म समझना चाहिए। इससे अर्थतः यह बात निकली कि यदि कोई शुभ ग्रह अंशपति हो और वह शुभ राशि में स्थित हो तो सुन्दर भूमि में सुन्दर वृक्ष का जन्म जानना चाहिए और यदि पापग्रह अंशपति होकर पापराशि में स्थित हो तो खराब भूमि में कुत्सित वृक्ष का जन्म जानना चाहिए। इसके अतिरिक्त वह अंशपति अपने नवमांश से आगे जितनी संख्या पर अन्य नवमांश में हो, उतनी ही संख्या में और उतने ही प्रकार के वृक्षों का जन्म समझना चाहिए ॥३९-४०½॥

आधान-ज्ञान—प्रतिमास मंगल और चन्द्रमा के कारण स्त्री को ऋतुधर्म हुआ करता है। जिस समय चन्द्रमा स्त्री की राशि से नेष्ट (अनुपचय) स्थान में हो और शुभ पुरुषग्रह (बृहस्पति) से देखा जाता हो तथा पुरुष की राशि से अन्यथा (इष्ट—उपचय स्थान में) हो और बृहस्पति से दृष्ट हो तो उस स्त्री को पुरुष का संयोग प्राप्त होता है। आधान लग्न से सप्तम भाव पर पापग्रह का योग या दृष्टि हो तो रोषपूर्वक और शुभग्रह का योग या दृष्टि हो तो प्रसन्नतापूर्वक पति-पत्नी का संयोग होता है ॥४१-४२॥ आधानकाल में शुक्र, रवि, चन्द्रमा और मंगल अपने-अपने नवमांस में हों, गुरु लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में हो तो वीर्यवान् पुरुष को निश्चय

मत्तेऽर्केंदौ कुजार्कौ चेत्पुंस्त्रियोरामयप्रदौ । व्ययखगो युतौ चैकदृष्ट्या मृत्युप्रदौ तयोः ॥४४॥
शुक्रार्कौ मातृपितरौ दिवा नक्तं शशीनजौ । मातृष्वसृपितृव्याख्यौ वा पद्मेजि समे शुभौ ॥४५॥
पापदृष्टे शुभे क्षीणे तुंगे वा लग्नगे यमे । क्षीणेंदुकुजसंदृष्टे मृत्युमेत्य गता ध्रुवम् ॥४६॥
युगपद्वा पृथक्संस्थौ लग्नेंदू पापमध्यगौ । यदा तदा गर्भयुता नारी मृत्युमवाप्नुयात् ॥४७॥
लग्नाच्चंद्राच्च तुर्यस्थैः पापैर्निधनगे कुजे । नष्टेंदौ कुजख्योश्च बंधुरिष्फगयोर्मृतिः ॥४८॥
तन्वस्तसंस्थयोर्भौमख्योः शस्त्रभवः क्षयः । यन्मासाधिपतिर्नष्टस्तन्मासं संस्रवे त्यजेत् ॥४९॥
लग्नेंदुगैः शुभैः खेटैस्त्रिकोणार्थास्तभूखगैः । पापैस्त्रिषष्ठलाभस्थैः सुखी गर्भो रवीक्षितः ॥५०॥
ओजभे पुरुषांशेऽर्केज्यैंदुलग्नैर्बलान्वितैः । गुर्वर्कौ विषमस्थौ वा पुंजन्म प्रवदेत्तदा ॥५१॥
युग्मभांशस्थितैस्तैस्तु वक्रेंदुभृगुभिस्तथा । यामस्थानगतैर्वाच्यं स्त्रियो जन्म मनीषिभिः ॥५२॥
द्व्यंगस्था बुधसंदृष्टाः स्वपक्षेयमलंकराः । लग्नं विनौजभावस्थः सौरः पुंजन्मकृत्तथा ॥५३॥

हो संतान होती है ॥४३॥ यदि सूर्य से सप्तम भाव में मंगल और शनि हों तो वे पुरुष के लिए और चन्द्रमा से १२, २ में ये दोनों हों तो स्त्री के लिए घातक होते हैं। अथवा उन (शनि मंगल) में एक से युत और अन्य से दृष्ट रवि हो तो वह पुरुष के लिए और चन्द्रमा यदि एक से युत तथा अन्य से दृष्ट हो तो वह स्त्री के लिए घातक होता है ॥४४॥

दिन में गर्भाधान हो तो शुक्र मातृग्रह और सूर्य पितृग्रह होते हैं। रात्रि में गर्भाधान हो तो चन्द्रमा मातृग्रह और शनि पितृग्रह होते हैं। पितृग्रह यदि विषम राशि में हो तो पिता के लिए और मातृग्रह सम राशि में हो तो माता के लिए शुभकारक होता है। यदि पापग्रह बारहवें भाव में स्थित होकर पापग्रह से देखा जाता और शुभग्रह से न देखा जाता हो, अथवा लग्न में शनि हो तथा उस पर क्षीण चन्द्रमा और मंगल की दृष्टि हो तो गर्भाधान होने से स्त्री का मरण होता है ॥४५-४६॥ लग्न और चन्द्रमा दोनों या इनमें से एक भी दो पाप-ग्रहों के बीच में हो तो गर्भाधान होने पर स्त्री गर्भ के सहित (साथ ही) या पृथक् मृत्यु को प्राप्त होती है ॥४७॥ लग्न अथवा चन्द्रमा से चतुर्थ स्थान में पापग्रह हो, मंगल अष्टम भाव में हो अथवा लग्न से ४, १२वें स्थान में मंगल और शनि हों तथा चन्द्रमा क्षीण हो तो भी गर्भवती स्त्री का मरण होता है ॥४८॥ यदि लग्न में मंगल और सप्तम में रवि हों तो गर्भवती स्त्री का शस्त्र द्वारा मरण होता है। गर्भाधान काल में जिस मास का स्वामी अस्त हो, उस मास में गर्भ का स्राव होता है, इसलिए इस प्रकार के लग्न को गर्भाधान में त्याग देना चाहिए ॥४९॥

आधानकालिक लग्न या चन्द्रमा के साथ अथवा इन दोनों से ५, ९, ७, ४, १०वें स्थान में सब शुभग्रह हों और ३, ६, ११ भाव में सब पापग्रह हों तथा लग्न और चन्द्रमा पर सूर्य की दृष्टि हो तो गर्भ सुखी रहता है ॥५०॥ रवि, गुरु, चन्द्रमा और लग्न--ये विषम राशि एवं विषम नवमांश में हों अथवा रवि और गुरु विषम राशि में स्थित हों तो पुत्र का जन्म कहना चाहिए ॥५१॥ उक्त सभी ग्रह यदि सम राशि और सम नवमांश में हों अथवा मंगल, चन्द्रमा और शुक्र—ये सम राशि में हों तो विद्वानों को कन्या का जन्म कहना चाहिए ॥५२॥ अथवा ये सब द्विस्वभाव राशि में हों और बुध से देखे जाते हों तो अपने-अपने पक्ष के यमल (जुड़वी सन्तान) को जन्म देते हैं। अर्थात् पुरुषग्रह दो पुत्रों को और स्त्रीग्रह दो कन्याओं के जन्मदायक होते हैं। (यदि दोनों प्रकार के ग्रह हों तो एक पुत्र और एक कन्या का जन्म समझना चाहिए।) लग्न से विषम (३, ५ आदि) स्थानों में स्थित शनि भी पुत्र जन्म कारक होता है ॥५३॥

मिथो रवींदूर्ज्ञार्की वा पश्यतः समगं रविः । वक्रो वांगविधू ओजे जज्ञौ युग्मौजसंस्थितौ ॥५४॥
कुजेक्षितेपुमांशे दुहिता क्लीब जन्मदा । समे सितेन्दू ओजस्था ज्ञारांगेज्या नृवीक्षितौ ॥५५॥
लग्नेंदुसमगौ युग्मस्थाने वा यमलंकराः । ग्रहोदयस्थान्द्यंगांशान्पश्यति ज्ञे स्वभागगे ॥५६॥
त्रितयं ज्ञांशकाद्युग्ममभिश्रैः सममादिशेत् । लग्ने चापांत्यभागस्थे तदंशस्थबलिग्रहैः ॥५७॥
वीर्याढ्यज्ञार्किसंदृष्टैः कोशस्थाबहवोगिनः । सितारेज्यार्कचंद्रार्किज्ञांगेशोर्कंदवोऽधिपाः ॥५८॥
मासानां तत्समं वाच्यं गर्भस्थस्य शुभाशुभम् । त्रिकोणे ज्ञे परैर्नष्टैर्द्विमुखाङ्घ्रिकपान्वितः ॥५९॥
अवागावाटावशुभैर्भसंधिस्थैः प्रजायते । वीरान्सगोश्चदष्टेष्वष्टार्कातभसंहिताः ॥६०॥

आरार्की चेज्यभांशस्थौ सदंतोगर्भकस्तदा ।
खभेजे भुवि मंदारदृष्टे कुब्जस्तु गर्भगः ।
मयु र्मीने यमेंद्वारैर्दृष्टेथांगेभसंधिगे ॥६१॥
पापैर्जडो विधौ गर्भः शुभदृष्टिविवर्जिते ।

क्रमशः विषम एवं सम राशि में स्थित रवि और चन्द्रमा (१) अथवा बुध और शनि (२) एक-दूसरे को देखते हों, अथवा समराशिस्थ सूर्य को विषमराशिस्थ मंगल देखता हो (३), अथवा चन्द्रमा सम राशि और लग्न विषम राशि में स्थित हों तथा उन पर मंगल की दृष्टि हो, अथवा लग्न, चन्द्रमा और शुक्र—ये तीनों पुरुष राशि के नवमांश में हों तो इन सब योगों में नपुंसक का जन्म होता है ॥५४½॥

शुक्र और चन्द्रमा सम राशि में स्थित हों तथा बुध, मंगल, लग्न बृहस्पति विषम राशि में स्थित होकर पुरुष ग्रह से दृष्ट हों अथवा लग्न एवं चन्द्रमा सम राशि में हों तो ये यमल (जुड़वाँ) सन्तान को जन्म देते हैं ॥५५½॥

यदि बुध अपने (मिथुन या कन्या के) नवमांश में स्थित होकर द्विस्वभाव राशिस्थ ग्रह और लग्न को देखता हो तो गर्भ में तीन संतानों की स्थिति समझनी चाहिए। उनमें दो तो बुध-नवमांश के सदृश होंगे और एक लग्नांश के सदृश। यदि बुध और लग्न दोनों तुल्य नवमांश में हों तो तीनों संतानों को एक-सा ही समझना चाहिए॥५६½॥

यदि धनु राशि का अन्तिम नवांश लग्न में हो, उसी अंश में बली ग्रह स्थित हों और बलवान् बुध या शनि से देखे जाते हों तो गर्भ में बहुत (तीन से अधिक) संतानों की स्थिति समझनी चाहिए ॥५७½॥

गर्भमासों के अधिपति—शुक्र, मंगल, बृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा, शनि, बुध, आधान-लग्नेश, सूर्य और चन्द्रमा—ये गर्भाधानकाल से लेकर प्रसवपर्यन्त १० मासों के क्रमशः स्वामी हैं। आधानसमय में जो ग्रह बलवान् या निर्बल होता है, उसके मास में उसी प्रकार शुभ या अशुभ फल होता है ॥५८½॥ बुध त्रिकोण (५, ९,) में हो और अन्य ग्रह निर्बल हों तो गर्भस्थ शिशु के दो मुख, चार पैर और चार हाथ होते हैं। चन्द्रमा वृष में हो और अन्य सब पापग्रह राशि-संधि में हो तो बालक गूंगा होता है। यदि उक्त ग्रहों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो वह बालक अधिक दिनों में बोलता है ॥५९-६०॥ मंगल और शनि यदि बुध की राशि नवमांश में हो तो शिशु गर्भ में ही दाँत से युक्त होता है। चन्द्रमा कर्क राशि में होकर लग्न में हो तथा उस पर शनि और मंगल की दृष्टि हो तो गर्भस्थ शिशु कुबड़ा होता है। मीन राशि लग्न में हो और उस पर शनि, चन्द्रमा तथा मंगल की दृष्टि हो तो गर्भ का बालक पंगु होता है। पापग्रह और चन्द्रमा राशि-संधि में हों और उन पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो गर्भस्थ शिशु जड़ (मूर्ख) होता है। मकर का अन्तिम नवमांश लग्न में हो और उस पर

मृगांत्यगे वामनकः सौरेंद्वर्कनिरीक्षिते ।
धीनयोदयगैर्व्यंशैः पापास्तै रसिरोहृदाः ॥६२॥
रवीन्दुयुक्ते सिंहेंगे माहेयार्किनिरीक्षिते ।
नेत्रहीना मिश्रखेटैर्दृष्टे बुद्बुदलोचनाः ।
व्ययेजो वामनयनं यक्षं सूर्यो विनाशयेत् ॥६३॥
नेष्टा योगाः शुभैर्दृष्टाः पापाः स्युर्नात्र संशयः । मंदेऽस्ते मंदभांशेंगे निषेकेऽब्दत्रये जनिः ॥६४॥
द्वादशाब्दे शशिन्येवं सुतावपि विचिंतयेत् ॥६५॥
आधानेंदुद्वादशांशा पापास्तद्राशिभिः पुरः ॥६६॥
शशांके जन्मभागादिद्विघ्नमिष्टकलाः स्मृताः ॥६७॥
पितुः परोक्षे जन्मस्यादिन्दौ लग्नमपश्यति ॥६८॥
मध्याद्भ्रष्टेऽर्के विदेशस्थे जनने नारिजन्म वै । मंदेगस्थे कुजेस्ते च ज्ञोस्फुजि मध्यगे विधौ ॥६९॥
पापांगेब्जे त्रिभागे लौ स्वायगैः सद्भिरुद्गतः । सूर्यस्तदृष्टिगो वापि ज्ञेयो ज्योतिर्विदां वरैः ॥७०॥

शनि, चन्द्रमा तथा सूर्य की दृष्टि हो तो गर्भस्थ शिशु वामन (बौना) होता है। पञ्चमस्थ नवमस्थ तथा लग्न के द्रेष्काण में पापग्रह हों तो जातक क्रमशः पैर, मस्तक और हाथ से रहित होता है ॥६१-६२॥

गर्भाधान के समय यदि सिंह लग्न में सूर्य और चन्द्रमा हों तथा उन पर शनि और मंगल दृष्टि हो तो शिशु नेत्रहीन होता है। यदि शुभ और पाप ग्रह दोनों की दृष्टि हो तो नेत्र में फूली होती है। यदि लग्न से बारहवें भाव में चन्द्रमा हो तो बालक का वाम नेत्र और सूर्य हो तो दक्षिण नेत्र नष्ट होता है। ऊपर जो अशुभ योग कहे गये हैं, उन पर शुभग्रह की दृष्टि हो तो उन योगों के फल पूर्ण नहीं होते हैं। ऐसी परिस्थिति में देवाराधन एवं चिकित्सा आदि यत्नों से अशुभ फल का निवारण हो जाता है ॥६३½॥

यदि आधानलग्न में शनि का नवमांश हो और शनि सप्तम भाव में हो तो तीन वर्ष पर प्रसव होता है। यदि इस स्थिति में चन्द्रमा हो (अर्थात् लग्न में चन्द्रमा का नवमांश हो और चन्द्रमा सप्तम भाव में स्थित हो) तो बारह वर्ष पर प्रसव होता है। इन योगों का विचार जन्मकाल में भी करना चाहिए ॥६४-६५॥ आधानकाल में जिस द्वादशांश में चन्द्रमा हो, उससे उतनी ही संख्या आगे राशि में चन्द्रमा के जाने पर बालक का जन्म होता है। द्वादशांशयुक्त अंशादि को दो से गुणा करके उसमें ५ से भाग देने पर लब्धि राश्यादि मान की सूचक होती है ॥६६-६७॥

जन्म-ज्ञान--(शिशु की जन्मकुण्डली में) यदि चन्द्रमा जन्मलग्न को नहीं देखता हो तो पिता के परोक्ष में बालक का जन्म कहना चाहिए। इसी योग में यदि सूर्य चर राशि में मध्य (दशम) भाव से आगे (११, १२) में अथवा पीछे (९, ८) में हो तो पिता के विदेश रहने पर पुत्र का जन्म समझना चाहिए। (इससे यह सिद्ध होता है कि यदि सूर्य स्थिर राशि में हो तो स्वदेश में रहते हुए पिता के परोक्ष में और द्विस्वभाव राशि में हो तो स्वदेश और परदेश के मध्य स्थान में पिता के रहने पर बालक का जन्म होता है।)

लग्न में शनि और सप्तम भाव में मंगल हो अथवा बुध और शुक्र के बीच में चन्द्रमा हो तो भी पिता के परोक्ष में शिशु का जन्म समझना चाहिए। पापग्रह की राशि वाले लग्न में चन्द्रमा हो अथवा वह वृश्चिक के द्रेष्काण में हो तथा शुभग्रह २, ११ भाव में स्थित हों तो सर्प का या सर्प से वेष्टित मनुष्य का जन्म समझना चाहिए ॥६८-७०॥

चतुष्पदर्क्षगे भानौ शेषैर्बलयुतैः खगैः । कोशादतौ तु यमलौ जायेते मुनिसत्तम ॥७१॥
सार्क्यार्रसिंहोक्षाजांसे भांशतुल्यांगनालयुक् । लग्नमिदुं च सार्केंदुं न पश्यति यदा गुरुः ॥७२॥
सपापगोऽर्को जायो वा परवीर्यप्रसूतिकृत् । पापभस्थौ पापखेटैः सूर्याघानत्रिकोणगौ ॥७३॥
विदेशगः पितावृद्धः खेवा राशिवशात्ययो । पूर्णे इंदौ स्वभेशेज्ञे शुभे भुव्यंबुजे तनौ ॥७४॥
द्यूनस्थे वा विधौ यातेंगना नारी प्रसूयते । अब्धांगमन्भगः पूर्णे ज्यो वा पश्यति नारद ॥७५॥
स्वबंधलग्नगः सूतिः सलिले नात्र संशयः । पापदृष्टे यमे गुर्द्यां जन्मांगाजव्ययस्थिते ॥७६॥
कर्कालिलग्नगेशौरेवटे जन्माब्जवीक्षिते । मंदे जन्मगते लग्ने बुधसूर्येदुवीक्षिते ॥७७॥
क्रीडास्थाने देवगेहे य्यूषरे च क्रमाज्जनिः । श्मशाने लग्नदृगसृग्राम्यस्थानेब्जभार्गवौ ॥७८॥
अग्निहोत्रगृहे जीवोऽर्को भूषाभरणो गृहे । शिल्पालये बुधो जन्म कुर्याद्बलसमन्वितः ॥७९॥
मासमाने सरे मार्गे स्थिरे स्वर्क्षांशगे गृहे । त्रिकोणगेऽब्ज आराक्योरस्ते वा सृज्यतेऽम्बया ॥८०॥
गुरुदृष्टे तु दीर्घायुः परं च प्राप्यते पुनः । पापदृष्टे विधौ लग्नेऽस्ते कुजे तु विनश्यति ॥८१॥

मुनिश्रेष्ठ ! यदि सूर्य चतुष्पद राशि में हो और शेष सब ग्रह बलयुक्त हों तो एक ही नाल से वेष्टित दो शिशुओं का जन्म होता है । शनि या मंगल से युक्त सिंह, वृष या मेष लग्न हो तो लग्न के नवमांश की राशि जिस अंग की हो, उस अंग में नाल से लिपटे हुए शिशु का जन्म होता है ॥७१½॥

यदि लग्न और चन्द्रमापर गुरु की दृष्टि न हो अथवा चन्द्रमा पापग्रह और सूर्य से संयुक्त हो तो शिशु को पर-पुरुष के वीर्य से उत्पन्न समझना चाहिए । यदि दो पापग्रह पापराशि में स्थित होकर सूर्य से सप्तम भाव में हों तो सूर्य के चर, स्थिर व द्विस्वभाव राशि के अनुसार विदेश, स्वदेश या मार्ग में बालक का जन्म समझना चाहिए । पूर्ण चन्द्रमा अपनी राशि में हो, बुध लग्न में हो, शुभ ग्रह चतुर्थ भाव में हो अथवा जलचर राशि लग्न हो और उससे सप्तम स्थान में चन्द्रमा हो तो नौका पर शिशु का जन्म समझना चाहिए । नारद ! यदि जलचर राशिस्थ पूर्ण चन्द्रमा देखता हो अथवा वह १०, ४ या लग्न में हो तो जल में प्रसव होता है, इसमें संशय नहीं ॥७२-७५½॥ यदि लग्न और चन्द्रमा से शनि बारहवें भाव में हो, उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो बालक का कारागार में जन्म होता है ॥७६॥ तथा कर्क या वृश्चिक लग्न में शनि हो और उस पर चन्द्रमा की दृष्टि हो तो गड्ढे में बालक का जन्म होता है । जलचर राशिस्थ शनि लग्न में हो तथा उस पर बुध, सूर्य या चन्द्रमा की दृष्टि हो तो क्रमशः क्रीडास्थान, देवालय और ऊसर भूमि में बालक का प्रसव होता है । यदि मंगल बलवान् होकर लग्नगत शनि को देखता हो तो श्मशान भूमि में, चन्द्रमा और शुक्र देखता हो तो रम्य स्थान में, गुरु देखता हो तो अग्निहोत्रगृह में, सूर्य देखता हो तो राजगृह, देवालय या गोशाला में तथा बुध देखता हो तो शिल्पघर में बालक का जन्म जानना चाहिए ॥७७-७९॥

यदि लग्न में चरराशि हो तो मार्ग में लग्नराशि के कथित स्थान के समान स्थान में बालक का जन्म होता है । यदि लग्न में स्थिरराशि हो तो स्वदेश के ही उक्त स्थान में जन्म होता है तथा यदि लग्नराशि अपने नवमांश में हो तो अपने घर में ही (५, ९ भाव) में अथवा सप्तम भाव में चन्द्रमा हो तो माता जातक का त्याग कर देती है ॥८०॥ यदि चन्द्रमा पर गुरु की दृष्टि हो तो माता के त्याग देने पर भी जातक दीर्घायु होता है । पापग्रह से दृष्ट चन्द्रमा यदि लग्न में हो और और मंगल सप्तम भाव में स्थित हो तो जातक माता से त्यक्त होता है और मर जाता है । अथवा पापदृष्ट चन्द्रमा यदि शनि-मंगल से ११वें भाव में स्थित हो तो जातक

भवे कुजार्क्योः संदृष्टे परहस्तगतः सुखी । पापेगतायुर्भवति मासः सार्थैः परैरपि ॥८२॥
पितृमातृगृहे जन्म तदधीशबलान्मुने । तरुगेहे शुभे नीचे नैकस्थदृष्टौ लग्नेंदुः ॥८३॥
एतल्लक्षणसंपन्ना प्रसूतिर्विजने तदा । मंदर्क्षांशे विधौ तुर्ये मंददृष्टेऽब्जगेऽपि वा ॥८४॥
मंदार्चने वा तमसि शयनं नीचगे भुवि । शीर्षे पृष्ठोदये जन्म तद्वदेव विनिर्दिशेत् ॥८५॥
चंद्रास्तसुखगैः पापैर्मातुः पीडां समादिशेत् । जीर्णोद्धृतं गृहं मंदे सृजि दग्धं नवे विधौ ॥८६॥
काष्ठाढ्यमदृढं सूर्ये बहुशिल्पयुतं बुधे । चित्रयुक्तं नवं शुक्रे दृढं रम्यं गुरौ गृहम् ॥८७॥
घटाजकर्क्यलिघटे पूर्वं ज्ञेज्यगृहे ह्युदक् । वृषे पश्चान्मृगे सिंहे दक्षिणे वसतिर्भवेत् ॥८८॥
गृहप्राच्यादिगौ द्वौ द्वौ द्व्यंगाः कोणेष्वजादयः । पर्यंके वास्तुवत्पादास्त्रिषदंकांत्यराशयः ॥८९॥
चंद्रागांतरगैः खेटैः सूतिकाः समुदाहृताः । चक्रार्द्धबहिरंतश्च दृश्यादृश्योपरेऽन्यथा ॥९०॥

की मृत्यु होती है। यदि चन्द्रमा शुभग्रह से देखा जाता हो तो बालक दूसरे के हाथ में जाकर सुखी होता है। यदि चन्द्र पापग्रह दृष्ट हो तो दूसरे के हाथ में जाने पर भी होनायु होता है ॥८१-८२॥

पितृसंज्ञक ग्रह बली हो तो पिता के घर में और मातृ संज्ञक ग्रह बली हो तो माता (अर्थात् मामा) के घर में जन्म कहना चाहिए। मुने! यदि शुभग्रह नीच स्थान में हो तो वृक्षादि के नीचे तृण-पत्रादि की कुटी में जन्म होता है। शुभग्रह नीचस्थान में हो और लग्न अथवा चन्द्रमा को एक स्थान स्थित शुभग्रह न देखते हों तो निर्जन स्थान में जन्म होता है। यदि चन्द्रमा शनि की राशि के नवमांश में स्थित होकर चतुर्थ भाव में विद्यमान हो तथा शनि से दृष्ट या युत हो तो प्रसवकाल में 'प्रसूतिका' का शयन पृथिवी पर समझना चाहिए। शीर्षोदय राशि लग्न हो तो शिर की ओर से तथा पृष्ठोदय राशि लग्न हो तो पृष्ठ (पैर) की ओर से शिशु का जन्म कहना चाहिए। चन्द्रमा से चतुर्थ और सप्तम स्थान में पापग्रह हो तो माता के लिए कष्ट समझना चाहिए ॥८३-८५½॥

जन्मसमय में सब ग्रहों की अपेक्षा शनि बलवान् हो तो सूतिकागृह पुराना, किन्तु संस्कार किया हुआ समझना चाहिए। मंगल बली हो तो जला हुआ, चन्द्रमा बली हो तो नया और सूर्य बली हो तो अधिक काष्ठ से युक्त किन्तु मजबूत नहीं होता। बुध बली हो तो प्रसवगृह बहुत शिल्पकला से युक्त, शुक्र बली हो तो चित्रों से युक्त नवीन और मनोहर तथा गुरु बली हो तो सूतिकागृह सुदृढ़ जानना चाहिए ॥८६-८७॥

लग्न में तुला, मेष, कर्क, वृश्चिक या कुम्भ हो तो ग्रह के पूर्वभाग में; मिथुन, कन्या, धनु या मीन हो तो उत्तरभाग में, वृष हो तो पश्चिम भाग में तथा मकर या सिंह हो तो दक्षिणभाग में सूतिका का घर समझना चाहिए ॥८८॥

गृहराशियों के स्थान--)घर की पूर्व आदि दिशाओं में मेष आदि दो-दो राशियों को और चारों कोणों में चारों द्विस्वभाव राशियों को समझे। सूतिकागृह के समान ही सूतिका के पलंग में भी लग्न आदि भावों को समझे। वहाँ ३, ६, ९ और १२वें भाव को क्रमशः चारों पायों में समझना चाहिए ॥८९॥ चन्द्रमा और लग्न के बीच में जितने ग्रह हों उतनी उपसूतिकाओं की प्रसवकाल में उपस्थिति समझनी चाहिए। दृश्य चक्रार्ध में (सप्तम भाव से लग्न तक) जितने ग्रह हों, उतनी उपसूतिकाओं की उपस्थिति घर के भीतर रहती है। बहुत से आचार्यों और मुनियों ने इससे भिन्न मत प्रकट किया है। (अर्थात् दृश्य चक्रार्ध में जितने ग्रह हों उतनी उपसूतिकाओं को घर के भीतर तथा अदृश्य चक्रार्ध में जितने ग्रह हों, उतनी को घर के बाहर कहा है) ॥८९-९०॥

लग्नांशपसमानांगो बालिखेटं समोपि वा । चंद्रनंदांशवद्वर्णः शीर्षाद्यंगविभागयुक् ॥९१॥
शीर्षकं दृक्श्रवेनासा कपोलहनवो मुखम् । कंठांसपार्श्वहृद्दोषः क्रोडंनाभिश्च बास्तिकः ॥९२॥
शिश्नापाते च वृषणौ जघने जानुनी तथा । जंघे पादौ चोभयत्र त्र्यंशैः समुदितैर्वदेत् ॥९३॥
पापयुक्ते व्रणस्तस्मिन्नंगे लक्ष्म च तद्युते । स्वर्क्षांशे स्थिरयुक्ते तु नैज आगंतुकोऽन्यथा ॥९४॥
मंदेऽनिलाश्मजो भौमे विषशस्त्राग्निजो बुधे । कुजोऽर्के काष्ठपशुजो जेतुः श्रृंग्यजयोनिजः ॥९५॥
यस्मिन्संज्ञास्त्रयः खेटा अंगेस्युस्तत्र निश्चितम् । व्रणोशुभकृतःषष्ठे तनौ राशिसमाश्रिते ॥९६॥
तिलकृन्मसकृद्दष्टसौम्यैर्युक्तश्च लक्ष्मवान् । चतुरस्रः पिंगदृक् च पैत्तिकोऽल्पकचो रविः ॥९७॥
वृत्तो वातकफी प्राज्ञो मंदवाक् शुभदृक् शशी । क्रूरदृक्तरुणो भौमः पैत्तिकश्चपलस्तथा ॥९८॥
त्रिधानुपवृतिर्हास्यरुचिज्ञः श्लिष्टवाक्तथा । पिंगके श्लक्ष्णो दीर्घः कफी धीमान्गुरुर्मतः ॥९९॥
सुवपुर्लोचनः कृष्णवक्रकेशो भृगुः सुखी । दीर्घः कपिलदृड्भदो निलीखरकचोलसः ॥१००॥

लग्न में जो नवमांश हो, उसके स्वामी ग्रह के समान अथवा जन्मसमय में जो ग्रह सबसे बली हो, उसके समान जातक का शरीर होता है। इसी प्रकार चन्द्रमा जिस नवमांश में हो उस राशि के समान वर्ण (गौर आदि) समझना चाहिए। एवं द्रेष्काणवश लग्न आदि भावों से जातक के मस्तक आदि अंग विभाग जानना चाहिए। यथा—लग्न में प्रथम द्रेष्काण हो तो लग्न मस्तक, २। १२ नेत्र, ३। ११ कान, ४। १० नाक, ५। ९ कपोल, ६। ८ हनु (ठुड्डी) और ७ (सप्तम) भाव मुख। द्वितीय द्रेष्काण हो तो लग्न कण्ठ, २। १२ कंधा, ३। ११ पसली, ४। १० हृदय, ५। ९ भुज, ६। ८ पेट और ७ नाभि। तृतीय द्रेष्काण हो तो लग्न वस्ति (नाभि और लिंग के मध्य का स्थान), २। १२ लिंग, गुदमार्ग, ३। १२ अंडकोश, ४। १० जाँघ, ५। ९ घुटना, ६। ८ पिण्डली और सप्तम भाव पैर समझना चाहिए ॥९१-९३॥

जिस अंग की राशि में पापग्रह हो, उस अंग में व्रण और यदि उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो उस अंग में चिह्न (तिल मशक आदि) समझना चाहिए। पापग्रह अपनी राशि या नवमांश में, अथवा स्थिर राशि में हो तो जन्म के साथ ही व्रण होता है। शनि जिस अंग स्थान में हो उस अंग में वात या पत्थर के आघात से, मंगल के स्थान में विष, शस्त्र और अग्नि से, बुध के स्थान में पृथ्वी (मिट्टी) के आघात से, सूर्याश्रित अंग में काष्ठ और पशु से, क्षीण चन्द्राश्रित अंग में सींग वाले पशु और जलचर के आघात से व्रण होता है ॥९४-९५॥ जिस अंग की राशि में तीन पापग्रह हों, उस अंग में निश्चित रूप से व्रण होता है। षष्ठ भाव में पापग्रह हो तो उस राशि वाले अंग में व्रण होता है। यदि उस पर शुभग्रह की दृष्टि हो तो उस अंग में तिल या मसा होता है। यदि शुभग्रह का योग हो तो उस अंग में चिह्न (दाग) मात्र होता है ९४-९६½॥

(ग्रहों के स्वरूप और गुण का वर्णन—) सूर्य की आकृति चतुरस्र है, शरीर की कान्ति और नेत्र पिंगल हैं। पित्तप्रधान प्रकृति है और उनके मस्तक पर थोड़े-से केश हैं। चन्द्रमा आकार में गोल वात और कफ प्रकृति वाला पंडित और मृदुभाषी तथा बड़े सुन्दर नेत्र वाला है। मंगल क्रूर दृष्टि वाला, युवा पित्तप्रधान प्रकृति वाला और चंचल स्वभाव का है। बुध की प्रकृति में कफ, पित्त और वात की प्रधानता है, वह हास्यप्रिय और अनेकार्थक शब्द बोलने वाला है। बृहस्पति पिंगल अंगकान्ति, केश और नेत्र वाला हैं। दीर्घ शरीर और तथा कफप्रधान प्रकृति वाला है और वे बड़े बुद्धिमान् हैं। शुक्र सुन्दर अंग और नेत्र वाले हैं, मस्तक पर काले घुंघराले केश हैं और नेत्र कपिश वर्ण के हैं, उनकी वातप्रधान प्रकृति है, कठोर केश वाले और बड़े आलसी हैं ९७-१००॥

मंदार्कचंद्रसोम्यास्फुजिज्जीवकुभुवः क्रमात् ॥१०१॥
स्नाय्वस्थिरक्तत्वक्शुक्रवसामज्जास्तु धातवः । चक्रपूर्वापरे पापसौम्यैः कीटतनौ मृतिः ॥१०२॥
चंद्रांगपापैर्भांत्यस्थैः सेंदुपापचतुष्टयैः । न चेद्दृष्टस्तदा मृत्युर्जातस्य भवति ध्रुवम् ॥१०३॥
उदयास्तगते पापौ चंद्रः क्रूरयुतैः शुभैः । केंद्रेषु वाब्जोसंयुक्तः स्मरांत्यमृतिलग्नगः ॥१०४॥
क्षीणेऽब्जे व्ययगे पापैर्लग्नाष्टस्थैःशुभा न चेत् । षष्ठेभेऽब्जेऽसंदृष्टेसद्यो मृत्युः शुभेक्षिते ॥१०५॥
केंद्राद्या हस्त सन्खेटैरदृष्टो मृत्युदस्तथा । क्षीणेऽब्जेंगे रन्ध्रकेन्द्रे पापे पापान्तरस्थिते ॥१०६॥
समाष्टके मिश्रखेटैर्दृष्टेदृष्टे मृतिः शिशोः । पापैश्चन्द्रास्तगैर्माता साद्धं सदृष्टिमंतरा ॥१०७॥
भूद्यूननिधने वाब्जे लग्नेऽप्येवं शिशोर्मृतिः । लग्नस्थे वा विधौपापैरस्तस्थैर्मृतिमाप्नुयात् ॥१०८॥
शुभादृष्टे भान्त्यगेब्जे त्रिकोणोपरतैः खलैः । लग्ने रवौ तु शस्त्रेण सवीर्यासद्भिरष्टगैः ॥१०९॥
ग्रस्तेऽब्जेऽसद्भिरष्टस्थैः सूज्यवात्मजयोर्मृतिः । शेषैस्त्र्यरीशोगैरायुरमितं भवति ध्रुवम् ॥११०॥
कर्कन्द्रीज्ययुते लग्ने केंद्रे सौम्ये च भार्गवे । स्वतुंगस्थेष्वशेषेषु परमायुः प्रकीर्तितम् ॥१११॥
वर्गोत्तमे मीनलग्ने वृषेऽब्जे तत्त्वलिप्तिके ।

(ग्रहों के धातु)—स्नायु (शिरा), हड्डी, शोणित, त्वचा, वीर्य, वसा और मज्जा ये क्रमशः शनि, सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र, गुरु और मंगल के धातु हैं ॥१०१॥

(अरिष्टकथन)—चन्द्रमा, लग्न और पापग्रह—ये राशि के अन्तिमांश में हों अथवा चन्द्रमा और तीनों पापग्रह ये लग्नादि चारों केन्द्रों में हों तथा कर्क लग्न हो तो जातक की मृत्यु होती है। दो पापग्रह लग्न और सप्तम भाव में हों तथा चन्द्रमा एक पापग्रह से युक्त हो और शुभग्रह से दृष्ट न हो तो जातक का शीघ्र मरण होता है ॥१०२-१०३॥ क्षीण चन्द्रमा १२वें भाव में हों, पापग्रह लग्न और अष्टम भाव में हों तथा शुभग्रह केन्द्र में न हों तो जातक की मृत्यु होती है। अथवा पापयुक्त चन्द्रमा सप्तम द्वादश या लग्न में स्थित हो तथा उस पर केन्द्र से भिन्न स्थान में स्थित शुभग्रह की दृष्टि न हो तो जातक की मृत्यु होती है। यदि चन्द्रमा ६, ८ स्थान में रहकर पापग्रह से दृष्ट हो तो जातक का शीघ्र मरण होता है। शुभग्रह से दृष्ट हो तो ८ वर्ष में और शुभग्रह तथा पापग्रह दोनों से दृष्ट हो तो ४ वर्ष में जातक की मृत्यु हो जाती है। क्षीण चन्द्रमा लग्न में तथा पापग्रह ८, १, ४, ७, १० में स्थित हों तो जातक का मरण होता है। अथवा दो पापग्रहों के बीच में होकर चन्द्रमा ४, ७, ८ स्थान में स्थित हो या लग्न ही दो पापग्रहों के बीच में हो तो जातक की मृत्यु हो जाती है ॥१०४-१०६½॥ पापग्रह ७, ८ में हों और उन पर शुभग्रह की दृष्टि न हो तो माता सहित शिशु की मृत्यु हो जाती है ॥१०७॥ राशि के अन्तिमांश में चन्द्रमा पापग्रह से अदृष्ट हो तथा पापग्रह त्रिकोण (५, ९) में हो अथवा लग्न में चन्द्रमा और सप्तम में पापग्रह हो तो शिशु का मरण होता है ॥१०८॥ राहुग्रस्त चन्द्रमा पापग्रह से युक्त हो और मंगल अष्टम स्थान में स्थित हो तो माता और शिशु दोनों की मृत्यु होती है। इसी प्रकार राहुग्रस्त सूर्य यदि पापग्रह से युक्त हो तथा बली पापग्रह अष्टम भाव में स्थित हो तो माता और शिशु का शस्त्र से मरण होता है ॥१०८-१०९॥

आयुर्दाय कथन—चन्द्रमा और बृहस्पति से युक्त कर्क लग्न हो, बुध और शुक्र केन्द्र में हों और शेष ग्रह (रवि, मंगल एवं शनि) ३, ६, ११ स्थान में हों तो ऐसे योग में उत्पन्न जातक की आयु बहुत अधिक होती है ॥११०॥ मीन लग्न में मीन का नवमांश हो, बुध वृष में २५ कला पर हो तथा शेष सब ग्रह अपने-अपने उच्च स्थान में हों तो जातक परम आयु (१२० वर्ष ५ दिन की) प्राप्त करता है ॥१११॥ लग्नेश बली होकर केन्द्र

शुभैर्दृष्टः सवीर्यो गे केंद्रस्थे चायुरर्थदः । स्वोच्चोब्जे स्वर्क्षगैः सौम्यैः सवीर्येंगाधिपे तनौ ॥११२॥
षष्ठ्यब्दकेंद्रसौम्येभेष्टशुद्धे सप्ततिगुरौ । मूलत्रिकोणगैः सौम्यैर्गुरौ स्वोच्चसमन्विते ॥११३॥
लग्नाधिपे बलयुतेशीत्यब्दं त्वायुरीरितम् । सवीर्ये सत्सु केंद्रेषु त्रिंशच्छुद्धियुतेऽष्टमे ॥११४॥
लयेशे धर्मगे जीवेष्टस्थे क्रूरेक्षिते जिताः । लग्नाष्टमेशावष्टस्थौ भाब्दमायुःकरौ मतौ ॥११५॥
लग्नेऽशुभेज्यौ ग्लौदृष्टौ मृत्यौ कश्चन चाकृतिः । धर्मांगस्थे शनौ शुक्रे केंद्रेब्जे व्ययधर्मगे ॥११६॥
शताब्दं गीष्मतौ कर्के कंटकस्थसितेज्ययोः । लयेशेंगे शुभैर्हीनेष्टमे खाब्धिमितं वयः ॥११७॥
लग्ने शेष्टमगेष्टेशे तनुस्थे पंचवत्सरम् । कवीज्ययोगे सौम्याब्जौ लग्ने मृत्यौ च खेषवः ॥११८॥
एतद्योगजमायुः स्यादथ स्पष्टमुदीर्यते । सूर्याधिक बले पैंडं निसर्गाच्च विधोर्बले ॥११९॥
अंशायुः सबले लग्ने तत्साधनमथो शृणु । गोब्जास्तत्त्वतिथी सूर्यास्तिथिः स्वर्गा नखाः ॥१२०॥
क्रमात् ॥१२१॥
नखा विधुर्द्वावंकाश्च धृतिः स्वाक्षिखमार्गणाः ।
पिंडे निसर्गे स्वोच्चे नो ग्रहः षड्भाल्पको यदा ॥१२२॥
चक्रशुद्धस्तदा ग्राह्योस्यांशा आयुषि संमताः

में हो, उस पर शुभग्रह की दृष्टि हो तो बालक धन सहित दीर्घायु होता है। चन्द्रमा अपने उच्च में हो, शुभग्रह अपनी राशि में हो, बली लग्नेश लग्न में हो तो जातक की आयु ६० वर्ष ही होती है। केन्द्र में शुभग्रह हों और अष्टमभाव शुद्ध (ग्रहरहित) हो तो ७० वर्ष की आयु होती है ॥११२½॥ शुभग्रह अपने-अपने मूल त्रिकोण में हों, गुरु अपने उच्च में हो तथा लग्नेश बलवान् हों तो ८० वर्ष की आयु होती है ॥११३½॥ सबल शुभग्रह केन्द्र में हों और अष्टम भाव में कोई ग्रह न हो तो ३० वर्ष की आयु होती है ॥११४॥ अष्टमेश नवम भाव में हों, बृहस्पति अष्टम भाव में रहकर पापग्रह से दृष्ट हों तो २४ वर्ष की आयु होती है। लग्नेश और अष्टमेश दोनों अष्टमभाव में स्थित हों तो २७ वर्ष की आयु होती है ॥११५॥ लग्न में पापग्रह सहित बृहस्पति हों, उस पर चन्द्रमा की दृष्टि हो तथा अष्टम में कोई ग्रह न हो तो २२ वर्ष की आयु समझनी चाहिए। शनि नवम भाव या लग्न में हों, शुक्र केन्द्रमें हो और चन्द्रमा १२ या ९ में हो तो १०० वर्ष की आयु होती है। बृहस्पति कर्क में हो अथवा बृहस्पति और शुक्र दोनों केन्द्र में हों तो १०० वर्ष की आयु प्राप्त होती है ॥११६½॥ अष्टमेश लग्न में हो और अष्टम भाव में शुभग्रह न हो तो ४० वर्ष की आयु होती है। लग्नेश अष्टम भाव में और अष्टमेश लग्न में हों तो ५ वर्ष की आयु होती है। शुक्र और बृहस्पति एक राशि में हों अथवा बुध और चन्द्रमा लग्न या अष्टम भाव में हो तो ५० वर्ष की आयु होती है ॥११६-११८॥

मुने! मैंने इस प्रकार ग्रहयोग-सम्बन्ध से आयुर्दाय का प्रमाण कहा है। अब गणित द्वारा स्पष्टायुर्दाय का वर्णन करता हूँ। (सूर्य,चन्द्रमा और लग्न में से) यदि सूर्य अधिक बली हो तो पिण्डायु, चन्द्रमा बली हो तो निसर्गायु और लग्न बली हो तो अंशायु का साधन करना चाहिए। उसका साधन-प्रकार मैं बतलाता हूँ ॥११९½॥

पिण्डायु और निसर्गायु का साधन—सूर्य आदि ग्रह अपने-अपने उच्च में हों तो क्रमशः १९, २५, १५, १२, १५, २१ और २० वर्ष पिण्डायु के प्रमाण होते हैं तथा २०, १, २, ९, १८, २०, ५० ये क्रमशः सूर्यादि ग्रहों के निसर्गायुर्दाय के प्रमाण होते हैं ॥१२०-१२१॥

पिण्डायु और निसर्गायु में आयु-साधन करना हो तो राश्यादि ग्रह में अपने उच्च को घटाना चाहिए। यदि वह ६ राशि से अल्प हो तो उसको १२ राशि में घटाकर ग्रहण करें। उसके अंश बनाने से वह आयुर्दाय-साधन

अंशोनाः शत्रुभे कार्या ग्रहं वक्रगतिं विना । मंदशुक्रौ विनार्द्धोना ग्रहस्यास्तंगतस्य च ॥१२३॥
हानिद्वयेऽधिकाः कार्या यदा क्रूरस्तनौ तदा । विहायारीनंशार्द्यैर्हन्यादायुर्लवान् भजेत् ॥१२४॥
भगणांशैर्लब्धहीनास्तेषां कार्या विचक्षणैः । पापस्यांशाः समग्रोना सौम्यस्यार्द्धविवर्जिताः ॥१२५॥

स्पष्टास्तेंशाः खषट्‌ल्यासा गुणयित्वा स्वकैर्गणैः ॥१२६॥
वर्षाणि शेषमर्कघ्नं हारात्संमासकाः स्मृताः ॥१२७॥

तच्छेषश्च त्रिगुणितः तेनैवाप्तं दिनानि च । शेषे षष्ट्या हते भक्ते हारेण घटिकादिकम् ॥१२८॥
हित्वा भाज्यंगभागादीन्कलीकृत्य खखाक्षिभिः । भजेद्वर्षाणि शेषे तु गुणिते द्वादशादिभिः ॥१२९॥
द्विसप्तांशे च मासादिलग्नायुर्जायते स्फुटम् । अंशायुषी सलग्नानां खेटानामंशका हृताः ॥१३०॥
खयुगैरायुरंशाः स्युस्तत्संस्कारं वदामि ते । ग्रहोनलग्नं षड्भाल्यं चेत्संस्कारोऽन्यथा नहि ।

तदंशः खाग्नयो भक्ता लब्धोनोऽगुणो भवेत् ॥१३१॥
यदैकाल्पं तदास्यांशाः स्वाग्न्याप्तोना च भूगुणाः

में उपयोगी होता है। जो ग्रह शत्रु की राशि में हो उसके अंशों में उसी का तृतीयांश घटाये। यदि वह वक्रगति न हो तभी ऐसा करना चाहिए। (यदि ग्रह वक्रगति हो तो शत्रु राशि में रहने पर भी तृतीयांश नहीं घटाना चाहिए) तथा शनि और शुक्र को छोड़कर अन्य ग्रह अस्त हों तो उनके अंशों में आधा घटा देना चाहिए। शनि अस्त हों तो भी उनके अंशों में आधा घटा देना चाहिए।) यदि किसी ग्रह में दोनों हानि प्राप्त हो (अर्थात् वह शत्रुग्रह में हो और अस्त भी हो) तो उसमें अधिक हानि मात्र करें (अर्थात् केवल आधा घटाये, तृतीयांश नहीं)। यदि लग्न में पापग्रह हो तो उसकी राशि को छोड़कर केवल अंशादि से आयुर्दाय के अंश को गुणा करके गुणनफल में ३६० का भाग देकर लब्ध अंशादि को पूर्वोक्त अंश में घटाये। इस प्रकार पापग्रह के समस्त लब्धांश घटाये। यदि उसमें शुभग्रह का योग या दृष्टि हो तो लब्धांश का आधा घटाना चाहिए। इस तरह आगे बताये जाने वाले प्रकार से आयुर्दाय-साधन योग्य स्पष्ट अंश उपलब्ध होते हैं ॥१२२-१२५॥

पिण्डायु-साधन---उन स्पष्टांशों को अपने-अपने पूर्वोक्त गुणक (उच्चस्थ वर्षसंख्या १९ आदि) से गुणा करके गुणनफल में ३६० से भाग देने पर लब्धि वर्ष-संख्या होती है। शेष को १२ से गुणा करके ३६० से भाग देने पर लब्धि मास-संख्या होती है। पुनः शेष को ३० से गुणा करके ३६० के द्वारा भाग देने पर लब्धि दिन-संख्या होगी। फिर शेष को ६० गुणा कर ३६० से भाग देने पर लब्धि घटी एवं पलादि रूप होगी ॥१२६-१२७॥

लग्नायु-साधन—लग्न की राशियों को छोड़कर अंशादि को कला बनाकर २०० से भाग देने पर लब्धि वर्ष-संख्या होगी। शेष को १२ से गुणा करके २०० से भाग देने पर लब्धि मास-संख्या होगी। पुनः पूर्ववत् ३० आदि से गुणा करके हर से भाग देने पर लब्धि दिनादि होगी ॥१२८½॥

अंशायुर्दाय-साधन—लग्न सहित ग्रहों के पृथक्-पृथक् अंश बनाकर ४० से भाग देकर जो शेष बचे वह आयुर्दाय-साधनोपयोगी अंशादि है; उसमें जो विशेष संस्कार करना चाहिए, उसका वर्णन करता हूँ। लग्न में ग्रह को घटाये। यदि शेष ६ राशि से अन्य हो तो उसमें निम्नांकित संस्कार विशेष करना चाहिए, अन्यथा नहीं। यदि घटाया हुआ ग्रह ६ राशि से अल्प और १ राशि से अधिक हो तो उन अंशों से ३० में भाग देकर लब्धि को घटाये और शेष को गुणक समझे। यदि ग्रह घटाया हुआ लग्न १ राशि से अल्प हो तो उन्हीं अंशों में ३० का भाग देकर लब्धि को एक में घटाने से शेष गुणक होता है। इस प्रकार शुभग्रह के गुणक को आधा करके गुणक समझे और पाप-ग्रह के समस्त गुणकों को ग्रहण करे। फिर इस प्रकार के गुणकों से उपर्युक्त आयुर्दाय

सौम्यस्यार्द्धेन पापस्य समग्रेणेति निश्चयः। गुणकघ्नाश्चायुरंशाः संस्कारोऽयमुदाहृतः ॥१३२॥
आयुरंशकलाभक्ताद्विशत्याब्दा इनाहृतम्। शेषं द्विशतभक्तं स्युर्मासाः शेषा दिनादिकम् ॥१३३॥
लग्नायुरंशास्त्रिगुणादिग्भक्ता स्युः समास्ततः। शेषेऽर्कादिगुणे भक्ते दिग्भर्मासादिकं भवेत् ॥१३४॥
सबलेंगेभतुल्याब्दैर्युतमायुर्भवेत्स्फुटम् । अंशद्विघ्नमक्षांशं मासाः खल्यादिसंगुणात् ॥१३५॥
शेषा दिनादिकं योज्यं नैतत्पिंडनिसर्गयोः। लग्नार्कचन्द्रमध्ये तु यो बली तद्दशा पुरा ॥१३६॥
ततः केंद्रादिगानां तु द्वित्र्यादौ सबलस्य च। बह्वायुर्यो वीर्यसाम्येऽर्काच्युतस्य प्राक् याचकः ॥१३७॥
षड्वगार्द्धस्य त्रिशस्य त्रिकोणगश्च स्मरगः। सप्तमासस्य तूर्यस्य चतुरस्रगतस्य च ॥१३८॥
क्रमः केंद्रादिकोऽत्रापि द्वित्र्यादौ सबलस्य च। पाकपस्याब्धिनागाश्च द्व्यर्णवा सहगस्य च ॥१३९॥
त्रिकोणस्थस्य चाष्टाक्षिसूर्या द्यूनगतस्य च। तुर्याष्टगस्य तु स्वर्गा गुणकाः परिकीर्तिताः ॥१४०॥

के अंश को गुणा करे तो संस्कृत अंश होता है। यह संस्कार कहा गया है। इस संस्कृत आयुर्दाय के अंश को कलात्मक बनाकर २०० से भाग देकर लब्धि को वर्ष समझे। फिर शेष की १२ से गुणा करके गुणनफल में २०० का भाग देने से लब्धि को मास होते हैं। तत्पश्चात् शेष में ३० आदि से गुणा करके २०० का भाग देने से लब्धि को दिन एवं घटी आदि होते हैं।

लग्न के आयुर्दाय अंशादि को ३ से गुणा करके गुणनफल में १० का भाग देने से जो लब्धि हो, वह वर्ष है। फिर शेष को १२ आदि से गुणा करके १० से भाग देने पर जो लब्धि हो वह मासादि होता है। (लग्न को आयु में इतनी विशेषता है कि) यदि लग्न सबल हो तो लग्न की जितनी भुक्त राशि-संख्या हो उतने वर्ष और अधिक जोड़े। तथा अंशादि को २ से गुणा करके ५ का भाग देकर लब्धि को मास समझकर उसे भी जोड़े तथा शेष को ३० आदि से गुणा करके हर से भाग देकर जो लब्धि आये, उसके तुल्य दिनादि रूप फल भी जोड़े तो लग्नायु स्पष्ट होती है। यह क्रिया पिण्डायु और निसर्गायु में नहीं की जाती है ॥१२९-१३५½॥

दशा-निरूपण—लग्न, सूर्य और चन्द्रमा—इन तीनों में जो अधिक बली हैं, पहले उसी की दशा होती फिर उसके पश्चात् केन्द्रस्थित ग्रहों की, तदनन्तर 'पणफर' स्थित ग्रहों की, तत्पश्चात् 'आपोक्लिम, स्थित ग्रहों की दशा होती है। केन्द्रादि-स्थित ग्रहों में भी बल के अनुसार ही पूर्व-पूर्व दशा होती है। एक स्थान में स्थित दो या तीन ग्रहों में बल की समानता होने पर उनमें जिसकी अधिक आयु हो उसकी प्रथम दशा होती है। आयु के वर्षादि में समता हो तो जिस ग्रह का सूर्य-सान्निध्य से प्रथम उदय हुआ हो, उसकी प्रथम दशा होती है ॥१३६-१३७॥

(अन्तर्दशा कथन)—दशापति पूर्णदशा का पाचक है, तथा उसके साथ रहने वाला ग्रह आधे (½) का दशापति से त्रिकोण (५, ९) में स्थित ग्रह (⅓ का,) दशेश से सप्तम में रहने वाला सप्तमांश (⅐) का तथा दशेश से (४, । ८) में रहने वाला ग्रह चतुर्थांश (¼ अन्तर्दशा का पाचक होता है। इससे सिद्ध है कि इन स्थानों से भिन्न स्थान में स्थित ग्रहों को अन्तर्दशा नहीं होती है ॥१३८½॥

(अन्तर्दशा साधन के गुणक)—मूल दशापति का ८४, उसके साथ रहने वाले का ४२, त्रिकोण में रहने वाले का २८, सप्तम में रहने वाले का १२ तथा चतुर्थ-अष्टम में रहने वाले का २१ गुणक कहा गया है। वर्षादि रूप दशा-प्रमाण को अपने-अपने गुणक से गुणा करके सब गुणकों के योग से भाग देने पर जो लब्धि आये वह वर्ष होता है। शेष को १२, ३० आदि से गुणा करके गुणनफल में गुणक के योग से भाग देने पर जो लब्धि

दशागुणैर्हता भक्त्या गुणैक्येन समागताः । शेषेऽर्कादिहृते भक्ते मासाद्यैक्येन नारद ॥१४१॥
अंतर्दशासु विदशास्तासु चोपदशास्तथा । दशेशमित्रस्वोच्चर्क्षगोब्जोब्ध्येकाद्रिवृद्धिगः ॥१४२॥
शुभगो यद्भगस्तद्भिस्न्वादिस्थेन तद्धिकृत् । प्रोक्तेतरस्थानगतस्तत्तद्भावक्षयं करः ॥१४३॥
खगस्य यद्भवेद्द्रव्यं भावभे क्षणयोगजम् । जीविकादिफलं सर्वं दशायां तस्य योजयेत् ॥१४४॥
विशन्यापदशायां यो वैरिदृष्टो विपत्तिकृत् । शुभमित्रेक्षितश्चेष्टसद्वर्गस्थश्च यो ग्रहः ॥१४५॥
तत्काले बलवानापन्नाशकृत्समुदाहृतः । यस्याष्टवर्गजं चापि फलं पूर्णशुभं भवेत् ॥१४६॥
यश्च मूर्तितनुग्लावो वृद्धिगः स्वोच्चभस्थितः । स्वत्रिकोणसुहृद्भस्थस्तस्य मध्यमसत्फलम् ॥१४७॥
श्रेष्ठं शुभतरं वाच्यं विपरीतगतस्य तु । नेष्टमुत्कटमिष्टं तु स्वल्पं ज्ञात्वा बलं वदेत् ॥१४८॥
चरे सन्मध्यदुष्टाभ्यामंगभंगे विपर्ययात् । स्थिरे नेष्टेष्टमध्या च होरायास्त्र्यंशकैः फलम् ॥१४९॥
स्वामीज्यज्ञयुता होरा दृष्टा व सत्फलावहा । विनाशदृष्टयुक्ता च पापांतरगतान्यथा ॥१५०॥
प्राग्ध्वांक्षा बंधुमृत्याय तयोर्द्यूने रविः स्वभात् ॥१५१॥
वक्रात्स्वादिवसाच्चार्के शुक्राद्यूनां तु षड्तः

आये, वह मास दिन आदि होती हैं। नारद! इसी प्रकार अन्तर्दशा में उपदशा के मान समझने चाहिए। १३९-१४१½॥

(दशाफल)—दशारंभ-काल में यदि चन्द्रमा दशापति के मित्र की राशि स्वोच्च स्वराशि या दशापति से १, ४, ७, ३, १०, ११ में शुभ स्थान में हो तो जिस भाव में चन्द्रमा हो, उस भाव की विशेष रूप से पुष्टि करता हुआ शुभ फल देता है। इन स्थानों से भिन्न स्थान में हो तो उस भाव का नाशक होता है ॥१४२-१४३॥ पहले जिस ग्रह के जो द्रव्य बताये गये हैं, भाव और राशियों में जो इन ग्रहों की दृष्टि तथा योग का फल कहा गया है एवं आजीविका आदि जो जो फल बताये गये हैं, उन सबका विचार उस ग्रह की दशा में करना चाहिए। जो ग्रह पापदशा में प्रवेश के समय अपने शत्रु से देखा जाता है, वह विपत्तिकारक होता है तथा जो शुभग्रह मित्र से दृष्ट हो और शुभवर्ग में रहकर तत्काल बलवान् हो, वह सब आपत्ति को नष्ट कर देता है। जिसका (आगे बताया जाने वाला) अष्टक वर्ग से जन्य फल पूर्ण शुभ हो तथा जो ग्रह लग्न या चन्द्रमा से १, ३, ६, १०, ११ में, स्वोच्च स्थान में स्वराशि में, अपने मूल त्रिकोण में तथा मित्र की राशि में हो, उसका अशुभ फल भी कुछ कम हो जाता है, मध्यम फल श्रेष्ठ हो जाता है तथा शुभ फल तो अत्यन्त श्रेष्ठ होता है। यदि वह ग्रह इससे भिन्न स्थान में हों तो उसके पाप-फल की वृद्धि होती है और उसका शुभ फल भी अल्प हो जाता है। इन फलों को भी ग्रह के बलावल को समझकर तदनुसार स्वल्प या अधिक कहना चाहिए ॥१४४-१४८॥

(लग्न दशाफल)—चर लग्न में प्रथम, द्वितीय, तृतीय द्रेष्काण हो तो क्रम से लग्न की दशा शुभ, मध्यम और अशुभ फल देने वाली होती है। द्विस्वभाव लग्न हो तो इससे विपरीत फल होता है। (अर्थात् प्रथमादि द्रेष्काण में क्रम से अशुभ, मध्यम और शुभ फल देने वाली दशा होती है)। स्थिर लग्न हो तो प्रथमादि द्रेष्काण में अशुभ, शुभ और मध्यम फल देने वाली दशा होती है। लग्न यदि अपने स्वामी गुरु और बुध से युक्त अथवा दृष्ट हो तो उसकी दशा शुभ फल देने वाली होती है। यदि वह पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो अथवा पाप के मध्य में हो तो उसकी दशा अशुभ फल देने वाली होती है ॥१४९-१५०॥

(अष्टकवर्ग कथन)—सूर्य जन्मकालिक स्वाश्रित राशि से १ । २ । १० । ४ । ८ । ११ । ९ । ७ । इन स्थानों में शुभ होता है। मंगल और शनि से भी इन्हीं स्थानों में रहने पर वह शुभ होता है। शुक्र से ७ । १२

धर्मंध्यायारिगो जीवादिकत्यारिगो विधोः । पृथ्यंत्यधीतपाः सुज्ञा ततोवृद्धंघत्यबंधुराः ॥१५२॥
वृद्धिगोंगात्सधनधीतपः स्वाराच्छशी शुभः । स्वद्वृध्यस्तादिषु पृधात्ससाष्टौ पंचयोषगः ॥१५३॥
षट्व्यायधीस्थो मंदाच्च ज्ञाद्व्यायाष्टकेंद्रगः ।
केंद्राष्टायांत्य इज्याद्वा ज्ञज्यायास्तत्र स्वे कवेः ॥१५४॥
वृद्धाविनात्सादिधिया मंगा सायारिगो विधोः । केंद्राष्टापार्थगः स्वक्षान्मंदाद्गोष्टायकेंद्रगः ॥१५५॥
षट् त्रिधी भवतः सौम्यात्षड्वांशाष्टगो भृगोः ।
कर्मायव्ययषष्ठस्थो जीवाद्भौमः शुभः स्मृतः ॥१५६॥
कवेद्वर्याषष्ठमोऽध्याये सन्ज्ञोमंदान्सधीत्रये । साक्षास्ते भूमिजाज्जीवाद्ययारिभवमृत्युगः ॥१५७॥
धर्मायारिसतांत्येर्कात्साद्यत्रिस्वगता स्वभात् ।
षट्खायाष्टाब्धिखेष्विज्यात्सहाद्येषु विलग्नतः ॥१५८॥
दिक्वाष्टाद्यस्तबंध्याये कुजात्खात्सत्रिके गुरुः । सात्यंके सन् रवेः शु[illegible]ाद्धीखगो दिग्भवारिगः ॥१५९॥
चंद्राद्धीशार्थगोस्तेषु मन्दाद्धीत्रिषडंत्यगः । गोब्धिधीषट्खखाद्या ये ज्ञात्सद्यूते विलग्नतः ॥१६०॥

---

६ में, गुरु से ९ । ५ । ११ । ६ में, चन्द्रमा से १० । ३ । ११, ६ में, बुध से इन्हीं १० । ३ । ११ । ६ और १२ ५ । ९ में भी वह शुभ होता है। लग्न से ३ । ६ । १० । ११ ।१२ ।४ स्थानों में सूर्य शुभ होता है ॥१५१-१५२॥

चन्द्रमा लग्न से ६, ३, १०, ११ स्थानों में; मंगल से २, ५, ९ सहित इन्हीं ६, ३, १०, ११ स्थानों में; अपने स्थान से ३, ६, १०, ११, ७, १ में; सूर्य ले ३, ६, १०, ७, ८ में; शनि से ६, ३, ११, ५ में; बुध से ५, ३, ८, १, ४, ७, १० में; गुरु से १, ४, ७, १०, ८, ११, १२ में और शुक्र से ४, ५, ९, ३, ११, ७, १० इन स्थानों में शुभ होता है ॥१५३-१५४॥

मंगल सूर्य से ३, ६, १०, ११, ५ में; लग्न से ३; ६, १०, ११, ५ में; लग्न से ३, ६, १०, ११, १ में चन्द्रमा से ३, ६, ११ में; अपने आश्रित स्थान से १, ४, ७, १०, ८, ११, २ में; शनि से ९, ८, ११, १, ४, ७, १० में, बुध से ६, ३, ५, ११, में, शुक्र से ६, ११, २, ८ में; और गुरु से १०, ११, १२, ६ स्थानों में शुभ होता है ॥१५५-१५६॥

बुध शुक्र से ५, ३ सहित २, १, ८, ९, ४, ११ स्थानों में; शनि और मंगल से १०, ७ सहित २, १, ८, ९, ४ और ११वें स्थान में; गुरु से ६, १२, ६, ११, ८ वें स्थानों में; स्वाधिष्ठित स्थान से १, ३, १०, ९, ११, ६, ५, १२वें स्थानों में; चन्द्रमा से ६, १०, ११, ८, ४, १० में और लग्न से १ तथा पूर्वोक्त ६, १०, ११, ८, ४, १० स्थानों में शुभ होता है ॥१५७-१५८॥

गुरु मंगल से १०, २, ८, १, ७, ४, ११ स्थानों में; अपने आश्रित स्थान से ३ सहित पूर्वोक्त (१०, २, ८, १, ७, ४, ११) स्थानों में; सूर्य से ३, ९ सहित पूर्वोक्त (१०, २, ८, १, ७, ४, ११) स्थानों में; शुक्र से ५, २, ९, १०, ११, ६ में; चन्द्रमा से २, ११, ५, ९, ७ में; शनि से ५, ३, ६, १२ में; बुध से ९, ४, ५, ६, २, १०, १, ११ में; तथा लग्न से ७ सहित पूर्वोक्त (९, ४, ५, ६. २, १०, १, ११) स्थानों में शुभ होता है ॥१५९-१६०॥

आशु तेशाष्टगोऽवंगः स्सांतेष्वब्जात्सितः शुभः ।
स्वात्सज्ञेषु त्रिधीगोऽधी दिक्छिद्रासिगतोर्कजात् ॥१६१॥
रंध्रायव्ययगः सूर्यादोष्टधीखे सगोगुरो । ज्ञाब्धि त्र्यायारिगोरात्त्रिषट्व्यध्यांत्यगोषु च ॥१६२॥
त्रिधीशारिषु मन्दः खात्साक्षांत्येषु शुभो मृतः । केंद्रायाष्टधनेष्वर्का लग्नाद्वृद्धचाद्यबंधुषु ॥१६३॥
गोध्वष्टावारिखांत्येज्ञाच्चंद्राल्लाभत्रिषड्मतः । षडष्टांत्यगतः शुद्गुक्रारोर्द्वीशांत्यशत्रुषु ॥१६४॥
उक्तस्थानेषु रेखादौ ह्यनुक्तेषु तु बिंदुदाः । जन्मभाद्वृद्धिमित्रोच्चखभेधिष्टं परेष्वसत् ॥१६५॥
कष्टमर्थक्षयः क्लेशः समतार्थसुखायमः । धनाप्तिः सुखमिष्टाप्तिरिति रेखाफलं क्रमात् ॥१६६॥
पितृमातृद्विषन्मित्रभ्रातृस्त्रीभृतकाद्रवेः । स्वामिलग्नाजयोः स्वस्थाद्भेद्रर्कस्वयशोशयात् ॥१६७॥
तृणस्वर्णाश्वधोरणाद्यैरर्कांशे वृत्तिमादिशेत् ।
कृष्यंबुजस्त्रीभ्योऽब्जांशे कौजे धात्वस्त्रसाहसैः ॥१६८॥

शुक्र लग्न से १, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९ स्थानों में; चन्द्रमा से भी इन्हीं स्थानों (१, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९) में और १२वें स्थान में; अपने आश्रित स्थान से १० सहित उक्त (१, २, ३, ४, ५, ११, ८, ९) स्थानों में; शनि से ३, ५, ९, ४, १०, ८, ११ स्थानों में; सूर्य से ८, ११, १२ स्थानों में; गुरु से ९, ८, ५, १०, ११ स्थानों में; बुध से ५, ३, ११, ६, ९ स्थानों में और मंगल से ३, ६, ९, ५, ११ तथा बारहवें स्थानों में शुभ होता है ॥१६१-१६२॥

शनि अपने आश्रित स्थान से ३, ५, ११; ६ में; मंगल से १०, १२ सहित पूर्वोक्त (३, ५, ११, ६) स्थानों में; सूर्य से १, ४, ७, १०, ११, ८, २, में; लग्न से ३, ६, १०, ११, १, ४ में; बुध से ९, ८, ११, १०, १२, में चन्द्रमा से ११, ३, ६ में; शुक्र से ६, ११, में और गुरु से ५, ११, ६ स्थानों में शुभ होता है ॥१६३-१६४॥

उपर्युक्त स्थानों में ग्रह रेखा-प्रद और अनुक्त स्थानों में बिन्दुप्रद होते हैं। जो ग्रह लग्न या चन्द्रमा से वृद्ध या उपचय स्थान (३, ६, १०, ११) में हों, या अपने मित्रगृह में, उच्च स्थान में तथा स्वराशि में स्थित हों, उनके द्वारा शुभ फलकी अधिकता होती है ॥१६५॥

एकादि रेखा वाले स्थान का फल--उक्त प्रकार से जिस स्थान में एक रेखा हो, वहाँ ग्रह के जाने पर कष्ट होता है। दो रेखा वाले स्थान में जाने से धन का नाश होता है। तीन रेखा वाले में जाने से क्लेश होता है। चार रेखा वाले स्थान में ग्रह के पहुँचने से मध्यम फल होता है (शुभ अशुभ फल की तुल्यता होती है) पाँच रेखा वाले स्थान में सुख की प्राप्ति, छह रेखा वाले में धन का लाभ, सात रेखा वाले स्थान में सुख तथा आठ रेखा वाले स्थान में ग्रह के जाने पर अभीष्ट फल की सिद्धि होती है ॥१६६॥

आजीविका-कथन—जन्मकालिक लग्न और चन्द्रमा से १०वें स्थान में यदि सूर्य आदि ग्रह हों तो जातक क्रम से पिता, माता, शत्रु, मित्र, भाई, स्त्री और नौकर के द्वारा धन का लाभ होता है। जन्मलग्न, जन्मकालिक चन्द्र तथा जन्मकालिक सूर्य—इन तीनों से दशम स्थान के स्वामी जिस राशि के नवमांश हों, उस नवमांश के अधिपति की वृत्ति से आजीविका समझनी चाहिए। यथा—उक्त दशम स्थानों के स्वामी सूर्य के नवमांश में हों तो तृण (पत्र-पुष्पादि), सुवर्ण, औषध, ऊन तथा रेशम आदि से जीविका समझे। चन्द्रमा के नवमांश में हों तो खेती, जलज (मोती, मूँगा, शंख, सीप आदि), और स्त्री के द्वारा जीविका चलती है। मंगल के नवमांश में हों तो धातु, अस्त्र-शस्त्र और साहस से जीवन-निर्वाह होता है। बुध के नवमांश हों तो काव्य,

काव्यशिल्पादिभिर्बोधे जैवे देवद्विजाकरैः । शौक्रे रजतगोरत्नैर्मान्दे हिंसाश्रमाधमैः ॥१६९॥
स्वोच्चेष्वार्की तथा ज्यारैरुक्तैकांगे नृपाधिपाः । लग्ने वर्गोत्तमेऽब्जे वा चतुरादिग्रहेक्षिते ॥१७०॥
द्वाविंशन्नृपास्तु गेसृक्चापेर्केन्दूयमस्तनौ । भूपकृत्तुंगगोर्कोगेस्तेसाजार्कोखभे गुरौ ॥१७१॥
यमेंदुतुंगगौ लग्ने षष्ठेऽर्कज्ञौ तुलाजगा । सितासृजो गुरौ कर्को साराजे लग्नगे नृपाः ॥१७२॥
वृषेगेब्जेर्केज्यसौरैः सुहृज्जायाखगैर्नृपः । मंदे मृगांगेव्यर्यकांशस्थैरजादिभिर्नृप ॥१७३॥
सेज्याजेश्वे मृगमुखे कुजे तुंगेर्क्षभार्गवौ । लग्नेऽथ सेज्यकर्कगे ज्ञानशुक्रैर्भवोपगैः ॥१७४॥
मेषेऽर्के भूमिपासेंदौ एषे षांग्रेर्कपासृजः । सिंहकुंभमृगस्थाश्चेद्भूपः सारेतनावजे ॥१७५॥
आर्के जीवे तनौ वापि नृपोऽथोः कुजभास्करौ । धीस्थौ गुर्विदुकवयो भूमौ स्व्यगे बुधैर्नृपः ॥१७६॥
मृगास्यलग्नगैः सौरेजाब्जक्षहरयः सयाः । कविक्षौ तुलयुग्मस्थौ वै भूपः कीर्तिमान्भवेत् ॥१७७॥
यस्य कस्यापि तनयः प्रोक्तैर्योगैर्नृपो भवेत् । वक्ष्यमाणैर्नृपसुतो ज्ञेयो भूयो मुनीश्वर ॥१७८॥

शिल्पकलादि से, गुरु के नवमांश में हों तो देवता और ब्राह्मणों के द्वारा तथा लोहा, सोना आदि के खान से, शुक्र के नवमांश में हों तो चाँदी, गौ तथा रत्न आदि से और शनि केनवमांश में हों तो परपीड़न, परिश्रम और नीच कर्म द्वारा धन की प्राप्ति होती है ॥१६७-१६९॥

राजयोग का वर्णन--शनि, सूर्य, गुरु और मंगल—ये चारों यदि अपने-अपने उच्च में हों और इन्हीं में कोई एक लग्न में हो तो इन चारों लग्नों में जन्म लेने वाले राजा होते हैं। लग्न अथवा चन्द्रमा वर्गोत्तम नवमांव में हो और उस पर ४, ५ या ६ ग्रह की दृष्टि हो तो इसके २२ भेद से २२ प्रकार के राजयोग होते हैं। मंगल अपने उच्च में हो, रवि और चन्द्रमा धनुराशि में हों और मकरस्थ शनि लग्न में हो तो जातक राजा होता है। रवि लग्न में उच्चस्थ हो, चन्द्रमा सहित शनि सप्तम भाव में हो, बृहस्पति स्वगृह (धनु या मीन) में हो तो जातक राजा होता है ॥१७०-१७१॥ शनि अथवा चन्द्रमा अपने उच्चस्थ होकर लग्न में हों, षष्ठ भाव में सूर्य और बुध हो, शुक्र तुला में, मंगल मेष में और गुरु कर्क में हो तो इन दोनों लग्नों में जन्म लेने वाला राजा होता है। उच्चस्थ मंगल यदि चन्द्रमा के साथ वृष लग्न में हो तो भी जातक राजा होता है। चन्द्रमा वृष लग्न में हो और सूर्य, गुरु तथा शनि ये क्रम से ४, ७, १०वें स्थान में हों तो जातक राजा होता है। मकर लग्न में शनि हो और लग्न से ३, ६, ९ एवं १२वें भाव में क्रमशः चन्द्रमा, मंगल, बुध तथा बृहस्पति हों तो जातक राजा होता है ॥१७२-१७३॥

गुरु सहित चन्द्रमा धन में और मंगल मकर में हों तथा बुध या शुक्र अपने उच्च में स्थित होकर लग्न में विद्यमान हों तो उन दोनों योगों में जन्म लेने वाला राजा होता है। बृहस्पति कर्क लग्न में हो, बुध, चन्द्रमा तथा शुक्र तीनों ११वें भाव में हों और सूर्य मेष में हो तो जातक राजा होता है। चन्द्रमा मीन लग्न में हो, सूर्य शनि, मंगल—ये क्रम से सिंह, कुम्भ और मकर में हों तो जातक राजा होता है। मंगल सहित मेष लग्न हो, बृहस्पति कर्क में हो अथवा कर्कस्थ बृहस्पति लग्न में हो तो जातक राजा होता है। मंगल और शनि पंचम भाव में, गुरु, चन्द्रमा तथा शुक्र चतुर्थ भाव में और बुध कन्या लग्न में हों तो जातक राजा होता है ॥१७४-१७६॥

मकर लग्न में शनि हो तथा मेष, कर्क, सिंह—ये अपने-अपने स्वामी से युक्त हों, शुक्र तुला में और बुध मिथुन में हों तो बालक यशस्वी राजा होता है ॥१७७॥ मुनीश्वर ! इन बताये हुए योगों में जन्म लेने वाला जिस किसी का पुत्र भी राजा होता है। तथा आगे जो योग बताये जाएँगे, उनमें जन्म लेने वाले राजकुमार को ही राजा समझना चाहिए। (यदि अन्य व्यक्ति इस योग में उत्पन्न हुआ हो तो वह राजा के तुल्य होता है, राजा नहीं ॥१७८॥

स्वोच्चे त्रिकोणभगतैस्त्र्याद्यैर्बलयुतैर्नृपः । सिंहेऽर्के मेषलग्नेऽब्जे मृगे भौमेघटेऽष्टमे ॥१७९॥
चापे जीवे धरानाथःस्यादथ स्वर्क्षगे भृगौ । पातालगे धर्मगेऽब्जे शुभदृष्टे युते मुने ॥१८०॥
विलग्नभवगैःशेषैर्धराधीशः प्रजायते । सौम्ये वीर्ययुतेऽगस्थे बलाढ्ये शुभगे शुभे ॥१८१॥
धर्मार्थोपचयस्थैश्च शेषैर्धर्मयुतोनृपः । मेषूरणायतनुगाः शशिसूर्यजसूरयः ॥१८२॥
ज्ञारौ धने शितरवा हिबुके भूपतिस्तदा । वृषेऽगेऽब्जोधनारिस्थो जीवार्की लाभगाः परे ॥१८३॥
सुखे गुरुःखेंरवींदूयमो लग्ने भवे करै । लग्ने वक्रासितौ चंद्रेज्यसितार्कबुधाः क्रमात् ॥१८४॥
सुखास्तु शुभखाप्तिस्था नरेशं जनयंत्यपि । कर्मलग्नगखेटस्य दशायां राज्य संगतिः ॥१८५॥
प्रबलस्य दशायां वा शत्रुनीचा दिगार्तिदाः । आसन्नकेंद्रद्वयगैर्वर्गदाख्यः सकलग्रहैः ॥१८६॥
तन्वस्तगैश्च सकटं विहगो राज्यबंधुगैः । शृङ्गाटकं धिगौगस्थैर्लग्नान्यस्थैर्हलं मतम् ॥१८७॥
वज्रोङ्गस्थे सत्स्वसत्सु तुर्यखस्थैर्यवोन्यथा । विमिश्रैः कमलं प्राहुर्वाप्याकंटकबाह्यगैः ॥१८८॥
लग्नाच्चतुर्भगैर्यूपःशरस्तूर्याच्चतुर्भगेः । धूनाद्दे दक्षगैः शक्ति दंऽखादिचतुर्भगैः ॥१८९॥

तीन या अधिक ग्रह बली होकर अपने-अपने उच्च या मूल त्रिकोण में हों तो बालक राजा होता है। सिंह में सूर्य, मेष लग्न में चन्द्रमा, मकर में मंगल, कुम्भ में शनि और धनु में बृहस्पति हो तो उत्पन्न शिशु भूपाल होता है। मुने! शुक्र अपनी राशि में होकर चतुर्थ स्थान में स्थित हों, चन्द्रमा नवम भाव में रहकर शुभ ग्रह से दृष्ट या युक्त हों तथा शेष ग्रह १, ५, ३, ६, १० और ११वें भाव में हों तो उत्पन्न बालक धर्मात्मा नरेश होता है। चन्द्रमा, शनि और बृहस्पति क्रमशः दसवें, ग्यारहवें तथा लग्न में स्थित हों, बुध और मंगल द्वितीय भाव में तथा शुक्र और रवि चतुर्थ भाव में स्थित हों तो जातक भूपाल होता है। वृष लग्न में चन्द्रमा, द्वितीय में गुरु, ११वें में शनि तथा शेष ग्रह भी स्थित हों तो बालक नरेश होता है ॥१७९-१८३॥

चतुर्थ भाव में गुरु, १०वें भाव में सूर्य और चन्द्रमा, लग्न में शनि और ११वें भाव में शेष ग्रह हों तो जातक राजा होता है। मंगल और शनि लग्न में हों, चन्द्रमा, गुरु, शुक्र, सूर्य और बुध—ये क्रम से ४, ७, ९, १० और ११वें में हों तो ये सब ग्रह भावी नरेश को जन्म देते हैं। मुनीश्वर! ऊपर कहे हुए योगों में उत्पन्न मनुष्य के दशम भाव या लग्न में जो ग्रह हो, उसकी दशा-अन्तर्दशा आने पर उसे राज्य की प्राप्ति होती है। उन दोनों स्थानों में ग्रह न हो तो जन्म समय में जो ग्रह बलवान् हो, उसकी दशा में राज्यलाभ समझना चाहिए तथा जो ग्रह जन्म-समय में शत्रुराशि या अपनी नीच राशि में हो, उसकी राशि में क्लेश, पीडा आदि की प्राप्ति होती है ॥१८४-१८५½॥

नाभस योग कथन—समीपवर्ती दो केन्द्र-स्थानों में हो (रवि से शनिपर्यन्त) सब ग्रह हों तो 'गदा' नामक योग होता है। केवल लग्न और सप्तम दो हो स्थानों में सब ग्रह हों तो 'शकट' योग होता है। दशम और चतुर्थ में ही सब ग्रह हों तो 'विहग' योग होता है। ५, ९ और लग्न—इन तीन ही स्थानों में सब ग्रह हों तो शृङ्गारक योग होता है। इसी प्रकार यदि लग्न भिन्न स्थान से त्रिकोण स्थानों में ही सब ग्रह हों तो 'हल' नामक योग होता है ॥१८६-१८७॥ लग्न और सप्तम में सब शुभ ग्रहों तथा चतुर्थ-दशम में सब पापग्रह हों तो 'वज्र' योग होता है। इसके विपरीत यदि लग्न, सप्तम में सब पापग्रह तथा चतुर्थ-दशम में सब शुभग्रह हों तो 'यव' योग होता है, यदि चारों केन्द्रों में सब (शुभ और पाप) ग्रह मिलकर बैठे हों तो 'कमल' योग होता है ॥१८८॥ लग्न से लगातार ४ स्थान (१, २, ३, ४) में ही सब ग्रह स्थित हों तो 'शर' योग होता है। सप्तम से ४ स्थान (७, ८, ९, १०) में ही सब ग्रह स्थित हो तो 'शक्ति' योग होता है। और दशम से ४ स्थान (१०, ११, १२, १) में ही सब ग्रह हों तो दण्ड योग होता है ॥१८९॥ लग्न से क्रमशः सात स्थानों (१, २, ३,

लग्नात्क्रमात्सप्तभगैर्नौकाकूटस्तु नुर्यतः । छत्रमस्तात्स्वभाद्यायोन्यस्माद्दर्द्धेन्दुनामकः ॥१९०॥
लग्नादेकांतरगतैश्चक्रमर्थात्सरित्पतिः । षड्भ स्थानेषु वीणाद्याः सप्तसप्तर्क्ष संस्थितैः ॥१९१॥
वीणादामपाशकेदारभूशूलयुगगोलकाः । ग्रहैः सर्वैश्चरभगै राजयोगः प्रकीर्तितः ॥१९२॥
स्थिरस्थैर्मुसलं नाम द्विशरीरगतैर्नलः । माला केंद्रस्थितैः सौम्यैः पापैस्सर्प उदाहृतः ॥१९३॥
ईर्ष्यरध्वरुची रज्ज्वां मुसले धनमानयुक् । व्यंगा स्थिरा लोनलजो भोगीस्रग्जोहिजोद्दितः ॥१९४॥
वीणोद्भवोतिनिपुणः गीतनृत्यरुचिर्भृशम् । दाता स द्वो दामोत्थः पाशजो धनशीलयुक् ॥१९५॥
केदारोत्थः कृषिकरः शूले शूरोक्षतो धनः । युगं पाखंडयुर्गोले विधनो मलिनस्तथा ॥१९६॥
भूपवंद्यपदश्चक्रे समुद्रे नृपभोगयुक् । सुभगांगोर्द्धचापात्सुखीशूरश्च चामरः ॥१९७॥

४, ५, ६, ७) में सब ग्रह हों तो 'नौका' योग, चतुर्थ भाव से आरम्भ करके लगातार सात स्थानों में सभी ग्रह हों तो 'कूट' योग, सप्तम भाव से आरम्भ करके लगातार सात स्थानों में सभी ग्रह हों तो 'छत्र' योग और दशम से आरंभ करके सात स्थानों में सब ग्रह स्थित हों तो 'चाप' नामक योग होता है। इसी प्रकार केन्द्र भिन्न स्थान से आरम्भ करके लगातार सात स्थानों में सब ग्रह हों तो 'अर्धचन्द्र' नामक योग होता है ॥१९०॥

लग्न से आरम्भ करके एक स्थान का अन्तर देखकर क्रमशः १, ३, ५, ७, ९, और ११ इन) ६ स्थानों में ही सब ग्रह स्थित हों तो 'चक्र' नामक योग होता है और द्वितीय भाव से लेकर एक स्थान का अन्तर देकर क्रमशः ६ स्थानों (२, ४, ६, ८, १०, १२) में ही सब ग्रह विद्यमान हों तो 'समुद्र' नामक योग होता है। ७ से १ राशि तक में सब ग्रह के रहने पर क्रमशः वीणा आदि नाम वाले ७ योग होते हैं। जैसे—७ स्थानों में सब ग्रह हों तो 'वीणा' ६ स्थानों में सब ग्रह हों तो 'दाम', ५ स्थानों में सब ग्रह हों तो 'पाश', ४ स्थानों में सब ग्रह हों तो 'क्षेत्र', ३ स्थानों में सब ग्रह हों तो 'शूल', २ स्थानों में सब ग्रह हों तो 'युग' और एक ही स्थान में सब ग्रह हों तो 'गोल' नामक योग होता है। सब ग्रह चर राशि में हों तो 'रज्जु', स्थिर राशि में हों तो 'मुसल' और द्विस्वभाव में हों तो 'नल' नामक योग होता है। सब शुभग्रह केन्द्र-स्थानों में हों तो 'माला' और सब पापग्रह केन्द्रस्थानों में हों तो 'सर्प' नामक योग होता है ॥१९१-१९३॥

इन योगों में जन्म लेने वालों के फल—रज्जुयोग में जन्म लेने वाला ईर्ष्यावान् और भ्रमण की इच्छा वाला होता है। मुसलयोग में उत्पन्न शिशु धन और मान से युक्त होता है। नलयोग में उत्पन्न पुरुष अंगहीन, स्थिरबुद्धि और धनी होता है। मालायोग में उत्पन्न जातक भोगी होता है तथा सर्पयोग में उत्पन्न पुरुष दुःख से पीडित होता है ॥१९४॥ वीणायोग मेंउत्पन्न मनुष्य सब कार्यों में निपुण तथा संगीत और नृत्य में रुचि रखने वाला होता है। दामयोग में उत्पन्न मनुष्य दाता और धनाढ्य होता है। पाशयोग में उत्पन्न धनवान् और सुशील होता है। केदार (क्षेत्र) योग में पैदा हुआ खेती से जीविका चलानेवाला होता है तथा शूलयोग में उत्पन्न पुरुष शूरवीर, शस्त्र से आघात न पाने वाला और निर्धन होता है। युगयोग में उत्पन्न होने वाला पाखंडी तथा गोलयोग में उत्पन्न मनुष्य मलिन और निर्धन होता है ॥१९५-१९६॥

चक्रयोग में जन्म लेने वाले पुरुष के चरणों में राजा लोग भी मस्तक झुकाते हैं। समुद्रयोग में उत्पन्न पुरुष राजोचित भोगों से सम्पन्न होता है। अर्धचन्द्र में पैदा हुआ बालक सुन्दर शरीर वाला तथा चापयोग में उत्पन्न शिशु सुखी और शूरवीर होता है ॥१९७॥ छत्रयोग में उत्पन्न मनुष्य मित्रों का उपकारक तथा कूटयोग

मित्रोपकारकृच्छत्रे कूटे चानृतबंधरात् । नौजः सकीर्तिः सुखभाक् मानवो भवति ध्रुवम् ॥१९८॥
त्यागी यज्वात्मवान् यूपे हिंस्रो गुह्याधिपः शरैः ।
शक्तौ नीचोऽलसो निःस्वो दण्डे प्रियवियोगभाक् ॥१९९॥
व्यर्कः स्वांत्योभयगतैः खेटैः स्यात्सुनफानफा । दुरुधरा चैव विधौ ज्ञेयः केमद्रुमोऽन्यथा ॥२००॥
स्वोपार्जितार्थभुग्दाता सुनफायां धनी सुखी । नीरोगः शीलवान् ख्यातः सुवेषश्चानफाभवः ॥२०१॥
भोगी सुखी धनीदानी त्यागी दुरुधुरोद्भवः । केमुद्रुमेऽतिमलिनो दुःखी नीचोऽथ निर्धनः ॥२०२॥
यन्त्राश्मकारंशाजोको भौमपुष्कलते ध्वगः । सुज्ञः सुकीर्तिनिपुणं विद्वांसं धनिनं तथा ॥२०३॥
सेन्योन्यकार्यनिरतं सास्फुजिचछस्त्रजीविनम् । समंदो धातुकुशलं तथा भाडविदं मुने ॥२०४॥
कूटस्त्र्याशवपण्याठं नसासृगिदुः प्रसूद्विषम् । कुर्यात्सज्ञोर्थनिपुणं नम्रं सत्कीर्तिसंयुतम् ॥२०५॥
सेज्योऽस्थिरवयं वंश्यं विक्रांतं च समर्थिनम् । ससितोसुकवेत्तारं सार्किपौनर्भवं मुने ॥२०६॥
आरे सज्ञे बाहुयोधी पुराध्यक्षः सगोष्पतौ । सशुक्र द्यूतकृर्ह्योयो नृती द्यूती समंदके ॥२०७॥

में उत्पन्न मिथ्याभाषी और जेल का अधोक्षक होता है। नौका योग में उत्पन्न पुरुष निश्चय ही यशस्वी और सुखी होता है। यूपयोग में जन्म लेने वाला मनुष्य दानी, यज्ञकर्ता और मनस्वी होता है। शरयोग में उत्पन्न मनुष्य दूसरों को कष्ट देने वाला और गोपनीय स्थानों का स्वामी होता है। शक्तियोग में उत्पन्न नीच, आलसी और निर्धन होता है। दण्डयोग में उत्पन्न पुरुष अपने प्रियवियोग का कष्ट भोगता है ॥१९७-१९९॥

चतुर्योग का कथन—यदि चन्द्रमा से द्वितीय में सूर्य को छोड़कर कोई भी अन्य ग्रह हो तो 'सुनफा' योग होता है। द्वादश में हो तो 'अनफा' और दोनों (२, १२) स्थानों में ग्रह हों तो 'दुरुधरा' योग होता है। अन्यथा (अर्थात् २, १२ में कोई ग्रह नहीं हो तो) 'केमद्रुम' योग होता है ॥१००॥

उक्तयोगों का फल—सुनफा योग में जन्म लेने वाला पुरुष अपने भुजबल से उपार्जित धन का भोगी, दाता, धनवान् और सुखी होता है। अनफायोग में उत्पन्न मनुष्य नीरोग, सुशील, विख्यात और सुन्दर होता है। दुरुधरा में जन्म लेने वाला भोगी, सुखी, धनवान्, दाता और विषयों से निःस्पृह होता है। केमद्रुम योग में उत्पन्न पुरुष मलिन, दुःखी नीच और निर्धन होता है ॥२०१-२०२॥

द्विग्रहयोगफल—मुने! सूर्य यदि चन्द्रमा से युक्त हो तो भाँति-भाँति के यन्त्र और पत्थर के कार्य में कुशल बनाता है। मंगल से युक्त हो तो वह बालक को नीच कर्म में लगाता है। बुध से युक्त हो तो यशस्वी, कार्यकुशल, विद्वान् एवं धनी बनाता है, गुरु से युक्त हो तो दूसरों के कार्य करने वाला, शुक्र से युक्त हो तो धातुओं (ताँबा आदि) के कार्य में निपुण तथा पात्र-निर्माण-कला का जानकार बनाता है ॥२०३-२०४॥

चन्द्रमा यदि मंगल से युक्त हो तो जातक कूटवस्तु (नकली सामान), स्त्री और आसव-अरिष्टादि का क्रय-विक्रय करने वाला तथा माता-पिता का द्रोही होता है। बुध के साथ चन्द्रमा हो तो उत्पन्न शिशु को धनी, कार्यकुशल, विनयी एवं यशस्वी बनाता है; गुरु से युक्त हो तो चंचलबुद्धि, कुल में मुख्य, पराक्रमी और धनाढ्य बनाता है। मुने! यदि शुक्र से युक्त चन्द्रमा हो तो बालक को वस्त्रनिर्माण-कला का ज्ञाता बनाता है और यदि शनि से युक्त हो तो वह बालक ऐसी स्त्री से उत्पन्न होता है, जिसने पति के मरने पर या जीते जी दूसरे पति से सम्बन्ध स्थापित कर लिया हो ॥२०५-२०६॥

मंगल यदि बुध से युक्त हो तो उत्पन्न हुआ बालक बाहु से युद्ध करने वाला (पहलवान) होता है। गुरु से युक्त हो तो नगर का स्वामी, शुक्र से युक्त हो तो जुआ खेलने वाला तथा गायों का पालक और शनि से युक्त हो तो मिथ्यावादी तथा जुआड़ी होता है ॥२०७॥

सेज्येज्ञे नृत्यगीताढ्यो मायादक्षः सभार्गवे । समंदे लुब्धकः क्रूरो नरो भवति नारद ॥२०८॥
सशुक्रे वाक्पतौ विद्वान्सासितेऽन्नघटंकरः । कवौ समंदमंदाक्षा वनिताश्रयवित्तवान् ॥२०९॥
एकस्थैश्चतुराद्यैस्तु खवार्यैः खचरैः पृथक् । कुजज्ञेज्याजशुक्रार्किसूर्यैः परिव्रजेन्नरः ॥२१०॥
शाक्याजीवकवृद्धार्थिचरकाखफलाशनः । तत्स्वामिभिः पराजितैः प्रव्रज्याप्रच्युतिर्भवेत् ॥२११॥
अदीक्षिताल्पस्तगतैः सबलैस्तत्स्थभक्तयः । जन्मपोन्यैर्यद्यदृष्टो मंदं पश्यति नारद ॥२१२॥
मंदो वा जन्मपं नष्टं तथा च मंदकाणगे । भौमार्कांशे सौरदृष्टे चंद्रे वा दीक्षितो भवेत् ॥२१३॥
सुरूपो भूषितोऽश्विन्यां दक्षः सत्यवचा यमे । बहुभुग्परदास्थौ स्थिरधीः प्रियवाक्तथा ॥२१४॥
ब्राह्मे धनीमृगे भोगी रौद्रे हिंस्रः शठोऽघकृत् । दांतो रोगी शुभोऽदित्यां पुष्यर्यजन्मा कविः सुखी॥२१५॥
धूर्तः शठः कृतघ्नोऽह्नौ पापः सर्वाशनो भवेत् । पत्रे भोगी धनी भक्तो दाता प्रियवचा भगे ॥२१६॥
धनी भोगी नरोर्यमर्क्षे स्तेनो धृष्टो घृणी करे । चित्रांवरः सुदृक्त्वाष्ट्रे न च धर्मदयापरः ॥२१७॥
द्वीशे लुब्धः पटुः क्रोधी मढैचो आठनोविदेशगः । शाक्रे धर्मपरस्तुष्टो मूले मानी धनी सुखी ॥२१८॥
आप्ये मानी सुखी हृष्टो वैश्च नम्रश्च धार्मिकः । कर्णे धनी सुखी ख्यातो दाता शूरो धनी वसौ ॥२१९॥

नारद ! बुध यदि बृहस्पति से युक्त हो तो उत्पन्न शिशु नृत्य और संगीत का प्रेमी होता है। शुक्र से युक्त हो तो मायावी और शनि से युक्त हो तो उत्पन्न मनुष्य लोभी और क्रूर होता है ॥२०८॥

गुरु यदि शुक्र से युक्त हो तो मनुष्य विद्वान्, शनि से युक्त हो तो रसोइया अथवा घटनिर्माता होता है। शुक्र यदि शनि से युक्त हो तो मंद दृष्टि वाला तथा स्त्री के सहारे धनोपार्जन करने वाला होता है ॥२०९॥

प्रव्रज्या योग—यदि जन्म-समय में चार या चार से अधिक ग्रह एक स्थान में हों तो मनुष्य गृहत्यागी संन्यासी होता है। उन ग्रहों में मंगल, बुध, गुरु, चन्द्रमा, शुक्र, शनि और सूर्य बली हों तो मनुष्य क्रमशः शाक्य (बौद्ध), आजीवक (दण्डी), भिक्षु (यति), वृद्ध (वृद्धश्रावक), चरक (चक्रधारी), अह्नी (नग्न) और फलाहारी होता है। प्रव्रज्याकारक ग्रह यदि अन्य ग्रह से पराजित हो तो मनुष्य उस प्रव्रज्या से च्युत हो जाता है। यदि प्रव्रज्याकारक ग्रह सूर्य-सन्निध्यवश अस्त हो तो मनुष्य उसकी दीक्षा ही नहीं लेता और यदि वह ग्रह बलवान् हो तो उसकी प्रव्रज्या में प्रीति रहती है। जन्मराशीश पर यदि अन्य ग्रह की दृष्टि न हो और जन्मराशीश यदि शनि को देखता हो अथवा निर्बल जन्मराशीश को शनि देखता हो या शनि के द्रेष्काण अथवा मंगल या शनि के नवमांश में चन्द्रमा हो और उस पर शनि की दृष्टि हो तो इन योगों में विरक्त होकर गृहत्याग करने वाला पुरुष संन्यास-धर्म की दीक्षा लेता है ॥२१०-२१३॥

अश्विन्यादि नक्षत्रों में जन्म का फल—अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न बालक सुन्दर और भूषणप्रिय होता है। भरणी में उत्पन्न शिशु सब कार्य में दक्ष और सत्यवादी होता है। कृत्तिका में उत्पन्न अमिताहारी, परस्त्री में आसक्त, स्थिरबुद्धि और प्रियवक्ता होता है, रोहिणी में, पैदा हुआ मनुष्य धनवान्; मृगशिरा में उत्पन्न भोगी; आर्द्रा में उत्पन्न हिंसास्वभाव वाला, शठ और अपराधी; पुनर्वसु में जितेन्द्रिय, रोगी और सुशील तथा पुष्य में कवि और सुखी होता है ॥२१४-२१५॥ आश्लेषा नक्षत्र में उत्पन्न मनुष्य धूर्त, शठ, कृतघ्न, नीच और खान-पान में अविवेकी या सर्वभक्षी, मघा में भोगी, धनी तथा देवादि का भक्त होता है। पूर्वा फाल्गुनी में दाता और प्रियवक्ता होता है। उत्तराफाल्गुनी में धनी और भोगी; हस्त में चोरस्वभाव, ढीठ और निर्लज्ज तथा चित्रा में नाना प्रकार के वस्त्र धारण करने वाला धर्मात्मा और दयालु होता है। विशाखा में लोभी, चतुर और क्रोधी; अनुराधा में भ्रमणशील और विदेशवासी; ज्येष्ठ में धर्मात्मा और सन्तोषी तथा मूल में धनीमानी और सुखी होता है। पूर्वाषाढ़ में मानी, सुखी और हृष्ट; उत्तराषाढ़ में विनयी और धर्मात्मा; श्रवण में धनी सुखी और

शेतऽरिहंता व्यसनी स्त्रीजितो जाहिर्भेदिनी । ॥२२०॥
बुध्ने वक्ता सुखी कांतः पौष्णे शूरो धनी शुचिः ।
कामी शूरः कृतज्ञोऽजे कांतस्त्यागी क्षमी वृषे ॥२२१॥
युग्मे स्त्रीद्यूतशास्त्रज्ञः स्त्रैणो ह्रस्वः स्वभे विधौ ।
स्त्रीद्विट् क्रोधी हरौ मानी विक्रांतः स्थिरधीः सुखी ॥२२२॥
धर्मी श्लक्ष्णः सुधीः षष्ठे प्राज्ञः प्रांशुर्धनी घटे
रोगी पूज्यः क्षती कौर्प्ये कविः शिल्पीज्यभे धनी । मृगेऽलसोऽटनः स्वक्षः परदारार्थहृद्घटे ॥२२३॥
सबलेभेभयेवापिसबलेजेऽखिलफलम् ।
अन्यथा विपरीतं तत्फलमेवं परेऽपि न ॥
ख्यातः स्त्रीद्विट् धनी तीक्ष्णोज्ञः कविः शौंडिको धनी ।
पूज्यो लुब्धोऽधनसखो मेषादौ भास्करे जनौ ॥२२४॥
निःस्वोऽर्कभे भूमिपुत्रे धनी चांद्रे स्वभेदनः । बौधे कृतज्ञो जैवे तु ख्यातः शौक्रेऽन्यदारिकः ॥२२५॥

धनवान् होता है। शतभिषा में शत्रु को जीतने वाला व्यसन में आसक्त, पूर्व भाद्रपद में स्त्री के वशीभूत और धनवान्; उत्तरभाद्रपद में वक्ता, सुखी और सुन्दर तथा रेवती में जन्म लेने वाला वीर, धनी और पवित्र हृदय वाला होता है ॥२१६-२२०॥

मेषादि चन्द्रराशि में जन्मराशि का फल--मेषराशि में जन्म लेने वाला कामी, और कृतज्ञ; वृष में सुन्दर, दानी और क्षमावान्; मिथुन में स्त्रीभोगासक्त, द्यूतविद्या को जानने वाला होता है। सिंहराशि में स्त्रीद्वेषी, क्रोधी, मानी, पराक्रमी, स्थिरबुद्धि और सुखी होता है। तुलाराशि में उत्पन्न मनुष्य पण्डित, ऊँचे कदवाला और धनवान् होता है। वृश्चिक राशि में उत्पन्न रोगी, लोक में पूज्य और क्षत (आघत) युक्त होता है। धनु में जन्म लेने वाला कवि, शिल्पज्ञ और धनवान्; मकर में उत्पन्न पुरुष कार्य करने में अनुत्साही, व्यर्थ घूमने वाला और सुन्दर नेत्रों से युक्त; कुम्भ में परस्त्री और परधन हरण करने के स्वभाव वाला तथा मीन में धनुसदृश (कवि और शिल्पज्ञ) होता है ॥२२१-२२३॥

यदि चन्द्रमा को राशि बली हो तथा राशि का स्वामी और चन्द्रमा दोनों बलवान् हों तो ऊपर कहे हुए फल पूर्ण रूप से संघटित होते हैं—ऐसा समझना चाहिए। अन्यथा विपरीत फल (अर्थात् निर्बल हो तो फल का अभाव या बल के अनुसार फल में भी तारतम्य) जानना चाहिए। इसी प्रकार अन्य ग्रहों की राशि के अनुसार फल का विचार करना चाहिए ॥२२३½॥

सूर्यादि-ग्रह-राशि-फल--सूर्य यदि मेष राशि में हो तो जातक लोक में विख्यात होता है। वृष में हो तो स्त्री का द्वेषी, मिथुन में हो तो धनवान्, कर्क में हो तो उग्र स्वभाव वाला, सिंह में हो तो मूर्ख, कन्या में हो तो कवि, तुला में हो तो मद्यविक्रेता, वृश्चिक में हो तो धनवान्, धनु में हो तो लोकपूज्य, मकर में हो तो लोभी, कुम्भ में हो तो निर्धन और मीन में हो तो सुख हीन होता है ॥२२४॥

मंगल यदि सिंह में हो तो जातक निर्धन, कर्क में हो तो धनवान्, स्वगृह में (मेष, वृश्चिक) में हो तो भ्रमणशील कन्या-मिथुन में हो तो कृतज्ञ, गुरुराशि (धनु-मीन) में हो तो विख्यात, शुक्रराशि (वृष-तुला) में हो तो परस्त्री में आसक्त, मकर में हो तो बहुत पुत्र और धनवाला तथा कुम्भ में हो तो दुःखी, दुष्ट और मिथ्या स्वभाव वाला होता है ॥२२५½॥

मृगे वह्वात्मजधनः कुंभे दुःस्थनृती खलः। स्त्रीद्वेष्यः स्वजनद्वेषीनियरत्यः सधीधनः ॥२२६॥
समानार्थः सपुत्रस्त्रीसणः सूर्यादिमे बुधे। सेनानीः स्व्यर्थपुत्राढ्यः दक्षमैश्यः परिच्छदी ॥२२७॥
मंडलेशः सार्थसुखः सर्पास्याम्यर्कभाद्वरी। स्व्यासार्थो मंदशोकाढ्यो बंधुद्वेषी धनाधवान् ॥२२८॥
। सार्थः प्राज्ञः समः स्याति: स्त्रीजितोऽर्कादिभे मृगौ
व्यंगजार्थो खप्रसूक्को विधिमित्रो सुखत्रयः ॥२२९॥
सत्पुत्रस्त्रीधनो राजा ग्रामे शोकादिभेऽर्कजे। भूपज्ञगुणि चौरास्वादृष्टेऽजेजेसृगादिभिः ॥२३०॥
निः स्वःस्तेननृपाः प्रज्ञप्रेष्यामविन्युग्मगे। धात्वाजीवी नृपज्ञाभीतंतुवायाधनाः स्वभे ॥२३१॥
युधुत्सुकविसूरोज्यधातुजीविदृगामयाः । ज्योतिर्ज्ञाढ्यज्यनु खलु नृपेज्ञादिकहंरी ॥२३२॥

बुध यदि सूर्य की राशि (सिंह) में हो तो स्त्री का द्वेषी, चन्द्रराशि (कर्क) में हो तो अपने परिजनों का द्वेषी, मंगल की राशि (मेष-वृश्चिक) में हो तो निर्धन और सत्वहीन, अपनी राशि (मिथुन-कन्या) में हो तो बुद्धिमान् और धनवान्, गुरु की राशि (धनु-मीन) में हो तो मान और धन से युक्त, शुक्र की राशि (वृष-तुला) में हो तो पुत्र और स्त्री से युक्त तथा शनि की राशि (मकर-कुम्भ) में हो तो ऋणी होता है ॥२२६½॥

गुरु यदि सिंह में हो तो सेनापति, कर्क में हो तो स्त्रीपुत्रादि से युक्त एवं धनी, मंगल की राशि (मेष-वृश्चिक) में हो तो धनी और क्षमाशील, बुध की राशि (मिथुन-कन्या) में हो तो वस्त्रादि विभव से युक्त, अपनी राशि (धनु-मीन) में हो तो मण्डल का अधिपति, शुक्र की राशि (वृष-तुला) में हो तो धनी और सुखी तथा शनि की राशि (मकर-कुम्भ) में हो तो मकर में ऋणवान् और कुम्भ में धनवान् होता है ॥२२७½॥

शुक्र सिंह में हो तो जातक स्त्री द्वारा धनलाभ करने वाला, कर्क में हो तो अभिमानी और शोक युक्त, मंगल की राशि (मेष-वृश्चिक) में हो तो बन्धुओं का द्वेषी, बुध की राशि (मिथुन-कर्क) में हो तो धनी और पाप स्वभाव, गुरु की राशि (धनु-मीन) में हो तो धनी और पण्डित, अपनी राशि (वृष-तुला) में हो तो धनवान् और क्षमावान् तथा शनि की राशि (मकर-कुम्भ) में हो तो स्त्री से पराजित होता है ॥२२९½॥

शनि यदि सिंह में हो तो पुत्र और धन से रहित, कर्क में हो तो धन और संतान से हीन, मंगल की राशि (मेष-वृश्चिक) में हो तो निर्बुद्धि और मित्रहीन, बुध की राशि (धनु-मीन) में हो तो सुपुत्र, उत्तम स्त्री और धन से युक्त, शुक्र की राशि (वृष-तुला) में हो तो राजा और अपनी राशि (मकर-कुम्भ) में हो तो जातक ग्राम का अधिपति होता है ॥२२९½॥

चन्द्र पर दृष्टि का फल—मेष स्थित चन्द्रमा पर मंगल आदि ग्रहों की दृष्टि हो तो जातक क्रम से राजा, पण्डित, गुणवान्, चोर स्वभाव तथा निर्धन होता है ॥२३०॥

वृषस्थ चन्द्रमा पर मंगल आदि ग्रहों की दृष्टि हो तो क्रम से निर्धन, चोर-स्वभाव, राजा, पण्डित तथा प्रेष्य (भृत्य) होता है। मिथुन राशि में स्थित चन्द्रमा पर मंगल आदि ग्रहों की दृष्टि होने से मनुष्य क्रमशः धातुओं से आजीविका करने वाला, राजा, पण्डित, निर्भय, वस्त्र बनाने वाला तथा धनहीन होता है। अपनी राशि (कर्क) में स्थित चन्द्रमा पर यदि मंगलादि ग्रहों की दृष्टि हो तो जातक क्रमशः योद्धा, कवि, पण्डित, धनी, धातु से जीविका करने वाला तथा नेत्ररोगी होता है। सिंह राशिस्थ चन्द्रमा पर यदि बुधादि ग्रहों की दृष्टि हो तो मनुष्य क्रमशः ज्योतिषी, धनवान्, लोक में पूज्य, नाई, राजा तथा नरेश होता है। कन्याराशिस्थित चन्द्रमा

षष्ठे शुभैर्नृपचमूपनैपुण्यवतिताशयाः । जूके भूपस्वर्णकारवणिजः शेषदृग्युते ॥२३३॥
द्विपैतृकाब्धिध्वजिनो व्यंगा स्वक्षितिपा अलौ । ज्ञातिक्ष्माजनपाश्चापे सद्भिर्दम्भीशठस्तथा ॥२३४॥
भूपपंडितसखे ज्यामृगे भूपान्यदारिकौ । कुंभे शेषैश्च हास्यज्ञनृपज्ञाः सद्भिरंत्यभे ॥२३५॥
होरेशर्क्षदलस्थैस्तु दृष्टो युक्तः शशी शुभः । त्र्यंशे तत्पतिमित्रर्क्षगतैर्युक्तेक्षितस्तथा ॥२३६॥
द्वादशांशे फलं प्रोक्तं नवांशेऽप्यथ कीर्त्यंते । आरक्षेको वधरुचिर्नियुद्धकुशलोऽर्थवान् ॥२३७॥
कलहः क्षितिजांश्थे शौक्रे मूर्खोऽन्यदारदः । कविः सुखी बुधांशे तु नटचौरज्ञशिल्पिनः ।
स्वांशे त्वल्पतनुः सखस्तपस्वी लोभतत्परः ॥२३८॥
क्रोधी निधीशो मात्यो वा नृपो हिंस्रो सुतो हरेः ॥२३९॥

पर बुध आदि ग्रहों की दृष्टि हो तो शुभग्रहों (बुध, गुरु, शुक्र) की दृष्टि होने पर जातक क्रमशः राजा, सेनापति एवं निपुण होता है और अशुभ (शनि, मंगल, रवि) की दृष्टि होने पर स्त्री के आश्रय से जीविका चलाने वाला होता है। तुलाराशिस्थ चन्द्रमा पर यदि बुध आदि (बुध, गुरु, शुक्र) की दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रम से भूपति, सोनार और व्यापारी होता है तथा शेष ग्रह (शनि, रवि और मंगल) की दृष्टि होने पर वह हिंसा के स्वभाव वाला होता है ॥२३१-२३३॥ वृश्चिक राशिस्थ चन्द्रमा पर बुध आदि ग्रहों की दृष्टि होने पर क्रम से जातक दो संतान का पिता, मृदुस्वभाव, वस्त्रादि को रँगाई करने वाला, अंगहीन, निर्धन और भूमिपति होता है। हैं। धनराशिस्थ चन्द्रमा पर बुध आदि शुभग्रहों की दृष्टि हो तो उत्पन्न बालक क्रमशः अपने कुल, पृथ्वी तथा जनसमूह का पालक होता है। शेष ग्रहों (शनि, रवि तथा मंगल) की दृष्टि हो तो जातक दंभी और शठ होता है ॥२३४॥ मकरराशिस्थित चन्द्रमा पर बुध आदि की दृष्टि हो तो वह क्रमशः भूमिपति, पण्डित, धनी, लोक में पूज्य, भूपति तथा परस्त्री में आसक्त होता है। कुम्भराशिस्थ चन्द्रमा पर भी उक्त ग्रहों की दृष्टि होने पर भी इसी प्रकार (मकरराशिस्थ के समान) फल समझना चाहिए। मीनराशिस्थ चन्द्रमा पर शुभग्रहों (बुध, गुरु और शुक्र) की दृष्टि हो तो जातक क्रमशः हास्यप्रिय, राजा और पण्डित होता है। (तथा शेष ग्रहों (पापग्रहों) की दृष्टि होने पर अनिष्ट फल होता है ॥२३५॥

होरा (लग्न) के स्वामी की होरा में स्थित चन्द्रमा पर उसी होरा में स्थित ग्रहों की दृष्टि हो तो वह शुभप्रद होता है। जिस तृतीयांश (द्रेष्काण) में चन्द्रमा हो उसके स्वामी से तथा मित्रराशिस्थ ग्रहों से युक्त या दृष्ट चन्द्रमा शुभफल देता है ॥२३६॥ प्रत्येक राशि में स्थित चन्द्रमा पर ग्रहों की दृष्टि होने से जो-जो फल कहे गये हैं, उन राशियों के द्वादशांश में स्थित चन्द्रमा पर भी उन-उन ग्रहों की दृष्टि होने से वे ही फल प्राप्त होते हैं।

अब नवमांश में स्थित चन्द्रमा पर भिन्न-भिन्न-ग्रहों की दृष्टि हो तो जातक क्रमशः मूर्ख, परस्त्री में आसक्त, सुखी, काव्यकर्ता, सुखी तथा परस्त्री में आसक्ति रखने वाला होता है। बुध के नवमांश में स्थित चन्द्रमा पर यदि सूर्यादि ग्रहों की दृष्टि हो तो बालक क्रमशः नर्तक, चोर स्वभाव, पण्डित, मन्त्री, संगीतज्ञ तथा शिल्पकार होता है ॥२३७-२३८॥ अपने (कर्क) नवमांश में स्थित चन्द्रमा पर यदि सूर्यादि ग्रहों की दृष्टि हो तो वह छोटे शरीर वाला, धनवान्, तपस्वी, लोभी, अपनी स्त्री की कमाई पर पलने वाला तथा कर्तव्यपरायण होता है। सूर्य के नवमांश (सिंह) में स्थित चन्द्रमा पर यदि सूर्यादि ग्रहों की दृष्टि हो तो बालक क्रमशः क्रोधी, राजमन्त्री, निधिपति या मन्त्री, राजा, हिंसा के स्वभाव वाला तथा पुत्रहीन होता है। गुरु के नवमांश में स्थित चन्द्रमा पर

जीवांशे हास्यविद्योधा बली मंत्री च धार्मिकः ।
अल्पापत्यो दुःखितो खो दुष्टस्त्रीसौरिभागगे ॥२४०॥
भानाविद्वादिदृष्टे नु तद्वदेव फलं वदेत् । वर्गोत्तमे खे परभे फलमुक्तं शुभं क्रमात् ॥२४१॥
पुष्टं मध्यं लघु ज्ञेयं यदि चांशपतिर्बली । राशीक्षणफलं रुद्ध्वा ददात्यंशफलं स्फुटम् ॥२४२॥
शूरस्तब्धो विकलदृग्निघृणोऽर्के तनुस्थिते । मेषे धनी तैमिरकः सिंहे रात्र्यंध एव च ॥२४३॥
नीचोऽधोऽस्वः कर्कगेऽर्के उद्बुदाक्षस्तनुस्थिते । द्वितीयेऽर्के बहुधनो नृपदंडयो मुखामयी ॥२४४॥
त्रिगे बुधो विक्रमी च विमुखः पीडितो भुवि । धनापत्योज्झितो धीस्थे बली शत्रुजितोऽरिगे ॥२४५॥
स्त्रीजितो द्यूनसंस्थे च निधनेऽल्पात्मजोऽल्पदृक् । सुतार्थसुखभा भाग्ये दशमे श्रुतशौर्यवान् ॥२४६॥
लाभे बहुधनो मानी पतितो खोऽव्यये रवौ । मूकोंऽधो बधिरः प्रेष्यो जेगे खाच्चाजगे धनी ॥२४७॥

सूर्यादि ग्रहों की दृष्टि हो तो बालक क्रमशः हास्यप्रिय, रण में कुशल, बलवान्, मन्त्री, धर्मात्मा तथा धर्मशील होता है। शनि के नवमांश में स्थित चन्द्रमा पर यदि सूर्यादि ग्रहों की दृष्टि हो तो जातक क्रमशः अल्पसन्तति, दुःखी, अभिमानी, अपने कार्य में तत्पर, दुष्ट स्त्री का पति तथा कृपण होता है। जिस प्रकार मेषादि राशि या उसके नवमांश में स्थित चन्द्रमा पर सूर्यादि ग्रहों के दृष्टिफल कहे गये हैं, इसी प्रकार मेषादि राशि या नवमांश में स्थित सूर्य पर चन्द्रादि ग्रहों की दृष्टि से भी प्राप्त होने वाले फल समझने चाहिए ॥२३९-२४०½॥

फलों में न्यूनाधिक्य--चन्द्रमा यदि वर्गोत्तम नवमांश में हो तो पूर्वोक्त शुभ फल पूर्ण, अपने नवमांश में हो तो मध्यम (आधा) और अन्य नवमांश में हो तो अल्प समझना चाहिए। (इसी से यह भी सिद्ध हो जाता है कि जो अशुभ फल कहे गये हैं, वे भी विपरीत दशा में विपरीत होते हैं अर्थात् वर्गोत्तम में चन्द्रमा हो तो अशुभ फल अल्प, अपने नवमांश में होतो आधा और अन्य नवमांश में हो तो पूर्ण होते हैं।) राशि और नवमांश के फलों में भिन्नता होने पर यदि नवमांश का स्वामी बली हो तो वह राशिफल को रोककर ही फल देता है ॥२४२॥

द्वादश भावगत ग्रहों के फल—सूर्य यदि लग्न में हो तो शिशु शूरवीर, दीर्घसूत्री, दुर्बल दृष्टि वाला और निर्दय होता है। यदि मेष में रहकर लग्न में हो तो धनवान और तिमिर रोग वाला होता है और सिंह लग्न में हो तो रात्र्यन्ध (रतौंधी वाला), तुला लग्न में हो तो अंधा और निर्धन होता है। कर्क लग्न में हो तो जातक की आँख में फूली होती है ॥१२३½॥

द्वितीय भाव में सूर्य हो तो बालक बहुत धनी, राजदण्ड पाने वाला और मुख का रोगी होता है। तृतीय स्थान में हो तो पण्डित और पराक्रमी होता है। चतुर्थ स्थान में सूर्य हो तो सुखहीन और पीड़ायुक्त होता है। सूर्य पञ्चम भाव में हो तो मनुष्य धनहीन और पुत्रहीन होता है। षष्ठ भाव में हो तो बलवान् और शत्रुओं को जीतने वाला होता है ॥२४५॥ सप्तम भाव में स्थित हो तो मनुष्य अपनी स्त्री से पराजित होता है। अष्टम भाव में हो तो उसके पुत्र थोड़े होते हैं और उसे दिखायी भी कम ही देता है। नवम भाव में हो तो जातक पुत्रवान्, धनवान् और सुखी होता है। दशम भाव में हो तो विद्वान् और पराक्रमी होता है ॥२४६॥ एकादश भाव में हो तो अधिक धनवान् और मानी होता है। यदि द्वादश भाव में सूर्य हो तो उत्पन्न बालक नीच और धनहीन होता है ॥॥२४६½॥

चन्द्रमा यदि मेष लग्न में हो तो जातक गूंगा, बहिरा, अंधा और दूसरों का नौकर होता है। वृष लग्न में हो तो वह धनी होता है, द्वितीय भाव में हो तो विद्वान् और धनवान्, तृतीय भाव में हो तो हिंसक स्वभाव

बटुर्वा धनवानर्थे हिस्रो विक्रमगे भवेत् । साधुभावः सुखगते धीस्थे कन्याप्रजोलसः ॥२४८॥
अल्पाग्निकामस्तीक्ष्णोरौईर्ष्युस्तत्रिमदोऽङ्खे ।
॥२४९॥
व्याधिपीडान्वितो मृत्यौ भानुर्द्धर्मे मित्रधनान्वितः
धर्मधीधनयुग्राज्ये ख्यातधीधनयुग्भवेत् । क्षुद्रोंऽगहीनो व्ययगे चंद्रे प्रोक्तं फलं बुधैः ॥२५०॥
लग्ने कुजे क्षततनुर्द्धनगे तु कदन्नभुक् । धर्मपापसमाचारोऽन्यत्र सूर्यसमो मतः ॥२५१॥
विद्वान् धनी च प्रखरः पंडितः सचिवोरियुक् । धर्मज्ञो विस्तृतगुणो गाधो ज्ञेयस्तोऽर्कवत् ॥२५२॥
विद्वान्सुवाच्यः कृपणो सुखाक्षो रिपुगृद्धिमान् । नीचस्तपस्वी चण्णवनी लोभीदुष्टस्तनोर्गुरौ ॥२५३॥
स्मरी सुखी विलग्नस्थे कलही सुरतोत्सुकः । सुखितस्तनपस्ये च भृगौ जीववदन्यतः ॥२५४॥
निःस्वो रोगी कामवशो मलिनः शैशवार्तियुक् । अलसो लग्नगे मंदे धर्मात्स्वोच्चगते नृपः ॥२५५॥
ग्रामाधिपः स विद्वांश्च चावंगोऽन्यत्र सूर्यवत् । पूर्णमुच्चेथ पादोनफलं मूलत्रिकोणगे ॥२५६॥

वाला, चतुर्थ स्थान में हो तो सुख, गृहादि से सम्पन्न, पञ्चम भाव में हो तो कन्या-संतान वाला और आलसी होता है। छठे भाव में हो तो बालक मन्दाग्नि का रोगी होता है। उसे अभीष्ट भोग बहुत कम मिलते हैं तथा वह उग्र स्वभाव का होता है। सप्तम भाव में हो तो जातक ईर्ष्यावान् और अत्यन्त कामी होता है। अष्टम भाव में हो तो रोग से पीड़ित, नवम भाव में हो तो मित्र और धन से युक्त, दशम भाव में हो तो धर्मात्मा, बुद्धिमान् और धनवान् होता है। एकादश भाव में हो तो उत्पन्न शिशु विख्यात, बुद्धिमान् और धनवान् होता है तथा द्वादश भाव में हो तो जातक क्षुद्र और अंगहीन होता है ॥२४७-२५०॥

मंगल लग्न में हो तो उत्पन्न शिशु क्षत शरीर वाला होता है। द्वितीय भाव में हो तो वह कदन्नभोजी तथा नवम भाव में हो तो पाप स्वभाव होता है। इनसे भिन्न (३, ४, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२) स्थानों में यदि मंगल हो तो उसके फल सूर्य के समान ही होते हैं ॥२५१॥

बुध लग्न में हो तो जातक पण्डित होता है। द्वितीय भाव में हो तो शिशु धनवान्, तृतीय भाव में हो तो शत्रुहीन, दुष्ट स्वभाव, चतुर्थ भाव में हो तो पण्डित, पञ्चम भाव में हो तो राजमंत्री, षष्ठ भाव में हो तो धर्मज्ञाता, अष्टम भाव में हो तो विख्यात गुण वाला और शेष (९, १०, ११, १२) भावों में हो तो जैसे सूर्य के फल कहे गये हैं वैसे ही उसके फल भी समझने चाहिए ॥२५२॥

बृहस्पति लग्न में हों तो जातक विद्वान्, द्वितीय भाव में हो तो प्रियभाषी, तृतीय भाव में हो तो कृपण, चतुर्थ में हों तो सुखी, पञ्चम में हों तो विज्ञ, षष्ठ में हों तो शत्रुसहित, सप्तम में हो तो सम्पत्तिशाली, अष्टम में हों तो नीच स्वभाव वाला, नवम में हों तो तपस्वी, दशम में हों तो धनवान्, एकादश में हो तो नित्य लाभ करने वाला और द्वादश में हो तो दुष्ट हृदय वाला होता है ॥२५३॥ शुक्र लग्न में हों तो जातक कामी और सुखी, सप्तम भाव में हो तो कामी तथा पञ्चम भाव में हो तो सुखी होता है और अन्य भावों (२, ३, ४, ६, ८, ९, १०, ११, १२,) में हों तो बृहस्पति के समान ही फल होता है ॥२५४॥

शनि लग्न में हो तो जातक निर्धन, रोगी, कामातुर, मलिन, बाल्यावस्था में रोगी और आलसी होता है। किन्तु यदि अपनी राशि (मकर-कुम्भ) या अपने उच्च (तुला) में हो तो जातक भूपति, ग्रामपति, पण्डित और सुन्दर शरीर वाला होता है। अन्य (द्वितीय आदि) भावों में सूर्य के समान ही शनि के फल होते हैं ॥२५५½॥

फल में न्यूनाधिकत्व—शुभग्रह यदि अपने उच्च में हों तो पूर्ण रूप से उपर्युक्त फल प्राप्त होता है। यदि अपने मूल त्रिकोण में हो तो तीन चरण, अपनी राशि में हों तो आधा, मित्र के गृह में हों तो एक चरण तथा शत्रु की राशि में हों तो उससे भी कम फल प्राप्त होता है और नीच में या अस्त हों तो कुछ भी फल

शुभग्रहे वलं स्वर्क्षे मित्रर्भेऽङ्घ्रिमितं फलम् । शत्रुभेऽल्पं तथा नीचास्तंगते फलशून्यता ॥२५७॥
खमराकादिके खेटे कुलतुल्यः कुलाधिकः । बंधुपूज्योऽथ धनवान्सुखी भोगी नृपः क्रमात् ॥२५८॥
परवित्तसुहृद्बंधुपोष्यागणबलाधिपौ । नृपश्च मित्रभस्थेषु छेटे ग्रेंकादिषु क्रमात् ॥२५९॥
विषमर्क्षेऽर्कहोरायां संस्थिते शुभभेषु च । ख्यातो महोद्यमी चातितेजा धीमान्धनी बली ।।२६०॥
शुभेषु चंद्रहोरायां स्थितेषु समराशिषु । कांतिमाढ्‌वसौभाग्यभोगधीमान्भवेन्नरः ॥२६१॥
सूर्यहोरागतः पापः समभेषु तु मध्यमाः । विषमर्क्षेषु भास्कर्या सौम्या नोक्तफलप्रदाः ॥२६२॥
स्वमित्रत्र्यंशगश्चंद्रः सुरूपं गुणिनं नरम् । करोत्यन्यगतस्तद्वत्तत्तुल्यगुणरूपिणम् ॥२६३॥
व्यालायुधे चतुष्पादांऽज्ञेषु च त्र्यंशकेषु च । तीक्ष्णोऽतिहिंस्रश्च भवेद्गुरुतल्पगतोटनः ॥२६४॥
स्तेनो भोक्ता सधनधीर्नृपः क्लीबश्च शत्रुहा । विष्टिकृद्दासवृत्तिश्च पापोहिंस्रोऽमतिर्भवेत् ॥२६५॥

नहीं होता है। (इस प्रकार शुभग्रह-के फल कहने से सिद्ध होता है कि पापग्रह का फल इसके विपरीत होता है। अर्थात् पापग्रह नीच में या अस्त हो तो पूर्ण फल, शत्रु राशि में तीन चरण, मित्र राशि में आधा, अपनी राशि में एक चरण अपने मूल त्रिकोण में उससे भी अल्प और अपने उच्च में हो तो अपना कुछ भी फल नहीं देता है ॥२५७॥

स्वराशिस्थ ग्रहफल—यदि अपनी राशि में एक ग्रह हो तो जातक अपने पिता के सदृश धनवान् और यशस्वी होता है। दो ग्रह अपनी राशि में हों तो बालक अपने कुल में श्रेष्ठ, तीन ग्रह हों तो बन्धुओं में माननीय, चार ग्रह हो तो विशेष धनवान्, पांच ग्रह हों तो सुखी, छह ग्रह हों तो भोगी और यदि सातों ग्रह अपनी राशि में स्थित हों तो जातक राजा होता है ॥२५८॥

यदि अपने मित्र की राशि में एक ग्रह हो तो जातक दूसरे के धन से पालित, दो ग्रह हों तो मित्रों के द्वारा पोषित और तीन ग्रह मित्रराशि में हों तो अपने बन्धुओं के द्वारा पालित होता है। यदि चार ग्रह मित्र-राशि में हों तो बालक अपने बाहुबल से जीवन-निर्वाह करता है। पाँच ग्रह हों तो बहुत लोगों का पालन करने वाला होता है। छह ग्रह हों तो सेनापति और सातों ग्रह मित्र-राशि में स्थित हों तो जातक राजा होता है ॥२५९॥

पापग्रह यदि विषम राशि और सूर्य की होरा (राशिपूर्वार्ध) में हो तो जातक लोक में विख्यात, महान् उद्योगी, अत्यन्त तेजस्वी, बुद्धिमान्, धनवान् और बलवान् होता है। तथा शुभग्रह यदि समराशि और चन्द्रमा की होरा में हो तो जातक कान्तिमान्, मृदु (कोमल) शरीर वाला, भाग्यवान्, भोगी और बुद्धिमान् होता है ॥२६१॥ यदि पापग्रह समराशि और सूर्य की होरा में हों तो पूर्वोक्त फल मध्यम (आधा) होता है। एवं शुभ यदि विषम राशि और सूर्य की होता में हों तो पूर्वोक्त फल नहीं प्राप्त होते हैं ॥२६२॥

चन्द्रमा यदि अपने या अपने मित्र के द्रेष्काण में हो तो जातक सुन्दर स्वरूप वाला और गुणवान् होता है। अन्य द्रेष्काण में हो तो उस द्रेष्काण की राशि और द्रेष्काणपति के सदृश ही फल प्राप्त होता है। (सारांश यह है कि उस द्रेष्काणपति का स्वामी यदि चन्द्रमा का मित्र हो तो दो चरण (आधा) फल मिलता है तथा शत्रु हो तो एक चरण फल होता है।) यदि सर्पद्रेष्काण, शस्त्रद्रेष्काण, चतुष्पदद्रेष्काण और पक्षी द्रेष्काण में चन्द्रमा हो तो जातक क्रमशः उग्रस्वभाव, हिंसा के स्वभाव वाला, गुरुतल्पगः (गुरुपत्नीगामी) और भ्रमणशील होता है ॥२६४॥

लग्ननवमांश राशिफल—लग्न में मेष का नवमांश हो तो जातक चोरस्वभाव, वृष-नवमांश हो तो भोगी, मिथुन-नवमांश हो तो धनी, कर्क नवमांश हो तो बुद्धिमान्, सिंह-नवमांश हो तो शत्रु को जीतने वाला,

मेषादिकोत्तमांश षु द्वादशांशे षु राशिवत् । जायाबलविभूषाढ्यः सत्त्वयुक्तोऽतिसाहसी ॥२६६॥
तेजस्वी च नरः खाये त्रिशांशेऽसृजिसंस्थिते । आमयी वा स्वभार्यायां विषमः पारदारिकः ॥२६७॥
दुःखी परिच्छदयुतो मलिनश्चार्कजे स्वके । सुखधीधनकीर्त्यालुस्तेजस्वी लोकपूजितः ॥२६८॥
नीरगुह्यभवान्भोगी जीवे खत्रिशभागगे । मेधाकलाकाव्यशिल्पविवादकपटांचितः ॥२६९॥
शास्त्रार्थसाहसयुतो बुधे स्वत्रिशभागगे । बह्वपत्यसुखारोग्यरोगरूपार्थसंयुतः ॥२७०॥
ललितांगो विप्रकीर्णेद्रियः स्याद्भार्गवे स्वके । शूरस्तब्धौ च विषमवधकौ सद्गुणान्वितौ ॥२७१॥
सुखेज्ञो चारु चेष्टांगौ चंद्राकौं चेत्कुजादिगौ । मूलत्रिकोणस्वर्क्षोच्चे कंठस्थास्तु च ये ग्रहाः ॥२७२॥
अन्योन्यकारकास्ते स्युः कर्मगस्तु विशेषतः । शुभं वर्गोत्तमे जन्म वेसिस्थाने बसद्गृहैः ॥२७३॥
अशून्येषु च केंद्रेषु कारकाख्यगृहेषु च । गुरुजन्मेशलग्नेशाः केंद्रस्था मध्यसौख्यदाः ॥२७४॥

वृश्चिक-नवमांश हो तो बेगारी करने वाला, धनु का नवमांश हो तो दासकर्म करने वाला, मकर-नवमांश में हो तो पापस्वभाव, कुम्भ-नवमांश हो तो हिंसक स्वभाव वाला और मीन-नवमांश लग्न में हो तो बुद्धिहीन होता है ॥ किन्तु यदि वर्गोत्तम नवमांश (अर्थात् जो राशि हो उसी का नवमांश भी) हो तो वह जातक इन (चोर-स्वभाव आदि सब) का शासक होता है । (जैसे मेष नवमांश में उत्पन्न मनुष्य चोर-स्वभाव होता है, किन्तु यदि मेष राशि में मेष का नवमांश हो तो वह चोरस्वभाव-वालों का शासक होता है, इत्यादि ।) इसी प्रकार मेषादि राशियों के द्वादशांश में मेषादि राशियों के समान फल प्राप्त होते हैं ॥२६५-२६८॥

मंगल आदि ग्रहों के त्रिशांशफल—मंगल अपने त्रिंशांश में हो तो जातक स्त्री, बल, आभूषण तथा परिजनादि से सम्पन्न, साहसी और तेजस्वी होता है । शनि अपने त्रिंशांश में हो तो रोगी, स्त्री के प्रति कुटिल, परस्त्री में आसक्त, दुःखी, वस्त्रादि आवश्यक सामग्री से सम्पन्न, किंतु मलिन होता है । गुरु अपने त्रिंशांश में हो तो जातक सुखी, बुद्धिमान्, धनी, कीर्तिमान्, तेजस्वी, लोक में मान्य, रोगहीन, उद्यमी और भोगी होता है । बुध अपने त्रिशांश में हो तो मनुष्य मेधावी, कलाकुशल, काव्य और शिल्पविद्या का ज्ञाता, विवादी, कपटी, शास्त्रतत्त्वज्ञ तथा साहसी होता है । शुक्र अपने त्रिंशांश में हो तो जातक अधिक सन्तान, सुख, आरोग्य, सौन्दर्य और धन से युक्त, मनोहर शरीर वाला तथा अजितेन्द्रिय होता है ॥२६९-२७०½॥

सूर्य-चन्द्र-फल--मंगल के त्रिशांश में सूर्य हो तो जातक शूरवीर, चन्द्रमा में हो तो दीर्घसूत्री, बुध के त्रिशांश में सूर्य हो तो जातक कुटिल और चन्द्रमा हो तो हिंसा के स्वभाव वाला होता है । हिंसा के स्वभाववाला होता है । गुरु के त्रिशांश में सूर्य और चन्द्रमा हो तो गुणी होता है । शुक्र के त्रिशांश में सूर्य हो तो बालक सुखी और चन्द्रमा हो तो विद्वान् होता है । शनि के त्रिशांश में सूर्य हो तो सुन्दर शरीर वाला तथा चन्द्रमा हो तो सर्वजनप्रिय होता है ॥२७३॥

कारक ग्रह--अपने-अपने मूल त्रिकोण, स्वराशि या स्वोच्च में स्थित ग्रह यदि केन्द्र में हों तो वे सब परस्पर कारक (शुभफलदायक) होते हैं, उनमें दशम स्थान में रहने वाला सबसे अधिक कारक होता है ॥२७३॥

शुभ जन्म लक्षण--लग्न या चन्द्रमा वर्गोत्तम नवमांश में हो या वेशि (सूर्य से द्वितीय) स्थान में शुभग्रह हो अथवा केन्द्रों में कारक ग्रह हों तो स्थिति में जन्म लेनेवाला बालक सुखी और यशस्वी होता है । २७६। गुरु, जन्मराशि और लग्नेश ये सभी या इनमें से एक भी केन्द्र में हो तो जीवन के मध्यभाग में सुखप्रद होते हैं । तथा पृष्ठोदय राशि में रहनेवाला ग्रह जीवन के अन्त में, द्विस्वभाव राशिस्थ ग्रह जीवन के मध्य में और शीर्षोदय राशिस्थ ग्रह जीवन के ग्रह आदि में अपने-अपने फल देते हैं ॥२७४½॥

पृष्ठोभवकोदपक्षं स्थितास्त्वंत्यांतरादिषु । प्रवेशे भास्करकुजौ भृग्वीज्यौ मध्यगौ तथा ॥२७५॥
चंद्रार्कौफल दावंत्ये सदा ज्ञः फलदायकः । लग्नात्पुत्रे कलत्रे वाब्जाच्छुभेशयुतेक्षिते ॥२७६॥
स्यात्तयोः संपदः स्वत्वमन्यथाथांगतोदयः । रवौ मीनेऽर्कजः स्त्रीघ्नः पुत्रस्थस्तु तथा कुजः ॥ ७७॥
सिमातृर्याष्टगैः क्रूरैर्यद्वा क्रूरांतरे सितः । सद्ग्रहायुतदृष्टश्चेदग्निपातान्मृतिः स्त्रियाः ॥२७८॥
लग्नाद्यपाणिगतयोः शशिरव्योः सह स्त्रिया । एकेन यस्य जन्माहुरथ सप्तमसंस्थयोः ॥२७९॥
नवधीगतयोर्वापि विकलस्त्रीसितार्कयोः । कोणोदयेऽस्तांत्यसन्धौ भृगौ बंध्यापतेर्जनिः ॥२८०॥
सुतभं चेन्न सौम्याढ्यमथांत्यास्तोदयर्क्षगैः । पापे धीस्थे विधौ क्षीणजन्मा सुतकलत्रिणः ॥२८१॥
शनौ खगेऽस्ते सशुक्रे तदृष्टे पारदारिकः । तौ चेत्सेंदुस्त्रिया सार्द्धं पुंश्चलो जायते नरः ॥२८२॥
भृग्वब्जयोरस्तगयोर्नरो भार्या सुतोऽपि वा । नृस्त्रियो स्तु शुभैर्दृष्टौ तौ द्वौ परिणतांगकौ ॥२८३॥
खास्तांबुगैरिंदुशुक्रपापैर्वंशविनाशकः । शिल्पी त्र्यंशे बुधयुते केंद्रसंस्थार्किवीक्षिते ॥२८४॥

ग्रह गोचर फल समय—सूर्य और मंगल ये दोनों राशि में प्रवेश करते ही अपने राशि सम्बन्धी (गोचर) फल देते हैं। शुक्र और बृहस्पति राशि के मध्य में जाने पर और चन्द्रमा तथा शनि ये दोनों राशि के अन्तिम तृतीयांश में पहुँचने पर अपने शुभ या अशुभ गोचर फल देते हैं। तथा बुध सर्वदा (आदि, मध्य, अन्त में) अपने शुभाशुभ फल देता है ॥२७५½॥

शुभाशुभ योग—लग्न या चन्द्रमा से पञ्चम और सप्तम भाव शुभग्रह और अपने स्वामी से युक्त या दृष्ट हों तो जातक को पुत्र और स्त्री का सुख सुलभ होता है अन्यथा नहीं। तथा कन्या लग्न में सूर्य मीन लग्न में शनि हो तो ये दोनों स्त्री का नाश करने वाले होते हैं। इसी प्रकार पञ्चम भाव (मेष वृश्चिक के अतिरिक्त राशि) में मंगल हो तो पुत्र का नाश करने वाला होता है। यदि शुक्र से केन्द्र (१, ४, ७, १०) में पापग्रह हों अथवा दो पापग्रहों के बीच में शुक्र हों, उन पर शुभग्रह का योग या दृष्टि नहीं हो तो उस जातक को स्त्री का मरण अग्नि से या गिरने से होता है। लग्न से १२, ६ भावों में चन्द्रमा और सूर्य हों तो वह स्त्री-सहित एक नेत्र वाले (काण) पुरुष को जन्म देता है, ऐसा मुनियों ने कहा है। लग्न से सप्तम या नवम पञ्चम में शुक्र और सूर्य दोनों हों तो उस जातक की स्त्री विकलांग होती है ॥२७६-२७९½॥

शनि लग्न में और शुक्र सप्तम भाव में राशिसन्धि (कर्क, वृश्चिक, मीन के अन्तिमांश) में हों तो वह जातक वन्ध्या स्त्री का पति होता है। यदि पञ्चम भाव शुभग्रह से युक्त या दृष्ट न हो, लग्न से १२, ७ में और लग्न में यदि पापग्रह हों तथा पञ्चम भाव में क्षीणचन्द्रमा स्थित हों तो वह पुरुष पुत्र और स्त्री से रहित होता है॥२८०-२८१॥ शनि के वर्ग (राशि-नवांश) में शुक्र सप्तम भाव में हो और शनि से दृष्ट हो तो वह जातक परस्त्री में आसक्त होता है। यदि वे दोनों (शनि और शुक्र) चन्द्रमा के साथ हों तो वह स्वयं परस्त्री में आसक्त और उसकी पत्नी परपुरुष में आसक्त होती है ॥२८२॥

शुक्र और चन्द्रमा दोनों सप्तम भाव में हों और उन पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो पति-पत्नी दोनों परिणताङ्ग (परमायुर्दाय भोग कर वृद्धावस्था तक जीने वाले) होते हैं ॥२८३॥ दशम, सप्तम और चतुर्थ भाव में क्रमशः चन्द्रमा, शुक्र और पापग्रह हों तो जातक वंश का नाशक होता है। अर्थात् उसका वंश नष्ट हो जाता है। बुध जिस द्रेष्काण में हो उस पर यदि केन्द्र-स्थित शनि की दृष्टि हो तो जातक शिल्पकला में कुशल होता

दास्यां जातः सौरिभागे रिःफगे भृगुनंदने । नीचोऽर्कैदोरस्तगयोर्दृष्टयोः सूर्यजेन वा ॥२८५॥
पापदृष्टौ शनिकुजावस्तगौ वातरुक्प्रदौ । कर्काल्यंशगते केंद्रे पापयुक्ते तु गुह्यरुक् ॥२८६॥
पापांतरगतेंऽगेऽब्जे रवौ द्यूने तु कुष्ठयुक । चन्द्रे खेऽस्तंगते भौमे विकलो वेशिगेऽर्कजे ॥२८७॥
मिथो भांशगयोः शूली रवींद्वोर्युतयोः कृशः । निधनारिधनांत्यस्था रवींद्वारयमा यदा ॥२८८॥
चलद्ग्रहेण दोषेण कुर्वंत्यनयनं नरम् । सौम्या दृष्टा न वायत्रिधीगताः पापखेचराः ॥२८९॥
कर्णोपघातका द्यूने रदवैकृत्यकारकाः । लग्ने गुरौ द्युने मंदे वातरोगान्वितो भवेत् ॥२९०॥
सुखेऽस्ते वा कुजे जीवे लग्ने वार्कियुतोदये । कुजेन वारमजे द्यूने संज्ञेंऽत्येऽब्जे च सोन्मदः ॥२९१॥
धीधर्मार्थांत्यगैः पापैर्भसमस्यान्निबंधनम् । सर्पशृंखलया शाठ्यं दृक्कैर्बल्यशुभेक्षितैः ॥२९२॥
समंदेऽब्जे वक्रदृष्टे पस्मारी दुर्वचाः क्षयी । रविमन्दकुजैः खस्थैः सौम्यदृष्टैः समंडलैः ॥२९३॥
भृतकाः पूर्वं मुदितैर्वरमध्याधमा नराः । पुंजनी तु फलं पण्यस्त्रीणां योग्यं वदेच्च तत् ॥२९४॥

है ॥२८४॥ शुक्र यदि शनि के नवमांश में होकर द्वादश भाव में स्थित हो तो जातक दासी का पुत्र होता है। ॥२८५॥ सूर्य और चन्द्रमा दोनों सप्तम भाव में रहकर शनि से दृष्ट हों तो जातक नीच स्वभाव वाला होता है। शनि और मंगल दोनों सप्तम भाव में स्थित हों और उन पर पापग्रह की दृष्टि हो तो जातक वातरोगी होता है। कर्क या वृश्चिक के नवमांश में स्थित चन्द्रमा यदि पापग्रह से युक्त हो तो बालक गुप्त रोग से ग्रस्त होता है। चन्द्रमा यदि पापग्रहों के बीच में रहकर लग्न में स्थित हो तो उत्पन्न शिशु कुष्ठरोगी होता है। चन्द्रमा दशम भाव में, मंगल सप्तम भाव में और शनि वेशि (सूर्य से द्वितीय) स्थान में हो तो जातक विकलांग होता है ॥२८६-२८७॥

सूर्य और चन्द्रमा दोनों परस्पर नवमांश में हों तो बालक शूलरोगी होता है। यदि दोनों किसी एक ही स्थान में हों तो कृश (क्षीणशरीर) होता है। यदि सूर्य, चन्द्रमा, मंगल और शनि—ये चारों क्रमशः ८, ६, २, १२ भावों में स्थित हों तो इनमें जो बली हो, उस ग्रह के दोष (कफ, पित्त और वातसम्बन्धी विकार) से जातक नेत्रहीन होता है ॥२८८½॥ यदि ९, ११, ३, ५—इन भावों में पापग्रह हों तथा उन पर शुभग्रह की दृष्टि नहीं हो तो उत्पन्न शिशु के लिए कर्णरोग उत्पन्न करते हैं। सप्तम भाव में स्थित पापग्रह यदि शुभग्रह से दृष्ट न हों तो वे दन्तरोग उत्पन्न करते हैं। लग्न में गुरु और सप्तम भाव में हो तो जातक वातरोग से पीड़ित होता है। ४ या ७ भाव में मंगल और लग्न में बृहस्पति हो अथवा शनि लग्न में और मंगल ९, ५, ७ भाव में हो अथवा बुध सहित चन्द्रमा द्वादश भाव में हो तो जातक उन्माद रोग से पीडित होता है ॥२८९-२९१॥

यदि ५, ९, २ और १२ भावों में पापग्रह हों तो उस जातक को बन्धन प्राप्त होता है (उसे जेल का कष्ट भोगना पड़ता है।) लग्न में जैसी राशि हो उसके अनुकूल ही बन्धन समझना चाहिए। जैसे चतुष्पद राशि लग्न हो तो बिना बन्धन के ही वह जेल में रहता है।) यदि सर्प, शृङ्खला, पाशसंज्ञक द्रेष्काण लग्न में हों तथा उन पर बली पापग्रह की दृष्टि हो तो भी पूर्वोक्त प्रकार से बन्धन प्राप्त होता है। मण्डल युक्त चन्द्रमा यदि शनि से युक्त और मंगल से दृष्ट हो तो जातक को मृगी रोग और क्षयरोग तथा वह कटुवादी होता है। मण्डल युक्त चन्द्रमा यदि दशम भावस्थित सूर्य, शनि और मंगल से दृष्ट हो तो जातक भृत्य होता है; उनमें भी एक से दृष्ट हो तो श्रेष्ठ, दो से दृष्ट हो तो मध्यम और तीनों से दृष्ट हो तो अधम भृत्य होता है ॥२९२-२९३½॥

स्त्री जातक की विशेषता—ऊपर कहे हुए पुरुष जातक के जो-जो फल स्त्री-जातक में संभव हों वे वैसे योग में उत्पन्न स्त्रीमात्र के लिए समझने चाहिए। जो फल स्त्री में असंभव हों, वे सब उसके पति में समझने

तत्स्वामिष्वखिलं कार्यं तद्भर्तुर्मरणं मृतौ। लग्नेंदुगं वपुश्चैव यादयूपपतिद्युने ॥२९५॥
युग्मेषु लग्नशशिनोर्वनिता प्रकृतिस्थिता। सच्छीलभूषणयुता शुभसंदृष्टयोस्तयोः ॥२९६॥
पुरुषाकृतिशीलाढ्या तयोरोजस्थयोर्मता। अथ पापा गुणोनाश्च पापवीक्षितयोस्तयोः ॥२९७॥
कुजार्कीज्यज्ञशुक्राणां कुजर्क्षे क्रमशोऽङ्गना।
बाल्यदुष्टा तथा दासी साध्वी मायावती त्वरा ॥२९८॥
दुष्टावाक् पुनर्भूः सगुणा विज्ञा ख्याता स्फुजिद्ग्रहे।
बौधे समाया क्लीवा च सती गुणवती चला ॥२९९॥
द्वंद्वभे स्वैरिणोशघ्नी गुणाढ्या शिल्पिकाधमा। वाचाटा कुलटा सिंहे राज्ञी पुंधीरगम्यता ॥३००॥
जैवे गुणाढ्याऽल्परतिर्गुणज्ञा ज्ञानिनी सती। दासी नीचरता साध्वी मांदे दुष्टा नवत्यका ॥३०१॥

चाहिए। जो फल स्त्री में असंभव हों, वे सब उसके पति में समझने चाहिए। स्त्री के स्वामी की मृत्यु का विचार अष्टम भाव से, शरीर के शुभाशुभ फल का विचार लग्न और चन्द्रमा से तथा सौभाग्य और पति के स्वरूप, गुण आदि का विचार सप्तम भाव से करना चाहिए ॥२९५॥ स्त्री के जन्म समय में लग्न और चन्द्रमा दोनों समराशि और सम नवमांश में हों तो वह स्त्री अपनी प्रकृति (स्त्रीस्वभाव) से युक्त होती है। यदि उन दोनों (लग्न और चन्द्रमा) पर शुभग्रह की दृष्टि हो तो वह सुशीलता रूप आभूषण से विभूषित होती है। यदि वे दोनों (लग्न तथा चन्द्रमा) विषमराशि और विषम नवमांश में हों तो वह स्त्री पुरुष सदृश आकार और स्वभाव वाली होती है। यदि उन दोनों पर पापग्रह की दृष्टि हो तो स्त्री पापस्वभाव वाली और गुणहीना होती है ॥२९७॥

लग्न और चन्द्रमा के आश्रित मंगल की राशि (मेष-वृश्चिक) में यदि मंगल का त्रिशांश हो तो वह स्त्री बाल्यावस्था में दुष्ट स्वभाव वाली होती है। शनि का त्रिशांश हो तो दासी होती है। गुरु का त्रिशांश हो तो सच्चरित्रा, बुध का त्रिशांश हो तो मायावती और शुक्र का त्रिशांश हो तो वह उतावली होती है ॥२९८॥ शुक्र राशि (वृषतुला) में स्थित लग्न या चन्द्रमा में मंगल का त्रिशांश हो तो नारी बुरे स्वभाववाली, शनि का त्रिशांश हो तो पुनर्भू (दूसरा पति करने वाली), गुरु का त्रिशांश हो तो गुणवती, बुध का त्रिशांश हो तो कलाओं को जानने वाली और शुक्र का त्रिशांश हो तो लोक में विख्यात होती है। बुध राशि (मिथुन-कन्या) में स्थित लग्न या चन्द्रमा में यदि मंगल का त्रिशांश हो तो मायावती, शनि का हो तो हिजड़ी, गुरु का हो तो पतिव्रता, बुध का हो तो गुणवती और शुक्र का हो तो चंचला होती है ॥२९९॥ चन्द्र-राशि (कर्क) में स्थित लग्न या चन्द्रमा में यदि मंगल का त्रिशांश हो तो नारी स्वेच्छाचारिणी, शनि का हो तो पति के लिए घातक, गुरु का हो तो गुणवती, बुध का हो तो शिल्पकला जानने वाली और शुक्र का त्रिशांश हो तो अधम स्वभाववाली होती है। सिंह राशिस्थ लग्न या चन्द्रमा में यदि मंगल का त्रिशांश हो तो पुरुष के समान आचरण करने वाली, शनि का हो तो कुलटा स्वभाव वाली, गुरु का हो तो रानी, बुध का हो तो पुरुषसदृश बुद्धिवाली और शुक्र का त्रिशांश हो तो अगम्यगामिनी होती है ॥३००॥ गुरुराशि (धनु-मीन) स्थित लग्न या चन्द्रमा में मंगल का त्रिशांश हो तो नारी गुणवती, शनि का हो तो भोगों में अल्प आसक्ति वाली, गुरु का हो तो गुणवती, बुध का हो तो ज्ञानवती और शुक्र का त्रिशांश हो तो पतिव्रता होती है। शनिराशि (मकर-कुम्भ) स्थित लग्न या चन्द्रमा में मंगल का त्रिशांश हो तो स्त्री दासी, शनि का हो तो नीच पुरुष में आसक्त, गुरु का हो तो पतिव्रता, बुध का हो तो दुष्ट स्वभाव वाली और शुक्र का हो तो संतानहीन होती है। इस प्रकार लग्न और चन्द्राश्रित राशियों के फल ग्रहों के बल के अनुसार न्यून या अधिक समझने चाहिए ॥३०१½॥

लग्नेंदुयुक्तैस्त्रिशांशैः फलमेतद्बलानुगम् । दृग्गैः मिथोंशे शुक्रार्कौ शौक्रे चेद्वा घटांशके ॥३०२॥
स्त्रीभिः स्त्री मैथुनं याति मदनानलदीपिता । शून्ये कापुरुषो द्यूने बले क्लीवो न सदृशि ॥३०३॥
बुधार्क्योश्चरभे नित्यं परदेशपरायणः । तत्सृष्टा मदगे सूर्ये स्त्रीबालविधवा कुजे ॥३०४॥
पापदृष्टे शनौ द्यूने कन्यैवापद्यते जराम् । आग्नेयैर्विधवास्तस्थैः पुनर्भूर्मिश्रकैर्भवेत् ॥३०५॥
क्रूरे हीनबलेऽस्तस्थे पतित्यक्ता न सदृशि । मिथोंशगैः सितारौ तु कुरुतोऽन्यरतां स्त्रियम् ॥३०६॥
शीतरश्मिर्यदा द्यूने तदा भर्तुरनुज्ञया । सौरारक्षे लग्नगते सेंदुशुक्रे तु बंधकी ॥३०७॥
मात्रा सार्द्धमसदृष्टे तथा कौजेंशकेऽस्तगे । मंददृष्टे व्याधियोनिः सद्ग्रहांशे पतिप्रिया ॥३०८॥
मंदर्क्षे वांशके द्यूने वृद्धो मूर्खः पतिः स्त्रियाः । ॥३०९॥
स्त्रीलोलः क्रोधनः कौजे बौधे विद्वांश्च नैपुणः
जितेंद्रियो गुणी जैवे चांद्रे कामी मृदुस्तथा । शौक्रे सौभाग्ययुक्कांतः सौरेति मृदुकर्मकृत् ॥३१०॥

शुक्र के नवमांश में शनि और शनि के नवमांश में शुक्र हो अथवा शुक्रराशि (वृष-तुला) लग्न में कुम्भ का नवमांश हो तो इन दोनों योगों में जन्म लेने वाली स्त्री कामाग्नि से संतप्त हो स्त्रियों से भी रति क्रीड़ा करती है ॥३०२½॥

पति-भाव—स्त्री के जन्मलग्न से सप्तम भाव में कोई ग्रह न हो और उस पर शुभग्रह की दृष्टि न हों तो उसका पति कुत्सित होता है। सप्तम स्थान में बुध और शनि हो और शुभग्रह से दृष्ट न हो तो भी पति नपुंसक होता है। यदि सप्तम भाव में चरराशि हो तो उसका पति परदेशवासी होता है। सप्तम भाव में सूर्य हो तो उस स्त्री को पति त्याग देता है। मंगल हो तो वह स्त्री बालविधवा होती है। शनि सप्तम भाव में पापग्रह से दृष्ट हों तो वह स्त्री कन्या (अविवाहिता) रहकर ही वृद्धावस्था को प्राप्त होती है ॥३०३-३०४½॥

यदि सप्तम भाव में एक से अधिक पापग्रह हो तो भी स्त्री विधवा होती है, शुभ और पाप दोनों हों तो वह पुनर्भू होती है। यदि सप्तम भाव में पापग्रह निर्बल हो और उस पर शुभग्रह की दृष्टि न हों तो भी स्त्री अपने पति द्वारा त्याग दी जाती है, अन्यथा शुभग्रह की दृष्टि होने पर वह पतिप्रिया होती है ॥३०५½॥

मंगल के नवमांश में शुक्र के नवमांश में मंगल हो तो वह स्त्री परपुरुष में आसक्त होती है। इस योग में चन्द्रमा यदि सप्तम भाव में हो तो वह अपने पति की आज्ञा से कार्य करती है ॥३०६½॥

यदि चन्द्रमा और शुक्र से संयुक्त शनि एवं मंगल की राशि (मकर, कुम्भ, मेष और वृश्चिक) लग्न में हों तो वह स्त्री कुलटा-स्वभाव वाली होती है। यदि उक्त लग्न पर पाप ग्रह की दृष्टि हो तो वह स्त्री अपनी माता सहित कुलटा होती है। यदि सप्तम भाव में मंगल का नवमांश हो और उस पर शनि की दृष्टि हो तो वह नारी योनि रोग वाली होती है। यदि सप्तम भाव में शुभग्रह का नवमांश हो तब तो वह पति की प्रिया होती है ॥३०८॥ शनि की राशि या नवमांश सप्तम भाव में हो तो उस स्त्री का पति वृद्ध और मूर्ख होता है। सप्तम भाव में मंगल की राशि या नवमांश हो तो उसका पति स्त्रीलोलुप और क्रोधी होता है। बुध की राशि या नवमांश हो तो विद्वान् और निपुण होता है। गुरु का नवांश राशि या हो तो जितेन्द्रिय और गुणी होता है। चन्द्रमा की राशि या नवमांश हो तो कामी तथा मनोहर स्वरूप वाला होता है। शुक्र की राशि या नवमांश सप्तम में हो तो उसका पति भाग्यवान् और मनोहर रूप वाला होता है। सूर्य की राशि या नवमांश सप्तम भाव में हो तो उस स्त्री का पति अत्यन्त कोमल और कर्मठ होता है ॥३०९-३१०॥

शुक्राब्जयोर्लग्नगयोः सुखिनीर्ष्यासमन्विता । ज्ञेंद्वोः कलासु निपुणा सुखिता च गुणान्विता ॥३११॥
शुक्रज्ञयोस्तु सुभगा कलाज्ञा रुचिरांगना । अनेकसौख्यार्थगुणा लग्ने सौम्यत्रये स्थिते ॥३१२॥
क्रूरेऽष्टमेऽष्टमेशांशे यस्य स्यात्तद्वयः समे । वैधव्यं च मृतिस्तस्या स्वयंसत्स्वर्थगेषु तु ॥३१३॥
अल्पापत्यत्वमब्जेऽस्याः कन्यालिहरिगोषु तु । सौरे मध्यबले चंद्रशुक्रज्ञैर्बलवर्जितैः ॥३१४॥
शेषैः सवीर्यैरोजर्क्षे लग्ने कुरूपिणी भवेत् । जीवारकविसौम्येषु बलिषु समभे तनौ ॥३१५॥
विख्यातानैकशास्त्रज्ञा वनिता ब्रह्मवादिनी । पापेऽस्ते नवमस्थस्य प्रवज्यामेति भामिनी ॥३१६॥
उद्वाहे वरणे प्रश्ने सर्वमेतद्वि चिंतयेत् । मृत्युस्थानं पश्यतां स्याद्बलिना धातुकोपतः ॥३१७॥
नृणां मृत्युर्हितं युक्तं भगात्रोस्थोपथभूरिभिः । सवीर्यैर्बहुजोऽग्र्यापक्षतज्वररुगुद्भवः ॥३१८॥
तृट्क्षुद्भवश्चाष्टमस्थैः सूर्याद्यैश्चं चरादिषु । परस्वाध्वप्रदेशेषु मृत्युः सूर्यमहीजयोः ॥३१९॥
स्वबंधुस्थितयोः पुंसः शैलाग्राभिरुतस्य च । बंधवस्तकर्मगैर्मंदचन्द्रभूजैः प्रहौ मृतिः ॥३२०॥
स्त्रियां हिमोष्णकरयोः स्वजनात्पापदृक्तयोः । तोयमृतो रवींदू तु स्यातां यद्युभयोदये ॥३२१॥

शुक्र और चन्द्रमा लग्न में हों तो वह स्त्री सुखिनी तथा ईर्ष्यालु होती है। यदि बुध और चन्द्रमा लग्न में हों तो कलाओं को जानने वाली तथा सुख और गुणों से युक्त होती है शुक्र और बुध लग्न में हों तो सौभाग्यवती, कलाओं को जानने वाली और परमसुन्दरी होती है। लग्न में तीन शुभग्रह हों तो वह अनेक प्रकार के सुख, धन और गुणों से युक्त होती है ॥३११-३१२॥

पापग्रह अष्टम भाव में हो तो वह स्त्री अष्टमेश जिस ग्रह के नवमांश में हो उस ग्रह के पूर्वकथित बाल्य आदि वयस् में विधवा होती है। यदि द्वितीय भाव में शुभग्रह हों तो वह स्त्री स्वयं ही स्वामी के सम्मुख मृत्यु को प्राप्त होती है। कन्या, वृश्चिक, सिंह या वृष राशि में चन्द्रमा हों तो स्त्री थोड़ी संततिवाली होती है, यदि शनि मध्यम बली तथा चन्द्रमा, शुक्र और बुध ये तीनों निर्बल हों तथा शेष ग्रह (सूर्य मंगल और गुरु) बली होकर विषम राशि-लग्न में हों तो वह स्त्री कुरूपा होती है ॥३१३-३१४½॥

गुरु, मंगल, शुक्र, बुध ये चारों बली होकर समराशि लग्न में स्थित हों तथा वह स्त्री अनेक शास्त्रों को जानने वाली ब्रह्मवादिनी तथा लोक में विख्यात होती है ॥३१५½॥ जिस स्त्री के जन्म लग्न से सप्तम में पाप ग्रह हो और नवम भाव में कोई ग्रह हो स्त्री तो पूर्वकथित नवमस्थ ग्रहजनित प्रव्रज्या को प्राप्त होती है। इन (कहे हुए) विषयों का विवाह वरण या प्रश्नकाल में भी विचार करना चाहिए ॥३१६½॥

निर्वाण (मृत्यु) विचार—लग्न से अष्टम भाव को जो ग्रह देखते हैं, उनमें जो बलवान् हो उसके धातु (कफ, पित्त या वात) के प्रकोप से जातक (स्त्री-पुरुष) का मरण होता है। अष्टम भाव में जो राशि हो, वह कालपुरुष के जिस अंग (मस्तकादि) में पड़ती हो, उस अंग में रोग होने से जातक का मरण होता है। बहुत ग्रहों की दृष्टि या योग हो तो उन-उन ग्रहों से सम्बन्ध रखने वाले रोगों से मरण होता है। अष्टम में सूर्य हो तो अग्नि से, चन्द्रमा हो तो जल से, मंगल हो तो शस्त्रघात से, बुध हो तो ज्वर से, गुरु हो तो अज्ञात रोग से, शुक्र हो तो प्यास से और शनि हो तो भूख से मरण होता है। तथा अष्टम भाव में चर राशि हो तो परदेश में, स्थिर राशि हो तो स्वस्थान में और द्विस्वभाव राशि हो तो मार्ग में मृत्यु होती है। सूर्य और मंगल यदि १०, ४ भाव में हों तो पर्वत आदि उच्च स्थान से गिरने से मनुष्य की मृत्यु होती है ॥३१७-३१९½॥

४, ७, १० भावों में यदि शनि, चन्द्र, मंगल हों तो कुएँ में गिरकर मृत्यु होती है। कन्याराशि में सूर्य और चन्द्रमा दोनों हों, उन पर पापग्रह की दृष्टि हो तो अपने सम्बन्धी के द्वारा मरण होता है। यदि उभयोदय (मीन) लग्न में चन्द्रमा और सूर्य दोनों हों तो जल में मरण होता है। यदि मंगल की राशि में स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहों के बीच में हो तो शस्त्र या अग्नि से मृत्यु होती है ॥३२०-३२१½॥

शस्त्राग्निजोऽशुभांतस्थे चंद्रे भौमगृहस्थिते । मृत्युश्चाथ मृगे चंद्रे कर्के मंदे जलोदरात् ॥३२२॥
स्त्रियामिंदौ रक्तशोथात्सौरेरज्ज्वग्निपातजः । पुत्रधर्मस्थयोर्बंधात्पापयोः सदृष्टयोः ॥३२३॥
सपाशसर्पनिगडैर्दृकैर्मृत्यौ तु बंधनैः । स्त्रियां सपापेऽब्जे द्यूने सिते मेषे रवौ तनौ ॥३२४॥
मरणं स्त्रीकृते गेहे ह्यथ तुर्ये कुजे रवौ । यमे खेऽगत्रिकोणस्थैः क्षीणचंद्राशुभैः सकृत् ॥३२५॥
तुर्येऽर्के खे कुजे क्षीणचन्द्रदृष्टे समिद्धतः । रंध्रखांग जलैः क्षीणेंद्वाराकिरविसंयुतैः ॥३२६॥
लकुटेनाथ तैरेव खांकांगतनयस्थितैः । धूमाग्निबंधनैः कार्यः कुदनैर्मरणं भवेत् ॥३२७॥
बंध्वस्तखस्थैर्भौमार्कमंदैः शस्त्राग्निराजभिः । सौरेंद्वारैः स्वांबुखस्थैः क्षतकेभ्यंगया ततः ॥३२८॥
खेऽर्के तुर्ये कुजे यानपातादथ कुजेऽस्तगे । यंत्रोसीदुनतः क्षीणचंद्रयुक्ते मृतिर्भवेत् ॥३२९॥
भौमार्किशीतकिरणैर्जूकाजशनिभस्थितैः । क्षीणेंद्वर्ककुजैः खास्तांबुस्थैर्वारकरे मृतिः ॥३३०॥
बल्यारदृष्टे क्षीणेंदौ मंदे निधनसंस्थिते । गुह्यरुक्कृमिशस्त्राग्निदारुजो मृत्युरंगिनः ॥३३१॥
सौरेऽर्केऽस्ते मृतौ मंदे क्षीणेंदौ भुव्यसंयुते । लग्नध्यायास्तपःस्थार्कभौमचन्द्रनिशाकरैः ॥३३२॥
शैलश्रृंगस्वरुग्रपातौर्नुनिधनं भवेत् । दृक्कोत्तरे तुर्द्वाविंशस्तत्पतिर्मृत्युपोपि वा ॥३३३॥

मकर में चन्द्रमा और कर्क में शनि हो तो जलोदर रोग से मरण होता है। कन्याराशि में स्थित चन्द्रमा दो पापग्रहों के बीच में हो तो रक्तशोथ रोग से मृत्यु होती है, यदि दो पापग्रहों के बीच में स्थित चन्द्रमा, शनि की राशि (मकर और कुम्भ) में हों तो रज्जु (रस्सी), अग्नि अथवा ऊंचे स्थान से गिरकर मृत्यु होती है। ५, ९ भावों में पापग्रह हों और उन पर शुभग्रह की दृष्टि न हो तो बन्धन से मृत्यु होती है ॥३२३॥ अष्टम भाव में पाश, सर्प या निगड द्रेष्काण हो तो भी बंधन से ही मृत्यु होती है। पापग्रह के साथ बैठा हुआ चन्द्रमा यदि कन्याराशि में होकर सप्तम भाव में स्थित हो तथा मेष में शुक्र और लग्न में सूर्य हों तो अपने घर में स्त्री के निमित्त से मरण होता है। चतुर्थ भाव में मंगल या सूर्य हों, दशम भाव में शनि हो और लग्न, ५, ९ भावों में पापग्रहसहित चन्द्रमा हो अथवा चतुर्थ भाव में सूर्य और दशम में मंगल रहकर क्षीण चन्द्रमा से दृष्ट हों तो इन योगों में काष्ठ से आहत होकर मृत्यु होती है ॥३२४-३२५॥ यदि ८, १०, लग्न, तथा ४ भावों में क्षीण चन्द्रमा, मंगल, शनि और सूर्य हों तो लाठी के प्रहार से मृत्यु होती है। यदि वे ही (क्षीण चन्द्रमा, मंगल, शनि तथा सूर्य) १०, ९, लग्न और ५ भावों में हों तो मुद्गर आदि के आघात से मृत्यु होती है ॥३२६-३२७॥ यदि ४, ७, १० भावों में क्रमशः मंगल, रवि और शनि हों तो शस्त्र, अग्नि तथा राजा के द्वारा मृत्यु होती है यदि शनि, चन्द्रमा और मंगल—ये २, ४, १० भावों में हों तो कीड़ों के क्षत से मरण होता है ॥३२८॥ यदि दशम भाव में सूर्य और चतुर्थ भाव में मंगल हों तो सवारी पर से गिरने के कारण मृत्यु होती है। यदि क्षीण चन्द्रमा के साथ मंगल सप्तम भाव में हो तो यन्त्र (मशीन) के आघात से मृत्यु होती है ॥३२९॥

यदि मंगल, शनि और चन्द्रमा— ये तुला, मेष तथा शनि की राशि (मकर, कुम्भ) में हों अथवा क्षीण चन्द्रमा, सूर्य और मंगल—ये १०, ७, ४ भावों में स्थित हो तो विष्ठा के समीप मृत्यु होती है ॥३३०॥ क्षीण चन्द्रमा बली, मंगल से दृष्ट हो और शनि सप्तम भाव में हो तो गुह्य (बवासीर आदि) रोग या कीड़ा, शस्त्र, अग्नि अथवा काष्ठ के आघात से मृत्यु होती है। मंगल सहित सूर्य सप्तम भाव में, शनि अष्टम में और क्षीण चन्द्रमा चतुर्थ भाव में हो तो पक्षी द्वारा मृत्यु होती है, यदि लग्न, ५, ८, ९ भावों सूर्य, मंगल, शनि और चन्द्रमा हों तो पर्वत-शिखर से गिरने के कारण अथवा वज्रपात से या दीवार गिरने से मृत्यु होती है ॥३३१-३३२½॥

लग्न से १२ वाँ द्रेष्काण अर्थात् अष्टम भाव का द्रेष्काण जो हो उसका स्वामी अथवा अष्टम भाव का स्वामी—ये दोनों या इनमें से जो बली हो वह अपने गुणों से (पूर्वोक्त अग्निशस्त्रादि द्वारा) मनुष्य के लिए मरण-

स्वगुणैर्निधनं कुर्याद्बलवान्यो द्वयोर्भवेत् । लग्नांशेशसदृक्स्थाने मृत्युर्योगेक्षणादिभिः ॥३३४॥
मोहोंऽत्रेनुदितांशस्य तुल्यो द्विघ्नः स्वपेक्षिते । शुभेक्षिते नु त्रिगुणः कल्प्यमन्यत्स्वबुद्धितः ॥३३५॥
वह्न्यंबुभस्मसक्लेदशोषव्यालैर्मृतिस्थितैः । त्रिदुर्तश्चितनौयश्च यथोक्तो मृत्युरंगिनः ॥३३६॥
गुरुः शशांकशुक्रौ च सूर्यभौमौ यमेंदुजौ । देवपित्रतिरक्तोथ नारकान्कुर्यु रष्टमे ॥३३७॥
रवींदुबलवश्रंशनाथाच्छ्रेष्ठसमाधमाः । तुंगगः सांदनूकेनुगतिः षड्ध्रद्वकपः ॥३३८॥
द्यूनस्थितो गुरुर्वापि रिपुकेंद्रविनाशगः । स्वोच्चस्थोंऽगे व्यये सौम्यभागे मोक्षो बलान्यतः ॥३३९॥
आधाने जन्माज्ञाने तु वृक्षतां लग्नतो वदेत् । पूर्वापरार्द्धैर्लग्नस्य सौम्ये वाच्यपनेजनिः ॥३४०॥

कारक होता है। लग्न में जो नवमांश होता है, उसका स्वामी जो ग्रह हो, उसके समानस्थान (अर्थात् वह जिस राशि में हो उस राशि का जैसा स्थान बताया गया है, वैसे स्थान) तथा उस पर जिस ग्रह का योग या दृष्टि हो उसके समान स्थान में, परदेश में मनुष्य का मरण होता है तथा लग्न के जितने अंश अनुदित (भोग्य) हों, उन अंशों में जितने समय हों उतने समय तक मरणकाल में मोह होता है। यदि उस पर अपने स्वामी की दृष्टि हो तो उससे द्विगुणित समय पर्यन्त मोह होता है। शुभग्रह की दृष्टि हो त्रिगुण मोह होता है। इस विषय को अन्य बातें अपनी बुद्धि से विचार कर समझनी चाहिए ॥३३३-३३५॥

शव-परिणाम—अष्टम स्थान में जिस प्रकार का द्रेष्काण हो उसके अनुसार देहधारी की मृत्यु और उसके शव के परिणाम पर विचार करना चाहिए। यथा अग्नि (पापग्रह) का द्रेष्काण हो तो मृत्यु के बाद उसका शव जलाकर भस्म किया जाता है। जल (सौम्य) द्रेष्काण हो तो जल में फेंका जाने पर वहीं गल जाता है। यदि सौम्य द्रेष्काण पापग्रह से युक्त या पाप द्रेष्काण शुभग्रह से युक्त हो तो शव न जलाया जाता है, न जल में गलाया जाता है; अपितु सूर्यकिरण और वायु से सूख जाता है। यदि सर्प द्रेष्काण अष्टम भाव में हो तो उस शव को गीदड़ और कौए आदि नोंचकर खाते हैं ॥३३६॥

पूर्वजन्मस्थिति—सूर्य और चन्द्रमा में जो अधिक बलवान् हो, वह जिस द्रेष्काण में स्थित हो उस द्रेष्काण के स्वामी के अनुसार पूर्वजन्म की स्थिति समझी जाती है। यथा—उक्त द्रेष्काण का स्वामी गुरु हो तो जातक पूर्वजन्म में देवलोक में था। चन्द्रमा या शुक्र द्रेष्काण का स्वामी हो तो वह पितृ लोक में था। सूर्य या मंगल द्रेष्काण का स्वामी हो तो वह जातक पहले जन्म में भी मृत्युलोक में ही था और शनि या बुध हो तो वह पहले नरक लोक में रहा है—ऐसा समझना चाहिए। यदि उक्त द्रेष्काण का स्वामी अपने उच्च में हो तो जातक पूर्वजन्म में देवादि लोक में श्रेष्ठ था। यदि उच्च और नीच के मध्य में हो तो उस लोक में उसकी मध्यम स्थिति थी और यदि अपने नीच में हो तो वह उस लोक में निम्न कोटि की अवस्था में था—ऐसा उच्च और नीच स्थान के तारतम्य से समझना चाहिए ॥३३७½॥

गति—भावी जन्म की स्थिति—षष्ठ और अष्टम भाव के द्रेष्काणों के स्वामी में से जो अधिक बली हो, मरने के बाद जातक उसी ग्रह के (पूर्वदर्शित) लोक में जाता है तथा सप्तम स्थान में स्थित ग्रह बली हो तो वह अपने लोक में ले जाता है ॥३३८॥

मोक्ष-योग—यदि बृहस्पति अपने उच्च में होकर ६, १, ४, ७, ८, १० अथवा १२ में शुभग्रह के नवमांश में हो और अन्य ग्रह निर्बल हों तो मरण होने पर मनुष्य का मोक्ष होता है। यह योग जन्म और मरण दोनों कालों से देखना चाहिए ॥३३९॥

अज्ञात जन्म-समय को जानने का प्रकार—जिस व्यक्ति के आधान या जन्म का समय अज्ञात हो, उसके प्रश्नलग्न से जन्म-समय समझना चाहिए। प्रश्नलग्न के पूर्वार्ध (१५ अंश तक) में उत्तरायण और उत्तरार्ध (१५ अंश के बाद) में दक्षिणायन जन्म का समय समझना चाहिए। त्र्यंश (द्रेष्काण) द्वारा क्रमशः लग्न,

लग्नत्रिकोणे धीज्यत्र्यंशैर्विकल्पावयवाः समाः । ग्रीष्मोगेऽर्के परै रम्यापनतांघ्रुतुरर्कभात् ॥३४१॥
चन्द्रज्ञजीवावृत्यस्याः शुक्रारार्किभिरन्यथा । दृक्कैराद्यैः पूर्वमासस्तिथिस्तत्रानुपाततः ॥३४२॥
विलोमजन्म भागैश्च वेला रात्रिद्युसंज्ञके । त्रिकोणोत्तमवार्यंवि लग्नं वा लभनाभने ॥३४३॥
यावदूनो विधुर्लग्नात्तावच्चंद्राच्च जन्मभे । गोहरी युग्मवसुभे क्रियजूके मृगांगने ॥३४४॥
दशाष्टसप्तविषये गुण्याः शेषाः स्वसंख्यया । जीवक्षीमकविज्ञाः स्युः राघवाद्यायरेज्ञवत् ॥३४५॥
भानां नित्यो विधिः खेटवशावद्धर्गणास्तथा । सतघ्नं भहृतं शेषमृक्षं नवधनर्णतः ॥३४६॥

५, ९ राशि में गुरु समझकर फिर प्रश्नकर्ता के वयस् के अनुसार वर्षमान की कल्पना करनी चाहिए । लग्न में सूर्य हो तो ग्रीष्म ऋतु, अन्यथा अन्य ग्रहों के ऋतु का वर्णन पहले किया जा चुका है । अयन और ऋतु में भिन्नता हो तो चन्द्रमा, बुध और गुरु की ऋतुओं के स्थान में क्रम से शुक्र, मंगल, शनि की ऋतु परिवर्तित करके समझना चाहिए तथा ऋतु सर्वथा सूर्य की राशि से ही (सौर मास से ही) ग्रहण करनी चाहिए । इस प्रकार अयन और ऋतु के ज्ञान होने पर लग्न के द्रेष्काण में पूर्वार्ध हो तो ऋतु का प्रथम मास, उत्तरार्ध हो तो द्वितीय मास समझना चाहिए तथा द्रेष्काण के पूर्वार्ध या उत्तरार्ध के भुक्तांशों से अनुपात द्वारा तिथि (सूर्य के गत अंशादि) का ज्ञान करना चाहिए ॥३४०-३४२॥

दिन-रात्रि-जन्म-ज्ञान--प्रश्नलग्न में दिनसंज्ञक, रात्रिसंज्ञक राशियाँ हों तो विलोम क्रम से (दिनसंज्ञक राशि में रात्रि और रात्रिसंज्ञक राशि में दिन) जन्म का समय समझना चाहिए और लग्न के अंशादि से अनुपात द्वारा इष्ट घट्यादि को समझना चाहिए !

जन्मलग्नज्ञान--केवल जन्मलग्न जानने के लिए प्रश्नकर्ता प्रश्न करे तो लग्न से १, ५, ९ में जो राशि बली हो, वही उसका जन्मलग्न समझना चाहिए अथवा वह जिस अंग का स्पर्श करते हुए प्रश्न करे, उस अंग की राशि को ही जन्मलग्न कहना चाहिए ॥३४३॥

जन्मराशिज्ञान--जन्म-राशि जानने के लिए प्रश्न करे तो प्रश्नलग्न से जितने आगे चन्द्रमा हो, चन्द्रमा से उतने ही आगे जो राशि हो वह पूछने वाले की जन्मराशि समझनी चाहिए ॥३४३½॥

प्रकारान्तर से अज्ञात जन्मकालादि का ज्ञान--प्रश्नलग्न में वृष या सिंह हो तो लग्नराश्यादि को कलात्मक बनाकर १० से गुणा करे । मिथुन या वृश्चिक हो तो ८ से, मेष या तुला हो तो ७ से, मकर या कन्या हो तो ५ से गुणा करे । शेष राशियों (कर्क, धन, कुम्भ, मीन) में से कोई लग्न हो तो उसकी कला को अपनी संख्या से (जैसे-कर्क को ४ से) गुणा करे । यदि लग्न में ग्रह हो तो फिर उसी गुणनफल को ग्रहगुण कों से भी गुणा करे । जैसे--वृहस्पति हो तो १० से, मंगल हो तो ८ से, शुक्र हो तो ७ से, बुध हो तो ५ से, अन्य ग्रह (रवि) शनि और चन्द्रमा) हों तो ५ से गुणा करे । इस प्रकार लग्न की राशि के अनुसार गुणन तो निश्चित ही रहता है । यदि उसमें ग्रह हो तभी ग्रह का गुणन भी करना चाहिए । जितने ग्रह हों, सबके गुणक से गुणा करना चाहिए । इस प्रकार गुणनफल को ध्रुवपिण्ड मानकर उसको ७ से गुणा कर २७ के द्वारा भाग देकर १ आदि शेष के अनुसार अश्विनी आदि जन्मनक्षत्र समझना चाहिए । इस प्रणाली में विशेषता यह है कि उक्त रीति से आयी हुई संख्या में कभी ९ जोड़कर और कभी ९ घटाकर नक्षत्र लिया जाता है ॥३४४-३४६॥

द्विघ्ने समर्तुमासाः स्युः पक्षतिथ्यौ गजाहते । सप्तघ्नं होनिशार्क्षाणीबुघ्नेंगांशेष्टहोरिका ॥३४७॥
पुमान्परशुधृक्कृष्णो रक्तदृग्रक्षितुं क्षमः । तृषार्तैकपदाश्वास्यो रक्तवस्त्रो घटाकृतिः ॥३४८॥
कपिलो ह्यंधदृक्क्रूरो रक्तवस्त्रः क्षतव्रतः । क्षुत्तृषार्तोदुग्धपटो लूनकुंचितमूर्धजः ॥३४९॥
मलिनः क्षुत्परोजास्यो दक्षः कृष्यादिकर्मणि । द्विपकायः सरभपात्पिंगलो व्याकुलांतरः ॥३५०॥
सौचिकीरूपिणी साध्वी ह्यप्रजोच्छ्रितपाणिका । उद्याने कवची धन्वी क्रीडेच्छुर्गरुडाननः ॥३५१॥
नृत्यादिविद्वरुणवद्बहुरत्नोधनुर्धरः । द्विपास्यकंठक्रोडास्यः काननेशरमाहिकः ॥३५२॥
आतव्यशाखां पालाशी रौति मूर्द्धाहिकर्कशा । चिपिटास्यो हि संवीतो नौस्थः स्त्र्यर्थव्रजज्जले ॥३५३॥

तथा उक्त ध्रुवपिण्ड को १० से गुणा करके गुणनफल से वर्ष, ऋतु और और मास समझे। पक्ष और तिथि जाननी हो तो ध्रुवपिण्ड को ८ से गुणा करके २ से भाग देकर एक शेष हो तो शुक्ल पक्ष और दो शेष हो तो कृष्णपक्ष समझे। इसमें भी ९ जोड़ या घटाकर ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् गुणनफल में ९ जोड़ या घटाकर भाग देना चाहिए। इसी प्रकार पक्षज्ञान होवे पर गुणनफल में ही १५ से भाग देकर शेष के अनुसार प्रतिपदा आदि तिथि समझे तथा अहोरात्र जानना हो तो ध्रुवपिण्ड को ७ से गुणा करके दो से भाग देकर एक शेष हो तो दिन और दो शेष हो तो रात्रि समझे। लग्न-नवमांश, इष्ट-घड़ी तथा होरा जानना हो तो ध्रुवपिण्ड को ५ से गुणा करके अपने-अपने विकल्प से (अर्थात् लग्न जानने के लिए १२ से, इष्टघड़ी जानने के लिए ६० से) अथवा दिन या रात का ज्ञान होने पर दिनमान या रात्रिमान-घटी से), नवमांश के लिए ९ से तथा होरा के लिए २ से भाग देकर शेष द्वारा सबका ज्ञान करना चाहिए। इस प्रकार जिनके जन्मसमय आदि का ज्ञान न हो उनके लिए इन सब बातों का विचार करना चाहिए ॥३४७॥

द्रेष्काण का स्वरूप—हाथ में फरसा लिये हुए काले रंग का पुरुष, जिसकी आँखें लाल हों और जो सब जीवों की रक्षा करने में समर्थ हो, मेष के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है। प्यास से पीडित एक पैर से चलने वाला, घोड़े के समान मुख, रक्तवस्त्रधारी और घड़े के समान आकार—यह मेष के द्वितीय द्रेष्काण का स्वरूप है ॥३४८॥ कपिलवर्ण, क्रूरदृष्टि, क्रूरस्वभाव, लाल वस्त्रधारी और अपनी प्रतिज्ञा भंग करने वाला—यह मेष के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप है। भूख और प्यास से पीडित, कटे-छँटे घुँघराले केश तथा दूध के समान धवल वस्त्र—यह वृष के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है ॥३४९॥ मलिनशरीर भूख से पीडित, बकरे के समान मुख और कृषि आदि कार्यों में कुशल—यह वृष के दूसरे द्रेष्काण का रूप है। हाथी के समान विशालकाय, शरभ के समान पैर वाला, पिंगलवर्ण और व्याकुलचित्त—यह वृषभ के तीसरे द्रेष्काण का स्वरूप है ॥३५०॥ सुई से सीने-पिरोने का काम करने वाली, रूपवती, सुशीला तथा सन्तानहीना नारी, जिसने हाथ को ऊपर उठा रखा है, मिथुन का प्रथम द्रेष्काण है। कवच और धनुष धारण किये हुए उपवन में क्रीडा करने की इच्छा से उपस्थित गरुडसदृश मुख वाला पुरुष मिथुन का दूसरा द्रेष्काण है ॥३५१॥ नृत्य आदि की कला में प्रवीण, वरुण के समान रत्नों के अनन्त भांडार से भरा-पूरा, धनुर्धर वीर पुरुष मिथुन का तीसरा द्रेष्काण है। गणेश के समान कण्ठ, शूकर के सदृश मुख, शरभ के-से पैर और वन में रहने वाला—यह कर्क के प्रथम द्रेष्काण का रूप है ॥३५२॥

सिर पर सर्प धारण किये, पलास की शाखा पकड़कर रोती हुई कर्कशा स्त्री—यह कर्क दूसरे द्रेष्काण का स्वरूप है। चिपटा मुख, सर्प से वेष्टित, स्त्री की खोज में नौका पर बैठकर जल में यात्रा करने वाला पुरुष—यह कर्क के तीसरे द्रेष्काण का रूप है ॥३५३॥ सेमल के वृक्ष के नीचे गीदड़ और गीध को लेकर रोता

।।३५४।।
श्वा नरो जंबुकंग्रं गृहीत्वा रौति शालमली । धन्वी कृष्णाजिनी सिंहवाश्वोन्नतमातुरः ।।३५५।।
फलामिषघ्नः कूर्ची ना भल्लास्यः कपिचेष्टितः । पुष्पपूर्णघटाकन्याविद्येल्ला मलिनांबरा ।।३५६।।
धन्वी व्ययापकृच्छ्यामो लिपिकृद्रोमशोनरः । गौरीधौतांशुकासूच्चाकुंभहस्तासुरालये ।।३५७।।
मानोन्मान्मापसोतौलीभांडमुल्यर्विचितकः । क्षुत्तृड्युतो नरः कुंभीगृध्रास्यः स्त्रीसुतोपगः ।।३५८।।
धन्वींकितरश्चेष्टस्तु हैमवर्मामृगानुगः । सिंधु कूलंव्रजंतीस्त्रीनानासर्पसितांघ्रिका ।।३५९।।
सौख्यस्पृहाह्यावृतांगीभर्त्रर्थंकच्छपाकृतिः । कूर्मास्यो मलये सिंहः श्वक्रोडमृगभीषकः ।।३६०।।
वास्यः श्वकायो धानुष्को रक्षस्तापसयज्ञिये । चंपकाभासने मध्या सिंधुरत्नविवर्द्धिनी ।।३६१।।
कूर्चासने चंपकाभो दंडो कौशेयकानिनी । परमोऽथे गृध्रमुखः स्नेहमद्याशनस्पृहः ।।३६२।।
दग्धानस्था लोहधरा सभूषाभांडकच्चरा । भांडी रोमश्रवाः श्यामः किरीटी फलयंत्रधृक्

हुआ कुत्ते-जैसा मनुष्य––यह सिंह के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है। धनुष और कृष्णमृगचर्म धारण किये, सिंह सदृश पराक्रमी तथा घोड़े के समान आकृति वाला मनुष्य––यह सिंह के दूसरे द्रेष्काण का स्वरूप है ।।३५४।। फल और भोज्य पदार्थ रखने वाला, लम्बी दाढ़ी से सुशोभित, भालू जैसा मुख और वानरों के i चपल स्वभाववाला मनुष्य सिंह के तृतीय द्रेष्काण का रूप है। फूल से भरे कलश वाली, विद्याभिलाषिणी, मलिन वस्त्रधारिणी कुमारी कन्या––यह कन्या राशि के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है। हाथ में धनुष, आय-व्यय का हिसाब रखने वाला, श्याम वर्ण शरीर, लेखनकार्य में चतुर तथा रोएँ से भरा मनुष्य––यह कन्या राशि के दूसरे द्रेष्काण का स्वरूप है। गोरे अंगों पर धुले हुए स्वच्छ वस्त्र, ऊँचा कद, हाथ में कलश लेकर देव-मन्दिर को ओर जाती हुई––यह कन्या राशि के तीसरे द्रेष्काण का परिचय है ।।३५५-३५६।। हाथ में तराजू और बटखरे लिये बाजार में वस्तुएँ तौलने वाला तथा बरतन-भांडों की कीमत कूतने वाला पुरुष तुलाराशि का प्रथम द्रेष्काण है। हाथ में कलश लिये भूख-प्यास से व्याकुल तथा गोध के समान मुखवाला पुरुष, जो स्त्री पुत्र के साथ विचरता है, तुला का दूसरा द्रेष्काण है ।।३५७।।

हाथ में धनुष लिये हरिण का पीछा करने वाला, किन्नर के समान चेष्टा वाला, सुवर्ण कवचधारी पुरुष तुला का तृतीय द्रेष्काण है। एक नारी, जिसके पैर नाना प्रकार के सर्प लिपटे होने से श्वेत दिखाई देते हैं, समुद्र से किनारे की ओर जा रही है, यही वृश्चिक के प्रथम द्रेष्काण का रूप है ।।३५८।। जिसके सब अंग सर्पों से ढके हैं और आकृति कछुए के समान है तथा जो स्वामी के लिए सुख की इच्छा करने वाली है, ऐसी स्त्री वृश्चिक का दूसरा द्रेष्काण है। मलयगिरि का निवासी सिंह, जिसकी मुखाकृति कछुए-जैसी है, कुत्ते, सूकर और हरिण आदि को डरा रहा है, वही वृश्चिक का तीसरा द्रेष्काण है।।३५९।। मनुष्य के समान मुख, घोड़े-जैसा शरीर, हाथ में धनुष लेकर तपस्वी और यज्ञों की रक्षा करनेवाला पुरुष धनु राशि का प्रथम द्रेष्काण है। चम्पापुष्प के समान कान्तिवाली, आसन पर बैठी हुई, समुद्र के रत्नों को बढ़ाने वाली, मझोले कद की स्त्री धनु का दूसरा द्रेष्काण है ।।३६०।। दाढ़ी-मूंछ बढ़ाये, आसन पर बैठा हुआ, चम्पापुष्प के समान कान्तिमान्, दण्ड, पट्टवस्त्र और मृगचर्म धारण करने वाला पुरुष धनु का तीसरा द्रेष्काण है। (मगर के समान दाँत, रोएँ से भरा शरीर तथा सूअर जैसी आकृति वाला पुरुष मकर का प्रथम द्रेष्काण है। कमलदल के समान नेत्रों वाली, आभूषणप्रिया, श्यामा स्त्री मकर का दूसरा द्रेष्काण है। हाथ में धनुष, कम्बल, कलश और कवच धारण करने वाला किन्नर के समान पुरुष मकर का तीसरा द्रेष्काण है।) गीध के समान मुख, तेल, घी और मधु पीने की इच्छा वाला, कम्बलधारी पुरुष कुम्भ का प्रथम द्रेष्काण है, हाथ में लोहा, शरीर में आभूषण, तथा मस्तक पर भाँड़ (बर्तन) लिये मलिन वस्त्र पहनकर जली गाड़ी पर बैठी हुई स्त्री कुम्भ का दूसरा द्रेष्काण है। कान में बड़े-बड़े रोम,

नौस्थोध्वौसंविभूषार्थं नानारत्नकरोंचितः । नौस्थाब्धेः कूलमायांती सयूथां चम्पकानना ॥३६३॥
गर्ते सर्पावृतो नग्नो रुदंश्चौरानलार्दितः । एतादृशाःक्रियांशास्तु षड्विंशदुदिताः क्रमात् ॥३६४॥
एतत्संक्षेपतः प्रोक्तं जातकं मुनिसत्तम । निबोध संहितास्कंधं लोककृत्युपयोगिनम ॥३६५॥

इति श्रीनारदीयपुराणे पूर्वभागे द्वितीयपादे बृहदुपाख्याने
जातकनिरूपणन्नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सनंदन उवाच

क्रमाच्चैत्रादिमासेषु मेषाद्याः संक्रमा मताः । चैत्रशुक्लप्रतिपदि यो वारः स नृपः स्मृतः ॥१॥
मेषप्रवेषे सेनानीः कर्कटे शस्यपो भवेत् । समोद्यधीश्वरः सूर्यो मध्यमश्चोत्तमो विधुः ॥२॥
नेष्टः कुजो बुधो जीवो भृगुस्त्वतिशुभंकरः । अधमो रविजो वाच्यो ज्ञात्वा चैषां बलाबलम् ॥३॥

शरीर में श्याम कान्ति, मस्तक पर किरीट तथा हाथ में फल-पत्र धारण करने वाला बर्तन का व्यापारी कुम्भ का तीसरा द्रेष्काण है। भूषण बनाने के लिए नाना प्रकार के रत्नों को हाथ में लेकर समुद्र में नौका पर बैठा हुआ पुरुष मीन का प्रथम द्रेष्काण है। जिसके मुख की कान्ति चम्पा के पुष्प के सदृश मनोहर है, वह अपने परिवार के साथ नौका पर बैठकर समुद्र के बीच से तट की ओर आती हुई स्त्री मीन का दूसरा द्रेष्काण है। गड्ढे के समीप तथा चोर और अग्नि से पीडित होकर रोता हुआ, सर्प से वेष्टित, नग्न शरीर वाला पुरुष मीन राशि का तीसरा द्रेष्काण है। इस प्रकार मेषादि बारहों राशियों में होने वाले छत्तीस द्रेष्काणांश के रूप क्रम से बताये गये हैं। मुनिश्रेष्ठ नारद ! यह संक्षेप में जातक नामक स्कन्ध कहा गया है। अब लोक व्यवहार के लिए उपयोगी संहिता स्कन्ध का वर्णन सुनो ॥३६१-३६५॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वभाग के द्वितीयपाद में जातक निरूपण नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५५॥

अध्याय ५६

त्रिस्कन्ध ज्यौतिष का संहिताप्रकरण (विविध उपयोगी विषयों का वर्णन)

सनन्दन बोले—नारद ! चैत्रादि मासों में क्रमशः मेषादि राशियों में सूर्य की संक्रान्ति होती है। चैत्र-शुक्ल-प्रतिपदा के आरम्भ में जो वार (दिन) हो, वही ग्रह उस (चान्द्र) वर्ष का राजा होता है। सूर्य के मेषराशि-प्रवेश के समय जो वार हो वह सेनापति (या मन्त्री) होता है। कर्कराशि की संक्रान्ति के समय जो वार हो, वह सस्य का अधिपति होता है। उक्त वर्ष आदि का अधिपति यदि सूर्य हो तो मध्यम (शुभ और अशुभ दोनों) फल देता है। चन्द्रमा हो तो उत्तम फल देता है। मंगल अधिपति हो तो (अशुभ) फल देता है। बुध, गुरु और शुक्र—ये तीनों अतिउत्तम फल देते हैं। शनि अधिपति हो तो अशुभ फल होता है। इन ग्रहों के बलाबल देखकर तदनुसार इसके न्यून या पूर्ण फल समझने चाहिए ॥१-३॥

दंडाकारे कबंधे वा ध्वांक्षाकारेऽथ कीलके । दृष्टेऽर्कमण्डले व्याधिर्भ्रांतिश्चोरार्थनाशनम् ॥४॥
छत्रध्वजपताकाद्यसन्निभैस्तिमितैर्ध्वनैः । रविमंडलगैर्धू म्रैः सस्फुलिंगैर्जगत्क्षयः ॥५॥
सितरक्तैः पीतकृष्णैर्वर्णैर्विप्रादिपीडनम् । घ्नंति द्वित्रिचतुर्वर्णैर्भु वि राजजनान्मुने ॥६॥
ऊर्ध्वैर्भानुकरैस्ताम्रै र्नाशं याति चमूपतिः । पीतैर्नृपसुतः श्वेतैः पुरोधाश्चित्रितैर्जनाः ॥७॥
धूम्रै र्नृपपिशंगैस्तु जलदाधोमुखैर्जगत् । शुभोऽर्कः शिशिरे ताम्रः कुंकुमाभो वसंतिके ॥८॥
ग्रीष्मश्चपांडुरश्चैव विचित्रो जलदागमे । पद्मोदराभः शरदि हेमंते लोहितच्छविः ॥९॥
पीतः शीते सिते वृष्टौ ग्रीष्मे लोहितभा रविः । रोगानां वृष्टिभयकृत् क्रमादुक्तो मुनीश्वर ॥१०॥
इन्द्रचापार्द्धमूर्तिस्तु भानुर्भू पविरोधकृत् । शशरक्तनिभे भानौ संग्रामो न चिराद्भुवि ॥११॥
मयूरपत्रसंकाशो द्वादशाब्दं न वर्षति । चन्द्रमासदृशो भानुः कुर्याद्भूपांतरं क्षितौ ॥१२॥
अर्के श्यामे कीटभयं भस्माभे राष्ट्रजं तथा । छिद्रेऽर्कमंडले दृष्टं महाराजविनाशनम् ॥१३॥

धूमकेतु-पुच्छलतारा आदि के फल--यदि कदाचित् सूर्य-मण्डल में दण्ड (लाठी, कबन्ध (मस्तकहीन शरीर) कौआ या कील के आकार वाले केतु (चिह्न) देखने में आये तो वहाँ व्याधि, भ्रान्ति तथा चोरों के उपद्रव से धन का नाश होता है ॥४॥ छत्र, ध्वज, पताका या सजल मेघखण्ड सदृश अथवा चिनगारी—सहित धूम सूर्य-मण्डल में दीख पड़े तो उस देश का नाश हो जाता है ॥५॥ श्वेत, लाल, पीला अथवा काला सूर्यमण्डल दीखने में आये तो क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों को पीड़ा होती है। मुनीश्वर ! यदि दो, तीन या चार प्रकार के रंग सूर्यमंडल में दीख पड़े तो राजाओं का विनाश करता है। यदि सूर्य की ऊर्ध्वगामिनी किरण लाल रंग की दीख पड़े तो सेनापति का नाश होता है। यदि उसका पीला वर्ण हो तो राजकुमार का, श्वेत वर्ण हो तो राज-पुरोहित का तथा उसके अनेक वर्ण हों तो प्रजाजनों का नाश होता है। इसी तरह धूम वर्ण हो तो राजा का और पिशंग (कपिल) वर्ण हो तो मेघ का नाश होता है। यदि सूर्य की उक्त किरणें नीचे की ओर हों तो संसार का नाश होता है ॥६-७½॥

सूर्य शिशिर ऋतु (माघ-फाल्गुन) में ताँबे के समान (लाल) दीखे तो संसार के लिए शुभ (कल्याणकारी) होता है। ऐसे ही वसन्त (चैत्र-वैशाख) में कुंकुमवर्ण, ग्रीष्म में पाण्डु (श्वेतपीतमिश्रित)—वर्ण, वर्षा में अनेकवर्ण, शरद् ऋतु में कमलवर्ण तथा हेमन्त में रक्तवर्ण का सूर्यबिम्ब दिखाई दे, तो उसे शुभप्रद समझना चाहिए। मुनिश्रेष्ठ नारद ! यदि शीतकाल में (अगहन से फाल्गुन तक) सूर्य का बिम्ब पीला, वर्षा में (श्रावण से कार्तिक तक) श्वेत तथा ग्रीष्म में (चैत्र से आषाढ़ तक) लाल रंग का दीख पड़े तो क्रम से रोग, अवर्षण तथा भय उपस्थित करने वाला होता है ॥८-१०॥ यदि कदाचित् सूर्य का आधा बिम्ब इन्द्रधनुष के सदृश दीख पड़े तो राजाओं में परस्पर विरोध उत्पन्नकरता है। खरगोश के रक्त के सदृश हो तो शीघ्र ही राजाओं में युद्ध होता है यदि सूर्य का वर्ण मोर की पाँख के समान हो, तो वहाँ बारह वर्षों तक वर्षा नहीं होती है। यदि सूर्य कभी चन्द्रमा के समान दिखाई दे, तो वहाँ के राजाओं को जीतकर दूसरा राजा राज्य करता है ॥११-१२॥ यदि सूर्य श्याम रंग का दीख पड़े तो कीड़ों का भय होता है। भस्म समान दीख पड़े तो समूचे राज्य पर भय उपस्थित होता है और यदि सूर्य मण्डल में छिद्र दिखाई दे, तो वहाँ के सम्राट् का नाश

घटाकृतिः क्षुद्भयकृत्पुरहा तोरणाकृतिः । छत्राकृते देशहृतिः खंडभानुर्नृपांतकृत् ॥१४॥
उदयास्तमये काले विद्युदुल्का शनिर्यदि । तदा नृपवधो ज्ञेयस्त्वथवा राजविग्रहः ॥१५॥
पक्षं पक्षार्द्धमर्कन्दुपरिविष्टावहर्निशम् । राजानमन्यं कुरुतो लोहिताम्बुदयास्तमौ ॥१६॥
उदयास्तमये भानुराच्छिन्नः शस्त्रसन्निभैः । घनैर्युद्धं खरोष्ट्राद्यैः पापरूपैर्भयप्रदम् ॥१७॥
याम्यश्रृंगोन्नतश्चंद्रः शुभदो मीनमेषयोः । सौम्यश्रृंगोन्नतः श्रेष्ठो नृयुङ्मकरयोस्तथा ॥१८॥
घटोक्षणस्तु समः कर्कचापयोः शरसन्निभः । चापवत्कौर्महर्योश्च शूलवत्तुलकर्कयोः ॥१९॥
विपरीतोदितश्चंद्रो दुर्भिक्षकलहप्रदः । आषाढद्वयमूलेंद्रधिष्ण्यानां याम्यगः शशी ॥२०॥
अग्निप्रदस्तोयचरवनसर्पविनाशकृत् । विशाखा मित्रयोर्याम्यपार्श्वगः पापगः शशी ॥२१॥
मध्यमः पितृदैवत्ये द्विदैवे सौम्यगः शशी । अप्राप्यपौष्णभाद्रौद्रामदुक्षाविशशी शुभः ॥२२॥
मध्यगो द्वारदक्षाणि अतीत्य नववासवात् । यमेंद्राहीशनोयेशमरुतश्चार्द्धतारकाः ॥२३॥
ध्रुवादितिद्विदैवाः स्युरध्यर्द्धाश्चापराः समाः । याम्यश्रृंगोन्नतो नेष्टः शुभः शुक्ले पिपीलिका ॥२४॥

होता है ॥१३॥ कलश के समान आकार वाला सूर्य देश में भुखमरी का भय उपस्थित करता है। तोरणसदृश आकारवाला सूर्य ग्राम तथा नगरों का नाशक होता है। छत्राकार सूर्य उदित हो तो देश का नाश और सूर्य बिम्ब खण्डित दीख पड़े तो राजा का विनाश होता है ॥१३-१४॥

यदि सूर्योदय या सूर्यास्त के समय बिजली की गड़गड़ाहट और वज्रपात एवं उल्कापात हो तो राजा का नाश या राजाओं में परस्पर युद्ध होता है। यदि पन्द्रह या साढ़े सात दिन तक दिन में सूर्य पर तथा रात में चन्द्रमा पर परिवेष (मण्डल) हो अथवा उदय और अस्त-समय में वह अत्यन्त रक्तवर्ण का दिखाई दे, तो राजा का परिवर्तन होता है ॥१५-१६॥ उदय या अस्त के समय यदि सूर्य शस्त्र के समान आकार वाले या गदहे या ऊँट आदि के सदृश अशुभ आकार वाले मेघ से खण्डित-सा प्रतीत हो तो राजाओं में भयायक युद्ध होता है ॥१७॥

चन्द्रश्रृङ्गोन्नति-फल——मीन और मेष राशि में यदि (द्वितीया तिथि को उदयकाल में) चन्द्रमा का दक्षिण श्रृंग उन्नत हो तो वह शुभप्रद होता है। मिथुन और मकर में यदि उत्तर श्रृङ्ग उन्नत हो तो शुभ होता है कुम्भ और वृष में यदि दोनों श्रृंग सम हो तो शुभ है। कर्क और धनु में बाण के सदृश हो तो शुभ वृश्चिक और सिंह में भी धनुष सदृश हो तो शुभ है तथा तुला और कन्या में यदि चन्द्रमा का श्रृंग शूल के सदृश दीख पड़े तो शुभ फल समझना चाहिए। इससे विपरीत स्थिति में चन्द्रमा का उदय हो तो उस मास में पृथ्वी पर दुर्भिक्ष, राजाओं में परस्पर विरोध आदि अशुभ फल होते हैं ॥१८-१९½॥

पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, और मूल ज्येष्ठा——इन नक्षत्रों में चन्द्रमा यदि दक्षिण दिशा में हो तो जलचर, वन पर और सर्प का नाश तथा अग्नि का भय होता है। विशाखा और अनुराधा में यदि दक्षिण भाग में हो तो पापफल देने वाला होता है। मघा और विशाखा में यदि चन्द्रमा मध्यभाग में होकर चले तो भी शुभ प्रद होता है। रेवती से मृगशिरा पर्यन्त ६ नक्षत्र 'अनागत' आर्द्रा से अनुराधा पर्यन्त बारह नक्षत्र 'मध्ययोगी' और वासव (ज्येष्ठा) से नौ नक्षत्र 'गतयोगी' हैं। इनमें भी चन्द्रमा उत्तरभाग में रहने पर शुभप्रद होता है ॥२०-२२½॥

भरणी, ज्येष्ठा, अश्लेषा, आर्द्रा, शतभिषा और स्वाती—ये अर्धभोग (४०० कला), ध्रुव संज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी), पुनर्वसु और विशाखा—ये सार्धेक द्योढ़ा (१२०० कला) भोग करने वाले हैं तथा अन्य नक्षत्र सम (पूर्ण) भोग (८०० कला) हैं। साधारणतया चन्द्रमा की दक्षिण श्रृङ्गोन्नति अशुभ और उत्तर श्रृङ्गोन्नति शुभ-

॥२५॥
कार्यहानिः कार्यवृद्धिर्हानिवृंद्धिर्यथाक्रमम् । सुभिक्षकृद्विशालेंदुरविशालोघनाशनः ॥२६॥
अधोमुखे शस्त्रभयंकलहो दंडसन्निभे । कुजाद्यैर्निहते शृंगे मंडले वा यथाक्रमम् ॥२७॥
क्षेमान्नं वृष्टिभूपालजननाशः प्रजायते । सत्याष्टनवमर्क्षेषु सोदयाद्विक्रमे कुजे ॥२८॥
तद्वक्रमुष्णसंज्ञं स्यात्प्रजापीडाग्निसंभ्रमः । दशमैकादशे ऋक्षे द्वादशर्वाप्रतीपयः ॥२९॥
कूक्रं वक्रमुखं ज्ञेयं सस्यवृष्टिविनाशकृत् । कुजे त्रयोदशे ऋक्षे वक्रिते वा चतुर्दशे ॥३०॥
व्यालास्यवक्रं तत्तस्मिन्सस्यवृष्टिविनाशनम् । पंचदशे षोडशर्क्षे वक्रे स्याद्रुधिराननम् ॥३१॥
दुर्भिक्षं क्षुद्भयं रोगान्करोति क्षितिनंदनः । अष्टादशे सप्तदशे तद्वक्रं मुशलाह्वयम् ॥३२॥
दुर्भिक्षं धनधान्यादिनाशनं भयकृत्सदा । फाल्गुन्योरुदितो भौमो वैश्वदेवे प्रतीपगः ॥३३॥
अस्तगश्चतुरास्यार्क्षे लोकत्रयविनाशकृत् । उदितः श्रवणे पुष्ये वक्रगोधनहानिदः ॥३४॥
यद्दिग्गोऽभ्युदितो भौमस्तद्दिग्भूपभयप्रदः । मघामध्यगतो भौमस्तत्र चैव प्रतीपगः ॥३५॥
अवृष्टिशस्त्रभयदः पीड्य देवा नृपांतकृत् । पितृद्विदैवधातॄणां भिद्यंते गंडतारकाः ॥३६॥
दुर्भिक्षं मरणं रोगं करोति क्षितिजस्तदा । त्रिषूत्तरासु रोहिण्यां नैर्ऋते श्रवणे मृगे ॥३७॥
अवृष्टिदश्चरन्भौमो दक्षिणेरोहिणीस्थितः । भूमिजः सर्वधिष्ण्यानामुदगामी शुभप्रदः

प्रद है। तिथि के अनुसार चन्द्रमा में यदि शुक्लता में (कमी) हो तो प्रजा के कार्यों में हानि और शुक्लता में वृद्धि (अधिकता) हो तो प्रजाजन की वृद्धि होती है। समता में समता होती है। यदि चन्द्रमा का बिम्ब मध्यम मान से विशाल (बड़ा) देखने में आये तो सुभिक्षकारक और छोटा दीख पड़े तो दुर्भिक्षकारक होता है ॥२३-२५॥ चन्द्रमा का शृंग अधोमुख हो तो शस्त्र का भय लाता है। दण्डाकार हो तो (राजा-प्रजा में) कलह होता है। चन्द्रमा का शृंग अथवा बिम्ब मंगलादि ग्रहों (मंगल) बुध, गुरु, शुक्र तथा शनि) से आहत दीख पड़े तो क्रमशः क्षेम, अन्नादि, वर्षा, राजा और प्रजा का नाश होता है ॥२६½॥

भौम-चार-फल—जिस नक्षत्र में मंगल का उदय हो, उससे सातवें, आठवें या नवें नक्षत्र में वक्र हो तो वह 'उष्ण' नामक वक्र होता है। उसमें प्रजा को पीड़ा और अग्नि का भय होता है। यदि उदय के नक्षत्र से दसवें, ग्यारहवें तथा बारहवें नक्षत्र में मंगल वक्र हो तो वह 'अश्वमुख' नामक वक्र होता है। उसमें अन्न और वर्षा का नाश होता है। यदि तेरहवें या चौदहवें नक्षत्र में वक्र हो तो 'व्यालमुख' वक्र कहलाता है। उसमें भी अन्न और वर्षा का नाश होता है। पन्द्रहवें या सोलहवें नक्षत्र में वक्र हो तो 'रुधिरानन' वक्र कहलाता है। उसमें मंगल दुर्भिक्ष, क्षुधा तथा रोग को बढ़ाता है। १७ वें या १८ वें नक्षत्र में वक्र हो तो वह 'मुसल' नामक वक्र होता है। उससे धन-धान्य का नाश तथा दुर्भिक्ष का भय होता है। यदि मंगल पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उदित होकर उत्तराषाढ़ में वक्र हो तथा रोहिणी में अस्त हो तो तीनों लोकों के लिए नाशकारी होता है। यदि मंगल श्रवण में उदित होकर पुष्य में वक्रगति हो तो धन की हानि करने वाला होता है ॥२७-३३॥

मंगल जिस दिशा में उदित होता है, उस दिशा के राजा के लिए भयकारक होता है। यदि मघा नक्षत्र के मध्य होकर चलता हुआ मंगल उसी में वक्र हो जाय तो अवर्षण और शस्त्र का भय लाता, है तथा राजा के लिए विनाशकारी होता है। यदि मंगल मघा, विशाखा या रोहिणी के योगतारा का भेदन करके चले तो दुर्भिक्ष मरण तथा रोग लाने वाला होता है। उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, रोहिणी, मूल, श्रवण और मृगशिरा—इन नक्षत्रों के बीच में तथा रोहिणी के दक्षिण होकर मंगल चले तो अनावृष्टिकारक होता है। मंगल सब नक्षत्रों के उत्तर होकर चले तो शुभप्रद है और दक्षिण होकर चले तो अशुभ फल और मनुष्यों में विरोध होता है ॥३४-३७½॥

यास्यगोऽनिष्टफलदो भवेद्भेदकरो नृणाम् । विनोत्पातेन शशिजः कदाचिन्नोदयं व्रजेत् ॥३८॥
अनावृष्टाग्निभयकृदनर्थनृपविग्रहः । वसुवैष्णवविश्वेंदुधातृभेषु चरन्बुधः ॥३९॥
भिनत्ति यदि तत्तारां बाधावृष्टिभयंकरः । आर्द्रादिपितृभांतेषु दृश्यते यदि चंद्रजः ॥४०॥
तदा दुर्भिक्षकलहरोगानावृष्टिभीतिकृत् । हस्तादिषट्सु तारासु विचरन्निदुनंदनः ॥४१॥
क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं कुरुते रोगनाशनम् । अहिबुंध्न्यार्यमाग्नेययाम्यभेषु चरन्बुधः ॥४२॥
भिषक्तुरंगवाणिज्यवृत्तीनां नाशकृत्तदा । पूर्वात्रयेचरन्सौम्यो योगं तारां भिनत्ति चेत् ॥४३॥
क्षुच्छस्त्रानलचौरेभ्यो भयदः प्राणिनां तदा । याम्याग्निधातृवायव्यधिष्ण्येषु प्राकृता गतिः ॥४४॥
रौद्रेन्दुसार्पपित्र्येषु ज्ञेया मिश्राह्वया गतिः । भान्वार्यमेज्यादितिषु संक्षिप्ता गतिरुच्यते ॥४५॥
गतिस्तीक्ष्णाजचरणाहिबुंध्न्यभाश्विभेषु या । योगांतिकातिविश्वांबुमूलमत्स्यैन्यजस्य च ॥४६॥
घोरा गतिर्हरित्वाष्ट्रवसुवारुणभेषु च । इंद्राग्निमित्रमार्तंडभेषु पापाह्वया गतिः ॥४७॥
प्राकृताद्यासु गतिषु ह्युदितोऽस्तमितोपि वा । यावंत्येव दिनान्येष दृश्यस्तावत्यदृश्यगः ॥४८॥
चत्वारिंशत्क्रमात्त्रिंशद्द्वाविंदू भूसुतो नव । पंचदशैकादशभिर्दिवसैः शशिनंदनः ॥४९॥
प्राकृतायां गतः सौम्यः क्षेमारोग्यसुभिक्षकृत् । मिश्रसंक्षिप्तयोर्मध्ये फलदोऽन्यासु वृष्टिदः ॥५०॥

बुध-चार-फल—यदि कदाचित् आँधी, मेघ आदि उत्पात न होने पर (शुद्ध आकाश में) भी बुध का उदय देखने में न आये तो अनावृष्टि, अग्निभय, अनर्थ और राजाओं में युद्ध होता है। धनिष्ठा, श्रवण, उत्तराषाढ़, मृगशिरा और रोहिणी में चलता हुआ बुध यदि उन नक्षत्रों के योगताराओं का भेदन करे तो वह लोक में बाधा और अनावृष्टि आदि और भय उत्पन्न करता है। यदि आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा और मघा—इन नक्षत्रों में बुध दृश्य हो तो दुर्भिक्ष, कलह, रोग तथा अनावृष्टि आदि का भय उपस्थित करता है। हस्त से छह (हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा तथा ज्येष्ठा) नक्षत्रों में बुध के रहने से लोक में कल्याण, सुभिक्ष तथा आरोग्य होता है। उत्तरभाद्रपद, उत्तरा फाल्गुनी, कृत्तिका और भरणी में विचरने वाला बुध वैद्य, घोड़े और व्यापारियों का नाश करता है। पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाषाढ़ और पूर्वभाद्रपद में विचरता हुआ बुध यदि इन नक्षत्रों के योग ताराओं का भेदन करे तो क्षुधा, शस्त्र, अग्नि और चोरों से प्राणियों को भय प्राप्त होता है ॥३८-४३½॥

भरणी, कृत्तिका, रोहिणी और स्वाती—इन नक्षत्रों में बुध की गति 'प्राकृतिकी' मानी जाती है। आर्द्रा, मृगशिरा, आश्लेषा और मघा—इन नक्षत्रों में बुध की गति 'मिश्रा' मानी जाती है। पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, पुष्य पुनर्वसु—इनमें बुध की 'संक्षिप्ता' गति कही गई है। पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद, रेवती और अश्विनी—इनमें बुध की गति तीक्ष्णा' मानी जाती है। उत्तराषाढ़, पूर्वाषाढ़, और मूल में उनकी (योगान्तिका' गति मानी गई है। श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा और शतभिषा में 'घोरा' गति और विशाखा, अनुराधा तथा हस्त—इन नक्षत्रों में बुध की 'पाप' संज्ञक गति होती है। इन प्राकृत आदि सात प्रकार की गतियों में उदित होने पर जितने दिन तक बुध दृश्य रहता है, उतने ही दिन में उनमें अस्त होने पर अदृश्य रहता है। उन दिनों की संख्या क्रम से ४०, ३०, २२, १८, ९, १५ और ११ है। बुध जब प्राकृत गति में रहता है, तब संसार में कल्याण, आरोग्य और सुभिक्ष करता है। मिश्र और संक्षिप्त गति में मध्यम फल देता है तथा अन्य गतियों में अनावृष्टि

वैशाखे श्रावणे पौषे आषाढेऽभ्युदितो बुधः । जगतां पापफलदस्त्वितरेषु शुभप्रदः ॥५१॥
इषोर्जमासयोः शस्त्रदुर्भिक्षाग्निभयप्रदः । उदितश्चंद्रजः श्रेष्ठो रजतस्फटिकोपमः ॥५२॥
द्विभाटजोदिमास्तस्य पंचमैकादशास्त्रिभात् । यन्नक्षत्रादितो जीवस्तन्नक्षत्राख्यवत्सरः ॥५३॥
कार्तिको मार्गशीर्षश्च नृणां दुष्टफलप्रदः । शुभप्रदौ पौषमाघौ मध्यमौ फाल्गुनो मधुः ॥५४॥ ।

माधवः शुभदो ज्येष्ठो नृणां मध्यफलप्रदः ॥५५॥
शुचिर्मध्यो नभः श्रेष्ठो भाद्रः श्रेष्ठः क्वचिन्नरः

अतिश्रेष्ठ इषः प्रोक्तो मासानां फलमीदृशम् । सौम्ये भागे चरन्भानां क्षेमारोग्यसुभिक्षकृत् ॥५६॥
विपरीतो गुरुर्याम्ये मध्ये चरसि मध्यमम् । पीताग्निश्यामहरितरक्तवर्णोगिराः क्रमात् ॥५७॥
व्याध्यग्निचौरशस्त्रास्त्रभयदः प्राणिनां भवेत् । अनावृष्टि धूम्रनिभः करोति सुरपूजितः ॥५८॥
दिवादृष्टो नृपव्याध्यामयं वा राष्ट्रनाशनम् । संवत्सरशरीरं स्यात्कृत्तिका रोहिणी तथा ॥५९॥
नाभिस्त्वाषाढयुगलमार्द्रा हृत्कुसुमं मघा । दुर्भिक्षाग्निमरुद्भीतिः शरीरे क्रूरपीडिते ॥६०॥
नाभ्यां क्षुत्तृड्भयं पुष्ये सम्यङ्मूलफलक्षयः । हृदयेशस्य निधनं शुभं स्यात्संयुतैः शुभैः ॥६१॥

कारक होता है । वैशाख, श्रावण , पौष और आषाढ में उदित होने पर बुध पाप रूप फल देता है और अन्य मासों में उदित होने पर वह शुभ फल देता है । आश्विन और कार्तिक में बुध का उदय हो तो शस्त्र, दुर्भिक्ष और अग्नि का भय उत्पन्न करता है । यदि उदित हुए बुध की कान्ति चाँदी अथवा स्फटिक के समान स्वच्छ हो तो वह श्रेष्ठ फल देता है ॥४८-५२॥

बृहस्पति-चार-फल—कृत्तिका आदि दो नक्षत्रों के आश्रय से कार्तिक आदि मास होते हैं; परन्तु अन्तिम (आश्विन), पञ्चम (फाल्गुन) और एकादश (भाद्रपद)—ये तीन नक्षत्रों से पूर्ण होते हैं । इसी प्रकार बृहस्पति का जिस नक्षत्र में उदय होता है, उस नक्षत्र से (मध्यम के अनुसार) संवत्सर का नाम होता हैं । उन संवत्सरों में कार्तिक और मार्गशीर्ष नामक संवत्सर प्राणियों के लिए अशुभ होते हैं । पौष और माघ नामक संवत्सर शुभ फल देतेहैं । फाल्गुन और चैत्र नामक संवत्सर मध्यम (शुभ-अशुभ दोनों) फल देते हैं । वैशाख शुभप्रद और ज्येष्ठ मध्यम फल देने वाला होता है । आषाढ़ मध्यम और श्रावण उत्तम होता है तथा भाद्रपद भी कभी श्रेष्ठ होता है और कभी नहीं होता; परन्तु आश्विन संवत्सर प्रजा के लिए अत्यन्त श्रेष्ठ होता है । मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार संवत्सरों का फल होता है ॥५३-५५½॥

बृहस्पति जब नक्षत्रों के उत्तर होकर चलता है, तब संसार में कल्याण, आरोग्य तथा सुभिक्ष करनेवाला होता है । जब नक्षत्रों के दक्षिण होकर चलता है, तब विपरीत परिणाम (अशुभ, रोगवृद्धि तथा दुर्भिक्ष) उपस्थित करता है । तथा जब मध्य होकर चलता है, उस समय मध्यम फल प्रस्तुत करता है । गुरु का बिम्ब यदि पीतवर्ण, अग्निसदृश, श्याम, हरित और लाल हो तो प्रजामें क्रमशः व्याधि, अग्नि, चोर, शस्त्र और अस्त्र का भय उपस्थित करता है । यदि गुरु का वर्ण धुएं के समान हो तो वह अनावृष्टि कारक होता है । यदि गुरु दिन में (प्रातः सायं छोड़कर) दृश्य हो तो राजा का नाश, रोगभय अथवा राष्ट्र का विनाश होता है । कृत्तिका तथा रोहिणी ये संवत्सर के शरीर हैं । पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ ये दोनों नाभि हैं, आर्द्रा हृदय और मघा संवत्सर का पुष्प हैं । यदि शरीर पापग्रह से पीडित हो तो दुर्भिक्ष, अग्नि और वायु का भय उपस्थित होता है । नाभि पापग्रह से युक्त हो तो क्षुधा और तृषा से पीड़ा होती है । पुष्य पापग्रह से आक्रान्त हो तो मूल और फलों का क्षय होता है। यदि हृदय-नक्षत्र पापग्रह से पीडित हो तो अन्नादि का नाश होता है । शरीर आदि शुभग्रह से संयुक्त हों तो

शस्यवृद्धिः प्रजारोग्यं युद्धं जीवात्ययवर्षणम् । ईति द्विजातिमध्यां तु गोनृपस्त्रीमुखं महत् ॥६२॥
निःस्वनावृष्टिफणिभिवृ ष्टिः स्वास्थ्यं महोत्सवः । महार्घमपि संपत्तिर्देशनाशोऽतिवर्षणम् ॥६३॥
अवैरं रोगमभयं रोगभीः सस्यवर्षणे । रोगो धान्यं नभोऽदृष्टिमघाद्यृक्षगते गुरौ ॥६४॥
सौम्यमध्यमयाम्येषु मार्गेषु वीथिकात्रयम् । शुक्रस्य दस्रभाज्ज्ञेयं पर्यायैश्च त्रिभिस्त्रिभिः ॥६५॥
नागेभैरावताश्चैव वृषभोष्ट्रखराह्वयाः । मृगाजदहनाख्याः स्युर्याम्यांता वीथयो नव ॥६६॥
सौम्यमार्गे च तिसृषु चरन्वीथिषु भार्गवः । धान्यार्थवृष्टिसस्यानां परिपूर्ति करोति हि ॥६७॥
मध्यमार्गे च तिसृषु सर्वमप्यधमं फलम् । पूर्वस्यां दिशि मेघस्तु शुभदः पितृपंचके ॥६८॥
स्वातित्रये पश्चिमायां तस्यां शुक्रस्तथाविधः । विपरीते त्वनावृष्टिवृ ष्टिकृद्बुधसंयुतः ॥६९॥
कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्याममायां च यदा सितः । उदयास्तमनं याति तदा जलमयी मही ॥७०॥
मिथः सप्तमराशिस्थौ पश्चात्प्राग्वीथिसंस्थितौ । गुरुशुक्रावनावृष्टिदुर्भिक्षसमरप्रदौ ॥७१॥
कुजज्ञजीवरविजाः शुक्रस्याग्रेसरा यदि । युद्धातिवायुदु र्भिक्षजलनाशकरा मताः ॥७२॥
जलमित्रार्यमाहींद्रनक्षत्रेषु सुभिक्षकृत् । सच्छस्त्रावृष्टिदो मूलेऽहिर्बु ध्न्यांत्यभयोर्भयम् ॥७३॥

सुभिक्ष और कल्याणादि होते हैं ॥५६-६१॥ यदि मघा आदि नक्षत्रों में बृहस्पति हो तो वह क्रमशः शस्य-वृद्धि, प्रजा में आरोग्य, युद्ध, अनावृष्टि, द्विजातियों को पीड़ा, गौओं को सुख, राजाओं को सुख, स्त्री समाज को सुख, वायु का अवरोध, अनावृष्टि, सर्पभय, सुवृष्टि, स्वास्थ्य, उत्सववृद्धि, महार्घ, सम्पत्ति की वृद्धि, देश का नाश, अतिवृष्टि, निर्वैरता, रोग, अभय, रोगभय, अन्न की वृद्धि, वर्षा, रोग की वृद्धि, धान्य की वृद्धि और अनावृष्टि रूप फल देता है ॥६२-६४॥

शुक्र-चार-फल—शुक्र के तीन मार्ग हैं—सौम्य (उत्तर), मध्य और याम्य (दक्षिण)। इनमें से प्रत्येक में तीन-तीन वीथियाँ हैं और एक-एक वीथी में बारी-बारी से तीन-तीन नक्षत्र आते हैं। इन नक्षत्रों को अश्विनी से आरंभ करके जानना चाहिए। इस प्रकार उत्तर से दक्षिण तक शुक्र के मार्ग में क्रमशः नाग, इभ, ऐरावत, वृष, उष्ट्र, खर, मृग, अज तथा दहन—ये नौ वीथियाँ हैं ॥६५-६६॥ उत्तरमार्ग की तीन वीथियों में विचरण करने वाला शुक्र धान्य, धन, वृष्टि और शस्य—इन सब वस्तुओं को परिपूर्ण करता है, मध्यमार्ग की तीन वीथियों में शुक्र के जाने से सब अशुभ ही फल प्राप्त होते हैं। मघा से पाँच नक्षत्रों में शुक्र के जाने पर पूर्व दिशा में उठा हुआ मेघ सुवृष्टिकारक तथा शुभप्रद होता है। स्वाती से तीन नक्षत्र तक जब शुक्र रहता है, तब पश्चिम दिशा (देश) में मेघ सुवृष्टिकारक और शुभदायक होता है। शेष सब नक्षत्रों में उसका फल विपरीत (अनावृष्टि और दुर्भिक्ष करने वाला) होता है। शुक्र जब बुध के साथ रहता है तो सुवृष्टिकारक होता है। कृष्णपक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी और अमावस्या में यदि शुक्र का उदय या अस्त हो तो पृथ्वी जल से परिपूर्ण होती है। गुरु और शुक्र परस्पर सप्तम राशि में हों तथा एक पूर्व वीथी में और दूसरा पश्चिम वीथी में विद्यमान हो तो वे दोनों देश में अनावृष्टि तथा दुर्भिक्षकारक और राजाओं में परस्पर युद्धप्रद होते हैं। मंगल, बुध, गुरु और शनि यदि शुक्र से आगे होते हैं तो युद्ध, अतिवायु, दुर्भिक्ष और अनावृष्टि करने वाले होते हैं ॥६७-७२॥ पूर्वाषाढ़, अनुराधा, उत्तरा फाल्गुनी, अश्लेषा, ज्येष्ठा—इन नक्षत्रों में शुक्र हो तो सुभिक्षकारक होता है। मूल में हो तो शस्त्रभय और अनावृष्टि, उत्तरभाद्रपद और रेवती में शुक्र के रहने पर भय प्राप्त होता है ॥७३॥

श्रवणानिलहस्तार्द्राभरणीभाग्यभेषु च । चरञ्छनैश्चरो नृणां सुभिक्षारोग्यसस्यकृत् ॥७४॥
मुखे चैकं गुदे द्वे च त्रीणि के नयने द्वयम् । हृदये पञ्च ऋक्षाणि वामहस्ते चतुष्टयम् ॥७५॥
वामपादे तथा त्रीणि दक्षिणे त्रीणि भानि च । चत्वारि दक्षिणे हस्ते जन्मभाद्रविजस्थितिः ॥७६॥
। रोगो लाभस्तथा हानिर्लाभः सौख्यं च बंधनम् ॥७७॥
आयासः श्रेष्ठयात्रा च धनलाभः क्रमात्फलम् ॥७८॥
बहुधारविजस्त्वेतद्वक्रगः फलमीदृशम् । करोत्येव समः साम्यं शीघ्रगेषूत्क्रमात्फलम् ॥७९॥
विष्णुचक्रोत्कृत्तशिराः पङ्गुः पीयूषपानतः । अमृत्युतां गतस्तत्र खेटत्वे परिकल्पितः ॥८०॥
वरेण धातुरर्केन्दू तुदते सर्वपर्वणि । विक्षेपावनतेर्वशाद्राहुर्दूरगतस्तयोः ॥८१॥
षण्मासवृद्धया ग्रहणं शोधयेद्रविचंद्रयोः । पर्वेशास्तु तथा सप्तदेवा रव्यादितः क्रमात् ॥८२॥
ब्रह्मेन्द्विद्रधनाधीशवरुणाग्नियमाह्वयाः । पशुसस्यद्विजातीनां वृद्धिर्ब्राह्मे तु पर्वणि ॥८३॥
तद्वदेव फलं सौम्ये श्लेष्मपोडा च पर्वणि । विरोधो भूभुजां दुःखमैंद्रे सस्यविनाशनम् ॥८४॥
धनिनां धनहानिः स्यात्कौबेरं धान्यवर्धनम् । नृपाणामशिवं क्षेममितरेषां च वारुणे ॥८५॥
प्रवर्षणं सस्यवृद्धिः क्षेमं हौताशपर्वणि । अनावृष्टिः सस्यहानिर्दुर्भिक्षं याम्यपर्वणि

शनि-चार-फल—श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी और पूर्वा फाल्गुनी—इन नक्षत्रों में विचरता शनि मनुष्यों के लिए सुभिक्ष, आरोग्य तथा शस्य (फसल) की वृद्धि करता है ।।७४।। जन्म नक्षत्र से प्रारम्भ करके मनुष्याकृति शनि-चक्र के मुख में एक, गुदा में दो, सिर में तीन, नेत्रों में दो, हृदय में पाँच, बायें हाथ में चार, बायें पैर में तोन, दक्षिण पाद में तीन तथा दक्षिण हाथ में चार—इस तरह नक्षत्रों की स्थापना करे। शनि का वर्तमान नक्षत्र जिस अंग में पड़े, उसका फल निम्नलिखित रूप से जानना चाहिए। शनि नक्षत्र मुख में हो तो रोग, गुदा में हो तो लाभ, सिर में हो तो हानि, नेत्र में हो तो लाभ, हृदय में हो तो सुख, बायें हाथ में हो तो बन्धन, बायें पैर में हो तो परिश्रम, दाहिने पैर में हो तो श्रेष्ठ यात्रा और दाहिने हाथ हो तो धन-लाभ होता है। इस प्रकार क्रमशः फल कहे गये हैं ।।७५-७७।। बहुधा वक्रगामी होने पर शनि इन फलों की प्राप्ति कराता ही है। यदि वह सम मार्गपर हो तो फल भी मध्यम होता है और यदि वह शीघ्रगति हो तो उत्तम फल प्राप्त होता है ।।७८।।

राहु-चार-फल—भगवान् विष्णु के द्वारा चक्र से राहु का मस्तक काट दिये जाने पर भी अमृत पी लेने के कारण उसकी मृत्यु नहीं हुई; अतः उसे ग्रह के पद पर प्रतिष्ठित कर लिया गया ।।७९।। वह ब्रह्मा के वर से सम्पूर्ण पर्वों (पूर्णिमा और अमावास्या) के समय चन्द्रमा और सूर्य को पीड़ा देता है; किन्तु विक्षेप तथा 'अवनति' अधिक होने के कारण वह उन दोनों से दूर ही रहता है ।।८०।। एक सूर्यग्रहण के बाद दूसरे सूर्यग्रहण का तथा एक चन्द्रग्रहण के बाद दूसरे चन्द्रग्रहण का विचार छह मास पर पुनः कर लेना चाहिए। प्रति छह मास पर क्रमशः ब्रह्मादि सात देवता पर्वेश (ग्रहण के अधिपति) होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—ब्रह्मा, चन्द्रमा, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि तथा यम। ब्राह्मपर्व में ग्रहण होने पर पशु, धान्य और द्विजों की वृद्धि होती है ।।८१-८२।। चन्द्र-पर्व में ग्रहण हो तो भी ऐसा ही फल होता है; किन्तु लोगों को कफ से पीड़ा होती है। इन्द्रपर्व में ग्रहण होने पर राजाओं में विरोध, जगत् में दुःख तथा कृषि और धन का नाश होता है। कुबेर के पर्व में ग्रहण होने पर धान्य की वृद्धि होती है वारुणपर्व में ग्रहण होने पर राजाओं का अकल्याण और प्रजा का कल्याण होता है ।।८३-८४।। अग्निपर्व में ग्रहण होने पर वृष्टि, धान्यवृद्धि तथा कल्याण की प्राप्ति होती है और यमपर्व में ग्रहण होने पर पर वर्षा का अभाव, खेतो की हानि तथा दुर्भिक्ष रूप फल प्राप्त होते हैं ।।८५।। वेलाहीन समय में अर्थात्

वेलाहीने सस्यहानिर्नृपाणां दारुणं रणम् । अतिवेले पुष्पहानिर्भयं सस्यविनाशनम् ॥८६॥
एकस्मिन्नेव मासे तु चंद्रार्कग्रहणं यदा । विरोधो धरणीशानामर्थवृष्टिविनाशनम् ॥८७॥
ग्रस्तोदितावस्तमितौ नृपधान्यविनाशदौ । सर्वग्रस्ताविनेंदू तु क्षुद्व्याध्यग्निभयप्रदौ ॥८८॥
सौम्यायने क्षत्रविप्रानितरां हन्ति दक्षिणे । द्विजातींश्चक्रमाद्धंति राहुर्दृष्टोदगादितः ॥८९॥
तथैव ग्रासभेदाः स्युर्मोक्षभेदास्तथा दश । नो शक्ता लक्षितुं देवाः किं पुनः प्राकृता जनाः ॥९०॥
आनीय खेटान्गणितांस्तेषां चारं विचिंतयेत् । शुभाशुभान्यैः कालस्य ग्राह्यामो हि लक्षणम् ॥९१॥
तस्मादन्वेषणीयं तत्कालज्ञानाय धीमता । उत्पातरूपाः केतूनामुदयास्तमया नृणाम् ॥९२॥
दिव्यांतरिक्षा भौमास्ते शुभाशुभफलप्रदाः । यज्ञध्वजास्त्रभवनरक्षवृद्धिगजोपमाः ॥९३॥
स्तम्भशूलांकुशाकारा आंतरिक्षाः प्रकीर्तिताः । नक्षत्रसंस्थिता दिव्या भौमा ये भूमिसंस्थिताः ॥९४॥
एकोऽपि भिन्नरूपः स्याज्जंतूनामशुभाय वै । यावन्तो दिवसान्केतुर्दृश्यते विविधात्मकः ॥९५॥
तावन्मासैः फलं यच्छत्यसौ सार्व्यवत्सरैः । ये दिव्याः केतवस्तेऽपि शश्वज्जीवफलप्रदाः ॥९६॥

वेला से पहले ग्रहण हो तो खेती को हानि तथा राजाओं को दारुण भय या युद्ध होता है । और 'अतिवेल' काल में अर्थात् वेला बिताकर ग्रहण हो तो फूलों की हानि भय और कृषि का नाश होता है ॥८६॥ जब एक ही मास में चन्द्रमा सूर्य—दोनों का ग्रहण हो तो राजाओं में विरोध होता है तथा धन और वृष्टि का विनाश होता है ॥८७॥ यदि सूर्य और चन्द्र ग्रस्त हुए ही उदित या अस्त हों तो राजा और धान्य का विनाश होता है । ग्रहण लगे हुए चन्द्रमा और सूर्य का सर्वग्रास ग्रहण हो तो वे भुखमरी, रोग तथा अग्नि का भय उपस्थित करने वाले होते हैं ॥८८॥ उत्तरायण में ग्रहण हो तो ब्राह्मणों और क्षत्रियों को तथा दक्षिणायन में ग्रहण होने पर अन्य वर्ण के लोगों को हानि पहुँचती है । सूर्य या चन्द्रमा के बिम्ब के उत्तर, पूर्व आदि भाग में यदि राहु का दर्शन हो (ग्रहण का स्पर्श दिखे) तो वह क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को हानि पहुँचाता है ॥८९॥

इसी तरह ग्रहण के समय ग्रास के और मोक्ष के भी दस-दस भेद होते हैं जिनको सूक्ष्म गति को देवता भी नहीं जान सकते फिर साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या है ॥९०॥ गणित द्वारा ग्रहों को लाकर उनके 'चार' (गतिमान) स्पर्श और मोक्षकाल की स्थिति) पर विचार करना चाहिए । जिससे उन ग्रहों द्वारा ग्रहणकाल के शुभ और अशुभ लक्षण (फल) को हम देख और जान सकें ॥९१॥ अतः बुद्धिमान्—पुरुष को चाहिए कि उस समय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनुसन्धान करे । धूम-केतु आदि तारों का उदय और अस्त मनुष्यों के लिए उत्पातरूप होता है ॥९२॥ वे उत्पात दिव्य, भौम और आन्तरिक्ष भेद से तीन प्रकार के हैं । वे शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के फल देने वाले हैं । आकाश में यज्ञ की ध्वजा, अस्त्र-शस्त्र, भवन और बड़े हाथी के सदृश तथा खंभा, त्रिशूल और अंकुश—इन वस्तुओं के समान जो केतु दिखाई देते हैं, 'अन्तरिक्ष' उत्पात कहलाते हैं । साधारण तारा के सदृश उदित होकर किसी नक्षत्र के साथ केतु हो तो 'दिव्य' उत्पात कहा गया है । भूलोक से सम्बन्ध रखने वाले (भूकम्प आदि) उत्पातों को 'भौम' उत्पात कहते हैं ॥९३-९४॥ केतु तारा एक होकर भी प्राणियों को अशुभ फल देने के लिए भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है । जितने दिनों तक आकाश में विविधरूपधारी केतु देखने में आता है, उतने ही मास या सौर वर्षों तक वह अपना शुभाशुभ फल देता है । जो दिव्य केतु हैं, वे सदा प्राणियों को विविध फल देते हैं ॥९५-९६॥

ह्रस्वः स्निग्धः सुप्रसन्नः श्वेतकेतुः सुवृष्टिकृत् । क्षिप्रादस्तमयं याति दीर्घकेतुरवृष्टिकृत् ॥९७॥
अनिष्टदो धूमकेतुः शक्रचापसमप्रभः । द्वित्रिचतुःशूलरूपः स च राज्यांतकृन्मतः ॥९८॥
॥९९॥
मणिहारस्तु वर्णाभा दीप्तिमंतोऽर्कसूनवः । केतवश्चोदिताः पूर्वापरयोर्नृपहानिदाः
किंशुकबिंबक्षतजशुकतुंडादिसन्निभाः । हुताशनोदितास्तेऽपि केतवः फलदाः स्मृताः ॥१००॥
भूसुता जलतैलाभा वर्तुलाः क्षुद्भयप्रदाः । सुभिक्षक्षेमदाः श्वेतकेतवः सोमसूनवः ॥१०१॥
पितामहात्मजः केतुस्त्रिवर्णस्त्रिदशान्वितः । ब्रह्मदंडाद्धूमकेतुः प्रजानामंतकृन्मतः ॥१०२॥
ऐशान्यां भार्गवसुताः श्वेतरूपास्त्वनिष्टदाः । अनिष्टदाः पंगुसुता विशिखाः कनकाह्वयाः ॥१०३॥
विकचाख्या गुरुसुता वेष्टा याम्ये स्थिता अपि । सूक्ष्माः शुक्ला बुधसुताश्चौररोगभयप्रदाः ॥१०४॥
।
कुजात्मजाः कुंकुमाख्या रक्ताः शूलास्त्वनिष्टदाः ॥१०५॥
अग्निजा विश्वरूपाख्या अग्निवर्णाः सुखप्रदाः ॥१०६॥
अरुणाः श्यामलाकारा अर्कपुत्राश्च पापदाः । शुक्रजा ऋक्षसदृशाः केतवः शुभदायकाः ॥१०७॥
कृत्तिकासु भवो धूमकेतुर्नूनं प्रजाक्षयः । प्रासादवृक्षशैलेषु जातो राज्ञां विनाशकृत् ॥१०८॥
सुभिक्षकृत्कौमुदाख्यः केतुः कुमुदसन्निभः । आवर्तकेतुसंध्यायां सशिरो नेष्टदायकः

ह्रस्व, चिकना और प्रसन्न (स्वच्छ) श्वेत रंग का केतु सुवृष्टि देता है। शीघ्र अस्त होने वाला विशाल केतु अवृष्टि देता है।९७॥ इन्द्रधनुष के समान कान्ति वाला धूमकेतु तारा अनिष्टकारी होता है। दो, तीन या चार रूपों में प्रकट त्रिशूल के समान आकार वाला केतु राष्ट्र का विनाशक होता है ॥९८॥ पूर्व तथा पश्चिम दिशा में सूर्य सम्बन्धी मणि, हार एवं सुवर्ण के समान देदीप्यमान दिखाई देने वाले केतु उन दिशाओं के राजाओं की हानि करता है ॥९९॥ अग्निकोण में उदित होने वाला पलाश, बिम्बफल, रक्त और तोते की चोंच आदि के समान वर्ण का केतु शुभ फल देने वाला होता है ॥१००॥ भूमिसम्बन्धी केतु वर्तुल एवं उनकी कान्ति जल एवं तेल के समान होती है। वे भुखमरी का भय देते हैं। चन्द्रजनित केतुओं का वर्ण श्वेत होता है। वे सुभिक्ष और कल्याणप्रद होते हैं ॥१०१॥ ब्रह्मदण्ड से उत्पन्न तथा तीन रंग और तीन अवस्थाओं से युक्त धूमकेतु नामक पितामहजनित (आन्तरिक्ष) केतु प्रजा का विनाश करता है ॥१०२॥
ईशानकोण में उदित श्वेतवर्ण के शुक्रजनित केतु अनिष्टकारी होते हैं। शिखारहित एवं कनक नाम से प्रसिद्ध शनैश्चर सम्बन्धी केतु भी अनिष्ट फलदायक हैं ॥१०३॥ गुरु सम्बन्धी केतुओं की विकच संज्ञा है। वे दक्षिण दिशा में प्रकट होने पर भी अभीष्टसाधक माने गये हैं। उसी दिशा में सूक्ष्म तथा शुक्ल वर्ण वाले बुधसम्बन्धी केतु चोर तथा रोग का भय देते हैं ॥१०४॥ कुंकुम नाम से प्रसिद्ध मङ्गलसम्बन्धी केतु लाल रंग के होते हैं। उनकी आकृति सूर्य के समान होती है। वे भी उक्त दिशा में उदित होने पर अनिष्टदायक होते हैं। विश्वरूप नाम से प्रसिद्ध अग्नि के समान कान्ति वाले अग्नि सम्बन्धी केतु अग्निकोण में उदित होने पर सुखद होते हैं ॥१०५॥ श्यामवर्ण वाले सूर्य सम्बन्धी केतु अरुण कहलाते हैं। वे अनिष्टकारी होते हैं। रीछ के समान रंग वाले शुक्रसम्बन्धी केतु शुभदायक होते हैं ॥१०६॥ कृत्तिका तारा में उदित हुआ धूमकेतु निश्चय ही प्रजा का विनाशक होता है। राजमहल, वृक्ष और पर्वत पर प्रकट हुआ केतु राजाओं का नाश करने वाला होता है ॥१०७॥ कुमुदपुष्प के समान वर्ण वाला कौमुद नामक केतु सुभिक्ष लाने वाला होता है। संध्याकाल में मस्तकसहित उदित हुआ गोलाकार केतु अनिष्टफल देने वाला होता है ॥१०८॥

ब्राह्मदैवमनोर्मानं पित्र्यं सौरं च सावनम् । चांद्रमार्क्षं गुरोर्मानमिति मानानि वै नव ॥१०९॥
एतेषां नवमानानां व्यवहारोऽत्र पञ्चभिः । तेषां पृथक्पृथक्कार्यं वक्ष्यते व्यवहारतः ॥११०॥
ग्रहाणां निखिलश्चारो गृह्यते सौरमानतः । वृष्टेर्विधानं स्त्रीगर्भः सावनेनैव गृह्यते ॥१११॥
प्रवर्षणां समे गर्भो नाक्षत्रेण प्रगृह्यते । यात्रोद्वाहव्रतक्षौरे तिथिवर्षेशनिर्णयः ॥११२॥
पर्ववास्तूपवासादि कृत्स्नं चांद्रेण गृह्यते । गृह्यते गुरुमानेन प्रभवाद्यब्दलक्षणम् ॥११३॥
तत्तन्मासैर्द्वादशभिस्तत्तदब्दो भवेत्ततः । गुरुमध्यमचारेण षष्ट्यब्दाः प्रभवादयः ॥११४॥
प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः । अंगिराः श्रीमुखो भावो युवा धाता तथैव च ॥११५॥
ईश्वरो बहुधान्यश्च प्रमाथी विक्रमो वृषः । चित्रभानुस्सुभानुश्च तारणः पार्थिवोऽव्ययः ॥११६॥
सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतः खरः । नंदनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ ॥११७॥
हेमलंबो विलंबश्च विकारी शार्वरी प्लवः । शुभकृच्छोभनः क्रोधी विश्वावसुपराभवौ ॥११८॥

प्लवंगः कीलकः सौम्यः साधारणश्च विरोधकृत् ।
परिभावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसोऽनलः ॥११९॥

पिंगलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थो रौद्रदुर्मती । दुंदुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षः क्रोधनः क्षयः ॥१२०॥
नामतुल्यफलाः सर्वे विज्ञेयाः षष्टिवत्सराः । युगं स्यात्पंचभिर्वर्षैर्युगान्येवं तु द्वादश ॥१२१॥
तेषामीशाः क्रमाज्ज्ञेया विष्णुर्देवपुरोहितः । पुरंदरो लोहितश्च त्वष्टाहिर्बुध्न्यसंज्ञकः ॥१२२॥
पितरश्च ततो विश्वे शशींद्राग्न्यश्विनो भगः । तथा युगस्य वर्षेशास्त्वग्निनेंदुविधीश्वराः ॥१२३॥

कालमान—ब्राह्म, दैव, मानव, पित्र्य, सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र तथा बार्हस्पत्य—ये नौ मान होते हैं ॥१०९॥ इस लोक में इन नौ मानों में से पाँच के ही द्वारा व्यवहार होता है। किन्तु उन नवों मानों का व्यवहार के अनुसार पृथक्-पृथक् कार्य बताया जायगा ॥११०॥ सौर मान से ग्रहों की सब प्रकार की गति (भगणादि) ज्ञात की जाती है। वर्षा का समय तथा स्त्री के प्रसव का समय सावन मान से ही ग्रहण किया जाता है ॥१११॥ वर्षों के भीतर का घटीमान आदि नाक्षत्र मान से ही लिया जाता है। यज्ञोपवीत, मुण्डन, तिथि एवं वर्षेश निर्णय तथा पर्व, उपवास आदि का निश्चय चान्द्र मान से किया जाता है। बार्हस्पत्य मान से प्रभवादि संवत्सर का स्वरूप ग्रहण किया जाता है ॥११२–११३॥ उन-उन मानों के अनुसार बारह मासों तक उनका अपना-अपना विभिन्न वर्ष होता है। बृहस्पति की अपनी मध्यम गति से प्रभव आदि नाम वाले साठ संवत्सर होते हैं ॥११४॥ प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष, चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव, व्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृत, खर, नन्दन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलम्ब, विलम्ब, विकारी, शर्वरी, प्लव, शुभकृत्, शोभन, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्लवंग, कीलक, सौम्य, समान, विरोधकृत, परिभावी, प्रमादी, आनन्द, राक्षस, अनल, पिंगल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र, दुर्मति, दुन्दुभि, रुधिरोद्गारी, रक्ताक्ष, क्रोधन तथा क्षय—ये साठ संवत्सर जानने चाहिए। सभी अपने नाम के अनुरूप फल देते हैं। पाँच वर्षों का युग होता है। इस तरह साठ संवत्सरों में बारह युग होते हैं ॥११५-१२१॥ उन युगों के स्वामी क्रमशः इस प्रकार जानने चाहिए–विष्णु, बृहस्पति, इंद्र, लोहित, त्वष्टा, अहिर्बुध्न्य, पितर, विश्वेदेव, चन्द्रमा, इन्द्राग्नि, अश्विनीकुमार तथा भग। इसी प्रकार युग के भीतर जो पाँच वर्ष होते हैं, उनके स्वामी क्रमशः अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, ब्रह्मा और शिव हैं ॥१२२–१२३॥'

अथाद्वेशचमूनाथसस्यपानां बलाबलम् । तत्कालं ग्रहचारं च सम्यग् ज्ञात्वा फलं वदेत् ॥१२४॥
सौम्यायनं मासषट्कं मृगाद्यं भानुभुक्तितः । अहः सुराणां तद्रात्रिः कर्काद्यं दक्षिणायनम् ॥१२५॥
गृहप्रवेशवैवाहप्रतिष्ठामौंजिबंधनम् । मघादौ मंगलं कर्म विधेयं चोत्तरायणे ॥१२६॥
याम्यायने गर्हितं च कर्म यत्नात्प्रशस्यते । माघादिमासौ द्वौ द्वौ च ऋतवः शिशिरादयः ॥१२७॥
मृगाच्छिशिखसंतश्च ग्रीष्माः स्युश्चोत्तरायणे । वर्षा शरच्च हेमंतः कर्कादे दक्षिणायने ॥१२८॥
चांद्रो दर्शावधिः सौरः संक्रांत्या सावनो दिनैः । त्रिंशद्भश्चंद्रभगणो मासो नाक्षत्रसंज्ञकः ॥१२९॥
मधुश्च माधवः शुक्रः शुचिश्चाथ नभस्ततः । नभस्य इष ऊर्जश्च सहाश्चैव सहस्यकः ॥१३०॥
तपास्तपस्य क्रमशश्चैत्रादीनां समाह्वयाः । यस्मिन्मासे पौर्णमासी येन धिष्ण्येन संयुता ॥१३१॥
तन्नक्षत्राह्वयो मासः पौर्णमासी तदाह्वया । तत्पक्षौ देवपित्राख्यौ शुक्लकृष्णौ तथापरे ॥१३२॥
शुभाशुभे कर्मणि च प्रशस्तौ भवतः सदा । क्रमात्तिथीनां ब्रह्माग्नी विरिंचिविष्णुशैलजाः ॥१३३॥
विनायकयमौ नागचंद्रौ स्कंदोऽर्कवासवौ । महेन्द्रवासवौ नागदुर्गादंडधराह्वयः ॥१३४॥
शिवविष्णू हरिरवी कामः सर्वःकली ततः । चन्द्रविश्वेदर्शसंज्ञतिथीशाः पितरः स्मृताः ॥१३५॥

संवत्सर के राजा, मंत्री तथा धान्येश रूप ग्रहों के बला-बल का विचार करके तथा उनकी तात्कालिक स्थिति को भी भलीभाँति जानकर संवत्सर का फल समझना चाहिए ॥१२४॥ मकरादि छह राशियों में छह मास तक सूर्य के भोग से सौम्यायन (उत्तरायण) होता है । वह देवताओं का दिन और कर्कादि छह राशियों में छह मास तक सूर्य के भोग से दक्षिणायन होता है, वह देवताओं की रात्रि है ॥१२५॥ गृहप्रवेश, विवाह, प्रतिष्ठा तथा यज्ञोपवीत आदि शुभ कर्म माघ आदि उत्तरायण के मासों में करने चाहिए ॥१२६॥ दक्षिणायन में उक्त कार्य गर्हित है माना गया है । अत्यन्त आवश्यकता हो तो उस समय पूजा आदि यत्न करने से शुभ होता है । माघ से दो-दो मासों को शिशिरादि छह ऋतुएँ होती हैं ॥१२७॥ मकर से दो-दो राशियों में सूर्य भोग के अनुसार क्रमशः शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म—ये तीन ऋतुएँ उत्तरायण में होती हैं, और कर्क से दो-दो राशियों में सूर्य भोग के अनुसार क्रमशः वर्षा, शरद् और हेमन्त—ये तीन ऋतुएँ दक्षिणायन में होती हैं ॥१२८॥ शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से अमावस्या तक चान्द्र मास होता है । सूर्य की एक संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक सौर मास होता है । तीस दिनों का एक सावन मास होता है । और चन्द्रमा द्वारा सब नक्षत्रों के उपभोग में जितने दिन लगते हैं उतने अर्थात् २७ दिनों का एक नाक्षत्र मास होता है ॥१२९॥ मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभः, नभस्य, इष, ऊर्ज, सहः, सहस्य, तप और तपस्य—ये चैत्रादि बारह मासों की संज्ञाएँ हैं। जिस मास की पौर्णमासी जिस नक्षत्र से युक्त हो, उस नक्षत्र के नाम से ही उस मास का नामकरण होता है । (जैसे जिस मास की पूर्णिमा चित्रा नक्षत्र से युक्त होती है, उस मास का नाम 'चैत्र' होता है और वह पौर्णमासी भी उसी नाम से विख्यात होती है, जैसे चैत्री, वैशाखी आदि ।) प्रत्येक मास के दो पक्ष क्रमशः देव-पक्ष और पितृपक्ष हैं, अन्य विद्वान् उन्हें शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष कहते हैं ॥१३०-१३२॥ वे दोनों पक्ष शुभाशुभ कार्यों में सदा उपयुक्त माने जाते हैं । ब्रह्मा, अग्नि, विरञ्चि, विष्णु, गौरी, गणेश, यम, सर्प, चन्द्रमा, कार्तिकेय, सूर्य, इन्द्र, महेन्द्र, वासव, नाग, दुर्गा, दण्डधर, शिव, विष्णु, हरि, रवि, काम, शङ्कर, कलाधर, यम, चन्द्रमा, (विष्णु, काम और शिव)—ये सब शुक्ल प्रतिपदा से लेकर क्रमशः उनतीस तिथियों के स्वामी होते हैं । अमावस्या नामक तिथि के स्वामी पितर माने गये हैं ।

नंदाभद्राजयारिक्ता पूर्णाः स्युस्तिथयः पुनः । त्रिरावृत्त्या क्रमाज्ज्ञेया नेष्टमध्येष्टदाः सिते ॥१३६॥
कृष्णपक्षे त्विष्टमध्यानिष्टदाः क्रमशस्तदा । अष्टमी द्वादशी षष्ठी चतुर्थी च चतुर्दशी ॥१३७॥
तिथयः पक्षरंध्राख्या ह्यतिरूक्षा प्रकीर्तिताः । समुद्रमनुरंध्रांकतत्त्वसंख्यास्तु नाडिकाः ॥१३८॥
त्याज्याः स्युस्तासु तिथिषु क्रमात्पंच च सर्वदा । अमावास्या च नवमी हित्वा विषमसंज्ञिका ॥१३९॥
तिथयस्तु प्रशस्ताःस्युर्मध्यमा प्रतिपत्सिता । षष्ठयां तैलं तथाष्टम्यां मासं क्षौरं कलेस्तिथौ ॥१४०॥
पूर्णिमादर्शयोर्नारीसेवनं परिवर्जयेत् । दर्शे षष्ठयां प्रतिपदि द्वादश्यां प्रतिपर्वसु ॥१४१॥
नवम्यां च न कुर्वीत कदाचिद्दंतधावनम् । व्यतीपाते च संक्रांतावेकादश्यां च पर्वसु ॥१४२॥
अर्कभौमदिने षष्ठयां नाभ्यंगो वैधृतौ तथा । यः करोति दशम्यां च स्नानमामलकैर्नरः ॥१४३॥
पुत्रहानिर्भवेत्तस्य त्रयोदश्यां धनक्षयः । अर्थपुत्रक्षयस्तस्य द्वितीयायां न संशयः ॥१४४॥
अमायां च नवम्यां च सप्तम्यां च कुलक्षयः । या पौर्णिमा दिवा चंद्रमती सानुमती स्मृता ॥१४५॥
रात्रौ चन्द्रवती राकाप्यमावास्या तथा द्विधा । सिनीवाली चेंदुमती कुहूर्नेंदुमती मता ॥१४६॥

(तिथियों की नन्दादि पांच संज्ञा)--प्रतिपदा आदि तिथियों को क्रमशः नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा--ये पाँच संज्ञाएँ मानी गई हैं। पन्द्रह तिथियों में इनकी तीन आवृत्ति करके इनका पृथक्-पृथक् ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। शुक्लपक्ष में प्रथम आवृत्ति की (१,२,३,४,५--ये) तिथियाँ अधम, द्वितीय आवृत्ति की ६,७,८,९,१०--ये तिथियाँ मध्यम और तृतीय आवृत्ति की (११,१२,१३,१४,१५ ये) तिथियाँ शुभ होती हैं, इसी प्रकार कृष्ण पक्ष की प्रथम आवृत्ति की नन्दादि तिथियाँ इष्ट (शुभ), द्वितीय आवृत्ति की मध्यम और तृतीय आवृत्ति की अनिष्टप्रद (अधम) होती हैं। दोनों पक्षों की ८,१२,६,४,९,१४--ये तिथियाँ पक्षरन्ध्र कही गई हैं। इन्हें अत्यन्त रूक्ष कहा गया है। इनमें क्रमशः आरंभ की ४,१४,९,९,२५ और ५ घड़ियाँ सब शुभ कार्यों में त्याज्य हैं। अमावास्या और नवमी को छोड़कर अन्य सब विषम तिथियाँ ३,५,७,११,१३) सब कार्यों में प्रशस्त हैं। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा मध्यम है (कृष्णपक्ष की प्रतिपदा शुभ है)।

षष्ठी में तेल, अष्टमी में मांस, चतुर्दशी में क्षौर एवं पूर्णिमा और अमावास्या में स्त्री का सेवन वर्जित है। अमावास्या, षष्ठी, प्रतिपदा, द्वादशी, सभी पर्व और नवमी--इन तिथियों में कभी दातून नहीं करना चाहिए। व्यतीपात, संक्रान्ति, एकादशी, पर्व, रवि और मंगलवार तथा षष्ठी तिथि और वैधृति-योग में अभ्यञ्जन (उबटन) नहीं करना चाहिए। जो मनुष्य दशमी तिथि में आंवले से स्नान करता है, उसको पुत्र की हानि उठानी पड़ती है। त्रयोदशी को आँवले से स्नान करने पर धन का नाश होता है और द्वितीया को उससे स्नान करने वालों के धन और पुत्र दोनों का नाश होता है, इसमें संशय नहीं। अमावास्या, नवमी और सप्तमी--इन तीन तिथियों में आँवले से स्नान करने वालों के कुल का विनाश होता है ॥१३३-१४४½॥

जो पूर्णिमा दिन में पूर्ण चन्द्र से युक्त हो (अर्थात् जिसमें रात्रिके समय चन्द्रमा कलाहीन हो) वह पूर्णिमा 'अनुमती' कही जाती है और जो रात्रि में पूर्ण चन्द्रमा से युक्त हो वह 'राका' कहलाती है। इसी प्रकार अमावास्या भी दो प्रकार की होती है। जिसमें चन्द्रमा की कला का किंचित् अंश शेष रहता है, वह 'सिनीवाली' कही गई है तथा जिसमें चन्द्रमा की सम्पूर्ण कला लुप्त हो जाती है, वह अमावास्या 'कुहू' कही जाती है ॥१४५-१४६॥

कार्तिके शुक्लनवमी त्वादिः कृतयुगस्य च । त्रेतादिर्माधवे शुक्ले तृतीया पुण्यसंज्ञिता ॥१४७॥
कृष्णा पंचदशी माघे द्वापरादिमुदीरिता । कल्पादिः स्यात्कृष्णपक्षे नभस्यस्य त्रयोदशी ॥१४८॥
द्वादश्यूर्जे शुक्लपक्षे नवम्यच्छेश्वयुज्यपि । चैत्रे भाद्रपदे चैव तृतीया शुक्लसंज्ञिता ॥१४९॥
एकादशी सिता पौषे ह्याषाढे दशमीसिता । माघे च सप्तमी शुक्ला नभस्ये त्वसिताष्टमी ॥१५०॥
श्रावणे मास्यमावास्या फाल्गुने मासि पौर्णिमा । आषाढे कार्तिके मासि ज्येष्ठे चैत्रे च पौर्णिमा ॥१५१॥
मन्वादयो मानवानां श्राद्धेष्वत्यंतपुण्यदा । भाद्रे कृष्णत्रयोदश्यां मघास्विंदुः करे रविः ॥१५२॥
गजच्छाया तदा ज्ञेया श्राद्धे ह्यत्यंतपुण्यदा । एकस्मिन्वासरे तिस्रस्तिथयः स्यात्तिथिक्षयः ॥१५३॥
तिथिर्वारत्रये त्वेका ह्यधिका द्वे च निंदिते । सूर्यास्तमनपर्यन्तं यस्मिन्वारे तु या तिथिः ॥१५४॥
विद्यते सा त्वखंडा स्यान्न्यूना चेत्खंडसंज्ञिता । तिथेः पंचदशो भागः क्रमात्प्रतिपदादयः ॥१५५॥
क्षणसंज्ञास्तदर्द्धानि तासामर्द्धप्रमाणतः । रविः स्थिरश्चरश्चंद्रः क्रूरो वक्रोऽखिलो बुधः ॥१५६॥
लघुरीज्यो मृदुः शुक्रस्तीक्ष्णो दिनकरात्मजः । अभ्यक्तो भानुवारे यः स नरः क्लेशवान्भवेत् ॥१५७॥

(युगादि तिथियाँ)—कार्तिक शुक्लपक्ष की नवमी सत्ययुग की आदि तिथि है। वैशाख-शुक्लपक्ष की पुण्यमयी तृतीया त्रेतायुग की आदि तिथि है। माघ की अमावास्या द्वापरयुग की आदि तिथि और भाद्रपद-कृष्ण त्रयोदशी कलियुग की आदि तिथि है ॥१४७-१४८॥

(मन्वादि तिथियाँ--)कार्तिक-शुक्ला द्वादशी, आश्विन-शुक्ला नवमी, चैत्र-शुक्ला तृतीया, भाद्रपद शुक्ला तृतीया, पौषशुक्ला एकादशी, आषाढशुक्ला दशमी, माघशुक्ला सप्तमी, भाद्रपद कृष्णा अष्टमी, श्रावण की अमावास्या, फाल्गुन की पूर्णिमा, आषाढ़ की पूर्णिमा, कार्तिक की पूर्णिमा, ज्येष्ठ की पौर्णमासी और चैत्र की पूर्णिमा—ये चौदह मन्वादि तिथियाँ हैं। ये सब तिथियाँ मनुष्यों के लिए पितृकर्म (पार्वण श्राद्ध) में अत्यन्त पुण्य देने वाली हैं ॥१४९-१५१½॥

(गजच्छाया-योग--) भादों के कृष्णपक्ष की (शुक्लादि क्रम से भाद्रकृष्ण और कृष्णादि क्रम से आश्विन कृष्णपक्ष को) त्रयोदशी में यदि सूर्य हस्त नक्षत्र में और चन्द्रमा मघा में हो तो 'गजच्छाया' नामक योग होता है, जो पितरों के पार्वणादि श्राद्ध कर्म में अत्यन्त पुण्य-प्रद है ॥१५२½॥

किसी एक दिन में तीन तिथियों का स्पर्श हो तो क्षयतिथि तथा एक ही तिथि का तीन दिन में स्पर्श हो तो अधिक तिथि (अधितिथि) होती है। ये दोनों ही निन्दित हैं। जिस दिन सूर्योदय से सूर्यास्तपर्यन्त जो तिथि रहती है, उस दिन वह अखण्ड तिथि कहलाती है। यदि सूर्यास्त से पूर्व ही समाप्त होती है तो वह खण्ड तिथि कही जाती है ॥१५३-१५४½॥

(क्षणतिथिकथन--) प्रत्येक तिथि में तिथिमान का पन्द्रहवाँ भाग क्षणतिथि कहलाता है। (अर्थात् प्रत्येक तिथि में उसी तिथि से आरंभ करके पन्द्रह तिथियों के अन्तर्भोग होते हैं।) तथा उन क्षणतिथियों का भी आधा क्षण तिथ्यर्ध (क्षण करण) होता है ॥१५५½॥

(वारप्रकरण--)रवि स्थिर, सोम चर, मंगल क्रूर, बुध अखिल (सम्पूर्ण), गुरु लघु, शुक्र मृदु और शनि तीक्ष्ण धर्म वाला है।

वारों में तेल लगाने का फल--जो मनुष्य रविवार को तेल लगाता है, वह रोगी होता है। सोमवार को तेल लगाने से कान्ति बढ़ती है। मङ्गल को व्याधि होती है। बुध को तैलाभ्यंग से सौभाग्य की वृद्धि होती है।

ऋक्षेशे कांतिभाग्भौमे व्याधि सौभाग्यमिदुजे । जीवे नैवं सिते हानिर्मन्दे सर्वसमृद्धयः ॥१५८॥
लंकोदयात्स्याद्वारादिस्तस्मादूर्ध्वमधोऽपिवा । देशांतरस्वचरार्द्धनाडीभिरपरे भवेत् ॥१५९॥
बलप्रदस्य खेटस्य कर्म सिद्ध्यति यत्कृतम् । तत्कर्म बलहीनस्य दुःखेनापि न सिद्ध्यति ॥१६०॥
इंदुज्ञजीवशुक्राणां वासराः सर्वकर्मसु । फलदास्त्वितरे क्रूरे कर्मस्वभिमतप्रदाः ॥१६१॥
रक्तवर्णो रविश्चंद्रो गौरो भौमस्तु लोहितः । दूर्वावर्णो बुधो जीवः पीतःश्वेतस्तु भार्गवः ॥१६२॥
कृष्णः सौरिः स्ववारेषु स्वस्ववर्णक्रिया हिताः । अद्रिबाणाश्च यस्तर्कपातालवसुधाधराः ॥१६३॥
वाणाग्निलोचनानिह्यवेदवाहुशिलीमुखाः । त्र्येकाहयो नेत्रगोत्ररामाश्चंद्ररसर्तवः ॥१६४॥
कुलिकाश्चोपकुलिका वारवेलास्तथा क्रमात् । प्रहरार्द्धप्रमाणास्ते विज्ञेयाः सूर्यवासरात् ॥१६५॥
यस्मिन्वारे क्षणो वारदृष्टस्तद्वासराधिपः । आद्यः षष्ठो द्वितीयोऽस्मात्तत्षष्ठस्तु तृतीयकः ॥१६६॥
षष्ठः षष्ठश्चेतरेषां कालहोराधपाः स्मृताः । सोर्द्धनाडीद्वयेनैव दिवा रात्रौ यथाक्रमात् ॥१६७॥
वारप्रोक्ते कर्मकार्ये तद्ग्रहस्य क्षणेऽपि सन् । नक्षत्रेशाः क्रमाद्दस्रयमवह्निपितामहाः ॥१६८॥
चंद्रेशादितिजीवाहिपितरो भगसंज्ञकः । अर्यमार्कत्वष्ट्मरुच्छक्राग्निमित्रवासवः ॥१६९॥

गुरुवार को सौभाग्य को हानि होती है। शुक्रवार को भी हानि होती है तथा शनिवार को तेल लगाने से धन-सम्पत्ति की हानि होती है ॥१५६—१५८॥

रवि आदि वारों का आरंभकाल—जिस समय लंका में (भूमध्यरेखा पर) सूर्योदय होता है, उसी समय से सर्वत्र रवि आदि वारों का आरंभ होता है। उस समय से देशान्तर (लंकोदयकाल से अपने उदय काल का अन्तर) और चरार्ध घटीतुल्य आगे या पीछे अन्य देश में सूर्योदय हुआ करता है ॥१५९॥

जो ग्रह बलवान् होता है, उसके वार में जो कोई भी कार्य किया जाता है, वह सिद्ध हुआ करता है, किन्तु जो ग्रह बलहीन (जातक-अध्याय में कहे हुए बल से रहित) होता है, उसके वार में बहुत यत्न करने पर भी कार्य सिद्ध नहीं होता है ॥१६०॥ सोम, बुध, वृहस्पति और शुक्र सम्पूर्ण शुभ कार्यों में शुभप्रद होते हैं, अन्य वार (शनि, रवि और मङ्गल) क्रूर कर्म में इष्टसिद्धिदायक होते हैं ॥१६१॥

सूर्य का वर्ण लाल है, चन्द्रमा का गौर वर्ण है, मङ्गल अधिक लाल हैं, बुध की कान्ति दूर्वादल के समान श्याम है, गुरु का वर्ण सुवर्ण के समान पीला है, शुक्र श्वेत और शनि कृष्ण वर्ण के हैं; इसलिए उन ग्रहों के वारों में उनके गुण और वर्ण के अनुरूप कार्य ही सिद्ध एवं हितकर होते हैं।

(निन्द्य मुहूर्त—)रविवार से आरंभ करके रवि में ७,५,४; सोम में ६,४,७; मङ्गल में ५,३,२; बुध में ४,२,५; गुरुवार में ३,१,८; शुक्रवार में २,७,३ और शनि में १,६,८—ये प्रहरार्ध क्रमशः कुलिक, उपकुलिक वारवेला कहे गये हैं इनका मान आधे पहर का समझना चाहिए ॥१६२—१६५॥

(प्रत्येक वार में क्षणवार-कथन—)जिस वार में क्षणवार जानना हो, उस वार में प्रथम क्षणवार उसी वारपति का होता है। उससे छठे वारेश का द्वितीय, उससे भी छठे का तृतीय, इस प्रकार छठे-छठे के क्रम से दिन-रात में २४ क्षणवार (काल होरा या होरा) होते हैं। एक-एक क्षणवार का मान ढाई-ढाई घटी (या १घंटा) है ॥१६६—१६७॥

(क्षणवार का प्रयोजन—)जिस वार में जो कर्म शुभ या अशुभ कहा गया है, वह उसके क्षणवार में भी उसी प्रकार शुभ या अशुभ समझना चाहिए ॥१६७½॥

(नक्षत्राधिपति-कथन—) १ दस्र (अश्विनी कुमार), २ यम, ३ अग्नि, ४ ब्रह्मा, ५ चन्द्र, ६ शिव ७ अदिति, ८ गुरु, ९ सर्प, १० पितर, ११ भग, १२ अर्यमा, १३ सूर्य, १४ विश्वकर्मा, १५ वायु, १६ इन्द्र और अग्नि

नैॠत्युदकविश्वेजगोविन्दवसुतोयपाः । अजैकपादहिर्बुध्न्या पूषा चेति प्रकीर्तिताः ॥१७०॥
पूर्वात्रयं मघाह्याग्निविशाखायममूलभम् । अधोमुखं तु नवकं भानां तत्र विधीयते ॥१७१॥
बिलप्रवेशगणितभूतसाधनलेखनम् । शिल्पकर्मकलाकूपनिक्षेपोद्धरणादि यत् ॥१७२॥
मित्रेन्दुत्वाष्ट्रहस्तेन्द्रादितिभांत्यशिवायुभम् । तिर्यङ्मुखाख्यं नवकं भानां तत्र विधीयते ॥१७३॥
हलप्रवाहगमनं गंत्रीपत्रगजोष्ट्रकम् । खरगौरथयौयानलुलायहयकर्म च ॥१७४॥
ब्रह्मविष्णुमहेशार्यंशततारावसुत्तराः । ऊर्द्धास्यं नवकं भानां प्रोक्तमत्र विधीयते ॥१७५॥
नृपाभिषेकमाङ्गल्यवारणध्वजकर्म च । प्रासादतोरणारामप्राकाराद्यं च सिद्ध्यति ॥१७६॥
स्थिरं रोहिण्युत्तराख्यं क्षिप्रं सूर्याश्विपुष्यभम् । साधारणं द्विदेवत्यं वह्निभं च प्रकीर्तितम् ॥१७७॥
वस्वदित्यंबुपुष्याणि विष्णुभं चरसंज्ञितम् । मृद्विदुमित्रचित्रांत्यमुग्रं पूर्वामघात्रिकम् ॥१७८॥
मूलार्द्राहीन्द्रभं तीक्ष्णं स्वनामसदृशं फलम् । चित्रादित्यंबुविष्णवंत्याधिमित्रवसूडुषु ॥१७९॥
समृगेज्येषु बालानां कर्णवेधक्रिया हिता । दस्रेन्द्वदितितिष्येषु करादित्रितये तथा ॥१८०॥

---

१७ मित्र, १८ इन्द्र, १९ राक्षस (निर्ऋति), २० जल, २१ विश्वेदेव, २२ ब्रह्मा, २३ विष्णु, २४ वसु, २५ वरुण, २६ अजैकपाद, २७ अहिर्बुध्न्य और २८ पूषा—ये क्रमशः (अभिजित् सहित) अश्विनी आदि २८ नक्षत्रों के स्वामी कहे गये हैं ॥१६८—१७०॥

(नक्षत्रों के मुख--) पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद, मघा, अश्लेषा, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मूल---ये नौ नक्षत्र अधोमुख (नीचे मुख वाले) हैं। इनमें बिल प्रवेश (कुआँ, भूविवर या पाताल आदि में जाना), गणित, भूतसाधन, लेखन, शिल्प (चित्र आदि) कर्म, कला, कुआँ खोदना तथा गाड़े हुए धन को निकालना आदि सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥१७१---१७२॥

अनुराधा, मृगशिरा, चित्रा, हस्त, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, रेवती, अश्विनी और स्वाती---ये नौ नक्षत्र तिर्यक् (सामने) मुख वाले हैं। इनमें हल जोतना, यात्रा करना, गाड़ी बनाना, पत्र लिखकर भेजना, हाथी, ऊंट आदि की सवारी करना, गदहे, बैल आदि से चलने वाले रथ बनाना, नौका पर चलना तथा भैंस, घोड़े आदि सम्बन्धी कार्य करने चाहिए ॥१७३—१७४॥

रोहिणी, श्रवण, आर्द्रा, पुष्य, शतभिषा, धनिष्ठा, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ तथा उत्तरा भाद्रपद—ये नौ नक्षत्र ऊर्ध्वमुख (ऊपर मुख वाले) कहे गये हैं। इनमें राज्याभिषेक, मङ्गल (विवाहादि)--कार्य, गजारोहण, ध्वजारोपण, मन्दिरनिर्माण, तोरण (फाटक) बनाना, बगीचे लगाना और चहारदीवारी बनवाना आदि कार्य सिद्ध होते हैं ॥१७५—१७६॥

(नक्षत्रों की ध्रुवादिसंज्ञा--) रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तरभाद्रपद---ये ध्रुव संज्ञक नक्षत्र हैं। हस्त, अश्विनी और पुष्य--ये क्षिप्रसंज्ञक हैं। विशाखा और कृत्तिका--ये दोनों साधारणसंज्ञक हैं। धनिष्ठा पुनर्वसु, शतभिषा, स्वाती और श्रवण—ये चरसंज्ञक हैं। मृगशिरा, अनुराधा, चित्रा तथा रेवती—ये मृदु-संज्ञक हैं। पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्व भाद्रपद और भरणी—ये उग्रसंज्ञक नक्षत्र हैं। मूल आर्द्रा, अश्लेषा और ज्येष्ठा—ये तीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्र हैं। ये सब अपने नाम के अनुसार ही फल देते हैं ॥१७७—१७८½॥

कर्णवेध मुहूर्त—चित्रा, पुनर्वसु, श्रवण, हस्त, रेवती, अश्विनी, अनुराधा, धनिष्ठा, मृगशिरा और पुष्य—इन नक्षत्रों में कर्णवेध शुभ होता है।

हाथी और घोड़े सम्बधी कार्य—अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा और स्वाती

गजकर्माखिलं यत्तद्विधेयं स्थिरभेषु च । वाजिकर्माखिलं कार्यं सूर्यवारे विशेषतः ॥१८१॥
चित्रा वरुणवैरिंचत्र्युत्तरासु गमागमम् । दर्शाष्टम्यां चतुर्दश्यां च पशूनां न कदाचन ॥१८२॥
मृदुध्रुवक्षिप्रचरविशाखापितृभेषु च । हलप्रवाहं प्रथमं विदध्यान्मूलभे वृषैः ॥१८३॥
हलादौ वृषनाशाय भत्रयं सूर्यमुक्तभात् । अग्रे वृद्ध्यै त्रयं लक्ष्म्यै सौम्यपार्श्वे च पंचकम् ॥१८४॥
शूलत्रयेऽपि नवकं मरणाय च पंचकम् । श्रियै पुष्ट्यै त्रयं श्रेष्ठं स्याच्चक्रे लांगलाह्वये ॥१८५॥
मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु पितृवायुवसुषु । समूलभेषु वीजोप्तिरत्युत्कृष्टफलप्रदा ॥१८६॥
भवेद्भत्रितयं मूर्ध्नि धान्यनाशाय राहुभात् । गले त्रयं कज्जलाय वृद्ध्यै च द्वादशोदरे ॥१८७॥
निस्तंडुलत्वं लांगुले भचतुष्टयमीतिदम् । नाभौ वह्निः पंचकं यद्बीजोप्ताविति चिंतयेत् ॥१८८॥
स्थिरेष्वदितिसार्पांत्यपितृमारुतभेषु च । न कुर्याद्रोगमुक्तस्य स्नानमाह्नींदुशुक्रयोः ॥१८९॥
उत्तरात्रयमैत्रेन्द्रवसुवारुणभेषु च । पुण्यार्कपौष्णधिष्ण्येषु नृत्यारंभः प्रशस्यते ॥१९०॥
पूर्वार्द्धयुंजि षड्भानि पौष्णभाद्रुद्रभात्ततः । मध्ययुंजि द्वादशार्क्षाणीन्द्रभान्नवभानि च ॥१९१॥

इनमें तथा स्थिरसंज्ञक नक्षत्रों में हाथी सम्बन्धी सब कृत्य करने चाहिए। तथा इन्हीं नक्षत्रों में घोड़े के भी सब कृत्य शुभ होते हैं। किन्तु रविवार को इन कृत्यों का त्याग कर देना चाहिए ॥१७९--१८१॥

(**अन्य पशुकृत्य--**) चित्रा, शतभिषा, रोहिणी, तथा तीनों उत्तरा--इन नक्षत्रों में पशुओं को कहीं से लाना या ले जाना शुभ है। परन्तु अमावास्या, अष्टमी और चतुर्दशी को कदापि पशुओं का कोई कृत्य नहीं करना चाहिए ॥१८२॥

प्रथम हलप्रवाह हल-जोतना--मृदु, ध्रुव, क्षिप्र और चरसंज्ञक नक्षत्र, विशाखा, मघा और मूल--इन नक्षत्रों में बैलों द्वारा प्रथम बार हल जोतना शुभ होता है। सूर्य जिस नक्षत्र में हो उससे पिछले नक्षत्र से तीन नक्षत्र हल के आदि (मूल) में रहते हैं इनमें प्रथम बार हल जोतने जुताने से बैल का नाश होता है। उसके आगे तीन नक्षत्र हल के अग्रभाग में रहते हैं। इनमें हल जोतने से वृद्धि होती है। उससे आगे के पांच नक्षत्र उत्तर पार्श्व में रहते हैं, इनमें लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। तीन शूलों में नौ नक्षत्र रहते हैं। इनमें हल जोतने से कृषक का मरण होता है। उससे आगे पांच नक्षत्रों में सम्पत्ति की वृद्धि होती है। फिर उससे आगे के तीन नक्षत्रों में प्रथम बार हल जोतने से उत्तम फल प्राप्त होते हैं ॥१८३--१८५॥

बीजवपन--मृदु, ध्रुव और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र, मघा, स्वाती, धनिष्ठा और मूल--इनमें धान्य के बीज बोना श्रेष्ठ होता है। इस बीज-वपन में राहु जिस नक्षत्र में हो, उससे तीन नक्षत्र लांगल-चक्र के अग्रभाग में रहते हैं। इन तीनों में बीजवपन से धान्य का नाश होता है। उससे आगे के तीन नक्षत्र गले में रहते हैं। उनमें बीजवपन से जल की अल्पता होती है। उससे आगे के बारह नक्षत्र उदर में रहते हैं, उनमें बीज बोने से धान्य की वृद्धि होती है। उससे आगे के चार नक्षत्र लांगल में रहते हैं, इनमें निस्तण्डुलत्व होता है (अर्थात् धान में दाने नहीं लगते, केवल भूसी मात्र रह जाती है)। उससे आगे के पांच नक्षत्र नाभि में रहते हैं, इनमें प्रथम बीज-वपन से अग्नि भय प्राप्त होता है। इस चक्र का विचार बीज-वपन में अवश्य करना चाहिए ॥१८६--१८८॥

रोगविमुक्त का स्नान--स्थिरसंज्ञक, पुनर्वसु, अश्लेषा, रेवती, मघा और, स्वाती-इन नक्षत्रों में तथा सोम और शुक्र के दिन रोगमुक्त पुरुष को पहले पहल स्नान नहीं करना चाहिए ॥१८९॥

नृत्यारंभ-- उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर-भाद्रपद, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, हस्त और रेवती-इन नक्षत्रों में नृत्यारंभ उत्तम होता है ॥१९०॥

॥१९२॥

परार्द्धयुंजि क्रमशः संप्रीतिर्दम्पतेर्मिथः । जघन्यास्तोयपदर्क्षाहिपवनांतकनाकपाः ॥१९३॥
क्रमादितिर्द्विदैवत्या बृहत्ताराः पराः समाः । तासां प्रमाणघटिकास्त्रिंशन्नवतिषष्टयः ॥१९४॥
क्रमादभ्युदिते चंद्रे नयत्यर्घसमानि च । अश्वयाग्नीन्दुपुष्यर्क्षमूलत्वाष्ट्रजत्युत्तराभवाः ॥१९५॥
पितृद्विदैववस्वाख्यास्ताराः स्युः कुलसंज्ञिकाः । धातृज्येष्ठादितिस्वातीपौष्णार्कहरिदेवताः ॥१९६॥
अजाह्यंत्यकभोजंगताराश्चैवाकुलाह्वयाः । शेषाः कुलाकुलास्तारास्तासां मध्ये कुलोडुषु ॥१९७॥
प्रयाति यदि भूपालस्तदाप्नोति पराजयम् । भेष्वकुलसंज्ञेषु जयमाप्नोति निश्चितम् ॥१९८॥
संधिर्वापि तयोः साम्यं कुलाकुलगणोडुषु । अर्कार्किभौमवारे चेद्भद्राया विषमांघ्रिभम् ॥१९९॥
त्रिपुष्करं त्रिगुणदं द्विगुणं यमलांघ्रिभम् । दद्यात्तद्दोषनाशाय गोत्रयं मूल्यमेव वा ॥१९९॥

रेवती से छह नक्षत्र पूर्वार्धयोगी, आर्द्रा से बारह नक्षत्र मध्ययोगी और धनिष्ठा से नौ नक्षत्र परार्धयोगी हैं। इनमें से पूर्वयोगी में यदि वर और कन्या-दोनों के नक्षत्र पड़ते हों तो स्त्री का स्वामी में अधिक प्रेम होता है। मध्ययोग में हों तो दोनों में परस्पर समान प्रेम होता है और परार्धयोगी में दोनों के नक्षत्र हों तो स्त्री में पति का अधिक प्रेम होता है ॥१९१½॥

बृहत्, सम और अधम नक्षत्र—शतभिषा, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाती, भरणी और ज्येष्ठा—ये छह नक्षत्र जघन्य (अधम) कहे गये हैं। ध्रुवसंज्ञक, पुनर्वसु और विशाखा—ये नक्षत्र बृहत् (श्रेष्ठ) कहलाते हैं तथा अन्य नक्षत्र समसंज्ञक हैं। इनका विशोपक मान क्रमशः ३०,९० और ६० घड़ी कहा गया है ॥१९२—१९३॥ यदि द्वितीया तिथि को बृहत्संज्ञक नक्षत्र में चन्द्रोदय हो तो अन्न सस्ता होता है। समसंज्ञक नक्षत्र में चन्द्रदर्शन हो तो अन्नादि के भाव में समता होती है और जघन्यसंज्ञक नक्षत्र में चन्द्रोदय हो तो उस महीने में अन्न महँगा हो जाता है ॥१९३½॥

यात्रा करने वाले को जय तथा पराजय देने वाले नक्षत्र—अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा पुष्य, मूल चित्रा, श्रवण, तीनों उत्तरा, पूर्वा फाल्गुनी, मघा, विशाखा, धनिष्ठा—ये नक्षत्र कुलसंज्ञक हैं। रोहिणी, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, स्वाती, रेवती, हस्त, अनुराधा, पूर्वभाद्रपद, भरणी और अश्लेषा—ये नक्षत्र अकुलसंज्ञक हैं। शेष नक्षत्र कुलाकुलसंज्ञक हैं। इनमें कुलसंज्ञक नक्षत्रों में विजय की इच्छा से यात्रा करने वाले राजा की पराजय होती है अकुलसंज्ञक नक्षत्रों में यात्रा करने से वह निश्चय ही शत्रु पर विजय प्राप्त करता है। और कुलाकुल संज्ञक नक्षत्रों में युद्धार्थ यात्रा करने पर शत्रुओं के साथ सन्धि होती है। अथवा यदि युद्ध हुआ तो भी दोनों में समानता सिद्ध होती है। (किसी एक पक्ष की हार या जीत नहीं होती) ॥१९४—१९७½॥

त्रिपुष्कर द्विपुष्कर योग—रवि, शनि या मङ्गल वार में भद्रा (२,१२) तिथि तथा विषम चरण वाले नक्षत्र (कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ और पूर्व भाद्रपद) हों तो (इन तीनों के संयोग से 'त्रिपुष्कर' नामक योग होता है। तथा उन्हीं रवि, शनि और मंगलवार एवं भद्रा तिथियों में दो चरण वाले नक्षत्र (मृगशिरा, चित्रा और धनिष्ठा) हों तो 'द्विपुष्कर' योग होता है। त्रिपुष्करयोग त्रिगुणित (तीन गुने) और द्विपुष्करयोग द्विगुणित लाभ और हानि को देने वाले होते हैं। अतः इनमें किसी वस्तु की हानि हो तो उस दोष की शान्ति के लिए तीन गोदान या तीन गौओं का मूल्य तथा द्विपुष्कर दोष की शान्ति के लिए दो गोदान या दो गौओं का मूल्य ब्राह्मणों को देना चाहिए। इससे उक्त (तिथि, वार और) नक्षत्र सम्बन्धी दोष का निवारण हो जाता है ॥१९८-१९९½॥

द्विपुष्करे द्वयं दद्यान्न दोषस्त्वृक्षभोऽपि वा । क्रूरविद्धो युतो वापि पुष्यो यदि बलान्वितः ॥२००॥
विना पाणिग्रहं सर्वमंगलेष्विष्टदः सदा । रामाग्निऋतुबाणाग्निभूवेदाग्निशरेषु च ॥२०१॥
नेत्रबाहुशरैर्द्विदुबाहुवेदाग्निसंकुराः । वेदनेत्राब्ध्यग्निशतबाहुनेत्ररदाः क्रमात् ॥२०२॥
तारासंख्याश्च विज्ञेया दस्रादीनां पृथक् पृथक् । या दृश्यंते दीप्ततारा: स्वगणे योगतारकाः ॥२०३॥
वृषो वृक्षोश्चभयास्यधिष्ण्येयमकरस्तमः । उडुंबरश्चाग्निधिष्ण्ये रोहिण्यां जंबुकस्तरुः ॥२०४॥
इन्दुभात्खदिरो जातः कृष्णप्लक्षश्च रौद्रभात् । संभूतोऽदितिभाद्वंशः पिप्पलः पुष्यसंभवः ॥२०५॥
सर्पधिष्ण्यान्नागवृक्षो वटः पितृभसंभवः । पालाशो भाग्यभाज्जातः अक्षश्चार्यमसंभवः ॥२०६॥
अरिष्टवृक्षो रविभाच्छ्रीवृक्षस्त्वाष्ट्रसंभवः । स्वात्यृक्षजोऽर्जुनो वृक्षो द्विदैवत्याद्विकंकतः ॥२०७॥
मित्रभाद्बकुलो जातो विष्टिः पौरंदरर्क्षजः । सर्जवृक्षो मूलभाच्च वंजुलो वारिधिष्ण्यजः ॥२०८॥
पनसो वैश्वभाज्जातश्चार्कवृक्षश्च विष्णुभात् । वसुधिष्ण्याच्छमीवृक्षः कदंबो वारुणर्क्षजः ॥२०९॥
अजाहेश्चूतवृक्षोभूद् बुध्न्यजः पिचुमन्दकः । मधुवृक्षः पौष्णधिष्ण्याद्धिष्ण्यवृक्षाः प्रकीर्तितः ॥२१०॥
यस्मिञ्छनैश्चरो धिष्ण्ये तद्वृक्षोऽर्च्यः प्रयत्नतः । योगेशा यमविश्वेंदुधातृजीवनिशाकराः ॥२११॥
इंद्रतोयाहिवह्न्यर्कभूमिरुद्रकतोयपाः । गणेशरुद्रधनदत्वष्टृकित्रषडाननाः ॥२१२॥

पुष्य नक्षत्र की प्रशंसा—पाप ग्रह से विद्ध या युक्त होने पर भी पुष्य नक्षत्र बलवान् होता है और विवाह छोड़कर वह सब शुभ कर्मों में अभीष्ट फल देने वाला है ॥२००½॥

नक्षत्रों में योग-ताराओं की संख्या—अश्विनी आदि (अभिजित्सहित) अट्ठाईस नक्षत्रों में क्रमशः ३, ३, ६, ५, ३, १, ४, ३, ५, ५, २, २, ५, १, १, ४, ४, ३, ११, २, २, ३, ३, ४, १००, २, २ और ३२ योगतारायें होती हैं। अपने-अपने आकाशीय विभाग में जो अनेक ताराओं का पुञ्ज देता हैं, उसमें जो अत्यन्त उद्दीप्त तारायें दीख पड़ती हैं, वे योगतारायें कहलाती हैं ॥ २०१-२०३॥

नक्षत्रों से वृक्षों की उत्पत्ति—जितने भी वृष अर्थात् श्रेष्ठ वृक्ष हैं, उनकी उत्पत्ति अश्विनी से हुई है। भरणी से यमक (जुड़े हुए दो) वृक्ष, कृत्तिका से उदुम्बर (गूलर), रोहिणी से जामुन, मृगशिरा से खैर, आर्द्रा से काली पाकर, पुनर्वसु से बाँस, पुष्य से पीपल, अश्लेषा से नागकेसर, मघा से बरगद, पूर्वा फाल्गुनी से पलाश, उत्तरा फाल्गुनी से रुद्राक्ष का वृक्ष, हस्त से अरिष्ट (रीठी का वृक्ष), चित्रा से श्रीवृक्ष (बेल), स्वाती से अर्जुन वृक्ष, विशाखा से विकंकत (जिसकी लकड़ी से कलछियाँ बनती हैं), अनुराधा से बकुल (मौलसिरी), ज्येष्ठा से विष्टिवृक्ष, मूल से सर्ज (शाल का वृक्ष) पूर्वाषाढ़ से वंजुल (अशोक), उत्तराषाढ़ से कटहल, श्रवण आक से धनिष्ठा से शमी वृक्ष शतभिषा से कदम्ब पूर्व भाद्रपद से हैं। आम्रवृक्ष, उत्तरभाद्रपद से निम्बवृक्ष तथा रेवती से महुए की उत्पत्ति हुई इस प्रकार ये नक्षत्र सम्बन्धी वृक्ष कहे गये हैं ॥२०४-२१०॥

जब जिस नक्षत्र में शनैश्चर विद्यमान हो, उस समय उस नक्षत्रसम्बन्धी वृक्ष का यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिए ॥२११½॥

योगों के स्वामी—यम, विश्वेदेव, चन्द्र, ब्रह्मा, गुरु, चन्द्र, इन्द्र, जल, सर्प अग्नि सूर्य, भूमि, रुद्र, ब्रह्मा, वरुण, गणेश, रुद्र, कुबेर, विश्वकर्मा, मित्र, कार्तिकेय, सावित्री, कमला, गौरी, अश्विनीकुमार, पितर और अदिति—ये क्रमशः विष्कम्भ आदि सत्ताईस योगों के स्वामी हैं ॥२१२½॥

निन्द्य योग—वैधृति और व्यतीपात—ये दोनों महापात हैं, इन दोनों को शुभ कार्यों में सदा त्याग

सावित्री कमला गौरी नासत्यौ पितरोऽदितिः । वैधृतिश्च व्यतीपातो महापातावुभौ सदा ॥२१३॥
परिघस्य च पूर्वार्द्धं सर्वकार्येषु गर्हितम् । विष्कं भवज्रयोस्तिस्रः षड्वा गंडातिगंडयोः ॥२१४॥
व्याघाते नव शूले तु पंच नाड्यो हि गर्हिताः । अदितीडुमघाह्यश्वमूलमैत्रेज्यभानि च ॥२१५॥
ज्ञेयानि सहचित्राणि मूर्द्धभानि यथाक्रमम् । लिखेदूर्ध्वगतामेकां तिर्यग्रेखास्त्रयोदश ॥२१६॥
तत्र खार्जूरिकं चक्रं कथितं मूर्ध्नि भे न्यसेत् । भाज्यैकरेखागतयोः सूर्याचंद्रमसोर्मिथः ॥२१७॥
एकार्गलो दृष्टिपातश्चाभिजिद्वर्जितानि वै । विनाडीभिर्द्वादशभी रहितं घटिकाद्वयम् ॥२१८॥
योगं प्रकरणं योगाः क्रमात्तु सप्तविंशतिः । इन्द्रः प्रजापतिर्मित्रस्त्वष्टाभूहरितिप्रिया ॥२१९॥
कीनाशः कलिरुद्राख्यो तिथ्यर्द्धेशास्त्वहिर्मरुत् । बवादिवणिजांतानि शुभानि करणानि षट् ॥२२०॥
परीता विपरीता वा विष्टिर्नेष्टा तु मंगले । मुखे पंच गले चैका वक्षस्येकादश स्मृताः ॥२२१॥
नाभौ चतस्रः षट् कट्यां तिस्रः पुच्छाख्यनाडिकाः । कार्यहानिर्मुखे मृत्युर्गले वक्षसि निःस्वता ॥२२२॥
कट्यामुन्मत्तता नाभौ च्युतिः पुच्छे ध्रुवं जयः । स्थिराणि मध्यमान्येषां मध्यनागचतुष्पदौ ॥२२३॥
दिवामुहूर्ता रुद्राहिमित्रपितृवसूदकम् । विश्वेविधातृब्रह्मेंद्ररुद्राग्निवसुतोयपाः ॥२२४॥

देना चाहिए । परिघ योग का पूर्वार्ध और वज्र योग के आरम्भ की तीन घड़ियाँ, गण्ड और अतिगण्ड की छह घड़ी, व्याघात योग की ९ घड़ी और शूल योग की ५ घड़ी सब शुभ कार्यों में निन्दित हैं ॥

खार्जूर चक्र—इन नौ निन्द्य योगों (वैधृति, व्यतीपात, परिघ, विष्कम्भ, वज्र, गण्ड, अतिगण्ड, व्याघात और शूल) में क्रमशः पुनर्वसु, मृगशिरा, मघा, अश्लेषा, अश्विनी, मूल, अनुराधा, पुष्य और चित्रा—ये नौ मूर्धा (मस्तक) के नक्षत्र कहे गये हैं । एक ऊर्ध्वरेखा लिखे, फिर उसके ऊपर तेरह तिरछी रेखाएँ अंकित करे । यह खार्जूर चक्र कहलाता है। इस चक्र में ऊपर कहे हुए निन्द्य योगों में उनके मूर्धगत नक्षत्र को रेखा के मस्तक के ऊपर लिखकर क्रमशः २८ नक्षत्रों को लिखे । इसमें यदि सूर्य और चन्द्रमा एक रेखा में विभिन्न भाग में पड़े तो उन दोनों का परस्पर का दृष्टिपात 'एकार्गल' दोष कहलाता है । यह शुभ कार्य में त्याज्य है, परन्तु यदि सूर्य और चन्द्रमा में कोई एक अभिजित् में हो तो वेध-दोष नहीं होता है ॥२१३-२१७½॥

प्रत्येक योग में अन्तर्भोग—१२ पल रहित २ घड़ी के मान से एक-एक योग में सत्ताईस योग बीतते हैं ॥२१८½॥

करण के स्वामी और शुभाशुभ विभाग—'इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, विश्वकर्मा, पृथ्वी, हरितप्रिया (लक्ष्मी), कीनाश (यम), कलि, रुद्र, सर्प तथा मरुत्—ये ग्यारह देवता क्रमशः बव आदि (बव, बालव, कौलव, तैतिल गर, वणिज, विष्टि, शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न—इन) ग्यारह करणों के स्वामी हैं । इनमें बव से लेकर छह करण शुभ होते हैं । किन्तु 'विष्टि' नामक करण क्रम से आया हो या विपरीत क्रम से, किसी भी दशा में वह मंगलकार्य में शुभ नहीं है ॥२११-२२०½॥

विष्टि के अंगों में घटी और फल—विष्टि के मुख पांच घटी, गले में एक, हृदय में ग्यारह, नाभि में चार, कटि में छह और पुच्छ में तीन घड़ियाँ होती हैं । मुख की घड़ियों में कार्य आरम्भ करने से कार्य की हानि होती है । गले की घड़ी में मृत्यु, हृदय की घड़ी में निर्धनता, कटि की घड़ी में उन्मत्तता, नाभि की घड़ी में पतन तथा पुच्छ की घड़ी में कार्य करने से निश्चय ही विजय प्राप्त होती है । भद्रा के बाद जो चार स्थिर करण हैं, वे मध्यम हैं, विशेषतः नाग और चतुष्पद ॥२२१-२२३॥

मुहूर्त कथन—दिन में क्रमशः रुद्र, सर्प, मित्र, पितर, वसु, विश्वेदेव, विधि (अभिजित्), ब्रह्मा, इन्द्र,

अर्यमा भगसंज्ञश्च विज्ञेया दश पंच च । ईशाजपादाहिर्बुध्न्यपूषाश्वियमवह्नयः ॥२२५॥
धातृइन्द्रादितोज्याख्या विष्णवर्कत्वष्टृवायवः । अह्नः पंचदशोभागस्तथा रात्रिप्रमाणतः ॥२२६॥
मुहूर्तमानं द्वरावक्षणर्क्षाणि समेश्वरम् । अर्यमा राक्षसब्राह्मौ पित्र्याग्नेयौ तथाभिजित् ॥२२७॥
राक्षसाख्यौ ब्राह्मपित्र्यौ भर्गाजांशाविनादिषु । वारेषु वर्जनीयास्ते मुहूर्ताः शुभकर्मसु ॥२२८॥
येषु ऋक्षेषु यत्कर्म कथितं निखिलं च तत् । तद्दैवत्ये मुहूर्तेऽपि कार्यं यात्रादिकं सदा ॥२२९॥
भूकंप सूर्यभात्सप्तमर्क्षे विद्युच्च पंचमे । शूलोऽष्टमे च दशमे शनिरष्टादशे ततः ॥२३०॥
केतुः पंचदशे दंड उल्का एकोनविंशतौ । निर्घातपातसंज्ञश्च ज्ञेयः स नवपंचमे ॥२३१॥
मोहनिर्घातकंपाश्च कुलिशं परिवेषणम् । विज्ञेया एकविंशर्क्षादारभ्य च यथाक्रमम् ॥२३२॥
चन्द्रयुतेषु भेष्वेषु शुभकर्म न कारयेत् । सूर्यभात्सर्वपित्र्यर्क्षं त्वाष्ट्रमित्राप्तभेषु च ॥२३३॥
सविष्णुभेषु क्रमशो हस्तभाच्चंद्रसंयुतः । धिष्ण्ये तातेति सत्यत्र दुष्टयोगः पतत्यसौ ॥२३४॥
चंडीशचंडायुधाख्यस्तस्मिन्नेवाचरेच्छुभम । वायोदश स्युर्मिलनसंख्यया तिथिवारयोः ॥२३५॥
क्रकचो नाम योगोऽयं मंगलेष्वतिगर्हितः । सप्तम्यामर्कवारश्चेत्प्रतिपत्सौम्यवासरे ॥२३६॥
संवर्तयोगो विज्ञेयः शुभकर्मविनाशकृत् । आनन्दः कालदंडाख्यो धूम्रधातृसुधाकराः ॥२३७॥

इन्द्राग्नि, राक्षस, वरुण, अर्यमा और भग—ये पन्द्रह मुहूर्त जानने चाहिए। रात्रि में शिव, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, पूषा, अश्विनीकुमार, यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अदिति, बृहस्पति, विष्णु, सूर्य, विश्वकर्मा और वायु—ये क्रमशः पन्द्रह मुहूर्त व्यतीत होते हैं। दिनमान का पन्द्रहवाँ भाग रात्रि के मुहूर्त का मान समझना चाहिए। इनसे दिन तथा रात्रि में क्षण-नक्षत्र का विचार करे ॥२२४-२२६½॥

वारों में निन्द्य मुहूर्त—रविवार को अर्यमा, सोमवार को ब्राह्म तथा राक्षस, मंगलवार को पितर और अग्नि, बुधवार को अभिजित्, गुरुवार को राक्षस और जल, शुक्रवार को ब्राह्म और पितर तथा शनिवार को शिव और सर्प मुहूर्त निन्द्य माने गये हैं; इसलिए शुभ कार्यों में इनका त्याग कर देना चाहिए ॥२२९॥

भूकम्पादि संज्ञाओं से युक्त नक्षत्र—सूर्य जिस नक्षत्र में हो उससे सातवें नक्षत्र की भूकम्प, पाँचवें की विद्युत्, आठवें की शूल, दसवें की अशनि, अठारहवें की केतु, पन्द्रहवें की दण्ड, उन्नीसवें की उल्का, चौदहवें की निर्घातपात, इक्कीसवें की मोह, बाईसवें की निर्घात, तेईसवें की कम्प, चौबीसवें की कुलिश तथा पचीसवें की परिवेष संज्ञा समझनी चाहिए; इन संज्ञाओं से युक्त चन्द्र-नक्षत्रों में शुभ कर्म नहीं करने चाहिए ॥२३०-२३२½॥

सूर्य के नक्षत्र से अश्लेषा, मघा, चित्रा, अनुराधा, रेवती तथा श्रवण तक की जितनी संख्या हो, उतनी ही यदि अश्विनी से चन्द्र-नक्षत्र तक की संख्या हो तो उस पर दुष्टयोग का सम्पात अर्थात् रुद्र के प्रचण्ड अस्त्र का प्रहार होता है। अतः उसका नाम 'चण्डीश चण्डायुध' योग है। उसमें शुभ कर्म नहीं करना चाहिए ॥२३३-२३४½॥

क्रकचयोग—प्रतिपदादि तिथि की तथा रवि आदि वार की संख्या मिलाने से यदि १३ हो तो 'क्रकच-योग' होता है। यह शुभ कार्य में अत्यन्त निन्दित है ॥२३५½॥

संवर्तयोग—रविवार को सप्तमी और बुधवार को प्रतिपदा हो तो संवर्तयोग होता है। यह शुभ कार्य विनाशक होता है ॥२३६½॥

आनन्दादि योग—१ आनन्द, २ कालदण्ड, ३ धूम्र, ४ धाता, ५ सुधाकर (सौम्य), ६ध्वांक्ष, ७ केतु,

। मित्रमानसपद्माख्यलुम्बकोत्पातमृत्यवः ॥२३८॥
ध्वांक्षध्वजाख्यश्रीवत्सवज्रमुद्गरछत्रकाः । राक्षसाख्यचरस्थैर्यवर्द्धमानः क्रमादमी ॥२३९॥
काणसिद्धिशुभा मृत्युमुशलांतककुंजराः । रविवारे क्रमादेव दस्रभादिदुभाद्विधौ ॥२४०॥
योगाः स्वसंज्ञाफलदा अष्टाविंशतिरीरिताः । वैश्वदेवाद्भृगुसुते वारुणाद्भास्करात्मजे ॥२४१॥
सार्पाद्भौमे बुधे हस्तान्मैत्रभात्सुरमंत्रिणि । सौम्ये मित्रभमाचार्यं तिष्यः पौष्णं भृगोः सुते ॥२४२॥
हस्तर्क्षं च रवाविंदौ चंद्रभं दस्रभं कुजे । आदित्यभौमयोर्नंदा भद्रा शुक्रशशांकयोः ॥२४३॥
रोहिणी मंदवारे च सिद्धियोगाह्वया अमी । नन्दा तिथिः शुक्रवारे सौम्ये भद्रा कुजे जया ॥२४४॥
जयासौम्ये गुरौ रिक्ता शनौपूर्णेति नो शुभाः । एकादश्यामिदुवारो द्वादश्यामर्कवासरः । ॥२४५॥
रिक्ता मंदे गुरोर्वारे पूर्णा सिद्धाह्वया अमी । नवमी पञ्चमी भौमे दग्धयोगाः प्रकीर्तिताः ॥२४६॥
षष्ठी गुरौ तृतीया ज्ञेऽष्टमी शुक्रे शनैश्चरे । बुधे श्रविष्ठार्यमभं गुरौ ज्येष्ठा भृगोर्दिने ॥२४७॥
भरण्यर्कदिने चंद्रे चित्रा भौमे तु विश्वभम् । विशाखादिचतुर्वर्गमर्कवारादिषु क्रमात् ॥२४८॥
रेवती मंदवारे तु ग्रहजन्मर्क्षनाशनम्

---

८ श्रीवत्स, ९ वज्र, १० मुद्गर, ११ छत्र, १२ मित्र, १३ मानस, १४, पद्म, १५ लुम्ब, १६ उत्पात, १७ मृत्यु, १८ काण, १९ सिद्धि, २० शुभ, २१ अमृत, २२ मुसल, २३ अन्तक (गद), २४ कुञ्जर (हाथी), २५ राक्षस, २६ चर, २७ सुस्थिर और २८ वर्धमान—ये क्रमशः पठित २८ योग अपने-अपने नाम के समान ही फल देने वाले कहे गये हैं।

इन योगों को जानने की रीति—रविवार को अश्विनी नक्षत्र से, सोमवार को मृगशिरा से, मंगलवार को अश्लेषा से, बुधवार को हस्त से, गुरुवार को अनुराधा से, शुक्रवार को उत्तराषाढ़ से और शनिवार को शतभिषा से आरम्भ करके उस दिन के नक्षत्र तक गणना करने पर जो संख्या हो, उसी संख्या वाला योग उस दिन होगा ॥२३७-२४१॥

सिद्धियोग—रविवार को हस्त, सोमवार को मृगशिरा, मंगलवार को अश्विनी, बुधवार को अनुराधा, बृहस्पतिवार को पुष्य, शुक्रवार को रेवती और शनिवार को रोहिणी हो तो सिद्धियोग होता है ॥२४२½॥

रवि और मंगलवार को नन्दा (१, ६, ११), शुक्र और सोमवार को भद्रा (२, ७, १२), बुधवार को जया (३, ८, १३), गुरुवार को रिक्ता (४ ९, १४) और शनिवार को पूर्णा (५, १०, १५) हो तो मृत्युयोग होता है। अतः इसमें शुभ कर्म न करे ॥२४३½॥

सिद्धयोग—शुक्रवार को नन्दा, बुधवार को भद्रा, मंगलवार को जया, शनिवार को रिक्ता और गुरुवार को पूर्ण तिथि हो तो सिद्धयोग होता है ॥२४४½॥

दग्धयोग—सोमवार को एकादशी, गुरुवार को षष्ठी, बुधवार को तृतीया, शुक्रवार को अष्टमी, शनिवार को नवमी तथा मंगलवार को पञ्चमी तिथि हो तो दग्धयोग होगा है ॥२४५-२४६॥

ग्रहों के जन्मनक्षत्र—रविवार को भरणी, सोमवार को चित्रा, मंगलवार को उत्तराषाढ़, बुधवार को धनिष्ठा, गुरुवार को उत्तरा फाल्गुनी, शुक्रवार को ज्येष्ठा और शनिवार को रेवती क्रमशः सूर्यादि ग्रहों के जन्म नक्षत्र होने के कारण शुभ कार्य के विनाशक होते हैं ॥२४७½॥

यदि रवि आदि वारों में विशाखा आदि चार-चार नक्षत्र हों अर्थात् रविवार को विशाखा से सोम को पूर्वाषाढ़ से, मंगल को धनिष्ठा से, बुध को रेवती से, गुरुवार को रोहिणी से, शुक्र को पुष्य से और शनि को उत्तरा फाल्गुनी से चार-चार नक्षत्र हों तो क्रमशः उत्पात, मृत्यु, काण तथा सिद्ध नामक योग होते हैं ॥२४८½॥

उत्पातमृत्युकाणाख्यसिद्धियोगाः प्रकीर्तिता । तिथिवारोद्भवा नेष्टा योगा वारर्क्षसंभवाः ॥२४९॥
हूणवंगखसेष्वन्यदेशेष्वतिशुभप्रदाः । घोराध्वांक्षीमहोदर्यो मन्दा मंदाकिनी तथा ॥२५०॥
मिश्रा राक्षसिका सूर्यवारादिषु यथाक्रमम् । शूद्रतस्करवैश्यक्ष्मादेवभूपगवां क्रमात् ॥२५१॥
अनुक्तानां च सर्वेषां घोराद्याः सुखदाः स्मृताः । पूर्वाह्णे नृपतीन्हन्ति विप्रान्मध्यंदिने विशः ॥२५२॥
अपराह्णेऽस्तगे शूद्रान्प्रदोषे च पिशाचकान् । निशि रात्रिचरान्नाट्यकारानपररात्रिके ॥२५३॥
गोपानुषसि संध्यायां लिंगिनो रविसंक्रमः । दिवा चेन्मेषसंक्रांतिरनर्थकलहप्रदा ॥२५४॥
रात्रौ सुभिक्षमतुलं संध्ययोर्वृष्टिनाशनम् । हरिशार्दूलवाराहखरकुंजरमाहिषाः ।
अश्वश्वाजवृषाः पादायुधाः करणवाहनाः ॥२५५॥
भुशुंडी च गदा खड्गौ दंड इष्वासतोमरौ ॥२५६॥
कुन्तपाशांकुशास्त्रेषून्बिभर्ति करयोस्त्विनः । अन्नं च पायसं भैक्ष्यं सयूषं च पयो दधि ॥२५७॥
मिष्टान्नं गुडमध्वाज्यशर्करा ववतो हविः । ववोवीवणिजेविश्वां बालवे गोचरस्थितौ ॥२५८॥
कौलवे शकुनौ भानुः किंस्तुघ्ने चोर्द्धसंस्थितः । चतुःपादे तिले नागे सुप्तः क्रांति करोति हि ॥२५९॥

परिहार––ये जो ऊपर तिथि और वार के संयोग से तथा वार और नक्षत्र के संयोग से अनिष्टकारक योग बताये गये हैं, वे सब हूणों के देश––भारत के पश्चिमोत्तरभाग में, बंगाल में और नेपाल देश में ही त्याज्य हैं। अन्य देशों में ये अत्यन्त शुभप्रद होते हैं ॥२४९½॥

सूर्यसंक्रान्तिकथन––रवि आदि वारों में सूर्य की संक्रान्ति होने पर क्रमशः घोरा, ध्वांक्षी, महोदरी, मन्दा, मन्दाकिनी, मिश्रा तथा राक्षसी––ये संक्रान्ति के नाम होते हैं। उक्त घोरा आदि संक्रान्तियाँ क्रमशः शूद्र, चोर, वैश्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, गौ आदि पशु तथा चारों वर्णों से अतिरिक्त मनुष्यों को सुख देने वाली होती हैं। यदि सूर्य की संक्रान्ति पूर्वाह्ण में हो तो वह क्षत्रियों को हानि पहुँचाती है। मध्याह्न में हो तो ब्राह्मणों को, अपराह्ण में हो तो वैश्यों को, सूर्यास्त-समय में हो तो शूद्रों को, रात्रि के प्रथम प्रहर में हो तो पिशाचों को, द्वितीय प्रहर में हो तो निशाचरों को, तृतीय प्रहर में हो तो नाट्यकारों को, चतुर्थ प्रहर में हो तो गोपालकों को और सूर्योदय समय में हो तो लिंगधारियों (बहुरूपियों, पाखण्डियों अथा आश्रम-सम्प्रदाय के चिह्न धारण करने वालों) को हानि पहुँचाती है ॥२५०-२५३½॥ यदि सूर्य की मेषसंक्रान्ति दिन में हो तो संसार में अनर्थ और कलह पैदा करने वाली होती है। रात्रि में मेष संक्रान्ति हो तो अनुपमसुख और तथा दोनों संध्याओं के समय हो तो वह वृष्टि का नाश करती है ॥२५४½॥

करणसंक्रान्तिवश सूर्य के वाहनभोजनादि––बव आदि ग्यारह करणों में संक्रान्ति होने पर क्रमशः १ सिंह, २ बाघ, ३ सूअर, ४ गदहा, ५ हाथी, ६ भैंसा, ७ घोड़ा, ८ कुत्ता, ९ बकरा, १० बैल और ११ मुर्गा––ये सूर्य के वाहन होते हैं तथा १ भुशुण्डी, २ गदा, ३ तलवार, ४ लाठी, ५ धनुष, ६ बरछी, ७ कुन्त (भाला), ८ पाश, ९ अंकुश, १० अस्त्र और ११ बाण––इन्हें क्रमशः सूर्यदेव अपने हाथों में धारण करते हैं। १ अन्न, २ खीर, ३ भिक्षान्न, ४ पकवान, ५ दूध, ६ दही, ७ मिठाई, ८ गुड़, ९ मधु, १० घृत और ११ चीनी––ये बव आदि की संक्रान्ति में क्रमशः भगवान् सूर्य के हविष्य (भोजन) होते हैं ॥२५५-२५७½॥

सूर्य की स्थिति––बव, वणिज, विष्टि, बालव और गर––इन करणों में सूर्य बैठे हुए, कौलव, शकुनि और किंस्तुघ्न––इन करणों में खड़े हुए तथा चतुष्पद, तैतिल और नाग––इन करणों में सोते हुए, संक्रान्ति करते (एक राशि से दूसरी राशि में जाते) हों तो इन तीनों अवस्थाओं की संक्रान्ति में प्रजा को क्रमशः धर्म, आयु और वर्षा के विषय में समान, श्रेष्ठ और अनिष्ट फल प्राप्त होते हैं तथा ऊपर कहे हुए अस्त्र, वाहन और

धर्मायुर्वृष्टिषु समं श्रेष्ठं नष्टं फलं क्रमात् । आयुधं वाहनाहारौ यज्जातीयं जनस्य च ॥२६०॥
स्वापोपविष्टास्तिष्ठंतस्ते लोकाः क्षेममाप्नयुः । अंधकं मंदसंज्ञं च मध्यसंज्ञं सुलोचनम् ॥२६१॥
पपीयाद्गणयेद्भानि रोहिण्यादिचतुर्विधम् । स्थिरभेष्वर्कसंक्रांतिर्ज्ञेया विष्णुपदाह्वया ॥२६२॥
षडशीतिमुखा ज्ञेया द्विस्वभावेषु राशिषु । तुलाघटाजयोर्ज्ञेयो विषुवत्सूर्यसंमः ॥२६३॥
याम्यायने स्थिरे त्वाद्याः पराः सौम्येन्दुर्मूतिभे । मेध्या विषुवति प्रोक्ताः पुण्यनाड्यस्तु षोडश ॥२६४॥
संध्या त्रिनाडी प्रमितार्कविवोर्द्धोदयास्ततः । प्राक्पश्चाद्याम्यसौम्ये चेत्पुण्यं पूर्वापरेहनि ॥२६५॥
यादृशेनेंदुना भानोः संक्रांतिस्तादृशं फलम् । नरः प्राप्नोति तद्राशौ शीतांशोः साध्वसाधु च ॥२६६॥
संक्रांतेः परतो भानुर्भुक्त्वा यावद्भिरंशकैः । रवेरयनसंक्रांतिस्तदा तद्राशिसंक्रमात् ॥२६७॥
संक्रांतिग्रहणर्क्षं वा जन्मन्युभयपार्श्वयोः । व्रतोद्वाहादिकेष्वेव द्वयं नेष्टं तु तत्क्रमात् ॥२६८॥
तिलोपरिलिखेच्चक्रं त्रित्रिशूलं त्रिकोणकम् । तत्र हेम विनिक्षिप्य दद्याद्दोषापवृत्तये ॥२६९॥
ताराबलेन शीतांशुर्बलवांस्तद्वशाद्रविः । बली संक्रममाणस्तु तद्वत्खेटा बलाधिकाः ॥२७०॥

भोजन तथा उससे आजीविका या व्यवहार करने वाले मनुष्यादि प्राणियों का अनिष्ट होता है एवं जिस प्रकार सोये, बैठे और खड़े हुए संक्रान्ति होती है, उसी प्रकार सोये, बैठे और खड़े हुए प्राणियों का अनिष्ट होता है ॥२५८-२६०½॥

नक्षत्रों की अन्धाक्षादि संज्ञायें--रोहिणी नक्षत्र से आरंभ करके चार-चार नक्षत्रों को क्रमशः अन्ध, मन्दनेत्र, मध्यनेत्र और सुलोचन माने और पुनः आगे इसी क्रमसे सूर्य के नक्षत्र तक गिनकर नक्षत्रों की अन्ध आदि चार संज्ञायें समझना चाहिए।

संक्रान्ति की विशेष संज्ञा--स्थिर राशियों (वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ) में सूर्य की संक्रान्ति का नाम 'विष्णुपदी', द्विस्वभाव राशियों मिथुन, कन्या, धनु और मीन) में 'षडशीतिमुख', तुला और मेष में, 'विषुव' मकर में 'सौम्यायन' और कर्क में 'याम्यायन' संज्ञा होता है ॥२६१-२६३½॥

(**पुण्यकाल**--)याम्यायन और स्थिरराशियों की (विष्णुपद) संक्रान्तिकाल से पूर्व १६ घड़ी, द्विस्वभाव राशियों की षडशीतिमुख और सौम्यायन-संक्रान्ति में संक्राति-काल के पश्चात् १६ घड़ी तथा विषुव (मेष-तुला) संक्राति के मध्य (संक्रातिकाल से ८ पूर्व और ८ पश्चात) की १६ घड़ी का समय पुण्यदायक होता है ॥२६४॥

सूर्योदय से पूर्व की तीन घड़ी प्रातःसंध्या तथा सूर्यास्त के बाद, की तीन घड़ी सायं संध्या कहलाती है। यदि सायं संध्या में याम्यायन या सौम्यायन कोई संक्रान्ति हो तो पूर्व दिन में और प्रातःसंध्या में संक्रान्ति हो तो पर दिन में सूर्योदय के बाद पुण्यकाल होता हैं ॥२६५॥

जब सूर्य की संक्रान्ति होती है, उस समय प्रत्येक मनुष्य के लिए जैसा शुभ या अशुभ चन्द्रमा होता है, उसी के अनुसार इस महीने में मनुष्यों को चन्द्रमा का शुभ या अशुभ फल प्राप्त होता ॥२६६॥ किसी संक्रान्ति के बाद सूर्य जितने अंश भोग कर उस संक्रान्ति करे, आगे अयन संक्रान्ति को उतने समय संक्रान्ति या ग्रहण का जो नक्षत्र हो, वह तथा उसके आगे-पीछे वाले दोनों नक्षत्र उपनयन और विवाहादि शुभ कार्यों में अशुभ होते हैं। संक्रान्ति या ग्रहणजनित अनिष्ट फलों की शान्ति के लिए तिलों को ढेरी पर तीन त्रिशूल वाला त्रिष्ठकोण-चक्र लिखे और उस पर यथाशक्ति सुवर्ण रखकर ब्राह्मणों को दान दे ॥२६७-२६९॥

ग्रहगोचर--तारा के बल से चन्द्रमा बली होता है और चन्द्रमा के बली होने पर सूर्य बली हो जाता है तथा संक्रमणकारी सूर्य के बली होने से अन्य सब ग्रह भी बली समझे जाते हैं ॥२७०॥

शुभोऽर्को जन्मतस्त्र्यायदशषट्सु मुनीश्वर । नवपञ्चांबुरिष्फस्थैर्व्यर्किभिर्विध्यते न चेत् ॥२७१॥
शुभो जन्मर्क्षतश्चंद्रो द्यूनांगायारिस्वत्रिषु । यथेष्टांत्यांबुधर्मस्थैर्विबुधैर्विध्यते न चेत् ॥२७२॥
त्र्यायारिषु कुजः श्रेष्ठो जन्मना चेन्न विध्यते । व्ययेष्वंकस्थितैः सौरिसौम्यसूर्यैः शुभौषधात् ॥२७३॥
ज्ञः स्वायार्यष्टजायेषु जन्मतश्चेन्न विध्यते । धीव्ययकादिगजांतस्थैः शशांकरहितैः शुभैः ॥२७४॥
जन्मराशेर्गुरुः श्रेष्ठः स्वायगोऽध्यस्तगो न चेत् । विध्यतेंत्याष्टखांबुत्रिगतैः खेटैर्मुनीश्वर ॥२७५॥
जन्मभादासुताष्टांकांत्यापञ्चिष्टो भृगोःसुतः । चेन्न विद्धोऽष्टसप्तांगम् खांकाद्यायारिरामगैः ॥२७६॥
न ददाति शुभं किंचिद्गोचरे वेधसंयुते । तस्माद्वेधं विचार्याथ कथनीयं शुभाशुभम् ॥२७७॥
वामभेदविधानेन दुष्टोऽपि स्याच्छुभङ्करः । सौम्येक्षितोऽनिष्टफलः शुभदः पापवीक्षितः ॥२७८॥
निष्फलौ तौ ग्रहौ स्वेन शत्रूणां च विलोकितौ । नीचराशिगतः स्वस्य शत्रोः क्षेत्रगतोऽपि ॥२७९॥
शुभाशुभफलं नैव दद्यादस्तमितोऽपि वा । ग्रहेषु विषमस्थेषु शांतिं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥२८०॥
हानिर्वृद्धिर्ग्रहाधीना तस्मात्पूज्यतमा ग्रहा । मणिर्मुक्ताफलं विद्रुमाख्यं मरकतं तथा ॥२८१॥
पुष्परागं तथा वज्रं नीलं गोमेदसंज्ञितम् । वैदूर्यं भास्करादीनां तुष्टच धार्यं यथाक्रमम् ॥२८२॥

मुनीश्वर ! अपनी जन्म राशि से ३,११,१०,६ स्थान में सूर्य शुभ होता है; परन्तु यदि क्रमशः जन्मराशि से ही ९,५,४ तथा १२ वें स्थान में स्थित शनि के अतिरिक्त अन्य ग्रहों से वह विद्ध न हो, तभी शुभ होता है। इसी प्रकार चन्द्रमा जन्मराशि से ७,६,११,१,१० तथा ३ में शुभ होते हैं; यदि क्रमशः २,१२,८,५,४ और ९ वें में स्थित बुध से भिन्न ग्रहों से विद्ध न हों। मंगल जन्मराशि से ३,११,६ में शुभ हैं; यदि क्रमशः १२,५ तथा ९वें स्थान में स्थित अन्य ग्रह से विद्ध न हों। शनि भी अपनी जन्मराशि से इन्हीं ३, ११, ६ स्थानों में शुभ हैं; यदि क्रमशः १२, ५, ९ स्थानों में स्थित सूर्य के सिवा अन्य ग्रहों से विद्ध न हों। बुध अपनी जन्मराशि से २, ४, ६, ८, १० और ११ स्थानों में शुभ हैं, यदि क्रमशः ५, ३, ९, १, ८, और १२ स्थानों में स्थित चन्द्रमा के सिवा अन्य किसी ग्रह से विद्ध न हों। मुनीश्वर ! गुरु जन्मराशि से २, ११, ९, ५ और ७ इन स्थानों में शुभ होते हैं; यदि क्रमशः १२, ८, १० ,४ और ३ स्थानों में स्थित अन्य किसी ग्रह से विद्ध न हों। इसी प्रकार शुक्र भी जन्मराशि से १, २, ३, ४,५, ८, ९, १२ तथा ११ स्थानों में शुभ होते हैं; यदि क्रमशः ८, ७, १, १०, ९, ५, ११, ६, ३ स्थानों में स्थित अन्य ग्रह से विद्ध न हों ॥२७१-२७६॥

जो ग्रह गोचर में वेधयुक्त हो जाता है, वह शुभ या अशुभ फल को नहीं देता; इसलिए वेध का विचार कर के ही शुभ या अशुभ फल समझना चाहिए ॥२७७। वामवेध होने (वेध स्थान में ग्रह और शुभ स्थान में अन्य ग्रह के होने) से दुष्ट (अशुभ) ग्रह भी शुभकारक हो जाता है तथा शुभप्रद ग्रह भी पाप ग्रह से दृष्ट हो तो अनिष्ट फल देता है। शुभ और पाप दोनों ग्रह यदि अपने शत्रु से देखे जाते हों अथवा नीच राशि में या अपने शत्रु की राशि में हों तो निष्फल हो जाते हैं। इसी प्रकार जो ग्रह अस्त हो, वह भी अपने शुभ या अशुभ फल को नहीं देता है। ग्रह यदि दुष्ट स्थान में हो तो यत्नपूर्वक उसकी शान्ति कर लेनी चाहिए। हानि और लाभ ग्रहों के ही अधीन हैं, इसलिए ग्रहों की यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिए ॥२७८-२८०½॥

सूर्य आदि नवग्रहों की तुष्टि के लिए क्रमशः मणि (पद्मराग-लाल), मुक्ता (मोती), विद्रुम (मूंगा), मरकत (पन्ना), पुष्पराग (पुखराज), वज्र (हीरा), नीलम, गोमेदरत्न एवं वैदूर्य (लहसनिया) धारण करना चाहिए ॥२८१-२८२॥

।।२८३।।
शुक्लपक्षादिदिवसे चंद्रो यस्य शुभप्रदः । स पक्षस्तस्यशुभदः कृष्णपक्षोन्यथाऽशुभः ।।२८४।।
शुक्लपक्षे शुभश्चंद्रो द्वितीयनवपंचमे । रिःफरंध्रांबुसंस्थैश्चेन्न विद्धो गगने चरैः ।।२८५।।
जन्म संपद्विपत् क्षेम प्रत्यरिः साधको वधः । मित्रं परममित्रं च जन्मभात्तु पुनः पुनः ।।२८६।।
जन्मत्रिपंचसप्ताख्यास्तारा नेष्ट फलप्रदाः । शाकं गुडं च लवणं सतिलं कांचनं क्रमात् ।।२८७।।
अनिष्टफलनाशाय दद्यादेतद्द्विजातये । कृष्णे बलवती तारा शुक्लपक्षे बली शशी ।
यात्रोद्वाहादिकार्येषु नामतुल्यफलप्रदाः । षष्टिघ्नं गतचन्द्रर्क्षं तत्कालघटिकान्वितम् । ।।२८८।।
वेदघ्नमिषुवेदांत्यमवस्था भानुभागतः ।।२८९।।
प्रवासनष्टाख्यमृता जयो हास्यं रतिर्मुदा । शनिभुक्तिज्वरः कंपः सुस्थितिर्नामसन्निभाः ।।२९०।।
पट्टबंधनयानोग्रसंधिविग्रहभूषणम् । धात्वाकरं युद्धकर्म मेषलग्ने प्रसिद्ध्यति ।।२९१।।
मंगलानि स्थिराण्यंबुवेश्मकर्मप्रवर्तनम् । कृषिवाणिज्यपश्वादिदुष्टलग्ने प्रसिद्ध्यति ।।२९२।।
कलाविज्ञानशिल्पानि भूषणाहवसंश्रवम् । गजोद्वाहाभिषेकाद्यं कर्त्तव्यं मिथुनोदये

चन्द्र-शुद्धि में विशेषता—शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन प्रतिपदा में जिस व्यक्ति के चन्द्रमा शुभ होते हैं उसके लिए शुक्ल पक्ष और कृष्णपक्ष दोनों ही शुभ होते हैं। अन्यथा (यदि शुक्ल-प्रतिपदा में चन्द्रमा अशुभ हो तो) दोनों पक्ष अशुभ ही होते हैं। (पहले जो जन्मराशि से २, ९, ५ वें चन्द्रमा को अशुभ कहा गया है।) शुक्लपक्ष में २,९, तथा ५ वें स्थान में स्थित चन्द्रमा भी शुभप्रद ही होता है, यदि वह ६,८,१२ वें स्थानों में स्थित अन्य ग्रहों से विद्ध न हो ।।२८३-२८४।।

तारा विचार—अपने-अपने जन्म-नक्षत्र से नौ नक्षत्रों तक गिने तो क्रमशः १ जन्म, २ सम्पत्, ३ विपत्, ४ क्षेम, ५ प्रत्यरि, ६ साधक, ७, वध, ८ मित्र तथा ९ परम मित्र इस प्रकार ९ तारायें होती हैं। फिर इसी प्रकार आगे गिनने पर १० से १८ तक तथा १९ से २७ तक क्रमशः वे ही तारायें होंगी। इनमें १,३,५ और ७वीं तारा अपने नाम के अनुसार अनिष्ट फल देने वाली होती हैं। इन चारों ताराओं में इनके दोष की शान्ति के लिए ब्राह्मणों को क्रमशः शाक, गुड, लवण और तिल सहित सुवर्ण का दान देना चाहिए। कृष्णपक्ष में तारा बलवती होती है और शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बलवान् होता है ।।२८५-२८७।।

चन्द्रमा की अवस्था—प्रत्येक राशि में चन्द्रमा की बारह-बारह अवस्थायें होती हैं, जो यात्रा तथा विवाह आदि शुभ कार्यों में अपने नाम के सदृश ही फल देती हैं।

अवस्था का ज्ञान—अभीष्ट दिन में गत नक्षत्र-संख्या को ६० से गुणा कर के उसमें वर्तमान नक्षत्र की भुक्त (भयात) घड़ी को जोड़ दे, योगफल को चार से गुणा कर के गुणनफल में ४५ का भाग दे। जो लब्धि आये, उसमें पुनः १२ से भाग देने पर १ आदि शेष के अनुसार मेषादि राशियों में क्रमशः प्रवास, नष्ट, मृत, जय, हास्य, रति, मुदा, भुक्ति, ज्वर, कम्प और सुस्थिति-ये बारह गत अवस्थायें होती हैं। ये अपने-अपने नाम के समान फल देने वाली होती हैं ।।२८८-२८९।।

मेषादि लग्नों में कर्तव्य—पटबन्धन (राजसिंहासन, राजमुकुट आदि धारण), यात्रा, उग्र कर्म, संधि, विग्रह, आभूषण-धारण, धातु, खान सम्बन्धी कार्य और युद्धकर्म—ये सब मेषलग्न में आरंभ करने से सिद्ध होते हैं ।।२९०।। वृषलग्न में विवाह आदि मंगलकर्म, गृहारम्भ आदि स्थिरकर्म, जलाशय, गृह-प्रवेश, कृषि, वाणिज्य तथा पशुपालन आदि कार्य सिद्ध होते हैं ।।२९१।। मिथुन लग्न में कला, विज्ञान, शिल्प, आभूषण, युद्ध, संश्रव (कीर्तिसाधक कर्म), राजकार्य, विवाह, राज्याभिषेक आदि कार्य करने चाहिए ।।२९२।। कर्क लग्न में वापी,

वापीकूपतडागादि वारिबंधनमोक्षणम् । पौष्टिकं लिपिलेखादि कर्तव्यं कर्कटोदये ॥२९३॥
इक्षुधान्यवणिक्पण्यकृषिसेवादयस्थिरे । साहसाहवभूषाद्यं सिंहलग्ने प्रसिद्ध्यति ॥२९४॥
विद्याशिल्पौषधं कृत्यं भूषणं च चरस्थिरम् । कन्या लग्नं विधेयं च पौष्टिकाखिलमंगलम् ॥२९५॥
कृषिवाणिज्ययानं च पशूद्वाहव्रतादिकम् । तुलायामखिलं कर्म तुलाभाराश्रिते च यत् ॥२९६॥
स्थिरकर्माखिलं कार्यं राजसेवाभिषेचनम् । चौर्यकर्मस्थिरारंभाः कर्तव्याः वृश्चिकोदये ॥२९७॥
व्रतोद्वाहप्रयाणाश्वगजशिल्पकलादिकम् । चरस्थिरविमिश्रं च कर्तव्यं कार्मुकोदये ॥२९८॥
चापबंधनमोक्षास्त्रकृषिगोश्वादिकम् च यत् । प्रस्थानं पशुदासादि कर्तव्यं मकरोदये ॥२९९॥
कृषिवाणिज्यपश्वंवुशिल्पकर्मकलादिकम् । जलपात्रास्त्रशस्त्रादि कर्तव्यं कलशोदये ॥३००॥
व्रतोद्वाहाभिषेकांबुस्थापनं सन्निवेशनम् । भूषणं जलपात्राश्वकर्म मीनोदये शुभम् ॥३०१॥
मेषादिषु विलग्नेषु शुद्धेष्वेवं प्रसिद्ध्यति । क्रूरग्रहेक्षितेषूग्रसंयुतेषूग्रमेव हि ॥३०२॥
गोयुग्मकर्ककन्यांत्यतुलाचापधराः शुभाः । शुभर्क्षत्वाशुभास्तस्य इतरा पापराशयः ॥३०३॥
ग्रहयोगावलोकाभ्यां राशिधत्ते ग्रहोद्भवम् । फलं ताभ्यां विहीनोऽसौ स्वभावमुपसर्पति ॥३०४॥

कूप, तड़ाग, जल रोकने के लिए बांध, जल निकालने के लिए नाली बनाना, पौष्टिक कर्म, चित्रकारी तथा लेखन आदि कार्य करने चाहिए ॥२९३॥ सिंह लग्न में ईख तथा धान्यसम्बन्धी सब कार्य, वाणिज्य, हाट, कृषिकर्म तथा सेवा आदि कर्म, स्थिर कार्य साहस, युद्ध तथा आभूषण बनाना आदि कार्य सिद्ध होते हैं ॥२९४॥ कन्या लग्न में विद्यारंभ, शिल्पकार्य, औषधि निर्माण और उसका धारण, समस्त चर और स्थिर कार्य, पौष्टिक कर्म तथा विवाहादि समस्त शुभ कार्य करने चाहिए ॥२९५॥ तुला लग्न में कृषिकर्म, व्यापार, यात्रा, पशुपालन, विवाह-उपनयनादि संस्कार तथा तोल सम्बन्धी जितने कार्य हैं, वे सब सिद्ध होते हैं ॥२९६॥ वृश्चिक लग्न में गृहारम्भादि समस्त स्थिर कार्य, राजसेवा, राज्याभिषेक, गोपनीय और स्थिर कर्मों का आरंभ करना चाहिए ॥२९७॥ धनु लग्न में उपनयन, विवाह, यात्रा, अश्वकृत्य, गजकृत्य, शिल्पकला तथा चर, स्थिर और मिश्रित कर्मों को करना चाहिए ॥२९८॥ मकर लग्न में धनुष बनाना, उसमें प्रत्यंचा बांधना, बाण छोड़ना, अस्त्र बनाना और चलाना, कृषि, गो पालन, अश्वकृत्य, गजकृत्य तथा पशुओं का क्रय-विक्रय और दास आदि की नियुक्ति---ये सब कार्य करने चाहिए ॥२९९॥ कुम्भ लग्न में कृषि, वाणिज्य, पशुपालन, जलाशय, शिल्पकर्म, कला आदि, जलपात्र (कलश आदि) तथा अस्त्र-शस्त्र का निर्माण आदि कार्य करना चाहिए ॥३००॥ मीन लग्न में उपनयन, विवाह, राज्याभिषेक, जलाशय की प्रतिष्ठा, गृहप्रवेश, भूषण, जलपात्रनिर्माण तथा अश्व सम्बन्धी कृत्य शुभ होते हैं ॥३०१॥

इस प्रकार मेषादि लग्नों के शुद्ध (शुभ स्वामी से युक्त या दृष्ट) रहने से शुभ कार्य सिद्ध होते हैं (पापग्रह से युक्त या दृष्ट लग्न हो तो उसमें केवल क्रूर कर्म ही सिद्ध होते हैं ॥३०२॥

वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, मीन, तुला और धनु ये शुभग्रह की राशि होने के कारण शुभ हैं तथा अन्य (मेष, सिंह, वृश्चिक, मकर और कुम्भ—ये) पापराशियाँ हैं ॥३०३॥ लग्न पर जैसे (शुभ या अशुभ) ग्रहों का योग या दृष्टि हो उसके अनुसार ही लग्न अपना फल देता है। यदि लग्न में ग्रह के योग या दृष्टि का अभाव हो तो लग्न अपने स्वभाव के अनुकूल फल देता है ॥३०४॥ किसी लग्न के आरंभ में कार्य का आरम्भ होने पर उसका पूर्ण फल मिलता है। लग्न के मध्य में मध्यम और अन्त में अल्प फल प्राप्त होता है। यह बात सब लग्नों में समझनी चाहिए ॥३०५॥ कार्यकर्ता के लिए सर्वत्र पहले लग्नबल, उसके बाद चन्द्रबल देखना चाहिए। चन्द्रमा यदि बली हो और सप्तम भाव में स्थित हो तो सब ग्रह बलवान् समझे जाते हैं ॥३०६॥ चन्द्रमा का बल आधार और अन्य ग्रहों के बल आधेय हैं। आधार के बल पर ही आधेय स्थिर रहता है ॥३०७॥ यदि

आदौ सम्पूर्णफलदं मध्ये मध्यफलप्रदम् । अंते तुच्छफले लग्ने सर्वस्मिन्नेवमेव हि ॥३०५॥
सर्वत्र प्रथमं लग्नं कर्तश्चंद्रबलं ततः । कल्याणदिदो बलिनि सप्तमे बलिनो ग्रहाः ॥ ३०६॥
चंद्रस्य बलिमाधारमाधेयं चान्यखेटकम् । आधारभूतेनाधेयं धीयते परिधिष्ठिनम् ॥३०७॥
चेदिंदुः शुभदः सर्वे ग्रहाः शुभफलप्रदाः । अशुभश्चेदशुभदा वर्जयित्वा धनाधिपम् ॥३०८॥
लग्नस्याभ्युदिता येंशास्तेष्वंशेषु स्थितो ग्रहः । लग्नोद्भवं फलं धत्ते धनातीतो द्वितीयकम् ॥३०९॥
एवं स्थानेषु शेषेषु चैवमेवं प्रकल्पयेत् । लग्नं सर्वगुणोपेतं लभ्यतेऽल्पैर्दिनैर्नहि ॥३१०॥
दोषाल्पत्वं गुणाधिक्यं बहु संततमिष्यते । दोषाद्दुष्टो हि कालस्तमपि माष्टुं पितामहः ॥३११॥
अप्यशौचगुणाधिक्यं दोषान्यस्ते ततो हि ते । अमारिक्ताष्टमीषष्ठीद्वादशीप्रतिपत्स्वपि ॥३१२॥
परिघस्य च पूर्वार्द्धं व्यतीपाते सवैधृतौ । संध्यासूपप्लवे विष्टचामशुभं प्रथमार्त्तवम् ॥३१३॥
रुग्णा पतिप्रिया दुःखा पुत्रिणी भोगनी तथा । पतिव्रता केशयुक्ता सूर्यवारादिषु क्रमात् ॥३१४॥
यामाग्निरौद्रभाग्याहिद्वीशेंद्रादिह्य पद्विशाः । तारका न हिता मासा मधूर्जशुचिपौषकाः ॥३१५॥
भद्रा च संक्रमो निद्रा रात्रिश्चंद्रार्कयोर्ग्रहः । कुलटा पापभोगेषु निद्यर्क्षे निद्यवासरे ॥३१६॥
तिलाज्यदूर्वा जुहुयाद्गायत्र्याष्टशतं बुधः । सुवर्णगोतिलान्दद्यात्सर्वदोषानुपत्तये ॥३१७॥

चन्द्रमा शुभदायक हो तो सब ग्रह शुभ फल देने वाले होते हैं। यदि चन्द्रमा अशुभ हो तो अन्य सब ग्रह भी अशुभ फल देने वाले हो जाते हैं। लेकिन धनस्थान स्वामी को छोड़कर ही यह नियम लागू होता है; क्योंकि यदि धनेश शुभ हो तो वह चन्द्रमा के अशुभ होने पर भी अपना शुभ फल ही देता है ॥३०८॥

लग्न के जितने अंश उदित हो गये (क्षितिज से ऊपर आ गये) हों, उनमें जो ग्रह हो वह लग्न के फल को देता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि लग्न के जितने भावांश हों, उनके भीतर रहने वाला ग्रह लग्नभाव का फल देता है तथा उससे आगे-पीछे हो तो लग्नराशि में रहता हुआ भी आगे-पीछे के भाव का फल देता है। लग्न के कथित अंश से जो ग्रह आगे बढ़ जाता है, वह द्वितीय भाव का फल देता है। इस प्रकार सब भावों में ग्रहों की स्थिति और फल की कल्पना करनी चाहिए। सब गुणों से युक्त लग्न तो थोड़े दिनों में नहीं मिल सकता; अतः स्वल्प दोष और अधिक गुणों से युक्त लग्न को ही सब कार्यों में सर्वदा ग्रहण करना चाहिए; क्योंकि अधिक दोषों से युक्त काल को ब्रह्मा भी शुद्ध नहीं कर सकते; इसलिए थोड़े दोष से युक्त होने पर भी अधिक गुण वाला लग्न-काल हितकर होता है ॥३०९-३११½॥

स्त्रियों के प्रथम रजोदर्शन--अमावास्या, रिक्ता (४, ९, १४), ८, ६, १२ और प्रतिपदा--इन तिथियों में परिघ योग के पूर्वार्ध में, व्यतीपात और वैधृति में, संध्या के समय, सूर्य और चन्द्र के ग्रहणकाल में तथा विष्टि (भद्रा) में स्त्री का प्रथम मासिक धर्म अशुभ होता है। रवि आदि वारों में प्रथम रजोदर्शन हो तो वह स्त्री क्रमशः रोगयुक्ता, पति की प्रिया, दुःखयुक्ता, पुत्रवती, भोगवती, पतिव्रता एवं क्लेशयुक्त होती है ॥३१२-३१४॥ भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, पूर्वा फाल्गुनी, अश्लेषा, विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ और पूर्व भाद्रपद--ये नक्षत्र तथा चैत्र, कार्तिक, आषाढ़ और पौष--ये मास प्रथम मासिक धर्म में अनिष्टकारक होते हैं। भद्रा सूर्य की संक्रान्ति, निद्रा अवस्था--रात्रिकाल, सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण--ये सब प्रथम मासिक धर्म में शुभ नहीं हैं। अशुभ योग, निन्द्य नक्षत्र तथा निन्दित दिन में प्रथम मासिक धर्म हो तो वह स्त्री कुलटा स्वभाव वाली होती है ॥३१५-३१६॥ इसलिए इन सब दोषों की शान्ति के लिए विज्ञ पुरुष को तिल, घृत और दूर्वा से गायत्री मंत्र द्वारा १०८ बार आहुति तथा सुवर्णदान, गोदान एवं तिलदान करना चाहिए ॥३१७॥

आद्या निशश्चतस्रस्तु याज्या ह्यपि समा परैः । ओजराश्यंशगे चंद्रे लग्ने पुंग्रहवीक्षिते ॥३१८॥
उपवीती युग्मतिथावनग्नः कामयेत्स्त्रियम् । पुत्रार्थी पुरुषस्त्यक्त्वा पौष्णमूलाहिपित्र्यभम् ॥३१९॥
प्रसिद्धे प्रथमे गर्भे तृतीये वा द्वितीयके । मासे पुंसवनं कार्यं सीमंतं च यथा तथा ॥३२०॥
चतुर्थे मासिषष्ठे वाप्यष्टमे वा तदीश्वरे । बलोपपन्ने दंपत्योश्चंद्रताराबलान्विते ॥३२१॥
अरिक्तापर्वदिवसे कुजजीवार्कवासरे । तीक्ष्णमिश्रार्कवर्ज्येषु पुंभांशेरात्रिनायके ॥३२२॥
शुद्धेऽष्टमे जन्मलग्नात्तयोर्लग्ने न नैधने । शुभग्रहयुते दृष्टे पापदृष्टिविवर्जिते ॥३२३॥
शुभग्रहेषु धीधर्मकेंद्रेष्वरिभवे त्रिषु । पापेषु सत्सु चंद्रेत्यनिधनाद्यरिवर्जिते ॥३२४॥
क्रूरग्रहाणामेकोपि लग्नादंत्यात्मजाष्टगः । सीमंतिनी वा तद्गर्भं बली हंति न संशयः ॥३२५॥
तस्मिञ्जन्ममुहूर्तेऽपि सूतकांतेऽपि वा शिशोः । जातकर्म प्रकर्तव्यं पितृपूजनपूर्वकम् ॥३२६॥
सूतकांते नामकर्म विधेयं तत्कुलोचितम् । नामपूर्वं प्रशस्तं स्यान्मंगलैः सुसमीक्षितैः ॥३२७॥
देशकालोपघाताद्यैः कालातिक्रमणं यदा । अनस्तगे भृगावीज्ये तत्कार्यं चोत्तरायणे ॥३२८॥
चरस्थिरमृदुक्षिप्रनक्षत्रे शुभवासरे । चन्द्रताराबलोपेते दिवसे च शिशोः पितुः ॥३२९॥

गर्भाधान-संस्कार—मासिक धर्म के आरंभ से चार रात्रियाँ गर्भाधान में त्याज्य हैं। सम रात्रियों में जब चन्द्रमा विषमराशि और विषम नवमांश में हो, लग्न पर पुरुषग्रह (रवि, मंगल तथा बृहस्पति) की दृष्टि हो तो पुत्रार्थी पुरुष सम (२, ४, ६, ८, १०, १२) तिथियों में; रेवती, मूल, अश्लेषा और मघा इन नक्षत्रों को छोड़ कर अन्य नक्षत्रों में उपवीती और अनग्न (सवस्त्र) होकर स्त्री का संग करे ॥३१८-३१९॥

पुंसवन और सीमन्तोन्नयन—प्रथम गर्भ स्थिर हो जाने पर तृतीय या द्वितीय मास में पुंसवन कर्म करे। उसी प्रकार ४, ६ या ८वें मास में उस मास के स्वामी जब बली हों तथा स्त्री-पुरुष दोनों को चन्द्रमा और तारा का बल प्राप्त हो तो सीमन्त-कर्म करना चाहिए। रिक्ता तिथि और पर्व को छोड़कर अन्य तिथियों में, मंगल, बृहस्पति तथा रविवार में, तीक्ष्ण और मिश्र संज्ञक नक्षत्रों को छोड़कर अन्य नक्षत्रों में, जब चन्द्रमा विषमराशि और विषम राशि के नवमांश में हो, लग्न से अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहवर्जित) हो, स्त्री-पुरुष के जन्म-लग्न से अष्टम राशिलग्न न हो एवं शुभग्रह लग्न से ५, १, ४, ७, ९, १० में और पापग्रह ६, ११ तथा ३ में हों एवं चन्द्रमा १२, ८ तथा लग्न से अन्य स्थानों में हो तो पुंसवन और सीमन्तोन्नयन करने चाहिए ॥३२०-३२४॥ यदि एक भी बलवान् पापग्रह लग्न से १२, ५ और ८ भावों में हो तो वह सीमन्तिनी स्त्री अथवा उसके गर्भ का नाश कर देता है ॥३२५॥

जातकर्म और नामकर्म—जन्म के समय में ही जातकर्म कर लेना चाहिए। किसी प्रतिबन्धकवश उस समय न कर सके तो सूतक बीतने पर भी उक्त लग्न में पितरों का पूजन (नान्दीमुख श्राद्ध कर्म) करके बालक का जातकर्म-संस्कार अवश्य करना चाहिए एवं सूतक बीतने पर अपने कुल की रीति के अनुसार बालक का नामकरण-संस्कार भी करना चाहिए। भलीभाँति विचार पूर्वक देवता आदि का वाचक, मंगलदायक एवं उत्तम नाम रखना चाहिए। यदि देशकालादि जन्म किसी प्रतिबन्ध से समय पर कर्म न हो सके तो समय के बाद जब गुरु और शुक्र का उदय हो, तब उत्तरायण में चर, स्थिर, मृदु और और क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रों में शुभ-ग्रह के वार (सोम बुध, गुरु और शुक्र) में पिता और बालक के चन्द्रबल और ताराबल प्राप्त होने पर शुभ लग्न और शुभ नवांश में, लग्न से अष्टमभाव में कोई ग्रह न हो तब बालक का जातकर्म और नामकरण संस्कार करने चाहिए ॥३२६-३२९½॥

शुभलग्ने शुभांशे च निधने शुद्धिसंयुते । षष्ठे मास्यष्टमे वापि पुंसां स्त्रीणां तु पञ्चमे ॥३३०॥
सप्तमे मासि वा कार्यं नवान्नप्राशनं शुभम् । रिक्तां दिनक्षयं नन्दां द्वादशीमष्टमीमथ ॥३३१॥
त्यक्त्वान्यतिथिषु प्रोक्तं प्राशनं शुभवारे । चरस्थिरमृदुक्षिप्रनक्षत्रे शुभनैधने ॥३३२॥
दशमे शुद्धिसंयुक्ते शुभलग्ने शुभांशके । पूर्वाह्णे सौम्यखेटेन संयुक्तर्वाक्षितेऽपि वा ॥३३३॥
त्रिषष्टलाभगैः क्रूरैः केंद्रधीधर्मगैः शुभैः । व्ययारिनिधनस्थे च चन्द्रेऽन्नप्राशनं शुभम् ॥३३४॥
तृतीये पञ्चमे चाब्दे स्वकुलाचारतोऽपि वा । बालानां जन्मतश्चौलं स्वगृह्योक्तविधानतः ॥३३५॥
सौम्यायने नास्तगयोः सुरारिसुरमन्त्रिणोः । अपूर्वरिक्तातिथिषु शुक्रेज्यज्ञेदुवासरे ॥३३७॥
दसादितीज्यचंद्रेन्द्रपूषभानि शुभानि च । चौलकर्मणि हस्तर्क्षात्त्रीणित्रीणि च विष्णुभात् ॥३३८॥
पट्टबंधनचोलान्नप्राशने चोपनायने । शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि ॥३३९॥
अष्टमे शुद्धिसंयुक्ते शुभलग्ने शुभांशके । जन्माष्टमं शीतांशौ षष्टाष्टांत्यविवर्जिते ॥३३९॥
धनत्रिकोणकेंद्रस्थैः शुभैस्त्र्यायारिगैः परैः । अभ्यक्ते सन्ध्ययोर्वारे निशि भुक्त्वा न वाहवे ॥३४०॥
नोत्कटे भूषिते नैव याने न नवमेऽह्नि च । क्षौरकर्म महीपानां पञ्चमेपंचमेऽहनि ॥३४१॥

अन्न-प्राशन--बालकों का जन्म से ६ वें या ८वें मास में और बालिकाओं का जन्म से ५वें या ७वें मास में अन्नप्राशनकर्म शुभ होता है । परन्तु रिक्ता (४, ९, १४), तिथिक्षय, नन्दा (१, ६, ११), १२, ८--इन तिथियों को छोड़कर (अन्य तिथियों में) शुभ दिन में चर, स्थिर, मृदु और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र में लग्न से अष्टम और दशम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) होने पर शुभ नवांशयुक्त शुभ राशिलग्न में, लग्न पर शुभग्रह का योग या दृष्टि होने पर जब पापग्रह लग्न से ३, ६, ११ भाव में और शुभग्रह १, ४, ७, १०, ५, ९, भाव में हों तथा चन्द्रमा १२, ६, ८ स्थान से भिन्न स्थान में हो तो पूर्वाह्न-समय में बालकों का अन्नप्राशन शुभ होता है ॥३३०-३३४॥

चूडाकरण--बालकों के जन्म समय से तीसरे या पाँचवें वर्ष में अथवा अपने कुल के आचार-व्यवहार के अनुसार अन्य वर्षमास में भी उत्तरायण में, जब गुरु और शुक्र उदित हों (अस्त न हों), पर्व तथा रिक्ता को छोड़कर अन्य तिथियों में, शुक्र, गुरु, सोमवार में, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, मृगशिरा, ज्येष्ठा, रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा--इन नक्षत्रों में अपने-अपने गृह्यसूत्र में बतायी गई विधि के अनुसार चूडाकरणकर्म करना चाहिए। राजाओं के पट्टबन्धन, बालकों के चूडाकरण, अन्नप्राशन और उपनयन में जन्मनक्षत्र प्रशस्त होता है । अन्य कर्मों में जन्म-नक्षत्र अशुभ कहा गया है । लग्न से अष्टम स्थान शुद्ध हो, शुभ राशि लग्न हो, उसमें शुभग्रह का नवमांश हो तथा जन्मराशि या जन्मलग्न से अष्टम राशिलग्न न हो, चन्द्रमा लग्न से ६, ८, १२ स्थानों से भिन्न स्थानों में हो, शुभग्रह २, ५, ९, १, ४, ७, १० भाव में हों तथा पापग्रह ३, ६, ११ भाव में हो तो चूडाकरण कर्म प्रशस्त होता है ॥३३५-३३९½॥

सामान्य क्षौरकर्म--तेल लगाकर तथा प्रातः और सायं संध्या के समय क्षौर नहीं कराना चाहिए। इसी प्रकार मंगलवार को तथा रात्रि में क्षौर का निषेध है । दिन में भी भोजन के बाद क्षौर नहीं करना चाहिए। युद्धयात्रा में भी क्षौर कराना वर्जित है । शय्या पर बैठकर या चन्दनादि लगाकर क्षौर नहीं कराना चाहिए। जिस दिन कहीं यात्रा करनी हो उस दिन भी क्षौर न कराये । राजाओं के लिए क्षौर कराने के बाद उससे ५वें ५वें दिन क्षौर कराने का विधान है । चूडाकरण में जो नक्षत्र-वार आदि कहे गये हैं, उन्हीं नक्षत्रों और वार आदि में अथवा कभी भी क्षौर में विहित नक्षत्र और वार के उदय (मुहूर्त एवं क्षण) में क्षौर कराना शुभ होता है ॥३४०-३४१½॥

कर्तव्यं क्षौरनक्षत्रेऽप्यथ वास्योदये शुभम् । नृपविप्राज्ञया यज्ञे मरणे बन्धमोक्षणे ॥३४२॥
उद्वाहेऽखिलवारर्क्षतिथिषु क्षौरमिष्टदम् । कर्तव्यं मङ्गलेष्वादौ मङ्गलाय क्षुरार्पणम् ॥३४३॥
नवमे सप्तमे वापि पञ्चमे दिवसेऽपि वा । तृतीये बीजनक्षत्रे शुभवारे शुभोदये ॥३४४॥
सम्यग्गृहाण्यलंकृत्य वितानध्वजतोरणैः । आशिषो वाचनं कार्यं पुण्यं पुण्यांगनादिभिः ॥३४५॥
सहवादित्रनृत्याद्यैर्गत्वा प्रागुत्तरां दिशम् । तत्र मृदततस्तीक्ष्णा गृहीत्वा पुनरागतः ॥३४६॥
मृण्मयेऽप्यथ वा वैणवेऽपि पात्रे प्रपूरयेत् । अनेकबीजसंयुक्तं तोयं पुष्पाभिशोभितम् ॥३४७॥
आधानादष्टमे वर्षे जन्मतो वाग्रजन्मनाम् । राज्ञामेकादशे मौंजीबंधनं द्वादशे विशाम् ॥३४८॥
जन्मतः पंचमे वर्षे वेदशास्त्रविशारदः । उपवीती यतः श्रीमान्कार्यं तत्रोपनायनम् ॥३४९॥
बालस्य बालहीनोऽपि सितो जीवः शुभप्रदः । यथोक्तवत्सरे कार्यमनुक्ते नोपनायनम् ॥३५०॥
दृश्यमानगुरौ शुक्रे शाखेशे चोत्तरायणे । वेदानामधिपा जीवशुक्रभौमबुधाः क्रमात् ॥३५१॥
शरद्ग्रीष्मवसंतेषु व्युत्क्रमात्तु द्विजन्मनाम् । मुख्यं साधारणं तेषां तपोमासादिपंचसु ॥३५२॥
स्वकुलाचारधर्मज्ञो माघमासे तु फाल्गुने । विधिज्ञश्चार्थवांश्चैत्रे वेदवेदांगपारगः ॥३५३॥

क्षौर कर्म में विशेष—राजा अथवा ब्राह्मणों की आज्ञा से यज्ञ में, माता-पिता के मरण में, जेल से छूटने पर तथा विवाह के अवसर पर निषिद्ध नक्षत्र, वार एवं तिथि आदि में भी क्षौर कराना शुभप्रद कहा गया है। समस्त मंगल-कार्यों में, मंगलार्थ इष्ट देवता के समीप क्षुरों को अर्पण करना चाहिए ॥३४२-३४३॥

उपनयन—जिस दिन उपनयन का मुहूर्त स्थिर हो, उससे पूर्व ९वें, ७वें, ५वें या तीसरे दिन उपनयन के लिए विहित नक्षत्र (या उस नक्षत्र के मुहूर्त) में शुभवार और शुभ लग्न में अपने घरों को चंदोवा, पताका और तोरण आदि से अच्छी तरह अलंकृत करके, ब्राह्मणों द्वारा आशीर्वचन, पुण्याहवाचन आदि पुण्य कार्य कराकर सौभाग्यवती स्त्रियों के साथ, मांगलिक वाद्यों के सहित और मंगल-गान कराते हुए घर से पूर्वोत्तर-दिशा (ईशानकोण)में जाकर पवित्र स्थान से चिकनी मिट्टी खोदकर ले ले और पुनः उसी प्रकार गीत-वाद्य के साथ घर लौट आये। वहाँ मिट्टी या बाँस के बर्तन में उस मिट्टी को रखकर उसमें अनेक वस्तुओं से युक्त और विविध पुष्पों से सुशोभित पवित्र जल डाले। (इसी प्रकार और भी अपने कुल के अनुरूप आचार का पालन करे)।॥३४४-३४७॥

गर्भाधान अथवा जन्म से आठवें वर्ष में ब्राह्मण बालकों का, ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय-बालकों का और बारहवें वर्ष में वैश्य-बालकों का मौञ्जीबन्धन करना चाहिए ॥३४८॥ जन्म से पाँचवें वर्ष में यज्ञोपवीत-संस्कार करने पर बालक वेद-शास्त्र-विशारद तथा श्रीसम्पन्न होता है। इसलिए उसमें ब्राह्मण-बालक का उपनयन-संस्कार करना चाहिए ॥३४९॥ शुक्र और बृहस्पति निर्बल हों तब भी बालक के लिए शुभदायक होते हैं। अतः शास्त्रोक्त वर्ष में उपनयन-संस्कार करना चाहिए; अनुक्त वर्ष में नहीं ॥३५०॥ गुरु, शुक्र तथा अपने वेद की शाखा के स्वामी—ये दृश्य हों—अस्त न हुए हों, तब उत्तरायण में उपनयन-संस्कार करना उचित है। बृहस्पति, शुक्र, मंगल और बुध—ये क्रमशः ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेद के अधिपति हैं ॥३५१॥ शरद्, ग्रीष्म और वसन्त—ये व्युत्क्रम से द्विजातियों के उपनयन का मुख्य काल हैं अर्थात् शरद् ऋतु वैश्यों के, ग्रीष्म क्षत्रियों के और वसन्त ब्राह्मणों के उपनयन का मुख्य काल है। माघ आदि पाँच मासों में उन सब के लिए उपनयन का साधारणकाल है ॥३५२॥ माघ मास में जिसका उपनयन हो वह अपने कुलोचित आचार तथा धर्म का ज्ञाता होता है। फाल्गुन में यज्ञोपवीत धारण करने वाला पुरुष विधिज्ञ तथा धनवान् होता है। चैत्र में उपनयन होने

वैशाखे धनवान्वेदशास्त्रविद्याविशारदः । उपनीतो बलाढ्यश्च ज्येष्ठे विधिविदां वरः ॥३५४॥
शुक्लपक्षे द्वितीया च तृतीया पंचमी तथा । त्रयोदशी च दशमी सप्तमी व्रतबंधने ॥३५५॥
श्रेष्ठा त्वेकादशी षष्ठी द्वादश्यन्यास्तु मध्यमाः । कृष्णे द्वित्रिषुसंख्याश्च मिथ्योऽन्या ह्यतिनिंदिताः ॥३५६॥
धिष्णान्यर्कत्रयांतेज्यरुद्रादित्युत्तराणि च । त्रिष्णुत्रयाशिवमित्राब्जयोनिभान्युपनायने ॥३५७॥
जन्मभाद्दशमं कर्म संघातर्क्षं तु षोडशम् । अष्टादशं समुदयं त्रयोविंशं विनाशनम् ॥३५८॥
मानसं पंचविंशर्क्षं नाचरेच्छुभमेषु तु । आचार्यसौम्यकाव्यानां वाराः शस्ताः शशीनयोः ॥३५९॥
वारौ तु मध्यमौ चैव व्रतेऽन्यौ निंदितौ मतौ । त्रिधा विभज्य दिवसं तत्रादौ कर्म दैविकम् ॥३६०॥
द्वितीये मानुषं कार्यं तृतीयेंशे च पैतृकम् । स्वनीचगे तदंशे वा स्वारिभे वा तदंशके ॥३६१॥
गुरुशिखिनोश्च शाखेशे कलाशीलविवर्जितः । स्वाधिशत्रुगृहस्थे वा तदंशस्थेऽथ वा व्रती ॥३६२॥
शाखेशे वा गुरौ शुक्रे महापातककृद्भवेत् । स्वोच्चसंस्थे तदंशे वा स्वराशौ राशिगे गणे ॥३६३॥
शाखेशे वा गुरौ शुक्रे केंद्रगे वा त्रिकोणगे । अतीव धनवांश्चैव वेदवेदांगपारगः ॥३६४॥

पर ब्रह्मचारी वेद-वेदांगों का पारगामी विद्वान् होता है ॥३५३॥ वैशाख मास में जिसका उपनयन हो, वह धनवान् तथा वेद, शास्त्र एवं विविध विद्याओं में निपुण होता है और ज्येष्ठ में यज्ञोपवीत लेने वाला द्विज विधिज्ञों में श्रेष्ठ और बलवान् होता है ॥३५४॥

शुक्ल पक्ष में द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, त्रयोदशी, दशमी और सप्तमी तिथियाँ यज्ञोपवीत संस्कार के लिए ग्राह्य हैं। एकादशी, षष्ठी और द्वादशी––ये तिथियाँ श्रेष्ठ हैं। शेष तिथियाँ मध्यम हैं। कृष्ण पक्ष में द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी ग्राह्य हैं। अन्य तिथियाँ अत्यन्त निन्दित हैं ॥३५५-४५६॥ हस्त, चित्रा, स्वाती, रेवती, पुष्य, आर्द्रा, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, अनुराधा तथा रोहिणी––ये नक्षत्र, उपनयन-संस्कार के लिए उत्तम हैं ॥३५७॥ जन्मनक्षत्र, से दसवाँ 'कर्म' संज्ञक है, तेईसवाँ 'विनाश' कारक है और पचीसवाँ 'मानस' है। इनमें शुभ कर्म का आरम्भ नहीं करना चाहिए। गुरु, बुध और शुक्र––इन तीनों के वार उपनयन में प्रशस्त हैं। सोमवार और रविवार ये मध्यम माने गये हैं। शेष दो वार मंगल और शनैश्चर निन्दित हैं। दिन के तीन भाग करके उसके आदि भाग में देवसम्बन्धी कर्म (यज्ञ-पूजनादि) करने चाहिए ॥३५८-३६०॥ द्वितीय भाग में मनुष्य-सम्बन्धी कार्य (अतिथि-सत्कार आदि) करने का विधान है और तृतीय भाग में पैतृक कर्म (श्राद्धतर्पणादि) का अनुष्ठान करना चाहिए। गुरु, शुक्र और अपनी वैदिक शाखा के अधिपति अपनी नीच राशि में या उसके किसी अंश में स्थित हों अथवा अपने शत्रु की राशि में या उसके किसी अंश में स्थित हों उस समय यज्ञोपवीत लेने वाला द्विज कला और शील से हीन होता है। इसी प्रकार अपनी शाखा के अधिपति, गुरु एवं शुक्र यदि अपने अधिशत्रुगृह में या उसके किसी अंश में स्थित हों तो ब्रह्मचर्यव्रत (यज्ञोपवीत) ग्रहण करने वाला द्विज महापातकी होता है। गुरु, शुक्र एवं अपनी शाखा के अधिपति ग्रह यदि अपनी उच्च राशि या उसके किसी अंश में हों, अथवा केन्द्र (१, ४, ७, १०) या त्रिकोण (५, ९) में स्थित हों तो उस समय यज्ञोपवीत लेने वाला ब्रह्मचारी अत्यन्त धनवान् तथा वेद-वेदांगों में पारंगत विद्वान् होता है ॥३६१-३६४॥

परमोच्चगते जीवे शाखेशे वाथ वा सिते । व्रती विशुद्धे निधने वेदशास्त्रविशारदः ॥३६५॥
स्वाधिमित्रगृहस्थे वा तस्योच्चस्थे तदंशगे । गुरौ भृगौ वा शाखेशे विद्याधनसमन्वितः ॥३६६॥
शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं शिशोः । शाखाधिपतिलग्नं च दुर्लभं त्रितयं व्रते ॥३६७॥
तस्माद्वेदांशगे चंद्रे व्रती विद्याविशारदः । पापांशगे स्वांशगे वा दरिद्रो नित्यदुःखितः ॥३६८॥
श्रवणादिनि नक्षत्रे कर्कांशस्थे निशाकरे । तदा व्रती वेदशास्त्रधनधान्यसमृद्धिमान् ॥३६९॥
शुभलग्ने शुभांशे च नैधने शुद्धिसंयुते । लग्ने तु निधने सौम्यैः संयुते वा निरीक्षिते ॥३७०॥
इष्टैर्जीवार्कचंद्राद्यैः पंचभिर्बलिभिर्ग्रहैः । स्थानादिबलसंपूर्णैश्चतुर्भिर्वा शुभान्वितैः ॥३७१॥
ईक्षन्नैवात्रैकविंशमहादोषविवर्जिते । राशयः सकलाः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः ॥३७२॥
शुभनवांशकगता ग्राह्यास्ते शुभराशयः । न कदाचित्कर्कटांशश्शुभेक्षितयुतोऽपि वा ॥३७३॥
तस्माद्गोमिथुनांशाश्च तुलाकन्यांशकाः शुभाः । एवंविधे लग्नगते नवांशे व्रतमीरितम् ॥३७४॥
त्रिषडायगतैः पापैः षडष्टांत्यविवर्जितैः । शुभैः षष्ठाष्टलग्नांत्यवर्जितेन हिमांशुना ॥३७५॥
स्वोच्चसंस्थोऽपि शीतांशुर्व्रतिनो यदि लग्नाः । स करोति शिशुं निःस्वं सर्वतः क्षयरोगिणम् ॥३७६॥
स्फूर्जिते केंद्रगे भानौ व्रतिनां पितृनाशनम् । पंचदोषोनितं लग्नं शुभदं चोपनायने ॥३७७॥

यदि गुरु, शुक्र अथवा शाखाधिपति परमोच्च स्थान में हों और मृत्यु (आठवां) स्थान शुद्ध हो तो उस समय ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करने वाला द्विज वेद-शास्त्र में निष्णात होता है ॥३६५॥ गुरु, शुक्र अथवा शाखाधिपति यदि अपने अधिमित्रगृह में या उसके उच्च गृह में अथवा उसके अंश में स्थित हों तो यज्ञोपवीत लेने वाला ब्रह्मचारी विद्या तथा धन से सम्पन्न होता है ॥३६६॥ शाखाधिपति का दिन हो, बालक को शाखाधिपति का वल प्राप्त हो तथा शाखाधिपति का लग्न हो—ये तीन बातें उपनयन संस्कार में दुर्लभ हैं ॥३६७॥ उससे चतुर्थांश में चन्द्रमा हो तो यज्ञोपवीत लेने वाला बालक विद्या में निपुण होता है; किन्तु यदि वह पापग्रह के अंश में अथवा अपने अंश में हो तो यज्ञोपवीती द्विज सदा दरिद्र और दुःखी रहता है ॥३६८॥ जब श्रवणादि नक्षत्र में विद्यमान चन्द्रमा कर्क के अंश-विशेष में स्थित हो तो ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करने वाला द्विज वेद, शास्त्र तथा धनधान्य से सम्पन्न होता है ॥३६९॥ शुभ लग्न हो, शुभ ग्रह का अंश हो, मृत्युस्थान शुद्ध हो तथा लग्न और मृत्युस्थान शुभग्रहों से युक्त हो अथवा उन पर शुभग्रहों की दृष्टि हो, लग्न अभीष्ट स्थान में स्थित बृहस्पति, सूर्य और चन्द्रमा आदि पाँच वलवान् ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो अथवा स्थान आदि के बल से पूर्ण चार ही शुभग्रहयुक्त ग्रहों द्वारा लग्नस्थान देखा जाता हो, और वह इक्कीस महादोषों से रहित हो तो यज्ञोपवीत लेना शुभ है। शुभग्रहों से संयुक्त या दृष्ट सभी राशियाँ शुभ हैं ॥३७०-३७२॥ वे शुभ राशियाँ शुभ ग्रह के नवमांश हों तो व्रतवंध में ग्राह्य हैं; किन्तु कर्क राशि का अंश शुभग्रह से युक्त तथा दृष्ट हो तो भी कभी ग्रहण करने योग्य नहीं है ॥३७३। इसलिए वृष और मिथुन के अंश तथा तुला और कन्या के अंश शुभ हैं। इस प्रकार लग्नगत नवांश होने पर व्रतबन्ध उत्तम बताया गया है ॥३७४॥ तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थान में पापग्रह हों, छठा, आठवां और बारहवाँ स्थान शुभग्रह रहित और चन्द्रमा छठे, आठवें, लग्न तथा बारहवें स्थान में न हों तो उपनयन शुभ होता है ॥३७५॥ चन्द्रमा अपने उच्च स्थान में होकर भी यदि व्रतबन्ध-मुहूर्त-सम्बन्धी लग्न में स्थित हो तो वह उस बालक को निर्धन और क्षय का रोगी बना देता है ॥३७६॥ यदि सूर्य केन्द्र-स्थान में प्रकाशित हों तो यज्ञोपवीत लेने वाले के पिता का नाश हो जाता है। पांच दोषों से रहित लग्न उपनयन में

विनावसंतऋतुना कृष्णपक्षे गलग्रहे । अनध्याये विष्टिषष्ठयोर्न तु संस्कारमर्हति ॥३७८॥
त्रयोदश्यादिचत्वारि सप्तम्यादिदिनत्रयम् । चतुर्थी वा शुभाः प्रोक्ता अष्टावेते गलग्रहाः ॥३७९॥
क्षुरिकाबंधनं वक्ष्ये नृपाणां प्राक्करग्रहात् । विवाहोक्तेषु मासेषु शुक्लपक्षेऽप्यनस्तगे ॥३८०॥
जीवे शुक्रे च भूपुत्रे चंद्रताराबलान्विते । मौंजीबंधोक्ततिथिषु कुजवर्जितवासरे ॥३८१॥
नचेन्नवांशके कर्तुरष्टमोदयवर्जिते । शुद्धेऽष्टमे विधौ लग्ने षष्ठाष्टांत्यविवर्जिते ॥३८२॥
धनत्रिकोणकेंद्रस्थैः शुभैस्त्र्यायारिगैः परैः । क्षुरिकाबंधनं कार्यमर्चयित्वामरान्पितॄन् ॥३८३॥
अर्चयेत्क्षुरिकां सम्यग्देवतानां च सन्निधौ । ततः सुलग्ने बध्नीयात्कट्यां लक्षणसंयुताम् ॥३८४॥
आयामार्द्धाग्रविस्तारप्रमाणेनैवच्छेदयेत् । तच्छेदखंडाध्यायाः स्युर्ध्वजाये रिपुनाशनम् ॥३८५॥
धूम्राये मरणं सिंहे जयः शुनि च रोगिता । धनलाभो वृषेऽत्यंतं दुःखी भवति गर्दभे ॥३८६॥
गजायेऽत्यंतसंप्रीतिर्ध्वांक्षे वित्तविनाशनम् । खड्गपुत्रिकयोर्मानं गणयेत्स्वांगुलेन तु ॥३८७॥
मानांगुलेषु पर्यायामेकादशमितां त्यजेत् । शेषाणामंगुलीनां च फलानि स्युर्यथाक्रमम् ॥३८८॥
पुत्रलाभः शत्रुवधः स्त्रीलाभो गमनं शुभम् । अर्थहानिश्चार्थवृद्धिः प्रीतिसिद्धिजयः स्तुतिः ॥३८९॥

शुभदायक होता है ॥३७७॥ वसन्त ऋतु के सिवा और सभी कृष्णपक्ष में, गलग्रह में, अनध्याय के दिन, भद्रा में तथा षष्ठी को बालक का उपनयन-संस्कार नहीं होना चाहिए ॥३७८॥ त्रयोदशी से लेकर चार, सप्तमी से लेकर तीन दिन और चतुर्थी से आठ गलग्रह अशुभ कहे गये हैं ॥३७९॥

क्षुरिका-बन्धनकर्म--अब मैं क्षत्रियों के लिए क्षुरिकाबन्धन कर्म का वर्णन करूंगा जो विवाह के पहले सम्पन्न होता है। विवाह के लिए कहे हुए मासों में, शुक्लपक्ष में, जब कि बृहस्पति, शुक्र और मंगल अस्त न हों, चन्द्रमा और तारा का बल प्राप्त हो, उस समय मौञ्जी बन्धन के लिए कही गयी तिथियों में, मंगलवार के अतिरिक्त शेष सभी दिनों में यह कर्म किया जाता है। कर्ता का लग्नगत नवांश यदि अष्टमोदय से रहित न हो, अष्टम शुद्ध हो; चन्द्रमा छठे, आठवें और बारहवें में न होकर लग्न में स्थित हों; शुभग्रह दूसरे, पाँचवें, नवें, लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थानों में हो; पापग्रह तीसरे, ग्यारहवें और छठे स्थान में हों तो देवताओं और पितरों की पूजा करके क्षुरिकाबन्धन करना चाहिए ॥३८०-३८३॥ पहले देवताओं के समीप क्षुरिका (कटार) की भली भांति पूजा करे। तत्पश्चात् शुभलक्षणों से युक्त उस क्षुरिका को उत्तम लग्न में अपनी कटि में बाँधे ॥३८४॥ क्षुरिका की लम्बाई के आधे (मध्यभाग) पर जो विस्तारमान हो उससे क्षुरिका के विभाग करे। वे छेदखण्ड (विभाग) क्रम से ध्वज आदि आय कहलाते हैं। उनकी आठ संज्ञायें हैं--ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वा, वृष, गर्दभ, गज और ध्वांक्ष। ध्वज नामक आय में शत्रु का नाश होता है ॥३८५॥ धूम्र आय में घात, सिंह नामक आय में जय, श्वा नामक आय में रोग, वृष आय में धनलाभ, गर्दभ आय में अत्यन्त दुःख की प्राप्ति, गज आय में अत्यन्त प्रसन्नता और ध्वांक्ष नामक आय में धन का नाश होता है। खड्ग और छुरी के माप को अपने अंगुल से गिने ॥३८६-३८७॥ माप के अंगुलों में से ग्यारह से अधिक हो तो ग्यारह घटा दें। फिर शेष अंगुलों के क्रमशः फल इस प्रकार हैं--॥३८८॥ पुत्रलाभ, शत्रुवध, स्त्रीलाभ, शुभगमन, अर्थहानि, अर्थवृद्धि, प्रीति, सिद्धि, जय और स्तुति ॥३८९॥

स्थितो ध्वजे वृषाये वा नष्टाचेत्पूर्वतो व्रणम् । सिंहे गजे मध्यभागे त्वंतभागे श्वकोकयोः ॥३९०॥
धूम्रगर्दभयोर्नैव व्रणं श्रेयोंत्यभागगम् । अथोत्तरायणे शुक्रजीवयोर्दृश्यमानयोः ॥३९१॥
द्विजातीनां गुरोर्गेहान्निवृत्तानां यतात्मनाम् । चित्रोत्तरादितीज्यांत्यहरिमित्रविधातृषु ॥३९२॥
मेष्वर्केंदुज्ञेज्यशुक्रवारलग्नांशकेषु च । प्रतिपत्पर्वरिक्ताभा चाष्टमी च दिनत्रयम् ॥३९३॥
हित्वान्यदिवसे कार्यं समावर्तनमुंडनम् । सर्वाश्रमाणां विप्रेंद्र ह्युत्तमोऽयं गृहाश्रमः ॥३९४॥
सुखं तत्रापि भामिन्यां शीलवत्यां स्थितं ततः । तस्याः सच्छीललब्धिस्तु सुलग्नवशतः खलु ॥३९५॥
पितामहोक्तं संवीक्ष्य लग्नशुद्धिं प्रवक्ष्यहम् । पुण्येऽह्नि लक्षणोपेतं सुखासीनं सुचेतसम् ॥३९६॥
प्रणम्य देववयेत्पृच्छेद्दैवज्ञं भक्तिपूर्वकम् । तांबूलफलपुष्पाद्यैः पूर्णांजलिरुपागतः ॥३९७॥
तत्र चेल्लग्नगः क्रूरस्तस्मात्सप्तमगः कुजः । दंपत्योर्मरणं वाच्यं वर्षाणामष्टकात्पुरा ॥३९८॥
यदि लग्नगतश्चंद्रस्तस्मात्सप्तमगः कुजः । विज्ञेयं भर्तृमरणमष्टवर्षांतरे बुधैः ॥३९९॥
लग्नात्पंचमगः पापः शत्रुदृष्टश्च नीचगः । मृतपुत्राथ वा कन्या कुलटा वा न संशयः ॥४००॥

छुरी या तलवार में यदि ध्वज अथवा वृष आयविभाग के पूर्वभाग में नष्ट हो, तथा सिंह और गज-आय के मध्यभाग में तथा श्वान और काक-आय के अन्तिम भाग में एवं धूम्र और गर्दभ आय के अन्तिम भाग में नष्ट हो जाय तो अशुभ होता है। (अतः ऐसी छुरी या तलवार का परित्याग कर देना चाहिए; यह बात अर्थतः सिद्ध हो जाती है) ॥३९०½॥

समावर्तन--उत्तरायण में जब गुरु और शुक्र दोनों उदित हों, चित्रा, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, श्रवण, अनुराधा, रोहिणी--ये नक्षत्र हों तथा रवि, सोम, बुध, गुरु और शुक्रवार में से कोई वार हो तो इन्हीं रवि आदि पाँच ग्रहों की राशि, लग्न और नवमांश में, प्रतिपदा, पर्व, रिक्ता, अमावास्या तथा सप्तमी से तीन तिथि--इन सब तिथियों को छोड़कर अन्य तिथियों में गुरुकुल से अध्ययन समाप्त करके घर को लौटने वाले जितेन्द्रिय द्विजकुमार का समावर्तन-संस्कार (मुण्डन, हवन आदि) करना चाहिए ॥३९१-३९३½॥

विवाह कथन--विप्रवर; सब आश्रमों में यह गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है। उसमें भी जब सुशीला धर्मपत्नी हो तभी सुख होता है। स्त्री को सुशीलता की प्राप्ति तभी होती है जब विवाह कालिक लग्न शुभ हो। इसलिए मैं ब्रह्मा द्वारा कथित लग्न-शुद्ध को विचार करके कहता हूँ ॥३९४-३९५½॥

कन्यादान करने वालों को किसी शुभ दिन को अपनी अंजलि में पान, फूल, फल और द्रव्य आदि लेकर ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता, समस्त शुभ लक्षणों से सम्पन्न, प्रसन्नचित तथा सुखपूर्वक बैठे हुए विद्वान् ब्राह्मण के समीप जाकर और उन्हें देवता के समान मानकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अपनी कन्या के विवाह-लग्न के विषय में पूछना चाहिए ॥३९६-३९७॥

ज्योतिषी को उस समय लग्न और ग्रह स्पष्ट करके देखना चाहिए। यदि प्रश्न-लग्न में पापग्रह हो या लग्न से सप्तम भाव में मंगल हो तो जिसके लिए प्रश्न किया गया है, उस कन्या और वर को ८ वर्ष के भीतर ही घातक अरिष्ट प्राप्त होगा, ऐसा समझना चाहिए। यदि लग्न में चन्द्रमा और उससे सप्तम भाव में मंगल हो तो ८ वर्ष के भीतर ही उस कन्या के पति को घातक कष्ट प्राप्त होगा, ऐसा समझना चाहिए। यदि लग्न से पंचम भाव में पापग्रह हो और वह नीचराशि में पापग्रह से देखा जाता हो तो वह कन्या कुलटा स्वभाववाली अथवा मृतवत्सा होती है, इसमें संशय नहीं ॥३९८-४००॥ यदि प्रश्नलग्न से ३, ५, ७, ११ और १०वें भाव

तृतीयपंचसप्ताष्टकर्मगो वा निशाकरः । लग्नात्करोति संबंधं दंपत्योर्गुरुवीक्षितः ॥४०१॥
तुलागोकर्कटा लग्नसंस्थाः शुक्रेंदुसंयुताः । वीक्षिताः पृच्छतां नृणां कन्यालाभो भवेत्तदा ॥४०२॥
स्त्रीद्रेष्काणः स्त्रीनवांशे युग्मलग्नं समागतम् । वीक्षितं चंद्रशुक्राभ्यां कन्यालाभो भवेत्तदा ॥४०३॥
एवं स्त्रीणां भर्तृलब्धिः पुंलग्ने पुंनवांशके । पृच्छकस्य भवेल्लग्नं पुंग्रहैरवलोकितम् ॥४०४॥
कृष्णपक्षे प्रश्नलग्नाद्यस्यराशौ शशी यदा । पापदृष्टोऽथ वा रंध्रे न संबंधो भवेत्तदा ॥४०५॥
पुण्यैर्निमित्तशकुनैः प्रश्नकाले तु मंगलम् । दंपत्योरशुभैरेतैरशुभं सर्वतो भवेत् ॥४०६॥
पंचांगशुद्धिदिवसे चंद्रताराबलान्विते । विवाहभस्योदये वा कन्यावरणमन्वयैः ॥४०७॥
भूषणैः पुष्पतांबूलफलैर्गंधाक्षतादिभिः । शुक्लांबरैर्गीतवाद्यैर्विघ्नाशीर्वचनैः सह ॥४०८॥
कारयेत्कन्यकागेहे वरः प्रणवपूर्वकम् । तदा कुर्यात्पिता तस्याः प्रदानं प्रीतिपूर्वकम् ॥४१०॥
कुलशीलवयोरूपवित्तविद्यायुताय च । वराय च रूपवतीं कन्यां दद्याद्यवीयसीम् ॥४११॥
संपूज्य प्रार्थयित्वा च शचीं देवीं गुणाश्रयाम् । त्रैलोक्यसुन्दरीं दिव्यगंधमाल्यांबरावृताम् ॥४१२॥
सर्वलक्षणसंयुक्तां सर्वाभरणभूषिताम् । अनर्घमणिमालाभिर्भासयंतीं दिगंतरान्

में चन्द्रमा हो तथा उस पर गुरु की दृष्टि हो तो समझना चाहिए कि उस कन्या को शीघ्र ही पति प्राप्त होगा ॥४०१॥ यदि प्रश्नलग्न में तुला, वृष या कर्क राशि हो तथा वह शुक्र और चन्द्रमा से युक्त हो तो वर के लिए कन्या (पत्नी) लाभ होता है। अथवा सम राशि लग्न हो, उसमें समराशिका ही द्रेष्काण हो और समराशि का नवमांश तथा उस पर चन्द्रमा और शुक्र की दृष्टि हो तो वर को पत्नी की प्राप्ति होती है ॥४०२-४०३॥

इसी प्रकार यदि प्रश्नलग्न में पुरुषराशि और पुरुषराशि का नवमांश हो तथा उस पर पुरुषग्रह (रवि, मंगल और गुरु) की दृष्टि हो तो जिसके लिये प्रश्न किया गया है, उस कन्या को पति की प्राप्ति होती है ॥४०४॥

यदि प्रश्नसमय में कृष्णपक्ष हो और चन्द्रमा समराशि में होकर लग्न से छठे या आठवें भाव में पापग्रह से देखा जाता हो तो (निकट भविष्य में) विवाह-सम्बन्ध नहीं हो पाता है ॥४०५॥ यदि प्रश्नकाल में शुभ निमित्त और शुभ शकुन देखने सुनने में आयें तो वर-कन्या के लिए शुभ होता है तथा यदि निमित्त एवं शकुन आदि अशुभ हों तो अशुभ फल होता है ॥४०६॥

कन्या वरण—पंचांग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण) से शुद्ध दिन में यदि वर और कन्या के चन्द्रबल तथा ताराबल प्राप्त हों तो विवाह के लिए विहित नक्षत्र या उसके मुहूर्त में वर को चाहिए कि अपने कुल के श्रेष्ठ जनों के साथ गीत, वाद्य की ध्वनि और ब्राह्मणों के आशीर्वचन (शान्तिमन्त्रपाठ) आदि से युक्त होकर विविध आभूषण, शुभ वस्त्र, फूल, फल, पान, अक्षत, चन्दन और सुगन्धादि लेकर कन्या के घर में जाय और विनीत भाव से कन्या का वरण करे। (कन्या का वरण वर के बड़े भाई अथवा गुरुजन को करना चाहिए) उसके बाद कन्या का पिता प्रसन्नचित्त होकर अभीष्ट वर को कन्या दान करे ॥४०७-४०९॥

कन्या के पिता को चाहिए कि अपनी कन्या से श्रेष्ठ, कुल, शील, वयस्, रूप, धन और विद्या से युक्त वर को वर की अवस्था में छोटी, रूपवती अपनी कन्या प्रदान करे। कन्यादान से पूर्व सब गुणों की आश्रयभूता, तीनों लोकों में सबसे अधिक सुन्दरी, दिव्य गन्ध, माला और वस्त्र से सुशोभित, सम्पूर्ण शुभ लक्षणों से युक्त तथा सब आभूषणों से मण्डित, अमूल्य मणिमालाओं से दसों दिशाओं को प्रकाशित करती हुई, सहस्र दिव्य

विलासिनीसहस्राद्यैः सेवमानामहर्निशम् । एवंविधां कुमारीं तां पूजांते प्रार्थयेदिति ॥४१३॥
देवींद्राणि नमस्तुभ्यं देवेंद्रप्रियभामिनि । विवाहे भाग्यमारोग्यं पुत्रलाभं च देहि मे ॥४१४॥
युग्मेऽब्दे जन्मतः स्त्रीणां प्रीतिदं पाणिपीडनम् । एतत्पुंसामयुग्मेऽब्दे व्यत्ययेनाशनम् तयोः ॥४१५॥
माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः । मध्यमा कार्तिको मार्गशीर्षो वै निंदिताः परे ॥४१६॥
न कदाचिद्दिशर्क्षेषु भानोरार्द्राप्रवेशनात् । विवाहो देवतानां च प्रतिष्ठां चोपनायनम् ॥४१७॥
नास्तंगते सिते जीवे न तयोर्बालवृद्धयोः । न गुरौ सिंहराशिस्थे सिंहांशकगतेऽपि वा ॥४१८॥
पश्चात्प्रागुदितः शुक्रो दशत्रिदिवसं शिशुः । वृद्धः पंचदिनं पक्षं गुरुः पक्षं च सर्वतः ॥४१९॥
अप्रबुद्धो हृषीकेशो यावत्तावन्न मंगलम् । उत्सवे वासुदेवस्य दिवसे नान्यमंगलम् ॥४२०॥
न जन्ममासे जन्मर्क्षे न जन्मदिवसेऽपि च । आद्य गर्भसुतस्याथ दुहितुर्वा करग्रहः ॥४२१॥
नैवोद्वाहो ज्येष्ठ पुत्रीपुत्रयोश्च परस्परम् । ज्येष्ठमासे तयोरेकज्येष्ठे श्रेष्ठश्च नान्यथा ॥४२२॥

सहेलियों से सुसेविता सर्वगुणसम्पन्ना इन्द्राणी देवी की पूजा करके उनसे प्रार्थना करे—'हे देवि ! हे इन्द्राणि ! हे देवेन्द्रप्रियभामिनि ! आपको मेरा नमस्कार है । देवि ! इस विवाह में आप सौभाग्य, आरोग्य और पुत्र प्रदान करें ।' इस प्रकार प्रार्थना करके पूजा के बाद विधानपूर्वक गुणयुक्त वर को अपनी कुमारी कन्या का दान करे ॥४१०-४१४॥

कन्या-वर की वर्षशुद्धि—कन्या के जन्म-समय से सम वर्षों में और वर के जन्मसमय से विषम वर्षों में होने वाला विवाह उन दोनों के प्रेम और प्रसन्नता को बढ़ाने वाला होता है । इससे विपरीत (कन्या के विषम और वर के सम वर्ष में) विवाह वर-कन्या दोनों के लिए घातक होता है ॥४१५॥

विवाहविहित मास—माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ--ये चार मास विवाह में श्रेष्ठ तथा कार्तिक और मार्गशीर्ष ये दो मास मध्यम हैं । अन्य मास निन्दित हैं ॥४१६॥

सूर्य जब आर्द्रा नक्षत्र में प्रवेश करे तब से दस नक्षत्र तक (अर्थात् आर्द्रा से स्वाती तक के नक्षत्रों में जब तक सूर्य रहें तब तक) विवाह, देवता की प्रतिष्ठा और उपनयन नहीं करने चाहिए । बृहस्पति और शुक्र जब अस्त हों, बाल अथवा वृद्ध हों तथा केवल बृहस्पति सिंह राशि या उसके नवमांश में हों, उस समय भी ऊपर कहे हुए शुभ कार्य नहीं करने चाहिए ॥४१७-४१८॥

गुरु तथा शुक्र के बाल्य और वृद्धत्व—शुक्र जब पश्चिम में उदय होता है तो दस दिन और पूर्व में उदय होता है तो तीन दिन तक बालक रहता है तथा जब पश्चिम में अस्त होने को रहता है तो अस्त से पाँच दिन पहले और पूर्व में अस्त होने से पन्द्रह दिन पहले वृद्ध हो जाता है। गुरु उदय के बाद पन्द्रह दिन बालक और अस्त से पहले पन्द्रह दिन वृद्ध रहता है ॥४१९॥

जब तक भगवान् हृषीकेश शयनावस्था में हों तब तक (अर्थात् आषाढ़-शुक्ला एकादशी से कार्तिक-शुक्ला-एकादशी तक) तथा भगवान् के उत्सव (उत्थान या जन्मदिन) में भी अन्य मंगलकार्य नहीं करने चाहिए ॥४२०॥ पहले गर्भ के पुत्र और कन्या के जन्ममास, जन्मनक्षत्र और जन्मतिथिवार में भी विवाह नहीं करना चाहिए । आद्य गर्भ की कन्या और आद्य गर्भ के वर का परस्पर विवाह नहीं करना चाहिए । वर-कन्या में कोई एक ही ज्येष्ठ (आद्य गर्भ का) हो तो ज्येष्ठ मास में विवाह श्रेष्ठ है । यदि दोनों ज्येष्ठ हों तो ज्येष्ठ मास में विवाह अनिष्टकारक कहा गया है ॥४२१-४२२॥

उत्पातग्रहणादूर्ध्वं सप्ताहमखिलग्रहे । नाखिले त्रिदिनं नेष्टं त्रिद्युस्पृक् च क्षयं तथा ॥४२३॥
ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वं पश्चाद्ग्रस्तोदयेऽथवा । संध्यायां त्रिदिनं तद्वन्निशीथे सप्त एव च ॥४२४॥
मासान्ते पंच दिवसांस्त्यजेद्रिक्तां तथाऽष्टमीम् । व्यतीपातं वैधृतिं च संपूर्णं परिघार्द्धकम् ॥४२५॥
पौष्णभद्व्युत्तरामैत्रमरुच्चंद्रार्कपित्र्यमैः । समूलभैरविद्धैस्तैः स्त्रीकरग्रह इष्यते ॥४२६॥
विवाहे बलमावश्यं दंपत्योर्गुरुसूर्ययोः । चेत्पूजा यत्नतः कार्या दुर्बलग्रहयोस्तयोः ॥४२७॥
गोचरं वेधजं चाष्टवर्गजंरूपजं बलम् । यथोत्तरं बलाधिक्यं स्थूलं गोचरमार्गजम् ॥४२८॥
चंद्राताराबलं वीक्ष्य ततः पंचांगजं बलम् । तिथिरेकगुणा वारो द्विगुणस्त्रिगुणं च भम् ॥४२९॥
योगश्चतुर्गुणः पञ्चगुणः तिथ्यर्द्धसंज्ञितम् । ततो मुहूर्तो बलवांस्ततो लग्नंबलाधिकम् ॥४३०॥
ततो बलवती होरा द्रेष्काणो बलवांस्ततः । ततो नवांशो बलवान्द्वादशांशो बली ततः ॥४३१॥
त्रिंशांशो बलवांस्तस्माद्वीक्ष्यमेतद्बलाबलम् । शुभेक्षितयुताः शस्ता उद्वाहेऽखिलाराशयः ॥४३२॥
चंद्रार्कज्यादयः पंच यस्य राशेस्तु खेचराः । इष्टस्तच्छुभदं लग्नं चत्वारोऽपि बलान्विताः ॥४३३॥

विवाह में वर्ज्य--भूकम्पादि उत्पात तथा सर्वग्रास सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण हो तो उसके बाद सात दिन तक का समय शुभ नहीं है। यदि खण्डग्रहण हो तो उसके बाद तीन दिन अशुभ होते हैं। तीन दिन का स्पर्श करने वाली (वृद्धि) तिथि, क्षयतिथि तथा ग्रस्तास्त (ग्रहण लगे चन्द्र, सूर्य का अस्त) हो तो पूर्व के तीन दिन अच्छे नहीं माने जाते। यदि ग्रहण लगे हुए सूर्य, चन्द्र का उदय हो तो बाद के तीन दिन अशुभ होते हैं। संध्या समय में ग्रहण हो तो पहले और बाद के भी तीन दिन अनिष्टकारक हैं तथा मध्यरात्रि में ग्रहण हो तो सात दिन (तीन पहले के और तीन बाद के तथा एक ग्रहण वाला दिन) अशुभ होते हैं ॥४२३-४२४॥ विवाह मास के अन्तिम दिन, रिक्ता, अष्टमी, व्यतीपात और वैधृतियोग सम्पूर्ण तथा परिघ योग का पूर्वार्ध--ये विवाह में वर्जित हैं ॥४२५॥

विहित नक्षत्र--रेवती, रोहिणी, तीनों उत्तरा, अनुराधा, स्वाती, मृगशिरा, हस्त, मघा और मूल--ये ग्यारह नक्षत्र वेधरहित हों तो इन्हीं में स्त्री का विवाह शुभ कहा गया है ॥४२६॥ विवाह में वर को सूर्य का और कन्या को बृहस्पति का बल अवश्य प्राप्त होना चाहिए। यदि ये दोनों अनिष्टकारक हों तो यत्नपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिए ॥४२७॥ गोचर, वेध और अष्टकवर्गसम्बन्धी बल उत्तरोत्तर अधिक है। प्रथम तो गोचरबल स्थूल (साधारण) माना जाता है। अर्थात् ग्रहों का अष्टकवर्ग-बल ग्रहण करना चाहिए। प्रथम तो वर-कन्या के चन्द्रबल और तारावल देखने चाहिए। उसके बाद पंचांग (तिथि, वार आदि) के बल देखे। तिथि में एक, वार में दो, नक्षत्र में तीन, योग में चार और करण में पाँच गुने बल होते हैं। इन सब की अपेक्षा मुहूर्त बली होता है। मुहूर्त से भी लग्न, लग्न से भी होरा (राश्यर्ध), होरा से द्रेष्काण, द्रेष्काण से नवमांश, नवमांश से भी द्वादशांश तथा उससे भी त्रिंशांश बली होता है। इसलिए इन सबके बल देखने चाहिए ॥४२८-४३१॥

विवाह में शुभग्रह से युक्त या दृष्ट होने पर सभी राशियाँ प्रशस्त हैं। चन्द्रमा, सूर्य, बुध, बृहस्पति तथा शुक्र आदि पाँच ग्रह जिस राशि के इष्ट हों, वह लग्न शुभप्रद होता है। यदि चार ग्रह भी बली हों तो भी उन्हें शुभप्रद ही समझना चाहिए ॥४३२-४३३॥

जामित्रशुद्ध्यैकविंशन्महादोषविवर्जितम् । एकविंशतिदोषाणां नामरूपफलानि च ॥४३४॥
वक्ष्यंतेऽत्र समासेन शृणु नारद सांप्रतम् । पञ्चांगशुद्धिराहित्यं दोषस्त्वाद्यः प्रकीर्तितः ॥४३५॥
उदयास्तशुद्धिहीनिर्द्वितीयः सूर्यसंक्रमः । तृतीयः पापषड्वर्गो भृगुः षष्ठः कुजोऽष्टमः ॥४३६॥
गंडांतं कर्तरी रिष्फषडष्टेन्दुगतो ग्रहः । दंपत्योरष्टमं लग्नं राशिर्विषघटी तथा ॥४३७॥
दुर्मुहूर्तो वारदोषः खार्जूरिकसमाङ्घ्रिभम् । ग्रहणोत्पातभं क्रूरविद्धर्क्षं क्रूरसंयुतम् ॥४३८॥
कुनवांशो महापातो वैधृतिश्चैकविंशतिः । तिथिवारर्क्षयोगानां करणस्य च मेलनम् ॥४३९॥
पंचांगमस्य शुद्धिस्तु पंचांगशुद्धिरीरिता । यस्मिन्पंचांगदोषोऽस्ति तस्मिंल्लग्ने निरर्थकम् ॥४४०॥
त्यजेत्पंचेष्टिकं चापि विषसंयुक्तदुग्धवत् । लग्नलग्नांशकौ स्वस्वपतिना वीक्षितौ युतौ ॥४४१॥
न चेद्वान्योन्यपतिना शुभमित्रेण वा तथा । वरस्य मृत्युः स्यात्ताभ्यां सप्तसप्तोदयांशकौ ॥४४२॥
एवं तौ न युतौ दृष्टौ मृत्युर्वध्वाः करग्रहे । त्याज्याः सूर्यस्य संक्रांतेः पूर्वतः परतस्तथा ॥४४३॥
विवाहादिषु कार्येषु नाड्यः षोडशषोडश । षड्वर्गः शुभदः श्रेष्ठो विवाहस्थापनादिषु ॥४४४॥

मुने ! लग्न से सप्तम स्थान शुद्ध (ग्रहवर्जित) हो और २१ महा दोषों से रहित हो तो उसे विवाह में ग्रहण करना चाहिए। अब मैं उन इक्कीस दोषों के नाम, स्वरूप और फल का संक्षेप से वर्णन करता हूँ, सुनो ॥४३४½॥

विवाह के २१ दोष—'पञ्चांग-शुद्धि का न होना, यह प्रथम दोष कहा गया है। उदयास्त की शुद्धि का न होना २, उस दिन सूर्य की संक्रान्ति का होना ३, पापग्रह का षड्वर्ग में रहना ४, लग्न से छठे भाव में शुक्र की स्थिति ५, अष्टम में मंगल का रहना ६, गण्डान्त होना ७, कर्तरीयोग ८, बारहवें, छठे और आठवें चन्द्रमा का होना तथा चन्द्रमा के साथ किसी अन्य ग्रह का होना ९, वर-कन्या की जन्मराशि से अष्टम राशि लग्न हो या दैनिक चन्द्रराशि हो १०, विषघटी ११, दुर्मुहूर्त १२, वारदोष १३, खार्जूर १४, नक्षत्रैकचरण १५, ग्रहण और उत्पात के नक्षत्र १६, पापग्रह से विद्ध नक्षत्र १७; पाप से युक्त नक्षत्र १८, पापग्रह का नवमांश १९, महापात २० और वैधृति २१—विवाह में ये २१ दोष कहे गये हैं ॥४३५-४३८½॥

मुने ! तिथि, वार, नक्षत्र योग और करण—इन पाँचों का मेल पंचांग कहलाता है। उसकी शुद्धि पंचांगशुद्धि कहलाती है। जिस दिन पंचांग के दोष हों, उस दिन विवाह लग्न बताना निरर्थक है। इस प्रकार का लग्न यदि पाँच इष्ट ग्रहों से युक्त हो तो भी उसको विषमिश्रित दूध के समान त्याग देना चाहिए ॥४३९-४४०½॥ लग्न या उसके नवमांश अपने-अपने स्वामी से युक्त या दृष्ट न हों अथवा परस्पर (लग्नेश से नवमांश और नवमांशपति से) लग्नेश युक्त या दृष्ट न हों अथवा अपने स्वामी के शुभग्रह मित्र से लग्न से युक्त या दुष्ट न हों तो वर के लिए घातक होते हैं। इसी प्रकार सप्तम और उसके नवमांश में भी ये दोनों यदि अपने-अपने स्वामी से अथवा परस्पर युक्त या दृष्ट नहीं हों या अपने-अपने स्वामी के शुभ मित्र से युक्त या दृष्ट न हों तो वह वधू के लिए घातक है ॥४४१-४४२½॥

सूर्य की संक्रान्ति के समय से पूर्व और पश्चात् सोलह-सोलह घड़ी विवाह आदि शुभ कार्यों में त्याज्य है। लग्न का षड्वर्ग (राशि, होरा, द्रेष्काण, नवमांश, द्वादशांश तथा त्रिंशांश) शुभ हो तो विवाह, देवप्रतिष्ठा आदि कार्यों में श्रेष्ठ होता है ॥४४३-४४४॥

भृगुषष्ठाह्वयो दोषो लग्नात्षष्ठगते सिते । उच्चगे शुभसंयुक्ते तल्लग्नं सर्वदा त्यजेत् ॥४४५॥
कुजोऽष्टमो महादोषो लग्नादष्टमगे कुजे । शुभत्रययुतं लग्नं न त्यजेत्तुंगगो यदि ॥४४६॥
पूर्णानंदाख्ययोस्तिथ्योः संधिर्नाडीद्वयं यदि । गंडांतं मृत्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु ॥४४७॥
कुलीरसिंहयोः कीटचापयोर्मीनमेषयोः । गंडातमंतरालं स्याद्घटिकार्द्धं मृतिप्रदम् ॥४४८॥
सार्पेन्द्रपौष्णभेष्वंत्यषोडशांशा भसन्धयः । तदग्निभेष्वाद्यपादा भानां गंडांतसंज्ञकाः ॥४४९॥
उग्रं च संधित्रितयं गंडातं त्रिविधं महत् । लग्नाभिमुखयोः पापग्रहयोऋंजुवक्रयोः ॥४५०॥
सा कर्तरीति विज्ञेया दंपत्योर्गलकर्तरी । कर्तरीयोगदुष्टं यल्लग्नं तत्परिवर्जयेत् ॥४५१॥
अपि सौम्यग्रहैर्युक्तं गुणैः सर्वैः समन्वितम् । षडष्टरिष्फगे चंद्रे लग्नदोषः स्वसंज्ञकः ॥४५२॥
तल्लग्नं वर्जयेद्यत्नाज्जीवशुक्रसमन्वितम् । उच्चगे नीचगे वापि मित्रभे शत्रुराशिगे ॥४५३॥
अपि सर्वगुणोपेतं दंपत्योर्निधनप्रदम् । शशांके ग्रहसंयुक्ते दोषः संग्रहसंज्ञकः ॥४५४॥

लग्न से छठे स्थान में शुक्र हो तो वह 'भृगुषष्ठ' नामक दोष कहलाता है। उच्चस्थ और शुभ ग्रह से युक्त होने पर भी उस लग्न को सदा त्याग देना चाहिए। लग्न से अष्टम स्थान में मंगल हो तो यह 'भौममहादोष' कहलाता है। यदि मंगल उच्च में हो और तीन शुभ ग्रह लग्न में हों तो इस लग्न का त्याग नहीं करना चाहिए (अर्थात् ऐसी स्थिति में अष्टम मंगल का दोष नष्ट हो जाता है) ।।४४५-४४६।।

गण्डान्तदोष—पूर्णा (५, १०, १५) तिथियों के अन्त और नन्दा (१, ६, ११) तिथियों की आदि की संधि में दो घड़ी 'तिथिगण्डान्त दोष है। यह जन्म, यात्रा, उपनयन और विवाहादि शुभ कार्यों में घातक होता है ।।४४७।। कर्क लग्न के अन्त और सिंह लग्न के आदि की सन्धि में, वृश्चिक और धनु की सन्धि में तथा मीन और मेष लग्न की सन्धि में आधा घड़ी 'लग्नगण्डान्त' कहलाता है। यह भी घातक होता है ।।४४८।। अश्लेषा का चतुर्थ चरण और मघा का प्रथम चरण तथा ज्येष्ठा के अन्त को १६ घड़ी और मूल का प्रथम चरण एवं रेवती नक्षत्र के अन्त की ग्यारह घड़ी और अश्विनी का प्रथम चरण—इस प्रकार इन दो-दो नक्षत्रों की सन्धि का काल 'नक्षत्रगण्डान्त' कहलाता है। ये तीनों प्रकार के गण्डान्त महाक्रूर होते हैं ।।४४७-४४९½।।

कर्तरीदोष—लग्न से बारहवें में मार्गी और द्वितीय में वक्री दोनों पापग्रह हों तो लग्न में आगे-पीछे दोनों ओर जाने के कारण यह' कर्तरीदोष' कहलाता है। इसमें विवाह होने से यह कर्तरीदोष वर-वधू दोनों के गला काटने वाला (उनका अनिष्ट करने वाला) होता है। ऐसे कर्तरीदोष से युक्त लग्न का परित्याग कर देना चाहिए ।।४५०-४५१।।

लग्नदोष—यदि लग्न से छठे, आठवें तथा बारहवें में चन्द्रमा हो तो यह 'लग्नदोष' कहलाता है। ऐसा लग्न शुभग्रहों तथा अन्य सम्पूर्ण गुणों से युक्त होने पर भी दोषयुक्त होता है। वह लग्न बृहस्पति और शुक्र से युक्त हो तथा चन्द्रमा उच्च, नीच, मित्र या शत्रुराशि में (कहीं भी) हो, तो भी यत्नपूर्वक त्याग देना चाहिए। क्योंकि यह सब गुणों से युक्त होने पर भी वर-वधू के लिए 'घातक' होता है ।।४५१-४५३½।।

सग्रहदोष—चन्द्रमा यदि किसी ग्रह से युक्त हो तो 'सग्रह' नामक दोष होता है। इस दोष में भी विवाह नहीं करना चाहिए। चन्द्रमा यदि सूर्य से युक्त हो तो दरिद्रता, मंगल से युक्त हो तो घात अथवा रोग

तस्मिन्संग्रहदोषे तु विवाहं नैव कारयेत् । सूर्येण संयुते चंद्रे दारिद्र्यं भवति स्फुटम् ॥४५५॥
कुजेन मरणं व्याधिः सौम्येन त्वनपत्यता । दौर्भाग्यं गुरुणा युक्ते सापत्यं भार्गवेण तु ॥४५६॥
प्रव्रज्या सूर्यपुत्रेण राहुणा मूलसंक्षयः । केतुना संयुते चन्द्रे नित्यं कष्टं दरिद्रता ॥४५७॥
पापग्रहयुते चन्द्रे दंपत्योर्मरणं भवेत् । शुभग्रहयुते चंद्रे स्वोच्चस्थे मित्रराशिगे ॥४५८॥
दोषायनं भवेल्लग्नं दंपत्योः श्रेयसे सदा । स्वोच्चगो वा स्वर्क्षगो वा मित्रक्षेत्रगतोऽपि वा ॥४५९॥
पापग्रहयुतश्चन्द्रः करोति मरणं तयोः । दंपत्योरष्टमं लग्नमष्टमो राशिरेव च ॥४६०॥
यदि लग्नगतः सोऽपि दंपत्योर्मरणप्रदः । स राशिः शुभसंयुक्तो लग्नं वा शुभसंयुतम् ॥४६१॥
लग्नं विवर्जयेद्यस्मात्तदंशांशतदीश्वराम् । दंपत्योर्द्वादशं लग्नं राशिर्वा यदि लग्नगः ॥४६२॥
अर्थहानिस्तयोरस्मात्तदंशस्वामिनं त्यजेत् । जन्मराश्युदयश्चैव जन्मलग्नोदयः शुभः ॥४६३॥
तयोरुपचयस्थानं लग्नेऽत्यंतशुभप्रदम् । खमार्गणा वेदपक्षाः खरामा वेदमार्गणाः ॥४६४॥
वह्निचंद्रा रूपदस्राः खरामा व्योमबाहवः । द्विरामाः स्वाग्नयः शून्यदस्राः कुंजरभूमयः ॥४६५॥
रूपपक्षा व्योमदस्रा वेदचन्द्राश्चतुर्दश । शून्यचन्द्रा वेदचन्द्रा षड्ऋक्षा वेदबाहवः ॥४६६॥

बुध से युक्त हो तो अनपत्यता, गुरु से युक्त हो तो दौर्भाग्य, शुक्र से युक्त हो तो पति-पत्नी में शत्रुता, शनि से युक्त हो तो प्रव्रज्या (गृहत्याग), राहु युक्त हो तो सर्वस्व हानि और केतु से युक्त हो तो कष्ट और दरिद्रता होती है ॥४५४-४५७॥

पापग्रह की निन्दा और शुभग्रहों की प्रशंसा--मुने ! इस प्रकार सग्रहदोष में चन्द्रमा यदि पापग्रह से युक्त हो तो वर-वधू दोनों के लिए घातक होता है। यदि वह शुभग्रहों से युक्त हो तो उस स्थिति में यदि उच्च या मित्र की राशि में चन्द्रमा हो तो लग्न दोषयुक्त रहने पर भी वरवधू के लिए कल्याणकारी होता है। परन्तु चन्द्रमा स्वोच्च में या स्वराशि में अथवा मित्र की राशि में रहने पर यदि पापग्रह से युक्त हो तो वरवधू दोनों के लिए घातक होता है ॥४५८-४५९½॥

अष्टमराशि लग्नदोष--वर या वधू के जन्मलग्न से अथवा उनकी जन्मराशि से अष्टमराशि विवाह-लग्न में पड़े तो यह दोष भी वर-वधू के लिए घातक होता है। वह राशि या वह लग्न शुभग्रह से युक्त हो तो भी उस लग्न को, उस नवमांश से युक्त लग्न को अथवा उसके स्वामी को यत्नपूर्वक त्याग देना चाहिए ॥४६०-४६१½॥

द्वादश राशिदोष--वर-वधू के जन्म लग्न या जन्मराशि से द्वादश राशि यदि विवाहलग्न में पड़े तो वर-वधू के धन की हानि होती है। इसलिए उस लग्न को, उसके नवमांश को और उसके स्वामी को भी त्याग देना चाहिए ॥४६२½॥

जन्मलग्न और जन्म-राशि की प्रशंसा--जन्मराशि और जन्मलग्न का उदय विवाह में शुभ होता है तथा दोनों के उपचय (३, ६, १०, ११) स्थान यदि विवाह लग्न में हो तो अत्यन्त शुभप्रद होते हैं ॥

विषघटी ध्रुवाङ्क--अश्विनी का ध्रुवांक ५० भरणी का २४, कृत्तिका का ३०, रोहिणी का ५४, मृगशिरा का १३, आर्द्रा का २१, पुनर्वसु का ३०, पुष्य का २०, अश्लेषा का ३२, मघा का ३०, पूर्वा फाल्गुनी का २०, उत्तरा फाल्गुनी का १८, हस्त का २१, चित्रा का २०, स्वाती का १४, विशाखा का १४, उत्तराषाढ़ का २०,

शून्यदस्रा: शून्यचंद्राः पूर्णचंद्रा गतेंदवः । तर्कचन्द्रा वेदपक्षाः ऋरामाश्चाश्विभात्क्रमात् ॥४६७॥
आभ्यः परास्तु घटिकाश्चतस्रो विषसंज्ञिताः । विवाहादिषु कार्येषु विषनाडीं विवर्जयेत् ॥४६८॥
भास्करादिषु वारेषु ये मुहूर्ताश्च निंदिताः । विवाहादिषु ते वर्ज्या अपिलक्षगुणैर्युताः ॥४६९॥
निहिता वारदोषा ये सूर्यवारादिषु क्रमात् । अपि सर्वगुणोपेतास्ते वर्ज्याः सर्वमंगले ॥४७०॥
एकार्गलांघ्रितुल्यं यत्तल्लग्नं च विवर्जयेत् । अपिशुक्रेज्यसंयुक्तं विषसंयुक्तदुग्धवत् ॥४७१॥
ग्रहणोत्पातभं त्याज्यं मंगलेषु ऋतुत्रयम् । यावच्च शशिना भुक्ता मुक्तभं दग्धकाष्ठवत् ॥४७२॥
मंगलेषु त्यजेत्खेटैर्विद्धं च क्रूरसंयुतम् । अखिलर्क्षं पंचगव्यं सुराबिंदुयुतं यथा ॥४७३॥
पाद एव शुभैर्विद्धमशुभं नैव कृत्स्नभम् । क्रूरविद्धं युतं धिष्ण्यं निखिलं नैव मंगलम् ॥४७४॥
तुलामिथुनकन्यांशा धनुरंत्यार्धसंयुताः । एते नवांशाः शुभदा वृषभस्यांशकाः खलु ॥४७५॥
अत्यांशास्तेऽपि शुभदा यदि वर्गोत्तमाह्वयाः । अन्ये नवांशा न ग्राह्या यतस्ते कुनवांशकाः ॥४७६॥
कुनवांशकलग्नं यत्त्याज्यं सर्वगुणान्वितम् । यस्मिन्दिने महापातस्तद्दिनं वर्जयेच्छुभे ॥४७७॥
अपि सर्वगुणोपेतं दम्पत्योर्मृत्युदं यतः । अनुक्ताः स्वल्पदोषाः स्युर्विद्युन्नीहारवृष्टयः ॥४७८॥

श्रवण का १०, धनिष्ठा का १०, शतभिषा का १८, पूर्वभाद्रपद का १६, उत्तरभाद्रपद का २४ और रेवती का ध्रुवांक ३० है। इन अश्विनी आदि नक्षत्रों के अपने-अपने ध्रुवांक तुल्य घड़ी के बाद ४ घड़ी तक विषघटी होती है। विवाह आदि शुभ कार्यों में विषघटिकाओं का त्याग कर देना चाहिए ॥४६३-४६८॥

रवि आदि वारों में जो मुहूर्त निन्दित कहा गया है, वह यदि अन्य लाख गुणों से युक्त हो तो भी विवाह आदि शुभ कार्यों में वर्जनीय ही है ॥४६९॥ रवि आदि दिनों में जो-जो वार-दोष कहे गये हैं वे अन्य सब गुणों से युक्त हों तो भी शुभ कार्य में त्याज्य हैं ॥४७०॥

नक्षत्र के जिस चरण में पूर्वोक्त 'एकार्गल दोष' हो, उस चरण (नवांश) से युक्त जो लग्न हो उसमें यदि गुरु, शुक्र का योग हो तो भी विषयुक्त दूध के समान उसका परित्याग कर देना चाहिए ॥४७१॥

ग्रहण तथा उत्पात से दूषित नक्षत्र को तीन ऋतु (६ मास) तक शुभ कार्य में छोड़ देना चाहिए। जब चन्द्रमा को भोगकर छोड़ दे तो वह नक्षत्र जली हुई लकड़ी के समान निष्फल हो जाता है अर्थात् दोषकारक नहीं रह जाता। शुभ कार्यों में ग्रह से विद्ध और पापग्रह से युक्त सम्पूर्ण नक्षत्र को मदिरामिश्रित पञ्चगव्य के समान त्याग देना चाहिए; परन्तु यदि नक्षत्र शुभग्रह से विद्ध हो तो उसका केवल विद्धचरण ही त्याज्य है, सम्पूर्ण नक्षत्र नहीं। किन्तु पापग्रह से विद्ध नक्षत्र शुभकार्य में सम्पूर्ण रूप से त्याज्य हैं ॥४७२-४७४॥

विहित नवमांश—वृष, तुला, मिथुन, कन्या और धन का उत्तरार्ध तथा इन राशियों के नवमांस विवाह लग्न शुभप्रद है किसी भी लग्न में अन्तिम नवमांश यदि वर्गोत्तम हो तभी उसे शुभप्रद समझना चाहिए। अन्यथा विवाहलग्न का अन्तिम नवमांश (२६ अंश ४० कला के बाद) अशुभ होता है। यहाँ अन्य नवमांश नहीं ग्रहण करने चाहिए। क्योंकि वे कुनवमांश कहलाते हैं। लग्न में कुनवमांश हो तो अन्य सब गुणों से युक्त होने पर भी वह त्याज्य है। जिस दिन महापात (सूर्य-चन्द्रमा का क्रान्ति-साम्य) हो, वह दिन भी शुभ कार्य में छोड़ देने योग्य है। क्योंकि वह अन्य सब 'गुणों' से युक्त होने पर भी वर-वधू के लिए घातक होता है। इन दोषों से भिन्न विद्युत्, नीहार (कुहरा) और वृष्टि आदि दोष, जिनका अभी वर्णन नहीं किया गया है, (स्वल्पदोष) कहलाते हैं ॥४७५-४७८॥

प्रत्यर्कपरिवेषेंद्रचापांबुधरगर्जनाः । लत्तोपग्रहपाताख्या मासदग्धाह्वया तिथिः ॥४७९॥
दग्धलग्नांधबधिरपंगुसंज्ञाश्च राशयः । एवमाद्यास्ततस्तेषां व्यवस्था क्रियतेऽधुना ॥४८०॥
अकालजा भवंत्येते विद्युन्नीहारवृष्टयः । दोषाय मंगले नूनमदोषायैव कालजः ॥४८१॥
बृहस्पतिः केंद्रगतः शुक्रो वा यदि वा बुधः । एकोऽपि दोषनिचयं हरत्येव न संशयः ॥४८२॥
तिर्यक्पंचोर्ध्वगाः पञ्च रेखा द्वे द्वे च कोणयोः । द्वितीये शंभुकोणेऽग्निधिष्ण्यं चक्रे प्रविन्यसेत् ॥४८३॥
भान्यत्र साभिजित्येकरेखाखेटेन विद्धभम् । पुरतः पृष्ठतोऽर्काद्या दिनर्क्षं लत्तयंति यत् ॥४८४॥
अर्काकृतिगुणाद्यंगबाणाष्टनवसंख्यभम् । सूर्यभात्सार्पपित्र्यांत्यत्वाष्ट्रमित्रोडुविष्णुभम् ॥४८५॥
संख्यया दिनभे तावदश्विभात्पातदुष्टभम् । सौराष्ट्रे साल्वदेशे तु लत्तितं भं विवर्जयेत् ॥४८६॥
कलिगवंगदेशेषु पातितं न शुभप्रदम् । वाह्लिके कुरुदेशे चान्यस्मिन्देशे न दूषणम् ॥४८७॥
तिथयो मासदग्धश्च दग्धलग्नानि यान्यपि । मध्यदेशे विवर्ज्यानि न दुष्टानीतरेषु च ॥४८८॥
षङ्ग्वंधकाणलग्नानि मासशून्याश्च राशयः । गौडमालवयोस्त्याज्या अन्यदेशे न गर्हिताः ॥४८९॥

लघु दोष—विद्युत् नीहार वृष्टि, प्रतिसूर्य (दो सूर्य-सा दीखना) परिवेष (घेरा), इन्द्रधनुष, मेघगर्जन, लत्ता, उपग्रह, पात, मासदग्धतिथि, दग्ध, अन्ध, बधिर तथा पंगु—इन राशियों के लग्न, एवं छोटे-छोटे और भी अनेक दोष हैं। अब उनकी व्यवस्था का प्रतिपादन किया जाता है ॥४७९-४८०॥

विद्युत, नीहार, वृष्टि—ये यदि असमय में हों तभी दोष समझे जाते हैं। यदि समय पर हों (जैसे जाड़े के दिन में पाला पड़े, वर्षा ऋतु में वर्षा हो तथा सघन मेघ में बिजली चमके) तो सब शुभ ही समझे जाते हैं ॥४८१॥ यदि बृहस्पति, शुक्र अथवा बुध इनमें से एक भी केन्द्र में हो तो इन सब दोषों को नष्ट कर देते हैं। इसमें संशय नहीं ॥४८२॥

पञ्चशलाका-वेध—पाँच रेखायें पड़ी और पाँच रेखायें खड़ी खींचकर दो-दो रेखायें कोणों में खींचने (बनाने) से पञ्चशलाका-चक्र बनता है। इस चक्र के ईशान कोण वाली दूसरी रेखा में कृत्तिका को लिखकर आगे प्रदक्षिणा-क्रम से रोहिणी आदि अभिजित् सहित सम्पूर्ण नक्षत्रों का उल्लेख करे। जिस रेखा में ग्रह हो, उसी रेखा की दूसरी ओर वाला नक्षत्र विद्ध समझा जाता है ॥४८३½॥

लत्तादोष—सूर्य आदि ग्रह क्रमशः अपने आश्रित नक्षत्र से आगे और पीछे १२, २२, ३, ७, ६, ५, ८ तथा ९वें दैनिक नक्षत्र को लातों से दूषित करते हैं, इसलिए इसका नाम 'लत्तादोष' है।

पातदोष—सूर्य जिस नक्षत्र में हो उससे अश्लेषा, मघा, रेवती, चित्रा, अनुराधा और श्रवण तक की जितनी संख्या हो, उतनी ही यदि अश्विनी से दिननक्षत्र तक गिनने से संख्या हो तो वह नक्षत्र पातदोष से दूषित होता है ॥४८४-४८५½॥

परिहार—सौराष्ट्र (काठियावाड़) और शाल्वदेश में लत्तादोष वर्जित है। कलिंग (जगन्नाथपुरी से कृष्णा नदी तक का भूभाग), वंग (बंगाल), वाह्लिक (बलख) और कुरु (कुरुक्षेत्र) देश में पातदोष त्याज्य हैं; अन्य देशों में ये दोष त्याज्य नहीं हैं ॥४८६-४८७॥ मासदग्ध तिथि तथा दग्ध लग्न—ये मध्यदेश (प्रयाग से पश्चिम, कुरुक्षेत्र से पूर्व, विन्ध्य और हिमालय के मध्य) में वर्जित हैं। अन्य देशों में ये दूषित नहीं हैं ॥४८८॥ पंगु, अंध, काण लग्न तथा मासों में जो शून्य राशियाँ कही गई हैं, वे गौड़ (बंगाल से भुवनेश्वर तक) और मालव (मालवा) देश में त्याज्य हैं। अन्य देशों में निन्दित नहीं हैं ॥४८९॥

॥४९०॥
दोषदुष्टं सदा कालं सन्निमाष्टुं न शक्यते । अपि धातुरतो ग्राह्यं दोषाल्पत्वं गुणाधिकम् ॥४९१॥
एवं सुलग्ने दंपत्योः कारयेत्सम्यगीक्षणम् । हस्तोच्छ्रितां चतुर्हस्तैश्चतुरस्रां समंततः ॥४९२॥
स्तंभैश्चतुर्भिः सुश्लक्ष्णैर्वामभागे तु सन्नताम् । समंडपां चतुर्दिक्षु सोपानैरतिशोभिताम् ॥४९३॥
प्रागुदक्प्रवणां रंभास्तंभैर्हंसशुकादिभिः । विचित्रितां चित्रकुंभैर्विविधैस्तोरणांकुरैः ।४९४॥
शृङ्गारपुष्पनिचयैर्वर्णकैः समलंकृताम् । विप्राशीर्वचनैः पुण्यस्त्रीभिर्दिव्यैर्मनोरमाम् ॥४९५॥
वादित्रनृत्यगीताद्यैर्हृदयानंदिनीं शुभाम् । एवंविधां समारोहेन्मिथुनं स्वाग्निवेदिकाम् ॥४९६॥
अष्टधा राशिकूटं च स्वादूडुगणराशयः । राशीशयोनिवर्णाख्यऋतवः पुत्रपौत्रदाः ॥४९७॥
एकराशौ पृथग्धिष्ण्ये दंपत्योः पाणिपीडनम् । उत्तमं मध्यमं भिन्नं राश्यैकत्वं ययोस्तयोः ॥४९८॥
एकर्क्षे त्वेकराशौ हि विवाहः प्राणहानिदः । स्त्रीधिष्ण्यादाद्यनवके स्त्रीदूरमतिनिंदितम् ॥४९९॥
द्वितीये मध्यमं श्रेष्ठं तृतीये नवके नृभम् । तिस्रः पूर्वोत्तरा धातृयाम्यमाहेशतारकाः

विशेष—काल सदा दोषों से दुष्ट होता है; उसे ब्रह्मा भी सर्वथा निर्दोष नहीं बना सकते हैं, इसलिए जिसमें थोड़ा दोष और अधिक गुण हों, ऐसा काल ग्रहण करना चाहिए ॥४९०॥

वेदी और मण्डप—इस प्रकार वर-वधू के लिए शुभप्रद उत्तम समय में श्रेष्ठ लग्न का अनुसन्धान करना चाहिए। तदनन्तर एक हाथ ऊँची, चार हाथ लम्बी और चार हाथ चौड़ी उत्तर दिशा में नत (कुछ नीची) वेदी बनाकर सुन्दर चिकने चार खंभों का एक मण्डप तैयार करे, जिसमें चारों ओर सीढ़ियाँ बनायी गई हों। मण्डप भी पूर्व-उत्तर में निम्न हो। वहाँ चारों तरफ कदलीस्तम्भ गड़े हों। वह मण्डप शुक आदि पक्षियों के चित्रों से सुशोभित हो तथा वेदी नाना प्रकार के मांगलिक चित्रयुक्त कलशों से विचित्र शोभा धारण कर रही हो। भाँति-भाँति के बन्दनवार तथा अनेक प्रकार के फूलों के शृंगार से वह स्थान सुसज्जित हो। ऐसे मण्डप के बीच बनी हुई ब्राह्मणों के स्वस्तिवाचनपूर्वक आशीर्वादों, और पुण्यशीला स्त्रियों तथा दिव्य समारोहों से अत्यन्त मनोरम नृत्य, वाद्य और मांगलिक गीतों की ध्वनि से जो हृदय को आनन्द प्रदान करने वाली वेदी पर, वर और वधू को विवाह के लिए बिठाये ॥४९१-४९५॥

वर-वधू की कुण्डली का मिलान--आठ प्रकार के भकूट, नक्षत्र, राशि, राशिस्वामी, योनि तथा वर्ण आदि सब गुण यदि ऋजु (अनुकूल या शुभ) हों तो ये पुत्र पौत्रादि का सुख प्रदान करने वाले होते हैं ॥४९६॥

वर और कन्या दोनों की राशि और नक्षत्र भिन्न हों तो उन दोनों का विवाह उत्तम होता है। दोनों की राशि भिन्न और नक्षत्र एक हो तो उनका विवाह मध्यम होता है और यदि दोनों का एक ही नक्षत्र, एक ही राशि हो तो उन दोनों का विवाह प्राणसंकट उपस्थित करने वाला होता है ॥४९७½॥

स्त्रीदूर-दोष—कन्या के नक्षत्र से प्रथम नवक (नौ नक्षत्रों) के भीतर वर का नक्षत्र हो तो यह 'स्त्रीदूर' नामक दोष कहलाता है, जो अत्यन्त निन्दित है। द्वितीय नवक (१० से १८ तक) के भीतर हो तो मध्यम कहा गया है। यदि तृतीय नवक (१९ से २७ तक) के भीतर हो तो उन दोनों का विवाह श्रेष्ठ कहा गया है ॥४९८½॥

गण विचार—पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तर भाद्रपद, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा--ये नक्षत्र मनुष्यगण हैं। श्रवण, पुनर्वसु, हस्त, स्वाती, रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य और

इति मर्त्यगणे ज्ञेयः स्यादमर्त्यगणः परः । हर्यादित्यार्कवाय्वंत्यमित्राश्वीज्येंदुतारकाः ॥५००॥
रक्षोगणः पितृत्वाष्ट्रद्विदैवाग्नींद्रतारकाः । वसुवारीशमूलाहितारकाभिधु ताास्ततः ॥५०१॥
दंपत्योर्जन्मभे चैकगणे प्रीतिरनेकधा । मध्यमा देवमर्त्यानां राक्षसानां तयोर्मृतिः ॥५०२॥
मृत्युः षष्ठाष्टके पंचनवमे त्वनपत्यता । नैःस्व्यं द्विर्द्वादशेऽन्येषु दंपत्योः प्रीतिरुत्तमा ॥५०३॥
एकाधिपे मित्रभावे शुभदं पाणिपीडनम् । द्विर्द्वादशे त्रिकोणे च न कदाचित्षडष्टके ॥५०४॥
अश्वेभमेषसर्पाहिद्व्योतुमेषोतुमूषकाः । आखुगोमहिषव्याघ्रकालीव्याघ्रमृगद्वयम् ॥५०५॥
श्वानः कपिर्बभ्रुयुगं कपिसिंहतुरंगमाः । सिंहगोदंतिनो भानां योनयः स्युर्यथाश्विभात् ॥५०६॥
श्वैणं बभ्रूरगं मेषवानरौ सिंहवारणम् । गोव्याघ्रमाखुमार्जारं महिषाश्वं च शात्रवम् ॥५०७॥
झषालिकर्कटा विप्रास्तद्वर्ध्वाः क्षत्रियादयः । पुंवर्णराशेः स्त्रीराशौ सति हीने यथाशुभम् ॥५०८॥

मृगशिरा—ये देवगण हैं तथा मघा, चित्रा, विशाखा, कृत्तिका, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल और अश्लेषा—ये नक्षत्र राक्षसगण हैं ॥४९९-५०१॥ वर और कन्या के नक्षत्र किसी एक ही के गण हों तो दोनों में परस्पर सब प्रकार से प्रेम बढ़ता है। एक मनुष्यगण और दूसरे का देवगण होने पर दोनों में मध्यम प्रेम होता है तथा यदि एक का राक्षस और दूसरे का देव या मनुष्यगण हो तो वर-वधू दोनों को मृत्युतुल्य क्लेश प्राप्त होता है ॥५०२॥

राशिकूट—वर और कन्या की राशियों को परस्पर गिनने से यदि वे छठीं और आठवीं संख्या में पड़ती हों तो दोनों के लिए घातक हैं। यदि पाँचवीं और नवीं संख्या में हों तो संतान की हानि होती है। यदि दूसरी और बारहवीं संख्या में हों तो वर-वधू दोनों निर्धन होते हैं। इनसे भिन्न संख्या में हों तो दोनों में परस्पर प्रेम होता है ॥५०३॥

परिहार—द्विर्द्वादश (२, १२) और नवपञ्चम अथवा दोष में यदि दोनों की राशियों का एक ही स्वामी हो अथवा दोनों के राशि-स्वामियों में मित्रता हो तो विवाह शुभ है कहा गया है। परन्तु षडष्टक (६, ८) में दोनों के स्वामी एक होने पर भी विवाह शुभदायक नहीं होता है ॥५०४॥

योनि-कूट—१ अश्व, २ गज, ३ मेष, ४ सर्प, ५ सर्प, ६ श्वान, ७ मार्जार, १० मूषक, ११ मूषक १२ गौ, १३ महिष, १४ व्याघ्र, १५ महिष, १६ व्याघ्र, १७ मृग, १८ मृग, १९ श्वान, २० वानर, २१ नकुल, २२ नकुल, २३ वानर, २४ सिंह, २५ अश्व, २६ सिंह, २७ गौ तथा २८ गज—ये क्रमशः अश्विनी से लेकर रेवती तक (अभिजित् सहित) अट्ठाईस नक्षत्रों की योनियाँ हैं ॥५०५-५०६॥ इनमें श्वान और मृग में, नकुल और सर्प में, मेष और वानर में, सिंह और गज में, गौ और व्याघ्र में, मूषक और मार्जार में तथा महिष और अश्व में परस्पर शत्रुता होती है ॥५०७॥

वर्ण-कूट—मीन, वृश्चिक और कर्कराशि ब्राह्मण वर्ण हैं, इनके बाद वाले क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण हैं। समान वर्ण के वर और बधू में तो विवाह स्वयंसिद्ध है ही वर की राशि के वर्ण से कन्या की राशि का वर्ण हीन हो तो भी विवाह शुभ होता है। इससे विपरीत (अर्थात् वर की राशि के वर्ण से कन्या की राशि का वर्ण श्रेष्ठ) हो तो अशुभ समझना चाहिए ॥५०८॥

चतुस्त्रिद्व्यंघ्रिभोत्थायाः कन्यायाश्चाश्विभात्क्रमात् । वह्निभादिदुभान्नाडीस्त्रिचतुःपंचपर्वसु ॥५०९॥
गणयेत्संख्यया चैकनाड्यां मृत्युर्न पार्श्वयोः । प्राजापत्यब्राह्मदैवा विवाहाश्चार्षसंयुताः ॥५१०॥
उक्तकाले तु कर्तव्याश्चत्वारः फलदायकाः । गंधर्वासुरपैशाचराक्षसाख्यास्तु सर्वदा ॥५११॥
चतुर्थमभिजिल्लग्नमुदयर्क्षाच्च सप्तमम् । गोधूलिकं तदुभयं विवाहे पुत्रपौत्रदम् ॥५१२॥
प्राच्यानां च कलिंगानां मुख्यं गोधूलिकं स्मृतम् । अभिजित्सर्वदेशेषु मुख्यो दोषविनाशकृत् ॥५१३॥
मध्यंदिनगते भानौ मुहूर्तोऽभिजिदाह्वयः । नाशयत्यखिलान्दोषान्पिनाकी त्रिपुरं यथा ॥५१४॥
पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रीविवाहो न ऋतुत्रये । न त्रयोव्रतमुद्वाहान्मंगले नान्यमंगलम् ॥५१५॥
विवाहश्चैकजन्यानां षण्मासाभ्यंतरे यदि । असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेत् ॥५१६॥
प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मै दुहितृद्वयम् । न चैकजन्ययोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके ॥५१७॥

नाडी-विचार—चार चरण वाले नक्षत्र (अश्विनी, भरणी, रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, अश्लेषा मघा, पूर्वा फाल्गुनी, हस्त, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वा षाढ़, श्रवण, शतभिषा, उत्तर भाद्रपद, रेवती—इन) में उत्पन्न कन्या के लिए अश्विनी से आरंभ करके रेवती तक तीन पर्वों पर क्रम-उत्क्रम से गिनकर नाड़ी समझे। तीन चरण वाले (कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ और पूर्वभाद्रपद) नक्षत्रों में उत्पन्न कन्या के लिए कृत्तिका से लेकर भरणी तक क्रम-उत्क्रम से चार पर्वों पर गिनकर नाड़ी का ज्ञान प्राप्त करे तथा दो चरणों वाले (मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा) नक्षत्रों में उत्पन्न कन्या की नाड़ी जानने के लिए मृगशिरा से लेकर रोहिणी तक पाँच पर्वों पर क्रम-उत्क्रम से गिने। यदि वर और वधू दोनों के नक्षत्र एक पर्व पर पड़ें तो वे उनके लिए घातक हैं और भिन्न पर्वों पर पड़ें तो शुभ होता है। ॥५०९½॥

विवाहों के भेद—ऊपर बताये हुए शुभ समय में (१) प्राजापत्य, (२) ब्राह्म, (३) दैव और (४) आर्ष ये—चार प्रकार के विवाह करने चाहिए। ये ही चारों विवाह उपयुक्त फल देने वाले होते हैं। इससे अतिरिक्त जो गान्धर्व, आसुर, पैशाच तथा राक्षस विवाह है, वे तो सब समय समान ही फल देने वाले होते हैं ॥५१०-५११॥

अभिजित्-और गोधूलि-लग्न—सूर्योदयकाल में जो लग्न रहता है, उससे चतुर्थ लग्न का नाम अभिजित है और सातवां गोधूलि-लग्न कहलाता है। ये दोनों विवाह में पुत्र-पौत्र प्रदान करने वाले होते हैं ॥५१२॥ पूर्व तथा कलिंग देशवासियों के लिए गोधूलि-लग्न प्रधान है और अभिजित् लग्न तो सब देशों के लिए मुख्य कहा गया है, क्योंकि वह सब दोषों का नाश करने वाला है। ५१३॥

अभिजित्-प्रशंसा—सूर्य के मध्य आकाश में जाने पर अभिजित्-मुहूर्त होता है, वह समस्त दोषों को वैसे ही नष्ट कर देता है, जैसे त्रिपुरासुर को शंकर ने नष्ट किया था ॥५१४॥

पुत्र का विवाह करने के बाद छह मासों के भीतर पुत्री का विवाह नहीं करना चाहिए। एक पुत्र या पुत्री का विवाह करने के बाद दूसरे पुत्रका उपनयन भी नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार एक मंगल कार्य करने के बाद छह मासों के भीतर दूसरा मंगल कार्य नहीं करना चाहिए। एक गर्भ से उत्पन्न दो कन्याओं का विवाह यदि छह मास के भीतर हो तो निश्चय ही तीन वर्ष के भीतर उसमें से एक विधवा होती है ॥५१५-५१६॥ अपने पुत्र के साथ जिसकी पुत्री का विवाह हो, फिर उसके पुत्र के साथ अपनी पुत्री का विवाह करना 'प्रत्युद्वाह' कहलाता है। ऐसा कभी नहीं करना चाहिए तथा किसी एक ही वर को अपनी दो कन्यायें नहीं देनी चाहिए। दो सहोदर वरों को दो सहोदर कन्यायें नहीं देनी चाहिए। दो सहोदरों का एक ही दिन (एक साथ) विवाह या मुण्डन नहीं करना चहिए ॥५१७½॥

नैवं कदाचिदुद्वाहो नैकदा मुंडनद्वयम् । दिवाजातस्तु पितरं रात्रौ तु जननीं तथा ॥५१८॥
आत्मानं संध्ययोर्हंति नास्ति गंडे विपर्ययः । सुतः सुता वा नियतं श्वशुरं हंति मूलजः ॥५१९॥
तदंत्यपादजो नैव तथाश्लेषाद्यपादजः । ज्येष्ठांत्यपादजौ ज्येष्ठं बालो हंति न बालिका ॥५२०॥
न बालिकांबुमूलर्क्षे मातरं पितरं तथा । सैंद्री धवाग्रजं हंति देवरं तु द्विदैवजा ॥५२१॥
आरभ्योद्वाहदिवसात् षष्ठे वाप्यष्टमे दिने । वधूप्रवेशः संपत्त्यै दशमे सप्तमे दिने ॥५२२॥
हायनद्वितयं जन्मभलग्नदिवसानपि । संत्यज्य ह्यतिशुक्रेऽपि यात्रा वैवाहिकी शुभा ॥५२३॥
श्रीप्रदं सर्वगीर्वाणस्थापनं चोत्तरायणे । गीर्वाणपूर्वगीर्वाणमन्त्रिणोर्दृश्यमानयोः ॥५२४॥
विचैत्रेष्वेव मासेषु माघादिषु च पंचसु । शुक्लपक्षेषु कृष्णेष तदादिष्वष्टसु शुभम् ॥५२५॥
दिनेषु यस्य देवस्य या तिथिस्तत्र तस्य च । द्वितीयादिद्वये पंचम्यादितस्तिसृषु क्रमात् ॥५२६॥
दशम्यादेश्चतसृषु पौर्णमास्यां विशेषतः । त्र्युत्तरादितिचंद्रांत्यहस्तत्रयगुरूडुषु ॥५२७॥
साश्विधातृजलाधीशहरिमित्रवसुष्वपि । कुजवर्जितवारेषु कर्तुः सूर्ये बलप्रदे ॥५२८॥
चंद्रताराबलोपेते पूर्वाह्णे शोभने दिने । शुभलग्ने शुभांशे च कर्त्तुर्न निधनोदये ॥५२९॥
राशयः सकलाः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः । पंचाष्टके शुभे लग्ने नैधने शुद्धिसंयुते ॥५३०॥

गण्डान्तदोष—पूर्वकथित गण्डान्त में यदि दिन में बालक का जन्म हो तो वह पिता का, रात्रि में जन्म हो तो माता का और सध्या (सायं या प्रातः) काल में जन्म हो तो वह अपने शरीर के लिए घातक होता है। गण्ड का यह परिमाण अन्यथा नहीं होता है। मूल में उत्पन्न होने वाली संतान पुत्र हो या कन्या, श्वसुर के लिए घातक होती है, किन्तु मूल के चतुर्थ चरण में जन्म लेने वाला बालक श्वसुर का विनाशक नहीं होता है। अश्लेषा के प्रथम चरण में जन्म लेने वाला बालक भी पिता का या श्वशुर का विनाशक नहीं होता है। ज्येष्ठा के अन्तिम चरण में उत्पन्न बालक ही श्वसुर के लिए घातक होता है, कन्या नहीं। इसी प्रकार पूर्वाषाढ़ या मूल में उत्पन्न कन्या भी माता या पिता का नाश करने वाली नहीं होती है। ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न कन्या अपने पति के बड़े भाई के लिए और विशाखा में जन्म लेने वाली कन्या अपने देवर के लिए घातक होती है ॥५१८-५२१॥

वधू प्रवेश—विवाह के दिन से ६,८,१० और ७ वें दिन में वधू प्रवेश (पति-गृह में प्रथम प्रवेश) हो तो सम्पत्ति की वृद्धि होती है। द्वितीय वर्ष, जन्मराशि, जन्मलग्न और जन्मदिन को छोड़कर अन्य समय में सम्मुख शुक्र रहने पर भी वैवाहिक यात्रा (वधू प्रवेश) शुभ होती है ॥५२२-५२३॥

देव प्रतिष्ठा—उत्तरायण में, बृहस्पति और शुक्र उदित हों तो चैत्र को छोड़कर माघ आदि पाँच मासों के शुक्ल पक्ष में और कृष्णपक्ष में भी आरंभ से आठ दिन तक सब देवताओं की स्थापना शुभदायक होती है। जिस देवता की जो तिथि है उसमें उस देवता की और २, ३, ५, ६, ७, १०, ११, १२, १३ तथा पूर्णिमा—इन तिथियों में सब देवताओं की स्थापना शुभ होती है। तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, मृगशिरा, रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुष्य, अश्विनी, रोहिणी, शतभिषा, श्रवण, अनुराधा और धनिष्ठा—इन नक्षत्रों में तथा मंलवार को छोड़कर अन्य वारों में देव-प्रतिष्ठा करनी चाहिए। स्थापना करने वाले (यजमान) के लिए सूर्य, तारा और चन्द्रमा बलवान् हों, उस दिन के पूर्वाह्ण में, शुभ समय, शुभ लग्न और शुभ नवमांश में तथा यजमान की जन्मराशि से अष्टम राशि को छोड़कर अन्य लग्नों में देवताओं की प्रतिष्ठा शुभ होती है ॥५२४-५२९॥

मेष आदि सब राशियाँ शुभग्रह से युक्त या दृष्ट हों तो देवस्थापन के लिए श्रेष्ठ समझी जाती हैं। प्रत्येक कार्य में पंचांग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण) शुभ होने चाहिए और लग्न से अष्टम स्थान भी शुद्ध (ग्रहवर्जित) होना आवश्यक है ॥५३०॥ (१) लग्न में चन्द्रमा, सूर्य, मंगल, राहु, केतु और शनि कर्ता के

। कर्तुर्मृत्युप्रदाश्चान्ये धनधान्यसुखप्रदाः ।।५३१।।
लग्नस्थाश्चंद्रसूर्याररराहुकेत्वर्कसूनवः । द्वितीये नेष्टदाः पापाः सौम्याश्चंद्रश्चवित्तदाः । तृतीये निखिलाः खेटाः पुत्रपौत्रसुखप्रदाः ।।५३२।।
चतुर्थे सुखदाः सौम्याः क्रूराः खेटाश्च दुःखदाः । ग्लानिदाः पंचमे क्रूराः सौम्याः पुत्रसुखप्रदाः ।।५३३।।
षष्ठे शुभाः शत्रुदाः स्युः पापाः शत्रुक्षयंकराः । व्याधिदाः सप्तमे पापाः सौम्याः शुभफलप्रदाः ।।५३४।।
अष्टमस्थाः खगाः सर्वे कर्तुर्मृत्युप्रदायकाः । धर्मे पापा घ्नंति सौम्याः शुभदा मंगलप्रदाः ।।५३५।।
कर्मगा दुःखदाः पापाः सौम्याश्चंद्रश्च कीर्तिदाः । लाभस्थानगताः सर्वे भूरिलाभप्रदा ग्रहाः ।।५३६।।
व्ययस्थानगताः शश्वद्बहुव्ययकरा ग्रहाः । हंत्यर्थहीनाः कर्तारं मंत्रहीनास्तु ऋत्विजम् ।।५३७।।
स्त्रियं लक्षणहीनास्तु न प्रतिष्ठासमो रिपुः । गुणाधिकतरे लग्ने दोषः स्वल्पतरो यदि ।।५३८।।
सुराणां स्थापनं तत्र कर्तुरिष्टार्थसिद्धिदम् । निर्माणायतनग्रामगृहादीनां समासतः ।।५३९।।
क्षेत्रमादौ परीक्षेत गंधवर्णरसांशकैः । मधुपुष्पाम्लपिशितगंधं विप्रानुपूर्वकम् ।।५४०।।
सितं रक्तं च हरितं कृष्णवर्णं यथाक्रमम् । मधुरं कटुकं तिक्तं कषायकरसं क्रमात् ।।५४१।।

लिए घातक होते हैं। अन्य (बुध, गुरु और शुक्र) लग्न में धन, धान्य आदि सब सुख प्रदान करते हैं। (२) द्वितीय भाव में पापग्रह अनिष्ट फल देने वाले और शुभ ग्रह धन की वृद्धि करने वाले होते हैं। (३) तृतीय भाव में शुभ और पाप सब ग्रह पुत्र-पौत्रादि सुख को बढ़ाने वाले होते हैं। (४) चतुर्थ भाव में शुभ ग्रह शुभ-फल और पापग्रह पाप-फल देते हैं। (५) पञ्चम भाव में पापग्रह कष्टदायक और शुभ ग्रह पुत्रादि सुख देने वाले होते हैं। (६) षष्ठ भाव में शुभ ग्रह शत्रु वृद्धि करने वाले और पापग्रह शत्रु के लिए घातक होते हैं। (७) सप्तम भाव में पापग्रह रोगकारक और शुभ ग्रह शुभ फल देने वाले होते हैं। (८) अष्टम भाव में शुभग्रह और पापग्रह सभी कर्ता (यजमान) के लिए घातक होते हैं। (९) नवम भाव में पापग्रह हों तो वे धर्म को नष्ट करते हैं और शुभग्रह शुभ फल देने वाले होते हैं। (१०) दशम भाव में पापग्रह दुःखदायक और शुभ ग्रह सुयश की वृद्धि करने वाले होते हैं। (११) एकादश स्थान में पाप और शुभ सब ग्रह सब प्रकार से लाभकारक ही होते हैं। (१२) लग्न से द्वादश स्थान में पाप या शुभ सभी ग्रह व्यय को बढ़ाते हैं ।।५३१-५३६।।

प्रतिष्ठा में अन्य विशेष बात—प्रतिष्ठा करने वाले पुरोहित (या आचार्य) को अर्थज्ञान न हो तो यजमान का अनिष्ट होता है। मन्त्रों का अशुद्ध उच्चारण हो तो ऋत्विजों (यज्ञ करने वालों) का और कर्म विधि-हीन हो तो कर्ता की स्त्री का अनिष्ट होता है। इसलिए नारद! देवप्रतिष्ठा के समान दूसरा शत्रु भी नहीं है। यदि लग्न में अधिक गुण हों और थोड़े-से दोष हों तो उसमें देवताओं की प्रतिष्ठा कर लेनी चाहिए। इससे कर्ता (यजमान) के अभीष्ट मनोरथ की सिद्धि होती है। मुने! अब मैं संक्षेप से ग्राम, मन्दिर तथा गृह आदि के निर्माण की बात बताता हूँ ।।५३७-५३९।।

गृहनिर्माण के विषय में ज्ञातव्य बातें—गृह आदि बनाना हो तो पहले गन्ध, वर्ण, रस तथा आकृति के द्वारा क्षेत्र (भूमि) की परीक्षा कर लेनी चाहिए। यदि उस स्थान की मिट्टी में मधु के समान गन्ध हो तो ब्राह्मणों के, पुष्पसदृश गन्ध हो तो क्षत्रियों के, आम्ल के समान गन्ध हो तो वैश्यों के और मांस की-सी गन्ध हो तो वह स्थान शूद्रों के बसने योग्य जानना चाहिए। वहाँ की मिट्टी का रंग श्वेत हो तो ब्राह्मणों के, लाल हो तो क्षत्रियों के, पीत हो तो वैश्यों के और कृष्ण हो तो वह शूद्रों के निवास के योग्य है। यदि वहाँ की मिट्टी का स्वाद मधुर हो तो ब्राह्मणों के, कडुआ (मिर्च के समान) हो तो क्षत्रियों के, तिक्त हो तो वैश्यों के और कषाय (कसैला) हो तो उस स्थान को शूद्रों के निवास करने योग्य समझना चाहिए ।।५४०-५४१।। ईशान, पूर्व और उत्तर

अत्यंतवृद्धिदं नृणामीशानप्रागुदक्प्लवम् । अन्यदिक्षु प्लवे तेषां शश्वदत्यंतहानिदम् ॥५४२॥
समगर्तारत्निमात्रं खनित्वा तत्र पूरयेत् । अत्यंतवृद्धिरधिके हीने हानिः समे समम् ॥५४३॥
तथा निशादौ तत्कृत्वा पानीयेन प्रपूरयेत् । प्रातर्दृष्टे जले वृद्धिः समं पंके क्षयः क्षये ॥५४४॥
एवं लक्षणसंयुक्तं सम्यक् क्षेत्रं समीक्ष्यते । दिक्साधनाय तन्मध्ये समं मंडलमालिखेत् ॥५४५॥
द्वादशांगुलकं शंकुं स्थाप्येक्षेत्तत्र दिक्क्रमम् । चतुरस्त्रीकृते क्षेत्रे षड्वर्गपरिशोधिते ॥५४६॥
रेखामार्गे च कर्त्तव्यं प्राकारं सुमनोहरम् । आयामेषु चतुर्दिक्षु प्रागादिषु च सत्स्वपि ॥५४७॥
अष्टावष्टौ प्रतिदिशं द्वाराणि स्युर्यथाक्रमम् । प्रदक्षिणक्रमात्तेषाममूनि च फलानि वै ॥५४८॥
हानिर्नैःस्व्यं धनप्राप्तिर्नृपपूजा महद्धनम् । अतिचौर्यमतिक्रोधो भीतिर्दिशि शचीपतेः ॥५४९॥
निधनं बंधनं भीतिरर्थाप्तिर्धनवर्द्धनम् । अनातंकं व्याधिभयं निःसत्त्वं दक्षिणादिशि ॥५५०॥
पुत्रहानिः शत्रुवृद्धिर्लक्ष्मीप्राप्तिर्द्धनागमः । सौभाग्यमतिदौर्भाग्यं दुःखं शोकश्च पश्चिमे ॥५५१॥
कलत्रहानिर्निःसत्त्वं हानिर्द्धान्यधनागमः । संपद्वृद्धिर्मासभीतिरामयं दिशि शीतगोः ॥५५२॥

दिशा में प्लव (नीची) भूमि सब के लिए अत्यन्त वृद्धि देने वाली होती है। अन्य दिशाओं में प्लव (नीची) भूमि सब के लिए हानि करने वाली होती है ॥५४२॥

गृह भूमि परीक्षा—जिस स्थान में घर बनाना हो वहाँ अरत्नि (कोहिनी से कनिष्ठा अंगुलि तक) के बराबर लंबाई, चौड़ाई और गहराई करके कुण्ड बनाये। फिर उसे उसी खोदी हुई मिट्टी से भरे। यदि भरने से मिट्टी शेष बच जाय तो उस स्थान में वास करने से सम्पत्ति की वृद्धि होती है। यदि मिट्टी कम हो जाय तो वहाँ रहने से सम्पत्ति की हानि होती है। यदि सारी मिट्टी से वह कुण्ड भर जाय तो मध्यम फल जानना चाहिए ॥५४३॥ अथवा उसी प्रकार अरत्नि के माप का कुण्ड बनाकर सायंकाल उसको जल से पूरित कर दे और प्रातःकाल देखे; यदि कुण्ड में जल अवशिष्ट हो तो उस स्थान में वृद्धि होगी। यदि कीचड़ (गीली मिट्टी) ही बची हो तो मध्यम फल है और यदि कुण्ड की भूमि में दरार पड़ गयी हो तो उस स्थान में वास करने से हानि होगी ॥५४४॥

मुने! इस प्रकार निवास करने योग्य स्थान की भली भांति परीक्षा करके उक्त लक्षणयुक्त भूमि में दिक्साधन (दिशाओं का ज्ञान) करने के लिए समतल भूमि में वृत्त (गोल रेखा) बनाये। वृत्त के मध्यभाग में द्वादशांगुल शंकु (बारह विभाग या पर्व से युक्त एक सीधी लकड़ी) की स्थापना करे और दिक्साधनविधि से दिशाओं का ज्ञान करे। फिर कर्ता के नाम के अनुसार षड्वर्ग शुभ क्षेत्रफल (वास्तुभूमि की लम्बाई-चौड़ाई का गुणनफल) ठीक करके अभीष्ट लम्बाई-चौड़ाई के बराबर (दिशासाधित रेखानुसार) चतुर्भुज बनाये। उस चतुर्भुज रेखामार्ग पर सुन्दर प्रकार (चहारदीवारी) बनाये। लम्बाई और चौड़ाई में पूर्व आदि चारो दिशाओं में आठ-आठ द्वार के भाग होते हैं। प्रदक्षिण क्रम से उनके निम्नांकित फल हैं। (जैसे पूर्वभाग में उत्तर से दक्षिण तक) १. हानि, २. निर्धनता, ३. धनलाभ, ४. राजसम्मान, ५. बहुत धन, ६. अतिचोरी, ७. अतिक्रोध तथा ८. भय—ये क्रमशः आठ द्वारों के फल हैं। दक्षिण दिशा में क्रमशः १. मरण, २. बन्धन, ३. भय, ४. धनलाभ, ५. धनवृद्धि, ६. निर्भयता, ७. व्याधिभय तथा ८. निर्बलता—ये (पूर्व से पश्चिम तक के) आठ द्वारों के फल हैं। पश्चिम दिशा में क्रमशः १. पुत्रहानि, २. शत्रुवृद्धि, ३. लक्ष्मीप्राप्ति, ४. धनलाभ, ५. सौभाग्य, ६. अतिदौर्भाग्य, ७. दुःख तथा ८. शोक—ये दक्षिण से उत्तर तक के आठ द्वारों के फल

पश्चिमे दक्षिणे वापि कपाटं स्थापयेद्गृहे ॥५५३॥
एवं गृहादिषु द्वारविस्ताराद्द्विगुणोच्छ्रितम् । मध्ये नवपदे ब्रह्मस्थानं तदतिनिन्दितम् ॥५५४॥
प्राकारांतःक्षितिं कुर्यादेकाशीतिपदं यथा । पिशाचांशे गृहारंभो दुःखशोकभयप्रदः ॥५५५॥
द्वात्रिंशदंशाः प्राकारसमीपांशाः समंततः । शिराः स्युर्वास्तुनो रेखा दिग्विदिग्मध्यसंभवाः ॥५५६॥
शेषांशाः स्युश्च निर्माणे पुत्रपौत्रधनप्रदाः । तत्र तत्र विजातीयाद्वास्तुनो मर्मसंधयः ॥५५७॥
ब्रह्मभागाः पिशाचांशाः शिराणां यत्र संहतिः । सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः ॥५५८॥
मर्माणि संधयो नेष्टाः स्वस्थेऽप्येवं निवेशने । अकारादिषु भागेषु दिक्षु प्रागादिषु क्रमात् ॥५५९॥
मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यधनप्रदाः । दिग्वर्गाणामियं योनिः स्ववर्गात्पंचमो रिपुः ॥५६०॥
खरोऽश्वोऽथ हरिः श्वाख्यः सर्पाखुगजशाशकाः । व्यत्यये नाशनं तस्य ऋणमध्यं धनाच्छुभम् ॥५६१॥
साध्यवर्गः पुरः स्थाप्य पृष्ठतः साधकं न्यसेत् । विभजेत्सप्तभिः शेषं साधकस्य धनं तदा ॥५६२॥
आरभ्य साधकं धिष्ण्यं साध्यं यावच्चतुर्गुणम् ।

हैं। इसी प्रकार उत्तर दिशा में (पश्चिम से पूर्व तक) १. स्त्रीहानि, २. निर्बलता, ३. हानि, ४. धान्यलाभ, ५. धनागम, ६. सम्पत्तिवृद्धि, ७. भय तथा ८. रोग-ये क्रमशः आठ द्वारों के फल हैं ॥५४५-५५३॥

इसी तरह पूर्व आदि दिशाओं के गृहादि में भी द्वार और उसके फल समझने चाहिए। द्वार का जितना विस्तार (चौड़ाई) हो, उससे दुगुनी ऊँची किवाड़ें बनाकर उन्हें घर में (चहार दीवारी के) दक्षिण या पश्चिम भाग में लगाये ॥५५३॥ चहारदीवारी के भीतर जितनी भूमि हो, उसके इक्यासी पद (समान खण्ड) बनाये। उनके बीच के नौ खण्डों में ब्रह्मा का स्थान है। यह गृहनिर्माण में अत्यन्त निन्दित है। चहारदीवारी से मिले हुए जो चारों ओर के ३२ भाग हैं, वे पिशाचांश हैं। उनमें घर बनाने से दुःख, शोक और भय प्राप्त होता है। शेष अंशों (पदों) में घर बनाये जायँ तो पुत्र, पौत्र और धन की वृद्धि होती हैं ॥५५४-५५५½॥

वास्तु भूमि की दिशा-विदिशाओं की रेखा वास्तु की शिरा कहलाती है। एवं ब्राह्मभाग, पिशाचभाग तथा शिरा का जहाँ-जहाँ योग हो वहाँ-वहाँ वास्तु की मर्मसन्धि वह मर्मसन्धि तथा गृहारम्भ तथा गृह-प्रवेश में अनिष्टकारक समझी जाती है ॥५५६-५५७½॥

गृहारम्भ में प्रशस्त मास--मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख, माघ, श्रावण और कार्तिक—ये मास गृहारंभ में पुत्र, आरोग्य और धन देने वाले होते हैं ॥५५८½॥

दिशाओं में वर्ग और वर्गेश—पूर्व आदि आठों दिशाओं में क्रमशः अकारादि आठ वर्ग होते हैं। इन दिशा वर्गों के क्रमशः गरुड, मार्जार, सिंह, श्वान, सर्प, मूषक, गज और शशक (खरगोश) ये योनियाँ होती हैं। इन योनि वर्गों में अपने से पाँचवें वर्ग वाले परस्पर शत्रु होते हैं ॥५५९-५६०॥

जिस ग्राम में या जिस स्थान में घर बनाना हो, वह साध्य तथा घर बनाने वाला साधक, कर्ता और भर्ता आदि कहलाता है। इसको ध्यान में रखना चाहिए।) साध्य (ग्राम) की वर्गसंख्या को लिखकर, उसके पीछे (बायें भाग में) साधक की वर्गसंख्या लिखे। उसमें आठ का भाग देकर जो शेष बचे, वह साधक का धन होता है। इसके विपरीत विधि से (अर्थात् साधक की वर्गसंख्या के बायें भाग में साध्य की वर्गसंख्या रखकर जो संख्या बने, उसमें आठ से भाग देकर शेष) साधक का ऋण होता है। इस प्रकार ऋण की संख्या अल्प और धन-संख्या अधिक हो तो शुभ माने (अर्थात् उस ग्राम या उस दिशा में बनाया हुआ घर रहने योग्य है, ऐसा समझे) ॥५६१॥

इसी प्रकार, साधक के नक्षत्र से साध्य के नक्षत्र तक गिनकर जो संख्या हो उसको चार से गुणा करके गुणनफल में सात से भाग दे तो शेष साधक का धन होता है ॥५६२॥

विस्तार आयामगुणो गृहस्य पदमुच्यते । तस्माद्धनाधनायर्क्षवारांशाः संख्यया क्रमात् ॥५६३॥
धनाधिकं गृहं वृद्ध्यै ऋणाधिकमशोभनम् । विषमायः शुभायैव समायो निर्धनाय च ॥५६४॥
धनक्षयस्तृतीय पंचमर्क्षे परः क्षयः । आत्मक्षयः सप्तमोर्क्षे भवेत्येव हि भर्तृभात् ॥५६५॥
द्विर्द्वादशो निर्धनाय त्रिकोणमसुताय च । षट्काष्टकं मृत्यवे स्याच्छुभदा राशयः परे ॥५६६॥
सूर्यांगारकवारांशा वैश्वानरभयप्रदाः । इतरे ग्रहवारांशाः सर्वकामार्थसिद्धिदाः ॥५६७॥
नभस्यादिषु मासेषु त्रिषु त्रिषु यथाक्रमम् । पूर्वादिकशिरोवामपार्श्वेशायाप्रदक्षिणम् ॥५६८॥
चराह्वयो वास्तुपुमान् चरत्येवं महोदरः । यद्दिङ्मुखो वास्तुपुमान् कुर्यात्तद्दिङ्मुखं गृहम् ॥५६९॥
प्रतिकूलमुखं गेहं रोगशोकभयप्रदम् । सबलो मुखगेहानामेष दोषो न विद्यते ॥५७०॥
वृत्येटिकां स्वर्णरेणुधान्यशैवलसंयुतम् । गृहमध्ये हस्तमात्रे गर्ते न्यासाय विन्यसेत् ॥५७१॥
वस्त्वायामदलं नाभिस्तस्मादध्यंगुलत्रयम् । कुक्षिस्तस्मिन्न्यसेच्छंकुं पुत्रपौत्रविवर्धनम् ॥५७२॥
चतुर्विंशत्रयोविंशत्षोडशद्वादशांगुलैः । विप्रादीनां कुक्षिमानं स्वर्णवस्त्राद्यलंकृतम् ॥५७३॥

वास्तुभूमि तथा घर के धन, ऋण, आय, नक्षत्र, वार, और अंश के ज्ञान का साधन—वास्तुभूमि या घर को चौड़ाई को लम्बाई से गुणा करने पर गुणनफल 'पद' कहलाता है। उस 'पद' को (६ स्थानों में रख कर क्रमशः ८,३,९,८,९,६ से गुणा करे और गुणनफल में क्रमशः १२,८,८,२७,७,९ से भाग दे। फिर जो शेष बचे वे क्रमशः धन, ऋण, आय, नक्षत्र, वार तथा अंश होते हैं। धन अधिक हो तो वह घर शुभ होता है। यदि ऋण अधिक हो तो अशुभ होता है तथा विषम (१,३,५,७) आय शुभ और सम (२,४,६,८) आय अशुभ होता है। घर का जो नक्षत्र हो, वहाँ से अपने नाम के नक्षत्र तक गिनकर जो संख्या हो, उसमें ९ से भाग दे। फिर यदि शेष (तारा) ३ बचे तो धन का नाश होता है। ५ बचे तो यश को हानि होती है और ७ बचे तो गृहकर्ता का ही मरण होता है। घर की राशि और अपनी गिनने पर परस्पर २,१२ हो तो धनहानि होती है; ९, ५ हो तो पुत्र की हानि होती है और ६,८ हो तो अनिष्ट होता है; अन्य संख्या हो तो शुभ समझना चाहिए। सूर्य और मंगल के वार तथा अंश हो तो उस घर में अग्निभय होता है। अन्य वार-अंश हो तो सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओं की सिद्धि होती है ॥५६३-५६७॥

वास्तु पुरुष की स्थिति—भादों आदि तीन-तीन मासों में क्रमशः पूर्व आदि दिशाओं की ओर मस्तक करके बायीं करवट से सोये हुए महासर्पस्वरूप 'चर' नामक वास्तु पुरुष प्रदक्षिण-क्रम से विचरण करते रहते हैं। जिस समय जिस दिशा में वास्तुपुरुष का मस्तक हो, उस समय उसी दिशा में घर का दरवाजा बनाना चाहिए, मुख से विपरीत दिशा में घर का दरवाजा बनाने से रोग, शोक और भय होते हैं। किन्तु यदि घर में चारों दिशाओं में द्वार हो तो यह दोष नहीं होता है ॥५६८-५७०॥

गृहारम्भकाल में नींव के भीतर हाथ भर के गड्ढे में स्थापित करने के लिए सोना, पवित्र स्थान की रेणु (धूलि), धान्य और सेवारसहित ईंट घर के भीतर संग्रह करके रखे। घर की जितनी लम्बाई हो, उसके तीन अंगुल नीचे (वास्तुपुरुष के पुच्छभाग की ओर) कुक्षि रहती है। उसमें शंकु का न्यास करने से पुत्र आदि को वृद्धि होती है ॥५७१-५७२॥

शंकु प्रमाण—खैर, अर्जुन, शाखू, कचनार, रक्तचन्दन, पलाश, रक्तशाल विशाल आदि वृक्षों में से किसी की लकड़ी से शंकु बनता है। ब्राह्मणादि वर्णों के लिए क्रमशः २४, २३, २० और १६ अंगुल के शंकु होने चाहिए।

॥५७४॥
खादिगर्जुनशालोत्थं युगयंत्रं तरूद्भवम् । रक्तचंदनपालाशरक्तशालविशालजम् ॥५७५॥
शकुं त्रिधा विभज्याद्यं चतुरस्रं ततः परम् । अष्टास्रं च तृतीयासौ मन्वस्रं मृदुमव्रणम् ॥५७६॥
एवं लक्षणसंयुक्तं परिकल्प्य शुभे दिने । षड्वर्गशुद्धिसूत्रेण सूत्रिते धरणीतले ॥५७७॥
मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु रिक्तामार्वाजिते दिने । व्यर्कारचरलग्नेषु पापे चाष्टमवर्जिते ॥५७८॥
नैधने शुद्धिसंयुक्ते शुभलग्ने शुभांशके । शुभेक्षितेऽथ वा युक्ते लग्ने शंकुं विनिक्षिपेत् ॥५७९॥
पुण्याहघोषैर्वादित्रैः पुण्यपुण्यांगनादिभिः । स्वत्रिकेंद्रत्रिकोणस्थैः शुभैस्त्र्यायारिगैः परैः ॥५८०॥
लग्नांशाष्टारिचंद्रेण दैवज्ञार्चनपूर्वकम् । एकद्वित्रिचतुःशालाःसप्त शाला दशाह्वयाः ॥५८१॥
ताः पुनः षड्विधाः शालाः प्रत्येकं दशषड्विधाः । ध्रुवं धान्यं जय नंदं खरैः कांतं मनोरमम् ॥५८२॥
सुमुखं दुर्मुखं क्रूरं शत्रुं स्वर्णप्रदं क्षयम् । आक्रंदं विपुलाख्यं च विजयं षोडशं गृहम् ॥५८३॥
गृहाणि गणयेदेवं तेषां प्रस्तारभेदतः । गुरोरधो लघुः स्थाप्यः पुरस्तादूर्ध्ववन्न्यसेत् ॥५८४॥
गुरुभिः पूरयेत्पश्चात्सर्वलघ्ववधीविधिः । कुर्याल्लघुपदेऽलिंदं गृहद्वारात्प्रदक्षिणम्

उस शंकु के बराबर-बराबर तीन भाग करके ऊपर वाले भाग में चतुष्कोण, मध्य वाले भाग में अष्टकोण और नीचे वाले (तृतीय) भाग में बिना कोण का (गोलाकार) उसका स्वरूप होना उचित है इस प्रकार उत्तम लक्षणों से युक्त कोमल और छेदरहित शंकु शुभ दिन में बनाये। उसके षड्वर्ग द्वारा शुद्ध सूत्र से सूत्रित भूमि (गृहक्षेत्र) में मृदु, ध्रुव, क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रों में, अमावास्या और रिक्ता को छोड़कर अन्य तिथियों में, रविवार, मंगलवार तथा चर लग्न को छोड़कर अन्य वारों और अन्य (स्थिर या द्विस्वभाव) लग्नों में, जब पापग्रह लग्न में न हो, अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) हो; शुभ राशि लग्न हो और उसमें शुभ नवमांश हो, उस लग्न में शुभग्रह का संयोग या दृष्टि हो; ऐसे समय (सुलग्न) में ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन कराते हुए मांगलिक वाद्य और सौभाग्यवती स्त्रियों के मंगलगीत आदि के साथ मुहूर्त बताने वाले दैवज्ञ (ज्योतिष के विद्वान् ब्राह्मण) के पूजन (सत्कार) पूर्वक कुक्षि-स्थान में शंकु की स्थापना करे। लग्न से केन्द्र और त्रिकोण में शुभ ग्रह तथा ३,६,११ में पापग्रह और चन्द्रमा हो तो यह शंकुस्थापन श्रेष्ठ है ॥५७३-५७९½॥

घर के छह भेद होते हैं १ एकशाला २ द्विशाला ३ त्रिशाला, ४ चतुरशाला, ५ सप्तशाला तथा ६ दशशाला इन छहों शालाओं में से प्रत्येक के १६ भेद होते हैं। उन सब भेदों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं–ध्रुव, २ धान्य, ३ जय, ४ नन्द, ५ खर, ६ कान्त, ७ मनोरम, ८ सुमुख, ९ दुर्मुख, १० क्रूर, ११ शत्रुद, १२ स्वर्णद, १३ क्षय, १४ आक्रन्द, १५ विपुल और १६वाँ विजय नामक गृह होता है। चार अक्षरों के प्रस्तार के भेद से क्रमशः इन गृहों की गणना करनी चाहिए ॥५८०-५८२½॥

प्रस्तारभेद--प्रथम ४ गुरु (S) चिह्न लिख कर उनमें प्रथम गुरु के नीचे लघु (I) चिह्न लिखे। फिर आगे जैसा ऊपर हो उसी प्रकार के गुरु या लघु चिह्न लिखना चाहिए। फिर उसके नीचे (तीसरी पंक्ति में) प्रथम गुरु चिह्न के नीचे लघु चिह्न लिखकर आगे (दाहिने भाग में) जैसे ऊपर गुरु या लघु हो वैसे ही चिह्न लिखे तथा पीछे (बायें भाग में) गुरुचिह्न से पूरा करे। इसी प्रकार पुनः पुनः तब तक लिखता जाय जब तक पंक्ति (प्रस्तार) में सब चिह्न लघु न हो जाय। इस प्रकार चार दिशा होने के कारण ४ अक्षरों से १६ भेद होते हैं। प्रत्येक भेद में चारों चिह्न को प्रदक्षिणक्रम से पूर्व आदि दिशा समझकर जहाँ-जहाँ लघु चिह्न पड़े; वहाँ-वहाँ घर का द्वार और अलिन्द (द्वार के आगे का भाग—चबूतरा) बनाना चाहिए। इस प्रकार पूर्वादि दिशाओं में अलिन्द के भेदों से १६ प्रकार के घर होते हैं ॥५८३-५८४½॥

पूर्वादिगेष्वलिदेषु गृहभेदास्तु षोडश । स्नानागारं दिशि प्राच्यामाग्नेय्यां पाकमंदिरम् ॥५८५॥
याम्यां च शयनागारं नैऋर्त्यां शास्त्रमंदिरम् । प्रतीच्यां भोजनगृहं वायव्यां धान्यमंदिरम् ॥५८६॥
कौबेर्यां देवतागारमीशान्यां क्षीरमंदिरम् । शय्यामूत्रास्त्रतद्विच्च भोजनं मंगलाश्रयम् ॥५८७॥
धान्यस्त्रीभोगवित्तं च शृंगारायतनानि च । ईशान्यादिक्रमस्तेषां गृहनिर्माणकं शुभम् ॥५८८॥
एतेष्वेतानि शस्त्राणि स्वं स्थाप्यानि स्वदिक्ष्वपि । ध्वजो धूम्रोऽथ सिंहःश्वा सौरमेयः खरो गजः ॥५८९॥
ध्वांक्षश्चैव भवंत्यष्टौ पूर्वादिपाः क्रमादमी । प्लक्षोदुंबरचूताख्या निंबस्तु हि बिभीतकाः ॥५९०॥
ये कंटका दुग्धवृक्षा वृक्षाश्वत्थकपित्थकाः । अगस्तिसिंधुवालाख्यतितिडीकाश्च निंदिताः ॥५९१॥
पित्तवाग्नजदेहस्यात्पश्चिमे दक्षिणे तथा । गृहपादागृहस्तभाः समाः शस्ताश्च नासमाः ॥५९२॥
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं कुड्योत्सेधं यथारुचि । गृहोपरि गृहादीनामेवं सर्वत्र चिंतयेत् ॥५९३॥
गृहादीनां गृहश्रावं क्रमशोऽष्टविधं स्मृतम् । पांचालमानं वैदेहं कौरवं च कुजन्यकम् ॥५९४॥
मागधं शूरसेनं च गांधारावंतिका स्मृतम् । सचतुर्भागविस्तारमुत्सेधं यत्तदुच्यते ॥५९५॥
पांचालमातुलानां च ह्युत्तरोत्तरवृद्धितः । वैदेहादीन्यशेषाणि मानानि स्युर्यथाक्रमम् ॥५९६॥
पांचालमानं सर्वेषां साधारणमतः परम् । अवंतिमानं विप्राणां गांधारं क्षत्रियस्य च ॥५९७॥
कौजन्यमानं वैश्यानां विप्रादीनां यथोत्तरम् । यथोदितं जलस्राव्यं द्वित्रिभूमिकवेश्मनाम् ॥५९८॥

वास्तुभूमि की पूर्वदिशा में स्नानगृह, अग्निकोण में पाकगृह, दक्षिण में शयनगृह, नैऋत्यकोण में शस्त्रागार,
पश्चिम में भोजनगृह, वायुकोण में धनधान्यादि रखने का घर, उत्तर में देवताओं का गृह और ईशानकोण में जल
का गृह बनाना चाहिए तथा आग्नेयकोण से आरंभ करके उक्त दो-दो घरों के बीच क्रमशः मन्थन (दूध-दही से
घृत निकालने) का, घृत रखने का, पैखाने का, विद्याभ्यास का, स्त्रीसहवास का, औषध का और शृङ्गार की
सामग्री रखने का घर बनाना शुभ है। अतः इन सब घरों में उन-उन वस्तुओं को रखना चाहिए ॥५८५-५८८½॥

आयों के नाम और दिशा—पूर्वादि आठ दिशाओं में क्रम से ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृष, (खर गदहा),
गज और ध्वांक्ष (काक)–ये आठ आय होते हैं ॥५८९½॥

घर के समीप निन्द्य वृक्ष—पाकर, गूलर, आम, नीम, बहेड़ा तथा काँटे वाले और दुग्धवाले सब वृक्ष,
पीपल, कपित्थ (कैथ), अगस्त्य वृक्ष, सिन्धुवार (निर्गुण्डी) और इमली ये सब वृक्ष घर के समीप निन्दित कहे गये
हैं। विशेषतः घर के दक्षिण और पश्चिम-भाग में वृक्ष हों तो धन आदि का नाश करने वाले होते ॥५९०-५९१½॥

गृह प्रमाण--घर के स्तम्भ घर के पैर होते हैं। इसलिए वे समसंख्या (४,६,८ आदि) में होने पर ही
उत्तम कहे गये हैं; विषम संख्या में नहीं। घर को न तो अधिक ऊँचा ही करना चाहिए, न अधिक नीचा ही।
इसलिए अपनी इच्छा (निर्वाह) के अनुसार दीवार की ऊँचाई करनी चाहिए। घर के ऊपर जो घर (दूसरा मंजिल)
बनाया जाता है, उसमें भी इस प्रकार का विचार करना चाहिए। घरों की ऊँचाई के प्रमाण आठ प्रकार के कहे
गये हैं, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं–१पाञ्चाल, २ वैदेह, ३ कौरव, ४ कुजन्य (कान्यकुब्ज ?), ५ मागध,
६ शूरसेन, ७ गान्धार और ८ आवन्तिक। जहाँ घर की ऊँचाई उसकी चौड़ाई से सवागुनी अधिक होती है, वह भूतल
से ऊपरतक का पाञ्चालमान कहलाता है, फिर उसी ऊँचाई को उत्तरोत्तर सवागुनी बढ़ाने से वैदेह आदि सब मान
होतेहैं। इनमें पाञ्चालमान तो सर्वसाधारण जनों के लिए शुभ हैं। ब्राह्मणों के लिए आवन्तिकमान, क्षत्रियों के
लिए गान्धारमान तथा वैश्यों के लिए कौजन्यमान है। इस प्रकार ब्राह्मणादि वर्णों के लिए यथोत्तर गृहमान
समझना चाहिए तथा दूसरे मंजिल और तीसरे मंजिल के मकान में भी पानी का बहाव पहले बताये अनुसार ही
बनाना चाहिए ॥५९२-५९८॥

उष्ट्रकुंजरशालानां ध्वजायेप्यथ वा गजे । पशुशालाश्च शालानां ध्वजायेप्यथ वा गजे ॥५९९॥
द्वारशय्याशनामत्रध्वजाः सिंहवृषध्वजाः । वास्तुपूजाविधिं वक्ष्ये नवदेश्मप्रवेशने ॥६००॥
हस्तमात्रा लिखेद्रेखा दश पूर्वा दशोत्तराः । गृहमध्ये तंडुलोपर्येकाशीतिपदं भवेत् ॥६०१॥
पंचोत्तरान्वक्ष्यमाणांश्चत्वारिंशत्सुरान् लिखेत् । द्वात्रिंशद्बाह्यतः पूज्यास्तत्रांतःस्थास्त्रयोदश ॥६०२॥
तेषां स्थानानि नामानि वक्ष्यामि क्रमशोऽधुना । ईशानकोणतो बाह्ये द्वात्रिंशत्त्रिदशा अमी ॥६०३॥
कृपीटयोनिः पर्जन्यो जयंतः पाकशासनः । सूर्यः शशी मृगाकशौ वायुः पूषा च नैर्ऋतिः ॥६०४॥
गृहाक्षतो दंडधरो गांधर्वो भृगुराजकः । मृगः पितृगणाधीशस्ततो दौवारिकाह्वयः ॥६०५॥
सोमः सूर्योऽदितिर्दिती द्वात्रिंशत्त्रिदशा अमी । अथेशानादिकोणस्थाश्चत्वारस्तत्समीपगाः ॥६०६॥
आपः सावित्रसंज्ञश्च जयो रुद्रः क्रमादमी । एकांतराः स्युः प्रागाद्याः परितो ब्रह्मणः स्मृताः ॥६०७॥
अर्यमा सविता बिबविवस्वान्वसुधाधिपः । मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधराह्वयः ॥६०८॥
आपवत्सोऽष्टमः पंचचत्वारिंशत्सुरा अमी । आपश्चैवापवत्सश्च पर्जन्योऽग्निर्दितिः क्रमात् ॥६०९॥
यद्विकानां च वर्गोऽयमेवं कोणेष्वशेषतः । तन्मध्ये विंशतिर्बाह्या द्विमदास्ते तु सर्वदा ॥६१०॥

घर में प्रशस्त आय—ध्वज अथवा गज आय में ऊँट और हाथी के रहने के लिए घर बनवाये तथा अन्य सब पशुओं के घर भी उसी (ध्वज और गज) आय में बनाने चाहिए। द्वार, शय्या, आसन, छाता और ध्वजा-इन सबों के निर्माण के लिए सिंह, वृष अथवा ध्वज आय होने चाहिए ॥५९९½॥

अब मैं नूतनगृह में प्रवेश के लिए वास्तुपूजा की विधि बताता हूँ—घर के मध्यभाग में तन्दुल (चावल) पर पूर्व से पश्चिम की ओर एक-एक हाथ लम्बी दस रेखायें खींचे। फिर उत्तर से दक्षिण की ओर भी उतनी ही लम्बी-चौड़ी दस रेखायें बनाये। इस प्रकार उसमें बराबर-बराबर ८१ पद (कोष्ठ) होते हैं। उनमें आगे बताये जाने वाले ४५ देवताओं का यथोक्त स्थान में नामोल्लेख करे। बत्तीस देवता बाहर (प्रान्त के कोष्ठ में) और तेरह देवता भीतर पूजनीय होते हैं। उन ४५ देवताओं के स्थान और नाम का क्रमशः वर्णन करता हूँ। किनारे के बत्तीस कोष्ठों में ईशान कोण से आरंभ करके क्रमशः बत्तीस देवता पूज्य हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—कृपीट-योनि (अग्नि) १, पर्जन्य २, जयन्त ३, इन्द्र ४, सूर्य ५, सत्य ६, भृश ७, आकाश ८, वायु ९, पूषा १०, अनृत ११, गृहक्षत १२, यम १३, गन्धर्व १४, भृंगराज १५, मृग १६, पितर १७, दौवारिक १८, सुग्रीव १९, पुष्पदन्त २०, वरुण २१, असुर २२, शेष २३, राजयक्ष्मा २४, रोग २५, अहि २६, मुख्य २७, भल्लाटक २८, सोम २९, सर्प ३०, अदिति ३१, और दिति—ये चारों किनारों के देवता हैं। ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य और वायु कोण के देवों के समीप क्रमशः आप ३३, सावित्र ३४, जय ३५, तथा रुद्र ३६ के पद हैं। ब्रह्मा के चारों ओर पूर्व आदि आठों दिशाओं में क्रमशः अर्यमा ३७, सविता ३८, विवस्वान् ३९, विबुधाधिप ४०, मित्र ४१, राजयक्ष्मा ४२, पृथ्वीधर ४३, आपवत्स ४४, हैं और मध्य के नव पदों में ब्रह्माजी (४५) को स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार सब पदों में ये पैंतालीस देवता पूजनीय होते हैं। जैसे ईशान-कोण में आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि और दिति—ये पाँच देव एक पद होते हैं, उसी प्रकार अन्य कोठों ये पाँच-पाँच देवता भी एकपद के भागी हैं। अन्य जो बाह्य पंक्ति के (जयन्त, इन्द्र आदि) बीस देवता है, वे सब द्विपद दो-दो पदों के भागी हैं तथा ब्रह्मा से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में जो अर्यमा, विवस्वान्, मित्र और पृथ्वीधर—ये चार देवता हैं, वे त्रिपद (तीन-तीन पदों के भागी) हैं, अतः वास्तु-विधि के ज्ञाता विद्वान् पुरुष को चाहिए कि ब्रह्माजी सहित इन एकपद, द्विपद तथा त्रिपद

अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधराह्वयः । ब्रह्मणः परितो दिक्षु चत्वारस्त्रिपदाः स्मृताः ॥६११॥
ब्रह्माणं च तथैकद्वित्रिपदानर्चयेत्सुरान् । वास्तुमंत्रेण वास्तुज्ञो दूर्वादध्यक्षतादिभिः ॥६१२॥
ब्रह्ममंत्रेण वा श्वेतवस्त्रयुग्मं प्रदापयेत् । आवाहनादिसर्वोपचारांश्च क्रमशस्तथा ॥६१३॥
नैवेद्यं त्रिविधान्नेन वाद्यैः सह समर्पयेत् । ताम्बूलं च ततः कर्ता प्रार्थयेद्वास्तुपूरुषम् ॥६१४॥
वास्तुपुरुष नमस्तेऽस्तु भूशय्यानिरत प्रभो । मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा ॥६१५॥
इति प्रार्थ्य यथाशक्त्या दक्षिणामर्चकाय च । दद्यात्तदग्रे विप्रेभ्यो भोजनं च स्वशक्तितः ॥६१६॥
अनेन विधिना सम्यग्वास्तुपूजां करोति यः । आरोग्यं च पुत्रलाभं धनं धान्यं लभेन्नरः ॥६१७॥
अकृत्वा वास्तुपूजां यः प्रविशेन्नवमंदिरम् । रोगान्नानाविधान्क्लेशानश्नुते सर्वसंकटम् ॥६१८॥
अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम् । गृहं न प्रविशेदेवं विपदामाकरं हि तत् ॥६१९॥
अथो यात्रा नृपादीनामभीष्टफलसिद्धये । स्यात्तथा तां प्रवक्ष्यामि सम्यग्विज्ञातजन्मताम् ॥६२०॥
अज्ञातजन्मनां नृणां फलाप्तिर्घुणवर्णवत् । प्रश्नोदयनिमित्ताद्यैस्तेषामपि फलोदयः ॥६२१॥
षष्ठ्यष्टमीद्वादशीषु रिक्तामापूर्णिमासु च । यात्रा शुक्लप्रतिपदि निर्द्धनाय क्षयाय च ॥६२२॥

देवताओं का वास्तुमन्त्रों द्वारा दूर्वा, दही, अक्षत, फूल, चन्दन, धूप, दीप और नैवेद्यादि से विधिवत् पूजन करे, अथवा ब्राह्म मंत्र से आवाहनादि षोडश (या पञ्च) उपचारों द्वारा उन्हें दो श्वेत वस्त्र समर्पित करे ॥६००-६१३॥ नैवेद्य में तीन प्रकार के (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य) अन्न मांगलिक गीत और वाद्य के साथ अर्पण करे। अन्त में ताम्बूल अर्पण करके वास्तुपुरुष की इस प्रकार प्रार्थना करे ॥६१४॥ (भूमि-शय्या पर शयन करने वाले वास्तुपुरुष ! आपको मेरा नमस्कार है। प्रभो ! आप मेरे घर को धन-धान्य से सम्पन्न करें।)

इस प्रकार प्रार्थना करके देवता के समक्ष पूजा कराने वाले (पुरोहित) को यथाशक्ति दक्षिणा दे तथा अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें भी दक्षिणा दे। जो मनुष्य सावधान होकर गृहारम्भ या गृह-प्रवेश के समय इस विधि से वास्तु-पूजा करता है, वह आरोग्य, पुत्र, धन और धान्य प्राप्त करके सुखी होता है। जो मनुष्य वास्तु-पूजा न करके नये घर में प्रवेश करता है, वह नाना प्रकार के रोग, क्लेश और संकट प्राप्त करता है ॥६१५-६१८॥

जिसमें किवाड़ें न लगी हों, जिसके ऊपर से छत आदि के द्वारा छाया न गया हो तथा जिसके लिए (पूर्वोक्त रूप से वास्तुपूजन करके) देवताओं को बलि और ब्राह्मण आदि को भोजन न दिया गया हो, ऐसे नूतन गृह में कभी प्रवेश न करे; क्योंकि वह विपत्तियों की खान होता है ॥६१९॥

यात्रा-प्रकरण--अब मैं जिस प्रकार से यात्रा करने पर वह राजा तथा अन्य जनों के लिए अभीष्ट फल की सिद्धि कराने वाली होती है, उस विधि का वर्णन करता हूँ। जिनके जन्म-समय का ठीक-ठीक ज्ञान है, उन राजाओं तथा अन्य जनों को उस विधि से यात्रा करने पर उत्तम फल की प्राप्ति होती है। जिन मनुष्यों का जन्मसमय अज्ञात है, उनको तो घुणाक्षरन्याय से ही कभी फल की प्राप्ति होती है, तथापि उनको भी प्रश्न-लग्न से तथा निमित्त और शकुन आदि द्वारा शुभाशुभ देखकर यात्रा करने से अभीष्ट फल का लाभ होता है ॥६२०-६२१॥

यात्रा में निषिद्ध तिथियाँ—षष्ठी, अष्ठमी, द्वादशी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा और शुक्लपक्ष की प्रतिपदा—इन तिथियों में यात्रा करने से दरिद्रता तथा अनिष्ट की प्राप्ति होती है ॥६२२॥

यात्राभीष्टफलप्रदाः ॥६२३॥
मैत्रादितीन्द्वर्कात्त्याश्विहरितिष्यवसूडुषु । असप्तपञ्चत्र्याद्येषु
न मंदेंदुदिने प्राचीं न व्रजेद्दक्षिणं गुरौ । सितार्कयोर्न प्रतीचीं नोदीचीं ज्ञारयोर्दिने ॥६२४॥
इंद्राजपादचतुरास्यार्यमर्क्षाणि पूर्वतः । शूलानि सर्वद्वाराणि मित्रार्कज्याश्वभानि च ॥६२५॥
क्रमाद्दिग्द्वारभानि स्युः सप्तसप्ताग्निधिष्ण्यतः । परिघं लंघयेद्दंडं नाग्निश्वसनदिग्गमम् ॥६२६॥
आग्नेयं पूर्वदिग्धिष्ण्यैर्विदिशश्चैवमेव हि । दिग्राशयस्तु क्रमशो मेषाद्याश्च पुनः पुनः ॥६२७॥
दिगीश्वरे ललाटस्थे यातुर्न पुनरागमः । लग्नस्थो भास्करः प्राच्यां दिशि यातुर्ललाटगः ॥६२८॥
द्वादशैकादशः शुक्रोऽप्याग्नेय्यां तु ललाटगः । दशमस्थः कुजो लग्नाद्याम्यां यातुर्ललाटगः ॥६२९॥
नवमाष्टमगो राहुर्नैर्ऋत्यां तु ललाटगः । लग्नात्सप्तमगः सौरिः प्रतीच्यां तु ललाटगः ॥६३०॥
षष्ठः पञ्चमगश्चन्द्रो वायव्यां च ललाटगः । चतुर्थस्थानगः सौम्यश्चोत्तरस्यां ललाटगः ॥६३१॥
द्वित्रिस्थानगतो जीव ईशान्यां वै ललाटगः । ललाटं तु परित्यज्य जीवितेच्छुर्व्रजेन्नरः ॥६३२॥

विहित नक्षत्र—अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, रेवती, अश्वनी, श्रवण, पुष्य और धनिष्ठा–इन नक्षत्रों में यदि अपने जन्म-नक्षत्र से सातवीं, पाँचवीं और तीसरी तारा न हो तो यात्रा अभीष्ट फल को देने वाली होती है ॥६२३॥

दिशाशूल—शनि और सोमवार के दिन पूर्व दिशा की ओर नहीं जाना चाहिए। गुरुवार को दक्षिण नहीं जाना चाहिए। शुक्र और रविवार को पश्चिम नहीं जाना चाहिए। तथा बुध और मंगल को उत्तर दिशा यात्रा नहीं करना चाहिए। ॥६२४॥ ज्येष्ठा, पूर्वभाद्रपद, रोहिणी और उत्तरा फाल्गुनी–ये नक्षत्र क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में शूल होते हैं।

सर्वदिग्गमन नक्षत्र—अनुराधा, हस्त, पुष्य और अश्विनी–ये चार नक्षत्र सब दिशाओं को यात्रा में प्रशस्त हैं ॥६२५॥

दिग्द्वार-नक्षत्र—कृत्तिका से आरंभ करके सात-सात नक्षत्र-समूह पूर्वादि दिशाओं में रहते हैं। तथा अग्निकोण से वायुकोण तक परिघदण्ड रहता है; अतः इस प्रकार यात्रा करनी चाहिए, जिससे परिघदण्ड का लंघन न हो ॥६२६॥

पूर्व के नक्षत्रों में अग्निकोण की यात्रा करे। इसी प्रकार दक्षिण के नक्षत्रों में अग्निकोण तथा पश्चिम और उत्तर के नक्षत्रों में वायुकोण को यात्रा कर सकते हैं।

दिशाओं की राशियाँ—पूर्व आदि चार दिशाओं में मेष आदि १२ राशियाँ क्रमशः पुनः पुनः (तीन आवृत्ति से) आती हैं ॥६२७॥

लालाटिक योग—जिस दिशा में यात्रा करनी हो, उस दिशा का स्वामी ललाटगत (सामने) हो तो यात्रा करने वाला लौटकर नहीं आता है। पूर्व दिशा में यात्रा करने वाले को लग्न में यदि सूर्य हो तो वह ललाटगत माना जाता है। यदि शुक्र लग्न से ग्यारहवें या बारहवें स्थान में हो तो अग्निकोण में यात्रा करने से, मंगल दशम भाव में हो तो दक्षिण यात्रा करने से, राहु नवें और आठवें भाग में हो तो नैर्ऋत्यकोण की यात्रा से, शनि सप्तम भाव में हो तो पश्चिम-यात्रा से, चन्द्रमा पांचवें और छठे भाव में हो तो वायुकोण की यात्रा से, बुध चतुर्थ भाव में हो तो उत्तर की यात्रा से, गुरु तीसरे और दूसरे भाव में हो तो ईशानकोण की यात्रा करने से ललाटगत होते हैं। जीवन की इच्छा रखने वाले मनुष्य इस ललाटयोग को त्यागकर यात्रा करे ॥६२८-६३२॥

विलोमगो ग्रहो यस्य यात्रालग्नोपगो यदि । तस्य भङ्गप्रदो राज्ञस्तद्वर्गोऽपि विलग्नगः ॥६३३॥
रवीन्द्वयनयोर्यातमनुकूलं शुभप्रदम् । तदभावे दिवारात्रौ या यायाद्यातुर्वधोऽन्यथा ॥६३४॥
मूढे शुक्रे कार्यहानिः प्रतिशुक्रे पराजयः । प्रतिशुक्रकृतं दोषं हंतुं शक्ता ग्रहा न हि ॥६३५॥
वासिष्ठकाश्यपेयात्रिभारद्वाजाः सगौतमाः । एतेषां पञ्चगोत्राणां प्रतिशुक्रो न विद्यते ॥६३६॥
एकग्रामे विवाहे च दुर्भिक्षे राजविग्रहे । द्विजक्षोभे नृपक्षोभे प्रतिशुक्रो न विद्यते ॥६३७॥
नीचगोऽरिगृहस्थो वा वक्रगो वा पराजितः । यातुर्भंगप्रदः शुक्रः स्वोच्चस्थश्चेज्जयप्रदः ॥६३८॥
स्वाष्टलग्नेष्टराशौ वा शत्रुभात्स्वष्टमेपि वा । तेषामीशस्थराशौ वा यातुर्मृत्युर्न संशयः ॥६३९॥
जन्मेशाष्टमलग्नेशौ मिथो मित्रे व्यवस्थितौ । जन्मराश्यष्टपक्षोत्थदोषा नश्यंति भावतः ॥६४०॥
क्रूरग्रहेक्षितोयुक्तो द्विःस्वभावोऽपि भंगदः । याने स्थिरोदये नेष्टो भव्ययुक्तेक्षितः स्वयम् ॥६४१॥
वस्वंत्यार्द्धादिपं च संग्रहं तृणकाष्ठयोः । याम्यदिग्गमनं शय्या न कुर्याद्गेहगोपनम् ॥६४२॥

लग्न में वक्रगति ग्रह या उसके षड्वर्ग (राशि-होरादि) हों तो यात्रा करने वाले राजाओं को पराजय होती है ॥६३३॥

अब जिस अयन में सूर्य और चन्द्रमा दोनों हों, उस समय उस दिशा की यात्रा शुभ फल देने वाली होती है। यदि दोनों भिन्न अयन में हों तो जिस अयन में सूर्य हों उधर दिन में तथा जिस अयन में चन्द्रमा हों उधर रात्रि में यात्रा शुभ होती है। अन्यथा यात्रा करने से यात्री की पराजय होती है ॥६३४॥

शुक्रदोष—शुक्र अस्त हों तो यात्रा में हानि होती है। यदि वह सम्मुख हो तो यात्रा करने से पराजय होती है। सम्मुख शुक्र के दोष को कोई भी ग्रह नहीं हटा सकता है। किन्तु वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, भरद्वाज और गौतम—इन पाँच गोत्र वालों को सम्मुख शुक्र का दोष नहीं होता है। यदि एक ग्राम के भीतर ही यात्रा करनी हो या विवाह में जाना हो या दुर्भिक्ष होने पर अथवा राजाओं में युद्ध होने पर तथा राजा या ब्राह्मणों का कोप होने पर कहीं जाना पड़े तो इन अवस्थाओं में सम्मुख शुक्र का दोष नहीं होता है। शुक्र यदि नीच राशि में या शत्रुराशि में अथवा वक्रगति या पराजित हो तो यात्रा करने वालों की पराजय होती है। यदि शुक्र अपनी उच्च राशि (मीन) में हो तो यात्रा में विजय होती है ॥६३५-६३८॥

अपने जन्मलग्न या जन्मराशि से अष्टम राशि या लग्न में तथा शत्रु की राशि से अष्टम राशि में या लग्न में अथवा इन सबों के स्वामी जिस राशि में हों उस लग्न या राशि में यात्रा करने वाले की निश्चय ही मृत्यु होती है। परन्तु यदि जन्मलग्नराशिपति और अष्टम राशिपति में परस्पर मैत्री हो तो उक्त अष्टम राशि-जन्य दोष स्वयं नष्ट हो जाता है ॥६३९-६४०॥

द्विस्वभाव लग्न यदि पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो यात्रा में पराजय होती है। तथा स्थिर राशि पापग्रह से युक्त न हो तो भी वह यात्रालग्न में अशुभ है। यदि स्थिर लग्न में शुभग्रह का योग या दृष्टि हो तो शुभ फल होता है ॥६४१॥

धनिष्ठा नक्षत्र के उत्तरार्ध से आरंभ करके (रेवती पर्यन्त) पांच नक्षत्रों में गृहार्थ तृणकाष्ठों का संग्रह, दक्षिण की यात्रा, शय्या (तकिया, पलंग आदि) का बनाना, घर को छवाना आदि कार्य नहीं करने चाहिये ॥६४२॥

जन्मोदये जन्मभे वा तयोरीशस्य भेऽपि वा । ताभ्यां तयोरिकेंद्रेषु यातुः शत्रुक्षयो भवेत् ॥६४३॥
शीर्षोदये लग्नगते द्विग्लग्ने लग्नगेऽपि वा । शुभवर्गोऽथ वा लग्ने यातुः शत्रुक्षयस्तदा ॥६४४॥
शत्रुजन्मोदये जन्मराशेर्वा निधनोदये । तयोरीशस्थिते राशौ यातुः शत्रुक्षयो भवेत् ॥६४५॥
वक्रः पन्था मीनलग्ने यातुर्मीनांशकेऽपि वा । निंद्यो निखिलयात्रासु घटलग्नो घटांशकः ॥६४६॥
जललग्नो जलांशो वा जलयोनेः शुभावहः । मूर्तिः कोशो धन्विनश्च वाहनं मंत्रसंज्ञकम् ॥६४७॥
शत्रुर्मार्गस्तथायुश्च मनोव्यापारसंज्ञिकम् । प्राप्तिरप्राप्तिरुदयाद्भावाः स्युर्द्वादशैव ते ॥६४८॥
घ्नंति क्रूरास्त्र्याप्तिवर्गं भावान्सूर्यमहीसुतौ । न निघ्नतो हि व्यापारं सौम्याः पुष्णंत्यरिं विना ॥६४९॥
शुक्रोऽस्तं च न पुष्णाति मूर्तिं मृत्युं च चंद्रमाः । याम्यदिग्गमनं त्यक्त्वा सर्वकाष्ठासु यायिनाम् ॥६५०॥

यदि यात्रालग्न में जन्मलग्न, जन्मराशि या इन दोनों के स्वामी हों अथवा जन्मलग्न या जन्मराशि से ३,६,११,१०वीं राशि हो तो शत्रुओं का नाश होता है ॥६४३॥

यदि शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, कुम्भ) तथा दिग्द्वार (यात्रा की दिशा) की राशि लग्न में हो अथवा किसी भी लग्न में शुभग्रह के वर्ग (राशि-होरादि) हों तो यात्रा करने वाले राजा के शत्रुओं का नाश होता है ॥६४४॥

शत्रु के जन्मलग्न या जन्मराशि से अष्टम राशि या उन दोनों के स्वामी जिस राशि में हों, वह राशि यात्रालग्न में हो तो शत्रु का नाश होता है।

मीन लग्न में या लग्नगत मीन के नवमांश में यात्रा करने से मार्ग टेढ़ा हो जाता है (अर्थात् बहुत घूमना पड़ताहै) तथा कुम्भलग्न और लग्नगत कुम्भ का नवमांश भी यात्रा में अत्यन्त निन्दित है ॥६४६॥

जलचर राशि (कर्क, मीन) या जलचर राशि का नवमांश लग्न में हो तो नौका द्वारा नदी-नद आदि मार्ग से यात्रा शुभ होती है ॥६४६½॥

लग्नभावों की संज्ञा—१ मूर्ति (तन), २ कोष (धन), ३धन्वी (पराक्रम, भ्राता), ४ वाहन (सवारी, माता), ५ मंत्र (विद्या, सन्तान), ६ शत्रु (रोग, मामा), ७ मार्ग (यात्रा, पति-पत्नी), ८ आयु (मृत्यु), ९ मन (अन्तःकरण, भाग्य), १० व्यापार (व्यवसाय, पिता), ११ प्राप्ति (लाभ), १२ अप्राप्ति (व्यय)—ये क्रम से लग्न आदि १२ स्थानों की संज्ञायें हैं ॥६४७-६४८॥

पापग्रह (शनि, रवि, मंगल, राहु तथा केतु तीसरे और ग्यारहवें को छोड़कर अन्य सब भावों में जाने से भावफल को नष्ट कर देते हैं। तीसरे और ग्यारहवें भाव में जाने से वे इन दोनों भावों को पुष्ट करते हैं। सूर्य और मंगल ये दोनों दशम भाव को भी नष्ट नहीं करते, अपितु दशम भाव में जाने से उस भावफल (व्यापार, पिता, राज्य तथा कर्म) को पुष्ट ही करते हैं और शुभग्रह (चन्द्र, बुध, गुरु तथा शुक्र) जिस भाव में जाते हैं, उस भावफल को पुष्ट ही करते हैं; केवल षष्ठ (६) भाव में जाने से उस भावफल (शत्रु और रोग) को नष्ट करते हैं ॥६४९॥ शुभ ग्रहों में शुक्र सप्तम भाव को और चन्द्रमा लग्न एवं अष्टम (१,८) को पुष्ट नहीं करते हैं (अपितु नष्ट ही करते हैं)।

अभिजित्-प्रशंसा—अभिजित् मुहूर्त (दिन का मध्यकाल—१२ बजे से १ घड़ी आगे और १ घड़ी पीछे) अभीष्ट फल सिद्ध करने वाला योग है। यह दक्षिण दिशा की यात्रा छोड़कर अन्य दिशाओं की यात्रा में

अभिजित्क्षणयोगोऽयमभीष्टफलसिद्धिदः । पञ्चांगशुद्धिरहिते दिवसेऽपि फलप्रदः ॥६५१॥
यात्रायोगा विचित्रास्तान्योगान्वक्ष्ये यतस्ततः । फलसिद्धिर्योगलग्नाद्राज्ञां विप्रस्य धिष्ण्यतः ॥६५२॥
मुहूर्तशक्तितोऽन्येषां शकुनैस्तस्करस्य च । केंद्रत्रिकोणे ह्येकेन योगः शुक्रज्ञसूरिणाम् ॥६५३॥
अधियोगो भवेद्द्वाभ्यां त्रिभिर्योगाधियोगकः । योगेऽपि यायिनां क्षेममधियोगे जयो भवेत् ॥६५४॥
योगाधियोगे क्षेमं च विजयार्थविभूतयः । व्यापारशत्रुमूर्तिस्थैश्चन्द्रमंददिवाकरैः ॥६५५॥
रणे गतस्य भूपस्य जयलक्ष्मीः प्रमाणिका । शुक्रार्कज्ञार्किभौमेषु लग्नाध्वस्तत्रिशत्रुषु ॥६५६॥
गतस्याग्रे वैरिचमूर्वह्नौ लाक्षेव लीयते । लग्नस्थे त्रिदशाचार्ये धनायस्थैः परग्रहैः ॥६५७॥
गतस्य राज्ञोऽरिसेना नीयते यममंदिरम् । लग्ने शुक्रे रवौ लाभे चन्द्रे बन्धुस्थिते यदा ॥६५८॥
गतो नृपो रिपून्हंति केसरीवेभसंहतिम् । स्वोच्चसंस्थे सिते लग्ने स्वोच्चे चन्द्रे च लाभगे ॥६५९॥
हंति यातोऽरिष्टतनां केशवः पूतनामिव । त्रिकोणे केंद्रगाः सौम्याः क्रूरास्त्र्यायारिगा यदि ॥६६०॥
यस्य यातेरलक्ष्मीस्तमुपैतीवाभिसारिका । जीवार्कचन्द्रा लग्नारिरंध्रगा यदि गच्छतः ॥६६१॥

शुभ फल देता है । इस (अभिजित् मुहुर्त) में पञ्चाङ्ग (तिथि-वारादि) शुभ न हो तो भी यात्रा में वह उत्तम फल देने वाला होता है ॥६५०-६५१॥

यात्रा योग--लग्न और ग्रहों की स्थिति से नाना प्रकार के यात्रा-योग होते हैं । अब उन योगों का वर्णन करता हूँ, क्योंकि राजाओं (क्षत्रियों) को योगबल से ही अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है । ब्राह्मणों को नक्षत्र-बल से तथा अन्य मनुष्यों को मुहूर्त-बल से इष्टसिद्धि होती है । तस्करों को शकुनबल से अपने अभीष्ट की प्राप्ति होती है । ६५२½॥ शुक्र, बुध और बृहस्पति–इन तीन में से कोई भी यदि केन्द्र या त्रिकोण में हो तो योग कहलाता है । यदि उनमें से दो ग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हों तो (अधियोग) कहलाता है तथा तथा यदि तीनों लग्न से केन्द्र (१,४,७,१०) या त्रिकोण (९,५) में हों तो योगाधियोग कहलाता है ॥६५३½॥ योग में यात्रा करने वालों का कल्याण होता है । अधियोग में यात्रा करने से विजय प्राप्त होती है और योगाधियोग में यात्रा करने वाले को कल्याण, विजय तथा सम्पत्ति का लाभ होता है ॥६५४½॥ लग्न से दसवें स्थान में चन्द्रमा, षष्ठ स्थान में शनि और लग्न में सूर्य हों तो इस समय यात्रा करने वाले राजा को विजय तथा शत्रु की सम्पत्ति भी प्राप्त होती है ॥६५५½॥ शुक्र, रवि, बुध, शनि और मंगल–ये पांचों ग्रह क्रम से लग्न चतुर्थ, सप्तम, तृतीय और षष्ठ भाव में हों तो यात्रा करने वाले राजा के सम्मुख आये हुए शत्रुगण आग में पड़ी हुई लाह की तरह नष्ट हो जाते हैं ॥६५६½॥ बृहस्पति लग्न में और अन्य ग्रह यदि दूसरे और ग्यारहवें भाव में हों तो इस योग में यात्रा करने वाले राजा के शत्रुओं की सेना यमराज के घर पहुँच जाती है ॥६५७½॥ यदि लग्न में शुक्र, ग्यारहवें में रवि और चतुर्थ भाव में चन्द्रमा हो तो इस योग में यात्रा करने वाला राजा अपने शत्रुओं को उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे हाथियों के झुंड को सिंह ॥६५८½॥

अपने उच्च (मीन) में स्थित शुक्र लग्न में हो अथवा अपने उच्च (वृष) चन्द्रमा लाभ (११) भाव में स्थित हो तो यात्रा करने वाला नरेश अपने शत्रु की सेना को उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे भगवान् श्रीकृष्ण ने पूतना को नष्ट किया था ॥६५९½॥ यदि यात्रा के समय शुभ ग्रह केन्द्र में या त्रिकोण में हों तो तथा पापग्रह तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थान में हों तो यात्रा करने वाले राजा के शत्रु की लक्ष्मी अभिसारिका के समान उसके समीप आ जाती है ॥६६०½॥ गुरु, रवि और चन्द्रमा–ये क्रमशः लग्न, ६ और ८ में हों तो यात्रा करने वाले राजा के सामने दुर्जनों की मैत्री के समान शत्रुओं की सेना नहीं ठहरती है ॥६६१½॥ यदि लग्न से ३, ६ ११ में पापग्रह

तस्याग्रे खलमैत्रीव न स्थिरा रिपुवाहिनी । त्रिखंडायेषु मन्दारौ बलवंतः शुभा यदि ॥६६२॥
यात्रायां नृपतस्तस्य हस्तस्था शत्रुमेदिनी । स्वोच्चस्थे लग्नगे जीवे चंद्रे लाभगते यदि ॥६६३॥
गतो राजा रिपून्हंति पिनाकी त्रिपुरं यथा । मस्तकोदयगे शुक्र लग्नस्थे लाभगे गुरौ ॥६६४॥
गतो राजा रिपून्हंति कुमारस्तारकं यथा । जीवे लग्नगते शुक्रे केंद्रे वापि त्रिकोणगे ॥६६५॥
गतो दहत्यरीन्राजा कृष्णवर्त्मा यथा वनम् । लग्नगे ज्ञे शुभे केंद्रे धिष्ण्ये चोषकुले गतः ॥६६६॥
नृपाः शुष्यंत्यरीन् ग्रीष्मे ह्रदिनीं वार्करश्मयः । शुभे त्रिकोणे केंद्रस्थे लाभे चंद्रेऽथवा रवौ ॥६६७॥
शत्रून्हन्ति गतो राजा ह्यंधकारं यथा रविः । स्वक्षेत्रगे शुभे केंद्रे त्रिकोणायगते गतः ॥६६८॥
विनाशयत्यरीन्राजा तूलराशिमिवानलः । इंदौ स्वस्थे गुरौ केंद्रे मंत्रः सप्रणवो गतः ॥६६९॥
नृपो हंति रिपून्सर्वान्पापान्पंचाक्षरो यथा । वर्गोत्तमगते शुक्रेऽप्येकस्मिन्नेव लग्नगे ॥६७०॥
हरिस्मृतिर्यथाघौघान्हंति शत्रून् गतो नृपः । शुभे केंद्रे त्रिकोणस्थे चंद्रे वर्गोत्तमे गतः ॥६७१॥
सगोत्रारीन्नृपान् हंति यथा गोत्रांश्च गोत्रभित् । मित्रभेऽथ गुरौ केंद्रे त्रिकोणस्थेऽथ वा सिते ॥६७२॥

हों और शुभ ग्रह बलवान् होकर अपने उच्चादि स्थान में (स्थित) हों तो शत्रु की भूमि यात्रा करने वाले राजा के हाथ में आ जाती है ॥६६२½॥ अपने उच्च (कर्क) में स्थित बृहस्पति यदि लग्न में हों और चन्द्रमा ११ भाव में स्थित हों तो यात्रा करने वाला नरेश अपने शत्रु को उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे त्रिपुरासुर को शंकर ने नष्ट किया था ॥६६३½॥ शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ) राशि में स्थित शुक्र यदि लग्न में हों और गुरु ग्यारहवें स्थान में हों तो यात्रा करने वाला पुरुष तारकासुर को कार्तिकेय के समान अपने शत्रु को नष्ट कर देता है ॥६६४½॥ गुरु लग्न में और शुक्र किसी केन्द्र या त्रिकोण में हों तो यात्री नरेश अपने शत्रुओं को वैसे ही भस्म कर देता है जैसे बन को दावानल ॥६६५½॥ यदि बुध लग्न में और अन्य शुभग्रह किसी केन्द्र में हों तथा नक्षत्र भी अनुकूल हो तो उसमें यात्रा करने वाला राजा अपने शत्रुओं को वैसे ही सोख लेता है, जैसे सूर्य की किरणें ग्रीष्मऋतु में क्षुद्र नदियों को सोख लेती हैं ॥६६६½॥ सम्पूर्ण शुभ ग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हों तथा सूर्य या चन्द्रमा ग्यारहवें भाव में स्थित हों तो यात्रा करने वाला नरेश अन्धकार को सूर्य की भाँति अपने शत्रु को नष्ट कर देता है ॥६६७½॥

शुभग्रह यदि अपनी राशि में स्थित होकर केन्द्र (१,४,७,१०) त्रिकोण (५,९) तथा आय (११) भाव में हो तो यात्रा करने वाला राजा रुई को अग्नि के समान अपने शत्रुओं को जलाकर भस्म कर देता है ॥६६८½॥ चन्द्रमा दसवें भाव में और बृहस्पति केन्द्र में हों तो उसमें यात्रा करने वाला राजा अपने सम्पूर्ण शत्रुओं को उसी प्रकार नष्ट कर देता है जैसे प्रणव सहित पञ्चाक्षरमंत्र (ओं नमः शिवाय) पाप-समूह का नाश कर देता है ॥६६९½॥ अकेला शुक्र भी यदि वर्गोत्तम नवमांशगत लग्न में स्थित हो तो उसमें भी यात्रा करने से राजा अपने शत्रुओं को उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जैसे पापों को श्रीभगवान् का स्मरण ॥६७०½॥ शुभग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हों तथा चन्द्रमा यदि वर्गोत्तम नवमांश में हो तो ऐसे समय में यात्रा करने से राजा अपने शत्रुओं को उसी प्रकार सपरिवार नष्ट करता है, जैसे इन्द्र पर्वतों को ॥६७१½॥ बृहस्पति अथवा शुक्र अपने मित्र की राशि में होकर केन्द्र या त्रिकोण में हों तो ऐसे समय में यात्रा करने वाला भूपाल सर्पों को गरुड़ के समान अपने शत्रुओं को अवश्य नष्ट करता है ॥६७२॥ यदि एक भी ग्रह वर्गोत्तम नवमांश में स्थित होकर केन्द्र में हो तो

शत्रून्हंति गतो राजा भुजंगान् गरुडो यथा। शुभकेंद्रत्रिकोणस्थे वर्गोत्तमगते गतः ॥६७३॥
विनाशयत्यरीन्राजा पापान्भागीरथी यथा। ये नृपा यान्त्यरीञ्जेतुं तेषां योगैर्नृपाह्वयैः ॥६७४॥
उपैति शांतिं कोपाग्निः शत्रुयोषाश्रुबिंदुभिः। बलक्षपक्षदशमीमासीषे विजयाभिधा ॥६७५॥
विजयस्तत्र यांतृणां संधिर्वा न पराजयः। निमित्तशकुनादिभ्यः प्रधानं हि मनोदयः ॥६७६॥
तस्मान्मनस्विनां यत्नात्फलहेतुर्मनोदयः। उत्सवोपनयोद्वाहप्रतिष्ठाशौचसूतके ॥६७७॥
असमाप्ते न कुर्वीत यात्रां मर्त्यो जिजीविषुः। महिषोंदुरयोर्युद्धे कलत्रकलहार्तवे ॥६७८॥
वस्त्रादेः स्खलिते क्रोधे दुरुक्ते न व्रजेन्नृपः। घृतान्नं तिलपिष्टान्नं मत्स्यान्नं घृतपायसम् ॥६७९॥
प्रागादिक्रमशो भुक्त्वा याति राजा जयत्यरीन्। सज्जिका परमान्नं च कांजिकं च पयो दधि ॥६८०॥
क्षीरं तिलोदनं भुक्त्वा भानुवारादिषु क्रमात्। कुल्माषांश्च तिलान्नं च दधि क्षौद्रं घृतं पयः ॥६८१॥
मृगमांसं च तत्सारं पायसं च खगं मृगम्। शशमांसं च षाष्टिक्यं प्रियंगुकमपूपकम् ॥६८२॥
चित्रांडजफलं कूर्मश्वाविद्गोधांश्च शास्वकम्। हविष्यं कृशरान्नं च मुद्गान्नं यवपिष्टिकम् ॥६८३॥

यात्रा करने वाला नरेश पाप समूह को गंगाजी के समान अपने शत्रुओं को क्षणभर में नष्ट कर देता है ॥६७३½॥ जो राजा शत्रुओं को जीतने के लिए उपर्युक्त राजयोगों में यात्रा करता है, उसका कोपानल शत्रुओं की स्त्रियों के अश्रुजल से शान्त होता है ॥६७४½॥ आश्विन मास के शुक्लपक्ष की दशमी तिथि विजया कहलाती है। उसमें जो यात्रा करता है, उसे अपने शत्रुओं पर विजय होती है। अथवा शत्रुओं से सन्धि हो जाती है। किसी भी दशा में उसकी पराजय नहीं होती है ॥६७५½॥

मनोजय प्रशंसा—यात्रा आदि सभी कार्यों में निमित्त और शकुन आदि (लग्न एवं योग) की अपेक्षा भी मनोजय प्रबल है। इसलिए मनस्वी पुरुषों के लिए यत्नपूर्वक फलसिद्धि में मनोजय ही प्रधान कारण होता है ॥६७६½॥

यात्रा में प्रतिबन्ध—यदि घर में उत्सव, उपनयन, विवाह, प्रतिष्ठा या सूतक उपस्थित हो तो जीवन की इच्छा रखने वालों को बिना उत्सव को समाप्त किये यात्रा नहीं करनी चाहिए ॥६७७½॥

यात्रा में अपशकुन—यात्रा के समय यदि परस्पर दो भैंसों या चूहों में लड़ाई हो, स्त्री से कलह हो या स्त्री को मासिक धर्म हुआ हो, वस्त्र आदि शरीर से खिसककर गिर पड़े, किसी पर क्रोध हो जाय या मुख से दुर्वचन कहा गया हो तो उस दशा में राजा को यात्रा नहीं करनी चाहिए ॥६७८½॥

दिशा, वार तथा नक्षत्र-दोहद—यदि राजा घृतमिश्रित अन्न खाकर पूर्व दिशा की यात्रा करे, तिलचूर्ण मिलाया हुआ अन्न खाकर दक्षिण दिशा को जाय और घृतमिश्रित खीर खाकर उत्तर दिशा की यात्रा करे तो निश्चय ही शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है। रविवार को सज्जिका (मिसरी और मसाला मिला हुआ दही), सोमवार को खीर मंगलवार को कांजी, बुधवार को दूध, गुरुवार को दही, शुक्रवार को दूध तथा शनिवार को तिल और भात खाकर यात्रा करे तो शत्रुओं को जीत लेता है। अश्विनी में कुलमाष (कुलथी) भरणी में तिल, कृत्तिका में उड़द, रोहिणी में गाय का दही, मृगशिरा में गाय का घी, आर्द्रा में गाय का दूध, अश्लेषा में खीर, मघा में नीलकण्ठ का दर्शन, हस्त में षाष्टिक्य (साठी धान्य) के चावल का भात, चित्रा में प्रियंगु (कंगनी), स्वाती में अपूप (मालपूआ), अनुराधा में फल, उत्तराषाढ में चावल, अभिजित् में हविष्य, श्रवण में कृशरान्न (खिचड़ी), धनिष्ठा में मूंग,

मत्स्यान्नं च विचित्रान्नं दध्यन्नं दस्रभात्क्रमात् । भुक्त्वा राजेभाश्वरथनरैर्याति जयत्यरीन् ॥६८४॥
हुताशनं तिलैर्हुत्वा पूजयेत दिगीश्वरम् । प्रणम्य देवभूदेवानाशीर्वादैर्नृपो व्रजेत् ॥६८५॥
यद्वर्णवस्त्रगंधाद्यैस्तन्मंत्रेण विधानतः । इंद्रमैरावतारूढं शच्या सह विराजितम् ॥६८६॥
वज्रपाणिं स्वर्णवर्णं दिव्याभरणभूषितम् । सप्तहस्तं सप्तजिह्वं षण्मुखं मेषवाहनम् ॥६८७॥
स्वाहाप्रियं रक्तवर्णं स्रुक्स्रुवायुधधारिणम् । दंडायुधं लोहिताक्षं यमं महिषवाहनम् ॥६८८॥
श्यामलं सहितं रक्तवर्णैरूर्ध्वमुखं शुभम् । खड्गचर्मधरं नीलं निर्ऋतिं नरवाहनम् ॥६८९॥
ऊर्ध्वकेशं विरूपाक्षं दीर्घग्रीवायुतं विभुम् । नागपाशधरं पीतवर्णं मकरवाहनम् ॥६९०॥
वरुणं कालिकानाथं रत्नाभरणभूषितम् । प्राणिनां प्राणरूपं तं द्विबाहुं दंडपाणिकम् ॥६९१॥
वायुं कृष्णमृगारूढं पूजयेदंजनीपतिम् । अश्वारूढं कुंभपाणिं द्विबाहुं स्वर्णसन्निभम् ॥६९२॥
कुबेरं चित्रलेखेशं यक्षगंधर्वनायकम् । पिनाकिनं वृषारूढं गौरीपतिमनुत्तमम् ॥६९३॥

शतभिषा में जौ का आटा, उत्तरभाद्रपद में खिचड़ी तथा रेवती में दही-भात खाकर राजा यदि हाथी, घोड़े, रथ या पालकी पर बैठकर यात्रा करे तो शत्रुओं पर विजय पाता है और उसका अभीष्ट सिद्ध होता है ॥६७९-६८४॥

यात्रा विधि—प्रज्वलित अग्नि में तिलों से हवन करके जिस दिशा में जाना हो, उस दिशा के स्वामी को उन्हीं के समान रंग वाले वस्त्र, गन्ध तथा पुष्प आदि उपचार अर्पण करके उन दिक्पालों के मन्त्रों द्वारा विधिपूर्वक उनका पूजन करे। फिर अपने इष्टदेव और ब्राह्मणों को प्रणाम करके ब्राह्मणों से आशीर्वाद लेकर राजा को यात्रा करनी चाहिए ॥६८५½॥

दिक्पालों के स्वरूप का ध्यान-(१ पूर्व दिशा के स्वामी) देवराज इन्द्र शची देवी के साथ ऐरावत पर आरूढ हो सुशोभित हो रहे हैं। उनके हाथ में वज्र है। उनकी कान्ति सुवर्ण सदृश है तथा वे दिव्य आभूषणों से विभूषित हैं। (२ अग्निकोण के अधीश्वर) अग्निदेव के सात हाथ, सात जिह्वायें और छह मुख हैं। वे भेड़ पर सवार हैं, उनकी कान्ति लाल है, वे स्वाहा देवी के प्रियतम हैं तथा स्रुक-स्रुवा और नाना प्रकार के आयुध धारण करते हैं। (३ दक्षिण दिशा के स्वामी) यमराज का दण्ड ही अस्त्र है। उनकी आँखें लाल हैं और वे भैंसे पर आरूढ़ हैं। उनके शरीर का रंग कुछ लाली लिये हुए सांवला है। वे ऊपर को ओर मुँह किये हुए हैं तथा शुभस्वरूप हैं। (४ नैर्ऋत्यकोण के अधिपति) निर्ऋति का वर्ण नील है। वे अपने हाथों में ढाल और तलवार धारण किये हुए हैं; मनुष्य ही उनका वाहन है। उनकी आँखें भयंकर तथा केश ऊपर की ओर उठे हुए हैं। वे सामर्थ्यशाली हैं और उनकी गर्दन बहुत बड़ी है। (५ पश्चिम दिशा के स्वामी) कालिका देवी के प्राणनाथ वरुण की अंगकांति पीली है। वे नाग पाश धारण करते हैं। ग्राह उनका वाहन है और रत्नमय आभूषणों से विभूषित हैं। (६ वायव्य कोण के अधिपति) अञ्जनीपति वायुदेव काले रंग के मृग पर आरूढ़ हैं। वे समस्त प्राणियों के प्राणस्वरूप हैं। उनकी दो भुजाएं हैं। वे हाथ में कलश धारण करते हैं। उनकी अंग कान्ति सुवर्ण के सदृश है। ७ उत्तर दिशा के स्वामी कुबेर चित्रलेखा देवी के प्राणवल्लभ तथा यक्षों और गन्धर्वों के राजा हैं। (८ ईशानकोण के स्वामी) गौरीपति भगवान् शंकर हाथ में पिनाक लिये वृषभ पर आरूढ़ हैं। वे सबसे श्रेष्ठ देवता हैं। उनकी अंग कान्ति श्वेत है। माथे पर चन्द्रमा का मुकुट सुशोभित है और सर्पमय यज्ञोपवीत धारण करते हैं। (इस प्रकार इन सब दिक्पालों का ध्यान और पूजन करना चाहिए) ॥६८६-६९३½॥

श्वेतवर्णं चंद्रमौलिं नागयज्ञोपवीतिनम् । अप्रयाणे स्वयं कार्या प्रेक्षया भूभुजस्तथा ॥६९४॥
कार्यं निगमनं छत्रं ध्वजशस्त्रास्त्रवाहनैः । स्वस्थानान्निर्गमस्थानं दंडानां च शतद्वयम् ॥६९५॥
चत्वारिंशद्द्वादशैव प्रस्थितः स स्वयं गतः । दिनान्येकत्र न वसेत्सप्तषट् वा परो जनः ॥६९६॥
पंचरात्रं च पुरतः पुनर्लग्नांतरे व्रजेत् । अकालजेषु नृपतिर्विद्युद्गर्जितवृष्टिषु ॥६९७॥
उत्पातेषु त्रिविधेषु सप्तरात्रं तु न व्रजेत् । रत्नाकुडचशिवाकाककपोतानां गिरस्तथा ॥६९८॥
झञ्झेभुक्हेमवक्षीरस्वराणां वामतो गतिः । पीतकारभरद्वाजपक्षिणां दक्षिणा गतिः ॥६९९॥
चापं त्यक्त्वा चतुष्पात्तु शुभदा वामतो मताः । कृष्णं त्यक्त्वा प्रयाणे तु कृकलासेन वीक्षितः ॥७००॥
वाराहशशगोधास्तु सर्पाणां कीर्तनं शुभम् । हृतेक्षणं नेष्टमेवव्यत्ययं कपिऋक्षयोः ॥७०१॥
मयूरच्छागनकुलचापपारावताः शुभाः । दृष्टमात्रेण यात्रायां व्यस्तं सर्वं प्रवेशने ॥७०२॥
यात्रासिद्धिर्भवेद्दृष्टे शवेरोदनवर्जिते । प्रवेशे रोदनयुतः शवः शवप्रदस्तथा ॥७०३॥

प्रस्थानविधि—यदि किसी आवश्यक कार्यवश निश्चित यात्रालग्न में राजा स्वयं न जा सके तो छत्र, ध्वजा, शस्त्र, अस्त्र या वाहन में से किसी एक वस्तु को यात्रा के निर्धारित समय में घर से निकालकर जिस दिशा में जाना हो उसी दिशा की ओर दूर रखा दे। अपने स्थान से निर्गमस्थान (प्रस्थान रखने की जगह) २०० दण्ड (चार हाथ की लग्गी) से दूर होना उचित है। अथवा चालीस या कम से कम बारह दण्ड की दूरी होनी आवश्यक है। राजा स्वयं प्रस्तुत होकर जाय तो किसी एक स्थान में सात दिन न ठहरे। अन्य (राजमन्त्री तथा साधारण) जन भी प्रस्थान करके एक स्थान में छह या पाँच दिन न ठहरे। यदि इससे अधिक ठहरना पड़े तो उसके बाद दूसरा शुभ मुहूर्त और उत्तम लग्न विचार कर यात्रा करनी चाहिए। ॥६९४-६९६½॥

असमय में (पौष से चैत्र पर्यन्त) बिजली चमके मेघ की गर्जना हो या वर्षा होने लगे तथा त्रिविध (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) उत्पात होने लग जाय तो राजा को सात रात तक अन्य स्थानों की यात्रा नहीं करनी चाहिए ॥६९७½॥

शकुन—यात्राकाल में रत्ना नामक पक्षी, चूहा, सियारिन, कौवा तथा कबूतर—इनके शब्द वामभाग में सुनायी दें तो शुभ होता है। छछुँदर, पिंगला (उल्लू), पल्ली और गदहा—ये यात्रा के समय वाम भाग में हों तो श्रेष्ठ हैं। कोयल, तोता और भरदूल आदि पक्षी यदि दाहिने भाग में आ जायें तो श्रेष्ठ हैं। काले रंग को छोड़कर अन्य सब रंगों के चौपाये यदि वाम भाग में दीख पड़ें तो श्रेष्ठ हैं तथा यात्रासमय में कृकलास (गिरगिट) का दर्शन शुभ नहीं है ॥६९८-७००॥

यात्राकाल में सूअर, खरगोश, गोधा (गोह) और सर्पों की चर्चा शुभ होती है, किसी भूली हुई वस्तु को खोजने के लिए जाना हो तो इनकी चर्चा अशुभ होती है। वानर और भालुओं की चर्चा का विपरीत फल होता है ॥७०१॥

यात्रा में मोर, बकरा, नेवला, नीलकंठ और कबूतर दीख जायें तो, इनके दर्शनमात्र से शुभ होता है; परन्तु लौटकर अपने नगर में आने या घर में प्रवेश करने के समय ये दर्शन दें तो सब अशुभ होता है। यात्राकाल में रोदन-शब्दरहित कोई शव सामने दीख पड़े तो यात्रा के उद्देश्य की सिद्धि होती है। परन्तु लौटकर घर आने तथा नवीन गृह में प्रवेश करने के समय यदि रोदन-शब्द के साथ शव दिखाई पड़े तो वह घातक होता है ॥७०२-७०३॥

पतितक्लीबजटिलमत्तवांतौषधादिभिः । अभ्यक्तवसास्थिचर्मांगारदारुणरोगिभिः ॥७०४॥
गुडकार्पासलवणरिपुप्रश्नतृणोरगैः । वंध्याकुजककाषायमुक्तकेशबुभुक्षितैः ॥७०५॥
प्रयाणसमये नग्नैर्दृष्टैः सिद्धिर्न जायते । प्रज्वलाग्निस्तुरगनृपासनपुरांगनाः ॥७०६॥
गंधपुष्पाक्षतच्छत्रचामरांदोलिकं नृपः । भक्ष्येक्षुफलमृत्स्नान्नमध्वाज्यदधिगोमयाः ॥७०७॥
मद्यमांससुधाधौतवस्त्रशंखवृषध्वजाः । पुण्यस्त्रीपुण्यकलशरत्नभृंगारगोद्विजाः ॥७०८॥
भेरीमृदंगपटहघंटावीणादिनिःस्वनाः । वेदमंगलघोषाः स्युः यायिनां कार्यसिद्धिदाः ॥७०९॥
आदौ विरुद्धशकुनं दृष्ट्वा यायीष्टदेवताम् । स्मृत्वा द्वितीये विप्राणां कृत्वा पूजां निवर्तयेत् ॥७१०॥
सर्वदिक्षुक्षुतं नेष्टं गोक्षुतं निधनप्रदम् । अफलं यद्बालवृद्धरोगिपैनसिकैः कृतम् ॥७११॥
परस्त्री द्विजदेवस्वं तत्स्पृशोद्दिग्गजाश्वकान् । हन्यात्परपुरप्राप्तो न स्त्रीनित्यं निरायुधान् ॥७१२॥
आदौ सौम्यायने कार्यं नववास्तुप्रवेशनम् । विधाय पूर्वदिवसे वास्तुपूजाबलिक्रियाम् ॥७१३॥
माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनम् । प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः ॥७१४॥

अपशकुन—यात्रा के समय पतित, नपुंसक, जटाधारी, पागल, औषध आदि खाकर वमन करने वाला, शरीर में तेल लगाने वाला, वसा, अस्थि, चर्म, अंगार, दीर्घरोगी, गुड़, कपास, नमक, प्रश्न (पूछने या रोकने का शब्द), तृण, गिरगिट, वन्ध्या स्त्री, कुबड़ा, गेरुआ वस्त्रधारी, खुले केश वाला, भूखा तथा नंगा—ये सब सामने उपस्थित हो जायं तो अभीष्ट-सिद्धि नहीं होती है ॥७०४-७०५½॥

शुभ शकुन—प्रज्वलित अग्नि, सुन्दर घोड़ा, राजसिंहासन, सुन्दरी स्त्री, चन्दन आदि की सुगंध, फल, अक्षत, छत्र, चामर, डोली या पालकी, राजा, खाद्य पदार्थ, ईख, फल, चिकनी मिट्टी, अन्न, मधु, घृत, दही, गोबर, मद्य, मांस, चूना, धुला हुआ वस्त्र, शंख, श्वेत बैल, ध्वजा, सौभाग्यवती स्त्री, भरा हुआ कलश, रत्न, शृंगार, स्वर्णपात्र या अभिषेकपात्रों गौ, ब्राह्मण, नगाड़ा, मृदंग, दुंदुभि, घंटा तथा बीणा आदि वाद्यों के शब्द, वेदमंत्र एवं मंगल गीत आदि के शब्द—ये यात्रा के समय यदि देखने या सुनने में आयें तो यात्रा करने वाले लोगों के सब कार्य सिद्ध करते हैं ॥७०६-७०९॥

अपशकुन-परिहार—यात्रा के समय प्रथम बार अपशकुन हो तो खड़ा होकर इष्टदेव का स्मरण करके फिर चले। दूसरा अपशकुन हो तो ब्राह्मणों की पूजा करके चले। यदि तीसरी बार अपशकुन हो जाय तो यात्रा स्थगित कर देनी चाहिए ॥७१०॥

छींक के फल—यात्रा के समय सभी दिशाओं की छींक निन्दित है। गौ की छींक घातक होती है; किन्तु बालक, वृद्ध, रोगी या कफ वाले मनुष्य की छींक निष्फल होती है ॥७११॥

परस्त्रियों का स्पर्श करने वाला तथा ब्राह्मण और देवता के धन का अपहरण करने वाला तथा अपने छोड़े हुए हाथी और घोड़े को बाँध लेने वाला, शत्रु यदि सामने आ जाय तो राजा उसे अवश्य मार डाले; परन्तु स्त्रियों तथा शस्त्रहीन मनुष्यों पर कदापि हाथ न उठाये ॥७१२॥

गृह प्रवेश—नये घर में प्रथम बार प्रवेश करना हो तो उत्तरायण के शुभ मुहूर्त में करे। पहले दिन विधिपूर्वक वास्तु-पूजा और बलि अर्पण करके गृह में प्रवेश करना चाहिए ॥७१३॥

गृह-प्रवेश में विहित मास—माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ—इन चार मासों में गृह प्रवेश श्रेष्ठ होता है। कार्तिक और मार्गशीर्ष मास में मध्यम है।

शशीज्यांतेषु वरुणत्वाष्ट्रमित्रस्थिरोडुषु । शुभः प्रवेशो देवेज्यशुक्रयोर्दृश्यमानयोः ॥७१५॥
व्यर्कारवारे तिथिषु रिक्तामावर्जितेषु च । दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रवेशो मंगलप्रदः ॥७१६॥
चन्द्रताराबलोपेते पूर्वाह्णे शोभने दिने । स्थिरलग्ने स्थिरांशे च नैधने शुद्धिसंयुते ॥७१७॥
त्रिकोणकेंद्रसंस्थैश्च सौम्यैस्त्र्यायारिगैः परैः । लग्नांत्याष्टमषष्ठस्थवर्जितेन हिमांशुना ॥७१८॥
कर्तुर्वा जन्मभे लग्ने ताभ्यामुपचयेऽपि वा । प्रवेशलग्ने स्याद्वृद्धिरन्यभे शोकनिःस्वता ॥७१९॥
दर्शनीयं गृहं रम्यं विविधैर्मंगलस्वनैः । कृत्वार्कं वामतो विद्वान्भृंगारं चाग्रतो विशेत् ॥७२०॥
वर्षाप्रवेशे शशिनि जलराशिगतेऽपि वा । केंद्रगे वा शुक्लपक्षे चातिवृष्टिः शुभेक्षिते ॥७२१॥
अल्पवृष्टिः पापदृष्टे प्रावृट्कालेऽचिराद्भवेत् । चंद्रश्चेद्भार्गवे सर्वमेवं विधगुणान्विते ॥७२२॥
प्रावृषींदुः सितात्सप्तराशिगः शुभवीक्षितः । मंदात्त्रिकोणसप्तस्थो यदि वा वृद्धिकृद्भवेत् ॥७२३॥
सद्यो वृष्टिकरः शुक्रो यदा बुद्धसमीपगः । तयोर्मध्यगते भानौ भवेद्वृष्टिविनाशनम् ॥७२४॥

विहित नक्षत्र—मृगशिरा, पुष्य, रेवती, शतभिषा, चित्रा, अनुराधा और स्थिर-संज्ञक (तीनों उत्तरा) और रोहिणी नक्षत्रों में बृहस्पति और शुक्र दोनों उदित हों तब रवि और मंगल को छोड़कर अन्य वारों में रिक्ता (४,९,१४) तथा अमावास्या को छोड़कर अन्य तिथियों में दिन या रात्रिके समय गृहप्रवेश शुभप्रद होता है। चन्द्रबल और ताराबल सहित उपद्रवरहित दिन के पूर्वाह्ण भाग में स्थिर राशि के नवमांशयुक्त स्थिर लग्न में जब लग्न से अष्टम स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) हों, शुभग्रह त्रिकोण या केन्द्र में हों, पापग्रह ३,६,११ भावों में हों और चन्द्रमा लग्न, १२,८,६ से भिन्न स्थानों में हो, तब गृहप्रवेश करने वाले यजमान की जन्मराशि, जन्मलग्न या इन दोनों से उपचय (३,६,१०,११वीं) राशि के गृहप्रवेश लग्न में विद्यमान होने पर सब प्रकार के सुख और सम्पत्ति की वृद्धि होती है। अन्यथा इससे विपरीत समय में गृहप्रवेश किया जाय तो शोक और निर्धनता प्राप्त होती है ॥७१४-७१९॥

प्रवेश-विधि—जिस नूतन गृह में प्रवेश करना हो उसको चित्र आदि से सजाकर तथा पुष्प, तोरण आदि से अलंकृत करके वेदध्वनि, शान्तिपाठ, सौभाग्यवती स्त्रियों के मांगलिक गीत तथा वाद्य आदि के शब्दों के साथ सूर्य को वाम भाग में रखकर जल से भरे हुए कलश को आगे करके उसमें प्रवेश करना चाहिए ॥७२०॥

वृष्टि-विचार—वर्षा-प्रवेश (आर्द्रानिक्षत्र में सूर्य के प्रवेश) के समय यदि शुक्लपक्ष हो, चन्द्रमा जलचर राशि में या लग्न से केन्द्र(१,४,७,१०) में स्थित होकर शुभग्रह से देखे जाते हों तो अधिक वृष्टि होती है। यदि उस समय चन्द्रमा पर पापग्रह की दृष्टि हो तो दीर्घकाल में अल्पवृष्टि समझनी चाहिए। (यदि चन्द्रमा पर पाप और शुभ दोनों ग्रहों की दृष्टि हो तो मध्यम वृष्टि होती है, जिस प्रकार चन्द्रमा से फल कहा गया है, उसी प्रकार उस समय शुक्र से भी समझना चाहिए। (अर्थात् सूर्य के आर्द्रा-प्रवेश के समय चन्द्रमा और शुक्र दोनों की स्थिति देखकर तारतम्य से फल समझना चाहिए ॥७२१-७२२॥

वर्षाकाल में आर्द्रा से स्वाती तक सूर्य के रहने पर चन्द्रमा यदि शुक्र से सप्तम स्थान में अथवा शनि से पञ्चम, नवम तथा सप्तम स्थान में हो, उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि पड़े तो उस समय अवश्य वर्षा होती है ॥७२३॥

यदि बुध और शुक्र समीपवर्ती (एक राशि में स्थित) हों तो तत्काल वर्षा होती है। किन्तु उन दोनों (बुध और शुक्र) के बीच में सूर्य हो तो वृष्टि का अभाव होता है ॥७२४॥

मघादिपंचधिष्ण्यस्थःपूर्वे स्वातित्रये परे । प्रवर्षणं भृगुः कुर्याद्विपरीते न वर्षणम् ॥७२५॥
पुरतः पृष्ठतो भानोर्ग्रहा यदि समीपगाः । तदावृष्टिं प्रकुर्वन्ति न ते चेत्प्रतिलोमगाः ॥७२६॥
वामभागस्थितः शुक्रो वृष्टिकृच्चेत्तु याम्यगः । उदयास्तेषु वृष्टिः स्याद्भानोरार्द्राप्रवेशने ॥७२७॥
संध्ययोः सस्यवृद्धिः स्यात्सर्वसंपन्नृणान्निशि । स्तोकवृष्टिरनर्घः स्यादवृष्टिः सस्यसंपदः ॥७२८॥
आर्द्रोदयेप्रभिन्ना चेद्भवेदिति न संशयः । चन्द्रेज्ये ज्ञेथ वा शुके केंद्रेन्वीतिर्विनश्यति ॥७२९॥
पूर्वाषाढां गतो भानुर्जीमूतैः परिवेष्टितः । वर्षत्यार्द्रादिमूलांतं प्रत्यक्षं प्रत्यहं तथा ॥७३०॥
वृष्टिश्चेत्पौष्णभे तस्माद्दशर्क्षेषु न वर्षति । सिंहे भिन्ने कुजो वृष्टिरभिन्ने कर्कटे तथा ॥७३१॥
कन्योदये प्रभिन्ने चेत्सर्वदा वृष्टिरुत्तमा । अहिर्बुध्न्यं पूर्वशस्यं परशस्या च रेवती ॥७३२॥
भरणी सर्वसस्या च सर्वनाशाय चाश्विनी । गुरोः सप्तमराशिस्थः प्रत्यग्गो भृगुजो यदा ॥७३३॥
तदातिवर्षणं भूरि प्रावृट्काले बलोज्झिते । आसप्तमर्क्षं शशिनः परिवेशगतोत्तरा ॥७३४॥
विद्युत्प्रपूर्णमंडूकास्वनावृष्टिर्भवेत्तदा । यदा प्रत्यङ्नता मेघाः खसप्तोपरि संस्थिताः ॥७३५॥
पतंति दक्षिणस्था ये भवेद्वृष्टिस्तदाचिरात् । नखैर्लिखन्तोमार्जाराश्चावनिं लोहसंयुते ॥७३६॥

यदि मघा आदि पाँच नक्षत्रों में शुक्र पूर्व दिशा में उदित हों और स्वाती तीन नक्षत्रों (स्वाती, विशाखा, अनुराधा) में शुक्र पश्चिम दिशा में उदित हो तो निश्चय ही वर्षा होती है, इससे विपरीत हो तो वर्षा नहीं समझनी चाहिए ॥७२५॥

यदि सूर्य के समीप (एक राशि के भीतर होकर) कोई ग्रह आगे या पीछे पड़ते हों तो वे वर्षा अवश्य करते हैं। यदि उनकी गति वक्र न हुई हो ॥७२६॥

सूर्य के वाम भाग में शुक्र हो तो वृष्टिकारक होता है। आर्द्रा में प्रवेश के समय शुक्र दक्षिण में हो तो उदय और अस्त के समय वर्षा होती है। यदि सूर्य का आर्द्रा-प्रवेश सन्ध्या के समय हो तो सस्य (धान्य) की वृद्धि होती है। यदि रात्रि में हो तो मनुष्यों को सब प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त होती है। यदि प्रवेश काल में चन्द्रमा, गुरु, बुध एवं शुक्र से आर्द्रा भेदित हो तो क्रमशः अल्पवृष्टि, धान्यहानि, अनावृष्टि और धान्यवृष्टि होती है; इसमें संशय नहीं है। यदि ये चारों चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र प्रवेश-लग्न से केन्द्र में पड़ते हों तो ईति (खेती के टिड्डी आदि सब उपद्रव) का नाश होता है ॥७२७–७२९॥

यदि सूर्य पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में प्रवेश के समय मेघों से आच्छन्न हो तो आर्द्रा से मूल तक प्रतिदिन वर्षा होती हैं। सिंह-प्रवेश में लग्न यदि मंगल से भिन्न (भेदित) हो, कर्क-प्रवेश में अभिन्न हो एवं कन्या प्रवेश में भिन्न हो तो उत्तम वृष्टि होती है ॥७३०-७३१½॥

उत्तर भाद्रपद पूर्वधान्य, रेवती परधान्य तथा भरणी सर्वधान्य नक्षत्र है। अश्विनी को सर्वधान्यों का नाशक नक्षत्र कहा गया है। वर्षा काल (चातुर्मास्य) में पश्चिम उदित हुए शुक्र यदि गुरु से सप्तम राशि में निर्बल हो तो आर्द्रा से सात नक्षत्र तक प्रतिदिन अतिवृष्टि होती है। चन्द्रमण्डल में परिवेष (घेरा) हो और उत्तर दिशा में बिजली दीख पड़े या मेढ़कों के शब्द सुनाई पड़ें तो निश्चय ही वर्षा होती है। पश्चिम भाग में लटका हुआ मेघ यदि आकाश के बीच में होकर दक्षिण दिशा में जाय तो शीघ्र वर्षा होती है। बिलाव अपने नाखूनों से धरती को खोदे, लोहे (तथा ताँबे और काँसे आदि) में मल जमने लगे अथवा बहुत से बालक मिलकर सड़कों पर पुल बाँधे तो ये वर्षा के सूचक चिह्न हैं ॥७३२-७३६½॥

रथ्यायां सेतुबंधाः स्युर्बालानां वृष्टिहेतवः। पिपीलिकाश्रेणयश्छिन्नाः खद्योता बहवस्तदा ॥७३७॥
द्रुमादिरोहःसर्पाणां प्रोतिर्दुवृ ष्टिसूचकाः। उदयास्तमये काले विवर्णोऽर्कोथ वा शशी ॥७३८॥
मधुवर्णोऽतिवायुश्चेदतिवृष्टिर्भवेत्तदा। प्राङ्मुखस्य तु कूर्मस्य नवांगेषु धरामिमाम् ॥७३९॥
विभज्य नवधा खण्डे मंडलानि प्रदक्षिणम्। अन्तर्वेदाश्च पांचालस्तस्येदं नाभिमण्डलम् ॥७४०॥
प्राच्यामागधलाटोत्था देशास्तन्मुखमंडलम्। स्त्रीकलिंगकिराताख्या देशास्तद्बाहुमंडलम् ॥७४१॥
अवंती द्रविडा भिल्ला देशास्तत्पार्श्वमण्डलम्। गौडकौंकणशाल्वांध्रपौंड्रस्तत्पादमण्डलम् ॥७४२॥
सिंधुकाशिमहाराष्ट्रसौराष्ट्राः पुच्छमण्डलम्। पुलिंदचीनयवनगुर्जराः पादमंडलम् ॥७४३॥
कुरुकाश्मीरमाद्रेयमत्स्यास्तत्पार्श्वमण्डलम्। खसांगवंगवाह्लीकं कांबोजाः पाणिमंडलम् ॥७४४॥
कृत्तिकादीनि धिष्ण्यानि त्रीणि त्रीणि क्रमान्न्यसेत्। नाभ्यादिषु नवांगेषु पापैर्दुष्टं शुभैः शुभम् ॥७४५॥
देवता यत्र नृत्यंति पतंति प्रज्वलंति च। मुहू रुदंति गायंति प्रस्विद्यंति हसंति च ॥७४६॥
वमंत्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं पयो जलम्। अधोमुखाधितिष्ठंति स्थानात्स्थानं व्रजंति च ॥७४७॥
एवमाद्या हि दृश्यंते विकाराः प्रतिमासु च। गंधर्वनगरं चैव दिवा नक्षत्रदर्शनम् ॥७४८॥

चींटी की पंक्ति छिन्न-भिन्न हो जाय, आकाश में बहुतेरे जुगुनू दीख पड़ें तथा सर्पों का वृक्ष पर चढ़ना और प्रसन्न होना देखा जाय तो ये सब दुर्वृष्टि-सूचक हैं।

उदय या अस्त समय में यदि सूर्य या चन्द्रमा का रंग बदला हुआ जान पड़े या उनकी कान्ति मधु के समान दीख पड़े तथा बड़े जोर की हवा चलने लगे तो अतिवृष्टि होती है ॥ ७३७–७३८½ ॥

पृथ्वी के आधार कूर्म के अंग-विभाग—कूर्म देवता पूर्व की ओर मुख करके स्थित हैं, उनके नव अंगों में इस भारत भूमि के नौ विभाग करके प्रत्येक खंड में प्रदक्षिण-क्रम से विभिन्न मंडलों (देशों) को समझे। अन्तर्वेदी (मध्य विभाग) में पाञ्चालदेश स्थित है, वहाँ कूर्म भगवान् का नाभिमण्डल है। मगध और लाटदेश पूर्व दिशा में विद्यमान हैं, वे ही उनका मुखमण्डल हैं। स्त्री, कलिंग और किरात देश भुजा हैं। अवन्ती, द्राविड और भिल्ल देश उनका दाहिना पार्श्व हैं। गौड, कौंकण, शाल्व, आन्ध्र और पौण्ड्र ये सब देश दोनों अगले पैर हैं। सिन्ध, काशी, महाराष्ट्र तथा सौराष्ट्रदेश पुच्छभाग हैं। पुलिन्द, चीन, यवन और गुर्जर ये सब देश दोनों पिछले पैर हैं। कुरु, काश्मीर, मद्र तथ मत्स्यदेश वाम पार्श्व हैं। खस (नेपाल), अंग, वंग, वाह्लीक और काम्बोज–ये दोनों हाथ हैं ॥७३९–७४४॥

इन नवों अंगों में क्रमशः कृत्तिका आदि तीन-तीन नक्षत्रों का न्यास करे। जिस अंग के नक्षत्र में पापग्रह रहते हैं, उस अंग के देशों में तब तक अशुभ फल होता है और जिस अंग के नक्षत्रों में शुभग्रह रहते हैं; उस अंग के देशों में शुभ फल होते हैं ॥७४५॥

मूर्ति-प्रतिमा-विकार—देवताओं की प्रतिमा यदि नीचे गिर पड़े, जले, बार-बार रोये, गाये, पसीने से तर हो जाय, हँसे, अग्नि, धुआँ, तेल, शोणित, दूध या जल का वमन करे, अधोमुख हो जाय, एक स्थान से दूसरे स्थान में चली जाय तथा इसी तरह की अनेक अद्भुत बातें दीख पड़ें तो ये प्रतिमा-विकार कहलाते हैं। ये विकार अशुभ फल के सूचक होते हैं ॥७४६-७४७½॥

विविध विकार—यदि आकाश में गन्धर्व-नगर (ग्राम के समान आकार), दिन में ताराओं का दर्शन, उल्कापतन, काष्ठ, तृण और शोणित की वर्षा, गन्धर्वों का दर्शन, दिग्दाह, दिशाओं में धूम्र छा जाना, दिन या

महोल्कापतनं काष्ठतृणरक्तप्रवर्षणम् । गांधर्वं देहदिग्धूमं भूमिकंपं दिवा निशि ॥७४९॥
अनग्नौ च स्फुलिंगाश्चज्वलनं च विनेंधनम् । निशींद्रचापमंडकं शिखरे श्वेतवायसः ॥७५०॥
दृश्यंते विस्फुलिंगाश्च गोगजाश्वोष्ट्रगात्रतः । जंतवो द्वित्रिशिरसो जायंते वापि योनिषु ॥७५१॥
प्रातः सूर्याश्चतसृषु ह्यादितायुगपद्रवेः । जम्बूकग्रामसंवासः केतूनां च प्रदर्शनम् ॥७५२॥
काकानामाकुलं रात्रौ कपोतानां दिवा यदि । अकाले पुष्पिता वृक्षा दृश्यंते फलिता यदि ॥७५३॥
कार्यं तच्छेदनं तत्र ततः शांतिर्मनीषिभिः । एवमाद्या महोत्पाता बहवः स्थाननाशदाः ॥७५४॥
केचिन्मृत्युप्रदाः केचिच्छत्रुभ्यश्च भयप्रदाः । मध्यादभयं यशो मृत्युः क्षयः कीर्तिः सुखासुखम् ॥७५५॥
ऐश्वर्यं धनहानिं च मधुच्छन्नं च वाल्मिकम् । इत्यादिषु च सर्वेषूत्पातेषु द्विजसत्तम ॥७५६॥
शांतिं कुर्यात्प्रयत्नेन कल्पोक्तविधिना शुभम् । इत्येतत्कथितं विप्र ज्यौतिषं ते समासतः ॥७५७॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि चछंदःशास्त्रमनुत्तमम् ॥७५८॥

इति श्रीबृहन्ना० पूर्व० बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

रात्रि में भूकम्प होना, बिना आग के स्फुलिंग (अंगार) दीखना, बिना लकड़ी के आग का जलना, रात्रि में इन्द्र-धनुष या परिवेष (घेरा) दीखना, पर्वत या वृक्षादि के ऊपर उजला कौआ दिखाई देना तथा आग की चिनगारियों का प्रकट होना आदि बातें दिखाई देने लगें, गौ, हाथी और घोड़ों के दो या तीन मस्तक वाला बच्चा पैदा हो । प्रातःकाल एक साथ ही चारों दिशाओं में अरुणोदय-सा प्रतीत हो, गांवों में गीदड़ों का दिन में वास हो, धूम-केतुओं का दर्शन होने लगे ॥७४८-७५२॥ तथा रात्रि में कौओं का और दिन में कबूतरों का क्रन्दन हो तो ये भयंकर उत्पात हैं । वृक्षों में बिना समय के फूल या फल दीख पड़े तो उस वृक्ष को काट देना चाहिए । इस प्रकार और भी वृक्ष से बड़े-बड़े उत्पात दृष्टिगोचर होते हैं, वे स्थान (देश या ग्राम) का नाश करने वाले होते हैं । बहुत से उत्पात घातक होते हैं; बहुत से शत्रुओं से भय उपस्थित करते हैं । बहुत उत्पातों से भय, यश, मृत्यु, हानि, कीर्ति, सुख-दुःख और ऐश्वर्य की भी प्राप्ति होती है । यदि वल्मीक (दीमक की मिट्टी के ढेर) पर शहद दीख पड़े तो धन की हानि होती है । द्विजश्रेष्ठ ! इस तरह के सभी उत्पातों में यत्नपूर्वक कल्पोक्त विधि से शान्ति अवश्य करा लेनी चाहिए । नारद ! इस प्रकार संक्षेप से मैंने ज्योतिष शास्त्र का वर्णन किया है । अब वेद के छहो अंगों में श्रेष्ठ छन्दःशास्त्र का परिचय देता हूँ ॥७५३-७५८॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्व भाग के द्वितीय पाद में छप्पनवां अध्याय समाप्त ॥५६॥

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सनंदन उवाच

वैदिकं लौकिकं चापि छन्दो द्विविधमुच्यते। मात्रावर्णविभेदेन तच्चापि द्विविधं पुनः ॥१॥
मयौ रसौ तजौ भनौ गुरुर्लघुरपि द्विज। कारणं छंदसि प्रोक्ताश्छन्दःशास्त्रविशारदैः ॥२॥
सर्वगो मगणः प्रोक्तोमुखलो यगणः स्मृतः। मध्यलो रगणश्चैव प्रांत्यगः सगणो मतः ॥३॥
तगणोंऽतलघुः ख्यातो मध्यगो जो भआदिगः। त्रिलघुर्नगणः प्रोक्तस्त्रिका वर्णगणा मुने ॥४॥
चतुर्लास्तु गणाः पञ्च प्रोक्त आर्यादिसंमताः। संयोगश्च विसर्गश्चानुस्वारो लघुतः परः ॥५॥
लघोर्दीर्घत्वमाख्याति दीर्घो गो लो लघुर्मतः। पादश्चतुर्थभागः स्याद्विच्छंदोयतिरुच्यते ॥६॥
सममर्द्धसमं वृत्तं विषमं चापि नारद। तुल्यलक्षणतः पादचतुष्के सममुच्यते ॥७॥
आदित्रिके द्विचतुर्थे सममर्द्धसमं ततम्। लक्ष्म भिन्नं यस्य पादचतुष्के विषमं हि तत् ॥८॥
एकाक्षरात्समारभ्य वर्णैकैकस्य वृद्धितः। षड्विंशत्यक्षरं यावत्पादस्तावत्पृथक् पृथक् ॥९॥

अध्याय ५७

छन्दः शास्त्र का संक्षिप्त परिचय

सनन्दन बोले—नारद! छन्द दो प्रकार के बताये जाते हैं—वैदिक और लौकिक। मात्रा और वर्ण के भेद से वे लौकिक या वैदिक छन्द भी दो-दो प्रकार के हो जाते हैं (मात्रिक छन्द और वर्णिक छन्द) ॥१॥ छन्द शास्त्र के विद्वानों ने मगण, यगण, रगण, तगण, जगण, भगण और नगण तथा गुरु एवं लघु—इन्हीं को छन्दों की सिद्धि में कारण बताया है ॥२॥ जिसमें सभी अर्थात् तीनों अक्षर गुरु हों उसे मगण (SSS) कहा गया है, जिसका आदि अक्षर लघु (और शेष दो अक्षर गुरु) हो, वह यगण (ISS) माना गया है। जिसका मध्यवर्ती अक्षर लघु हो, वह रगण (SIS) और जिसका अन्तिम अक्षर गुरु हो, वह सगण (IIS) है ॥३॥ जिसमें अन्तिम अक्षर लघु हो, वह तगण (SSI) कहा गया है। जहाँ मध्य गुरु हो, वह जगण (ISI) और जिसमें आदि गुरु हो, वह भगण (SII) है। मुने! जिसमें तीनों अक्षर लघु हों, वह नगण (III) कहा गया है। तीन अक्षरों के समुदाय का नाम गण है ॥४॥ आर्या आदि छन्दों में चार मात्रा वाले पाँच गण कहे गये हैं, जो चार लघु वाले गण से युक्त हैं। यदि लघु अक्षर से परे संयोग, विसर्ग और अनुस्वार हो तो वह लघु की दीर्घता का बोधक होता है। इस छन्दः शास्त्र में 'ग' का अर्थ गुरु या दीर्घ माना गया है और 'ल' का अर्थ लघु समझा जाता है। पद्य या श्लोक के एक चौथाई भाग को पाद कहते हैं। विच्छेद या विराम का नाम 'यति' है ॥५–६॥ नारद! वृत्त (छन्द) के तीन भेद माने गये हैं—समवृत्त, अर्ध समवृत्त तथा विषमवृत्त। जिसके चारों चरणों में समान लक्षण लक्षित होता हो, वह समवृत्त कहलाता है ॥७॥ जिसके प्रथम और तीसरे चरणों में एवं दूसरे तथा चौथे चरणों में समान लक्षण हों, वह अर्धसम वृत्त है। जिसके चारों चरणों में एक दूसरे से भिन्न लक्षण लक्षित होते हों, वह विषमवृत्त है ॥८॥ एक अक्षर के पाद से आरम्भ करके एक-एक अक्षर बढ़ाते हुए जब तक छब्बीस अक्षर का पाद पूरा हो तब तक पृथक्-पृथक् छन्द

तत्परं चंडवृष्टयादिदंडकाः परिकल्पिताः । त्रिभिः षड्भिः पदैर्गाथाः शृणु संज्ञा यथोत्तरम् ॥१०॥
उक्तात्युक्ता तथा मध्या प्रतिष्ठान्या सुपूर्विका । गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्च बृहती पंक्तिरेव च ॥११॥
त्रिष्टुप्च जगती चैव तथातिजगती मता । शक्वरी सातिपूर्वा च अष्टयत्यष्टी ततः स्मृते ॥१२॥
धृतिश्च विधृतिश्चैव कृतिः प्रकृतिराकृतिः । विकृतिः संकृतिश्चैव तथातिकृतिरुत्कृतिः ॥१३॥
इत्येताश्छन्दसां संज्ञा प्रस्ताराद्भेदभागिकाः । पादे सर्वगुरौ पूर्वाल्लघुं स्थाप्य गुरोरधः ॥१४॥
यथोपरि तथा शेषमग्रे प्राग्वन्न्यसेदपि । एष प्रस्तार उदितो यावत्सर्वलघुर्भवेत् ॥१५॥
नष्टांकार्द्धे समेलः स्याद्विषमे सैव सोर्द्धगः । उद्दिष्टे द्विगुणानाद्यादंगान्संमील्य लस्थितान् ॥१६॥
कृत्वा सैकान्वदेत्संख्यामिति प्राहुः पुराविदः । वर्णान्सैकान्वृत्तभवानुत्तराधरतः स्थितान् ॥१७॥
एकादिक्रमतश्चैकानुपर्युपरि विन्यसेत् । उपांत्यतो निवर्तेत त्यजन्नेकैकमूर्ध्वतः ॥१८॥

बनते हैं। छब्बीस अक्षर से अधिक का चरण होने पर चण्डवृष्टिप्रपात दण्डक बनते हैं। तीन या छह पादों से गाथा होती है। अब क्रमशः एक से छब्बीस अक्षर तक के पाद वाले छन्दों की संज्ञा सुनो ॥९–१०॥ उक्ता, अत्युक्ता, मध्या, प्रतिष्ठा, सुप्रतिष्ठा, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्करी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति, विधृति, (या अतिधृति) कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संकृति, अतिकृति या अभिकृति तथा उत्कृति ॥११–१३॥ ये छन्दों को संज्ञाये हैं, प्रस्तार से इनके अनेक भेद होते हैं। सम्पूर्ण गुरु अक्षर वाले पाद में प्रथम गुरु के नीचे लघु लिखना, चाहिए, फिर दाहिनी ओर की पंक्ति को ऊपर की पंक्ति के समान भर दे। तात्पर्य यह है कि शेष स्थानों में ऊपर के अनुसार गुरु-लघु आदि भरे। इस क्रिया को बराबर करता जाय। इसे करते हुए ऊन स्थान अर्थात् बायीं ओर शेष स्थान में गुरु ही लिखे। यह क्रिया तब तक करता रहे, जब तक कि सभी लघु अक्षरों की प्राप्ति न हो जाय। इसे प्रस्तार कहा गया है ॥१४–१५॥ (प्रस्तार नष्ट हो जाने पर यदि उसके किसी भेद का स्वरूप जानना हो तो उस जानने की विधि को 'नष्ट प्रत्यय' कहते हैं।) यदि नष्ट अंक सम है तो उसके लिए एक लघु लिखे और उसका आधा भी यदि सम हो तो उसके लिए पुनः एक लघु लिखे। यदि नष्ट अंक विषम हो तो उसके लिए एक गुरु लिखे और उसमें एक जोड़ कर आधा करे। वह आधा भी यदि विषम हो तो उसके लिए भी गुरु ही लिखे। यह क्रिया तब तक करता रहे जब तक अभीष्ट अक्षरों का पाद प्राप्त न हो जाय (प्रस्तार के किसी भेद का स्वरूप तो ज्ञात हो; किन्तु संख्या ज्ञात न हो तो उसके जानने की विधि को 'उद्दिष्ट' कहते हैं।) उद्दिष्ट में गुरु-लघु-बोधक जो चिह्न हों, उनमें पहले अक्षर पर एक लिखे और क्रमशः दूसरे अक्षरों पर दूने अंक लिखता जाय; फिर लघु के ऊपर जो अंक हों, उन्हें जोड़कर उसमें एक और मिला दे तथा वही उद्दिष्ट स्वरूप की संख्या बताये, ऐसा पौराणिक विद्वानों का कथन है ॥१६½॥ (अमुक छन्द के प्रस्तार में एक गुरु वाले या एक लघु वाले या तीन गुरु वाले भेद कितने हो सकते हैं; यह पृथक्-पृथक् जानने की जो प्रक्रिया है, उसे 'एकद्व्यादिलगक्रिया' कहते हैं।) छन्द के अक्षरों की जो संख्या है, उसमें एक अधिक जोड़कर उतने ही एकांक ऊपर-नीचे के क्रम से लिखे। उन एकांकों को ऊपर की अन्य पंक्ति में जोड़ दे; किन्तु अन्त्य के समीपवर्ती अंक को न जोड़े और ऊपर के एक-एक अंक को त्याग दे। ऊपर के सर्वगुरु वाले पहले भेद से नीचे तक गिने। इस रीति से प्रथम भेद सर्वगुरु, दूसरा भेद एक गुरु और तीसरा भेद द्विगुरु होता है। इसी तरह नीचे से ऊपर की ओर ध्यान देने से सबसे नीचे का सर्वलघु, उसके ऊपर

उपर्याद्याद्गुरोरेवमेकद्व्यादिलगक्रिया । लगक्रियांकसंदोहे भवेत्संख्याविमिश्रिते ॥१९॥
उद्दिष्टांकसमाहारः सैको वा जनयेदिमाम् । संख्यैव द्विगुणैकोना सद्भिरध्वा प्रकीर्तितः ॥२०॥
इत्येतत्किंचिदाख्यातं लक्षणं छंदसां मुने । प्रस्तारोक्तप्रभेदानां नामानंत्यं प्रगाहते ॥२१॥
इतिश्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे सङ्क्षिप्तच्छन्दोवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारद उवाच

अनूचानप्रसंगेन वेदांगान्यखिलानि च । श्रुतानि त्वन्मुखाम्भोजात्समासव्यासयोगतः ॥१॥
शुकोत्पत्तिं समाचक्ष्व विस्तरेण महामते ।

सनंदन उवाच

मेरुशृङ्गे किल पुरा कर्णिकारवनायते ॥२॥
विजहार महादेवो भौमैर्भूतगणैर्वृतः । शैलराजसुता चैव देवी तत्राभवत्पुरा ॥३॥
तत्र दिव्यं तपस्तेपे कृष्णद्वैपायनः प्रभुः । योगेनात्मानमाविश्य योगधर्मपरायणः ॥४॥

का एक लघु, तीसरा भेद द्विलघु इत्यादि होता है। इस प्रकार एकद्व्यादि-लगक्रिया जाननी चाहिए। लगक्रिया के अंकों को जोड़ देने से उस छन्द के प्रस्तार की पूरी संख्या ज्ञात हो जाती है। यही संख्यान प्रत्यय कहलाता है। अथवा उद्दिष्ट पर दिये हुए अंकों को जोड़कर उसमें एक का योग कर दिया जाय तो वह भी प्रस्तार की पूरी संख्या को प्रकट कर देता है। छन्द के प्रस्तार को अंकित करने के लिए जो स्थान का नियमन किया जाता है, उसे अध्वयोग प्रत्यय कहते हैं। प्रस्तार की जो संख्या है, उसे दूना करके एक घटा देने से जो अंक आता है, उतने ही अंगुल का उसके प्रस्तार के लिए अध्वा या स्थान कहा गया है ॥१७-२०॥ मुने! यह छन्दों का किंचित् लक्षण बताया गया है। प्रस्तार द्वारा प्रतिपादित होने वाले उनके भेद-प्रभेदों की संख्या अनन्त है, ॥२१॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्व भाग के द्वितीय पाद में संक्षिप्त छन्दोवर्णन नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५७॥

अध्याय ५८

शुक का इतिहास निरूपण

नारद बोले—आपके श्रीमुख से मैंने षडंग वेदों के अध्ययन प्रसङ्ग में सम्पूर्ण वेदांगों को संक्षेप और विस्तार रूप से सुन लिया। अब हे महामते! कृपा कर शुक-जन्म कथा को विस्तारपूर्वक कहिए ॥१३॥

सनन्दन ने कहा—प्राचीन काल में कर्णिकार (कनेर) वन से आच्छादित विस्तृत मेरु शृंग पर महादेव शंकर अपने भूमि-वासी भूत गणों के साथ वन विहार कर रहे थे। उसी स्थान पर उससे पूर्व समय में देवी हिमगिरि कन्या भी हुई थीं ॥२-३॥ मुनिसत्तम! प्रभु कृष्ण द्वैपायन ने योग धर्म की साधना में निरत होकर योग द्वारा आत्मा में मनोनिरोध कर उसी वन में पुत्र की कामना से तपस्या प्रारम्भ की। उनके मन में यही संकल्प था

धारयन्स तपस्तेपे पुत्रार्थं मुनिसत्तमः । अग्नेर्भूमेस्तथा वायोरंतरिक्षस्य चामितः ॥५॥
वीर्येण संमतः पुत्रो मम भूयादिति स्म ह । संकल्पेनाथ सोऽनेन दुष्प्रापमकृतात्मभिः ॥६॥
वरयामास देवेशमास्थितस्तप उत्तमम् । अतिष्ठन्मारुताहारः शतं किल समाः प्रभुः ॥७॥
आराधयन्महादेवं बहुरूपमुमापतिम् । तत्र ब्रह्मर्षयश्चैव सर्वे देवर्षयस्तथा ॥८॥
लोकपालाश्च साध्याश्च वसुभिश्चाष्टभिः सह । आदित्याश्चैव रुद्राश्च दिवाकरनिशाकरौ ॥९॥
विश्वावसुश्च गंधर्वः सिद्धाश्चाप्सरसां गणः । तत्र रुद्रो महादेवः कर्णिकारमयीं शुभाम् ॥१०॥
धारयानः स्रजं भाति शरदीव निशाकरः । तस्मिन् दिव्ये वने रम्ये देवदेवर्षिसंकुले ॥११॥
आस्थितः परमं योगं व्यासः पुत्रार्थमुद्यतः । न चास्य हीयते वर्णो न ग्लानिरुपजायते ॥१२॥
त्रयाणामपि लोकानां तदद्भुतमिवाभवत् । जटाश्च तेजसा तस्य वैश्वानरशिखोपमाः ॥१३॥
प्रज्वलंत्यः स्म दृश्यंते युक्तस्यामिततेजसः । एवं विधेन तपसा तस्य भक्त्या च नारद ॥१४॥
महेश्वरः प्रसन्नात्मा चकार मनसा मतिम् । उवाच चैनं भगवांस्त्र्यंबकः प्रहसन्निव ॥१५॥
यथा ह्यग्निर्यथा वायुर्यथा भूमिर्यथा जलम् । यथा खं च तथा शुद्धो भविष्यति सुतस्तव ॥१६॥
तद्भावभागी तद्बुद्धिस्तदात्मा तदुपाश्रयः । तेजसा तस्य लोकांस्त्रीन्यशः प्राप्स्यति केवलम् ॥१७॥
एवं लब्ध्वा वरं देवो व्यासः सत्यवतीसुतः । अरणिं त्वथ संगृह्य ममंथाग्निचिकीर्षया ॥१८॥
अथ रूपं परं विप्र बिभ्रतीं स्वेन तेजसा । घृताचीं नामाप्सरसं ददर्श भगवानृषिः ॥१९॥

कि उनको अग्नि, वायु, आकाश और वायु के तेज से युक्त एक पुत्र हो ॥४-५½॥ इस दृढ़ संकल्प से उन्होंने देवेश की आराधना प्रारम्भ की और ऐसी उत्तम तपस्या को प्रारम्भ किया जो अजितेन्द्रिय साधकों के लिये सर्वथा दुष्प्राप्य था। पहले उस प्रभु व्यास ने उमापति बहुरूप धारी महादेव की आराधना करते हुए सौ वर्षों तक केवल वायु पान करके जीवन रक्षा की ॥६-७½॥ उस मेरु शृंग पर सब ब्रह्मर्षि, देवर्षि, लोकपाल, अष्ट वसुओं के सहित साध्य गण, आदित्य, रुद्र, दिवाकर, चन्द्रमा, विश्वावसु, गन्धर्व, सिद्ध और अप्सरःसमूह रहते थे ॥८-९½॥ वहाँ कर्णिकार की बनी शुभ माला को धारण किये हुए शंकर जी शरद् पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हो रहे थे ॥१०½॥ उस देव और देवर्षियों से संकुल रम्य दिव्य वन में पुत्र प्राप्ति की कामना से व्यास जी दृढ़तापूर्वक परम योग की साधना करने लगे। परन्तु तपस्या करते समय न तो उनकी शरीर कान्ति ही क्षीण हुई और न तो मुख पर कोई ग्लानि की या श्रान्ति की रेखा ही देख पड़ी ॥११-१२॥ यह त्रिलोक के लिए एक आश्चर्यजनक घटना सी हुई; क्योंकि तपस्याकाल में क्लान्ति की अपेक्षा उनकी जटाओं में अग्नि की लपटों के समान एक विशेष प्रकार की आभा आ गई और अमित तेजस्वी उस योगी की वे जटायें अग्नि-ज्वाला के समान जलती हुई सी दिखाई देती थीं। नारद! उनकी इस प्रकार की तपस्या और भक्ति से महेश्वर प्रसन्न हो गये और उनको वरदान देने की इच्छा की। तब हँसते हुए भगवान् त्रिनेत्र ने व्यास से कहा ॥१३-१५॥ जिस प्रकार अग्नि, वायु, भूमि, जल और आकाश शुद्ध हैं उसी प्रकार तुमको शुद्ध और तेजस्वी पुत्र होगा ॥१६॥ उन्हीं के भावों से युक्त, उन्हीं की बुद्धि वाला, उन्हीं का स्वरूप और उन्हीं का उपाश्रय होगा। उसके तेज से तीनों लोकों में उसका यश फैलेगा ॥१७॥ इस प्रकार का वर प्राप्त कर सत्यवती-सुत व्यास ने अरणि को इकठ्ठा किया और अग्नि उत्पन्न करने की इच्छा से उसका मन्थन किया ॥१८॥ अरणि मन्थन के अनन्तर ही भगवान् ऋषि ने अपने तेज और रूप से अलौकिक सुन्दरी घृताची नामक अप्सरा को देखा ॥१९॥ मुनीश्वर! उस वन में

स तामप्सरसं दृष्ट्वा सहसा काममोहितः । अभवद्भगवान्व्यासो वने तस्मिन्मुनीश्वर ॥२०॥
सा तु कृत्वा तदा व्यासं कामसंविग्नमानसम् । शुकीभूया महारम्या घृताची समुपागमत् ॥२१॥
स तामप्सरसं दृष्ट्वा रूपेणान्येन संवृताम् । स्मरराजेनानुगतः सर्वगात्रातिगेन ह ॥२२॥
स तु धैर्येण महता निगृह्णन् हृच्छयं मुनिः । न शशाक नियंतुं तं व्यासः प्रविसृतं मनः ॥२३॥
भावित्वाच्चैव भाव्यस्य घृताच्या वपुषाहृतम् । यत्नान्नियच्छतश्चापि मुने एतच्चिकीर्षया ॥२४॥
अरण्यामेव सहसा तस्य शुक्रमवापतत् । शुक्रे निर्मंथ्यमानेऽस्यां शुको जज्ञे महातपाः ॥२५॥
परमर्षिर्महायोगी अरणीगर्भसंभवः । यथैव हि समिद्धोऽग्निर्भाति हव्यमुपात्तवान् ॥२६॥
तथा रूपः शुको जज्ञे प्रज्वलन्निव तेजसा । बिभ्रच्चित्रं च विप्रेंद्र रूपवर्णमनुत्तमम् ॥२७॥
तं गंगा सरितां श्रेष्ठा मेरुपृष्ठे स्वरूपिणीम् । अभ्येत्य स्नापयामास वारिणा स्वेन नारद ॥२८॥
कृष्णाजिनं चांतरिक्षाच्छुकार्थे भुव्यवापतत् । जेगीयंते च गंधर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥२९॥
देवदुन्दुभयश्चैव प्रावाद्यंत महास्वनाः । विश्वावसुश्च गंधर्वस्तथा तुंबुरुनारदौ ॥३०॥
हाहाहूहूश्च गंधर्वौ तुष्टुवुः शुकसंभवम् । तत्र शक्रपुरोगाश्च लोकपालाः समागताः ॥३१॥
देवा देवर्षयश्चैव तथा ब्रह्मर्षयोऽपि च । दिव्यानि सर्वपुष्पाणि प्रववर्ष च मारुतः ॥३२॥
जंगमं स्थावरं चैव प्रहृष्टमभवज्जगत् । तं महात्मा स्वयं प्रीत्या देव्या सह महाद्युतिः ॥३३॥

उस अप्सरा को देखकर भगवान् व्यास काममोहित हो गए ॥२०॥ वह अप्सरा मुनि व्यास को कामातुर बना कर स्वयं अति सुन्दरी शुकी बनकर उनके पास आई ॥२१॥ वे ऋषि शुकी रूप में आई हुई उस अप्सरा को देखकर सब अंगों को व्यथित कर देने वाले कामदेव के वश में हो जाने से अत्यन्त धैर्यपूर्वक काम को वश में करने का प्रयत्न करने पर भी अपने कामातुर मन को वश में न कर सके ॥२२-२३॥ भावी की प्रबलता से घृताची के रूप सौन्दर्य से आकृष्ट उस मुनि ने यत्न पूर्वक मन को वश में करने का प्रयत्न किया परन्तु तो भी काम प्रेरणा से आतुर होने के कारण उस अरणि पर ही उनका वीर्य गिर पड़ा। उस अरणि मन्थन से मुनि का शुक्र भी मथ उठा जिससे उस अरणि में हो अरणि गर्भ से एक महायोगी शुक नामक परम ऋषि उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार हविष्य को पाकर अग्नि प्रज्वलित हो उठती है उसी प्रकार अपने तेज से जलता हुआ वह शुक उस अरणि से उत्पन्न हुआ। विप्रेन्द्र। उस समय उस तेजस्वी बालक का रूप अलौकिक और आश्चर्यचकित करने वाला था ॥२४-२७॥ नारद ! उस बालक को मेरुपृष्ठ पर बहने वाली सरित्श्रेष्ठ गंगा नदी के पास जो कि घृताची का ही रूप है—ले गई और अपने जल से उस तेजस्वी बालक को नहलाया ॥२८॥ उस समय आकाश से शुक के लिए कृष्ण मृगचर्म अनायास पृथ्वी पर गिर पड़ा, गन्धर्व प्रसन्न होकर मंगल गान करने लगे, अप्सरायें नाचने लगीं ॥२९॥ और देव,-दुंदुभियों के गम्भीर घोष से आकाश गूंज उठा, । गन्धर्व, विश्वावसु तुंबुरु, नारद और गन्धर्व हाहा हूहू ने शुक देव जी की स्तुति की ॥३०½॥ उस समय इन्द्र आदि लोकपाल, देव, देवर्षि और ब्रह्मर्षिगण भी वहां उपस्थित हो गए। वायु देव ने प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए सब प्रकार के देव पुष्पों की वर्षा की ॥३१-३२॥ सारा स्थावर जंगमात्मक संसार शुक जन्म से आनन्द-मग्न हो गया। महातेजस्वी महात्मा शंकर ने देवी पार्वती के साथ स्वयं उस सद्योजात मुनिकुमार का विधिवत् उपनयन किया ॥३३½॥ देवेश्वर इन्द्र ने उस कुमार को दिव्य और अद्भुत कमण्डलु दिया, देवताओं ने प्रेमपूर्वक वस्त्र दिये। नारद ! हंस, शतपत्र, सारस,

जातमात्रं मुनेः पुत्रं विधिनोपानयत्तदा । तस्य देवेश्वरः शक्रो दिव्यमद्भुतदर्शनम् ॥३४॥
ददौ कमंडलुं प्रीत्या देवा वासांसि चाभितः । हंसाश्च शतपत्राश्च सारसाश्च सहस्रशः ॥३५॥
प्रदक्षिणमवर्तंत शुकाश्चाषाश्च नारद । आरणेयस्तदा दिव्यं प्राप्य जन्म महामुनिः ॥३६॥
तत्रैवोवास मेधावी व्रतचारी समाहितः । उत्पन्नमात्रं तं वेदाः सरहस्याः ससंग्रहाः ॥३७॥
उपतस्थुर्मुनिश्रेष्ठं यथास्य पितरं तथा । बृहस्पतिं स वव्रे च वेदवेदांगभाष्यवित् ॥३८॥
उपाध्यायं द्विजश्रेष्ठ धर्ममेवानुचिंतयन् । सोऽधीत्य वेदानखिलान्सरहस्यान्ससंग्रहान् ॥३९॥
इतिहासं च कार्त्स्न्येन वेदशास्त्राणि चाभितः । गुरवे दक्षिणां दत्त्वा समावृत्तो महामुनिः ॥४०॥
उग्रं तपः समारेभे ब्रह्मचारी समाहितः । देवतानामृषीणां च बाल्येऽपि सुमहातपाः ॥४१॥
संमंत्रणीयो जन्यश्च ज्ञानेन तपसा तथा । न त्वस्य रमते बुद्धिराश्रमेषु मुनीश्वर ॥४२॥
त्रिषु गार्हस्थ्यमूलेषु मोक्षधर्मानुदर्शिनः । स मोक्षमनुचिन्त्यैव शुकः पितरमभ्यगात् ॥४३॥
प्राहाभिवाद्य च तदा श्रेयोऽर्थी विनयान्वितः । मोक्षधर्मेषु कुशलो भगवान् प्रब्रवीतु मे ॥४४॥
यथैव मनसः शांतिः परमा संभवेन्मुने । श्रुत्वा पुत्रस्य वचनं परमर्षिरुवाच तम् ॥४५॥
अधीष्व मोक्षशास्त्रं वै धर्मांश्च विविधानपि । पितुर्निदेशाज्जग्राह शुको ब्रह्मविदां वरः ॥४६॥
योगशास्त्रं च निखिलं कापिलं चैव नारद । शतब्राह्म्या श्रिया युक्तं ब्रह्मतुल्यपराक्रमम् ॥४७॥
मेने पुत्रं यथा व्यासो मोक्षशास्त्रविशारदम् । उवाच गच्छेति तदा जनकं मिथिलेश्वरम् ॥४८॥

सुग्गे और नीलकण्ठ आदि पक्षियों ने हजारों प्रदक्षिणायें कीं। उस समय अरणि से उत्पन्न वह मेधावी महा मुनि इस प्रकार लोकोत्तर जन्म प्राप्त कर उस स्थान पर एकाग्रमन होकर ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने लगा ॥३४-३६½॥ उत्पन्न होते ही उस मुनिकुमार के पास रहस्य और संग्रह के सहित सम्पूर्ण वेद उपस्थित हो गए जैसे कि उसके पिता व्यास मुनि के पास आए थे ॥३७½॥ द्विजश्रेष्ठ! वेद, वेदांग और भाष्यों के ज्ञाता उस मुनि-पुत्र ने केवल धर्म पालन के ही विचार से बृहस्पति को अपने उपाध्याय के रूप में वरण किया ॥३८½॥ थोड़े ही समय में उस महामुनि ने सम्पूर्ण रहस्य और संग्रह ग्रन्थों के सहित वेदों, सम्पूर्ण इतिहास और सांगोपांग वेद शास्त्रों का अध्ययन कर लिया। पश्चात् गुरु को दक्षिणा देकर वह गुरु आश्रम से लौट आया ॥४०॥ तदनन्तर उस महातपस्वी ब्रह्मचारी ने बाल्यकाल में ही उग्र तपस्या को प्रारम्भ किया। वह अपनी तपस्या तथा ज्ञान के प्रभाव से देवता और ऋषियों का भी मन्त्रदाता और उपदेशक बन गया ॥४१½॥ मुनीश्वर! मोक्ष धर्म के जिज्ञासु उस महातपस्वी शुक का मन आश्रमों के क्रमिक पालन में नहीं लगता था। ॥४२½॥ इसलिए मोक्ष प्राप्ति का विचार कर उन्होंने अपने पिता व्यास से पूछा। पहले श्रेयस्काम उस मुनिपुत्र ने विनम्र भाव से पिता का अभिवादन किया और फिर कहा ॥४३½॥ आप मोक्ष धर्म के कुशल विद्वान् हैं, अतः कृपा कर आप ऐसे ज्ञान का उपदेश करें जिससे मेरे मन को परम शान्ति प्राप्त हो। पुत्र की बातों को सुनकर परम ऋषि व्यास जी ने कहा—'तुम मोक्ष शास्त्र और विविध धर्मों का अध्ययन करो' ॥४४-४५½॥

नारद! पिता की आज्ञा पाकर ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ शुक ने सम्पूर्ण, योगशास्त्र और सांख्य का अध्ययन किया। जब व्यास ने जान लिया कि अब मेरा पुत्र ब्रह्म के समान पराक्रमी, शत ब्राह्मश्री से युक्त और मोक्ष शास्त्र का पारंगत विद्वान् हो गया है तब कहा कि पुत्र! तुम मिथिलापति जनक के पास जाओ, वह मिथिलेश्वर तुमको भलीभांति मोक्ष धर्म का उपदेश देगा। ॥४३-४८½॥ पिता के आदेशानुसार धर्म की निष्ठा और मोक्ष के

स ते वक्ष्यति मोक्षार्थं निखिलेन नराधिपः। पितुर्नियोगादगमज्जनकं मैथिलं नृपम् ॥४९॥
प्रष्टुं धर्मस्य निष्ठां वै मोक्षस्य च परायणम्। उक्तश्च मानुषेण त्वं तथा गच्छेत्यविस्मितः ॥५०॥
न प्रभावेण गंतव्यमंतरिक्षचरेण वै। आर्जवेनैव गंतव्यं न सुखाय क्षणात्त्वया ॥५१॥
न द्रष्टव्या विशेषा हि विशेषा हि प्रसंगिनः। अहंकारो न कर्तव्यो याज्ये तस्मिन्नराधिपे ॥५२॥
स्थातव्यं वसथे तस्य स ते छेत्स्यति संशयम्। स धर्मकुशलो राजा मोक्षशास्त्रविशारदः ॥५३॥
यथा यथा च ते संयात्तत्कार्यमविशंकया। एवमुक्तः स धर्मात्मा जगाम मिथिलां मुनिः ॥५४॥
पद्भ्यां शक्तोऽतरिक्षेण क्रांतुं भूमिं ससागराम्। सगिरींश्चाप्यतिक्रम्य भारतं वर्षमासदत् ॥५५॥
स देशान्विविधान्स्फीतानतिक्रम्य महामुनिः। विदेहान्वै समासाद्य जनकेन समागमत् ॥५६॥
राजद्वारं समासाद्य द्वारपालैर्निवारितः। तस्थौ तत्र महायोगी क्षुत्पिपासादिवर्जितः ॥५७॥
आतपे ग्लानिरहितो ध्यानयुक्तश्च नारद। तेषां तु द्वारपालानामेकस्तत्र व्यवस्थितः ॥५८॥
मध्यंगतमिवादित्यं दृष्ट्वा शुकमवस्थितम्। पूजयित्वा यथान्यायमभिवाद्य कृताञ्जलिः ॥५९॥
प्रावेशयत्ततः कक्षां द्वितीयां राजवेश्मनः। तत्रांतः पुरसंबद्धं महच्चैत्ररथोपमम् ॥६०॥
सुविभक्तजलाक्रीडं रम्यं पुष्पितपादपम्। दर्शयित्वासने स्थाप्य राजानं च व्यजिज्ञपत् ॥६१॥
श्रुत्वा राजा शुकं प्राप्तं वारस्त्रीः स न्ययुंक्त च। सेवार्थं तस्य भावस्य ज्ञानाय मुनिसत्तम ॥६२॥
तं चारुकेश्यः शुश्रोण्यस्तरुण्यः प्रियदर्शनाः। सूक्ष्मरक्तांबरधरास्तप्तकांचनभूषणाः ॥६३॥

परम तत्त्व को पूछने के लिए वह मैथिल नृप की राजधानी की ओर चल पड़ा। जाते समय व्यास जी ने कहा कि तुम वहां साधारण मनुष्य की भांति इस प्रकार जाना कि तुमको किसी प्रकार का विस्मय न हो, अपने अलौकिक प्रभाव के द्वारा या आकाशचारी बन कर न जाना। अत्यन्त विनीत होकर अपने क्षणिक सुख की भावना का सर्वथा त्याग कर वहां जाना ॥४९-५१॥ किन्हीं विशेष बातों की ओर ध्यान न देना क्योंकि प्रसंग या प्रमादवश कुछ विशेष (अरुचिकर) घटनायें हो जाती हैं। उस यज्ञ कराने योग्य नृपति के प्रति किसी प्रकार का अहंकार भाव मत दिखलाना ॥५२॥ उसी राजा के भवन में ठहरना। वह मोक्ष शास्त्र का ज्ञाता, धर्मकुशल राजा तुम्हारे सन्देहों को अवश्य दूर कर देगा ॥५३॥ जो जो आज्ञायें तुमको दे उनका बिना किसी हिचकिचाहट के पालन करना। व्यास जी के उपर्युक्त उपदेशों को सुन कर उस मुनि ने मिथिलापुरी की ओर प्रस्थान किया ॥५४॥ यद्यपि इस ससागरा पृथ्वी को वे मुनि आकाश मार्ग से तय कर सकते थे परन्तु वे पैदल ही पर्वतों, नदियों को पार करते हुए भारतवर्ष में आये ॥५५॥ और भारतवर्ष के विविध पवित्र देशों को पार कर विदेहों के देश में आकर जनक से मिले ॥५६॥ पहले तो राज द्वार पर द्वारपालों ने उनको रोका जिससे कि भूख प्यास की कुछ भी चिन्ता न कर वह महायोगी वहीं पर धूप में किसी प्रकार की ग्लानि न कर ध्यानस्थ होकर बैठ गया। उन द्वारपालों में से एक ने दोपहर के सूर्य की भांति तेजस्वी शुक को वहां बैठा देखकर विधिवत् उनकी पूजा की फिर वह हाथ जोड़कर अभिवादन करके उनको राज भवन के द्वितीय कक्ष में ले गया ॥५७-५९½॥ वहां अन्तःपुर से सटे हुए चैत्ररथ वन के समान मनोहर, अनेकों खिले हुए फूलों से लदे हुए पौधों से युक्त, गृह वाटिका को, जिसमें अनेक अलग-अलग जल क्रीड़ा करने के लिए जलाशय बने हुए थे, दिखाया और वहीं एक आसन पर बैठा कर राजा से उनके आगमन के विषय में निवेदन किया ॥६०-६१॥ मुनिश्रेष्ठ राजा ने शुक का आगमन सुनकर उनकी आन्तरिक भावनाओं की परीक्षा के लिए वार स्त्रियों को उनकी सेवा के लिये नियुक्त किया ॥६२॥ अनेकों चार केश और मनोहर नितम्ब वाली सुन्दरी पचास तरुणियों ने, जो सूक्ष्म रक्ताम्बर और चमकीले सुवर्ण के

संलापालापकुशला भावज्ञाः सर्वकोविदाः । परं पंचाशतस्तस्य पाद्यादीनि व्यकल्पयन् ॥६४॥
देशकालोपपन्नेन साध्वन्नेनाप्यतर्पयन् । तस्य भुक्तवतस्तात तास्ततः पुरकाननम् ॥६५॥
सुरम्यं दर्शयामासुरेकैकत्वेन नारद । क्रीडंत्यश्च हसंत्यश्च गायंत्यश्चैव ताः शुकम् ॥६६॥
उदारसत्त्वं सत्वज्ञास्सर्वाः पर्य्यचरंस्तदा । आरणेयस्तु शुद्धात्मा जितक्रोधो जितेंद्रियः ॥६७॥
ध्यानस्थ एव सततं न हृष्यति न कुप्यति । पादशौचं तु कृत्वा वै शुकः संध्यामुपास्य च ॥६८॥
निषसादासने पुण्ये तमेवार्थं व्यचिंतयत् । पूर्वरात्रे तु तत्रासौ भूत्वा ध्यानपरायणः ॥६९॥
मध्यरात्रे यथान्याय्यं निद्रामाहारयत्प्रभुः । ततः प्रातः समुत्थाय कृत्वा शौचमनंतरम् ॥७०॥
स्त्रीभिः परिवृतो धीमान्ध्यानमेवान्वपद्यत । अनेन विधिना तत्र तदहः शेषमच्युत ॥७१॥
तां च रात्रिं नृपकुले वर्तयामास नारद ॥७२॥

इति श्रीबृहन्नारदी०पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयभागे शुकप्रलोभनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

आभूषणों से सजी-धजी थीं, जो सब नारी-भावों को कुशल पंडिता, प्रत्येक प्रकार के आलाप में चतुर एवं सब प्रकार की शृङ्गार कला में पारंगत थीं, उस मुनि का पाद्य आदि के द्वारा सत्कार किया ॥६३-६४॥ फिर देशकालानुकूल मधुर अन्न को भोजन के लिए सामने रखा ।जब मुनि कुमार शुक भोजन से तृप्त हो गये तब उन तरुणियों ने क्रमशः नगर के एक-एक रम्य उपवन को दिखाया ॥६५१/२॥ उन सब सुन्दरियों ने अपनी मधुर हँसी, मनोहर कामक्रीड़ा और मादक गीतों से उस उदारचेता की परिचर्या की परन्तु उस जितेन्द्रिय, क्षमाशील, शुद्धात्मा अरणिकुमार का ध्यान भंग नहीं हुआ और उसके हृदय में किसी प्रकार का हर्ष या क्रोध नहीं उत्पन्न हुआ ॥६६-६७१/२॥ सायंकाल शुकदेव ने पादप्रक्षालन आदि नित्य कृत्यों से निवृत्त होकर संध्योपासन किया और पवित्र आसन पर आसीन होकर अपने मोक्षतत्त्व का चिन्तन किया । इस प्रकार रात के पहले पहर में वे ध्यान लगाये बैठे रहे । दूसरे और तीसरे पहर भगवान् शुक ने न्यायपूर्वक निद्रा को स्वीकार किया ॥६८-६९१/२॥ फिर प्रातःकाल उठकर शौचादि से निवृत्त होकर स्त्रियों से घिरे रहने पर भी वह महात्मा ध्यान-साधना में ही लीन रहा ॥७०१/२॥ उस राजभवन में इस विधि से योगी शुक ने दिन को बिता दिया और रात भी राज परिवार में रहकर ही बिताई ॥७१-७२॥

श्री नारदीय महापुराण के द्वितीय भाग में शुक-प्रलोभन नामक अट्ठाबनवाँ अध्याय समाप्त ॥५८॥

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

सनंदन उवाच

ततः स राजा सहितो मंत्रिभिर्द्विजसत्तम । पुरः पुरोहितं कृत्वा सर्वाण्यंतःपुराणि च ॥१॥
शिरसा चार्घ्यमादाय गुरुपुत्रं समभ्यगात् । महदासनमादाय सर्वरत्नविभूषितम् ॥२॥
प्रददौ गुरुपुत्राय शुकाय परमोचितम् । तत्रोपविष्टं तं कार्ष्णि शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥३॥
पाद्यं निवेद्य प्रथमं सार्घ्यं तां च न्यवेदयत् । स च तां मंत्रतः पूजां प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः ॥४॥
पर्यपृच्छन्महातेजा राज्ञः कुशलमव्ययम् । उदारसत्त्वाभिजनो राजापि गुरुसूनवे ॥५॥
आवेद्य कुशलं भूमौ निषसाद तदाज्ञया । सोऽपि वैयासकिं भूयः पृष्ट्वा कुशलमव्ययम्
किमागमनमित्येव पर्यपृच्छद्विधानवित् ॥६॥

शुक उवाच

पित्राहमुक्तो भद्रं ते मोक्षधर्मार्थकोविदः । विदेहराजो याज्यो मे जनको नाम विश्रुतः ॥७॥
तत्र त्वं गच्छ तूर्णं वै स ते हृदयसंशयम् । प्रवृत्तौ च निवृत्तौ सर्वं छेत्स्यत्यसंशयम् ॥८॥
सोऽहं पितुर्नियोगात्त्वामुपप्रष्टुमिहागतः । तन्मे धर्मभृतां श्रेष्ठ यथावद्वक्तुमर्हसि ॥९॥
किं कार्यं ब्राह्मणेनेह मोक्षार्थश्च किमात्मकः । कथं च मोक्षः कर्तव्यो ज्ञानेन तपसापि वा ॥१०॥

अध्याय ५९

अध्यात्मतत्त्व का निरूपण

सनन्दन बोले—द्विजवर्य ! इतनी परीक्षा के बाद राजा मन्त्रियों के सहित पुरोहित और अपनी रानी एवं दासियों को आगे कर विनीत भाव से अर्घ्यपात्र लेकर गुरुपुत्र शुक के समीप आये और उन्होंने सब रत्नों से जड़े हुए उपर्युक्त बहुमूल्य आसन गुरु-पुत्र शुक को अर्पित किया ॥१-२½॥ जब व्यासपुत्र आसनस्थ हो गए तब मिथिलाधीश ने शास्त्र विधि से उनको पाद्य और अर्घ्य आदि प्रदान कर गो-दान दिया ॥३½॥ उस महातेजस्वी द्विजवर ने भी मन्त्रपाठपूर्वक उस सत्कार को स्वीकार किया और राजा से कुशल-मंगल पूछा । उदार हृदय राजा भी गुरु-पुत्र से अपना सारा कुशल समाचार कहकर उनकी आज्ञा से पृथ्वी पर बैठ गया। उस विधिज्ञ राजा ने भी व्यास-पुत्र शुक से कुशल वार्ता पूछने के बाद पूछा कि आपने किस लिए यहाँ तक आने का कष्ट किया है ॥४-६॥

शुक ने कहा—पिताजी ने मुझसे कहा कि तुम्हारा कल्याण इसी में है कि तुम शीघ्र धर्म, अर्थ और मोक्ष के ज्ञाता जनक के समीप जाओ, जो मेरे प्रथम शिष्य हैं। वे ही तुम्हारे सब सन्देहों को दूर कर देंगे। निश्चय ही वे तुम्हारे प्रवृत्ति और निवृत्ति विषयक सन्देहों को दूर कर देंगे ॥७-८॥ इसी लिए मैं पिता की आज्ञा से आपके समीप अपनी शंकाओं को मिटाने के लिए आया हूँ। इसलिए हे धार्मिकों में श्रेष्ठ ! आप भली भाँति मुझे बतायें कि ब्राह्मणों को क्या करना चाहिए, मोक्ष का अभिप्राय क्या है, मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान या तपस्या किससे होगी ? ॥९-१०॥

जनक उवाच

यत्कार्यं ब्राह्मणेनेह जन्मप्रभृति तच्छृणु । कृतोपनयनस्तात भवेद्वेदपरायणः ॥११॥
तपसा गुरुवृत्त्या च ब्रह्मचर्येण चान्वितः । देवतानां पितॄणां च ह्यतृणश्चानसूयकः ॥१२॥
वेदानधीत्य नियतो दक्षिणामपवर्त्य च । अभ्यनुज्ञामनुप्राप्य समावर्तेत वै द्विजः ॥१३॥
समावृत्तस्तु गार्हस्थ्ये सदारो नियतो वसेत् । अनसूयुर्यथान्यायमाहिताग्निरनादृते ॥१४॥
उत्पाद्य पुत्रपौत्रांश्च वन्याश्रमपदे वसेत् । तानेवाग्नीन्यथान्यायं पूजयन्नतिथिप्रियः ॥१५॥
सर्वानग्नीन्यथान्यायमात्मन्यारोप्य धर्मवित् । निर्द्वंद्वो वीतरागात्मा ब्रह्माश्रमपदे वसेत् ॥१६॥

शुक उवाच

उत्पन्ने ज्ञानविज्ञाने प्रत्यक्षे हृदि शाश्वते । न विना गुरुसंवासाज्ज्ञानस्याधिगमः स्मृतः ॥१७॥
किमवश्यं तु वस्तव्यमाश्रमेषु न वा नृप । एतद्भवंतं पृच्छामि तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥१८॥

जनक उवाच

न विना ज्ञानविज्ञाने मोक्षस्याधिगमो भवेत् विना गुरुसंबंधाज्ज्ञानस्याधिगमस्तथा ॥१९॥
आचार्यः प्लाविता तस्य ज्ञानं प्लव इहोच्यते । विज्ञाय कृतकृत्यस्तु तीर्णस्तत्त्रोभयं त्यजेत् ॥२०॥
अनुच्छेदाय लोकानामनुच्छेदाय कर्मणाम् । कृत्वा शुभाशुभं कर्म मोक्षो नामेह लभ्यते ॥२१॥

जनक बोले—जन्म से ब्राह्मणों को जो कुछ करना चाहिए उसको सुनो। तात! जब ब्राह्मणपुत्र का उपनयन-संस्कार हो जाय उसी दिन से वेदाध्ययन प्रारम्भ कर दे ॥११॥ अध्ययन के समय वह ब्रह्मचर्य का पालन करे और तपस्या तथा गुरु सेवा में लगा रहे। तृष्णा से विमुख हो, देवता और पितरों की कभी निन्दा न करे ॥१२॥ जब नियमित रूप से वेदों का अध्ययन कर ले तब गुरु को गुरुदक्षिणा देकर उनसे आज्ञा लेकर समावर्तन संस्कार करे ॥१३॥ समावर्तन संस्कार के बाद नियम पूर्वक विवाह करके स्त्री सहित गृहस्थाश्रम का पालन करे। इस आश्रम में रहकर वह किसी की निन्दा न करे और विधिपूर्वक अग्नि की स्थापना करके प्रतिदिन आदरपूर्वक अग्नि होम करे। पुत्र और पौत्रों को उत्पन्न करने के अनन्तर अरण्य-आश्रम (वानप्रस्थ) को अपनाये। उस आश्रम में वह भी प्रेमपूर्वक अतिथियों की पूजा करे ॥१४-१५॥ और यथाशास्त्र अग्न्याधान करे अथवा धर्मज्ञ वह वानप्रस्थाश्रमी आत्मा में ही शास्त्रानुसार अग्नि लीन करके द्वन्द्वातीत और वीतराग होकर ब्रह्माश्रम में प्रवेश करे ॥१६॥

शुक बोले—राजन्! बिना गुरु के ज्ञान का होना नहीं कहा गया है। तो यदि किसी को बिना गुरु के ही हृदय में नित्य ज्ञानविज्ञान की प्रत्यक्षानुभूति हो जाय तो भी उसके लिए क्या शेष तीन आश्रमों में रहना आवश्यक है? इस शंका को पूछ रहा हूं, इसका समाधान आप कर दें ॥१७—१८॥

जनक ने कहा—बिना ज्ञान-विज्ञान के मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती और गुरु के बिना ज्ञान-प्राप्ति भी दुर्लभ ही है ॥१९॥ आचार्य ही इस संसार-सागर से पार लगाने वाला है और ज्ञान ही नौका है। ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर मनुष्य कृतकृत्य एवं पवित्र हो जाता है तब वह शुभ-अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों का त्याग कर दे ॥२०॥ लोक और कर्म का उच्छेद न हो जाय, इसलिए पहले शुभाशुभ कर्म करके तब मोक्ष को प्राप्त करना चाहिए।

भावितैः कारणैश्चाद्य बहुसंसारयोनिषु । आसादयति शुद्धात्मा मोक्षं हि प्रथमाश्रमे ॥२२॥
तमासाद्य तु मुक्तस्य दृष्टार्थस्य विपश्चितः । त्रिधाश्रमेषु कोन्वर्थो भवेत्परमभीप्सतः ॥२३॥
राजसांस्तामसांश्चैव नित्यं दोषान्विसर्जयेत् । सात्त्विकं मार्गमास्थाय पश्येदात्मानमात्मना ॥२४॥
सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । संपश्यन्नैव लिप्येत जले वारिचरो यथा ॥२५॥
पक्षीवत्पवनादूर्ध्वममुत्रानंत्यमश्नुते । विहाय देहं निर्मुक्तो निर्द्वंद्वः शुभसंगतः ॥२६॥
अत्र गाथाः पुरा गीताः शृणु राज्ञा ययातिना । धार्यंते या द्विजैस्तात मोक्षशास्त्रविशारदैः ॥२७॥
ज्योतिश्चात्मनि नान्यत्र रत्नं तत्रैव चैव तत् । स्वयं च शक्यं तद्द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा ॥२८॥
न बिभेति परो यस्मान्न बिभेति पराच्च यः । यश्च नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते स तु ॥२९॥
यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेषु पापकम् । पूर्वैराचरितो धर्मश्चतुराश्रमसंज्ञकः ॥३०॥
अनेन क्रमयोगेन बहुजातिमुकर्मणाम् । कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म संपद्यते तदा ॥३१॥
संयोज्य तपसात्मानमीर्ष्यामुत्सृज्य मोहिनीम् । त्यक्त्वा कामं च लोभं च ततो ब्रह्मत्वमश्नुते ॥३२॥
यदा श्राव्ये च दृश्ये च सर्वभूतेषु चाव्ययम् । समो भवति निर्द्वंद्वो ब्रह्म संपद्यते तदा ॥३३॥
यदा स्तुतिं च निंदां च समत्वेन च पश्यति । कांचनं चाऽयसं चैव सुखदुःखे तथैव च ॥३४॥
शीतमुष्णं तथैवार्थमनर्थं प्रियमप्रियम् । जीवितं मरणं चैव ब्रह्म संपद्यते तदा ॥३५॥

अनेक जन्मों से सत्कर्म करते-करते जब सम्पूर्ण इन्द्रियाँ पवित्र हो जाती हैं, तब शुद्ध अन्तःकरण वाला पुरुष प्रथम आश्रम में ही उत्तम मोक्ष रूप ज्ञान प्राप्त कर लेता है ॥२१–२२॥ उसे पाकर जब ब्रह्मचर्य आश्रम में तत्त्व का साक्षात्कार एवं मुक्ति सुलभ हो जाय तब परमात्मा को चाहने वाले जीवन्मुक्त विद्वान् के लिए शेष तीनों आश्रमों में जाने की क्या आवश्यकता है ? ॥२३॥ वह मुक्त पुरुष नित्य प्रति राजस और तामस दोषों का सर्वथा त्याग कर दें । और सात्विक मार्ग का अवलम्बन कर अन्तःकरण में ही आत्मा का दर्शन करे । सब प्राणियों में आत्मभाव और अपने में ही सब प्राणियों को देखने वाला व्यक्ति इसी संसार में उसी प्रकार लिप्त नहीं होता जिस प्रकार जल में रहने वाला जलचर ॥२४–२५॥ वह व्यक्ति पक्षी के समान पवन मण्डल से ऊपर उठकर अत्यन्त सुख का अनुभव करता है । इस प्रकार वह मुक्त इस शरीर का त्याग कर द्वन्द्वातीत होकर शुभलोक में स्थान पाता है ॥२६॥ इस बिषय में राजा ययाति ने प्राचीन काल में जिस गाथा को कहा है उसको कहता हूँ । सुनो ! इस गाथा को मोक्षशास्त्र के ज्ञाता द्विज अवश्य हृदय में धारण करते हैं ॥२७॥ आत्मा में ही ज्योति रहती है । क्योंकि जहाँ रत्न रहता है, वहीं ज्योति रहती है । उस आत्म-ज्योति का दर्शन एकाग्रचित्त होने पर स्वयं हो जाता है ॥२८॥ जिससे दूसरे नहीं डरते और जो दूसरों से स्वयं नहीं डरता, जो स्वयं कुछ इच्छा नहीं करता और न तो द्वेष ही करता है, और जो सब प्राणियों के प्रति पाप भावना नहीं रखता वही ब्रह्म पद प्राप्त करता है । पूर्व के आचार्यो ने भी चतुराश्रम धर्म का पालन किया है ॥२९–३०॥ इस प्रकार क्रमशः जो मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी की बुराई नहीं करता, वही ब्रह्म पद प्राप्त करता है ॥३१॥ तपस्या में लीन होकर जब ज्ञानी भ्रम में डाल देने वाली ईर्ष्या, काम और लोभ को छोड़ देता है, तब वह ब्रह्म पद का भागी होता है ॥३२॥ जब दृष्टि में या श्रवण पथ में आने वाले पदार्थों और अखिल भूतों में स्थित अव्यय परात्मा का दर्शन करने लगता है, और जब उस द्वन्द्वातीत की सर्वत्र सम बुद्धि हो जाती है तब वह ब्रह्म पद प्राप्त करता है ॥३३॥

जब स्तुति और निन्दा को साधक समाभाव से देखता है, उसको सोना, और लोहा में भिन्नता नहीं दिखाई देती, सुख-दुख शीत-उष्ण; अर्थ-अनर्थ प्रिय-अप्रिय; जीवन और मरण में उसकी समान भावना हो जाती है, तब वह

प्रसार्येह यथांगानि कूर्मः संहरते पुनः । तथेंद्रियाणि मनसा संयंतव्यानि भिक्षुणा ॥३६॥
तमः परिगतं वेश्म यथा दीपेन दृश्यते । यथा बुद्धिप्रदीपेन शक्य आत्मा निरीक्षितुम् ॥३७॥
एतत्सर्वं प्रपश्यामि त्वयि बुद्धिमतांवर । यच्चान्यदपि वेत्तव्यं तत्त्वतो वेत्ति तद्भवान् ॥३८॥
ब्रह्मर्षे विदितश्चासि विषयांतमुपागतः । गुरोश्चैव प्रसादेन तव चैवोपशिक्षया ॥३९॥
तस्य चैव प्रसादेन प्रादुर्भूतं महामुनेः । ज्ञानं दिव्यं समादीप्तं तेनासि विदितो मम ॥४०॥
अधिकं तव विज्ञानमधिकावगतिस्तव । अधिकं च तवैश्वर्यं तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥४१॥
बाल्याद्वा संशयाद्वापि भयाद्वापि विमोहजात् । उत्पन्ने चापि विज्ञाने नाविगच्छंति तां गतिम् ॥४२॥
व्यवसायेन शुद्धेन मद्विधैश्छिन्नसंशयाः । विमुच्य हृदयग्रंथीनार्तिमासादयंति ताम् ॥४३॥
भवांश्चोत्पन्नविज्ञानः स्थिरबुद्धिरलोलुपः । व्यवसायादृते ब्रह्मन्नासादयति तत्पदम् ॥४४॥
नास्ति ते सुखदुःखेषु विशेषो नास्ति वस्तुषु । नौत्सुक्यं नृत्यगीतेषु न राग उपजायते ॥४५॥
न बंधुषु निबंधस्ते न भयेष्वस्ति ते भयम् । पश्यामि त्वां महाभाग तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिम् ॥४६॥
अहं च त्वानुपश्यामि ये चान्येऽपि मनीषिणः । आस्थितं परमं मार्गं अक्षयं चाप्यनामयम् ॥४७॥
यत्फलं ब्राह्मणस्येह मोक्षार्थश्चापदात्मकः । तस्मिन्वै वर्तसे विप्र किमन्यत्परिपृच्छसि ॥४८॥

सनंदन उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं कृतात्मा कृतनिश्चयः । आत्मनात्मानमास्थाय दृष्ट्वा चात्मानमात्मना ॥४९॥

ब्रह्मरूप हो जाता है ॥३४–३५॥ जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को फैला कर पुनः उनको समेट लेता है उसी प्रकार भिक्षु को भी अपनी इन्द्रियों को मन के द्वारा अपने वश में करना चाहिए ॥३६॥ जिस प्रकार अंधेरे से ढका हुआ घर दीपक से दिखाई देने लगता है उसी प्रकार बुद्धि के दीपक से आत्मा को देखा जा सकता है ॥३७॥ बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! मैं इन सब विशेषताओं को तुममें देख रहा हूँ। इसके अतिरिक्त जो अन्य ज्ञातव्य बातें हैं; उनको तुम भली भाँति जानते हो ॥३८॥ ब्रह्मर्षि ! तुमको सारी बातें ज्ञात हैं। गुरु की कृपा और शिक्षा के कारण तुमने विषय-वासनाओं को भी जीत लिया है। महामुनि व्यास के अनुग्रह से मुझे जो उत्कृष्ट दिव्य ज्ञान प्राप्त है उसके द्वारा मुझे ज्ञात है कि तुम अधिक ज्ञानी हो। तुम्हारी पहुँच दूर तक है और तुम्हारा ज्ञान वैभव उत्कृष्ट है जिसका अनुभव स्वयं तुमको नहीं है ॥३९—४१॥ चाहे इसका कारण तुम्हारी शिशुता हो, संशय हो या विमोहजन्य भय हो। विज्ञान प्राप्त हो जाने पर भी मोक्ष गति प्राप्त नहीं होती है। शुद्ध व्यवसाय के द्वारा अपने आन्तरिक संशयों तथा पीड़ा को नष्ट कर मेरे समान व्यक्ति उस गति को प्राप्त करते हैं। आप तो स्थिरबुद्धि, संतोषी, विज्ञानी हैं। ब्रह्मन्! आप ने तो अनायास ब्रह्म पद को प्राप्त कर लिया है ॥४२-४४॥ आपके लिए सुख-दुःख दोनों बराबर हैं। सब पदार्थों को समबुद्धि से देखते हैं। किसी वस्तु की इच्छा नहीं है। नृत्य-गीतों के प्रति आपकी कोई आसक्ति नहीं है ॥४५॥ बन्धुओं के प्रति आप की ममता नहीं है, और न तो आपको किसी से भय ही है। महाभाग, मैं आपको निन्दा और स्तुति के प्रति समान दृष्टि रखने वाला देखता हूँ ॥४६॥ मैं उन मनीषियों को भी देखता हूँ, जो अक्षय अनामय और परम मुक्ति पथ के पथिक हैं; परन्तु सब में आप श्रेष्ठ हैं। इस लोक में ब्राह्मण कुल में जन्म लेने का जो फल होता है, और मुक्ति का जो स्वरूप है, उसी में आपकी स्थिति है। अब दूसरी कौन सी वस्तु है, जिसके विषय में पूछते हैं ॥४७–४८॥

सनन्दन ने कहा—राजा जनक की उपर्युक्त बातों को सुनकर कृतात्मा शुक को आत्म निश्चय हो गया। उन्होंने अपने अन्तःकरण में आत्म-भाव की प्रतिष्ठा की और उसमें ही परमतत्त्व का दर्शन किया ॥४९॥

कृतकार्यः सुखी शांतस्तूष्णीं प्रायादुदङ्मुखः । शैशिरं गिरिमासाद्य पाराशर्यं ददर्श च ॥५०॥
शिष्यानध्यापयंतं च पैलादीन्वेदसंहिताः । आरणयो विशुद्धात्मा दिवाकरसमप्रभः ॥५१॥
पितुर्जग्राह पादौ च सादरं हृष्टमानसः । ततो निवेदयामास पितुः सर्वमुदारधीः ॥५२॥
शुको जनकराजेन संवादं मोक्षसाधनम् । तच्छ्रुत्वा वेदकर्तासौ प्रहृष्टेनांतरात्मना ॥५३॥
समालिंग्य सुतं व्यासः स्वपार्श्वस्थं चकार च ॥५४॥
ततः पैलादयो विप्रा वेदान् व्यासादधीत्य च । शैलशृंगाद्भुवं प्राप्ता याजनाध्यापने रताः ॥५५॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

अथ षष्टितमोऽध्यायः

सनंदन उवाच

अवतीर्णेषु विप्रेषु व्यासः पुत्रसहायवान् । तूष्णीं ध्यानपरो धीमानेकांते समुपाविशत् ॥१॥
तमुवाचाशरीरी वाक् व्यासं पुत्रसमन्वितम् । भो भो महर्षे वासिष्ठ ब्रह्मघोषो न वर्तते ॥२॥
एको ध्यानपरस्तूष्णीं किमास्से चिंतयन्निव । ब्रह्मघोषैर्विरहितः पर्वतोऽयं न शोभते ॥३॥
तस्मादधीष्व भगवन्सार्द्धं पुत्रेण धीमता । वेदान्वेदविदा चैव सुप्रसन्नमनाः सदा ॥४॥

अपना मनोरथ सफल जान कर शान्त और सुखी शुक देव चुपचाप उत्तर दिशा की ओर चले गए । हिमालय पर्वत पर जाकर उन्होंने देखा कि व्यास जी पैल आदि शिष्यों को वेद संहिता पढ़ा रहे हैं ॥५०½॥ शुद्धात्मा, सूर्य के समान तेजस्वी अरणिकुमार ने प्रसन्न मन से आदर के साथ पिता के चरणों का स्पर्श किया । चरण-वन्दन के अनन्तर उदारबुद्धि शुक ने राजा जनक से मोक्ष-साधन के विषय में जो कुछ वार्ता हुई थी, सब कह सुनाया ॥५१-५२½॥ वेदकर्त्ता व्यास का अन्तःकरण पुत्र के मुख से सारी कथा को सुनकर खिल उठा । उन्होंने अपने शुक को गले से लगा लिया और अपने बगल में बैठाया ॥५४॥ इसके बाद पैल आदि वेदपाठी ब्राह्मण व्यास मुनि से सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन कर उस पर्वत के शिखर पर से उतर कर पृथ्वी पर आये और वेद पढ़ाने तथा यज्ञ कराने के कार्य में संलग्न हो गए ॥५५॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वभाग में उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥५९॥

अध्याय ६०

सनत्कुमार का शुक को ज्ञानोपदेश

सनन्दन ने कहा—पैल आदि विप्रों के चले जाने पर पुत्र के साथ व्यास जी चुपचाप एकान्त में ध्यान मग्न हो गए ॥१॥ उसी समय पुत्र के सहित ध्यान मग्न व्यास के प्रति आकाशवाणी हुई कि हे वासिष्ठ ! महर्षि ! इस समय ब्रह्मघोष (वेद ध्वनि) नहीं हो रही है, तुम क्यों एकान्त में ध्यानमग्न हो कर विचार करते हुए से बैठे हो । वेद-ध्वनि के विना इस पर्वत की शोभा नहीं हो रही है ॥२-३॥ इसलिये भगवन् ! सदा प्रसन्नमन से इस वेदवेत्ता धीमान् पुत्र के साथ वेदों का अध्ययन करो ॥४॥ व्यास जी इस प्रकार की आकाशवाणी को सुन कर

तच्छ्रुत्वा वचनं व्यासो नभोवाणीसमीरितम् । शुकेन सह पुत्रेण वेदाभ्यासमथाकरोत् ॥५॥
तयोरभ्यसतोरेवं बहुकालं द्विजोत्तम । वातोऽतिमात्रं प्रववौ समुद्रानिलवीजितः ॥६॥
ततोऽनध्याय इति तं व्यासः पुत्रमवारयत् । शुको वारितमात्रस्तु कौतूहलसमन्वितः ॥७॥
अपृच्छत्पितरं तत्र कुतो वायुरभूदयम् । आख्यातुमर्हति भवान्सर्वं वायोर्विचेष्टितम् ॥८॥
शुकस्यैतद्वचः श्रुत्वा व्यासः परमविस्मितः । अनध्यायनिमित्तेऽस्मिन्निदं वचनमब्रवीत् ॥९॥
दिव्यं ते चक्षुरुत्पन्नं स्वस्थं ते निश्चलं मनः । तमसा रजसा चापि त्यक्तः सत्ये व्यवस्थितः ॥१०॥
तस्यात्मनि स्वयं वेदान्बुद्ध्वा समनुचिंतय । देवयानचरो विष्णोः पितृयानश्च तामसः ॥११॥
द्वावेतौ प्रत्ययं यातौ दिवं चाधश्च गच्छतः । पृथिव्यामंतरिक्षे च यतः संयांति वायवः ॥१२॥
सप्त ते वायुमार्गा वै तान्निबोधानुपूर्वशः । तत्र देवगणाः साध्याः समभूवन्महाबलाः ॥१३॥
तेषामप्यभवत्पुत्रः समानो नाम दुर्जयः । उदानस्तस्य पुत्रोऽभूद्व्यानस्तस्याभवत्सुतः ॥१४॥
अपानश्च ततो जज्ञे प्राणश्चापि ततः परम् । अनपत्योऽभवत्प्राणो दुर्द्धर्षः शत्रुमर्दनः ॥१५॥
पृथक्कर्माणि तेषां तु प्रवक्ष्यामि यथा तथा । प्राणिनां सर्वतो वायुश्चेष्टा वर्तयते पृथक् ॥१६॥
प्रीणनाच्चैव सर्वेषां प्राण इत्यभिधीयते । प्रेषयत्यभ्रसंघातान्धूमजांश्चोष्मजांस्तथा ॥१७॥
प्रथमः प्रथमे मार्गे प्रवहो नाम सोऽनिलः । अंबरे स्नेहमात्रेभ्यस्तडिद्भ्यश्चोत्तमद्युतिः ॥१८॥
आवहो नाम सोऽभ्येति द्वितीयः श्वसनो नदन् । उदयं ज्योतिषां शश्वत्सोमादीनां करोति यः ॥१९॥

पुत्र शुकदेव के साथ वेदाभ्यास करने लगे ॥५॥ द्विजोत्तम ! बहुत समय तक इन दोनों के इस प्रकार वेदाभ्यास करने के बाद एकाएक समुद्री वायु प्रेरित होकर जोरों से आंधी बहने लगी ॥६॥ यह देखकर 'अब अनध्याय का समय हो गया, यह कहकर व्यास ने पुत्र को पढ़ने से रोक दिया । इस प्रकार अध्ययन से रोके जाने पर शुकदेव को अत्यन्त आश्चर्य हुआ ॥७॥ उन्होंने पिता से पूछा कि यह प्रचण्ड वायु कहाँ से उत्पन्न हुआ ? आप वायु के प्रत्येक व्यापारों का वर्णन कीजिए ॥८॥ शुक के इस प्रश्न को सुनकर व्यास जी को परम विस्मय हुआ । उन्होंने अनध्याय के कारणभूत वायु के विषय में आगे की बातें बताईं ॥९॥ कि---तुम्हें दिव्य चक्षु प्राप्त हो गया है, तुम्हारा स्वस्थ और निश्चल मन तम और रज को छोड़ कर सत्य पर अटल हो गया है ॥१०॥ इसलिए अपने मन में वेदों का अनुचिन्तन कर विचार करो । विष्णु लोक का पथ देवयान चर है और पितृ यान तमसाच्छन्न या तामस है ॥११॥ स्वर्ग और पितर लोक को जाने वालों के लिये ये दो मार्ग हैं । पृथ्वी और अन्तरिक्ष में सात मार्ग से वायु बहता है, अतः उन सात वायुमार्गों को तुम यथार्थ रूप से समझ लो ॥१२½॥ सब से पहले साध्य नाम के अत्यन्त बलवान् देवगण हुए । उनका समान नामक एक अजेय पुत्र हुआ, समान का पुत्र उदान और उदान के व्यान नामक पुत्र हुआ । व्यान के अपान और अपान के प्राण नामक पुत्र हुआ । दुर्धर्ष और शत्रु को पराजित करने वाले प्राण को कोई पुत्र नहीं हुआ ॥१३-१५॥ उनके जो पृथक् पृथक् कर्म हैं उनको कह रहा हूँ । वायु ही सब प्राणियों को गति और स्फूर्ति प्रदान करता है ॥१६॥ सब प्राणियों को तृप्त करने के कारण वायु को प्राण कहते हैं । मेघों को चाहे वे धुयें से उत्पन्न हुए हों या ताप से जो प्रथम मार्ग में ले जाता है वह प्रवह नामक वायु है ॥१७½॥ आकाश में सम्पूर्ण स्नेहमय पदार्थों और विद्युत् से भी उत्कृष्ट प्रकाश वाला जो दूसरा अनिल है उसका नाम आवह है, जो ध्वनि करता हुआ बहता है ॥१८½॥ जो सर्वदा चन्द्रमा आदि ज्योतिष्क पिण्डों को उदित करता है और शरीर के भीतर संचरणशील जिस वायु को मनीषी उदान कहते हैं, जो चारों

अंतर्देहेषु चोदानं यं वदंति मनीषिणः । यश्चतुर्भ्यः समुद्रेभ्यो वायुर्धारयते जलम् ॥२०॥
उद्धृत्य ददते चापो जीमूतेभ्यो वनेऽनिलः । योऽद्भिः संयोज्य जीमूतात्पर्जन्याय प्रयच्छति ॥२१॥
उद्वहो नाम बंहिष्ठस्तृतीयः स सदागतिः । संनीयमाना बहुधा येन नीला महाघनाः ॥२२॥
वर्षमोक्षकृतारंभास्ते भवंति घनाघनाः । योऽसौ वहति देवानां विमानानि विहायसा ॥२३॥
चतुर्थः संवहो नाम वायुः स गिरिमर्दनः । येन वेगवता रुग्णाः क्रियन्ते तरुजा रसाः ॥२४॥
पंचमः स महावेगो विवहो नाम मारुतः । यस्मिन्परिप्लवे दिव्या वहंत्यापो विहायसा ॥२५॥
पुण्यं चाकाशगंगायास्तोयं तिष्ठति तिष्ठति । दूरात्प्रतिहतो यस्मिन्नेकरश्मिर्दिवाकरः ॥२६॥
योनिरंशुसहस्रस्य येन याति वसुंधराम् । यस्मादाप्यायते सोमो निधिर्दिव्योऽमृतस्य च ॥२७॥
षष्ठः परिवहो नाम स वायुर्जीवतांवरः । सर्वप्राणभृतां प्राणान्योऽन्तकाले निरस्यति ॥२८॥
यस्य धर्मेऽनुवर्तेते मृत्युवैवस्वतावुभौ । सम्यगन्वीक्षता बुद्धया शांतयाऽध्यात्मनित्यया ॥२९॥
ध्यानाभ्यासाभिरामाणां योऽमृतत्वाय कल्पते । यं समासाद्य वेगेन दिशामंतं प्रपेदिरे ॥३०॥
दक्षस्य दश पुत्राणां सहस्राणि प्रजापतेः । येन वृष्टया पराभूतस्तोयान्येन निवर्तंते ॥३१॥
परीवहो नाम वरो वायुः स दुरतिक्रमः । एवमेते दितेः पुत्रा मरुतः परमाद्भुताः ॥३२॥
अनारमंतः सर्वांतः सर्वगाः सर्वचारिणः । एतत्तु महदाश्चर्यं यदयं पर्वतोत्तमः ॥३३॥
कंपितः सहसा तेन पवमानेन वायुना । विष्णोर्निःश्वासवातोऽयं यदा वेगसमीरितः ॥३४॥

समुद्रों से जल खींचता है, जो जीमूत नामक मेघों से जल लेकर वनों में वर्षा करता है, जो पुनः जीमूतों को जल से भर देता और पर्जन्य को जल से युक्त कर देता है, वह तीसरा सदा गतिशील रहने वाला और प्रशंसनीय उद्वह कहलाता है ॥१९-२१½॥ जो नील महामेघों को प्रायः इधर-उधर पहुँचाता है, जिसके कारण वे घने मेघ वर्षा बरसाते और रोकते हैं और जो देव विमानों को आकाश में इधर-उधर उड़ाता है वह चौथा पर्वतों का मान मर्दन करने वाला मारुत संवह है ॥२२-२३½॥ जिस वेगवान् वायु से वृक्षों से उत्पन्न रस में रोग के कीटाणु घुस जाते हैं वह पांचवाँ महा वेग वाला मारुत विवह है ॥२४½॥ जिसके आधार पर आकाश में दिव्य जल प्रवाहित होते हैं, जो आकाश गंगा के पवित्र जल को धारण कर के स्थित है और जिसके द्वारा दूर से ही प्रतिहत होकर सहस्रों किरणों के उत्पत्तिस्थान सूर्य देव एक ही किरण से युक्त प्रतीत होते हैं, जिनसे यह पृथ्वी प्रकाशित होती है तथा अमृत की दिव्यनिधि चन्द्रमा का भी जिससे पोषण होता है, उस छठे वायु का नाम 'परिवह' है। वह सम्पूर्ण जीवनधारियों में श्रेष्ठ है ॥२४-२७॥½॥

जो सब प्राणियों के प्राण को मृत्यु के समय खींच लेता है, मृत्यु और वैवस्वत जिसके वशवर्ती हैं, ध्यान और योगाभ्यास में लीन रहने वाले योगी जिसको नित्य अध्यात्म और शान्त बुद्धि से भली भाँति देखकर अमृतत्व प्राप्त करते हैं, जिस वायु के वेग में पड़कर प्रजापति दक्ष के दश हजार पुत्र बड़े वेग से सम्पूर्ण दिशाओं के अन्त में पहुँच गए तथा जिससे वृष्टि का जल तिरोहित होकर वर्षा बन्द होजाती है, वह परीवह नामक श्रेष्ठ वायु है जिसको कोई किसी प्रकार अपने वश में नहीं कर सकता ॥२८-३१½॥ इस प्रकार इतने दिति के परम आश्चर्यजनक पुत्र वायु हैं। ये मरुत् सबके अन्तःकरण में प्रवेश करने वाले, सर्वत्र गतिशील, सर्वव्यापक और सब स्थानों पर पहुँचने वाले हैं ॥३२½॥ यह एक आश्चर्यजनक बात है, कि उस वायु के चलने से यह गिरिराज हिमालय भी सहसा हिल उठा। जब विष्णु के निःश्वास से निकला हुआ यह वायु बड़े वेग से सहसा उठता है तो उस समय यह संसार इस वायु से अत्यंत व्यथित हो जाता है ॥३३-३४½॥ ब्रह्मन् ! इसलिए

सहसोदीर्यते तात जगत्प्रव्यथते तदा । तस्माद्ब्रह्मविदो ब्रह्म न पठंत्यतिवायुतः ॥३५॥
वायोर्वायुभयं ह्युक्तं ब्रह्म तत्पीडितं भवेत् । एतावदुक्त्वा वचनं पराशरसुतः प्रभुः ॥३६॥
उक्त्वा पुत्रमधीष्वेति व्योमगंगामगात्तदा । ततो व्यासे गते स्नातु शुको ब्रह्मविदां वरः ॥३७॥
स्वाध्यायमकरोद्ब्रह्मन्वेदवेदांगपारगः । तत्र स्वाध्यायसंसक्तं शुकं व्याससुतं मुने ॥३८॥
सनत्कुमारो भगवानेकांते समुपागतः । उत्थाय सत्कृतस्तेन ब्रह्मपुत्रो हि कार्ष्णिना ॥३९॥
ततः प्रोवाच विप्रेंद्र शुकं वेदविदां वरः । किं करोषि महाभाग व्यासपुत्रमहाद्युते ॥४०॥

शुक उवाच

स्वाध्याये संप्रवृत्तोऽहं ब्रह्मपुत्राधुना स्थितः । त्वद्दर्शनमनुप्राप्तः केनापि सुकृतेन च ॥४१॥
किंचित्त्वां प्रष्टुमिच्छामि तत्त्वं मोक्षार्थसाधनम् । तद्वदस्व महाभाग यथा तज्ज्ञानमाप्नुयाम् ॥४२॥

सनत्कुमार उवाच

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति विद्यासमं तपः । नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम् ॥४३॥
निवृत्तिः कर्मणः पापात्सततं पुण्यशीलता । सद्वृत्तिः समुदाचारः श्रेय एतदनुत्तमम् ॥४४॥
मानुष्यमसुखं प्राप्य यः सज्जति स मुह्यति । नालं स दुःखमोक्षाय संगो वै दुःखलक्षणः ॥४५॥
सक्तस्य बुद्धिर्भवति मोहजालविवर्द्धिनी । मोहजालावृतो दुःखमिहामुत्र तथाश्नुते ॥४६॥

इस प्रकार के अद्भुत वायु के चलने के कारण ब्रह्मज्ञानी अपने वेदाध्ययन को बन्द कर देते हैं ॥३५॥ वायु के द्वारा जो भय होता है उसको कह दिया गया, इस वायु से ब्रह्म भी पीड़ित होता है । पराशर पुत्र प्रभु व्यास इस प्रकार पुत्र से कहकर और हे पुत्र ! अब स्वाध्याय करो, ऐसा कहकर व्योमगंगा में नहाने के लिए चले गये । नारद ! स्नान करने के लिए जब व्यास जी चले गये तब ज्ञानियों में श्रेष्ठ वेद-वेदांगों के पारगामी विद्वान् शुकदेव जी ने अपना स्वाध्याय प्रारम्भ किया ॥३६–३७½॥

मुने ! उस समय जब कि व्यासपुत्र शुकदेव जी एकान्त में स्वाध्याय में मग्न थे भगवान् सनत्कुमार उनके समीप आये । व्यासपुत्र ने उठकर ब्रह्मपुत्र का स्वागत किया । विप्रेन्द्र ! शुकदेव से सत्कृत होने के बाद वेदज्ञों में श्रेष्ठ ऋषि ने पूछा—व्यासपुत्र! महाभाग! महद्युति ! क्या कर रहे हो ? ॥३८–४०॥

शुक ने कहा—ब्रह्मपुत्र! इस समय यहाँ बैठा बैठा स्वाध्याय कर रहा हूँ, आज आपका यह दर्शन मेरे किसी पूर्वजन्म के सुकृत से हुआ है ॥४१॥ महाभाग ! आज मैं आप से मोक्ष प्राप्ति के साधन के विषय में कुछ पूछना चाहता हूँ, कृपा कर आप मुझे इस विषय में कुछ बतावें जिससे कि मोक्ष विषयक ज्ञान पा जाऊँ ॥४२॥

सनत्कुमार बोले— विद्या के समान नेत्र नहीं, न तो विद्या के समान कोई तपस्या ही है । राग के समान कोई दुःख नहीं, न तो त्याग के समान सुख है ॥४३॥ समस्त पाप कर्मों से सर्वदा दूर रहना, सदा पुण्य का संचय करते रहना, साधु पुरुषों के व्यवहार को अपनाना और उत्तम सदाचार का पालन करना, ये सर्वोत्तम श्रेय हैं ॥४४॥ जो अश्रेयस्कर इन्द्रिय-सुखों में आसक्त होता है, अज्ञान के अन्धकार में पतित होता है, वह कभी भी दुःखों से मुक्त नहीं हो सकता क्योंकि संग (आसक्ति) ही दुःख का प्रधान लक्षण है ॥४५॥ आसक्त व्यक्ति को मोह बढ़ाने वाली बुद्धि होती है और मोह-जाल में फँसा व्यक्ति दोनों लोकों में दुःख पाता है,

सर्वोपायेन कामस्य क्रोधस्य च विनिग्रहः । कार्यः श्रेयोर्थिना तौ हि श्रेयोघातार्थमुद्यतौ ॥४७॥
नित्यं क्रोधात्तपो रक्षेच्छ्रियं रक्षेच्च मत्सरात् । विद्यां मानावमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः ॥४८॥
आनृशंस्यं परा धर्मः क्षमा च परमं बलम् । आत्मज्ञानं परं ज्ञानं सत्यं हि परमं हितम् ॥४९॥
येन सर्वं परित्यक्तं स विद्वान्स च पंडितः । इंद्रियैरिंद्रियार्थेभ्यश्चरत्यात्मवशैरिह ॥५०॥
असज्जमानः शांतात्मा निर्विकारः समाहितः । आत्मभूतैरतद्भूतः सह चैव विनैव च ॥५१॥
स विमुक्तः परं श्रेयो न चिरेणाधिगच्छति । अदर्शनमसंस्पर्शस्तथैवाभाषणं सदा ॥५२॥
यस्य भूतैः सह मुने स श्रेयो विंदते महत् । न हिंस्यात्सर्वभूतानि मैत्रायणश्चरेत् ॥५३॥
नेदं जन्म समासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित् । आकिंचन्यं सुसंतोषो निराशिष्ट्वमचापलम् ॥५४॥
एतदाहुः परं श्रेय आत्मज्ञस्य जितात्मनः । परिग्रहं परित्यज्य भव तात जितेंद्रियः ॥५५॥
अशोकं स्थानमातिष्ठं इह चामुत्र चाभयम् । निराशिषो न शोचंति त्यजेदाशिषमात्मनः ॥५६॥
परित्यज्याशिषं सौम्य दुःखग्रामाद्विमोक्ष्यसे । तपोनित्येन दांतेन मुनिना संयतात्मना ॥५७॥
अजितं जेतुकामेन भाव्यं संगेष्वसंगिना । गुणसंगेष्वनासक्त एकचर्यारतः सदा ॥५८॥
ब्राह्मणो न चिरादेव सुखमायात्यनुत्तमम् । द्वंद्वारामेषु भूतेषु वराको रमते मुनिः ॥५९॥

॥४६॥ श्रेयार्थी को सब प्रकार से काम और क्रोध को अपने वश में करना चाहिए क्योंकि ये दोनों श्रेय के
विघात में सर्वदा तत्पर रहते हैं ॥४७॥ नित्य प्रति क्रोध से तप की और मात्सर्य से श्री की रक्षा करनी
चाहिए। मान और अपमान से विद्या की और प्रमाद से आत्मा (ज्ञान) की रक्षा श्रेयस्कर है ॥४८॥ दया परम
धर्म और क्षमा परम बल है। आत्मज्ञान परम ज्ञान और सत्य परम हित है ॥४९॥ जिसने सर्वस्व का त्याग
कर दिया है वह पंडित और विद्वान् है। इस संसार में जितेन्द्रिय व्यक्ति विषयों का सेवन केवल इन्द्रियों से ही करते
है, उनमें आसक्त नहीं होते ॥५०॥ अनासक्त, शांतचित्त, निर्विकार, एकाग्रचित्त और आत्मीय जनों के भाव अथवा
अभाव दोनों अवस्थाओं में आसक्त न होने वाला व्यक्ति मुक्त है और उसको श्रेय शीघ्र प्राप्त हो जाता है ॥५१½॥
मुने ! जो प्राणी को नहीं देखता, न उससे बोलता और न तो उनका स्पर्श करता है अर्थात् आत्माराम
है, उसको परम श्रेय प्राप्त होता है, ॥५२½॥ किसी प्राणी की हिंसा न करे, सबसे मित्र भाव रखे और यह
मानव जन्म पाकर किसी से वैर न करे, ॥५३½॥ आत्मज्ञ और जितात्मा के लिए दरिद्रता, संतोष, निराशा और
धीरता ही परम श्रेय माना गया है। आपने तो परिग्रह का त्याग कर जितेन्द्रियता प्राप्त कर ली है। अब इस
लोक और परलोक में अभय हो अशोक (निश्चिन्त) स्थान ग्रहण करें ॥५४–५५½॥ किसी से कुछ आशा न
रखने वाले व्यक्ति किसी प्रकार की चिन्ता में नहीं पड़ते हैं। इसलिये अपने स्वार्थ की आशा का त्याग कर देना
चाहिए। सौम्य ! तुम आत्मसुख की भावना का परित्याग कर दुःखों और श्रम से मुक्त हो जाओगे ॥५६½॥ नित्य
तपस्या में लीन रहने वाले संयमी उदार मुनि को चाहिए कि वह सम्पूर्ण संगों अर्थात् आसक्ति उत्पन्न करने
वाले विषयों को जीतने का प्रयत्न करे। सांसारिक विषयों में लिप्त न रहने वाला, सदा एकान्तवास करने वाला
ब्राह्मण अतिशीघ्र अनुत्तम सुख को प्राप्त करता है। पराक व्रतशील मुनि सुख-दुःखों के देने वाले विषयों में
कभी लिप्त नहीं होते हैं। स्वल्प ज्ञान वाले उस स्थित को प्राप्त नहीं करते हैं। परन्तु ज्ञानतृप्त व्यक्ति किसी
प्रकार का शोक नहीं करते हैं। ॥५७–५९½॥

॥६०॥
किंचित्प्रज्ञानतृप्तोऽसौ ज्ञानतृप्तो न शोचति । शुभैर्लभेत देवत्वं व्यामिश्रैर्जन्म मानुषम् ॥६१॥
अशुभैश्चाप्यधो जन्म कर्मभिर्लभतेऽवशः । तत्र मृत्युजरादुःखैः सततं समभिद्रुतम् ॥६२॥
संसारं पश्यते जंतुस्तत्कथं नावबुध्यसे । अहिते हितसंज्ञस्त्वमध्रुवे ध्रुवसंज्ञकः ॥६३॥
अनर्थे वार्थसंज्ञस्त्वं किमर्थं नावबुध्यसे । संवेष्टयमानं बहुभिर्मोहतंतुभिरात्मजैः ॥६४॥
कोशकारवदात्मानं वेष्टितो नावबुध्यसे । अलं परिग्रहेणेह दोषवान् हि परिग्रहः ॥६५॥
कृमिर्हि कोशकारस्तु बध्यते स्वपरिग्रहात् । पुत्रदारकुटुंबेषु सक्ताः सीदंति जंतवः ॥६६॥
सरःपंकार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव । मोहजालसमाकृष्टान्पश्य जंतून्सुदुःखितान् ॥६७॥
कुटुंबं पुत्रदारं च शरीरं द्रव्यसंचयम् । पारक्यमध्रुवं सर्वं किं स्वं सुकृतदुष्कृते ॥६८॥
यदा सर्वं परित्यज्य गंतव्यमवशेन वै । अनर्थे किं प्रसक्तस्त्वं स्वमर्थं नानुतिष्ठसि ॥६९॥
अविश्रांतमनालंबमपाथेयमदेशिकम् । तमःकर्त्तारमध्वानं कथमेको गमिष्यसि ॥७०॥
नहि त्वां प्रस्थितं कश्चित्पृष्ठतोऽनुगमिष्यति । सुकृतं दुष्कृतं च त्वां गच्छंतमनुयास्यतः ॥७१॥
विद्या कर्म च शौर्यं च ज्ञानं च बहुविस्तरम् । अर्थार्थमनुशीर्यंते सिद्धार्थस्तु विमुच्यते ॥७२॥
निबंधिनी रज्जुरेषा या ग्रामे वसतो रतिः । छित्त्वेनां सुकृतो यांति नैनां छिंदंति दुष्कृतः

शुभ कर्मों के करने से मनुष्य देवत्व प्राप्त करता है, शुभ-अशुभ दोनों कर्मों के कारण मानव-जन्म और अशुभ कर्मों के कारण अवश प्राणी अधम योनियों में जन्म ग्रहण करता है ॥६०½॥ इस प्रकार जीव अपने कर्मों के कारण भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म लेकर मृत्यु, बुढ़ापा और दुःखों से सर्वदा पीड़ित होकर संसार में भ्रमण करता रहता है। इसको देखकर क्यों नहीं इसका रहस्य समझ लेते हो? ॥६१½॥ तुम तो इस अहितकर संसार में हितकर विषयों के ज्ञाता हो, अनित्य जगत् में नित्य के ज्ञाता और अनर्थ का त्याग कर अर्थवान् (सार्थक) विषयों के ज्ञाता हो, तो क्यों नहीं इस रहस्य को समझ लेते हो? ॥६२½॥ स्वयम् आत्म-अज्ञान के कारण उत्पन्न मोह की रस्सियों में अपने को बाँध लेने वाले तुम अपने को रेशम के कीड़े की भाँति नहीं पहचान पाते हो (अर्थात्) जीव अपने को अपने ही अज्ञान के जाल में फँसाकर अपने दुःख का कारण बनता है ॥६३½॥ इस लिये परिग्रह (संग्रह) का त्याग करो। इसमें कुछ भी लाभ नहीं है, क्योंकि संग्रह सर्वथा सदोष होता है। रेशम का कोड़ा अपने ही तन्तुओं में बँध जाता है। उसी प्रकार जीव भी स्त्री, पुत्र और परिवार के चक्कर में पड़कर सर्वदा कष्ट पाते रहते हैं ॥६४–६५॥ तालाब के कीचड़ में फँसे जंगल के बूढ़े हाथी के समान मोह-जाल में फँसे इन अत्यन्त दुःखी जीवों को देखो ॥६६॥ जब कि कुटुम्ब पुत्र, स्त्री, शरीर, संचित द्रव्य राशि, सुकृत, पाप आदि अनित्य और परकीय पदार्थों को छोड़कर अवश प्राणी को अवश्य ही इस लोक से चला जाना है तब तुम इस रहस्य को जानते हुए भी क्यों नहीं आत्म कल्याणार्थ प्रयत्न करते हो ॥६७–६८॥ तुम इस निरवलंब, कभी भी विश्राम के लिए अवसर न पाने योग्य, पाथेय रहित, देश आदि से शून्य और अन्धकाराच्छन्न परलोक मार्ग पर कैसे अकेले चल सकते हो? ॥६९॥ जब तुम इस लोक को छोड़कर परलोक चलोगे तब तुम्हारे पीछे-पीछे सहायता के लिए कौन जायेगा? केवल तुम्हारे पाप-पुण्य ही तुम्हारा अनुसरण करेंगे ॥७०॥ केवल स्वार्थसिद्धि के लिए पढ़ी हुई विद्या, किये हुए कर्म, शौर्य अथवा विस्तृत ज्ञान उस समय काम नहीं देते हैं। केवल शुभ कार्य करने वाला सिद्धार्थ योगी ही मोक्ष का अधिकारी होता है ॥७१॥ विषय समूह अथवा लोक में आसक्ति उत्पन्न करने वाली ममता जीव को बन्धन में डालने वाली रस्सी है। सुकृती जन इस रस्सी को तोड़-कर मुक्त हो जाते हैं, परन्तु पापी इसको तोड़ नहीं पाते हैं ॥७२॥ जीव अपने ही समान जाति, रूप

तुल्यजातिवयोरूपान् हृतान्पश्यसि मृत्युना । न च नामास्ति निर्वेदो लोहं हि हृदयं तव ॥७३॥
रूपकूलां मनःस्रोतां स्पर्शद्वीपां रसावहाम् । गंधपंकां शब्दजलां स्वर्गमार्गदुरारुहाम् ॥७४॥
क्षमारित्रां सत्यमयीं धर्मस्थैर्यकराकराम् । त्यागवाताध्वगां शीघ्रां बुद्धिनावं नदीं तरेत् ॥७५॥
त्यक्त्वा धर्ममधर्मं च ह्युभे सत्यानृते त्यज । त्यज धर्ममसंकल्पादधर्मं चाप्यहिंसया ॥७६॥
उभे सत्यानृते बुध्वा बुद्धिं परमनिश्चयात् । अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ॥७७॥
धर्मावनद्धं दुर्गंधि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः । जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमस्थिरम् ॥७८॥
रजस्वलमनित्यं च भूतावासं समुत्सृज । इदं विश्वं जगत्सर्वमजगच्चापि यद्भवेत् ॥७९॥
महाभूतात्मकं सर्वमस्माद्यत्परमाणुमत् । इंद्रियाणि च पंचैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥८०॥
इत्येष सप्तदशको राशिरव्यक्तसंज्ञकः । सर्वैरिहेंद्रियार्थैश्च व्यक्ताव्यक्तैर्हि बृंहितम् ॥८१॥
पंचविंशक इत्येष व्यक्ताव्यक्तमयो गणः । एतैः सर्वैः समायुक्तमनित्यमभिधीयते ॥८२॥
त्रिवर्गोऽत्र सुखं दुःखं जीवितं मरणं तथा । य इदं वेद तत्त्वेन स वेद प्रभवाप्ययौ ॥८३॥
इन्द्रियैर्गृह्यते यद्यत्तद्वयक्तमभिधीयते । अव्यक्तमथ तज्ज्ञेयं लिंगग्राह्यमतींद्रियम् ॥८४॥
इन्द्रियैर्नियतैर्देही धाराभिरिव तर्प्यते । लोके विहितमात्मानं लोकं चात्मनि पश्यति ॥८५॥
परावरदृशः शक्तिर्ज्ञानवेलां न पश्यति । पश्यतः सर्वभूतानि सर्वावस्थासु सर्वदा ॥८६॥

और आयु वाले साथियों को मृत्यु मुख में जाते हुए देखते हैं। परन्तु शोक है कि तुम्हारे सदृश जीवों की आखें यह देखकर भी नहीं खुलतीं और कुछ भी निर्वेद नहीं होता। सचमुच तुम्हारा हृदय लोहे का है, ॥७३॥ रूप रूपी तट, मन रूपी स्रोत, स्पर्श रूपी द्वीप, रस रूपी वेग, गंधरूपी पंक, शब्द रूपी जल और स्वर्ग मार्ग की ओर कभी भी न ले जाने वाली संसार रूपी नदी को क्षमा रूपी पतवार वाली, सत्यमयी, धर्म रूपी लंगर वाली और त्याग रूपी वायु के सहारे खेई जाने वाली शीघ्रगामिनी बुद्धि रूपी नाव से पार करना चाहिए ॥७४–७५॥ धर्म और अधर्म की भावना को छोड़कर सत्य और असत्यद्वन्द्व का त्याग करो। धर्म को असंकल्प द्वारा और अहिंसा से अधर्म का नाश करो ॥७६॥ और सत्य तथा अनृत को भली भाँति समझकर अपनी निश्चयात्मिका बुद्धि द्वारा हड्डियों के ढाँचे और नसों से युक्त मांस और रक्त के लेप से लिप्त, धर्म से बँधी, दुर्गन्धपूर्ण, मलमूत्र से भरी, जरा और शोक से घिरी, रोग का घर, अस्थिर, धूलि से भरी इस अनित्य देह में आसक्ति न रखो ॥७७–७८½॥ यह सारा जगत् (चर) और अजगत् (अचर) रूपात्मक विश्व तथा महाभूतात्मक पदार्थ इसके अतिरिक्त परमाणु वाले पदार्थ पाँचों इन्द्रियाँ, तम, सत्त्व, और रज ये सत्रह प्रकार के पदार्थ अव्यक्त कहलाते हैं। ॥७९–८०½॥ इस संसार में सब इन्द्रिय-विषय व्यक्त और अव्यक्त का समूह, पचीस प्रकार के पदार्थ व्यक्ताव्यक्त हैं। इन सबसे युक्त पदार्थ अनित्य कहे जाते हैं ॥८१–८२॥ त्रिवर्ग, सुखदुःख, जीवन और मरण इन सबको जो यथार्थरूप से समझता है वह उत्पत्ति और विनाश दोनों को जानता है ॥८३॥ इन्द्रियों से जिसको ग्रहण किया जाता है, उसको व्यक्त और जो इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य नहीं है और जिसका अनुमान आदि से ग्रहण होता है, उसको अव्यक्त कहते हैं ॥८४॥ नियत इन्द्रियों से जल धारा के समान आत्मा की तृप्ति होती है। संसार में अपने को और अपने में संसार को देखता है, जो आत्म दर्शन की शक्ति से सम्पन्न है, वह ज्ञान वेला को नहीं देखता है ॥८५½॥ जो सर्वदा सब अवस्थाओं में सब प्राणियों को देखता है। और जो ब्रह्म स्वरूप है उसका अशुभ कभी नहीं होता है ॥८६½॥ ज्ञान के द्वारा ही कायिक विविध क्लेशों से छुट-

ब्रह्मभूतस्य संयोगो नाशुभेनोपपद्यते । ज्ञानेन विविधाःक्लेशाःन निवृत्तिश्च देहजात् ॥८७॥
लोकबुद्धिप्रकाशेन लोकमार्गो न रिष्यति । अनादिनिधनं जंतुमात्मनि स्थितमव्ययम् ॥८८॥
अकर्तारममूढं च भगवानाह तीर्थवित् । यो जन्तुः स्वकृतैस्तैस्तैः कर्मभिर्नित्यदुःखितः ॥८९॥
स्वदुःखप्रतिघातार्थं हंति जंतुरनेकधा । ततः कर्म समादत्ते पुनरन्यन्नवं बहु ॥९०॥
तप्यतेऽथ पुनस्तेन भुक्त्वाऽपथ्यमिवातुरः । अजस्रमेव मोहांतो दुःखेषु सुखसंज्ञितः ॥९१॥
वध्यते तप्यते चैव भयवत्कर्मभिः सदा । ततो निवृत्तो बंधात्स्वात्कमणामुदयादिह ॥९२॥
परिभ्रमति संसारे चक्रवद्बाहुर्वजितः । संयमेन च संबंधान्निवृत्या तपसो बलात् ॥९३॥
॥९४॥
सम्प्राप्ता बहवः सिद्धि अव्याबाधां सुखोदयाम् ।

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे द्वितीयपादे बृहदुपाख्याने षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

अशोकं शोकनाशार्थं शास्त्रं शांतिकरं शिवम् । निशम्य लभ्यते बुद्धिर्लब्धायां सुखमेधते ॥१॥
हर्षस्थानसहस्राणि शोकस्थानशतानि च । दिवसे दिवसे मूढमाविशंति न पंडितम् ॥२॥

कारा नहीं होता है। केवल लौकिक ज्ञान के प्रकाश से लोक मार्ग पर नहीं चला जाता है अर्थात् लोक यात्रा सफल नहीं होती है। इसके लिए अध्यात्म ज्ञान की भी आवश्यकता है ॥८७½॥ आत्म-सन्तुष्ट, अव्यय, जन्म-मरण से रहित, अकर्ता और अविवेकी जीव को भगवान् और तीर्थज्ञ कहा जाता है ॥८८½॥ जो जीव अपने किये हुए कर्मों के कारण नित्य दुःखी रहता है और अपने दुःखों के विनाश के लिए अनेक प्रकार के जीवों की हत्या करता है, फिर अनेक कर्मों में अपने को फंसाता है, वह उन कर्मों से उसी प्रकार संतप्त होता है, जिस प्रकार अपथ्य भोजन से रोगी ॥८९–९०½॥ वह सर्वदा सुख के भ्रम से दुःखों में फंसकर कष्ट पाता और उन भयोत्पादक कर्मों के कारण मृत्यु-कष्ट में पड़ता है ॥९१½॥ पुनः अपने शुभ कर्मों के उदय से दुष्कर्मों के बन्धन से छूटकर इस संसार में चक्र की भाँति परवश होकर भ्रमण करता है। इसके विपरीत संयम, निवृत्ति, भक्ति और तपस्या के बल से सुखप्रद, शुभ सिद्धियों को मनुष्य प्राप्त करते हैं ॥९२–९४॥

श्रीनारदीयपुराण के पूर्वभाग के द्वितीयपाद में साठवां अध्याय समाप्त ॥६०॥

अध्याय ६१

सनत्कुमार बोले—शोक नाश के लिये शान्तिप्रद, शुभ, शोक-विनाशक शास्त्र का अध्ययन या श्रवण करने से ज्ञान और ज्ञान से सुख की प्राप्ति होती है ॥१॥ प्रति दिन मूढ़ मानव सैकड़ों प्रकार के दुःख और सुखों

अनिष्टसंप्रयोगाच्च विप्रयोगात्प्रियस्य च । मनुष्या मानसैर्दुःखैर्युज्यन्ते येऽल्पबुद्धयः ॥३॥
द्रव्येषु समतीतेषु ये गुणास्तान्न चिंतयेत् ।ताननाद्रियमाणश्च स्नेहबन्धाद्विमुच्यते ॥४॥
दोषदर्शी भवेत्तत्र यत्र रागः प्रवर्त्तते । अनिष्टवुद्धितां यच्छेत्ततः क्षिप्रं विराजते ॥५॥
नार्थो न धर्मो न यशो योऽतीतमनुशोचति । अस्याभावेन युज्येत तच्चास्य तु निवर्तते ॥६॥
गुणैर्भूतानि युज्यंते तथैव च न युज्यते । सर्वाणि नैतदेकस्य शोकस्थानं हि विद्यते ॥७॥
मृतं वा यदि वा नष्टं योऽतीतमनुशोचति । दुःखेन लभते दुःखं महानर्थं प्रपद्यते ॥८॥
दुःखोपघाते शारीरे मानसे चाप्युपस्थिते । यस्मिन्न शक्यते कर्तुं यत्नस्तन्नानुचिंतयेत् ॥९॥
भैषज्यमेतद्दुःखस्य यदेतन्नानुचिंतयेत् । चिंत्यमानं हि न व्येति भूयश्चाभिप्रवर्द्धते ॥१०॥
प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः । एतद्विज्ञाय सामर्थ्यं न वाल्यैः समतामियात् ॥११॥
अनित्यं जीवितं रूपं यौवनं द्रव्यसञ्चयः । आरोग्यं प्रियसंवासं न गृध्येत्पंडितः क्वचित् ॥१२॥
नाज्ञानप्रभवं दुःखमेकं शोचितुमर्हति । अशोचन्प्रतिकुर्वीत यदि पश्येदुपक्रमम् ॥१३॥
सुखात्प्रियतरं दुःखं जीविते नात्र संशयः । जरामरणदुःखेभ्यः प्रियमात्मानमुद्धरेत् ॥१४॥
भजंति हि शरीराणि रोगाः शारीरमानसाः । सायका इव तीक्ष्णाग्राः प्रयुक्ता दृढधन्विभिः ॥१५॥
व्याधितस्य चिकित्साभिस्त्रस्यतो जीवितैषिणः । आमयस्य विनाशाय शरीरमनुकृष्यते ॥१६॥

में फंसता हैं परन्तु पंडित नहीं ॥२॥ अवांछित वस्तु के संयोग और प्रिय वस्तु के वियोग से अल्प बुद्धि मनुष्यों को मानसिक कष्ट प्राप्त होता है ॥३॥ अतीत वस्तुओं के गुणों का चिन्तन नहीं करना चाहिए । ऐसी वस्तुओं और उनके गुणों की चिन्ता न करने वाला व्यक्ति स्नेह-बन्धन (आसक्ति) से मुक्त हो जाता है ॥४॥ जिस विषय को और अनुरक्ति हो उस विषय के दोषों को ही देखना चाहिए । इस प्रकार उसको अपना अनिष्टकारक समझने से मनुष्यों को उस विषय से विराग हो जाता है ॥५॥ जो अतीत विषयों का चिन्तन करता है उससे न तो उसका कुछ प्रयोजन ही सिद्ध होता है और न धर्म या यश ही मिलता है । जो इस भाव से विचार करता है, वह कष्टों से निवृत्त हो जाता है ॥६॥ प्राणी कभी विषय-गुणों में आसक्त होते हैं और कभी उससे विरक्त क्योंकि सब पदार्थ एक ही व्यक्ति के लिये शोक के कारण नहीं होते हैं । ॥७॥ जो मृत, नष्ट अथवा बीती हुई घटनाओं के लिए शोक करता है, वह अपनी इस दुःखजनक प्रवृत्ति के कारण दुःख पाता है और महान् अनर्थों के जाल में फंस जाता है ॥८॥ यदि शारीरिक या मानसिक दुःख में पड़ जाने पर उस दुःख को दूर नहीं किया जा सकता तो फिर उसके विषय में कुछ शोक करना ही व्यर्थ है ॥९॥ दुःख दूर करने की सबसे बड़ी औषधि यह है कि उसकी चिन्ता ही न करे, क्योंकि चिन्ता करने से दुःख बढ़ते ही हैं, घटते नहीं ॥१०॥ प्रज्ञा से मानस रोगों को और ओषधि से शरीर के रोगों को नष्ट करना चाहिए, इस सिद्धान्त को समझकर अपनी शक्ति से दुःखों को नष्ट करना चाहिए, इसके अतिरिक्त अन्य साधनों को अपनाने से समभाव की प्राप्ति नहीं होती ॥११॥ कभी और कहीं पर भी पंडित जीवन, रूप, यौवन, धन-संग्रह, आरोग्य, प्रिय साहचर्य आदि अनित्य वस्तुओं की इच्छा न करे ॥१२॥ अज्ञान के कारण उत्पन्न होने वाले एक दुःख की भी चिन्ता करना उचित नहीं, क्योंकि यदि मनुष्य किसी प्रकार की चिन्ता न कर उसके मूल कारणों पर विचार करे तो वह अवश्य उन दुःखों को दूर कर सकता है ॥१३॥ इस जीवन में निस्सन्देह सुख की अपेक्षा दुःख ही अधिक होता है । इसलिये बुढ़ापा, मृत्यु और दुःखों से अपने प्रिय आत्मा का उद्धार करना चाहिए ॥१४॥ वीर धनुर्धारी के फेंके हुए नुकीले बाणों की भाँति शारीरिक और मानसिक रोग मनुष्य के शरीर और मन में प्रवेश कर जाते हैं ॥१५॥ चिकित्साओं से भयभीत तथा जीने के इच्छुक रोगी के रोग को दूर करने में उसके शरीर का ही नाश होता है ॥१६॥ परन्तु वस्तुतः नदी की धारा

स्रंसति न निवर्तंते स्रोतांसि सरितामिव । आयुरादाय मर्त्यानां राज्यहानि: पुनःपुनः ॥१७॥
अपर्यंत्ययमत्यंतं पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः । जातं मर्त्यं जरयति निमिषं नावतिष्ठते ॥१८॥
सुखदुःखाभिभूतानामजरो जरयत्यसून् । आदित्यो ह्यस्तमभ्येति पुनःपुनरुदेति च ॥१९॥
अदृष्टपूर्वानादाय भावा नपरिशंकितान् । इष्टानिष्टा मनुष्याणां मतं गच्छन्ति रात्रयः ॥२०॥
यो यदिच्छेद्यथाकामं कामानां तत्तदाप्नुयात् । यदि स्यान्न पराधीनं पुरुषस्य क्रियाफलम् ॥२१॥
संयताश्चैव दक्षाश्च मतिमंतश्च मानवाः । दृश्यंते निष्फलाः संतः प्रहीनाश्च स्वकर्मभिः ॥२२॥
अपरे निष्फलाः सन्तो निर्गुणाः पुरुषाधमाः । आशाभिरप्यसंयुक्ता दृश्यन्ते सर्वकामिनः ॥२३॥
भूतानामपरः कश्चिद्धिंसाया सततोत्थितः । वंचनायां च लोकेषु ससुखेष्वेव जीर्यते ॥२४॥
अचेष्टमानमासीनं श्रीः कंचिदुपतिष्ठति । कश्चित्कर्माणि कुरुते न प्राप्यमधिगच्छति ॥२५॥
प्रारब्धानि समाचष्टुं पुरुषस्य प्रधानतः । शुक्रमन्यत्र संभूतं पुनरन्यत्र गच्छति ॥२६॥
तस्य योनौ प्रसक्तस्य गर्भो भवति मानवः । आम्रपुष्पोपमा यस्य निवृत्तिरुपलभ्यते ॥२७॥
केषांचित्पुत्रकामानामनुसन्तानमिच्छताम् । सिद्धौ प्रयतमानानां नैवांडमुपजायते ॥२८॥
गर्भादुद्विजमानानां क्रुद्धादाशीविषादिव । आयुष्मान् जायते पुत्रः कथं प्रेतः पितेव सः ॥२९॥
देवानिष्ट्वा तपस्तप्त्वा कृपणैः पुत्रहेतुभिः । दशमासान्परिधृता जायन्ते कुलपांसनाः ॥३०॥

की भाँति रात और दिन मनुष्य की आयु को लेकर भागते ही जाते हैं और पीछे नहीं लौटते ॥१७॥ समय शुक्ल और कृष्ण पक्ष के रूप में दूर होता जाता है और जन्मे हुए मनुष्य को बूढ़ा बना देता है। वह एक क्षण भी रुकता नहीं ॥१८॥ अमर सूर्य प्रति दिन बारबार उदित होता और अस्त होता है, और सुख-दुःख से घिरे प्राणियों को बूढ़ा बना देता है ॥१९॥ अनुकूल या प्रतिकूल रात्रियाँ मनुष्यों के समीप आशा के विपरीत अभूत-पूर्व भाव (घटना) प्रस्तुत कर देती हैं ॥२०॥ मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार अवश्य अपने मनोरथों को प्राप्त कर लेता यदि इसके कार्यों का फल दूसरे के अधीन न होता ॥२१॥ प्रायः संयमी-मतिमान् और कर्मकुशल मानव किसी अपने कार्य का फल न पाने पर उस कार्य को छोड़ देते हैं। परन्तु दूसरे अधम और अज्ञानी मानव कर्मफल न पाने पर भी और अपनी आशाओं की असफलता होने पर भी सब प्रकार की कामनाओं के पीछे मरते हुए देखे जाते हैं ॥२२-२३॥ इस संसार में प्राणियों में तीसरे प्रकार के लोग हैं जो सर्वदा हिंसा, वंचना आदि में ही लगे रहते हैं परन्तु वे सुखपूर्वक अपने में बुढ़ापा को देखते हैं ॥२४॥ कोई किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करता, यों ही बैठा रहता है, परन्तु लक्ष्मी स्वयं उसके पास चली आती है। फिर कोई कर्म करता हुआ भी अपने प्राप्य फल को नहीं पाता है ॥२५॥ इसमें पुरुष का प्रारब्ध ही प्रधान है। देखो, वीर्य अन्यत्र पैदा होता है और अन्यत्र जाकर संतान उत्पन्न करता है। आम्रपुष्प के समान जिसकी निवृत्ति प्राप्त होती है वह कभी तो योनि में पहुँचकर गर्भ धारण करने में समर्थ होता है और कभी नहीं होता। कितने ही लोग पुत्र-पौत्र की इच्छा रखकर उसकी सिद्धि के लिए यत्न करते रहते हैं, तो भी उनके संतान नहीं होती ॥२६-२८॥ और कितने ही मनुष्य संतान को क्रोध में भरा हुआ साँप समझकर सदा उससे डरते हैं, तो भी उनके यहाँ दीर्घजीवी पुत्र उत्पन्न हो जाता है; मानो वह स्वयं किसी प्रकार परलोक से आकर प्रकट हो गया हो ॥२९॥ कितने ही गर्भ ऐसे हैं, जो पुत्र की अभिलाषा रखने वाले दीन स्त्री-पुरुषों द्वारा देवताओं की पूजा और तपस्या करके प्राप्त किये जाते हैं और दस मास तक माता के उदर में धारण किये जाने के बाद जन्म लेने पर कुलांगार निकल जाते हैं ॥३०॥

अपरे धनधान्यानि भोगांश्च पितृसंचितान् । विमलानभिजायन्ते लब्ध्वा तैरेव मङ्गलैः ॥३१॥
अन्योन्य समभिप्रेत्य मैथुनस्य समागमे । उपद्रव इवादृष्टो योनौ गर्भः प्रपद्यते ॥३२॥
स्निग्धत्वादिद्रियार्थेषु मोहान्मरणमप्रियम् । परित्यजति यो दुःखं सुखमप्युभयं नरः ॥३३॥
अत्येति ब्रह्मसोऽत्यन्तं सुखमप्यश्नुते परम् । दुःखमर्था हि त्यज्यंते [पालने च न ते सुखाः ॥३४॥
श्रुत्वैव नाधिगमनं नाशमेषां न चितयेत् । अन्यामन्यां धनावस्थां प्राप्य वैशेषिका नराः ॥३५॥
अतृप्ता यांति विध्वंसं सन्तोषं यांति पंडिताः । सर्वे क्षयांता निचयाः पतनांताः समुच्छ्रयाः ॥३६॥
संयोगा विप्रयोगांता मरणांतं हि जीवितम् । अन्तो नास्ति पिपासायास्तुष्टिस्तु परमं सुखम् ॥३७॥
तस्मात्संतोषमेवेह धनं शंसन्ति पंडिताः । निमेषमात्रमपि हि योऽधिगच्छन्न तिष्ठति ॥३८॥
सशरीरेष्वनित्येषु नित्यं किमनुचिंतयेत् । भूतेषु भावं संचित्य ये बुद्धया तमसःपरम् ॥३९॥
न शोचंति गताध्वानः पश्यंति परमां गतिम् । संचिन्वन्नेकमेवैनं कामानांवितृप्तकम् ॥४०॥
व्याघ्रपशुमिवासाद्य मृत्युरादाय गच्छति । अथाप्युपायं संपश्येद्दुःखस्यास्य विमोक्षणे ॥४१॥
अशोचन्नारभेन्नैव युक्तश्चाव्यसनी भवेत् । शब्दे स्पर्शे रसे रूपे गंधे च परमं तथा ॥४२॥

उन्हीं मांगलिक कृत्यों से प्राप्त हुए बहुत-से ऐसे पुत्र हैं, जो जन्म लेने के साथ ही पिता के संचित किये हुए अपार धन-धान्य और विपुल भोगों के अधिकारी होते हैं ॥३१॥ फिर वही जीव विषयों में आसक्त होने के कारण अप्रिय मृत्यु को प्राप्त कर किसी दम्पति के मैथुन-रत होने पर उसके गर्भ में प्रविष्ट हो जाता है ॥३२½॥

जो सुख और दुःख दोनों की चिन्ता छोड़ देता है, वह अविनाशी ब्रह्म को प्राप्त होता है और परमानन्द का अनुभव करता है ॥३३½॥ धन के उपार्जन में बड़ा कष्ट होता है, उसकी रक्षा में भी सुख नहीं है तथा उसके खर्च करने में भी क्लेश ही होता है, अतः धन को प्रत्येक दशा में दुःखदायक समझकर उसके नष्ट होने पर चिन्ता नहीं करनी चाहिए ॥३४½॥ मनुष्य धन का संचय करते-करते पहले की अपेक्षा ऊँची स्थिति को प्राप्त करके भी कभी तृप्त नहीं होते। वे और अधिक धन कमाने की आशा लिये हुए ही मर जाते हैं, और विद्वान् पुरुष सदा सन्तुष्ट रहते हैं। संग्रह का अन्त है विनाश, सांसारिक ऐश्वर्य की उन्नति का अन्त है उस ऐश्वर्य की अवनति। संयोग का अन्त है वियोग और जीवन का अन्त है मरण। तृष्णा का कभी अन्त नहीं होता। सन्तोष ही परम सुख है ॥३५-३७॥ अतः पण्डित जन इस लोक में सन्तोष को ही उत्तम धन कहते हैं। आयु निरन्तर बीती जा रही है। वह पल भर भी विश्राम नहीं लेती। जब अपना शरीर ही अनित्य है, तब इस संसार की दूसरी किस वस्तु को नित्य समझा जाय ? ॥३८½॥ जो मनुष्य सब प्राणियों के भीतर मन से परे परमात्मा की स्थिति जानकर उन्हीं का चिन्तन करते हैं, वे संसार यात्रा समाप्त होने पर परमपद का साक्षात्कार करते हुए शोक के पार हो जाते हैं ॥३९-४०॥

जैसे वन में नई-नई घास की खोज में विचरते हुए अतृप्त पशु को सहसा व्याघ्र आकर दबोच लेता है, उसी प्रकार भोगों की खोज में लगे हुए अतृप्त मनुष्य को मृत्यु उठा ले जाती है। इसलिए छुटकारा पाने का उपाय अवश्य सोचना चाहिए ॥४१॥ जो शोक छोड़कर साधन आरंभ करता है और किसी व्यसन में आसक्त नहीं होता, उसकी मुक्ति हो जाती है। धनी हो या निर्धन, सबको उपभोगकाल में ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और उत्तम गन्ध आदि विषयों में किञ्चित् सुख का अनुभव होता है। उपभोग के पश्चात् उनमें कुछ नहीं रहता

नोपभोगात्परं किंचिद्धनिनो वाऽधनस्य वा । प्राक्संप्रयोगाद्भूतानां नास्ति दुःखमनामयम् ॥४३॥
विप्रयोगश्च सर्वस्य न वाचा न च विद्यया । प्रणयं परिसंहृत्य संस्तुतेष्वितरेषु च ॥४४॥
विचरेदसमुन्नद्ध स सुखी स च पंडितः । अध्यात्मगतमालीनो निरपेक्षो निरामिषः ॥४५॥
आत्मनैव सहायेन यश्चरेत्स सुखी भवेत् । सुखदुःखविपर्यासो यदा समुपपद्यते ॥४६॥
नैनं प्रज्ञा सुनियतं त्रायते नापि पौरुषम् । स्वभावाद्यत्नमातिष्ठेद्यत्नवान्नावसीदति ॥४७॥
उपद्रव इवानिष्टो योनिं गर्भः प्रपद्यते । तानि पूर्वशरीराणि नित्यमेकं शरीरिणम् ॥४८॥
प्राणिनां प्राणसंरोधे मांसश्लेष्मविचेष्टितम् । निर्दग्धं परदेहेन परदेहं बलाबलम् ॥४९॥
विनश्यति विनाशांते नावि नावमिवाचलाम् । संगत्या जठरे न्यस्तं रेतोबिंदुमचेतनम् ॥५०॥
केन यत्नेन जीवंतं गर्भं त्वमिह पश्यसि । अन्नपानानि जीर्यंते यत्र भक्ष्याश्च भक्षिताः ॥५१॥
तस्मिन्नेवोदरे गर्भः किं नान्नमिव जीर्यति । गर्भे मूत्रपुरीषाणां स्वभावनियता गतिः ॥५२॥
धारणे वा विसर्गे च न कर्तुं विद्यतेऽवशः । प्रभवंत्युदरे गर्भा जायमानास्तथापरे ॥५३॥
आगमेन सहान्येषां विनाश उपपद्यते । एतस्माद्योनिसंबंधाद्यो जीवन्परिमुच्यते ॥५४॥
पूजां न लभते कांचित्पुनर्द्वंद्वेषु मज्जति । गर्भस्य सह जातस्य सप्तमीमीदृशीं दशाम् ॥५५॥
प्राप्नुवंति ततः पंच न भवंति शतायुषः । नाभ्युत्थाने मनुष्याणां योगाः स्युर्नात्र संशयः ॥५६॥
व्याधिभिश्च विवध्यंते व्याघ्रैः क्षुद्रमृगा इव । व्याधिभिर्भक्ष्यमाणानां त्यजतां विपुलं धनम् ॥५७॥
वेदना नापकर्षन्ति यतमानाश्चिकित्सकाः । ॥५८॥

॥४२½॥ प्राणियों को एक-दूसरे से संयोग होने के पहले कोई दुःख नहीं होता। जब संयोग के बाद प्रिय का वियोग होता है तभी सब को दुःख हुआ करता है। अतः परिचित और अपरिचित सभी के प्रति आसक्ति का त्याग कर निरभिमानपूर्वक जो विचरण करता है, वही सुखी और पण्डित है ॥४३-४४½॥ जो अपने स्वरूप में स्थित, निरपेक्ष, निर्द्वन्द्व तथा अकेला होकर विचरण करता है, वही सुखी है ॥४५½॥ जब सुख और दुःख में वैपरीत्य दिखाई पड़ता है तब न तो प्रज्ञा और न पुरुषार्थ हो उसको बचा पाता है जो स्वाभाविक रूप से सुख-दुःख का उपभोग करता है तथा प्रयत्नशील रहता है, वह दुःखी नहीं होता ॥४६-४७॥ शरीर छूटने पर वही फिर दूसरे प्राणी के गर्भ में प्रवेश करता है। तब उसको पूर्व शरीर का स्मरण नहीं रहता है। पुनः प्राण वायु के अवरुद्ध हो जाने पर मांस, कफ आदि से युक्त इस शरीर को जला दिया जाता है। विनाश के बाद फिर यह जीव किसी स्त्री-पुरुष के समागम द्वारा अचेतन शुक्र-बिन्दु के रूप में उदर में पहुँचा दिया जाता है तथा वहाँ वह उसी प्रकार अचल हो जाता है, जैसे एक अचल नाव में बँधी हुई दूसरी नाव ॥४८-५०॥ गर्भ में वह कैसे जीवन धारण कर लेता है? जब उदर में अन्न, पान तथा भक्षित सभी पदार्थ जीर्ण हो जाते हैं तब यह गर्भ अन्न की ही तरह क्यों नहीं जीर्ण होता है? ॥५१½॥ गर्भ में मूत्र और विष्ठा की गति स्वाभाविक है। उनके धारण और त्याग करने में कोई स्वतन्त्र नहीं हो सकता ॥५२½॥ जो कुछ गर्भ उदर में रहते हैं और कुछ उत्पन्न होते हैं जो आगमन के साथ ही विनाश भी लिये रहते हैं ॥५३½॥ जो व्यक्ति इस योनि-से मुक्त हो जाता है, वह किसी प्रकार की प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त करता है, वह पुनः (सुख दुःख आदि) द्वन्द्वों में निमग्न हो जाता है ॥५४½॥ गर्भ से निकलने पर जीव १२५ वर्ष की परमायु प्राप्त करता है। मनुष्यों के उत्थान में योग उतने साधक नहीं होंगे जितना ज्ञानमार्ग, यह निश्चित है। जिस प्रकार बाघ क्षुद्र जीवों का वध कर देता है उसी प्रकार रोग व्याधि उन मनुष्यों को पीड़ित कर देते हैं ॥५५-५६½॥ मनुष्यों के रोगी हो जाने पर अत्यधिक धन खर्च करने पर भी उनकी वेदना को चिकित्सक प्रयत्न करने पर दूर नहीं कर पाते हैं ॥५७-५८॥ यहाँ तक कि

ते चापि विविधा वैद्याः कुशला संमतौषधाः । व्याधिभिः परिकृष्यंते मृगा व्याघ्रैरिवार्दिताः ॥५९॥
ते पिबंति कषायांश्च सर्पींषि विविधानि च । दृश्यंते जरया भग्ना नागैर्नागा इवोत्तमाः ॥६०॥
कैर्वा भुवि चिकित्स्यंते रोगार्त्ता मृगपक्षिणः । श्वापदाश्च दरिद्राश्च प्रायो नार्ता भवंति ते ॥६१॥
घोरानपि दुराधर्षान्नृपतीनुग्रतेजसः । आक्रम्य रोग आदत्ते पशून्पशुपचो यथा ॥६२॥
इति लोकमनाक्रंदं मोहशोकपरिप्लुतम् । स्रोतसा महता क्षिप्र ह्रियमाणं बलीयसा ॥६३॥
न धनेन न राज्येन नोग्रेण तपसा तथा । स्वभावा ह्यतिवर्तन्ते ये निर्मुक्ताः शरीरिषु ॥६४॥
उपर्युपरि लोकस्य सर्वो भवितुमिच्छति । यतते च यथाशक्ति न च तद्वर्तते तथा ॥६५॥
न म्रियेरन्नजीर्येरन्सर्वे स्युः सार्वकामिकाः । नाप्रियं प्रतिपद्येरन्नुत्थानस्य फलं प्रति ॥६६॥
ऐश्वर्यमदमत्ताश्च मानान्मयमदेन च । अप्रमत्ताः शठाः क्रूरा विक्रांताः पर्युपासते ॥६७॥
शोकाः प्रतिनिवर्तंते केषांचिदसमीक्षताम् । स्वं स्वं च पुनरन्येषां न कंचिदतिगच्छति ॥६८॥
महच्च फलवैषम्यं दृश्यते कर्मसंधिषु । वहंति शिविकामन्ये यांत्यन्ये शिविकागृहः ॥६९॥
सर्वेषामृद्धिकामानामन्ये रथपुरःसराः । मनुजाश्च गतश्रीकाः शतशो विविधाः स्त्रियः ॥७०॥
द्वंद्वारामेषु भूतेषु गच्छन्त्येकैकशो नराः । इदमन्यत्परं पश्य नात्र मोहं करिष्यसि ॥७१॥
धर्मं चापि त्यजाधर्मं त्यज सत्यानृतां धियम् । सर्वं त्यक्त्वा स्वरूपस्थः सुखी भव निरामयः ॥७२॥

वे वैद्य भी जो ओषधि प्रयोग में अत्यन्त कुशल होते हैं—रोगों के उसी प्रकार शिकार बन जाते हैं जिस प्रकार मृग बाघ के शिकार बनते हैं । वे विभिन्न प्रकार की कसैली ओषधियाँ, घी आदि पीते हैं परन्तु बुढ़ापे के द्वारा उसी प्रकार मरोड़ दिये जाते हैं जिस प्रकार बली हाथी निर्बल हाथी को मरोड़ देता है ॥५९-६०॥ इस लोक में रोगपीड़ित मृग, पक्षी, कुत्ते आदि हिंसक जीव और दरिद्रों की कौन चिकित्सा करता है, परन्तु वे दुःखी नहीं होते ॥६१॥ घोर, प्रचण्ड तेजस्वी राजाओं पर भी रोग आक्रमण कर (उन्हें) इस प्रकार मार डालते हैं जिस प्रकार बधिक पशुओं को ॥६२॥ इस प्रकार मोह-शोक से व्याप्त, अपने शीघ्रगामी, शक्तिशाली प्रवाह में हठात् सब को बहा ले जाने वाले और पार न पाने योग्य संसार से कोई धन, राज्य या उग्र तपस्या के द्वारा पार नहीं जा सकता; परन्तु जो मुक्त पुरुष हैं वे सहज ही में उसको पार कर जाते हैं ॥६३-६४॥ सभी इस संसार में अपने को सर्वोपरि बनाने के लिये इच्छुक रहते हैं और यथाशक्ति प्रयत्न भी करते हैं, परन्तु वे उस स्थिति में पहुँच नहीं पाते ॥६५॥ सब अपनी मृत्यु और बुढ़ापे की संभावना नहीं करते, वे अपने को अमर और चिर युवक समझ कर सब प्रकार की इच्छायें करते रहते हैं और अपने प्रारम्भ किये हुए कर्म फल के प्रति अप्रिय भावना नहीं रखते ॥६६॥ जो ऐश्वर्य के मद से मत्त, गर्वी, प्रमादी, शठ, क्रूर और पराक्रमी पुरुष कर्म की उपासना करते हैं, उन्हें शोक प्राप्त होते हैं; किन्तु ज्ञानमार्गियों को शोक नहीं होते फिर इस लोक में कर्म संधियों (अर्थात् कर्म के मार्गों) में फल के विषयों में बहुत बड़ी विषमता देखी जाती है । कोई तो पालकी को कन्धे पर रखकर ढोता है और कोई उस पर चढ़कर चलता है ॥६७-६९॥ विभव चाहने वाले सब पुरुषों में कोई-कोई तो रथ आदि पर चढ़ कर चलते हैं और अधिक संख्या में दरिद्र होते हैं, इसी प्रकार अधिकांश स्त्रियों की भी यही दशा है ॥७०॥ प्रायः प्राणी सुख-दुःख के चक्कर में एक-एक कर के पड़ ही जाते हैं । तुम इनसे अतिरिक्त विषयों को ही देखो अर्थात् सुख:दुख की भावना से अपने को ऊपर उठाओ । इस प्रकार तुम मोह में नहीं पड़ोगे ॥७१॥ तुम धर्म, अधर्म, सत्य और असत्य की भावना को छोड़ो इस प्रकार सब प्रकार की द्वन्द्व भावना का परित्याग कर अपने स्वरूप

एतत्ते परमं गुह्यमाख्यातमृषिसत्तम । येन देवाः परित्यज्य मर्त्यलोकं दिवं गताः ॥७३॥

सनंदन उवाच

इत्युक्त्वा व्यासतनयं समापृच्छ्य महामुनिः । सनत्कुमारः प्रययौ पूजितस्तेन सादरम् ॥७४॥
शुकोऽपि योगिनां श्रेष्ठः सम्यग्ज्ञात्वा ह्यवस्थितिम् । ब्रह्मणः पदमन्वेष्टुमुत्सुकः पितरं ययौ ॥७५॥
ततः पित्रा समागम्य प्रणम्य च महामुनिः । शुकः प्रदक्षिणीकृत्य ययौ कैलाशपर्वतम् ॥७६॥
व्यासस्तद्विरहाद्दूनः पुत्रस्नेहसमावृतः । क्षणैकं स्थीयतां पुत्र इति चुक्रोश दुर्मनाः ॥७७॥
निरपेक्षः शुको भूत्वा निःस्नेहो मुक्तबन्धनः । मोक्षमेवानुसंचिन्त्य गत एव परं पदम् ॥७८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वितीयपादे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नारदो भगवानृषिः । पुनः पप्रच्छ तं विप्र शुकाभिपतनं मुनिम् ॥१॥

में स्थित हो सुखी और निर्द्वन्द्व हो जाओ ॥७२॥ ऋषिवर ! इस परमगुप्त आख्यान को मैंने तुमसे कह दिया जिसके प्रभाव से देवताओं ने इस मृत्युलोक को छोड़कर स्वर्ग में स्थान प्राप्त किया ॥७३॥

सनन्दन जी बोले--महामुनि ब्रह्मतनय ने व्यासपुत्र के पूछे हुए प्रश्नों का इस प्रकार उत्तर देकर उनसे आदर पूर्वक पूजित होने के पश्चात् अपने स्थान को चले गए ॥७४॥ योगिवर शुक भी लोकस्थिति का भली भांति ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्मपद को ढूंढ़ने के लिये उत्सुक हो अपने पिता के पास गये ॥७५॥ महामुनि शुक पिता से मिलकर प्रदक्षिणापूर्वक उन्हें प्रणाम करके कैलाश पर्वत को चले गये ॥७६॥ व्यास जी पुत्र विरह से व्याकुल होकर पुत्र स्नेह के कारण दुःखी हो गए और पुत्र ! एक क्षण भी तो ठहरो, कह कर चिल्ला पड़े ॥७७॥ परन्तु शुक ने निरपेक्ष और निर्मोही होकर सारे सांसारिक बन्धनों को छिन्न-भिन्न करके मोक्ष की ही चिन्ता करते हुए परमपद प्राप्त कर लिया ॥७८॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वभाग के द्वितीय पाद में इकसठवां अध्याय समाप्त ॥६१॥

अध्याय ६२

मोक्ष-धर्म का निरूपण

सूत ने कहा--भगवान् नारद ऋषि ने इतने आख्यान को सुन लेने के बाद फिर शुकदेव जी को ही लक्ष्य करके मुनि से पूछा ॥१॥

नारद उवाच

भगवन्सर्वमाख्यातं त्वयाऽतिकरुणात्मना । यच्छ्रुत्वा मानसं मेऽद्य शांतिमग्र्यामुपागतम् ।।२।।
पुनश्च मोक्षशास्त्रं मे त्वमादिश महामुने । नहि सम्पूर्णतामेति तृष्णा कृष्णगुणार्णवे ।।३।।
ये तु संसारनिर्मुक्ता मोक्षशास्त्रपरायणाः । कुत्र ते निवसंतीह संशयो मे महानयम ।।
तं छिन्धि सुमहाभाग त्वत्तो नान्यो विदांवरः । ।।४।।

सनंदन उवाच

धारयामास चात्मानं यथाशास्त्रं महामुनिः । ।।५।।
पादात्प्रभृति गात्रेषु क्रमेण क्रमयोगवित् । ततः स प्राङ्मुखो विद्वानादित्येन विरोचिते ।।६।।
पाणिपादं समाधाय विनीतवदुपाविशत् । न तत्र पक्षिसंघातो न शब्दो न च दर्शनम् ।।७।।
यत्र वैयासकिर्धीम्नि योक्तुं समुपचक्रमे । स ददर्श तदात्मानं सर्वसंगविनिःसृतः ।।८।।
प्रजहास ततो हासं शुकः सम्प्रेक्ष्य भास्करम् । स पुनर्योगमास्थाय मोक्षमार्गोपलब्धये ।।९।।
महायोगीश्वरो भूत्वा सोऽत्यक्रामद्विहायसम् । अंतरिक्षचरः श्रीमान्व्यासपुत्रः सुनिश्चितः ।।१०।।
तमुद्यंतं द्विजश्रेष्ठं वैनतेयसमद्युतिम् । ददृशुः सर्वभूतानि मनोमारुतरंहसम् ।।११।।
यथाशक्ति यथान्यायं पूजयांचक्रिरे तथा । पुष्पवर्षैश्च दिव्यैस्तमवचक्रुर्दिवौकसः ।।१२।।
तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे गंधर्वाप्सरसां गणाः । ऋषयश्चैव संसिद्धाः कोऽयं सिद्धिमुपागतः ।।१३।।

नारद बोले—अत्यन्त करुण हृदय अपने उन सब रहस्यों को बता दिया जिसको सुनकर आज मेरे मन ने अत्यन्त श्रेष्ठ शान्ति प्राप्त की ।।२।। मुने ! अब आप पुनः मोक्ष शास्त्र के विषय में मुझको कुछ उपदेश दीजिए । मेरी पुण्य श्रवण की तृष्णा कृष्ण गुण गान रूपी सागर में निमग्न होकर भी शान्त नहीं हो रही है ।।३।। जो संसार से मुक्त और मोक्षशास्त्र के पारगामी विद्वान् हैं वे इस लोक में कहाँ निवास करते हैं, यह मुझे बहुत बड़ा सन्देह है । महाभाग ! आप इस सन्देह को दूर कीजिये क्योंकि आपसे बढ़कर ज्ञानी इस लोक में अन्य कौन है ? ।।४½।।

सनन्दन बोले—उस क्रमयोग को जानने वाले महामुनि ने शास्त्रानुसार पैर से लेकर सर्वाङ्ग तक धारणा (मन्त्रों द्वारा अंग स्पर्श) की । तदनन्तर वह विद्वान् पूर्वाभिमुख होकर सूर्य की किरणों से शोभित स्थान पर हाथ और पैर जोड़कर विनीत मुद्रा में बैठ गया ।।५-६½।। व्यासपुत्र शुक जिस स्थान पर योग साधना के लिए आसीन हुए वहाँ न तो पक्षियों का कलरव होता था और न किसी प्रकार का शब्द सुनाई पड़ता था। यहाँ तक कि किसी अन्य प्राणी का दर्शन तक दुर्लभ था । वहाँ पर उन्होंने अपने को सब प्रकार के संग से मुक्त देखा ।।७-८।। उस समय सूर्य देव को देख कर वे हंस पड़े और पुनः मोक्ष मार्ग को पाने के लिये योगस्थ हो कर अकाश में उड़ने लगे । श्रीमान् व्यासपुत्र निश्चित रूप से अन्तरिक्षचारी हो गए ।।९-१०।। उस गरुड़ के समान द्युति वाले, मन और वायु के समान तीव्र गति वाले द्विजवर को सब लोगों ने देखा और अपनी शक्ति के अनुसार यथोचित पूजा की । देवताओं ने भी स्वर्गीय पुष्पों की वर्षा कर उनका सत्कार किया ।।११-१२।। उनको इस प्रकार लोकपूजित देखकर सब गन्धर्व, अप्सरोगण, ऋषि और सिद्ध विस्मित हो कहने लगे कि यह कौन महापुरुष

ततोऽसौ स्वाह्वयं तेभ्यः कथयामास नारद । उवाच च महातेजास्तानृषीन्संप्रहर्षितः ॥१४॥
पिता यद्यनुगच्छन्मां क्रोशमानः शुकेति वै । तस्मै प्रतिवचो देयं भवद्भिस्तु समाहितैः ॥१५॥
बाढमुक्तस्ततस्तैस्तु लोकान्हित्वा चतुर्विधाम् । तमो ह्यष्टविधं त्यक्त्वा जहौ पञ्चविधं रजः ॥१६॥
ततः सत्त्वं जहौ धीमांस्तदद्भुतमिवाभवत् । ततस्तस्मिन्पदे नित्ये निर्गुणे लिंगपूजिते ॥१७॥
ततः स श्रृङ्गेऽप्रतिमे हिमवन्मेरुसन्निभे । संश्लिष्टे श्वेतपीते च रुक्मरूप्यमये शुभे ॥१८॥
शतयोजनविस्तारे तिर्यगूर्ध्वं च नारद । सोऽविशंकेन मनसा तथैवाभ्यपतच्छुकः ॥१९॥
ते श्रृङ्गेऽत्यंतसंश्लिष्टे सहसैव द्विधाकृते । अदृश्येत द्विजश्रेष्ठ तदद्भुतमिवाभवत् ॥२०॥
ततः पर्वतश्रृंगाभ्यां सहसैव विनिःसृतः । न च प्रतिजघानास्य स गतिं पर्वतोत्तमः ॥२१॥
ततो मंदाकिनीं दिव्यामुपरिष्टादभिव्रजन् । शुको ददर्श धर्मात्मा पुष्पितद्रुमकाननम् ॥२२॥
तस्यां क्रीडासु निरताः स्नांति चैवाप्सरोगणाः । निराकारं तु साकारा ददृशुस्तं विवाससः ॥२३॥
तं प्रक्रमंतमाज्ञाय पिता स्नेहसमन्वितः । उत्तमां गतिमास्थाय पृष्ठतोऽनुससार ह ॥२४॥
शुकस्तु मारुतादूर्ध्वं गतिं कृत्वाऽन्तरिक्षगाम् । दर्शयित्वा प्रभावं स्वं सर्वभूतोऽभवत्तदा ॥२५॥
अथ योगगतिं व्यासः समास्थाय महातपाः । निमेषांतरमात्रेण शुकाभिपतनं ययौ ॥२६॥
स ददर्श द्विधा कृत्वा पर्वताग्रं गतं शुकम् । शशंसुर्मुनयः सिद्धा गतिं तस्मै सुतस्य ताम् ॥२७॥
ततः शुकेतिशब्देन दीर्घेण क्रंदितं तदा । स्वयं पित्रा स्वरेणोच्चैस्त्रींल्लोकाननुनाद्य वै ॥२८॥

है, जिसने सिद्धि प्राप्त कर ली है ॥१३॥ नारद ! तदनन्तर उस महातेजस्वी ने अपना नाम बताया और प्रसन्न होकर ऋषियों से कहा कि यदि मेरे पिता जी शुक ! शुक ! चिल्लाते हुए मेरी खोज में इधर आयें तो आप लोग सावधानी से उत्तर देने की कृपा करें ॥१४-१५॥ उन लोगों का स्वीकारात्मक उत्तर पाकर वे चार प्रकार के लोकों और आठ प्रकार के अन्धकार का त्याग कर पांच प्रकार के रजोगुण से भी मुक्ति प्राप्त कर ली ॥१६॥ तत्पश्चात् जब उस धीमान् ने सत्त्वगुण का भी परित्याग किया तब तो वहाँ एक अद्भुत सी घटना हो गई। उस समय वे उस नित्य, निर्गुण और शिव लिंग पूजित, सश्रृंग, प्रतिमामय और मेरु के समान प्रकाशित, एक में एक गुथे हुए, श्वेत पीतवर्ण वाले, शुभ, सुनहले और रुपहले, ऊर्ध्व और तिरछे, सौ योजन विस्तृत लोक में निःशङ्क मन से उतरे ॥१७-१९॥ द्विजश्रेष्ठ ! वहाँ पर अत्यन्त एक में सटे हुए और सहसा दो भागों में विभक्त दो शिखर दिखाई दिये। यह एक अद्भुत सी घटना हुई ॥२०॥ उन पर्वत श्रृंगों से भी वे सहसा आगे बढ़ गए परन्तु उनकी प्रतिज्ञा के कारण वह पर्वतोत्तम उनकी (शुक की) गति को न बाधित कर सका ॥२१॥ वहाँ से आकाश मार्ग से आगे बढ़कर दिव्य मन्दाकिनी को उस धर्मात्मा ने देखा जिसके तट पर एक अत्यन्त खिले हुए फूलों से सुशोभित कानन को देखा। उस देव नदी में कितनी ही अप्सरायें जलकेलि में मग्न होकर नहा रही थीं। उन वस्त्ररहित होकर नहाने वाली साकार अप्सराओं ने उस निर्गुण शुक को देखा। ॥२२-२३॥

उसी समय पुत्र को इस प्रकार की गतिविधि को जानकर व्यास जी पुत्र स्नेह से व्याकुल होकर उत्तम गति प्राप्तकर शुक जी के पीछे-पीछे चले ॥२४॥ यह देखकर शुक देव अपनी उस अन्तरिक्षगामी गति को वायु से तीव्रतर बनाकर सर्वभूत मय हो गए और अपने प्रभाव की व्यापकता को दिखलाने लगे। महात्मा व्यास भी योग क्रिया के बल से एक पल में ही शुक के पीछे दौड़ पड़े ॥२५-२६॥ मार्ग में व्यास ने पर्वत शिखर को दो भागों में विभक्त करके आगे जाते हुए शुक को देखा ॥२७॥ मुनियों और सिद्धों ने भी व्यास के पुत्र शुक देव की इस प्रकार की सिद्धि का वर्णन किया। तदनन्तर व्यास जी बड़े जोर से 'शुक' कह कर चिल्ला पड़े जिससे तीनों लोक भी

शुकः सर्वगतिर्भूत्वा सर्वात्मा सर्वतोमुखः । प्रत्यभाषत धर्मात्मा भो शब्देनानुनादयन् ॥२९॥
तत एकाक्षरं नादं भोरित्येवमुदीरयन् । प्रत्याहरज्जगत्सर्वमुच्चैः स्थावरजंगमम् ॥३०॥
ततःप्रभृति वाऽद्यापि शब्दानुच्चारितान्पृथक् । गिरिगह्वरपृष्ठेषु व्याजहार शुकं प्रति ॥३१॥
अंतर्हितप्रभावं तं दर्शयित्वा शुकस्तदा । गुणान्संत्यज्य सत्त्वादीन्पदमध्यगमत्परम् ॥३२॥
महिमानं तु तं दृष्ट्वा पुत्रस्यामिततेजसः । सोऽनुनीतो भगवता व्यासो रुद्रेण नारद ॥३३॥
किमु त्वं ताम्यसि मुने पुत्रं प्रति समाकुलः । पश्यसि विप्र नायांतं ब्रह्मभूतं निजांतिके ॥३४॥
इत्येवमनुनीतोऽसौ व्यासः पुनरुपाव्रजत् । स्वाश्रमं स शुको ब्रह्मभूतो लोकांश्चचार ह ॥३५॥
तत कालांतरे ब्रह्मन्व्यासः सत्यवतीसुतः । नरनारायणौ द्रष्टुं ययौ बदरिकाश्रमम् ॥३६॥
तत्र दृष्ट्वा तु तौ देवौ तप्यमानो महत्तपः । स्वयं च तत्र तपसि स्थितः शुकमनुस्मरन् ॥३७॥
यावत्तत्र स्थितो व्यासःशुकःपरमयोगवित् । श्वेतद्वीपं गतस्तात यत्र त्वमगमः पुरा ॥३८॥
तत्र दृष्टप्रभावस्तु श्रीमन्नारायणः प्रभुः । दृष्टः श्रुतिविमृग्यो हि देवदेवो जनार्दनः ॥३९॥
स्तुतश्च शुकदेवेन प्रसन्नः प्राह नारद । त्वया दृष्टोऽस्मि योगीन्द्र सर्वदेवरहःस्थितः ॥४०॥

श्रीभगवानुवाच

सनत्कुमारादिष्टेन सिद्धो योगेन वाडव । त्वं सदागतिमार्गस्थो लोकान्पश्य यथेच्छया ॥४१॥
इत्युक्तो वासुदेवेन तं नत्वारणिसंभवः । वैकुंठं प्रययौ विप्र सर्वलोकनमस्कृतम् ॥४२॥

प्रतिध्वनित हो उठे । सर्वात्मा, सर्वतोमुख (चारों ओर मुख वाले) धर्मात्मा शुक ने सर्वत्र गति होकर 'भोः' शब्द का उच्चारण किया उनकी इस 'भोः' एकाक्षर ध्वनि के अनन्तर ही सारे स्थावर जंगमात्मक जगत् ने उच्च स्वर से ऐसी ही प्रतिध्वनि की ॥२८-३०॥ उसी समय से आज तक शुक की ध्वनि के प्रतिध्वनि करने के कारण पर्वतों की गुफाओं में शब्द ध्वनि करने पर पृथक्-पृथक् प्रतिध्वनि निकलती है ॥३१॥

उस समय अपने योग के गुप्त प्रभाव को दिखाकर शुक देव ने सत्व आदि गुणों का परित्याग कर परम पद को प्राप्त कर लिया ॥३२॥ नारद ! अमित तेजस्वी अपने पुत्र की योग महिमा को देख कर व्यास जी आश्चर्यचकित हो गए । यह देखकर भगवान् रुद्र ने व्यास को समझाया ॥३३॥ कि मुने ! तुम क्यों पुत्र स्नेह से व्याकुल होकर इस प्रकार खेद कर रहे हो ? विप्र ! क्या तुम अपने पुत्र को ब्रह्म रूप में अपने पास आते हुए नहीं देख रहे हो ॥३४॥ इस प्रकार रुद्र से समझाये जाने पर व्यास जी पुनः अपने आश्रम को लौट आये । वह शुक देव भी ब्रह्ममय होकर लोक में विचरण करने लगे ॥३५॥ कुछ समय बीत जाने पर सत्यवती-सुत व्यास जी नर नारायण का दर्शन करने के लिये बदरिकाश्रम को गए ॥३६॥ वहाँ उन दोनों देवों को महान् तपस्या में लीन देखकर स्वयं व्यास भी शुक का स्मरण करते हुए वहीं पर तप करने लगे । ॥३७॥ तात ! जितनी देर तक व्यास जी वहाँ तपस्या करते रहे उतने समय में शुकदेव जी श्वेत द्वीप को चले गये जहाँ पर आज से बहुत पहले तुम गये थे ॥३८॥ वहाँ दृष्ट प्रभाव वाले श्रुतियों के वन्द्य और उनके द्वारा खोजने योग्य देवदेव जनार्दन नारायण प्रभु ने शुकदेव को दर्शन दिये और शुकदेव की स्तुति से प्रसन्न होकर बोले ॥३९½॥

योगीन्द्र ! तुमने सब देवताओं से एकान्त में रहने वाले मेरा दर्शन प्राप्त कर लिया ॥४०॥ ब्राह्मण ! तुमने सनत्कुमार द्वारा दिखाये गये योगपथ से सिद्धि भी प्राप्त कर ली । अब तुम वायु मार्ग पर स्थित होकर इच्छानुकूल लोकों का अवलोकन करो ॥४१॥ वासुदेव ने अरणिसंभव शुक को इस प्रकार का वरदान दिया । विप्र ! शुक भी उन्हें प्रणाम करके सब लोकों में श्रेष्ठ वैकुण्ठ लोक में गये ॥४२॥ नारद ! जो विमान विहारी

वैमानिकैः सुरैर्जुष्टं विरजापरिचेष्टितम् । यं भांतमनुभांत्येते लोकाः सर्वेऽपि नारद ॥४३॥
यत्र विद्रुमसोपानाः स्वर्णरत्नविचित्रिताः । वाप्य उत्पलसंछन्नाः सुरस्त्रीक्रीडनाकुलाः ॥४४॥
दिव्यैर्हंसकुलैर्घुष्टाः स्वच्छांबुनिभृताः सदा । तत्र द्वाःस्थैश्चतुर्हस्तैर्नानाभरणभूषितैः ॥४५॥
विष्वक्सेनानुगैः सिद्धैः कुमुदाद्यैरवारितः । प्रविश्याभ्यंतरं तत्र देवदेवं चतुर्भुजम् ॥४६॥
शांतं प्रसन्नवदनं पीतकौशेयवाससम् । शंखचक्रगदापद्ममूर्तिमद्भिरुपासितम् ॥४७॥
वक्षःस्थलस्थया लक्ष्म्या कौस्तुभेन विराजितम् । कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकटकांगदभूषितम् ॥४८॥
भ्राजत्किरीटवलयं मणिनूपुरशोभितम् । ददर्श सिद्धनिकरैः सेव्यमानमहर्निशम् ॥४९॥
तं दृष्ट्वा भक्तिभावेन तुष्टाव मधुसूदनम् । नमस्ते वासुदेवाय सर्वलोकैकसाक्षिणे ॥५०॥

शुक उवाच

जगद्बीजस्वरूपाय पूर्णाय निभृतात्मने । हरये वासुकिस्थाय श्वेतद्वीपनिवासिने ॥५१॥
हंसाय मत्स्यरूपाय वाराहतनुधारिणे । नृसिंहाय ध्रुवेज्याय सांख्ययोगेश्वराय च ॥५२॥
चतुःसनाय कूर्माय पृथवे स्वसुखात्मने । नाभेयाय जगद्धात्रे विधात्रेऽतकराय च ॥५३॥
भार्गवेंद्राय रामाय राघवाय पराय च । कृष्णाय वेदकर्त्रे च बुद्धकल्किस्वरूपिणे ॥५४॥
चतुर्व्यूहाय वेद्याय ध्येयाय परमात्मने । नरनारायणाख्याय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥५५॥
ऋतधाम्ने विधाम्ने च सुपर्णाय स्वरोचिषे । ऋभवे सुव्रताख्याय सुधाम्ने चाजिताय च ॥५६॥
विश्वरूपाय विश्वाय सृष्टिस्थित्यंतकारिणे । यज्ञाय यज्ञभोक्त्रे च स्थविष्ठायार्णवेऽर्थिने ॥५७॥
आदित्यसोमनेत्राय सहओजोबलाय च । ईज्याय साक्षिणेऽजाय बहुशीर्षांघ्रिबाहवे ॥५८॥

देवों द्वारा वन्दित और विरजा का प्रिय लोक है, जिसके प्रकाश से सब लोक प्रकाशित होते हैं । ॥४३॥ जहाँ की जलबावलियों की सीढ़ियाँ विद्रुम की बनी हैं जिनमें स्वर्ण और रत्न जड़े हुए हैं, जिनका जल देवाङ्गनाओं की जलक्रीड़ा के कारण क्षुब्ध रहता है ॥४४॥ जो दिव्य कलहंसों के कलरव से मुखरित और निर्मल जल से सदा परिपूर्ण रहती हैं । वहाँ जाने पर द्वार पर स्थित नाना आभूषणों से आभूषित, चतुर्भुज, विष्वक्सेन के अनुचर कुमुद आदि सिद्धों ने सम्मानपूर्वक भीतर जाने दिया । भीतर जाकर उन्होंने शान्त, प्रसन्न वदन, पीत-कौशेय-वस्त्रधारी, मूर्तिमान् शंख चक्र गदा पद्म से सेवित, वक्षःस्थल पर स्थित लक्ष्मी और कौस्तुभ मणि से सुशोभित, कटिसूत्र, ब्रह्मसूत्र, वलय, अंगद से आभूषित, किरीट वलय और मणि के बने नूपुरों से अलङ्कृत मधुसूदन को देखा जिनकी सेवा में सिद्धगण अहर्निश लगे हुए थे। उस भगवान् को देखकर शुक ने भक्तिपूर्वक स्तुति प्रारम्भ की । ॥४५-४९½॥

शुक बोले—सब लोकों के एक मात्रसाक्षी वासुदेव को नमस्कार है ॥५०॥ जगत् के बीजस्वरूप, पूर्ण, अन्तरात्मा, हरि, वासुकि के ऊपर स्थित, श्वेतद्वीप-निवासी, हंस, मत्स्यरूप, वाराह शरीर धारण करने वाले नृसिंह, ध्रुव के पूज्य, सांख्य योग के ईश्वर ॥५१-५२॥ सनकादि चार रूप वाले (१) कूर्म, पृथु, आत्माराम, नाभेय, जगद्धाता, विधाता, अन्तकर, भार्गव, इन्द्र, राम, राघव, परात्पर कृष्ण, वेदव्यास, बुद्ध, कल्किरूपधारी ॥५३-५४॥ चतुर्व्यूह, वेद्य, ध्येय, परमात्मा, नर-नारायण, शिपिविष्ट, विष्णु, ऋतुधाम, विधाम, सुपर्ण, स्वयं प्रकाश, ऋभु, सुव्रत, सुधामा, अजित ॥५५-५६॥ विश्वरूप, विश्व, सृष्टि-स्थति-संहारकारी, यज्ञ, यज्ञभोक्ता, स्थविष्ठ, अणु, अर्थी, आदित्य और सोमरूपी नेत्र वाले, साहस, ओज और बल वाले, पूज्य, साक्षी, अज, अनन्त शिव, वरण

श्रीशाय श्रीनिवासाय भक्तवश्याय शार्ङ्गिणे। अष्टप्रकृत्यधीशाय ब्रह्मणेऽनंतशक्तये ॥५९॥
बृहदारण्यवेद्याय हृषीकेशाय वेधसे। पुंडरीकनिभाक्षाय क्षेत्रज्ञाय विभासिने ॥६०॥
गोविंदाय जगत्कर्त्रे जगन्नाथाय योगिने। सत्याय सत्यसंधाय वैकुंठायाच्युताय च ॥६१॥
अधोक्षजाय धर्माय वामनाय त्रिधातवे। धृतार्चिषे विष्णवे तेऽनंताय कपिलाय च ॥६२॥
विरिंचये त्रिककुदे ऋग्यजुःसामरूपिणे। एकशृंगाय च शुचिश्रवसे शास्त्रयोनये ॥६३॥
वृषाकपय ऋद्धाय प्रभवे विश्वकर्मणे। भूर्भुवःस्वःस्वरूपाय दैत्यघ्ने निर्गुणाय च ॥६४॥
निरंजनाय नित्याय ह्यव्ययायाक्षराय च। नमस्ते पाहि मामीश शरणागतवत्सल ॥६५॥
इति स्तुतःस भगवाञ्छंखचक्रगदाधरः। आरणेयमुवाचेदं भृशं प्रणतवत्सलः ॥६६॥
व्यासपुत्र महाभाग प्रीतोऽस्मि तव सुव्रत। विद्यामाप्नुहि भक्तिं च ज्ञानी त्वं मम रूपधृक् ॥६७॥

श्रीभगवानुवाच

यद्रूपं मम दृष्टं प्राक् श्वेतद्वीपे त्वया द्विज। सोऽहमेवावतारार्थं स्थितो विश्वंभरात्मकः ॥६८॥
सिद्धोऽसि त्वं महाभाग मोक्षधर्मानुचिंतया। वरलोकान्यथा वायुर्यथा खं सविता तथा ॥६९॥
नित्यमुक्तस्वरूपस्त्वं पूज्यमानः सुरैर्नरैः न। भक्तिर्हि दुर्लभा लोके मयि सर्वपरायणे ॥७०॥
तां लब्ध्वा नापरं किंचिल्लब्धव्यमवशिष्यते। आकल्पांतः तपः संस्थौ नरनारायणावृषी ॥७१॥
तयोर्निदेशतो व्यासो जनकस्तव सुव्रतः। कर्ता भागवतं शास्त्रं तदधीष्व भुवं व्रज ॥७२॥
स तप्यति तपस्त्वद्य पर्वते गंधमादने। त्वद्वियोगेन खिन्नात्मा तं प्रसादय मत्प्रियम् ॥७३॥

और बाहु वाले ॥५७-५८॥ श्रीश, श्रीनिवास, भक्तवश्य, शार्ङ्गधारी, अष्ट प्रकृति के अधीश, ब्रह्मा, अनन्त शक्ति; बृहदारण्य के द्वारा जानने योग्य, हृषीकेश, वेधा, पुण्डरीक के समान नेत्र वाले, क्षेत्रज्ञ, विशिष्ट कान्ति वाले ॥५९-६०॥ गोविन्द, जगत्कर्ता, जगन्नाथ, योगी, सत्य, सत्यप्रतिज्ञ, वैकुण्ठरूप, अच्युत, अधोक्षज, धर्म, वामन, त्रिधातु, तेज धारण करने वाले, विष्णु, अनन्त, कपिल ॥६१-६२॥ विरिंचि, त्रिककुद्, ऋग्, यजु और साम स्वरूप, एक शृंग (शृंगीरूप) शुचिश्रवा, शास्त्रयोनि, वृषाकपि, ऋद्ध, प्रभु, विश्वकर्मा, भूः भुवःस्वः स्वरूप, दैत्यहन्ता, निर्गुण ॥६३-६४॥ निरञ्जन, नित्य, अव्यय और अक्षर को नमस्कार है। ईश ! शरणागत-वत्सल ! मेरी रक्षा करें ॥६५॥

शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् की इस प्रकार स्तुति करने पर अत्यन्त भक्तवत्सल भगवान् ने शुक से कहा—॥६६॥

श्री भगवान् बोले—व्यासपुत्र ! महाभाग ! सुव्रत ! तुम पर मैं प्रसन्न हूँ। ज्ञानी, तुम मेरे रूप को धारण कर विद्या और भक्ति को प्राप्त करो ॥६७॥ द्विज ! तुमने पूर्वकाल में श्वेत द्वीप में मेरे जिस रूप का दर्शन किया था, वही विश्वम्भर रूप मैं अवतार धारण करने के लिए स्थित हूँ ॥६८॥ महाभाग ! तुम मोक्ष धर्म की चिन्ता के द्वारा अब सिद्ध हो गए हो। जिस प्रकार वायु ने श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त किया, सविता (सूर्य) ने आकाश को उसी प्रकार सुर और नरों के पूज्य तुम भी नित्य मुक्त स्वरूप हो जाओ। ॥६९½॥ इस लोक में मुझमें सर्वात्मना लीन रहने वाले व्यक्तियों के लिए भी भक्ति दुर्लभ है। भक्ति को पा जाने पर इस लोक में दूसरी किसी भी वस्तु की कामना शेष नहीं रह जाती है अर्थात् सब पदार्थ मिल जाते हैं ॥७०½॥ ऋषि नर और नारायण कल्पान्त तक तपस्या करने के उद्देश्य से तप कर रहे हैं। उनके ही आदेश से तुम्हारे सुव्रती पिता व्यास भागवत शास्त्र का निर्माण करेंगे। भूलोक में जाओ और उसी का अध्ययन करो ॥७१-७२॥ इस समय व्यास जी गंधमादन पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं, तुम्हारे वियोग से खिन्न, मेरे प्रिय व्यास को प्रसन्न करो। ॥७३॥ विप्र !

एवमुक्तः शुको विप्र नमस्कृत्य चतुर्भुजम् । यथागतं निवृत्तोऽसौ पितुरंतिकमागमत् ॥७४॥
अथ तं स्वांतिके दृष्ट्वा पाराशर्यः प्रतापवान् । पुत्रं प्राप्य प्रहृष्टात्मा तपसो निववर्त ह ॥७५॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । आरणेयसमायुक्तः स्वाश्रमं समुपागमत् ॥७६॥
नारायणनियोगात्तु त्वन्मुखेन मुनीश्वर । चकार संहितां दिव्यां नानाख्यानसमन्विताम् ॥७७॥
वेदतुल्यां भागवतीं हरिभक्तिविवर्द्धिनीम् । निवृत्तिनिरतं पुत्रं शुकमध्यापयच्च ताम् ॥७८॥
आत्मारामोऽपि भगवान्पाराशर्यात्मजः शुकः । अधीतवान्संहितां वै नित्यं विष्णुजनप्रियाम् ॥७९॥
एवमेते समाख्याता मोक्षधर्मास्तवानघ । पठतां शृण्वतां चापि हरिभक्तिविवर्द्धनाः ॥८०॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे द्वितीयपादे बृहदुपाख्याने मोक्षधर्म्मनिरूपणं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

॥ समाप्तश्चायं द्वितीयः पादः ॥

॥ अथ तृतीयः पादः ॥

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

शौनक उवाच

सूत साधो चिरंजीव सर्वशास्त्रविशारद । यत्त्वया पायिता विद्वन्वयं कृष्णकथामृतम् ॥१॥
श्रुत्वा तु मोक्षधर्मान्वै नारदो भगवत्प्रियः । सनंदनमुखोद्गीतान्किं पप्रच्छ ततः परम् ॥२॥

भगवान् विष्णु की इन बातों को सुनकर शुक ने चतुर्भुज वासुदेव को नमस्कार किया और जिस मार्ग से आये थे उसी मार्ग से लौट कर अपने पिता के समीप गये ॥७४॥

प्रतापी पराशर-पुत्र व्यास अपने पुत्र को अपने समीप देखकर प्रफुल्लित होगए और तपस्या से विरत हो गए। अनन्तर नारायण और नरोत्तम नर को नमस्कार कर अरणि-पुत्र शुक के सहित अपने आश्रम पर लौट आये ॥७५-७६॥

मुनीश्वर ! तुम्हारे द्वारा नारायण की आज्ञा प्राप्त कर व्यास ने नाना आख्यानों से युक्त, वेदतुल्य हरि भक्ति की वृद्धि या प्रचार करने वाली भागवती संहिता बनाई, और निवृत्तिप्रेमी अपने पुत्र शुक को पढ़ाया ॥७७-७८॥ पाराशर्य (व्यास)-पुत्र शुक ने आत्माराम होते हुए भी भक्तप्रिय उस संहिता का नित्य प्रति अध्ययन किया। अनघ ! इस भांति आज तुमको मोक्ष धर्म की व्याख्या सुनाई जिसके अध्ययन और श्रवण से हरि भक्ति की प्राप्ति या वृद्धि होती है। ॥७९-८०॥

श्री नारदीय महापुराण के पूर्वभाग के द्वितीयपाद में मोक्ष धर्म निरूपण नामक बासठवां अध्याय समाप्त ॥६२॥

अध्याय ६३

तृतीयपाद में पाशुपतदर्शनतत्त्व निरूपण

शौनक ने कहा--सूत ! साधो ! सर्वशास्त्रविशारद ! चिरंजीवी होओ, क्योंकि हे विद्वन् ! आज तुमने हम लोगों को कृष्ण-कथामृत का पान कराया ॥१॥ सनन्दन के मुख से मोक्ष धर्म सुनने के अनन्तर भगवत्प्रिय नारद ने फिर क्या पूछा ॥२॥ ब्रह्मा के मानस पुत्र सिद्ध मुनीश्वर सनक आदि लोकोद्धार में लीन होकर लोकों में

मानसा ब्रह्मणः पुत्राः सनकाद्या मुनीश्वराः । चरंति लोकान्संसिद्धा लोकोद्धरणतत्पराः ॥३॥
नारदोऽपि महाभाग नित्यं कृष्णपरायणः । तेषां समागमे भद्रा का कथा लोकपावनी ॥४॥

सूत उवाच

साधु पृष्टं महाभाग त्वया लोकोपकारिणा । कथयिष्यामि तत्सर्वं यत्पृष्टं नारदर्षिणा ॥५॥
श्रुत्वा सनंदनप्रोक्तान्मोक्षधर्मान्सनातनान् । नारदो भार्गवश्रेष्ठ पुनः पप्रच्छ तान्मुनीन् ॥६॥

नारद उवाच

सर्वदेवेश्वरो विष्णुर्वेदे तंत्रे च कीर्तितः । समाराध्यः स एवात्र सर्वैः सर्वार्थकांक्षिभिः ॥७॥
कैर्मंत्रैर्भगवान्विष्णुः समाराध्यो मुनीश्वराः । के देवाः पूजनीयाश्च विष्णुपादपरायणैः ॥८॥
तंत्रं भागवतं विप्रा गुरुशिष्यप्रयोजकम् । दीक्षणं प्रातराद्यं च कृत्यं स्याद्यत्तदुच्यताम् ॥९॥
यैर्मासैः कर्मभिर्यैर्वा जप्यैर्होमादिभिस्तथा । प्रीयेत परमात्मा वै तद्ब्रूत मम मानदाः ॥१०॥

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य नारदस्य महात्मनः । सनत्कुमारो भगवानुवाचार्कसमद्युतिः ॥११॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि तंत्रं भागवतं तव । यज्ज्ञात्वाऽमलया भक्त्या साधयेद्विष्णुमव्ययम् ॥१२॥
त्रिपदार्थं चतुष्पादं महातंत्रं प्रचक्षते । भोगमोक्षक्रियाचर्याह्वया पादाः प्रकीर्तिताः ॥१३॥

भ्रमण करते हैं ॥३॥ महाभाग, नारद भी नित्य कृष्ण प्रेम में मस्त रहने वाले भक्त हैं। तो उन लोगों की गोष्ठी में कौन मंगलमयी लोक-पावनी कथा हुई, उसको कहिये । ॥३-४॥

सूत बोले--महाभाग ! लोकोपकारी तुमने अति उत्तम प्रश्न पूछा, ऋषि नारद ने जो कुछ पूछा वह सब अवश्यमेव कहूँगा ॥५॥ सनन्दन के मुख से कहे गये सनातन मोक्षधर्म को सुनकर नारद ने पुनः उन मुनियों से पूछा ॥६॥

नारद बोले--वेद और तन्त्र (शास्त्र) में विष्णु को सब देवों का ईश्वर कहा गया है, और यह भी कहा गया है कि इस लोक में सब प्रकार के मनोरथों की इच्छा करने वाले सब व्यक्ति उनकी ही आराधना करें। ॥७॥ मुनीश्वर ! अब आप लोग यह बतायें कि किन मन्त्रों से भगवान् की आराधना करनी चाहिये। विष्णु चरणानुरागी किन देवों की पूजा करें ॥८॥ विप्रवर्य ! भागवत तन्त्र, गुरु-शिष्य भाव को दृढ़ करने वाली दीक्षा, प्रातःकाल आदि के अनुष्ठान कार्य आदि जो कुछ हो उनको कहिये ॥९॥ जिन कर्मों, जप या हवन से जिस मास में परमात्मा प्रसन्न होते हैं, उनको हे मानद, आपलोग अवश्य कहें ॥१०॥

सूत बोले---महात्मा नारद की इन बातों को सुनकर सूर्य के समान तेजस्वी सनत्कुमार बोले ॥११॥

नारद ! सुनो, मैं तुमको भागवत तन्त्र सुना रहा हूँ जिसको जानकर अपनी विमल भक्ति के द्वारा अव्यय विष्णु को प्रसन्न किया जा सकता है । ॥१२॥ महातंत्र को त्रिपदार्थ वाला और चतुष्पाद कहा जाता है, भोग मोक्ष, क्रिया और आचर्या ये चार पाद हैं । पदार्थ पशुपति, पशु और पाश तीन ही हैं । ॥१३॥ शिव को एकमात्र

पादार्थास्तु पशुपतिः पशुपाशास्त्रय एव हि । पतिस्तत्र शिवोह्येको जीवास्तु पशवः स्मृताः ॥१४॥
यावन्मोहादिसंयोगाः स्वरूपाबोधलक्षणाः । तावत्पशुत्वमेतेषां द्वैतवत्पश्य नारद ॥१५॥
पाशाः पंचविधास्त्वेषां प्रत्येकं तेषु लक्षणम् । पशवस्त्रिविधाश्चापि विज्ञाताः कलसंज्ञिकाः ॥१६॥
तलपाकलसंज्ञश्च सकलश्चेति नामतः । तत्राद्यो मलसंयुक्तो मलकर्मयुतः परः ॥१७॥
मलमायाकर्मयुतस्तृतीयः परिकीर्तितः । आद्यस्तु द्विविधस्तत्र समासकलुषस्तथा ॥१८॥
असमासमलश्चेति द्वितीयोऽपि पुनस्तथा । पक्वापक्वमलेनैव द्विविधः परिकीर्तितः ॥१९॥
शुद्धेऽध्वनि गतावेतौ विज्ञानप्रलयाकलौ । कलादितत्त्वनियतः सकलः पर्यटत्ययम् ॥२०॥
कर्मानुगशरीरेषु तत्तद्भुवनगेषु च । पाशाः पंच तथा तत्र प्रथमौ मलकर्मजौ ॥२१॥
मायेयश्च तिरोधानशक्तिजो बिंदुजः परः । एकोऽप्यनेकशक्तिदृंक्रियाच्छादनकोमलः ॥२२॥
तुषकंचुकवद्देहनिमित्तं चात्मनामिह । धर्माधर्मात्मकं कर्म विचित्रफलभोगदम् ॥२३॥
प्रवाहनित्यं तद्बीजांकुरन्यायेन संस्थितम् । इत्येतौ प्रथमौ चाथ मायेयाद्यान् शृणु द्विज ॥२४॥
सच्चिदानंदविभवः परमात्मा सनातनः । पतिर्जयति सर्वेषामेको बीजं विभुः परम् ॥२५॥
मनस्यति न चोदेति निर्वृत्तिं च प्रयच्छति । वर्वति दृक्क्रियारूपं तत्तेजः शांभवं परम् ॥२६॥
शक्तो मया हरौ भक्तो ब्रुवतो पशुगणस्य हि । तच्छक्तिमाद्यामेकांतां चिद्रूपाख्यां वदंति हि ॥२७॥
तया चोज्जृंभितो बिंदुर्दृक्क्रियात्मा शिवाभिधः । अशेषतत्त्वजातस्य कारणं विभुरव्ययम् ॥२८॥

पशु-पति और जीव को आचार्यों ने पशु कहा है ॥१४॥ नारद ! जब तक स्वरूप बोध में बाधा पहुँचाने वाले मोह आदि से जीव बद्ध हैं, तब तक इन जीवों में पशुभाव द्वैतभाव की भाँति बना ही रहता है, इसको तुम भी विचारो । ॥१५॥ उन पशुओं (जीवों) के पाश भी पाँच प्रकार के हैं जिनमें प्रत्येक के लक्षण भिन्न हैं । पशु भी तीन प्रकार के माने गये हैं जिनकी कल संज्ञा है ॥१६॥ तल, पाकल और सकल इनकी संज्ञायें (नाम) हैं । इनमें प्रथम मल से युक्त रहता है, दूसरा मल और कर्म से और तीसरा मल, माया और कर्म से । इनमें पहला समास कलुष और असमास कलुष भेद से दो प्रकार का है । दूसरे के भी दो भेद हैं असमास और मल । सकल के भी दो भेद हैं पक्व मल और अपक्व मल । ये विज्ञान और प्रलयकल शुद्ध मार्ग पर चले गये । कला आदि तत्वों पर अटल रहने वाले सकल जीव अपने कर्मानुकूल शरीरों में भिन्न-भिन्न लोकों में कर्म भोग के लिये जाते हैं । पाश पांच प्रकार के हैं, उनमें पहले दो मल और कर्म से उत्पन्न मायेय, तिरोधान शक्तिज और पर विन्दुज हैं । एक होते हुए भी अनेक शक्ति वाला है और नेत्र, क्रिया और आच्छादन के कारण कोमल है । ये पाश आत्मा (जीव) के अन्न के छिलके और कंचुक (खोल या आवरण) शरीर की रक्षा के लिए हैं या आवरण के लिए हैं । धर्म और अधर्म से संबन्ध रखने वाले कर्म विचित्र फल भोग देने वाले हैं । ये प्रवाह नित्य और बीजांकुर न्याय के समान अनिर्णेय हैं । द्विज ! ये प्रथम पाश जिनके समीप नहीं जाते उनको सुनो । सच्चिदानन्द, परमात्मा सनातन, व्यापक, पर और सबका एक मात्र कारण पति (शंकर) ही इन पर विजय प्राप्त करता है । वह न तो किसी वस्तु की कामना करता है, न तो वृद्धि ही प्राप्त करता है प्रत्युत उसकी सेवा करने पर निवृत्ति (सुख) की प्राप्ति होती है । ऐसा शम्भु का उत्कृष्ट तेज है जो कि दृक् क्रिया रूप में वर्त्तमान है ॥१७-२६॥

उस शम्भु की अद्वितीय, आद्य और चिद्रूपा नाम की शक्ति है ऐसा आचार्य कहते हैं । उस शक्ति की प्रेरणा से दृक् (ज्ञान) और क्रिया स्वरूप विभु और अव्यय विन्दु, जिसकी संज्ञा है शक्तिशाली होकर सम्पूर्ण तत्वों

अस्मिन्निलीना निखिला इच्छाया: शक्तयः स्वकम् । कृत्यं कुर्वन्ति तेनेदं सर्वानुग्राहकं मुने ॥२९॥
चिज्जडानुग्रहार्थाय यस्य विश्वं सिसृक्षतः । आद्योन्मेषोऽस्य नादात्मा शांत्यादिभुवनात्मकः ॥३०॥
तच्छक्तितत्वं विप्रेंद्र प्रोक्तं सावयवं परम् । ततो ज्ञानक्रियाशक्त्योस्तथोत्कर्षापकर्षयोः ॥३१॥
प्रसरश्चाप्यभावेन तत्त्वं चैतत्सदाशिवम् । दृक्शक्तिर्यत्र न्यग्भूता क्रियाशक्तिर्विशिष्यते ॥३२॥
ईश्वराख्यं तु तत्तत्त्वं प्रोक्तं सर्वार्थकर्तृकम् । यत्र क्रिया हि न्यग्भूता ज्ञानाख्योद्रेकमश्नुते ॥३३॥
तत्तत्त्वं चैव विद्याख्यं ज्ञानरूपं प्रकाशकम् । नादो बिंदुश्च सकलः सदाख्यं तत्त्वमाश्रितौ ॥३४॥
विद्येशाः पुनरैशं तु मंत्रा विद्याभिधं पुनः । इमानि चैव तत्त्वानि शुद्धाध्वेति प्रकीर्तितम् ॥३५॥
साक्षान्निमित्तमीशोऽत्रेत्युपादानसबिंदुराट् । पंचानां कालराहित्यात्क्रमो नास्तीति निश्चितम् ॥३६॥
व्यापारवसतो ह्येषां विहिता खलु कल्पना । तत्त्वं वस्तुत एकं तु शिवाख्यं चित्रशक्तिकम् ॥३७॥
शक्तं यां वृत्तिभेदात्तु विहिताः खलु कल्पनाः । चिज्जडानुग्रहार्थाय कृत्वा रूपाणि वै प्रभुः ॥३८॥
अनादिमलरुद्धानां कुरुतेऽनुग्रहं चिताम् । मुक्तिं भुक्तिं च विश्वेषां स्वव्यापारे समर्थताम् ॥३९॥
विधत्ते जडवर्गस्य सर्वानुग्राहकः शिवः । शिवसामान्यरूपो हि मोक्षस्तु चिदनुग्रहः ॥४०॥
सोऽनादित्वात्कर्मणो हि तत्तद्भोगं विना भवेत् । तेनानुग्राहकः शम्भुस्तद्भुक्त्यै प्रभुरव्ययः ॥४१॥
कुरुते सूक्ष्मकरणभुवनोत्पत्तिमंजसा । कर्त्तोपादानकरणैर्विना कार्यं न दृश्यते ॥४२॥
शक्तयः करणं चात्र मायोपादानमिष्यते । नित्यैका च शिवा शक्त्या ह्यनादिनिधना सती ॥४३॥

का कारण अर्थात् उत्पादक होता है। इस शिव में लीन सम्पूर्ण इच्छा शक्तियां अपने-अपने कार्य को करती हैं इसलिए यह सब पर अनुग्रह करने वाला है ॥।२७-२९॥ विश्व सृष्टि की इच्छा करने वाले जिस शिव का जड़ और चेतन पर अनुग्रह करने के अभिप्राय से नाद रूप में शान्ति, सुख और भुवन के रूप में सर्व प्रथम उद्भव हुआ। विप्रेन्द्र! उस शिव का पर शक्तितत्त्व सावयव है। उमे शक्तितत्त्व से ज्ञान और क्रिया शक्ति तथा उत्कर्ष एवं अपकर्ष का विस्तार हुआ। वह मूलभूत तत्त्व सदाशिव है जिसमें दृक् शक्ति के दुर्बल होने पर क्रिया शक्ति प्रबल हो जाती है ॥३०-३२॥ वह ईश्वर तत्त्व सब पदार्थों का कर्ता है। जिसमें क्रिया शक्ति के दुर्बल होने पर ज्ञान शक्ति की प्रधानता होती है। वह तत्त्व विद्या रूप, ज्ञान रूप और प्रकाशक है। नाद, बिन्दु और सकल, सत् नामक तत्त्व के आश्रय में रहते हैं और विद्येश मन्त्र विद्यानामक ऐश तत्त्व के आश्रित हैं। ये ही तत्त्व शुद्ध अध्वा (पथ) कहे गये हैं ॥३३-३५॥ इस शुद्ध पथ का साक्षात् कारण ईश (शिव) है और वह बिन्दुराट् उपादान कारण है। इन पांचों का काल से कुछ भी संबन्ध न होने के कारण कोई क्रम नहीं है ऐसा निश्चित है। इनकी क्रिया के कारण इनके विषय में कल्पना की गई है। वस्तुतः तत्त्व एक ही है जिसकी शक्तियां भिन्न-भिन्न हैं। जिस शक्तिशाली तत्त्व के विषय में वृत्तिभेद के कारण कल्पनायें की गई हैं, वह प्रभु जड़ और चेतन पर अनुग्रह करने के लिए विभिन्न रूप धारण कर अनादि मल से रुद्ध चेतन जीव पर अनुग्रह करता है। सब पर अनुग्रह करने वाला शिव सब को भुक्ति और मुक्ति प्रदान करता है और जड़ समूह को अपने कार्य में समर्थ बनाता है। अर्थात् जड़ पदार्थ पर भी अनुग्रह कर उनको कार्य योग्य बनाता है। शिव का सामान्य रूप प्राप्त करना ही मोक्ष है, वह मोक्ष क्या है, चेतन पर शिव का अनुग्रह ।॥३६-४०॥ वह मोक्ष कर्मों के अनादि होने के कारण कर्म भोग के बिना भी भगवत कृपा से होता है। [तात्पर्य यह है कि जब तक कर्म भोग रहेगा तब तक मोक्ष असम्भव है।] जब शिव के अनुग्रह से कर्म भोग का संबन्ध छूट जाता है तब मोक्ष प्राप्त होता है।] इसलिए अनुग्रहकर्त्ता, प्रभु, अव्यय शिव कर्म भोग के लिए सम्पूर्ण रूप से सूक्ष्म करणों के द्वारा भुवनों की सृष्टि करता है। बिना कर्त्ता और उपादान कारण के कार्य की उत्पत्ति नहीं देखी गई है ॥४१-४२॥ शक्तियां करण और

स्वचितजनकर्मभिः ॥४४॥
साधारणीनराणां वै भुवनानां च कारणम् । स्वभावान्मोहजननी स्वचितजनकर्मभिः ॥४५॥
विभ्वी सूक्ष्मा परा माया विकृतैः परतस्तु सा । कर्माण्यावेक्ष्य विद्यशो मायां विक्षोभ्य शक्तिभिः ॥४६॥
विधत्ते जीवभोगार्थं वपूंषि करणानि च । सृजत्यादौ कालतत्त्वं नानाशक्तिमयी च सा ॥४७॥
भावि भूतं भवद्धेदं जगत्कलयते लयम् । सूते ह्यसंतरं माया शक्ति नियमतात्मिकाम् ॥४८॥
सर्वं नियमयत्येषा तेनेयं नियतिः स्मृता । अनंतरं हि सा माया नित्या विश्वविमोहिनी ॥४९॥
अनादिनिधना तत्त्वं कलाख्यं जनयत्यपि । एकतस्तु नृणां येन कलयित्वा मलं ततः ॥५०॥
कर्तृशक्ति व्यंजयति तेनेदं तु कलाभिधम् । कालेन च नियत्योपसर्गतां समुपेतया ॥५१॥
व्यापारं विदधात्येषा भूपर्यंतं स्वकीयकम् । प्रदर्शनाय वै पुंसो विषयाणां च सा पुनः ॥५२॥
प्रकाशरूपं विद्याख्यं तत्त्वं सूते कलैव हि । विद्या त्वावरणं भित्वा ज्ञानशक्तेःस्वकर्मणा ॥५३॥
विषयान्दर्शयत्येषात्मनांशाकारणं ह्यतः । करोति भोग्यं येनासौ करणेन परेण वै ॥५४॥
उद्बुद्धशक्तिः पुरुषः प्रचोद्य महदादिकान् । भोग्ये भोगं च भोक्तारं तत्परं करणं तु सा ॥५५॥
भोग्यस्य भोग्यतिर्मासाच्चिद्व्यक्तिर्भोग उच्यते । सुखादिरूपा विषयाकारा बुद्धिः समासतः ॥५६॥
भोग्यं भोक्तुश्च स्वेनैव विद्याख्यं करणं तु तत् । यद्यर्कवत्प्रकाशा धीः कर्तृत्वाच्च तथापि हि ॥५७॥
करणांतरसापेक्षा शक्ता ग्राहयितुं च तम् । संबन्धात्कारणाद्यैस्तद्भगौत्सुक्येन चोदनात् ॥

माया उपादान कारण हैं। वह माया अपनी शक्ति के कारण नित्य, एक, अनादि, अनन्त है। वह साधारणी शक्ति नर और सम्पूर्ण भुवनों की जननी (कारण है।) वह अपने स्वभाव के कारण अपनी बुद्धि से और जनों के कृत कर्म से मोह को उत्पन्न करने वाली है। स्वयं वह व्यापक, सूक्ष्म परा, माया और विकारग्रस्त वस्तुओं से परे रहने वाली है। अर्थात् स्वयं वह विकृत नहीं होती। विद्येश शिव कर्मों को देखकर अपनी शक्ति से माया को क्षुब्ध कर (जाग्रत) कर जीवों के कर्म भोग के लिये शरीर और करण (इन्द्रियों) को उत्पन्न करते हैं। वह नाना शक्ति से सम्पन्न माया प्रारम्भ में कालतत्त्व को उत्पन्न करती है। वह भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान के रूप में विभक्त होकर इस संसार का लय करता है। तदनन्तर वह माया नियमनात्मिका शक्ति को उत्पन्न करती है। यह सब को अनुशासन में रखती है इसीलिये इसका नाम नियति भी है। पुनः वह नित्य विश्वविमोहिनी माया और अनादि निधना माया कला नामक तत्त्व को जनती है। वह जिस कारण मनुष्यों के मलों (कर्मों) की गणना करके कर्तृशक्ति को व्यक्त (प्रकट) करती है अतः उसका नाम कला है। ॥४३-४९½॥ काल, सृष्टि करने वाली कर्तृ शक्ति और नियति के द्वारा कला भूतल तक अपने व्यापार को फैलाती हैं। [तात्पर्य यह है कि माया भू पर्यन्त सृष्टि कर सर्वत्र अपनी धाक जमा लेती है।] तदनन्तर वही कला मनुष्यों को विषयों का ज्ञान कराने के लिए प्रकाश रूप विद्या तत्त्व को उत्पन्न करती है। विद्या अपने कर्म के ज्ञान शक्ति से आवरण का भेदन कर जीवात्माओं के विषयों का दर्शन कराती है, इसलिए वह कारज मानी गई है, क्योंकि वह पर करणों से भोग्य वस्तु का निर्माण करती है। पुरुष की शक्ति जब जाग्रत हो जाती है तब वह महत् आदि तत्वों को प्रेरित कर भोग्य, भोग और इसके अनन्तर करणों (इन्द्रियों), को बनाता है। जिसका उपभोग किया जाता उसको भोग्य और चिद्व्यक्ति को भोग कहते हैं। संक्षेप से विषयाकारा बुद्धि ही सुख-दुःख आदि के रूप में परिणत होती है ॥५०-५५॥ भोक्ता को भोग्य अपने ही कर्म से प्राप्त होता है, विद्या उसमें सहायक मात्र होती। यद्यपि प्रकाश सूर्य के समान स्वयं प्रकाश है तथापि धीः उस प्रकाश ग्रहण करने में अन्य कारणों के सहयोग से ही ग्रहण करने में समर्थ होती है क्योंकि प्रकाश को ग्रहण करना एक

तच्चेष्टाफलयोगाच्च संसिद्धा कर्तृतास्य तु । अकर्तृत्वाभ्युपगमे भोक्तृत्वाख्या वृथास्य तु ॥५८॥
किं च प्रधानचरितं व्यर्थं सर्वं भवेत्ततः । कर्तृत्वरहिते पुंसि करणाद्यप्रयोजके ॥५९॥
भोगस्यासंभवस्तस्मात्स एवात्र प्रवर्तकः । करणादिप्रयोक्तृत्वं विद्ययैवास्य संमतम् ॥६०॥
अनंतरं कलारागं सूते भिद्यंगरूपकम् । येन भोग्याय जनिता भिद्यंगे पुरुषे पुनः ॥६१॥
क्रियाप्रवृत्तिर्भवति तेनेदं रागसंज्ञिकम् । एभिस्तत्त्वैश्च भोक्तृत्वदशायां कलितो यदा ॥६२॥
नित्यस्तदायमात्मा तु लभते पुरुषाभिधाम् । कलैव पश्चादव्यक्तं सूते भोग्याय चास्य तु ॥६३॥
सप्तग्रंथिविधानस्य यत्तद्गौणस्य कारणम् । गुणानामविभागोऽत्र ह्याधारे क्ष्मादिभागवत् ॥६४॥
आधारोऽपि च यस्तेषां तदव्यक्तं च गीयते । त्रय एव गुणा ह्येषामव्यक्तादेव संभवः ॥६५॥
सत्त्वं रजस्तमःप्रख्या व्यापारनियमात्मिका । गुणतो धीश्च विषयाध्यवसायस्वरूपिणी ॥६६॥
गुणतस्त्रिविधा सापि प्रोक्ता कर्मानुसारतः । महत्तत्वादहंकारो जातः संरंभवृत्तिमान् ॥६७॥
संभेदादस्य विषयः प्राप्नोति व्यवहार्यताम् । सत्त्वादिगुणभेदेन स पुनस्त्रिविधो भवेत् ॥ ६८॥
तैजसो राजसश्चैव तामसश्चेति नामतः । तत्र तैजसतो ज्ञानेंद्रियाणि मनसा सह ॥६९॥
प्रकाशान्वयतस्तस्मान्द्बोधकानि भवन्ति हि । राजसाच्च क्रियाहेतोस्तथा कर्मेंद्रियाणि तु ॥७०॥
तामसाच्चैव जायन्ते तन्मात्रा भूतयोनयः । इच्छारूपं च संकल्पव्यापारं तत्र वै मनः ॥७१॥
द्विधाधिकारि तच्चित्तं भोक्तृभोगोपपादकम् । बहिःकरणभावेन स्वोचितेन यतः सदा ॥७२॥

कर्म है । कर्म साधनापेक्ष होते ही हैं । कारण आदि के संयोग से और प्रेरणा से जीव को कर्म-भोग के प्रति उत्सुकता रहती है और उसकी चेष्टाओं के फल योग के कारण ही जीव का कर्तृत्व सिद्ध होता है । क्योंकि यदि जीव का कर्तृत्व सिद्ध न होगा अर्थात् यदि जीव को कर्ता न माना जायगा तो उसको भोक्ता कैसे माना जायगा, उसको भोक्तृता सिद्ध न होगी । और यदि जीव को करण आदि का प्रयोजक न माना जायगा, उसको कर्ता न माना जायगा तो उसकी प्रधानता भी व्यर्थ हो जायगी । भोग भी उसके लिये संभव न होगा अर्थात् वह भोक्ता संभव न होगा अतएव विषय भोग या कर्म का प्रवर्तक स्वयं जीव ही है । और जो यह करण आदि (साधन या इन्द्रिय आदि) का प्रयोक्ता माना जाता है वह विद्या के कारण ही सम्भव है ॥५६-६०॥

इसके अनन्तर कला दृढ़ वज्रलेप के सदृश राग को उत्पन्न करती है, जिससे उस वज्रलेप-रागयुक्त पुरुष में भोग के लिये फिर शक्ति उत्पन्न होती है । यतः इसके द्वारा क्रिया-प्रवृत्ति (कार्य करने की इच्छा) होती है अतः इसका नाम राग कहा जाता है । इन तत्त्वों से युक्त होकर आत्मा जब भोक्तृत्व दशा को प्राप्त होता है तब यह नित्य आत्मा पुरुष संज्ञाको प्राप्त करता है अर्थात् पुरुष कहलाता है । इस आत्मा के भोग के लिए कला ही अव्यक्त को उत्पन्न करती है । सप्त ग्रन्थि विधानों से युक्त अव्यक्त के कारण गुण हैं । इसके आधार में भी क्ष्मा (पृथ्वी) के समान गुणों का अविभाग (एकता) है । गुणों का जो आधार है उसको अव्यक्त ही कहते हैं । गुण तीन ही हैं । इनकी उत्पत्ति अव्यक्त से ही होती है । सत्त्व, रज और तम रूप तीन गुण क्रिया के नियम रूप हैं । गुणों से ही विषयों में प्रवृत्त होने वाली धी उत्पन्न होती है । कर्मों के अनुसार गुण भेद से बुद्धि भी तीन प्रकार की होती है तैजस, राजस और तामस । तैजस धी से मन के साथ ज्ञानेन्द्रियाँ प्रकाश के संयोग से विषयों का ज्ञान कराने वाली होती हैं । क्रिया हेतु राजस से कर्मेन्द्रियाँ और तामस से रूप, रस आदि पंच तन्मात्रायें और पंच महाभूत के कारण उत्पन्न होते हैं । उनमें इच्छा स्वरूप और संकल्प करने वाला मन भी हैं । भोक्तृत्व और भोग को उत्पन्न करने वाला वह चित्त दो प्रकार का है । क्योंकि वह सदा अपने अनुकूल बाह्य करणों (साधनों) के द्वारा और आत्मवृत्ति संकल्प

इंद्रियाणां च सामर्थ्यं संकल्पेनात्मवृत्तिना । करोत्यंतःस्थितं भूयस्ततोऽन्तःकरणं मनः ॥७३॥
मनोऽहंकारबुद्ध्याख्यमस्त्यन्तःकारणं त्रिधा । इच्छासंरंभबोधाख्या वृत्तयः क्रमतोऽस्य तु ॥७४॥
ज्ञानेंद्रियाणि श्रोत्रं त्वक् चक्षुर्जिह्वा च नासिका । ग्राह्याश्च विषया ह्येषां ज्ञेयाःशब्दादयो मुने ॥७५॥
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः शब्दादयो मताः । वाक्पाणिपादपायूपस्थास्तु कर्मेंद्रियाण्यपि ॥७६॥
वचनादानगमनोत्सर्गानंदेषु कर्मसु । करणानि च सिद्धिर्ना न कृतिः करणैर्विना ॥७७॥
दशधा करणैश्चेष्टां कार्यमाविश्य कार्यते । चेष्टंते कार्यमालंब्य विभुत्वात्करणानि तु ॥७८॥
तन्मात्राणि तु खंवायुस्तेजोऽम्भः क्ष्मेति पञ्च वै । तेभ्यो भूतान्येकगुणान्याख्यातानि भवंति हि ॥७९॥
इति पञ्चसु शब्दोऽयं स्पर्शो भूतचतुष्टये । रूपं त्रिषु रसश्चैव द्वयोर्गंधः क्षितौ तथा ॥८०॥
कार्याण्येषां क्रमेणैवावकाशो व्यूहकल्पनम् । पाकश्च संग्रहश्चैव धारणं चेति कथ्यते ॥८१॥
आशीतोष्णौ महावाद्यौ शीतोष्णौ वारितेजसोः । भास्वदग्नौ जले शुक्लं क्षितौ शुक्लाद्यनेकधा ॥८२॥
रूपं त्रिषु रसोऽम्भःसु मधुरः षड्विधः क्षितौ । गन्धः क्षितावसुरभिः सुरभिश्च प्रकीर्तितः ॥८३॥
तन्मात्रं तद्भूतगुणं करणं पोषणं तथा । भूतस्य तु विशेषोऽयं विशेषरहितं तु तत् ॥८४॥
इमानि पञ्चभूतानि संनिविष्टानि सर्वतः । पञ्चभूतात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥८५॥
शरीरसंनिविष्टत्वमेषां तावन्निरूप्यते । देहेऽस्थिमांसकेशत्वङ्नखदन्ताश्च पार्थिवाः ॥८६॥
मूत्ररक्तकफस्वेदशुक्रादिषु जलस्थितिः । हृदि पंक्तौ दृशोः पित्ते तेजस्तद्धर्मदर्शनात् ॥८७॥
प्राणादिवृत्तिभेदेन वायुश्चैवात्र संस्थितः । वियत्सर्वासु नाडीषु गर्भवृत्त्यनुषंगतः ॥८८॥

के द्वारा इन्द्रियों में कार्य क्षमता उत्पन्न करता है। पुनः अन्तः स्थित हो जाता और उसकी संज्ञा अन्तःकरण हो जाती है। अन्तःकरण के मन, अहंकार और बुद्धि नामक तीन भेद हैं और इनकी वृत्तियाँ क्रमशः इच्छा, संरंभ (कोप) और बोध हैं। मुने! श्रोत्र (कान), त्वक्, चक्षु, जिह्वा और नासिका ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और इनके शब्द आदि ग्राह्य विषय हैं ॥६१-७५॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध की शब्द आदि में गणना होती है। वाक्, पाणि (हाथ) पाद, गुदा और लिङ्ग कर्मेन्द्रियाँ हैं। ये वचन, ग्रहण, गमन (चलना), मल त्याग और आनन्दानुभूति कर्मों के असाधारण कारण हैं, क्योंकि असाधारण कारणों के बिना कार्योत्पत्ति नहीं होती। इन दश करणों से इच्छायें उत्पन्न होतीं और तब कार्य सम्पन्न होते हैं। इन्द्रियों के व्यापक होने के कारण कार्य का आलम्बन कर (लक्षित कर) चेष्टायें उत्पन्न होती हैं। पंच तन्मात्राओं से आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी-ये पंच महाभूत उत्पन्न होते हैं और इन पंच महाभूतों से अनेक गुणों वाले अनगिनत जीव उत्पन्न होते हैं। इन पाँचों महाभूतों में शब्द और स्पर्श गुण चार में होते हैं, रूप तीन में, रस दो में और गन्ध केवल पृथ्वी में होता है ॥७६-८०॥ इन पंच महाभूतों के कार्य भी क्रमशः अवकाश, व्यूह कल्पन, पाक, संग्रह और धारण हैं। अशीत, उष्ण; महावाद्य, शीत उष्ण जल और तेज में होते हैं। अग्नि में भास्वर शुक्ल, तेज में अभास्वर शुक्ल और पृथ्वी में शुक्ल आदि अनेक रूप हैं। रूप तीन भूतों (जल, तेज और क्षिति) में, मधुर रस जल में और पृथ्वी में छः प्रकार के रस हैं। गन्ध पृथ्वी में होता है, जिसके दो भेद हैं सुरभि और असुरभि। तन्मात्राओं में उनके भूतों के ही गुण हैं। करण और पोषण यह भूत समुदाय की विशेषता है। परमात्मतत्त्व निर्विशेष है। ये पाँच महाभूत सर्वत्र और सब में सन्निविष्ट हैं, यह सम्पूर्ण स्थावर जंगमात्मक जगत् पंचभूतात्मक है। पांच महाभूत शरीर में कहाँ-कहाँ रहते हैं इसका निरूपण किया जा रहा है। इस देह में हड्डी, मांस, केश, चमड़ा, नख और दाँत पृथ्वी तत्त्व से बने हैं। मूत्र, रक्त, कफ, पसीना और वीर्य आदि में जल तत्त्व है। हृदय, पंक्ति, नेत्र और पित्त में तेज तत्त्व है। क्योंकि इनमें तेज के गुण दृष्टिगोचर होते हैं। और वायु प्राण, अपान आदि के रूप में इस देह में स्थित है। सब नाड़ियों तथा गर्भा-

प्रयोवत्यादिमहीप्रांतमेतदंडार्थसाधनम् । प्रत्यात्मनियतं भोगभेदतो व्यवसीयते ॥८६॥
तत्त्वान्येवं कलाद्यानि प्रतिपुंनियतानि हि । देहेषु कर्मवशतः सर्वेषु विचरंति हि ॥९०॥
मायेयश्चैव पाशोऽयं येनावृतमिदं जगत् । अशुद्धाध्वा मतो ह्येष धरण्यादिकलावधिः ॥९१॥
तत्र भूमण्डलस्थोऽसौ स्थावरो जङ्गमात्मकः । स्थावरा गिरिवृक्षाद्या जङ्गमस्त्रिविधः पुनः ॥९२॥
स्वेदजाश्चांडजाश्चैव तथैव च जरायुजाः । चराचरेषु लक्षाणां चतुराशीतियोनयः ॥९३॥
भ्रममाणस्तेषु जीवः कदाचिन्मानुषं वपुः । प्राप्नोति कर्मवशतः परं सर्वार्थसाधकम् ॥९४॥
तत्रापि भारते खण्डे ब्राह्मणादिकुलेषु च । महापुण्यवशेनैव जनिर्भवति दुर्लभा ॥९५॥
जनिश्च पुंस्त्रियोर्योगः शुक्रशोणितयोगतः । बिंदुरेकः प्रविशति यदा गर्भं द्वयात्मकः ॥९६॥
तदा रजोऽधिके नारी भवेद्रेतोऽधिके पुमान् । मलकर्मादिपाशेन कश्चिदात्मा नियंत्रितः ॥९७॥
जीवभावं तदा तस्मिन्सकलः प्रतिपद्यते । अथ तत्राहृतैर्मात्रा पानान्नाद्यैश्च पोषितः ॥९८॥
पक्षमासादिकालेन वर्धते वपुरत्र हि । दुःखाद्यः पीडितश्चैवाच्छन्नदेहो जरायुणा ॥९९॥
एवं तत्र स्थितो गर्भे प्राग्जन्मोत्थं शुभाशुभम् । स्मरंस्तिष्ठति दुःखात्मा पीड्यमानो मुहुर्मुहुः ॥१००॥
कालक्रमेण बालोऽसौ मातरं पीडयन्नपि । संपीडितो निःसरति योनियंत्रादवाङ्मुखः ॥१०१॥
क्षणं तिष्ठति निश्चेष्टस्ततो रोदितुमिच्छति । ततः क्रमेण स शिशुर्वर्धमानो दिनेदिने ॥१०२॥
बालपौगंडभेदेन युवत्वं प्रतिपद्यते । एवं क्रमेण लोकेऽस्मिन्देहिनां देहसंभवः ॥१०३॥
मानुषं दुर्लभं प्राप्य सर्वलोकोपकारकम् । यस्तारयति नात्मानं तस्मात्पापतरोऽत्र कः ॥१०४॥

शय में आकाश तत्त्व व्याप्त है। कला से लेकर पृथ्वीपर्यन्त यह तत्त्वसमुदाय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का साधन है। प्रति व्यक्ति में ये कला आदि तत्त्व नियत रूप से हैं और कर्म के वश में होकर सब शरीर में घूमते रहते हैं। यह पाश मायेय है जिससे सारा संसार ढका है। पृथ्वी से लेकर कला तक अशुद्धध्वा कहा जाता है। यह अशुद्धध्वा इस पर स्थावर जंगम के रूप में वर्तमान है। पहाड़ और पेड़ आदि स्थावर हैं, जंगम के भी तीन भेद हैं स्वेदज, अंडज और जरायुज। चराचर में कुल मिलाकर चौरासी लाख योनियाँ हैं। संयोगवश अपने कर्मों के कारण सब योनियों में भ्रमण करता हुआ जीव मानव शरीर पाता है जो भली भाँति सब अर्थों को सिद्ध करने वाला है। उसमें भारत खण्ड में ब्राह्मण आदि कुलों में जन्म पाना अत्यन्त दुर्लभ है, क्योंकि ऐसा जन्म महापुण्यों के कारण प्राप्त होता है। जन्म पुरुष-स्त्री के संयोग से रज वीर्य का संयोग होने पर होता है। जब गर्भ में वीर्य रज के साथ पहुँचता है तब रज की अधिकता होने पर स्त्री और वीर्य की अधिकता होने पर पुरुष उत्पन्न होता है। मल और कर्म के पाश में जकड़ा हुआ कोई आत्मा कला के सहित उस गर्भ में जीव रूप हो जाता है। इसके बाद उस गर्भ में माता के भोजन से बने हुए रस से उस जीव का पोषण होता और पक्ष, मास आदि के अनुसार धीरे-धीरे जीव का शरीर बढ़ने लगता है। गर्भ की झिल्ली से बंधा वह बहुत अधिक कष्ट पाता है। इस प्रकार गर्भ में बार-बार कष्ट होने पर दुःखी जीवात्मा पूर्व जन्म के शुभ-अशुभ कर्मों का स्मरण करता हुआ निवास करता है। माता को पीड़ा पहुँचाता हुआ वह जीव दस महीने बीत जाने पर स्वयं पीड़ित होकर औंधे मुख योनि से बाहर निकलता है। उस समय क्षण भर तो निश्चेष्ट रहता फिर उसके बाद रोने की इच्छा होती है। क्रमशः दिनों दिन वह शिशु बढ़ने लगता और बाल्य, पौगण्ड को बिता कर युवावस्था को प्राप्त करता है, इस प्रकार इस लोक में आत्मा जन्म लेता है। जो सारे लोक का उपकार करने वाले मनुष्य-शरीर को पाकर अपना उद्धार नहीं करता उससे बढ़कर पापी कौन हो सकता है? ॥८७-१०४॥

आहारश्चैव निद्रा च भयं मैथुनमेव च । पश्वादीनां च सर्वेषां साधारणमितीरिम् ॥१०५॥
चतुर्ष्वेवानुरक्तो यः स मूर्खो ह्यात्मघातकः । मनुष्याणामयं धर्मः स्वबंधच्छेदनात्मकः ॥१०६॥
पाशबंधनविच्छेदो दीक्षयैव प्रजायते । अतो बंधनविच्छित्त्यै मंत्रदीक्षां समाचरेत् ॥१०७॥
दीक्षाज्ञानाख्यया शक्त्या ह्यपध्वंसितबन्धनः । शुद्धात्मतत्त्वनामासौ निर्वाणपदमश्नुते ॥१०८॥
स्वशक्त्यात्मिकया दृष्ट्या शिवं ध्यायति पश्यति । यजते शिवमंत्रैश्च स्वपरेषां हिताय सः ॥१०९॥
शिवार्कशक्तिदीधित्या समर्थीकृतचिद्दृशा । शिवशक्त्यादिभिः सार्द्धं पश्यत्यात्मगतावृतिः ॥११०॥
अंतःकरणवृत्तिर्या बोधाख्या सा महेश्वरम् । न प्रकाशयितुं शक्ता पाशत्वान्निगडादिवत् ॥१११॥
दीक्षैव परमो हेतुः पाशविच्छेदने पुनः । अतः शास्त्रोक्तविधिना मंत्रदीक्षां समाचरेत् ॥११२॥
दीक्षितस्तंत्रविधिना स्ववर्णाचारतत्परः । अनुष्ठानं प्रकुर्वीत नित्यनैमित्तिकात्मकम् ॥११३॥
निजवर्णाश्रमाचारान्मनसापि न लंघयेत् । यो यस्मिन्नाश्रमे तिष्ठन्दीक्षां प्राप्नोति मानवः ॥११४॥
स तस्मिन्नाश्रमे तिष्ठेत्तद्धर्माननुपालयेत् । कृतान्यपि न कर्माणि बंधनाय भवंति हि ॥११५॥
एकं तु फलदं कर्म मंत्रानुष्ठानसंभवम् । दीक्षितोऽभिलषेद्भोगान्यद्यल्लोकगतानसौ ॥११६॥
मंत्राराधनसामर्थ्यात्तद्भुक्त्वा मोक्षमश्नुते । नित्यं नैमित्तिकं दीक्षां प्राप्य यो नाचरेन्नरः ॥११७॥
कंचित्कालं पिशाचत्वं प्राप्यांते मोक्षमश्नुते । तस्मात्तु दीक्षितः कुर्यान्नित्यनैमित्तिकादिकम् ॥११८॥
अनुष्ठानं च तेनास्य दीक्षां प्राप्याऽनुमीयते । नित्यनैमित्तिकाचार पालकस्य नरस्य तु ॥११९॥

साधारणतया आहार, निद्रा, भय और मैथुन पशुओं में भी पाये जाते हैं। जो मूर्ख इन चारों में ही अनुरक्त रहता है वह आत्मघाती है। मनुष्यों का यह अपने को माया बन्धन से छुड़ाना ही धर्म है। पाश बन्धन से दीक्षा के द्वारा ही मुक्ति होती है अतः बन्धन से अपने को छुड़ाने के लिये मन्त्र दीक्षा अवश्य लेनी चाहिये। दीक्षा ज्ञान नामक शक्ति से अपने सब बन्धनों को ध्वस्त कर देने वाला शुद्ध आत्म तत्त्व वाला ही मुक्ति पद पाता है। जो स्व-शक्ति सम्पन्न दृष्टि से शिव का ध्यान करता और देखता है और अपने तथा दूसरों के हित के लिये शिव मन्त्र से शिव की पूजा करता है। वह शिव, सूर्य और शक्ति की किरणों से (तेज से) अपनी दृष्टि को शक्ति-शाली बनाकर शक्ति आदि के सहित शिव को आत्मस्थ होकर देखता है। जो ज्ञान या बोध नाम की अन्तःकरण वृत्ति है वह जंजीर के समान पाशों से बद्ध होने के कारण शिव को प्रकाशित नहीं कर सकती। पाश से मुक्त करने में दीक्षा ही परम कारण है इसलिये शास्त्रोक्त विधि से मन्त्र दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। तन्त्र विधि से दीक्षित होकर अपने वर्ण के अनुकूल आचरण करते हुए नित्य नैमित्तिक कर्म[1] को करना चाहिए। वर्णाश्रम के अनुकूल आचारों के उल्लंघन का मन में विचार तक करना अनुचित है। जो मनुष्य जिस आश्रम में रह कर दीक्षा ग्रहण करता है वह उसी आश्रम में रहता हुआ धर्म का पालन करे। इस प्रकार वर्ण धर्म के अनुसार कृत कर्म बन्धन के कारण नहीं बनते। मन्त्र के अनुष्ठान से किया हुआ एक ही कर्म फल-दायक होता है। मन्त्र से दीक्षित व्यक्ति जिन-जिन लौकिक भोगों की इच्छा करता है वह मन्त्र जप के प्रभाव से उन-उन भोगों को भोग कर अन्त में मोक्ष भी पा जाता है। जो मनुष्य दीक्षा प्राप्त कर लेने पर नित्य नैमित्तिक[1] कर्मों का परित्याग कर देता है वह कुछ काल तक पिशाच योनि में जाकर अन्त में मोक्ष पाता है। इसलिये दीक्षित होकर नित्य नैमित्तिक आदि कर्मों को अवश्य करना चाहिये। नित्य नैमित्तिक कर्मों का पालन करने वाले व्यक्ति के किसी अनुष्ठान

१--नित्य कर्म सन्ध्या वन्दन आदि, नैमित्तिक कर्म--किसी विशेष कारण से किये हुए कार्य यज्ञ आदि।

दीक्षावैकल्यविरहात्सद्यो मुक्तिस्तु जायते। तत्रापि गुरुभक्तस्य गतिर्भवति नान्यथा ॥१२०॥
दीक्षया गुरुमूर्तिस्थः सर्वानुग्राहकः शिवः। दृष्टाद्यर्थतया यस्य गुरुभक्तिस्तु कृत्रिमा ॥१२१॥
कृतेऽपि विफलं तस्य प्रायश्चित्तं पदे पदे। कायेन मनसा वाचा गुरुभक्तिपरस्य च ॥१२२॥
प्रायश्चित्तं भवेन्नैव सिद्धिस्तस्य पदे पदे। गुरुभक्तियुते शिष्ये सर्वस्वविनिवेदके ॥१२३॥
मिथ्याप्रयुक्तमन्त्रस्तु प्रायश्चित्ती भवेद्गुरुः। ॥१२४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

अथ जीवस्य पाशौघच्छेदनायेष्टसिद्धिदम्। दीक्षाविधिं प्रवक्ष्यामि मन्त्रसामर्थ्यदायकम् ॥१॥
दिव्यं भावं यतो दद्यात्क्षिणुयाद्दुरितानि च। अतो दीक्षेति सा प्रोक्ता सर्वागमविशारदैः ॥२॥

के फल का अनुमान दीक्षा पा लेने के बाद ही लगाया जा सकता है। अवश्य दीक्षा प्राप्त करने पर तत्काल मुक्ति मिल जाती है, उसमें गुरुभक्त की ही मुक्ति होती है अन्यथा नहीं। दीक्षा से सब पर अनुग्रह करने वाले शिव स्वयं गुरु रूप में उपस्थित हो जाते हैं। जो केवल लौकिक लाभ के लिये कृत्रिम गुरुभक्ति दिखलाता है, उसके कर्म करने पर भी फल नहीं मिलते और उसको पद-पद पर प्रायश्चित्त लगता है। शरीर, मन और वाणी से गुरुभक्ति करने वाले शिष्य को किसी प्रकार का प्रायश्चित्त नहीं लगता और पग-पग पर उसको सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार सर्वस्व अर्पण करने वाले गुरुभक्त शिष्य को मिथ्या मन्त्र का अदेश करने वाला गुरु प्रायश्चित्त का भागी होता है। ॥१०५-१२४॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वभाग में तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६३॥

अध्याय ६४

दीक्षा विधि का निरूपण

सनत्कुमार बोले—इसके अनन्तर जीव को पाश समूह से मुक्त कर इष्ट-सिद्धि-प्रदान-कारक और मन्त्र-शक्तिदायक दीक्षा-विधि का वर्णन कर रहा हूँ। ॥१॥ यतः यह दिव्य भावना को प्रदान करती और सब पापों का क्षय करती है अतः सब शास्त्रों के निपुण विद्वान् इसको दीक्षा कहते हैं ॥२॥ मनन और त्राण से

मननं सर्ववेदित्वं त्राणं संसार्यनुग्रहः । । मननात्त्राणधर्मत्वान्मंत्र इत्यभिधीयते ॥३॥
स्त्रीपुंनपुंसकात्मानस्ते मंत्रास्तु त्रिधा मताः । स्त्रीमंस्त्रास्तु द्विठांताःस्युः पुंमंत्रा हुंफडंतकाः ॥४॥
क्लीबाश्चैव नमोंऽताः स्युर्मंत्राणां जातयः स्मृताः । पुंदैवतास्तु मन्त्राः स्युर्विद्याः स्त्रीदैवता मताः ॥५॥
षट्कर्मसु प्रशस्तास्ते मनवस्त्रिविधाः पुनः । तारांत्यरेफः स्वाहास्तु तत्राग्नेयाः समीरिताः ॥६॥
सौम्यास्तु भृगुपीयूषबीजाढ्याः कथिता मुने । अग्नीषोमात्मका ह्येवं मंत्रा ज्ञेया मनीषिभिः ॥७॥
बोधमायांति चाग्नेयाः श्वसने पिंगलाश्रिते । सौम्याश्चैव प्रबुध्यंते वामे वहति मारुते ॥८॥
सर्वे मंत्राः प्रबुध्यंते वायौ नाडिद्वयाश्रिते । स्वापकाले तु मन्त्रस्य जपोऽनर्थफलप्रदः ॥९॥
प्रत्येकं मन्त्रमुच्चार्य नाव्यानां तान्समुच्चरेत् । अनुलोमे बिंदुयुक्तान्विलोमे सर्गसंयुतान् ॥१०॥
जप्तो यदि स वै देवं प्रबुद्धः क्षिप्रसिद्धिदः । अनया मालया जप्तो दुष्टमन्त्रोऽपि सिद्धयति ॥११॥
क्रूरे कर्मणि चाग्नेयाः सौम्याः सौम्यफलप्रदाः । शांतज्ञानेति रौद्रेयशांतिजातिसमन्वितः ॥१२॥
शांतोऽपि रौद्रतामेति हुंफट्पल्लवयोजनात् । छिन्नादिदोषयुक्तास्ते नैव रक्षंति साधकम् ॥१३॥
छिन्नो रुद्धः शक्तिहीनस्ततश्चैव पराङ्मुखः । कर्णहीनो नेत्रहीनः कीलितः स्तंभितस्तथा ॥१४॥
दग्धः स्त्रस्तश्च भीतश्च मलिनश्च तिरस्कृतः । भेदितश्च सुषुप्तश्च मदोन्मत्तश्च मूर्च्छितः ॥१५॥
हतवीर्यो भ्रांतसंज्ञः प्रध्वस्तो बालकस्तथा । कुमारोऽथ युवा प्रौढो वृद्धो निस्त्रिंशकस्तथा ॥१६॥
निर्बीजः सिद्धिहीनश्च मंदः कूटो निरंशकः । सत्त्वहीनः केकरश्च बीजहीनश्च धूमितः ॥१७॥

मन्त्र बनता है। मनन का अर्थ सर्वज्ञत्व और त्राण का जीवों पर अनुग्रह करना है मनन और त्राण धर्म के कारण ही इसका नाम मन्त्र पड़ा ॥३॥ उन मन्त्रों के स्त्री, पुरुष और नपुंसक तीन भेद हैं। दो ठ (स्वाहा) वाला मन्त्र स्त्री मन्त्र है, 'हुं' और 'फट्' जिसके अन्त में हों पुल्लिङ्ग मन्त्र हैं। नमः जिसके अन्त में हो वे मन्त्र नपुंसक हैं। ये ही तीन मन्त्रों की जातियाँ हैं। मन्त्र पुंदैवत अर्थात् पुंल्लिङ्ग देवता वाले हैं और विद्यायें स्त्री दैवत हैं ॥४-५॥ ये तीन प्रकार के मन्त्र छः कर्मों में प्रशस्त (शुभ) माने जाते हैं। जिसमें प्रणवान्त रेफ (रां) और स्वाहा का प्रयोग हो, वह मन्त्र आग्नेय कहा जाता है ॥६॥ मुने ! भृगु बीज (सं) और पीयूष (वं) से परिपूर्ण मन्त्र सौम्य मन्त्र हैं। इस प्रकार मनीषियों ने मन्त्रों को अग्नि और सोमात्मक माना है ॥७॥ जब प्राण पिंगला नाड़ी में रहता है (अर्थात् दाहिनी सांस चलती हो) तब आग्नेय मन्त्र सिद्ध होते हैं और वाम नाड़ी में प्राण के संचारित होने पर अर्थात् बायीं सांस चलने पर सौम्य मन्त्र प्रबुद्ध होते हैं ॥८॥ सब मन्त्र दो नाड़ियों में प्राण के संचारित होने पर ही जाग्रत होते हैं। मन्त्र के सोते समय उसका जप करने से मन्त्र अनर्थ कर देने वाला हो जाता है ॥९॥ प्रत्येक मन्त्र का उच्चारण करते समय उनका श्वास रोककर उच्चारण न करे। अनुलोम में तो बिन्दु (अनुस्वार) और विलोम में विसर्ग संयुत मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए ॥१०॥ यदि इस विधि से देवों के मन्त्रों का जप किया जाय तो शीघ्र सिद्धि हो जाती है। इस प्रकार की माला से जप करने पर दुष्ट मन्त्र भी सिद्ध हो जाते हैं ॥११॥ क्रूर कर्म (मारण, उच्चाटन आदि) में आग्नेय मन्त्र सिद्धि प्रद होते हैं और सौम्य कर्मों में (मोहन, वशीकरण) में सौम्य मन्त्र फलप्रद होते हैं। शान्तिजाति से युक्त मन्त्र शान्त कर्मों में सिद्धिदायक होते हैं। शान्ति मन्त्र भी 'हुं फट्' आदि के जोड़ देने से रौद्र मन्त्र हो जाते हैं ॥१-१२½॥ परन्तु छिन्न आदि दोष से युक्त मन्त्र कभी भी साधक के रक्षक नहीं होते हैं ॥१३॥ छिन्न, रुद्ध, शक्तिहीन, पराङ् मुख, कर्ण हीन, नेत्र हीन, कीलित, स्तंभित, दग्ध, स्त्रस्त, भीत, मलिन, तिरस्कृत, भेदित, सुषुप्त, मदोन्मत्त, मूर्च्छित, हतवीर्य, भ्रांत, प्रध्वस्त, बालक, कुमार, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, निस्त्रिंशक, निर्बीज, सिद्धिहीन, मंदकूट, निरंशक, सत्त्वहीन, केकर, बीजहीन,

आलिंगितो मोहितश्च क्षुधार्तश्चातिदीप्तकः । अंगहीनोऽतिक्रुद्धश्चातिक्रूरो व्रीडितस्तथा ॥१८॥
प्रशांतमानसःस्थानभ्रष्टश्च विकलस्तथा । अतिवृद्धोऽतिनिःस्नेहः पीडितश्च तथा पुनः ॥१९॥
दोषा ह्येते समाख्याता वक्ष्याम्येषां च लक्षणम् । संयुक्तं वा वियुक्तं वा त्रिधा वा स्वरसंयुतम् ॥२०॥
मनोर्यस्यादिमध्यांते वह्निबीजं तथोच्यते । चतुर्धा पञ्चधा वापि स मन्त्रश्छिन्नसंज्ञकः ॥२१॥
मनोर्यस्यादिमध्यांते भूबीजद्वयमुच्यते । स तु रुद्धो मनुर्ज्ञेयो ह्यतिक्लेशेन सिद्धिदः ॥२२॥
तारवर्मत्रया लक्ष्मीरेवं हीनस्तु यो मनुः । शक्तिहीनः स विज्ञेयश्चिरकालफलप्रदः ॥२३॥
कामबीजं मुखं मायाह्यन्ते चैवाङ्कुशं तथा । असौ पराङ्मुखो ज्ञेयो भजतां चिरसिद्धिदः ॥२४॥
आदिमध्यावसानेषु सकारो दृश्यते यदि । स मन्त्रो बधिरः प्रोक्तः कष्टेनाल्पफलप्रदः ॥२५॥
पञ्चार्णो यदि रेफार्कबिंदुवर्जितविग्रहः । नेत्रहीनस्तु विज्ञेयः क्लेशेनापि न सिद्धिदः ॥२६॥
आदिमध्यावसानेषु हंसः प्रासादवाग्भवौ । हंसेंदुर्वा सकारो वा फकारो वर्म वा पुनः ॥२७॥
माप्रा नमामि च पदं नास्ति यस्मिन्स कीलितः । एवं मध्ये द्वयं मूर्ध्नि यस्मिन्नस्त्रलकारकौ ॥२८॥
न विद्यते स मंत्रस्तु स्तंभितः सिद्धिरोधकृत् । अग्निः पवनसंयुक्तो मनोर्यस्य तु मूर्द्धनि ॥२९॥
स सार्णो दृश्यते यस्तु स मंत्रो दग्धसंज्ञकः । अस्त्रं द्वाभ्यां त्रिभिः षड्भिरष्टाभिर्दृश्यतेऽक्षरैः ॥३०॥
त्रस्तः स मंत्रो विज्ञेयो मुखे तारविवर्जितः । हकारः शक्तिरथवा भीतो मंत्रः स एव हि ॥३१॥
मनोर्यस्यादिमध्यांते स्यान्मकारचतुष्टयम् । मलिनस्तु स विज्ञेयो ह्यतिक्लेशेन सिद्धिदः ॥३२॥

घूमित, आलिंगित, मोहित, क्षुधार्त, अति दीपक, अंग हीन, अतिक्रूर, अतिक्रुद्ध, व्रीडित, प्रशान्तमानस, स्थानभ्रष्ट, विकल, अतिवृद्ध, अति निःस्नेह और पीडित इतने मन्त्र के दोष हैं, जिनके लक्षण आगे कहूँगा ॥१४-४९½॥ जिस मन्त्र के आदि, मध्य और अन्त में संयुक्त, वियुक्त और तीन भागों में विभक्त अथवा स्वर से संयुक्त हो उसको वह्नि बीज (रं) कहते हैं। जिस मन्त्र के आदि मध्य और अन्त में वह्नि बीज हो अथवा चार प्रकार या पांच प्रकार से वह विभक्त हो या वह्नि बीज हो उसको छिन्न कहते हैं ॥२०-२१॥ जिस मन्त्र के आदि मध्य और अन्त में दो भू बीज (लं) हो उसको रुद्ध मन्त्र कहते हैं और वह अत्यन्त क्लेश से सिद्धि प्रदान करता है ॥२२॥ प्रणव और कवच (हूँ) ये तीन बार जिस मन्त्र में आये हों, वह लक्ष्मी युक्त होता है। ऐसी लक्ष्मी से हीन जो मंत्र है उसे शक्ति हीन जानना चाहिए। वह चिरकाल में फल देने वाला होता है ॥२३॥ जिस मन्त्र के आदि में काम बीज (क्लीं), मध्य में माया बीज (ह्रीं) और अन्त में अङ्कुश बीज (क्रों) हो उस मन्त्र को पराङ्मुख कहते हैं जो साधकों को चिरकाल में सिद्धि प्रधान करता है ॥२४॥ जिस मन्त्र के आदि मध्य, और अन्त में सकार हो उसको बधिर (कर्णहीन) कहते हैं और बहुत कष्ट उठाने पर भी स्वल्प फल देता है ॥२५॥ पांच वर्णों वाला मन्त्र यदि रेफ, मकार और अनुस्वार से रहित हो तो उसको नेत्र हीन कहते हैं और वह कष्ट उठाने पर भी सिद्धिप्रद नहीं होता ॥२६॥ जिस मन्त्र के आदि, मध्य और अन्त में हंस, (सं) प्रासाद, तथा वाग्बीज (ऐं) हो अथवा हंस और चन्द्रविन्दु या सकार फकार अथवा हुँ हो तथा जिसमें मा प्रा और नमामि पद न हो वह मन्त्र कीलित माना गया है। इसी प्रकार जिसके मध्य में और अन्त वे दोनों पद न हों तथा जिसमें फट् और लकार न हों उसको स्तंभित मन्त्र कहते हैं और वह सिद्धि में बाधा उत्पन्न करता है ॥२७½॥ जिस मन्त्र के अन्त में अग्नि (रं) बीज वायु (य) बीज के साथ हो तथा जो सात अक्षरों से युक्त हो, वह मन्त्र दग्ध है। जो मन्त्र दो, तीन, छः और आठ अक्षरों के साथ अस्त्र (फट्) से युक्त हो तथा जिसके मुखभागमें प्रणवरहित हकार शक्ति हो उसको त्रस्त कहते हैं। अथवा भीत मंत्र उसी को कहते हैं, जिस मंत्र के आदि मध्य और अन्त में चार मकार हों उसको मलिन कहते हैं और उसको कष्टपूर्वक जप करने पर सिद्धि प्राप्त होती है ॥२९-३२॥ जिस मन्त्र के मध्य

दार्णो यस्य मनोमध्ये मूर्ध्नि क्रोधयुगं तथा । अस्त्रं चास्ति स मंत्रस्तु तिरस्कृत उदीरितः ॥३३॥
म्योद्वयं हृदयं शीर्षे वषड्वौषट्कमध्यमः । यस्य स्याद्भेदितो मंत्रस्त्याज्यः विलष्टफलप्रदः ॥३४॥
त्र्यक्षरो हंसहीनो यः सुषुप्तः कीर्तितस्तु सः । विद्या वाप्यथवा मंत्रो भवेत्सप्तदशाक्षरः ॥३५॥
षट्कारपंचकादिर्यो मदोन्मत्तस्तु स स्मृतः । यस्य मध्ये स्थितं चास्त्रं स मंत्रो मूर्च्छितः स्मृतः ॥३६॥
विरामस्थानगं चास्त्रं हतवीर्यः स उच्यते । मंत्रस्यादौ च मध्ये च मूर्ध्नि चास्त्रचतुष्टयम् ॥३७॥
ज्ञातव्यो भ्रांत इत्येष यः स्यादष्टादशाक्षरः । पुनर्विंशतिवर्णो वा यो मंत्रः स्मरसंयुतः ॥३८॥
हृल्लेखांकुशबीजाढ्यः प्रध्वस्तः स तु कथ्यते । सप्तार्णो बालमंत्रस्तु कुमारो वसुवर्णवान् ॥३९॥
षोडशार्णो युवा प्रौढश्चतुर्विंशतिवर्णकः । त्रिंशद्वर्णश्चतुःषष्टिवर्णश्चापि शताक्षरः ॥४०॥
चतुःशताक्षरो मंत्रो वृद्ध इत्यभिधीयते । नवार्णस्तार संयुक्तो मंत्रो निस्त्रिंश उच्यते ॥४१॥
यस्यांते हृदयं प्रोक्तं शिरोमंत्रोऽथ मध्यगः । शिखा वर्म च यस्यांते नेत्रमस्त्रं च दृश्यते ॥४२॥
शिवशक्त्यार्णहीनो वै निर्बीजः स मनुः स्मृतः । आद्यंतमध्ये फट्कारः षोढा यस्मिन्प्रदृश्यते ॥४३॥
स मनुः सिद्धिहीनः स्यान्मंदः पंक्त्यक्षरो मनुः । कूट एकाक्षरो मंत्रः स एवोक्तो निरंशकः ॥४४॥
द्विवर्णःसत्त्वहीनः स्यात्केकरश्चतुरक्षरः । षड्वर्णो बीजहीनो वा सार्द्धसप्ताक्षरोऽपि वा ॥४५॥
सार्द्धद्वादशवर्णो वा धूमितो निंदितस्तु सः । सार्द्धबीजत्रयुतो मंत्रो विंशतिवर्णवान् ॥४६॥
त्रिंशद्वर्णश्चैकविंशद्वर्णश्चालिंगितस्तु सः । यो मंत्रो दंतवर्णस्तु मोहित सः तु कीर्तितः ॥४७॥

द वर्ण हो और अन्त में दो क्रोध (हुं हुं) बीज हों और उनके साथ अस्त्र (फट्) भी हो तो उसको तिरस्कृत कहते हैं। जिस मन्त्र के अन्त में म और य तथा हृदय हो और मध्य में वषट् और वौषट् हो उसको भेदित कहते हैं और वह कष्ट से सिद्धिदायक होता है उसका सर्वथा त्याग करना चाहिये ॥३३-३४॥ जो तीन अक्षरों का हो और हंस हीन हो उसको सुषुप्त कहते हैं। जो विद्या अथवा मन्त्र सत्रह अक्षर वाला हो और उसके आदि में पाँच बार फट् का प्रयोग हुआ हो, उसे मदोन्मत्त कहते हैं ॥३५½॥ जिसके मध्य में फट् हो उसको मूर्च्छित कहते हैं। जिसके विराम स्थान में अस्त्र (फट्) हो उसको हतवीर्य कहते हैं ॥३६½॥ जिस मन्त्र के आदि, मध्य और अन्त में चार अस्त्र (फट्) हों उसको भ्रान्त कहते हैं। जो मन्त्र अठारह या बीस वर्ण वाला हो कामबीज (क्लीं) से युक्त होकर हृदय, लेख और अंकुश के भी बीज से परिपूर्ण हो उसको प्रध्वस्त कहते हैं ॥३७½॥ सात वर्णों वाला मन्त्र बालमन्त्र और आठ वर्ण वाला कुमार है। सोलह वर्ण वाला युवा और चौबीस वर्ण वाला प्रौढ है। तीस, चौंसठ, सौ और चार सौ अक्षरों वाले मन्त्र वृद्ध कहे गये हैं ॥३९-४०½॥ नव वर्ण और तार (प्रणव) संयुक्त मन्त्र को निस्त्रिंश कहते हैं। जिनके अन्त में हृदय (नमः) हो, मध्य में शिरोमन्त्र (स्वाहा) हो और अन्त में शिखा (वषट्), कवच (हुं), नेत्र (वौषट्) और अस्त्र (फट्) हों तथा जो शिव एवं शक्ति अक्षरों से हीन हो, उसे निर्बीज कहा जाता है ॥४१-४२½॥ जिस मन्त्र के आदि, अन्त और मध्य में छःबार फट् हों वह मन्त्र सिद्धिहीन है। पाँच अक्षर वाला मन्त्र मंद और एक अक्षर वाला कूट है। उसी को निरंशक भी कहते हैं ॥४३-४४॥ दो वर्ण वाले को सत्त्वहीन, और चार अक्षर वाले को केकर कहते हैं। छः या साढ़े सात वर्ण वाला बीजहीन और साढ़े बारह अक्षर वाला धूमित माना गया है। वह निंदित है। जो साढ़े तीन बीज से युक्त, बीस वर्णों वाला, तीस और इक्कीस वर्णों वाला हो उसको आलिङ्गित कहा जाता है ॥४५-४६½॥ जो मन्त्र दन्त्य वर्ण वाला होता है उसको

चतुर्विशतिवर्णो वा सप्तविंशतिवर्णवान् । क्षुधार्तः स तु विज्ञेयो मंत्रसिद्धिविवर्जितः ॥४८॥
एकादशाक्षरो वापि पंचविंशतिवर्णकः । त्रयोविंशतिवर्णो वा स मनुर्दृप्तसंज्ञकः ॥४९॥
षड्विंशत्यक्षरो वापि षट्त्रिंशद्वर्णकोऽपि वा । एकोनत्रिंशदर्णो वा मंत्रो हीनांगकः स्मृतः ॥५०॥
अष्टाविंशतिवर्णो वा तथैकत्रिंशदर्णकः । अतिक्रूरः स विज्ञेयोऽखिलकर्मसु गर्हितः ॥५१॥
चत्वारिंशत्समारभ्य त्रिषष्टंचतस्तु यो मनुः । व्रीडितः स तु विज्ञेयः सर्वकर्मसु न क्षमः ॥५२॥
पञ्चषष्ट्यक्षरा मन्त्रा ज्ञेया वै शांतमानसाः । पञ्चषष्ट्यर्णमारभ्य नवनन्दाक्षरावधि ॥५३॥
ये मंत्रास्ते तु विज्ञेयाः स्थानभ्रष्टा मुनीश्वर । त्रयोदशार्णा ये मन्त्रास्तिथ्यर्णाश्च तथा पुनः ॥५४॥
विकलास्ते समाख्याताः सर्वतंत्रविशारदैः । शतं सार्द्धशतं वापि शतद्वयमथापि वा ॥५५॥
द्विनवत्येकहीनो वा शतत्रयमथापि वा । ये मंत्रा वर्णसंख्याका निःस्नेहास्ते प्रकीर्तिताः ॥५६॥
चतुःशतं समारभ्य सहस्रार्णावधि द्विज । अतिवृद्धाः प्रयोगेषु शिथिलास्ते समीरिताः ॥५७॥
सहस्रवर्णादधिका मन्त्रास्ते पीडिताह्वयाः । तदूर्ध्वं चैव ये मंत्राः स्तोत्ररूपास्तु ते स्मृताः ॥५८॥
एवंविधाः समाख्याता मनवो दोषसंयुताः । दोषानेतानविज्ञाय मंत्रानेताञ्जपन्ति ये ॥५९॥
सिद्धिर्न जायते तेषां कल्पकोटिशतैरपि । छिन्नादिदोषदुष्टानां मंत्राणां साधनं ब्रुवे ॥६०॥
योनिमुद्रासने स्थित्वा प्रजपेद्यः समाहितः । यं कंचिदपि वा मंत्रं तस्य स्युः सर्वसिद्धयः ॥६१॥
सव्यपार्ष्णि गुदे स्थाप्य दक्षिणं च ध्वजोपरि । योनिमुद्राबंध एवं भवेदासनमुत्तमम् ॥६२॥
अन्योऽप्यत्र प्रकारोऽस्ति योनिमुद्रानिबंधने । तदग्रे सरहस्यं ते कथयिष्यामि नारद ॥६३॥
पारंपर्यक्रमप्राप्तो नित्यानुष्ठानतत्परः । गुर्वनुज्ञारतः श्रीमानभिषेकसमन्वितः ॥६४॥

मोहित और चौबीस तथा सत्ताईस वर्ण वाला क्षुधार्त कहा जाता है जो कि मन्त्रसिद्धि से शून्य रहता है ॥४७-४८॥ ग्यारह, पचीस, तेंत्तीस वर्ण वाला दृप्त मन्त्र है ॥४९॥ छब्बीस छत्तीस और उनतीस वर्ण वाला हीनांग है ॥५०॥ अट्ठाईस और इकतीस वर्ण वाला मन्त्र अति क्रूर है जो सब कर्मों में निन्दित समझा जाता है ॥५१॥ चालीस से लेकर तिरसठ वर्ण वाले मन्त्र व्रीड़ित (लज्जित) है जो सब प्रकार के कार्यों में समर्थ नहीं होता है ॥५२॥ पैंसठ अक्षर वाले मन्त्र शान्तमानस हैं । मुनीश्वर ! पैंसठ वर्णों से लेकर निन्यानबे वर्णों तक के जितने मन्त्र हैं, उनको स्थान भ्रष्ट कहा जाता है ॥५३½॥ तेरह वर्ण वाले मन्त्रों और पन्द्रह वर्ण वाले मन्त्रों को मन्त्राचार्यों ने विकल कहा है ॥५४½॥ सौ, डेढ़ सौ, दो सौ, इक्यानबे अथवा तीन सौ वर्णों वाले जितने मन्त्र हैं वे निःस्नेह कहे जाते हैं ॥५५-५६॥ चार सौ से लेकर हजार वर्ण वाले मन्त्र अति वृद्ध हैं और वे शिथिल कहे जाते हैं ॥५७॥ हजार वर्णों से अधिक वर्ण वाले मन्त्र पीड़ित हैं और इनसे अधिक वर्ण वाले मन्त्र नहीं प्रत्युत स्तोत्र हैं ॥५८॥ इस प्रकार मन्त्रों के दोष गिनाये गए हैं। जो इन दोषों को न जानकर ऐसे दोषों से दुष्ट मंत्र को जपते हैं उनको सौ करोड़ कल्प में भी सिद्धि नहीं मिलती। ॥५९½॥

अब छिन्न आदि उपर्युक्त दोषों से दुष्ट मन्त्रों की साधन विधि बता रहा हूँ ॥६०॥ जो योनि मुद्रा में स्थित होकर एकाग्र भाव से जिस किसी मन्त्र को जपता है उसको सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥६१॥ बायें पैर की एड़ी को गुदा द्वार पर लगाकर दाहिने पैर की एड़ी को लिङ्ग के ऊपर रखें तो उसे योनि मुद्रा बन्ध कहते हैं ॥६२॥ यह सर्वोत्तम आसन है। योनि मुद्रा बन्ध के और भी प्रकार (तरीके) हैं जिनका भेद और रहस्य सहित वर्णन आगे करूंगा ॥६३॥ परम्परा क्रम द्वारा मन्त्रों को सीखा हुआ, नित्य प्रति अनुष्ठान में तत्पर रहने वाला,

सुंदरः सुमुखः शांतः कुलीनः सुलभो वशी । मंत्रतंत्रार्थतत्त्वज्ञो निग्रहानुग्रहक्षमः ॥६५॥
निरपेक्षो मुनिर्दांतो हितवादी विचक्षणः । तत्त्वनिष्कासने दक्षो विनयी च सुवेषवान् ॥६६॥
आश्रमी ध्याननिरतः संशयच्छित्सुबुद्धिमान् । नित्यानुष्ठानसंयुक्तस्त्वाचार्यः परिकीर्तितः ॥६७॥
शांतो विनीतः शुद्धात्मा सर्वलक्षणसंयुतः । शमादिसाधनोपेतः श्रद्धावान् सुस्थिराशयः ॥६८॥
शुद्धदेहोऽन्नपानाद्यैर्धार्मिकः शुद्धमानसः । दृढव्रतसमाचारः कृतज्ञः पापभीरुकः ॥६९॥
गुरुध्यानस्तुतिकथासेवनासक्तमानसः । एवंविधो भवेच्छिष्यस्त्वन्यथा गुरुदुःखदः ॥७०॥
इतिश्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

परीक्ष्य शिष्यं तु गुरुर्मंत्रशोधनमाचरेत् । प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च पंचसूत्राणि पातयेत् ॥१॥
चतुष्टयं चतुष्कानां स्यादेवं नृपकोष्ठके । तत्राद्यप्रथमे त्वाद्यं द्वितीयाद्ये द्वितीयकम् ॥२॥

गुरु की आज्ञा में लीन रहने वाला, श्रीमान्, अभिषेक (स्नान) से युक्त, सुन्दर, सुमुख, शान्त, कुलीन, सुलभ, जितेन्द्रिय, मन्त्र और तन्त्रों का तत्त्वज्ञ, यथोचित निग्रह (दण्ड) और अनुग्रह (कृपा) करनेवाला, निरपेक्ष, मननशील, दान्त, हितवादी, विद्वान्, तत्त्व निकालने में या तत्त्व निर्णय में कुशल, विनयी, सुवेष, वर्णाश्रमी, ध्यान-निरत, सन्देहों को स्वयं मिटाने वाला, सुबुद्धिमान्, नित्य अनुष्ठान में लगा रहने वाला, पुरुष ही आचार्य बनने योग्य है ॥६४-६७॥ और अन्नपानादि से शुद्ध देह वाला, शान्त, विनीत, शुद्धात्मा, सब लक्षणों से सम्पन्न, शम, दम आदि साधनों से युक्त, श्रद्धालु, स्थिर चित्तवृत्ति वाला, खान-पान शुद्ध रखने वाला, धार्मिक, शुद्धचित्त, व्रत और आचार पालन में दृढ़, कृतज्ञ, पापों से डरने वाला और गुरु का ध्यान, स्तुति और कथा श्रवण में रमने वाला व्यक्ति ही शिष्य होने योग्य है अन्यथा विपरीत आचरण करने वाला केवल गुरु को दुख देने वाला है, शिष्य नहीं। ॥६८-७०॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वार्ध में चौसठवाँ अध्याय समाप्त। ॥६४॥

अध्याय ६५

मन्त्रजपविधिकथन

सनत्कुमार ने कहा—गुरु शिष्य को विधिवत् परीक्षा लेकर मन्त्र शोधन कार्य करे। पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर (रंग में डुबोये हुए) पाँच-पाँच सूत गिराये (तात्पर्य यह है कि पाँच खड़ी रेखायें खींचकर उनके ऊपर पाँच पड़ी रेखायें खींचे) ॥१॥ इस प्रकार चार-चार कोष्ठों के चार समुदाय बनेंगे। उनमें से पहले चौक के प्रथम कोष्ठ में एक, दूसरे के प्रथम में दो, तीसरे के प्रथम में तीन और चौथे के प्रथम में चार लिखे

तृतीयाद्ये तृतीयं स्याच्चतुर्थाद्ये तुरीयकम् । तत्तदाग्नेयकोष्ठेषु तत्तत्पंचममक्षरम् ॥३॥
विलिख्य क्रमतो धीमान्मनुं संशोधयेत्ततः । नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादि वर्णकम् ॥४॥
चतुष्के यत्र नामार्णस्तत्स्यात्सिद्धिचतुष्ककम् । प्रादक्षिण्यात्तद्द्वितीयं साध्याख्यं परिकीर्तितम् ॥५॥
तृतीयं पुंसि सिद्धाख्यं तुरीयमरिसंज्ञकम् । द्वयोर्वर्णावेककोष्ठे सिद्धसिद्धेति तन्मतम् ॥६॥
तद्द्वितीये तु मंत्रार्णे सिद्धसाध्यः प्रकीर्तितः । तृतीये तत्सुसिद्धःस्यात्सिद्धारिस्तच्चतुर्थके ॥७॥
नामार्णान्यचतुष्कात्तु द्वितीये मंत्रवर्णके । चतुष्के चेत्तदा पूर्वं यत्र नामाक्षरं स्थितम् ॥८॥
तत्र तत्कोष्ठमारभ्य गणयेत्पूर्ववत्क्रमात् । साध्यसिद्धः साध्यसाध्यस्तत्सुसिद्धश्च तद्रिपुः ॥९॥
तृतीये चेच्चतुष्के तु यदि स्यान्मंत्रवर्णकः । तदा पूर्वोक्तरीत्या तु क्रमाद्द्येयं मनीषिभिः ॥१०॥
सुसिद्धसिद्धस्तत्साध्यस्तत्सुसिद्धश्च तद्रिपुः । तुरीये चेच्चतुष्के तु तदैवं गणयेत्सुधीः ॥११॥
अरिसिद्धोऽरिसाध्यश्च तत्सुसिद्धश्च तद्रिपुः । सिद्धसिद्धो यथोक्तेन द्विगुणात्सिद्धिसाध्यकः ॥१२॥
सिद्धः सुसिद्धोऽर्द्धतयात्सिद्धारिर्हन्ति गोत्रजान् । द्विगुणात्साध्यसिद्धस्तु साध्यसाध्यो विलंबतः ॥१३॥
साध्यः सुसिद्धो द्विगुणात्साध्यारिर्हंति बांधवान् । सुसिद्धसिद्धोऽर्द्धतया तत्साध्यो द्विगुणाज्जपात ॥१४॥

॥२½॥ (इसी क्रम से आगे की संख्यायें भी लिख ले।) प्रथम कोष्ठ में 'अ' लिखकर उसके आग्नेय कोण में उससे
पाँचवां अक्षर लिखे ॥३॥ इस प्रकार सभी कोष्ठों में क्रमशः अक्षरों को लिखकर बुद्धिमान् पुरुष मन्त्र का संशोधन
करे। साधक के नाम का आदि अक्षर जिस कोष्ठ में हो, वहाँ से लेकर जहाँ मन्त्र का आदि अक्षर हो उस कोष्ठ
तक प्रदक्षिणाक्रम से गिनना चाहिए। यदि उसी चौक में मन्त्र का आदि अक्षर हो, जिसमें नाम का आदि अक्षर
है तो वह 'सिद्ध चौक' कहा जाएगा ॥४½॥ उससे प्रदक्षिणाक्रम से गिनने पर यदि द्वितीय चौक में मन्त्र का आदि
अक्षर हो तो वह साध्य कहा गया। इसी प्रकार तीसरा चौक सुसिद्ध और चौथा चौक अरि नाम से प्रसिद्ध है।
यदि साधक के नाम संबंधी और मन्त्र संबंधी आदि अक्षर प्रथम चौक के पहले ही कोष्ठ में पड़े हों तो वह मन्त्र
'सिद्धसिद्ध' माना गया है ॥५-६॥ यदि मन्त्रवर्ण प्रथम चौक के द्वितीय कोष्ठ में पड़ा हो तो वह सिद्धसाध्य कहा
गया है। प्रथम के तृतीय कोष्ठ में हो तो सिद्धसुसिद्ध होगा और चौथे में हो तो सिद्धारि कहलाएगा ॥७॥ नामा-
क्षरयुक्त चौक से दूसरे चौक में यदि मन्त्र का अक्षर हो तो पहले जहाँ नाम का अक्षर था वहाँ के उस कोष्ठ से
आरंभ करके क्रमशः पूर्ववत् गणना करे। द्वितीय चौक के प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ कोष्ठ में मन्त्राक्षर होने
पर उसकी क्रमशः साध्यसिद्ध, साध्यसाध्य, साध्यसुसिद्ध तथा साध्य आदि संज्ञा होगी ॥८-९॥ तीसरे चौक में मंत्र
का अक्षर हो तो मनीषी पुरुषों को पूर्वोक्त रीति से गणना करनी चाहिए। तृतीय चौक के प्रथम आदि कोष्ठों
के अनुसार क्रमशः उस मन्त्र की सुसिद्धसिद्ध, सुसिद्धसाध्य, सुसिद्धसुसिद्ध तथा सुसिद्ध अरि संज्ञा होगी ॥१०½॥
यदि चौथे चौक में मन्त्राक्षर हो तो भी विद्वान् पुरुष इसी प्रकार गणना करे। चतुर्थ चौक के प्रथम आदि कोष्ठों
के अनुसार उस मन्त्र की अरिसिद्ध, अरिसाध्य, अरिसुसिद्ध तथा अरिअरि यह संज्ञा होगी ॥११½॥ सिद्धसिद्ध मंत्र
शास्त्रोक्त विधि से उतनी ही संख्या में जप करने पर सिद्ध हो जाएगा। परंतु सिद्धसाध्य मन्त्र दूनी संख्या में
जप करने से सिद्ध होगा। सिद्धसुसिद्ध मन्त्र शास्त्रोक्त संख्या से आधा जप करने पर ही सिद्ध हो जाएगा। परंतु
सिद्धारि मन्त्र कुटुंबी जनों का नाश करता है। साध्यसिद्ध मन्त्र दूनी संख्या में जप करने से सिद्ध होता है। साध्य-
साध्य मन्त्र बहुत विलंब से सिद्ध होता है ॥१२-१३॥ साध्यसुसिद्ध भी द्विगुण जप से सिद्ध होता है; किन्तु
साध्यारि मन्त्र बंधु-बांधवों का हनन करता है। सुसिद्धसिद्ध आधे ही जप से सिद्ध होता है। सुसिद्धसाध्य द्विगुण जप
से सिद्ध होता है ॥१४॥ सुसिद्धसुसिद्ध मन्त्र प्राप्त होते ही सिद्ध हो जाता है और सुसिद्धारि मन्त्र सारे कुटुंब का

तत्सुसिद्धप्राप्तिमात्रात्सुसिद्धारिःकुटुम्बहृत् । अरिसिद्धस्तु पुत्रघ्नोऽरिसाध्यः कन्यकापहः ॥१५॥
तत्सुसिद्धः कलत्रघ्नः साधकघ्नोऽप्यरिः स्मृतः । अन्येऽप्यत्र प्रकारा हि संति वै बहवो मुने ॥१६॥
सर्वेषु मुख्योऽयं तेऽत्र कथितोऽकथहाभिधः । एवं संशोध्य मंत्रं तु शुद्धे काले स्थले तथा ॥१७॥
दीक्षयेच्च गुरुः शिष्यं तद्विधानमुदीर्यते । नित्यकृत्यं विधायाथ प्रणम्य गुरुपादुकाम् ॥१८॥
प्रार्थयेत्सद्गुरुं भक्त्याभीष्टमंत्रार्थमादृतः । संपूज्य वस्त्रालंकारगोहिरण्यधरादिभिः ॥१९॥
कृत्वा स्वस्ति विधानं तु मंडलादि च तुष्टिमान् । गुरुः शिष्येण सहितः शुचिर्यागगृहं विशेत् ॥२०॥
सामान्यार्घोदकेनाथ संप्रोक्ष्य द्वारमन्त्रतः । दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नान्नभस्थानर्च्य वारिणा ॥२१॥
पार्ष्णिघातैस्त्रिभिर्भौमांस्ततः कर्मसमाचरेत् । वर्णकैः सर्वतोभद्रे यथोक्तपरिकल्पिते ॥२२॥
वह्निमण्डलमभ्यर्च्य तत्कलाः परिपूज्य च । अस्त्रप्रक्षालितं कुंभं यथाशक्ति विनिर्मितम् ॥२३॥
तत्र संस्थाप्य विधिवत्तत्र भानोः कलां यजेत् । विलोममातृकामूलमुच्चरन् शुद्धवारिणा ॥२४॥
आपूर्य कुंभं तत्रार्चेत्सोमस्य विधिवत्कलाः । धूम्रार्चिरूष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिंगिनी ॥२५॥
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहा तथा । वह्नेर्दश कलाः प्रोक्ताः प्रोच्यंतेऽथ रवेः कलाः ॥२६॥
तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः । सषुम्णा भोगदा विश्वा बोधिनी धारिणी क्षमा ॥२७॥
अथेंदोश्च कला ज्ञेया ह्यमृता मानदा पुनः । पूषा तुष्टिश्च पुष्टिश्च रतिश्च धृतिसंज्ञिकाः ॥२८॥
शशिनी चंद्रिका कांतिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरंगदा । पूर्णापूर्णामृता चेति प्रोक्ताश्चंद्रमसः कलाः ॥२९॥

नाश करता है। अरिसिद्ध पुत्रनाशक है तथा अरिसाध्य कन्या का नाश करने वाला होता है ॥१५॥ अरिसुसिद्ध स्त्री का नाश करता है और अरिअरि मन्त्र साधक का ही नाश करने वाला माना गया है। मुने! यहाँ मन्त्र शोधन के और भी बहुत से प्रकार हैं, किन्तु यह अकथह नामक चक्र सब में प्रधान है; इसलिए यही तुम्हें बताया गया है ॥१६½॥

इस प्रकार मन्त्र का भलीभांति शोधन करके शुद्ध समय और पवित्र स्थान में गुरु शिष्य को दीक्षा दे। अब दीक्षा का विधान बताया जाता है ॥१७½॥ प्रातःकाल नित्यकर्म करके पहले गुरुचरणों को पादुका को प्रणाम करे। तत्पश्चात् आदरपूर्वक वस्त्र आदि के द्वारा भक्तिभाव से सद्गुरु की पूजा करके उनसे अभीष्ट मन्त्र के लिए प्रार्थना करे ॥१८½॥ तदनन्तर गुरु संतुष्टचित्त हो स्वस्तिवाचनपूर्वक मंडल आदि विधान करके शिष्य के साथ पवित्र हो यज्ञमंडप में प्रवेश करें ॥१९-२०॥ फिर सामान्य अर्घ्य-जल से द्वार का अभिषेक करके अस्त्रमंत्रों से दिव्य विघ्नों का निवारण करे; इसके बाद आकाश में स्थित विघ्नों का जल से पूजन करके निराकरण करे। भूमिसम्बन्धी विघ्नों को तीन बार पार्ष्णि (एड़ी) के आघात से ताली बजाकर हटाये। तत्पश्चात् कार्य प्रारंभ करे ॥२१½॥ भिन्न-भिन्न रंगों द्वारा शास्त्रोक्त विधि से सर्वतोभद्रमण्डल की रचना करके उसमें वह्निमण्डल और उसकी कलाओं का पूजन करे। तत्पश्चात् अस्त्र-मंत्र का उच्चारण करके धोये हुए यथाशक्ति-निर्मित कलश को वहाँ विधिपूर्वक स्थापना करके सूर्य की कला का यजन करे। ॥२२-२३½॥ विलोममातृका मूल मंत्र का उच्चारण कर उस कलश को शुद्ध जल से परिपूर्ण कर उसमें सोम की कला की अर्चना करे ॥२४½॥ धूम्रार्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला, हव्यवहा तथा कव्यवहा ये दश अग्नि की कलायें हैं। इसके अनन्तर सूर्य की कलाओं का वर्णन कर रहा हूँ ॥२५-२६॥ तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचिज्वालिनी, रुचि, सुषुम्णा, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी और क्षमा सूर्य की कलायें हैं। अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा, और पूर्णामृता इतनी चन्द्रमा की

नवरत्नानि निक्षिप्य विन्यसेत्पञ्चपल्लवान् ॥३०॥
वस्त्रयुग्मेन संवेष्ट्य तस्मिन्सर्वौषधीः क्षिपेत् । मुक्तामाणिक्यवैडूर्यगोमेदान्वज्रविद्रुमौ ॥३१॥
पनसाम्रवटाश्वत्थबकुलेति च तान् विदुः । एवं रत्नानि निक्षिप्य तत्रावाह्येष्टदेवताम् ॥३२॥
पद्मरागं मरकतं नीलं चेति यथाक्रमम् । वेद्यां संवेश्य संप्रोक्ष्य प्रोक्षणीस्थेन वारिणा ॥३३॥
संपूज्य विधिवन्मंत्री ततः शिष्यं स्वलंकृतम् । न्यासजालेन संशोध्य मूर्ध्नि विन्यस्य पल्लवान् ॥३४॥
भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा तच्छरीरे विधानतः । अभिषिंचेत्प्रियं शिष्यं जपन्मूलमनुं हृदि ॥३५॥
अष्टोत्तरशतेनाथ मूलमंत्रेण मंत्रितैः । गुरुं प्रणम्य विधिवत्संविशेत्पुरतः शुचिः ॥३६॥
शिष्टोदकेन वाचम्य परिधायांबरं शिशुः । जपेदष्टोत्तरशतं देयमन्त्रं विधानतः ॥३७॥
अथ शिष्यस्य शिरसि हस्तं दत्त्वा गुरुस्ततः । ततः सचन्दनं हस्तं दत्त्वा शिष्यस्य मस्तके ॥३८॥
समोऽस्त्वित्यक्षरान्दद्यात्ततः शिष्योऽर्चयेद्गुरुम् । संप्राप्तविद्यः शिष्योऽपि निपतेद्गुरुपादयोः ॥३९॥
तत्कर्णे प्रवदेद्विद्यामष्टवारं समाहितः । कीर्तिश्रीकांतिपुत्रायुर्बलारोग्यं सदास्तु ते ॥४०॥
उत्तिष्ठ वत्स मुक्तोऽसि सम्यगाचारवान्भव । दद्याच्च दक्षिणां तस्मै वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥४१॥
ततः शिष्यः समुत्थाय गन्धाद्यैर्गुरुमर्चयेत् । देहपुत्रकलत्रैश्च गुरुसेवापरो भवेत् ॥४२॥
संप्राप्यैवं गुरोर्मंत्रं तदारभ्य धनादिभिः । अग्निनैर्ऋतिवागीशान् क्रमेण परिपूजयेत् ॥४३॥
स्वेष्टदेवं यजेन्मध्ये दत्त्वा पुष्पांजलिं ततः ।

उस कलश को दो वस्त्रों से लपेटकर उसमें सर्वौषधि छोड़ दे । फिर उसमें नव रत्नों को
कलायें कही गई हैं ॥२७-२९॥ उस कलश को दो वस्त्रों से लपेटकर उसमें सर्वौषधि छोड़ दे । नव रत्नों में मुक्ता,
डालकर पंच पल्लव छोड़े ॥३०॥ कटहल,आम, वट, पीपल और मौलिश्री को पंच पल्लव कहते हैं । नव रत्नों में मुक्ता,
माणिक्य, वैदूर्य, गोमेद, वज्र, विद्रुम, पद्मराग, मरकत और नीलमणि की गणना है ॥३१[1]॥ इस प्रकार नव रत्नों को
कलश में छोड़ने के पश्चात् अपने इष्ट देवता का स्मरण करे । मन्त्रदाता गुरु इस प्रकार सर्वतोभद्र मण्डल में
आवाहित देवताओं की विधिवत् पूजा करने के अनन्तर आभूषण, वस्त्र आदि आदि पहने हुए शिष्य को वेदी पर
बैठाये और प्रोक्षणी जल से उसका अभिषेक करे ॥३२-३३॥ विधिपूर्वक भूत शुद्धि आदि करके उसके शरीर को
वज्रन्यास से शुद्ध कर शिर पर पल्लव रखकर मूलमन्त्र का एक सौ आठ बार पाठ कर जल को अभिमन्त्रित करे
और उससे अपने प्रिय शिष्य का अभिषेक करे । उस समय गुरु हृदय में मूल मन्त्र का उच्चारण करता रहे
॥३४-३५॥ बचे हुये जल से शिष्य आचमन कर पुनः नवीन वस्त्र धारण करे और विधिपूर्वक गुरु की वन्दना
कर सामने ही बैठ जाय ॥३६॥ गुरु शिष्य के सिर पर अपना हाथ रखकर विधिपूर्वक देवमन्त्र को एक सौ आठ
बार जपे ॥३७॥ जप के बाद गुरु शिष्य से कहे कि 'समोऽस्तु' अर्थात् मेरे ही समान हो जाओ । फिर शिष्य गुरु
की पूजा करे । गुरु अपने चन्दन चर्चित हाथ को शिष्य के मस्तक पर रखकर सावधानी से उसके कान में आठ
बार देव मन्त्र को पढ़े । इस भांति विधिपूर्वक मन्त्रदीक्षा प्राप्त कर लेने पर शिष्य गुरु चरणों पर शिर रख
दे ॥३८-३९॥ गुरु—वत्स, उठो, तुम मुक्त हो गये । भली-भांति आचार का पालन करो । तुमको कीर्ति, श्री,कान्ति
पुत्र, आयु, बल और आरोग्य सदा मिलें । यह कह कर आशीर्वाद दे ॥४०॥

गुरु का आशीर्वाद प्राप्त करने के अनन्तर शिष्य उठकर गन्ध आदि से गुरु की पूजा करे, और उदार हो
कर गुरु दक्षिणा दे ॥४१॥ इस प्रकार गुरु से मन्त्र प्राप्त कर लेने पर उस दिन से धन आदि और अपने परिवार
के द्वारा गुरु सेवा में तत्पर रहे ॥४२॥ प्रति दिन अपने इष्ट देव की पूजा करे पुष्पांजलि दे और फिर क्रमशः
अग्नि, नैर्ऋति और वागीश की पूजा करे ॥४३॥ तब मध्य में विष्णु की पूजा करे तब उनके चारों ओर विनायक,

---

१. पंच पल्लव में मतभेद है—आम, पीपल, गूलर, पाकड़ि और बरगद को पंच पल्लव कहते हैं ।

यदा मध्ये यजेद्विष्णुं बाह्यादिषु विनायकम् । रविं शिवां शिवं चैव यदा मध्ये तु शङ्करम् ॥४४॥
रविं गणेशमंबां च हरिं चाथ यदा शिवाम् । ईशं विघ्नार्कगोविंदान्मध्ये चेद्गणनायकम् ॥४५॥
शिवं शिवां रविं विष्णुं रवौ मध्यगते पुनः । गणेशं विष्णुमंबां च शिवं चेति यथाक्रमम् ॥४६॥
एवं नित्यं समभ्यर्च्य देवपञ्चकमादृतः । ब्राह्मे मुहूर्त्ते ह्युत्थाय कृत्वा चावश्यकं बुधः ॥४७॥
अशंकितो वा शय्यायां स्वकीयशिरसि स्मरेत् । सहस्रदलशुक्लाब्जकर्णिकास्थेंदुमण्डले ॥४८॥
अकथादित्रिकोणस्थं वराभयकरं गुरुम् । द्विनेत्रं द्विभुजं शुक्लगंधमाल्यानुलेपनम् ॥४९॥
वामे शक्त्या युतं ध्यात्वा मानसैरुपचारकैः । आराध्य पादुकामन्त्रं दशधा प्रजपेत्सुधीः ॥५०॥
वाङ्माया श्रीभगेंद्वाढ्या वियद्धंसखकाग्नयः । हसक्षमलवार्यग्निवामकर्णेंदुयुग्मरुत् ॥५१॥
ततो भृग्वाकाशखाग्निभगेंद्वाढ्याः परंतिमः । सहक्षमलतोयाग्निचंद्रशांतियुतो मरुत् ॥५२॥
ततः श्रीश्चामुकांते तु नन्दनाथामुकी पुनः । देव्यंबांते श्रीपादुकां पूजयामि हृदंतिमे ॥५३॥
अयं श्रीपादुकामंत्रः सर्वसिद्धिप्रदो नृणाम् । गुह्येति च समर्प्याथ मन्त्रैरेतैर्नमेत्सुधीः ॥५४॥
अखण्डमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् । तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५५॥
अज्ञानतिमिरांधस्य ज्ञानांजनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५६॥
नमोऽस्तु गुरवे तस्मा इष्टदेवस्वरूपिणे । यस्य वागमृतं हंति विषं संसारसंज्ञकम् ॥५७॥
इति नत्वा पठेत्स्तोत्रं सद्यः प्रत्ययकारकम् । ओम् नमस्ते नाथ भगवन् शिवाय गुरुरूपिणे ॥५८॥

सूर्य, शिवा और शिव की पूजा करे। यदि मध्य में शिव की अर्चा करे तब रवि, गणेश, हरि और शिवा की चारों ओर पूजा करे। मध्य में यदि शिवा की पूजा हो तो चारों ओर शिव, गणेश, सूर्य और विष्णु की पूजा होनी चाहिए। मध्य में गणेश की पूजा होने पर शिव, शिवा, सूर्य और विष्णु के बाह्य भाग की पूजा हो। रवि को मध्य में रख कर पूजा करने पर गणेश, विष्णु, पार्वती और शिव को बाह्य भाग में स्थापित कर अर्चना करनी चाहिए ॥४४-४६॥ इस प्रकार विज्ञ शिष्य प्रति दिन ब्राह्म मुहूर्त में उठ कर पंच देवों की पूजा करे। आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर निश्चिन्त भाव से शय्या पर बैठे बैठे अपने शिर में सहस्र दल वाले श्वेत कमल की कर्णिका में स्थित चन्द्रमण्डल में अ. क. थ आदि त्रिकोण में श्रेष्ठ और अभयप्रद गुरु का स्मरण करे, जिनकी दो भुजायें हों और उनके शरीर में श्वेत सुगन्धित पदार्थ का लेप लगा हो और श्वेत माला से शरीर सुशोभित हो, और वाम भाग में शक्ति विराजमान हो। ऐसी मुद्रा में गुरु का ध्यान कर मानसिक उपचार से उनकी पूजा कर पादुका मन्त्र का दश बार जप करे ॥४७-५०॥ वाङ्माया श्री भगेन्द्वाढ्या वियद्धंसखकाग्नयः। हसक्षमलवार्याग्निवामकर्णेन्दुयुग्मरुत्। ततो भृग्वाकाशखाग्निभगेन्द्वाढ्याः परंतिमः। सहक्षमलतोयाग्निचन्द्रशान्तियुतो मरुत्। ततः श्रीश्चामुकान्ते तु नंदनाथामुकी पुनः देव्यंबान्ते श्रीपादुकां पूजामि हृदन्ति मे ॥५१-५३॥ यह पादुका मन्त्र मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाली है। इस क्रिया के अनन्तर 'गुह्याति गुह्य—इस मन्त्र से मन्त्र का समर्पण कर आगे कहे गये मन्त्रों से नमस्कार करे। ५४॥ मन्त्र 'जिस गुरु ने सब चराचर जगत् में व्याप्त, अखण्ड मण्डलाकार ब्रह्म पद का दर्शन करा दिया उस गुरु को नमस्कार है ॥५५॥ जिस गुरु ने अज्ञान के अन्धकार के कारण कुछ भी न देख सकने वाले शिष्य (लोक) की आंखों में ज्ञान की अञ्जन-शलाका लगाकर खोल दिया (ज्ञान की ज्योति प्रदान की) उस गुरु को नमस्कार है ॥५६॥ उस इष्टदेव स्वरूप गुरु को प्रणाम है जिसकी वाणी रूपी सुधा संसार (माया) रूप विष को नष्ट कर देती है ॥५७॥ इस मन्त्र से गुरु का नमस्कार कर तत्काल श्रद्धा उत्पन्न कर देने वाले अग्रिम स्तोत्र का पाठ करे। स्तोत्र—

परमार्थैकरूपिणे ॥५९॥
विद्यावतारसंसिद्ध्यै स्वीकृतानेकविग्रह । नवायतनरूपाय
सर्वाज्ञानतमोभेदभानवे चिद्घनाय ते । स्वतंत्राय दयाक्लृप्तविग्रहाय शिवात्मने ॥६०॥
परतंत्राय भक्तानां भव्यानां भावरूपिणे । विवेकिनां विवेकाय विमर्शाय विमर्शिनाम् ॥६१॥
प्रकाशानां प्रकाशाय ज्ञानिनां ज्ञानरूपिणे । पुरस्तात्पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्तुभ्यमुपर्यधः ॥६२॥
सदा सच्चित्स्वरूपेण विधेहि भवदासनम् । त्वत्प्रसादादहं देव कृतकृत्योऽस्मि सर्वतः ॥६३॥
मायामृत्युमहापाशाद्विमुक्तोऽस्मि शिवोऽस्मि वः । इति स्तुत्वा ततः सर्वं गुरवे विनिवेदयेत् ॥६४॥
प्रातःप्रभृति सायांतं सायादिप्रातरंततः । यत्करोमि जगन्नाथ तदस्तु तव पूजनम् ॥६५॥
ततश्च गुरुपादाब्जगलितामृतधारया । क्षालितं निजमात्मानं निर्मलं भावयेत्सुधीः ॥६६॥
मूलादिब्रह्मरंध्रांतं मूलविद्यां विभावयेत् । मूलाधारादधो भागे वर्तुलं वायुमंडलम् ॥६७॥
तत्रस्थवायुबीजोत्थवायुना च तदूर्ध्वकम् । त्रिकोणं मंडलं वह्नेस्तत्रस्थं वह्निबीजतः ॥६८॥
उत्पन्नेनाग्निना मूलाधारावस्थितविग्रहाम् । प्रसुप्तभुजगाकारां स्वयंभूलिंगवेष्टिनीम् ॥६९॥
बिसतंतुनिभां कोटिविद्युदाभां तनीयसीम् । कुलकुंडलिनीं ध्यात्वा कूर्चेनोत्थापयेच्च ताम् ॥७०॥
सुषुम्णावर्त्मना तां च षट्चक्रक्रमभेदिनीम् । गुरूपदिष्टविधिना ब्रह्मरंध्रं नयेत्सुधीः ॥७१॥
तत्रस्थामृतसंमग्नीकृत्यात्मानं विभावयेत् । तत्प्रभापटलव्याप्तं विमलं चिन्मयं परम् ॥७२॥
पुनस्तां स्वस्थलं नीत्वा हृदि देवं विचिंतयन् । दृष्ट्वा च मानसैर्द्रव्यैः प्रार्थयेन्मनुनामुना ॥७३॥

ओम् ···नाथ, भगवन्, विद्या दान के लिये अनेक प्रकार के शरीर धारण करने वाले, गुरुरूपी शिव को नमस्कार है। परमार्थ मात्र रूप वाले, तन रूप, और नव (शंकर) को नमस्कार है ॥५८-५९॥ सब प्रकार के अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले सूर्य, चिद्घन, स्वतन्त्र, दयामूर्ति, शिवात्मा को नमस्कार है। भक्तों के वश में रहने वाले, भव्य (भावुक) जनों के भाव, विवेकियों के विवेक, विचारशीलों के विचार, प्रकाशों के प्रकाश, ज्ञानियों के ज्ञान उस शिव को प्रणाम है। आगे, पीछे, बगल में, ऊपर और नीचे आपको नमस्कार है ॥६०-६२॥ आप सर्वदा सत्, चित् स्वरूप से मेरे हृदय में अपना आसन जमावें। देव, मैं तुम्हारी कृपा से सर्वथा कृतकृत्य हूँ। तुम्हारी कृपा से माया मृत्यु के महापाश से मुक्त हूँ और शिव रूप हो गया हूँ। इस प्रकार गुरु की स्तुति करने के अनन्तर गुरु को सर्वस्व अर्पण करे कि 'जगन्नाथ! प्रातःकाल से सायंकाल और सायंकाल से प्रातःकाल तक जो कर्म करता हूँ वह और कुछ नहीं केवल तुम्हारा पूजन है' ॥६३-६५॥

इसके अनन्तर वह बुद्धिमान् शिष्य ऐसी भावना करे कि वह गुरु के चरण कमलों से निकलती हुई अमृत धारा में स्नान कर रहा है और उसके सब पाप धुलते जा रहे हैं, इस प्रकार वह निर्मल हो गया ॥६६½॥ इस प्रकार निर्मलता प्राप्त कर मूलाधार चक्र से ब्रह्मरन्ध्र तक मूल विद्या की भावना करे। मूलाधार के नीचे वर्तुलाकार (गोल) वायु मण्डल है, उस वायु मण्डल में स्थित वायुबीज को प्रदीप्त कर उससे ऊपर के भाग में स्थित अग्नि के, त्रिकोण मण्डल में स्थित अग्नि बीज (रकार) को जाग्रत करे ॥६७-६८॥ उस जाग्रत वह्नि बीज से प्रदीप्त अग्नि से मूलाधार में स्थित रहने वाली, सोये सर्प के समान आकार वाली, भूलिंग को अपने में जकड़ रखने वाली, कमल नाल के समान, करोड़ों विद्युत् के समान चकाचौंध उत्पन्न करने वाली, अति कृश, कुलकुण्डलिनी का ध्यान कर उसको कूर्च (कूँची) से जगाये ॥६९-७०॥ सुषुम्णा नाड़ी से उस कुण्डलिनी को क्रम से षट्चक्र का भेदन करते हुए गुरु की बताई विधि से ब्रह्म रन्ध्र तक ले जाय। उस ब्रह्मरन्ध्र में स्थित अमृत में अपने को मग्न कर दे और अपने को तेज पुंज से व्याप्त, विमल और चिन्मय के रूप में समझे अर्थात् चिन्मय की भावना से

त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव श्रीनाथ विष्णो भवदाज्ञयैव। प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रां
त्वनुवर्तयिष्ये ॥७४॥
विष्णोरिति स्थले विप्र कार्यं ऊहोऽन्यदैवते। ततः कुर्यात्सर्वसिद्ध्यै त्वजपाया निवेदनम् ॥७५॥
षट्शतानि दिवा रात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः। अजपाख्यां तु गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा ॥७६॥
ऋषिर्हंसस्तथाव्यक्तगायत्रीछंद ईरितम्। देवता परमो हंसश्चाद्यंते बीजशक्तिकम् ॥७७॥
ततः षडंगं कुर्वीत सूर्यः सोमो निरंजनः। निराभासश्च धर्मश्च ज्ञानं चेति तथा पुनः ॥७८॥
क्रमादेतान्हंसपूर्वानात्मनेपदपश्चिमान्। जातयुक्तान्साधकेंद्र षडंगेषु नियोजयेत् ॥७९॥
हकारः सूर्यसंकाशतेजाः संगच्छते बहिः। सकारस्तादृशश्चैव प्रवेशे ध्यानमीरितम् ॥८०॥
एवं ध्यात्वार्पयेद्धीमान्वह्निचर्केषु विभागशः। मूलाधारे वादिसांतबीजयुक्ते चतुर्दले ॥८१॥
बंधूकाभे स्वशक्त्या तु सहितायास्वगाय च। पाशांकुशसुधापात्रमोदकोल्लासपाणये ॥८२॥
षट्शतं तु गणेशाय वागधीशाय चार्पयेत्। स्वाधिष्ठाने विद्रुमाने बादिलांतार्णसंयुते ॥८३॥
वामांगशक्तियुक्ताय विद्याधिपतये तथा। स्रुवाक्षमालालसितबाहवे पद्मजन्मने ॥८४॥

भावित करे ॥७१-७२॥ फिर उस कुण्डलिनी को यथा स्थान ले जाकर हृदय प्रदेश में इष्ट देव का चिन्तन करे और हृदय में उस चिन्मय देव की कल्पित मानसिक सामग्रियों से पूजा करे और इस मन्त्र से प्रार्थना करे—

'त्रिलोकी के चैतन्यस्वरूप! आदि देव, श्रीनाथ, विष्णो, आपकी आज्ञा से ही प्रातःकाल उठकर तुम्हें प्रसन्न करने के लिये ही सांसारिक कार्यों को कर रहा हूँ।' ॥७३-७४॥

विप्र,! यदि दूसरे देवता का मन्त्र लेना हो तो पूर्वोक्त मन्त्र में 'विष्णोः' आदि के स्थान में ऊहापोह द्वारा उसके वाचक शब्द या नाम का प्रयोग करना चाहिए। तदनन्तर समस्त सिद्धि के लिये 'अजपा' जप निवेदित करना चाहिए ॥७५॥ दिन-रात में जीव इक्कीस हजार छः सौ (२१६००) बार अजपा नामक गायत्री का जप सदा करता है ॥७६॥ (इस अजपा मंत्र के) ऋषि हंस हैं, अव्यक्त गायत्री छन्द कहा गया है देवता परमहंस हैं। आदि (हं) बीज और अन्त (सः) शक्ति है। तदनन्तर षडंगन्यास करे। सूर्य, सोम, निरंजन, निराभास, धर्म और ज्ञान—ये छह अंग हैं ॥७७-७८॥ क्रमशः इनके पूर्व में 'हंसः' और अन्त में आत्मनेपद जोड़कर श्रेष्ठ साधक इनका छह अंगों में न्यास करे। (हंसः सूर्यात्मने हृदयाय नमः। हंसःसोमात्मने शिरसे स्वाहा। हंसो निरंजनात्मने शिखायै वषट्। हंसो निराभासात्मने कवचाय हुम्। हंसो धर्मात्मने नेत्राभ्यां वौषट्। हंसो ज्ञानात्मने अस्त्राय फट्।) हकार सूर्य के समान तेजस्वी होकर शरीर से बाहर निकलता है, और सकार वैसे ही तेजस्वी रूप से प्रवेश करता है। इस प्रकार हकार और सकार का ध्यान कहा गया है ॥७९-८०॥ इस प्रकार ध्यान करके बुद्धिमान् पुरुष अग्नि और सूर्य मण्डल में विभागपूर्वक जप अर्पण करे। मूलाधार में चार दलों का कमल है, जो बन्धूक पुष्प के समान लाल है। उसके चारों दलों में क्रमशः व, श, ष, स ये अक्षर अंकित हैं। उसमें अपनी शक्ति के साथ गणेश जी विराजमान हैं। वे अपने चारों हाथों में पाश, अंकुश, अमृतपात्र तथा लड्डू लेकर प्रसन्न हैं ॥८१-८२॥ ऐसे वाक्पति गणेश जी को ६०० जप अर्पण करे। स्वाधिष्ठान चक्र में छः दलों का कमल है। वह चक्र मूँगे के समान कांति युक्त है। उसके छः दलों में क्रमशः ब. भ. म. य. र. ल—ये अक्षर अंकित हैं ॥८३॥ उसमें विद्या के अधिपति ब्रह्मा जी हंस पर आरूढ होकर विराजमान हैं; उनके वामभाग में ब्राह्मी शक्ति हैं; उनके हाथों में स्रुवा और अक्षमाला हैं। ऐसे ब्रह्मा को छः हजार जप अर्पित करे। मणिपूर चक्र में दस दल वाला कमल विद्यमान है। उसके प्रत्येक दल पर क्रमशः ड. ढ. ण. त. थ. द. ध. न. प. फ—ये अक्षर अंकित हैं।

ब्रह्मणे षट्सहस्रं तु हंसारूढाय चार्पयेत् । विद्युल्लसितमेघाभे डादिफांतार्णपत्रके ॥८५॥
मणिपूरे शंखचक्रगदापंकजधारिणे । सश्रिये षट्सहस्रं च विष्णवे विनिवेदयेत् ॥८६॥
अनाहतेऽर्कपत्रे च कादिठांतादिसंयुते । शुक्ले शूलाभयवरसुधाकलशधारिणे ॥८७॥
वामांगे शक्तियुक्ताय विद्याधिपतये सुधीः । वृषारूढाय रुद्राय षट्सहस्रं निवेदयेत् ॥८८॥
विशुद्धे षोडशदले स्वराढ्ये शुक्लवर्णके । महाज्योतिप्रकाशायेन्द्रियाधिपतये ततः ॥८९॥
सहस्रमर्पयेत्प्राणशक्त्या युक्तेश्वराय च । आज्ञाचक्रे हक्षयुक्ते द्विदलेऽब्जे सहस्रकम् ॥९०॥
सदाशिवाय गुरवे पराशक्तियुताय वै । सहस्रारे महापद्मे नादबिन्दुद्वयान्विते ॥९१॥
विलसन्मातृकावर्णे वराभयकराय च । परमाद्ये च गुरवे सहस्रं विनिवेदयेत् ॥९२॥
चुलुकेऽम्बु पुनर्धृत्वा स्वभावादेव सिध्यतः । एकविंशतिसाहस्रप्रमितस्य जपस्य च ॥९३॥
षट्शताधिकसंख्यास्यादजपाया विभागशः । संकल्पेन मोक्षदाता विष्णुर्मे प्रीयतामिति ॥९४॥
अस्याः संकल्पमात्रेण महापापैः प्रमुच्यते । ब्रह्मैवाहं न संसारी नित्यमुक्तो न शोकभाक् ॥९५॥
सच्चिदानंदरूपोऽहमात्मानमिति भावयेत् । ततः समाचरेद्देहकृत्यं देवार्चनं तथा ॥९६॥
तद्विधानं प्रवक्ष्यामि सदाचारस्य लक्षणम् ॥९७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

उसकी प्रभा बिजली से युक्त मेघ के समान है । उसमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करने वाले विष्णु लक्ष्मी सहित विराजमान हैं, उन्हें छः हजार जप अर्पण करना चाहिए ॥८४-८६॥ अनाहत चक्र में द्वादशदल कमल विद्यमान है । इसके प्रत्येक दल पर क्रमशः क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. झ. ञ. ट. ठ अक्षर अंकित हैं । इसका वर्ण शुभ्र है । उसमें शूल, अभय, वर और अमृत कलश धारण करने वाले वृषभारूढ भगवान रुद्र विराज रहे हैं । उनके वामाङ्ग भाग में शक्ति पार्वती विद्यमान हैं । ये विद्या के अधिपति हैं । साधक रुद्रदेव को छः हजार जप अर्पण करे ॥८७-८८॥ विशुद्ध चक्र षोडश दल कमल से युक्त है । उसके प्रत्येक दल पर क्रमशः स्वर वर्ण (अ. इ. उ. ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः) अंकित हैं । यह चक्र शुक्ल वर्ण का है । उसमें महा ज्योति से प्रकाशित होने वाले इन्द्रियाधिपति ईश्वर विराजमान हैं, जो प्राण शक्ति से युक्त हैं । उन्हें एक सहस्र जप अर्पण करे । आज्ञाचक्र दो दलों वाला है । उसके दलों में क्रमशः ह और क्ष अंकित हैं । उसमें महाशक्ति स युक्त गुरु सदाशिव विराजमान हैं । उन्हें एक सहस्र जप अर्पण करे । सहस्रार चक्र में सहस्र दलों से युक्त महापद्म विद्यमान है । उसमें नादबिन्दु सहित समस्त मातृकावर्ण विराजमान हैं । उनमें वर और अभययुक्त हाथों वाले परम आदिगुरु को एक सहस्र जप अर्पण करे ॥८९-९२॥ फिर चुल्लू में जल लेकर इस प्रकार कहे—'स्वभावतः होते रहने वाले इक्कीस हजार छह सौ अजपा जप का पूर्वोक्त रूप से विभागपूर्वक संकल्प करने के कारण मोक्षदाता भगवान् विष्णु मुझ पर प्रसन्न हों ।' इस अजपा गायत्री के संकल्प मात्र से मनुष्य बडे-बड़े पापों से मुक्त हो जाता है । मैं ब्रह्म ही हूँ, संसारी जीव नहीं हूँ । नित्यमुक्त हूँ, शोक मेरा स्पर्श नहीं कर सकता । मैं सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ ।' इस प्रकार अपने विषय में चिन्तन करे । इसके अनन्तर अपना शारीरिक कार्य और देवार्चन करे । उस देवार्चन को विधि और सदाचार का लक्षण कहूँगा ॥९३-९७॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वभाग में दीक्षा-दान तथा शिष्य-धर्म-निरूपण नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६५॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

ततः श्वासानुसारेण दत्त्वा पादं महीतले । समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमंडले ॥१॥
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे । इति भूमिं तु संप्रार्थ्य विहरेच्च यथाविधि ॥२॥
रक्षःकोणे ततो ग्रामाद्गत्वा मंत्रमुदीरयेत् । गच्छंतु ऋषयो देवाः पिशाचा ये च गुह्यकाः ॥३॥
पितृभूतगणाः सर्वे करिष्ये मलमोचनम् । इति तालत्रयं दत्त्वा शिरः प्रावृत्य वाससा ॥४॥
दक्षिणाभिमुखं रात्रौ दिवा स्थित्वा ह्युदङ्मुखः । मलं विसृज्य शौचं तु मृदाद्भिः समुपाचरेत् ॥५॥
एका लिंगे गुदे तिस्रो दश वामकरे मृदः । करयोः सप्त तैः दद्यात्त्रित्रिवारं च पादयोः ॥६॥
एवं शौचं विधायाथ गंडूषान्द्वादशैव तु । कृत्वा वनस्पतिं चाथ प्रार्थयेन्मनुनामुना ॥७॥
आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च । श्रियं प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥८॥
संप्रार्थ्यैवं दंतकाष्ठं द्वादशांगुलसंमितम् । गृहीत्वा काममंत्रेण कुर्यान्मंत्री समाहितः ॥९॥
कामदेवपदं ङेन्तं तथा सर्वजनप्रियम् । हृदंतः कामबीजाढ्यं दन्तांश्चानेन शोधयेत् ॥१०॥

अध्याय ६६

शौचाचार, स्नान, संध्या, तर्पण आदि का निरूपण

सनत्कुमार बोले—प्रातःकाल जो श्वास चलता हो उसी के अनुसार पृथ्वी पर अपना पैर रखें। और हे समुद्ररूपी मेखलावाली देवि, पर्वतरूपी स्तन मण्डल वाली विष्णु-पत्नी, तुमको नमस्कार है, तुम मेरे चरण से स्पर्श करने के अपराध को क्षमा करो ॥१॥ इस प्रकार पृथ्वी की प्रार्थना कर शास्त्रानुकूल दिनचर्या प्रारम्भ करें ॥२॥ शास्त्र ने आचार पालन के विषय में इस प्रकार बतलाया है कि सबसे पहले ग्राम से नैर्ऋत्य कोण को ओर जाकर किसी एकान्त स्थान पर मलत्याग (शौच) करे। मलत्याग के पूर्व यह मन्त्र पढ़े, 'जो ऋषि, देव, पिशाच, गुह्यक, पितृगण या भूतगण हों वे सब यहाँ से अन्यत्र चले जायँ। मैं यहाँ मलत्याग करूँगा। इस मन्त्र को पढ़कर तीन तालियाँ बजावे और वस्त्र से शिर बाँध ले ॥३-४॥ रात में दक्षिण ओर और दिन में उत्तर की ओर मुँह करके शौच होना चाहिए। शौच के अनन्तर मिट्टी और जल से मलद्वार स्वच्छ कर लेना चाहिए ॥५॥ लिङ्ग में एक बार, गुदा में तीन बार, बायें हाथ में दश बार और दोनों हाथ में सात बार और दोनों पैरों में तीन बार मिट्टी लगानी चाहिये। इस भाँति पवित्र होकर बारह बार कुल्ला करे और आगे के कहे हुये मन्त्र से वनस्पति की प्रार्थना करे—प्रार्थना मन्त्र, 'वनस्पते, तुम हमको आयु, विद्या, बल, यश, तेज, सन्तति, पशु, धन, श्री, प्रज्ञा और मेधा को प्रदान करो, इस प्रकार मन्त्र पढ़कर बारह अंगुल की दतुअन को काम मन्त्र को पढ़कर सावधानी से करे। (काम मन्त्र—काम देवाय सर्वजन प्रियाय……) इस मन्त्र से दाँतों को स्वच्छ करे ॥६-१०॥

जिह्वोल्लेखो वाग्भवेन मूलेन क्षालयेन्मुखम् । देवागारं ततो गत्वा निर्माल्यमपसार्य च ॥११॥
परिधायांबरं शुद्धं मंगलारार्तिकं चरेत् । अस्त्रेण पात्रं संप्रोक्ष्य मूलेन ज्वालयेच्च तम् ॥१२॥
संपूज्य पात्रणादायोत्थाय घंटां च वादयेत् । सुगोघृतप्रदीपेन भ्रामितेन समंततः ॥१३॥
वाद्यैर्गीतैर्मनोज्ञैश्च देवस्यारार्तिकं भवेत् । इति नीराजनं कृत्वा प्रार्थयित्वा निजेश्वरम् ॥१४॥
स्नातुं यायान्निम्नगादौ कीर्तयन्देवतागुणान् । गत्वा तीर्थं नमस्कृत्य स्नानीयं च निधाय वै ॥१५॥
मूलाभिमंत्रितमृदमादाय कटिदेशतः । विलिप्य पादपर्यंतं क्षालयेत्तीर्थवारिणा ॥१६॥
ततश्च पञ्चभिः पादौ प्रक्षाल्यांतर्जले पुनः । प्रविश्य नाभिमात्रे तु मृदं वामकरस्य च ॥१७॥
मणिबन्धे हस्ततले तदग्रे च तथा पुनः । कृत्वांगुल्या गांगमृदमादायास्त्रेण तत्पुनः ॥१८॥
निजोपरि च मंत्रज्ञो भ्रामयित्वा त्यजेत्सुधीः । तलस्थां च षडंगेषु तन्मंत्रैः प्रविलेपयेत् ॥१९॥
निमज्ज्य क्षालयेत्सम्यग् मलस्नानमितीरितम् । विभाव्येष्टमयं सर्वमातरं स्नानमाचरेत् ॥२०॥
अनंतादित्यसंकाशं निजभूषायुधैर्युतम् । मंत्रमूर्ति प्रभुं स्मृत्वा तत्पादोदकसंभवाम् ॥२१॥
धारां च ब्रह्मरंध्रेण प्रविशंतीं निजां तनुम् । तथा संक्षालयेत्सर्वमंतर्देहगतं मलम् ॥२२॥
तत्क्षणाद्विरजा मंत्री जायते स्फटिकोपमः । ततः श्रौतोक्तविधिना स्नात्वा मन्त्री समाहितः ॥२३॥

जीभ को वाग्भव मन्त्र से और मूल मन्त्र से मुँह को धोये। स्वयं इस प्रकार शुद्ध होकर देव मन्दिर में जाय और पहले की चढ़ी हुई पूजा सामग्री (फूल, अक्षत आदि) को दूर हटा दे। फिर स्वच्छ वस्त्र पहन कर मंगला[1] आरती करे। मंगला आरती की विधि—अस्त्राय फट् कह कर पात्र पर जल छिड़के, मूल मन्त्र से उस दीपक को जला दे। पात्र को पूजा कर उसको हाथ में ले ले और घंटी बजाने लगे या दूसरों को बजाने के लिए कहें। शुद्ध गोघृत के दीपक को चारों ओर घुमा कर देव की आरती करे। उस समय मनोहर गीत और बाजे बजने चाहिए। आरती के अनन्तर नीराजन कर अपने इस इष्ट देव की प्रार्थना कर देवता के गुणों का कीर्तन करते हुये नदी या सरोवर आदि की ओर जावे। स्नान तीर्थ (नदी तट) पर जाकर तीर्थ को नमस्कार कर स्नानीय सामग्री को भूमि पर रख दें ॥११-१५॥ मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित की हुई मिट्टी को हाथ में लेकर कमर से नीचे पैर तक लगावें फिर उसको जल से धो दें। तदनन्तर पाँच वार पैरों को धोकर कमर तक जल में घुस जाय और बायें हाथ के मणिबन्ध (कलाई), हाथ के तलवे और अंगुलियों पर मिट्टी लगा दें। अपनी अंगुलियों से जल के नीचे की मिट्टी निकाल कर 'अस्त्राय फट्' कह कर उसको अपने चारों ओर घुमाकर उस मिट्टी को स्नान करने वाला वह व्यक्ति फेंक दे। बायें हाथ की मिट्टी को 'अस्त्राय फट्' एवं अन्य मन्त्रों से अपने छहों अंगों में लगावें। फिर जल में डुबकी लगाकर अपने अंगों को मल मल कर धो डालें। स्नान के समय उस जल में सब इष्ट माताओं का ध्यान अवश्य करना चाहिए। यही स्नान की विधि है ॥१६-२०॥

अनन्त सूर्य के समान कान्तिमान्, अपने आभूषण और अस्त्रों से युक्त मन्त्र मूर्ति प्रभु का स्मरण कर उनके चरणोदक से निकली हुई गंगा के जल को नाक के छेदों से अपने शरीर में ले जाकर इससे शरीर के भीतर के मल को बाहर निकाल दें। इस प्रकार अन्तःशुद्धि करने वाला साधक तत्काल रजोगुण से रहित होकर स्फटिक के समान दिव्य देह हो जाता है। इस प्रकार शास्त्र विधि के अनुसार स्नान करने के उपरान्त वह मन्त्री सावधानी से मन्त्र स्नान करे। मन्त्रस्नान की विधि निम्नलिखित है ॥२१-२३½॥

१, रात में चार बजे भगवान् को उठाकर जो आरती की जाती है।

॥२४॥
मंत्रस्नानं ततः कुर्यात्तद्विधानमथोच्यते । देशकालौ च संकीर्त्य प्राणायामषडंगकैः ॥२५॥
कृत्वार्कमंडलात्तीर्थान्याह्वयेन्मुष्टिमुद्रया । ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवेः ॥२६॥
तेन सत्येन मे देव देहि तीर्थं दिवाकर
गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिंधुकावेरि जलेऽस्मिन्संनिधिं कुरु ॥२७॥
इत्यावाह्य जले तानि सुधाबीजेन योजयेत् । गोमुद्रयामृतीकृत्य कवचेनावगुंठ्य च ॥२८॥
संरक्ष्यास्त्रेण तत्पश्चाच्चक्रमुद्रां प्रदर्शयेत् । वह्न्यर्केंदुमंडलानि तत्र सचिंतयेद्बुधः ॥२९॥
मंत्रयेदर्कमन्त्रेण सुधाबीजेन तज्जलम् । मूलेन चैकादशधा तत्र संमंत्र्य भावयेत् ॥३०॥
पूजायंत्रं च तन्मध्ये स्वांतादावाह्य देवताम् । स्नापयित्वार्चयेत्तां च मानसैरुपचारकैः ॥३१॥
सिंहासनस्थां तां नत्वा तज्जलं प्रणमेत्सुधीः । आधारः सर्वभूतानां विष्णोरतुलतेजसः ॥३२॥
तद्रूपाश्च ततो जाता आपस्ताः प्रणमाम्यहम् । इति नत्वा समारुन्ध्य सप्तच्छिद्राणि साधकः ॥३३॥
निमज्ज्य सलिले तस्मिन्मूलं देवाकृतिं स्मरेत् । निमज्ज्योन्मज्ज्य त्रिश्चैवं सिंचेत्कं कुंभमुद्रया ॥३४॥
त्रिर्मूलेन चतुर्मंत्रैरभिषिंचेन्निजां तनुम् । चत्वारो मनवस्तेऽत्र कथ्यन्ते तांत्रिका मुने ॥३५॥
सिसृक्षोर्निखिलं विश्वं मुहुः शुक्रं प्रजापतेः । मातरः सर्वभूतानामापो देव्यः पुनंतु माम् ॥३६॥
अलक्ष्मीर्मलरूपा या सर्वभूतेषु संस्थिता । क्षालयंति च तां स्पर्शादापो देव्यः पुनंतु माम् ॥३७॥

पहले देशकाल का नामोल्लेख कर संकल्प करे और षडङ्ग प्राणायाम करे फिर मुष्टि मुद्रा करके सूर्य मण्डल से तीर्थों का आवाहन करे। आवाहन मन्त्र—देव, तुम्हारी किरणें सारे ब्रह्माण्ड और तीर्थों (नदीजल या जल) का स्पर्श करती हैं। दिवाकर, उस सत्य के आधार पर आप मेरे लिये समस्त तीर्थों को मेरे समीप लावें। गंगे, यमुने, गोदावरि, सरस्वति, नर्मदे, सिन्धु, कावेरि ! इस जल में आकर आप निवास करें। इस प्रकार सबका आवाहन कर उनको सुधाबीज से उस जल में स्थापित करें ॥२४-२७½॥ गोमुद्रा से उसको अमृतमय बनाकर कवच से अवगुंठित कर अस्त्र से उसकी रक्षा कर चक्र मुद्रा का प्रदर्शन करे। बुध जन इस प्रकार जल को मुद्राओं द्वारा प्रभावित कर अग्नि, सूर्य और चन्द्र मण्डल का ध्यान करे। सूर्य के मन्त्र से उस जल को अभिमन्त्रित कर सुधाबीज से उसको पुनः अभिमन्त्रित करे। फिर ग्यारह बार मूल मन्त्र को पढ़कर उस जल को भावना-भावित करे ॥२८-३०॥

पूजा यन्त्र को उस भावित जल में स्थापित कर उसमें अपने हृदयस्थ देवता को स्थापित कर उस देवता की मानसिक (भावनामय) उपचारों से पूजा करे। इस भाँति पूजन करने के अनन्तर वह विद्वान् व्यक्ति सिंहासनस्थ उस देवता को प्रणाम कर उस जल को भी प्रणाम करे। प्रणाम मन्त्र—'तुम (जल) सब प्राणियों के और अतुल तेजस्वी विष्णु के आधार हो, तदनन्तर तुम्हीं विष्णु के रूप भी बन गये इसलिये ऐसे जल को प्रणाम करता हूँ ॥३१-३२½॥ इस मन्त्र से नमस्कार कर साधक शरीर के सात छेदों (नाक, कान, आँख और मुँह) को मूँद कर उस जल में डुबकी लगावे और डूबे ही मूल देवाकृति का स्मरण करे। इस प्रकार तीन बार जल में डुबकी लगावे और ऊपर आये। पुनः कुम्भ मुद्रा से जल को सींच कर उसी जल से तीन बार और मन्त्र से चार बार अपने शरीर को सींचे। मुने, इस विषय के चार मन्त्र मुनियों ने बताये हैं। पहला—बार-बार निखिल विश्व सृष्टि की इच्छा करने वाले प्रजापति के तुम शुक्र हो, और सब प्राणियों के एकमात्र जनक हो, जलदेव आपको नमस्कार है। आप मुझको पवित्र करें ॥३३-३६॥ दूसरा—आप सब प्राणियों में मलरूपी जो अलक्ष्मी है उसको अपने स्पर्श

ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु वो नमः ॥३८॥
यन्मे केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि । सन्तोषः क्षांतिरास्तिक्यं विद्या भवतु वो नमः ॥३९॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयं शुभम् । विबेद्विरुद्धं नो कुर्यादेषां तु नियतो विधिः ॥४०॥
विप्रपादोदकं पीत्वा शालग्रामशिलाजलम् । स्वेष्टदेवं समुद्वास्य मन्त्री मार्तंडमण्डले ॥४१॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि दक्षांघ्रौ तानि भूसुरे । वाससी परिधायाथ कुर्यात्सन्ध्यादिकं सुधीः ॥४२॥
ततस्तीरं समागत्य वस्त्रं संक्षाल्य यत्नतः । अथवा भस्मना स्नातो रजोभिश्चैव वाऽक्षमः ॥४३॥
रोगाद्यशक्तो मनुजः कुर्यात्तत्राघमर्षणम् । केशवेन तथा नारायणेन माधवेन च ॥४४॥
अथ सन्ध्यादिकं कुर्यात् स्थित्वा चैवासने शुभे । मधुसूदनत्रिविक्रमाभ्यामोष्ठौ च मार्जयेत् ॥४५॥
संप्राश्य तोयं गोविंदविष्णुभ्यां क्षालयेत्करौ । हृषीकेशपद्मनाभाभ्यां स्पृशेच्चरणौ ततः ॥४६॥
वामनश्रीधराभ्यां च मुखं हस्तौ स्पृशेत्ततः । वासुदेवेन प्रद्युम्नेन स्पृशेन्नासिके ततः ॥४७॥
दामोदरेण मूर्द्धानं मुखं संकर्षणेन च । अधोक्षजनृसिंहाभ्यां श्रवणे संस्पृशेत्तथा ॥४८॥
अनिरुद्धपुरुषोत्तमाभ्यां नेत्रे स्पृशेत्ततः । हरिणा विष्णुनांसौ च वैष्णवाचमनं त्विदम् ॥४९॥
नाभिं स्पृशेदच्युतेन जनार्दनेन वक्षसि । मुखे नसोः प्रदेशिन्याऽनामया नेत्रकर्णयोः ॥५०॥
प्रणवाद्यैर्ङेंतमोंतैः केशवादिकनामभिः । आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वैःस्वाहांतैः शिवमीरितम् ॥५१॥
कनिष्ठया नाभिदेशं सर्वत्रांगुष्ठयोजनम् ।

से धो देते हैं, ऐसे जल देव मुझको पवित्र करें। तीसरा—मेरे केशों में, सीमन्त में, मूर्द्धा, ललाट, कानों और आँखों में जो दुर्भाग्य है उसको शीघ्र नष्ट कर दें। आपको नमस्कार है ॥३७-३८॥ चौथा—मुझको आपकी कृपा से आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, शत्रुनाश, कल्याण, संतोष, शान्ति, आस्तिक भाव और विद्या प्राप्त हो। फिर ब्राह्मणों का चरणोदक तथा शालग्राम शिला का जल पान करे। कभी इसके विरुद्ध आचरण न करे। यह शास्त्र का नियत विधान है। पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं वे सब तीर्थ ब्राह्मणों के दाहिने चरण में रहते हैं। सूर्य मण्डल में अपने इष्ट देव को स्थापन और उसका पूजन करने के अनन्तर वह मन्त्री तीर पर आकर अपने वस्त्र को भली भाँति धो डाले। स्वयं नवीन वस्त्र पहन कर सन्ध्या वंदन आदि करे। ॥३९-४२॥

यदि कोई व्यक्ति रोग आदि के कारण इस प्रकार स्नान और सन्ध्यावन्दन आदि करने में असमर्थ हो तो वह केवल अघमर्षण करे। अथवा भस्म या रेणु से स्नान कर शुभ आसन पर बैठकर सन्ध्या आदि करे। सन्ध्योपासन विधि—केशवाय नमः, नारायणाय नमः, माधवाय नमः कह कर तीन बार आचमन कर गोविन्द-विष्णुभ्यां नमः कह कर दोनों हाथों को धो डाले। मधुसूदनत्रिविक्रमाभ्यां नमः कहकर दोनों ओठों को धो दे। तदनन्तर वामनश्रीधाराभ्यां नमः कहकर मुँह और दोनों हाथो का स्पर्श करे। हृषिकेशपद्मनाभाभ्यां नमः कहकर दोनों चरणों को छुवे ॥४३-४६॥ दामोदराय नमः से मूर्द्धा का और संकर्षणाय नमः से मुख का, वासुदेवाय नमः, प्रद्युम्नाय नमः कहकर दोनों नासिका-छिद्रों का स्पर्श करे ॥४७॥ अनिरुद्धपुरुषोत्तमाभ्यां नमः कहकर दोनों नेत्रों को, अधोक्षजनृसिंहाभ्यां नमः मन्त्र से दोनों कानों का, अच्युताय नमः कहकर नाभि का और जनार्दनाय नमःकहकर वक्षःस्थल का स्पर्श करे। हरये नमः, विष्णवे नमः कहकर दोनों कन्धों का स्पर्श करे। पुनः वैष्णवाय नमः कहकर आचमन करे। इस प्रकार अङ्ग स्पर्श करने के अनन्तर केशव आदि नामों के आदि में ओम् और अन्त में चतुर्थी विभक्ति और नमः जोड़कर अर्थात् ओम् केशवाय नमः आदि कहकर अंगूठा और प्रदेशिनी से मुख और नासिका का, अंगुष्ठा और अनामिका से आखों और कानों का और कनिष्ठिका से नाभिदेश का स्पर्श करे। आत्मविद्या और शिवतत्त्व को स्वाहा से संयुक्त कर देने पर शैव मन्त्र कहा जाता है ॥४८-५१॥

दीर्घत्रयेंदुयुग्व्योमपूर्वकैश्च पिबेज्जलम् । आत्मविद्याशिवैरेव शैवं स्वाहावसानिकैः ॥५२॥
वाग्लज्जाश्रीमुखैः प्रोक्तं शाक्तं स्वाहावसानिकैः । वाग्लज्जाश्रीमुखैः प्रोक्तं द्विजाचमनमर्थदम् ॥५३॥
तिलकं च ततः कुर्याद्भाले सुष्ठु गदाकृति । नंदकं हृदये शंखचक्रे चैव भुजद्वये ॥५४॥
शार्ङ्गबाणं मस्तके च विन्यसेत्क्रमशः सुधीः । कर्णमूले पार्श्वयोश्च पृष्ठे नाभौ ककुद्यपि ॥५५॥
एवं तु वैष्णवः कुर्यान्मृद्भिस्तीर्थोद्भवादिभिः । अग्निहोत्रोद्भवं भस्म गृहीत्वा त्र्यंबकेण तु ॥५६॥
किंवाग्निरिति मंत्रेणाभिमंत्र्य पञ्चमन्त्रकैः । क्रमात्तत्पुरुषाघोरसद्योजातादिनामभिः ॥५७॥
पञ्च कुर्यात्त्रिपुंड्राणि भालांसोदरहृत्सु च । शैवः शाक्तस्त्रिकोणाभं नारीवद्वा समाचरेत् ॥५८॥
कृत्वा तु वैदिकीं संध्यां तांत्रिकीं च समाचरेत् । आचम्य विधिवन्मन्त्री तीर्थान्यावाह्य पूर्ववत् ॥५९॥
ततस्त्रिवारं दर्भेण भूमौ तोयं विनिःक्षिपेत् । सप्तधा तज्जलेनाथ मूर्द्धानमभिषेचयेत् ॥६०॥
ततश्च प्राणानायम्य कृत्वा न्यासं षडंगकम् । आदाय वामहस्तेंऽबु दक्षेणाच्छाद्य पाणिना ॥६१॥
वियद्वाटवग्नितोयक्ष्माबीजैः संमंत्र्य मंत्रवित् । मूलेन तस्मात् श्चोतद्भिर्बिन्दुभिस्तत्त्वमुद्रया ॥६२॥
स्वशिरः सप्तधा प्रोक्ष्यावशिष्टं तत्पुनर्जलम् । कृत्वा तदक्षरं मंत्री नासिकांतिकमानयेत् ॥६३॥
जलं तेजोमयं तच्चाकृष्यांतश्चेडया पुनः । प्रक्षाल्यांतर्गतं तेन कल्मषं तज्जलं पुनः ॥६४॥
कृष्णवर्णं पिंगलया रेचयेत्स्वाग्रतस्तथा । क्षिपेदस्त्रेण तत्पश्चात्कल्पिते कुलिशोपले ॥६५॥

दीर्घत्रय, इन्दु और व्योम से युक्त मन्त्र से जल पीना चाहिये। आत्मविद्या और शिव के नामों के अन्त में स्वाहा जोड़ देने से शैव मन्त्र बनता है। वाक्, लज्जा, श्री के साथ स्वाहा जोड़ देने से जो मन्त्र बनते हैं, उन मन्त्रों से अर्थात् "वाचे स्वाहा, लज्जायै स्वाहा, श्रियै स्वाहा" से आचमन करने पर अर्थ सिद्धि होती है ॥५२-५३॥

इसके अनन्तर वह सुधी गदा के आकार का ललाट में तिलक लगाये, हृदय में नन्दक के आकार का और दोनों भुजाओं पर शंख चक्र के आकार का और मस्तक पर धनुष-बाण के आकार का, कर्ण मूल, दोनों पसलियों पर, पीठ पर नाभि तथा ककुद (गर्दन के पीछे) पर क्रमशः चन्दन लगाये। इस प्रकार वैष्णव तीर्थ की मिट्टी या गोपी चन्दन का चन्दन सर्वाङ्गों में लगावे। इसके विपरीत शैव अग्निहोत्र के भस्म को लेकर त्र्यम्बकं यजामहे...... इस मन्त्र से या अग्निरिति भस्म.........इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर पंच मन्त्रकों से अर्थात् क्रमशः पुरुष, अघोर, सद्योजात आदि नामों से ललाट, अंस (कन्धे के ऊपर,) उदर और हृदय पर पांच त्रिपुण्ड्र लगाये। शाक्त त्रिकोणाकार या नारी जैसे बेंदी लगाती है उस तरह का तिलक धारण करें। इस विधि से वैदिकी सन्ध्या करने के बाद तान्त्रिकी सन्ध्या करे ॥५४-५८½॥ तान्त्रिक विधि—

मन्त्री (उपासक) विधिपूर्वक आचमन कर और पहले की भांति तीर्थों का आवाहन कर तीन वार कुश से पृथ्वी पर जल छिड़के। इसी कुश से सात वार मस्तक पर भी जल छिड़के। अभिषेक के अनन्तर प्राणायाम कर षडङ्गन्यास करे। बायें हाथ में जल रखकर दाहिने से उसको ढँक दे। फिर वह मन्त्रज्ञ आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के बीज से अभिमन्त्रित कर मूल मन्त्र से अपने हाथ से नीचे टपकते हुये जलबिन्दु से तत्त्व मुद्रा से अपने शिर को सात वार सींचे। बचे हुये जल को वह मन्त्री अपनी नासिका के पास लावे ॥५९-६३॥ उस तेजोमय जल को इडा नाड़ी द्वारा भीतर आकृष्ट करे और उसके द्वारा अपने अन्तः के पापों को धोकर कृष्णवर्ण के उस जल को बाईं नासिका (पिंगला) से बाहर निकाल दे। और उस जल को अपने आगे कल्पित कुलिश पत्थर (वज्र) पर फेंक दे। अर्थात् अपने आगे अपनी भावना के द्वारा कल्पित वज्र पर फेंक दे। यह सब प्रकार के पापों को नष्ट करने वाला अघमर्षण है ॥६४-६५½॥ इसके अनन्तर हाथों को जल से धोकर पहले की भांति

एतद्धि सर्वपापघ्नं प्रोक्तं चैवाघमर्षणम् । ततश्च हस्तौ प्रक्षाल्य प्राग्वदाचम्य मंत्रवित् ॥६६॥
समुत्थाय च मंत्रज्ञस्ताम्रपात्रे सुमादिकम् । प्रक्षिप्याघं प्रदद्याद्वै मूलांतैर्मंत्रमुच्चरन् ॥६७॥
रविमंडलसंस्थाय देवायार्घ्यं प्रकल्पयेत् । दत्त्वार्घं त्रिरनेनाथ देवं रविगतं स्मरेत् ॥६८॥
स्वकल्पोक्तां च गायत्रीं जपेदष्टोत्तरं शतम् । अष्टविंशतिवारं वा गुह्येतिमनुनार्पयेत् ॥६९॥
उद्यदादित्यसंकाशां पुस्तकाक्षकरांबुजाम् । कृष्णाजिनांबरां ब्राह्मीं ध्यायेत्तारांकितेऽम्बरे ॥७०॥
मध्याह्नवरदां देवीं पार्वतीं संस्मरेत्पराम् । शुक्लांबरां वृषारूढां त्रिनेत्रां रविबिंबगाम् ॥७१॥
वरं पाशं च शूलं च दधानां नृकरोटिकाम् । सायाह्ने रत्नभूषाढ्यां पीतकौशेयवाससाम् ॥७२॥
श्यामरंगां चतुर्हस्तां शंखचक्रलसत्कराम् । गदापद्मधरां देवीं सूर्यासनकृताश्रयाम् ॥७३॥
ततो देवानृषींश्चैव पितृंश्चापि विधानवित् । तर्पयित्वा स्वेष्टदेवं तर्पयेत्कल्पमार्गतः ॥७४॥
गुरुपंक्ति च संतर्प्य सांगं सावरणं तथा । सायुधं वैनतेयं संतर्पयामीति तर्पयेत् ॥७५॥
नारदं पर्वतं विष्णुं निशठोद्धवदारुकान् । विष्वक्सेनं च शैलेयं वैष्णवः परितर्पयेत् ॥७६॥
एवं संतर्प्य विप्रेंद्र दत्त्वार्घ्यं च विवस्वते । पूजागारं समागत्य प्रक्षाल्यांघ्री उपस्पृशेत् ॥७७॥
अग्निहोत्रस्थितानग्नीन् हुत्वोपस्थाय यत्नतः । पूजास्थलं समागत्य द्वारपूजां समाचरेत् ॥७८॥
गणेशं चोर्ध्वशाखायां महालक्ष्मीं च दक्षिणे । सरस्वतीं वामभागे दक्षे विघ्नेश्वरं पुनः ॥७९॥
क्षेत्रपालं तथा वामे दक्षे गंगां प्रपूजयेत् । वामे च यमुनां दक्षे धातारं वामतस्तथा ॥८०॥

आचमन करे। तत्पश्चात् वह मन्त्री (मन्त्रज्ञ) उठकर ताम्रपात्र में फूल, चन्दन मिश्रित जल रखकर मूलान्त मन्त्र का उच्चारण करते हुये अर्घ्य प्रदान करे। यह अर्घ्य सूर्यमण्डलस्थ देव को दिया जाता है। उक्त मूलान्त मन्त्र से तीन अर्घ्य देकर रविमण्डलस्थ देवता का स्मरण करना चाहिये ॥६६-६८॥ सन्ध्या के अन्त में अपने कल्प के अनुसार गायत्री का एक सौ आठ बार या अट्ठाईस बार जप करना चाहिये और इस जप को 'गुह्यातिगुह्य...... मन्त्र के द्वारा अर्पण कर देना चाहिये। प्रातःकाल जब कि नभोमण्डल में तारा गण दिखाई देते हों—उदय कालीन सूर्य के समान तेजस्वी, कमल के समान हाथों में पुस्तक और रुद्राक्ष माला धारण करने वाली और कृष्ण मृगचर्म को धारण करने वाली ब्राह्मी का ध्यान करना चाहिये ॥६९-७०॥ मध्याह्न काल में शुक्ल वस्त्र धारण की हुई त्रिनेत्र, वृषारूढ़, सूर्यमण्डल में स्थित, वरदायिनी, पाश, शूल, और नृकरोटिका हाथ में धारण किये हुई श्रेष्ठ पार्वती का स्मरण करना चाहिये। सायंकाल पीले रंग के रेशमी वस्त्र को धारण करने वाली, रत्नाभूषणों से आभूषित, श्यामाङ्गी, चार हाथों वाली, शंख, चक्र, गदा, पद्म से सुशोभित और सूर्य मण्डल में स्थित रहने वाली देवी का ध्यान करना चाहिये ॥७१-७३॥ तदनन्तर कल्पों के अनुसार वह विधान-कुशल देव, ऋषि, पितर और अपने इष्टदेव का तर्पण करे विधि के अनुसार 'सांगोपांग और वस्त्र आदि से गुरुओं और शस्त्र सहित गरुड़ को तर्पण करता हूँ' इस मन्त्र से तर्पण करे ॥७४-७५॥ वैष्णव भक्त नारद, पर्वत, जिष्णु, भक्त उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन और शैलेय को तर्पण से तृप्त करे। विप्रेन्द्र, इस प्रकार तर्पण कर और सूर्य को अर्घ्य देकर पूजा-गृह में आकर पैर धो ले और आचमन कर पवित्र हो जाय। अग्निहोत्र गृह में स्थित अग्नि में हवन कर, विधिपूर्वक उपस्थान करे। पुनः पूजा स्थान पर आकर द्वार पूजा करे ॥७६-७८॥

द्वार की ऊपरी शाखा पर गणेश की, दक्षिण भाग में महालक्ष्मी की, बायें भाग में सरस्वती की, फिर दक्षिण में विघ्नेश्वर की, वाम में क्षेत्रपाल की, दक्षिण में गंगा की पूजा करे। पुनः बाईं ओर यमुना की, दक्षिण

विधातारं शंखपद्मनिधींश्च वामदक्षयोः । द्वारपालांस्ततोऽभ्यर्चेत्तत्कल्पोदितान्सुधीः ॥८१॥
नंदः सुनंदश्चंडश्चप्रचंडः प्रचलोबलः । भद्रः सुभद्रश्चेत्याद्या वैष्णवा द्वारपालकाः ॥८२॥
नंदी भृंगी रिटी स्कंदो गणेशोमामहेश्वराः । वृषभश्च महाकालः शैवा वै द्वारपालकाः ॥८३॥
ब्राह्म्याद्या मातरोऽष्टौ तु शक्तयो द्वाःस्थिताः स्वयम् । सेंदुः स्वनामाद्यर्णाद्या ङेनमोंता इमे स्मृताः ॥८४॥

ततः स्थिरत्वासने धीमानाचम्य प्रयतः शुचिः । दिव्यांतरिक्षभौमांश्च विघ्नानुत्सार्य यत्नतः ॥८५॥
केशवाद्यां मातृकां तु न्यसेद्वैष्णवसत्तमः । केशवः कीर्तिसंयुक्तः कांत्या नारायणस्तथा ॥८६॥
माधवस्तुष्टिसहितो गोविन्दः पुष्टिसंयुतः । विष्णुस्तु धृतिसंयुक्तः शांतियुङ्मधुसूदनः ॥८७॥
त्रिविक्रमः क्रियायुक्तो वामनो दयितायुतः । श्रीधरो मेधया युक्तो हृषीकेशश्च हर्षया ॥८८॥
पद्मनाभयुता श्रद्धा लज्जा दामोदरान्विता । वासुदेवश्च लक्ष्मीयुक् संकर्षणसरस्वती ॥८९॥
प्रद्युम्नः प्रीतिसंयुक्तोऽनिरुद्धो रतिसंयुतः । चक्री जयायुतः पश्चाद्गदी दुर्गासमन्वितः ॥९०॥
शार्ङ्गी तु प्रभया युक्तः खड्गी युक्तस्तु सत्यया । शंखी चंडासमायुक्तो हली वाणीसमायुतः ॥९१॥
मुसली च विलासिन्या शूली विजययान्वितः । पाशी विरजया युक्तो कुशी विश्वासमन्वितः ॥९२॥

मुकुंदो विनतायुक्तो नंदजश्च सुनंदया । नंदी स्मृत्या समायुक्तो नरो वृद्धया समन्वितः ॥९३॥
समृद्धियुङ्नरकजिच्छुद्धियुक्च हरिः स्मृतः । कृष्णो बुद्धया युतः सत्यो भुक्त्या मुक्त्याथ सात्वतः ॥९४॥

भाग में धाता और फिर बायें भाग में विधाता की, बायें और दाहिने भाग में शंख और पद्मनिधि की और तदनन्तर अपने कल्प के अनुसार विधिवत् द्वारपालों की पूजा करे। नन्द, सुनन्द, चण्ड, प्रचण्ड, प्रचल, बल, भद्र, सुभद्र ये वैष्णव द्वारपाल हैं ॥७९-८२॥ नन्दी, भृंगी, रिटी, स्कन्द, गणेश, उमा, महेश्वर, वृषभ (नन्दी) महाकाल इतने शैव द्वार पाल हैं। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी आदि जो आठ मातृका शक्तियाँ हैं वे स्वयं ही द्वारपालिका हैं। इन सब के नाम के आदि अक्षर में अनुस्वार लगाकर उसे नाम के पहले बोलना चाहिए। नाम के चतुर्थी विभक्त्यन्त रूप के बाद नमः लगाना चाहिए। यथा—'नं नन्दाय नमः' इत्यादि। इन्हीं नाम मन्त्रों से इन सब की पूजा करनी चाहिए। इतनी क्रिया कर लेने के उपरान्त वह धीमान् आसन पर बैठकर आचमन कर पवित्र हो सावधानी से दिव्य, अन्तरिक्षचारी और भौम (भूमि पर रहने वाले) विघ्नों को दूर कर केशव और आद्य मातृकाओं का न्यास करे ॥८३-८५½॥

केशव को कीर्ति के सहित, नारायण को कान्ति, माधव को तुष्टि, गोविन्द को पुष्टि, विष्णु को धृति, मधुसूदन को शान्ति, त्रिविक्रम को क्रिया, वामन को दयिता, श्रीधर को मेधा, हृषीकेश को हर्षा, पद्मनाभ को श्रद्धा, दामोदर को लज्जा, वासुदेव को लक्ष्मी, संकर्षण को सरस्वती, प्रद्युम्न को प्रीति, अनिरुद्ध को रति, चक्री को जया, गदी को दुर्गा, शार्ङ्गी को प्रभा, खड्गी को सत्या, शंखी को चण्डा, हली को वाणी, मुसली को विलासिनी, शूली को विजया, पाशी को विरजा, कुशी को विश्वा के साथ तथा इसी प्रकार मुकुन्द को विनता के साथ, नन्दज को सुनन्दा, नन्दी को स्मृति, नर को वृद्धि, नरकजित् को समृद्धि के सहित, हरि को शुद्धि, कृष्ण को बुद्धि, सत्य को भुक्ति, सात्वत को मुक्ति के सहित न्यस्त करे। ॥८६-९४॥ सौरि को क्षमा, सूर को रमा और जनार्दन को उमा

सौरिक्षमे सूररमे उमायुक्तो जनार्दनः । भूधरः क्लेदिनीयुक्तो विश्वमूर्तिश्च क्लिन्नया ॥९५॥
वैकुंठो वसुधायुक्तो वसुदः पुरुषोत्तमः । बली तु परया युक्तो बलानुजपरायणे ॥९६॥
बालसूक्ष्मे वृषघ्नस्तु संध्यायुक् प्रज्ञया वृषः । हंसः प्रभासमायुक्तो वराहो निशया युतः ॥९७॥
विमलो धारया युक्तो नृसिंहो विद्युता युतः । केशवादिमातृकाया मुनिर्नारायणो मतः ॥९८॥
अमृताद्या च गायत्री छंदो विष्णुश्च देवता । चक्राद्यायुधसंयुक्तं कुंभादर्शधरं हरिम् ॥९९॥
लक्ष्मीयुतं विद्युदाभं बहुभूषायुतं भजेत् । एवं ध्यात्वा न्यसेच्छक्ति श्रीकामपुटिताक्षरम् ॥१००॥
वदेत्तद्विष्णुशक्तिभ्यां हृदयं प्रणवादिकम् । त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राण्यसून्वदेत् ॥१०१॥
प्राणं क्रोधं तथा मभ्यामन्तान्यादिदशस्वपि । एकं मौलौ मुखे चैकं द्विकं नेत्रे द्विकं श्रुतौ ॥१०२॥
नसोर्द्वयं कपोले च द्वयं द्वे द्विरदच्छदे । एकं तु रसनामूले ग्रीवायामेकमेव च ॥१०३॥
कवर्गं दक्षिणे बाहौ चवर्गं वामबाहुके । टतवर्गौ पादयोस्तु पफौ कुक्षिद्वये न्यसेत् ॥१०४॥
पृष्ठवंशे बमित्युक्तं नाभौ भं हृदये तु मम् । यादिसप्तापि धातुस्था हं प्राणे लं तथात्मनि ॥१०५॥
क्षं क्रोधे क्रमतो न्यस्य विष्णु पूजाक्षमो भवेत् । पूर्णोदर्या तु श्रीकंठो ह्यनंतो विजरान्वितः ॥१०६॥
सूक्ष्मेशः शाल्मलीयुक्तो लोलाक्षीयुक्त्रिमूर्तिकः । महेश्वरो वर्तुलाक्ष्याघोशो वै दीर्घघोणया ॥१०७॥

के सहित, भूधर को क्लेदिनी, विश्व मूर्ति को क्लिन्ना, वैकुण्ठ को वसुधा और पुरुषोत्तम को वसुदा के सहित न्यस्त करे। परा को बली, परायणा के साथ बलानुज, सूक्ष्मा के साथ बाल, संध्या के साथ वृषहन्ता, प्रज्ञा के साथ वृष, प्रभा के साथ हंस, निशा के साथ वाराह, धारा के साथ विमल और विद्युता के साथ नृसिंह न्यास करना चाहिये। केशव आदि मातृका के मुनि नारायण हैं, अमृताद्या और गायत्री छन्द और देवता विष्णु हैं ॥९६-९८½॥ चक्र आदि आयुध से युक्त, लक्ष्मी के सहित हरि को जो कि अनेकों प्रकार के आभूषणों और विद्युत् प्रभा के समान प्रभाशाली, कुंभ और आदर्श (दर्पण) को धारण करने वाले हरि की उपासना करनी चाहिये। इस प्रकार ध्यान करके शक्ति 'ह्रीं', श्री (श्रीं) तथा काम 'क्लीं' बीज से सम्पुटित 'अ' एक-एक अक्षर का ललाट आदि में न्यास करे। उसके साथ आदि में प्रणव लगा कर श्री विष्णु और उनकी शक्ति के चतुर्थ्यन्त नाम बोल कर अन्त में नमः पद जोड़ कर बोले। त्वचा, शोणित, मांस, मेदस्, अस्थि, मज्जा, शुक्र, असु, प्राण तथा क्रोध का उच्चारण करे और इन्हें आदि-अंत में 'म' से संपुटित करके दस अंगों में न्यस्त करे। ॥९९-१०१½॥

एक अक्षर 'अ' का ललाट में, फिर एक अक्षर 'आ' का मुख में, दो अक्षर 'इ' और 'ई' का क्रमशः दाहिने और बायें नेत्र में, दो अक्षर 'उ' 'ऊ' का दाहिने और बायें कान में न्यास करे। दो अक्षर 'ऋ' 'ॠ' का दायीं-बायीं नासिका में, दो अक्षर 'लृ' 'लॄ' का दायें-बायें कपोल में, दो अक्षर 'ए' 'ऐ' का ऊपर-नीचे के ओष्ठ में, दो अक्षर 'ओ' 'औ' का ऊपर-नीचे की दन्त-पंक्ति में, एक अक्षर 'अं' का जिह्वामूल में तथा एक अक्षर 'अः' का ग्रीवा में न्यास करे ॥१०२-१०३॥ दाहिनी बाँह में क वर्ग का और बायीं बाँह में च वर्ग का न्यास करे। ट वर्ग और त वर्ग का दोनों पैरों में तथा 'प' और 'फ' का दोनों कुक्षियों में न्यास करे। पृष्ठ वंश में 'ब' का, नाभि में 'भ' का और हृदय में 'म' का न्यास करे। 'य' आदि सात अक्षरों का शरीर की सात धातुओं में, 'ह' का प्राण में तथा 'ल' का आत्मा में न्यास करे। 'क्ष' का क्रोध में न्यास करना चाहिए। इस प्रकार क्रम से मातृका वर्णों का न्यास करके मनुष्य भगवान् विष्णु की पूजा में समर्थ होता है। ॥१०४-१०५½॥

पूर्णोदरी के साथ श्रीकण्ठेश का, विरजा के साथ अनन्तेश का, शाल्मली के साथ सूक्ष्मेश का, लोलाक्षी के साथ त्रिमूर्तीश का, वर्तुलाक्षी के साथ महेश का और दीर्घघोणा के साथ अघोश का न्यास करे। दीर्घमुखी के साथ भारभूतीश का, गोमुखी के साथ तिथीश का, दीर्घजिह्वा के साथ स्थाण्वीश का, कुण्डोदरी के साथ हरेश का,

दीर्घमुख्या [illegible]तिस्त्रियांशो [illegible]मुखीयुतः । [illegible] [illegible]ओदरीयुतः ॥१०८॥
ऊर्द्ध्वकेश्या तु झिंटीशो भौतिको विकृतास्यया । [illegible]नुग्रहो युतः ॥१०९॥
अक्रूर आस्यया युक्तः महासेनो विद्यया [illegible] सरस्वती ॥११०॥
पञ्चांतकः सिद्धगौर्या युक्तश्चाथ शिवोत्तमः । त्रैलोक्यविद्यया [illegible] एकरुद्रकः ॥१११॥
कूर्मेशः कमठीयुक्तो भूतमात्रैकनेत्रकः । [illegible] अजेशो द्राविणीयुतः ॥११२॥
सर्वेशो नागरीयुक्तः सोमेशः खेचरीयुतः । [illegible] दारुकेशेन रूपिणी ॥११३॥
वीरिण्या त्वर्द्धनारीशो उमाकान्तो [illegible] । [illegible] पूतनासंयुतो मतः ॥११४॥
दंडीशो भद्रकाल्या[illegible]त्रीशो योगिनीयुतः । मीनेशः [illegible] मेषेशस्तर्जनीयुतः ॥११५॥
लोहितः कालरात्र्या च शिखीशः कुब्जनीयुतः । छलगण्डः कपर्दिन्या द्विरण्डेशश्च वज्रया ॥११६॥
महाबलो जयायुक्तो बलीशः सुमुखेश्वरी । भुजंगो रेवतीयुक्तः पिनाकी माध्वीयुतः ॥११७॥
खड्गीशो वारुणीयुक्तो बकेशो वायवीयुतः । श्वेतोरस्को विदारिण्या भृगुः सहजया युतः ॥११८॥
लकुलीशश्च लक्ष्मीयुक् शिवेशो व्यापिनीयुतः । संवर्तको महामाया प्रोक्ता श्रीकण्ठमातृका ॥११९॥
यत्र स्वोशपदं नास्ति तत्र सर्वत्र योजयेत् । मुनिस्स्याद्दक्षिणामूर्तिर्गायत्रीछन्द ईरितम् ॥१२०॥
देवता चार्द्धनारीशो विनियोगोऽखिलाप्तये । हलो बीजानि चोक्तानि स्वराः शक्तय ईरिताः ॥१२१॥
कुर्याद्भृगुस्थाकाशेन षड्दीर्घाढ्येन चांगकम् । बंधूकस्वर्णवर्णांगं वराक्षांकुशपाशिनम् ॥१२२॥

ऊर्ध्वकेशी के साथ झिण्टीश का, विकृतास्या के साथ भौतिक का, ज्वालामुखी के साथ सद्यो का, उल्कामुखी के साथ अनुग्रहेश का, आस्या के साथ अक्रूर का, विद्या के साथ महासेन का, महाकाली के साथ क्रोधीश का, सरस्वती के साथ चण्डेश का, सिद्धगौरी के साथ पञ्चान्तकेश का, त्रैलोक्यविद्या के साथ शिवोत्तमेश का, मन्त्रशक्ति के साथ एकरुद्र का, कमठी के साथ कूर्मेश का, भूतमाता के साथ एकनेत्र का, लम्बोदरी के साथ चतुर्वक्त्र का, द्राविणी के साथ अजेश का, नागरी के साथ सर्वेश का, खेचरी के साथ सोमेश का, मर्यादा के साथ लांगलीश का, दारुकेश के साथ रूपिणी का तथा वीरिणी के साथ अर्धनारीश का न्यास करना चाहिए॥१०६-१०३॥ काकोदरी के साथ उमाकान्त का और पूतना के साथ आषाढीश का न्यास करे। भद्रकाली के साथ दण्डीश का, योगिनी के साथ अत्रीश का, शंखिनी के साथ मीनेश का, तर्जनी के साथ मेषेश का, कालरात्रि के साथ लोहितेश का, कुब्जनी के साथ शिखीश का, कपर्दिनी के साथ छलगण्डेश का, वज्रा के साथ द्विरण्डेश का, जया के साथ महाबलेश का, सुमुखेश्वरी के साथ बलीश का, रेवती के साथ भुजंगेश का, माध्वी के साथ पिनाकीश का, वारुणी के साथ खड्गीश का, वायवी के साथ बकेश का, विदारणी के साथ श्वेतोरस्केश का, सहजा के साथ भृग्वीश का, लक्ष्मी के साथ लकुलीश का, व्यापिनी के साथ शिवेश का तथा महामाया के साथ संवर्तेश का न्यास करे। यह श्रीकण्ठमातृका कही गई है ॥११४-११९॥ जहाँ ईश पद न कहा गया हो वहाँ सर्वत्र उसकी योजना कर लेनी चाहिए। इस श्रीकण्ठमातृका न्यास के दक्षिणामूर्ति ऋषि और गायत्री छन्द कहा गया है। अर्धनारीश्वर देवता है और सम्पूर्ण मनोरथों की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग कहा गया है। इसके हल् बीज और स्वर शक्तियाँ हैं ॥१२०-१२१॥ भृगु (स) में स्थित आकाश (ह) को छह दीर्घों से युक्त करके उसके द्वारा अंग न्यास करे। इसके बाद भगवान् शंकर का इस प्रकार ध्यान करे—उनका श्रीविग्रह बन्धूक पुष्प एवं सुवर्ण के समान है। वे अपने हाथों में वर, अक्षमाला, अंकुश और पाश धारण करते हैं। उनके मस्तक पर अर्धचन्द्र का मुकुट सुशोभित है। उनके तीन नेत्र हैं तथा सम्पूर्ण देवता उनके चरणों की वदंना करते हैं। ॥१२२½॥

। ध्यात्वैवं शिवशक्तीश्च चतुर्थी हृदयांतिमे ॥१२३॥
अर्द्धेन्दुशेखरं त्र्यक्षं देववंद्यं विचिन्तयेत् । विघ्नेशश्च ह्रिया युक्तो विघ्नराजः श्रिया युतः ॥१२४॥
सौबीजमातृका पूर्वे विन्यसेन्मातृकास्थले । विघ्नकृत्स्वस्तिसंयुक्तो विघ्नहर्ता सरस्वती ॥१२५॥
विनायकस्तथा पुष्ट्या शांतियुक्तः शिवोत्तमः । कांत्या युक्तो द्विदंतस्तु कामिन्या गजवक्त्रकः ॥१२६॥
स्वाहया गणनाथश्च एकदंतः सुमेधया । दीर्घजिह्वः पार्वतीयुग्ज्वालिन्या शंकुकर्णकः ॥१२७॥
निरंजनो मोहिनीयुक्कपर्दी नटीयुतः । गजेन्द्रः कामरूपिण्या शूर्पकर्णस्तथोमया ॥१२८॥
वृषध्वजो नन्दया च सुरेश्या गणनायकः । महानंदश्च विघ्नेश्या चतुर्मूर्तिस्वरूपिणी ॥१२९॥
विरोचनस्तेजोवत्या सत्यालम्बोदरेण च । दुर्मुखो भूतिसंयुक्तः सुमुखो भृकुटीयुतः ॥१३०॥
सदाशिवःकामदयाह्या मोदो मदजिह्वया । द्विजिह्वो महिषीयुक्तो जंभिन्या शूरनामकः ॥१३१॥
प्रमोदःसितया युक्त एकपादो रमायुतः । वरदो लज्जया वामदेवेशो दीर्घघोणया ॥१३२॥
वीरो विकर्णया युक्तः षण्मुखो भृकुटीयुतः । सेनानी रात्रिसंयुक्तः कामांधो ग्रामणीयुतः ॥१३३॥
धनुर्द्धर्या वक्रतुंडो द्विरंडो यामिनी युतः । मत्तवाहश्चंचलया जटी दीप्तिसमन्वितः ॥१३४॥
मत्तः शशिप्रभायुक्तो विमत्तो लोलनेत्रया । वरेण्यश्च शिवायुक्तो भगया वृषकेतनः ॥१३५॥
मुंडो सुभगया युक्तः खड्गी दुर्भगया युतः । मेघनादः सुभगया व्यापी स्यात्कालरात्रियुक् ॥१३६॥
भक्ष्यप्रियो भोगन्या च गणेशो भोगिनीयुतः । गणेशमातृकायास्तु गणो मुनिभिरीरितः ॥१३७॥
गणेश्वरः कालिकया प्रोक्ता विघ्नेशमातृकाः । षड्दीर्घाढ्येन बीजेन कृत्वांगानि ततः स्मरेत् ॥१३८॥
निचृद्गायत्रिकाछन्दो देवः शक्तिगणेश्वरः ।

इस प्रकार शिवशक्ति का ध्यान करके अन्त में चतुर्थी विभक्ति और नमः पद जोड़कर तथा आदि में गणेशजी का अपना बीज लगाकर मातृकास्थल में एक-एक मातृकावर्ण के साथ शक्ति सहित गणेशजी का न्यास करे। ह्री के साथ विघ्नेश तथा श्री के साथ विघ्नराज का न्यास करे। पुष्टि के के साथ विनायक, शान्ति के साथ शिवोत्तम, स्वस्ति सहित विघ्नकृत्, सरस्वती सहित विघ्नहर्ता, स्वाहा सहित गणनाथ, सुमेधासहित एकदन्त, कान्तिसहित द्विदन्त, कामिनीसहित गजमुख, मोहिनीसहित निरञ्जन, नटी सहित कपर्दी, पार्वतीसहित दीर्घजिह्व, ज्वालिनीसहित शंकुकर्ण, नन्दासहित वृषध्वज, सुरेशीसहित गणनायक, कामरूपिणी के साथ गजेन्द्र, उमा के साथ शूर्पकर्ण, तेजोवती के साथ विरोचन, सती के साथ लम्बोदर, विघ्नेशी के साथ महानन्द, सुरूपिणीसहित चतुर्मूर्ति ॥१२३-१२९॥ कामदासहित सदाशिव, मदजिह्वा सहित आमोद, भूतिसहित दुर्मुख, भौतिकी के साथ सुमुख, सिता के साथ प्रमोद, रमा के साथ एकपाद, महिषी के साथ द्विजिह्व, जम्भिनी के साथ शूर, विकर्णा के साथ वीर, भृकुटीसहित षण्मुख, लज्जा के साथ वरद, दीर्घघोणा के साथ वामदेवेश, धनुर्धरी के साथ वक्रतुण्ड, यामिनी के साथ द्विरण्ड, रात्रि सहित सेनानी, ग्रामणी सहित कामान्ध, शशिप्रभा के साथ मत्त, लोलनेत्रा के साथ विमत्त, चंचला के साथ मत्तवाह, दीप्ति के साथ जटी, सुभगा के साथ मुण्डी, दुर्भगा के साथ खड्गी, शिवा के साथ वरेण्य, भगा के साथ वृषकेतन, ॥१३०-१३८॥ भगिनी के साथ भक्तप्रिय, भोगिनी के साथ गणेश, सुभगा के साथ मेघनाद, कालरात्रिसहित व्यापी तथा कालिका के साथ गणेश का अपने अंगों में न्यास करना चाहिए। इस प्रकार विघ्नेश मातृका का वर्णन किया गया है। गणेश मातृका के गण ऋषि कहे गये हैं। निचृद् गायत्री छन्द है तथा सहित गणेश्वर देवता हैं। छह दीर्घ स्वरों से युक्त गणेशबीज (गां गीं गूं गैं गौं गः) के द्वारा अंग न्यास करके उनका इस प्रकार ध्यान करे—गणेशजी अपनी चारों भुजाओं में क्रमशः पाश, अंकुश, अभय और वर धारण किये हुए हैं, उनकी पत्नी सिद्धि हाथ में कमल ले उनसे सटकर बैठी हैं। उनका शरीर रक्त वर्ण का

पांशांकुशाभयवरान्दधानं कंजहस्तया । पत्न्याश्लिष्टं रक्ततनुं त्रिनेत्रं गणपे भवेत् ॥१३९॥
एवं ध्यात्वा न्यसेत्स्वीयबीजपूर्वाक्षरान्वितम् । निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शांतिस्तथेंधिका ॥१४०॥
दीपिका रेचिका चापि मोचिका च पराभिधा । सूक्ष्मासूक्ष्मामृता ज्ञानामृता चाप्यायिनी तथा ॥१४१॥
व्यापिनी व्योमरूपा चानंता सृष्टिः समृद्धिका । स्मृतिर्मेधा ततः कांतिर्लक्ष्मीर्द्युतिः स्थिरा स्थितिः ॥१४२॥
सिद्धिर्जरा पालिनी च क्षांतिरीश्वरिका रतिः । कामिका वरदा वाथा ह्लादिनी प्रीतिसंयुता ॥१४३॥
दीर्घा तीक्ष्णा तथा रौद्रा प्रोक्ता निद्रा च तंद्रिका । क्षुधा च क्रोधिनी पश्चात्क्रियाकारी समृत्युका ॥१४४॥
पीता श्वेतारुणा पश्चादसितानंतया युता । उक्ता कलामातृकैवं तत्तद्भक्ताः समाचरेत् ॥१४५॥
कलायुङ्मातृकायास्तु मुनिः प्रोक्तः प्रजापतिः । गायत्रीछन्द आख्यातं देवता शारदाभिधा ॥१४६॥
ह्रस्वदीर्घांतरस्थैश्च तारैः कुर्यात्षडंगकम् । पद्मचक्रगुणैणांश्च दधतीं च त्रिलोचनाम् ॥१४७॥
पञ्चवक्त्रां भारतीं तां मुक्ताभूषां भजेत्सुधीः । ध्यात्वैवं तारपूर्वां तां न्यसेन्ङेन्तकलान्विताम् ॥१४८॥
ततश्च मूलमन्त्रस्य षडंगानि समाचरेत् । हृदयादिचतुर्थ्यंते जातीः संयोज्य विन्यसेत् ॥१४९॥
नमः स्वाहा वषट् हुं वौ षट् फट् जातय ईरिताः । ततो ध्यात्वेष्टदेवं तं भूषायुधसमन्वितम् ॥१५०॥

है तथा उनके तीन नेत्र हैं, ऐसे गणपति का मैं भजन करता हूं। इस प्रकार ध्यान करके स्वकीय बीज को पूर्वाक्षर के रूप में रखकर उक्त मातृका न्यास करना चाहिए। ॥१३६-१३९½॥

निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, इन्धिका, दीपिका, रोचिका, मोचिका, सूक्ष्मा, असूक्ष्मा, अमृता, ज्ञानामृता, आप्यायिनी, व्यापिनी, व्योमरूपा, अनन्ता, सृष्टि, समृद्धिका, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, धृति, स्थिरा, स्थिति, सिद्धि, जरा, पालिनी, क्षान्ति, ईश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति, दीर्घा, तीक्ष्णा, रौद्रा, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, क्रोधिनी, क्रियाकरी, मृत्यु, पीता, श्वेता, अरुणा, असिता और अनन्ता—इस प्रकार कला मातृका कही गई है। भक्त पुरुष उन-उन मातृकाओं का न्यास करे ॥१४०-१४५॥ इस कलामातृका के प्रजापति ऋषि कहे गये हैं। इसका छन्द गायत्री और देवता शारदा हैं। ह्रस्व और दीर्घस्वर के बीच में प्रणव रखकर उसी के द्वारा षडंगन्यास करे। यथा—अं ओम् आं हृदयाय नमः, इं ओम् ईं शिरसे स्वाहा, उं ओम् ऊं शिखायै वषट्, एं ओम् ऐं कवचाय हुम्, ओ ओम् औं नेत्रत्रयाय वौषट्, अं ओम् अः अस्त्राय फट्)। विद्वान् पुरुष मोतियों के आभूषणों से विभूषित पञ्चमुखी शारदा देवी का भजन (ध्यान) करे। उनके तीन नेत्र हैं तथा वे अपने हाथों में पद्म, चक्र, गुण (त्रिशूल अथवा पाश) तथा एण (मृगचर्म) धारण करती हैं। इस प्रकार ध्यान करके ओम् नमः पूर्वक चतुर्थ्यन्त कलायुक्त मातृका का न्यास करे (यथा—ओम् अं निवृत्त्यै नमः ललाटे, ओम् आं प्रतिष्ठायै नमः मुखवृत्ते इत्यादि)। तदनन्तर मूलमन्त्र के छहों अंगों का न्यास करना चाहिए। 'हृदय' आदि चतुर्थ्यन्त पद में अंगन्यास-सम्बन्धी जातियों का संयोग करके न्यास करे। नमः, स्वाहा, वषट्, हुम्, वौषट् और फट्—ये छह जातियाँ कही गई हैं (अर्थात् हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट् कवचाय हुम्, नेत्रत्रयाय वौषट्, अस्त्राय

॥१५१॥
न्यस्यांगषट्कं तन्मूर्तौ ततः पूजनमारभेत्

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे संध्यादिनिरूपणं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

अथ वक्ष्ये देवपूजां साधकाभीष्टसिद्धिदाम् । त्रिकोणं चतुरस्रं वा वामभागे प्रकल्प्य च ॥१॥
सम्पूज्यास्त्रेण संक्षाल्य हृदाधारं निधाय च । तत्राग्निमण्डलं चेद्वा पात्रं संक्षाल्य चास्त्रतः ॥२॥
आधारे नमसं स्थाप्य तत्र चेद्रविमंडलम् । विलोममातृका मूलमुच्चरन्पूरयेज्जलैः ॥३॥
तत्रेंदुमंडलं प्राच्यं तीर्थान्यावाह्य पूर्ववत् । गोमुद्रयामृतीकृत्य कवचेनावगुंठयेत् ॥४॥
संक्षाल्यास्त्रेण प्रणवं तदुपर्यष्टधा जपेत् । सामान्यार्घमिदं प्रोक्तं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ॥५॥
तज्जलं किंचिदुद्धृत्य प्रोक्षिण्या साधकोत्तमः । आत्मानं यागवस्तूनि तेन संप्रोक्षयेत्पृथक् ॥६॥
आत्मवामाग्रतः कुर्यात्षट्कोणांतस्त्रिकोणकम् । चतुरस्रेण संवेष्टय संक्षाल्यार्घोदकेन च ॥७॥
ततस्तु साधकश्रेष्ठः स्तंभयेच्छंखमुद्रया । आग्नेयादिषु कोणेषु हृदाद्यंगचतुष्टयम् ॥८॥

फट्—इस प्रकार संयोजना करे)। तत्पश्चात् आयुध और आभूषणों सहित इष्टदेव का ध्यान करके उनकी मूर्ति में छह अंगों का न्यास करने के पश्चात् पूजन प्रारंभ करे। ॥१४६-१५१॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वार्घ में संध्यादि-निरूपण नामक छाछठवां अध्याय समाप्त ॥६६॥

अध्याय ६७

देव पूजन की विधि

सनत्कुमार बोले—इसके अनन्तर साधकों को अभीष्ट सिद्धि देने वाले देवपूजन की विधि बतला रहा हूँ। सब से पहले बायें भाग में चौकोर या तिकोना मण्डल स्थापित कर उसको अस्त्र (मन्त्र) से सींच कर उसमें हृदाधार बनाये ॥१३॥ यदि अग्नि स्थापना करनी हो तो अग्नि मण्डल बनाये और पात्र को अस्त्र से धोकर आधार स्थान में चमस रखकर सूर्य मण्डल की भावना करे। विलोम-मातृकामूल का उच्चारण करते हुए उस पात्र को जल से भरे। फिर उसमें चन्द्र-मण्डल की पूजा करके पूर्ववत् उसमें तीर्थों का आवाहन करे। उसको गोमुद्रा से अमृतमय बनाकर कवच से उसको ढक दे ॥२-४॥ अस्त्र (मन्त्र) से उस पर जल छिड़क कर, प्रणव का आठ बार जप करे। यह मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धियाँ देने वाला सामान्य अर्घ कहा गया है। उत्तम साधक प्रोक्षिणी में से थोड़ा सा जल लेकर अपने और यज्ञिय वस्तुओं पर छिड़के। अपनी बाईं ओर उससे आगे षट् कोणान्त त्रिभुज बनावे। उसको चतुर्भुज से घेर कर अर्घ-जल से सींचे ॥५-७॥ इतनी क्रिया के अनन्तर वह श्रेष्ठ साधक शंख मुद्रा से स्तम्भन करे। आग्नेय आदि कोणों में हृदय आदि अंगों की स्थापना करे। सब दिशाओं के

नेत्रं मध्ये दिक्षु चास्त्रं त्रिकोणे पूजयेत्ततः । मूलखंडत्रयेनाथा धारशक्तिं तु मध्यगाम् ॥९॥
एवं सम्पूज्य विधिवदस्त्रसंक्षालितं हृदा । प्रतिष्ठाप्य त्रिपदिकां पूजयेन्मनुनामुना ॥१०॥
मं वह्निमण्डलायेति ततो दशकलात्मने । अमुकार्घ्येति पात्रांते सनापहृदयोऽतिमे ॥११॥
चतुर्विंशतिवर्णोऽयमाधारस्यार्चने मनुः । स्वमंत्रक्षालितं शंखं संस्थाप्याथ समर्चयेत् ॥१२॥
तारः कार्म्ममहांस्ते तु ततो जलचराय च । वर्म फट् हृदयं पांचजन्याय हृदयं मनुः ॥१३॥
तत्रार्कमण्डलायेति द्वादशांते कलात्मने । अमुकार्घ्येति पात्रांते नमोन्तस्त्र्यक्षिवर्णवान् ॥१४॥
सम्पूज्य तेन तत्रार्चेद्द्वादशार्ककलाः क्रमात् । ततः शुद्धजलैर्मूलं विलोममातृकां पठन् ॥१५॥
शङ्खमापूरयेत्तस्मिन्पूजयेन्मनुनामुना । ओँ सोममण्डलायेति षोडशांते कलात्मने ॥१६॥
अमुकार्घ्यामृतायेति हृन्मनुश्चार्घ्यपूजने । तत्र षोडशसंख्याका यजेच्चंद्रमसः कलाः ॥१७॥
ततस्तु तीर्थान्यावाह्य गङ्गे चेत्यादिपूर्ववत् । गोमुद्रयामृतीकृत्याच्छादयेन्मत्स्यमुद्रया ॥१८॥
कवचेनावगुंठ्याथ रक्षेदस्त्रेण तत्पुनः । चिंतयित्वेष्टदेवं च ततो मुद्राः प्रदर्शयेत् ॥१९॥
शङ्खमौशलचक्राख्याः परमीकरणं ततः । महामुद्रां योनिमुद्रां दर्शयेत्क्रमतः सुधीः ॥२०॥
गारुडी गालिनी चैव मुख्ये मुद्रे प्रकीर्तिते । गन्धपुष्पादिभिस्तत्र पूजयेद्देवतां स्मरन् ॥२१॥
अष्टकृत्वो जपेन्मूलं प्रणवं चाष्टधा तथा । शंखाद्दक्षिणदिग्भागे प्रोक्षणीपात्रमादिशेत् ॥२२॥
प्रोक्षण्यां तज्जलं किंचित्कृत्वात्मानं त्रिधा ततः । आत्मतत्त्वात्मने हृच्च विद्यातत्त्वात्मने नमः ॥२३॥
शिवतत्त्वात्मने हृच्च इत्येतैर्मनुभिस्त्रिभिः । प्रोक्षेत्पुष्पाक्षतैश्चापि मण्डलं विधिवत्सुधीः ॥२४॥

मध्य में नेत्र की और त्रिकोण में अस्त्र की पूजा करे। मूल के तीन खण्डों से मध्य-गामिनी आधार शक्ति की पूजा करे ॥८-९॥ इस प्रकार भली-भांति पूजा करके अस्त्र से उसको सींचकर हृदय से त्रिपदिका (तीन पैर वाली) की स्थापना कर 'मं वह्निमण्डलाय' मन्त्र से उसकी पूजा करे। तत्पश्चात् दश कलात्मा को 'अमुक कार्घ्येति पात्रान्ते सनाप हृदयान्तिमे, इस मन्त्र से पूजे। यह चौबीस अक्षरों का मन्त्र है जिसका प्रयोग आधार के पूजन में किया जाता है। अपने मन्त्र से क्षालित (धोये हुए) शंख को स्थापित कर उस शंख की पूजा करे। शंख पूजन मन्त्र 'तारःकार्म्म महांस्तेतु ततो जलचराय च वर्मं फट् हृदयं पांचजन्याय हृदयम्'। उस चक्र में अर्कमण्डल के निमित्त बारह कलावाले सूर्य की पूजा करे। मन्त्र—अमुकार्घ्येति पात्रान्ते नमोऽन्तस्त्र्यक्षिवर्णवान्' इस मन्त्र से सूर्य की पूजा कर उसी मण्डल में बारह कलाओं की क्रमशः पूजा करे ॥१०-१४½॥ सूर्य पूजन के अनन्तर विलोम मातृका का उच्चारण करते हुए शुद्ध जल से शंख को भर दे। 'ओँ सोममण्डलायषोडशान्त कलात्मने अमुकार्घ्यामृताय' इस मन्त्र से अर्घ्य पूजन करे। उस सोम मण्डल में चन्द्रमा की सोलह कलाओं की पूजा करे ॥१५-१६॥

गंगे च यमुने……इस मन्त्र से तीर्थों का आवाहन कर गोमुद्रा से अमृतीकरण करे, मत्स्य मुद्रा से उसको आच्छादित कर कवच से उसको पुनः ढक दे। अस्त्र से उसकी रक्षा कर इष्ट देव का चिन्तन कर मुद्रा दिखलावे। चतुर साधक शंख, मौशल, चक्र, परमीकरण, महामुद्रा और योनि मुद्रा का प्रदर्शन करे। गारुडी और गालिनी को मुख्य मुद्रा कहते हैं। उस स्थान पर देवता का स्मरण करते हुए गन्ध-पुष्प आदि से पूजा करे ॥१७-२१॥ उस समय आठ बार मूल मन्त्र को और आठ बार प्रणव का जप करे। शंख के दक्षिण भाग में प्रोक्षणी पात्र को रखे। प्रोक्षणी में थोड़ा सा जल रख कर उसको अपने ऊपर तीन बार छिड़के। तदनन्तर 'आत्मतत्त्वात्मने हृच्च विद्यातत्त्वात्मने नमः शिवतत्त्वात्मने हृच्च शिवतत्त्वात्मने नमः इन तीन मन्त्रों से पुष्प अक्षत से विधिपूर्वक मण्डल

मधुपर्कार्थमप्युत ॥२५॥
अथवा मूलगायत्र्या पूजाद्रव्याणि प्रोक्षयेत् । पाद्यार्घ्याचमनीयार्थं
पात्राण्याधारयुक्तानि स्थापयेद्विधिना पुनः । पाद्यं श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रांतजलैः स्मृतम् ॥२६॥
अर्घ्यं पुष्पाक्षतयवैः कुशाग्रतिलसर्षपैः । गंधदूर्वादलैः प्रोक्तं ततपश्चाचमनीयकम् ॥२७॥
जातीफलं च कंकोलं लवंगं च जलान्वितम् । क्षौद्राज्यदधिसंमिश्रं मधुपर्कसमीरितम् ॥२८॥
एकस्मिन्नथवापात्रे पाद्यादीनि प्रकल्पयेत् । शंकरार्कार्चने शंखमयेनैव प्रशस्यते ॥२९॥
। रक्तांबराभयकरा ध्येयास्स्युः पीठशक्तयः ॥३०॥
श्वेताकृष्णारुणापीताश्यामारक्तासितासिताः । विधिना स्थापितायां वा प्रतिमायां प्रपूजयेत् ॥३१॥
स्वर्णादिलिखिते यंत्रे शालग्रामे मणौ तथा । निर्मिता शुभदा गेहे पूजनाय दिने दिने ॥३२॥
अंगुष्ठादिवितस्त्यंतमाना स्वर्णादिधातुभिः । स्पृष्टां वाप्यन्त्यजाद्यैश्च प्रतिमां नैव पूजयेत् ॥३३॥
वक्रां दग्धां खंडितां च भिन्नमूर्धदृशं पुनः । मूलेन मूर्तिसंकल्प्य ध्यात्वा देवं यथोदितम् ॥३४॥
बाणादिलिंगे वाभ्यर्चेत्सर्वलक्षणलक्षिते । शालग्रामे स्थापितायां नावाहनविसर्जने ॥३५॥
आवाह्य पूजयेत्तस्यां परिवारगणैः सह । ॥३६॥
पुष्पांजलिं समादाय ध्यात्वा मंत्रमुदीरयेत्
आत्मसंस्थमजं शुद्धं त्वामहं परमेश्वर । अरण्यामिव हव्याशं मूर्तावावाहयाम्यहम् ॥३७॥
तवेयं हि महामूर्तिस्तस्यां त्वां सर्वगं प्रभो । भक्तिस्नेहसमाकृष्टं दीपवत्स्थापयाम्यहम् ॥३८॥
सर्वान्तर्यामिणे देवं सर्वबीजमयं शुभम् । स्वात्मस्थाय परं शुद्धमासनं कल्पयाम्यहम् ॥३९॥

को सींचे। अथवा मूल गायत्री से पूजा सामग्री पर विधिपूर्व जल छिड़के। पहले अपने आगे कुछ आधार रख कर उस पर पुष्प, अक्षत, यव, कुश, तिल, सरसों, गन्ध, और दूब आदि से भरा पात्र रखे: पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय और मधुपर्क के लिये पात्र रखे। सांवा, दूव, कमल और विष्णुकान्ता से मिले जल से पाद्य दिया जाता है। पाद्य और अर्घ्य फूल, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सरसों, गन्ध और दूर्वादल से युक्त जल का अर्घ्य दिया जाता है। पाद्य और अर्घ्य के अनन्तर आचमनीय जल देना चाहिये। जाती फल, कंकोल, लवंग, मधु, घी, दही मिलाकर मधुपर्क बनाया जाता है। अथवा पाद्य अर्घ्य के लिये पृथक्-पृथक् पात्र न रखकर एक ही में पाद्य आदि दे। शंकर और सूर्य की पूजा में शंख ही श्रेष्ठ पात्र है। ॥२२-२६॥ ॥२७-२९॥

श्वेत, नील, अरुण, पीत, श्याम, कुछ रक्त वर्ण की, काली, और धवल वर्ण की पीठ शक्तियों का स्मरण करना चाहिये। सोना आदि धातुओं से लिखे हुए यन्त्र में शालग्राम पर मणि या विधिपूर्वक स्थापित प्रतिमा की पूजा प्रशस्त है। अंगूठे से लेकर एक वित्ते परिमाण की सुवर्ण आदि धातु की बनी प्रतिमा प्रति दिन घर में पूजने के लिये शुभ मानी गई है। टेढ़ी, जली, टूटी-फूटी, नेत्र हीन, शिर जिसका टूट गया हो अथवा चाण्डालों से छू गई हो ऐसी प्रतिमा की पूजा नहीं करनी चाहिये। सब लक्षणों से युक्त वाण आदि शिवलिङ्गों की भी पूजा शुभ मानी गई है ॥३०-३३॥। मूल मन्त्र से मूर्तिपूजन का संकल्प कर इष्ट देवता का ध्यान कर परिवार के सहित आवाहन कर उस मूर्ति में पूजन करना चाहिये। शालग्राम में स्थापित मूर्ति का आवाहन और विसर्जन नहीं होता है। सब से पहले पुष्पांजलि हाथ में लेकर ध्यानपूर्वक आगे के मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। परमेश्वर, आत्मस्थ, अज, शुद्ध, तुमको मैं अरणी में प्रतिष्ठित अग्नि के समान इस मूर्ति में स्थापित करता हूँ। यह तुम्हारी महिमा मूर्ति है। प्रभो, सर्व व्यापक, भक्ति और स्नेह से आकृष्ट होने वाले सर्वान्तर्यामी, शुभ, सर्वबीजमय तुमको इसमें दीपक की भाँति स्थापित करता हूँ। प्रभो, देवेश, आत्माराम तुमको इस शुद्ध आसन को अर्पित

अनन्या तव देवेश मूर्तिशक्तिरियं प्रभो । सांनिध्यं कुरु तस्यां त्वं भक्तानुग्राहकारक ॥४०॥
अज्ञानादुत मत्तत्वाद्वैकल्यात्साधनस्य च । यद्यपूर्णं भवेत्कल्पं तथाप्यभिमुखो भव ॥४१॥
दृशा पीयूषवर्षिण्या पूरयन्यज्ञविष्टरे । मूर्तौ वा यज्ञसंपूर्त्यै स्थितो भव महेश्वर ॥४२॥
अभक्तवाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रदूरायितद्युते । स्वतेजः पंजरेणाशु वेष्टितो भव सर्वतः ॥४३॥
यस्य दर्शनमिच्छंति देवाः स्वाभीष्टसिद्धये । तस्मै ते परमेशाय स्वागतं स्वागतं च मे ॥४४॥
कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम । आगतो देवदेवेशः सुस्वागतमिदं पुनः ॥४५॥
यद्भक्तिलेशसंपर्कात्परमानंदसंभवः । तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं शुद्धाय कल्पये ॥४६॥
वेदानामपि वेद्याय देवानां देवतात्मने । आचामं कल्पयामीश शुद्धानां शुद्धिहेतवे ॥४७॥
तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम् । तापत्रयविनिर्मुक्त्यै तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम् ॥४८॥
सर्वकालुष्यहीनाय परिपूर्णसुखात्मने । मधुपर्कमिदं देव कल्पयामि प्रसीद मे ॥४९॥
उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः । शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम् ॥५०॥
स्नेह गृहाण स्नेहेन लोकनाथ महाशय । सर्वलोकेषु शुद्धात्मन्ददामि स्नेहमुत्तमम् ॥५१॥
परमानंदबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्तये । सांगोपांगमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते ॥ ॥५२॥
सहस्रं वा शतं वापि यथाशक्त्यादरेण च ॥५३॥
गन्धपुष्पादिकैरीश मनुना चाभिषिचयेत् ॥५४॥
मायाचित्रपटच्छन्ननिजगुह्योरुतेजसे । निरावरणविज्ञान वासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥५५॥

कर रहा हूँ ॥३४-३९॥ यह तुम्हारी अनुपम मूर्ति है। भक्तों पर अनुग्रह करने वाले, उस मूर्ति में तुम सर्वदा विराजमान रहो। अज्ञानवश, प्रमादवश अथवा साधक के विकल्प से यदि कोई त्रुटि हो गई हो अथवा हो जाय तो भी तुम सर्वदा इसमें सुशोभित रहना। महेश्वर, अपनी अमृत बरसाने वाली दृष्टि से इस यज्ञ भूमि या मूर्ति में यज्ञ को सफल बनाने के लिये सर्वदा स्थित रहें ॥४०-४२॥ अभक्त जनों की वाणी, मन, चक्षु और श्रोत्र से अपने प्रकाश को दूर ही रखने वाले, आप अपने तेज पुंज से चारों ओर शीघ्र विस्तृत हो जायँ। अपने मनोरथ को सिद्ध करने के लिये देवता भी जिसका दर्शन चाहते हैं उस परमेश को मेरा स्वागत है! स्वागत है॥ मैं कृतार्थ हो गया, अनुगृहीत हो गया है, मेरा जीवन सफल जिस को थोड़ी भक्ति करने से भी परम आनन्द प्राप्त होता है ऐसे देवदेवश आ गये, आपका स्वागत है॥४४-४५॥ उन आपके शुद्ध चरण कमल के लिये अर्घ्य प्रदान कर रहा हूँ जो वेदों के वेद्य और देवताओं के भी देवता है। ईश, शुद्ध को भी शुद्ध करने के लिये तीनों तापों को हरने वाले, दिव्य और परमानन्द रूप आचमन प्रदान कर रहा हूँ। सब प्रकार के पापों से रहित, परिपूर्ण सुख रूप आपके लिये तीनों तापों से मुक्त होने के लिये अर्घ्य प्रदान कर रहा हूँ। देव, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों। आपके लिये यह मधुपर्क अर्पित कर रहा हूँ ॥४६-४९॥ अपवित्र और उच्छिष्ट भी जिसके स्मरण मात्र से पवित्र हो जाते हैं उस भगवान् के लिये पुनःआचमन दे रहा हूँ। लोकनाथ, महाशय, यह जल स्नेहपूर्वक ग्रहण करें। सब लोकों में शुद्धात्मा, परमानन्द ज्ञान रूपी समुद्र में सदा निमग्न रहने वाले आपको यह उत्तम स्नेह (जल) दे रहा हूँ। ईश, तुम्हारे सांगोपांग स्नान के लिये शक्त्यनुसार हजार या सौ बार स्नान जल प्रदान कर रहा हूँ। ॥५०-५२॥ इस मन्त्र से गन्ध और फूल मिश्रित जल से भगवान् को स्नान कराना चाहिये। निरावरण विज्ञान, माया रूपी चित्र पट से अपने गुह्य विपुल तेज को छिपा रखने वाले आपके लिये वास (वस्त्र) प्रदान कर रहा हूँ।

यमाश्रित्य महामाया जगत्संमोहिनी सदा । तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥५५॥
रक्तं शक्त्यर्कविघ्नेषु पीतं विष्णौ सितं शिवे । तैलादिदूषितं जीर्णं सच्छिद्रं मलिनं त्यजेत् ॥५६॥
यस्य शक्तित्रयेणेदं संप्रीतमखिलं जगत् । यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये ॥५७॥
स्वभावसुन्दरांगाय नानाशक्त्याश्रयाय ते । भूषणानि विचित्राणि कल्पयाम्यमरार्चित ॥५८॥
परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगंतरम । गृहाण परमं गंधं कृपया परमेश्वर ॥५९॥
तुरीयवनसंभूतं नानागुणमनोहरम् । अमंदसौरभं पुष्पं गृह्यतामिदमुत्तमम् ।
॥६०॥
जपाक्षतार्कधत्तूरान्विष्णौ नैवार्पयेत्क्वचित्
केतकी कुटजं कुंदं बंधूकं केसरं जपाम् । मालतीपुष्पकं चैव नार्पयेत्तु महेश्वरे ॥६१॥
मातुलिंगं च तगरं रवौ नैवार्पयेत्क्वचित् । शक्तौ दूर्वार्कमंदारान् गणेशेतुलसीं त्यजेत् ॥६२॥
सरोजिनीदमनकौ तथा मरुबकः कुशः । विष्णुक्रांता नागवल्ली दूर्वापामार्गदाडिमौ ॥६३॥
धात्री मुनियुतानां च पत्रैर्देवार्चनं चरेत् । कदली बदरी धात्री तिंतिणी बीजपुरकम् ॥६४॥
आम्रदाडिमजंबीरजंबूपनसभूरुहाः । एतेषां तु फलैः कुर्याद्देवतापूजनं बुधः ॥६५॥
॥६६॥
शुष्कैस्तु नार्चयेद्देवं पत्रैः पुष्पैः फलैरपि
धात्रीखदिरबिल्वानां तमालस्य दलानि च । छिन्नभिन्नान्यपि मुने न दूष्याणि जगुर्बुधाः ॥६७॥
पद्ममामलकं तिष्ठेच्छुद्धं चैव दिनत्रयम् । सर्वदा तुलसी शुद्धा बिलवपत्राणि वै तथा ॥६८॥
पलाशकाशकुसुमैस्तमालतुलसीदलैः । धात्रीदलैश्च दूर्वाभिर्नार्चयेज्जगदंबिकाम् ॥६९॥

जिस मायेश के आश्रय में रहकर महामाया सदा संसार को विमुग्ध रखती है उस परमेश के लिये उत्तरीय वस्त्र प्रदान कर रहा हूँ ॥५३-५५॥ शक्ति, सूर्य और गणेश को रक्त वर्ण का, विष्णु को पीले वर्ण का और शिव को श्वेत वर्ण का वस्त्र प्रदान करना चाहिये। तेल आदि से मलिन, पुराना, फटा और गन्दा वस्त्र नहीं देना चाहिये। जिसकी तीनों शक्ति से सारा संसार प्रसन्न रहता है उस यज्ञ के आधार आप के लिये यज्ञोपवीत प्रदान कर रहा हूँ ॥५६-५७॥ देव पूजित, सहज सुन्दर और नाना प्रकार की शक्तियों के आधार आपको विचित्र भूषण प्रदान कर रहा हूँ। परमेश्वर ! अपने परम आनन्ददायक सुगन्ध से दिग्-दिगन्तर को सुगन्धित करने वाले इस परम उत्कृष्ट गन्ध को स्वीकार कीजिये ॥५८-५९॥ नन्दन वन में उत्पन्न अपनी विशेषता से मनोहर और उत्कृष्ट सुगन्ध वाले इस पुष्प को स्वीकार करें। जपाकुसुम (अड़उल), अक्षत, अर्क और धतूरे के फूल को विष्णु प्रतिमा पर नहीं चढ़ाना चाहिये। केतकी, कुटज, कुंद, बन्धूक, केसर, जपा ओर मालती पुष्प को महेश्वर पर नहीं चढ़ाना चाहिये। मातुलिंग और तगर का उपयोग सूर्य पूजन में नहीं करना चाहिये। शक्ति पर दूर्वा, अर्क और मन्दार पुष्प और गणेश पर तुलसी पत्र नहीं चढ़ाना चाहिये। सरोजिनी, दमनक, मरुवक, कुश, विष्णुकान्ता, नागवल्ली, दूर्वा, अपामार्ग (चिचिड़ा), अनार, आँवला और मुनियुतों की पत्तियों से देवार्चन करना चाहिये ॥६०-६३½॥ विद्वान् व्यक्ति केला, बेर, आँवला, इमली, बीजपूरक, आम, अनार, जंबीर नीबू, जामुन, कटहल आदि के फलों से देवता पूजन करें। सूखे पत्र, पुष्प या फल से देव पूजन नहीं करना चाहिये। मुने, पंडितों ने आंवला, खैर, बिल्व और तमाल की पत्तियों को यदि कटी हुई या टूटी हुई भी हों तो भी पूजा के लिये प्रशस्त माना है। कमल और आँवला तीन दिन तक शुद्ध रहते हैं। बिल्व पत्र और तुलसीदल सर्वदा शुद्ध रहते हैं ॥६४-६९॥ पलाश, राड़ी के फूल,

नार्पयेत्कुसुमं पत्रं फलं देवे ह्यधोमुखम् । पुष्पपत्रादिकं विप्र यथोत्पन्नं तथार्पयेत् ।।७०।।
वनस्पतिरसं दिव्यं गंधाढ्यं सुमनोहरम् । आघ्रेयं देवदेवेश धूपं भक्त्या गृहाण मे ।।७१।।
सुप्रकाशं महादीपं सर्वदा तिमिरापहम् । घृतवर्तिसमायुक्तं गृहाण मम सत्कृतम् ।।७२।।
अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् । भक्त्या गृहाण मे देव नैवेद्यं तुष्टिदं सदा ।।७३।।
नागवल्लीदलं श्रेष्ठं पूगखदिरचूर्णयुक् । कर्पूरादिसुगंधाढ्यं यद्दत्तं तद्गृहाण मे ।।७४।।
दद्यात्पुष्पाञ्जलिं पश्चात्कुर्यादावरणार्चनम् ।।७५।।
यदाशाभिमुखो भूत्वा पूजनं तु समाचरेत् । सैव प्राची तु विज्ञेया ततोऽन्या विदिशो दश ।।७६।।
केशरेष्वग्निकोणादिहृदयादीनि पूजयेत् । नेत्रमग्रे दिक्षु चास्त्रं अंगमंत्रैर्यथाक्रमम् ।।७७।।
शुक्लश्वेतासितश्यामकृष्णरक्तार्चिषः क्रमात् । वराभयकरा ध्येयाः स्वस्वदिक्ष्वंगशक्तयः ।।७८।।
अमुकावरणांते तु देवता इति संवदेत् । सालंकारास्ततः पश्चात्सांगाः सपरिचारिकाः ।।७९।।
सवाहनाः सायुधाश्च ततः सर्वोपचारकैः । संपूजितास्तर्पिताश्च वरदाः सन्त्विदं पठेत् ।।८०।।
मूलांते च समुच्चार्य देवतायै निवेदयेत् । अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ।।८१।।
भक्त्या समर्पये तुभ्यममुकावरणार्चनम् । इत्युच्चार्य क्षिपेत्पुष्पाञ्जलिं देवस्य मस्तके ।।८२।।
ततस्त्वभ्यर्चनीयाःस्युः कल्पोक्ताश्चावृतीः क्रमात् । सायुधांस्तत इंद्राद्यान्स्वस्वदिक्षु प्रपूजयेत् ।।८३।।

तमाल और तुलसीदल, आंवले की पत्तियों और दूब से जगदम्बा का पूजन नहीं करना चाहिये । किसी देवता पर फूल-पत्तियां और फल को उलटा करके नहीं चढ़ाना चाहिये । विप्र ! वे जिस प्रकार उत्पन्न होते हैं उनको उसी प्रकार चढ़ाना चाहिये । देवदेवेश, सुमनोहर, दिव्य, अत्यन्त सुगन्धित वनस्पति रूप सूंघने योग्य धूप को ग्रहण करें, इस मन्त्र से धूप देना चाहिये । सुप्रकाश, सदा अन्धकार को नष्ट करने वाले, घी की वत्तियों से युक्त इस महादीप को मैं आदरपूर्वक अर्पित करता हूँ, आप ग्रहण करें ।।६९-७२।। देव, स्वादिष्ठ, षड्रस से युक्त चार प्रकार के भोज्य पदार्थ और तुष्टि प्रदान करने वाले नैवेद्य को मैं अर्पित कर रहा हूँ, आप ग्रहण करें । 'सुपारी और खैर से युक्त श्रेष्ठ ताम्बूल पत्र जिसमें सुगन्धित द्रव्य केसर आदि पड़े हुए हैं, इसको मैं अर्पित कर रहा हूँ स्वीकार करें, इस मन्त्र से ताम्बूल अर्पित करे । ताम्बूल अर्पण के अनन्तर पुष्पांजलि दे और आवरण पूजा करे ।।७३-७५।। जिस दिशा की ओर मुख करके पूजन किया जाता है उसको पूर्व दिशा कहते हैं । अन्य दश दिशायें विदिशा हैं । अग्नि कोण में केशरों के ऊपर हृदय आदि का पूजन करे । इसी प्रकार अन्य कोणों में क्रमशः नेत्र और अस्त्र आदि का अंग मन्त्र से पूजन करे ।।।७६।।

इसके अनन्तर शुक्ल, श्वेत, कृष्ण, श्याम, असित (नील) और रक्त वर्णं की प्रभा से पूर्ण, वर और अभय प्रदान करने वाली अंग शक्तियों को क्रमशः उनकी दिशाओं में ध्यान करना चाहिये । अमुक देव का वरण करता हूँ इस कथन के अन्त में देवता का नाम अवश्य रखना चाहिये । तत्पश्चात् उन देवताओं को अलंकार, अंग, उनके सेवक, वाहन और अस्त्रों के सहित षोडशोपचार से पूजे । भली-भांति उनका पूजन और तर्पण करने के अन्त में 'वरदाः सन्तु' अवश्य कहे । पूजा के अन्त में ऊंचे स्वर से देवता से निवेदन करे ।।७१ ८०½।। शरणागत वत्सल, मेरे मनोरथों को पूर्ण करें, भक्तिपूर्वक मैं तुमको आवरणार्चन अर्पित कर रहा हूँ, इस मन्त्र का उच्चारण कर देवता के मस्तक पर पुष्पांजलि छोड़ दे ।।८१-८२।। तत्पश्चात् कल्पोक्त देवताओं का क्रमशः पूजन करना चाहिये । आयुधों के सहित इन्द्र आदि देवताओं को उनकी दिशाओं में पूजे । इन्द्र, अग्नि, यम, कुबेर, वरुण, पवन, चन्द्रमा,

इंद्रो वह्निर्यमो रक्षो वरुणः पवनो विधुः । ईशानोऽथ विधिश्चैवमधस्तात्पन्नगाधिपः ॥८४॥
ऐरावतस्तथा मेषो महिषः प्रेतस्तिमिमृगः । वाजी वृषो हंसकूर्मौ वाहनानि विदुर्बुधाः ॥८५॥
वज्रं शक्तिं दंडखड्गौ पाशांकुशगदा अपि । त्रिशूलं शंखचक्रे च क्रमादिंद्रादिहेतयः ॥८६॥
समाप्यावरणार्चां तु देवतारार्तिकं चरेत् । शंखतोयं परिक्षिप्योद्बाहुर्नृत्यन् पतेत्क्षितौ ॥८७॥
दंडवच्चाप्यथोत्थाय प्रार्थयित्वा निजेश्वरम् । दक्षिणे स्थंडिलं कृत्वा तत्र संस्कारमाचरेत् ॥८८॥
मूलेनेक्षणमस्त्रेण प्रोक्षणं ताडनं पुनः । कुशैस्तद्वर्मणाभ्युक्ष्य पूज्य तत्र न्यसेद्वसुम् ॥८९॥
प्रदाप्य तत्र जुहुयाद्ध्यात्वा चैवेष्टदेवताम् । महाव्याहृतिभिर्यस्तुसमस्ताभिश्चतुष्टयम् ॥९०॥
जुहुयात्सर्पिषा भक्तैस्तिलैर्वा पायसेन वा । सघृतैः साधकश्रेष्ठः पंचविंशतिसंख्यया ॥९१॥
पुनर्व्याहृतिभिर्हुत्वा गंधाद्यैः पुनरर्चयेत् । देवं संयोजयेन्मूर्तौ ततो वह्निं विसर्जयेत् ॥९२॥
भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक । कर्मांतरेऽपि संप्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम् ॥९३॥
विसृज्याग्निदेवतायै दद्यादाचमनीयकम् । अवशिष्टेन हविषा गंधपुष्पाक्षतान्वितम् ॥९४॥
देवतापार्षदेभ्योऽपि पूर्वोक्तेभ्योर्बलिं ददेत् । ये रौद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः ॥९५॥
योगिन्यो ह्युग्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये । विघ्नभूतास्तथा चान्ये दिग्विदिक्षुसमाश्रिताः ॥९६॥
सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्णंत्विमं बलिम् । इत्यष्टदिक्षु दत्त्वा च पुनर्भूतबलिं चरेत् ॥९७॥
पानीयममृतीकृत्य मुद्रया धेनुसंज्ञया । देवतायाः करे दद्यात्पुनश्चाचमनीयकम् ॥९८॥

ईशान और विधि तथा पाताल के स्वामी शेषनाग क्रमशः दिशाओं के स्वामी हैं। ऐरावत, मेष, भैंसा, प्रेत, तिमि (मछली), मृग, अश्व, बैल, हंस और कछुवा उपर्युक्त देवों के वाहन हैं यह पंडित लोग जानते हैं। ॥८३-८५॥ वज्र, शक्ति, दंड, खड्ग, पाश, कुश, गदा, त्रिशूल और यज्ञ तथा चक्र इनके अस्त्र हैं। आवरणार्चन समाप्त करने के अनन्तर आरती करनी चाहिये। शंख जल को पृथ्वी पर गिरा कर दोनों हाथों को ऊपर उठाकर नाचते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े। इस प्रकार दण्डवत् प्रणाम करने के उपरान्त उठ कर अपने इष्ट देव की प्रार्थना कर दक्षिण भाग में एक वेदी बनाकर उस पर संस्कार कर्म प्रारम्भ करे। मूल मन्त्र से उस वेदी का निरीक्षण कर अस्त्र से जल छिड़के और हाथ से पीट कर उसको बराबर करे, कुश से उसको झाड़ कर उस वेदी पर जल छिड़के, पूजा करे और उस पर अग्नि की स्थापना करे। अग्नि को प्रदीप्तकर अपने इष्ट देवता का ध्यान कर हवन करे ॥८६-८९॥ साधक पहले समस्त महाव्याहृतियों से चार बार घी का हवन करे। पच्चीस बार घी मिले हुए भात, तिल अथवा पायस की आहुतियाँ दे। फिर व्याहृतियों से हवन कर गन्ध आदि से अग्नि की पूजा करे। प्रतिष्ठापित प्रतिमा में देव को प्रतिष्ठित कर अग्नि देव का विसर्जन कर दे। हे हे महाशक्ति, सब कार्यों को सम्पन्न करने वाले वह्निदेव, इस हवन कर्म के अतिरिक्त कर्मों में भी आप प्रेमपूर्वक सहायता करें, इस मन्त्र से अग्नि का विसर्जन करे। इस कर्म के अनन्तर उनको आचमन करा दे। बची हुई हवन सामग्री से गन्ध, पुष्प, अक्षत के सहित पूर्वोक्त देव पार्षदों को बलि दे। ॥९०-९४½॥ बलि मन्त्र :—

'जो रौद्र' रौद्र कर्म करने वाले, रौद्र स्थान में निवास करने वाले, भयङ्कर रूप वाले, योगिनियाँ, गणों के अधिपति और विभिन्न दिशाओं और दिगन्तरों में रहने वाले विघ्नकारक पार्षद हैं प्रसन्नता पूर्वक इस बलि को ग्रहण करें। इस मन्त्र से आठों दिशाओं में बलि देकर भूत बलि दे ॥९५-९७॥ तत्पश्चात् धेनुमुद्रा द्वारा जल का अमृतीकरण करके इष्ट देवता के हाथ में पुनः आचमनीय के लिए जल दे। फिर मूर्ति में स्थित देवता का विसर्जन करके पुनः उस मूर्ति में ही उनको प्रतिष्ठित करे। तत्पश्चात् भगवत्प्रसादभोजी पार्षद को नैवेद्य दे। महादेव जो

||९९||
देवमुद्रास्य मूर्तिस्थं पुनस्तत्रैव योजयेत् । नैवेद्यं च ततो दद्यात्तदुच्छिष्टभोजिने ||९९||
महेश्वरस्य चंडेशो विष्वक्सेनस्तथा हरेः । चंडांशुस्तरणेर्वक्रतुंडश्चापि गणेशितुः ||
शक्तेरुच्छिष्टचांडाली प्रोक्ता उच्छिष्टभोजिनः ||१००||
ततो ऋष्यादिकं स्मृत्वा कृत्वा मूलषडंगकम् । जप्त्वा मंत्रं यथाशक्ति देवतायै निवेदयेत् ||१०१||
गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिता ||१०२||
ततः पराङ्मुखं चार्घं कृत्वा पुष्पैः प्रपूजयेत् । दोर्भ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा ।
मनसा वचसा चेति प्रणामोऽष्टांग ईरितः ||१०३||
बाहुभ्यां च सजानुभ्यां शिरसा वचसापि वा । पंचांगकः प्रणामः स्यात्पूजायां प्रवरावुभौ ||१०४||
नत्वा च दंडवन्मंत्री ततः कुर्यात्प्रदक्षिणाः । विष्णुसोमार्कविघ्नानां वेदार्धैकद्विवह्नयः ||१०५||
ततः स्तोत्रादिकं मंत्री प्रपठेद्भक्तिपूर्वकम् । इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः ||१०६||
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यंतेऽवस्थासु मनसा वदेत् । वाचा हस्ताभ्यां च पद्भ्यामुदरेण ततः परम् ||१०७||
शिश्नांते यत्स्मृतं पश्चाद्यदुक्तं यत्कृतं ततः । तत्सर्वं च ततो ब्रह्मार्पणं भवतु ठद्वयम् ||१०८||
मां मदीयं च सकलं विष्णवे च समर्पये । तारं तत्सदतो ब्रह्मार्पणमस्तु मनुर्मतः ||१०९||
प्रणवाद्योऽष्टवस्वर्णो ह्यनेनात्मानमर्पयेत् । अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात्साधनस्य च ||११०||
यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि । द्रव्यहीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं मयान्यथा ||१११||

के 'चण्डेश' भगवान् विष्णु के विष्वक्सेन, सूर्य के चण्डांशु, गणेशजी के वक्रतुण्ड और भगवती दुर्गा की उच्छिष्ट चाण्डाली—ये सब उच्छिष्टभोजी कहे गये हैं ||९८-९९½||

तदनन्तर मूलमन्त्र के ऋषि आदि का स्मरण करके मूल से ही षडङ्गन्यास करे और यथाशक्ति मन्त्र का जप करके देवता को अर्पित करे—'देव ! आप गुह्य से अतिगुह्य वस्तु की भी रक्षा करने वाले हैं। आप मेरे द्वारा किये गये इस जप को ग्रहण करें। आपके प्रसाद से आपके भीतर रहने वाली सिद्धि मुझे प्राप्त हो ||१००-१०२||

इसके बाद पराङ्मुख अर्घ्य देकर फूलों से पूजा करे। पूजन के पश्चात् प्रणाम करना चाहिए। दोनों हाथों से, दोनों पैरों से, दोनों घुटनों से, छाती से, मस्तक से, नेत्रों से, मन से और वाणी से जो नमस्कार किया जाता है, उसे अष्टांग प्रणाम कहा गया है। दोनों बाहुओं से, घुटनों से, छाती से मस्तक और वाणी से जो प्रणाम किया जाता है, वह पञ्चाङ्ग प्रणाम है। पूजा में ये दोनों अष्टाङ्ग और पञ्चाङ्ग प्रणाम श्रेष्ठ माने गये हैं। मन्त्र का साधक दण्डवत् प्रणाम करके भगवान् की परिक्रमा करे ||१०३-१०४½|| भगवान् विष्णु की चार बार, भगवान् शंकर की आधी बार, भगवती दुर्गा की एक बार, सूर्य को सात बार और गणेश की तीन बार परिक्रमा करनी चाहिए। तत्पश्चात् मन्त्रोपासक भक्तिपूर्वक स्तोत्र-पाठ करे। इसके बाद इस प्रकार कहे—'ओं इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्नेन यत् स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा ! मां मदीयं च सकलं विष्णवे ते समर्पये ओं तत्सत् ।'

इसे विद्वानों ने 'ब्रह्मार्पण मन्त्र' कहा है ||१०५-१०६|| इसके आदि में प्रणव है, उसके बाद बयासी अक्षरों का यह मन्त्र है, इसी से भगवान् को आत्मसमर्पण करना चाहिए। इसके बाद नीचे लिखे अनुसार क्षमा-प्रार्थना करे—

'भगवन् ! अज्ञान से, प्रमाद से तथा साधन की कमी से मेरे द्वारा जो न्यूनता या अधिकता का दोष बन

कृतं यत्तत्क्षमस्वेश कृपया त्वं दयानिधे । यन्मया क्रियते कर्म जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ॥११२॥
तत्सर्वं तावकी पूजा भूयाद्भूत्यै च मे प्रभो । भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलंबनम् ॥११३॥
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो । अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ॥११४॥
तस्मात्कारुण्यभावेन क्षमस्व परमेश्वर । अपराधसहस्राणि क्रियंतेऽहर्निशं मया ॥११५॥
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व जगतां पते । आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ॥११६॥
पूजां चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर । संप्रार्थ्यैवं ततो मंत्री मूलांते श्लोकमुच्चरेत् ॥११७॥
गच्छ गच्छ परं स्थानं जगदीश जगन्मय । यत्र ब्रह्मादयो देवा जानंति त्वं सदाशिवः ॥११८॥
इति पुष्पांजलिं दत्वा ततः संहारमुद्रया । निधाय देवं सांगं च स्वीय हृत्सरसीरुहे ॥११९॥
सुषुम्णावर्त्मना पुष्पमाघ्रायोद्वासयेद् बुधः । शंखचक्रशिलालिंगविघ्नसूर्यद्वयं तथा ॥१२०॥
शक्तित्रयं न चैकत्र पूजयेद् दुःखकारणम् । अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥१२१॥
सर्वपापक्षयकरं विष्णुपादोदकं शुभम् ॥१२२॥
तत्तद्भक्तैर्ग्रहीतव्यं तन्नैवेद्यंनिवेदितम् । अग्राह्यं शिवनिर्माल्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ॥१२३॥
शालग्रामशिलास्पर्शात्सर्वं याति पवित्रताम् । पूजा पंचविधा तत्र कथिता नारदाखिलैः ॥१२४॥

गया हो, उसे आप कृपा पूर्वक क्षमा करें। प्रभो ! मैंने जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति-अवस्थाओं में जो कर्म किया है, वह सब आपकी पूजा रूप हो जाय और मेरे लिए कल्याणकारी हो। धरती पर जो लड़खड़ा कर गिरते हैं, उनको सहारा देने वाली भी धरती ही है, उसी प्रकार आपके प्रति अपराध करने वाले मनुष्यों के लिए भी आप ही शरणदाता हैं। परमेश्वर ! आपके सिवा दूसरा कोई शरण नहीं है। आप ही मेरे शरणदाता हैं ॥११०-११४॥ अतः करुणापूर्वक मेरी त्रुटियों को क्षमा करें। जगत्पते ! मेरे द्वारा रात-दिन सहस्रों अपराध बनते हैं। अतः 'यह मेरा दास है' ऐसा समझकर क्षमा करें। परमेश्वर ! मैं आवाहन करना नहीं जानता, विसर्जन भी नहीं जानता और पूजा करना भी अच्छी तरह नहीं जानता, अब आप ही मेरी गति हैं—सहारे हैं।' ॥११५-११६½॥

इस प्रकार प्रार्थना करके मन्त्र का साधक मूलमन्त्र पढ़कर विसर्जन के लिए नीचे लिखे श्लोक का पाठ करे और पुष्पाञ्जलि दे—'जगदीश ! जगन्मय ! आप अपने उस परम धाम को पधारिये, जिसे ब्रह्मा आदि देवता तथा भगवान् शिव भी नहीं जानते हैं।' ॥११७-११८॥

इस प्रकार पुष्पाञ्जलि देकर संहार-मुद्रा के द्वारा भगवान् को उनके अंगभूत पार्षदों सहित सुषुम्णा नाडी के मार्ग से अपने हृदय कमल में स्थापित करके पुष्प सूँघकर विद्वान् पुरुष भगवान् का विसर्जन करे ॥११९½॥ दो शंख, दो चक्रशिला (गोमती चक्र), दो शिवलिंग, दो गणेशमूर्ति, दो सूर्य प्रतिमा और दुर्गाजी की तीन प्रतिमाओं का पूजन एक घर में नहीं करना चाहिए ; अन्यथा दुःख की प्राप्ति होती है। इसके बाद निम्नांकित मन्त्र पढ़कर भगवान् का चरणामृत पान करे—'भगवान् विष्णु का शुभ चरणामृत अकालमृत्यु का अपहरण, सम्पूर्ण व्याधियों का नाश तथा समस्त पापों का संहार करने वाला है' ॥१२०-१२२॥

भिन्न-भिन्न देवताओं के भक्तों को चाहिए कि वे अपने आराध्य देव को निवेदित किये हुए नैवेद्य-प्रसाद को ग्रहण करें। भगवान् शिव को निवेदित निर्माल्य-पत्र, पुष्प, फल और जल ग्रहण करने योग्य नहीं है, किन्तु शालग्राम-शिला का स्पर्श होने से वह सब पवित्र (ग्राह्य) हो जाता है ॥१२३½॥

नारद ! सब ने पाँच प्रकार की पूजा बतायी है—आतुरी, सौतिकी, त्रासी, साधनाभाविनी तथा दौर्बोधी।

आतुरी सौतिकी त्रासी साधना भाविनी तथा । दौर्बोधी च क्रमादासां लक्षणानि शृणुष्व मे ॥१२५॥
रोगादियुक्तो न स्नायान्न जपेन्न च पूजयेत् । विलोक्य पूजां देवस्य मूर्ति वा सूर्यमण्डलम् ॥१२६॥
प्रणम्याथ स्मरन्मंत्रमर्पयेत्कुसुमांजलिम् । रोगे निवृत्ते स्नात्वाथ नत्वा संपूयेद् गुरुम् ॥१२७॥
त्वत्प्रसादाज्जगन्नाथ जगत्पूज्य दयानिधे । पूजाविच्छेददोषो मे मास्त्विति प्रार्थयेच्च तम् ॥१२८॥
द्विजानपि च संपूज्य यथाशक्त्या प्रतोष्य च । तेभ्यश्चाशिषमादाय देवं प्राग्वत्ततोऽर्चयेत् ॥१२९॥
आतुरी कथिता ह्येषा सौतिक्यथ निगद्यते । सूतकं द्विविधं प्रोक्तं जाताख्यं मृतसंज्ञकम् ॥१३०॥
तत्र स्नात्वा मानसीं तु कृत्वा संध्यां समाहितः । मनसैव यजेद्देव मनसैव जपेन्मनुम् ॥१३१॥
निवृत्ते सूतके प्राग्वत्संपूज्य च गुरुं द्विजान् । तेभ्यश्चाशिषमादाय ततो नित्यक्रमं चरेत् ॥१३२॥
एषा तु सौतिकी प्रोक्ता त्रासी चाथ निगद्यते । दुष्टेभ्यस्त्रासमापन्नो यथालब्धोपचारकैः ॥१३३॥
मानसैर्वायजेद्देवं त्रासी सा परिकीर्तिता । पूजासाधनवस्तूनामसामर्थ्ये तु सर्वतः ॥१३४॥
पुष्पैः पत्रैः फलैर्वापि मनसा वा यजेद्विभुम् । साधनाभाविनी ह्येषा दौर्बोधीं शृणु नारद ॥१३५॥
स्त्रियो वृद्धास्तथा बाला मूर्खास्तैस्तु यथाक्रमम् । यथाज्ञानकृता सा तु दौर्बोधीति प्रकीर्तिता ॥१३६॥
एवं यथाकथंचित्तु पूजां कुर्याद्धि साधकः । देवपूजाविहीनो यः स गच्छेन्नरकं ध्रुवम् ॥१३७॥
वैश्वदेवादिकं कृत्वा भोजयेद्द्विजसत्तमान् । देवे निवेदितं पश्चाद्भुंजीत स्वगणैः स्वयम् ॥१३८॥
आचम्याननशुद्धिं च कृत्वा तिष्ठेत् कियत्क्षणम् । पुराणमितिहासं च शृणुयात्स्वजनैः सह ॥१३९॥

इनके लक्षणों का मुझसे क्रमशः वर्णन सुनो—रोग आदि से युक्त मनुष्य न स्नान करे, न जप करे और न पूजन
ही करे । आराध्य देव की पूजा, प्रतिमा अथवा सूर्यमण्डल का दर्शन एवं प्रणाम करके मन्त्र-स्मरणपूर्वक उनके
लिए पुष्पाञ्जलि दे । फिर जब रोग-निवृत्त हो जाय, तो स्नान और नमस्कार करके गुरु की पूजा करे और उनसे
प्रार्थना करे—'जगन्नाथ ! जगत्पूज्य ! दयानिधे ! आपके प्रसाद से मुझे पूजा छोड़ने का दोष न लगे ।' तत्पश्चात्
यथाशक्ति ब्राह्मणों का भी पूजन करके उन्हें दक्षिणा आदि से सन्तुष्ट करे और उनसे आशीर्वाद लेकर पूर्ववत्
भगवान् की पूजा करे। यह आतुरी पूजा कही गई है । अब सौतिकी पूजा बतायी जाती है ॥१२४-१२९½॥ सूतक
दो प्रकार का कहा गया है—जातसूतक और मृतसूतक । दोनों ही सूतकों में एकाग्रचित्त हो मानसी संध्या करके मन
से ही भगवान् का पूजन और मन से ही मन्त्र का जप करे । फिर सूतक बीत जाने पर पूर्ववत् गुरु और ब्राह्मणों
का पूजन करके उनसे आशीर्वाद लेकर सदा की भांति पूजा का क्रम प्रारंभ कर दे । यह 'सौतिकी पूजा' कही
गई है । अब त्रासी पूजा बतायी जाती है ॥१३०-१३३½॥ दुष्टों से त्रास को प्राप्त हुआ मनुष्य यथाप्राप्त उपचारों से
अथवा मानसिक उपचारों से भगवान् की पूजा करे । यह 'त्रासी पूजा' कही गई है । पूजा साधनसामग्री जुटाने
की शक्ति न होने पर यथाप्राप्त पत्र, पुष्प और फल का संग्रह करके उन्हीं के द्वारा या मानसोपचार से भगवान्
का पूजन करे । यह 'साधना-भाविनी पूजा कही गई है । नारद ! अब 'दौर्बोधी' पूजा का परिचय सुनो—स्त्री,
वृद्ध, बालक और मूर्ख मनुष्य अपने स्वल्पज्ञान के अनुसार जिस किसी क्रम से जो भी पूजा करते हैं, उसे 'दौर्बोधी'
पूजा कहते हैं ॥१३४-१३६॥ इस प्रकार साधक को जिस-किसी तरह भी संभव हो, देव-पूजा करनी चाहिए ।
देव-पूजा के बाद बलिवैश्वदेव आदि करके श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन कराये । तत्पश्चात् भगवान् को अर्पित किया
हुआ प्रसाद स्वयं स्वजनों के साथ भोजन करे । फिर आचमन एवं मुख-शुद्धि करके कुछ देर विश्राम करे । फिर
स्वजनों के साथ बैठकर पुराण तथा इतिहास सुने । जो सब कल्पों (सम्पूर्ण पूजा-विधियों) के सम्पादन में समर्थ

समर्थः सर्वकल्पेषु योऽनुकल्पं समाचरेत् । न सांगशयिकं तस्य दुर्मतेर्जायते फलम् ॥१४०॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे देवपूजानिरूपणं नाम
सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

अथ वक्ष्ये गणेशस्य मंत्रान्सर्वेष्टदायकान् । यान्समाराध्य विप्रेंद्र साधको भुक्तिमुक्तिमान् ॥१॥
अव्ययो विष्णुवनिता शंभुस्त्री मीनकेतनः । स्मृतिर्मांसेंदुमन्वाढ्या सा पुनश्चंद्रशेखरा ॥२॥
ङेंतो गणपतिस्तोयं भुजंगो वरदेति च । सर्वांते जनमुच्चार्य ततो मे वशमानय ॥३॥
वह्निःप्रियांतो मंत्रोऽयमष्टाविंशतिवर्णवान् । गणकोऽस्य मुनिश्छंदो गायत्री निवृदादिका ॥४॥
गणेशो देवता बीजं षष्ठशक्तिस्तदादिका । श्रीमन्महागणपतिप्रीतये विनियोगकः ॥५॥
ऋषिं शिरसि वक्त्रे तु छन्दश्च हृदि देवताम् । गुह्ये बीजं पदोः शक्तिं न्यसेत्साधकसत्तमः ॥६॥
षड्दीर्घाढ्येन बीजेन यं च बीजादिना पुनः । षडंगानि न्यसेदस्य जातियुक्तानि मंत्रवित् ॥७॥
शैवी षडंगमुद्रात्र न्यस्तव्या हि षडंगके । गामाद्यं चैव भूर्लोकं नाभ्यंतं पादयोर्न्यसेत् ॥८॥

होकर भी अनुकल्प (पीछे बताये हुए अपूर्ण विधान) का अनुष्ठान करता है, उस उपासक को सम्पूर्ण फल की प्राप्ति नहीं होती है । ॥१३७-१४०॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वभाग में देव-पूजा-निरूपण नामक सड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥६७॥

अध्याय ६८

श्री सनत्कुमार बोले—अब मैं गणेश के सकल कामनादायक मन्त्रों को बताऊँगा, जिनकी समाराधना करके साधक भोग-मोक्ष को प्राप्त करता है। अव्यय, लक्ष्मी, पार्वती, कामदेव, स्मृति, मांस तथा इन्द्र रूप मन्त्र से युक्त दुर्गा, चतुर्थी विभक्ति, गणपति, तोय, भुजंग और वरद पद को जोड़ने से जो मन्त्र बनता है, उसका उच्चारण करके अंत में 'अमुकं जनं मे वशम् आनय' कहना चाहिए। इसके बाद 'स्वाहा।' भी उसमें जोड़ना चाहिए। इस प्रकार यह गणेश-मन्त्र अट्ठाईस अक्षरों का होता है। इस मन्त्र का मुनि गणक है, छंद निवृत्-आदिक गायत्री है, देवता गणेश है और इसका बीज गणेशादिक छठी शक्ति है। श्रीमान् महागणपति की प्रीति के लिए इस मन्त्र का विनियोग किया जाता है ॥१-५॥

उत्तम साधक ऋषि का मस्तक पर, छंद का मुख में, देवता का हृदय में, बीज का गुह्य स्थान में और शक्ति का दोनों चरणों में न्यास करे। छह दीर्घ मात्राओं से युक्त बीज मन्त्र से सामान्य न्यास करके मन्त्रवेत्ता जाति (स्वर) युक्त षडंगों का बीज-मन्त्र से ही न्यास करे। फिर छह अंगों में शैवी षडंग मुद्रा का न्यास करना चाहिए। आदि में 'गां' जोड़कर भूर्लोक का दोनों चरणों से नाभि तक, आदि में 'गीं' जोड़कर भुवर्लोक का नाभि से कंठ तक

कंठादिमस्तकावधि ॥९॥
गोमाद्यं च भुवर्लोकं कंठांतं नाभितो न्यसेत् । स्वर्लोकं चैव गमाद्यं ॥१०॥
व्यापकं मूलमन्त्रेण न्यासोऽयं भुवनाभिधः । मूलमंत्रं समुच्चार्य मातृकावर्णमीरयेत् ॥११॥
तदंतेऽपि च मूलं स्यान्नमोंऽतं मातृकास्थले । क्षान्तं विन्यस्य मूलेन व्यापकं रचयेत्सुधीः ॥१२॥
वर्णन्यासोऽयमाख्यातः पदन्यासस्तथोच्यते । पञ्चत्रिबाणवह्नींदुचंद्राक्षिनिगमैः क्रमात् ॥१३॥
विभक्तैर्मूलगायत्र्या हृदंतैरष्टभिः पदैः । भालदेशे मुखे कण्ठे हृदि नाभ्यूरुजानुषु ॥१४॥
पादयोश्चैव विन्यस्य मूलेन व्यापकं चरेत् । वदेत्तत्पुरुषायांते विद्महेति पदं ततः ॥१५॥
वक्रतुंडाय शब्दांते धीमहीति समीरयेत् । तन्नो दंतिः प्रचोवर्णा दयादिति वदेत्पुनः ॥१६॥
एषोक्ता मूलगायत्री सर्वसिद्धिप्रदायिनी । एवं न्यासविधिं कृत्वा ध्यायेदेवं हृदंबुजे ॥१७॥
उद्यन्मार्तण्डसदृशं लोकस्थित्यंतकारणम् । सशक्तिकं भूषितांगं दंतचक्राद्युदायुधम् ॥१८॥
एवं ध्यात्वा चतुश्चत्वारिंशत्साहस्रसंयुतम् । चतुर्लक्षं जपेन्मंत्रं अष्टद्रव्यैर्दशांशतः ॥१९॥
जुहुयाद्विधिवन्मंत्री संस्कृते हव्यवाहने । इक्षवः सक्तवो मोचाफलानि चिपिटास्तिलाः ॥२०॥
मोदका नारिकेलानि लाजा द्रव्याष्टकं स्मृतम् । पीठमाधारशक्त्यादिपरतत्वांतमर्चयेत ॥२१॥
षट्कोणांतस्त्रिकोणं च बहिरष्टदलं लिखेत् । भूपुरं तद्बहिः कृत्वा गणेशं तत्र पूजयेत् ॥२२॥
तीव्राख्या ज्वालिनी नंदा भोगदा कामरूपिणी । उग्रा तेजोवती सत्या नवमी विघ्ननाशिनी ॥२३॥
सर्वादिशक्तिकमलासनाय हृदयांतिकः । पीठमंत्रोऽयमेतेन दद्यादासनमुत्तमम् ॥२४॥
तत्रावाह्य गणाधीशं मध्ये सम्पूज्य यत्नतः । त्रिकोणबाह्ये पूर्वादिचतुर्दिक्ष्वर्चयेत्क्रमात्

और आदि में 'ग्' जोड़कर स्वर्लोक का कंठ से मस्तक तक मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिए। इस न्यास की संज्ञा भुवन है। इसके बाद मूल मन्त्र का उच्चारण करके मातृकाक्षरों का उच्चारण करना चाहिए। उसके अन्त में भी मूल मन्त्र का उच्चारण करके मन्त्र के अन्त में 'नमः' पद जोड़कर उससे मातृकाक्षरों के आदि से लेकर 'क्ष' तक व्यापक न्यास करना विद्वान् का कर्तव्य है। इसको वर्णन्यास कहते हैं। अब पदन्यास बताता हूँ ॥९-११½॥

पाँच, तीन, पाँच, तीन, एक, एक, दो और चार (२४) अक्षरों में विभक्त आठ पदों एवं अन्त में 'नमः' से युक्त मूल गायत्री से ललाट, मुख, कंठ, हृदय, नाभि, जंघे, घुटने तथा पैरों में मूलतः व्यापक न्यास करे। अंत में 'तत्पुरुषाय,' उसके बाद 'विद्महे,' उसके पश्चात् 'वक्रतुण्डाय' और उसके अनन्तर 'धीमहि' पद का उच्चारण करे। फिर 'तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्' बोले। यही मूलगायत्री है, जो सकल सिद्धियाँ देने वाली हैं। ॥१२-१८½॥

इस प्रकार ध्यान करके साधक चार लाख चौवालीस हजार की संख्या में मन्त्र-जप करे और उसका दशांश अष्टद्रव्यों से संस्कृत अग्नि में विधिपूर्वक हवन करे। यहाँ अष्टद्रव्य ये हैं—१ ईख, २ सत्तू, ३ केला, ४ चिउरा, ५ तिल, ६ लड्डू, ७ नारियल और ८ लावा। इसके बाद आधारशक्ति से लेकर परमतत्त्व तक पीठ की अर्चना करे। षट्कोण के भीतर त्रिकोण तथा उसके बाहर अष्टदल कमल लिखे। उसके बाहर भूपुर की रचना करके उसमें गणेश का पूजन करे ॥१९-२१॥ तीव्राख्या ज्वालिनी नंदा भोगदा कामरूपिणी। उग्रा तेजोवती सत्या नवमी विघ्ननाशिनी। सर्वादिशक्तिकमलासनाय नमः'—यह पीठ मन्त्र है। इस मन्त्र से उत्तम आसन प्रदान कर उस पर गणपति का आवाहन करके मध्य में यत्नपूर्वक उनका पूजन करे। अनन्तर त्रिकोण के बाहर पूर्व आदि चारों दिशाओं में क्रमशः श्री तथा श्रीपति, गौरी तथा गौरीपति, रति तथा रतिपति और पश्चात् पृथ्वी

श्रियं श्रियः पतिं चैव गौरीं गौरीपतिं तथा । रतिं रतिपतिं पश्चान्महीपूर्वं च पोत्रिणम् ॥२५॥
क्रमाद्बिल्ववटाश्वत्थप्रियंगूनामधोऽर्चयेत् । रमा पद्मद्वयकरा शंखचक्रधरो हरिः ॥२६॥
गौरीपाशांकुशधरा टंकशूलधरो हरः । रतिः पद्मकरा पुष्पबाणचापधरः स्मरः ॥२७॥
शूकव्रीह्यग्रहस्ता भूः पोत्री चक्रगदाधरः । देवाग्रे पूजयेल्लक्ष्मीसहितं तु विनायकम् ॥२८॥
पूजयेत्षट्सु कोणेषु ह्यामोदाद्यान्प्रियायुतान् । आमोदं सिद्धिसंयुक्तमग्रतः परिपूजयेत् ॥२९॥
प्रमोदं चाग्निकोणे तु समृद्धिसहितं यजेत् । ईशकोणे यजेत्कीर्तिसंयुतं सुमुखं तथा ॥३०॥
वारुणे मदनावत्या संयुतं दुर्मुखं यजेत् । यजेन्नैरृत्यकोणे तु विघ्नं मदद्रवायुतम् ॥३१॥
द्राविण्या विघ्नकर्तारं वायुकोणे समर्चयेत् । पाशांकुशाभयकरांस्तरुणार्कसमप्रभान् ॥३२॥
कपोलविगलद्दानगंधलुब्धालिशोभितान् । षट्कोणोभयपार्श्वे तु शंखपद्मनिभौ क्रमात् ॥३३॥
सहितौ निजशक्तिभ्यां ध्यात्वा पूर्ववदर्चयेत् । केशरेषु षडंगानि पत्रेष्वष्टौ तु मातरः ॥३४॥
इन्द्राद्यानपि वज्राद्यीन्पूजयेद्धरणीगृहे । एवमाराध्य विघ्नेशं साधयेत्स्वमनोरथान् ॥३५॥
चतुश्चत्वारिंशताढ्यं चतुःशतमतंद्रितः । तर्पयेदंबुभिः शुद्धैर्गजास्यं दिनशः सुधीः ॥३६॥
पद्मैस्तु वशयेद्भूपांस्तत्पत्नीश्चोत्पलैस्तथा । कुमुदैर्मंत्रिणोऽश्वत्थसमिद्भिर्वाडवाञ्शुभैः ॥३७॥
उदुम्बरोत्थैर्नृपतीन्वैश्यान्प्लक्षसमुद्भवैः । वटोद्भवैः समिद्भिश्च वशयेदंतिमान्बुधः ॥३८॥
आज्येन श्रियमाप्नोति स्वर्णाप्तिर्मधुना भवेत् । गोदुग्धेन गवां लाभो दध्ना सर्वसमृद्धिमान् ॥३९॥

के साथ वराहावतार की पूजा करे। नीचे बिल्व, वट, अश्वत्थ तथा प्रियंगु वृक्षों की पूजा करे॥२२-२५½॥ (उस समय वहाँ के देवों का इस प्रकार ध्यान करे कि) लक्ष्मी के दोनों हाथों में कमल है। विष्णु शंख और चक्र धारण किये हुए हैं। गौरी के हाथों में पाश और अंकुश हैं। शंकर के हाथों में टंक एवं त्रिशूल हैं। रति के हाथ में कमल है। कामदेव के हाथ में पुष्प बाण तथा धनुष है। पृथ्वी के हाथ के अग्रभाग में अनाज की बाल है और वराहावतार के हाथों में चक्र एवं गदा हैं। देवों के आगे लक्ष्मी सहित गणेश का पूजन करे ॥२६-२८॥ फिर छह कोणों में प्रियासहित आमोद आदि दिग्गजों की पूजा करनी चाहिए। सिद्धि के साथ आमोद को पूजा आगे करे। अग्निकोण में समृद्धि के साथ प्रमोद का पूजन करे। ईशान कोण में कीर्ति के साथ सुमुख का, वायव्यकोण में मदनावती के साथ दुर्मुख का, नैर्ऋत्यकोण में मदद्रवा के साथ विघ्न का और वायुकोण में द्राविणी के साथ विघ्नकर्ता का पूजन करे ॥२९-३१½॥ पूजन के समय ऐसा ध्यान करे कि इनके करों में पाश, अंकुश तथा अभय नामक अस्त्र हैं। इनकी कान्ति मध्याह्नकालीन सूर्य के समान है। और इनके गंडस्थल झरते हुए मद की गंध के लोभी भौरों से सुशोभित हैं। षट्कोणके दोनों बगल अपनी शक्तियों सहित शंख तथा पद्म का क्रमशः ध्यान करके पूर्ववत् उनकी अर्चना करे ॥३२-३३½॥ केसरों पर छहो अंगों, पत्तों पर आठ माताओं, इन्द्र आदि देवों और वज्र आदि आयुधों को भू-गृह में पूजा करे। इस प्रकार विघ्नराज की आराधना करके साधक अपनी कामनाओं को पूर्ण करे। सुधी साधक निरालस्य होकर चार सौ चौवालीस बार शुद्ध जल से गणेश-तर्पण करे। अनन्तर गणेश-मन्त्र की सिद्धि हो जाने पर मनुष्य कमलों से (हवनकर) राजा को, नीलकमलों से (हवन कर) राज-पत्नियों को, कुमुदों से (हवनकर) मंत्रियों को, पवित्र अश्वत्थ को समिधाओं से (हवनकर) ब्राह्मणों को, गूलर की लकड़ियों से (हवनकर) क्षत्रियों को, पाकड़ की लकड़ियों से (हवनकर) वैश्यों को और वट की लकड़ियों से (हवनकर) शूद्रों को वश में ला सकता है ॥३४-३८॥ वह घी से हवनकर लक्ष्मी, मधु से हवनकर सुवर्ण, गोदुग्ध से हवनकर गौ और

॥४०॥

अन्नाप्तिरन्नहोमेन समिद्भिर्वेतसां जलम् । वासांसि लभते हुत्वा कुसुंभकुसुमैः शुभैः ॥४१॥
अथ सर्वेष्टदं वक्ष्ये चतुरावृत्तितर्पणम् । मूलेनादौ चतुर्वारं प्रत्येकं च प्रतर्पयेत् ॥४२॥
पूर्वमंत्राक्षरैर्मंत्रैः स्वाहांतैश्च चतुश्चतुः । मूलमंत्रैश्चतुर्वारपूर्वकं संप्रतर्प्य च ॥४३॥
मिथुनादींस्ततः पश्चात्पूर्ववत्संप्रतर्पयेत् । देवेन सहितां शक्तिं शक्त्या च सहितं तु तम् ॥४४॥
एवं च षड्विंशतिधा मिथुनानि भवंति हि । स्वनामाद्यर्णबीजानि तानि सन्तर्पयेत्क्रमात् ॥४५॥
भवेत्संभूय सचतुश्चत्वारिंशच्चतुःशतम् । एवं संतर्प्य तत्पश्चात्पूर्ववत्सोपचारकैः ॥४६॥
सर्वाभीष्टं च संप्रार्थ्यं प्रणम्योद्वासयेत्सुधीः । भाद्रकृष्णचतुर्थ्यादिप्रतिमासमतंद्रितः ॥४७॥
आरभ्यार्कोदयं मंत्री यावच्चंद्रोदयो भवेत् । तावन्नोपविशेद्भूमौ जितवाक्स्थिरमानसः ॥४८॥
ततश्चंद्रोदये मन्त्री पूजयेद्गणनायकम् । पूर्वोक्तविधिना सम्यङ्नानापुष्पोपहारकैः ॥४९॥
एकविंशतिसंख्याकान्मोदकांश्च निवेदयेत् । तदग्रे प्रजपेन्मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम् ॥५०॥
ततः कर्पूरकाश्मीररक्तपुष्पैः सचन्दनैः । अर्घ्यं दद्यात्तु मूलांते ङेंतेगणपतिं ततः ॥५१॥
इदमर्घ्यं कल्पयामि हृदंतोऽर्घ्यंमनुर्मतः । स्तुत्वा नत्वा विसृज्याथ यजेच्चंद्रमसं पुनः ॥५२॥
अर्घ्यं दद्याच्चतुर्वारं पूजयित्वा गुरुं ततः । निवेदितेषु विप्राय दद्यादर्धांश्च मोदकान् ॥५३॥
स्वयमर्द्धान्प्रभुंजीत ब्रह्मचारी जितेंद्रियः । एवं व्रतं यः कुरुते सम्यक्संवत्सरावधि ॥५४॥
पुत्रान्पौत्रान्सुखं वित्तमारोग्यं लभते नरः । सूर्योदयादशक्तश्चेदस्तमारभ्य मंत्रवित् ॥५५॥

दही से हवनकर सकल समृद्धियों को प्राप्त करता है । अन्न से हवन करने पर अन्न, समिधा से हवन करने पर वन और कुसुंभ के फूलों से हवन करने पर उसे वस्त्रों की प्राप्ति होती है । ॥३९-४०॥

इसके बाद मैं सकलकामनादायक चतुर्गुण तर्पण का वर्णन करूँगा । मूलमन्त्र से पहले चार बार प्रत्येक का तर्पण करे । फिर पूर्वमन्त्र के अक्षरों के बराबर मन्त्रों से, जिनके अंत में स्वाहा शब्द जुड़ा हो, चार-चार बार हवन करे । अनन्तर मूल-मन्त्रों से चार बार तर्पण करके मिथुनों (स्त्री-पुरुषों के जोड़ो) के लिए तर्पण करे । देवता सहित शक्ति और शक्ति सहित देवता को तर्पण करना यही मिथुनों का तर्पण कहलाता है । इसके बाद अपने नाम के आद्य अक्षर से युक्त बीजाक्षरों का उच्चारण करके क्रमशः तर्पण करे । इस प्रकार सब मिलाकर चार सौ चौवालीस बार पूर्ववत् उपचार के साथ तर्पण करके सकल कामनाओं के लिए प्रार्थना करे । फिर प्रणाम करके विद्वान् साधक पूजा का विसर्जन करे । ॥४१-४५½॥

भाद्र-कृष्ण-चतुर्थी से लेकर प्रत्येक मास निरालस्यपूर्वक इस व्रत को करना चाहिए । मंत्रसाधक व्यक्ति सूर्योदय से लेकर चन्द्रोदय तक भूमि पर न बैठे और वाणी तथा मन पर नियन्त्रण रखे । तदनन्तर चन्द्रोदय होने पर वह पूर्वोक्त विधि से भली-भांति अनेक पुष्पों एवं उपहारों से गणनायक का पूजन करे । उन्हें इक्कीस लड्डू चढ़ाये । उनके आगे एक हजार आठ बार मन्त्रजप करे ॥४६-४९॥ तत्पश्चात् 'गणपतये इदमर्घ्यं कल्पयामि, इदं गणपतये नमः' यह कहकर कपूर, केसर, रक्तपुष्प तथा चंदन सहित अर्घ्य प्रदान करे । अनन्तर उनकी स्तुति नमस्कार तथा विसर्जन करके चन्द्रमा का पूजन करे । चन्द्रमा को चार बार अर्घ्य देकर गुरु की पूजा करे । इस फिर ब्राह्मण को आधे लड्डू देकर स्वयं आधे लड्डुओं को खाये और ब्रह्मचर्य तथा इन्द्रियों को वश में रखे । इस प्रकार जो एक वर्ष तक भली-भाँति यह व्रत करता है, वह मनुष्य पुत्रों, पौत्रों, सुख, वित्त तथा आरोग्य लाभ करता है ॥५०-५३½॥ यदि मन्त्रवेत्ता जन सूर्योदय से व्रत करने में असमर्थ हो तो सूर्यास्त से लेकर चन्द्रोदय तक

। एवं कृतेऽपि पूर्वोक्तं फलमाप्नोति निश्चितम् ॥५५॥
चंद्रोदयांतं पूर्वोक्तविधिना व्रतमाचरेत् । गजभग्नेन निंबेन सितार्केणाथवा पुनः ॥५६॥
गणेशप्रतिमां दंतिदंतेन कपिनापि वा । अभ्यर्च्य विधिवन्मन्त्री राहुग्रस्ते निशाकरे ॥५७॥
कृत्वा तस्यां समावाह्य प्राणस्थापनपूर्वकम् । द्यूते विवादे समरे व्यवहारे जयं लभेत् ॥५८॥
स्पृष्ट्वा चैव निराहारस्तां शिखायां समुद्वहन् । स्मृतिर्मा सेंदुमन्वाग्रा कर्णोच्छिष्टगणे वदेत् ॥५९॥
बीजं वराहो बिद्वाढ्यौ मन्विद्वान्नौ कलौ ततः । बलिमंत्रोऽयमाख्यातो न चेद्वर्णोऽखिलेष्टदः ॥६०॥
बकः सदीर्घपवनो महायक्षाय यं बलिः । हस्तीति च पिशाचीति लिखेच्चैवाग्निसुंदरी ॥६१॥
प्रणवो भुवनेशानीस्वबीजांते नवार्णकः । पदैः सर्वेण मंत्रेण पञ्चांगानि प्रकल्पयेत् ॥६२॥
नवार्णोऽयं समुद्दिष्टो भजतां सर्वसिद्धिदः । अथाभिधास्ये विधिवद्वक्रतुंडमनुत्तमम् ॥६३॥
अन्यत्सर्वं समानं स्यात्पूर्वमंत्रेण नारद । सदीर्घो दारको वायुर्वर्मा तोऽयं रसार्णकः ॥६४॥
तोयं विधिर्वह्नियुक्तकर्णद्वाढ्यो हरिस्तथा । वक्रतुण्डाभिधो बीजं वं शक्तिः कवचं पुनः ॥६५॥
भार्गवोऽस्य मुनिश्छन्दोऽनुष्टुब्देवो गणाधिपः । कृत्वा षडंगमन्त्रार्णान्भ्रूमध्ये च गले हृदि ॥६६॥
तारहृन्मध्यगैर्मंत्रवर्णैश्चंद्रविभूषितैः । उद्यदर्कद्युतिं हस्तैः पाशांकुशवराभयान् ॥६७॥
नाभौ लिंगे पदे न्यस्याखिलेन व्यापकं चरेत् । ध्यात्वैवं प्रजपेत्तर्कलक्षं द्रव्यैर्दशांशतः ॥६८॥
दधतं गजवक्त्रं च रक्तभूषांबरं भजेत् । मूर्तिं मूर्तेन संकल्प्य तस्यामावाह्य पूजयेत् ॥६९॥
अष्टभिर्जुहुयात्पीठे तीव्रादिसहितेऽर्चयेत् । यजेद्विद्यां विधात्रीं च भोगदां विघ्रघातिनीम् ॥७०॥
षट्कोणेषु षडंगानि पत्रेष्वष्टौ तु शक्तयः ।

पूर्वोक्त विधि से व्रत का अनुष्ठान करे। ऐसा करने पर भी वह निश्चित रूप से पूर्वोक्त फल को प्राप्त करता है। हाथी के दाँत या वानर के दाँत, हाथी द्वारा तोड़ी गई नीम की लकड़ी या सफेद आक की लकड़ी की गणेशमूर्ति बनाकर चन्द्र-ग्रहण के समय उसमें आवाहन तथा प्राण-प्रतिष्ठा करके साधक उस (मूर्ति) का पूजन करे। फिर निराहार रहते हुए उसका स्पर्श करके शिखा में बाँध ले। ऐसा करने से द्यूत (जूआ), विवाद, युद्ध और मुकदमे में उसकी विजय होती है ॥५४-५९॥ 'बीज.........बलिः, यह अखिलकामनादायक बलिमन्त्र है। भुवनेशानी को अपने बीज के अन्त में प्रणव के साथ जोड़कर नवार्ण मन्त्र बनाया जाता है। 'ओं हस्तिने पिशाच्यै स्वाहा' यह भी नवार्ण मन्त्र है, जो साधकों के लिए सर्वसिद्धिदायक है। नारद! पदों द्वारा संपूर्ण मन्त्र से पंचांगों की कल्पना करे ॥५९-६२॥ अन्य सभी बातें पूर्व मन्त्र के समान ही होंगी। अब अत्युत्तम वक्रतुण्ड मन्त्र की वर्णना करूँगा। 'तोयं विधि.......' यह छह अक्षरों का मन्त्र है। इसके मुनि भार्गव, छंद अनुष्टुप् और देवता वक्रतुण्ड नामक गणपति हैं। इसका बीज वं और शक्ति कवच है ॥६३-६५॥ ओम् तथा नमः के मध्य में स्थित और अनुस्वार से विभूषित मन्त्र-वर्णों से षडंग मन्त्र के अक्षरों को युक्त करके भौंह के मध्य, कंठ, हृदय, नाभि, लिंग तथा चरण में न्यास करके सम्पूर्ण मन्त्र से व्यापक न्यास करे। अनन्तर उदित होते हुए सूर्य की कान्ति जैसी कान्ति वाले, हाथों में पाश, अंकुश, वर तथा अभय अस्त्रों को धारण करने वाले, हाथी का मुख और रक्त आभूषण तथा वस्त्र धारण करने वाले गणेश का ध्यान करे ॥६६-७२½॥ इस प्रकार ध्यान करके छह लाख मन्त्रजप करे और उसका दशांश अष्ट द्रव्यों से तीव्रा आदि सहित पीठ पर उनकी अर्चना करे। फिर गणेश की मूर्ति की रचना करके उसमें उनका आवाहन तथा पूजन करे। षट्कोणों में षडंगों की पूजा करने के उपरान्त पत्तों पर आठ शक्तियों की पूजा करें। वे आठ शक्तियाँ ये हैं—विद्या, विधात्री, भोगदा, विघ्रघातिनी, निधिप्रदीपा, पापघ्नी, पुण्या और शशिप्रभा।

निधिप्रदीपां पापघ्नीं पुण्यां पश्चाच्छशिप्रभाम् । दलाग्रेषु वक्रतुंड एकदंष्ट्रमहोदरौ ॥७१॥
गजास्यलंबोदरकौ विकटौ विघ्नराट् तथा । धूम्रवर्णस्ततो बाह्ये लोकेशान्हेतिसंयुतान् ॥७२॥
एवमावरणैरिष्ट्वा पञ्चभिर्गणनायकम् । साधयेदखिलान्कामान्वक्रतुंडप्रसादतः ॥७३॥
लब्ध्वा गुरुमुखान्मंत्रं दीक्षासंस्कारपूर्वकम् । ब्रह्मचारी हविष्याशी सत्यवाक् च जितेंद्रियः ॥७४॥
जपेदर्कसहस्रं तु षण्मासं होमसंयुतम् । दारिद्र्यं तु पराभूय जायते धनदोपमः ॥७५॥
चतुर्थ्यादि चतुर्थ्यंतं जपेदयुतमादरात् । अष्टोत्तरशतं नित्यं हुत्वा प्राग्वत्फलं लभेत् ॥७६॥
पक्षयोरुभयोर्मंत्री चतुर्थ्यां जुहुयाच्छतम् । अपूपैर्वत्सरे स स्यात्समृद्धः परमं पदम् ॥७७॥
अङ्गारकचतुर्थ्यां तु देवमिष्ट्वा विधानतः । हविषा पायसान्नेन नैवेद्यं परिकल्पयेत् ॥७८॥
ततो गुरुं समभ्यर्च्य भोजयेद्विधिवत्सुधीः । निवेदितेन जुहुयात्सहस्रं विधिवद्वसौ ॥७९॥
एवं संवत्सरं कृत्वा महतीं श्रियमाप्नुयात् । अथान्यत्साधनं वक्ष्ये लोकानां हितकाम्यया ॥८०॥
इष्ट्वा गणेशं पृथुकैः पायसापूपमोदकैः । नानाफलैस्ततोमंत्री हरिद्रामथ सैन्धवम् ॥८१॥
वचां निष्कार्द्धभागं च तदर्द्धं वा मनुं जपेत् । विशोध्य चूर्णं प्रसृतौ गवां मूत्रे विनिक्षिपेत् ॥८२॥
सहस्रकृत्वो मनुना मंत्रयित्वा प्रयत्नतः । स्नातामृतुदिने शुद्धां शुक्लांबरधरां शुभाम् ॥८३॥
देवस्य पुरतः स्थाप्य पाययेदौषधं सुधीः । सर्वलक्षणसंपन्नं वंध्यापि लभते सुतम् ॥८४॥
अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । गोचर्ममात्रां धरणीमुपलिप्य प्रयत्नतः ॥८५॥

पत्रों के अग्रभाग में वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, महोदर, गजास्य, लंबोदर, विकट, विघ्नराट् तथा धूम्रवर्ण की पूजा करके बाह्यभाग में आयुध सहित लोकपालों का पूजन करे। इस प्रकार पाँच आवरणों से गणेश की आराधना करके मनुष्य उनकी कृपा से अखिल कामनाओं की सिद्धि प्राप्त करता है ॥६८-७३॥

दीक्षा-संस्कार के साथ गुरुमुख से मन्त्र प्राप्त करके ब्रह्मचारी, हविष्यभोजी, सत्यवक्ता तथा जितेन्द्रिय होकर (यदि कोई) छह मास तक बारह हजार मन्त्र-जप तथा हवन करे तो वह दरिद्रता को जीत कर कुबेर के समान (धनवान्) हो जाय। जो (एक पक्ष की) चतुर्थी (तिथि) से लेकर (दूसरे पक्ष की) चतुर्थी (तिथि) तक नित्य एक सौ आठ बार गणेश-मन्त्र का जप तथा हवन करता है, उसे भी उक्त फल का लाभ होता है। दोनों पक्षों की चतुर्थी (तिथि) में जो एक वर्ष तक सौ बार (उक्त-मन्त्र से) पूओं से हवन करता है, वह परम समृद्धि को प्राप्त करता है। जब मङ्गल दिन चतुर्थी तिथि पड़े तब विधिपूर्वक गणेश का पूजन करके घी और खीर का नैवेद्य चढ़ाये। तदनन्तर सुधी जन गुरु की अर्चना करके उन्हें विधिपूर्वक भोजन कराये। फिर नैवेद्य-सामग्री से एक हजार बार विधिवत् हवन करे। इस प्रकार एक वर्ष तक करने से महती श्री की प्राप्ति होती है ॥७४-७९½॥

लोगों के कल्याण के लिए मैं और भी साधना-विधि बताता हूँ। चिउरा, पूआ तथा अनेक प्रकार के फलों से गणेश का पूजन करके साधक मन्त्र-जप करे और फिर हलदी, नमक तथा आधा निष्क (माशे के बराबर) बच के चूर्ण को गौ के मूत्र में डालकर उसे हजार बार मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उसे देवता (गणेश) के आगे रखे। फिर विद्वान् व्यक्ति वह ओषधि ऋतुस्नान करके शुद्ध होकर शुभ वस्त्र धारण किये हुई स्त्री को पिला दे। ऐसा करने से वंध्या स्त्री भी सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न पुत्र को उत्पन्न करती है। ॥८०-८४॥

अब मैं परम अद्भुत रहस्य का वर्णन करता हूँ। गोचर्म (एक चरसे की नाप की) भूमि को अच्छी तरह,

संस्थापयेद्घटम् । शुद्धोदकेन संपूर्य तस्योपरि निधापयेत् ॥८६॥
विकीर्य धान्यप्रकरैस्तत्र नूतनं शुभम् । षडष्टाक्षरमंत्राभ्यां दीपमारोपयेच्छुभम् ॥८७॥
कपिलाज्येन संपूर्णं शरावं गंधपुष्पादिभिर्यजेत् । स्नातां कुमारीमथवा कुमारं पूजयेत्सुधीः ॥८८॥
दीपे देवं समावाह्य जपेन्मनुम् । प्रदीपे स्थापिते पश्येद्द्विजरूपं गणेश्वरम् ॥८९॥
दीपस्य पुरतः स्थाप्य ध्यात्वा देवं चैवाप्यनागतम् । सकलं प्रवदेद्देवं कुमारी वा कुमारकः ॥९०॥
पृष्टस्ततः संपदि वा नष्टं मनुः । अन्येऽपि मंत्रा देवर्षे सन्ति तंत्रे गणेशितुः ॥९१॥
षडक्षरो हृदंतश्चेद्भवेदष्टाक्षरो साधकैः । अष्टविंशरसार्णाभ्यां तन्न पश्येदपि क्वचित् ॥९२॥
किंत्वत्र यन्न साध्यं स्यात्त्रिषु लोकेषु मयोदितम् । शठेभ्यः परशिष्येभ्यो वंचकेभ्योऽपि मा वद ॥९३॥
एतद्गणेशमंत्राणां विधानं ते गणेशं सर्वसिद्धिदम् । प्राप्येह सकलान्भोगानंते मुक्तिपदं व्रजेत् ॥९४॥
एवं यो भजते देवं
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे गणेशमन्त्रविधाननिरूपणं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

लीपकर वहाँ धान छींटकर उस पर घट-स्थापन करे। उस घट को शुद्ध जल से भर कर उस पर रख दे। कपिला गौ के घी से एक नये पवित्र मृत्पात्र को भरकर उसमें दीपक जलाकर षडक्षर तथा अष्टाक्षर मन्त्रों से उसको घट पर रख दे। उस दीप में (गणपति) देव का आवाहन करके गंध, पुष्प आदि से उनका पूजन करे ॥५८-८७½॥ अनन्तर विद्वान् व्यक्ति स्नान किये हुई कुमारी या कुमार का पूजन करे। फिर उस दीप को सामने रखकर गणेश का ध्यान करके मंत्र-जप करे। दीपक की स्थापना करने के बाद गणपति को ब्राह्मण के रूप में देखे। ऐसा करने के बाद उस कुमार या कुमारी से किसी के बारे में जो कुछ भी पूछा जाएगा—कि वह बहुत विलंब से आएगा या शीघ्र आएगा या नष्ट हो गया या नहीं आएगा—वह सब वे बता देंगे। षडक्षर मंत्र में 'नमः' जोड़ देने पर वह अष्टाक्षर मंत्र बन जाता है। देवर्षि! तंत्र में गणेश के दूसरे मंत्र भी विद्यमान हैं ॥८८-९१॥ किन्तु तीनों लोक में जिस मंत्र की साधना नहीं की जा सकती, ऐसे अट्ठाईस और छह अक्षर वाले मंत्रों को कहीं भी न देखे (अर्थात् उनको सिद्ध करने का प्रयत्न न करे)। यह गणेश-मंत्रों का विधान मैंने तुमसे बता दिया। यह दुष्टों, दूसरे के शिष्यों तथा वंचकों को कभी नहीं बताना चाहिए। इस प्रकार जो सकल-सिद्धिदायक भगवान् गणेश की आराधना करता है, वह यहाँ सकल भोगों को प्राप्त करता है ॥९२-९४॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वभाग में गणेश-मन्त्र विधि-निरूपण नामक अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥६८॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

अथ वक्ष्ये त्रयीमूर्तेर्विधानं त्वब्जिनीपतेः । मन्त्राणां यत्समाराध्य सर्वेष्टं प्राप्नुयाद्भुवि ॥१॥
तारो रेचिकया युक्तो मेधानेत्रयुता रतिः । ससर्गा वामकर्णाढ्यो भृगुर्वंढ्यासनो मरुत् ॥२॥
शेषोदित्य इति प्रोक्तो वस्वर्णो भुक्तिमुक्तिदः । देवभागो मुनिश्छन्दो गायत्री देवता रविः ॥३॥
माया बीजं रमा शक्तिर्दृष्टादृष्टे नियोगकः । सत्याय हृदयं पश्चाद्ब्रह्मणे शिर ईरितम् ॥४॥
विष्णवे तु शिखावर्म रुद्राय परिकीर्तितम् । नेत्रं स्यादग्नये पश्चात्शर्वायास्त्रमुदाहृतम् ॥५॥
नेत्रो ज्वाला मनो हुं फट् स्वाहांता मनवो गणाः । पुनः षडर्णैर्ह्रीं लक्ष्म्याः कृत्वांतःस्थैः षडंगकम् ॥६॥
शिष्टारौजठरे पृष्ठे तयोर्ङेताख्यया न्यसेत् । आदित्यं च रविं पश्चाद्भानुं भास्करमेव च ॥७॥
सूर्यं च मूर्ध्नि वदने हृदि गुह्ये च पादयोः । सद्यादिपञ्च ह्रस्वाद्यान् न्यसेन्ङे हृदयोंऽतिमान् ॥८॥
ह्रीं रमामध्यगामष्टौ वर्णांस्तारादिकान्न्यसेत् । मूर्द्धास्यकंठहृत्कुक्षिनाभिलिंगगुदेषु च ॥९॥
सचंद्रस्वरपूर्वं तु ङेतं शीतांशुमण्डलम् । मूर्द्धादिकंठपर्यंतं न्यसेच्चांद्रिमनुस्मरन् ॥१०॥
स्पर्शान्सेंदून्समुच्चार्य ङेतं भास्करमण्डलम् । न्यसेत्कंठादिनाभ्यंतं ध्यायन्प्रद्योतनं हृदि ॥११॥
यादीन्सचंद्रानुच्चार्य ङेतं च वह्निमंडलम् । नाभ्यादिपादपर्यंतं न्यसेद्वह्निमनुस्मरन् ॥१२॥
प्रोक्तोऽयं मण्डलन्यासो महातेजोविधायकः । आदिठांतार्णपूर्वं ङेनमोंतं सोममण्डलम् ॥१३॥

सनत्कुमार बोले—अब मैं वेदमूर्ति अंजिनीपति (सूर्य) के पूजन का विधान बताऊँगा, जिनके मन्त्रों की आराधना करके मनुष्य पृथ्वी पर सकल कामनाओं को प्राप्त करता है। तारोरेचिकया······यह सूर्य का मन्त्र है। इसका मुनि देवभाग, छंद गायत्री और देवता सूर्य है, मायाबीज है (ह्रीं), रमा शक्ति (श्रीं) और दृष्ट तथा अदृष्ट फल में इसका नियोग किया जाता है। (मन्त्र बनेगा––ह्रीं श्रीं सत्याय नमः, ब्रह्मणे स्वाहा, विष्णवे वषट्, रुद्राय हुं, अग्नये वौषट्, सर्वाय फट्)। नेत्र (इ), ज्वाला, (रं) मनु (औ), हुँ फट् स्वाहा—इनको जोड़कर मन्त्र बनाये जाते हैं। पुनः अन्तःस्थ छह वर्णों के साथ ह्रीं और श्रीं को जोड़कर षडंग मन्त्र की रचना करनी चाहिए। शिष्ट और अरि में नमः जोड़कर पेट और पीठ पर उनका न्यास करना चाहिए ॥१-६½॥ पश्चात् आदित्य, रवि, भानु, भास्कर तथा सूर्य का मस्तक, मुख, हृदय, गुह्य स्थान तथा दोनों चरणों में न्यास करे। सद्य (ओ) आदि पांच वर्णों से पहले एक ह्रस्व वर्ण हो, अन्त में नमः हो अथवा श्रीं के बाद ह्रीं को रखकर उक्त आठ वर्णों का मस्तक, मुख कंठ, पेट, नाभि, लिंग तथा गुदा में न्यास करे। पूर्व में चन्द्रस्वर और अंत में चतुर्थी विभक्ति से युक्त चन्द्र-मण्डल का मस्तक से कंठ तक न्यास करे और चन्द्रमा के मन्त्र का स्मरण करे ॥७-१०॥ अनुस्वार युक्त स्पर्श वर्णों का उच्चारण करके अन्त में चतुर्थी विभक्ति से युक्त सूर्यमण्डल का कंठ से नाभि तक न्यास करे और हृदय में सूर्य का ध्यान करे। फिर आदि में य से युक्त तथा अनुस्वार सहित वर्णों का उच्चारण करके अन्त में चतुर्थी विभक्ति से युक्त अग्निमण्डल का नाभि से पैर तक न्यास करे और अग्नि-मन्त्र का स्मरण करे ॥११-१२॥

यह महातेज बढ़ाने वाला मण्डलन्यास मैंने बता दिया। उत्तम साधक आदि में ठ और त वर्णों से युक्त

वह्निमण्डलम् ॥१४॥
मूर्द्धादिहृदयांतं तु विन्यसेत्साधकोत्तमः । डकारादिक्षकारांतवर्णाद्यं
ङेंतं हृदादिपादान्तं विन्यसेत्सुसमाहितः । अग्नीषोमात्मको न्यासः कथितः सर्वसिद्धिदः ॥१५॥
न्यसेत्संदून्मातृकार्णाञ्जयांतपुरुषात्मने । नमोंतेव्यापकं मंत्री हंसन्यासोऽयमीरितः ॥१६॥
अष्टावष्टौ स्वराञ्शेषान्पंचपञ्च मितान्पुनः । उक्तादित्यमुखानेतान्विन्यसेच्च नवग्रहान् ॥१७॥
आधारलिंगयोर्नाभौ हृदि कंठे मुखांतरे । भ्रूमध्ये च तथा भाले ब्रह्मरंध्रे न्यसेत्क्रमात् ॥१८॥
हंसाख्यमग्नीषोमाख्यं मंडलत्रयमेव च । पुनर्न्यासत्रयं कुर्यान्मूलेन व्यापकं चरेत् ॥१९॥
एवं न्यासविधिं कृत्वा ध्यायेत्सूर्यं हृदंबुजे । दानाभयाब्जयुगलं धारयंतं करै रविम् ॥२०॥
कुंडलांगदकेयूरहारिणं च त्रयीतनुम् । ध्यात्वैवं प्रजपेन्मंत्री वसुलक्षं दशांशतः ॥२१॥
रक्तांभोजैस्तिलैर्वापि जुहुयाद्विधिवद्वसौ । प्रथमं पीठयजने धर्मादीनां स्थले यजेत् ॥२२॥
प्रभूतं विमलं शारं समाराध्यमनंतरम् । परमादिमुखं मध्ये खबिंबांतं प्रपूजयेत् ॥२३॥
सोमाग्निमंडलं पूज्य रविमंडलमर्चयेत् । दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा ॥२४॥
अमोघा विद्युता सर्वतोमुखी पीठशक्तयः । ह्रस्वत्रयोक्तिजाः क्लीबहीना वह्नींदुसंयुताः ॥२५॥
स्वरा बीजानि शक्तीनां तदाद्या पूजयेत्तु ताः । ब्रह्मविष्णुशिवात्मा ते सृष्टिः शेषान्विताप्यसौ ॥२६॥
एवं चान्ते योगपीठात्मने हृदयमीरयेत् । ताराद्योऽयं पीठमंत्रस्त्वनेनासनमादिशेत् ॥२७॥
ध्रुवो वियद्बिंदुयुतं खं खखोल्काय हृन्मनुः । नवार्णाय च मनवे मूर्ति संकल्पयेत्सुधीः ॥२८॥

अग्निमण्डल से पहले
तथा अन्त में नमः शब्द से समन्वित चन्द्रमण्डल का मस्तक से लेकर हृदय तक न्यास करे । हृदय से पैर तक सावधानी
डकार से लेकर क्षकार तक वर्णों को जोड़कर और अन्त में चतुर्थी विभक्ति लगाकर
से उसका विन्यास करे । अग्नि और चन्द्रमा के मन्त्रों का न्यास सकल सिद्धिदायक है ॥१३-१५॥ अनुस्वार सहित
मातृक वर्णों का न्यास करके अन्त में 'जपान्तपुरुषात्मने नमः' कहकर मन्त्रसाधक व्यापक न्यास करे, यही हंस
न्यास कहा गया है ॥१६॥ आठ-आठ स्वर वर्णों तथा शेष पाँच-पाँच अन्य वर्णों के साथ सूर्य आदि नवग्रहों का
आधार लिंग, नाभि, हृदय, कंठ, मुख के भीतर, भौंहों के बीच, ललाट तथा ब्रह्मरंध्र (मस्तक के मध्य में माना
जाने वाला एक छेद) में क्रमशः न्यास करे । हंस, अग्नि तथा चन्द्र नामक तीन मण्डल की रचना करके पुनः तीन
न्यास करे, और फिर मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करे ॥१७-१९॥ इस प्रकार न्यास की विधि सम्पन्न करके हृदयार-
विन्द में सूर्य का ध्यान करे कि वे हाथों में दान तथा अभय की मुद्रा और दो कमल धारण किये हुए हैं; कुंडल,
अंगद तथा केयूर से उनका वेद रूप शरीर विभूषित है। ऐसा ध्यान करके साधक आठ लाख मन्त्र-जप करे ।
और उसका दशांश लालकमल या तिल से विधिवत् हवन करे । पहले पीठस्थल पर पश्चात् धर्म आदि के स्थान
पर प्रभूत, विमल, शार तथा समाराध्य का पूजन करे । अनन्तर मध्य में परमादिमुख तथा अंत में खबिंब की
पूजा करे ॥२०-२३॥ फिर चन्द्र-मण्डल तथा अग्नि-मण्डल की पूजा करके सूर्यमण्डल की अर्चना करे । दीप्ता,
सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता तथा सर्वतोमुखी—ये पीठ-शक्तियाँ हैं । इनमें तीन ह्रस्व-
मात्रा तथा वह्नि (र्) और इन्दु (अनुस्वार) लगाकर नपुंसकता से रहित करे । फिर शत्रुओं के नाश के लिए उक्त
मन्त्र से पीठशक्तियों का पूजन करे । वे शक्तियां ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव रूप हैं और यह सृष्टि भी शेष से युक्त
है ॥२४-२६॥ इनके पूजन के अन्त में 'योगपीठात्मने नमः' का उच्चारण करना चाहिए । इस मन्त्र के आदि में
ओम् जोड़ देना चाहिए । इससे यह पीठ मंत्र बनता है । इससे देवता को आसन समर्पित करना चाहिए । 'गं हं
स्वं स्वं स्योल्काय नमः' यह नौ अक्षरों का मंत्र है । विद्वान् इसके लिए प्रतिमा बनवाये । उस प्रतिमा में संसार

साक्षिणं जगतां तस्यामावाह्य विधिवद्यजेत् । ततः षडंगान्याराध्य दिक्ष्वष्टांगं प्रपूजयेत् ॥२९॥
संपूज्य मध्ये त्वादित्यं रविं भानुं च भास्करम् । सूर्यं दिशासु सद्यादिपंच ह्रस्वादिकानिमान् ॥३०॥
स्वस्वनामादिवर्णाद्याः शक्तयोऽर्च्या विदिक्षु च । उषां प्रज्ञां प्रभां संध्यां ततो ब्रह्मादिकान्यजेत् ॥३१॥
पुरतोऽरुणमभ्यर्च्य सोमं ज्ञं च गुरुं भृगुम् । दिक्ष्वर्यमादिकानिष्ट्वा भूमिजं च शनैश्चरम् ॥३२॥
राहुं केतुं च कोणेषु पूर्ववत्परिपूजयेत् । इंद्राद्यानपि वज्राद्यान्पूजयेत्पूर्ववत्सुधीः ॥३३॥
इत्थं संपूज्य विधिवद्भास्करं भक्तवत्सलम् । समाहितो दिनेशाय दद्यादर्घ्यं दिने दिने ॥३४॥
प्राणानायम्य सद्भूमौ न्यासान्कृत्वा पुरोदितान् । विधाय मंडलं भानोः पीठं पूर्ववदर्चयेत् ॥३५॥
ध्यात्वार्कं प्रयजेद्दिव्यैर्मानसैरुपचारकैः । पात्रं ताम्रमयं प्रस्थतोयग्राहि सुशोभनम् ॥३६॥
निधाय मंडले रक्तचंदनादिविनिर्मिते । विलोममातृकामूलमुच्चरन्पूरयेज्जलैः ॥३७॥
सूर्यबिंबविनिर्गच्छत्सुधांबुधिविभावितैः । कुंकुमं रोचनां राजीं चंदनं रक्तचंदनम् ॥३८॥
करवीरं जपामालिकुशश्यामाकतंडुलान् । तिलवेणुयवांश्चैव निक्षिपेत्सलिले शुभे ॥३९॥
सांगं सावरणं तत्रावाह्यार्कं पूर्ववद्यजेत् । गंधपुष्पधूपदीपनैवेद्याद्यैर्विधानतः ॥४०॥
प्राणायामत्रयं कृत्वा कुर्यादंगानि पूर्ववत् । सुधाबीजं चंदनेन दक्षे करतले लिखेत् ॥४१॥
तेनाच्छाद्यार्घ्यपात्रं च जपेन्मनुमनन्यधीः । अष्टोत्तरशतावृत्त्या पुनः संपूज्य भास्करम् ॥४२॥
हस्ताभ्यां पात्रमादाय जानुभ्यामवनीं गतः । आमूर्ध्नि पात्रमुद्धृत्यांबरेण वरणे रवेः ॥४३॥

के साक्षी (सूर्य) का आवाहन करके विधिवत् पूजन करे। तदनन्तर उनके छह अंगों की आराधना करके दिशाओं में आठ अंगों का भी पूजन करे ॥२७-२९॥ अथवा मध्य में आदित्य, रवि, भानु, भास्कर तथा सूर्य की और दिशाओं में सद्य (ओ) आदि तथा ह्रस्व (वर्ण) आदि के साथ इन पाँचों (नामों) की पूजा करनी चाहिए। फिर विदिशाओं (कोणों) में शक्तियों की पूजा करे। वे शक्तियाँ हैं—उषा, प्रज्ञा, प्रभा तथा सन्ध्या। इसके बाद ब्रह्मा आदि की पूजा करे। आगे अरुण, सोम, बुध, बृहस्पति तथा शुक्र की अर्चना करके दिशाओं में अर्यमा आदि की पूजा करे। फिर मंगल, शनैश्चर, राहु तथा केतु का पूजन पूर्ववत् कोणों में करे। विद्वान् इन्द्र आदि देवों तथा (उनके) वज्र आदि आयुधों का भी पूजन करे ॥३०-३३॥

इस प्रकार विधिपूर्वक भक्तवत्सल सूर्य की आराधना करके एकाग्रचित्त होकर प्रतिदिन सूर्य को अर्घ्य दिया करे। प्राणायाम करने के उपरान्त पवित्र भूमि पर पूर्वोक्त न्यासों को करके मण्डल की रचना करने के बाद पूर्ववत् सूर्य के पीठ की अर्चना करे। सूर्य का ध्यान करके दिव्य मानस उपचारों से उनका पूजन करे। एक तांबे के सुन्दर पात्र को रक्तमंत्र आदि के बनाये हुए मण्डल पर रखकर विलोममातृका के मूलमंत्र का उच्चारण करते हुए उस पात्र को जल से भर दे। उसमें भावना करे कि सूर्य-बिम्ब से निकलते हुए अमृत-समुद्र से वह पात्र भरा जा रहा है, ॥३४-३७½॥ इसके बाद उस पवित्र जल में कुंकुम, रोचना, सर्षप, चन्दन, रक्तचन्दन, करवीर, जपाकुसुम, जड़हन चावल, कुश, साँवाँ चावल, (सामान्य) चावल, तिल, वेणु (बाँस ?) और यव डाले। वहाँ अंगों तथा आवरणों सहित सूर्य का आवाहन करके पूर्ववत् गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से उनका विधिपूर्वक पूजन करे। (पूरक, कुंभक, रेचक) तीनों प्राणायाम करके पूर्ववत् अंगन्यास करे। फिर दाहिनी हथेली पर चंदन से सुधाबीज (वं) लिखे। ॥३८-४१॥ उससे अर्घ्यपात्र को आच्छादित करके एकाग्रचित्त से मन्त्र का जप करे। एक सौ आठ बार जप करने के बाद सूर्य का पुनः पूजन करे। फिर दोनों हाथों से पात्र उठाकर धरती पर घुटनों के बल बैठकर पात्र को मस्तक तक उठाकर वस्त्र की आड़ से सूर्य पर दृष्टि डाले। फिर मन में सूर्य

साधकेन स्वकैक्येन मूलमंत्रं धिया जपन् ॥४४॥
दृष्टिं चाधाय मनसा पूजयित्वा रविं पुनः। दत्त्वा पुष्पांजलिं भूयो जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥४५॥
आर्घ्यं दद्याद्रविं ध्यायन् रक्तचंदनमंडले। तेन तुष्टो दिनेशोऽस्मै दद्याद्वित्तं यशः सुखम् ॥४६॥
नित्यं वा तद्दिनेऽप्येवमर्घ्यं दद्याद्विवस्वते। अर्घ्यदानमिदं प्रोक्तमायुरारोग्यवर्द्धनम् ॥४७॥
पुत्रान्पौत्रानभीष्टं च यद्यत्सर्वं प्रयच्छति। तेजोवीर्ययशःकीर्तिविद्याविभवभोगदम् ॥४८॥
धनधान्यपशुक्षेमक्षेत्रमित्रकलत्रदम्। एवं मनुं जपन्विप्रो दुःखं नैवाप्नुयात्क्वचित् ॥४९॥
गायत्र्याराधनासक्तः संध्यावंदनतत्परः। वियद्वह्निमरुत्साद्यांतार्वीसेंदुसमन्वितम् ॥५०॥
विकर्तनाय निर्माल्यमेवं संपूज्य दापयेत्। बिंबबीजेन पुटितं सर्वकामफलप्रदम् ॥५१॥
मार्तंडभैरवाख्यं हि बीजं त्रैलोक्यमोहनम्। भृगुर्जलेंदुमन्वाढ्यः सोमाय हृदयांतिमः ॥५२॥
पूर्ववत्सकलं चान्यदत्र ज्ञेयं मनीषिभिः। छंदः पंक्तिस्तु सोमोऽस्य देवता परिकीर्तिता ॥५३॥
षडक्षरो मंत्रराजो मुनिरस्य भृगुर्मतः। षड्दीर्घेण स्वबीजेन षडंगानि समाचरेत् ॥५४॥
आद्यं बीजं नमः शक्तिर्विनियोगोऽखिलाप्तये। विभ्राणमिष्टं कुमुदं ध्यायेन्मुक्तास्रजं विधुम् ॥५५॥
पूर्णेन्द्वास्यं स्फटिकभं नीलालकलसन्मुखम्। जुहुयात्तद्दशांशेन पीठे सोमांतपूजिते ॥५६॥
ऋतुलक्षं जपेन्मंत्रं पायसेन सर्सर्पिषा। केसरेष्वंगपूजा स्यात्पत्रेष्वेताश्च शक्तयः ॥५७॥
मूर्तिमूलेन संकल्प्य पूजयेद्विधिवद्विधुम्। रात्रिरार्द्रा ततो ज्योत्स्ना कला हारसमप्रभा ॥५८॥
रोहिणी कृत्तिका चैव रेवती भरणी पुरः।

रवि का ध्यान करते हुए रक्तचंदनमण्डल पर उन्हें अर्घ्य प्रदान करे। फिर पुष्पांजलि देकर एक सौ आठ बार मन्त्र-जप करे ॥४२-४५। उस दिन भी इसी प्रकार सूर्य को अर्घ्य दे। इससे प्रसन्न होकर सूर्य उस (साधक) को धन, यश, सुख, पुत्र, पौत्र तथा वह जो-जो चाहता है, वह सब उसे प्रदान करते हैं। यह सूर्य-पूजन आयु तथा आरोग्य का वर्धक है। यह धन, धान्य, पशु, कल्याण, क्षेत्र, मित्र तथा पत्नी दिलाने वाला है। इससे तेज, वीर्य, यश, कीर्ति, विद्या, विभव तथा भोग भी मिलता है। जो विप्र गायत्री की आराधना एवं संध्यावंदन करने में तत्पर रह कर सूर्य-मंत्र का जप करता है, उसे कहीं भी दुःख नहीं होता है। इस प्रकार सूर्य का सम्पूजन कर नैवेद्य वितरण कर दे ॥४६-४९½॥

आकाश (ह), वह्नि (र), मरुत् (य), आदि में स और अंत में अनुस्वारयुक्त आर्वी—यह मार्तण्डभैरव नामक बीज मन्त्र है, जो तीनों लोक को मोहित करने वाला है। इस मन्त्र को बिम्ब-बीज से सम्पुटित कर देने पर यह सकल कामनादायक हो जाता है। इस मन्त्र के संबंध में भी विद्वान् लोग पूर्ववत् ही सब कुछ समझें। भृगु (स्), जल (व्), इन्द्र (अनुस्वार), मनु (औ) से युक्त 'ओं सोमाय नमः' यह षडक्षर मन्त्र मन्त्रराज कहलाता है। इसका मुनि भृगु है, छंद पंक्ति है, देवता सोम है, आद्य बीज है, नमः शक्ति है और सकल वस्तुओं की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग किया जाता है। छह दीर्घ मात्राओं से युक्त अपने बीजमन्त्र से षडंगन्यास करे ॥५०-५४॥ तदनन्तर ऐसा ध्यान करे कि सोम का मुख पूर्ण कलाओं से युक्त है, स्फटिक के समान उसकी कान्ति है, काले घुंघराले बालों से उसका मुख शोभित हो रहा है और वह अपने प्रिय कुमुदपुष्प को धारण किये हुए है। ध्यानोपरान्त छह लाख मन्त्र-जप करे और उसका दशांश घी सहित खीर से चन्द्र-पीठ पर हवन करे ॥५५-५६॥ मूर्ति के मूल भाग या मूलमन्त्र से विधिपूर्वक चन्द्रमा की पूजा करे। केसरों पर चन्द्रमा के अंगदेवताओं और पत्रों पर इन शक्तियों का पूजन करे—रोहिणी, कृत्तिका, रेवती, भरणी, रात्रि, आर्द्रा, ज्योत्स्ना और कला। इन शक्तियों की कान्ति हार के समान है ॥५७-५८॥ सब शक्तियाँ शुभ्र माला एवं वस्त्र धारण

सुशुक्लमाल्यवसनामुक्ताहारविभूषिताः । सर्वास्स्तनभराक्रांता रचितांजलयः शुभाः ॥५९॥
स्वप्रियासक्तमनसो मदविभ्रममंथराः । समभ्यच्र्याः सरोजाक्ष्यः पूर्णेंदुसदृशाननाः ॥६०॥
दलाग्रेषु समभ्यच्र्यास्त्वष्टौ सूर्यादिका ग्रहाः । आदित्यभूसुतबुधमंददेवेज्यराहवः ॥६१॥
शुक्रकेतुयुता ह्येते पूज्याःपत्राग्रगाग्रहाः । रक्तारुणश्वेतनीलपीतधूम्रसिताऽसिताः ॥६२॥
वामोरुन्यस्ततद्धस्ता दक्षिणेन धृताभयाः । लोकपालांस्तदस्त्राणि तद्बाह्ये पूजयेत्सुधीः ॥६३॥
एवं संसाधितो मंत्रः प्रयच्छेदिष्टमात्मनः । पौर्णमास्यां जिताहारो दद्यादर्घ्यं विधूदये ॥६४॥
मंडलत्रितयं कुर्यात्प्राक्प्रत्यगायतं भुवि । पश्चिमे मंडले स्थित्वा पूजाद्रव्यं च मध्यमे ॥६५॥
संस्थाप्य सोममन्त्यस्मिन्मंडलेऽब्जसमन्विते । समभ्यर्च्य विधानेन पीठपूजनपूर्वकम् ॥६६॥
स्थापयेद्राजतं पात्रं पुरतस्तत्र मंत्रवित् । सुरभीपयसापूर्य तं स्पृशन्प्रजपेन्मनुम् ॥६७॥
अष्टोत्तरशतं पश्चाद्विद्यामंत्रेण मंत्रवित् । दद्यान्निशाकरायार्घ्यं सर्वाभीष्टार्थसिद्धये ॥६८॥
कुर्यादनेन विधिना प्रतिमासमतंद्रितः । वर्षान्तरेण सर्वेष्टं प्राप्नोति भुवि मानवः ॥६९॥
विद्ये विद्यामालिनि स्यादंते चंद्रिणि संवदेत् । चंद्रमुखि द्विठांतोऽयं विद्यामंत्र उदाहृतः ॥७०॥
एवं कुमुदिनीनाथमंत्रं यो जपति ध्रुवम् । धनं धान्यं सुतान्पौत्रान्सौभाग्यं लभतेऽचिरात् ॥७१॥
अथांगारकमंत्रं तु वक्ष्ये धनसुतप्रदम् । तारो दीर्घेंदुयुग्व्योम तदेवेंदुयुतः पुनः ॥७२॥
षांतः सर्गी च चंडीशौ क्रमादिंदुविसर्गिणौ । षडर्णोऽयं महामंत्रो मंगलस्याखिलेष्टदः ॥७३॥

किये हुई हैं, मुक्ताहार से विभूषित हैं, कुचों के भार से आक्रांत हैं, अंजलि बाँधे हुई हैं, अपने प्रिय में मन को लगाये हुई हैं और मद से मस्त होने के कारण सुस्त हैं। कमल के समान नयनों वाली और पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाली इन शक्तियों की भली भाँति पूजा करनी चाहिए। इसके बाद पत्रों के अग्रभाग में सूर्य आदि आठ ग्रहों की पूजा करनी चाहिए ॥५९-६०½॥ सूर्य, मंगल, बुध, शनि, बृहस्पति, राहु, शुक्र और केतु ग्रह पत्र के अग्रभाग में पूजे जाने चाहिए। इन ग्रहों के रंग क्रमशः रक्त, अरुण, श्वेत, नील, पीत, धूसर, श्वेत और कृष्ण हैं। इनके ऐसे रूपों का ध्यान करे कि इनके बायें हाथ बायीं जांघों पर स्थित हैं और दाहिने हाथ में ये अभय अस्त्र धारण किये हुए हैं। इन ग्रहों के बाद लोकपालों तथा उनके अस्त्रों का पूजन करना चाहिए ॥६१-६३॥

इस प्रकार सिद्ध किया हुआ मन्त्र मनचाही वस्तु प्रदान करता है। पूर्णिमा के दिन उपवास रखकर चन्द्रोदय होने पर चन्द्रमा को अर्घ्य प्रदान करे। तीन मण्डल बनाये, जिनमें पूर्व और पश्चिम के मण्डल कुछ लंबे हों। पश्चिम मण्डल में स्वयं बैठकर पूजा की सामग्री को मण्डल में रखे। तीसरे मण्डल में कमल-पुष्पों पर चन्द्रमा को (प्रतिमा को) स्थापना करे। पीठ की पूजा कर लेने के बाद विधिपूर्वक चन्द्र-पूजन करे। मन्त्रसाधक वहाँ अपने आगे एक चांदी का पात्र रखे। उस पात्र को गाय के दूध से भरकर उसका स्पर्श करते हुए एक सौ आठ बार मन्त्र-जप करे पश्चात् विद्या-मन्त्र से सकल कामनाओं की सिद्धि के लिए चन्द्रमा को अर्घ्य दे ॥६४-६८॥ इस विधि से प्रत्येक मास में आलस्यरहित होकर चन्द्र-पूजन करे। ऐसा करने से एक वर्ष के भीतर मानव की मनःकामना पूर्ण हो जाती है। 'विद्ये विद्यामालिनि चंद्रिणि चंद्रमुखि स्वाहा' यह विद्यामन्त्र है। इस प्रकार जो व्यक्ति चन्द्रमा के मन्त्र की साधना करता है, उसे शीघ्र ही धन, धान्य, पुत्र, पौत्र तथा सौभाग्य की प्राप्ति होती है ॥६९-७१॥

अब मैं धन एवं पुत्र देने वाला मंगल का मन्त्र बताऊँगा। तारः.......यह मंगल का षडक्षर महामन्त्र अखिल कामनादायक है। इसके मुनि विरूपाक्ष, छंद गायत्री और देवता मंगल है। छह मन्त्राक्षरों से षडंगन्यास

विरूपाक्षो मुनिश्छंदोगायत्रं देवता कुजः । मंत्रार्णैः षड्भिरंगानि कुर्वन्ध्यायेद्धरात्मजम् ॥७४॥
मेषस्थं रक्तवस्त्रांगं शूलशक्तिगदावरान् । करैर्बिभ्राणमीशानस्वेदजं भूसुतं स्मरेत् ॥७५॥
रसलक्षं जपेन्मंत्रं दशांशं खदिरोद्भवैः । समिद्भिर्जुहुयादग्नौ शैवे पीठे यजेत्कुजम् ॥७६॥
प्रागंगानि समाराध्य ह्येकविंशतिकोष्ठकम् । मंगलो भूमिपुत्रश्च ऋणहर्ता धनप्रदः ॥७७॥
स्थिरासनो महाकायः सर्वकर्मावरोधकः । लोहितो लोहिताक्षश्च सामगानां कृपाकरः ॥७८॥
धरात्मजः कुजो भौमो भूमिदो भूमिनंदनः । अंगारको महीसूनुः सर्वरोगापहारकः ॥७९॥
वृष्टिकर्ता वृष्टिहर्ता सर्वकार्यार्थसिद्धिदः । इत्येकविंशतिः प्रोक्ता मूर्तयो भूसुतस्य वै ॥८०॥
मंगलादीन्यजेन्मंत्री स्वस्वस्थानस्थितान्क्रमात् । इंद्राद्यानपि वज्रादीनेवं सिद्धो भवेन्मनुः ॥८१॥
सुतकामा कुरंगाक्षी भौमव्रतमुपाचरेत् । मार्गशीर्षेऽथ वैशाखे व्रतारंभः प्रशस्यते ॥८२॥
अरुणोदयवेलायामुत्थायावश्यकं पुनः । विनिर्वर्त्य रदान्धावेदपामार्गेण वाग्यता ॥८३॥
स्नात्वा रक्तांबरधरा रक्तमाल्यविलेपना । नैवेद्यादींश्च संभारान्रक्तान्सर्वान्प्रकल्पयेत् ॥८४॥
योग्यं विप्रं समाहूय कुजमर्चेत्तदाज्ञया । रक्तागोगोमयालिप्तभूमौ रक्तासने विशेत् ॥८५॥
आचम्य देशकालौ च स्मृत्वाकाम्य समुच्चरन् । मङ्गलादीनि नामानि स्वकीयांगेषु विन्यसेत् ॥८६॥
मुखे प्रविन्यसेत्साध्वी सामगानां कृपाकरम् । धरात्मजं नसोरक्ष्णोः कुजं भौमं ललाटके ॥८७॥
भूमिदं तु भ्रुवोर्मध्ये मस्तके भूमिनन्दनम् । अङ्गारकं शिखायां च सर्वांगे च महीसुतम् ॥८८॥
बाहुद्वये न्यसेत्पश्चात्सर्वरोगापहारकम् । मूर्द्धादि वृष्टिकर्तारमापादांतं न्यसेत्सुधीः ॥८९॥

करके मंगल का इस प्रकार ध्यान करे कि वे भेड़े पर विराजमान है, लाल वस्त्र से उनके अंग आच्छादित हैं और वे हाथों में त्रिशूल, शक्ति (साँग) तथा उत्तम गदा धारण किये हुए हैं। इस प्रकार शंकर के पसीने से उत्पन्न मंगल का स्मरण करके छह लाख मन्त्र-जप करे और उसका दशांश खैर की समिधा से अग्नि में हवन करे। अनन्तर शैव पीठ पर मंगल की पूजा करे। पहले अंगदेवताओं की आराधना करके इक्कीस कोष्ठों में मंगल की इक्कीस मूर्तियों का पूजन करे। मंगल, भूमिपुत्र, ऋणहर्ता, धनप्रद, स्थिरासन, महाकाय, सर्वकर्मावरोधक, लोहित, लोहिताक्ष, सामगकृपाकर (सामगान करने वालों पर दयालु), धरात्मज, कुज, भौम, भूमिद, भूमिनंदन, अंगारक, महीसुत, सर्वरोगापहारक, वृष्टिकर्ता, वृष्टिहर्ता और सर्वकार्यसिद्धिदायक—ये मंगल की इक्कीस मूर्तियाँ कही गई हैं। मन्त्र-साधक अपने-अपने स्थान में स्थित मंगल आदि ग्रहों का क्रमशः पूजन करे। अनन्तर इन्द्र आदि देवों तथा (उनके आयुध) वज्र आदि का भी पूजन करे। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है ॥७२-८१॥ पुत्र की इच्छुक रमणी मंगल का व्रत करे। अगहन या वैशाख में व्रत का आरंभ करना प्रशस्त माना गया है। अरुणोदय के समय उठकर आवश्यक (शौचादि) कार्य से निबटकर मौन होकर अपामार्ग (चिचिड़े) से दाँतों को माँजे। (दन्तधावन के बाद) स्नान करके लाल वस्त्र, लाल पुष्प तथा लाल चन्दन धारण करे। नैवेद्य आदि का समायोजन भी करे, किन्तु सभी वस्तुएँ लाल होनी चाहिए। योग्य ब्राह्मण को बुलाकर उसकी आज्ञा से मङ्गल का पूजन करे। लाल गाय के गोबर से लिपी हुई भूमि पर लाल आसन पर (व्रती स्त्री) बैठे। आचमन तथा देश-काल का स्मरण करके अपनी कामना का उच्चारण करते हुए मङ्गल आदि नामों का अपने अंगों में न्यास करे। साध्वी स्त्री अपने मुख में सामगकृपाकर का न्यास करे। दोनों नासिकापुटों में धरात्मज का, दोनों नेत्रों में कुज का ललाट में भौम का, भौहों के बीच भूमिद का, मस्तक में भूमिनन्दन का, शिखा में अंगारक का और सर्वांग में महीसुत का न्यास करे। पश्चात् दोनों बाहों में सर्वरोगापहारक का न्यास करे। मस्तक से लेकर पैर के अन्त

विन्यसेद्वृष्टिहर्तारं मूर्द्धांतं चरणादितः । न्यसेदंते ततो दिक्षु सर्वकार्यार्थसिद्धिदम् ॥९०॥
नाभौ हृदि शिरस्यारं वक्त्रे भूमिजमेव च । विन्यस्यैवं निजे देहे ध्यायेत्प्राग्वद्धरात्मजम् ॥९१॥
मानसैरुपचारैश्च संपूज्यार्घ्यं निधापयेत् । एकविंशतिकोष्ठाढ्ये त्रिकोणे ताम्रपत्रगे ॥९२॥
आवाह्याङ्गारकं तत्र रक्तपुष्पादिभिर्यजेत् । अङ्गानि पूर्वमाराध्य मङ्गलादीन्प्रपूजयेत् ॥९३॥
एकविंशतिकोष्ठेषु चक्रमारं च भूमिजम् । त्रिकोणेषु च सम्पूज्य बहिरष्टौ च मातृकाः ॥९४॥
इंद्रादीनथ वज्रादीन्बाह्ये संपूजयेत्पुनः । धूपदीपौ समर्प्याथ गोधूमान्नं निवेदयेत् ॥९५॥
ताम्रपात्रे शुद्धतोयपूरिते रक्तचंदनम् । रक्तपुष्पाक्षतफलान्याक्षिप्यार्घ्यं समर्पयेत् ॥
मंगलाय ततो मंत्री इदं मंत्रद्वयं पठेत् ॥९६॥
भूमिपुत्र महातेजः स्वेदोद्भव पिनाकिनः । सुतार्थिनी प्रपन्ना त्वां गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥९७॥
रक्तप्रवालसंकाश जपाकुसुमसन्निभ । महीसुत महाभाग गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥९८॥
एकविंशतिपूर्वोक्तैर्नमोंतैश्च नामभिः । ताराद्यैः प्रणमेत्पश्चात्तावत्यश्च प्रदक्षिणाः ॥९९॥
धरणीगर्भसंभूतं विद्युत्तेजः समप्रभम् । कुमारं शक्तिहस्तं च मङ्गलं प्रणमाम्यहम् ॥१००॥
ततो रेखात्रयं कुर्यात्खदिरांगारकेण च । मार्जयेद्वामपादेन मंत्राभ्यां च समाहिता ॥१०१॥
दुःखदौर्भाग्यनाशाय पुत्रसंतानहेतवे । कृतरेखात्रयं वामपादेनैतत्प्रमार्ज्यहम् ॥१०२॥

तक वृष्टिकर्ता का न्यास करे ॥८२-८९॥ फिर चरण से मस्तक तक दृष्टिहर्ता का न्यास करे। तदनन्तर दिशाओं में सर्वकामार्थसिद्धिदायक का न्यास करे। नाभि, हृदय तथा मस्तक में आर का और मुख में भूमिज का न्यास करे। इस प्रकार अपनी देह में न्यास करके पहले की तरह भूमि-पुत्र (मङ्गल) का ध्यान करे। फिर मानस उपचारों (कल्पित द्रव्यों) से पूजन करके अर्घ्य प्रदान करे। एक त्रिकोण ताम्रपत्र पर, जिसमें इक्कीस कोष्ठक बने हों, मङ्गल ग्रह का आवाहन करके लाल पुष्प आदि से उनकी पूजा करे। पहले अंगों की आराधना करके मङ्गल आदि की पूजा करनी चाहिए ॥९०-९३॥ इक्कीस कोष्ठों तथा त्रिकोणों में चक्र, आर और भूमिज की पूजा करके बाहर आठ मातृकाओं का पूजन करे। पुनः बाहर इन्द्र आदि देवों तथा उनके वज्र आदि आयुधों की पूजा करे और उनको धूप, दीप तथा पंजीरी समर्पित करे। शुद्ध जल से भरे हुए ताम्रपात्र में रक्तचन्दन, रक्तपुष्प, अक्षत और फल डालकर मङ्गल ग्रह को अर्घ्य प्रदान करे। अर्घ्य मन्त्र यह है—'भूमिपुत्र ! महातेजस्वी ! शंकर के स्वेद (पसीने) से उत्पन्न ! मैं पुत्र की कामना से आपको शरण में आयी हूँ, यह अर्घ्य स्वीकार कीजिए, आपको नमस्कार है। लाल मूंगे के समान ! जपाकुसुम (अड़हुल) के सदृश ! भूमिपुत्र ! महाभाग ! अर्घ्य ग्रहण कीजिए। आपको नमस्कार है' ॥९४-९८॥

पूर्वोक्त इक्कीस नामों के आदि में ओं तथा अन्त में चतुर्थी विभक्ति और नमः शब्द जोड़कर (अर्थात् ओं मङ्गलाय नमः' इत्यादि कहकर) प्रणाम करे और इक्कीस बार प्रदक्षिणा करे (प्रदक्षिणा का मन्त्र—)'पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न, बिजली के तेज के समान प्रभा वाले, कुमार और हाथ में शक्ति (नामक अस्त्र) धारण करने वाले मङ्गल को प्रणाम करती हूँ' ॥९९-१००॥ तदनन्तर खैर की लकड़ी से तीन रेखायें खींचे और उनको एकाग्र होकर दो मन्त्र पढ़ते हुए बायें पैर से मिटा दे (दोनों मन्त्र ये हैं—) दुःख और दौर्भाग्य के विनाश के लिए तथा पुत्र और संतान की प्राप्ति के लिए इन तीनों रेखाओं को मैं बायें पैर से मिटा रही हूँ। ऋण तथा दुःख की नष्ट करने के लिए और मनोवांछित फल की प्राप्ति के लिए मैं तीन जन्मों में उत्पन्न इन तीन काली रेखाओं

। मार्जयाम्यसिता रेखास्तिस्रो जन्मलग्नोद्भवाः ॥१०३॥

ऋणदुःखविनाशाय मनोभीष्टार्थसिद्धये । ध्यायंती तत्पदांभोजं पूजासांगत्वसिद्धये ॥१०४॥

स्तुवीत धरणीपुत्रं पुष्पांजलिकरा ततः । सौभाग्यसुखदो नित्यं भव मे धरणीसुत ॥१०५॥

ऋणहर्त्रे नमस्तुभ्यं दुःखदारिद्र्यनाशिने । सुखसौभाग्यधनद ऋणदारिद्र्यनाशक ॥१०६॥

तप्तकांचनसंकाश तरुणार्कसमप्रभ । प्रसादं कुरु देवेश सर्वकल्याणभाजन ॥१०७॥

ग्रहराज नमस्तेऽस्तु सर्वकल्याणकारक । आप्नुवन्ति शिवं सर्वे सदा पूर्णमनोरथाः ॥१०८॥

देवदानवगंधर्वयक्षराक्षसपन्नगाः । प्राप्नुवन्ति सुखं तस्मै नमो धरणिसूनवे ॥१०९॥

आचिरादेव लोकेऽस्मिन्यस्याराधनतो जनाः । पूजितः सुखसौभाग्यं तस्मै क्षमासूनवे नमः ॥११०॥

यो वक्रगतिमापन्नो नृणां दुःखं प्रयच्छति । मङ्गलाय नमस्तुभ्यं धनसंतानहेतवे ॥१११॥

नभसि द्योतमानाय सर्वकल्याणहेतवे । मेषवाहन रुद्रात्मन्देहि पुत्रान्धनं यशः ॥११२॥

प्रसादं कुरु मे भौम मंगलप्रद मंगल । यथाशक्त्या प्रदाय स्वं गृह्णीद्ब्राह्मणाशिषः ॥११३॥

एवं स्तुत्वा प्रणम्याथ विसृज्य धरणीसुतम् ॥१४॥

गुरवे दक्षिणां दत्वा भुञ्जीयात्तन्निवेदितम् । तिलैर्होमं विधायाथशतार्द्धं भोजयेद्द्विजान् ॥११५॥

एवमावत्सरं कुर्यात्प्रतिमंगलवासरम् । मंडलस्थे घटेऽभ्यर्चेत्सुतसौभाग्यसिद्धये ॥११६॥

भौममूर्तिं स्वर्णमयीमाचार्याय समर्पयेत् । ऋणनाशाय वित्तार्थं व्रतं कुर्यात्पुमानपि ॥११७॥

एवं व्रतपरा नारी प्राप्नुयात्सुभगान्सुतान् । अंगारकस्य गायत्रीं वक्ष्ये यजनसिद्धये ॥११८॥

ब्राह्मणः प्रजपेन्मन्त्रमग्निर्मूर्द्धेति वैदिकम् ।

को मिटा रही हूँ। तदनन्तर अंजलि में पुष्प लेकर सांगोपांग पूजन की फल-प्राप्ति के लिए मङ्गलग्रह के चरणारविन्द का ध्यान करते हुए उनकी स्तुति करे—'ऋण का हरण करने वाले ! तुम्हें नमस्कार है। दुःख और दरिद्रता नाश करने वाले ! तुम्हें नमस्कार है ! भूमिपुत्र ! मुझे नित्य सौभाग्य और सुख प्रदान कीजिए ॥१०१-१०५॥ तपे हुए सुवर्ण के समान ! तरुण सूर्य के समान ! सुख, सौभाग्य तथा धन देने वाले ! ऋण तथा दरिद्रता का नाश करने वाले ! ग्रहराज ! सबका कल्याण करने वाले ! आपको नमस्कार है। देवों के ईश ! समस्त कल्याणों के पात्र ! मुझपर कृपा कीजिए। आपकी आराधना से देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा सर्प पूर्णमनोरथ होकर कल्याण प्राप्त करते हैं। इस लोक में मनुष्य आपकी आराधना से शीघ्र ही सुख प्राप्त कर लेते हैं ॥१०६-१०८½॥ हे धरती के पुत्र ! आपको नमस्कार है। जो (किसी की कुण्डली में अपनी दशा आने पर) वक्र गति को प्राप्त करने पर मनुष्यों को दुःख प्रदान करते हैं और पूजित होने पर सुख-सौभाग्य देते हैं, उस पृथ्वीपुत्र (मङ्गल) को नमस्कार है। आकाश में चमकने वाले और सकल कल्याणों तथा धन-सन्तानों के कारण रूप मङ्गल को नमस्कार है। हे भूमि-पुत्र ! मङ्गलदाता ! मङ्गल ! मुझ पर कृपा कीजिए। मेषवाहन (भेड़े की सवारी करने वाले) रुद्ररूप ! मुझे पुत्र, धन और यश प्रदान कीजिए ॥१०९-११२॥

इस प्रकार स्तुति करने के उपरान्त प्रणाम करके मङ्गल का विसर्जन करे और यथाशक्ति धन प्रदान कर ब्राह्मण से आशीर्वाद ले। फिर गुरु को दक्षिणा देकर उनकी आज्ञा से स्वयं भोजन करे। पुत्र एवं सौभाग्य की प्राप्ति के लिए मण्डल पर घटस्थापन तथा उस पर मङ्गल की अर्चना करे। इस प्रकार व्रतपरायण होने से नारी सुन्दर पुत्रों को प्राप्त करती है। ऋण चुकाने के लिए वित्त के वास्ते पुरुष भी व्रत करे। ब्राह्मण 'अग्निर्मूर्धा'— इस वैदिक मन्त्र का जप करे। अब मैं पूजन की सिद्धि के लिए मङ्गल का गायत्री-मन्त्र बताऊँगा ॥११३-११८॥

अंगारकाय शब्दांते विद्महे पदमीरयेत् । शक्तिहस्ताय वर्णांते धीमहीति समुच्चरेत् ॥११९॥
तन्नो भौमः प्रचोवर्णान्दयादिति च संवदेत् । भौमस्यैषा तु गायत्री जप्तुः सर्वेष्टसिद्धिदा ॥१२०॥
भौमोपासनमेतद्धि बुधमन्त्रमथोच्यते । फांतः कर्णेंदुसंयुक्तो बुधो ङेंते हृदंतिमः ॥१२१॥
रसार्णो बुधमन्त्रोऽयं मुनिर्ब्रह्मास्य कीर्तितः । पंक्तिश्छंदो देवता तु बुधः सर्वेष्टदो नृणाम् ॥१२२॥
आद्यं बीजं नमः शक्तिर्विनियोगोऽखिलाप्तये । वंदे बुधं सदा भक्त्या पीताम्बरविभूषणम् ॥१२३॥
जानुस्थवामहस्ताढ्यं साभयेतरपाणिकम् । ध्यात्वैवं प्रजपेत्सहस्रं विजितेंद्रियः ॥१२४॥
दशांशं जुहुयादाज्यैः पीठे पूर्वोदितेऽर्चयेत् । अङ्गमातृदिशापालहेतिभिर्बुधमर्चयेत् ॥१२५॥
एवं सिद्धे मनौ मंत्री साधयेत्स्वमनोरथान् । सहस्रं प्रजपेन्मंत्रं नित्यं दशदिनावधि ॥१२६॥
तस्याशु ग्रहजा पीडा नश्यत्येव न संशयः । बुधस्याराधनं प्रोक्तं गुरोराधनं शृणु ॥१२७॥
बृहस्पतिपदं ङेऽतं सेंद्वाद्यर्णाधमंडितम् । नमोंतोवसुवर्णोऽयं मुनिर्ब्रह्मास्य संमतः ॥१२८॥
छन्दोऽनुष्टुप्सुराचार्यो देवता बीजमादिमम् । हृच्छक्तिर्दीर्घवह्नींदुयुगलेनांगकल्पना ॥१२९॥
न्यस्तवामकरं राशौ रत्नानां दक्षिणात्करात् । किरंतं पीतपुष्पालंकारालेपांशुकार्चितम् ॥१३०॥
सर्वविद्यानिधिं देवगुरुं स्वर्णद्युतिं स्मरेत् । लक्षं जपो दशांशेन घृतेनान्नेन वा हुनेत् ॥१३१॥

'अंगारकाय' शब्द के अन्त में 'विद्महे' पद का उच्चारण करे । फिर 'शक्तिहस्ताय' शब्द के अंत में 'धीमहि' जोड़कर 'तन्नो भौमः प्रचोदयात्' भी बोले । यह भौम-गायत्री मन्त्र जप करने वाले की सकल कामनाओं को सिद्ध करता है । यह मङ्गल की उपासना का विधान बताया गया है । अब बुध का मन्त्र बताऊँगा । 'कान्तः……' (ओं बुधाय नमः) यह छह अक्षरों का बुध-मन्त्र है । इसके ऋषि ब्रह्मा हैं, छंद पंक्ति है और देवता बुध है । यह मनुष्यों की सकल कामनाओं को पूर्ण करता है ॥११९-१२२॥ इसका आद्य अक्षर बीज है, नमः शक्ति है और सभी वस्तुओं की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग किया जाता है । 'पीत वस्त्र से सुशोभित, जांघ पर बायां हाथ रखे हुए और दाहिने हाथ में अभयमुद्रा धारण किये हुए बुध की वंदना मैं सदा भक्तिभाव से किया करता हूं ।' इस प्रकार ध्यान करके इन्द्रियसंयमपूर्वक छह हजार मन्त्र-जप करे ॥१२३-१२४॥ उसके दशांश घी से पूर्वोक्त पीठ पर हवन करे । अंगदेवता, मातृगण, दिक्पाल तथा उनके आयुधों के साथ बुध की अर्चना करनी चाहिए । इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर साधक अपने सकल मनोरथों को प्राप्त करता है । जो दस दिन तक नित्य एक सहस्र बुध-मन्त्र का जप करता है, उसकी ग्रहजन्य पीड़ा निःसन्देह नष्ट हो जाती है । बुध की आराधना का प्रकार बता दिया । अब बृहस्पति की आराधना के बारे में सुनो ॥१२५-१२७॥

बृहस्पति पद में चतुर्थी विभक्ति लगाये, आदिम वर्ण को अनुस्वार से युक्त करे और अन्त में नमः शब्द रखे इस प्रकार यह आठ अक्षरों का मन्त्र बनता है (अर्थात् 'बृं बृहस्पतये नमः') । इसके मुनि ब्रह्मा हैं, छन्द अनुष्टुप् है, देवता बृहस्पति है, आदिम अक्षर बीज है और नमः शक्ति है । दीर्घ (स्वर), वह्नि (र) तथा दो इन्दु (अनुस्वार) से अंगों की कल्पना करनी चाहिए । अनन्तर बृहस्पति का इस प्रकार ध्यान करे कि वे रत्नों के ढेर पर अपना बायाँ हाथ रखे हुए हैं और दाहिने हाथ से रत्न बिखेर रहे हैं ॥१२८-१२९½॥ पीत पुष्प, आभूषण, लेप (चन्दन) तथा वस्त्र से उनकी पूजा की गई है । देवगुरु सकल विद्याओं की निधि हैं और उनकी कान्ति सुवर्ण की-सी है । ध्यानोपरान्त एक लाख मन्त्र-जप करे और उसका दशांश घी अथवा अन्न से हवन करे । पश्चात् … दपीठ पर अङ्ग-देवता, दिक्पाल तथा उनके आयुधों के साथ सुरगुरु की अर्चना करे । इस प्रकार मन्त्र के

धर्मादिपीठे प्रयजेदंगदिक्पालहेतिभिः । एवं सिद्धे मनौ मंत्री साधयेदिष्टमात्मनः ॥१३२॥
विषरोगादिपीडासु कलहे स्वजनोद्भवे । पिप्पलोत्थसमिद्भिश्च जुहुयात्तन्निवृत्तये ॥१३३॥
हुत्वा दिनत्रयं मन्त्री निशापुष्पैर्घृतप्लुतैः । स विंशतिशतं शीघ्रं वासांसि लभते महीम् ॥१३४॥
गुरोराराधनं प्रोक्तं शृणु शुक्रस्य सांप्रतम् । वस्त्रं मे देहि शुक्राय ठद्वयांतो ध्रुवादिकः ॥१३५॥
रुद्रार्णोऽयं मनुर्ब्रह्मा मुनिश्छन्दो विराड्त । दैत्येज्यो देवता बीजं ध्रुवः शक्तिर्वसुप्रिया ॥१३६॥
भूनेत्रचन्द्रनेत्राग्निनेत्रार्णैः स्यात्षडंगकम् । शुक्लांबरालेपभूषं करेण ददतं धनम् ॥१३७॥
वामेन शुक्रं व्याख्यानमुद्रादोषं स्मरेत्सुधीः । अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयाद् घृतैः ॥१३८॥
धर्मादिपीठे प्रयजेदंगेंद्रादितदायुधैः । श्वेतपुष्पैः सुगंधैश्च जुहुयाद् भृगुवासरे ॥१३९॥
एकविंशतिवारं यो लभते सोंऽशुकं मणीन् । मनवोऽमी सदा गोप्या न देया यस्य कस्यचित् ॥१४०॥
भक्तियुक्ताय शिष्याय देया वा निजसूनवे ॥१४१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे मन्त्रविधाननिरूपणं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

सिद्ध हो जाने पर साधक अपनी कामना पूर्ण करे। विष एवं रोग आदि की पीडा और भाई-बंधुओं से कलह उपस्थित होने पर उसके निवारण के लिए पीपल की समिधा से हवन करना चाहिए ॥१३०-१३३॥ घी में डूबोये हुए कुमुद पुष्पों से तीन दिन तक दो हजार वार हवन करने से साधक शीघ्र ही वस्त्र एवं भूमि को प्राप्त करता है। इस प्रकार गुरु का आराधना-क्रम बता दिया, अब शुक्र की पूजा-विधि बताता हूँ। आदि में ध्रुव (ॐ) जोड़कर 'वस्त्रं मे देहि शुक्राय स्वाहा'—यह ग्यारह अक्षरों का मन्त्र है। इसके मुनि ब्रह्मा, छन्द विराट्, शुक्र देवता, ध्रुव (ओं) बीज और वसुप्रिया (स्वाहा) शक्ति है ॥१३४-१३६॥ भू (ल्), नेत्र (इ), चन्द्र(—)नेत्र (इ), अग्नि (र्) तथा (ह)—इन वर्णों से षडंगन्यास करे। अनन्तर विद्वान् साधक उज्ज्वल वस्त्र, लेप तथा आभूषण से युक्त, बायें हाथ से धन देते हुए तथा व्याख्यान देने की मुद्रा में अवस्थित शुक्र का ध्यान करे ॥१३७½॥ तत्पश्चात् दस हजार मन्त्र-जप करे और उसका दशांश हवन करे। फिर धर्मादि पीठ पर श्वेत पुष्पों तथा द्रव्यों, से अङ्गदेवता, इन्द्र आदि देवता और उनके आयुधों के साथ शुक्र का पूजन करे। शुक्र के दिन इक्कीस बार हवन करे। ऐसा करने से मनुष्य वस्त्र एवं मणि प्राप्त करता है। ये (उपर्युक्त) मन्त्र गुप्त रखने चाहिए, जिस किसी को नहीं देने चाहिए। ये केवल भक्त शिष्य अथवा अपने पुत्र को देने चाहिए ॥१३८-१४१॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वभाग में मन्त्र-विधान-निरूपण नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥६९॥

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

अथ वक्ष्ये महाविष्णोर्मन्त्राल्लोकेषु दुर्लभान् । यान्प्राप्य मानवास्तूर्णं प्राप्नुवंति निजेप्सितम् ॥१॥
येषामुच्चारणेनैव पापसंघः प्रलीयते । ब्रह्मादयोऽपि याञ्ज्ञात्वा समर्थाः स्युर्जगत्कृतौ ॥२॥
तारहृत्पूर्वकं ङेंतं नारायणपदं भवेत् । अष्टाक्षरो मनुश्चास्य साध्यो नारायणो मुनिः ॥३॥
छन्दः प्रोक्तं च गायत्री देवता विष्णुरव्ययः । ओँ बीजं यं च तथा शक्तिर्विनियोगोऽखिलाप्तये ॥४॥
क्रुद्धोल्काय हृदाख्यातं महोल्काय शिरः स्मृतम् । वीरोल्काय शिखा प्रोक्ता द्युल्काय कवचं मतम् ॥५॥
महोल्कायेति चास्त्रं स्यादित्थं पंचांगकल्पना । पुनः षडंगमंत्रोत्थैः षड्वर्णैश्च समाचरेत् ॥६॥
अवशिष्टौ न्यसेत्कुक्षिपृष्ठयोर्मंत्रवर्णकौ । सुदर्शनस्य मंत्रेण कुर्याद्दिग्बन्धनं ततः ॥७॥
तारो नमश्चतुर्थ्यंतं सुदर्शनपदं वदेत् । अस्त्रायफडिति प्रोक्तो मंत्रो द्वादशवर्णवान् ॥८॥
दशावृत्तिमयं न्यासं वक्ष्ये विभूतिपञ्जरम् । मूलार्णान्स्वतनौ न्यस्येदाधारे हृदये मुखे ॥९॥

अध्याय ७०

विष्णु के अष्टाक्षर आदि विविध मंत्रों के अनुष्ठान की विधि

सनत्कुमार बोले—नारद ! अब मैं महाविष्णु के मन्त्रों का वर्णन करता हूँ, जो लोक में अत्यन्त दुर्लभ हैं, जिन्हें पाकर मनुष्य शीघ्र ही अपनी अभीष्ट वस्तुओं को प्राप्त कर लेते हैं, जिनके उच्चारण-मात्र से ही राशि-राशि पाप नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मा आदि भी जिन मन्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके ही संसार की सृष्टि में समर्थ होते हैं। प्रणव और नमः पूर्वक ङे विभक्त्यन्त 'नारायण' पद हो तो 'ओं नमो नारायणाय' यह अष्टाक्षर मन्त्र होता है। साध्य नारायण इसके ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, अविनाशी भगवान् विष्णु देवता हैं, ओं बीज है, नमः शक्ति तथा सम्पूर्ण मनोरथों की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग किया जाता है ॥१-४॥ इसका पंचांग-न्यास इस प्रकार है—क्रुद्धोल्काय हृदयाय नमः, महोल्काय शिरसे स्वाहा, वीरोल्काय शिखायै वषट्, अत्युल्काय कवचाय हुं, सहस्रोल्काय अस्त्राय फट्। इस प्रकार पंचांग को कल्पना करनी चाहिए। फिर मन्त्र के छह वर्णों से षडंग न्यास करके शेष दो मन्त्राक्षरों का कुक्षि तथा पृष्ठभाग में न्यास करे। इसके बाद सुदर्शन-मन्त्र से दिग्बन्ध करना चाहिए। 'ओं नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्' यह बारह अक्षरों का मन्त्र 'सुदर्शन-मन्त्र' कहा गया है ॥५-८॥

अब मैं विभूतिपञ्जर नामक दशावृत्तिमय न्यास का वर्णन करता हूँ। मूल मन्त्र के अक्षरों का अपने शरीर के मूलाधार हृदय, मुख, दोनों भुजा तथा दोनों चरणों के मूलभाग तथा नासिका में न्यास करे। यह प्रथम आवृत्ति कही गई है। कंठ, नाभि, हृदय, दोनों स्तन, दोनों पार्श्वभाग तथा पृष्ठभाग में पुनः मन्त्राक्षरों का न्यास करे।

दो:पन्मूलेषु नासायां प्रथमावृत्तिरीरिता । गले नाभौ हृदि कुचपार्श्वपृष्ठेषु तत्परा: ॥१०॥
मूर्द्धास्यनेत्रश्रवणघ्राणेषु च तृतीयका: । दो:पादसंध्यंगुलिषु वेदावृत्त्या च विन्यसेत् ॥११॥
धातुप्राणेषु हृदये विन्यसेत्तदनंतरम् । शिरोनेत्रास्यहृत्कुक्षिसोरुजंघापदद्वये ॥१२॥
एकैकशो न्यसेद्वर्णान्मंत्रस्य क्रमत: सुधी: । न्यसेद्धृदंसोरुपदेष्वर्णान्वेदमितान्मनो: ॥१३॥
चक्रशंखगदांभोजपदेषु स्वस्वमुद्रया । शेषांश्च न्यासवर्योऽयं विभूतिपञ्जराभिध: ॥१४॥
न्यसेन्मूलार्णमेकैकं सचंद्रं तारसम्पुटम् । अथवा वै नमोंतेन न्यसेदित्यपरे जगु: ॥१५॥
तत्त्वन्यासं तत: कुर्याद्विष्णुभावप्रसिद्धये । अष्टार्णोऽष्टप्रकृत्यात्मा गदित: पूर्वसूरिभि: ॥१६॥
पृथिव्यादीनि भूतानि ततोऽहंकारमेव च । महांश्च प्रकृतिश्चैवेत्यष्टौ प्रकृतयो मता: ॥१७॥
पादे लिंगे हृदि मुखे मूर्ध्नि वक्षसि हृत्स्थले । सर्वांगे व्यापकं कुर्यादेकेन साधकोत्तम: ॥१८॥
मंत्रार्णहृत्परायाद्यमात्मने हृदयांतिमम् । तत्तन्नाम समुच्चार्य्यं न्यसेत्तत्तत्स्थले बुध: ॥१९॥
अयं तत्त्वाभिधो न्यास: सर्वन्यासोत्तमोत्तम: । मूर्तीर्न्यसेद्द्वादश वै द्वादशादित्यसंयुता: ॥२०॥
द्वादशाक्षरवर्णाद्या द्वादशादित्यसंयुता: । अष्टार्णोऽयं मनुश्चाष्टप्रकृत्यात्मा समीरित: ॥२१॥
तासामात्मचतुष्कस्य योगादर्काक्षरो भवेत् । ललाटकुक्षिहृत्कंठदक्षपार्श्वांसकेषु च ॥२२॥
गले च वामपार्श्वांसगलपृष्ठेष्वनंतरम् । ककुद्यपि न्यसेन्मन्त्री मूर्तीर्द्वादश वै क्रमात् ॥२३॥

नासिका छिद्रों में मन्त्राक्षरों का न्यास
यह द्वितीय आवृत्ति बताई गई है । मूर्धा, मुख, दोनों नेत्र, दोनों श्रवण तथा नासिका छिद्रों में मन्त्राक्षरों का न्यास करे। यह तृतीय आवृत्ति है ॥९-१०॥ दोनों भुजाओं और पैरों की सटी हुई अंगुलियों में चौथी आवृत्ति का न्यास करे। धातु, प्राण और हृदय में पाँचवीं आवृत्ति का न्यास करे। सिर, नेत्र, मुख और हृदय, कुक्षि, ऊरु, जंघा तथा दोनों पैरों में विद्वान् पुरुष एक-एक करके क्रमश: मन्त्र-वर्णों का न्यास करे। (यह छठी, सातवी, आठवीं आवृत्ति है) हृदय, कंधा, ऊरु तथा चरणों में मन्त्र के चार वर्णों का न्यास करे शेष वर्णों का चक्र, शंख, गदा और कमल की मुद्रा बनाकर उनमें न्यास करे (यह नवम, दशम आवृत्ति है) ॥११-१३½॥ यह सर्वश्रेष्ठ न्यास विभूति-पञ्जर नाम से विख्यात है । मूल के एक-एक अक्षर को अनुस्वार से युक्त करके उसके दोनों ओर प्रणव का सम्पुट लगा कर न्यास करे अथवा आदि में प्रणव और अन्त में नम: लगाकर मन्त्राक्षरों का न्यास करे। ऐसा दूसरे विद्वानों का कथन है ॥१४-१५॥

तत्पश्चात् विष्णुभाव की सिद्धि के लिए तत्त्वन्यास करे। पहले के विद्वानों ने अष्टाक्षर मन्त्र और आठ प्रकृतियों को इसका स्वरूप बताया है । पृथिवी, जल, वायु, आकाश, अग्नि, अहंकार, महत् तथा प्रकृति—ये आठ प्रकृतियाँ कहलाती हैं। पैर, लिंग, हृदय, मुख, मस्तक, वक्ष, हृदयस्थल और सर्वाङ्ग में एक ही अष्टाक्षर मन्त्र से साधक व्यापक न्यास करे। विद्वान् व्यक्ति मन्त्राक्षर, नम: परापाद्य और आत्मने नम: के साथ तत्तत् नामों का उच्चारण करके तत्तत् स्थानों में न्यास करे। यह तत्व नामक न्यास सभी न्यासों में श्रेष्ठ है ॥१६-१९½॥

तदनन्तर बारह आदित्यों सहित द्वादश मूर्तियों का न्यास करे। ये बारह मूर्तियाँ आदि में द्वादशाक्षर के एक-एक मन्त्र से युक्त होती हैं और इनके साथ बारह आदित्यों का संयोग होता है। यह अष्टाक्षर-मन्त्र अष्टप्रकृतिरूप बताया गया है ॥२०-२१॥ इनके साथ चार आत्मा (आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा तथा ज्ञानात्मा) का योग होने से द्वादशाक्षर होता है। ललाट, कुक्षि, हृदय, कण्ठ, दक्षिण पार्श्व, दक्षिण अंस, गलदक्षिणभाग, वाम पार्श्व, वाम अंस, गल-वामभाग, पृष्ठभाग तथा ककुद्—इन बारह अंगों में मन्त्रसाधक क्रमश: बारह मूर्तियों

धात्रा तु केशवं न्यस्यार्यम्णा नारायणं पुनः । मित्रेण माधवं न्यस्य गोविंदं वरुणेन च ॥२४॥
विष्णुं चैवांशुना युक्तं भगेन मधुसूदनम् । न्यसेद्विवस्वता युक्तं त्रिविक्रममतः परम् ॥२५॥
वामनं च तथेंद्रेण पूष्णा श्रीधरमेव च । हृषीकेशं न्यसेत्पश्चात्किरीटमनुना सुधीः ॥२६॥
त्वष्ट्रा युतं पद्मनाभं दामोदरं च विष्णुना । द्वादशार्णं ततो मंत्रं समस्ते शिरसि न्यसेत् ॥२७॥
व्यापकं विन्यसेत्पश्चात्किरीटमनुना सुधीः । ध्रुवः किरीटकेयूरहारांते मकरेति च ॥२८॥
कुंडलांते चक्रशंखगदांतेऽम्भोजहस्ततः । पीतांबरांते श्रीवत्सांकितवक्षःस्थलेति च ॥२९॥
श्रीभूमिसहितस्वात्मज्योतिर्द्वयमतः परम् । वदेद्दीप्तिकरायांते सहस्रादित्यतेजसे ॥३०॥
नमोंतो बाणषड्वर्णः किरीटमनुरीरितः । एवं न्यासविधिं कृत्वा ध्यायेन्नारायणं विभुम् ॥३१॥
उद्यत्कोटयर्कसदृशं शंखं चक्रं गदांबुजम् । दधतं च करैर्भूमिश्रीभ्यां पार्श्वद्वयांचितम् ॥३२॥
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् । हारकेयूरवलयांगदं पीतांबरं स्मरेत् ॥३३॥
वर्णलक्षं जपेन्मंत्रं विधिवन्नियतेंद्रियः । प्रथमेन तु लक्षेण स्वात्मशुद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥३४॥
लक्षद्वयजपेनाथ मंत्रशुद्धिमवाप्नुयात् । लक्षत्रयेण जप्तेन स्वर्लोकमधिगच्छति ॥३५॥
विष्णोः समीपमाप्नोति वेदलक्षजपान्नरः । तथा च निर्मलं ज्ञानं पंचलक्षजपाद्भवेत् ॥३६॥
लक्षषष्ठेन चाप्नोति मंत्री विष्णौ स्थिरां मतिम् । सप्तलक्षजपान्मंत्री विष्णोःसारूप्यमाप्नुयात् ॥३७॥
अष्टलक्षं जपेन्मंत्री निर्वाणमधिगच्छति । एवं जप्त्वा ततः प्राज्ञो दशांशं सरसीरुहैः ॥३८॥

का न्यास करे। केशव का धाता के साथ ललाट में न्यास करके, नारायण का अर्यमा के साथ कुक्षि में, माधव का मित्र के साथ हृदय में तथा गोविन्द का वरुण के साथ कण्ठकूप में न्यास करे ॥२२-२४॥ विष्णु का अंश के साथ, मधुसूदन का भग के साथ, त्रिविक्रम का विवस्वान् के साथ, वामन का इन्द्र के साथ, श्रीधर का पूषा के साथ और हृषीकेश का पर्जन्य के साथ न्यास करे। पद्मनाभ का त्वष्टा के साथ तथा दामोदर का विष्णु के साथ न्यास करे ॥२५-२६½॥ तत्पश्चात् द्वादशाक्षर मन्त्र का सम्पूर्ण सिर में न्यास करे। इसके बाद विद्वान् पुरुष किरीट मन्त्र के द्वारा व्यापक न्यास करे। किरीट मन्त्र प्रणव के अतिरिक्त पैंसठ अक्षर का बताया गया है—'ओं किरीटकेयूरहारमकरकुण्डलशंखचक्रगदाम्भोजहस्तपीताम्बरधरश्रीवत्साङ्कितवक्षःस्थलश्रीभूमिसहितस्वात्मज्योतिर्मयदीप्तकराय सहस्रादित्यतेजसे नमः।' इस प्रकार न्यासविधि करके सर्वव्यापी भगवान् नारायण का ध्यान करे—

जिनकी दिव्य कान्ति उदय-काल के कोटि-कोटि सूर्यों के सदृश है, जो अपनी चार भुजाओं में शंख, चक्र, गदा और कमल धारण करते हैं, भूदेवी तथा श्रीदेवी जिनके उभय पार्श्व की शोभा बढ़ा रही हैं, जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्न से सुशोभित है, जो अपने गले में चमकीली कौस्तुभमणि धारण करते हैं और हार, केयूर, वलय तथा अंगद आदि दिव्य आभूषण जिनके श्रीअंगों में पड़कर धन्य हो रहे हैं, उन पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु का चिन्तन करना चाहिए ॥२७-३३॥

इन्द्रियों को वश में रखकर मन्त्र में जितने वर्ण हैं, उतने लाख मन्त्र का विधिवत् जप करे। प्रथम लाख मन्त्र के जप से निश्चय ही आत्मशुद्धि होती है। दो लाख जप पूर्ण होने पर साधक को मन्त्र-शुद्धि प्राप्त होती है। तीन लाख के जप से साधक स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है। चार लाख के जप से मनुष्य भगवान् विष्णु के समीप जाता है। पाँच लाख के जप से निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है ॥३४-३६॥ छठे लाख के जप से मन्त्र-साधक की बुद्धि भगवान् विष्णु में स्थिर हो जाती है। सात लाख के जप से मन्त्रोपासक श्रीविष्णु का सारूप्य प्राप्त करता है। आठ लाख का जप पूर्ण कर लेने पर मन्त्र-जप करने वाला पुरुष निर्वाण (परम शान्ति एवं मोक्ष)

मधुराक्तैः प्रजुहुयात्संस्कृते हव्यवाहने । मंडूकात्परतत्त्वांतं पीठे संपूज्य यत्नतः ॥३९॥
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा ततः परा । प्रह्वी सत्या तथेशानानुग्रहा नवमी मता ॥४०॥
तारो नमो भगवते विष्णवे सर्वभू ततः । तात्मने वासुदेवाय सर्वात्मेति पदं वदेत् ॥४१॥
संयोगयोगपद्मांते पीठाय हृदयांतिमः । षड्विंशदक्षरः पीठमंत्रोऽनेनासनं दिशेत् ॥४२॥
मूर्ति संकल्प्य मूलेन तस्यामावाह्य पूजयेत् । आदौ चांगानि संपूज्य मंत्राणां केशरेषु च ॥४३॥
प्रागादिदिग्दले वासुदेवं संकर्षणं तथा । प्रद्युम्नमनिरुद्धं च शक्तीः कोणेष्वथार्चयेत् ॥४४॥
शांति श्रियं सरस्वत्या रतिं संपूजयेत्क्रमात् । हेमपीततमालेंद्रनीलाभाः पीतवाससः ॥४५॥
चतुर्भुजाः शंखचक्रगदांभोजधरा इमे । सितकांचनगोदुग्धदूर्वावर्णाश्च शक्तयः ॥४६॥
दलाग्रेषु चक्रशंखगदापंकजकौस्तुभान् । पूजयेन्मुसलं खड्गं वनमालां यथाक्रमात् ॥४७॥
रक्ताजपीतकनकश्यामकृष्णासितार्जुनान् । कुंकुमाभं समभ्यर्चेद्बहिरग्रे खगेश्वरम् ॥४८॥
पार्श्वयोः पूजयेत्पश्चाच्छंखपद्मनिधी क्रमात् । मुक्तामाणिक्यसंकाशौ पश्चिमे ध्वजमर्चयेत् ॥४९॥
रक्तं विघ्नं तथाग्नेये श्याममार्यं च राक्षसे । दुर्गां श्यामां वायुकोणे सेनान्यं पीतमैश्वरे ॥५०॥

को प्राप्त होता है । इस प्रकार जप करके विद्वान् पुरुष मधुराक्त कमलों द्वारा मन्त्रसंस्कृत अग्नि में दशांश होम करे । मण्डूक से लेकर परतत्त्व पर्यन्त सब का पीठ पर यत्नपूर्वक पूजन करे ॥३७-३९॥ विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशान तथा नवीं अनुग्रहा—ये नौ पीठशक्तियाँ हैं ॥४०॥ (इन सबका पूजन करना चाहिए)। इसके बाद 'ओं नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगपद्मपीठाय नमः' यह छत्तीस अक्षर का पीठमन्त्र है, इससे भगवान् को आसन देना चाहिए। मूल-मन्त्र से मूर्तिनिर्माण कर के उसमें भगवान् का आवाहन करके पूजा करे । पहले कमल के केसरों में मन्त्र सम्बन्धी छह अंगों का पूजन करना चाहिए। इसके बाद अष्टदल कमल के पूर्व आदि दलों में क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध का और आग्नेय आदि कोणों में क्रमशः उनकी शक्तियों का पूजन करे ॥४१-४४॥ उनके नाम इस प्रकार हैं—शान्ति, श्री, रति तथा सरस्वती । इनकी क्रमशः पूजा करनी चाहिए। वासुदेव की अंगकान्ति सुवर्ण के समान है। संकर्षण पीत वर्ण के हैं। प्रद्युम्न तमाल के समान श्याम और अनिरुद्ध इन्द्रनील मणि के सदृश हैं। ये सबके सब पीताम्बर धारण करते हैं। इनके चार भुजायें हैं। ये शंख, चक्र, गदा और कमल धारण करने वाले हैं। शान्ति का वर्ण श्वेत, श्री का वर्ण सुवर्ण-गौर, सरस्वती का रंग गोदुग्ध के समान उज्ज्वल तथा रति का वर्ण दूर्वादल के समान श्याम है। इस प्रकार ये सब शक्तियाँ हैं। कमल-दलों के अग्रभाग में चक्र, शंख, गदा, कमल, कौस्तुभमणि, मुसल, खड्ग और वनमाला का क्रमशः पूजन करे ॥४५-४७॥ चक्र का रंग लाल, शंख का रंग चन्द्रमा के समान श्वेत, गदा का पीला, कमल का सुवर्ण के समान, कौस्तुभ का श्याम, मुसल का काला, तलवार का श्वेत और वनमाला का उज्ज्वल है। इनके बाह्यभाग में भगवान् के सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हुए कुंकुम वर्ण वाले पक्षिराज गरुड़ का पूजन करे। तत्पश्चात् क्रमशः दक्षिण पार्श्व में शंख-निधि और वाम पार्श्व में पद्मनिधि की पूजा करे। इनका वर्ण क्रमशः मोती और माणिक्य के समान है। पश्चिम में ध्वज की पूजा करे ॥४८-४९॥ अग्निकोण में रक्तवर्ण के विघ्न (गणेश) का, नैर्ऋत्यकोण में श्याम वर्ण वाले आर्य का, वायव्यकोण में श्याम वर्ण दुर्गा का तथा ईशानकोण में पीतवर्ण के सेनानी का पूजन करना चाहिए। इनके बाह्यभाग में विद्वान् पुरुष इन्द्र आदि लोकपालों का उनके आयुधों सहित पूजन करे। जो इस प्रकार आवरणों सहित अविनाशी भगवान् विष्णु का पूजन करता है, वह इस

योऽर्चयेद्विष्णुमव्ययम् ॥५१॥
लोकेशानायुधैर्युक्तान्बहिः संपूजयेत्सुधीः । एवमावरणैर्युक्तं
भुक्त्वेह सकलान्भोगानंते विष्णुपदं व्रजेत् । क्षेत्रधान्यसुवर्णानां प्राप्तये धरणीं स्मरेत् ॥५२॥
देवीं दूर्वादलश्यामां दलानां शालिमंजरीम् । चिंतयेद्भारतीं देवीं वीणापुस्तकधारिणीम् ॥५३॥
दक्षिणे देवदेवस्य पूर्णचंद्रनिभाननाम् । क्षीराब्धिफेनपुंजाभे वसानां श्वेतवाससी ॥५४॥
भारत्या सहितं यो वै ध्यायेद्देवं परात्परम् । वेदवेदार्थतत्त्वज्ञो जायते सर्ववित्तमः ॥५५॥
नारसिंहमिवात्मानं देवं ध्यात्वातिभैरवम् । शस्त्रं संमंत्र्य मंत्रेण शत्रून्हत्वा निवर्तते ॥५६॥
नारसिंहेन बीजेन मंत्रं संयोज्य साधकः । शतमष्टोत्तरं जप्त्वा वामहस्ताभिमंत्रिताः ॥५७॥
पुनः पुनरपः सिंचेत्सर्पदष्टोऽपि जीवति । गारुडेन च संयोज्यपंचार्णेन जपेत्तदा ॥५८॥
निर्विषीकरणे ध्यायेद्विष्णुं गरुडवाहनम् । अशोकफलके तार्क्ष्यमालिख्याशोकसंहतौ ॥५९॥
अशोकपुष्पैःसंपूज्य भगवंतं तदग्रतः । जुहुयात्तानि पुष्पाणि त्रिसंध्यं सप्तपत्रकम् ॥६०॥
प्रत्यक्षो जायते पक्षी वरमिष्टं प्रयच्छति । गाणपत्येन संयोज्य जपेल्लक्षं पयोव्रतः ॥६१॥
महागणपतिं देवं प्रत्यक्षमिह पश्यति । वाणीबीजेन संयुक्तं षण्मासं योजयेन्नरः ॥६२॥
महाकविवरो भूत्वा मोहयेत्सकलं जगत् । हुत्वा गुडूचीशकलान्यर्द्धांगुलमितानि च ॥६३॥
दधिमध्वाज्ययुक्तानि मृत्युं जयति साधकः । शनैश्चरदिने सम्यक् स्पृष्ट्वाश्वत्थं च पाणिना ॥६४॥
जप्त्वा चाष्टशतं युद्धे ह्यपमृत्युं जयत्यसौ । पञ्चविंशतिधा जप्त्वा नित्यं प्रातः पिबेज्जलम् ॥६५॥

लोक में सम्पूर्ण भोगों का उपभोग करके अन्त में भगवान् विष्णु के धाम को जाता है ॥५०-५१½॥ खेत, धान्य और सुवर्ण की प्राप्ति के लिए धरणी देवी का चिन्तन करे। उनकी कान्ति दूर्वादल के समान श्याम है और वे अपने हाथों में धान की बाल लिए रहती हैं। देवाधिदेव भगवान् के दक्षिणभाग में पूर्णचन्द्रमा के समान मुखवाली वीणापुस्तकधारिणी सरस्वती देवी का चिन्तन करे। वे क्षीर सागर के फेनपुञ्ज की भाँति उज्ज्वल दो वस्त्र धारण करती हैं। जो सरस्वती देवी के साथ परात्पर भगवान् विष्णु का ध्यान करता है, वह वेद और वेदांगों का तत्त्वज्ञ तथा सर्वज्ञों में श्रेष्ठ होता है ॥५२-५५॥

आत्मा का अत्यन्त भयानक नरसिंहदेव के रूप में ध्यान करके शस्त्र को (नरसिंह) मन्त्र से अभिमंत्रित करने वाला व्यक्ति शत्रुओं को मारकर लौट आता है ॥५६॥ साधक नरसिंह बीज से मन्त्र को संयोजित कर के एक सौ आठ बार जप कर बायें हाथ से अभिमंत्रित किये गये जल से बार-बार सिञ्चन करे। ऐसा करने से साँप का डसा हुआ प्राणी भी जी जाता है। उस समय गरुड मन्त्र से जोड़कर पंचाक्षर मन्त्र का जप करे ॥५७-५८॥ विष रहित करने में गरुडवाहन (भगवान्) विष्णु का ध्यान करना चाहिए। अशोक के काष्ठ पर गरुड़ की मूर्ति लिखकर अशोकवन में अशोकपुष्पों से भगवान् का पूजन करके उनके आगे उन पुष्पों से तीनों संध्या सात-सात पत्ते हवन करे ॥५९-६०॥ ऐसा करने से गरुड़ प्रत्यक्ष होकर वर प्रदान करते हैं। नरसिंह मन्त्र को गणपति-मन्त्र से युक्त करके एक लाख जप करे और दुग्धाहार करके रहे। ऐसा करने से साधक महागणेश देव को प्रत्यक्ष देखता है। उक्त मन्त्र को वाणी-बीज से युक्त करके छह मास जप करने पर साधक महान् कवि होकर सम्पूर्ण जगत् को मोहित कर लेता है ॥६१-६२½॥ आधे अंगुल के बराबर गुडूच के टुकड़े काटकर दही, मधु और घी में बोरकर हवन करने से साधक मृत्यु को जीत लेता है। शनिवार के दिन हाथ से पीपलवृक्ष का भली भाँति स्पर्श करके आठ सौ बार मन्त्र जपने से युद्ध में साधक अपमृत्यु को जीत लेता है। नित्य प्रातःकाल पचीस बार इस मन्त्र को जपकर जल पीने से साधक सभी पापों से मुक्त होकर नीरोग तथा ज्ञानी होता है ॥६३-६५½॥ कलश

कुंभं संस्थाप्य विधिवदापूर्य शुद्धवारिणा ॥६६॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ज्ञानवान् रोगवर्जितः । कुंभं संस्थाप्य विधिवदापूर्य शुद्धवारिणा ॥६७॥
जप्त्वायुतं ततस्तेनाभिषेकःसर्वरोगनुत् । चंद्रसूर्योपरागे तु ह्यु पोष्याष्टसहस्रकम् ॥६८॥
स्पृष्ट्वा ब्राह्मीघृतं जप्त्वा पिबेत्साधकसत्तमः । मेधां कवित्वं वाक्सिद्धिं लभते नात्र संशयः ॥६९॥
जुहुयादयुतं बिल्वैर्महाधनपतिर्भवेत् । नारायणस्य मन्त्रोऽयं सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः ॥७०॥
आलयः सर्वसिद्धीनां कथितस्तव नारद । नारायणाय शब्दांते विद्महे पदमीरयेत् ॥७१॥
वासुदेवपदं ङेंतं धीमहीति ततो वदेत् । तन्नो विष्णुः प्रचोवर्णान्संवदेच्चोदयादिति ॥७२॥
एषोक्ता विष्णुगायत्री सर्वपापप्रणाशिनी । तारो हृद्भगवान् ङेंतो वासुदेवाय कीर्तितः ॥७३॥
द्वादशार्णो महामन्त्रो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः । स्त्रीशूद्राणां वितारोऽयं सतारस्तु द्विजन्मनाम् ॥७४॥
प्रजापतिर्मुनिश्चास्य गायत्री छन्द ईरितः । देवता वासुदेवस्तु बीजं शक्तिश्च 'वश्च हृत् ॥७५॥
चन्द्राक्षिवेदपञ्चार्णैः समस्तेनांगकल्पनम् । मूर्ध्नि भाले दृशोरास्ये गले दोर्हृदये पुनः ॥७६॥
कुक्षौ नाभौ ध्वजे जानुद्वये पादद्वये तथा । न्यसेत्क्रमान् मन्त्रवर्णान्सृष्टिन्यासोऽयमीरितः ॥७७॥
हृदादिमस्तकांतं तु स्थितिन्यासं प्रचक्षते । पादादारभ्य मूर्द्धान्तं न्यासं संहारकं विदुः ॥७८॥
तत्त्वन्यासं ततः कुर्यात्सर्वतंत्रेषु गोपितम् । जीवं प्राणं तथा चित्तं हृत्पद्मं सूर्यमण्डलम् ॥७९॥
चन्द्राग्निमण्डले चैव वासुदेवं ततः परम् । संकर्षणं च प्रद्युम्नमनिरुद्धं ततः परम् ॥८०॥
नारायणं चक्रमतस्तत्त्वानि द्वादशैव तु । मूलार्णहृत्परायाद्यमात्मने हृदयांतिमम् ।

उस जल से अभिषेक करने पर सब रोग दूर हो जाते हैं। चन्द्र-सूर्य-ग्रहणों में उपवास करके ब्राह्मीघृत का स्पर्श करने के उपरान्त आठ हजार बार मन्त्र का जप करे। अनन्तर श्रेष्ठ साधक उस घृत को पी ले। ऐसा करने से मेधा (धारणशक्ति), कवित्वशक्ति तथा वाक्सिद्धि प्राप्त होती है, इसमें सन्देह नहीं ॥६६-६८॥ यह नारायण मन्त्र सब मन्त्रों में उत्तम से उत्तम है। नारद! यह सम्पूर्ण सिद्धियों का घर है। अतः मैंने तुम्हें इसका उपदेश किया है। 'नारायणाय' पद के अन्त में 'विद्महे' पद का उच्चारण करे फिर 'ङे' विभक्त्यन्त 'वासुदेव' पद (वासुदेवाय) का उच्चारण करे। उसके बाद 'धीमहि' पद बोले। अन्त में 'तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्' इन अक्षरों का उच्चारण करे। यह (ओं नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्) विष्णुगायत्री बतायी गई है, जो सब पापों का नाश करने वाली है। तार (ओं), हृदय (नमः), भगवत् शब्द का चतुर्थी विभक्ति में एकवचनान्त रूप (भगवते) तथा (वासुदेवाय) यह द्वादशाक्षर (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) महामन्त्र कहा गया है, जो भोग-मोक्ष देने वाला है। स्त्री और शूद्रों को बिना प्रणव के यह मन्त्र जपना चाहिए और द्विजातियों के लिए प्रणव सहित इसके जपने का विधान है ॥६९-७३॥ इस मन्त्र के प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, वासुदेव देवताओं, बीज और नमः शक्ति है ॥७४॥ इस मन्त्र के एक, दो, चार और पाँच अक्षरों तथा सम्पूर्ण मन्त्र द्वारा पञ्चांग न्यास करना चाहिए। मस्तक, ललाट, नेत्र, मुख, गला, बाँह, हृदय, पेट, नाभि, लिंग, दोनों घुटनों तथा दोनों चरणों में क्रमशः मन्त्रवर्णों का न्यास करे—यह सृष्टिन्यास कहा गया है। हृदय से लेकर मस्तक तक न्यास करना स्थितिन्यास कहलाता है। पैर से लेकर मस्तक तक न्यास करने को संहारक न्यास कहते हैं। तदनन्तर तत्त्वन्यास करना चाहिए, जो सब तन्त्रों में गुप्त है। जीव, प्राण, चित्त, हृदयकमल, सूर्यमण्डल, अग्निमण्डल, चन्द्रमण्डल, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और नारायण—ये बारह तत्त्व हैं ॥७५-७९½॥ मूल-मन्त्र के अक्षरों के उच्चारण के साथ 'पराय नमः' और 'हृदयाय नमः' कह अपने नाम का उच्चारण करे और तत्पश्चात् मस्तक आदि में क्रमशः न्यास करे। यहाँ भी पूर्वोक्त ध्यान ही करना चाहिए।

तत्त्वे नामसमुच्चार्य्यं न्यसेन्मूर्द्धादिषु क्रमात् । पूर्ववतं ध्यानमत्रापि भानुलक्षजपो मनोः ॥८१॥
तद्दशांशं तिलैराज्यलोलितैर्हवनं चरेत् । पीठे पुर्वोदिते मन्त्री मूर्ति संकल्प्य मूलतः ॥८२॥
तस्यामावाह्य देवेशं वासुदेवं प्रपूजयेत् । अङ्गानि पूर्वमभ्यचर्य वासुदेवादिकास्ततः ॥८३॥
शांत्यादिशक्तयः पुज्याः प्राग्वद्दिक्षु विदिक्षु च । तृतीयावरणे पूज्याः प्रोक्ता द्वादश मूर्तयः ॥८४॥
इंद्राद्यानायुधैर्युक्तान् पूजयेद्धरणीगृहे । एवमावरणैरिष्ट्वा पञ्चभिर्विष्णुमव्ययम् ॥८५॥
प्राप्नुयात्सकलानर्थानन्ते विष्णुपदे व्रजेत् । पुरुषोत्तमसंज्ञस्य विष्णोर्भेदचतुष्टयम् ॥८६॥
त्रैलोक्यमोहनस्तेषां प्रथमः परिकीर्तितः । श्रीकरश्च हृषीकेशः कृष्णश्चात्र चतुर्थकः ॥८७॥
तारः कामो रमा पश्चात् ङेंतः स्यात्पुरुषोत्तमः । वर्मास्त्राण्यग्निप्रियांतो मन्त्रो वह्नीन्दुवर्णवान् ॥८८॥
ब्रह्मा मुनिः स्याद्गायत्री छन्दः प्रोक्तोऽथ देवता । पुरुषोत्तमसंज्ञोऽत्र बीजशक्तीस्मरेदिरे ॥८९॥
भूचंद्रैकरसाक्ष्यक्षिमंत्रवर्णविभागतः । कृत्वांगानि ततो ध्यायेद्विधिवत्पुरुषोत्तमम् ॥९०॥
समुद्यदादित्यनिभं शंखचक्रगदांबुजैः । लसत्करं पीतवस्त्रं स्मरेच्छ्रीपुरुषोत्तमम् ॥९१॥
महारत्नौघखचितस्फुरत्तोरणमंडपे । मौक्तिकौघशमदमविराजितवितानके ॥९२॥
नृत्यद्देवांगनावृंदक्वणत्किंकिणिनूपुरे । लसन्माणिक्यवेद्यां तु दीप्तार्कायुततेजसि ॥९३॥
वृंदारकव्रातकिरीटाग्ररत्नाभिर्चाचिते । नवलक्षं जपेन्मंत्रं जुहुयात्तद्दशांशतः ॥९४॥
उत्फुल्लैः कमलैः पीठे पूर्वोक्ते वैष्णवेऽर्चयेत् । एवमाराध्य देवेशं प्राप्नोति महतीं श्रियम् ॥९५॥

इसके बाद बारह लाख मन्त्र जप करे और उसका दशांश घृताक्त तिल से हवन करे। पूर्ववर्णित पीठ पर साधक मूर्ति की स्थापना कर उसमें मूलमन्त्र से देवों के स्वामी वासुदेव का आवाहन करके पूजन करे। पहले अङ्गदेवताओं की पूजा करे। तदनन्तर वासुदेवादिक तथा शान्त्यादिक शक्तियों की पूजा पूर्ववत् दिशाओं एवं दिशा-कोणों में करे। तीसरे आवरण में पूर्वोक्त बारह मूर्तियों की पूजा करनी चाहिए। भू-गृह में आयुध समेत इन्द्र आदि देवों की पूजा करे। इस प्रकार पांच आवरणों से अविनाशी विष्णु का पूजन करके मनुष्य सकल पदार्थों को प्राप्त करता है और अन्त में विष्णुलोक को जाता है ॥८०-८५½॥

पुरुषोत्तम नामधारी विष्णु के चार भेद हैं। उनमें त्रैलोक्य-मोहन पहला (भेद) है, श्रीकर दूसरा (भेद) हृषीकेश तीसरा (भेद) और कृष्ण चौथा (भेद) है। (इसका मन्त्र यह है—) ओं रं क्लीं श्रीं पुरुषोत्तमाय हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र के मुनि ब्रह्मा हैं, छंद गायत्री है, देवता पुरुषोत्तम हैं और बीज तथा शक्ति इरा है। भू (एक), चन्द्र (एक), एक, रस (छह), अक्षि (दो) और अक्षि (दो)—इन मन्त्र-वर्णो से अङ्गों का विभाग करके विधि-पूर्वक पुरुषोत्तम का ध्यान करे। उगते हुए सूर्य के समान, हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए तथा पीत वस्त्र पहने हुए पुरुषोत्तम का स्मरण करे। वे बहुमूल्यक रत्न-समूह से जड़े हुए तथा चमकते हुए तोरणों (बन्दनवारों) से युक्त मण्डल में, जहां मोतियों से शोभायमान चन्दवे लगे हुए हैं और जहां नृत्य करती हुई देवांगनाओं के घुंघरू के शब्द हो रहे हैं, मणियों के चबूतरे पर विराजमान हैं; दस हजार सूर्य के समान उनका तेज है; और देव-समूह के मुकुटों के अग्रभाग में लगे हुए रत्न से (उनके चरणारविन्द) शोभित हैं। ध्यानोपरान्त) नौ लाख मन्त्र-जप करे और उसका दशांश हवन करे, फिर पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर लिखे हुए कमलों से वासुदेव की अर्चना करे। इस प्रकार देवेश (वासुदेव) की आराधना करने से मनुष्य को महान् श्री, पुत्र, पौत्र, यश, कांति, भुक्ति तथा मुक्ति की प्राप्ति होती है। ॥८६—९५½॥

पुत्रान्पौत्रान्यशःकांतिं भुक्तिं मुक्तिं च विंदति । उत्तिष्ठेति पदं पश्चाच्छ्रीकराग्निप्रियांतिमः ॥९६॥
अष्टार्णोऽस्य मुनिर्व्यासः पंक्तिश्छंद उदाहृतम् । श्रीकाराख्योहरिः प्रोक्तो देवता सकलेष्टदः ॥९७॥
भीषयद्वितयं हृत्स्यात् त्रासयद्वितयं शिरः । शिखा प्रमर्दयद्वंद्वं वर्म प्रध्वंसयद्वयम् ॥९८॥
अस्त्रं रक्षद्वयं सर्वे हुमंताः समुदीरिताः । मस्तके नेत्रयोः कंठे हृदये नाभिदेशके ॥९९॥
ऊरुजंघांघ्रियुग्मेषु मंत्रवर्णान्क्रमान्न्यसेत् । ततः पुरुषसूक्तोक्तमंत्रैर्न्यासं समाचरेत् ॥१००॥
मुखे न्यसेद्ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदिमं मनुम् । बाहुयुग्मे तथा बाहूराजन्य इति विन्यसेत् ॥१०१॥
ऊरू तदस्य यद्वैश्य इममूरुद्वये न्यसेत् । न्यसेत्पादद्वये मंत्री पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१०२॥
चक्रं शंखं गदां पद्मं कराग्रेष्वथ विन्यसेत् । एवं न्यासविधिं कृत्वा ध्यायेत्पूर्वोक्तमण्डपे ॥१०३॥
अरुणाब्जासनस्थस्य ताक्ष्यंस्योपरि संस्थितम् । पूर्वोक्तरूपिणं देवं श्रीकरं लोकमोहनम् ॥१०४॥
ध्यात्वैवं पूजयेदष्टलक्षं मंत्री दशांशतः । रक्तांबुजैः समिद्भिश्च बिल्वक्षीरिद्रुमोद्भवैः ॥१०५॥
पयोऽन्नैः सर्पिषा हुत्वा प्रत्येकं सुसमाहितः । अश्वत्थोदुंबरप्लक्षवटाः क्षीरिद्रुमाः स्मृताः ॥१०६॥
पूजयेद्वैष्णवे पीठे मूर्तिं संकल्प्य मूलतः । अंगावरणदिक्पालहेतिभिः सहितं विभुम् ॥१०७॥
इत्थं सिद्धे मनौ मंत्री प्रयोगान्पूर्ववच्चरेत् । तारो हृद्भगवान् ङेंतो वराहेति ततः परम् ॥१०८॥
रूपाय भूर्भुवः स्वः स्याल्लोहितकामिका च ये । भूपतित्वं च मे देहि ददापय शुचिप्रिया ॥१०९॥
रामाग्निवर्णो मंत्रोऽयं भार्गवोऽस्य मुनिर्मतः । छन्दोऽनुष्टुब्देवतादिवराहः समुदीरितः ॥११०॥
एकदंष्ट्राय हृदयं व्योमोल्काय शिरः स्मृतम् । शिखा तेजोऽधिपतये विश्वरूपाय वर्म च ॥१११॥
महादंष्ट्राय चास्त्रं स्यात्पञ्चांगमिति कल्पयेत् । अथवा गिरिवद्रससबाणैर्वसुभिरक्षरैः ॥११२॥

'उत्तिष्ठ श्रीकर स्वाहा'—यह अष्टाक्षर मन्त्र है। इसके मुनि व्यास, छन्द पंक्ति और देवता सकल कामनादायक श्रीकर हरि हैं। 'भीषय......समुदीरिताः' यह मन्त्र है। इसके अक्षरों का क्रमशः मस्तक, नेत्र, कंठ, हृदय, नाभि, ऊरु, जंघा तथा दोनों चरणों में न्यास करे। तत्पश्चात् पुरुषसूक्त-मन्त्रों से न्यास करे। 'ब्राह्मणो ऽस्य मुखमासीत्' इस मन्त्र का मुख में न्यास करे। 'बाहू राजन्यः' इस मन्त्र का दोनों भुजाओं में न्यास करे। 'ऊरू तदस्य यद्वैश्यः' इस मन्त्र का न्यास दोनों ऊरुओं में करे। और 'पद्भ्यां शूद्रो अजायत' इस मन्त्र का न्यास दोनों चरणों में करे। हाथों के अग्रभाग में चक्र, शंख, गदा और पद्म का न्यास करे ॥९६-१०२½॥ इस प्रकार न्यास करके पूर्वोक्त मण्डप में गरुड़ पर लाल रंग के आसन पर विराजमान पूर्वोक्त रूप वाले लोक-मोहन श्रीकर देव का ध्यान करे। ध्यानोपरान्त एक लाख मंत्र-जप करे। जप के दशांश लाल कमलों, बिल्व और क्षीरी (दूध वाले) वृक्षों की समिधाओं, खीर तथा घी से मन को एकाग्रतापूर्वक हवन करे। पीपल, गूलर, पाकर तथा बरगद क्षीरी वृक्ष कहलाते हैं ॥१०३-१०६॥ वैष्णव पीठ पर मूलमंत्र से मूर्ति की स्थापना करके अङ्गदेवता, आवरणदेवता, दिक्पाल और उनके आयुधों के साथ भगवान् की पूजा करे। इस प्रकार मंत्र की सिद्धि हो जाने पर साधक पूर्ववत् (मंत्र का) प्रयोग करे। 'तारो हृत्.......शुचिप्रिया' अर्थात् 'ओं नमो भगवते वराहाय रूपाय भूर्भुवः स्वः स्यात्। भूपतित्वं च मे देहि ददापय स्वाहा'—यह तैंतीस अक्षरों का मन्त्र है। इसके ऋषि भार्गव हैं, छन्द अनुष्टुप् है और देवता वराह हैं। एकदंष्ट्र के लिए हृदय, व्योमोल्क के लिए शिर, तेजोधिपति के लिए शिखा, विश्वरूप के लिए वर्म और महादंष्ट्र के लिए अस्त्र हो—यह कहकर पंचांगन्यास करे। अथवा इस श्रेष्ठ मन्त्र के विभाग—७,६,७,५ तथा ८ अक्षरों से पंचांग न्यास करे ॥१०७-११२½॥ तदनन्तर आदिवराह

विभक्तैर्मंत्रवर्यस्य पञ्चागांनि प्रकल्पयेत् । ततो ध्यायेदनेकार्कनिभमादिवराहकम् ॥११३॥
आं ह्रीं स्वर्णनिभं जान्वोरधो नाभेः सितप्रभम् । इष्टाभीतिगदाशंखचक्रशक्त्यसिखेटकान् ॥११४॥
दधतं च करैर्दंष्ट्राग्रलसद्धरणिं स्मरेत् । एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं दशांशं सरसीरुहैः ॥११५॥
मध्वक्तैर्जुहुयात्पीठे पूर्वोक्ते वैष्णवे यजेत् । मूलेन मूर्ति सङ्कल्प्य तस्यां सम्पूजयेद्विभुम् ॥११६॥
अङ्गावरणदिक्पालहेतिर्धत्रप्रसिद्धये । जपादेवाददीत दद्याद्धनं धान्यं महीं श्रियम् ॥११७॥
सिहार्के सितपक्षस्याष्टम्यां गव्येषु पञ्चसु । शिलां शुद्धां विनिक्षिप्य स्पृष्ट्वा तामयुतं जपेत् ॥११८॥
उदङ्मुखस्ततो मंत्री तां शिलां निखनेद्भुवि । भूतप्रेताहिचौरादिकृतां बाधां निवारयेत् ॥११९॥
प्रातर्भृगुदिने साध्यभूतलान्मृदमाहरेत् । मंत्रितां मूलमंत्रेण विभजेत्तां त्रिधा पुनः ॥१२०॥
चुल्ल्यामेकं समालिप्याप्यपरं पाकभाजने । गोदुग्धे परमालोड्य शोधितांस्तंडुलान् क्षिपेत् ॥१२१॥
सम्यक् शुद्धे शुचिः केशे जपन्मंत्रं पचेच्चरुम् । अवतार्य चरुं पश्चाद्वह्नौ देयं यथाविधि ॥१२२॥
सम्पूज्य धूपदीपाद्यैः पश्चादाज्यप्लुतं चरुम् । जुहुयात्संस्कृते वह्नौ अष्टोत्तरशतं सुधीः ॥१२३॥
एवं प्रजुहुयान्मंत्री कविवारेषु सप्तसु । विरोधो नश्यति क्षेत्रे शत्रुचौराद्युपद्रवाः ॥१२४॥
भानूदयेऽयारवारे साध्यक्षेत्रान्मृदं पुनः । आदाय पूर्वविधिना हविरापाद्य पूर्ववत् ॥१२५॥
जुहुयादेधिते वह्नौ पूर्वसंख्याक्रमादरात् । एवं स सप्तारवारेषु जुहुयात्क्षेत्रसिद्धये ॥१२६॥
जुहुयाल्लक्षसंख्याकं गव्यैश्चैव सपायसैः । अभीष्टभूम्याधिपत्यं लभते नात्र संशयः ॥१२७॥

का ध्यान करे कि वे अनेको सूर्यों के समान (चमक रहे) हैं, उनका पैर सोने के समान है, नाभि और घुटनों के
बीच का भाग उज्ज्वल है, हाथो में इष्ट, अभय, गदा, शंख, शक्ति, तलवार तथा खेटक नामक आयुधों को धारण
किये हुए हैं और उनकी दंष्ट्रा के अग्रभाग पर पृथ्वी शोभायमान हो रही है इस प्रकार ध्यान करके एक लाख मंत्र-जप
करे, उसका दशांश मधु मिले हुए कमलों से हवन करे। तदनन्तर पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर मूल मन्त्र से मूर्ति की
स्थापना कर उसमें भगवान् की पूजा करे ॥११३-११६॥ अग्रदेवता, आवरणदेवता, दिक्पाल तथा उनके आयुधों
की भी पूजा करे। तत्पश्चात् मन्त्र का जप करते ही साधक को भूमि, धन, धान्य, राज्य तथा लक्ष्मी की प्राप्ति
होने लगती है। सूर्य के सिह राशि में जाने पर शुक्लपक्ष को अष्टमी तिथि में शिला को पंचगव्य में डालकर
उसका स्पर्श करके दस हजार मन्त्र-जप करे। पश्चात् साधक उत्तर मुँह होकर उस शिला को भूमि में गाड़ दे।
ऐसा करने से भूत, प्रेत, साँप, चोर आदि की बाधा शान्त हो जाती है ॥११७-११९॥ शुक्रवार के दिन प्रातःकाल
साध्य (जहाँ साधना को जाय) भूमि से मृत्तिका ले आये। मूल मन्त्र पढ़कर उस मृत्तिका का तीन भाग करे।
एक भाग को पात्र के ऊपर लेप दे और दूसरे भाग को पाकपात्र में गोदुग्ध और चावल के साथ छोड़ दे। पवित्र
होकर मन्त्र-जप करते हुए चरु को पकाये। पश्चात् चरु को उतार कर पश्चात् विधिपूर्वक उसे अग्नि में
छोड़े। धूप-दीप आदि से पूजन करने के उपरान्त घृताक्त चरु से संस्कार युक्त अग्नि में एक सौ आठ बार हवन
करे ॥१२०-१२३॥ इस प्रकार साधक सात शुक्रवार को हवन करे। ऐसा करने से उसका विरोध नष्ट हो जाता
है (अर्थात् कोई उसका विरोध नहीं करता) और क्षेत्र में शत्रु, चोर आदि के उपद्रव शान्त हो जाते हैं। मङ्गल के
दिन सूर्योदय होने पर साध्य क्षेत्र से मृत्तिका लाकर पूर्वोक्त प्रकार से हवनसामग्री तैयार करके प्रज्वलित अग्नि
में पूर्वोक्त संख्या के अनुसार आदरपूर्वक आहुति डाले। इस प्रकार सात मङ्गलवार को हवन करने से क्षेत्र-सिद्धि
होती है। गोघृत मिले हुए खीर से एक लाख बार आहुति डालने से अभीष्ट भूमि का स्वामित्व प्राप्त होता है, इसमें

उद्यद्दोः परिघं दिव्यं सितदंष्ट्राग्रभूधरम् । स्वर्णाभं पार्थिवे पीते मंडले सुसमाहितः ॥१२८॥
ध्यात्वाप्नोति महीं रम्यां वराहस्य प्रसादतः । वारुणे मण्डले ध्यायेद्वाराहं हिमसन्निभम् ॥१२९॥
महोपद्रवशांतिः स्यात्साधकस्य न संशयः । वश्यार्थं च सदा ध्यायेद्वह्न्याभं वह्निमण्डले ॥१३०॥
ध्यायेदेवं रिपूच्चाटे कृष्णाभं वायुमण्डले । व्योममण्डलगतं स्वच्छं वाराहं सर्वसिद्धिदम् ॥१३१॥
शत्रुभूतग्रहक्ष्वेडामयपीडादिशांतये । भृग्वर्घीशयुतं व्योमबिंदुभूषितमस्तकम् ॥१३२॥
एकाक्षरो वराहस्य मन्त्रः कल्पद्रुमोऽपरः । पूजाद्यर्घ्यादिकं सर्वमस्यां पूर्वोक्तवच्चरेत् ॥१३३॥
सवामकर्णानिद्रास्याद्वराहाय हृदंतिमः । ताराद्यो वसुवर्णोऽयं सर्वैश्वर्यप्रदायकः ॥१३४॥
ब्रह्मा मुनिः स्याद्गायत्री छन्दो वाराहसंज्ञकः । देवश्चंद्रैर्द्वब्धिनेत्रैः सर्वेणांगक्रिया मता ॥१३५॥
ध्यानपूजाप्रयोगादि प्राग्वदस्यापि कल्पयेत् । प्रणवादौ च ङेन्तं च भगवतीति पदं ततः ॥
॥१३६॥
धरणिद्वितयं पश्चाद्धरेर्द्वयमुदीरयेत् । ॥१३७॥
एकोनविंशत्यर्णाढ्यो मन्त्रो वह्निप्रियांतिमः । वराहोऽस्य मुनिश्छन्दो गायत्री निवृदादिका ॥१३८॥
देवता धरणी बीजं तारःशक्तिर्वसुप्रिया । रामवेदाग्निबाणाक्षिनेत्रार्णैरंगकल्पनम् ॥१३९॥
श्यामां चित्रविभूषाढ्यां पद्मस्थां तुंगसुस्तनीम् । नीलांबुजद्वयं शालिमंजरीं च शुकं करैः ॥१४०॥
दधतीं चित्रवसनां धरां भगवतीं स्मरेत् । एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं दशांशं पायसेन तु ॥१४१॥
साज्येन जुहुयान्मन्त्री विष्णोः पीठे समर्चयेत् । मूर्ति संकल्प्य मूलेन तस्यां वसुमतीं यजेत् ॥१४२॥
अङ्गानि पूर्वमाराध्य भूवह्निजलमारुतान् । विदिक्पत्रेषु च सम्पूज्य कोणपत्रेषु तत्कलाः ।

सन्देह नहीं ॥१२४-१२७॥ पीतवर्ण पृथ्वी-मण्डल पर भुजा उठाकर परिघ (लोहगदा) नामक अस्त्र तथा बड़े दाँत के अग्रभाग पर पृथ्वी को धारण करने वाले और सुवर्ण जैसी कान्ति वाले वराह भगवान् का ध्यान कर के उनकी कृपा से सुन्दर पृथ्वी की प्राप्ति होती है। वरुण-मण्डल में सुवर्ण जैसी कान्ति वाले वाराह भगवान् का ध्यान करने से साधक की महान् विघ्न-बाधायें शान्त हो जाती हैं, इसमें संशय नहीं। वशीकरण-कार्य के लिए अग्निमण्डल में अग्निसदृश कान्ति वाले वाराह का ध्यान करना चाहिए। इसी तरह शत्रु का उच्चाटन करने के लिए वायुमण्डल में कृष्णकान्ति वाराह का ध्यान करना चाहिए। मण्डल से भिन्न स्थान में अवस्थित धवल वाराह सर्वसिद्धिदायक हैं। उनका ध्यान करने से शत्रु, भूत, ग्रह, युद्ध आदि कृत पीड़ा शान्त होती है ॥१२८-१३१½॥

'भृग्वर्घीयुत'......यह एकाक्षर वाराह-मंत्र दूसरा कल्पद्रुम है (अर्थात् कल्पवृक्ष के समान अभीष्टफलदायक है) पूर्वोक्त प्रकार से इसकी पूजा-अर्चना आदि सब कुछ करना चाहिए। सवामकर्ण........अर्थात् 'ओं भूः वाराहाय नमः' यह अष्टाक्षर वाराहमंत्र सकल ऐश्वर्यदायक है। ब्रह्मा इसके ऋषि हैं, गायत्री छंद है और वाराह देवता है ॥१३२-१३४½॥ १,१,४ और दो मंत्राक्षरों से अंगन्यास करना चाहिए। इस मंत्र का ध्यान, पूजा, प्रयोग आदि पूर्ववत् करना चाहिए। प्रणवादौ.......अर्थात् 'ओं भगवत्यै धरण्यै धरण्यै हरये हरये स्वाहा'—यह उन्नीस अक्षरों का मंत्र है। इस मंत्र के मुनि वाराह हैं, छंद निवृत् आदिक गायत्री है, देवता पृथ्वी है और शक्ति स्वाहा है। ३,४,३,५ दो एवं दो मंत्राक्षरों से इसका अंगन्यास करना चाहिए। तत्पश्चात् युवती नाना प्रकार के आभूषणों से सम्पन्न कमलों पर अवस्थित, उन्नत एवं सुन्दर स्तनों वाली, हाथों में दो नील कमल, धान की बाल तथा तोता धारण किये हुई और रंगबिरंगे वस्त्र पहने हुई भगवती पृथ्वी का ध्यान करे। ध्यानोपरान्त एक लाख मंत्र-जप करे और उसका दशांश घी सहित खीर से हवन करे। अनन्तर साधक विष्णुपीठ पर पृथ्वी की अर्चना करे। मूलमंत्र से प्रतिमा की स्थापना कर उसमें पृथ्वी की पूजा करे। पहले अंगदेवताओं की आराधना करके दिशाओं में भूमि, अग्नि, जल तथा वायु की और विदिशाओं में उनकी कलाओं की पूजा करे। निवृत्ति, प्रतिष्ठा

निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्यानां तैश्च तत्कलाः । इंद्राद्यानपि वज्रादीन्पूजयेत्तदनंतरम् ॥१४३॥
एवं सिद्धे मनौ मंत्री साधयेदिष्टमात्मनः । धरणीं प्रभजन्नेवं पशुरत्नांबरादिभिः ॥१४४॥
धरण्या वल्लभः स स्यात्सुखी जीवेच्छतं समाः । त्रैलोक्यमोहनो मंत्रो जगन्नाथस्य कीर्त्यते ॥१४५॥
तारः कामो रमा बीजं हृदंते पुरुषोत्तमः । श्रीकंठः प्रतिरूपांते लक्ष्मीति च निवासि च ॥१४६॥
सकलांते जगत्पश्चात्क्षोभणेति पदं वदेत् । सर्वस्त्रीहृदयांते तु विदारणपदं वदेत् ॥१४७॥
ततस्त्रिभुवनांतं तु मदोन्मादकरेति च । सुरासुरांते मनुजसुंदरीजनवर्णतः ॥१४८॥
मनांसि तापयद्वंद्वं दीपयद्वितयं ततः । शोषयद्वितयं पश्चान्मारयद्वितयं ततः ॥१४९॥
स्तंभयद्वितयं भूयो मोहयद्वितयं ततः । द्रावयद्वितयं तावदाकर्षययुगं ततः ॥१५०॥
समस्तपरमो येन सुभगेन च संयुतम् । सर्वसौभाग्यशब्दांते करसर्वपदं वदेत् ॥१५१॥
कामप्रदादमुन्ब्रह्मासेंदुहृंनुयुगं ततः । चक्रेण गदया पश्चात्खड्गेन तदनंतरम् ॥१५२॥
सर्वबाणैर्भेदियुगं पाशेनांते कटद्वयम् । अंकुशेनेति संप्रोच्य ताडयद्वितयं पुनः ॥१५३॥
कुरुशब्दद्वयमथो किं तिष्ठसि पदं वदेत् । तावद्यावत्पदस्यांते समाहितमनंतरम् ॥
॥१५४॥
ततो मे सिद्धिराभास्यमवमन्ते च वर्म फट्
हृदंतोऽयं महामंत्रो द्विशतार्णः समीरितः । जैमिनिर्मुनिरस्योक्तश्छंदश्चामितमीरितम् ॥१५५॥
देवता जगतां मोहे जगन्नाथः प्रकीर्तितः । कामो बीजं रमा शक्तिर्विनियोगोऽखिलाप्तये ॥१५६॥
पुरुषोत्तमत्रिभुवनोन्मादकांतेऽग्निवर्मं च । हृदयं कीर्तितं पश्चाज्जगत्क्षोभणशब्दतः ॥१५७॥
लक्ष्मीदयितवर्मान्तः शिरः प्रोक्तं शिखा पुनः । मन्मथो तमशब्दांते मंगजे पदमीरयेत् ॥१५८॥
कामदायेति हुं प्रोच्य न्यसेद्वर्म ततः परम् । परमांते भृगुकर्णाभ्यां च सर्वं पदं ततः ॥१५९॥
सौभाग्यकरवर्मांते कवचं परिकीर्तितम् । सुरासुरांते मनुजसुंदरीति पदं वदेत् ॥१६०॥
हृदयांते विदा पश्चाद्रणसर्वपदं वदेत् । ततः प्रहरणधरसर्वकामुकतत्पवम् ॥१६१॥

और विद्या उनकी कलायें हैं। अनन्तर इन्द्र आदि देवों और वज्र आदि आयुधों का पूजन करे। इस प्रकार मंत्र सिद्ध हो जाने पर साधक की अपनी कामना सफल होती है। जो पशु, रत्न तथा वस्त्र आदि से इस प्रकार पृथ्वी को आराधना करता है, वह पृथ्वी का स्वामी तथा सुखी होकर सौ वर्षों तक जीवित रहता है ॥१३५-१४४½॥

अब मैं जगन्नाथ का त्रैलोक्यमोहनो मंत्र बता रहा हूँ—'तार (ओं), काम (क्लीं), रमा (श्रीं) पुरुषोत्तमाय नमः' श्रीकण्ठप्रतिरूप, लक्ष्मीनिवास, सकलजगत्क्षोभण, सर्वस्त्रीहृदयविदारण, त्रिभुवनमदोन्मादकर, सुरासुरमनुजसुन्दरीवर्णतः मनांसि तापय तापय शोषय शोषय, मारय, मारय स्तम्भय स्तम्भय, भूयो मोहय-मोहय, द्रावय द्रावय, आकर्षय आकर्षय, सर्वसौभाग्यकर, कामप्रद्र अदमु ब्रह्मा हनु हनु चक्रेण, गदया, खड्गेन, सर्वबाणैः भेदय भेदय, पाशेन अंकुशेन कटद्वयं ताडय ताडय, शब्दं कुरु शब्दं कुरु, किं तिष्ठसि तावत् यावत् समाहितम्, मे सिद्धिराभास्यभवम् हुं फट् नमः'। यह दो सौ अक्षरों का महामंत्र कहा गया है ॥१४५-१५४½॥ इस मंत्र के मुनि जैमिनी हैं, छंद अमित है, देवता जगन्नाथ हैं, क्लीं बीज है, श्रीं शक्ति है और अखिल वस्तु की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग किया जाता है। पुरुषोत्तमत्रिभुवनोन्मादक अग्निवर्म—यह हृदयमंत्र कहा गया है। जगत्क्षोभण लक्ष्मीदयितवर्म—यह शिरो मंत्र कहा गया है। मन्मथः—यह शिखा-मंत्र है। इसके अन्त में 'मंगजे' पद का उच्चारण करे। फिर 'कामदाय हुम्' कहकर कवच का न्यास करे। परमभृगुकर्णसर्वसौभाग्यकरवर्म—यह कवच मंत्र कहा गया है। इसके अन्त में सुरासुरमनुजसुन्दरीहृदयवित्—और पश्चात् रणसर्वप्रहरणधरसर्वकामुक हन हन हृदयं

ततः ॥१६२॥
हनयुग्मं च हृदयं बंधनानि ततो वदेत् । आकर्षयद्वयं पश्चान्महाबलपदं ततः ॥१६२॥
वर्म चास्त्रं समाख्यातं नेत्रं स्यात्तदनंतरम् । वदेत्त्रिभुवनं पश्चाच्चर सर्वजनेति च ॥१६३॥
मनांसि हरयुग्मांते दारयद्वितयं च मे । वशमानय वमन्ते नेत्रमंत्रः समीरितः ॥१६४॥
षडंगमंत्रास्ताराद्याः फटनमोंताः प्रकीर्तिताः । तारस्त्रैलोक्यशब्दांते मोहनेति पदं वदेत् ॥१६५॥
हृषीकेशेति संप्रोच्याप्रतिरूपादिशब्दतः । मन्मथानंतरं सर्वस्त्रीणां हृदयमीरयेत् ॥१६६॥
आकर्षणपदा गच्छेदागच्छहृदयांतिमः । अनेन व्यापकं कृत्वा जगन्नाथं स्मरेत् सुधीः ॥१६७॥
क्षीराब्धेस्तु तटे रम्यं सुरद्रुमलतांचितम् । उद्यदर्कांशुजालाभं स्वधाम्नोज्वालदिङ्मुखम् ॥१६८॥
प्रसूनावलिसौरभ्यमाद्यन्मधुकरारवम् । दिव्यवातोच्चलत्कंजपरागोद्धूलितांबरम् ॥१६९॥
स्ववधूगीतमाधुर्याभिरामं चिंतयेद्वनम् । तदंतर्मणिसम्पत्तिस्फुरत्तोरणमण्डपे ॥१७०॥
विलसन्मौक्तिकोद्दामदामराजद्वितानके । मणिवेद्याविर्विर्यत्किरोटाग्रसमर्चिते ॥१७१॥
दिव्यसिंहासने विप्र समासीनं स्मरेद्विभुम् । शंखपाशेषु चापानि मुसलं नंदकं गदाम् ॥१७२॥
अंकुशं दधतं दोर्भिः श्लिष्टं कमलयोरसि । पश्यत्यंकस्थयांभोजश्रिया रागोल्लसद्दृशा ॥१७३॥
ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षचतुष्कं तद्दशांशतः । कुंडेऽर्द्धचंद्रे पद्मैर्वा जातीपुष्पैश्च होमयेत् ॥१७४॥
यागभूमिं तथात्मानं यागोपकरणं तथा । पूजयिष्यन् जगन्नाथं गायत्र्या प्रोक्षयेद्बुधः ॥१७५॥
त्रैलोक्यमोहनायांते विद्महे पदमीरयेत् । स्मराय धीमहीत्युक्त्वा तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥१७६॥
गायत्र्येषा समाख्याता सर्वशुद्धिकरी परा । कल्पयेदासनं पीठे पूर्वोक्ते वैष्णवे सुधीः ॥१७७॥

बन्धनानि आकर्षय आकर्षय महाबलाय हुं'—यह अस्त्र मंत्र कहा गया है। अनन्तर नेत्र-मंत्र होगा ॥१५५-१६२½॥ 'त्रिभुवनं चर, सर्वजनमनांसि हर हर दारय दारय वशमानय हुं'—यह नेत्र-मंत्र कहा गया है। आदि में ओं और अन्त में फट् लगाकर षडंग मंत्र बनाये जाते हैं। ओं त्रैलोक्यमोहन हृषीकेश अप्रतिरूपमन्मथ सर्वस्त्रीहृदयमाकर्षय गच्छ-दागच्छ नमः—इस मंत्र से व्यापक न्यास करके विद्वान् व्यक्ति जगन्नाथ का स्मरण करे ॥१६३-१६७॥ क्षीरसागर के तट पर एक रमणीय वन है। वहाँ देववृक्ष तथा कल्पलतायें फैल रही हैं। उगते हुए सूर्य की किरणें पहुँच रही हैं। वह अपने तेज की ज्वालाओं से दिशाओं को व्याप्त कर रहा है। वहाँ पुष्प-समूह की सुगंध से उन्मत्त होते हुए भौंरे गूँज रहे हैं। दिव्य वायु से हिलते हुए कमलों के पराग से आकाश उद्धूलित हो रहा है। अप्सराओं के गीत के माधुर्य से वह (वन) मनोरम लग रहा है। उसके बीच में मणि-सम्पदाओं से चमकते हुए बंदनवार वाले मण्डप में चमकती हुई मोतियों की मालाओं से शोभायमान वितान, (चँदवा) से युक्त और मणिजटित देव-मुकुटों के अग्रभाग से पूजित दिव्यसिंहासन पर बैठे हुए भगवान् (जगन्नाथ) का ध्यान करना चाहिए। वे हाथों में शंख, पाश, बाण, धनुष, मुसल, नन्दक, गदा तथा अंकुश धारण किये हुए हैं। उनका वक्षःस्थल लक्ष्मी से आलिंगित है। वे अंकस्थ कमल (माला) की श्री से लाल नेत्रों से देख रहे हैं ॥१६८-१७३॥

इस प्रकार ध्यान कर एक लाख मंत्र-जप करे और उसका दशांश अर्धचन्द्राकार कुण्ड में कमलों तथा जातीपुष्पों से हवन करे। अनन्तर विद्वान् जगन्नाथ की पूजा करने के लिए यज्ञभूमि, यज्ञसामग्री तथा अपने शरीर पर गायत्री मन्त्र से जल छिड़के। 'त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्' यह गायत्री मन्त्र सबको शुद्ध करने में श्रेष्ठ है। विद्वान् व्यक्ति पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर आसन की रचना करे ॥१७४-१७७॥

पक्षिराजाय ठद्वंद्वं पीठमंत्रोऽयमीरितः । मूर्ति संकल्पमूलेन तस्यामावाहयेदतः ॥१७८॥
व्यापकन्यासमंत्रेण ततः सम्पूज्य भक्तितः । श्रीवत्सहृदयं तेन श्रीवत्सं स्तनयोर्यजेत् ॥१७९॥
कौस्तुभाय हृदंतेन यजेद्वक्षसि कौस्तुभम् । पूजयेद्वनमालायै हृदंतेन गले च ताम् ॥१८०॥
कर्णिकायां ततोऽभ्यर्च्यद्विधिवच्चांगदेवताः । दलेषु पूजयेत्पश्चाल्लक्ष्म्याद्यावृतचामराः ॥१८१॥
बन्धूककुसुमाभासो मुक्ताहारलसत्कुचाः । उत्फुल्लांभोजनयना मदविभ्रममंथराः ॥१८२॥
लक्ष्मी सरस्वती चैव धृतिः प्रीतिस्ततः परम् । कांतिः शांतिस्तुष्टिपुष्टिबीजाद्या ङेनमोंतिकाः ॥१८३॥
॥१८४॥
भृगुः खड्गाशचन्द्राढ्यो देव्या बीजमुदाहृतम् । ह्रस्वत्रयक्लीबसवर्णरहितस्वरसंयुतम् ॥१८५॥
देव्या बीजं क्रमादासामादौ च विनियोजयेत् । दलाग्रेषु यजेच्छंखं शार्ङ्गं चक्रमसिं गदाम् ॥१८६॥
अंकुशं मुसलं पाशं स्वमुद्रामनुभिः पृथक् । महाजलचरायांते वर्मास्त्रं वह्निवल्लभा ॥१८७॥
पांचजन्या प्रताराद्यो नमोंतः शंखपूजने । शार्ङ्गाय संशयांते च वर्मास्त्रं वह्निवल्लभा ॥१८८॥
शार्ङ्गाय हृदयं मन्त्रो महाद्यः शार्ङ्गपूजने । सुदर्शनमहांते तु चक्रराजपदं वदेत् ॥१८९॥
हययुग्मं सर्वदुष्टभयमन्ते कुरुद्वयम् । छिंधिद्वयं ततः पश्चाद्विदारययुगं ततः ॥१९०॥
परमन्त्रान् ग्रसद्वन्द्वं भक्षयद्वितयं पुनः । भूतानि त्रासयद्वंद्वं वर्मफड्वह्निसुंदरी ॥१९१॥
सुदर्शनाय हृदयं प्रोक्तश्चक्रार्चने मनुः । महाखड्गतीक्ष्णपदाच्छिवियुग्मं समीरयेत् ॥१९२॥
हुं फट् स्वाहा च खड्गाय नमः खड्गार्चने मनुः । महाकौमोदकीत्यन्ते वदेच्चैव महाबले

'पक्षिराजय स्वाहा' यह पीठ-मंत्र है। संकल्प के साथ मूर्ति की रचना करके उसमें इस मंत्र से आवाहन करे। तदनन्तर व्यापकन्यास के मंत्र से भक्तिपूर्वक पूजन कर 'श्रीवत्साय नमः' कहकर स्तनों पर श्रीवत्स-चिह्न की पूजा करे। 'कौस्तुभाय नमः' कहकर छाती पर कौस्तुभ मणि की पूजा करें। 'वनमालायै नमः' कहकर गले में वनमाला की पूजा करे। तत्पश्चात् कर्णिका पर अङ्गदेवताओं का विधिपूर्वक पूजन करके चामर लिये हुई लक्ष्मी आदि देवियों की पूजा करे ॥१७८-१८१॥ इन देवियों की कान्ति बंधूकपुष्प के समान और इनके कुच मोतियों की मालाओं से सुशोभित हैं इनके नेत्र विकसित कमल के तुल्य हैं और इनकी गति मद की उग्रता के कारण मंथर है। लक्ष्मी, सरस्वती, धृति, प्रीति, कान्ति, शान्ति, तुष्टि और पुष्टि--इन नामों के आदि में बीजमंत्र, अन्त में नमः और उससे पहले चतुर्थी विभक्ति को जोड़ देना चाहिए। भृगु (स्) अक्षर में अनुस्वार जोड़ने से देवी का बीजमंत्र बनता है। तीन ह्रस्व, नपुंसकलिंग तथा सवर्णरहित स्वर (निघात स्वर) से युक्त वह बीजमंत्र होता है। देवी के इस बीजमंत्र को क्रमशः लक्ष्मी आदि के पहले जोड़ देना चाहिए। अनन्तर पत्र के अग्रभाग पर शंख, धनुष, चक्र, खड्ग, गदा, अंकुश, मुशल तथा पाश का अपने-अपने मुद्रा-मंत्र से पृथक्-पृथक् पूजन करना चाहिए। ॥१८२-१८६½॥ 'महाजलचराय हुं फट् स्वाहा। ओं पाञ्चजन्याय नमः' इस मंत्र से शंख की पूजा करनी चाहिए। 'शार्ङ्गाय संशयाय हुं फट् स्वाहा। महाशार्ङ्गाय नमः' यह कहकर धनुष की पूजा करनी चाहिए 'महासुदर्शन चक्रराज हययुग्मं कुरु कुरु सर्वदुष्टभयं छिन्धि छिन्धि विदारय विदारय परमंत्रान् ग्रस ग्रस भक्षय भक्षय भूतानि त्रासय त्रासय हुं फट् स्वाहा। सुदर्शनाय नमः' इस मंत्र से चक्र की पूजा करनी चाहिए। 'महाखड्ग तीक्ष्ण-शिवियुग्माय हुं फट् स्वाहा। खड्गाय नमः' इस मंत्र से खड्ग की पूजा करनी चाहिए ॥१८७-१९१½॥ 'महाकौमोदकि महाबले सर्वासुरान्तके प्रसीद प्रसीद। हुं फट् स्वाहा। कौमोदक्यै नमः' यह सकल कामनादायक मंत्र कौमोदकी

वर्मास्त्रवह्निजायांतकौमोदकि हृदंतिमः ॥१९३॥
सर्वासुरांतके पश्चात्प्रसीदयुगलेति च । वर्मास्त्रवह्निजायांतकौमोदकि हृदंतिमः ॥१९४॥
कौमोदक्यर्चने प्रोक्तो मन्त्रः सर्वार्थसाधकः । महांकुशपदात्कुट्टयुग्मं हुं फट्वसुप्रिया ॥१९५॥
अंकुशाय नमः प्रोक्तो मन्त्रश्चैवांकुशार्चने । संवर्तकमहांते तु मुसलेति पदं वदेत् ॥१९६॥
योधयद्वितयं वर्म फडंते वह्निसुन्दरी । मुसलाय नमः प्रोक्तो मन्त्रो मुसलपूजने ॥१९७॥
महापाशपदाद्बंधद्वयमाकर्षयद्वयम् । हुं फट् स्वाहा च पाशाय नमः पाशार्चने मनुः ॥१९८॥
तारााद्या मनवो ह्येते ततः शक्रादिकान्यजेत् । ॥१९९॥
वज्राद्यानपि संपूज्य सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । मासमात्रं तु कुसुमैः पूजयित्वा हयारिजैः ॥२००॥
कुमुदैर्वा प्रजुहुयादष्टोत्तरसहस्रकम् । मासमात्रेण वश्यास्स्युस्तस्य सर्वे नृपोत्तमाः ॥२०१॥
यस्य नाम युतं मंत्रं जपेदयुतसंख्यया । स भवेद्दासवत्सद्यो मंत्रस्यास्य प्रभावतः ॥२०२॥
बहुना किमिहोक्तेन मनुनानेन साधकः । साधयेत्सकलान्कामान्विष्णुतुल्यो न संशयः ॥२०३॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

गदा की अर्चना के लिए कहा गया है । 'महांकुशकुट्टयुग्माय हुं फट् स्वाहा । अंकुशाय नमः' यह मंत्र अंकुश की पूजा के लिए कहा गया है । संवर्तकमहामुसल योधय योधय हुं फट् स्वाहा । मुसलाय नमः' यह मंत्रमुसल की पूजा में प्रयुक्त होता है । 'महापाश बन्ध बन्ध आकर्षय आकर्षय । हुं फट् स्वाहा पाशाय नमः' यह पाश-पूजन का मंत्र है । मंत्रों के आदि में (ओं) जोड़ देना चाहिए ॥१९२-१९७॥ तदनन्तर इन्द्र आदि देवों तथा उनके आयुधों की पूजा करके मनुष्य सकल सिद्धियों का स्वामी बन सकता है । एक मास तक करवीर तथा कुमुद के पुष्पों से पूजन करके एक हजार आठ बार हवन करे । मास भर ऐसा करने से बड़े-बड़े राजा वशीभूत हो जाते हैं । जिस व्यक्ति के नाम के साथ उक्त मंत्र को जोड़ कर दस हजार बार जप किया जाता है, वह (व्यक्ति) इस मंत्र के प्रभाव से तुरन्त दासवत् हो जाता है । बहुत क्या कहें, इस मंत्र के प्रभाव से साधक विष्णु के समान सकल मनोरथों को प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं ॥१९८-२०२॥

श्रीनारदीय पुराण के पूर्वभाग के तीसरे पाद में सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७०॥

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि दिव्यान्नरहरेर्मनून्। यान्समाराध्य ब्रह्माद्याश्चक्रुः सृष्ट्यादि कर्म वै ॥१॥
संवर्तकश्चंद्रमौलिर्मनुर्वह्निविभूषितः । एकाक्षरः स्मृतो मंत्रो भजतां सुरपादपः ॥२॥
मुनिरत्रिश्च जगतो छंदो बुद्धिमतां वर। देवता नृहरिः प्रोक्तो विनियोगोऽखिलाप्तये ॥३॥
क्षं बीजं शक्तिरी प्रोक्ता षड्दीर्घेण षडंगकम् । अर्केन्दुवह्निनयनं शरदिंदुरुचं करैः ॥४॥
धनुश्चक्राभयवरान्दधतं नृहरिं स्मरेत् । लक्षं जपस्तद्दशांशहोमश्च घृतपायसैः ॥५॥
यजेत्पीठे वैष्णवे तु केसरेष्वंगपूजनम् । खगेशं शंकरं शेषं शतानन्दं दिगालिषु ॥६॥
श्रियं ह्रियं धृतिं पुष्टिं कोणपत्रेषु पूजयेत् । दंतच्छदेषु नृहरींस्तावतः पूजयेत्क्रमात् ॥७॥
कृष्णो रुद्रो महाघोरो भीमो भीषण उज्ज्वलः । करालो विकरालश्च दैत्यांतो मधुसूदनः ॥८॥
रक्ताक्षः पिंगलाक्षश्चांजनो दीप्तरुचिस्तथा । सुघोरकश्च सुहनुर्विश्वको राक्षसांतकः ॥९॥
विशालको धूम्रकेशो हयग्रीवो घनस्वनः । मेघवर्णः कुंभकर्णः कृतांततीव्रतेजसौ ॥१०॥
अग्निवर्णो महोग्रश्च ततो विश्वविभूषणः । विघ्नक्षमो महासेनः सिंहा द्वात्रिंशदीरिताः ॥११॥
तद्बहिः प्रार्चयेद्विद्वाँल्लोकपालान्सहेतिकान् । एवं सिद्धे मनौ मन्त्री साधयेदखिलेप्सितान् ॥१२॥

अध्याय ७१

नृसिंह मंत्रोपासना

सनत्कुमार बोले—नारद ! सुनो, मैं नरहरि (नृसिंह) के दिव्य मंत्रों को बताता हूँ, जिनकी आराधना करके ब्रह्मा आदि देवों ने सृष्टि आदि कार्यों का संपादन किया ॥१॥ 'क्ष्रौं' यह एकाक्षर मंत्र कहा गया है। वह अपने जप करने वालों के लिये कल्पवृक्ष के समान है ॥२॥ बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! उस मंत्र के मुनि अत्रि हैं, छंद जगती है और देवता नृहरि हैं। अखिल वस्तुओं की प्राप्ति के लिये उसका विनियोग किया जाता है ॥३॥ 'क्षं' बीज मंत्र है, 'ई' शक्ति है और छह दीर्घ मात्राओं से षडंग मंत्र (क्षं क्षां क्षिं क्षीं क्षुं क्षूं) बनता है। (साधक) सूर्य, चन्द्र एवम् वह्नि रूप नेत्र वाले, शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान कान्ति वाले और हाथों में धनुष, चक्र तथा गदा धारण करने वाले नृहरि का स्मरण करे। तदुपरान्त एकाक्षर मंत्र का एक लाख जप करे। घी तथा खीर से जप का दशांश हवन करे ॥४-५॥ वैष्णव पीठ में केसरों पर अंग देवताओं का पूजन करना चाहिये। दिशाओं में खगेश, शंकर, शेष तथा शतानंद को, विदिशाओं में श्री, ह्री, धृति तथा पुष्टि की और दन्तच्छदों (होंठों) में क्रमशः नृहरियों की आराधना करे ॥६-७॥ कृष्ण, रुद्र, महाघोर, भीम, भीषण, उज्ज्वल, कराल, विकराल, दैत्यान्त, मधुसूदन, रक्ताक्ष, पिंगलाक्ष, अंजन, दीप्तरुचि, सुघोरक, सुहनु, विश्वक, राक्षसांतक, विशालक, धूम्रकेश, हयग्रीव, घनस्वन, मेघवर्ण, कुंभकर्ण, कृतान्त, तीव्रतेजस्, अग्निवर्ण, महोग्र, विश्वविभूषण, विघ्नक्षम, महासेन और सिंह ये बत्तीस नरसिंह देवता माने गये हैं ॥८-११॥ इनके बाद विद्वान् साधक सांगोपांग लोकपालों का पूजन करे। इस प्रकार मंत्र की सिद्धि हो जाने पर साधक की सकल कामनायें सफल होती हैं ॥१२॥

...ज्वलंतं भृग्वीशो जलं पद्मासनं ततः ।।१३।।
विष्णुः प्रद्युम्नयुक् शार्ङ्गी साग्निर्वीरं महांस्ततः । विष्णु ज्वलंतं भृग्वीशो जलं पद्मासनं ततः ।।१४।।
हरिस्तु वासुदेवाय वैकुंठो विष्णुसंयुतः । गदी सेंदुर्नृसिंहं च भीषणं भद्रमेव च ।।१५।।
मृत्युमृत्युं ततः शौरिर्भानोर्नारायणान्वितः । नृहरेर्द्वाविंशदर्णोऽयं मन्त्रः साम्राज्यदायकः ।।१६।।
ब्रह्मा मुनिस्तु गायत्री छंदोऽनुष्टुबुदाहृतम् । देवता नृहरिश्चास्य सर्वेष्टफलदायकः ।।१७।।
हं बीजं इं तथा शक्तिर्विनियोगोऽखिलाप्तये । वेदैश्चतुर्भिर्वसुभिः षड्भिः षड्भियुगाक्षरैः ।।१८।।
षडंगानि विधायाथ मूर्ध्नि भाले च नेत्रयोः । मुखबाह्वंघ्रिसंध्यग्रेष्वथ कुक्षौ तथा हृदि ।।१९।।
गले पार्श्वद्वये पृष्ठे ककुद्यर्णान्मनूद्भवान् । प्रणवांतरितान् कृत्वा न्यसेत्साधकसत्तमः ।।२०।।
नृसिंहसांनिध्यकरो न्यासो दशविधो यथा । करांघ्र्यष्टाद्यंगुलीषु पृथगाद्यंतपर्वणोः ।।२१।।
सर्वांगुलीषु विन्यस्यावशिष्टं तलयोर्न्यसेत् । शिरोललाटे भ्रूमध्ये नेत्रयोः कर्णयोस्तथा ।।२२।।
कपोलकर्णमूले च चिबुकोर्द्धाधरोष्ठके । कण्ठे घोणे च भुजयोर्हृत्तनौ नाभिमण्डले ।।२३।।
दक्षान्पदोस्तले कट्यां मेढ्रोर्वोर्जानुजंघयोः । गुल्फे पादकरांगुल्योः सर्वसन्धिषु रोमसु ।।२४।।
रक्तास्थिमज्जासु तनौ न्यसेद्वर्णान्विचक्षणः । वर्णान्पदे गुल्फजानुकटिनाभिहृदि स्थले ।।२५।।
बाह्वोः कंठे च चिबुके चौष्ठे गण्डे प्रविन्यसेत् । कर्णयोर्वदने नासापुटे नेत्रे च मूर्द्धनि ।।२६।।
पदानि तु मुखे मूर्ध्नि नसि चक्षुषि कर्णयोः । आस्ये च हृदये नाभौ पादान्सर्वांगके न्यसेत् ।।२७।।
अर्द्धद्वयं न्यसेन्मूर्ध्नि आहृत्पादात्तदंगकम् । उग्रादीनि पदानीह मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ।।२८।।
इत्यंतान्यास्यकघ्राणचक्षुः श्रोत्रेषु पक्ष्मसु । हृदि नाभौ च कट्यादिपादांत नवसु न्यसेत् ।।२९।।
वीराद्यानपि तान्येव यथापूर्वं प्रविन्यसेत् । नृसिंहाद्यानि तान्येव पूर्ववद्विन्यसेत्सुधीः ।।२९।।

"विष्णुः........नारायणान्वितः"—यह बाईस अक्षरों वाला नृहरि का मंत्र साम्राज्यदायक है। इसके मुनि ब्रह्मा हैं, छंद गायत्री है जो अनुष्टुप् कहा गया है। देवता नृसिंह हैं, जो समस्त अभीष्ट फल देने वाले हैं ।।१३-१६।। 'हं' बीज है, 'इं' शक्ति है और सर्वप्राप्ति के लिये इसका विनियोग किया जाता है। उत्तम साधक को चाहिये कि वह चार-चार, आठ, छः छः और चार अर्थात् बत्तीस अक्षरों से षडंगन्यास कर मस्तक, ललाट, उभय नेत्र, मुख, बाहु, चरण, संधि, अग्रभाग, कुक्षि, हृदय, ग्रीवा, उभय पार्श्व, ककुद और पृष्ठ पर मंत्र के वर्णों को प्रणव (ओं) से संपुटित करके न्यास करे ।।१७-१९।। दश प्रकार के न्यास करने से नृसिंह के सामीप्य की प्राप्ति होती है। कर, चरण आदि अंगों में, अंगुलियों में तथा अंगुलियों की आदिम एवम् अन्तिम पोरों में मंत्राक्षरों का विन्यास करके अवशिष्ट अक्षरों को दोनों हथेलियों पर न्यस्त करे। विद्वान् व्यक्ति शिर, ललाट, भौं के मध्य, उभय नेत्र, कर्ण, कपोल, कर्ण-मूल, ठुड्डी, अधर, ओष्ठ, कंठ, नासिकापुट, भुजा, हृदय, तनु, नाभिमंडल, चरणतल, कटि, लिंग, जंघा, घुटना, गुल्फ, हाथ-पैर की अंगुलियाँ, समस्त संधियाँ, रोएँ, शोणित, अस्थियाँ और मज्जा—इतने अंगों में वर्णों का विन्यास करे। चरण, गुल्फ, जानु, कटि, नाभि, हृदय, बाहु, कंठ, ठुड्डी, ओष्ठ, कपोल, कर्ण, वदन, नासिकापुट, नेत्र तथा मस्तक पर वर्णों का और मुख, मस्तक, नासिका नेत्र, कर्ण, हृदय, नाभि एवम् अखिल अंगों में पदों का विन्यास करे ।।२०-२६।।

'आहृत्', 'पादात्' इन दो पदों का न्यास मस्तक पर करके "उग्र······अहम्"—इतने पदों को मुख, नासिका, नेत्र, कर्ण, पक्ष्म, हृदय, नाभि, कटि तथा चरण—इन नौ अंगों में विन्यस्त करे। सुधी जन "वीर" आदि एवम् "नृसिंह" आदि पदों का भी यथापूर्व विन्यास करके एक, तीन, चार, छः, तीन, दो, दश,

चंद्राग्निवेदषड्रामनेत्रदिग्बाहुभूमितान् । विभक्तान्मंत्रवर्णांश्च क्रमात्स्थानेषु विन्यसेत् ॥३०॥
मूले मूलाच्च नाभ्यंतं नाभ्यादि हृदयावधि । हृदयाद्भ्रूयुगांतं तु नेत्रत्रये च मस्तके ॥३१॥
बाह्वोरंगुलिषु प्राणे मूर्द्धादि चरणावधि । विन्यसेन्नामतो धीमान्हरिन्यासोऽयमीरितः ॥३२॥
न्यासस्यास्य तु माहात्म्यं जानात्येको हरिः स्वयम् । एवं न्यासविधिं कृत्वा ध्यायेच्च नृहरिं हृदि ॥३३॥

गलासक्तलसद्बाहु स्पृष्टकेशोऽब्जचक्रधृक् । नखाग्रभिन्नदैत्येशो ज्वालामालासमन्वितः ॥३४॥
दीप्तजिह्वस्त्रिनयनो दंष्ट्रोग्रं वदनं वहन् । नृसिंहोऽस्मान्सदा पातु स्थलांबुगगनोपगः ॥३५॥
ध्यात्वैवं दर्शयेन्मुद्रां नृसिंहस्य महात्मनः । जानुमध्यगतौ कृत्वा चिबुकोष्ठौ समावुभौ ॥३६॥
हस्तौ च भूमिसंलग्नौ कंपमानः पुनः पुनः । मुखं विजृंभितं कृत्वा लेलिहानां च जिह्विकाम् ॥३७॥
एषा मुद्रा नारसिंही प्रधानेति प्रकीर्तिता । वामस्यांगुष्ठतो बद्धा कनिष्ठामंगुलीत्रयम् ॥३८॥
त्रिशूलवत् संमुखोर्द्धं कुर्यान्मुद्रां नृसिंहगाम् । अंगुष्ठाभ्यां च करयोस्तथाऽऽक्रम्य कनिष्ठके ॥३९॥
अधोमुखाभिः शिष्टाभिः शेषाभिर्नृहरौ ततः । हस्तावधोमुखौ कृत्वा नाभिदेशे प्रसार्य च ॥४०॥
तर्जनीभ्यां नयेत्स्कंधौ प्रोक्ता चांत्रणमुद्रिका । हस्तावूर्ध्वमुखौ कृत्वा तले संयोज्य मध्यमे ॥४१॥
अनामायां तु वामायां दक्षिणां तु विनिक्षिपेत् । तर्जन्यौ पृष्ठतो लग्नौ अंगुष्ठौ तर्जनीश्रितौ ॥४२॥
चक्रमुद्रा भवेदेषा नृहरेः संनिधौ मता । चक्रमुद्रां तथा कृत्वा तर्जनीभ्यां तु मध्यमे ॥४३॥
पोडयेद्दंष्ट्रमुद्रैषा सर्वपापप्रणाशिनी । एता मुद्रा नृसिंहस्य सर्वमंत्रेषु संमताः ॥४४॥

दो, एक अर्थात् बत्तीस मंत्रवर्णों का क्रमशः स्थानों में विन्यास करे जैसे पहले चरण-मूल में, मूल से नाभि तक, नाभि से हृदय तक, हृदय से भौंह तक, त्रिनेत्र, मस्तक, भुजा, अंगुलि, प्राण तथा शिर से चरण तक समस्त अंगों में नामनिर्देशपूर्वक न्यास करे। इसका नाम हरिन्यास है ॥२७-३२॥ इस न्यास का माहात्म्य एक साक्षात् हरि ही जानते हैं। इस प्रकार न्यास विधि को संपन्न कर हृदय में नृहरि का इस प्रकार ध्यान करे—"नृसिंह देव अपनी भुजाओं को गले से घुमा कर केशों को छू रहे हैं, हाथों में कमल तथा चक्र धारण किये हुए हैं, नखाग्र से दैत्य का विदारण किया है, ज्वाला के समान माला पहने हुए हैं, जिह्वा देदीप्यमान है, नेत्र तीन हैं, मुख में तीक्ष्ण दंष्ट्रा धारण किये हुए हैं। ऐसे नृसिंह, जो स्थल, जल तथा गगन में व्याप्त हैं, सदा हमारी रक्षा करें ॥३३-३५॥ इस तरह महात्मा नृसिंह का ध्यान कर मुद्रा दिखाये। उस मुद्रा में दोनों घुटनों के बीच मुख ले जाकर ठुड्डी और होंठ को सीधा रखे। फिर हाथों को भूमि पर रख कर शरीर को कँपाते हुए मुख को फैला कर जिह्वा को लपलपाये ॥३६-३७॥

यही है प्रधान नारसिंही मुद्रा। बायें हाथ के अंगूठे से कनिष्ठा प्रभृति तीन अंगुलियों को सटा कर त्रिशूल की तरह ऊपर को उठाये। इसका नाम नृसिंहगामिनी मुद्रा है। दोनों हाथों के अंगुष्ठों से दोनों कनिष्ठाओं को आक्रान्त कर अवशिष्ट अंगुलियों को अधोमुख करे फिर उभय हस्तों को नीचे करके नाभि देश में फैलाये। अनन्तर तर्जनियों से स्कंधों का स्पर्श करे। यह अंत्रणमुद्रा कहलाती है। हाथों को ऊर्ध्वमुख करके मध्यमाओं को हथेलियों से संयुक्त करे और बाँयी अनामिका के ऊपर दाहिनो अनामिका को रख दे। फिर अंगुष्ठों को तर्जनियों के नीचे रख तर्जनियों को परस्पर संलग्न करे। इसका नाम चन्द्रमुद्रा है, जो नृहरि की संनिधि में की जाती है। उक्त प्रकार से चक्रमुद्रा दिखा कर निखिलपापनाशिनी 'दंष्ट्रमुद्रा करनी चाहिये, जिसमें तर्जनियों से मध्यमाओं का उत्पीड़न किया जाता है। नृसिंह की ये मुद्रायें सब यंत्रों में प्रदर्शित की जा सकती हैं ॥३८-४४॥

वर्णलक्षं जपेन्मंत्रं तद्दशांशं च पायसैः । घृताक्तैर्जुहुयाद्वह्नौ पीठे पूर्वोदितेऽर्चयेत् ॥४५॥
अंगान्यादौ समाराध्य दिक्पत्रेषु यजेत्पुनः । गरुडादीन् श्रीमुखांश्च विदिक्षु लोकपान्बहिः ॥४६॥
एवं संसाधितो मंत्रः सर्वान्कामान्प्रपूरयेत् । सौम्ये कार्ये स्मरेत्सौम्यं क्रूरं क्रूरे स्मरेद्बुधः ॥४७॥
पूर्वमृत्युपदे शत्रोर्नाम कृत्वा स्वयं हरिः । निशितैर्नखदंष्ट्राग्रैः खाद्यमानं च संस्मरेत् ॥४८॥
अष्टोत्तरशतं नित्यं जपेन्मन्त्रमतंद्रितः । जायते मण्डलादर्वाक् शत्रुर्वै शमनातिथिः ॥४९॥
ध्यानभेदानथो वक्ष्ये सर्वसिद्धिप्रदायकान् । श्रीकामः सततं ध्यायेत्पूर्वोक्तं नृहरिं सितम् ॥५०॥
वामांकस्थितया लक्ष्म्यालिंगितं पद्महस्तया । विषमृत्यूपरोगादिसर्वोपद्रवनाशनम् ॥५१॥
नरसिंहं महाभीमं कालानलसमप्रभम् । आंत्रमालाधरं रौद्रं कण्ठहारेण भूषितम् ॥५२॥
नागयज्ञोपवीतं च पञ्चाननसुशोभितम् । चन्द्रमौलिं नीलकण्ठं प्रतिवक्त्रं त्रिनेत्रकम् ॥५३॥
भुजैः परिघसंकाशैर्दशभिश्चोपशोभितम् । अक्षसूत्रं गदापद्मं शंखं गोक्षीरसन्निभम् ॥५४॥
धनुश्च मुशलं चैव बिभ्राणं चक्रमुत्तमम् । खड्गं शूलं च बाणं च नृहरिं रुद्ररूपिणम् ॥५५॥
इन्द्रगोपाभनीलाभं चन्द्राभं स्वर्णसन्निभम् । पूर्वादि चोत्तरं यावदूर्ध्वास्यं सर्ववर्णकम् ॥५६॥
एवं ध्यात्वा जपेन्मंत्री सर्वव्याधिविमुक्तये । सर्वमृत्युहरं दिव्यं स्मरणात्सर्वसिद्धिदम् ॥५७॥
ध्यायेद्यदा महत्कर्म तदा षोडशहस्तवान् । नृसिंहः सर्वलोकेशः सर्वाभरणभूषितः ॥५८॥
द्वौ विदारणकर्माप्तौ द्वौ चांत्रोद्धरणान्वितौ । शङ्खचक्रधरौ द्वौ तु द्वौ च बाणधनुर्द्धरौ ॥५९॥

मुद्रा लगाने के उपरान्त बत्तीस लाख मंत्र का जप कर उसका दशांश घृतमिश्रित पायस से पूर्वोक्त पीठ पर अग्नि में हवन करे। पहिले अङ्गदेवताओं का पूजन कर समस्त दिशाओं में श्री, गरुड़ आदि देवताओं की अर्चना करे। इस तरह मंत्र को सिद्ध कर लेने पर सकल कामनायें सफल हो जाती हैं। बुध जन मङ्गलमय कार्य में देवता के सौम्य रूप का ध्यान करे और क्रूरतापूर्ण कार्य में क्रूर रूप का। शत्रु के मारणकार्य में वैरी का नाम लेकर हरि के इस रूप का ध्यान करे कि वे अपनी तीक्ष्ण दंष्ट्रा एवम् नखों के अग्रभाग से शत्रु को विदीर्ण कर रहे हैं। ध्यान के उपरान्त निरालस्यपूर्वक एक सौ आठ बार मंत्र का जप नित्य किया करे। ऐसा करने से शत्रु शीघ्र ही यमपुरी पहुँच जाता है ॥४५-४९॥

अब मैं सकल सिद्धियों के देने वाले ध्यान के प्रभेदों को बतलाऊँगा। धन चाहने वाला मनुष्य सदा पूर्वोक्त प्रकार से शुक्लवर्ण वाले नृहरि का ध्यान करे, जिनके बायें अंक पर अवस्थित पद्महस्ता लक्ष्मी आलिंगन कर रही हैं। विष, अपमृत्यु, रोग एवम् निखिल उपद्रवों की शान्ति के लिये कालानल के समान प्रभा वाले, अँतड़ियों की माला धारण करने वाले, महाभयंकर रुद्ररूप, कंठों के हार से शोभित, सर्पों के यज्ञोपवीत से भूषित, पाँच मुखों से युक्त चंद्रमौलि, नीलकंठ, प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र धारण करने वाले, परिघ (भाला) तुल्य दश भुजाओं से सुशोभित, रुद्राक्षमाला, गदा, पद्म, गाय के दूध के समान धवल शंख, धनुष, मुशल, चक्र, खड्ग, त्रिशूल एवम् बाण धारण करने वाले, [1]इन्द्रगोपा, नीलमणि, चंद्रमा तथा सुवर्ण के सदृश कान्ति वाले, पूर्व दिशा से लेकर उत्तर दिशा पर्यन्त ऊर्ध्वविस्तृत मुख वाले और सर्ववर्ण वाले नरसिंह का ध्यान करे। इस प्रकार ध्यान करने के बाद मंत्र जपने से अशेष व्याधियों एवम् अपमृत्युओं का नाश और सकल सिद्धियों की प्राप्ति होती है। जब कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करना हो तो नरसिंह के इस रूप का ध्यान करे कि वे सकल लोकों के स्वामी, समस्त आभूषणों से विभूषित एवम् सोलह हाथों से युक्त हैं। उनके दो हाथ विदारण करने में लगे हुए हैं, दो अँतड़ियों

---

१. एक प्रकार का बरसाती कीड़ा जिसका रंग लाल होता है।

खड्गखेटधरौ द्वौ च द्वौ गदापद्मधारिणौ । पाशांकुशधरौ द्वौ च द्वौ रिपोर्मुकुटार्पितौ ॥६०॥
इति षोडशदोर्दंडमण्डितं नृहरिं विभुम् । ध्यायेन्नारदनीलाभमुग्रकर्मण्यनन्यधीः ॥६१॥
ध्येयो महत्तमे कार्ये द्वात्रिंशद्धस्तवान्बुधैः । नृसिंहः सर्वभूतेशः सर्वसिद्धिकरः परः ॥६२॥
दक्षिणे चक्रपद्मे च परशुं पाशमेव च । हलं च मुशलं चैव अभयं चांकुशं तथा ॥६३॥
पट्टिशं भिंदिपालं च खड्गमुद्गरतोमरान् । वामभागे करैः शंखं खेटं पाशं च शूलकम् ॥६४॥
अग्निं च वरदं शक्तिं कुंडिकां च ततः परम् । कार्मुकं तर्जनीमुद्रां गदां डमरुशूर्पकौ ॥६५॥
द्वाभ्यां कराभ्यां च रिपोर्जानुमस्तकपीडनम् । ऊर्ध्वीकृताभ्यां बाहुभ्यां आंत्रमालाधरं विभुम् ॥६६॥
अधः स्थिताभ्यां बाहुभ्यां हिरण्यकविदारणम् । प्रियंकरं च भक्तानां दैत्यानां च भयंकरम् ॥६७॥
नृसिंहं तं स्मरेदित्यं महामृत्युभयापहम् । एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्री सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥६८॥
अथोच्यते ध्यानमन्यन्मुखरोगहरं शुभम् । स्वर्णवर्णसुपर्णस्थं विद्युन्मालासटान्वितम् ॥६९॥
कोटिपूर्णेन्दुवर्णं च सुमुखं त्र्यक्षिवीक्षणम् । पीतवस्त्रोरुभूषाढ्यं नृसिंहं शान्तविग्रहम् ॥७०॥
चक्रशंखाभयवरान्दधतं करपल्लवैः
क्ष्वेडरोगादिशमनं स्वैर्ध्यानैः सुरवंदितम् । शत्रोः सेनानिरोधेन यत्नं कुर्याच्च साधकम् ॥७१॥
अक्षकाष्ठैरेधितेऽग्नौ विचिंत्य रिपुमर्दनम् । देवं नृसिंहं संपूज्य कुसुमाद्युपचारकैः ॥७२॥
समूलमूलैर्जुहुयाच्छरैर्दशशतं पृथक् । रिपुं खादन्निव जपेन्निर्दहन्निव तं क्षिपेत् ॥७३॥

को निकाल रहे हैं, दो शत्रु के मुकुट को खींच रहे हैं, और दो धनुष बाण, दो खड्ग-खेट, दो गदा-पद्म तथा दो पाश-अंकुश धारण किये हुए हैं ॥५०-६०॥

नारद ! इस तरह तन्मय होकर सोलह भुजदंडों से मंडित नीलवर्ण हरि का उग्र कर्म में ध्यान करे। यदि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य करना हो तो विद्वान् व्यक्ति बत्तीस हाथों वाले नरसिंह का ध्यान करे—"वे देव समस्त प्राणियों के अधीश्वर तथा सकलसिद्धिदायक हैं, जिनकी दाहिनी तरफ की भुजाओं में चक्र, पद्म, परशु, पाश, मुशल, अभय, अंकुश, पट्टिश, भिंदिपाल, खड्ग, मुद्गर तथा तोमर और बांयी ओर की बाहुओं में शंख, खेट, पाश, त्रिशूल, अग्नि, शक्ति, कुंडिका, धनुष, तर्जनीमुद्रा, गदा, डमरू एवम् शूर्प विद्यमान हैं। वे दो हाथों से शत्रु के घुटने तथा मस्तक को फोड़ रहे हैं, दो बाहुओं को ऊपर उठाकर अंतड़ियों की माला धारण कर रहे हैं। और दो हाथों को नीचे करके हिरण्यकशिपु का विदारण कर रहे हैं। वे भक्तों के प्रिय करने वाले, दैत्यों को भय देने वाले तथा महामृत्यु के भय को दूर करने वाले हैं।" इस प्रकार नरसिंह का ध्यान कर साधक सकल कार्यों की सिद्धि के लिये मंत्र का जप करे ॥६१-६८॥

एतदुपरान्त मुख-रोग को दूर करने वाले अन्य मांगलिक ध्यान को मैं बतलाता हूँ। सुवर्ण के समान वर्ण वाले गरुड़ पर अवस्थित, विद्युत् के सदृश चमकती हुई माला से सुशोभित, कोटि पूर्णचंद्र के समान कान्तिमान्, सुमुख, त्रिनेत्र, पीत वस्त्र एवम् विविध भूषणों से विभूषित, शान्त शरीर, करपंल्लवों में चक्र, शंख, अभयास्त्र एवम् वरास्त्रधारण करने वाले और कफ आदि रोगों को दूर करने वाले देव वंदनीय नरसिंह का ध्यान करे। शत्रु की सेना के निरोध के निमित्त ऐसे ही रूप का ध्यान करना चाहिये ॥६९-७१॥ अनन्तर कुसुम आदि उपचारों से नरसिंह देव की अर्चना कर बहेड़े की लकड़ी से प्रज्वलित किये हुए अग्नि में कंद-मूलों से सौ बार हवन करे। 'मानो वे शत्रु को खा रहे हों'—ऐसे रूप का ध्यान करते हुए मन्त्र का जप करे और मानों वे रिपु को जला

। प्रस्थापयेच्छुभे लग्ने परराष्ट्रजयेच्छया ॥७४॥
हुत्वा सप्तदिनं मन्त्री सेनामिष्टां महीपतेः । स्मृत्वा जपं प्रकुर्वीत यावदायाति सा पुनः ॥७५॥
तस्याः पुरस्तान्नृहरिं निघ्नन्तं रिपुमण्डलम् । प्रीणयेन्मन्त्रिणं राजा विभवैः प्रीतमानसः ॥७६॥
निर्जित्य निखिलाञ्छत्रून्सह वीरश्रियासुखात् । यदि मन्त्री न तुष्येत तदानर्थो महीपतेः ॥७७॥
गजाश्वरथरत्नैश्च ग्रामक्षेत्रधनादिभिः । अष्टोत्तरशतं मूलमन्त्रमंत्रितभस्मना ॥७८॥
जायते तस्य राष्ट्रेषु प्राणेभ्योऽपि महाभयम् । लिप्तांगः सर्वरोगैश्च मुच्यते नात्र संशयः ॥७९॥
नाशयेन्मूषिकालूतावृश्चिकाद्युत्थितं विषम् । औदुम्बरसमिद्भिस्तु भवेद्धान्यसमृद्धिमान् ॥८०॥
सेवंतीकुसुमैर्हुत्वा महतीं श्रियमाप्नुयात् । क्रुद्धस्य सन्निधौ राज्ञो जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥८१॥
अपूपलक्षहोमे तु भवेद्वैश्रवणोपमः । कुन्दप्रसूनैरुदयं मोचाभिर्विघ्ननाशनम् ॥८२॥
सद्यो नैर्मल्यमाप्नोति प्रसादं चाधिगच्छति । शाल्युत्थसक्तुहोमेन वशयेदखिलं जगत् ॥८३॥
तुलसीपत्रहोमेन महतीं कीर्तिमाप्नुयात् । दधिमध्वाज्यमिश्रां तु गुडूचीं चतुरंगुलाम् ॥८४॥
मधूकपुष्पैरिष्टं स्यात्स्तंभनं धात्रिखण्डकैः । शनैश्चरदिनेऽश्वत्थं स्पृष्ट्वा चाष्टोत्तरं
जुहुयादयुतं योऽसौ शतं जीवति रोगजित् शतम् ॥८५॥

। अथ तं संप्रवक्ष्यामि यंत्रं त्रैलोक्यमोहनम् ॥८६॥
जपेज्जित्वासोऽपमृत्युं शतवर्षाणि जीवति । श्वेतभूर्ज्जे लिखेत्पद्मं द्वात्रिंशत्सिंहसंयुतम् ॥८७॥
यस्य संधारणादेव भवेयुः सर्वसंपदः ।

दूसरे राष्ट्र के ऊपर विजय
रहे हों—इस स्वरूप का संस्मरण करते हुए हवन करे। सात दिनों तक हवन करके आये तब
पाने की इच्छा से शुभ लग्न में अपनी सेना को चढ़ाई के लिये भेजे। पुनः जब तक वह सेना लौट कर मंत्री
तक रिपुसमूह का विध्वंस करने वाले नरसिंह का ध्यान-जप करते रहना चाहिये। निखिल शत्रुओं को जीत कर दे।
के लौट आने पर प्रसन्नचित्त राजा मन्त्री को हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, गाँव जागीर, धन आदि से पुरस्कार संकट
क्योंकि यदि मंत्री असंतुष्ट रहेगा तो महीपति के लिये अनिष्ट होगा ॥७२-७७॥ उसके राष्ट्र में प्राणों पर कीड़े-मकोड़े,
आएगा। एक सौ आठ बार भस्म को नरसिंह के मूलमंत्र से अभिमंत्रित कर देने से वह भस्म चूहों, इसमें संशय
बिच्छू आदि के विष को नष्ट कर डालते हैं। अङ्गों में उसके लेप करने से सब रोग छूट जाते हैं, धनधान्य
नहीं। सेवंती पुष्पों से हवन करने से प्रचुर संपत्ति प्राप्त होती है। गूलर की समिधा से होम करने से समीप
की प्राप्ति होती है ॥७८-८०॥ पुए से एक लाख हवन करने से मनुष्य कुबेरतुल्य होता है। क्रुद्ध राजा के पुष्पों
एक सौ आठ बार जप करने से वह तुरन्त क्रोध का त्याग कर प्रसन्नता प्रकट करने लगता है। कुन्द के सेमल
से हवन करने से उन्नति होती है। केले के फूलों से हवन करने पर विघ्नों का नाश होता है ॥८१-८२॥ चावल
के फूलों से होम करने से विघ्न का नाश होता है। तुलसी-पत्रों से हवन करने से महायश प्राप्त होता है। इष्ट की
के बने सत्तू से होम करने से संपूर्ण जगत् वशीभूत होता है ॥८३॥ दोपहरिया के फूलों से होम करने से घृत
प्राप्ति होती है और धात्री फलों से होम करने से (शत्रु का) स्तंभन होता है। जो व्यक्ति दधि, मधु तथा ॥८४½॥
मिश्रित चार अंगुल की गुडूची से दश हजार बार हवन करता है, वह आरोग्यपूर्वक सौ वर्ष जीता है जीत
जो शनि दिन पीपल के वृक्ष का स्पर्श कर एक सौ आठ बार इस मंत्र का जप करता है, वह अपमृत्यु को
कर सौ वर्ष तक जीता है ॥८५½॥

अब मैं त्रैलोक्य को मोहित करने वाले यंत्र के बारे में तुमसे कहता हूँ, जिसके धारण करने से सकल
सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। श्वेत भोज पत्र पर ३२ सिंह-मूर्तियों से युक्त कमल लिखे जो मनोहर तथा

||८८||
मध्ये सिंहे स्वबीजं च लिखेत्पूर्ववदेव तु । श्रीबीजेन तु संवेद्य वलयत्रयसंयुतम् ||८९||
पाशांकुशैश्च संवेष्टय पूजयेद्यंत्रमुत्तमम् । त्रैलोक्यमोहनं नाम सर्वकामार्थसाधनम् ||९०||
चक्रराजं महाराजं सर्वचक्रेश्वरेश्वरम् । धारणाज्जयमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ||९१||
अथ यन्त्रांतरं वक्ष्ये शृणु नारद सिद्धिदम् । अष्टारं विलिखेद्यंत्रं श्लक्ष्णं कर्णिकया युतम् ||९२||
मूलमंत्रं लिखेत्तत्र प्रणवेन समन्वितम् । एकाक्षरं नारसिंहं मध्ये चैव ससाध्यकम् ||९३||
जपेदष्टसहस्रं तु सूत्रेणावेष्टय तद्बहिः । स्वर्णरौप्यमुताम्रैश्च वेष्टयेत्क्रमतः सुधीः ||९४||
लाक्षया वेष्टितं कृत्वा पुनर्मंत्रेण मंत्रयेत् । कंठे भुजे शिखायां वा धारयेद्यंत्रमुत्तमम् ||९५||
नरनारीनरेंद्राश्च सर्वे स्युर्वशगा भुवि । दुष्टास्तं नैव बाधंते पिशाचोरगराक्षसाः ||९६||
यंत्रराजप्रसादेन सर्वत्र जयमाप्नुयात् । अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि यंत्रं सर्ववशंकरम् ||९७||
द्वादशारं महाचक्रं पूर्ववद्विलिखेत्सुधीः । मात्राद्वादशसंभिन्नदलेन विलिखेद्बुधः ||९८||
मध्ये मंत्रं शक्तियुक्तं श्रीबीजेन तु वेष्टयेत् । कालांतकं नाम चक्रं सुरासुरवशंकरम् ||९९||
चक्रमुल्लेखयेद्भूर्जे सर्वशत्रुनिवारणम् । यस्य धारणमात्रेण सर्वत्र विजयी भवेत् ||१००||
अथ सर्वेष्टदं ज्वालामालिसंज्ञं वदाम्यहम् । बीजं हृद्भगवान्ङेतो नरसिंहाय तत्परम् ||१०१||
ज्वालिने मालिने दीप्तदंष्ट्राय अग्निने पदम् । त्राय सर्वादिरक्षोघ्नाय च नः सर्वभूपदम् ||१०२||
हरिर्विनाशनायांते सर्वज्वरविनाशनः । नामांते दहयुग्मं च पचद्वयमुदीरयेत् ||१०३||
रक्षयुग्मं च वर्मास्त्रठद्वयांतो ध्रुवादिकः । अष्टषष्टयक्षरैः प्रोक्तो ज्वालामाली मनूत्तमः ||१०४||
पुण्यादिकं तु पूर्वोक्तं त्रयोदशभिरक्षरैः । पंक्तिभी रुद्रसंख्याकैरष्टादशभिरक्षरैः

कर्णिका से युक्त हो। उस पर प्रणव युक्त मूल मन्त्र को लिख कर मध्य में साध्य सहित नरसिंह का एकाक्षर मन्त्र लिखे। उस मन्त्र का एक सहस्र जप कर सूत्र से कमल को लपेट दे। उसको फिर धीमान् व्यक्ति सुवर्ण, चाँदी, ताँबे तथा लाक्षा (लाह) से क्रमशः वेष्टित करे। अनन्तर उस उत्तम यन्त्र को मन्त्र से अभिमंत्रित कर गले में या बाहु में या शिखा में बांध ले। ऐसा करने से नर, नारी तथा नरेन्द्र उसके वशीभूत हो जाते हैं। दुष्ट पिशाच, सर्प तथा राक्षसों का उसे भय नहीं होता। यन्त्रराज की कृपा से उसकी सर्वत्र विजय होती है ॥८६-९५½॥

इसके बाद सब प्राणियों को वश में करने वाला दूसरा मन्त्र बतलाता हूँ। सुधी जन पहले की तरह द्वादशकोणयुक्त महाचक्र को लिखे। उसके ऊपर बारह मात्राओं से युक्त कमल को लिख कर मध्य में शक्तियुक्त मन्त्र को लिखे और उसे श्रीबीज में वेष्टित करे। उस चक्र का नाम कालांतक है, जो देवों तथा असुरों को वश में करने वाला है। उस चक्र को भोजपत्र पर लिखना चाहिये। वह समस्त शत्रुओं का निवारण करने वाला है। उसके धारण करने से सर्वत्र विजय होती है ॥९६-९९॥

अतःपर सकल कल्याणदायक ज्वालामाली नामक मंत्र को बतलाता हूँ। "बीजम्......ध्रुवादिक"—यह अड़सठ अक्षरों वाला ज्वालामाली मंत्र सर्वोत्तम है। तेरह अक्षरों वाला पुण्यादिक मंत्र तो पहले ही बतला दिया गया है। साधक ग्यारह पंक्तियों, अट्ठारह अक्षरों और बारह करणों से अंगों की कल्पना करे। ज्वालामाली नरसिंह देव के पूर्वोक्त रूप का ध्यान कर एक लाख जप करे और उसका दशांश कैली गाय के घी से हवन करे। यह उत्तम मंत्र मिरगी आदि भयंकर रोगों तथा भूतादि बाधाओं को नष्ट करता है। "प्राणः......" यह छह अक्षरों वाला महामंत्र सकल कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। इसके मुनि ब्रह्मा हैं, छंद पंक्ति है और देवता

पूर्वोक्तरूपिणं ज्वालामालिनं नृहरिं स्मरेत् ॥१०५॥
भानुभिः करणैर्मंत्री वर्णैरंगानि कल्पयेत् । रौद्रापस्मारभूतादिनाशकोऽयं मनूत्तमः ॥१०६॥
लक्षं जपो दशांशं च जुहुयात्कपिलाघृतैः । षडक्षरो महामंत्रः सर्वाभीष्टप्रदायकः ॥१०७॥
प्राणो माया नृसिंहश्च सृष्टिर्ब्रह्मास्त्रमीरितः । षड्दीर्घभाजा बीजेन षडंगानि समाचरेत् ॥१०८॥
मुनिर्ब्रह्मा तथा छंदः पंक्तिर्देवो नृकेसरी । षड्दीर्घभाजा बीजेन सर्वसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥१०९॥
पूर्वोक्तेनैव विधिना ध्यानं पूजां समाचरेत् । सिद्धेन मनुनानेन सर्वसिद्धिर्भवेन्नृणाम् । प्रजापतिर्मुनिश्छंदोऽनुष्टुप् लक्ष्मीनृकेसरी ॥११०॥
रमाबीजादिकोऽनुष्टुप्त्र्यस्त्रिंशार्णवान्मनुः । विन्यस्यैवं तु पंचांगं स्वात्मरक्षां समाचरेत् ॥१११॥
देवता च पदैः सर्वेणांगकल्पनमीरितम् । प्रणवो हृच्छिवायेति महते शरभाय च ॥११२॥
संस्पृशन् दक्षिणं बाहुं शरभस्य मनुं जपेत् । अथवा राममंत्रांते परं क्षद्वितयं पठेत् ॥११३॥
वह्निप्रियांतो मंत्रस्तु रक्षार्थे समुदाहृतः । केशवः पातु पादौ मे जंघे नारायणोऽवतु ॥११४॥
अथवा केशवाद्यैस्तु रक्षां कुर्यात्प्रयत्नतः । नाभिं विष्णुश्च मे पातु जठरं मधुसूदनः ॥११५॥
माधवो मे कटिं पातु गोविन्दो गुह्यमेव च । श्रीधरः पातु कण्ठं च हृषीकेशो मुखं मम ॥११६॥
ऊरू त्रिविक्रमः पातु हृदयं पातु मे नरः । एवं विन्यस्य चांगेषु जपकाले तु साधकः ॥११७॥
पद्मनाभः स्तनौ पातु शीर्षं दामोदरोऽवतु । पुनर्न्यसेत्प्रयत्नेन ध्यानं कुर्वन्समाहितः ॥११८॥
निर्भयो जायते भूतवेतालग्रहराक्षसात् । पश्चान्नारायणः शंखी नीलजीमूतसन्निभः ॥११९॥
पुरस्तात्केशवः पातुः चक्री जांबूनदप्रभः । गोविन्दो दक्षिणे पार्श्वे धन्वी चन्द्रप्रभो महान् ॥१२०॥
उर्ध्वमिंदीवरश्यामो माधवस्तु गदाधरः । आग्नेय्यामरविंदाक्षो मुसली मधुसूदनः ॥१२१॥
उत्तरे हलधृग्विष्णुः पद्मकिंजल्कसन्निभः । वायव्यां माधवो वज्री तरुणादित्यसन्निभः ॥१२२॥
त्रिविक्रमः खड्गपाणिर्नैरृत्यां ज्वलनप्रभः ।

नरसिंह हैं। छह दीर्घ मात्राओं से युक्त बीज मंत्र से षडंगन्यास करके पूर्वोक्त प्रकार से ध्यान-पूजन करना चाहिये। इस मंत्र के सिद्ध हो जाने से मनुष्यों को सकल सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। रमाबीज वाला मंत्र तैंतीस अक्षरों का है। इसके ऋषि प्रजापति है, छंद अनुष्टुप् हैं और देवता लक्ष्मी तथा नरसिंह हैं। मंत्र के पदों से अंगों की कल्पना करके पंचांगन्यास करते हुए आत्मरक्षा करे। दक्षिण भुजा का स्पर्श करते हुए "प्रणव...." इस शरभमंत्र का जप करे ॥१००-११३॥ अथवा राम मंत्र के अंत में दो 'क्ष' अक्षरों को जोड़ कर जप करे। अथवा 'केशव' आदि पढ़कर यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये 'केशव मेरे चरणों की रक्षा करे, नारायण जंघे की, माधव कटि की, गोविन्द गुह्यदेश की, विष्णु नाभि की, मधुसूदन उदर की, त्रिविक्रम ऊरु की, नर हृदय की, श्रीधर कंठ की, हृषीकेश मुख की, पद्मनाभ स्तनों की और दामोदर शिर की रक्षा करे, इस प्रकार जपकाल में अंगों का न्यास करके साधक भूत, वेताल, ग्रह तथा राक्षस से निर्भय हो जाता है। इसके बाद समाहित चित्त से यत्नपूर्वक (निम्नलिखित प्रकार से) ध्यान करते हुए पुनः न्यास करे—"सुवर्ण के समान प्रभा वाले चक्रधारी केशव अग्रभाग में रक्षा करें। काले बादल के समान आभा वाले चक्रधारी नारायण पृष्ठभाग में रक्षा करें। नील कमल के समान श्याम वर्ण वाले गदाधारी माधव ऊर्ध्वभाग में रक्षा करें। चंद्रमा के समान प्रभा वाले महान् धनुर्धारी गोविंद दाहिने पार्श्व में रक्षा करें। कमल केसर के समान कान्ति वाले हलधारी विष्णु उत्तर दिशा में रक्षा करें। मुशलधारी कमलाक्ष मधुसूधन आग्नेय कोण में रक्षा करें। अग्नितुल्य प्रभा वाले खड्गपाणि त्रिविक्रम नैर्ऋत्यकोण में रक्षा करें। तरुण आदित्य के समान कान्ति वाले वज्रधारी माधव वायव्यकोण में रक्षा करें। पट्टिश आयुध

ऐशान्यां पुण्डरीकाक्षः श्रीधरः पट्टिशायुधः । विद्युत्प्रभो हृषीकेश ऊर्ध्वं पातु समुद्गरः ॥१२३॥
अधश्च पद्मनाभो मे सहस्रांशुसमप्रभः । सर्वायुधः सर्वशक्तिः सर्वाद्यः सर्वतोमुखः ॥१२४॥
इन्द्रगोपप्रभः पायात्पाशहस्तोऽपराजितः । स बाह्याभ्यंतरे देहमव्याद्दामोदरो हरिः ॥१२५॥
एवं सर्वत्र निश्छिद्रं नामद्वादशपञ्जरम् । प्रविष्टोऽहं न मे किंचिद्भयमस्ति कदाचन ॥१२६॥
एवं रक्षां विधायाथ दुर्द्धर्षो जायते नरः । सर्वेषु नृहरेर्मंत्रवर्गेष्वेवंविधिर्मतः ॥१२७॥
पूर्वोक्तविधिना सर्वं ध्यानपूजादिकं चरेत् । जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ॥१२८॥
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष ते नमः । इत्थं संप्रार्थ्य जप्त्वा च पठित्वा विसृजेद्विभुम् ॥१२९॥
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री जायते सम्पदां पदम् । जयद्वयं श्रीनृसिंहेत्यष्टार्णोऽग्र्यं मनूत्तमः ॥१३०॥
मुनिर्ब्रह्माथ गायत्री छन्दः प्रोक्तोऽस्य देवता । श्रीमाञ्जयनृसिंहस्तु सर्वाभीष्टप्रदायकः ॥१३१॥
सेंदुगोविंदपूर्वेण वियता सेन्दुना पुनः । षड्दीर्घाढ्येन कुर्वीत षडंगानि विशालधीः ॥१३२॥
ततो ध्यायेद्धृदि विभुं नृसिंहं चन्द्रशेखरम् ॥१३३॥

श्रीमन्नृकेसरितनो जगदेकबन्धोश्रीनीलकण्ठ करुणार्णव सामराज । ॥१३४॥

वह्नीन्दुतीव्रकरनेत्र पिनाकपाणे शीतांशुशेखर रमेश्वर पाहि विष्णो

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षाष्टकं मन्त्री दशांशतः । साज्येन पायसान्नेन जुहुयात्प्राग्वदर्चनम् ॥१३५॥
तारो माया स्वबीजांते कर्णोग्रं वीरमीरयेत् । महाविष्णुं ततो ब्रूयाज्ज्वलंतं सर्वतोमुखम् ॥१३६॥
स्फुरद्द्वयं प्रस्फुरेति द्वयं घोरपदं ततः । वदेद्घोरतरं ते तु तनुरूपं च ठद्वयम् ॥१३७॥
प्रचटद्वयमाभाष्य कहयुग्मं च मद्वयम् । बन्धद्वय घातयेति द्वयं वर्मास्त्रमीरयेत् ॥१३८॥

रखने वाले पुण्डरीकाक्ष श्रीधर ऐशान्य कोण में रक्षा करें। विद्युत् के समान प्रभा वाले तथा मुद्गर धारण करने वाले हृषीकेश ऊपर रक्षा करें। सहस्र किरणों के समान प्रभा वाले पद्मनाभ नीचे रक्षा करें। समस्त आयुधों से युक्त, सर्वशक्तिमान्, सब के आदि, सब ओर मुख वाले इंद्रगोप के समान प्रभा वाले, हाथों में पाश तथा अपराजिता धारण करने वाले दामोदर भगवान् बाहर-भीतर सब जगह शरीर की रक्षा करें। इस तरह छिद्रों से सर्वथा रहित बारह नाम रूपी पिंजरे में मैं प्रविष्ट हूँ, मुझे कभी कुछ भी भय नहीं है ॥११४-१२६॥"

इस प्रकार रक्षा करने से मनुष्य दुर्जेय हो जाता है। नरसिंह के समस्त मंत्रों का यही विधान है। पूर्वोक्त विधि से ध्यान-पूजा करके प्रार्थना करे--"पुण्डरीकाक्ष! आपकी जय हो! जगत्कारण! आपको नमस्कार है। हृषीकेश! आपको नमस्कार है। महापुरुष! आपको नमस्कार है।" अनन्तर जप-पाठ कर विभु का विसर्जन करे ॥१२७-१२९॥

इस तरह मन्त्र सिद्ध हो जाने पर निखिल ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। "जपद्वयम्......" यह आठ अक्षरों का उत्तम मन्त्र है। इसके ऋषि ब्रह्मा हैं, छंद अनुष्टुप् है और देवता अखिलकामनादायक श्रीमान् नरसिंह हैं। सुधी साधक छह दीर्घ मात्राओं से युक्त बीज मन्त्र से षडंगन्यास कर हृदय में विभु चन्द्रशेखर नरसिंह का (इस प्रकार) ध्यान करे--"श्रीमन्! नरसिंह! सूक्ष्म! जगत् के एकमात्र सुहृत्! श्रीनीलकंठ! करुणार्णव! मेरी सामराज! अग्नि तथा चन्द्रमा रूपी तीव्र हाथ और नेत्र वाले! पिनाकपाणे! चन्द्रशेखर! रमेश्वर! विष्णो! मेरी रक्षा कीजिये॥" इस प्रकार ध्यान कर आठ लाख मन्त्र जप करे और उसका दशांश घी एवम् खीर से हवन करे। "तारः..........अहम्" यह पचासी अक्षरों का मन्त्र है। इससे साधक को अभीष्टसिद्धि होती है। इसके

पञ्चाशीत्यक्षरो मन्त्रो भजतामिष्टदायकः ॥१३९॥
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् । छन्दसी च तथा घोरनृसिंहो देवता मतः ॥१४०॥
ऋषी ह्यघोरब्रह्माणौ तथा त्रिष्टुबनुष्टुभौ । विशेषान्मन्त्रवर्योऽयं सर्वरक्षाकरो मतः ॥१४१॥
ध्यानार्चनादिकं चास्य कुर्यादानुष्टुभं सुधीः । ऋषिः प्रजापतिश्चास्यानुष्टुप्छन्द उदाहृतम् ॥१४२॥
बीजं जययुगं पश्चान्नृसिंहेत्यष्टवर्णवान् । जं बीजं हुं तथा शक्तिर्विनियोगोऽखिलाप्तये ॥१४३॥
विदारणनृसिंहोऽस्य देवता परिकीर्तितः । रौद्रं ध्यायेन्नृसिंहं तु शत्रुवक्षोविदारणम् ॥१४४॥
दीर्घाढ्येन नृसिंहेन षडंगन्यासमाचरेत् । तप्तहाटककेशांतज्वलत्पावकलोचनम् ॥१४५॥
नखदंष्ट्रायुधं भक्ताभयदं श्रीनिकेतनम् । मुनिर्ब्रह्मा समाख्यातोऽनुष्टुप्छंदः समीरितः ॥१४६॥
वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते । पदैश्चतुर्भिः सर्वेण पंचांगानि समाचरेत् ॥१४७॥
देवतास्य रदार्णस्य दिव्यपूर्वो नृकेसरी । पूर्वोक्तानि च सर्वाणि कार्याण्यायांति सिद्धताम् ॥१४८॥
ध्यानपूजादिकं सर्वं प्राग्वत्प्रोक्तं मुनीश्वर । आविराविर्भव वज्रनखांततः ॥१४९॥
तारो नमो भगवते नरसिंहाय हृच्च ते । जस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनखांततः ॥१४९॥
वज्रदंष्ट्रेति कर्मांते त्वासयाक्रंदयद्वयम् । तमो ग्रसद्वयं पश्चात्स्वाहांते चाभयं ततः ॥१५०॥
आत्मन्यंते च भूयिष्ठा ध्रुवो बीजांतिमो मनुः । द्विषष्ट्यर्णोऽस्य मुन्यादि सर्वं पूर्ववदीरितम् ॥१५१॥
तारो नृसिंहबीजं च नमो भगवते ततः । नरसिंहाय तारश्च बीजमस्य यदा ततः ॥१५२॥
रूपाय तारः स्वबीजं कूर्मरूपाय तारकम् । बीजं वराहरूपाय तारो बीज नृसिंहतः ॥१५३॥
रूपाय तार स्वं बीजं वामनांते च रूपतः । पापध्रुवत्रयं बीजं रामाय निगमादितः ॥१५४॥
बीजं कृष्णाय तारांते बीजं च कल्किने ततः । जयद्वयं ततः शालग्रामांते च निवासिने ॥१५५॥
दिव्यसिंहाय ङेन्तः स्यात्स्वयंभूः पुरुषाय हृत् । तारः स्वं बीजमित्येष महासाम्राज्यदायकः ॥१५६॥
नृसिंहमन्त्रः खांकार्णो मुनिरत्रिः प्रकीर्तितः । छन्दोऽतिजगती प्रोक्तं देवता कथिता मनोः ॥१५७॥
दशावतारो नृहरिं बीजं खं शक्तिरव्ययः । षड्दीर्घाढ्येन बीजेन कृत्वांगानि च भावयेत् ॥१५८॥

ऋषि अघोर एवम् ब्रह्मा हैं, छंद त्रिष्टुप् एवम् अनुष्टुप् हैं और देवता घोर नरसिंह हैं। धीमान् व्यक्ति इसके ध्यान-पूजन संक्षेप से करें। यह उत्तम मन्त्र सब प्रकार से रक्षा करने वाला है। "बीजम्......"यह आठ अक्षरों का मन्त्र है। इसके ऋषि प्रजापति, छंद अनुष्टुप् तथा देवता विदारण नरसिंह कहे गये हैं। 'जं' बीज है तथा 'हुं' शक्ति है। सर्वप्राप्ति के लिये इसका विनियोग किया जाता है ॥१३०-१४३॥ दीर्घमात्रा से युक्त नरसिंह मन्त्र से षडंगन्यास कर शत्रु के हृदय को विदीर्ण करने वाले, नख तथा दंष्ट्रा रूपी आयुध वाले, भक्तों को अभयदान देने वाले, श्री के निवासस्थान, संतप्त सुवर्ण के समान केश वाले और जाज्वल्यमान अग्नि के समान नेत्र वाले भयानक नरसिंह का ध्यान करे। "वज्राधिक........"यह मन्त्र है। इसके मुनि ब्रह्मा हैं, छंद अनुष्टुप् हैं और देवता दिव्यरूप नरसिंह हैं। चार पादों एवम् वर्णों से पचांगन्यास करना चाहिये। मुनोश्वर! ध्यान-पूजन आदि तो पूर्ववत् ही समझो। उक्त प्रकार आचरण करने से सब कार्य सिद्ध होते हैं। "तार........ध्रुवः" यह बासठ अक्षरों वाला मन्त्र है। इसके मुनि आदि सब कुछ यथापूर्व ही समझना चाहिये। "तारो नरसिंह बीजम्..........स्वं बीजम्"यह मन्त्र महासाम्राज्यदायक है। इसके मुनि अत्रि, छंद अतिजगती और देवता नरहरि हैं। दशावतार नरहरि बीज हैं और अव्यय नरसिंह शक्ति हैं। छह दीर्घ मात्राओं से युक्त बीज से अंगन्यास करके (नरसिंह का) ध्यान करना चाहिए—"अनेक चन्द्रमा के समान मनोहर, लक्ष्मी के मुख पर दृष्टिपात करने वाले और दश अवतार धारण करने वाले नरसिंह आनन्दवृद्धि करें।" अनन्तर दस हजार मन्त्र का जप कर उसका दशांश खीर से होम करे

अनेकचन्द्रप्रतिमो लक्ष्मीमुखकृतेक्षणः । दशावतारैः सहितस्तनोतु नृहरिः सुखम् ॥१५९॥
जपोऽयुतं दशांशेन होमः स्यात्पायसेन तु । प्राग्युक्ते पूजयेत्पीठे मूर्तिं संकल्प्य मूलतः ॥१६०॥
अंगान्यादौ च मत्स्याद्यान्दिग्दलेषु ततोऽर्चयेत् । इन्द्राद्यानपि वज्राद्यान्सम्पूज्येष्टमवाप्नुयात् ॥१६१॥
सहस्रार्णं महामंत्रं वक्ष्ये तंत्रेषु गोपितम् । तारो माया रमा कामो बीजं क्रोधपदं ततः ॥१६२॥
मूर्ते नृसिंहशब्दांते महापुरुष ईरयेत् । प्रधानधर्माधर्मान्ते निगडेतिपदं वदेत् ॥१६३॥
निर्मोचनांते कालेति ततः पुरुष ईरयेत् । कालांतकसदृक्क्रोधं स्वेश्वरांते सदृग्जलम् ॥१६४॥
श्रांतांते तु निविष्टेति चैतन्यचित्सदा ततः । भासकांते तु कालाद्यतीतनित्योदितेति च ॥१६५॥
उदयास्तमयाक्रान्तमहाकारुणिकेति च । हृदयाब्जचतुश्चोक्ता दलांते तु निविष्टितः ॥१६६॥
चैतन्यात्मंश्चतुरामन्द्वादशात्मंस्ततः परम् । चतुर्विंशात्मन्नन्ते तु पञ्चविंशात्मन्नित्यपि ॥१६७॥
बको हरिः सहस्रांते मूर्ते एह्येहिशब्दतः । भगवन्नृसिंहपुरुष क्रोधेश्वर रसा सह ॥१६८॥
स्रवंदितांते पादेति कल्पांताग्निसहस्र च । कोट्याभांते महादेव निकायदशशब्दतः ॥१६९॥
शतयज्ञातलं ज्ञेयं ततश्चामलयुग्मकम् । पिंगलेक्षणसटादंष्ट्रा दंष्ट्रायुध नखायुध ॥१७०॥
दानवेंद्रांतकावह्लिणशोणितपदं ततः । संसक्तिविग्रहांते तु भूतापस्मारयातुधान् ॥१७१॥
सुरासुरवंद्यमानपादपंकजशब्दतः । भगवन्व्योमचक्रेश्वरांते तु प्रभवाप्यय ॥१७२॥
रूपेणोत्तिष्ठ चोत्तिष्ठ अविद्यानिचयं दह । दह ज्ञानैश्वर्यमंते प्रकाशययुगं ततः ॥१७३॥
ओं सर्वज्ञ अरोषांते जंभाजृंभ्यवतारकम् । सत्यपुरुषशब्दांते सदसन्मध्य ईरयेत् ॥१७४॥
निर्विष्टं मम दुःस्वप्नभयं निगडशब्दतः । भयं कांतारशब्दांते भयं विषपदात्ततः ॥१७५॥
ज्वरांते डाकिनी कृत्याध्वरेवतीभयं ततः । अशन्यंते भयं दुर्भिक्षभयं मारीचशब्दतः ॥१७६॥
भयं मारीचशब्दांते भयं छायापदं ततः । स्कंदापस्मारशब्दांते भयं चौरभयं ततः ॥१७७॥
जलस्वप्नाग्निभयं गर्जसिंहभुजङ्गतः । भयं जन्मजरांते मरणादिशब्दमीरयेत् ॥१७८॥
भयं निर्मोचययुगं प्रशमययुगं ततः । ज्ञेयरूपधारणांते नृसिंहबृहत्सामतः ॥१७९॥
पुरुषांते सर्वभयनिवारणपदं ततः । अष्टाष्टकं चतुःषष्टि चेटिकाभयमीरयेत् ॥१८०॥

तत्पश्चात् पूर्वोक्त पीठ पर मूलमन्त्र से मूर्ति का संकल्प कर पहिले अंगों का, फिर दिशाओं के कोणों में मत्स्य आदि अवतारों, इन्द्र आदि देवों और वज्र आदि आयुधों का पूजन करे। ऐसा करने से इष्टसिद्धि होती है ॥१४४-१६१॥

अब मैं सहस्र अक्षरों वाले महामंत्र को बतलाऊँगा, जो तंत्रों में गोपनीय माना गया है। "तारो माया......लक्ष्मीबीजद्वयं ततः" यह हजार अक्षरों का अंतिम मंत्र है। इसके मुनि कपिल, छंद जगती और देवता लक्ष्मी तथा नृहरि हैं। मनीषियों ने इसका बीज 'क्षौं', शक्ति 'स्वाहा', वर्ण श्वेत और स्वर 'उदात्त' बतलाया है। क्षेत्र परमात्मा हैं और विनियोग सर्वप्राप्ति के लिये किया जाता है। "क्षः......फट्" इस मंत्र से करशुद्धि करके अंगन्यास करना चाहिये। "तारः क्षां...." इससे हृदय का स्पर्श करे। "तारः क्षीं...." इससे शिर का स्पर्श करे। "तारः क्षूं..." इससे केशों का स्पर्श करे। "ज्वलति..." इससे शिखा का स्पर्श करे। "तारः क्षैं..." इससे कवच का स्पर्श करे। "तारः क्षौं..." इससे नेत्र का स्पर्श करे। "तारोक्षः...." इससे अस्त्र का स्पर्श करे। तदनन्तर सहस्रों उदीयमान सूर्यों के समान चमकने वाले, तीन नेत्रों वाले, दारुण

विद्यावृतस्त्रयस्त्रिशद्देवताकोटिशब्दतः । नमितांते पदपदात्पंकजान्वित ईरयेत् ॥१८१॥
सहस्रवदनांते तु सहस्रोदर संवदेत् । सहस्रेक्षणशब्दांते सहस्रपादमीरयेत् ॥१८२॥
सहस्रभुज संप्रोच्य सहस्रजिह्व संवदेत् । सहस्रांते ललाटेति सहस्रायुधतो धरात् ॥१८३॥
तमः प्रकाशक पुरमथनान्ते तु सर्वं च । मन्त्रराजेश्वरपदाद्विहायसगतिप्रद ॥१८४॥
पातालगतिप्रदांते यन्त्रमर्द्दन ईरयेत् । घोराट्टहासहसितविश्वावासपदं ततः ॥१८५॥
वासुदेव ततोऽक्रूर ततो हायमुखेति च । परमहंस विश्वेश विश्वांते तु विडंबन ॥१८६॥
निविष्टांते ततः प्रादुर्भावकारक ईरयेत् । हृषीकेश च स्वच्छंद निःशेषजीव विन्यसेत् ॥१८७॥
ग्रासकांते महा पश्चात्पिशितासृगितीरयेत् । लंपटान्ते खेचरीति सिद्ध्यंते तु प्रदायक ॥१८८॥
अजेयाव्यय अव्यक्त ब्रह्माण्डोदर इत्यपि । ततो ब्रह्मसहस्रांते कोटि स्रग्रुंडशब्दतः ॥१८९॥
माल पंडितमुण्डेति मत्स्य कूर्म ततः परम् । वराहांते नृसिंहेति वामनांते समीरयेत् ॥१९०॥
त्रैलोक्याक्रमणांते तु पादशालिक ईरयेत् । रामत्रय ततो विष्णुरूपांते धर एव च ॥१९१॥
तत्त्वत्रयांते प्रणवाधारतस्तच्छिखां पदम् । निविष्टवह्निजायांते स्वधा चैव ततो वषट् ॥१९२॥
नेत्र वर्मास्त्रमुच्चार्य्य प्राणाधार इतीरयेत् । आदिदेवपदात्प्राणापानपश्चान्निविष्टितः ॥१९३॥
पांचरात्रिक दितिज विनिधनांते करेति च । महामाया अमोघांते दयं दैत्येंद्रशब्दतः ॥१९४॥
दर्पांते दलनेत्युक्ता तेजोराशिन् ध्रुवं स्मरः । तेजस्वरांते पुरुषपंक्ते सत्यपुरुष ॥१९५॥
अस्त्रतारोऽच्युतास्त्रं च तारो वाचा सुदेव फट् । तारमायामूर्तेः फट् वः कामः स्वरादिमः ॥१९६॥
मूर्तेस्त्रमव्ययोबीजं विश्वमूर्तेस्त्रिमव्ययः । मायाविश्वात्मनेषट् च तारः सौचं तुरात्मने ॥१९७॥
फट् तारोहं विश्वरूपिन्नस्त्रं च तदनंतरम् । तारौहं परमांते तु हं सफट्प्रणवस्ततः ॥१९८॥
हः हिरण्यगर्भरूपधारणांते च फट् ध्रुवः । ह्रौं अनौपम्यरूपधारिणास्त्रं ध्रुवस्ततः ॥१९९॥
क्षौं नृसिंहरूपधारिन् ओं वलं श्लश्च स्वरादिकः । ष्टांगविन्यासविन्यस्तमूर्तिधारिस्ततश्च फट् ॥२००॥
क्षौं नृसिंहरूपधारिन् ओँ वलं श्लश्च स्वरादिकः । ष्टांगविन्यासविन्यस्तमूर्तिधारिस्ततश्च फट् २०१॥
ह्रौं निसर्गसिद्ध्यैकरूपधारिस्ततश्च फट् । तारो वर्मत्रयं संकरं वं चामुकमस्तकम् ॥२०२॥
खंडद्वयं खादयेति द्वयं क्लीं साध्यमानय । द्वयं ततो महात्मन्स्यान्सम्यग्दर्शययुग्मकम् ॥२०३॥
षड्दीर्घाड्यां स्वबीजं च क्षपितांते तु कल्मष । उत्तरायंद्वयं पंचबाणबीजानि चोच्चरेत् ॥२०४॥
नृसिंहांते ततो ज्वालात्मने स्वाहा समीरयेत् । नृसिंहान्ते ततः कालात्मने स्वाहा ध्रुवस्ततः ॥२०५॥
खबीजं कामबीजं च लक्ष्मीबीजद्वयं ततः । मायातारांतिमो मन्त्रः सहस्राक्षरसंमितः ॥२०६॥
कपिलोऽस्य मुनिश्छन्दो जगती देवता पुनः । श्रीलक्ष्मीनृहरिर्बीजं क्षौं शक्तिर्वह्निवल्लभा ॥२०७॥
श्वेतो वर्ण उदात्तश्च स्वरः प्रोक्तो मनीषिभिः । क्षेत्रं च परमात्मा तु विनियोगोऽखिलाप्तये ॥२०८॥
क्षः सहस्रबाहवेंते सहस्रायुधधराय च । नृसिंहांतं वह्निजायास्त्रफट् मन्त्र ईरितः ॥२०९॥
अनेन करशुद्धिं च कृत्वांगानि समाचरेत् । तारः क्षां च सहस्रांते क्षरशब्दाद्विजृंभितम् ॥२१०॥
नृसिंहायाग्निजायांतो हृदये मनुरीरितः । मारः क्षीं च महातेनु प्रभांते विकरेति च ॥२११॥

आभूषणों वाले, अत्यन्त तीक्ष्ण नखों से दैत्यों का विदारण करने वाले नृहरि का ध्यान कर एक हजार मंत्र का जप करे और उसका दशांश घृतमिश्रित खीर से हवन करे। ऐसा करने से मंत्र सिद्ध हो जाता है। पूर्वकथित वैष्णव पीठ पर मूल मंत्र से मूर्ति का संकल्प कर अंगों का पूजन करे। पश्चात् नृहरि की पूजा कर दिशाओं के

नृसिंहायाग्निजायांते शिरोमंत्रः प्रकीर्तितः । तारः क्ष्रूं तप्तयंहाटकशरकुकेशांत ईरयेत् २११॥
ज्वलत्पावकलो कूर्मो दीर्घा वज्राधिकेति च । नखस्पर्शादिव्यसिंह नमोऽस्तु भगवन् हरिः ॥२१२॥
महाध्वस्त जगद्रूप नृसिहाय द्वयंद्वयम् । अनेन च शिखा प्रोक्ता कवचं तदनन्तरम् ॥२१३॥
तारः क्षैं च सुवर्णं ते मदमत्तपदं ततः । विह्वलितनृसिंहाय स्वाहांतं कवचं स्मृतम् ॥२१४॥
तारः क्षौं च सहस्राक्ष विश्वरूपपदं वदेत् । धारणेग्निप्रियांतोऽयं नेत्रमंत्रः प्रकीर्तितः ॥२१५॥
तारो क्षश्च सहस्रांते वारावेपदमीरयेत् । सहस्रांते युधायाथ नृसिंहायाग्निसुंदरी ॥२१६॥
अस्त्रमंत्रः समाख्यातस्ततो ध्यायेन्नृकेसरी । उद्यदर्कसहस्राभं वीक्षणं भीमभूषणम् ॥२१७॥
सुतीक्ष्णाग्रभुजो दंडैर्दैत्यदारणकं स्मरेत् । एवं ध्यात्वा जपेन्मंत्री सहस्रं पायसेन च ॥२१८॥
आज्यप्लुतेन जुहुयात्सम्यक्सिद्धो भवेन्मनुः । प्रागुक्ते वैष्णवे पीठे मूर्तिं संकल्प्य मूलतः ॥२१९॥
संपूज्य नृहरिं पश्चादादावंगानि पूजयेत् । चक्रं शंखं च पाशं वांकुशं कुलिशमेव च ॥२२०॥
गदाकृपाणिक्ष्वेडानि दलेषु परिपूजयेत् । लोकेशानपि वज्राद्यान्पूजयेत्तदनंतरम् ॥२२१॥
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान्कर्तुमर्हति । भस्माभिमंत्रितं कृत्वा ग्रहग्रस्तं विलेपयेत् ॥२२२॥
भस्मसंलेपनादेव सर्वग्रहविनाशनम् । अनेनैव विधानेन यक्षराक्षसकिन्नरः ॥२२३॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च नश्यंत्येव न संशयः । पराभिचारकृत्यानि मनुनानेन मंत्रितम् ॥२२४॥
भस्म संलेपयेत्सद्यो दुराधर्षो भवेन्नरः । सुदिने स्थापयेत्कुम्भे सर्वतोभद्रमण्डले ॥२२५॥
तीर्थतोयेन संपूर्य जपेदष्टोत्तरं शतम् । तेनाभिषिक्तो मनुजः सर्वापत्ति तरेद् ध्रुवम् ॥२२६॥
किं बहूक्तेन सर्वेष्टदायकोऽयं मनूत्तमः । वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि ॥२२७॥
तन्नो नृसिंहः शब्दान्ते वदेच्चैव प्रचोदयात्
एषा नृसिंहगायत्री सर्वाभीष्टप्रदायिनी । एतस्याः स्मरणादेव सर्वपापक्षयो भवेत् ॥२२८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने नृसिंहोपासनामन्त्रगायत्र्यादिनिरूपणं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

कोणों में शंख, चक्र, पाश, अंकुश, कुलिश, गदा, कृपाण, वंशशलाका, लोकपालों एवम् वज्र आदि आयुधों की अर्चना करे ॥१९२-२२१॥ इस प्रकार मंत्र सिद्ध कर लेने पर साधक प्रयोगों को कर सकता है। मंत्र से भस्म को अभिमंत्रित कर ग्रहपीड़ित व्यक्ति के अंग में लेप कर देने से समस्त ग्रहों का नाश हो जाता है। इस विधान से यक्ष, राक्षस, किन्नर, भूत, प्रेत और पिशाचों का भी नाश होता है, इसमें संशय नहीं। इस मंत्र से अभिमंत्रित भस्म शत्रुओं का निवारण करता है। इसके लेप से मनुष्य महापुरुष हो जाता है। सुदिन में सर्वतोभद्रमंडल बना कर उस पर घटस्थापन करे। घट को तीर्थजल से भरकर एक सौ आठ बार मंत्र से अभिमंत्रित करे ॥२२२-२२५॥ उस जल से अभिषिक्त किया हुआ मनुष्य सकल बाधाओं को पार कर जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। बहुत क्या कहूं? यह मंत्र समस्त वांछित फलों को देने वाला है। "वज्रनखाय ·· प्रचोदयात्" यह सकल कामनाओं को पूर्ण करने वाली नृसिंहगायत्री है। इसके स्मरणमात्र से समस्त पापों का क्षय होता है ॥२२६-२२८॥

श्रीनारदीय पुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त तृतीय पाद में नृसिंह की उपासना, मंत्र तथा गायत्री आदि का निरूपण नामक इकहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥७१॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

प्रणवो हृदयं विष्णुर्नन्तः सुरपतिस्तथा। महाबलाय स्वाहांतो मंत्रो वसुधराक्षरः ॥१॥
मुनिरिन्दुर्विराट्छन्दो देवता दधिवामनः। तारो बीजं तथा शक्तिर्वह्निजाया प्रकीर्तिता ॥२॥
चंद्राक्षिरामबाणेषु नेत्रसंख्यैर्मनूद्भवैः। वर्णैः षडंगं कृत्वा च मूर्ध्नि भाले च नेत्रयोः ॥३॥
कर्णयोर्घ्राणयोरोष्ठतालुकण्ठभुजेषु च। पृष्ठे हृद्युदरे नाभौ गुह्ये चोरुस्थले पुनः ॥४॥
जानुद्वयं जङ्घयोश्च पादयोर्विन्यसेत्क्रमात्। अष्टादशैव मंत्रोत्थास्ततो देवं विचिंतयेत् ॥५॥
मुक्तागौरं रत्नभूषं चन्द्रस्थं भृङ्गसन्निभैः। अलकैर्विलसद्वक्त्रं कुम्भं शुद्धांबुपूरितम् ॥६॥
दध्यन्नपूर्णचषकं दोर्भ्यां संदधतं भजेत्। लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं घृतप्लुतैः ॥७॥
पायसान्नैः प्रजुहुयाद्दध्यन्नेन यथाविधि। चन्द्रांते कल्पिते पीठे पूर्वोक्ते पूजयेच्च तम् ॥८॥
संकल्पमूर्तिमूलेन संपूज्य च विधानतः। केसरेषु षडंगानि संपूज्य दिग्दलेषु च ॥९॥
वासुदेवं संकर्षणं प्रद्युम्नमनिरुद्धकम्। कोणपत्रेषु शांतिं च श्रियं सरस्वतीं रतिम् ॥१०॥
ध्वजं च वैनतेयं च कौस्तुभं वनमालिकम्। शंखं चक्रं गदां शाङ्गं दलेष्वष्टसु पूजयेत् ॥११॥
दलाग्रेषु केशवादीन्दिक्पालांस्तदनंतरम्। तदस्त्राणि च सम्पूज्य गजानष्टौ समर्चयेत् ॥१२॥

अध्याय ७२

हयग्रीव-मंत्रोपासना-कथन

सनत्कुमार बोले—"प्रणवः···स्वाहा" यह मंत्र तेईस अक्षरों का है। इसके मुनि इन्दु, छंद विराट् और देवता दधिवामन हैं। तार बीज और स्वाहा शक्ति मानी गई है। मंत्र के तेरह वर्णों से षडंग न्यास कर मस्तक, भाल, नेत्र, कर्ण, नासिका, ओष्ठ, तालु, कंठ, भुजा, पृष्ठ, हृदय, उदर, नाभि, गुह्य, ऊरु, जंघा, जानु तथा चरणों में क्रमशः मंत्राक्षरों का न्यास करे। तदनन्तर मोती के समान गौर वर्ण, रत्नों के आभूषण धारण करने वाले, भौंरे जैसे बालों से सुशोभित मुख वाले, दोनों हाथों में शुद्ध जल से परिपूर्ण घट तथा दही एवम् अन्न से परिपूर्ण चषक (पात्र) धारण करने वाले देव का ध्यान कर तीन मंत्र का जप करे और उसका दशांश घृतमिश्रित खीर से या दही युक्त अन्न से हवन करे। होमान्त में पूर्वोक्त पीठ पर मूलमंत्र से मूर्ति का संकल्प कर विधानपूर्वक पूजन करे ॥१-८½॥ फिर केसरों पर षडंगों की पूजा कर दिग्भागों में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, शांति, श्री, सरस्वती, रति, ध्वजा, गरुड़, कौस्तुभ (मणि), वनमाला, शंख, चक्र, गदा और शाङ्ग (धनुष) की पूजा करे। तदनन्तर केशव आदि देवों, दिक्पालों, उनके अस्त्रों एवम् आठ दिग्गजों की पूजा कर क्रमशः उनकी हथनियों की भी पूजा करे। ऐरावत, पुंडरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदंत, सार्वभौम, तथा सुप्रतीक—ये आठों दिग्गज कहलाते हैं। अभ्रमु, कपिला, पिंगला, अनुपमा, ताम्रकर्णी, शुभ्रदंती, अंगना तथा अंजनावती—ये आठों हथनियां हैं ॥९-१४॥

ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः । पुष्पदंतः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ॥१३॥
करिण्योऽभ्रमुकपिलापिंगलानुपमाः क्रमात् । ताम्रकर्णी शुभ्रदंती चांगना ह्यंजनावती ॥१४॥
एवमाराधितो मंत्री दद्यादिष्टानि मंत्रिणे । श्रीकामः पायसाज्येन सहस्रं जुहुयात्सुधीः ॥१५॥
महतीं श्रियमाप्नोति धान्याप्तिर्धान्यहोमतः । शतपुष्पासमुत्थैश्च बीजैर्हुत्वा सहस्रतः ॥१६॥
महाभयं नाशयेद्धि नात्र कार्या विचारणा । दध्योदनेन शुद्धेन हुत्वा मुच्येत दुर्गतेः ॥१७॥
ध्यात्वा त्रैविक्रमं रूपं जपेन्मंत्रं समाहितः । कारागृहाद्भवन्मुक्तो बद्धो मंत्रप्रभावतः ॥१८॥
भित्तौ संपाद्य देवेशं फलके वा प्रपूजयेत् । नित्यं सुगंधकुसुमैर्महतीं श्रियमाप्नुयात् ॥२०॥
हुत्वा रक्तोत्पलैर्मंत्री वशयेत्सकलं जगत् । अन्नाज्यैर्जुहुयान्नित्यमष्टाविंशतिसंख्यया ॥२१॥
सिताज्यान्नं च विधिवत्प्राप्नुयादन्नमक्षयम् । अपूपैः षड्रसोपेतैर्हुनेद्वसुसहस्रकम् ॥२२॥
अलक्ष्मीं च पराभूय महतीं श्रियमाप्नुयात् । जुहुयादयुतं मंत्री दध्यन्नं च सितान्वितम् ॥२३॥
यत्र यत्र वसेत्सोऽपि तत्रान्नगिरिमाप्नुयात् । पद्माक्षरैर्युतं बिल्वांतिकस्थो जुहुयान्नरः ॥२४॥
महालक्ष्मीं स लभते तत्र तत्र न संशयः । जुहुयात्पायसैर्लक्षं वाचस्पतिसमो भवेत् ॥२५॥
लक्षं जप्त्वा तद्दशांशं पुत्रजीवफलैर्हुनेत् । तत्काष्ठैरेधिते वह्नौ श्रेष्ठं पुत्रमवाप्नुयात् ॥२६॥
ससाध्यतारं विलसत्कर्णिकं च सुवर्णकैः । विलसत्केसरं मंत्राक्षरद्व्यष्टपत्रकम् ॥२७॥
शेषयुग्मार्णारव्यपत्रं द्वादशाक्षरवेष्टितम् । तद्बहिर्मातृकावर्णैर्यंत्रं सम्पत्प्रदं नृणाम् ॥२८॥
रक्त त्रिविक्रम ध्यात्वा प्रसूनै रक्तवर्णकैः । जुहुयादयुतं मंत्री सर्वत्र विजयी भवेत् ॥२९॥
ध्यायेच्चंद्रासनगतं पद्मानामयुतं हुनेत् । लभेदकंटकं राज्यं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥

इस प्रकार आराधना करने से इष्टसिद्धि होती है। लक्ष्मी का इच्छुक विद्वान् दूध एवम् घी से सहस्र बार हवन करे। ऐसा करने से प्रचुर धन मिलता है। धान्य से होम करने से धान्य की प्राप्ति होती है। सौंफ से सहस्र बार हवन करने से महाभय का नाश होता है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं। शुद्ध दही और भात से होम करने से दुर्गति नष्ट होती है। त्रिविक्रम के रूप का ध्यान कर समाहितचित्त से मंत्र जपने से कारागार (जेल) से छूटकारा मिल जाता है, ऐसा मंत्र का प्रभाव है। भीत या तख्ते पर देवेश का चित्र लिख कर नित्य सुगंधित पुष्पों से पूजा करने वाला व्यक्ति महती श्री को प्राप्त करता है। रक्तकमल से होम करने से तीनों लोक वशीभूत होते हैं। नित्य अट्ठाईस बार घी एवम् चीनी मिश्रित अन्न से विधिपूर्वक हवन करने से क्षयरहित अन्न की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति षड्रसयुक्त पुओं से आठ हजार हवन करता है, वह दरिद्रा को जातकर महती लक्ष्मी को प्राप्त करता है ॥१५-२१३॥ जो दही, चीनी तथा अन्न से दश हजार बार हवन करता है, वह जहाँ-कहीं भी वास करेगा, वहीं उसे अन्न पर्वत (प्रचुर अन्न) प्राप्त होगा। बिल्ववृक्ष के समीप पद्मपरागयुक्त दही एवम् अन्न से हवन करने वाला साधक जन्म-जन्मान्तर में महालक्ष्मी को प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं। खीर से एक लाख बार हवन करने वाला व्यक्ति बृहस्पति-तुल्य होता है ॥२२-२४॥ लक्ष बार मंत्र-जप कर उसका दशांश पुत्रजीव (जियापुता) वृक्ष की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में उसके फल से होम करने से उत्तम पुत्र की प्राप्ति होती है। साध्य एवम् तार मंत्र से युक्त, कर्णिका एवम् केसर से सुशोभित और बारह मंत्राक्षरों से वेष्टित स्वर्णयंत्र मनुष्यों को संपत्ति प्रदान करता है। रक्त वर्ण वाले त्रिविक्रम का ध्यान कर लाल रंग के पुष्पों से हवन करने वाला साधक सर्वत्र विजयी होता है। चंद्रासन पर आसीन त्रिविक्रम का

साध्यनामाढ्यं स वश्यो जायते ध्रुवम् ॥३०॥
हुत्वा लवंगैर्मध्वाक्तैरपामार्गदलैस्तु वा । अयुतं सप्ताहान्महारोगात्प्रमुच्यते ॥३१॥
अष्टोत्तरशतं हुत्वा ह्यपामार्गदलैः शुभैः । तावज्जप्त्वा च प्रवदेदीश्वरेत्यथ ॥३२॥
उद्दिरत्यदमाभाष्य प्रणवोद्गीथ शब्दतः । सर्ववागीश्वरेत्यंते मन्त्रस्तारादिरीरितः ॥३३॥
सर्ववेदमयाविन्त्यपदान्ते सर्वंमीरयेत् । बोधयद्वितवांतोऽयं वागैश्वर्यप्रदो विभुः ॥३४॥
ऋषिर्ब्रह्मास्य निर्दिष्टश्छंदोऽनुष्टुबुदाहृतम् । देवता स्याद्धयग्रीवो तुलसीदामभूषितम् ॥३५॥
तारेण पादैर्मंत्रस्य पञ्चांगानि प्रकल्पयेत् । तुषाराद्रिसमच्छायं तद्दशांशतः ॥३६॥
तुरंगवदनं वंदे तुंगसारस्वतः पदम् । ध्यात्वैवं प्रजपेन्मंत्रमयुतं मूलतः ॥३७॥
मध्वक्तैः पायसैर्हुत्वा विमलादिसमन्विते । पूजयेद्वैष्णवे पीठे मूर्तिं संकल्प्य पृथिवीं तथा ॥३८॥
कर्णिकायां चतुर्दिक्षु यजेत्पूर्वादितः क्रमात् । सनंदनं च सनकं श्रियं च व्याकरणं ततः ॥३९॥
तद्बहिर्दिक्षु वेदाश्च षट्कोणेषु ततोऽर्चयेत् । निरुक्तं ज्योतिषं पश्चाद्यजेद्व्याकरणं ततः ॥४०॥
कल्पं शिक्षां च छंदांसि वेदांगानि त्विमानि वै । ततोऽष्टदलमूले तु मातरोऽष्टौ समर्चयेत् ॥४१॥
वक्रतुंडादिकानष्टौ दलमध्ये प्रपूजयेत् । दलाग्रेष्वर्चयेत्पश्चात्साधकश्चाष्टभैरवान् ॥४२॥
असितांगं रुरुं चैव भीषणं रक्तनेत्रकम् । बटुकं कालदमनं दंतुरं विकटं तथा ॥४३॥
तद्बहिः षोडशदलेष्ववतारान्हरेर्दश । शंखं चक्रं गदां पद्मं नंदकं शार्ङ्गमेव च ॥४४॥
तद्बहिर्भूगृहे शक्रमुखान्दश दिगीश्वरान् । वज्राद्यांस्तद्बहिश्चेष्ट्वा द्वारेषु च ततः क्रमात् ॥४५॥
महागणपतिं दुर्गां क्षेत्रेशं बटुकं तथा । समस्तप्रकटाद्याश्च योगिन्यस्तद्बहिर्भवेत् ॥४६॥

संस्मरण कर दश हजार कमलों से होम करने से सर्वलक्षणसंपन्न अकंटक राज्य की प्राप्ति होती है। जिसका नाम लेकर दश सहस्र बार मधुयुक्त लवंगों या अपामार्ग के पत्रों से हवन किया जायगा, वह अवश्य वशीभूत होगा। सात दिन तक एक सौ आठ बार मंत्र-जप और उतनी ही संख्या में हवन करने से महारोग दूर होता है। "उद्दिरत्यदम् ···बोधयत्विनवै" यह तारादि मंत्र कहा गया है ॥२५-३३॥ इसके ऋषि ब्रह्मा हैं, छंद अनुष्टुप् है और देवता वाणी एवम् ऐश्वर्य को देने वाले विभु हयग्रीव हैं। तारकमंत्र से पंचागन्यास करके हिमपर्वत के समान आभा वाले, तुलसीमाला से विभूषित, अश्व के समान मुख वाले और उत्तुंग बिल्वदंड के समान चरण वाले देव का ध्यान करे। अनन्तर दश हजार मंत्र का जप कर मधुयुक्त खीर से हवन करे। फिर निर्मल वैष्णव पीठ पर मूलमंत्र से मूर्ति की कल्पना कर चारों दिशाओं में पूर्व आदि दिशा-क्रम से केसरों पर सनंदन, सनक, श्री और पृथिवी की पूजा करे। अतिरिक्त दिशाओं में वेदों की अर्चना कर छह कोणों में निरुक्त, ज्योतिष, व्याकरण, कला, शिक्षा और छन्द--इन वेदांगों की समर्चना करे। तदनन्तर अष्टदल के मूल में आठ माताओं की पूजा कर दलमध्य में आठ वक्रतुंड आदिकों का पूजन करे ॥३४-४०½॥

पश्चात् साधक दल के अग्रभाग में आठ भैरवों, कृष्णांग मृग, लाल नेत्रों वाले, काल का दमन करने वाले, लम्बे दातों वाले और (देखने में) अतिभयंकर बटुक देव की पूजा कर षोडशदल (कमल) पर हरि के दश अवतारों एवम् शंख, चक्र, गदा, पद्म, नंदक (खड्ग) और शार्ङ्ग (धनुष) की अर्चना करे। इनके अतिरिक्त भूगृह में इन्द्र आदि दश दिक्पालों तथा उनके वज्र आदि आयुधों की पूजा कर द्वारों पर क्रमशः महागणपति, दुर्गा, क्षेत्रेश, बटुक, प्रकाश आदि समस्त योगिनियों, सात नदियों, नौ ग्रहों, आठ पर्वतों और नक्षत्रों का परि-

तद्बहिः सप्त नद्यश्च तद्बाह्ये तु ग्रहान्नव । तद्बाह्ये पर्वतानष्टौ नक्षत्राणि च तद्बहिः ॥४६॥
एवं पंचदशावृत्या संपूज्य तुरगाननम् । वागीश्वरसमो वाचि धनैर्धनपतिर्भवेत् ॥४७॥
एवं सिद्धे मनौ मंत्री प्रयोगान्कर्तुमर्हति । अष्टोत्तरसहस्रं तु शुद्धं वार्यभिमंत्रितम् ॥४८॥
बीजेन मासमात्रं यः पिबेद्धीमान् जितेन्द्रियः । जन्ममूकोऽपि स नरो वाक्सिद्धिं लभते ध्रुवम् ॥४९॥
वियद्भृगुस्थमर्धीशबिंदुमद्बीजमीरितम् । चंद्रसूर्योपरागे तु पात्रे रुक्ममये क्षिपेत् ॥५०॥
दुग्धं वचां ततो मंत्री कंठमात्रोदके स्थितः । स्पर्शाद्विमोक्षपर्यंतं प्रजपेन्मंत्रमादरात् ॥५१॥
पिबेत्तत्सर्वमचिरात्तस्य सारस्वतं भवेत् । ज्योतिष्मतीलताबीजं दिनेष्वेकैकवर्द्धितम् ॥५२॥
अष्टोत्तरशतं यावद्भक्षयेदभिमंत्रितम् । सरस्वत्यवतारोऽसौ सत्यं स्याद्भुवि मानवः ॥५३॥
किं बहूक्तेन विप्रेंद्र मनोरस्य प्रसादतः । सर्ववेदागमादीनां व्याख्याता ज्ञानवान् भवेत् ॥५४॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने सनत्कुमारविभागे तृतीयपादे हयग्रीवोपासना-
निरूपणं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

पूजन करे। इस प्रकार पन्द्रह बार हयग्रीव की अर्चना करने वाला व्यक्ति वाणी में बृहस्पति के समान और धन में कुबेर के समान होता है। उक्त प्रकार से मंत्र को सिद्ध कर लेने पर ही मंत्री मंत्र का प्रयोग कर सकता है। एक हजार आठ बार शुद्ध जल को बीज मंत्र से अभिमंत्रित कर एक मास तक इन्द्रियसंयमपूर्वक उसका पान करने से वह मनुष्य भी निःसंदेह सिद्धवाक् हो जाता है, जो जन्मतः गूंगा है। "वियत्. . . ." यह बीज मंत्र है ॥ ४१-४९½॥ चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण के समय सुवर्ण के पात्र में गौ का दूध डालकर स्वयं कंठ प्रमाण जल में खड़ा होकर ग्रहण के स्पर्श से लेकर मोक्ष पर्यन्त आदरपूर्वक इस मंत्र का जप करते हुए उस दूध का पान करने से मनुष्य शीघ्र वाक्सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। एक सौ आठ ज्योतिष्मतीलता (माल्कांगनी) के बीज को उक्तमंत्र से अभिमंत्रित कर एक-एक वृद्धि क्रम से भक्षण करने से मानव पृथ्वी पर सरस्वती का अवतार माना जाता है, यह सत्य बात है। विप्रवर्य ! बहुत क्या कहें, इस मंत्र के प्रभाव से मनुष्य समस्त वेदादि शास्त्रों का व्याख्याता तथा ज्ञाता होता है ॥५०-५४॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त तृतीय पाद में हयग्रीवोपासनानिरूपण नामक बहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥७२॥

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

अथ रामस्य मनवो वक्ष्यंते सिद्धिदायकाः । येषामाराधनान्मर्त्यास्तरंति भवसागरम् ॥१॥
सर्वेषु मंत्रवर्येषु श्रेष्ठं वैष्णवमुच्यते । गाणपत्येषु सौरेषु शाक्तशैवेष्वभीष्टदम् ॥२॥
वैष्णवेष्वपि मंत्रेषु राममंत्राः फलाधिकाः । गाणपत्यादिमंत्रेभ्यः कोटिकोटिगुणाधिकाः ॥३॥
विष्णुशय्यास्थितो वह्निरिंदुभूषितमस्तकः । रामाय हृदयांतोऽयं महाघौघविनाशनः ॥४॥
सर्वेषु राममंत्रेषु ह्यतिश्रेष्ठः षडक्षरः । ब्रह्महत्यासहस्राणि ज्ञाताज्ञातकृतानि च ॥५॥
स्वर्णस्तेयसुरापानगुरुतल्पायुतानि च । कोटिकोटिसहस्राणि ह्युपपापानि यानि वै ॥६॥
मंत्रस्योच्चारणात्सद्यो लयं यांति न संशयः । ब्रह्मा मुनिः स्याद्गायत्री छंदो रामश्च देवता ॥७॥
आद्यं बीजं च हृच्छक्तिर्विनियोगोऽखिलाप्तये । षड्दीर्घभाजा बीजेन षडंगानि समाचरेत् ॥८॥
ब्रह्मरंध्रे भ्रुवोर्मध्येहृन्नाभ्योर्गुह्यपादयोः । मंत्रवर्णान्क्रमान्न्यस्य केशवादीन्प्रविन्यसेत् ॥९॥
पीठन्यासादिकं कृत्वा ध्यायेद्धृदि रघूत्तमम् । कालांभोधरकांतं च वीरासनसमास्थितम् ॥१०॥
ज्ञानमुद्रां दक्षहस्ते दधतं जानुनीतरम् । सरोरुहकरां सीतां विद्युदाभां च पार्श्वगाम् ॥११॥
पश्यंतीं रामवक्त्राब्जं विविधाकल्पभूषिताम् । ध्यात्वैवं प्रजपेद्वर्णलक्षं मंत्री दशांशतः ॥१२॥

अध्याय ७३

लक्ष्मण तथा राम के मंत्रों का जप-विधान

सनत्कुमार बोले—अब मैं राम के सिद्धिदायक मंत्रों को बतलाऊँगा, जिनकी आराधना करने से मनुष्य भवसागर को पार करते हैं। समस्त उत्तम मंत्रों से अर्थात् गणपति, सूर्य, शक्ति तथा शिव के मंत्रों से विष्णु का मंत्र श्रेष्ठ तथा कल्याणदायक माना गया है। परन्तु वैष्णव मंत्रों में भी राममंत्र अधिक फलदायक है। गणपति आदि के मंत्रों से तो ये करोड़ों गुना अधिक फल देते हैं। "विष्णु...." यह षडक्षर राममंत्र समस्त राममंत्रों से अत्युत्तम है। सहस्रों ब्रह्महत्यायें, जानकर या बिना जाने किये गये पाप, सोने की चोरी, मद्यपान, गुरुपत्नीसंभोग तथा सहस्रों-करोड़ों जितने पातकोपपातक हैं, वे इस मंत्र के उच्चारण करते हैं। तुरन्त नष्ट हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं। इस मंत्र के ऋषि ब्रह्मा हैं, छन्द गायत्री है, देवता राम हैं और हृच्छक्ति आद्य बीज हैं। सर्वप्राप्ति के लिये इसका विनियोग किया जाता है। छह दीर्घ मात्राओं से युक्त बीजमंत्र से षडंगन्यास कर ब्रह्मरंध्र, भौंहों के मध्य, हृदय, नाभि, गुह्यदेश तथा दोनों चरणों में मंत्रवर्णों का क्रमशः न्यास कर केशव आदि का न्यास करे ॥१-९॥ फिर पीठन्यास आदि करके हृदय में श्याम मेघ के समान कांति वाले, वीरासन लगाकर बैठने वाले, घुटनों के बीच दाहिने हाथ में ज्ञानमुद्रा धारण करने वाले रघुवर राम एवम् उनकी बगल में बैठकर उनके मुखारविंद का अवलोकन करने वाली, विद्युत् के समान कान्ति वाली, कर में कमल धारण करने वाली, विविध आभूषणों से आभूषित सीता का ध्यान करे।

कमलैर्जुहुयाद्वह्नौ ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः । पूजयेद्वैष्णवे पीठे विमलादिसमन्विते ॥१३॥
मूर्तिमूलेन संकल्प्य तस्यामावाह्य साधकः । सीतां वामे समासीनां तन्मन्त्रेण प्रपूजयेत् ॥१४॥
रमासीतापदं ङेंतं द्विठांतो जानकीमनुः । अग्नेः शार्ङ्गं च सम्पूज्य शरान्पार्श्वद्वयेऽर्चयेत् ॥१५॥
केशरेषु षडंगानि पत्रेष्वेतान्समर्चयेत् । हनुमंतं च सुग्रीवं भरतं सबिभीषणम् ॥१६॥
लक्ष्मणांगदशत्रुघ्नान् जांबवंतं क्रमात्पुनः । वाचयंतं हनूमंतमग्रतो धृतपुस्तकम् ॥१७॥
यजेद्भरतशत्रुघ्नौ पार्श्वयोर्धृतचामरौ । धृतातपत्रं हस्ताभ्यां लक्ष्मणं पृष्ठतोऽर्चयेत् ॥१८॥
ततोऽष्टपत्रे सृष्टिं च जयंतं विजयं तथा । सुराष्ट्रं राष्ट्रपालं च अकोपं धर्मपालकम् ॥१९॥
सुमंतं चेति सम्पूज्य लोकेशानायुधैर्युतान् । एवं रामं समाराध्य जीवन्मुक्तः प्रजायते ॥२०॥
चंदनाक्तैः प्रजुहुयाज्जातीपुष्पैः समाहितः । राजवश्याय कमलैर्धनधान्यादिसिद्धये ॥२१॥
लक्ष्मीकामः प्रजुहुयात्प्रसूनैर्बिल्वसंभवैः । आज्याक्तैर्नीलकमलैर्वशयेदखिलं जगत् ॥२२॥
घृताक्तशतपर्वीभिर्दीर्घायुश्च निरामयः । रक्तोत्पलानां होमेन धनं प्राप्नोति वांछितम् ॥२३॥
पालाशकुसुमैर्हुत्वा मेधावी जायते नरः । तज्जप्तांभः पिबेत्प्रातर्वत्सरात्कविराड् भवेत् ॥२४॥
तन्मंत्रितान्नं भुंजीत महारोगप्रशांतये । रोगोक्तौषधहोमेन तद्रोगान्मुच्यते क्षणात् ॥२५॥
नदीतीरे च गोष्ठे वा जपेल्लक्षं पयोव्रतः । पायसेनाज्ययुक्तेन हुत्वा विद्यानिधिर्भवेत् ॥२६॥
परिक्षीणाधिपत्यो यः शाकाहारो जलांतरे । जपेल्लक्षं च जुहुयाद्बिल्वपुष्पैर्दशांशतः ॥२७॥

तदुपरान्त छः लाख मंत्र का जप कर उसका दशांश कमलों से अग्नि में हवन करे। पश्चात् ब्राह्मण-भोजन कराकर निर्मल वैष्णव पीठ पर मूर्ति की रचना करके उसमें मूल मंत्र से राम तथा उनके वाम पार्श्व में बैठी सीता का आवाहन करे। सीता का पूजन उनके अपने मंत्र से करे। उनका मंत्र यह है—"रमा····।" तदनन्तर अग्नि तथा शार्ङ्ग (धनुष) का पूजन कर दोनों पार्श्व में बाणों की पूजा करे। केसरों पर छः अंग देवताओं की पूजा कर पत्तों पर हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अंगद, शत्रुघ्न और जांबवान् का क्रमशः पूजन करे, पुनः आगे हाथ में पुस्तक लेकर बांचते हुए हनुमान्, दोनों बगल में चामर लिये हुए भरत, शत्रुघ्न और पृष्ठभाग में हाथों में छत्ते को पकड़े हुए लक्ष्मण की अर्चना करे ॥१०-१८॥ तदनन्तर अष्टदल के ऊपर सृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रपाल, अकोप, धर्मपाल तथा सुमंत की पूजा कर आयुधों समेत लोकपालों का पूजन करे। इस प्रकार राम की आराधना कर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है ॥१९-२०॥

जो व्यक्ति सावधान होकर (इस मंत्र को पढ़ते हुए) चन्दन मिश्रित जूही के पुष्पों से हवन करता है, वह राजा को अपने वश में कर लेता है। कमलों से होम करने वालों को धन-धान्यादि की सिद्धि होती है। जो लक्ष्मी की कामना करता है, वह बिल्व के पुष्पों से हवन करे। घृतयुक्त नीलकमलों से हवन करने से निखिल जगत् वशीभूत होता है। घृताक्त दूर्वा से होम करने से दीर्घायु तथा आरोग्य की प्राप्ति होती है। रक्त कमलों से होम करने से वांछित धन की प्राप्ति होती है। पलाशपुष्पों से हवन करने से मनुष्य मेधावी होता है। एक वर्ष तक प्रातःकाल उक्तमन्त्र से अभिमन्त्रित जल को पीने से मनुष्य महाकवि होता है। उससे मन्त्रित अन्न को खाने से भयंकर व्याधि भी नष्ट हो जाती है। जिस रोग की जो ओषधि है, उससे हवन करने से तुरन्त उसकी शान्ति होती है ॥२०-२५॥ नदी के तट पर या गोष्ठ में दुग्धाहार करते हुए एक लाख मंत्र जप करे और फिर घी एवम् खीर से हवन करे। ऐसा करने से मनुष्य विद्यानिधि होता है। जिसका आधिपत्य क्षीण हो गया हो,

तदैव पुनराप्नोति स्वाधिपत्यं न संशयः । उपोष्य गङ्गातीरांते स्थित्वा लक्षं जपेन्नरः ॥२८॥
दशांशं कमलैर्हुत्वा बिल्वोत्थैर्वा प्रसूनकैः । मधुरत्रयसंयुक्तै राज्यश्रियमवाप्नुयात् ॥२९॥
मार्गमासे जले स्थित्वा कन्दमूलफलाशनः । लक्षं जप्त्वा दशांशेन पायसैर्जुहुयाद्वसौ ॥३०॥
श्रीरामचन्द्रसदृशः पुत्रः पौत्रोऽपि जायते । अन्येऽपि बहवः संति, प्रयोगा मन्त्रराजके ॥३१॥
किंतु प्रयोगकर्तॄणां परलोको न विद्यते । षट्कोणं वसुपत्रं च तद्बाह्यार्कदलं लिखेत् ॥३२॥
षट्कोणेषु षडर्णानि यन्त्रस्य विलिखेद् बुधः । अष्टपत्रे तथाष्टार्णा लिलिखेत्प्रणवगर्भितान् ॥३३॥
कामबीजं रविदले मध्ये मन्त्रावृताभिधाम् । सुदर्शनावृतं बाह्ये दिक्षु युग्मावृतं तथा ॥३४॥
वज्रोल्लसद्भूमिगेहं कन्दर्पांकुशपाशकैः । भूम्या च विलसत्कोणं यन्त्रराजमिदं स्मृतम् ॥३५॥
भूर्जेऽष्टगन्धैः संलिख्य पूजयेदुक्तवर्त्मना । षट्कोणेषु दलार्काब्जान्यावेष्टवृतयुग्मतः ॥३६॥
केशरेष्वष्टपत्रस्य स्वरद्वंद्वं लिखेद् बुधः । बहिस्तु मातृकां चैव मन्त्रं प्राणनिधायनम् ॥३७॥
यन्त्रमेतच्छुभे घस्रे कण्ठे वा दक्षिणे भुजे । मूर्ध्नि वा धारयेन्मंत्री सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३८॥
सुदिने शुभनक्षत्रे सुदेशे शल्यवर्जिते । वश्याकर्षणविद्वेषद्रावणोच्चाटनादिकम् ॥३९॥
पुष्यद्वयं तथादित्यार्द्रामघासु यथाक्रमम् । दूर्वोत्था लेखनी वश्ये तथाकृष्टौ करंजजा ॥४०॥
नरास्थिजा मारणे तु स्तंभने राजवृक्षजा । शांतिपुष्ट्यायुषां सिद्ध्यै सर्वापच्छमनाय च ॥४१॥

से तुरन्त आधिपत्य की पुनः प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं। जो व्यक्ति गंगा के किनारे निवास करते हुए उपवासपूर्वक एक लाख मंत्र का जप कर उसका दशांश [1]त्रिमधुरमिश्रित कमलों या बिल्वपुष्पों से हवन करता है, उसे राज्यश्री प्राप्त होती है। जो माघमास में कंद, मूल तथा फलाहार करते हुए जल में एक लाख मन्त्र-जप करके उसका दशांश खीर से अग्नि में हवन करता है, उसके श्री रामचन्द्र के समान पुत्र-पौत्र उत्पन्न होते हैं। उक्त मन्त्रराज के अन्य भी बहुत से प्रयोग हैं। किंतु प्रयोगकर्ताओं को परलोक नहीं मिलता है। पहले षट्कोण लिख कर अष्टदल कमल तथा उसके बाहर द्वादशदल कमल लिखे। मेधावी व्यक्ति षट्कोण में मंत्र के छः वर्णों को लिखकर अष्टदल में प्रणव सहित आठ वर्णों को लिखे। रविदल में कामबीज (क्लीं) मध्य में मन्त्र से आवृत, बाहर सुदर्शन मन्त्र से आवृत और दिशाओं में युग्मबीज (रां श्री) लिखकर भूमिगृह को लिखे, जो वज्र, कंदर्प, अंकुश तथा पाश से युक्त हो। इस तरह भूमिगृह तथा कोण आदि से सुशोभित यंत्र सर्वश्रेष्ठ माना गया है ॥२६-३५॥ भोजपत्र पर अष्टगन्धों से यन्त्र को लिखकर पूर्वकथित मार्ग से उसका पूजन करे। षट्कोण में द्वादशदल कमल लिख कर बुधजन अष्टपत्र के केसरों पर द्वन्द्वस्वरों को लिखे। उसके बाहर मातृकाक्षर तथा प्राणाधायक मन्त्र को लिखे। साधक इस यन्त्र को शुभ दिन में कण्ठ या दाहिनी भुजा या मस्तक पर धारण करे। इसके धारण से समस्त पापों का नाश होता है। वशीकरण, आकर्षण, विद्वेष, मारण तथा उच्चाटन करने के लिये सुदिन, शुभनक्षत्र तथा कंटकादिरहित सुदेश में यन्त्र को धारण करना चाहिये। आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा और मघा नक्षत्र में इसका धारण होना चाहिये। वशीकरण के लिये दूर्वा की लेखनी, आकर्षण के लिये करंज की लेखनी, मारण के लिये अस्थि की लेखनी और स्तंभन के लिये राजवृक्ष की लेखनी बनानी चाहिये। उस यन्त्र को धारण करने से पुष्टि तथा आयु की वृद्धि और समस्त विपत्तियों की शान्ति होती है। यदि

१. घी, मधु, चीनी—इन तीनों का समुदाय त्रिमधु कहलाता है।

विभ्रमोत्पादने चैव शिलायां विलिखेद् बुधः । खरचर्मणि विद्वेषे ध्वजे तूच्चाटनाय च ॥४२॥
शत्रूणां ज्वरसन्तापशोकमारणकर्मणि । पीतवस्त्रं लिखित्वा तु साधयेत्साधकोत्तमः ॥४३॥
वश्याकृष्टौ चाष्टगन्धैः सम्पूज्य च यथाविधि । चितांगारादिना चैव ताडनोच्चाटनादिकम् ॥४४॥
विषार्कक्षीरयोगेन मारणं भवति ध्रुवम् । लिखित्वैवं यंत्रराजं गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ॥४५॥
त्रिलोहवेष्टितं कृत्वा धारयेत्साधकोत्तमः । बीजं रामाय ठद्वंद्वं मन्त्रोऽयं रसवर्णकः ॥४६॥
महासुदर्शनमनुः कथ्यते सिद्धिदायकः । सुदर्शनमहाशब्दाच्चक्रराजेश्वरेति च ॥४७॥
दुष्टांतकदुष्टभयानकदुष्टभयंकरम् । छिंधि द्वयं भिंधि युग्मं विदारय युगं ततः ॥४८॥
परमन्त्रान् ग्रस द्वंद्वं भक्षयद्वितयं ततः । त्रासय द्वितयं वर्मास्त्राग्निजायांतिमो मनुः ॥४९॥
अष्टषष्टचक्षरः प्रोक्तो यंत्रसंवेष्टने स्वयम् । तारो हृद्भगवान् ङेंतो ङेंतो हि रघुनन्दनः ॥५०॥
रक्षोघ्नविशदायांते मधुरादिप्रसन्न च । वरदानायामितांते नुतेजसे पदमीरयेत् ॥५१॥
बालायांते तु रामाय विष्णवे हृदयांतिमः । सप्तचत्वारिंशदर्णो मालामन्त्रोऽयमीरितः ॥५२॥
विश्वामित्रो मुनिश्चास्य गायत्री छंद ईरितम् । श्रीरामो देवता बीजं ध्रुवः शक्तिश्च ठद्वयम् ॥५३॥
षड्दीर्घस्वरयुग्मायाबीजेनांगानि कल्पयेत् । ध्यानपूजादिकं सर्वमस्यपूर्ववदाचरेत् ॥५४॥
अयमाराधितो मन्त्रः सर्वान्कामान्प्रयच्छति । स्वकामसत्यवाग्लक्ष्मीताराढ्यः पञ्चवर्णकः ॥५५॥
षडक्षरः षड्विधः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदः । ब्रह्मा संमोहनः शक्तिर्दक्षिणा मूर्तिसंज्ञकः ॥५६॥
अगस्त्यः श्रीशिवः प्रोक्तास्ते तेषां मुनयः क्रमात् । अथवा कामबीजादेर्विश्वामित्रो मुनिः स्मृतः ॥५७॥
छन्दः प्रोक्तं च गायत्री श्रीरामो देवता पुनः । बीजशक्तिराद्यमांत्यं मन्त्रार्णैः स्यात्षडंगकम् ॥५८॥
बीजैः षड्दीर्घयुक्तैर्वा मन्त्रार्णान्पूर्ववन्न्यसेत् । ध्यायेत्कल्पतरोर्मूले सुवर्णमयमण्डपे ॥५९॥

शत्रुओं को मतिभ्रान्त करना हो तो बुद्धिमान् साधक शिला पर (यन्त्र) लिखे, फूट डालना हो तो गधे के चाम पर लिखे, उच्चाटन करना हो तो पताका पर लिखे और ज्वर, संताप, शोक तथा मारण कर्म के लिये पीतवस्त्र पर लिख कर श्रेष्ठ साधक मंत्र सिद्ध करे ॥३६-४३॥ वशीकरण तथा आकर्षण के लिये अष्टगन्धों से विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। ताडन तथा उच्चाटन करने के लिये चिता अंगार (कोयले) से यन्त्र को लिखे। विष तथा आक के दूध को घोल कर (उससे उक्त यन्त्र) लिखने से निश्चय ही मारण होता है। उत्तम साधक इस प्रकार यन्त्रराज को लिखकर गन्ध-पुष्प आदि से अर्चना करे ॥४४-४५½॥ फिर त्रिलोह (सोना, चांदी, तांबा) से उसे वेष्टित कर उत्तम साधक धारण करे। "बीज······"यह छः अक्षरों का मन्त्र महासुदर्शन मन्त्र कहलाता है, जो सिद्धिदायक है। "सुदर्शन······स्वाहा" इस अड़सठ अक्षरों के मन्त्र से यन्त्र का संवेष्टन किया जाता है। "तार·····हृदयम्" यह सैंतालीस अक्षरों का मालामन्त्र कहा गया है। इसके ऋषि विश्वामित्र हैं, छन्द गायत्री है, श्रीराम देवता हैं, ध्रुव बीज है और ठद्वय शक्ति है। छः दीर्घस्वरों से युक्त बीज मन्त्र से अङ्गन्यास कर ध्यान, पूजन आदि सब कुछ पूर्ववत् ही करना चाहिये। इस मन्त्र की आराधना करने से सकल कामनायें सफल होती हैं। "स्वकाम···" ये यह षडक्षर मन्त्र चतुर्वर्ग के फल को देने वाला है। ब्रह्मा, संमोहन, शक्ति, दक्षिणामूर्ति, अगस्त्य तथा श्रीशिव—ये क्रमशः इसके ऋषि हैं ॥४६-५६½॥ अथवा कामबीज आदि के विश्वामित्र मुनि हैं, गायत्री छन्द है, श्रीराम देवता है और स्वाहा बीजशक्ति है। मन्त्राक्षरों से षडंगन्यास कर छः दीर्घ मात्राओं से युक्त बीज मन्त्र से मन्त्राक्षरों का यथापूर्व न्यास करे। तदनन्तर कल्पतरु के मूल में स्थित सुवर्णमय मण्डप में पुष्पक विमान के भीतर अष्टदलकमल के

। पद्मे वसुदले देवमिंद्रनीलसमप्रभम् ॥६०॥
पुष्पकाख्यविमानांतः सिंहासनपरिच्छदे । वामोरुन्यस्तयद्धस्तसीतालक्ष्मणसेवितम् ॥६१॥
वीरासनसमासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम् । यद्वा स्मारादिमन्त्राणां जयाभं च हरिं स्मरेत् ॥६२॥
रत्नाकल्पं विभुं ध्यात्वा वर्णलक्षं जपेन्मनुम् । रामश्च चन्द्रभद्रांतो ङेनमोंतो ध्रुवादिकः ॥६३॥
यजनं काम्यकर्माणि सर्वं कुर्यात्षडर्णवत् । एतेषां यजनं सर्वं कुर्यान्मंत्री षडर्णवत् ॥६४॥
मन्त्रावष्टाक्षरौ ह्येतौ तारांत्यौ चेन्नवाक्षरौ । दशार्णोऽयं महामन्त्रो विशिष्टोऽस्य मुनिः स्वराट् ॥६५॥
जानकीवल्लभो ङेंतो द्विठांतः कवचादिकः । स्वाहा शक्तिश्च कामेन कुर्यादंगानि षट् क्रमात् ॥६६॥
छन्दश्च देवता सीता पतिबीजं तथादिमम् । नाभ्यं घ्रिजानुपादेषु दशार्णान्विन्यसेन्मनोः ॥६७॥
शिरोललाटभ्रूमध्यतालुकण्ठेषु हृद्यपि । मंदारपुष्पैराबद्धविताने तोरणान्विते ॥६८॥
अयोध्यानगरे रत्नचित्रसौवर्णमण्डपे । रक्षोभिर्हरिभिर्देवैः सुविमानगतैः शुभैः ॥६९॥
सिंहासनसमासीन पुष्पकोपरि राघवम् । सीतालंकृतवामांगं लक्ष्मणेनोपशोभितम् ॥७०॥
संस्तूयमानं मुनिभिः प्रह्वैश्च परिसेवितम् । एवं ध्यात्वा जपेन्मंत्री वर्णलक्षं समाहितः ॥७१॥
श्यामं प्रसन्नवदनं सर्वाभरणभूषितम् । रामो ङेन्तो धनुष्पाणिर्ङेंतोऽते वह्निसुन्दरी ॥७२॥
दशांशः कमलैर्होमो यजनं च षडर्णवत् । छन्दस्तु देवता प्रोक्तो रामो राक्षसमर्दनः ॥७३॥
दशाक्षरोऽयं मंत्रोऽस्य मुनिर्ब्रह्मा विराट् पुनः । वर्णन्यासं तथा ध्यानं पुरश्चर्यार्चनादिकम् ॥७४॥
आद्यं बीजं द्विठः शक्तिर्बीजेनांगानि कल्पयेत् ।

विभु रामचन्द्र का ध्यान करे,
युक्त सिंहासन पर वीरासन लगाकर बैठे हुए इन्द्रनीलमणि के समान कान्ति वाले विभु रामचन्द्र का ध्यान करे,
जो ज्ञान मुद्रा से सुशोभित, लक्ष्मण से सुसेवित, बायीं जांघ पर बैठी सीता के कन्धे पर हाथ रखे हुए तथा रत्न के
समान कान्ति से युक्त हैं। ध्यान के उपरान्त छः लाख मन्त्र का जप करे या स्मार आदि मन्त्रों के अधिदेवता
विजयिष्णु हरि का स्मरण करे। इस षडक्षर मन्त्र से यजन तथा काम्यकर्म सब कुछ कर सकते हैं। "ओं राम-
चन्द्राय नमः ओं रामभद्राय नमः" अष्टाक्षर मन्त्र हैं। जब इनके अन्त में 'ओं' जोड़ दिया जाता है तब ये
नवाक्षर हो जाते हैं। साधक षडक्षर मन्त्र की तरह इनकी भी आराधना करे। "हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा"
यह दशाक्षर महामन्त्र है। इसके ऋषि वशिष्ठ हैं, छन्द स्वराट् है, देवता रामचन्द्र हैं, हुं बीज है और स्वाहा
शक्ति है। इस मन्त्र से क्रमशः षडंगन्यास करना चाहिये, शिर, ललाट, भौंह के बीच, तालु, कण्ठ, हृदय, नाभि
चरण तथा जानु में मन्त्र के दश अक्षरों का न्यास करे। ॥५७-६७॥

तदनन्तर ध्यान करे कि अयोध्यानगर में रत्नजटित सुवर्ण के मण्डप में, जो मन्दार पुष्पों से आबद्ध
वितान एवम् तोरण से सुशोभित है, पुष्पक विमान पर अवस्थित सिंहासन पर राघव विराजमान हैं। सुन्दर
विमानों पर चढ़कर आये हुए देवगण तथा रक्षोगण उनकी स्तुति कर रहे हैं। मुनिगण विनीत भाव से सेवा में जुटे
हुए हैं। भगवान् का वाम अङ्ग सीता से अलंकृत तथा लक्ष्मण से उपशोभित है। उनका वर्ण श्याम है, मुख
प्रसन्न है और शरीर समस्त आभूषणों से विभूषित है। साधक समाहित चित्त से इस प्रकार ध्यान कर दस लाख
मन्त्र जप करे और उसका दशांश कमलों से हवन करे। यजन-पूजन तो षडक्षर मन्त्र की तरह करना चाहिये।
'रामाय धनुष्पाणये स्वाहा'—यह दशाक्षर मन्त्र है। इसके मुनि ब्रह्मा, छन्द विराट् और देवता राक्षसमर्दक
राम हैं। आद्य अक्षर (रां) बीज है और स्वाहा शक्ति है। बीज से अङ्गन्यास करना चाहिये। वर्णन्यास, ध्यान,
पुरश्चरण तथा अर्चना आदि दशाक्षर मन्त्र की ही तरह करे। इसके जप में धनुष और बाण लिये श्रीरामचन्द्र

दशाक्षरोक्तवत्कुर्याच्चापबाणधरं स्मरेत् । तारो नमो भगवते रामान्ते चंद्रभद्रकौ ॥७५॥
ङेंतावर्काक्षरौ मंत्रौ ऋषिध्यानादि पूर्ववत् । श्रीपूर्वं जयपूर्वं च तद्द्विधा रामनाम च ॥७६॥
त्रयोदशाक्षरो मंत्रो मुनिर्ब्रह्मा विराट् स्मृतम् । छन्दस्तु देवता प्रोक्तो रामः पापौघनाशनः ॥७७॥
षडंगानि प्रकुर्वीत द्विरावृत्त्या पदत्रयैः । ध्यानार्चनादिकं सर्वं ह्यस्य कुर्याद्दशार्णवत् ॥७८॥
तारो नमो भगवते रामायांते महापदम् । पुरुषाय हृदंतोऽयं मनुरष्टादशाक्षरः ॥७९॥
विश्वामित्रो मुनिश्छंदो धृती रामोऽस्य देवता । तारो बीजं नमः शक्तिश्चंद्राक्ष्यब्ध्यग्निषड्भुजैः ॥८१॥
वर्णमंत्रोत्थितैः कुर्यात्षडंगानि समाहितः । निश्शाणभेरीपटहशंखतुर्यादिनिःस्वनैः ॥८२॥
प्रवृत्तनृत्ये परितो जयमंगलभाविते । चंदनागरुकस्तूरीकर्पूरादिसुवासिते ॥८३॥
नानाकुसुमसौरभ्यवाहिगंधवहान्विते । देवगंधर्वनारीभिर्गायन्तीभिरलंकृते ॥८४॥
सिंहासने समासीनं पुष्पकोपरि राघवम् । सौमित्रिसीतासहितं जटामुकुटशोभितम् ॥८५॥
चापबाणधरं श्यामं ससुग्रीवविभीषणम् । हत्वा रावणमायांतं कृतत्रैलोक्यरक्षणम् ॥८६॥
एवं ध्यात्वा जपेद्वर्णं लक्षं मंत्री दशांशतः । घृताक्तैः पायसैर्हुत्वा यजनं पूर्ववच्चरेत् ॥८७॥
प्रणवो हृदयं सीतापतये तदनंतरम् । रामाय हनयुग्मांते वर्मास्त्राग्निप्रियांतिमः ॥८८॥
एकोनविंशद्वर्णोऽयं मंत्रः सर्वार्थसाधकः । विश्वामित्रो मुनिश्चास्यानुष्टुप्छन्द उदाहृतम् ॥८९॥
देवता रामभद्रो जं बीजं शक्तिर्नम इति । मंत्रोत्थितैः क्रमाद्वर्णैस्ततो ध्यायेच्च पूर्ववत् ॥९०॥
पूजनं काम्यकर्मादिसर्वमस्य षडर्णवत् । तारः स्वबीजं कमला रामभद्रेति संपठेत्

का ध्यान करना चाहिए ॥६८-७४½॥ तार (ओं) के पश्चात् 'नमो भगवते रामचन्द्राय' अथवा 'रामभद्राय' ये दो प्रकार के द्वादशाक्षर मन्त्र हैं। इनके मुनि तथा ध्यान आदि पूर्ववत् ही है। श्रीपूर्वक, जयपूर्वक तथा जय-जयपूर्वक 'राम' नाम (अर्थात् श्रीराम जयराम जयजयराम) यह तेरह अक्षरों का मन्त्र है। इसके मुनि ब्रह्मा, छन्द विराट् और देवता सकल पापनाशक राम हैं। इस मन्त्र के तीन पदों को दोहरा कर षडंगन्यास करना चाहिये। ध्यान, पूजन आदि तो दशाक्षर मन्त्र की तरह करने होंगे। 'ओं नमो भगवते रामाय महापुरुषाय नमः' ––यह अट्ठारह अक्षरों का मन्त्र है। इसके मुनि विश्वमित्र, छन्द धृति और देवता राम हैं। 'ओं' इसका बीज है और 'नमः' शक्ति है। साधक सावधान होकर मन्त्र के अट्ठारहों अक्षरों से षडंगन्यास करे। तदनन्तर ढोल, नगाड़ा, शङ्ख, तुरही आदि के शब्द तथा 'जय' आदि मांगलिक शब्दों के साथ नृत्य-गीत करे। चन्दन, अगर, कस्तूरी, कर्पूर आदि से सुवासित, विविध सुगंधित कुसुमों से समन्वित और गाती हुई देवों एवम् गन्धर्वों की ललनाओं से विभूषित पुष्पक विमान पर सिंहासनासीन राघव का ध्यान करे। जिनके समीप सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव तथा विभीषण उपस्थित हैं। जो जटा रूपी मुकुट से सुशोभित होते हुए हाथों में धनुष-बाण धारण किये हुए हैं। और जिन्होंने आते हुए रावण को मार कर त्रैलोक्य की रक्षा की है ॥७५-८५॥

इस प्रकार ध्यान कर साधक एक लाख मन्त्र-जप करे और उसका दशांश घृतमिश्रित पायस से होम करे। पूजन तो पूर्ववत् ही समझना चाहिये। "प्रणव………"यह उन्नीस अक्षरों वाला मन्त्र सकल कामनाओं को सफल करता है। विश्वामित्र इसके मुनि हैं, छंद अनुष्टुप् है, देवता रामभद्र हैं, 'जं' बीज है और 'नमः' शक्ति है। मन्त्र के वर्णों से क्रमशः न्यास कर बाद में पहिले की तरह ध्यान करे। यजन-पूजन आदि तो षडक्षर मन्त्र की ही तरह करना चाहिये। 'ओं रां श्रीं रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम। दशास्यान्तक मां रक्ष देहि मे परमां श्रियम्'––यह पैंतीस अक्षरों का मन्त्र है। बीज से वियुक्त होने पर बत्तीस अक्षरों का होता है; परन्तु सकल

। दशास्यांतकशब्दांते मां रक्षदेहि संपठेत् ॥९१॥
महेष्वासपदांते तु रघुवीर नृपोत्तम । बीजैर्वियुक्तो द्वात्रिंशदर्णोऽयं फलदायकः ॥९२॥
परमांते मे श्रियं स्यान्मंत्रो बाणगुणाक्षरः । देवता रामभद्रोऽत्र बीजं स्वं शक्तिरिंदिरा ॥९३॥
विश्वामित्रो मुनिश्चास्यानुष्टुप्छंदउदाहृतम् । पंचांगानि च विन्यस्य मंत्रवर्णान्क्रमान्न्यसेत् ॥९४॥
बीजत्रयाद्यैः कुर्वीत पदैः सर्वेण मंत्रवित् । आस्ये दोःसंधियुगले स्तनहृन्नाभिषु क्रमात् ॥९५॥
मूर्ध्नि भाले दृशोः श्रोत्रे गंडयुग्मे सनासिके । ध्यानार्चनादिकं चास्य पूर्ववत्समुपाचरेत् ॥९६॥
कटौ मेढ्रे पायुपादसंधिष्वर्णान्न्यसेन्मनोः । ध्यात्वा रामं पीतवर्णं जपेल्लक्षं समाहितः ॥९७॥
लक्षत्रयं पुरश्चर्या पायसैर्हवनं मतम् । तारो माया रमाद्वंद्वं दाशरथाय हृच्च वै ॥९८॥
दशांशं कमलैर्हुत्वा धनैर्धनपतिर्भवेत् । त्रैलोक्यांते तु नाथाय हृदंतो वसुवर्णवान् ॥९९॥
एकादशाक्षरो मंत्रो मुन्याद्यर्चास्य पूर्ववत् । आंजनेयपदांते तु गुरवे हृदयांतिमः॥ ॥१००॥
अस्यापि पूर्ववत्सर्वं न्यासध्यानार्चनादिकम् । ङेंतं रामपदं पश्चाद्धृदयं पंचवर्णवत् ॥१०१॥
मंत्रो नवाक्षरोऽस्यापि यजनं पूर्ववन्मतम् । रामांते चंद्रभद्रौ च ङेंतौ पावकवल्लभा ॥१०२॥
मुनिध्यानार्चनं चास्य प्रोक्तं सर्वं षडर्णवत् । वह्निः शेषान्वितश्चैव चंद्रभूषितमस्तकः ॥१०३॥
मंत्रौ द्वौ च समाख्यातौ मुन्याद्यर्चादि पूर्ववत् । ब्रह्मा मुनिः स्याद्गायत्री छंदो रामोऽस्य
एकाक्षरो रघुपतेर्मंत्रः कल्पद्रुमोऽपरः । ॥१०४॥
देवता ॥१०५॥
षड्दीर्घाढ्येन मंत्रेण षडंगानि समाचरेत् । सरयूतीरमंदारवेदिकापंकजासने ॥१०६॥
श्यामं वीरासनासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम् । वामोरुन्यस्ततद्धस्तं सीतालक्ष्मणसंयुतम्

कामनाओं को पूर्ण करता है । इसके मुनि विश्वामित्र, छंद अनुष्टुप्, देवता रामभद्र, बीज 'स्वं' तथा शक्ति इंदिरा है । मन्त्रवेत्ता साधक बीजत्रय सहित पदों से पंचांग न्यास कर क्रमशः मन्त्रवर्णों का न्यास करे । मस्तक, भाल, नेत्र, कर्णं, कपोल, नासिका, भुजा, बाहुमूल, स्तन, हृदय, कटि, लिंग, पायु, चरण तथा संधियों में मन्त्र के वर्णों का न्यास कर ध्यान, पूजन आदि पूर्ववत् ही करे । मन्त्र का जप तीन लाख और हवन पायस से करने को कहा गया है । पीतवर्ण राम का ध्यान कर समाहित चित्त से एक लाख जप करे ॥८६-९७॥ फिर उसका दशांश कमलों से हवन करे । ऐसा करने से मानव कुबेर होता है । 'ओं ह्रीं श्रीं दाशरथाय नमः' यह ग्यारह अक्षरों का मन्त्र है । इसके मुनि आदि तथा पूजन आदि पूर्ववत् ही समझना चाहिये । "त्रैलोक्य नाथाय नमः......"यह आठ अक्षरों का मन्त्र है । इसका भी न्यास, ध्यान, पूजन आदि पूर्ववत् करना चाहिये । 'आंजनेयगुरवे नमः...........'यह नौ अक्षरों का मन्त्र है । इसका भी यजन आदि पूर्ववत् करे । 'रामाय नमः' यह पाँच अक्षरों का मन्त्र है । इसके मुनि, ध्यान, पूजन आदि षडक्षर मन्त्र की तरह अवगत करना चाहिये । 'रामचन्द्राय स्वाहा, 'रामभद्राय स्वाहा' इन दोनों मन्त्रों के मुनि एवम् अर्चना आदि पूर्ववत् समझनी चाहिये । अग्नि (र्), शेष (आ) से युक्त हो और उसका मस्तक चन्द्रमा (ं) से विभूषित हो तो यह ग्यारह अक्षरों वाला रघुपति का मन्त्र है, जो कल्पवृक्ष के समान है । इसके मुनि ब्रह्मा, छन्द गायत्री और देवता राम हैं । छः दीर्घमात्रओं से युक्त मन्त्र से षडंग न्यास कर परमात्मा राम का ध्यान करे—"सरयू के तटवर्ती मंदारवृक्ष के नीचे मंडप में कमलों के आसन पर श्यामवर्ण राम वीरासन लगाये विराजमान हैं । ज्ञानमुद्रा उनकी शोभा बढ़ा रही है । बाँयीं जांघ पर सीता जो बैठी हुई हैं । समीप में लक्ष्मण विद्यमान हैं । कन्दर्पतुल्य कान्तिमान् शरीर को अपने आप निहार रहे हैं ।"

अवेक्षमाणमात्मानं मन्मथामिततेजसम् । शुद्धस्फटिकसंकाशं केवलं मोक्षकांक्षया ॥१०७॥
चिंतयेत्परमात्मानमृतुलक्षं जपेन्मनुम् । सर्वं षडर्णवच्चास्य होमनित्यर्चनादिकम् ॥१०८॥
वह्निः शेषासनो भांतः केवलो द्व्यक्षरो मनुः । एकाक्षरोक्तवत्सर्वं मुनिध्यानार्चनादिकम् ॥११०॥
तारमानारमानंगचास्त्रबीजैर्द्विवर्णकः । द्व्यक्षरो मंत्रराजः स्यात्षड्विधः सकलेष्टदः ॥१११॥
द्व्यक्षरश्चंद्रभद्रांतो द्विविधश्चतुरक्षरः । एकार्णोक्तवदेतेषां मुनिध्यानार्चनादिकम् ॥११२॥
तारो रामश्चतुर्थ्यंतो वर्मास्त्रं वह्निवल्लभा । अष्टार्णोऽयं महामंत्रो मुन्याद्यर्चा षडर्णवत् ॥११३॥
तारो मया हृदंते स्याद्रामाय प्रणवांतिमः । शिवोमाराममंत्रोऽयमष्टार्णः सर्वसिद्धिदः ॥११४॥
ऋषिः सदाशिवः प्रोक्तो गायत्री छंद ईरितम् । शिवोमारामचंद्रोऽत्र देवता परिकीर्तितः ॥११५॥
षड्दीर्घयामाय यातु ध्रुवपंचार्णयुक्तया । षडंगानि विधायाथ ध्यायेद्धृदि सुरार्चितम् ॥११६॥
रामं त्रिनेत्रं सोमार्द्धधारिणं शूलिनं वरम् । भस्मोद्धूलितसर्वांगं कपर्दिनमुपास्महे ॥११७॥
रामाभिरामां सौंदर्यसीमां सोमावतंसिनीम् । पाशांकुशधनुर्बाणधरां ध्यायेत्त्रिलोचनाम् ॥११८॥
एवं ध्यात्वा जपेद्वर्णलक्षं त्रिमधुरान्वितैः । बिल्वपत्रैः फलैः पुष्पैस्तिलैर्वा पंकजैर्हुनेत् ॥११९॥
स्वयमायांति निधयः सिद्धयश्च सुरेप्सिताः । तारो माया च भरताग्रजराममनोभवः ॥१२०॥
वह्निजायाद्वादशार्णो मंत्रः कल्पद्रुमोऽपरः । अंगिराश्च मुनिश्छंदो गायत्री देवता पुनः ॥१२१॥
श्रीरामो भुवनाबीजं स्वाहाशक्तिः समीरितः । चंद्रैकमुनिभूनेत्रैर्मंत्रार्णैरंगकल्पनम

यदि केवल मोक्ष की आकांक्षा हो तो शुद्ध स्फटिक के समान रूप वाले राम का ध्यान करना चाहिये ॥९८-१०७॥ ध्यानोपरान्त छः लाख मन्त्र-जप करना चाहिए। हवन, पूजन आदि तो षडक्षर मन्त्र की तरह करना चाहिये। वह्नि (र्), शेष (आ) के आसन पर विराजमान हो और उसके बाद भान्त (म) हो तो केवल दो अक्षरों का मन्त्र (राम) होता है। इसके मुनि, ध्यान, पूजन आदि एकाक्षर मन्त्र की तरह किये जाते हैं। तार (ओं), माया (ह्रीं), रमा (श्रीं), अनङ्ग (क्लीं), अस्त्र (फट्) तथा स्व बीज (रां) इनके साथ पृथक् पृथक् जुड़ा हुआ द्व्यक्षर मन्त्र (राम) छह भेदों से युक्त त्र्यक्षर मन्त्रराज है जो समस्त कामनाओं को पूर्ण करता है। द्व्यक्षर मन्त्र के अन्त में चन्द्र और भद्र शब्द जोड़ा जाय तो दो प्रकार का चतुरक्षर मन्त्र होता है। इन सबके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि एकाक्षर मन्त्र में बताये के अनुसार हैं। तार (ओं), चतुर्थ्यन्त राम शब्द (रामाय), वर्म (हुं), अस्त्र (फट्), वह्निवल्लभा (स्वाहा)—यह (ओं रामाय हुं फट् स्वाहा) आठ अक्षरों का महामन्त्र है। इसके ऋषि और पूजन आदि षडक्षर मन्त्र के समान हैं। 'ओं' ह्रीं रामाय नमः ओं, यह शिव, पार्वती तथा राम मन्त्र सकल सिद्धियों को देने वाला है। इसके ऋषि सदाशिव, छंद गायत्री और देवता शिव, उमा तथा रामचंद्र हैं। छः दीर्घ मात्राओं से युक्त सप्ताक्षर मन्त्र से षडंगन्यास कर हृदय में देववंद्य, राम, अर्धचन्द्र, त्रिशूल तथा कपर्द धारण करने वाले एवम् सर्वांग में भस्म रमाने वाले त्रिनेत्र शंकर और अति सुन्दरी, मनोरमा, चन्द्रभूषणा, पाश, अंकुश, धनुष तथा बाण धारण करने वाली त्रिलोचना उमा का ध्यान करे। ध्यानोपरान्त तीन लाख मन्त्र जप करके त्रिमधुयुक्त बिल्वपत्र, फल, पुष्प, तिल या पद्मों से हवन करे ॥१०८-११८॥ ऐसा करने से निधियाँ तथा सिद्धियाँ, जिनकी देवता भी इच्छा करते हैं, स्वयम् उसके पास आती हैं। 'ओं ह्रीं भरताग्रजराम क्लीं स्वाहा' यह द्वादशाक्षर मन्त्र कल्पवृक्ष के समान है। इसके मुनि अंगिरा, छन्द गायत्री, देवता श्रीराम, बीज भुवना और शक्ति स्वाहा है। मन्त्र के बारहों अक्षरों से अङ्गन्यास कर षडक्षर मन्त्र की तरह ध्यान, पूजन आदि करे ॥११९-१२१½॥ ओं सीतापतिरामाय नमः

प्रणवो हृदयं सीतापते रामश्च ङेंतिमः ॥१२२॥
ध्यानपूजादिकं चास्य सर्वं कुर्यात्षडर्णवत् । अगस्त्योऽस्य मुनिश्छंदो बृहती देवता पुनः ॥१२३॥
हनद्वयांते वर्मास्त्रं मंत्रः षोडशवर्णवान् । रामाब्धिवह्निवेदाक्षिवर्णैः पंचांगकल्पना ॥१२४॥
श्रीरामोऽहं तथा बीजं रां शक्तिः समुदीरिता । तारो हृच्चैव ब्रह्मण्यसेव्याय पदमीरयेत् ॥१२५॥
ध्यानपूजादिकं सर्वमस्य कुर्यात्षडर्णवत् । उत्तमश्लोकधुर्याय स्वं भृगुः कामिकान्वितः ॥१२६॥
रामायाकुंठशब्दांतं तेजसे च समीरयेत् । ऋषिः शुक्रस्तथानुष्टुप्छंदो रामोऽस्य देवता ॥१२७॥
दंडार्पितां प्रिये मंत्रो रामरामाक्षरो मतः । लक्षं जपो दशांशेन जुहुयात्पायसैः सुधीः ॥१२८॥
पादैः सर्वेण पंचांगं कुर्याच्छेषं षडर्णवत् । आदौ दाशरथायांते विद्महे पदमुच्चरेत् ॥१२९॥
सिद्धमन्त्रस्य भुक्तिः स्यान्मुक्तिः पातकनाशनम् । तन्नो रामः प्रचो वर्णो दयादिति च संवदेत् ॥१३०॥
ततः सीतावल्लभाय धीमहीति समुच्चरेत् । पद्मासीतापदं ङेंतं ठद्वयांतः षडक्षरः ॥१३१॥
एषोक्ता रामगायत्री सर्वाभीष्टफलप्रदा । सीता भगवती प्रोक्ता श्रीं बीजं वह्निसुन्दरी ॥१३२॥
वाल्मीकिश्च मुनिश्छंदो गायत्री देवता पुनः । ततो ध्यायन्महादेवीं सीतां त्रैलोक्यपूजिताम् ॥१३३॥
शक्तिः षड्दीर्घयुक्तेन बीजेनांगानि कल्पयेत् । सद्रत्नभूषणस्फूर्जद्दिव्यदेहां शुभात्मिकाम् ॥१३४॥
तप्तहाटकवर्णाभां पद्मयुग्मं करद्वये । पश्यंतीं राघवं पुण्यं शय्याढ्यां षड्गुणेश्वरीम् ॥१३५॥
नानावस्त्रां शशिमुखीं पद्माक्षीं मुदितांतराम् । जुहुयात्कमलैः फुल्लैः पीठे पूर्वोदिते यजेत् ॥१३६॥
एवं ध्यात्वा जपेद्वर्णलक्षं मंत्री दशांशतः । संपूज्य दक्षिणे राममभ्यर्च्याग्रेऽनिलात्मजम् ॥१३७॥
मूर्तिं संकल्प्य मूलेन तस्यामावाह्य जानकीम् ।

बीज 'हं' और
हन द्वय हुं फट्' यह सोलह अक्षरों का मन्त्र है। इसके मुनि अगस्त्य, छन्द बृहती, देवता श्रीराम, बीज 'हं' और
शक्ति 'रां' है। मन्त्र के सोलहों अक्षरों से पंचांगन्यास कर षडक्षर मन्त्र को तरह ध्यान, पूजन आदि सब कुछ करे।
'ओं नमः ब्रह्मण्यसेव्याय रामायाकुण्ठतेजसे। उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये' यह तेंतीस अक्षरों का मन्त्र
है। इसके ऋषि शुक्र, छन्द अनुष्टुप् और देवता राम हैं। समस्त पादों से पंचाङ्गन्यास कर शेष कार्य षडक्षर मन्त्र
की तरह करे। विद्वान् साधक एक लाख मन्त्र जप करने के पश्चात् उसका दशांश पायस से हवन करे। इस मन्त्र
की सिद्धि हो जाने पर भुक्ति-मुक्ति मिलती है तथा पातकों का नाश होता है। "दाशरथाय विद्महे। सीता-
वल्लभाय धीमहि। तन्नो रामः प्रचोदयात्" यह रामगायत्री कही गई है, जो सकल कामनाओं को देने वाली
है और जिसे राम ने प्रकाशित किया है। 'श्रीं सीतायै स्वाहा' यह षडक्षर सीता मन्त्र है ॥१२२-१३१॥ इसके
मुनि वाल्मीकि, छन्द गायत्री, देवता भगवती सीता, बीज 'श्रीं' और शक्ति 'स्वाहा' है। छः दीर्घमात्राओं से
युक्त बीज मन्त्र से अङ्गन्यास कर त्रैलोक्यपूजित महादेवी सीता का इस प्रकार ध्यान करे—"उनकी कान्ति तपे
सोने के समान है; दोनों हाथों में कमलपुष्प विद्यमान हैं, दिव्य शरीर में उत्तम रत्नों के बने आभूषण चमक
रहे हैं; स्वरूप सौम्य है; मुख चन्द्रमा के समान है; नेत्र पद्मों के तुल्य हैं; वे विविध वस्त्र धारण किये हुई हैं,
उनका अन्तःकरण प्रहृष्ट मालूम पड़ता है; वे पुण्यात्मा राघव की ओर निहार रही हैं; बहुमूल्यक आसन पर
समासीन हैं; और छहों गुणों की स्वामिनी हैं ॥१३२-१३५॥"

उपर्युक्त प्रकार से ध्यान कर छः लाख मन्त्र-जप करे और उसका दशांश विकसित कमल पुष्पों से होम
करे। अनन्तर पूर्वकथित पीठ पर मूलमन्त्र से मूर्ति का संकल्प करके उसमें जानकी का आवाहन करे। प्रतिमा

पृष्ठे लक्ष्मणमभ्यर्च्य षट्कोणेष्वंगपूजनम् । पत्रेषु मंत्रिमुख्यांश्च बाह्ये लोकेश्वरान्पुनः ॥१३८॥
वज्राद्यानपि संपूज्य सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । जातिपुष्पैश्चन्दनाक्तै राजवश्याय होमयेत् ॥१३९॥
कमलैर्धनधान्याप्तिर्नीलाब्जैर्वशयन् जगत् । बिल्वपत्रैः श्रियःप्राप्त्यै दूर्वाभी रोगशांतये ॥१४०॥
किं बहूक्तेन सौभाग्यं पुत्रान्पौत्रान्परं सुखम् । धनं धान्यं च मोक्षं च सीताराधनतो लभेत् ॥१४१॥
शक्रः सेंदुर्लक्ष्मणाय हृदयं सप्तवर्णवान् । अगस्त्योऽस्य मुनिश्छंदो गायत्री देवता पुनः ॥१४२॥
लक्ष्मणाख्यो महावीरश्चाढ्यं हृद्बीजशक्तिके । षड्दीर्घाढ्येन बीजेन षडंगानि समाचरेत् ॥१४३॥ ॥१४४॥
द्विभुजं स्वर्णरुचिरतनुं पद्मनिभेक्षणम् । धनुर्बाणकरं रामसेवासंसक्तमानसम् ॥१४५॥
ध्यात्वैवं प्रजपेद्वर्णलक्षं मंत्री दशांशतः । मध्वाक्तैः पायसैर्हुत्वा रामपीठे प्रपूजयेत् ॥१४६॥
रामवद्यजनं चास्य सर्वसिद्धिप्रदो ह्ययम् । साकल्यं रामपूजाया यदीच्छेन्नियतं नरः ॥१४७॥
तेन यत्नेन कर्त्तव्यं लक्ष्मणार्चनमादरात् । श्रीरामचन्द्रभेदास्तु बहवः संति सिद्धिदाः ॥१४८॥
तत्साधकैः सदा कार्यं लक्ष्मणाराधनं शुभम् । अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा सुसमाहितैः ॥१४९॥
लक्ष्मणस्य मनुर्जप्यो मुमुक्षुभिरतंद्रितैः । अजप्त्वा लक्ष्मणमनुं राममंत्रान् जपंति ये ॥१५०॥
न तेषां जायते सिद्धिर्हानिरेव पदे पदे । यो जपेल्लक्ष्मणमनुं नित्यमेकांतमास्थितः ॥१५१॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यः सर्वान्कामानवाप्नुयात् । जयप्रधानो मंत्रोऽयं राज्यप्राप्त्यैकसाधनम् ।

के दक्षिण भाग में राम, अग्रभाग में हनुमान् और पृष्ठ भाग में लक्ष्मण को पूजा कर षट्कोण में अङ्गदेवताओं की पूजा करे। पत्रों में प्रमुख मंत्रियों की तथा बाहर लोकपालों एवम् वज्र आदि आयुधों की अर्चना करे। ऐसा करने से सकल सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। राजा को वश में करने के लिये चन्दन लगाये जूही के पुष्पों से हवन करे। कमलों से होम करने से धन-धान्य की प्राप्ति होती है। नील कमलों से हवन करने वाला व्यक्ति विश्व को वशीभूत कर लेता है। बिल्वपत्रों से लक्ष्मी की प्राप्ति तथा दूर्वा से रोग की शान्ति होती है। बहुत क्या कहें, सीता की आराधना करने से मनुष्य को सौभाग्य, पुत्र, पौत्र, सुख, धन, धान्य तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥१३६-१४१॥ 'लं लक्ष्मणाय नमः' यह सात अक्षरों का मन्त्र है। इसके मुनि अगस्त्य, छन्द गायत्री, देवता लक्ष्मण तथा हनुमान्, बीज 'लं' और शक्ति 'नमः' है। छः दीर्घमात्राओं से युक्त बीज मन्त्र से षडंगन्यास कर दो भुजा वाले, स्वर्ण के समान मनोहर शरीर वाले, कमल तुल्य नेत्र वाले, हाथों में धनुष-बाण धारण करने वाले और राम की सेवा में दत्तचित्त वाले लक्ष्मण का ध्यान करने के पश्चात् सात लाख मन्त्र जपे और उसका दशांश मधु युक्त पायस से हवन करे। तदुपरान्त रामपीठ में राम ही की तरह उनकी भी पूजा करे। ऐसा करने से यह मन्त्र सकल सिद्धियों को प्रदान करता है। जो व्यक्ति रामपूजा को सर्वांग पूर्ण करना चाहता हो, वह यत्न करके आदरपूर्वक लक्ष्मण की अर्चना करे। श्रीरामचन्द्र के ऐसे अनेक प्रभेद हैं, जो सिद्धि को देने वाले हैं। ॥१४२-१४७॥

इसलिये साधक को सदा लक्ष्मण की शुभदायिनी आराधना करनी चाहिये। मोक्षाभिलाषी जन सावधान होकर लक्ष्मण का मन्त्र एक हजार आठ या एक सौ आठ बार निरालस्यपूर्वक जप करे। जो व्यक्ति बिना लक्ष्मण के मन्त्र को जपे राम मन्त्रों का जप करता है, उसे सिद्धि नहीं मिलती; प्रत्युत पद-पद में हानि होती है ॥१४८-१४९½॥ जो नित्य एकान्त में लक्ष्मण-मन्त्र का जप करता है, वह सकल पापों से मुक्त होकर वांछित फलों को प्राप्त करता है। यह मन्त्र विजय को देने वाला है। राज्यप्राप्ति का तो एकमात्र साधन है। नष्ट राज्य को

सोऽचिरान्नष्टराज्यं स्वं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥१५२॥
नष्टराज्याप्तये मंत्रं जपेल्लक्षं समाहितः । पञ्चायुतं मनुं जप्त्वा नष्टराज्यमवाप्नुयात् ॥१५३॥
ध्यायन्राममयोध्यायामभिषिक्तमनन्यधीः । अयुतं प्रजपेन्मंत्रं निगडान्मुच्यते ध्रुवम् ॥१५४॥
नागपाशविनिर्मुक्तं ध्यात्वा लक्ष्मणमादरात् । ध्यात्वा लक्षं जपन्मंत्रमल्पमृत्युं जयेद्ध्रुवम् ॥१५५॥
वातात्मजेनानीताभिरोषधीभिर्गतव्यथम् । दुर्जयं वापि वेगेन जयद्रिपुकुलं महत् ॥१५६॥
घातयंतं मेघनादं ध्यात्वा लक्षं जपेन्मनुम् । सहस्रं प्रजपेन्मंत्रं पुरुहूतादिकान् जयेत् ॥१५७॥
ध्यात्वा शूर्पणखानासाछेदनोद्युक्तमानसम् । प्रजपल्लँक्षमेकांते महारोगात्प्रमुच्यते ॥१५८॥
रामपादाब्जसेवार्थं कृतोद्योगमथो स्मरन् । अष्टोत्तरशतैः पुष्पैर्निश्छिद्रैः शातपत्रकैः ॥१५९॥
त्रिमासं विजिताहारो नित्यं सप्तसहस्रकम् । निवेद्य प्रजपेन्मंत्रं कुष्ठरोगात्प्रमुच्यते ॥१६०॥
पूजयित्वा विधानेन पायसं च सशर्करम् । क्षयरोगात्प्रमुच्येत सत्यं सत्यं न संशयः ॥१६१॥
विजने विजिताहारः षण्मासं विधिनामुना । त्रिसंध्यं वा पिबेन्नित्यं मुच्यते सर्वरोगतः ॥१६२॥
अभिमंत्र्य जलं प्रातर्मंत्रेण त्रिः समाहितः । विषादिदोषसंस्पर्शो न भवेत्तु कदाचन ॥१६३॥
दारिद्र्यं च पराभूतं जायते धनदोपमः । मुखनेत्रादिसंभूताञ्जयेद्रोगांश्च दारुणान् ॥१६४॥
मनुना मंत्रितैस्तोयैः प्रत्यहं क्षालयेन्मुखम् । लक्ष्मणप्रतिमां कृत्वा दद्याद्भक्त्या विधानतः ॥१६५॥
पीत्वाभिमंत्रितं त्वंभः कुक्षिरोगान् जयेद्ध्रुवम् ।

विनष्ट राज्य प्राप्त
प्राप्ति के लिये जो व्यक्ति समाहित होकर एक लाख मन्त्र-जप करता है, उसे शीघ्र अपना अभिषिक्त होने वाले
हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥१५०-१५२॥ जो व्यक्ति अनन्यचित्त होकर अयोध्या में हो जाता है ॥१५३॥ जो
राम का ध्यान करते हुए पचास हजार मन्त्र-जप करता है, उसे नष्ट राज्य की प्राप्ति होती है ॥१५३॥ वह कारागार,
मनुष्य नागपाश से मुक्त होने वाले लक्ष्मण का आदरपूर्वक ध्यान कर दश सहस्र मन्त्र जपता है, वह कारागार, स्वस्थ होने वाले
(जेल) से मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥१५४॥ जो हनुमान् द्वारा लाई गई ओषधि से स्वस्थ होने वाले ॥१५५॥ जो
लक्ष्मण का ध्यान कर एक लाख मन्त्र का जप करता है, वह निःसन्देह अकाल मृत्यु को जीतता है ॥१५५॥ जो
मेघनाद को मारते हुए लक्ष्मण का ध्यान कर एक लक्ष मन्त्र का जप करता है, वह दुर्जय एवम् महान् शत्रुकुल
को भी जीत लेता है ॥१५६॥ जो शूर्पणखा की नाक काटने के लिये उद्यत लक्ष्मण का ध्यान कर एक हजार
बार मन्त्र को जपता है, वह इन्द्र आदि को भी जीत लेता है ॥१५७॥ जो राम के चरणारविंदों की सेवा के
लिये उद्योग करने वाले लक्ष्मण का स्मरण कर एकान्त में एक लाख मन्त्र का जप करता है, वह महारोग से
मुक्त हो जाता है ॥१५८॥ जो तीन मास तक जिताहार[1] होकर नित्य सात हजार मन्त्र का जप करके एक
सौ आठ निश्छिद्र कमलपुष्पों से विधिपूर्वक पूजन करता है तथा खीर एवम् शक्कर (चीनी) नैवेद्य चढ़ाता है वह
कुष्ठरोग से छुटकारा पा जाता है ॥१५९-१६०॥

इसी तरह जिताहार होकर निर्जन स्थान में जप आदि करने से क्षयरोग (तपेदिक) दूर हो जाता है,
इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो प्रातःकाल सावधान होकर इस मन्त्र से तीन बार जल को अभिमंत्रित करके
नित्य तीनों संध्या पान करता है, उसके सकल रोग निवृत्त हो जाते हैं, दरिद्रता विलीन हो जाती है। और तो क्या
वह साक्षात् कुबेर तुल्य हो जाता है। विष आदि का दोष तो उसे कभी लगता ही नहीं। इस मन्त्र से अभिमंत्रित जल
से प्रत्यह मुख धोना चाहिये ॥१६१-१६३½॥ ऐसा करने से मुख, नेत्र आदि स्थानों में हुए भयंकर रोग भी छूट जाते

१. परिमित एवम् विहित भोजन करने वाला।

स सर्वेभ्योऽथ रोगेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः । कन्यार्थी विमलापाणिग्रहणासक्तमानसः ॥१६६॥
ध्यायन् लक्षं जपेन्मंत्री अब्जैर्हुत्वा दशांशतः । ईप्सितां लभते कन्यां शीघ्रमेव न संशयः ॥१६७॥
दीक्षितं जृंभणास्त्राणां मंत्रेषु नियतव्रतम् । ध्यात्वा च विधिवन्नित्यं जपेन्मासत्रयं मनुम् ॥१६८॥
पूजापुरःसरं सप्तसहस्रं विजितेंद्रियः । सर्वासामपि विद्यानां तत्त्वज्ञो जायते नरः ॥१६९॥
विश्वामित्रक्रतुवरे कृताद्भुतपराक्रमम् । ध्यायंल्लक्षं जपेन्मंत्रं मुच्यते महतो भयात् ॥१७०॥
कृतनित्यक्रियः शुद्धस्त्रिकालं प्रजपेन्मनुम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परं पदम् ॥१७१॥
दीक्षितो वधिवन्मत्री गुणैर्विगतकल्मषः । स्वाचारनियतो दांतो गृहस्थो विजितेंद्रियः ॥१७२॥
ऐहिकाननपेक्ष्यैव निष्कामो योऽर्चयद्विभुम् । स सर्वान्पुण्यपापौघान्दग्ध्वा निर्मलमानसः ॥१७३॥
पुनरावृत्तिरहितः शाश्वतं पदमश्नुते । सकामो वांछितान् लब्ध्वा भुक्त्वा भोगान् मनोगतान् ॥१७४॥
जातिस्मरश्चिरं भूत्वा याति विष्णोः परं पदम् । निद्राचन्द्रान्विता पश्चाद्भरताय हृदंतिमः ॥१७५॥
सप्ताक्षरो मनुश्चास्य मुन्याद्यर्चादि पूर्ववत् । बकः सेंदुश्च शत्रुघ्नपरं ङेंतं हृदंतिमः ॥१७६॥
सप्ताक्षरोऽयं शत्रुघ्नमंत्रः सर्वेष्टसिद्धिदः ॥१७७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने सनत्कुमारविभागे तृतीयपादे रामाद्युपासना-
वर्णनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

हैं। इससे अभिमंत्रित जल को पीने से पेट की व्याधियाँ दूर हो जाती हैं, यह ध्रुव है। जो व्यक्ति लक्ष्मण की प्रतिमा बना कर भक्ति से विधिपूर्वक दान करता है, वह निःसंदेह समस्त रोगों से मुक्त हो जाता है। जो सुन्दरी कन्या से विवाह करना चाहता हो, वह लक्ष्मण का ध्यान कर इस मन्त्र को एक लाख जपे और उसका दशांश कमलों से हवन करे। ऐसा करने से शीघ्र अभिलषित कन्या को प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं। जो जितेन्द्रिय होकर जृंभणास्त्रों[1] की दीक्षा पाने वाले महाव्रती लक्ष्मण का ध्यान कर तीन मास तक नित्य इस मन्त्र का सात हजार जप करता है, वह निखिल विद्याओं का तत्त्वज्ञ होता है। जो विश्वामित्र के यज्ञ में अद्भुत पराक्रम दिखलाने वाले लक्ष्मण का ध्यान कर इस मन्त्र को जपता है, वह महाभय से मुक्त हो जाता है ॥१६४-१७०॥ जो नित्य कर्म से शुद्ध होकर तीनों काल इस मन्त्र का जप करता है, वह अखिल पापों से मुक्त होकर वैकुण्ठ को जाता है। जो गृहस्थ साधक विधिपूर्वक दीक्षा लेकर निष्पाप, जितेन्द्रिय एवम् सदाचारकुशल हो बिना ऐहलौकिक स्वार्थ के निष्काम भाव से विभु रामचन्द्र की आराधना करता है, वह सकल पाप-पुण्यों को दग्ध कर निर्मलचित्त हो जाता है तथा उस शाश्वत पद को प्राप्त करता है, जहाँ से पुनरावृत्ति नहीं होती। वह समस्त कामनाओं को [प्रा]प्त कर अभिलषित भोगों को भोगते हुए चिरकाल तक जातिस्मर (पूर्वजन्मों के वृत्तान्तों को जानने वाला) होता है और अन्त में विष्णु के परम पद को प्राप्त करता है। (भं भरताय नमः) यह सात अक्षरों का मन्त्र है। इसके मुनि आदि पूर्ववत् ही समझना चाहिए। (शं शत्रुघ्नाय नमः) यह सप्ताक्षर मन्त्र शत्रु का नाशक तथा सकलसिद्धि-दायक है ॥१७१-१७७॥

श्री नारदीयपुराण के बृहदुपाख्यानयुक्त पूर्वार्ध में सनत्कुमारविभाग के तृतीयपाद में रामादि उपासना वर्णन नामक तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७३॥

---

१. वह अस्त्र, जिसके छोड़ने से लोगों को जंभाई आने लगती है।

चतु:सप्ततितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

यान्समाराध्य विप्रेंद्र तत्तुल्याचरणा नराः ॥१॥
अथोच्यंते हनुमतो मंत्राः सर्वेष्टदायकाः । हसफाग्निनिशाधीशाः द्वितीयं बीजमीरितम् ॥२॥
मनुः स्वरेंदुसंयुक्तं गगनं च भगान्विताः । वियद्भृग्वग्निमन्विंदुयुक्तं स्याच्च चतुर्थकम् ॥३॥
स्वफाग्नयो भगेंद्वाढ्यास्ततीयं बीजमीरितम् । मन्विंद्वाढ्यौ हसौ षष्ठं ङेंतः स्याद्धनुमांस्ततः ॥४॥
पंचमं भगचंद्राढ्याविययद्भृगुस्वकाग्नयः । रामचन्द्रो मुनिश्चास्य जगतीछंद ईरितम् ॥५॥
हृदयांतो महामंत्रराजोऽयं द्वादशाक्षरः । षड्बीजैश्च षडंगानि शिरोभाले दृशोर्मुखे ॥६॥
देवता हनुमान्बीजं षष्ठं शक्तिद्वितीयकम् । ध्वजे जानुद्वये पादद्वये वर्णान्क्रमान्न्यसेत् ॥७॥
गलबाहुद्वये चैव हृदि कुक्षौ च नाभितः । नाभावूर्वोजघयोश्च पादयोर्विन्यसेत्क्रमात् ॥८॥
षड्बीजानि पदद्वंद्वं मूर्ध्नि भाले मखे हृदि । उद्यत्कोटयर्कसंकाशं जगत्प्रक्षोभकारकम् ॥९॥
अंजनीगर्भसंभूतं ततो ध्यायेत्कपीश्वरम् । वित्रासयंतं नादेन राक्षसान्मारुतिं भजेत् ॥१०॥
श्रीरामांघ्रिध्याननिष्ठं सुग्रीवप्रमुखार्चितम् ।

अध्याय ७४

हनुमान् के मन्त्रों का निरूपण

हनुमान् के मन्त्रों को बतलाता हूं, जिनकी
सनत्कुमार बोले---विप्रवर्य ! अब मैं सकलकामनादायक हनुमान् के मन्त्रों को बतलाता हूं, जिनकी से युक्त गगन (ह)
आराधना करने से मानव उनके समान हो जाता है। मनुस्वर (औ) तथा इन्दु (अनुस्वार) 'हस्फ्रें' यह दूसरा बीज
अर्थात् 'ह्रौं' यह प्रथम बीज है। ह् स् फ् र् और अनुस्वार ये भग (ए) से युक्त हों अर्थात् बीज कहा गया है। वियत्
है। ख् फ् र् ये भग (ए) और इन्दु (अनुस्वार) से युक्त हों अर्थात् 'ख्फ्रें' यह तीसरा 'ह्स्त्रौं' यह चौथा बीज है।
(ह) भृगु (स्) अग्नि (र्) मनु (औ) और इन्दु (अनुस्वार) इन सब का संयुक्त रूप हों अर्थात् 'हस्ख्फ्रें यह पाचवां
भग (ए) और चन्द्र (अनुस्वार) से युक्त वियत् (ह्) भृगु (स्) ख् फ् तथा अग्नि (र्) तदनन्तर ङे विभक्त्यन्त
बीज है। मनु (औ) और इन्दु (अनुस्वार) से युक्त ह स् अर्थात् 'ह सौं' यह छठा बीज है।) बारह अक्षरों
हनुमत् शब्द (हनुमते) और अन्त में हृदय (नमः) यह (ह्रौं हस्फ्रें ख्फ्रें ह्स्त्रौं' ह्स्ख्फ्रें ह्सौं हनुमते नमः। इसके
वाला महामन्त्रराज कहा गया है। इस मन्त्र के श्रीरामचन्द्र ऋषि हैं और जगती छन्द कहा गया है नेत्र, मुख,
देवता हनुमान् हैं। 'ह्सौं' बीज है, 'हस्फ्रें' शक्ति है। छह बीजों से षडंग-न्यास कर शिर, ललाट छह बीजों तथा
ग्रीवा, भुजा, हृदय, पेट, नाभि, लिंग, जानु और चरणों में क्रमशः वर्णों का न्यास करे। पुनः अनन्तर अंजनी के
दो पदों को मस्तक, भाल, मुख, हृदय, नाभि, ऊरु, जंघा तथा चरणों में क्रमशः न्यस्त करे। कोटि सूर्य के समान है।
गर्भ से उत्पन्न कपीश्वर का इस प्रकार ध्यान करे (हनुमान्) उनकी कान्ति उदित होते हुए सुग्रीव आदि कपिगण
वे संसार को प्रक्षुब्ध करने वाले तथा श्रीराम के चरणों के ध्यान में निरत रहने वाले हैं।
उनका सम्मान करते हैं। वे अपने नाद (किलकिलाहट) से राक्षसों को त्रास पहुँचाते हैं ॥१-१०॥

ध्यात्वैवं प्रजपेद्भानुसहस्रं विजितेंद्रियः । दशांशं जुहुयाद्व्रीहीन्पयोदध्याज्यमिश्रितान् ॥११॥
पूर्वोक्ते वैष्णवे पीठे मूर्त्ति संकल्प्य मूलतः । आवाह्य तत्र संपूज्य पाद्यादिभिरुपायनैः ॥१२॥
केशरेष्वंगपूजा स्यात्पत्रेषु च ततोऽर्चयेत् । रामभक्तो महातेजाः कपिराजो महाबलः ॥१३॥
द्रोणाद्रिहारको मेरुपीठकार्चनकारकः । दक्षिणाशाभास्करश्च सर्वविघ्नविनाशकः ॥१४॥
इत्थं सम्पूज्य नामानि दलाग्रेषु ततोऽर्चयेत् । सुग्रीवमंगदं नीलं जांबवंतं नलं तथा ॥१५॥
सुषेणं द्विविदं मैंदं लोकपालस्ततोऽर्चयेत् । वज्राद्यानपि संपूज्य सिद्धश्चैवं मनुर्भवेत् ॥१६॥
मंत्रं नवशतं रात्रौ जपेद्दशदिनावधि । यो नरस्तस्य नश्यंति राजशत्रूत्थभीतयः ॥१७॥
मातुलिंगाम्रकदलीफलैर्हुत्वा सहस्रकम् । द्वाविंशतिब्रह्मचारि विप्रान्संभोजयेच्छुचीन् ॥१८॥
एवंकृते भूतविषग्रहरोगाद्युपद्रवाः । नश्यंति तत्क्षणादेव विद्वेषिग्रहदानवाः ॥१९॥
अष्टोत्तरशतेनांबु मंत्रितंविषनाशनम् । भूतापस्मारकृत्योत्थं ज्वरे तन्मंत्रमंत्रितैः ॥२०॥
भस्मभिः सलिलैर्वापि ताडयेज्ज्वरिणं क्रुधा । त्रिदिनाज्ज्वरमुक्तोऽसौ सुखं च लभते नरः ॥२१॥
औषधं वा जलं वापि भुक्त्वा तन्मंत्रमंत्रितम् । सर्वान्रोगान्पराभूय सुखी भवति तत्क्षणात् ॥२२॥
तज्जप्तभस्मलिप्तांगो भुक्त्वा तन्मंत्रितं पयः । योद्धुं गच्छेच्च यो मंत्री शस्त्रसंघैर्न बाध्यते ॥२३॥
शस्त्रक्षतं व्रणस्फोटो लूतास्फोटोऽपि भस्मना । त्रिजप्तेन च संस्पृष्टाःशुष्यंत्येव न संशयः ॥२४॥
जपेदर्कास्तमारभ्य यावदर्कोदयो भवेत् । मन्त्रं सप्तदिनं यावच्चादाय भस्मकीलकौ ॥२५॥
निखनेदभिमन्त्र्याशु शत्रूणां द्वार्यलक्षितः । विद्वेषं मिथ आपन्नाः पलायंतेऽरयोऽचिरात् ॥२६॥

इस प्रकार वायुपुत्र का ध्यान कर बारह हजार मन्त्र का जप करे और उसका दशांश दूध, दही एवम् घी मिश्रित व्रीहि (धान्य) से होम करे। पश्चात् पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर मूल मन्त्र से मूर्ति की प्रतिष्ठा कर पाद्य आदि उपहारों से आवाहन पूर्वक आराधना करे। केसरों पर अंगदेवताओं की पूजा कर पत्रों पर रामभक्त, महातेजस्वी, कपिराज, महाबली, द्रोणपर्वतहारी, मेरुपीठपूजक, दक्षिणदिशाभास्कर और सर्वविघ्नविनाशक—इन नामों का पूजन करे। तदुपरान्त पत्रों के छोरों पर सुग्रीव, अंगद, जांबवंत, नल, सुषेण, द्विविद, मैंद तथा लोकपालों की पूजा कर वज्र आदि आयुधों की भी अर्चना करे। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जो व्यक्ति दश दिनों तक रात में नौ सौ बार इस मन्त्र का जप किया करता है, उसे राजशत्रुजन्य भय नहीं होता। बिजौरा नींबू, आम, तथा केले से हजार बार हवन कर बाईस ब्रह्मचारी विप्रों को भोजन कराने से भूत, विष, ग्रह, रोग, शत्रु तथा दानव-कृत उपद्रव तत्काल नष्ट हो जाते हैं। इस मन्त्र को एक सौ आठ बार पढ़ कर जल को अभिमंत्रित करने से जल विषनाशक होता है। जिसको भूतमिरगी आती हो या ज्वर लगता हो, उसे इस मन्त्र से अभिमंत्रित जल या भस्म से तीन दिन ताडन करे। ऐसा करने से रोगी रोगमुक्त होकर आनन्दित हो जाता है। औषध या जल को इस मन्त्र से अभिमंत्रित करके पान करने से मनुष्य तुरन्त सकल व्याधियों पर विजय प्राप्त कर सुखी होता है। जो व्यक्ति इस मन्त्र से अभिमंत्रित भस्म को अंगों में लगाकर तथा मंत्रित जल पीकर युद्ध करने जाता है, उसके ऊपर शस्त्रों का प्रहार निष्फल हो जाता है। भस्म को इस मन्त्र से तीन बार अभिमंत्रित कर शस्त्र-कृत घाव या व्रणस्फोट या लूतास्फोट पर लगा देने से घाव निःसंदेह सूख जाता है ॥११-२४॥ सात दिनों तक सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय पर्यन्त इस मन्त्र का जप करे। फिर भस्म और कील को अभिमंत्रित करके छिप कर शत्रु के दरवाजे पर गाड़ आये। ऐसा कर देने से शत्रु अपने स्वजनों से ही द्वेष करते हुए शीघ्र उस स्थान

भक्ष्यादियोजितं यस्मै ददाति स तु दासवत् ॥२७॥
भस्माम्बु चंदनं मंत्री मंत्रेणानेन मन्त्रितम् । गृहीत्वेशानदिक्संस्थं करंजतरुमूलकम् ॥२८॥
क्रूराश्च जंतवोऽप्येवं भवंति वशवर्तिनः । कृत्वा प्राणप्रतिष्ठां च सिंदूराद्यैः प्रपूज्य च ॥२९॥
कृत्वा तेनांगुष्ठमात्रां प्रतिमां च हनूमतः । ग्रहाभिचाररोगाग्निविषचौरनृपोद्भवाः ॥३०॥
गृहस्याभिमुखीं द्वारे निखनेन्मन्त्रमुच्चरन् । तद्गृहं धनपुत्राद्यैरेधते प्रत्यहं चिरम् ॥३१॥
न जायंते गृहे तस्मिन् कदाचिदप्युपद्रवाः । शत्रोः प्रतिकृतिं कृत्वा हृदि नाम समालिखेत् ॥३२॥
निशि यत्र वने भस्म मृत्स्नया वापि यत्नतः । मन्त्रान्ते प्रोच्चरेच्छत्रोर्नाम छिंधि च भिंधि च ॥३३॥
कृत्वा प्राणप्रतिष्ठां तं भिद्याच्छस्त्रैर्मनुं जपन् । पाण्योस्तले प्रपीड्याथ त्यक्त्वा तं स्वगृहं ।
मारयेति च तस्यान्ते दंतैरोष्ठं निपीड्य च । ॥३४॥
व्रजेत्
पितृकानने ॥३५॥
कुर्वन्सप्तदिनं चैवं हन्याच्छत्रुं न संशयः । राजिकालवणैर्मूर्क्तचिकुरः ॥३६॥ *
धत्तूरफलपुष्पैश्च नखरोमविषैरपि । द्विक (काक) कौशिकगृध्राणां पक्षैः श्लेष्मांतकाक्षजैः ॥३७॥
समिद्भिस्त्रिशतं याम्यदिङ्मुखो जुहुयान्निशि । एवं सप्तदिनं कुर्वन्मारयेदुद्धतं रिपुम् ॥३८॥
त्रिरात्रस्त्रिदिनं रात्रौ श्मशाने षट्शतं जपेत् । ततो वेताल उत्थाय वदेद्भावि शुभाशुभम् ॥३९॥
किंकरीभूय वर्त्तेत कुरुते साधकोदितम् । भस्मांबुमंत्रितं रात्रौ सहस्रावृत्तिकं पुनः ॥४०॥
दिनत्रयं च तत्पश्चात्प्रक्षिपेत्प्रतिमासु च । यासु कासु च स्थूलासु लघुष्वपि विशेषतः ॥४१॥
मंत्रप्रभावाच्चलनं भवत्येव न संशयः । अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां कुजे वा रविवासरे

आदि में मिला कर जिसे देता
है, वह उसका दासतुल्य हो जाता है। ऐसा करने से हिंसक जन्तु भी वशीभूत हो जाते हैं। ईशान कोण में स्थित
करंज वृक्ष के मूल को लाकर इसकी अंगुष्ठप्रमाण हनुमान् की प्रतिमा बनाये। उस मूर्ति को प्राणप्रतिष्ठा तथा
सिंदूर आदि से पूजन कर घर के सम्मुख द्वार पर मन्त्रोच्चारण करते हुए गाड़ दे। ऐसा करने से उस घर में ग्रह,
अभिचार (टोना), रोग, अग्नि, विष, चोर, राजा आदि के उपद्रव कभी भी नहीं होते। रात्रि में वन जाकर
भस्म या अच्छी मिट्टी की शत्रु की प्रतिमा बना कर उसके हृदय पर शत्रु का नाम लिख दे। फिर उसकी प्राण-
प्रतिष्ठा कर (हनुमान् के) मन्त्र को जपते हुए शस्त्रों से काटे। मन्त्र के अन्त में 'अमुकनामानं शत्रुं छिन्धि, भिन्धि,
मारय' यह पढ़े। तदनन्तर (प्रतिमा के) होंठ में दांत काट कर हथेली पर मारे पश्चात् अपने घर को लौट जाये
॥२५-३४॥ सात दिनों तक ऐसा करने से निःसन्देह शत्रु मर जाता है। रात्रि में श्मशान जाकर बालों को बिखेर
कर पीसे सरसों, नमक, धतूरे के फल-फूलों, नख, रोम, विष, कौए, कौशिक (उल्लू) तथा गीध के पंखों और लसोड़े
एवम् बहेड़े की लकड़ी से दक्षिण मुंह होकर होम करे। इस तरह सात दिनों तक करने से उद्धत शत्रु की मृत्यु
होती है। तीन दिनों तक ऐसा करने से शत्रु को महाभय होता है। रात्रि के समय श्मशान में जो साधक छह
सौ बार मन्त्र का जप करता है, उसके वेताल दास होकर शुभाशुभ फल को बतलाने लगता है ॥३५-३८॥ तीन
दिनों तक रात्रि में भस्म और जल को इस मन्त्र से सहस्र बार अभिमंत्रित कर जिस-किसी प्रतिमा पर—चाहे
भारी हो या हलकी—छिड़कने से वह प्रतिमा मन्त्र के प्रभाव से चलने लगती है, इसमें संशय नहीं। अष्टमी या
चतुर्दशी तिथि और मङ्गल या रवि दिन शुद्धचित साधक किसी तख्ते पर अतिस्निग्ध माष (उदड़) से हनुमान् की
कमनीय एवम् सर्व लक्षण सम्पन्न प्रतिमा बनाये। उस प्रतिमा के वाम भाग में तेलदीप और दक्षिण भाग में

से भाग जाता है। साधक इस मन्त्र से अभिमंत्रित भस्म, जल तथा चन्दन भोजन

हनुमत्प्रतिमां पट्टे माषैः स्नेहपरिप्लुतैः । कुर्याद्रम्यां विशुद्धात्मा सर्वलक्षणलक्षिताम् ॥४२॥
तैलदीपं वामभागे घृतदीपं तु दक्षिणे । संस्थाप्यावाहयेत्पश्चान्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ॥४३॥
प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा च पाद्यादीनि समर्पयेत् । रक्तचंदनपुष्पैश्च सिंदूराद्यैः समर्चयेत् ॥४४॥
धूपं दीपं प्रदायाथ नैवेद्यं च समर्पयेत् । अपूपमोदनं शाकमोदकान्वटकादिकम् ॥४५॥
साज्यं च तत्समर्प्याथ मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् । अखंडितान्यहिलतादलानि सप्तविंशतिम् ॥४६॥
त्रिधा कृत्वा सपूगानि मूलेनैव समर्पयेत् । एवं सम्पूज्य मन्त्रज्ञो जपेद्दशशतं मनुम् ॥४७॥
कर्पूरारार्तिकं कृत्वा स्तुत्वा च बहुधा सुधीः । निजेप्सितं निवेद्याथ विधिवद्विसृजेत्ततः ॥४८॥
नैवेद्यान्नेन संभोज्य ब्राह्मणान्सप्तसंख्यया । निवेदितानि पर्णानि तेभ्यो दद्याद्विभज्य च ॥४९॥
दक्षिणां च यथा शक्ति दत्त्वा तान् विसृजेत्सुधीः । तत इष्टगणैः सार्द्धं स्वयं भुंजीत वाग्यतः ॥५०॥
तद्दिने भूमिशय्यां च ब्रह्मचर्यं समाचरेत् । एवं यः कुरुते मर्त्यः सोऽचिरादेव निश्चितम् ॥५१॥
प्राप्नुयात्सकलान्कामान्कपीशस्य प्रसादतः । हनुमत्प्रतिमां भूमौ विलिखेत्तत्पुरो मनुम् ॥५२॥
साध्यनाम द्वितीयांतं विमोचय विमोचय । तत्पूर्वं मार्जयद्वामपाणिनाथ पुनर्लिखेत् ॥५३॥
एवमष्टोत्तरशतं लिखित्वा मार्जयेत्पुनः ॥५४॥
एवं कृते महाकारागृहाच्छीघ्रं विमुच्यते । एवमन्यानि कर्माणि कुर्य्यात्पल्लवमुल्लिखन् ॥५५॥
सर्षपैर्वश्यकृद्धोमो विद्वेषे हयमारजैः । कुंकुमैरिध्मकाष्ठैर्वा मरीचैर्जीरकैरपि ॥५६॥
ज्वरे दूर्वागुडूचीभिर्दध्ना क्षीरेण वा घृतैः । शूले करंजवातारिसमिद्भिस्तैललोलितैः ॥५७॥
तैलाक्ताभिश्च निर्गुंडीसमिद्भिर्वा प्रयत्नतः । सौभाग्ये चंदनैश्चेंद्रलोचनैर्वा लवंगकैः ॥५८॥
सुगंधपुष्पैर्वस्त्राप्त्यै तत्तद्धान्यैस्तदाप्तये । रिपुपादरजोभिश्च राजीलवणमिश्रितैः

घृतदीप जलाये। पश्चात् मन्त्रवेत्ता साधक मूलमन्त्र से प्रतिमा को स्थापित कर (हनुमान् का) आवाहन करे ॥३९-४३॥ पुनः प्राणप्रतिष्ठा कर पाद्य, रक्तचन्दन, पुष्प, सिंदूर, धूप, दीप तथा नैवेद्य समर्पित करे। पूरी, चावल, शाक, बड़ा, घी तथा मिठाई समर्पण कर सत्ताईस बीड़े पान एवम् सुपारी भी मूलमन्त्र को पढ़ते हुए अर्पित करे। इस तरह पूजा कर विद्वान् साधक एक हजार मन्त्रजप, कर्पूर की आरती, अनेक प्रकार से स्तुति तथा अपनी प्रिय वस्तु समर्पित कर विधिपूर्वक प्रतिमा विसर्जन करे, तदुपरान्त सात ब्राह्मणों को नैवेद्यान्न खिला कर निवेदित पान-सुपारी एवम् यथाशक्ति दक्षिणा देकर उन्हें बिदा करे। पश्चात् इष्ट-मित्रों के साथ मौन हो कर स्वयं भोजन करे। उस दिन उसे भूमि पर शयन तथा ब्रह्मचर्य पालन करना आवश्यक है। जो मनुष्य ऐसा करता है, उसे शीघ्र ही हनुमान् की कृपा से सकल अभीप्सित वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। भूमि पर हनुमान् की प्रतिमा लिखकर उसके आगे मन्त्र लिखे। फिर साध्य (जिसके उद्देश्य से क्रिया की जाती हो) का नाम लिखकर 'विमोचय, विमोचय' यह पद भी लिखे। पश्चात् सबको बाँयें हाथ से मिटा दे। इस प्रकार एक सौ आठ बार लिखने एवम् मिटाने से साध्य कारागार (जेल) से शीघ्र मुक्त हो जाता है ॥४४-५३½॥ इसी तरह पल्लव को लिखते हुए अन्य कर्मों को भी करे। सरसों से होम करने से वशीकरण सिद्ध होता है। करवीर, कुंकुम, मरीच तथा जीरे की लकड़ी से होम करने से शत्रु को आपस में ही विद्वेष हो जाता है। दुर्वा, गुड़ुच, दही, दूध तथा घृत से हवन करने से ज्वर नष्ट होता है। तेल से भीगे करंज, रेंड तथा निर्गुंडी (स्याह फूल वाली नेवारी) की लकड़ी से होम करने से शूल रोग नष्ट होता है। सौभाग्यवृद्धि के लिये चन्दन, इन्द्रलोचन तथा लवंग से हवन करना चाहिये ॥५४-५७॥ सुगंधित पुष्पों से होम करने से वस्त्र की प्राप्ति होती है। तत्तत् अन्न की प्राप्ति के लिये तत्तत् अन्न से हवन करना चाहिये। शत्रु की चरणधूलि में पीला सरसों तथा नमक मिला कर उससे होम

धान्यैः संप्राप्यते धान्यमन्नैरन्नसमुच्छ्रयः ॥५९॥
होमयेत्सप्तरात्रं च रिपुर्याति यमालयम् । किं बहूक्तैर्विषे व्याधौ शांतौ मोहे च मारणे ॥६०॥
तिलाज्यक्षीरमधुभिर्माहिषीगोसमृद्धये । वश्ये युद्धे क्षते दिव्ये बंधमोक्षे महावने ॥६१॥
विवादे स्तंभने द्यूते भूतभीतौ च संकटे । वक्ष्येऽथ हनुमद्यंत्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥६२॥
साधितोऽयं नृणां दद्यान्मन्त्रः श्रेयः सुनिश्चितम् । साध्यनाम लिखेन्मध्ये पाशिबीजप्रवेष्टितम् ॥६३॥
लांगूलाकारसंयुक्तं वलयत्रितयं लिखेत् । तद्बहिर्दंतमालिख्य तद्बहिश्चतुरस्रकम् ॥६४॥
उपर्यष्टच्छदं कृत्वा पत्रेषु कवचं लिखेत् । सौं बीजं भूपुरस्याष्टवज्रेषु विलिखेत्ततः ॥६५॥
चतुरस्रस्य रेखाग्रे त्रिशूलानि समालिखेत् । तत्सर्वं वेष्टयेद्यंत्रे वलयत्रितयेन च ॥६६॥
कोणेष्वकुंशमालिख्य मालामन्त्रेण वेष्टयेत् । ताडपत्रेऽथ भूर्जे वा रोचनानाभिकुंकुमैः ॥६७॥
शिलायां फलके वस्त्रे ताम्रपत्रेऽथ कुड्यके । कपेः प्राणान्प्रतिष्ठाप्य पूजयेत्तद्यथाविधि ॥६८॥
यंत्रमेतत्समालिख्य निराहारो जितेंद्रियः । मारीज्वराभिचारादिसर्वोपद्रवनाशनम् ॥६९॥
अशेषदुःखशान्त्यर्थं यंत्रं संधारयेद् बुधः । भूतकृत्यापिशाचानां दर्शनादेव नाशनम् ॥७०॥
योषितामपि बालानां धृतं जनमनोहरम् । दीर्घत्रयान्विता माया प्रागुक्तं कूटपञ्चकम् ॥७१॥
मालामन्त्रमथो वक्ष्ये तारो वाग्विष्णुगेहिनी । आक्रांतदिङ्मंडलांते यशोवितानसंवदेत् ॥७२॥
ध्रुवो हृद्धनुमान्ङेंताऽथ प्रकटपराक्रमः । देहज्वलदग्निसूर्य कोट्यंते च समप्रभ ॥७३॥
धवलीकृतवर्णांते जगत्त्रितयवज्र च । लंकापुरी ततः पश्चाद्दहनोदधिलंघन ॥७४॥
तनूरुहपदांते तु रुद्रावतार संवदेत् ।

करने से अन्न की वृद्धि
करने से शत्रु यमलोक को चला जाता है। धान्य से होम करने से धान्य तथा अन्न से होम करने से अन्न की वृद्धि होती है। बहुत क्या कहें; विष, होती है। तिल, घृत, दूध तथा मधु से हवन करने से भैंस एवम् गाय की समृद्धि होती है। बहुत क्या कहें; विष, व्याधि, शांति, मोहन, मारण, विवाद, स्तंभन, द्यूत, भूतापद्रव, संकट, वशीकरण, युद्ध, घाव, दैवी बाधा, बंधनमुक्ति तथा महावन में इस मन्त्र के जप करने से मनुष्य का निश्चित कल्याण होता है ॥५८-६१½॥

अब मैं सर्वसिद्धिदायक हनुमान् के मन्त्र को बतलाता हूँ। पुच्छाकृति रेखा से युक्त तीन वलयाकार रेखा खींचे। उसके मध्य में साध्य का नाम लिखकर पाशबीज से वेष्टित कर दे। उसके ऊपर अष्टदल कमल लिख कर पत्रों पर कवच लिखे। उसके बाहर दांत और उससे भी परे चौकोर रेखा खींचे। चौकोर रेखा के आगे अनेक त्रिशूल बनाकर भूपुर के आठ वज्रों पर 'सौं' यह बीज लिख दे। कोणों में अंकुश लिखकर मालामन्त्र से उसे वेष्टित करे। फिर संपूर्ण यंत्र को वलयाकार त्रिरेखा से आवृत करे। शिला, फलक (तख्ता), वस्त्र, ताम्रपत्र, कुड्य (दीवार), तालपत्र या भोजपत्र पर गोरोचन तथा कस्तूरी मिश्रित कुंकुम से उस यंत्र को लिखकर निराहार एवम् जितेन्द्रिय साधक उसमें हनुमान् की प्राणप्रतिष्ठा करके विधिपूर्वक पूजा करे। जो विद्वान् व्यक्ति उस यंत्र को धारण करते हैं, उनके समस्त दुःख निवृत्त हो जाते हैं। वह यंत्र महामारी (हैजा), ज्वर, प्रेतादि बाधा तथा सकल उपद्रवों का नाशक है। उसके धारण से कन्या, कामिनी तथा जनता भी वशीभूत हो जाती है। उसके दर्शन मात्र से भूत, कृत्या एवम् पिशाचों का नाश होता है ॥६२-७०॥

अब इसके उपरान्त मालामन्त्र के संबन्ध में कहता हूँ। "तारोवाक्······स्वाहा" यह मालासंज्ञक मन्त्र सकल कामनाओं को सफल करने वाला है। इसमें इक्कीस अक्षर हैं। महाभय तथा महान् उत्पात के समय इसके स्मरण करने से दुःखनाश होता है। द्वादशाक्षर मन्त्र में जो अन्तिम छह अक्षर (हनुमते नमः) हैं

सीतांते श्वसनपदं वाय्वंते सुतमीरयेत् ॥७५॥
दशग्रीवशिरः पश्चात्कृतांतकपदं वदेत् । नंदंति करवर्णांते सैन्यप्राकार ईरयेत् ॥७६॥
अंजनागर्भसंभूतः श्रीरामलक्ष्मणान्वितः । कारणद्रोणशब्दांते पर्वतोत्पाटनेति च ॥७७॥
सुग्रीवसख्यकाद्वर्णाद्रणवालिनिबर्हण । छेदनांते वनरक्षाकरांते तु समूह च ॥७८॥
अशोकवनवीथ्यंते दारुणाक्षकुमारक । लक्ष्मणांते शक्तिभेदनिवारणपदं वदेत् ॥७९॥
विभञ्जनांते ब्रह्मास्त्रब्रह्मशक्ति ग्रसेति च । बालोदित ततो भानुमंडलग्रसनेति च ॥८०॥
विशल्योषधिशब्दांते समानयन संपठेत् । इंद्रजिद्वधकारांते णसोतारक्षकेति च ॥८१॥
मेघनादहोमपदाद्विध्वंसनपदं वदेत् । कुंभकर्णादिसंकीर्त्यवधांते च परायण ॥८२॥
राक्षसीसंघशब्दांते विदारणपदं वदेत् । व्योमद्रुमलंघनेति महासामर्थ्य संवदेत् ॥८३॥
श्रीरामभक्तिवर्णांते तत्परेति समुद्र च । स्वामिवचनसंपादितार्जुनांते च संयुग ॥८४॥
महातेजः पुंजशब्दाद्विराजमानवोच्चरेत् । गंभीरशब्दोदयांते दक्षिणापथ संवदेत् ॥
सहायांते कुमारेति ब्रह्मचारिन्पदंवदेत् ।
॥८५॥
मार्त्तण्डमेरुशब्दांते वदेत्पर्वतपोठिका । आचार्यमम शब्दांते सर्वग्रहविनाशन ॥८६॥
अर्चनांते तु सकलमंत्रांते मपदं वदेत् । सर्वापत्तिनिवारण सर्वदुष्टनिबर्हण ॥८७॥
सर्वज्वरोच्चाटनांते सर्वविषविनाशन ॥८८॥
सर्वव्याध्यादि सम्प्रोच्य भयांते च निवारण ॥८९॥
सर्वशत्रुच्छेदनेति ततो मम परस्य च ॥९०॥
ततस्त्रिभुवनांते तु पुंस्त्रीनपुंसकात्मकम् । सर्वजीवपदांते तु जातं वशययुग्मकम् ॥९१॥
ममाज्ञाकारकं पश्चात्संपादययुगं पुनः । ततो नानानामधेयान्सर्वान् राज्ञः स संपठेत् ॥९२॥
परिवारान्ममेत्यंते सेवकान् कुरु युग्मकम् । सर्वशस्त्रास्त्रवीत्यंते षाणि विध्वंसयद्वयम् ॥९३॥
लज्जादीर्घत्रयोपेता होत्रयं चैहि युग्मकम् । विलोमं पंचकूटानि सर्वशत्रून्हनद्वयम्

इनको और आदि बीज (हौं) को छोड़कर शेष बचे हुए पांच बीजों का जो पञ्चाक्षर मन्त्र बनता है, वह सकलकामनादायक है। इसके श्रीरामचन्द्र ऋषि, गायत्री छन्द और हनुमान् देवता कहे गये हैं। निखिल वस्तुओं की प्राप्ति के लिए इसका विनियोग किया जाता है। इसके पांच बीजों तथा सम्पूर्ण मन्त्र से षडंगन्यास करे। रामदूत, लक्ष्मणप्राणदाता, अंजनीसुत, सीताशोकविनाशन तथा लंकाप्रासादभंजन—ये पांच नाम हैं। इनसे पहले 'हनुमत्' यह नाम और है। हनुमत् आदि पांच नामों के आदि में पांच बीज और अंत में ङे विभक्ति लगाई जाती है। अन्तिम नाम के साथ उक्त पांचों बीज जुड़ते हैं। ये ही षडंगन्यास के ६ मन्त्र हैं[1]। इसके ध्यान-पूजन आदि कार्य पूर्वोक्त द्वादशाक्षर मन्त्र के समान ही हैं। प्रणव (ओं), वाग्भव (ऐं), पद्मा (श्रीं) तीन दीर्घ स्वरों से युक्त मायाबीज (ह्रां ह्रीं ह्रूं) तथा पांच कूट (ह्स्फ्रें, ख्फ्रें, ह्स्रौं, ह्स्ख्फ्रें, ह्सौं) यह ११ अक्षरों का मन्त्र समस्तसिद्धिदायक है। इसके भी ध्यान-पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् होते हैं। इस मन्त्र की आराधना की जाय तो

---

१. यथा 'ह्स्फ्रें हनुमते नमः,' हृदयाय नमः। ख्फ्रें रामभक्ताय नमः शिरसे स्वाहा। ह्स्रौं लक्ष्मणप्राणदात्रे नमः शिखायै वषट्। ह्स्ख्फ्रें अञ्जनीसुताय नमः कवचाय हुम्। ह्सौं सीताशोकविनाशाय नमः नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं लङ्काप्रासादभंजनाय नमः अस्त्राय फट्।

परबलानि परांते सैन्यानि क्षोभयद्वयम् ॥९४॥
मम सर्वं कार्यंजातं साधयेति द्वयं ततः ॥९५॥
सर्वदुष्टदुर्जनांते मुखानि कीलयद्वयम् । घेत्रयं वर्मत्रितयं फट्त्रयं हांत्रयं ततः ॥९६॥
वह्निप्रियांतो मंत्रोऽयं मालासंज्ञोऽखिलेष्टदः ॥९७॥
वस्वष्टबाणवर्णोऽयं मंत्रः सर्वेष्टसाधकः ॥९८॥
महाभये महोत्पाते स्मृतोऽयं दुःखनाशनः । द्वादशार्णस्य षट्कूटं त्यक्त्वा बीजं तथादिमम् ॥९९॥
पंचकूटात्मको मंत्रः सर्वकामप्रदायकः । रामचंद्रो मुनिश्चास्य गायत्री छंद ईरितम् ॥१००॥
हनुमान्देवता प्रोक्तो विनियोगोऽखिलाप्तये । पंचबीजैः समस्तेन षडंगानि समाचरेत् ॥१०१॥
रामदूतो लक्ष्मणांते प्राणदाताञ्जनीसुतः । सीताशोकविनाशोऽयं लंकाप्रासादभंजनः ॥१०२॥
हनुमदाद्याः पंचैते बीजाद्या ङेयुताः पुनः । षडंगमनवो ह्येते ध्यानपूजादि पूर्ववत् ॥१०३॥
प्रणवो वाग्भवं पद्मा माया दीर्घत्रयान्विता । पंचकूटानि मंत्रोऽयं रुद्रार्णः सर्वसिद्धिदः ॥१०४॥
ध्यानपूजादिकं सर्वमस्यापि पूर्ववन्मतम् । अयमाराधितो मंत्रः सर्वाभीष्टप्रदायकः ॥१०५॥
नमो भगवते पश्चादनंतश्चद्रशेखरां । जनेयाय महांते तु बलायांते ऽग्निवल्लभा ॥१०६॥
अष्टादशार्णो मंत्रोऽयं मुनिरीश्वरसंज्ञकः । छंदोऽनुष्टुप्देवता तु हनुमान्पवनात्मजः ॥१०७
हं बीजं वह्निवनिता शक्तिः प्रोक्ता मनीषिभिः । आंजनेयाय हृदयं शिरश्च रुद्रमूर्तये ॥१०८॥
शिखायां वायुपुत्रायाग्निगर्भाय वर्मणि । रामदूताय नेत्रं स्याद्ब्रह्मास्त्रायास्त्रमीरितम् ॥१०९॥
तप्तचामीकरनिभं भीघ्नसंविहिताञ्जलिम् । चलत्कुंडलदीप्तास्यं पद्माक्षं मारुतिं स्मरेत् ॥११०॥
ध्यात्वैवमयुतं जप्त्वा दशांशं जुहुयात्तिलैः । वैष्णवे पूजयेत्पीठे प्रागुद्दिष्टेन वर्त्मना ॥१११॥
अष्टोत्तरशतं नित्यं नक्तभोजी जितेंद्रियः । जपित्वा क्षुद्ररोगेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥११२॥
महारोगनिवृत्त्यै तु सहस्रं प्रत्यहं जपेत् । राक्षसौघं विनिघ्नंतं कपिं ध्यात्वाघनाशनम् ॥११३॥
अयुतं प्रजपेन्नित्यमचिराज्जयति द्विषम् । सुग्रीवेण समं रामं संदधानं कपिं स्मरन् ॥११४॥

सकल कामनायें पूर्ण होती हैं। 'नमो भगवते आंजनेयाय महाबलाय स्वाहा' यह १८ अक्षरों का मन्त्र है। इसके ईश्वर ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, पवनकुमार हनुमान् देवता, हं बीज और स्वाहा शक्ति है, ऐसा मनीषी पुरुषों का कथन है। 'आञ्जनेयाय नमः' का हृदय में, 'रुद्रमूर्तये नमः' का सिर में, 'वायुपुत्राय नमः' का शिखा में 'अग्नि-गर्भाय नमः' का कवच में, रामदूताय नमः' का नेत्रों में तथा 'ब्रह्मास्त्राय नमः' का अस्त्रस्थान में न्यास करे। इस प्रकार न्यासविधि कही गई है। (इसके बाद हनुमान् का ध्यान करना चाहिये) जिनकी कान्ति तप्त सुवर्ण के समान है, जो भय का नाश करने वाले हैं, जिन्होंने (श्रीराम के लिए) अंजलि बांध रखी है, जिनका मुख चमकते हुए चंचल कुंडलों से शोभायमान है और जिनके नेत्र कमल के समान हैं, उनका ध्यान करें ॥७१-११०॥ अनन्तर वैष्णव

इस प्रकार ध्यान कर दश हजार मन्त्र का जप करे और उसका दशांश तिल से होमे। अनन्तर वैष्णव पीठ पर पूर्वोक्त रीति से पूजन करना चाहिये। जो नित्य एकभुक्त करते हुए इन्द्रियसंयमपूर्वक एक सौ आठ बार इस मन्त्र का जप करता है, वह क्षुद्र रोगों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥१११-११२॥ महारोग से छुटकारा पाने के लिये प्रतिदिन एक हजार जप करना चाहिये। जो राक्षस समूह को मारने वाले पापनाशक हनुमान् का ध्यान कर दश हजार इस मन्त्र का जप करता है, वह शीघ्र ही शत्रु को जीत लेता है। जो सुग्रीव से राम को संधि कराते हुए वायुपुत्र का ध्यान कर दश हजार मन्त्र का जप करता है, उसे शत्रुसे मेल हो जाता

प्रजपेदयुतं यस्तु संधिं कुर्यादिद्वपद्वयोः। ध्यात्वा लंकां दहंतं तमयुतं प्रजपेन्मनुम् ॥११५॥
अचिरादेव शत्रूणां ग्रामान्संप्रदहेत्सुधीः। ध्यात्वा प्रयाणसमये हनुमन्तं जपेन्मनुम् ॥११६॥
यो याति सोऽचिरात्स्वेष्टं साधयित्वा गृहे व्रजेत्। हनुमंतं सदा गेहे योऽर्चयेज्जपतत्परः ॥११७॥
आरोग्यं च श्रियं कांतिं लभते निरुपद्रवम्। कानने व्याघ्रचौरेभ्यो रक्षेन्मनुरयं स्मृतः ॥११८॥
प्रस्वापकाले शय्यायां स्मरेन्मंत्रमनन्यधीः। तस्य दुःस्वप्नचौरादिभयं नैव भवेत्क्वचित् ॥११९॥
वियत्सेंदुर्हनुमते ततो रुद्रात्मकाय च। वर्मास्त्रांतो महामंत्रो द्वादशार्णोऽष्टसिद्धिकृत् ॥१२०॥
रामचन्द्रो मुनिश्चास्य जगती छन्द ईरितम्। हनुमान्देवता बीजमाद्यं शक्तिर्हुमीरिता ॥१२१॥
षड्दीर्घभाजा बीजेन षडंगानि समाचरेत्। महाशैलं समुत्पाट्य धावंतं रावणं प्रति ॥१२२॥
लाक्षारक्तारुणं रौद्रं कालांतकयमोपमम्। ज्वलदग्निसमं जैत्रं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥१२३॥
अंगदाद्यैर्महावीरैर्वेष्टितं रुद्ररूपिणम्। तिष्ठ तिष्ठ रणे दुष्ट सृजंतं घोरनिःस्वनम् ॥१२४॥
शैवरुपिणमभ्यर्च्य ध्यात्वा लक्षं जपेन्मनुम्। दशांशं जुहुयाद्व्रीहीन्पयोदध्याज्यमिश्रितान् ॥१२५॥
पूर्वोक्ते वैष्णवे पीठे विमलादिसमन्विते। मूर्तिं संकल्प्य मूलेन पूजा कार्या हनूमतः ॥१२६॥
ध्यानैकमात्रोऽपि नृणां सिद्धिरेव न संशयः। अथास्य साधनं वक्ष्येलोकानां हितकाम्यया ॥१२७॥
हनुमत्साधनं पुण्यं महापातकनाशनम्। एतद्गुह्यतमं लोके शीघ्रसिद्धिकरं परम् ॥१२८॥
मंत्री यस्य प्रसादेन त्रैलोक्यविजयी भवेत्। प्रातः स्नात्वा नदीतीरे उपविश्य कुशासने ॥१२९॥

है। जो साधक लंकादाह करते हुए हनुमान् का स्मरण कर दश हजार मन्त्र का जप करता है, वह शीघ्र ही शत्रुओं के गांवों को जला डालता है। यात्राकाल में जो हनुमान् का ध्यान कर मन्त्र का जप करता है, वह शीघ्र अपना कार्य साधन कर घर लौट आता है ॥११३-११६॥ जो अपने घर में सदा हनुमान् का ध्यान कर मन्त्र का जप करता है, वह आरोग्य, एवम् कांति लाभ करता है, विघ्न-बाधायें उसे कभी नहीं सताती। वन में बाघों एवम् चोरों से यह मन्त्र बचाता है। जो व्यक्ति सोने के समय शय्या पर तन्मयतापूर्वक इस मन्त्र का जप करता है, उसे दुःस्वप्न तथा चोर आदि का भय कभी भी नहीं होता ॥११७-११९॥ वियत् (ह) इन्दु (अनुस्वार) से युक्त हो, उसके बाद 'हनुमते रुद्रात्मकाय' ये दो पद हों, फिर वर्म (हुं) और अस्त्र (फट्) हो तो (हं) हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्) यह बारह अक्षरों का महामन्त्र (अणिमा आदि) आठ सिद्धियों को देने वाला है ॥१२०॥ इसके मुनि रामचन्द्र, छंद जगती, देवता हनुमान्, बीज हं और शक्ति 'हुम्' है। छः दीर्घमात्राओं से युक्त बीजमन्त्र से षडंगन्यास कर शैवरूपी हनुमान् का ध्यान करे कि वे महापर्वत को उखाड़ कर रावण के ऊपर टूट पड़े हैं। लाक्षा (अलता) के समान उनका वर्ण लाल है। रूप कालांतक यम के समान उनका भयंकर है। कान्ति जाज्वल्यमान अग्नि एवम् कोटि सूर्यों के समान है ॥१२१-१२३॥ अङ्गद आदि महावीर उन रुद्र रूपी हनुमान् को घेरे रहते हैं। रण में 'दुष्ट! खड़ा रह!' इस तरह वे गर्जना करते हैं। ध्यानोपरान्त एक लाख मन्त्र का जप कर उसका दशांश दूध, दही तथा घी मिलाये धान्य से हवन करे। इसके बाद पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर मूल मन्त्र से मूर्ति को स्थापित कर हनुमान् को पूजा करे। इस मन्त्र के ध्यान मात्र से भी मनुष्यों को सिद्धि मिलती है, इसमें संशय करने की आवश्यकता नहीं ॥१२४-१२६॥

अब मैं लोगों के कल्याण की दृष्टि से हनुमान् की साधना बतलाता हूँ। उनकी साधना पवित्र, महापाप-नाशक, गोपनीय तथा लोक में शीघ्र सिद्धिदायक है। उस साधन के प्रभाव से मनुष्य त्रैलोक्यविजयी होता है। प्रातःकाल स्नान कर नदी के तट पर कुशासन पर बैठ कर प्राणायाम करते हुए मूलमन्त्र से सविधि षडंगन्यास

प्राणायामषडंगे च मूलेन सकलं चरेत् । पुष्पांजल्यष्टकं दत्त्वा ध्यात्वा रामं ससीतकम् ॥१३०॥
ताम्रपात्रे ततः पद्ममष्टपत्रं सकेशरम् । कुचंदनेन घृष्टेन संलिखेत्तच्छलाकया ॥१३१॥
कर्णिकायां लिखेन्मंत्रं तत्रावाह्य कपीश्वरम् । मूर्तिं मूलेन संकल्प्य ध्यात्वा पाद्यादिकं चरेत् ॥१३२॥
गंधपुष्पादिकं सर्वं निवेद्य मूलमंत्रतः । केसरेषु षडंगानि दलेषु च ततोऽर्चयेत् ॥१३३॥
सुग्रीवं लक्ष्मणं चैव ह्यंगदं नलनीलकौ । जांबवंतं च कुमुदं केसरीशं दलेऽर्चयेत् ॥१३४॥
दिक्पालांश्चापि वज्रादीन्पूजयेत्तदनंतरम् । एवं सिद्धे मनौ मन्त्री साधयेत्स्वेष्टमात्मनि ॥१३५॥
नदीतीरे कानने वा पर्वते विजनेऽथवा । साधयेत्साधकश्रेष्ठो भूमिग्रहणपूर्वकम् ॥१३६॥
जिताहारो जितश्वासो जितवाक्च जितेंद्रियः । दिग्बन्धनादिकं कृत्वा न्यासध्यानादिपूर्वकम् ॥१३७॥
लक्षं जपेन्मंत्रराजं पूजयित्वा तु पूर्ववत् । लक्षांते दिवसं प्राप्य कुर्याच्च पूजनं महत् ॥१३८॥
एकाग्रमनसा सम्यग्ध्यात्वा पवननन्दनम् । दिवारात्रौ जपं कुर्याद्यावत्संदर्शनं भवेत् ॥१३९॥
सुदृढं साधकं मत्वा निशीथे पवनात्मजः । सुप्रसन्नस्ततो भूत्वा प्रयाति साधकाग्रतः ॥१४०॥
यथेप्सितं वरं दत्त्वा साधकाय कपीश्वरः । वरं लब्ध्वा साधकेंद्रो विहरेदात्मनः सुखैः ॥१४१॥
एतद्धि साधनं पुण्यं लोकानां हितकाम्यया । प्रकाशितं रहस्यं वै देवानामपि दुर्लभम् ॥१४२॥
अन्यानपि प्रयोगांश्च साधयेदात्मनो हितान् । वियदिन्दुयुतं पश्चाल्ङेंतं पवननंदनम् ॥१४३॥
वह्निप्रियान्तो मन्त्रोऽयं दशार्णः सर्वकामदः । मुन्यादिकं च पूर्वोक्तं षडंगान्यपि पूर्ववत् ॥१४४॥
ध्यायद्रणे हनूमंतं सूर्यकोटिसमप्रभम् । धावंतं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमुत्थितम् ॥१४५॥

करे। तदनन्तर सीता सहित राम का ध्यान कर केसर के साथ घिसे हुए लाल चन्दन से उसी की शलाका द्वारा ताम्रपात्र में अष्टदल कमल लिखे। कर्णिका मन्त्र लिखकर उस पर कपीश्वर का आवाहन करे ॥१२७-१३१३॥ ध्यानपुरस्सर मूलमन्त्र से मूर्ति की प्रतिष्ठा कर पाद्य, गंध, पुष्प आदि सब कुछ मूलमन्त्र से ही समर्पित करे। केसरों पर छः अङ्ग देवों और पत्रों पर सुग्रीव, लक्ष्मण, अङ्गद, नल, नील, जांबवंत, कुमुद, केसरीश दिक्पाल तथा वज्र आदि की पूजा करे। इस प्रकार मन्त्र को सिद्ध कर मन्त्री इष्टसिद्धि करे। नदी तीर या वन या पर्वत या विजनस्थान में साधक साधन प्रारंभ करें ॥१३२-१३६॥ जिताहार, जितश्वास, जितवाक् तथा जितेन्द्रिय होकर न्यास, ध्यान तथा दिग्बंधन आदि करने के उपरान्त एक लाख मन्त्र जपकर पूर्ववत् पूजा करे। जिस दिन मन्त्रजप पूर्ण हो जाय, उस दिन विशिष्ट पूजा करनी चाहिये। एकाग्रमन से अच्छी तरह पवननंदन का ध्यान कर दिन-रात तब तक जप करते रहना चाहिये, जब तक दर्शन न हो। जब हनुमान् जी साधक को सुदृढ समझते हैं, तब वे प्रसन्न होकर रात्रि में उसके आगे आते हैं और यथेच्छ वर प्रदान करते हैं। उत्तम साधक वर प्राप्त कर सुख से विहरण करता है ॥१३७-१४१॥

यह साधना अत्युत्तम है। लोगों के कल्याण की कामना से मैंने इस रहस्य को प्रकाशित किया है, जो देवताओं के लिये भी दुर्लभ है। आत्मकल्याण के लिये अन्य प्रयोगों को भी करना चाहिये। इन्दु (अनुस्वार) युक्त वियत् (ह) अर्थात् (हं) के पश्चात् ङे विभक्त्यन्त पवननंदन शब्द हो और अन्त में वह्निप्रिया (स्वाहा) हो तो (हं पवननंदनाय स्वाहा) यह दशाक्षर मन्त्र सकल कामनाओं को पूर्ण करता है। इसके मुनि आदि पूर्ववत् ही हैं। षडंगन्यास आदि भी पहिले ही की तरह करे। तदनन्तर हनुमान् का ध्यान करे कि—उनकी कान्ति कोटि सूर्यों के समान है। रण में भागते हुए रावण को देखकर शीघ्र ही उसका पीछा करने के लिये उठ खड़े हुए हैं।

लक्ष्मणं च महावीरं पतितं रणभूतले । गुरुं च क्रोधमत्पाद्य प्रहीतुं गुरुपर्वतम् ॥१४६॥
हाहाकारैः सदर्पैश्च कंपयंतं जगत्त्रयम् । आब्रह्मांडं समाव्याप्य कृत्वा भीमं कलेवरम् ॥१४७॥
लक्षं जपेद्दशांशेन जुहुयात्पूर्ववत्सुधीः । पूर्ववत्पूजनम् प्रोक्तं मन्त्रस्यास्य विधानतः ॥१४८॥
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री साधयेदात्मनो हितम् । अस्यापि मन्त्रवर्यस्य रहस्यं साधनं तु वै ॥१४९॥
सुगोप्यं सर्वतंत्रेषु न देयं यस्य कस्यचित् । ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय कृतनित्यक्रियः शुचिः ॥१५०॥
गत्वा नदीं ततः स्नात्वा तीर्थमावाह्य चाष्टधा । मूलमन्त्रं ततो जप्त्वा सिंचेदादित्यसंख्यया ॥१५१॥
एवं स्नानादिकं कृत्वा गंगातीरेऽथवा पुनः । पर्वते वा वने वापि भूमिग्रहणपूर्वकम् ॥१५२॥
आद्यवर्णैः पूरकं स्यात्पञ्चवर्गैश्च कुम्भकम् । रेचकं च पुनर्याद्यैरेवं प्राणान्नियम्य च ॥१५३॥
विधाय भूतशुद्ध्यादि पीठन्यासावधि पुनः । ध्यात्वा पूर्वोक्तविधिना संपूज्य च कपीश्वरम् ॥१५४॥
तदग्रे प्रजपेन्नित्यं साधकोऽयुतमादरात् । सप्तमे दिवसे प्राप्ते कुर्याच्च पूजनम् महत् ॥१५५॥
एकाग्रमनसा मन्त्री दिवारात्रं जपेन्मनुम् । महाभयं प्रदत्त्वा त्रिभागशेषासु निश्चितम् ॥१५६॥
यामिनीषु समायाति नियतं पवनात्मजः । यथेप्सितं वरं दद्यात्साधकाय कपीश्वरः ॥१५७॥
विद्यां वापि धनं वापि राज्यं वा शत्रुनिग्रहम् । तत्क्षणादेव चाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ॥१५८॥
इह लोकेऽखिलान्कामान्भुक्त्वांते मुक्तिमाप्नुयात् । सद्याचितं वायुयुग्मं हनुमंतेति चोद्धरेत् ॥१५९॥
फलांते फक्रियानेत्रयुक्ता च कामिका ततः । धगंते धगितेत्युक्त्वा आयुरास्व पदं ततः ॥१६०॥

रणभूमि में गिरे हुए महावीर लक्ष्मण को देखकर वे अत्यन्त क्रोध करते हैं तथा महाशैल को उखाड़ कर लाने के लिये चल पड़ते हैं। उस समय तीनों लोक में हाहाकार मच जाता है। उनके भयानक शरीर को देख कर ब्रह्मांड कांप उठता है। विद्वान् साधक एक लाख इस मन्त्र का जप कर पहिले की तरह उसका दशांश हवन करे। इस मन्त्र की पूजा भी पूर्ववत् ही विधिपूर्वक करनी चाहिये ॥१४२-१४८॥

इस प्रकार मन्त्र सिद्ध कर लेने पर मन्त्री अपना इष्टसाधन करे। इस मन्त्र-राज का भी रहस्य एवम् साधन समस्त तंत्रों में गुप्त करके रखा गया है। यह सबको नहीं बतलाना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्त में उठकर नित्य कर्म से निवृत्त हो, नदी में जाकर स्नान करे। आठ तीर्थों का आवाहन कर मूलमन्त्र को जपते हुए बारह बार जल से अपने को सिक्त करे। पुनःस्नानोपरान्त गङ्गातीर या पर्वत या वन में आसन पर बैठ कर आद्य अक्षरों से पूरक, पंचवर्गों से कुंभक और य आदि अक्षरों से रेचक प्राणायाम करे। पश्चात् पीठन्यास, भूतशुद्धि आदि कर के पूर्वोक्त विधि से हनुमान् का ध्यानपूर्वक पूजन करे और उनके आगे नित्य आदरपूर्वक दश हजार मन्त्र जपे। सातवें दिन महापूजा करनी चाहिये ॥१४९-१५५॥ साधक एकाग्रमन से दिन-रात मन्त्र को जपता रहे। ऐसा करने से वह निर्भय हो जाता है। रात्रि में आकर हनुमान् जी उसे अभिलषित वर देते हैं। विद्या या धन या राज्य या शत्रु निग्रह जो कुछ वह चाहता है, तत्काल उसे मिल जाता है। यह ध्रुव सत्य है, इसमें संशय करने की आवश्यकता नहीं। वह साधक इस लोक में अखिल भोगों को भोग कर अन्त में मोक्ष पाता है ॥१५६-१५८½॥

सद्योजात (ओ) सहित दो वायु (य् य्—यो यो) 'हनुमन्त' का उच्चारण करे। फिर 'फल' के अन्त में 'फ' तथा नेत्र (इ) युक्त क्रिया (ल) एवं कामिका (त) का उच्चारण करे। तत्पश्चात् 'धगधगित' बोलकर 'आयुराष्' पद का उच्चारण करे। तदनन्तर लोहित (प) तथा 'रुद्राह' का उच्चारण करना चाहिए। मन्त्र—ओं यो यो हनुमन्त फल-फलितं धगधगित आयुराष परुडाह) यह २५ अक्षरों का मन्त्र है। इसके मुनि आदि तो पूर्वोक्त

लोहितो गरुडो हेतिघ्राणनेत्राक्षरो मनुः । मुन्यादिकं तु पूर्वोक्तं प्लीहरोगहरो हरिः ॥१६१॥
देवता च समुद्दिष्टा प्लीहयुक्तोदरे पुनः । नागवल्लीदलं स्थाप्यमुपर्याच्छादयेत्ततः ॥१६२॥
वस्त्रं चैवाष्टगुणितं ततः साधकसत्तमः । शकलं वंशजं तस्योपरि मुंचेत्कपिं स्मरेत् ॥१६३॥
आरण्यसाणकोत्पन्ने वह्नौ यष्टिं प्रतापयेत् । बदरीभूरुहोत्थां तां मंत्रेणानेन सप्तधा ॥१६४॥
तथा संताडयेद्वंशशकलं जठरस्थितम् । सप्तकृत्वः प्लीहरोगो नाशमायाति निश्चितम् ॥१६५॥
तारो नमो भगवते आंजनेयाय चोच्चरेत् । अमुकस्य शृंखलां त्रोटय द्वितयमीरयेत् ॥१६६॥
बंधमोक्षं कुरुयुगं स्वाहांतोऽयं मनुर्मतः । ईश्वरोऽस्य मुनिश्छन्दोऽनुष्टुप्च देवता पुनः ॥१६७॥
शृंखलामोचकः श्रीमान्हनूमान्पवनात्मजः । हं बीजं ठद्वयं शक्तिबंधमोक्षे नियोगता ॥१६८॥
षड्दीर्घवह्नियुक्तेन बीजेनांगानि कल्पयेत् । वामे शैलं वैरिभिदं विशुद्धं टंकमन्यतः ॥१६९॥
दधानं स्वर्णवर्णं च ध्यायेत्कुंडलिनं हरिम् । एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं दशांशं चूतपल्लवैः ॥१७०॥
जुहुयात्पूर्ववत्प्रोक्तं यजनं चास्य सूरिभिः । महाकारागृहे प्राप्तो ह्ययुतं प्रजपेन्नरः ॥१७१॥
शीघ्रं कारागृहान्मुक्तः सुखी भवति निश्चितम् । यंत्रं चास्य प्रवक्ष्यामि बन्धमोक्षकरं शुभम् ॥१७२॥
अष्टच्छदांतः षट्कोणं साध्यनामसमन्वितम् । षट्कोणेषु ध्रुवं ङेंतमांजनेयपदं लिखेत् ॥१७३॥
अष्टच्छदेषु विलिखेत्प्रणवं वातुवातुविति । गोरोचनाकुंकुमेन लिखित्वा यंत्रमुत्तमम् ॥१७४॥
धृत्वा मूर्ध्नि जपेन्मंत्रमयुतं बन्धमुक्तये । यन्त्रमेतल्लिखित्वा तु मृत्तिकोपरि मार्जयेत् ॥१७५॥
वक्षहस्तेन मन्त्रज्ञः प्रत्यहं मंडलावधि । एवं कृते महाकारागृहान्मंत्री विमुच्यते ॥१७६॥

मन्त्र के समान ही हैं। परन्तु देवता प्लीहरोग (प्लीहा) का हरण करने वाले हरि हैं ॥१५९-१६१॥ जिसके पेट में यह रोग हो उसके पेट पर पान का पत्ता रख आठ (तहके) वस्त्रों से उसे ढांक दे। फिर हनुमान् का ध्यान कर बाँस का एक टुकड़ा उस पर रख छोड़े। अनन्तर इस मन्त्र को पढ़ते हुए बेर की लाठी से सात बार उस टुकड़े का ताड़न करे। वह लाठी दावाग्नि में तपी होनी चाहिये। उससे उदरस्थित वंशखंड का सात बार ताड़न करने से प्लीहा निश्चय छूट जाती है ॥१६२-१६५॥ "ओं नमो भगवते आंजनेयाय, अमुकस्य शृंखलां त्रोटय, बंधमोक्षं कुरु युगं स्वाहा" यह मन्त्र है। इसके मुनि ईश्वर, छंद अनुष्टुप् और देवता शृङ्खला (बंधन) को तोड़ने वाले वायुसुत श्रीमान् हनुमान् हैं। इसका बीज 'हं' है और शक्ति ठद्वय। बंधनमोक्ष में इसका नियोग किया जाता है, छः दीर्घ मात्रा और वह्नियुक्त बीज से अंगन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् बांयें हाथ पर पर्वत और दाहिने हाथ में गदा धारण करने वाले स्वर्णवर्ण हनुमान् का ध्यान करे, जिनके कानों में कुण्डल सुशोभित होते हैं। ध्यानोपरान्त इस मन्त्र का एक लाख जप करे और उसका दशांश आम्रपल्लवों से हवन करे। विद्वान् साधक इस मन्त्र का पूजन आदि पूर्व मन्त्र की तरह करे। जो मनुष्य कारागार में पड़ा है, वह दश हजार इस मन्त्र के जप करने से शीघ्र कारागार से मुक्त होकर सुखी होता है ॥१६७-१७१॥ इसका यंत्र भी मैं बता देता हूँ, जो शुभकारी तथा बंधन से छुड़ाने वाला है। अष्टदल कमल के भीतर षट्कोण बनाकर उनकी कर्णिका में साध्य पुरुष का नाम लिखे। छह कोणों में 'ओं आञ्जनेयाय' का उल्लेख करे। अष्टपत्रों पर प्रणव तथा 'वातु, वातु' लिखना चाहिये। बंधन से मुक्ति पाने के लिये गोरोचन तथा कुंकुम से इस उत्तम यंत्र को लिखकर मस्तक पर धारण करके उक्त मन्त्र का दश हजार जप करे। इस मन्त्र को लिख कर साधक प्रति दिन दाहिने हाथ से मिट्टी के ऊपर मंडलाकार में इसे घुमाये। ऐसा करने से वह कारागार से मुक्त हो जाता है ॥१७२-१७६॥ गगन (ह), नेत्र (इ)

गगनं ज्वलनः साक्षी मर्कटेति द्वयं ततः । तोयं शशेषे मकरे परिमुंचति मुंचति ॥१७७॥
ततः शृंखलिकां चेति वेदनेत्राक्षरो मनुः । इमं मंत्रं दक्षकरे लिखित्वा वामहस्ततः ॥१७८॥
दूरीकृत्य जपेन्मंत्रमष्टोत्तरशतं बुधः । त्रिसप्ताहात्प्रबद्धोऽसौ मुच्यते नात्र संशयः ॥१७९॥
मुन्याद्यर्चादिकं सर्वमस्य पूर्ववदाचरेत् । लक्षं जपो दशांशेन शुभैर्द्रव्यैश्च होमयेत् ॥१८०॥
पुच्छाकारे सुवस्त्रे च लेखन्या क्षुरकोत्थया । गन्धाष्टकैर्लिखेद्रूपं कपिराजस्य सुन्दरम् ॥१८१॥
तन्मध्येऽष्टदशार्णं तु शत्रुनामान्वितं लिखेत् । तेन मन्त्राभिजप्तेन शिरोबद्धेन भूमिपः ॥१८२॥
जयत्यरिगणं सर्वं दर्शनादेव निश्चितम् । चन्द्रसूर्योपरागादौ पूर्वोक्तं लेखयेद्ध्वजे ॥१८३॥
ध्वजमादाय मन्त्रज्ञः संस्पर्शान्मोक्षणावधि । मातृकां जापयेत्पश्चाद्दशांशेन च होमयेत् ॥१८४॥
तिलैःसर्षपसंमिश्रैः संस्कृते हव्यवाहने । गजे ध्वजं समारोप्य गच्छेद्युद्धाय नृपतिः ॥१८५॥
गजस्थं तं ध्वजं दृष्ट्वा पलायन्तेऽरयो ध्रुवम् । महारक्षाकरं यन्त्रं वक्ष्ये सम्यग्घनूमतः ॥१८६॥
लिखेद्वसुदलं पद्मं साध्याख्यायुतकर्णिकम् । दलेऽष्टकोणमालिख्य मालामन्त्रेण वेष्टयेत् ॥१८७॥
तद्बहिर्मायया वेष्ट्य प्राणस्थापनमाचरेत् । लिखितं स्वर्णलेखन्या भूर्जपत्रे सुशोभने ॥१८८॥
काश्मीररोचनाभ्यां तु त्रिलोहेन च वेष्टितम् । सम्पातसाधितं यंत्रं भुजे वा मूर्ध्नि धारयेत् ॥१८९॥
रणे दुरोदरे वादे व्यवहारे जयं लभेत् । ग्रहैर्विघ्नैर्विषैः शस्त्रैश्चौरैर्नैवाभिभूयते ॥१९०॥
सर्वान्रोगानपाकृत्य चिरं जीवेच्छतं समाः । षड्दीर्घयुक्तं गगनं वह्न्याढ्यं तारसंपुटम् ॥१९१॥

मुक्त ज्वलन (र) अर्थात् हरि पद के पश्चात् दो बार 'मर्कट' शब्द बोलकर शेष (आ) सहित तोय (व) अर्थात् 'वा' का उच्चारण करके 'मकरे' पद बोले। फिर 'परिमुञ्चति मुञ्चति शृङ्खलिकाम्' का उच्चारण करे। पूरा मन्त्र–(हरि मर्कट मर्कट वाम करे परिमुञ्चति शृङ्खलिकाम्) यह २४ अक्षरों का मन्त्र है। इसको बाँयें हाथ में लिख कर दाहिने हाथ में धारण करके एक सौ आठ बार जप करे। तीन सप्ताह ऐसा करने से बंधन से मुक्ति मिल जाती है इसमें संशय नहीं। इसके मुनि आदि पूर्ववत् हैं। अर्चना आदि भी पूर्ववत् ही करनी चाहिये। एक लाख मन्त्र जप करने के उपरान्त उसका दशांश पवित्र द्रव्यों से हवन करे। खुर की बनाई हुई लेखनी से पुच्छाकार सुवस्त्र पर अष्टगंधों से कपिराज का सुन्दर चित्र बनाये ॥१७७-१८१॥

उसके मध्य में शत्रुनाम सहित अट्ठारह अक्षरों वाला मन्त्र लिखे। पुनःमन्त्र से अभिमंत्रित कर उसे शिर में बांध ले। ऐसा करने वाला राजा शत्रुसमूह को देखते ही जीत लेता है, यह निश्चित बात है। चन्द्र-सूर्य-ग्रहण के समय पूर्वोक्त मन्त्र को पताका पर लिख कर स्पर्श से लेकर मोक्षकाल पर्यन्त उसका धारण करते हुए मातृका जप करे। पश्चात् सुसंस्कृत अग्नि में तिलमिश्रित सरसों से हवन कर उस पताका को हाथी पर फहराये और फिर उस हाथी पर चढ़कर राजा युद्ध करने के लिये जाय। रणभूमि में हाथी पर फहराते हुए उस पताका को देखते ही शत्रु भाग जाते हैं ॥१८२-१८५½॥

अब मैं महारक्षाकारी हनुमान् के मन्त्र को बतलाता हूँ। कर्णिका सहित अष्टदलकमल लिख कर उस पर साध्य का नाम लिखे। पुनः पत्रों पर अष्टकोण लिखकर मालामन्त्र से उसे वेष्टित करे। उसके बाहर माया बीज से आवृत कर प्राणप्रतिष्ठा करे। सुन्दर भोजपत्र पर सोने की लेखनी से यंत्र लिखना चाहिये। गोरोचन तथा कुंकुम से यदि लिखे तो त्रिलोह से उसे वेष्टित कर दे। जो इस प्रकार सुसाधित यंत्र को भुजा या मस्तक पर धारण करता है, वह घोर संग्राम, शास्त्रार्थ तथा व्यवहार में विजयी होता है। उसके ऊपर ग्रह, विघ्न, विष, शस्त्र तथा चोरों का प्रभाव नहीं पड़ता। वह समस्त व्याधियों से मुक्त होकर सौ वर्ष जीता है ॥१८६-१९०½॥ यह दीर्घ स्वर से युक्त गगन (ह) और वह्नि (र्) को तार (ओं) से संपुटित कर देने से आठ अक्षरों का महामन्त्र

वज्रतुंडेति संपठेत् ॥१९२॥
अष्टार्णोऽयं महामंत्रो मालामंत्रोऽथ कथ्यते । प्रणवो वज्रकायेति
कपिलांते पिंगलेति ऊर्द्ध्वकेशमहापदम् । बलरक्तमुखांते तु तडिज्जिह्व महा ततः ॥१९३॥
रौद्रदंष्ट्रोत्कटं पश्चात्कहद्वंद्वं करालिति । महद्दृढप्रहारेण लंकेश्वरवधात्ततः ॥१९४॥
वायुर्महासेतुपदं बंधांते च महा पुनः । शैलप्रवाह गगनेचर एह्येहि संवदेत् ॥१९५॥
भगवन्महाबलांते पराक्रमपदं वदेत् । भैरवाज्ञापयैह्येहि महारौद्रपदं ततः ॥१९६॥
दीर्घपुच्छेन वर्णांते ववेद्वेष्टय वैरिणम् । जंभयद्वयमाभाष्य वर्मास्त्रांतो मनुर्मतः ॥१९७॥
मालाह्वयो द्विजश्रेष्ठ शरनेत्रधराक्षरः । मालामंत्राष्टार्णयोश्च मुन्याद्यर्चा तु पूर्ववत् ॥१९८॥
जप्तो युद्धे जयं दद्याद्व्याधौ व्याधिविनाशनः । एवं यो भजते मंत्री वायुपुत्रं कपीश्वरम् ॥१९९॥
सर्वान्स लभते कामान्देवैरपि सुदुर्लभान् । धनं धान्यं सुतान्पौत्रान्सौभाग्यमतुलं यशः ॥२००॥
मेधां विद्यां प्रभां राज्यं विवादे विजयं तथा । वश्याद्यानि च कर्माणि संगरे विजयं तथा ॥२०१॥
उपासितोऽजनागर्भसंभूतः प्रददात्यलम् । ॥२०२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने सनत्कुमारविभागे तृतीयपादे हनुमन्मंत्रकथनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

बनता है। अब मालामन्त्र को बताता हूँ। प्रणव (ओं) के बाद वज्रकाय और वज्रतुण्ड का पाठ करे। उसके बाद क्रमशः कपिल, पिंगल, ऊर्ध्वकेश, बलरक्तमुख, तडिज्जिह्व, रौद्रदंष्ट्र, कट, कहद्वन्द्व, कराल, महद्दृढप्रहारेण लंकेश्वरवधात्ततः। वायुर्महासेतुपदं बंधांते च महा पुनः। शैलप्रवाह, गगनेचर एहि एहि यह उच्चारण करने के बाद 'भगवन्' महाबल, महापराक्रम, भैरव, आज्ञापय, एहि एहिं, महारौद्र। दीर्घपुच्छेन वैरिणं वेष्टय, द्वयं जम्भय, यह कहने के बाद 'हुं' तथा 'फट्' जोड़ देना चाहिए। द्विजश्रेष्ठ! इस मालामन्त्र के तथा अष्टाक्षर मन्त्र के मुनि आदि पूर्ववत् हैं और अर्चना आदि भी पूर्ववत् ही करनी चाहिये। युद्ध में इसका जप करने से विजय प्राप्त होती है और व्याधिनिवारणार्थ जपने से रोग का नाश होता है। जो व्यक्ति पूर्वोक्त रीति से वायुपुत्र हनुमान् की आराधना करता है, उसे देवदुर्लभ कामनाओं की प्राप्ति होती है। धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, सौभाग्य तथा अतुलनीय यश उसे लाभ होता है। अंजना के गर्भ से उत्पन्न होने वाले हनुमान् का उपासक प्रचुर मेधा, विद्या, प्रभा, राज्य, विवाद में विजय, रण में विजय और वशीकरण आदि सिद्धियों को प्राप्त करता है ॥१९१-२०२॥

श्रीनारदीयपुराण के बृहदुपाख्यानयुक्त पूर्वार्ध में सनत्कुमार-विभागीय तृतीयपाद में हनुमन्मन्त्रकथन नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७४॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

अथ दीपविधिं वक्ष्ये सरहस्यं हनूमतः । यस्य विज्ञानमात्रेण सिद्धो भवति साधकः ॥१॥
दीपपात्रप्रमाणं च तैलमानं क्रमेण तु । द्रव्यस्य च प्रमाणं वै तत्तु मानमनुक्रमात् ॥२॥
स्थानभेदं च मंत्रं च दीपदानमनु पृथक् । पुष्पवासिततैलेन सर्वकामप्रदं मतम् ॥३॥
तिलतैलं श्रियः प्राप्त्यै पथिकागमनं प्रति । अतसीतैलमुद्दिष्टं वश्यकर्मणि निश्चितम् ॥४॥
सार्षपं रोगनाशाय कथितं कर्मकोविदैः । मारणे राजिकोत्थं वा विभीतकसमुद्भवम् ॥५॥
उच्चाटने करंजोत्थं विद्वेषे मधुवृक्षजम् । अलाभे सर्वतैलानां तिलजं तैलमुत्तमम् ॥६॥
गोधूमाश्च तिला माषा मुद्गा वै तंडुलाः क्रमात् । पंचधान्यमिदं प्रोक्तं नित्यदीपं तु मारुतेः ॥७॥
पंचधान्यसमुद्भूतं पिष्टमात्रं सुशोभनम् । सर्वकामप्रदं प्रोक्तं सर्वदा दीपदानके ॥८॥
वश्ये तंडुलपिष्टोत्थं मारणे माषपिष्टजम् । उच्चाटने कृष्णतिलपिष्टजं च प्रकीर्तितम् ॥९॥
पथिकागमने प्रोक्तं गोधूमोत्थं सतंडुलम् । मोहने त्वाढकीजातं विद्वेषे च कुलत्थजम् ॥१०॥

अध्याय ७५

हनुमान् के लिए दीपदान का विधान

सनत्कुमार बोले—अब इसके उपरान्त हनुमान् के उद्देश्य से दीपदान करने का विधान रहस्य सहित बता देता हूँ, जिसके ज्ञानमात्र से साधक सिद्ध हो जाता है। दीपदान का प्रमाण, तेल का मान तथा द्रव्य का प्रमाण मैं अनुक्रम से बतलाऊँगा। दीपदान के विविध स्थान तथा मन्त्र को भी कहूँगा। पुष्प-वासित तेल से दीपक को जलाना समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला है। तिल के तेल से दीप जलाने से श्री प्राप्त होती है और पथिक (बटोही) सकुशल मार्ग को तय करता है। वशीकरण के लिये अलसी का तेल कहा गया है ॥१-४॥ कर्म के ज्ञाताओं ने रोगनाश के लिये सरसों का तेल बतलाया है। मारण में पीले सरसों या बहेड़ा का तेल प्रयोग कर सकते हैं। उच्चाटन में करंज का तेल और विद्वेष में महुए का तेल व्यवहार करना चाहिये। समस्त तेलों के अभाव में तिल का तेल ही उत्तम माना गया है। गेहूँ, तिल, उड़द, मूंग और चावल—इन पाँचों अन्नों का बनाया हुआ दीप नित्यदीप के रूप में हनुमान् को समर्पित किया जाता है ॥५-७॥ पञ्चधान्यों को पीस कर उससे बनाया गया सुन्दर दीप सकल कामनाओं को देने वाला है। वह सदा दीपदान के लिये प्रशस्त माना गया है। चावल के पिसान का बनाया दीप वशीकरण में, उड़द का मारण में, काले तिल का उच्चाटन में, चावल मिश्रित गेहूँ का यात्री के सकुशल लौट आने में, अरहर का मोहन में, कुलथी का विद्वेष में, केवल उड़द का संग्राम

संग्रामे केवला माषाः प्रोक्ता दीपस्य पात्रके । संधौ त्रिपिष्टजं लक्ष्मीहेतोः कस्तूरिकाभवम् ॥११॥
एलालवंगकर्पूरमृगनाभिसमुद्भवम् । कन्याप्राप्त्यै तथा राजवश्ये सख्ये तथैव च ॥१२॥
अलाभे सर्ववस्तूनां पंचधान्यं वरं स्मृतम् । अष्टमुष्टिर्भवेत्किञ्चित्किञ्चिदष्टौ च पुष्कलम् ॥१३॥
पुष्कलानां चतुर्णां च ह्याढकः परिकीर्तितः । चतुराढको भवेद्द्रोणः खारी द्रोणचतुष्टयम् ॥१४॥
खारीचतुष्टयं प्रस्थसंज्ञा च परिकीर्तिता । अथवान्यप्रकारेण मानमत्र निगद्यते ॥१५॥
पलद्वयं तु प्रसृतं द्विगुणं कुडवं मतम् । चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थस्तैश्चतुर्भिस्तथाढकः ॥१६॥
चतुराढको भवेद्द्रोणः खारी द्रोणचतुष्टयम् । क्रमेणैतेन ते ज्ञेयाः पात्रे षट्कर्मसंभवे ॥१७॥
पञ्च सप्त नव तथा प्रमाणास्ते यथाक्रमम् । सौगंधे नैव मानं स्यात्तद्यथारुचि संमतम् ॥१८॥
नित्यपात्रे तु तैलानां नियमो वर्तिकोद्भवः । सोमवारे गृहीत्वा तद्धान्यं तोयप्लुतं धरेत् ॥१९॥
पश्चात्प्रमाणतो ज्ञेयं कुमारीहस्तपेषणम् । तत्पिष्टं शुद्धपात्रे तु नदीतोयेन पिंडितम् ॥२०॥
दीपपात्रं ततः कुर्याच्छुद्धः प्रयतमानसः । दीपपात्रे ज्वाल्यमाने मारुतेः कवचं पठेत् ॥२१॥
शुद्धभूमौ समास्थाप्य भौमे दीपं प्रदापयेत् । मालामन्त्रे ये वर्णाः साध्यनामसमन्विताः ॥२२॥
वर्तिकायां प्रकर्त्तव्यास्तंतवस्तत्प्रमाणकाः । तत्त्रिशांशेन वा ग्राह्या गुरुकार्येऽखिलाद्यता ॥२३॥
कूटतुल्याः स्मृता नित्ये सामान्येऽथ विशेषके । रुद्राः कूटगणाः प्रोक्ता न पात्रे नियमो मतः ॥२४॥
एकविंशतिसंख्याकास्तन्तवोऽथाध्वनि स्मृताः । रक्तसूत्रं हनुमतो दीपदाने प्रकीर्तितम् ॥२५॥
कृष्णमुच्चाटने द्वेषेऽरुणं मारणकर्मणि । कूटतुल्यपलं तैलं गुरुकार्ये शिवैर्गुणम् ॥२६॥

त्रिपिष्ट (?) का संधि करने में, कस्तूरी का लक्ष्मी प्राप्ति में, और इलायची, लवंग तथा कपूर का कन्या-प्राप्ति, मित्रता तथा राजा के वशीकरण में उपयोग करना चाहिये। अन्य सब वस्तुओं के न मिलने पर पञ्चधान्य उत्तम माना गया है। आठ मुट्ठियों की एक कुञ्चि[1] होती है, आठ कुञ्चियों का एक पुष्कल,[1] चार पुष्कलों का एक आढक, चार आढकों का एक द्रोण, चार द्रोणों की एक खारी और चार खारियों का एक प्रस्थ होता है। अथवा इस संबन्ध में अन्य प्रकार का भी मान कहा गया है ॥८-१५॥ दो पलों[2] का एक प्रसृत, दो प्रसृतों का एक कुडव, चार कुडवों का एक प्रस्थ, चार प्रस्थों का एक आढक, चार आढकों का एक द्रोण और चार द्रोणों की एक खारी होती है। इस क्रम से षट्कर्मोपयोगी पात्र में ये मान समझने चाहिए। पाँच, सात तथा नौ—ये क्रमशः दीपक के प्रमाण हैं। सुगंधित तेल से जलने वाले दीपक का कोई मान नहीं है। उसका मान अपनी रुचि के अनुसार ही माना गया है। तेलों के नित्य पात्र में केवल बत्ती का विशेष नियम होता है। सोमवार को धान्य लेकर उसे जल में डुबोकर रखे। फिर प्रमाण के अनुसार कुमारी के हाथ से उसे पिसा कर शुद्ध पात्र में नदी के जल से उसे गूँधे ॥१६-२०॥ तदनन्तर पवित्र मन से दीपपात्र तैयार कर उसे जला कर हनुमान् का कवच पाठ करे। मंगल दिन पवित्र भूमि पर दीपक को रख कर दान करे। साध्यनाम सहित मालाओं में जितने अक्षर हैं उतने ही तंतु (सूत) दीपक की बत्ती में होने चाहिये। अथवा अक्षरों के तीसवें अंश के बराबर (अर्थात् तीस अक्षरों को छोड़कर बचे अक्षरों के प्रमाण) तंतुओं को रखे। भारी काम करना हो तो पूर्व प्रमाण के ही अनुसार तंतु रखना चाहिये। नित्यपात्र में कूटतुल्य (ग्यारह) और विशेषपात्र में पूर्व कथितानुसार तंतु रखे। कूट ग्यारह संख्या को कहते हैं। पात्र में कोई नियम नहीं है। रास्ते पर जलाये जाने वाले दीपक की बत्ती में इक्कोस तंतु चाहिये। हनुमान् को समर्पित किये जाने वाले दीप की बत्ती लाल रंग की होनी चाहिये। उच्चाटन कार्य के लिये काले रंग की और

१—ये सब मान (तौल) के भेद हैं। २. आठ रत्ती और दो मासे की तौल।

॥२७॥
नित्ये पंचपलं प्रोक्तमथवा मानसी रुचिः
हनुमत्प्रतिमायास्तु सन्निधौ दीपदापनम् । शिवालयेऽथवा कुर्यान्नित्यनैमित्तिके स्थले ॥२८॥
विशेषोऽस्त्यत्र यः कश्चिन्मारुतेरुच्यते मया ॥२९॥
प्रतिमाग्रे प्रमोदेन ग्रहभूतग्रहेषु च । चतुष्पथे तथा प्रोक्तं षट्सु दीपप्रदापनम् ॥३०॥
सन्निधौ स्फाटिके लिंगे शालग्रामस्य सन्निधौ । नानाभोगश्रिये प्रोक्तं दीपदानम् हनूमतः ॥३१॥
गणेशसन्निधौ विघ्नमहासंकटनाशने । विषव्याधिभये घोरे हनुमत्सन्निधौ स्मृतम् ॥३२॥
दुर्गायाः सन्निधौ प्रोक्तं संग्रामे दीपदापनम् । चतुष्पथे व्याधिनष्टौ दुष्टदृष्टौ तथैव च ॥३३॥
राजद्वारे बंधमुक्तौ कारागारेऽथवा मतम् । अश्वत्थवटमूले तु सर्वकार्यप्रसिद्धये ॥३४॥
वश्ये भये विवादे च वेश्मसंग्रामसंकटे । द्यूते दृष्टिस्तंभने च विद्वेषे मारणे तथा ॥३५॥
मृतकोत्थापने चैव प्रतिमाचालने तथा । विषे व्याधौ ज्वरे भूतग्रहे कृत्याविमोचने ॥३६॥
क्षतग्रंथौ महारण्ये दुर्गे व्याघ्रे च दंतिनि । क्रूरसत्त्वेषु सर्वेषु शश्वद्बंधविमोक्षणे ॥३७॥
पथिकागमने चैव दुःस्थाने राजमोहने । आगमे निर्गमे चैव राजद्वारे प्रकीर्तितम् ॥३८॥
दीपदानं हनुमतो नात्र कार्या विचारणा ॥३९॥
रुद्रेर्कविंशपिंडांश्च त्रिधा मंडलमानकम् । लघुमानं स्मृतं पंच सप्त वा नव वा तथा ॥४०॥
क्षीरेण नवनीतेन दध्ना वा गोमयेन च । प्रतिमाकरणं प्रोक्तं मारुतेर्दीपदापने ॥४१॥
दक्षिणाभिमुखं वीरं कृत्वा केसरिविक्रमम् ॥४२॥

द्वेष तथा मारण कर्म के लिये लाल रंग की बत्ती बनाये। किसी महान् कार्य की सिद्धि करनी हो तो ग्यारह पलों के प्रमाण से तेल दीपक में डाले। नित्यदीप में पाँच पल अथवा जितनी रुचि हो उतना तेल डाले। हनुमान् की प्रतिमा के समीप में दीपदान करना चाहिये ॥२५-२७½॥ शिवालय में या नित्य-नैमित्तिक स्थान में दीपदान कर सकते हैं। इस दीपदान के सम्बन्ध में जो विशेष बातें हैं, वह मैं बतलाता हूँ ॥२१-२९॥

प्रतिमा के आगे हर्षपूर्वक दीप समर्पण करे। इससे दुष्ट ग्रहों एवम् भूतों का उपद्रव शान्त होता है। चौराहे पर, स्फटिकमय शिवलिंग के समीप तथा शालग्राम के निकट दीप चढाना चाहिये। हनुमान् को दीपक चढ़ाने से विविध प्रकार के भोग तथा श्री की प्राप्ति होती है। गणेश के समीप दीपदान करने से विघ्न तथा महासंकट का नाश होता है। भयंकर व्याधि तथा विष का भय दूर करना हो तो हनुमान् को दीप समर्पित करे ॥३०-३२॥ दुर्गा को दीपदान करने से संग्राम में विजय प्राप्त होती है। चौराहे पर दीप जलाने से व्याधि एवम् दृष्टि दोष नष्ट हो जाता है। राजद्वार पर दीप जलाने से बंधनमुक्ति या कारागार से मुक्ति मिलती है ॥३३½॥ पीपल तथा वटवृक्ष के मूल में दीप जलाने से अशेष कार्यों की सिद्धि होती है। वशीकरण, भय, विवाद, घरेलू संकट, रण-संकट, द्यूत, दृष्टि-दोष-निवारण, विद्वेष, मारण, मृतकोत्थापन, प्रतिमाचालन, विष, व्याधि, ज्वर, भूतग्रह, कृत्यामोचन, विस्फोटक, महारण्य, दुर्गम स्थान, बाघ, हाथी तथा भयानक जन्तुओं के भय, बंधनमोचन, पथिक के आगमन, दुष्ट स्थान, राजमोहन और राजद्वार में प्रवेश तथा निर्गमन—इन कार्यों में हनुमान् को दीपदान करने से सफलता मिलती है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं। ग्यारह, इक्कीस और पिण्ड—तीन प्रकार का मण्डलमान होता है। पाँच, सात अथवा नौ—इन्हें लघुमान कहा गया है ॥३४-४०॥ दीपदान के समय दूध या मक्खन या दही या गोबर से हनुमान् की प्रतिमा बनानी चाहिये। दीवाल पर या वस्त्र पर या पीठ पर वायुनन्दन का ऐसा चित्र बनाये, जो वीर तथा सिंह तुल्य पराक्रमी दिखाई पड़े, जिसका मुख दक्षिण दिशा की

लिखेद्भित्तौ पटे वापि पीठे वा मारुतेः शुभे ॥४३॥
ऋक्षविन्यस्तपादं च किरीटेन विराजितम् । नित्यदीपः प्रकर्तव्यो द्वादशाक्षरविद्यया ॥४४॥
मालामंत्रेण दातव्यं दीपदानं हनूमतः । षष्ठ्यादौ च द्वितीयादाविमं दीपमितीरयेत् ॥४५॥
विशेषस्तत्र यस्तं वै दीपदानेऽवधारय । कूटादौ नित्यदीपे च मंत्रं सूर्याक्षरं वदेत् ॥४६॥
गृहाणेति पदं पश्चाच्छेषं पूर्ववदुच्चरेत् । गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ तद्गतमानसः ॥४७॥
तत्र मालाख्यमनुना तत्तत्कार्येषु कारयेत् । कमलं च लिखेद्भद्रं तत्र दीपं निधापयेत् ॥४८॥
षट्कोणं वसुपत्रं च भूमौ रेखासमन्वितम् । कूटषट्कं च षट्कोणे अंतराले परं लिखेत् ॥४९॥
शैवे वा वैष्णवे पीठे पूजयेदंजनासुतम् । सौम्यं मध्यगतं लेख्यं तत्र संपूज्य मारुतिम् ॥५०॥
षट्कोणेषु षडंगानि बीजयुक्तानि संलिखेत् । वसुपत्रे क्रमात्पूज्या अष्टावेते च वानराः ॥५१॥
षट्कोणेषु षडंगानि नामानि च पुरोक्तवत् । नीलायाथो जांबवते प्रहस्ताय तथैव च ॥५२॥
सुग्रीवायांगदायाथ सुषेणाय नलाय च । आदावंजनापुत्राय ततश्च रुद्रमूर्तये ॥५३॥
सुवेषाय ततः पश्चाद्यजेत्षडंगदेवताः । रामदूताय ब्रह्मास्त्रनिवारणाय तत्परम् ॥५४॥
ततो वायुसुतायाथ जानकीजीवनाय च । कुशोदकं समादाय दीपमंत्रं समुच्चरेत् ॥५५॥
पंचोपचारैः संपूज्य देशकालौ च कीर्तयेत् । तं मंत्रं कूटघा जप्त्वा जलं भूमौ विनिक्षिपेत् ॥५६॥
उत्तराभिमुखो जप्त्वा साधयेत्साधकोत्तमः । अनेन दीपवर्येण उदङ्मुखगतेन वै ॥५७॥
ततः करपुटं कृत्वा यथाशक्ति जपेन्मनुम् । त्रयोदशैवं द्रव्याणि गोमयं मृत्तिका मसी ॥५८॥
तथा विधेहि हनुमन्यथा स्युर्मे मनोरथाः ।

ओर हो, पैर ऋक्ष (एतन्नामक पर्वत या रीछ ?) पर अवस्थित हो और मस्तक मुकुट से सुशोभित हो। हनुमान् को दीपदान मालामन्त्र से करना चाहिये। परन्तु नित्यदीप का दान द्वादशाक्षर मन्त्र से करे ॥४१-४४॥

अब दीपदान के संबन्ध में जो विशेष बातें हैं, उन्हें सुन लो। षष्ठी, द्वितीया आदि तिथियों में 'यह दीप स्वीकार कीजिये' यह कहकर शेष क्रिया पहिले ही की तरह करनी चाहिये। कूटदीप (राजद्वार आदि पर दिये जाने वाले दीप) तथा नित्यदीप दान करने के समय द्वादशाक्षर मन्त्र को पढ़े। अन्य दीपों के दान में तो माला मन्त्र से ही काम लेना चाहिये। गोबर से लिपी हुई भूमि पर एकाग्रचित्त हो षट्कोण अंकित करे। उसके बाह्य भाग में अष्टदल कमल बनावे तथा उसके बाह्य भाग में भूपुर-रेखा खींचे। उस कमल में दीपक रखे। शैव अथवा वैष्णव पीठ पर अञ्जनीनन्दन हनुमान् की पूजा करे। छह कोणों के अन्तराल में 'ह्रौं ह्स्फ्रें स्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं' इन छह कूटों का उल्लेख करे ॥४-४६॥ छहों कोणों में बीज युक्त षडंग देवताओं का मन्त्र लिख कर मध्य में चन्द्रमन्त्र लिखे। उस पर वायुपुत्र की पूजा कर षट्कोण में षडंगदेवों के नाम भी पूर्वोक्त प्रकार से लिखे। अनन्तर अष्टदल पर सुग्रीव, अंगद, सुषेण, नल, नील, जांबवान्, प्रहस्त तथा सुवेष नामक आठों बन्दरों का क्रमशः पूजन करे। तत्पश्चात् षडंगदेवताओं की भी पूजा करनी चाहिये। पहिले अंजनिपुत्र की अर्चना कर क्रमशः रुद्र-मूर्ति, वायुसुत, जानकीजीवन, रामदूत तथा ब्रह्मास्त्रनिवारक का पंचोपचार पूजन करे। तब देश, काल का उच्चारण कर कुश, जल लेकर दीपमन्त्र को पढ़े। उत्तम साधक उत्तर मुंह होकर पाँच बार इस मन्त्र को जप कर भूमि पर जल गिरा दे। तदुपरान्त अंजलि बांध कर यथाशक्ति मन्त्र का जप करते हुए प्रार्थना करे—"हे हनुमान् जी! इस उत्तराभिमुख मनोरम दीप के दान से मेरे सकल मनोरथ पूर्ण हों।" ॥५०-५७½॥

(हनुमान् की पूजा का दूसरा विधान इस तरह है कि) गोबर, मिट्टी, स्याही, महावर, दरद (खस),

अलक्तं दरदं रक्तचंदनं चंदनं मधु । कस्तूरिका दधि क्षीरं नवनीतं घृतं तथा ॥५९॥
गोमयं द्विविधं तत्र प्रोक्तं गोमहिषीभवम् । पश्चाद्विनष्टद्रव्याप्तौ माहिषं गोमयं स्मृतम् ॥६०॥
पथिकागमने दूरान्महादुर्गस्य रक्षणे । बालादिरक्षणे चैव चौरादिभयनाशने ॥६१॥
स्त्रीवश्यादिषु कार्येषु शस्तं गोगोमयं मुने । भूमिस्पृष्टं न तद्ग्राह्यमंतरिक्षाच्च भाजने ॥६२॥
चतुर्विधा मृत्तिका तु श्वेता पीतारुणासिता । तत्र गोपीचंदनं तु हरितालं च गैरिकम् ॥६३॥
मषी लाक्षारसोद्भूता सर्वं वान्यत्स्फुटं मतम् । कृत्वा गोपीचंदनेन चतुरस्रं गृहं सुधीः ॥६४॥
तन्मध्ये माहिषेणाथ कुर्यान्मूर्तिं हनूमतः । बीजं क्रोधाच्च तत्पुच्छं लिखेन्मन्त्री समाहितः ॥६५॥
तैलेन स्नापयेन्मूर्त्तिं गुडेन तिलकं चरेत् । शतपत्रसमो धूपः शालनिर्याससंभवः ॥६६॥
कुर्याच्च तैलदीपं तु वर्तिपंचकसंयुतम् । दध्योदनेन नैवेद्यं दद्यात्साधकसत्तमः ॥६७॥
वारत्रयं कठदेशे सशेषविषमुच्चरन् । एवं कृते तु नष्टानां महिषीणां गवामपि ॥६८॥
दासीदासादिकानां च नष्टानां प्राप्तिरीरिता । चौरादिदुष्टसत्त्वानां सर्पादीनां भये पुनः ॥६९॥
तालेन च चतुर्द्वारं गृहं कृत्वा सुशोभनम् । पूर्वद्वारे गजः स्थाप्यो दक्षिणे महिषस्तथा ॥७०॥
सर्पस्तु पश्चिम द्वारे व्याघ्रश्चैवोत्तरे तथा । एवं क्रमेण खड्गं च क्षुरिकादंडमुद्गरान् ॥७१॥
विलिख्य मध्ये मूर्तिं च महिषीगोमयेन वै । कृत्वा डमरुहस्तां च चकिताक्षीं प्रयत्नतः ॥७२॥

रक्तचन्दन, चन्दन, मधु, कस्तूरी, दही, दूध, मक्खन और घी—इन तेरह वस्तुओं को एकत्रित करे। जिनमें गोबर गाय या भैंस का होना चाहिये। खोई हुई वस्तु की प्राप्ति के लिये भैंस के गोबर का उपयोग करे और दूर देश से पथिक के आगमन, दुर्ग की रक्षा, बालक आदि की रक्षा, चोर आदि के भयनाश तथा स्त्री वशीकरण आदि कार्यों के लिये गाय का गोबर उपयोग में लाना चाहिए। धरती पर गिरा हुआ गोबर नहीं लेना चाहिए, अपितु (गोबर करते समय) आकाश से ही किसी पात्र में रोक लिये गये गोबर से कार्य करना चाहिए। मृत्तिका चार प्रकार की होनी चाहिए—उजली, पीली, लाल तथा काली। जिनमें गोपीचन्दन, हरिताल और गेरू प्रशस्त मानी गई है ॥५८-६३॥ मसी लाक्षा के रस में बनी होनी चाहिए। अन्य चीजें तो स्पष्ट ही हैं। विद्वान् व्यक्ति गोपीचन्दन से चौकोर मण्डल का निर्माण कर उसके मध्य में भैंस के गोबर से हनुमान् की मूर्ति बनाये। अनन्तर साधक सावधान होकर बीज और क्रोध (हं) से उनकी पूँछ अंकित करे। फिर मूर्ति को तेल से नहा कर गुड़ से तिलक लगाये। शाल (साखू) के रस से बना धूप, जो कमल के समान सुगंधित हो, हनुमान् को समर्पित करे। उत्तम साधक पाँच बत्तियों से युक्त तेल दीप तथा दही-भात का नैवेद्य समर्पण करे। उस समय वह तीन बार शेष (आ) सहित विष (म) का उच्चारण करे[1]। ऐसा करने से खोई भैंस, गाय, दासी एवम् दास की पुनः प्राप्ति हो जाती है। ॥६४-६८३॥

चोर आदि तथा सर्प आदि दुष्ट जीवों के भय को दूर करने के लिए हरिताल से चार द्वार वाला मनोहर घर बनाये। पूर्व द्वार पर हाथी, दक्षिण द्वार पर भैंस, पश्चिम द्वार पर साँप और उत्तर द्वार पर बाघ की प्रतिमाओं को स्थापित कर उसी क्रम से तलवार, छुरी, दंड तथा मुद्गर का चित्र खींचे। फिर मध्य में भैंस के गोबर से मूर्ति बनाये। जिसके हाथ में डमरू हो और आंखें आश्चर्य-चकित-सी मालूम पड़ती हों। उस मूर्ति को

---

१. 'मा मा मा' इस प्रकार उच्चारण करना चाहिए।

जातीपुष्पैस्तु संपूज्य शुद्धधूपं प्रकल्पयेत् ॥७३॥
पयसा स्नपनं रक्तचंदनेनानुलेपनम् । गगनं दीपिकेंद्वाढ्यं शास्त्रं च पुरतो जपेत् ॥७४॥
घृतेन दीपं दत्त्वाथ पायसान्नं निवेदयेत् । अनयोर्भौमवारे तु कुर्यादारंभमादरात् ॥७५॥
एवं सप्तदिनं कृत्वा मुच्यते महतो भयात् । कृत्वा तदंतरे तालमीषन्नम्रं समालिखेत् ॥७६॥
शत्रुसेनाभये प्राप्ते गैरिकेण तु मंडलम् । वामहस्तेन तालाग्रं दक्षिणे ज्ञानमुद्रिका ॥७७॥
तत्रावलंबमानां च प्रतिमां गोमयेन तु । चतुरस्रं विधायाथ तन्मध्ये मूर्तिमालिखेत् ॥७८॥
तालमूलात्स्वकाष्ठायां मार्गे हस्तमिते गृहम् । तोयेन स्नानगंधादि यथासंभवमर्पयेत् ॥७९॥
दक्षिणाभिमुखीं रम्यां हृदये विहितांजलिम् । किलिद्वयं जपं प्रोक्तमेवं कुर्याद्दिने दिने ॥८०॥
कृशरान्नं च नैवेद्यं साज्यं तस्यै निवेदयेत् । श्यामपाषाणखण्डेन लिखित्वा भूपतेर्गृहम् ॥८१॥
एवं कृते भवेच्छीघ्रं पथिकानां समागमः । अन्योन्यपुच्छपरिधित्रययुक्तां हनूमतः ॥८२॥
प्राकारं तु चतुर्द्वारयुक्तं द्वारेषु तत्र वै । जटामांसीभवं धूपं तैलाक्तघृतदीपकम् ॥८३॥
कुर्यान्मूर्ति गोमयेन धत्तूरकुसुमैर्यजेत् । ध्येयो दक्षिणहस्तेन रोटिकां भक्षयन्हरिः ॥८४॥
नैवेद्यं तिलतैलाक्तसक्षारा माषरोटिका । मारयन्भ्रुकुटीं बद्ध्वा भीषयन्मथयन्स्थितः ॥८५॥
वामहस्तेन पाषाणैस्त्रासयन्परसैनिकान् । एवं कृतविधानेन परसैन्यं विनाशयेत् ॥८६॥
जपेच्च भुग्भुगिति वै सहस्रं ध्यानतत्परः । प्रयोगा बहवस्तत्र संक्षेपादूगदिता मया ॥८७॥
रक्षा भवति दुर्गाणां सत्यं सत्यं न संशयः ।

फिर जूही के फूलों से उसकी अर्चना कर शुद्ध धूप, घृतदीप
दूध से नहा कर रक्तचन्दन का लेप लगाये ॥६९-७२½॥ फिर जूही के फूलों से उसकी अर्चना कर शुद्ध धूप, घृतदीप अर्थात् 'हूं' शस्त्र (फट्) यह
तथा पायस नैवेद्य समर्पण करते हुए गगन (ह), दीपिका (ऊ) और इन्दु (अनुस्वार) अर्थात् 'हूं' शस्त्र (फट्) यह इन दोनों कार्यों को
आराध्य देवता के आगे जपे। सात दिनों तक ऐसा करने से महाभय का नाश होता है। शत्रुसेना का भय उपस्थित होने पर गेरू से
सिद्धि के लिये मंगल दिन आदरपूर्वक पूजा आरंभ करनी चाहिए। फिर उस वृक्ष से लटकती हुई एक
मंडल बनाकर उसके भीतर थोड़ा-सा झुका हुआ एक तालवृक्ष का चित्र लिखे। दाहिने हाथ में ज्ञानमुद्रा हो। तालमूल
गोबर की प्रतिमा बनाये। जिसके बांये हाथ में ताल का अग्रभाग और दाहिने हाथ में ज्ञानमुद्रा हो ॥७३-७८॥
से एक हाथ अपनी दिशा में एक चौकोर घर का निर्माण कर उसके मध्य में एक सुन्दर प्रतिमा बनाये। उस मूर्ति को जल से स्नान
जिसका मुख दक्षिण दिशा की ओर हो और हाथों की अंजलि हृदय पर बंधी हो। उसके आगे 'किलि-किलि'
करा कर यथाशक्ति गंध आदि उपचार समर्पण करे एवम् घी-खीर नैवेद्य चढ़ाये। काले पत्थर के
का जप बताया गया है। ऐसा प्रति दिन करना चाहिये। एसा करने से पथिक शीघ्र आ जाता है। तीन द्वारों पर मंडलाकार
टुकड़े से राजगृह का निर्माण कर चार द्वार वाली चहारदीवारी बनाये ॥७९-८१½॥ उस मूर्ति की धतूरे
में हनुमान् की पूंछ की रेखा खींचे और चौथे द्वार पर गोबर से हनुमान् की मूर्ति बनाये। उड़द की नमकीन पूरी, जो
के फूलों से पूजा कर जटामांसी के रस से बना धूप, तेल मिलाये घी का दीपक और दाहिने हाथ से
तिल से बनी हुई हो, नैवेद्य समर्पण करे। तदनन्तर हनुमान् के इस स्वरूप का ध्यान करे कि वे भृकुटी टेढ़ी करके उन्हें
रोटी खा रहे है, बायें हाथ में पत्थर के टुकड़े लेकर शत्रुसैनिकों को मार रहे हैं और इसका एक सहस्र जप
डराते हुए मानो कुचल रहे हैं ॥८२-८५॥ पश्चात् ध्याननिष्ठ होकर "भुक् भुक्" इसमें संदेह करने की
करे। ऐसा करने से शत्रुसेना का नाश और दुर्गों का रक्षा होती है। यह बिलकुल सत्य है।

प्रत्यहं यो विधानेन दीपदानं हनूमतः । तस्यासाध्यं न वै किञ्चिद्विद्यते भुवनत्रये ॥८८॥
न देयं दुष्टहृदये दुर्ष्टाचितनबुद्धये । अविनीताय शिष्याय पिशुनाय कदाचन ॥८९॥
कृतघ्नाय न दातव्यं दातव्यं च परीक्षिते । बहुना किमिहोक्तेन सर्वं दद्यात्कपीश्वरः ॥९०॥
अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये तत्त्वज्ञानप्रदायकम् । तारो नमो हनुमते जाठरत्रयमीरयेत् ॥९१॥
दनक्षोभं समाभाष्य संहरद्वयमीरयेत् । आत्मतत्त्वं ततः पश्चात्प्रकाशययुगं ततः ॥९२॥
वर्मास्त्रवह्निजायांतः सार्द्धषड्त्रिशदर्णवान् । वसिष्ठोऽस्य मुनिश्छन्दोऽनुष्टुप् च देवताः पुनः ॥९३॥
हनुमान्मुनिसप्ततु वेदाष्टनिगमैः क्रमात् । मंत्रार्णैश्च षडंगानि कृत्वा ध्यायेत्कपीश्वरम् ॥९४॥
जानुस्थवामबाहुं च ज्ञानमुद्रापरं हृदि । अध्यात्मचित्तमासीनं कदलीवनमध्यगम् ॥९५॥
बालार्ककोटिप्रतिमं ध्यायेज्ज्ञानप्रदं हरिम् । ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षं दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥९६॥
साज्यैः संपूजयेत्पीठे पूर्वोक्ते पूर्ववत्प्रभुम् । जप्तोऽयं मदनक्षोभं नाशयत्येव निश्चितम् ॥९७॥
तत्त्वज्ञानमवाप्नोति कपींद्रस्य प्रसादतः । अथ मंत्रांतरं वक्ष्ये भूतविद्रावणं परम् ॥९८॥
तारः काशींकुक्षिपरवराहश्चांजनापदम् । पवनो वनपुत्रांते आवेशिद्वयमीरयेत् ॥९९॥
तारः श्रीहनुमत्पश्चादस्त्ररत्नभुजाक्षरः । ब्रह्मा मुनिः स्याद्गायत्री छंदोऽत्र देवता पुनः ॥१००॥
हनुमान्कमला बीजं फट् शक्तिः परिकीर्तितः । षड्दीर्घाढ्येन बीजेन षडङ्गानि समाचरेत् ॥१०१॥
आंजनेयं पाटलास्यं स्वर्णाद्रिसमविग्रहम् । पारिजातद्रुमूलस्थं चिंतयेत्साधकोत्तमः ॥१०२॥

आवश्यकता नहीं है। मैंने संक्षेप से अनेक प्रयोगों को बता दिया। जो व्यक्ति प्रतिदिन हनुमान् को दीप चढ़ाता है, उसके लिये तीनों लोक में कुछ भी असाध्य नहीं है। यह रहस्य दुष्ट हृदय, दुर्बुद्धि, अविनीत, पिशुन और कृतघ्न व्यक्ति को नहीं बतलाना चाहिए। किसी भी व्यक्ति की अच्छी तरह परीक्षा करके तब बताना चाहिये। बहुत क्या कहूँ, यह दीपदान करने से हनुमान् जी सब कुछ दे देते हैं। ॥८६-९०॥

अब मैं तत्वज्ञान प्रदान करने वाले दूसरे मन्त्र का वर्णन करूंगा। 'तार (ओं) नमो हनुमते' इतना कहकर तीन बार जाठर (म) का उच्चारण करे। फिर 'दनक्षोभम्' कहकर दो बार 'संहर' यह क्रियापद बोले। उसके बाद 'आत्मतत्त्वम्' बोलकर दो बार 'प्रकाशय' का उच्चारण करे। उसके बाद वर्म (हुं), अस्त्र (फट्) और वह्निजाया (स्वाहा) का उच्चारण करे। (पूरा मंत्र--ओं नमो हनुमते मम मदनक्षोभं संहर संहर आत्मतत्त्वं प्रकाशय प्रकाशय हुं फट् स्वाहा, यह साढ़े छत्तीस अक्षरों का मन्त्र है। इसके मुनि वशिष्ठ, छंद अनुष्टुप् और देवता हनुमान् हैं। सात, सात, छह, चार, आठ तथा चार मंत्राक्षरों द्वारा षडंगन्यास करके कपीश्वर का इस प्रकार ध्यान करे--पवननंदन आजानबाहु हैं। उनके हाथ में ज्ञानमुद्रा सुशोभित है। वह बैठकर सदा अध्यात्मचिन्तन में लगे रहते हैं। केले के वन में विचरण करते हैं। करोड़ों बालसूर्यों के समान उनकी कान्ति है। वे ज्ञानदायक हैं।' इस प्रकार ध्यान कर एक लाख मंत्र को जपे और उसका दशांश घृतयुक्त तेल से हवन करे। पूर्वोक्त पीठ पर पहिले ही की तरह महावीर का पूजन करना चाहिये। उक्त मंत्र का जप करने से कामोद्वेग नहीं होता, प्रत्युत हनुमान् की कृपा से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है। ॥९१-९७½॥

इसके उपरान्त भूतों को छुड़ाने वाला एक अन्य मंत्र बतलाता हूँ, 'ओं श्री महाञ्जनाय पवनपुत्रावेशयावेशय ओं श्री हनुमते फट्।' यह पचीस अक्षर का मन्त्र है। इस मन्त्र के मुनि ब्रह्मा, छंद गायत्री, देवता हनुमान्, बीज, लक्ष्मी और शक्ति 'फट्' है। छह दीर्घ मात्राओं से युक्त बीज मन्त्र से षडंगन्यास कर किंचित् रक्तमुख वाले सुवर्ण पर्वत के समान शरीरवाले और पारिजात वृक्ष के मूल में अवस्थित होनेवाले हनुमान् का ध्यान करे।

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं दशांशं जुहुयात्तिलैः । त्रिमध्वक्तैर्यजेत्पीठे पूर्वोक्ते पूर्ववत्सुधीः ॥१०३॥
अनेन मनुना मंत्री ग्रहग्रस्तं प्रमार्जयेत् । आक्रंदंस्तं विमुच्याथ ग्रहः शीघ्रं पलायते ॥१०४॥
मनवोऽमी सदा गोप्या न प्रकाश्या यतस्ततः । परीक्षिताय शिष्याय देया वा निजसूनवे ॥१०५॥
हनुमद्भजनासक्तः कार्तवीर्यार्जुनं सुधीः । विशेषतः समाराध्य यथोक्तं फलमाप्नुयात् ॥१०६॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे दीपविधि
निरूपणं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

•

अथषट्सप्ततितमोऽध्यायः

नारद उवाच

कार्तवीर्यप्रभृतयो नृपा बहुविधा भुवि । जायंतेऽथ प्रलीयंते स्वस्वकर्मानुसारतः ॥१॥
तत्कथं राजवर्योऽसौ लोके सेव्यत्वमागतः । समुल्लंघ्य नृपानन्यानेतन्मे नुद संशयम् ॥२॥

पश्चात् इस मन्त्र का एक लाख जप कर उसका दशांश त्रिमधुयुक्त तिल से हवन करे । फिर पूर्वोक्त पीठ पर पहिले की तरह पूजन कर विद्वान् साधक इस मन्त्र से ग्रहगृहीत व्यक्ति को झाड़ दे । ऐसा करने से ग्रह रोते हुए उस व्यक्ति को छोड़ कर शीघ्र भाग जाता है । ॥९८-१०४॥ ये मन्त्र सदा गोपनीय हैं । यत्र-तत्र इनको प्रकाशित नहीं करना चाहिये । परीक्षित शिष्य या अपने पुत्र को ये बताने चाहिये । हनुमान् के भजन में आसक्त विद्वान् कार्तवीर्यार्जुन की विशेष आराधना करके यथा वर्णित फल को प्राप्त करे ॥ १०५-१०६॥

श्रीनारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त तृतीयपाद में दीपविधिनिरूपण नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७५॥

अध्याय ७६

कार्तवीर्य की महिमा

नारद बोले—पृथ्वी पर कार्तवीर्य प्रभृति राजा अपने-अपने कर्म के अनुसार उत्पत्ति एवम् लय को प्राप्त करते हैं । तब अन्य राजाओं का अतिक्रमण करके केवल नृपवर कार्तवीर्य ही कैसे लोगों के सेव्य कहलाये ?—यह मेरा संशय है । इसका निराकरण कीजिये ॥१-२॥

सनत्कुमार उवाच

श्रृणु नारद वक्ष्यामि संदेहविनिवृत्तये । यथा सेव्यत्वमापन्नः कार्तवीर्यार्जुनो भुवि ॥३॥
यः सुदर्शनचक्रस्यावतारः पृथिवीतले । दत्तात्रेयं समाराध्य लब्धवांस्तेज उत्तमम् ॥४॥
तस्य क्षितीश्वरेंद्रस्य स्मरणादेव नारद । शत्रूञ्जयति संग्रामे नष्टं प्राप्नोति सत्वरम् ॥५॥
तेनास्य मंत्रपूजादि सर्वतंत्रेषु गोपितम् । तुभ्यं प्रकाशयिष्येऽहं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥६॥
वह्नितारयुता रौद्री लक्ष्मीरग्नींदुशांतियुक् । वेधाधरेन्दुशांत्याढ्यो निद्रयाशाग्नि बिंदुयुक् ॥७॥
पाशो मायांकुशं पद्मावर्मास्त्रे कार्तवीपदम् । रेफोवा द्यासनोऽनन्तो वह्निजौ कर्णसंस्थितौ ॥८॥
मेषः सदीर्घः पवनो मनुरुक्तो हृदंतिमः । ऊनविंशतिवर्णोऽयं तारादिर्नखवर्णकः ॥९॥
दत्तात्रेयो मुनिश्चास्यच्छन्दोनुष्टुबुदाहृतम् । कार्तवीर्यार्जुनोदेवो बीजशक्तिध्रुवश्च हृत् ॥१०॥
शेषाढ्यबीजयुग्मेन हृदयं विन्यसेदधः । शांतियुक्तचतुर्थेन कामाद्येन शिरोऽगकम् ॥११॥
इन्द्वाढ्यं वामकर्णाद्यमाययोर्वीशयुक्तया । शिखामंकुशपद्माभ्यां सवाग्भ्यां वर्म विन्यसेत् ॥१२॥
वर्मास्त्राभ्यामस्त्रमुक्तं शेषार्णैर्व्यापकं पुनः । हृदये जठरे नाभौ जठरे गुह्यदेशतः ॥१३॥
दक्षपादे वामपादे सक्थ्नि जानुनि जंघयोः । विन्यसेद्बीजदशकं प्रणवद्वयमध्यगम् ॥१४॥
ताराद्यानथ शेषार्णान्मस्तके च ललाटके । भ्रुवोः श्रुत्योस्तथैवाक्ष्णोर्नसि वक्त्रे गलेंऽसके ॥१५॥
सर्वमन्त्रेण सर्वाङ्गे कृत्वा व्यापकमादृतः । सर्वेष्टसिद्धये ध्यायेत्कार्तवीर्यं जनेश्वरम् ॥१६॥
उद्यदर्कसहस्राभं सर्वभूपतिवन्दितम् । दोर्भिः पञ्चाशता दक्षैर्बाणान्वामैर्धनूंषि च ॥१७॥
दधतं स्वर्णमालाढ्यं रक्तवस्त्रसमावृतम् । चक्रावतारं श्रीविष्णोर्ध्यायेदर्जुनभूपतिम् ॥१८॥
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः । सतण्डुलैः पायसेन विष्णुपीठे यजेत्तु तम् ॥१९॥

सनत्कुमार बोले—नारद ! पृथ्वी पर जिस प्रकार कार्तवीर्यार्जुन सेव्यत्व को प्राप्त हुए, वह मैं बतलाता हूँ। तुम सुन कर संदेह मिटा लो। भूतल पर कार्तवीर्य सुदर्शनचक्र का अवतार माने जाते हैं। उन्होंने दत्तात्रेय की आराधना करके उत्तम तेज को प्राप्त किया। नारद ! उस पृथ्वीपति के स्मरणमात्र से संग्राम में विजय मिलती है तथा शत्रु शीघ्र नष्ट हो जाता है। इसलिये उनके मंत्र, पूजन आदि समस्त तंत्रों में गुप्त है। आज उस सिद्धिदायक मंत्र को मैं तुमसे बता देता हूँ। "वह्नितारयुतारौद्री......" यह उन्नीस अक्षरों का मंत्र है ॥३-९॥ इसके मुनि दत्तात्रेय, छंद अनुष्टुप्, देवता कार्तवीर्यार्जुन, बीज 'ध्रुव' और शक्ति 'हृत्' है। शेषाढ्यबीजयुग्म से हृदयन्यास, शान्तियुक्त चतुर्थाक्षर से शिरोन्यास, 'इन्द्वाढ्यम्' इससे नामकर्णन्यास, अंकुश तथा पद्म से शिखान्यास, वाणी से वर्मन्यास, वर्मास्त्र से अस्त्रन्यास और शेष अक्षरों से पुनः व्यापकन्यास करे, हृदय, उदर, नाभि, गुह्यदेश, दक्षिणपाद, वामपाद, ऊरु, जानु तथा जांघों में प्रणवद्वयमध्यगामी दश बीजों का न्यास करे। तारक आदि नव वर्णों का मस्तक, ललाट, भौंह, कान, नेत्र, नाक, मुख, कण्ठ तथा कन्धे में न्यास करे। पुनः समस्त अंगों में संपूर्ण मन्त्र से व्यापकन्यास कर सकल प्रयोजनों की सिद्धि के लिये जननाथकार्तवीर्य का इस प्रकार ध्यान करे ॥१०-१६॥ कार्तवीर्य की कांति उदित होते हुए सहस्रों सूर्य के समान है। सकलराजगण उनकी वंदना करते हैं। उनके पचास दाहिने हाथों में बाण और पचास बाँयें हाथों में धनुष विद्यमान हैं। वे सोने की माला तथा रक्तवस्त्र धारण किये हुए हैं। ऐसे विष्णु के चक्रावतार राजा अर्जुन का ध्यान कर एक लाख

षट्कोणेषु षडंगानि ततो दिक्षु विदिक्षु च । चौरमदविभञ्जनं मारीमदविभंजनम् ॥२०॥
अरिमदविभंजनं दैत्यमदविभंजनम् । दुष्टनाशं दुःखनाशं दुरितापद्विनाशकम् ॥२१॥
दिक्ष्वष्टशक्तयः पूज्याः प्राच्यादिष्वसितप्रभाः । क्षेमंकरी वश्यकरी श्रीकरी च यशस्करी ॥२२॥
आयुःकरी तथा प्रज्ञाकरी विद्याकरी पुनः । धनकर्यष्टमी पश्चाल्लोकेशा अस्त्रसंयुताः ॥२३॥
एवं संसाधितो मंत्रः प्रयोगार्हः प्रजायते । कार्तवीर्यार्जुनस्याथ पूजायंत्रमिहोच्यते ॥२४॥
स्वबीजानंगध्रुववाक्कर्णिकं दिग्दलं लिखेत् । तारादिवर्मा तद्दलं शेषवर्णदलांतरम् ॥२५॥
ऊष्मान्त्यस्वरांकिजल्कं शेषार्णैः परिवेष्टितम् । कोणालंकृतभूतार्णभूगृहं यन्त्रमीशितुः ॥२६॥
शुद्धभूमावष्टगन्धैर्लिखित्वा यन्त्रमादरात् । तत्र कुम्भं प्रतिष्ठाप्य तत्रावाह्यार्चयेन्नृपम् ॥२७॥
स्पृष्ट्वा कुम्भं जपेमन्त्रं सहस्रं विजितेंद्रियः । अभिषिचेत्तदंभोभिः प्रियं सर्वेष्टसिद्धये ॥२८॥
पुत्रान्यशो रोगनाशमायुः स्वजनरंजनम् । वाक्सिद्धिं सुदृशः कुम्भाभिषिक्तो लभते नरः ॥२९॥
शत्रूपद्रव आपन्ने ग्रामे वा पुटभेदने । संस्थापयेदिदं यन्त्रं शत्रुभीतिनिवृत्तये ॥३०॥
सर्षपारिष्टलशुनकार्पासैर्मार्यते रिपुः । धत्तूरैः स्तभ्यते निम्बैर्द्वेष्यते वश्यतेऽब्जैः ॥३१॥
उच्चाटने विभीतस्य समिद्भिः खदिरस्य च । कटुतैलमहिष्याज्यैर्होमद्रव्यांजनं स्मृतम् ॥३२॥
यवैर्हुते श्रियः प्राप्तिस्तिलैराज्यैरघक्षयः । तिलतंडुलसिद्धार्थजालैर्वश्यो नृपो भवेत् ॥३३॥

मन्त्र जप करे और उसका दशांश तिल-चावल से हवन करे। अनन्तर विष्णुपीठ पर उनका पूजन कर षट्-
कोण तथा दिशा-विदिशाओं में षडंग देवताओं की पूजा करे। ऐसा करने से चोरमद, नारोमद, शत्रुमद, दैत्य-
मद, दुष्ट, दुःख तथा पाप का नाश होता है ॥१७-२१॥ पुनः पूर्व आदि दिशाओं में आठ कृष्ण वर्ण शक्तियों की
पूजा करे। क्षेमंकरी[1], वश्यकरी, श्रीकरी, यशस्करी, आयुःकरी, प्रज्ञाकरी, विद्याकरी और धनकर्यष्टमी ये आठों
लोकपालिकायें शक्ति कहलाती हैं। पश्चात् अस्त्र समेत लोकपालों की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार मन्त्र
की साधना करने पर ही वह प्रयोग में लाया जा सकता है ॥२२-२३॥

अब कार्तवीर्यार्जुन का पूजायंत्र बतलाता हूँ। बीजमंत्र, काम, ध्रुव, वाक् तथा कर्णिका सहित दिक्पत्र
लिखे। उसमें स्वरवर्ण कमल का अंतिम पत्र होता है, शेष वर्ण अन्य पत्र होते हैं। श ष स ह और ओ वर्ण
उस कमल के (केसर) हैं, शेष वर्णों से वह परिवेष्टित है। कोण से अलंकृत चौदह वर्णों का भू-गृह यंत्र
कार्तवीर्य का माना गया है। २४-२६॥ पवित्र भूमि पर अष्ट गंधों से आदरपूर्वक लिखकर घट स्थापन करे।
उस घट पर कार्तवीर्य का आवाहन करके पूजन करे। तदनन्तर घट स्पर्श करके इन्द्रियसंयमपूर्वक एक हजार
मन्त्र जप करके उस जल से अभिषेक (स्नान) करे। ऐसा करने से सकल कामनायें सफल होती हैं। उस जल
से अभिषिक्त मानव पुत्र, यश, आरोग्य, लोकप्रियता, वाक्सिद्धि तथा सुन्दर दृष्टि प्राप्त करता है। यदि शत्रु
का उपद्रव बढ़ जाय तो उसकी निवृत्ति के लिये गाँव या नगर में इस यंत्र को स्थापना करनी चाहिये। (उक्त
मंत्र को पढ़कर) सरसों, नीम, लशुन तथा कपास से होम करने से शत्रु भाग जाता है ॥२७-३०॥ धतूरों से
होम करने से शत्रु का स्तंभन होता है। नीम से हवन करने पर (शत्रु को आपस में) द्वेष होता है। कमल
से होमने पर वशीकरण होता है। बहेड़े तथा खैर की लकड़ी और कड़आ तेल एवम् भैंस के घी से होम
करने से उच्चाटन होता है। यव से होम करने से लक्ष्मी की प्राप्ति और घृतमिश्रित तिल से पाप का क्षय
होता है। तिल, चावल तथा श्वेत सरसों से होम करने से राजा वशीभूत होता है। अपामार्ग (चिचिड़ा) तथा

लवणैर्भूतशांतिदः ॥३४॥
अपामार्गार्कदूर्वाणां होमो लक्ष्मीप्रदोऽघनुत् । स्त्रीवश्यकृत्प्रियंगूणां मुराणां भूतशांतिदः ॥३४॥
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटबिल्वसमुद्भवाः । समिधो लभते हुत्वा पुत्रानायुर्धनं सुखम् ॥३५॥
निर्मोकहेमसिद्धार्थलवणैश्चौरनाशनम् । रोचनागोमयैस्तम्भो भूप्राप्तिः शालिभिर्हुतैः ॥३६॥
होमसंख्या तु सर्वत्र सहस्रादयुतावधि । प्रकल्पनीया मन्त्रज्ञैः कार्य्यगौरवलाघवात् ॥३७॥
कार्तवीर्य्यस्य मन्त्राणामुच्यते लक्षणं बुधाः । कार्तवीर्यार्जुनं ङेंतं सर्वमंत्रेषु योजयेत् ॥३८॥
स्वबीजाद्यो दशार्णोऽसौ अन्ये नवशिवाक्षराः । आद्यबीजद्वयेनासौ द्वितीयो मन्त्र ईरितः ॥३९॥
स्वकामाभ्यां तृतीयोऽसौ स्वभ्रूभ्यां तु चतुर्थकः । स्वपाशाभ्यः पञ्चमोऽसौ षष्ठः स्वेन च मायया ॥४०॥
स्वांकुशाभ्यां सप्तमः स्यात्स्वरमाभ्यामथाष्टमः । स्ववाग्भवाभ्यां नवमो वर्मास्त्राभ्यामथांतिमः ॥४१॥
द्वितीयादिनवांतेषु बीजयोः स्याद्व्यतिक्रमः । मंत्रे तु दशमे वर्णा नववर्मास्त्रमध्यगाः ॥४२॥
एतेषु मंत्रवर्येषु स्वानुकूलं मनुं भजेत् । एषामाद्ये विराट्छंदोऽन्येषु त्रिष्टुबुदाहृतम् ॥४३॥
दश मंत्रा इमे प्रोक्ता यदा स्युः प्रणवादिकाः । तदादिमः शिवार्णः स्यादन्ये तु द्वादशाक्षराः ॥४४॥
त्रिष्टुप् छन्दस्तथाद्ये स्यादन्येषु जगती मता । एवं विंशतिमंत्राणां यजनं पूर्ववन्मतम् ॥४५॥
दीर्घाढ्यमूलबीजेन कुर्यादेषां षडंगकम् । तारो हृत्कार्तवीर्यार्जुनाय वर्मास्त्रठद्वयम् ॥४६॥
चतुर्दशार्णो मंत्रोऽयमस्येज्या पूर्ववन्मता । भूनेत्रसमनेत्राक्षिवर्णैरस्यांगपंचकम् ॥४७॥
तारो हृद्भगवान् ङेंतः कार्तवीर्यार्जुनस्तथा । वर्मास्त्राग्निप्रियामंत्रः प्रोक्तो ह्यष्टादशार्णकः ॥४८॥

दूर्वा से हवन करने से श्रीप्राप्ति तथा पाप क्षय होता है। प्रियंगु (कंगनी) से होमने से स्त्री वशीभूत होती है। मुरा से होम करने से भूतोपद्रव शान्त होता है ॥३१-३४॥ पीपल, गूलर, वट तथा बिल्व की समिधा से होम करने से पुत्र, आयु, धन, सुख की प्राप्ति होती है। निर्मोक (सर्पकंचुक), सुवर्ण, श्वेत सरसों तथा नमक से हवन करने से चोर का नाश होता है। गोरोचन तथा गोबर से होमने से स्तंभन होता है। चावल से होमने से भूमि-प्राप्ति होती है। मन्त्रज्ञाता पुरुष कार्य की लघुता एवम् गुरुता को दृष्टि में रखते हुए एक हजार से दश हजार तक मन्त्र का जप करे ॥३५-३७॥ कार्तवीर्य के मन्त्रों का लक्षण बुधगण इस तरह बतलाते हैं कि समस्त मन्त्रों में 'कार्तवीर्यार्जुनाय' यह पद जोड़ना चाहिए। "स्वबीज······" यह दश अक्षरों का पहिला मन्त्र है। आद्य दोनों बीज मन्त्र ही द्वितीय मन्त्र कहे गए हैं। "स्वकामाभ्याम्" यह तीसरा मन्त्र है। स्वभ्रूभ्याम्" यह चौथा है। "स्वपाशाभ्याम्" यह पांचवां, "स्वेन च मायया" यह छठा, "स्वांकुशाभ्याम्" यह सातवां, "स्वरमाभ्याम्" यह आठवां, "स्ववाग्भवाभ्याम्" यह नवां और "वर्मास्त्राभ्याम्" यह दशवां मन्त्र है। द्वितीय मन्त्र से लेकर नवें तक दोनों बीजों का व्यतिक्रम होता है। दशम मन्त्र में नो कवचों के मध्यवर्ती वर्ण होने चाहिए। इन उत्तम मन्त्रों में जो अपने अनुकूल मालूम पड़े, उसका जप करना चाहिए ॥३८-४२॥

इनमें प्रथम मन्त्र का छन्द विराट् है और दूसरों का त्रिष्टुप्। ये दशों मन्त्र जब प्रणव से युक्त होते हैं तब आदिम मन्त्र ग्यारह अक्षरों का और अन्य बारह अक्षरों के होते हैं। तथा आद्य मन्त्र का छन्द त्रिष्टुप् और अन्यों का जगती छन्द होता है। इस तरह बीसों मन्त्रों की अर्चना पूर्ववत् करनी चाहिए। मन्त्र दीर्घ मात्रा से सम्पन्न हैं। मूलबीज से इनका षडंगन्यास करना चाहिए। "तार······" यह चौदह अक्षरों का मन्त्र है। इसकी भी उपासना पहिले की तरह करनी चाहिए। नो अक्षरों से इसका पंचांगन्यास किया जाता है। "तारो हृत्······"यह अट्ठारह अक्षरों का मन्त्र है। अट्ठारहों अक्षरों से इसका पंचांगन्यास करना चाहिए।

त्रिवेदसप्तयुग्माक्षिवर्णैः पंचांगकं मनोः । नमो भगवते श्रीति कार्तवीर्यार्जुनाय च ॥४९॥
सर्वदुष्टांतकायेति तपोबलपराक्रमः । परिपालितसप्तांते द्वीपाय सर्वरापदम् ॥५०॥
जन्यचूडामणांते ये महाशक्तिमते ततः । सहस्रदहनप्रांते वर्मास्त्रांतो महामनुः ॥५१॥
त्रिषष्टिवर्णवान्प्रोक्तः स्मरणात्सर्वविघ्नहृत् । राजन्यचक्रवर्ती च वीरः शूरस्तृतीयकः ॥५२॥
माहिष्मतीपतिः पश्चाच्चतुर्थः समुदीरितः । रेवांबुपरितृप्तश्च काणो हस्तप्रबाधितः ॥५३॥
दशास्येति च षड्भिः स्यात्पदैर्ङेन्तैः षडंगकम् । सिच्यमानं युवतिभिः क्रीडंतं नर्मदाजले ॥५४॥
हस्तैर्जलौघं रुंधंतं ध्यायेन्मत्तं नृपोत्तमम् । एवं ध्यात्वा युतं मंत्रं जपेदन्यत्तु पूर्ववत् ॥५५॥
पूर्वं तु प्रजपेल्लक्षं पूजायोगश्च पूर्ववत् । कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान् ॥५६॥
तस्य संस्मरणादेव हृतं नष्टं च लभ्यते । मंत्रवर्योऽयं द्वात्रिंशद्वर्णसंयुतः ॥५७॥
पादैः सर्वेण पंचांगं ध्यानपूजादि पूर्ववत् । कार्तवीर्याय शब्दांते विद्महे पदमुच्चरेत् ॥५८॥
महावीर्याय वर्णांते धीमहीति पदं वदेत् । तन्नोऽर्जुनः प्रवर्णान्ते चोदयात्पदमीरयेत् ॥५९॥
गायत्र्येषार्जुनस्योक्ता प्रयोगादौ जपेत्तु ताम् । अनुष्टुभं मनुं रात्रौ जपतां चौरसंचयाः ॥६०॥
पलायंते गृहाद्दूरं तर्पणाद्धवनादपि । अथो दीपविधिं वक्ष्ये कार्तवीर्यप्रियंकरम् ॥६१॥
वैशाखे श्रावणे मार्गे कार्तिकाश्विनपौषतः । माघफाल्गुनयोर्मासोर्दीपारंभं समाचरेत् ॥६२॥
तिथौ रिक्ताविहीनायां वारे शनिकुजौ विना । हस्तोत्तराश्विरौद्रेयपुष्यवैष्णववायुभे ॥६३॥
द्विदैवते च रोहिण्यां दीपारंभो हितावहः । चरमे च व्यतीपाते धृतौ वृद्धौ सुकर्मणि ॥६४॥
प्रीतौ हर्षे च सौभाग्ये शोभनायुष्मतोरपि । करणे विष्टिरहिते ग्रहणेऽर्द्धोदयादिषु ॥६५॥

"नमो भगवते······" यह तिरसठ अक्षरों का मन्त्र है। इसके स्मरण मात्र से विघ्नों का नाश होता है। "राजन्य-चक्रवर्ती······" इस मन्त्र के छह पदों से षडंगन्यास करके ध्यान करे कि नर्मदा के जल में स्नान करते हुए कार्तवीर्य युवतियों के साथ जलकेलि कर रहे हैं। और क्रीड़ोन्मत्त होकर हाथों से जलतरंग को रोकते हैं। ऐसे नृपवर का ध्यान कर दश हजार मन्त्र-जप करे और अन्य कार्य पूर्ववत् ही करे। पहिले एक लाख मन्त्र का जप कर पूजा आदि यथापूर्व करनी चाहिए। "कार्तवीर्यार्जुनः·········" यह बत्तीस अक्षरों का मन्त्र है। इसके समस्त पादों से पंचांगन्यास कर ध्यान, पूजन आदि पूर्ववत् ही करना चाहिए। "कार्तवीर्याय" इसके अन्त में "विद्महे" और "महावीर्याय धीमहि, तन्नोऽर्जुनः प्रचोदयात्" इतने को जोड़ देने से अर्जुनगायत्री बन जाती है। इसको प्रयोग के आदि में जपना चाहिये। रात्रि में इसके जप करने से चोर घर से दूर भाग जाते हैं। इससे तर्पण तथा हवन करने से भी यही फल होता है॥ ४३-६०½॥

अब मैं दीप का विधान बतलाऊँगा, जो कार्तवीर्य को अत्यन्त प्रिय है। वैशाख, श्रावण, अगहन, कार्तिक, आश्विन, पौष, माघ तथा फाल्गुन मास में दीपारंभ करना चाहिए। रिक्ता[1]विहीन तिथि, शनि और मङ्गल रहित दिन, हस्त, उत्तराषाढ, अश्विनी, रौद्रेय, पुष्य, वैष्णव, वायु तथा द्विदेवताक नक्षत्र और रोहिणी नक्षत्र में दीपारंभ कल्याणकारक होता है। चरम, व्यतीपात, धृति तथा वृद्धि, प्रीति, हर्ष, सौभाग्य, शोभन, तथा आयुष्मान् नामक योग में, विष्टि रहित करण में, ग्रहणों में तथा अर्धोदय आदि योग में पूर्व रात्रि के समय दीपारंभ करना

---

१. चौठ, चतुर्दशी, नवमी—ये रिक्ता कहलाती हैं।

योगेषु रात्रौ पूर्वाह्णे दीपारंभः कृतः शुभः । कार्तिके शुक्लसप्तम्यां निशीथेऽतीव शोभनः ॥६६॥
यदि तत्र रवेर्वारः श्रवणं भं च दुर्लभम् । अत्यावश्यककार्येषु मासादीनां न शोधनम् ॥६७॥
आद्ये ह्युपोष्य नियतो ब्रह्मचारी सपीतकैः । प्रातः स्नात्वा शुद्धभूमौ लिप्तायां गोमयोदकैः ॥६८॥
प्राणानायम्य संकल्प्य न्यासान्पूर्वोदितांश्चरेत् । षट्कोणं रचयेद्भूमौ रक्तचंदनतंडुलैः ॥६९॥
अतः स्मरं समालिख्य षट्कोणेषु समालिखेत् । नवार्णैर्वेष्टयेत्तच्च त्रिकोणं तद्बहिः पुनः ॥७०॥
एवं त्रिलिखिते यन्त्रे निदध्याद्दीपभाजनम् । स्वर्णजं रजतोत्थं वा ताम्रजं तदभावतः ॥७१॥
कांस्यपात्रं मृण्मयं च कनिष्ठं लोहजं मृतौ । शांतये मुद्गचूर्णोत्थं संधौ गोधूमचूर्णजम् ॥७२॥
आज्ये पलसहस्रे तु पात्रं शतपलं स्मृतम् । आज्येऽयुतपले पात्रं पलपंचशता स्मृतम् ॥७३॥
पंचसप्ततिसंख्ये तु पात्रं षष्टिपलं स्मृतम् । त्रिसाहस्रो घृतपले शर्करापलभाजनम् ॥७४॥
द्विसाहस्र्यां द्विशतमितं च भाजनमिष्यते । शतेऽक्षिचरसंख्यातमेवमन्यत्र कल्पयेत् ॥७५॥
नित्यदीपे वह्निपलं पात्रमाज्यं पलं स्मृतम् । एवं पात्रं प्रतिष्ठाप्य वर्तीः सूत्रोत्थिताः क्षिपेत् ॥७६॥
एका तिस्रोऽथवा पंचसप्ताद्या विषमा अपि । तिथिमानादासहस्रं तंतुसंख्या विनिर्मिता ॥७७॥
गोघृतं प्रक्षिपेत्तत्र शुद्धवस्त्रविशोधितम् । सहस्रपलसंख्यादिदशांशं कार्यगौरवात् ॥७८॥
सुवर्णादिकृतां रम्यां शलाकां षोडशांगुलाम् । तदर्द्धां वा तदर्द्धां वा सूक्ष्माग्रां स्थूलमूलिकाम् ॥७९॥

शुभदायक है। कार्तिक-शुक्ल-सप्तमी को रात्रि में दीपारंभ अत्यन्त शोभन है। यदि उस दिन रविवार तथा श्रवण नक्षत्र पड जाय तो सोने में सुगंधि समझो। अत्यावश्यक कार्यों में मास आदि का विचार नहीं करना चाहिए ।।६१-६७।।

प्रथम दिन ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन करते हुए उपवास करके दूसरे दिन प्रातःकाल स्नानोपरान्त भूमि को गोबर से लीप-पोत कर पवित्र करे। अनन्तर प्राणायाम तथा संकल्प करके पूर्वोक्त प्रकार से न्यास करे। फिर भूमि पर रक्तचंदन तथा चावल से षट्कोण का निर्माण कर उस पर काम का चित्र खींचे। उस चित्र को नव अक्षरों से वेष्टित कर बाहर त्रिकोण की रचना करे, इस तरह यंत्र लिख जाने पर उसके ऊपर दीप पात्र को स्थापित करे। दीपपात्र सुवर्ण या चांदी या तांबे का होना चाहिये। यदि वे न मिलें तो काँसा या मिट्टी का पात्र बनाये, मारण कार्य के लिये लोह का, शान्तिकार्य के लिये मूंग के पिसान का, और संधिकार्य के लिये गेहूँ के आटे का दीपपात्र बनाना चाहिये।।६८-७२।। यदि सहस्र पल परिमित घी हो तो (पात्र के लिये) एक सौ पल के हिसाब से द्रव्य होना चाहिये। दस हजार पलपरिमित घी के लिये पाँच सौ पल के परिमाण में द्रव्य होना चाहिये, पचहत्तर पलपरमित घी के लिये साठ पल द्रव्य, तीन हजार पल घी के लिये सत्रह सौ पल द्रव्य, दो हजार पल घी के लिये दो सौ पल द्रव्य और सौ पल घी के लिये दस पल द्रव्य आवश्यक है। नित्य दीप के लिये तीन द्रव्य का पात्र और एक पल घी होना चाहिये। इस तरह पात्र की प्रतिष्ठा कर सूत की बनी बत्तियाँ उसमें डाले ।।७३-७६।। बत्तियों की संख्या एक या तीन या पाँच या सात होनी चाहिये। बत्ती के तंतुओं की संख्या पन्द्रह से लेकर एक हजार तक अपेक्षित है। दीप में गाय का घी डालना चाहिये, जो पहले वस्त्र से छान लिया गया हो। कार्यगौरव की दृष्टि से सहस्र पलपरिमित घी पात्र में छोड़े। उसमें एक सुवर्ण की बनाई हुई सोलह अंगुलियों की रमणीय शलाका भी रखे। शलाका सोलह या आठ या चार ही अंगुलियों की होनी चाहिये; परन्तु उसका अग्रभाग सूक्ष्म और आदि भाग स्थूल हो ।।७७-७९।। उस शलाका को पात्र के मध्य में

विमुंचेद्दक्षिणे पात्रमध्ये चाग्रे कृताग्रिकाम् । पात्रदक्षिणदिग्देशे मुक्त्वांगुलचतुष्टयम् ॥८०॥
अधोग्रां दक्षिणाधारां निखनेच्छुरिकां शुभाम् । दीपं प्रज्वालयेत्तत्र गणेशस्मृतिपूर्वकम् ॥८१॥
दीपात्पूर्वत्र दिग्भागे सर्वतोभद्रमंडले । तंडुलाष्टदले वापि विधिवत्स्थापयेद्घटम् ॥८२॥
तत्रावाह्य नृपाधीशं पूजयेत्पूर्ववत्सुधीः । जलाक्षतान्समादाय दीपं संकल्पयेत्ततः ॥८३॥
दीपसंकल्पमंत्रोऽयं कथ्यते द्वीबभूमितः । प्रणवः पाशमाये च शिखा कार्ताक्षराणि च ॥८४॥
वीर्यार्जुनाय माहिष्मतीनाथाय सहस्र च । बाहवे इति वर्णांते सहस्रपदमुच्चरेत् ॥८५॥
क्रतुदीक्षितहस्ताय दत्तात्रेयप्रियाय च । आत्रेयायानुसूयांते गर्भरत्नाय तत्परम् ॥८६॥
नमो ग्रीवामकर्णेंदुस्थितौ पाश इमं ततः । दीपं गृहाण अमुकं रक्ष रक्ष पदं पुनः ॥८७॥
दुष्टान्नाशययुग्मं स्यात्तथा पातय घातय । शत्रून् जहि द्वयं माया तारः स्वं बीजमात्मभूः ॥८८॥
वह्निप्रिया अनेनाथ दीपवर्येण पश्चिमा । भिमुखेनामुकं रक्ष अमुकांते वरप्रद ॥८९॥
मायाकाशद्वयं वामनेत्रचंद्रयुतं शिवा । वेदादिकामचामुंडाः स्वाहा तु पूर्वबिंदुको ॥९०॥
प्रणवोऽग्निप्रिया मंत्रो नेत्रबाणाधराक्षरः । दत्तात्रेयो मुनिर्मालामंत्रस्य परिकीर्तितः ॥९१॥
छन्दोऽमितं कार्तवीर्यार्जुनो देवोऽखिलाप्तिकृत् । चामुंडया षडंगानि चरेत्षड्दीर्घयुक्तया ॥९२॥
ध्यात्वा देवं ततो मंत्रं पठित्वांते क्षिपेज्जलम् । गोविंदाढ्यो हली सेंदुश्चामुंडाबीजमीरितम् ॥९३॥
ततो नवाक्षरं मंत्रं सहस्रं तत्पुरो जपेत् । तारोऽनंतो बिंदुयुक्तो मायास्वं वामनेत्रयुक् ॥९४॥
कूर्माग्नी शांतिबिंद्वाढ्यौ वह्नि जायांकुशं ध्रुवम् । ऋषिः पूर्वोदितोऽनुष्टुप्छंदोऽन्यत्पूर्ववत्पुनः ॥९५॥
सहस्रं मंत्रराजं च जपित्वा कवचं पठेत् । एवं दीपप्रदानस्य कर्ताप्नोत्यखिलेऽप्सितम् ॥९६॥
दीपप्रबोधकाले तु वर्जयेदशुभां गिरम् । विप्रस्य दर्शनं तत्र शुभदं परिकीर्तितम् ॥९७॥
शूद्राणां मध्यमं प्रोक्तं म्लेच्छस्य वधबन्धनम् । आखवोत्वोर्दर्शनं दुष्टं गवाश्वस्य सुखावहम् ॥९८॥

उलटा करके छोड़ दे। पात्र से दक्षिण चार अंगुलि हटकर भूमि में एक सुन्दर छुरी को दक्षिणाधार तथा निम्न मुख करके गाड़ दे और वहाँ गणेश का स्मरण करते हुए दीप जलाये, दीप से पूर्व दिशा में सर्वतोभद्र मंडल या तंडुलचूर्ण से अष्टदल बनाकर उस पर विधिपूर्वक घट-स्थापना करे। विद्वान् व्यक्ति उस घट पर राजराज का आवाहन कर पूर्ववत् उनकी पूजा करे। फिर जल-अक्षत लेकर दीप के लिये संकल्प करे ॥८०-८३॥ दीप संकल्प का यह मन्त्र है--"प्रणवः· · ·स्वाहा"। इसमें आठ अक्षर हैं। दत्तात्रेय इसके मुनि हैं, अनुष्टुप् छन्द है और कार्तवीर्यार्जुन देवता हैं; जो सकल कामनाओं को सफल करनेवाले है। वह दीर्घ मात्राओं से युक्त चामुण्डा-मन्त्र से षडंगन्यास कर कार्तवीर्य देव का ध्यान करे और मन्त्र को पढ़ कर अन्त में जल हाथ से गिरा दे। "गोविन्दाढ्य....." यह चामुण्डाबीज मन्त्र है। इसके बाद नवाक्षर मंत्र का एक हजार जप करना चाहिये। "तारोऽनन्तः...." यह नवाक्षर मन्त्र है। इसके ऋषि दत्तात्रेय, छंद अनुष्टुप् और देवता आदि पूर्ववत् समझना चाहिये। इस मन्त्रराज का एक सहस्र जप कर कवच का पाठ करना चाहिये। उक्त रीति से दीपदान करनेवाला व्यक्ति अभीष्ट फल को प्राप्त करता है ॥८४-९६॥ दीप जलाने के समय अशुभ बात नहीं बोलनी चाहिये। उस समय ब्राह्मण का दर्शन शुभ माना गया है; शूद्रों का दर्शन मध्यम तथा म्लेच्छों का वधकारक या बंधनकारक होता है। चूहे तथा बिलाड को देखना दुःखदायक है; किन्तु गाय एवं घोड़े को देखना सुखकारक है। दीप की ज्वाला यदि सीधी हो तो सिद्धि मिलती है, परन्तु टेढ़ी होने पर नाश होता है ॥९७-९८½॥

॥९९॥
दीपज्वाला समा सिद्ध्यै वक्रा नाशविधायिनी । शब्दा भयदा कर्तुरुज्ज्वला सुखदा मता ॥१००॥
कृष्णा शत्रुभयोत्पत्त्यै धमंती पशुनाशिनी । कृते दीपे यदा पात्रं भग्नं दृश्येत दैवतः ॥१०१॥
पक्षादर्वाक्तदा गच्छेद्यजमानो यमालयम् । वर्त्यंतरं यदा कुर्यात्कार्यं सिद्ध्येद्विलंबतः ॥१०२॥
नेत्रहीनो भवेत्कर्ता तस्मिन्दीपांतरे कृते । अशुचिस्पर्शने व्याधिर्दीपनाशे तु चौरभीः ॥१०३॥
श्वमार्जाराखुसंस्पर्शे भवेद्भूपतितो भयम् । पात्रारंभे वसुपलैः कृतो दीपोऽखिलेष्टदः ॥१०४॥
तस्माद्दीपः प्रयत्नेन रक्षणीयोंऽतरायतः । आसमाप्तेः प्रकुर्वीत ब्रह्मचर्यं च भूशयः ॥१०५॥
स्त्रीशूद्रपतितादीनां संभाषामपि वर्जयेत् । जपेत्सहस्रं प्रत्येकं मंत्रराजं नवाक्षरम् ॥१०६॥
स्तोत्रपाठं प्रतिदिनं निशीथिन्यां विशेषतः । एकपादेन दीपाग्रे स्थित्वा यो मंत्रनायकम् ॥१०७॥
सहस्रं प्रजपेद्रात्रौ सोऽभीष्टं क्षिप्रमाप्नुयात् । समाप्य शोभनदिने संभोज्य द्विजसत्तमान् ॥१०८॥
कुंभोदकेन कर्तारमभिषिंचन्मनुं जपेत् । कर्ता तु दक्षिणां दद्यात्पुष्कलां तोषहेतवे ॥१०९॥
गुरौ तुष्टे ददातीष्टं कृतवीर्यसुतो नृपः । गुर्वाज्ञया स्वयं कुर्याद्यदि वा कारये द्गुरुः ॥११०॥
दत्त्वा धनादिकं तस्मै दीपदानाय नारद । गुर्वाज्ञामन्तरा कुर्याद्यो दीपं स्वेष्टसिद्धये ॥१११॥
सिद्धिर्न जायते तस्य हानिरेव पदे पदे । उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषीभवम् ॥११२॥
तिलतैलं तु तादृक् स्यात्कनीयोऽजादिजं घृतम् । आस्यरोगे सुगंधेन दद्यात्तैलेन दीपकम् ॥११३॥
सिद्धार्थसंभवेनाथ द्विषतां नाशनाय च । सहस्रेण पलैर्दीपे विहिते च न दृश्यते ॥

शब्द करने वाली ज्वाला भय देती है और उज्ज्वलवर्णा ज्वाला सुखदायिका मानी गई है। ज्वाला यदि कृष्णवर्ण की हो तो शत्रुभय होता है और भक्-भक् करने वाली ज्वाला पशुओं का नाश करती है। दीप जलाने के बाद यदि संयोग से पात्र टूटा दीख पड़े तो समझ लेना चाहिए कि एक पक्ष के भीतर ही यजमान यमालय पहुँच जाएगा। यदि दीप में दूसरी बत्ती डालनी पड़े तो कार्य विलम्ब से होगा। दीप बदलने से कर्ता अन्धा होता है। अशुचि अवस्था में दीपस्पर्श करने से रोग होता है। दीप के नष्ट हो जाने पर चोरों का भय होता है ॥९९-१०२॥ कुत्ते, बिलाड़ तथा चूहे से छू जाने पर राजभय जानना चाहिए। आठ पलपरिमित द्रव्य के पात्र बनाने से दीप संपूर्ण कामनाओं को सफल करता है। उपर्युक्त कारणों से दीप को समस्त विघ्नों से यत्नपूर्वक बचाना चाहिए। जब तक व्रत समाप्त न हो तब तक ब्रह्मचर्यपूर्वक भूमि पर सोना चाहिए। उतने दिनों तक स्त्री, शूद्र तथा पतित व्यक्तियों से संभाषण न करे। नवाक्षर मन्त्रराज का प्रत्येक दिन सहस्र बार जप तथा स्तोत्रपाठ करना चाहिए। रात्रि में विशेषपूर्वक स्तुतिपाठ करना चाहिए। रात्रि में जो साधक दीप के आगे एक पैर पर खड़ा होकर सहस्र बार मन्त्रराज का जप करता है, उसका अभीष्ट शीघ्र सिद्ध होता है ॥१०३-१०६½॥ शुभ दिन में व्रत समाप्त कर ब्राह्मण भोजन करा कर घट के जल से मन्त्रजप पुरस्सर यजमान का अभिषेक करे। यजमान गुरु के संतोषार्थ प्रचुर दक्षिणा दे। गुरु के संतुष्ट होने पर राजा कार्तवीर्य वांछित फल देते हैं। गुरु की आज्ञा लेकर स्वयं दीपदान करे। यदि गुरु से कराये तो दीपदान के लिये उन्हें धन आदि दे। नारद! जो व्यक्ति बिना गुरु की आज्ञा लिये अपनी इष्ट-सिद्धि के निमित्त दीपदान करता है, उसे सिद्धि नहीं मिलती; अपितु पग-पग में हानि होती है। (इस कार्य के लिये) गाय का घी उत्तम और भैंस का मध्यम माना गया है। तिल का तेल तो महिषीघृत के ही बराबर है। बकरी आदि का घृत अधम कहा गया है ॥१०७-१११½॥ मुखरोग को छुड़ाने के लिये सुगंधित तेल दीप में डालना चाहिए। शत्रुओं के नाश के लिये श्वेत सरसों का तेल छोड़े। सहस्र पलपरिमित द्रव्य का दीपपात्र बनाने पर भी यदि कार्य सिद्ध न हो तो तीन बार

कार्यसिद्धिस्तदा कुर्यात्त्रिवारं दीपजं विधिम् । तदा सुदुर्लभमपि कार्य्यं सिद्धयेन्न संशयः ॥११४॥
दीपप्रियः कार्तवीर्यो मार्तंडो नतिवल्लभः । स्तुतिप्रियो महाविष्णुर्गणेशस्तर्पणप्रियः ॥११५॥
दुर्गार्चनप्रिया नूनमभिषेकप्रियः शिवः । तस्मात्तेषां प्रतोषाय विदध्यात्तत्तदादरात् ॥११६॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे कार्तवीर्यमाहात्म्यमन्त्रदीपकथनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥११७॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

नारद उवाच

साधु साध महाप्राज्ञ सर्वतंत्रविशारद । त्वया मह्यं समाख्यातं विधानं तन्त्रगोपितम् ॥१॥
अधुना तु महाभाग कार्तवीर्यहनूमतोः । कवचे श्रोतुमिच्छामि तद्वदस्व कृपानिधे ॥२॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु विप्रेन्द्र वक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम् । कार्तवीर्यस्य येनासौ प्रसन्नः कार्यसिद्धिकृत् ॥३॥

दीपविधि (दीपदान) करनी चाहिए। तब अत्यन्त दुर्लभ कार्य भी सिद्ध हो जायगा, इसमें संशय नहीं। कार्तवीर्य दीपदान करने से संतुष्ट होते हैं, सूर्य नमस्कार से, महाविष्णु स्तुति से, गणेश तर्पण से, दुर्गा अर्चना से और शिव अभिषेक से प्रसन्न होते हैं। इसलिए उन-उन देवता को प्रसन्न करने के लिए तत्तत् उपाय आदरपूर्वक करना चाहिए॥११२-११६॥

श्रीनारदीय पुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यान युक्त तृतीय पाद में कार्तवीर्य का माहात्म्य, मन्त्र तथा दीप कथन नामक छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७६॥

अध्याय ७७

श्री कार्तवीर्य का कवच

नारद बोले—महापण्डित! सकलतंत्रविशारद! साधु! साधु! आपने वह विधान मुझे बतला दिया जो तंत्रों में गुप्त था। महाभाग! कृपानिधान! अब मैं कार्तवीर्य तथा हनुमान् का कवच सुनना चाहता हूँ, (कृपया) बताइए॥१—२॥

सनत्कुमार बोले—विप्रवर्य! सुनो, मैं कार्तवीर्य का अत्यन्त आश्चर्यजनक कवच सुनाता हूँ, जिसके पाठ से कार्यसिद्धिकर्ता कार्तवीर्य प्रसन्न हो जाते हैं। पहिले उनका इस प्रकार ध्यान करे कि वे अत्यन्त रमणीय

तुरगायुतभूषिते ॥४॥
सहस्रादित्यसंकाशे नानारत्नसमुज्ज्वले । भास्वद्ध्वजपताकाढ्ये ॥५॥
महासंवर्तकांभोधिभीमरावविराविणि । समुद्धृतमहाछत्रवितानितवियत्पथे ॥६॥
महारथवरे दीप्त नानायुधविराजिते । सुस्थितं विपुलोदारं सहस्रभुजमंडितम् ॥७॥
वामैरुद्दंडकोदण्डान्दधानमपरैः शरान् । किरीटहारमुकुटकेयूरवलयांगदैः ॥८॥
मुद्रिकोदरबन्धाद्यैर्मौंजीनूपुरकादिभिः । भूषितं विविधाकल्पैर्भास्वरैः सुमहाधनैः ॥९॥
आबद्धकवचं वीरं सुप्रसन्नाननांबुजम् । धनुर्ज्यासिंहनादेन कंपयंतं जगत्त्रयम् ॥१०॥
सर्वशत्रुक्षयकरं सर्वव्याधिविनाशनम् । सर्वसंपत्प्रदातारं विजयश्रीनिषेवितम् ॥११॥
सर्वसौभाग्यदं भद्रं भक्ताभयविधायिनम् । दिव्यमाल्यानुलेपाढ्यं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥१२॥
रथनागाश्वपादातवृंदमध्यगमीश्वरम् । वरदं चक्रवर्तीनं सर्वलोकैकपालकम् ॥१३॥
समानोदितसाहस्रदिवाकरसमद्युतिम् । महायोगभवैश्वर्यकीर्त्याक्रांतजगत्त्रयम् ॥१४॥
श्रीमच्चक्रं हरेरंशादवतीर्णं महीतले । सम्यगात्माविभेदेन ध्यात्वा रक्षामुदीरयेत् ॥१५॥
अस्यांगमूर्तयः पंच पांतु मां स्फटिकोज्ज्वलाः । अग्नीशासुरवायव्यकोणेषु हृदयादिकाः ॥१६॥
सर्वतोस्त्रज्वलद्रूपा दरचर्मासिपाणयः । अव्याहतबलैश्वर्यशक्तिसामर्थ्यविग्रहाः ॥१७॥
क्षेमंकरीशक्तियुतश्चौरवर्गविभञ्जनः । प्राचीं दिशं रक्षतु मे बाणबाणासनायुधः

रथ पर सुखपूर्वक बैठे हैं। इस रथ की चमक सहस्र सूर्यों के समान है। अनेक प्रकार के रत्न उसमें जड़े हैं। प्रकाशमान पताका उसपर फहरा रही है। दश हजार घोड़े उसमें जुते हैं ॥३-४॥ महाप्रलय कालीन समुद्र के समान वह भयंकर शब्द करता है। उस पर तना हुआ महाछत्र ऐसा प्रतीत होता है कि मानो गगनपथ पर चंदवा लगा दिया गया हो। चमकते हुए अनेक अस्त्र-शस्त्रों से वह सुसज्जित है। वैसे रथ पर बैठनेवाले महा यशस्वी कार्तवीर्य की सहस्र भुजायें हैं। वे बांयें हाथों में धनुष तथा दाहिने में बाण धारण किये हुए हैं। मकुट, हार, केयूर, अंगद, वलय, मुद्रिका, कांची नूपुर आदि अनेक बहुमूल्यक तथा चमकदार आभूषणों से उनके अंग विभूषित हैं। उन वीर के शरीर में कवच बंधा हुआ है। उनका मुखकमल सुप्रसन्न है, वे धनुष की टंकार से तीनों लोक को कंपा रहे हैं ॥५-९॥ वे निखिल शत्रुओं का क्षय करने वाले, समस्त व्याधियों का नाश करने वाले, अखिल संपत्तियों को देने वाले, विजय लक्ष्मी का उपभोग करने वाले, सब प्रकार का सौभाग्य देने वाले, कल्याण करने वाले, भक्तों को अभयदान देने वाले, दिव्य माला तथा चन्दन से विभूषित, सर्वलक्षण-सम्पन्न, रथ, हाथी, घोड़े तथा पैदलों के बीच चलनेवाले, स्वामी, वरदायक, चक्रवर्ती, सकल लोकों के एकमात्र पालक, समान भाव से सर्वत्र उदित होनेवाले सहस्र आदित्यों के समान कान्तिमान्, महायोग द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य तथा कीर्ति से तीनों लोक को आक्रान्त किये हुए, श्रीमानों के समूहस्वरूप और भूतल पर हरि के अंश से अवतीर्ण हैं।

इस प्रकार आत्मा आदि के भेद से अच्छी तरह ध्यान कर रक्षा-पाठ करे ॥१०-१४॥ "अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य तथा वायव्य कोणों में स्फटिक के समान धवल वर्ण वाली और हृदया आदि नामों वाली कार्तवीर्य की पाँच मूर्तियाँ, जिनका रूप जाज्वल्यमान अस्त्र के समान है, जिनके हाथों में ढाल-तलवार विद्यमान हैं और जो अव्याहत बल, ऐश्वर्य, शक्ति तथा सामर्थ्य की साक्षात् प्रतिमा हैं, मेरी रक्षा करें। धनुष-बाण रूपी अस्त्रों से सुसज्जित, चोर समूह के नाशक तथा क्षेमकरी शक्ति से युक्त देव पूर्व दिशा में मेरी रक्षा करें। महामारी के

श्रीकरीशक्तिसहितो मारीभयविनाशकः । शरचापधरः श्रीमान् दिशं मे पातु दक्षिणाम् ॥१८॥
महावश्यकरीयुक्तः सर्वशत्रुविनाशकृत् । महेषुचापधृक्पातु मम प्राचेतसीं दिशम् ॥१९॥
यशःकर्या समायुक्तो दैत्यसंघविनाशनः । परिरक्षतु मे सम्यग्विदिशं चैत्रभानवीम् ॥२०॥
विद्याकरीसमायुक्तः सुमहद्दुःखनाशनः । पातु मे नैर्ऋतीं चापपाणिर्विदिशमीश्वरः ॥२१॥
धनकर्या समायुक्तो महादुरितनाशनः । इष्वासनेषुधृक्पातु विदिशं मम वायवीम् ॥२२॥
आयुःकर्या युतः श्रीमान्महाभयविनाशनः । चापेषुधारी शैवीं मे विदिशं परिरक्षतु ॥२३॥
विजयश्रीयुतः साक्षात्सहस्त्रारधरो विभुः । दिशमूर्द्धामवतु मे सर्वदुष्टभयंकरः ॥२४॥
शंखभृत्सुमहाशक्तिसंयुतोऽध्यधरां दिशम् । परिरक्षतु मे दुःखध्वांतसम्भेदभास्करः ॥२५
महायोगसमायुक्तः सर्वदिक्चक्रमंडलः । महायोगीश्वरः पातु सर्वतो मम पद्मभृत् ॥२६॥
एतास्तु मूर्तयो रक्ता रक्तमाल्यांशुकावृताः । प्रधानदेवतारूपाः पृथक्पृथवरे स्थिताः ॥२७॥
शक्तयः पद्महस्ताश्च नीलेंदीवरसन्निभाः । शुक्लमाल्यानुवसनाः सुलिप्ततिलकोज्ज्वलाः ॥२८॥
तत्पार्षदेश्वराः स्वस्ववाहनायुधभूषणाः । स्वस्वदिक्षु स्थिताः पांतु मामिद्राद्या महाबलाः ॥२९॥
एतास्तस्य समाख्याताः सर्वावरणदेवताः । सर्वतो मां सदा पांतु सर्वशक्तिसमन्विताः ॥३०॥
हृदये चोदरे नाभौ जठरे गुह्यमण्डले । तेजोरूपाः स्थिताः पांतु वांछासुरवनद्रुमाः ॥३१॥
दिशं चान्ये महावर्णा मन्त्ररूपा महोज्ज्वलाः । व्यापकत्वेन पांत्वस्मानापादतलमस्तकम् ॥३२॥

भय को दूर करने वाले, धनुष-बाण धारण करने वाले, श्रीकरी शक्ति-सहित श्रीमान् देव दक्षिण दिशा में मेरी रक्षा करें ॥१५-१८॥ सकल शत्रुओं के नाशक, महाबाण तथा धनुष के धारक और महावश्यकरी-शक्ति से सम्पन्न देव उत्तर दिशा में मेरी रक्षा करें। दैत्य-समूह के ध्वंसक तथा यशःकरी शक्ति से समन्वित देव पश्चिम दिशा में मेरी रक्षा करें। महान् दुःख को छुड़ाने वाले और हाथ में धनुष धारण करने वाले ईश्वर, जो विद्याकरी शक्ति-से युक्त हैं, नैर्ऋत्य दिशा में मेरी रक्षा करें। महापापों के नाशक, धनुष-बाणधारी और धनकरी-शक्ति से संवलित देव वायवी दिशा में मेरी रक्षा करें। धनुष-बाण धारण करने वाले, महाभय का नाश करने वाले और आयुःकरी शक्ति से युक्त होने वाले श्रीमान् देव शैवी दिशा में मेरी रक्षा करें ॥१९-२४॥ दुःख रूपी अन्धकार को हटाने के लिये सूर्यरूप, शंखधारी तथा महाशक्ति संपन्न देव अधो दिशा में मेरी रक्षा करें। दुष्टों के लिये भयंकर, सहस्रारधारी एवम् विजयश्रीसंपन्न विभु ऊर्ध्व दिशा में मेरी रक्षा करें। महायोग से युक्त, संपूर्ण दिक्चक्र के लिये मण्डलाकार, महायोगीश्वर तथा पद्मधारी देव सब ओर से मेरी रक्षा करें। रक्तवर्णा, रक्त वस्त्र तथा माला धारण करने वाली और प्रधान देवतारूप ये मूर्तियां अलग-अलग रथ पर अवस्थित हैं ॥२५-२७॥ इन्द्रा आदि महाबलशालिनी शक्तियाँ, जिनके हाथों में कमलपुष्प हैं, जिनकी कान्ति नील कमल के समान है, जो श्वेत माला तथा वस्त्र पहनती हैं, जो सुन्दर लेप तथा तिलक से उज्ज्वल हैं और जो पार्षदों की स्वामिनी कहलाती हुई अपने-अपने वाहनों, आयुधों एवम् आभूषणों से सुसज्जित हैं अपनी-अपनी दिशा में मेरी रक्षा करें। ये उन कार्तवीर्य की आवरण देवता कहलाती हैं। ये सर्वशक्तिसंपन्ना होकर सब ओर से सदा मेरी रक्षा करें। तेजो रूप से अवस्थित तथा कल्पद्रुम के समान कामना पूर्ण करनेवाली ये देवियाँ मेरे हृदय, उदर, नाभि एवम् गुह्यप्रदेश में रक्षा करें। अन्य जो मंत्ररूपा सुस्वरूपा तथा अत्यन्त धवल देवियाँ हैं, वे सब दिशाओं में व्यापक रूप से मेरी रक्षा करती हुई चरण से लेकर मस्तक तक मेरी रक्षा

कार्तवीर्यः शिरः पातु ललाटं हैहयेश्वरः । सुमुखो मे मुखं पातु कर्णौ व्यासजगत्त्रयः ॥३३॥
सुकुमारो हनुं पातु भ्रूयुगं मे धनुर्धरः । नयनं पुण्डरीकाक्षो नासिकां मे गुणाकरः ॥३४॥
अधरोष्ठौ सदा पातु ब्रह्मज्ञेयो द्विजान्कविः । सर्वशास्त्रकलाधारी जिह्वां चिबुकमव्ययः ॥३५॥
दत्तात्रेयप्रियः कंठं स्कंधौ राजकुलेश्वरः । भुजौ दशास्यदर्पघ्नो हृदयं मे महाबलः ॥३६॥
कुक्षिं रक्षतु मे विद्वान् वक्षः परपुरंजयः । करौ सर्वार्थदः पातु कराग्राणि जगत्प्रियः ॥३७॥
रेवांबुलीलासंदृप्तो जठरं परिरक्षतु । वीरशूरस्तु मे नाभिं पार्श्वौ मे सर्वदुष्टहा ॥३८॥
सहस्रभुजभृत्पृष्ठं सप्तद्वीपाधिपः कटिम् । ऊरू माहिष्मतीनाथो जानुनी वल्लभो भुवः ॥३९॥
जंघे वीराधिपः पातु पातु पादौ मनोजवः । पातु सर्वायुधधरः सर्वांगं सर्वमर्मसु ॥४०॥
सर्वदुष्टांतकः पातु धात्वष्टककलेवरम् । प्राणादिदशजीवेशान्सर्वशिष्टेष्टदोऽवतु ॥४१॥
वशीकृतेंद्रियग्रामः पातु सर्वेन्द्रियाणि मे । अनुक्तमपि यत्स्थानं शरीरांतर्बहिश्च यत् ॥४२॥
तत्सर्वं पातु मे सर्वलोकनाथेश्वरेश्वरः । वज्रात्सारतरं चेदं शरीरं कवचावृतम् ॥४३॥
बाधाशतविनिर्मुक्तमस्तु मे भयवर्जितम् । बद्ध्वेदं कवचं दिव्यमभेद्यं हैहयेशितुः ॥४४॥
विचरामि दिवा रात्रौ निर्भयेनांतरात्मना । राजमार्गे महादुर्गे मार्गे चौरादिसंकुले ॥४५॥
विषमे विपिने घोरे दावाग्नौ गिरिकंदरे । संग्रामे शस्त्रसंघाते सिंहव्याघ्रनिषेविते ॥४६॥
गह्वरे सर्वसंकीर्णे संध्याकाले नृपालये । विवादे विपुलावर्ते समुद्रे च नदीतटे ॥ ४७॥
परिपंथिजनाकीर्णे देशे दस्युगणावृते । सर्वस्वहरणे प्राप्ते प्राप्ते प्राणस्य संकटे ॥४८॥
नानारोगज्वरावेशे पिशाचप्रेतयातने । मारीदुःस्वप्नपीडासु क्लिष्टे विश्वासघातके ॥४९॥

करें ॥२८-३२॥ कार्तवीर्य मेरे शिर की रक्षा करें । हैहयेश्वर ललाट की, सुमुख मुख की और जगद्व्यापी कानों की रक्षा करें । सुकुमार कनपटी की, धनुर्धर दोनों भौंहो की, पुण्डरीकाक्ष नेत्र की, गुणाकर नाक की, ब्रह्मज्ञेय अधर की, कवि ओष्ठ की, सकल शास्त्रों एवम् कलाओं का धारण करने वाले जिह्वा की, अव्यय ठुड्डी की, दत्तात्रेयप्रिय कण्ठ की, राजकुलेश्वर स्कंधों की, रावणदर्पविनाशक भुजाओं की, महाबल हृदय की, विद्वान् कुक्षि की, परपुरंजय छाती की, सकलकामनादायक हाथों की, जगत्प्रिय करांगुलियों की, रेवा के जल में विहार करनेवाले पेट की, वीर शूर नाभि की, समस्त दुष्टों के निहन्ता पार्श्वों की, सहस्र भुजाओं का धारण करने वाले पीठ की, सातों द्वीपों के अधीश्वर कटि की, माहिष्मतीनाथ ऊरुओं की, भूवल्लभ जानुओं की, वीरपति जंघाओं की, मनोजव चरणों की, सर्वायुधधारी मर्मस्थलसहित सकल अंगों की, निखिल दुष्टों के नाशक अष्टधातु सहित संपूर्ण कलेवर की, समस्त उचित अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले प्राण आदि दश जीवेशों की और इन्द्रिय समूह को जीतनेवाले सकल इन्द्रियों की रक्षा करें । जिस स्थान के बारे में मैंने नहीं कहा या जो प्रदेश शरीर के भीतर तथा बाहर हैं, उन सब की रक्षा अखिल लोकनाथेश्वर ईश्वर करें । इस कवच से आवृत मेरा शरीर वज्र से भी कठोर (अर्थात् अभेद्य), विविध बाधाओं से रहित एवम् भय से वर्जित हो ॥३३-४३½॥ कार्तवीर्य के इस अभेद्य तथा दिव्य कवच को शरीर में बाँधकर मैं दिन-रात विचरण करता रहूँ । इससे मेरी अन्तरात्मा निर्भीक हो गई है । इस कवच से आवृत मुझको राजमार्ग, महाभयंकर मार्ग, चोरादि से व्याप्त मार्ग, घोर जंगल, भयानक दावाग्नि, पर्वतों की गुफा, संग्राम, शस्त्रप्रहार, सिंह तथा व्याघ्र आदि से परिव्याप्त पर्वतप्रान्त, संध्याकाल, नृपालय, विवाद, विपुल तरंगों से युक्त समुद्र, नदी तट, शत्रु एवम् चोरों से आवृत देश, सर्वस्व अपहरण, प्राणसंकट, अनेक प्रकार के रोग एवम् ज्वर के आक्रमण, पिशाच तथा प्रेत की यातना, महामारी तथा दुःस्वप्न की पीड़ा, विश्वासघातजन्य क्लेश, शारीरिक महा-

शारीरे च महादुःखे मानसे च महाज्वरे । आधिव्याधिभये विघ्नज्वालोपद्रवकेऽपि च ॥५०॥
न भवेत्तु भयं किञ्चित्कवचेनावृतस्य मे । आगंतुकामानखिलानस्मद्वसुविलुंपकान् ॥५१॥
निवारयतु दोर्दंडसहस्रेण महारथः । स्वकरोद्धृतसाहस्रपाशबद्धान्सुदुर्जयान् ॥५२॥
संरुद्धगतिसामर्थ्यान्करोतु कृतवीर्यजः । सृणिसाहस्रनिर्भिन्नान्सहस्रशरखंडितान् ॥५३॥
राजचूडामणिः क्षिप्रं करोत्वस्मद्विरोधकान् । खड्गसाहस्रदलितान्सहस्रमुसलार्दितान् ॥५४॥
चौरादिदुष्टसत्त्वौघान्करोतु कमलेक्षणः । स्वशंखनादसंत्रस्तान्सहस्रारसहस्रभृत् ॥५५॥
अवतारो हरेः साक्षात्पालयत्वखिलं मम । कार्तवीर्यं महावीर्यं सर्वदुष्टविनाशन ॥५६॥
सर्वत्र सर्वदा दुष्टचौरान्नाशय नाशय । किं त्वं स्वपिषि दुष्टघ्न किं तिष्ठसि चिरायसि ॥५७॥
उत्तिष्ठ पाहि नः सर्वभयेभ्यः स्वसुतानिव । ये चौरा वसुहर्तारो विद्विषो ये च हिंसकाः ॥५८॥
साधुभीतिकरा दुष्टाश्छद्मका ये दुराशयाः । दुर्हृदो दुष्टनृपाला दुष्टामात्याश्च पापकाः ॥५९॥
ये च कार्यविलोप्तारो ये खलाः परिपंथिनः । सर्वस्वहारिणो ये च पंच मायाविनोऽपरे ॥६०॥
महाक्लेशकरा म्लेच्छा दस्यवो वृषलाश्च ये । येऽग्निदा गरदातारो वंचका शस्त्रपाणयः ॥६१॥
ये पापा दुष्टकर्माणो दुःखदा दुष्टबुद्धयः । व्याजकाः कुपथासक्ता ये च नानाभयप्रदाः ॥६२॥
छिद्रान्वेषरता नित्यं येऽस्मान्बाधितुमुद्यताः । ते सर्वे कार्तवीर्यस्य महाशंखरवाहताः ॥६३॥
सहसा विलयं यान्तु दूरादेव विमोहिताः । ये दानवा महादित्या ये यक्षा ये च राक्षसाः ॥६४॥
पिशाचा ये महासत्त्वा ये भूतब्रह्मराक्षसाः । अपस्मारग्रहा ये च ये ग्रहाः पिशिताशनाः ॥६५॥

दुःख, मानसी पीड़ा, महाज्वर, आधि, व्याधि, विघ्न, ज्वालोपद्रव आदि का लेश मात्र भी भय न हो ॥४४-५०½॥ कृतवीर्य के पुत्र मेरे अत्यन्त दुर्जय शत्रुओं को सहस्रों पाशों में बांध कर निश्चेष्ट कर दें। राजशिरोमणि (कार्तवीर्य) मेरे विरोधियों को शीघ्र सहस्रों अंकुशों से छिन्न-भिन्न करें, सहस्रों बाणों से विद्ध करें। हजारों तलवारों से खंडित करें और सहस्रों मुसलों से पीडित करें। सहस्रों सहस्र दल कमल धारण करनेवाले कमलाक्ष सहस्रार्जुन चोर आदि दुष्ट जीवों को अपने शंख के नाद से भयभीत करें। हरि के साक्षात् अवतार रूप कार्तवीर्य मेरी सब तरह से रक्षा करें ॥५१-५५½॥

महारथी कार्तवीर्य अपने सहस्र भुजदण्ड से मेरे धन लूटने के लिये आने वाले दस्युओं का निवारण करें।

कार्तवीर्य ! महाशक्तिशालिन् ! निखिलदुष्टविनाशक ! सबकाल, सब जगह दुष्टों एवम् चोरों का नाश कीजिए। दुष्टों के मारने वाले ! क्या आप सो रहे हैं ? कहाँ खड़े हैं ? क्यों विलम्ब कर रहे हैं ? उठिये, अपने पुत्रों की तरह मुझे सब प्रकार के भयों से बचाइए। जितने चोर, धनहर्ता, द्वेष करने वाले, हिंसक, साधुओं को सताने वाले, दुष्ट, कपटी, दूषित हृदय वाले, दुष्ट विचार वाले, दुष्ट राजा, दुष्ट मन्त्री, पापी, कार्यध्वंसक, खल, शत्रु, सर्वस्वहारी, मायावी, महादुःखदायक, म्लेच्छ, दस्यु, शूद्र, आग में डालने वाले, विष देने वाले, वंचक, शस्त्रजीवी, सूदखोर, कुपथगामी, लोगों को डराने वाले, छिद्रान्वेषी तथा हमें बाधा पहुँचाने वाले हैं, वे कार्तवीर्य के महाशंखध्वनि से निहत हों और दूर ही से मोहित होकर विनष्ट हो जायँ ॥५६-६३½॥ दानव, महादैत्य, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भयानक जीव, भूत, ब्रह्मराक्षस, अपस्मारग्रह, मांसाहारी तथा महाशोणितभक्षी वेताल, गुह्य, गंधर्व, अप्सरोगण, सिद्धगण, देवयोनि, डाकिनी, द्रूणस,[1] प्रेत, क्षेत्रपाल, विनायकगण, महाव्याघ्र,

---

१. एक गण, जिनकी बड़ी-बड़ी नाक होती है।

महालोहितभोक्तारो वेताला ये च गुह्यकाः। गंधर्वाप्सरसः सिद्धा ये च देवादियोनयः ॥६६॥
डाकिन्यो द्रुणसाः प्रेताः क्षेत्रपाला विनायकाः। महाव्याघ्रमहामेघा महातुरगरूपकाः ॥६७॥
महागजा महासिंहा महामहिषयोनयः। ऋक्षवाराहशुनकवानरोलूकमूर्तयः ॥६८॥
महोष्ट्रखरमार्जारसर्पगोवृषमस्तकाः। नानारूपा महासत्त्वा नानाक्लेशसहस्रदाः ॥६९॥
नानारोगकरा क्षुद्रा महावीर्या महाबलाः। वातिकाः पैत्तिका घोरा श्लैष्मिकाः सन्निपातिकाः ॥७०॥
माहेश्वरा वैष्णवाश्च वैरिंच्याश्च महाग्रहाः। स्कांदा वैनायका क्रूरा ये च प्रथमगुह्यकाः ॥७१॥
महाशत्रुग्रहा रौद्रा महामारीमसूरिकाः। ऐकाहिका द्व्याहिकाश्च त्र्याहिकाश्च महाज्वराः ॥७२॥
चातुर्थिकाः पाक्षिकाश्च मास्याः षाण्मासिकाश्च ये। सांवत्सरा दुर्निवार्या ज्वराः परमदारुणाः ॥७३॥
स्वाप्निका ये महोत्पाता ये च दुःस्वाप्निका ग्रहाः। कूष्मांडा जृंभिका भौमा द्रोणाः सान्निध्यवंचकाः ॥७४॥
भ्रमिकाः प्राणहर्तारो ये च बालग्रहादयः। मनोबुद्धीन्द्रियहराः स्फोटकाश्च महाग्रहाः ॥७५॥
महाशना बलिभुजो महाकुणपभोजनाः। दिवाचरा रात्रिचरा ये च संध्यासु दारुणाः ॥७६॥
प्रमत्ता वाऽप्रमत्ता वै ये मां बाधितुमुद्यता। ते सर्वे कार्त्तवीर्यस्य धनुर्मुक्तशराहताः ॥७७॥
सहस्रधा प्रणश्यंतु भग्नसत्त्वबलोद्यमाः। ये सर्पा ये महानागा महागिरिबिलेशयाः ॥७८॥
कालव्याला महादंष्ट्रा महासागरसंज्ञकाः। अनंतशूलिकाद्याश्च दंष्ट्राविषमहाभयाः ॥७९॥
अनेकशतशीर्षाश्च खंडपुच्छाश्च दारुणाः। महाविषजलौकाश्च वृश्चिका रक्तपुच्छकाः ॥८०॥
आशीविषाः कालकूटा महाहालाहलाह्वयाः। जलसर्पा जलव्याला जलग्राहाश्च कच्छपाः ॥८१॥
मत्स्यका विषपुच्छाश्च ये चान्ये जलवासिनः। जलजाः स्थलजाश्चैव कृत्रिमाश्च महाविषाः ॥८२॥

महामेघ, महाअश्व, महागज, महासिंह, महामहिष, रीछ, शूकर, कुत्ता, बन्दर तथा उल्लू के समान आकृति वाले, ऊँट, गधा, बिलार, सांप, गाय तथा बैल के सदृश शिर वाले, अनेक रूप वाले, हजारों प्रकार के क्लेश देने वाले, अनेक तरह के रोग उत्पन्न करने वाले, क्षुद्र, महाशक्तिशाली, महाबली, वात रोग देने वाले, पित्तव्याधि देने वाले, घोररूप, कफ रोग देने वाले, सन्निपात रोग देने वाले, माहेश्वरग्रह, वैष्णवग्रह, विरंचिग्रह, स्कंदग्रह, गणेशग्रह, क्रूरग्रह, प्रथमगुह्यक, महाशत्रुग्रह, रुद्रग्रह, महामारीग्रह, मसूरिकाग्रह, एक दिन वाले, दो दिन वाले तथा तीन दिन वाले महाज्वर, चार दिन वाले, पाक्षिक, मासिक, षाण्मासिक तथा वार्षिक परम दारुण एवम् दुर्निवार ज्वर, स्वप्न में होने वाले महा उत्पात, दुःस्वप्निक ग्रह, कुष्माँड, जृंभिक, भौम, द्रोण, सान्निध्यवंचक, भ्रमिक, प्राणहर्ता बालग्रह, मन, बुद्धि तथा इन्द्रियहारी ग्रह, स्फोटकग्रह, महाग्रह, बहुत खाने वाले, बलि खाने वाले, शव खाने वाले, दिनचर, निशाचर, संध्याचर, दारुण, प्रमत्त या अप्रमत्त ग्रह मुझे कष्ट देने के लिये तैयार हैं, वे कार्तवीर्य के धनुर्मुक्त शरों से आहत होकर हजारों खंडों में विभक्त हो जायें ॥६४-७७½॥

उनके बल, वीर्य, पराक्रम भी भग्न हों। जो सर्प, महानाग, महापर्वत के बिल में सोने वाले, कालव्याल, महादंष्ट्रा वाले, महाअजगर नाम वाले, अनंत, शूलिक, दंष्ट्रा और विष के कारण महाभयानक दीखने वाले, सैकड़ों फण वाले, कटे पूँछ वाले, दारुण स्वरूप वाले, महाविष वाले जोंक, बिच्छू, लाल पूँछ वाले साँप, कालकूट, महाहलाहल नाम वाले साँप, जलसर्प, जलव्याल, जलग्रह, कच्छप, मत्स्य, विष एवम् पुच्छ वाले अन्य जलवासी जीव, जलज, स्थलज, कृत्रिम, महाविष वाले, गुप्त रूप वाले, गुप्त विष वाले, चूहे, छिपकली, नानाविषसंज्ञक, महोपविषसंज्ञक तथा शरीर एवम् प्राणों के नाशक जीव हमें पीड़ा देना चाहते हैं, वे पहले ही

गुप्तरूपा गुप्तविषा मूषिका गृहगोधिकाः । नानाविषाश्च ये घोरा महोपविषसंज्ञकाः ॥८३॥
ते सर्वे कार्तवीर्यस्य खड्गसाहस्रदारिताः ॥८४॥
येऽस्मान्बाधितुमिच्छंति शरीरप्राणनाशकाः । मनुष्याः पशवो त्वृक्षवानरा वनगोचराः ॥८५॥
दूरादेव विनश्यंतु प्रणष्टेंद्रियसाहसाः । गजास्तुरंगा गवया रासभाः शरभा वृकाः ॥८६॥
सिंहव्याघ्रवराहाश्च महिषा ये महामृगाः । शृगालाः शशकाः श्येना गरुत्मन्तो विहंगमाः ॥८७॥
शुनका द्वीपिनः शुभ्रा मार्जारा बिललोलुपाः । उद्भिज्जाश्चांडजाश्चैव स्वेदजाश्च जरायुजाः ॥८८॥
भेरुंडा वायसा गृध्रा हंसाद्याः पक्षिजातयः । येऽस्मान्बाधितुमिच्छंति संध्यासु च दिवा निशि ॥८९॥
नानाभेदकुले जाता नानाभेदाः पृथग्विधाः । दूरादेव विनश्यंतु विनष्टगतिपौरुषाः ॥९०॥
ते सर्वे कार्तवीर्यस्य गदासाहस्रदारिताः । मारणोत्सादनोन्मूलद्वेषमोहनकारकाः ॥९१॥
ये चाक्षेमप्रदातारः कूटमायाविनश्च ये । ये चाततायिनो दुष्टा ये पापा गोप्यहारिणः ॥९२॥
विश्वासघातका दुष्टा ये च स्वामिद्रुहो नराः । क्षेत्रवित्तादिहरणबंधनादिभयप्रदाः ॥९३॥
दाहोपघातगरलशस्त्रपातातिदुःखदा । पीडाकरा ये सततं छिद्रमिच्छंति बाधितुम् ॥९४॥
ईतयो विविधाकारा ये चान्ये दुष्टजातयः । दूरादेव क्षयं यांतु विनष्टबलसाहसाः ॥९५॥
ते सर्वे कार्तवीर्यस्य चक्रसाहस्रदारिताः । ये महाशनयो दीप्ता ये निर्घाताश्च दारुणाः ॥९६॥
ये मेघा ये महावर्षा ये वाता याश्च विद्युतः । सूर्येन्दुकुजसौम्याश्च गुरुकाव्यशनैश्चराः ॥९७॥
उल्कापाताश्च ये घोरा ये महेंद्रायुधादयः । तिथयः संक्रमा मासा हायना युगनायकाः ॥९८॥
राहुश्च केतवो घोरा नक्षत्रा राशयस्तथा । निधयो ऋग्यजुःसामाथर्वाणश्चैव वह्नयः ॥९९॥
मन्वंतराधिपाः सिद्धा ऋषयो योगसिद्धयः । विद्याश्चैव चतुःषष्टिभेदा या भुवनत्रये ॥१००॥
ऋतवो लोकपालाश्च पितरो देवसंहतिः ।

कार्तवीर्य के खड्ग से सहस्र टुकड़े होकर इन्द्रिय तथा साहस सहित नष्ट हो जायँ। जो मनुष्य, पशु, बन्दर, भील, सिंह, बाघ, सूअर, भैंस, हिरन, हाथी, घोड़े, नीलगाय, गधे, ऊँट, भेड़िये, कुत्ते, चीते, बाज, गरुड, भेरुंड, कौए गीध तथा हंस आदि पक्षी, उद्भिज्ज, अंडज, स्वेदज तथा जरायुज जीव और भिन्न-भिन्न योनियों में उत्पन्न नाना भेद वाले जीव दिन, रात एवम् संध्या समय मुझे कष्ट देना चाहते हैं, वे कार्तवीर्य की गदा से सहस्रधा खंडित होकर गति-पौरुष सहित विनष्ट हो जायँ। जो अमंगलकारी, कूटमायावी, मारण, मोहन, उच्चाटन तथा विद्वेष कराने वाले, विश्वासघाती, दुष्ट, स्वामी से द्रोह करने वाले, आततायी, पापी, गुप्तधन चुराने वाले, आग लगाने वाले, अवघात करने वाले, विष देने वाले, शस्त्रप्रहार करने वाले, अत्यन्त दुःख देने वाले, खेत, वित्त आदि का हरण करने वाले, बंधन आदि का भय देने वाले, विविधाकार वाली ईतियाँ[1], अन्य दुष्ट जातियाँ और पीड़ा देने वाले तथा छिद्रान्वेषण करने वाले जीव मुझे बाधित करना चाहते हैं वे कार्तवीर्य के चक्र से सहस्रधा विदीर्ण होकर बल एवम् साहस सहित नष्ट हो जायँ ॥७८-९५॥ मेघ, महावर्षा, विद्युत्, महावज्र, भयंकर निर्घात, उल्कापात, इन्द्रधनुष, सूर्य चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु, नक्षत्र, राशि, तिथि, संक्रान्ति, मास, वर्ष, युगनायक, मन्वन्तराधीश, सिद्धि, ऋषि, योगसिद्धि, निधि, ऋक्, यजु, साम, अथर्व, वह्नि, ऋतु, लोकपाल, पितर, देवगण, विद्या, चौंसठ कला और जो कहे गये और जो न भी कहे गये, वे (देवादि) महातेजस्वी,

१—"अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभाः मूषिकाः खगाः । अत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः ।"—ये छहों ईतियाँ कृषि का नाश करती हैं।

ये त्वत्र कीर्तिताः सर्वे ये चान्य नानुकीर्तिताः । ते संतु नः सदा सौम्याः सर्वकालसुखावहाः ॥१०१॥
आज्ञया कार्तवीर्यस्य योगीन्द्रस्यामितद्युतेः । कार्तवीर्यार्जुनो धन्वी राजेन्द्रो हैहयेश्वरः ॥१०२॥
दशास्यदर्पहा रेवालीलादृप्तः सुदुर्जयः । दुःखहा चौरदमनो राजराजेश्वरः प्रभुः ॥१०३॥
सर्वज्ञः सर्वदः श्रीमान् सर्वशिष्टेष्टदः कृती । राजचूडामणिर्योगी सप्तद्वीपाधिनायकः ॥१०४॥
विजयी विश्वजिद्वाग्मी महागतिरलोलुपः । यज्वा विप्रप्रियो विद्वान् ब्रह्मज्ञेयः सनातनः ॥१०५॥
माहिष्मतीपतिर्योधा महाकीर्तिर्महाभुजः । सुकुमारो महावीरो मारीघ्नो मदिरेक्षणः ॥१०६॥
शत्रुघ्नः शाश्वतः शूरः शंखभृद्योगिवल्लभः । महाभागवतो धीमान्महाभयविनाशनः ॥१०७॥
असाध्यविग्रहो दिव्यो भावो व्याप्तजगत्त्रयः । जितेंद्रियो जिताराति: स्वच्छंदोऽनंतविक्रमः ॥१०८॥
चक्रभृत्परचक्रघ्नः संग्रामविधिपूजितः । सर्वशास्त्रकलाधारी विरजा लोकवंदितः ॥१०९॥
वीरो विमलसत्त्वाढ्यो महाबलपराक्रमः । विजयश्रीमहामान्यो जितारिर्मंत्रनायकः ॥११०॥
खड्गभृत्कामदः कांतः कालघ्नः कमलेक्षणः । भद्रवादप्रियो वैद्यो विबुधो वरदो वशी ॥१११॥
महाधनो निधिपतिर्महायोगी गुरुप्रियः । योगाढ्यःसर्वरोगघ्नो राजिताखिलभूतलः ॥११२॥
दिव्यास्त्रभृदमेयात्मा सर्वगोप्ता महोज्ज्वलः । सर्वायुधधरोऽभीष्टप्रदः परपुरंजयः ॥११३॥
योगसिद्धो महाकायो महावृंदशताधिपः । सर्वज्ञाननिधिः सर्वसिद्धिदानकृतोद्यमः ॥११४॥
इत्यष्टशतनामोवरया मूर्तयो दश दिक्पथि । सम्यग्दशदिशो व्याप्य पालयंतु च मां सदा ॥११५॥
स्वस्थाः सर्वेन्द्रियाः संतु शांतिरस्तु सदा मम । शेषाद्या मूर्तयोऽष्टौ च विक्रमेणैव भास्वराः ॥११६॥
अग्निनिर्ऋतिवाय्वीशकोणगाः पांतु मां सदा । मम सौख्यमसंबाधमारोग्यमपराजयः ॥११७॥
दुःखहानिरविघ्नश्च प्रजावृद्धिः सुखोदयः । वांछाप्तिरतिकल्याणमवैषम्यमनामयम् ॥११८॥
अनालस्यमभीष्टं स्यान्मृत्युहानिर्बलोन्नतिः । भयहानिर्यशः कांतिर्विद्या ऋद्धिर्महाश्रियः ॥११९॥

योगीन्द्र कार्तवीर्य की आज्ञा से मेरे लिये सब काल में सुखदायक हों । कार्तवीर्यार्जुन, धन्वी, राजेन्द्र, हैहयेश्वर, रावणदर्पहन्ता, रेवा में क्रीड़ासक्त, सुदुर्जय, सर्वदाता श्रीमान्, सकलेष्टदायक, कृती, राजचूडामणि, योगी, सप्तद्वीपपति, विजयी, विश्वजित्, वाग्मी, महागति, अलोलुप, यज्वा, विप्रप्रिय, विद्वान् ब्रह्मज्ञेय, सनातन, माहिष्मतीपति, योधा, महाकीर्ति, महाभुज, सुकुमार, महावीर, मारीघ्न, मदिरेक्षण, शत्रुघ्न, शाश्वत, शूर, शंख-भृत्, योगिवल्लभ, महाभागवत, धीमान्, महाभयनाशी, असाध्यशरीर, दिव्य-भाव, व्याप्तजगत्त्रय, जितेन्द्रिय, जितशत्रु, स्वच्छंद, अनंतविक्रम, चक्रभृत्, परचक्रघ्न, संग्रामविधिपूजित, सर्वशास्त्रकलाधारी, वीतराग, लोकवंदित, वीर, विमलसत्त्वसंपन्न, महानल तथा पराक्रमशाली, विजयश्रीविभूषित, मन्त्रनायक, खड्गधारी, कामद, कांत, कालघ्न, कमलेक्षण, भद्रवादप्रिय, वैद्य, विबुध, वरद, वशी, महाधन, निधिपति, महायोगी, गुरुप्रिय, योगसंपन्न, सर्वरोगनाशक, संपूर्ण भूतल पर विराजमान, दिव्यास्त्र धारण करने वाले, अप्रमेयात्मा, सर्वगोप्ता, महोज्ज्वल, सर्वायुधधारी, अभीष्टदायक, शत्रुंजय, योगसिद्ध, महाकाय, सैकड़ों महागणों के स्वामी, सर्वज्ञाननिधि, सकलसिद्धि-दायक---ये एक सौ आठ नामों वाली मूर्तियां दशों दिशाओं को व्याप्त कर सदा मेरा पालन करें ॥९६-११५॥ मेरी समस्त इन्द्रियाँ स्वस्थ हों । मुझे सदा शान्ति मिले । कार्तवीर्य की शेष आदि आठ मूर्तियाँ, जो अत्यन्त चमकती हैं, अग्नि, निर्ऋति, वायु तथा ईशान कोण में मेरी रक्षा करें । मुझे निर्विच्छिन्न सुख, आरोग्य, अपराजय, दुःखहानि, अविघ्न, प्रजावृद्धि, सुखोदय, इच्छाप्राप्ति, अतिकल्याण, अवैषम्य, अनामय, अनालस्य, अभीष्टसिद्धि,

सौकुमार्यमभीप्सितम् ॥१२०॥
अनष्टद्रव्यता चैव नष्टस्य पुनरागमः । दीर्घायुष्यं मनोहर्षः ~~~
अप्रधृष्यतमत्वं च महासामर्थ्यमेव च । संतु मे कार्तवीर्यस्य हैहयेंद्रस्य कीर्तनात् ॥१२१॥
य इदं कार्तवीर्यस्य कवचं पुण्यवर्द्धनम् । सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥१२२॥
सर्वशांतिकरं गुह्यं समस्तभयनाशनम् । विजयार्थप्रदं नृणां सर्वसंपत्प्रदं शुभम् ॥१२३॥
शृणुयाद्वा पठेद्वापि सर्वकामानवाप्नुयात् । चोरैर्हृतं यदा पश्येत्पश्वादिधनमात्मनः ॥१२४॥
सप्तवारं तदा जप्येन्निशि पश्चिमदिङ्मुखः । सप्तरात्रेण लभते नष्टद्रव्यं न संशयः ॥१२५॥
सप्तविंशतिधा जप्त्वा प्राचीदिग्वदनः पुमान् । देवासुरनिभं चापि परचक्रं निवारयेत् ॥१२६॥
विवादे कलहे घोरे पंचधा यः पठेदिदम् । विजयो जायते तस्य न कदाचित्पराजयः ॥१२७॥
सर्वरोगप्रपीडासु त्रेधा वा पंचधा पठेत् । स रोगमृत्युवेतालभूतप्रेतैर्न बाध्यते ॥१२८॥
सम्यग्द्वादशधा रात्रौ प्रजपेद्बंधमुक्तये । त्रिदिनान्निगडाद्बद्धो मुच्यते नात्र संशयः ॥१२९॥
अनेनैव विधानेन सर्वसाधनकर्मणि । असाध्यमपि सप्ताहात्साधयेन्मंत्रवित्तमः ॥१३०॥
यात्राकाले पठित्वेदं मार्गे गच्छति यः पुमान् । न दुष्टचौरव्याघ्राद्यैर्भयं स्यात्परिपंथिभिः ॥१३१॥
जपन्नासेचनं कुर्वञ्जलेनांजलिना तनौ । न चासौ विषकृत्यादिरोगस्फोटैः प्रबाध्यते ॥१३२॥
कार्तवीर्यः खलद्वेषी कृतवीर्यसुतो बली । सहस्रबाहुः शत्रुघ्नो रक्तवासा धनुर्धरः ॥१३३॥
रक्तगंधो रक्तमाल्यो राजा स्मर्तुरभीष्टदः । द्वादशैतानि नामानि कार्तवीर्यस्य यः पठेत् ॥१३४॥
संपदस्तस्य जायंते जनास्तस्य वशे सदा । यः सेवते सदा विप्र श्रीमच्चक्रावतारकम् ॥१३५॥

मृत्युहानि, बलोन्नति, भयहानि, यश, कांति, विद्या, ऋद्धि, महाश्री, अनष्टद्रव्यता, नष्ट द्रव्यों की पुनः प्राप्ति,
दीर्घायु, मन का उल्लास, सौकुमार्य, अधृष्टता और महासामर्थ्य हैहयेन्द्र के कीर्तन से प्राप्त हों ॥११६-१२१॥
जो कोई इस कार्तवीर्य के पुण्यवर्धक, सकलपापनाशक, सर्वोपद्रवध्वंसक, अखिलशांतिकारक, गोपनीय,
समस्तभयनाशन, विजयदायक एवम् निखिलसंपत्तिप्रदायक कवच को सुनेगा या पढ़ेगा, उसकी सकल कामनायें
सफल होंगी। जब चोर पशु, धन आदि चुरा ले तब रात्रि में पश्चिम मुंह होकर सात बार इस कवच का पाठ
करे। सात रात ऐसा करने से अपहृत धन मिल जाता है, इसमें संशय नहीं। यदि मनुष्य पूरब मुंह होकर
सत्ताईस बार इसका पाठ करे तो वह देवासुर के समान भी शत्रुचक्र (संग्राम) निवारण (विजय) कर
सकता है। विवाद तथा कलह में जो इसका पांच बार पाठ करता है; उसकी विजय होती है, कभी भी पराजय
नहीं। जो सब प्रकार के रोगों में तथा कष्टों में तीन बार या पांच बार इसका पाठ करता हो, उसे रोग, मृत्यु,
वेताल, भूत एवम् प्रेतों का भय नहीं होता। बन्धनमोक्ष के लिये रात्रि में अच्छी तरह बारह बार इसका पाठ
करना चाहिए। तीन दिन ऐसा करने से अवश्य बन्धन से छुटकारा मिल जाता है। समस्त साधनाओं में इसी
प्रकार करना चाहिए। उत्तम मन्त्रवेत्ता व्यक्ति ऐसा करके एक ही सप्ताह में असाध्य वस्तु को भी सिद्ध कर
सकता है। जो मनुष्य यात्राकाल में इसका पाठ करके प्रयाण करता है, उसे दुष्ट, चोर, शत्रु एवम् व्याघ्र आदि का
भय नहीं होता। इस कवच को पढ़ कर अंजलि के जल से शरीर को सिक्त करे। ऐसा करने से विष, कृत्या
तथा फोड़े आदि रोग नहीं होते। कार्तवीर्य, दुष्टद्वेषी, कृतवीर्यसुत, बली, सहस्रबाहु, शत्रुघ्न, रक्तवासा, धनुर्धर,
रक्तगंध, रक्तमाल्य, राजा तथा स्मरण करने वालों को अभीष्टदायक इन बारह नामों का जो पाठ करता है,
उसे धन-संपत्ति मिलती है तथा जनता वशीभूत होती है। विप्र! जो व्यक्ति सदा श्रीमान् कार्तवीर्य का सेवन

तस्य रक्षां सदा कुर्याच्चक्रं विष्णोर्महात्मनः । मयैतत्कवचं विप्र दत्तात्रेयान्मुनीश्वरात् ॥१३६॥
श्रुतं तुभ्यं निगदितं धारयस्वाखिलेष्टदम् ॥१३७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे कार्तवीर्यकवचकथनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

कार्तवीर्यस्य कवचं कथितं ते मुनीश्वर । मोहविध्वंसनं जैत्रं मारुतेः कवचं शृणु ॥१॥
यस्य संधारणात्सद्यः सर्वे नश्यंत्युपद्रवाः । भूतप्रेतारिजं दुःखं नाशमेति न संशयः ॥२॥
एकदाहं गतो द्रष्टुं रामं रमयतां वरम् । आनंदवनिकासंस्थं ध्यायंतं स्वात्मनः पदम् ॥३॥
तत्र रामं रमानाथं पूजितं त्रिदशेश्वरैः । नमस्कृत्य तदादिष्टमासनं स्थितवान् पुरः ॥४॥
तत्र सर्वं मया वृत्तं रावणस्य वधांतकम् । पृष्टं प्रोवाच राजेंद्रः श्रीरामः स्वयमादरात् ॥५॥
ततः कथांते भगवान्मारुतेः कवचं ददौ । मह्यं तत्ते प्रवक्ष्यामि न प्रकाश्यं हि कुत्रचित् ॥६॥

करता है, उसकी रक्षा महात्मा विष्णु का चक्र सदा करता है । द्विज ! मैंने इस कवच को मुनीश्वर दत्तात्रेय से सुना था, जिसे तुम्हें बतला दिया । तुम भी इस सकल-कामनादायक कवच का धारण करो ॥१२२-१३७॥

श्रीनारदीय पुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यान युक्त तृतीयपाद में कार्तवीर्यकवच-कथन नामक सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७७॥

अध्याय ७८

हनुमान् का कवच

सनत्कुमार बोले—मुनीश्वर । कार्तवीर्य का कवच तो मैंने सुना दिया । अब हनुमान् का कवच सुनो, जो मोहनाशक तथा विजयदायक है और जिसके धारण करने से शीघ्र ही समस्त उपद्रवों और भूत, प्रेत तथा शत्रुजन्य दुःखों का नाश हो जाता है ॥१-२॥

एक समय रमण करने वालों में श्रेष्ठ राम को देखने के लिए मैं गया । वे आनंदवन में बैठकर अपने लोक (वैकुण्ठ) का स्मरण कर रहे थे । उन देवपूजित रमानाथ राम को प्रणाम कर मैं उनके आदेशानुसार आसनासीन हुआ । तब मैंने रावणवध संबन्धी वृत्तान्त उनसे पूछा । पूछने पर राजशिरोमणि राम ने स्वयं आदरपूर्वक सब कुछ कह सुनाया और कथा के अन्त में मुझे हनुमान् का कवच प्रदान किया । वही कवच मैं तुम्हें बता

भविष्यदेतन्निर्दिष्टं बालभावेन नारद। श्रीरामेणांजनासूनोर्भुक्तिप्रदायकम् ॥७॥
हनुमान् पूर्वतः पातु दक्षिणे पवनात्मजः। पातु प्रतीच्यामक्षघ्नः सौम्ये सागरतारकः ॥८॥
ऊर्द्ध्वं पातु कपिश्रेष्ठः केसरिप्रियनंदनः। अधस्ताद्विष्णुभक्तस्तु पातु मध्ये च पावनिः ॥९॥
लंकाविदाहकः पातु सर्वापद्भ्यो निरंतरम्। सुग्रीवसचिवः पातु मस्तकं वायुनंदनः ॥१०॥
भालं पातु महावीरो भ्रुवोर्मध्ये निरंतरम्। नेत्रे छायापहारी च पातु नः प्लवगेश्वरः ॥११॥
कपोलौ कर्णमूले च पातु श्रीरामकिंकरः। नासाग्रमंजनासूनुः पातु वक्त्रं हरीश्वरः ॥१२॥
पातु कंठे तु दैत्यारिः स्कंधौ पातु सुरारिजित्। भुजौ पातु महातेजाः करौ च चरणायुधः ॥१३॥
नखान्नखायुधः पातु कुक्षौ पातु कपीश्वरः। वक्षो मुद्रापहारी च पातु पार्श्वे भुजायुधः ॥१४॥
लंका निभंजनः पातु पृष्ठदेशे निरंतरम्। नाभिं श्रीरामभक्तस्तु कटिं पात्वनिलात्मजः ॥१५॥
गुह्यं पातु महाप्राज्ञः सक्थिनी अतिथिप्रियः। ऊरू च जानुनी पातु लंकाप्रासादभंजनः ॥१६॥
जंघे पातु कपिश्रेष्ठो गुल्फौ पातु महाबलः। अचलोद्धारकः पातु पादौ भास्करसन्निभः ॥१७॥
अङ्गानि पातु सत्त्वाढ्यः पातु पादांगुलीः सदा। मुखांगानि महाशूरः पातु रोमाणि चात्मवान् ॥१८॥
दिवारात्रौ त्रिलोकेषु सदागतिसुतोऽवतु। स्थितं व्रजंतमासीनं पिबंतं जक्षतं कपिः ॥१९॥
लोकोत्तरगुणः श्रीमान् पातु त्र्यंबकसंभवः। प्रमत्तमप्रमत्तं वा शयानं गहनेऽम्बुनि ॥२०॥
स्थलेंऽतरिक्षे ह्यग्नौ वा पर्वते सागरे द्रुमे। संग्रामे संकटे घोरे विराड्रूपधरोऽवतु ॥२१॥

रहा हूँ। इसे यत्र-तत्र नहीं प्रकाशित करना। नारद! श्रीराम ने हनुमान् के इस भुक्ति-मुक्तिदायक कवच को बालभाव से मुझे बतलाया था ॥३-७॥ (यह इस तरह है—)

"पूर्व दिशा में हनुमान् मेरी रक्षा करें। दक्षिण में पवनात्मज रक्षा करें। पश्चिम में अक्षघ्न और उत्तर में समुद्रतारक रक्षा करें। ऊपर कपिश्रेष्ठ केसरीप्रियनंदन, नीचे विष्णुभक्त, मध्य में पवनसुत और समस्त आपत्तियों से लंकादाहक सदा मेरी रक्षा करें। सुग्रीवसचिव मेरे मस्तक की रक्षा करें। वायुनंदन भाल की और महावीर भौंहों के बीच की निरंतर रूप से रक्षा करें। छाया हरण करने वाले नेत्रों को, कपीश्वर कपोलों की और श्रीरामकिंकर कर्णमूल की रक्षा करें। अंजनीपुत्र नाक के अग्रभाग की तथा हरीश्वर मुख की रक्षा करें। दैत्यारि कण्ठ की और सुरारिजित् स्कंधों की रक्षा करें। महतेजा बाँहों की और चरणायुध हाथों की रक्षा करें। नखायुध नखों की और कपीश्वर पेट की रक्षा करें। मुद्रापहारी छाती की और भुजायुध पार्श्व की रक्षा करें। लंका के विध्वंसक मेरे पृष्ठदेश की निरन्तर रूप से रक्षा करें। श्रीरामभक्त नाभि की और अनिलात्मज कमर की रक्षा करें ॥८-१५॥ गुह्य की रक्षा महाप्राज्ञ करें और हड्डियों की अतिथिप्रिय। लंका के भवनों को नष्ट करने वाले ऊरुओं तथा जानुओं की रक्षा करें। कपिश्रेष्ठ जंघाओं की और महाबल गुल्फों (घुटने) की रक्षा करें। पर्वतोद्धारक चरणों की और सूर्यतुल्य अंगों की रक्षा करें। सत्त्वाढ्य अंगुलियों की सदा रक्षा करें और मुखांगों की महाशूर तथा आत्मवान् रोमों की रक्षा करें। त्रिलोकी में सदा गमन करने वाले वायु के पुत्र दिन-रात मेरी रक्षा करें। उठते, बैठते, चलते, पीते और खाते कपि मेरी रक्षा करें। प्रमत्त या अप्रमत्त होते हुए, अथाह जल में डूबते हुए मुझे लोकोत्तर गुण वाले और शंकर से उत्पन्न होने वाले श्रीमान् हनुमान् बचायें। स्थल पर, अन्तरिक्ष में, अग्नि में, पर्वत पर, सागर में, वृक्ष पर, संग्राम में तथा घोर संकट में विराट्रूपधारी मेरी रक्षा

डाकिनीशाकिनीमारीकालरात्रिमरीचिकाः । शयानं मां विभुः पातु पिशाचोरगराक्षसीः ॥२२॥
दिव्यदेहधरो धीमान्सर्वसत्त्वभयंकरः । साधकेंद्रावनः शश्वत्पातु सर्वत एव माम् ॥२३॥
यद्रूपं भीषणं दृष्ट्वा पलायंते भयानकाः । स सर्वरूपः सर्वज्ञः सृष्टिस्थितिकरोऽवतु ॥२४॥
स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः साक्षाद्देवो महेश्वरः । सूर्यमंडलगः श्रीदः पातु कालत्रयेऽपि माम् ॥२५॥
यस्य शब्दमुपाकर्ण्य दैत्यदानवराक्षसाः । देवा मनुष्यास्तिर्यंचः स्थावरा जङ्गमास्तथा ॥२६॥
सभया भयनिर्मक्ता भवंति स्वकुलानुगाः । यस्यानेककथाः पुण्याः श्रूयंते प्रतिकल्पके ॥२७॥
सोऽवतात्साधकश्रेष्ठं सदा रामपरायणः । वैधात्रधातृप्रभृति यत्किंचिद्दृश्यतेऽत्यलम् ॥२८॥
विद्धि व्याप्तं यथा कीशरूपेणानंजनेन तत् । यो विभुः सोऽहमेषोऽहं स्वीयः स्वयमणुर्बृहत् ॥२९॥
ऋग्यजुः सामरूपश्च प्रणवस्त्रिवृदध्वरः । तस्मै स्वस्मै च सर्वस्मै नतोऽस्म्यात्मसमाधिना ॥३०॥
अनेकानन्तब्रह्माण्डधृते ब्रह्मस्वरूपिणे । समीरणात्मने तस्मै नतोऽस्म्यात्मस्वरूपिणे ॥३१॥
नमो हनुमते तस्मै नमो मारुतसूनवे । नमः श्रीरामभक्ताय श्यामाय महते नमः ॥३२॥
नमो वानरवीराय सुग्रीवसख्यकारिणे । लंकाविदहनायाथ महासागरतारिणे ॥३३॥
सीताशोकविनाशाय राममुद्राधराय च । रावणांतनिदानाय नमः सर्वोत्तरात्मने ॥३४॥
मेघनादमखध्वंसकारणाय नमोनमः । अशोकवनविध्वंसकारिणे जयदायिने ॥३५॥
वायुपुत्राय वीराय आकाशोदरगामिने । वनपालशिरश्छेत्रे लंकाप्रासादभंजिने ॥३६॥
ज्वलत्कांचनवर्णाय दीर्घलांगूलधारिणे । सौमित्रिजयदात्रे च रामदूताय ते नमः ॥३७॥
अक्षस्य वधकर्त्रे च ब्रह्मशस्त्रनिवारिणे । लक्ष्मणांगमहाशक्तिजातक्षतविनाशिने ॥३८॥

करें। डाकिनी, शाकिनी, कालरात्रि, मरीचिका, पिशाच, सर्प तथा राक्षसी से विभु मेरी रक्षा करें ॥१९-२२॥ दिव्यदेहधारी, साधकरक्षक, धीमान् तथा समस्त जीवों के लिये भयंकर विभु सदा सब प्रकार से मेरी रक्षा करें। जिनके भीषण रूप को देख कर भयानक जीव भाग जाते हैं, वे सर्वरूप, सर्वज्ञ तथा सृष्टि-स्थितिकारी मेरी रक्षा करें। स्वयं ब्रह्मा, स्वयं विष्णु, साक्षात् महेश्वर, सूर्यमण्डलगामी तथा श्रीदायक तीनों काल में मेरी रक्षा करें। जिनके शब्द सुनकर दैत्य, दानव, राक्षस, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर एवम् जंगम भयभीत हो जाते हैं; भक्तगणों का भय दूर हो जाता है और प्रतिकल्प में जिनकी अनेक पवित्र कथायें सुनी जाती हैं, वे रामपरायण देव सदा उत्तमसाधक की रक्षा करें। धाता, विधाता आदि जो कुछ देखे जाते हैं, वे कीशरूप अंजनिपुत्र से व्याप्त हैं। जो परमात्मा हैं, वही मैं हूँ और वही हनुमान् हैं। ये सूक्ष्म एवम् महान् भी हैं। ऋक्, यजु, प्रणव, त्रिवृत् एवम् यज्ञ इनका रूप है। इनको, अपने को तथा सबको मैं आत्मसमाधि रूप से प्रणाम करता हूँ ॥२३-३०॥ अनेक एवम् अनंत ब्रह्मांडधारी, ब्रह्मरूपी तथा आत्मस्वरूपी पवनपुत्र को प्रणाम है। हनुमान् को नमस्कार है। वायुसुत को नमस्कार है। वानरवीर तथा सुग्रीव को मित्रता करा देने वाले को नमस्कार है। लंकादाह करने वाले, महासागर लांघने वाले, सीता का शोक हरने वाले, राम की मुद्रिका धारण करने वाले, रावण के नाश का कारण होने वाले और सर्वश्रेष्ठात्मा कहलाने वाले को नमस्कार है। मेघनाद के यज्ञ को ध्वस्त करने वाले को नमस्कार है। अशोक वन को उजाड़ने वाले, जयदायी, वायुपुत्र, वीर, आकाशगामी, वनरक्षकों के शिर फोड़ने वाले, लंका के भवनों को विनष्ट करने वाले, जाज्वल्यमान सुवर्ण के समान कान्ति वाले, लम्बी पूँछ वाले, लक्ष्मण को विजय दिलाने वाले, रामदूत को नमस्कार है ॥३१-३७॥ अक्षयकुमार का वध करने वाले, ब्रह्मशस्त्र का निवारण करने वाले, लक्ष्मण के

रक्षोघ्नाय रिपुघ्नाय भूतघ्नाय नमो नमः । ऋक्षवानरवीरौघप्रासादाय नमो नमः ॥३९॥
परसैन्यबलघ्नाय शस्त्रास्त्रघ्नाय ते नमः । विषघ्नाय द्विषघ्नाय भयघ्नाय नमो नमः ॥४०॥
महारिपुभयघ्नाय भक्तत्राणैककारिणे । परप्रेरितमन्त्राणां मंत्राणां स्तंभकारिणे ॥४१॥
पयःपाषाणतरणकारणाय नमो नमः । बालार्कमंडलग्रासकारिणे दुःखहारिणे ॥४२॥
नखायुधाय भीमाय दन्तायुधधराय च । विहंगमाय शर्वाय वज्रदेहाय ते नमः ॥४३॥
प्रतिग्रामस्थितायाथ भूतप्रेतवधार्थिने । करस्थशैलशस्त्राय रामशस्त्राय ते नमः ॥४४॥
कौपीनवाससे तुभ्यं रामभक्तिरताय च । दक्षिणाशाभास्कराय सतां चन्द्रोदयात्मने ॥४५॥
कृत्याक्षतव्यथाघ्नाय सर्वक्लेशहराय च । सर्वाग्निव्याधिसंस्तंभकारिणे भयहारिणे ॥४६॥
भक्तानां दिव्यवादेषु संग्रामे जयकारिणे । किल्किलाबुबुकाराय घोरशब्दकराय च ॥४७॥
स्वाम्याज्ञापार्थसंग्रामसख्यसंजयकारिणे । सदा वनफलाहारसंतृप्ताय विशेषतः ॥४८॥
महार्णवशिलाबद्धसेतुबंधाय ते नमः । इत्येतत्कथितं विप्र मारुतेः कवचं शिवम् ॥४९॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं रक्षणीयं प्रयत्नतः । अष्टगंधैर्विलिख्याथ कवचं धारयेत्तु यः ॥५०॥
कंठे वा दक्षिणे बाहौ जयस्तस्य पदे पदे । किं पुनर्बहुनोक्तेन साधितं लक्षमादरात् ॥५१॥
प्रजप्तमेतत्कवचमसाध्यं चापि साधयेत् ॥५२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे हनुमत्कवचनिरूपणं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

अंगों में महाशक्ति-प्रहार-जन्य व्रणों को छुड़ाने वाले, राक्षसों को मारने वाले, शत्रुओं को मारने वाले तथा भूतों के निहन्ता को नमस्कार है । रीछों, वानरों तथा वीरों के समूह को प्रसन्न करने वाले, शत्रुसेना का नाश करने वाले तथा शस्त्रास्त्रों के विध्वंसक को नमस्कार है । विषघ्न, शत्रुघ्न तथा भयघ्न को नमस्कार है । महाशत्रु के भय से मुक्त कराने वाले, भक्तों का त्राण करने वाले, शत्रुप्रेरित मन्त्रों का स्तंभन करने वाले और जल पर पाषाणों को तैराने वाले को नमस्कार है । बालसूर्यमण्डल का ग्रास करने वाले, दुःख हरने वाले, नख रूप आयुध वाले, भयंकर, दन्त रूप आयुधधारी, विहंगमरूप, शिवरूप तथा वज्रदेह को नमस्कार है ॥३८-४३॥ प्रत्येक गाँव में रहने वाले, भूत-प्रेतों का वध करने वाले, हाथों में पर्वत तथा शस्त्र धारण करने वाले, राम के शस्त्ररूप, कौपीन-धारी, रामभक्ति-निरत, दक्षिणदिशाभास्कर और सज्जनों के लिये चन्द्ररूप को नमस्कार है । कृत्याकृत व्रणों की व्यथा को हरने वाले, समस्त क्लेशों का नाश करने वाले, स्वामी की आज्ञा से अर्जुन के साथ संग्राम तथा मित्रता करने वाले, भक्तों को महाविवाद तथा रण में विजय दिलाने वाले, किलकिलाहट का शब्द करने वाले, घोर शब्द करने वाले, सकल अग्नियों एवम् व्याधियों का स्तम्भन करने वाले, भयहारी, सदा वनीय फलों के आहार से संतृप्त होने वाले, महासागर में शिलाखण्डों से सेतु बाँधने वाले को नमस्कार है ।" विप्र ! यह हनुमान् का पवित्र कवच मैंने बतला दिया ॥४४-४९॥ इसे जिस किसी को नहीं देना, यत्नपूर्वक रक्षा करना । जो मनुष्य अष्टगन्धों से इस कवच को लिखकर कंठ या दक्षिण बाहु में धारण करता है, उसकी विजय पग-पग पर होती है । बहुत कहने से क्या लाभ ? जो इस कवच का लाख बार पाठ करता है, वह असाध्य को भी सिद्ध कर लेता है ॥५०-५२॥

श्रीनारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यान युक्त तृतीयपाद में हनुमत्कवचनिरूपण नामक अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७८॥

अथ एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

अथापरं वायुसूनोश्चरितं पापनाशनम् । यदुक्तं स्वामु रामेण आनन्दवनवासिना ॥१॥
सद्योजाते महाकल्पे श्रुतवीर्ये हनूमति । मम श्रीरामचन्द्रस्य भक्तिरस्तु सदैव हि ॥२॥
शृणुष्व गदतो मत्तः कुमारस्य कुमारक । चरितं सर्वपापघ्नं शृण्वतां पठतां सदा ॥३॥
वांछाम्यहं सदा विप्र संगमं कीशरूपिणा । रहस्यं रहसि स्वस्य ममानन्दवनोत्तमे ॥४॥
परीतेऽत्र सखायो मे सख्यश्च विगतज्वराः । क्रीडंति सर्वदा चात्र प्राकट्येऽपि रहस्यपि ॥५॥
कस्मिंश्चिदवतारे तु यद्वृत्तं च रहो मम । तदत्र प्रकटं तुभ्यं करोमि प्रीतमानसः ॥६॥
आविर्भूतोऽस्म्यहं पूर्वं राज्ञो दशरथक्षये । चतुर्व्यूहात्मकस्तत्र तस्य भार्यात्रये मुने ॥७॥
ततः कतिपयैरब्दैरागतो द्विजपुंगवः । विश्वामित्रोऽर्थयामास पितरं मम भूपतिम् ॥८॥
यज्ञरक्षोविघातार्थं लक्ष्मणेन सहैव माम् । प्रेषयामास धर्मात्मा सिद्धाश्रममरण्यकम् ॥९॥
तत्र गत्वाश्रममृषेर्दूषयन्तौ निशाचरौ । ध्वस्तौ सुबाहुमारीचौ प्रसन्नोऽभूत्तदा मुनिः ॥१०॥
अस्त्रग्रामं ददौ मह्यं मासं चावासयत्तथा । ततो गाधिसुतो धीमान् ज्ञात्वा भाव्यर्थमादरात् ॥११॥
मिथिलामनयत्तत्र रौद्रं चादर्शयद्धनुः । तस्य कन्यां पणीभूतां सीतां सुरसुतोपमाम ॥१२॥

अध्याय ७९

हनुमान का चरित्र-वर्णन

सनत्कुमार बोले--अब हनुमान् का दूसरा पापनाशन चरित्र सुनो , जिसे आनन्दवनवासी राम ने मुझसे कहा था ।

राम ने कहा--"कुमार ! महाकल्प में सद्य: उत्पन्न होने वाले अति पराक्रमी हनुमान् में सदा मेरी भक्ति रहे। मैं हनुमान् का चरित्र वर्णन करता हूँ । जो इस चरित्र को सुनेगा या पढ़ेगा उसके सकल पाप नष्ट हो जायेंगे । विप्र ! मैं तो सदा पवननन्दन का साथ चाहता हूँ । मेरे इस उत्तम आनन्दवन में वे गुप्त रूप से रहते हैं। यहाँ उनके अतिरिक्त भी मेरे कतिपय सखा और सखियाँ प्रकट रूप से या गुप्त रूप से क्रीड़ा करती रहती हैं। किसी अवतार में जो मेरा रहस्यमय वृत्तान्त हुआ था, उसे मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें सुना देता हूँ ॥ १—६॥

पूर्व समय में राजा दशरथ की तीन रानियों से चतुर्व्यूह (राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न) रूप में अवतीर्ण हुआ । कुछ वर्षों के बाद द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्र ने आकर मेरे पिता से मुझे माँगा । तब धर्मात्मा भूपति ने लक्ष्मण सहित मुझे सिद्धाश्रम को भेज दिया । वहाँ मुनि के आश्रम में पहुँचकर सुबाहु और मारीच नामक दो उपद्रवी निशाचरों को मैंने मारा । इससे प्रसन्न होकर मुनि ने मुझे बहुत से अस्त्र-शस्त्र दिये तथा एक मास तक अपने ही आश्रम में रखा । अनन्तर भावी वृत्तान्त को जान कर श्रीमान् विश्वामित्र आदरपूर्वक मुझे मिथिला ले आये और शिवधनुष को दिखला दिया । धनुष को तोड़कर मैंने माननीय जनक की देवकन्यातुल्य पुत्री सीता

धनुर्विभज्य समिति लब्धवान्मानिनोऽस्य च । ततो मार्ग भृगुपतेर्दर्पमूढं चिरं स्मयन् ॥१३॥
व्यपनीयागमं पश्चादयोध्यां स्वपितुः पुरीम् । ततो राज्ञाहमाज्ञाय प्रजाशीलनमानसः ॥१४॥
यौवराज्ये स्वयं प्रीत्या सम्मंत्र्याप्तैर्विकल्पितः । तच्छ्रुत्वा सुप्रिया भार्या कैकयी भूपतिं मने ॥१५॥
देवकार्यविधानार्थं विदूषितमतिर्जगौ । पुत्रो मे भरतो नाम यौवराज्येऽभिषिच्यताम् ॥१६॥
रामश्चतुर्दशसमा दंडकान्प्रविवास्यताम् । तदाकर्ण्याहमुद्युक्तोऽरण्यं भार्यानुजान्वितः ॥१७॥
गंतुं नृपतिनानुक्तोऽप्यगमं चित्रकूटकम् । । तत्र नित्यं वन्यफलैर्मांसैश्चावर्तितक्रियः ॥१८॥
निवसन्नेव राज्ञस्तु निधनं चाप्यवागमम् । ततो भरतशत्रुघ्नौ भ्रातरौ मम मानदौ ॥१९॥
मातृवर्गयुतौ दीनौ साचार्यामात्यनागरौ । व्यजिज्ञपतमागत्य पंचवट्यां निजाश्रमम् ॥२०॥
अकल्पयं भ्रातृभार्यासहितश्च त्रिवत्सरम् । ततस्त्रयोदशे वर्षे रावणो नाम राक्षसः ॥२१॥
मायया हृतवान्सीतां प्रियां मम परोक्षतः । ततोऽहं दीनवदन ऋष्यमूकं हि पर्वतम् ॥२२॥
भार्यामन्वेषयन्प्राप्तः सख्यं हर्यधिपेन च । अथ वालिनमाहत्य सुग्रीवस्तत्पदे कृतः ॥२३॥
सह वानरयूथैश्च साहाय्यं कृतवान्मम । विरुध्य रावणेनालं मम भक्तो विभीषणः ॥२४॥
आगतो ह्यभिषिच्याशु लंकेशो हि विकल्पितः । हत्वा तु रावणं संख्ये सपुत्रामात्यबांधवम् ॥२५॥
सीतामादाय संशुद्धामयोध्यां समुपागतः । ततः कालांतरे विप्र सुग्रीवश्च विभीषणः ॥२६॥
निर्मंत्रितौ पितुः श्राद्धे षट्कुलाश्च द्विजोत्तमाः । अयोध्यायां समाजग्मुस्ते तु सर्वे निर्मंत्रिताः ॥२७॥
ऋते विभीषणं तत्र चिंतयाने रघूत्तमे । शंभुर्ब्राह्मणरूपेण षट्कुलैश्च सहागतः ॥२८॥
अथ पृष्टो मया शंभुर्विभीषणसमागमे । नीत्वा मां द्रविडे देशे मोचय द्विजबंधनात् ॥२९॥

से जिसके लिये प्रण किया गया था, विवाह किया। मार्ग में परशुराम के दर्प को चूर करते हुए अपने पिता की राजधानी अयोध्या पहुँचा। तब मुझ पर प्रजा अनुरक्त रहती थी, यह जान कर पिता ने मंत्रियों से सलाह लेकर मेरा राज्याभिषेक करना चाहा। किन्तु उनकी अत्यन्त प्रिय भार्या कैकेयी, जिसकी बुद्धि को देवताओं ने स्वकार्य-संपादन के लिये भ्रष्ट कर दिया था, राजा के समीप जाकर कहने लगी—मेरे पुत्र भरत को युवराज के पद पर अभिषिक्त कीजिये और राम को चौदह वर्ष का वनवास दीजिये।" यह सुनकर पिता के न कहने पर मैंने स्त्री तथा अनुज सहित चित्रकूट को चल दिया। वहाँ पहुँच कर वन्य फल तथा मांस से जीवन निर्वाह करते हुए हम रहने लगे। इसी समय मेरे पिता का भी देहान्त हो गया ॥७-१८½॥ तब मेरे मनस्वी दो भाई भरत और शत्रूघ्न ने मातृसमूह, आचार्य, मन्त्री तथा नागरिकों के साथ पंचवटी में मेरे आश्रम पर आकर सब समाचार सुनाया (अर्थात् अयोध्या लौट चलने के लिये मुझसे प्रार्थना की; किन्तु मैंने उन्हीं को समझा-बुझा लौटा दिया)। अनन्तर अनुज तथा स्त्री के साथ तीन वर्षों तक वहाँ रहा। तेरहवें वर्ष में रावण नामक राक्षस ने मेरी प्रिया सीता को मेरे परोक्ष में माया से हर लिया। तब मैं दीन वदन होकर प्रियतमा को ढूंढते हुए ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचा। वहाँ वानराधीश सुग्रीव से मित्रता कर बाली को मारा और सुग्रीव को उसके पद पर प्रतिष्ठित किया। फिर संग्राम में पुत्र, अमात्य तथा बांधव सहित रावण को मारकर अग्निपरीक्षा से शुद्ध की हुई सीता को लेकर अयोध्या आया। विप्र! वहाँ कुछ दिनों के उपरान्त सुग्रीव, विभीषण तथा अपने छह कुलों को पिता के श्राद्ध में निर्मंत्रित किया। उस श्राद्ध में एक विभीषण को छोड़कर सब आये ॥१९-२७½॥ ब्राह्मण का रूप धारण कर शंकर भी छह कुलों के साथ आये। जब मैंने विभीषण के आने के बारे में शंकर से पूछा तब उन्होंने कहा,

मया निमंत्रिताः श्राद्धे ह्यगस्त्याद्या मुनीश्वराः । संभोजितास्तु प्रययुः स्वस्वमाश्रममंडलम् ॥३०॥
ततः कालांतरे विप्रा देवा दैत्या नरेश्वराः । गौतमेन समाहूताः सर्वे यज्ञसभाजिताः ॥३१॥
ते सर्वे स्फाटिकं लिंगं त्र्यंबकाद्रौ निवेशितम् । संपूज्य न्यवसंस्तत्र देवदैत्यनृपाग्रजाः ॥३२॥
तस्मिन्समाजे वितते सर्वैर्लिंगे समर्चिते । गौतमोऽप्यथ मध्याह्ने पूजयामास शंकरम् ॥३३॥
सर्वे शुक्लांबरधरा भस्मोद्धूलितविग्रहाः । सितेन भस्मना कृत्वा सर्वस्थाने त्रिपुंड्रकम् ॥३४॥
नत्वा तु भार्गवं सर्वे भूतशुद्धिं प्रचक्रमुः । हृत्पद्ममध्ये सुषिरं तत्रैव भूतपञ्चकम् ॥३५॥
तेषां मध्ये महाकाशमाकाशे निर्मलामलम । तन्मध्ये च महेशानं ध्यायेद्दीप्तिमयं शुभम् ॥३६॥
अज्ञानसंयुतं भूतं समलं कर्मसंगतः । तं देहमाकाशदीपे प्रदहेज्ज्ञानवह्निना ॥३७॥
आकाशस्यावृतिं चाहं दग्ध्वाकाशमथो दहेत् । दग्ध्वाकाशमथो वायुमग्निभूतं तथा दहेत् ॥३८॥
अब्भूतं च ततो दग्ध्वा पृथिवीभूतमेव च । तदाश्रितान्गुणान्दग्ध्वा ततो देहं प्रदाहयेत् ॥३९॥
एवं प्रदग्ध्वा भूतादिं देही तज्ज्ञानवह्निना । शिखामध्यस्थितं विष्णुमानंदरसनिर्भरम ॥४०॥
निष्पन्नचंद्रकिरणसंकाशकिरणं शिवम् । शिवांगोत्पन्नकिरणैरमृतद्रवसंयुतैः ॥४१॥
सुशीतला ततो ज्वाला प्रशांता चंद्ररश्मिवत् । प्रसारितसुधारश्मिः सांद्रीभूतश्च संप्लवः
अनेन प्लावितं भूतग्रामं संचिंतयेत्परम् ॥४२॥

इत्थं कृत्वा भतशुद्धिं क्रियार्हो मर्त्यः शुद्धो जायते ह्येव सद्यः ।
पूजां कर्तुं जप्यकर्मापि पश्चादेवं ध्यायेद्ब्रह्महत्यादिशुद्ध्यै ॥४३॥

मुझे द्रविड़ देश में ले जाकर द्विज-बंधन से मुक्त कीजिये। पश्चात् श्राद्ध में निमन्त्रित अगस्त्य आदि मुनिवर अच्छी तरह भोजन करके अपने-अपने आश्रम को गये ॥२८-३०॥

पुनः कुछ काल के उपरान्त गौतम ने यज्ञ समारोह में ब्राह्मण, देवता, दैत्य, राजा आदि सबको बुलाया। सबों ने कैलास पर्वत पर स्फटिकमय शिवलिंग की प्रतिष्ठा कर उनकी पूजा की। देव, दैत्य तथा राजशिरोमणियों ने जब लिंग की अर्चना कर ली तब मध्याह्न में गौतम ने भी शंकर की आराधना की। समस्त उपासक श्वेत वस्त्र पहने, संपूर्ण शरीर में भस्म रमाये और सब स्थानों में उज्ज्वल भस्म का त्रिपुण्ड लगाये हुए थे। सब ने शिव को प्रणाम कर भूतशुद्धि क्रिया की।

वह क्रिया इस तरह की जाती है कि हृत्पद्म के मध्य में सुषिर (छिद्र) तथा उस सुषिर के मध्य में पंच महाभूतों का ध्यान करे ॥३१-३५॥ महाभूतों के मध्य में महाकाश, आकाश में प्रकाश और प्रकाश में देदीप्यमान शुभमूर्ति महेश का संस्मरण करे। अज्ञान से संपृक्त भूत समल है। इससे कर्म का संयोग होने पर शरीर बनता है। उस शरीर को ज्ञानाग्नि के द्वारा आकाश दीप में जलाये। फिर आकाश के आवरण को जलाकर आकाश को जलाये। फिर वायु, अग्नि, पृथिवि तथा तदाश्रित गुणों को देह को जलाये। इस प्रकार भूतादि को ज्ञानग्नि से जलाकर देही शिखामध्यस्थित विष्णु तथा शिव का इस प्रकार ध्यान करे कि विष्णु आनन्द स्वरूप हैं और शिव चंद्रकिरण के समान शीतल तथा धवल हैं। शिव के अंगोत्पन्न किरणों से जो अमृत टपकाती है, चन्द्ररश्मि की तरह प्रशांत ज्वाला निकलती है। उससे अमृत की सघन वर्षा होती है, जिससे भूतसमूह आप्लावित हो जाता है ॥३६-४२॥ इस तरह भूतशुद्धि क्रिया करने से मनुष्य शुद्ध हो जाता है। ब्रह्महत्या आदि दोष निवारण के लिये भी भूतशुद्धि करनी चाहिये। इसे कर लेने के बाद ही पूजा, जप, ध्यान आदि करे।

एवं ध्यात्वा चंद्रदीप्तिप्रकाशं ध्यानेनारोप्याशु लिंगे शिवस्य ।
सदाशिवं दीपमध्ये विचिंत्य पञ्चाक्षरेणार्चनमव्ययं तु ॥४४॥
आवाहनादीनुपचारांस्तथापि कृत्वा स्नानं पूर्ववच्छंकरस्य ।
औदुम्बरं राजतं स्वर्णपीठं वस्त्रादिच्छन्नं सर्वमेवेह पीठम् ॥४५॥
अंते कृत्वा बुद्बुदाभ्यां च सृष्टिं पीठे पीठे नागमेकं पुरस्तात् ।
कुर्यात्पीठे चोर्ध्वके नागयुग्मं देवाभ्याशे दक्षिणे वामतश्च ॥४६॥
जपापुष्पं नागमध्ये निधाय मध्ये वस्त्रं द्वादशप्रातिगुण्ये ।
सुश्वेतेन तस्य मध्ये महेशं लिंगाकारं पीठयुक्तं प्रपूज्यम् ॥४७॥
एवं कृत्वा साधकास्ते तु सर्वे दत्त्वा दत्त्वा पंचगंधाष्टगंधम् ।
पुष्पैः पत्रैः श्रीतिलैरक्षतैश्चतिलोन्मिश्रैः केवलैश्च प्रपूज्य ॥४८॥
धूपं दत्त्वा विधिसंप्रयुक्तं दीपं दत्त्वा चोक्तमेवोपहारम् ।
पूजाशेषं ते समाप्याथ सर्वे गीतं नृत्यं तत्र तत्रापि चक्रुः ॥४९॥
कालेचास्मिन् सुव्रते गौतमस्य शिष्यः प्राप्तः शंकरात्मेति नाम्ना ॥५०॥
उन्मत्तवेषो दिग्वासा अनेकां वृत्तिमास्थितः । क्वचिद्द्विजातिप्रवरः क्वचिच्चंडालसन्निभः ॥५१॥
क्वचिच्छूद्रसमो योगी तापसः क्वचिदप्युत । गर्जत्युत्पतते चैव नृत्यति स्तौति गायति ॥५२॥
रोदिति शृणुतेऽत्युक्तं पतत्युत्तिष्ठति क्वचित् । शिवज्ञानैकसंपन्नः परमानंदनिर्भरः ॥५३॥
संप्राप्तो भोज्यवेलायां गौतमस्यांतिकं ययौ । बुभुजे गुरुणा साकं क्वचिदुच्छिष्टमेव च ॥५४॥
क्वचिल्लिहति तत्पात्रं तूष्णीमेवाभ्यगात्क्वचित् । हस्तं गृहीत्वैव गुरोः स्वयमेवाभुनक्क्वचित् ॥५५॥

भूत शुद्धि करने के उपरान्त गौतम प्रभृति साधकों ने ध्यान से उस शिवलिंग में चंद्रिका की तरह प्रकाश को अधिष्ठित किया। फिर दीप मध्य में सदाशिव का ध्यान कर पंचाक्षर मन्त्र से उन अव्यय शिव की अर्चना की। आवाहन, स्नान आदि उपचारों से उनका पूजन कर गूलर की लकड़ी, चांदी तथा सोने के बने पीठों पर, जो वस्त्र आदि से आवृत थे, उन्हें स्थापित किया। अंत में बुलबुलों से सृष्टि करके प्रत्येक पीठ पर एक-एक नाग की स्थापना की। पीठ के ऊपर तथा शंकर के दक्षिण एवम् वाम पार्श्व में दो-दो नागों की स्थापना कर नागों के मध्य में जपापुष्प तथा बारह श्वेत वस्त्रों को रखा। उनके मध्य में समस्त साधकों ने पंच गंध, अष्टगंध, पुष्प, पत्र, श्रीतिल तथा तिलमिश्रित अक्षतों से शिव की समर्चना कर विधिवत् धूप, दीप तथा उपहार समर्पित किया। पूजनसमाप्ति के बाद उन लोगो ने वहां नृत्य गीत भी किया ॥४३-४९॥

उस महोत्सव में शंकरात्मा नामक गौतम के शिष्य वहां आ पहुंचे। उनका वेष उन्मत्त का-सा था। वे दिगम्बर थे। उनकी वृत्तियां अनेक प्रकार की थीं। कहीं तो वे उत्तम ब्राह्मण के रूप में रहते थे, कहीं चांडाल के रूप में, कहीं शूद्र, कहीं योगी और कहीं तपस्वी के रूप में उनकी स्थिति होति थी। वह कहीं गरजते, कहीं कूदते, कहीं नाचते, कहीं स्तुति करते, कहीं गाते, कहीं रोते, कहीं स्पष्ट सुनते, कहीं गिरते और कहीं उठते थे। भोजन करने के समय वे गौतम के समीप चले जाते थे। कभी गुरु के साथ भोजन करते तो कभी उच्छिष्ट खा लेते थे। कभी बरतन को जीभ से चाट लेते तो कहीं चुपचाप उठ कर भाग जाते थे। कभी गुरु के हाथ से, कभी स्वयं अपने हाथ से खाते थे। कभी वे घर के अन्दर ही मूत्र त्याग देते तो कभी शरीर में कीचड़ लेप लेते थे।

क्वचिद् गृहांतरे मूत्रं क्वचित्कर्दमलेपनम् । सर्वदा तं गुरुर्दृष्ट्वा करमालंब्य मंदिरम् ॥५६॥
प्रविश्य स्वीयपीठे तमुपवेश्याप्यभोजयत् । स्वयं तदस्य पात्रेण बुभुजे गौतमो मुनिः ॥५७॥
तस्य चित्तं परिज्ञातुं कदाचिदथ सुंदरी । अहल्या शिष्यमाहूय भुङ्क्ष्वेति प्राह तं मुदा
निर्दिष्टो गुरुपत्न्या तु बुभुजे सोऽविशेषतः ॥५८॥
यथा पपौ हि पानीयं तथा वह्निमपि द्विज । कंटकानन्नवद्भुक्त्वा यथापूर्वमतिष्ठत ॥५९॥
पुरो हि मुनिकन्याभिराहूतो भोजनाय च । दिने दिने तत्प्रदत्तं लोष्टमंबु च गोमयम् ॥६०॥
कर्दमं काष्ठदंडं च भुक्त्वा पीत्वाथ हर्षितः । एतादृशो मुनिरसौ चंडालसदृशाकृतिः ॥६१॥
सुजीर्णोपानहौ हस्ते गृहीत्वा प्रलपन्हसन् । अंत्यजोचितवेषश्च वृषपर्वाणमभ्यगात् ॥६२॥
वृषपर्वेशयोर्मध्ये दिग्वासाः समतिष्ठत । वृषपर्वा तमज्ञात्वा पीडयित्वा शिरोऽच्छिनत् ॥६३॥
हते तस्मिन्द्विजश्रेष्ठे जगदेतच्चराचरम् । अतीव कलुषं ह्यासीत्तत्रस्था मुनयस्तथा ॥६४॥
गौतमस्य महाशोकः संजातः सुमहात्मनः । निर्ययौ चक्षुषो वारि शोकं संदर्शयन्निव ॥६५॥
गौतमः सर्वदैत्यानां सन्निधौ वाक्यमुक्तवान् । किमनेन कृतं पापं येन छिन्नमिदं शिरः ॥६६॥
मम प्राणाधिकस्येह सर्वदा शिवयोगिनः । ममापि मरणं सत्यं शिष्यच्छद्मा यतो गुरुः ॥६७॥
शैवानां धर्मयुक्तानां सर्वदा शिववर्तिनाम् । मरणं यत्र दृष्टं स्यात्तत्र नो मरणं ध्रुवम् ॥६८॥
तच्छ्रुत्वा ह्यसुराचार्यः शुक्रः प्राह विदांवरः । एनं संजीवयिष्यामि भार्गवं शंकरप्रियम् ॥६९॥
किमर्थं म्रियते ब्रह्मन्पश्य मे तपसो बलम् । इति वादिनि विप्रेंद्रे गौतमोऽपि ममार ह ॥७०॥
तस्मिन्मृतेऽथ शुक्रोऽपि प्राणांस्तत्याज योगतः । तस्यैवं हृतिमाज्ञाय प्रह्लादाद्या दितीश्वराः ॥७१॥

गुरु उनका हाथ पकड़ कर अपने घर ले जाते। और अपने आसन पर बैठा कर भोजन कराते थे। गौतममुनि स्वयं भी उन्हीं के पात्र में खाने लगते थे ॥५०-५७॥ किसी समय शंकरात्मा के चित्त की परीक्षा करने के लिये सुन्दरी अहिल्या ने हर्षपूर्वक उनसे कहा—'तुम मेरे साथ भोजन करो'। गुरुपत्नी के ऐसा कहने पर बिना 'ननु-नच' किये उन्होंने यथेच्छ भोजन किया। द्विज! वे जैसे जल पीते वैसे आग भी पी जाते थे। काँटे को अन्न की तरह खा कर यथापूर्व स्वस्थ रहते थे। मुनि की बालिकाएँ उन्हें बुलाकर ढेले, जल, गोबर, कीचड़ तथा लकड़ी खाने को दे देती थीं। उन चीजों को खाकर भी वे प्रसन्न रहते थे। (एक दिन) इस तरह के वे मुनि, जिनका चंडाल का-सा वेश था, टूटे-फटे जूते को हाथ में लेकर बड़बड़ाते एवम् हंसते हुए वृषपर्वा के पास पहुँचे। वहाँ वृषपर्वा तथा शिव के मध्य वे दिगम्बर होकर खड़े हो गये। वृषपर्वा ने उन्हें नहीं पहचाना, इसलिये बुरी तरह उनका शिर काट डाला। उन द्विजवर का निधन हो जाने पर चराचर विश्व में हाहाकार मच गया। मुनि-समाज तथा महात्मा गौतम को महान् शोक हुआ ॥५८-६४½॥ शोकसंतप्त गौतम की आँखों से आँसू बहने लगे। तब उन्होंने समस्त दैत्यों के समक्ष यह बात कही—"मेरे प्राणाधिक प्रिय तथा शिवयोगी शिष्य ने क्या अपराध किया जो इसका शिर काट दिया गया? अब मेरा भी मरण अवश्यंभावी है। जहाँ धर्मयुक्त सदाशिव-योग में निरत रहने वाले शैवों की मृत्यु देखी जाय वहाँ हमारा भी मरण निश्चत है" ॥६५-६८॥

गौतम की बात सुनकर महाज्ञानी असुराचार्य शुक्र ने कहा—"ब्रह्मन्! क्यों आप मर रहे हैं? मैं इस शंकरप्रिय भृगुवंशी को जिलाऊँगा। देखिए आप मेरा तपोबल।"

दैत्यगुरु इतना कह ही रहे थे कि गौतम का प्राण त्याग हो गया। उनके मर जाने पर शुक्र ने भी योग

देवा नृपा द्विजाः सर्वे मृता आसंस्तदद्भुतम् । मृतमासीदथ बलं तस्य बाणस्य धीमतः ॥७२॥
अहल्या शोकसंतप्ता रुरोदोच्चैः पुनः पुनः । गौतमेन महेशस्य पूजया पूजितो विभुः ॥७३॥
वीरभद्रो महायोगी सर्वं दृष्ट्वा चुकोप ह । अहो कष्टमहोकष्टं महेशा बहवो हताः ॥७४॥
शिवं विज्ञापयिष्यामि तेनोक्तं करवाण्यथ । इति निश्चित्य गतवान्मंदराचलमव्ययम् ॥७५॥
नमस्कृत्वा विरूपाक्षं वृत्तं सर्वमथोक्तवान् । ब्रह्माणं च हरिं तत्र स्थितौ प्राह शिवो वचः ॥७६॥
मद्भक्तैः साहसं कर्म कृतं ज्ञात्वा वरप्रदम् । गत्वा पश्यामि हे विष्णो सर्वं तत्कृतसाहसम् ॥७७॥
इत्युक्त्वा वृषमारुह्य वायुना धृतचामरः । नन्दिकेन सुवेषेण धृते छत्रेऽतिशोभने ॥७८॥
सश्वेते हेमदंडे च नान्ययोग्ये धृते विभो । महेशानुमतिं लब्ध्वा हरिर्नागांतके स्थितः ॥७९॥
आरक्तनीलच्छत्राभ्यां शुशुभे लक्ष्मकौस्तुभः । शिवानुमत्या ब्रह्मापि हंसारूढोऽभवत्तदा ॥८०॥
इंद्रगोपप्रभाकारच्छत्राभ्यां शुशुभे विधिः । इन्द्रादिसर्वदेवाश्च स्वस्ववाहनसंयुताः ॥८१॥
अथ ते निर्ययुः सर्वे नानावाद्यानुमोदिताः । कोटिकोटिगणाकीर्णा गौतमस्याश्रमं गताः ॥८२॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाना दृष्ट्वा तत्परमाद्भुतम् । स्वभक्तं जीवयामास वामकोणनिरीक्षणात् ॥८३॥
शंकरो गौतमं प्राह तुष्टोऽहं ते वरं वृणु । तदाकर्ण्य वचस्तस्य गौतमः प्राह सादरम् ॥८४॥
यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरो मम । त्वल्लिंगार्चनसामर्थ्यं नित्यमस्तु ममेश्वर ॥८५॥

से प्राणों को छोड़ दिया । उनकी इस प्रकार मृत्यु जान कर प्रह्लाद आदि दैत्येश्वर, देवता, नृप तथा द्विज सब के सब मर गये । धीमान् बाण की सेना भी मर गई । यह अद्भुत घटना हुई । इस घटना को सुनकर शोकसंतप्ता अहल्या बड़े उच्च स्वर से आर्तनाद करने लगी । गौतम ने शिवपूजन के समय महायोगी एवम् अतुलपराक्रमी वीरभद्र की भी पूजा की थी । उन्होंने जब इस घटना का सब समाचार सुना तो वे बहुत क्रुद्ध हुए और कहने लगे—"हाय ! बड़े दुःख की बात है कि बहुत-से शिवभक्त मारे गये । मैं शंकर से जाकर सब बातें बतलाऊँगा और उनके आदेशानुसार आगे कर्तव्य करूँगा ।" ऐसा निश्चय करके वे अविनाशी मंदरपर्वत पर गये । वहाँ त्र्यंबक को नमस्कार कर सब समाचार सुना दिया ॥६९-७५½॥

तब शिव ने अपने समीपस्थ ब्रह्मा तथा विष्णु से कहा—"अहो ! मेरे भक्तों ने बड़ा साहस का काम किया । उनका यह कार्य वरप्रद हुआ । विष्णु ! हमें चलकर उनका साहसपूर्ण कार्य देखना चाहिए ॥" इतन कहकर शंकर वृष पर आरूढ़ हो गये । वायुदेव चामर डुलाने लगे । नंदिक ने अतिमनोहर श्वेत छत्र, जिसका दंड सुवर्ण का था और जिसे अन्य व्यक्ति धारण नहीं कर सकता था, विभु के ऊपर लगा दिया ॥७६-७८½॥ महेश की अनुमति पाकर विष्णु भी गरुड़ पर सवार हुए । श्रीवत्स चिह्न तथा कौस्तुभ मणि धारण करने वाले हरि लाल एवम् नील रंग के छत्रों से सुशोभित हुए । शिव की अनुमति से ब्रह्मा भी हंस पर आरूढ़ हुए । उनके छत्र इन्द्रगोप के समान लाल तथा प्रभा के सदृश चमकदार थे । इन्द्र आदि देवगण भी अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर विविध वाद्यों के साथ प्रयाण करने लगे । इस तरह कोटि-कोटि गणों से युक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश गौतम के आश्रम पर पहुँचे । उन्होंने वहाँ के उस अद्भुत वातावरण को देख कर अपने भक्त को वाम नेत्रनिरीक्षण से जिला दिया ॥७९-८३॥ फिर शंकर ने गौतम से कहा—'मैं तुम से प्रसन्न हूँ, वर मांगो ।' उनके वचन को सुनकर गौतम आदरपूर्वक कहने लगे—"देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो यह

वृतमेतन्मया देव त्रिनेत्र शृणु चापरम् । शिष्योऽयं मे महाभागो हेयादेयादिवर्जितः ॥८६॥
प्रेक्षणीयं ममत्वेन न च पश्यति चक्षुषा । न घ्राणग्राह्यं देवेश न पातव्यं न चेतरत् ॥८७॥
इति बुद्धया तथा कुर्वन्स हि योगी महायशाः । उन्मत्तविकृताकारः शंकरात्मेति कीर्तितः ॥८८॥
न कश्चित्तं प्रति द्वेषी न च तं हिंसयेदपि । एतन्मे दीयतां देव मृतानाममृतिस्तथा ॥८९॥
तच्छ्रुत्वोमापतिः प्रीतो निरीक्ष्य हरिमव्ययः । स्वांशेन वायुना देहमाविशज्जगदीश्वरः ॥९०॥
हरिरूपः शंकरात्मा मारुतिः कपिसत्तमः । पर्यायैरुच्यतेऽधीशः साक्षाद्विष्णुः शिवः परः ॥९१॥
आकल्पमेष प्रत्येकं कामरूपमुपाश्रितः । ममाज्ञाकारको रामभक्तः पूजितविग्रहः ॥९२॥
अनंतकल्पमीशानः स्थास्यति प्रीतमानसः । त्वया कृतमिदं वेश्म विस्तृतं सुप्रतिष्ठितम् ॥९३॥
नित्यं वै सर्वरूपेण तिष्ठामः क्षणमादरात् । समर्चिताः प्रयास्यामः स्वस्ववासं ततः परम् ॥९४॥
अथाबभाषे विश्वेशं गौतमो मुनिपुंगवः । अयोग्यं प्रार्थयामीश ह्यर्थी दोषं न पश्यति ॥९५॥
ब्रह्माद्यलभ्यं देवेश दीयतां यदि रोचते । अथेशो विष्णुमालोक्य गृहीत्वा तत्करं करे ॥९६॥
प्रहसन्नंबुजाभाक्षमित्युवाच सदाशिवः । क्षामोदरोऽसि गोविंद देयं ते भोजनं किमु ॥९७॥
स्वयं प्रविश्य यदि वा स्वयं भुंक्ष्व स्वगेहवत् । गच्छ वा पार्वतीगेहं या कुक्षिं पूरयिष्यति ॥९८॥

दीजिये कि आपके (शिव) लिंग की पूजा करने का सामर्थ्य मुझमें सदा बना रहे। देव ! त्रिनेत्र ! एक तो मेरा यही वर है और दूसरा यह है कि यह महाभाग्यशाली मेरा शिष्य त्याज्य एवम् ग्राह्य कर्मों से रहित है। यह नेत्रों से नहीं देखता, नाक से नहीं सूंघता। सब कुछ बुद्धियोग से करता हुआ यह महायशस्वी योगी हैं। शंकरात्मा इसका नाम है, उन्मत्त की तरह स्वरूप है। देव ! इससे न कोई द्वेष करे ओर न इसे मारे। जितने व्यक्ति मर गये हैं, वे सब भी जी जायें। यह वर मुझे दीजिए ॥८४-८९॥"

गौतम का निवेदन सुनकर अविनाशी उमापति प्रेम से हरि को देख कर अपने अंश वायु रूप से उनकी देह में प्रविष्ट हो गये। वही हरिरूप शंकरात्मा पवनसुत हनुमान् जी हुए। वे धीश, साक्षात् विष्णु एवम् शिव कहलाते हैं। प्रत्येक कल्प में वे अपनी इच्छा से रूप धारण करते हैं। वे शिव के आज्ञाकारी, मेरे भक्त तथा महाबलवान् हैं ॥९०-९२॥

तदुपरान्त शंकर ने प्रीतिपूर्वक कहा—"तुम्हारा बनाया हुआ यह मन्दिर बहुत विस्तृत एवम् सुप्रतिष्ठित है। हम लोग नित्य इस मन्दिर में एक क्षण तक निवास करेंगे और तुम्हारी पूजा ग्रहण कर अपने-अपने आवास को लौटेंगे" ॥९३-९४॥

इसके बाद मुनिश्रेष्ठ गौतम ने महेश से कहा—"ईश ! मैं एक अयुक्त प्रार्थना करता हूँ। क्योंकि प्रार्थी अपने दोष को नहीं देखता है। सो यदि आप प्रसन्न हैं तो ब्रह्मा आदि को भी न मिलने वाला यह वर दीजिए कि आप मेरे यहाँ भोजन करें।"

गौतम की प्रर्थना सुनने के पश्चात् सदाशिव विष्णु का हाथ अपने हाथ में लेकर हँसते हुए कमलाक्ष केशव से कहने लगे—"गोविन्द ! तुम्हारा पेट क्षीण (खाली) मालूम पड़ता है। क्या तुम्हें भोजन दूं ? या अपने घर की तरह मेरे घर में पैठ कर स्वयं खा लोगे ? अथवा पार्वती के घर जाओ। वह तुम्हारा पेट भर देगी।" इतना कहकर शंकर विष्णु का हाथ पकड़े ही एकान्त स्थान में चले गये और द्वाराध्यक्ष नंदी को आदेश दे गये कि तुम जाकर भोजन का प्रबन्ध करो। नंदी ने गौतम से जाकर विष्णु तथा शंकर का वार्तालाप सुना दिया और कहा—"मुने ! हम देवगण भोजन करना चाहते हैं। आप प्रबन्ध कीजिए ॥९५-९८॥"

इत्युक्त्वा तत्करालंबी ह्येकांतमगमद्विभुः । आदिश्य नंदिनं देवो द्वाराध्यक्षं यथोक्तवत् ॥९९॥
स गत्वा गौतमं वाथ ह्युक्तवान्विष्णुभाषणम् । संपादयान्नं देवेशा भोक्तुकामा वयं मुने ॥१००॥
इत्युक्त्वैकांतमगमद्वासुदेवेन शंकरः । मृदुशय्यां समारुह्य शयितौ देवतोत्तमौ ॥१०१॥
अन्योन्यं भाषणं कृत्वा प्रोत्तस्थतुरुभावपि । गत्वा तडागं गंभीरं स्नास्यंतौ देवसत्तमौ ॥१०२॥
करांबुपातमन्योन्यं पृथक्कृत्वोभयत्र च । मुनयो राक्षसाश्चैव जलक्रीडां प्रचक्रिरे ॥१०३॥
अथ विष्णुर्महेशश्च जलपानानि शीघ्रतः । चक्रतुः शंकरः पद्मकिंजलकांजलिना हरेः ॥१०४॥
अवाकिरन्मुखे तस्य पद्मोत्फुल्लविलोचने । नेत्रे केशरसंपातात्प्रमीलयत केशवः ॥१०५॥
अत्रांतरे हरेः स्कंधमारुरोह महेश्वरः । हर्युत्तमांगं बाहुभ्यां गृहीत्वा संन्यमज्जयत् ॥१०६॥
उन्मज्जयित्वा च पुनः पुनश्चापि पुनःपुनः । पीडितः स हरिः सूक्ष्मं पातयामास शंकरम् ॥१०७॥
अथ पादौ गृहीत्वा तं भ्रामयन्विचकर्ष ह । अताडयद्धरेर्वक्षः पातयामास चाच्युतम् ॥१०८॥
अथोत्थितो हरिस्तोयमादायांजलिना ततः । शीर्षे चैवाकिरच्छंभुमथ शंभुरथो हरिः ॥१०९॥
जलक्रीडैवमभवदथ चर्षिगणांतरे । जलक्रीडासंभ्रमेण विस्रस्तजटबंधनाः ॥११०॥
अथ संभ्रमतां तेषामन्योन्यजटबंधनम् । इतरेतरबद्धासु जटासु च मुनीश्वराः ॥१११॥
शक्तिमंतोऽशक्तिमत आकर्षंति च सव्यथम् । पातयंतोऽन्यतश्चापि क्रोशंतो रुवतस्तथा ॥११२॥
एवं प्रवृत्ते तुमुले संभूते तोयकर्मणि । आकाशे वानरेशस्तु ननर्त च ननाद च ॥११३॥
विपंचीं वादयन्वाद्यं ललितां गीतिमुज्जगौ । सुगीत्या ललिता यास्तु अगायत विधा दश ॥११४॥
शुश्राव गीतिं मधुरां शंकरो लोकभावतः । स्वयं गातुं हि ललितं मंदमंदं प्रचक्रमे ॥११५॥
स्वयं गायति देवेशे विश्रामं गलदेशिकम् । स्वरं ध्रुवं समादाय सर्वलक्षणसंयुतम् ॥११६॥

वासुदेव के साथ शंकर विविक्त स्थान में जाकर कोमल शय्या पर लेट गए। दोनों देवश्रेष्ठ आपस में बातचीत करते-करते सो गए। नींद टूटने पर दोनों सुरबर स्नान करने के लिये एक गहरे तालाब में उतरे वहाँ वे अपने हाथों में जल ले ले कर एक दूसरे पर फेंकने लगे। उस समय मुनि तथा राक्षस भी जलक्रीड़ा में सम्मिलित हो गये। विष्णु और महेश कमलपत्र में जल लेकर पी लेते थे। एक बार शंकर ने विष्णु के कमल-मुख में पद्मकेसर मिश्रित जल डाल दिया। केसर के गिरने से केशव ने आँखें मूँद ली। उसी बीच महेश्वरहरि के कंधे पर चढ गये और उनके शिर को हाथों से पकड़ कर बार-बार पानी में डुबाने लगे। जब हरि को इससे थोड़ी-सी पीड़ा हुई तब उन्होंने शंकर को गिरा दिया और उनके पैरों को पकड़ कर घुमाने लगे। उस समय शिव ने अच्युत की छाती पर लात मारी। जिससे वे गिर पड़े। फिर उठने पर उन्होंने अंजलि में जल लेकर शंकर के मस्तक पर गिराया। तब शम्भु ने भी उनके शिर पर जल छोड़ दिया। इस प्रकार (एक ओर) हरि-हर की जल-क्रीड़ा हो रही थी और (दूसरी ओर) ऋषिगण अपनी-अपनी जटा को खोल कर जलकेलि में विभोर हो रहे थे। यहाँ तक कि उन मुनीश्वरों की जटायें आपस में उलझ जाती थीं तब जो सबल थे, वे दुर्बल को खींच कर व्यथा पहुँचाते थे और एक दूसरे को गिरा कर घसीट देते एवम् रुला देते थे ॥९९-११२॥

जिस समय इस प्रकार की तुमुल जलकेलि हो रही थी उसी समय आकाश में वानरेश (हनुमान्) नाचते तथा शब्द करते हुए वीणा एवम् अन्य वाद्यों को बजाने लगे। ललित स्वर में उन्होंने दश प्रकार के गीत गाये। उनका मधुर संगीत सुनकर स्वयं शंकर लोक-भाव से ललित राग में मंद-मंद गाने लगे। जब महेश्वर सर्वलक्षणसम्पन्न विश्राम, गलदेशिक तथा ध्रुव स्वर में धाराप्रवाह रूप से गा रहे थे तब वासुदेव हाथों से झाम बजा रहे थे। (उस

स्वधारामृतसंयुक्तं गानेनैवमपोनयन् । वासुदेवो मर्दलं च कराभ्याममप्यवादयत् ॥११७॥
अम्बुजांगश्चतुर्वक्त्रस्तुंबुरुमुखरो बभौ । तानका गौतमाद्यास्तु गायको वायुजोऽभवत् ॥११८॥
गायके मधुरं गीतं हनूमति कपीश्वरे । म्लानमम्लानमभवत्कृशाः पुष्टास्तदाभवन् ॥११९॥
स्वां स्वां गीतिमतः सर्वे तिरस्कृत्यैव मूर्च्छिताः । तूष्णीभूतं समभवद्देवर्षिगणदानवम् ॥१२०॥
एकः स हनुमान् गाता श्रोतारः सर्व एव ते । मध्याह्नकाले वितते गायमाने हनूमति
स्वस्ववाहनमारुह्य निर्गताः सर्वदेवताः ॥१२१॥
गानप्रियो महेशस्तु जग्राह प्लवगेश्वरम् । प्लवग त्वं मयाज्ञप्तो निःशंको वृषमारुह ॥१२२॥
मम चाभिमुखो भूत्वा गायस्वानेकगायनम् । अथाह कपिशार्दूलो भगवंतं महेश्वरम् ॥१२३॥
वृषभारोहसामर्थ्यं तव नान्यस्य विद्यते । तव वाहनमारुह्य पातकी स्यामहं विभो ॥१२४॥
मामेवारुह देवेश विहंगः शिवधारणः । तव चाभिमुखं गानं करिष्यामि विलोकय ॥१२५॥
अथेश्वरो हनूमंतमारुरोह यथा वृषम् । आरूढे शंकरे देवे हनुमत्कंधरां शिवः ॥१२६॥
छित्वा त्वचं परावृत्य सुखं गायति पूर्ववत् । शृण्वन्गीतिसुधां शंभुर्गौतमस्य गृहं ततः ॥१२७॥
सर्वे चाप्यागतास्तत्र देवर्षिगणदानवाः । पूजिता गौतमेनाथ भोजनावसरे सति ॥१२८॥
यच्छुष्कं दारुसंभूतं गृहोपकरणादिकम् । प्ररूढमभवत्सर्वं गायमाने हनूमति ॥१२९॥
तस्मिन्गाने समस्तानां चित्रं दृष्टिरतिष्ठत ॥१३०॥

द्विबाहुरीशस्य पदाभिवंदनः समस्तगात्राभरणोपपन्नः ।
प्रसन्नमूर्तिस्तरुणः सुमध्ये विन्यस्तमूर्द्धांजलिभिः शिरोभिः ॥१३१॥

समय) कमलयोनि ब्रह्मा तुम्बुरु (तानपूरा) बजा रहे थे। गौतम आदि राग-ताल मिला रहे थे और वायुपुत्र तो गायक ही थे। कपीश्वर हनुमान् का गाना सुनकर सूखी चीजें हरी-भरी हो गईं और क्षीण पुष्ट हो गईं। वहाँ अन्य जो गायकगण थे, वे लज्जा से मानो मूर्च्छित हो गये। देवता, ऋषि तथा दानवों ने मौन भाव अवलम्बन कर लिया। केवल वे हनुमान् गाता और अन्य सब के सब श्रोता रहे। जब इस तरह महावीर के गाते-गाते दोपहर का समय हो आया तब सकल देवगण अपने-अपने वाहन पर आरूढ होकर चले गये। अनन्तर गानप्रिय महेश ने कपीश्वर को पकड़ कर यह कहा—"कपि! तुम निःशंक होकर मेरे बैल पर चढ़ जाओ। और मेरे संमुख होकर अनेक प्रकार के गाने सुनाओ। परन्तु कपिवर ने भगवान् शंकर से कहा—"विभो! वृष पर चढ़ने का सामर्थ्य आपको छोड़कर दूसरे किसी में नहीं है। मुझे आपके वाहन पर चढ़ने से महापाप होगा। इसलिये हे देवेश! आप मुझ पर ही चढ़ जायँ और मैं आपको धारण करके आकाश में उड़ जाऊँगा तथा सामने गाऊँगा और आप सुनेंगे" ॥११३-१२५॥

इसके अनन्तर उमापति जैसे वृष पर चढ़ते थे उसी तरह हनुमान् के कंधे पर चढ़ गये। शंकर के आरूढ़ हो जाने के बाद पवनसुत पश्चिम की ओर मुँह घुमा कर पहले की तरह सुख से गाने लगे। गीतिसुधा का पान करते हुए महादेव गौतम के घर पहुँचे। वहाँ अन्य देव, ऋषि तथा दानवगण भी आये। गौतम ने सबकी पूजा की और भोजन के लिये आग्रह किया ॥१२६-१२८॥

उस समय हनुमान् का संगीत सुनकर लकड़ी के बने जितने गृहोपकरण थे, वे सजीव-से और समस्त श्रोतागण निर्जीव-से प्रतीत हो रहे थे। हनुमान् के दोनों हाथ शंकर की वन्दना कर रहे थे। उनके समस्त अंगों में आभूषण थे। चेहरा प्रसन्न था। युवा अवस्था थी। ललाट के समीप अंजलि बाँधकर शिव को प्रणाम कर रहे थे। इतने में शंकर ने अपने हाथों से हनुमान् का शिर पकड़ कर पूरब की ओर मुख घुमा दिया। तब

शिरः कराभ्यां परिगृह्य शंकरो हनूमतः पूर्वमुखं चकार ।
पद्मासनासीनहनूमतोऽञ्जलौ निधाय पादं त्वपरं मुखे च ॥१३२॥
पादांगुलीभ्यामथ नासिकां विभुः स्नेहेन जग्राह च मन्दमन्दम् ।
स्कंधे मुखे त्वंसतले च कण्ठे वक्षःस्थले च स्तनमध्यमे हृदि ॥१३३॥
ततश्च कुक्षावथ नाभिमंडले पादं द्वितीयं विदधाति चांजलौ ।
शिरो गृहीत्वाऽवनमय्य शंकरः पस्पर्श पृष्ठं चिबुकेन सोऽध्वनि ॥१३४॥
हारं च मुक्तापरिकल्पितं शिवो हनूमतः कंठगतं चकार ॥१३५॥

अथ विष्णुर्महेशानमिदं वचनमुक्तवान् । हनूमता समो नास्ति कृत्स्नब्रह्माण्डमण्डले ॥१३६॥
श्रुतिदेवाद्यगम्यं हि पदं तव कपिस्थितम् । सर्वोपनिषदव्यक्तं त्वत्पदं कपि सर्वयुक् ॥१३७॥
यमादिसाधनैर्योगैर्न क्षणं ते पदं स्थिरम् । महायोगिहृदंभोजे परं स्वस्थं हनूमति ॥१३८॥
वर्षकोटिसहस्रं तु सहस्राब्दैरथान्वहम् । भक्त्या संपूजितोऽपीश पादो नो दर्शितस्त्वया ॥१३९॥
लोके वादो हि सुमहाञ्छंभुर्नारायणप्रियः । हरिप्रियस्तथा शंभुर्न तादृग्भाग्यमस्ति मे ॥१४०॥

तच्छ्रुत्वा वचनं शंभुर्विष्णोः प्राह मुदान्वितः ।
न त्वया सदृशो मह्यं प्रियोऽन्योऽस्ति हरे क्वचित् ॥१४१॥

पार्वती वा त्वया तुल्या वर्तते नैव भिद्यते । अथ देवाय महते गौतमः प्रणिपत्य च ॥१४२॥
व्यजिज्ञपदमेयात्मन्देवैर्हि करुणानिधे । मध्याह्नोऽयं व्यतिक्रांतो भुक्तिवेलाखिलस्य च ॥१४३॥

विभु ने अपना एक पैर पद्मासन लगा कर बैठे हुए हनुमान् की अंजलि पर और दूसरा उनके मुख पर रखा। फिर स्नेह से उनकी नासिका को पैर की अंगुलियों से धीरे-धीरे पकड़ लिया। अनन्तर दूसरे चरण को हनुमान् के कंधे, मुख, कंठ, वक्षःस्थल, स्तनमध्य, हृदय, कुक्षि, नाभिमंडल तथा अंजलि पर क्रमशः रखा। फिर शिर को पकड़ कर झुकाते हुए अपनी ठुड्डी से उनके पीठ का स्पर्श किया और मोती का एक हार उनके गले में पहना दिया ॥१२९-१३५॥

तदनन्तर विष्णु ने महेश से यह वचन कहा—"निखिल ब्रह्माण्डमंडल में हनुमान् के समान कोई (भाग्यवान्) नहीं है। क्योंकि श्रुति तथा देवादि से अप्राप्य आपका चरण, जो संपूर्ण उपनिषदों का सार तथा अव्यक्त है, हनुमान् के ऊपर अवस्थित हुआ। आपके उस चरण को यम आदि साधन तथा योगाभ्यास के द्वारा एक क्षण के लिये भी कोई अपने हृदय में स्थिर नहीं कर पाता। परन्तु वही चरण महायोगी हनुमान् के हृदय-कमल पर विराजमान रहा। मैंने एक सहस्र कोटि तथा एक हजार वर्षों तक भक्तिपूर्वक आपके चरणों की अर्चना की। परन्तु कभी आपने अपना चरणदर्शन नहीं होने दिया। यद्यपि लोक में यह बात प्रसिद्ध है कि शम्भु नारायण के अत्यन्त प्रिय हैं और नारायण शम्भु के, किन्तु मैं तो अपने को ऐसा भाग्यवान् नहीं समझता" ॥१३६-१४०॥

विष्णु की बात सुनकर शंकर ने हर्ष से कहा—"हरे! तुम्हारे समान प्रिय मेरा कोई नहीं है अथवा पार्वती तुम्हारी ही सदृश है, परन्तु वह तो मुझसे भिन्न नहीं है।"

एतदुपरान्त गौतम महादेव को प्रणाम कर बोले—"अमेयात्मन्! करुणानिधे! मध्याह्न हो गया, भोजन का समय अतिक्रान्त हो रहा है।"

अथाचम्य महादेवो विष्णुना सहितो विभुः । प्रविश्य गौतमगृहं भोजनायोपचक्रमे ॥१४४॥
रत्नांगुलीयैरथ नूपुराभ्यां दुकूलबंधेन तडित्सुकांच्या ।
हारैरनेकैरथ कण्ठनिष्कयज्ञोपवीतोत्तरवाससी च ॥१४५॥
विलंबिचंचन्मणिकुंडलेन सुपुष्पधम्मिल्लवरेण चैव ।
पंचांगगंधस्य विलेपनेन बाह्वंगदैः कंकणकांगुलीयैः ॥१४६॥
अथो विभूषितः शिवो निविष्ट उत्तमासने । स्वसंमुखं हरिं तथा न्यवेशयद्वरासने ॥१४७॥
देवश्रेष्ठौ हरीशौ तावन्योन्याभिमुखस्थितौ । सुवर्णभाजनस्थान्नं ददौ भक्त्या स गौतमः ॥१४८॥
त्रिशत्प्रभेदान्भक्ष्यांस्तु पायसं च चतुर्विधम् । सुपक्वं पाकजातं च कल्पितं यच्छतद्वयम् ॥१४९॥
अपक्वं मिश्रकं तद्वत्त्रिशतं परिकल्पितम् । शतं शतं सुकन्दानां शाकानां च प्रकल्पितम् ॥१५०॥
पंचविंशतिधा सर्पिःसंस्कृतं व्यंजनं तथा । शर्कराद्यं तथा चूतमोचाखर्जूरदाडिमम् ॥१५१॥
द्राक्षेक्षुनागरंगं च मिष्टं पक्वं फलोत्करम् । प्रियालकं जम्बुफलं विकंकतफलं तथा ॥१५२॥
एवमादीनि चान्यानि द्रव्याणीशे समर्प्य च । दत्त्वापोशानकं विप्रो भुंजध्वमिति चाब्रवीत् ॥१५३॥
भुंजानेषु च सर्वेषु व्यजनं सूक्ष्मविस्तृतम् । गौतमः स्वयमादाय शिवविष्णू अवीजयत् ॥१५४॥
परिहासमथो कर्तुमियेष परमेश्वरः । पश्य विष्णो हनूमन्तं कथं भुंक्ते स वानरः ॥१५५॥
वानरं पश्यति हरौ मण्डकं विष्णुभाजने । चिक्षेप मुनिसंघेषु पश्यत्स्वपि महेश्वरः ॥१५६॥
हनूमते दत्तवांश्च स्वोच्छिष्टं पायसादिकम् । त्वदुच्छिष्टमभोज्यं तु तवैव वचनाद्विभो ॥१५७॥
अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलादिकम् । मह्यं निवेद्य सकलं कूप एव विनिःक्षिपेत् ॥१५८॥

अनन्तर विष्णु सहित महादेव आचमन करके भोजन के लिए गौतम के घर पहुँचे । वहाँ गौतम ने विभु को रत्न की बनी अँगूठी, नूपुर, दुकूलबन्ध (धोती) 'बिजली की तरह चमकती हुई कांची' अनेक प्रकार के हार, स्वर्णयज्ञोपवीत, उत्तरीय वस्त्र, मणि के बने बड़े-बड़े कुंडल, पुष्पसुशोभित पाग (पगड़ी), अंगद तथा कंकण से विभूषित करके पंच गंधों का लेप लगाया । तब शिव उत्तम आसन पर बैठ गये और अपने संमुख श्रेष्ठ आसन पर हरि को भी बैठाया । जब सुरवर हरि तथा हर परस्पर अभिमुख होकर आसीन हुए तब गौतम भक्तिपूर्वक सुवर्णपात्रों में भोजन परोसने लगे ॥१४१-१४८॥ उन्होंने तीस प्रकार का भक्ष्यपदार्थ चार प्रकार का खीर, दो सौ प्रकार का सुन्दरतया पकाया हुआ भोजन तीस प्रकार का अपक्व तथा मिश्रित (पक्वापक्व) भोजन, सौ प्रकार के कंद तथा शाक, पचीस प्रकार के घी से बनाये हुए व्यंजन (तरकारी) शक्कर, आम, केला, खजूर, दाडिम, दाख, ईख, नारंगी, प्रियालक, जंबुफल, विकंकतफल, अन्य मिष्ट एवम् सुपक्व फल तथा भाँति-भाँति के भोज्यपदार्थ परसे । फिर ईश को जल समर्पण कर 'भोजन करिये, यह कहा । जब शिव आदि समस्त देवगणों ने भोजन करना प्रारम्भ किया तब गौतम एक सुमनोहर पंखा लेकर हरि-हर के ऊपर झलने लगे । उस समय शंकर ने मनोविनोद करने के वास्ते केशव से कहा--'विष्णो ! हनुमान् को देखो, कैसे वह बन्दर खा रहा है" ॥१४९-१५५॥

शिव के कहने पर विष्णु कपि की तरफ ताकने लगे । इधर महेश ने मुनिसमूह के देखते ही देखते विष्णु के पात्र में मंडक (मट्ठा) डाल दिया और हनुमान् को अपने उच्छिष्ट पायस आदि दे दिये । परन्तु कपि पूछ बैठे— "विभो ! आपका उच्छिष्ट नहीं खाना चाहिए---यह आप ही का वचन है" ॥१५६-१५७॥ शिव ने उत्तर दिया— "पत्र, पुष्प, फल आदि मेरा नैवेद्य वास्तव में अभोज्य है । उसे समर्पित करके कूप में ही फेंक

अभुक्ते त्वद्वचो नूनं भुक्ते चापि कृपा तव । बाणलिंगे स्वयंभूते चन्द्रकांते हृदि स्थिते ॥१५९॥
चांद्रायणसमं ज्ञेयं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम् । भुक्तिवेलेयमधुना तद्वैरस्यं कथांतरात् ॥१६०॥
भुक्त्वा तु कथयिष्यामि निर्विशंकं विभुंक्ष्व तत् । अथासौ जलसंस्कारं कृतवान् गौतमो मुनिः

आरक्तसुस्निग्धसुसूक्ष्मगात्राननेकधाधौतसुशोभितांगान् ।
तडागतोयैः कतबीजघर्षितैर्विशोधितैस्तैः करकानपूरयत् ॥१६२॥
नद्याः सैकतवेदिकां नवतरां संछाद्य सूक्ष्मांबरैः,
शुद्धैः श्वेततरैरथोपरि घटांस्तोयेन पूर्णान्क्षिपेत् ।
लिप्त्वा नालकजातिमास्तपुटकं तत्कौलकं कारिका-
चूर्णं चन्दनचन्द्ररश्मिविशदां मालां पुटांतं क्षिपेत् ।
यामस्यापि पुनश्च वारिवसनेनाशोध्य कुम्भेन तत्-
चंद्रग्रन्थिमथो निधाय बकुलं क्षिप्त्वा तथा पाटलम् ॥१६३॥
शेफालीस्तबकमथो जलं च तत्र विन्यस्य प्रथमत एव तोयशुद्धिम् ।
कृत्वाथो मृदुतरसूक्ष्मवस्त्रखण्डेनावेष्टेत्सृणिकमुखं च सूक्ष्मचन्द्रम् ॥१६४॥

अनातपप्रदेशे तु निधाय करकानथ । मन्दवातसमोपेते सूक्ष्मव्यजनवीजिते ॥१६५॥
सिंचेच्छीतैर्जलैश्चापि वासितैः सृणिकामपि । संस्कृताः स्वायतास्तत्र नरा नार्योऽथवा नृपाः ॥१६६॥
तत्कन्या वा क्षालितांगा धौतपादास्सुवाससः । मधुपिंगमनिर्यासमसांद्रमगुरूद्भवम् ॥१६७॥
बाहुमूले च कंठे च विलिप्यासांद्रमेव च । मस्तके जापकं न्यस्य पंचगंधविलेपनम् ॥१६८॥

देना चाहिये । फिर हनुमान् ने कहा—"अब यदि मैं नहीं खाऊँगा तो आपके वचन का पालन नहीं होगा और यदि खा लूंगा तो आपकी कृपा होगी ।" (तब शंकर ने कहा—"मेरे स्वयंभूत बाणलिंग या चंद्रकांतमणि-निर्मित लिंग या मुझे हृद्गत करके जो मेरा नैवेद्य भक्षण करता है, उसे चांद्रायण व्रत करने का फल मिलता है। है अथवा अभी भोजन करने का समय है। इसलिये इस तरह की बात करना छोड़ दो। भोजनोपरान्त में बता दूंगा। तावत्काल शंकारहित होकर भोजन करो" ॥१५८-१६०½॥

सबके भोजन कर लेने के बाद गौतम मुनि ने जलसंस्कार किया (अर्थात् सबको हाथ-मुंह धुलाया)। (जलसंस्कार इस प्रकार किया जाता है:— किञ्चित् लाल रंग वाले तथा बहुत चिकने अवयवों वाले और अनेक वार धोये जाने के कारण सुन्दर अंगों वाले घटों को तालाब के ऐसे जल से, जो निर्मली से स्वच्छ कर दिया गया हो, भर देना चाहिए ॥१६१-१६२॥ अनन्तर नदी के रेतीले तट पर नया चबूतरा बनाकर उसे उज्ज्वल सूक्ष्म वस्त्रों से ढककर उस उन (जल) पूर्ण घटों को स्थापित करे। उन पर चावल के चूर्ण तथा सिन्दूर से चित्रकारी करके चन्द्रकिरण के समान धवल माला को चन्दनचर्चित करके उनमें डाल दें। फिर एक पहर तक जल से शुद्ध करके कर्पूरचूर्ण, मौलसिरीपुष्प, पाटलपुष्प तथा शेफालिका के गुच्छे उनमें डाले, पुनः जल-शुद्धि करे। पश्चात् उनके मुखों को, जहाँ कर्पूरचूर्ण से लिप्त अंकुश रखा हुआ हो, कोमल तथा महीन वस्त्र खंडों से लपेट दे। उन घटों को धूप-रहित स्थान में रखना चाहिए ॥१६३-१६४½॥ मंद वायु से युक्त हलके पंखे को चलाकर शीतल, सुगंधित जल से अंकुश (या लार ?) को भी सींचे। वहाँ सुसंस्कृत तथा स्वाधीन नर-नारियों या राजा या राजकन्याओं का पूजन करना चाहिए। वे रमणियाँ शरीर की स्वच्छता करके पैरों को धोकर सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित हों। वे अगर के गोंद को, जो ललाई लिये भूरे रंग का हो, बाहुमूल तथा कंठ में लगावें। फिर मस्तक पर मंत्र जप करके पाँच सुगन्धित पदार्थों का लेप करें। उनके बाल फूलों से सुसज्जित

पुष्पनद्धसुकेशास्तु ताः शुभाः स्युः सुनिर्मलाः । एवमेवार्चिता नार्यं आप्तकुंकुमविग्रहाः ॥१६९॥
युवत्यश्चारुसर्वांग्यो नितरां भूषणैरपि । एतादृग्वनिताभिर्वा नरैर्वा दापयेज्जलम् ॥१७०॥
तेऽपि प्रादानसमये सूक्ष्मवस्त्राल्पवेष्टनम् । अथ वामकरे न्यस्य करकं प्रेक्ष्य तत्र हि ॥१७१॥
दोरिकान्यस्तमुन्मुच्य ततस्तोयं प्रदापयेत् । एवं स कारयामास गौतमो भगवान्मुनिः ॥१७२॥
महेशादिषु सर्वेषु भुक्तवत्सु महात्मसु । प्रक्षालितांघ्रिर्हस्तेषु गंधोद्वर्तितपाणिषु ॥१७३॥
उच्चासनसमासीने देवदेवे महेश्वरे । अथ नीचसमासीना देवाः सर्षिगणास्तथा ॥१७४॥
मणिपात्रेषु संवेष्टय पूगखंडान्सुधूपितान् । अकोणान्वर्तुलान्स्थूलानसूक्ष्मानकृशानपि ॥१७५॥
श्वेतपत्राणि संशोध्य क्षिप्त्वा कर्पूरखंडकम् । चूर्णं च शंकरायाथ निवेदयति गौतमे ॥१७६॥
गृहाण देव तांबूलमित्युक्तवचने मुनौ । कपे गृहाण तांबूलं प्रयच्छ मम खंडकान् ॥१७७॥
उवाच वानरो नास्ति मम शुद्धिर्महेश्वर । अनेकफलभोक्तृत्वाद्वानरस्तु कथं शुचिः ॥१७८॥
तच्छ्रुत्वा तु विरूपाक्षः प्राह वानरसत्तमम् । मद्वाक्यादखिलं शुद्धयेन्मद्वाक्यादमृतं विषम् ॥१७९॥
मद्वाक्यादखिला वेदा मद्वाक्याद्देवतादयः । मद्वाक्याद्धर्मविज्ञानं मद्वाक्यान्मोक्ष उच्यते ॥१८०॥
पुराणान्यागमाश्चैव स्मृतयो मम वाक्यतः । अतो गृहाण तांबूलं मम देहि सुखंडकान् ॥१८१॥
हरिर्वामकरेणाधात्तांबूलं पूगखंडकम् । ततः पत्राणि संगृह्य तस्मै खंडान्समर्पयत् ॥१८२॥
कर्पूरमग्रतो दत्तं गृहीत्वाभक्षयच्छिवः । देवे तु कृततांबूले पार्वती मंदराचलात् ॥१८३॥
जयाविजययोर्हस्तं गृहीत्वायान्मुनेर्गृहम् । देवपादौ ततो नत्वा विनम्रवदनाभवत् ॥१८४॥

किये जायें। इस प्रकार अन्य पवित्र एवं निर्मल नारियाँ जिनके शरीर में केसर मला गया हो, पूजी जानी चाहिए। सर्वाङ्ग सुन्दरी युवतियों को अभूषणों से सम्मानित करना चाहिए। ऐसी नारियों या नरों से जल दिलाना चाहिए जो कि जल देने के समय सूक्ष्म वस्त्र को थोड़ा-सा लपेट लें। अथवा दर्पण में घटों को देख कर उनकी डोरी खोलकर जल दें। इस प्रकार भगवान् गौतम मुनि ने जल का संस्कार कराया ॥१६५-१७२॥

जब महेश आदि समस्त महातमा गण भोजन करके हाथ-पैर धो चुके और हाथों में किंचिन्मात्र भी गंध नहीं रही तब देव-देव शङ्कर उच्चासन पर और ऋषिवृन्द समेत देवगण नीचासन पर आसीन हुए। अनन्तर मणिपात्रों में सुगंधित सुपारी के खण्ड, जो कोणों से रहित, गोल, स्थूल, असूक्ष्म तथा अकृश थे, और श्वेतपत्र (ताम्बूल), जिनमें कर्पूरखण्ड तथा चूर्ण (मसाला) डाला हुआ था, रखकर गौतम ने शिव से कहा—'देव! तांबूल (मुखशुद्धि) ग्रहण कीजिये।' मुनि के यह कहने पर महेश्वर ने कपि से कहा—'पान तुम ले लो और सुपारी मुझे दे दो।' परन्तु हनुमान् ने उत्तर दिया—"विभो! मेरी शुद्धि नहीं होती। मैं अनेक (कर्म) फलों का भोगने वाला बन्दर हूँ। तब मैं कैसे पवित्र हो सकता?" यह बात सुनकर विरूपाक्ष ने वानरश्रेष्ठ से कहा—'मेरे वाक्य से सबकुछ शुद्ध हो जाता है, विष भी अमृत हो जाता है ॥१७३-१७९॥ मेरे ही वाक्य पर अखिल वेद, देवता, धर्म, विज्ञान, मोक्ष, पुराण, शास्त्र तथा स्मृतियाँ आधारित हैं। इसलिए तुम तांबूल ले लो और सुपारी मुझे दो।', शंकर के कहने पर कपि ने बांये हाथ से तांबूल लेकर सुपारी के खण्ड महेश्वर को समर्पण कर दिये। शिव ने भी कपूर सहित पूगीफल खा लिये।

जब महादेव मुखशुद्धि कर चुके तब मंदराचल से पार्वती जया, विजया के साथ गौतम के घर आ पहुँचीं। वे शङ्कर को पादवंदना कर मुँह नीचे करके अवस्थित हुईं ॥१८०-१८४॥ किन्तु त्रिलोचन ने उनके मुख को

उन्नमय्यमुखं तस्या इदमाह त्रिलोचनः । त्वदर्थं देवदेवेशि अपराधः कृतो मया ॥१८५॥
यत्वां विहाय भुक्तं हि तथान्यच्छृणु सुंदरि । यत्वां स्वमंदिरे त्यक्त्वा महदेनो मया कृतम् ॥१८६॥
क्षंतुमर्हसि देवेशि त्यक्तकोपा विलोकय । न बभाषेऽप्येवमुक्ता सारुंधत्या विनिर्ययौ ॥१८७॥
निर्गच्छंतीं मुनिर्ज्ञात्वा दंडवत्प्रणनाम ह । अथोवाच शिवा तं च गौतम त्वं किमिच्छसि ॥१८८॥
अथाह गौतमो देवीं पार्वतीं प्रेक्ष्य सस्मिताम् । कृतकृत्यो भवेयं वै भुक्तायां मद्गृहे त्वयि ॥१८९॥
ततः प्राह शिवा विप्रं गौतमं रचितांजलिम् । भोक्ष्यामि त्वद्गृहे विप्र शंकरानुमतेन वै ॥१९०॥
अथ गत्वा शिवं विशे लब्धानुज्ञस्त्वरागतः । भोजयामास गिरिजां देवीं चारुंधतीं तथा ॥१९१॥
भुक्त्वाथ पार्वती सर्वगंधपुष्पाद्यलंकृता । सहानुचर कन्याभिः सहस्राभिर्हरं यथा ॥१९२॥
अथाह शंकरो देवीं गच्छ गौतममंदिरम् । संध्योपास्तिमहं कृत्वा ह्यागमिष्ये तवांतिकम् ॥१९३॥
इत्युक्त्वा प्रययौ देवी गौतमस्यैव मंदिरम् । संध्यावंदनकामास्तु सर्वं एव विनिर्गताः ॥१९४॥
कृतसंध्यास्तडागे तु महेशाद्याश्च कृत्स्नशः । अथोत्तरमुखः शंभुर्न्यासं कृत्वा जजाप ह ॥१९५॥
अथ विष्णुर्महातेजा महेशमिदमब्रवीत् । सर्वैर्नमस्यते यस्तु सर्वैरेव समर्च्यते ॥१९६॥
हूयते सर्वयज्ञेषु स भवान्किं जपिष्यति । रचितांजलयः सर्वे त्वामेवैकमुपासिते ॥१९७॥
स भवान्देवदेवेशः कस्मै विरचितांजलिः । नमस्कारादिपुण्यानां फलदस्त्वं महेश्वर ॥१९८॥
तव कः फलदो वंद्यः को वा त्वत्तोऽधिको वद । तच्छ्रुत्वा शंकरः प्राह देवदेवं जनार्दनम ॥१९९॥

ऊपर उठा दिया और कहा—'देवों की ईश्वरी ! मैंने तुम्हारा अपराध किया जो तुम्हें छोड़कर भोजन करने आया। सुन्दरि ! तुम्हें अपने घर पर छोड़कर जो मैं निमन्त्रण खाने चला आया—यह मेरा घोर अपराध हुआ। किन्तु देवेश्वरि ! क्षमा करो। क्रोध का त्याग कर मेरी ओर ताको।' शिव के इस तरह कहने पर भी उमा नहीं बोली; अपितु वहाँ से उठकर अरुंधती के समीप जाने लगी ॥१८५-१९१॥ मुनि ने यह समझकर उन्हें प्रणाम किया तब शिवा ने पूछा—'गौतम ! तुम क्या चाहते हो ?' मुनि ने मुस्कराती हुई पार्वती को देख कर उत्तर दिया—"यदि आप मेरे घर में भोजन कर लेतीं तो मैं कृतकृत्य हो जाता।" तब गौरी ने अंजलि बांधे गौतम से कहा—'विप्र ! मैं शङ्कर से अनुमति लेकर तुम्हारे घर में भोजन करूंगी।' यह सुनते ही गौतम शिव से आज्ञा ले आये और उन्होंने अरुंधती सहित देवी गिरजा को भोजन कराया। भोजनोपरान्त गंध, पुष्प आदि से अलंकृता होकर पार्वती सहस्रों परिचारिकाओं के साथ शङ्कर के समीप गईं। परन्तु शंभु ने कहा—"अभी तुम गौतम के घर जाओ। मैं संध्योपासन करके तुम्हारे पास आऊँगा।" यह सुनकर गौरी गौतम के घर चली गईं और सब देवगण संध्यावंदन करने के लिये बाहर निकले ॥१९२-१९४॥ तालाब में जाकर महेश आदि देवों ने संध्यावंदन किया।

तदुपरान्त जब उत्तर मुख होकर शंभु न्यास तथा जप कर चुके तब महातेजस्वी विष्णु ने शङ्कर से कहा—"जिन्हें समस्त देवगण नमस्कार करते है, जिनकी सब अर्चना करते हैं और सकल यज्ञों में जिनको आहुतियां दी जाती हैं, वे देव (आप) किस चीज का जप करते हैं ? निखिल सुरगण अंजलि बांध कर एक आप ही की उपासना करते हैं। तब देवदेवेश्वर होकर आप किसको प्रणाम करते हैं ? महेश्वर ! नमस्कार आदि पुण्यों का फल देने वाले आप हैं। फिर आपको कौन फल देगा ? या आपसे बढ़कर कौन है ?—बतलाइए।" १९५-१९८½॥ यह सुनकर शङ्कर ने देवाधीश्वर जनार्दन से कहा—"गोविन्द ! मैं न कुछ ध्यान करता हूँ, न

ध्याये न किंचिद्गोविंद नमस्ये ह न किंचन । किंतु नास्तिकजंतूनां प्रवृत्त्यर्थमिदं मया ॥२००॥
दर्शनीयं हरे चैतदन्यथा पापकारिणः । तस्माल्लोकोपकारार्थमिदं सर्वं कृतं मया ॥२०१॥
ओमित्युक्त्वा हरिरथ तं नत्वा समतिष्ठत । अथ ते गौतमगृहं प्राप्ता देवर्षयस्तदा ॥२०२॥
सर्वे पूजामथो चक्रुर्देवदेवाय शूलिने । देवो हनूमता सार्द्धं गायन्नास्ते मुनीश्वर ॥२०३॥
पञ्चाक्षरीं महाविद्यां सर्व एव तदाऽजपन् । हनुमत्करमालंब्य देवाभ्यां संगतो हरः ॥२०४॥
एकशय्यासमासीनौ तावुभौ देवदंपती । गायन्नास्ते च हनुमांस्तु तुंबुरुप्रमुखास्तथा ॥२०५॥
नानाविधविलासांश्च चकार परमेश्वरः । आहूय पार्वतीमीश इदं वाक्यमुवाच ह ॥२०६॥
रचयिष्यामि धम्मिल्लमेहि मत्पुरतः शुभे । देव्याह न च युक्तं तद्भर्त्रा शुश्रूषणं स्त्रियः ॥२०७॥
केशप्रसाधनकृतावनर्थांतरमापतेत् । केशप्रसाधने देव तत्त्वं सर्वं न चेप्सितम् ॥२०८॥
अथ बंधे कृते पश्चादंसप्रांतप्रमार्जनम् । ततश्चरमसंलग्न केशपुष्पादिमार्जनम् ॥२०९॥
एतस्मिन्वर्तमाने तु महात्मानो यदागमन् । तदा किमुत्तरं वाच्यं तव देवादिवंदित ॥२१०॥
नायांति चेदथ विभो भीतिर्नाशमुपैष्यति । एवं हि भाषमाणां तां करेणाकृष्य शंकरः ॥२११॥
स्वोर्वोः संस्थापयित्वैव विस्रस्य कचबंधनम् । विभज्य च कराभ्यां स प्रससार नखैरपि ॥२१२॥
विष्णुदत्तां पारिजातस्रजं कचगतामपि । कृत्वा धम्मिल्लमकरोदथ मालां करागताम् ॥२१३॥
मल्लिकास्रजमादाय बबंध कचबंधने । कल्पप्रसूनमालां च ब्रह्मदत्तां महेश्वरः ॥२१४॥
पार्वतीवसने गूढगन्धाढ्यं च समाददात् । अथांसपृष्ठ संलग्नमार्जनं कृतवान् विभुः ॥२१५॥
श्लथन्नीवेरधो देव्या वस्त्रवेष्टादधोगतः । किमिदं देवि चेत्युक्त्वा नीवीबंधं चकार ह ॥२१६॥

नमस्कार हो। केवल नास्तिक लोगों को प्रवृत्त कराने के लिए (लोकशिक्षणार्थ) यह सब कुछ मैं करता हूँ। हरे! इस तरह की चेष्टा करके लोगों को दिखाना चाहिए; अन्यथा पापियों की वृद्धि हो जायगी। बस, यही सोचकर मैंने लोकोपकार की दृष्टि से ऐसा किया।" ठीक—यह कह कर हरि ने हर को प्रणाम किया। पश्चात् समस्त देव एवम् ऋषि गौतम के घर आये। सबों ने देव-देव शङ्कर की आराधना की। मुनीश्वर! उस समय महादेव हनुमान् के साथ गा रहे थे और सब देवादिगण पंचाक्षर मन्त्र (नमःशिवाय) का जप कर रहे थे। अनन्तर शंभु हनुमान् का हाथ पकड़ कर विष्णु के साथ पार्वती के समीप पहुँचे। वहाँ दोनों दम्पति एक शय्या पर आसीन हुए। तब हनुमान् तुंबुरु आदि वाद्यों को बजाते हुए गाने लगे ॥१९९-२०५॥ इधर देव ने पार्वती को संबोधित करते हुए कहा—'कल्याणि! यहाँ मेरे सामने आओ। मैं तुम्हारा जूड़ा बांधूँगा।' परन्तु देवी ने उत्तर दिया—'न-न-न, पति पत्नी की सेवा करे, यह उचित नहीं। देव! आप यदि जूड़ा बांधेंगे तो अनर्थ हो जायगा। क्योंकि इस कार्य में विलम्ब होता है। जैसे बालों को सँवारना, उनमें लगे पुष्प आदि को हटाना और पुनः पुष्प आदि से उन्हें सुसज्जित करना होता है। उतने में यदि कोई महात्मा आ जायेंगे तो क्या कहेंगे? मान लीजिए, कदाचित् कोई न भी आये तो भी तो हम लोगों को उनके आने की शंका बनी ही रहेगी।, इस प्रकार कहती हुई पार्वती को शङ्कर ने हाथ से खींच कर अपने जंघे पर सुला दिया और उनके बालों को खोल कर अपने हाथों की अँगुलियों एवम् नखों से बिलगाने लगे ॥२०६-२१२॥ पुनः सँवार कर विष्णु की दी हुई पारिजातकुसुम की माला से जूड़ा बांध कर उसमें मालतीमाला तथा ब्रह्मा की दी हुई कल्पप्रसूनमाला भी बांध दी। पुनः कंधे तथा पीठ आदि पर पड़े बालों को झाड़ कर उमा की नीवी को खींचते हुए कहा—'देवि! यह क्या?' इतना कह कर नीवी को भी बांध दिया ॥२१३-२१६॥

नासाभूषणमेतत्ते सत्यमेव वदामि ते । ततः प्राह शिवा शंभुं स्मित्वा पर्वतनंदिनी ॥२१७॥
अहो त्वन्मंदिरे शंभो सर्ववस्तु समृद्धिमत् । पूर्वमेव मया सर्वं ज्ञातप्रायमभूत्किल ॥२१८॥
सर्वंद्रविणसंपत्तिर्भूषणैरवगम्यते । शिरो विभूषितं देव ब्रह्मशीर्षस्य मालया ॥२१९॥
नरकस्य तथा माला वक्षःस्थलविभूषणम् । शेषश्च वासुकिश्चैव सविषौ तव कङ्कणौ ॥२२०॥
दिशोंऽबरं जटा केशा भसितं चांगरागकम् । महोक्षो वाहनं गोत्रं कुलं चाज्ञातमेव च ॥२२१॥
ज्ञायेते पितरौ नैव विरूपाक्षं तथा वपुः । एवं वदंतीं गिरिजां विष्णुः प्राहातिकोपनः ॥२२२॥
किमर्थं निंदसे देवि देवदेवं जगत्पतिम् । दुष्प्राणा न प्रिया भद्रे तव नूनमसंयमात् ॥२२३॥
यत्रेशनिंदनं भद्रे तत्र नो मरणव्रतम् । इत्युक्त्वाथ नखाभ्यां हि हरिश्छेत्तुं शिरो गतः ॥२२४॥
महेशस्तत्करं गृह्य प्राह मा साहसं कृथाः । पार्वतीवचनं सर्वं प्रियं मम न चाप्रियम् ॥२२५॥
ममाप्रियं हृषीकेश कर्तुं यत्किंचिदिष्यते । ओमित्युक्त्वाथ भगवांस्तूष्णींभूतोऽभवद्धरिः ॥२२६॥
हनुमानथ देवाय व्यज्ञापयदिदं वचः । अर्थयामि विनिष्कामं मम पूजाव्रतं तथा ॥२२७॥
पूजार्थमप्यहं गच्छे मामनुज्ञातुमर्हसि । तच्छ्रुत्वा शंकरो देवः स्मित्वा प्राह कपीश्वरम् ॥२२८॥
कस्य पूजा क्व वा पूजा किं पुष्पं किं दलं वद । को गुरुः कश्च मंत्रस्ते कीदृशं पूजनं तथा ॥२२९॥
एवं वदति देवेशे हनुमान्भीतिसंयुतः । वेपमान समस्तांग स्तोतुमेवं प्रचक्रमे ॥२३०॥
नमो देवाय महते शंकरायामितात्मने । योगिने योगधात्रे च योगिनां गुरवे नमः ॥२३१॥

फिर नासिका भूषण लेकर कहने लगे—'यह तुम्हारी नाक का आभूषण है, मैं सत्य कहता हूँ। इसे पहन लो।' तब पर्वतनन्दिनी शिवा मुस्कराती हुई बोली—'शंभो; आपके घर में किसी वस्तु की कमी नहीं है, यह पहले ही समझ गई थी। आभूषणों से ही तो प्रचुर धन-संपत्ति का पता चलता है। देखिये न, आपका मस्तक ब्रह्ममुण्डमाला से कैसा शोभित हो रहा है। वक्षःस्थल भी तो आपका नरमुण्डमाला से विभूषित है॥२१७-२१८½॥ अहा! यह आपके कंगन विषधर शेष तथा वासुकी हैं, वस्त्र दिशायें हैं, अंगराग भस्म है, वाहन गवेन्द्र है, गोत्र-वंश तो अज्ञात ही है। आपके माता-पिता को भी तो कोई नहीं जानता। शरीर में नेत्र भी दो नहीं तीन हैं।, इस तरह, उपहास करती हुई गिरिजा से विष्णु ने क्रोधपूर्वक कहा—देवि! क्यों तुम देवदेव जगदीश्वर की निन्दा कर रही हो? भद्रे! मालूम पड़ता है कि तुम्हें अपने असंयम के कारण स्वकीय प्राण प्रिय नहीं हैं। शुभे! जहां शंकर की निंदा होती है वहां हमलोगों को मरणव्रत आरम्भकर देना चाहिये। ॥२१९-२२३½॥ इतना कह कर विष्णु अपने नखों से ही उमा का शिर काटने को तैयार हो गये। परन्तु महेश ने उनका हाथ पकड़ लिया और समझाया—'ऐसा साहस मत करो। पार्वती की सभी बातें मुझे प्रिय लगती हैं, अप्रिय नहीं। हृषिकेश! तुम जो कुछ करने जा रहे हो, वही मुझे अप्रिय लग रहा है।' शिव का वचन सुनकर हरि 'अस्तु' कहते हुए चुप हो गये।

तब हनुमान् ने महादेव से निवेदन किया—'देव! मैं निष्काम पूजा व्रत करना चाहता हूँ॥२२४-२२७॥ इस लिये आप आज्ञा प्रदान कीजिये।' यह सुन कर शंकर मन्द हास्य करते हुए कपीश्वर से बोले—'किसकी पूजा करोगे? कहाँ करोगे? पत्र-पुष्प क्या होंगे! गुरु कौन है? तथा पूजा किस प्रकार की होगी। देवेश की यह बात सुनकर हनुमान् अत्यंत विनयावनत हो गये। उनके समस्त अंग कांपने लगे। तब उन्होंने इस तरह स्तुति करना प्रारंभ किया—''महान् देव, शंकर, अमितात्मा, योगी, योगधाता तथा योगियों के गुरु को नमस्कार है। योग

योगगम्याय देवाय ज्ञानिनां पतये नमः । वेदानां पतये तुभ्यं देवानां पतये नमः ॥२३२॥
ध्यानाय ध्यानगम्याय ध्यातॄणां गुरवे नमः । अष्टमूर्ते नमस्तुभ्यं पशूनां पतये नमः ॥२३३॥
अंबकाय त्रिनेत्राय सोमसूर्याग्निचक्षुषे । भृङ्गराजधत्तूरद्रोणपुष्पप्रियस्य ते ॥२३४॥
बृहतीपूगपुन्नागचंपकादिप्रियाय च । नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु भूय एव नमोनमः ॥२३५॥
शिवो हरिमथ प्राह मा भैषीर्वद मेऽखिलम् । ततस्त्यक्त्वा भयं प्राह हनुमान् वाक्यकोविदः ॥२३६॥
शिवलिंगार्चनं कार्यं भस्मोद्धूलितदेहिना । दिवा संपादितैस्तोयैः पुष्पाद्यैरपि तादृशैः ॥२३७॥
देव विज्ञापयिष्यामि शिवपूजाविधिं शुभम् । सायंकाले तु संप्राप्ते अशिरःस्नानमाचरेत् ॥२३८॥
क्षालितं वसनं शुष्कं धृत्वाचम्य त्रिरन्यधीः । अथ भस्म समादाय आग्नेयं स्नानमाचरेत् ॥२३९॥
प्रणवेन समामंत्र्य अष्टवारमथापि वा । पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण नाम्ना वा येन केनचित् ॥२४०॥
सप्ताभिमंत्रितं भस्म दर्भपाणिः समाहरेत् । ईशानः सर्वविद्यानामुक्त्वा शिरसि पातयेत् ॥२४१॥
तत्पुरुषाय विद्महे मुखे भस्म प्रसेचयेत् । अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यः भस्म वक्षसि निक्षिपेत् ॥२४२॥
वामदेवाय नमः इति गुह्यस्थाने विनिक्षिपेत् । सद्योजातं प्रपद्येति निक्षिपेदथ पादयोः ॥२४३॥
उद्धूलयेत्समस्तांगं प्रणवेन विचक्षणाः । त्रैवर्णिकानामुदितः स्नानादिविधिरुत्तमः ॥२४४॥
शूद्रादीनां प्रवक्ष्यामि यदुक्तं गुरुणा तथा । शिवेति पदमुच्चार्य भस्म संमन्त्रयेत्सुधीः ॥२४५॥
सप्तवारमथादाय शिवायेति शिरस्यथ । शंकराय मुख प्रोक्तं सर्वज्ञाय हृदि क्षिपेत् ॥२४६॥
स्थाणवे नम इत्युक्त्वा मुखे चापि स्वयंभुवे । उच्चार्य पादयोः क्षिप्त्वा भस्म शुद्धमतः परम् ॥२४७॥

द्वारा प्राप्य देव, ज्ञानियों के स्वामी, वेदों के पति, देवों के पति, ध्यानरूप ध्यानमग्न तथा ध्यान करने वालों के गुरु को नमस्कार है। अष्टमूर्ते! आपको नमस्कार है। पशुओं के पति को नमस्कार है। अम्बक तथा त्रिनेत्र को नमस्कार है। सोम, सूर्य तथा अग्निरूप नेत्र वाले, भृंगराज धत्तूर तथा द्रोण पुष्पों के प्रिय और बृहती, पूग, पुन्नाग तथा चंपक आदि के प्रिय को नमस्कार है। आपको नमस्कार है। बार-बार आपको नमस्कार है" ॥२२८-२३५॥

इसके बाद शिव ने कपि से कहा—'डर मत करो। मुझे सब कुछ कह डालो।' तब निर्भय होकर वाक्-चतुर हनुमान् बोले—'देव! कल्याण देने वाली शिवपूजा की विधि मैं श्रीमान् से निवेदन करता हूँ। साधक संपूर्ण शरीर में भस्म रमा कर शिवलिंग की अर्चना करे। दिन में जल आदि से पूजन और सायंकाल बिना शिर भिगोये स्नान करके वस्त्र पहन कर सावधानी से तीन बार आचमन करे। तदनन्तर भस्म लेकर आग्नेय स्नान करना चाहिये ॥२३६-२३९॥ भस्म को प्रणव से आठ बार आमन्त्रित कर पंचाक्षर मन्त्र या जिस किसी नाम (मन्त्र) से सात बार अभिमन्त्रित करे। फिर हाथ में कुश लेकर 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' यह कहते हुए शिर पर भस्म डाले। 'तत्पुरुषायविद्महे' यह पढ़कर मुख में, 'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यः' यह पढ़ कर छाती में, 'वामदेवाय नमः' यह कह कर गुह्यस्थान में, 'सद्योजातम् प्रपद्यामि' यह कह कर पैरों में और प्रणव का उच्चारण कर संपूर्ण अङ्गों में भस्म लगाये। यह स्नान आदि की विधि तीन वर्णों के लिये उत्तम कही गई है और शूद्र आदि के लिये तो जैसा गुरु ने मुझे बतलाया है, वह मैं निवेदन कर देता हूँ। वे (शूद्र आदि) 'शिव' इस पद का सात बार उच्चारण कर भस्म को अभिमन्त्रित करें। पुनः उसे लेकर 'शिवाय नमः' इसका उच्चारण करते हुए शिर में, 'शंकराय नमः' यह पढ़ते हुए हृदय में, 'सर्वज्ञाय नमः' यह पढ़ते हुए हृदय में,' स्थाणवे नमः' यह कहते हुए पुनः मुख में 'स्वयंभुवे नमः' यह कहते हुए पैरों में और 'नमः शिवाय' कह कर संपूर्ण अंगों में भस्म लेपे ॥२४०-२४७॥

नमः शिवायेत्युच्चार्य सर्वांगोद्धूलनं स्मृतम् । प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य दर्भपाणिः समाहितः ॥२४८॥
दर्भाभावे सुवर्णं स्यात्तदभावे गवालुकाः । तदभावे तु दूर्वाः स्युस्तदभावे तु राजतम् ॥२४९॥
संध्योपास्ति जपं देव्याः कृत्वा देवगृहं व्रजेत् । देववेदीमथो वापि कल्पितं स्थंडिलं तु वा ॥२५०॥
मृण्मयं कल्पितं शुद्धं पद्मादिरचनायुतम् । चातुर्वर्णकरं गैरिकं श्वेतेनैकेन वा पुनः ॥२५१॥
विचित्राणि च पद्मानि स्वस्तिकानि तथैव च । उत्पलादिगदाशंखत्रिशूलडमरूंस्तथा ॥२५२॥
शरोक्तपंचप्रासादं शिवलिंगमथैव च । सर्वकामफलं वृक्षं कुलकं कोलकं तथा ॥२५३॥
षट्कोणं च त्रिकोणं च नवकोणमथापि वा । कोणे द्वादशकांदोलापादुकाव्यजनानि च ॥२५४॥
चामरच्छत्रयुगलं विष्णुब्रह्मादिकांस्तथा । चूर्णैर्विरचयेद्वेद्यां धीमान्देवालयेऽपि वा ॥२५५॥
यत्रापि देवपूजा स्यात् तत्रैव कल्पयेद्बुधः । स्वहस्तरचितं मुख्यं क्रीतं चव तु मध्यमम् ॥२५६॥
याचितं तु कनिष्ठं स्याद्बलात्कारमथोऽधमम् । अर्हेषु यत्स्वनर्हेषु बलात्कारात्तु निष्फलम् ॥२५७॥
रक्तशालिजपाशाणकलमासितरक्तकैः । ततंदुलैर्व्रीहिमात्रोत्थैः कणैश्चैव यथाक्रमम् ॥२५८॥
उत्तमैर्मध्यमैश्चव कनिष्ठैरधमैस्तथा । पद्मादिस्थापनैरेव तत्सम्यग्यागमाचरेत् ॥२५९॥
प्रागुत्तरमुखो वापि यदि वा प्राङ्मुखो भवेत् । आसनं च प्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथा श्रुतम् ॥२६०॥
कौशं चार्मं चैलतल्पे दारवं तालपत्रकम् । कांबलं कांचनं चैव राजतं ताम्रमेव च ॥२६१॥
गोकरीषार्कजैर्वापि ह्यासनं परिकल्पयेत् । वैयाघ्रं रौरवं चैव हारिणं मार्गमेव च ॥२६२॥
चार्मं चतुर्विधं ज्ञेयमथ बंधूकमेव च । यथासंभवमेतेषु ह्यासनं परिकल्पयेत् ॥२६३॥

भस्मस्नान के उपरान्त साधक हाथ धोकर आचमन कर हाथ में कुश ले समाहितचित्त से संध्योपासन तथा जप करे। यदि कुश न मिले तो सुवर्ण, उसके अभाव में गवालुक (गोरोचन), तदभाव में दूर्वा और उसके भी अभाव में चांदी ग्रहण करे। तदनन्तर देवमंदिर (शिवालय) में जाकर देववेदी का निर्माण करे। वेदी मृत्तिका की होनी चाहिये। उसमें गेरू या किसी श्वेत द्रव्य से कमल आदि का चित्र लिखना चाहिये। अर्थात् तरह-तरह के पद्म, स्वस्तिक, उत्पल, गदा, शंख, त्रिशूल, डमरू, पाँच प्रासाद, शिवलिंग, सकल कामना रूपी फल वाला वृक्ष, कुलक, कोलक, षट्कोण, त्रिकोण, नवकोण, द्वादश कोण, दोला, पादुका, व्यजन, चामर, छत्र, विष्णु तथा ब्रह्मा आदि देवों के चित्र लिखे ॥२४८–२५४३॥ धीमान् व्यक्ति वेदी, देवालय अथ च जहाँ कहीं देव पूजा करे, वहीं भी इसी प्रकार रचना करे। अपने हाथ से इसकी रचना करना उत्तम है। द्रव्य देकर दूसरे से कराना मध्यम, मंगनी में कराना कनिष्ठ और बलपूर्वक कराना अधम है। योग्य एवम् अयोग्य कर्मों में बलात्कार करने से कर्म निष्फल हो जाता है। लाल चावल, जपाकुसुम, शाण (?), कलमी धान्य, काले और लाल रंग के चावल और सामान्य धान्य के कणों से क्रमशः याग करना चाहिये। उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ और अधम प्रकार के पद्म आदि के स्थापन द्वारा याग का सम्यक् अनुष्ठान करना चाहिए। पूर्व-उत्तर मुँह होकर अथवा पूर्व मुँह होकर कर्म करना चाहिये।

अब मैं आसन का विधान, जैसा देखा एवम् सुना है, बतलाता हूँ ॥२५५-२६०॥ कुश, चर्म, वस्त्र, तल्प, दारु, लालपत्र, कंबल, सुवर्ण, चांदी, तांबा, गौ के गोबर तथा आक की लकड़ी का आसन बनाना चाहिये। चर्म चार प्रकार के कहे गये हैं। व्याघ्र चर्म, रुरु चर्म, हरिण चर्म और मृग चर्म से आसन बना सकते हैं। बन्धुक (दोपहरिया फूल) के काष्ठ का भी आसन होता है। इन चीजों में से यथासंभव आसन बनाकर उस पर पद्मा-

कृतपद्मासनो वापि स्वस्तिकासन एव च । दर्भभस्मसमासीनः प्राणानायम्य वाग्यतः ॥२६४॥
तावत्स देवतारूपो ध्यानं चांतः समाचरेत् । शिखांते द्वादशांगुल्ये स्थितं सूक्ष्मतनुं शिवम् ॥२६५॥
अंतश्चरंतं भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखम् । सर्वाभरणसंयुक्तमणिमादिगुणान्वितम् ॥२६६॥
ध्यात्वा तं धारयेच्चित्ते तद्दीप्त्या पूरयेत्तनुम् । तथा दीप्त्या शरीरस्थं पापं नाशमुपागतम् ॥२६७॥
स्वर्णपादेरसंपर्काद्रवर्त श्वेतं यथा भवेत् । तद्द्वादशदलावृत्तमष्ट पंच त्रिरेव वा ॥२६८॥
परिकल्प्यासनं शुद्धं तत्र लिंगं निधाय च । गुहास्थितं महेशानं लिंगेशं चिंतयेत्तथा ॥२६९॥
शोधिते कलशे तोयं शोधितं गंधवासितम् । सुगन्धपुष्पं निक्षिप्य प्रणवेनाभिमंत्रितम् ॥२७०॥
प्राणायामश्च प्रणवः शूद्रेषु न विधीयते । प्राणायामपदे ध्यानं शिवेत्योंकारमंत्रितम् ॥२७१॥
गन्धपुष्पाक्षतादीनि पूजाद्रव्याणि यानि च । तानि स्थाप्य समीपे तु ततः संकल्पमाचरेत् ॥२७२॥
शिवपूजां करिष्यामि शिवतुष्ट्यर्थमेव च । इति संकल्पयित्वा तु तत आवाहनादिकम् ॥२७३॥
कृत्वा तु स्नानपर्यंतं ततः स्नानं प्रकल्पयेत् । नमस्तेत्यादिमंत्रेण शतरुद्रविधानतः ॥२७४॥
अविच्छिन्ना तु या धारा मुक्तिधारेति कीर्तिता । तया यः स्नापयेन्मासं जपन्रुद्रमुखांश्च वा ॥२७५॥
एकवारं त्रिवारं च पंच सप्त नवापि वा । एकादश तथा वारमथैकादशधान्वितम् ॥२७६॥
मुक्तिस्नानमिदं ज्ञेयं मासं मोक्षप्रदायकम् । शैवया विद्यया स्नानं केवलं प्रणवेन वा ॥२७७॥
मृण्मयैर्नालिकेरस्य शकलैश्चोर्मिभिस्तथा । कांस्येन मुक्ताशुक्त्या च पुष्पादिकेसरेण वा ॥२७८॥
स्नापयेद्देवदेवेशं यथासंभवमीरितैः । शृंगस्य च विधिं वक्ष्ये स्नानयोग्यं यथा भवेत् ॥२७९॥

सन या स्वस्तिकासन लगाकर बैठे। कुश तथा भस्म धारण कर वाक्संयमपूर्वक प्राणायाम करे ॥२६१-२६४॥

स्वयं देवरूप बनकर अन्तःकरण में शिव का ध्यान करे। ध्यान इस तरह करे कि मेरी द्वादशांगुलिप्रमाण शिखा के अन्त में सूक्ष्म शरीर वाले, प्राणियों के हृदय में निवास करने वाले, सब ओर मुख वाले, समस्त आभूषणों एवम् अणिमा आदि गुणों से युक्त शंकर अवस्थित हैं। ध्यानोपरान्त चित्त में उनको धारण कर उनके प्रकाश से अपने शरीर को प्रकाशित करे। ऐसा करने से शरीरस्थ पाप नष्ट हो जाता है। पश्चात् सुवर्ण का बारह या आठ या पाँच या तीन पत्र वाला कमल बना कर उस पर शिवलिंग की स्थापना करे। फिर गुहास्थित महेश लिंगेश का ध्यान कर पवित्र घट में सुवासित निर्मल जल तथा सुगंधित पुष्प डाल कर प्रणव से जल को अभिमंत्रित करे ॥२६५-२७०॥ परन्तु शूद्र प्राणायाम तथा प्रणवोच्चारण न करे। वह प्राणायाम के बदले ध्यान तथा प्रणव के स्थान में 'शिव' पद का उच्चारण करे। गंध, पुष्प, अक्षत आदि पूजाद्रव्यों को लिंग के समीप रखकर संकल्प करे कि मैं शंकर की प्रसन्नता के लिये शिवपूजा करूँगा। संकल्प करने के उपरान्त आवाहन आदि करके "नमस्ते" इत्यादि मंत्र से शतरुद्री विधान के अनुसार स्नपन करे। जलधारा अविच्छिन्न होनी चाहिये। ऐसी ही धारा मुक्तिधारा कहलाती है। उसी धारा से शतरुद्रीपाठ करते हुए एक मास तक शिव को स्नान कराये। एक बार या तीन बार या पाँच बार या सात बार या नौ बार या ग्यारह बार स्नान कराने का ही नाम मुक्तिस्नान है। एक मास तक ऐसा करने से मोक्ष मिलता है। स्नान शिवमन्त्र या केवल प्रणव से ही कराना चाहिये। मिट्टी, नारियल, काँसा, मोती तथा सीप के पात्र से पुष्प तथा केसर के साथ महेश का स्नपन करे ॥२७१-२७८½॥

अब मैं शृंग का विधान बतलाता हूँ, जिससे समुचित प्रकार से शिव को स्नान कराया जा सकता है।

पूर्वमंतस्तु संशोध्य बहिरंतस्तु शोधयेत्। सुस्निग्धं लघु कृत्वाथ नांगं छिद्यात्कथंचन ॥२८०॥
नीचैकदेशविन्यस्तद्वारद्रोण्या सुहृत्तया। कुशानुयुक्तं स्नानं तु देवाय परिकल्पयेत् ॥२८१॥
एवं गवयशृंगस्य जलपूर्तिरथोच्यते। द्वारे निषिद्धलोहार्द्धसंधिद्वारासमन्विते ॥२८२॥
योगवक्रं नागदंडं नागाकारं प्रकल्पयेत्। फलस्थाने तु चषकं दंडेन समरंध्रकम् ॥२८३॥
तत्रैव पातयेत्तोयं मूर्द्धयंत्रघटे स्थितम्। पातयेदथ चान्येन वामेनैव करेण वा ॥२८४॥
मुक्तिधारा कृता तेन पवित्रं पापनाशनम्। एवं संस्नाप्य देवेशं पंचगव्यैस्तथैव च ॥२८५॥
पञ्चामृतैरथ स्नाप्य मधुरत्रितयेन च। विभूष्य भूषणैर्देवं पुनः स्नाप्य महेश्वरम् ॥२८६॥
शीतोपचारं कृत्वाथ तत आचमनादिकम्। वस्त्रं तथोपवीतं च गंधद्रव्यकमेव च ॥२८७॥
कर्पूरमगरुं चापि पाटीरमथवा भवेत्। उभयमिश्रितं चापि शिवलिंगं प्रपूजयेत्।
कृत्स्नं पीठं गंधपूर्णं यद्वा विभवसारतः। तूष्णीमथोपचारं वा कालीयं पुष्पमेव च ॥२८८॥
श्रीपत्रमरुचित्याज्यं यथाशक्त्यखिलं यथा। अनेकद्रव्यधूपं च गुग्गुलं केवलं तथा ॥२८९॥
कपिलाघृतसंयुक्तं सर्वधूपं प्रशस्यते। धूपं दत्वा यथाशक्ति कपिलाघृतदीपकान् ॥२९०॥
अथवा पूजामात्रेण दीपान्दत्वोपहारकम्। नैवेद्यमुपपन्नं च दत्वा पुष्पसमन्वितम् ॥२९१॥
मुखशुद्धिं ततः कृत्वा दत्वा तांबूलमादरात्। प्रदक्षिणनमस्कारौ पूजैवं हि समाप्यते ॥२९२॥
गीत्यंगपंचकं पश्चात्तानि विज्ञापयामि ते। गीतिवाद्यं पुराणं च नृत्यं हास्योक्तिरेव च ॥२९३॥
नीराजनं च पुष्पाणामंजलिश्चाखिलार्पणम्। क्षमापनं चोद्वसनं प्रोक्तं पंचोपचारकम् ॥२९४॥

शृंग के भीतर तथा बाहर अच्छी तरह साफ कर उसे चिकना बनाये। वह कटा-फटा नहीं होना चाहिए। उसका निचला भाग ऐसा बनाया जाय, जिससे जल की सूक्ष्मधारा अविच्छिन्न गति से गिरे। पहिले हाथ में कुश लेकर तब शंकर को स्नान कराना चाहिये। इस प्रकार नीलगाय के नर के सींग का बना शृङ्ग जल-पूर्ति के लिए कहा गया है। उस शृङ्ग के मुखभाग में तथा जोड़ों में वेध धातु को मढ़ देना चाहिए। उस शृङ्ग को टेढ़ा, नागदंडाकार या नागाकार बनाना चाहिए। उसका अग्रभाग प्याले की तरह हो और दंड के अन्त में छिद्र हो। उसी छिद्र के द्वारा शिवलिंग के ऊपर स्थापित यंत्र-घट के जल को गिरावे। उस शृङ्ग को बायें हाथ या दाहिने हाथ से पकड़कर जल गिराना चाहिए। जो शंकर को मुक्तिधारा (अर्थात् मुक्तिस्नान) कराता है वह पवित्र एवम् पाप-रहित हो जाता है ॥२७९-२८४½॥ देवेश को पंचगव्य, पंचामृत तथा त्रिमधुरयुक्त जल से नहलाकर आभूषणों से विभूषित करे। पुनः स्नान तथा आचमन आदि कराकर वस्त्र, यज्ञोपवीत, सुगंधित द्रव्य, कर्पूर, अगर या चंदन या दोनों से शिवलिंग की पूजा करे। संपूर्ण पीठ को सुवासित करके पूजन करना चाहिये। अथवा अपने सामर्थ्य के अनुसार अर्चना करे। चुपचाप या मंत्रपूर्वक कालीय पुष्प, बिल्वपत्र तथा कुरवक-पुष्पों की राशि, घी, अनेक द्रव्यों का बना धूप तथा केवल गुग्गुल समर्पण करे। कपिला गौ के घी से मिश्रित धूप सर्वोत्तम माना जाता है। यथाशक्ति धूप देकर कपिलाघृतपूर्ण दीप समर्पित करे। तदनन्तर उपहार, नैवेद्य तथा पुष्प समर्पण कर मुखशुद्धि करने के लिये तांबूल अर्पित करे। फिर प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके पूजा समाप्त करे ॥२८५-२९२॥ पश्चात् पांच अंगों से युक्त संगीत करना चाहिये। गीति, वाद्य, पुराण, नृत्य तथा हास्योक्ति—ये पांचों गीत्यंग कहलाते हैं। नीराजन, पुष्पांजलि, सर्वसमर्पण, क्षमाप्रार्थना तथा उद्वसन—ये पाँचों उपचार

भूषणं च तथा छत्रं चामरव्यजने अपि । उपवीतं च कथं षोडशानुपचारकान् ॥ २९५॥
द्वात्रिंशदुपचारैस्तु यः समाराधयेच्छिवम् । एकेनाह्ना समस्तानां पातकानां क्षयो भवेत् ॥२९६॥
एतच्छ्रुत्वा हनुमतो वचनं प्राह शंकरः । एवमेतत्कपिश्रेष्ठ यदुक्तं पूजनं मम ॥२९७॥
सारभूतमहं तुभ्यमुपदेक्ष्यामि सांप्रतम् । आराधनं यथा लिंगे विस्तरेण त्वयोदितम् ॥२९८॥
मत्पादयुगलं प्राच्यं पूजाफलमवाप्नुहि । ततः प्राह कपिश्रेष्ठो देवदेवमुमापतिम् ॥२९९॥
गुरुणालिंगपूजैव नियता परिकल्पिता । तां करोमि पुरा देव पश्चात्त्वत्पादपूजनम् ॥३००॥
इत्युक्त्वेशं नमस्कृत्य शिवलिंगार्चनाय च । सरस्वतीरमागत्य कृत्वा सैकतवेदिकाम् ॥३०१॥
तालपत्रैर्विरचितमासनं पर्यकल्पयत् । प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च समाचम्य समाहितः ॥३०२॥
भस्मस्नानमथो चक्रे पुनराचम्य वाग्यतः । देववेद्यामथो चक्रे पद्मं च सुमनोहरम् ॥३०३॥
अनंतरं तालपत्रे पद्मासनगतः कपिः । प्राणानायम्य संन्यस्य शुक्लध्यानसमन्वितः ॥३०४॥
प्रणम्य गुरुमीशानं जपन्नासीदतः परम् । अथ देवार्चनं कर्तुं यत्नमास्थितवान्कपिः ॥३०५॥
पलाशपत्रपुटकद्वयानीतजलं शुचि । शिरः कमंडलुगतं निधायाग्निनिर्मंत्रितम् ॥३०६॥
आवाहनादि कृत्वाथ स्नानपर्यंतमेव च । अथ स्नापयितुं देवमादाय करसंपुटे ॥३०७॥
कृत्वा निरीक्षणं देवपीठं नो दृष्टवान्कपिः । लिङ्गमात्रं करगतं दृष्ट्वा भीतिसमन्वितः ॥३०८॥
इदमाह महायोगी किंवा पापं मया कृतम् । यदेतत्पीठरहितं शिवलिङ्गं करस्थितम् ॥३०९॥
ममाद्य मरणं सिद्धं न पीठं चागमिष्यति । अथ रुद्रं जपिष्यामि तदायाति महेश्वरः ॥३१०॥

कहलाते हैं। भूषण, छत्र, चामर, व्यजन, यज्ञोपवीत तथा दास्यभाव—ये भी पूजोपचार हैं। इस तरह सोलह उपचारों से पूजा करनी चाहिये। जो व्यक्ति बत्तीस उपचारों से शिव की अर्चना करता है, उसके समस्त पाप एक ही दिन में नष्ट हो जाते हैं ॥२९३-२९६॥"

हनुमान् की यह बात सुनकर शंकर ने कहा—'कपिवर! जो तुमने पूजा का प्रकार निवेदन किया है, उसका निचोड़ मैं तुम्हें कह देता हूँ, देखो, तुमने विस्तारपूर्वक लिंगपूजा का जितना वर्णन किया है, उतना फल तो तुम मेरे पादपूजन से भी प्राप्त कर सकते हो। देवेश्वर उमापति की बात सुनकर कपिश्रेष्ठ हनुमान् ने कहा—'परन्तु गुरु ने मुझे लिंगपूजा ही करने को कहा है। देव! इसलिये मैं पहिले लिंगपूजा कर लेता हूँ पश्चात् आपके चरणों की अर्चा करूँगा। इतना कहकर महेश को नमस्कार करके शिवलिंगार्चन के लिये पवननन्दन सरस्वती नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ बालू की वेदिका बना कर तालपत्र का आसन बनाया। हाथ-पैर धो आचमन करके सावधानी से भस्मस्नान किया। पुनः वाक्संयमपूर्वक देववेदी में सुमनोहर पद्म की रचना कर तालपत्र के आसन पर बैठ कर प्राणायामपूर्वक ईश के शुक्ल रूप का ध्यान किया। अनन्तर गुरु महादेव को प्रणाम कर मंत्र जप करके देवार्चन करने के लिये कपि उद्यत हुए ॥२९७-३०५॥ पलाशपत्रों के बने दो पुटकों (दोना) में शुद्ध जल लाकर उसे अभिमंत्रित करके कमंडलु में रखा तथा अपने मस्तक को सिक्त किया। पश्चात् शिवलिंग को स्नान कराने के लिये अपने हाथ में लिया। परन्तु लिंग का पीठ कपि को नहीं दिखाई पड़ा। इससे वे बहुत चिन्तित हुए और कहने लगे—'हाय! मैंने कौन-सा पाप किया, जिससे पीठ रहित शिवलिंग मेरे हाथ में पड़ा? यदि पीठ नहीं मिलेगा तो आज मेरी मृत्यु निश्चित है। अच्छा! मैं रुद्र का जप करता हूँ, इससे संभवतः आ जाय।' मन में ऐसा निश्चय करके वे शतरुद्रीपाठ करने लगे ॥३०६-३१०½॥

इति निश्चित्य मनसा जजाप शतरुद्रियम् । यदा तु न समायातो महेशोऽथ कपीश्वरः ॥३११॥
रुद्रं न्यपातयद्भूमौ वीरभद्रः समागतः । किमर्थं रुद्यते भद्र रुदिते कारणं वद ॥३१२॥
तच्छ्रुत्वा प्राह हनुमान्वीरभद्रं मनोगतम् । पीठहीनमिदं लिंगं पश्य मे पापसंचयम् ॥३१३॥
वीरभद्रस्ततः प्राह श्रुत्वा कपिसमीरितम् । यदि नायाति पीठं ते लिंगे मा साहसं कुरु ॥३१४॥
दाहयिष्याम्यहं लोकान्यदि नायाति पीठकम् । पश्य दर्शय मे लिंगं पीठं चात्रागतं न वा ॥३१५॥
अथ दृष्ट्वा वीरभद्रो लिंगे पीठमनागतम् । दग्धुकामोऽखिलाँल्लोकान्वीरभद्रः प्रतापवान् ॥३१६॥
अनलं भुवि चिक्षेप क्षणाद्दग्धा मही तदा । अथ सप्ततलान्दग्ध्वा पुनरूर्ध्वमवर्तत ॥३१७॥
पञ्चोर्ध्वंलोकानदहज्जनलोकनिवासिनः । ललाटनेत्रसंभूतं नखेनादाय चानलम् ॥३१८॥
जंबीरफलसंकाशं कृत्वा करतले विभुः । तपः सत्यं च संदग्धुमुद्यतोऽभून्मुनीश्वरः ॥३१९॥
ततस्तु मुनयो दृष्ट्वा तपोलोकनिवासिनः । दग्धुकामं वीरभद्रं गौतमाश्रममागताः ॥३२०॥
न दृष्ट्वा तत्र देवेशं शंकरं स्वात्मनि स्थितम् । अस्तुवन्भक्तिसंयुक्ताः स्तोत्रैर्वेदसमुद्भवैः ॥३२१॥

ओँ वेदवेद्याय देवाय तस्मै शुद्धप्रभाचिन्त्यरूपाय कस्मै ।
ब्रह्माद्यधीशाय सृष्टयादिकर्त्रे विष्णुप्रियायार्तिहर्त्रेऽतकर्त्रे ॥३२२॥
नमस्तेऽखिलाधीश्वरायांबराय नमस्ते चरस्थावर व्यापकाय ।
नमो वेदगुह्याय भक्तिप्रियाय नमः पाकभोक्त्रे मखेशाय तुभ्यम् ॥३२३॥

परन्तु ऐसा करने पर भी जब पीठ नहीं आया तब कपीश्वर ने लिंग को भूमि पर रख दिया। रखते ही वीरभद्र आ धमके और पूछने लगे—'भद्र! क्यों तुम रो रहे हो? रोने का कारण बतलाओ।' यह सुनकर हनुमान् ने वीरभद्र से अपना अभिप्राय यों व्यक्त किया कि मैं बड़ा पापी हूँ। इसी कारण यह लिंग पीठहीन हो गया है। तब वीरभद्र कपि की बात सुनकर कहने लगे—'यदि पीठ नहीं आता है तो लिंग का पूजन मत करो। यदि यही होगा तो मैं संपूर्ण ब्रह्माण्ड को जला दूंगा। तुम देखो, और मुझे दिखाओ कि पीठ अब तक आया है कि नहीं।' इतना कहकर वीरभद्र ने लिंग को देखा; किन्तु पीठ नहीं आया था। तब प्रतापी वीरभद्र निखिल लोकों को जला डालने की इच्छा से पृथ्वी पर अग्नि प्रक्षेप किया। क्षण भर में पृथ्वी जल गई। सातों तलों (पाताल आदि) को जला कर वह अग्नि ऊपर के लोकों को जलाने लगी ॥३११-३१५॥ जब पांच ऊर्ध्व लोक तथा जन लोक निवासी जल चुके तब शक्तिमान् वीरभद्र अपने ललाटस्थ नेत्र से उद्भूत अग्नि को नख से तोड़-तोड़ कर नींबू के बराबर बना दिया और उससे सत्यलोक को दग्ध करना चाहा। तब तपोलोकनिवासी मुनिगण वीरभद्र की यह इच्छा जानकर गौतमाश्रम में पहुँचे। परन्तु वहाँ शंकर को न देखकर वे अपने हृदिस्थित विभु की भक्तिपूर्वक वेदमूलक स्तोत्रों से स्तुति करने लगे—"वेदों से जानने योग्य, शुद्ध प्रभा के तुल्य तथा अचिन्त्यरूप देव को नमस्कार है। ब्रह्मा आदि के अधीश, सृष्टि आदि के कर्ता, विष्णु के प्रिय, आर्तिनाशक, संहारकारक, सब के अधीश्वर दिगंबर को नमस्कार है। चराचर में व्याप्त रहने वाले देव को नमस्कार है। वेदों में अप्रमेय कहे जाने वाले भक्तप्रिय को नमस्कार है। हविर्पाकभोक्ता यज्ञेश को नमस्कार है। शिव, आदिदेव, व्यालरूपी यज्ञोपवीत के धारण करने वाले को नमस्कार है। चन्द्रधारी, वेदमूर्ति तथा कालनाथ को नमस्कार है। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, चंद्र, अग्नि, प्रभा तथा मंडल रूप आठ मूर्तियों को धारण करने वाले, कल्याण रूप, अकल्याण का नाश करने वाले, वीर को नमस्कार है। पूज्य जगन्नाथ सदा मेरे ऊपर

नमस्ते शिवायादिदेवाय कुर्मो नमो व्यालयज्ञोपवीतप्रधर्त्रे ।
नमस्ते सुराबिन्दुवर्षापनाय त्रयीमूर्तये कालकालाय नाथ ॥३२४॥
धरित्रीमरुद्व्योमतोयेंदुवह्निप्रभामंडलात्माष्टधामूर्तिधर्त्रे ।
शिवायाशिवघ्नायवीराय भूयात्सदा नः प्रसन्नो जगन्नाथकेज्यः ॥३२५॥
कलानाथभालाय आत्मा महात्मा मनो ह्यप्रयानो निरूप्यो न वाग्भिः ।
जगज्जाड्यविध्वंसनो भुक्तिमुक्तिप्रदः स्तात्प्रसन्नः सदा शुद्धकीर्तिः ॥३२६॥
यतः संप्रसूतं जगज्जातमीशात्स्थितं येन रक्षावता भावितं च ।
लयं यास्यते यत्र वाचां विदूरे स वै नः प्रसन्नोऽस्तु कालत्रयात्मा ॥३२७॥
यदादि च मध्यं तथांतं न केऽपि विजानन्ति विज्ञा अपि स्वानुमानाः ।
स वै सर्वमूर्तिः सदा नो विभूत्यै प्रसन्नोऽस्तु किं ज्ञापयामोऽत्र कृत्यम् ॥३२८॥
एतां स्तुतिमथाकर्ण्य भगनेत्रप्रदः शिवः । विष्णुमाह मुनीनेतानानयस्व मदंतिकम् ॥३२९॥
अथ विष्णुः समागत्य तपोलोकनिवासिनः । मुनीन्सांत्वय्य विश्वेशं दर्शयामास शंकरम् ॥३३०॥
तानाह शंकरो वाक्यं किमर्थं यूयमागताः । तपो लोकाद्भूमिलोकं मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ॥३३१॥
तच्छ्रुत्वा शूलिनो वाक्यं प्रोचुस्ते मुनिसत्तमाः । देव द्वादशलोकानां दृश्यंते भस्मराशयः ॥३३२॥
स्थितमेकं वनमिदं पश्य तल्लोकसंक्षयम् । तच्छ्रुत्वा गिरिशः प्राह तान्मुनीनूर्द्ध्वरेतसः ॥३३३॥
भूर्लोकस्य तु संदाहे पातालानां तथैव च । सन्देहो नास्ति मुनयः स्थितानां नो रहःस्थले ॥३३४॥
ऊर्द्ध्वपंचकलोकानां दाहे संवेह एव नः । कथमंगारवृष्टिश्च कथं नो वा महाध्वनिः ॥३३५॥
तदाकर्ण्य विभोर्वाक्यं शंकरस्य मुनीश्वराः । प्रोचुः प्रांजलयो देवं ब्रह्मादिसुरसंगतम् ॥३३६॥
भीतिरस्माकमधुना वर्तते वीरभद्रतः । स एवांगारवृष्टिं च पिपासुरपिबद्विभोः ॥३३७॥

प्रसन्न हों। ललाट पर इन्दु धारण करने वाले, आत्मा एवम् महात्मस्वरूप, मन से परे, वाणी से अनिर्वचनीय, जगत् की जड़ता के विध्वंसक, भुक्तिमुक्तिदायक और विमल यश वाले देव सदा हम पर प्रसन्न हों। जिनसे संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय होता है और जो वाचामगोचर हैं, वे त्रिकालात्मा देव हम पर प्रसन्न हों। जिनके आदि, अन्त तथा मध्य को कोई नहीं जानता तथा विज्ञ पुरुष भी जिनके विषय में अपना अनुमान ही लगाते हैं, वे सर्वमूर्ति देव हमें प्रसन्न होकर ऐश्वर्य प्रदान करें, और हम क्या निवेदन करें ॥३१६-३२८॥"

इस स्तुति को सुन कर भग देवता को नेत्र देने वाले शिव विष्णु से बोले—'इन मुनियों को मेरे समीप ले आओ।' तब केशव तपोलोक निवासी मुनियों को सान्त्वना देते हुए ले आये और विश्वेश शंकर का दर्शन करा दिया। शंकर ने उनसे पूछा 'निष्पाप मुनियो! आपलोग किस लिये तपोलोक से भूमिलोक में पधारे हैं? शंभु की बात सुन कर मुनिवरों ने उत्तर दिया—'देव! बारह लोक तो भस्मसात् हो गये। एक हमारा ही लोक बच गया है। वह भी अब नष्ट होने वाला है।' यह सुन कर गिरीश ने उन ऊर्ध्वरेता मुनियों से कहा—'भूलोक तथा पातालों का दाह हो सकता है, इसमें मुझे सन्देह नहीं है, पर ऊपरवाले पाँच लोकों के दग्ध होने में मुझे सन्देह हो रहा है। वहां कैसे अग्निवृष्टि तथा महाशब्द हो सकता है।? विभु शंकर की बात सुन कर मुनीश्वरों ने हाथ जोड़ कर ब्रह्मा आदि सहित महादेव से कहा—'भगवन्! हमें डर तो वीरभद्र से हो रहा है। वे ही इस अग्निवृष्टि के उत्पादक हैं।' तब पशुपति ने वीरभद्र को बुलाकर पूछा—'क्या यह बात ठीक है?' वीर ने उत्तर दिया

देवोऽथ वीरमाहूय किं वीरेत्यब्रवीद्वचः । वीरोऽप्याह कपेर्लिंगे पीठाभावादिदं कृतम् ।।३३८।।
तच्छ्रुत्वाह शिवो देवो मुनींस्तान्भयविह्वलान् । कपेश्चित्तं परिज्ञातुं मया कृतमिदं द्विजाः ।।३३९।।
मा भैष्ट भवतां सौख्यं सदा संपादयाम्यहम् । इत्युक्त्वा तु यथापूर्वं देवदेवः कृपानिधिः ३४०।।
दग्धानप्यखिलाँल्लोकान्पूर्वतः शोभनान्विभुः । कल्पयामास विश्वात्मा वीरभद्रमथाब्रवीत् ।।३४१।।
साधु वत्स यतो भद्रं भक्तानामीहसे सदा । ततस्ते विपुला कीर्तिर्लोके स्थास्यति शाश्वती ।।३४२।।
इत्युक्त्वालिंग्य शिरसि समाघ्राय महेश्वरः । तांबूलं वीरभद्राय दत्तवान्प्रीतमानसः ।।३४३।।
अथासौ हनुमानीशपूजनं कृतवान्यथा । समाप्तायां तु पूजायां हनुमान्प्रीतमानसः ।।३४४।।
एकं वनचरं तत्र गंधर्वं सविपंचकम् । ददर्श तमथाभ्याह वीणा मे दीयतामिति ।।३४५।।
गंधर्वोऽप्याह न मया त्याज्या वीणा प्रिया मम । ममापीष्टेह गंधर्व वीणेत्याह कपीश्वरः ।।३४६।।
यदा न दत्ते गंधर्वो वल्लकीं कपये प्रियाम् । तदा मुष्टिप्रहारेण गंधर्वः पातितः क्षितौ ।।३४७।।
वीणामादाय महतीं स्वरतंतुसमन्विताम् । हनुमान्वानरश्रेष्ठो गायन्प्रागाच्छिवांतिकम् ।।३४८।।
ततो गानेन महता प्रसाद्य जगदीश्वरम् । बृहतीकुसुमैः शुद्धैर्देवपादावपूजयत् ।।३४९।।
ततः प्रसन्नो विश्वात्मा मुनीनां सन्निधौ तदा । दैत्यानां देवतानां च नृपाणां शंकरोऽपि च ।।३५०।।
तस्मै वरमथ प्रादात्कल्पांतं जीवितं पुनः । समुद्रलंघने शक्तिं शास्त्रज्ञत्वं बलोन्नतिम् ।।३५१।।
एवं दत्तं वरं प्राप्य महेशेन महात्मना । प्रत्यक्षं मम विप्रेंद्र हनुमान्हर्षमागतः ।।३५२।।
समस्तभूषासुविभूषितांगः स्वदीप्तिमंदीकृतदेवदीप्तिः ।
प्रसन्नमूर्तिस्तरुणः शिवांशः संभावयामास समस्तदेवान् ।।३५३।।
आज्ञप्तो हनुमांस्तत्र मत्सेवायै मुनीश्वरः । महेशेनाहमप्येनं शशिमौलिमवैमि च ।।३५४।।

'हाँ, कपि को लिंगपीठ न मिलने के कारण मैंने ऐसा किया है।' ।।३२९-३३८।। वीर की बात सुन कर भगवान् शंकर ने भयविह्वल मुनियों से कहा—'द्विजगण ! कपि की परीक्षा करने के लिये मैंने ऐसा किया। आप लोग डर मत करें। आपलोगों को मैं सदा आनन्दित रखूंगा।' इतना कह कर कृपानिधि एवम् विश्वात्मा शंकर ने निखिल लोकों को यथापूर्व सुशोभित कर दिया। पुनः वीरभद्र से कहा 'वत्स ! साधुवाद ! तुम सदा मेरे भक्तों का हित चाहते हो। इसलिये लोक में तुम्हारी विपुल एवम् शाश्वती कीर्ति रहेगी।' यह कह कर महेश्वर ने वीरभद्र का आलिंगन करते हुए मस्तक सूंघा तथा हर्षित मन से उन्हें तांबूल दिया। तब हनुमान् ने शिवलिंग की पूजा की। पूजा समाप्ति के बाद प्रसन्नचित्त हनुमान् ने वीणा बजाते हुए एक गंधर्व को देखकर उससे वीणा मांगी, परन्तु गंधर्व ने उत्तर दिया 'नहीं, मैं वीणा नहीं दे सकता। यह मुझे बहुत प्रिय है।' जब गंधर्व ने कपिश्रेष्ठ हनुमान् को अपनी प्रिय वीणा नहीं दी तब उन्होंने मुष्टिप्रहार से उसे निहत कर पृथ्वी पर गिरा दिया और स्वरतन्तुयुक्त वीणा लेकर गाते हुए शिव के समीप पहुँचे ।।३३९-३४७½।। वहाँ महासंगीत से जगदीश्वर को प्रसन्न कर बृहती वृक्ष के कुसुमों से शिव के चरणों की पूजा की। तब प्रसन्न होकर शिवात्मा शंकर मुनियों, दैत्यों, देवताओं तथा नृपों के समक्ष हनुमान् को वर दिया कि "तुम कल्पांत तक जीवित रहो, समुद्र लाँघने का सामर्थ्य, शास्त्रज्ञता तथा बलोन्नति तुम्हें प्राप्त हो ।।३३९-३५१।।"

विप्रवर ! इस प्रकार महात्मा महेश से वर प्राप्त कर मेरे सामने ही हनुमान् आनन्द से विभोर हो गया। वह प्रसन्नमूर्ति तरुण हनुमान्, जो शिव का अंश ही है, अपनी कान्ति से देवगणों की प्रभा को मन्द करते हुए संपूर्ण अङ्गों में आभूषण धारण कर अत्यन्त सुशोभित हुआ। अनन्तर शङ्कर ने उसे मेरी सेवा करने की

किं बहूक्तेन विप्रर्षे यादृशो वानरेश्वरः । बुद्धौ न्याये च वै धैर्ये तादृगन्योऽस्ति न क्वचित् ॥३५५॥
इति ते सर्वमाख्यातं चरितं पापनाशनम् । पठतां शृण्वतां चैव गच्छ विप्र यथासुखम् ॥३५६॥
तच्छ्रुत्वा रामभद्रस्य रघुनाथस्य धीमतः । वचनं दक्षिणीकृत्य नत्वा चागां यथागतः ॥३५७॥
एतत्तेऽभिहितं विप्र चरितं च हनूमतः । सुखदं मोक्षदं सारं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥३५८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे हनुमच्चरित्रं नाम एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

अशीतितमोऽध्यायः

सूत उवाच

श्रुत्वा तु नारदो विप्राः कुमारवचनं मुनिः । यत्पप्रच्छ पुनस्तच्च युष्मभ्यं प्रवदाम्यहम् ॥१॥
कार्तवीर्यस्य कवचं तथा हनुमतोऽपि च । चरितं च महत्पुण्यं श्रुत्वा भूयोऽब्रवीद्वचः ॥२॥

नारद उवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठ त्वयातिकरुणात्मना । श्रावितं चरितं पुण्यं शिवस्य च हनूमतः ॥३॥

आज्ञा दी। मुनीश्वर ! तब से मैं पवननन्दन को शिव की ही तरह मानता हूँ। विप्रर्षे ! बुद्धि, न्यास तथा धैर्य में जैसा हनुमान् है वैसा कहीं कोई नहीं है। यह संपूर्ण चरित्र, जिसके पढ़ने-सुनने से पापों का क्षय होता है, मैंने वर्णन कर दिया। अब आप सुखपूर्वक प्रस्थान कीजिए ॥३५२-३५६॥"

श्रीमान् रघुकुलनायक रामचन्द्र का यह वचन सुनकर मैं प्रदक्षिणापूर्वक प्रणाम करके चल पड़ा। विप्र ! यह हनुमान् का सुख तथा मोक्ष देने वाला चरित्र तुम्हें सुना दिया। अब बोलो, दूसरा क्या सुनना चाहते हो ? ॥३५७-३५८॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त तृतीय पाद में हनुमच्चरित्र वर्णन नामक उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥७९॥

अध्याय ८०

श्रीकृष्ण-सम्बन्धी मंत्रों की अनुष्ठानविधि

सूतजी बोले—विप्रवृन्द ! सनत्कुमार की बात सुनकर मुनि नारद ने पुनः जो प्रश्न किया, वह मैं आप लोगों को बता देता हूँ। कार्तवीर्य तथा हनुमान् का कवच एवम् पुण्यदायक चरित्र सुनकर नारद ने यह कहा—

नारद बोले—मुनिश्रेष्ठ ! आप अत्यन्त कृपालु हैं। आपने जो शिव तथा हनुमान् का पवित्र चरित्र

तत्त्वस्यास्य क्रमप्राप्तं कथनीयं च यत्त्वया । तत्प्रब्रूहि महाभाग किं पृष्ट्वान्यद्विदांवर ॥४॥

सनत्कुमार उवाच

अथ वक्ष्ये कृष्णमंत्रान्भुक्तिमुक्तिफलप्रदान् । ब्रह्माद्या यान्समाराध्य सृष्ट्यादिकरणे क्षमाः ॥५॥
कामः कृष्णपदं ङेंतं गोविंदं च तथाविधम् । गोपीजनपदं पश्चाद्वल्लभायाग्निसुंदरी ॥६॥
अष्टादशार्णो मंत्रोऽयं दुर्गाधिष्ठातृदैवतः । नारदोऽस्य मुनिश्छंदो गायत्री देवता पुनः ॥७॥
श्रीकृष्णः परमात्मा च कामो बीजं प्रकीर्तितम् । स्वाहा शक्तिर्नियोगस्तु चतुर्वर्गप्रसिद्धये ॥८॥
ऋषिं शिरसि वक्त्रे तु छंदश्च हृदि देवताम् । गुह्ये बीजं पदोः शक्तिं न्यसेत्साधकसत्तमः ॥९॥
युगवेदाब्धिनिगमैर्द्व्यक्षैर्वर्णैर्मंत्रूद्भवैः । पंचांगानि प्रविन्यस्य तत्त्वन्यासं समाचरेत् ॥१०॥
हृदंतिमादिकांतार्णमपराद्यानि चात्मने । मत्यंतानि च तत्त्वानि जीवाद्यानि न्यसेत्क्रमात् ॥११॥
जीवं प्राणं मतिमहंकारं मनस्तथैव च । शब्दं स्पर्शं रूपरसौ गंधं श्रोत्रं त्वचं तथा ॥१२॥
नेत्रं च रसनां घ्राणं वाचं पाणिं पदेंद्रियम् । पायुं शिश्नमथाकाशं वायुं वह्निं जलं महीम् ॥१३॥
जीवं प्राणं च सर्वांगे मत्यादित्रितयं हृदि । मूर्द्धास्यहृद्गुह्यपादेष्वथ शब्दादिकान्न्यसेत् ॥१४॥
कर्णादिस्वस्वस्थानेषु श्रोत्रादीनींद्रियाणि च । तथा वागादींद्रियाणि स्वस्वस्थानेषु विन्यसेत् ॥१५॥
मूर्द्धास्यहृद्गुह्यपादेष्वाकाशादीन्न्यसेत्ततः । हृत्पुंडरीकमर्केन्दुवह्निबिंबान्यनुक्रमात् ॥१६॥
द्विषट्षोडशदशकलाव्याप्तानि च तथा मतः । भूताष्टांगाक्षिपदगैर्वर्णैः प्राग्विन्न्यसेद्धृदि ॥१७॥

सुनाया वह मुझे अतीव रोचक लगा। विद्वद्वर! अब आप तंत्र का जो सिलसिला चल रहा था, वही बतलाइये, दूसरी बात मैं क्या पूछूं? ॥१-४॥

सनत्कुमार बोले—अब मैं भोग-मोक्ष को देने वाले कृष्ण-मंत्रों को बतलाऊंगा, जिनकी आराधना करके ब्रह्मा आदि देवता सृजन आदि कर्म करने में कुशल हुए। "क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा"—यह अठारह अक्षरों का मंत्र है। दुर्गा इसकी अधिष्ठात्री देवता हैं। ऋषि नारद, छंद गायत्री, देवता श्रीकृष्ण-परमात्मा, बीज क्लीं और शक्ति स्वाहा है। चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति के लिये इसका नियोग किया जाता है। उत्तम साधक शिर में ऋषि, मुख में छंद, हृदय में देवता, गुह्य में बीज और चरणों में शक्ति का न्यास करे। मंत्र के अठारहों अक्षरों से पंचांगन्यास कर तत्त्वन्यास करना चाहिये ॥५-१०॥ तत्त्वन्यास में क्रमशः जीव, प्राण, मति, अहंकार, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, कर्ण, त्वचा, नेत्र, रसना, नासिका, वाणी, हाथ, पैर, इन्द्रिय, पायु, शिश्न, आकाश, वायु वह्नि, जल और पृथ्वी का न्यास किया जाता है। संपूर्ण अंगों में जीव और प्राण का, हृदय में मति आदि तीनों का, मस्तक, मुख, हृदय, गुह्य और चरणों में शब्द आदि का, कर्ण आदि अपने-अपने स्थानों में श्रोत्र आदि इन्द्रियों तथा वाक् आदि इन्द्रियों का न्यास करे। पुनः शिर, मुख, गुह्य तथा चरणों में आकाश आदि का न्यास करना चाहिये। अनन्तर हृदयकमल में क्रमशः द्वादशकलाव्याप्त सूर्यमण्डल, षोडशकलाव्याप्त चन्द्रमण्डल तथा दस कलाव्याप्त अग्निमण्डल का न्यास करे। साथ ही मन्त्र के पदों में स्थित आठ-आठ और दो अक्षरों का भी क्रमशः उन मण्डलों के साथ योग करके उन सबका हृदय में न्यास करे, यथा—क्लीं कृष्णाय गोविंदाय अं द्वादशकलाव्याप्तसूर्यमण्डलात्मने नमः, गोपीजनवल्लभाय ओं षोडशकला-व्याप्तचन्द्रमण्डलात्मने नमः स्वाहा, मं दशकलाव्याप्तवह्निमंडलात्मने नमः हृत्पुण्डरीके। तत्पश्चात् आकाश

अथाकाशादिस्थलेषु वासुदेवादिकांस्ततः । वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥१८॥
नारायणश्च क्रमशः परमेष्ठ्यादिभियुताः । परमेष्ठिपुमांच्छौचविश्वनिवृत्तिसर्वकाः ॥१९॥
श्वेतानिलाग्न्यंबुभूमिवर्णैः प्राग्वत्प्रविन्यसेत् । स्वबीजाद्यं कोपतत्त्वं नृसिंहं व्यापकेन च ॥२०॥
प्राग्वद्विन्यस्य सर्वांगे तत्त्वन्यासोऽयमीरितः । मकाराद्या आद्यवर्णाः सर्वे स्युश्चंद्रभूषिताः ॥२१॥
वासुदेवादिका ज्ञेया ङेंताः साधकसत्तमैः । प्राणायामं ततः कृत्वा पूरकुम्भकरेचकैः ॥२२॥
चतुर्भिः षड्भिर्द्वाभ्यां च मूलमंत्रेण मंत्रवित् । केचिदाहुरिहाचार्याः प्राणायामोत्तरं पुनः ॥२३॥
पीठन्यासं विधायाथ न्यासानन्यान्समाचरेत् । दशतत्त्वादि विन्यस्य वक्ष्यमाणविधानतः ॥२४॥
मूर्तिपंजरनामानं पूर्वोक्तं विन्यसेद्बुधः । सर्वांगे व्यापकं कृत्वा किरीटमनुना सुधीः ॥२५॥
ततस्तारपुटं मंत्रं व्यापय्य करयोस्त्रिशः । पंचांगुलीषु करयोः पंचांगं विन्यसेत्ततः ॥२६॥
त्रिशो मूलेन मूर्द्धादिपादांतं व्यापकं न्यसेत् । सकृद्व्यापय्य तारेण मंत्रन्यासं ततश्चरेत् ॥२७॥
शिरोललाटे भ्रूमध्ये कर्णयोश्चक्षुषोस्तथा । घ्राणयोर्वदने कंठे हृदि नाभौ तथा पुनः ॥२८॥
कट्यां लिंगे जानुनोश्च पादयोर्विन्यसेत्क्रमात् । हृदंतान्मंत्रवर्णांश्च ततो मूर्ध्नि ध्रुवं न्यसेत् ॥२९॥
पुनर्नयनयोरास्ये हृदि गुह्ये च पादयोः । विन्यसेद्धृदयांतानि मनोः पंचपदानि च ॥३०॥

आदि स्थलों में (अर्थात् मूर्ध, मुख, हृदय, गुह्य तथा चरणों में) परमेष्ठि आदि सहित वासुदेव आदिकों का क्रमशः न्यास करे। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये वासुदेवादि कहलाते हैं ॥११–१८॥ और परमेष्ठी, पुमान्, शौच, विश्व, निवृत्ति तथा सर्वक–ये परमेष्ठी कहे गये हैं। परमेष्ठि पुरुष आदि क्रमशः श्वेतवर्ण, अनिलवर्ण, अग्निवर्ण, अम्बुवर्ण तथा भूमिवर्ण के हैं। इन सब का पूर्ववत् न्यास करे। (यथा श्वेतवर्णपरमेष्ठिपुरुषात्मने वासुदेवाय नमः मूर्धनि। अनिलवर्णशौचात्मने संकर्षणाय नमः मुखे। अग्निवर्णविश्वात्मने प्रद्युम्नाय नमः हृदये। अम्बुवर्णनिवृत्त्यात्मनेऽनिरुद्धाय नमः गुह्ये। भूमिवर्णसर्वात्मने नारायणाय नमः पादयोः। ओं क्ष्रौं कोपतत्त्वात्मने नमः नृसिंहाय नमः इति सर्वांगे)। इस प्रकार सम्पूर्ण अंग में न्यास करे। यह तत्त्वन्यास कहा गया है। इसी प्रकार श्रेष्ठ साधकों को यह जानना चाहिये कि वासुदेव आदि नामों के विभक्त्यन्त रूप ही न्यास में ग्राह्य है। तत्त्वन्यास के बाद मंत्रज्ञ पुरुष मूलमंत्र को चार बार पढ़कर पूरक, छह बार पढ़कर कुम्भक और दो बार पढ़कर रेचक करते हुए प्राणायाम सम्पन्न करे। किन्हीं आचार्यों का कथन है कि प्राणायाम के बाद पीठ-न्यास करके फिर अन्य न्यासों को करे। आगे कहे जानेवाले विधान के अनुसार दस तत्त्व आदि का न्यास करके पूर्वोक्त मूर्तिपंजर नामक न्यास करे। पुनः किरीटमंत्र से संपूर्ण अंगों में व्यापक न्यास कर प्रणवसंपुटित मंत्र को तीन बार दोनों हाथों की पाँचों अंगुलियों में न्यस्त करे। उसके बाद तीन बार पंचांग न्यास करे। फिर मूल मन्त्र से मस्तक से लेकर चरण तक व्यापक न्यास करे ॥१९-२६½॥ फिर केवल प्रणव द्वारा एक एक व्यापक न्यास करके मन्त्रन्यास करे। अनन्तर शिर, ललाट, भौंहों के मध्य, कर्ण, नेत्र, नासिका, मुख, कंठ, हृदय, नाभि, कटि, लिंग, जानु तथा चरणों में क्रमशः न्यास करे। पुनः नेत्र, मुख, हृदय, गुह्य तथा दोनों चरणों में क्रमशः पाँच पदों का अन्त में 'नमः' लगाकर न्यास करे (यथा—क्लीं नमः नेत्रद्वये। कृष्णाय नमः मुखे। गोविन्दाय नमः हृदये। गोपीजनवल्लभाय नमः गुह्ये। स्वाहा नमः पादयोः) पुनः ऋषि आदि न्यास करके पूर्वोक्त पचांग न्यास करे ॥२७-३०½॥

भूयो मुन्यादिकं न्यस्य पंचांगं पूर्ववन्न्यसेत् । अथ वक्ष्ये महागुह्यं सर्वन्यासोत्तमोत्तमम् ॥३१॥
यस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । अणिमाद्यष्टसिद्धीनामीश्वरः स्यान्न संशयः ॥३२॥
यस्याराधनतो मंत्री कृष्णसांनिध्यतां व्रजेत् । ताराद्याभिर्व्याहृतिभिः संपुटं विन्यसेन्मनुम् ॥३३॥
मंत्रेण पुटितांश्चापि प्रणवाद्यांस्ततो न्यसेत् । गायत्र्या पुटितं मंत्रं विन्यसेन्मातृकास्थले ॥३४॥
मंत्रेण पुटितां तां च गायत्रीं विन्यसेत्क्रमात् । मातृकापुटितं मूलं विन्यसेत्साधकोत्तमः ॥३५॥
मूलेन पुटितां चैव मातृकां विन्यसेत्क्रमात् । तृचं न मातृकावर्णान्पूर्वं तत्तत्स्थले सुधीः ॥३६॥
विन्यसेन्न्यासषट्कं च षोढा न्यासोऽयमीरितः । अनेन न्यासवर्येण साक्षात्कृष्णसमो भवेत् ॥३७॥
न्यासेन पुटितं दृष्ट्वा सिद्धगंधर्वकिन्नराः । देवा अपि नमंत्येनं किंपुनर्मानवा भुवि ॥३८॥
सुदर्शनस्य मंत्रेण कुर्याद्दिग्बंधनं ततः । देवं ध्यायन्स्वहृदये सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥३९॥
उत्फुल्लकुसुमव्रातनम्रशाखैर्वरद्रुमैः । सस्मेयमंजरीवृंदवल्लरीवेष्टितैः शुभैः ॥४०॥
गलत्परागधूलीभिः सुरभीकृतदिङ्मुखः । स्मरेच्छिशिरितं वृंदावनं मंत्री समाहितः ॥४१॥
उन्मीलन्नवकंजालिविगलन्मधुसंचयैः । लुब्धांतःकरणैर्गुंजद्द्विरेफपटलैः शुभम् ॥४२॥
मरालपरभृत्कीरकपोतनिकरैर्मुहुः । मुखरीकृतमानृत्यन्मायूरकुलमंजुलम् ॥४३॥
कालिंद्या लोलकल्लोलविप्रुषैर्मंदवाहिभिः । उन्निद्रांबुरुहव्रातरजोभिर्धूसरैः शिवैः ॥४४॥
प्रदीपितस्मरैर्गोष्ठसुंदरीमृदुवाससाम् । विलोलनपरैः संसेवितं वा तैर्निरंतरम् ॥४५॥
स्मरेत्तदंते गीर्वाणभूरुहं सुमनोहरम् । तदधः स्वर्णवेद्यां च रत्नपीठमनुत्तमम् ॥४६॥
रत्नकुट्टिमपीठेऽस्मिन्नरुणं कमलं स्मरेत् । अष्टपत्रं च तन्मध्ये मुकुन्दं संस्मरेत्स्थितम् ॥४७॥

अब मैं समस्त न्यासों में उत्तम तथा महागोपनीय न्यास को बता रहा हूँ, जिसके जान लेने से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है और जिसकी आराधना करने वाला मानव निःसंदेह अष्टसिद्धियों का ईश्वर होकर अन्त में कृष्णसान्निध्य मोक्ष को प्राप्त करता है। प्रणव आदि व्याहृतियों से संपुटित मंत्र का और मन्त्र से संपुटित प्रणव का और मंत्र से संपुटित गायत्री का मातृका स्थल में न्यास करे। उत्तम साधक मातृका संपुटित मूल मंत्र का और मूलसंपुटित मातृका वर्णों का क्रमशः न्यास करें। विद्वान् पुरुष पहिले तत्तत् स्थान में मातृका वर्णों का न्यास कर ले। उसके बाद पूर्वोक्त न्यास करना चाहिए। इस प्रकार उपर्युक्त छह प्रकार के न्यास करे। यह षोढान्यास कहलाता है। इस उत्तम न्यास का साधक साक्षात् कृष्ण के समान हो जाता है। ॥३१-३७॥

जो इस न्यास से संपन्न है, उसे सिद्ध, गंधर्व, किन्नर तथा देवता भी प्रणाम करते हैं, मनुष्यों की तो बात ही क्या। इस न्यास को कर लेने के उपरान्त (ओं नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्) इस सुदर्शनमंत्र से दिग्बंधन करते हुए हृदय में सकलकामनादायक देव का ध्यान करे। साधक समाहित चित्त से यह सोचे कि शिशिर ऋतु में वृंदावन शोभित हो रहा है। उसमें फूले हुए कुसुमों के भार से वृक्षों की शाखायें नत हो रही हैं। वृक्ष लताओं से वेष्टित तथा शोभन मंजरियों से लदे हैं। वायु पुष्पों के पराग को उड़ाते हुए दशों दिशाओं को सुरभित कर रहा है। खिले हुए कमलों पर मधुपान करने में मत्त भौंरे गुंजार कर रहे हैं ॥३८-४२॥ हंस, कोकिल, शुक तथा कपोतों का समूह शब्द कर रहा है। मयूर नाच रहे हैं। कालिंदी की चंचल तरंगों के जलकणों के पड़ने से कमल खिल रहे हैं। उनके रज से धूसरित, सुखदायक, कामोद्दीपक तथा व्रजसुंदरियों के सूक्ष्म वस्त्रों को विलोलित करने वाले वायु मंद-मंद बह रहे हैं। उस वृन्दावन में एक अतिमनोहर कल्पवृक्ष है, जिसके नीचे स्वर्णवेदी में एक अत्युत्तम रत्नपीठ है। उस रत्नपीठ पर रक्तवर्ण अष्टदल कमल का ध्यान करे। कमल के नीच मुकुन्द भगवान् का संस्मरण करना चाहिये ॥४३-४७॥ जिनकी कान्ति विकसित नील-

फुल्लेंदीवरकांतं च केकिबर्हावतंसकम् । पीतांशुकं चंद्रमुखं सरसीरुहनेत्रकम् ॥४८॥
कौस्तुभोद्भासितांगं च श्रीवत्सांकं सुभूषितम् । व्रजस्त्रीनेत्रकमलाभ्यर्चितं गोगणावृतम् ॥४९॥
गोपवृन्दयुतं वंशीं वादयंतं स्मरेत्सुधीः । एवं ध्यात्वा जपेदादावयुतद्वितयं बुधः ॥५०॥
जुहुयादरुणांभोजैस्तद्दशांशं समाहितः । जपेत्पश्चान्मंत्रसिद्धयै भूतलक्षं समाहितः ॥५१॥
अरुणैः कमलैर्हुत्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । पूर्वोक्ते वैष्णवे पीठे मूर्तिं संकल्प्य मूलतः ॥५२॥
तस्यामावाह्य चाभ्यर्चेद्गोपीजनमनोहरम् । मुखे वेणुं समभ्यर्च्य वनमालां च कौस्तुभम् ॥५३॥
श्रीवत्सं च हृदि प्राच्यं ततः पुष्पांजलिं क्षिपेत् । ततः श्वेतां च तुलसीं शुक्लचंदनपंकिलाम् ॥५४॥
रक्तां च तुलसीं रक्तचंदनाक्तां क्रमात्सुधीः । अर्पयेद्दक्षिणे वामभागे ध्यायन्सुरेश्वरम् ॥५५॥
हयमारद्वयेनैव हृदि मूर्ध्नि तथा पुनः । पद्मद्वयं च विधिवत्ततः शीर्षे समर्पयेत् ॥५६॥
तुलसीद्वयमंभोजद्वयमश्वारियुग्मकम् । ततः सर्वाणि पुष्पाणि सर्वाङ्गेषु समर्पयेत् ॥५७॥
दक्षिणे वासुदेवाख्यं स्वच्छं चैतन्यमव्ययम् । वामे च रुक्मिणीं तद्वन्नित्यां रक्तां रजोगुणाम् ॥५८॥
एवं संपूज्य गोपालं कुर्यादावतरणार्चनम् । यजेद्दामसुदामौ च वसुदामं च किंकिणीम् ॥५९॥
पूर्वाद्याशासु दामाद्या ङेनमोन्तध्रुवादिकाः । अग्निनैर्ऋतिवाय्वीशकोणेषु हृदयादिकान् ॥६०॥
दिक्ष्वस्त्राणि समभ्यर्च्य पत्रेषु महिषीर्यजेत् । रुक्मिणी सत्यभामा च नाग्नजित्यभिधा पुनः ॥६१॥
सुविंदा मित्रविंदा च लक्ष्मणा चर्क्षजा ततः । सुशीला च लसद्रम्यचित्रितांबरभूषणा ॥६२॥
ततो यजेद्दलाग्रेषु वसुदेवञ्च देवकीम् । नंदगोपं यशोदां च बलभद्रं सुभद्रिकाम् ॥६३॥

कमल के समान है। मयूर पिच्छ शिर का आभूषण है। जो पीताम्बर पहने हुए हैं। जिनका मुख चन्द्रमा के समान है। नेत्र कमल के सदृश हैं। शरीर कौस्तुभ मणि तथा श्रीवत्स चिह्न से विभूषित है। व्रजनारियाँ अपने नेत्रकमलों से जिनकी समर्चना करती हैं। जो गौओं एवम् गोपी से आवृत होकर वंशी बजाते हैं। इस प्रकार ध्यान कर विद्वान् साधक बीस हजार मंत्र का जप करे और उसका दशांश लाल कमलों से सावधानतापूर्वक हवन करे। पश्चात् मंत्र-सिद्धि के लिये सावधानी से पाँच लाख जप करना चाहिये। जो व्यक्ति (इस मंत्र को पढ़ते हुए) रक्त कमलों से हवन करता है, उसे समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥४८-५१½॥

पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर मूलमंत्र से मूर्ति की प्रतिष्ठा करके उसमें श्रीकृष्ण का आवाहन तथा पूजन करना चाहिये। उनके मुखस्थित वंशी और हृदयस्थित श्रीवत्स चिह्न, वनमाला तथा कौस्तुभ मणि की पूजा कर पुष्पांजलि प्रदान करे (अनन्तर शुक्ल चंदनयुक्त श्वेत तुलसी तथा रक्त चन्दन युक्त रक्त तुलसी क्रमशः उनके दाहिने-बाँयें भाग में समर्पित कर हृदय तथा मस्तक पर एक-एक करवीर का पुष्प समर्पण करे। पुनः शिर पर दो कमल, चरणों पर दो-दो तुलसीपत्र तथा पद्म और अतिरिक्त अंगों में अन्य समस्त प्रकार के पुष्प समर्पित करने चाहिये ॥५२-५७॥ दक्षिण भाग में निर्मल, चिद्रूप तथा अविनाशी वासुदेव की और वाम भाग में नित्या, रक्तवर्णा तथा रजोगुणमयी रुक्मिणी की पूजा करे। गोपाल की अर्चना कर लेने के बाद उनके आवरणों (गणों) की पूजा करे। पूर्व आदि दिशाओं में दाम, सुदाम, वसुदाम तथा किंकिणी की और अग्नि, निर्ऋति, वायु तथा ईशान कोण में हृदय आदि की पूजा करे। पुनः दिशाओं में अस्त्रों का पूजन कर पत्रों पर मनोहर तथा चित्रित वस्त्र-आभूषणों वाली राजरानियों की अर्चना करे। रुक्मिणी, सत्यभामा, नाग्नजिती, अभिधा, सुविंदा, मित्रविंदा, लक्ष्मणा, जांबवती तथा सुशीला—ये राजमहिषी कहलाती है ॥५८-६२॥ गोविन्द इनकी पूजा करने के बाद पत्रों के अन्तिम छोर पर वसुदेव, देवकी, नंदगोप, यशोदा, बलभद्र, सुभद्रा,

गोपान् गोपीश्च गोविंद विलीनमतिलोचनान् । ज्ञानमुद्राभयकरौ पितरौ पीतपांडुरौ ॥६४॥
दिव्यमाल्यांबरालेपभूषणे मातरौ पुनः । धारयंत्यौ चरुं चैव पायसीं पूर्णपात्रिकाम् ॥६५॥
अरुणश्यामले हारमणिकुंडलमंडिते । बलः शंखेंदुधवलो मुशलं लांगलं दधत् ॥६६॥
हालालोलो नीलवासा हलवानेककुंडलः । कला या श्यामला भद्रा सुभद्रा भद्रभूषणा ॥६७॥
वराभययुता पीलवसना रूढयौवना । वेणुवीणाहेमयष्टिशंखश्रृंगादिपाणयः ॥६८॥
गोपा गोप्यश्च विविधप्राभृतान्नकरांबुजाः । मंदारादींश्च तद्बाह्ये पूजयेत्कल्पपादपान् ॥६९॥
मंदारश्च तथा संतानको वै पारिजातकः । कल्पद्रुमस्ततः पश्चाद्धरिचन्दनसंज्ञकः ॥७०॥
मध्ये दिक्षु समभ्यर्च्य बहिः शक्रादिकान्यजेत् । तदस्त्राणि च संपूज्य यजेत्कृष्णाष्टकेन च ॥७१॥
कृष्णं च वासुदेवं च देवकीनन्दनं तथा । नारायणं यदुश्रेष्ठं वार्ष्णेयं धर्मपालकम् ॥ ७२॥
असुराक्रांतभूभारहारिणं पूजयेत्ततः । एभिरावरणैः पूजा कर्तव्यासुरवैरिणः ॥७३॥
संसारसागरोत्तीर्त्यै सर्वकामाप्तये बुधैः । एवं पूजादिभिः सिद्धो भवेद्वैश्रवणो यमः ॥७४॥
त्रिकालपूजनं चास्य वक्ष्ये सर्वार्थसिद्धिदम् । श्रीमदुद्यानसंवीतिहेमभूरत्नमंडपे ॥७५॥
लसत्कल्पद्रुमाधस्थरत्नाब्जपीठसंस्थितम् । सुत्रामरत्नसंकाशं गुडस्निग्धालकं शिशुम् ॥७६॥
चलत्कनककुंडलोल्लसितचारुगंडस्थलं सुघोणधरमद्भुतस्मितमुखांबुजं सुन्दरम् ।
स्फुरद्विमलरत्नयुक्कनकसूत्रनद्धं दधत्सुवर्णपरिमंडितं सुभगपौंडरीकं नखम् ॥७७॥

में आसक्त चित्त वाले गोप तथा गोपी, ज्ञानमुद्रा तथा अभयमुद्रा धारण करने वाले और पीत एवम् पांडुर वर्ण वाले पुन: माता-पिता दिव्यमाला, वस्त्र, लेप तथा आभूषणों से सुशोभित, हारों एवम् मणिकुण्डलों से अलंकृत, चरु तथा पायस-पूर्ण पात्र धारण करने वाली और रक्त तथा श्याम वर्ण वाली माताओं, शंख तथा चंद्रमा के समान धवल, मद्य पीकर मत्त, मुशल, हल, नीलवस्त्र तथा एक कुंडल धारण करने वाले बलभद्र, श्यामवर्णा, पूर्णयौवना, पीतवसना, मनोरम आभूषणों से विभूषिता, वरमुद्रा तथा अभयमुद्रा धारण करने वाली सुभद्रा और भांति-भांति के उपहार एवम् अन्न अपने करकमलों में धारण करने वाले गोप-गोपियों की पूजा कर पत्रों से अलग दिशाओं के मध्य में मंदार आदि कल्पवृक्षों की अर्चना करे। मंदार, संतानक, पारिजातक, कल्पद्रुम तथा हरिचंदन--ये कल्पवृक्ष कहलाते हैं। इनके बाद शक्र आदि देवों तथा उनके अस्त्रों की पूजा कर कृष्ण, वासुदेव, देवकीनंदन, नारायण, यदुश्रेष्ठ, वार्ष्णेय, धर्मपालक तथा असुरों से आक्रान्त पृथ्वी का भार हरण करने वाले अष्टकृष्ण की पूजा करे। विद्वान् साधक संसारसागर से पार होने के लिए और सकल कामनाओं को प्राप्त करने के लिये श्रीकृष्ण की उपर्युक्त आवरणों के साथ पूजा करे। पूजा को सिद्धि हो जाने पर मनुष्य कुबेरतुल्य तथा धर्मराजतुल्य हो जाता है ॥६३-७४॥

अब मैं समस्त कामनाओं को सिद्ध करनेवाला (कृष्ण का) त्रिकाल पूजन बतलाता हूँ। साधक इस प्रकार ध्यान करे कि सुमनोहर उद्यान में सुवर्ण तथा रत्नों के बने मण्डप पर कल्पद्रुम सुशोभित हो रहा है। उसके नीचे रत्नमय कमलासन पर एक शिशु बैठा है, जिसका वर्ण मकरतमणि के समान और बाल घुंघराले हैं। गंडस्थल चंचल सुवर्णकुण्डलों से सुशोभित एवम् मनोहर है, नासिका, अधर तथा विचित्र मन्दहास्य करने वाला कमलमुख सुन्दर हैं। वे चमकते हुए निर्मल रत्न एवम् सुवर्ण की बनी करधनी धारण किये हैं। पद्म के समान नाखून हैं। अंग सुदृढ एवम् सुडौल हैं। गायों की पदधूलि से उरःस्थल धूसरित हो गया है। शरीर की आभा कांचन के

समुद्‌धूसरोरस्थले धेनुधूल्या सुपुष्टांगमष्टापदाकल्पदीप्तम् ।
कटीलस्थले चारुजंघान्तयुग्मं पिनद्धं क्वणत्किंकिणीजालदाम्ना ॥७८॥
हसन्तं हसद्‌बन्धुजीवप्रसूनप्रभापाणिपादांबुजोदारकान्त्या ।
दधानं करे दक्षिण पायसान्नं सुहैंयगवीनं तथा वामहस्ते ॥७९॥
लसद्‌गोपगोपीगवां वृंदमध्ये स्थितं वासवाद्यैः सुरैरर्चितांघ्रिम् ।
महीभारभूतामरारातियूथांस्ततः पूतनादीन्निहंतुं प्रवृत्तम् ॥८०॥
एवं ध्यात्वार्चयेद्देवं पूर्ववत्स्थिरमानसः । दध्ना गुडेन नैवेद्यं दत्वा दशशतं जपेत् ॥८१॥
मध्यंदिने यजेदेवं विशिष्टरूपधारिणम् । नारदाद्यैर्मुनिगणैः सुरवृन्दैश्च पूजितम ॥८२॥
लसद्‌गोपगोपीगवां वृन्दमध्यस्थितं सांद्रमेघप्रभं सुन्दरांगम् ।
शिखंडिच्छदापीडमब्जायताक्षं लसच्चिल्लिकं पूर्णचंद्राननं च ॥८३॥
चलत्कुण्डलोल्लासिगंडस्थलश्रीभरं सुन्दरम् मंदहासं सुनासम् ।
सुकातंस्वराभांबरं दिव्यभूषं क्वणत्किंकिणीजालमत्तानुलेपम् ॥८४॥
वेणुं धमंतं स्वकरे दधानं सव्ये दरं यष्टिमुदारवेषम् ।
दक्षे तथैवेप्सितदानदक्षं ध्यात्वार्चयेन्नंदजमिंदिराप्त्यै ॥८५॥
एवं ध्यात्वार्चयेत्कृष्णं पूर्ववद्वैष्णवोत्तमः । अपूपपायसान्नाद्यैर्नैवेद्यं परिकल्पयेत् ॥८६॥
हुत्वा चाष्टोत्तरशतं पयोऽन्नैः सर्पिषाप्लुतैः । स्वस्वदिक्षु बलिं दद्याद्दिशेदाचमनं ततः ॥८७॥
अष्टोत्तरसहस्रं च प्रजपेन्मंत्रमुत्तमम् । अह्नो मध्ये यजेदेवं यः कृष्णं वैष्णवोत्तमः ॥८८॥

समान है। कमर में बंधी किंकिणियों की लड़ें शब्द कर रही हैं ॥७५-७८॥ दोनों जंघायें अति मनोरम हैं। कर-कमलों तथा चरणाम्बुजों की प्रभा दुपहरिया फूल के समान हैं। वे दाहिने हाथ में पायस और बांये हाथ में नवनीत (मक्खन) लिये हुए हैं। गोपों, गोपियों तथा गौओं के बीच स्थित होकर शोभा पा रहे हैं। इन्द्र आदि देवगण उनकी चरण वंदना कर रहे हैं। पृथ्वी पर भारस्वरूप दैत्यगण तथा पूतना आदि अरिष्टों को मारने के लिये वे उद्यत हैं ॥७९-८०॥

इस प्रकार ध्यान कर पहिले की तरह स्थिर चित्त से देव की अर्चना करे। दही-गुड़ का नैवेद्य चढ़ाकर मन्त्र का दस सहस्र जप करे। पुनः मध्याह्न कालीन पूजन के समय नारद आदि मुनिगण तथा सुरवृन्द से पूजित मुकुन्द के इस विशिष्ट रूप का ध्यान करे कि वे गोपों, गोपियों तथा गौओं के बीच स्थित होकर शोभित हो रहे हैं। उनकी कांति सघन घन के समान है। अंग सुदृढ एवम् सुडौल हैं। मुकुट मयूरपिच्छों से विभूषित है। नेत्र कमलदल के तुल्य हैं। बाल घुंघराले हैं। मुख पूर्णचन्द्र के सदृश है। चंचल कुण्डलों से गण्डस्थल की अपूर्व शोभा हो रही है। मन्द मुसकान आकर्षक है। नासिका सुन्दर है। वे स्वर्णिल आभामय वस्त्र तथा दिव्य आभूषण पहने हुए हैं। उनके शरीर में (चन्दन आदि का) लेप लगा है। किंकिणियों का शब्द हो रहा है। वे वंशी बजा रहे हैं। बांये हाथ में यष्टि (लाठी) और दाहिने हाथ में अभिलषित दान देने का पात्र धारण किये हुए हैं। उनका वेश उदार है।

लक्ष्मीप्राप्ति के लिये कृष्ण के इस रूप का ध्यान कर उत्तम विष्णुभक्त पूर्ववत् उनकी पूजा करे ॥८१-८५॥ पकवान, खीर आदि नैवेद्य चढ़ा कर एक सौ आठ बार घृतमिश्रित खीर से हवन करे। अनन्तर सब दिशाओं में बलि चढ़ाकर आचमन करे और अष्टोत्तरशत मन्त्र को जपे। जो वैष्णवश्रेष्ठ इस प्रकार मध्याह्न में कृष्ण की आरा-

देवाः सर्वे नमस्यंति लोकानां वल्लभो नरः । मेधायुः श्रीकांतियुक्तः पुत्रैः पौत्रैश्च वर्द्धते ॥८९॥
तृतीयकालपूजायामस्ति कालविकल्पना । सायाह्ने निशि वेत्यत्र वदंत्येके विपश्चितः ॥९०॥
दशाक्षरेण चेद्रात्रौ सायाह्नेऽष्टादशार्णतः । उभयोमुभयेनैव कुर्यादित्यपरे जगुः ॥९१॥
सायाह्ने द्वारवत्यां तु चित्रोद्यानोपशोभिते । अष्टसाहस्रसंख्यातैर्भवनैरुपमंडिते ॥९२॥
हंससारससंकीर्णकमलोत्पलशालिभिः । सरोभिर्निर्मलांभोभिः परीते भवनोत्तमे ॥९३॥
उद्यत्प्रद्योतनोद्योतद्युतौ श्रीमणिमंडले । हेमांभोजासनासीनं कृष्णं त्रैलोक्यमोहनम् ॥९४॥
मुनिवृंदैः परिवृतमात्मतत्त्वविनिर्णये । तेभ्यो मुनिभ्यः स्वं धाम दिशंतं परमक्षरम् ॥९५॥
उन्निद्रेंदीवरश्यामं पद्मपत्रायतेक्षणम् । स्निग्धं कुंतलसंभिन्नकिरीटवनमालिनम् ॥९६॥
चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुंडलम् । श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं सुमनोहरम् ॥९७॥
काश्मीरकपिशोरस्कं पीतकौशेयवाससम् । हारकेयूरकटककटिसूत्रैरलंकृतम् ॥९८॥
हृतविश्वंभराभूरिभारं मुदितमानसम् । शंखचक्रगदापद्मराजद्भुजचतुष्टयम् ॥९९॥
एवं ध्यात्वार्चयेन्मन्त्री स्यादंगैः प्रथमावृतिः । द्वितीया महिषीभिस्तु तृतीयायां समर्चयेत् ॥१००॥
नारदं पर्वतं जिष्णुं निशठोद्धवदारुकान् । विष्वक्सेनं च शैनेयं दिक्ष्वग्रे विनतासुतम् ॥१०१॥
लोकपालैश्च वज्राद्यैः पूजयेद्वैष्णवोत्तमः । एवं संपूज्य विधिवत्पायसं विनिवेदयेत् ॥१०२॥
तर्पयित्वा खंडमिश्रदुग्धबुद्ध्या जलैरिह । जपेदष्टशतं मन्त्री भावयन्पुरुषोत्तमम ॥१०३॥

धना करता है, वह मनुष्यों का अधिनायक तथा देववंद्य होता है। उसे श्री, मेधा, आयु, कान्ति तथा पुत्र-पौत्रों की प्राप्ति होती है ॥८६–८९॥

तीसरे काल की पूजा में समय का मतभेद है। कोई आचार्य कहते हैं कि सायंकाल पूजन होना चाहिये और कोई कहते हैं कि रात्रि में पूजन किया जाय। कोई कहते हैं कि रात्रि में दशाक्षरमन्त्र से और सन्ध्याकाल में अष्टाक्षर मन्त्र से पूजन किया जाय, तो कोई कहते हैं कि दोनों समय दोनों मन्त्रों से पूजन करना चाहिए। सायंकाल इस प्रकार ध्यान करे कि द्वारका के आनन्द बाग में आठ हजार भवन विद्यमान हैं। वहां सरोवरों के विमल जल में कुमुद आदि पुष्प खिले हुए हैं। हंस, सारस आदि पक्षी कलरव कर रहे हैं और एक श्रीमणिमंडित सर्वोत्तम भवन विद्यमान है। उस भवन की कान्ति उदयकालीन सूर्यरश्मि के समान है। उसी में स्वर्ण कमलासन पर त्रैलोक्यमोहन मधुसूदन विराजमान हैं ॥९०–९४॥ वे आत्मतत्त्व के निर्णय करने के लिये मुनिगणों से परिवेष्टित हैं। उन मुनियों को परमाक्षर (ओं) रूप भगवान् अपने धाम की ओर संकेत कर रहे हैं। उनका श्यामवर्ण विकसित नील कमल के समान है। लम्बे नेत्र पद्मपत्र के सदृश हैं। केश कोमल हैं। वे मुकुट एवम् वनमाला धारण किये हुए हैं। उनका मुख प्रसन्न है। कुण्डल मकराकृति है। वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न तथा मनोहर कौस्तुभमणि सुशोभित हो रही है, जिससे उनकी छाती का रंग पुष्करमूल की तरह मटमैला प्रतीत होता है। वे पीत रेशमी वस्त्र पहने हुए हैं। उनका शरीर हार, केयूर, वलय तथा करधनी से अलंकृत है ॥९५-९८॥ वे पृथ्वी के अत्यन्त भार का अपहरण करनेवाले हैं। उनका चित्त प्रसन्न है और चारों भुजायें शंख, चक्र, गदा और पद्म से विभूषित हैं ॥९९॥

इस प्रकार ध्यान कर साधक प्रथम बार में अंग देवताओं के साथ पूजन करे। द्वितीय बार में राजमहिषियों के साथ और तृतीय बार में नारद, पर्वत, विष्णु, निशठ, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन, शैनेय तथा गरुड़ के साथ पूजन कर दिशाओं में वज्र आदि आयुधों समेत लोकपालों की अर्चना करे। पूजन के बाद पायस समर्पण कर जल को ही दूध-मिसरी समझते हुए उससे तर्पण करे। तदुपरान्त पुरुषोत्तम का स्मरण करते हुए एक

पूजासु होमं सर्वासु कुर्यान्मध्यंदिनेऽथवा । आसनादर्घ्यपर्यंतं कृत्वा स्तुत्वा नमेत्सुधीः ॥१०४॥
समर्थात्मानमुद्वास्य स्वीयहृत्सरसीरुहे । विन्यस्य तन्मयो भूत्वा पुनरात्मानमर्चयेत् ॥१०५॥
सायाह्ने वासुदेवं यो नित्यमेवं समर्चयेत् । सर्वान्कामानवाप्यांते स याति परमां गतिम् ॥१०६॥
रात्रौ चेन्मदनाक्रांतचेतसं नन्दनन्दनम् । यजेद्रासपरिश्रांतं गोपीमंडलमध्यगम् ॥१०७॥
विकसत्कुंदकह्लारमल्लिकाकुसुमोद्गतैः । रजोभिर्धूसरैर्मंदमारुतैः शिशिरीकृते ॥१०८॥
उन्मीलन्नवकैरवालिविगलन्माध्वीकलब्धांतरं भ्राम्यन्मत्तमिलिंदगीतललिते सन्मल्लिकोज्जृम्भिते ।
पीयूषांशुकरैर्विशालितहरित्प्रांते स्मरोद्दीपने कालिन्दीपुलिनांगणे स्मितमुखं वेणुं रणंतं मुहुः ॥१०९॥
अन्तस्तोयलसन्नवांबुदघटासंघट्टकारत्विषं चंचच्चिल्लिकमंबुजायतदृशं बिम्बाधरं सुन्दरम् ।
मायूरच्छदबद्धमौलिविलसद्धम्मिल्लमालं चलं दीप्यत्कुण्डलरत्नरश्मिविलसद्गंडद्वयोद्भासितम् ॥११०॥
कांचीनूपुरहारकंकणलसत्केयूरभूषान्वितं गोपीनां द्वितयांतरे सुललितं वन्यप्रसूनस्रजम् ।
अन्योन्यं विनिबद्धगोपदयितादोर्वल्लिवीतं लसद्रासक्रीडनलोलुपं मनसिजाक्रांतं मुकुन्दं भजेत् ॥१११॥
विविधश्रुतिभिन्नमनोज्ञतरस्वरसप्तकमूर्छनतानगणैः ।
भ्रममाणममूभिरुदारमणिस्फुटमंडनशिंजितचारुतनुम् ॥११२॥
इतरेतरबद्धकरप्रमदागणकल्पितरासविहारविधौ ।
मणिशंकुगमप्यमुना वपुषा बहुधा विहितस्वकदिव्यतनुम् ॥११३॥

सौ आठ बार मन्त्र को जपे। मध्याह्नकालीन पूजा अथवा सकल पूजाओं में हवन करना चाहिये। विद्वान् साधक आसन से लेकर अर्घ्य-दान पर्यन्त समस्त कर्म करके स्तुति एवम् नमस्कार करे। पुनः अपने हृदयारविन्द में समाहित चित्त से आत्मा का ध्यान करके अर्चना करे। जो व्यक्ति सायंकाल इस तरह वासुदेव की आराधना करता है वह सम्पूर्ण कामनाओं को सफल करके अन्त में परमगति को प्राप्त करता है ॥१००–१०६॥

रात्रि में नन्दनन्दन का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये कि वे रासलीला करते-करते थक गये हैं। उनका चित्त काम से विह्वल है। वे गोपियों के बीच में चलते हैं तथा कालिन्दी के तट पर, जहां विकसित कुन्द, कह्लार, मल्लिका आदि कुसुमों के पराग से सुगंधित शीतल मन्द पवन बह रहा है, वे मन्द मुसकान के साथ वंशी बजा रहे हैं। उनकी कान्ति सजल घनघटा के समान है, बाल घुंघराले हैं। नेत्र कमलपत्र के सदृश दीर्घ हैं। अधर सुन्दर तथा बिम्बफल के समान हैं। मुकुट पर मयूर के पंख लगे हैं। संयत संवारे हुए बालों पर पुष्प-माला शोभित हो रही है। चंचल एवम् चमकते हुए रत्ननिर्मित कुण्डलों की रश्मि से कपोल उद्भासित हो रहे हैं। करधनी, नूपुर, हार, कंकण तथा केयूर आदि आभूषणों से सम्पूर्ण शरीर विभूषित है। वे गोपियों के मन को लुभा रहे हैं। वन्य पुष्पों की माला धारण किये हुए हैं। एक दूसरी से अपनी बाँहों को मिलाये हुए नृत्य करने वाली गोपांगनाओं की बाहुवल्लरियों से वे घिरे हुए हैं। इस प्रकार परम सुन्दर शोभामयी दिव्य रासलीला के लिए सदा उत्सुक रहने वाले प्रेम के आश्रयभूत भगवान् मुकुन्द का भजन करे। वे नाना प्रकार की श्रुतियों के भेद से युक्त परम मनोहर सात स्वरों की मूर्च्छना और तानों के साथ-साथ गोपाङ्गनाओं सहित थिरक रहे हैं। सुन्दर मणिमय स्वच्छ आभूषणों के मधुर शिंजन से भगवान् का सम्पूर्ण मनोहर अंग ही झनकारमय हो उठा है। एक दूसरी से हाथ बाँधकर मण्डलाकार खड़ी हुई गोपांगनाओं के समूह से कल्पित रासलीला मण्डल की रचना में यद्यपि भगवान् श्यामसुन्दर बीच में मणिमय मेरु की भाँति स्थित हैं तथापि इसी शरीर से उन्होंने अपने बहुत

एवं ध्यात्वार्चयेन्मन्त्री स्यादंगैः प्रथमावृतिः । श्रीकामः सस्वराद्यानि कलाब्जैर्वैष्णवोत्तमः ॥११४॥
यजेत्केशवकीर्त्यादिमिथुनानि च षोडश । इन्द्राद्यानपि वज्रादीन्पूजयेत्तदनन्तरम् ॥११५॥
पृथुं सुवृत्तं मसृणं वितस्तिमात्रोन्नतं कौ विनिखन्य शंकुम् ।
आक्रम्य पद्भ्यामितरेतरैस्तु हस्तैभ्रमोऽयं खलु रासगोष्ठी ॥११६॥
संपूज्यैवं च पयसा ससितो पलसर्पिषा । नैवेद्यमर्चयित्वा तु चषकैर्नृपसंख्यकैः ॥११७॥
ससितं पायसं मंत्री मिथुनेष्वर्पयेत्क्रमात् । विधाय पूर्ववच्छेषं सहस्रं प्रजपेन्मनुम् ॥११८॥
स्तुत्वा नत्वा च सम्प्रार्थ्य पूजाशेषं समापयेत् । एवं यः पूजयेत्कृष्णं स समृद्धःपदं भवेत् ॥११९॥
अणिमाद्यष्टसिद्धीनामीश्वरः स्यान्न संशयः । भुक्त्वेह विविधान्भोगानंते विष्णुपदं व्रजेत् ॥१२०॥
एवं पूजादिभिः सिद्धे मनौ काम्यानि साधयेत् । अष्टाविंशतिवारं वा त्रिकालं पूजयेत्सुधीः ॥१२१॥
स्वकालविहितान् भूयः परिवारांश्च तर्पयेत् । प्रातर्दध्ना गुडाक्तेन मध्याह्ने पयसा पुनः ॥१२२॥
नवनीतयुतेनाथ सायाह्ने तर्पयेत्पुनः । ससितोपलमिश्रेण पयसा वैष्णवोत्तमः ॥१२३॥
तर्पयामिपदं योज्यं मंत्रांते स्वेषु नामसु । द्वितीयांतेषु तु पुनः पूजाशेषं समापयेत् ॥१२४॥
अभ्युक्ष्य तत्प्रसादाद्भिरात्मानं प्रपिबेदपः । तत्तत्स्थमथोद्वास्य तन्मयः प्रजपेन्मनुम् ॥१२५॥
अथ द्रव्याणि काम्येषु प्रोच्यंते तर्पणेषु च । तानि प्रोक्तविधानानामाश्रित्यान्यतमं भजेत् ॥१२६॥
पायसं दाधिकं चाज्यं गौडान्नं कृसरं पयः । दधीनि कदली मोचा चिंचा रजस्वला तथा ॥१२७॥

से दिव्य स्वरूप प्रकट कर लिये हैं। और उन स्वरूपों से प्रत्येक दो गोपियों के बीच में स्थित हैं ॥१०७-११३॥

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक भगवान् की पूजा करे। हृदय आदि अंगों द्वारा प्रथम आवरण की पूजा होती है। धन-सम्पत्ति की इच्छा रखने वाला श्रेष्ठ वैष्णव पूर्वोक्त केशव-कीर्ति आदि सोलह जोड़ों की कमल पुष्पों द्वारा पूजा करे। उन सब के नाम के आदि में क्रमशः सोलह स्वरों को संयुक्त करे। तदनन्तर इन्द्र आदि दिक्पालों और वज्र आदि आयुधों की पूजा करे, एक मोटा, गोल और चिकना खूँटा जिसकी उँचाई एक बित्ते की हो, पृथ्वी में गाड़ दे और उसे पैरों से दबाकर एक दूसरे से हाथ मिलाकर उसके चारों ओर चक्कर देना रासगोष्ठी कही गई है। इस प्रकार पूजा करके दूध, घी और मिश्री मिलाकर भगवान् को नैवेद्य अर्पण करे और सोलह प्याले लेकर उनमें मिश्री मिलाई हुई खीर परोसे और पूर्वोक्त जोड़ों को क्रमशः अर्पण करे। फिर शेष कार्य पूर्ववत् करके मन्त्रोपासक एक हजार मन्त्र जप करे। तत्पश्चात् स्तुति, नमस्कार और प्रार्थना करके पूजन का शेष कार्य भी समाप्त करे। इस प्रकार जो उपासक श्रीकृष्ण की आराधना करता है, वह महासमृद्धिशाली होता है। अणिमा आदि सिद्धियाँ उसकी अनुगत हो जाती हैं, इसमें संशय नहीं। वह ऐहलौकिक सकल भोगों को भोग कर अन्त में विष्णुपद को प्राप्त करता है ॥११४-१२०॥

इस तरह पूजा आदि से सिद्धि प्राप्त कर लेने पर मनुष्य काम्य तर्पणों का साधन करे। जैसे विद्वान् व्यक्ति (एक ही समय) अट्ठाईस बार या तीनों काल कृष्ण की पूजा कर अंग देवता सहित उनका तर्पण करें। (अन्य काल) प्रातःकाल गुड़ मिश्रित दही से, मध्याह्न में दूध से और सायंकाल मक्खन से तर्पण करना चाहिये। इस पद को उत्तम वैष्णव शक्कर मिलाये दूध से तर्पण करे। मन्त्र के अन्त में अपने नाम के साथ 'तर्पयामि' इस पद को जोड़ देना चाहिये। पूजा समाप्ति के बाद तर्पणीय जल से अपने को सिक्त कर वह जल पी ले अनन्तर मन्त्र का जप करे ॥१२१-१२५॥ काम्य तर्पण करने के लिये जिन द्रव्यों की आवश्यकता होती है, वे खीर, दहीबड़ा, घी, गुड़ में पकाया अन्न, खिचड़ी, दूध, दही, केला, (मोचा), सहिजन, चिंचा (इमली), चीनी, पूआ, लड्डू,

अपूपा मोदका लाजाः पृथुका नवनीतकम् । द्रव्यषोडशकं ह्येतत्कथितं पद्मजातिभिः ॥१२८॥
लाजांते पृथुकं प्राक्च समर्प्यं च सितोपलम् । चतुःसप्ततिवारं यः प्रातरेवं प्रतर्पयेत् ॥१२९॥
ध्यात्वा कृष्णपदं मंत्री मंडलादिष्टमाप्नुयात् । धारोष्णपक्वपयसा नवनीतं दधीनि च ॥१३०॥
दौग्धाम्रमाज्यं मत्स्यंडी क्षौद्रं कीलालमेव च । पूजयेन्नवभिर्द्रव्यैः प्रत्येकं रविसंख्यया ॥१३१॥
एवमष्टोत्तरशतसंख्याकं तर्पणं पुनः । यः कुर्याद्वैष्णवश्रेष्ठः पूर्वोक्तं फलमाप्नुयात् ॥१३२॥
किं बहूक्तेन सर्वेष्टदायकं तर्पणं त्विदम् । ससितोपलधारोष्णदुग्धबुद्धया जलेन वै ॥ १३३॥
कृष्णं प्रतर्पयन् ग्रामे व्रजन्प्राप्नोति साधकः । धनवस्त्राणि भोज्यं च परिवारगणैः सह ॥१३४॥
यावत्संतर्पयेन्मंत्री तावत्संख्यं जपेन्मनुम् । तर्पणेनैव कार्याणि साधयेदखिलान्यपि ॥१३५॥
काम्यहोममथो वक्ष्ये साधकानां हिताय च । श्रीपुष्पैर्जुहुयान्मंत्री श्रियमिच्छन्ननिंदिताम् ॥१३६॥
साज्येनान्नेन जुहुयात्घृतान्नस्य समृद्धये । वन्यपुष्पैर्द्विजान् जातीपुष्पैश्च पृथिवीपतीन् ॥१३७॥
असितैः कुसुमैर्वैश्यान् शूद्रान्नीलोत्पलैस्तथा । वशयेल्लवणैः सर्वानंबुजैर्युवतीजनम् ॥१३८॥
गोशालासु कृतो होमः पायसेन ससर्पिषा । गवां शांतिं करोत्याशु गोपालो गोकुलेश्वरः ॥१३९॥
शिक्षावेषधरं कृष्णं किंकिणीजालशोभितम् । ध्यात्वा प्रतर्पयेन्मंत्री दुग्धबुद्धया शुभैर्जलैः ॥१४०॥
धनं धान्यं सुतान्कीर्तिं प्रीतस्तस्मै ददाति सः । ब्रह्मवृक्षसमिद्भिर्वा कुशैर्वा तिलतंदुलैः ॥१४१॥

लाजा (लावा) पृथुक (चिउरा) तथा नवनीत। इन्हीं सोलह द्रव्यों का नाम ब्रह्मा आदि (मुनियों) ने बताया है। इन द्रव्यों से तर्पण कर पश्चात् लाजा, पृथुक तथा शक्कर चढ़ाना चाहिये। जो व्यक्ति प्रातःकाल कृष्ण का ध्यान कर उक्त रीति से चौहत्तर बार तर्पण करता है उसे वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है ॥१२६-१२९½॥ धारोष्ण दूध, आग पर गर्म किया हुआ दूध, नवनीत, दही, छेना, घी, राब, मधु तथा जल—इन नौ द्रव्यों में प्रत्येक से बारह-बारह बार तर्पण करना चाहिए। जो वैष्णवश्रेष्ठ इस तरह एक सौ आठ बार तर्पण करता है, उसे पूर्वोक्त फल का लाभ होता है। इसके सम्बन्ध में बहुत क्या कहूँ! यह (तर्पण) तो समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। जो व्यक्ति जल ही में धारोष्ण दूध तथा शक्कर की भावना कर उससे तर्पण करता है, उसे भी गांव, व्रज (गोष्ठ) धन, वस्त्र, भोज्य तथा पारिवारिक सुख की प्राप्ति होती है। साधक जितने बार तर्पण करे उतने ही बार मंत्र का भी जप करे। इस तर्पण से सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥१३०-१३५॥

अब मैं साधकों के हित के लिये काम्य हवन का वर्णन करता हूँ। अतुल संपत्ति की कामना करने वाला साधक श्रीपुष्पों से होम करे। जो व्यक्ति घी तथा अन्नों की समृद्धि चाहता है, वह घृतमिश्रित अन्नों से हवन करे। वन्य पुष्पों से होमने वाला (साधक) द्विजों को, जातीपुष्पों से होमने वाला राजाओं को, कृष्ण पुष्पों से होमने वाला वैश्यों को, नीलकमलों से होमने वाला शूद्रों को, लवण से होमने वाला सबको और कमलों से होमने वाला युवतियों को वशीभूत करता है। गोशाला में खीर तथा घी से हवन करने से गोकुलेश्वर कृष्ण गौओं के अरिष्ट को शान्त कर देते हैं। जो साधक प्रातःकाल लोकशिक्षा के लिये अवतार धारण करने वाले, किंकिणियों से सुशोभित कृष्ण का ध्यान कर दुग्धबुद्धया पवित्र जल से तर्पण करता है, उसके ऊपर प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण धन, धान्य, पुत्र एवम् यश प्रदान करते हैं ॥१३६-१४०½॥

पलाश की समिधा या कुश या तिल-तंदुल में त्रिमधु मिला कर हवन करने से ब्राह्मण वशीभूत होते हैं।

जुहुयादयुतं मंत्री त्रिमध्वाक्तैर्हुताशने । वशयेद्ब्राह्मणांश्चाथ राजवृक्षसमुद्भवैः ॥१४२॥
प्रसूनैः क्षत्रियान्वैश्यान्कुरंडकुसुमैस्तथा । पाटलोत्थैश्च कुसुमैर्वशयेदंतिमान्सुधीः ॥१४३॥
श्वेतपद्मै रक्तपद्मैश्चंपकैः पाटलैः क्रमात् । हुत्वायुतं त्रिमध्वाक्तैर्वशयेत्तद्वरांगनाः ॥१४४॥
नित्यं हयारिकुसुमैर्निशीथे त्रिमधुप्लुतैः । वरस्त्रीर्वशयेत्प्राज्ञः सम्यग्धृत्वा दिनाष्टकम् ॥१४५॥
अयुतत्रितयं रात्रौ सिद्धार्थैस्त्रिमधुप्लुतैः । प्रत्यहं जुह्वतो मासात्सुरेशोऽपि वशीभवेत् ॥१४६॥
आहृत्य बल्लवीवस्त्राण्यारूढं नीपभूरुहे । स्मरेत्कृष्णं जपेद्रात्रौ सहस्रं खेद्वंहात्सुधीः ॥१४७॥
हठादाकर्षयेच्छीघ्रमुर्वशीमपि साधकः । बहुना किमिहोक्तेन मंत्रोऽयं शर्ववश्यकृत् ॥१४८॥
रहस्यं परमं चाथ वक्ष्ये मोक्षप्रदं नृणाम् । ध्यायेत्स्वहृत्सरसिजे देवकीनंदनं विभुम् ॥१४९॥

श्रीमत्कुन्देंदुगौरं सरसिजनयनं शङ्खचक्रे गदाब्जे
बिभ्राणं हस्तपद्मैर्नवनलिनलसन्मालयादीप्यमानम् ।
वंदे वेद्यं मुनीन्द्रैः कणिकमणिलसद्दिव्यभूषाभिरामं
दिव्यांगालेपभासं सकलभयहरं पीतवस्त्रं मुरारिम् ॥१५०॥
एवं ध्यात्वा पुमांसं स्फुटहृदयसरोजासनासीनमाद्यं
सांद्रांभोदाच्छबिंबाद्भुतकनकनिभं संजपेदर्कलक्षम् ।
मन्त्रोरेकं द्वितारांतरितमथ हुनेदर्कसाहस्रमिध्मैः
क्षीरिद्रूत्थैर्यथोक्तैः समधुघृतसितेनाथवा पायसेन ॥१५१॥

एवं लोकेश्वराराध्यं कृष्णं स्वहृदयांबुजे । ध्यायन्ननुदिनं मंत्री त्रिसहस्रं जपेन्मनुम् ॥१५२॥

राजवृक्ष की समिधा से हवन करने वाला साधक क्षत्रियों को वश में करता है। कुरंडवृक्ष के पुष्पों से होमने वाला वैश्यों को और पाटल के कुसुमों से हवन करने वाला शूद्रों को वश में कर लेता है। त्रिमधु मिला कर श्वेतपद्म रक्तपद्म तथा पाटल से होम करने से वेश्यायें वशीभूत होती हैं। नित्य आठ दिनों तक रात्रि में त्रिमधुयुक्त करवीर-कुसुमों से हवन करने वाला बुद्धिमान् व्यक्ति श्रेष्ठ वनिता को वश में कर लेता है। जो एक मास तक रात्रि में त्रिमधु मिला कर उजले सरसो से तीस हजार (बार) हवन करता है, उसके वश में इन्द्र भी हो जाते हैं। यदि चतुर साधक दश दिनों तक रात्रि में गोपियों के वस्त्र चुराकर कदम्ब वृक्ष के ऊपर चढ़ जाने वाले कृष्ण का ध्यान कर एक हजार कृष्णमन्त्र का जप करे तो वह उर्वशी को भी शीघ्र आकृष्ट कर सकता है। अधिक कहाँ तक कहें, उस मन्त्र के प्रभाव से मनुष्य सब को वश में कर सकता है ॥१४१-१४८॥

अब मैं मनुजों को मोक्ष देने वाला कृष्णरहस्य बतला रहा हूँ। पहले अपने हृदयकमल में देवकीनन्दन विभु का इस तरह ध्यान करे कि वे कुन्दपुष्प तथा चंद्र के समान गौर हैं। कमल के सदृश उनके नेत्र हैं। करकमलों में शंख, चक्र, गदा पद्म धारण किये हैं, नवीन कमलपुष्पों की माला से उनके शरीर की आभा खिल रही है। बड़े-बड़े मुनि ही उन्हें जान पाते हैं। मणि-रत्नों के बने दिव्य रत्नों के बने दिव्य आभूषणों से वे विभूषित हैं। उनके दिव्य अंगों में चन्दन आदि का लेप लगा है। वे सकलभयहारी, पीतवस्त्रधारी तथा मुर नामक दैत्य के विनाशक हैं। वे मेरे विकसित हृदयारविन्द रूपी आसन पर आसीन हैं। लोग आद्यपुरुष भी उन्हीं को कहते हैं। उनकी वर्णच्छटा सघनघन के समान है। कान्ति अद्भुत सुवर्ण तुल्य है। इस प्रकार आदिपुरुष का ध्यान कर बारह लाख मन्त्र जप करे और बारह हजार एक सौ

सायाह्नोक्तेन विधिना संपूज्य हवनं पुनः । कृत्वा पूर्वोक्तविधिना मंत्री तद्गतमानसः ॥१५३॥
एवं यो भजते नित्यं विद्वान् गोपालनंदनम् । सन्तुत्तीर्य भवांभोधिं स याति परमं पदम् ॥१५४॥

मध्ये कोणेषु बाह्ये ध्वनलपुरपुटस्यालिखेत्कर्णिकायां
कंदर्पं साध्ययुक्तं विवरगतषडर्णद्विषः केशरेषु ।
शक्तिः श्रीपूर्विकाणि द्विनवलिपिमनोरक्षराणिच्छदानां
मध्ये वर्णान्दशान्तो दशलिपिमनुवर्यस्य वैकैकशोऽब्जम् ॥१५५॥
भूसद्मनाभिवृतमस्त्रगमन्मथेन गोरोचनाविलिखितं तपनीयसूच्या ।
पट्टे हिरण्यरचिते गुलिकीकृतं तद्गोपालयंत्रमखिलार्थदमेतदुक्तम् ॥१५६॥
संपातसिक्तमभिजप्तमिमं महद्भिर्धार्यं जगत्त्रयवशीकरणैकदक्षम् ।
रक्षायशः सुतमहीधनधान्यलक्ष्मी सौभाग्यलिप्सुभिरजस्रमनर्घ्यवीर्यम् ॥१५७॥

स्मरस्त्रिविक्रमाक्रांतश्चाक्रीष्टचाय हृदित्यसौ । षडक्षरोऽयं संप्रोक्तः सर्वसिद्धिकरो मनुः ॥१५८॥
क्रोडः शान्तींदुवह्न्याढ्यो मायाबीजं प्रकीर्तितम् । गोविंदवह्निचन्द्राढ्यो मनुः श्रीबीजमीरितम् ॥१५९॥

आठ बार दूध वाले वृक्षों (आम, पीपल आदि) की समिधाओं से या घी, मधु तथा चीनी सहित पायस से हवन करे। इस तरह प्रतिदिन अपने हृदयारविन्द में लोकों के अधिपति तथा आराध्य कृष्णदेव का ध्यान करते हुए तीन हजार मंत्र का जप करना चाहिये। साधक उन्हीं में अपने मन को लगा कर सायंकालीन विधि के अनुसार पूजन तथा हवन भी करे। जो विद्वान् इस प्रकार नित्य गोपालनंदन की आराधना करते हैं, वे संसारसागर से पार होकर विष्णुलोक को जाते हैं ॥१४९-१५४॥

पहले दो त्रिभुज अंकित करे, जिसमें एक ऊर्ध्वमुख और दूसरा अधोमुख हो। एक के ऊपर दूसरा त्रिकोण होना चाहिए। इस प्रकार छह कोण हो जाएँगे। कोण बाह्य भाग में होंगे। उनके बीच में जो षट्कोण चक्र होगा, उसे अग्निपुर कहते हैं। उस अग्निपुर की कर्णिका (मध्यभाग) में 'क्लीं' यह बीजमंत्र अंकित करे। उसके साथ साध्य पुरुष एवं कार्य का भी उल्लेख करे। बहिर्गत कोणों के विवर में षडक्षर मंत्र लिखे। छह कोणों के ऊपर एक गोलाकार रेखा खींचकर उसके बाह्यभाग में दशदल कमल अंकित करे। उन दश-दलों के केसरों में एक-एक में दो-दो अक्षर के क्रम से 'ह्रीं' और 'श्रीं' पूर्वक अष्टादशाक्षर मंत्र के अक्षरों का उल्लेख करे। तदनन्तर दलों के मध्य भाग में दशाक्षर मंत्र के एक-एक अक्षर को लिखे। इस प्रकार लिखे हुए दशदल चक्र को भूपुर (चौकोर रेखा) से आवृत करे। भूपुर में अस्त्रों के स्थान में कामबीज (क्लीं) का उल्लेख करे। इस यंत्र को सोने के पत्र पर सोने की ही शलाका से गोरोचन द्वारा लिखकर उसकी गुटिका बना ले। यही गोपाल यंत्र है। यह सम्पूर्ण मनोरथों को देने वाला कहा गया है। जो रक्षा, यश, पुत्र, पृथ्वी, धन-धान्य, लक्ष्मी और सौभाग्य के इच्छुक हों, उन श्रेष्ठ पुरुषों को निरन्तर यह यन्त्र धारण करना चाहिए। इसका अभिषेक करके मंत्रजपपूर्वक इसे धारण करना उचित है। यह तीनों लोकों को वश में करने के लिए एकमात्र उपाय है। इसकी महती शक्ति अवर्णनीय है ॥१५५-१५७॥

स्मर (क्लीं), त्रिविक्रम (ऋ) युक्त चक्री (क्) अर्थात् कृ, इसके पश्चात् ष्णाय तथा हृत् (नमः)—यह (क्लीं कृष्णाय नमः) षडक्षर-मंत्र कहा गया है जो संपूर्ण मनोरथों को सिद्ध करने वाला है। वाराह (ह्) अग्नि

आभ्यामष्टादशाक्लिपिः स्याद्विंशत्यक्षरो मनुः । शालग्रामे मणौ यंत्र मंडले प्रतिमासु वा ॥१६०॥
नित्यं पूजा हरेः कार्या न तु केवलभूतले । एवं यो भजते कृष्णं स याति परमां गतिम् ॥१६१॥
विंशार्णस्य मुनिर्ब्रह्मा गायत्री छन्द ईरितम् । कृष्णश्च देवता कामो बीजं शक्तिर्द्विठो बुधैः ॥१६२॥
रामाग्निवेदवेदाब्धेर्नेत्रार्णैरंगकल्पनम् । मूलेन व्यापकं कृत्वा मनुना पुटितानथ ॥१६३॥
मातृकार्णान्न्यसेत्तत्तत्स्थानेषु सुसमाहितः । दशतत्त्वानि विन्यस्य मूलेन व्यापकं चरेत् ॥१६४॥
मंत्रन्यासं ततः कुर्याद्देवताभावसिद्धये । शीर्षं ललाटे भ्रूमध्ये नेत्रयोः कर्णयोस्तथा ॥१६५॥
नसोर्वक्त्रे च चिबुके कण्ठे दोर्मूलके हृदि । उदरे नाभिदेशे च लिंगे मूलसरोरुहे ॥१६५॥
कट्यां जान्वोर्जंघयोश्च गुल्फयोः पादयोः क्रमात् । न्यसेद्दंतान्मंत्राणां सृष्टिन्यासोऽयमीरितः ॥१६७॥
हृदये चोदरे नाभौ लिंगे मूलसरोरुहे । कट्यां जान्वोर्जंघयोश्च गुल्फयोः पादयोस्तथा ॥१६८॥
मूर्ध्नि कपोले भ्रूमध्ये नेत्रयोः कर्णयोर्नसोः । वदने चिबुके कंठे दोर्मूले विन्यसेत्क्रमात् ॥१६९॥
नमोंतान्मंत्रवर्णांश्च स्थितिन्यासोऽयमीरितः । पादयोर्गुल्फयोश्चैव जंघयोर्जानुनोस्तथा ॥१७०॥
कट्यां मूले ध्वजे नाभौ जठरे हृदये पुनः । दोर्मूले कंठदेशे च चिबुके वदने नसोः ॥१७१॥
कर्णयोर्नेत्रयोश्चैव भ्रूमध्ये निटिले तथा । मूर्ध्नि न्यसेन्मंत्रवर्णान्संहाराख्योऽयमीरितः ॥१७२॥
पुनः सृष्टिस्थितिन्यासौ विधाय वैष्णवोत्तमः । मूर्तिपंजरनामानं विन्यसेत्पूर्ववत्ततः ॥१७३॥
पुनः षडंगं कृत्वाथ ध्यायेत्कृष्णं हृदंबुजे । द्वारवत्यां सहस्रार्कभास्वरैर्भवनोत्तमैः ॥१७४॥
अनल्पैः कल्पवृक्षैश्च परीते मणिमण्डपे । ज्वलद्रत्नमयस्तंभद्वारतोरणकुड्यके ॥१७५॥

(र), शान्ति (ई) और इन्दु (अनुस्वार) से युक्त हो तो श्रीबोज—'श्रीं' कहा गया है। इन दोनों बीजों से युक्त होने पर अष्टादशाक्षर मन्त्र (ह्लीं श्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) बीस अक्षरों का हो जाता है। हरि की नित्य पूजा शालग्राम, मणि, यंत्र, मंडल तथा प्रतिमाओं में करनी चाहिये, केवल भूमि पर न करे। उक्त प्रकार से कृष्ण की आराधना करने वाला व्यक्ति उत्तम गति को प्राप्त करता है। उक्त बीस अक्षर वाले मंत्र का ऋषि ब्रह्मा, छंद गायत्री, देवता कृष्ण; बीज क्लीं और शक्ति स्वाहा है। मन्त्र के बीस अक्षरों से अङ्गन्यास करना चाहिये। मन्त्रसंपुटित मूल से व्यापकन्यास कर देवभाव की सिद्धि के लिये मन्त्रन्यास भी करे। शिर, ललाट, भ्रूमध्य, नेत्र, कर्ण, नासिका, मुख, ठुड्डी, कंठ, बाहुमूल, हृदय, उदर, नाभि, लिंग, मूलाधार पद्म, कटि, जानु, ऊरु, जंघा, गुल्फ तथा चरणों में 'नमः' पर्यन्त मन्त्राक्षरों का क्रमशः न्यास करे। इसका नाम सृष्टिन्यास है।१५८-१६७॥ हृदय, उदर, नाभि, लिंग, मूलाधारपद्म, कटि, जानु, ऊरु, जंघा, गुल्फ, चरण, मस्तक, कपोल, भ्रूमध्य, नेत्र, कर्ण, नासिका, मुख, ठुड्डी, कंठ तथा बाहुमूल, में 'नमः' पर्यन्त मन्त्रवर्णों का क्रमशः न्यास करना स्थितिन्यास कहलाता है। चरण, गुल्फ, जंघा, जानु, कटि, मूलाधार, लिंग, नाभि, उदर, हृदय, बाहुमूल, कंठ, ठुड्डी, वदन, नासिका, कर्ण, नेत्र, भ्रूमध्य ललाट तथा मस्तक में मंत्रवर्णों का न्यास करना संहारन्यास कहलाता है। उत्तम वैष्णव को इन न्यासों के कर लेने के बाद पुनः सृष्टिन्यास तथा स्थितिन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् मूर्तिपंजरन्यास एवम् षडंगन्यास करके अपने हृदयारविन्द में श्रीकृष्ण का इस प्रकार ध्यान करे कि द्वारका में सहस्र दिनकरों के समान चमकनेवाले कतिपय उत्तम भवनों तथा कल्पवृक्षों से वेष्टित एक मणिमय मंडप है, जिसके स्तंभ, द्वार, तोरण तथा कुड्य जाज्वल्यमान रत्नों के बने हैं। उस मण्डप में तरह-तरह के चित्र लिखे हैं। उसमें टंगे वितान से मोतियाँ लटक रही हैं॥१६८-१७५½॥ उसके मध्य में पद्मरागमणि

फुल्लप्रफुल्लसच्चित्रवितानालंबिमौक्तिके । पद्मरागस्थलीराजद्रत्नसंघैश्च मध्यतः ॥१७६॥
अनारतगलद्रत्नधाराढ्यस्वस्तरोरधः । रत्नप्रदीपावलिभिः प्रदीपितदिगंतरे ॥१७७॥
उद्यदादित्यसंकाशमणिसिंहासनांबुजे । समासीनोऽच्युतो ध्येयो द्रुतहाटकसन्निभः ॥१७८॥
समानोदितचंद्रार्कतडित्कोटिसमद्युतिः । सर्वांगसुंदरः सौम्यः सर्वाभरणभूषितः ॥१७९॥
पीतवासाः शंखचक्रगदांभोजलसत्करः । अनाहतोच्छलद्रत्नधारौघकलशं स्पृशन् ॥१८०॥
वामपादांबुजाग्रेण मुष्णता पल्लवच्छविम् । रुक्मिणीसत्यभामेऽस्य मूर्ध्नि रत्नौघधारया ॥१८१॥
सिंचंत्यौ दक्षवामस्थे स्वदोस्थकलशोत्थया । नाग्नजिती सुनंदा च दिशंत्यौ कलशौ तयोः ॥१८२॥
ताभ्यां च दक्षवामस्थमित्रविंदासुलक्ष्मणे । रत्ननद्याः समुद्धृत्य रत्नपूर्णौ घटौ तयोः ॥१८३॥
जांबवती सुशीला च दिशंत्यौ दक्षवामके । बहिः षोडश साहस्रसंख्याकाः परितः प्रियाः ॥१८४॥
ध्येयाः कनकरत्नौघधारायुक्कलशोज्ज्वलाः । तद्बहिश्चाष्टनिधयः पूरयंतो धनैर्धराम् ॥१८५॥
तद्बहिर्वृष्णयः सर्वे पुरोवच्च स्वरादयः । एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षपंचकं तद्दशांशतः ॥ १८६॥
अरुणैः कमलैर्हुत्वा पीठे पूर्वोदिते यजेत् । विलिप्य गंधपंकेन लिखेदष्टदलांबुजम् ॥१८७॥
कर्णिकायां च षट्कोणं ससाध्यं तत्र मन्मथम् । शिष्टैस्तु सप्तदशभिरक्षरैर्वेष्टयेत्स्वरम् ॥१८८॥
प्राग्रक्षोऽनीलकोणेषु श्रियं शिष्टेषु संविदम् । षट्सु संधिषु षट्कर्णं केसरेषु त्रिशस्त्रिशः ॥१८९॥
विलिखेत्स्मरगायत्रीं मालामंत्रं दलाष्टके । षट्शः संलिख्य तद्बाह्ये वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः ॥१९०॥

तथा बहुमूल्य रत्नों का काम इस तरह किया हुआ है कि देखते ही बनता है। वहाँ कल्पवृक्ष के नीचे सतत प्रस्रवित होनेवाले रत्नों से मानों धारायें निकल रही हैं। रत्नों की बनी दीपावलियाँ दिग्-दिगन्त को प्रकाशित कर रही हैं, उसी मण्डप में उदित होते हुए आदित्य के समान मणिमय सिंहासनकमल पर संतप्त सुवर्ण के सदृश कांतिवाले केशव समासीन हैं। उनकी द्युति एक काल में उदित होते हुए करोड़ों सूर्य, चन्द्र तथा विद्युत् के समान है। वे सर्वाङ्गसुन्दर, सौम्य तथा समस्त आभूषणों से आभूषित हैं। पीताम्बर पहने हुए हैं। हाथों में शंख, चक्र, गदा एवम् पद्म धारण किये हैं। और एक ऐसे कलश को उठाये हैं, जो बिना टकराये ही रत्नों की धारा बहा रहा है ॥१७६–१८०॥ उनके बाँयें पैर का नाखून नवकिसलय की छवि को लज्जित कर रहा है। उनके बाँयें तथा दाहिने भाग में रुक्मिणी तथा सत्यभामा खड़ी होकर अपने हाथों में दिव्य कलश ले उनसे निकलती हुई रत्नराशिमयी धाराओं से उन (श्री कृष्ण) के मस्तक पर अभिषेक कर रही हैं। नाग्नजिती और सुनन्दा उन दोनों को कलश पकड़ा रही हैं। मित्रविंदा और सुलक्ष्मणा रत्ननदी से रत्न ले-ले कर कलशों को भर रही हैं। उनके दाहिने और बाँयें भाग में जांबवती तथा सुशीला और चतुर्दिक् सोलह हजार स्त्रियाँ सुवर्ण एवम् रत्नों की धारा बहानेवाले शुक्ल कलश धारण किये खड़ी हैं। उनके पीछे आठों निधियाँ धन से धरा को परिपूर्ण कर रही हैं ॥१८१–१८५॥ निधियों के पीछे समस्त वृष्णिवंशी उपस्थित हैं। इस प्रकार ध्यान कर पाँच लाख मंत्र का जप करे और उसका दशांश लाल कमल से पूर्वोक्त पीठ पर हवन करे। तदनन्तर अष्टगंध से अष्टदलकमल लिखे जिसकी कर्णिका पर षट्कोण, साध्यनाम तथा क्लीं लिख कर मन्त्र के सत्रह अक्षरों से स्वर को वेष्टित करे। पूर्व, नैऋर्त्य तथा वायव्यकोण में श्री, अवशिष्ट कोणों में संवित्, छः संधियों, षट्कर्ण तथा केसरों के ऊपर तीस तीस प्रणव लिख कर अष्ट दल पर काम गायत्री तथा मालामंत्र को लिखे। उसे मातृकाक्षरों से वेष्टित कर

भूबिंबं च लिखेद्बाह्ये श्रीमायादिग्विदिक्ष्वपि । भूग्रहं चतुरस्रं स्यादष्टवज्रविभूषितम् ॥१९१॥
एतद्यंत्रं हाटकादिपट्टेष्वालिख्य पूर्ववत् । संस्कृतं धारयेद्यो वै सोऽर्च्यते त्रिदशैरपि ॥१९२॥
स्याद्गायत्री वामदेवपुष्पबाणौ तु ङेंतिमौ । विद्महेधीमहियुतौ तन्नोऽनंगः प्रचोदयात् ॥१९३॥
जप्या जपादौ गोपालमन्त्राणां जनरंजनी । हृदयं कामदेवाय ङेंतं सर्वजनप्रियम् ॥१९४॥
उक्त्वा सर्वजनांते तु संमोहनपदं तथा । ज्वल ज्वल प्रज्वलेति प्रोच्य सर्वजनस्य च ॥१९५॥
हृदयं मम च ब्रूयाद्वशं कुरु युगं शिरः । प्रोक्तो मदनमंत्रोऽष्टचत्वारिंशद्भिरक्षरैः १९६॥
जपादौ स्मरबीजाख्यो जगत्त्रयवशीकरः । पीठ प्राग्वत्समभ्यर्च्य मूर्ति संकल्प्य मूलतः ॥१९७॥
तत्रावाह्याच्युतं भक्त्या सकलीकृत्य पूजयेत् । आसनादिविभूषांतं पुनर्न्यासक्रमाद्यजेत् ॥१९८॥
सृष्टि स्थिति षडंगं च किरीटं कुंडलद्वयम् । शंखं चक्रं गदां पद्मं मालां श्रीवत्सकौस्तुभौ ॥१९९॥
गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य मूलेन वैष्णवोत्तमः । षट्कोणेषु षडंगानि दिग्दलेषु क्रमाद्यजेत् ॥२००॥
वासुदेवादिकान्कोणेषु तु शांत्यादिकांस्ततः । पत्राग्रगा महिष्योऽष्टौ यजेत्साधकसत्तमः ॥२०१॥
ततः षोडशसाहस्रं सकृद्देवार्चयेत्प्रियाः । इंद्रनीलमुकुन्दांश्च करालानंद कच्छपान् ॥२०२॥
शंखपद्मौ ततः पश्चान्निधीनष्टौ क्रमाद्यजेत् । तद्बहिर्लोकपालांश्च वज्राद्यानपि पूजयेत् ॥२०३॥
एवं सप्तावृत्तिवृतं कृष्णमभ्यर्च्य चादरात् । प्रीणयेद्दधिखंडाज्यमिश्रेण तु पयोऽधसा ॥२०४॥
दिव्योपचारं दत्त्वाथ स्तुत्वा नत्वा च केशवम् । उद्वासयेत्स्वहृदये परिवारगणैः सह ॥२०५॥
न्यस्यात्मानं समभ्यर्च्य तन्मयो विहरेत्सुधीः । रत्नाभिषेकध्यानेज्या विंशत्यर्णाश्रितेरिता ॥२०६॥

बाहर भूबिम्ब लिखे। फिर दिशा-विदिशाओं में श्री, माया आदि लिखकर भूग्रह तथा अष्टवज्रविभूषित चतुरस्र लिखे। यह यंत्र सुवर्ण आदि के पट्ट पर लिखना चाहिये। इस यन्त्र को सुसंस्कृत करके जो धारण करता है, वह देवताओं से भी पूजित होता है। "वामदेव पुष्पबाणौ विद्महे धीमहि तन्नोऽनंगः प्रचोदयात्" यह काम गायत्री है ॥१८६–१९३॥ कृष्णमंत्रों के जप करने से पहिले इसका जप करना चाहिये। यह मनुष्यों को आनन्द देनेवाली है। "हृदयम्......युगं शिरः" यह काममन्त्र है, जिसमें चालीस अक्षर होते हैं। जप के आदि में इस स्मर-बीजमन्त्र को जपने से तीनों लोक वशीभूत होते हैं।

पूर्वोक्त रीति से पीठ की अर्चना कर उस पर मूलमंत्र से मूर्ति की स्थापना करके उसमें कृष्ण का आवाहन करे और उसमें पूर्णता की भावना से पूजा करे। आसन से लेकर आभूषण तक भगवान् को अर्पण करके फिर न्यासक्रम से आराधना करे। सृष्टि, स्थिति, षडंग किरीट, दोनों कुण्डल, शंख, चक्र, गदा, पद्म, माला, श्रीवत्स तथा कौस्तुभ की गंध पुष्पों से पूजा कर श्रेष्ठ वैष्णव मूलमंत्र द्वारा छह कोणों में छह अंगों का और पूर्वादि दलों में क्रमशः वासुदेव आदि तथा कोणों में शान्ति आदि का क्रमशः पूजन करे। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधक दलों के अग्रभाग में आठ राजमहिषियों की अर्चना कर सोलह हजार कृष्ण-प्रियाओं का एक ही साथ पूजन करे ॥१९४–२०१॥ तदनन्तर इन्द्र, नील, मुकुन्द, कराल, आनन्द, कच्छप, शंख तथा पद्म इन अष्ट निधियों का क्रमशः पूजन कर लोकपालों तथा उनके अस्त्रों की भी पूजा करे। इस प्रकार सात बार आदर पूर्वक कृष्ण की आराधना कर उन्हें दही, मिश्री, घी, दूध, अन्न तथा दिव्य उपहार समर्पण कर स्तुति एवम् नमस्कार करे। पुनः अपने हृदय में सपरिवार कृष्ण का ध्यान कर भगवत्स्वरूप आत्मा का पूजन करके विद्वान् पुरुष तन्मय होकर विचरे। उनका रत्नाभिषेक, ध्यान, पूजन आदि बीस अक्षरों वाले मंत्र के अधीन है—ऐसा कहा गया है ॥२०२–२०६॥

एवं यो भजते मन्त्रं स समृद्धः पदं भवेत् । जपहोमार्चनध्यानैर्यो मन्तुं प्रजपेदमुम् ॥२०७॥
तद्वेश्म पूर्यते रत्नैः स्वर्णधान्यैरनारतम् । पृथ्वी पृथ्वी करे तस्य सर्वसस्यसमाकुला ॥२०८॥
पुत्रैर्मित्रैः सुसंपन्नः प्रयात्यंते परां गतिम् । वह्नावभ्यर्च्य गोविंदं शुक्लपुष्पैः सतंदुलैः ॥२०९॥
आज्याक्तैर्युतं हुत्वा भस्म तन्मूर्ध्नि धारयेत् । तस्यान्नादिसमृद्धिः स्यात्तद्वशे सर्वयोषितः ॥२१०॥
रक्तांभोजैस्त्रिमध्वक्तैर्हुनेल्लक्षं समाहितः । श्रिया तस्यैंद्रमैश्वर्यं तृणलेशायते ध्रुवम् ॥२११॥
त्रिमध्वक्तैः सितैः पुष्पैरष्टोत्तरसहस्रकम् । या हुनेत्प्रत्यहं मासात्पुरोधा नृपतेर्भवेत् ॥२१२॥
एवमादिप्रयोगांश्च साधयेन्मनुनामुना । मन्त्रराजमथो वक्ष्ये दशार्णं सर्वसिद्धिदम् ॥२१३॥
स्मृतिः सद्यान्विता साक्षिर्लोहितो जनवल्लभा । पवनोऽग्निप्रियांतोऽयं दशार्णो मन्त्र ईरितः ॥२१४॥
नारदोऽस्य मुनिश्छंदो विराट् कृष्णोऽस्य देवता ।
कामो बीजं वह्निजाया शक्तिः प्रोक्ता मनीषिभिः ॥२१५॥
आचक्रं च विचक्रं च सुचक्रं तदनन्तरम् । त्रैलोक्यरक्षणं चक्रमसुरांतकचक्रकम् ॥२१६॥
एतैर्ङेठद्वयांतैश्च चक्रैः पंचांगकं मनोः । ततस्तारपुटं मन्त्रं व्यापय्य करयोस्त्रिशः ॥२१७॥
सद्दृग्हृदंतान्मंत्रार्णान्प्रणवांतरितान्न्यसेत् । दक्षांगुष्ठाच्च वामांगुष्ठांतमंगुलिपर्वसु ॥२१८॥
सृष्टिन्यासोऽयमुदितः स्थितिन्यासोऽधुनोच्यते । न्यसेद्वामकनिष्ठादिकनिष्ठांतं स्थितौ सुधीः ॥२१९॥
वामांगुष्ठान्न्यसेद्दक्षांगुष्ठांतं संहृतौ तथा । संहृतिर्दोषसंघातहारिणी परिकीर्तिता ॥२२०॥

जो विद्वान् उक्त प्रकार से कृष्णमन्त्र की उपासना करते हैं, वे समृद्धिशाली होते हैं। जो मनुष्य जप, होम, अर्चन तथा ध्यान पुरस्सर उक्त मन्त्र का जप करता है, उसका घर सतत धन-धान्य तथा स्वर्ण से परिपूर्ण रहता है। उसके खेतों में सब प्रकार के अन्न उपजते हैं। वह पुत्र-मित्रों से सुसम्पन्न होकर अन्त में उत्तम गति को प्राप्त करता है। जो गोविन्द की अर्चना कर तन्दुल, घी तथा श्वेत पुष्पों से अग्नि में हवन करता है, उसे प्रचुर अन्न आदि तथा रमणियाँ प्राप्त होती हैं। जो त्रिमधुयुक्त रक्त कमलों से एक लाख हवन करता है उसके ऐश्वर्य के सामने इन्द्र का भी ऐश्वर्य नगण्य-सा हो जाता है, जो एक मास तक प्रत्येक दिन त्रिमधुयुक्त श्वेत पुष्पों से एक सौ आठ बार हवन करता है, उसे राजपुरोहित का पद प्राप्त होता है। इस प्रकार अनेक प्रयोग उक्त मंत्र से सिद्ध किये जा सकते हैं।

अब मैं दस अक्षरोंवाले सर्वसिद्धिदायक मंत्रराज को बतलाता हूँ॥२०७–२१३॥ स्मृति (ग्) यह सद्य (ओ) से युक्त हो और लोहित (प्) वामनेत्र (ई) से संलग्न हो। इसके बाद 'जनवल्लभा' ये अक्षर समुदाय हों तत्पश्चात् पवन (य) हो और अन्त में अग्निप्रिया (स्वाहा) हों तो यह (गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) दशाक्षर मंत्र है। इसके मुनि नारद, छंद विराट्, देवता कृष्ण, बीज क्लीं और स्वाहा शक्ति है। आचक्र, विचक्र, सुचक्र, त्रैलोक्यरक्षण चक्र और सुरांतकचक्र ये पाँचों चक्र मन्त्र के अंग कहलाते हैं। इन शब्दों के अन्त में ङे विभक्ति और स्वाहा पर जोड़ कर इन पंचविधचक्रों द्वारा पंचांगन्यास करे। तदनन्तर प्रणवसंपुटित मन्त्र पढ़कर दोनों हाथों में तीन बार व्यापक न्यास तत्पश्चात् मन्त्र के प्रत्येक अक्षर को अनुस्वायुक्त करके उनके आदि में प्रणव और अन्त में नमः जोड़कर उनका दाहिने हाथ के अंगूठे से लेकर बायें हाथ के अंगूठे तक के अंगुलिपर्वों में भी न्यास करे। इसका नाम सृष्टिन्यास है। अब स्थितिन्यास कहा जाता है॥२१४-२१८½॥

वाम हस्त की कनिष्ठा से लेकर दक्षिण हस्त की कनिष्ठा तक पूर्वोक्त रूप से मंत्राक्षरों का न्यास

विद्याप्रदश्च सृष्ट्यंतो वर्णिनां शुद्धचेतसाम् । स्थित्यंतः स्याद्गृहस्थानामेवं काम्यादिरूपतः ॥२२१॥
संहारांतो मुनींद्राणां विरक्तानां च सर्वशः । पुनः स्थितिक्रमेणार्णान्मनोरंगुलिषु न्यसेत् ॥२२२॥
पुनश्चक्रैश्च पूर्वोक्तैः पंचांगं करयोर्न्यसेत् । ततो मूलेन पुटितान्मातृकार्णान्सबिंदुकान् ॥२२३॥
विन्यसेन्मातृकान्यासस्थानेषु प्रणतः सुधीः । ततस्तारपुटं मूलं व्यापकत्वेन विन्यसेत् ॥२२४॥
संहारसृष्टिभेदेन दशतत्त्वानि विन्यसेत् । नमोंतमूलमंत्रार्णपदायाम्यानि चात्मने ॥२२५॥
मत्यंतानि च तत्त्वानि पृथिव्याद्यानि च क्रमात् । पृथ्वी जलं तथा वह्निर्वायुराकाशमेव च ॥२२६॥
अहंकारो महत्तत्त्वं प्रकृतिं पुरुषं परम् । प्रविन्यसेन्मस्तके च नेत्रयोः श्रोत्रयोर्नसोः ॥२२७॥
वदने हृदये नाभौ लिंगे जान्वोश्च पादयोः । प्रणवांतरितान्वर्णान्हृदंतान्विन्यसेन्मनोः ॥२२८॥
सृष्टिन्यासोऽयमाख्यातः स्थितिन्यासं शृणु द्विज । हृदि नाभौ ध्वजे जान्वोः पादयोर्मस्तके पुनः ॥२२९॥
नेत्रयोः कर्णयोर्घ्राणे वदने विन्यसेत्क्रमात् । पदोर्जान्वोर्लिंगदेशे नाभौ हृदि मुखे नसोः ॥२३०॥
कर्णयोर्नेत्रयोर्मूर्ध्नि संहाराख्योऽयमीरितः । सृष्ट्यंतो वर्णिनां न्यासः स्थित्यंतो गृहमेधिनाम् ॥२३१॥
यतेर्वैराग्ययुक्तस्य संहारांतः प्रकीर्तितः । चतुर्द्धा वर्णिनां चैव गृहस्थानां च पंचधा ॥२३२॥
यतीनां च त्रिधा न्यासः प्रोक्तोऽयं क्रमतः शुभः । केचिद्विरक्ते गृहगे संहारांतं विदुर्बुधाः ॥२३३॥
विभूतिपंजरं न्यासं कुर्यादिष्टाप्तये ततः । मनोदंशावृत्तिमयं कृष्णसांनिध्यकारकम् ॥२३४॥
आधारे च ध्वजे नाभौ हृदि कंठे मुखे शये । ऊर्वोश्च कंधरायां च नाभौ कुक्षौ तथा हृदि ॥२३५॥

करे । संहारन्यास में वामांगुष्ठ से लेकर दक्षिणांगुष्ठ तक उक्त मन्त्राक्षरों का न्यास करे। क्योंकि संहारन्यास दोषसमूह का नाश करने वाला है। शुद्ध चित्त वाले संन्यासियों के लिये उक्त न्यासद्वय के साथ सृष्टि न्यास विद्या को देने वाला है। अन्त में किया जाने वाला स्थितिन्यास गृहस्थों की कामनाओं को सफल करता है। अन्त में किया जाने वाला संहारन्यास मुनीन्द्रों और विरक्तों के लिये लाभदायक है। तदनन्तर साधक पुनः स्थितिन्यासक्रम से मंत्राक्षरों को अंगुलियों में न्यस्त करे। तदनन्तर पूर्वोक्त चक्रों से हाथों में पचाङ्ग-न्यास करे। पश्चात् मूलमन्त्र से संपुटित तथा सबिंदुक मातृकाक्षरों का मातृकान्यासस्थानों में प्रणामपूर्वक न्यास करे। पश्चात् प्रणव संपुटित मूलमन्त्र का उच्चारण करके व्यापकन्यास करे। संहार और सृष्टि के भेद से दस तत्त्वों का विन्यास करे। मस्तक, नेत्रों, कर्णों, नासिकापुटों, मुख, हृदय, नाभि, लिंग, जानुओं तथा चरणों में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व, प्रकृति तथा पुरुष का न्यास कर मन्त्र के हृदंत अक्षरों को प्रणवान्तरित करके न्यस्त करना चाहिये। यह सृष्टिन्यास कहलाता है। अब स्थितिन्यास सुनो ॥२१९-२२८½॥ हृदय, नाभि, लिंग, जानुओं, चरणों, मस्तक, नेत्रों, कर्णों, नासिका तथा मुख में क्रमशः न्यास करने का नाम सृष्टि न्यास है। चरणों, जानुओं, लिंग, नाभि, हृदय, मुख, नासिका, कर्णों, नेत्रों तथा मस्तक में न्यास करने का नाम संहारन्यास है। संन्यासियों के लिये सृष्टिन्यास, गृहस्थों के लिये स्थितिन्यास और वैराग्ययुक्त यतियों के लिये संहारन्यास करना चाहिये। सन्यासियों को चार प्रकार के, गृहस्थों को पाँच प्रकार के और यतियों को तीन प्रकार के न्यास क्रमशः करने चाहिये। कोई कहते हैं कि जो घर छोड़कर विरक्त हो गये हैं, उनके लिये संहारन्यास ही ठीक है। ॥२२९-२३३॥ इष्ट प्राप्ति के लिये विभूतिपंजरन्यास करना चाहिये। यह न्यास मन को सुस्थिर करने वाला तथा कृष्णसान्निध्यमोक्ष को देने वाला है। मूलाधार, लिंग, नाभि, हृदय, कंठ, मुख, स्कंधों, ऊरुओं, नाभि, कुक्षि, स्तनों, पार्श्वों, श्रोणियों, मस्तक, नेत्रों, कर्णों, नासापुटों, कपोलों, दक्षिण भुजा के मूल तथा अंगुलियों में न्यास कर शिर, पूर्व आदि दिशाओं, अपनी कलाओं, भुजाओं, सक्थियों, शिर,

स्तनयोः पार्श्वयोः श्रोण्योर्मस्तके वदने तथा । नेत्रयोः कर्णयोर्नासापुटयोश्च कपोलयोः ॥२३६॥
एवं दक्षिणदोर्मूलसंध्यग्रेष्वंगुलीषु च । ततः शिरसि तत्पूर्वाद्याशासु स्वकलासु च ॥२३७॥
दोष्णोः सक्थ्नोः शिरोक्ष्यास्यकंठहृज्जठरेषु च । मूलाधारे लिंगदेशे जानुनोः पादयोस्तथा ॥२३८॥
श्रोत्रगंडांसवक्षोजपार्श्वलिंगेषु विन्यसेत् । ऊर्वोर्जान्वोर्जंघयोश्च पादयोर्विन्यसेत्क्रमात् ॥२३९॥
विभूतिपंजराख्योऽयं न्यासः सर्वार्थसिद्धिदः । अनेन न्यासवर्येण साक्षात्कृष्णतनुर्भवेत् ॥२४०॥
मूर्तिपंजरनामानं न्यासं पूर्वोदितं न्यसेत् । ततो दशांगपंचांगौ न्यासवर्यौ न्यसे क्रमात् ॥२४१॥
हृदि मूर्ध्नि शिखायां च सर्वांगे दिक्षु पार्श्वयोः । कट्यां पृष्ठे तथा मूर्ध्नि विन्यसेद्वैष्णवोत्तमः ॥२४२॥
पंचांगानि न्यसेद्भूयश्चक्रैः प्राग्वत्समाहितः । अन्योऽप्यष्टादशार्णोक्तः कर्तव्यो न्याससंचयः ॥२४३॥
ततः किरीटमंत्रेण व्यापकं रचयेत्सुधीः । वेणुबिल्वादिमुद्रांश्च दर्शयेत्साधकोत्तमः ॥२४४॥
सुदर्शनस्य मंत्रेण कुर्याद्दिग्बंधनं ततः । अनंगुष्ठाश्च ऋजवः करशाखा भवंति चेत् ॥२४५॥
हृन्मुद्रेयं समाख्याता शिरोमुद्रा तथा भवेत् । अधोंगुष्ठा तु या मुष्टिः शिखामुद्रेयमीरिता ।
प्रसारितकरांगुल्योर्वर्ममुद्रेयमीरिता ॥२४६॥

नाराचमुष्ट्या धृतबाहुयुग्मकांगुष्ठतर्जन्युदितो ध्वनिस्तु ।
विष्वग्विमुक्ता कथितास्त्रमुद्रा यत्राक्षिणी तर्जनीमध्यमे च ॥२४७॥

ओष्ठे वामकरांगुष्ठो लग्नस्तस्य कनिष्ठिका । दक्षिणांगुष्ठसंसक्ता तत्कनिष्ठा प्रसारिता ॥२४८॥

नेत्रों, मुख, कंठ, हृदय, उदर, मूलाधार, लिंग, जानुओं, चरणों, कर्णों, कपोलों, स्तनों, पार्श्वों तथा लिंग में न्यास करे। पुनः ऊरुओं, जानुओं, जंघाओं तथा चरणों में क्रमशः न्यास करना चाहिये। इसीका नाम विभूतिपंजर-न्यास है। यह सकल कामनाओं को पूर्ण करता है। इस उत्तम न्यास के करने से साक्षात् कृष्ण-शरीर की प्राप्ति होती है। इसके कर लेने के बाद न्यासों में श्रेष्ठ दशांग तथा पंचाग-न्यास क्रमशः करना चाहिए ॥२३४-२४१॥

उत्तम विष्णुभक्त हृदय, मस्तक, शिखा, समस्त अङ्गों, दिशाओं, पार्श्वों, कटि, पृष्ठ तथा शिखर—इन अङ्गों में एक-एक अक्षर का न्यास करे। फिर एकाग्रचित्त हो पूर्वोक्त चक्रों द्वारा पुनः पूर्ववत् पंचागन्यास करे। अष्टादशाक्षर मन्त्र के अनुसार अन्य-अन्य न्यास भी करने चाहिये। तदनन्तर किरीटमन्त्र से व्यापकन्यास कर वेणु, बिल्व आदि मुद्रायें दिखलाये। पश्चात् सुदर्शनमन्त्र से दिग्बन्ध करे। अंगुष्ठों को छोड़कर अन्य अंगुलियों को सीधी करने का नाम हृदयमुद्रा है। शिरोमुद्रा भी इसी तरह बनाई जाती है। अंगुष्ठ को नीचे करके मुट्ठी बांधने का नाम शिखामुद्रा है। करांगुलियों को फैला देने का नाम वर्म मुद्रा है ॥२४२-२४६॥

बाण की मुट्ठी तरह उठी हुई दोनों भुजाओं के अंगुष्ठ और तर्जनी से चुटकी बजाकर उसकी ध्वनि को सब ओर फैलाना, इसे अस्त्र मुद्रा कहा गया है। तर्जनी और मध्यमा-ये दो अंगुलियाँ नेत्र मुद्रा हैं। जहाँ तीन नेत्र का न्यास करना हो, वहाँ तर्जनी, मध्यमा के साथ अनामिका अंगुलि को भी लेकर नेत्रत्रय का प्रदर्शन कराया जाता है। बाँयें हाथ का अंगूठा ओष्ठ में लगा हो। उसकी कनिष्ठिका अंगुलि दाहिने हाथ के अंगूठे से सटी हो, दाहिने हाथ की कनिष्ठिका फैली हुई हो और उसकी तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अंगुलियाँ कुछ सिकोड़-कर हिलाई जाती हों तो यह वेणुमुद्रा कही गई है। यह अत्यन्त गुप्त होने के साथ ही भगवान् श्रीकृष्ण को बहुत प्रिय है। वनमाला, श्रीवत्स और कौस्तुभ नामक मुद्रायें प्रसिद्ध हैं। अतः उनका वर्णन नहीं किया जाता है। बाँये अंगूठे को ऊर्ध्वमुख खड़ा करके उसे दाहिने हाथ के अंगूठे से बाँध ले और उसके अग्रभाग को दाहिने

तर्जनी मध्यमानामा किंचित्संकुच्य चालिता। वेणुमुद्रेयमुदिता सुगुप्ता प्रेयसी हरेः।
नोच्यंते तत्र सिद्धत्वान्मालाश्रीवत्सकौस्तुभाः ॥२४९॥

वामांगुष्ठं समुद्रं तमपरकरांगुष्ठकेनाथ बद्ध्वा
संपीड्याग्रं च दक्षांगुलिभिरपि च तां वामहस्तांगुलीभिः।
गाढं बद्ध्वा स्वकीये हृदयसरसिजे स्थापयेत्कामबीजं
प्रोच्चार्यैषा तु गोप्या सकलसुखकरी विल्वमुद्रा मुनींद्रैः ॥२५०॥

कायेन मनसा वाचा यत्पापं समुपार्जितम्। मुद्राया ज्ञानमात्रेण सर्वं नाशमुपैश्यति ॥२५१॥
ध्यानं जपस्त्रिकालार्चा कार्या पूर्वोदिता मनोः। सर्वेष्वेकः क्रमः प्रोक्तो दशार्णाष्टादशार्णयोः ॥२५२॥
एवं सिद्धे मनौ मंत्री प्रयोगान्कर्तुमर्हति। उद्दंडबाहुदोर्दंडधृतगोवर्द्धनाचलम् ॥२५३॥
अन्यहस्तांगुलीव्यक्तस्वरवंशार्पिताननम्। ध्यायन्कृष्णं जपेन्मंत्रं व्रजेच्छत्रं विना सुधीः ॥२५४॥
वर्षवाताशनिभ्योऽपि भयं तस्य न जायते। मोघमेघौघवाताद्गतेन्द्रं तं स्मरन्हुनेत् ॥२५५॥
लोणैरयुतसंख्यैः स्यादनावृष्टिर्न संशयः। क्रीडंतमर्कजातीरे मज्जनस्नापनादिभिः ॥२५६॥
तच्छीकरजलासारैः सिच्यमानं प्रियाजनैः। ध्यात्वायुतं पयः सिक्तैर्हुनेद्वा नीरतर्पणैः ॥२५७॥
वृष्टिर्भवत्यकालेऽपि महती नात्र संशयः। सदाहमोहैरार्तस्य विस्फोटकज्वरादिभिः ॥२५८॥
अमुमेव स्मरन्मूर्ध्नि जपेच्छांतिर्भवेत्क्षणात्। अथवा गरुडारूढं प्रद्युम्नबलसंयुतम् ॥२५९॥
निजज्वरनिष्पिष्टज्वराभिष्टुतमच्युतम्। ध्यात्वा मूर्ध्नि जपेन्मंत्रं ज्वरमुक्तो भवेज्ज्वरी ॥२६०॥

हाथ को अंगुलियों से दबाकर फिर उन अंगुलियों बाँये हाथ की अंगुलियों से खूब कस कर बाँध ले और उसे अपने हृदय कमल में स्थापित करे। साथ ही कामबीज (क्लीं) का उच्चारण करता रहे। इसको मुनीन्द्रों ने बिल्वमुद्रा कहा है ॥२४७-२५०॥ यह सब को सुख देनेवाली तथा गोपनीय है। शरीर, मन, एवम् वाणी से जो पाप किया गया हो, वह सब इस मुद्रा के ज्ञानमात्र से नष्ट हो जायगा। ध्यान, जप तथा त्रिकालपूजन ये तीनों चीजें मंत्राराधन में की जाती हैं। मन्त्र चाहे दशाक्षर हो या अष्टादशाक्षर, सब में एक ही क्रम चलता है। मंत्र को भलीभाँति सिद्ध कर लेने पर साधक उसका प्रयोग करे। जो श्रीकृष्ण अपनी भुजारूपी दंड पर गोवर्धन पर्वत को धारण कर एक हाथ की अंगुलियों से स्वर मिलाते हुए वंशी को मुँह से बजाते रहे, उनका ध्यान कर पूर्वोक्त मन्त्र का जप करे। जो विद्वान् ऐसा करते हैं, वे यदि बिना छत्ते के भी चलें तो वर्षा, वायु एवम् वज्र उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। मेघों एवम् पवनों समेत इन्द्र के कर्तव्य को व्यर्थ कर देने वाले कृष्ण ध्यान कर यदि दश हजार कोणों (क्षुद्र आँवला या लोनी साग) से हवन किया जाय तो निःसन्देह वर्षा नहीं होगी ॥२५१-२५५½॥ यमुनातट पर स्नान, मज्जन आदि विविध प्रकार के क्रीडा करते हुए और प्रियाओं द्वारा जल के फुहारों से सिक्त किये जानेवाले कृष्ण का ध्यान कर दश हजार जलसिक्त लोणों से हवन या जलतर्पण किया जाय तो असमय में भी वृष्टि हो जायगी। इसमें संशय नहीं। जिसके शरीर में जलन होती है या जो विस्फोटक ज्वर आदि से पीडित है, उसके मस्तक पर यदि उक्त मन्त्र का जप कर दिया जाय तो तत्क्षण शांति हो जायगी ॥२५६-२५८½॥ कृष्ण गरुड पर आरूढ हैं, प्रद्युम्न तथा बलराम उनके साथ हैं, उनके ज्वर द्वारा पीड़ित हो (शंकर का) ज्वर उनकी स्तुति कर रहे हैं— ऐसा ध्यान कर ज्वरी के मस्तक पर उक्त मन्त्र का जप करने से ज्वर उतर जाता है। ऐसे ही रूप का ध्यान

ध्यात्वैवमग्नावभ्यर्च्य यथोक्तैश्चतुरंगुलैः । जुहुयादमृताखण्डैरयुतं ज्वरशांतये ॥२६१॥
शिलीमुखविनिर्भिन्नभीष्मतापहरं हरिम् । ध्यात्वा जपेत्स्पृशन्नार्तं पाणिभ्यां ज्वरशांतये ॥२६२॥
सांदीपनाय ददतं पुत्रं ध्यात्वायुतं हुनेत् । यथोक्तैरमृताखंडैरपमृत्युनिवृत्तये ॥२६३॥
सपार्थं मृतपुत्रायार्पयंतं च द्विजन्मने । सुतं ध्यात्वा जपेल्लक्षं पुत्रपौत्रादिवृद्धये ॥२६४॥
पुत्रजीवफलैर्हुत्वायुतं मधुरसप्लुतैः । तत्काष्ठैरेधिते वह्नौ सुतान्दीर्घायुषो लभेत् ॥२६५॥
क्षीरद्रुक्वाथसंपूर्णमभ्यर्च्य कलशं निशि । प्रातर्जप्त्वायुतं नारीमभिषिंचेद्द्विषड्दिनम् ॥२६६॥
एवं कृते तु वंध्यापि लभेत्पुत्रांश्चिरायुषः । प्रातर्वाचंयमाश्वत्थदलसंपुटकं जलम् ॥२६७॥
अष्टोत्तरशतं जप्तं मासं पुत्रार्थिनी पिबेत् । सर्वलक्षणसंपन्नं वंध्यापि लभते सुतम् ॥२६८॥
जित्वा कृत्यां काशिराजप्रेषितां च निजारिणः । तेजसा तस्य नगरं दहंतं भावयन्हरिम् ॥२६९॥
हुनेत्सप्तदिनं मंत्री सुस्नेहाक्तैश्च सर्षपैः । कृत्याकर्तारमेवास्मै कुपिता नाशयेद्ध्रुवम् ॥२७०॥
बदरीद्रुमसंकीर्णे स्थितं दिव्याश्रमे शुभे । स्पृशंतं करपद्माभ्यां घंटाकर्णकलेवरम् ॥२७१॥
ध्यात्वैवं जुहुयाल्लक्षं तिलैस्त्रिमधुराप्लुतैः । महापापयुतोऽप्येवं पूतो भवति तत्क्षणात् ॥२७२॥
द्यूतासक्तौ रुक्मिबलौ द्वेषयंतं हरिं स्मरन् । जुहुयादिष्टयोर्द्विष्टयो गुलिका गोमयोद्भवाः ॥२७३॥
नित्यं सहस्रं सप्ताहान्मिथो विद्वेषयेदरीन् । वर्षंतं गरुडारूढं ज्वलदग्निमुखैः शरैः ॥२७४॥
धावंतं रिपुसंघातमनुधावतमच्युतम । ध्यात्वा सप्तसहस्रं तु जपेन्मंत्रमनन्यधीः ॥२७५॥

कर कृष्ण पूजन करके अग्नि में चार अंगुलि प्रमाण बहेड़े की लकड़ियों से हवन करने से ज्वर शांत हो जाता है, बाणों से विद्ध शरीरवाले भीष्म के ताप को हरनेवाले कृष्ण का ध्यान कर मन्त्र जप करते हुए हाथों से ज्वरी का स्पर्श करने से ज्वर छूट जाता है ॥२५९–२६२॥ सांदीपन मुनि को पुत्र देते हुए हरि का ध्यान कर बहेड़े की समिधाओं से दश हजार होमने से अपमृत्यु का निवारण होता है, मृतपुत्र ब्राह्मण को पुत्र समर्पित करते हुए अर्जुन सहित कृष्ण का ध्यान कर एक लाख मंत्र का जप करने से पुत्र-पौत्र आदि की वृद्धि होती है। मधु-मिश्रित पुत्रजीव (जियापुता) के फलों से उसी की समिधा से प्रज्वलित अग्नि में दश हजार होम करने से दीर्घायु पुत्र उत्पन्न होते हैं। रात्रि में गूलर के काढ़े से कलश को भर कर रख छोड़े। प्रातःकाल उसे दस हजार मन्त्र से अभिमन्त्रित कर स्त्री को सींचे बारह दिनों तक ऐसा करने से वंध्या भी दीर्घायु पुत्रों को उत्पन्न करती है। जो नारी पुत्र चाहती हो, वह प्रातःकाल मौन होकर पीपल के पत्तों के बने दोने में जल भर कर एक सौ आठ बार कृष्णमन्त्र से अभिमंत्रित करके पान करे। ऐसा करेने से वंध्या के भी सर्वलक्षण संपन्न पुत्र उत्पन्न होता है २६३-२६८॥ काशिराज (पौंड्र) द्वारा भेजी हुई कृत्या को जीत कर अपने तेज से शत्रु की नगरी को जलाने वाले हरि का ध्यान कर सात दिन स्नेहाक्त सरसों से हवन करने से कृत्या कुपित हो कर प्रयोग करने वाले को ही अर्थात् शत्रु को निश्चय मार देती है। बेर के वृक्षों से व्याप्त पवित्र दिव्याश्रम में अपने करकमलों से घंटाकर्ण के शरीर का स्पर्श करते हुए हरि का ध्यान कर त्रिमधुयुक्त तिलों से एक लाख हवन करने वाला महापापी भी तत्क्षण पवित्र हो जाता है। द्यूतक्रीड़ा करने में आसक्त रुक्मी तथा बल से द्वेष करते हुए हरि का स्मरण कर गोबर की बनी गुलियों से नित्य एक हजार हवन करना चाहिये। सात दिनों तक ऐसा करने से शत्रुओं में पर-स्पर फूट हो जाती है ॥२६९-२७३½॥ गरुड़ पर चढ़ कर आग की ज्वाला उगलनेवाले बाणों की वर्षा करते हुए तथा भागने वाले शत्रुओं का पीछा करते हुए हरि का ध्यान कर उन्हीं में चित्त को लगाते हुए सात हजार मंत्र का

उच्चाटनं भवत्येव शत्रूणां सप्तभिर्दिनैः । ध्यायन्नुत्क्षिप्तवत्सं तु कपित्थफलहारिणम् ॥२७६॥
प्रजपेदयुतं शत्रुमुच्चाटयति तत्क्षणात् । आत्मानं कंसमथनं ध्यायन्मंचाग्निपातितम् ॥२७७॥
कंसात्मानं व्यकर्षन्तं गतासुं तं जपेन्मनुम् । रिपुजन्मर्क्षवृक्षोत्थसमिद्भिरयुतं निशि ॥२७८॥
जुहुयादेवमुग्रोऽपि सपत्नो निधनं व्रजेत् । अथवा निंबतैलाक्तैर्हु नेवेद्योभिरक्षजैः ॥२७९॥
अयुतं नियतो रात्रौ मारयेदचिरादरीन् । निशादिष्टदलव्योषकार्पासास्थिकरैर्निशि ॥२८०॥
हुनेदेरंडतैलाक्तैः श्मशाने रिपुशांतये । न शस्तं मारणं कर्म कुर्याच्चेदयुतं हुनेत् ॥२८१॥
पायसैर्वा हुनेत्तावच्छांतये शांतमानसः । पारिजातहरं कृष्णं ध्यायन् लक्षं जपेन्मनुम् ॥२८२॥
सर्वत्रैव जयस्तस्य न कदापि पराजयः । व्याख्यामुद्राकरं कृष्णं रथस्थं भावयञ्जपेत् ॥२८३॥
पार्थे दिशंतं गीतार्थं धर्मवृद्ध्यै सुमानवः । पालाशपुष्पमध्वक्तैर्लक्षं विद्याप्तये हुनेत् ॥२८४॥
राष्ट्रपूर्ग्रामवस्तूनां शरीरस्यापि रक्षणे । विश्वरूपधरं प्रोद्यद्भानुकोटिसमप्रभम् ॥२८५॥
अग्नीषोमात्मकं कृष्णं द्रुतचामीकरप्रभम् । अर्काग्निद्योतितास्यांघ्रिपंकजं विव्यभूषणम् ॥२८६॥
नानायुधधरं प्राप्तं विश्वाकाशावकाशकम् । ध्यात्वा लक्षं जपेन्मन्त्रं रक्षणाय समाहितः ॥२८७॥
रक्तैर्वन्यप्रसूनैर्यो दिनादौ पूजयेद्धरिम् । दिनमध्योक्तविधिना जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥२८८॥
सहस्रमंडलान्मन्त्री वशयेन्मुखरान्द्विजान् । जातिपुष्पैः क्षत्रियांश्च गोपवेषधरं स्मरन् ॥२८९॥

जप करना चाहिये। ऐसा करने से सात ही दिनों के भीतर शत्रुओं का उच्चाटन हो जाता है। कपित्थ (कैथ) का फल तोड़नेवाले तथा वत्सासुर को ऊपर उठा कर फेंकनेवाले कृष्ण का ध्यान कर दस हजार मन्त्र जपने से तत्क्षण शत्रु का उच्चाटन हो जाता है। मंच पर से कंस को गिरा कर घसीटते-घसीटते निष्प्राण कर देने वाले हरि का ध्यान कर शत्रु के जन्मनक्षत्र में लगाये गये वृक्ष की समिधाओं से रात्रि में दस हजार हवन करने से भयंकर शत्रु भी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। अथवा नीम का तेल मिलाकर बहेड़े की लकड़ी से रात्रि में नियम पूर्वक दश हजार होम करने से शत्रु शीघ्र यमलोक को चला जाता है॥२७४–२८०॥ यदि शत्रु को मारना हो तो रात्रि में श्मशान जाकर दक्षिणदिशावस्थित अग्नि में रेंड़ी के तेल में भिगोई हुई कपास की लकड़ियों से दश सहस्र हवन करे। यदि मारण कर्म को दोषावह समझे तो दोषशान्ति के लिये स्वस्थचित्त हो कर खीर से दश हजार हवन कर देना चाहिये। जो व्यक्ति कल्पवृक्ष हरण करने वाले कृष्ण का ध्यान तथा मंत्र जप करता है उसका कभी पराजय नहीं होता॥२८१-२८२॥ व्याख्या मुद्रा लगाये रथ पर आसीन होकर धर्मवृद्ध्यर्थ अर्जुन को गीता का उपदेश करते हुए कृष्ण का ध्यान कर मधुयुक्त पलाश-कुसुमों से एक लाख हवन करने वाला व्यक्ति विद्या प्राप्त करता है। राष्ट्र, नगर, ग्राम, वस्तु तथा शरीर की रक्षा चाहने वाला व्यक्ति कृष्ण के इस रूप का ध्यान करे कि वे विश्व का रूप धारण करने वाले हैं। उदित होते हुए करोड़ों सूर्य के समान उनकी कान्ति है। अग्नि और सोम उनका रूप है। तपे सोने के सदृश वे चमक रहे हैं। उनके मुख तथा चरणारविन्द भानु तथा अग्नि के समान प्रकाशमान हैं। वे अनेक अस्त्र-शस्त्रों को धारण किये हुए हैं तथा निखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। इस तरह ध्यान कर समाहित चित्त से एक लाख मंत्र जप करे। जो व्यक्ति प्रातःकाल वन्य रक्तपुष्पों से हरि का पूजन कर मध्याह्न में पूर्वोक्त विधि से एक सौ आठ बार मंत्र का जप करता है, वह सहस्रों वाचाल द्विजों को वशीभूत कर लेता है। गोपवेशधारी कृष्ण का ध्यान कर जूही के फूलों से होम करने से क्षत्रिय वश्य

ध्यायन् क्रीडारतं कृष्णं रक्तैरश्वारिपुष्पकैः । वशयेद्वैश्यजातीयान् शूद्रान्नीलोत्पलैः स्मरन् ॥२६०॥
गीतनृत्यरतं श्वेतपुष्पैः साज्यैश्च तंदुलैः । हुत्वान्वहं सप्तदिनं भस्म भाले च मूर्द्धनि ॥२६१॥
धारयन्वशयेत्कांतांसापि तद्वत्पतिं ध्रुवम् । तांबूलं कुसुमं वासोंऽजनं चंदनमेव च ॥२६२॥
सहस्रं मनुना जप्तं दद्याद्यस्मै नराय च । सोऽचिरादेव वशगः सपुत्रपशुबांधवः ॥२६३॥
वृन्दारण्यस्थितं ध्यायन्बल्लवीसंयुतं हरिम् । अपामार्गसमिद्भिस्तु हुत्वा तु वशयेज्जगत् ॥२६४॥
संप्राप्य सद्गुरोर्दीक्षां कृष्णं यो विधिनामुना । अर्चयेद्वैष्णवश्रेष्ठः सोऽष्टसिद्धीश्वरो भवेत् ॥२६५॥
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभाः स्मृताः । वसेत्सरस्वती वक्त्रे गृहे चापि सभासदः ॥२६६॥
भुक्त्वा नानाविधान्भोगानंते विष्णुपदं व्रजेत् ॥२६७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे तृतीयपादे कृष्णमन्त्रनिरूपणं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

होते हैं ॥२८३-२८९॥ क्रीडासक्त कृष्ण का ध्यान कर लाल करवीर के फूलों से हवन करने से वैश्य वश्य होते हैं। नृत्य-गीत करने में निरत कृष्ण का ध्यान कर नील कमलों से होम करने से शूद्र वश्य होते हैं। श्वेत पुष्प, घृत तथा तन्दुल से सात दिन हवन कर भस्म को ललाट एवम् मस्तक पर धारण करने से पत्नी वशीभूत होती है। पत्नी यदि ऐसा करे तो पति उसके वश्य होता है इसमें संशय नहीं। तांबूल, कुसुम, वस्त्र, अंजन तथा चन्दन को कृष्णमन्त्र से सहस्रबार अभिमन्त्रित कर जिसको दिया जायेगा, वह पुत्र, पशु तथा इष्ट-मित्रों समेत तुरन्त उस (देने वाले) के वशीभूत हो जायगा ॥२९०-२९३॥

वृन्दावन में गोपियों के साथ अवस्थित हरि का ध्यान कर अपामार्ग (चिचिड़े) से हवन करनेवाला व्यक्ति तीनों लोक को वश में कर लेता है। जो वैष्णवश्रेष्ठ सद्गुरु से कृष्णमन्त्र की दीक्षा लेकर उस विधि से अर्चना करता है, वह अष्ट सिद्धियों का ईश्वर होता है। उसके देखते ही वादी निष्प्रभ हो जाता है। सभाभवन में भी सरस्वती उसके मुख में विराजती है। वह ऐहलौकिक विविध भोगों को भोग कर अन्त में विष्णुलोक को जाता है ॥२९४-२९७॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वार्ध के तृतीयपाद में कृष्णमंत्रनिरूपण नामक अस्सीवां अध्याय समाप्त ॥८०॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

अथ कृष्णस्य मंत्राणां वक्ष्ये भेदान् मुनीश्वर । यान्समाराध्य मनुजाः साधयंतीष्टमात्मनः ॥१॥
शक्तिश्रीमारपूर्वंश्च श्रीशक्तिस्मरपूर्वकः । मारशक्तिरमापूर्वो दशार्णा मनवस्त्रयः ॥२॥
मुनिः स्यान्नारदश्छन्दो गायत्री देवता पुनः । कृष्णो गोविंदनामात्र सर्वकामप्रदो नृणाम् ॥३॥
चक्रैः पूर्ववदंगानि त्रयाणामपि कल्पयेत् । ततः किरीटमनुना व्यापकं हि समाचरेत् ॥४॥
सुदर्शनस्य मनुना कुर्याद्दिग्बंधनं तथा । विंशत्यर्णोक्तवत्कुर्यादाद्ये ध्यानार्चनादिकम् ॥५॥
द्वितीये तु दशार्णोक्तं ध्यानपूजादिकं चरेत् । तृतीये तु हरिं ध्यायेत्समाहितमनाः सुधीः ॥६॥
शंखचक्रधनुर्बाणपाशांकुशधरारुणम् । दोर्भ्यां धृतं धमंतं च वेणुं कृष्णदिवाकरम् ॥७॥

अध्याय ८१

कामना-भेद से कृष्ण-मंत्रों का भेद-निरूपण

श्री सनत्कुमार बोले--मुनिवर्य ! अब मैं कृष्णमंत्रों का भेद बतलाऊँगा, जिनकी आराधना करने से मनुष्यों की इष्टसिद्धि होती है। दशाक्षर मंत्र के तीन नूतन भेद हैं--'ह्रीं श्रीं क्लीं' इन तीन बीजों के साथ 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' यह प्रथम भेद है। 'श्रीं ह्रीं क्लीं' इस क्रम से बीज जोड़ने पर दूसरा भेद होता है। 'क्लीं ह्रीं श्रीं' इस क्रम से बीज मन्त्र जोड़ने पर तीसरा भेद बनता है। इनके मुनि नारद, छंद गायत्री और देवता मनुष्यों की समस्त कामनाओं को सफल करनेवाले गोविन्द कृष्ण हैं। तीनों मन्त्रों का चक्रों से पूर्ववत् अंगन्यास करके किरीट मन्त्र से व्यापक न्यास करे। पश्चात् सुदर्शन मन्त्र से दिग्बन्ध करके पहिले मन्त्र में बीस अक्षरों वाले मन्त्र की तरह ध्यान, पूजन आदि करे ॥१-५॥ दूसरे मन्त्र में दशाक्षर मन्त्र की तरह ध्यान, पूजन आदि करे। तीसरे मन्त्र में समाहित चित्त से कृष्ण का इस प्रकार ध्यान करे कि वे हाथों में शंख, चक्र, धनुष, बाण, पाश तथा अंकुश धारण किये हुए हैं। इससे उनका हाथ रक्तवर्ण का मालूम पड़ता है। फिर वे हाथों में वंशी लेकर बजा रहे हैं। इससे उनका हाथ कृष्ण एवम् श्वेत रंग का भी दिखाई देता है। ऐसा ध्यान कर पांच लाख मन्त्रों का जप करे और उसका दशांश घी एवम् खीर से हवन करे। मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक पहिले की तरह सकाम कर्मों को कर सकता है। "ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय स्वाहा" यह बारह अक्षरों का मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छंद और श्रीकृष्ण देवता हैं। पृथक्-पृथक् तीन बीजों तथा तीन, चार एवं दो मन्त्राक्षरों से षडङ्गन्यास करे। बीस अक्षरवाले मन्त्र की भाँति इसके भी ध्यान, होम और पूजन आदि करने चाहिए। यह मन्त्र संपूर्ण अभीष्ट फलों को देने वाला है। दशाक्षर मन्त्र (गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) के आदि में श्रीं ह्रीं क्लीं तथा अन्त में क्लीं ह्रीं श्रीं जोड़ने से षोडशाक्षर मन्त्र बनता है। इसी प्रकार केवल आदि में ह्रीं श्रीं जोड़ने से बारह अक्षरों का मन्त्र होता है। पूर्वोक्त चक्रों द्वारा अंगन्यास करे, फिर भगवान् का इस प्रकार ध्यान करे कि वे अपने वर तथा अभय देने वाले दो हाथों से अपने प्रिय अंगों का स्पर्श कर रहे हैं और पद्म तथा उत्पल के

एवं ध्यात्वा जपेन्मंत्रान्पञ्चलक्षं पृथक् सुधीः । जुहुयात्तद्दशांशेन पायसेन ससर्पिषा ॥८॥
एवं सिद्धे मनौ मंत्री कुर्यात्काम्यानि पूर्ववत् । श्रीशक्तिकामः कृष्णाय गोविंदायाग्निसुन्दरी ॥९॥
रव्यर्णो ब्रह्मगायत्रीकृष्णा ऋष्यादयोऽस्य तु । बीजै रमाग्नियुग्मार्णैः षडंगानि प्रकल्पयेत् ॥१०॥
विंशत्यर्णोदितजपध्यानहोमार्चनादिकम् । किं बहूक्तेन मंत्रोऽयं सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥११॥
श्रीशक्तिस्मरपूर्वोगजन्मा शक्तिरमांतिकः । दशाक्षरः स एवादौ प्रोक्तः शक्तिरमायुतः ॥१२॥
मन्त्रौ षोडशरव्यर्णौ चक्रैरंगानि कल्पयेत् । वरदाभयहस्ताभ्यां श्लिष्यंतं स्वांगके प्रिये ॥१३॥
पद्मोत्पलकरे ताभ्यां श्लिष्टं चक्रदरोज्ज्वलम् । ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षदशकं तद्दशांशतः ॥१४॥
आज्यैर्हुत्वा ततः सिद्धौ भवेतां मन्त्रनायकौ । सर्वकामप्रदौ सर्वसंपत्सौभाग्यदौ नृणाम् ॥१५॥
अष्टादशार्णः कामांतो मनुः सुतधनप्रदः । नारदोऽस्य मुनिश्छंदो गायत्री देवता मनोः ॥१६॥
कृष्णः कामो बीजमुक्तं शक्तिर्वह्निप्रिया मता । षड्दीर्घाढ्येन बीजेन षडंगानि समाचरेत् ॥१७॥
पाणौ पायसपक्वं च दक्षे हैयंगवीनकम् । वामे दधद्दिव्यदिगंबरो गोपीसुतोऽवतु ॥१८॥
ध्यात्वैवं प्रजपेन्मंत्रं द्वात्रिंशल्लक्षमानतः । दशांशं जुहुयादग्नौ सिताढ्येन पयोऽधसा ॥१९॥
पूर्वोक्तवैष्णवे पीठे यजेदष्टादशार्णवत् । पद्मस्थं कृष्णमभ्यर्च्य तर्पयेत्तन्मुखांबुजे ॥२०॥
क्षीरेण कदलीपक्वैर्दध्ना हैयंगवेन च । पुत्रार्थी तर्पयेदेवं वत्सराल्लभते सुतम् ॥२१॥
यद्यदिच्छति तत्सर्वं तर्पणादेव सिद्धयति । वाक्कामो ङेयुतं कृष्णपदं माया ततः परम् ॥२२॥
गोविंदाय रमा पश्चाद्दशार्णं च समुद्धरेत् । मनुस्वरयुतौ सर्गयुक्तौ भृगुतद्दूर्ध्वगौ ॥२३॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वागीशत्वप्रदायकः । ऋषिः स्यान्नारदश्छन्दो गायत्री देवता पुनः ॥२४॥

समान दो हाथों में चक्र एवम् गदा धारण किये हैं। ऐसा ध्यान करके दस लाख मन्त्र जप करे और उसका दशांश घृत से हवन करे ॥६–८॥ ऐसा करने से सकल सम्पत्ति तथा सौभाग्य को देने वाले और अखिल कामनाओं को पूर्ण करने वाले दोनों मन्त्रश्रेष्ठ सिद्ध हो जाते हैं। अष्टादशाक्षर मन्त्र के अंत में क्लीं जोड़ दिया जाय तो वह पुत्र एवम् धन देने वाला होता है। उसके मुनि नारद, छंद गायत्री, देवता कृष्ण, बीज क्लीं और शक्ति स्वाहा है। उसकी सिद्धि के लिये छह दीर्घ मात्राओं से युक्त बीज मन्त्र से षडंगन्यास कर कृष्ण का इस तरह ध्यान करे कि 'उनके दाहिने हाथ में खीर तथा बायें हाथ में मक्खन है। ऐसे दिगम्बर गोपीपुत्र श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करें। ऐसा ध्यान कर बत्तीस लाख मन्त्र जप करे। और उसका दशांश अग्नि में चीनी या मिश्री मिलायी हुई खीर से हवन करे। अनन्तर पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर अष्टादशाक्षर मन्त्र की तरह पूजन करे। कमल के आसन पर विराजमान श्रीकृष्ण की अर्चना कर उनके मुखारविन्द में दूध, पका केला, दही तथा ताजा मक्खन डालकर उन्हें तृप्त करे। पुत्र की कामना से जो इस तरह तर्पण करता है, उसे एक वर्ष के भीतर ही पुत्र हो जाता है ॥९–२१॥ वह जिस वस्तु की इच्छा करता है, वह उस तर्पण के प्रभाव से प्राप्त हो जाती है। वाक् (ऐं), काम (क्लीं) ङे विभक्त्यन्त कृष्ण शब्द (कृष्णाय) तत्पश्चात् माया (ह्रीं), उसके बाद 'गोविन्दाय' फिर रमा (श्रीं), तदनन्तर दशाक्षर मन्त्र (गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) उद्धृत करे, फिर ह् और स् ये दोनों ओकार और विसर्ग से संयुक्त होकर अन्त में जुड़ जाय तो (ऐं क्लीं कृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ह्सौं) बाईस अक्षर का मन्त्र होता है, जो वागीशत्व प्रदान करता है। इसके ऋषि नारद, छंद गायत्री, देवता विद्याप्रद गोपाल, बीज क्लीं और शक्ति ऐं है। विद्या प्राप्ति के लिये इसका विनियोग किया जाता है। इसकी सिद्धि के

विद्याप्रदश्च गोपालः कामो बीजं प्रकीर्तितम् । शक्तिस्तु वाग्भवं विद्याप्राप्तये विनियोजना ॥२५॥
वामोद्ध्र्वंहस्ते दधतं विद्यापुस्तकमुत्तमम । अक्षमालां च वक्षोद्ध्र्वंस्फाटिकीं मातृकामयीम् ॥२६॥
शब्दब्रह्ममयं वेणुमधः पाणिद्वये पुनः । गायत्रीगीतवसनं श्यामलं कोमलच्छविम् ॥२७॥
बर्हावतंसं सर्वज्ञं सेवितं मुनिपुंगवैः । ध्यात्वैवं प्रमदावेशविलासं भुवनेश्वरम् ॥२८॥
वेदलक्षं जपेन्मंत्रं किंशुकैस्तद्दशांशतः । हुत्वा तु पूजयेन्मन्त्री विंशत्यर्णं विधानतः ॥२९॥
एवं यो भजते मन्त्रं भवेद्वागीश्वरस्तु सः । अदृष्टान्यपि शास्त्राणि तस्य गंगातरंगवत् ॥३०॥
तारः कृष्णयुगं पश्चान्महाकृष्ण इतीरयेत् । सर्वज्ञ त्वंप्रशब्दांते सीदमेऽग्निश्च मारम ॥३१॥
णांते विद्येश विद्यामाशु प्रयच्छ ततश्च मे । त्रयस्त्रिंशदक्षरोऽयं महाविद्याप्रदो मनुः ॥३२॥
नारदोऽस्य मुनिश्छन्दोऽनुष्टुप् कृष्णोऽस्य देवता । पादैः सर्वेण पंचांगं कृत्वा ध्यायेत्ततो हरिम् ॥३३॥

दिव्योद्याने विवस्वत्प्रतिममणिमयेमण्डपे योगपीठे
मध्ये यः सर्ववेदांतमयसुरतरोः संनिविष्टो मुकुन्दः ।
वेदैः कल्पद्रुरूपैः शिखरिशतसमालंबिकोशैश्चतु- ॥३४॥
र्भिर्न्यायैस्तर्कैः पुराणैः स्मृतिभिरभिवृतस्तादृशैश्चामराद्यैः
दद्यादिब्भ्रत्कराग्रैरपि दरमुरलीपुष्पबाणेक्षुचापा-
नक्षस्पृक्पूर्णकुंभौ स्मरललितवपुर्दिव्यभूषांगरागः ।
व्याख्यां वामे वितन्वन् स्फुटरुचिरपदो वेणुना विश्वमात्रे ॥३५॥
शब्दब्रह्मोद्भवेन श्रियमरुणरुचिर्बल्लवीवल्लभो नः

लिये कृष्ण का इस प्रकार ध्यान करे कि वे अपने बाँये हाथ में उत्तम विद्यापुस्तक तथा दाहिने हाथ में रुद्राक्षमाला तथा मातृकामयी स्फटिकमाला धारण किये हुए हैं ॥२२-२६॥ शब्द ब्रह्ममय वेणु को दोनों हाथों में लेकर बजा रहे हैं। गायत्री को वे जपते हैं, गीत गाते हैं और वस्त्राभूषणों से विभूषित हैं। उनका रंग साँवला है। छवि कोमल (सुन्दर) है, वे मयूरपिच्छ का मुकुट धारण किए हुए हैं, सर्वज्ञ हैं। मुनिगण उनकी सेवा करते हैं। ललनावेश उन्हें बहुत प्रिय हैं। ऐसे भुवनेश्वर का ध्यान कर चार लाख मन्त्र जप करे और उसका दशांश पलाश पुष्पों से हवन करे। हवनोपरान्त बीस अक्षरों वाले मन्त्र के लिये कहे हुए विधान के अनुसार पूजन करे। जो इस प्रकार मंत्र की आराधना करता है, वह वागीश्वर होता है। बिना देखे शास्त्र भी गंगातरंग की तरह उसकी जिह्वा पर लहराते हैं 'ओं कृष्ण कृष्ण महाकृष्ण सर्वज्ञ त्वं प्रसीद मे। रमारमण विद्येश विद्यामाशु प्रयच्छ मे''। (हे कृष्ण! हे कृष्ण। हे महाकृष्ण! आप सर्वज्ञ हैं। मुझ पर प्रसन्न होइए। हे रमारमण! हे विद्येश्वर! मुझे शीघ्र विद्या दीजिए)' यह तैंतीस अक्षरोंवाला मंत्र महाविद्या को देने वाला है। इसके मुनि नारद, छंद अनुष्टुप् और देवता कृष्ण हैं। मन्त्र के चारों चरणों और संपूर्ण मन्त्र से पंचांगन्यास कर हरि का इस तरह ध्यान करे कि रमणीय उद्यान में दिनकर किरण की तरह चमकते हुए मणिमय मंडप के भीतर योगपीठ पर संपूर्ण वेदान्तमय कल्पवृक्ष के नीचे मुकुन्द भगवान् विराजमान हैं। उन्हें अमरगण तथा कल्पद्रुम रूपी वेद, जिनकी शाखायें कोश, न्याय, पुराण एवम् स्मृतियाँ हैं, चारों ओर से घेरे हुए हैं, ॥२७-३४॥ स्वयं कृष्ण अपने कर कमलों में गदा, मुरली, पुष्पबाण, इक्षु चाप (ईख के धनुष) अक्षमाला तथा पूर्ण कुंभ धारण किये हुए हैं। उनका शरीर कामदेव के समान सुललित है। वे दिव्य आभूषण तथा दिव्य अंगराग धारण करते हैं। शब्द

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं दशांशं पायसैर्हुनेत् । अष्टादशार्णवत्कुर्याद्यजनं चास्य मन्त्रवित् ॥३६॥
तारो नमो भगवते नन्दपुत्राय संवदेत् । आनन्दवपुषे दद्याद्दशार्णं तदनंतरम् ॥३७॥
अष्टाविंशतिवर्णोऽयं मंत्रः सर्वेष्टदायकः । नंदपुत्रपदं ङेतं श्यामलांगपदं तथा ॥३८॥
तथा बालवपुःकृष्णं गोविंदं च तथा पुनः । दशार्णोऽतो भवेन्मंत्रो द्वात्रिंशदक्षरान्वितः ॥३९॥
अनयोर्नारदऋषिश्छंदस्तूष्णिगनुष्टुभौ । देवता नन्दपुत्रस्तु विनियोगोऽखिलाप्तये ॥४०॥
चक्रैः पंचांगमर्चास्यादंगदिक्पालहेतिभिः । दक्षिणे रत्नचषकं वामे सौवर्णवेत्रकम् ॥४१॥
करे दधानं देवीभ्यां श्लिष्टं संचिंतयेद्विभुम् । लक्षं जपो दशांशेन जुहुयात्पायसेन तु ॥४२॥
एताभ्यां सिद्धमंत्राभ्यां मंत्री कुर्याद्यथेप्सितम् । प्रणवः कमला माया नमो भगवते ततः ॥४३॥
नंदपुत्राय तत्पश्चाद्बालान्ते वपुषे पदम् । ऊनविंशतिवर्णोऽयं मुनिर्ब्रह्मा समीरितः ॥४४॥
छंदोऽनुष्टुप् देवता च कृष्णो बालवपुः स्वयम् । मन्त्रोऽयं सर्वसंपत्तिसिद्धये सेव्यते बुधैः ॥४५॥
तारो हृद्भगवान्ङेतो रुक्मिणीवल्लभाय च । वह्निजायावधिः प्रोक्तो मंत्रः षोडशवर्णवान् ॥४६॥
नारदोऽस्य मुनिश्छन्दोऽनुष्टुप् च देवता मनोः । रुक्मिणीवल्लभश्चंद्रदृग्वेदांगाक्षिवर्णकैः
पञ्चांगानि प्रकुर्वीत ततो ध्यायेत्सुरेश्वरम् ॥४७॥

तापिच्छच्छविरंकगां प्रियतमां स्वर्णप्रभामंबुज-
प्रोद्यद्दामभुजां स्ववामभुजयाश्लिष्यन्स्वचित्ताशया ।
श्लिष्यंतीं स्वयमन्यहस्तविलसत्सौवर्णवेत्रश्चिरं
पायान्नः सुविशुद्धपीतवसनो नानाविभूषो हरिः ॥४८॥

ब्रह्म से प्रकट हुई तथा बायें हाथ में ली हुई वेणु द्वारा स्पष्ट एवम् रुचिर पद का उच्चारण करते हुए विश्व मात्र में विशद व्याख्या कर विस्तार करते हैं। उनकी अंगकान्ति अरुण वर्ण की है, ऐसे गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण हमें लक्ष्मी प्रदान करें। ऐसा ध्यान कर एक लाख मन्त्र जप करे और उसका दशांश खीर से हवन करे। मन्त्रवेत्ता साधक अष्टादशाक्षर मन्त्र की तरह उसका भी पूजन करे। 'ओं नमो भगवते नन्दपुत्राय आनन्दवपुषे गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' यह अट्ठाईस अक्षरों वाला मन्त्र समस्त कामनाओं को देने वाला है। 'नन्दपुत्राय श्यामलाङ्गाय बालवपुषे कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' यह मन्त्र बत्तीस अक्षरों का है। इन दोनों मन्त्रों के ऋषि नारद, छन्द क्रमशः उष्णिक् तथा अनुष्टुप, देवता श्रीकृष्ण और विनियोग सर्व प्राप्ति के लिये किया जाता है। इनकी सिद्धि के लिये पंचांगन्यास कर अंग देवता दिक्पाल तथा आयुधों की अर्चना करे ॥३५-४०½॥ अनन्तर दायें हाथ में रत्नपात्र तथा बायें हाथ में सुवर्णवेत्र (लाठी) धारण करनेवाले और दो देवियों से आलिंगित किये जाने वाले विभु का ध्यान कर एक लाख मन्त्र जप करे और उसका दशांश खीर से होमे। इन दोनों मन्त्रों के सिद्ध हो जाने पर उपासक अभिलषित फलों को प्राप्त करता है। यह उनतीस अक्षरों का मन्त्र है, इसके मुनि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप् और देवता बालशरीरधारी स्वयं कृष्ण हैं। सकल ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिये बुधगण इनकी सेवा करते हैं ॥४१-४५॥

'ओं नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा' यह सोलह अक्षरों का मन्त्र है। इसके मुनि नारद, छन्द अनुष्टुप् और देवता रुक्मिणीवल्लभ हैं। सोलह अक्षरों से पंचांगन्यास कर सुरेश्वर (कृष्ण) का इस तरह ध्यान क कि वे तमालपत्र के समान छवि वाले कृष्ण अपनी स्वर्णवर्णा प्रियतमा को, जिनकी भुजा में कमल की माला है और जो छाती से लगाकर लिपट रही है, गोद में लेकर अपनी बाँयी भुजा से आलिगन कर रहे हैं। उनके दूसरे हाथ में सोने की यष्टिका है। वे अनेक आभूषणों से आभूषित तथा पवित्र पीतवस्त्र धारण किये हुए

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षं रक्तैः पद्मैर्दशांशतः ॥४९॥
त्रिमध्वक्तैर्हुनेत्पीठे पूर्वोक्ते पूजयेद्धरिम् । अंगैर्नारदमुख्यैश्च लोकेशैश्च तदायुधैः ॥५०॥
एवं सिद्धो मनुर्दद्यात्सर्वान्कामांश्च मंत्रिणे । लीलादंडपदाब्जोऽपि जनसंसक्तदोः पदम् ॥५१॥
दंडांते वा धरावह्निनरधीशाढ्योऽथ लोहितः । मेघश्यामपदं पश्चाद्भगवन् सलिलं सदृक् ॥५२॥
विष्णो इत्युक्त्वा ठद्वयं स्यादेकोनत्रिंशदर्णवान् । नारदोऽस्य मुनिश्छंदोऽनुष्टुप् च देवता मनोः ॥५३॥
लीलादंडहरिः प्रोक्तो मन्वब्धियुगवह्निनभिः । वेदैः पंचांगकं भागैर्मंत्रवर्णोत्थितैः क्रमात् ॥५४॥

संमोहयंश्च निजवामकरस्थलीलादंडेन गोपयुवतीः परसुंदरीश्च ।
दिश्यन्निजप्रियसखांसगदक्षहस्तो देवश्रियं निहतकंस उरुक्रमो नः ॥५५॥

लक्षं जपो दशांशेन जुहुयात्तिलतण्डुलैः । त्रिमध्वक्तैस्ततोऽभ्यर्चेदंगं दिक्पालहेतिभिः ॥५६॥
लीलादंडहरिं यो वै भजते नित्यमादरात् । स सर्वैः पूज्यते लोकैस्तस्य गेहे स्थिरा रमा ॥५७॥
सद्यारूढा स्मृतिस्तोयं केशवाढ्यधरायुगम् । भयाग्निवल्लभामंत्रः सप्तार्णः सर्वसिद्धिदः ॥५८॥
ऋषिः स्यान्नारदश्छंदो उष्णिग्गोवल्लभस्य तु । देवतापूर्ववच्चक्रैःपञ्चांगानि तु कल्पयेत् ॥५९॥

ध्येयो हरिः सकपिलागणमध्यसंस्थस्ता आह्वयन्दधद्दक्षिणदोस्थवेणुम् ।
पाशं सयष्टिमपरत्र पयोदनीलः पीताम्बराहिरिपुपिच्छकृतावतंसः ॥६०॥

सप्तलक्षं जपेन्मंत्रं दशांशं जुहुयात्ततः । गोदुग्धैः पूजयेत्पीठं स्यादंगैः प्रथमावृतिः ॥६१॥
सुवर्णपिंगलां गौरपिंगलां रक्तपिंगलाम् । गुडपिंगां बभ्रुवर्णां चोत्तमां कपिलां तथा ॥६२॥

हैं ॥४६-४८॥ इस प्रकार ध्यान कर एक लाख मन्त्र को जपे और उसका दशांश त्रिमधुयुक्त रक्त पद्मों से हवन करे। पश्चात् पूर्वोक्त पीठ पर नारद आदि अंग देवों, लोकपालों तथा आयुधों समेत हरि की अर्चना करे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होने से साधक को सकल कामनायें प्राप्त होती हैं। "लीलादंड गोपीजनसंसक्तदोर्दण्ड बालरूप मेघश्याम भगवन् विष्णो स्वाहा" यह उन्नीस अक्षरों का मन्त्र है। इसके मुनि नारद, छन्द अनुष्टुप् और देवता लीलादण्डधारी हरि हैं। उसकी सिद्धि के लिये उन्नीसों मंत्रवर्णों से क्रमशः अंगन्यास कर इस प्रकार ध्यान करे कि कृष्ण अपने वामकरस्थ लीलादण्ड से परमसुन्दरी गोप युवतियों को मोहित कर रहे हैं। और दाहिना हाथ प्रिय मित्र के कंधे पर रख कर चल रहे हैं। उन्होंने कंस को निहत किया है। उनका पराक्रम महान् है ॥४९-५५॥ ऐसा ध्यान कर एक लाख मंत्र जप करे और उसका दशांश त्रिमधुयुक्त तिल और चावलों से हवन करे। अनन्तर अंग देवता, दिक्पाल तथा आयुधों की पूजा करे। जो व्यक्ति लीलादंडधारी हरि की नित्य आदर-पूर्वक आराधना करता है, वह सब का पूज्य होता है तथा उसके घर लक्ष्मी स्थिर होकर रहती है। सद्य (ओ), परस्थित स्मृति (ग्) अर्थात् (गो), केशव (अ) युक्त तोय (व्), धरायुग (ल्ल), 'भाय', अग्निवल्लभा (स्वाहा)—यह सप्ताक्षर मंत्र सकल सिद्धियों को देने वाला है। इसके ऋषि नारद, छंद उष्णिक् और देवता गोपाल हैं। पूर्व मंत्र की तरह चक्रों से पंचांगन्यास कर ध्यान करे कि हरि गौओं के बीच अवस्थित होकर उन्हें बुला रहे हैं। उनका वर्ण मेघ के समान नील हैं। वे पीताम्बर तथा मयूरपुच्छ का मुकुट पहने हुए हैं। दाहिने हाथ में बंशी तथा बांये हाथ में पाश एवम् यष्टि धारण किये हुए हैं। ऐसा ध्यान कर सात लाख मन्त्र जप करे और उसका दशांश गोदुग्ध से हवन करे। अनन्तर पीठ पर अंगदेवताओं के साथ सुवर्णपिंगला, गौरपिंगला, रक्तपिंगला, गुडपिंगा, बभ्रुवर्णा, कपिला, चतुष्कपिंगला और पीत पिंगला—इन आठ गौओं का पूजन कर लोकपालों तथा

चतुष्कपिङ्गलां पीतपिङ्गलां चोत्तमां शुभाम् । गोगणाष्टकमभ्यर्च्य लोकेशानायुधैर्युतान् ॥६३॥
संपूज्यैवं मनौ सिद्धे कुर्यात्काम्यानि मंत्रवित् । अष्टोत्तरसहस्रं यः पयोभिर्दिनशो हुनेत् ॥६४॥
पक्षात्सगोगणो मुक्तो दशार्णे चाप्ययं विधिः । तारो हृद्भगवान् ङेंतः श्रीगोविंदस्तथा भवेत् ॥६५॥
द्वादशार्णो मनुः प्रोक्तो नारदोऽस्य मुनिर्मतः । छंदः प्रोक्तं च गायत्री श्रीगोविन्दोऽस्य देवता ।
॥६६॥
चन्द्राक्षियुगभूतार्णैः सर्वैः पंचांगकल्पनम्
ध्यायेत्कल्पद्रुमूलाश्रितमविकसद्दिव्यसिंहासनस्थं ॥६७॥
मेघश्यामंपिशंगांशुकमतिसुभगं शंखवेत्रे कराभ्याम्
बिभ्राणं गोसहस्रैर्वृतममरपतिं प्रौढहस्तैककुं ॥६८॥
भप्रश्चोतत्सौधधारास्नपितमभिनवांभोजपत्राभनेत्रम्
रविलक्षं जपेन्मंत्रं दुग्धैर्हुत्वा दशांशतः । यजेच्च पूर्ववद्गोष्ठस्थितं वा प्रतिमादिषु ॥६९॥
पूर्वोक्ते वैष्णवे पीठे मूर्तिं संकल्प्य मूलतः । तत्रावाह्य यजेत्कृष्णं गुरुपूजनपूर्वकम् ॥७०॥
रुक्मिणीं सत्यभामां च पार्श्वयोरिंद्रमग्रतः । पृष्ठतः सुरभिं चेष्ट्वा केसरेष्वंगपूजनम् ॥७१॥
कालिंद्याद्या महिष्योऽष्टौ वसुपत्रेषु संस्थिताः । पीठकोणेषु बद्धार्दिकिंकणीं च तथा पुनः ॥७२॥
दामानि पृष्ठयोर्वेणुं पुरः श्रीवत्सकौस्तुभौ । अग्रतो वनमालादिर्दिक्ष्वष्टसु तथा स्थिताः ॥७३॥
पांचजन्यं गदा चक्रं वसुदेवश्च देवकी । नंदगोपो यशोदा च सगोगोपालगोपिकाः ॥७४॥
इंद्राद्याश्च स्थिता बाह्ये वज्राद्याश्च ततः परम् । कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुंडरीकोऽथ वामनः ॥७५॥
शंकुकर्णः सर्वनेत्रः सुमुखः सुप्रतिष्ठितः । विष्वक्सेनश्च संपूज्यः स्वात्मा चार्च्यस्ततः परम् ॥७६॥

उनके आयुधों की अर्चना करे। इस तरह पूजन आदि से मन्त्र को सिद्ध कर लेने पर मन्त्रवेत्ता उसके द्वारा कामनापूर्ति के लिये प्रयोग करे ॥५६-६३½॥ जो व्यक्ति (इस मन्त्र को पढ़ते हुए) दूध से एक हजार आठ बार हवन करता है, वह स्वयं तथा गौओं सहित अपने को यक्ष के उपद्रव से बचा लेता है। दशाक्षर मन्त्र में भी यही विधि है। 'ओं नमो भगवते श्रीगोविंदाय' यह द्वादशाक्षर मंत्र है। इसके मुनि नारद, छन्द गायत्री और देवता श्री गोविन्द हैं। मन्त्र के बारहों अक्षरों से पंचांगन्यास कर ध्यान करे कि सुरपति कृष्ण कल्पद्रुम के नीचे मणिमय दिव्य सिंहासन पर आसीन हैं। उनका वर्ण मेघ के समान श्याम है। वे पीताम्बर पहने हुए हैं। हाथों में शंख तथा बेंत लिए हुए हैं। हजारों गौओं से घिरे हैं। देखने में सलोने हैं। उनके नेत्र नवीन कमलदल के समान हैं। प्रौढ़ गोपियाँ सुधाधारा से उनका स्नपन करा रही हैं। ऐसा ध्यान कर बारह लाख मन्त्र को जपे और उसका दशांश दूध से हवन करे। पश्चात् गोष्ठस्थित प्रतिमा आदि में कृष्ण की पूजा करनी चाहिये ॥६४-६९॥ पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर मूल मन्त्र से मूर्ति की स्थापना कर उसमें कृष्ण का आवाहन करके पूजा करे। परन्तु कृष्ण पूजा के पहिले ही गुरुपूजा कर लेनी चाहिये। कृष्ण के दोनों पार्श्वों में रुक्मिणी तथा सत्यभामा की, सामने इन्द्र की और पृष्ठ भाग में सुरभि (गाय) की पूजा कर केसरों पर अंग देवों का पूजन करे। पुनः आठ दलों में कालिंदी आदि आठ राज महिषियों को अर्चना करे। पश्चात् पीठ के चतुर्दिक् कोणों में आभूषणबद्ध किंकणियों, पृष्ठभाग में मालाओं, अग्रभाग में श्रीवत्सचिह्न तथ कौस्तुभमणि की पूजा कर आठों दिशाओं में वनमाला आदि का पूजन करे। बाह्य देश में पांचजन्य (शंख), गदा, चक्र, वसुदेव, देवकी, नन्दगोप, यशोदा, गोप-गोपियों, इन्द्र आदि देवों, वज्र आदि आयुधों, कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शंकुकर्ण, सर्वनेत्र, सुमुख, सुप्रतिष्ठित, तथा विष्वक्सेन की अर्चा कर अपनी आत्मा का पूजन करे। जो व्यक्ति एक काल या

एककालं त्रिकालं वा यो गोविंदं यजेन्नरः । स चिरायुर्निरातंको धनधान्यपतिर्भवेत् ॥७७॥
स्मृतिः सद्यान्विता चक्री दक्षकर्णयुतोधरा । नाथाय हृदयांतोऽयं वसुवर्णो महामनुः ॥७८॥
मुनिर्ब्रह्मास्य गायत्री छंदः कृष्णोऽस्य देवता । वर्णद्वंद्वैश्च सर्वेण पंचांगान्यस्य कल्पयेत् ॥७९॥

पंचवर्षमतिलोलमंगणे धावमानमतिचंचलेक्षणम् ।
किंकिणीवलयहारनूपुरै रंजितं नमत गोपबालकम् ॥८०॥

एवं ध्यात्वा जपेदष्टलक्षं मंत्री दशांश । ब्रह्मवृक्षसमिद्भिश्च जुहुयात्पायसेन वा ॥८१॥
प्रागुक्ते वैष्णवे पीठे मूर्तिं संकल्प्य मूलतः । तत्रावाह्यार्चयेत्कृष्णं मंत्री वै स्थिरमानसः ॥८२॥
केसरेषु चतुर्दिक्षु विदिक्ष्वंगानि पूजयेत् । वासुदेवं बलं दिक्षु प्रद्युम्नमनिरुद्धकम् ॥८३॥
विदिक्षु रुक्मिणीसत्यभामे वै लक्ष्मणर्क्षजे । लोकेशान्सायुधान्वाह्ये एवं सिद्धो भवेन्मनुः ॥८४॥
तारः श्रीभुवनाकामो ङेंतं श्रीकृष्णमीरयेत् । श्रीगोविंदं ततः प्रोच्य गोपीजनपदं ततः ॥८५॥
वल्लभाय ततः पद्मात्रयं तत्वाक्षरो मनुः । मुन्यादिकं च पूर्वोक्तं सिद्धगोपालकं स्मरेत् ॥८६॥
माधवीमंडपासीनौ गरुडेनाभिपालितौ । दिव्यक्रीडासु निरतौ रामकृष्णौ स्मरन् जपेत् ॥८७॥
पूजनं पूर्ववच्चास्य कर्तव्यं वैष्णवोत्तमैः । चक्री मुनिस्वरोपेतः सर्गी चैकाक्षरो मनुः ॥८८॥
कृष्णेति द्व्यक्षरः प्रोक्तः कामादिः स्यात्त्रिवर्णकः । सैव ङेन्तो युगार्णः स्यात्कृष्णाय नम इत्यपि ॥८९॥
पंचाक्षरश्च कृष्णाय कामरुद्धस्तथा परः । गोपालायाग्निजायांतो रसवर्णः प्रकीर्तितः ॥९०॥
कामः कृष्णपदं ङेन्तं वह्निजायांतकः परः । कृष्णगोविंदकौ ङेन्तौ सप्तार्णः सर्वसिद्धिदः ॥९१॥

त्रिकाल गोविन्द की पूजा करता है, वह चिरायु, सुखी तथा धन-धान्यों का अधिपति होता है ॥७०-७७॥ सद्य (अ), सहित स्मृति (ग्) अर्थात् 'गो' दक्षिण कर्ण (उ) युक्त चक्री (क्) अर्थात् 'कु', धरा (ल) इन अक्षरों के पश्चात् 'नाथाय' पद और अन्त में हृदय (नमः) यह—'गोकुलनाथाय नमः' महामन्त्र आठ अक्षरों का है। इसके मुनि ब्रह्मा, छंद गायत्री और देवता कृष्ण हैं। मंत्र के अष्टाक्षरों से पंचांगन्यास कर ध्यान करे कि कृष्ण पांच वर्षों के अत्यंत चंचल बालक हैं। वे आंगन में इधर-उधर दौड़ रहे हैं। उनकी आंखें अति चपल हैं। किंकिणी, वलय, नूपुर तथा हार से उनका शरीर सुशोभित है। ऐसे गोपबालक को नमस्कार करो। साधक इस तरह ध्यान कर आठ लाख मन्त्र को जपे और उसका दशांश पलाश की समिधाओं से या पायस से हवन करे। पश्चात् पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर मूलमन्त्र से मूर्ति की स्थापना कर उसमें स्थिर चित्त से कृष्ण का आवाहनपूर्वक पूजन करे। फिर दिशा-विदिशाओं में केसरों पर अंग देवताओं की पूजा करनी चाहिये। दिशाओं में वासुदेव तथा बलराम की, विदिशाओं में प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध की और बाह्य प्रदेश में रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा, जांबवती, लोकपालों तथा आयुधों की अर्चना करे। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है ॥७८-८४॥

तार (ओं), श्री (श्रीं), भुवना (ह्रीं), काम (क्लीं) ङे विभक्त्यन्त श्रीकृष्ण शब्द अर्थात् 'श्रीकृष्णाय' ऐसा ही गोविन्द पद (गोविन्दाय), फिर 'गोपीजनवल्लभाय' तत्पश्चात् तीन पद्मा (श्रीं श्रीं श्रीं)—यह (ओं श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीकृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय श्रीं श्रीं श्रीं) तेईस अक्षरों का मन्त्र है। इसके मुनि आदि पूर्व मन्त्र को ही तरह समझना चाहिये। इसकी सिद्धि के लिये सिद्ध गोपाल का स्मरण करना चाहिये। पुनः माधवी लता के बने मण्डप में आसीन, गरुड़ द्वारा सुसेवित, दिव्य क्रीड़ा करने में निरत राम और कृष्ण का ध्यान करे। उत्तम विष्णुभक्त इस मन्त्र का पूजन पूर्ववत् ही करे। "चक्री (क्) आठवें स्वर (ऋ) से युक्त हो और उसके साथ विसर्ग भी हो तो 'कृः' यह एकाक्षर मन्त्र हो है। 'कृष्ण' यह दो अक्षरों का मन्त्र है। इसके आदि में क्लीं

श्रीशक्तिकामाः कृष्णाय कामः सप्ताक्षरः परः । कृष्णगोविंदकौ ङेंतौ हृदंतोऽन्यो नवाक्षरः ॥९२॥
ङेंतौ च कृष्णगोविंदौ तथाः कामः पुटः परः । कामः शार्ङ्गी धरासंस्थो मन्विद्वाठयश्च मन्मथः ॥९३॥
श्यामलांगाय हृदयं दशार्णः सर्वसिद्धिदः । बालांते वपुषे कृष्णायाग्निजायांतिमोऽपरः ॥९४॥
द्विठांते बालवपुषे कामः कृष्णाय संवदेत् । ततो ध्यायन्स्वहृदये गोपीजनमनोहरम् ॥९५॥
श्रीवृन्दाविपिनप्रतोलिषु नमत्संफुल्लवल्लीततिष्वंतर्जालविघट्टनैः सुरभिना वातेन संसेविते ।
कालिंदीपुलिने विहारिणमथो राधैकजीवातुकं वंदे नन्दकिशोरमिंदुवदनं स्निग्धांबुदाडंबरम् ॥९६॥
पूर्वोक्तवर्त्मना पूजा ज्ञेयाह्यस्यां मुनीश्वर । देवकीसुतवर्णांते गोविंदपदमुच्चरेत् ॥९७॥
वासुदेवपदं प्रोच्य संबुद्ध्यंतं जगत्पतिम् । देहि मे तनयं पश्चात्कृष्ण त्वामहमीरयेत् ॥९८॥
शरणं गत इत्यंतो मंत्रो द्वात्रिंशदक्षरः । नारदोऽस्य मुनिश्छंदो गायत्री चाप्यनुष्टुभम् ।
देवः सुतप्रदः कृष्णः पादैः सर्वेण चांगकम् ॥९९॥
विजयेन युतो रथस्थितः प्रसमानीय समुद्रमध्यतः । प्रददत्तनयान् द्विजन्मने स्मरणीयो वसुदेवनन्दनः ॥१००॥
लक्षं जपोऽयुतं होमस्तिलैर्मधुरसंप्लुतैः । अर्चा पूर्वोदिते पीठे अंगलोकेश्वरायुधैः ॥१०१॥
एवं सिद्धे मनौ मंत्री वंध्यायामपि पुत्रवान् । तारो माया ततः सांत सेंदुर्वांतश्च सर्ववान् ॥१०२॥

जोड़ने पर 'क्लीं कृष्ण' यह तीन अक्षरों का मन्त्र बनता है। वही ङे विभक्त्यन्त होने पर चार अक्षरों का 'क्लीं कृष्णाय' मन्त्र होता है। 'कृष्णाय नमः' यह पंचाक्षर मन्त्र है। 'क्लीं' संपुटित कृष्ण पद भी अपर पंचाक्षर मन्त्र है। यथा—क्लीं कृष्णाय क्लीं। 'गोपालाय स्वाहा' यह षडक्षर मन्त्र कहा गया है। 'क्लीं कृष्णाय स्वाहा' यह भी दूसरा षडक्षर मन्त्र है। 'कृष्णाय गोविन्दाय' यह सप्ताक्षर मन्त्र सम्पूर्ण सिद्धियों को देने वाला है। श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय क्लीं यह दूसरा सप्ताक्षर मन्त्र है। 'कृष्णाय गोविन्दाय नमः' यह दूसरा नवाक्षर मन्त्र है। 'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय क्लीं' यह भी इतर नवाक्षर मन्त्र है। 'क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः' यह दशाक्षर संपूर्ण सिद्धियों को देने वाला है। 'बालवपुषे कृष्णाय स्वाहा' यह दूसरादशाक्षर मन्त्र है। 'बालवपुषे क्लीं कृष्णाय स्वाहा' यह एकादशाक्षर मन्त्र है। तदनन्तर गोपीजन मनोहर श्रीकृष्ण का इस प्रकार ध्यान करे कि वे कालिन्दी के तट पर विहार करते हैं, जहाँ वृन्दावन की प्रतोलियों (ग्राममध्यमार्ग) पर गिरती हुई प्रफुल्लित लताओं के आभ्यन्तर जाल को तितर-बितर करते हुए सुगन्धित वायु वह रहा है। उनका मुख इन्द्र के समान है वर्ण सघनघन के सदृश है, वे राधा के एक मात्र प्राण हैं। मुनीश्वर! ऐसा ध्यान कर पूर्वोक्त रीति से पूजा करनी चाहिये। "देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते! देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः"। यह बत्तीस अक्षरों का मन्त्र है ॥८५-९८½॥ इसके मुनि नारद, छन्द गायत्री तथा अनुष्टुप् और देवता पुत्र देने वाले कृष्ण हैं। मन्त्राक्षरों से अंगन्यास कर ध्यान करे कि वसुदेवपुत्र विजयी हैं, रथ पर अवस्थित हैं। वे समुद्र के बीच से लाकर ब्राह्मण के मरे पुत्र को उन्हें वापस दे रहे हैं, उनका स्मरण करना चाहिये ऐसा ध्यान कर एक लाख मन्त्र जप करे और दश हजार त्रिमधुयुक्त तिलों से हवन करे। पश्चात् पूर्वोक्त पीठ पर अंग देवताओं, लोकपालों तथा आयुधों की पूजा करनी चाहिये। इस तरह मन्त्र की सिद्धि हो जाने से साधक को वन्ध्या स्त्री से भी पुत्र हो सकता है ॥९९-१०१½॥

सोऽहं वह्निप्रियांतोऽयं मंत्रो वस्वक्षरः परः । पंचब्रह्मात्मकस्यास्य मंत्रस्य मुनिसत्तमः ॥१०३॥
ऋषिर्ब्रह्मा च परमा गायत्री छंद ईरितम् । परं ज्योतिः परं ब्रह्म देवता परिकीर्तितम् ॥१०४॥
प्रणवो बीजमाख्यातं स्वाहा शक्तिरुदाहृता । स्वाहेति हृदयं प्रोक्तं सोऽहं वेति शिरो मतम् ॥१०५॥
हंसश्चेति शिखा प्रोक्ता हृल्लेखा कवचं स्मृतम् । प्रणवो नेत्रमाख्यातमस्त्रं हरिहरेति च ॥१०६॥
स ब्रह्मा स शिवो विप्र स हरिः सैव देवराट् । स सर्वरूपः सर्वाख्यः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ॥१०७॥
एवं ध्यात्वा जपेदष्टलक्षहोमो दशांशतः । पूजाप्रणवपीठेऽस्य सांगावरणकैर्मता ॥१०८॥
एवं सिद्धे मनौ ज्ञानं साधकेंद्रस्य नारद । जायते तत्त्वमस्यादिवाक्योक्तं निर्विकल्पकम् ॥१०९॥
कामो ङेंतो हृषीकेशो हृदयांतो गजाक्षरः । ऋषिर्ब्रह्मास्य गायत्री छंदो गायत्रमीरितम् ॥११०॥
देवता तु हृषीकेशो विनियोगोऽखिलाप्तये । कामो बीजं तथायेति शक्तिरस्य ह्युदाहृता ॥१११॥
बीजेनैव षडंगानि कृत्वा ध्यानं समाचरेत् । पुरुषोत्तममंत्रोक्तं सर्वं वास्य प्रकीर्तितम् ॥११२॥
लक्षं जपोऽयुतं होमो घृतेनैव प्रकीर्तितः । तर्पणं सर्वकामाप्त्यै प्रोक्तं संमोहिनीसुमैः ॥११३॥
श्रीबीजं च चतुर्थ्यंतः श्रीधरो ङेंतकस्तथा । त्रैलोक्यमोहनः शब्दो नमोंऽतो मनुरीरितः ॥११४॥
ऋषिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्दः श्रीधरदेवता । श्रीबीजं शक्तिरायेति बीजेनैव षडंगकम् ॥११५॥
पुरुषोत्तमवद्ध्यानपूजादिकमिहोदितः । लक्षं जपस्तथा होम आज्येनैव दशांशतः ॥११६॥
सुगंधश्वेतपुष्पैस्तु पूजां होमादिकं चरेत् । एवं कृते तु विप्रेन्द्र साक्षात्स्याच्छ्रीधरः स्वयम् ॥११७॥
अच्युतानन्तगोविंदपदं ङेंतं नमोंतिमम् । मंत्रोऽस्य शौनकऋषिर्विराट् छंदः प्रकीर्तितम् ॥११८॥

'ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' यह दूसरा अष्टाक्षर मंत्र है । इस पंचब्रह्मात्मक मंत्र के मुनि ब्रह्मा, छंद गायत्री, देवता परं ज्योति परब्रह्म, बीज प्रणव और शक्ति स्वाहा है । स्वाहा हृदयाय नमः । सोहं शिरसे स्वाहा । हंसः शिखायै वषट् । हृल्लेखा कवचाय हुम् । ओं नेत्राभ्यां वौषट् । 'हरिहर' अस्त्राय फट् । इस प्रकार अंगन्यास करे (वही कृष्ण) ब्रह्मा हैं, वही शिव हैं, वही हरि और वही इन्द्र हैं । वहीं सर्वरूप हैं तथा सब नाम उन्हीं के हैं । वही स्वयं प्रकाशमान अविनाशी परमात्मा हैं—ऐसा ध्यान कर आठ लाख मंत्र को जपे और उसका दशांश हवन करे । अनन्तर प्रणवपीठ पर अंगदेवताओं के साथ कृष्ण का पूजन करे । नारद ! ज्ञानी साधक इस तरह मंत्र को सिद्ध कर 'तत्त्वमसि' इत्यादि वाक्योक्त निर्विकल्प ज्ञान को प्राप्त करता है । 'क्लीं हृषीकेशाय नमः' यह अष्टाक्षर मंत्र है । इसके मुनि ब्रह्मा, छंद गायत्री और देवता हृषीकेश हैं । सर्वप्राप्ति के लिये इसका विनियोग किया जाता है ॥१०२-११०½॥

'क्लीं' इसका बीज तथा 'आय' शक्ति कही गई है । बीजमंत्र से षडंगन्यास कर ध्यान करे । अथवा पुरुषोत्तम मंत्र के लिए कही हुई सब बातें इसके लिए भी समझनी चाहिये । अनन्तर एक लाख मंत्र जप कर दश हजार घी से हवन करे । समस्त कामनाओं की प्राप्ति के लिये (इस मंत्र को पढ़ कर) कर्पूरमिश्रित जल से तर्पण करना चाहिये । 'श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः' यह चौदह अक्षरों का मंत्र है । इसके ऋषि ब्रह्मा, छंद गायत्री, देवता श्रीधर, बीज श्री और शक्ति 'आय' है । बीज से ही षडंगन्यास कर पुरुषोत्तम मन्त्र की तरह ध्यान-पूजन आदि करना चाहिये । अनन्तर एक लाख मंत्र-जप करके उसका दशांश घी से हवन करे । पुनः सुगंधित श्वेत पुष्पों से पूजा, होम आदि करे । विप्रेन्द्र ! जो इस तरह करता है, वह साक्षात् श्रीधर होता है । "अच्युतानन्तगोविन्दाय नमः" यह एक मंत्र है । अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः—ये तीन

एषां पराशरव्यासनारदा ऋषयः स्मृताः । विराट् छन्दः समाख्यातं परब्रह्मात्मको हरिः ॥११९॥
देवताबीजशक्ती तु पूर्वोक्ते साधकैर्मते । शंखचक्रधरं देवं चतुर्बाहुं किरीटिनम् ॥१२०॥
सर्वैरप्यायुधैर्युक्तं गरुडोपरि संस्थितम् । सनकादिमुनींद्रैस्तु सर्वदेवैरुपासितम् ॥१२१॥
श्रीभूमिसहितं देवमुदयादित्यसन्निभम् । प्रातरुद्यत्सहस्रांशुमंडलोपमकुंडलम् ॥१२२॥
सर्वलोकस्य रक्षार्थमनन्तं नित्यमेव हि । अभयं वरदं देवं प्रयच्छंतं मुदान्वितम् ॥१२३॥
एवं ध्यात्वार्चयेत्पीठे वैष्णवे सुसमाहितः । आद्यावरणमंगैः स्याच्चक्रशंखगदासिभिः ॥१२४॥
मुशलाढ्यधनुःपाशांकुशैः प्रोक्तं द्वितीयकम् । सनकादिकशाक्तेयव्यासनारदशौनकैः ॥१२५॥
तृतीयं लोकपालैस्तु चतुर्थं परिकीर्तितम् । लक्षं जपो दशांशेन घृतेन हवनं स्मृतम् ॥१२६॥
एवं सिद्ध मनौ मंत्री प्रयोगानप्युपाचरेत् । श्रीवृक्षमूले देवेशं ध्यायन्वै रोगिणं स्मरन् ॥१२७॥
स्पृष्ट्वा जप्त्वायुतं साध्यं स्मृत्वा वा मनसा द्विज । रोगिणां रोगनिर्मुक्तिं कुर्यान्मंत्री तु मंडलात् ॥१२८॥
कन्यार्थी जुहुयाल्लाजैर्बिल्वैश्चापि धनाप्तये । वस्त्रार्थी गन्धकुसुमैरारोग्याय तिलैर्हुनेत् ॥१२९॥
रविवारे जले स्थित्वा नाभिमात्रे जपेत्तु यः । अष्टोत्तरसहस्रं वै सज्वरं नाशयेद् ध्रुवम् ॥१३०॥
विवाहार्थं जपेन्मासं शशिमण्डलमध्यगम् । ध्यात्वा कृष्णं लभेत्कन्यां वांछितां चापि नारद ॥१३१॥
वसुदेवपदं प्रोच्य निगडच्छेदशब्दतः । वासुदेवाय वर्मास्त्रे स्वाहांतो मनुरीरितः ॥१३२॥

…त्र हैं । प्रथम के शौनक ऋषि तथा विराट् छन्द है । शेष तीन मंत्रों के पराशर, व्यास तथा नारद ऋषि हैं, विराट् छंद है और देवता परब्रह्मात्मक हरि हैं । बीज और शक्ति तो पूर्व मंत्र की ही तरह समझनी चाहिये ॥१११-११९½॥

इसकी सिद्धि के लिए कृष्ण का इस तरह ध्यान करे कि उनकी चार भुजायें हैं । चारों में शंख, चक्र आदि विद्यमान हैं । वे मुकुट तथा समस्त आयुधों को धारण किये हुए हैं । गरुड़ पर आसीन हैं । सनकादि मुनि-गण तथा देवबृन्द उनकी उपासना कर रहे हैं । लक्ष्मी उनके साथ हैं । उदयकालीन सूर्य के समान उनकी कान्ति है । प्रातःकालीन सहस्र दिनकरों के तुल्य चमकने वाले उनके कुंडल हैं । वे समस्त लोकों के रक्षक, अनन्त तथा नित्य हैं । वे प्रसन्नता से भक्तों को अभयदान एवम् वरदान देते हैं । इस प्रकार ध्यान कर समाहित चित्त से वैष्णव पीठ पर भगवान् का पूर्ववत् पूजन करे । इनका प्रथम आवरण अंगों द्वारा सम्पन्न होता है । चक्र, शंख, गदा, खड्ग, मुसल, धनुष, पाश तथा अंकुश—इनसे द्वितीय आवरण बनता है । सनक आदि चार महात्मा पराशर, व्यास, नारद तथा शौनक से तृतीय आवरण बनता है । लोकपालों द्वारा चौथा आवरण पूरा होता है । (पांचवें आवरण में वज्र आदि आयुधों की पूजा होती है ।) इस मंत्र का एक लाख जप और घृत से दशांश हवन किया जाता है । मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक उसका प्रयोग करे ॥१२०-१२६½॥

बिल्ववृक्ष के नीचे देवेश का ध्यान कर रोगी का स्पर्श या स्मरण करके दश हजार मंत्र-जप करे । ऐसा करने से रोगी का रोग तत्काल दूर हो जाता है । जो कन्या की इच्छा करता है, वह लावे से हवन करे । धनार्थी बिल्व-फलों से, वस्त्रार्थी सुगंधित पुष्पों से और आरोग्य चाहने वाला व्यक्ति तिलों से हवन करे । जो व्यक्ति रविवार को नाभिमात्र जल में खड़ा होकर एक सौ आठ बार इस मंत्र को जपेगा, वह निःसंदेह ज्वर को छुड़ा देगा । नारद ! जो व्यक्ति विवाह की अभिलाषा करता है, वह चन्द्रमंडल के मध्यगामी कृष्ण का ध्यान कर एक मास तक इस मंत्र का जप करे । ऐसा करने से मनोवांछित कन्या उसे मिलती है । इस मंत्र के ऋषि नारद, छंद

नारदोऽस्य ऋषिश्छन्दो गायत्री कृष्णदेवता । वर्म बीजं शिरः शक्तिरन्यत्सर्वं दशार्णवत् ॥१३३॥
बालः पवनदीर्घेन्दुयुक्तो झिंटीशयुर्जलम् । अत्रिव्यासाय हृदयं मनुरष्टाक्षरोऽवतु ॥१३४॥
ब्रह्मानुष्टुप्मुनिश्छन्दो देवः सत्यवतीसुतः । आद्यं बीजं नमः शक्तिदीर्घाढ्यो नादिनांगकम् ॥१३५॥
ब्रह्मानुष्टुप्मुनिश्छन्दो देवः सत्यवतीसुतः । आद्यं बीजं नमः शक्तिदीर्घाढ्यो नादिनांगकम् ॥१३५॥
व्याख्यामुद्रिकया लसत्करतलं सद्योगपीठस्थितं वामे जानुतले दधानमपरं हस्तं सुविद्यानिधिम् ।
विप्रव्रातवृतं प्रसन्नमनसं पाथोरुहांगद्युति पाराशर्यमतीव पुण्यचरितं व्यासं स्मरेत्सिद्धये ॥१३६॥
जपेदष्टसहस्राणि पायसैर्होममाचरेत् । पूर्वोक्तपीठे व्यासस्य पूर्वमंगानि पूजयेत् ॥१३७॥
प्राच्यादिषु यजेत्पैलं वैशंपायनजैमिनी । सुमंतुं कोणभागेषु श्रीशुकं रोमहर्षणम् ॥१३८॥
उग्रश्रवसमन्यांश्च मुनीन्सेंद्रादिकायुधान् । एवं सिद्धमनुर्मंत्री कवित्वं शोभनाः प्रजाः १३९॥
व्याख्यानशक्ति कीर्ति च लभते संपदां चयम् । नृसिंहो माधवो दृष्टो लोहितो निगमादिमः ॥१४०॥
कृशानुजाया पञ्चार्णो मनुर्विषहरः परः । अनंतपंक्तिपक्षीन्द्रा मुनिश्छन्दःसुरा मताः ॥१४१॥
तारवह्निप्रिये बीजशक्ती मन्त्रस्य कीर्तिते । ज्वल ज्वल महामंत्री स्वाहा हृदयमीरितम् ॥१४२॥
गरुडेति पदस्यांते चूडाननशुचिप्रिया । शिरोमन्त्रो गरुडतः शिखे स्वाहा शिखा मनुः ॥१४३॥
गरुडेति पदं प्रोच्य प्रभंजययुगं वदेत् । प्रभेदययुगं पश्चाद्वित्रासय विमर्दय ॥१४४॥
प्रत्येकं द्विस्ततः स्वाहा कवचस्य मनुर्मतः । उग्ररूपधरांते तु सर्वविषहरेति च ॥१४५॥

गायत्री, देवता कृष्ण, बीज कवच और शक्ति शिर है। दशाक्षर मंत्र की तरह इसकी भी सारी क्रियायें करनी चाहिये ॥१२७-१३३॥

बाल (व्) पवन (य्) ये दोनों अक्षर दीर्घ आकार और अनुस्वार से युक्त हों और झिंटीश (एकार) से युक्त जल (व्) हो, तत्पश्चात् अत्रि अर्थात् दकार हो और उसके बाद 'व्यासाय' पद के अन्त में हृदय (नमः) का प्रयोग हो तो यह (व्यां वेदव्यासाय नमः) अष्टाक्षर मंत्र बनता है। यह सबकी रक्षा करे। इसके मुनि ब्रह्मा, छंद अनुष्टुप्, देवता व्यास, बीज व्यां और शक्ति नमः है। दीर्घमात्रायुक्त बीजाक्षर (व्यां व्यीं व्यूं व्यैं व्यौं व्यः) अंगन्यास कर मंत्रसिद्धि के लिये व्यास का ध्यान करे कि वे योगपीठ पर अवस्थित हैं। उनका एक हाथ व्याख्यामुद्रा से सुशोभित है। दूसरा हाथ बायें ठेहुने पर रखा हुआ है। वे सद्विद्या की निधि कहलाते हैं। ब्राह्मणों के समस्त व्रतों का आचरण करते हैं। उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता है। उनके अंगों की कान्ति कमल के समान है। उनका चरित्र पवित्र है। वे पराशर के पुत्र हैं। ऐसा ध्यान कर आठ हजार जप करे और (उसका दशांश) खीर से होमे। पूर्वोक्तपीठ पर पहिले व्यास के अंगों का पूजन करे। पश्चात् पूर्व आदि दिशा में पैल, वैशंपायन तथा जैमिनि की और (अग्नि आदि) कोणों में श्रीशुक, रोमहर्षण, उग्रश्रवा, अन्यमुनिगण तथा आयुध सहित इन्द्र आदि देवों की अर्चना करे। इस प्रकार मंत्रसिद्धि हो जाने पर साधक को कवित्वशक्ति, व्याख्यानशक्ति, सुन्दर प्रजा, कीर्ति तथा सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ॥१३४-१३९½॥

"नृसिंह स्वाहा" यह पंचाक्षर मन्त्र विषशमन करने वाला है। इसके मुनि अनंत, छंद पंक्ति, देवता गरुड, बीज ओं और शक्ति स्वाहा है। "ज्वल ज्वल महामंत्री स्वाहा" यह हृदयमन्त्र है। "गरुड़ चूडानन शुचिप्रिया" यह शिरोमंत्र है। "गरुडतः शिखे स्वाहा" यह शिखामन्त्र है। "गरुड प्रभंजय युगम् प्रभेदय युगम् वित्रासय वित्रासय विमर्दय विमर्दय स्वाहा" यह कवच मन्त्र है। "उग्ररूपधर सर्वविषहर भीषय द्वितयम् सर्वम् दह-दह भस्मी कुरु स्वाहा" यह अस्त्र मन्त्र है। गरुडमन्त्र "अप्रतिहतबलाय प्रहते शासनाय हुं फट् स्वाहा" यह नेत्रमन्त्र है।

भीषयद्वितयं प्रोच्य सर्वं दहदहेति च। भस्मीकुरु ततः स्वाहा नेत्रमन्त्रोऽयमीरितः ॥१४६॥
अप्रतिहतवर्णांते बलाय प्रहरेति च। शासनांते तथा हुं फट् स्वाहास्त्रमनुरीरितः ॥१४७॥
पादे कटौ हृदि मुखे मूर्ध्नि वर्णान्प्रविन्यसेत् ॥१४८॥
ततस्वर्णनिभं फणींद्रनिकरैःक्लृप्तांगभूषं प्रभुं स्मर्तॄणां शमयन्तमुग्रमखिलं नॄणां विषं तत्क्षणात्।
चंचवग्रप्रचलद्भुजंगमभयं पाण्योर्वरं बिभ्रतं पक्षोच्चारितसामगीतममलं श्रीपक्षिराजं भजे ॥१४९॥
पञ्चलक्षं जपेन्मंत्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः। पूजयेन्मातृकापीठे गरुडं वेदविग्रहम् ॥१५०॥
चतुर्थ्यंतः पक्षिराजः स्वाहा पीठ मनुः स्मृतः। दृष्ट्वांगं कर्णिकामध्ये नागान्यंत्रेषु पूजयेत् ॥१५१॥
तद्बहिर्लोकपालांश्च वज्राद्यैर्विलसत्करान्। एवं सिद्धमनुर्मंत्री नाशयेद्गरलद्वयम्।
देहांते लभते चापश्रीविष्णोः परमं पदम् ॥१५२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे कृष्णादिमन्त्रभेदनिरूपणं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

को सिद्धि के लिये चरण, कटि, हृदय, मुख तथा मस्तक पर मन्त्रवर्णों का न्यास कर ध्यान करे कि तप्त सुवर्ण के समान गरुड़ की कान्ति है। सर्पों के कृत्रिम आभूषणों से उनके अंगों की अपूर्व शोभा हो रही है। वे अपने स्मरण करने वाले मनुष्यों के विष को तत्क्षण दूर कर देते हैं ॥१४०-१४८½॥ अपने चंगुलों में बड़े-बड़े भयानक सर्पों को फँसा कर चोंच से उन्हें क्षतविक्षत कर रहे हैं। पंखों से सामगान कर रहे हैं। ऐसे पक्षिराज को नमस्कार है। इस तरह ध्यान कर पाँच लाख मन्त्र जप करे और उसका दशांश तिल से हवन करे। "पक्षिराजाय स्वाहा" यह हवन का मन्त्र है। तदनन्तर मातृकापीठ पर वेदमूर्ति गरुड़ का पूजन करे। केसरों पर अङ्गदेवों तथा यंत्रों पर नागों की पूजा कर बाहर वज्र आदि आयुधों समेत लोकपालों की पूजा करे। इस तरह मन्त्र, सिद्ध हो जाने से मन्त्री को विष दूर करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है और वह देहान्त होने पर विष्णुलोक को जाता है ॥१४९-१५२॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त तृतीयपाद में कृष्णादिमन्त्रभेदनिरूपण नामक इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८१॥

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

किं त्वं नारद जानासि पूर्वजन्मनि यत्त्वया । प्राप्तं भगवतः साक्षाच्छूलिनो युगलात्मकम्
कृष्णमंत्ररहस्यं च स्मर विस्मृतिमागतम् । ॥१॥

सूत उवाच

इत्युक्तो नारदो विप्राः कुमारेण तु धीमता ॥२॥
ध्याने विवेदाशु चिरं चरितं पूर्वजन्मनः । ततश्चिरं ध्यानपरो नारदो भगवत्प्रियः ॥३॥
ज्ञात्वा सर्वं सुवृत्तांतं सुप्रसन्नाननोऽब्रवीत् । भगवन्सर्ववृत्तांतः पूर्वकल्पसमुद्भवः ॥४॥
मम स्मृतिमनुप्राप्तो विना युगललंभनम् । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य नारदस्य महात्मनः ॥५॥
सनत्कुमारो भगवान् व्याजहार यथातथम् ।
शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि यस्मिज्जन्मनि शूलिनः ॥६॥

सनत्कुमार उवाच

प्राप्तं कृष्णरहस्यं वै सावधानो भवाधुना । अस्मात्सारस्वतात्कल्पात्पूर्वस्मिन्पंचविंशके ॥७॥
कल्पे त्वं काश्यपो जातो नारदो नाम नामतः । तत्रैकदा त्वं कैलासं प्राप्तः कृष्णस्य योगिनः ॥८॥
संप्रष्टुं परमं तत्त्वं शिवं कैलासवासिनम् । त्वया पृष्टो महादेवो रहस्यं स्वप्रकाशितम् ॥९॥
कथयामास तत्त्वेन नित्यलीलानुगं हरेः । ततस्तदन्ते तु पुनस्त्वया विज्ञापितो हरः ॥१०॥

अध्याय ८२

राधाकृष्ण-सहस्र-नाम-स्तोत्र

सनत्कुमार बोले—नारद ! क्या तुम जानते हो कि पूर्वजन्म में तुमने साक्षात् भगवान् शङ्कर से युगल नाम वाले कृष्णमन्त्र के रहस्य को प्राप्त किया था । यदि विस्मृत हो गया हो तो स्मरण करो ॥१½॥

सूत बोले—विप्रवृन्द ! धीमान् सनत्कुमार के यह कहने पर नारद ने शीघ्र ही अपने पूर्वजन्म के चरित्र का ध्यान किया । चिरकाल तक ध्यानपरायण होने के उपरान्त भगवत्प्रिय नारद समस्त वृत्तान्त को जानकर सुप्रसन्न मुख से बोले—'भगवन् ! पूर्व कल्प का सारा वृत्तान्त तो मुझे मालूम हो गया, परन्तु युगल मन्त्र का स्मरण नहीं हो सका ।'

महात्मा नारद की यह बात सुनकर भगवान् सनत्कुमार यथार्थतः सब बातें बताने लगे ॥२-५½॥

सनत्कुमार बोले—विप्र ! जिस जन्म में तुमने कृष्ण के रहस्य को प्राप्त किया था, वह अभी मैं बता देता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो । इस सारस्वत कल्प से पहिले पचीसवें कल्प में तुम कश्यप के पुत्र हुए थे, तुम्हारा नाम नारद था । एक समय तुम कैलासवासी शिव से योगी कृष्ण के परम तत्त्व को पूछने के लिये कैलास पर्वत पर गये । तुम्हारे पूछने पर महादेव ने अपने आप प्रकाशित होने वाले हरि की नित्य लीला रूप रहस्य को तत्त्वतः समझा दिया । अन्त में पुनः तुमने हर से निवेदन किया कि मैं हरि की नित्य लीला को

नित्यां लीलां हरेर्द्रष्टुं तथा प्राह सदाशिवः। गोपीजनपदस्यांते वल्लभेति पदं ततः ॥११॥
चरणाच्छरणं पश्चात्प्रपद्ये इति वै मनुः। मंत्रस्यास्य ऋषिः प्रोक्तो सुरभिश्छन्द एव च ॥१२॥
गायत्री देवता चास्य बल्लवीवल्लभो विभुः। प्रपन्नोऽस्मीति तद्भक्तौ विनियोग उदाहृतः ॥१३॥
नास्य सिद्धादिकं विप्र शोधनं न्यासकल्पनम्। केवलं चिंतनं सद्यो नित्यलीलाप्रकाशकम् ॥१४॥
आभ्यंतरस्य धर्मस्य साधनं वच्मि सांप्रतम् ॥१५॥

संगृह्य मन्त्रं गुरुभक्तियुक्तो विचिन्त्य सर्वं मनसा तदीहितम् ।
कृपां तदीयां निजधर्मसंस्थो विभावयन्नात्मनि तोषयेद् गुरुम् ॥१६॥

सतां शिक्षेत वै धर्मान्प्रपन्नानां भयापहान्। ऐहिकामुष्मिकीचिंताविधुरान् सिद्धिदायकान् ॥१७॥
स्वेष्टदेवधिया नित्यं तोषयेद्वैष्णवांस्तथा। भर्त्सनादिकमेतेषां न कदाचिद्विचिंतयेत् ॥१८॥
पूर्वकर्मवशाद्भव्यमैहिकं भोग्यमेव च। आयुष्यकं तथा कृष्णः स्वयमेव करिष्यति ॥१९॥
श्रीकृष्णं नित्यलीलास्थं चिंतयेत्स्वधियानिशम्। श्रीमदर्चावतारेण कृष्णं परिचरेत्सदा ॥२०॥
अनन्यचिंतनीयोऽसौ प्रपन्नैः शरणार्थिभिः। स्वेयं च देहगेहादावुदासीनतया बुधैः ॥२१॥
गुरोरवज्ञां साधूनां निंदां भेदं हरे हरौ। वेदनिंदां हरेर्नामबलात्पापसमीहनम् ॥२२॥
अर्थवादं हरेर्नाम्नि पाषंडं नामसंग्रहे। अलसे नास्तिके चैव हरिनामोपदेशनम् ॥२३॥
नामविस्मरणं चापि नाम्न्यनादरमेव च। संत्यजेद् दूरतो वत्स दोषानेतान्सुदारुणान् ॥२४॥
प्रपन्नोऽस्मीति सततं चिंतयेद्धृद्गतं हरिम्। स एव पालनं नित्यं करिष्यति ममेति च ॥२५॥

देखना चाहता हूँ। तब सदाशिव ने कहा—'गोपीजन' इस पद के अन्त में 'वल्लभ' इस पद को जोड़ दीजिए। तत्पश्चात् 'चरण' फिर 'शरण' और अन्त में 'प्रपद्ये' इतने को रख दीजिए। इस प्रकार मन्त्र बनेगा—'गोपीजन वल्लभचरणाञ्छरणं प्रपद्ये' इस मन्त्र के ऋषि सुरभि हैं, छन्द गायत्री है और देवता गोपिकावल्लभ हैं। कृष्ण की भक्ति में 'मैं शरणागत हूँ' ऐसा विनियोग कहा गया है ॥९-१३॥ विप्र! इस मन्त्र में न्यास, शुद्धि तथा सिद्ध आदि करने की आवश्यकता नहीं है। केवल चिंतन करने से सत्य नित्य लीला का प्रकाश दिखाई देता है। अब मैं आभ्यन्तर धर्म का साधन बताता हूँ ॥१४-१५॥ मन्त्र की दीक्षा लेकर गुरु की भक्ति करते हुए उनकी समस्त इच्छाओं का ध्यान रखे। अपने धर्म पर आरूढ़ होकर मन में गुरु कृपा की भावना को रखते हुए उनको संतुष्ट करे। शरण में आये सज्जनों को भय दूर करने वाले ऐहलौकिक एवम् पारलौकिक चिंता को मिटाने वाले तथा सिद्धि देने वाले धर्मों का उपदेश करे। अपना इष्ट देव समझकर नित्य वैष्णवों को संतुष्ट करे।

उनकी निन्दा आदि कभी न करे ॥१६-१८॥ ऐसे व्यक्ति को पूर्वजन्मार्जित कर्म के तारतम्य से ऐहलौकिक भोग एवम् आयु का प्रदान स्वयं कृष्ण ही करते हैं। साधक नित्य लीला करते हुए कृष्ण का चिन्तन अहर्निश किया करे। सम्यक् प्रकार से हरि का पूजन करे। उनका शरणागत होकर केवल उन्हीं की चिन्तना करे, अन्य की नहीं। शरीर, गृह आदि में उदासीनता का भाव रखे। गुरु का तिरस्कार, साधुओं की निंदा, हरि और हर में भेद बुद्धि, वेदनिंदा, हरिनाम को निंदा, बलात् पापों की इच्छा, हरिनाम में अर्थवाद, नामसंग्रह में पाषंड, आलसी और नास्तिक को हरिनाम का उपदेश, नामों का विस्मरण और नामों का अनादर—इन भयंकर दोषों का परित्याग करे। 'मैं शरणागत हूँ' ऐसा कहकर हृदय स्थित हरि का सतत चिन्तन करे। 'वही नित्य मेरा

तवास्मि राधिकानाथ कर्मणा मनसा गिरा । कृष्णकांतेति चैवास्मि युवामेव गतिर्मम ॥२६॥
दासाः सखायः पितरः प्रेयस्यश्च हरेरिह । सर्वे नित्या मुनिश्रेष्ठ चिंतनीया महात्मभिः ॥२७॥
गमनागमनेनित्यं करोति वनगोष्ठयोः । गोचारणं वयस्यैश्च विनासुरविघातनम् ॥२८॥
सखायो द्वादशाख्याता हरेः श्रीदामपूर्वकाः । राधिकायाः सुशीलाद्याः सख्यो द्वात्रिंशदीरिताः ॥२९॥
आत्मानं चिंतयेद्वत्स तासां मध्ये मनोरमाम् । रूपयौवनसंपन्नां किशोरीं च स्वलंकृताम् ॥३०॥
नानाशिल्पकलाभिज्ञां कृष्णभोगानुरूपिणीम् । तत्सेवनसुखाह्लादभावेनातिसुनिर्वृताम् ॥३१॥
ब्राह्मं मुहूर्तमारभ्य यावदर्धनिशा भवेत् । तावत्परिचरेत्तौ तु यथाकालानुसेवया ॥३२॥
सहस्रं च तयोर्नाम्नां पठेन्नित्यं समाहितः । एतत्साधनमुद्दिष्टं प्रपन्नानां मुनीश्वर ॥३३॥
नाख्येयं कस्यचित्तुभ्यं मया तत्त्वं प्रकाशितम् ।

सनत्कुमार उवाच

ततस्त्वं नारद पुनः पृष्टवान्वै सदाशिवम् ॥३४॥
नाम्नां सहस्रं तच्चापि प्रोक्तवांस्तच्छृणुष्व मे । ध्यात्वा वृन्दावने रम्ये यमुनातीरसंगतम् ॥३५॥
कल्पवृक्षं समाश्रित्य तिष्ठंतं राधिकायुतम् । पठेन्नामसहस्रं तु युगलाख्यं महामुने ॥३६॥
देवकीनन्दनः शौरिर्वासुदेवो बलानुजः । गदाग्रजः कंसमोहः कंससेवकमोहनः ॥३७॥
भिन्नार्गलो भिन्नलोहः पितृबाह्यः पितृस्तुतः । मातृस्तुतः शिवध्येयो यमुनाजलभेदनः ॥३८॥
व्रजवासीव्रजानंदी नंदबालो दयानिधिः । लीलाबालः पद्मनेत्रो गोकुलोत्सव ईश्वरः ॥३९॥
गोपिकानंदनः कृष्णो गोपानंदः सतां गतिः । बकप्राणहरो विष्णुर्बकमुक्तिप्रदो हरिः ॥४०॥

पालन करेंगे ॥१९-२५॥ राधिकानाथ ! मैं मनसा, वाचा, कर्मणा आप ही का हूँ। मैं आपका प्रिय हूँ, आप दोनों (राधा और कृष्ण) ही मेरी गति हैं।'—ऐसा कहा करे। मुनिश्रेष्ठ ! महात्माओं को चाहिये कि वे हरि के दास, सखा, पितर तथा प्रेयसी का सदा चिन्तन करे। 'कृष्ण नित्य वृन्दावन और व्रज में आते जाते हैं तथा बिना देवताओं को क्षति पहुँचाये सखाओं के साथ गो चराते हैं।'—ऐसी भावना करे। हरि के श्रीदामा आदि बारह सखा हैं और राधिका सुशीला आदि बत्तीस सखियां हैं। उन सखियों के बीच अपने को मनोरमा, रूपयौवनसंपन्ना, किशोरी, सु-अलंकृता, अनेक शिल्पकलाओं को जानने वाली, कृष्ण के भोग के अनुरूप और उनके सेवन जन्य सुख से आनन्दविभोर होने वाली सखी समझे। ब्राह्ममुहूर्त से लेकर आधी रात तक समय के अनुसार उनकी परिचर्या करे। नित्य सावधान होकर राधा-कृष्ण के सहस्र नामों का पाठ करे। मुनीश्वर ! भक्तों के लिये यही साधन बतलाया गया है। यह तत्त्व किसी से प्रकाशित नहीं करना चाहिये। केवल तुमसे ही मैंने कहा है' ॥२६-३३½॥

सनत्कुमार बोले—नारद ! तदुपरान्त तुमने सदाशिव से पुनः प्रश्न किया। तब जो उन्होंने सहस्र नामों के विषय में बतलाया, वह मुझसे सुनो। महामुने ! रमणीय वृन्दावन में यमुना के तट पर स्थित कल्पवृक्ष के समीप निवास करते हुए राधा-कृष्ण के युगल संज्ञक सहस्रनाम का पाठ करना चाहिये ॥३४-३६॥ (जैसे—)

देवकी नंदन, शूरसंतति, वासुदेव, बलानुज, गदाग्रज, कंस को मोहने वाले, कंस के सेवकों को मोहने वाले, (कारागार के किवाड़ों) की अर्गला तोड़ने वाले, लोहा (लोहे की हथकड़ी और बेड़ी को) तोड़ने वाले, पिता के द्वारा सिर पर वहन करने योग्य (शिशुरूप श्रीकृष्ण) वह पितृस्तुत, मातृस्तुत, शिव के ध्येय, यमुनाजल का भेदन करने वाले, व्रजवासी, व्रजानन्दी, नन्दबालक, दयानिधि, लीलाशिशु, कमलाक्ष, गोकुलोत्सव, ईश्वर, गोपिकानन्दन, कृष्ण, गोपानन्द, सज्जनों को गति, बकासुर के प्राण हरण करने वाले, विष्णु, बकासुर को मोक्ष देने वाले ॥३७-४०॥

बलदोलाशयशयः श्यामलः सर्वसुंदरः । पद्मनाभो हृषीकेशः क्रीडामनुजबालकः ॥४१॥
लीलाविध्वस्तशकटो वेदमंत्राभिषेचितः । यशोदानंदनः कांतो मुनिकोटिनिषेवितः ॥४२॥
॥४३॥
नित्यं मधुवनावासी वैकुंठः संभवः क्रतुः । रमापतिर्यदुपतिर्मुरारिर्मधुसूदनः ॥४४॥
माधवो मानहारी च श्रीपतिर्भूधरः प्रभुः । बृहद्वनमहालीलो नंदसूनुर्महासनः ॥४५॥
तृणावर्तप्राणहारी यशोदाविस्मयप्रदः । त्रैलोक्यवक्त्रः पद्माक्षः पद्महस्तः प्रियंकरः ॥४६॥
ब्रह्मण्यो धर्मगोप्ता च भूपतिः श्रीधरः स्वराट् । अजाध्यक्षः शिवाध्यक्षो धर्माध्यक्षो महेश्वरः ॥४७॥
वेदांतवेद्यो ब्रह्मस्थः प्रजापतिरमोघदृक् । गोपीकरावलंबी च गोपबालकसुप्रियः ॥४८॥
बालानुयायी बलवान् श्रीदामप्रिय आत्मवान् । गोपीगृहांगणरतिर्भद्रः सुश्लोकमंगलः ॥४९॥
नवनीतहरो बालो नवनीतप्रियाशनः । बालवृन्दी मर्कवृन्दी चकिताक्षः पलायितः ॥५०॥
यशोदातर्जितः कंपी मायारुदितशोभनः । दामोदरोऽप्रमेयात्मा दयालुर्भक्तवत्सलः ॥५१॥
सुबद्धोलूखले नम्रशिरा गोपीकदर्थितः । वृक्षभंगी शोकभंगी धनदात्मजमोक्षणः ॥५२॥
देवर्षिवचनश्लाघी भक्तवात्सल्यसागरः । व्रजकोलाहलकरो व्रजानंदविवर्द्धनः ॥५३॥
गोपात्मा प्रेरकः साक्षी वृन्दावननिवासकृत् । वत्सपालो वत्सपतिर्गोपदारकमंडनः ॥५४॥
बालक्रीडो बालरतिर्बालकः कनकांगदी । पीताम्बरो हेममाली मणिमुक्ताविभूषणः ॥५५॥
किंकिणीकटकी सूत्री नूपुरी मुद्रिकान्वितः । वत्सासुरपतिध्वंसी बकासुरविनाशनः

हरि, बलराम के चंचल चित्त में अवस्थित होने वाले, श्यामल, सब प्रकार से सुन्दर, पद्मनाभ, हृषीकेश, मनुज-बालक की तरह क्रीड़ा करने वाले, लीला से शकट का विध्वंस करने वाले, वेद-मन्त्रों से अभिषिक्त होने वाले, यशोदापुत्र, कांत, करोड़ों मुनियों से सुसेवित, नित्य मधुवन में वास करने वाले, बैकुण्ठ (बैकुण्ठधाम के अधिपति), संभव (सबकी उत्पत्ति के स्थान), क्रतु, रमापति, यदुपति, मुरारि, मधुसूदन, माधव, मानहारी, श्रीपति, भूधर, प्रभु, महावन में बड़ी-बड़ी लीला करने वाले, नन्दसूनु, महान् आसन वाले, तृणावर्त के प्राण हरने वाले, यशोदा को विस्मय में डालने वाले, त्रैलोक्यमुख, पद्माक्ष, पद्महस्त, प्रिय (कार्य) करने वाले, ब्रह्मण्य, (ब्राह्मणहितकारी), धर्मगोप्ता, भूपति, श्रीधर, स्वराट् (स्वयंप्रकाश) अजाध्यक्ष (ब्रह्मा के स्वामी), शिवाध्यक्ष, धर्माध्यक्ष, महेश्वर ॥४१-४६॥ वेदांतवेद्य, ब्रह्मस्थ, प्रजापति, अमोघदृक्, गोपीकरावलम्बी, गोप-बालकों के अत्यन्त प्रिय, बलानुयायी, बलवान्, श्रीदामप्रिय, आत्मवान्, गोपियों के गृहांगणों से अनुराग करने वाले, भद्र, अत्यन्तमंगलरूप, मक्खन चुराने वाले, बाल, नवनीत को रुचि से खाने वाले, बालकों एवम् बन्दरों को खिलाने वाले, चकिताक्ष, भागने वाले, यशोदा से पीटे जाने वाले, कांपने वाले, माया से सुन्दरतया रोदन करने वाले, दामोदर, अप्रमेयात्मा, दयालु, भक्तवत्सल, ओखली से बांधे जाने पर अवनत शिर वाले, गोपियों की भर्त्सना सहने वाले, वृक्षों को तोड़ने वाले, शोक भंग करने वाले, कुबेर के पुत्रों को मुक्त करने वाले, देवर्षि के वचन से श्लाघा करने वाले, भक्तवत्सलता के समुद्र, व्रज में कोलाहल करने वाले, व्रजबसियों का आनन्द बढ़ाने वाले ॥४७-५२॥ गोपात्मा, प्रेरक, साक्षी, वृन्दावन में निवास करने वाले, वत्सपाल, वत्सपति, गोप-बालकों के शिरमुकुट, बालकों के साथ क्रीड़ा करने वाले, शिशुओं से प्रेम करने वाले, बालक, सुवर्ण के केयूर पहनने वाले, पीताम्बर, सुवर्णमाली, मणि-मुक्ताओं के आभूषण धारण करने वाले, किंकिणी, कटक, सूत्र, नूपुर तथा मुद्रिका पहनने वाले, वत्सासुर के पति का नाश करने वाले, बकासुर को समाप्त करने वाले, अघासुर का विध्वंस करने वाले, बालकों को जगाने वाले, आद्य, आत्मप्रद, संज्ञी, यमुना के तट पर भोजन करने वाले, गोपाल-मण्डली के

अघासुरविनाशी च विनिद्रीकृतबालकः । आद्य आत्मप्रदः संगी यमुनातीरभोजनः ॥५६॥
गोपालमंडलीमध्यः सर्वगोपालभूषणः । कृतहस्ततलग्रासो व्यंजनाश्रितशाखिकः ॥५७॥
कृतबाहुश्रृंगयष्टिगुंजालंकृतकंठकः । मयूरपिच्छमुकुटो वनमालविभूषितः ॥५८॥
गैरिकाचित्रितवपुर्नवमेघवपुः स्मरः । कोटिकंदर्पलावण्यो लसन्मकरकुंडलः ॥५९॥
आजानुबाहुर्भगवान्निद्रारहितलोचनः । कोटिसागरगांभीर्यः कालकालः सदाशिवः ॥६०॥
विरंचिमोहनवपुर्गोपवत्सवपुर्द्धरः । ब्रह्मांडकोटिजनको ब्रह्ममोहविनाशकः ॥६१॥
ब्रह्मा ब्रह्मडितः स्वामी शक्रदर्पादिनाशनः । गिरिपूजोपदेष्टा च धृतगोवर्धनाचलः ॥६२॥
पुरंदरेडितः पूज्यः कामधेनुप्रपूजितः । सर्वतीर्थाभिषिक्तश्च गोविंदोगो परक्षकः ॥६३॥
कालियार्तिकरः क्रूरो नागपत्नीडितो विराट् । धेनुकारिः प्रलंबारिवृंषासुरविमर्दनः ॥६४॥
मायासुरात्मजध्वंसी केशिकंठविदारकः । गोपगोप्ता धेनुगोप्ता दावाग्निपरिशोषकः ॥६५॥
गोपकन्यावस्त्रहारी गोपकन्यावरप्रदः । यज्ञपत्न्यन्नभोजी च मुनिमानापहारकः ॥६६॥
जलेशमानमथनो नन्दगोपालजीवनः । गन्धर्वशापमोक्ता च शंखचूडशिरोहरः ॥६७॥
वंशीवटी वेणुवादी गोपीचिन्तापहारकः । सर्वगोप्ता समाह्वानः सर्वगोपीमनोरथः ॥६८॥
व्यंगधर्मप्रवक्ता च गोपीमण्डलमोहनः । रासक्रीडारसास्वादी रसिको राधिकाधवः ॥६९॥
किशोरीप्राणनाथश्च वृषभानसुताप्रियः । सर्वगोपीजनानंदी गोपीजनविमोहनः ॥७०॥
गोपिकागीतचरितो गोपीनर्तनलालसः । गोपीस्कंधाश्रितकरो गोपिकाचुम्बनप्रियः ॥७१॥

मध्य में रहने वाले, समस्त गोपालों के भूषण, हथेली पर रख कर भोजन करने वाले, वृक्षों की शाखाओं पर चढ़ने वाले, हाथ में लाठी रखने वाले, गुंजा से अलंकृत कंठ वाले, मुकुट पर मयूर का पंख लगाने वाले, वनमाला से विभूषित, गेरु से शरीर को चित्रित करने वाले, नवीन मेघ के समान देह (कान्ति) वाले, सुन्दर, करोड़ कन्दर्प के समान लावण्य वाले, मकराकृति कुण्डल से सुशोभित, आजानुबाहु, भगवान्, निद्रा से रहित नेत्र वाले, करोड़ सागर के समान गंभीर, काल के (भी) काल, सदाशिव, ॥५३-६०॥ ब्रह्मा को मोहित करने वाले शरीर से युक्त, गोपों एवम् वत्सों के शरीर धारण करने वाले, कोटि ब्रह्मांड के उत्पादक, ब्रह्मा के मोह को दूर करने वाले, पद्मयोनिरूप, ब्रह्मा से स्तुत, स्वामी, इन्द्र के दर्प आदि नाश करने वाले, पर्वतपूजन का उपदेश करने वाले, गोवर्धनपर्वत को उठाने वाले, शक्र से स्तुत, पूज्य, कामधेनु से प्रपूजित, सकल तीर्थों के जल से अभिषिक्त, गोविंद, गोपरक्षक, कालिय नाग का दमन करने वाले, क्रूर, नागपत्नी द्वारा स्तुत, विराट, धेनुक के शत्रु, प्रलंब के शत्रु, वृषासुर का मर्दन करने वाले, मायासुर के आत्मज का विध्वंस करने वाले, केशी के कंठ को विदीर्ण करने वाले, गोपगोप्ता, धेनुगोप्ता, दावाग्निशोषक ॥६१-६५॥ गोपकन्याओं का वस्त्र चुराने वाले, गोपबालिकाओं को वर देने वाले, यज्ञ-पत्नियों का अन्न खाने वाले, मुनियों के मान का अपहरण करने वाले, वरुण का मान मथन करने वाले, नन्द और गोपालों के प्राणरक्षक, गन्धर्व का शापमोचन करने वाले, शंखचूड का शिर हरण करने वाले, वंशीवटी (वंशीवट के समीप लीला करने वाले), वेणुवादी (वंशी बजाने वाले), गोपियों की चिन्ता दूर करने वाले, सर्वरक्षक, जोर से बुलाने वाले, सकल गोपियों की कामना पूर्ण करने वाले, व्यंग्य वचन बोलने वाले, गोपियों के समूह को मोहित करने वाले, रस-क्रीड़ा का रसास्वादन करने वाले, रसिक, राधिकापति, किशोरी के प्राणनाथ, वृषभानु की पुत्री के प्रिय, सकल गोपीजन को आनन्द देने वाले ॥६६-७०॥ गोपिकाओं के गीत सुनने वाले, गोपियों का नाच देखने वाले, गोपियों

गोपिकामार्जितमुखो गोपीव्यंजनवीजितः । गोपिकाकेशसंस्कारी गोपिकापुष्पसंतरः ॥७२॥
गोपिकाहृदयालंबी गोपीवहनतत्परः । गोपिकामदहारी च गोपिकापरमार्जितः ॥७३॥
गोपिकाकृतसंनीलो गोपिकासंस्मृतप्रियः । गोपिकावन्दितपदो गोपिकावशवर्तनः ॥७४॥
राधापराजितः श्रीमान्निकुञ्जेसुविहारवान् । कुञ्जप्रिया कुञ्जवासी वृन्दावनविकासनः ॥७५॥
यमुनाजलसिक्तांगो यमुनासौख्यदायकः । शशिसंस्तंभनः शूरः कामी कामविमोहनः ॥७६॥
कामाद्याः कामनाथश्च काममानसभेदनः । कामदः कामरूपश्च कामिनीकामसंचयः ॥७७॥
नित्यक्रीडो महालीलः सर्वः सर्वगतस्तथा । परमात्मा पराधीशः सर्वकारणकारणः (म्) ॥७८॥
गृहीतनारदवचा ह्यक्रूरपरिचिंतितः । अक्रूरवन्दितपदो गोपिकातोषकारकः ॥७९॥
अक्रूरवाक्यसंग्राही मथुरावासकारणः (म्) । अक्रूरतापशमनो रजकायुःप्रणाशनः ॥८०॥
मथुरानन्ददायी च कंसवस्त्रविलुण्ठनः । कंसवस्त्रपरीधानो गोपवस्त्रप्रदायकः ॥८१॥
सुदामगृहगामी च सुदामपरिपूजितः । तंतुवायकसंप्रीतः कुब्जाचंदनलेपनः ॥८२॥
कुब्जारूपप्रदो विज्ञो मुकुंदो विष्टरश्रवाः । सर्वज्ञो मथुरालोकी सर्वलोकाभिनंदनः ॥८३॥
कृपाकटाक्षदर्शी च दैत्यारिर्देवपालकः । सर्वदुःखप्रशमनो धनुर्भंगीमहोत्सवः ॥८४॥
कुवलयापीडहंता दंतस्कंधबलाग्रणीः । कल्परूपधरोधीरो दिव्यवस्त्रानुलेपनः ॥८५॥
मल्लरूपो महाकालः कामरूपी बलान्वितः । कंसत्रासकरो भीमो मुष्टिकांतश्च कंसहा ॥८६॥

के कन्धे पर हाथ रखने वाले, गोपियों के चुम्बन के प्रेमी, गोपियों से मुख धुलाने वाले, गोपियों से पंखा झलाने वाले, गोपियों के केश को सँवारने वाले, गोपियों से पुष्पशय्या बिछवाने वाले, गोपियों के हृदय के अवलम्ब, गोपियों का वाहन बनने वाले, गोपियों का मद चूर्ण करने वाले, गोपियों के दोष मार्जन करने वाले, गोपियों से अपने को छिपा लेने वाले, गोपियों की संस्मृति के प्रिय, गोपियों से वन्दित चरण वाले, गोपियों के वशवर्ती, राधा से पराजित, श्रीमान्, निकुंजों में विहार करने वाले, कुंजप्रिय, कुंजवासी, वृन्दावन का विकास करने वाले, ॥७१-७५॥ यमुना के जल से अंगों को सिक्त करने वाले, यमुना के सौख्यदायक, चन्द्रमा को स्तंभित करने वाले, शूर, कामी, कामविमोहन, काम के आद्य, कामनाथ, काम के मानस का भेदन करने वाले, कामद, कामरूप, कामिनियों के कामसंचय करने वाले, नित्य क्रीड़ा करने वाले, महालीला करने वाले, सर्व, सर्वगत, परमात्मा, पराधीश, अखिल कारणों के कारण, नारद के वचन को स्वीकार करने वाले, अक्रूर का परामर्श मानने वाले, अक्रूर से वन्दित चरण वाले, गोपिकाओं को संतुष्ट करने वाले, अक्रूर के वाक्यों का संग्रह करने वाले, ॥७६-८०॥ मथुरा में वास करने वाले, अक्रूर के ताप मिटाने वाले, रजक की आयु समाप्त करने वाले, मथुरा को आनन्दित करने वाले, कंस के वस्त्रों को लूटने वाले, कंस के वस्त्रों को पहनने वाले, गोपों को वस्त्र देने वाले, सुदामा के घर पर जाने वाले, सुदामा से अच्छी तरह पूजित होने वाले, तंतुवायक (दर्जी) से प्रसन्न होने वाले, कुब्जा से चंदन का लेप कराने वाले, कुब्जा को रूप देने वाले, विज्ञ, मुकुंद, विस्तृत सुयश एवं कानों वाले, सर्वज्ञ, मथुरा को आलोकित करने वाले, अखिल लोकों के प्रिय, कृपा-कटाक्ष से देखने वाले, दैत्यों के शत्रु, देवपालक, अखिल दुःखों के नाशक, धनुष को तोड़ने वाले, महान् उत्सव करने वाले, कुवलयापीड का वध करने वाले, उसके दाँतों को कंधे पर धारण करने वाले, लोगों की भावना के अनुसार रूप धारण करने वाले, धीर, दिव्य वस्त्र एवम् लेप से युक्त ॥८१-८५॥ मल्लरूप, महाकाल, कामरूपी, बली, कंस का त्रास बढ़ाने वाले, भयंकर,

चाणूरघ्नो भयहरः शलारिस्तोशलातकः । वैकुण्ठवासी कंसारिः सर्वदुष्टनिषूदनः ॥८७॥
देवदुंदुभिनिर्घोषी पितृशोकनिवारणः । यादवेंद्रः सतांनाथो यादवारिप्रमर्द्दनः ॥८८॥
शौरिशोकविनाशी च देवकीतापनाशनः । उग्रसेनपरित्राता उग्रसेनाभिपूजितः ॥८९॥
उग्रसेनाभिषेकी च उग्रसेनदयापरः । सर्वसात्वतसाक्षी च यदूनामभिनंदनः ॥९०॥
सर्वमाथुरसंसेव्यः करुणो भक्तबांधवः । सर्वगोपालधनदो गोपीगोपाललालसः ॥९१॥
शौरिदत्तोपवीती च उग्रसेनदयाकरः । गुरुभक्तो ब्रह्मचारी निगमाध्ययने रतः ॥९२॥
संकर्षणसहाध्यायी सुदामसुहृदेव च । विद्यानिधिः कलाकोशो मृतपुत्रप्रदस्तथा ॥९३॥
चक्री पांचजनी चैव सर्वनारकिमोचनः । यमार्चितः परो देवो नामोच्चारवसो (शो)ऽच्युतः ॥९४॥
कुब्जाविलासी सुभगो दीनबंधुरनूपमः । अक्रूरगृहगोप्ता च प्रतिज्ञापालकः शुभः ॥९५॥
जरासंधजयी विद्वान् यवनांतो द्विजाश्रयः । मुचुकुंदप्रियकरो जरासंधपलायितः ॥९६॥
द्वारकाजनको गूढो ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः । लीलाधरः प्रियकरो विश्वकर्मा यशःप्रदः ॥९७॥
रुक्मिणीप्रियसंदेशो रुक्मशोकविवर्द्धनः । चैद्यशोकालयः श्रेष्ठो दुष्टराजन्यनाशनः ॥९८॥
रुक्मिवैरूप्यकरणो रुक्मिणीवचने रतः । बलभद्रवचोग्राही मुक्तरुक्मी जनार्दनः ॥९९॥
रुक्मिणीप्राणनाथश्च सत्यभामापतिः स्वयम् । भक्तपक्षी भक्तिवश्यो ह्यक्रूरमणिदायकः ॥१००॥
शतधन्वाप्राणहारी ऋक्षराजसुताप्रियः । सत्राजित्तनयाकांतो मित्रविंदापहारकः ॥१०१॥
सत्यापतिर्लक्ष्मणाजित्पूज्यो भद्राप्रियंकरः । नरकासुरघाती च लीलाकन्याहरो जयी ॥१०२॥

मुष्टिक के नाशक, कंसघाती, चाणूरमर्दक, भयहारी, शल के शत्रु, तोशल के संहारक, वैकुंठवासी, कंस के अरि, अखिल दुष्टों के नाशक, देवदुदुभियों को बजाने वाले, पिता के शोक को मिटाने वाले, यादवों के प्रभु, सज्जनों के नाथ, यादवों के शत्रुओं को नष्ट करने वाले, शौरि के शोक का विनाश करने वाले, देवकीतापनाशन, उग्रसेन के रक्षक, उग्रसेन से अभिपूजित, उग्रसेन का राज्याभिषेक करने वाले, उग्रसेन के प्रति दयालु, सकल भक्तों के साक्षी, यादवों के आनन्ददायी ॥८६-९०॥

समस्त मथुरावासियों के सेवनीय, करुण, भक्तबांधव, सर्वगोपालों को धन देने वाले, गोपियों और गोपालों की लालसा को पूर्ण करने वाले,शौरि के दिये यज्ञोपवीत धारण करने वाले, गुरुभक्त, ब्रह्मचारी, वेदों के स्वाध्याय में निरत, बलराम के सहाध्यायी, सुदामा के सुहृद्, विद्यानिधि, कलाकोश, मृत पुत्र को देने वाले, चक्री, पांचजन्य नामक शंख धारण करने वाले, समस्त नरकवासी जीवों का उद्धार करने वाले, यम के पूज्य, देवश्रेष्ठ, नामोच्चारण मात्र से वशीभूत होने वाले, कुब्जा के साथ विहार करने वाले, सौभाग्यवान्, दीनबन्धु, अनुपम, अक्रूर के गृहरक्षक, प्रतिज्ञापालक, पवित्र ॥९१-९५॥ जरासंधजयी, विद्वान्, यवन के नाशक, द्विजों को आश्रय देने वाले, मुचुकुंद के प्रिय करने वाले, जरासंघ के डर से भागने वाले, द्वारका का निर्माण करने वाले, गूढ, ब्रह्मण्य, सत्यसंध, लीलाधर, प्रियकर, विश्वकर्मा, यशोदायक, रुक्मिणी को प्रिय संदेश भेजने वाले, रुक्म के शोक को बढ़ाने वाले, शिशुपाल के लिए शोक के भाण्डार, श्रेष्ठ, दुष्ट राजाओं के नाशक, रुक्मी को विरूप करने वाले, रुक्मिणी की बात मानने वाले, बलभद्र के वचन को स्वीकार करने वाले, रुक्मी को छोड़ देने वाले, जनार्दन, ॥९६-१००॥ रुक्मिणी के प्राणनाथ, सत्यभामा के पति, भक्तों का पक्ष लेने वाले, भक्तिवश्य, अक्रूर को मणि देने वाले, शतधन्वा के प्राणनाशक, जाम्बवती के प्रिय, सत्राजित् की कन्या के कांत, मित्रबिंदा का अपहरण करने वाले,

मुरारिर्मदनेशोऽपि धरित्रीदुःखनाशनः । वैनतेयी स्वर्गगामी अदित्यकुंडलप्रदः ॥१०३॥
इंद्रार्चितो रमाकांतो वज्रीभार्याप्रपूजितः । पारिजातापहारी च शक्रमानापहारकः ॥१०४॥
प्रद्युम्नजनकः सांबतातो बहुसतो विधुः । गर्गाचार्यः सत्यगतिर्धर्माधारो धराधरः ॥१०५॥
द्वारकामंडनः श्लोक्यः सुश्लोको निगमालयः । पौंड्रकप्राणहारी च काशीराजशिरोहरः ॥१०६॥
अवैष्णवविप्रदाही सुदक्षिणभयावहः । जरासंधविदारी च धर्मनन्दनयज्ञकृत् ॥१०७॥
शिशुपालशिरश्छेदी दंतवक्त्रविनाशनः । विदूरथांतकः श्रीशः श्रीदो द्विविदनाशनः ॥१०८॥
रुक्मिणीमानहारी च रुक्मिणीमानवर्द्धनः । देवर्षिशापहर्ता च द्रौपदीवाक्यपालकः ॥१०९॥
दुर्वासोभयहारी च पांचालीस्मरणागतः । पार्थदूतः पार्थमन्त्री पार्थदुःखौघनाशनः ॥११०॥
पार्थमानापहारी च पार्थजीवनदायकः । पांचाली वस्त्रदातः च विश्वपालकपालका ॥१११॥
श्वेताश्वसारथिः सत्यः सत्यसाध्यो भयापहः । सत्यसंधः सत्यरतिः सत्यप्रिय उदारधीः ॥११२॥
महासेनजयी चैव शिवसैन्यविनाशनः । बाणासुरभुजच्छेत्ता बाणबाहुवरप्रदः ॥११३॥
तार्क्ष्यमानापहारी च तार्क्ष्यतेजोविवर्द्धनः । रामस्वरूपधारी च सत्यभामामुदावहः ॥११४॥
रत्नाकरजलक्रीडो व्रजलीलाप्रदर्शकः । स्वप्रतिज्ञापरिध्वंसी भीष्माज्ञापरिपालकः ॥११५॥
वीरायुधहरः कालः कालिकेशो महाबलः । बर्बरीषशिरोहारी बर्बरीषशिरःप्रदः ॥११६॥
धर्मपुत्रजयी शूरदुर्योधनमदांतकः । गोपिकाप्रीतिनिर्बंधनित्यक्रीडो व्रजेश्वरः ॥११७॥

सत्या के पति, लक्ष्मणा को जीतने वाले, पूज्य, भद्रा का प्रिय करने वाले, नरकासुर का वध करने वाले, लीला से कन्याओं का अपहरण करने वाले, विजयी, मुरारि, मदनेश, धरित्री के दुःख दूर करने वाले, गरुड़ को रखने वाले, स्वर्ग जाने वाले, अदिति को कुण्डल देने वाले, शक्र से अर्चित, रमाकांत, इन्द्राणी से पूजित, कल्पवृक्ष के अपहर्ता, इन्द्र के मानहारी, प्रद्युम्न के पिता, माता-पिता वाले, बहुपुत्र वाले, चन्द्र के रूप, गर्गाचार्य के रूप, सत्यगति, धर्माधार, धराधर, द्वारकाभूषण, स्तुत्य, यशस्वी, निगमालय, पौंड्रक के प्राणहर्ता, काशीराज का शिर काटने वाले, अवैष्णव ब्राह्मणों का दहन करने वाले, सुदक्षिण को भयभीत करने वाले, जरासंध को विदीर्ण करने वाले, युधिष्ठिर को यज्ञ कराने वाले, शिशुपाल का शिरश्छेदन करने वाले, दंतवक्त्र का विनाश करने वाले, विदूरथ का अंत करने वाले, श्रीश, श्रीदायक, द्विविदनाशक, रुक्मिणीमानहारी, रुक्मिणीमानवर्धक, देवर्षि के शाप का हरण करने वाले, द्रौपदी के वचन का पालन करने वाले ॥१०१-१०९॥ दुर्वासा द्वारा उपस्थित भय को दूर करने वाले, पांचाली के स्मरण करते ही आने वाले, पार्थदूत, पार्थमन्त्री, पार्थ के दुःख-समूह को नाश करने वाले, पार्थ के मान का अपहरण करने वाले, पार्थ को जीवन प्रदान करने वाले, द्रौपदी को वस्त्र देने वाले, विश्वपालक के पालक, श्वेताश्व के सारथि, सत्य, सत्यसाध्य, भय दूर करने वाले, सत्यसंध, सत्यरति, सत्यप्रिय, उदार बुद्धि वाले, महासेन के विजेता, शिव की सेना का नाश करने वाले, बाणासुर की भुजाओं का छेदन करने वाले, बाण को बाहुओं का वर देने वाले, गरुड़ के मान का अपहरण करने वाले, तार्क्ष्य के तेज को बढ़ाने वाले, रामस्वरूपधारी, सत्यभामा को आनन्द देने वाले, समुद्र के जल में क्रीड़ा करने वाले, व्रज में लीला दिखाने वाले, अपनी प्रतिज्ञा का ध्वंस करने वाले, भीष्म की आज्ञा का परिपालन करने वाले ॥११०-११५॥

वीरों के अस्त्र हरण करने वाले, काल, कालिकेश, महाबली, बर्बरीष के शिर का अपहरण करने वाले, बर्बरीष को शिर देने वाले, युधिष्ठिर को जिताने वाले, वीर दुर्योधन के मद को चूर्ण करने वाले, गोपियों के प्रेमपाश

राधाकुण्डरतिर्धन्यः सदांदोलसमाश्रितः । सदामधुवनानन्दी सदावृन्दावनप्रियः ॥११८॥
अशोकवनसन्नद्धः सदातिलकसंगतः । सदागोवर्द्धनरतिः सदा गोकुलवल्लभः ॥११९॥
भांडीरवटसंवासी नित्यं वंशोवटस्थितः । नन्दग्रामकृतावासो वृषभानुग्रहप्रियः ॥१२०॥
गृहीतकामिनीरूपो नित्यं रासविलासकृत् । वल्लवीजनसंगोप्ता वल्लवीजनवल्लभः ॥१२१॥
देवशर्म कृपाकर्ता कल्पपादपसंस्थितः । शिलानुगन्धनिलयः पादचारी घनच्छविः ॥१२२॥
अतसीकुसुमप्रख्यः सदा लक्ष्मीकृपाकरः । त्रिपुरारि प्रियकरो ह्युग्रधन्वापराजितः ॥१२३॥
षड्धुरध्वंसकर्ता च निकुंभप्राणहारकः । वज्रनाभपुरध्वंसी पौंड्रकप्राणहारकः ॥१२४॥
बहुलाश्वप्रीतिकर्ता द्विजवर्यप्रियंकरः । शिवसंकटहारी च वृकासुरविनाशनः ॥१२५॥
भृगुसत्कारकारी च शिवसात्त्विकताप्रदः । गोकर्णपूजकः सांबकुष्ठविध्वंसकारणः ॥१२६॥
वेदस्तुतो वेदवेत्ता यदुवंशविवर्द्धनः । यदुवंशविनाशी च उद्धवोद्धारकारकः ॥१२७॥
राधा च राधिका चैव आनंदा वृषभानुजा । वृन्दावनेश्वरी पुण्या कृष्णमानसहारिणी ॥१२८॥
प्रगल्भा चतुरा कामा कामिनी हरिमोहिनी । ललिता मधुरा माध्वी किशोरी कनकप्रभा ॥१२९॥
जितचंद्रा जितमृगा जितसिंहा जितद्विपा । जितरंभा जितपिका गोविंदहृदयोद्भवा ॥१३०॥
जितबिंबा जितशुका जितपद्मा कुमारिका । श्रीकृष्णाकर्षणा देवी नित्यं युग्मस्वरूपिणी ॥१३१॥
नित्यं विहारिणी कांता रसिका कृष्णवल्लभा । आमोदिनी मोदवती नंदनंदनभूषिता ॥१३२॥
दिव्यांबरा दिव्यहारा मुक्तामणिविभूषिता । कुञ्जप्रिया कुञ्जवासा कुञ्जनायकनायिका ॥१३३॥

में बंध कर नित्य क्रीड़ा करने वाले, व्रज के ईश्वर, राधाकुण्ड से अनुराग रखने वाले, धन्य, सदा झूले पर झूलने वाले, सदा मधुवन में आनन्द करने वाले, वृन्दावन के शाश्वत प्रेमी, अशोकवन में रहने वाले, तिलक लगाने वाले, गोवर्द्धन से स्नेह करने वाले, सदा गोकुलवल्लभ, भांडीरवट पर वास करने वाले, वन्शीवट पर स्थित, नन्दीग्राम में वास करने वाले, वृषभानु-कुमारी के प्रिय, कामिनी का रूप धारण करने वाले, नित्य रासलीला करने वाले, गोपीजनों के संरक्षक, गोपियों के प्रिय, देवशर्मा के ऊपर कृपा करने वाले, कल्पवृक्ष पर रहने वाले, सुगन्धित पदार्थों से युक्त, पैदल चलने वाले, मेघ के समान कान्ति वाले, अलसी के पुष्प के सदृश आभा वाले, सदा लक्ष्मीवान्, शिव के प्रियकर्ता, उग्रधन्वा से अपराजित, षड्धुर के ध्वंसक, निकुंभ के प्राण-हर्ता, वज्रनाभपुर के विध्वंसी, पौंड्रकप्राणहारी, बहुलाश्व से प्रीति करने वाले, द्विजवर्य के प्रिय करने वाले, शिव के संकट को दूर करने वाले, वृकासुर के विनाशक, भृगु का सत्कार करने वाले, शिव को सात्त्विकता प्रदान करने वाले, गोकर्णपूजक, सांब के कुष्ठ-विध्वंस के कारण, वेदस्तुत, वेदवेत्ता, यदुवंश को बढ़ाने वाले, यदुवंशविनाशी, उद्धव के उद्धारकर्ता ॥११६-१२७॥

राधा, राधिका, आनन्दा, वृषभानुजा, वृन्दावनेश्वरी, पुण्या, कृष्णमानसहारिणी, प्रगल्भा, चतुरा, कामा, कामिनी, हरिमोहिनी, ललिता, मधुरा, माध्वी, किशोरी, कनकप्रभा, जितचंद्रा जितमृगा, जितसिंहा, जितद्विपा; जित-रंभा, जितपिका, गोविंदहृदयोद्भवा, जितबिंबा, जितशुका, जितपद्मा, कुमारिका, श्रीकृष्ण को आकर्षित करने वाली; नित्य युगल रूप को धारण करने वाली, नित्य विहार करने वाली, कांता, रसिका, कृष्णवल्लभा, आमोदिनी, मोदवती, नन्दनन्दन-भूषिता, दिव्याम्बरा, दिव्यहारा, मुक्तामणिविभूषिता, कुन्जप्रिया, कुञ्जवासा, कुञ्जनायक-नायिका, चा रूपा, चारुवक्त्रया, सुन्दर सुवर्ण के केयूर को धारण करने वाली, शुभा, श्रीकृष्णवेणुसंगीता (श्रीकृष्ण

चारुरूपा चारुवक्त्रा चारुहेमांगदा शुभा । श्रीकृष्णवेणुसंगीता मुरलीहारिणी शिवा ॥१३४॥
भद्रा भगवती शांता कुमुदा सुन्दरी प्रिया । कृष्णक्रीडा कृष्णरतिः श्रीकृष्णसहचारिणी ॥१३५॥
वंशीवटप्रियस्थाना युग्मायुग्मस्वरूपिणी । भांडीरवासिनी शुभ्रा गोपीनाथप्रिया सखी ॥१३६॥
श्रुतिनःश्वसिता दिव्या गोविंदरसदायिनी । श्रीकृष्णप्रार्थनीशाना महानन्दप्रदायिनी ॥१३७॥
वैकुंठजनसंसेव्या कोटिलक्ष्मीसुखावहा । कोटिकंदर्पलावण्या रतिकोटिरतिप्रदा ॥१३८॥
भक्तिग्राह्या भक्तिरूपा लावण्यसरसी उमा । ब्रह्मरुद्रादिसंराध्या नित्यं कौतुहलान्विता ॥१३९॥
नित्यलीला नित्यकामा नित्यशृंगारभूषिता । नित्यवृन्दावनरसा नन्दनन्दनसंयुता ॥१४०॥
गोपिकामण्डलीयुक्ता नित्यं गोपालसंगता । गोरसक्षेपणी शूरा सानन्दा नन्ददायिनी ॥१४१॥
महालीला प्रकृष्टा च नागरी नगचारिणी । नित्यमाघूर्णिता पूर्णा कस्तूरीतिलकान्विता ॥१४२॥
पद्मा श्यामा मृगाक्षी च सिद्धिरूपा रसावहा । कोटिचन्द्रानना गौरी कोटिकोकिलसुस्वरा ॥१४३॥
शीलसौंदर्यनिलया नन्दनन्दनलालिता । अशोकवनसंवासा भांडीरवनसङ्गता ॥१४४॥
कल्पद्रुमतलाविष्टा कृष्णा विश्वा हरिप्रिया । अजागम्या भवागम्या गोवर्द्धनकृतालया ॥१४५॥
यमुनातीरनिलया शश्वद्गोविंदजल्पिनी । शश्वन्मानवती स्निग्धा श्रीकृष्णपरिवन्दिता ॥१४६॥
कृष्णस्तुता कृष्णवृता श्रीकृष्णहृदयालया । देवद्रुमफला सेव्या वृन्दावनरसालया ॥१४७॥
कोटितीर्थमयी सत्या कोटितीर्थफलप्रदा । कोटियोगसुदुष्प्राप्या कोटियज्ञदुराश्रया ॥१४८॥
मनसा शशिलेखा च श्रीकोटिसुभगाऽनघा । कोटिमुक्तसुखा सौम्या लक्ष्मीकोटिविलासिनी ॥१४९॥

द्वारा मुरली में जिनके नाम और यश का ज्ञान किया जाता है); मुरलीहारिणी, शिवा, भद्रा, भगवती, शांता, कुमुदा, सुन्दरी, प्रिया, कृष्णक्रीडा, कृष्णरति, श्रीकृष्ण को सहचारिणी, वंशीवट को अपना प्रिय स्थान समझने वाली, युगलरूपा और एकरूपा, भांडीरवासिनी, शुभ्रा, गोपीनाथप्रिया, सखी ॥१२८-१३६॥ श्रुति के निःश्वास से उत्पन्न, दिव्य, गोविन्दरसदायिनी, श्रीकृष्ण को प्रार्थना करने वाली, ईश्वरी, महानन्दप्रदायिनी, वैकुण्ठवासियों से सेवनीया, कोटि लक्ष्मी के समान सुख देने वाली, कोटि कन्दर्प के समान सुन्दरी, करोड़ रतियों के बराबर रति देने वाली, भक्ति से ग्रहण करने योग्य, भक्तिरूपा, लावण्यसरोवर, उमा, ब्रह्मा और रुद्र आदि से पूज्य, नित्यलीला करने वाली, नित्यकाम, नित्यशृंगार से विभूषित नित्य कौतूहल से युक्त, नित्य वृन्दावन का रस लेने वाली, श्रीकृष्ण के साथ रहने वाली, गोपियों की मण्डली से युक्त, नित्य गोपाल से संगति करने वाली, गोरस को फेंकने वाली, शूरा, आनन्दसहित, आनन्ददायिनी, महालीला करने वाली, उत्तमा, नागरी, नगचारिणी, नित्य घूमने वाली, पूर्णा, कस्तूरी का तिलक लगाने वाली, पद्मा, श्यामा, मृगाक्षी, सिद्धिरूपा, रस देने वाली, करोड़ चन्द्रमा के समान मुख वाली, गौरी, करोड़ कोयल के समान सुस्वर वाली, शील और सौन्दर्य की आधारभूता, नन्दनन्दन से लालित, अशोकवन में वास करने वाली, भांडीरवन में जाने वाली, कल्पद्रुम की लताओं से आवेष्टित होने वाली, कृष्णा, विश्वा, हरिप्रिया, विष्णु से प्राप्य, शंकर से प्राप्य, गोवर्धन पर रहने वाली, यमुनातीर पर रहने वाली, सदा गोविन्द नाम का उच्चारण करने वाली, सदा मान करने वाली, स्निग्धा, श्रीकृष्ण से परिवन्दित ॥१३७-१४६॥

कृष्ण से स्तुत, कृष्ण से आवृत, श्रीकृष्ण के हृदय में रहने वाली, कल्पवृक्ष के फलों का उपभोग करने वाली, सेव्या, वृन्दावन के रस का आस्वादन करने वाली, कोटितीर्थमयी, सत्या, कोटि तीर्थों का फल देने वाली, करोड़ों प्रकार के योगसाधनों से दुष्प्राप्य, करोड़ों यज्ञ करने से भी दुष्प्राप्य, मनसा नाम से प्रसिद्ध, शशिलेखा, करोड़

तिलोत्तमा त्रिकालस्था त्रिकालज्ञाप्यधीश्वरी । त्रिवेदज्ञा त्रिलोकज्ञा तृतीयांतनिवासिनी ॥१५०॥
दुर्गाराध्या रमाराध्या विश्वाराध्या चिदात्मिका । देवाराध्या पराराध्या ब्रह्माराध्या परात्मिका
शिवाराध्या प्रेमसाध्या भक्ताराध्या रसात्मिका । कृष्णप्राणार्पिणी भामा शुद्धप्रेमविलासिनी ॥१५२॥
कृष्णाराध्या भक्तिसाध्या भक्तवृन्दनिषेविता । विश्वाधारा कृपाधारा जीवधारातिनायिका ॥१५३॥
शुद्धप्रेममयी लज्जा नित्यसिद्धा शिरोमणिः । दिव्यरूपा दिव्यभोगा दिव्यवेषा मुदान्विता ॥१५४॥
दिव्यांगनावृन्दसारा नित्यनूतनयौवना । परब्रह्मावृता ध्येया महारूपा महोज्ज्वला ॥१५५॥
कोटिसूर्यप्रभा कोटिचन्द्रबिंबाधिकच्छविः । कोमलामृतवागाद्या वेदाद्या वेददुर्लभा ॥१५६॥
कृष्णासक्ता कृष्णभक्ता चन्द्रावलिनिषेविता । कलाषोडशसंपूर्णा कृष्णदेहार्द्धधारिणी ॥१५७॥
कृष्णबुद्धिः कृष्णसारा कृष्णरूपविहारिणी । कृष्णकान्ता कृष्णधना कृष्णमोहनकारिणी ॥१५८॥
कृष्णदृष्टिः कृष्णगोत्री कृष्णदेवी कुलोद्वहा । सर्वभूतस्थितावात्मा सर्वलोकनमस्कृता ॥१५९॥
कृष्णदात्री प्रेमधात्री स्वर्णगात्री मनोरमा । नगधात्री यशोदात्री महादेवी शुभंकरी ॥१६०॥
श्रीशेषदेवजननी अवतारगणप्रसूः । उत्पलांकारविंदांका प्रसादांका द्वितीयका ॥१६१॥
रथांका कुंजरांका च कुंडलांकपदस्थिता । छत्रांका विद्युदंका च पुष्पमालांकितापि च ॥१६२॥
दंडांका मुकुटांका च पूर्णचन्द्रा शुकांकिता । कृष्णान्नाहारपाका च वृन्दाकुंजविहारिणी ॥१६३॥

लक्ष्मियों के समान सौभाग्यवती, पापरहिता, करोड़ मुक्त जीवों के समान सुख प्राप्त करने वाली, सौम्य स्वभाव वाली, कोटि लक्ष्मी के समान विलास करने वाली, तिलोत्तमा से अधिक सुन्दरी, त्रिकालस्था, त्रिकालज्ञा, ईश्वरी, त्रिवेदज्ञा, त्रिलोकज्ञा, चतुर्थ (नाद) के अन्त में निवास करने वाली, दुर्गा से आराध्य, लक्ष्मी से आराध्य, विश्व से आराध्य, चिदात्मिका, देवाराध्य, पराराध्य, ब्रह्माराध्य, परात्मिका, शिवाराध्य, प्रेमसाध्य, भक्ताराध्य, रसात्मिका, कृष्ण को प्राण समर्पण करने वाली, भामा, शुद्ध प्रेम से विलास करने वाली, कृष्ण से आराध्य, भक्ति से साध्य, भक्तवृन्द से सुसेवित, विश्व की आधार, कृपा की आधार, जीवों की आधार, अतिनायिका, शुद्ध-प्रेममयी, लज्जा, नित्यसिद्धा, शिरोमणि, दिव्यरूपा, दिव्यभोगा दिव्यवेषा, हर्षयुक्ता, दिव्यांगनाओं में सबसे उत्तम, नित्य नूतन यौवन धारण करनेवाली, परब्रह्म से आवृत, ध्यान करने योग्य, महारूपवाली, अत्यन्त उज्ज्वल, कोटि सूर्य के समान प्रभावाली, करोड़ चन्द्रबिंबों से अधिक छवि वाली, कोमल तथा अमृतोपम वचन बोलने वाली, आद्या, वेदाद्या, वेददुर्लभा, कृष्ण में आसक्त, कृष्णभक्त, चंद्रावलि से सुसेवित, सोलहों कला से परिपूर्ण, कृष्ण का अर्द्ध शरीर धारण करने वाली, कृष्णबुद्धि, कृष्णसारा, कृष्णरूप से विहार करने वाली, कृष्ण-कांता, कृष्णधना, कृष्ण को मोहित करनेवाली, कृष्णदृष्टि, कृष्णगोत्री, कृष्णदेवी, वंश धारण करनेवाली, अखिल प्राणियों में स्थित, आत्मरूपिणी, सर्वलोकवन्द्या, कृष्णदात्री, प्रेमधात्री, स्वर्णगात्री, मनोरमा, नगधात्री, यशोदात्री, महादेवी, शुभंकरी ॥१४७--१६०॥ श्रीशेषदेव की जननी, अवतार-समूह का प्रसव करने वाली, नीलकमल से अंकित, लाल कमल से चिह्नित, प्रसाद गुण से युक्त, अद्वितीय, रथ के चिह्न से युक्त, हाथी के चिह्न से युक्त, कुंडलांकित आसन पर बैठने वाली, छत्रांकित, बिजली का चिह्न धारण करने वाली, पुष्पमाला से अंकित, दंड एवं मुकुट के चिह्न धारण करने वाली, पूर्णचंद्रा, शुक के चिह्न के युक्त, कृष्ण के लिये भोजन बनाने

कृष्णप्रबोधनकरी कृष्णशेषान्नभोजनी । पद्मकेशरमध्यस्था संगीतागमवेदिनी ॥१६४॥
कोटिकल्पांतभ्रूभंगा अप्राप्तप्रलयाच्युता । सर्वसत्वनिधिः पद्मशंखादिनिधिसेविता ॥१६५॥
अणिमादिगुणैश्वर्या देववृन्दविमोहिनी । सर्वानन्दप्रदा सर्वा सुवर्णलतिकाकृतिः ॥१६६॥
कृष्णाभिसारसंकेता मालिनी नृत्यपंडिता । गोपीसिंधुसकाशाह्वा गोपमंडपशोभिनी ॥१६७॥
श्रीकृष्णप्रीतिदा भीता प्रत्यंगपुलकांचिता । श्रीकृष्णालिंगनरता गोविंदविरहाक्षमा ॥१६८॥
अनंतगुणसंपन्ना कृष्णकीर्तनलालसा । बीजत्रयमयी मूर्तिः कृष्णानुग्रहवांछिता ॥१६९॥
विमलादिनिषेव्या च ललिताद्यार्चिता सती । पद्मवृन्दस्थिता हृष्टा त्रिपुरापरिसेविता ॥१७०॥
वृन्तावत्यर्चिता श्रद्धा दुर्ज्ञेया भक्तवल्लभा । दुर्लभासांद्रसौख्यात्मा श्रेयोहेतुः सुभोगदा ॥१७१॥
सारंगा शारदा बोधा सद्वृंदावनचारिणी । ब्रह्मानन्दा चिदानन्दा ध्यानानन्दार्द्धमात्रिका ॥१७२॥
गंधर्वा सुरतज्ञा च गोविंदप्राणसंगमा । कृष्णांगभूषणा रत्नभूषणा स्वर्णभूषिता ॥१७३॥
श्रीकृष्णहृदयावासमुक्ताकनकनालि(सि)का । सद्रत्नकंकणयुता श्रीमन्नीलगिरिस्थिता ॥१७४॥
स्वर्णनूपुरसंपन्ना स्वर्णकिंकिणिमंडिता । अशेषरासकुतुका रंभोरूस्तनुमध्यमा ॥१७५॥
पराकृतिः परानन्दा परस्वर्गविहारिणी । प्रसूनकबरी चित्रा महासिंदूरसुन्दरी ॥१७६॥
कैशोरवयसा बाला प्रमदाकुलशेखरा । कृष्णाधरसुधास्वादा श्यामप्रेमविनोदिनी ॥१७७॥
शिखिपिच्छलसच्चूडा स्वर्णचंपकभूषिता । कुंकुमालक्तकस्तूरीमंडिता चापराजिता ॥१७८॥

वाली, वृन्दावन के कुंजों में विहार करने वाली, कृष्ण को जगाने वाली, कृष्ण से बचे अन्न को खाने वाली, पद्मकेसर के मध्य में रहने वाली, संगीत एवम् आगम शास्त्र को जानने वाली, भ्रूभंग से करोड़ों कल्पों का अन्त कर देने वाली, प्रलय में भी नष्ट न होने वाली, अखिल प्राणियों की निधि, पद्म शंख आदि निधियों से सेवित ॥१६१-१६५॥

अणिमा आदि ऐश्वर्यों से युक्त, देव समूह को मोहित करने वाली, सबको आनन्द देने वाली, स्वर्णलता के समान आकृति वाली, कृष्ण की अभिसारिका, माला धारण करने वाली, नृत्य करने में कुशल, गोपीसमुदायरूपी सिंधु में प्राप्त होने वाली, गोपमंडप को सुशोभित करने वाली, श्रीकृष्ण को प्रीति देने वाली, उनसे डरने वाली, प्रत्यंग में हर्ष से रोमाञ्चित होने वाली, श्रीकृष्ण के आलिंगन में निरत रहने वाली, गोविंद के विरह को न सहने वाली, अनंत गुणों से सम्पन्न, कृष्ण-कीर्तन की लालसा करने वाली, तीनों बीजों की मूर्ति, कृष्ण के अनुग्रह की इच्छा करने वाली, विमला आदि से सेवित, ललिता आदि से अर्चित, सती, कमलराशि पर अवस्थित, हृष्टा, त्रिपुरा से सुसेवित, वृंतावती से पूजित, श्रद्धा, दुर्ज्ञेया, भक्तवल्लभा, दुर्लभा, अत्यन्त सुखोपभोग करने वाली, कल्याणहेतु, सौभाग्य देने वाली, आभूषणयुक्ता, शारदा, बुद्धिस्वरूपा, सुन्दर वृन्दावन में विचरण करने वाली, ब्रह्मानन्दा, चिदानंदा, ध्यानानंदा, अर्धमात्रिका, गंधर्वा, सुरतज्ञा, गोविंद की प्राणप्रिया, कृष्ण के अंगों को भूषित करने वाली, रत्नभूषणा, स्वर्णभूषिता, श्रीकृष्ण के हृदय में वास करने वाली, मोती एवम् सोने का आभूषण धारण करने वाली, उत्तम रत्नों के बने कंगन पहनने वाली, रत्नाढ्य नीलगिरि पर रहने वाली, सोने का नूपुर पहनने वाली, सोने की किंकिणियों से आभूषित, महारास के लिए उत्कण्ठित रहने वाली, कदली के समान जंघा वाली ॥१६६—१७५॥ क्षीण कटि वाली, उत्तम आकृति वाली, विशिष्ट आनंद का उपभोग करने वाली, स्वर्ग में अत्यन्त विहार करने वाली, केशपाश (जूड़े) को पुष्पों से सुसज्जित करने वाली, चित्र-विचित्र रूप बनाने वाली, महासिंदूर से सौंदर्य को बढ़ानेवाली, किशोर अवस्था वाली, बाला, ललनाओं की शिरोमुकुट,

हेमहारान्वितापुष्पा हाराढ्या रसवत्यपि । माधुर्य्यं मधुरा पद्मा पद्महस्ता सुविश्रुता ॥१७९॥
भ्रू भंगाभंगकोदंडकटाक्षशरसंधिनी । शेषदेवा शिरस्था च नित्यस्थलविहारिणी ॥१८०॥
कारुण्यजलमध्यस्था नित्यमत्ताधिरोहिणी । अष्टभाषवती चाष्टनायिका लक्षणान्विता ॥१८१॥
सुनीतिज्ञा श्रुतिज्ञा च सर्वज्ञा दुःखहारिणी । रजोगुणेश्वरी चैव जरच्चंद्रनिभानना ॥१८२॥
केतकीकुसुमाभासा सदा सिंधुवनस्थिता । हेमपुष्पाधिककरा पञ्चशक्तिमयी हिता ॥१८३॥
स्तनकुंभी नराढ्या च क्षीणापुण्या यशस्विनी । वैराजसूयजननी श्रीशा भुवनमोहिनी ॥१८४॥
महाशोभा महामाया महाकांतिर्महास्मृतिः । महामोहा महाविद्या महाकीर्तिर्महारतिः॥१८५॥
महाधैर्या महावीर्या महाशक्तिर्महाद्युतिः । महागौरी महासंपन्महाभोगविलासिनी ॥१८६॥
समया भक्तिदाशोका वात्सल्यरसदायिनी । सुहृद्भक्तिप्रदा स्वच्छा माधुर्यरसवर्षिणी ॥१८७॥
भावभक्तिप्रदा शुद्धप्रेमभक्तविधायिनी । गोपरामाभिरामा च क्रीडारामा परेश्वरी ॥१८८॥
नित्यरामा चात्मरामा कृष्णरामा रमेश्वरी । एकानेकजगद्व्याप्ता विश्वलीलाप्रकाशिनी ॥१८९॥
सरस्वतीशा दुर्गेशा जगदीशा जगद्विधिः । विष्णुवंशनिवासा च विष्णुवंशसमुद्भवा ॥१९०॥
विष्णुवंशस्तुता कर्त्री विष्णुवंशावनी सदा । आरामस्था वनस्था च सूर्य्यपुत्र्यवगाहिनी ॥१९१॥
प्रीतिस्था नित्ययंत्रस्था गोलोकस्था विभूतिदा । स्वानुभूतिस्थिता व्यक्ता सर्वलोकनिवासिनी ॥१९२॥
अमृता ह्यद्भुता श्रीमन्नारायणसमीडिता । अक्षरापि च कूटस्था महापुरुषसंभवा ॥१९३॥

कृष्ण के अधरामृत का स्वाद लेने वाली, कृष्ण-प्रेम से विनोद करने वाली, मयूर-पंख से सुशोभित मुकुट वाली, कनकचंपा से विभूषित, कुंकुम, महावर तथा कस्तूरी से अलंकृत, पराजित न होने वाली, स्वर्णहार से युक्त, पुष्प धारण करने वाली, हारों से सम्पन्न, रसवती, माधुर्यमधुरा, पद्मा, पद्महस्ता, अत्यन्त प्रसिद्धा, भ्रू-भंग रूपी धनुष पर कटाक्ष रूपी बाण चढ़ाने वाली, अनन्तशेष के शिर पर रहने वाली, नित्य स्थल पर विहार करनेवाली, करुणा रूपी जल के मध्य में रहने वाली, नित्य हाथी पर चढ़ने वाली, आठ भाषाओं को जानने वाली, आठ प्रकार की नायिकाओं के लक्षण से संपन्न, सुनीतिज्ञा, श्रुतिज्ञा, सर्वज्ञा, दुःखहारिणी, रजोगुणेश्वरी, शरत्कालीन चन्द्र के समान मुख वाली, केतकी पुष्प के समान कान्तिवाली, सदा सिंधुवन में रहने वाली, हाथों में चम्पा के पुष्प रखने वाली, पंच शक्तिमयी, कल्याणकारिणी, कुंभस्तनी, नरसंपन्ना, क्षीणा, पुण्या, यशस्विनी, राजसूयजननी, श्री, ईशा, भुवनमोहिनी, महाशोभा, महामाया, महाकांति, महास्मृति, महामोहा, महाविद्या, महाकीर्ति, महारति, ॥१७६-१८५॥ महाधैर्या, महावीर्या, महाशक्ति, महाद्युति, महागौरी, महासंपत्ति, महाभोग-विलासिनी, शीघ्र भक्ति प्रदान करने वाली; शोकरहिता, वात्सल्यरस को देने वाली, अंतरंग व्यक्ति को भक्ति समर्पित करने वाली, स्वच्छा, माधुर्यरस की वर्षा करने वाली, भाव एवम् भक्ति प्रदान करने वाली, शुद्ध प्रेम तथा भक्ति प्रदान करने वाली, गोपों को आनन्द देने वाली, अभिरामा, क्रीडाशीला, परेश्वरी, नित्य रमण करने वाली, आत्मा में रमण करने वाली, कृष्ण तथा राम का स्वरूप धारण करने वाली रमा, ईश्वरी, अद्वितीया, संपूर्ण जगत् में व्याप्त होने वाली, विश्व-लीला का प्रकाश करने वाली, सरस्वती की ईश्वरी, दुर्गा की ईश्वरी, जगदीश्वरी, जगद्-विधात्री, विष्णु के वंश में निवास करने वाली, विष्णुवंश में समुत्पन्न, विष्णुवंश में स्तुत होने वाली, कर्त्री, सदा विष्णु-वंश की रक्षा करने वाली, उद्यान में रहने वाली, वन में रहने वाली, यमुना में स्नान करने वाली, प्रेम में निवास करने वाली, नित्य यंत्र में रहनेवाली, गोलोक में रहनेवाली, ऐश्वर्य देने वाली, अपनी अनुभूति में रहने वाली, अव्यक्त स्वरूपा,

औदार्यभावसाध्या च स्थूलसूक्ष्मातिरूपिणी । शिरीषपुष्पमृदुला गांगेयमुकुरप्रभा ॥१९४॥
नीलोत्पलजिताक्षी च सद्रत्नकवरान्विता । प्रेमपर्यंकनिलया तेजोमंडलमध्यगा ॥१९५॥
कृष्णांगगोपनाऽभेदा लीलावरणनायिका । सुधासिंधुसमुल्लासामृतास्यंदविधायिनी ॥ १९६॥
कृष्णचित्ता रासचित्ता प्रेमचित्ता हरिप्रिया । अचिंतनगुणग्रामा कृष्णलीला मलापहा ॥१९७॥
राससिंधुशशांका च रासमंडलमंडिनी । नतव्रता सिंहरीच्छा सुमूर्तिः सुरवंदिता ॥१९८॥
गोपीचूडामणिर्गोपी गणेड्या विरजाधिका । गोपप्रेष्ठा गोपकन्या गोपनारी सुगोपिका ॥१९९॥
गोपधामा सुदामांबा गोपाली गोपमोहिनी । गोपभूषा कृष्णभूषा श्रीवृन्दावनचंद्रिका ॥२००॥
वीणादिघोषनिरता रासोत्सवविकासिनी । कृष्णचेष्टा परिज्ञाता कोटिकंदर्पमोहिनी ॥२०१॥
श्रीकृष्णगुणनागाढ्या देवसुन्दरिमोहिनी । कृष्णचंद्रमनोज्ञा च कृष्णदेवसहोदरी ॥२०२॥
कृष्णाभिलाषिणी कृष्णप्रेमानुग्रहवांछिता । क्षेमा च मधुरालापा भुवोमाया सुभद्रिका ॥२०३॥
प्रकृतिः परमानंदा नीपद्रुमतलस्थिता । कृपाकटाक्षा बिंबोष्ठी रंभा चारुनितंबिनी ॥२०४॥
स्मरकेलिनिधाना च गंडताटंकमंडिता । हेमाद्रिकांतिरुचिरा प्रेमाद्या मदमंथरा ॥२०५॥
कृष्णचिंता प्रेमचिंता रतिचिंता च कृष्णदा । रासचिंता भावचिंता शुद्धचिंता महारसा ॥२०६॥

अखिललोकनिवासिनी, अमृतरूपा, अद्भुतरूपा, श्रीमन्नारायण के समान स्तुत्य होने वाली, अक्षरस्वरूपा, कूटस्था (एकरस परमात्मरूपा), महापुरुष से उत्पन्न होने वाली, उदारभाव से उपासना करने योग्य, अत्यन्त स्थूल एवम् सूक्ष्म रूप वाली, शिरीष पुष्प के समान मृदुल, सुवर्ण तथा शीशे के समान प्रभावाली, नीलकमल को पराजित करने वाले नेत्रों से युक्त, उत्तम रत्नों से सुशोभित चोटी वाली, प्रेम पर्यंक पर शयन करने वाली, तेजोमंडल के बीच गमन करने वाली ॥१८६-१९५॥

कृष्ण की अंगरक्षिका, कृष्ण से अभिन्न, खेल में नायिका का भाग लेने वाली, सुधासिंधु को तरंगित करने वाली, अमृतवर्षा करने वाली, कृष्ण में चित्त को लगाने वाली, रास में दत्तचित्त, प्रेमार्द्र चित्त वाली, हरि की प्रिया, अचिन्त्य गुणों वाली, कृष्ण के साथ विलास करने वाली, मल दूर करने वाली, राससिंधु के लिए चन्द्रमा-स्वरूपा, रासमंडली को मंडित करने वाली, व्रतशीला, सिंह तथा रीछ का वाहन करने वाली, सुन्दर रूप वाली, देवों से वंदिता, गोपियों की चूडामणि, गोपीवृन्द से स्तुत्य, विरजा नाम वाली, उत्तम सखी, गोपों की अतिशय प्रिय, गोपकन्या, गोपनारी, सुगोपिका, गोपधामा, सुदामा की माता, गोपाली, गोपमोहिनी, गोपभूषा, कृष्णभूषा, श्रीवृन्दावन की चंद्रिका, वीणा बजाने में निरत, रासोत्सव करने वाली, कृष्ण की तरह चेष्टा करने वाली, अत्यन्त परिचित, कोटिकंदर्पमोहिनी, श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन करने वाली, देव-सुन्दरियों को मोहित करने वाली, कृष्ण चन्द्र की तरह मनोरम, कृष्णदेव की सहोदरी (अर्थात् योगमायारूप में यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होने वाली), कृष्ण की अभिलाषा करने वाली, कृष्ण के प्रेम एवम् अनुग्रह की इच्छुक, कल्याण करने वाली, मधुर भाषण करने वाली, पृथ्वी पर माया कहलाने वाली, सुभद्रिका, प्रकृति, परमानन्दरूपिणी, कदम्ब वृक्ष के नीचे रहने वाली, कृपाकटाक्ष करने वाली, बिंबोष्ठी, कदलीस्तम्भ की तरह जंघा वाली, शोभन नितम्ब वाली, कामक्रीडा-निधान, कपोल की शोभा बढाने वाले कर्णाभूषणों से युक्त, सुमेरु पर्वत की तरह मनोहर कांति वाली, आद्यप्रेमस्वरूपा, मद से अलसानेवाली ॥१९६-२०५॥ कृष्ण का चिन्तन करने वाली, प्रेमचिन्तन करने वाली, अतिचिन्तन करने वाली कृष्णभक्ति प्रदान करने वाली, शुद्ध चिन्तन

कृष्णादृष्टिवृष्टियुगा दृष्टिपश्चिमविनिदिनी । कन्दर्पजननी मुख्या वैकुण्ठगतिदायिनी ॥२०७॥
रासभावा प्रियाश्लिष्टा प्रेष्ठा प्रथमनायिका । शुद्धा सुधादेहिनी च श्रीरामा रसमञ्जरी ॥२०८॥
सुप्रभावा शुभाचारा स्वर्णदी नर्मदांबिका । गोमती चंद्रभागेड्या सरयूस्ताम्रपर्णिसूः ॥२०९॥
निष्कलंकचरित्रा च निर्गुणा च निरंजना । एतन्नामसहस्रं तु युग्मरूपस्य नारद ॥२१०॥
पठनीयं प्रयत्नेन वृन्दावनरसावहे । महापापप्रशमनं वंध्यात्वविनिवर्तकम् ॥२११॥
दारिद्र्यशमनं रोगनाशनं कामदं महत् । पापापहं वैरिहरं राधामाधवभक्तिदम् ॥२१२॥
नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुंठमेधसे । राधासंगसुधा सिंधौ नमोनित्यविहारिणे ॥२१३॥
राधादेवी जगत्कर्त्री जगत्पालनतत्परा । जगल्लयविधात्री च सर्वेशी सर्वसूतिका ॥२१४॥
तस्या नामसहस्रं वै मया प्रोक्तं मुनीश्वर । भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२१५॥
इति श्री बृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे राधाकृष्णसहस्रनामकथनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

करने वाली, महारस वाली, सुन्दर नेत्र वाली, दृष्टि दोष को मिटाने वाली, कंदर्पजननी, मुख्या, वैकुण्ठ-गति-दायिका, रासभावा, प्रियतम का आलिगन करने वाली, अत्यन्त प्रियपात्र, प्रथम नायिका, शुद्धा, सुधादेह वाली, श्रीरामा, रसमंजरी, महाप्रभावशालिनी, पवित्र आचरण वाली, गंगा तथा नर्मदा की जननी, गोमती और चन्द्रभागा के द्वारा स्तुत्य, सरयू तथा ताम्रपर्णी नदी को प्रकट करने वाली; निष्कलंकचरित्रा, गुणातीत और निर्मलस्वरूपा ॥२०६-२०९॥

नारद ! युगलरूप (राधा-कृष्ण के) ये सहस्र नाम हैं। वृन्दावन में यत्नपूर्वक इन नामों का पाठ करना चाहिये। ये सहस्र नाम महापापनाशन, वंध्यात्वमोचन, दारिद्र्यभंजक, रोगनाशक, कामदायक, पापहारी, शत्रुताध्वंसक और राधा-कृष्ण की भक्ति देने वाले हैं। अकुंठित मेधा वाले भगवान् कृष्ण को नमस्कार है। राधा-संग रूपी सुधासिंधु में नित्य विहार करने वाले माधव को नमस्कार है। मुनीश्वर ! राधादेवी जगत्कर्त्री, विश्व के पालन में निरत रहने वाली, संसार का ध्वंस करने वाली, सब की ईश्वरी और सब की माता हैं। उनके सहस्र नामों को मैंने बता दिया, जो दिव्य एवम् भुक्तिमुक्तिदायक हैं। इसके बाद क्या सुनना चाहते हो ? २१०—२१५॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त तृतीयपाद में राधाकृष्णसहस्रनामकथन नामक बयासीवां अध्याय समाप्त ॥८२॥

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

श्रीशौनक उवाच

साधु सूत महाभाग जगदुद्धारकारकम् । महातंत्रविधानं नः कुमारोक्तं त्वयोदितम् ॥१॥
अलभ्यमेतत्तंत्रेषु पुराणेष्वपि मानद । यदिहोदितमस्मभ्यं त्वयातिकरुणात्मना ॥२॥
नारदो भगवान्सूत लोकोद्धरणतत्परः । भूयः प्रपच्छ किं साधो कुमारं विदुषां वरम् ॥३॥

सूत उवाच

श्रुत्वा स नारदो विप्राः युग्मनामसहस्रकम् । सनत्कुमारमप्याह प्रणम्य ज्ञानिनां वरम् ॥४॥

नारद उवाच

ब्रह्मंस्त्वया समाख्याता विधयस्तंत्रचोदिताः । तत्रापि कृष्णमंत्राणां वैभवं ह्युदितं महत् ॥५॥
या तत्र राधिका देवी सर्वाद्या समुदाहृता । तस्या अंशावताराणां चरितं मंत्रपूर्वकम् ॥६॥
तंत्रोक्तं वद सर्वज्ञ त्वामहं शरणं गतः । शक्तेस्तंत्राण्यनेकानि शिवोक्तानि मुनीश्वर ॥७॥
यानि तत्सारमुद्धृत्य साकल्येनाभिधेहि नः । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य नारदस्य महात्मनः ॥८॥
सनत्कुमारः प्रोवाच स्मृत्वाराधापदांबुजम्

सनत्कुमार उवाच

श्रृणु नारद वक्ष्यामि राधांशानां समुद्भवम् ॥९॥

अध्याय ८३

राधा के अंश से उत्पन्न पाँच प्रकृतियों का लक्षण

श्री शौनक बोले—महाभाग सूत ! साधुवाद ! आपने सनत्कुमार द्वारा कथित एवम् जगदुद्धारकारक महातंत्र का विधान हमने बता दिया ! मानदायक ! वह विधान तंत्रों में तथा पुराणों में भी अलभ्य है, जिसे आपने अत्यन्त कृपा करके हमें बतलाया है। सूत ! साधो ! लोगों के उद्धार करने में तत्पर भगवान् नारद ने विद्वद्वर कुमार से पुनः क्या प्रश्न किया ? ॥१–३॥

सूत बोले—विप्रवृन्द ! युगल सहस्र नाम को सुन कर नारद ने महाज्ञानी सनत्कुमार से प्रणामपूर्वक कहा ॥४॥

नारद बोले—ब्रह्मन् ! आपने मंत्र की विधियाँ बतलाईं, कृष्ण मंत्रों का महान् वैभव भी बतला दिया। अब जो राधिका देवी सब की आदि कही जाती हैं, उनके अंशावतारों का चरित्र मंत्रपूर्वक बता दीजिये, जो तंत्र के अनुकूल हो। सर्वज्ञ ! मैं आपका शरणापन्न हूँ। मुनीश्वर ! शिव ने शक्ति के अनेक तंत्र कहे हैं उन्हीं का सार निकाल कर आप विस्तार से वर्णन कीजिये।

महात्मा नारद का यह वचन सुनकर सनत्कुमार राधा के चरणारविन्द का स्मरण करके कहने लगे ॥५–८½॥

सनत्कुमार बोले—नारद सुनो, मैं मंत्रों का साधन बताते हुए राधा के अंशों से उत्पन्न शक्तियों का

शक्तीनां परमाश्चर्यं मंत्रसाधनपूर्वकम् । या तु राधा मया प्रोक्ता कृष्णार्द्धांगसमुद्भवा ॥१०॥
गोलोकवासिनी सा तु नित्या कृष्णसहायिनी । तेजोमंडलमध्यस्था दृश्यादृश्यस्वरूपिणी ॥११॥
कदाचित्तु तया सार्द्धं स्थितस्य मुनिसत्तम । कृष्णस्य वामभागात्तु जातो नारायणः स्वयम् ॥१२॥
राधिकायाश्च वामांगान्महालक्ष्मीर्बभूव ह । ततः कृष्णो महालक्ष्मीं दत्त्वा नारायणाय च ॥१३॥
वैकुंठे स्थापयामास शश्वत्पालनकर्मणि । अथ गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतो मुने ॥१४॥
जाताश्चासंख्यगोपालास्तेजसा वयसा समाः । प्राणतुल्यप्रियाः सर्वे बभूवुः पार्षदा विभोः ॥१५॥
राधांगलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः । राधातुल्याः सर्वतश्च राधादास्यः प्रियंवदाः ॥१६॥
एतस्मिन्नंतरे विप्र सहसा कृष्णदेहतः । आविर्बभूव सा दुर्गा विष्णुमाया सनातनी ॥१७॥
देवीनां बीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी । परिपूर्णतमा तेजःस्वरूपा त्रिगुणात्मिका ॥१८॥
सहस्रभुजसंयुक्ता नानाशस्त्रा त्रिलोचना । या तु संसारवृक्षस्य बीजरूपा सनातनी ॥१९॥
रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः । एतस्मिन्नंतरे तत्र सस्त्रीकस्तु चतुर्मुखः ॥२०॥
ज्ञानिनां प्रवरः श्रीमान् पुमानोंकारमुच्चरन् । कमंडलुधरो जातस्तपस्वी नाभितो हरेः ॥२१॥
स तु संस्तूय सर्वेशं सावित्र्या भार्यया सह । निषसादासने रम्ये विभोस्तस्याज्ञया मुने ॥२२॥
अथ कृष्णो महाभाग द्विधारूपो बभूव ह । वामार्द्धांगो महादेवो दक्षार्द्धो गोपिकापतिः ॥२३॥
पंचवक्त्रस्त्रिनेत्रोऽसौ वामार्द्धांगो मुनीश्वरः । स्तुत्वा कृष्णं समाज्ञप्तो निषसाद हरेः पुरः ॥२४॥
अथ कृष्णश्चतुर्वक्त्रं प्राह सृष्टिं कुरु प्रभो । सत्यलोके स्थितो नित्यं गच्छ मां स्मर सर्वदा ॥२५॥

आश्चर्यजनक वर्णन करता हूँ। जिन राधा को मैंने कृष्ण की अर्धांगिनी कहा है, वे नित्य गोलोक में वास करती हुई कृष्ण की सहायता करती हैं। वे तेजोमंडल के मध्य में दृश्य एवम् अदृश्य रूप से विराजमान रहती हैं। मुनिश्रेष्ठ ! किसी समय राधा के साथ अवस्थित कृष्ण के वामभाग से स्वयम् नारायण उत्पन्न हुए और राधिका के वाम अंग से महालक्ष्मी उत्पन्न हुईं। तब कृष्ण ने नारायण को महालक्ष्मी देकर निरन्तर पालन करने के लिये उन्हें वैकुण्ठ में स्थापित कर दिया। मुने ! तदनन्तर कृष्ण के लोमकूप से असंख्य गोपाल उत्पन्न हुए, जो समान तेज वाले, समवयस्क एवम् कृष्ण के प्राणतुल्य प्रिय थे। वे सब प्रभु के सभासद हुए ॥९–१५॥ राधा के लोमकूप से गोपकन्यायें उत्पन्न हुईं, जो सब तरह से राधा के तुल्य थीं। वे राधा की आज्ञाकारिणी दासी हुईं। विप्र ! इसी बीच एकाएक कृष्ण के शरीर से विष्णु की सनातनी माया दुर्गा प्रकट हुईं, जो देवियों की बीजरूप, मूल प्रकृति, ईश्वरी, परिपूर्णतमा, तेजःस्वरूपा, त्रिगुणात्मिका, सहस्रभुजाओं से संयुक्त, नानाशस्त्र-धारिणी, त्रिलोचना, संसाररूपी वृक्ष की बीजरूपा तथा सनातनी हैं। राधिकेश्वर ने उन्हें रत्न का सिंहासन प्रदान किया। इसी समय ज्ञानियों में श्रेष्ठ, श्रीमान् पुरुष, कमंडलुधारी एवम् तपस्वी ब्रह्मा ओंकार का उच्चारण करते हुए पत्नी सहित हरि की नाभि से उत्पन्न हुए ॥१६–२१॥ भार्या सावित्री के साथ वे सर्वेश्वर कृष्ण की स्तुति कर विभु की आज्ञा से रमणीय आसन पर बैठ गये। महाभाग ! तदुपरान्त कृष्ण के दो रूप हो गये। बायें आधे अंग से महादेव हुए और दाहिने अर्धांग से गोपिकापति प्रकट हुए। बायें अर्धांग से समुत्पन्न पांच मुख वाले तथा तीन नेत्र वाले मुनीश्वर शिव कृष्ण की स्तुति कर उनकी आज्ञा से उनके सामने ही बैठ गये। तदनन्तर कृष्ण ने चतुर्मुख से कहा—"प्रभो ! आप सत्यलोक में नित्य वास करते हुए सृष्टि कीजिये और सदा मेरा स्मरण रखिये ॥२२–२५॥

एवमुक्तस्तु हरिणा प्रणम्य जगदीश्वरम् । जगाम भार्यया साकं स तु सृष्टिं करोति वै ॥२६॥
पितास्माकं मुनिश्रेष्ठ मानसीं कल्पदैहिकीम् । ततः पश्चात्पंचवक्त्रं कृष्णः प्राह महामते ॥२७॥
दुर्गां गृहाण विश्वेश शिवलोके तपश्चर । यावत्सृष्टिस्तदंते तु लोकान्संहर सर्वतः ॥२८॥
सोऽपि कृष्णं नमस्कृत्य शिवलोकं जगाम ह । ततः कालांतरे ब्रह्मन्कृष्णस्य परमात्मनः ॥२९॥
वक्त्रात्सरस्वती जाता वीणापुस्तकधारिणी । तामादिदेश भगवान् वैकुण्ठं गच्छ मानदे ॥३०॥
लक्ष्मीसमीपे तिष्ठ त्वं चतुर्भुजसमाश्रया । सापि कृष्णं नमस्कृत्य गता नारायणांतिकम् ॥३१॥
एवं पञ्चविधा जाता सा राधा सृष्टिकारणम् । आसां पूर्णस्वरूपाणां मंत्रध्यानार्चनादिकम् ॥३२॥
वदामि शृणु विप्रेंद्र लोकानां सिद्धिदायकम् । तारः क्रियायुक् प्रतिष्ठा प्रीत्याढ्या च ततः परम् ॥३३॥
ज्ञानामृता क्षुधायुक्ता वह्निजायांतको मनुः । सुतपास्तु ऋषिश्छंदो गायत्री देवता मनोः ॥३४॥
राधिका प्रणवो बीजं स्वाहा शक्तिरुदाहृता । षडक्षरैः षडंगानि कुर्याद्बिन्दुविभूषितैः ॥३५॥
ततो ध्यायन्स्वहृदये राधिकां कृष्णभामिनीम् । श्वेतचंपकवर्णाभां कोटिचन्द्रसमप्रभाम् ॥३६॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यां नीलेंदीवरलोचनाम् । सुश्रोणीं सुनितंबां च पक्वबिंबाधरांबराम् ॥३७॥
मुक्ताकुन्दाभदशनां वह्निशुद्धांशुकान्विताम् । रत्नकेयूरवलयहारकुण्डलशोभिताम् ॥३८॥
गोपीभिः सुप्रियाभिश्च सेवितां श्वेतचामरैः । रासमंडलमध्यस्थां रत्नसिंहासनस्थिताम् ॥३९॥

हरि के इतना कहने पर ब्रह्मा जगदीश्वर को प्रणाम करके भार्या सहित प्रस्थित हो गये । मुनिश्रेष्ठ ! तब से मेरे पिता मानसी एवम् दैहिकी सृष्टि करने लगे । महामतिमन् ! तत्पश्चात् कृष्ण ने पंचमुख शिव से कहा—"विश्वेश ! दुर्गा को स्वीकार कर शिवलोक में तपस्या कीजिये और सृष्टि के अन्त में समस्त लोकों का संहार कीजियेगा" ॥२६–२८॥

ब्रह्मन् ! तब शंकरजी कृष्ण को प्रणाम कर शिवलोक को चले गये । बाद में परमात्मा कृष्ण के मुख से वीणा-पुस्तक-धारिणी सरस्वती उत्पन्न हुईं । उन्हें भगवान् ने आदेश दिया—"मानदे ! तुम वैकुण्ठ जाओ और विष्णु आश्रित होकर लक्ष्मी के समीप निवास करो ।" वे भी कृष्ण को प्रणाम कर नारायण के पास चली गईं ॥२९–३१॥

विप्रेन्द्र ! इस प्रकार राधा से पाँच प्रकार की सृष्टि हुई । अब सकल लोकों को सिद्धि प्रदान करने वाले उनके पूर्ण स्वरूप के मन्त्र, ध्यान, पूजन आदि के विषय में तुम सुनो । क्रियायुक्त तार (ह्रीं) देवी का मन्त्र, उनकी प्रतिष्ठा प्रीतिसम्पन्न है, ज्ञानामृत तथा क्षुधा से युक्त स्वाहा देवी मंत्र का अन्तिम भाग है । मंत्र के ऋषि सुतपा हैं, छंद गायत्री है, देवता राधिका हैं, बीज प्रणव है और शक्ति स्वाहा है । बिंदुभूषित छः अक्षरों से षडंगन्यास करना चाहिये । तदनंतर अपने हृदय में कृष्णप्रिया राधिका का ध्यान करना चाहिये, जिनकी वर्णच्छवि श्वेत चंपा के समान है, कान्ति कोटि चन्द्रों के तुल्य है, मुख शरत्कालीन चन्द्रमा के सदृश है, नेत्र नील कमल के समान हैं, श्रोणी और नितम्ब मनोहर हैं, अधर पक्वबिंब के सदृश है, दांत मोती तथा कुंदपुष्पों के समान है, राधिका देवी स्वयं वह्नि के समान शुद्ध वस्त्रों, से अलंकृत और रत्न, केयूर, वलय (चूड़ी), हार तथा कुंडल से सुशोभित हैं । अत्यन्त प्यारी गोपियाँ श्वेत चामर से उनकी सेवा करती हैं । वे रासमंडल के मध्य में रत्न सिंहासन पर विराजमान हैं । इस प्रकार ध्यान कर उन्हें पुष्पांजलि समर्पित करते हुए षोडशोपचार पूजा करे । तत्पश्चात्

ध्यात्वा पुष्पांजलिं क्षिप्त्वा पूजयेदुपचारकैः । लक्षषट्कं जपेन्मंत्रं तद्दशांशं हुनेत्तिलैः ॥४०॥
आज्याक्तैर्मातृकापीठे पूजा चावरणैः सह । षट्कोणेषु षडंगानि तद्बाह्येऽष्टदले यजेत् ॥४१॥
मालावतीं माधवीं च रत्नमालां सुशीलिकाम् । ततः शशिकलां पारिजातां पद्मावतीं तथा ॥४२॥
सुन्दरीं च क्रमात्प्राच्यां दिग्विदिक्षु ततो बहिः । इन्द्राद्यान्सायुधानिष्ट्वा विनियोगांस्तु साधयेत् ॥४३॥
राधा कृष्णप्रिया रासेश्वरी गोपीगणाधिपा । निर्गुणा कृष्णपूज्या च मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥४४॥
सर्वेश्वरी सर्वपूज्या वैराजजननी तथा । पूर्वाद्याशासु रक्षन्तु पांतु मां सर्वतः सदा ॥४५॥
त्वं देवि जगतां माता विष्णुमाया सनातनी । कृष्णमायादिदेवी च कृष्णप्राणाधिके शुभे ॥४६॥
कृष्णभक्तिप्रदे राधे नमस्ते मंगलप्रदे । इति सम्प्रार्थ्य सर्वेशीं स्तुत्वा हृदि विसर्जयेत् ॥४७॥
एवं यो भजते राधां सर्वाद्यां सर्वमंगलाम् । भुक्त्वेह भोगानखिलान्सोऽन्ते गोलोकमाप्नुयात् ॥४८॥
अथ तुभ्यं महालक्ष्म्या विधानं वच्मि नारद । यदाराधनतो भूयात्साधको भुक्तिमुक्तिमान् ॥४९॥
लक्ष्मीमायाकामवाणीपूर्वा कमलवासिनी । ङेंता वह्निप्रियांतोऽयं मंत्रकल्पद्रुमः परः ॥५०॥
ऋषिर्नारायणश्चास्य छन्दो हि जगती तथा । देवता तु महालक्ष्मीर्द्विद्विवर्णैः षडंगकम् ॥५१॥
श्वेतचंपकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकातराम् ॥५२॥
बिभ्रतीं रत्नमालां च कोटिचंद्रसमप्रभाम् । ध्यात्वा जपेदर्कलक्षं पायसेन दशांशतः ॥५३॥
जुहुयादेधिते वह्नौ श्रीद्रुकाष्ठैः समर्चयेत् । नवशक्तियुते पीठे ह्यंगैरावरणैः सह ॥५४॥
विभूतिरुन्नतिः कांतिः सृष्टिः कीर्तिश्च सन्नतिः । व्युष्टिरुत्कृष्टिरृद्धिश्च संप्रोक्ता नव शक्तयः ॥५५॥

छः लाख मंत्र का जप करके घृतयुक्त तिलसे उसका दशांश हवन करे ॥३२-४०॥ मातृकापीठ पर पूजन करना चाहिये । वहाँ वस्त्र का आवरण (चँदवा) लगाना चाहिये । छः कानों में अष्टदल कमल का निर्माण कर छः अंगों का पूजन करे । पूर्व दिशा में क्रमशः मालावती, माधवी, रत्नमाला, सुशीलिका, शशिकला, पारिजाता, पद्मावती तथा सुन्दरी की पूजा करे । तत्पश्चात् दिशा-विदिशाओं में आयुध सहित इन्द्र आदि देवों की अर्चना कर विनियोग का साधन करे । फिर प्रार्थना करे—"राधा, कृष्णप्रिया, रासेश्वरी, गोपियों की स्वामिनी, निर्गुणा, कृष्णपूज्या, मूलप्रकृति, ईश्वरी, सर्वेश्वरी, सर्वपूज्या तथा वैराजजननी पूर्व आदि दिशाओं में सब ओर से सदा मेरी रक्षा करें । देवि ! तुम जगन्माता विष्णु की माया, सनातनी, कृष्ण की माया तथा आदि-देवी हो । कृष्ण की प्राणाधिक प्रिये ! कल्याणि ! कृष्णभक्तिदायिके ! मंगलप्रदे ! राधे ! तुम्हें नमस्कार है ।" इस प्रकार सर्वेश्वरी की स्तुति एवम् प्रार्थना करके हृदय में उसका विसर्जन करे ॥४१-४७॥

जो व्यक्ति इस तरह सब की आदि तथा अखिलकल्याणदायिनी राधा की आराधना करता है, वह इस लोक में सकल भोगों को भोग कर अन्त में गोलोक को प्राप्त करता है । नारद ! अब मैं तुमसे महालक्ष्मी-पूजन का विधान बतला रहा हूँ, जिनकी आराधना करने से साधक भोग-मोक्ष को प्राप्त करता है । "लक्ष्मी-माया········स्वाहा" यह मन्त्र कल्पद्रुम से भी परे है । इसके ऋषि नारायण, छन्द जगती और देवता महालक्ष्मी हैं । दो-दो अक्षरों से षडंगन्यास कर श्वेतचम्पा के समान कान्तिवाली, रत्न के आभूषणों से भूषित, किंचित् हास्य से प्रसन्न मुखवाली, भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने वाली, रत्नमाला को धारण करने वाली और कोटि चन्द्रों के समान प्रभा वाली महालक्ष्मी का ध्यान करे । फिर बारह लाख मन्त्र का जप करके उसका दशांश प्रज्वलित वह्नि में बेल की लकड़ी से हवन करे । हवन तो नौ शक्तियों से युक्त पीठ पर अंग तथा आवरण के साथ होना चाहिये ॥४८-५४॥ विभूति, उन्नति, कांति, सृष्टि, कीर्ति, सन्नति, व्युष्टि, उत्कृष्टि

अत्रावाह्य च मूलेन मूर्तिं संकल्प्य साधकः । षट्कोणेषु षडंगानि दक्षिणे तु गजाननम् ॥५६॥
वामे कुसुमधन्वानं वसुपत्रे ततो यजेत् । उमां श्रीं भारतीं दुर्गां धरणीं वेदमातरम् ॥५७॥
देवीमुषां च पूर्वादौ दिग्विदिक्षु क्रमेण हि । जह्नुसूर्यसुते पूज्ये पादप्रक्षालनोद्यते ॥५८॥
शंखपद्मनिधी पूज्यौ पार्श्वयोर्धृतचामरौ । धृतातपत्रं वरुणं पूजयेत्पश्चिमे ततः ॥५९॥
संपूज्य राशीन्परितो यथास्थानं नवग्रहान् । चतुर्दन्तैरावतादीन् दिग्विदिक्षु ततोऽर्चयेत् ॥६०॥
तद्बहिर्लोकपालांश्च तदस्त्राणि च तद्बहिः । दूर्वाभिराज्यसिक्ताभिर्जुहुयादायुषे नरः ॥६१॥
गुडूचीमाज्यसंसिक्तां जुहुयात्सप्तवासरम् । अष्टोत्तरसहस्रं यः स जीवेच्छरदां शतम् ॥६२॥
हुत्वा तिलान्घृताभ्यक्तान्दीर्घमायुष्यमाप्नुयात् । आरभ्यार्कदिनं मंत्री दशाहं घृतसंप्लुतः ॥६३॥
जुहुयादर्कसमिधः शरीरारोग्यसिद्धये । शालिभिर्जुहुतो नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम् ॥६४॥
अचिरादेव महती लक्ष्मी संजायते ध्रुवम् । उषाजाजीनालिकेररजोभिर्घृतमिश्रितैः ॥६५॥
हुनेदष्टोत्तरशतं पायसाशी तु नित्यशः । मण्डलाज्जायते सोऽपि कुबेर इव मानवः ॥६६॥
हविषा गुडमिश्रेण होमतो ह्यन्नवान्भवेत् । जपापुष्पाणि जुहुयादष्टोत्तरसहस्रकम् ॥६७॥
तांबूलरससंमिश्रं तद्भस्मतिलकं चरेत् । चतुर्णामपि वर्णानां मोहनाय द्विजोत्तमः ॥६८॥
एवं यो भजते लक्ष्मीं साधकेन्द्रो मुनीश्वर । सम्पदस्तस्य जायंते महालक्ष्मीः प्रसीदति ॥६९॥
देहांते वैष्णवं धाम लभते नात्र संशयः । या तु दुर्गा द्विजश्रेष्ठ शिवलोकं गता सती ॥७०॥

तथा ऋद्धि—ये नौ शक्तियां हैं। साधक को चाहिये कि वह उस पीठ पर मूलमन्त्र से मूर्ति का आवाहन कर संकल्प करे। पश्चात् छह कोणों में छह अंगों का, दक्षिण दिशा में गणेश का और उत्तरदिशा में कन्दर्प का पूजन करे। पूजन अगस्त वृक्ष के पत्र पर होना चाहिये। तदनन्तर पूर्व आदि में उमा, श्री, भारती, दुर्गा, धरणी, वेदमाता, देवी तथा उषा की पूजा करनी चाहिये। (महालक्ष्मी के) चरण पखारने के लिये उद्यत गंगा यमुना का पूजन करना चाहिये। दोनों बगल में चामर धारण करने वाले शंखनिधि तथा पद्मनिधि की अर्चना करे। पश्चिम में छत्र धारण किये हुए वरुण का पूजन करे। फिर यथास्थान नवग्रहों का पूजन करे। दिशा-विदिशाओं में चतुर्दन्त ऐरावत आदि हस्तियों का पूजन करे ।।५५-६०।। तदनन्तर लोकपालों का और फिर उनके अस्त्रों का पूजन कर घृतसिक्त दूर्वा से आयु के लिये हवन करे। जो मनुष्य सात दिन घृताक्त गुडूची (गुरुच) से एक हजार आठ बार हवन करता है, वह सौ वर्षों तक जीता है। घृतयुक्त तिल से हवन करने वाला व्यक्ति दीर्घायु होता है। जो साधक रवि दिन से प्रारम्भ कर दश दिनों तक घृतयुक्त आक की लकड़ी से होम करता है, वह शरीर से नीरोग होता है। जो व्यक्ति नित्य एक हजार आठ बार चावल से होम करता है, उसे अल्प काल में ही महती लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। जो मानव नित्य खीर भोजन करता है तथा उषाकाल में नारियल एवम् घी से अष्टोत्तरशत हवन करता है, वह शीघ्र ही कुबेर तुल्य हो जाता है ।।६१-६६।।

गुड़मिश्रित घी से होम करने से अन्न की प्राप्ति होती है। जो द्विजवर चारों वर्णों को मोहित करना चाहता है, वह जपापुष्प से अष्टोत्तर सहस्र हवन करे और उसके भस्म में ताम्बूल का रस मिला कर तिलक लगाये ।।६७-६८।।

मुनीश्वर ! इस प्रकार जो साधक लक्ष्मी की आराधना करता है, उसे सकल संपत्तियों की प्राप्ति होती है, उसके ऊपर महालक्ष्मी प्रसन्न होती हैं और वह देहावसान होने पर वैकुंठ को जाता है, इसमें संशय

सा शिवाज्ञामनुप्राप्य दिव्यलोकं विनिर्ममे । देवीलोकेति विख्यातं सर्वलोकविलक्षणम् ॥७१॥
तत्र स्थिता जगन्माता तपोनियममास्थिता । विविधान् स्वावतारान्हि त्रिकाले कुरुतेऽनिशम् ॥७२॥
मायाधिका ह्लादिनीयुक् चन्द्राढ्या सगिणी पुनः । प्रतिष्ठा स्मृतिसंयुक्ता क्षुधया सहिता पुनः ॥७३॥
ज्ञानामृता वह्निजायांतस्ताराद्यो मनुर्मतः । ऋषिः स्याद्वामदेवोऽस्य छंदो गायत्रमीरितम् ॥७४॥
देवता जगतामादिर्दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । ताराद्येकैकवर्णेन हृदयादित्रयं मतम् ॥७५॥
त्रिभिर्वर्मेक्षणं द्वाभ्यां सर्वैरस्त्रमुदीरितम् । महामरकतप्रख्यां सहस्रभुजमंडिताम् ॥७६॥
नानाशस्त्राणि दधतीं त्रिनेत्रां शशिशेखराम् । कंकणांगदहाराढ्यां क्वणन्नूपुरकान्विताम् ॥७७॥
किरीटकुंडलधरां दुर्गां देवीं विचिंतयेत् । वसुलक्षं जपेन्मंत्रं तिलैः समधुरैर्हुनेत् ॥७८॥
पयोऽध्रसा वा सहस्रं नवपद्मात्मके यजेत् । ॥७९॥
प्रभा माया जया सूक्ष्मा विशुद्धानंदिनी पुनः । सुप्रभा विजया सर्वसिद्धिदा पीठशक्तयः ॥८०॥
अद्भिर्ह्रस्वत्रयक्लीबरहितैः पूजयेदिमाः । प्रणवो वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महापदात् ॥८१॥
सिंहाय वर्मास्त्रं हृच्च प्रोक्तः सिंहमनुर्मुने । दद्यादासनमेतेन मूर्तिं मूलेन कल्पयेत् ॥८२॥
अङ्गावृत्तिं पुराभ्यर्च्य शक्तीः पत्रेषु पूजयेत् । जया च विजया कीर्तिः प्रीतिः पश्चात्प्रभा पुनः ॥८३॥
श्रद्धा मेधा श्रुतिश्चैव स्वनामाद्याक्षरादिकाः । पत्राग्रेष्वर्चयेदष्टावायुधानि यथाक्रमात् ॥८४॥
शंखचक्रगदाखड्गपाशांकुशशरान्धनुः । लोकेश्वरांस्ततो बाह्ये तेषामस्त्राण्यनंतरम् ॥८५॥
इत्थं जपादिभिर्मंत्री मंत्रे सिद्धे विधानवित् । कुर्यात्प्रयोगानमुना यथा स्वस्वमनोषितान् ॥८६॥

नहीं । द्विजश्रेष्ठ ! जो सती दुर्गा शिवलोक में गईं, उन्होंने शंकर की आज्ञा से दिव्यलोक की सृष्टि की। वह देवीलोक के नाम से प्रसिद्ध है, जो अखिल लोकों से उत्तम है। वहां तप एवम् नियम में अवस्थित जगन्माता तीनों काल निरवच्छिन्न रूप से अपने विविध अवतारों का संपादन करती रहती हैं, माया, ह्लादिनी, चंद्राख्या, सगिणी, प्रतिष्ठा, स्मृति, क्षुधा तथा अन्त में स्वाहा और आदि में ओं--यही मन्त्र बताया गया है। इस मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्द गायत्री और देवता भयंकर पीड़ा का नाश करने वाली जगन्माता दुर्गा है । ओं आदि मन्त्रों के एक-एक वर्ण से हृदय आदि तीन चीजें बताई जाती हैं। तीन अक्षरों से नेत्र और दो अक्षरों से सम्पूर्ण अस्त्र कहे गये हैं। महामरकतमणि के समान कान्ति वाली, सहस्र भुजाओं से अलंकृत, अनेक शस्त्रों को धारण करने वाली, तीन चक्षु वाली, ललाट पर चन्द्र धारण करने वाली, कंगन केयूर तथा हार से विभूषित, शब्दायमान नूपुर से युक्त और मुकुट तथा कुंडल धारण करने वाली दुर्गा देवी का ध्यान करे । तदनन्तर मन्त्र का आठ लाख जप करके मधुर सहित तिल से हवन करे। अथवा खीर से नवपद्मात्मक पीठ पर सहस्रबार हवन करे। प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, आनंदिनी, सुप्रभा, विजया तथा सर्वसिद्धिदा ये नौ पीठशक्तियाँ हैं ॥६९-८०॥ तीन ह्रस्व तथा क्लीबरहित जल से इन शक्तियों का पूजन करे। मुने! महा-पद से लेकर वज्र, नख, दंष्ट्रा तथा आयुध तक के लिये प्रणव और सिंह के लिये वर्मास्त्र एवम् हृदय कहा गया है। यही सिंह-मंत्र है। इस मंत्र से आसन प्रदान कर मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करे। पहिले अंगावृत्ति का पूजन कर पत्रों पर शक्तियों की अर्चना करे। जया, विजया, कीर्ति, प्रीति, प्रभा, श्रद्धा, मेधा तथा श्रुति अपने नाम के आद्य अक्षर और शंख, चक्र, गदा, खड्ग, पाश, अंकुश, बाण एवम् धनुष का क्रमशः पूजन करे। तदनन्तर लोकपाल तथा उनके अस्त्रों की पूजा करे विधानवेत्ता मन्त्री इस प्रकार जप आदि से मंत्र को सिद्ध कर अपनी अभीप्सित वस्तु के लिये उस मन्त्र का प्रयोग करे। ॥८१-८६॥ विधिपूर्वक नौ सुन्दर कलशों की

प्रतिष्ठाप्य विधानेन कलशान्नवशोभनान् । रत्नहेमादिसंयुक्तान्घटेषु नवसु स्थितान् ॥८७॥
मध्यस्थे पूजयेद्देवीमितरेषु जयादिकाः । संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैरभिषिंचेन्नराधिपम् ॥८८॥
राजा विजयते शत्रून्योऽधिको विजयश्रियम् । प्राप्नोत्यरोगो दीर्घायुः सर्वव्याधिविवर्जितः ॥८९॥
वन्ध्याभिषिक्ता विधिना लभते तनयं वरम् । मन्त्रेणानेन संजप्तमाज्यं क्षुद्रग्रहापहम् ॥९०॥
गर्भिणीनां विशेषेण जप्तं भस्मादिकं तथा । जृंभश्वासे तु कृष्णस्य प्रविष्टे राधिकामुखम् ॥९१॥
या तु देवी समुद्भूता वीणापुस्तकधारिणी । तस्या विधानं विप्रेंद्र शृणु लोकोपकारकम् ॥९२॥
प्रणवो वाग्भवं माया श्रीः कामः शक्तिरीरिता । सरस्वती चतुर्थ्यंता स्वाहांतो द्वादशाक्षरः ॥९३॥
मनुर्नारायण ऋषिर्विराट् छन्दः समीरितम् । महासरस्वती चास्य देवता परिकीर्तिता ॥९४॥
वाग्भवेन षडङ्गानि कृत्वा वर्णान्न्यसेद् बुधः । ब्रह्मरंध्रे न्यसेत्तारं लज्जां भ्रूमध्यगां न्यसेत् ॥९५॥
मुखनासादिकर्णेषु गुदेषु श्रीमुखार्णकान् । ततो वाग्देवतां ध्यायेद्वीणापुस्तकधारिणीम् ॥९६॥
कर्पूरकुन्दधवलां पूर्णचंद्रोज्ज्वलाननाम् । हंसाधिरूढां भालेंदुदिव्यालंकारशोभिताम् ॥९७॥
जपेद्द्वादशलक्षाणि तत्सहस्रं सितांबुजैः । नागचंपकपुष्पैर्वा जुहुयात्साधकोत्तमः ॥९८॥
मातृकोक्ते यजेत्पीठे वक्ष्यमाणक्रमेण ताम् । वर्णाब्जेनासनं दद्यान्मूर्तिं मूलेन कल्पयेत् ॥९९॥
देव्या दक्षिणतः पूज्या संस्कृता वाङ्मयी शुभा । प्राकृता वामतः पूज्या वाङ्मयी सर्वसिद्धिदा ॥१००॥
पूर्वमंगानि षट्कोणे प्रज्ञाद्याः पूजयेद्बहिः । प्रज्ञा मेधा श्रुतिः शक्तिः स्मृतिर्वागीश्वरी मतिः ॥१०१॥
स्वस्तिश्चेति समाख्याता ब्रह्माद्यास्तदनंतरम् । लोकेशानर्चयेद्भूयस्तदस्त्राणि च तद्बहिः ॥१०२॥

स्थापना करे, जो रत्न, सुवर्ण आदि से युक्त हों। बीच के कलश पर देवी की और इतर कलशों पर जया आदिकों की गंध, पुष्प आदि से अर्चना कर उस जल से राजा का अभिषेक करे। अभिषिक्त राजा शत्रुओं के ऊपर विजय, विजयलक्ष्मी, आरोग्य और दीर्घायु को प्राप्त करता है। वंध्या स्त्री विधिपूर्वक अभिषिक्त होने पर उत्तम पुत्र को प्राप्त करती है। घी को इस मन्त्र से अभिमंत्रित कर देने पर वह घी क्षुद्र ग्रहों का नाशक हो जाता है। उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म आदि गर्भिणियों के लिये विशेष लाभदायक है। विप्रेन्द्र ! कृष्ण की जंभाई राधिका के मुख में प्रविष्ट होने पर जो वीणा पुस्तक धारिणी देवी उत्पन्न हुई थीं उनके लोकोपकारक विधान को सुनो। उनके द्वादशाक्षर मन्त्र के अन्त में स्वाहा है और मंत्र के अन्तर्गत प्रणव, वाग्भव, माया, श्री, काम, शक्ति तथा सरस्वती हैं। मंत्र के ऋषि नारायण, छंद विराट् और देवता सरस्वती हैं ॥८७–९४॥ बुधजन वाग्भव मन्त्र से षडंगन्यास करके वर्णन्यास करे। ब्रह्मरंध्र में ओं का, भौं के मध्य में लज्जा का और मुख, नासिका, कर्ण एवम् गुदा में श्रीमुखवर्णों का न्यास करे। तदुपरान्त उत्तम साधक वीणा और पुस्तक धारण करने वाली, कपूर तथा कुन्दपुष्प के समान शुभ्र वर्ण वाली, पूर्णचंद्र के सदृश मुख वाली, हंस पर आरूढ और चंद्ररूप दिव्य अलंकार से सुशोभित ललाट वाली वाग्देवता (सरस्वती) का ध्यान कर बारह लाख मंत्र का जप करे। फिर उसका दशांश श्वेतकमल या नागचंपा से हवन करे ॥९५–९८॥

तत्पश्चात् मातृकापीठ पर वक्ष्यमाण क्रम से उनकी अर्चना करे। मूल से मूर्ति की कल्पना कर कमल का आसन प्रदान करे। देवी के दक्षिण भाग में पवित्र संस्कृत वाङ्मय देवी की पूजा करे और वामभाग में समस्त सिद्धियों को देने वाली प्राकृत वाङ्मयी देवी की आराधना करे। पहले षट्कोण में छह अंगों का पूजन कर बाद में ब्रह्मा, प्रज्ञा, मेधा, श्रुति, शक्ति, स्मृति, वागीश्वरी, मूर्ति तथा स्वस्ति का पूजन करे। तदनन्तर लोकपाल और उनके अस्त्रों की पूजा करनी चाहिए ॥९९–१०२॥

एवं संपूज्य वाग्देवीं साक्षाद्वाग्वल्लभो भवेत् । ब्रह्मचर्यरतः शुद्धः शुद्धदंतनखादिकः ॥१०३॥
संस्मरन् सर्ववनिताः सततं देवताधिया । कवित्वं लभते धीमान् मासैर्द्वादशभिर्ध्रुवम् ॥१०४॥
पीत्वा तन्मंत्रितं तोयं सहस्रं प्रत्यहं मुने । महाकविर्भवेन्मंत्री वत्सरेण न संशयः ॥१०५॥
उरोमात्रोदके स्थित्वा ध्यायन्मार्तंडमंडले । स्थितां देवीं प्रतिदिनं त्रिसहस्रं जपेन्मनुम् ॥१०६॥
लभते मंडलात्सिद्धिं वाचामप्रतिमां भुवि । पालाशबिल्वकुसुमैर्जुहुयान्मधुरोक्षितैः ॥१०७॥
समिद्भिर्वा तदुत्थाभिर्यशः प्राप्नोति वाक्पतेः । राजवृक्षसमुद्भूतैः प्रसूनैर्मधुराप्लुतैः ॥१०८॥
तत्समिद्भिश्च जुहुयात्कवित्वमतुलं लभेत् । अथ प्रवक्ष्ये विप्रेंद्र सावित्रीं ब्रह्मणःप्रियाम् ॥१०९॥
यां समाराध्य ससृजे ब्रह्मा लोकांश्चराचरान् । लक्ष्मी माया कामपूर्वा सावित्री ङेसमन्विता ॥११०॥
स्वाहांतो मनुराख्यातः सावित्र्या वसुवर्णवान् । ऋषिर्ब्रह्मास्य गायत्री छंदः प्रोक्तं च देवता ॥१११॥
सावित्री सर्वदेवानां सावित्री परिकीर्तिता । हृदंतिकैर्ब्रह्म विष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवैः ॥११२॥
सर्वात्मना च ङेयुक्तैरंगानां कल्पनं मतम् । तप्तकांचनवर्णाभां ज्वलंतीं ब्रह्मतेजसा ॥११३॥
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तंडसहस्रसमविग्रहाम् । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नसुवर्णभूषिताम् ॥११४॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां भक्तानुग्रहकातराम् । सुखदां मुक्तिदां चैव सर्वसंपत्प्रदां शिवाम् ॥११५॥
वेदबीजस्वरूपां च ध्यायेद्वेदप्रसूं सतीम् । ध्यात्वैवं मण्डले विद्वान् त्रिकोणोज्ज्वलकर्णिके ॥११६॥

इस प्रकार वाग्देवी की आराधना करनेवाला व्यक्ति साक्षात् वाचस्पति होता है। जो बुद्धिमान् मानव बारह मास तक दांत, नाखुन आदि को पवित्र रखते हुए ब्रह्मचर्य एवम् शुचिता से रहता है और सकल महिलाओं को देवीबुद्ध्या देखता है, वह कवित्वशक्ति को निश्चित ही प्राप्त करता है। मुने ! जो व्यक्ति प्रत्येक दिन सरस्वती के मन्त्र से सहस्र बार जल को अभिमन्त्रित कर पान करता है, वह एक वर्ष के भीतर महाकवि हो जाता है, इसमें संशय नहीं। जो छातीभर जल में खड़ा होकर सूर्यमंडल में अवस्थित देवी का ध्यान करते हुए प्रतिदिन तीन हजार मंत्र का जप किया करता है, वह पृथ्वी पर अद्वितीय वाक्‌सिद्धि को प्राप्त करता है। जो मधुर मिश्रित पलाश एवम् बिल्व के पुष्पों से या समिधाओं से होम करता है वह वाक्पति के समान यशस्वी होता है ॥१०३—१०७॥ मधुरमिश्रित राजवृक्ष (सोन्दाल) के पुष्प तथा समिधा से हवन करनेवाला व्यक्ति अतुलनीय कवित्व-शक्ति को प्राप्त करता है। विप्रेन्द्र! अब मैं ब्रह्मा की प्रिया सावित्री के बारे में कहूँगा जिनकी आराधना करके चतुरानन ने चराचर जगत् की सृष्टि की। लक्ष्मी, माया, कामपूर्वा 'ङे' युक्त सावित्री तथा स्वाहा को जोड़कर सावित्री का अष्टाक्षर मन्त्र कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा है, छंद गायत्री है और देवता सावित्री है, जो समस्त देवों की उत्पादयित्री कही जाती है। सर्वतोभावेन 'ङे' से युक्त ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव द्वारा हृदय में अंगो की कल्पना करनी चाहिए ॥१०८-११२॥ तदनन्तर विद्वान् व्यक्ति तप्त सुवर्ण के समान वर्णच्छटा वाली ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान ग्रीष्मऋतु के मध्याह्नकालीन सहस्र सूर्यों के समान शरीरवाली, किंचित् हास्य तथा प्रसन्नता से युक्त मुख वाली, रत्न के आभूषणों से भूषित, वह्नि के समान शुद्ध वस्त्रों से सुसज्जित, भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये आतुर, सुख, मोक्ष तथा निखिल संपत्तियों को देने वाली, कल्याणमयी, वेद की बीजस्वरूप, वेदजननी तथा सती सावित्री का ध्यान करे ॥११३—११५½॥ फिर त्रिकोण तथा उजले कनेल से युक्त सौर पीठ पर दीप्ता आदि नौ शक्तियों के साथ सावित्री देवी का पूजन करे। मूल मंत्र से आवाहन कर देवी की प्रतिमा की पूजा करनी चाहिए। पश्चात् तीन कोणों में

सौरे पीठें यजेद्देवीं दीप्तादिनवशक्तिभिः। मूलमंत्रेण क्लृप्तायां मूर्तौ देवीं प्रपूजयेत् ॥११७॥
कोणेषु त्रिषु संपूज्या ब्राह्म्याद्याः शक्तयो बहिः। आदित्याद्यास्ततः पूज्या उषादिसहिताः क्रमात् ॥११८॥
ततः षडंगान्यभ्यर्च्य केसरेषु यथाविधि। प्रह्लादिनीं प्रभां पश्चान्नित्यां विश्वंभरां पुनः ॥११९॥
विलासिनीप्रभावत्यौ जयां शांतां यजेत्पुनः। कांतिं दुर्गासरस्वत्यौ विद्यारूपां ततः परम् ॥१२०॥
विशालसंज्ञितामीशां व्यापिनीं विमलां यजेत्। तमोपहारिणीं सूक्ष्मां विश्वयोनिं जयावहाम् ॥१२१॥
पद्मालयां परां शोभां ब्रह्मरूपां ततोऽर्चयेत्। ब्राह्म्याद्याः शारणा बाह्ये पूजयेत्प्रोक्तलक्षणाः ॥१२२॥
ततोऽभ्यर्चेद् ग्रहान्बाह्ये शक्राद्यानायुधैः सह। इत्थमावरणैर्देवीः दशभिः परिपूजयेत् ॥१२३॥
अष्टलक्षं जपेन्मंत्रं तत्सहस्रं हुनेत्तिलैः। सर्वपापविनिर्मुक्तो दीर्घमायुः स विंदति ॥१२४॥
अरुणाब्जैस्त्रिमध्वक्तैर्जुहुयादयुतं ततः। महालक्ष्मीर्भवेत्तस्य षण्मासान्नात्र संशयः ॥१२५॥
ब्रह्मवृक्षप्रसूनैस्तु जुहुयाद्ब्रह्मतेजसे। बहुना किमिहोक्तेन यथावत्साधिता सती ॥१२६॥
साधकानामियं विद्या भवेत्कामदुघा मुने। अथ ते संप्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् ॥१२७॥
सावित्रीपंजरं नाम सर्वरक्षाकरं नृणाम्। व्योमकेशालकासक्तां सुकिरीटविराजिताम् ॥१२८॥
मेघभ्रुकुटिलाक्रांतां विधिविष्णुशिवाननाम्। गुरुभार्गवकर्णांतां सोमसूर्याग्निलोचनाम् ॥१२९॥
इडापिंगलिकासूक्ष्मावायुनासापुटान्विताम्। संध्याद्विजोष्ठपुटितां लसद्वागुपजिह्विकाम् ॥१३०॥
संध्यासूर्यमणिग्रीवां मरुद्बाहुसमन्विताम्। पर्जन्यहृदयासक्तां वस्वाख्यप्रतिमंडलाम् ॥१३१॥
आकाशोदरविभ्रांतां नाभ्यवांतरवीथिकाम्। प्रजापत्याख्यजघनां कटींद्राणीसमाश्रिताम् ॥१३२॥
ऊर्वोर्मलयमेरुभ्यां शोभमानां सरिद्वराम्। सुजानुजह्नुकुशिकां वैश्वदेवाख्यसंज्ञिकाम् ॥१३३॥

ब्राह्मी आदि शक्तियों की अर्चना कर उषा आदि सहित आदित्य आदि देवों का क्रमशः पूजन करे। तदनन्तर छह अंगों की पूजा कर नागकेसर पुष्पों के ऊपर प्रह्लादिनी, प्रभा, नित्या, विश्वंभरा, विलासिनी, प्रभावती, जया, शान्ता, कांति, दुर्गा, सरस्वती, विद्यारूपा, विशाला, ईशा, व्यापिनी, विमला, तमोपहारिणी, सूक्ष्मा, विश्वयोनि जयावहा, पद्मालया, परा शोभा, ब्रह्मरूपा और शारणा का पूजन करे ॥११६–१२२॥ तत्पश्चात् ग्रहों और आयुधों सहित इन्द्र आदि देवताओं की आराधना करे। इस प्रकार दश आवरणों से देवियों की पूजा करे। आठ लाख मंत्र का जप करे और उतने ही हजार तिल से हवन करे। ऐसा करनेवाला व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त होकर दीर्घायु होता है। तदनन्तर मधु मिलाकर तीन लाल कमलों से होम करना चाहिए। ऐसा करने से वह छह मास के भीतर ही महाधनवान् हो जाता है, इसमें संशय नहीं। ब्रह्मतेज के लिए ब्रह्मवृक्ष के पुष्पों से हवन करना चाहिए। मुने ! अधिक क्या कहूँ। विधिपूर्वक देवी की आराधना करने से साधक को कामधेनु की तरह विद्यारूपिणी देवी सबकुछ प्रदान करती हैं ॥१२३-१२८॥ अब मैं मनुष्यों की सब तरह से रक्षा करने वाले सावित्रीपंजर नामक अत्यन्त अद्भुत रहस्य को बतलाता हूँ। साधक भगवती के इस रूप का ध्यान करे कि, आकाश उनका केश पाश है, वे सुन्दर मुकुट से शोभायमान हो रही हैं, मेघ उनकी कुटिल भृकुटि हैं, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव उनके मुख हैं, बृहस्पति एवम् शुक्र उनके कान हैं, सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि उनके नेत्र हैं, इडा और पिंगला उनके नासिकापुट है, संध्या अधर एवम् ओष्ठ है, जिह्वा पर वाणी विराजमान रहती है, संध्या-कालीन सूर्य उनकी मणिग्रीवा है, वायु बाहें है, बादल हृदय है, वसुगण मंडल है, आकाश उदर है, नाभि के ऊपर रोमावलि रमणीय है, प्रजापति उनका जघन है, इंद्राणी कमर है, मलयाचल एवम् सुमेरु पर्वत उनके ऊरु हैं, वे बहुत कमनीय हैं, सरिताओं में श्रेष्ठ है, जाह्नवी एवम् कौशिकी उनके घुटने हैं, वैश्वदेवी उनकी संज्ञा है, पृथ्वी, पर्वत तथा

पादांघ्रिनखलोमाल्यभूनागद्रुमलक्षिताम् । ग्रहराश्यर्क्षयोगादिमूर्तावयवसंज्ञिकाम् ॥१३४॥
तिथिमासर्तुपक्षाख्यैः संकेतनिमिषात्मिकाम् । मायाकल्पितवैचित्र्यसंध्याख्यच्छदनावृताम् ॥१३५॥
ज्वलत्कालानलप्रख्यां तडित्कोटिसमप्रभाम् । कोटिसूर्यप्रतीकाशां शशिकोटिसुशीतलाम् ॥१३६॥
सुधामंडलमध्यस्थां सांद्रानंदामृतात्मिकाम् । वागतीतां मनोऽगम्यां वरदां वेदमातरम् ॥१३७॥
चराचरमयीं नित्यां ब्रह्माक्षरसमन्विताम् । ध्यात्वा स्वात्मविभेदेन सावित्रीपंजरं न्यसेत् ॥१३८॥
पञ्जरस्य ऋषिः सोऽहं छंदो विकृतिरुच्यते । देवता च परो हंसः परब्रह्मादिदेवता ॥१३९॥
धर्मार्थकाममोक्षाप्त्यै विनियोग उदाहृतः । षडंगदेवतामन्त्रैरंगन्यासं समाचरेत् ॥१४०॥
त्रिधामूलेन मेधावी व्यापकं हि समाचरेत् । पूर्वोक्तां देवतां ध्यायेत्साकारां गुणसंयुताम् ॥१४१॥
त्रिपदा हरिजा पूर्वमुखी ब्रह्मास्त्रसंज्ञिका । चतुर्विंशतितत्त्वाढ्या पातु प्राचीं दिशं मम ॥१४२॥
चतुष्पदा ब्रह्मदंडा ब्रह्माणी दक्षिणानना । षड्विंशतत्त्वसंयुक्ता पातु मे दक्षिणां दिशम् ॥१४३॥
प्रत्यंङ्मुखी पञ्चपदी पञ्चाशत्तत्त्वरूपिणी । पातु प्रतीचीमनिशं मम ब्रह्मशिरोंकिता ॥१४४॥
सौम्यास्या ब्रह्म तुर्याढ्या साथर्वांगिरसात्मिका । उदीचीं षट्पदा पातु षष्टितत्त्वकलात्मिका ॥१४५॥
पञ्चाशद्वर्णरचिता नवपादा शताक्षरी । व्योमा संपातु मे चोर्द्ध्वं शिरो वेदांतसंस्थिता ॥१४६॥
विद्युन्निभा ब्रह्मसन्ध्या मृगारूढा चतुर्भुजा । चापेषुचर्मासिधरा पातु मे पावकीं दिशम् ॥१४७॥
ब्राह्मी कुमारी गायत्री रक्तांगी हंसवाहिनी । बिभ्रत्कमंडलुं चाक्षं स्रुवस्रुवौ पातु नैर्ऋतिम् ॥१४८॥

वृक्ष उनके चरण, नख एवम् लोम हैं, ग्रह, राशि, नक्षत्र तथा योग उनके अवयव हैं ॥१२६-१३४॥ तिथि, मास, ऋतु, पक्ष, क्षण और निमेष से वे युक्त हैं, अपनी माया से वे अनेक विचित्रताओं की कल्पना करती हैं, संध्यारूपी आवरण से उनका शरीर ढंका हुआ है, जाज्वल्यमान कालाग्नि की तरह उनके शरीर में तेज विद्यमान है कोटि विद्युल्लताओं के समान उनकी कान्ति है। कोटि सूर्य के समान उनका स्वरूप हैं, कोटि चंद्रमा के तुल्य वे शीतल हैं, सुधामंडल के मध्य में वे रहती हैं, पूर्ण आनन्दरूपी अमृत का पान करती हैं, वाणी से परे हैं, मनसा गम्य हैं, वरदायिका एवम् वेदमाता हैं, चराचरमयी हैं, नित्या हैं, उन्हें ब्रह्माक्षर कहते हैं। इस प्रकार अनन्यमन से उनका ध्यान कर सावित्री पंजर (मंत्र) का न्यास करे। पंजर के ऋषि सोहम् है, छंद विकृति है, देवता परमहंस हैं और आदि देवता परब्रह्म हैं ॥१३५-१३८॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिये इसका विनियोग किया जाता है। षडंगदेवता के मंत्रो से अंगन्यास करे। विद्वान् व्यक्ति मूलमंत्र से पूजा करे। पूर्वोक्त देवता का ध्यान साकार रूप में करना चाहिए, जो त्रिगुणमयी हो, तीन चरणवाली, विष्णु से उत्पन्न होने वाली, पूरब की ओर मुखवाली, ब्रह्मास्त्र संज्ञा वाली और चौबीस तत्त्वों से सम्पन्न भगवती पूर्व दिशा में मेरी रक्षा करे। चार चरणवाली, ब्रह्मदंड कहलाने वाली, दक्षिण की ओर मुखवाली और छब्बीस तत्त्वों से युक्त ब्रह्माणी दक्षिण दिशा में मेरी रक्षा करे। पांच पद वाली, पश्चिम की ओर मुखवाली, और ब्रह्मशिर धारण करने वाली देवी सदा पश्चिम दिशा में मेरी रक्षा करे ॥१४०-१४४॥ उत्तर की ओर मुख वाली, छह पैर वाली, तुरीय ब्रह्म से युक्त आंगिरस अथर्व वेद तथा साठ तत्त्वों से सम्पन्न देवी उत्तर दिशा में मेरी रक्षा करे। पचास वर्णों से निर्मित, नौ चरण एवम् सौ अक्षरों से युक्त तथा वेदान्त निष्ठा व्योमा देवी मेरे ऊर्ध्व भाग-शिर की रक्षा करे। विद्युत् की तरह आभा वाली, मृग पर आरुढ, चतुर्भुज, धनुष, बाण, कवच तथा खड्ग धारण करने वाली ब्रह्मसंध्या देवी अग्नि कोण में मेरी रक्षा करे। कुमारी, रक्तांगी हंसवाहिनी, कमंडलु

शुक्लवर्णा च सावित्री युवती वृषवाहना। कपालशूलकाक्षस्रग्धारिणी पातु वायवीम् ॥१४९॥
श्यामा सरस्वती वृद्धा वैष्णवी गरुडासना। शंखचक्राभयकरा पातु शैवीं दिशं मम ॥१५०॥
चतुर्भुजा देवमाता गौरांगी सिंहवाहना। वराभयखड्गचर्मभुजा पात्वधरां दिशम् ॥१५१॥
तत्तत्पार्श्वे स्थिताः स्वस्ववाहनायुधभूषणाः। स्वस्वदिक्षु स्थिताः पांतु ग्रहशक्त्यंगसंयुताः ॥१५२॥
मंत्राधिदेवतारूपा मुद्राधिष्ठातृदेवताः। व्यापकत्वेन पांत्वस्मानापादतलमस्तकम् ॥१५३॥
इदं ते कथितं सत्यं सावित्रीपंजरं मया। संध्ययोः प्रत्यहं भक्त्या जपकाले विशेषतः ॥१५४॥
पठनीयं प्रयत्नेन भुक्ति मुक्ति समिच्छता। भूतिदा भुवना वाणी महावसुमती मही ॥१५५॥
हिरण्यजननी नन्दा सविसर्गा तपस्विनी। यशस्विनी सती सत्या वेदविच्चिन्मयी शुभा ॥१५६॥
विश्वा तुर्या वरेण्या च निसृणी यमुना भुवा। मोदा देवी वरिष्ठा च धीश्च शांतिर्मती मही ॥१५७॥
धिषणा योगिनी युक्ता नदी प्रज्ञाप्रचोदनी। दया च यामिनी पद्मा रोहिणी रमणी जया ॥१५८॥
सेनामुखी साममयी बगला दोषवर्जिता। माया प्रज्ञा परा दोग्ध्री मानिनी पोषिणी क्रिया ॥१५९॥
ज्योत्ना तीर्थमयी रम्या सौम्यामृतमया तथा। ब्राह्मी हैमी भुजंगी च वशिनी सुंदरी वनी ॥१६०॥
ओंकारहंसिनी सर्वा सुधा सा षड्गुणावती। माया स्वधा रमा तन्वी रिपुघ्नी रक्षणी सती ॥१६१॥
हैमी तारा विधुगतिर्विषघ्नी च वरानना। अमरा तीर्थदा दीक्षा दुर्धर्षा रोगहारिणी ॥१६२॥
नानापापनृशंसघ्नी षट्पदी वज्रिणी रणी। योगिनी त्रिमला सत्या अबला बलदा जया ॥१६३॥
गोमती जाह्नवी रज्वी तपनी जातवेदसा। अचिरा वृष्टिदा ज्ञेया ऋततंत्रा ऋतात्मिका ॥१६४॥
सर्वकामदुघा सौम्या भवाहंकारवर्जिता। द्विपदा या चतुष्पदा त्रिपदा या च षट्पदा ॥१६५॥

रुद्राक्षमाला, स्रुक तथा स्रुवा धारण करने वाली ब्राह्मी गायत्री नैऋत्य कोण में मेरी रक्षा करे। शुक्लवर्णा, युवती, वृषवाहना, कपाल, त्रिशूल तथा रुद्राक्ष माला धारण करने वाली सावित्री वायव्य कोण में मेरी रक्षा करे ॥१४५-१४९॥ श्यामा, वृद्धा वैष्णवी, गरुडासना तथा शंख, चक्र एवम् अभयास्त्र धारण करने वाली सरस्वती देवी ईशान कोण में मेरी रक्षा करे। चतुर्भुजा गौरांगी, सिंहवाहना तथा अभयास्त्र, खड्ग एवम् कवच धारण करने वाली देव माता अधर दिशा में मेरी रक्षा करे। उन देवियों की बगल में रहने वाली तत्तत् देवियाँ, जो अपने अपने वाहन अस्त्र तथा आभूषणों से भूषित एवम् ग्रह, शक्ति और अंगों से युक्त हैं, अपनी अपनी दिशा में मेरी रक्षा करें। मंत्र एवम् मुद्रा की अधिष्ठात्री देवियाँ व्यापक रूप से मेरे मस्तक से लेकर चरण तक की रक्षा करे ॥१५०-१५३॥ इस सत्य सावित्री पंजर को मैंने तुमसे बता दिया। भुक्ति-मुक्ति के इच्छुक व्यक्ति प्रत्येक दिन दोनों संध्या विशेष करके जप काल में इसका पाठ अवश्य करे। भूतिदा, भुवना, वाणी, महावसुमती, मही, हिरण्यजननी, नंदा, सविसर्गा, तपस्विनी, यशस्विनी, सती, सत्या, वेदवित्, चिन्मयी, शुभा, विश्वास, तुर्या, वरेण्या, निसृणी, यमुना, भुवा, मोदा, देवी, वरिष्ठा, धी, शान्ति, मति, मही, धिषणा, योगिनी, नदी, प्रज्ञा, प्रचोदिनी, दया, यामिनी, पद्मा, रोहिणी, रमणी, जया, सेनामुखी, साममयी, बगला, दोषवर्जिता, माया, प्रज्ञा, परा, दोग्ध्री, मानिनी, पोषिणी, क्रिया, ज्योत्स्ना, तीर्थमयी, रम्या, सौम्या, अमृतमया, ब्राह्मी, हैमी, भुजंगी, वशिनी, सुन्दरी, वनी, ओंकारहंसिनी, सर्वा, सुधा, षड्गुणावती, माया, स्वधा, रमा, तन्वी, रिपुघ्नी, रक्षणी, सती, हैमी, तारा, विधुगति, विषघ्नी वरानना, अमरा, तीर्थदा, दीक्षा, दुर्धर्षा, रोगहारिणी, नानापापनृशंसघ्नी, षट्पदी, वज्रि, रजी, योगिनी, विमला, अबला, सत्या, बलदा, जया, गोमती, जाह्नवी, रज्वी, तपनी, जातवेदसा, अचिरा, वृष्टिदा, ज्ञेया, ऋततंत्रा, ऋतात्मिका, सर्वकामदुघा, सौम्या, भवाहंकारवर्जिता, द्विपदा, चतुष्पदा, त्रिपदा, षट्पदा, अष्टपदी, नवपदी सहस्राक्षा,

अष्टापदी नवपदी सहस्राक्षाक्षरात्मिका । अष्टोत्तरशतं नाम्नां साविव्या यः पठेन्नरः ॥१६६॥
स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत् । एतत्ते कथितं विप्र पंचप्रकृतिलक्षणम् ॥१६७॥
मंत्राराधनपूर्वं च विश्वकामप्रपूरणम् ॥१६८॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे पञ्चप्रकृतिमन्त्रादिनिरूपणं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

कलिकल्पांतरे ब्रह्मन् ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । लोकपद्मे तपस्यस्य सृष्टचर्थं संबभूवतुः ॥१॥
विष्णुकर्णमलोद्भूतावसुरौ मधुकैटभौ । तौ जातमात्रौ पयसि लोकप्रलयलक्षणे ॥२॥
जानुमात्रे स्थितौ दृष्ट्वा ब्रह्माणं कमलस्थितम् । प्रवृत्तावत्तुमालक्ष्य तुष्टाव जगदंबिकाम् ॥३॥
ततो देवी जगत्कर्त्री शार्वी शक्तिरनुत्तमा । नारायणाक्षिसंस्थाना निद्रा प्रीता बभूव ह ॥४॥
तस्या मंत्रादिकं सर्वं कथयिष्यामि तच्छृणु । सारुणा क्रोधनी शांतिश्चंद्रालंकृतशेखरा ॥५॥
एकाक्षरीबीजमन्त्रऋषिः शक्तिरुदाहृता । गायत्री च भवेच्छन्दो देवता भुवनेश्वरी ॥६॥

अक्षरस्वरूपी—ये एक सो आठ नाम सावित्री देवी के कहे गये हैं। जो व्यक्ति इन नामों का पाठ करेगा, वह दीर्घायु सुखी, पुत्री, विजयी तथा विनयी होगा। विप्र! यह मैं राधिका की पंचप्रकृतिलक्षण सृष्टि बतला दी, इनके मंत्र जप तथा आराधना करने से समस्त कामनायें पूरी होती हैं ॥१५४-१६८॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त तृतीयपाद में पंचकृति और मंत्र आदि निरूपण नामक तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८३॥

अध्याय ८४

जप होम की विधि सहित देवी-मंत्र का निरूपण

सनत्कुमार बोले—ब्रह्मन्! कलिकल्प में अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा जब सृष्टि के निमित्त लोकपद्म पर तप कर रहे थे तब विष्णु के कर्णमल से मधु और कैटभ नामक दो असुर उत्पन्न हुए, जिनके घुटने तक ही जगप्रलयकारी जल हुआ था। उत्पन्न होते ही वे कमलस्थित ब्रह्मा को देख कर उन्हें खाने के लिये यत्न करने लगे। तब चतुरानन ने जगदंबा की स्तुति की। स्तुति से जगत्कर्त्री, अत्युत्तमा शैवी शक्ति तथा विष्णु के नेत्र पर संस्थान करने वाली निद्रा देवी प्रसन्न हुईं। उनके मंत्र आदि सबकुछ मैं तुमसे बता देता हूँ, सुनो ॥१-४½॥ अरुणा, क्रोधनी, शांति, चन्द्रमा से अलंकृत ललाटवाली और एकाक्षरी—यह बीज मंत्र है। इसके ऋषि एवम् शक्ति भी कही गई है। गायत्री इसका छंद है और भुवनेश्वरी देवता है। छह दीर्घ मात्राओं से युक्त

षड्दीर्घयुक्तबीजेन कुर्यादंगानि षट् क्रमात् । संहारसृष्टिमार्गेण मातृकान्यस्तविग्रहः ॥७॥
मन्त्रन्यासं ततः कुर्याद्देवताभावसिद्धये । हृल्लेखां मूर्ध्नि वदने गगनां हृदयांबुजे ॥८॥
रक्तां करालिकां गुह्ये महोच्छुष्मां पदद्वये । ऊर्ध्वप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषूत्तरेऽपि च ॥९॥
सद्यादिह्रस्वबीजाद्यान्वस्तव्या भूतसंप्रभाः । अंगानि विन्यसेत्पश्चाज्जातियुक्तानि षट् क्रमात् ॥१०॥
ब्रह्माणं विन्यसेद्भाले गायत्र्या सह संयुतम् । सावित्र्या सहितं विष्णुं कपोले दक्षिणे न्यसेत् ॥११॥
वागीश्वर्या समायुक्तं वामगंडे महेश्वरम् । श्रिया धनपतिं न्यस्य वामकर्णाग्रके पुनः ॥१२॥
रत्या स्मरं मुखे न्यस्य पुण्यागणपतिं न्यसेत् । सव्यकर्णोपरि निधाकर्णगंडांतरालयोः ॥१३॥
न्यस्तव्यं वदने मूलं भूपश्चैत्रांस्ततो न्यसेत् । कण्ठमूले स्तनद्वंद्वे वामांसे हृदयांबुजे ॥१४॥
सव्यांसे पार्श्वयुगले नाभिदेशे च देशिकः । भालांश्च पार्श्वजठरे पार्श्वांसापरके हृदि ॥१५॥
ब्रह्माण्याद्यास्तनौ न्यस्य विधिना प्रोक्तलक्षणाः । मूलेन व्यापकं देहे न्यस्य देवीं विचिंतयेत् ॥१६॥
उद्यद्दिवाकरनिभां तुंगोरोजां त्रिलोचनाम् । स्मेरास्यामिंदुमुकुटां वरपाशांकुशाभयाम् ॥१७॥
रदलक्षं जपेन्मंत्रं त्रिमध्वक्तैर्हुनेत्ततः । अष्टद्रव्यैर्दशांशेन ब्रह्मवृक्षसमिद्वरैः ॥१८॥
द्राक्षाखर्जूरवातादशर्करानालिकेरकम् । तन्दुलाज्यतिलं विप्र द्रव्याष्टकमुदा हृतम् ॥१९॥
दद्यादर्घ्यं दिनेशाय तत्र संचिन्त्य पार्वतीम् । पद्ममष्टदलं बाह्ये वृत्तं षोडशभिर्दलैः ॥२०॥
विलिखेत्कर्णिकामध्ये षट्कोणमतिसुन्दरम् । ततः संपूजयेत्पीठं नवशक्तिसमन्वितम् ॥२१॥
जयाख्या विजया पश्चादजिताह्यपराजिता । नित्या विलासिनी दोग्ध्री त्वघोरा मंगला नव ॥२२॥

बीज मंत्र से क्रमशः षडंगन्यास करना चाहिये। साधक संहार एवम् सृष्टिमार्ग से मातृकान्यास कर देवता की भावसिद्धि के लिये मन्त्रन्यास करे। मस्तक पर हृल्लेखा, मुख में गगना, हृदयकमल में रक्ता, गुह्यप्रदेश में करालिका, चरणद्वय पर महोच्छुष्मा और ऊपर, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवम् उत्तर में भूत के समान प्रभा वाली सद्या आदि तथा ह्रस्व, बीज आदि का न्यास करे। पश्चात् जातियुक्त छह अंगों का क्रमशः न्यास करना चाहिये ॥५-१०॥ ललाट पर गायत्री सहित ब्रह्मा का और दक्षिण कपोल पर सावित्री सहित विष्णु का न्यास करना चाहिये। वाम कपोल पर वागीश्वरी सहित महेश्वर का और वामकर्ण के अग्रभाग में लक्ष्मी सहित कुबेर का न्यास करे। मुख में रति सहित कन्दर्प का और बायें कान पर पुण्यासहित गणपति का न्यास करे ॥११-१२॥ कान तथा तथा कपोल के मध्य में निधा का और वदन में मूलमन्त्र का न्यास करे। तदनन्तर कण्ठमूल, स्तनद्वय, वामस्कन्ध, दक्षिणस्कन्ध, हृदयकमल, पार्श्वयुगल तथा नाभिदेश में चैत्रों का न्यास कर उदर, स्कन्ध तथा हृदय के एक देश में भालों का न्यास करे। फिर स्तन पर उक्तलक्षणा ब्रह्माणी आदि देवियों का न्यास कर देह में मूलमन्त्र से व्यापक का न्यास करे। तत्पश्चात् उदीयमान दिवाकर के समान तेजवाली, उत्तुंग कुच वाली, तीन नेत्रवाली, किंचित् हास्य-युक्त मुख वाली, चन्द्रमुकुट वाली, उत्तम पाश, अंकुश तथा अभयास्त्र धारण करने वाली देवी का ध्यान कर बत्तीस लाख मन्त्रों का जप करे। फिर त्रिमधु (घी, चीनी और मधु) मिश्रित अष्ट द्रव्य एवम् ब्रह्मवृक्ष की समिधा से उसका दशांश हवन करे ॥१३-१८॥ विप्र ! दाख खजूर, बादाम, शर्करा, नारियल, तन्दुल, घी तथा तिल—ये अष्ट द्रव्य कहलाते हैं। तदनन्तर सूर्य को अर्घ्य प्रदान कर पार्वती का ध्यान करे और कर्णिका के मध्य में अष्टदल, षोडशदल तथा परम सुन्दर षट्कोण का निर्माण करे। फिर नौ शक्तियों के साथ पीठ की पूजा करे। जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या,

बीजाढ्यमासनं दत्वा मूर्तिं तेनैव कल्पयेत् । तस्यां संपूजयेद्देवीमावाह्यावरणैः क्रमात् ॥२३॥
मध्यप्राग्याम्यसौम्येषु पूजयेदंगदेवताः । षट्कोणेषु यजेन्मंत्री पश्चान्मिथुनदेवताः ॥२४॥
इन्द्रकोणे लसद्दंडकुंडिकाक्षगुणाभयाम् । गायत्रीं पूजयेन्मंत्री ब्रह्माणमपि तादृशम् ॥२५॥
रक्षःकोणे शंखचक्रगदापंकजधारिणीम् । सावित्रीं पीतवसनां यजेद्विष्णुं च तादृशम् ॥२६॥
वायुकोणे परश्वक्षमालाभयवरान्विताम् । यजेत्सरस्वतीमच्छां रुद्रं तादृशलक्षणम् ॥२७॥
वह्निकोणे यजेद्रत्नकुम्भं मणिकरंडकम् । कराभ्यां बिभ्रतीं पीतां तुंदिलं धनदायकम् ॥२८॥
आलिंग्य सव्यहस्तेन वामे तांबूलधारिणीम् । धनदांकसमारूढां महालक्ष्मीं प्रपूजयेत् ॥२९॥
पश्चिमे मदनं बाणपाशांकुशशरासनाम् । धारयंतं जपारक्तं पूजयेद्रक्तभूषणम् ॥३०॥
सव्येन पतिमाश्लिष्य वामेनोत्पलधारिणीम् । पाणिना रमणांकस्थां रतिं सम्यक्समर्चयेत् ॥३१॥
ऐशान्ये पूजयेत्सम्यक् विघ्नराजं प्रियान्वितम् । सृणिपाशधरं कांतं वरांगासक्तकलांगुलिम् ॥३२॥
माध्वीपूर्णकपालाढ्यं विघ्नराजं दिगंबरम् । पुष्करे विगलद्रत्नस्फुरच्चषकधारिणम् ॥३३॥
सिंदूरसदृशाकारामुद्दाममदविभ्रमाम् । धृतरक्तोत्पलामन्यपाणिना तु ध्वजस्पृशाम् ॥३४॥
आश्लिष्टकांतामरुणां पुष्टिमर्चेद्दिगंबराम् । कर्णिकायां निधी पूज्यौ षट्कोणस्याथ पार्श्वयोः ॥३५॥
अंगानि केसरेष्वेताः पश्चात्पत्रेषु पूजयेत् । अनंगकुसुमा पश्चाद्द्वितीयानंगमेखला ॥३६॥
अनंगमदना तद्वदनंगमदनातुरा । भुवनपाला गगनवेगा षष्ठी चैव ततः परम् ॥३७॥

विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा और मंगला—ये नौ शक्तियां हैं। बीजमन्त्र से उन्हें आसन देकर उसी मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करे। उसी प्रतिमा में अंगों सहित देवी का आवाहन कर पूजा करे ॥१९-२३॥ साधक उत्तर दिशा में मध्यप्राज्ञा आदि अंगदेवताओं का पूजन कर षट्कोण में मिथुन देवताओं की आराधना करे। ईशान कोण में दंड, कुंडिका, रुद्राक्ष, यज्ञोपवीत तथा अभयास्त्र धारण करनेवाली गायत्री तथा तत्स्वरूप ब्रह्मा की पूजा करके नैर्ऋत्य कोण में शंख, चक्र, गदा, पद्म और पीतवस्त्र धारण करनेवाली सावित्री तथा उसी रूप के विष्णु की पूजा करे। वायुकोण में रुद्राक्षमाला तथा अभयास्त्र धारण करने वाली शुक्लवर्णा सरस्वती एवम् तादृश रुद्र की पूजा कर अग्निकोण में रत्न के घड़े तथा मणि की डाली को हाथों में धारण करनेवाली, पीतवर्णा वाली, दाहिने हाथ से तुन्दिल (बड़े पेट वाले) पति कुबेर का आलिंगन करनेवाली, बायें हाथ में तांबूल धारण करने वाली और धनपति को गोद में बैठने वाली महालक्ष्मी का पूजन करे ॥२४-२९॥ पश्चिम दिशा में बाण, पाश, अंकुश तथा धनुष धारण करने वाले, जपापुष्प के समान रक्तवर्ण वाले और रक्त आभूषण पहनने वाले पति कामदेव की दाहिने हाथ से आलिंगन करने वाली, बायें हाथ में कमल धारण करनेवाली और कांत की गोदी में बैठनेवाली रति को सम्यक् प्रकार से अर्चना करे ॥३०-३१॥ ईशान कोण में अंकुश तथा पाश धारण करने वाले, कमनीय, हाथी के समान शिर वाले, मद्यपूर्ण कपाल धारण करनेवाले, दिगंबर तथा सूंड़ से उत्तम रत्नों के बने मद्यपान पात्र (प्याला) को उठाने वाले, गणेश और सिंदूर के सदृश आकृतिवाली, अत्यन्त मद से विह्वल, एक हाथ में लाल कमल तथा दूसरे हाथ में पताका धारण करनेवाली, प्रियतम का आलिंगन करनेवाली, लाल वर्णवाली एवम् दिगंबर पुष्टि की अर्चना करे। षट्कोण की दोनों बगल में कर्णिका पर निधियों का और केसरों पर अंगों का पूजन करे ॥३२-३५½॥ पश्चात् पत्रों पर अनंगकुसुमा, अनंगमेखला, अनंगमना, अनंगमदनातुरा, भुवनपाला, षष्ठी, शशिलेखा और गगनलेखा इन आठ शक्तियों की पूजा करें।

शशिलेखा गगनलेखा चेत्यष्टौ यत्र शक्तयः । खड्गखेटकधारिण्यः श्यामाः पूज्याश्च मातरः ॥३८॥
पद्माद्बहिः समभ्यर्च्याः शक्तयः परिचारिकाः । प्रथमानंगद्रव्यास्याद्नंगमदना क्रमः ॥३९॥
मदनातुरा भवनवेगा ततो भुवनपालिका । स्यात्सर्वशिशिरानंगवेदनानंगमेखला ॥४०॥
चषकं तालवृंतं च तांबूलं छत्रमुज्ज्वलम् । चामरे चांशुकं पुष्पं बिभ्राणाः करपंकजैः ॥४१॥
सर्वाभरणसंदीप्तान् लोकपालान्बहिर्यजेत् । वज्रादीन्यपि तद्बाह्ये देवीमित्थं प्रपूजयेत् ॥४२॥
मंत्री त्रिमधुरोपेतैर्हुत्वाश्वत्थसमिद्वरैः । ब्राह्मणान्वशयेच्छीघ्रं पार्थिवान्पद्महोमतः ॥४३॥
पलाशपुष्पैस्तत्पत्नीं मंत्रिणः कुमुदैरपि । पंचविंशतिधा जप्तैर्जलैः स्नानं दिने दिने ॥४४॥
आत्मानमभिषिंचेद्यः सर्वसौभाग्यवान्भवेत् । पंचविंशतिधा जप्तं जलं प्रातः पिबेन्नरः ॥४५॥
अवाप्य महतीं प्रज्ञां कवीनामग्रणीर्भवेत् । कर्पूरागरुसंयुक्तकुंकुमं साधु साधितम् ॥४६॥
गृहीत्वा तिलकं कुर्याद्राजवश्यमनुत्तमम् । शालिपिष्टमयीं कृत्वा पुत्तलीं मधुरान्विताम् ॥४७॥
जप्तां प्रतिष्ठितप्राणां भक्षयेद्रविवासरे । वशं नयति राजानं नारीं वा नरमेव च ॥४८॥
कण्ठमात्रोदके स्थित्वा वीक्ष्य तोयोद्गतं रविम् । त्रिसहस्रं जपेन्मंत्रं कन्यामिष्टां लभेत्ततः ॥४९॥
अन्नं तन्मंत्रितं मंत्री भुंजित श्रीप्रसिद्धये । लिखितां भस्मना मायां ससाध्यां फलकादिषु ॥५०॥
तत्कालं दर्शयेद्यत्र सुखं सूयेत गर्भिणी । भुवनेशीयमाख्याता सहस्रभुजसंभवा ॥५१॥
भुक्तिमुक्तिप्रदा नृणां स्मर्तॄणां द्विजसत्तम । ततः कल्पांतरे विप्र कदाचिन्महिषासुरः ॥५२॥

फिर ढाल-तलवार धारण करनेवाली और श्यामवर्णवाली माताओं का पूजन करे। तत्पश्चात् करकमलों में चषक (प्याला), तालवृन्त (पंखा), तन्दूल, उज्ज्वल छत्र, चामर, वस्त्र तथा पुष्प धारण करनेवाली परिचारिका शक्तियों की अर्चना करनी चाहिये। पहली अनंगद्रव्या, दूसरी अनंगमदना, तीसरी मदनातुरा, चौथी भुवनवेगा, पाँचवीं भुवनपालिका, छठीं सर्वशिशिरा, आठवीं अनंगवेदना और आठवीं अनंगमेखला नामक शक्तियाँ हैं, तदनन्तर समस्त आभुषणों से अलंकृत लोकपाल एवम् उनके वज्र आदि का पूजन करे ॥३६-४२॥

इस प्रकार देवी का पूजन करके त्रिमधुयुक्त पीपल की समिधा से हवन करने वाला साधक ब्राह्मणों को वश में करता है। कमल से हवन करनेवाला राजाओं को, पलाश के पुष्पों से हवन करने वाला राजपत्नियों को और कुमुद से होम करने वाला मन्त्रियों को वश में करता है। जो प्रतिदिन पच्चीस बार इस मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित करके स्नान करता है, उसे अखिल सौभाग्य की प्राप्ति होती है। जो नर पचीस बार जल को अभिजप्त करके प्रातःकाल पान करता है वह महती प्रज्ञा को प्राप्त कर कवियों में सर्वश्रेष्ठ होता है। अच्छी तरह अभिमन्त्रित कर्पूर, अगर तथा कुंकुम का तिलक लगाने वाला व्यक्ति राजा को वश में करता है ॥४३-४६½॥ मधुयुक्त चावल को पीस कर गुड़िया बनाये और इस मन्त्र से उसकी प्राणप्रतिष्ठा करके रवि दिन उसका भक्षण करे। ऐसा करने से राजा—नारी या नर—वशीभूत होते हैं। कंठ प्रमाण जल में खड़े होकर जल से निकलते हुए सूर्य को देखकर तीन हजार मन्त्र के जप करने से अभीष्ट कन्या (पत्नी) का लाभ होता है। साधक श्री प्राप्ति के लिये अभिमन्त्रित अन्न का भक्षण करे। तख्ते आदि पर भस्म से लिखी देवी की प्रतिमा को दिखा देने से गर्भिणी स्त्री तत्काल सुख से प्रसव करती है। द्विजश्रेष्ठ ! ये देवी भुवनेशी कहलाती हैं। ये सहस्र भुजावाली तथा अपने भक्तों को भुक्ति-मुक्ति देने वाली हैं। विप्र ! दूसरे कल्प में किसी समय महिषासुर नामक दैत्यपति समस्त लोकपालों को जीत कर तीनों लोक का उपभोग करने लगा। तब उसके

बभूव लोकपालांस्तु जित्वा भुंक्ते जगत्त्रयम् । ततस्तत्पीडिता देवा वैकुंठं शरणं ययुः ॥५३॥
ततो देवी महालक्ष्मीश्चक्राद्यंगोत्थतेजसा । श्रीर्बभूव मुनिश्रेष्ठ मूर्ता व्याप्तजगत्त्रया ॥५४॥
स्वयं सा महिषादींस्तु निहत्य जगदीश्वरी । अरविंदवनं प्राप्ता भजतामिष्टदायिनी ॥५५॥
तस्याः समर्चनं वक्ष्ये संक्षेपेण शृणु द्विज । मृत्युक्रोधेन गुरुणा बिंदुभूषितमस्तका ॥५६॥
बीजमन्त्रः श्रियः प्रोक्तो भजतामिष्टदायकः । ऋषिर्भृगुर्निवृच्छंदो देवता श्रीः समीरिता ॥५७॥
षड्दीर्घयुक्तबीजेन कुर्यादंगानि षट् क्रमात् । ततो ध्यायेज्जगद्वंद्यां श्रियं संपत्तिदायिनीम् ॥५८॥
कांचनाभां गजैः श्वेतैश्चतुर्भिः स्वकरोद्धृतैः । हिरण्मया मृतघटैः सिच्यमानां सरोजगाम् ॥५९॥
वराभयाब्जस्रग्घस्तां क्षौमवस्त्रां किरीटिनीम् । सिद्धलक्षं जपेन्मन्त्रं तत्सहस्रं हुनेत्तथा ॥६०॥
सुगंधकुसुमैरिष्ट्वा कमलैर्मधुरप्लुतैः । महालक्ष्म्युदिते पीठे मूर्तिं मूलेन कल्पयेत् ॥६१॥
यजेत्पूर्ववदंगानि दिग्दलेष्वर्चयेत्ततः । वासुदेवं संकर्षणं प्रद्युम्नमनिरुद्धकम् ॥६२॥
हिमपीततमालेंद्रनीलाभान्पीतवाससः । शंखचक्रगदापद्मधारिणस्तांश्चतुर्भुजान् ॥६३॥
विदिगंतेषु पत्रेषु दमकादीन्यजेद्गजान् । दमकं पुण्डरीकं च गुग्गुलं च कुरंटकम् ॥६४॥
यजेच्छंखनिधिं देव्यां दक्षिणे प्रमदान्वितम् । मुक्तामाणिक्यसंकाशौ किंचित्स्मितमुखांबुजौ ॥६५॥
अन्योन्यालिंगनपरौ शंखापंकजधारिणौ । विगलद्रत्नवर्षाभ्यां शंखाभ्यां मूर्ध्नि लांछितौ ॥६६॥
तुंदिलं कंबुकनिधिं वसुधारां घनस्तनीम् । वामतः पंकजनिधिं प्रियया सहितं यजेत् ॥६७॥

पीड़ित देवगण विष्णु की शरण में गये ॥४७-५३॥ मुनिश्रेष्ठ ! वहाँ सब देवताओं के तेज से सांगोपांग महालक्ष्मी का आविर्भाव हुआ, जिनके तेज से तीनों जगत् व्याप्त हो गये। वे जगदीश्वरी देवी स्वयं महिषासुर आदि को निहत कर कमलवन में चली गईं। वे भक्तों की कामना पूरी करती हैं। मैं संक्षेप से उनका पूजन बतला देता हूँ, सुनो ! मृत्यु, क्रोध, गुरु एवम् बिंदु से भूषित मस्तक वाला अक्षर महालक्ष्मी का बीजमन्त्र है, जो साधकों के लिये इष्टदायक है। इस मन्त्र के ऋषि भृगु हैं, छंद निवृत् है और देवता श्री हैं ॥५४-५७॥ छह दीर्घ अक्षरों से युक्त बीजमन्त्र से क्रमशः षडंगन्यास करे। तदनन्तर विश्वविख्यात एवम् संपत्तिदायिनी लक्ष्मी का ध्यान करे। 'लक्ष्मी कमलों पर बैठी हैं, उनके हाथों में अभयास्त्र तथा पद्ममाला है, रेशमी वस्त्र पहने हुई हैं, मुकुट सुशोभित हो रहा है और सुवर्ण के समान कान्तिवाले चार श्वेत गज स्वर्णमय अमृतघटों को अपनी सूड़ों से उठाकर उनके ऊपर अमृत वर्षण कर रहे हैं।' तत्पश्चात् आठ लाख मन्त्र का जप करके उतने हजार सुगंधित पुष्पों तथा मधुरमिश्रित कमलों से होम करे। फिर महालक्ष्मी के नाम से प्रसिद्ध पीठ पर मूलमन्त्र से मूर्ति की कल्पना करके पहिले की तरह अंगों का पूजन करे ॥५८-६२॥ चारों दिशाओं में हिम, पीत, तमाल, इन्द्र और नील वर्ण वाले, पीताम्बर, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी तथा चतुर्भुज वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवम् अनिरुद्ध की पूजा करे। दिशाओं के कोनों में दमक, पुण्डरीक, गुग्गुल तथा कुरंट नामक गजों की अर्चना करे। देवी के दक्षिण भाग में पत्नी सहित शंखनिधि की आराधना करे। उन दोनों का वर्ण मुक्ता और मणि के समान है, मुखारविन्द किंचित हास्य से युक्त है, दोनों परस्परालिंगन में आसक्त हैं, शंख और कमल धारण किये हुए हैं, दोनों के मस्तक पर उत्तम रत्नों की वर्षा करने वाले शंखों का चिह्न विराजमान है। शंख निधि तुन्दिल हैं। और उनकी पत्नी (वसुधारा) पीनस्तनी है। देवी के वाम भाग में प्रिया सहित पंकजनिधि की अर्चना करे

सिंदूराभौ भुजश्लिष्टौ रक्तपद्मोत्पलान्वितौ । निःसरद्रत्नवर्षाभ्यां पद्माभ्यां मूर्ध्नि लांछितौ ॥६८॥
तुंदिलं पंकजनिधि तत्त्वां वसुमतोमपि । दलाग्रेषु यजेदेता बलाक्याद्याः समंततः ॥६९॥
बलाकी विमला चैव कमला वनमालिका । विभीषिका मालिका च शांकरी वसुमालिका ॥७०॥
पंकजद्वयधारिण्यो मुक्ताहारसमप्रभाः । लोकेशान्पूजयेदंते वज्राद्यस्त्राणि तद्बहिः ॥७१॥
इत्थं यो भजते देवीं विधिना साधकोत्तमः । धनधान्यसमृद्धः स्याच्छ्रियमाप्नोत्यनिंदिताम् ॥७२॥
वक्षःप्रमाणसलिले स्थित्वा मन्त्रमिमं जपेत् । त्रिलक्षमर्कगं ध्यायन्स भवेत्कमलालयः ॥७३॥
विष्णुगेहस्थबिल्वस्य मूले लक्षत्रयं जपेत् । साधको यः स लभते वांछितं धनसंचयम् ॥७४॥
अशोकवह्नावाज्याक्तैस्तंडुलैर्वशयेज्जगत् । होमेन खादिरे वह्नौ तंडुलैर्मधुरोक्षितैः ॥७५॥
राजा वश्यो भवेच्छीघ्रं महालक्ष्मीश्च वर्द्धते । बिल्वच्छायामधिवसन्बिल्वमिश्रहविष्यभुक् ॥७६॥
संवत्सरत्रयं हुत्वा तत्फलैरथवांबुजैः । साधकेंद्रो महालक्ष्मीं चक्षुषा पश्यति ध्रुवम् ॥७७॥
अथ कल्पांतरे ब्रह्मन् देवराज्यविलुंपकौ । जातौ शुम्भनिशुंभौ द्वावसुरौ लोककंटकौ ॥७८॥
ततो भ्रष्टाधिकारैस्तु शक्राद्यैः संस्तुता मुने । महासरस्वती देवी तदा चावततार ह ॥७९॥
हिमालये महापुण्ये शैलोद्देशेऽतिशोभने । ततः शुम्भादिकान्हत्वा दैवतैः परिपूजिता ॥८०॥
वरं दत्त्वाविशद्देवी मानसं नाम वै सरः । तस्या मंत्रं प्रविक्ष्यामि श्रुणुष्वावहितो मुने ॥८१॥
ज्ञानामृता शशधरा क्रांतमालोपशोभिता । वाग्बीजं तेन चांगानि कल्पयेत्साधकोत्तमः ॥८२॥

॥६३-६७॥ उनकी आभा सिंदूर के समान हैं, दोनों परस्पर बाँहें मिलाये हुए हैं, हाथों में रक्तकमल शोभायमान हैं, मस्तक पर रत्न-वर्षण करने वाले पद्मों का लांछन है, पंकजनिधि तुन्दिल हैं और उनकी पत्नी धनवती है। पत्रों के ऊपर शंखनिधि आदि देवों की चारों ओर दो-दो कमल धारण करनेवाली तथा मुक्ताहार के समान प्रभा वाली, बलाकी, विमला, कमला, वनमालिका, विभीषिका, मालिका, शांकरी, तथा वसुमालिका की पूजा करनी चाहिये। अन्त में लोकपाल तथा उनके वज्र आदि अस्त्रों का पूजन करे। जो साधक श्रेष्ठ इस प्रकार-विधि से देवी की आराधना करता है, वह धन-धान्य से परिपूर्ण होता है तथा अनिंद्य लक्ष्मी को प्राप्त करता है। ॥६८-७३॥ छाती भर जल में स्थित होकर जो सूर्य का ध्यान करते हुए तीन लाख मन्त्र का जप करता है, वह महालक्ष्मीवान् होता है। जो साधक विष्णुमन्दिरस्थ बिल्ववृक्ष के मूल में तीन लाख मन्त्र का जप करता है, वह वांछित धन को प्राप्त करता है। अशोक की समिधा से प्रज्वलित की गई अग्नि में जो घृतमिश्रित चावल से होम करता है वह जगत् को वश में करता है, जो खैर के अग्नि में मधुरमिश्रित चावल से होम करता है वह राजा को शीघ्र वशीभूत कर लेता है और उसे अत्यन्त श्री की प्राप्ति होती है। जो साधक बिल्ववृक्ष की छाया में तीन वर्षों तक वास करता है तथा बिल्वमिश्रित हविष्य भक्षण करते हुए बिल्वफलों से या कमलों से हवन करता है, वह निश्चय ही महालक्ष्मी को आँखों से देखता है ॥७४-७७॥

ब्रह्मन्! कल्पान्तर में इन्द्र के लूटनेवाले शुम्भ और निशुम्भ नामक दो जनतापकारक असुर हुए। मुने! उसके द्वारा अपने-अपने अधिकार से वंचित किये गये शक्र आदि देवों ने महासरस्वती की स्तुति की। प्रसन्न होकर देवी ने हिमालय के महापवित्र तथा अति रमणीय शिखर पर अवतार ग्रहण किया। देवताओं ने उनकी अर्चना की। उन्होंने शुम्भ आदि को निहत कर देवों को वरदान देकर मानस सरोवर में प्रवेश किया। मुने! मैं उनका मंत्र बता रहा हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। "ज्ञानामृता' .....वाग्" यह बीज मंत्र है,

ऋषिः सदाशिवश्चास्य छंदोऽनुष्टुबुदाहृतम् । देवता वाक्समाख्याता भजतामिष्टदायिनी ॥८३॥
श्वेतांबरां विसश्वेतां वीणापुस्तकधारिणीम् । दिव्यैराभरणैर्युक्तां ध्यायेद्देवीं निरंतराम् ॥८४॥
महासरस्वतीपीठे मूर्तिं मूलेन कल्पयेत् । देवीं संपूजयेत्तस्यामंगाद्यावरणैः सह ॥८५॥
आदावगावृतिः पश्चादंबिकाद्यास्समीरिताः । द्वितीया मातृभिः प्रोक्ता तृतीयाद्यष्टशक्तिभिः ॥८६॥
चतुर्थी पंचमी प्रोक्ता द्वात्रिंशच्छक्तिभिः पुनः । चतुःषष्ट्या स्मृता षष्ठी शक्तिभिर्लोकनायकैः ॥८७॥
सप्तमी पुनरेतेषामस्त्रैः स्यादष्टमावृतिः । एवं पूज्या जगद्धात्री श्रीमती वाग्भवाभिधा ॥८८॥
स्थानेषु पूर्वमुक्तेषु यजेदंगानि साधकः । अम्बिका वाग्भवा दुर्गा श्रीशक्तिश्चोक्तलक्षणा ॥८९॥
ब्रह्माद्याश्च ततः पूज्याः कराली विकरालयुमा । सरस्वती श्रीदुर्गा च लक्ष्मीश्चैव धृतिः स्मृतिः ॥९०॥
श्रद्धा मेधा रतिः कांतिरार्या षोडश शक्तयः । खड्गखेटकधारिण्यः श्यामाः पूज्याः स्वलंकृताः ॥९१॥
विषघ्नी पुष्टयः प्रज्ञा सिनीवाली कुहूः पुनः । रुद्रवीर्या प्रभा नंदा पोषणा वृद्धिदा शुभा ॥९२॥
कालरात्रिर्महारात्रिर्भद्रकाली कपर्दिनी । विकृतिर्दंडिमुण्डिन्यौ सेंदुखंडा शिखण्डिनी ॥९३॥
निशुम्भशुम्भमथनी चण्डमुण्डविनाशिनी । इन्द्राणी चैव रुद्राणी शंकरार्द्धशरीरिणी ॥९४॥
नारी नारायणी चैव त्रिशूलिन्यपि पालिनी । अम्बिका ह्लदिनी चैव द्वात्रिंशच्छक्तयः सिताः ॥९५॥
चक्रहस्ताः पिशाचास्याः संपूज्याश्चारुभूषणाः । पिंगलाक्षी विशालाक्षी समृद्धिर्बुद्धिरेव च ॥९६॥
श्रद्धा स्वाहा स्वधा भिक्षा माया संज्ञा वसुन्धरा । त्रिलोकधात्री गायत्री सावित्री त्रिदशेश्वरी ॥९७॥
सरूपा बहुरूपा च स्कंदमाता श्रुतप्रिया । विमला कमला पश्चादरुणी पुनरारुणी ॥९८॥
सरूपा बहुरूपा च स्कंदमाता श्रुतप्रिया । विमला कमला पश्चादरुणी पुनरारुणी ॥९८॥
प्रकृतिर्विकृतिः सृष्टिः स्थितिः संहृतिरेव च । सन्ध्या माता सती हंसी मर्दिका वज्रिका परा ॥९९॥

उत्तम साधक इसी से अंगों की कल्पना करे ॥७८-८२॥ मन्त्र के ऋषि सदाशिव हैं, छंद अनुष्टुप् है और देवता वाक् हैं, जो भक्तों की कामना पूर्ण करती हैं, साधक श्वेतवस्त्रा, विश्व में सब से शुक्ला, वीणापुस्तकधारिणी और दिव्य आभूषणों से अलंकृता देवी का निरंतर ध्यान करे। महासरस्वती पीठ पर मूलमंत्र से मूर्ति की कल्पना करके उसमें अंग आदि आवरणों के साथ देवी की अर्चना करे। पहिले अंगावृति पश्चात् अंबिका आदि का पूजन करे। फिर मातृवृन्द आठ शक्तियाँ सोलह शक्तियाँ बत्तीस शक्तियाँ, चौंसठ शक्तियाँ, लोकपाल तथा उनके अस्त्र—इन सबकी पूजा करे। इसप्रकार वाग्भवा श्रीमती जगद्धात्री की आराधना करनी चाहिये ॥८३-८८॥

साधक पूर्वोक्त स्थानों में अंगों की अर्चना करने के उपरान्त ब्राह्मी आदि का पूजन कर अम्बिका, वाग्भवी, दुर्गा, उक्तलक्षणा श्रीशक्ति, कराली, विकराली उमा, सरस्वती, श्रीदुर्गा, लक्ष्मी, धृति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, रति, कांति तथा आर्या—इन सोलह शक्तियों की पूजा करे। फिर खड्ग तथा खेटक (अस्त्र विशेष) धारण करने वाली सुमंडित श्यामाओं की अर्चना करे। विषघ्नी, पुष्टि, प्रज्ञा, शिनीवाली, कुहू, रुद्रवीर्या, प्रभा, नंदा, पोषणा, वृद्धिदा, शुभा कालरात्रि, महारात्रि, भद्रकाली, कपर्दिनी, विकृति, दंडिनी, मुंडिनी, सेंदुखंडा, शिखंडिनी, निशुंभथनी, चंडमुडविनाशिनी, इन्द्राणी, रुद्राणी, शंकरार्धशरीरिणी, नारी, नारायणी, त्रिशूलिनी, पालिनी, अम्बिका, ह्लदिनी तथा सिता—ये बत्तीस शक्तियाँ हैं। ॥८९-९५॥ चक्रहस्ता, पिशाचास्या चारुभूषणा, पिंगलाक्षी, विशालाक्षी, समृद्धि, बुद्धि, श्रद्धा, स्वहा, स्वधा, भिक्षा, माया, संज्ञा, वसुंधरा, त्रिलोकधात्री, गयत्री, सावित्री त्रिदशेश्वरी, सरूपा, बहुरूपा, स्कंदमाता, श्रुतप्रिया, विमला, कमला, आरुणी, प्रकृति, विकृति, सृष्टि, स्थिति, संहृति, संध्या माता, सती हंसी, मर्दिका, वज्रिका, देवमाता, भगवती, देवकी, कमलासना, त्रिमुखी, सप्तवदना, सुरासुर-

देवमाता भगवती देवकी कमलासना । त्रिमुखी सप्तवदना सुरासुरविमर्दिनी ॥१००॥
लंबोष्ठी चोर्ध्वकेशी च बहुशिरना वृकोदरी । रथरेखाह्वया पश्चाच्छशिरेखा तथापरा ॥१०१॥
गगनवेगा पवनवेगा वेगा च तदनंतरम् । ततो भुवनपालाख्या ततः स्यान्मदनातुरा ॥१०२॥
अनंगानंगवदना तथैवानंगमेखला । अनंगकुसुमा विश्वरूपा सुरभयंकरी ॥१०३॥
अक्षोभ्या सप्तवाहिन्या वज्ररूपा शुचिव्रता । वरदाख्याथ वागीशी चतुःषष्टिस्समीरिताः ॥१०४॥
चापबाणधराः सर्वा ज्वालाजिह्वा महाप्रभाः । दंष्ट्रिण्यश्चोर्ध्वकेश्यस्ता युद्धोपक्रांतमानसाः ॥१०५॥
सर्वाभरणसंदीप्ता पूजनीयाः प्रयत्नतः । लोकेशाः पूर्ववत्पूज्यास्तद्वद्वज्रादिकान्यपि ॥१०६॥
जपेत्षोडशलक्षं च तद्दशांशं हुनेत्सुधीः । आज्येन खादिरे वह्नौ ततः सिद्धो भवेन्मनुः ॥१०७॥
कमलैरयुतं हुत्वा राजानं वशमानयेत् । उत्पलैर्जुह्वतो नूनं महालक्ष्मीः प्रजायते ॥१०८॥
पलाशकुसुमैर्हुत्वा वत्सरेण कविर्भवेत् । राजीलवणहोमेन वनितां वशमानयेत् ॥१०९॥
भूमौ भोगांस्तु भुक्त्वाते विष्णुलोकमवाप्नुयात् । वाणीबीजजपाशक्तो नात्र कार्या विचारणा ॥११०॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे देवीमंत्रनिरूपणं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

बिमर्दिनी, लंबोष्ठी, ऊर्ध्वकेशी, बहुशिरना, वृकोदरी, रथरेखा, शशिरेखा, गगनवेगा, पवनवेगा, वेगा, भुवनपाला, मदनातुरा, अनंगा, अनंगवदना, अनंगमेखला, अनंगकुसुमा, विश्वरूपा, सुरभयंकरी, अक्षोभ्या, सप्तवाहिनी, वज्ररूपा, शुचिव्रता, वरदा और वागीशी—ये चौंसठ शक्तियाँ हैं ॥९६-१०४॥ ये सब धनुष एवम् बाण धारण करने वाली, जाज्वल्यमान जिह्वा वाली, महाकान्ति वाली, दंष्ट्रिणी, ऊर्ध्वकेशी, युद्धाभिलाषिणी तथा सब प्रकार के आभूषणों से भूषिता हैं। इनकी यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। पहिले की तरह लोकपाल तथा उनके वज्र आदि का भी पूजन करे। विद्वान् व्यक्ति सोलह लाख मंत्र का जप करके उसका दशांश खैर के अग्नि में घी से हवन करे। इससे मंत्र की सिद्धि होती है। कमलों से दश हजार हवन करने से राजा वश में आते हैं। रक्तकमलों से हवन करने वाला व्यक्ति महालक्ष्मी को प्राप्त करता है। एक वर्ष तक पलाश पुष्प से होम करने वाला कवि होता है। राई और नमक से हवन करने वाला व्यक्ति वनिता को वशीभूत करता है। सरस्वती के बीज मंत्र का जप करने वाला पृथ्वी पर भोगों को भोगकर अन्त में विष्णुलोक को प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं ॥१०५-११०॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त तृतीयपाद में देवीमन्त्रनिरूपण नामक चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८४॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

वाग्देवतावतारोऽन्यः कालिकेति प्रकीर्तिता । तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥१॥
सृष्टिक्रियान्विता शांतिर्विद्याढ्या च त्रिधा पुनः । अरुणाक्ष्यादीपिका च विद्युयुक्ता द्विधा ततः ॥२॥
मायाद्वयं ततः पश्चाद्दक्षिणे कालिके पदम् । पुनश्च सप्तबीजानि स्वहांतोऽयं मनूत्तमः ॥३॥
भैरवोऽस्य ऋषिश्छन्द उष्णिक्काली तु देवता । बीजं मायादीर्घवर्त्म शक्तिरुक्ता मुनीश्वर ॥४॥
षड्दीर्घाढ्यबीजेन विद्याया अंगमीरितम् । मातृकार्णान्दश दश हृदये भुजयोः पदोः ॥५॥
विन्यस्य व्यापकं कुर्यान्मूलमंत्रेण साधकः । शिरः कृपाणमभयं वरं हस्तैश्च बिभ्रतीम् ॥६॥
मुंडस्रङ्मस्तकां मुक्तकेशां पितृवनस्थिताम् । सर्वालंकृतवर्णां च श्यामांगीं कालिकां स्मरेत् ॥७॥
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं जुहुयादयुतं ततः । प्रसूनैः करवीरोत्थैः पूजायन्त्रमथोच्यते ॥८॥
विलिख्य पूर्वं षट्कोणं त्रिकोणत्रितयं ततः । पद्ममष्टदलं बाह्ये भूपुरं तत्र पूजयेत् ॥९॥
जया च विजया चापि अजिता चापराजिता । नित्या विलासिनी चापि दोग्ध्र्यघोरा च मंगला ॥१०॥
पीठस्य शक्तयो मायात्मनेहृत्पीठमंत्रकः । शिवरूपशवस्थां च शिवाभिर्दिक्षु वेष्टिताम् ॥११॥
महाकालरतासक्तां ध्यात्वांगान्यर्चयेत्पुरा । कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम् ॥१२॥

अध्याय ८५

वाग्देवता की अवतार—काली आदि के मन्त्रों का निरूपण

सनत्कुमार बोले—वाग्देवता का दूसरा अवतार कालिकारूप में हुआ है । अब मैं मानवों के लिये भुक्ति-मुक्ति प्रदान करने वाले कालिका-मन्त्र के विषय में कहूँगा । सृष्टि क्रिया से युक्त, शान्ति, विद्यापूर्ण, अरुणाक्षी, आदीपिका, विद्युयुक्ता, माया, दक्षिण कालिका, सात बीज और अन्त में स्वाहा—ये उत्तम मन्त्र हैं । इसके ऋषि भैरव, छंद उष्णिक् और देवता काली हैं । मुनीश्वर ! माया इसका बीज है और दीर्घवर्त्म शक्ति है । बीज सहित छः दीर्घ विद्या के अंग कहलाते हैं ॥१-४½॥ साधक मातृक (अकारादि ४९ अक्षर) वर्णों में से दश-दश को हृदय, भुजा और चरणों में न्यस्त करके मूलमन्त्र से व्यापक[1] न्यास करे । तत्पश्चात् शिर, कृपाण तथा अभयास्त्र को हाथों में धारण करनेवाली, मुण्डमाला को मस्तक पर पहनने वाली, बिखरे केश वाली, श्मशान में रहने वाली, समस्त अलंकारों से विभूषित तथा श्यामांगी कालिका का ध्यान करे। ध्यानोत्तर एक लाख मन्त्र का जप करे और दश हजार करवीर के पुष्पों से हवन करे । अब पूजायंत्र के बारे में कहता हूँ । पहले षट्कोण को लिख कर तीन त्रिकोण का निर्माण करे। तदनन्तर अष्टदल कमल को लिखकर उस पर भूपुर की पूजा करे । जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा और मंगला—ये पीठ शक्तियाँ हैं । "मायात्मने..."—यह हृत्पीठ का मन्त्र है ॥५-१०½॥ पहिले शिवरूपा, शवस्था, चारों ओर शृगालियों से वेष्टिता, महाकालनिरता तथा आसक्ता काली का ध्यान करके अंगों की अर्चना करे । षट्कोण में काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी

---

१. तन्त्रप्रसिद्ध सर्वाङ्ग सम्बन्धी न्यास ।

विप्रचित्तां च षट्कोणे नवकोणे ततोऽर्चयेत् । उग्रामुष्णप्रभां दीप्तां नीलाधानां बलाकिकाम् ॥१३॥
मात्रां मुद्रां तथा मित्रां पूज्याः पत्रेषु मातरः । पद्मस्यास्य सुयत्नेन ब्राह्मी नारायणीत्यपि ॥१४॥
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता । वाराही नारसिंही च पुनरेतास्तु भूपुरे ॥१५॥
भैरवीं महदाद्यां तां सिंहाद्यां धूम्रपूर्विकाम् । भीमोन्मत्तादिकां चापि वशीकरणभैरवीम् ॥१६॥
मोहनाद्यां समाराध्य शक्रादींन्यायुधान्यपि । एवमाराधिता काली सिद्धा भवति मंत्रिणाम् ॥१७॥
ततः प्रयोगान्कुर्वीत महाभैरवभाषितान् । आत्मनो वा परस्यार्थं क्षिप्रसिद्धिप्रदायकान् ॥१८॥
स्त्रीणां प्रहारं निंदां च कौटिल्यं वाप्रियं वचः । आत्मनो हितमन्विच्छन् कालीभक्तो विवर्जयेत् ॥१९॥
सुदृशो मदनावासं पश्यन्यः प्रजपेन्मनुम् । अयुतं सोऽचिरादेव वाक्पतेः समतामियात् ॥२०॥
दिगम्बरो मुक्तकेशः श्मशानस्थोऽधियामिनि । जपेद्योऽयुतमेतस्य भवेयुः सर्वसिद्धयः ॥२१॥
शवस्य हृदये स्थित्वा निर्वासाः प्रेतभूमिगः । अर्कपुष्पसहस्रेणाभ्यक्तेन स्वीयरेतसा ॥२२॥
देवीं यः पूजयेद्भक्त्या जपन्नेकैकशो मनुम् । सोऽचिरेणैव कालेन धरणीप्रभुतां व्रजेत् ॥२३॥
रजःकीर्णं भगं नार्या ध्यायन्यो ह्ययुतं जपेत् । स कवित्वेन रम्येण जनान्मोहयति ध्रुवम् ॥२४॥
त्रिपञ्चारे महापीठे शिवस्य हृदि संस्थिताम् । महाकालेन देवेन मारयुद्धं प्रकुर्वतीम् ॥२५॥
तां ध्यायन्स्मेरवदनां विदधत्सुरतं स्वयम् । जपेत्सहस्रमपि यः स शंकरसमो भवेत् ॥२६॥
अस्थिलोमत्वचायुक्तं मांसं मार्जारमेषयोः । उष्ट्रस्य महिषस्यापि बलिं यस्तु समर्पयेत् ॥२७॥
भूताष्टम्योर्मध्यरात्रे वश्याः स्युस्तस्य जन्तवः । विद्यालक्ष्मीयशःपुत्रैः स चिरं सुखमेधते ॥२८॥

और विप्रचित्ता का पूजन कर नवकोण में पत्रों के ऊपर उग्रा, उष्णप्रभा, दीप्ता, नीलाधाना, बलाकिका, मात्रा, मुद्रा, मित्रा तथा माताओं की पूजा करे। पुनः अष्टदल कमल पर यत्नपूर्वक ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, वाराही तथा नारसिंही का पूजन करे। भैरवी, महदाद्या, सिंहाद्या, धूम्रपूर्विका, भीमा, उन्मत्ता, उदिका, वशीकरण भैरवी तथा मोहनाद्या की आराधना करके इन्द्र आदि देवगण एवम् उनके अस्त्रों की पूजा करनी चाहिये। इस तरह काली की आराधना करने से ये साधकों को सिद्ध हो जाती हैं ॥११-१७॥ अपने लिये या दूसरे के लिये महाभैरव द्वारा प्रतिपादित शीघ्र सिद्धि दायक मन्त्रों का प्रयोग करे। कल्याण के इच्छुक काली के भक्तों को चाहिये कि वह स्त्रियों के ऊपर प्रहार, उनकी निंदा, तथा उनके साथ वंचना एवम् कटु भाषण न करे। जो नर सुन्दरी के मदनावास (भग) की ओर ताकते हुए दस हजार मन्त्र का जप करता है, वह शीघ्र ही बृहस्पति तुल्य हो जाता है। जो व्यक्ति अर्धरात्रि के समय श्मशान में बालों को बिखेर कर नग्न होकर इस मन्त्र का दश हजार जप करता है, उसे सकल सिद्धियों की प्राप्ति होती है। जो नर श्मशान में नग्न होकर शव की छाती पर बैठ कर हजार आक के पुष्पों में अपना वीर्य मिलाकर उनसे भक्ति-पूर्वक देवी का पूजन करता है तथा प्रति पुष्प चढ़ाने में मन्त्र का जप करता है, वह थोड़े ही समय में पृथ्वी का प्रभु हो जाता है ॥१८-२३॥

जो नर नारी के रजःपूर्ण भग का ध्यान करते हुए दश हजार मन्त्र का जप करता है, वह निश्चय ही अपनी रमणीय कविता से जनता को मुग्ध करता है। जो व्यक्ति त्रिपञ्चार नामक महापीठ में शिव की छाती पर अवस्थित तथा महाकाल देव (शंकर) के साथ रतिसंग्राम करती हुई स्मेर वदना देवी का ध्यान करके स्वयं रतिक्रीड़ा करते हुए एक हजार भी मन्त्र का जप करता है, वह शंकर की समता को प्राप्त करता है ॥२४-२६॥ जो कृष्ण पक्ष की अष्टमी की मध्यरात्रि में बिलाड़, भेंड़; ऊँट तथा महिष के अस्थि लोम एवम् त्वचा से युक्त मांस की बलि समर्पण करता है, उसके वश में समस्त प्राणी हो जाते हैं और वह विद्या, लक्ष्मी, यश तथा पुत्रों

यो हविष्याशनरतो दिवा देवीं स्मरन् जपेत् । नक्तं निधुवनासक्तो लक्षं स स्याद्धरापतिः ॥२९॥
रक्तांभोजैर्हुनेन्मंत्री धनैर्जयति वित्तपम् । बिल्वपत्रैर्भवेद्राज्यं रक्तपुष्पैर्वशीकृतिः ॥३०॥
असृजा महिषादीनां कालिकां यस्तु तर्पयेत् । तस्य स्युरचिरादेव करस्थाः सर्वसिद्धयः ॥३१॥
यो लक्षं प्रजपेन्मन्त्रं शवमारुह्य मन्त्रवित् । तस्य सिद्धो मनुः सद्यः सर्वेप्सितफलप्रदः ॥३२॥
तेनाश्वमेधप्रमुखैर्यागैरिष्टं सुजन्मना । दत्तं दानं तपस्तप्तं उपास्ते यस्तु कालिकाम् ॥३३॥
ब्रह्मा विष्णुः शिवा गौरी लक्ष्मीर्गणपती रविः । पूजिताः सकला देवा यः कालीं पूजयेत्सदा ॥३४॥
अथापरः सरस्वत्या ह्यवतारो निगद्यते । यां निषेव्य नरा लोके कृतार्थाः स्युर्न संशयः ॥३५॥
आप्यायिनी चन्द्रयुक्ता माया च वदनांतरे । सकामिका क्रुधा शांतिश्चन्द्रालंकृतमस्तका ॥३६॥
दीपिका सासना चन्द्रयुगस्त्रं मनुरीरितः । मुनिरक्षोभ्य उद्दिष्टश्छन्दस्तु बृहती मतम् ॥३७॥
तारारव्या देवता बीजं द्वितीयञ्च चतुर्थकम् । शक्तिः षड्दीर्घयुक्तेन द्वितीयेनांगकल्पनम् ॥३८॥
षोढा न्यासं ततः कुर्यात्तारायाः सर्वसिद्धिदम् । श्रीकण्ठादीन्न्यसेद्रुद्रान्मातृकावर्णपूर्वकान् ॥३९॥
मातृकोक्तस्थले माया तृतीयक्रोधपूर्वकान् । चतुर्थीनमसायुक्तान्प्रथमो न्यास ईरितः ॥४०॥
शवपीठसमासीनां नीलकांति त्रिलोचनाम् । अर्द्धेन्दुशेखरां नानाभूषणाढ्यां स्मरन्न्यसेत् ॥४१॥
द्वितीये तु ग्रहन्यासं कुर्यात्तां समनुस्मरन् । त्रिबीजस्वरपूर्वं तु रक्तसूर्य हृदि न्यसेत् ॥४२॥

को प्राप्त कर चिरकाल तक सुखोपभोग करता है। जो हविष्यभोजी होकर दिन में देवी का स्मरण करते हुए एक लाख मन्त्र का जप करता है और रात्रि में रतिक्रीडा में आसक्त रहता है, वह महीपति होता है। रक्त-कमल से हवन करनेवाला साधक धन में कुबेर को जीत लेता है। बिल्वपत्रों से हवन करने वालों को राज्य की प्राप्ति होती है। रक्तपुष्पों से होम करनेवाला वशीकरणसिद्धि को प्राप्त करता है ॥२७-३०॥ जो व्यक्ति महिष आदि के शोणित से कालिका को तृप्त करता है उसे सकल सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। जो मन्त्रवेत्ता शव पर आरूढ़ होकर लाख बार मन्त्र का जप करता है, वह तुरन्त अभीष्ट फलदायक मन्त्र को सिद्ध कर लेता है। जो सुजन्मा व्यक्ति कालिका की उपासना करता है, वह मानो अश्वमेध आदि यज्ञ, दान तथा तप करता है। जो सदा काली का पूजन करता हो, वह मानो ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गौरी, लक्ष्मी, गणेश तथा सूर्य आदि सकल देवों की पूजा करता है ॥३१-३४॥

इसके उपरान्त मैं सरस्वती के दूसरे अवतार का वर्णन करता हूँ, जिनकी आराधना करके मनुष्य कृतार्थ हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं। आप्यायिनी, चन्द्रयुक्ता, वदनान्तरवर्तिनी, माया, सकामिका, क्रुधा, शान्ति, चन्द्रमा से अलंकृत मस्तकवाली, दीपिका, सासना, और चन्द्रयुक्त अस्त्र (खड्ग)—यह उनका मन्त्र है। इस मन्त्र के ऋषि अक्षोभ्य हैं, छंद बृहती है और देवता तारा हैं। द्वितीय अक्षर बीज है और चतुर्थ अक्षर शक्ति है। छः दीर्घों से युक्त द्वितीय अक्षर से अंगों की कल्पना करे। तत्पश्चात् अखिल सिद्धिदायक तारा के षडंगन्यास करे। मातृका वर्ण पुरस्सर श्रीकंठ आदि रुद्रों का न्यास करके मातृकोक्त स्थल में तृतीय क्रोधपूर्वक माया का न्यास करे। तदनन्तर शव के पीठ पर आसीन नीलकांति, त्रिलोचना, विविध आभूषणों से भूषिता तथा ललाट पर अर्धचन्द्र को धारण करनेवाली देवी का ध्यान करके न्यास करना चाहिये, इसे प्रथम न्यास कहते हैं, पुनः उन्हीं का स्मरण करते हुए ग्रहों का न्यास करे। इसे द्वितीय न्यास कहते हैं॥३५-४१½॥ तीन बीजस्वर के साथ रक्त सूर्य का हृदय में न्यास करे। पवर्ग पूर्वक शुक्ल चन्द्र का दोनों भौंहों पर न्यास करे। कवर्ग पूर्वक रक्त मंगल का

तथा पवर्गपूर्वं तु शुक्लं सोमं भ्रुवोर्द्वये । कवर्गपूर्वं रक्ताभं मंगलं लोचनत्रयम् ॥४३॥
चवर्गाद्यं बुधं श्यामं न्यसेद्वक्षःस्थले बुधः । तवर्गाद्यं पीतवर्णं कण्ठकूपे बृहस्पतिम् ॥४४॥
तवर्गाद्यं श्वेतवर्णं घटिकायां तु भार्गवम् । नीलवर्णं पवर्गाद्यं नाभिदेशे शनैश्चरम् ॥४५॥
शवर्गाद्यं धूम्रवर्णं ध्यात्वा राहुं मुखे न्यसेत् । त्रिबीजपूर्वकश्चैवं ग्रहन्यासः समीरितः ॥४६॥
तृतीयं लोकपालानां न्यासं कुर्यात्प्रयत्नतः । मायादिबीजत्रितयं पूर्वकं सर्वसिद्धये ॥४७॥
स्वमस्तके ललाटादि विश्वष्टस्वधउर्ध्वतः । ह्रस्वदीर्घकादिकाष्टवर्गपूर्वान्दिशाधिपान् ॥४८॥
शिवशक्त्यभिधे न्यासं चतुर्थं तु समाचरेत् । त्रिबीजपूर्वकान्न्यस्येत्षट् शिवाञ्छक्तिसंयुतान् ॥४९॥
आधारादिषु चक्रेषु स्वचक्रवर्णपूर्वकम् । ब्रह्माणं डाकिनीयुक्तं वादिसांतार्णपूर्वकम् ॥५०॥
मूलाधारे विन्यसेच्च चतुर्दलसमन्वितम् । श्रीविष्णुं राकिणीयुक्तबादिलांतार्णपूर्वकम् ॥५१॥
स्वाधिष्ठानाभिधे चक्रे लिंगस्थे षड्दले न्यसेत् । रुद्रं तु डाकिनीयुक्तं डादिफांतार्णपूर्वकम् ॥५२॥
चक्रे दशदले न्यस्येन्नाभिस्थे मणिपूरके । ईश्वरं कादिठान्तार्णपूर्वकं शाकिनीयुतम् ॥५३॥
विन्यसेद्द्वादशदले हृदयस्थे त्वनाहते । सदाशिवं शाकिनीं च षोडशस्वरपूर्वकम् ॥५४॥
कण्ठस्थे षोडशदले विशुद्धाख्ये प्रविन्यसेत् । आज्ञाचक्रे परशिवं हाकिनीसंयुतं न्यसेत् ॥५५॥
लक्षार्णपूर्वं भ्रूमध्यसंस्थितेऽतिमनोहरे । तारादिपंचमं न्यासं कुर्यात्सर्वेष्टसिद्धये ॥५६॥
अष्टौ वर्गान्स्वरद्वंद्वपूर्वकान् बीजसंयुतान् । ताराद्या न्यासपूर्वाश्च प्रयोज्या अष्टशक्तयः ॥५७॥
ताराथोग्रा महोग्रापि वज्रा काली सरस्वती । कामश्वेरी च चामुंडा इत्यष्टौ तारिकाः स्मृताः ॥५८॥

नेत्रों पर न्यास करे। विद्वान् साधक चवर्गाद्य श्याम बुध का वक्षःस्थल पर न्यास करे। पीतवर्ण वाले तवर्गाद्य बृहस्पति का कंठकूप में न्यास करे ॥४२-४४॥ श्वेतवर्ण वाले तवर्गाद्य शुक्र का घटिका (नितम्ब) पर न्यास करे। नीलवर्ण वाले पवर्गाद्य शनैश्चर का नाभि देश में न्यास करे। धूम्रवर्ण वाले शवर्गाद्य राहु का मुख में न्यास करे। ग्रहों का त्रि बीज पूर्वक न्यास इसी तरह कहा गया है ॥४५-४६॥

अब तीसरा न्यास लोकपालों का कहा गया है, जिसे यत्न पूर्वक करना चाहिये। मायादि तीन बीजों के साथ इसे करने से सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अपने मस्तक और ललाट पर, आठों दिशाओं में नीचे एवम् ऊपर ह्रस्व दीर्घ आदि अष्ट वर्ग पूर्वक दिक्पालों का न्यास करना चाहिये ॥४७-४८॥ चौथा न्यास शिवशक्ति नामक है। शक्तियुक्त छः रुद्रों का त्रिबीज पूर्वक न्यास करना चाहिये। आधार आदि चक्रों में अपने चक्र के वर्णों के साथ इनका न्यास करे। तवर्ण पूर्वक डाकिनीयुक्त ब्रह्मा का न्यास करके मूलाधार में चतुर्दल समन्वित श्री विष्णु का न्यास करना चाहिये, जो राकिणी से और पवर्ग के अन्तिम वर्ण से युक्त हों स्वाधिष्ठान संज्ञक लिंगस्थ षड्दल चक्र में डाकिनीयुक्त रुद्र का 'ड' आदि 'फ' अन्तवर्णपूर्वक न्यास करना चाहिये मणिपूर नामक नाभिस्थ दशदल चक्र में लाकिनीयुक्त ईश्वर का 'क' आदि 'ठ' अन्तवर्ण पूर्वक न्यास करना चाहिये ॥४९-५३॥ अनाहत संज्ञक हृदयस्थ द्वादशदल चक्र में शाकिनी युक्त सदाशिव का सोलहस्वर पूर्वक न्यास करना चाहिये। विशुद्ध नामक कंठस्थित षोडशदलात्मक आज्ञाचक्र में हाकिनीयुक्त परशिव का न्यास करना चाहिये। सकल इष्ट सिद्धि के लिये अत्यन्त मनोहर भ्रूमध्य में लक्षवर्ण पूर्वक तारादि पंचम न्यास करना चाहिये। स्वर एवम् बिन्दु पूर्वक बीज संयुक्त अष्ट वर्गों का न्यास करके तारिका आदि आठ शक्तियों का न्यास करे। तारा, उग्रा, महोग्रा, वज्रा, काली, सरस्वती, कामेश्वरी और चामुंडा ये आठ तारिकायें कहलाती हैं। ब्रह्मरंध्र, ललाट, भ्रूमध्य, कंठदेश, हृदय, नाभि तथा मूलाधार में क्रमशः इनका न्यास करे। तदनन्तर सकल सिद्धि-

ब्रह्मरंध्रे ललाटे च भ्रूमध्ये कण्ठदेशतः । हृदि नाभौ फले मूलाधारे चेताः क्रमान्न्यसेत् ॥५९॥
अङ्गन्यासं ततः कुर्यात्पीठाख्यं सर्वसिद्धिदम् । आधारे कामरूपाख्यं बीजं ह्रस्वार्णपूर्वकम् ॥६०॥
हृदि जालंधरं बीजं दीर्घपूर्वं प्रविन्यसेत् । ललाटे पूर्णगिर्याख्यं कवर्गाद्यं न्यसेत्सुधीः ॥६१॥
उड्डीयानं चवर्गाद्यं केशसन्धौ प्रविन्यसेत् । कण्ठे तु मथुरापीठं दशमं यादिकं न्यसेत् ॥६२॥
षोढा न्यासस्तु तारायाः प्रोक्तोऽभीष्टप्रदायकः । हृदि श्रीमदेकजटां तारिणीं शिरसि न्यसेत् ॥६३॥
वज्रोदके शिखां पातु उग्रतारां तु वर्मणि । महोग्रा वत्सरे नेत्रे पिंगाग्रैकजटास्त्रके ॥६४॥
षड्दीर्घयुक्तमायाया एतान्यष्टौ षडंगके । अंगुष्ठादिष्वंगुलीषु पूर्वं विन्यस्य यत्नतः ॥६५॥
तर्जनीमध्यमाभ्यां तु कृत्वा तालत्रयं ततः । छोटिकामुद्रया कुर्याद्दिग्बन्धं देवतां स्मरन् ॥६६॥
विद्यया तारपुटया व्यापकं सप्तधा चरेत् । उग्रतारां ततो ध्यायेत्सद्यो वावेऽतिसिद्धिदाम् ॥६७॥
लयान्धावंबुजन्मस्थां नीलाभां दिव्यभूषणाम् । कम्बुं खड्गं कपालं च नीलाब्जं दधतीं करैः ॥६८॥
नागश्रेष्ठालंकृतांगीं रक्तनेत्रत्रयां स्मरेत् । जयेल्लक्षचतुष्कं हि दशांशं रक्तपद्मकैः ॥६९॥
हुनेत्क्षीराज्यसंमिश्रैः शंखं संस्थाप्य संजपेत् । नारीं पश्यन्स्पृशन्गच्छन्महानिशि बलिं चरेत् ॥७०॥
श्मशाने शून्यसदने देवागारेऽथ निर्जने । पर्वते वनमध्ये वा शवमारुह्य मंत्रवित् ॥७१॥
समरे शत्रुनिहतं यद्वा षाण्मासिकं शिशुम् । विद्यां साधयतः शीघ्रं साधितैवं प्रसिद्ध्यति ॥७२॥
मेधा प्रज्ञा प्रभा विद्या धीर्वृत्तिस्मृतिबुद्धयः । विश्वेश्वरीति संप्रोक्ताः पीठस्य नव शक्तयः ॥७३॥
भृगुर्मन्विदुसंयुक्तं मेघवर्म सरस्वती । योगपीठात्मने हार्दं पीठस्य मनुरीरितः ॥७४॥
दत्त्वानेनासनं मूर्ति मूलमंत्रेण कल्पयेत् । पूजयेद्विधिवद्देवीं तद्विधानमथोच्यते ॥७५॥

दायक पीठ से एक अंग न्यास को करे। ॥५४-५९½॥ आधार में ह्रस्ववर्ण पूर्वक कामरूप संज्ञक बीज का, हृदय में दीर्घ पूर्वक जालंधर नामक बीज का, ललाट पर कवर्ग पूर्वक पूर्णगिरि नामक बीज का, केश संधि में चवर्ग पूर्वक उड्डीयान नामक बीज का और कंठ में य' पूर्वक मथुरापीठ नामक दशम बीज का न्यास करे। कामना-दायक तारा के छः न्यास कहे जाते हैं। हृदय में श्रीमदेकजटा का, मस्तक पर तारिणी का, शिखा पर वज्रोदका का, त्वचा पर उग्र तारा का, छाती पर महोग्रा का और नेत्रों में पिंगाग्रैकजटा का न्यास करे। छः दीर्घों से युक्त माया का अंगुष्ठ आदि अंगुलियों में यत्नपूर्वक न्यास करके तर्जनी और मध्यमा से तीन बार ताली बजावे ॥६०-६५½॥ फिर छोटिका मुद्रा से देवतास्मरण पूर्वक दिग्बन्ध करके तारामंत्र से संपुटित विद्या से सात बार सर्वांग सम्बन्धि न्यास करे। तदनन्तर सद्यः सिद्धि प्रदान करनेवाली, नीलवर्णवाली, दिव्य आभूषणवाली, हाथों में शंख, खड्ग, कपाल तथा नीलकमल धारण करनेवाली, उत्तम नाग से अलंकृत कायवाली और तीन लाल आँखों वाली उग्रतारा का ध्यान करके चार लाख मंत्र का जप करे और उसका दशांश दूध तथा घी मिलाये रक्त कमलों से हवन करे। फिर शंख की स्थापना कर के जप करे और महानिशा में नारी का दर्शन एवम् स्पर्श करते हुए बलि चढ़ावे ॥६६-७०॥ श्मशान, शून्य गृह, देवालय, निर्जनस्थान, पर्वत अथवा वनमध्य में शव के ऊपर आरूढ़ होकर मंत्रवेत्ता विद्या का साधन करे। शव छः महिने शिशु का हो या समर में शत्रुद्वारा निहत सैनिक का। ऐसा करने से विद्या शीघ्र सिद्ध हो जाती है। मेधा, प्रज्ञा, प्रभा, विद्या, धी, वृत्ति, स्मृति, बुद्धि तथा विश्वेश्वरी—ये नौ पीठ शक्तियाँ हैं ॥७१-७३॥

"भृगुमन् ······" यह मन्त्र है। इस मन्त्र से आसन देकर मूलमन्त्र से मूर्ति की कल्पना करे। तद-नन्तर विधिपूर्वक देवी की आराधना करे। विधान इस प्रकार है—"तारो माया······स्वाहा" यह बलिमंत्र है।

तारो माया भगं ब्रह्मा जटे सूर्यः सदीर्घकम् । यक्षाधिपतये तंद्री सोपनीतं बलिं ततः ॥७६॥
गृहयुग्मं शिवा स्वाहा बलिमंत्रोऽयमीरितः । दद्यान्नित्यं बलिं तेन मध्यरात्रे चतुष्पथे ॥७७॥
जलदानादिकं मंत्रैर्विदध्याद्दशभिस्ततः । ध्रुवो वज्रोदके वर्म फट्सप्तार्णो जलग्रहे ॥७८॥
ताराद्या वह्निजायांता माया हि क्षालने मता । तारो मायाः भृगुः कर्णो विशुद्धं धर्मवर्मतः ॥७९॥
सर्वपापानि शाम्यंते छेतो नेत्रयुतं जलम् । कल्पान्तनयनस्वाहा मंत्र आचमने मतः ॥८०॥
ध्रुवो मणिधरीत्यंते वज्रिण्यक्षियुता मृतिः । खरिविद्यायुग्रिजश्च सर्वांते बकोऽब्जवान् ॥८१॥
कारिण्यंते दीर्घवर्म अस्त्रं वह्निप्रियांतिमः । त्रयोविंशतिवर्णात्मा शिखाया बंधने मनुः ॥८२॥
प्रणवो रक्षयुगलं दीर्घवर्मास्त्रठद्वयम् । नवार्णेनामुना मंत्री कुर्याद्भूमिविशोधनम् ॥८३॥
नारांते सर्वविघ्नानुत्सारयेति पदं ततः । हुं फट् स्वाहा गुणेंद्वर्णो मनुर्विघ्ननिवारणम् ॥८४॥
मायाबीजं जपापुष्पनिभं नाभौ विचिंतयेत् । तदुत्थेनाग्निना देहं वहेत्सार्द्धस्ववाप्मना ॥८५॥
ताराबीजं सुवर्णाभं चिंतयेद्धृदि मंत्रवित् । पवनेन तदुत्थेन पापभस्म क्षिपेद्भुवि ॥८६॥
तुरीयं चन्द्रकुन्दाभं बीजं ध्यात्वा ललाटतः । तदुत्थसुधयादे हं स्वयं वै देवतानिभम् ॥८७॥
अनया भूतशुद्ध्या तु देवी सादृश्यमाप्नुयात् । तारोऽनंतो भृगुः कर्णो पद्मनाभयुतो बली ॥८८॥
खे वज्ररेखे क्रोधाख्यं बीजं पावकवल्लभा । अमुना द्वादशार्णेन रचयेन्मंडलं शुभम् ॥८९॥
तारो यथागता निद्रा सद्कृषेकभृगुर्विवम् । सदीर्घस्मृतिरौ साक्षौ महाकालो भगान्वितः ॥९०॥
क्रोधोऽस्त्रं मनुवर्णोऽयं मनुः पुष्पादिशोधने । तारः पाशः परा स्वाहा पंचार्णश्चित्तशोधने ॥९१॥
मनवो दश संप्रोक्ता अर्घ्यस्थापनमुच्यते । सैंदुभ्यां मासतो माया भुवं संसृज्य भूगृहम् ॥९२॥ ।
वृतं त्रिकोणसंयुक्तं कुर्यान्मंडलमंत्रतः । यजेत्तत्राधारशक्ति वह्निमंडलमध्यगाम् ॥९३॥
वह्निमंडलमभ्यर्च्य महाशंखं निधापयेत्
वामकर्णेन्दुयुक्तेन फडंतेन विहायसा । प्रक्षालितं भृगुदंडी त्रिमूर्तीदुयुतं पठेत् ॥९४॥

इससे मध्यरात्रि में चौराहे पर नित्य बलि अर्पण करे। तत्पश्चात् दश मन्त्रों से जलदान आदि करना चाहिये। "ध्रुवो······स्वाहा" इस मन्त्र से आचमन करना चाहिये। "ध्रुवो मणिधरी····त्रयोविंशतिवर्णात्मा" इससे शिखा बांधे। "प्रणवो······द्वयम्" इससे भूमिशोधन करना चाहिये। "नारांते····वर्णः" इसके जप से विघ्नों का निवारण होता है। साधक नाभि में जपापुष्प सदृश माया बीज का चिन्तन करे और कल्पना करे कि मायाबीज रूपी अग्नि से मेरा शरीर पापसहित जल गया। तदनन्तर हृदय में सुवर्णतुल्य प्रकाशमान ताराबीज का ध्यान करके कल्पना करे कि ताराबीज रूपी वायु ने मेरे पापरूपी भस्म को उड़ा डाला। पुनः चन्द्र और कुन्द समान धवल तुरीय बीज का ध्यान करके भावना करे कि तुरीय बीजरूपी अमृत का पान कर मैं स्वयं देवतुल्य हो गया हूँ। इस प्रकार भूतशुद्धि करनेवाला साधक देवी के सादृश्य को प्राप्त करता है। "तारो······पावकवल्लभा" इस मन्त्र से पवित्र मण्डल की रचना करे ॥७४-८९॥ "तारो यथागता······मनुर्वर्णः" इससे पुष्पादि शोधन करे। "तारः पाशः परा स्वाहा" इससे चित्त शुद्धि करनी चाहिये। अर्घ्यदान में दश मन्त्र कहे गये हैं। "सैंदुभ्याम्······त्रिकोण संयुक्तम्" इससे मंडल का निर्माण कर उस पर वह्नि मण्डल के मध्य में जानेवाली आधारशक्ति की अर्चना करे। फिर अग्निमंडल का पूजन कर "वामकर्ण······इंदुयुतम्" इस मन्त्र का पाठ करते हुए महाशंख की स्थापना करे। तत्पश्चात् वक्ष्यमाण चारों मन्त्रों का

ततोऽर्चयेन्महाशंखं जपन्मंत्रचतुष्टयम् । दीर्घत्रयान्विता माया कालो सृष्टिः सदीर्घसः ॥९५॥
प्रतिमासंयुतं मासं यवनं हृदयं ततः । एकादशार्णः प्रथमो महाशंखार्चने मनुः ॥९६॥
हंसो हरिभुजंगेशयुक्तो दीर्घत्रयेंदुयुक् । तारिण्यंते कपालाय नमोंतो द्वावशाक्षरः ॥९७॥
स्वं दीर्घत्रयमन्वाढ्यमेषो वामदगन्वितः । लोकपालाय हृदयं तृतीयोऽयं शिवाक्षरः ॥९८॥
मायास्त्रीबीजमर्द्धेंदुयुतं स्वं स्वर्गखादिमः । पालाय सर्वाधाराय सर्वः सर्वोद्भवस्तथा ॥९९॥
सर्वशुद्धिमयश्चेति ङेंताः सर्वासुरांतिकम् । रुधिरा रतिदीर्घा च वायुः शुभ्रानिलःसुरा ॥१००॥
भाजनाय भगी सत्यो विकपालाय हृन्मनुः । तुर्यो रसेषु वर्णोऽयं महाशंखप्रपूजने ॥१०१॥
नवार्कमंडलं चेष्ट्वा सलिलं मूलमन्त्रतः । प्रपूरयेत्सुधाबुद्ध्या गंधपुष्पाक्षतादिभिः ॥१०२॥
मुद्रां त्रिखंडां संदर्श्य पूजयेच्चंद्रमंडलम् । वाक्सत्यपद्मागगने रेफानुग्रहबिंदुयुक् ॥१०३॥
मूलमंत्रो विपद्धंसमनुसर्गसमन्वितम् । अष्टकृत्वोऽमुना मंत्री मंत्रयेत्प्रयतो जलम् ॥१०४॥
मायया सदिशं क्षिप्त्वा खं योनिं च प्रदर्शयेत् । तत्र वृत्ताष्टषट्कोणं ध्यात्वा देवीं विचिंतयेत् ॥१०५॥
पूर्वोक्तां पूजयेत्त्वेनां मूलेनाथ प्रतर्पयेत् । तर्जनीमध्यमानामाकनिष्ठाभिर्महेश्वरीम् ॥१०६॥
सांगुष्ठाभिश्चतुर्वारं महाशंखस्थिते जले । खंरेफमनुबिद्धाढ्यं भृगुमन्विंदुयुक्तया ॥१०७॥
ध्रुवाद्येन नमोंतेन तर्प्यादानंदभैरवम् । ततस्तेनार्धतोयेन प्रोक्षेत्पूजनसाधनम् ॥१०८॥
योनिमुद्रां प्रदर्श्यापि प्रणमेद्भवतारिणीम् । विधानमर्घे संप्रोक्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥१०९॥
पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे पद्मे षट्कोणकर्णिके । धरागृहावृते रम्ये देवीं रम्योपचारकैः ॥११०॥
महीगृहे चतुर्दिक्षु गणेशादीन्प्रपूजयेत् । पाशांकुशौ कपालं च त्रिशूलं दधतं करैः ॥१११॥
अलंकारचयोपेतं गणेशं प्राक्तमर्चयेत् । कपालशूले हस्ताभ्यां दधतं सर्पभूषणम् ॥११२॥

जप करते हुए महाशंख की आराधना करनी चाहिये ॥९०-९४½॥ "दीर्घत्रयान्विता ···· हृदयं ततः"
यह महाशंख पूजन का पहला मन्त्र है। "हंसो······अन्तः" यह दूसरा मन्त्र। "स्वम् ····हृदयम्" यह
तीसरा मन्त्र है। "माया····हृन्मनुः" यह चौथा मन्त्र है। इसके बाद नवीन सूर्यमंडल की अर्चना करके
अमृतबुद्ध्या जल में मूलमन्त्र से गंध, पुष्प, अक्षत आदि डाले। त्रिखंडा मुद्रा को दिखा कर चंद्रमंडल की पूजा
करे। साधक "वाक् ···· अनुसर्ग समन्वितम्" इस मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित करके ऊपर को मार्जन करे।
फिर माया तथा खयोनि मुद्रा को दिखाकर घिरे हुए अष्टकोण एवम् षट्कोण पीठ का ध्यान करे और वहाँ देवी
की चिन्तना करके मूलमन्त्र से उनकी पूजा करे ॥९५-१०५½॥ तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा अंगु-
लियों द्वारा महाशंखस्थित जलसे महेश्वरी तर्पण करके "एवम् ···नमः" इस मन्त्र से आनन्द भैरव को तृप्त
करे। तदनन्तर अर्घ जल से पूजन सामग्री को सिक्त करके योनिमुद्रा दिखावे और भवतारिणी को प्रणाम करे।
अर्घसंबन्धी विधान सर्व सिद्धिदायक है। भूमि-गृह से आवृत, रमणीय, षट्कोण तथा पद्म एवम् कर्णिका से
युक्त पीठ पर मनोहर उपचारों से देवी की आराधना करनी चाहिये। महीगृह में चारों तरफ गणेश आदि का
पूजन करे। हाथों में पाश, अंकुश, कपाल तथा त्रिशूल धारण करने वाले और समस्त अलंकारों से विभूषित
गणेश की पूरब दिशा में पूजा करे ॥१०६-१११½॥ करों में कपाल तथा त्रिशूल धारण करने वाले, सर्प रूपी
आभूषण से भूषित, अपने गण से वेष्टित और मनोरम बटुक की दक्षिण दिशा में पूजा करे। हाथों में खड्ग,
शूल, कपाल डमरू धारण करने वाले, कृष्णवर्ण, दिगंबर तथा क्रूर क्षेत्रपाल की पश्चिम दिशा में पूजा करे।

स्वयूथवेष्टितं रम्यं वटुकं दक्षिणेऽर्चयेत् । असिशूलकपालानि डमरुं दधतं करैः ॥११३॥
कृष्णं दिगंबरं क्रूरं क्षेत्रपालं च पश्चिमे । कपालं डमरुं पाशं लिंगं शंबिभ्रतीं करैः ॥११४॥
अर्धाकन्या रक्तवस्त्रा योगिनीरुत्तरे यजेत् । अक्षोभ्यं प्रयजेन्मूर्ध्नि देव्या मंत्रऋषिं शुभम् ॥११५॥
अक्षोभ्यं वस्त्रपुष्पं च प्रतीच्छानलवल्लभा । अक्षोभ्यपूजने मंत्रः षट्कोणेषु षडंगकम् ॥११६॥
वैरोचनं चामिताभं पद्मनाभाभिधं तथा । शंखं पांडुरसंज्ञं च दिग्दलेषु प्रपूजयेत् ॥११७॥
लामकां मानकां चैव पांडुरां तारकां तथा । विदिग्गताब्जपत्रेषु पूजयेदिष्टसिद्धये ॥११८॥
बिंदुनामादिवर्णाद्याः संबुद्धयंतास्तथाभिधाः । व्रजपुष्पं प्रतीच्छाग्निप्रियांताः प्रणवादिकाः ॥११९॥
वैरोचनादिपूजायां मनवः परिकीर्तिताः । भूधरश्च चतुर्द्वार्षु पद्मांतकयमांतकौ ॥१२०॥
विघ्नांतकाभिधः पश्चान्नरांतक इमान्यजेत् । शक्रादींश्चैव वज्रादीन्प्रजपेत्तदनंतरम् ॥१२१॥
एवं संपूजयन्देवीं पांडित्यं धनमद्भुतम् । पुत्रान्पौत्राञ्छुभां कीर्तिं लभते जनवश्यताम् ॥१२२॥
तारो माया श्रीमदेकजटे नीलसरस्वती । महोग्रतारे देवासः सनेत्रो गदियुग्मकम् ॥१२३॥
सर्वदेवपिशाकर्मो दीर्घोग्निर्मरुसाग्रस । अभ्रगुर्मम जाड्यं च छेदयद्वितयं रमा ॥१२४॥
मायास्त्राग्निप्रियांतोऽयं द्विपंचाशल्लिपिर्मनुः । अनेन नित्यं पूजांतेऽन्वहं देव्यै बलिं हरेत् ॥१२५॥
एवं सिद्धे मनौ मंत्री प्रयोगान्विदधाति च । जातमात्रस्य बालस्य दिवसत्रितयावधः ॥१२६॥
जिह्वायां विलिखेन्मंत्रं मध्वाज्याभ्यां शलाकया । सुवर्णकृतया यद्वा मंत्री धवलदूर्वया ॥१२७॥
गतेऽष्टमेऽब्दे बालोऽपि जायते कविरद्भुतम् । तथापरैरजेयोऽपि भूपसंघैर्द्धनार्चितः ॥१२८॥
उपरागे व्रतानीव नरदारुसरोजले । निर्माय कीलकं तेन तैलमध्वमृतैर्लिखेत् ॥१२९॥
सरोजिनीदले मंत्रं वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः । निखाय तद्दलं कुंडे चतुरस्रे समेखले ॥१३०॥
संस्थाप्य पावकं तत्र जुहुयान्मनुनामुना । सहस्रं रक्तपद्मानां धेनुदुग्धजलाप्लुतम् ॥१३१॥

करों में कपाल, डमरू, पाश तथा लिंग धारण करनेवाली, अर्धकन्या रूपवाली और रक्तवस्त्र पहननेवाली योगिनी की उत्तर दिशा में पूजा करे। देवी के अक्षोभ्य नामक पवित्र मन्त्रऋषि की मस्तक पर पूजा करे। ॥११२-११६॥ "अक्षोभ्य····वल्लभा" इस मन्त्र से अक्षोभ्य की पूजा कर षट्कोण में षडंग देवता का पूजन करे। इष्ट सिध्यर्थ दिक् पद्मपत्रों पर वैरोचन, अमिताभ, पद्मनाभ, पांडुर संज्ञक, शंख, लाभका, मानका, पांडुरा तथा तारका की अर्चना करनी चाहिये। "बिंदुनाम····प्रणवादिकाः"–यह मन्त्र वैरोचनादि पूजन का कहा गया है। चारों द्वारों पर भूधर, पद्मांतक, यमांतक, विघ्नांतक तथा नारांतक की पूजा करनी चाहिये। पश्चात् शक्र आदि की पूजा करके उनके वज्र आदि अस्त्रों का भी पूजन करे। इस प्रकार देवी की पूजा करने से अद्भुत पांडित्य, पुत्र, पौत्र, निर्मल यश, तथा जनवश्यता (लोगों को अपने अधीन करना) की प्राप्ति होती है। ॥११७-१२५॥ इस प्रकार "तारो·····स्वाहा" इस मन्त्र से पूजा के अन्त में प्रतिदिन देवी को बलि चढ़ावे ॥ इस प्रकार मन्त्र सिद्ध कर लेने पर मन्त्री उसका प्रयोग करे। सुवर्ण की शलाका या उज्ज्वल दूर्वा में मधु और घी लगाकर उससे सद्योजात बालक, जिसे तीन दिन भी न हुए हों, की जिह्वा पर यह मन्त्र लिख दे। ऐसा करने से आठ वर्ष होते-होते वह बालक महाकवि, दूसरों से अजेय तथा राजाओं से पूजित होगा। "उपरागे·····सरोजले" इस मन्त्र से एक कील बनाकर उससे कमलिनी पत्र पर तेल, मधु और अमृत (जल) से उपर्युक्त मन्त्र को लिखकर उसे मातृका अक्षरों से वेष्टित करे। तत्पश्चात् मेखला सहित चतुरस्र कुण्ड खोदकर उसमें अग्नि स्थापना करके

होमांते विविधै रत्नैः पलैरपि बलिं हरेत् । बलिं मंत्रेण विधिवद्बलिमंत्रः प्रकाश्यते ॥१३२॥
तारः पद्मं युगं तंद्री वियद्दीर्घ च लोहितः । अत्रिविंबमगारूढो वदेत्पद्मावतीपदम् ॥१३३॥
झिंटीशाढ्योनिलस्वाहा षोडशार्णो बलेर्मनुः । ततो निशीथे च बलिं पूर्वोक्तमनुना हरेत् ॥१३४॥
एवं कृते पंडितानां स जयी कविराड् भवेत् । निवासो भारतीलक्ष्म्योर्जनतारञ्जनक्षमः ॥१३५॥
शताभिजप्त्या यो मंत्री रोचनां मस्तके धरेत् । यं यं पश्यति तस्यासौ दासवज्जायते क्षणात् ॥१३६॥
श्मशानांगारमाश्रित्य पूर्वायां कुजवासरे । तेन मंत्रेण संवेष्ट्य निबद्धं रक्ततंतुभिः ॥१३७॥
शताभिजप्तं मूलेन निक्षिपेद्वैरिवेश्मनि । उच्चाटयति सप्ताहात्सकुटुम्बाविरोधिनः ॥१३८॥
क्षीराढ्यया निशामंत्रं लिखित्वा पौरुषेऽस्थनि । रविवारे निशीथिन्यां सहस्रमभिमंत्रयेत् ॥१३९॥
तत्क्षिप्तं शत्रुसदने मंडलाद्भ्रंशकं भवेत् । क्षेत्रे क्षिप्तं सस्यहान्योजवहृत्तुरमा लयेत् ॥१४०॥
षट्कोणांतर्लिखेन्मूलं साध्यार्णं केशरे स्वरैः । बाह्येऽष्टवर्गयुक्पत्रं पद्मभूमिपरावृतम् ॥१४१॥
यंत्रं भूर्जे जतुरसैर्लिखेत्पीताम्बरावृतम् । पट्टसूत्रेण सन्नद्धं शिशुकंठगतं ध्रुवम् ॥१४२॥
भूतभीतिहरं वामबाहौ स्त्रीणां च पुत्रदम् । नृणां दक्षिणबाहुस्थं निर्धनानां धनप्रदम् ॥१४३॥
ज्ञानदं ज्ञानमिच्छूनां राज्ञां तु विजयप्रदम् ॥१४४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे यक्षिणीमन्त्रभेदनिरूपणं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

गोदुग्ध एवम् जल से धोये सहस्र रक्त कमलों से हवन करे। होमान्त में विविध रत्न तथा मांस-खंडों की बलि चढ़ाये। "तारः ···· स्वाहा" इस मन्त्र से बलि समर्पण करना चाहिये। रात्रि में भी पूर्वोक्त मन्त्र से बलि दे ॥१२६-१३४॥ ऐसा करने वाला व्यक्ति पंडित विजयी, कविराट्, सरस्वती और लक्ष्मी का निवास तथा जनप्रिय होता है। जो व्यक्ति गोरोचन को उपर्युक्त मन्त्र से सौ बार अभिमन्त्रित करके मस्तक पर उसे धारण करेगा, वह जिसकी ओर दृष्टिपात करेगा, वह तत्क्षण उसका दासतुल्य हो जाएगा। मंगल दिन पूर्वाषाढ नक्षत्र में जो श्मशान से अंगार लाकर उस मन्त्र से उसे संवेष्टित कर लाल डोरे में बांधकर पुनः मूलमन्त्र से सौ बार अभिमन्त्रित करके शत्रु के घर पर फेंकता है, उसके शत्रु का एक सप्ताह के भीतर ही सपरिवार उच्चाटन हो जाता है ॥१३५-१३८॥ पुरुष की हड्डी पर दुग्धयुक्त शलाका से निशामन्त्र को लिख कर रविवार को रात्रि में सहस्र बार उसे अभिमन्त्रित करके जिस शत्रु के घर पर इसे फेंका जाएगा, वह शीघ्र गृहविहीन हो जाएगा। खेत में उसे फेंकने से सस्य की क्षति होगी। भोजपत्र पर अलक्त (अलता) से षट् ···· वृतम्" इस मन्त्र को लिख कर उसे पीत वस्त्र में लपेट दे। फिर उसे रेशम के धागे शिशु के कंठ में बांध दे। ऐसा करने से निश्चय ही शिशुका अरिष्ट दूर हो जाता है। स्त्रियों की बायीं भुजा में बांधने से पुत्र होता है, निर्धन मनुष्यों की दाहिनी भुजा में बांधने से धन होता है, ज्ञान के इच्छुकों को ज्ञान की प्राप्ति और राजाओं को विजय की प्राप्ति होती है ॥१३९-१४४॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त तृतीय पाद में यक्षिणी मन्त्रभेद निरूपण नामक पचासीवां अध्याय समाप्त ॥८५॥

षडशीतितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

सरस्वत्यवतारास्ते कथिताः सिद्धिदा नृणाम् । अथ लक्ष्म्यवतारांस्ते वक्ष्ये सर्वार्थसिद्धिदान् ॥१॥
वाणीमन्मथशक्त्याख्यं बीजत्रितयमीरितम् । ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्तिः पंक्तिश्छंदः प्रकीर्तितम् ॥२॥
देवता त्रिपुरा बाला मध्यांते शक्तिबीजके । नाभेरापादमाद्यं तु नाभ्यंतं हृदयात्परम् ॥३॥
मूर्ध्नो हृदंतं तार्तीयं क्रमाद्देहेषु विन्यसेत् । आद्यं वामकरे दक्षकरे तदुभयोः परम् ॥४॥
पुनर्बीजत्रयं न्यस्य मूर्ध्नि गुह्ये च वक्षसि । नव योन्याभिधं न्यासे नवकृत्वो मनुं न्यसेत् ॥५॥
कर्णयोश्चिबुके न्यस्येच्छंखयोर्मुखपंकजे । नेत्रयोर्नासिकायां च स्कंधयोरुदरे तथा ॥६॥
न्यसेत्कूर्परयोर्नाभौ जानुनोर्लिंगमस्तके । पादयोरपि गुह्ये च पार्श्वयोर्हृदये पुनः ॥७॥
स्तनयोः कंठदेशे च वामांगादिषु विन्यसेत् । वाग्भवाद्यां रतिं गुह्ये प्रीतिमत्यादिकां हृदि ॥८॥
कामबीजादिकान्पश्येद्भ्रूमध्ये तु मनोभवाम् । पुनर्वागात्मकामाद्यास्तिस्र एव च विन्यसेत् ॥९॥
अमृतेशीं च योगेशीं विश्वयोनिं तृतीयकाम् । मूर्ध्नि वक्त्रे हृदि न्यसेद्गुह्ये चरणयोरपि ॥१०॥
कामेशी पंचबीजाढ्यां स्मरात्पञ्च न्यसेत्क्रमात् । मायाकामौ च वाग्लक्ष्मी कामेशी पंचबीजकम् ॥११॥

अध्याय ८६

महालक्ष्मी का अवतार—बगला आदि का मंत्र-साधन

सनत्कुमार बोले—मनुष्यों को सिद्धि प्रदान करने वाले सरस्वती-अवतार के बारे में मैंने बता दिया। अब सकलकामनादायक लक्ष्मी अवतार का वर्णन करूंगा। वाणी, मन्मथ, शक्ति (ऐं क्लीं ह्रीं)—ये तीन बीज मन्त्र हैं। इसके ऋषि दक्षिणामूर्ति है, छंद पंक्ति है और देवता त्रिपुरा है। नाभि से चरण तक, पुनः नाभि से हृदय तक और हृदय से मस्तक तक क्रमशः शरीर में अंगन्यास करे ॥१-३½॥ बायें हाथ, दाहिने हाथ, मस्तक, गुह्य स्थान और हृदय में तीन मन्त्र का न्यास करके योनि देश में नौ बार मन्त्र का न्यास करना चाहिये। दोनों कान, ठुड्डी, मुखारविन्द, नेत्र, नासिका, स्कंध, उदर, कुहनी, नाभि, घुटने, लिंग, मस्तक, चरण, गुह्य प्रदेश, पार्श्व, हृदय, स्तन, कंठ देश तथा वाम अंग आदि में भी न्यास करना चाहिये। वाग्भवा आद्या रति का न्यास गुह्य-देश में और प्रीतिमती आदि का न्यास हृदय में करना चाहिये ॥४-८॥ कामबीज आदि का भ्रूमध्य में न्यास करके मनोभवा तथा वागात्मा देवियों का भी न्यास करे। अमृतेश्वरी, योगेश्वरी तथा विश्वयोनि ये तीन वागात्मा देवी कहलाती हैं। मस्तक, मुख, हृदय, गुह्य तथा चरणों में पांच बीजों से युक्त कामेशी तथा पांच कामों का क्रमशः न्यास करे। माया, काम, वाक् लक्ष्मी, तथा कामेशी (ह्रीं क्लीं ऐं श्रीं ह्र)—ये पांच बीज हैं और

मनोभवश्च मकरध्वजकंदर्पमन्मथाः ॥ कामदेवः स्मरः पंच कीर्तिता न्याससिद्धिदाः ॥१२॥
शिरःपन्मुखगुह्येषु हृदये बाणदेवताः । द्राविण्याद्याः क्रमान्न्यस्येद्बाणेशीबीजपूर्वकाः ॥१३॥
द्रांद्रीं क्लीं जूंस इति वै बाणेशीबीजकं च कम् । द्राविणी क्षोभिणी वशीकरण्याकर्षणी तथा ॥१४॥
संमोहनी च बाणानां देवताः पञ्च कीर्तिताः । तार्तीयवाग्मध्यगेन कामेन स्यात्षडंगकम् ॥१५॥
षड्दीर्घस्वरयुक्तेन ततो देवीं विचिंतयेत् । ध्यायेद्रक्तसरोजस्थां रक्तवस्त्रां त्रिलोचनाम् ॥१६॥
उद्यदर्कनिभां विद्यां मालाभयवरोद्वहाम् । लक्षत्रयं जपेन्मंत्रं दशांशं किंशुकोद्भवैः ॥१७॥
पुष्पैर्हयारिजैर्वापि जुहुयान्मधुरान्वितैः । नवयोन्यात्मकं यंत्रं बहिरष्टदलावृतम् ॥१८॥
केशरेषु स्वरान्न्यस्येद्वर्गानष्टौदलेष्वपि । दलाग्रेषु त्रिशूलानि पद्मं तु मातृकावृतम् ॥१९॥
एवं विलिखिते यंत्रे पीठशक्तीः प्रपूजयेत् । इच्छा ज्ञाना क्रिया चैव कामिनी कामदायिनी ॥२०॥
रती रतिप्रिया नंदा मनोन्मन्यपि चोदिताः । पीठशक्तीरिमा इष्ट्वा पीठं तन्मनुना दिशेत् ॥२१॥
व्योमपूर्वं तु तार्तीयं सदाशिवमहापदम् । प्रेत पद्मासनं ङेंतं नमोंतः पीठमन्त्रकः ॥२२॥
षोडशार्णस्ततो मूर्तौ क्लृप्तायां मूलमंत्रतः । आवाह्य प्रजपेद्देवीमुपचारैः पृथग्विधैः ॥२३॥
देवीमिष्ट्वा मध्ययोनौ त्रिकोणे रतिपूर्विकाम् । वामकोणे रतिं दक्षे प्रीतिमग्रे मनोभवाम् ॥२४॥
योन्यन्तर्वह्निकोणाद्वंगान्यग्रेर्विदिक्ष्वपि । मध्ययोनेर्बहिः पूर्वादिषु चाग्रे स्मरानपि ॥२५॥
बाणदेवीस्तद्वदेव शक्तीरष्टसु योनिषु । सुभगाख्या भगा पश्चात्तृतीया भगसर्पिणी ॥२६॥
भगमाला तथानंगा नगाद्या कुसुमापरा । अनंगमेखलानंगमदनेत्यष्टशक्तयः ॥२७॥
पद्मकेशरगा ब्राह्मी मुखाः पत्रेषु भैरवाः । दीर्घाद्या मातरः पूज्या ह्रस्वाद्याश्चाष्टभैरवाः ॥२८॥

मनोभव, मकरध्वज, कन्दर्प, मन्मथ, तथा कामदेव--ये पांच स्मर कहलाते हैं। इनके न्यास करने से सिद्धि मिलती है ॥९-१२॥ शिर, चरण, मुख, गुह्य, हृदय में बाणेशीबीज के साथ बाणदेवता द्राविणी आदि का क्रमशः न्यास करे। "द्रांद्रीं क्लीं जूंसः" यह बाणेशीबीज है और द्राविणी, क्षोभिणी, वशोकरणी, आकर्षणी तथा समोहिनी-ये पांच बाणदेवता हैं। तृतीयवाक् के मध्य में संचरण करने वाले छह दीर्घ स्वरों से युक्त काम से षडंगन्यास करना चाहिये ॥१३-१५½॥ तदनन्तर रक्तकमल पर अवस्थित, रक्तवस्त्रधारिणी, त्रिलोचना, उदीयमान सूर्य के समान कान्तिवाली और माला तथा अभयास्त्र धारण करने वाली विद्या का ध्यान करके तीन लाख मन्त्र का जप करे और उसका दशांश मधुर मिश्रित पलाश तथा करवीर के पुष्पों से हवन करे। नवयोन्यात्मक यन्त्र का निर्माण करके उनके अष्टदल (कमल) से आवृत करे। फिर केसरों तथा अष्टदलों पर वर्गीय स्वरों का न्यास करके दलों पर त्रिशूल तथा मातृकावृत पद्म का उल्लेख करे। इस प्रकार मन्त्र को लिखकर उस पर पीठशक्तियों का पूजन करे। इच्छा, ज्ञाना, क्रिया, कामिनी, कामदायिनी, रति, रतिप्रिया, आनंदा, मनोन्मनी—ये पीठशक्तियां कहलाती हैं। इनका पूजन करके पीठ को अभिमंत्रित करे ॥१६-२१॥

"व्योमपूर्व·····नमः" यह पीठ का मन्त्र है। तत्पश्चात् देवी की प्रतिमा बनाकर मूलमन्त्र से आबाहन करके नानाविध उपचारों से उनका पूजन करे। त्रिकोण योन्याकृति का निर्माण कर उसके मध्य में पहले रति पश्चात् देवी की पूजा करे। फिर वाम कोण में रति, दक्षिण कोण में प्रीति और अग्र भाग में मनोभवा देवी की अर्चना करनी चाहिये। योनि के भीतर अग्निकोण में तथा मध्य योनि के बाहर पूर्व आदि दिशाओं में कामों का पूजन करना चाहिये। उसी तरह अष्टयोनियों में अष्ट शक्तियों की पूजा करे। सुभगा, भगसर्पिणी भगमाला, अनंगा, नगाद्या, कुसुमा, अनंगमेखला, अनंगमदना ये आठ शक्तियां हैं ॥२२-२७॥ पत्रों के ऊपर पद्मकेसरस्थित ब्राह्मीमुख भैरवों को, दीर्घ आदि माताओं की और ह्रस्व आदि आठ भैरवों की पूजा करनी

दलाग्रेष्वष्टपीठानि कामरूपाख्यमादिमम् । मलयं कोल्लगिर्य्याख्यं चौराहाख्यं कुलांतकम् ॥२९॥
जालंधरं तथोन्नासं कोटपीठमथाष्टमम् । भूगृहे दशदिक्ष्वर्चेद्धेतुकं त्रिपुरांतकम् ॥३०॥
वैतालमग्निजिह्वं च कमलांतकपालिनौ । एकपादं भीमरूपं विमलं हाटकेश्वरम् ॥३१॥
शक्राद्यानायुधैः सार्द्धं स्वस्वदिक्षु समर्चयेत् । तद्बहिर्दिक्षु बटुकं योगिनीं क्षेत्रनायकम् ॥३२॥
गणेशं विदिशास्वर्चेद्वसून्सूर्याञ्छिवांस्तथा । भूताश्चेत्थं भजन्बालामीशः स्याद्धनविद्ययोः ॥३३॥
रक्तांभोजैहुतैर्नार्यो वश्याः स्युः सर्षपैर्नृपाः । नंद्यावर्तैं राजवृक्षैः कुन्दैः पाटलचंपकैः ॥३४॥
पुष्पैर्बिल्वफलैर्वापि होमाल्लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् । अपमृत्युं जयेन्मन्त्री गुडूच्या दुग्धयुक्तया ॥३५॥
यथोक्तदूर्वाहोमेन नीरोगायुः समश्नुते । ज्ञानं कवित्वं लभते चन्द्रागुरुसुरैर्हुतैः ॥३६॥
पलाशपुष्पैर्वाक्सिद्धिरन्नाप्तिश्चान्नहोमतः । सुरभिक्षीरदध्यक्ताँल्लाजान्हुत्वा रुजो जयेत् ॥३७॥
रक्तचन्दनकर्पूरकर्चूरागुरुरोचना: । चन्दनं केशरं मांसी क्रमाद्भागैर्नियोजयेत् ॥३८॥
भूमिचंद्रैकनन्दाब्धिदिक्सप्तनिगमोन्मितैः । श्मशाने कृष्णभूतस्य निशि नीहारपाथसा ॥३९॥
कुमार्या पेषयेत्तानि मंत्रेणाथाभिमंत्र्य च । विदध्यात्तिलकं तेन दर्शनाद्वशयेज्जनान् ॥४०॥
गजसिंहादिभूतानि राक्षसाञ्छाकिनीरपि । प्रयोजनानां सिद्ध्यै तु देव्याः शापं निवर्त्य च ॥४१॥
विधायोत्कीलितां पश्चाज्जपमस्य समाचरेत् । यो जपेदादिमे बीजे वराहभृगुपावकान् ॥४२॥
मध्यमादौ नभो हंसौ मध्यमांते तु पावकम् । आदावंते च तार्तीयक्रमात्स्वं धूम्रकेतनम् ॥४३॥
एवं जप्त्वा शतं विद्या शापहीना फलप्रदा । यद्वाद्ये चरमे बीजे नैव रेफं वियोजयेत् ॥४४॥

चाहिये। पत्रों के अग्रभाग पर कामरूप, मलय, कोल्लगिरि, चौहार, कुलांतक, जालंधर, उन्नास तथा कोटपीठ—इन आठ पीठों का पूजन करना चाहिये। भूगृह की दशों दिशाओं में हेतुक, त्रिपुरांतक, वैताल, अग्निजिह्व, कमलांत, कपाली, एकपाद; भीमरूप, विमल तथा हाटकेश्वर की अर्चना करे। पुनः अपनी-अपनी दिशा में आयुध सहित इन्द्र आदि देवों की पूजा करनी चाहिये। उसके बाहर बटुक, योगिनी, क्षेत्रनायक और गणेश को पूजा करे ॥२८-३२॥ विदिशाओं में वसु, सूर्य तथा शिव का पूजन करे। इस प्रकार भूतों का उपासक व्यक्ति वनिताओं का स्वामी, धनवान् तथा विद्यावान् होता है। रक्त कमलों से हवन करने पर स्त्रियाँ वश में आती हैं और सरसों से होम करने पर राजा वशीभूत होते हैं। नंद्यावर्त (तगर), राजवृक्ष, (सोन्दाल), कुन्द, पाटल, चम्पापुष्प तथा बिल्वफलों से हवन करने पर लक्ष्मी अचल होती है। साधक दुग्धयुक्त गुड़ूच से हवन कर अपमृत्यु को जीतता है ॥३३-३५॥ उसी तरह दूर्वा से हवन करने वाला दीर्घायु होता है। कर्पूर, अगर तथा गुड़ूच से हवन करने पर ज्ञान एवम् कवित्वशक्ति की प्राप्ति होती है। पलाश पुष्पों से हवन करने पर वाक्सिद्धि तथा अन्न-होम से अन्न की प्राप्ति होती है। गोदुग्ध एवम् दधियुक्त लावा से होम करने से रोग का क्षय होता है। रक्तचन्दन, कर्पूर, कर्चूर, अगर, गोरोचन, चन्दन, केसर और जटामांसी को क्रमशः एक, एक, एक, नौ, सात, दश, सात और चार भागों में विभक्त कर श्मशान में कृष्णचतुर्दशी की रात नीहार (बर्फ) के जल से कुमारी कन्या के द्वारा पिसाये ॥३६-३९½॥ फिर मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उसका तिलक लगाये। तब जिसके ऊपर उसकी दृष्टि पड़ेगी, वह वशीभूत हो जाएगा। यहाँ तक कि हाथी, सिंह, राक्षस, शाकिनी आदि भी वश में आ जायेंगे। कामनासिद्धि के लिये देवी का शापोद्धार करके उनके कील का पाठ करे और पश्चात् जप करे। आदिम बीज में वराह, भृगु तथा पावक का, मध्यमादि में अन्तरिक्ष तथा हंस का, मध्यमान्त में पावक का और आदि-अन्त में तार्तीयक्रम से धूम्रकेतन का सौ बार जप करके फलदायिनी विद्या को शापहीना बनाये। अथवा अंतिम बीज में रेफ को न जोड़े। अथवा शापोद्धार का प्रकारान्तर भी

शापोद्धारप्रकारोऽन्यो यद्वायं कीर्तितो बुधैः । आद्यमाद्यं हि तार्तीयं कामः कामोऽथ वाग्भवम् ॥४५॥
अंत्यमंत्यमनंगश्च नवार्णः कीर्तितो मनुः । जप्तोयं शतधा शापं बालाया विनिवर्तयेत् ॥४६॥
चैतन्याह्लादिनीमन्त्रौ जप्तौ निष्कीलताकरौ । त्रिस्वराश्चेतनं मन्त्री धरः शांतिरनुग्रहः ॥४७॥
तारादिहृदयांतः स्यात्काम आह्लादिनीमनुः । तथा त्रयाणां बीजानां दीपनैर्मनुभिस्त्रिभिः ॥४८॥
सुदीप्तानि विधायादौ जपेत्तानीष्टसिद्धये । वदयुग्मं सदीर्घांबु स्मृतित्रालावनंगतौ ॥४९॥
सत्यः सनेत्रो नस्तादृग्वा वाग्वर्णाद्यदीपिनि । क्लिन्ने क्लेदिनि वैकुण्ठी दीर्घ स्वं सद्यगोंतिमः ॥५०॥
निद्रा सचन्द्रा कुर्वीत शिवर्णा मध्यदीपिनी । तारो मोक्षं च कुरुते नायं वर्णास्यदीपिनी ॥५१॥
दीपिनीमंतरा बाला साधितापि न सिध्यति । वागंत्यकासान् प्रजपेदरीणां क्षोभहेतवे ॥५२॥
कामबागंत्यबीजानि त्रैलोक्यस्य वशीकृतौ । कामांत्यवाणीबीजानि मुक्तये नियतो जपेत् ॥५३॥
पूजारंभे तु बालायास्त्रिविधानर्चयेद्गुरून् । दिव्यौघश्चैव सिद्धौघो मानवौघ इति त्रिधा ॥५४॥
परप्रकाशः परमेशानः परशिवस्तथा । कामेश्वरस्ततो मोक्षः षष्ठः कामोऽमृतोऽन्तिमः ॥५५॥
एते दत्तैव दिव्यौघा आनन्दपदपश्चिमाः । ईशानाख्यस्तत्पुरुषोऽघोराख्यो वामदेवकः ॥५६॥
सद्योजात इमे पंच सिद्धौघाख्याः स्मृता मुने । मानवौघाः परिज्ञेयाः स्वगुरोः सम्प्रदायतः ॥५७॥
नवयोन्यात्मके यन्त्रे विलिखेन्मध्ययोनितः । प्रादक्षिण्येन बीजानि त्रिवारं साधकोत्तमः ॥५८॥
त्रींस्त्रीन्वर्णांस्तु गायत्र्या अष्टपत्रेषु संलिखेत् । बहिर्मातृकयाऽऽवेष्ट्य तद्बहिर्भूपुरद्वयम् ॥५९॥
कामबीजलसत्कोण व्यतिभिन्नं परस्परम् । पत्रे त्रैपुरमाख्यातं जपसंपातसाधितम् ॥६०॥
बाहुना विधृते दद्याद्धनं कीर्ति सुखं सुतान् । कामांते त्रिपुरा देवी विद्महे कविधं महिम् ॥६१॥
बकः खड्गी समारूढः सनेत्रोऽग्निश्च धीमहि । तत्र क्लिन्ने प्रचोदांते यादित्येषा प्रकीर्तिता ॥६२॥
गायत्री त्रैपुरा सर्वसिद्धिदा सुरसेविता । अथ लक्ष्म्यवतारोऽन्यः कीर्त्यते सिद्धिदो नृणाम् ॥६३॥

विद्वान् लोग बतलाते हैं। आदि में तार्तीय, मध्य में वाग्भव तेवता तथा काम और अन्त में अनंग के जोड़ने से जो मन्त्र बनता है, उसके सौ बार जप करने से देवी का शाप निवृत्त हो जाता है ॥४०-४६॥ साधक इष्टसिद्धि के लिये "चैतन्य······आह्लादिनी"—इस मन्त्र का तथा तीन बीज मन्त्रों का जप करे। "वद युग्मम्··· दीपिनीम्"—इस मन्त्र को विना जप किये विद्या के साधन करने पर भी वह सिद्ध नहीं होती। शत्रुनाश के लिये वाक्······"—इस मन्त्र का जप करे। त्रैलोक्य को वश में करने के लिये "कामवान्········" और मोक्ष के लिये "कामांत्यत्राणी······" का जप करना चाहिये। देवों के पूजनारंभ में तीन प्रकार के गुरुओं की अर्चना करनी चाहिये। दिव्यौघ, सिद्धौघ तथा मानवौघ—ये त्रिविध गुरु हैं। परप्रकाश, परमेशान, परशिव, कामेश्वर, मोक्ष काम तथा अमृत—ये सात दिव्यौघ कहलाते हैं। मुने! आनंदपद, ईशान, अघोर, वामदेव और सद्योजात—ये पांच सिद्धौघ कहलाते हैं ॥४७-५६½॥ मानवौघों को तो अपने गुरु के संप्रदाय से समझना चाहिये। साधकश्रेष्ठ नव यौन्यात्मक यन्त्र में मध्ययोनि से आरंभ कर तीन बार बीज मन्त्रों को लिखे। फिर गायत्री के तीन-तीन वर्णों को अष्ट पत्रों पर लिखे। उसके बाहर मातृकावर्णों को लिख कर दो भूपुरों[1] का उल्लेख करे। कोने में कामबीज (क्लीं) को लिखे। परन्तु वे परस्पर भिन्न हों। पत्र पर जप, संपात और साधित नामक तीन पुरों का पूजन करे ॥५७-६०॥ फिर उसे बाहु पर धारण करके दान करने से धन, कीर्ति, सुख तथा पुत्रों की प्राप्ति होती है। कामबीज के अन्त में ऐसा सोचे कि हम त्रिपुरा देवी को जान रहे हैं। विष आदि का नाश करने वाली है। हम वक, खड्गी तथा सवारी पर चढ़े हुए नेत्र सहित अग्नि का ध्यान करते हैं।

१. यंत्र बहिः स्थित रेखासन्निवेश युक्त भूम्याकार स्थान।

वेदादिगिरिजा पद्मा मन्मथो हृदयं भृगुः । भगवति माहेश्वरी ङेन्तेऽन्नपूर्णे दहनांगना ॥६४॥
प्रोक्ता त्रिंशतिवर्णेयं विद्या स्याद्द्रुहिणो मुनिः । धृतिश्छंदोऽन्नपूर्णेशी देवता परिकीर्तिता ॥६५॥
षड्दीर्घाढ्येन हृल्लेखाबीजेन स्यात्षडंगकम् । मुखनासाक्षिकर्णांसपुदेषु नवसु न्यसेत् ॥६६॥
पदानि नव तद्वर्णसंख्येदानीमुदीर्यते । भूमिचन्द्रधरेकाक्षिवेदाब्धियुगबाहुभिः ॥६७॥
पदसंख्यामिता वर्णैस्ततो ध्यायेत्सुरेश्वरीम् । स्वर्णाभांगां त्रिनयनां वस्त्रालंकारशोभिताम् ॥६८॥
धूरमासं युतां देवीं स्वर्णामत्रकरांबुजाम् । लक्षं जपोऽयुतं होमो घृताक्तचरुणा तथा ॥६९॥
जयादिनवशक्त्याढ्ये पीठे पूजा समीरिता । त्रिकोणा वेदपत्राष्टपत्रषोडशपत्रके ॥७०॥
भूपुरेण युते यंत्रे प्रदद्यान्मायया मनुम् । अग्न्यादिकोणत्रितये शिववाराहमाधवान् ॥७१॥
अर्चयेत्स्वस्वमंत्रैस्तु प्रोच्यते मनवस्तु ते । प्रणवो मनुचंद्राढ्यं गगनं हृदयं शिवा ॥७२॥
मारुत शिवमंत्रोऽयं सतार्णः शिवपूजने । वाराहनारायणयोर्मंत्री पूर्वं समुदीरयेत् ॥७३॥
षडंगानि ततोऽभ्यर्च्य वामे दक्षे धरां रमाम् । यजेत्स्वस्वमनुभ्यां तु तावुच्येते मुनीश्वर ॥७४॥
अन्नं मह्यन्नमित्युक्त्वा मे देह्यन्नाधिपोर्णकाः । नयेममन्नं प्राणांते दापयानलसुन्दरी ॥७५॥
द्वाविंशत्यक्षरो मंत्रो भूमेष्टो भूमिसंपुटः । लक्ष्मीष्टो श्रीपुटो विप्र स्मृतिर्लमनुचंद्रयुक् ॥७६॥
भुवो बीजमिति प्रोक्तं श्रीबीजं प्रागुदाहृतम् । मंत्रादिस्थचतुर्बीजपूर्विकाः परिपूजयेत् ॥७७॥
शक्तीश्चतस्रो वेदास्रे परा च भुवनेश्वरी । कमला सुभगा चेति ब्राह्म्याद्या अष्टपत्रगाः ॥७८॥
षोडशारे स्मृते चैव मानदातुष्टिपुष्टयः । प्रीती रतिर्ह्रीः श्रीश्चापि स्वधा स्वाहा दशम्यथ ॥७९॥

कल्पांत में वही त्रिपुरा देवी अदिति नाम से पुकारी जाती हैं त्रिपुरा गायत्री समस्त सिद्धियों को देने वाली है। देवगण उनकी सेवा करते हैं।

इसके बाद मनुष्यों को सिद्धि प्रदान करने वाले लक्ष्मी के अन्य अवतारों का वर्णन करता हूँ। "वेदादि ....अंगना" यह है। द्रुहिण इसके ऋषि हैं। धृति छंद है और पूर्णेशी देवता है ॥६१-६५॥ छह दीर्घों से युक्त हृल्लेखा नामक बीज मन्त्र से मुख, नासिका, नेत्र, कर्ण स्कन्ध और गुदा में षडंग न्यास करना चाहिये। तदनन्तर नौ पदों का भी न्यास करे, जिनकी वर्णसंख्या १११२४७२२ हैं। उसके बाद भुवनेश्वरी का ध्यान करे, जिनके तीन नेत्र हैं, अंगों की आभा सुवर्ण के समान हैं, करकमल सोने की अंगूठी से सुशोभित है, पृथ्वी और लक्ष्मी साथ में रहती हैं, वस्त्र तथा अलंकार शोभा बढ़ाते है। तत्पश्चात् एक लाख मन्त्र का जप करके दश हजार घृतमिश्रित चरु से उसका हवन करे। जया आदि नौ शक्तियों से युक्त पीठ पर पूजा करनी चाहिये ॥६६-६९½॥ भूपुर से युक्त, त्रिकोण तथा चतुष्पत्र, अष्टपत्र एवम् षोडश पत्रात्मक यन्त्र पर माया (ह्रीं) सहित मंत्र को लिखे। अग्नि आदिति न कोण में शिव, वाराह तथा माधव के अपने-अपने मन्त्र से पूजन करना चाहिये। अब मंत्र बताया जा रहा है—"प्रणवा ......मारुतः"—यह शिव पूजन का मन्त्र है। वाराह और नारायण का मन्त्र पहले पढ़ना चाहिये। मुनीश्वर! तदन्तर षडंगों का पूजन करके वाम और दक्षिण भाग में धरा और रमा की अपने-अपने मन्त्रों से पूजा करना चाहिये। "अन्नम् ....सुन्दरी"—इनको यह भूमि का मन्त्र है और "लक्ष्मी ......बीजम्"—यह लक्ष्मी का मन्त्र है। मन्त्रादिस्थ चतुर्बीज पूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिये ॥७०-७७॥ चार शक्तियाँ, वेदाश्रा, परा भुवनेश्वरी, कमला, सुभगा ब्राह्मी और—इनको अष्टपत्र पर अर्चना करनी चाहिये। षोडश पत्र मानदा, तुष्टि, पुष्टि, प्रीति, रति, ह्री, श्री स्वधा, स्वाहा,

ज्योत्सना हैमवती छाया पूर्णिमा संहतिस्तथा । अमावस्येति संपूज्या मंत्रेशे प्राणपूर्विका ॥८०॥
भूपुरे लोकपालाः स्युस्तदस्त्राणि तदग्रतः । इत्थं जपादिभिः सिद्धे मंत्रेऽस्मिन्धनसंचयैः ॥८१॥
कुबेरसदृशो मंत्री जायते जनवंदितः । अथ लक्ष्म्यवतारोऽन्यः कीर्त्यते मुनिसत्तम ॥८२॥
प्रणवः शांतिररुणाक्षियाढ्याचन्द्रभूषिताः । बगलामुखिसर्वांते ङ्धिकाह्लादिनीयुता ॥८३॥
पीताजरायुकप्रतिष्ठा पुनर्दीर्घोदसंयुता । वाचं मुखं पदं स्तंभयांते जिह्वापदं वदेत् ॥८४॥
कीलयेति च बुद्धिं विनाशयांते स्वबीजकम् । तारोऽग्निसुन्दरी मंत्रो बगलायाः प्रकीर्तितः ॥८५॥
मुनिस्तु नारदश्छंदो बृहती बगलमुखी । देवता नेत्रपंचेषुनवपंचार्णकैः ॥८६॥
अंगानि कल्पयित्वा च ध्यायेत्पीताम्बरां ततः । स्वर्णासनस्थां हेमाभां स्तंभिनीमिंदुशेखराम् ॥८७॥
दधतीं मुद्गरं पाशं वज्रं च रसनां करैः । एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षमयुतं चंपकोद्भवैः ॥८८॥
कुसुमैर्जुहुयात्पीठे बालायाः पूजयेदिमाम् । चंदनागुरुचंद्राद्यैः पूजार्थं यंत्रमालिखेत् ॥८९॥
त्रिकोणषड्दलाष्टास्रषोडशारे यजेदिमाम् । मंगला स्तंभिनी चैव जृंभिणी मोहिनी तथा ॥९०॥
वश्या चला बलाका च भूधरा कल्मषाभिधा । धात्री च कलना कालकर्षिणी भ्रामिकापि च ॥९१॥
मंदगापि च भोगस्था भाविका षोडशी स्मृता । भूगृहस्य चतुर्दिक्षु पूर्वादिषु यजेत्क्रमात् ॥९२॥
गणेशं बटुकं चापि योगिनीः क्षेत्रपालकम् । इंद्रादींश्च ततो बाह्ये निजायुधसमन्वितान् ॥९३॥
इत्थं सिद्धे मनौ मंत्री स्तंभयेद्देवतादिकान् । पीतवस्त्रपदासीनः पीतमाल्यानुलेपनः ॥९४॥
पीतपुष्पैर्यजेद्देवीं हरिद्रोत्थस्रजा जपेत् । पीतां ध्यायन्भगवतीं पयोमध्येऽयुतं जपेत् ॥९५॥

ज्योत्स्ना, हेमवती, छाया, पूर्णिमा, संहति और अमावास्या का प्राणपूर्वक पूजन करना चाहिये। भूपुर में लेक्षपालों की और उनके आगे उनके अस्त्रों की पूजा करे। इस प्रकार जप आदि से मन्त्र को सिद्ध कर लेने पर मन्त्री धन में कुबेर के तुल्य तथा जनवंदित होता है। ॥७८-८२॥ "प्रणवः······अग्निसुन्दरी"—

मुनिश्रेष्ठ ! अब लक्ष्मी का दूसरा अवतार मैं बतलाता हूँ। २५५९१० वर्णों यह बगला देवी का मन्त्र है। इसके ऋषि नारद हैं, छंद बृहती है और देवता बगलामुखी हैं। से अंगों की कल्पना करके पीताम्बर पहनने वाली, सुवर्ण के आसन पर बैठनेवाली स्वर्ण के समान कान्ति वाली, स्तंभन करने वाली, ललाट पर चन्द्रमा को धारण करने वाली और हाथों में मुद्गर, पाश, बज्र तथा मेखला रखनेवाली देवी का ध्यान करे। अनन्तर एक लाख मन्त्र का जप करके दश हजार चंपा के पुष्पों से पीठ पर हवन करे। फिर चंदन, अगर, कपूर, आदि से देवी का पूजन करके मन्त्र को लिखे। वह यंत्र त्रिकोण, तथा षड्दल, अष्टदल, एवम् षोडश दल कमलों से युक्त होना चाहिये। उस पर मंगला. स्तंभिनी, जृम्भिणी, मोहिनी, वश्या, चला बलाका, भूधरा, कलमषा, धात्री, कलना, कालकर्षिणी, भ्रामिका, मंगला, भोगस्था और भाविका इन देवियों का पूजन करना चाहिये। भूगृह की चारों ओर पूर्व आदि दिशा में क्रमशः गणेश, बटुक, योगिनी और क्षेत्रपाल की पूजा करे। बाहर में आयुध सहित इन्द्र आदि देवों का पूजन करना चाहिये। ॥८३-९३॥

इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर मन्त्री देव आदि का स्तंभन कर सकता है। पीत वस्त्र, पीत माला, पीत चन्दन, तथा पीत आसन से युक्त होकर, पीत पुष्पों से देवी का अर्चना करे और हल्दी का माला पर जप करे। जल के मध्य में स्थित होकर पीतवर्ण भगवती का ध्यान करते हुए दश सहस्र मन्त्र का जप करके त्रिमधु, घी, तथा तिल से हवन करे। ऐसा करने से वशीकरण सिद्ध होता है। त्रिमधु से युक्त लवण से होम

त्रिमध्वाज्यतिलैर्होमो नृणां वश्यकरो मतः । मधुरत्रितयाक्तैः स्यादाकर्षो लवणैध्र्रुवम् ॥९६॥
तैलाभ्यक्तैर्निम्बपत्रैर्होमो विद्वेषकारकः ।ताललोणहरिद्राभिर्द्विषां संस्तंभनं भवेत् ॥९७॥
आगारधूमं राजीश्च माहिषं गुग्गुलं निशि । श्मशाने पावके हुत्वा नाशयेदचिरादरीन् ॥९८॥
गरुतो गृध्रकाकानां कटुतैलं विभीतकम् । गृहधूमं चितावह्नौ हुत्वा प्रोच्चाटयेद्रिपून् ॥९९॥
दूर्वागुडूचीलाजान्यो मधुरत्रितयान्वितान् । जुहोति सोऽखिलान् रोगान् शमयेद्दर्शनादपि ॥१००॥
पर्वताग्रे महारण्ये नदीसंगे शिवालये । ब्रह्मचर्यरतो लक्षं जपेदखिलसिद्धये ॥१०१॥
एकवर्णगवीदुग्धं शर्करामधुसंयुतम । त्रिशतं मंत्रितं पीतं हन्याद्विषपराभवम् ॥१०२॥
श्वेतपालाशकाष्ठेन रचिते रम्यपादुके । अलक्तरंजिते लक्षं मन्त्रयेन्मनुनामुना ॥१०३॥
तदारूढः पुमान् गच्छेत्क्षणेन शतयोजनम् । पारदं च शिलां तालं पिष्टं मधुसमन्वितम् ॥१०४॥
मनुना मन्त्रयेल्लक्षं लिपेत्तेनाखिलां तनुम् । अदृश्यः स्यान्नृणामेव आश्चर्यं दृश्यतामिदम् ॥१०५॥
षट्कोणं विलिखेद्बीजं साध्यनामान्वितं मनाः । हरितालनिशाचूर्णैरुन्मत्तरससंयुतैः ॥१०६॥
शेषाक्षरैः समानीतं धरागेहविराजितम् । तद्यंत्रं स्थापितप्राणं पीतसूत्रेण वेष्टयेत् ॥१०७॥
भ्राम्यत्कुलालचक्रस्थां गृहीत्वा मृत्तिकां तथा । रचयेद्वृषभं रम्यं यंत्रं तन्मध्यतः क्षिपेत् ॥१०८॥
हरितालेन संलिप्य वृषं प्रत्यहमर्चयेत् । स्तम्भयेद्विद्विषां वाचं गतिं कार्यपरंपराम् ॥१०९॥
आदाय वामहस्तेन प्रेतभूस्थितकर्परम् । अंगारेण चितास्थेन तत्र यंत्रं समालिखेत् ॥११०॥
मंत्रितं निहितं भूमौ रिपूणां स्तम्भयेद्गतिम् । प्रेतवस्त्रे लिखेद्यंत्रं अंगारेणैव तत्पुनः ॥१११॥

करने पर आकर्षण सिद्ध होता है। तेल युक्त निम्बपत्रों से हवन करने पर विद्वेषकरण सिद्ध होता है। ॥९४-९६१/२॥ ताल, लवण तथा हलदी से हवन करने पर शत्रुओं का स्तम्भन होता है। रात्रि के समय श्मशान में अगर, राजसर्षप, भैंस के घी तथा गुग्गुल से अग्नि में हवन करने पर शीघ्र शत्रुओं का नाश हो जाता है। गोध और कौए के पंख, कड़आ तेल, बहेडा तथा गृहधूम से चिता को अग्नि में हवन करने से शत्रुओं का उच्चाटन होता है। जो दूर्वा त्रिमधुयुक्त गुडूच तथा लावा से हवन करता है, वह दर्शनमात्र से भी अखिल रोगों को शान्त कर देता है। सर्व सिद्धि के लिये पर्वत की चोटी पर, महावन में, नदी संगम पर तथा शिवालय में ब्रह्मचर्य निरत होकर एक लाख जप करना चाहिये। एक वर्णवाली गाय के दूध, शक्कर तथा मधु को तीन सौ बार अभिमन्त्रित करके पीने पर विष का दोष दूर हो जाता है ॥९७-१०२॥ श्वेत पलाश की लकड़ी के बने हुए सुन्दर खड़ाऊँ को अलता से रंग कर लाख बार इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके जो मनुष्य इसे पहनेगा, वह एक क्षण में सौ योजन तक चला जाएगा। पारद (पारा) शिला तथा ताल को मधु के साथ पीस कर उसे इस मन्त्र से लाख बार अभिमन्त्रित करके संपूर्ण शरीर में लेप करने से मनुष्य अदृश्य हो जाता है, यह आश्चर्य की बात है ॥१०३-१०५॥ साध्य वस्तु का नाम एवम् बीज मन्त्र षट्कोण यंत्र पर लिखे। उसे हरिताल, निशाचूर्ण, तथा धतूरे के रस से संयुक्त कर शेष अक्षरों के साथ लाकर भूमिगृह में रख छोड़े। फिर उस यन्त्र को पत सूत्र से बांध दे। अनन्तर कुम्हार के घूमते हुए चक्र की मृत्तिका को लाकर उसका सुन्दर बेल बनाये। पुनः यन्त्र को उसके मध्य में रख कर हरिताल से लीप कर वृष की प्रतिदिन पूजा किया करे। ऐसा करने वाला व्यक्ति शत्रुओं की वाणी तथा कार्यकारिणी गति का स्तम्भन कर सकता है। बायें हाथ से श्मशान की कौड़ी तथा चिता का अंगार लेकर उससे यन्त्र का निर्माण करे। पुनः यन्त्र को अभिमन्त्रित करके भूमि पर रख दे। इससे शत्रुओं

मंडूकवदने न्यस्येत्पीतसूत्रेण वेष्टितम् । पूजितं पीतपुष्पैस्तद्वाचं संस्तंभयेद्द्विषाम् ॥११२॥
यद्भूमौ भविता दिव्यं तत्र यंत्रं समालिखेत् । मार्जितं तद्द्विषां पात्रैर्दिव्यस्तम्भनकृद्भवेत् ॥११३॥
इन्द्रवारुणिकामूलं सप्तशो ऽनुमंत्रितम् । क्षिप्तं जले दिव्यकृतं जलस्तंभनकारकम् ॥११४॥
किं बहूक्त्या साधकेन मन्त्रः सम्यगुपासितः । शत्रूणां गतिबुद्ध्यादेः स्तंभनो नात्र संशयः ॥११५॥

इति श्री बृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे यक्षिणीमन्त्रसाधननिरूपणं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

अवतारत्रयं लक्ष्म्याः कथितं ते द्विजोत्तम । दुर्गायाश्चाभिधास्यामि सर्वलोकोपकारकान् ॥१॥
प्रणवः श्रीः शिवायुग्मं वाणीवैरोचनीपदम् । वज्राद्यं क्षुधिता सूक्ष्मा मृता स्वाग्नींदुसंयुता ॥२॥
प्रतिष्ठाथ शिवा फट् च स्वाहांतोऽत्यष्टिवर्णवान् । भैरवोऽस्य मुनिः सम्राट् छन्दो मन्त्रस्य देवता ॥३॥

का गतिस्तम्भन होता है। प्रेत वस्त्र पर अंगार ही से मन्त्र को लिखकर पीत सूत्र से वेष्टित करके मेढक के मुह में रख दे और पीले फूलों से उसकी पूजा करे। ऐसा करने से शत्रुओं का वाक्स्तंभन होता है ॥१०६-११२॥ भूमि पर लवंग से यन्त्र लिखे और उसको शत्रु के पात्र से मिटा दे। ऐसा करने से दिव्यस्तंभन होता है। इन्द्रवारुणी की जड़ को सात बार अभिमंत्रित करके जल में फेंक दे। ऐसा करने से जल-स्तंभन होता है। बहुत क्या कहें? अच्छी तरह मन्त्र की उपासना करने वाला साधक शत्रुओं की गति, बुद्धि आदि का स्तम्भन कर सकता है, इसमें संशय नहीं ॥११३-११५॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त तृतीयपाद में यक्षिणी मन्त्रसाधन निरूपण नामक छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८६॥

अध्याय ८७

विधान सहित दुर्गा-मन्त्रों का निरूपण

सनत्कुमार बोले—द्विजोत्तम! लक्ष्मी के तीन अवतारों का वर्णन तो मैंने कर दिया। अब दुर्गा के अखिल लोकोपकारक अवतारों को सुनाऊँगा। "प्रणवः·····स्वाहा" यह दुर्गा का मन्त्र है। इसके ऋषि भैरव, छंद सम्राट्, देवता छिन्नमस्ता, बीज रमा और शक्ति स्वाहा कही जाती है। "आं खड्गाय" इत्यादि

छिन्नमस्ता रमा बीजं स्वाहा शक्तिरुदीरिता । आं खड्गाय हृदाख्यातमीं खड्गाय शिरः स्मृतम् ॥४॥
ॐ वज्राय शिखा प्रोक्ता ऐं पाशाय तनुच्छदम् । ओमंकुशाय नेत्रं स्याद्विसर्गो वसुरक्षयुक् ॥५॥
मायायुग्मं चास्त्रमंगम् मनवः प्रणवादिकाः । स्वाहांताश्चैवमंगानि कृत्वा ध्यायेदथांबिकाम् ॥६॥
भानुमंडलसंस्थानां प्रविकीर्णालकं शिरः । छिन्नं स्वकं स्फारमुखं स्वरक्तं प्रपिबद्गलात् ॥७॥
उपरिस्थां रतासक्तरतिमन्मथयोर्निजे । डाकिनीवर्णिनीसख्यौ दृष्ट्वा मोदभराकुलाम् ॥८॥
ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षचतुष्कं तद्दशांशतः । पालाशैर्बिल्वजैर्वापि जुहुयात्कुसुमैः फलैः ॥९॥
आधारशक्तिमारभ्य परतत्वांतपूजिते । पीठे जयाख्या विजया जिता चापि पराजिता ॥१०॥
नित्या विलासिनी षष्ठी दोग्ध्र्यघोरा च मंगला । दिक्षु मध्ये च संपूज्या नव पीठस्य शक्तयः ॥११॥
सर्वबुद्धिप्रदे वर्णनीये सर्वभृगुः सदृक् । सिद्धिप्रदे डाकिनीये तारो वज्रः समौतिकः ॥१२॥
खड्गीशो रोचनीयेंते भगं धेहि नमोंतकः । तारादिपीठमन्त्रोऽयं वेदरामाक्षरो मतः ॥१३॥
समर्प्यासनमेतेन तत्र संपूजयेच्छिवाम् । त्रिकोणमध्यषट्कोणपद्मभूपुरमध्यतः ॥१४॥
बाह्यावरणमारभ्य पूजयेत्प्रतिलोमतः । भूपुरे बाह्यमार्गेषु वज्रादीनि प्रपूजयेत् ॥१५॥
तदंतः सुरराजादीन्पूजयेद्धरितां पतीन् । भूपुरस्य चतुर्द्वार्षु द्वारपालान्यजेदथ ॥१६॥
करालविकरालाख्यावतिकालस्तृतीयकः । महाकालश्चतुर्थः स्यादथ पद्मेष्टशक्तयः ॥१७॥
एकलिंगा योगिनी च डाकिनी भैरवी तथा । महाभैरवकेंद्राक्षो त्वसितांगी तु सप्तमी ॥१८॥
संहारिण्यष्टमी चेति षट्कोणेष्वंगमूर्तयः । त्रिकोणगा छिन्नमस्ता पार्श्वयोस्तु सखीद्वयम् ॥१९॥
डाकिनीवर्णनीसंज्ञं तारावाग्भ्यां प्रपूजयेत् । एवं पूजादिभिः सिद्धे मन्त्रे मंत्री मनोरथान् ॥२०॥

मन्त्र से अंगन्यास करके अंबिका का इस प्रकार ध्यान करे—"देवी सूर्यमंडल में स्थित हैं, शिर के बाल बिखरे हुए हैं, अपने आप शिर को काट लिया है, मुख फैला हुआ है, अपने बहते हुए रक्त को पी रही हैं, रतिक्रीडा में आसक्त रति और कामदेव के ऊपर अवस्थित हैं, अपनी डाकिनी और वर्णिनी नामक सखियों को देखकर वे आमोद विह्वल हो रही हैं ॥१-८॥

इस प्रकार ध्यान करके एक लाख मन्त्र का जप करे और उसका दशांश पलाश या बिल्व के फूल-फलों से पीठ पर हवन करे, जो आधार शक्ति से लेकर परतत्त्व के अंत तक पूजित हो। जया, विजया, जिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा, मंगला—इन नौ पीठ शक्तियों की दिशाओं के मध्य में पूजा करे। "सर्व बुद्धिप्रदे ·······" यह पीठमन्त्र कहलाता है। इस मन्त्र से आसन समर्पित कर उस पर शिवा का पूजन करे। त्रिकोण, षट्कोण और पद्मभूपुर के मध्य में बाह्यावरण से लेकर प्रतिलोमभाव से पूजा करनी चाहिये ॥९-१४½॥ भूपुर के बाह्य भाग में वज्र आदि का पूजन करे। उसके भीतर देवराज आदि दिक्पालों की पूजा करके भूपुर के चारों द्वारों पर द्वारपालों की अर्चना करनी चाहिये। कराल, विकराल, अतिकाल और महाकाल—ये चार द्वारपाल कहलाते हैं। इसके बाद एकलिंगा, योगिनी डाकिनी, भैरवी, महाभैरवी इंद्राक्षी, असितांगी और संहारिणी नामक आठ पद्मेष्ट शक्तियों की पूजा करके षट्कोण में त्रिकोणगा, छिन्नमस्ता आदि अंगमूर्तियों की अर्चना करे। दोनों बगल में डाकिनी और वर्णिनी नामक दो सखियों का तारक अथव बीज मन्त्र से पूजा करनी चाहिये।

इस प्रकार पूजा आदि से मंत्र सिद्ध हो जाने पर मंत्री उसके प्रभाव से तुरन्त सकल दुर्लभ मनोरथों को

प्राप्नुयान्निखिलान्सद्यो दुर्लभांस्तत्प्रसादतः । श्रीपुष्पैर्लभते लक्ष्मीं तत्फलैश्च समीहितम् ॥२१॥
वाक्सिद्धिं मालतीपुष्पैश्चंपकैर्हवनात्सुखम् । घृतावतं छागमांसं यो जुहुयात्प्रत्यहं शतम् ॥२२॥
मासमेकं तु वशगास्तस्य स्युः सर्वपार्थिवाः । करवीरसुमैः श्वेतैर्लक्षसंख्यैर्जुहोति यः ॥२३॥
रोगजालं पराभूय सुखी जीवेच्छतं समाः । रक्तैस्तत्संख्यया हुत्वा वशयेन्मंत्रिणो नृपान् ॥२४॥
फलैर्हुत्वाप्नुयाल्लक्ष्मीमुदुंबरपलाशजैः । गोमायुमांसैस्तामेव कवितां पायसांधसा ॥२५॥
बंधूककुसुमैर्भाग्यं कर्णिकारैः समीहितम् । तिलतंडुलहोमेन वशयेन्निखिलाञ्जनान् ॥२६॥
नारीरजोभिराकृष्टैर्मृगमांसैः समीहितम् । स्तंभनं माहिषैर्मांसैः पंकजैः सघृतैरपि ॥२७॥
चिताग्नौ परभृत्पक्षैर्जुहुयादरिमृत्यवे । उन्मत्तकाष्ठदीप्तेऽग्नौ तत्फलं वायसच्छदैः ॥२८॥
द्यूते वने नृपद्वारे समरे वैरिसंकटे । विजयं लभते मंत्री ध्यायन्देवीं जपन्मनुम् ॥२९॥
भुक्त्यै मुक्त्यै सितां ध्यायेदुच्चाटे नीलरोचिषम् । रक्तां वश्ये मृतौ धूम्रां स्तंभने कनकप्रभाम् ॥३०॥
निशि दद्याद्बलिं तस्यै सिद्धये मदिरादिना । गोपनीयः प्रयोगोऽयं प्रोच्यते सर्वसिद्धिदः ॥३१॥
भूताहे कृष्णपक्षस्य मध्यरात्रे तमोघने । स्नात्वा रक्ताम्बरधरो रक्तमाल्यानुलेपनः ॥३२॥
आनीय पूजयेन्नारीं छिन्नमस्तास्वरूपिणीम् । सुन्दरीं यौवनाक्रांतां नरपञ्चकगामिनीम् ॥३३॥
सुस्मितां मुक्तकबरीं भूषादानप्रतोषिताम् । विवस्त्रां पूजयित्वैनमयुतं प्रजपेन्मनुम् ॥३४॥

प्राप्त कर लेता है ॥१५-२०½॥ श्रीपुष्पों से हवन करने से लक्ष्मी, श्रीफलों से मनःकामना, मालती पुष्पों से वाक्सिद्धि और चंपा से सुख की प्राप्ति होती है। जो एक मास तक प्रतिदिन घृतमिश्रित छाग के मांस से हवन करता है, उसके वश में समस्त नृपगण आ जाते हैं। जो श्वेत करवीर के पुष्पों से एक लाख होम करता है, वह रोग-समूह को जीत कर सौ वर्षों तक सुख से जीता है। उतनी ही संख्या में रक्त करवीर के पुष्पों से हवन करनेवाला व्यक्ति मंत्रियों तथा राजाओं को वश में करता है। गूलर और पलाश के फलों से होम करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ॥२१-२४½॥ बन्धूक (दोपहरिया फूल) कुसुमों से हवन करने पर सौभाग्य की प्राप्ति होती है और कर्णिकार (कनैल) से होम करने से मनः-कामना पूर्ण होती है ॥ तिल और तंडुल से हवन करने वाला व्यक्ति अखिल जनों को वश में करता है। नारी के रज से संमिश्रित मृगमांस से हवन करने पर अभिलाषा की पूर्ति होती है। महिष के मांस तथा घृत मिश्रित कमलों से होम करने पर स्तंभन सिद्ध होता है। शत्रु को मारने के लिए चिता की अग्नि में कौए के पंख से हवन करे। धतूरे की लकड़ी से जलाये गए अग्नि में भी कौए के पंख से वही फल मिलता है। द्यूतक्रीड़ा, वन, नृपद्वार, समर तथा शत्रुसंकट में देवी का ध्यान तथा मंत्रजप करने वाला साधक जन-विजय लाभ करता है। भुक्ति-मुक्ति प्राप्त करने के लिये शुक्लवर्णा देवी का ध्यान करे और उच्चाटन के लिये नीलवर्णा का। वशीकरण के लिये रक्तवर्णा, मृत्यु के लिये धूम्रवर्णा और स्तम्भन के लिये स्वर्णवर्णा का ध्यान करना चाहिये ॥२५-३०॥ सिद्धि के निमित्त रात्रि में उन्हें मद्य आदि की बलि चढ़ाये। इस सर्व सिद्धिदायक प्रयोग को गुप्त ही रखना चाहिये। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की घोर अन्धकारपूर्ण मध्यरात्रि में छिन्नमस्ता देवी की-सी आकृति वाली, सुन्दरी, पूर्ण यौवना, पाँच पुरुषों से गमन करने वाली, सुन्दर मुसकान करने वाली, खुली वेणी वाली और आभूषणों से विभूषित ललना को विवस्त्र करके उसकी पूजा करे। फिर दश हजार मंत्र का जप करके बलि समर्पित करे। इस तरह रात्रि व्यतीत कर वनिता को धन से

बलिं दत्त्वा निशां नीत्वा संप्रेष्य धनतोषिताम् । भोजयेद्विविधैरन्नैर्ब्राह्मणान्भोजनादिना ॥३५॥
अनेन विधिना लक्ष्मीं पुत्रान्पौत्रान्धनं यशः । नारीमायुः सुखं धर्ममिष्टं च समवाप्नुयात् ॥३६॥
तस्यां रात्रौव्रतं कार्यं विद्याकामेन मंत्रिणा । मनोरथेषु चान्येषु गच्छेत्तां प्रजपन्मनुम् ॥३७॥
उषस्युत्थाय शय्यायामुपविष्टो जपेच्छतम् । षण्मासाभ्यन्तरे मन्त्री कवित्वेन जयेत्कविम् ॥३८॥
शिवेन कीलिता चेयं तदुत्कीलनमुच्यते । मायां तारपुटां मंत्री जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥३९॥
मन्त्रस्यादौ तथैवांते भवेत्सिद्धिप्रदा तु सा । उदिता छिन्नमस्तेयं कलौ शीघ्रमभीष्टदा ॥४०॥
अवतारांतरं देव्या वच्मि ते मुनिसत्तम । ज्ञानामृतारुणा श्वेता क्रोधिनींदुसमन्विता ॥४१॥
शांतिस्तथाविधा चापि नीच सर्गान्विता तथा । वाग्भवं कामराजाख्यं शक्तिबीजाह्वयं तथा ॥४२॥
त्रिभिर्बीजैः पंचकूटात्मिका त्रिपुरभैरवी । ऋषिः स्याद्दक्षिणामूर्तिश्छन्दः पंक्तिरुदीरिता ॥४३॥
देवता देशिकैरुक्ता देवी त्रिपुरभैरवी । नाभेराचरणं न्यस्य वाग्भवं मन्त्रवित्पुनः ॥४४॥
हृदयान्नाभिपर्यंतं कामबीजं प्रविन्यसेत् । शिरसो हृत्प्रदेशांतं तार्तीयं विन्यसेत्ततः ॥४५॥
आद्यं द्वितीयं करयोस्तार्तीयमुभयं न्यसेत् । मूलाधारे हृदि न्यस्य भूयो बीजत्रयं क्रमात् ॥४६॥
नवयोन्यात्मकं न्यासं कुर्याद्बीजैस्त्रिभिः पुनः । बालोदितप्रकारेण मूर्तिन्यासमथाचरेत् ॥४७॥
स्वस्वबीजादिकं पूर्वं मूर्ध्नीशानमनोभवम् । न्यसेद्वक्रो तत्पुरुषं मकरध्वजमात्मवित् ॥४८॥
हृद्यघोरकुमारादिकंदर्पं तदनंतरम् । गुह्यदेशे प्रविन्यस्येद्वामदेवादिमन्मथम् ॥४९॥
सद्योजातं कामदेवं पादयोर्विन्यसेत्ततः । ऊर्ध्वं प्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु मुखेषु तान् ॥५०॥

संतुष्ट करके लौटा दे ॥३१-३४½॥ पश्चात् विविध प्रकार की भोज्य-सामग्रियों से ब्राह्मणों को भोजन कराये। ऐसा करने से लक्ष्मी, पुत्र, पौत्र, धन, यश, नारी, आयु, सुख, धर्म और कल्याण की प्राप्ति होती है। विद्या के इच्छुक साधक उस रात्रि में व्रत करे। अन्य मनोरथों की सिद्धि के लिये उस रात्रि में मंत्र का जप करे और प्रातःकाल उठकर शय्या पर ही सौ बार मन्त्र को जपे। ऐसा करने वाला साधक छह मास के भीतर ही अपनी कवित्वशक्ति से कवियों को पराजित कर देता है ॥३५-३८॥

शिव ने छिन्नमस्ता को कीलित (बद्ध) किया था। इसलिये उनका उत्कीलन भी कहा जाता है। अर्थात माया (ह्रीं) को तार (ओं) से संपुटित करके मंत्र के आदि तथा अन्त में एक सौ आठ बार जप करे। ऐसा करने से देवी सिद्धि प्रदान करती हैं। कलियुग में तो छिन्नमस्ता शीघ्र ही कामना को पूर्ण कर देती हैं ॥३९-४०॥

मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं देवी के अन्य अवतार का वर्णन करता हूँ। "ज्ञानामृता·····यह त्रिपुर भैरवी का मंत्र हैं। इसके ऋषि दक्षिणामूर्ति, छंद पंक्ति और देवता—देशिकों के कथनानुसार—त्रिपुर भैरवी हैं। मंत्रवेत्ता व्यक्ति नाभि में वाग्भव आचरण का न्यास करके हृदय से नाभि पर्यंत कामबीज का न्यास करें शिर से हृदय पर्यन्त तार्तीय बीज का न्यास करना चाहिये। आद्य, द्वितीय और तृतीय बीज का दोनों हाथों में न्यास करे। पुनः मूलाधार हृदय में क्रमशः तीनों बीजों का न्यास करके बीजत्रय से नवयोन्यात्मक न्यास भी करे ॥४१-४६½॥ अनन्तर देवी के कथनानुसार मूर्तिन्यास करे। आत्मज्ञानी व्यक्ति मस्तक तथा मुख में अपने-अपने बीज आदि के साथ क्रमशः शिव तथा कन्दर्प का न्यास करे। हृदय में अघोर, कुमार तथा काम का न्यास करके गुह्य देश में वामदेव आदि मदन का न्यास करना चाहिये। सद्यः उत्पन्न कामदेव का दोनों चरणों में न्यास करे। ऊपर, पूरब, दक्षिण, उत्तर और पश्चिम दिशा में पूर्वोक्त देवों का ही न्यास करे

प्रविन्यसेद्यथापूर्वं भृगुर्व्योमाग्निसंस्थितः । सद्यादिपञ्चह्रस्वाद्या बीजमेषां प्रकीर्तितम् ॥५१॥
षड्दीर्घयुक्तेनाद्येन बीजेनांगक्रिया मता । पञ्चबाणांस्ततो न्यस्येन्मन्त्री त्रैलोक्यमोहनान् ॥५२॥
द्रामाद्यां द्राविणीं मूर्ध्नि द्रामाद्यां क्षोभणी पदे । क्लींवशीकरणीं वक्त्रे गुह्ये ब्लूं बीजपूर्विकाम् ॥५३॥
आकर्षणीं हृदि पुनः सर्वान्तभृगुसंस्थिताम् । संमोहनीं क्रमादेवं बाणन्यासोऽयमीरितः ॥५४॥
भालभ्रूमध्यवदने घंटिकाकण्ठहृत्सु च । नाभ्यधिष्ठानयोः पञ्च ताराद्याः सुभगादिकाः ॥५५॥
मस्तकावधि नाभेश्च मंत्रिणा सुभगा भगा । भगसर्पिण्यथ परा भगमालिन्यनंतरम् ॥५६॥
अनंगानंगकुसुमा भूयश्चानंगमेखला । अनंगमदना सर्वा मदविभ्रममंथरा ॥५७॥
प्रधानदेवता वर्णभूषणाद्यैरलंकृताः । अक्षस्त्रक्पुस्तकाभीतिवरदाढ्यकरांबुजाः ॥५८॥
वाक्कामब्लूं स्त्रीं सरांते ताराः पंच प्रकीर्तिताः । ततः कुर्याद्भूषणाढ्यं न्यासमुक्तदिशा मुने ॥५९॥
एवं न्यस्तशरीरोऽसौ ध्यायेत्त्रिपुरभैरवीम् । सहस्रभानुसंकाशामरुणक्षौमवाससीम् ॥६०॥
शिरोमालामसृग्लिप्तस्तनीं जपवटीं करैः । विद्यामभीतिं च वरं दधतीं त्रीक्षणाननाम् ॥६१॥
दीक्षां प्राप्य जपेन्मंत्रं तत्त्वलक्षं जितेंद्रियः । पुष्पैर्भानुसहस्राणि जुहुयाद्ब्रह्मवृक्षजैः ॥६२॥
त्रिमध्वक्तैः प्रसूनैर्वा करवीरसमुद्भवैः । पद्मं वसुदलोपेतं नवयोन्यष्टकर्णिकम् ॥६३॥
इच्छादिशक्तिभिर्युक्तं भैरव्याः पीठमर्चयेत् । इच्छा ज्ञाना क्रिया पश्चात्कामिनी कामदायिनी ॥६४॥
रतिप्रिया मदानन्दा नवमी स्यान्मनोन्मनी । वरदाभयधारिण्यः संप्रोक्ता नव शक्तयः ॥६५॥

"भृगुः······"—यह इनका बीजमन्त्र है। छह दीर्घ वर्णों से युक्त आद्य बीजमन्त्र से अंगक्रिया करनी
चाहिये ॥४७-५१½॥ तदनन्तर मंत्री तीनों लोक को मोहने वाले पंच बाणों का न्यास करे। द्रामाद्या द्रावणी का
शिर में, द्रामाद्या क्षोभणी का चरण में, 'क्लीं' पूर्वक वशीकरणी का मुख में, ब्लूं पूर्वक आकर्षणी का गुह्य में
और सर्वान्तभृगु संस्थिता संमोहनी का हृदय में न्यास करना चाहिये। इसी का नाम बाणन्यास है। ललाट,
भौं के मध्य, मुख, घंटिका, कंठ, हृदय, नाभि तथा अधिष्ठान में सुभगा आदि पाँच ताराओं का तथा अन्य
देवियों का न्यास करे। सुभगा, भगा, भगसर्पिणी, परा तथा भगमालिनी—ये पाँच तारायें हैं। पुनः मस्तक
से नाभि पर्यन्त अनंगा, अनंगकुसुमा, अनंगमेखला और अनंग-मदना की पूजा करनी चाहिये। ये प्रधान देवता
हैं, वर्ण तथा भूषण आदि से अलंकृत है, मद से इनकी गति मंथर हो गई है, इनके हाथों में रुद्राक्ष की
माला, पुस्तक तथा अभयास्त्र सुशोभित है, करकमल वरदायक है। मुने! तदुपरान्त निर्दिष्ट प्रकार से भूषण
नामक न्यास को करना चाहिये ॥५२-५९॥

इस प्रकार सम्पूर्ण शरीर में न्यास करके त्रिपुर भैरवी का ध्यान करे—देवी की कान्ति सहस्र सूर्यों के
समान हैं। वह लाल रंग का रेशमी वस्त्र पहने हुई हैं, मस्तक पर माला सुशोभित है, स्तन शोणित से लिप्त
है, हाथों में जपमाला, विद्या, अभीति, एवम् वरअस्त्र विद्यमान हैं और वदन तीन नेत्रों से सुशोभित है।
जितेन्द्रिय व्यक्ति दीक्षा लेकर एक लाख मंत्र का जप करे और पलाश-पुष्पों से दस हजार हवन
करे। अथवा त्रिमधुयुक्त करवीर के पुष्पों से होम करे। तदनन्तर अष्टदल कमल, नवयोनि, अष्ट
कर्णिका एवम् इच्छा आदि शक्तियों से युक्त भैरवी-पीठ की अर्चना करनी चाहिये। इच्छा, ज्ञाना, क्रिया,

वाग्भवं लोहितो रायै श्रीकंठो लोहितोऽनलः । दीर्घत्रान्यै परा पश्चादपरायौ हसौ युतः ॥६६॥
सदाशिवमहाप्रेतङेंतं पद्मासनं नमः । अनेन मनुना दद्यादासनं श्रीगुरुक्रमम् ॥६७॥
प्राङ्मध्ययोन्यंतराले पूजयेत्कल्पयेत्ततः । पंचभिः प्रणवैर्मूर्तिं तस्यामावाह्य देवताम् ॥६८॥
पूजयेदागमोक्तेन विधानेन समाहितः । तारावाक्छक्तिकमला ह्सखफ्रें हसौः स्मृताः ॥६९॥
वामकोणे यजेद्देव्या रतिमिंदुसमप्रभाम् । सृणिपाशधरां सौम्यां मदविभ्रमविह्वलाम् ॥७०॥
प्रीतिं दक्षिणकोणस्थां तप्त कांचनसन्निभाम् । अङ्कुशं प्रणतं दोर्भ्यां धारयन्तीं समर्चयेत् ॥७१॥
अग्रे मनोभवां रक्तां रक्तपुष्पाद्यलंकृताम् । इक्षुकार्मुकपुष्पेषुधारिणीं सस्मिताननाम् ॥७२॥
अङ्गान्यभ्यर्चयेत्पश्चाद्यथापूर्वं विधानवित् । दिक्ष्वग्रे च निजैर्मंत्रैः पूजयेद्बाणदेवताः ॥७३॥
हस्ताब्जैर्धृतपुष्पेषुप्रणामामृतसप्रभाः । अष्टयोनिष्वष्टशक्तीः पूजयेत्सुभगादिकाः ॥७४॥
मातरो भैरवांकस्था मदविभ्रमविह्वलाः । अष्टपत्रेषु संपूज्य यथावत्कुसुमादिभिः ॥७५॥
लोकपालांस्ततो दिक्षु तेषामस्त्राणि तद्बहिः । पूर्वजन्मकृतैः पुण्यैर्ज्ञात्वैनां परदेवताम् ॥७६॥
यो भजेदुक्तमार्गेण स भवेत्संपदां पदम् । एवं सिद्धमनुर्मंत्री साधयेदिष्टमात्मनः ॥७७॥
जुहुयादरुणांभोजैरदोषैर्मधुराप्लुतैः । लक्षसंख्यं तदर्द्धं वा प्रत्यहं भोजयेद्द्विजान् ॥७८॥
वनिता युवती रम्याः प्रीणयेद्देवताधिया । होमांते धनधान्याद्यैस्तोषयेद्गुरुमात्मनः ॥७९॥
एवं कृते जगद्वश्यो रमाया भवनं भवेत् । रक्तोत्पलैस्त्रिमध्वक्तैररुणैर्वा हयारिजैः ॥८०॥

कामिनी, कामदायिनी, रति प्रिया, मंदा, आनंदा और मनोन्मनी--ये नौ शक्तियाँ हैं, जो वर तथा अभय देने वाले अस्त्रों का धारण किये हुई हैं ॥६०-६५॥ "वाग्भवम्······नमः"--इस मंत्र से आसन प्रदान करे। तत्पश्चात् प्रथम और मध्यम योनि के बीच पूजा का आरंभ करे। पाँच प्रणवों से प्रतिमा में देवी का आवाहन करके सावधान होकर तंत्रोक्त विधान से पूजा करनी चाहिये। "तारा······"—यह मंत्र हैं। इस मंत्र से वामकोण में चन्द्रमा के समान प्रभा वाली, अंकुश तथा पाश धारण करने वाली, सुन्दर रूप वाली, और मद के आधिक्य से विह्वल नेत्र वाली देवी की अर्चना करे। दक्षिण कोण में तपे सोने के समान कान्तिवाली और हाथों में अंकुश तथा पाश धारण करनेवाली प्रीति देवी की पूजा करे ॥६६-७१॥ अग्र भाग में, रक्तवर्ण वाली, रक्तपुष्प आदि से अलंकृता, ईख का धनुष तथा पुष्पों का बाण धारण करने वाली और मन्द मुसकान से युक्त मुख वाली मनोभवा देवी की अर्चना करे। तत्पश्चात् विधानवेत्ता व्यक्ति यथा पूर्व अंगों की पूजा करके दिशाओं में तथा अग्रभाग में अमृत के समान प्रभा वाले और करकमलों में पुष्पबाण धारण करनेवाले बाण देवताओं का पूजन करे। फिर अष्ट योनियों में सुभगा आदि आठों शक्तियों की पूजा करे। अष्ट पत्रों पर भैरव की गोद में रहने वाली, मदविह्वला माताओं की पुष्प आदि से यथावत् पूजा करे। तदनन्तर दिशाओं में लोकपालों का और बाहर उनके अस्त्रों का पूजन करे। जो व्यक्ति पूर्वजन्म के सुकृत से इन श्रेष्ठ देवता को जान कर उपर्युक्त प्रकार से इनकी उपासना करता हैं, वह संपत्तियों का अधीश्वर होता है ॥ ७२-७६½॥

इस प्रकार मन्त्र सिद्ध कर लेने पर मन्त्री अपने इष्टदेव की साधना करे। दोष रहित लाल कमलों में मधुर मिलाकर उनसे एक लाख या पचास हजार हवन करे। और प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन कराये। सुन्दरी एवम् युवती ललनाओं को देवताबुध्या संतुष्ट करे। होम के अन्त में धन धान्य आदि से अपने गुरु को संतुष्ट करे। ऐसा करने से संसार वशीभूत हो जाता है और उसके घर लक्ष्मी निवास करती है। त्रिमधुयुक्त रक्तकमल तथा

पुष्पैः पयोन्नैः सघृतैर्होमाद्विश्वं वशं नयेत् । वाक्सिद्धिं लभते मन्त्री पलाशकुसुमैर्हुतैः ॥८१॥
कर्पूरागुरुसंयुक्तं गुग्गुलं जुहुयात्सुधीः । ज्ञानं दिव्यमवाप्नोति तेनैव स भवेत्कविः ॥८२॥
क्षीराक्तैरमृताखंडैर्होमः सर्वापमृत्युजित् । दूर्वाभिरायुषे होमः क्षीराक्ताभिर्दिनत्रयम् ॥८३॥
गिरिकर्णीभवैः पुष्पैर्ब्राह्मणान्वशयेद्धुतैः । कल्हारैः पार्थिवान्पुष्पैस्तद्वधूः कर्णिकारजैः ॥८४॥
मल्लिकाकुसुमैर्हुत्वा राजपुत्रान्वशं नयेत् । कोरंटकुसुमैर्वैश्यान्वृषलान्पाटलोभद्वैः ॥८५॥
अनुलोमं विलोमांतस्थितसाध्याह्वयान्वितम् । मन्त्रमुच्चार्य जुहुयान्मंत्री मधुरलोलितैः ॥८६॥
सर्षपैर्मधुसंमिश्रैर्वशयेत्पार्थिवान् क्षणात् । अनेनैव विधानेन तत्पत्नीस्तत्सुतानपि ॥८७॥
जातिबिल्वभवैः पुष्पैर्मधुरत्रयसंयुतैः । नरनारीनरपतीन्होमेन वशयेत्क्रमात् ॥८८॥
मालतीबकुलोद्भूतैः पुष्पैश्चन्दनलोलितैः । जुहुयात्कवितां मन्त्री लभते वत्सरांतरे ॥८९॥
मधुरत्रयसंयुक्तैः फलैर्बिल्वसमुद्भवैः । जुहुयाद्वशयेल्लोकं श्रियं प्राप्नोति वांछिताम् ॥९०॥
साज्यमन्नं प्रजुहुयाद्भवेदन्नसमृद्धिमान् । कस्तूरीकुंकुमोपेतं कर्पूरं जुहुयाद्वशी ॥९१॥
कन्दर्पादधिकं सद्यः सौंदर्यमधिगच्छति । लाजान्प्रजुहुयान्मंत्री दधिक्षीरमधुप्लुतान् ॥९२॥
विजित्य रोगानखिलान्स जीवेच्छरदां शतम् । पादद्वयं मलयजं पादं कुंकुमकेसरम् ॥९३॥
पादं गोरोचनांतानि त्रीणि पिष्ट्वा हिमांभसा । विदध्यात्तिलकं भाले यान्पश्येद्यैर्विलोक्यते ॥९४॥
यान्स्पृशेत्स्पृश्यते यैर्वा वश्याः स्युस्तस्य तेऽचिरात् । कर्पूरकपिचोराणि समभागानि कल्पयेत् ॥९५॥
चतुर्भुजा जटामांसी तावती रोचना मता । कुंकुमं समभागं स्याद्द्विभागं चन्दनं मतम् ॥९६॥
अगुरुर्नवभागं स्यादिति भागक्रमेण च । हिमाद्भिः कन्यया पिष्टमेतत्सर्वं सुसाधितम् ॥९७॥
आदाय तिलकं भाले कुर्याद्भूमिपतीन्नरान् । वनितामदगर्वाढ्या मदोन्मत्तान्मतंगजान् ॥९८॥

लाल करवीर के पुष्पों से हवन करनेवाला मन्त्री वाक्सिद्धि को प्राप्त करता है। कर्पूर तथा अगर युक्त गुग्गुल से हवन करने से दिव्यज्ञान तथा कवित्वशक्ति की प्राप्ति होती है ॥७७-८२॥ दूधयुक्त बहेड़े से हवन करने से अपमृत्यु पर विजय प्राप्त होती है। क्षीर युक्त दूर्वा से तीन दिन होम करने से आयु बढ़ती है। अपराजिता के पुष्पों से हवन करने से ब्राह्मण वश में होते हैं। श्वेत कमल से हवन करने से राजा वश में होते हैं और कर्णिकारपुष्पों से होम करने से रानियाँ वशीभूत होती हैं। मालती के पुष्पों से होम करने से राजपुत्र वशीभूत होते हैं। कोरंट के पुष्पों से वैश्य और पाटल से शूद्र वशीभूत होते हैं। अनुलोम-विलोम प्रकार से मंत्र का उच्चारण कर मधुमिश्रित सरसों से हवन करने से राजा तत्क्षण वशीभूत हो जाते हैं। इसी विधान से राजपत्नियाँ तथा राजपुत्र वश में आते हैं। त्रिमधुयुक्त पुष्प एवम् बिल्व के पुष्पों से होम करने से राजा तथा नर-नारिताँ वशीभूत होती हैं ॥८३-८८॥ एक वर्ष तक जूही के चन्दनयुक्त मालती तथा मौलसिरी के पुष्पों से हवन करने से कवित्वक्ति की प्राप्ति होती है। त्रिमधुयुक्त बिल्व के फलों से होम करने से संसार वशीभूत हो जाता है और वांछित धन की प्राप्ति होती है। घृताक्त अन्न से होम करने से अन्न की समृद्धि होती है। कस्तूरी और कुंकुम युक्त कर्पूर से हवन करने वाला साधक कामदेव से भी अधिक सुन्दर होता है। दही, दूध और मधु सहित लावे से होम करने वाला व्यक्ति अखिल रोगों को जीत कर सौ वर्षों तक जीता है ॥८९-९२½॥ जो व्यक्ति दो भाग चन्दन और एक-एक भाग कुंकुम, केशर तथा गोरोचन को हिम जल के साथ पीस कर ललाट पर तिलक लगाता हैं, वह जिसे देखता है तथा स्पर्श करता है, वे सब तत्काल उसके वशीभूत हो जाते हैं। समभाग कर्पूर, रक्तचंदन, चोर (ओषधिविशेष), चतुर्भुज, जटामांसी,

सिंहव्याघ्रान्महासर्पान्भूतवेतालराक्षसान् । दर्शनादेव वशयेत्तिलकं धारयेन्नरः ॥९९॥
इत्येषा भैरवी प्रोक्ता ह्यवतारांतरं श्रृणु । वाङ्माया कमला तारो नमोंते भगवत्यथ ॥१००॥
श्रीमातंगेश्वरि वदेत्सर्वजनमनोहरि । सर्वादिसुखराज्यंते सर्वादिसुखरंजनी ॥१०१॥
सर्वराजवशं पश्चात्करिसर्वपदं वदेत् । स्त्रीपुरुषवशं सृष्टिविद्याक्रोधिनिकान्विता ॥१०२॥
सर्वं दुष्टमृगवशं करिसर्वपदं ततः । सर्वतत्त्ववशंकरि सर्वलोकं ततः परम् ॥१०३॥
अमुकं मे वशं पश्चादानयानलसुन्दरी । अष्टाशीत्यक्षरो मन्त्रो शुन्याद्या भैरवीगताः ॥१०४॥
न्यासान्मंत्री तनौ कुर्याद्वक्ष्यमाणान्यथाक्रमम् । शिरोललाटभ्रूमध्ये तालुकण्ठगलोरसि ॥१०५॥
अनाहते भुजद्वंद्वे जठरे नाभिमण्डले । स्वाधिष्ठाने गुप्तदेशे पादयोर्दक्षवामयोः ॥१०६॥
मूलाधारे गुदे न्यस्येत्पदान्यष्टादश क्रमात् । गुणैकद्विचतुःषड्भिर्वसुपर्वनवाष्टभिः ॥१०७॥
नंदपंक्त्यष्टवेदाग्निचन्द्रयुग्मगुणाक्षिभिः । यदुक्लृप्तिरियं प्रोक्ता मंत्रवर्णैर्यथाक्रमम् ॥१०८॥
रत्याद्या मूलहृदयभ्रूमध्येषु विचक्षणः । वाक्शक्तिलक्ष्मीबीजाद्या मातंग्यंताः प्रविन्यसेत् ॥१०९॥
शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषु विधिना न्यसेत् । हृल्लेखां गगनां रक्तां भूयो मन्त्री करालिकाम् ॥११०॥
महोच्छुष्मां स्वनामादिवर्णबीजपुरःसराः । मातंग्यताः षडंगानि ततः कुर्वीत साधकः ॥१११॥
वर्णैश्चतुर्विंशतिभिर्हृत्त्रयोदशभिः शिरः । शिखाष्टादशभिः प्रोक्ता वर्मं तावद्भिरक्षरैः ॥११२॥
स्यात्त्रयोदशभिर्नेत्रं द्वाभ्यामस्त्रं प्रकीर्तितम् । बाणन्यासं ततः कुर्याद्भैरवीप्रोक्तवर्त्मना ॥११३॥
मातंगीपदयोश्चान्यं मन्मथान्वदनांशयोः । पार्श्वकट्योर्नाभिदेशे कटिपार्श्वांशके पुनः ॥११४॥
बीजत्रयादिकान्मंत्री मन्मथं मकरध्वजम् । मदनं पुष्पधन्वानं पंचमं कुसुमायुधम् ॥११५॥

गोरोचन तथा कुंकुम, चार भाग चंदन और नव भाग अगर को हिमजल के साथ पीसकर भाल पर तिलक लगाने से राजा, मदगर्वित ललना, मदोन्मत्त गज, सिंह, बाघ, महासर्प, भूत, वेताल तथा राक्षस देखते ही वश में आ जाते हैं ॥९३-९९॥

इतना तो भैरवी के विषय में मैंने कहा, अब इनके अन्य अवतारों की भी बात सुन लो। "वाङ्माया .....अनलसुन्दरी"—यह अठासी अक्षरों का भैरवी-मंत्र है। इसका साधक पहले वक्ष्यमाण प्रकार से शरीर में न्यास करे। शिर, ललाट, भ्रूमध्य, तालु, कंठ, ग्रीवा, वक्षःस्थल, हृदय, भुजद्वय, उदर, नाभिमंडल, शरीर, गुप्तदेश, दक्षिण और वाम पाद, मूलाधार तथा गुदा में क्रमशः अठारह पदों का न्यास करे। शरीर में ३१२४६८९८९१०८४३१२ मंत्र वर्णों का यथाक्रम न्यास करना चाहिये ? इसका नाम यदुक्लृप्ति है। विद्वान् व्यक्ति मूल, हृदय तथा भ्रूमध्य में रति, वाक्शक्ति, मातंगी एवम् लक्ष्मी बीज आदि का न्यास करे। ॥१००-१०९॥ शिर, मुख, हृदय, गुह्य तथा चरणों में अपने नाम के आदि अक्षर तथा बीजपूर्वक हृल्लेखा, गगना, रक्ता, करालिका और महोच्छुष्मा का पुनः सविधि न्यास करे। तदनन्तर साधक मातंगी आदि का छह अंगों में न्यास करे। चौबीस वर्णों से हृदय में, तेरह वर्णों से शिर पर, अठारह अक्षरों से शिखा पर और उतने ही वर्णों से त्वचा पर न्यास करना चाहिये। तेरह अक्षरों से नेत्रन्यास और दो अक्षरों से अस्त्रन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् भैरवी के बतलाये हुए मार्ग से बाणन्यास करे ॥११०-११३॥ मातंगी के दोनों चरणों में मन्मथों का और मुख, स्कंध, पार्श्व, नाभि और कटिपार्श्व में पुनः बीजत्रय का न्यास करे। मन्त्री मन्मथ, मकरध्वज, मदन, पुष्पधन्वा, कुसुमायुध, कन्दर्प, मनोभव, तथा रतिप्रिय इन नामों का स्थानविशेषों में

षष्ठं कन्दर्पनामानं मनोभवरतिप्रियौ । मातंग्यंतास्ततो न्यस्येत्स्थानेष्वेतेषु मंत्रवित् ॥११६॥
कुसुमा मेखला चैव मदना मदनातुरा । मदनवेगा सम्भवा च भुवनपालेंदुरेखिका ॥११७॥
अनंगपदपूर्वाश्च मातंग्यंताः समीरिताः । विन्यस्तव्यास्ततो मूलेऽधिष्ठाने मणिपूरके ॥११८॥
हृत्कंठास्ये भ्रुवोर्मध्ये मस्तके चापि मंत्रिणा । आद्ये लक्ष्मीसरस्वत्यौ रतिःप्रीतिश्च कृत्तिका ॥११९॥
शांतिः पुष्टिः पुनस्तुष्टिर्मातंगीपदशेखरा । मूलमन्त्रं पृथङ्न्यस्येन्निजमूर्द्धनि मन्त्रवित् ॥१२०॥
आधारदेशेऽधिष्ठाने नाभौ पश्चादनाहते । कंठदेशे भ्रुवोर्मध्ये बिंदौ भूयः कला पदोः ॥१२१॥
निरोधिकायामर्द्धेंदुनादे नादांतयोः पुनः । उन्नतांसेषु वक्त्रे च ध्रुवमण्डलके शिवे ॥१२२॥
मातंग्यंताः प्रविन्यस्येद्वामां ज्येष्ठामतः परम् । रौद्रीं प्रशांतां श्रद्धाख्यां पुनर्माहेश्वरीमथ ॥१२३॥
क्रियाशक्ति सुलक्ष्मीं च सृष्टिं संज्ञां च मोहिनीम् । प्रमथाश्वासिनीं विद्युल्लतां चिच्छक्तिमप्यथ ॥१२४॥
ततश्च सुन्दरीं नंदां नन्दबुद्धिमिमाः क्रमात् । शिरोभालहृदाधारेष्वेता बीजत्रयाधिकाः ॥१२५॥
मातंग्याद्याः प्रविन्यस्येद्यथावद्देशिकोत्तमः । मातंगीं महादाद्यां तां महालक्ष्मीपदादिकाम् ॥१२६॥
सिद्धलक्ष्मीपदाद्यां च मूलमाधारमण्डलम् । न्यसेत्तेनैव कुर्वीत व्यापकं देशिकोत्तमः ॥१२७॥
एवं न्यस्तशरीरोऽसौ चिंतयेन्मंत्रदेवताम् । श्यामां शुकोक्ति शृण्वंतीं न्यस्तैकांघ्रिशिरोरुहाम् ॥१२८॥
शशिखण्डधरां वीणां वादयंतीं मधून्मदाम् । रक्तांशुकां च कह्लारमालाशोभितचूलिकाम् ॥१२९॥
शंखपत्रां तु मातंगीं चित्रकोद्भासिमस्तकाम् । अयुतं प्रजपेन्मंत्रं तद्दशांशं मधूकजैः ॥१३०॥
पुष्पैस्त्रिमधुरोपेतैर्जुहुयान्मंत्रसिद्धये । त्रिकोणकर्णिकं पद्ममष्टपत्रं प्रकल्पयेत् ॥१३१॥
अष्टपत्रावृतं बाह्ये वृतं षोडशभिर्दलैः । चतुरस्रीकृतं बाह्ये कांत्या दृष्टिमनोहरम् ॥१३२॥

न्यास करके कुसुमा, मेखला, मदना, मदनातुरा, मदनवेगा, संभवा, भुवनपाला, इन्दुरेखा, अनंगपदपूर्वा और मातंगी का न्यास करे। तदनन्तर साधक को मूल अधिष्ठान, मणिपूरक, हृदय, कंठ, मुख, भ्रूमध्य तथा मस्तक पर न्यास करना चाहिये। पहले लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कृत्तिका, शांति, पुष्टि, तुष्टि, मातंगी और पद-शेखरा का न्यास करके फिर अपने मस्तक पर मूलमन्त्र का न्यास करे ॥११४-१२०॥ मूलाधार, अधिष्ठान, नाभि, अनाहत, कठदेश, भ्रूमध्य, बिंदु, कला, पद, निरोधिका, अर्धेन्दुनाद, नादान्त, उन्नतांश, मुख तथा ध्रुवमंडल में कुसुमा आदि का न्यास करके पश्चात् वामा और ज्येष्ठा का न्यास करे। पुनः रौद्री, प्रशांता, श्रद्धा, माहेश्वरी, क्रियाशक्ति, सुलक्ष्मी, सृष्टि, संज्ञा, मोहिनी, प्रमथा, आश्वासिनी, विद्युल्लता, चिच्छक्ति, सुन्दरी, निंदा तथा नंदबुद्धि का क्रमशः न्यास करे। शिर, ललाट, हृदय, तथा आधार में बीजत्रय से अधिक मातंगी आदि का न्यास करना चाहिये। उत्तम साधक मातंगी, महदाद्या, महालक्ष्मीपदादिका, सिद्धलक्ष्मीपदाद्या और मूलाधारमंडल का यथावत् न्यास करके व्यापक न्यास करे ॥१२१-१२७॥

इस प्रकार शरीर न्यास करके मन्त्री श्यामवर्णा, तोते की बोली सुननेवाली, एक चरण तथा केशों का न्यास करने वाली, चंद्रलेखा का धारण करनेवाली, वीणा बजाने वाली, मधुपान से उन्मत्त होने वाली, रक्तवस्त्र पहनने वाली, श्वेतकमल की माला से सुशोभित जूड़ेवाली, शंख धारण करने वाली और तिलकबिंदु से सुशोभित भाल वाली, मन्त्र देवता मातंगी का ध्यान करे। तदनन्तर मंत्र सिद्धि के लिये दस हजार मंत्र का जप करके उसका दशांश त्रिमधुयुक्त मधूक (महुआ) के पुष्पों से हवन करे। पश्चात् त्रिकोण, कर्णिका सहित अष्टदल कमल से युक्त पीठ की रचना करे, जो देखने में मनोहर तथा चतुरस्र हो। उसके बाहर अष्टदल कमल होना चाहिये और

एतस्मिन्पूजयेत्पीठे नवशक्तीः क्रमादिमाः। विभूतिपूर्वाः पूर्वोक्ता मातंगीपदपश्चिमाः ॥१३३॥
सर्वांते शक्तिकमलासनाय नम इत्यथ। वाक्सत्यलक्ष्मी बीजाद्य उक्तः पीठार्चने मनुः ॥१३४॥
मूलेन मूर्ति संकल्प्य तस्यामावाह्य देवताम्। अर्चयेद्विधिनानेन वक्ष्यमाणेन मन्त्रवित् ॥१३५॥
रत्याद्यास्त्रिषु कोणेषु पूजयेत्पूर्ववत्सुधीः। हृल्लेखा पंचपूज्या मध्ये दिक्षु च मंत्रिणा ॥१३६॥
पाशांकुशाभयाभीष्टधारिण्यो भूतसप्रभाः। अंगानि पूजयेत्पश्चाद्यथापूर्वं विधानवित् ॥१३७॥
बाणानभ्यर्चयेद्दिक्षु पंचमं पुरतो यजेत्। दलमध्येऽथ संपूज्या अनंगकुसुमादिकाः ॥१३८॥
पाशांकुशाभयाभीष्टधारिण्योऽरुणविग्रहाः। पत्राग्रेषु पुनः पूज्या लक्ष्म्याद्या वल्लकीकराः ॥१३९॥
बहिरष्टदलेष्वर्च्या मन्मथाद्या मदोद्धताः। अपरांगा निषंगाद्याः पुष्पास्त्रेषुधनुर्द्धराः ॥१४१॥
पत्रस्था मातरः पूज्या ब्राह्म्याद्याः प्रोक्तलक्षणाः। तदग्रेऽवर्चयेद्विद्वानसितांगादिभैरवान् ॥१४२॥
पुनःषोडशपत्रेषु पूज्याः षोडश शक्तयः। वामाद्याः कलवीणाभिर्गायंत्यः श्यामविग्रहाः ॥१४३॥
चतुरस्रे चतुर्दिक्षु चतस्रः पूजयेत्पुनः। मातंग्याद्या मदोन्मत्ता वीणोल्लसितपाणयः ॥१४४॥
आग्नेयकोणे विघ्नेशं दुर्गां नैशाचरे यजेत्। वायव्ये बटुकान् पश्चादीशाने क्षेत्रपं यजेत् ॥१४५॥
लोकपाला बहिः पूज्या वज्राद्यैरायुधैः सह। मंत्रेऽस्मिन्संधिते मन्त्री साधयेदिष्टमात्मनः ॥१४६॥
मल्लिकाजातिपुन्नागैर्होमाद्भाग्यालयो भवेत्। फलैर्बिल्वसमुद्भूतैस्तत्पत्रैर्वा हुताद्भवेत् ॥१४६॥

भीतर षोडशदल। उस पीठ पर विभूति और मातंगी का पूजन करके क्रमशः नौ शक्तियों की पूजा करनी चाहिये ॥१२८-१३३॥ सबके अन्त में "शक्ति······लक्ष्मी"—इस मंत्र से पीठ की अर्चना करके मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करे और उसमें देवता का आवाहन करके वक्ष्यमाण प्रकार से विधिपूर्वक आराधना करे। सुधी साधक तीनो कोणों में रति आदि का पूजन करके मध्य में तथा चारों दिशाओं में हृल्लेखा आदि पांचो देवियों की पूजा करे, जो पाश, अंकुश अभय तथा अभीष्ट फल देनेवाले अस्त्र का धारण करती है और जिनकी प्रभा भूत के समान है। इसके बाद विधानवेत्ता व्यक्ति पहले की तरह अंगों का पूजन करे। दिशाओं में बाणों की पूजा करके पत्र मध्य में पाश, अंकुश और अभय एवम् अभीष्ट फल दायक अस्त्र का धारण करनेवाली तथा लाल शरीरवाली अनंगकुसुमा आदि देवियों को अर्चना करे ॥१३४-१३८½॥ पुनः पत्रों के अग्रभाग में वीणाधारिणी लक्ष्या आदि का पूजन करके बाहर अष्टदल कमल पर पुष्पास्त्र, बाण तथा धनुष धारण करनेवाली मदगर्वित मन्मथा, अपरागा और निषंगा आदि की पूजा करे। पत्रों पर उक्त लक्षणा ब्राह्मी आदि माताओं की पूजा करे। विद्वान् व्यक्ति उनके आगे असितांग आदि भैरवों की अर्चना करके पुनः सोलह पत्तों पर सोलह शक्तियों का पूजन करे। चारों दिशाओं के चारों कोणों में श्याम शरीरवाली तथा वीणा बजानेवाली वामा आदि देवियों का पूजन करके पुनः मद से उन्मत्त तथा वीणा से सुशोभित करने वाली मातंगी आदि देवियों की पूजा करे। आग्नेय कोण में विघ्नेश की, नैर्ऋत्य कोण में दुर्गा की, वायव्य कोण में बटुकों की और ईशानकोण में क्षेत्रपाल की अर्चना करे ॥१३९-१४४॥ बाहर वज्र आदि आयुध सहित लोकपालों की पूजा करनी चाहिये। इस मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्री अपने इष्ट की साधना करे। मालती, जूही तथा पुन्नाग के पुष्पों से हवन करने वाला साधक महा सौभाग्यवान् होता है। बिल्वफलों या बिल्वपत्रों से होम करने से राजपुत्र को राज्य की प्राप्ति होती है। कमल से हवन करने से श्री की प्राप्ति होती है। श्वेत कमल से होम करनेवाला व्यक्ति विश्व को वशीभूत करता है। मधु एवम् क्षार से होम करने वाला स्त्री को वशीभूत करता है। अशोक वृक्ष की समिधा से होम करने

राजपुत्रस्य राज्याप्तिः पंकजैः श्रियमाप्नुयात् । उत्पलैर्वशयेद्विश्वं क्षारैर्मध्वाश्रितैः स्त्रियम् ॥१४७॥
वंजुलस्य समिद्धोमो वृष्टिं वितनुतेऽचिरात् । क्षीराक्तैरमृताखंडैर्होमान्नाशयति ज्वरम् ॥१४८॥
दूर्वाभिरायुराप्नोति तन्दुलैर्धनवान् भवेत् । कदंबैर्वश्यमाप्नोति सर्वं त्रिमधुरप्लुतम् ॥१४९॥
नंद्यावर्तभवैः पुष्पैर्होमो वाक्सिद्धिदायकः । निंबप्रसूनैर्जुहुयादीप्सितश्रीसमृद्धये ॥१५०॥
पलाशकुसुमैर्होमात्तेजस्वी जायते नरः । चन्दनागुरुकस्तूरीचन्द्रकुंकुमरोचनाः ॥१५१॥
वश्याय च प्रियत्वाय हुताश्च तिलकीकृताः । निर्गुंडीमूलहोमेन निगडान्मुच्यते नरः ॥१५२॥
निंबतैलान्वितैर्लोणहोमः शत्रुविनाशनः । हरिद्राचूर्णसंमिश्रैर्लवणैः स्तंभयेज्जगत् ॥१५३॥
मातंगीसिद्धविद्यैषा प्रोक्ता ते द्विजसत्तम । अवतारांतरं भूयो वर्णयामि निशामय ॥१५४॥
दीपिकाप्रीतिचन्द्राढ्या द्विधा चेद्रज्जितापुनः । वर्तिर्वह्निप्रियामंत्रो धूमावत्या गजाक्षरः ॥१५५॥
पिप्पलादो मुनिश्छंदो निवृद्धूमावतीश्वरी । बीजेन षड्दीर्घजातियुक्तेन परिकल्पयेत् ॥१५६॥
ततो धूमावतीं ध्यायेच्छत्रुनिग्रहकारिणीम् । विवर्णां चंचलां दुष्टां दीर्घां च मलिनांबराम् ॥१५७॥
विमुक्तकुंतलां सूक्ष्मां विधवां विरलद्विजाम् । काकध्वजरथारूढां प्रलंबितपयोधराम् ॥१५८॥
सूर्यहस्तां निरक्षांकधृतहस्तांबरान्विताम् । प्रवृद्धलोमां तु भृशं कुटिलाकुटिलेक्षणाम् ॥१५९॥
क्षुत्पिपासार्दितां नित्यं भयदां कलहप्रियाम् । एवंविधां तु संचित्य नमः स्वाहा फडंतकम् ॥१६०॥
बीजं साध्योपरि न्यस्य तस्मिन्स्थाप्य शवं जपेत् । अवष्टभ्य शवं शत्रुनाम्नाथ प्रजपेन्मनुम् ॥१६१॥

वाला शीघ्र वर्षा करा देता है। दुग्ध युक्त गुडूच के खंड से होम करने वाला ज्वर को दूर कर देता है। दूर्वा से हवन करने से आयु की प्राप्ति होती है। तन्दुल से हवन करने वाला व्यक्ति धनवान् होता है। ॥१४५-१४८½॥

त्रिमधुयुक्त कदम्ब से होम करने वाला सबको वशीभूत करता है। तगर के पुष्पों से होम करने से वाणी सिद्ध होती है। निंब के पुष्पों से हवन करने से वांछित धन मिलता है। पलाश के कुसुमों से होम करने से मनुष्य तेजस्वी होता है। चन्दन, अगर, कस्तूरी, कपूर, कुंकुम तथा गोरोचन से हवन करके तिलक लगाने से अखिल प्राणी वशीभूत होते हैं। निर्गुण्डी के मूल से होम करने से बन्धन से मुक्ति मिलती है। निंब, तेल तथा लवण से होम करने से शत्रु का नाश होता है ॥१४९-१५२½॥ हलदी के चूर्ण में मिलाये लवण से होम करने से साधक संसार का स्तंभन कर सकता है। द्विजश्रेष्ठ! सिद्ध विद्या मातंगी के बारे में मैंने इतना कहा है। अब मैं उनके अन्य अवतार का वर्णन करता हूँ, सुनो! "दीपिका·····"—यह उनका मंत्र है। इस मंत्र के ऋषि पिप्पलाद हैं, छंद निवृत् है और देवता धूमावती हैं। इसको छह दीर्घजातियुक्त बीज मन्त्र से परिकल्पित करे। ॥१५३-१५६॥ तदनन्तर इस प्रकार धूमावती का ध्यान करे कि ये शत्रु को विपत्ति में फँसाती हैं, इनका वर्ण विकृत है, ये चंचला, दुष्टा, लम्बी, मलिनवस्त्रा, सूक्ष्मा तथा विधवा हैं, इनके बाल बिखरे हुए हैं। दाँत विरले ही हैं, इनके रथ पर कौंच (करांकुल) पक्षी की पताका है, पयोधर लटके हुए हैं, सूर्य (र्प?), ऋषभ औषधि तथ अड़हुल के फूल को हाथों में धारण किये हुई हैं, रोएँ सघन एवम् बड़े-बड़े हैं, नेत्र सीधे एवम् टेढ़े भी हैं, इनको नित्य भूख प्यास लगी रहती है। ये भय देने वाली तथा झगड़ालू हैं। इस प्रकार ध्यान करके "नमः स्वाहा·····" इस बीज मंत्र को साध्य वस्तु के ऊपर न्यस्त करे। फिर वहाँ शव की स्थापना करके जप करे। शव के ऊपर शत्रु का नाम लिखकर मंत्र को जपना चाहिये। विद्वान् व्यक्ति कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी

सोष्णीषकंचुको विद्वान्कुर्वे स्तुते दिवानिशम् । उपवासी श्मशाने वा विपिने शून्यमंदिरे ॥१६२॥
मंत्रस्य सिद्धये यतवाग्ध्यायन्देवीं निरंतरम् । सहस्रादूर्ध्वतः शत्रुज्वरेण परिगृह्यते ॥१६३॥
पंचगव्येन शांतिः स्याज्ज्वरस्य पयसापि वा । मंत्राद्याक्षरमालिख्य शत्रुनाम ततः परम् ॥१६४॥
द्वितीयं मनुवर्णं च शत्रुनामैवमालिखेत् । सवं मनुदिवसहस्रजपाच्छत्रुमृतिर्भवेत् ॥१६५॥
दग्ध्वा कंकं श्मशानाग्नौ तद्भस्मादाय मन्त्रवित् । विरोधिनाम्नाष्टशतं जप्त्वोच्चाटनं रिपोः ॥१६६॥
श्मशानभस्मना कृत्वा शवं तस्योपरि न्यसेत् । विरोधिनामसंरुद्धं कृष्णे पक्षे समुच्चरेत् ॥१६७॥
महिषीक्षीरधूपं च दद्याच्छत्रुविपत्करम् । एवं संक्षेपतः प्रोक्तं अवताराश्चतुष्टयम् ॥१६८॥
दुर्गाया जगदंबायाः किं पुनः प्रष्टुमिच्छसि ॥१६९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे दुर्गामन्त्रचतुष्टयवर्णनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

सूत उवाच

श्रुत्वेत्थं वचनं विप्रा मन्त्रध्यानपुरःसरम् । सर्वासामवताराणां नारदो देवदर्शनः ॥१॥

को पगडी तथा कंचुक (कुर्ता) धारण कर दिन रात जप करते रहे । जप श्मशान या वन या शून्य मन्दिर में उपवास पूर्वक करना चाहिये ॥१५७-१६२॥ मंत्र सिद्धि के लिये वाक्संयम तथा देवी का निरंतर ध्यान आवश्यक है । एक हजार से ऊपर जप करते हो शत्रु को दाहपीड़ा होने लगती है, उस दाह की शान्ति पंचगव्य या दूध से की जा सकती है । मन्त्र के आद्य तथा द्वितीय अक्षर को लिखकर पश्चात् शत्रुका नाम लिखना चाहिये । अनन्तर चौबीस हजार मंत्र जप करने से शत्रु की मृत्यु हो जाती है । क्रौंचपक्षी को श्मशान की अग्नि में जलाकर उसके भस्म के ऊपर एक सौ आठ बार विरोधी का नाम जप देने से उसका उच्चाटन हो जाता है । कृष्ण पक्ष में श्मशान के भस्म के ऊपर शव को रखकर शत्रु का नाम उच्चारण करे और भैंस का दूध तथा धूप चढ़ाये ऐसा करने से शत्रु विपत्ति में पड़ जाता है । इस तरह संक्षेप में मैंने जगदम्बा दुर्गा के चारों अवतारों का वर्णन कर दिया । अब क्या पूछना चाहते हो ? ॥१६३-१६९॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त तृतीयपाद में दुर्गामन्त्रचतुष्टयवर्णन नामक सतासीवां अध्याय समाप्त ॥८७॥

अध्याय ८८

राधावतार—सोलह देवताओं के मंत्र, यंत्र तथा पूजन की विधि

सूत बोले—विप्रवृन्द ! इस प्रकार देवियों के समस्त अवतारों के पूजन, मन्त्र तथा ध्यान का वर्णन

सर्वाद्याया जगन्मातुः श्रीराधायाः समर्चनम् । अवतारकलानां हि पप्रच्छ विनयान्वितः ॥२॥

नारद उवाच

धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि जातोऽहं त्वत्प्रसादतः । यज्जगन्मातृमंत्राणां वैभवं श्रुतवान्मुने ॥३॥
यथा लक्ष्मीमुखानां तु अवताराः प्रकीर्तिताः । तथा राधावताराणां श्रोतुमिच्छामि वैभवम् ॥४॥
यत्संख्याकाश्च यद्रूपा यत्प्रभावा विदांवर । राधावतारास्तान्सत्यं कीर्तयाशेषसिद्धिदान् ॥५॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य नारदस्य विधेः सुतः । सनत्कुमारः प्रोवाच ध्यात्वा राधापदांबुजम् ॥६॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि रहस्यातिरहस्यकम् । राधावतारचरितं भजतामिष्टसिद्धिदम् ॥७॥
चन्द्रावली च ललिता द्वे सख्यौ सुप्रिये सदा । मालावतीमुखाष्टानां चन्द्रावल्याधिपा स्मृता ॥८॥
कलावतीमुखाष्टानामीश्वरी ललिता मता । राधाचरणपूजायामुक्ता मालावतीमुखाः ॥९॥
ललिताधीश्वरीणां तु नामानि शृणु साम्प्रतम् । कलावती मधुमती विशाखा श्यामलाभिधा ॥१०॥
शैब्या वृन्दा श्रीधराख्या सर्वास्तत्तुल्यविग्रहाः । सुशीलाप्रमुखाश्चान्याः सख्यो द्वात्रिंशदीरिताः ॥११॥
ताः शृणुष्व महाभाग नामतः प्रवदामि ते । सुशीला शशिलेखा च यमुना माधवी रतिः ॥१२॥
कदम्बमाला कुन्ती च जाह्नवी च स्वयंप्रभा । चन्द्रानना पद्ममुखी सावित्री च सुधामुखी ॥१३॥
शुभा पद्मा पारिजाता गौरिणी सर्वमंगला । कालिका कमला दुर्गा विरजा भारती सुरा ॥१४॥
गंगा मधुमती चैव सुन्दरी चन्दना सती । अपर्णा मनसानन्दा द्वात्रिंशद्राधिकाप्रियाः ॥१५॥

सुनकर देवतुल्य नारद ने सब की आदि और जगत् की माता श्री राधा की आराधना तथा उनकी अवतार-कलाओं के विषय में विनयपूर्वक प्रश्न किया ॥१-२॥

नारद बोले--'मुने ! मैं आपकी कृपा से धन्य एवं कृतकृत्य हुआ तथा जगन्माता के मन्त्रों का वैभव सुन चुका। अब जैसे लक्ष्मी आदि के अवतारों का वर्णन सुनाया है उसी तरह राधा के अवतारों का भी वर्णन सुना दीजिए। वेत्ताओं में श्रेष्ठ ! सकल सिद्धिदायक राधावतारों की जितनी संख्या है, जैसा रूप है और जैसा प्रभाव है, वह सब ठीक ठीक बतला दीजिये ॥३-५॥'

ब्रह्मपुत्र नारद की यह बात सुनकर सनत्कुमार राधा के चरणारविन्द का ध्यान करके कहने लगे ॥६॥

सनत्कुमार बोले—विप्र ! सुनो, मैं राधावतार का वर्णन करता हूँ, जो अत्यन्त रहस्यपूर्ण तथा उपासकों के लिये सिद्धिदायक है। श्रीराधा की चन्द्रावली तथा ललिता नामक दो अत्यन्त प्रिय सखियाँ है। जिनमें चन्द्रावली मालावती आदि आठ सखियों की अधीश्वरी है और ललिता कलावती आदि आठ सखियों की स्वामिनी हैं। राधाचरण की पूजा के प्रकरण में मालावती आदि के नाम तो बता ही दिये हैं अब कलावती आदि के नामों को सुनो। कलावती, मधुमती, विशाखा, श्यामला, अभिध; शैव्या, वृन्दा और श्रीधरा इन सब के शरीर राधा के ही समान हैं। इनके अतिरिक्त सुशीला आदि अन्य बत्तीस सखियाँ भी हैं ॥७-११॥ महाभाग ! उन सब का नाम मैं तुमसे बताता हूँ, सुनो, सुशीला, शशिलेखा, यमुना, माधवी, रति, कदम्बमाला, कुन्ती, जाह्नवी, स्वयंप्रभा, चन्द्रानना, पद्ममुखी, सावित्री, सुधामुखी, शुभा, पद्मा पारिजाता, गौरिणी, सर्वमंगला, कालिका, कमला, दुर्गा, विरजा, भारती, सुरा, गंगा, मधुमती, सुन्दरी, चन्दना, सती, अपर्णा, मनसा और आनन्दा— ये बत्तीसों राधिका की सहेलियाँ हैं ॥१२-१५॥

कदाचिल्ललिता देवी पुंरूपा कृष्णविग्रहा । ससर्ज षोडशकलास्ताः सर्वास्तत्समप्रभाः ॥१६॥
तासां मन्त्रं तथा ध्यानं यन्त्रार्चादिक्रमं तथा । वर्णये सर्वतंत्रेषु रहस्यं मुनिसत्तम ॥१७॥
वातो मरुच्चाग्निवह्नी धराक्ष्मे जलचारिणी । विमुखं चरशुचिविभू वनस्वशक्तयः स्वराः ॥१८॥
प्राणस्तेजः स्थिरा वायुर्वायुश्चापि प्रभा तथा । ज्यकुमभ्रं तथा नादो दावकः पाथ इत्यथ ॥१९॥
व्योमरयः शिखी गोत्रा तोयं शून्यजवी द्युतिः । भूमी रसो नभो व्याप्तं दाहश्चापि रसांबु च ॥२०॥
वियत्स्पर्शश्च हृद्धंसहलाग्रासो हलात्मिकाः । चन्द्रावली च ललिता हंसेला नायके मते ॥२१॥
ग्रासस्थिता स्वयं राधा स्वयं शक्तिस्वरूपिणी । शेषास्तु षोडशकला द्वात्रिंशत्तत्कलाः स्मृताः ॥२२॥
वाङ्मयं निखिलं व्याप्तमाभिरेव मुनीश्वर । ललिताप्रमुखाणां तु षोडशीत्वमुपागता ॥२३॥
श्रीराधा सुन्दरी देवी तांत्रिकैः परिकीर्त्यते । कुरुकुल्ला च वाराही चन्द्रालिललिते उभे ॥२४॥
संभूते मन्त्रवर्गं तेऽभिधास्येऽहं यथातथम् । हृत्प्राणेलाहंसदाहवह्नीस्वैर्ललितेरिता ॥२५॥
त्रिविधा हंसभेदेन शृणु तां च यथाक्रमम् । हंसाद्ययाऽद्या मध्या स्यादादिमध्यस्थहंसया ॥२६॥
तृतीया प्रकृतिः सैव तुर्या तैरंत्यमायया । आसु तुर्याभवन्मुक्त्यै त्रिस्रोऽन्याःस्युश्च संपदे ॥२७॥
इति त्रिपुरसुन्दर्या विद्या सम्यक्समीरिता । दाहभूमीरसाक्ष्मास्वैर्वशिनीबीजमीरितम् ॥२८॥
प्राणो रसाशक्तियुतः कामेश्वर्यक्षरं महत् । शून्यमंबुरसावह्निस्वयोगान्मोहनीमनुः ॥२९॥
व्याप्तं रसाक्ष्मास्वयुतं विमलाबीजमीरितम् । ज्यानभोदाहवह्निस्वयोगैः स्यादरुणामनुः ॥३०॥
जयिन्यास्तु समुद्दिष्टः सर्वत्र जयदायकः । कं नभो दाहसहितं व्याप्तक्ष्मास्वयुतं मनुः ॥३१॥
सर्वेश्वर्याः समाख्यातः सर्वसिद्धिकरः परः । ग्रासो नभोदाहवह्निस्वैर्युक्तः कौलिनीमनुः ॥३२॥
एतैर्मनुभिरष्टाभिः शक्तिभिर्वर्गसंयुतैः । वाग्देवतांतैर्न्यासः स्याद्येन देव्यात्मको भवेत् ॥३३॥
रंध्रे भाले तथाज्ञायां गले हृदि तथा न्यसेत् । नाभावाधारके पादद्वये मूलाग्रकावधि ॥३४॥
षड्दीर्घाढ्येन बीजेन कुर्याच्चैव षडंगकम् । लोहितां ललितां बाणचापपाशसृणीः करैः ॥३५॥

एक समय ललिता देवी ने पुरुषरूप में कृष्ण के समान शरीर वाली सोलह कलाओं का सृजन किया। उन सबकी कान्ति एक जैसी थी। मुनिश्रेष्ठ! अखिल तंत्रों में उन सब के मन्त्र, ध्यान, यंत्र तथा पूजनादि क्रम जैसे वर्णित है, वैसे मैं सुना देता हूँ। "वातो मरुत्·····शक्तिस्वरूपिणी"— यह मंत्र है। उपर्युक्त सोलह कलाओं के अतिरिक्त अन्य भी सोलह कलायें हैं, जिन्हें मिला देने से बत्तीस कलायें होती हैं। मुनीश्वर! निखिल वाङ्मय जगत् को इन देवियों ने ही व्याप्त कर रखा है। ललिता आदि देवियां षोड़शी कहलाती है ॥१६-२३॥ तांत्रिक लोग श्री राधा को सुन्दरी देवी कहते हैं। कुरुकुल्ला, वाराही, चन्द्रालि और ललिता ये उनकी सखियाँ हैं। अब मैं मंत्रसमूह को यथार्थतः बता रहा हूँ। "हृत्प्राण······"— यह ललिता का ··· "हंसाद्यया······"—यह त्रिपुर सुन्दरी का मंत्र। "दाह······"—यह वशिनी का मंत्र है। "प्राणो······"—यह ···यह कामेश्वरी का मंत्र है। शून्यम्······"—यह मोहनी का मंत्र है। "व्याप्तम्······"यह विमला का मंत्र है। "ज्यान······"—यह अरुणा का मन्त्र है। "ग्रासो······"यह कौलिनी का मन्त्र है। वाग्देवता तथा अष्ट शक्तियों के साथ इन मन्त्रों का न्यास करने से देवी को आत्मीयता प्राप्त होती है। ॥२४-३३॥ ब्रह्मरंध्र, ललाट, कंठ, हृदय, नाभि, मूलाधार, चरणद्वय, और मूलाग्र में न्यास करना चाहिये। छह दीर्घ मात्राओं से युक्त बीजमन्त्र से षडंग न्यास करना चाहिये। अनन्तर हाथों में बाण, धनुष, पाश तथा

दधानां कामराजांके यन्त्रितां स्नुदितां स्मरेत् । मध्यस्थदेवी त्वेकैव षोडशाकारतः स्थिता ॥३६॥
यतस्तस्मात्तनौ तस्यास्त्वन्याः पंचदशार्चयेत् । ऋषिः शिवश्छंद उक्ता देवता ललितादिकाः ॥३७॥
सर्वासामपि नित्यानामावृतीर्नामसंचये । पटले तु प्रयोगांश्च वक्ष्याम्यग्रे सविस्तरम् ॥३८॥
अथ षोडशनित्यासु द्वितीया या समीरिता । कामेश्वरीति तां सर्वकामदां शृणु नारद ॥३९॥
शुचिः स्वेन युतस्त्वाद्यो ललिता स्याद्द्वितीयकः । शून्यमग्नियुतं पश्चाद्द्वयोऽप्यन्तेन संयुतम् ॥४०॥
प्राणो रसाग्निसहितः शून्ययुग्मं चरान्वितम् । नभोगोत्रा पुनश्चैषां दाहेन समयोजिता ॥४१॥
अंबु स्याच्चरसंयुक्तं नवशक्तियुतं च हृत् । एषा कामेश्वरी नित्या कामदैकादशाक्षरी ॥४२॥
मूलविद्याक्षरैरेव कुर्यादंगानि षट् क्रमात् । एकेन हृदयं शीर्षं तावताथो द्वयं द्वयात् ॥४३॥
चतुर्भिर्नयनं तद्वदस्त्रमेकेन कीर्तितम् । दृक्श्रोत्रनासाद्वितये जिह्वाहृन्नाभिगुह्यके ॥४४॥
व्यापकत्वेन सर्वांगे मूर्द्धादिप्रपदावधि । न्यसेद्विद्याक्षराण्येषु स्थानेषु तदनंतरम् ॥४५॥
समस्तेन व्यापकं तु कुर्याद्युक्तक्रमेण तु । अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि नित्यपूजासु चोदितम् ॥४६॥
येन देवी सुप्रसन्ना ददातीष्टमयत्नतः । बालार्ककोटिसंकाशां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम् ॥४७॥
हारग्रैवेयकांचीभिरूर्मिकानूपुरादिभिः । मंडितां रक्तवसनां रत्नाभरणशोभिताम् ॥४८॥
षड्भुजां त्रीक्षणामिंदुकलाकलितमौलिकाम् । पञ्चाष्टषोडशद्वद्वषट्कोणचतुरस्रगाम् ॥४९॥
मंदस्मितलसद्वक्त्रां दयामंथरवीक्षणाम् । पाशांकुशौ च पुंड्रेक्षुचापं पुष्पशिलीमुखम् ॥५०॥
रत्नपात्रं सीधुपूर्णं वरदं बिभ्रतीं करैः । ततः प्रयोगान्कुर्वीत सिद्धे मंत्रे तु साधकः ॥५१॥
तृतीयामथ वक्ष्यामि नाम्ना तु भगमालिनी । कामेश्वर्यादिरादिः स्याद्रसश्चापस्थिरारसः ॥५२॥

अंकुश धारण करने वाली लोहिता तथा ललिता का स्मरण करे। एक ही प्रधान देवी सोलहों देवियों के रूप में अवस्थित है। उन्हीं को प्रतिमा में इतर पन्द्रह देवियों की अर्चना करनी चाहिये। उक्त मन्त्र के ऋषि शिव हैं, छंद पंक्ति है और देवता ललिता आदि हैं। आगे चलकर समस्त नित्य देवियों के नामों तथा पटल-प्रयोगों को विस्तार पूर्वक बतलाऊँगा ॥३४-३८॥ नारद ! सोलह नित्य कलाओं में अखिल कामना दायक कामेश्वरी नामक जो दूसरी देवी हैं, उनके विषय में अब सुनो। "शुचि······हृत्"—यह नित्य कामेश्वरी का मन्त्र है। जो मनोरथ को पूर्ण करनेवाली तथा एकादश अक्षरों से युक्त हैं। मूलविद्या के अक्षरों से क्रमशः षडंग न्यास करना चाहिये। एक अक्षर से हृदयन्यास, दो से शीर्षन्यास, चार से नेत्रन्यास और एक से अस्त्रन्यास करना चाहिये। नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा, हृदय, नाभि, गुह्य, शिर, तथा चरणों से व्यापक न्यास करना चाहिये। पुनः उक्त स्थानों में विद्याक्षरों का न्यास करके सामस्त्येन व्यापक न्यास करना चाहिये। अब नित्य पूजा में निर्दशित ध्यान को बता देता हूँ, जिससे देवी सुप्रसन्न होकर मनोरथ को पूर्ण करती है ॥३९-४६½॥

कोटि बाल सूर्यों के समान कान्तिवाली, मणि मुकुट के सदृश उज्ज्वल, हार, कण्ठाभरण, कांची एवम् अंगूठी से अलंकृत, रक्तवस्त्रवाली, रत्न के आभूषणों से भूषित, छह भुजाओं तथा तीन नेत्रों वाली, चन्द्रकला से सुशोभित ललाटवाली, पांच, आठ, सोलह, दो तथा छह कोणों से युक्त एवम् चौकोर मंडल वाली, मन्द मुसकान से सुशोभित मुखवाली, दयार्द्र दृष्टि वाली, हाथों में पाश, अंकुश, पुंड्रेक्षु (माधवी लता) के धनुष, पुष्पबाण, और मद्यपूर्ण तथा वरदायक रत्नपात्र को धारण करने वाली देवी का ध्यान करना चाहिये। मंत्र की सिद्धि हो जाने पर साधक उसके प्रयोगों को करे ॥४७-५१॥ अब तीसरी भगमालिनी देवी के बारे में कहूँगा।

धरायुक्तश्चरा पश्चात्स्थिरा पश्चाद्रसः स्मृतः । स्थिराशून्येऽग्निसंयुक्ते रसः स्यानदनंतरम् ॥५३॥
स्थिरा भूसहिता गोत्रा सदाहोऽग्निरसः स्थिरा । नभश्च मरुता युक्तं रसवर्णसमन्वितम् ॥५४॥
ततो रसः स्थिरा पश्चान्मरुता सह योजिता । अंदहंसचरोऽथोक्तो रसोऽथ स्यात्स्थिरा पुनः ॥५५॥
स्थिराधरान्विता हंसो व्याप्तेन च चरेण च । रसः स्थिरा ततो व्याप्तम् भूयुतं शून्यमग्नियुक् ॥५६॥
रसः स्थिरा ततः साग्निशून्यं तद्वियुतो मरुत् । रयः शून्यं चाग्नियुतं हृदाहं साचव तत्परम् ॥५७॥
रसः स्थिरांबु च वियत्स्वयुतं प्राण एव च । दाहोऽग्नियुग्रसस्तस्मास्थिराक्ष्मा दाहसंयुता
॥५८॥
सचरः स्याज्जवोपर्वविद्या तार्तीयतः क्रमात् ॥५९॥
चतुष्टयमथार्णानां रसस्तदनु च स्थिरा । हृदंबुयुक्क्ष्मया दाहः सचरःस्याज्जवः च हृत् ॥६०॥
दाहोऽबुमरुता युक्तो व्योम्नि साग्निरसस्तुतः । स्थिरा तु मरुता युक्ता शून्यं साग्निनभश्चरौ ॥६१॥
हंसो व्याप्तमरुद्युक्तः शून्यं व्याप्तमतोऽबु च । दाहो गोत्राचरयुता तथा दाहस्तथा रयः ॥६२॥
हृद्धरासहितं दाहरयौ चरसमन्वितौ । रसः स्थिरा ततः प्राणो रसाग्निसहितो भवेत् ॥६३॥
शून्ययुग्म चरयुतं ततः पूर्वमतः परम् । शून्ययुग्मं च गोत्रा स्याद्दाहयुक्तांबुना चरः ॥६४॥
प्राणो रसा चरयुतो गोत्रव्यसिमतः परम् । गोत्रादाहमरुद्युक्ता स्वंबुन्यासमतो भवेत् ॥६५॥
युक्तोऽग्निश्च भूयुक्तं वाश्चरेण समन्वितम् । ग्रासो धरायुतः पश्चाद्रसः शक्त्या समन्वितः ॥६६॥
ग्रासो भूसहितो विप्र रसो व्याप्तं ततश्च हृत् । दाहोनांबु च हृत्पश्चाद्रयेऽबुमरुदन्वितः ॥६७॥
शून्यं च केवलं चैव रसश्च सचरास्थिरा । वियदंबुयतं दाहस्त्वग्नियुक्सयुतः शुचिः ॥६८॥
भूमी रसाक्ष्मास्वयुना पंचैकांतरिताः स्थिताः । तदंतरित बीजानि स्वसंयुक्तानि पंच वै ॥६९॥
तानि क्रमाज्ज्यासचरो रसो भूश्च नभोयुता । हंसश्चरयुतो द्विः स्यात्ततः प्राणो रसाग्नियुक् ॥७०॥
शून्य युग्मं चरयुतं हृद्दाहोंबुमरुद्युतः । व्योमाग्निसहितं पश्चाद्रसश्च मरुता स्थिरा ॥७१॥
शून्यं साग्निनभश्चैव चरेण सहितं तथा । अंबु पश्चाद्वियत्तस्मान्नभश्च मरुदन्वितम् ॥७२॥
शून्यं व्याप्तं च दयुक्तं रयदाहस्ववह्निभिः । हंसः सदाहोंबुरसा चरस्वैः संयुतो भवेत् ॥७३॥
हंसः सदाहवह्निस्वैर्युक्तमंत्यमुदीरितम् । सप्तत्रिंशच्छतार्णैः स्यान्नित्या सौभगमालिनी ॥७४॥
अतानि मंत्रवर्णैः स्युराद्येन हृदुदीरितम् । ततश्चतुर्भिः शीर्षं स्याच्छिखा त्रिभिरुदीरिता ॥७५॥
गुणवेदाक्षरैः शेषाण्यंगानि षडिति क्रमात् । अरुणामरुणाकल्पां सुन्दरीं सुस्मिताननाम् ॥७६॥
त्रिनेत्रां बाहुभिः षड्भिरुपेतां कमलासनाम् । कह्लारपाशपुंड्रेक्षुकोदंडान्वामबाहुभिः ॥७७॥
दधानां दक्षिणैः पद्ममंकुशं पुष्पसायकम् । तथाविधाभिः परितो युतां शक्तिगणैः स्तुतैः

"कामेश्वरो·······उदीरितम्"—यह नित्या सोभगमालिनी का मन्त्र है। इसमें तीन हजार सात सौ अक्षर हैं। मन्त्र के अक्षरों से अंगन्यास करना चाहिये। आद्य अक्षर से हृदय का, चार अक्षरों से शिर का, तीन से शिखा का और सात से शेष छः अंगों का क्रमशः न्यास करे। तत्पश्चात् रक्तवर्णा, सुन्दरी, मन्द मुसकान से युक्त मुखवाली, तीन नेत्रोंवाली, छः भुजाओं वाली, कमलासन पर बैठनेवाली बायें हाथों में लाल कमल, पाश तथा माधवी लता का धनुष धारण करने वाली, दाहिने हाथों में पद्म, अंकुश तथा पुष्प-सायक रखने वाली, उचित गणों से स्तुत तथा कामेश्वरी देवियों से परिवृत भगमालिनी का ध्यास करे। विप्रेन्द्र ! यह जगमो-

अक्षरोक्ताभिरन्याभिः स्मरोन्मादमदात्मभिः । एषा तृतीया कथिता वनिता जनमोहिनी ॥७८॥
चतुर्थीं शृणु विप्रेन्द्र नित्यक्लिन्नासमाह्वयाम् । हंसस्तु दाहवह्निस्वैर्युक्तः प्रथममुच्यते ॥७९॥
कामेश्वर्यास्तृतीयादिवर्णानामष्टकं भवेत् । हृदंबुमरुता युक्तः स एवैकादशाक्षरः ॥८०॥
एकादशाक्षरी चेयं विद्यार्णैरंगकल्पनम् । आद्येन मन्त्रवर्णेन हृदयं समुदीरितम् ॥८१॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां तु शेषाणि अंगानि परिकल्पयेत् । न्यसेदंगुष्ठमूलादिकनिष्ठाप्रांतमूर्द्धगम् ॥८२॥
शेषं तद्वलये न्यस्य हृद्दृक्छ्रोत्रे नसोर्द्वयोः । त्वचि ध्वजे च पायौ च पादयोर्णकान्न्यसेत् ॥८३॥
अरुणामरुणाकल्पामरुणांशुकधारिणीम् । अरुणस्रग्विलेपां तां चारुस्मेरमुखाम्बुजाम् ॥८४॥
नेत्रत्रयोल्लसद्वक्त्रां भाले घर्मांबुमौक्तिके । विराजमानां मुकुटलसदर्द्धेंदुशेखराम् ॥८५॥
चतुर्भिर्बाहुभिः पाशमंकुशं पानपात्रकम् । अभयं बिभ्रतीं पद्ममध्यासीनां मदालसाम् ॥८६॥
ध्यात्वैवं पूजयेन्नित्यक्लिन्नां नित्यां स्वशक्तिभिः । पुण्या चतुर्थी गदिता नित्या क्लिन्नाह्वया मुने ॥८७॥
वनिता नवनीतस्य दाविकाग्निर्जयाविना । भ्रूः स्वेन युक्ता प्रथमं प्राणो दाहेन तद्युतः ॥८८॥
रसो दाहेन तद्युक्तं प्रभादाहेन तद्युता । ज्या च दाहेन तद्युक्ता नित्याक्लिन्नांतगद्वयम् ॥८९॥
एषा नवाक्षरी नित्या भेरुण्डा सर्वसिद्धिदा । प्रणवं ठद्वयं त्यक्त्वा मध्यस्थैः षड्भिरक्षरैः ॥९०॥
षडंगानि प्रकुर्वीत वर्णन्यासं ततः परम् । रंध्रास्यमुखकंठेषु हृन्नाभ्यां धारयद्वयम् ॥९१॥
न्यसेन्मंत्रार्णनवकं मातृकान्यासपूर्वकम् । अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि देव्याः सर्वार्थसिद्धिदम् ॥९२॥
तप्तकांचनसंकाशदेहां नेत्रत्रयान्विताम् । चारुस्मितां चितमुखीं दिव्यालंकारभूषिताम् ॥९३॥
ताटंकहारकेयूररत्नस्तबकमंडिताम् । रसनानूपुरोर्म्यादिभूषणैरतिसुन्दरीम् ॥९४॥
पाशांकुशौ चर्मखड्गौ गदावज्रिधनुःशरान् । करैर्दधानामासीनां पूजायां मत्परां स्थिताम् ॥९५॥

हिनी वनिता तीसरी कही गई है। अब नित्य क्लिन्ना नामक चौथी देवी के विषय में सुनो। "हंसः····· एकादशाक्षरः"—यह उनका मन्त्र है। ॥५२-८०॥ मंत्र के प्रथमाक्षर से हृदय का और दो दो अक्षरों से शेष अंगों का न्यास करे। अंगुष्ठ के मूल में कनिष्ठा के अन्त में शिर पर, पादतलों में, हृदय, नेत्र, कर्ण, त्वचा, लिंग, गुदा तथा चरणों में वर्णों का न्यास करे। तदनन्तर रक्तवर्णा, रक्तवस्त्रा, रक्तमाला तथा रक्त लेप धारण करनेवाली, ईषत् हास्ययुक्त मुखकमल वाली, त्रिनेत्र से सुशोभित आनन वाली, मोतीकण सदृश घर्मबिंदु से युक्त भाल पर अर्धचन्द्र धारण करनेवाली, चार हाथों में पाश, अंकुश, पानपात्र तथा अभयास्त्र रखनेवाली, कमलों के बीच बैठनेवाली और मद से अलसा नित्यक्लिन्ना देवी का ध्यान करके अपनी शक्त्यनुसार उनकी पूजा करे। मुने! चौथी नित्यक्लिन्ना के बारे में सुना दिया। अब पाँचवी भेरुंडा नामक देवी के विषय में सुनो, जो समस्त सिद्धियों को देने वाली है। "वनिता····· द्वयम्"—यह उनका नवाक्षर मन्त्र है। इसमें प्रणव तथा दो ठकारों को छोड़कर शेष छह अक्षरों से षडंगन्यास करना चाहिये। तदनन्तर मातृकान्यास पूर्वक रन्ध्र, मुख, कंठ, हृदय तथा नाभि में मन्त्र के अक्षरों का न्यास कर देवी का सकलसिद्धिदायक ध्यान करना चाहिये। उनका शरीर तप्त सुवर्ण के समान चमकता है, उनके तीन नेत्र हैं, हास्य मनोहर होता है, मुख प्रसन्न रहता है, शरीर दिव्य आभूषणों से विभूषित है, ताटंक (तड़की) हार, केयूर, रत्नावली, कांची, नूपुर तथा अंगूठी आदि अलंकरण उनके सौन्दर्य को बढ़ा रहे हैं, हाथों में पाश, अंकुश, चर्म, खड्ग, गदा, वज्रि, धनुष तथा बाण सुशोभित हैं और स्वयं देवी पूजा पर बैठी हुई हैं। उनकी चारों तरफ उन्हीं के समान तेज-

शक्तीश्च तत्समाकारतेजोहेतिभिरन्विताः । पूजयेत्तद्वदभितः स्मितास्या विजयादिकाः ॥९६॥
पंचमीयं समाख्याता भेरुंडाख्या मुनीश्वर । यस्याः स्मरणतो नश्येद्गरलं त्रिविधं क्षणात् ॥९७॥
या तु षष्ठी द्विजश्रेष्ठ सा नित्या वह्निवासिनी । तद्विधानं शृणुष्वाद्य साधकानां सुसिद्धिदम् ॥९८॥
भेरुंडाद्यमिहाद्यं स्यान्नित्यक्लिन्नाद्यनंतरम् । ततोऽबुशून्ये हंसाग्निह्यु समंबुमरुद्युतम् ॥९९॥
हृदग्निना युतं शून्यं व्याप्तेन शुचिना च युक् । शून्यं नमः शक्तियुतं नवार्णयमुदाहृता ॥१००॥
विद्या द्वितीयबीजेन स्वरान्दीर्घान्नियोजयेत् । मायांतान्षड्भिरेवांगान्याचरेत्सकरांगयोः ॥१०१॥
नवाक्षराणि विद्याया नवरंध्रेषु विन्यसेत् । व्यापकं च समस्तेन कुर्यादिवात्मसिद्धये ॥१०२॥
सर्वास्वपि च विद्यासु व्यापकन्यासमाचरेत् । तप्तकांचनसंकाशां नवयौवनसुन्दरीम् ॥१०३॥
चारुस्मेरमुखांभोजां विलसन्नयनत्रयाम् । अष्टाभिर्बाहुभिर्युक्तां माणिक्याभरणोज्ज्वलाम् ॥१०४॥
पद्मरागकिरीटांशुसंभेदारुणितांबराम् । पीतकौशेयवसनां रत्नमंजीरमेखलाम् ॥१०५॥
रक्तमौक्तिकसंभिन्नस्तबकाभरणोज्ज्वलाम् । रत्नाब्जकंबुपुंड्रेक्षुचापपूर्णेन्दुमंडलम् ॥१०६॥
दधानां बाहुभिर्वामैः कह्लारं हेमशृंगकम् । पुष्पेषुं मातुलिंगं च दधानां दक्षिणैः करैः ॥१०७॥
स्वस्वनामाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम् । एवं ध्यात्वार्चयेद्वह्निवासिनीं वह्निविग्रहाम् ॥१०८॥
यस्याः स्मरणतो वश्यं जायते भुवनत्रयम् । अथ या सप्तमी नित्या महावज्रेश्वरी मुने ॥१०९॥
तस्या विद्यां प्रवक्ष्यामि साधकानां सुसिद्धिदाम् । द्वितीयं वह्निवासिन्या नित्यक्लिन्ना चतुर्थकम् ॥११०॥
पंचमं भगमालाद्यं भेरुंडाया द्वितीयकम् । नित्यक्लिन्नाद्वितीयं च तृतीयं षष्ठसप्तमौ ॥१११॥

वाली और ईषत् हास्य युक्त मुखवाली विजया आदि देवियों की पूजा करे। मुनीश्वर! यह भेरुंडा नामक पाँचवीं देवी के विषय में कहा है, जिनके स्मरण करने से तत्क्षण तीन प्रकार के विष नष्ट हो जाते हैं ॥८१-९७॥

द्विजश्रेष्ठ! अब जो छठी वह्निवासिनी नामक नित्या देवी है, उनके विधान को सुनो। वह साधकों को सिद्धि प्रदान करती हैं। 'भेरुंडा ...... शक्तियुतम्''—यह उनका मन्त्र है। वह नवाक्षरी कहलाती हैं। विद्या-द्वितीय विद्याबीज मन्त्र से दीर्घ स्वर वर्णों का विनियोग करे। तत्पश्चात् छः अक्षरों से षडंगन्यास करे। विद्या-बीज के नौ अक्षरों का नौ रंध्रों में न्यास करे। पुनः आत्मसिद्धि के लिये सामस्त्येन व्यापक न्यास करना चाहिये। सकल विद्याओं में व्यापक न्यास करना चाहिये। तदनन्तर देवी का इस प्रकार ध्यान करे कि वह तप्त सुवर्ण के समान हैं, नवयौवना तथा सौंदर्य से परिपूर्ण है, मुखारविंद मन्द मुसकान से युक्त है। तीन नेत्र सुशोभित हो रहे हैं, उनकी आठ बाँहें है, मणि के आभूषणों से कान्ति उज्ज्वल हो रही है, मुकुटस्थ पद्मरागमणि की किरणों से वस्त्र रक्तिम-सा दीखता है, वे पीत रेशमी वस्त्र पहने हुई हैं, नूपुर एवम् कांची रत्नों की बनी हुई है। लाल मोतियों के गुच्छेदार आभूषणों से आकृति उज्ज्वल प्रतीत होती है, बायें हाथों में रत्न, कमल, शंख, माधवीलता के धनुष तथा पूर्ण चन्द्रमण्डल को और दाहिने हाथों में श्वेत कमल, स्वर्णशृंग, पुष्पबाण तथा बीजपुर को धारण किये हुई हैं, शक्तियां चारों ओर से घेरे हुई हैं। इस प्रकार अग्निशरीरधारिणी वह्नि-वासिनी देवी का ध्यान करके पूजन करे, जिनके स्मरणमात्र से तीनों लोक वशीभूत हो जाते हैं ॥९८-१०८½॥ मुने! अब जो सातवीं महावज्रेश्वरी नामक नित्यादेवी हैं, उनके मन्त्र आदि को बता देता हूँ। वे साधकों को सिद्धि देने वाली हैं। ''द्वितीयम् ...... द्वयम्''—यह उनका मन्त्र है। उसको मायाबीज से संपुटित करके क्रमशः षडंगन्यास करना चाहिये। प्रत्येक अक्षर को शक्तिसंपुटित करके नेत्र, कर्ण, नासिका, वक्षःस्थल, नाभि,

अष्टमं नवमं चापि पूर्वं स्यादंतिमं पुनः । द्वयमेकैकमथ च द्वयद्वयमथ द्वयम् ॥११२॥
मायया पुटितं कृत्वा कुर्यादंगानि षट् क्रमात् । प्रत्येकं शक्तिपुटितैर्मंत्राणं दशभिर्न्यसेत् ॥११३॥
दृक्छ्रोत्रनासावाग्वक्षोणाभिगुह्येषु च क्रमात् । रक्तां रक्तांबरां रक्तगंधमालाविभूषणाम् ॥११४॥
चतुर्भुजां त्रिनयनां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम् । पाशांकुशामिक्षुचापं दाडिमीशायकं तथा ॥११५॥
दधानां बाहुभिर्नेत्रैर्दयासुप्रीतिशीतलैः । पश्यंती साधकेअस्त्रषट्कोणाब्जमहीपुरे ॥११६॥
चक्रमध्ये सुखासीनां स्मेरवक्त्रसरोरुहाम् । शक्तिभिः स्वस्वरूपाभिरावृतां पीतमध्यगाम् ॥११७॥
सिंहासनेऽभितः प्रेंखत्पोतस्थाभिश्च शक्तिभिः । वृतां ताभिर्विनोदानि यातायातादिभिः सदा ॥११८॥
कुर्वाणामरुणांभोधौ चिंतयेन्मन्त्रनायकम् । एषा तु सप्तमी प्रोक्ता दूतीं चाप्यष्टमीं शृणु ॥११९॥
वज्रेश्वर्याद्यमाद्यं स्याद्वियदग्नियुतं ततः । अंबु स्यान्मरुता युक्तं गोत्रा क्ष्मासंयुता ततः ॥१२०॥
रयोव्यासेन शुचिना युतः स्यात्तदनंतरम् । अत्यर्णा वह्निवासिन्या दूती नित्या समीरिताः ॥१२१॥
षड्दीर्घस्वरयुक्तेन विद्यायाः स्यात्षडंगकम् । तेनैव पुटितैरर्णैर्न्यच्छ्रोत्रादिपञ्चसु ॥१२२॥
षष्ठकं नसि विन्यस्य व्यापकं विद्यया न्यसेत् । निदाघकालमध्याह्नदिवाकरसमप्रभाम् ॥१२३॥
नवरत्नकिरीटां च त्र्यीक्षणामरुणांबराम् । नानाभरणसंभिन्नदेहकांतिविराजिताम् ॥१२४॥
शुचिस्मितामष्टभुजां स्तूयमानां महर्षिभिः । पाशं खेटं गदां रत्नचषकं वामबाहुभिः ॥१२५॥
दक्षिणैरंकुशं खड्गं कट्टारं कमलं तथा । दधानां साधकाभीष्टदानोद्यमसमन्विताम् ॥१२६॥
ध्यात्वैवं पूजयेद्देवीं दूतीं दुर्नीतिनाशिनीम् । इत्येषा कथिता तुभ्यं समस्तापन्निवारिणी ॥१२७॥
श्रीकरी शिवतावासकारिणी सर्वसिद्धिदा । अथ ते नवमीं नित्यां त्वरितां नाम नारद ॥१२८॥

तथा गुह्यों में क्रमशः दश अक्षरों का न्यास करे। तदनन्तर रक्तवर्णा, रक्तवस्त्रा, रक्त गंध तथा माला से विभूषिता, चतुर्भुजा, त्रिनयना, उज्ज्वल मणि का मुकुट पहनने वाली, हाथों में पाश, अंकुश, माधवीलता के धनुष और दाडिम के बाणों को धारण करनेवाली, दया एवम् प्रीतियुक्त शीतल नेत्रोंवाली, साधक के ऊपर दृष्टिपात करने वाली, अस्त्र, षट्कोण, अष्टदल कमल, भूपुर तथा चक्रमध्य में सुख से बैठने वाली, मुस्कराते हुए मुखारविंद वाली, अपने समान स्वरूप वाली शक्तियों से आवृत, पीतमध्यगामिनी और सिंहासनारूढ़ होकर चामर डुलानेवाली तथा निकट आते जाने वाली शक्तियों के साथ मनोविनोद करनेवाली मन्त्रनायिका देवी का लाल समुद्र में ध्यान करे। यह तो सातवीं देवी बतलाई गई है। अब आठवीं दूती के बारे में भी सुन लो ॥१०९-११९॥ "व्रजेश्वरी ······ समीरिता"—यह उनका मन्त्र है। इसमें छः दीर्घस्वर हैं, जो विद्या के षडंग कहलाते हैं। उन्हीं स्वरों से संपुटित वर्णों से कर्ण आदि पाँच अंगों में न्यास करे। छठें वर्ण का नासिका में न्यास करके विद्या से व्यापकन्यास करना चाहिये। तदनन्तर ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्नकालीन दिनकर के समान कान्तिवाली, नवरत्नों के बने मुकुट पहननेवाली, त्रिनेत्रा, रक्तवस्त्रा, अनेक आभूषणों से आभूषित सुमनोहर गात्रवाली, पवित्र हास्यवाली, आठ भुजाओं वाली, महर्षियों से वन्दित की जाने वाली, वाम हस्तों में पाश, धनुष, गदा तथा रत्न का प्याला और दक्षिण करों में अंकुश, खड्ग कटार तथा कमल धारण करनेवाली, साधकों की कामना पूर्ण करने के लिये सदा उद्यत रहनेवाली और दुर्नीति का नाश करने वाली दूती देवी का ध्यान करके पूजन करे। यह समस्त विपत्तियों का निवारण करने वाली, कल्याणकारिणी, सकलसिद्धिदायिनी

प्रवक्ष्यामि यशोविद्याधनारोग्यसुखप्रदाम् । आद्यं तु वह्निवासिन्या दूत्यादिस्तदनन्तरम् ॥१२९॥
हंसो धरा स्वयं युक्तस्तेजश्चरसमन्वितम् । वायुः प्रभाच्चरयुता ग्रासशक्तिसमन्वितः ॥१३०॥
हृवारयेण दाहेन वह्निस्वावष्टमं तथा । हंसःक्ष्माखंयुतो ग्रासश्चरयुक्तो द्वितीयकः ॥१३१॥
द्वितिर्नारदयुता नित्या त्वरिता द्वादशाक्षरी । विद्या चतुर्थवर्णादिसप्तभिस्त्वक्षरैस्तथा ॥१३२॥
कुर्यादंगानि युग्मार्णैः षट्क्रमेण करांगयोः । शिरोललाटकंठेषु हृन्नाभ्याधारके तथा ॥१३३॥
ऊरुयुग्मे तथा जानुद्वये जंघाद्वये तथा । पादयुग्मे तथा वर्णान्मंत्रजान्दश विन्यसेत् ॥१३४॥
द्वितीयोपांत्यमध्यस्थैर्मंत्रार्णैरितरैरपि । ताराद्यैः शृणु तद्ध्यानं सर्वसिद्धिविधायकम् ॥१३५॥
श्यामवर्णशुभाकारां नवयौवनशोभिताम् । द्विद्विक्रमादष्टनागैः कल्पिताभरणोज्ज्वलैः ॥१३६॥
ताटंकमंगदं तद्वद्रसना नूपुरं च तैः । विप्रक्षत्रियविट्शूद्रजातिभिर्भीमविग्रहैः ॥१३७॥
पल्लवांशुकसंवीतां शिखिपिच्छकृतैः शुभैः । वलयैर्भूषितभुजां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम् ॥१३८॥
बर्हिबर्हकृतापीडां तच्छत्रां तत्पताकिनीम् । गुंजागुणलसद्वक्षःकुचकुंकुममंडलाम् ॥१३९॥
त्रिनेत्रां चारुवदनां मंदस्मितमुखांबुजाम् । पाशांकुशवराभीतिलसद्भुजचतुष्टयाम् ॥१४०॥
ध्यात्वैवं तोतलां देवीं पूजयेच्छक्तिभिर्वृताम् । तदग्रस्था लु फट्कारीशरचापकरोज्ज्वला ॥१४१॥
प्रसीदेत्फलदाने च साधकानां त्वरान्विता । एषा तु नवमी नित्या त्वरितोक्ता मुनीश्वर ॥१४२॥
विघ्नदुःस्वप्रशमनी सर्वाभीष्टप्रदायिनी । शुचिः स्वेन युतस्त्वाद्यो रसावह्निसमन्वितः ॥१४३॥
प्राणो द्वितीयः स्वयुतो वनदुच्छक्तिभिः परः । इतीरिता त्र्यक्षराख्या नित्येयं कुलसुन्दरी ॥१४४॥
यस्याः स्मरणमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते । त्रिभिस्तैरुदितैर्मूलवर्णैः कुर्यात्षडंगकम् ॥१४५॥

तथा शिव के शरीर में निवास करने वाली हैं, नारद! इनका वर्णन तो हो चुका, अब त्वरिता नामक नवीं नित्यादेवी का वर्णन करूँगा, जो यश, विद्या, धन, आरोग्य तथा सुख देने वाली हैं। "आद्यम्... 'द्वादशाक्षरी" —यह उनका मन्त्र है। चतुर्थ अक्षर विद्याबीज है। सात अक्षरों से अंगन्यास करे। युग्म वर्णों से क्रमशः षडंगन्यास करके शिर; ललाट, कंठ, हृदय, नाभि, मूलाधार, ऊरुद्वय, जानुद्वय, जंघाद्वय तथा चरणद्वय में मन्त्र के दश वर्णों का न्यास करे ॥१२०-१३४॥ मन्त्र के प्रथम, द्वितीय, छठे तथा ग्यारहवें अक्षर का भी न्यास करना चाहिये। अब उनके सकलसिद्धिदायक ध्यान का वर्णन सुनो। उनका वर्ण श्याम है, आकृति शोभन है, नवीन यौवन प्रस्फुरित हो रहा है, शरीर में ताटंक, केयूर, कांची तथा नूपुर के स्थान में दो-दो करके क्रमशः आठ उज्ज्वल, भीमकाय एवं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण के नागों के आभूषण हैं, लाल वस्त्र पहने हुई हैं, मयूरपुच्छ के बने वलयों से भुजायें आभूषित हैं, शुभ्र मणि का मुकुट, मयूरपिच्छ के शिरोभूषण, छत्र एवम् पताका धारण किये हुई हैं ॥१३५-१३८½॥ वक्षःस्थल पर गुंजा की माला लटक रही है, उरोज कुंकुम आच्छादित हैं, नेत्र तीन है, आनन मनोहर है, मुखारविंद मन्द मुस्कान से युक्त है, चारों हाथों में पाश, अंकुश, वरद एवम् अभयद अस्त्र सुशोभित हो रहे हैं ॥१३९-१४०॥

इस प्रकार शक्तियों से परिवेष्टित तोतला देवी का ध्यान करके पूजन करे। उनके आगे उज्ज्वल धनुष-बाण धारण करने वाली 'फट्' शब्द करने वाली लु देवी की पूजा करे, जो साधकों को अविलम्ब फल प्रदान करती हैं। मुनीश्वर! यह त्वरिता नामक नवीं नित्या देवी का वर्णन हुआ, जो विघ्न तथा दुःस्वप्न का नाश करने वाली और अखिल कामनाओं को देने वाली है। अब कुलसुन्दरी नामक त्र्यक्षरा नित्या देवी के विषय में सुनो,

आदिमध्यावसानेष पूजाजपविधिक्रमात् । प्रत्ये कं तैस्त्रिभिर्बीजैदीर्घस्वरसमन्वितैः ॥१४६॥
कुर्यात्करांगवक्त्राणां न्यासं प्रोक्तं यथाविधि । ऊर्द्ध्वप्राग्दक्षिणोदक्च पश्चिमाधरनामभिः ॥१४७॥
सुविनद्यंतरस्थैस्तन्नदात्मसु यथाक्रमम् । आधाररंध्रहृत्स्वेकं द्वितीयं लोचनत्रये ॥१४८॥
तृतीयं श्रोत्रचिबुके चतुर्थं घ्राणतालुषु । पंचमं चांसनाभीषु ततः पाणिपदद्वये ॥१४९॥
मूलमध्याग्रतो न्यस्येन्नवधा मूलवर्णकैः । लोहितां लोहिताकारशक्तिवृंदनिषेविताम् ॥१५०॥
लोहितांशुकभूषास्रग्लेपनां षण्मुखांबुजाम् । अनर्घ्यरत्नघटितमाणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम् ॥१५१॥
रत्नस्तबकसंभिन्नलसद्वक्षःस्थलां शुभाम् । कारुण्यानंदपरमामरुणांबुजविष्टराम् ॥१५२॥
भुजैर्द्वादशभिर्युक्तां सर्वेषां सर्ववाङ्मयीम् । प्रवालाक्षस्रजं पद्मं कुंडिकां रत्ननिर्मिताम् ॥१५३॥
रत्नपूर्णं तु चषकं लुंगीं व्याख्यानमुद्रिकाम् । दधानां दक्षिणैर्वामैः पुस्तकं चारुणोत्पलम् ॥१५४॥
हैमीं च लेखनीं रत्नमालां कंबुवरं भुजैः । अभितः स्तूयमानां च देवगंधर्वकिन्नरैः ॥१५५॥
यक्षराक्षसदैत्यर्षिसिद्धविद्याधरादिभिः । ध्यात्वैवमर्चयेन्नित्यां वाग्लक्ष्मीकान्तिसिद्धये ॥१५६॥
सितां केवलवाक्सिद्ध्यै लक्ष्म्यै हेमप्रभामपि । धूमाभां वैरिविद्विष्ट्यै मृतये निग्रहाय च ॥१५७॥
नीलां च मूकीकरणे स्मरेत्तत्तदपेक्षया । इत्येषा दशमी नित्या प्रोक्ता ते कुलसुन्दरी ॥१५८॥
नित्यानित्यां तु दशमीं त्रिकुटां वच्मि सांप्रतम् । हंसश्च हृत्प्राणरसादाहकर्णैः समन्वितः ॥१५९॥
विद्यया कुलसुंदर्या योजितः संप्रदायतः । नित्यानित्याविवर्णयं षड्भिः कूटाक्षरैर्यता ॥१६०॥

जिनके स्मरणमात्र से सर्वज्ञत्व की प्राप्ति होती है। "शुचिः · · · · · · पर :"—यह उनका मन्त्र है। तीन मूल वर्णों से षडंगन्यास करना चाहिये ॥१४१-१४५॥ आदि, मध्य और अवसान में पूजा तथा जप के विधानक्रम से दीर्घस्वरयुक्त तीन बीजमन्त्रों से हाथ, हृदय तथा मुख में न्यास करना चाहिये। ऊपर, नीचे, पूरब, दक्षिण और उत्तर दिशा में भी मूलवर्णों से न्यास करना चाहिये। मूलाधार, रंध्र तथा हृदय में प्रथम अक्षर, तीनों नेत्रों में द्वितीय अक्षर, कान एवम् ठुड्डी में तृतीय अक्षर, नाक तथा तालू में चतुर्थ अक्षर, कंधे तथा नाभि में पंचम अक्षर और हाथ, पैर, मूल तथा अन्त में छठें, सातवें, आठवें और नवें अक्षर का न्यास करना चाहिये। तदनन्तर देवी का ध्यान करे कि उनका वर्ण लाल है, रक्तवर्ण शक्तियां उनकी परिचर्या में लगी हैं, शरीर में रक्त वस्त्र, आभूषण, माला तथा लेप सुशोभित हैं, उनके छह मुखकमल हैं, बहुमूल्य रत्नजटित शुभ्र मणि का मुकुट शोभायमान हो रहा है, वक्षःस्थल पर रत्नावली लटक रही है, स्वयं देवी मानों करुणा एवम् परमानन्द की प्रतिमूर्ति हैं, रक्तकमल के आसन पर बैठी हुई हैं। उनकी आठ भुजायें हैं, वे सर्ववाङ्मयी हैं, दाहिने हाथों में मूंगा तथा रुद्राक्ष की माला, पद्म, रत्ननिर्मित कमण्डलु, रत्नपूर्ण चषक (प्याला), 'लुंगी' नामक व्याख्यान मुद्रिका को और बायें हाथों में पुस्तक, लाल कमल, सुवर्ण की लेखनी, रत्नमाला और उत्तम शंख को धारण किये हुई हैं, उनकी चारों ओर से देव, गंधर्व, किन्नर, यक्ष, राक्षस, दैत्य, ऋषि, सिद्ध, विद्याधर आदि स्तुति कर रहे हैं ॥१४६-१५५½॥

इस प्रकार ध्यान करके वाणी, लक्ष्मी तथा कान्ति की सिद्धि के लिये नित्या देवी की अर्चना करे। केवल वाक्सिद्धि के लिये सिता देवि की, लक्ष्मी की सिद्धि के लिये हेमप्रभा की, और शत्रुविद्वेष, मृत्यु तथा निग्रह करने के लिये धूमाभा की पूजा करे। मूक बनाने के लिये नीला देवी का स्मरण करना चाहिये। यह दसवीं नित्या कुलसुन्दरी का वर्णन किया है। अब दसवीं नित्या-अनित्या त्रिकूटा का वर्णन करूंगा। "हंस · · ·

प्रतिलोमाविमी रूपैर्द्विसप्ततिमिदा मता । यस्या भजनतः सिद्धो नरः स्यात्खेचरः सुखी ॥१६१॥
निग्रहानुग्रहौ कर्तुं क्षमः स्याद्भुवनत्रये । दीर्घस्वरसमेताभ्यां हंसहृद्भ्यां षडंगकम् ॥१६२॥
भ्रूमध्ये कण्ठहृन्नाभिगुह्याधारेषु च क्रमात् । विद्याक्षराणि क्रमशो न्यसेद्बिन्दुयुतानि च ॥१६३॥
व्यापकं च समस्तेन विधाय विधिना पुनः । ध्यायेत्समस्तसंपत्तिहेतोः सर्वात्मिकां शिवाम् ॥१६४॥
उद्यद्भास्करबिंबाभां माणिक्यमुकुटोज्वलाम् । पद्मरागकृताकल्पामरुणांशुकधारिणीम् ॥१६५॥
चारुस्मितलसद्वक्त्रषट्सरोजविराजिताम् । प्रतिवक्त्रं त्रिनयनां भुजैर्द्वादशभिर्युताम् ॥१६६॥
पाशाक्षगुणपुंड्रेक्षुचापखेटत्रिशूलकान् । करैर्वामैर्दधानां च अङ्कुशं पुस्तकं तथा ॥१६७॥
पुष्पेषुमंबुजं चैव नृकपालाभये तथा । दधानां दक्षिणैर्हस्तैर्ध्यायेद्देवीमनन्यधीः ॥१६८॥
इत्येषैकादशी प्रोक्ता द्वादशीं शृणु नारद । त्वरितोयांतमाद्यं स्याद्युतिदोहचरस्वयुक् ॥१६९॥
हृच्च दाहक्ष्मास्वयुतं वज्रेशोपञ्चमं तथा । मरुत्स्वयुक्तो मध्याढ्योदशम्याः परतः पुनः ॥१७०॥
भूमो रसाक्ष्मास्वयुता वज्रेशोत्यष्टमः क्रमात् । षडक्षराणि त्वरिता तृतीयं तदनंतरम् ॥१७१॥
द्युतिर्दाहचरस्वेन अस्या आद्यमनन्तरम् । उक्ता नीलपताकाख्या नित्या सप्तदशाक्षरी ॥१७२॥
द्विद्विपक्षाक्षिषड्वर्णैर्मंत्रोत्थैरंगकल्पनम् । श्रोत्रादिनासायुगले वाचि कण्ठे हृदि क्रमात् ॥१७३॥
नाभावाधारके ऽथापि पादसंधिषु च क्रमात् । मन्त्राक्षराणि क्रमशो न्यसेत्सप्तदशापि च ॥१७४॥
व्यापकं च समस्तेन विदध्याच्च यथाविधि । इन्द्रनीलनिभां भास्वन्मणिमौलिविराजिताम् ॥१७५॥
पञ्चवक्त्रां त्रिनयनामरुणांशुकधारिणीम् । दशहस्तां लसन्मुक्तामण्याभरणमंडिताम् ॥१७६॥

'''मतः''—यह उनका मन्त्र है। उनकी उपासना करने से मनुष्य सुखी, आकाशगामो और तीनों लोक में निग्रह तथा अनुग्रह करने में समर्थ होता है। दीर्घ मात्रा और स्वर वर्ण समेत अजपा मन्त्र तथा प्रणव से षडंगन्यास करे ॥१५६-१६२॥ भौं के मध्य, कंठ, नाभि, गुह्य तथा मूलाधार में क्रमशः बिंदुयुक्त विद्याक्षरों का न्यास करके पुनः विधिपूर्वक सामस्त्येन व्यापक न्यास करे। तदनन्तर अखिल संपत्ति की प्राप्ति के लिये सर्वात्मिका शिवा का ध्यान करे। साधक तन्मनस्क होकर उदयकालीन सूर्यबिंब के समान आभा वाली, शुभ्र मणि का मुकुट तथा पद्मरागमणि जटित रक्तवस्त्र धारण करने वाली, मन्द मुसकान से सुशोभित छः मुख कमल वाली, प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्रों वालो, बारह भुजाओं वाली, बायें हाथों में पाश, रुद्राक्ष, माधवी लता का धनुष, ढाल तथा त्रिशूल धारण करनेवाली, दाहिने हाथों में अंकुश, पुस्तक, पुष्पबाण, कमल, नरकपाल, और अभयास्त्र रखने वाली देवी का ध्यान करे ॥१६३-१६८॥

नारद ! यह ग्यारहवीं देवी का वर्णन किया है। अब बारहवीं के बारे में सुनो। नीलपताका नामक नित्या देवी सत्रह अक्षरों वाली हैं। ''त्वरिता ...... अनन्तरम्''—यह उसका मन्त्र है। मन्त्र के चौदह वर्णों से अंगन्यास करना चाहिये। कान, नाक, कंठ, हृदय, नाभि, मूलाधार तथा चरण संधियों में सत्रहों मंत्राक्षरों का क्रमशः न्यास करके विधिपूर्वक सम्पूर्ण रूप से व्यापक न्यास करना चाहिये। तदुपरान्त इन्द्रनील मणि के समान कान्ति वाली, दैदीप्यमान मणि का मुकुट धारण करने वाली, पाँच मुख तथा तीन नेत्र वाली, रक्त वस्त्र पहनने वाली, दशहस्त परिमित दीर्घाकृति वाली, मणि और मुक्ता के आभूषणों से अलंकृता, रत्नावली से सुशोभित, मन्द मुसकान युक्त मुख वाली, बायें हाथों में पाश, पताका, चर्म, धनुष तथा वरास्त्र धारण करनेवाली

रत्नस्तबकसंपन्नदेहां चारुस्मितानलाम् । पाशं पताकां चर्मापि शार्ङ्गचापं वरं करैः ॥१७७॥
दधानां वामपार्श्वस्थैः सर्वाभरणभूषितैः । अंकुशं च तथा शक्ति खड्गं बाणं तथाभयम् ॥१७८॥
दधानां दक्षिणैर्हस्तैरासीनां पद्मविष्टरे । स्वाकारवर्णवेषास्यपाण्यायुधविभूषणैः ॥१७९॥
शक्तिवृन्दैर्वृतां ध्यायेद्देवीं नित्यार्चनक्रमे । त्रिषट्कोणयुतं पद्ममष्टपत्रं ततो बहिः ॥१८०॥
अष्टास्रं नूपुरद्वन्द्वावृतं तत्पुरयुग्मकम् । चतुर्द्वारयुतं दिक्षु शाखाभिश्च समन्वितम् ॥१८१॥
कृत्वा नामावृतां शक्ति गणैस्तत्रार्चयेच्छिवाम् । एषा ते द्वादशी नित्या प्रोक्ता नीलपताकिनी ॥१८२॥
समरे विजयं खड्गपादुकांजनसिद्धिदा । वेतालयक्षिणीचेटपिशाचादिप्रसाधिनी ॥१८३॥
निधानबिलसिद्धान्नसाधिनी कामचोदिता । अथ त्रयोदशीं नित्यां वक्ष्यामि शृणु नारद ॥१८४॥
रसो नभस्तथा दाहो व्यालक्ष्मावनपूर्विका । खेन युक्ता भवेन्नित्या विजयैकाक्षरा मुने ॥१८५॥
विद्याया व्यंजनैर्दीर्घस्वरयुक्तैश्चतुष्टयम् । शेषाभ्यां च द्वयं कुर्यात्षडंगानि करांगयोः ॥१८६॥
ज्ञानेंद्रियेषु श्रोतादिष्वथ चित्ते च विन्यसेत् । अक्षराणि क्रमाद्बिन्दुयुतान्यन्यत्तु पूर्ववत् ॥१८७॥
पञ्चवक्त्रां दशभुजां प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनाम् । भास्वन्मुकुटविन्यासचन्द्रलेखाविराजिताम् ॥१८८॥
सर्वाभरणसंयुक्तां पीतांबरसमुज्ज्वलाम् । उद्यद्भास्वद्बिंबतुल्यदेहकांति शुचिस्मिताम् ॥१८९॥
शंखं पाशं खेटचापौ कह्लारं वामबाहुभिः । चक्रं तथांकुशं खड्गं सायकं मातुलुंगकम् ॥१९०॥
दधानां दक्षिणैर्हस्तैः प्रयोगे भीमदर्शनाम् । उपासनेति सौम्यां च सिंहोपरि कृतासनाम् ॥१९१॥
व्याघ्रारूढाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम् । समरे पूजनेऽन्येषु प्रयोगेषु सुखासनाम् ॥१९२॥
शक्तयश्चापि पूजायां सुखासनसमन्विताः । सर्वा देव्याः समाकारमुखपाण्यायुधा अपि ॥१९३॥

दाहिने हाथों में अंकुश, शक्ति, खड्ग, बाण तथा अभयास्त्र रखने वाली, अरविंद के आसन पर बैठने वाली, अपने समान वर्ण, वेष, आभूषण, तथा आयुधों से युक्त शक्तिगणों से आवृत होने वाली देवी का ध्यान करके पूजन करे। तब नौ कोण वाले अष्टदल कमल और आठ जगहों में निम्नीभूत भूपुर-द्वय का निर्माण करे, जो चार द्वारों तथा शाखाओं से समन्वित हो। वहाँ शक्तियों के साथ शिवा की अर्चना करे। यह नीलपताकिनी नामक बारहवीं नित्या देवी का वर्णन किया, जो समर में विजय तथा खड्ग, पादुका, अंजन, वेताल, यक्षिणी, चेट, पिशाच, निधि, बिल, सिद्धान्न आदि की सिद्धि अविलम्ब प्रदान करती हैं।

नारद ! अब इसके बाद तेरहवीं नित्या देवी के विषय में सुनो ॥१६९-१८४॥ मुने ! "रसो ...... भवेत्"—यह एकाक्षरा विजया देवी का मन्त्र है। मन्त्र के व्यंजन तथा दीर्घ स्वर वर्णों से अंगन्यास करना चाहिये। कर्ण आदि ज्ञानेन्द्रियों में तथा चित्त में बिंदु युक्त अक्षरों का क्रमशः न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् दैदीप्यमान मुकुट तथा चन्द्रलेखा से सुशोभित, समस्त आभूषणों से आभूषित, पीतवस्त्रधारिणी, उदयकालीन सूर्य बिम्ब के समान देह कांतिवाली, पवित्र हास्यवाली, वाम करों में शंख, पाश, ढाल, धनुष तथा श्वेत कमल और दक्षिण हस्तों में चक्र, अंकुश, खड्ग, बाण तथा बीजपुर धारण करनेवाली, देखने में भयंकर, उपासना करने में अत्यन्त सौम्य, सिंह के ऊपर आरूढ, बाघों के ऊपर चढ़ी शक्तियों से परिवेष्टित, संग्राम, पूजन तथा अन्य प्रयोगों में सुख से आसनोपविष्ट होनेवाली देवी का ध्यान करे। पूजा काल में शक्तियाँ भी उनके साथ सुख से आसनों पर बैठती हैं। उनके समान ही उन शक्तियों की भी आकृति मुख तथा अस्त्रविशिष्ट हाथ हैं। ॥१८५-१९३॥ चार द्वार

चतुरस्रद्वयं कृत्वा चतुर्द्वारोपशोभितम् । शाखाष्टकसमोपेतं तत्र प्राग्वत्समर्चयेत् ॥१९४॥
तदंतर्वृतयुग्मांतरऽष्टकोणं विधाय तु । तदंतश्च तथा पद्मं षोडशच्छदसंयुतम् ॥१९५॥
तथैवाष्टच्छदं पद्मं विधायावाह्य तत्र ताम् । तत्तच्छक्त्या वृतां सम्यगुपचारैस्तथार्चयेत् ॥१९६॥
एषा त्रयोदशी प्रोक्ता वादे युद्धे जयप्रदा । चतुर्दशीं प्रवक्ष्येऽथ नित्यां वै सर्वमंगलाम् ॥१९७॥
॥१९८॥
हृदंबुवनयुक्तं खं नित्या स्यात्सर्वमंगला
एकाक्षर्यनया सिद्धो जायते खेचरः क्षणात् । षड्दीर्घाढ्यां मूलविद्यां षडंगेषु प्रविन्यसेत् ॥१९९॥
तां नित्यां जातरूपाभां मुक्तामाणिक्यभूषणाम् । माणिक्यमुकुटां नेत्रद्वयप्रेंखद्दयापराम् ॥२००॥
द्विभुजां शासनां पद्मे स्वष्टषोडशतद्द्वयैः । पत्रैरुपेते सच्चतुर्द्वारभूसद्मयुग्मके ॥२०१॥
मातुलुंगफलं दक्षे दधानां करपंकजे । वामेन निजभक्तानां प्रयच्छंतीं धनादिकम् ॥२०२॥
स्वसमानाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम् । षट्सप्ततिभिरन्याभिरप्सरोत्थाभिरन्विताम् ॥२०३॥
प्रयोगेऽन्यदा नित्यं सपर्यासक्तशक्तिकाम् । एषा चतुर्दशी प्रोक्ता तथा पंचदशीं शृणु ॥२०४॥
भूः शून्यं नभसा भूश्च रसश्चाथ स्थिरांबु च । रयोग्निना युतीज्यांबुमरुद्युक्तारसा मरुत् ॥२०५॥
नभश्च मरुता युक्तं रसा शून्येऽपि संयुते । गोत्रा चरेण सहिता अंबुपूर्वाक्षरस्तथा ॥२०६॥
अंबग्नी हृच्च दाहांबुरसक्ष्मारयहृत्स्वयुक् । हंसश्च मरुता दाहः प्राणश्च मरुतायुतः ॥२०७॥
दाहः साग्निप्राणचरौ ज्यामरुत्सहितारयः । चरेणांबु च गोत्राहृत्साग्निर्ज्यांबुरसा स्वयुक् ॥२०८॥
रयः साग्निर्ज्यांबुरसा पुनरेतेजवो ततः । दाहेनानेन ते द्विः स्याद्भ्रस्वो दाहमरुत्स्वयुक् ॥२०९॥
हंसः सदाहवह्निस्वो दाहक्ष्मास्वयुतश्च सः । सप्तदाहास्ततोऽस्याः स्युरष्टमाद्यास्तु पंच ते ॥२१०॥

तथा आठ शाखा वाले चतुरस्र (चौकोर) पीठ बनाकर वहाँ पूर्ववत् अर्चना करे। उस पर अष्टकोण, षोडशदल तथा अष्टदल कमल की रचना कर शक्ति समेत देवी का आवाहन करके सम्यक् उपचारों से उनका पूजन करे। यह युद्ध में तथा वाद-विवाद में विजय देने वाली तेरहवीं देवी का वर्णन किया।

अब सर्वमंगला नामक चौदहवीं देवी का वर्णन करूँगा। "हृत्......"—यह उनका मंत्र है। वह एकाक्षरी देवी कहलाती हैं। उनके मन्त्र सिद्ध हो जाने पर मनुष्य तत्क्षण आकाश में विचरने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। छह दीर्घ मात्राओं से युक्त मूल मन्त्र से षडंगन्यास करना चाहिये। तदनन्तर देवी का इस प्रकार ध्यान करे कि उनका वर्ण चांदी के समान धवल है, आभूषण मोती और मणि के हैं, मुकुट मणिमय है, दोनों नेत्र दया से आर्द्र हैं, भुजायें दो हैं, चार द्वार वाले भूगृह में वे अष्टदल, षोडशदल तथा शतदल कमल पर आसीन हैं, दाहिने करकमल में बीजपुर धारण किये हुई हैं, बायें हाथ से अपने भक्तों को धन आदि प्रदान करती हैं, अपने समान शक्तिगणों से परिवेष्टित हैं और छिहत्तर अन्य अप्सराओं से भी युक्त हैं ॥१९४-२०३॥ प्रयोग में तथा अन्य समय भी उक्त शक्तियों के साथ देवी की अर्चना करनी चाहिये। यह चौदहवीं देवी का वर्णन किया। अब पन्द्रहवीं देवी का वर्णन सुनो। "भूः......"—यह उनका मंत्र है। वह ज्वालामालिनी नामक नित्या देवी तिरसठ अक्षरों से युक्त हैं। मूलमंत्र के प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, पंचम तथा दशम अक्षरों से अंगन्यास करके करे। आदि से छह कर तथा अंगों में न्यास करे। तदनन्तर शेष अक्षरों से व्यापकन्यास करके सवातनी देवी का इस तरह ध्यान करे कि प्रज्वलित अग्नि के समान उनका वर्ण है, शुभ्र मणि का मुकुट है, छह मुख हैं, बारह भुजायें हैं, वे समस्त आभूषणों से भूषिता हैं, करकमलों में पाश, अंकुश, खड्ग, ढाल, नाग

उपांत्याधः स्थितं नीलपताकाया अनंतरम् । त्वरिता त्वं च भेरुंडाष्टमं च नवमं तथा ॥२११॥
सा ज्वालामालिनी नित्या त्रिषष्टयर्णा समीरिता । एकद्वयचतुःपंचचतुष्टयदशाक्षरैः ॥२१२॥
कुर्यादंगानि मूलार्णैराहितः षट्करांगयोः । शेषैस्तु व्यापकं कुर्यात्ततो ध्यायेत्सनातनीम् ॥२१३॥
ज्वलज्ज्वलनसंकाशां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम् । षड्वक्त्रां द्वादशभुजां सर्वाभरणभूषिताम् ॥२१४॥
पाशांकुशौ खड्गखेटौ चापबाणौ गदादरौ । शूलवह्नी वराभीतो दधानां करपंकजैः ॥२१५॥
स्वप्रमाणाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम् । चारुस्मितलसद्वक्त्र सरोजां त्रीक्षणान्विताम् ॥२१६॥
ध्यात्वैवमुपचारैस्तैरर्चयेत्तां तु नित्यशः । चतुरस्रद्वयं कृत्वा चतुर्द्वारसमन्वितम् ॥२१७॥
सशाखमष्टपत्राब्जमंतरा त्र्यस्रकं ततः । षट्कोणं मध्यतस्त्र्यस्रं विधायात्र शिवां यजेत् ॥२१८॥
एषा पंचदशी प्रोक्ता षोडशीं शृणु नारद । वायुप्रणवतत्त्वैस्तु चित्रास्यादक्षरद्वया ॥२१९॥
या सिद्धा धनधान्यात्मनिधिलाभाय कल्पते । विद्याद्यवायुना कुर्याद्दीर्घस्वरयुजा क्रमात् ॥२२०॥
षडंगानि यथापूर्वं मातृकां विद्यया न्यसेत् । उद्यदादित्यबिंबाभां नवरत्नविभूषणाम् ॥२२१॥
नवरत्नकिरीटां च चित्रपट्टांशुकोज्ज्वलाम् । चतुर्भुजां त्रिनयनां शुचिस्मितलसन्मुखीम् ॥२२२॥
सर्वानंदमयीं नित्यां समस्तेप्सितदायिनीम् । चतुर्भुजेषु वै पाशमंकुशं वरदाभये ॥२२३॥
दधानां मंगलापद्मकर्णिकायोनिमध्यगाम् । तच्छक्तिभिश्च तच्चक्रे तथैवार्चनमीरितम् ॥२२४॥
प्राणदाहौ धरायुक्तौ पुनराद्यं रसे मरुत् । व्यासं मरुच्छक्तियुतं भूः स्वयुक्ता ततस्त्रयम् ॥२२५॥
अस्या आद्यं रसायुग्मं चरणेन प्रयोजितम् । दाहेन वह्निशक्तिभ्याम् युतो हंसस्ततः परम् ॥२२६॥
नभो विहृंसदाह्यंबुज्या शून्यं स्वेन संयुतम् । अंबु पश्चाद्विषयुतं मरुता तु नभोयुतम् ॥२२७॥
शून्यं व्याप्तं भुवा हंसः पूर्वांत्यौ स्यान्मनुत्रयम् । अस्याः षष्ठादिपंचार्णा दैत्यास्यादाद्य ईरितः २२८॥
एकादशाक्षरादंत्या द्वितीयः खंड ईरितः । तृतीयः पंचविंशार्णः प्रोक्ता मंत्रा इति क्रमात् ॥२२९॥

बाण, गदा, त्रिशूल, अग्नि, वरास्त्र एवम् अभयास्त्र धारण किये हुई हैं। अपने सदृश शक्तियों से परिवेष्टित रहती हैं, उनका मुखारविन्द मनोहर हास्य से सुशोभित है और नेत्र तीन हैं। इस प्रकार ध्यान करके सकल उपचारों से उनकी पूजा करे। तदनन्तर चार द्वार वाले भूगृह का निर्माण कर उसके भीतर अष्टदल कमल तथा शाखाओं से युक्त चौकोर तथा षट्कोण पीठ की रचना करे। फिर वहाँ शिवा की अर्चना करे ॥२०४-२१८॥

नारद! यह पन्द्रहवीं नित्या का वर्णन हुआ। अब सोलहवीं देवी का वर्णन सुनो। वायु और प्रणव तत्त्वों से युक्त चित्रा देवी दो अक्षरों की हैं, जिनकी सिद्धि हो जाने पर धन, धान्य तथा आत्मनिधि का लाभ होता है, दीर्घस्वर युक्त बीजमंत्र से क्रमशः षडंगन्यास तथा मातृकान्यास करना चाहिए। तत्पश्चात् उदयकालीन सूर्यबिंब के समान कान्तिवाली, नौ रत्नों के आभूषण तथा मुकुट धारण करनेवाली, चित्र-पट्ट एवम् शुक्ल वस्त्र धारण करने वाली, चार भुजाओं तथा तीन नेत्रों वाली मन्द मुस्कान से सुशोभित मुखवाली, सबको आनन्द देनेवाली, सकल कामनाओं को पूर्ण करनेवाली, चारों भुजाओं में पाश, अंकुश, वरास्त्र तथा अभयास्त्र धारण करनेवाली और पद्मकर्णिका के समान बनी योनिमुद्रा के मध्य में बैठनेवाली मंगलमयी देवी का ध्यान करके शक्तियों समेत उनकी अर्चना करे ॥२१९-२२४॥ तदुपरान्त "प्राण दाहौ......", "अस्या......" एवम् "नभः...
..." इन तीन मंत्रों से षडंगन्यास करके बिखरे हुए केश वाली, नग्ना, रक्तवर्णा, आनंद स्वरूपिणी तथा हाथों

बाला बीजत्रयाद्यैर्द्विस्त्रिर्भिर्मंत्रैः षडगंकम् । विकीर्णकंतलां नग्नां रक्तामानंदविग्रहाम् ॥२३०॥
दधानां चितयेद्बाणचापपाशसृणी करैः । तत्समानायुधाकारवर्णा देव्यस्तु बाह्यगाः ॥२३१॥
ऋतुस्नाताः स्फुरद्योन्यः सदानंदारुणेक्षणाः । इत्येषा कुरुकुल्लान्ते प्रोक्ता चंद्रावली स्वयम् ॥२३२॥
वाराहीमभिधास्यामि ललितायाः परा तनुः । शुचिः स्वेनाथ शून्यं स्यान्नभसाभ्ररसस्थिरा ॥२३३॥
अंबु पश्चाद्वयः साग्निर्मरुताम्बुरयो तथा । इलायुतोऽग्निरेतानि पुनरंबुमरुद्युतम् ॥२३४॥
दाहाम्बुमरुनाहंसस्त्रयग्निनैतत्त्रयं पुनः । अम्बुदाहो मरुद्युक्तौ हंसोऽथ धरया नभः ॥२३५॥
तेजोग्निना पुनः पंच वातः स्वेन समायुतः । तोयं चरेण तत्पूर्वं तोयमग्नियुतं ततः ॥२३६॥
शून्यं व्याप्तेन शुचिना शून्यं शक्त्या नभो युतम् । दाहो धरा स्वसहितस्तोयं चरसमन्वितम् ॥२३७॥
एतत्पूर्वमधः प्रोक्तं चतुष्टयमतः परम् । ज्याल्येन युक्ता सचरो रसश्चैतस्य पूर्वकम् ॥२३८॥
रसोऽग्निना पुनः प्रोक्तं चतुष्का अपयं ततः । शुभोभ्रता चरेणापि हंसः स्वेन सपूर्वकम् ॥२३९॥
हंसाऽग्निना प्राक् वितयं हृदयं स्वसमायुतम् । रसश्चरेण तत्पूर्वमग्निना चरसो युतः ॥२४०॥
पश्चादुक्तस्त्रयं वातो धरया च नभोन्वितम् । प्राणः स्वेन युतः पश्चाद्धृदयस्त्वयुतं रसः ॥२४१॥
व्याप्तमतत्त्रयं पश्चाद्दाहेनांबु समन्वितम् । गोत्राभरायुता स्पर्शो नादयुक्तो जवीयुतः ॥२४२॥
दाहेन पूर्वपूर्वं च पूर्व च मरुता युतम् । शून्यं मरुत्स्वसहितं हृद्दाहेनांबुना चरः ॥२४३॥
स्पर्शा मरुत्स्वसहितो हृद्दाहेनाम्बुसंयुतम् । ज्याग्निः स्वसंयतो हंसस्तथाबु मरुता सह ॥२४४॥
हृद्रूपेण स्वेन युतं रसश्च स्वेन संयुतः । प्राणदाहो धरायुक्तौ पुनस्तौ वह्निना वियत् ॥२४५॥
वार्दाहयुक्तमंब स्यादिष्टचासस्वसंयुतम् । पूर्वद्विरुक्तवर्णौ च शुद्धिः स्वेन युततस्तथा ॥२४६॥
स्थिरा रसा वतस्वेन दावो हंसा धरा स्वयुक् । युतिर्नादवती पश्चाद्धदंबुमरुता युतम् ॥२४७॥
हंसश्च मरुता विद्यः दशोत्तरशताक्षरी । वाराही पचमा विश्वविजया भद्रकौमुदी ॥२४८॥
वार्तालीति च विख्याता स्तंभनाद्यखिलेष्टदा । अंगानि कुर्यान्मन्त्रार्णैः सप्तभिःषड्भिरेव च ॥२४९॥
दशभिः सप्तभिः सप्तसंख्यैर्जातिभिरन्विताः । त्रिकोणवृत्तषट्कोणवृत्तद्वयसमन्वितम् ॥२५०॥
विधाय चक्रं तत्रैव स्वनामालिख्य पूजयेत् । ध्यायेच्च देवीं कोलास्यां ततः कांचनसन्निभाम् ॥२५१॥
आकंटं वनितारूपां ज्वलत्पगसरोरुहाम् । त्रिनेत्रामष्टहस्तां च चक्रं शंखमथांकुशम् ॥२५२॥
पाशं च मुशलं शीर्षमभयं वरदं तथा । दधानां गरुडस्कन्धे सुखासीनां विचिंतयत् ॥२५३॥

में बाण, धनुष, पाश एवम् अंकुश धारण करने वाली देवी और उनके समान आयुध, आकार एवम् वर्णवाली, ऋतुस्नाता, स्फुरणशील योनिवाली और सदा आनन्द से लाल नेत्रों वाली अन्य देवियों का ध्यान करना चाहिए। यह साक्षात् चन्द्रावली जैसी कुरुकुल्ला के बारे में कहा, अब ललिता की उत्कृष्ट रूप—वाराही के विषय में कहूँगा। "शुचि···· विद्या"—यह उनका एक सौ दश अक्षरों का मंत्र है। स्तंभन आदि अखिल कामनाओं का पूर्ण करनेवाली वाराही देवी पंचमी, विश्वविजया, भद्र कौमुदी तथा वार्ताली नाम से भी विख्यात हैं। छह या सात मंत्राक्षरों से अंगन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् त्रिकोणवृत्त और षट्कोणवृत्त सहित चक्र का निर्माण कर वहाँ अपना नाम लिखकर पूजन करे ॥२२५-२५०½॥ अनन्तर कोल के समान मुखवाली, सुवर्ण के समान आभावाली, कंठ तक वनिता का रूप धारण करनेवाली तीन नेत्रों तथा आठ हाथों वाली, चक्र, शंख, अंकुश, पाश, मुशल, अभयास्त्र, कपाल, तथा पीतकमल धारण करने वाली और गरुड़ के कन्धे पर सुख से बैठने वाली

नित्यपूजासु तच्छक्तीस्तत्समानाःस्मरेन्मुने । प्रयोगेषु स्मरेद्देवीं सिंहस्थां व्याघ्रगामपि ॥२५४॥
गजारूढां हयारूढां तार्क्ष्यारूढां च शक्तिभिः । श्यामामप्यरुणां पीतामसितांभोजविग्रहाम् ॥२५५॥
तत्तत्प्रयोगेषु तथा ध्यायेत्तत्तदवाप्तये । अरुणां पंचमीं वश्ये पीतां स्तंभनके स्मरेत् ॥२५६॥
श्यामां च दुर्गमे मार्गे सितां युद्धेऽरिनिष्टये । धूम्रामुच्चाटने ध्यायेत्साधको द्विजसत्तमः ॥२५७॥
एताः षोडश नित्यास्ते संक्षेपात्समुदीरिताः । भजतामिष्टदाः सद्यः सर्वपापक्षयंकराः ॥२५८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे राधादिमन्त्रनिरूपणं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

एकोननवतितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

अथा सामावृतिस्थानां शक्तीनां समयेन च । नाम्नां सहस्रं वक्ष्यामि गुरुध्यानपुरःसरम् ॥१॥
नाथा नव प्रकाशाद्याः सुभगांताः प्रकीर्तिताः । भूम्यादीनि शिवांतानि विद्धि तत्त्वानि नारद ॥२॥
गुरुजन्मादिपर्वाणि दर्शान्तानि च सप्त वै । एतानि प्राङ्मनोवृत्त्या चिंतयेत्साधकोत्तमः ॥३॥

देवी का ध्यान करे। मुने! नित्याओं की पूजा में तत्सदृश शक्तियों की भी अर्चना करे। प्रयोगकालमें सिंह, बाघ, हाथी, अश्व तथा गरुड़ पर शक्तियों के साथ बैठी हुई देवी का ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर श्याम, रक्त पीत तथा श्वेत कमल के समान शरीर वाली देवी का ध्यान करे। पश्चात् वस्तुओं की प्राप्ति के लिये तत्तत् प्रयोगों में उक्त प्रकार का ध्यान करना चाहिए। द्विजवर! साधक वशीकरण में रक्तवर्ण वाली, स्तंभन में पीतवर्ण वाली दुर्गम मार्ग में श्यामवर्ण वाली, युद्ध में शत्रुनाश के लिये शुक्ल वर्ण वाली और उच्चाटन में धूम्रवर्ण वाली देवी का ध्यान करे। इस तरह मैंने सोलह नित्याओं का, जो भक्तों को सद्यः अभीष्ट फल देने वाली, तथा समस्त पापों का क्षय करने वाली हैं, संक्षिप्त वर्णन कर दिया ॥२५१-२५८॥

श्रीनारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त तृतीयपाद में राधादिमंत्र निरूपण नामक अठ्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८८॥

अध्याय ८९

कवच सहित ललिता सहस्रनामस्तोत्र

सनत्कुमार बोले—इसके उपरान्त गुरु का ध्यान करके मैं सामवेद के अनुसार शक्तियों के सहस्र नामों को यथार्थतः प्रतिपादन करूंगा। नारद! प्रकाशा से लेकर सुभगा तक नौ देवियाँ स्वामिनी कहलाती हैं। भूमि से लेकर शिवा तक तत्त्वों को समझिये। गुरुजन्म से लेकर दर्श तक सात पर्व हैं। उसमें साधक पहले

॥४॥
गुरुस्तोत्रं जपेच्चापि तद्गतेनान्तरात्मना । नमस्ते नाथ भगवञ्शिवाय गुरुरूपिणे ॥५॥
विद्यावतारसंसिद्धचै स्वीकृतानेकविग्रह । नवाय नवरूपाय परमार्थैकरूपिणे ॥६॥
सर्वाज्ञानतमोभेदभानवे चिद्घनाय ते । स्वतंत्राय दयाक्लृप्तविग्रहाय शिवात्मने ॥७॥
परतंत्राय भक्तानां भव्यानाम् भव्यरूपिणे । विवेकिनां विवेकाय विमर्शाय विमर्शिनाम् ॥८॥
प्रकाशानां प्रकाशाय ज्ञानिनां ज्ञानरूपिणे । पुरस्तात्पार्श्वयोः पृष्ठे नमः कुर्यामुपर्यधः ॥९॥
सदा मच्चित्तसदने विधेहि भवदासनम् । इति स्तुत्वा गुरुं भक्त्या परां देवीं विचिंतयेत् ॥१०॥
गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिरूपिणीम् । देवीं मंत्रमयीं नौमि मातृकापीठरूपिणीम् ॥११॥
प्रणमामि महादेवीं मातृकाम् परमेश्वरीम् । कालहृल्लोहलोल्लोहकलानाशनकारिणीम् ॥१२॥
यदक्षरैकमात्रेऽपि संसिद्धे स्पर्द्धते नरः । रवितार्क्ष्येंदुकन्दर्पैः शंकरानलविष्णुभिः ॥१३॥
यदक्षरशशिज्योत्स्नामंडितं भुवनत्रयम् । वन्दे सर्वेश्वरीं देवीं महाश्रीसिद्धमातृकाम् ॥१४॥
यदक्षरमहासूत्रप्रोतमेतज्जगत्त्रयम् । ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं तां वन्दे सिद्धमातृकाम् ॥१५॥
यदेकादशमाधारं बीजं कोणत्रयोद्भवम् । ब्रह्मांडादिकटाहान्तं जगदद्यापि दृश्यते ॥१६॥
अकचादिटतोन्नद्धपयशाक्षरवर्गिणीम् । ज्येष्ठांगबाहुहृत्कंठकटिपादनिवासिनीम् ॥१७॥
नौमीकाराक्षरोद्धारां सारात्सारां परात्पराम् । प्रणमामि महादेवीं परमानंदरूपिणीम् ॥१८॥
अथापि यस्या जानंति न मनागपि देवताः । केयं कस्मात्क्व केनेति सरूपारूपभावनाम्

इन वस्तुओं का मनोयोग पूर्वक चिन्तन करे। पश्चात् गुरु में चित्त को लगाकर उनके स्तोत्र का इस प्रकार पाठ करे—"नाथ ! आपको नमस्कार हैं। भगवन् ! गुरुरूप शिव को नमस्कार है ॥१-४॥ विद्या के अवतारों की सिद्धि के लिये अनेक शरीर धारण करने वाले आपको नमस्कार है। नव, नवरूप और परमार्थकरूप आपको नमस्कार है। संपूर्ण अज्ञानरूपी तम को नष्ट करने वाले ! भानु, चित् एवम् धनरूप आपको नमस्कार है। भक्तों के परतन्त्र, भव्यों के भव्य रूप, विवेकियों के विवेक रूप, विमर्शियों के विमर्श रूप, प्रकाशकों के प्रकाश रूप और ज्ञानियों के ज्ञानरूप आपके आगे, पीछे, ऊपर, नीचे तथा दोनों पार्श्व भाग से नमस्कार करता हूँ। आप सदा मेरे मानस मन्दिर में आसन जमाइये।" इस प्रकार भक्तिपूर्वक गुरु की स्तुति कर परा देवी का ध्यान करे—"गणेश, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी, राशि तथा मातृका पीठ रूपिणी एवम् मंत्रमयी देवी को नमस्कार करता हूँ। परमेश्वरी, मातृका तथा समयापहारी लोह-फला का नाश न करने वाली महादेवी को नमस्कार करता हूँ। जिन देवी के मंत्र के एक अक्षर भी सिद्ध हो जाने पर मनुष्य सूर्य, चन्द्रमा, कन्दर्प, शंकर, अग्नि तथा विष्णु से प्रतिस्पर्धा करता है तथा जिनके अक्षर से तीनों लोक व्याप्त हैं, उन महाश्री, सिद्धि तथा मातृका रूप सर्वेश्वरी देवी की वंदना करता हूँ ॥५-१३॥ जिनके अक्षर रूप महासूत्र में ब्रह्मांड से लेकर कटाह पर्यन्त तीनों जगत् ओत-प्रोत हैं, उन सिद्धमातृका को प्रणाम करता हूँ। ब्रह्माण्डादि कटाह पर्यन्त जगत् जिनके त्रिकोणोत्पन्न एकादश आधार बीज में समाविष्ट होते हुए आज भी दीखता है, उन देवी को मैं वंदना करता हूँ। अ, क, च, ट, प, य तथा श अक्षरों में और शिर, बाहु, हृदय, कंठ तथा चरणों में निवास करनेवाली देवी को नमस्कार करता हूँ। इकार अक्षर का उद्धार करनेवाली, सार से भी सार, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ, परमानन्द रूपिणी महादेवी को प्रणाम करता हूँ। देवगण जिनके विषय में कुछ भी नहीं जानते हैं अर्थात् वे कौन हैं ? किससे हुई ? कहाँ हुई ? क्यों हुई ? इस मूर्तामूर्त भावना को बिलकुल नहीं जानते

वंदे तामहमक्षय्यां क्षकाराक्षररूपिणीम् । देवीं कुलकलोल्लोलप्रोल्लसन्तीं शिवां पराम् ॥१९॥
वर्गानुक्रमयोगेन यस्याख्योमाष्टकं स्थितम् । वन्दे तामष्टवर्गोत्थमहासिद्ध्यादिकेश्वरीम् ॥२०॥
कामपूर्णजकाराख्य सुपीठान्तर्न्निवासिनीम् । चतुराज्ञाकोशभूतां नौमि श्रीत्रिपुरामहम् ॥२१॥
एतत्स्तोत्रं तु नित्यानां यः पठेत्सुसमाहितः । पूजादौ तस्य सर्वास्ता वरदाः स्युर्न संशयः ॥२२॥
अथ ते कवचं देव्या वक्ष्ये नवरतात्मकम् । येन देवासुरनरजयी स्यात्साधकः सदा ॥२३॥
सर्वतः सर्वदात्मानं ललिता पातु सर्वगा । कामेशी पुरतः पातु भगमाली त्वनंतरम् ॥२४॥
दिशं पातु तथा दक्षपाश्वं मे पातु सर्वदा । नित्यक्लिन्नाथ भेरुण्डा दिशंमे पातु कौणपीम् ॥२५॥
तथैव पश्चिमं भागं रक्षताद्वह्निवासिनी । महावज्रेश्वरी नित्या वायव्ये मां सदावतु ॥२६॥
वामपाश्वं सदा पातु इतीमेलारिता ततः । माहेश्वरी दिशं पातु त्वरितं सिद्धिदायिनी ॥२७॥
पातु मामूर्ध्वतः शश्वद्देवताकुलसुंदरी । अधोनीलपताकाख्या विजया सर्वतश्च माम् ॥२८॥
करोतु मे मंगलानि सर्वदा सर्वमंगला । देहेंद्रियमनःप्राणाञ्ज्वालामालिनिविग्रहा ॥२९॥
पालयत्वनिशं चित्ता चित्तं मे सर्वदावतु । कामात्क्रोधात्तथा लोभान्मोहान्मानान्मदादपि ॥३०॥
पापान्मां सर्वतः शोकात्संक्षयात्सर्वतः सदा । असत्यात्क्रूरचितातो हिंसातश्चौरतस्तथा ॥३१॥
स्तैमित्याच्च सदा पांतु प्रेरयत्यः शुभं प्रति । तथा हयसमारूढाः पांतु मां सर्वतः सदा ॥३२॥
नित्याः षोडश मां पांतु गजारूढाः स्वशक्तिभिः । रथारूढाश्च मां पांतु सर्वतः सर्वदा रणे ॥३३॥
सिंहारूढास्तथा पांतु पांतु ऋक्षगता अपि

उन क्षकाराक्षर रूप वाली, कभी नष्ट न होने वाली, वाम-मार्ग के नाद से चंचल तथा शोभित होने वाली श्रेष्ठ शिवा देवी को प्रणाम करता हूँ। वर्गों के अनुक्रम-योग से जिनके नाम पर उमाष्टक बना है, उन अष्ट वर्ग से उद्भूत महासिद्धि आदि की स्वामिनी की मैं वन्दना करता हूँ। ॥१४-२०॥ कामपूर्ण जकार संज्ञक सुन्दर पीठ के भीतर निवास करने वाली और चार आज्ञाकोशों से युक्त श्री त्रिपुरा को नमस्कार करता हूँ। पूजा के आरम्भ में जो व्यक्ति अत्यन्त सावधानी से नित्याओं के इस स्त्रोत्र का पाठ करेगा, उसे सकल देवियों का वरदान मिलेगा, इसमें संशय नहीं ॥२१-२२॥

इसके उपरान्त देवी के नवरतात्मक कवच को बता रहा हूँ। जिसके पाठ से साधक देवताओं, असुरों, तथा मनुजों पर सदा विजय प्राप्त करता है। कवच--"सर्वत्र गमन करने वाली ललितादेवी सदा सब ओर से मेरी रक्षा करें। कामेशी अग्रभाग से और भगमाली पृष्ठ भाग से रक्षा करे। नित्यक्लिन्ना मेरे दक्षिण पार्श्व तथा पूर्व दिशा की रक्षा करें। भेरुंडा उत्तर दिशा और वह्निवासिनी पश्चिम दिशा की रक्षा करें। महावज्रेश्वरी दक्षिण दिशा की रक्षा करें। ललितादेवी सदा मेरे वामपार्श्व की रक्षा करें। सिद्धिदायिनी माहेश्वरी समस्त दिशाओं में मेरी रक्षा करें। कुलसुन्दरी सदा ऊपर से और नीलपताका नीचे से रक्षा करें। विजयादेवी सब ओर से मेरी रक्षा करें। सर्व मंगला सदा मेरा कल्याण करें। ज्वाला-मालिनी देह, इंद्रिय, मन तथा प्राणों की रक्षा करें ॥२३-२९॥ चित्ता सदा मेरे चित्त की रक्षा करें। अपनी शक्तियों समेत गजों पर आरूढ सोलह नित्यादेवियाँ रक्षा करें। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, मद, पाप, शोक, क्षय, असत्य, क्रूर चिंता, हिंसा, स्तेय, तथा जड़ता से मुझे बचायें और शुभ कर्मों की प्रेरणा दें। अश्वों पर आरूढ देवियाँ, सदा सब ओर से मेरी रक्षा करें। सिंहारूढ, ऋक्षारूढ, तथा रथारूढ देवियाँ सदा

ताक्ष्यरूढाश्च मां पांतु तथा व्योमगताश्च ताः । भूतगाः सर्वगाः पान्तु पान्तु देव्यश्च सर्वदा ॥३४॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च परकृत्यादिकान् गदान् । द्रावयंतु स्वशक्तीनां भूषणैरायुधैर्मम ॥३५॥
गजाश्वद्वीपिपंचास्यताक्ष्यरूढाखिलायुधाः । असंख्याः शक्तयो देव्यः पान्तु मां सर्वतः सदा ॥३६॥
सायं प्रातर्जपन्नित्याकवचं सर्वरक्षकम् । कदाचिन्नाशुभं पश्येत्सर्वदानंदमास्थितः ॥३७॥
इत्येतत्कवचं प्रोक्तं ललितायाः शुभावहम् । यस्य संधारणान्मर्त्यो निर्भयो विजयी सुखी ॥३८॥
अथ नाम्नां सहस्रं ते वक्ष्ये सावरणार्चनम् । षोडशानामपि मुने स्वस्वक्रमगतात्मकम् ॥३९॥
ललिता चापि वा कामेश्वरी च भगमालिनी । नित्यक्लिन्ना च भेरुंडा कीर्तिता वह्निवासिनी ॥४०॥
वज्रेश्वरी तथा दूती त्वरिता कुलसुंदरी । नित्या संवित्तथा नीलपताका विजयाह्वया ॥४१॥
सर्वमंगलिका चापि ज्वालामालिनिसंज्ञिता । चित्रा चेति क्रमान्नित्याः षोडशापीष्टविग्रहाः ॥४२॥
कुरुकुल्ला च वाराही द्वे एते चेष्टविग्रहे । वशिनी चापि कामेशी मोहिनी विमलारुणा ॥४३॥
तपिनी च तथा सर्वेश्वरी चाप्यथ कौलिनी । मुद्राणंतनुरिष्वर्णरूपा चापार्णविग्रहा ॥४४॥
पाशवर्णशरीरा चाकुवर्णसुवपुर्द्धरा । त्रिखंडा स्थापनी सन्निरोधनी चावगुंठनी ॥४५॥
सन्निधानेषु चापाख्या तथा पाशांकुशाभिधा । नमस्कृतिस्तथा संक्षोभणी विद्रावणी तथा ॥४६॥
आकर्षणी च विख्याता तथैवावेशकारिणी । उन्मादिनी महापूर्वा कुशाथो खेचरी मता ॥४७॥
बीजा शक्त्युत्थापना च स्थूलसूक्ष्मपराभिधा । अणिमा लघिमा चैव महिमा गरिमा तथा ॥४८॥
प्राप्तिः प्रकामिता चापि चेशिता वशिता तथा । भुक्तिः सिद्धिस्तथैवेच्छा सिद्धिरूपा च कीर्तिता ॥४९॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा । वाराहींद्राणी चामुंडा महालक्ष्मीस्वरूपिणी ॥५०॥

मेरी रक्षा करें। गरुड़ पर आसीन देवियाँ सदा मेरी रक्षा करें। आकाशगामिनी, भूतगामिनी तथा सर्वगामिनी देवियाँ सर्वदा मेरी रक्षा करें। तथा अपनी शक्तियों के आयुधों से भूत, प्रेत, पिशाच, कृत्या आदिकों का संहार करें। गज, अश्व, व्याघ्र, सिंह तथा गरुड़ पर आरूढ एवम् अखिल आयुधों से युक्त असंख्य शक्ति देवियाँ सदा सब ओर से मेरी रक्षा करें ॥३०-३६॥ जो मानव प्रातःकाल तथा सायंकाल इस सर्वरक्षक नित्याकवच का पाठ करता है, वह सर्वदा आनंद को प्राप्त करता है, अशुभ को तो कभी देखता ही नहीं। यह ललिता का सुखदायक कवच मैंने तुम्हें सुना दिया। जो मनुष्य इसको धारण करेगा, वह निर्भय, विजयी तथा सुखी होगा ॥३७-३८॥

मुने! अब इसके बाद सोलह नित्याओं के सहस्र नामों को क्रमशः अर्चनाविधि पूर्वक बताऊंगा—'ललिता, कामेश्वरी, भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना, भेरुंडा, वह्निवासिनी, वज्रेश्वरी, दूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, संवित्, नीलपताका, विजया, सर्वमंगलिका, ज्वालामालिनी तथा चित्रा—ये सोलहों नित्यायें इष्टविग्रहा कहलाती हैं। कुरुकुल्ला तथा वाराही ये दोनों भी इष्टविग्रहा हैं। वशिनी, कामेशी, मोहिनी, विमला, अरुणा, तपिनी, सर्वेश्वरी, कौलिनी, मुद्रातनु, इषुवर्णरूपा, चापवर्णविग्रहा, पाशवर्णशरीरा, चातुर्वर्ण देहा (?), त्रिखंडा, स्थापनी, सन्निरोधनी, अवगुण्ठनी, समोवेषुचापा, पाशांकुशा, मनस्कृति, संक्षोभणी, विद्रावणी, आकर्षणी, आवेशकारिणी, उन्मादिनी, महापूर्वा, कुशा, खेचरी, बीजा, शक्त्युत्थापना, स्थूलसूक्ष्मपरा, अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकामिता, ईशिता, वशिता, भुक्ति, सिद्धि, इच्छासिद्धि, ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा, महालक्ष्मीस्वरूपिणी, कामा, बुद्धि, अहंकार-शब्द-स्पर्श-स्वरूपिणी, रूपरूपा, रसा,

कामा बुद्धिरहंकारशब्दस्पर्शस्वरूपिणी । रूपरूपा रसाह्वा च गंधवित्तधृतिस्तथा ॥५१॥
नाभबीजामृताख्या च स्मृतिर्देहात्मरूपिणी । कुसुमा मेखला चापि मदना मदनातुरा ॥५२॥
रेखा संवेगिनी चैव ह्यंकुशा मालिनीति च । संक्षोभिणी तथा विद्राविण्याकर्षणरूपिणी ॥५३॥
आह्लादिनीति च प्रोक्ता तथा संमोहिनीति च । स्तंभिनी जंभिनी चैव वशंकर्यथ रंजिनी ॥५४॥
उन्मादिनी तथैवार्थसाधिनीति प्रकीर्तिता । संपत्तिपूर्णा सा मंत्रमयी द्वंद्वक्षयंकरी ॥५५॥
सिद्धिः संपत्प्रदा चैव प्रियमंगलकारिणी । कामप्रदा निगदिता तथा दुःखविमोचिनी ॥५६॥
मृत्युप्रशमनी चैव तथा विघ्ननिवारिणी । अंगसुंदरिका चैव तथा सौभाग्यदायिनी ॥५७॥
ज्ञानैश्वर्यप्रदा ज्ञानमयी चैव च पंचमी । विंध्यवासनका घोरस्वरूपा पापहारिणी ॥५८॥
तथामंदमयी रक्षा रूपेप्सितफलप्रदा । जयिनी विमला चाथ कामेशी वज्रिणी भगा ॥५९॥
त्रैलोक्यमोहना स्थाना सर्वाशापरिपूरणी । सर्वसंक्षोभणगता सौभाग्यप्रदसंस्थिता ॥६०॥
सर्वार्थसाधकागारा सर्वरोगहरास्थिता । सर्वरक्षाकरास्थाना सर्वसिद्धिप्रदस्थिता ॥६१॥
सर्वानंदमयाधारबिंदुस्थानशिवात्मिका । प्रकृष्टा च तथा गुप्ता ज्ञेया गुप्ततरापि च ॥६२॥
संप्रदायस्वरूपा च कुलकौलनिगर्भगा । रहस्यापरापरप्राकृत्तथैवातिरहस्यका ॥६३॥
त्रिपुरा त्रिपुरेशी च तथैव पुरवासिनी । श्रीमालिनी च सिद्धान्ता महात्रिपुरसुंदरी ॥६४॥
नवरत्नमयद्वीपनवखंडविराजिता । कल्पकोद्यानसंस्था च ऋतुरूपेंद्रियार्चका ॥६५॥
कालमुद्रा मातृकाख्या रत्नदेशोपदेशिका । तत्त्वाग्रहाभिधा मूर्तिस्तथैव विषयद्विपा ॥६६॥
देशकालाकारशब्दरूपा संगीतयोगिनी । समस्तगुप्तप्रकटसिद्धयोगिनिचक्रयुक् ॥६७॥
वह्निसूर्येन्दुभूताह्वा तथात्माष्टाक्षराह्वया । पंचधार्चास्वरूपा च नानाव्रतसमाह्वया ॥६८॥
निषिद्धाचाररहिता सिद्धचिह्नस्वरूपिणी । चतुर्धा कूर्मभागस्था नित्याद्यर्चास्वरूपिणी ॥६९॥

गंधवित्तधृति, नाभवीजा, अमृता, स्मृतिदेहा, आत्मरूपिणी, कुसुमा, मेखला, मदना, मदनातुरा, रेखा, संवेगिनी, अंकुशा, मालिनी, संक्षोभिणी, विद्राविणी ॥४९-५३॥ आकर्षणरूपिणी, आह्लादिनी, संमोहिनी, स्तंभिनी, जंभिनी, वशंकरी, रंजिनी, ॥५४॥ उन्मादिनी, अर्थसाधिनी, संपत्तिपूर्णा, मंत्रमयी, द्वन्द्वक्षयकरी ॥५५॥ सिद्धि, संपत्प्रदा, प्रियमंगलकारिणी, कामप्रदा, निगदिता, दुःखविमोचिनी, ॥५६॥ मृत्युप्रशमनी, विघ्ननिवारिणी, अंगसुन्दरिका, सौभाग्यदायिनी, ॥५७॥ ज्ञानैश्वर्यप्रदा, ज्ञानमयी, पंचमी, विंध्यवासनका, घोरस्वरूपा, पापहारिणी, ॥५८॥ आनन्दमयी, रक्षारूपा, ईप्सितफलप्रदा, जयिनी, विमला, कामेशी, वज्रिणी, भगा, ॥५९॥ त्रैलोक्यमोहनी, स्थाना, निखिल-आशा-परिपूरिणी, सबको संक्षुब्ध करने वाली, सौभाग्य-प्रद-संस्थिता ॥६०॥ समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली, अखिल रोगों का नाश करने वाली, सब की रक्षा करने वाली, सकल सिद्धियों को देने वाली, सर्वानन्दमया, मूलाधार और बिन्दु को स्थान, शिवात्मिका, प्रकृष्टा, गुप्ता, ज्ञेया, गुप्ततरा, संप्रदायस्वरूपा, कौलकुलगर्भगामिनी, रहस्यरूपा, परात्परा, अतिरहस्यका, ॥६१-६२॥ त्रिपुरा, त्रिपुरेशी, पुरवासिनी, श्रीमालिनी, सिद्धान्ता, महात्रिपुरसुन्दरी, नवरत्नमय, द्वीपों तथा नवखण्डों में रहनेवाली, कल्परूपी उद्यान में रहनेवाली, ऋतुरूप इन्द्रियों से पूजित होने वाली, काल-मुद्रारूपिणी, मातृकारूपिणी, रत्न-देशोपदेशिका, तत्त्वा, ग्रहसंज्ञका, मूर्ति, विषयद्विपा, देश-काल-आकार-शब्द-रूपा, संगीतयोगिनी, समस्त गुप्त एवम् प्रकट सिद्धचक्र तथा योगिनी चक्र की अधिष्ठात्री, वह्नि, सूर्य चन्द्र तथा महाभूत कहलाने वाली,

||७०||
दमनादिसमभ्यर्चा षट्कर्मसिद्धिदायिनी । तिथिवारपृथग्द्रव्यसमर्चनशुभावहा ||७१||
वायोश्यनंगकुसुमा तथैवानंगमेखला । अनंगमदनानंगमदनातुरसाह्वया ||७२||
मददेगिनिका चैव तथा भुवनपालिनी । शशिलेखा समुद्दिष्टा गतिलेखाह्वया मता ||७३||
श्रद्धा प्रीती रतिश्चैव धृतिः कांतिर्मनोरमा । मनोहरा समाख्याता तथैव हि मनोरथा ||७४||
मदनोन्मादिनी चैव मोदिनी शंखिनी तथा । शोषिणी चैव शंकारी सिंजिनी सुभगा तथा ||७५||
पूषाचेद्वासुमनसा रतिः प्रीतिर्धृतिस्तथा । ऋद्धिः सौम्या मरीचिश्च तथैव ह्यंशुमालिनी ||७६||
शशिनी चांगिरा छाया तथा संपूर्णमंडला । तुष्टिस्तथामृताख्या च डाकिनी साथ लोकपा ||७७||
वटुकेभास्वरूपा च दुर्गा क्षेत्रेशरूपिणी । कामराजस्वरूपा च तथा मन्मथरूपिणी ||७७||
कंदर्परूपिणी चैव तथा मकरकेतना । मनोभावस्वरूपा च भारती वर्णरूपिणी ||७९||
मदना मोहिनी लोला जंभिनी चोद्यमा शुभा । ह्लादिनी द्राविणी प्रीती रती रक्ता मनोरमा ||८०||
सर्वोन्मादा सर्वमुखा ह्यभंगा चामितोद्यमा । अनल्पाव्यक्तविभवा विविधाक्षोभविग्रहा ||८१||
रागशक्तिर्द्वेषशक्तिस्तथा शब्दादिरूपिणी । नित्या निरंजना क्लिन्ना क्लेदिनी मदनातुरा ||८२||
मदद्रवा द्राविणी च द्रविणी चेति कीर्तिता । मदा विला मंगला च मन्मथानी मनस्विनी ||८३||
मोहा मोदा मानमयी माया मंदा मितावती । विजया विमला चैव शुभा विश्वा तथैव च ||८४||
विभूतिर्विनता चैव विविधा विनता क्रमात् । कमला कामिनी चैव किराता कीर्तिरूपिणी ||८५||
कुट्टिनी च समुद्दिष्टा तथैव कुलसुंदरी । कल्याणी कालकोला च डाकिनी शाकिनी तथा ||८६||
लाकिनी काकिनी चैव राकिनी काकिनी तथा । इच्छाज्ञाना क्रियाख्या चाप्यायुधाष्टकधारिणी ||८७||
कर्पादिनी समुद्दिष्टा तथैव कुलसुंदरी । ज्वालिनी विस्फुलिंगा च मंगला सुमनोहरा ||८८||

आत्मरूपिणी, अष्टाक्षर कहलानेवाली, पंचपूजनस्वरूपा, अनेक व्रतों वाली, निषिद्ध आचरण से रहिता, सिद्धचिह्नस्वरूपा, चार प्रकार से कर्म-भोगों में अवस्थिता नित्य आदि की पूजा स्वरूपा, दमना आदि की अर्चारूपा, छह कर्मों को सिद्धि प्रदान करनेवाली, तिथि, दिन, द्रव्य, पूजन तथा मंगलरूपा, वायोशी, अनगकुसुमा, अनंगमेखला, अनंगमदना, अनंगमदनातुरा, मददेगिनिका, भुवनपालिनी, शशिलेखा, गतिलेखा, श्रद्धाप्रीति, रति, धृति, कांति, मनोरमा, मनोहरा, मनोरथा ||६९-७३||

मदनोन्मादिनी, मोदिनी, शंखिनी, शोषिणी, शंकरी, सिंजिनी, सुभगा, पूषा, वासुमनसा, रति, प्रीति, धृति, ऋद्धि, सौम्या, मरीचि, अंशुमालिनी, शशिनी, अंगिरा, छाया, संपूर्णमण्डला, तुष्टि, अमृता, डाकिनी, लोकपा, वटुका, भास्वरूपा, दुर्गा, क्षेत्रेशरूपिणी, कामराजस्वरूपा, मन्मथरूपिणी, कंदर्परूपिणी, मकरकेतना, मनोभवस्वरूपा, भारती, वर्णरूपिणी ||७४-७८|| मदना, मोहिनी, लोला, जंभिनी, उद्यमा, शुभा, ह्लादिनी, द्राविणी, प्रीति, रति, रक्ता, मनोरमा, सर्वोन्मादा, सर्वमुखा, अभंगा, अमितोद्यमा, अनल्पा, तथा अव्यक्त विभव वाली, विविधा, क्षोभविग्रहा, रागशक्ति, द्वेषशक्ति, शब्दादिरूपिणी, नित्या निरंजना, क्लिन्ना, क्लेदिनी, मदनातुरा, मदद्रवा, द्राविणी, द्रविणी, मदाविला, मंगला, मन्मथानी, मनस्विनी, मोहा, मोदा, मानमयी, माया, मंदा, मितावती, विजया, विमला, शुभा, विश्वा, विभूति, विनता, कमला, कामिनी, किराता, कीर्तिरूपिणी, कुट्टिनी, कुलसुन्दरी, कल्याणी, कालकोला, डाकिनी, शाकिनी, लाकिनी, काकिनी, राकिनी, इच्छा, ज्ञान एवम् क्रियारूपा, अष्टायुधधारिणी, कर्पादिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिंगा, मंगला, सुमनोहरा, कनका, किनवा, विद्या, मेधा,

कनका किनरा विद्या विविधा च प्रकीर्तिता । मेषा वृषाह्वया चैव मिथुना कर्कटा तथा ॥८८॥
सिंहा कन्या तुला कीटा चापा च मकरा तथा । कुम्भा मीना च सारा च सर्वभक्षा तथैव च ॥८९॥
विश्वात्मा विविधोद्भूतचित्ररूपा च कीर्तिता । निःसपत्ना निरातंका याचनाचिंत्यवैभवा ॥९०॥
रक्ता चैव ततः प्रोक्ता विद्याप्राप्तिस्वरूपिणी । हृल्लेखा क्लेदिनी क्लिन्ना क्षोभिणी मदनातुरा ॥९१॥
निरंजना रागवती तथैव मदनावती । मेखला द्राविणी वेगवती चैव प्रकीर्तिता ॥९२॥
कमला कामिनी कल्पा कला च कलिताद्भुता । किराता च तथा काला कदना कौशिका तथा ॥९३॥
कंबुवादनिका चैव कातरा कपटा तथा । कीर्तिश्चापि कुमारी च कुंकुमा परिकीर्तिता ॥९४॥
भञ्जिनी वेगिनी नागा चपला पेशला सती । रतिः श्रद्धा भोगलोला मदोन्मत्ता मनस्विनी ॥९५॥
विह्वला कर्षिणी लोला तथा मदनमालिनी । विनोदा कौतुका पुण्या पुराणा परिकीर्तिता ॥९६॥
वागीशी वरदा विश्वा विभवा विघ्नकारिणी । बीजविघ्नहरा विद्या सुमुखी सुंदरी तथा ॥९७॥
सारा च सुमना चैव तथा प्रोक्ता सरस्वती । समया सर्वगा विद्धा शिवा वाणी च कीर्तिता ॥९८॥
दूरसिद्धा तथा प्रोक्ताथो विग्रहवती मता । नादा मनोन्मनी प्राणप्रतिष्ठारुणवैभवा ॥९९॥
प्राणापाना समाना च व्यानोदाना च कीर्तिता । नागा कूर्मा च कृकला देवदत्ता धनञ्जया ॥१००॥
फट्कारी किंकराराध्या जया च विजया तथा । हुंकारी खेचरी चंडा छेदिनी क्षपिणी तथा ॥१०१॥
स्त्रीहुंकारी क्षेमकारी चतुरक्षररूपिणी । श्रीविद्यामत्तवर्णांगी काली याम्या नृपार्णका ॥१०२॥
भाषा सरस्वती वाणी संस्कृता प्राकृता परा । बहुरूपा चित्तरूपा रम्यानंदा च कौतुका ॥१०३॥
त्रयाख्या परमात्माख्याप्यमेयविभवा तथा । वाक्स्वरूपा बिंदुसर्गरूपा विश्वात्मिका तथा ॥१०४॥

वृषा, मिथुना, कर्कटा, सिंहा, कन्या, तुला, कीटा, चापा, मकरा, कुम्भा, मीना; सारा, सर्वभक्षा, विश्वात्मा,
विविधोद्भूतचित्ररूपा, निःसपत्ना, निरांतका, याचना, अचिंत्यवैभवा ॥७९-९०॥
रक्ता, विद्याप्राप्तिस्वरूपिणी, हृल्लेखा, क्लेदिनी, क्लिन्ना, क्षोभिणी, निरंजना, रागवती, मदनावती,
मेखला, वेगवती, कमला, कामिनी, कल्पा, कला, कलिता, अद्भुता, किराता, काला, कदना, कौशिका, कंबुवादनिका;
कातरा, कपटा, कीर्ति, कुमारी, कुंकुमा, भञ्जिनी, वेगिनी, नागा, चपला, पेशला, सती, रति, श्रद्धा, भोग-
लोला, मदोन्मत्ता, विह्वला, कर्षिणी, लोला, मदनमालिनी, विनोदा, कौतुका, पुण्या; पुराणा, वागीशी, वरदा,
विश्वा, विभवा, विघ्नकारिणी, बीजविघ्नहरा, विद्या, सुमुखी, सुन्दरी, सारा, सुमना, सरस्वती, समया, सर्वगा,
विद्धा, शिवा, वाणी, दूरसिद्धा, विग्रहवती, नादा, मनोन्मनी, प्राणप्रतिष्ठा, अरुणवैभवा; प्राणा; अपाना, समाना,
व्याना, उदाना, नागा, कूर्मा, कृकला, देवदत्ता, धनञ्जया ॥९१-१००॥
फट्कारी, किंकरआराध्या, जया, विजया, हुंकारी, खेचरी, चंडा, छेदिनी, क्षपिणी, स्त्रीहुंकारी, क्षेम-
कारी चतुरक्षररूपिणी, श्रीविद्या, श्रेष्ठवर्णांगी, काली, याम्या, नृपार्णका, भाषा, सरस्वती, वाणी, संस्कृता, प्राकृता,
परा, बहुरूपा, चित्तरूपा, रम्या, आनन्दा, कौतुका, त्रयाख्या, परमात्माख्या; अमेयविभवा, वाक्स्वरूपा, बिंदु
सर्गरूपा, विश्वात्मिका, त्रैपुरकंदा, ज्ञात्रादित्रिविधात्मिका, आयु, लक्ष्मी, कीर्ति, भोग, सौंदर्य तथा आरोग्य
देने वाली, ऐहिक तथा पारलौकिक ज्ञानमयी, जीवा, विजया, विश्वविन्मयी ॥१०१-१०६॥ हृदादिविद्या,

तथा त्रैपुरकंदाख्या ज्ञात्रादित्रिविद्यात्मिका । आयुर्लक्ष्मीकीर्तिभोगसौंदर्यारोग्यदायिका ॥१०५॥
ऐहिकामुष्मिकज्ञानमयी च परिकीर्तिता । जीवाख्या विजयाख्या च तथैव विश्वविन्मयी ॥१०६॥
हृदादिविद्या रूपादिभानुरूपाः जगद्वपुः । विश्वमोहनिका चैव त्रिपुरामृतसंज्ञिका ॥१०७॥
सर्वाप्यायनरूपा च मोहिनी क्षोभणी तथा । क्लेदिनी चापि षट्कूटा पंचकूटा विशुद्धगा ॥१०८॥
संपत्करी हलक्षार्णा सीमामातृतनू रतिः । प्रीतिर्मनोभवा वापि प्रोक्ता वाराधिपा तथा ॥१०९॥
त्रिकूटा चापि षट्कूटा पंचकूटा विशुद्धगा । अनाहतगता चैव मणिपूरकसंस्थिता ॥११०॥
स्वाधिष्ठानसमासीनाधारस्थाज्ञासमास्थिता । षट्त्रिंशत्कूटरूपा च पंचाशन्मिथुनात्मिका ॥१११॥
पादुकादिकसिद्धीशा तथा विजयदायिनी । कामरूपप्रदा वेतालरूपा च पिशाचिका ॥११२॥
विचित्रा विभ्रमा हंसी भीषणी जनरंजिका । विशाला मदना तुष्टा कालकंठी महाभया ॥११३॥
माहेंद्री शंखिनी चैंद्री मंगला वटवासिनी । मेखला सकला लक्ष्मीर्मालिनी विश्वनायिका ॥११४॥
सुलोचना सुशोभा च कामदा च विलासिनी । कामेश्वरी नंदिनी च स्वर्णरेखा मनोहरा ॥११५॥
प्रमोदा रागिणी सिद्धा पद्मिनी च रतिप्रिया । कल्याणदा कलादक्षा ततश्च सुरसुन्दरी ॥११६॥
विभ्रमा वाहका वीरा विकला कोरका कविः । सिंहनादा महानादा सुग्रीवा मर्कटा शठा ॥११७॥
बिडालाक्षा बिडालास्या कुमारी खेचरी भवा । मयूरा मंगला भीमा द्विपवक्त्रा खरानना ॥११८॥
मातंगी च निशाचारा वृषग्राहा वृकानना । सैरिभास्या गजमुखा पशुवक्त्रा मृगानना ॥११९॥
क्षोभका मणिभद्रा च क्रीडका सिंहचक्रका । महोदरा स्थूलशिखा विकृतास्या वरानना ॥१२०॥
चपला कुक्कुटास्या च पाविनी मदनालसा । मनोहरा दीर्घजंघा स्थूलदन्ता दशानना ॥१२१॥
सुमुखा पंडिता क्रुद्धा वराहास्या सटामुखा । कपटा कौतुका काला किंकरा कितवा खला ॥१२२॥
भक्षका भयदा सिद्धा सर्वगा च प्रकीर्तिता । जया च विजया दुर्गा भद्रा भद्रकरी तथा ॥१२३॥

रूपादिभानुरूपा, जगद्वपु, विश्वमोहनिका, त्रिपुरामृतसंज्ञिका, सबको संवर्धित करनेवाली, मोहिनी, क्षोभिणी, क्लेदिनी, महोदया, संपत्करी, ह, ल एवम् क्ष वर्णों वाली, सीमा, मातृतनु, रति, प्रीति, मनोभवा, वाराधिपा, त्रिकूटा, षट्कूटा, पंचकूटा, विशुद्धगा, अनाहत चक्र में जानेवाली, मणिपूरक में संस्थित होनेवाली, अपने अधिष्ठान में संस्थित होने वाली, अपने अधिष्ठान में आसीन होने वाली, आधार चक्र तथा आज्ञा चक्र में आस्थित होने वाली, छत्तीस कूटवाली, पचास मिथुन वाली, पादुका आदि सिद्धियों की ईश्वरी, विजयदायिनी, कामरूपप्रदा, वेतालरूपा, पिशाचिका, विचित्रा, विभ्रमा, हंसी, भीषणी, जनरंजिका, विशाला, मदना, तुष्टा, कालकंठी, महाभया, ॥१०७-११३॥ माहेंद्री, शंखिनी, ऐंद्री, मंगला, वटवासिनी, मेखला, सकला, लक्ष्मी, मालिनी, विश्वनायिका, सुलोचना, सुशोभा, कामदा, विलासिनी, कामेश्वरी, नंदिनी, स्वर्णरेखा, मनोहरा, प्रमोदा, रागिणी, सिद्धा, पद्मिनी, रतिप्रिया, कल्याणदा, कलादक्षा, सुरसुन्दरी, विभ्रमा, वाहका, वीरा, विकला, कोरका, कवि, सिंहनादा, महानादा, सुग्रीवा, मर्कटा, शठा, बिड़ालाक्षा, बिड़ालास्या, कुमारी, खेचरी, भवा, मयूरा, मंगला, भीमा, व्याघ्रमुखा, खरानना, मातंगी, निशाचरा, वृषग्राहा, वृकानना, महिषानना, गजमुखा, पशुवक्त्रा, मृगानना, क्षोभका, मणिभद्रा, क्रीडका, सिंहचक्रका, महोदरा, स्थूलशिखा, विकृतास्या, वरानना ॥११४-१२०॥ क्रुद्धा, चपला, कुक्कुटास्या, पावनी, मदनालसा, मनोहरा, दीर्घजंघा, स्थूलदन्ता, दशानना, समुखा, पंडिता, वाराहास्या, जटामुखा, कपटा, कौतुका, काला, किंकरा, कितवा, खला, भक्षका, भयदा, सिद्धा, सर्वगा, जया

अम्बिका वामदेवी च महामायास्वरूपिणी । विदारिका विश्वमयी विश्वा विश्वविभंजिता ॥१२४॥
वीरा विक्षोभिणी विद्या विनोदा बीजविग्रहा । वीतशोका विषग्रीवा विपुला विजयप्रदा ॥१२५॥
विभवा विविधा विप्रा तथैव परिकीर्तिता । मनोहरा मंगला च मदोत्सिक्ता मनस्विनी ॥१२६॥
मानिनी मधुरा माया मोहिनी च तथा स्मृता । भद्रा भवानी भव्या च विशालाक्षी शुचिस्मिता ॥१२७॥
ककुभा कमला कल्पा कलाथो पूरणी तथा । नित्या चाप्यमृता चैव जीविता च तथा दया ॥१२८॥
अशोका ह्यमला पूर्णा पूर्णा भाग्योद्यता तथा । विवेका विभवा विश्वा वितता च प्रकीर्तिता ॥१२९॥
कामिनी खेचरी गर्वा पुराणा परमेश्वरी । गौरी शिवा ह्यमेया च विमला विजया परा ॥१३०॥
पवित्रा पद्मिनी विद्या विश्वेशी शिववल्लभा । अशेषरूपा ह्यानंदांबुजाक्षी चाप्यनिंदिता ॥१३१॥
वरदा वाक्यदा वाणी विविधा वेदविग्रहा । विद्या वागीश्वरी सत्या संयता च सरस्वती ॥१३२॥
निर्मलानन्दरूपा च ह्यमृता मानदा तथा । पूषा चैव तथा पुष्टिस्तुष्टिश्चापि रतिर्धृतिः ॥१३३॥
शशिनी चंद्रिका कांतिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरंगदा । पूर्णा पूर्णामृता कामदायिनीन्दुकलात्मिका ॥१३४॥
तपिनी तापिनी धूम्रा मरीचिर्ज्वालिनी रुचिः । सुषुम्णा भोगदा विश्वा बाधिनी धारिणी क्षमा ॥१३५॥
धूम्रार्चिरूष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिंगिनी । सुश्रीः स्वरूपा कपिला हव्यकव्यवहा तथा ॥१३६॥
घस्मरा विश्वकवला लोलाक्षी लोलजिह्विका । सर्वभक्षा सहस्राक्षी निःसंगा च गतिप्रिया ॥१३७॥
अचिंत्याचाप्रमेया च पूर्णरूपा दुरासदा । सर्वा संसिद्धिरूपा च पावनीत्येकरूपिणी ॥१३८॥
तथा यामलवेधाख्या शाक्ते वेदस्वरूपिणी । तथा शांभववेधा च भावनासिद्धिसूचिनी ॥१३९॥
वह्निरूपा तथा दस्रा ह्यमा विघ्ना भुजंगमा । षण्मुखा रविरूपा च माता दुर्गा दिशा तथा ॥१४०॥

विभवा, दुर्गा, भद्रा, भद्रकरी, अंबिका, वामदेवी, महामायास्वरूपिणी, विदारिका, विश्वमयी, विश्वा, विश्वविभंजिता, वीरा, विक्षोभिणी, विद्या, विनोदा, बीजविग्रहा, वीतशोका, विषग्रीवा, विपुला, विजयप्रदा, विभवा, विविधा, विप्रा, मनोहरा, मंगला, मदोत्सिक्ता, मनस्विनी ॥१२१-१२६॥ मानिनी, मधुरा, माया, मोहिनी, भद्रा, भवानी, भव्या, विशालाक्षी, शुचिस्मिता, ककुभा, कमला, कल्पा, कला, पूरणी, नित्या, अमृता, जीविता, दया, अशोका, अमला, पूर्णा, भाग्योद्यता, विवेका, विभवा, विश्वा, वितता, कामिनी, खेचरी, गर्वा, पुराणा, परमेश्वरी, गौरी, शिवा, अमेया, विमला, विजया, परा, पवित्रा, पद्मिनी, विद्या, विश्वेशी, शिववल्लभा, अशेषरूपा, आनन्दांबुजाक्षी, अनिंदिता, वरदा, वाक्यदा, वाणी, वेदविग्रहा, विद्या, वागीश्वरी, सत्या, संमता, सरस्वती ॥१२७ १३२॥

निर्मला, आनन्दरूपा, अमृता, मानदा, पूषा, पुष्टि, तुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चंद्रिका, कांति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा, पूर्णामृता, कामदायिनी, इन्दुकलात्मिका, तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मराचि, ज्वालिनी रुचि, सुषुम्णा, भोगदा, विश्वा, बाधिनी, धारिणी, क्षमा, धूम्रार्चि, ऊष्मा, ज्वलिना, ज्वालिनी, विस्फुलिंगिनी, सुश्री, स्वरूपा, कपिला, हव्य-कव्यवहा, घस्मरा, विश्वकवला, लोलाक्षी, लोलजिह्विका, सर्वभक्षा, सहस्राक्षी, निःसंगा, गतिप्रिया, अचिंत्या, अप्रमेया, पूर्णरूपा, दुष्प्राप्या, संसिद्धरूपा, पावना, एकरूपिणी ॥१३३-१३८॥

यामलवेधा, वेदस्वरूपिणी, शांभववेधा, भावनासिद्धिसूचिनी, वह्निरूपा, दस्रा, अमाविघ्ना, भुजंगमा, षण्मुखा, रविरूपा, माता, दुर्गा, दिशा, धनदा, केशवा, यमी, हरा, शशा, आश्वनी, यमी, वाह्निरूपा, धात्री,

धनदा केशवा चापि यमी चैव हरा शशा । अश्विनी च यमी वह्निरूपा धात्रीति कीर्तिता ॥१४१॥
चंद्रा शिवादितिर्जीवा सर्पिणी पितृरूपिणी । अर्यम्णा च भगा सूर्या त्वाष्ट्रिमारुतिसंज्ञिका ॥१४२॥
इंद्राग्निरूपा मित्रा चापोंद्राणी निरृतिर्जला । वैश्वदेवी हरितभूर्वासवी वरुणा जया ॥१४३॥
अहिर्बुध्न्या पूषणी च तथा कारस्करामला । उदुंबरा जंबुका च खदिरा कृष्णरूपिणी ॥१४४॥
वंशा च पिप्पला नागा रोहिणा च पलाशका । पक्षका च तथाम्बष्ठा बिल्वा चार्जुनरूपिणी ॥१४५॥
विकंकता च ककुभा सरला चापि सर्जिका । वंजुला पनसार्का च शमी हलिप्रियाम्रका ॥१४६॥
निम्बा मधूकसंज्ञा चाप्यश्वत्था च गजाह्वया । नागिनी सर्पिणी चैव शुनी चापि बिडालिकी ॥१४७॥
छागी मार्जारिका मूषी वृषभा माहिषी तथा । शार्दूली सैरिभी व्याघ्री हरिणी च मृगी शुनी ॥१४८॥
कपिरूपा च गोघंटा वानरी च नराश्विनी । नगा गौर्हस्तिनी चेति तथा षट्चक्रवासिनी ॥१४९॥
त्रिखंडा तीरपालाख्या भ्रामणी द्रविणी तथा । सोमा सूर्या तिथिर्वारा योगार्क्षा करणात्मिका ॥१५०॥
यक्षिणी तारणा व्योमशब्दाद्या प्राणिनी च धीः । क्रोधिनी स्तंभिनी चंडोच्चंडा ब्राह्म्यादिरूपिणी ॥१५१॥
सिंहस्था व्याघ्रगा चैव गजाश्वगरुडस्थिता । भौमाप्या तैजसी वायुरूपिणी नाभसा तथा ॥१५२॥
एकवक्त्रा चतुर्वक्त्रा नववक्त्रा कलानना । पंचविंशतिवक्त्रा च षड्विंशद्वदना तथा ॥१५३॥
ऊनपंचाशदास्या च चतुःषष्टिमुखा तथा । एकाशीतिमुखा चैव शताननसमन्विता ॥१५४॥
स्थूलरूपा सूक्ष्मरूपा तेजोविग्रहधारिणी । वृणावृत्तिस्वरूपा च नाथावृत्तिस्वरूपिणी ॥१५५॥
तत्त्वावृत्तिस्वरूपापि नित्यावृत्तिवपुर्द्धरा ॥१५६॥
अंगावृत्तिस्वरूपा चाप्यायुधावृत्तिरूपिणी । गुरुपंक्तिस्वरूपा च विद्यावृत्तितनुस्तथा ॥१५७॥
ब्रह्माद्यावृत्तिरूपा च परा पश्यंतिका तथा । मध्यमा वैखरी शीर्षकण्ठताल्वोष्ठदन्तगा ॥१५८॥

चंद्रा, शिवा, दिति, जीवा, सर्पिणी, पितृरूपिणी, अर्यम्णा, भगा, सूर्या, त्वाष्ट्री, मारुती, इन्द्रा, अग्निरूपा, मित्रा, इंद्राणी, निरृति, जला, वैश्वदेवी, हरितभू, वासवी, वरुणा, जया, अहिर्बुध्न्या, पूषणी, कारस्करा, अमला, उदुंबरा, जंबुका, खदिरा, कृष्णरूपिणी ॥१३९-१४४॥ वंशा, पिप्पला, नागा, रोहिणा, पलाशका, यक्षका, चेष्टा, बिल्वा, अर्जुनरूपिणी, विकंकता, ककुभा, सरला, सर्जिका, वंजुला, पनसा, कामशमी, हलिप्रिया, आम्रका, निंबा, मधूकसंज्ञा, अश्वत्था, गजा, अजा, नागिनी, सर्पिणी, शुनी, बिडालिकी, छागी, मार्जारिका, मूषी, वृषभा, माहिषी, शार्दूली, सैरिभी, व्याघ्री, हरिणी, मृगी, कपिरूपा, गोघंटा, वानरी, नराश्विनी, नगा, गौ, हस्तिनी, षट्चक्र-वासिनी, त्रिखंडा, तीरपाला, भ्रामणी, द्राविणी, भौमा, सूर्या, तिथि, वारा, योगा, ऋक्षा, करणात्मिका ॥१४५-१५०॥

यक्षिणी, तारणा, व्योमशब्दा, आद्या, प्राणिनी, धी, क्रोधिनी, स्तंभिनी, चंडा, उच्चंडा, ब्रह्मादिरूपिणी, सिंहस्था, व्याघ्रगा, गज, अश्व तथा गरुड़ पर आरूढ होने वाली, आप्या, तैजसी, वायुरूपिणी, तामसा, एकवक्त्रा, चतुर्वक्त्रा, नववक्त्रा, कलानना, पंचविंशतिवक्त्रा, षड्विंशद्वदना, ऊनपंचाशद्वदना, चतुःषष्टिमुखा, एकाशीतिमुखा, शतानना, स्थूलरूपा, सूक्ष्मरूपा, तेजोविग्रहधारिणी, वृणा, वृत्तिस्वरूपा, मायावृत्तिस्वरूपिणी, गुरुपंक्तिस्वरूपा, विद्यावृत्तिस्वरूपिणी, तत्त्वावृत्तिस्वरूपा, नित्यावृत्तिशरीरधारिणी, अंगावृत्तिस्वरूपा, आयुधावृत्तिरूपिणी, ब्रह्माद्यावृत्तिरूपा, परा, पश्यंतिका, मध्यमा, वैखरी, शीर्ष, कंठ, तालु, ओष्ठ,

जिह्वामूलगता नासागतोरःस्थलगामिनी । पदवाक्यस्वरूपा च वेदभाषास्वरूपिणी ॥१५९॥
सेकाख्या वीक्षणाख्या चोपदेशाख्या तथैव च । व्याकुलाक्षरसंकेता गायत्री प्रणवादिका ॥१६०॥
जपहोमार्चनध्यानयंत्रतर्पणरूपिणी । सिद्धसारस्वता मृत्युंजया च त्रिपुरा तथा ॥१६१॥
गारुडा चान्नपूर्णा चाप्यश्वारूढा नवात्मिका । गौरी च देवी हृदया लक्षदा च मतंगिनी ॥१६२॥
निष्कत्रयपदा चेष्टावादिनी च प्रकीर्तिता । राजलक्ष्मीर्महालक्ष्मीः सिद्धलक्ष्मीर्गवानना ॥१६३॥
इत्येवं ललितादेव्या दिव्यं नामसहस्रकम् । सर्वार्थसिद्धिदं प्रोक्तं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥१६४॥
एतन्नित्यमुषःकाले यो जपेच्छुद्धमानसः । स योगी ब्रह्मविज्ज्ञानी शिवयोगी तथात्मवित् ॥१६५॥
द्विरावृत्त्या प्रजपतो ह्यायुरारोग्यसंपदः । लोकानुरंजनं नारीनृपावर्जनकर्म च ॥१६६॥
अपृथक्त्वेन सिद्ध्यंति साधकस्यास्य निश्चितम् । त्रिरावृत्त्यास्य वै पुंसो विश्वं भूयाद्वशेऽखिलम् ॥१६७॥
चतुरावृत्तितश्चास्य समीहितमनारतम् । फलत्येव प्रयोगार्हो लोकरक्षाकरो भवेत् ॥१६८॥
पंचावृत्त्या नरा नार्यो नृपा देवाश्च जंतवः । भजंत्येनं साधकं च देव्यामाहितचेतसः ॥१६९॥
षडावृत्त्या तन्मयः स्यात्साधकश्चास्य सिद्धयः । अचिरेणैव देवीनां प्रसादात्संभवंति च ॥१७०॥
सप्तावृत्त्यारिरोगादिकृत्यापस्मारनाशनम् । अष्टावृत्त्या नरो भूपान्निग्रहानुग्रहक्षमः ॥१७१॥
नवावृत्त्या मन्मथाभो विक्षोभयति भूतलम् । दशावृत्त्या पठेन्नित्यं वाग्लक्ष्मीकांतिसिद्धये ॥१७२॥
रुद्रावृत्त्याखिलर्द्धिश्च तदायत्तं जगद्भवेत् । अर्कावृत्त्या सिद्धिभिः स्याद्दिग्भिर्मर्त्यो हरोपमः ॥१७३॥

तथा दंतगामिनी, ॥१५१-१५८॥ जिह्वामूलगता, नासागता, उरःस्थलगामिनी, षड्वाक्यस्वरूपा, वेदभाषा-
स्वरूपिणी, सेका, वीक्षणा, उपदेशा, व्याकुलाक्षरसंकेता, गायत्री, ब्रह्मवादिनी, जप होम, पूजन, ध्यान;
यंत्र तथा तर्पण-रूपिणी, सिद्धसारस्वता, मृत्युंजया, त्रिपुरा, गारुडा, अन्नपूर्णा, अश्वारूढा, नवात्मिका,
गौरी, देवी, हृदया, लक्षदा, मतंगिनी, निष्कत्रयपदा, चेष्टा-वादिनी, राजलक्ष्मी, महालक्ष्मी, सिद्धलक्ष्मी;
और गवानना ॥१५९-१६३॥ ये ललितादेवी के सहस्र नाम हैं, जो समस्त प्रयोजनों को सिद्ध करने वाले तथा
चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के फल को देने वाले हैं। जो व्यक्ति नित्य प्रातःकाल शुद्ध मन से इन
नामों का पाठ करेगा, वह योगी, ब्रह्मवेत्ता, ज्ञानी, शिवयोगी तथा आत्मवेत्ता होगा। जो नित्य दो आवृत्ति
पाठ करेगा, उसे, आयु, आरोग्य तथा संपत्ति की प्राप्ति होगी और वह नारी, राजा तथा लोगों को प्रसन्न
करेगा। तीन आवृत्ति पाठ करने से विश्व वशीभूत हो जाता है। चार आवृत्ति पाठ करने से सतत इच्छा-
नुसार फल मिलता है और प्रयोग करने से लोगों की रक्षा होती है ॥१६४-१६८॥

जो पांच आवृत्ति पाठ करता है, उसकी सेवा नर, नारियां, राजा, देवता सभी जन्तु देवी से मोहित-
चित्त होकर करते हैं। तन्मय होकर छह आवृत्ति पाठ करने से साधक को देवी की कृपा से शीघ्र ही
समस्त सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं। सात आवृत्ति करने से (पाठक अपने) शत्रुओं को रोग आदि उत्पन्न
कर सकता है और अपस्मार (मिरगी) आदि रोगों का नाश भी कर सकता है। आठ आवृत्ति करने से
मनुष्य राजाओं के ऊपर निग्रह-अनुग्रह करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। नौ आवृत्ति पाठ करने वाला
साधक मदन तुल्य होकर संपूर्ण भूतल को विक्षुब्ध करता है। दश आवृति करने से वाणी, लक्ष्मी तथा
कांति की सिद्धि होती है ॥१६९-१७२॥ ग्यारह आवृति करने से अखिल ऋद्धियां प्राप्त होती हैं तथा उसके
अधीन निखिल जगत् हो जाता है। बारह आवृति करने से अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती हैं तथा वह मनुज

विश्वावृत्त्या तु विजयी सर्वतः स्यात्सुखी नरः । शक्रावृत्त्याखिलेष्टाप्तिः सर्वतो मंगलं भवेत् ॥१७४॥
तिथ्यावृत्त्याखिलानिष्टानयत्नादाप्नुयान्नरः । षोडशावृत्तितो भूयान्नरः साक्षान्महेश्वरः ॥१७५॥
विश्वं स्रष्टुं पालयितुं संहतुं च क्षमो भवेत् । मंडलं मासमात्रं वा यो जपेद्यद्यदाशयः ॥१७६॥
तत्तदेवाप्नुयात्सत्यं शिवस्य वचनं यथा । इत्येतत्कथितं विप्र नित्यावृत्त्यर्चनाश्रितम् ॥१७७॥
नाम्नां सहस्रं मनसोऽभीष्टसंपादनक्षमम् ॥१७८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे ललितास्तोत्रकवचसहस्रनामकथनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

नवतितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

अथातो विप्र नित्यानां प्रयोगादिसमन्वितम् । पटलं तेऽभिधास्यामि नित्याभ्यर्चनदीपकम् ॥१॥
ललितायास्त्रिभिर्वर्णैः सकलार्थोऽभिधीयते । शेषेण देवीरूपेण तेन स्यादिदमीरितम् ॥२॥
अशेषतो जगत्कृत्स्नं हृल्लेखात्मकमुच्यते । तस्याश्चार्थस्तु कथितः सर्वतंत्रेषु गोपितः ॥३॥

शिव के तुल्य हो जाता है। तेरह आवृत्ति करने से मनुष्य सर्वविजयी तथा सुखी होता है। चौदह आवृत्ति करने से समस्त कामनाओं की प्राप्ति तथा सब प्रकार से कल्याण होता है। पन्द्रह आवृत्ति करने से अनायास ही अखिल वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है। सोलह आवृत्ति करने से मानव साक्षात् महेश्वर होता है और विश्व के सृजन, पालन तथा संहार करने की क्षमता प्राप्त करता है। जो एक मास तक नित्य सत्रह आवृत्ति पाठ करेगा, उसके हृदय में जो-जो अभिलाषायें होंगी, वे तुरन्त पूर्ण हो जायेंगी, यह शिव का सत्य वचन है। विप्र ! सहर्ष मनःकामनाओं को पूर्ण करने वाले नित्याओं के पूजन सहित सहस्र नामों को मैंने बता दिया ॥१७३-१७८॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त तृतीयपाद में ललिता के स्तोत्र, कवच तथा सहस्रनाम कथन नामक नवासीवाँ अध्याय समाप्त ॥

अध्याय ९०

अर्चन-विधि सहित नित्यापटल-कथन

सनत्कुमार बोले—विप्र ! अब इसके उपरान्त नित्याओं के प्रयोग, अर्चना आदि बतलाते हुए पटल का निरूपण करूँगा। ललिता के तीन वर्णों से ही सकल पदार्थों का अभिधान होता है। शेष देवी रूप से यह जगत कहा गया है। संपूर्ण विश्व हृल्लेखा का स्वरूप है। उनका वर्णन सब तन्त्रों में गुप्त रूप से किया गया है।

व्योम्ना प्रकाशमानत्वं ग्रसमानत्वमग्निना । तयोर्विमर्श ईकारो बिंदुना तन्निफालनम् ॥४॥
पिंडकर्तरि बीजाख्या मन्त्रा मालाभिधाः क्रमात् । एकार्णवन्तो द्व्यर्णाश्च त्रिदिङ्मुखमुखार्णकाः ॥५॥
वृत्तिजा र्णा ल्लिखेदंकैर्व्यत्यस्तक्रमयोगतः । तैर्भेदयोजनं कुर्यात्संदर्भाणामशेषतः ॥६॥
देव्यात्मकं समुदयं विश्रांतिं च शिवात्मकम् । उभयात्मकमव्यात्मस्वरूपं तैश्च भावयेत् ॥७॥
कालेनान्यच्च दुःखार्त्तिवासनानाशनो ध्रुवम् । पराहंतामयं सर्वस्वरूपं चात्मविग्रहम् ॥८॥
सदात्मकं स्फुरताख्यमरोषोपाधिवर्जितम् । प्रकाशरूपमात्मत्वे वस्तु तद्भासते परम् ॥९॥
यत एवमतो लोके नास्त्यमंत्रं यदक्षरम् । यद्विद्येति समाख्यातं सर्वथा सर्वतः सदा ॥१०॥
वासरेषु तु तेष्वेवं सर्वापत्तारकं भवेत् । तद्विधानं च वक्ष्यामि सम्यगासवकल्पनम् ॥११॥
गौडी पैष्टी तथा माध्वीत्येवं तत्त्रिविधं स्मृतम् । गुडमुष्णोदके क्षिप्त्वा समालोड्य विनिक्षिपेत् ॥१२॥
घटे काचमये तस्मिन् धातकीसुमनोरजः । खात्वा भूमौ संध्ययोस्तु करैः संक्षोभ्य भूयसा ॥१३॥
मासमात्रे गते तस्मिन्निमग्ने रजसि द्रुतम् । संशोध्य पूजयेत्तेन गौडी सा गुडयोगतः ॥१४॥
एवं मधुसमायोगान्माध्वी पैष्टीं शृणु प्रिय । अध्यर्द्धद्विगुणे तोये श्रपयेत्तन्दुलं शनैः ॥१५॥
दिनत्रयोषिते तस्मिन्धात्र्यंकुररजः क्षिपेत् । दिमेकं धृते वाते निवाते स्थापयेत्ततः ॥१६॥
उदकैर्लोलितं पश्चाद्गलितं पैष्टिकं मधु । वृक्षजं फलजं चेति द्विविधं क्रियते मधु ॥१७॥
तन्निर्माणं शृणुष्वाद्य यदास्वादान्मनोलयः । मृद्वीकां वाथ खर्जूरफलं पुष्पमथापि वा ॥१८॥

उनमें प्रकाशमानता आकाश से आती है और ग्रसमानता (निगलने का भाव) अग्नि से। उन दोनों का विमर्श ईकार है। विन्दु से उसका अवलोकन करना चाहिए ॥१-४॥

पिंड के कर्त्ता में माला नामक बीज मंत्र क्रमशः स्थापित करने चाहिये । उस मन्त्र में एक वर्ण, चार वर्ण और तीन दिशाओं में मुख वाले वर्ण होने चाहिये । फिर विपरीत क्रम से वृत्तिजन्य अक्षरों को लिखे । उनसे सन्दर्भों का भेद सम्पूर्णतया कर दे । उदय में देवो के रूप, विश्राम में शिव के रूप और दोनों रूपों में आत्म-रूप की भावना करे । ऐसा करने से निश्चित ही दुःख, पीडा तथा वासना का नाश होता है। उत्कृष्ट अहंकारमय, सबका स्वरूप, आत्मरूप, सद्रूप, भासमानता की संज्ञा से युक्त, अक्रोध की उपाधि से रहित तथा प्रकाशरूप वस्तु आत्मा होने में भासित होती है । जिस लिए ऐसी बात है, इसलिए लोक में कोई वस्तु मन्त्र-रहित नहीं है । उस मन्त्र के जो अक्षर हैं और जो विधा है वह सब बातें भली-भाँति बता दी गई । विहित दिनों में उस मंत्र का अनुष्ठान करने से सभी आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। अब मैं भली-भाँति आसव बनाने की विधि बताऊँगा। आसव (मद्य) विविध प्रकार के कहे गये हैं--जैसे--गौडी, पैष्टी तथा माध्वी। गरम जल में गुड को छोड़कर उसका मन्थन करे । फिर कांच के घड़े में धायके फूल के पराग के साथ उसे रखे। अनन्तर भूमि में उस घड़े को गाड़कर दोनों संध्या हाथों से उसे चलाये । एक मास तक ऐसा करने के उपरान्त उसको परिशोधित करके उससे पूजन करे। इस तरह गुडयोग से गौडी नामक मदिरा तैयार होती है ॥५-१४॥

प्रिय ! इसी प्रकार मधु के योग से माध्वी तथा पैष्टी नामक मद्य बनाया जाता है। ढाई गुने जल में चावल को धीरे-धीरे पकाये । फिर तीन दिनों तक उसे बासी करके धात्रीफल के चूर्ण के साथ मिलाये । पश्चात् एक दिन वायु में रख कर निर्वात स्थान में रख छोड़े । कुछ दिनों बाद जल मिलाकर उसका प्रयोग करे । इस तरह पैष्टिक मद्य बनता है । माध्वी मदिरा दो प्रकार की होती हैं—वृक्ष की एवम् फल की । उसका बनाना

मधूकस्यांभसि क्षिप्त्वा शतमर्द्धावशेषितम् । प्राक्सता-श्लेशेन मिलितं दिवसद्वयात् ॥१९॥
गालितं स्वादु पूजार्हं मनोलयकरं शुभम् । वार्क्षं तु नालिकेरं स्यात्हिंतालस्याथ तालतः ॥२०॥
फलकांडात्स्नुतं दुग्धं नीतं सद्यो रसावहम् । नालिकेरफलांतस्थसलिले शशिना युते ॥२१॥
अर्द्धपूगफलोत्थं तु रसं संक्षिप्य तापयेत् । आतपे मद्य एवैतदासवं देवताप्रियम् ॥२२॥
आसवैरेभिरुदितैरर्घ्यं देव्यै निवेदयेत् । देवैः कृत्वा ततः सद्यो दद्यात्तत्सिद्धये द्वयम् ॥२३॥
साधको नियताहारः समाधिस्थः पिबेत्सदा । न कदाचित्पिबेत्सिद्धो देव्यर्घ्यमनिवेदितम् ॥२४॥
पानं च तावत्कुर्वीत यावता स्यान्मनोलयः । ततः करोति चेत्सद्यः पातकी भवति ध्रुवम् ॥२५॥
देवतागुरुशिष्टान्यं पिबन्नासवमाशया । पातकी राजदंडयश्च स्यिथोपासक एव च ॥२६॥
साध्यसाधकयोरेतत्काम्य एव समीरितम् । सिद्धस्य सर्वदा प्रोक्तं यतोऽसौ तन्मयो भवेत् ॥२७॥
पूजयेत्प्रोक्तरूपस्तु प्रोक्तरूपाश्च ताः क्रमात् । उपचारैरासवैश्च मत्स्यैर्मांसैश्च संस्कृतैः ॥२८॥
अथ काम्यार्चनं वक्ष्ये प्रयोगांश्चापि नारद । येषामाचरणात्सिद्धिं साधको लभते ध्रुवम् ॥२९॥
चैत्रे दमनकैरर्चेत्पूर्णायां मदनोत्सवम् । वैशाखे मासि पूर्णायां पूजयेद्धेमपुष्पकैः ॥३०॥
ज्येष्ठ्यां फलैर्यजेद्देवीं कदलीपनसाम्रजैः । आषाढ्यां चन्दनैरेलाजातीकंकोलकुंकुमैः ॥३१॥

सुन लो, जिसके आस्वादन से मन की एकाग्रता होती है । दाख या खजूर के फल या पुष्प को महुए के जल में छोड़ कर पकाये । आधा शेष रह जाने पर पहले के बने किञ्चिन्मात्र मद्य के साथ मिलाकर दो दिनों तक छोड़ दे । ऐसा करने से वह मद्य पूजा योग्य तथा मन की एकाग्रता का विधायक होता है । वृक्ष का मद्य तो इस तरहा बनाया जाता है कि नारियल, हिंताल, ताल और नागकेसर के तुरन्त निकाले हुए रसावह दूध (ताड़ी) को नारियल के जल में छोड़ दे । फिर उसमें पूगीफल का पूरस डाल कर धूप में रख दे । इस प्रकार तैयार किय हुआ आसव देवता को अधिक प्रिय होता है ॥१५-२२॥

इस आसवों के तैयार हो जाने पर देवी को इनका अर्घ देना चाहिये । तदनन्तर सिद्धि के लिये देवताओं को दो अर्घ देने चाहिए । साधक नियमपूर्वक आहार करते हुए सदा समाधिस्थ होकर इसका पान करे । सिद्ध पुरुष बिना देवी को समर्पित किये पान कभी न करे पान उतनी मात्रा में करे, जिससे कि मन की एकाग्रता हो जाय । उससे अधिक पान करने वाला निश्चय ही पातक का भागी बनता है । देवता, गुरु और शिष्यों का बिना समर्पित किये जो उपभोग की इच्छा से मद्य का पान करता है, वह पातकी तथा राजा से दण्ड पाने योग्य है । काम्य धन की कामना करते हुए जो इसका पान करता है, वह भी पातकी है । साध्य और साधक के लिए यह काम्य रूप से बतलाया गया है (अर्थात् इष्ट सिद्धि के लिए ही साधक इसका पान करे) । किन्तु सिद्ध पुरुष अपनी तन्मयता के लिये सदा इसका उपयोग करे । उक्त प्रकार का व्यक्ति उक्त रूप देवियों की सुसंस्कृत मत्स्य, मांस तथा मद्य से सोपचार अर्चना करे ॥२३-२८॥

नारद ! अब काम्या के पूजन तथा प्रयोगों को बतलाऊँगा, जिनके करने से साधक अवश्यमेव सिद्धि को प्राप्त करता है । चैत्र मास की पूर्णिमा में कुन्द के पुष्पों से देवी की अभ्यर्चना करे । वैशाख की पूर्णिमा में चम्पा के पुष्पों से पूजन करे । ज्येष्ठ की पूर्णिमा में केले, कटहल, तथा आम के पुष्पों (फलों) से पूजा करे । आषाढ़ी पूर्णिमा में चन्दन, इलायची, जूही, कंकोल (कंकेल-अशोक) तथा कुंकुम से पूजन करे । श्रावण की पौर्णमासी में

श्रावण्यामागमोक्तेन विधिनार्चेत्पवित्रकैः । प्रौष्ठपद्यां गन्धपुष्पैर्यजेद्वा केतकीसुमैः ॥३२॥
आश्वयुज्यां कन्यकार्चा भूषावस्त्रधनादिभिः । कार्तिक्यां कुंकुमैश्चैव निशि दीपगणैरपि ॥३३॥
सचंद्रैर्मार्गशीर्ष्यां तु नालिकेरैरपूपकैः । पौष्यां सशर्करगुडैर्गवां दुग्धैः समर्चयेत् ॥३४॥
स्वर्णरौप्यैः पंकजैस्तु माघ्यां सौगन्धिकादिभिः । फाल्गुन्यां विविधैर्द्रव्यैः फलैः पुष्पैः सुगंधिभिः ॥३५॥
पर्वताग्रे यजेद्देवीं पलाशकुसुमैर्निशि । सिद्धद्रव्यैश्च सप्ताहात्खेचरीमेलनं भवेत् ॥३६॥
अरण्ये वटमूले वा कुंजे वा धरणीभृताम् । कदम्बजातिपुष्पाभ्यां सिद्धद्रव्यैः शिवां यजेत् ॥३७॥
मासेन सिद्धा यक्षिण्यः प्रत्यक्षा वांछितप्रदाः । केतकीकुसुमैः सिद्धाश्चेटका वारिधेस्तटे ॥३८॥
आज्ञामभीष्टां कुर्वन्ति रणे मायां महाद्भुताम् । वसूनि मालां भूषां च दद्युरस्येहयानिशम् ॥३९॥
पीठमृक्षद्रुमैः कृत्वा तत्र देवीं यजेन्निशि । शाल्मलैः कुसुमैः सिद्धद्रव्यैर्मासं तु निर्भयः ॥४०॥
श्मशानदेशे विप्रेंद्र सिद्ध्यंत्यस्य पिशाचकाः । अश्मपातप्रहाराद्यैर्जीयादाभिर्द्विषश्चिरम् ॥४१॥
निर्जने विपिने रात्रौ मासमात्रं तु निर्भयः । यजेद्देवीं चक्रगतां सिद्धद्रव्यसमन्विताम् ॥४२॥
मालतीजातपुन्नागकेतकीमरुभिः क्रमात् । तेन सिद्ध्यंति वेतालास्तानारुह्येच्छया चरेत् ॥४३॥
श्मशाने चंडिकागेहे निर्जने विपिनेऽपि वा । मध्यरात्रे यजेद्देवीं कृष्णवस्त्रविभूषणैः ॥४४॥

तन्त्रोक्त विधि से कुशों से अर्चना करे । भाद्र मास की पूर्णिमा में गन्ध-पुष्पों से या केतकी कुसुमों से पूजन करे । ॥२९-३२॥

आश्विनी पूर्णिमा में वस्त्र, आभूषण, धन आदि से कुमारिका पूजन करना चाहिए । कार्तिकी पूर्णिमा में कुंकुमों से देवी का पूजन करके रात्रि में दीप मालिका का उत्सव करे । अग्रहण की पूर्णिमा में कर्पूर, नारियल तथा पूओं से पूजा करे । पौषी पूर्णिमा में शक्कर, गुड तथा गाय के दूध से अर्चना करनी चाहिए । माघी पूर्णिमा में सुवर्ण, चांदी, कमल, तथा सुगंधित द्रव्यों से पूजा करे । फाल्गुनी पूर्णिमा में फल, पुष्प तथा विविध प्रकार के सुगंधित द्रव्यों से पूजन करे ॥३३-३५॥

रात्रि को पर्वत की चोटी पर पलाशपुष्प तथा सिद्ध द्रव्यों से देवी की अर्चना करनी चाहिये । एक सप्ताह ऐसा करने से खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जाती है (अर्थात् देवी प्रत्यक्ष होती है)। वन में या वट वृक्ष के मूल में या लताकुंज में कदम्ब, जूही तथा सिद्ध द्रव्यों से शिवा को अर्चना करनी चाहिए । इस तरह एक मास तक करने से वांछितफलदायिनी यक्षिणियां प्रत्यक्ष होती हैं । समुद्र के तट पर केतकी के पुष्पों से पूजन करने से दास सिद्ध होते हैं । वे साधक की आज्ञा का पालन करते हैं, रण में अद्भुत माया रचते हैं और सदा धन, माला, आभूषण आदि देते रहते हैं ॥३६-३९॥

विप्रवर ! जो व्यक्ति एक मास तक रात को श्मशान में निर्भय होकर सेमल के फूलों तथा सिद्ध द्रव्यों से देवी की अर्चना करता है, उसके पिशाच सिद्ध होते हैं । वे (पिशाच) संग्राम में उस (साधक) के शत्रुओं को पत्थर से मार गिराते हैं । निर्जन वन में रात्रि के समय जो निर्भय होकर एक मास तक चक्र स्थित देवी का मालती, जूही, पुंनाग, केतकी तथा मरु के पुष्पों एवम् सिद्ध द्रव्यों से पूजन करता है, उसके वेताल सिद्ध होते हैं । उन वेतालों के ऊपर चढ़कर वह इच्छानुसार विचरण करता है ॥४०-४३॥

श्मशान में या चंडिका गृह में या निर्जन वन में जो साधक एक मास तक मध्य रात्रि के समय क्रुद्ध होकर कृष्णचक्र स्थित अतिकृष्णवर्णा देवी की कृष्णवस्त्र तथा आभूषणों से पूजा करते हुए सिद्ध द्रव्य समेत

कृष्णचक्रेऽतिकृष्णां तामतिक्रुद्धाशयो यजेत् । साध्वयोनि तदग्रे तु बलिं छिदन्निवेदयेत् ।।४५।।
सिद्धद्रव्यसमेतं तु मासात्तद्भाललोचनात् । जायन्ते भीषणाः कृत्यास्ताभ्यः सिद्धिं निवेदयेत् ।।४६।।
विश्वसंहारसंतुष्टाः पुनरेत्य निजेच्छया । देव्या ललाटनेत्रे स्युः प्रार्थिते तु तिरोहिताः ।।४७।।
रक्तभूषांबरालेपमालाभूषितविग्रहाः । उद्याने निर्जने देवीं चक्रे संचिंत्य पूजयेत् ।।४८।।
कह्लारचंपकाशोकपाटलाशतपत्रकैः । सिद्धद्रव्यसमोपेतैर्मायाः सिद्ध्यंति मासतः ।।४९।।
यासां प्रसादलाभेन कामरूपो भवेन्नरः । याभिर्विश्वजयी विश्वचारी विश्वविनोदवान् ।।५०।।
।।५१।।
षडाधाराब्जमध्ये तु चक्रं संचिंत्य पूजयेत् । चंद्रचंदनकस्तूरीमृगनाभिमहोदयैः
त्रिकालज्ञो भवेद्देवीं तेषु सम्यग्विचिंतयेत् । पूर्णप्रतीतौ भव्यानि विकलेऽभव्यमीरितम् ।।५२।।
देवींचक्रेण संहितां स्मरेद्भक्तियुतो नरः । विवेका विभवा विश्वा वितता च प्रकीर्तिता ।।५३।।
कामिनी खेचरी गर्वा पुराणा परमेश्वरी । गौरी शिवा ह्यमेया च विमला विजया परा ।।५४।।
पवित्रा पीडनी विद्या विश्वेशी शिववल्लभा । अशेषरूपा स्वानंदांबुजाक्षी चाप्यनिंदिता ।।५५।।
वरदा वाक्यदा वाणी विविधा वेदविग्रहा । विद्या वागीश्वरी सत्या संयता च सरस्वती ।।५६।।
निर्मलानन्दरूपा च ह्यमृता मानदा तथा । पूषा चैव तथा तुष्टिः पुष्टिश्चापि रतिर्धृतिः ।।५७।।
शशिनी चंद्रिका कांतिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरंगदा । देवीनामानि चैतानि चुलुके सलिले स्मरन् ।।५८।।
मातृकासहितां विघ्नां त्रिरावृत्यामृतात्मिकाम् । ताडीं सरस्वतीं जिह्वां दीपाकारां स्मरन्पिबेत् ।।५९।।
अब्दाच्चतुर्विधं तस्य पांडित्यं भुवि जायते । एवं नित्यमुषःकाले यः कुर्याच्छुद्धमानसः ।।६०।।
स योगी ब्रह्मविज्ञानी शिवयोगी तथात्मवित् । अनुग्रहोक्तचक्रस्थां देवीं ताभिर्वृतां स्मरेत् ।।६१।।

बलि समर्पित करता है, उसके ललाट से भयंकर कृत्यायें उत्पन्न होती हैं, जिनके शरीर रक्त भूषण, वस्त्र, लेप तथा मालाओं से विभूषित रहते हैं। उनसे सिद्धि का निवेदन कर देने पर वे विश्व का संहार कर बैठती हैं। पुनः प्रार्थना करने पर वे देवी के ललाटस्थ नेत्र में तिरोहित हो जाती हैं। उद्यान के जनशून्य स्थान में चक्र पर अवस्थित देवी का ध्यान करके रक्त कमल, चम्पा, अशोक, पाटल, सामान्य कमल तथा सिद्ध द्रव्यों से एक मास तक उनका पूजन करने से माया सिद्ध होती हैं, उनकी कृपा से मनुष्य विश्वविजयी, विश्वचारी, विश्वविनोदी तथा इच्छानुरूप फलभोक्ता होता है। मूलाधार कमल के मध्य देवी का ध्यान करके कर्पूर, चन्दन, तथा कस्तूरी से पूजन करने वाला व्यक्ति त्रिकालज्ञ होता है ।।४४-५२।।

जो नर भक्तिपूर्वक चक्रसहित देवी का स्मरण करके उनके विवेका, विभवा, विश्वा, वितता, कामिनी, खेचरी, गर्वा, पुराणा, परमेश्वरी, गौरी, शिवा, अमेया, विमला, विजया, परा, पवित्रा, पीडनी, विद्या, विश्वेशी, शिववल्लभा, अशेषरूपा, स्वानन्दाबुंजाक्षी, अनिंदिता, वरदा, वाक्यदा, वाणी, विविधा, वेदविग्रहा, विद्या, वागीश्वरी, सत्या, संयता, सरस्वती, निर्मला, आनंदरूपा, अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चंद्रिका, कांति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा—इन नामों का पाठ करके एक चुल्लू जल पिये। फिर मातृका सहित विघ्ना, अमृतात्मिका, ताडी, सरस्वती, जिह्वा तथा दीपाकारा का ध्यान करते हुए उस जल का पान कर जाय। एक वर्ष तक, ऐसा करने से अद्भुत पांडित्य की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति नित्य प्रातःकाल शुद्ध मन से ऐसा करता है, वह योगी, ब्रह्मविज्ञानी, शिवयोगी तथा आत्मवेत्ता होता है। उपर्युक्त शक्तियों के साथ अनुग्रहचक्र पर अवस्थित देवी का ध्यान करके चम्पा तथा कमल के पुष्पों से पूजा करने से आरोग्य लाभ होता है ।।५३-६१३।।

चंपकेंदीवरैर्मासादारोग्यमुपजायते । ज्वरभूतग्रहोन्मादशीतकाकामलाक्षिहृत् ॥६२॥
दंतकर्णज्वरशिरःशूलगुल्मादि कुक्षिजाः । व्रणप्रमेहच्छर्द्यर्शोग्रहण्यामत्रिदोषजाः ॥६३॥
सर्वे तथा शमं यांति पूजया परमेश्वरी । द्रव्यं चक्रस्य निर्माणे काश्मीरं समुदीरितम् ॥६४॥
सिंदूरं गैरिकं लाक्षा दरदं चंदनद्वयम् । बिलद्वारे लिखेत्त्र्यस्रं षोडशत्र्यस्रसंयुतम् ॥६५॥
दरदेनास्य मध्यस्थां पूजयेत्परमेश्वरीम् । ताभिस्तच्छक्तिभिः साकं सिद्धद्रव्यैः सुगंधिभिः ॥६६॥
कुसुमैर्मासमात्रेण नागकन्यासमन्वितम् । पातालादिषु लोकेषु रमयत्यनिशं चिरम् ॥६७॥
यक्षराक्षसगंधर्वसिद्धविद्याधरांगनाः । पिशाचा गुह्यका वीराः किन्नराः भुजगास्तथा ॥६८॥
सिद्ध्यंति पूजनात्तत्र तथा तत्प्रोक्तकालतः । किंशुकैर्भूषणावाप्तौ पाटलैर्गजसिद्धये ॥६९॥
रक्तोत्पलैरश्वसिद्धौ कुमुदैश्वरसिद्धये । उत्पलैरुष्ट्रसंसिद्ध्यै तगरैः पशुसिद्धये ॥७०॥
जंबीरैर्महिषावाप्त्यै लकुचैरजसिद्धये । दाडिमैर्निधिसंसिद्ध्यै मधूकैर्गानसिद्धये ॥७१॥
बकुलैरंगनासिद्ध्यै कह्लारैः पुत्रसिद्धये । शतपत्रैर्जयावाप्त्यै केतकैर्वाहनाप्तये ॥७२॥
सौरभाढ्यैः प्रसूनैस्तु नित्यं सौभाग्यसिद्धये । पूजयेन्मासमात्रं वा द्विगुणं त्रिगुणं तु वा ॥७३॥
यावत्फलावाप्तिकांक्षी शर्कराघृतपायसैः । सचक्रपरिवारां तां देवीं सलिलमध्यगाम् ॥७४॥
तर्पयेत्कुसुमैः साघ्र्यैः सर्वोपद्रवशान्तये । घृतैः पूर्णायुषः सिद्ध्यै क्षौद्रैः सौभाग्यसिद्धये ॥७५॥
दुग्धैरारोग्यसंसिद्ध्यै त्रिभिरैश्वर्यसिद्धये । नालिकेरोदकैः प्रीत्यै हिमतोयैर्नृपाप्तये
सर्वार्थसिद्धये तोयैरभिषिचेन्महेश्वरीम् ॥७६॥

परमेश्वरी की पूजा करने से ज्वर, भूत, ग्रह, उन्माद, सर्दी, नेत्ररोग, हृदयरोग, दन्तरोग, कर्णरोग, शिरोव्यथा, उदररोग, व्रण, प्रमेह, बवासीर, संग्रहणी तथा अन्य रोग नष्ट हो जाते हैं। चक्र के निर्माण में कुंकुम, सिंदूर, गेरू, लाक्षा, दरद तथा दोनों चन्दनों का उपयोग करना चाहिये। बिलद्वार में तीन तथा सोलह त्रिकोणों का उल्लेख करे। मध्य में दरद से परमेश्वरी का पूजन करे। इस तरह एक मास तक सुगंधित सिद्ध द्रव्यों तथा पुष्पों से शक्तियों समेत देवी की आराधना करने से, पाताल, आदि लोकों में रात्रिदिव नागकन्याओं के साथ रमण करने की क्षमता प्राप्त होती है और यक्ष, राक्षस, गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर, अंगना, पिशाच, गुह्यक, वीर, किन्नर तथा सर्प उसके वशीभूत हो जाते हैं ॥६२-६८½॥

पलाश पुष्पों से पूजा करने से आभूषणों की प्राप्ति होती है और यावल (न) (जूही) से पूजन करने से हाथी की। रक्त कमल से अश्व की, कुमुद से वाहन की, कमल से ऊँट की, तगर से पशुओं की, नीबू से भैंस की, बड़हल से बकरे की, दाड़िमों से निधि की, महुए से गाने की, मौलसिरी से रमणी की, रक्तकमल से पुत्र की, सौ दल वाले कमल से स्त्री की, केतकी से वाहन की और अत्यन्त सुगंधित कुसुमों से नित्य सौभाग्य की प्राप्ति होती है। पूर्णफल प्राप्ति के लिये एक मास या दो मास या तीन मास तक पूजा करनी चाहिए। अखिल उपद्रवों की शान्ति के लिये शक्कर, घी तथा खीर से चक्र-परिवार सहित सलिलमध्यगामिनी देवी को तृप्त करके पुष्प सहित अर्घ्य प्रदान करे। घृत से देवी को तृप्त करने से पूर्णायु की प्राप्ति होती है और मधु से सौभाग्य की। दूध से आरोग्य की, उक्त तीनों से ऐश्वर्य की, नारियल के जल से प्रेम की, हिमजल से राजा की और जल से सकल प्रयोजनों की प्राप्ति होती है ॥६९-७६॥

पूगोद्याने यजेद्देवीं सिद्धद्रव्यैर्दिवानिशम् । निवसंस्तत्र तत्पुष्पैर्जायते मन्मथोपमः ॥७७॥
पूर्णासु नियतं देवीं कन्यकायां समर्चयन् । कृत्याः परेरिता मंत्रा विमुखांस्तान् ग्रसंति वै ॥७८॥
लिंगत्रयमयीं देवीं चक्रस्थाभिश्च शक्तिभिः । पूजयन्निष्टमखिलं लभतेऽत्र परत्र च ॥७९॥
शतमानकृतैः स्वर्णपुष्पैः सौरभ्यवासितैः । पूजयन्मासमात्रेण प्राग्जन्माद्यैर्विमुच्यते ॥८०॥
तथा रत्नैश्च नवभिर्मासं तु यदि पूजयेत् । विमुक्तसर्वपापौघैस्तां च पश्यति चक्षुषा ॥८१॥
अंशुकैरर्चयेद्देवीं मासमात्रं सुगंधिभिः । मुच्यते पापकृत्यादिदुःखौघैरितरैरपि ॥८२॥
देवीरूपं स्वमात्मानं चक्रं शक्तीः समंततः । भावयन्विषयैः पुष्पैः पूजयंस्तन्मयो भवेत् ॥८३॥
षोडशानां तु नित्यानां प्रत्येकं तिथयः क्रमात् । तत्तत्तिथौ तद्भजनं जपहोमादिकं चरेत् ॥८४॥
घृतं च शर्करा दुग्धमपूपं कदलीफलम् । क्षौद्रं गुडं नालिकेरफलं लाजा तिलं दधि ॥८५॥
पृथुकं चणकं मुद्गपायसं च निवेदयेत् । कामेश्वर्यादिशक्तीनां सर्वासामपि चोदितम् ॥८६॥
आद्याया ललितायास्तु सर्वाण्येतानि सर्वदा । निवेदयेच्च जुहुयाद्वह्नौ दद्यान्नृणामपि ॥८७॥
तत्तद्विद्याक्षरप्रोक्तमौषधं तत्प्रमाणतः । संपिष्य गुटिकीकृत्य ताभिः सर्वं च साधयेत् ॥८८॥
रविवारेऽरुणांभोजैः कुमुदैः सोमवारके । भौमे रक्तोत्पलैः सौम्येवारे तगरसंभवैः ॥८९॥
गुरुवारे सुकह्लारैः शुक्रवारे सितांबुजैः । नीलोत्पलैर्मंदवारे पूजयेदिष्टमादरात् ॥९०॥
निवेदयेत्क्रमात्तेषु रविवारादिषु क्रमात् । पायसं दुग्धकदलीनवनीतसिताघृतम् ॥९१॥
एवमिष्टं समाराध्य देवीं गंधादिभिर्यजेत । ग्रहपीडां विजित्याशु सुखानि च समश्नुते ॥९२॥

पूगीफल के उद्यान में निवास करते हुये उसके पुष्पों तथा सिद्ध द्रव्यों से देवी की अर्चना करने से मनुष्य कन्दर्पतुल्य हो जाता है। कन्या (राशि) संक्रान्ति में पड़ने वाली पूर्णिमा में जो देवी की आराधना करता है, उसकी भेजी हुई कृत्यायें शत्रुओं को खा डालती हैं, चक्रावस्थित शक्तियों के साथ लिंगत्रयमयी देवी की पूजा करने से इहलोक तथा परलोक में सकल कामनाओं की पूर्ति होती है। एक सौ सुवासित स्वर्णपुष्पों से एक मास तक देवी पूजन करने वाला व्यक्ति पूर्व जन्मादि के कर्मों से मुक्त हो जाता है। उसी तरह नौ रत्न-पुष्पों से एक मास तक पूजा करने वाला समस्त पापों से रहित होकर अपने चक्षु से देवी का दर्शन करता है ॥७७-८१॥

सुवासित वस्त्रों से एक मास तक पूजा करने वाला समस्त पापकर्मों तथा दुःखों से मुक्त हो जाता है। अपनी आत्मा को चारों ओर शक्तियों से परिवेष्टित देवी समझकर विषय रूपी पुष्पों से उनका पूजन करते हुए तन्मय हो जाना चाहिए। सोलह नित्याओं में से प्रत्येक की अलग-अलग तिथि है। तत्तत् तिथि में तत्तत् नित्या के लिये जप, होम, भजन आदि करना चाहिये। घी, शक्कर, दूध, पुआ, केला, मधु, गुड़, नारियल, लावा, तिल, दधि, चिड़वा, चना तथा मूंग की खीर कामेश्वरी आदि समस्त शक्तियों को समर्पित करे ॥८२-८६॥

आद्या तथा ललिता को ये वस्तुएँ सदा समर्पण करे, तत्पश्चात् वह्नि में हवन करे। तत्तत् मंत्रों के अक्षर प्रमाण औषधि को पीस कर गोली बनाये और उनसे सबको सिद्ध करे। रविवार में लाल कमलों से, सोमवार में कुमुदों से, मंगल को रक्त कमलों से, बुध को तगर से, वृहस्पति को रक्त कमलों से, शुक्रवार को श्वेत कमलों से और शनिवार को नीलकमलों से आदरपूर्वक इष्ट देवी की पूजा करनी चाहिये। रविवार आदि दिनों में क्रमशः खीर, दूध, केला, मक्खन, चीनी तथा घी समर्पित करना चाहिए ॥८७-९१॥

इस प्रकार इष्ट की पूजा कर गन्ध आदि से देवी की आराधना करने वाला व्यक्ति शीघ्र ग्रहपीड़ा को

अर्धरात्रे तु साध्यां स्त्रीं स्मरन्मदनवह्निना । वह्यमानां हृतस्वांतां मस्तकस्थापितांजलिम् ॥९३॥
विकीर्णकेशीमालोललोचनामरुणारुणाम् । वायुप्रेंखत्पताकास्थपदां पद्मकलेवराम् ॥९४॥
विवेकविधुरां मत्तां मानलज्जाभयातिगाम् । चिंतयन्नर्चयेच्चक्रं मध्ये देवीं दिगंबराम् ॥९५॥
जपादाडिमबंधूककिंशुकाद्यैः समर्चयेत् । अन्यैः सुगंधिशेफालीकुसुमाद्यैः समर्चयेत् ॥९६॥
त्रिसप्तरात्रादायाति प्रोक्तरूपा मदाकुला । यावच्छरीरपातः स्याच्छापो वानपगास्य सा ॥९७॥
पद्मैरक्तैस्त्रिमध्वक्तैर्होमाल्लक्ष्मीमवाप्नुयात् । तथैव कैरवै रक्तैरंगनाः स्ववशं नयेत ॥९८॥
समानरूपवत्सायाः शुक्लाया गोः पयःप्लुतैः । मल्लिकामालतीजातीशतपत्रैर्हुतैर्भवेत् ॥९९॥
कीर्तिविद्याधनारोग्यसौभाग्यवित्तपादिकम् । आरग्वधप्रसूनैस्तु क्षौद्राक्तैर्हवनाद्भवेत् ॥१००॥
स्वर्णादिस्तंभनं शत्रोर्नृपादीनां क्रुधोऽपि च । आज्याक्तैः करवीरोत्थैः प्रसूनैररुणैर्हुतैः ॥१०१॥
रक्तांबराणि वनिता भूपामात्यवशं तथा । भूषावाहनवाणिज्यसिद्धयश्चास्य वांछिताः ॥१०२॥
लवणैः सर्षपैर्गौरैरितरैर्वाथ होमतः । सतैलाक्तैर्निशामध्ये त्वानयेद्वांछितां वधूम् ॥१०३॥
तैलाक्तैर्जुहुयारकृष्णद्वरपुष्पैर्निशांतरे । मासादरातेस्तस्यातिज्वरेण भवति ध्रुवम् ॥१०४॥
आरुष्करैर्घृताभ्यक्तैस्तत्वृबजैर्निशि होमतः । शत्रोर्दाहव्रणानि स्युर्दुःसाध्यानि चिकित्सकैः ॥१०५॥
तथा तत्तैलसंसिक्तैर्बीजैरंकोलकैरपि । मरिचैः सर्षपाज्याक्तैर्निशि होमानुसारतः ॥१०६॥
वांछितां वनितां कामज्वरार्तामानयेद्द्रुतम् । शालिभिश्चाज्यसंसिक्तैर्होमाच्छालीनवाप्नुयात् ॥१०७॥

जीतकर सुखों को प्राप्त करता है। (स्त्री को सिद्ध करने वाला साधक) अर्ध रात्रि के समय साध्य स्त्री का इस प्रकार स्मरण करे, कि वह कामाग्नि से दग्ध हो रही है, चित्त को चुराने वाली हैं, मस्तक पर हाथों को रखे हुई है, उसके बाल बिखरे हुए हैं, नेत्र दीर्घ तथा अरुण हैं, पैर वायु में भूलती हुई पताका पर स्थित हैं, शरीर कमल तुल्य कोमल है, उसमें विवेक का लेश नहो है, वह उन्माद से युक्त है और मान, लज्जा तथा भय का अतिक्रमण करने वाली है ॥९२-९४½॥

ऐसी स्त्री का ध्यान कर चक्र के मध्य में दिगंबरा देवी की जपापुष्प (अड़हुल) दाडिम, बन्धूक (दोपहरिया फूल), पलाशपुष्प तथा अन्य सुगंधित शेफालिका आदि पुष्पों से पूजा करे। इक्कीस रात तक ऐसा करने से उक्त रूपक मद विह्वल स्त्री सिद्ध हो जाती है। त्रिमधुयुक्त रक्त कमलों से हवन करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। रक्त कुमुदों से हवन करने से ललनायें वशीभूत होती हैं। उजले रंग के बछड़े वाली शुक्लवर्णा गौ के दूध से सिंचित मालती, जूही तथा कमल से हवन करने से यश, विद्या, धन, आरोग्य तथा सौभाग्य की प्राप्ति होती है। मधुयुक्त आरग्वध (छितिवन) के कुसुमों से हवन करने से स्वर्ण आदि की प्राप्ति और शत्रु एवम् राजा का स्तंभन होता है ॥९५-१००½॥

घृतयुक्त लाल करवीर से होम करने से वनिता, राजा तथा मन्त्री वशीभूत होते हैं और रक्त वस्त्र, आभूषण, वाहन तथा व्यापार का लाभ होता है। नमक तथा उजले सरसों में तेल मिलाकर निशामध्य में हवन करने से मन-चाही स्त्री की प्राप्ति होती है। तेलयुक्त कृष्ण दरपुष्पों से एक मास तक होम करने से शत्रु को विषम ज्वर हो जाता है। घृतयुक्त भिलावें के बीजों से रात्रि में होम करने से शत्रु को दाह व्रण होते हैं, जिनकी चिकित्सा वैद्य भी नहीं कर पाते। उसी के तेल मिलाये बीज, अंकोल, मरिच तथा सर्षप से रात्रि में हवन करने से शीघ्र कामज्वर पीड़ित रमणी की प्राप्ति होती है। घृताक्त चावल से होम करने से चावल की प्राप्ति होती है ॥१०१-१०७॥

मुद्गैर्मुद्गं घृतैराज्यं सिद्धैरित्थं हुतैर्भवेत् । साध्यर्क्षवृक्षसंभूतां पिष्टपादरजः कृताम् ॥१०८॥
राजीमरीचिलोणोत्थां पुत्तलीं जुहुयान्निशि । प्रपदाभ्यां च जंघाभ्यां जानुभ्यामूरुयुग्मतः ॥१०९॥
नाभेरधस्ताद्धृदयाद्भिन्नेनाकण्ठतस्तथा । शिरसा च सुतीक्ष्णेन छित्वा शस्त्रेण वै क्रमात् ॥११०॥
एवं द्वादशधा होमान्नरनारीनराधिपाः । वश्या भवंति सप्ताहाज्ज्वरार्त्तीश्चास्य वांछया ॥१११॥
पिष्टेन गुडयुक्तेन मरिचैर्जीरकैर्युताम् । कृत्वा पुत्तलिकां साध्यनामयुक्तामथो हृदि ॥११२॥
सनामहोमसंपातघृते पाचयतां पुनः । स्पृशन्निजकराग्रेण सहस्रं प्रजपेन्मनुम् ॥११३॥
अभ्यर्च्य तद् घृताभ्यक्तं भक्षयेत्तद्धिया जपन् । नरनारीनृपास्तस्य वश्याःस्युर्मरणावधि ॥११४॥
शक्त्यष्टगंधं संपिष्य कन्यया शिशिरे जले । तेन वै तिलकं भाले धारयन्वशयेज्जगत् ॥११५॥
शालितंदुलमादाय प्रस्थं भांडे नवे क्षिपेत् । समानवर्णवत्साया रक्ताया गोः पयस्तथा ॥११६॥
द्विगुणं तत्र निक्षिप्य श्रपयेत्संस्कृतेऽनले । घृतेन सिक्तं सिक्थं तु कृत्वा तत्ससितं करे ॥११७॥
विधाय विद्यामष्टोर्ध्वशतं जप्त्वा हुनेत्ततः । एवं होमो महालक्ष्मीसावहेत्प्रतिपत्कृतः ॥११८॥
शुक्रवारेष्वपि तथा वर्षान्नृपसमो भवेत् । पंचम्यां तु विशेषेण प्राग्वद्धोमं समाचरेत् ॥११९॥
तस्यां तिथौ त्रिमध्वक्तैर्मल्लिकाद्यैः सितैर्हुनेत् । अन्नाज्याभ्यां च नियतं हुत्वान्नाढ्यो भवेन्नरः ॥१२०॥
यद्यद्धि वांछितं वस्तु तत्तत्सर्वं तु सर्वदा । घृतहोमादवाप्नोति तथैव तिलतंडुलैः ॥१२१॥
अरुणैः पंकजैर्होमं कुर्वंस्त्रिमधुराप्लुतैः । मंडलाल्लभते लक्ष्मीं महतीं श्लाघ्यविग्रहाम् ॥१२२॥
कह्लारैः क्षौद्रसंयुक्तैः पूर्णाद्यं तद्दिनावधि । जुहुयान्नित्यशो भक्त्या सहस्रं विकचैः शुभैः ॥१२३॥
स तु कीर्ति धनं पुत्रान्प्राप्नुयान्नात्र संशयः । चंपकैः क्षौद्रसंसिक्तैः सहस्रहवनाद्ध्रुवम् ॥१२४॥

मूंग से होम करने से मूंग की, घृत से घी की और सर्षप से सर्षप की प्राप्ति होती है। साध्यवृक्ष के पुष्पराज, राई, मरिच, तथा लोनी के साग से रात्रि में हवन करने से नर, नारी, तथा नराधिप एक सप्ताह में वशीभूत होते हैं और साधक से इच्छानुसार उन्हें ज्वरपीड़ा भी हो जाती है। यहां होम चरणों के अग्रभाग, जानु, ऊरु, नाभि, हृदय, सिर, कंठ तथा अत्यन्त तेज शिलाशस्त्र से करना चाहिये। गुड़, मरिच तथा जीरे को पीस कर गुड़िया बनाये। उस पर साध्य वस्तु का नाम लिखकर उसे घी में पका डाले। फिर कराग्र से उसका स्पर्श करते हुए एक सहस्र मन्त्र का जप करे। पुनः पूजा करके उसका भक्षण करे। ऐसा करने से मरण पर्यंत नर, नारियां तथा राजा वशीभूत होते हैं। अष्टगन्धों को शीतल जल से पीस कर किसी कुमारी के द्वारा ललाट पर तिलक लगाये। ऐसा करने से जगत् वशीभूत होता है ॥१०८-११५॥

एक सेर चावल को लाल रंग के बछड़ वाली रक्तवर्णा गौ के दूध के साथ नवीन पात्र में संस्कृत अग्नि पर पका कर उसमें घी चीनी मिलाकर एक सौ आठ बार मन्त्र पूर्वक हवन करे। प्रतिपदा में ऐसा करने से महालक्ष्मी की प्राप्ति होती है। शुक्रवार को भी इस तरह करने से नृप की समता प्राप्त होती है। पंचमी में विशेष करके पूर्ववत् होम करना चाहिए। उस तिथि में त्रिमधुयुक्त मालती से हवन करना चाहिये। अन्न-घी से नियम-पूर्वक होम करने से मनुष्य धनाढ्य होता है। घृत एवम् तिल-तंदुल से होम करने से समस्त अभिलाषाओं की पूर्ति होती है। त्रिमधुयुक्त रक्त कमलों से हवन करने से महालक्ष्मी की प्राप्ति होती है। जो पूर्णिमा से पूर्णिमा तक मधुयुक्त विकसित रक्त कमलों से भक्तिपूर्वक नित्य सहस्र बार हवन करता है, उसे कीर्ति धन तथा पुत्रों की प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं ॥११६-१२३½॥ नारद! जो एक मास तक मधुयुक्त सहस्र चंपकपुष्पों से होम

लभते स्वर्णनिष्काणां शतं मासेन नारद । पाटलैर्घृतसंसिक्तैस्त्रिसहस्रं हुतैस्तथा ॥१२५॥
दर्शादिमासाल्लभते चित्राणि वसनानि च । कर्पूरचंदनाद्यानि सुगन्धानि तु मासतः ॥१२६॥
वस्तूनि लभते हृद्यैरन्यैर्भोगोपयोगिभिः । शालिभिः क्षीरसिक्ताभिः सप्तमीषु शतं हुतम् ॥१२७॥
तेन शालिसमृद्धिः स्यान्मासैः षड्भिरसंशयम् । तिलैर्हुतैस्तु दिवसैर्वर्षादारोग्यमाप्नुयात् ॥१२८॥
स्वजन्मर्क्षत्रिषु तथा दूर्वाभिर्जुहुयान्नरः । निरांतको महाभोगः शतं वर्षाणि जीवति ॥१२९॥
गुडूचीतिलदूर्वाभिस्त्रिषु जन्मसु वा हुनेत् । तेनायुःश्रीयशोभोगपुण्यनिध्यादिमान्भवेत् ॥१३०॥
घृतपायसदुग्धैस्तु हुतैस्तेषु त्रिषु क्रमात् । आयुरारोग्यविभवैर्नृपामात्यो भवेत्तथा ॥१३१॥
सप्तम्यां कदलीहोमात्सौभाग्यं लभतेऽन्वहम् । दूर्वात्रिकैस्तु प्रादेशमानैस्त्रिस्वादुसंयुतैः ॥१३२॥
जुहुयाद्दिनशो घोरे सन्निपातज्वरे तथा । तद्दिनेषु जपेद्विद्यां नित्यशः सलिलं स्पृशन् ॥१३३॥
सहस्रवारं तत्तोयैः स्नानं पानं समाचरेत् । पाकाद्यमपि तैरेव कुर्याद्रोगविमुक्तये ॥१३४॥
साध्यर्क्षवृक्षसंचूर्णं त्र्यूषणं सर्षपं तिलम् । पिष्टं च साध्यपादोत्थरजसा च समन्वितम् ॥१३५॥
कृत्वा पुत्तलिकां सम्यग्धृदये नामसंयुताम् । प्रागवच्छित्वायसैस्तीक्ष्णैः शस्त्रैः पुत्तलिकां हुनेत् ॥१३६॥
एवं दिनैः सप्तभिस्तु साध्यो वश्यो भवेद्दृढम् । तथाविधां पुत्तलिकां कुंडमध्ये निखन्य च ॥१३७॥
उपर्यग्निं निधायाथ विद्यया दिनशो हुनेत् । त्रिसहस्रं त्रियामायां सर्षपैस्तद्रसाप्लुतैः ॥१३८॥
शतयोजनदूरादप्यानयेद्वनितां बलात् । वशयेद्वनितां होमात्कौशिकैर्मधुमिश्रितैः ॥१३९॥
नारिकेरफलोपेतैर्गुडैर्लक्ष्मीमवाप्नुयात् । तथाज्यसिक्तैः कह्लारैः क्षीराक्तैररुणोत्पलैः ॥१४०॥

करता है, वह सौ स्वर्णमुद्राओं को प्राप्त करता है। जो अमावस्या से लेकर एक मास तक तीन हजार घृतयुक्त पाटल-पुष्पों से हवन करता है, उसे चित्रित वस्त्र, कर्पूर, चन्दन, सुगंधित द्रव्य तथा अन्य भोगोपयोगी सुन्दर वस्तुओं का लाभ होता है। सप्तमी तिथि में दूध युक्त चावल से होम करने से छह मासों में मनुष्य के पास चावल की समृद्धि हो जाती है। तिल से होम करने से एक वर्ष में आरोग्य लाभ होता है। जो नर अपने जन्म-नक्षत्र के दिन दूर्वा से, हवन किया करता है, वह महाभोगी तथा सुप्रसन्न रहते हुए सौ वर्षों तक जीता हैं। गुडूच, तिल तथा दूर्वा से जन्म नक्षत्रों के दिन हवन करने से आयु, लक्ष्मी, यश, भोग, पुण्य तथा निधि की प्राप्ति होती है ॥१२४-१३०॥

घी, खीर तथा दूध से जन्म नक्षत्रों में होम करने से आयु, आरोग्य तथा ऐश्वर्य का लाभ और राजा एवम् मन्त्री वशीभूत होते हैं सप्तमियों में केले से होम करने वाला सौभाग्य को प्राप्त करता है। सन्निपात ज्वर के नाश के लिए हर्रे, बहेड़े और आंवले से हवन करना चाहिये। रोगमुक्ति के लिये मन्त्र का सहस्र बार जप करके जल का स्पर्श करे और उसी जल से स्नान, पान तथा भोजन बनाये। साध्यवृक्ष के चूर्ण, सोंठ, मरिच तथा पीपल के चूर्ण, सरसों और तिल को मिला कर पुत्तलिका बनाये। उस (पुतलिका) के हृदय पर साध्य का नाम लिख दे। फिर पहले की तरह तीक्ष्ण शास्त्रों से उस पुतलिका को काटकर हवन करे। सात दिनों तक ऐसा करने से साध्य निश्चय ही वशीभूत हो जाता है ॥१३१-१३६½॥

उस पुत्तलिका को कुंड के मध्य में गाड़कर ऊपर से आग लगा कर दिन में मन्त्र पूर्वक तीन सहस्र बार हवन करे। फिर रात्रि में उसके ऊपर सरसों के तेल तथा सरसों चढ़ाये। ऐसा करने से वह सौ योजन दूर से भी वनिता को बलपूर्वक ला देती है। मधु मिश्रित गुग्गुल से होम करने से रमणी वशीभूत होती है। गुड़ तथा

त्रिमध्वक्तैश्चंपकैश्च प्रसूनैर्बकुलोद्भवैः । मधूकजैः प्रसूनैश्च हुतैः कन्यामवाप्नुयात् ॥१४१॥
पुन्नागजैर्हुतैर्वस्त्राण्याज्यैरिष्टमवाप्नुयात् । माहिषैर्महिषीराजैरजान् गव्यैश्च गास्तथा ॥१४२॥
अवाप्नोति हुतैराज्यैः रत्नै रत्नं च साधकः । शालिपिष्टमयीं कृत्वा पुत्तलीं ससितां ततः ॥१४३॥
हृद्देशन्यस्तनामार्णां पचेत्तैलाज्ययोर्निशि । तन्मनाश्च दिवारात्रौ विद्याजप्तां तु भक्षयेत् ॥१४४॥
सप्तरात्रप्रयोगेण नरो नारी नृपोऽपि वा । दासवद्वशमायाति चित्तप्राणादि चार्पयेत् ॥१४५॥
हयारिपुष्पैररुणैः सितैर्वा जुहुयात्तथा । त्रिसप्तरात्रान्महतीमवाप्नोति श्रियन्नरः ॥१४६॥
छागमांसैस्त्रिमध्वक्तैर्होमात्स्वर्णमवाप्नुयात् । क्षीराक्तैः सस्यसंपन्नां भुवमाप्नोति मंडलात् ॥१४७॥
पद्माक्षैर्हवनाल्लक्ष्मीमवाप्नोति त्रिभिर्दिनैः । बिल्वैर्दशांशं जुहुयान्मंत्राद्यैः साधने जपे ॥१४८॥
एवं संसिद्धमंत्रस्तु मंत्रितैश्चुलुकोदकैः । फणिदष्टमृतानां तु मुखे संताड्य जीवयेत् ॥१४९॥
तत्कर्णयोर्जपन्विद्यां यष्ट्या वा जपसिद्धया । संताड्य शीघ्रं सहसा मृतमुत्थापयेदिति ॥१५०॥
कृत्वा योनिं कुंडमध्ये तत्राग्नौ विधिवद्धुनेत् । तिलसर्षपगोधूमशालिधान्ययवैर्हुनेत् ॥१५१॥
त्रिमध्वक्तैरेकशो वा समेतैर्वा समृद्धये । बकुलैश्चंपकैरब्जैः कह्लारैररुणोत्पलैः ॥१५२॥
कैरवैर्मल्लिकाकुन्दमधुकैरिंदिरासये । अशोकैः पाटलैर्बिल्वैर्जातीविकंकतैः सितैः ॥१५३॥
नवनीलोत्पलैरश्वरिपुजैः कर्णिकारजैः । होमाल्लक्ष्मीं च सौभाग्यं निधिमायुर्यशो लभेत् ॥१५४॥
दूर्वां गुडूचीमश्वत्थं वटमारग्वधं तथा । सितार्कप्लक्षजं हुत्वा चिरान्मुच्येत रोगतः ॥१५५॥

नारियल से होम करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। घृतयुक्त श्वेत कमल, दुग्धयुक्त रक्तकमल, त्रिमधुयुक्त चंपक, मौलसिरी तथा मधूक के पुष्पों से होम करने से कन्या की प्राप्ति होती है ॥१३७-१४१॥

पुंनाग के कुसुमों से होम करने से वस्त्रों की प्राप्ति होती है और घृत से इष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है। भैंस के घी से हवन करने से भैंस की, बकरी के घी से बकरे की, गौओं के घी से गायों की और रत्न से रत्नों को प्राप्ति होती है। चीनी के साथ चावल को पीस कर पुत्तलिका बनाये। उसके हृदय पर साध्य का नाम लिख कर रात्रि में उसे तेल और घी में पकाये। फिर दिन में मन्त्र का जप करके उसका भक्षण करे। इस प्रकार सात रात्रियों तक प्रयोग करने से नर या नारी या राजा दासवत् वश में आ जाता है और अपना चित्त, प्राण आदि समर्पित कर देता है ॥१४२-१४५॥ श्वेत या रक्त करवीर के पुष्पों से इक्कीस रात तक होम करने से महालक्ष्मी की प्राप्ति होती है। त्रिमधुयुक्त छाग के मांस से हवन करने से सुवर्ण-लाभ होता है। क्षीरयुक्त छागमांस से होम करने से बारह दिनों में सस्यपूर्ण भूमि का लाभ होता है। पद्मों से होम करने से तीन दिनों में लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। मन्त्र जप करने के उपरान्त उसका दशांश हवन करना चाहिये। देवी के मंत्र सिद्ध हो जाने पर साधक सांप के काटने से मरे हुए व्यक्ति के मुख में एक चूल्लू जल देकर जिला सकता है अथवा मृत व्यक्ति के कानों में मंत्र जप कर लाठी की ठोकर से एकाएक उसे उठा सकता है। ऐश्वर्य के लिए कुंड के मध्य में योनिमुद्रा बना कर वहां विधिपूर्वक त्रिमधुयुक्त तिल, सरसों, गेहूँ, चावल तथा यव से हवन करे। लक्ष्मी प्राप्ति के लिए मौलसिरी, चंपक, श्वेतकमल, रक्तकमल, कुमुद, मालती, कुंद तथा मधूक-पुष्पों से होम करना चाहिये ॥१४६-१५२½॥

अशोक, पाटल, बिल्व, जूही, श्वेत विकंकत, नीलकमल, करवीर, तथा कनैल से होम करने से लक्ष्मी सौभाग्य, आयु, यश तथा निधि की प्राप्ति होती है। दूर्वा, गुडूच, पीपल, वट, छतिवन सफेद आक तथा पाकर से हवन करने से रोगों का नाश होता है। इक्षु, जंबु, नारियल तथा मोचागुड से होम करने वाला साधक निश्चय

इक्षुजंबूनालिकेरमोचागुडसितायुतैः । अचलां लभते लक्ष्मीं भोक्ता च भवति ध्रुवम् ॥१५६॥
सर्षपाज्यैर्हुते मृत्युः काष्ठाग्नौ वैरिमृत्यवे । चतुरंगुलजैर्होमाच्चतुरंगबले रिपोः ॥१५७॥
सप्ताहाद्रोगदुःखार्तिर्भवत्येव न संशयः । नित्यं नित्यार्चनं कुर्यात्तथा होमं घृतेन वै ॥१५८॥
विद्याभिमंत्रितं तोयं पिबेत्प्रातस्तदाप्तये । चंदनोशीरकर्पूरकस्तूरीरोचनान्वितैः ॥१५९॥
काश्मीरकालागुरुभिर्मृगमदैरन्यैरपि । पूजयेच्च शिवामेतैर्गंधैः सर्वार्थसिद्धये ॥१६०॥
सर्वाभिरपि नित्याभिः प्रातर्मातृकया समम् । त्रिजप्ताभिः पिबेत्तोयं तथा वाक्सिद्धये शिवम् ॥१६१॥
विदध्यात्साधनं प्राग्वद्दुर्गलक्षं पयोव्रतः । त्रिस्वादुसिक्तै रक्तैरंबुजैर्हवनं चरेत् ॥१६२॥
जपतर्पणहोमार्चाभिः सिद्धमनुर्नरः । कुर्यादुक्तान्प्रयोगांश्च न चेत्तन्मनुदेवताः ॥१६३॥
प्राणांस्तस्य प्रसंत्येव कुपितास्तत्क्षणान्मुने । अनया विद्यया लोके यदसाध्यं न तत्क्वचित् ॥१६४॥
अरण्यवटमूले च पर्वताग्रगुहासु च । उद्यानमध्यकांतारे मातृपादपमूलतः ॥१६५॥
सिंधुतीरे वने चैता यक्षिणीः साधयेन्नरः । कमलैः कैरवै रक्तैः सितैः सौगंधिकोत्पलैः ॥१६६॥
सुगंधिशेफालिकया त्रिमध्यक्तैर्यथाविधि । होमात्सप्तसु वारेषु तन्मंडलत एव वै ॥१६७॥
विजयं समवाप्नोति समरे द्वंद्वयुद्धके । मल्लयुद्धे शस्त्रयुद्धे वादे द्यूताह्वयेऽपि च ॥१६८॥
व्यवहारेषु सर्वत्र जयमाप्नोति निश्चितम् । चतुरंगुलजैः पुष्पैर्होमात्संस्तंभयेदरीन् ॥१६९॥
तथैव कर्णिकारोत्थैः पुन्नागोत्थैर्नमेरुजैः । चंपकैः केतकै राजवृक्षजैर्माधवोद्भवैः ॥१७०॥
प्राग्वद्द्वारेषु जुहुयात्क्रमात्पुष्पैस्तु सप्तभिः । प्रोक्तेषु स्तंभनं शत्रोर्भंगो वा भवति ध्रुवम् ॥१७१॥

ही अचल लक्ष्मी को प्राप्त कर भोक्ता होता है । शत्रु की मृत्यु के लिये सरसों तथा घी से चिता के अग्नि में हवन
करना चाहिए । आरग्वध (छतिवन) से होम करने से शत्रु की सेना को एक सप्ताह के भीतर दुःख-पीड़ा होने
लगती है, इसमें संशय नहीं ॥१५३-१५७½॥ विद्या की प्राप्ति के लिये नित्य नित्याओं की अर्चना कर घी से हवन,
करके उनके मन्त्र से अभिमंत्रित जल का पान करना चाहिये। सकल कामना सिद्धि के लिये चन्दन
उशीर (खशखश), कपूर, कस्तूरी, गोरोचन, कुंकुम, कालागुरु तथा सुगंधित द्रव्यों से शिवा की पूजा करनी
चाहिये । वाक्सिद्धि के लिये समस्त नित्याओं के साथ शक्तियों का पूजन करके उनके मंत्रों का जप करे और
उनसे अभिमंत्रित जल का पान करे। तदनन्तर त्रिमधु युक्त रक्तकमलों से हवन करे जप, तर्पण होम तथा
पूजन से मन्त्रों को सिद्ध करके साधक पूर्वोक्त प्रयोगों को करे। अन्यथा कुपित देवियां उसके प्राण ले
लेती हैं। लोक में तन्त्र विद्या से जो वस्तु सिद्ध नहीं होगी, वह किसी से भी नहीं हो सकती ॥१५८-१६४॥

वन में वटवृक्ष की जड़ में, पर्वत की चोटी पर या गुफा में, उद्यान में मातृवृक्ष के मूल में, समुद्रतट पर
यक्षिणियों को सिद्ध करना चाहिए। कमल, कैरव, रक्त, तथा श्वेत कमल और त्रिमधुयुक्त सुगंधित शेफालिका
से विधिपूर्वक होम करना चाहिये। सात दिन इस तरह होम करने से समर में द्वंद्वयुद्ध, मल्लयुद्ध, शस्त्रयुद्ध वाद,
जुआ, व्यवहार सर्वत्र विजय प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं। आरग्वध से होम करने से शत्रुओं का स्तंभन
होता है। कर्णिकार, पुन्नाग, सुरपुन्नाग, चंपक, केतकी, राजवृक्ष तथा माधव के पुष्पों से हवन करने से शत्रु का
स्तंभन या नाश हो जाता है, इसमें संशय नहीं ॥१६५-१७१॥

नक्षत्रवृक्ष की अग्नि में सरसों तथा घी मिलाये उसी वृक्ष की समिधा से हवन करने से शत्रु तुरन्त पादा-
भिवादन करने लगते हैं। पहिले सम्यक् प्रकार से दिनकर की अर्चना करके मृत्युकाष्ठ की अग्नि में मृत्युपत्र,

शत्रोर्नक्षत्रवृक्षाग्नौ तत्समिद्भिस्तु होमतः । सर्पिराज्यप्लुताभिस्ते प्रणमंत्येव पादयोः ॥१७२॥
मृत्युकाष्ठानले मृत्युपत्रपुष्पफलैरपि । समिद्भिर्जुहुयात्सम्यग्वारेशार्चनपूर्वकम् ॥१७३॥
अरातेश्चतुरंगं तु बलं रोगार्दितं भवेत् । तेनास्य विजयो भूयान्निधनेनापि वा पुनः ॥१७४॥
अर्कवारेऽर्कजैरिध्मैः समिद्धेऽग्नौ तदुद्भवैः । पत्रैः पुष्पैः फलैः काष्ठैर्मूलैश्चापि हुनेत्क्रमात् ॥१७५॥
सवर्णाश्वाक्तसाध्या घृतसिक्तैस्तु मण्डलात् । अरातिविड्भुजो भूत्वा कुंडे न्यस्ते विधानतः ॥१७६॥
पलाश्रते वा रोगार्तः प्रणमेद्वा भयान्वितः । पलाशेध्मानले तस्य पंचांगैस्तद्घृताप्लुतैः ॥१७७॥
होमेन सोमवारे च भवेत्प्राग्वन्न संशयः । खादिरेध्मानले तस्य पंचांगैस्तद्घृताप्लुतैः ॥१७८॥
वारे भौमस्य हवनात्तदाप्नोति सुनिश्चितम् । अपामार्गस्य सौम्येऽह्नि पिप्पलस्य गुरोर्दिने ॥१७९॥
उदुम्बरस्य भृगुजे शम्या मंदेऽह्नि गोघृतैः । शुभ्रपीतसितश्यामवर्णाद्याः पूर्ववत्तथा ॥१८०॥
तत्फलं समवाप्नोति तत्समिद्दीपितेऽनले । प्रतिपत्तिथिमारभ्य पंचम्यंतं क्रमेण वै ॥१८१॥
शालीचणकमुद्गैश्च यवमाषैश्च होमतः । माहिषाज्यप्लुतैस्ताभिस्तिथिभिः समवाप्नुयात् ॥१८२॥
षष्ठ्यादिसप्तम्यंतं तु चाजाभवघृतैस्तथा । प्रागुक्तैर्निस्तुषैर्होमात्प्रागुक्तफलमाप्नुयात् ॥१८३॥
तदूर्ध्वं पंचके श्वेतैः समस्तैश्च तिलद्वयैः । सितान्नैः पायसैः सिक्तैराविकैस्तु घृतैस्तथा ॥१८४॥
हवनात्तदवाप्नोति यदादौ फलमीरितम् । एवं नक्षत्रवृक्षोत्थवह्नौ तैस्तैर्मधुप्लुतैः ॥१८५॥
हवनादपि तत्प्राप्तिर्भवत्येव न संशयः । विद्यां संसाध्य पूर्वं तु पश्चात्कुर्यादशेषतः ॥१८६॥
प्रयोगान्साधयेद्धीमान् मंगलायाः प्रसादतः । संपूज्य देवतां विप्र कुमारीं कन्यकां तु वा ॥१८७॥
सशुभावयवां मुग्धां स्नातां धौतांबरां शुभाम् । तथाविधं कुमारं वा संस्थाप्याभ्यर्च्य विद्यया ॥१८८॥
स्पृष्टशीर्षो जपेद्विद्यां शतवारं तथार्चयेत् । प्रसूनैररुणैः शुभ्रैः सौरभाढ्यै रथापि वा ॥१८९॥

पुष्प, फल तथा समिधाओं से हवन करने से रिपु की चतुरंगिणी सेना रोगाक्रान्त हो जाती है। उससे साधक की विजय होती है तथा शत्रु का निधन होता है। रविवार तथा सोमवार को घृतयुक्त आक की समिधा से पलाश-समिधा की अग्नि में हवन करने से शत्रुनाश होता है, इसमें संशय नहीं, मंगलवार को खैर की समिधा से बने अग्नि में उसी की समिधा तथा घृत से हवन करने से निश्चय ही शत्रुओं का नाश होता है। बुध को अपामार्ग से, बृहस्पति को पीपल से, शुक्र को गूलर से और शनि को शमीवृक्ष की समिधा से गोघृत मिलाकर हवन करने से पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है ॥१७२-१८०३॥ प्रतिपदा से लेकर पंचमी तक क्रमशः चावल, चना, मूंग, यव तथा माष से भैंस के घी के साथ होम करने से पूर्वोक्त फल मिलता है। षष्ठी से लेकर सप्तमी तक बकरी के घृत के साथ उक्त वस्तुओं से होम करने से पूर्वोक्त फल की प्राप्ति होती है। भेड़ के घी के साथ तिल, चीनी, तथा खीर से होम करने से पूर्वोक्त फल मिलता है। नक्षत्रवृक्ष की समिधा से बने अग्नि में मधुयुक्त पूर्वोक्त वस्तुओं से हवन करने पर भी निःसंदेह पूर्वोक्त फल मिलता है। बुद्धिमान् व्यक्ति पहले मंत्र को सिद्ध कर पश्चात् मंगला की कृपा से अशेष प्रयोगों को करे ॥१८१-१८६३॥

विप्र! साधक देवता का पूजन कर शुभ अंगों वाली, मुग्धा, स्नाता तथा धौतवस्त्रा कुमारीकन्या तथा वैसे ही कुमार की पूजा करे। मन्त्र से शिर को छूकर सौ बार मन्त्र का जप करे सुगंधिपूर्ण और रक्त, श्वेत पुष्पों तथा गुग्गुल, धूप आदि से कुमारी-कुमार की अर्चना करे। तदनन्तर देवी के मंदिर में भक्तिपूर्वक उपचारों से उनकी पूजाकर मन्त्र का जप करे। तत्पश्चात् देवी से जो प्रश्न किया जायेगा, उसका उत्तर उनसे मिल जाएगा।

दद्याद्गुग्गुलधूपं च यावत्कर्मावसानकम् । ततो देव्या समाविष्टे तस्मिन्संपूज्य भक्तितः ।।१८०।।
ततस्तामुपचारैस्तैः प्रागुक्तैर्विद्यया व्रती । प्रलपंस्तां ततः पृच्छेदभीष्टं कथयेच्च सा ।।१८१।।
भूतं भवद्भविष्यं च यत्तस्यमनसि स्थितम् । जन्मांतराण्यतीतानि सर्वं सा पूजिता वदेत् ।।१८२।।
ततस्तां प्राग्वदभ्यर्च्य त्वाल्मन्युद्वास्य तां जपेत् । सहस्रवारं स्थिरधीः पूर्णात्मा विचरेत्सुखी ।।१८३।।
मधुरत्रयसंसिक्तैररुणैरंबुजैः श्रियम् । प्राप्नोति मंडलं होमात्सितैस्तैश्च महद्यशः ।। १८४।।
क्षौद्राक्तैरुत्पलै रक्तैर्हवनात्सोऽकालतः । सुवर्णं समवाप्नोति निधिं वा वसुधां तु वा ।।१८५।।
क्षीराक्तैः कैरवैर्होमात्प्रोक्तं काममवाप्नुयात् । धान्यानि विविधान्याशु सुभगः स भवेन्नरः ।।१८६।।
आज्याक्तैरुत्पलैर्होमाद्वांछितं समवाप्नुयात् । तदक्तैरपि कह्लारैर्हवनाद्राजवल्लभः ।।१८७।।
पलाशपुष्पैस्त्रिस्वादुयुक्तैस्तत्कालहोमतः । चतुर्विधं तु पांडित्यं भवत्येव न संशयः ।।१८८।।
लाजैस्त्रिमधुरोपेतैस्तत्कालहवनेन सै । कन्यकां लभते पत्नीं समस्तगुणसंयुताम् ।।१८९।।
नालिकेरफलक्षोदं ससितं सगुडं तु वा । क्षौद्राक्तं जुहुयात्सद्वयत्नाद्धनदोपमः ।।२००।।
तथैवान्नाज्यहोमेन सतंडुलतिलैरपि । प्रसूनैररुणैस्तद्वत्तथा बंधूकसंभवैः ।।२०१।।
सितैः प्रसूनैर्वाक्सिद्धिं हवनात्समवाप्नुयात् । सितरक्तैस्तु मिलितैरायुरारोग्यमाप्नुयात् ।।२०२।।
दूर्वात्रिकैस्त्रिमध्वक्तैर्हवनात्स जयेच्च तान् । तथा गुडूच्या होमेन पायसेन तिलेन च ।।२०३।।
श्रीखंडपंककर्पूरमिलितैः शतपत्रकैः । हवनाच्छ्रियमाप्नोति यावदन्वयगा भवेत् ।।२०४।।
कुंकुमं हिमतोयेन पिष्ट्वा कर्पूरसंयुतम् । तत्पंकमर्दितैर्होमात्कह्लारैर्विकचैः शुभैः ।।२०५।।
राजकल्पः श्रिया भूयाज्जीवेद्वर्षशतं भुवि । निःसपत्नो निरातंको निर्द्वंद्वो निर्मलाशयः ।।२०६।।

भूत, भविष्यत्, वर्तमान जो कुछ मन में रहेगा, वह सब मालूम हो जायगा। इस प्रकार पूजिता होने पर देवी जन्म-जन्मान्तर की बात भी बता देती हैं। तदुपरान्त पूर्ववत् देवी की अर्चना कर सहस्र बार मंत्र का जप करे। ऐसा करने से स्थिर बुद्धि, पूर्णात्मा साधक सुख से विहार करता है ।।१८७-१९०।।

त्रिमधुयुक्त रक्त तथा श्वेत कमलों से होम करने से लक्ष्मी एवम् महायश की प्राप्ति होती है। मधुयुक्त रक्तकमलों से हवन करने से सुवर्ण या निधि या भूमि की प्राप्ति होती है दुग्धयुक्त कैरवों से होम करने से कामना पूर्ण होती है और वह मनुष्य शीघ्र सौभाग्यवान् तथा धन-धान्य संपन्न हो जाता है। घृतयुक्त रक्त कमलों से हवन करने से वांछित फल की प्राप्ति होती है। श्वेत-रक्त कमलों से हवन करने वाला व्यक्ति राजा का प्रिय होता है। त्रिस्वादुयुक्त पलाशपुष्पों से होम करने से तत्काल चारों प्रकार के पांडित्यों की प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं ।।१९१-१९८।। त्रिमधुयुक्त लावा से होम करने से सर्वगुणसंपन्ना कन्या की प्राप्ति होती है। चीनी, गुड़, तथा मधु सहित नारियल से होम करने वाला व्यक्ति कुबेर के तुल्य होता है। अन्न तथा घी से होम करने से, तंडुल तथा तिल से होम करने से और रक्त पुष्प तथा दोपहरिया पुष्पमे हवन करने से भी पूर्वोक्त फल मिलता है। श्वेत पुष्पों से हवन करने से वाक्सिद्धि होती है। मिश्रित, श्वेत तथा रक्त पुष्पों से हवन करने से आयु और आरोग्य की प्राप्ति होती है। त्रिमधुयुक्त दूर्वा से हवन करने से शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है। गुडूच, खीर तथा तिल से होम करने से भी पूर्वोक्त फल मिलता है। श्रीखंड चंदन कपूर तथा कमल से एक साथ हवन करने से लक्ष्मी पीछे-पीछे चलती है। १९९-२०४।। हिम जल से कुंकुम को पीस कर उसमें कपूर मिलाकर रक्त कमलों पर लेप करने से राजा के तुल्य लक्ष्मी की प्राप्ति होती हैं और वह व्यक्ति पृथ्वी पर शत्रुहीन दुःखहीन, निर्द्वन्द्व तथा निर्मलचित्त होकर

इक्षुकांडस्य शकलैर्हवनाद्वस्त्रमाप्नुयात् । तथैव करवीरोत्थैः प्रसूनैररुणैः सितैः ॥२०७॥
क्षौद्राक्तैः पाटलापुष्पैर्हवनाद्वशयेद्वधूः । तथैव पंकजैर्होमाद्रूपाजीवां वशं नयेत् ॥२०८॥
सरूपवत्सासितगोक्षीराक्तसितहोमतः । लभतेऽनुपमां लक्ष्मीमपि पापिष्ठचेतनः ॥२०९॥
सौवीराक्तैस्तु कार्पासबीजस्तत्कालहोमतः । अर्द्धेन्दुकुंडे नियतं वशगा रिपवो मुने ॥२१०॥
अरिष्टपत्रैस्तद्बीजैस्तद्वह्नौ तैस्तथा हुतैः । मृत्युबीजैर्निम्बतैलसिक्तैर्होमान्निहंति तान् ॥२११॥
रोगार्तास्तु रुगांस्तद्वत्पंचगव्यैर्हुतैर्ध्रुवम् । अक्षबीजैस्तु तैलाक्तैर्होमः सर्वविनाशनः ॥२१२॥
करंजबीजैः संसिक्तैर्होमाद्वैरी पिशाचवान् । तथैवाक्षतरूद्भूतपंचांगहवनादपि ॥२१३॥
निंबतैलान्वितैरक्षद्रुमबीजैस्तु होमतः । तद्दिने स्यादपस्मारी वैरी भवति निश्चितम् ॥२१४॥
अरातेर्जन्मनक्षत्रवृक्षेंधनगतेऽनले । तद्योनिपिशितैस्तैश्च हवनान्मृत्युकृद्रिपोः ॥२१५॥
पद्माक्षबीजैः सर्षपतैलाक्तैर्हवनात्तथा । जायंते वैरिणः कुष्ठरोगा देहविलोपकाः ॥२१६॥
मरिचैः सर्षपैर्होमात्तैलाक्तैर्मध्यराजके । दाहज्वरेण ग्रस्तः स्यादरातिस्तद्दिने ध्रुवम् ॥२१७॥
एवं निग्रहहोमेषु स्वरक्षार्थं तथान्वहम् । स्निग्धैः संप्राप्तसद्विद्यैर्जपहोमादि कारयेत् ॥२१८॥
मृत्युंजयेन वा तत्तत्प्रयोगस्थाभिरेव वा । विद्याभिरन्यथासिद्धमंत्रमस्याशु नाशयेत् ॥२१९॥
लक्षत्रयं कृते प्रोक्तं त्रेतायां द्विगुणं तथा । द्वापरे त्रिगुणं प्रोक्तं कलौ तत्तु चतुर्गुणम् ॥२२०॥
दशांशं हवनं कार्यं तर्पणं तद्दशांशतः । तद्दशांशं मार्जनं स्याद्दशांशं द्विजभोजनम् ॥२२१॥

सौ वर्ष जीता है। इक्षु के खण्डों से हवन करने से वस्त्र की प्राप्ति होती है। मधुयुक्त रक्त तथा श्वेत करवीर के पुष्पों एवम् पाटल पुष्पों से हवन करने से स्त्री वशीभूत होती है। कमलों से होम करने से वेश्या वश में आती हैं। श्वेत वर्णवाली गाय के, जिसके बछड़े का भी वहीं रंग हो, दूध में कमलों को डुबो कर हवन करने से पवित्र साधक को भी अनुपम लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। अर्धचन्द्राकार कुंड में वेर तथा कपास के बीजों से हवन करने से शत्रु वशीभूत हो जाते हैं ॥२०५-२१०॥

अरिष्ट (रीठे) के पत्र उसके बीज तथा नीम के तेल से संसिक्त मृत्युबीज (बाँस) से अरिष्ट की समिधा से बने अग्नि में होम करने से शत्रुओं का नाश होता है। पंचगव्य तथा तैलाक्त अक्षबीज (बेहेड़े) से हवन करने से समस्त रोगों का नाश होता है। करंज की समिधा से होम करने से शत्रु को पिशाच लग जाता है। बेहेड़े की समिधा से हवन करने से भी पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है नीम के तैल से संसिक्त बेहेड़े की समिधा से होम करने से भी शत्रु को उसी दिन अपस्मार (मिरगी) रोग हो जाता है। शत्रु के जन्म नक्षत्र के दिन किसी वृक्ष में लगे हुए अग्नि में शत्रु की योनिवाले जन्तु के मांस से होम करने से रिपु की मृत्यु हो जाती है ॥२११-२१५॥ सरसों के तेल और कमलबीज से हवन करने से शत्रु के शरीर में कुष्ठ रोग हो जाता है। सर्षप तेल एवम् मरिच से हवन करने से शत्रु उसी दिन दाहज्वर से ग्रस्त हो जाता है। अपनी रक्षा के लिये नित्य मन्त्र पूर्वक जप, होम आदि करना चाहिये। मृत्युंजय-जप भी करते रहना चाहिये, अन्यथा सिद्ध मन्त्र साधक को शीघ्र नष्ट कर देता है। सत्ययुग में मन्त्र को सिद्ध करने के लिये तीन लाख जप करने की आवश्यकता होती है, त्रेता में उसके द्विगुण, द्वापर में त्रिगुण, और कलियुग में चतुर्गुण। मंत्र का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन और मार्जन का दशांश ब्राह्मण भोजन कराना

एवं क्रमेण सर्वासां या या संख्या जपस्य सा । कार्या सिद्ध्यै तु विद्यायास्ततः कुर्यात्प्रयोगकान् ॥२२२॥
द्विगुणो हि जपः कार्यः कामेश्वर्या मुनीश्वर । सिद्धे मंत्रे प्रयोगांस्तु विदधीत यथा तथा ॥२२३॥
जपो लक्षं समाख्यातो होमादिस्तद्दशांशतः । कर्तव्यो भगमालाया विद्यासिद्ध्यै मुनीश्वर ॥२२४॥
नित्यक्लिन्नाजपः प्रोक्तो लक्षं होमो दशांशतः । कार्यः सिद्ध्यै तु विद्यायाः प्रयोगान्साधयेत्ततः ॥२२५॥
ततो मौनी पयोभक्ष प्रजपेन्नवलक्षकम् । भेरुंडामन्त्रमुक्तं तु शेषं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥२२६॥
लक्षत्रयं जपो वह्निवासिन्याः समुदीरितः । अन्यत्सर्वं पुरा यच्च कार्यं साधकसत्तमैः ॥२२७॥
महावज्रेश्वरीविद्याजपो लक्षत्रयो मतः । हवनादि दशांशेन कार्यं प्रोक्तक्रमेण हि ॥२२८॥
अतंद्रितो जपेल्लक्षमितं दूतीमनुं मुने । तद्दशांशक्रमेणैव होमादिः प्रोक्तमार्गतः ॥२२९॥
त्वरितां प्रजपेल्लक्षप्रमितां तद्दशांशतः । कृत्वा होमादिकं सर्वं विद्यासिद्ध्यै मुनीश्वर ॥२३०॥
जपो लक्षं समाख्यातो होमादिस्तद्दशांशतः । विद्यायाः कुलसुन्दर्याः कर्तव्यो द्विजसत्तम ॥२३१॥
नित्यानित्याजपो विप्र त्रिलक्षप्रमितो मतः । होमादिस्तद्दशांशेन प्रोक्तः प्रोक्तविधानतः ॥२३२॥
त्रिपञ्चाशल्लक्षमुक्तो नियमेन मुनीश्वर । जपो नित्यपताकाया होमादिस्तद्दशांशतः ॥२३३॥
विजयाया जपः प्रोक्तो लक्षमानेन नारद । अन्यत्पूर्ववदाख्यातं विद्यासिद्ध्यै तु साधनम् ॥२३४॥
द्वात्रिंशल्लक्षप्रमाणेन सर्वमंगलिकां जपेत् । तद्दशांशक्रमेणैव होमादि समुदीरितम् ॥२३५॥
अष्टलक्षं हविष्याशी ज्वालामालिनिकां जपेत् । होमादिस्तद्दशांशेन प्रोक्तद्रव्यैः समीरितः ॥२३६॥
चित्राया भूपलक्षं तु जपो होमादिकस्ततः । प्रोक्तेन विधिना कार्यो विद्यासिद्ध्यै मुनीश्वर ॥२३७॥

चाहिये ॥२१६-२२१॥ इस प्रकार के प्रयोग करने से पहले मन्त्र सिद्ध कर लेना आवश्यक है। मुनीश्वर! कामेश्वरी के मन्त्र का जप द्विगुण करना चाहिये। मंत्र सिद्ध हो जाने पर किसी भी प्रकार उसका प्रयोग किया जा सकता है। भगमाला के मन्त्र सिद्ध करने के लिये मंत्र का जप एक लाख बतलाया गया है। हवन आदि तो उसके दशांश क्रम से करना चाहिये। नित्यक्लिन्ना का भी जप एक लाख और हवन आदि दशांश करना चाहिये। मन्त्र सिद्धि के बाद ही साधक प्रयोग करे। तदनन्तर मौन एवं दुग्धभक्षी होते हुए भेरुंडा के मन्त्र का नौ लाख जप करे। वह्निवासिनी के मन्त्र का तीन लाख जप करना चाहिये। उत्तम साधक अन्य सब कार्य पूर्ववत् करे। माहेश्वरी का मन्त्र जप भी तीन लाख करे। हवन आदि तो दशांश क्रम से ही होंगे। मुने! निरालस्य होकर दूती के मन्त्र का एक लाख जप और उसके दशांश क्रम से हवन आदि करे ॥२२२-२२९॥ मुनीश्वर! त्वरिता के मन्त्र का एक लाख जप करके मन्त्र-सिद्धि के लिये दशांश क्रम से होम आदि करना चाहिये। द्विजश्रेष्ठ! कुलसुन्दरी का भी एक लाख मन्त्र जप और दशांश हवन आदि करना चाहिये। विप्र! नित्या-अनित्या का मन्त्र जप तीनलाख और होमादि दशांश क्रम से बतलाया गया है। मुनीश्वर! नित्यपताका का मन्त्र जप तिरपन लाख और हवन आदि दशांश कहा गया है। नारद! विजया का मन्त्र जप एक लाख और हवन आदि दशांश क्रम से करना चाहिये। सर्वमंगलिका का मन्त्र जप बत्तीस लाख और होमादि दशांश क्रम से कहा गया है। हविष्य भोजन पूर्वक ज्वालामालनिका का मन्त्र जप आठ लाख और

एतत्संक्षेपतः प्रोक्तं नित्यापटलमादितः । ज्ञातव्यं सर्वमेवात्र यन्त्रसाधनपूर्वकम् ॥२३८॥
इति श्री बृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने तृतीयपादे नित्यापटलकथनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

•

एकनवतितमोऽध्यायः

सनत्कुमार उवाच

अथ वक्ष्ये महेशस्य मन्त्रं सर्वार्थसाधकम् । यं समाराध्य मनुजो भुक्ति मुक्ति च विंदति ॥१॥
हृदयं सबकः सूक्ष्मो लांतोऽनन्तान्वितो मरुत् । पंचाक्षरो मनुः प्रोक्तस्ताराद्योऽयं षडक्षरः ॥२॥
वामदेवो मुनिश्छंदः पंक्तिरीशोऽस्य देवता । षड्भिर्वर्णैः षडङ्गानि कुर्यान्मंत्रेण देशिकः ॥३॥
मंत्रवर्णा/विकान्न्यस्येन्मंत्रमूर्तौ यथाक्रमम् । तर्जनीमध्यमयोरंत्यानामिकांगुष्ठके पुनः ॥४॥

होमादि दशांश करे । मुनीश्वर ! चित्रा का एक लाख मन्त्र जप और दशांश हवन आदि करना चाहिये । संक्षेप में नित्या का पटल आदि से वर्णन किया गया है । यहाँ सब कुछ यन्त्रसाधन पूर्वक जानना चाहिये ॥२३०-२३८॥

श्रीनारदीय पुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त तृतीयपाद में नित्यापटल कथन नामक नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ॥९०॥

अध्याय ९१

स्तोत्र सहित श्री महेश्वर मन्त्र का विधान

सनत्कुमार बोले—अब सकल प्रयोजनों को सिद्ध करने वाले महेश के मन्त्र को बतलाऊँगा जिसकी आराधना करने से मनुष्य की भोग-मोक्ष की प्राप्ति होती है । "हृदयम्"—यह पंचाक्षर मन्त्र है । तार (प्रणव) आदि में जोड़ने से षडक्षर होता है । इसके मुनि वामदेव हैं, छंद पंक्ति है और देवता महेश हैं । मन्त्र के छहों वर्णों से षडंगन्यास करना चाहिये ॥१-३॥ साधक क्रमशः मन्त्ररूप मन्त्रवर्णों का न्यास करे । (पहले) तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठिका, और अंगुष्ठा से अंगुलियों में उनका न्यास करे । मोर, भव, वाम, तथा ईश

ताः स्युस्तत्पुरुषाघोरसद्यवामेशसंज्ञिकाः । वक्त्रहृत्पादगुह्येषु निजमूर्द्धनि ताः पुनः ॥५॥
प्राच्यायाम्यवारुणोदीच्यमध्यवक्त्रेषु पंचसु । मन्त्रांगानि न्यसेत्पश्चाज्जातियुक्तानि षट् क्रमात् ॥६॥
कुर्वीत गोलकन्यासं रक्षार्थं तदनन्तरम् । हृदि वक्त्रेंऽसयोरूर्वोः कंठे नाभौ द्विपार्श्वयोः ॥७॥
पृष्ठे हृदि तथा मूर्ध्नि वदने नेत्रयोर्नसोः । दोःपत्संधिषु साग्रेषु विन्यसेत्तदनन्तरम् ॥८॥
शिरोवदनहृत्कुक्षिसोरुपादद्वये पुनः । हृदि वक्त्रांबुजे टंकमृगाभयवरेष्वथ ॥९॥
वक्त्रांसहृत्पादोरुजठरेषु क्रमान्न्यसेत् । मूलमन्त्रस्य षड् वर्णान्यथावद्देशिकोत्तमः ॥१०॥
मूर्ध्नि भालोदरांसेषु हृदये ताः पुनर्न्यसेत् । पश्चादनेन मन्त्रेण कुर्वीत व्यापकं सुधीः ॥११॥
नमोऽस्त्वनंतरूपाय ज्योतिर्लिंगामृतात्मने । चतुर्मूर्तिवपुश्छायाभासितांगाय शंभवे ॥१२॥
एवं न्यस्तशरीरोऽसौ चिन्तयेत्पार्वतीपतिम् । ध्यायेन्नित्यं महेशानं रौप्यपर्वतसन्निभम् ॥१३॥
चारुचंद्रावतंसं च रत्नाकल्पोज्ज्वलांगकम् । परशुवधवराभीतिमृगहस्तं शुभाननम् ॥१४॥
पद्मासीनं समंतात्तु स्तुतं सुमनसां गणैः । व्याघ्रकृत्तिं वसानं च विश्वाद्यं विश्वरूपकम् ॥१५॥
त्रिनेत्रं पंचवक्त्रं च सर्वभीतिहरं शिवम् । तत्त्वलक्षं जपेन्मंत्रं दीक्षितः शैववर्त्मना ॥१६॥
तावत्संख्यसहस्राणि जुहुयात्पायसैः शुभैः । ततः सिद्धो भवेन्मन्त्रः साधकाऽभीष्टसिद्धिदः ॥१७॥
देवं संपूजयेत्पीठे वामादिनवशक्तिके । वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री काली कलपदादिका ॥१८॥
विकारिण्याह्वया प्रोक्ता बलाद्या विकरिण्यथ । बलप्रमथनी पश्चात्सर्वभूतदमन्यथ ॥१९॥
मनोन्मनीति संप्रोक्ताः शैवपीठस्य शक्तयः । नमो भगवते पश्चात्सकलादि वदेत्ततः ॥२०॥

संज्ञक पुरुष ही मन्त्र की मूर्तियां हैं। अतएव मुख, हृदय, चरण, गुह्य, तथा अपने मस्तक पर पुनः मंत्रमूर्तियों का न्यास करे। अनन्तर पूर्व, दक्षिण, उत्तर, पश्चिम और मध्य की दिशा में क्रमशः जातियुक्त छह मन्त्रांगों का न्यास करना चाहिए। रक्षा के निमित्त गोलकन्यास करना चाहिये ॥४-६½॥ बाद में हृदय, मुख, स्कंध, ऊरु, कंठ, नाभि, पार्श्व, पृष्ठ, मस्तक, नेत्र, नासिका, भुजा, चरण तथा अस्थिसंधियों में न्यास करे। पुनः शिर, वदन, हृदय, उदर, ऊरु तथा चरण रूप अंगों और टंक, मृग, अभय तथा वर रूप अस्त्रों में न्यास करके क्रमशः मुख, स्कंध, पाद, ऊरु तथा उदर में न्यास करना चाहिये। उत्तम साधक मूल मन्त्र के छह वर्णोंका शिर, ललाट, स्कन्ध तथा हृदय में न्यास करे। पश्चात् पंडित व्यक्ति "तयो......शंभवे" इस मन्त्र से व्यापक न्यास करे ॥७—१२॥

इस प्रकार संपूर्ण शरीर में न्यास करके पार्वतीपति का इस प्रकार ध्यान करे। चांदनी के पर्वत के समान धवल, चारुचन्द्र के समान कांतिमान्, रत्न के सदृश प्रदीप्त अंगों वाले, हाथों में परशु (फरसा), मृग, वरास्त्र तथा अभयास्त्र धारण करने वाले, पवित्र मुखवाले, कमलों पर आसीन, चारों ओर देवगणों से स्तूयमान, व्याघ्रचर्म पहनने वाले, विश्व के आदि, विश्व के रूप, त्रिनेत्र, पंचमुख और सबके भय का हरण करने वाले, कल्याणकारी, ईशान शिव का ध्यान कर शैवमार्ग से दीक्षित हुआ व्यक्ति उनके मन्त्र का पांच लाख जप फिर उतनी संख्या में पवित्र पायस से हवन करे। ऐसा करने से साधक को सकल अभीष्ट दायक मन्त्र सिद्ध हो जाता है। अनन्तर पीठ पर वामा आदि नौ शक्तियों समेत शंकर देव की अर्चना करे। वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलपदा, विकरिणी, बला, बलप्रमथनी और मनोन्मनी—ये नवों शैव पीठ की शक्तियां हैं। "नमो........" इस मन्त्र से गिरिजापति को आसन प्रदान करना चाहिये। फिर मूल मन्त्र से मूर्ति की

गुणात्मशक्तिभक्ताय ततोऽनंताय तत्परम् । योगपीठात्मने भूयो नमस्तारादिको मनुः ॥२१॥
अमुना मनुना दद्यादासनं गिरिजापतेः । मूर्ति मूलेन संकल्प्य तत्रावाह्य यजेच्छिवम् ॥२२॥
कर्णिकायां यजेन्मूर्तीरीशमीशानदिग्गजम् । शुद्धस्फटिकसंकाशं दिक्षु तत्पुरुषादिकाः ॥२३॥
पीतांजनश्वेतरक्ताः प्रधानसदृशायुधाः । चतुर्वक्त्रसमायुक्ता यथावत्ताः प्रपूजयेत् ॥२४॥
कोणेष्वर्चन्निवृत्याद्यास्तेजोरूपाः कलाः क्रमात् । अङ्गानि केसरस्थानि विघ्नेशान्पन्नगान्यजेत् ॥२५॥
अनंतं सुखनामानं शिवोत्तममनंतरम् । एकनेत्रमेकरुद्रं त्रिमूर्तिं तदनंतरम् ॥२६॥
पश्चाच्छ्रीकंठनामानं शिखंडिनमिति क्रमात् । रक्तपीतसितारक्तकृष्णरक्तांजनासितान् ॥२७॥
किरीटार्पितबालेंदून्पद्मस्थान्भूषणान्वितान् । त्रिनेत्राञ्छूलवज्रास्त्रचापहस्तान्मनोरमान् ॥२८॥
उत्तरादि यजेत्पश्चाद्रुद्रं चण्डेश्वरं पुनः । ततो नंदिमहाकालौ गणेशं वृषभं पुनः ॥२९॥
अथ भृंगि रिटिं स्कन्दमेतान्पद्मासनस्थितान् । स्वर्णतोयारुणश्याममुक्तेंदुसितपाटलान् ॥३०॥
इंद्रादयस्ततः पूज्या वज्राद्यायुधसंयुताः । इत्थं संपूजयेद्देवं सहस्रं नित्यशो जपेत् ॥३१॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नुयाद्वांछितं श्रियम् । द्विसहस्रं जपन् रोगान्मुच्यते नात्र संशयः ॥३२॥
त्रिसहस्रं जपन्मंत्रं दीर्घमायुरवाप्नुयात् । सहस्रवृद्धया प्रजपन्सर्वकामानवाप्नुयात् ॥३३॥
आज्यान्वितैस्तिलैः शुद्धैर्जुहुयाल्लक्षमादरात् । उत्पातजनितान् क्लेशान्नाशयेन्नात्र संशयः ॥३४॥
शतलक्षं जपन्साक्षाच्छिवो भवति मानवः । षडक्षरः शक्तिरुद्धः कथितोऽष्टाक्षरो मनुः ॥३५॥
ऋष्यश्छन्दः पुरा प्रोक्तो देवता स्यादुमापतिः । अंगानि पूर्वमुक्तानि सौम्यमीशं विचिंतयेत् ॥३६॥
बन्धूकाभं त्रिनेत्रं च शशिखंडधरं विभुम् । स्मेरास्यं स्वकरैः शूलं कपालं वरदाभये ॥३७॥
वहंतं चारुभूषाढ्यं वामोरुस्थाद्रिकन्यया । भुजेनाश्लिष्टदेहं तं चिंतयेन्मनसा हृदि ॥३८॥

कल्पना कर कमल पुष्पों पर शंकर का आवाहन करके पूजन करे ॥१३-२२॥ ईश तथा शुद्ध स्फटिक के समान स्वच्छ वर्ण वाले ईशानदिग्गज की पूजा करनी चाहिये। दिशाओं में पीत, कृष्ण, श्वेत, तथा रक्तवर्ण वाली, शक्तियों की पूजा कर कोणों में निवृत्ति आदि तेजोरूप कलाओं का क्रमशः पूजन करे। अनन्तर केसरस्थित अंगों, विघ्नेशों तथा पन्नगों की अर्चना करे। फिर सुखनामा अनन्त, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकंठ और शिखंडी का पूजन कर रक्त, पीत, शुक्ल तथा कृष्ण वर्णवाले, मुकुट पर बालचन्द्र को धारण करने वाले, कमलों पर आसीन, आभूषणों से विभूषित, त्रिनेत्र, करों में शूल, वज्र तथा धनुष धारण करने वाले, मनोरम देवों की पूजा करे। पश्चात् पद्मासनस्थित रुद्र चंडेश्वर, नन्दी, महाकाल, गणेश, वृषभ, भृंगि, रिटि तथा स्कंद की पूजा करे, जिनका वर्ण क्रमशः अरुण, श्याम, श्वेत, रक्त, शुक्ल एवम् सुवर्ण, जलमुक्ता, तथा चंद्रमा के समान है। तदुपरान्त वज्र आदि आयुधों समेत इन्द्र आदि देवों की पूजा करे ॥२३-३१॥

इस प्रकार नित्य शंकर का पूजन कर सहस्र बार मन्त्र जप किया करे ऐसा करने से मनुज सकल पापों से मुक्त होकर यथेच्छ श्री को प्राप्त करता है। दो सहस्र मन्त्र जप करने से रोग निवृत्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं। तीन हजार मन्त्र जप करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है। मन्त्र जप में प्रति दिन एक सहस्र वृद्धि कर देने से समस्त अभिलाषाओं की पूर्ति हो जाती है। एक लाख मन्त्रजप तथा शुद्ध घृतयुक्त तिल से होम करने से उत्पातजन्य क्लेशों का नाश होता है, इसमें संशय नहीं। सौ लाख जप करने वाला मानव साक्षात् शिव होता है। शक्तिरुद्ध षडक्षर मन्त्र ही अष्टाक्षर मन्त्र कहलाता है। इसके ऋषि, छन्द तथा अंग पहिले बता दिये गये हैं इससे देवता उमापति हैं। (इस मंत्र का) साधक सौम्य शंकर का

मनुलक्षं जपेन्मंत्रं तत्सहस्रं यथाविधि । जुहुयान्मधुरासिक्तैरारग्वधसमिद्वरैः ॥३९॥
प्राक्प्रोक्ते पूजयेत्पीठे गंधपुष्पैरुमापतिम् । अंगावृत्तैर्बहिः पूज्या हृल्लेखाद्या यथापुरा ॥४०॥
मध्यप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु विधानतः । यजेत्पूर्वादिपत्रेषु, वृषभाद्याननुक्रमात् ॥४१॥
शूलटंकाक्षवलयकमंडलुलसत्करम् । रक्ताकारं त्रिनयनं चंडेशमथ पूजयेत् ॥४२॥
चक्रशंखाभयाभीष्टकरां मरकतप्रभाम् । दुर्गां प्रपूजयेत्सौम्यां त्रिनेत्रां चारुभूषणाम् ॥४३॥
कल्पशाखांतरे घंटां दधानं द्वादशेक्षणम् । बालार्काभं शिशुं कांतं षण्मुखं पूजयेत्ततः ॥४४॥
नंदिनं च यजेत्सौम्यं रत्नभूषणमंडितम् । परशुवधवराभीतिटंकिनं श्यामविग्रहम् ॥४५॥
पाशांकुशवराभीष्टधारिणं कुंकुमप्रभम् । विघ्ननायकमभ्यर्चेच्चंद्रार्द्धकृतशेखरम् ॥४६॥
श्यामं रक्तोत्पलकरं वामांकन्यस्ततत्करम् । द्विनेत्रं रक्तवस्त्राढ्यं सेनापतिमथार्चयेत् ॥४७॥
ततोऽष्टमातरः पूज्या ब्राह्म्याद्याः प्रोक्तलक्षणाः । इंद्रादिकान्लोकपालान्स्वस्वदिक्षु समर्चयेत् ॥४८॥
वज्रादीनि तदस्त्राणि तद्बहिः क्रमतोऽर्चयेत् । एवं यो भजते मन्त्री देवं शंभुमुमापतिम् ॥४९॥
स भवेत्सर्वलोकानां सौभाग्यश्रेयसां पदम् । सांतसद्यांतसंयुक्तो बिन्दुभूषितमस्तकः ॥५०॥
प्रासादाख्यो मनुः प्रोक्तो भजतां सर्वसिद्धिदः । षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडंगविधिरीरितः ॥५१॥
षडर्णवत्तु मुन्याद्याः प्रोक्ताश्चास्यापि नारद । ईशानाद्या न्यसेन्मूर्तीरंगुष्ठादिषु देशिकः ॥५२॥

चिंतन करे। दोपहरिया फूल के समान आभा वाले, तीन नेत्र वाले, शशिखंड धारण करने वाले, मंद मुसकान युक्त मुख वाले, करों में शूल, कपाल, वरदास्त्र तथा अभयास्त्र धारण करने वाले, मनोहर आभूषणों से विभूषित, बाँयी जंघा पर पार्वती को बिठाने वाले, उनकी भुजाओं से आलिंगित शरीर वाले बिभु शंकर का ध्यान कर एक लाख मन्त्र जप करे और उतने ही हजार मधुरमिश्रित छितिवन की समिधा से हवन करे ॥३२-३९॥ पूर्व कथित पीठ पर गंध-पुष्पों से उमापति की पूजा कर हृल्लेखा आदि शक्तियों की पूजा करे। फिर मध्य पूर्व, दक्षिण, उत्तर एवम् पश्चिम दिशाओं में विधानपूर्वक वृषभ आदि देवों का क्रमशः पूजन करे। अनन्तर हाथों में शूल, टंक, रुद्राक्ष, वलय, तथा कमंडलु धारण करने वाले, रक्ताकार, त्रिनेत्र, चंडेश की अर्चना करे। उसके बाद करों में चक्र, शंख, अभयास्त्र तथा वरदास्त्र धारण करने वाली, मरकत मणि के समान प्रभावाली तीन नेत्रों वाली और मनोहर आभूषणोंवाली दुर्गा की पूजा कर घंटा धारण करने वाले, बारह नेत्रों वाले बाल-सूर्य के समान प्रभावाले, कमनीय कान्तिवाले शिशु कार्तिकेय का पूजन करे ॥४०-४४॥ तब सौम्य, रत्न के आभूषणों से अलंकृत, परशु, वरदास्त्र, अभयास्त्र, तथा टंक नायक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित कुंकुम के समान प्रभा वाले और श्याम शरीरवाले नन्दी की पूजा कर ललाट पर अर्धचन्द्र धारण करने वाले, श्याम वर्ण वाले, रक्त कमल के सदृश करों वाले, दो नेत्रों वाले और रक्तवस्त्र पहनने वाले गणेश की अर्चना करे। तदुपरान्त उक्त लक्षण ब्राह्मी आदि माताओं की पूजा कर अपनी-अपनी दिशा में इंद्र आदि लोकपालों की पूजा करे। फिर बाहर उनके वज्र आदि अस्त्रों का क्रमशः पूजन करे। जो साधक इस तरह उमापति शंभु की आराधना करता है, वह समस्त लोकों के सौभाग्य एवम् श्रेय का निधान होता है। सांत सद्यांत संयुक्त और ऊपर बिन्दु से भूषित प्रसाद नामक मंत्र साधकों को समस्त सिद्धियाँ प्रदान करता हैं ॥४५-५१½॥ नारद ! छह दीर्घ मात्राओं से युक्त बीज मन्त्र से षडंगन्यास करना चाहिये। इस मंत्र के छः ही वर्ण हैं। साधक अंगुष्ठ आदि में ईशान आदि मूर्तियों का न्यास करे। पश्चात् ईशान पुरुष, अघोर, वामदेव, सद्योजातबीज तथा उकार आदि पाँच

ईशानाख्यं तत्पुरुषमघोरं तदनंतरम् । वामदेवाह्वयं सद्योजातबीजं क्रमाद्विदुः ॥५३॥
उकाराद्यैः पञ्चह्रस्वैर्विलोमात्संयुतं च यत् । तत्तदंगुलिभिर्न्यस्तत्तद्बीजादिकान्न्यसेत् ॥५४॥
शिरोवदनहृद्गुह्यपाददेशे यथाक्रमात् । उद्र्ध्वप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु मुखेषु च ॥५५॥
ततः प्रविन्यसेद्विद्वानष्टत्रिंशत्कलास्तनौ । ईशानाद्या ऋचः सम्यगंगुलीषु यथाक्रमात् ॥५६॥
अंगुष्ठादिकनिष्ठांतं न्यसेद्देशिकसत्तमः । मूर्द्धास्यहृदयांभोजगुह्यपादे तु ताः पुनः ॥५७॥
वक्त्रे मूर्धादिषु न्यस्य भूयोऽङ्गानि प्रकल्पयेत् । तारपंचकमुच्चार्य सर्वज्ञाय हृदीरितम् ॥५८॥
अमृते तेजो मालिनि तृप्तायेति पदं पुनः । तदंते ब्रह्मशिरसे शिरोगं ज्वलितं ततः ॥५९॥
शिखि शिखाय परतोऽनादिबोधाय तच्छिखा । वज्रिणे वज्रहस्ताय स्वतंत्राय तनुच्छदम् ॥६०॥
सौं ख्रौं हौमिति संभाष्य परतो तों गुह्यशक्तये । नेत्रमुक्तं श्लीपशुं हुं फडंते नेत्रं शक्तये ॥६१॥
अस्त्रमुक्तं षडंगानि कुर्यादेवं समाहितः । पूर्वदक्षिणपश्चात्प्राक्सौम्यमध्येषु पंचसु ॥६२॥
वक्त्रेषु पंच विन्यस्येदीशानस्य कलाः क्रमात् । ईशानः सर्वविद्यानां शशिनी प्रथमा कला ॥६३॥
ईश्वरः सर्वभूतानां मंगला तदनंतरम् । ब्रह्माधिपतिःशब्दांते ब्रह्मणोऽधिपतिः पुनः ॥६४॥
ब्रह्मेष्टदा तृतीयास्याच्छिवो मे अस्तु तत्परा । मरीचिः कथिता विप्र चतुर्थी च सदाशिवे ॥६५॥
अंशुमालिन्यथ परा प्रणवाद्या नमोन्विताः । पूर्वपश्चिमयाम्योदग्वक्त्रेषु तदनंतरम् ॥६६॥
चतस्रो विन्यसेन्मंत्री पुरुषस्य कलाः क्रमात् । आद्या तत्पुरुषायेति विद्महे शांतिरीरिता ॥६७॥
महादेवाय शब्दांते धीमहि स्यात्ततः परम् । विद्या द्वितीया कथिता तन्नो रुद्रः पदं ततः ॥६८॥
प्रतिष्ठा कथिता पश्चात्तृतीया स्यात्प्रचोदयात् । निवृत्तिस्तत्परा सर्वा प्रणवाद्या नमोन्विता ॥६९॥
हृदि चांसद्वये नाभिकुक्षौ पृष्ठेऽथ वक्षसि । अथोरसि कला न्यस्येदष्टौ मंत्री यथाविधि ॥७०॥
अघोरेभ्यस्तथा पूर्वमीरिता प्रथमा कला । अथ घोरेभ्य इत्यंते मोहास्यात्तदनंतरम् ॥७१॥
अघोरांते क्षमा पश्चात्तृतीया परिकीर्तिता । घोरतरेभ्यो निद्रा स्यात्सर्वेभ्यः सर्वतत्परा ॥७२॥

ह्रस्वमात्राओं से युक्त देव का न्यास करे। पुनः तत्तत् अंगुलियों से तत्तत् बीज आदिकों का न्यास कर शिर, वदन, हृदय, गुह्य, चरण, ऊपर पूर्व, दक्षिण, उत्तर और पश्चिम दिशाओं में न्यास करे। तदनंतर विद्वान् व्यक्ति शरीर में अड़तीस कलाओं का और अंगुलियो में ईशान आदि ऋचाओं का क्रमशः न्यास करे। अंगुष्ठा से लेकर कनिष्ठा तक न्यास कर मस्तक, मुख, हृदय, गुह्य, तथा चरणों में न्यास करे। पुनः मुख, शिर आदि में न्यास करके अंगों की रचना करे ॥५२-५७½॥

तदनन्तर तारपंचक का उच्चारण कर "सर्वज्ञाय········" होम्—इसका पाठ करे। फिर "तों" शक्तये"—इसको पढ़कर षडंग न्यास करे। पश्चात् पूर्व, दक्षिण, पश्चिम उत्तर और मध्य में न्यास करके ईशान की पांच कलाओं का क्रमशः न्यास करे। अखिल विद्याओं के अधिष्ठाता ईशान, प्रथमा कला शशिनी, समस्त भूतों के ईश्वर मंगला, ब्रह्माधिपति, ब्रह्मणोधिपति, ब्रह्मेष्टदा, शिव, मरीचि, सदाशिव तथा अंशुमालिनी का न्यास कर पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवम् दक्षिण दिशा में पुरुष की चार कलाओं का क्रमशः न्यास करे। ॥५८-६६½॥ "आद्या·····नमः" इस मन्त्र को पढ़कर हृदय, स्कंध, नाभि, उदर, पृष्ठ, वक्ष तथा उर में विधि-पूर्वक आठ कलाओं का न्यास करे। अघोरों के लिये पहली कलाघोरों के लिये मोहा, अघोरों के अन्त में क्षमा, घोरतरों के लिये निद्रा, शैवों के लिये व्याधि, छठी कला मृत्यु, रुद्ररूपों के लिये सातवीं कला क्षुधा और आठवीं कला तृषा कही गई है।

व्याधिस्तु पंचमी प्रोक्ता शर्वेभ्यस्तदनंतरम् । मृत्युर्निगदिता षष्ठी नमस्ते अस्तु तत्परम् ॥७३॥
क्षुधा स्यात्सप्तमी रुद्ररूपेभ्यः कथिता तृषा । अष्टमी कथिता एता ध्रुवाद्या नमसान्विताः ॥७४॥
गुह्ययुग्मोरुयुग्मेषु जानुजंघास्फिजोः पुनः । कट्यां पार्श्वद्वये वामकला न्यस्येत्त्रयोदश ॥७५॥
प्रथमा वामदेवाय नमोंते स्याद्रुजा कला । स्याज्ज्येष्ठाय नमो रक्षा द्वितीया परिकीर्तिता ॥७६॥
कलकामा पंचमी स्यात्ततो विकरणाय च । नमः संयमनी षष्ठी कथिता तदनंतरम् ॥७७॥
बलक्रिया सप्तमीष्टा कला विकरणाय च । नमो वृद्धिस्त्वष्टमी स्याद्बलांते च स्थिरा कला ॥७८॥
पश्चात्प्रमथनायांते नमो रात्रिरुदीरिता । सर्वभूतदमनाय नमोंते भ्रामणी कला ॥७९॥
नमोंते मोहिनी प्रोक्ता मन्त्रज्ञैर्द्वादशी कला । मनोन्मन्यै नमः पश्चाज्ज्वरा प्रोक्ता त्रयोदशी ॥८०॥
प्रणवाद्याश्चतुर्थ्यंता नमोंतास्तु प्रकीर्तिताः । पाददोस्तननासासु मूर्ध्नि बाहुयुगे न्यसेत् ॥८१॥
सद्योजातभवाः सम्यगष्टौ मन्त्राः कलाः क्रमात् । सद्योजातं प्रपद्यामि सिद्धिः स्यात्प्रथमा कला ॥८२॥
सद्योजाताय वै भूयो नमः स्याद् वृद्धिरीरिता । भवेद्युतिस्तृतीया स्याद्भवे तदनंतरम् ॥८३॥
लक्ष्मी चतुर्थी कथिता ततो नातिभवेपदम् । मेधा स्यात्पञ्चमी प्रोक्ता कलाभूयो भवस्व माम् ॥८४॥
प्राज्ञा समीरिता षष्ठी भवांते स्यात्प्रभा कला । उद्भवाय नमः पश्चात्सुधा स्यादष्टमी कला ॥८५॥
प्रणवाद्याश्चतुर्थ्यंता कला सर्वा नमोन्विताः । अष्टात्रिंशत्कलाः प्रोक्ताः पंच ब्रह्मपदादिकाः ॥८६॥
इति विन्यस्तदेहोऽसौ भवेद्गंगाधरः स्वयम् । ततः समाहितो भूत्वा ध्यायेदेवं सदाशिवम् ॥८७॥
सितपीतासितश्वेतजपाभैः पंचभिर्मुखैः । अक्षैर्युतं ग्लौमुकुटं कोटिपूर्णेंदुसंप्रभम् ॥८८॥
शूलं टंकं कृपाणं च वज्राग्न्यहिपतीन्करैः । दधानं भूषणोद्दीप्तं घण्टापाशवराभयान् ॥८९॥
एवं ध्यात्वा जपेन्मंत्रं पञ्चलक्षं मधुप्लुतैः । प्रसूनैः करवीरोत्थैर्जुहुयात्तद्दशांशतः ॥९०॥
पूर्वोदिते यजेत्पीठे मूर्तिं मूलेन कल्पयेत् । आवाह्य पूजयेत्तस्यां मूर्तावावरणैः सह ॥९१॥

गुह्य प्रदेश, ऊरुयुग्म, जानु, जंघा, चूतड़, कटि, तथा दोनों पार्श्वों में तेरह वामकलाओं का न्यास करना चाहिये। वामदेव के लिये पहली कला रुजा बताई गई है, ज्येष्ठ के लिये रक्षा और विकरण के लिये कलकामा। चौथी कला संयमनी, पाँचवीं बलक्रिया, छठी वृद्धि, सातवीं स्थिरा, आठवीं रात्रि, नवीं भ्रामणी, दशवीं मोहिनी, ग्यारहवीं मनोन्मनी, बारहवीं ज्वरा, और तेरहवीं बला कहलाती हैं ॥६७-८०॥ इनके आदि में प्रणव और अन्त में चतुर्थी विभक्ति तथा नमः शब्द आते हैं। चरण, भुजा, स्तन, नासिका तथा मस्तक पर आठ सद्योजात मन्त्रकलाओं का न्यास करना चाहिये। सिद्धि, वृद्धि, द्युति, लक्ष्मी, मेधा, प्राज्ञा, प्रभा तथा सुधा—ये आठ सद्योजात कलायें हैं। इनके आदि में प्रणव तथा अन्त में चतुर्थी विभक्ति और नमः शब्द आते हैं। इस तरह पाँच ब्रह्मपदा आदि को मिलाकर अड़तीस कलायें होती हैं ॥८१-८६॥

जो व्यक्ति उपर्युक्त प्रकार से शरीर न्यास करता है, वह साक्षात् शिव होता है। इसके बाद समाहित होकर सित, पीत, असित श्वेत तथा रक्तवर्ण वाले पाँच मुखों से युक्त, रुद्राक्ष एवम् देदीप्यमान मुकुट धारण करने वाले, कोटि पूर्णचन्द्र के समान प्रभा वाले, करों में त्रिशूल, टंक, कृपाण, वज्र, अग्नि, अहिपति, घन्टा पाश, वरास्त्र तथा अभयास्त्र धारण करने वाले और आभूषणों से विभूषित शंकर का ध्यान कर पाँच लाख मन्त्र का जप करे और उसका दशांश मधुयुक्त करवीर के पुष्पों से हवन करे। फिर पूर्वकथित पीठ पर मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर आवाहन करके पूजन करे ॥८७-९१॥ मूर्ति में आवरणों के साथ पूजन करना

शक्तिं डमरुकाभीतिवरान्संदधतं करैः । ईशानं त्रीक्षणं शुभ्रमैशान्यां दिशि पूजयेत् ॥९२॥
परश्वेणवराभीतिर्दधानं विद्युदुज्ज्वलम् । चतुर्मुखं तत्पुरुषं त्रिनेत्रं पूर्वतोऽर्चयेत् ॥९३॥
अक्षस्रजं वेदपाशौ ऋषिं डमरुकं ततः । खट्वांगं निशितं शूलं कपालं बिभ्रतं करैः ॥९४॥
अंजनाभं चतुर्वक्त्रं भीमदंतं भयावहम् । अघोरं त्रीक्षणं याम्ये पूजयेन्मंत्रवित्तमः ॥९५॥
कुंकुमाभचतुर्वक्त्रं वामदेवं त्रिलोचनम् । हरिणाक्षगणाभीतिवरहस्तं चतुर्मुखम् ॥९६॥
बालेंदुशेखरोल्लासिमुकुटं पश्चिमे यजेत् । कर्पूरेंदुनिभं सौम्यं सद्योजातं त्रिलोचनम् ॥९७॥
वराभयाक्षवलयकुठारान्दधतं करैः । विलासिनं स्मेरववत्रं सौम्ये सम्यक्समर्चयेत् ॥९८॥
कोणेष्वर्चेन्निवृत्त्याद्यास्तेजोरूपाः कलाः क्रमात् । विघ्नेश्वराननन्ताद्यान्पत्रेषु परितो यजेत् ॥९९॥
उमादिकास्ततो बाह्ये शक्राद्यानायुधैः सह । इति संपूज्य देवेशं भक्त्या परमया युतः ॥१००॥
प्रीणयेन्नृत्यगीताद्यैः स्तोत्रैर्मंत्री मनोहरैः । तारो मायावियद्बिंदुमनुस्वरसमन्वितः ॥१०१॥
पञ्चाक्षरसमायुक्तो वसुवर्णो मनुर्मतः । पंचाक्षरोक्तवत्कुर्यादंगन्यासादिकं बुधः ॥१०२॥
सिंदूराभं लसद्रत्नमुकुटं चन्द्रमौलिनम् । दिव्यभूषांगरागं च नागयज्ञोपवीतिनम् ॥१०३॥
वामोरुस्थप्रियारोजन्यस्तहस्तं च बिभ्रतम् । वेदटंकेष्टमभयं ध्यायेत्सर्वेश्वरं शिवम् ॥१०४॥
अष्टलक्षं जपेन्मंत्रं तत्सहस्रं घृतान्वितैः । पायसैर्जुहुयात्पीठे मूर्तिं संकल्प्य मूलतः ॥१०५॥

चाहिये। ईशान कोण में शक्ति, डमरु, अभयास्त्र, तथा वरास्त्र को हाथों में रखने वाले तीन नेत्रों वाले और शुक्लवर्ण वाले शंकर की पूजा करे। पूर्व दिशा में परशु, वरास्त्र तथा अभयास्त्र धारण करने वाले, विद्युत् के समान चमकने वाले, चार मुख तथा तीन नेत्रों वाले शिव की अर्चना करे। दक्षिण दिशा में रुद्राक्ष की माला, वेद, पाश, डमरु, खट्वांग, तीक्ष्ण त्रिशूल तथा कपाल धारण करनेवाले, अंजन के समान आभा वाले, चार मुख तथा भयंकर दाँत वाले, भयानक, अघोर एवम् त्रिनयनयुक्त शंभु की पूजा करे। पश्चिम दिशा में कुंकुम के सदृश प्रभावाले, चार मुख एवम् तीन नेत्र वाले, करों में रुद्राक्ष, अभयास्त्र, तथा वरास्त्र, धारण करने वाले ललाट पर बाल चन्द्र से सुशोभित मुकुट वाले वामदेव की पूजा करे उत्तर दिशा में कर्पूर तथा इन्दु के समान धवल, तीन नेत्रों वाले, हाथों में वरास्त्र, अभयास्त्र, रुद्राक्ष तथा कुठार धारण करने वाले, मंद मुसकान से सुशोभित मुख वाले, विलासी महादेव की आराधना करे ॥९२-९८॥ कोणों में निवृत्ति आदि तेजोरूप कलाओं की क्रमशः पूजा कर चारों ओर पत्रों पर विघ्नेश्वर, अनन्त आदि देवों की अर्चना करे। बारह उमा आदि देवियों तथा आयुध सहित शक्र आदि देवों का पूजन करे।

मन्त्री इस प्रकार परम भक्ति से देवेश कीपूजा कर नृत्य, गीत, तथा मनोहर स्तोत्र आदि से उनको प्रसन्न करे। प्रणव, माया वियत् तथा बिंदुयुक्त मन्त्र अष्टाक्षर मन्त्र कहलाता है। सुधी व्यक्ति इसमें भी पंचाक्षर मन्त्र की तरह अंगन्यास आदि करे। तत्पश्चात् सिंदूर के समान आभा वाले, ललाट पर चंद्रमा को धारण करने वाले, रत्न मुकुट, दिव्य आभूषण, अंगराग तथा नागयज्ञोपवीत से विभूषित, बांयी जंघे पर बैठी प्रिया के उरोज पर हाथ रखने वाले, वेद, टंक, वरास्त्र तथा अभयास्त्र धारण करने वाले सर्वेश्वर शिव का ध्यान कर आठ लाख मन्त्र का जप करे। और उतने ही सहस्र घृतयुक्त खीर से हवन करे। अनन्तर पीठ पर मूलमन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर सांगोपांग पूजन करे। बारह उमा आदि देवियों तथा आयुध समेत शक्र आदि देवों की पूजा करनी चाहिये।

अंगैरावरणं पूर्वमनंताद्यैरनन्तरम् । उमादिभिः समुद्दिष्टं तृतीयं लोकनायकैः ॥१०६॥
चतुर्थं पंचमं तेषामायुधैः परिकीर्तितम् । एवं प्रतिदिनं देवं पूजयेत्साधकोत्तमः ॥१०७॥
पुत्रपौत्रादिगां लक्ष्मीं संप्राप्य ह्यत्र मोदते । तारः स्थिरा सकर्णेन्दुभृगुः सर्गसमन्वितः ॥१०८॥
अक्षरात्मा निगदितो मन्त्रो मृत्युञ्जयात्मकः । ऋषिः कहोलो देव्यादिगायत्री छन्द ईरितम् ॥१०९॥
मृत्युञ्जयो महादेवो देवतास्य समीरितः । भृगुणा दीर्घयुक्तेन षडंगानि समाचरेत् ॥११०॥
चंद्रार्कहुतभुङ्नेत्रं स्मितास्यं युग्मपद्मगम् । मुद्रापाशैणाक्षसूत्रलसत्पाणिं शशिप्रभम् ॥१११॥
भालेंदुविगलत्पीयूषप्लुतांगमलंकृतम् । हाराद्यैर्निजकांत्या तु ध्यायेद्विश्वविमोहनम् ॥११२॥
गुणलक्षं जपेन्मंत्रं तद्दशांशं हुनेत्सुधीः । अमृताशकलैः शुद्धदुग्धाज्यसमभिप्लुतैः ॥११३॥
शैवे संपूजयेत्पीठे मूर्तिं संकल्पमूलतः । अंगावरणमाराध्य पश्चाल्लोकेश्वरान्यजेत् ॥११४॥
तदस्त्राणि ततो बाह्ये पूजयेत्साधकोत्तमः । जपपूजादिभिः सिद्धे मंत्रेऽस्मिन्मुनिसत्तम ॥११५॥
कुर्यात्प्रयोगान्कल्पोक्तानभीष्टफलसिद्धये । दुग्धसिक्तैः सुधाखंडैर्हुत्वा प्रत्यहमादरात् ॥११६॥
सहस्रमासपर्यंतं लभेदायुर्धनं सुतान् । सुधावटतितान्पूर्वापयः सर्पिः पयो हविः ॥११७॥
सप्त द्रव्याणि वारेषु क्रमाद्दशशतं हुनेत् । सप्ताधिकान् द्विजान्नित्यं भोजयेन्मधुरान्वितम् ॥११८॥
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यादरुणां गां पयस्विनीम् । गुरुं संप्रीणयेत्पश्चाद्धनाद्यैर्देवताधिया ॥११९॥
अनेन विधिना साध्यः कृत्याद्रोहज्वरादिभिः । विमुक्तः सुचिरं जीवेच्छरदां शतमञ्जसा ॥१२०॥
अभिचारे ज्वरे स्तंभघोरोन्मादे शिरोगदे । असाध्यरोगे क्ष्वेडार्तौ मोहे दाहे महाभये ॥१२१॥
होमोऽयं शांतिदः प्रोक्तः सर्वाभयप्रदायकः । द्रव्यैरेतैः प्रजुहुयात्त्रिजन्मसु यथाविधि ॥१२२॥

जो साधक प्रतिदिन इस तरह शंकर की अर्चना करता है वह पुत्र, पौत्र तथा लक्ष्मी को प्राप्त कर आनन्द करता है ॥९९-१०७½॥ तार, स्थिर, कर्ण, इन्दु, भृगु, तथा सर्ग सहित अक्षर रूप मन्त्र मृत्युंजय कहा गया है, इसके ऋषि कहोल, छन्द गायत्री और देवता मृत्युंजय महादेव माने गये हैं। दीर्घयुक्त भृगु से षडंग-न्यास करना चाहिये। तदनन्तर सूर्य, चंद्र तथा अग्निरूप नेत्र वाले, मंद मुसकान से युक्त मुखवाले, पद्मों पर आसीन होनेवाले, मुद्रा, पाश, मृगचर्म तथा अक्षसूत्र से सुशोभित पाणिवाले शशि के समान प्रभावाले, ललाट स्थित चंद्रमा से टपकते हुए अमृत से सिक्त गात्रवाले और हार आदि से अलंकृत विश्व विमोहन शिव का ध्यान कर विज्ञ व्यक्ति तीन लाख मन्त्र का जप करे और उसका दशांश शुद्ध दूध तथा घी से युक्त गुडूच की समिधा से हवन करे। उत्तम साधक शैव पीठ पर मूलमन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर सांगोपांग देव की पूजा करे। पीठ से बाहर आयुध सहित लोकपालों की भी अर्चना करनी चाहिये ॥१०८-११४॥

मुनिश्रेष्ठ! जप, पूजा आदि से मन्त्र सिद्ध हो जाने पर अभीष्ट-फल-प्राप्ति के लिये मन्त्र का प्रयोग करे। प्रतिदिन दुग्धसिक्त गुडूच के खण्डों से आदर पूर्वक होम करे। एक मास तक ऐसा करने से आयु, धन तथा पुत्रों की प्राप्ति होती हैं। गुडूची की समिधा, दूध, घी तथा सात द्रव्यों से एक सहस्र होम करे, सात से अधिक ब्राह्मणों को नित्य मधुर भोजन कराये। ऋत्विजों को पयस्विनी गौ दक्षिणा में दे और गुरू को देव बुद्धया धन आदि से संतुष्ट करे। इस तरह साधन करने से मनुष्य कृत्या, द्रोह, ज्वर आदि से विमुक्त होकर आनन्दपूर्वक सौ वर्ष जीता है। यह होम भूतोपद्रव, ज्वर, स्तंभन, घोर उन्माद, शिरोव्यथा, असाध्यरोग, कफ, मोह, दाह तथा महाभय को शान्त करनेवाला तथा भयनाशक है ॥११५-१२१½॥ तीन बार जन्म नक्षत्रों के दिन उपर्युक्त द्रव्यों से विधिपूर्वक हवन तथा वेदपारंगत विप्रों को मधुर भोजन कराने से दीर्घ आयु और अभिलषित श्री को

भोजयेन्मधुरैर्भोज्यैर्ब्राह्मणान्वेदपारगान् । दीर्घमायुरवाप्नोति वांछितां विंदति श्रियम् ॥१२३॥
एकादशाहुतीर्नित्यं दूर्वाभिर्जुहुयाद् बुधः । अपमृत्युजिदेव स्यादायुरारोग्यवर्द्धनम् ॥१२४॥
त्रिजन्मसु सुधावल्लीकाश्मीरीबकुलोद्भवैः । समिद्वरैः कृतो होमः सर्वमृत्युगदापहः ॥१२५॥
सिद्धार्थैर्विहितो होमो महाज्वरविनाशनः । अपामार्ग समिद्धोमः सर्वामयनिषूदनः ॥१२६॥
दक्षिणामूर्तये पूर्वं तुभ्यं पदमनंतरम् । वटमूलपदस्यांते प्रवदेच्च निवासिने ॥१२७॥
ध्यानैकनिरतांगाय पश्चाद् ब्रूयान्नमः पदम् । रुद्राय शंभवे तारशक्तिरुद्धोऽयमीरितः ॥१२८॥
षट्‌त्रिंशदक्षरो मंत्रः सर्वकामफलप्रदः । मुनिः शुकः समुद्दिष्टश्छंदोऽनुष्टुप्प्रकीर्तितम् ॥१२९॥
देवता दक्षिणामूर्तिर्नाम्ना शंभुरुदीरितः । तारशक्तियुतैः पूर्वं ह्रौमाद्यंतैश्च मंत्रजैः ॥१३०॥
षट्षष्ठाष्टेषु वर्णैर्हृदयाद्यंगकल्पनम् । मूर्ध्नि भाले दृशोः श्रोत्रे गंडयुग्मे सनासिके ॥१३१॥
आस्यदोःसंधिषु गले स्तनहृन्नाभिमंडले । कट्यां गुह्ये पुनः पादसंधिष्वर्णान्यसेन्मनोः ॥१३२॥
व्यापकं तारशक्तिभ्यां कुर्याद्देहे ततः परम् । हिमाचलतटे रम्ये सिद्धकिन्नरसेविते ॥१३३॥
विविधद्रुमशाखाभिः सर्वतो वारितातपे । सुपुष्पितैर्लताजालैराश्लिष्टकुसुमद्रुमे ॥१३४॥
शिलाविवरनिर्गच्छन्निर्झरानिलशीतले । गायद्देवांगनासंघे नृत्यद्बर्हिकदम्बके ॥१३५॥
कूजत्कोकिलसंघेन मुखरीकृतदिङ्मुखे । परस्परविनिर्मुक्तमात्सर्यमृगसेविते ॥१३६॥
जलजैः स्थलजैः पुष्पैरामोदिभिरलंकृते । आद्यैः शुकाद्यैर्मुनिभिरजस्रसुखसेविते ॥१३७॥
पुरंदरमुखैर्देवैः सांगनाद्यैर्विलोकिते । वटवृक्षं महोच्छायं पद्मरागफलोज्ज्वलम् ॥१३८॥

प्राप्ति होती है। नित्य दूर्वाओं से ग्यारह आहुतियाँ देने से अपमृत्यु का नाश एवम् आयु और आरोग्य की वृद्धि होती है। तीन जन्मनक्षत्रों में गुड़ूच, कुंकुम तथा मौलसिरी की समिधा से होम करने से सकल अपमृत्युओं का नाश होता है। उजले सरसों से हवन करने से महाज्वर का नाश होता है। अपामार्ग की समिधा से होम करने से समस्त रोगों का नाश होता है ॥१२२-१२६॥

पहिले 'दक्षिणामूर्ति' पश्चात् 'तुभ्यम्' पद को रखे। फिर 'वटमूल' पद को रख कर अन्त में 'निवासिने' 'ध्यानैकनिरतांगाय', 'नमः', 'तारशक्ति' और 'रुद्राय शंभवे' को जोड़े। इस तरह यह छत्तीस अक्षरों का मन्त्र समस्त कामनाओं को पूर्ण करता है। इसके मुनि शुक हैं, छन्द अनुष्टुप् है और देवता दक्षिणामूर्ति हैं। शंभु के नाम से इसका व्यवहार होता है। आदि अन्त में 'ह्रौं', 'मा', तथा तारशक्ति से युक्त मन्त्रों से छह एवम् आठ अंगों का न्यास करे। मस्तक, भाल, नेत्र, कर्ण, कपोल, नासिका, मुख, भुजा, अस्थिसंधि, कंठ, स्तन, नाभि, कटि, गुह्य तथा पारद संधियों में मन्त्रवर्णों का न्यास करे ॥१२७-१३२॥ शरीर में स्मर तथा शक्तियों से व्यापक न्यास करे। तत्पश्चात् रमणीय हिमालय के तट पर वटवृक्ष के मूल में आसीन शंकर का न्यास करे। कल्पना करे कि हिमालय का तट सिद्ध तथा किन्नरगणों से सुसेवित हैं। वहाँ विविध वृक्ष लगे हुए हैं, जिनकी शाखायें धूप को नहीं आने देतीं। वृक्षों में नाना प्रकार के फूल खिले हुए हैं। लतायें, वृक्षों से लिपट कर शोभा बढ़ा रही हैं। शीतल वायु तथा झीलें मन को आनन्दित कर देती हैं। देवांगनायें गाती हैं, मयूर नाचते हैं। कोकिल समूह अपने कलरव से दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हैं। इन्द्र आदि देवगण अपनी अपनी प्रियतमाओं के साथ उस स्थान को देखने के लिये आते हैं। उसी स्थान में एक महाविशाल वटवृक्ष अवस्थित है, उसके फल पद्मराग मणि की तरह उज्ज्वल होते हैं ॥१३३-१३८॥ पत्र नौ रत्नों के बने हुए से प्रतीत होते हैं। वे बहुत

गारुत्मतमयैः पत्रैर्निबिडैरुपशोभितम् । नवरत्नमयाकल्पैर्लंबमानैरलंकृतम् ॥१३९॥
संसारतापविच्छेदकुशलच्छायमद्भुतम् । तस्यमूले सुसंक्लृप्तरत्नसिंहासने शुभे ॥१४०॥
आसीनमसिताकल्पं शरच्चंद्रनिभाननम् । कैलासाद्रिनिभं त्र्यक्षं चन्द्रांकितकपर्दकम् ॥१४१॥
नासाग्रालोकनपरं वीरासनसमास्थितम् । भद्राटके कुरंगाढ्यजानुस्थकरपल्लवम् ॥१४२॥
कक्षाबद्धभुजंगं च सुप्रसन्नं हरं स्मरेत् । अयुतद्वयसंयुक्तगुणलक्षं जपेन्मनुम् ॥१४३॥
तद्दशांशं तिलैः शुद्धैर्जुहुयात्क्षीरसंयुतैः । पंचाक्षरोदिते पीठे तद्विधानेन पूजयेत् ॥१४४॥
भिक्षाहारो जपेन्मासं मनुमेनं जितेंद्रियः । नित्यं सहस्रमष्टाढ्यं परां विंदति वाक्छ्रियम् ॥१४५॥
त्रिवारं जप्तमेतेन पयस्तु मनुना पिबेत् । दक्षिणामूर्तिसंध्यानाच्छास्त्रव्याख्यानकृद्भवेत् ॥१४६॥
प्रणवो हृदयं पश्चाद्वदेद्भगवतेपदम् । ङेयुतं दक्षिणामूर्ति मह्यं मेधामुदीरयेत् ॥१४७॥
प्रयच्छ ठद्वयांतोऽयं द्वाविंशत्यक्षरो मनुः । मुनिश्चतुर्मुखश्छंदो गायत्री देवतोदिता ॥१४८॥
तारयुक्तैः स्वरैर्दीर्घैः षड्भिरंगानि कल्पयेत् । पदैर्मंत्रभवैर्वापि ध्यानाद्यं पूर्ववन्मतम् ॥१४९॥
लोहितोग्न्यासनः सद्यो बिंदुमान्प्रथमं ततः । द्वितीयं वह्निबीजस्था दीर्घा शांतेन्दुभूषिता ॥१५०॥
तृतीया लांगलीशार्णमंत्रो बीजत्रयान्वितः । नीलकंठात्मकः प्रोक्तो विषद्वयहरः परः ॥१५१॥
हरद्वयं वह्निजाया हृदयं परिकीर्तितम् । कपर्दिने पदयुगं शिरोमंत्र उदाहृतः ॥१५२॥
नीलकंठाय ठद्वंद्वं शिखामंत्रोऽयमीरितः । कालकूटपदस्यांते विषभक्षणङेयुतम् ॥१५३॥
हुं फट् कवचमुद्दिष्टं नीलकंठिन इत्यतः । स्वाहांतमस्त्रमेतानि पंचांगानि मनोर्विदुः ॥१५४॥
मूर्ध्नि कंठे हृदंभोजे क्रमाद्बीजत्रयं न्यसेत् । बालार्कायुतवर्चस्कं जटाजूटेंदुशोभितम् ॥१५५॥

सघन तथा मरकतमणि के समान नील हैं। छाया संसार के ताप को विनष्ट करती है। उस वृक्ष के मूल में शुक्लकाय शंकर विराजमान हैं, उनका मुख शरत्कालीन चंद्रमा के समान है। शरीर की आभा कैलासपर्वत जैसी है, नेत्र तीन हैं। भाल चंद्रमा से सुशोभित है। दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर गिर रही है। स्वयं वीरासन लगाये हुए हैं। जानु पर करपल्लव रखे हुए हैं। उनके कक्षों में सर्प बन्धे हुए है और मन में अत्यन्त प्रसन्नता है, ऐसे शिव का ध्यान कर तीन लाख बीस हजार मन्त्र का जप करे। और उसका दशांश क्षीरयुक्त शुद्ध तिलों से हवन करे। पश्चात् पंचाक्षर मन्त्र से पीठ पर विधान पूर्वक पूजन करे ॥१३९-१४४॥

जो व्यक्ति एक मास तक भिक्षाटन करते हुए इंद्रिय निग्रह पूर्वक नित्य एक हजार आठ बार उपर्युक्त मंत्र का जप करता है, वह महाश्री तथा वाणी को प्राप्त करता है। जो दक्षिणामूर्ति का ध्यान करते हुए इस मन्त्र को तीन बार जप कर जल पीता है, वह शास्त्रव्याख्याता होता है। 'प्रणव······तोयम्''—यह बाईस अक्षरों का मंत्र है। इसके ऋषि चतुर्मुख हैं। छंद गायत्री है, और देवता दक्षिणामूर्ति हैं। मन्त्र के तारयुक्त दीर्घ वर्णों से षडंगन्यास करना चाहिये। मंत्र के पदों से ध्यान आदि पूर्ववत् करना चाहिये ॥१४५-१४९॥ ''लोहित·····लांगली''—यह ईशार्णमन्त्र है। ''नीलकंठ······पदयुगम्''—यह शिरो मंत्र है। ''नीलकंठाय द्वन्द्वम्''—यह शिखामन्त्र है। 'कालकूट' पद के अन्त में 'विषभक्षण' से लेकर 'स्वाहा' तक जोड़ने से पंचांग मन्त्र बनता है। मस्तक, कंठ तथा हृत्कमल में क्रमशः तीनों बीजों का न्यास करे। तदनन्तर बालचन्द्र के समान तेजस्वी, जटाकलाप से उपशोभित, सर्पों से विभूषित हाथों में जपवटी, त्रिशूल, ब्रह्मकपाल तथा खट्वांग धारण करने वाले त्रिनेत्र शिव का ध्यान कर तीन लाख मंत्र का जप करे और उसका दशांश घी से

नागभूषं जपवटीं शूलं ब्रह्मकपालकम् । खट्वांगं दधतं दोर्भिस्त्रिनेत्रं चिंतयेद्धरम् ॥१५६॥
लक्षत्रयं जपेन्मंत्रं तद्दशांशं ससर्पिषा । हविषा जुहुयात्सम्यक्संस्कृते हव्यवाहने ॥१५७॥
शैवं पीठे यजेद्देवं नीलकंठं समाहितः । मृत्युंजयविधानेन विषद्वयविनाशनम् ॥१५८॥
अग्निः संवर्तकादित्यरानिलौ षष्ठिबिंदुमान् । चिंतामणिरिति ख्यातं बीजं सर्वसमृद्धिदम् ॥१५९॥
कश्यपो मुनिराख्यातश्छंदोऽनुष्टुबुदाहृतम् । अर्धनारीश्वरः प्रोक्तो देवता जगतां पतिः ॥१६०॥
रेफादिव्यंजनैः षड्भिः कुर्यादंगानि षट् क्रमात् । त्रिनेत्रं नीलमणिभं शूलपाशं कपालकम् ॥१६१॥
रक्तोत्पलं च हस्ताब्जैर्दधतं चारुभूषणम् । बालेंदुबद्धमुकुटमर्द्धनारीश्वरं स्मरेत् ॥१६२॥
एकलक्षं जपेन्मंत्रं त्रिशतं मधुराप्लुतैः । तिलैर्हुनेद्यजेत्पीठे शैवेंगावरणैः सह ॥१६३॥
वृषाद्यैर्मातृभिः पश्चाल्लोकपालैस्तदायुधैः । प्रासादाद्यं जपेन्मंत्रमयुतं रोगशांतये ॥१६४॥
स्वाहावृत्तमिदं बीजं विगलत्परमामृतम् । चन्द्रबिम्बस्थितं मूर्ध्नि ध्यातं क्ष्वेडगदापहम् ॥१६५॥
प्रतिलोमस्वराढ्या च बीजं वह्निगृहे स्थितम् । रेफादिव्यंजनोल्लासिषट्कोणाभिवृतं बहिः ॥१६६॥
भूतार्तस्य स्मृतं मूर्ध्नि भूतनाशु विनाशयेत् । पीडितांगे स्मृतं तत्तत्पीडां शमयति ध्रुवम् ॥१६७॥
प्रणवो हृदयं पश्चान् ङेतः पशुपतिः पुनः । तारो नमो भूतपदं ततोऽधिपतये ध्रुवम् ॥१६८॥
नमो रुद्राय युगलं खड्गरावण शब्दतः । विहरद्वितयं पश्चान्नरीनृत्ययुगं पृथक् ॥१६९॥
श्मशानभस्मार्चितांते शरण्याय ततः परम् । घंटाकपालमालाविधरायेति पदं पुनः ॥१७०॥
व्याघ्रचर्मपदस्यांते परिधानाय तत्परम् । शशांककृतशब्दांते शेखराय ततः परम् ॥१७१॥
कृष्णसर्पपदात्पश्चाद्वदेद्यज्ञोपवीतिने । बलयुग्मं चलायुग्ममनिवर्तकपालिने ॥१७२॥
हनुयुग्मं ततो भूतांस्त्रासयद्वितयं पुनः । भूयो मंडलमध्ये स्यात्कटयुग्मं ततः परम् ॥१७३॥
रुद्रांकुशेन शमय प्रवेशययुगं ततः । आवेशययुगं पश्चाच्चंडासिपदमीरयेत् ॥१७४॥

सुसंस्कृत अग्नि में हवन करे। सावधान होकर शैव पीठ पर नीलकंठ देव की अर्चना करे। दोनों प्रकार के विष नष्ट करने वाले शंकर की मृत्युंजय मंत्र से पूजा करनी चाहिये ॥१५०-१५८॥ "अग्निः ...... चिंतामणिः" ——यह बीज मन्त्र है। इसके मुनि कश्यप हैं। छंद अनुष्टुप् है और देवता अर्धनारीश्वर जगत्पति शंकर हैं। रेफ आदि छह व्यंजनो से क्रमशः षडंगन्यास करके तीन नेत्र वाले, नीलमणि के समान आभावाले, करकमलों में त्रिशूल, पाश, कपाल तथा रक्तकमल धारण करने वाले, सुन्दर आभूषण पहननेवाले, बालचंद्र से संबद्ध मुकुटवाले अर्धनारीश्वर शंकर का ध्यान करे। पश्चात् एक लाख मन्त्र जप और तीन सौ बार मधुरयुक्त तिलों से हवन करे ॥१५९-१६३॥

फिर शैव पीठ पर अंगावरणों के साथ शंकर का पूजन कर मातृगण, आयुध सहित लोकपाल तथा नंदी आदि देवों की अर्चना करे। इस मंत्र के दश हजार जप करने से रोगशान्ति होती है। यह बीज मन्त्र स्वाहा से आवृत है, परम अमृत रूप है। मस्तक पर इसका ऐसा ध्यान करे कि यह चंद्रबिंब में अवस्थित है। इस तरह करने से कफरोग का नाश होता है। प्रति लोमस्वरसंपन्न बीज मंत्र वह्निगृह में संस्थित होता है। उसके छह कोण रेफ आदि व्यंजनों से सुशोभित हैं। जो भूतपीड़ा से दुःखी हो, उसके शिर को इस मंत्र से अभिमन्त्रित कर देने पर भूत शीघ्र नष्ट हो जाता है। अंगों में चाहे किसी प्रकार की पीड़ा हो, इसके जप से तुरन्त शान्त हो जाती है। "प्रणवः ......" यहाँ से लेकर "अग्निसुन्दरी ......" पर्यन्त पदों को जोड़ने से सौ से

धारादिपतिरुद्रोऽयं ज्ञापयत्यग्निसुन्दरो । खङ्गरावणमंत्रोऽयं सप्तत्यूर्ध्वशताक्षरः ॥१७५॥
भूताधिपतये स्वाहा पूजामन्त्रोऽयमीरितः । सिद्धमंत्रोऽयमुदितो जपादेव प्रसिद्ध्यति ॥१७६॥
अयुतद्वितयात्पश्चाद्भूतादिग्रहणे क्षमः । माया स्फुरद्वयं भूयः प्रस्फुरद्वितयं पुनः ॥१७७॥
घातयद्वितयं वर्म फडंतः समुदीरितः । एकपंचाशदर्णोऽयमघोरास्त्रं महामनुः ॥१७८॥
अघोरोऽस्य मुनिः प्रोक्तस्त्रिवृच्छंद उदाहृतम् । अघोररुद्रः संदिष्टो देवता मन्त्रनायकः ॥१७९॥
हृदयं पंचभिः प्रोक्तं शिरः षड्भिरुदाहृतम् । शिखा दशभिराख्याता नवभिः कवचं मतम् ॥१८०॥
वसुवर्णैः स्मृतं नेत्रं दशार्णैरस्त्रमीरितम् । मूर्ध्नि नेत्रास्यकंठेषु हृन्नाभ्यामूरुषु क्रमात् ॥१८१॥
जानुजंघापदद्वंद्वे रुद्रभिन्नाक्षरैर्न्यसेत् । पञ्चषट्काष्टवेदांगद्विद्व्यब्धिरसलोचनैः ॥१८२॥
श्यामं त्रिनेत्रं सर्पाढ्यं रक्तवस्त्रांगरागकम् । नानाशस्त्रधरं ध्यायेदघोराख्यं सदाशिवम् ॥१८३॥
भूतवेतालकादीनां क्षमोऽयं निग्रहे मनुः । तारो वांतो धरासंस्थो वामनेत्रेंदुभूषितः ॥१८४॥
पाशो बकः कर्णनेत्रवर्मास्त्रांतः षडक्षरः । मनुः पाशुपतास्त्राख्यो ग्रहक्षुद्रनिवारणः ॥१८५॥
षड्भिर्वर्णैः षडंगानि हुं फडंतैः सजातिभिः । मध्याह्नार्कप्रभं भामं त्र्यक्षं पन्नगभूषणम् ॥१८६॥
नानाशस्त्रं चतुर्वक्त्रं स्मरेत्पशुपतिं हरम् । वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः ॥१८७॥
गव्येन सर्पिषा मन्त्री संस्कृते हव्यवाहने । शैवे पीठे यजेदंगमातृलोकेश्वरायुधैः ॥१८८॥
अनेन मन्त्रितं तोयं भूतग्रस्तमुखे क्षिपेत् । सद्यः स मुंचति ग्रहान्महामंत्रप्रभावतः ॥१८९॥
अनेन मन्त्रितान्बाणान्विसृजेद्युधि यो नरः । जयेत्क्षणेन निखिलाञ्छत्रून्पार्थ इवापरः ॥१९०॥
॥१९१॥
वर्णान्तिमो बिन्दुयुतः क्षेत्रपालाय हृन्मनुः ।

अधिक अक्षरों वाला मन्त्र बनता है। "भूताधिपतये स्वाहा" यह पूजा का मन्त्र कहा गया है। इसको सिद्धमन्त्र भी कहते हैं। जप से ही इसकी सिद्धि हो जाती है ॥१६४-१७६॥ "अयुत ······ फट्"—यह अघोरास्त्र नामक महामन्त्र है। इसके ऋषि अघोर हैं, छंद त्रिवृत् है और मन्त्रनायक देवता अघोररुद्र हैं। इसके पाँच अक्षरों से हृदय, छह अक्षरों से शिर, दश से शिखा, नौ से कवच, आठ से नेत्र और दस से अस्त्र कहे गये हैं। मस्तक, नेत्र, मुख, कंठ, हृदय, नाभि, ऊरु, जानु, जंघा तथा पादद्वय में पाँच, छः, आठ, छः, दो, दो, चार, छः, एवम् दो में रुद्र (११) भिन्न अक्षरों से न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् श्यामवर्ण, त्रिनेत्र, सर्पभूषित, रक्तवस्त्र, अंगराग तथा अनेक शस्त्र धारण करने वाले अघोर नामक सदाशिव का ध्यान करे! यह मंत्र भूत बेताल आदि का निग्रह करने में समर्थ है। "तारः ········" यह पाशुपत नामक षडक्षर मन्त्र क्षुद्र ग्रहों का निवारण करता है। 'हूं' 'फट्' आदि छह वर्णों से षडंगन्यास करना चाहिये ॥१७७-१८५॥ पश्चात् मध्याह्नकालीन सूर्य के समान प्रभावाले, भयंकर रूपवाले, सर्पों के आभूषण वाले, तीन नेत्रवाले, विविध शास्त्रों के जानने वाले चार मुखवाले पशुपति महादेव का ध्यान कर छः लाख मंत्र को जपे और उसका दशांश गोघृत से सुसंस्कृत अग्नि में हवन करे। फिर शैव पीठ पर अंगावरण सहित मातृगण और आयुध सहित लोकपालों की अर्चना करे। इस मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित करके भूत ग्रस्त व्यक्ति के मुख में डालने से भूत छोड़ देता है, ऐसा इस महामन्त्र का प्रभाव है। जो नर संग्राम में इस मन्त्र से बाणों को अभिमन्त्रित करके शत्रुओं पर छोड़ता है, वह क्षणभर में इस तरह विजय पा लेता है जैसे अर्जुन। वर्णों के अंतिम अक्षर बिंदु तथा प्रणव से युक्त अष्टाक्षर मंत्र क्षेत्रपाल का कहा गया है ॥१८६-१९१॥ छह दीर्घ मात्राओं से

ताराद्यो वसुवर्णोऽयं क्षेत्रपालस्य कीर्तितः । षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडंगं न्यस्य चिन्तयेत् ॥१९२॥
नीलाचलाभं दिग्वस्त्रं सर्पभूषं त्रिलोचनम् । पिंगोर्ध्वकेशान्दधतं कपालं च गदां स्मरेत् ॥१९३॥
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः । चरुणा घृतसिक्तेन ततः क्षेत्रे समर्चयेत् ॥१९४॥
धर्मादिकल्पिते पीठे सांगावरणमादरात् । तस्मै सपरिवाराय बलिमेतेन निर्हरेत् ॥१९५॥
पूर्वमेहिद्वयं पश्चाद्विद्विषं पुरुषं द्वयम् । भञ्जय द्वितयं भूयो नतय द्वितयं पुनः ॥१९६॥
ततो विघ्नपदद्वन्द्वं महाभैरव तत्परम् । क्षेत्र पालबलिं गृह्णद्वयं पावकसुन्दरी ॥१९७॥
बलिमन्त्रोऽयमाख्यातः सर्वकामफलप्रदः । सोपदेशं बृहत्पिण्डं कृत्वा रात्रिषु साधकः ॥१९८॥
स्मृत्वा यथोक्तं क्षेत्रेशं तस्य हस्ते बलिं हरेत् । बलिनानेन सन्तुष्टः क्षेत्रपालः प्रयच्छति ॥१९९॥
कांति मेधां बलारोग्यं तेजः पुष्टि यशः श्रियम् । उद्धरेद्बटुकं ङेंतमापदुद्धारणं तथा ॥२००॥
कुरुद्वयं ततः पश्चाद्बटुकं ङेंतमुच्चरेत् । शक्तिरुद्धो ध्रुवादिश्च द्वाविंशत्यक्षरो मनुः ॥२०१॥
द्विचतुःसप्तवेदाब्धिचंद्रार्णैरंगकं मनोः । बालं स्फटिकसंकाशं तल्लोललसिताननम् ॥२०२॥
दिव्या कल्पैः प्रदीप्तांगं त्र्यक्षं दंडत्रिशूलिनम् । सुप्रसन्नं स्मरेद्भक्त्या भक्तानामभयंकरम् ॥२०३॥ ॥२०४॥
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः । तद्दशांशंप्रजुहुयात्तिलैर्मधुरसंयुतैः ॥२०५॥
धर्मादिकल्पिते पीठे पंकजे चातिशोभने । षट्कोणांतस्त्रिकोणस्थव्योमपंकजसंयुते
बटुकं पूजयेद्देवं सांगावरणकं क्रमात् । शत्रुपक्षस्य रुधिरं विशितं च दिने दिने । ॥२०६॥
भक्षयस्व गणैः सार्द्धं सारमेयसमन्वितः ॥२०७॥
बलिमन्त्रोऽयमाख्यातः शत्रुनाम्ना विदर्भितः । अनेन बलिना हृष्टो बटुकः परसैन्यकम् ॥२०८॥
छित्त्वा गणेभ्यो विभजेदामिषं क्रुद्धमानसः । अङ्कुशो वह्निशिखरो लांतदांत इतीरितः ॥२०९॥

युक्त बीजमंत्र से षडंगन्यास करके नील पर्वत के समान आभा वाले, दिगम्बर, सर्पों से विभूषित, त्रिलोचन, भूरे तथा ऊर्ध्व विस्तृत केशवाले, कपाल एवम् गदा धारण करने वाले शिव का ध्यान करे। तत्पश्चात् एक लाख मन्त्र का जप कर उसका दशांश घृतसिक्त चरु से हवन करे। तदनन्तर धर्मादि कल्पित पीठ पर आदर पूर्वक अंगावरण सहित क्षेत्रपाल की पूजा करके परिवार सहित उनको बलि चढाये। "पूर्वम्......पावक-सुन्दरी"—यह बलिमन्त्र है, जो अखिल कामनाओं को प्रदान करता है। रात्रि में साधक एक उपकरण सहित बृहत् पिंड को लेकर क्षेत्रेश का स्मरण करते हुए उनके हाथ में बलि समर्पित करे ॥१९२-१९९॥

बलि से संतुष्ट होकर क्षेत्रपाल साधक को कांति, मेधा, बल, आरोग्य, तेज, पुष्टि, यश तथा श्री प्रदान करते हैं। "उद्धरेत्......ध्रुवादिः"—यह बाईस, अक्षरों का मन्त्र है। मंत्र के दूसरे, चौथे, सातवें और पहले अक्षर से अंगन्यास करना चाहिये। तदनन्तर स्फटिक के समान स्वच्छ वर्ण वाले, चंचल मुख वाले, दिव्य आभूषणों से प्रदीप्त अंग वाले, तीन नेत्र वाले, दण्ड और त्रिशूल धारण करने वाले, भक्तों को अभय दान देने वाले, सदा सुप्रसन्न रहने वाले बाल रूप शंकर का ध्यान करे। फिर हविष्य भोजन तथा इंद्रिय-संयम करते हुए बाईस लाख मन्त्र का जप करे और उसका दशांश मधुरयुक्त तिल से हवन करे ॥२००-२०४॥

अनन्तर धर्मादिकल्पित अत्यन्त मनोहर पद्मपीठ पर अंगावरण सहित बटुक देव की पूजा करे। "शत्रुपक्षस्य............"—यह बलि देने का मन्त्र है। शत्रु का नाम लेकर इस मन्त्र से बटुक को बलि समर्पण करने से उक्तदेव हृष्ट होकर शत्रुसेना को छिन्न-भिन्न करते हुए क्रोध से उसके मांस के टुकड़े-टुकड़े कर

फडन्तश्चण्डमन्त्रोऽयं त्रिवर्णात्मा समीरितः । अस्य त्रितो मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ॥२०९॥
चंडेशो देवता प्रोक्ता वक्ष्यतेऽथाङ्गकल्पनम् । हृदयं दीप्तफट् प्रोक्तं ज्वलफट् शिर ईरितम् ॥२१०॥
शिखाज्वालिनि फट् प्रोक्ता वहफट् कवचं मतम् ।
हलफट् नेत्रमाख्यातं सर्वज्वालिनि फट् परम् ॥२११॥
विन्यस्यैवं षडंगानि ततो देवं विचिंतयेत् । चंडेश्वरं रक्ततनुं त्र्यक्षं रक्तांबरावृतम् ॥२१२॥
दधतं च त्रिशूलाक्षमालाटंककमंडलून् । वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं होमं कुर्याद्दशांशतः ॥२१३॥
मधुरत्रयसंयुक्तैर्विशुद्धैस्तिलतंडुलैः । पंचाक्षरोदिते पीठे मूर्ति मूलेन कल्पयेत् ॥२१४॥
कूर्मेशो बिंदुसंयुक्तस्ततश्चंडेश्वराय च । हृदयं मनुराख्यातश्चंडेशस्य प्रपूजने ॥२१५॥
अंगैर्मातृभिराशेशैर्वज्राद्यैरावृतिर्भवेत् । शैवमंत्रेषु निष्णातश्चण्डेश्वरमनुं जपेत् ॥२१६॥
सर्वान्कामानवाप्नोति परत्रेह च नंदति । शृणु नारद वक्ष्यामि दिव्यं माहेश्वरं स्तवम् ॥२१७॥
यस्य पाठेन पूजायां सिद्ध्यंति मन्त्रोऽखिलाः ॥२१८॥
धराम्बुवह्निमरुद्व्योमखेशेंद्वर्कमूर्तये । सर्वभूतान्तरस्थाय शंकराय नमोनमः ॥२१९॥
श्रुत्यंतकृतवासाय श्रुतये श्रुतिजन्मने । अतींद्रियाय महसे शाश्वताय नमोनमः ॥२२०॥
स्थूलसूक्ष्मविभागाभ्यामनिर्देश्याय शंभवे । भवाय भवसंभूतदुःखहन्त्रे नमोनमः ॥२२१॥
तर्कमार्गातिदूराय तपसां फलदायिने । चतुर्वर्गप्रदान्याय सर्वज्ञाय नमोनमः ॥२२२॥
आदिमध्यांतशून्याय निरस्ताशेषभीतये । योगिध्येयाय महते निर्गुणाय नमोनमः ॥२२३॥
विश्वात्मने विविक्ताय विलसच्चंद्रमौलये । कंदर्पदर्पनाशाय कालहंत्रे नमोनमः ॥२२४॥

देते हैं। "अंकुश........फट्"—यह चन्द्रमन्त्र कहलाता है। इसके मुनि त्रित हैं, छन्द अनुष्टुप् है और देवता चण्डेश हैं। 'दीप्त फट्' 'ज्वल फट्' आदि पदों का उच्चारण कर हृदय, शिर, नेत्र आदि छह अंगों का न्यास करे ॥२०५-२११½॥ तदुपरान्त रक्त शरीर वाले, तीन नेत्र वाले, त्रिशूल, रुद्राक्षमाला, टंक, कमंडलु तथा रक्त वस्त्र धारण करने वाले शंकर का ध्यान कर तीन लाख मन्त्र को जपे और उसका दशांश त्रिमधुयुक्त शुद्ध तिल-तंडुल से होम करे। पुनः पंचाक्षर पीठ पर मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर "कूर्मेशः च.....हृदयम्"—इस मन्त्र से चंडेश की पूजा करे। तत्पश्चात् सांगोपांग मातृगण और वज्र आदि आयुधों समेत लोकपालों की अर्चना कर शैव मन्त्रों में निष्णात साधक चण्डेश्वर के मन्त्र का जप करे ॥२१२-२१६॥

उपर्युक्त प्रकार से शिव की आराधना करने वाला व्यक्ति इस लोक में समस्त कामनाओं को प्राप्त कर परलोक में आनन्दोपभोग करता है। नारद! अब मैं महेश्वर के दिव्य स्तोत्र को बता रहा हूँ, जिसका पूजा के समय पाठ करने से सकल मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं—"पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्नि, इन्द्र, चन्द्र, तथा सूर्य रूपी शंकर को नमस्कार है। सकल प्राणियों में वास करने वाले शिव को नमस्कार है। श्रुतियों के अन्त में वास करने वाले, श्रुतिरूप, श्रुतिजन्मा, इन्द्रियों से परे, तेजोरूप, शाश्वत शम्भु को नमस्कार है। स्थूल तथा सूक्ष्म विभाग से अनिर्देश्य, सांसारिक दुःख का हरण करने वाले भवरूप शिव को नमस्कार है ॥२१७-२२१॥

तर्कमार्ग से अत्यन्त दूर रहने वाले, तपस्या के फल देने वाले धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कराने वाले सर्वज्ञ शिव को नमस्कार है। आदि, मध्य और अन्त से रहित, समस्त प्रकार के भयों से शून्य, योगियों के ध्यान करने योग्य, निर्गुण, महान्, शंकर को नमस्कार है। विश्वात्मा एकान्तप्रिय, चन्द्रमा से सुशोभित ललाट

विषाशनाय विहरद्वृषस्कंधमुपेयुषे । सरिद्दामसमाबद्धकपर्दाय नमोनमः ॥२२५॥
शुद्धाय शुद्धभावाय शुद्धानामंतरात्मने । पुरांतकाय पूर्णाय पुण्यनाम्ने नमोनमः ॥२२६॥
भक्ताय निजभक्तानां भुक्तिमुक्तिप्रदायिने । विवाससे निवासाय विश्वेषां पतये नमः ॥२२७॥
त्रिमूर्तिमूलभूताय त्रिनेत्राय त्रिशूलिने । त्रिधाम्ने धामरूपाय जन्मदाय नमोनमः ॥२२८॥
देवासुरशिरोरत्नकिरीटारुणितांघ्रये । कांताय निजकांतायै दत्तार्द्धाय नमोनमः ॥२२९॥
एतत्स्तोत्रं महेशस्य प्रोक्तं सर्वाघनाशनम् । शिवसान्निध्यदं विप्र सर्वतंत्रप्रकाशकम् ॥२३०॥
एतत्ते सुमहत्तन्त्रं सर्वदेवप्रकाशकम् । लोकाभिलाषसंपूर्तिक्रियासाधनसंगतम् ॥२३१॥
ये तु सामान्यतः प्रोक्तास्तंत्रेऽस्मिन्मनवो द्विज । ॥२३२॥
ते तु लोकोपकाराय ज्ञातव्याः सिद्धिदायकाः
विशेषतो वैष्णवा ये मंत्राः सर्वोत्तमोत्तमाः । त एव साधनीयाः स्युश्चतुर्वर्गफलाप्तये ॥२३३॥
राममन्त्राः कृष्णमन्त्राः सांगा रासेशिमन्त्रकाः । ॥२३४॥
शाक्ताः सौराश्च गाणेशाः शैवाः प्रोक्ताः शुभावहाः
तेषु स्वात्मप्रकाशाय भजेन्मुक्तिफलप्रदान् । एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्त्वयाभ्यर्थितं मुने । ॥२३५॥
देवताराधनं भक्त्या किं भूयः श्रोतुमिच्छसि
इति श्री बृहन्नार० पूर्वभागे बृहदु० तृतीयपादे महेशमन्त्रकथनं नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

॥ इति तृतीय पादः ॥

वाले, कंदर्प के दर्प का दलन करने वाले, कालनाशन शिव को नमस्कार है । विष भक्षण करने वाले, विहरणशील वृषभ के कन्धे पर बैठने वाले, गंगा रूपी रस्सी से आबद्ध जटा वाले शंकर को नमस्कार है । शुद्ध रूप, शुद्ध भाव वाले, शुद्ध व्यक्तियों के अन्तरात्मा, पुरांतक, पूर्ण तथा पुण्यनामा शिव को नमस्कार है ॥२२२-२२६॥

भक्त, अपने भक्तों को भुक्ति-मुक्ति देने वाले दिगम्बर, विश्वपति शिव को नमस्कार है। त्रिमूर्तियों के मूलभूत, त्रिनेत्र, त्रिशूल धारण करने वाले तीनों धाम वाले, धामरूप, जन्मदाता शिव को नमस्कार है। देवों तथा असुरों के मस्तक स्थित मुकुटों के रत्नों से अरुणित चरण वाले, कमनीय रूप वाले, निज कांता को अर्धशरीर प्रदान करने वाले शिव को नमस्कार है।'' विप्र ! महेश का यह स्तोत्र समस्त पापों का नाश करने वाला, शिव के सान्निध्य को देने वाला और समस्त रहस्यों को प्रकाशित करने वाला है ॥२२७-२३० ॥

द्विज ! सकल देवों का दर्शन कराने वाला, लोगों की अभिलाषा को पूर्ण करने वाला यह महान् तन्त्र मैंने बतला दिया । इसमें जो मुख्य-मुख्य मन्त्र बताये गये हैं, वे सिद्धिदायक हैं । उन्हें लोकोपकार की दृष्टि से जान लेना चाहिये । विशेष करके सर्वोत्तम वैष्णव मन्त्र जो कहे गये हैं, उनका साधन तो चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिये अवश्य करना चाहिये । इसमें कल्याणकारक रामन्त्र, कृष्णमन्त्र, राधिकामन्त्र, शक्ति, सौर, गाणेश, तथा शैवमन्त्र भी बताये गये हैं । आत्मप्रकाश के लिये उन मोक्षदायक मन्त्रों की साधना करनी चाहिये । मुने ! देवाराधना के विषय में जो कुछ तुमने पूछा वह मैं बता चुका । अब क्या सुनना चाहते हो ॥२३१-२३५॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त तृतीय पाद में महेश मन्त्र कथन नामक इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९१॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा नारदस्तु कुमारस्य वचो मुदा। पुनरप्याह सुप्रीतो जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ॥१॥

नारद उवाच

साधु साधु महाभाग सर्वलोकोपकारकम्। महातंत्रं त्वया प्रोक्तं सर्वतंत्रोत्तमोत्तमम् ॥२॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि पुराणाख्यानमुत्तमम्। यस्मिन्यस्मिन्पुराणे तु यद्यदाख्यानकं मुने। ॥३॥
तत्सर्वं मे समाचक्ष्व सर्वज्ञस्त्वं यतो मतः

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विप्रा नारदस्य शुभावहम्। पुराणाख्यानसंप्रश्नं कुमारः प्रत्युवाच ह ॥४॥

सनत्कुमार उवाच

पुराणाख्यानकं विप्र नानाकल्पसमुद्भवम्। नानाकथासमायुक्तमद्भुतं बहुविस्तरम् ॥५॥
ऋषिः सनातनश्चायं यथा वेद तथाऽपरः। न वेद तस्मात्पृच्छ त्वं बहुकल्पविदां वरम् ॥६॥

अध्याय ९२

संक्षेप में ब्रह्मपुराण का इतिहास

सूत बोले—कुमार के वचन को सुनकर जिज्ञासु नारद परम प्रसन्न हुए और कल्याण की बातें फिर पूछने लगे ॥१।

नारद बोले—महाभाग ! साधु ! साधु ! आपने अखिल लोकोपकारक तथा समस्त तन्त्रों में उत्तम महातन्त्र को बता दिया। अब मैं पुराणों के पवित्र आख्यान को सुनना चाहता हूँ। मुने ! जिस-जिस पुराण में जो आख्यान आते हैं, वह सब मुझे बता दीजिये, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं ॥२-३॥

सूत बोले—विप्रवृन्द ! नारद के पुराणाख्यान सम्बन्धी कल्याणकारक प्रश्न को सुनकर कुमार कहने लगे ॥४॥

सनत्कुमार बोले—"विप्र ! अनेक कल्पों में होने वाले, पुराणों के आख्यान विविध कथाओं से युक्त, अद्भुत तथा अत्यन्त विस्तृत हैं। ये सनातन नामक ऋषि अपर वेदावतार ही हैं। ये अनेक कल्पज्ञाताओं में श्रेष्ठ हैं। इनसे तुम अपनी जिज्ञासा पूरी कर लो ॥५-६॥"

श्रुत्वेत्थं नारदो वाक्यं कुमारस्य महात्मनः । प्रणम्य विनयोपेतः सनातनमथाब्रवीत् ॥७॥

नारद उवाच

ब्रह्मन्पुराणविच्छ्रेष्ठ ज्ञानविज्ञानतत्पर । पुराणानां विभागं मे साकल्येनानुकीर्तय ॥८॥
यस्मिञ् श्रुते श्रुतं सर्वं ज्ञाते ज्ञातं कृते कृतम् ॥९॥
वर्णाश्रमाचारधर्मं साक्षात्कारमुपैष्यति । कति च पुराणानि कियत्संख्यानि मानतः ॥१०॥
किंकिमाख्यानयुक्तानि तद्वदस्व मम प्रभो । चातुर्वर्ण्याश्रमा नानाव्रतादीनां कथास्तथा ॥११॥
सृष्टिक्रमेण वंशानां कथाः सम्यक्प्रकाशय । त्वत्तोऽधिको न चान्योऽस्ति पुराणाख्यानवित्प्रभो ॥१२॥
तस्मादाख्याहि मह्यं त्वं सर्वसन्देहभंजनम् ।

सूत उवाच

ततः सनातनो विप्राः श्रुत्वा नारदभाषितम् ॥१३॥
नारायणं क्षणं ध्यात्वा प्रोवाचाथ विदां वरः ।

सनातन उवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठ सर्वलोकोपकारिका ॥१४॥
पुराणाख्यानविज्ञाने यज्जाता नैष्ठिकी मतिः । तुभ्यं समभिधास्यामि यत्प्रोक्तं ब्रह्मणा पुरा ॥१५
मरीच्यादिऋषिभ्यस्तु पुत्रस्नेहावृतात्मना । एकदा ब्रह्मणः पुत्रो मरीचिर्नाम विश्रुतः ॥१६॥
स्वाध्यायश्रुतसंपन्नो वेदवेदांगपारगः । उपसृत्य स्वपितरं ब्रह्माणं लोकभावनम् ॥१७॥
प्रणम्य भक्त्या पप्रच्छ इदमेव मुनीश्वर । पुराणाख्यानममलं यत्त्वं पृच्छसि मानद ॥१८॥

महात्मा कुमार की यह बात सुनकर नारद विनयपूर्वक सनातन को प्रणाम करके निवेदन करने लगे ॥७॥

नारद बोले—ब्रह्मन् ! पुराणवेत्ताओं में श्रेष्ठ ! ज्ञान-विज्ञान से भरे पुराणों के आख्यानों को समग्रतया मुझे बता दीजिये, जिनके सुनने से सब कुछ सुना हुआ जानने से जाना हुआ तथा करने से किया हुआ हो जाता है और जिनमें वर्णाश्रमधर्म एवम् आचारधर्म का साक्षात्कार कराया गया है । प्रभो ! कितने पुराण हैं ? उनकी कितनी संख्या है ? कौन-कौन-से आख्यान कहे गये है ? सब कुछ मुझे बतला दीजिये । नानाव्रत, चातुर्वर्ण्य तथा सृष्टिक्रम से वंशों की कथायें सम्यक् प्रकार से कहिये । आपसे बढ़कर पुराणों का ज्ञाता कोई नहीं है । इसलिये मेरे समस्त संशयों का आप निराकरण कीजिये ।

सूत बोले—विप्रगण । तदुपरान्त नारद का वचन सुनकर वेत्ताओं में श्रेष्ठ सनातन क्षण भर नारायण का ध्यान कर कहने लगे ।

सनातन बोले—मुनिश्रेष्ठ ! साधु ! साधु ! पुराणों के आख्यान सुनने में जो तुम्हारी प्रीति हुई है, उससे सकल लोकों का उपकार होगा । प्राचीन काल में पुत्र-स्नेह-वशीभूत ब्रह्मा ने मरीचि आदि ऋषियों से जो बताया था, वह मैं तुमसे कहूँगा । मुनीश्वर ! एक समय अत्यन्त विख्यात, वेदवेदांगपारंगत स्वाध्याय संपन्न ब्रह्मपुत्र मरीचि अपने पिता लोककर्ता ब्रह्मा के समीप जाकर भक्ति पूर्वक प्रणाम करते हुए यही पुराणों के पवित्र आख्यान, जो तुमने प्रश्न किया है, पूछ बैठे ॥८-१८॥

मरीचिरुवाच

भगवन्देवदेवेश लोकानां प्रभवाप्यय । सर्वज्ञ सर्वकल्याण सर्वाध्यक्ष नमोऽस्तु ते ॥१९॥
पुराणबीजमाख्याहि मह्यं शुश्रूषवे पितः । लक्षणं च प्रमाणं च वक्तारं पृच्छकं तथा ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणानां समुच्चयम् । यस्मिञ्ज्ञाते भवेज्ज्ञातं वाङ्मयं सचराचरम् ॥२१॥
पुराणमेकमेवासीत्सर्वकल्पेषु मानद । चतुर्वर्गस्य बीजं च शतकोटिप्रविस्तरम् ॥२२॥
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणादभवत्ततः । कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य महामतिः ॥२३॥
हरिर्व्यासस्वरूपेण जायते च युगे युगे । चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा ॥२४॥
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोके निर्दिशत्यपि । अद्यापि देवलोके तु शतकोटिप्रविस्तरम् ॥२५॥
अस्त्येव तस्य सारस्तु चतुर्लक्षेण वर्ण्यते । ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च वायवीयं तथैव च ॥२६॥
भागवतं नारदीयं मार्कंडेयं च कीर्तितम् । आग्नेयं च भविष्यं च ब्रह्मवैवर्त्तलिंगके ॥२७॥
वाराहं च तथा स्कांदं वामनं कूर्मसंज्ञकम् । मात्स्यं च गारुडं तद्वद्ब्रह्मांडाख्यमिति त्रिषट् ॥२८॥
एकं कथानकं सूत्रं वक्तुः श्रोतुः समाह्वयम् । प्रवक्ष्यामि समासेन निशामय समाहितः ॥२९॥
ब्राह्मं पुराणं तत्रादौ सर्वलोकहिताय वै । व्यासेन वेदविदुषा समाख्यातं महात्मना ॥३०॥
तद्वै सर्वपुराणाऽग्र्यं धर्मकामार्थमोक्षदम् । नानाख्यानेतिहासाढ्यं दशसाहस्रमुच्यते ॥३१॥
देवानां च सुराणां च यत्रोत्पत्तिः प्रकीर्तिता । प्रजापतीनां च तथा दक्षादीनां मुनीश्वर ॥३२॥

मरीचि बोले—भगवन् ! देवदेवेश ! लोकों के उत्पादक तथा विनाशक ! सर्वज्ञ ! सर्वकल्याण ! सर्वाध्यक्ष आपको नमस्कार है । पिता ! मुझ शुश्रूषु को पुराण के बीज, लक्षण, प्रमाण, वक्ता तथा प्रष्ठा के विषय में समझाइये ॥१९-२०॥

ब्रह्मा बोले—वत्स ! सुनो, मैं पुराणों का संग्रह बतला रहा हूँ, जिसके जान लेने से चराचर सहित संपूर्ण वाङ्मय ज्ञात हो जाता है । मानद ! समस्त कल्पों में एक ही पुराण चतुर्वर्ग का बीजरूप तथा सौ करोड़ श्लोकों में विस्तृत था । उस पुराण से सकल शास्त्रों की उत्पत्ति हुई । समय-समय पर लोकों में उस विस्तृत पुराण के ग्रहण करने की अक्षमता देखकर महामति हरि व्यासरूप से युग-युग में अवतार लेते हैं । प्रत्येक द्वापर युग में चतुर्लक्ष श्लोकों के प्रमाण से उस पुराण को अट्ठारह भागों में विभक्त करके भूलोक में छोड़ देते हैं ॥२१-२४½॥ उस शतकोटि विस्तृत पुराण का देवलोक में आज भी उस पुराण का सौ करोड़ श्लोकों में विस्तार है । उसका सार चार लाख श्लोकों में वर्णन किया गया है । ब्राह्म, पाद्म, वैष्णव, वायवीय, भागवत, नारदीय, मार्कंडेय, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, लिंग, वाराह, स्कांद, वामन, कूर्म, मात्स्य, गारुड, तथा ब्रह्मांड—ये अठारह पुराणों के नाम हैं । सब का एक ही कथानक-सूत्र है । उस सूत्र को तथा वक्ता और श्रोता के नाम को मैं संक्षेप से बता देता हूँ, तुम सावधानी से सुनो । सब पुराणों में प्रथम पुराण ब्राह्म है, जिसकी रचना वेद के विद्वान् महात्मा व्यास ने अखिल लोकों के कल्याण के लिये की । वह सर्वप्रथम पुराण कहलाता है; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देता है । उसमें अनेक आख्यान तथा इतिहास भरे हैं; श्लोकों की संख्या दस हजार हैं ॥२५-३१॥

मुनीश्वर ! ब्रह्मपुराण में देवों, असुरों, प्रजापतियों तथा दक्ष, आदिकों की उत्पत्ति बताई गई हैं; लोकेश्वर

ततो लोकेश्वरस्यात्र सूर्यस्य परमात्मनः। वंशानुकीर्तनं पुण्यं महापातकनाशनम् ॥३३॥
यत्रावतारः कथितः. परमानंदरूपिणः। श्रीमतो रामचंद्रस्य चतुर्व्यूहावतारिणः ॥३४॥
ततश्च सोमवंशस्य कीर्तनं यत्र वर्णितम्। कृष्णस्य जगदीशस्य चरितं कल्मषापहम् ॥३५॥
द्वीपानां चैव सर्वेषां वर्षाणां चाप्यशेषतः। वर्णनं यत्र पातालस्वर्गाणां च प्रदृश्यते ॥३६॥
नरकाणां समाख्यानं सूर्यस्तुतिकथानकम्। पार्वत्याश्च तथा जन्म विवाहश्च निगद्यते ॥३७॥
दक्षाख्यानं ततः प्रोक्तमेकाम्रक्षेत्रवर्णनम्। पूर्वभागोऽयमुदितः पुराणस्यास्य नारद ॥३८॥
अस्योत्तरे विभागे तु पुरुषोत्तमवर्णनम्। विस्तरेण समाख्यातं तीर्थयात्राविधानतः ॥३९॥
अत्रैव कृष्णचरितं विस्तरात्समुदीरितम्। वर्णनं यमलोकस्य पितृश्राद्धविधिस्तथा ॥४०॥
वर्णाश्रमाणां धर्माश्च कीर्तिता यत्र विस्तरात्। विष्णुधर्मयुगाख्यानं प्रलयस्य च वर्णनम् ॥४१॥
योगानां च समाख्यानं सांख्यानां चापि वर्णनम्। ब्रह्मवादसमुद्देशः पुराणस्य प्रशंसनम् ॥४२॥
एतद्ब्रह्मपुराणं तु भागद्वयसमन्वितम्। वर्णितं सर्वपापघ्नं सर्वसौख्यप्रदायकम् ॥४३॥
सूतशौनकसंवादं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्। लिखित्वैतत्पुराणं यो वैशाख्यां हेमसंयुतम् ॥४४॥
जलधेनुयुतं चापि भक्त्या दद्याद्द्विजातये। पौराणिकाय संपूज्य वस्त्रभोज्यविभूषणैः ॥४५॥
स वसेद्ब्रह्मणो लोके यावच्चंद्रार्कतारकम्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि ब्राह्मानुक्रमणीं द्विज ॥४६॥
सोऽपि सर्वपुराणस्य श्रोतुर्वक्तुः फलं लभेत्। शृणोति यः पुराणं तु ब्राह्मं सर्वं जितेंद्रियः ॥४७॥

परमात्मा सूर्य के वंश का वर्णन किया गया है, जो महापातकों का नाशक है; चतुर्व्यूहावतारी परमानन्दरूपी श्रीमान् रामचन्द्र का अवतार वर्णित है; सोमवंश का कीर्तन तथा जगदीश कृष्ण के पापनाशन चरित्र का वर्णन आता है; अखिल द्वीपों, वर्षों, पाताल, स्वर्ग तथा नरक का आख्यान मिलता है; सूर्य की स्तुति एवम् कथा, पार्वती का जन्म और विवाह वर्णित किया गया है; दक्ष का आख्यान और एकाम्रक्षेत्र का वर्णन भी मिलता है। नारद! इतना तो उस पुराण के पूर्वभाग का विषय है ॥३२-३८॥.

उत्तर भाग में विस्तार से पुरुषोत्तम क्षेत्र का वर्णन और तीर्थयात्रा का विधान बताया गया है। इसी भाग में विस्तार से कृष्णचरित्र यमलोक, पितृश्राद्ध, वर्णाश्रमधर्म, विष्णुधर्म, युग, प्रलय, योग तथा सांख्य का वर्णन किया गया है; ब्रह्मवाद का उद्देश्य-कथन तथा पुराण की प्रशंसा की गई है। बस, यही विषय ब्रह्मपुराण के दोनों भागों में आते हैं।

यह पुराण सकल पापनाशक, सर्वसौख्यदायक एवम् भुक्ति-मुक्ति प्रदायक है। उसमें सूत और शौनक का संवाद हुआ है ॥३९-९३॥

वैशाख की पूर्णिमा को जो व्यक्ति वस्त्र, भोज्य तथा आभूषणों से पौराणिक ब्राह्मण का पूजन का सुवर्ण तथा जलधेनु, सहित लिखित ब्रह्मपुराण की पुस्तक प्रदान करता है, वह जब तक सूर्य-चन्द्रमा रहते हैं तब तक ब्रह्मलोक में वास करता है। जो द्विज ब्रह्मपुराण का श्रवण या पाठ करता है, उसे समस्त पुराणों के पारायण तथा श्रवण करने का फल मिलता है। जो जितेन्द्रिय होकर नियमपूर्वक हविष्य भक्षण करते हुए ब्रह्मपुराण का श्रवण

हविष्याशो च नियमात्स लभेद्ब्रह्मणः पदम् । किमत्र बहुनोक्तेन यद्यदिच्छति मानवः
तत्सर्वं लभते वत्स पुराणस्यास्य कीर्तनात् ॥४८॥

इति श्री बृहन्ना० पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे ब्राह्मपुराणेतिहासकथनं नाम
द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि पुराणं पद्मसंज्ञकम् । महत्पुण्यप्रदं नृणां शृण्वतां पठतां मुदा ॥१॥
यथा पंचेंद्रियः सर्वः शरीरीति निगद्यते । तथेदं पंचभिः खंडैरुदितं पापनाशनम् ॥२॥
पुलस्त्येन तु भीष्माय सृष्टयादिक्रमतो द्विज । नानाख्यानेतिहासाद्यैर्यत्रोक्तो धर्मविस्तरः ॥३॥
पुष्करस्य च माहात्म्यं विस्तरेण प्रकीर्तितम् । ब्रह्मयज्ञविधानं च वेदपाठादिलक्षणम् ॥४॥

करता है, उसे ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है। वत्स! अधिक क्या कहें, उस पुराण के कीर्तन करने से मनुष्य जो कुछ चाहता है, वह सब उसे मिल जाता है ॥४४-४८॥

श्रीनारदीयपुराण के पूर्वार्घ में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में ब्रह्मपुराण का इतिहास कथन नामक बानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९२॥

अध्याय ९३

पद्मपुराण की विषय-सूची

ब्रह्मा बोले—पुत्र! सुनो, अब मैं हर्ष से पद्मपुराण के सम्बन्ध में कहूँगा, जो सुनने तथा पढ़ने वालों के लिये महापुण्यदायक है। जैसे पांच इन्द्रियों से युक्त प्राणी शरीरी कहलाता है, उसी तरह पांच खण्डों से युक्त यह पुराण पापनाशन कहा जाता है। द्विज! इस पुराण में जहाँ पुलस्त्य ने भीष्म से सृष्टि के आदि से लेकर अनेक आख्यान, इतिहास, धर्म, पुष्करमाहात्म्य, ब्रह्मयज्ञविधान, वेदपाठ आदि के लक्षण, दान तथा व्रतों का पृथक्

दानानां कीर्तनं यत्र व्रतानां च पृथक्पृथक् । विवाहः शैलजायाश्च तारकाख्यानकं महत् ॥५॥
माहात्म्यं च गवादीनां कीर्तितं सर्वपुण्यदम् । कालकेयादिदैत्यानां वधो यत्र पृथक्पृथक् ॥६॥
ग्रहाणामर्चनं दानं यत्र प्रोक्तं द्विजोत्तम । तत्सृष्टिखंडमुद्दिष्टं व्यासेन सुमहात्मना ॥७॥
पितृमात्रादिपूज्यत्वे शिवशर्मकथा पुरा । सुव्रतस्य कथा पश्चाद्वृत्रस्य च वधस्तथा ॥८॥
पृथोर्वेनस्य चाख्यानं सुनीथायाः कथा तथा । सुकलाख्यानकं चैव धर्माख्यानं ततः परम् ॥९॥
पितृशुश्रूषणाख्यानं नहुषस्य कथा ततः । ययातिचरितं चैव गुरुतीर्थनिरूपणम् ॥१०॥
राज्ञा जैमिनिसंवादो बह्वाश्चर्य्यकथायुतः । कथा ह्यशोकसुन्दर्या हुण्डदैत्यवधान्विता ॥११॥
कामोदाख्यानकं तत्र विहुण्डवधसंयुतम् । कुंजलस्य च संवादश्च्यवनेन महात्मना ॥१२॥
सिद्धाख्यानं ततः प्रोक्तं खंडस्यास्य फलोहनम् । सूतशौनकसंवादं भूमिखंडमिदं स्मृतम् ॥१३॥
ब्रह्माण्डोत्पत्तिरुदिता यत्रर्षिभिश्च सौतिना । सभूमिलोकसंस्थानं तीर्थाख्यानं ततः परम् ॥१४॥
नर्मदोत्पत्तिकथनं तत्तीर्थानां कथाः पृथक् । कुरुक्षेत्रादितीर्थानां कथा पुण्या प्रकीर्तिता ॥१५॥
कालिंदीपुण्यकथनं काशीमाहात्म्यवर्णनम् । गयायाश्चैव माहात्म्यं प्रयागस्य च पुण्यकम् ॥१६॥
वर्णाश्रमानुरोधेन कर्मयोगनिरूपणम् । व्यासजैमिनिसंवादः पुण्यकर्मकथान्वितः ॥१७॥
समुद्रमथनाख्यानं व्रताख्यानं ततः परम् । ऊर्ज्जपंचाहमाहात्म्यं स्तोत्रं सर्वापराधनुत् ॥१८॥
एतत्स्वर्गाभिधं विप्र सर्वपातकनाशनम् । रामाश्वमेधं प्रथमं रामराज्याभिषेचनम् ॥२०॥
अगस्त्याद्यागमश्चैव पौलस्त्यान्वयकीर्त्तनम् । अश्वमेधोपदेशश्च हयचर्या ततः परम् ॥२१॥
नानाराजकथाः पुण्या जगन्नाथानुवर्णनम् । वृन्दावनस्य माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥

कथन, पार्वती का विवाहवर्णन, तारक तथा कालकेय आदि दैत्यों का वध, गो आदिकों का माहात्म्यवर्णन, ग्रहों का अर्चन तथा दान बतलाये हैं, उसे महात्मा व्यास ने सृष्टि खंड कहा है ॥१-६॥

पिता-माता के पूज्यत्व के विषय में शिवशर्मा की कथा, सुव्रत की कथा, वृत्रवध, पृथुवेन का आख्यान, सुनीथा की कथा, सुकला का आख्यान, धर्माख्यान, पितृशुश्रूषा का आख्यान, नहुष की कथा, ययातिचरित्र, गुरुतीर्थनिरूपण, राजा और जैमिनि का अनेक आश्चर्यजनक कथाओं से युक्त संवाद, अशोकसुन्दरी की कथा, और हुंडदैत्य का वध, कामोदा-आख्यान, विहुंडवध, महात्मा च्यवन के साथ कुंजल का संवाद, सिद्धाख्यान, सूत-शौनक-संवाद जहाँ निर्दिष्ट किये गये हैं, उसका नाम भूमिखण्ड है ॥७-१३॥

जहाँ सूतपुत्र द्वारा ऋषियों से ब्रह्मांड की उत्पत्ति का वर्णन, भूलोक का संस्थान, तीर्थाख्यान, नर्मदोत्पत्ति-कथन, तीर्थों की पृथक्-पृथक् कथायें, कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों की पवित्र कथा, कालिंदीपुण्यकथन, काशीमाहात्म्य वर्णन, गया तथा प्रयाग का माहात्म्यवर्णन, वर्णाश्रम के अनुरोध से कर्मयोगनिरूपण, व्यास और जैमिनि का संवाद, पुण्यकर्म की कथा, समुद्रमंथन का आख्यान, व्रताख्यान, कार्तिक के पांच दिनों का माहात्म्य और सर्वापराधनोदनस्तत्रोत, बतलाये गये हैं, उसे स्वर्गखण्ड कहते है, जो सकल पातकों का नाशक है ।

विप्र ! रामाश्वमेध, रामराज्याभिषेक, अगस्त्य आदि का आगमन, पौलस्त्यवंशवर्णन, अश्वमेध का उपदेश, अश्वचर्या, अनेक राजाओं की पवित्र कथायें, जगन्नाथ वर्णन, समस्त पापनाशन, वृन्दावन का माहात्म्य, कृष्णावतार की नित्यलीलाओं का कथन, माधवस्नानमाहात्म्य, स्नान, दान तथा अर्चन का फल, पृथ्वी तथा

नित्यलीलानुकथनं यत्र कृष्णावतारिणः । माधवस्नानमाहात्म्यं स्नानदानार्चने फलम् ॥२२॥
धरावराहसंवादो यमब्राह्मणयोः कथा । संवादो राजदूतानां कृष्णस्तोत्रनिरूपणम् ॥२३॥
शिवशंभुसमायोगो दधीचाख्यानकं ततः । भस्ममाहात्म्यमतुलं शिवमाहात्म्यमुत्तमम् ॥२४॥
देवरातसुताख्यानं पुराणज्ञप्रशंसनम् । गौतमाख्यानकं चैव शिवगीता ततः स्मृता ॥२५॥
कल्पांतरे रामकथा भारद्वाजाश्रमस्थिता । पातालखंडमेतद्धि शृण्वतां पठतां सदा ॥२६॥
सर्वपापप्रशमनं सर्वाभीष्टफलप्रदम् । पर्वताख्यानकं पूर्वं गौर्यै प्रोक्तं शिवेन वै ॥२७॥
जालंधरकथा पश्चाच्छ्रीशैलाद्यनुकीर्तनम् । सगरस्य कथा पुण्या ततः परमुदीरितम् ॥२८॥
गंगाप्रयागकाशीनां गयायाश्चाधिपुण्यकम् । अन्नादिदानमाहात्म्यं तन्महाद्वादशीव्रतम् ॥२९॥
चतुर्विशैकादशीनां माहात्म्यं पृथगीरितम् । विष्णुधर्मसमाख्यानं विष्णुनामसहस्रकम् ॥३०॥
कार्त्तिकव्रतमाहात्म्यं माघस्नानफलं ततः । जम्बूद्वीपस्य तीर्थानां माहात्म्यं पापनाशनम् ॥३१॥
साभ्रमत्याश्च माहात्म्यं नृसिंहोत्पत्तिवर्णनम् । देवशर्मादिकाख्यानं गीतामाहात्म्यवर्णनम् ॥३२॥
भक्त्याख्यानं च माहात्म्यं श्रीमद्भागवतस्य ह । इन्द्रप्रस्थस्य माहात्म्यं बहुतीर्थकथान्वितम् ॥३३॥
मन्त्ररत्नाभिधानं च त्रिपाद्भूत्यनुवर्णनम् । अवतारकथाः पुण्या मत्स्यादीनामतः परम् ॥३४॥
रामनामशतं दिव्यं तन्माहात्म्यं च वाडव । परीक्षणं च भृगुणा श्रीविष्णोर्वैभवस्य च ॥३५॥
इत्येतदुत्तरं खण्डं पंचमं सर्वपुण्यदम् । पंचखंडयुतं पाद्मं यः शृणोति नरोत्तमः ॥३६॥
स लभेद्वैष्णवं धाम भुक्त्वा भोगानिहेप्सितान् । एतद्वै पंचपंचाशत्सहस्रं पद्मसंज्ञकम् ॥३७॥
पुराणं लेखयित्वा वै ज्येष्ठ्यां स्वर्णाब्जसंयुतम् । यः प्रदद्यात्सुसत्कृत्य पुराणज्ञाय मानद ॥३८॥

वाराह का संवाद, यम और ब्राह्मण की कथा, राजा का दूतों से संवाद, कृष्णस्तोत्रनिरूपण, शिव तथा शम्भु का समायोग, दधीच का आख्यान, अतुलनीय भस्ममाहात्म्य, उत्तम शिवमाहात्म्य, देवरात के पुत्र का आख्यान, पुराणज्ञों की प्रशंसा, गौतमाख्यान, शिवगीता और कल्पांतर में भारद्वाजआश्रम सम्बन्धी राम की कथा जिसमें वर्णित है, वह पातालखंड है, जो सुनने तथा पढ़ने वालों के लिये सकलपापनाशक एवम् वांछितफलदायक है ॥१४-२६३॥

पांचवें खण्ड का नाम उत्तर है। इसमें गौरी के प्रति शंकर द्वारा पर्वत का आख्यान, जालंधर कथा, श्रीशैल आदि का कीर्तन, सगर की पवित्र कथा, गंगा, प्रयाग, काशी तथा गया का पुण्यवर्णन, अन्नादिदान माहात्म्य, महाद्वादशीव्रत, चौबीस एकादशियों का पृथक्-पृथक् माहात्म्यवर्णन, विष्णुधर्म का आख्यान, विष्णु-सहस्रनाम, कार्तिक व्रतमाहात्म्य, माघस्नानफल, जम्बूद्वीप के तीर्थों का पापनाशक माहात्म्य, साभ्रमती का माहात्म्य, नृसिंहोत्पत्तिवर्णन, देवशर्मा आदि का आख्यान, गीतामाहात्म्यवर्णन, भक्ति का आख्यान, श्रीमद्भागवत का माहात्म्य, अनेक तीर्थ कथाओं के साथ इन्द्रप्रस्थ का माहात्म्य, मन्त्ररत्न का कथन, त्रिपाद्भूति का वर्णन, मत्स्य आदि अवतारों की पवित्र कथायें, राम नाम का शतनाम तथा दिव्यमाहात्म्य और भृगु द्वारा श्रीविष्णु के वैभव का परीक्षण बतलाये गये हैं। यह खंड समस्त पुण्यों को देने वाला है ॥२७-३५॥

जो श्रेष्ठ मनुष्य पांच खंडों से युक्त पद्मपुराण का श्रवण करेगा, वह इस लोक में अभिलषित भोगों का भोग कर वैकुण्ठ को जायेगा। मानद ! जो व्यक्ति पचपन हजार श्लोकों से परिपूर्ण पद्मपुराण को लिखकर ज्येष्ठ की पूर्णिमा में पौराणिक ब्राह्मण को स्वर्ग कमल सहित यह पुराण प्रदान करता है, वह सर्वदेववन्द्य होकर

स याति वैष्णवं धाम सर्वदेवनमस्कृतः । पद्मानुक्रमणीमेतां यः पठेच्छृणयात्तथा ॥३९॥
सोऽपि पद्मपुराणस्य लभेच्छ्रवणजं फलम् ॥४०॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे पद्मपुराणानुक्रमणिकावर्णनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

•

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

श्रीब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वैष्णवं महत् । त्रयोविंशतिसाहस्रं सर्वपातकनाशनम् ॥१॥
यत्रादिभागे निर्दिष्टाः षडंशा शक्तिजेन ह । मैत्रेयायादिमे तत्र पुराणस्यावतारिकाम् ॥२॥
आदिकारणसर्गश्च देवादीनां च संभवः । समुद्रमथनाख्यानं दक्षादीनां ततोऽन्वयः ॥३॥
ध्रुवस्य चरितं चैव पृथोश्चरितमेव च । प्राचेतसं तथाख्यानं प्रह्लादस्य कथानकम् ॥४॥

विष्णुलोक को जाता है। जो मानव पद्मपुराण की इस अनुक्रमणी को सुनेगा या पढ़ेगा, वह भी इस पुराण के श्रवणजन्य फल को प्राप्त करेगा ॥३९-४०॥

श्रीनारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में पद्मपुराण का अनुक्रमणिका वर्णन नामक तिरानबेवां अध्याय समाप्त ॥९३॥

अध्याय ९४

विष्णुपुराण की विषय-सूची

श्री ब्रह्मा बोले—वत्स ! सुनो, अब मैं अखिल पातकों के नाश करने वाले तथा तेईस हजार श्लोक वाले विष्णु महापुराण के सम्बन्ध में कहूँगा, जिसके आदि भाग में पराशर ने छह अंशों का निर्देश किया है। उसके प्रारंभ में मुनि ने मैत्रेय से पुराण की अवतारिका बतलाई है। तदनन्तर सृष्टि का आदिकारण, देवादिकों की उत्पत्ति, समुद्रमंथन का आख्यान, दक्ष आदि का वंशवर्णन, ध्रुव का चरित्र, प्रचेता का आख्यान, प्रह्लाद का कथानक, राज्यों का पृथक्-पृथक् अधिकार वर्णन—ये सब बातें प्रथम अंश में कही गई हैं ॥१-४½॥ द्वितीय अंश

पृथुराज्याधिकाराख्या प्रथमोंऽश इतीरितः । प्रियव्रतान्वयाख्यानं द्वीपवर्षनिरूपणम् ॥५॥
पातालनरकाख्यानं सप्तस्वर्गनिरूपणम् । सूर्यादिवारकथनं पृथग्लक्षणसंयुतम् ॥६॥
चरितं भरतस्याथ मुक्तिमार्गनिदर्शनम् । निदाघऋभुसंवादो द्वितीयोंऽश उदाहृतः ॥७॥
मन्वन्तरसमाख्यानं वेदव्यासावतारकम् । नरकोद्धारकं कर्म गदितं च ततः परम् ॥८॥
सगरस्यौर्वसंवादे सर्वधर्मनिरूपणम् । श्राद्धकल्पं तथोद्दिष्टं वर्णाश्रमनिबन्धनम् ॥९॥
सदाचारश्च कथितो मायामोहकथा ततः । तृतीयोंऽशोऽयमुदितः सर्वपापप्रणाशनः ॥१०॥
सूर्यवंशकथा पुण्या सोमवंशानुकीर्तनम् । चतुर्थेंऽशे मुनिश्रेष्ठ नानाराजकथान्वितम् ॥११॥
कृष्णावतारसंप्रश्नो गोकुलीया कथा ततः । पूतनादिवधो बाल्ये कौमारेऽघादिहिंसनम् ॥१२॥
कैशोरे कंसहननं माथुरं चरितं तथा । ततस्तु यौवने प्रोक्ता लीला द्वारवतीभवा ॥१३॥
सर्वदैत्यवधो यत्र विवाहाश्च पृथग्विधाः । यत्र स्थित्वा जगन्नाथः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥१४॥
भूभारहरणं चक्रे परेषां हननादिभिः । अष्टावक्रीयमाख्यानं पंचमोंऽश इतीरितः ॥१५॥
कलिजं चरितं प्रोक्तं चातुर्विध्यं लयस्य च । ब्रह्मज्ञानसमुद्देशः खांडिक्यस्य निरूपितः ॥१६॥
केशिध्वजेन चेत्येष षष्ठोंऽशः परिकीर्तितः । अतः परं तु सूतेन शौनकादिभिरादरात् ॥१७॥
पृष्टेन चोदिताः शश्वद्विष्णुधर्मोत्तराह्वयाः । नानाधर्मकथाः पुण्या व्रतानि नियमा यमाः ॥१८॥
धर्मशास्त्रं चार्थशास्त्रं वेदांतं ज्योतिषं तथा । वंशाख्यानं प्रकरणात् स्तोत्राणि मनवस्तथा ॥१९॥
नानाविद्यास्तथा प्रोक्ताः सर्वलोकोपकारिकाः । एतद्विष्णुपुराणं वै सर्वशास्त्रार्थसंग्रहम् ॥२०॥
वाराहकल्पवृत्तांतं व्यासेन कथितं त्विह । यो नरः पठते भक्त्या यः शृणोति च सादरम् ॥२१॥
तावुभौ विष्णुलोकं हि व्रजेतां भुक्तभोगकौ । तल्लिखित्वा च यो दद्यादाषाढ्यां घृतधेनुना ॥२२॥

में प्रियव्रत का वंशवर्णन, द्वीपों और वर्षों का निरूपण, रवि आदि दिनों का पृथक्-पृथक् लक्षण निर्देश, भरत का
चरित्र-वर्णन मुक्तिमार्ग का निदर्शन, निदाघ और ऋभु का संवाद, कहा गया है। सकल पापनाशन तृतीय अंश में
मन्वन्तर का आख्यान, वेदव्यास का अवतार, नरकोद्धारक कर्म, सगर तथा और्व का संवाद, समस्त धर्मों का
निरूपण, श्राद्धकल्प, वर्णाश्रमनिबन्धन, सदाचार तथा माया-मोह की कथा बताई गई है। मुनिश्रेष्ठ! चतुर्थ अंश
में अनेक राजाओं की कथा, कृष्णावतार के विषय में प्रश्न, गोकुल की कथा, (कृष्ण की) बाल्यावस्था में पूतना
आदि का वध, कौमार अवस्था में अघासुर आदि की हिंसा, किशोरावस्था में कंस हनन तथा मथुरा का चरित्र-
वर्णन, युवावस्था में द्वारिका की लीला, अखिल दैत्यों का वध और अनेक विवाह बतलाये गये हैं ॥५-१३½॥
जिस अंश में जगन्नाथ एवम् योगेश्वरेश्वर कृष्ण ने शत्रुओं को मारकर पृथ्वी का भार उतारा, वह पाँचवाँ अंश
है। छठे अंश में कलि का चरित्र, चार प्रकार के लय, ब्रह्मज्ञान, केशिध्वजोपाख्यान और खांडिक्य की मंत्रणा
बताई गई है।

एतदुपरान्त शौनक आदि ऋषियों से आदरपूर्वक पूछे जाने पर सूत ने शाश्वत विष्णु धर्म संबन्धी अनेक
कथायें, व्रत, नियम, यम धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, वेदान्त, ज्योतिष, प्रकरणवश वंशाख्यान, स्तोत्र, मंत्र तथा
अखिल लोकोपकारक अनेक तरह की विद्यायें बताई हैं। इस विष्णुपुराण में सब शास्त्रों का तत्त्व संग्रहीत
है ॥१४-२०॥ व्यास ने इस पुराण में वाराहकल्प का वृत्तान्त वर्णन किया है। जो नर आदरपूर्वक इसका पाठ
करता है और जो श्रवण करता है, वे दोनों सकल भोगों को भोगकर विष्णुलोक को जाते हैं। द्विज! जो इसको लिख

सहितं विष्णुभक्ताय पुराणार्थविदे द्विज । स याति वैष्णवं धाम विमानेनार्कवर्चसा ॥२३॥
यश्च विष्णुपुराणस्य समनुक्रमणीं द्विज । कथयेच्छृणुयाद्वापि स पुराणफलं लभेत् ॥२४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे विष्णुपुराणानुक्रमणीनिरूपणं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

•

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुराणं वायवीयकम् । यस्मिञ्छ्रुते लभेद्धाम रुद्रस्य परमात्मनः ॥१॥
चतुर्विंशतिसाहस्रं तत्पुराणं प्रकीर्तितम् । श्वेतकल्पप्रसंगेन धर्मानत्राह मारुतः ॥२॥
तद्वायवीयमुदितं भागद्वयसमन्वितम् । सर्गादिलक्षणं यत्र प्रोक्तं विप्र सविस्तरम् ॥३॥
मन्वंतरेषु वंशाश्च राज्ञां ये तत्र कीर्तिताः । गयासुरस्य हननं विस्तराद्यत्र कीर्तितम् ॥४॥

कर आषाढ़ की पूर्णिमा में पुराणवेत्ता तथा विष्णुभक्त विप्र को घृतधेनु सहित इसे प्रदान करता है, वह सूर्य के समान चमकने वाले विमान से बैकुण्ठ को प्रयाण करता है। जो विष्णुपुराण की अनुक्रमणी को पढ़ेगा या सुनेगा, उसे भी संपूर्ण पुराण का फल प्राप्त होगा ॥२१-२४॥

श्रीनारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में विष्णुपुराणानुक्रमणी निरूपण नामक चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९४॥

अध्याय ९५

वायुपुराण की विषय सूची

ब्रह्मा बोले—विप्र ! सुनो, मैं वायवीय पुराण कहूँगा, जिसे सुनकर मनुष्य परमात्मा रुद्र के धाम को प्राप्त करता है। उस पुराण में चौबीस हजार श्लोक हैं, वायु ने श्वेतकला के प्रसंग से धर्मों को बतलाया है। उसमें दो भाग हैं। प्रथम भाग में सृष्टि आदि का लक्षण विस्तारपूर्वक बतलाया गया है, मन्वन्तरों में जहाँ जो राजा हुए हैं, उनका वंशवर्णन किया गया है; गयासुर का वध विस्तार से वर्णित हुआ है, मासों का माहात्म्य

मासानां चैव माहात्म्यं माघस्योक्तं फलाधिकम् । दानधर्मा राजधर्मा विस्तरेणोदितास्तथा ॥५॥
भूपातालककुब्व्योमचारिणां यत्र निर्णयः । व्रतानां च पूर्वोऽयं विभागः समुदाहृतः ॥६॥
उत्तरे तस्य भागे तु नर्मदातीर्थवर्णनम् । शिवस्य संहितोक्ता वै विस्तरेण मुनीश्वर ॥७॥
यो देवः सर्वदेवानां दुर्विज्ञेयः सनातनः । स तु सर्वात्मना यस्यास्तीरे तिष्ठति संततम् ॥८॥
इदं ब्रह्मा हरिरिदं साक्षाच्चेदं परो हरः । इदं ब्रह्म निराकारं कैवल्यं नर्मदाजलम् ॥९॥
ध्रुवं लोकहितार्थाय शिवेन स्वशरीरतः । शक्तिः कापि सरिद्रूपा रेवेयमवतारिता ॥१०॥
ये वसंत्युत्तरे कूले रुद्रस्यानुचरा हि ते । वसंति याम्यतीरे ये लोकं ते यांति वैष्णवम् ॥११॥
ओंकारेश्वरमारभ्य यावत्पश्चिमसागरः । संगमाः पंच च त्रिंशन्नदीनां पापनाशनी ॥१२॥
दशैकमुत्तरे तीरे त्रयोविंशतिर्दक्षिणे । पंचत्रिंशत्तमः प्रोक्तो रेवासागरसंगमः ॥१३॥
संगमैः सहितान्येव रेवातीरद्वयेऽपि च । चतुःशतानि तीर्थानि प्रसिद्धानि च संत हि ॥१४॥
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यो मुनीश्वर । संति चान्यानि रेवायास्तीरयुग्मे पदे पदे ॥१५॥
संहितेयं महापुण्या शिवस्य परमात्मनः । नर्मदाचरितं यत्र वायुना परिकीर्तितम् ॥१६॥
लिखित्वेदं पुराणं तु गुडधेनुसमन्वितम् । श्रावण्यां यो ददेद्भक्त्या ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥१७॥
रुद्रलोके वसेत्सोऽपि यावदिंद्राश्चतुर्दश । यः श्रावयेद्वा शृणुयाद्वायवीयमिदं नरः ॥१८॥
नियमेन हविष्याशी स रुद्रो नात्र संशयः । यश्चानुक्रमणीमेतां शृणोति श्रावयेत्तथा ॥१९॥

एवम् माघ का फल प्रचुरतया बताया गया है; दानधर्म तथा राजधर्मों का विस्तृत वर्णन है ॥१-५॥
भू, पाताल, दिशा तथा आकाशचारियों का और व्रत आदिकों का निर्णय किया गया है। मुनीश्वर ! उत्तर भाग
में नर्मदातीर्थ तथा शिवसंहिता का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। जैसे जो सनातन देव समस्त देवों से
दुर्ज्ञेय हैं, वे सब प्रकार से नर्मदा नदी के तट पर सदा वास करते हैं। नर्मदा का जल ब्रह्मा, साक्षात् हरि, हर,
निराकार ब्रह्म तथा निर्वाण रूप है। निश्चय ही लोककल्याण के लिये शिव ने अपने शरीर से किसी शक्ति को
रेवा नदी के रूप में अवतरित किया है। जो नर्मदा के उत्तर तट पर वास करते हैं, वे मानो रुद्र के अनुचर ही
हैं। जो दक्षिण तट पर वास करते हैं, वे विष्णुलोक को जाते हैं। ओंकारेश्वर से लेकर पश्चिमसागर पर्यन्त
पैंतीस पापनाशिनी नदियों का संगम है ॥६-१२॥ ग्यारह नदियाँ तो रेवा के उत्तर तीर से मिली हैं और तेईस
दक्षिण तट से। पैंतीसवाँ संगम तो समुद्र के साथ ही नर्मदा का माना जाता है। रेवा के उभय तट पर संगमीय
तीर्थों सहित चार सौ प्रसिद्ध तीर्थ विराजते हैं। मुनीश्वर ! साठ करोड़ और साठ हजार अन्य तीर्थ भी रेवा
के युगल तटों के पद-पद में विद्यमान हैं। परमात्मा शिव की यह संहिता महापुण्यदायिनी है, जिसमें वायु ने
नर्मदा का चरित्रवर्णन किया है। श्रावणी पूर्णिमा के दिन जो व्यक्ति इस पुराण को लिखकर गुडधेनु सहित कुटुम्बी
ब्राह्मण को भक्तिपूर्वक समर्पित करता है, वह तब तक रुद्रलोक में बास करता है जब तक चौदहों इन्द्र हो जाते
हैं। जो नर नियम पूर्वक हविष्य-भोजन करते हुए उस वायुपुराण को सुनता है या सुनाता है, वह रुद्र होता है,

सोऽपि सर्वपुराणस्य फलं श्रवणजं लभेत् । ॥२०॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे वायुपुराणानुक्रमणीनिरूपणं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

•

षण्णवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

मरीचे शृणु वक्ष्यामि वेदव्यासेन यत्कृतम् । श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ॥१॥
तदष्टादशसाहस्रं कीर्तितं पापनाशनम् । सुरपादपरूपोऽयं स्कंधैर्द्वादशभिर्युतः ॥२॥
भगवानेव विप्रेन्द्र विश्वरूपी समीरितः । तत्र तु प्रथमस्कंधे सूतर्षीणां समागमे ॥३॥
व्यासस्य चरितं पुण्यं पांडवानां तथैव च । पारीक्षितमुपाख्यानमितीदं समुदाहृतम् ॥४॥
परीक्षिच्छुकसंवादे सृष्टिद्वयनिरूपणम् ब्रह्मनारदसंवादे देवताचरितामृतम् ॥५॥

इसमें संशय नहीं । जो इस अनुक्रमणिका का श्रवण करता है या कराता है, उसे भी संपूर्ण वायुपुराण सुनने का फल लाभ होता है ॥१३-२०॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्द्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में वायुपुराण का अनुक्रमणिका वर्णन नामक पंचानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९५॥

अध्याय ९६

श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध के अनुसार उसकी अनुक्रमणी

श्रीब्रह्मा बोले—मरीचे ! सुनो, वेदव्यास ने श्रीमद्भागवत नामक जो ब्रह्मसम्मत पुराण का निर्माण किया है, उसे मैं कहूँगा । उस पाप-नाशन पुराण में अठारह हजार श्लोक हैं । बारह स्कंधों में वह विभक्त है । विप्रेन्द्र ! वह कल्पवृक्ष के समान है । विश्वरूपी भगवान् का ही उसे स्वरूप समझना चाहिये । उसके प्रथम स्कंध में सूत और ऋषियों का संवाद हुआ है, जिसमें व्यास तथा पांडवों का पवित्र चरित्र और परीक्षित का उपाख्यान वर्णित किया गया है ॥१-४॥ परीक्षित और शुक के संवादरूप द्वितीय स्कंध में श्रीमान् व्यास ने सृष्टिद्वय का

पुराणलक्षणं चैव सृष्टिकारणसंभवः । द्वितीयोऽयं समुदितः स्कंधो व्यासेन धीमता ॥६॥
चरितं विदुरस्याथ मैत्रेयेणास्य संगमः । सृष्टिप्रकरणं पश्चाद्ब्रह्मणः परमात्मनः ॥७॥
कापिलं सांख्यमप्यत्र तृतीयोऽयमुदाहृतः । सत्याश्चरितमादौ तु ध्रुवस्य चरितं ततः ॥८॥
पृथोः पुण्यसमाख्यानं ततः प्राचीनबर्हिषम् । इत्येष तुर्यो गदितो विसर्गे स्कंध उत्तमः ॥९॥
प्रियव्रतस्य चरितं तद्वंश्यानां च पुण्यदम् । ब्रह्मांडांतर्गतानां च लोकानां वर्णनं ततः ॥१०॥
नरकस्थितिरित्येष संस्थाने पंचमो मतः । अजामिलस्य चरितं दक्षसृष्टिनिरूपणम् ॥११॥
प्रह्लादचरितं पुण्यं वर्णाश्रमनिरूपणम् । सप्तमो गदितो वत्स वासनाकर्मकीर्तने ॥१२॥
वृत्राख्यानं ततः पश्चान्मरुतां जन्म पुण्यदम् । षष्ठोऽयमुदितः स्कंधो व्यासेन परिपोषणे ॥१३॥
गजेन्द्रमोक्षणाख्यानं मन्वंतरनिरूपणे । समुद्रमथनं चैव बलिवैभवबंधनम् ॥१४॥
मत्स्यावतारचरितमष्टमोऽयं प्रकीर्तितः । सूर्यवंशसमाख्यानं सोमवंशनिरूपणम् ॥१५॥
वंश्यानुचरिते प्रोक्तो नवमोऽयं महामते । कृष्णस्य बालचरितं कौमारं च व्रजस्थितिः ॥१६॥
कैशोरं मथुरास्थानं यौवनं द्वारकास्थितिः । भूभारहरणं चात्र निरोधे दशमः स्मृतः ॥१७॥
नारदेन तु संवादो वसुदेवस्य कीर्तितः । यदोश्च दत्तात्रेयेण श्रीकृष्णेनोद्धवस्य च ॥१८॥
यादवानां मिथोंतश्च मुक्तावेकादशः स्मृतः । भविष्यकलिनिर्देशो मोक्षो राज्ञः परीक्षितः ॥१९॥
वेदशाखाप्रणयनं मार्कंडेयतपः क्रिया । सौरी विभूतिरुदिता सात्वती च ततः परम् ॥२०॥
पुराणसंख्याकथनमाश्रये द्वादशो ह्ययम् । इत्येवं कथितं वत्स श्रीमद्भागवतं तव ॥२१॥
वक्तुः श्रोतुश्चोपदेष्टुरनुमोदितुरेव च । साहाय्यकर्तुर्गदितं भक्तिभुक्तिविमुक्तिदम् ॥२२॥

निरूपण किया है तथा ब्रह्मा और नारद के संवाद में देवताओं का चरित्र, पुराणों का लक्षण और सृष्टि का कारण बतलाया है। तृतीय स्कंध में विदुर का चरित्र, मैत्रेय के साथ उसका संगम, परमात्मा ब्रह्मा का सृष्टि-प्रकरण और कपिलनिर्मित सांख्य शास्त्र का निरूपण किया गया है। चतुर्थ स्कंध में सत्या एवम् ध्रुव का चरित्र, पृथु तथा प्राचीन बर्हिष् का पवित्र उपाख्यान आता है। पंचम स्कंध में प्रियव्रत तथा उनके वंशजों का पवित्र चरित्र, ब्रह्मांड के अन्तवर्ती लोकों तथा नरकों की स्थिति दिखलाई गई है। छठे स्कंध में अजामिल का चरित्र, दक्षसृष्टि का निरूपण, वृत्राख्यान और मरुतों का उद्भव बताया गया है। वत्स! सातवें स्कंध में वासनाजन्य कर्मों का कथन, प्रह्लाद का चरित्र और वर्णाश्रमों का निरूपण किया गया है ॥५-१३॥ अष्टम स्कंध में मन्वन्तरों का निरूपण, गजेन्द्रमोक्ष का आख्यान, सागरमंथन, बलिवैभव बंधन तथा मत्स्यावतार का चरित्र वर्णन किया गया है। महामते! नवम स्कंध में सूर्यवंश का आख्यान, सोमवंश का निरूपण तथा वंशवालों का चरित्र वर्णन मिलता है। दशम स्कंध में कृष्ण की बाललीला, कौमार अवस्था में उनका व्रजवास, कैशोर अवस्था में मथुरावास, युवावस्था में द्वारकावास तथा भूभार का हरण बतलाया गया है। एकादश स्कंध में नारद और वसुदेव का संवाद, यदु तथा दत्तात्रेय का संवाद, श्रीकृष्ण एवम् उद्धव का संवाद और यादवों का परस्पर नाश बताया गया है। द्वादश स्कंध में भविष्यकाल का निर्देश, राजा परीक्षित् का मोक्ष, वेदशाखाप्रणयन, मार्कंडेय का तप, सौरी सनातनी विभूति और पुराणों की संख्या का निर्देश किया गया है।

वत्स! यह श्रीमद्भागवत तुमसे कहा है, जो वक्ता, श्रोता, उपदेष्टा, अनुमोदिता तथा साहाय्यकर्ता को भुक्ति, मुक्ति एवम् भक्ति प्रदान करता है ॥१४-२२॥ भगवद्भक्ति के इच्छुक को चाहिये कि वह भादों की पूर्णिमा

प्रोष्ठपद्यां पूर्णिमायां हेमसिंहसमन्वितम् । देयं भागवतायेदं द्विजाय प्रीतिपूर्वकम् ॥२३॥
संपूज्य वस्त्रहेमाद्यैर्भगवद्भक्तिमिच्छता । योऽप्यनुक्रमणीमेतां श्रावयेच्छृणुयात्तथा ॥
स पुराणश्रवणजं प्राप्नोति फलमुत्तमम् ॥२४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे श्रीमद्भागवतानुक्रमणी-निरूपणं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

श्रीब्रह्मोवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पुराणं नारदीयकम् । पञ्चविंशतिसाहस्रं बृहत्कल्पकथाश्रयम् ॥१॥
सूतशौनकसंवादः सृष्टिसंक्षेपवर्णनम् । नानाधर्मकथाः पुण्याः प्रवृत्ते समुदाहृताः ॥२॥
प्राग्भागे प्रथमे पादे सनकेन महात्मना । द्वितीये मोक्षधर्माख्ये मोक्षोपायनिरूपणम् ॥३॥
वेदांगानां च कथनं शुकोत्पत्तिश्च विस्तरात् । सनंदनेन गदिता नारदाय महात्मने ॥४॥
महातंत्रे समुद्दिष्टं पशुपाशविमोक्षणम् । मंत्राणां शोधनं दीक्षामंत्रोद्धारश्च पूजनम् ॥५॥
प्रयोगाः कवचं नामसहस्रं स्तोत्रमेव च । गणेशसूर्यविष्णूनां शिवशक्त्योरनुक्रमात् ॥६॥

में वस्त्र, सुवर्ण आदि से प्रीतिपूर्वक भगवद्भक्त ब्राह्मण की पूजा कर स्वर्णसिंह समेत भागवतपुराण समर्पित करे। जो व्यक्ति इस अनुक्रमणिका को सुनेगा या सुनावेगा, उसे भी पुराण सुनने का उत्तम फल मिलेगा ॥२३-२४॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्द्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में श्रीमद्भागवतानुक्रमणी निरूपण नामक छानबेवां अध्याय समाप्त ॥९६॥

अध्याय ९७

श्रीनारदीयपुराण की विषयानुक्रमणी

श्रीब्रह्मा बोले—विप्र! अब नारदीयपुराण को सुनो। उसमें पचीस हजार श्लोक हैं; वह बृहत्कल्प की कथा से युक्त है। पूर्वार्ध के प्रथम पाद में सूत और शौनक का संवाद, सृष्टि का संक्षिप्त वर्णन तथा महात्मा सनक द्वारा अनेक धर्म कथायें कही गई हैं। मोक्षधर्म नामक द्वितीय पाद में सनंदन ने महात्मा नारद से मोक्ष का उपाय, वेदांगों तथा शुक की उत्पत्ति बताई है ॥१-३½॥ तृतीय पाद में मुनि सनत्कुमार ने नारद से महातंत्रोद्दिष्ट पशुपाशविमोक्षण, मंत्रों का संशोधन, दीक्षा, मंत्रोद्धार, पूजन, प्रयोग, कवच, सहस्रनाम, गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव

सनत्कुमारमुनिना नारदाय तृतीयके । पुराणलक्षणं चैव प्रमाणं दानमेव च ॥७॥
पृथक्पृथक् समुद्दिष्टं दानकालपुरःसरम् । चैत्रादिसर्वमासेषु तिथीनां च पृथक्पृथक् ॥८॥
प्रोक्तं प्रतिपदादीनां व्रतं सर्वाघनाशनम् । सनातनेन मुनिना नारदाय चतुर्थके ॥९॥
पूर्वभागोऽयमुदितो बृहदाख्यानसंज्ञितः । अस्योत्तरे विभागे तु प्रश्न एकादशीव्रते ॥१०॥
वसिष्ठेनाथ संवादो मांधातुः परिकीर्तितः । रुक्मांगदकथा पुण्या मोहिन्युत्पत्तिकर्म च ॥११॥
वसुशापश्च मोहिन्यै पश्चादुद्धरणक्रिया । गंगाकथा पुण्यतमा गयायात्रानुकीर्तनम् ॥१२॥
काश्या माहात्म्यमतुलं पुरुषोत्तमवर्णनम् । यात्राविधानं क्षेत्रस्य बह्वाख्यानसमन्वितम् ॥१३॥
प्रयागस्याथ माहात्म्यं कुरुक्षेत्रस्य तत्परम् । हरिद्वारस्य चाख्यानं कामोदाख्यानकं तथा ॥१४॥
बदरीतीर्थमाहात्म्यं कामाक्षायास्तथैव च । प्रभासस्य च माहात्म्यं पुष्कराख्यानकं ततः ॥१५॥
गौतमाख्यानकं पश्चाद्वेदपादस्तवस्ततः । गोकर्णक्षेत्रमाहात्म्यं लक्ष्मणाख्यानकं तथा ॥१६॥
सेतुमाहात्म्यकथनं नर्मदातीर्थवर्णनम् । अवंत्याश्चैव माहात्म्यं मथुरायास्ततः परम् ॥१७॥
वृन्दावनस्य महिमा वसुर्ब्रह्मांतिके गतिः । मोहिनीचरितं पश्चादेवं वै नारदीयकम् ॥१८॥
यः शृणोति नरो भक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः । स याति ब्रह्मणो धाम नात्र कार्या विचारणा ॥१९॥
यस्त्वेतदिषुपूर्णायां धेनूनां सप्तकान्वितम् । प्रदद्याद्विद्द्विजवर्याय स लभेन्मोक्षमेव च ॥२०॥
यश्चानुक्रमणीमेतां नारदीयस्य वर्णयेत् । शृणुयाद्वैकचित्तेन सोऽपि स्वर्गगतिं लभेत् ॥२१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे नारदीयपुराणानुक्रमणी-
कथनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

तथा शक्ति के स्तोत्र बताये हैं। तृतीय पाद में सनत्कुमार मुनि ने नारद से पुराणों का लक्षण तथा प्रमाण, दान तथा दान-काल आदि को पृथक्-पृथक् बतलाया है। चैत्र आदि मासों में प्रतिपदा आदि तिथिक्रम से पृथक्-पृथक् व्रतनिरूपण किया है। सनातन मुनि ने चतुर्थपाद में नारद को यह बतलाया है। इतना पूर्वभाग है, जो बृहदाख्यान कहलाता है ॥४-९½॥ पुराण के उत्तरार्ध में एकादशीव्रत संबन्धी प्रश्न, वशिष्ठ और मांधाता का संवाद, पवित्र रुक्मांगदकथा, मोहिनी की उत्पत्ति और कर्म, मोहिनी के प्रति पुरोहित वसु का शाप तथा उद्धारक्रिया, पुण्यतम गंगाकथा, गयायात्राकीर्तन, काशीमाहात्म्य, अतुलनीय पुरुषोत्तम-वर्णन, अनेक आख्यान युक्त पुरुषोत्तम क्षेत्र का यात्राविधान, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, कामोदा, बदरीतीर्थ, कामाक्षा, प्रभास, पुष्कर तथा गौतमतीर्थ का माहात्म्य, वेदपादस्तुति, गोकर्णक्षेत्र माहात्म्य, लक्ष्मणाख्यान, सेतुमाहात्म्य, नर्मदातीर्थ-वर्णन, अवंती, मथुरा तथा वृन्दावन की महिमा, ब्रह्मा के निकट वसु का गमन और फिर मोहिनी का चरित्र चित्रण किया गया है। यही नारदीयपुराण है ॥१०-१८॥ जो मनुष्य समाहित होकर भक्तिपूर्वक इसको सुनता है अथवा सुनाता है, उसे ब्रह्मलोक को प्राप्ति होती है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं। जो व्यक्ति आश्विन की पूर्णिमा में सात धेनुओं के साथ यह पुराण उत्तम ब्राह्मण को प्रदान करता है, उसे मोक्ष प्राप्त होता है। जो नारदीयपुराण की इस अनुक्रमणी का वर्णन करेगा या तन्मनस्क होकर सुनेगा, उसे भी स्वर्ग की प्राप्ति होगी ॥१९-२१॥

श्रीनारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में नारदीयपुराणानुक्रमणी कथन नामक
सत्तानबेवां अध्याय समाप्त ॥९७॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ ते संप्रवक्ष्यामि मार्कंडेयाभिधं मुने । पुराणं सुमहत्पुण्यं पठतां शृण्वतां सदा ॥१॥
यत्राधिकृत्य शकुनीन्सर्वधर्मनिरूपणम् । मार्कण्डेयपुराणं तन्नवसाहस्रमीरितम् ॥२॥
मार्कण्डेयमुनेः प्रश्नो जैमिनेः प्राक्समीरितः । पक्षिणां धर्मसंज्ञानां ततो जन्मनिरूपणम् ॥३॥
पूर्वजन्मकथा चैषां विक्रिया चादिवस्पतेः । तीर्थयात्रा बलस्याथ द्रौपदेयकथानकम् ॥४॥
हरिश्चंद्रकथा पुण्या युद्धमाडीबकाभिधम् । पितापुत्रसमाख्यानं दत्तात्रेयकथा ततः ॥५॥
हैहयस्याथ चरितं महाख्यानसमन्वितम् । मदालसाकथा प्रोक्ता ह्यलर्कचरितान्विता ॥६॥
सृष्टिसंकीर्तनं पुण्यं नवधा परिकीर्तितम् । कल्पांतकालनिर्देशो यक्षसृष्टिनिरूपणम् ॥७॥
रुद्रादिसृष्टिरप्युक्ता द्वीपचर्यानुकीर्तनम् । मनूनां च कथा नाना कीर्तिताः पापहारिकाः ॥८॥
तासु दुर्गाकथात्यंतं पुण्यदा चाष्टमेऽतरे । तत्पश्चात्प्रणवोत्पत्तिस्त्रयीतेजःसमुद्भवा ॥९॥
मार्तण्डस्य च जन्माख्या तन्माहात्म्यसमन्विता । वैवस्वतान्वयश्चापि वत्सप्रीश्चरितं ततः ॥१०॥
खनित्रस्य ततः प्रोक्ता कथा पुण्या महात्मनः । अविक्षिच्चरितं चैव किमिच्छव्रतकीर्त्तनम् ॥११॥

अध्याय ९८

मार्कण्डेयपुराण को विषयानुक्रमणो

श्रीब्रह्मा बोले—मुने ! अब मैं पढ़ने तथा सुनने वालों के लिये महापुण्यदायक मार्कण्डेयपुराण के संबन्ध में कहूंगा, जिसमें शकुनियों को अवलम्बन करके समस्त धर्मों का निरूपण किया गया है । मार्कंडेयपुराण में नौ हजार श्लोक हैं । उसमें जैमिनि से मार्कंडेयमुनि का प्रश्न, धर्मसंज्ञक पक्षियों का जन्म-निरूपण, पूर्वजन्मकथा, दिवस्पति की विक्रिया, बलभद्र की तीर्थयात्रा, द्रौपदेयकथानक, हरिश्चंद्रकथा, आडो तथा बक का युद्ध, पिता-पुत्र का आख्यान, दत्तात्रेयकथा, हैहय-चरित्र का महाआख्यान, मदालसाकथा, अलर्कचरित, नवधा सृष्टिकीर्तन, कल्पांतकाल निर्देश, यक्षसृष्टिनिरूपण, रुद्रादिसृष्टि, द्वीपचर्या, मनुओं की अनेक पापहारिणी कथायें, उनमें अष्टम मन्वन्तर में अत्यन्त पुण्यप्रद दुर्गा की कथा, प्रणवोत्पत्ति, त्रयीतेज का उद्भव, मार्तंड का जन्म तथा माहात्म्य, वैवस्वतवंश वर्णन, वत्सप्री का चरित्र, महात्मा खनित्र की पवित्र कथा, अविक्षित् का चरित्र, किमिच्छव्रतकीर्तन, नरिष्यंतचरित, इक्ष्वाकुचरित, नलचरित, रामचंद्र की सत्कथा, कुशवंशाख्यान, सोमवंश का कीर्तन, पुरूरवा तथा नहुष की अद्भुत कथा, ययातिचरित्र, पवित्र-यदुवंशकीर्तन, श्रीकृष्णबालचरित्र, मथुरा का चरित्र, द्वारकाचरित, सकल अवतारों की

नरिष्यंतस्य चरितं इक्ष्वाकुचरितं ततः । नलस्य चरितं पश्चाद्रामचन्द्रस्य सत्कथा ॥१२॥
कुशवंशसमाख्यानं सोमवंशानुकीर्त्तनम् । पुरूरवःकथा पुण्या नहुषस्य कथाद्भुता ॥१३॥
ययातिचरितं पुण्यं यदुवंशानुकीर्त्तनम् । श्रीकृष्णबालचरितं माथुरं चरितं ततः ॥१४॥
द्वारकाचरितं चाथ कथा सर्वावतारजा । ततः सांख्यसमुद्देशः प्रपञ्चासत्त्वकीर्त्तनम् ॥१५॥
मार्कंडेयस्य चरितं पुराणश्रवणे फलम् । यः शृणोति नरो भक्त्या पुराणमिदमादरात् ॥१६॥
मार्कंडेयाभिधं वत्स स लभेत्परमां गतिम् । यस्तु व्याकुरुते चैतच्छैवं स लभते पदम् ॥१७॥
तत्त्वचत्कौत्रिलिख्वा यः सौवर्णकरिसंयुतम् । कार्तिक्यां द्विजवर्याय स लभेद्ब्रह्मणः पदम् ॥१८॥
शृणोति श्रावयेद्वापि यश्चानुक्रमणीमिमाम् । मार्कंडेयपुराणस्य स लभेद्वांछितं फलम् ॥१९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे मार्कंडेयपुराणानुक्रमणी-
निरूपणं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

•

नवनवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि तवाग्नेयपुराणकम् । ईशानकल्पवृत्तांतं वसिष्ठायानलोऽब्रवीत् ॥१॥
तत्पंचदशसाहस्रं नानाचरितमद्भुतम् । पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापहरं नृणाम् ॥२॥

कथा, सांख्यशास्त्र का उद्देश, प्रपंचसत्त्वकीर्तन, मार्कंडेयचरित्र तथा पुराणश्रवण का फल बताया गया है। वत्स ! जो मानव भक्ति एवम् आदर से मार्कंडेयपुराण का श्रवण करता है, उसे परम गति की प्राप्ति होती है। जो इसका पाठ करता है उसे शिवलोक की प्राप्ति होती है। जो इसे लिखकर कार्तिकी पूर्णिमा के दिन उत्तम ब्राह्मण को स्वर्णगजसहित इसे समर्पित करता है, वह ब्रह्मपद को प्राप्त करता है। मार्कंडेयपुराण की इस अनुक्रमणी को जो सुनता है या सुनाता है, उसे वांछित फल की प्राप्ति होती है ॥१-१९॥

श्रीनारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में मार्कंडेयपुराणानुक्रमणीनिरूपण नामक
अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९८॥

अध्याय ९९

अग्निपुराण की विषयानुक्रमणी

श्री ब्रह्मा बोले—अब इसके बाद मैं तुम्हें अग्निपुराण सुनाऊंगा। अग्नि ने वसिष्ठ से ईशानकल्प का वृत्तान्त सुनाया था। यह पुराण अनेक अद्भुत चरित्रों से युक्त तथा पन्द्रह सहस्र श्लोकों में विभक्त है।

प्रश्नः पूर्वं पुराणस्य कथा सर्वावतारजा । सृष्टिप्रकरणं चाथ विष्णुपूजादिकं ततः ॥३॥
अग्निकार्यं ततः पश्चान्मंत्रमुद्रादिलक्षणम् । सर्वदीक्षाविधानं च अभिषेकनिरूपणम् ॥४॥
लक्षणं मंडलादीनां कुशामामार्जनं ततः । पवित्रारोपणविधिर्देवालयविधिस्ततः ॥५॥
शालग्रामादिपूजा च मूर्तिलक्ष्म पृथक्पृथक् । न्यासादीनां विधानं च प्रतिष्ठापूर्वकं ततः ॥६॥
विनायकादिपूजा च नानादीक्षाविधिः परम् । प्रतिष्ठा सर्वदेवानां ब्रह्मांडस्य निरूपणम् ॥७॥
गंगादितीर्थमाहात्म्यं द्वीपवर्षानुवर्णनम् । ऊर्ध्वाधोलोकरचना ज्योतिश्चक्रनिरूपणम् ॥८॥
ज्योतिषं च ततः प्रोक्तं शास्त्रं युद्धजयार्णवम् । षट्कर्म च ततः प्रोक्तं मंत्रमंत्रौषधीगणः ॥९॥
कुब्जिकादिसमर्चत्वं षोढा न्यासविधिस्तथा । कोटिहोमविधानं च मन्वंतरनिरूपणम् ॥१०॥
ब्रह्मचर्यादिधर्माश्च श्राद्धकल्पविधिस्ततः । ग्रहयज्ञस्ततः प्रोक्तो वैदिकस्मार्तकर्म च ॥११॥
प्रायश्चित्तानुकथनं तिथीनां च व्रतादिकम् । वारव्रतानुकथनं नक्षत्रव्रतकीर्तनम् ॥१२॥
मासिकव्रतनिर्देशो दीपदानविधिस्तथा । नवव्यूहार्चनं प्रोक्तं नरकाणां निरूपणम् ॥१३॥
व्रतानां चापि दानानां निरूपणमिहोदितम् । नाडीचक्रसमुद्देशः संध्याविधिरनुत्तमः ॥१४॥
गायत्र्यर्थस्य निर्देशो लिंगस्तोत्रं ततः परम् । राज्याभिषेकमन्त्रोक्तिर्धर्मकृत्यं च भूभुजाम् ॥१५॥
स्वप्नाध्यायस्ततः प्रोक्तः शकुनादिनिरूपणम् । मंडलादिकनिर्देशो रत्नदीक्षाविधिस्ततः ॥१६॥
रामोक्तनीतिनिर्देशो रत्नानां लक्षणं ततः । धनुर्विद्या ततः प्रोक्ता व्यवहारप्रदर्शनम् ॥१७॥
देवासुरविमर्दाख्या ह्यायुर्वेदनिरूपणम् । गजादीनां चिकित्सा च तेषां शांतिस्ततः परम् ॥१८॥
गोनरादिचिकित्सा च नानापूजास्ततः परम् । शांतयश्चापि विविधाश्छन्दःशास्त्रमतः परम् ॥१९॥
साहित्यं च ततः पश्चादेकार्णादिसमाह्वयाः । सिद्धशब्दानुशिष्टिश्च कोशः स्वर्गादिवर्गकः ॥२०॥
प्रलयानां लक्षणं च शारीरकनिरूपणम् । वर्णनं नरकानां च योगशास्त्रमतः परम् ॥२१॥

इसके पढ़ने-सुनने वाले मनुष्यों के सकल पाप दूर हो जाते हैं। इसमें पहले पुराण संबन्धी प्रश्न किया गया है। पश्चात् समस्त अवतारों की कथा, सृष्टिप्रकरण, विष्णु पूजन, अग्निकार्य, मन्त्र तथा मुद्रा आदि का लक्षण, अखिल दिक्षाओं का विधान, अभिषेक निरूपण, मंडल आदि का लक्षण, कुशा का मार्जन, पवित्रारोपणविधि देवालयविधि, शालग्रामादि पूजा, पृथक्-पृथक् मूर्तिचिह्न न्यासादि का विधान, प्रतिष्ठापूर्वक, विनायक आदि की पूजा, अनेक दीक्षा विधि, समस्त देवों की प्रतिष्ठा, ब्रह्मांड का निरूपण, गंगादि-तीर्थ-माहात्म्य, द्वीपों तथा वर्षों का वर्णन, ऊर्ध्व तथा अधोलोक की रचना, ज्योतिश्चक्र निरूपण ॥१-८॥ ज्योतिष, मंत्र और यन्त्रौषधिसमूह, षट्कर्म, युद्धजयशास्त्र, कुब्जा आदि की समर्चा, छः प्रकार की न्यासविधि, कोटिहोम विधान, मन्वन्तर निरूपण ब्रह्मचर्य आदि धर्म, श्राद्ध-कल्पविधि, ग्रहयज्ञ, वैदिक तथा स्मार्त कर्म, प्रायश्चित्त कथन, तिथि अनुसार व्रतादि, दिनव्रतानुकथन, नक्षत्रव्रतकीर्तन, मासिकव्रत निर्देश, दीपदानविधि, नवव्यूहार्चन, नरकों का निरूपण, नाडीचक्र-समुद्देश, संध्याविधि, गायत्री के अर्थ का निर्देश, लिंगस्तोत्र, राज्याभिषेकमन्त्र, राजाओं का धर्मकार्य, स्वप्नाध्याय, शकुनादि निरूपण, मंडलादिक निर्देश, रणदीक्षाविधि, रामोक्तनीति निर्देश, रत्नों का लक्षण, धनुर्विद्या और व्यवहार प्रदर्शन, देवासुर विमर्दाख्यान, आयुर्वेदनिरूपण, गजादि चिकित्सा, उनकी शान्ति ॥९-१८॥ गौ, नर आदि की चिकित्सा, अनेक प्रकार की पूजा, विविध शान्ति, छंदःशास्त्र, साहित्य, एकार्णादि समाह्वय-सिद्ध-शब्दानुशिष्टि स्वर्गादिवर्गविशिष्टकोष, प्रलयों का लक्षण, शारीरक निरूपण, नरकवर्णन, योगशास्त्र,

ब्रह्मज्ञानं ततः पश्चात्पुराणश्रवणे फलम् । एतदाग्नेयकं विप्र पुराणं परिकीर्तितम् ॥२२॥
तल्लिखित्वा तु यो दद्यात्सुवर्णकमलान्वितम् । तिलधेनुयुतं चापि मार्गशीर्ष्यां विधानतः ॥२३॥
पुराणार्थविदे सोऽथ स्वर्गलोके महीयते । एषानुक्रमणी प्रोक्ता तवाग्नेयस्य मुक्तिदा ॥२४॥
शृण्वतां पठतां चैव नृणां चेह परत्र च ॥२५॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादेऽग्निपुराणानुक्रमणीनिरूपणं नामैकोनशततमोऽध्यायः ॥९९॥

शततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ ते संप्रवक्ष्यामि पुराणं सर्वसिद्धिदम् । भविष्यं भवतः सर्वलोकाभीष्टप्रदायकम् ॥१॥
यत्राहं सर्वदेवानामादिकर्ता समुद्गतः । सृष्टयर्थं तत्र संजातो मनु स्वायंभुवः पुरा ॥२॥
स मां प्रणम्य पप्रच्छ धर्मं सर्वार्थसाधकम् । अहं तस्मै तदा प्रीतः प्रावोचं धर्मसंहिताम् ॥३॥
पुराणानां यदा व्यासो व्यासं चक्रे महामतिः । तदा तां संहितां सर्वां पंचधा व्यभजन्मुनिः ॥४॥

ब्रह्मज्ञान, और पुराणश्रवण का फल बतलाया गया है । विप्र ! यह आग्नेय पुराण का वर्णन हुआ । जो व्यक्ति इस पुराण को लिखकर अग्रहण की पूर्णिमा में विधिपूर्वक सुवर्ण कमल तथा तिलधेनु सहित यह पुराण पौराणिक द्विज को समर्पित करता है, वह स्वर्ग में पूजित होता है । आग्नेय पुराण की इस अनुक्रमणी को जो सुनेगा तथा पढ़ेगा, उसे मोक्ष की प्राप्ति होगी ॥१९-२५॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में अग्निपुराणानुक्रणीनिरूपण नामक निन्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९९॥

अध्याय १००

भविष्यपुराण की विषयानुक्रमणी

श्री ब्रह्मा बोले—अब मैं सर्वसिद्धिदायक तथा अखिलकामनापूरक भविष्यपुराण के संबन्ध में कहूँगा । उस पुराण में मैं सब देवों का आदिकर्ता माना गया हूँ । पहले सृष्टिकार्य के लिये स्वायंभुव मनु का प्रादुर्भाव हुआ । उसने मुझे प्रणाम कर समस्त प्रयोजनों को सिद्ध करने वाले धर्म के विषय में प्रश्न किया । तब मैं प्रीतिपूर्वक धर्मसंहिता को सुनाने लगा । जब महामति व्यास को पुराणों के व्यष्टीकरण करने की इच्छा हुई तब

अघोरकल्पवृत्तांतं नानाश्चर्यकथान्वितम् । तत्रादिमं स्मृतं पर्व ब्राह्मं यत्रास्त्युपक्रमः ॥५॥
सूतशौनकसंवादे पुराणप्रश्नसंक्रमः । आदित्यचरितप्रायः सर्वाख्यानसमन्वितः ॥६॥
सृष्टयादिलक्षणोपेतः शास्त्रसर्वस्वरूपकः । पुस्तलेखकलेखानां लक्षणं च ततः परम् ॥७॥
संस्काराणां च सर्वेषां लक्षणं चात्र कीर्तितम् । पक्षस्यादितिथीनां च कल्पाः सप्त च कीर्तिताः ॥८॥
अष्टम्याद्याः शेषकल्पा वैष्णवे पर्वणि स्मृताः । शैवे च कामतो भिन्नाः सौरे चांत्यकथान्वयः ॥९॥
प्रतिसर्गाह्वयं पश्चान्नानाख्यानसमन्वितम् । पुराणस्योपसंहारसहितं पर्व पंचमम् ॥१०॥
एषु पंचसु पूर्वस्मिन् ब्रह्मणो महिमाधिकाः । धर्मे कामे च मोक्षे तु विष्णोश्चापि शिवस्य च ॥११॥
द्वितीये च तृतीये च सौरे वर्गचतुष्टये । प्रतिसर्गाह्वयं त्वंत्यं प्रोक्तं सर्वकथान्वितम् ॥१२॥
सभविष्यं विनिर्दिष्टं पर्वव्यासेन धीमता । चतुर्दशसहस्रं तु पुराणं परिकीर्तितम् ॥१३॥
भविष्यं सर्वदेवानां साम्यं यत्र प्रकीर्तितम् । गुणानां तारतम्येन समं ब्रह्मेति हि श्रुतिः ॥१४॥
तं लिखित्वा तु यो दद्यात्पौष्यां विद्वान्विमत्सरः । गुडधेनुयुतं हेमवस्त्रमाल्यविभूषणैः ॥१५॥
वाचकं पुस्तकं चापि पूजयित्वा विधानतः । गंधाद्यैर्भोज्यभक्ष्यैश्च कृत्वा नीराजनादिकम् ॥१६॥
यो वै जितेंद्रियो भूत्वा सोपवासः समाहितः । अथ वैकहविष्याशी कीर्तयेच्छृणुयादपि ॥१७॥
स मुक्तः पातकैर्घोरैः प्रयाति ब्रह्मणः पदम् । योऽप्यनुक्रमणीमेतां भविष्यस्य निरूपिताम् ॥१८॥
पठेद्वा शृणुयाच्चैतां भुक्ति मुक्ति च विदंति ॥१९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे भविष्यपुराणानुक्रमणीनिरूपणं नाम शततमोऽध्यायः ॥१००॥

तब मुनिने संपूर्ण संहिता को, पाँच भागों में विभक्त कर दिया। उसमें अनेक आश्चर्यजनक कथाओं से युक्त अघोर कल्प का वृत्तान्त है। उसका पहिला पर्व ब्राह्म है, जिसमें उसका उपक्रम है ॥१-५॥ उसी पर्व में सूत और शौनक के संवाद में पुराणप्रश्न, सर्वाख्यानयुक्त आदित्यचरित्र, सृष्टि आदि के लक्षणों से युक्त सकलशास्त्र स्वरूप, पुस्तक लेखक और लेख्य का लक्षण, समस्त संस्कारों का लक्षण और प्रतिपदादि तिथियों के सात कल्प वर्णित हुए हैं। वैष्णवपर्व में अष्टमी आदि अवशिष्ट कल्पों का वर्णन है। शैव पर्व मे कामानुसार विभिन्नता सौर पर्व में अन्त्यकथा और प्रतिसर्ग पर्व में अनेक आख्यान तथा पुराण का उपसंहार बतलाया गया है। इस तरह पाँच पर्व होते है। प्रथम पर्व में ब्रह्मा का महिमा, द्वितीय में विष्णु एवम् धर्म, काम और मोक्ष को तृतीय में शिव की, चतुर्थ में सूर्य की और पाँचवें में समस्त कथायें बताई गई हैं। धीमान् व्यास ने पर्वो में विभक्त करके भविष्यपुराण की रचना की है। इस पुराण में चौदह हजार श्लोक है ॥६-१३॥

इसमें सकल देवों की कथा समभाव से कही गई है। श्रुति भी 'गुणों के तारतम्य से ब्रह्म सम है' ऐसा कहती है। जो विद्वान् इस पुराण को लिखकर पौषी पूर्णिमा के दिन गुडधेनु, सुवर्ण, वस्त्र, माला, सुगंधित द्रव्य, भोज्य तथा भक्ष्य पदार्थों से विधिपूर्वक ब्राह्मण एवम् पुस्तक की पूजा कर इसे समर्पित करता है, वह घोर पातकों से विमुक्त होकर ब्रह्मपद को प्राप्त करता है। जो इन्द्रियसंयमपूर्वक उपवास या हविष्यभोजन करते हुए सावधानी से इसका श्रवण तथा कीर्तन करता है, उसे भी पूर्वकथित फल की प्राप्ति होती है। जो भविष्यपुराण की इस अनुक्रमणी को पढ़ेगा या सुनेगा, वह भोग-मोक्ष लाभ करेगा ॥१४-१९॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में भविष्यपुराणानुक्रमणीनिरूपण नामक सौवां अध्याय समाप्त ॥१००॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः

श्री ब्रह्मोवाच

वेदमार्गानुदर्शकम् ॥१॥
शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं दशमं तव । ब्रह्मवैवर्तकं नाम प्राह सर्वमलौकिकम् ॥२॥
सावर्णिर्यत्र भगवान्साक्षाद्देवर्षये स्थितः । नारदाय पुराणार्थं ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम् ॥३॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां सारः प्रीतिर्हरौ हरे । तयोरभेदसिद्धयर्थं प्राह वेदवित् ॥४॥
रथंतरस्य कल्पस्य वृत्तांतं यन्मयोदितम् । शतकोटिपुराणे तत्संक्षिप्य परिकीर्तितम् ॥५॥
व्यासश्चतुर्द्धा संव्यस्य ब्रह्मवैवर्तसंज्ञिते । अष्टादशसहस्रं तत्पुराणं पुराणोपक्रमस्ततः ॥६॥
ब्रह्मप्रकृतिविघ्नेशकृष्णखंडसमन्वितम् । तत्र सूतर्षिसंवादे द्वयोरासीत्पराभवः ॥७॥
सृष्टिप्रकरणं त्वाद्यं ततो नारदवेधसोः । विवादः सुमहान्यत्र तु ॥८॥
शिवलोकगतिः पश्चाज्ज्ञानलाभः शिवात्मने । शिववाक्येन तत्पश्चान्मरीचेर्नारदस्य त्रैलोक्याश्चर्यकारिणी ॥९॥
गमनं चैव सावर्णज्ञनार्थं सिद्धसेविते । आश्रमे सुमहापुण्ये समीरितः ॥१०॥
एतद्धि ब्रह्मखंडं हि श्रुतं पापविनाशनम् । ततः सावर्णिसंवादो नारदस्य वर्णितम् ॥११॥
कृष्णमाहात्म्यसंयुक्तो नानाख्यानकथोत्तरम् । प्रकृतेरंशभूतानां कलानां चापि

अध्याय १०१

ब्रह्मवैवर्तपुराण की विषयानुक्रमणी

श्री ब्रह्मा बोले—वत्स ! सुनो, मैं ब्रह्मवैवर्तक नामक वेदमार्गानुदर्शक दशम पुराण को तुमसे कहता हूँ,
जिसमें साक्षात् भगवान् सावर्णि ने देवर्षि नारद से पुराण के अलौकिक अर्थ को बताया है हरि तथा हर में प्रेम
करना । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का सार है । उन दोनों में अभेदसिद्धि करने के लिये उत्तम ब्रह्मवैवर्तपुराण
का निर्माण हुआ है । मैंने रथंतर कल्प का जो वृत्तान्त कहा था, उसे वेदवेत्ता व्यास ने सौ करोड़ श्लोक वाले
पुराण में संक्षेप से वर्णित किया है । व्यास ने अठारह हजार श्लोकों में ब्रह्मवैवर्त का निर्माण करके ब्रह्मप्रकृति,
गणेश तथा कृष्णखंड नामक चार भागों में इसे विभक्त कर दिया । सूत और शौनक के संवाद में पुराण का उप-
क्रम है । आदि में सृष्टि प्रकरण है । तत्पश्चात् नारद और ब्रह्मा का महान् विवाद, दोनों का पराभव,
शिवलोक में गति, शिव से ज्ञानलाभ और शिव के वाक्य से ज्ञान लाभ के लिये सिद्धों से सुसेवित, महापुण्य-
दायक एवम् तीनों लोक को आश्चर्यित करने वाले सावर्णि के आश्रम में मरीचि तथा नारद का गमन
बताया गया है । यही ब्रह्म खण्ड है, जिसे सुनने से सकल पापों का नाश होता है ॥१-९½॥

प्रकृतिखंड में सावर्णि तथा नारद का संवाद, कृष्ण का माहात्म्य, अनेक आख्यानक, प्रकृति के अंश भूत
कलासमूह का माहात्म्य और पूजन आदि का विस्तृत रूप से वर्णन हुआ है । इस खंड के श्रवण करने से ऐश्वर्य

माहात्म्यं पूजनाद्यं च विस्तरेण यथास्थितम् । एतत्प्रकृतिखंडं हि श्रुतं भूतिविधायकम् ॥१२॥
गणेशजन्म संप्रश्नः सपुण्यकमहाव्रतम् । पार्वत्याः कार्तिकेयेन सह विघ्नेशसंभवम् ॥१३॥
चरितं कार्तवीर्यस्य जामदग्न्यस्य चाद्भुतम् । विवादः सुमहानासीज्जामदग्न्यगणेशयोः ॥१४॥
एतद्विघ्नेशखंडं हि सर्वविघ्नविनाशनम् । श्रीकृष्णजन्मसंप्रश्नो जन्माख्यानं ततोऽद्भुतम् ॥१५॥
गोकुले गमनं पश्चात्पूतनादिवधाद्भुताः । बाल्यकौमारजा लीला विविधास्तत्र वर्णिताः ॥१६॥
रासक्रीडा च गोपीभिः शारदी समुदाहृता । रहस्ये राधया क्रीडा वर्णिता बहुविस्तरा ॥१७॥
सहाक्रूरेण तत्पश्चान्मथुरागमनं हरेः । कंसादीनां वधे वृत्ते कृष्णस्य द्विजसंस्कृतिः ॥१८॥
काश्यसांदिपनेः पश्चाद्विद्योपादानमद्भुतम् । यवनस्य वधः पश्चाद्द्वारका गमनं हरेः ॥१९॥
नरकादिवधस्तत्र कृष्णेन विहितोऽद्भुतः । कृष्णखंडमिदं विप्र नृणां संसारखंडनम् ॥२०॥
पठितं च श्रुतं ध्यातं पूजितं चाभिवंदितम् । इत्येतद्ब्रह्मवैवर्तपुराणं चात्यलौकिकम् ॥२१॥
व्यासोक्तं चादि संभूतं पठञ्छृण्वन्विमुच्यते । विज्ञानाज्ञानशमनाद्घोरात्संसारसागरात् ॥२२॥
लिखित्वेदं च यो दद्यान्माध्यां धेनुसमन्वितम् । ब्रह्मलोकमवाप्नोति स मुक्तोऽज्ञानबंधनात् ॥२३॥
यश्चानुक्रमणीं चापि पठेद्वा शृणुयादपि । सोऽपि कृष्णप्रसादेन लभते वांछितं फलम् ॥२४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने ब्रह्मवैवर्तपुराणानुक्रमणी निरूपणं नामैकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

नाम होता है । गणेशखंड में विघ्नेश जन्म का प्रश्न, पार्वती का पुण्यकव्रत, कार्तिकेय और विनायक की उत्पत्ति, कार्तवीर्य और जामदग्न्य का अद्भुत चरित्र, गणेश और जामदग्न्य का घोर विवाद बताया गया है। यह खण्ड समस्त विघ्नों का नाश करने वाला है ॥१०-१४½॥

कृष्ण खंड में श्रीकृष्ण के जन्म विषयक प्रश्न, अद्भुत जन्माख्यान, गोकुल में गमन, पूतनादिवध, बाल्यावस्था तथा कौमार अवस्था में की गई अनेक लीलायें गोपियों के संग श्रीकृष्ण की शारदी रासक्रीड़ा, निर्जन में राधा के साथ क्रीडा, फिर अक्रूर के साथ हरि का मथुरागमन, कंस आदि का वध, कृष्ण का द्विजसंस्कार, काशी में सांदीपनि से विद्याग्रहण, यवन का वध, हरि का द्वारिकागमन, वहाँ कृष्ण द्वारा नरकासुर आदि का आश्चर्यजनक वध वर्णित हुआ है ।

विप्र ! कृष्णखंड के श्रवण करने से मनुष्यों का भवबन्धन कट जाता है । यह ब्रह्मवैवर्तपुराण अत्यन्त विलक्षण है ॥१५-२१॥

इसके पाठ, श्रवण, पूजन, ध्यान तथा अभिवन्दना करने से मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह संसार-सागर से उद्धार करने वाला, अज्ञान का नाश करने वाला और विज्ञान का प्रकाश देने वाला है। जो इसे लिखकर माघी पूर्णिमा के दिन धेनु सहित प्रदान करता है, वह अज्ञान बन्धन से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को जाता है। जो इस अनुक्रमणी को सुनेगा या पढ़ेगा, वह भी कृष्ण की कृपा से वांछित फल को प्राप्त करेगा ॥२२-२४॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यान युक्त चतुर्थ पाद में ब्रह्मवैवर्तपुराण का अनुक्रमणी-वर्णन नामक एक सौ एक अध्याय समाप्त ॥१०१॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि पुराणं लिंगसंज्ञितम् । पठतां शृण्वतां चैव भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥१॥
यच्च लिंगाभिधं तिष्ठन्वह्निलिंगे हरोऽभ्यधात् । मह्यं धर्मादिसिद्धयर्थमग्निकल्पकथाश्रयम् ॥२॥
तदेव व्यासदेवेन भागद्वयसमन्वितम् । पुराणं लिंगमुदितं बह्वाख्यानविचित्रितम् ॥३॥
तदेकादशसाहस्रं हरमाहात्म्यसूचकम् । परं सर्वपुराणानां सारभूतं जगत्त्रये ॥४॥
पुराणोपक्रमे प्रश्नः सृष्टिः संक्षेपतः पुरा । योगाख्यानं ततः प्रोक्तं कल्पाख्यानं ततः परम् ॥५॥
लिंगोद्भवस्तदर्चा च कीर्तिता हि ततः परम् । सनत्कुमारशैलादिसंवादश्चाथ पावनः ॥६॥
ततो दधीचचरितं युगधर्मनिरूपणम् । ततो भुवनकोशाख्या सूर्यसोमान्वयस्ततः ॥७॥
ततश्च विस्तरात्सर्गस्त्रिपुराख्यानकं तथा । लिंगप्रतिष्ठा च ततः पशुपाशविमोक्षणम् ॥८॥
शिवव्रतानि च तथा सदाचारनिरूपणम् । प्रायश्चित्तान्यरिष्टानि काशीश्रीशैलवर्णनम् ॥९॥
अंधकाख्यानकं पश्चाद्वाराहचरितं पुनः । नृसिंहचरितं पश्चाज्जलंधरवधस्ततः ॥१०॥
शैवं सहस्रनामाथ दक्षयज्ञविनाशनम् । कामस्य दहनं पश्चाद्गिरिजायाः करग्रहः ॥११॥
ततो विनायकाख्यानं नृपाख्यानं शिवस्य च । उपमन्युकथा चापि पूर्वभाग इतीरितः ॥१२॥

अध्याय १०२

लिंगपुराण की विषयानुक्रमणी

श्रीब्रह्मा बोले—पुत्र ! सुनो, अब मैं लिंगपुराण को बतलाऊँगा, जिसके श्रवण एवम् पाठ करने से भोग-मोक्ष की प्राप्ति होती है । वह्निलिंग में रहते हुए भगवान् हर ने धर्म आदि की सिद्धि के लिये मुझसे जो अग्नि-कल्पकथा-संबन्धी लिंगपुराण को कहा था, उसी को व्यासदेव ने दो भागों में विभक्त किया । वह पुराण अनेक आख्यानों से युक्त है । उसमें ग्यारह हजार श्लोकों में शिव का माहात्म्य वर्णित हुआ है । तीनों लोक में वह सब पुराणों का सारभूत है ॥१-४॥ उसमें प्रथमतः पुराणोपक्रम संबन्धी प्रश्न और संक्षेप से सृष्टिवर्णन है । उसके पूर्व भाग में योगाख्यान, कल्पाख्यान, लिंगोत्पत्ति, उसकी अर्चना, सनत्कुमार और शैलादि का पवित्रसंवाद, दधीचि-चरित्र, युगधर्मनिरूपण, भुवनकोशाख्यान, सूर्य और सोमवंश, विस्तृत रूप से सृष्टि, त्रिपुराख्यान, लिंगप्रतिष्ठा, पशुपाशविमोक्षण, शिवव्रत, सदाचारनिरूपण, प्रायश्चित्त, अरिष्ट, काशी तथा श्रीशैलवर्णन, अंधकाख्यान, वाराहचरित्र, नृसिंहचरित, जलंधरवध, शिवसहस्रनाम, दक्षयज्ञविनाशन, कामदहन, पार्वतीविवाह, गणेशाख्यान, नृपाख्यान, शिवोपाख्यान तथा उपमन्यु की कथा वर्णित है ॥५-१२॥

विष्णुमाहात्म्यकथनमंबरीषकथा ततः । सनत्कुमारनंदीशसंवादश्च पुनर्मुने ॥१३॥
शिवमाहात्म्यसंयुक्तः स्नानयागादिकं ततः । सूर्यपूजाविधिश्चैव शिवपूजा च मुक्तिदा ॥१४॥
दानानि बहुधोक्तानि श्राद्धप्रकरणं ततः । प्रतिष्ठातंत्रमुदितं ततोऽघोरस्य कीर्तनम् ॥१५॥
वज्रेश्वरी महाविद्या गायत्रीमहिमा ततः । त्र्यंबकस्य च माहात्म्यं पुराणश्रवणस्य च ॥१६॥
एवं चोपरि भागस्ते लैंगस्य कथितो मया । व्यासेन हि निबद्धस्य रुद्रमाहात्म्यसूचितः ॥१७॥
लिखित्वैतत्पुराणं तु तिलधेनुसमन्वितम् । फाल्गुन्यां पूर्णिमायां यो दद्याद्भक्त्या द्विजातये ॥१८॥
स लभेच्छिवसायुज्यं जरामरणवर्जितम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि लैंगं पापापहं नरः ॥१९॥
स भुक्तभोगो लोकेऽस्मिन्नंते शिवपुरं व्रजेत् । लिंगानुक्रमणीमेतां पठेद्यः शृणुयात्तथा ॥२०॥
तावुभौ शिवभक्तौ तु लोकद्वितयभोगिनौ । जायेतां गिरिजाभर्तुः प्रसादान्नात्र संशयः ॥२१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे लिंगपुराणानुक्रमणी-
निरूपणं नाम द्व्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

मुने ! इसके उत्तर भाग में विष्णुमाहात्म्य, अंबरीषकथा, सनत्कुमार और नंदीश, संवाद, शिवमाहात्म्य-संयुक्त स्नान, याग आदि, सूर्यपूजाविधि, मुक्तिदायिनी शिवपूजा, विविधदान, श्राद्धप्रकरण, तंत्रोक्त प्रतिष्ठा, अघोर-कीर्तन, वज्रेश्वरी, महाविद्या, तथा गायत्री की महिमा, त्र्यंबक तथा पुराणश्रवण का माहात्म्य बताया गया है। इस प्रकार व्यास द्वारा रचित लिंगपुराण के उत्तर भाग का वर्णन हुआ, जिसमें रुद्र का माहात्म्य कहा गया है। जो व्यक्ति लिंगपुराण को लिखकर फाल्गुन की पूर्णिमा में द्विजाति को भक्तिपूर्वक तिलधेनु सहित उक्त पुराण समर्पित करता है, उसे जन्म-मरण रहित शिवसायुज्यमोक्ष की प्राप्ति होती है। जो नर पापहारी लिंग-पुराण का श्रवण या पाठ करता है, वह इस लोक में समस्त भोगों को भोगता हुआ अंत में शिवलोक को जाता है। जो इस अनुक्रमणी को पढ़ता है तथा जो इसे सुनता है, वे दोनों गिरिजापति की कृपा से उभयलोकों में सुखभोग करते हैं, इसमें संशय नहीं ॥१३-२१॥

श्रीनारदीयपुराण के पूर्वार्द्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में लिंगपुराणानुक्रमणीनिरूपण नामक
एक सौ दूसरा अध्याय समाप्त ॥१०२॥

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि वाराहं वै पुराणकम् । भागद्वययुतं शश्वद्विष्णुमाहात्म्यसूचकम् ॥१॥
मानवस्य तु कल्पस्य प्रसंगं मत्कृतं पुरा । निबबंध पुराणेऽस्मिश्चतुर्विंशसहस्रके ॥२॥
व्यासो हि विदुषां श्रेष्ठः साक्षान्नारायणो भुवि । तत्रादौ शुभसंवादः स्मृतो भूमिवराहयोः ॥३॥
अथादिकृतवृत्तांते रंभस्य चरितं ततः । दुर्जयस्य च तत्पश्चाच्छ्राद्धकल्प उदीरितः ॥४॥
महातपस आख्यानं गौर्युत्पत्तिस्ततः परा । विनायकस्य नागानां सेनान्यादित्ययोरपि ॥५॥
गणानां च तथा देव्या धनदस्य वृषस्य च । आख्यानं सत्यतपसो व्रताख्यानसमन्वितम् ॥६॥
अगस्त्यगीता तत्पश्चाद्रुद्रगीता प्रकीर्तिता । महिषासुरविध्वंसमाहात्म्यं च त्रिशक्तिजम् ॥७॥
पर्वाध्यायस्ततः श्वेतोपाख्यानं गोप्रदानिकम् । इत्यादिकृतवृत्तांतं प्रथमे दर्शितं मया ॥८॥
भगवद्धर्मके पश्चाद्व्रततीर्थकथानकम् । द्वात्रिंशदपराधानां प्रायश्चित्तं शरीरगम् ॥९॥
तीर्थानां चापि सर्वेषां माहात्म्यं पृथगीरितम् । मथुराया विशेषेण श्राद्धादीनां विधिस्ततः ॥१०॥
वर्णनं यमलोकस्य ऋषिपुत्रप्रसंगतः । विपाकः कर्मणां चैव विष्णुव्रतनिरूपणम् ॥११॥
गोकर्णस्य च माहात्म्यं कीर्तितं पापनाशनम् । इत्येवं पूर्वभागोऽयं पुराणस्य निरूपितः ॥१२॥

अध्याय १०३

वाराहपुराण की विषयानुक्रमणी

श्री ब्रह्मा बोले—वत्स ! सुनो, सनातन विष्णु के माहात्म्य को बताने वाले तथा दो भागों से युक्त वाराह पुराण के संबन्ध में कहूँगा । पूर्व में मानवकल्प का जो कुछ प्रसंग मैंने वर्णन किया है, उसे इस चौबीस सहस्र श्लोकों से परिपूर्ण पुराण में व्यास ने निबद्ध कर दिया है । व्यास विद्वानों में सबसे श्रेष्ठ हैं, पृथ्वी पर साक्षात् नारायण ही इन्हें समझना चाहिये । इस पुराण के प्रारम्भ में भूमि और वराह का शुभ संवाद हुआ है, तदनन्तर आदि वृत्तान्त में रैभ्य-चरित, श्राद्धकल्प, महातपा का आख्यान, गौरी की उत्पत्ति, विनायक, नाग, कार्तिकेय तथा आदित्य के गणों का उपाख्यान, देवी, कुबेर, और वृष का आख्यान, सत्यतपा का व्रत, अगस्त्य-गीता, रुद्रगीता, शक्तित्रय द्वारा महिषासुर विध्वंस माहात्म्य, पर्वाध्याय, श्वेतोपाख्यान, गोप्रदान आदि विषयों का वर्णन है । पुनः भगवद्धर्म में व्रततीर्थकथा, बत्तीस अपराधों का शारीरिक प्रायश्चित्त, सकल तीर्थों का पृथक्-पृथक् माहात्म्य, मथुरा में विशेष रूप से श्राद्ध आदि की विधि, ऋषिपुत्र प्रसंग में यमलोक वर्णन, कर्म-विपाक, विष्णुव्रत निरूपण, पापनाशन गोकर्ण माहात्म्य—इतने विषय पूर्वभाग में निरूपित हुए हैं ॥१-१२॥

उत्तरे प्रविभागे तु पुलस्त्यकुरुराजयोः । संवादे सर्वतीर्थानां माहात्म्यं विस्तरात्पृथक् ॥१३॥
अशेषधर्माश्चाख्याताः पौष्करं पुण्यपर्व च । इत्येवं तव वाराहं प्रोक्तं पापविनाशनम् ॥१४॥
पठतां शृण्वतां चैव भगवद्भक्तिवर्धनम् । कांचनं गरुडं कृत्वा तिलधेनुसमन्वितम् ॥१५॥
लिखित्वैतच्च यो दद्याच्चैत्र्यां विप्राय भक्तितः । स लभेद्वैष्णवं धाम देवर्षिगणवंदितः ॥१६॥
यो वानुक्रमणीमेतां शृणोत्यपि पठत्यपि । सोऽपि भक्ति लभेद्विष्णौ संसारोच्छेदकारिणीम् ॥१७॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे वाराहपुराणानुक्रमणी वर्णनं नाम त्र्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

●

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं स्कन्दसंज्ञकम् । यस्मिन्प्रतिपदं साक्षान्महादेवो व्यवस्थितः ॥१॥
पुराणे शतकोटौ तु यच्छैवं वर्णितं मया । लक्षं तस्यार्थजातस्य सारो व्यासेन कीर्तितः ॥२॥
स्कन्दाह्वयस्तत्र खण्डाः सप्तैव परिकल्पिताः । एकाशीतिसहस्रं तु स्कान्दं सर्वाघकृंतनम् ॥३॥

उत्तर भाग में पुलस्त्य और कुरुराज के संवाद में विस्तृत रूप से समस्त तीर्थों का पृथक्-पृथक् माहात्म्य-वर्णन, अशेष धर्मों का आख्यान और पुष्कर नामक पुण्यतीर्थ का कथन हुआ है। यही पापनाशी वाराह पुराण है, जिसे पढ़ने तथा सुनने से भगवान् की भक्ति बढ़ती है। जो व्यक्ति इसे लिखकर ब्राह्मण को भक्तिपूर्वक स्वर्ण निर्मित गरुड़ तथा तिलधेनु सहित यह प्रदान करता है, वह देवर्षिगण से पूजित होते हुए वैकुण्ठ को जाता है। जो इस अनुक्रमणी का श्रवण एवम् पाठ करता हैं, उसे भी भवबन्धननाशिनी विष्णुभक्ति की प्राप्ति होती है ॥१३-१७॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में वाराह-अनुक्रमणी वर्णन नामक एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त ॥१०३॥

अध्याय १०४

स्कन्दपुराण की विषयानुक्रमणी

श्री ब्रह्मा बोले—वत्स! अब स्कन्दपुराण को सुनो, जिसके प्रत्येक पद में श्री महादेव अवस्थित हैं। सौ करोड़ श्लोक वाले पुराण में एक लक्ष श्लोक युक्त शैवपुराण का जो मैंने वर्णन किया है, उसी के सारभूत स्कन्दपुराण की रचना व्यास ने की है। अखिल पापनाशी स्कन्दपुराण में सात खण्ड और इक्यासी हजार श्लोक

यः शृणोति पठेद्वापि स तु साक्षाच्छिवः स्थितः । यत्र माहेश्वरा धर्माः षण्मुखेन प्रकाशिताः ॥४॥
कल्पे तत्पुरुषे वृत्ताः सर्वसिद्धिविधायकाः । तस्य माहेश्वरश्चाद्य खंडः पापप्रणाशनः ॥५॥
किंचिन्न्यूनार्कसाहस्रो बहुपुण्यो बृहत्कथः । सुचरित्रशतैर्युक्तः स्कन्दमाहात्म्यसूचकः ॥६॥
यत्र केदारमाहात्म्ये पुराणोपक्रमः पुरा । दक्षयज्ञकथा पश्चाच्छिवलिंगार्चने फलम् ॥७॥
समुद्रमथनाख्यानं देवेंद्रचरितं ततः । पार्वत्याः समुपाख्यानं विवाहस्तदनंतरम् ॥८॥
कुमारोत्पत्तिकथनं ततस्तारकसंगरः । ततः पाशुपताख्यानं चंडाख्यानसमन्वितम् ॥९॥
द्यूतप्रवर्तनाख्यानं नारदेन समागमः । ततः कुमारमाहात्म्ये पंचतीर्थकथानकम् ॥१०॥
धर्मवर्मनृपाख्यानं नदीसागरकीर्तनम् । इंद्रद्युम्नकथा पश्चान्नाडीजंघकथान्वितम् ॥११॥
प्रादुर्भावस्ततो मह्याः कथा दमनकस्य च । महीसागरसंयोगः कुमारेशकथा ततः ॥१२॥
ततस्तारकयुद्धं च नानाख्यानसमन्वितम् । वधश्च तारकस्याथ पंचलिंगनिवेशनम् ॥१३॥
द्वीपाख्यानं ततः पुण्यमूर्ध्वलोकव्यवस्थितिः । ब्रह्मांडस्थितिमानं च वर्करेशकथानकम् ॥१४॥
महाकालसमुद्भूतिः कथा चास्य महाद्भुता । वासुदेवस्य माहात्म्यं कोटितीर्थं ततः परम् ॥१५॥
नानातीर्थसमाख्यानं गुप्तक्षेत्रे प्रकीर्तितम् । पांडवानां कथा पुण्या महाविद्याप्रसाधनम् ॥१६॥
तीर्थयात्रासमाप्तिश्च कौमारमिदमद्भुतम् । अरुणाचलमाहात्म्यं सनकब्रह्मसंकथा ॥१७॥
गौरीतपः समाख्यानं तत्तत्तीर्थनिरूपणम् । महिषासुरमाख्यानं वधश्चास्य महाद्भुतः ॥१८॥
द्रोणाचले शिवास्थानं नित्यदा परिकीर्तितम् । इत्येष कथितः स्कांदे खंडो माहेश्वरोऽद्भुतः ॥१९॥
द्वितीयो वैष्णवः खंडस्तस्याख्यानानि मे शृणु । प्रथमं भूमिवाराहसमाख्यानं प्रकीर्तितम् ॥२०॥

हैं। जो इसका श्रवण तथा पाठ करता है, उसे साक्षात् शिव समझना चाहिये। जिसके तत्पुरुष कल्प में कार्तिकेय ने सर्वसिद्धिदायक माहेश्वर धर्मों का प्रकाशन किया है, वह पापनाशी माहेश्वर खण्ड है। वह बारह हजार से कुछ कम श्लोकों में परिपूर्ण होता है। वह बहुपुण्यदायक, बृहत्कथाओं से युक्त तथा सैकड़ों अच्छे-अच्छे चरित्रों से युक्त है। स्कन्दमाहात्म्य की सूचना भी उसी से मिलती है। उसके केदार माहात्म्य के प्रारम्भ में पुराण का उपक्रम हुआ है, पश्चात् दक्षयज्ञ कथा, शिवलिंगार्चन फल, समुद्रमन्थनाख्यान, देवेन्द्र चरित्र, पार्वती-उपाख्यान, उनका विवाह, कुमारोत्पत्ति, तारकासुर युद्धवर्णन, पाशुपताख्यान, चंडाख्यान ॥१-९॥ द्यूतप्रवर्तनाख्यान, नारदसमागम, कुमारमाहात्म्य में पंचतीर्थकथानक, धर्मवर्मनृपाख्यान, नदीसागरकीर्तन, इंद्रद्युम्नकथा, नाड़ीजंघकथा, महीप्रादुर्भाव, दमनककथा, महीसागर संयोग, कुमारेशकथा, अनेक आख्यानों से युक्त तारक युद्ध, तारकवध, पंचलिंगनिवेश, द्वीपाख्यान, ऊर्ध्वलोक-व्यवस्थिति, ब्रह्मांडस्थितिमान, वर्करेशकथानक, महाकाल की उत्पत्ति, उनकी अद्भुत कथा, वासुदेव माहात्म्य, कोटितीर्थ, गुप्तक्षेत्रीय अनेक तीर्थों का आख्यान, पांडवों की पवित्र कथा, महाविद्याप्रसाधन, तीर्थयात्रा समाप्ति, अरुणाचल माहात्म्य, सनक तथा ब्रह्मा का संवाद, गौरी तप का आख्यान, तत्तत्तीर्थ निरूपण, महिषासुर की कथा, उसका आश्चर्यकारी वध, द्रोणाचल पर शिवा का अवस्थान—इतने विषय उस अद्भुत माहेश्वर खंड में आये हैं ॥१०-१९॥

अब दूसरे वैष्णव खण्ड के बारे में सुनो। उसमें पहले भूमि और वाराह का आख्यान, वेंकटकुध्र का पापनाशन माहात्म्य, कमला की पवित्र कथा, श्रीनिवास-स्थिति, कुलाल का आख्यान, सुवर्णमुखरी कथा, अनेक

यत्र वेंकटकुम्भस्य माहात्म्यं पापनाशनम् । कमलायाः कथा पुण्या श्रीनिवासस्थितिस्ततः ॥२१॥
कुलालाख्यानकं चात्र सुवर्णमुखरी कथा । नानाख्यानसमायुक्ता भारद्वाजकथाद्भुता ॥२२॥
मतंगांजनसंवादः कीर्तितः पापनाशनः । पुरुषोत्तममाहात्म्यं कीर्तितं चोत्कले ततः ॥२३॥
मार्कंडेयसमाख्यानमंबरीषस्य भूपतेः । इंद्रद्युम्नस्य चाख्यानं विद्यापतिकथा शुभा ॥२४॥
जैमिनेः समुपाख्यानं नारदस्यापि वाडव । नीलकंठसमाख्यानं नरसिंहोपवर्णनम् ॥२५॥
अश्वमेधकथा राज्ञो ब्रह्मलोकगतिस्तथा । रथयात्राविधिः पश्चाज्जन्मस्थानविधिस्तथा ॥२६॥
दक्षिणामूर्त्युपाख्यानं गुंडिवाख्यानकं ततः । रथरक्षाविधानं च शयनोत्सवकीर्तनम् ॥२७॥
श्वेतोपाख्यानमत्रोक्तं पृथूत्सवनिरूपणम् । दोलोत्सवो भगवतो व्रतं सांवत्सराभिधम् ॥२८॥
पूजा चाकामिका विष्णोरुद्दालकनियोगतः । योगसाधनमत्रोक्तं नानायोगनिरूपणम् ॥२९॥
दशावतारकथनं स्नानादिपरिकीर्तनम् । ततो बदरिकायाश्च माहात्म्यं पापनाशनम् ॥३०॥
अग्न्यादितीर्थमाहात्म्यं वैनतेयशिलाभवम् । कारणं भगवद्वासे तीर्थं कापालमोचनम् ॥३१॥
पंचधाराभिधं तीर्थं मेरुसंस्थापनं तथा । ततः कार्तिकमाहात्म्ये माहात्म्यं मदनालसम् ॥३२॥
धूम्रकेशसमाख्यानं दिनकृत्यानि कार्तिके । पंचभीष्मव्रताख्यानं कीर्तितं भुक्तिमुक्तिदम् ॥३३॥
ततो मार्गस्य माहात्म्ये विधानं स्नानजं तथा । पुंड्रादिकीर्तनं चात्र मालाधारणपुण्यकम् ॥३४॥
पंचामृतस्नानपुण्यं घंटानादादिजं फलम् । नानापुष्पार्चनफलं तुलसीदलजं फलम् ॥३५॥
नैवेद्यस्य च माहात्म्यं हरिवासरकीर्तनम् । अखंडैकादशीपुण्यं तथा जागरणस्य च ॥३६॥
मत्स्योत्सवविधानं च नाममाहात्म्यकीर्तनम् । ध्यानादिपुण्यकथनं माहात्म्यं मथुराभवम् ॥३७॥
मथुरातीर्थमाहात्म्यं पृथगुक्तं ततः परम् । वनानां द्वादशानां च माहात्म्यं कीर्तितं ततः ॥३८॥

आख्यानों से युक्त भारद्वाज की अद्भुत कथा, मतंग और अंजन का पापनाशी संवाद, उत्कलवर्ती पुरुषोत्तम का माहात्म्य, मार्कंडेय राजा अंबरीष तथा इंद्रद्युम्न की कथा, विद्यापति की कथा, जैमिनि तथा नारद का आख्यान, नीलकण्ठ समाख्यान, नरसिंहोपवर्णन ॥२०-२५॥ अश्वमेध कथा, राजा की ब्रह्मलोकगति, रथयात्रा-विधि, जन्मस्थान विधि, दक्षिणामूर्ति का उपाख्यान, गुंडिवाख्यान, रथरक्षाविधान, शयनोत्सवकीर्तन, श्वेतो-पाख्यान, पृथूत्सव निरूपण, भगवान् का दोलोत्सव, संवत्सर नामक व्रत, उद्दालक के नियोग से विष्णु की निष्काम पूजा, योग साधन, अनेक योगों का निरूपण, दशावतार कथन, स्नान आदि का कथन, पापनाशी बदरिकाश्रम का माहात्म्य, अग्नि आदि तीर्थों का माहात्म्य, गरुड शिला का माहात्म्य, भगवद्वास का कारण, कपालमोचन नामक तीर्थं, पंचधारा नामक तीर्थ, मेरु संस्थापन नामक तीर्थ, कार्तिक माहात्म्य में मदना-लस माहात्म्य ॥२६-३२॥ धूम्रकेशसमाख्यान, कार्तिकदिन-कृत्य, भुक्ति-मुक्तिदायक पंचभीष्मव्रताख्यान, अगहन माहात्म्य में स्नान का विधान, पुंड्रादिकीर्तन, मालधारण का पुण्य, पंचामृतस्नान पुण्य, घंटानाद आदि का फल, अनेकपुष्पार्चन-फल, तुलसी दल का फल, नैवेद्य का महात्म्य, हरिवासर कीर्तन, अखंड एकादशी का पुण्य, जागरण का पुण्य, उत्सव विधान, नाममाहात्म्यकीर्तन, ध्यान आदि का पुण्यकथन, मथुरा का माहात्म्य, मथुरातीर्थ माहात्म्य, द्वादश वनों का माहात्म्य ॥३३-३८॥ श्रीमद्भागवत का माहात्म्य, वज्र और

श्रीमद्भागवतस्यात्र माहात्म्यं कीर्तितं परम् । वज्रशांडिल्यसंवाद अंतर्लीलाप्रकाशकम् ॥३९॥
ततो माघस्य माहात्म्यं स्नानदानजपोद्भवम् । नानाख्यानसमायुक्तं दशाध्यायैर्निरूपितम् ॥४०॥
ततो वैष्णवमाहात्म्ये शय्यादानादिजं फलम् । जलदानादिविधयः कामाख्यानमतः परम् ॥४१॥
श्रुतदेवस्य चरितं व्याधोपाख्यानमद्भुतम् । तथाक्षयतृतीयादेर्विशेषात्पुण्यकीर्तनम् ॥४२॥
ततस्त्वयोध्यामाहात्म्ये चक्रब्रह्माह्वतीर्थके । सुरापापविमोक्षाख्ये तथाधारसहस्रकम् ॥४३॥
स्वर्गद्वारं चंद्रहरिधर्महर्युपवर्णनम् । स्वर्णवृष्टेरुपाख्यानं तिलोदासरयूयुतिः ॥४४॥
सीताकुंडं गुप्तहरिसरयूघर्घरान्वयः । गोप्रतारं च दुग्धोदं गुरुकुंडादिपञ्चकम् ॥४५॥
सोमार्कादीनि तीर्थानि त्रयोदश ततः परम् । गयाकूपस्य माहात्म्यं सर्वाघविनिवर्तकम् ॥४६॥
मांडव्याश्रमपूर्वाणि तीर्थानि तदनन्तरम् । अजितादिमानसादितीर्थानि गदितानि च ॥४७॥
इत्येष वैष्णवः खंडो द्वितीयः परिकीर्तितः । अतः परं ब्रह्मखंडं मरीचे शृणु पुण्यदम् ॥४८॥
यत्र वै सेतुमाहात्म्ये फलं स्नाने क्षणोद्भवम् । गालवस्य तपश्चर्या राक्षसाख्यानकं ततः ॥४९॥
चक्रतीर्थादिमाहात्म्यं देवीपत्तनसंयुते । वेतालतीर्थमहिमा पापनाशादिकीर्तनम् ॥५०॥
मंगलादिकमाहात्म्यं ब्रह्मकुंडादिवर्णनम् । हनुमत्कुंडमहिमागस्त्यतीर्थभवं फलम् ॥५१॥
रामतीर्थादिकथनं लक्ष्मीतीर्थनिरूपणम् । शंखादितीर्थमहिमा तथा साध्यामृतादिजः ॥५२॥
धनुष्कोट्यादिमाहात्म्यं क्षीरकुंडादिजं तथा । गायत्र्यादिकतीर्थानां माहात्म्यं चात्र कीर्तितम् ॥५३॥
रामनाथस्य महिमा तत्त्वज्ञानोपदेशनम् । यात्राविधानकथनं सेतौ मुक्तिप्रदं नृणाम् ॥५४॥
धर्मारण्यस्य माहात्म्यं ततः परमुदीरितम् । स्थाणुः स्कन्दाय भगवान्यत्र तत्त्वमुपादिशत् ॥५५॥
धर्मारण्यसुसंभूतिस्तत्पुण्यपरिकीर्तनम् । कर्मसिद्धेः समाख्यानं ऋषिवंशनिरूपणम् ॥५६॥

शांडिल्य का संवाद, अंतर्लीला प्रकाश, माघस्नान, दान तथा जप का माहात्म्य, दश अध्यायों में अनेक आख्यानों का निरूपण, वैष्णव माहात्म्य में शय्यादान आदि का फल, जलदान आदि की विधि, कामाख्यान, श्रुतदेव चरित, अद्भुत व्याधोपाख्यान, अक्षय तृतीया आदि का विशेष पुण्यकीर्तन, अयोध्या माहात्म्य में चक्रब्रह्म तथा सुरापाप विमोक्ष नामक तीर्थ, आधार सहस्र, स्वर्गद्वार, चंद्रहरि तथा धर्महरि का उपवर्णन, स्वर्णवृष्टि का उपाख्यान, तिलोदा और सरयू का संगम, सीताकुण्ड, गुप्तहरि, सरयू, घर्घर, गोप्रतार, दुग्दोध, गुरुकुण्डादिपञ्चक ॥३९-४५॥

सोमार्कादि तेरह तीर्थ, सकलपापनाशक गया कूप का माहात्म्य, मांडव्य के आश्रम सहित तीर्थों का वर्णन और अजित मानस आदि तीर्थों का कथन किया गया है। यही दूसरा वैष्णव खंड है। मरीचे ! अब इसके उपरांत तीसरे पुण्यदायक ब्रह्मखंड के बारे में सुनो, जिसमें सेतु माहात्म्य, स्नान, और दर्शन का फल, गालव की तपश्चर्या, राक्षसाख्यान, चक्रतीर्थादि माहात्म्य, वेताल तीर्थ महिमा, मंगलादिमाहात्म्य, ब्रह्मकुण्डादि वर्णन, हनुमत्कुण्डमहिमा, अगस्त्य तीर्थ का फल, रामतीर्थादि कथन, लक्ष्मीतीर्थनिरूपण, शंखादितीर्थ महिमा, साध्यामृत आदि की महिमा, ॥४६-५२॥ धनुष्कोटि आदि तीर्थों का माहात्म्य, क्षीरकुण्ड आदि का माहात्म्य, गायत्री आदि तीर्थों का माहात्म्य, रामनाथ की महिमा, तत्त्वज्ञान का उपदेश, मनुष्यों के लिये मोक्षदायक सेतु की यात्रा का विधान कथन, धर्मारण्य का माहात्म्य, उस वृक्ष का वर्णन जहां भगवान् ने कार्तिकेय को तत्त्व का उपदेश किया, धर्मारण्य का उद्भव, उसके पुण्य का कीर्तन, कर्मसिद्धि का आख्यान, ऋषिवंश निरूपण, ॥५३-५६॥ अप्सरा

अप्सरस्तीर्थमुख्यानां माहात्म्यं यत्र कीर्तितम् । वर्णानामाश्रमाणां च धर्मतत्त्वनिरूपणम् ॥५७॥
दिवः स्थानविभागश्च बकुलार्ककथा शुभा । छत्रानन्दा तथा शांता श्रीमाता च मतंगिनी ॥५८॥
पुण्यदा च समाख्याता यत्र देव्यः समास्थिताः । इन्द्रेश्वरादिमाहात्म्यं द्वारकादिनिरूपणम् ॥५९॥
लोहासुरसमाख्यानं गंगाकूपनिरूपणम् । श्रीरामचरितं चैव सत्यमंदिरवर्णनम् ॥६०॥
जीर्णोद्धारस्य कथनमासनप्रतिपादनम् । जातिभेदप्रकथनं स्मृतिधर्मनिरूपणम् ॥६१॥
ततस्तु वैष्णवा धर्मा नानाख्यानैरुदीरिताः । चातुर्मास्ये ततः पुण्ये सर्वधर्मनिरूपणम् ॥६२॥
दानप्रशंसा तत्पश्चाद्व्रतस्य महिमा ततः । तपसश्चैव पूजायाः सच्छिद्रकथनं ततः ॥६३॥
तद्वृत्तीनां भिदाख्यानं शालग्रामनिरूपणम् । भारकस्य वधोपायो वृक्षार्चामहिमा तथा ॥६४॥
विष्णोः शापश्च वृक्षत्वं पार्वत्यनुतपस्ततः । हरस्य तांडवं नृत्यं रामनामनिरूपणम् ॥६५॥
हरस्य लिंगपतनं कथा बैजवनस्य च । पार्वतीजन्मचरितं तारकस्य वधोऽद्भुतः ॥६६॥
प्रणवैश्वर्यकथनं तारकाचरितं पुनः । दक्षयज्ञसमाप्तिश्च द्वादशाक्षरभूषणम् ॥६७॥
ज्ञानयोगसमाख्यानं महिमा द्वादशाक्षरेः । श्रवणादिकपुण्यं च कीर्तितं शर्मदं नृणाम् ॥६८॥
ततो ब्राह्मोत्तरे भागे शिवस्य महिमाद्भुतः । पंचाक्षरस्य महिमा गोकर्णमहिमा ततः ॥६९॥
शिवरात्रेश्च महिमा प्रदोषव्रतकीर्तनम् । सोमवारव्रतं चापि सीमंतिन्याः कथानकम् ॥७०॥
भद्रायूत्पत्तिकथनं सदाचारनिरूपणम् । शिववर्मसमुद्देशो भद्रायूद्वाहवर्णनम् ॥७१॥
भद्रायुर्महिमा चापि भस्ममाहात्म्यकीर्तनम् । शबराख्यानकं चैव उमामाहेश्वरं व्रतम् ॥७२॥
रुद्राक्षस्य च माहात्म्यं रुद्राध्यायस्य पुण्यकम् । श्रवणादिकपुण्यं च ब्रह्मखंडोऽयमीरितः ॥७३॥
अतः परं चतुर्थं तु काशीखंडमनुत्तमम् । विन्ध्यनारदयोर्यत्र संवादः परिकीर्तितः ॥७४॥

आदि तीर्थों का माहात्म्य, वर्णों तथा आश्रमों का धर्म तत्त्व निरूपण, दिवस्थान का विभाग, बकुलार्ककथा, छत्रानंदा, शांता, श्रीमाता, मतंगिनी, आदि पुण्यदायिनी देवियों के स्थान का वर्णन, इन्द्रेश्वरादि माहात्म्य, द्वारकादि निरूपण, लोहासुर समाख्यान, गंगाकूपनिरूपण, श्रीरामचरित, सत्यमंदिर वर्णन, जीर्णोद्धार कथन, आसन प्रतिपादन, जातिभेद प्रकथन, स्मृतिधर्म निरूपण, अनेक आख्यानों सहित वैष्णव धर्म का निरूपण, चातुर्मास्य के समस्त धर्मों का कथन, दानप्रशंसा, व्रतमहिमा, तप तथा पूजा का सच्छिद्र कथन, प्रकृति का भिन्नाख्यान, शालग्राम निरूपण; भारक का वधोपाय, वृक्षार्चा की महिमा, विष्णु का वृक्षत्व शाप, पार्वती का अनुतप, हर का तांडवनृत्य, रामनाम निरूपण, हर का लिंगपतन, बैजवन की कथा, पार्वती जन्मचरित, तारक का अद्भुत वध, प्रणवैश्वर्य कथन, तारकाचरित, दक्षयज्ञसमाप्ति, द्वादशाक्षरभूषण, ज्ञानयोग समाख्यान, द्वादशाक्षर की महिमा, और मनुष्यों के लिये कल्याणकारक श्रवणादिक पुण्य बतलाया गया है ॥५७-६८॥ ब्रह्मखंड के उत्तर भाग में शिव की अद्भुत महिमा, पंचाक्षर की महिमा, गोकर्ण महिमा, शिवरात्रि महिमा, प्रदोषव्रत कीर्तन, सोमवार व्रत, सीमंतिनी का कथानक, भद्रायु का उत्पत्तिकथन, सदाचारनिरूपण, शिववर्मा का उद्देश, भद्रायु का विवाह वर्णन. भद्रायु महिमा, भस्म माहात्म्य कीर्तन, शबराख्यान, उमा-माहेश्वर-व्रत, रुद्राक्ष माहात्म्य, रुद्राध्यायपुण्य, श्रवणादिक पुण्य— इतने विषय आये हैं ॥६९-७३॥

अब इसके उपरांत चौथे अत्युत्तम काशीखंड के सम्बन्ध में सुनो। उसमें विन्ध्य तथा नारद का सं'''

सत्यलोकप्रभावश्चागस्त्यावासे सुरागमः । पतिव्रताचरित्रं च तीर्थयात्राप्रशंसनम् ॥७५॥
ततश्च सप्तपुर्याख्या संयमिन्या निरूपणम् । बुधस्य च तथेंद्राग्न्योर्लोकाप्तिः शिवशर्मणः ॥७६॥
अग्नेः समुद्भवश्चैव क्रव्याद्वरुणसंभवः । गंधवत्यलकापुर्योरीश्वर्याश्च समुद्भवः ॥७७॥
चंद्रार्कबुधलोकानां कुजेज्यार्कभुवां क्रमात् । मम विष्णोर्ध्रुवस्यापि तपोलोकस्य वर्णनम् ॥७८॥
ध्रुवलोककथा पुण्या सत्यलोकनिरीक्षणम् । स्कंदागस्त्यसमालापो मणिकर्णीसमुद्भवः ॥७९॥
प्रभावश्चापि गंगाया गंगानामसहस्रकम् । वाराणसीप्रशंसा च भैरवाविर्भवस्ततः ॥८०॥
दंडपाणिज्ञानवाप्योरुद्भवः समनंतरम् । ततः कलावत्याख्यानं सदाचारनिरूपणम् ॥८१॥
ब्रह्मचारिसमाख्यानं ततः स्त्रीलक्षणानि च । कृत्याकृत्यविनिर्देशो ह्यविमुक्तेशवर्णनम् ॥८२॥
गृहस्थयोगिनो धर्माः कालज्ञानं ततः परम् । दिवोदासकथा पुण्या काशिकावर्णनं ततः ॥८३॥
मायागणपतेश्चाथ भुवि प्रादुर्भवस्ततः । विष्णुमायाप्रपंचोऽथ दिवोदासविमोक्षणम् ॥८४॥
ततः पंचनदोत्पत्तिर्बिंदुमाधवसंभवः । ततो वैष्णवतीर्थाख्या शूलिनः काशिकागमः ॥८५॥
जैगीषव्येन संवादो ज्येष्ठेशाख्या महेशितुः । क्षेत्राख्यानं कंदुकेशः व्याघ्रेश्वरसमुद्भवः ॥८६॥
शैलेशरत्नेश्वरयोः कृत्तिवासस्य चोद्भवः । देवतानामधिष्ठानं दुर्गासुरपराक्रमः ॥८७॥
दुर्गाया विजयश्चाथ ओंकारेशस्य वर्णनम् । पुनरोंकारमाहात्म्यं त्रिलोचनसमुद्भवः ॥८८॥
केदाराख्या च धर्मेश कथा विष्णुभुजोद्भवा । वीरेश्वरसमाख्यानं गंगामाहात्म्यकीर्तनम् ॥८९॥
विश्वकर्मेशमहिमा दक्षयज्ञोदभवस्तथा । सतीशस्यामृतेशादेर्भुजस्तंभः पराशरे ॥९०॥
विश्वकर्मेशमहिमा दक्षयज्ञोदभवस्तथा । सतीशस्यामृतेशादेर्भुजस्तंभः पराशरे ॥९०॥
क्षेत्रतीर्थकदंबश्च मुक्तिमण्डपसंकथा । विश्वेशविभवश्चाथ ततो यात्रापरिक्रमः ॥९१॥
अतः परं त्ववंत्याख्यं श्रृण खंडं च पंचमम् । महाकालवनाख्यानं ब्रह्मशीर्षच्छिदा ततः ॥९२॥

सत्यलोक का प्रभाव, अगस्त्य के आवास में सुरागम, पतिव्रताचरित्र, तीर्थयात्रा की प्रशंसा, सप्तपुरी तथा संयमनी का निरूपण, शिवशर्मा को बुध, इंद्र तथा अग्निलोक की प्राप्ति, अग्नि का उद्भव, क्रव्यात् एवम् वरुण की उत्पत्ति, गंधवती, अलकापुरी और ईश्वरी की उत्पत्ति, चंद्र, अर्क, बुध, कुज, बृहस्पति, सूर्य ब्रह्मा, विष्णु, ध्रुव, तथा तपोलोक का वर्णन ।।७४-७८।। ध्रुवलोक की पवित्र कथा, सत्यलोक का निरीक्षण, स्कन्द और अगस्त्य का समालाप, मणिकर्णी का उद्भव, गंगा का प्रभाव, गंगा सहस्रनाम, वाराणसी प्रशंसा, भैरव का आविर्भाव, दण्डपाणि और ज्ञानवापी का उद्भव, कलावती का आख्यान, सदाचार निरूपण, ब्रह्मचारी का आख्यान, स्त्रियों के लक्षण, कृत्याकृत्य का निर्देश, अविमुक्तेश्वर का वर्णन, गृहस्थ तथा योगी के धर्म, काल ज्ञान, दिवोदास कथा, काशिका वर्णन, पृथ्वी पर माया गणपति का प्रादुर्भाव, विष्णुमाया का प्रपंच, दिवोदास विमोक्षण, पंचनदोत्पत्ति, बिंदुमाधव का उद्भव, वैष्णवतीर्थ की आख्या, शंकर का काशी-आगमन, ज्येष्ठेश तथा जैगीषव्य का संवाद, क्षेत्राख्यान, कंदुकेश तथा व्याघ्रेश्वर की उत्पत्ति, शैलेश, रत्नेश और कृत्तिवास का उद्भव, देवताओं का अधिष्ठान, दुर्गासुरपराक्रम, दुर्गा विजय और ओंकारेश का वर्णन, ओंकार माहात्म्य, त्रिलोचन का उद्भव, केदाराख्यान, धर्मेशकथा, विष्णुभुज की कथा, वीरेश्वर का आख्यान, गंगामाहात्म्य कीर्तन, विश्वकर्मा तथा ईश की महिमा, दक्षयज्ञ की उत्पत्ति, सतीश और अमृतेशादि पराशर का भुजस्तम्भ, क्षेत्र-तीर्थ समूह, मुक्तिमंडपकथा, विश्वेशविभव और यात्रापरिक्रमा—इतने विषय वर्णित हैं ।।७९-९१।।

अतःपर अवन्ती नामक पाँचवे खंड के सम्बन्ध में सुनो । इसमें महाकालाख्यान, ब्रह्मशीर्षच्छेद, प्रायश्चित्त

प्रायश्चित्तविधिश्चाग्नेरुत्पत्तिश्च सुरागमः । देवदीक्षा शिवस्तोत्रं नानापातकनाशनम् ॥९३॥
कपालमोचनाख्यानं महाकालवनस्थितिः । तीर्थं कलकलेशस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥९४॥
कुंडमप्सरसंज्ञं च सरो रुद्रस्य पुण्यदम् । कुडवेशं च विद्याध्रं मार्कटेश्वरतीर्थकम् ॥९५॥
स्वर्गद्वारचतुःसिंधुतीर्थं शंकरवापिका । शंकरार्कं गन्धवतीतीर्थं पापप्रणाशनम् ॥९६॥
दशाश्वमेधिकानंशतीर्थे च हरिसिद्धिदम् । पिशाचकादियात्रा च हनुमत्कवचेश्वरौ ॥९७॥
महाकालेशयात्रा च वल्मीकेश्वरतीर्थकम् । शुक्रं च पञ्चमे चाख्ये कुशस्थल्याः प्रदक्षिणाः ॥९८॥
अक्रूरसंज्ञकन्त्वेकपादं चंद्रार्कवैभवम् । करभेशाख्यतीर्थं च लड्डुकेशादितीर्थकम् ॥९९॥
मार्कंडेशं यज्ञवापी सोमेशं नरकांतकम् । केदारेश्वररामेशसौभाग्येशनरार्ककम् ॥१००॥
केशवार्कं शक्तिभेदं स्वर्णसारसुखानि च । ओंकारेशादितीर्थानि अंधकश्रुतिकीर्तनम् ॥१०१॥
कालारण्ये लिंगसंख्या स्वर्णश्रृंगाभिधानकम् । कुशस्थल्या अवंत्याश्चोज्जयिन्या अभिधानकम् ॥१०२॥
पद्मावती वै कुमुद्वत्यमरावतिनामकम् । विशालाप्रतिकल्पाभिधानं च ज्वरशांतिकम् ॥१०३॥
शिवानामादिकफलं नागोद्गीता शिवस्तुतिः । हिरण्याक्षवधाख्यानं तीर्थं सुन्दरकुण्डकम् ॥१०४॥
नीलगंगापुष्कराख्यं विघ्यवासनतीर्थकम् । पुरुषोत्तमाभिधानं तु तत्तीर्थं चाघनाशनम् ॥१०५॥
गोमती वामनं कुंडो विष्णोर्नामसहस्रकम् । वीरेश्वरसरः कालभैरवस्य च तीर्थकम् ॥१०६॥
महिमा नागपंचम्या नृसिंहस्य जयंतिका । कुटुम्बेश्वरयात्रा च देवसाधककीर्तनम् ॥१०७॥
कर्कराजाख्यतीर्थं च विघ्नेशादिसुरोहनम् । रुद्रकुण्डप्रभृतिषु बहुतीर्थनिरूपणम् ॥१०८॥
यात्राष्टतीर्थजा पुण्या रेवामाहात्म्यमुच्यते । धर्मपुत्रस्य वैराग्यो मार्कंडेयेन संगमः ॥१०९॥
प्राग्रीयानुभवाख्यानममृतापरिकीर्त्तनम् । कल्पे कल्पे पृथङ् नाम नर्मदायाः प्रकीर्तितम् ॥११०॥
स्तवमार्षं नार्मदं च कालरात्रिकथा ततः । महादेवस्तुतिः पश्चात्पृथक्कल्पकथाद्भुता ॥१११॥

विधि, अग्निउत्पत्ति, सुरागमन, देवदीक्षा, सकलपापनाशन शिवस्तोत्र, कपालमोचनाख्यान, महाकालवनस्थिति, सर्वपापनाशी कलकलेशतीर्थ, अप्सरःकुण्ड, पुण्यदायक रुद्रसर, कुडवेश, विद्याध्र, मर्कटेश्वर तीर्थ, स्वर्गद्वार, चतुः सिंधुतीर्थ, शंकरवापिका, शंकरार्क, पापनाशीगंधवतीतीर्थ, दशाश्वमेधतीर्थ, हरिसिद्धिदायक, अनंशतीर्थ, पिशाचिकादि यात्रा, हनुमत्कवचेश्वर, महाकालेशयात्रा, वल्मीकेश्वरतीर्थ, शुक्रतीर्थ, कुशस्थली की प्रदक्षिणा ॥९२-९८॥ अक्रूर नामक तीर्थ, एकपादतीर्थ, चंद्रार्कवैभवतीर्थ, करभेशतीर्थ, लड्डुकेशतीर्थ, मार्कण्डेशतीर्थ यज्ञवापी, सोमेश, नरकांतक, केदारेश्वर, रामेश, सौभाग्येश, नरार्क, केशवार्क, शक्तिभेद, स्वर्णसारसुख, ओंकारेशादि तीर्थ, अंधकश्रुतिकीर्तन, कालारण्य में लिंगसंख्या, स्वर्णश्रृंग की कथा, कुशस्थली, अवन्ती और उज्जयिनी का कथानक, पद्मावती, कुमुद्वती, अमरावती और विशालाप्रतिकल्प का आख्यान, ज्वरशांतिक, शिवानामादिक फल, नाग द्वारा की गई शिव स्तुति, हिरण्याक्षवधाख्यानतीर्थ, सुन्दरकुण्डक, नीलगंगा, पुष्कर, विष्यवासनतीर्थ, पापनाशन पुरुषोत्तम तीर्थ, गोमती, वामनकुण्ठ, विष्णुसहस्रनामतीर्थ ॥९९-१०५½॥

वीरेश्वरसर, कालभैरवतीर्थ, नागपंचमीमहिमा, नृसिंहजयन्ती, कुटुंबेश्वरयात्रा, देवसाधककीर्तन, कर्कराज-तीर्थ, विघ्नेशादिसुरोहन, रुद्रकुंड आदि अनेक तीर्थों का निरूपण, अष्टतीर्थ की पवित्र यात्रा, रेवामाहात्म्य, धर्मपुत्र का वैराग्य, उनका मार्कण्डेय के साथ संगम, प्राग्रीयानुभवाख्यान, अमृतापरिकीर्तन, प्रतिकल्प में नर्मदा का पृथक्-पृथक् नामनिर्देश, नर्मदा की आर्षस्तुति, कालरात्रिकथा, महादेवस्तुति, पृथक्-पृथक् कल्पों की अद्भुत

विशल्याख्यानकं पश्चाज्जालेश्वरकथा तथा । गौरीव्रतसमाख्यानं त्रिपुरज्वालनं ततः ॥११२॥
देहपातविधानं च कावेरीसंगमस्ततः । दारुतीर्थं ब्रह्मावर्तं यत्रेश्वरकथानकम् ॥११३॥
अग्नितीर्थं रवितीर्थं मेघनादादिदारुकम् । देवतीर्थं नर्मदेशं कपिलाख्यं करंजकम् ॥११४॥
कुंडलेशं पिप्पलादं विमलेशं च शूलभित् । शचीहरणमाख्यानमन्धकस्य वधस्ततः ॥११५॥
शूलभेदोद्भवो यत्र दानधर्माः पृथग्विधाः । आख्यानं दीर्घतपस ऋष्यशृंगकथा ततः ॥११६॥
चित्रसेनकथा पुण्या काशिराज्यस्य लक्षणम् । ततो देवशिलाख्यानं शबरीतीर्थकान्वितम् ॥११७॥
व्याधाख्यानं ततः पुण्यं पुष्करिण्यर्कतीर्थकम् । आदित्येश्वरतीर्थं च शक्रतीर्थं करोटिकम् ॥११८॥
कुमारेशमगस्त्येशमानंदेशं च मातृजम् । लोकेशं धनदेशं च मंगलेशं च कामजम् ॥११९॥
नागेशं चापि गोपारं गौतमं शंखचूडकम् । नारदेशं नंदिकेशं वरुणेश्वरतीर्थकम् ॥१२०॥
दधिस्कंदादितीर्थानि हनूमतेश्वरं ततः । रामेश्वरादितीर्थानि सोमेशं पिंगलेश्वरम् ॥१२१॥
ऋणमोक्षं कपिलेशं पूतकेशं जलेशयम् । चंडार्कं यमतीर्थं च काल्होडीशं वनादिके ॥१२२॥
नारायणं च कोटीशं व्यासतीर्थं प्रभासकम् । नागेशसंकर्षणकं प्रश्नयेश्वरतीर्थकम् ॥१२३॥
ऐरंडीसंगमं पुण्यं सुवर्णशिलतीर्थकम् । करजं कामहं तीर्थं भांडीरो रोहिणीभवम् ॥१२४॥
चक्रतीर्थं धौतपापं स्कंदमांगिरसाह्वयम् । कोटितीर्थमयोन्याख्यमंगाराख्यं त्रिलोचनम् ॥१२५॥
इन्द्रेशं कंबुकेशं च सोमेशं कोहनं शकम् । नार्मदं चार्कमाग्नेयं भार्गवेश्वरमुत्तमम् ॥१२६॥
ब्राह्मं दैवं च मार्गेशमादिवाराहकेश्वरम् । रामेशमथ सिद्धेशमाहल्यं कंकटेश्वरम् ॥१२७॥
शाक्रं सौम्यं च नादेशं तोयेशं रुक्मिणीभवम् । योजनेशं वराहेशं द्वादशीशिवतीर्थकम् ॥१२८॥
सिद्धेशं मंगलेशं च लिंगवाराहतीर्थकम् । कुण्डेशं श्वेतवाराहं गर्भावेशं रवीश्वरम् ॥१२९॥
शुक्लादीनि च तीर्थानि हुंकारस्वामितीर्थकम् । संगमेशं नहुषेशं मोक्षणं पञ्चगोपकम्
॥१३०॥
नागशावं च सिद्धेशं मार्कण्डाक्रूरतीर्थके

कथा, विशल्याख्यान, जालेश्वरकथा, गौरीव्रताख्यान, त्रिपुरज्वालन, ॥१०६-११२॥ देहपातविधान, कावेरीसंगम, दारुतीर्थ, ब्रह्मावर्त, ईश्वरकथानक, अग्नितीर्थ, रवितीर्थ, मेघनादादिदारुक, देवतीर्थ, नर्मदेश, कपिल, करंजक, कुंडलेश, पिप्पलाद, विमलेश, शूलभित्, शचीहरण का आख्यान, अन्धकवध, शूलभेद का उद्भव, पृथक्-पृथक् दानधर्मों का कथन, दीर्घतपा का आख्यान, ऋष्यशृंगकथा, चित्रसेनकथा, काशी के राज्य का लक्षण, देवशिलाख्यान, शबरीतीर्थ, व्याध का आख्यान, पुष्करिण्यर्कतीर्थ, आदित्येश्वरतीर्थ, शक्रतीर्थ, करोटिक, ॥११३-११८॥ कुमारेश, अगस्त्येश, आनंदेश, मातृज, लोकेश, धनदेश, मंगलेश, कामज, नागेश, गोपार, गौतम, शंखचूड, नारदेश, नंदिकेश, वरुणेश्वरतीर्थ, दधिस्कंध आदि तीर्थ, हनूमहेश्वर, रामेश्वर आदि तीर्थ, सोमेश, पिंगलेश, ऋणमोक्ष, कपिलेश, पूतिकेश, जलेशय, चंडार्क, यमतीर्थ, काल्होडीश, वनादिक, नारायण, कोटीश, व्यासतीर्थ, प्रभासक, नागेश-संकर्षणक, प्रश्नयेश्वरतीर्थ, पवित्र ऐरंडीसंगम, सुवर्णशिलतीर्थ, करंज, कामह, भांडीर, रोहिणीभव, चक्रतीर्थ, धौतपाप, स्कंद, आंगिरस, कोटितीर्थ, अयोनि, अंगार, त्रिलोचन, इंद्रेश, कंबुकेश, सोमेश, कोहन, शक, नार्मद, आर्क, आग्नेय, उत्तम भार्गवेश्वर ॥११९-१२६॥ ब्राह्म, देव, मार्गेश, आदि वाराहकेश्वर, रामेश, सिद्धेश, आहल्य, कंकटेश, शाक्र, सौम्य, आदेश, तोयेश, रुक्मिणीभव, योजनेश, वराहेश, द्वादशीशिवतीर्थ, सिद्धेश, मंगलेश, लिंगवाराहतीर्थ, कुंडेश, श्वेतवाराह, गर्भावेश, रवीश्वर, शुक्ल आदि तीर्थ, हुंकारस्वामितीर्थ, संगमेश, नारकेश,

कामोदशूलारोपाख्ये मांडव्यं गोपकेश्वरम् । कपिलेशं पिंगलेशं भूतेशं गांगगौतमे ॥१३१॥
आश्वमेधं भृगुकच्छं केदारेशं च पापनुत् । कलकलेशं जालेशं शालग्रामं वराहकम् ॥१३२॥
चंद्रप्रभासमादित्यं श्रीपत्याख्यं च हंसकम् । मूलस्थानं च शूलेशमुग्राख्यं चित्रदैवकम् ॥१३३॥
शिखीशं कोटितीर्थं च दशकन्यं सुवर्णकम् । ऋणमोक्षं भारभूतिं पुंखांमुंडिं च डिंडिमम् ॥१३४॥
आमलेशं कपालेशं शृंगेरंडीभवं ततः । कोटितीर्थं लोटणेशं फलस्तुतिरतः परम् ॥१३५॥
दृमिजंगलमाहात्म्ये रोहिताश्वकथा ततः । धुन्धुमारसमाख्यानं वधोपायस्ततोऽस्य वै ॥१३६॥
वधो धुंधोस्ततः पश्चात्ततश्चित्रवहोद्भवः । महिमास्य ततश्चंडीशप्रभावो रतीश्वरः ॥१३७॥
केदारेशो लक्षतीर्थं ततोविष्णुपदीभवम् । मुखारं च्यवनांधास्यं ब्रह्मणश्च सरस्ततः ॥१३८॥
चक्राख्यं ललिताख्यानं तीर्थं च बहुगोमयम् । रुद्रावर्तं च मार्कंडं तीर्थं पापप्रणाशनम् ॥१३९॥
श्रवणेशं शुद्धपटं देवांधुप्रेततीर्थकम् । जिह्वोदतीर्थं संभूतिः शिवोद्भेदं फलस्तुतिः ॥१४०॥
एष खंडो ह्यवंत्याख्यः शृण्वतां पापनाशनः । अतः परं नागराख्यः खंडः षष्ठोऽभिधीयते ॥१४१॥
लिंगोत्पत्तिसमाख्यानं हरिश्चन्द्रकथा शुभा । विश्वामित्रस्य माहात्म्यं त्रिशंकुस्वर्गतिस्तथा ॥१४२॥
हाटकेश्वरमाहात्म्ये वृत्रासुरवधस्तथा । नागबिलं शंखतीर्थमचलेश्वरवर्णनम् ॥१४३॥
चमत्कारपुराख्यानं चमत्कारकरं परम् । गयशीर्षं बालशाख्यं बालमंडं मृगाह्वयम् ॥१४४॥
विष्णुपादं च गोकर्णं युगरूपं समाश्रयः । सिद्धश्वरं नागसरः सप्तार्षेयं ह्यगस्तकम् ॥१४५॥
भ्रूणगर्तं नलेशं च भैष्मं वैडुरमर्ककम् । शारमिष्ठं सोमनाथं च दौर्गमातंजकेश्वरम् ॥१४६॥
जामदग्न्यवधाख्यानं नैःक्षत्रियकथानकम् । रामह्रदं नागपुरं षड्लिंगं चैव यज्ञभूः ॥१४७॥
मुण्डीरादित्रिकार्कं च सतीपरिणयाह्वयम् । रुद्रशीर्षं च यागेशं वालखिल्यं च गारुडम् ॥१४८॥

मोक्षण, पंचगोपक, नागधाव, सिद्धेश, मार्कंड, अक्रूरतीर्थं, कामोद, शूलारोप, मांडव्य, गोपकेश्वर, कपिलेश, पिंगलेश, भूतेश, गांग, गौतम, आश्वमेध, भृगुकच्छ, केदारेश, पापनुत्, कलकलेश, जालेश, शालग्राम, वराह ॥१२७-१३२॥ चंद्रप्रभासम, आदित्य, श्रीपति, हंसक, मूलस्थान, शूलेश, उग्राख्य, चित्रदैवक, शिखीश, कोटितीर्थं, दशकन्य, सुवर्णक, ऋणमोक्ष, भारभूति, पुंखा, मुंडि, डिंडिम, आमलेश, कपालेश, शृंगेरंडीभव, कोटितीर्थ, लोटणेश, फलस्तुति, कृमिजंगलमाहात्म्य, रोहिताश्वकथा, धुंधुमारसमाख्यान, धुंधुमारवधोपाय, धुंधुवध, चित्तवह की उत्पत्ति, चंडीशप्रभाव, रतीश्वर, केदारेश, लक्षतीर्थं, विष्णुपदीतीर्थं, मुखार, च्यवन, अंधास्य, ब्रह्मसर, चक्राख्यान, ललिताख्यान, बहुगोमयतीर्थ, रुद्रावर्तं, पापनाशी मार्कंडतीर्थं, श्रवणेश, शुद्धपट, देवांधप्रेततीर्थं, जिह्वोदतीर्थं, संभूतिशिवोद्भेद और फलस्तुति—इतने विषयों का वर्णन है। यह अवन्तीखंड श्रोताओं के पातक को नष्ट करता है ॥१३३-१४०½॥

अब इसके उपरान्त नागर नामक छठे खंड के बारे में सुनो। इसमें लिंगोत्पत्तिवर्णन, कल्याणमयी हरिश्चन्द्रकथा, विश्वामित्र का आख्यान, त्रिशंकु का स्वर्गगमन, हाटकेश्वरमाहात्म्य, वृत्रासुरवध, नागबिल, शंखतीर्थं, अचलेश्वरवर्णन, चमत्कारपुराख्यान, चमत्कारतीर्थ, गयशीर्ष, बालशाख्य, बालमंड, मृगसंज्ञकतीर्थ, विष्णुपादतीर्थं, गोकर्ण, युगरूप, सिद्धेश्वर, नागसर, सप्तार्षेयतीर्थ, अगस्त्यक, भ्रूणगर्त, नलेश, भैष्म, वैडुर, अर्कक, शार्मिष्ठ, सोमनाथ, दौर्ग, आतंजकेश्वर, जामदग्न्यवधाख्यान, नैःक्षत्रियकथानक, रामह्रद, नागपुर, षड्लिंग, यज्ञभू ॥१४१-१४७॥ मुंडीर आदि त्रिकार्क, सतीपरिणयतीर्थं, रुद्रशीर्ष, यागेश, वालखिल्य, गारुड, लक्ष्मीशाप,

लक्ष्मीशापः सप्तविंशसोमप्रासादमेव च । अंबाबद्धं पांडुकाख्यमाग्नेयं ब्रह्मकुण्डकम् ॥१४९॥
गोमुखं लोहयष्ट्याख्यमजापालेश्वरी तथा । शानैश्चरं राजवापी रामेशो लक्ष्मणेश्वरः ॥१५०॥
कुशेशाख्यं लवेशाख्यं लिंगं सर्वोत्तमोत्तमम् । अष्टषष्टिसमाख्यानं दमयंत्यास्त्रिजातकम् ॥१५१॥
ततो वै रेवती चात्र भक्तिकातीर्थसंभवः । क्षेमंकरी च केदारं शुक्लतीर्थमुखारकम् ॥१५२॥
सत्यसंधेश्वराख्यानं तथा कर्णोत्पलाकथा । अटेश्वरं याज्ञवल्क्यं गौर्यं गाणेशमेव च ॥१५३॥
ततो वास्तुपदाऽऽख्यानमजागृहकथानकम् । सौभाग्यांधुश्च शूलेशं धर्मराजकथानकम् ॥१५४॥
मिष्टान्नदेश्वराख्यानं गाणापत्यत्रयं ततः । जाबालिचरितं चैव मकरेशकथा ततः ॥१५५॥
कालेश्वर्यंधकाख्यानं कुण्डमाप्सरसं तथा । पुष्यादित्यं रोहिताश्वं नागरोत्पत्तिकीर्तनम् ॥१५६॥
भार्गवं चरितं चैव वैश्वामित्रं ततः परम् । सारस्वतं पैप्पलादं कंसारीशं च पैंडकम् ॥१५७॥
ब्रह्मणो यज्ञचरितं सावित्र्याख्यानसंयुतम् । रैवतं भार्तयज्ञाख्यं मुख्यतीर्थनिरीक्षणम् ॥१५८॥
कौरवं हाटकेशाख्यं प्रभासं क्षेत्रकत्रयम् । पौष्करं नैमिषं धार्ममरण्यत्रितयं स्मृतम् ॥१५९॥
वाराणसी द्वारकाख्यावन्त्याख्येति पुरीत्रयम् । वृन्दावनं खांडवाख्यमद्वैकाख्यं वनत्रयम् ॥१६०॥
कल्पः शालस्तथा नन्दिग्रामत्रयमनुत्तमम् । असिशुक्लपितृसंज्ञं तीर्थत्रयमुदाहृतम् ॥१६१॥
श्र्यर्बुदौ रैवतश्चैव पर्वतत्रयमुत्तमम् । नदीनां त्रितयं गंगा नर्मदा च सरस्वती ॥१६२॥
सार्द्धकोटित्रयफलमेकैकं चैषु कीर्तितम् । कूपिका शंखतीर्थं चामरकं बालमण्डनम् ॥१६३॥
हाटकेशक्षेत्रफलप्रदं प्रोक्तं चतुष्टयम् । सांबादित्यं श्राद्धकल्पं यौधिष्ठिरमथांधकम् ॥१६४॥
जलशायि चतुर्मासमशून्यशयनव्रतम् । मंकणेशं शिवरात्रिस्तुलापुरुषदानकम् ॥१६५॥
पृथ्वीदानं वानकेशं कपालमोचनेश्वरम् । पापपिंडं मासलैंगं युगमानादिकीर्तनम् ॥१६६॥
निवेशशाकंभर्याख्या रुद्रैकादशकीर्तनम् । दानमाहात्म्यकथनं द्वादशादित्यकीर्तनम् ॥१६७॥

सत्ताईस सोमप्रासाद, अंबाबद्ध, पाण्डुक, आग्नेय, ब्रह्मकुंड, गोमुख, लोहयष्टि, अजापालेश्वरी, शानैश्चर, राजवापी, रामेश, लक्ष्मणेश्वर, कुशेश, लवेश, सर्वोत्तम लिंग, अष्टषष्टि-आख्यान नामक तीर्थ, दमयंती-त्रिजातक, रेवतीवापी, भक्तिकातीर्थ, क्षेमंकरी, केदार, शुक्लतीर्थ, मुखारक, सत्यसंधेश्वर का आख्यान, कर्णोत्पलाकथा, अटेश्वर, याज्ञवल्क्य, गौर्य, गाणेश ॥१४८-१५३॥ वास्तुपदाख्यान, अजागृहकथानक, शौभाग्यांधु, शूलेश, धर्मराजकथानक, मिष्ठान्नदेश्वराख्यान, गाणपत्यत्रय, जाबालिचरित, मकरेशकथा, कालेश्वरी तथा अन्धक का आख्यान, अप्सरःकुंड, पुष्यादित्य, रोहिताश्व, नागरोत्पत्तिकीर्तन, भार्गवचरित, वैश्वामित्रचरित, सारस्वत, पैप्पलाद, कंसारीश, पिंडक, ब्रह्मयज्ञचरित, सावित्री-आख्यान, रैवत, भार्तयज्ञाख्यान, मुख्यतीर्थनिरीक्षण, कौरव, हाटकेश, तथा प्रभास, नामक तीन क्षेत्र पौष्कर, निमिष तथा धार्म, नामक तीन अरण्य वाराणसी, द्वारका तथा मनु नामक तीन गाँव, असि, शुल्क, तथा, पितर, नामक तीन तीर्थ, श्री, अर्बुद तथा रैवत नामक तीन पर्वत, गंगा, नर्मदा तथा सरस्वती नामक तीन नदियों का वर्णन है । इनमें एक-एक का फल साढ़े तीन करोड़ तीर्थों का सा है । कपिका, शंखतीर्थ चॉमरक तथा बालमंडन—ये चारों हाटकेशक्षेत्र के समान फलदायक हैं । इनके अतिरिक्त पार्वती एवम् आदित्य की कथा श्राद्धकल्प, युधिष्ठिर तथा अन्धक का संवाद, जलशायीव्रत, चातुर्मास्यव्रत, अशून्यशयनव्रत, मंकणेश, शिवरात्रि, तुलापुरुषज्ञान, पृथ्वीदान, वानकेश, कपालमोचनेश्वर, पापपिंड, मासलैंग, युगमानादिकीर्तन, निवेश तथा शाकंभरी का आख्यान, एकादश रुद्रों का कीर्तन, दानमाहात्म्य, कथन और द्वादश आदित्यों का कीर्तन नागरखंड में किया गया है । अब प्रभासखंड के बारे में सुनो ॥१५४-१६७½॥

इत्येष नागरः खंडः प्रभासाख्योऽधुनोच्यते । सोमेशो यत्र विश्वेशोऽर्कस्थलं पुण्यदं महत् ॥१६८॥
सिद्धेश्वरादिकाख्यानं पृथगत्र प्रकीर्तितम् । अग्नितीर्थं कपर्दीशं केदारेशं गतिप्रदम् ॥१६९॥
भीमभैरवचण्डीशभास्करेन्दुकुजेश्वराः । बुधेज्यभृगुसौरागुशिखीशा हरविग्रहाः ॥१७०॥
सिद्धेश्वराद्याः पंचान्ये रुद्रास्तत्र व्यवस्थिताः । वरारोहा ह्यजा पाला मंगला ललितेश्वरी ॥१७१॥
लक्ष्मीशो वाडवेशश्चोर्वीशः कामेश्वरस्तथा । गौरीशवरुणेशाख्यं दुर्वासेशं गणेश्वरम् ॥१७२॥
कुमारेशं चण्डकल्पं शकुलीश्वरसंज्ञकम् । ततः प्रोक्तोऽथ कोटीशबालब्रह्मादिसत्कथा ॥१७३॥
नरकेशसंवर्त्तशनिधीश्वरकथा ततः । बलभद्रेश्वरस्याथ गंगाया गणपस्य च ॥१७४॥
जांबवत्याख्यसरितः पांडुकूपस्य सत्कथा । शतमेधलक्षमेधकोटिमेधकथा ततः ॥१७५॥
दुर्वासार्कघटस्थानहिरण्यासंगमोत्कथा । नगरार्कस्य कृष्णस्य संकर्षणसमुद्रयोः ॥१७६॥
कुमार्याः क्षेत्रपालस्य ब्रह्मेशस्य कथा पृथक् । पिंगलासंगमेशस्य शंकरार्कघटेशयोः ॥१७७॥
ऋषितीर्थस्य नंदार्कत्रितकूपस्य कीर्तनम् । ससोपानस्य पर्णार्कन्यंकुमत्योः कथाद्भुता ॥१७८॥
वाराहस्वामि वृत्तांतं छायालिंगाख्यगुल्फयोः । कथा कनकनंदायाः कुंतीगंगेशयोस्तथा ॥१७९॥
चमसोद्भेदविदुरत्रिलोकेशकथा ततः । मंकणेशत्रैपुरेशषंडतीर्थकथास्तथा ॥१८०॥
सूर्यप्राचीवीक्षणयोरुमानाथकथा तथा । भूद्वारशूलस्थलयोश्च्यवनार्केशयोस्तथा ॥१८१॥
अजापालेशबालार्ककुबेरस्थलजा कथा । ऋषितोया कथा पुण्या संगालेश्वरकीर्तनम् ॥१८२॥
नारदादित्यकथनं नारायणनिरूपणम् । तप्तकुण्डस्य माहात्म्यं मूलचंडीशवर्णनम् ॥१८३॥
चतुर्वक्त्रगणाध्यक्षकलंबेश्वरयोः कथा । गोपालस्वामिवकुलस्वामिनोर्मरुतां कथा ॥१८४॥
क्षेमार्कोन्नतविघ्नेशजलस्वामिकथा ततः । कालमेघस्य रुक्मिण्या दुर्वासेश्वरभद्रयोः ॥१८५॥
शंखावर्तमोक्षतीर्थगोष्पदाच्युतसद्मनाम् । जालेश्वरस्य हुंकारेश्वरचंडीशयोः कथा ॥१८६॥

इस खंड में सोमेश, विश्वेश, महत्पुण्यदायक अर्कस्थल, सिद्धेश्वर आदि का आख्यान, अग्नितीर्थ, कपर्दीश, केदारेश, भीम, भैरव, चंडीश, भास्कर, अंगारकेश्वर, बुध, इज्य, भृगु, सौर, आगु, शिखीश, सिद्धेश्वर आदि हर-विग्रह तथा अन्य पांच रुद्रों का अवस्थान, वरारोहा, अजा, पाला, मंगला, ललितेश्वरी, लक्ष्मीश, वाडवेश, उर्वीश, कामेश्वर, गौरीश, वरुणेश, दुर्वासेश, गणेश्वर कुमारेश, चंडकल्प, शकुलीश्वर, कोटीश तथा बाल ब्रह्म आदि की सत्यकथा, नरकेश, ॥१६८-१७३॥ संवर्त्तेश तथा निधीश्वर की कथा, बलभद्रेश्वर, गंगा, गणप, जांबवती नामक सरिता, पांडुकूप, शतमेघ, लक्षमेघ, कोटिमेघ, दुर्वासा, अर्क, घटस्थान हिरण्यासंगम, नगरार्क, कृष्ण, संकर्षण, समुद्र, कुमारी, क्षेत्रपाल, ब्रह्मेश, पिंगलासंगमेश, शंकरार्क, घटेश, ऋषितीर्थ, नंदार्कत्रितकूप, शशोपान, पर्णार्क, न्यंकुमती, ॥१७४-१७८॥ वाराहस्वामी, का वृत्तान्त, छायालिंग, गुल्फ, कनकनंदा, कुंती, गंगेश, चमस उद्भेद विदुर, त्रिलोकेश, मंकणेश, त्रैपुरेश, षंडतीर्थ, सूर्यपाली, त्रीक्षण, उमानाथ, भूद्वार, शूलस्थल, च्यवन, अर्केश, अजापालेश, बालार्क, कुबेरस्थल, ऋषितोया, संगालेश्वर, नारद, आदित्य, नारायण, तप्तकुंड, मूलचंडीश, चतुर्वक्त्र, गणाध्यक्ष, कलंबेश्वर, गोपालस्वामी, वकुलस्वामी, मरुत्, ॥१७९-१८४॥

क्षेमार्क, उन्नत, विघ्नेश, जलस्वामी, कालमेघ, रुक्मिणी, दुर्वासा, ईश्वरभद्र, शंखावर्त, मोक्षतीर्थ, गोष्पद, अच्युतसद्म, जालेश्वर, हुंकारेश्वर, चंडीश, आशापुर, विघ्नेश, कलाकुंड, कपिलेश, जरद्गवशिव,

कपिलेशस्य च कथा जरदगवशिवस्य च ॥१८७॥
आशापुरस्थविघ्नेशकलाकुण्डकथाद्भुता । नारदेशयंत्रभूषादुर्गकूटगणेशजा ॥१८८॥
नलककोंटेश्वरयोर्हाटकेश्वरजा कथा । कीर्तनं कर्दमालस्य गुप्तसोमेश्वरस्य च ॥१८९॥
सुपर्णेलाख्यभैरव्योर्भल्लतीर्थभवा कथा । मार्कंडेश्वरकोटीशदामोदरगृहोत्कथा ॥१९०॥
बहुस्वर्णेशशृंगेशकोटीश्वरकथा ततः । मृगीकुण्डं च सर्वस्वं क्षेत्रे वस्त्रापथे स्मृतम् ॥१९१॥
स्वर्णरेखा ब्रह्मकुण्डं कुन्तीभीमेश्वरौ तथा । ततोऽर्बुदेश्वरकथा अचलेश्वरकीर्तनम् ॥१९२॥
दुर्गाभिल्लेशगंगेशरैवतानां कथाद्भुता । भद्रकर्णस्य माहात्म्यं त्रिनेत्रस्य ततः परम् ॥१९३॥
नागतीर्थस्य च कथा वसिष्ठाश्रमवर्णनम् । कोटीश्वररूपतीर्थहृषीकेशकथास्ततः ॥१९४॥
केदारस्य च माहात्म्यं तीर्थागमनकीर्तनम् । पंगुतीर्थयमतीर्थवाराहतीर्थवर्णनम् ॥१९५॥
सिद्धेशशुक्रेश्वरयोर्मणिकर्णीशकीर्तनम् । कात्यायन्याश्च माहात्म्यं ततः पिंडारकस्य च ॥१९६॥
चंद्रप्रभासपिंडोदश्रीमाताशुक्लतीर्थजम् । कपिलाग्नितीर्थकथा तथा रक्तानुबंधजा ॥१९७॥
ततः कनखलस्याथ चक्रमानुषतीर्थयोः । चंडीस्थाननागोद्भवशिवकुंडमहेशजा ॥१९८॥
गणेशपार्थेश्वरयोर्यात्रायामुज्ज्वलस्य च । उद्दालकेशसिद्धेशगततीर्थकथा पृथक् ॥१९९॥
कामेश्वरस्य मार्कंडेयोत्पत्तेश्च कथा ततः । कुलसंतारमाहात्म्यं रामकोट्याह्वतीर्थयोः ॥२००॥
श्रीदेवखातोत्पत्तिश्च व्यासगौतमतीर्थयोः । त्रिपुष्कररुद्रह्रदगुहेश्वरकथा शुभा ॥२०१॥
चंद्रोद्भवेशानशृंगब्रह्मस्थानोद्भवोऽद्भुतम् । महौजसः प्रभावश्च जंबूतीर्थस्य वर्णनम् ॥२०२॥
अविमुक्तस्य माहात्म्यमुमामाहेश्वरस्य च । द्वारकायाश्च माहात्म्यं चन्द्रशर्मकथानकम् ॥२०३॥
गंगाधरमिश्रकयोः कथा वाथ फलस्तुतिः । महाद्वादशिकाख्यानं प्रह्लादर्षिसमागमः ॥२०४॥
जागराद्यर्चनाद्याख्या व्रतमेकादशीभवम् । गोमत्युत्पत्तिकथनं तस्यां स्नानादिजं फलम् ॥२०५॥
दुर्वासस उपाख्यानं यात्रोपक्रमकीर्तनम् । सनकादिह्रदाख्यानं नृगतीर्थकथा ततः ॥२०६॥
चक्रतीर्थस्य माहात्म्यं गोमत्युदधिसंगमः ।

नलककोंटेश्वर, हाटकेश्वर, नारदेश, यंत्र, भूषा, दुर्ग, कूट, गणेश, सुवर्णेला, भैरवी, भल्लतीर्थ, कर्दमाल, गुप्त-सोमेश्वर, बहुस्वर्णेश, शृंगेश, कोटीश्वर, मार्कंडेश्वर, कोटीश, दामोदरगृह ॥१८५-१९०॥ स्वर्णरेखा, ब्रह्मकुण्ड, कुंती, भीमेश्वर, मृगीकुंड, वस्त्रापथक्षेत्र, दुर्गा, भिल्लेश, गंगेश, रैवत, अर्बुदेश्वर, अचलेश्वर, नागतीर्थ, वसिष्ठाश्रम, भद्रकर्ण, त्रिनेत्र, केदार, तीर्थागमन, कोटीश्वररूपतीर्थ, हृषीकेश, सिद्धेश, शुक्रेश, मणिकर्णीश, पंगुतीर्थ, यमतीर्थ, वाराहतीर्थ ॥१९१-१९५॥ चंद्रप्रभास, पिंडोद, श्रीमाता, शुक्लतीर्थ, कात्यायनी, पिंडारक, कनखल, चन्द्र, मानुषतीर्थ, कपिलाग्नि-तीर्थ, रक्तानुबंध, गणेश, पार्थेश्वर, उज्ज्वलयात्रा, चंडीस्थान, नागोद्भव, शिवकुंड, महेश, कामेश्वर, मार्कंडेयोत्पत्ति उद्दालकेश, सिद्धेश, गततीर्थ, श्रीदेवमाता की उत्पत्ति, व्यास तथा गौतमतीर्थ, कुलसंतार, रामतीर्थ, कोटितीर्थ ॥१९६-२००॥ चंद्रोद्भव, ईशानशृंग, ब्रह्मस्थानोद्भव, त्रिपुष्कर, रुद्रह्रद, गुहेश्वर और अविमुक्त की कथा, उमा तथा महातेजस्वी महेश्वर के प्रभाव का वर्णन, जंबूतीर्थ की कथा, गंगाधर तथा मिश्रक की कथा और फलस्तुति, द्वारका माहात्म्य, चंद्रशर्मा का कथानक, जागर आदि पूजन का आख्यान, एकादशीव्रत, महाद्वादशी का आख्यान, प्रह्लाद और ऋषि का समागम, दुर्वासा का उपाख्यान, यात्रा के उपक्रम का कीर्तन, गोमती की उत्पत्ति कथा, उसमें स्नान आदि करने का फल, चक्रतीर्थ का माहात्म्य, गोमती और सागर का संगम, सनक आदि ह्रदों का आख्यान,

गोप्रचारकथा पुण्या गोपीनां द्वारकागमः । गोपीसरः समाख्यानं ब्रह्मतीर्थादिकीर्तनम् ॥२०७॥
पंचनद्यागमाख्यानं नानाख्यानसमन्वितम् । शिवलिंगगदातीर्थकृष्णपूजादिकीर्तनम् ॥२०८॥
त्रिविक्रमस्य मूर्त्याख्या दुर्वासःकृष्णसंकथा । कुशदैत्यवधोच्चारविशेषार्चनजं फलम् ॥२०९॥
गोमत्यां द्वारकायां च तीर्थागमनकीर्तनम् । कृष्णमंदिरसंप्रेक्षा द्वारवत्यभिषेचनम् ॥२१०॥
तत्रतीर्थावासकथा द्वारकापुण्यकीर्तनम् । इत्येष सप्तमः प्रोक्तः खंडः प्राभासिको द्विजाः ॥२११॥
स्कांदे सर्वोत्तरकथे शिवमाहात्म्यवर्णने । लिखित्वैतत्तु यो दद्याद्धेमशूलसमन्वितम् ॥२१२॥
माघ्यां सत्कृत्य विप्राय स शैवे मोदते पदे ॥२१३॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्व० बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे स्कंदपुराणानुक्रमणीवर्णनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुराणं वामनाभिधम् । त्रिविक्रमचरित्राढ्यं दशसाहस्रसंख्यकम् ॥१॥
कूर्मकल्पसमाख्यानं वर्गत्रयकथानकम् । भागद्वयसमायुक्तं वक्तृश्रोतृशुभावहम् ॥२॥

नृगतीर्थकथा ॥२०१-२०६॥ गोप्रचारकथा, गोपियों का द्वारिका गमन, गोपीसर का आख्यान, ब्रह्मतीर्थ आदि कीर्तन, पंचनदी समागम कथा, विविध आख्यान, शिवलिंग, गदातीर्थ तथा कृष्णपूजा आदि का कीर्तन, त्रिविक्रम की मूर्ति कथा, दुर्वासा और कृष्ण की कथा, कुशदैत्यवध, विशेष पूजन का फल, गोमती तथा द्वारका में तीर्थों के आगमन का फल, कृष्णमंदिर का निरीक्षण, द्वारवती-अभिषेक, द्वारका में तीर्थों के निवास की कथा और द्वारका पुण्यकीर्तन—इतने विषय वर्णित हैं। द्विज ! यह प्रभास नामक सातवाँ खंड कहा गया है। इसमें स्कन्द-पुराण के उत्तरार्ध की समस्त कथायें तथा शिव का माहात्म्य वर्णित हुआ है। जो व्यक्ति स्कंद पुराण को लिखकर माघीपूर्णिमा के दिन ब्राह्मण की पूजा करके स्वर्ण सहित यह पुराण प्रदान करता है, वह सदा शिवलोक में क्रीडा करता है ॥२०७-२१३॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में स्कंदपुराणानुक्रमणी वर्णन नामक एक सौ चौथा अध्याय समाप्त ॥१०४॥

अध्याय १०५

वामनपुराण की विषयानुक्रमणी

श्रीब्रह्मा बोले—वत्स ! सुनो, मैं वामनपुराण को बतलाऊंगा, जिसमें त्रिविक्रम का चरित्र चित्रण किया गया है और श्लोकों की संख्या दश सहस्र है। इसमें कूर्मकल्प का समाख्यान और तीन वर्ग की कथा निरूपित हुई है। यह दो भागों में विभक्त है। इसके सुनने से वक्ता और श्रोता का मंगल होता है ॥१-२॥ इसमें क्रमशः

पुराणप्रश्नः प्रथमं ब्रह्मशीर्षच्छिदा ततः । कपालमोचनाख्यानं दक्षयज्ञविहिंसनम् ।।३।।
हरस्य कालरूपाख्या कामस्य दहनं ततः । प्रह्लादनारायणयोर्युद्धं देवासुराहवः ।।४।।
सुकेश्यर्कसमाख्यानं ततो भुवनकोशकम् । ततः काम्यव्रताख्यानं श्रीदुर्गाचरितं ततः ।।५।।
तपतीचरितं पश्चात्कुरुक्षेत्रस्य वर्णनम् । सत्यामाहात्म्यमतुलं पार्वतीजन्मकीर्तनम् ।।६।।
तपस्तस्या विवाहश्च गौर्युपाख्यानकं ततः । ततः कौशिक्युपाख्यानं कुमारचरितं ततः ।।७।।
ततोऽन्धकवधाख्यानं साध्योपाख्यानकं ततः । जाबालिचरितं पश्चादरजायाः कथाद्भुता ।।८।।
अंधकेश्वरयोर्युद्धं गणत्वं चांधकस्य च । मरुतां जन्मकथनं बलेश्च चरितं ततः ।।९।।
ततस्तु लक्ष्म्याश्चरितं त्रैविक्रममतः परम् । प्रह्लादतीर्थयात्रायां प्रोच्यंतेऽथ कथाः शुभाः ।।१०।।
ततश्च धुन्धुचरितं प्रेतोपाख्यानकं ततः । नक्षत्रपुरुषाख्यानं श्रीदामचरितं ततः ।।११।।
त्रिविक्रमचरित्रांते ब्रह्मप्रोक्तः स्तवोत्तमः । प्रह्लादबलिसंवादे सुतले हरिशंसनम् ।।१२।।
इत्येष पूर्वभागोऽस्य पुराणस्य तवोदितः । शृण्वतोऽस्योत्तरं भागं बृहद्वामनसंज्ञकम् ।।१३।।
माहेश्वरी भागवती सौरी गाणेश्वरी तथा । चतस्रः संहिताश्चात्र पृथक् साहस्रसंख्यया ।।१४।।
माहेश्वर्यां तु कृष्णस्य तद्भक्तानां च कीर्तनम् । भागवत्यां जगन्मातुरवतारकथाद्भुता ।।१५।।
सौर्यां सूर्यस्य महिमा गदितः पापनाशनः । गाणेश्वर्यां गणेशस्य चरितं च महेशितुः ।।१६।।
इत्येतद्वामनं नाम पुराणं सुविचित्रकम् । पुलस्त्येन समाख्यातं नारदाय महात्मने ।।१७।।
ततो नारदतः प्राप्तं व्यासेन सुमहात्मना । व्यासात्तु लब्धवांश्चैतत् तच्छिष्यो रोमहर्षणः ।।१८।।
स चाख्यास्यति विप्रेभ्यो नैमिषीयेभ्य एव च । एवं परम्पराप्राप्तं पुराणं वामनं शुभम् ।।१९।।
ये पठंति च शृण्वंति तेऽपि यांति परां गतिम् । लिखित्वैतत्पुराणं तु यः शरद्विषुवेऽर्पयेत् ।।२०।।

पुराणप्रश्न, ब्रह्मशीर्षच्छेद, कपालमोचनाख्यान, दक्षयज्ञध्वंस, हर का कालरूपाख्यान, कामदहन, प्रह्लाद और नारायण का युद्ध, देवासुरसंग्राम, सुकेशी और अर्क का आख्यान, भुवनकोश, काम्यव्रताख्यान, श्रीदुर्गाचरित, तपती का चरित कुरुक्षेत्रवर्णन, सत्यभामा का माहात्म्य, पार्वती का अनुपम जन्म वर्णन उनका तप, विवाह, गौरी का उपाख्यान कौशिकी का उपाख्यान, कुमार कार्तिकेय का चरित्र, अंधकवधाख्यान, साध्योपाख्यान, जाबालिचरित, अरजा की अद्भुत कथा, अंधक तथा ईश्वर का युद्ध, अंधक की गणत्वप्राप्ति, मरुतों की जन्म-कथा, बलिचरित्र ।।३-९।। लक्ष्मीचरित्र, त्रिविक्रमचरित, प्रह्लादतीर्थयात्रा की अनेक पवित्र कथायें, धुंधुचरित, प्रेतोपाख्यान, नक्षत्रपुरुषाख्यान, श्रीदामा का चरित्र, त्रिविक्रम के चरित्रान्त में ब्रह्मा द्वारा की गई उत्तम स्तुति, प्रह्लाद और बलि के संवाद में सुतल में हरि का वास—इतने विषय वर्णित हुए हैं ।

पुराण का यह पूर्व भाग तुमसे बतला दिया । इसके बृहद्वामन नामक उत्तर भाग में माहेश्वरी, भागवती, सौरी और गाणेश्वरी नामक चार संहितायें हैं; प्रत्येक संहिता एक सहस्र श्लोकों से पूर्ण है ।।१०-१४।। माहेश्वरी में कृष्ण तथा उनके भक्तों का कीर्तन, भागवती में जगन्माता की अवतार-कथा, सौरी में पापनाशन सूर्यमाहात्म्य और गाणेश्वरी में महेश गणेश का चरित्र चित्रित हुआ है । पहले इस विचित्र वामन पुराण को पुलस्त्य ने महात्मा नारद से बतलाया । तब नारद से सुमहात्मा व्यास ने प्राप्त किया । व्यास से उनके शिष्य रोमहर्षण ने लाभ किया । उन्होंने नैमिषारण्यवासी विप्रों को सुनाया । इस तरह पवित्र वामनपुराण परंपरा से प्राप्त हुआ है । जो मानव इस पुराण को लिखकर शरद् ऋतु में जो इसका श्रवण तथा पाठ करता है, उसे सद्गति मिलती है ।

विप्राय वेदविदुषे घृतधेनुसमन्वितम् । स समुद्धृत्य नरकान्नयेत्स्वर्गं पितृन्स्वकान् ॥२१॥
देहांते भुक्तभोगोऽसौ याति विष्णोः परं पदम् । ॥२२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे वामनपुराणानुक्रमणीवर्णनं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स मरीचे त्वं पुराणं कूर्मसंज्ञकम् । लक्ष्मीकल्पानुचरितं यत्र कूर्मवपुर्हरिः ॥१॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां माहात्म्यं च पृथक्पृथक् । इंद्रद्युम्नप्रसंगेन प्राहर्षिभ्यो दयान्वितः ॥२॥
तत्सप्तदशसाहस्रं सुचतुः संहितं शुभम् । यत्र ब्राह्माः पुरा प्रोक्ता धर्मा नानाविधा मुने ॥३॥
नानाकथाप्रसंगेन नृणां सद्गतिदायकाः । तत्र पूर्वविभागे तु पुराणोपक्रमः पुरा ॥४॥
लक्ष्मींद्रद्युम्नसंवादः कूर्मर्षिगणसंकथा । वर्णाश्रमाचारकथा जगदुत्पत्तिकीर्तनम् ॥५॥
कालसंख्या समासेन लयांते स्तवनं विभोः । ततः संक्षेपतः सर्गः शांकरं चरितं तथा ॥६॥
सहस्रनाम पार्वत्या योगस्य च निरूपणम् । भृगुवंशसमाख्यानं ततः स्वायम्भुवस्य च ॥७॥
देवादीनां समुत्पत्तिर्दक्षयज्ञाहतिस्ततः । दक्षसृष्टिकथा पश्चात्कश्यपान्वयकीर्तनम् ॥८॥
आत्रेयवंशकथनं कृष्णस्य चरितं शुभम् । मार्तंडकृष्णसंवादो व्यासपाण्डवसंकथा ॥९॥

वेदवेत्ता द्विज को घृतधेनु सहित समर्पित करता है, वह अपने पितरों को नरक से उद्धार करके स्वर्ग को पहुँचाता है और स्वयं सुखोपभोग करते हुए देहान्त में वैकुण्ठ को जाता है ॥१५-२०॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में वामनपुराणानुक्रमणी वर्णन नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥१०५॥

अध्याय १०६

कूर्मपुराण की विषयानुक्रमणी

ब्रह्मा बोले--हे वत्स ! मरीचे ! लक्ष्मीकल्पानुचरित कूर्म नामक पुराण सुनो, जिसमें हरि के कूर्मावतार और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, के माहात्म्य का पृथक्-पृथक् रूप से वर्णन किया गया है । यह पुराण इंद्रद्युम्न के प्रसंग में दयालु व्यास द्वारा ऋषियों को बतलाया गया है । इसमें चार संहितायें तथा सत्रह हजार श्लोक हैं। मुने ! इसके पूर्व भाग में विविध कथा प्रसंग से मनुष्यों को सद्गति देने वाले अनेक ब्राह्मण धर्मों का प्रतिपादन, पुराणोपक्रम, लक्ष्मी और इंद्रद्युम्न का संवाद, कूर्म और ऋषियों का संवाद, वर्णाश्रमाचारकथा, जगदुत्पत्तिकीर्तन, संक्षेप से कालसंख्या, लयान्त में भगवान् की स्तुति, संक्षेप से सृष्टि वर्णन, शंकरचरित्र, पार्वतीसहस्रनाम,

व्यासजैमिनिकीर्तनम् । वाराणस्याश्च माहात्म्यं प्रयागस्य ततः परम् ॥१०॥
युगधर्मानुकथनं चैव वेदशाखानिरूपणम् । उत्तरेऽस्या विभागे तु पुरा गीतेश्वरी ततः ॥११॥
त्रैलोक्यवर्णनं चैव वेदशाखानिरूपणम् । उत्तरेऽस्या विभागे तु पुरा गीतेश्वरी ततः ॥११॥
व्यासगीता ततः प्रोक्ता नानाधर्मप्रबोधिनी । नानाविधानां तीर्थानां माहात्म्यं च पृथक् ततः ॥१२॥
प्रतिसर्गप्रकथनं ब्राह्मीयं संहिता स्मृता । अतः परं भागवतीसंहितार्थं निरूपणम् ॥१३॥
कथिता यत्र वर्णानां पृथग्वृत्तिरुदाहृता । पादेऽस्याः प्रथमे प्रोक्ता ब्राह्मणानां व्यवस्थितिः ॥१४॥
सदाचारात्मिका वत्स भोगसौख्यविवर्द्धनी । द्वितीये क्षत्रियाणां तु वृत्तिः सम्यक्प्रकीर्तिता ॥१५॥
यया त्वाश्रितया पापं विधूयेह व्रजेद्दिवम् । तृतीये वैश्यजातीनां वृत्तिरुक्ता चतुर्विधा ॥१६॥
यया चरितया सम्यग्लभते गतिमुत्तमाम् । चतुर्थेऽस्यास्तथा पादे शूद्रवृत्तिरुदाहृता ॥१७॥
यया संतुष्यति श्रीशो नृणां श्रेयोविवर्द्धनः । पंचमेऽस्यास्ततः पादे वृत्तिः संकरजोविता ॥१८॥
यया चरितमाप्नोति भाविनीं गतिमुत्तमाम् । इत्येषा पंचपद्युक्ता द्वितीया संहिता मुने ॥१९॥
तृतीयात्रोदिता सौरी नृणां कार्यविधायिनी । षोढा षट्कर्मसिद्धिं बोधयन्ती च कामिनाम् ॥२०॥
चतुर्थी वैष्णवी नाम मोक्षदा परिकीर्तिता । चतुष्पदी द्विजातीनां साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणी ॥२१॥
ताः क्रमात्षट्चतुर्द्वीषुसाहस्राः परिकीर्तिताः । ॥२२॥
एतत्कूर्मपुराणं तु चतुर्वर्गफलप्रदम् । पठतां शृण्वतां नृणां सर्वोत्कृष्टगतिप्रदम् ॥२३॥
लिखित्वैतत्तु यो भक्त्या हेमकूर्मसमन्वितम् । ब्राह्मणायायने दद्यात्स याति परमां गतिम् ॥२४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे कूर्मपुराणानुक्रमणीकथनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

का माहात्म्य, त्रैलोक्यवर्णन और योगनिरूपण, युगधर्मकथन, व्यास और जैमिनि की कथा, वाराणसी और प्रयाग वेदशाखानिरूपण—इतने विषय आये हैं ॥१-१०½॥ उत्तर भाग के ब्राह्मी संहिता में प्रथमतः ईश्वरीगीता, व्यासगीता, नानाविध तीर्थमाहात्म्य, अनेकधर्मकथा तथा प्रतिसर्गनिरूपण किया गया है। भागवती संहिता के प्रथम पाद में, सदाचारयुक्त भोगसौख्य को बढ़ाने वाली ब्राह्मणों की व्यवस्था बताई गई है। द्वितीय पाद में क्षत्रिय की वृत्ति का सम्यक्रूप से प्रतिपादन किया गया है, जिसके अनुष्ठान से निष्पाप होकर क्षत्रिय स्वर्ग को जाते हैं। तृतीय पाद में वैश्यों की चार प्रकार वृत्ति का निरूपण किया गया है, जिसके संपादन से वैश्य उत्तम गति को लाभ करते हैं। चौथे पाद में शूद्रों की वृत्ति का कथन हुआ है, जिसके करने से मानवकल्याणवर्धक नारायण संतुष्ट होते हैं। पाँचवें पाद में संकरों की वृत्ति कथित हुई है, जिसके सम्यक् आचरण से उत्तम गति की प्राप्ति होती है। मुने! यह पंचपदी द्वितीय संहिता कही गई ॥११-१९॥

तीसरी सौरी संहिता मनुष्यों के कार्य सम्पन्न करने वाली तथा कामियों के छह कर्मों को सिद्ध करने वाली है। चौथी वैष्णवी संहिता मोक्ष देने वाली, चार पादों वाली तथा द्विजातियों के लिये साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी है। वे संहितायें क्रमशः छह, चार तथा दो हजार श्लोकों में परिपूर्ण हैं (?)। यह कूर्मपुराण चतुर्वर्ग के फल को देने वाला है। इसके पाठ तथा श्रवण से मानवों को उत्कृष्ट गति मिलती है। जो इस पुराण को लिखकर ब्राह्मण को भक्तिपूर्वक स्वर्णकच्छप सहित यह प्रदान करता है उसे परम गति की प्राप्ति होती है ॥२०-२१॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में कूर्मपुराणानुक्रमणीकथन नामक एक सौ छठा अध्याय समाप्त ॥१०६॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ मात्स्यं पुराणं ते प्रवक्ष्ये द्विजसत्तम । यत्रोक्तं सप्तकल्पानां वृत्तं संक्षिप्य भूतले ॥१॥
व्यासेन वेदविदुषा नारसिंहोपवर्णने । उपक्रम्य तदुद्दिष्टं चतुर्दशसहस्रकम् ॥२॥
मनुमत्स्यसुसंवादो ब्रह्मांडकथनं ततः । ब्रह्मदेवासुरोत्पत्तिर्मारुतोत्पत्तिरेव च ॥३॥
मदनद्वादशी तद्वल्लोकपालाभिपूजनम् । मन्वन्तरसमुद्देशो वैश्यराज्याभिवर्णनम् ॥४॥
सूर्यवैवस्वतोत्पत्तिर्बुधसंगमनं तथा । पितृवंशानुकथनं श्राद्धकालस्तथैव च ॥५॥
पितृतीर्थप्रचारश्च सोमोत्पत्तिस्तथैव च । कीर्तनं सोमवंशस्य ययातिचरितं तथा ॥६॥
कार्तवीर्यस्य चरितं सृष्टवंशानुकीर्तनम् । भृगुशापस्तथा विष्णोर्दशधा जन्मने क्षितौ ॥७॥
कीर्त्तनं पूरुवंशस्य वंशो हौताशनः परम् । क्रियायोगस्ततः पश्चात्पुराणपरिकीर्तनम् ॥८॥
व्रतं नक्षत्रपुरुषं मार्तण्डशयनं तथा । कृष्णाष्टमीव्रतं तद्वद्रोहिणीचन्द्रसंज्ञितम् ॥९॥
तडागविधिमाहात्म्यं पादपोत्सर्ग एव च । सौभाग्यशयनं तद्वदगस्त्यव्रतमेव च ॥१०॥
तथानन्ततृतीयाया रसकल्याणिनीव्रतम् । तथैवानंदकर्याश्च व्रतं सारस्वतं पुनः ॥११॥
उपरागाभिषेकश्च सप्तमीशयनं तथा । भीमाख्या द्वादशी तद्वदनंगशयनं तथा ॥१२॥
अशून्यशयनं तद्वत्तथैवांगारकव्रतम् । सप्तमीसप्तकं तद्वद्विशोकद्वादशीव्रतम् ॥१३॥
मेरुप्रदानं दशधा ग्रहशांतिस्तथैव च । ग्रहस्वरूपकथनं तथा शिवचतुर्दशी ॥१४॥
तथा सर्वफलत्यागः सूर्यवारव्रतं तथा । संक्रांतिस्नपनं तद्वद्विभूतिद्वादशीव्रतम् ॥१५॥

अध्याय १०७

मत्स्यपुराण की विषयानुक्रमणी

ब्रह्मा बोले—द्विजश्रेष्ठ! अब मात्स्यपुराण तुम्हें सुनाऊंगा, जिसमें भूतलस्थित वेदवेत्ता व्यास ने सात कल्पों का संक्षिप्त वृत्तान्त बतलाया है। उसके उपक्रम में नरसिंह का वर्णन है। वह चौदह हजार श्लोकों से परिपूर्ण है ॥१-२॥ पहले मनु और मत्स्य का संवाद पश्चात् ब्रह्मांडकथन, ब्रह्मदेव, असुर तथा मरुत् की उत्पत्ति, मदनद्वादशी, लोकपाल पूजा, मन्वन्तरनिर्देश, वैन्यराज्यवर्णन, सूर्यवैवस्वतोत्पत्ति, बुधसंगम, पितृवंशकथन, श्राद्धकाल, पितृतीर्थप्रचार, सोमोत्पत्ति, सोमवंशकीर्तन, ययातिचरित, कार्तवीर्यचरित, सृष्टवंशकीर्तन, विष्णु का भृगुशाप, पृथ्वी पर उनका दशावतार ॥३-७॥ पुरुवंशकीर्तन, हुताशनवंश, क्रियायोग, पुराण परिकीर्तन, पुरुषव्रत, मार्तंडशयनव्रत, कृष्णाष्टमीव्रत, रोहिणीचंद्रव्रत, तडागविधिमाहात्म्य, वृक्षोत्सर्ग, सौभाग्यशयन, अगस्त्यव्रत, अनन्ततृतीयाव्रत, रसकल्याणीव्रत, आनन्दकारीव्रत, सारस्वतव्रत, उपरागाभिषेक, सप्तमीशयन, भीमाद्वादशीव्रत, अनंगशयनव्रत, अशून्यशयनव्रत, अंगारकव्रत, सप्तमीसप्तकव्रत, विशोकद्वादशीव्रत, मेरुप्रदान, दशधा ग्रहशान्ति, ग्रहस्वरूपकथन, शिवचतुर्दशी, सर्वफलत्याग, सूर्यवारव्रत, संक्रान्तिस्नपन, विभूतिद्वादशीव्रत, षष्टिव्रत का माहात्म्य, स्नानविधिक्रम,

षष्टिव्रतानां माहात्म्यं तथा स्नानविधिक्रमः । प्रयागस्य तु माहात्म्यं द्वीपलोकानुवर्णनम् ॥१६॥
तथांतरिक्षचारश्च ध्रुवमाहात्म्यमेव च । भवनानि सुरेंद्राणां त्रिपुरोद्योतनं तथा ॥१७॥
पितृप्रवरमाहात्म्यं मन्वंतरविनिर्णयः । चतुर्युगस्य संभूतिर्युगधर्मनिरूपणम् ॥१८॥
वज्रांगस्य तु संभूतिस्तारकोत्पत्तिरेव च । तारकासुरमाहात्म्यं ब्रह्मदेवानुकीर्तनम् ॥१९॥
पार्वतीसंभवस्तद्वत्तथा शिवतपोवनम् । अनंगदेहदाहश्च रतिशोकस्तथैव च ॥२०॥
गौरीतपोवनं तद्वच्छिवेनाथ प्रसादनम् । पार्वतीऋषिसंवादस्तथैवोद्वाहमंगलम् ॥२१॥
कुमारसंभवस्तद्वत्कुमारविजयस्तथा । तारकस्य वधो घोरो नरसिंहोपवर्णनम् ॥२२॥
पद्मोद्भवविसर्गस्तु तथैवांधकघातनम् । वाराणस्यास्तु माहात्म्यं नर्मदायास्तथैव च ॥२३॥
प्रवरानुक्रमस्तद्वत्पितृगाथानुकीर्तनम् । तथोभयमुखीदानं दानं कृष्णाजिनस्य च ॥२४॥
ततः सावित्र्युपाख्यानं राजधर्मास्तथैव च । विविधोत्पातकथनं ग्रहशांतिस्तथैव च ॥२५॥
यात्रानिमित्तकथनं स्वप्नमंगलकीर्तने । वामनस्य तु माहात्म्यं वाराहस्य ततः परम् ॥२६॥
समुद्रमथनं तद्वत्कालकूटाभिशांतनम् । देवासुरविमर्दश्च वास्तुविद्या तथैव च ॥२७॥
प्रतिमालक्षणं तद्वद्देवतायतनं तथा । प्रासादलक्षणं तद्वन्मंडपानां च लक्षणम् ॥२८॥
भविष्यराज्ञामुद्देशो महादानानुकीर्तनम् । कल्पानुकीर्तनं तद्वत्पुराणेऽस्मिन्प्रकीर्तितम् ॥२९॥
पवित्रमेतत्कल्याणमायुः कीर्तिविवर्द्धनम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि स याति भवनं हरेः ॥३०॥
लिखित्वैतत्तु यो दद्याद्धेममत्स्यगवान्वितम् । विप्रायाभ्यर्च्य विषुवे स याति परमं पदम् ॥३१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे मत्स्यपुराणानुक्रमणीकथनं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

प्रयागमाहात्म्य, द्वीपलोकवर्णन ॥८-१६॥ अन्तरिक्षसंचरण, ध्रुवमाहात्म्य, सुरेन्द्रभवन, त्रिपुरप्रभाव, पितृप्रवरमाहात्म्य, मन्वन्तरनिर्णय, चतुर्युगोत्पत्ति, युगधर्मनिरूपण, वज्रांग की उत्पत्ति, तारकोत्पत्ति, तारकासुरमाहात्म्य, ब्रह्म,-देवकीर्तन, पार्वती की उत्पत्ति, शिवतपोवन, कामदेहदाह, रतिशोक, गौरीतपोवन, शिवप्रसादन, पार्वती तथा ऋषि का संवाद, परिणयमंगल ॥१७–२१॥

कुमारसंभव, कुमारीविजय, तारकवध, नरसिंहवर्णन, पद्मोद्भवविसर्ग, अंधकपातन, वाराणसी तथा नर्मदा का माहात्म्य, प्रवरानुक्रम, पितृगाथाकीर्तन, उभयमुखीदान, कृष्णाजिनदान, सावित्री-उपाख्यान, राजधर्म, विवधोत्पातकथन, ग्रहशान्ति, यात्रानिमित्तकथन, स्वप्नमंगलकीर्तन, वामनमाहात्म्य, बाराहमाहात्म्य, समुद्रमंथन, कालकूट-निःसरण, देवासुरसंघर्ष, वास्तुविद्या, प्रतिमालक्षण, देवतास्थापन, प्रासादलक्षण, मंडपलक्षण, भविष्य-राजगण का कथन, महादानकीर्तन और कल्पों का कीर्तन इस पुराण में किया गया है। यह पवित्र पुराण कल्याण, आयु तथा कीर्ति को बढ़ाने वाला है जो इसका पाठ और श्रवण करता है, उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है।

इस पुराण को लिखकर विषुवे में (जब दिनरात का मान बराबर होता है) सुवर्ण के मत्स्य तथा गाय सहित यह समर्पित करता है, वह परम पद को प्राप्त करता है ॥२२-३१॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में मत्स्यपुराणानुक्रमणीनिरूपण नामक एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥१०७॥

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

मरीचे शृणु वक्ष्यामि पुराणं गारुडं शुभम् । गरुडायाब्रवीत्पृष्टो भगवान्गरुडासनः ॥१॥
एकोनविंशसाहस्रं ताक्ष्यंकल्पकथान्वितम् । पुराणोपक्रमप्रश्नः सर्गः संक्षेपतस्ततः ॥२॥
सूर्यादिपूजनविधिर्दीक्षाविधिरतः परम् । श्राद्धपूजा ततः पश्चान्नवव्यूहार्चनं द्विज ॥३॥
पूजाविधानं च तथा वैष्णवं पंजरम् ततः । योगाध्यायस्ततो विष्णोर्नामसाहस्रकीर्तनम् ॥४॥
ध्यानं विष्णोस्ततः सूर्यपूजा मृत्युंजयार्चनम् । मालामंत्रः शिवार्चाथ गणपूजा ततः परम् ॥५॥
गोपालपूजा त्रैलोक्यमोहनश्रीधरार्चनम् । विष्णवर्चा पंचतत्त्वार्चा चक्रार्चा देवपूजनम् ॥६॥
न्यासादिसंध्योपास्तिश्च दुर्गार्चाथ सुरार्चनम् । पूजा माहेश्वरी चातः पवित्रारोपणार्चनम् ॥७॥
मूर्तिध्यानं वास्तुमानं प्रासादानां च लक्षणम् । प्रतिष्ठा सर्वदेवानां पृथक्पूजा विधानतः ॥८॥
योगोऽष्टांगो दानधर्माः प्रायश्चित्तविधिक्रिया । द्वीपेशनरकाख्यानं सूर्यव्यूहश्च ज्योतिषम् ॥९॥
सामुद्रिकं स्वरज्ञानं नवरत्नपरीक्षणम् । माहात्म्यमथ तीर्थानां गयामाहात्म्यमुत्तमम् ॥१०॥
ततो मन्वंतराख्यानं पृथक्पृथग्विभागशः । पित्राख्यानं वर्णधर्मा द्रव्यशुद्धिः समर्पणम् ॥११॥
श्राद्धं विनायकस्यार्चा ग्रहयज्ञस्तथा श्रमाः । जननाख्यं प्रेतशौचं नीतिशास्त्रं व्रतोक्तयः ॥१२॥

अध्याय १०८

गरुडपुराण की विषयानुक्रमणी

ब्रह्मा बोले—वत्स मरीचे ! सुनो, मैं पवित्र गरुडपुराण को बतलाता हूँ। पूछे जाने पर भगवान् श्री कृष्ण ने यह पुराण गरुड से कहा था। यह ताक्ष्यंकल्प की कथा से युक्त एवं उन्नीस हजार श्लोकों से परिपूर्ण है। इसके पूर्व खंड में पुराणोपक्रम का प्रश्न, संक्षेप से सृष्टि वर्णन, सूर्यादिपूजन विधि, दीक्षाविधि, श्राद्धपूजा, नवव्यूहादि अर्चना, पूजा-विधान, वैष्णवपंजर, योगाध्याय, विष्णुसहस्रनाम, विष्णुध्यान, सूर्यपूजा, मृत्युंजय की आराधना, मालामंत्र, शिवार्चा, गणपूजा ॥१-५॥

गोपालपूजा, त्रैलोक्यमोहनश्रीधरार्चन, विष्णुपूजा, पंचतत्त्वों की अर्चा, चक्रार्चन, देवपूजन, न्यासादि, संध्योपासन, दुर्गार्चा, सुरार्चन, माहेश्वरीपूजा, पवित्रारोपणार्चन, मूर्तिध्यान, वास्तुमान, प्रासादों का लक्षण, सकल देवों की प्रतिष्ठा तथा पृथक्-पृथक् पूजाविधान, अष्टांगयोग, दानधर्म, प्रायश्चित्तविधि, द्वीपेश तथा नरकों का आख्यान, सूर्यव्यूह, ज्योतिष, सामुद्रिक, स्वरज्ञान, नवरत्नपरीक्षण, तीर्थमाहात्म्य, उत्तम गयामाहात्म्य, पृथक्-पृथक् रूप से मन्वन्तराख्यान, पित्राख्यान, वर्णधर्म, द्रव्यशुद्धि, समर्पण ॥६-११॥

श्राद्ध, गणेशपूजन, ग्रहयज्ञ, आश्रम, जन्माख्यान, प्रेतशौच, नीतिशास्त्र, व्रतविधान, सूर्यवंश, सोमवंश, हरि

रामायणं हरेर्वंशो भारताख्यानकं ततः ॥१३॥
सूर्यवंशः सोमवंशोऽवतारकथनं हरेः । रोगघ्नं कवचं विष्णोर्गारुडं त्रैपुरो मनुः ॥१४॥
आयुर्वेदनिदानं प्राक् चिकित्सा द्रव्यजा गुणाः । ओषधीनामकथनं ततो व्याकरणोहनम् ॥१५॥
प्रश्नचूडामणिश्चांतो हयायुर्वेदकीर्तनम् । तर्पणं वैश्वदेवं च संध्या पार्वणकर्म च ॥१६॥
छंदःशास्त्रं सदाचारस्ततः स्नानविधिः स्मृतः । प्रतिसंक्रम उक्ताः स्म युगधर्माः कृतेः फलम् ॥१७॥
नित्यश्राद्धं सपिण्डाख्यं धर्मसारोऽघनिष्कृतिः । माहात्म्यं वैष्णवं चाथ नारसिंहस्तवोत्तमम् ॥१८॥
योगशास्त्रं विष्णुभक्तिर्नमस्कृतिफलं हरेः । वेदांतसांख्यसिद्धांतो ब्रह्मज्ञानं तथात्मकम् ॥१९॥
ज्ञानामृतं गुहाष्टकं स्तोत्रं विष्ण्वर्चनाह्वयम् । अथास्यैवोत्तरे खंडे प्रेतकल्पः पुरोदितः ॥२०॥
गीतासारः फलोत्कीर्तिः पूर्वखंडोऽयमीरितः । धर्मप्रकटनं पूर्वं योगिनां गतिकारणम् ॥२१॥
यत्र तार्क्ष्येण संपृष्टो भगवानाह वाडवाः । यमलोकस्य मार्गस्य वर्णनं च ततः परम् ॥२२॥
दानादिकं फलं चापि प्रोक्तमन्त्रौर्ध्वदैहिकम् । निष्कृतिर्यममार्गस्य धर्मराजस्य वैभवम् ॥२३॥
षोडशश्राद्धफलको वृत्तांतश्चात्र वर्णितः । प्रेतानां चरिताख्यानं कारणं प्रेततां प्रति ॥२४॥
प्रेतपीडाविनिर्देशः प्रेतचिह्ननिरूपणम् । प्रेतत्वमोक्षणाख्यानं दानानि च विमुक्तये ॥२५॥
प्रेतकृत्यविचारश्च सपिंडीकरणोक्तयः । शारीरकविनिर्देशो यमलोकस्य वर्णनम् ॥२६॥
आवश्यकोत्तमं दानं प्रेतसौख्यकरोहनम् । मृत्योः पूर्वक्रियाख्यानं पश्चात्कर्मनिरूपणम् ॥२७॥
प्रेतत्वोद्धारकथनं कर्मकर्तृविनिर्णयः । सूतकस्याथ संख्यानं नारायणबलिक्रिया ॥२८॥
मध्यषोडशकश्राद्धं स्वर्गप्राप्तिक्रियोहनम् । अपमृत्युक्रियोक्तिश्च विपाकः कर्मणां नृणाम् ॥२९॥
वृषोत्सर्गस्य माहात्म्यं निषिद्धपरिवर्जनम् । स्वर्गतौ विहिताख्यानं स्वर्गसौख्यनिरूपणम् ॥३०॥
कृत्याकृत्यविचारश्च विष्णुध्यानविमुक्तये ।

का अवतारकथन, रामायण, हरिवंश, भारताख्यान, आयुर्वेदनिदान, प्राथमिक चिकित्सा, द्रव्यगुण, रोगनाशी विष्णुकवच, गारुड़ और त्रैपुरमंत्र, प्रश्नचूड़ामणि, हयायुर्वेदकीर्तन, ओषधिनामकथन, व्याकरण, छंदःशास्त्र, सदाचार, स्नानविधि, वैश्वदेवतर्पण, संध्या, पार्वणकर्म नित्यश्राद्ध, सपिंडाख्यश्राद्ध, धर्मसार, पापनिष्कृति, प्रतिसंक्रम, युगधर्म, कर्तव्यफल, योगशास्त्र, विष्णुभक्ति, हरिनमस्कारफल, वैष्णवमाहात्म्य, नारसिंहस्तोत्र, ज्ञानामृत, गुह्याष्टक स्तोत्र, विष्णु की अर्चा, वेदान्त तथा सांख्य का सिद्धान्त, ब्रह्मज्ञान गीतासार तथा फलकथन—इतने विषय वर्णित हैं ॥१२-१९½॥

उत्तर खंड में पहले गरुड़ के पूछने पर भगवान् प्रेतकल्प को बतलाया । पश्चात् धर्मप्रकटन, योगियों की गति का कारण दानादिक फल, और्ध्वदेहिक मंत्र, यमलोक के मार्ग का वर्णन, षोडश श्राद्ध का फल वृत्तांत, यममार्ग की निष्कृति, धर्मराज का वैभव, प्रेतपीड़ा का निर्देश, प्रेतचिह्ननिरूपण, प्रेतों के चरित्र का आख्यान, प्रेतत्व प्राप्त होने का कारण, प्रेतकृत्य का विवरण, सपिंडीकरण का आख्यान, प्रेतत्वमोक्षण, मुक्त्यर्थ दान, आवश्यक उत्तमदान, प्रेत को सुख पहुँचाने वाली क्रिया, शारीरिक निर्देश, यमलोकवर्णन, प्रेतत्व से उद्धार, कर्म और कर्ता का निर्णय, मृत्यु से पूर्व की क्रिया का आख्यान, कर्मनिरूपण, षोडशश्राद्ध, स्वर्गप्राप्तिक्रिया, सूतकसंख्यान, नारायण बलिक्रिया, ॥२०-२८॥

वृषोत्सर्गमाहात्म्य, निषिद्धत्याग, अपमृत्युक्रियाकथन, मनुष्यों का कर्मविपाक, कृत्याकृत्यविचार, मुक्ति के लिए विष्णुध्यान, स्वर्गगति के संबंध में विहिताख्यान, स्वर्गसौख्यनिरूपण, भूलोकवर्णन, सप्तअधोलोकवर्णन, पंचऊर्ध्व-

भूर्लोकवर्णनं चैव सप्ताधोलोकवर्णनम् । पंचोर्ध्वलोककथनं ब्रह्मांडस्थितिकीर्तनम् ॥३१॥
ब्रह्मांडानेकचरितं ब्रह्मजीवनिरूपणम् । आत्यंतिकं लयाख्यानं फलस्तुतिनिरूपणम् ॥३२॥
इत्येतद्गारुडं नाम पुराणं भुक्तिमुक्तिदम् । कीर्तितं पापशमनं पठतां शृण्वतां नृणाम् ॥३३॥
लिखित्वैतत्पुराणं तु विषुवे यः प्रयच्छति । सौवर्णहंसयुग्माढ्यं विप्राय स दिवं व्रजेत् ॥३४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे गारुडानुक्रमणीवर्णनं नामाष्टोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

•

नवाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि ब्रह्मांडाख्यं पुरातनम् । यच्च द्वादशसाहस्रमादिकल्पकथायुतम् ॥१॥
प्रक्रियाख्योऽनुषंगाख्य उपोद्घातस्तृतीयकः । चतुर्थ उपसंहारः पादाश्चत्वार एव हि ॥२॥
पूर्वपादद्वयं पूर्वो भागोऽत्र समुदाहृतः । तृतीयो मध्यमो भागश्चतुर्थस्तूत्तरो मतः ॥३॥

लोककथन, ब्रह्मांडस्थितिकीर्तन, ब्रह्मांड के अनेक चरित्र, ब्रह्मजीवनिरूपण, आत्यंतिकलयाख्यान और फलस्तुतिनिरूपण इतने विषयों का दिग्दर्शन कराया। यह गरुड़पुराण पढ़ने तथा सुनने वालों के लिए भुक्ति-मुक्तिदायक तथा पापनाशक है। इस पुराण को लिखकर विषुव में जो व्यक्ति ब्राह्मण को युगल स्वर्णहंससहित यह प्रदान करता है, उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥२९-३४॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में गरुड़ानुक्रमणीवर्णन नामक एक सौ आठवां अध्याय समाप्त ॥१०८॥

अध्याय १०९

ब्रह्माण्डपुराण की विषयानुक्रमणी

ब्रह्मा बोले——वत्स ! सुनो; मैं प्राचीन ब्रह्मांडपुराण को कहता हूं। यह बारह हजार श्लोकों से परिपूर्ण तथा आदि कल्प की कथाओं से युक्त है। इस पुराण के प्रक्रिया, अनुषंग, उपोद्घात और उपसंहार नामक चार पाद हैं। दो पाद इसका पूर्व भाग है, तीसरा पाद मध्यम भाग है और चतुर्थ उत्तर भाग है ॥१-३॥

आदौ कृत्यसमुद्देशो नैमिषाख्यानकं ततः । हिरण्यगर्भोत्पत्तिश्च लोककल्पनमेव च ॥४॥
एष वै प्रथमः पादो द्वितीयं शृणु मानद । कल्पमन्वन्तराख्यानं लोकज्ञानं ततः परम् ॥५॥
मानसीसृष्टिकथनं रुद्रप्रसववर्णनम् । महादेवविभूतिश्च ऋषिसर्गस्ततः परम् ॥६॥
अग्नीनां विजयश्चाथ कालसद्भाववर्णनम् । प्रियव्रतान्वयोद्देशः पृथिव्यायामविस्तरः ॥७॥
वर्णनं भारतस्यास्य ततोऽन्येषां निरूपणम् । जम्ब्वादिसप्तद्वीपाख्या ततोऽधोलोकवर्णनम् ॥८॥
ऊर्ध्वलोकानुकथनं ग्रहचारस्ततः परम् । आदित्यव्यूहकथनं देवग्रहानुकीर्तनम् ॥९॥
नीलकंठाह्वयाख्यानं महादेवस्य वैभवम् । अमावास्यानुकथनं युगतत्त्वनिरूपणम् ॥१०॥
यज्ञप्रवर्तनं चाथ युगयोरंत्ययोः कृतिः । युगप्रजालक्षणं च ऋषिप्रवरवर्णनम् ॥११॥
वेदानां व्यसनाख्यानं स्वायंभुवनिरूपणम् । शेषमन्वन्तराख्यानं पृथ्वीदोहनं ततः ॥१२॥
देवानां व्यसनाख्यानं स्वायंभुवनिरूपणम् । अथोपोद्घातपादे तु सप्तर्षिपरिकीर्तनम् ॥१३॥
चाक्षुषेऽद्यतने सर्गे द्वितीयोऽङ्घ्रिः पुरोदले । ततो जयाभिलाषश्च मरुदुत्पत्तिकीर्तनम् ॥१४॥
प्रजापत्यन्वयस्तस्माद्देवादीनां समुद्भवः । पितृकल्पानुकथनं श्राद्धकल्पस्ततः परम् ॥१५॥
काश्यपेयानुकथनं ऋषिवंशनिरूपणम् । मनुपुत्रान्वयश्चांतो गान्धर्वस्य निरूपणम् ॥१६॥
वैवस्वतसमुत्पत्तिः सृष्टिस्तस्य ततः परम् । अमावसोरन्वयश्च रजेश्चरितमद्भुतम् ॥१७॥
इक्ष्वाकुवंशकथनं वंशोऽत्रेः सुमहात्मनः । कार्तवीर्यस्य चरितं जामदग्न्यं ततः परम ॥१८॥
ययातिचरितं चाथ यदुवंशनिरूपणम् । भार्गवस्यानुचरितं पितृकार्यवधाश्रयम् ॥१९॥
वृष्णिवंशानुकथनं सगरस्याथ संभवः । देवासुराहवकथा कृष्णाविर्भाववर्णनम् ॥२०॥
सगरस्याथ चरितं भार्गवस्य कथा पुनः । विष्णुमाहात्म्यकथनं वलिवंशनिरूपणम् ॥२१॥
इंद्रस्य तु स्तवः पुण्यः शुक्रेण परिकीर्तितः । समुपोद्घातपादोऽयं तृतीयो मध्यमे दले ॥२२॥
भविष्यराजचरितं संप्राप्तेऽथ कलौ युगे ।

प्रथम पाद में कर्तव्यनिर्देश, नैमिषाख्यान, हिरण्यगर्भोत्पत्ति, तथा लोककल्पन——इतने विषय वर्णित हैं। मानद ! दूसरे कल्प को सुनो। उसमें कल्प, मन्वन्तराख्यान, लोकज्ञान, मानसी सृष्टिकथन, रुद्रप्रसववर्णन, महादेव-विभूति, ऋषिसर्ग, अग्नियों का विजय, कालसद्भाववर्णन, प्रियव्रत का वंशवर्णन, पृथिवी का दैर्घ्य और विस्तार, भारतवर्षवर्णन, जम्बू आदि सात द्वीपों का आख्यान, अधोलोकवर्णन, ऊर्ध्वलोककथन, ग्रहचार, आदित्यव्यूहकथन, देवग्रहों का अनुकीर्तन, नीलकंठाख्यान, महादेव का वैभव, अमावास्यानुकथन, युगतत्त्वनिरूपण, यज्ञप्रवर्तन, शेषयुग का कार्य, युगप्रजालक्षण, ऋषिप्रवरवर्णन, देवों का व्यासनाख्यान, स्वायंभुवनिरूपण, अवशिष्ट मन्वन्तरों का आख्यान तथा पृथिवीदोहन——इतने विषयों की चर्चा की गई है। यही दूसरा पाद है, जिसमें चाक्षुष मन्वन्तर का वर्णन है ॥४-१२½॥

उपोद्घातपाद में सप्तर्षियों की कथा, प्रजापतिवंशवर्णन, देव आदिकों की उत्पत्ति उनकी विजयाभिलाषा, मरुत् की उत्पत्ति, काश्यपेयानुकथन, ऋषिवंशनिरूपण, पितृकल्पवर्णन, श्राद्धकला, वैवस्वतसमुत्पत्ति, सृष्टिवर्णन, मनुपुत्र-वंश, गान्धर्वनिरूपण, इक्ष्वाकुवंशकथन, महात्मा अत्रि का वंशवर्णन, अमावसुवंशकथन, रजिचरित्र, ययाति-चरित्र यदुवंशनिरूपण, कार्तवीर्यचरित, जामदग्न्यचरित, वृष्णिवंशानुकथन, सगरोत्पत्ति, पितृवधसंबन्धी भार्गवचरित्र, समरवर्णन, पुनः भार्गव की कथा, देवासुरसंग्रामवर्णन, कृष्णावतारवर्णन, शुक्र द्वारा इंद्र की उत्तम स्तुति, विष्णु-माहात्म्यकथन, बलिवंशनिरूपण, और कलियुग उपस्थित होने पर भविष्यराजचरित चित्रित किया गया है। यही तीसरा उपोद्घात पाद है, जो पुराण का मध्यम भाग कहलाता है ॥१३-२२॥

चतुर्थमुपसंहारं वक्ष्ये खण्डे तथोत्तरे । वैवस्वतांतराख्यानं विस्तरेण यथातथम् ॥२३॥
पूर्वमेव समुद्दिष्टं संक्षेपादिह कथ्यते । भविष्याणां मनूनां च चरितं हि ततः परम् ॥२४॥
कल्पप्रलयनिर्देशः कालमानं ततः परम् । लोकाश्चतुर्दश ततः कथिताः प्राक्तलक्षणैः ॥२५॥
वर्णनं नरकाणां च विकर्माचरणैस्ततः । मनोमयपुराख्यानं लयः प्राकृतिकस्ततः ॥२६॥
शैवस्याथ पुरस्यापि वर्णनं च ततः परम् । त्रिविधाद्गुणसंबंधाज्जंतूनां कीर्तिता गतिः ॥२७॥
अनिर्देश्याप्रतर्क्यस्य ब्रह्मणः परमात्मनः । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां वर्णनं हि ततः परम् ॥२८॥
इत्येष उपसंहारपादो वृत्तः सहोत्तरः । चतुष्पादं पुराणं ते ब्रह्मांडं समुदाहृतम् ॥२९॥
अष्टादशमनौपम्यं सारात्सारतरं द्विज । ब्रह्मांडं यच्चतुर्लक्षं पुराणं येन पठ्यते ॥३०॥
तदेतदस्य गदितमत्राष्टादशधा पृथक् । पाराशर्येण मुनिना सर्वेषामपि मानद ॥३१॥
वस्तुतस्तूपदेष्ट्राथ मुनीनां भावितात्मनाम् । मत्तः श्रुत्वा पुराणानि लोकेभ्यः प्रचकाशिरे ॥३२॥
मुनयो धर्मशीलास्ते दीनानुग्रहकारिणः । मया चेदं पुराणं तु वसिष्ठाय पुरोदितम् ॥३३॥
तेन शक्तिसुतायोक्तं जातूकर्ण्याय तेन च । व्यासो लब्ध्वा ततश्चैतत्प्रभंजनमुखोद्गतम् ॥३४॥
प्रमाणीकृत्य लोकेऽस्मिन्प्रावर्तयदनुत्तमम् । य इदं कीर्तयेद्वत्स शृणोति च समाहितः ॥३५॥
स विधूयेह पापानि याति लोकमनामयम् । लिखित्वैतत्पुराणं तु स्वर्णसिंहासनस्थितम् ॥३६॥
वस्त्रेणाच्छादितं यस्तु ब्राह्मणाय प्रयच्छति । स याति ब्रह्मणो लोकं नात्र कार्या विचारणा ॥३७॥
मरीचेऽष्टादशैतानि मया प्रोक्तानि यानि ते । पुराणानि तु संक्षेपाच्छ्रोतव्यानि च विस्तरात् ॥३८॥
अष्टादश पुराणानि यः शृणोति नरोत्तमः । कथयेद्वा विधानेन नेह भूयः स जायते ॥३९॥

अब उत्तर भागस्थ चतुर्थ उपसंहार पाद का वर्णन करूंगा । पूर्व में वैवस्वतान्तराख्यान विस्तृत रूप से उक्त होने पर भी इस पाद में संक्षेप से कहा गया है । तदनन्तर भावी मनुष्यों का चरित्र, कल्पप्रलयनिर्देश, कालमान, चौदह लोकों का कथन, नरकों का वर्णन, कुत्सित कर्मों का आचरण, मनोमयपुराख्यान, प्राकृतिकलय, शैवपुर का वर्णन, गुणों के संपर्क से जीवों की तीन प्रकार की गति, अन्वयव्यतिरेक से अनिर्देश्य तथा अतर्क्य परमात्मा ब्रह्म का वर्णन हुआ है । यही उत्तरखंडीय उपसंहारपाद है । चार पादों से युक्त ब्रह्मांडपुराण तुम्हें बतला दिया गया ॥२३-२९॥ द्विज ! यह अठारहवाँ पुराण है जो सब पुराणों का सार माना गया है । इसमें चार लाख श्लोक भी कहे जाते हैं । पराशरपुत्र व्यास ने इसी पुराण को अठारह भागों में विभक्त करके प्रकाशित किया है । मानद ! संयतात्मा मुनियों को वस्तु तत्त्व का उपदेश देने वाले व्यास ने मुझसे पुराणों को सुनकर लोक में प्रचार किया । दोनों के ऊपर अनुग्रह करने वाले धर्मशील मुनियों ने व्यास से पुराणों को प्राप्त किया । पूर्वकाल में वशिष्ठ से मैंने ब्रह्मांड पुराण को बतलाया था । पश्चात् उन्होंने शक्तिसुत व्यास से और व्यास ने जातूकर्ण्य से कहा । व्यास ने प्रभंजन के मुख से निःसृत इस पुराण को प्राप्त कर लोक में प्रमाणित करके प्रचार किया । वत्स ! जो व्यक्ति समाहित होकर इसका पाठ तथा श्रवण करेगा, वह निष्पाप होकर अक्षय्यलोक को जायेगा । जो इस पुराण को लिखकर स्वर्ण के सिंहासन पर ऊनी वस्त्र से आच्छादित करके ब्राह्मण को समर्पित करता हैं, उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं ॥३०-३७॥

मरीचे ! यह जो मैंने संक्षेप से पुराणों को बतलाया है, उन्हें विस्तार से सुनना चाहिये । जो उत्तम मानव अठारहों पुराणों को विधिपूर्वक सुनता है या कथा करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता । अभी जो सूत्र रूप में

सूत्रमेतत्पुराणानां यन्मयोक्तं तवाधुना । तन्नित्यं शीलनीयं हि पुराणफलमिच्छता ॥४०॥
न दांभिकाय पापाय देवगुर्वनुसूयवे । देयं कदापि साधूनां द्वेषिणे न शठाय च ॥४१॥
शांताय शमचित्ताय शुश्रूषाभिरताय च । निर्मत्सराय शुचये देयं सद्वैष्णवाय च ॥४२॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे ब्रह्मांडपुराणानुक्रमणीनिरूपणं नाम नवोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०९॥

•

दशाधिकशततमोऽध्यायः

नारद उवाच

पुराणसूत्रमखिलं श्रुतं तव मुखाद्विभो । मरीचये यथा प्रोक्तं ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥१॥
अधुना तु महाभाग तिथीनां वै कथानकम् । क्रमतो मह्यमाख्याहि यथा स्याद्व्रतनिश्चयः ॥२॥
यस्मिन्मासे तु या पुण्या तिथिर्येन उपासिता । यद्विधानं च पूजादेस्तत्सर्वं वद सांप्रतम् ॥३॥

सनातन उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि तिथीनां ते व्रतं पृथक् । तिथीशानुक्रमादेव सर्वसिद्धिविधायकम् ॥४॥
चैत्रे मासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनी । । शुक्लपक्षे समग्रं वै तदा सूर्योदये सति ॥५॥

पुराणों की अनुक्रमणिका तुमसे बतलाई गई है, उसका अनुशीलन पुराणफल के इच्छुक को अवश्य करना चाहिये । पुराण दांभिक, पापी, देव-गुरु के निंदक, साधु-द्रोही तथा शठ को नहीं देना चाहिए । यह शांत, भगवदुपासक, शुश्रूषु, मत्सरशून्य, पवित्र एवम् वैष्णव को देना चाहिये ॥३८-४२॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में ब्रह्मांडपुरानुक्रमणीनिरूपण नामक एक सौ नवां अध्याय समाप्त ॥१०९॥

अध्याय ११०

बारह मासों का प्रतिपदाव्रत

नारद बोले—विभो ! सूत ! जैसे परमेष्ठी ब्रह्मा ने मरीचि से कहा, उस प्रकार मैं अखिल पुराणों को सुन चुका । महाभाग ! इस समय तिथियों के कथानक को सुनना चाहता हूँ । अतः क्रम से कहिये, जिससे व्रतों का निश्चय हो जाय । जिस मास में जो पवित्र तिथि मानी गई है, जिसने उसकी उपासना की है और उसके पूजन आदि का जो विधान बतलाया गया है, वह सब विस्तार से बताइये ॥१-३॥

सनातन बोले—नारद ! सुनो, मैं सकलसिद्धिदायक तिथियों का व्रत पृथक्-पृथक् क्रमशः बतलाऊँगा । बलि के राज्यकाल में चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन में सूर्योदय होने के उपरान्त ब्रह्मा ने जगत् की सृष्टि

वत्सरादौ वसंतादौ बलिराज्ये तथैव च । पूर्वविद्धैव कर्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः ॥६॥
तत्र कार्या महाशांतिः सर्वकल्मषनाशिनी । सर्वोत्पातप्रशमनी कलिदुष्कृतहारिणी ॥७॥
आयुःप्रदा पुष्टिकरी धनसौभाग्यवर्द्धिनी । मंगल्या च पवित्रा च लोकद्वयसुखावहा ॥८॥
तस्यामादौ तु संपूज्यो ब्रह्मा वह्निवपुर्धरः । पाद्यार्घ्यपुष्पधूपैश्च वस्त्रालंकारभोजनैः ॥९॥
होमैर्बल्युपहारैश्च तथा ब्राह्मणतर्पणैः । ततः क्रमेण देवेभ्यः पूजा कार्या पृथक्पृथक् ॥१०॥
कृत्वोंकार नमस्कारं कुशोदकतिलाक्षतैः । सवस्त्रं सहिरण्यं च ततो दद्याद्द्विजातये ॥११॥
दक्षिणां वेदविदुषे व्रतसंपूर्तिहेतवे । एवं पूजाविशेषेण व्रतं स्यात्सौरिसंज्ञकम् ॥१२॥
आरोग्यदं नृणां विप्र तस्मिन्नेव दिने मुने । विद्याव्रतमपि प्रोक्तमस्यामेव तिथौ मुने ॥१३॥
तिलकं नाम च प्रोक्तं कृष्णेनाजातशत्रवे । अथ ज्येष्ठे सिते पक्षे पक्षत्यां दिवसोदये ॥१४॥
देवोद्यानभवं हृद्यं करवीरं समर्चयेत् । रक्ततन्तुपरीधानं गंधधूपविलेपनैः ॥१५॥
प्रसूनसप्तधान्यैश्च नारंगैर्बीजपूरकैः । अभ्युक्ष्याक्षततोयेन मंत्रेणेत्थं क्षमापयेत् ॥१६॥
करवीर वृषावास नमस्ते भानुवल्लभ । दंभोलिमृडदुर्गादिदेवानां सततं प्रिय ॥१७॥
आकृष्णेनेति वेदोक्तमंत्रेणेत्थं क्षमापयेत् । एवं भक्त्या समभ्यर्च्य दत्वा विप्राय दक्षिणाम् ॥१८॥
प्रदक्षिणं ततः कुर्यात्पश्चात्स्वभवनं व्रजेत् । नभःशुक्ले प्रतिपदि लक्ष्मीबुद्धिप्रदायकम् ॥१९॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां निदानं परमं व्रतम् । सोमवारं समारभ्य सार्धमासत्रयं द्विज ॥२०॥

की, जो वर्ष एवम् वसन्त ऋतु का प्रारंभिक समय माना जाता है। (अतः उस दिन व्रत रखना चाहिये) परन्तु विद्वान् व्यक्ति सदा पूर्वविद्धा ही प्रतिपदा किया करे। उस तिथि को महाशान्ति करनी चाहिये। वह समस्त पापों का नाश करने वाली, अखिल उपद्रवों को शान्त करने वाली, कलि के दुष्कृत का हरण करने वाली, आयु देने वाली, पुष्टिकरी, धनसौभाग्यवर्धिनी, मंगलमयी, पवित्र तथा उभय लोक में सुख देने वाली है ॥४-८॥

इस तिथि में पहले अग्निदेहधारी ब्रह्मा का पाद्य, अर्घ्य, पुष्प, धूप, वस्त्र, अलंकार, भोजन, होम, बलि, उपहार तथा ब्राह्मण भोजन द्वारा पूजन करे। अनन्तर क्रमशः देवताओं की पृथक्-पृथक् पूजा करे। फिर ओंकार को नमस्कार कर तिल, जल, अक्षत तथा कुश लेकर वस्त्र एवम् सुवर्ण द्विजाति को प्रदान करे। व्रत की पूर्णता के लिए वेदवेत्ता विप्र को दक्षिणा दे। इस प्रकार पूजाविशेष से युक्त व्रत 'सौरि' कहलाता है। विप्र! उसी दिन विद्याव्रत भी करना चाहिये जो आरोग्य प्रदान करता है मुने! उसी तिथि में कृष्ण ने तो अजातशत्रु से तिलकव्रत भी करने को कहा है ॥९-१३½॥

ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा तिथि में सूर्योदय होने पर देवोद्यान के किसी सुन्दर करवीर पुष्प के वृक्ष की अर्चना करे। उसमें लाल डोरे लपेट कर गन्ध, धूप, चन्दन, प्रियंगु, सप्तधान्य, नारंग तथा बीजपूर से पूजन करे। अनन्तर स्वच्छ जल से सिक्त कर मन्त्रपूर्वक इस प्रकार क्षमा प्रार्थना करे—"करवीर! वृषावास! भानुवल्लभ! आपको नमस्कार है। आप इन्द्र, शंकर, दुर्गा आदि देवों के सदा प्रिय हैं॥१४-१७॥

पुनः आकृष्णेन इस वेदोक्त मन्त्र से पूजासमाप्ति करते हुए भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को दक्षिणा दे। पश्चात् प्रदक्षिणा करके अपने घर को लौटे। द्विज! श्रावण-शुक्ल की प्रतिपदा में लक्ष्मी, बुद्धि, धर्म, अर्थ, काम एवम् मोक्ष को देने वाला महाव्रत करना चाहिये। सोमवार से लेकर साढ़े तीन मास तक यह व्रत किया जाता है। कार्तिक-कृष्ण-चतुर्दशी को उपवास कर व्रतनिष्ठ व्यक्ति पूर्णिमा में शिव की अर्चना करे और धनवृद्धि के लिये

कार्तिकासितभूतायामुपोष्य व्रततत्परः । पूर्णायां शिवमभ्यर्च्य सुवर्णं वंशसंयुतम् ॥२१॥
वायनं सुमहत्पुण्यं देवताप्रीतिवर्धकम् । दद्याद्विप्राय संकल्प्य धनवृद्ध्यै मुनीश्वर ॥२२॥
भाद्रशुक्लप्रतिपदि व्रतं नाम्ना महत्तमम् । व्रतं मौनाह्वयं केचित्प्राहुरत्र शिवोऽर्च्यते ॥२३॥
नैवेद्यं तु पचेन्मौनी षोडशत्रिगुणानि च । फलानि पिष्टपक्वानि दद्याद्विप्राय षोडश ॥२४॥
देवाय षोडशान्यानि भुज्यंते षोडशात्मना । सौवर्णं शिवमभ्यर्च्य कुम्भोपरि विधानवित् ॥२५॥
तत्सर्वं धेनुसहितमाचार्याय प्रदापयेत् । इदं कृत्वा व्रतं विप्र देवदेवस्य शूलिनः ॥२६॥
चतुर्दशाब्दं देहांते भुक्तभोगः शिवं व्रजेत् । आश्विने सितपक्षस्यां कृत्वाशोकव्रतं नरः ॥२७॥
अशोको जायते विप्र धनधान्यसमन्वितः । अशोकपूजनं तत्र कार्यं नियमतत्परैः ॥२८॥
व्रतांते द्वादशे वर्षे मूर्तिं चाशोकशाखिनः । समर्प्य गुरवे भक्त्या शिवलोके महीयते ॥२९॥
अस्यामेव प्रतिपदि नवरात्रं समारभेत् । पूर्वाह्णे पूजयेद्देवीं घटस्थापनपूर्वकम् ॥३०॥
अंकुरारोपणं कृत्वा यवैर्गोधूममिश्रितैः । ततः प्रतिदिनं कुर्यादेकभुक्तमयाचितम् ॥३१॥
उपवासं यथाशक्ति पूजापाठजपादिकम् । मार्कंडेयपुराणोक्तं चरितत्रितयं द्विज ॥३२॥
पठनीयं नवदिनं भुक्तिमुक्ती अभीप्सता । कुमारीपूजनं तत्र प्रशस्तं भोजनादिभिः ॥३३॥
इत्थं कृत्वा व्रतं विप्र सर्वसिद्ध्यालयो नरः । जायते भुवि दुर्गायाः प्रसादान्नात्र संशयः ॥३४॥
अथोर्जसितपक्षस्यां नवरात्रोदितं चरेत् । विशेषादन्नकूटाख्यं विष्णुप्रीतिविवर्धनम् ॥३५॥
अथोर्जसितपक्षस्यां ... गोवर्द्धनसमर्चने ॥३६॥
सर्वपाकैः सर्वदोहैः सर्वैः सर्वार्थसिद्धये । कर्तव्यमन्नकूटं तु

वंशयुक्त सुवर्ण तथा देवप्रीतिवर्धक वाहन विप्र को संकल्प करके दे दे। भाद्र-शुक्ल-प्रतिपदा को महत्तम नामक व्रत करना चाहिये। किन्हीं का कहना है कि यह व्रत मौनसंज्ञक है और कोई कहते हैं कि नहीं यह शिवसंज्ञक है ॥१८-२३॥ व्रती नैवेद्य के लिए पुआ-पकवान आदि पकाये, सोलह पकवान विप्र को और सोलह देवता को समर्पित करके घड़े के ऊपर सुवर्ण निर्मित शंकर की प्रतिमा का पूजन करे और धेनु सहित वह प्रतिमा आचार्य को अर्पित कर दे। विप्र! चौदह वर्षों तक जो व्यक्ति पशुपति का यह व्रत करता है, वह सकल भोगों को भोग कर शिवसायुज्य मोक्ष को प्राप्त करता है। द्विज! आश्विन-शुक्लपक्ष की प्रतिपदा में जो नर अशोकव्रत करता है, वह वीतशोक तथा धनधान्य सम्पन्न हो जाता है। उस दिन नियम-निष्ठा से अशोक पूजन करना चाहिये। बारह वर्षों तक व्रत कर लेनेके उपरान्त अशोकवृक्ष की प्रतिमा भक्तिपूर्वक गुरु को समर्पित करे। ऐसा करने वाला व्यक्ति शिवलोक में पूजित होता है। उक्त प्रतिपदा से नवरात्र-पूजन को आरम्भ करना चाहिये। पूर्वाह्न में घटस्थापन पूर्वक देवी की पूजा करे ॥२४-३०॥

(घट के समीप मिट्टी के ऊपर) गेहूँ मिले जवा बोकर प्रतिदिन बिना मांगे मिला अन्न एक बार भोजन करे। यथाशक्ति उपवास, पूजा, पाठ आदि भी किया करे। भुक्ति-मुक्ति के इच्छुक जन उन नवों दिन मार्कंडेय पुराण में कहे गये तीनों चरित्रों (दुर्गासप्तशती) का पाठ करे। उन दिनों भोजन आदि से कुमारियों का सम्मान करना भी प्रशस्त माना गया है। विप्र! जो मानव इस प्रकार व्रत करता है, वह दुर्गा की कृपा से पृथ्वी पर संपूर्ण ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं ॥३१-३४॥

एतदुपरान्त कार्तिक-शुक्ल-प्रतिपदा के व्रत को सुनो। उस दिन विष्णु की प्रीति को बढ़ाने वाले अन्नकूट नामक व्रत को करना चाहिए। समस्त अभिलाषाओं की सिद्धि के लिये सब प्राणी पुआ, पकवान, दूध, दही आदि

सायं गोभिः सह श्रीमद्गोवर्द्धनधराधरम् । समर्च्य दक्षिणीकृत्य भुक्तिमुक्ती समाप्नुयात् ॥३७॥
अथ मार्गसिताद्यायां धनव्रतमनुत्तमम् । नक्तं विष्ण्वर्चनं होमैः सौवर्णीं हुतभुक्तनुम् ॥३८॥
रक्तवस्त्रयुगाच्छन्नां द्विजाय प्रतिपादयेत् । एवं कृत्वा धनैर्धान्यैः समृद्धो जायते भुवि ॥३९॥
वह्निना दग्धपापस्तु विष्णुलोके महीयते । पौषशुक्लप्रतिपदि भानुमभ्यर्च्य भक्तितः ॥४०॥
एकभक्तव्रतो मर्त्यो भानुलोकमवाप्नुयात् । माघशुक्लाद्यदिवसे वह्निं साक्षान्महेश्वरम् ॥४१॥
समभ्यर्च्य विधानेन समृद्धो जायते भुवि । अथ फाल्गुनशुक्लादौ देवदेवं दिगंबरम् ॥४२॥
धूलिधूसरसर्वांगं जलैरुक्षेत्समंततः । कर्मणा लौकिकेनापि संतुष्टो हि महेश्वरः ॥४३॥
स्वसायुज्यं प्रदिशति भक्त्या सम्यक्समर्चितः । वैशाखे तु सिताद्यायां विष्णुं विश्वविहारिणम् ॥४४॥
समभ्यर्च्य विधानेन विप्रान्संभोजयेद्व्रती । शुचिसिताद्यायां च ब्रह्माणं जगतां गुरुम् ॥४५॥
विष्णुना सहितो ब्रह्मा सर्वलोकेश्वरेश्वराः । स्वसायुज्यं प्रदिशति सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥४६॥
आसु द्वादशमासानां प्रतिपत्सु द्विजोत्तम । व्रतानि तुभ्यं प्रोक्तानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि च ॥४७॥
व्रतेष्वेतेषु सर्वेषु ब्रह्मचर्यं विधीयते । भोजने तु भविष्यान्नं सामान्यत उदाहृतम् ॥४८॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासप्रतिपद्व्रत-
निरूपणं नाम दशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥११०॥

से अन्नकूट व्रत की आराधना करें। सायंकाल गौओं समेत श्रीमान् गोवर्धन पर्वत की अर्चना कर प्रदक्षिणा करे। ऐसा करने से भोग-मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥३५-३७॥

अगहन की प्रतिपदा में सर्वोत्तम धनव्रत करना चाहिये। रात्रि में विष्णु-पूजा तथा हवन करके अग्नि की सुवर्णमयी प्रतिमा को एक जोड़े रक्त वस्त्र से ढक कर ब्राह्मण को दे दे। ऐसा करने से मनुष्य धनधान्य सम्पन्न हो जाता है और अग्नि से पाप को दग्ध करके (अर्थात् परिशुद्ध होकर) विष्णुलोक में पूजित होता है। पौष-शुक्ल-प्रतिपदा में भक्तिपूर्वक भानु की अर्चना करने से मनुष्य आदित्य लोक को प्राप्त करता है। माघ-शुक्ल-प्रतिपदा में साक्षात् महेश्वर रूप वह्नि की विधिपूर्वक पूजा करने से मानव भूमि पर सर्वसंपन्न हो जाता है ॥३८-४१½॥

फाल्गुन-शुक्ल-प्रतिपदा में धूलि से धूसरित सर्वांग शरीर वाले दिगम्बर देव (शिव) को जल चढ़ाने से महेश्वर संतुष्ट हो जाते हैं और भक्तिपूर्वक सम्यक् प्रकार से पूजित होने पर वे अपने (सायुज्य मोक्ष) को देते हैं। वैशाख-शुक्ल-प्रतिपदा में विधिपूर्वक विश्वविहारी विष्णु को अर्चना कर व्रती ब्राह्मण-भोजन कराये, आषाढ़-शुक्ल प्रतिपदा में विष्णु सहित अखिल लोकेश्वर तथा जगद्गुरु ब्रह्मा का पूजन करने से वे अपने सायुज्यमोक्ष एवम् सकल सिद्धियों को देते हैं। द्विजश्रेष्ठ! बारहों मासों की प्रतिपदा तिथि में जितने भुक्ति-मुक्ति-दायक व्रत होते हैं, वे सब तुमसे बता दिये। किन्तु ध्यान रखना चाहिये कि इन व्रतों के दिन ब्रह्मचर्यपालन एवम् हविष्यान्न भोजन परमावश्यक हैं ॥४२-४८॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में द्वादशमासप्रतिपदाव्रत निरूपण नामक एक सौ दसवां अध्याय समाप्त ॥११०॥

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

सनातन उवाच

श्रृणु विप्र प्रवक्ष्यामि द्वितीयायां व्रतानि ते । यानि कृत्वा नरो भक्त्या ब्रह्मलोके महीयते ॥१॥
चैत्रशुक्लद्वितीयायां ब्रह्माणं च सशक्तिकम् । हविष्यान्नेन गन्धाद्यैः स्तोष्य सर्वक्रतूद्भवम् ॥२॥
फलं लब्ध्वाखिलान्कामानंते ब्रह्मपदं लभेत् । अस्मिन्नेव दिने विप्र बालेंदुमुदितं परे ॥३॥
समभ्यर्च्य निशारंभे भुक्तिमुक्तिफलं भवेत् । अथ वास्मिन्दिने भक्त्या दस्रावभ्यर्च्य यत्नतः ॥४॥
सुवर्णरजते नेत्रे प्रदद्याच्च द्विजातये । पूर्णपात्रव्रते ह्यस्मिन्दध्ना वापि घृतेन च ॥५॥
नेत्रव्रते द्वादश वत्सरान्वै कृत्वा भवेद्भूमिपतिर्द्विजेंद्र ।
सुरूपरूपोऽरिगणप्रतापी धर्माभिरामो नृपवर्गमुख्यः ॥६॥
राधशुक्लद्वितीयायां ब्रह्माणं विष्णुरूपिणम् । समर्च्य सप्तधान्याढ्यकुम्भोपरि विधानतः ॥७॥
विष्णुलोकमवाप्नोति भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् । ज्येष्ठशुक्लद्वितीयायां भास्करं भुवनाधिपम् ॥८॥
चतुर्वक्त्रस्वरूपं च समभ्यर्च्य विधानतः । भोजयित्वा द्विजान् भक्त्या भास्करं लोकमाप्नुयात् ॥९॥
आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुष्यसंयुता । तस्यां रथं समारोप्य रामं सह सुभद्रया ॥१०॥
द्विजादिभिर्व्रती सार्धं परिक्रम्य पुरादिकम् । जलाशयांतिकं गत्वा कारयेच्च महोत्सवम् ॥११॥

अध्याय १११

बारह मासों का द्वितीयाव्रत

सनातन बोले—विप्र ! सुनो, अब मैं द्वितीया तिथि के व्रतों को बतला रहा हूँ । जिनके अनुष्ठान से मानव ब्रह्मलोक में पूजित होता है । चैत्र-शुक्ल-द्वितीया में शक्ति सहित ब्रह्मा को हविष्यान्न तथा गन्ध आदि से संतुष्ट करने से मनुष्य समस्त यज्ञों के फल को प्राप्त कर अखिल भोगों को भोगते हुए ब्रह्मपद को प्राप्त करता है ॥१-२½॥ विप्र ! उसी दिन निशारम्भ में उदित बालचन्द्र की अर्चना करने से भुक्ति-मुक्ति मिलती है । अथवा उस दिन यत्नपूर्वक अश्विनीकुमार की अर्चना कर सुवर्ण और चांदी की दो नेत्र-प्रतिमा द्विजाति को समर्पित करे । द्विजश्रेष्ठ ! इस व्रत को पूर्णपात्रव्रत तथा नेत्रव्रत कहा जाता है । इसमें ब्राह्मण को दही या घृत से संतुष्ट करना पड़ता है । बारह वर्षों तक इसके करने से मनुष्य अत्यन्त रूपवान् धर्मात्मा तथा नृपशिरोमणि होता है । वैशाख-शुक्ल-द्वितीया में सप्तधान्य युक्त घट के ऊपर विधिपूर्वक विष्णु रूपी ब्रह्मा की पूजा करने वाला मनुष्य मनोरम भोगों को भोग कर विष्णुलोक को जाता है ॥३-७½॥

ज्येष्ठ शुक्ल-द्वितीया में चतुर्मुख के समान स्वरूप वाले भुवनाधिप भास्कर की विधिपूर्वक पूजा कर भक्ति से द्विजों को भोजन कराने वाला व्यक्ति सूर्यलोक को जाता है । आषाढ़-शुक्ल-पक्ष की द्वितीया में रथ पर सुभद्रा सहित राम को चढ़ाकर ब्राह्मण आदि के साथ व्रती नगर की परिक्रमा करते हुए जलाशय के समीप जाकर खूब धूम-धाम से उत्सव मनाये । अनन्तर देवालय में जाकर व्रत की पूर्ति के लिये ब्राह्मणों को भोजन कराये । श्रावण-

तदन्ते देवभवने निवेश्य च यथाविधि । ब्राह्मणान्भोजयेच्चैव व्रतस्यास्य प्रपूर्तये ॥१२॥
नभःशुक्लद्वितीयायां विश्वकर्ता प्रजापतिः । स्वपितीति तिथिः पुण्या ह्यशोकशयनाह्वया ॥१३॥
सशक्तिकं तु शय्यास्थं पूजयित्वा चतुर्मुखम् । इममुच्चारयेन्मंत्रं प्रणम्य जगतां पतिम् ॥१४॥
श्रीवत्सधारिञ्छ्रीकांत श्रीवास श्रीपते प्रभो । गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामद ॥१५॥
चंद्रार्द्धदानमत्रोक्तं सर्वसिद्धिविधायकम् । भाद्रशुक्लद्वितीयायां शक्ररूपं जगद्विधिम् ॥१६॥
पूजयित्वा विधानेन सर्वक्रतुफलं लभेत् । आश्विने मासि वै पुण्या द्वितीया शुक्लपक्षगा ॥१७॥
दानं प्रदत्तमेतस्यामनंतफलमुच्यते । ऊर्जशुक्लद्वितीयायां यमो यमुनया पुरा ॥१८॥
भोजितः स्वगृहे तेन द्वितीयैषा यमाह्वया । पुष्टिप्रवर्द्धनं चात्र भगिन्या भोजनं गृहे ॥१९॥
वस्त्रालंकारपूर्वं तु तस्यै देयमतः परम् ॥२०॥
यस्यां तिथौ यमुनया यमराजदेवः, संभोजितो निजकरात्स्वसृसौहृदेन ।
तस्यां स्वसुः करतलादिह यो भुनक्ति, प्राप्नोति रत्नधनधान्यमनुत्तमं सः ॥२१॥
मार्गशुक्लद्वितीयायां श्राद्धेन पितृपूजनम् । आरोग्यं लभते चापि पुत्रपौत्रसमन्वयः ॥२२॥
पौषशुक्लद्वितीयायां गोश्रृंगोदकमार्जनम् । सर्वकामप्रदं नृणामास्ते बालेंदुदर्शनम् ॥२३॥
योऽर्घ्यदानेन बालेंदुं हविष्याशी जितेंद्रियः । पूजयेत्साज्यसुमनैर्धर्मकामार्थसिद्धये ॥२४॥
माघशुक्लद्वितीयायां भानुरूपं प्रजापतिम् । समभ्यर्च्य यथान्यायं पूजयेद्रक्तपुष्पकैः ॥२५॥
रक्तैर्गंधैस्तथा स्वर्णमूर्तिं निर्माय शक्तितः । ततः पूर्णं ताम्रपात्रं गोधूमैर्वापि तण्डुलैः ॥२६॥
समर्प्य देवे भक्त्यैव स मूर्ति प्रददेद्द्विजे । एवं कृते व्रते विप्र साक्षात्सूर्य इवोदितः ॥२७॥

शुक्ल-द्वितीया को विश्वकर्ता प्रजापति शयन करते हैं। अतः वह तिथि पवित्र है, उसका नाम अशोकशयना है। उस दिन शय्यास्थित ब्रह्मा तथा शक्ति की पूजाकर "श्रीवत्सधारिन्................" इस मन्त्र को पढ़ते हुए जगत्पति को प्रणाम करे। यह मन्त्र अर्ध चन्द्र दान करने का है। इससे समस्त सिद्धियों की प्राप्ति होती है ॥८-१५½॥ भाद्र-शुक्ल-द्वितीया को विधिपूर्वक इन्द्ररूप ब्रह्मा का पूजन करने से निखिल यज्ञों का फल प्राप्त होता है। आश्विन-शुक्ल-द्वितीया में दान का अनन्त फल होता है। प्राचीन काल में कार्तिक-शुक्ल-द्वितीया को यमुना ने यम को अपने गृह में भोजन कराया था। इसलिए उस द्वितीया का नाम यम द्वितीया पड़ा। उस तिथि को बहिन के घर में भोजन करने से धन-धान्य बढ़ता है। उस दिन बहिन को वस्त्र तथा आभूषण आदि देने चाहिये ॥१६-२०॥

जिस तिथि में यमुना ने यमराजदेव को भगिनी-वात्सल्य से अपने हाथों भोजन कराया, उस तिथि में जो व्यक्ति बहिन के हाथों से भोजन करता है, उसे उत्तम रत्न तथा धन-धान्य की प्राप्ति होती है। अगहन-शुक्ल-द्वितीया में जो पितृपूजन एवम् श्राद्ध करता है, पुत्र, पौत्र तथा आरोग्य की प्राप्ति होती है। पौष-शुक्ल-द्वितीया में जो नर गाय के सींग से स्पर्श किये जल से स्नान करता है, उसकी समस्त कामनायें पूरी होती हैं। उस दिन सूर्यास्त के उपरान्त जो हविष्य-भोजन तथा इन्द्रिय-संयम करते हुए बालचन्द्र का दर्शन करता है तथा घृत युक्त पुष्पों से पूजन कर अर्घ्य प्रदान करता है, उसे धर्म अर्थ तथा काम की सिद्धि होती है। माघ-शुक्ल-द्वितीया में यथाशक्ति रक्तपुष्पों एवम् रक्त गन्धों से भानुरूप प्रजापति की स्वर्णमूर्ति की पूजा करनी चाहिये ॥२१-२५½॥

अनन्तर एक ताम्रपात्र को चावल या गेहूँ से भर कर भक्तिपूर्वक मूर्ति सहित वह पात्र ब्राह्मण को दे दे। विप्र! ऐसा करने वाला व्यक्ति पृथ्वी पर सूर्य के समान दुर्धर्ष तेजस्वी होता है और सकल भोगों को भोग कर

दुरासदो दुराधर्षो जायते भुवि मानवः । इह कामान्वरान्भुक्त्वा यात्यंते ब्रह्मणः पदम् ॥२८॥
सर्वदेवस्तुताऽभीक्ष्णं विमानवरमास्थितः । अथ फाल्गुनशुक्लायां द्वितीयायां द्विजोत्तमः ॥२९॥
पुष्पैः शिवं समभ्यर्च्य सुश्वेतैश्च सुगंधिभिः । पुष्पैर्वितानकं कृत्वा पुष्पालंकरणैः शुभैः ॥३०॥
नैवेद्यैर्विविधैर्धूपैर्दीपैर्नीराजनादिभिः । प्रसाद्य प्रणमेच्चैव साष्टांगं पतितो भुवि ॥३१॥
एवमभ्यर्च्य देवेशं मर्त्यो व्याधिविवर्जितः । धनधान्यसमायुक्तो जीवेद्वर्षशतं ध्रुवम् ॥३२॥
यद्विधानं द्वितीयासु शुक्लपक्षगतासु वा । प्रोक्तं तदेव कृष्णासु कर्त्तव्यं विधिकोविदैः ॥३३॥
वह्निरेव पृथङ्मासु नानारूपवपुर्द्धरः । पूज्यते हि द्वितीयासु ब्रह्मचर्यादि पूर्ववत् ॥३४॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासद्वितीयाव्रतनिरूपणं नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

सनातन उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि तृतीयाया व्रतानि ते । यानि सम्यग्विधायाशु नारी सौभाग्यमाप्नुयात् ॥१॥
चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीं कृत्वा सभर्तृकाम् । सौवर्णीं राजतीं वापि ताम्रीं वा मृण्मयीं द्विज ॥२॥

अन्त में उत्तम विमान पर चढ़कर ब्रह्मलोक को जाता है, जहाँ देवगण उसकी सतत स्तुति किया करते हैं ॥२१-२८½॥ फाल्गुन-शुक्ल-द्वितीया में सुगंधित श्वेत पुष्पों से शंकर की अर्चना कर पुष्पों के वितान (चन्दवा) तथा अलंकरणों से उन्हें सुसज्जित करे । फिर अनेक प्रकार के नैवेद्य, धूप, दीप, आरती आदि से उन्हें प्रसन्न कर साष्टांग प्रणाम करे । इस प्रकार अर्चना करने वाला मानव रोगों से मुक्त तथा धन-धान्यों से युक्त होकर निःसन्देह सौ वर्ष जीता है । शुक्ल पक्षों की द्वितीयाओं में जिस प्रकार की विधि बताई गई है, उसी विधि से कृष्ण-द्वितीयाओं में भी विधान वेत्ता व्यक्ति पूजन किया करे । पृथक्-पृथक् मासों की द्वितीयाओं में नानारूपधारी अग्नि ही पहिले कहे गये ब्रह्मचर्य आदि नियमों के साथ पूजे जाते हैं ॥२९-३४॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यान युक्त चतुर्थ पाद में बारह मासों की द्वितीयाओं का व्रत निरूपण नामक एक सौ ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥१११॥

अध्याय ११२

बारह मासों का तृतीया व्रत

सनातन बोले—नारद ! सुनो, अब तृतीया तिथि के व्रतों को बतला रहा हूँ जिनके अनुष्ठान से नारी को सौभाग्य शीघ्र प्राप्त हो जाता है । द्विज ! वर को चाहने वाली अथवा सौभाग्य, पुत्र एवम् स्वामी की कामना करने

अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्वस्त्रैराभरणैः शुभैः । दूर्वाकांडैश्च विधिवत्सोपवासा तु कन्यका ॥३॥
वरार्थिनी च सौभाग्यपुत्रभर्त्रर्थिनी तथा । द्विजभार्या भर्तृमतीः कन्यका वा सुलक्षणाः ॥४॥
सिन्दूरांजनवस्त्राद्यैः प्रतोष्य प्रीतमानसा । रात्रौ जागरणं कुर्याद्व्रतसंपूर्तिकाम्यया ॥५॥
ततस्तां प्रतिमां विप्र गुरवे प्रतिपादयेत् । धातुजां मृण्मयीं वा तु निक्षिपेच्च जलाशये ॥६॥
एवं द्वादशवर्षाणि कृत्वा गौरीव्रतं शुभम् । धेनुर्द्वादशसंकल्पं दद्यादुत्सर्गसिद्धये ॥७॥
किमत्र बहुनोक्तेन गौरी सौभाग्यदायिनी । स्त्रीणां यथा तथा नान्या विद्यते भुवनत्रये ॥८॥
धनं पुत्रान्पतिं विद्यामाज्ञासिद्धिं यशः सुखम् । लभते सर्वमेवेष्टं गौरीमभ्यर्च्य भक्तितः ॥९॥
राधशुक्लतृतीया या साक्षया परिकीर्तिता । तिथिस्त्रेतायुगाद्या सा कृतस्याक्षयकारिणी ॥१०॥
द्वे शुक्ले द्वे तथा कृष्णे युगादी कवयो विदुः । शुक्ले पूर्वाह्णिके ग्राह्ये कृष्णे चैव तपस्यथ ॥११॥
द्वापरं हि कलिर्भाद्रे प्रवृत्तानि युगानि वै । तत्र राधतृतीयायां श्री समेतं जगद्गुरुम् ॥१२॥
नारायणं समभ्यर्चेत्पुष्पधूपविलेपनैः । यद्वा गंगांभसि स्नातो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥१३॥
अक्षतैः पूजयेद्विष्णुं स्नायादप्यक्षतैर्नरः । सक्तून्संभोजयेद्विप्रान्स्वयमभ्यवहृत्य तान् ॥१४॥
एवं कृतविधिर्विप्र नरो विष्णुपरायणः । विष्णुलोकमवाप्नोति सर्वदेवनमस्कृतः ॥१५॥
अथ ज्येष्ठतृतीया तु शुक्ला रंभेति नामतः । तस्यां सभार्यं विधिवत्पूजयेद्ब्राह्मणोत्तमम् ॥१६॥
गन्धपुष्पांशुकाद्यैस्तु नारी सौभाग्यकाम्यया । रंभाव्रतमिदं विप्र विधिवत्समुपाश्रितम् ॥१७॥

वाली कन्या चैत्र-शुक्ल-तृतीया में उपवास करती हुई गंध, पुष्प, वस्त्र, आभूषण दूर्वा आदि सामग्रियों से शिव सहित गौरी की सोने या चाँदी या ताँबे या मिट्टी की प्रतिमा की विधिवत् अर्चना कर पतिवती द्विजभार्या या सुलक्षणा कुमारी को सिंदूर, अंजन, वस्त्र आदि से संतुष्ट करे और व्रत की पूर्णता के लिए रात्रि में जागरण करे। तदनन्तर वह प्रतिमा गुरु को समर्पित कर दे। यदि धातु या मृत्तिका की बनी प्रतिमा हो तो जलाशय में प्रवाहित कर दे ॥१-६॥ इस प्रकार बारह वर्षों तक पवित्र गौरी व्रत को सम्पन्न करके दानसिद्धि के लिए बारह धेनुओं का उत्सर्ग करना चाहिए इस व्रत के संबन्ध में बहुत कुछ क्या कहूँ तीनों लोक में स्त्रियों के लिए गौरी जैसी सौभाग्यदायिनी कोई नहीं है। भक्तिपूर्वक गौरी की आराधना करने से धन, पुत्र, पति, विद्या, आज्ञासिद्धि, यश, सुख तथा सकल कामनाओं की प्राप्ति होती है ॥७-९॥ वैशाख शुक्ल की अक्षय तृतीया त्रेतायुग की आदि तिथि कहलाती है। इसमें किये गये दान-पुण्य आदि अक्षय हो जाते हैं। विद्वानों ने दो शुक्ल पक्ष की तथा दो कृष्ण पक्ष की तिथियों को युगादि माना है। शुक्ल तथा कृष्ण दोनों पक्षों में पूर्वाह्णकालिक तृतीया ग्रहण करनी चाहिए। फाल्गुन में द्वापर और भाद्रपद में कलियुग की प्रवृत्ति हुई है। वैशाख की अक्षय तृतीया में लक्ष्मी सहित जगद्गुरु नारायण की पुष्प, धूप चन्दन आदि से पूजा करनी चाहिये। उस दिन गंगास्नान करने से समस्त पातकों का नाश हो जाता है ॥१०-१३॥ मानव अक्षत से विष्णु का पूजन कर स्वयं अक्षतस्नान करे (अर्थात् मस्तक पर अक्षत को रखकर स्नान करे) तदनन्तर ब्राह्मणों को सत्तू खिलाकर स्वयं भी सत्तू खाये। विप्र ! इस प्रकार व्रत अनुष्ठान करने वाला विष्णुपरायण मनुष्य निखिल देवों से वंदनीय होकर विष्णुलोक को जाता है ॥१४-१५॥

ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया का का नाम रंभा है। उस दिन गंध, पुष्प, वस्त्र आदि से भार्या सहित उत्तम ब्राह्मण की विधिपूर्वक पूजा करे। ऐसा करने से नारी को सौभाग्य की प्राप्ति होती है। विप्र ! इस रंभाव्रत के यथाविधि अनुष्ठान करने से वित्त, पुत्र तथा धार्मिक बुद्धि का लाभ होता है ॥१६-१७½॥ सौभाग्य की

ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे शुभावहाम् । अथाषाढतृतीयायां शुक्लायां शुक्लवाससा ॥१८॥
केशवं तु सलक्ष्मीकं सस्त्रीके तु द्विजेऽर्पयेत् । भोजनैः सुरभीदानैर्वस्त्रैश्चापि विभूषणैः ॥१९॥
प्रियैर्वाक्यैश्च संप्रीता नारी सौभाग्यवांछया । समुपास्य व्रतं चैतद्धनधान्यसमन्विता ॥२०॥
देवदेवप्रसादेन विष्णुलोकमवाप्नुयात् । नभःशुक्लतृतीयायां स्वर्णगौरीव्रतं चरेत् ॥२१॥
उपचारैः षोडशभिर्भवानीमभिपूजयेत् । पुत्रान्देहि धनं देहि सौभाग्यं देहि सुव्रते ॥२२॥
अन्यांश्च सर्वकामान्मे देहि देहि नमोऽस्तु ते । एवं संप्रार्थ्य देवेशीं भवानीं भवसंयुताम् ॥२३॥
व्रतसंपूर्तिकामा तु वायनं दापयेत्तथा । एवं षोडशवर्षाणि कृत्वा नारी व्रतं शुभम् ॥२४॥
उद्यापनं चरेद्भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जिता । मंडपे मण्डले शुद्धे गणेशादिसुरार्चनम् ॥२५॥
कृत्वा ताम्रमयं पात्रं कलशोपरि विन्यसेत् । सौवर्णीं प्रतिमां तत्र भवान्याः प्रतिपूजयेत् ॥२६॥
गंधपुष्पादिभिः सम्यक् ततो होमं समाचरेत् । वेणुपात्रैः षोडशभिः पक्वान्नं परिपूरितैः ॥२७॥
समर्प्य देव्यै नैवेद्यं द्विजेभ्यस्तन्निवेदयेत् । वायनं च ततः पश्चाद्द्यात्संबन्धिबन्धुषु ॥२८॥
प्रतिमां गुरवे दत्त्वा द्विजेभ्यो दक्षिणां तथा । पूर्णं लभेत्फलं नारी व्रताचरणतत्परा ॥२९॥
भाद्रशुक्लतृतीयायां व्रतं वै हारितालकम् । कुर्याद्भक्त्या विधानेन पाद्यार्घ्यार्चनपूर्वकम् ॥३०॥
ततस्तु कांचने पात्रे राजते चापि ताम्रके । वैणवे मृण्मये वापि विन्यस्यान्नं सदक्षिणम् ॥३१॥
सफलं च सवस्त्रं च द्विजाय प्रतिपादयेत् । तदंते पारणं कुर्यादिष्टबन्धुजनैः सह ॥३२॥
एवं कृतव्रता नारी भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् । व्रतस्यास्य प्रभावेण गौरीसहचरी भवेत् ॥३३॥
सौभाग्यद्रव्यवस्त्राणि वंशपात्राणि षोडश । दातव्यानि प्रयत्नेन ब्राह्मणेभ्यो यथाविधि ॥३४॥

कामना करने वाली महिला-आषाढ़-शुक्ल-तृतीया के दिन श्वेत वस्त्र पहनकर लक्ष्मी सहित केशव की प्रतिमा ब्राह्मण को समर्पित करती हुई उन्हें भोजन, गोदान, वस्त्र, आभूषण तथा प्रिय वचनों से संतुष्ट करे। इस व्रत का आचरण करने वाला व्यक्ति धनधान्य से संपन्न होकर भगवान की कृपा से वैकुण्ठ को जाता है। श्रावण शुक्ल तृतीया को स्वर्णगौरीव्रत का अनुष्ठान करना चाहिए ॥१८-२१॥ गौरी को षोडशोपचार पूजा कर उनसे प्रार्थना करे—'सुव्रते! पुत्र, धन, सौभाग्य तथा अन्य समस्त फल मुझे दीजिये। देवि! आपको नमस्कार है। इस प्रकार शंकर सहित भवानी देवी को प्रार्थना कर व्रत-पूर्ति के लिये इष्ट-मित्रों को वायन (या नैवेद्य) दे। सोलह वर्षों तक इस व्रत के संपादन करने के उपरान्त भक्ति से इसका उद्यापन करना चाहिये। किन्तु उसमें धन रहते कृपणता न करे ॥२२-२४½॥ मंडप के शुद्ध प्रदेश में गणेश आदि की पूजा कर कलश के ऊपर तांबे के पात्र को रखकर उस पर गंध, पुष्प आदि से गौरी की सुवर्णमयी प्रतिमा की पूजा करे। पश्चात् हवन करके पकवानों से भरी हुई सोलह डालियां देवी को चढ़ाकर ब्राह्मणों को दे दे ॥२५-२७½॥ फिर भाई-बन्धुओं को वायन देकर गुरु को प्रतिमा तथा द्विजों को दक्षिणा दे। इस प्रकार व्रतानुष्ठान करने वाली नारी पूर्ण फल को प्राप्त करती है। भाद्र-शुक्ल-तृतीया में पाद्य, अर्घ्य एवं पूजन करती हुई वनिता विधिपूर्वक हरितालिका व्रत करे। वह सोने, चांदी या तांबे या बांस या मिट्टी के पात्र में अन्न, फल, वस्त्र तथा दक्षिणा रखकर ब्राह्मण को दे और अन्त में इष्ट-बन्धुओं के साथ स्वयं पारणा करे ॥२८-३२॥ इस तरह व्रत करने वाली नारी मनोरम भोगों को भोगकर व्रत के प्रभाव से गौरी की सहचरी होती है। उस दिन सौभाग्य द्रव्य, वस्त्र तथा सोलह वंश-पात्र ब्राह्मणों को देना चाहिये। देवी की प्रीति के लिए

अन्येभ्यो विप्रवर्येभ्यो दक्षिणां च प्रयत्नतः। भूयसीं च ततो दद्याद्विप्रेभ्यो देवितुष्टये ॥३५॥
एवं या कुरुते नारी व्रतं सौभाग्यवर्द्धनम्। सा तु देवीप्रसादेन सौभाग्यं लभते ध्रुवम् ॥३६॥
यदा तृतीया भाद्रे तु हस्तर्क्षसहिता भवेत्। हस्तगौरीव्रतं नाम तदुद्दिष्टं हि शौरिणा ॥३७॥
तथा कोटीश्वरी नाम व्रतं प्रोक्तं पिनाकिना। लक्षेश्वरो चैव तथा तद्विधानमुदीर्यते ॥३८॥
अस्यां व्रतं तु संग्राह्यं यावद्वर्षचतुष्टयम्। उपवासेन कर्तव्यं वर्षे वर्षे तु नारद ॥३९॥
अखंडानां तंडुलानां तिलानां वा मुनीश्वर। लक्षमेकं विशोध्याथ क्षिपेत्पयसि संसृते ॥४०॥
तत्पक्वेन तु निर्माय देव्या मूर्ति सुशोभनाम्। प्रकरे गंधपुष्पाणां पुष्पमालादिभूषिताम् ॥४१॥
संस्थाप्य पार्वतीं तत्र पूजयेद्भक्तिभावितः। गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यविस्तरैः ॥४२॥
विविधैश्च फलैर्विप्र नमस्कृत्य क्षमापयेत्। ततो विसर्जयेद्देवीं जलमध्येऽथ दक्षिणाम् ॥४३॥
दत्त्वा विधिज्ञविप्रेभ्यो भुञ्जीयाच्च परे दिने। इति ते कथितं विप्र कोटिलक्षेश्वरीव्रतम् ॥४४॥
गौरीलोकं प्रयात्यंते व्रतस्यास्य प्रभावतः। इषशुक्लतृतीयायां बृहद्गौरीव्रतं चरेत् ॥४५॥
पंचवर्षं विधानेन पूर्वोक्तेनैव नारद। आचार्यं पूजयेदंते विप्रानन्यान्धनादिभिः ॥४६॥
सुवासिनीः पंच पूज्या वस्त्रालंकारचन्दनैः। कंचुकैश्चैव ताटंकैः कण्ठसूत्रैर्हरिप्रियाः ॥४७॥
वंशपात्राणि पंचैव सूत्रैः संवेष्टितानि च। सिंदूरं जीरकं चैव सौभाग्यद्रव्यसंयुतम् ॥४८॥
गोधूमपृष्टजातं च नवापूपं फलादिकम्। वायनानि च पंचैव ताभ्यो दद्याच्च भोजयेत् ॥४९॥
अर्घं दत्त्वा वायनानि पश्चाद्भुंजीत वाग्यता। तत्फलं धारयेत्कण्ठे सर्वकामसमृद्धये ॥५०॥
ततः प्रातः समुत्थाय सालंकारा सखीजनैः। गीतवाद्ययुता नद्यां गौरीं तां तु विसर्जयेत् ॥५१॥

अन्य उत्तम विप्रों को दक्षिणा तथा भूयसी दक्षिणा भी दे। जो नारी इस सौभाग्यवर्धक व्रत को करती है। उसे देवी की कृपा से निःसंदेह सौभाग्य लाभ होता है ॥३३-३६॥ जब भाद्रपद की तृतीया हस्त नक्षत्र से संयुक्त होती है, तब वह व्रत हस्त गौरी व्रत कहलाता है—ऐसा कृष्ण ने कहा है। शंकर कहते हैं कि उस दिन कोटीश्वरी व्रत तथा लक्षेश्वरी व्रत भी होता है। उसका विधान सुनो ॥३७-३८॥ वह व्रत चार वर्षों तक करना पड़ता है। परन्तु प्रत्येक वर्ष वह उपवास पूर्वक ही करना चाहिए। मुनीश्वर! एक लाख अखंड चावल या तिल को परिशुद्ध करके गरम दूध में डालें पुनः उस पाक से देवी की सुन्दर मूर्ति बनाकर उसे गंध पुष्प माला आदि से विभूषित करे। अनन्तर उस मूर्ति में पार्वती की प्राणप्रतिष्ठा करके भक्ति पूर्वक गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा विविध फलों से पूजन करे। फिर नमस्कार तथा क्षमाप्रार्थना कर जलमध्य में देवी का विसर्जन करे और दूसरे दिन विधिवेत्ता विप्रों को दक्षिणा देकर स्वयं भोजन करे। द्विज! यह कोटिलक्षेश्वरीव्रत तुमसे बतला दिया ॥३९-४४॥ इसके प्रभाव से नारी गौरीलोक को जाती है। आश्विन-शुक्ल-तृतीया में बृहद्गौरीव्रत करना चाहिए। पाँच वर्षों तक पूर्वोक्त विधान से ही वह व्रत किया जाना चाहिए। इसमें आचार्य का पूजन कर धन आदि से अन्य विप्रों को भी संतुष्ट करना चाहिए। पाँच सीमंतिनियों को वस्त्र, अलंकार; चंदन, कंचुकी, बाली तथा हार से संतुष्ट कर उन्हें पाँच सूत्रवेष्टित वंशपात्र, सिंदूर, जीरा, सौभाग्य की चीजें, गेहूँ के आटे का पूआ और पाँच वस्तुओं का वायन देकर भोजन कराने के पश्चात् अर्घ्य प्रदान करके वाक्संयमपूर्वक स्वयं भोजन करे और सकल कामनाओं की सिद्धि के लिए कंठ में उसका फल धारण करे ॥४५-५०॥ प्रातः काल उठकर शरीर को अलंकृत करके सखियों के साथ गाना-बजाना करते हुए गौरी का विसर्जन करते हुए कहे "भद्रे! मैंने यथाशक्ति

आहूतासि मया भद्रे पूजिता च यथाविधि । मम सौभाग्यदानाय यथेष्टं गम्यतां त्वया ॥५२॥
एवं कृत्वा व्रतं भक्त्या द्विज देवीप्रसादतः । भुक्त्वा भोगांस्तु देहांते गौरीलोकमवाप्नुयात् ॥५३॥
ऊर्जे शुक्लतृतीयायां विष्णुगौरीव्रतं चरेत् । पूजयित्वा जगद्वन्द्यामुपचारैः पृथग्विधैः ॥५४॥
सुवासिनीं भोजयित्वा मङ्गलद्रव्यपूजिताम् । विसर्जयेत्प्रणम्यैनां विष्णुगौरीप्रतुष्टये ॥५५॥
मार्गशुक्लतृतीयायां हरगौरीव्रतं शुभम् । कृत्वा पूर्वविधानेन पूजयेज्जगदंबिकाम् ॥५६॥
एतद्व्रतप्रभावेण भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् । देवीलोकं समासाद्य मोदते च तया सह ॥५७॥
पौषशुक्लतृतीयायां ब्रह्मगौरीव्रतं चरेत् । पूर्वोक्तेन विधानेन पूजितापि द्विजोत्तम ॥५८॥
ब्रह्मगौरीप्रसादेन मोदते तत्र संगता । माघशुक्लतृतीयायां पूज्या सौभाग्यसुन्दरी ॥५९॥
पूर्वोक्तेन विधानेन नालिकेराघ्यदानतः । प्रसन्ना दिशति स्वीयं लोकं तु व्रततोषिता ॥६०॥
फाल्गुनस्य सिते पक्षे तृतीया कुलसौख्यदा । पूजिता गन्धपुष्पाद्यैः सर्वमङ्गलदा भवेत् ॥६१॥
सर्वासु च तृतीयासु विधिः साधारणो मुने । देवीपूजा विप्रपूजा दानं होमं विसर्जनम् ॥६२॥
इत्येवं कथितानीह तृतीयायां व्रतानि ते । भक्त्या कृतानि चेष्टांस्तु कामान्दद्युर्मनोगतान् ॥६३॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासतृतीया-
व्रतकथनम् नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२॥

आपका आवाहन एवमं पूजन किया । अब आप मुझे सौभाग्य प्रदान कर अपनी इच्छा से जाइये ।" द्विज! इस प्रकार भक्तिपूर्वक व्रत करने वाली महिला देवी की कृपा से निखिल भोगों को भोग कर अन्त में गौरीलोक को जाती है । कार्तिक-शुक्ल-तृतीया में विष्णुगौरीव्रत करना चाहिए ॥५१-५३½॥ उस दिन पृथक्-पृथक् उपचारों से जगत् वंदनीया देवी की अर्चना कर किसी सौभाग्यवती वनिता को भोजन करायें । अनन्तर विष्णु तथा गौरी की प्रसन्नता के लिए उस नारी को मांगलिक द्रव्य प्रदान कर प्रणामपूर्वक विदा करे । अगहन-शुक्ल-तृतीया में पवित्र हर गौरीव्रत करना चाहिए । उस दिन पूर्वोक्त रीति से जगदम्बिका की पूजा की जाती है ॥५४-५६॥ उस व्रत का अनुष्ठान करने वाली महिला मनोरम भोगों को भोग कर अन्त में देवीलोक को जाती है और वहाँ देवी के साथ ही क्रीड़ा करती है । द्विजश्रेष्ठ ! पौष-शुक्ल-तृतीया में पूर्वोक्त विधान से ही ब्रह्मगौरीव्रत करना चाहिए उस व्रत के प्रभाव से नारी देवी के सामीप्यमोक्ष को प्राप्त करती है ॥५७-५८½॥ माघ-शुक्ल-तृतीया में सौभाग्य सुन्दरी देवी की पूजा करनी चाहिए । उस दिन पूर्वोक्त विधि से पूजन कर नारियल का अर्घ्य देने से व्रतसंतुष्टा भगवती अपने लोक में शरण देती है । फाल्गुन-शुक्ल-तृतीया में गन्ध, पुष्प आदि से कुलसौख्यदा देवी की अर्चना करने से सकल कल्याणों की प्राप्ति होती है । मुने ! समस्त तृतीयाओं का विधान एक जैसा है । उन सब में देवी पूजा, विप्रपूजा, दान, होम तथा विसर्जन करना होता है । इस प्रकार समस्त तृतीयाव्रत मैंने तुमसे बतला दिये । इनके भक्तिपूर्वक अनुष्ठान करने से सकल कामनायें पूर्ण होती हैं ॥५९-६३॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थ पाद में बारह मासों की तृतीयाओं का व्रत-निरूपण नामक एक सौ बारहवां अध्याय समाप्त ॥११२॥

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि चतुर्थ्यास्ते व्रतान्यहम् । यानि कृत्वा नरा नार्योऽभीष्टान्कामानवाप्नुयुः ॥१॥
चैत्रमासचतुर्थ्यां तु वासुदेवस्वरूपिणम् । गणपं सम्यगभ्यर्च्य दत्त्वा कांचनदक्षिणाम् ॥२॥
विप्राय विष्णुलोकं तु गच्छेद्देवनमस्कृतः । वैशाखस्य चतुर्थ्यां तु प्राप्य संकर्षणाह्वयम् ॥३॥
गृहस्थद्विजमुख्येभ्यः शंखं दत्त्वा विधानवित् । प्राप्य संकर्षणं लोकं मोदते बहुकल्पकम् ॥४॥
ज्येष्ठमासचतुर्थ्यां तु प्राचर्य प्रद्युम्नरूपिणम् । फलं मूलं च भूयेभ्यो दत्त्वा स्वर्गं लभेन्नरः ॥५॥
आषाढस्य चतुर्थ्यां तु संप्रपूज्यानिरुद्धकम् । यतिभ्योऽलाबुपात्राणि दत्त्वाभीष्टं लभेन्नरः ॥६॥
चतुर्मूर्तिव्रतान्येवं कृत्वा द्वादशवत्सरम् । उद्यापनं विधानेन कर्तव्य फलमिच्छता ॥७॥
अन्यज्ज्येष्ठचतुर्थ्यां तु सतीव्रतमनुत्तमम् । कृत्वा गणपतेर्मातुर्लोके मोदेत तत्समम् ॥८॥
तथाऽऽषाढचतुर्थ्यां तु व्रतमन्यच्छुभावहम् । रथंतराह्वकल्पस्य ह्यादिभूतं दिनं यतः ॥९॥
श्रद्धापूतेन मनसा गणेशं विधिना नरः । पूजयित्वा लभेच्चापि फलं देवादिदुर्लभम् ॥१०॥
श्रावणस्य चतुर्थ्यां तु जाते चंद्रोदये मुने । ॥११॥

अध्याय ११३

बारह मासों का चतुर्थी-व्रत

सनातन बोले—विप्र ! सुनो, मैं चतुर्थी तिथि के व्रतों को बतलाता हूँ, जिनके अनुष्ठान से नर-नारियों को अभीष्ट-सिद्धि होती है । चैत्र मास की चतुर्थी में वासुदेव गणपति की अर्चना कर विप्र को सुवर्ण दक्षिणा देने से मनुष्य देववंद्य होकर वैकुण्ठ को जाता है । वैशाख की चतुर्थी में बलराम रूप गणपति की पूजा कर उत्तम गृहस्थ विप्र को शंख प्रदान करने से मानव संकर्षण-लोक में जाकर बहुत कल्पों तक उनके साथ आनन्द करता है ॥१-४॥ ज्येष्ठ मास की चतुर्थी में प्रद्युम्न रूप गणपति की पूजा कर ब्राह्मणों को फल, मूल प्रदान करने से मनुज स्वर्ग को जाता है । जो नर आषाढ़ की चतुर्थी में अनिरुद्ध रूप गणपति की अर्चना कर संन्यासियों को कमण्डलु देता है, उसका अभीष्ट सिद्ध होता है ॥५-६॥ फल के इच्छुक व्यक्ति इसी प्रकार बारह वर्षों तक उपर्युक्त चतुर्मूर्ति व्रत का सविधि संपादन करे । ज्येष्ठ मास की चतुर्थी तिथि में अत्युत्तम सतीव्रत करने वाली नारी गौरीलोक में जाकर उनके साथ आनन्द करती है । आषाढ़ की चतुर्थी तिथि में एक कल्याणकारी व्रत किया जाता है, क्योंकि वह दिन रथंतर कल्प का आदिम दिवस है । उस दिन श्रद्धायुक्त चित्त से विधिपूर्वक गणेश की पूजा करने से देव दुर्लभ फल की प्राप्ति होती है ॥७-१०॥

मुने ! श्रावण की चतुर्थी में चन्द्रोदय होने पर विधानवेत्ता व्यक्ति गणेश को अर्घ्य दे । लम्बे पेट, चार भुजा

गणेशाय प्रदद्याच्च ह्यर्घ्यं विधिविदांवरः । लम्बोदरं चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं रक्तवर्णकम् ॥१२॥
नानारत्नविभूषाढ्यं प्रसन्नास्यं विचिंतयेत् । आवाहनादिभिः सर्वैरुपचारैः समर्चयेत् ॥१३॥
नैवेद्यं मोदकं दद्याद्गणेशप्रीतिदायकम् । एवं व्रतं विधायाथ भुक्त्वा मोदकमेव च ॥१४॥
सुखं स्वप्यान्निशायां तु भूमावेव कृतार्चनः । व्रतस्यास्य प्रभावेण कामान्मनसि चिंतितान् ॥१५॥
लब्ध्वालोके परं चापि गणेशपदमाप्नुयात् । नानेन सदृशं चान्यद्व्रतमस्ति जगत्त्रये ॥१६॥
तस्मात्कार्यं प्रयत्नेन सर्वान्कामानभीप्सता । अथास्मिन्नेव दिवसे दूर्वागणपतिव्रतम् ॥१७॥
केचिदिच्छंति देवर्षे तद्विधानं वदामि ते । हैमं निर्माय गणपं ताम्रपात्रोपरि स्थितम् ॥१८॥
वेष्टितं रक्तवस्त्रेण सर्वतोभद्रमंडले । पूजयेद्रक्तकुसुमैः पत्रिकाभिश्च पंचभिः ॥१९॥
बिल्वपत्रमपामार्गं शमी दूर्वा हरिप्रिया । आभिरन्यैश्च कुसुमैरभ्यर्च्य फलमोदकैः ॥२०॥
उपहारं प्रकल्प्याथ दद्यादर्घं समुद्यते । ततः संप्रार्थ्य विघ्नेशमूर्तिं सोपस्करां मुने ॥२१॥
आचार्याय विधिज्ञाय सत्कृत्य विनिवेदयेत् । कृत्वैवं पंच वर्षाणि समुपास्य यथाविधि ॥२२॥
भुक्त्वेह भोगानखिलान् लोकं गणपतेर्व्रजेत् । अथ भाद्रचतुर्थ्यां तु बहुलाधेनुसंज्ञकम् ॥२३॥
पूजनीयोऽत्र यत्नेन स्रग्गंधग्रासादिभिः । ततः प्रदक्षिणीकृत्य शक्तश्चेद्दानमाचरेत् ॥२४॥
अशक्तः पुनरेतां तु नमस्कृत्य विसर्जयेत् । पंचाब्दं वा दशाब्दं वा षोडशाब्दमथापि वा ॥२५॥
व्रतं कृत्वा समुद्याप्य धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् । प्रभावेण व्रतस्यास्य भुक्त्वा भोगान्मनोरमान् ॥२६॥
सत्कृतो देवतावृन्दैर्गोलोकं समवाप्नुयात् । अथ शुक्लचतुर्थ्यां तु सिद्धवैनायकव्रतम् ॥२७॥

तीन नेत्र तथा रक्त वर्ण वाले, विविध रत्नों से विभूषित और प्रसन्न गणेश का ध्यान कर आवाहन आदि समस्त उपचारों से उनकी अर्चना करे और विघ्नराज के प्रिय लड्डू नैवेद्य में चढ़ाकर स्वयं भी मोदक ही भोजन करे । रात्रि में भूमि पर ही सुख से सोये । ऐसा करने पर व्रत के प्रभाव से मनुष्य को सकल कामनायें पूरी होती हैं । वह इस लोक में समस्त भोगों को भोग कर अन्त में गणेशपद को प्राप्त करता है ॥११-१५½॥ ।

इसके समान दूसरा व्रत तीनों लोक में कोई नहीं है । इसलिये अशेष कामनाओं को चाहने वाला व्यक्ति सब प्रकार से इस व्रत को सम्पन्न करे । देवर्षे ! किन्हो का मत है कि उसी दिन दूर्वागणपतिव्रत भी करना चाहिये । उस व्रत का विधान मुझसे सुनो । गणपति की सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर ताम्रपात्र के ऊपर स्थापित करे ॥१६-१८॥ सर्वतोभद्र मण्डल में ताम्रपात्र पर अवस्थित उस प्रतिमा को रक्त वस्त्र से वेष्टित कर रक्त-कुसुमों तथा पांच वृक्षों के पत्रों से पूजा करे । बिल्वपत्र, अपामार्ग, शमी, दूर्वा तथा कदम्ब के पत्रों से और अन्य फल-पुष्पों से पूजा कर भेंट चढ़ाये । मुने ! पश्चात् अर्घ्य प्रदान करके उपकरण सहित वह विघ्नेश की मूर्ति विधि जानने वाले आचार्य को सम्मान पूर्वक दे दे ॥१९-२१½

इस प्रकार पांच वर्षों तक यथाविधि व्रत करने से मानव अखिल भोगों को भोगकर गणपति लोक को जाता है । भाद्रपद की चतुर्थी में बहुलाधेनुसंज्ञक व्रत करना चाहिये । इस दिन यत्नपूर्वक माला, गन्ध तथा घासों से गायों की पूजा कर उनकी प्रदक्षिणा करे और और यदि सामर्थ्य हो तो दान दे । यदि असमर्थता हो तो गायों को नमस्कार कर व्रत करके उद्यापन में पयस्विनी गौ दान करे ॥२२-२५½॥ इस व्रत के प्रभाव से मनुज संपूर्ण मनोरम भोगों को भोग कर अन्त में देवगणों से सम्मानित होते हुए गोलोक को जाता है । भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी में सिद्धवैनायक व्रत करना चाहिये । आवाहन आदि समस्त उपचारों से पूजन कर एकाग्र मन

आवाहनादिभिः सर्वैरुपचारैः समर्चनम् । एकाग्रमानसो भूत्वा ध्यायेत्सिद्धिविनायकम् ॥२८॥
एकदंतं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं चतुर्भुजम् । पाशांकुशधरं देवं तप्तकांचनसन्निभम् ॥२९॥
एकविंशति पत्राणि चैकविंशतिनामभिः । समर्पयेद्भक्तियुक्तस्तानि नामानि मे शृणु ॥३०॥
सुमुखाय शमीपत्रं गणाधीशाय भृंगजम् । उमापुत्राय बैल्वं तु दूर्वां गजमुखाय च ॥३१॥
लंबोदराय बदरीं धत्तूरं हरसूनवे । शूर्पकर्णाय तुलसीं वक्रतुंडाय शिम्बिजम् ॥३२॥
गुहाग्रजायापामार्गमेकदंताय बार्हतम् । हेरम्बाय तु सिंदूरम् चतुर्होत्रे च पत्रजम् ॥३३॥
सर्वेश्वरायागस्त्यस्य पत्रं प्रीतिविवर्द्धनम् । दूर्वायुग्मं ततो गृह्य गंधपुष्पाक्षतैर्युतम् ॥३४॥
पूजां निवेदयेद्भक्तियुक्तो मोदकपंचकम् । आचमय्य नमस्कृत्य संप्रार्थ्य च विसर्जयेत् ॥३५॥
विनायकस्य प्रतिमां हैमीं सोपस्करं मुने । निवेदयेच्च गुरवे द्विजेभ्यो दक्षिणां ददेत् ॥३६॥
एवं कृतार्चनो भक्त्या पंच वर्षाणि नारद । उपास्य लभते कामानैहिकामुष्मिकान् शुभान् ॥३७॥
अस्यां चतुर्थ्यां शशिनं न पश्येच्च कदाचन । पश्यन् मिथ्याभिशापं तु लभते नात्र संशयः ॥३८॥
अथ तद्दोषनाशाय मन्त्रं पौराणिकं पठेत् । ॥३९॥
"सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जांबवता हतः । सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमंतकः ॥४०॥
इषशुक्लचतुर्थ्यां तु कपर्दीशं विनायकम् । ॥४१॥
पौरुषेण तु सूक्तेन पूजयेदुपचारकैः । अकारणान्मुष्टिगतांस्तं डुलान्सकपर्दिकान् ॥४२॥
विप्राय बटवे दद्याद्गंधपुष्पार्चिताय च । तंडुला वैश्वदेवस्था हरदैवत्यमिश्रिताः ॥४३॥
कपर्दिगणनाथोऽसौ प्रीयतां तैः समर्पितैः । चतुर्थ्यां कार्तिके कृष्णे करकाख्यं व्रतं स्मृतम् ॥४४॥

से सिद्धिविनायक का इस प्रकार ध्यान करे—"उनके एक दांत है, सूप के समान कान हैं, गज का मुख है, चार भुजायें हैं, हाथों में पाश एवम् अंकुश सुशोभित हैं, शरीर की कान्ति तप्त सुवर्ण के सदृश है ॥२८-२९॥"

पश्चात् इक्कीस नामों से इक्कीस पत्र उन्हें भक्तिपूर्वक समर्पित करे। उन नामों को सुन लो। सुमुख को शमीपत्र, गणाधीश को भृंगपत्र, उमापुत्र को बिल्वपत्र, गजमुख को दूर्वा, लम्बोदर को बेर का पत्र हरसूनु को धतूर का पत्र, शूर्पकर्ण को तुलसीपत्र, वक्रतुंड को शिबिपत्र, कार्तिकेयाग्रज को अपामार्ग, एकदन्त को जामुन का पत्र, हेरंब को सिंधुवार का पत्र, चतुर्होता को तेजपात और सर्वेश्वर को अगस्त्यपत्र प्रिय हैं ॥३०-३३½॥ तदुपरान्त दो दूर्वाओं को लेकर गन्ध, पुष्प, अक्षत से गणेश का पूजन कर भक्ति से उन्हें पांच लड्डू चढ़ाये। फिर आचमन कर उन्हें नमस्कार तथा प्रार्थना करके विसर्जित करे। मुने! विनायक की सौवर्णी प्रतिमा उपकरण सहित गुरु को समर्पित कर द्विजों को दक्षिणा दे ॥३४-३६॥ नारद! पांच वर्षों तक भक्तिपूर्वक इस व्रत की आराधना करने से मनुष्य ऐहलौकिक एवम् पारलौकिक समस्त सुखों को प्राप्त करता है ॥३७॥ भाद्र-शुक्ल-चतुर्थी को कभी भी चन्द्र दर्शन नहीं करना चाहिये। वैसा करने से निःसंदेह मिथ्या अभिशाप लगता है। इसलिये उसके दोष को दूर करने के लिये "सिंह...............स्यमंतकः" इस पौराणिक मन्त्र को पढ़ना चाहिये। आश्विन-शुक्ल की चतुर्थी में पुरुष सूक्त से कपर्दीश विनायक की स्तुति कर उनका सोपचार पूजन करे। पश्चात् "तंडुलः........समर्पितैः" यह मन्त्र पढ़कर गन्ध, पुष्प आदि से पूजित विप्रबटु को योंही एक मुट्ठी चावल तथा कौड़ी दे ॥३८-४२½॥

कार्तिक-कृष्ण-चतुर्थी में करके व्रत किया जाता है, स्त्रियों को ही यह व्रत करने का अधिकार है। इसका

स्त्रीणामेवाधिकारोऽत्र तद्विधानमुदीर्यते । पूजयेच्च गणाधीशं स्नाता स्त्री समलंकृता ॥४४॥
तदग्रे पूर्णपक्वान्नं विन्यसेत्करकान्दश । समर्प्य देवदेवाय भक्त्या प्रयतमानसा ॥४५॥
देवो मे प्रीयतामेवमुच्चार्याथ समर्पयेत् । सुवासिनीभ्यो विप्रेभ्यो यथाकामं च सादरम् ॥४६॥
ततश्चंद्रोदये रात्रौ दत्त्वार्घं विधिपूर्वकम् । भुञ्जीत मिष्टमन्नं च व्रतस्य परिपूर्तये ॥४७॥
यद्वा क्षीरेण करकं पूर्णं तोयेन वा मुने । सपूगाक्षतरत्नाढ्यं द्विजाय प्रतिपादयेत् ॥४८॥
एतत्कृत्वा व्रतं नारी षोडशद्वादशाब्दकम् । उद्यापनं विधायाथ व्रतमेतद्विसर्जयेत् ॥४९॥
यावज्जीवं तु वा नार्या कार्यं सौभाग्यवांछया । व्रतेनानेन सदृशं स्त्रीणां सौभाग्यदायकम् ॥५०॥
विद्यते भुवनेऽप्यन्यत्तस्मान्नित्यमिति स्थितिः । ऊर्ज्जशुक्लचतुर्थ्यां तु नागव्रतमुदाहृतम् ॥५१॥
प्रातर्व्रतं तु संकल्प्य धेनुशृंगजलं शुचि । पीत्वास्नात्वाथ मध्याह्ने शंखपालादिपन्नगान् ॥५२॥
शेषं चाह्वानपूर्वंस्तु पूजयेदुपचारकैः । क्षीरेणाप्यायनं कुर्यादेतन्नागव्रतं स्मृतम् ॥५३॥
एवंकृते तु विप्रेंद्र नृभिर्नागव्रते शुभे । विषाणि नश्यंत्यचिरान्न दशंति च पन्नगाः ॥५४॥
मार्गशुक्लचतुर्थ्यां तु वर्षं यावन्मुनीश्वर । क्षपयेदेकभक्तेन नक्तेनाथ द्वितीयकम् ॥५५॥
अयाचितोपवासाभ्यां तृतीयकचतुर्थके । एवं क्रमेण विधिवच्चरेच्चार्यब्दानि मानवः ॥५६॥
समाप्य च ततोऽस्यांते व्रतस्नातो महाव्रती । कारयेद्धेमघटितं मूषकं मूषकं रथम् ॥५७॥
अशक्तो वर्णकैरेव शुभ्रं चाब्जं सुपत्रकम् । तस्योपरि घटं स्थाप्य ताम्रपात्रेण संयुतम् ॥५८॥
पूरयेत्तण्डुलैः शुभ्रैस्तस्योपरि गणेश्वरम् । न्यसेद्वस्त्रयुगाच्छन्नं गंधाद्यैः पूजयेच्च तम् ॥५९॥

विधान बता देता हूँ । उस दिन नारी स्नान कर अलंकृत हो गणाधीश की पूजा करे । उनके आगे पर्याप्त पक्वान्न तथा दस कमंडलु रखकर देवो में प्रीयताम्' यह कहते हुए समर्पित करे । अनन्तर वे सब चीजें सौभाग्यवती महिलाओं एवम् विप्रों में बाँट दे । फिर रात्रि में चन्द्रोदय होने पर विधिपूर्वक अर्घ्य देकर व्रत पूर्ति के लिए मिष्टान्न भोजन करे ॥४३-४७॥ मुने ! अथवा दूध या जल से परिपूर्ण कमंडलु, पूगीफल, अक्षत तथा रत्न ब्राह्मण को दे दे । यह व्रत सोलह या बारह वर्षों तक करना चाहिये । अन्त में उद्यापन करके विसर्जन करे । अथवा सौभाग्य की इच्छुक वनिता आजीवन इस व्रत को करती रहे। नारियों के लिए ऐसा सौभाग्यदायक व्रत तीनों लोक में कोई नहीं है ॥४८-५०½॥कार्तिक-शुक्ल-चतुर्थी में नागव्रत किया जाता है । उस दिन प्रातःकाल ही व्रत का संकल्प कर गाय के सींग से स्पृष्ट जल का पान करे और मध्याह्न में स्नानोत्तर शंखपाल आदि नागों का आवाहन कर सोपचार पूजन करे । उस दिन दूध से नागों को परितृप्त करना चाहिये । यही नागव्रत है । विप्रेन्द्र ! इस कल्याणकारक नागव्रत के करने से विष शीघ्र नष्ट हो जाता है और सांप कभी नहीं काटता । मुनीश्वर ! अगहन-शुक्ल-चतुर्थी से प्रारम्भ कर वर्ष पर्यन्त एक ही बार भोजन करे । भोजन अयाचित अन्न का बना हुआ करना चाहिये और वह भी दिन में ही (रात्रि में नहीं) इस क्रम से चार वर्षों तक विधिवत् व्रत का संपादन कर अन्त में महाव्रती मानव स्नान करके गणेश के लिये सुवर्ण का रथ एवम् चूहा बनवाये ॥५१-५७॥ यदि सोने का न बनवा सके तो हरिताल या चन्दन आदि काष्ठों का बनवा सकता है । व्रती श्वेत-कमल के ऊपर ताम्रपात्रयुक्त घट को स्थापित कर उसे स्वच्छ चावल से भर दे । उसके ऊपर गणेश्वर की प्रतिष्ठा कर

नैवेद्यं मोदकं कल्प्यं गणेशः प्रीयतामिति । जागरैर्गीतवाद्याद्यैः पुराणाख्यानकैश्चरेत् ॥६०॥
प्रभाते विमले स्नात्वा होमं कृत्वा विधानतः । तिलव्रीहियवश्वेतसर्षपाज्यैः सखंडकैः ॥६१॥
गणो गणाधिपश्चैव कूष्मांडस्त्रिपुरांतकः । लंबोदरैकदंतौ च रुक्मदंष्ट्रश्च विघ्नपः ॥६२॥
ब्रह्मा यमोऽथ वरुणः सोमसूर्यहुताशनाः । गन्धमादी परमेष्ठीत्येवं षोडशनामभिः ॥६३॥
प्रणवाद्यैर्ङेनमोऽन्तैः प्रत्येकं वह्नौ हुनेत् । वक्रतुंडेति ङेंतेन वर्मा तेनाष्टयुक्शतम् ॥६४॥
ततो व्याहृतिभिः शक्त्या हुत्वा पूर्णाहुतिं चरेत् । दिक्पालान्पूजयित्वा च ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥६५॥
चतुर्विंशतिसंख्याकान् मोदकैः पायसैस्तथा । सवत्सां गां ततो दद्यादाचार्याय सदक्षिणाम् ॥६६॥
अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति भूयसीं च ततो ददेत् । प्रणम्य दक्षिणीकृत्य प्रविसृज्य द्विजोत्तमान् ॥६७॥
बन्धुभिः सह भुञ्जीत स्वयं च प्रीतमानसः । एतद्व्रतं नरः कृत्वा भुक्त्वा भोगानिहोत्तमान् ॥६८॥
सायुज्यं लभते विष्णोर्गणेशस्य प्रसादतः । केचिद्वरव्रतं नाम प्राहुरेतस्य नारद ॥६९॥
विधानमेतदेवापि फलं चापीह तत्समम् । पौषमासचतुर्थ्यां तु विघ्नेशं प्रार्थ्य भक्तितः ॥७०॥
विप्रैकं भोजयेच्चैवं मोदकैर्दक्षिणां ददेत् । एवं कृते मुने भूयाद्व्रती संपत्तिभाजनम् ॥७१॥
माघकृष्णचतुर्थ्यां तु संकष्टव्रतमुच्यते । तत्रोपवासं संकल्प्य व्रती नियमपूर्वकम् ॥७२॥
चंद्रोदयमभिव्याप्य तिष्ठेत्प्रयतमानसः । ततश्चंद्रोदये प्राप्ते मृण्मयं गणनायकम् ॥७३॥
विधाय विन्यसेत्पीठे सायुधं च सवाहनम् । उपचारैः षोडशभिः समभ्यर्च्य विधानतः ॥७४॥
मोदकं चापि नैवेद्यं सगुडं तिलकुट्टकम् । ततोऽर्घ्यं ताम्रजे पात्रे रक्तचंदनमिश्रितम् ॥७५॥

एक जोड़ा वस्त्र, गन्ध, पुष्प आदि से उनका पूजन करे ॥५८-५९॥ "गणेशः प्रीयताम्" यह कहकर उन्हें लड्डू चढ़ाये । गीत-वाद्य, कथा-पुराण आदि से उत्सव मनाते हुए रात्रि में जागरण करे । प्रातःकाल स्नान कर तिल, व्रीहि, यव, श्वेत सरसों तथा घी से विधिपूर्वक हवन करे । गण, गणाधिप, कूष्मांड, त्रिपुरांतक, लम्बोदर, एकदन्त, रुक्मदंष्ट्र, विघ्नप, ब्रह्मा, यम, वरुण, सोम, सूर्य, हुताशन, गन्धमादी और परमेष्ठी इन सोलहों नामों से आहुतियां देनी चाहिए । "प्रणवाद्यैर्ङे नमः........." इस मन्त्र से एक सौ आठ बार हवन कर व्याहुतियों से यथाशक्ति होम करे ॥६०-६४½॥ पश्चात् पूर्णाहुति देकर दिक्पालों का पूजन कर चौबीस ब्राह्मणों को खीर तथा लड्डू खिलाये। तदनन्तर आचार्य को दक्षिणा सहित सवत्सा गौ देकर अन्य ब्राह्मणों को भी यथाशक्ति भूयसी दे । फिर विप्रों को प्रदक्षिणा कर उन्हें प्रणाम करके विदा करे । पश्चात् प्रसन्न मन से भाई-बन्धुओं के साथ स्वयं भोजन करे । इस व्रत को करने वाला मानव ऐहलौकिक उत्तम भोगों को भोग कर गणेश की कृपा से विष्णुसायुज्य मोक्ष को प्राप्त करता है । नारद ! कोई इस व्रत को 'वरव्रत' कहते हैं ॥६५-६९॥ उसका भी विधान एवम् फल यही है । पौष मास की चतुर्थी में भक्तिपूर्वक विघ्नेश की प्रार्थना कर एक विप्र को लड्डू खिलाये तथा दक्षिणा दे । मुने ! ऐसा करने से व्रती संपत्तिशाली होता है । माघ-कृष्ण-चतुर्थी में संकष्टव्रत किया जाता है । उस दिन व्रती नियमपूर्वक शुद्ध मन से उपवास करते हुए चन्द्रोदय के उपरान्त मृत्तिका के गणेश को आयुध एवम् वाहन सहित आसन पर अवस्थित कर विधि से षोडशोपचार पूजन करे ॥७०-७४॥ उन्हें मोदक तथा तिल का लड्डू नैवेद्य चढ़ाये । तदनन्तर तांबे के पात्र में रक्तचन्दन, दूर्वा, पुष्प, अक्षत,

सकुशं च सदूर्वं च पुष्पाक्षतसमन्वितम् । सशमीपत्रदधि च कृत्वा चंद्राय दापयेत् ॥७६॥
गगनार्णवमाणिक्यं चंद्र दाक्षायणीपते । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गणेशप्रतिरूपक ॥७७॥
एवं दत्त्वा गणेशाय दिव्यार्घ्यं पापनाशनम् । शक्त्या सभोज्य विप्राग्र्यान्स्वयं भुञ्जीत चाज्ञया ॥७८॥
एवं कृत्वा व्रतं विप्र संकष्टाख्यं शुभावहम् । समृद्धो धनधान्यैः स्यान्न च संकष्टमाप्नुयात् ॥७९॥
माघशुक्लचतुर्थ्यां तु गौरीव्रतमनुत्तमम् । तस्यां तु गौरी संपूज्या संयुक्ता योगिनीगणैः ॥८०॥
नरैः स्त्रीभिर्विशेषेण कुन्दपुष्पैः सकुंकुमैः । रक्तसूत्रै रक्तपुष्पैस्तथैवालक्तकेन च ॥८१॥
धूपैर्दीपैश्च बलिभिः सगुडेनार्द्रकेण च । पयसा पायसेनापि लवणेन च पालकैः ॥८२॥
पूज्याश्चाविधवा नार्यस्तथा विप्राः सुशोभनाः । सौभाग्यवृद्धये देयो भोक्तव्यं बंधुभिः सह ॥८३॥
इदं गौरीव्रतं विप्र सौभाग्यारोग्यवर्द्धनम् । प्रतिवर्षं प्रकर्त्तव्यं नारीभिश्च नरैस्तथा ॥८४॥
ढुंढि व्रतं परैः प्रोक्तं कैश्चित्कुण्डव्रतं स्मृतम् । ललिताव्रतमित्यन्यैः शांतिव्रतमथापरैः ॥८५॥
स्नानं दानं जपो होमः सर्वमस्यां कृतं मुने । भवेत्सहस्रगुणितं प्रसादाद्दंतिनः सदा ॥८६॥
चतुर्थ्यां फाल्गुने मासि ढुण्ढिराजव्रतं शुभम् । तिलपिष्टैर्द्विजान् भोज्य स्वयं चाश्नीत मानवः ॥८७॥
गणेशाराधनपरो दानहोमप्रपूजनैः । तिलैरेवकृतैः सिद्धिं प्राप्नुयात्तत्प्रसादतः ॥८८॥
सौवर्णं गजवक्त्रं च कृत्वा संपूज्य यत्नतः । द्विजाग्र्याय प्रदातव्यं सर्वसंपत्समृद्धये ॥८९॥
यस्मिन्कस्मिन्भवेन्मासि चतुर्थी रविवारयुक् । सांगारका वा विप्रेन्द्र सा विशेषफलप्रदा ॥९०॥

शमीपत्र तथा दधि डाल कर "गगनार्णवमाणिक्य !........." इस मन्त्र को पढ़ते हुए कुश से अर्घ्यदान करे ॥७५-७७॥

इस प्रकार गणेश को पापनाशी दिव्य अर्घ्य देकर यथाशक्ति उत्तम ब्राह्मणों को भोजन कराकर उनकी आज्ञा से स्वयं भोजन करे। विप्र ! जो व्यक्ति इस कल्याणकारक संकष्ट नामक व्रत को करता है, वह धनधान्य से सम्पन्न होता है, विपत्ति में वह कभी नहीं पड़ता। माघ-शुक्ल-चतुर्थी में अत्युत्तम गौरीव्रत करना चाहिये। उस दिन नर और विशेष करके नारी कुंदपुष्प, कुंकुम, रक्तसूत्र, रक्तपुष्प, अलता, धूप, दीप, बलि, गुड़, अदरक, दूध, खीर, लवण, तथा पालक से योगिनीगण समेत गौरी की पूजा करे। सौभाग्यवृद्धि के लिये सधवा नारियों एवम् उत्तम ब्राह्मणों की भी पूजा करके इष्ट-मित्रों के साथ भोजन करे ॥७८-८३॥ द्विज ! यह गौरीव्रत सौभाग्य तथा आरोग्य को बढ़ाने वाला है। नर-नारियों को प्रतिवर्ष यह व्रत करना चाहिए। कोई कहते हैं कि उस दिन ढुंढिव्रत करना अच्छा है तो कोई कहते हैं कुंडव्रत ! किन्हीं के मत में ललिता व्रत अच्छा है तो कोई शान्तिव्रत को ही अच्छा समझते हैं ॥८४-८५॥ उस दिन स्नान, दान, जप तथा होम जो कुछ किया जाता है, उसका सहस्रगुण अधिक फल मिलता, है यह गणपति की कृपा है। फाल्गुन की चतुर्थी में शुभदायक ढुंढिराजव्रत करना चाहिए। उस दिन मानव ब्राह्मणों का तिल के लड्डू खिलाकर स्वयं भी वही खायें। दान, होम, पूजन आदि से गणेश की आराधना में निरत होकर तिल से ही सब कर्म करे। ऐसा करने से विघ्नेश की कृपा से सिद्धि प्राप्ति हो जाती है ॥८६-८८॥ यत्नपूर्वक गणनायक की सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर पूजन करे और सकल संपत्ति की प्राप्ति के लिए वह प्रति ब्राह्मणों को दे दे। विप्र ! जिस किसी मास में यदि चतुर्थी तिथि रविवार या मंगलवार से युक्त हो तो वह विशेष फल को देती है। समस्त चतुर्थियों में, चाहे शुक्ल

सर्वासु च चतुर्थीषु शुक्लास्वप्यसितासु च । विघ्नेश एव देवेशः संपूज्यो भक्तितत्परैः ॥९१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासचतुर्थीव्रत निरूपणं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३॥

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

सनातन उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि पंचम्यास्ते व्रतान्यहम् । यानि भक्त्या समास्थाय सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१॥
प्रोक्ता मत्स्यजयंती तु पंचमी मधुशुक्लगा । अस्यां मत्स्यावतारार्चा भक्तैः कार्या महोत्सवा ॥२॥
श्रीपंचमीति चैवोक्ता तत्र कार्यं श्रियोऽर्चनम् । गंधाद्यैरुपचारैस्तु नैवेद्यैः पायसादिभिः ॥३॥
यो लक्ष्मीं पूजयेच्चात्र तं वै लक्ष्मीर्न मुञ्चति । पृथ्वीव्रतं तथा चांद्रं हयग्रीवव्रतं तथा ॥४॥
कार्यं तत्तद्विधानेन तत्तत्सिद्धिमभीप्सुभिः । अथ वैशाखपंचम्यां शेषं चाभ्यर्च्य मानवः ॥५॥
सर्वैर्नागगणैर्युक्तमभीष्टं लभते फलम् । तथा ज्येष्ठस्य पंचम्यां पितॄनभ्यर्चयेत्सुधीः ॥६॥

पक्ष की हो या कृष्ण पक्ष की, भक्तिपरायण मनुष्य विघ्नेश की ही अर्चना करे ॥८९-९१॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में बारह मासों की चतुर्थी तिथि का व्रत निरूपण नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥११३॥

अध्याय ११४

बारह मासों का पंचमी-व्रत ।

सनातन बोले--विप्र ! सुनो, अब मैं पञ्चमी तिथि के व्रतों को बताता हूँ, जिनकी भक्तिपूर्वक आराधना करने से सकल कामनाओं की प्राप्ति होती है। चैत्र-शुक्ल-पञ्चमी में मत्स्यजयन्तीव्रत करना चाहिए। उस तिथि को भक्त लोग भगवान् के मत्स्यावतार का पूजन एवं महोत्सव करें ॥१-२॥ उस तिथि का नाम श्रीपंचमी है। उसमें गंध आदि उपचार तथा पायस आदि के नैवेद्य से श्री की अर्चना करनी चाहिए। (उस दिन) जो लक्ष्मी की अर्चना करता है, उसे लक्ष्मी कभी भी नहीं छोड़ती। सिद्धि के इच्छुक व्यक्ति उस तिथि में पृथ्वीव्रत, चांद्रव्रत हयग्रीवव्रत को विधिपूर्वक संपन्न करे। वैशाख की पञ्चमी में समस्त नागगणों से युक्त अनन्तशेष की अर्चना करने से मानव की अभीष्ट-सिद्धि होती है। ज्येष्ठ की पञ्चमी में जो विद्वान् पितरों का पूजन करके ब्राह्मण भोजन कराता है उसकी समस्त अभिलाषायें पूर्ण होती हैं ॥३-६½॥ मुने ! आषाढ़ की पञ्चमी में

सर्वकामफलावाप्तिर्भवेद्वै विप्रभोजनैः । अथाषाढस्य पंचम्यां वायुं सर्वगतं मुने ॥७॥
ग्रामाद्बहिर्विनिर्गत्य धरोपस्थे समास्थितः । ध्वजं च पंचवर्णं तु वंशदंडाग्रसंस्थितम् ॥८॥
समुच्छ्रितं निदध्यात्तु कल्पिताङ्जे तु मध्यतः । ततस्तन्मूलदेशे तु दिक्षु सर्वासु नारद ॥९॥
लोकपालान्समभ्यर्च्य कुर्याद्वायुपरीक्षणम् । प्रथमादिषु यामेषु यो यो वायुःप्रवर्तते ॥१०॥
तस्यै तस्यै दिगीशाय पूजां सम्यक् प्रकल्पयेत् । एवं स्थित्वा निराहारस्तत्र यामचतुष्टयम् ॥११॥
सायमागत्य गेहं स्वं भुक्त्वा स्वल्पं समाहितः । लोकपालान्नमस्कृत्य स्वप्याद्भूमितले शुचौ ॥१२॥
यः स्वप्नो जायते तस्यां रात्रौ यामे चतुर्थके । स एव भविता नूनं स्वप्न इत्याह वै शिवः ॥१३॥
अशुभे तु समुत्पन्ने शिवपूजापरायणः । सोपवासो नयेदष्टयामं तद्दिनमेव वा ॥१४॥
भोजयित्वा द्विजानष्टौ ततः शुभफलं लभेत् । व्रतमेतत्समुदितं शुभाशुभनिदर्शनम् ॥१५॥
नृणां सौभाग्यजनकमिह लोके परत्र च । श्रावणे कृष्णपंचम्यां व्रतं ह्यन्नसमृद्धिदम् ॥१६॥
चतुर्थ्यां दिनशेषे तु सर्वाण्यन्नानि नारद । पृथक् पात्रेषु संस्थाप्य जलैराप्लावयेत्सुधीः ॥१७॥
ततो पात्रांतरे तत्तु निष्कास्यांबु निधापयेत् । प्रातर्भानौ समुदिते पितॄश्चैव तथा ऋषीन् ॥१८॥
देवांश्चाभ्यर्च्य सुस्नातं कृत्वा नैवेद्यमग्रतः । तदन्नं याचकेभ्यस्तु प्रयच्छेत्प्रीतमानसः ॥१९॥
सर्वं दिनं क्षिपेदेवं प्रदोषे तु शिवालये । गत्वा संपूजयेद्देवं लिंगरूपिणमीश्वरम् ॥२०॥
गंधपुष्पादिभिः सम्यक्पूजयित्वा महेश्वरम् । जपेत्पञ्चाक्षरीं विद्यां शतं चापि सहस्रकम् ॥२१॥
जपं निवेद्य देवाय भवाय भवरूपिणे । स्तुत्वा सर्वैर्वैदिकैश्च पौराणैश्चाप्यनाकुलः ॥२२॥

आषाढ़ पञ्चमी को ब्राह्मण भोजन से सब कामनाओं की प्राप्ति होती है। ... सर्वगामी वायु का पूजन करना चाहिए। उस दिन गाँव से बाहर पवित्र जगह में ध्वजारोपण करे। वंशदंड के अग्रभाग में पाँच रंगों वाली पताका बाँधकर वंश को भूमि में गाड़ दे। तदनन्तर उसके मूल में समस्त दिशाओं के लोकपालों की पूजा कर वायु की परीक्षा करे। प्रथम आदि प्रहरों में जिस जिस दिशा का पवन बहे, उस-उस दिशा के स्वामी की अच्छी तरह पूजा कर चारों पहर निराहार ही रहना चाहिए ॥७-११॥ संध्याकाल होने पर अपने घर में आकर अल्प भोजन करे। फिर समाहित चित्त से लोकपालों का स्मरण कर भूमि पर शयन करे। उस रात्रि के चौथे पहर में जो स्वप्न दिखाई देता है वह होकर रहता है ऐसा शिव ने कहा है। यदि अशुभ वस्तु दीख पड़े तो शिव पूजा-परायण होकर उपवास करते हुए आगे आठो पहर या मात्र उस दिन को बिताये। पश्चात् आठ विप्रों को भोजन कराये। ऐसा करने से शुभ फल मिलता है ॥१२-१४½॥ यह व्रत शुभ अशुभ बतलाने वाला तथा मनुष्यों को इस लोक में एवम् परलोक में सौभाग्य देने वाला है। श्रावण-कृष्ण-पञ्चमी में अन्नसमृद्धिदायक व्रत करना चाहिए। नारद ! चतुर्थी तिथि के दिनावसान में समस्त अन्नों को पृथक्-पृथक् पात्रों में रखकर जल से धो डाले ॥१६-१७॥

दूसरे पहर में अन्नों को निकालकर पुनः जल में ही रखे। प्रातः काल अच्छी तरह स्नान कर सूर्योदय होने पर देव, पितर तथा ऋषियों की पूजा करके नैवेद्य चढ़ाये। वह अन्न याचकों को प्रसन्न मन से दे दे। सम्पूर्ण दिन को इस तरह बिता कर प्रदोष काल में शिवालय जाकर शिवलिंग का पूजन करना चाहिए। गंध, पुष्प आदि से सम्यक्तया महेश्वर की अर्चना कर पंचाक्षर मंत्र का एक लाख जप करे। भव रूपी शंकर देव को जल अर्पित करके पौराणिक एवम् वैदिक मंत्रों से वाग्गद्गद होकर उनकी स्तुति करे ॥१८-२२॥ सदा सब प्रकार के अन्नों

प्रार्थयेद्देवमीशानं शाश्वतसर्वान्नसिद्धये । शारदीयानि चान्नानि तथा वासंतिकान्यपि ॥२३॥
यानि स्युस्तैः समृद्धोऽहं भूयां जन्मनि जन्मनि । एवं संप्रार्थ्य देवेशं गत्वा भवनकं स्वकम् ॥२४॥
दत्वान्नं ब्राह्मणादिभ्यः पश्चात् भुञ्जीत वाग्यतः । एतदन्नव्रतं विप्र विधिनाऽऽचरित नृभिः ॥२५॥
सर्वान्नसंपज्जनकं परलोके गतिप्रदम् । श्रावणे शुक्लपञ्चम्यां नृभिरास्तिक्यतत्परैः ॥२६॥
द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्बणाः । गंधाद्यैः पूजयेत्तांश्च तथेंद्राणीमनंतरम् ॥२७॥
संपूज्य स्वर्णरूप्यादिदध्यक्षतकुशांबुभिः । गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यसंचयैः ॥२८॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य तद्द्रव्यं सम्प्रणम्य च । संप्रार्थ्य भक्तिभावेन विप्राग्र्येषु समर्पयेत् ॥२९॥
यदिदं स्वर्णरौप्यादि द्रव्यं वै विप्रसात्कृतम् । तदनंतफलं भूयान्मम जन्मनि जन्मनि ॥३०॥
इत्येवं ददतो द्रव्यं भक्तिभावेन नारद । प्रसन्नः स्याद्धनाध्यक्षः स्वर्णादिकसमृद्धिदः ॥३१॥
एतद्व्रतं नरः कृत्वा विप्रान्संभोज्य भक्तितः । पश्चात्स्वयं च भुञ्जीत दारापत्यसुहृद्वृतः ॥३२॥
॥३३॥
भाद्रे तु कृष्णपंचम्यां नागान् क्षीरेण तर्पयेत् ।
यस्तस्याऽऽसप्तमं यावत्कुलं सर्पात्तु नो भयम् । भाद्रस्य शुक्लपंचम्यां पूजयेदृषिसत्तमान् ॥३४॥
प्रातर्नद्यादिके स्नानं कृत्वा नित्यमतंद्रितः गृहमागत्य यत्नेन वेदिकां कारयेन्मृदा ॥३५॥
गोमयेनोपलिप्याथ कृत्वा पुष्पोपशोभिताम् तत्रास्तीर्य कुशान्विप्र ऋषीन्सप्त समर्चयेत् ॥३६॥
गन्धैश्च विविधैः पुष्पैर्धूपैर्दीपैः सुशोभनैः । कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः ॥३७॥
जमदग्निर्वसिष्ठश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः । एतेभ्योऽर्घ्यं च विधिवत्कल्पयित्वा प्रदाय च ॥३८॥

की प्राप्ति के लिए महादेव की इस प्रकार स्तुति करे । ' हे शिव !) शरद ऋतु, वसन्त ऋतु एवम् अन्य ऋतुओं में जितने प्रकार के अन्न होते हैं, वे सब मुझे प्रत्येक जन्म में मिला करे ।' देवेश की प्रार्थना करने के उपरान्त अपने घर जाये और ब्राह्मण को अन्न देकर वाक्संयम पूर्वक स्वयं भोजन करे । विप्र ! जो मनुष्य इस अन्नव्रत को विधिपूर्वक सम्पन्न करता है, उसे सकल अन्नों की प्राप्त होती है तथा परलोक में उत्तम गति मिलती है ॥२३-२५½॥ श्रावण-शुक्ल-पंचमी में आस्तिक मनुष्य घर के द्वार पर गोबर के सर्प बना कर गन्ध आदि से पूजन करे । अनन्तर सुवर्ण, चांदी, दधि, अक्षत, कुश, जल, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य से इंद्राणी की अर्चना, प्रदक्षिणा एवम् प्रणाम करके ब्राह्मणों को भक्तिभाव से द्रव्य दे । सुवर्ण, चांदी आदि जो द्रव्य विप्रों को दिया जाता है, उसका अनंतफल जन्म-जन्मान्तर में मिलता रहता है । २६-३०॥ नारद ! इस प्रकार भक्तिभाव से द्रव्य देने वाले को कुबेर प्रसन्न होकर स्वर्ण आदि संपत्ति देते हैं । इस व्रत का अनुष्ठान करने वाला मनुष्य भक्ति से ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्त्री, पुत्र तथा लघुवर्ग के साथ स्वयं भोजन करे । भादों के कृष्ण पक्ष की पंचमी में नागों को दूध से परितृप्त करने से मनुष्य को सात कुलों तक सर्प का भय नहीं रहता । भादों की शुक्ल-पंचमी में ऋषि पूजन करना चाहिये ॥३१-३४॥

प्रातःकाल निरालस्यपूर्वक नदी आदि में स्नान कर घर आकर मृत्तिका की वेदी बनाये । उसे गोबर से लीप कर पुष्पों से सुसज्जित करे । विप्र ! उस पर कुशों को बिछा कर विविध गंध, पुष्प, धूप, दीप आदि से सप्तर्षियों की अर्चना करे । कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वसिष्ठ—ये सप्तर्षि कहे जाते है । इनको विधिवत् अर्घ्य प्रदान कर धीमान् व्यक्ति श्यामाक (सावाँ) का खीर उन्हें समर्पित करे ।

नैवेद्यं विपचेद्धोमार्थ्यामाकाद्यैरकृष्टकैः । तन्निवेद्य विसृज्यैमान्स्वयं चाद्यात्तवेव हि ॥३९॥
अनेन विधिना सप्त वर्षाणि प्रतिवत्सरम् । कृत्वा व्रतांते वरयेदाचार्यान् सप्त वैदिकान् ॥४०॥
प्रतिमाः सप्त कुर्वीत सुवर्णेन स्वशक्तितः । जटिलाः साक्षसूत्राश्च कमण्डलुसमन्विताः ॥४१॥
संस्थाप्य कलशेष्वेतांस्ताम्रेषु मृन्मयेषु वा । स्नापयेद्विधिवद्भक्त्या पृथक्पंचामृतैरपि ॥४२॥
उपचारैः षोडशभिस्ततः संपूज्य भक्तितः । अर्घ्यं दत्वा ततो होमं तिलव्रीहियवादिभिः ॥४३॥
'सहस्तोमा' इति ऋचा नाममन्त्रैस्तु वा पृथक् । पुण्यैर्मन्त्रैस्तथैवान्यैर्हुत्वा पूर्णाहुतिं चरेत् ॥४४॥
आचार्यं पूजयेच्चैव वस्त्रालंकारभूषणैः ॥४५॥
ततस्तु सप्त गा दद्याद्वस्त्रालंकारसंयुताः । भोजयित्वा तु तान्भक्त्या प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥४६॥
अनुज्ञया गुरोः पश्चान्मूर्तीर्विप्रेषु स्वार्पयेत् । षड्रसोपेतं प्रभुञ्ज्यात्सह बंधुभिः ॥४७॥
ततश्चेष्टैः सहासीनः स्वयं ब्राह्मणशेषितम् । भुक्त्वा वै सप्तर्षीणां प्रसादेन विमानवरगो भवेत् ॥४८॥
एतत्कृत्वा व्रतं सांगं भोगान्भुक्त्वाथ वाञ्छितान् । ॥४९॥
आश्विने शुक्लपञ्चम्यामुपांगललिताव्रतम् । उपचारैः षोडशभिः पूजयेत्तां विधानतः ॥५०॥
तस्याः स्वर्णमयीं मूर्तिं शक्त्या निर्माय नारद । दातव्यं व्रतसंपूर्तिहेतवे ॥५१॥
पक्वान्नं फलसंयुक्तं सघृतं दक्षिणान्वितम् । द्विजवर्याय गम्यतां निजमंदिरम् ॥५२॥
"सवाहना शक्तियुता वरदा पूजिता मया । मातर्मामनुगृह्याय श्रद्धया द्विजसत्तम ॥५३॥
कार्तिके शुक्लपंचम्यां जयाव्रतमनुत्तमम् । कर्तव्यं पापनाशाय षोडशभिस्ततः शुचिरलंकृतः ॥५४॥
पूजयित्वा जयां विप्र यथाविधि समाहितः । उपचारैः

पश्चात् उनका विसर्जन करके स्वयं भोजन करे । इस विधि से सात वर्षों तक प्रतिवर्ष व्रत करके अन्त में सात वैदिक आचार्यों का वरण करे ॥३९-४०॥ अपनी शक्ति के अनुसार सात सुवर्ण की प्रतिमा बनाकर उन्हें जटा, रुद्राक्षमाला तथा कमंडलुओं से विभूषित करे । फिर उन्हें तांबे अथवा मिट्टी के कलशों पर स्थापित कर पंचामृत से भक्ति-पूर्वक स्नान कराये । अनन्तर भक्ति से षोडशोपचार पूजन कर अर्घ्य देकर तिल, व्रीहि, यव आदि से हवन करे । "सहस्तोमा" इस ऋचा से या नाम ... पृथक्-पृथक् नाम ग्रहणपूर्वक पूर्णाहुति दे ॥४०-४४॥

... वस्त्रों एवम् अलंकारों से आभूषित सात गायों का दान करे । वस्त्र तथा आभूषणों से आचार्य को पूजा कर गुरु की आज्ञा से प्रतिमा विप्रों को दे दे । उन द्विजों को भोजन कराकर भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम कर विदा करे । पश्चात् ब्राह्मणों के खिलाने से बचे षड्रस अन्न को इष्ट-मित्रों के साथ स्वयं प्रसन्नतापूर्वक भोजन करे । इस व्रत को सांगोपांग करने वाला व्यक्ति वांछित भोगों को भोगकर सप्तर्षियों की कृपा से उत्तम विमान पर विहार करता है ॥४५-४८॥ आश्विन-शुक्ल-पंचमी में उपांगललिता व्रत करना चाहिये । नारद ! उसकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर विधिपूर्वक षोडशोपचार पूजन करे । व्रत की पूर्णता के लिये पक्वान्न, फल, घृत, तथा दक्षिणा उत्तम ब्राह्मण को देकर "सवाहना ..." इस मन्त्र से देवी का विसर्जन करे । द्विजश्रेष्ठ ! कार्तिक-शुक्ल-पंचमी में पापनाश के लिये श्रद्धापूर्वक सर्वोत्तम जयाव्रत करना चाहिये ॥४९-५३॥

विप्र ! उस दिन स्नान आदि से निवृत्त हो सावधानी से विधिपूर्वक जया का षोडशोपचार पूजन कर ... ब्राह्मण को भोजन कराये । पश्चात् ...

विप्रैकं भोजयेच्चापि तस्मै दत्त्वा च दक्षिणाम् । विसर्जयेत्ततः पश्चात्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥५५॥
यस्तु वै भक्तिसंयुक्तः स्नानं कुर्याज्जयादिने । नश्यन्ति तस्य पापानि सिंहाक्रांता मृगा यथा ॥५६॥
यदश्वमेधावभृथे फलं स्नानेन कीर्तितम् । तत्फलं प्राप्यते विप्र स्नानेनापि जयादिने ॥५७॥
अपुत्रो लभते पुत्रं वंध्या गर्भं च विंदति । रोगी रोगात्प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बंधनात् ॥५८॥
मार्गशुक्ले च पञ्चम्यां नागानिष्ट्वा विधानतः । नागेभ्यो ह्यभयं लब्ध्वा मोदते सह बांधवैः ॥५९॥
पौषेऽपि शुक्लपञ्चम्यां संपूज्य मधुसूदनम् । लभते वाञ्छितान्कामान्नात्र कार्या विचारणा ॥६०॥
पंचम्यां प्रतिमासे तु शुक्ले कृष्णे च नारद । पितॄणां पूजनं शस्तं नागानां चापि सर्वथा ॥६१॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थपञ्चमीव्रत-निरूपणं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११४॥

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

सनातन उवाच

शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि षष्ठ्याश्चैव व्रतानि ते । यानि सम्यग्विधायात्र लभेत्सर्वान्मनोरथान् ॥१॥
चैत्रमासे शुक्लषष्ठ्यां कुमारव्रतमुत्तमम् । तत्रेष्ट्वा षण्मुखं देवं नानापूजाविधानतः ॥२॥

दिन जो व्यक्ति भक्ति से स्नान करता है, उसके समस्त पाप उसी तरह नष्ट हो जाते हैं, जैसे सिंह के आक्रमण से मृग (नष्ट होता है)। विप्र! अश्वमेध यज्ञ में स्नान करने से जो फल होता है, वह फल उस दिन स्नान करने से मिलता है ॥५३-५७॥

उस व्रत के प्रभाव से अपुत्र पुत्र को प्राप्त करता है, वंध्या को बालक होता है, रोगी रोग से मुक्त होता है और बद्ध जीव बन्धन से छुटकारा पाता है। अग्रहण के शुक्ल पक्ष की पंचमी में विधिपूर्वक नागों का पूजन करने वाला मनुष्य नागों से निर्भय होकर बांधवों के साथ आनन्द करता है। नारद! पौष के शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष की पंचमियों में पितरों एवम् नागों का पूजन करना चाहिये ॥५८-६०॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यान युक्त चतुर्थ पाद में बारह मासों के पंचमीव्रतों का निरूपण नामक एक सौ चौदहवां अध्याय समाप्त ॥११४॥

अध्याय ११५

बारह मासों का षष्ठी-व्रत

सनातन बोले—विप्र! सुनो, अब षष्ठी तिथि के व्रतों को तुमसे बता देता हूँ, जिनके अनुष्ठान से सकल मनोरथों की प्राप्ति होती है। चैत्रमास की शुक्ल-षष्ठी में उत्तम कुमारव्रत करना चाहिये। उस दिन अनेक प्रकार से छः मुख वाले देव की पूजा करने से सर्वगुणसम्पन्न एवम् चिरजीवी पुत्र का लाभ होता है ॥१-२½॥

पुत्रं सर्वगुणोपेतं प्राप्नुयाच्चिरजीविनम् । वैशाखशुक्लषष्ठ्यां च पूजयित्वा च कार्तिकम् ॥३॥
लभते मातृजं सौख्यं नात्र कार्या विचारणा । ज्येष्ठमासे शुक्लषष्ठ्यां विधिनेष्ट्वा दिवाकरम् ॥४॥
लभते वांछितान्कामांस्तत्प्रसादान्न संशयः । आषाढशुक्लषष्ठ्यां वै स्कंदव्रतमनुत्तमम् ॥५॥
उपोष्य पूजयित्वैनं शिवोमाप्रियमात्मजम् । लभतेऽभीप्सितान्कामान्पुत्रपौत्रादिसंततीः ॥६॥
श्रावणे शुक्लषष्ठ्यां तु शरजन्मानमर्चयेत् । उपचारैः षोडशभिर्भक्त्या परमयान्वितः ॥७॥
लभतेऽभीप्सितानर्थान्षण्मुखस्य प्रसादतः । भाद्रमासे कृष्णषष्ठ्यां ललिताव्रतमुच्यते ॥८॥
प्रातः स्नात्वा विधानेन नारी शुक्लाम्बरावृता । शुक्लमाल्यधरा वापि नद्याः संगमवालुकाम् ॥९॥
गृहीत्वा वंशपात्रे तु धृत्वा पिंडाकृतिं च ताम् । पञ्चधा ललितां तत्र ध्यायेद्वनविलासिनीम् ॥१०॥
पङ्कजं करवीरं च नेपालीं मालतीं तथा । नीलोत्पलं केतकीं च संगृह्य तगरं तथा ॥११॥
एकैकाष्टशतं ग्राह्यमष्टाविंशतिरेव च । अक्षताः कलिका गृह्य ताभिर्देवीं प्रपूजयेत् ॥१२॥
प्रार्थयेदग्रतः स्थित्वा देवीं तां गिरिशप्रियाम् । गंगाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते ॥१३॥
स्नात्वा कनखले देवि हरिं लब्धवती पतिम् । ललिते सुभगे देवि सुखसौभाग्यदायिनि ॥१४॥
अनंतं देहि सौभाग्यं मह्यं तुभ्यं नमोनमः । मंत्रेणानेन कुसुमैश्चंपकस्य सुशोभनैः ॥१५॥
अभ्यर्च्य विधिवत्तस्या नैवेद्यं पुरतो न्यसेत् । त्रपुषैरपि कूष्माण्डैर्नारिकेरैः सुदाडिमैः ॥१६॥
बीजपूरैः सुतुंडीरैः कारवेल्लैः सचिर्भटैः । फलैस्तत्कालसंभूतैः कृत्वा शोभां तदग्रतः ॥१७॥
विरूढधान्यांकुरकैः सुदीपावलिभिस्तथा । सार्द्रैःसगणकैर्धूपैः सौहालककरंजकैः ॥१८॥
गुडपुष्पैः कर्णवेष्टैर्मोदकैरुपमोदकैः । बहुप्रकारैर्नैवेद्यैर्यथाविभवसारतः ॥१९॥
प्रोक्षणीयैरनेकधा ॥२०॥
एवमभ्यर्च्य विधिवद्रात्रौ जागरणोत्सवम् । गीतवाद्यनटैर्नृत्यैः

वैशाख-शुक्ल-षष्ठी में कार्तिकेय की अर्चना करने से मातृ-सुख की प्राप्ति होती है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं । ज्येष्ठ-शुक्ल-षष्ठी में विधिपूर्वक दिनकर की पूजा करने से अभिलषित फलों की प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं ॥३-४½॥ आषाढ़-शुक्ल-षष्ठी में जो व्यक्ति अत्युत्तम स्कंदव्रत करता है, वह पुत्र-पौत्र आदि वांछित कामनाओं को प्राप्त करता है । श्रावण-शुक्ल-षष्ठी में परम भक्तिपूर्वक स्कंद की षोडशोपचार पूजा करने से उनकी कृपा से अभीप्सित फलों की प्राप्ति होती है । भादों की कृष्ण-षष्ठी में ललिताव्रत करना चाहिये ॥५-८॥ उस दिन नारी विधिपूर्वक स्नान कर शुक्ल वस्त्र तथा शुक्ल माला धारण करके नदी के संगम से बांस के पात्र में पिंडाकृति वालू लाकर उसकी मूर्ति बनावे । उस मूर्ति में वनविलासिनी ललिता देवी के पांच रूपों का ध्यान करे । कमल, करवीर, नेपाली, मालती, नीलकमल, केतकी और तगर—इन पुष्पों में से प्रत्येक की एक सौ आठ या अट्ठाईस ही बिन मुरझाई कलियों को लेकर उनसे देवी की पूजा करे । फिर उनके आगे खड़े होकर शंकर-प्रिया देवी की इस प्रकार प्रार्थना करे—देवि ! आपने हरिद्वार, कुशावर्त, बिल्वक नीलपर्वत तथा कनखल में स्नान कर पति को प्राप्त किया ॥९-१३½॥

ललिते ! सुभगे ! देवि ! सुखसौभाग्यदायिनि ! मुझे अनंत सौभाग्य दीजिये । आपको नमस्कार है ।' इस तरह प्रार्थना कर सुन्दर चम्पा पुष्पों से विधिवत् अर्चना करके ककड़ी, कुम्हड़ा, नारियल, दाड़िम, बिजौरा, तुंडीर, करेला और सामयिक फलों का नैवेद्य चढ़ाये । यथाशक्ति धूप, दीप तथा विविध प्रकार की मिठाइयों का भोग लगाकर रात्रि में नर्तकों के नृत्य, गीत आदि साधनों से जागरणोत्सव करे ॥१४-२०॥

सखीभिः संहिता साध्वी तां रात्रिं प्रसभं नयेत् । न च संमीलयेन्नेत्रे नारी यामचतुष्टयम् ॥२१॥
सखीभिः संहिता साध्वी तां रात्रिं प्रसभं नयेत् । न च संमीलयेन्नेत्रे नारी यामचतुष्टयम् ॥२२॥
दुर्भगा दुष्कृता वंध्या नेत्रसंमीलनाद्भवेत् । एवं जागरणं कृत्वा सप्तम्यां सरितं नयेत् ॥२३॥
गन्धपुष्पैस्तथाभ्यर्च्य गीतवाद्यपुरःसरैः । तच्च दद्याद्द्विजेन्द्राय नैवेद्यादि द्विजोत्तम ॥२४॥
स्नात्वा गृहं समागत्य हुत्वा वैश्वानरं ततः । देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च पूजयित्वा सुवासिनीः ॥२५॥
कन्यकाश्चैव संभोज्य ब्राह्मणान्दश पंच च । भक्ष्यभोज्यैर्बहुविधैर्दत्त्वा दानानि भूरिशः ॥२६॥
ललिता मेऽस्तु सुप्रीता इत्युक्त्वा तान्विसर्जयेत् । यः कश्चिदाचरेदेतद्व्रतं सौभाग्यदं परम् ॥२७॥
नरो वा यदि वा नारी तस्य पुण्यफलं शृणु । यद्व्रतैश्च तपोभिश्च दानैर्वा नियमैरपि ॥२८॥
तदेतेनेह लभ्येत किं बहूक्तेन नारद । मृतेरनंतरं प्राप्य शिवलोकं सनातनम् ॥२९॥
मोदते ललितादेव्या शंवे वै सखिवच्चिरम् । नभस्ये मासि या शुक्ला षष्ठी सा चंदनाह्वया ॥३०॥
तस्यां देवीं समभ्यर्च्य लभते तत्सलोकताम् । रोहिणी पातभौमैस्तु संयुता कपिला भवेत् ॥३१॥
तस्यां रविं समभ्यर्च्य व्रती नियमतत्परः । लभते वांछितान्कामान्भास्करस्य प्रसादतः ॥३२॥
अन्नदानं जपो होमः पितृदेवर्षितर्पणम् । सर्वमेवाक्षयं ज्ञेयं कृतं देवर्षिसत्तम् ॥३३॥
कपिलां धेनुमभ्यर्च्य वस्त्रमाल्यानुलेपनैः । प्रदद्याद्वेदविदुषे द्वादशात्मप्रतुष्टये ॥३४॥
अश्वेषुशुक्लषष्ठ्यां तु पूज्या कात्यायनी द्विज । गंधाद्यैर्मंगलद्रव्यैर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा
ततः क्षमाप्य देवेशीं प्रणिपत्य विसर्जयेत् । पूज्यात्र सैकती मूर्तिर्यद्वा द्विजसती शुभा ॥३५॥

सती स्त्री सखियों के साथ मनोविनोद करती हुई रात बिताये । किन्तु चारों पहर कभी भी आँख न मूँदे क्योंकि (उस समय) आँख मूँदने से नारी दुर्भगा, दीना तथा वन्ध्या होती है । इस प्रकार जागरण कर सप्तमी में प्रतिमा को नदी में प्रवाहित करने के लिये ले जाय । वहाँ भी गन्ध, पुष्प, गीत, वाद्य आदि से देवी की पूजा कर नैवेद्य आदि वस्तु उत्तम ब्राह्मण को प्रदान करे ॥२१-२३॥

स्नानोत्तर घर लौटने पर हवन तथा देव-पितरों का पूजन कर सधवा स्त्रियों, कुमारिकाओं तथा पन्द्रह ब्राह्मणों को अच्छी तरह भोजन कराकर प्रचुर दान दे । अन्त में 'ललिता देवी मेरे ऊपर प्रसन्न हों' यह कहकर उनको विदा करे । जो नर या नारी इस सौभाग्यदायक व्रत का अनुष्ठान करती है, उसका पुण्यफल सुनो ॥२४-२६½ ॥ नारद ! बहुत क्या कहा जाय ? तप, व्रत, दान या नियम करने से जो फल मिलता है, वह इससे प्राप्त होता है और मृत्यु के पश्चात् सनातन शिवलोक की प्राप्ति होती है । वहाँ वह व्रती मित्रभाव से ललिता देवी के साथ या शंकर के साथ चिरकाल तक आनन्द करता है । भादों के शुक्ल पक्ष की षष्ठी का नाम चन्दना है । उसमें देवी की अर्चना करने से सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥२७-२९½॥

उस दिन रोहिणी नक्षत्र यदि पात-भौम नामक योग से संयुक्त हो तो उस तिथि का नाम कपिल होता है । उसमें जो नियम-निष्ठापूर्वक दिनकर की आराधना करता है, उसकी समस्त कामनायें सूर्य की कृपा से सफल होती है । देवर्षिश्रेष्ठ ! कपिला तिथि में अन्नदान, जप, होम और देवता ऋषि तथा पितरों के तर्पण करने का फल अक्षय माना गया है । (उस तिथि में) सूर्य की तुष्टि के लिए वस्त्र, माला, चन्दन आदि से कपिलाधेनु की अर्चना कर वेदवेत्ता ब्राह्मण को सब वस्तुएँ समर्पित करनी चाहिये ॥३०-३३॥ द्विज ! आश्विन-शुक्ल-षष्ठी को गन्ध आदि, मांगलिक द्रव्य तथा विविध प्रकार के नैवेद्यों से कात्यायनी की पूजा कर क्षमा प्रार्थना करके प्रणाम

वस्त्रालंकरणैर्भव्यैः कात्यायिन्याः प्रतुष्टये । कन्यावरं प्राप्नुयाच्च वांछितं पुत्रमंगना ॥३६॥
कात्यायिनीप्रसादाद्धै नात्र कार्या विचारणा । कार्तिके शुक्लषष्ठ्यां तु षण्मुखेन महात्मना ॥३७॥
देवसेना महाभागा लब्धा सर्वसुरार्पिता । अतस्तस्यां सुरश्रेष्ठां देवसेनां च षण्मुखम् ॥३८॥
संपूज्य निखिलैरेव उपचारैर्मनोहरैः । प्राप्नुयादतुलां सिद्धिं मनोभीष्टां द्विजोत्तम ॥३९॥
अत्रैव वह्निपूजोक्तां तां च सम्यक्समाचरेत् । विविधद्रव्यहोमैश्च वह्निपूजापुरःसरम् ॥४०॥
मार्गशीर्षे शुक्लषष्ठ्यां निहतस्तारकासुरः । स्कंदेन सत्कृतिः प्राप्ता ब्रह्माद्यैः परिकल्पिता ॥४१॥
ततोऽस्यां पूजयेत्स्कंदं गंधपुष्पाक्षतैः फलैः । वस्त्रैराभूषणैश्चापि नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥४२॥
रविवारेण संयुक्ता तथा शतभिषान्विता । यदि चेत्सा समुद्दिष्टा चंपाह्वा मुनिसत्तम ॥४३॥
तस्यां विश्वेश्वरो देवो द्रष्टव्यः पापनाशनः । पूजनीयो वेदनीयः स्मर्तव्यः सौख्यमिच्छता ॥४४॥
स्नानदानादिकं चात्र सर्वमक्षय्यमुच्यते । पौषमासे शुक्लषष्ठ्यां देवो दिनपतिर्द्विज ॥४५॥
॥४६॥
विष्णुरूपी जगत्त्राता प्रदुर्भूतः सनातनः ।
स तस्मात्पूजनीयोऽस्यां द्रव्यैर्गन्धपुरस्कृतैः । नैवेद्यैर्वस्त्रभूषाद्यैः सर्वसौख्यमभीप्सुभिः ॥४७॥
माघमासे सिता षष्ठी वरुणाह्वा स्मृता तु सा । तस्यां वरुणमभ्यर्च्य विष्णुरूपं सनातनम् ॥४८॥
रक्तैर्गंधांशुकैः पुष्पैर्नैवेद्यैर्धूपदीपकैः । एवमभ्यर्च्य विधिवद्यद्यच्चाभिलषेन्नरः ॥४९॥
तत्तच्च फलतो लब्ध्वा मोदते तत्प्रसादतः । फाल्गुने शुक्लषष्ठ्यां तु देवं पशुपतिं द्विज ॥५०॥
मृन्मयं विधिना कृत्वा पूजयेदुपचारकैः । संस्नाप्य शतरुद्रेण पृथक्पंचामृतैर्जलैः ॥५१॥
गन्धैरालिप्य सुश्वेतैरक्षतैः श्वेतपुष्पकैः । बिल्वपत्रैश्च धत्तूरकुसुमैश्च फलैस्तथा ॥५२॥
संपूज्य नानानैवेद्यैर्नीराज्य विधिवत्ततः । क्षमाप्य प्रणिपत्यैनं कैलासाय विसर्जयेत् ॥५३॥

लिये सुन्दर वस्त्र-आभूषणों से मृत्तिका की मूर्ति या
कर विसर्जन करना चाहिए । कात्यायनी की तुष्टि के
ब्राह्मण की पतिव्रता स्त्री की पूजा करे । ऐसा करने से कन्या वर को और नारी पुत्र को प्राप्त करती है, इसमें
विचार करने की आवश्यकता नहीं । कार्तिक-शुक्ल-षष्ठी में महात्मा स्कंद को अमरों ने महाभाग्यवती देवसेना
अर्पित की थी । इसलिए मनोहर उपचारों से सुरश्रेष्ठ देवसेना तथा कार्तिकेय की पूजा करने से वांछित एवम्
अतुलनीय सिद्धि की प्राप्ति होती है । उस दिन विविध मांगलिक द्रव्य तथा हवन से अच्छी तरह अग्नि पूजा
भी करनी चाहिये ॥३४-४०॥

अगहन-शुक्ल-षष्ठी में स्कंद ने तारकासुर को निहत कर ब्रह्मा आदि देवों से सम्मान प्राप्त किया था । इस
लिए उस दिन गन्ध, पुष्प, अक्षत, फल, वस्त्र, आभूषण तथा विविध प्रकार के नैवेद्यों से उनकी पूजा करनी चाहिये ।
उसी तिथि में जब रविवार तथा शतभिषा नक्षत्र का योग था तब जगत्-रक्षक सनातन विष्णु अवतीर्ण हुए थे ।
इसलिये सब प्रकार के सुखों की अभिलाषा करने वाला व्यक्ति उक्त तिथि में गन्ध, मांगलिक द्रव्य नैवेद्य, वस्त्र
तथा आभूषणों से उनकी अर्चना करे ॥४१-४७॥ माघ मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि वारुणा कहलाती है ।
उसमें रक्त वस्त्र, गन्ध, पुष्प धूप, दीप नैवेद्य से सनातन विष्णु रूपी वरुण की विधिपूर्वक अर्चना करने से मानव
को अभिलषित फल की प्राप्ति होती है ॥४८-४९½॥ द्विज ! फाल्गुन-शुक्ल-षष्ठी में पशुपति देव की मृन्मय
प्रतिमा बनाकर उपचार पूर्वक पूजन करना चाहिए । शतरुद्री का पाठ करते हुए पंचामृत से उनका स्नपन कर
चन्दन लेप करके अक्षत, श्वेत पुष्प, बिल्वपत्र, धतूरे के कुसुम, फल, विविध नैवेद्य तथा नीराजन से विधिपूर्वक

एवं कृतशिवार्चस्तु नरो नार्यथवा मुने । इह भुक्त्वा वरान्भोगानन्ते शिवगतिं लभेत् ॥५४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थितषष्ठीव्रत-
निरूपणं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

सनातन उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि सप्तम्यास्ते व्रतान्यहम् । यानि कृत्वा नरो भक्त्या सूर्यसायुज्यमाप्नुयात् ॥१॥
चैत्रे तु शुक्लसप्तम्यां बहिः स्नानं समाचरेत् । स्थंडिले गोमयालिप्ते गौरमृत्तिकयास्तृते ॥२॥
लिखित्वाष्टदलं पद्मं कर्णिकायां विभावसुम् । विन्यसेत्पूर्वपत्रे तु देवौ द्वौ कृतधातुकौ ॥३॥
आग्नेयं च न्यसेत्पत्रे गंधर्वौ कृतकारकौ । दक्षिणे च न्यसेत्पत्रे तथैव राक्षसद्वयम् ॥४॥
आकृती द्वौ न्यसेत्पत्रे नैऋते मुनिसत्तम । काद्रवेयौ महानागौ पश्चिमे कृतचारकौ ॥५॥
वायव्ये यातुधानौ द्वौ उत्तरे च ऋषिद्वयम् । ऐशान्ये विन्यसेत्पत्रे ग्रहमेकं द्विजोत्तम ॥६॥
तेषां संपूजनं कार्यं गंधमाल्यानुलेपनैः । दीपैर्धूपैःसनैवेद्यैस्तांबूलक्रमुकादिभिः ॥७॥

अर्चना करे । अनन्तर क्षमा-प्रार्थना कर प्रणाम करके कैलाश के लिये उनका विसर्जन करे ॥५०-५३॥

मुने ! इस प्रकार शंकर की आराधना करने वाला नर अथवा नारी इह लोक में उत्तम भोगों को भोग कर अन्त में शिवगति को प्राप्त करते हैं ॥५४-५५।

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में द्वादशमासस्थितषष्ठीव्रतनिरूपण नामक एक सौ पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ॥११५॥

अध्याय ११६

बारह मासों का सप्तमी-व्रत

सनातन बोले--नारद ! सुनो, मैं सप्तमी तिथि के व्रतों को बता देता हूँ, जिनके आचरण से मनुष्य सूर्यसायुज्यमोक्ष को प्राप्त करता है । चैत्र-शुक्लकी सप्तमी में बाहर (नदी आदि में) स्नान कर भूमि को गोबर, तथा स्वच्छ मिट्टी से लीपे । उस पर अष्टदल कमल लिखकर उसकी कर्णिका के ऊपर सूर्य, पूर्वाभिमुख पत्र पर दो धातुनिर्मित देवों, आग्नेयाभिमुख पत्र पर दो यज्ञसाधक गन्धर्वों, दक्षिणाभिमुख पत्र पर दो राक्षसों, नैऋता-भिमुख पत्र पर दो आकृतियों, पश्चिमाभिमुख पत्र पर दो कद्रू-पुत्र महानागों वायव्याभिमुख पत्र पर दो यातुधानों, उत्तराभिमुख पत्र पर दो ऋषियों और ईशानाभिमुख पत्र पर एक ग्रह को स्थापित करे । द्विजवर्य ! गन्ध, माला, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, सुपारी पान आदि वस्तुओं से उसकी पूजा करे ॥१—७॥

एवं संपूज्य होमं तु घृतेनाष्टशतं चरेत् । सूर्यस्याष्टाष्ट चान्येषां प्रदद्यादाहुतीः क्रमात् ॥८॥
नाममंत्रेण वेद्यां वा ततः पूर्णाहुतिं ददेत् । दक्षिणा च ततो देया द्विजेभ्यः शक्तितो द्विज ॥९॥
एतत्कृत्वा विधानं तु सर्वसौख्यमवाप्नुयात् । देहांते मण्डलं भानोर्भित्त्वा गच्छेत्परं पदम् ॥१०॥
वैशाखशुक्लसप्तम्यां जह्नुना जाह्नवी स्वयम् । क्रोधात्पीता पुनस्त्यक्ता कर्णरंध्रात्तु दक्षिणात् ॥११॥
तां तत्र पूजयेत्स्नात्वा प्रत्यूषे विमले जले । गंधपुष्पाक्षताद्यैश्च सर्वैरेवोपचारकैः ॥१२॥
ततो घटसहस्रं तु देयं गंगाव्रते त्विदम् । अपरथा कृतं सप्तकुलं नयेत्स्वर्गमसंशयः ॥१३॥
कमलव्रतमप्यत्र प्रोक्तं तद्विधिरुच्यते । तिलपात्रं तु सौवर्णं निधाय कमलं शुभम् ॥१४॥
वस्त्रयुग्मावृतं कृत्वा गंधधूपादिनार्चयेत् । नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे ॥१५॥
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते । इति संप्रार्थ्य देवेशं सूर्ये चास्तमुपागते ॥१६॥
सोदकुंभं तु तत्पद्मं कपिलां च द्विजेऽर्पयेत् । तद्दिने तूपवस्तव्यं भोक्तव्यं च परेऽहनि ॥१७॥
संभोज्य ब्राह्मणान्भक्त्या व्रतसाकल्यमाप्नुयात् । निंबव्रतं च तत्रैव तद्विधानं शृणुष्व मे ॥१८॥
निंबपत्रैः स्मृता पूजा भास्करस्य द्विजोत्तम । खखोल्कायेति मंत्रेण प्रणवाद्येन नारद ॥१९॥
निंबपत्रं ततोऽश्नीयाच्छयेद्भूमौ च वाग्यतः । द्विजान्परेऽह्नि संभोज्य स्वयं भुञ्जीत बंधुभिः ॥२०॥
निंबपत्रव्रतं चैतत्कर्तॄणां सर्वसौख्यदम् । सप्तमी शर्कराख्यैषा प्रोक्ता तच्चापि मे शृणु ॥२१॥
अमृतं पिबतो हस्तात्सूर्यस्यामृतबिंदवः । निष्पेतुर्भुवि चोत्पन्नाः शालिमुद्गयवेक्षवः ॥२२॥
शर्करा च ततस्तस्मादिक्षुसारामृतोपमा । इष्टा रवेरतः पुण्या शर्करा हव्यकव्ययोः ॥२३॥

सूर्य तथा अन्यों को भी क्रमशः आठ-आठ आहुतियाँ
पूजनोपरान्त घृत से एक सौ आठ बार हवन करे । विधिपूर्वक ऐसा करने से
दे । पश्चात् नाम मन्त्र से वेदी में पूर्णाहुति देकर द्विजों को शक्त्यनुसार दक्षिणा दे । परम पद को प्राप्त
समस्त सुखों की प्राप्ति होती है और देहान्त होने पर वह जीव सूर्यमण्डल का भेदन कर पुनः अपने दाहिने
करता है ॥९-१०॥ वैशाख-शुक्ल-सप्तमी में स्वयम् जह्नु ने क्रोध के मारे जाह्नवी को पीकर अक्षत आदि उपचारों
कान के छिद्र से निकाल दिया । उस दिन गंगा के विमल जल में स्नान कर गन्ध, पुष्प, सात कुल
से उनकी पूजा करनी चाहिये । अनन्तर एक हजार घटदान करना चाहिये । इस गंगाव्रत के करने से तिल
तक स्वर्ग की प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं । उस दिन कमलव्रत किया जाता है । उसका विधान सुनो । अर्चना करे ।
से भरे हुए पात्र में सुवर्णमय सुन्दर कमल रखकर उसे दो वस्त्रों से ढककर गन्ध, धूप आदि से आपको नमस्कार है ।
पश्चात् "पद्महस्त ! आपको नमस्कार है । विश्वधारिन् ! आपको नमस्कार है । दिवाकर ! घट सहित वह
प्रभाकर ! आपको नमस्कार है ।" इस प्रकार देवेश की प्रार्थना कर सूर्यास्त होने पर जलपूर्ण ॥११-१७॥
कमल और कपिलधेनु द्विज को समर्पित कर दे । उस दिन उपवास कर दूसरे दिन भोजन करना चाहिये भी कर सकते
भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराने से व्रत की पूर्णता होती है । उस तिथि को निंबव्रत निंबपत्रों से
हैं । उसको विधि सुनो, विप्रवर्य ! प्रणव आदि में जोड़कर "खखोल्काय" इस मन्त्र को पढ़ते हुए दिन विप्रों
भास्कर की पूजा करे । तदनन्तर नीम के पत्ते को खाकर वाक्संयमपूर्वक भूमि पर शयन करे । दूसरे प्रदान
को खिलाकर बन्धुओं के साथ स्वयं भी भोजन करे ॥१८-२०॥ यह निंबव्रत भी कर्त्ताओं को सर्वसौख्य से
करता है । इस सप्तमी का नाम शर्करा है । उसके बारे में भी सुन लो । अमृत-पान करते हुये सूर्य की रश्मि से अमृतो-
अमृत की बूंदें टपक कर भूमि पर गिर पड़ीं । उनसे चावल, मूंग, यव और ईख की उत्पत्ति हुई । ईख से

शर्करासप्तमी चैव वाजिमेधफलप्रदा । सर्वदुःखोपशमनी पुत्रसंततिवर्धिनी ॥२४॥
अस्यां तु शर्करादानं शर्कराभोजनं तथा । कर्तव्यं हि प्रयत्नेन व्रतमेतद्रविप्रियम् ॥२५॥
यः कुर्यात्परया भक्त्या स वै सद्गतिमाप्नुयात् । ज्येष्ठे तु शुक्लसप्तम्यां जात इंद्रो रविः स्वयम् ॥२६॥
तं संपूज्य विधानेन सोपवासो जितेंद्रियः । स्वर्गतिं लभते विप्र देवेंद्रस्य प्रसादतः ॥२७॥
आषाढशुक्लसप्तम्यां विवस्वान्नाम भास्करः । जातस्तं तत्र संप्रार्च्य गन्धपुष्पादिभिः पृथक् ॥२८॥
लभते सूर्यसायुज्यं विप्रेंद्रात्र न संशयः । श्रावणे शुक्लसप्तम्यामव्यंगाख्यं व्रतं शुभम् ॥२९॥
कार्पासं तु चतुर्हस्तं सार्द्धं वस्त्रं हि गोपतेः । पूजांते प्रीतये देयं व्रतमेतच्छुभावहम् ॥३०॥
यदि चेद्धस्तयुक्तेयं तदा स्यात्पापनाशिनी । अस्यां दानं जपो होमः सर्वं चाक्षय्यतां व्रजेत् ॥३१॥
भाद्रे तु शुक्लसप्तम्याममुक्ताभरणव्रतम् । सोमस्य तु महेशस्य पूजनं चात्र कीर्तितम् ॥३२॥
गंगादिभिः षोडशभिरुपचारैः समर्चनम् । प्रार्थ्य प्रणम्य विसृजेत्सर्वकामसमृद्धये ॥३३॥
फलसप्तमिका चेयं तद्विधानमुदीर्यते । नालिकेरं च वृंताकं नारंगं बीजपूरकम् ॥३४॥
कूष्मांडं बृहतीपूगमिति सप्त फलानि वै । महादेवस्य पुरतो विन्यस्यापरदोरकम् ॥३५॥
सप्ततन्तुकृतं सप्तग्रंथियुक्तं द्विजोत्तम । संपूज्य परया भक्त्या धारयेद्वामके करे ॥३६॥
स्त्री नरो दक्षिणे चैव यावद्वर्षं समाप्यते । संभोज्य विप्रान्सप्तैव पायसेन विसृज्य तान् ॥३७॥
स्वयं भुंजीत मतिमान्व्रतसंपूर्तिहेतवे । फलानि तानि देयानि सप्तस्वपि द्विजेषु च ॥३८॥

पम शक्कर उत्पन्न हुआ। इसलिये शक्कर सूर्य को पसन्द है और हव्य-कव्य के लिये यह प्रशस्त माना जाता है॥२१-२३॥ शर्करा सप्तमी अश्वमेध के बराबर फल को देने वाली है। इससे समस्त दुःखों का नाश और पुत्र-संतानों की वृद्धि होती है। उस तिथि में शक्कर का दान और भोजन करना चाहिये। यह रविप्रिय व्रत यत्नपूर्वक करना चाहिये। जो व्यक्ति परम भक्ति से इस व्रत को करता है, उसकी सद्गति होती है॥२४-२५½॥

ज्येष्ठ-शुक्ल-सप्तमी में प्रभु भास्कर स्वयम् उत्पन्न हुए थे। इसलिए उस तिथि में इन्द्रिय-संयम और उपवास करते हुए दिनकर की अर्चना करने से उनकी कृपा से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। आषाढ़-शुक्ल-सप्तमी में विवस्वान् नामक सूर्य उत्पन्न हुए थे। विप्रेन्द्र! उस दिन गंध, पुष्प आदि से उनकी पूजा करने से सूर्यसायुज्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। श्रावण-शुक्ल-सप्तमी में पवित्र अव्यंग-व्रत करना चाहिये॥२६-२९॥ उस दिन सूर्य की पूजा कर साढ़े चार हाथ का वस्त्र भानुप्रीत्यर्थ दान करे। यह व्रत शुभदायक है। यदि वह तिथि हस्त नक्षत्र से संयुक्त हो तो वह पापनाशिनी होती है। उसमें किये गये दान, जप, होम सब कुछ अक्षय हो जाते हैं। भाद्र-शुक्ल-सप्तमी में अमुक्ताभरणव्रत किया जाता है। उसमें सोम तथा महेश की पूजा करनी चाहिये॥३०-३२॥ गंगाजल आदि सोलह उपचारों से पूजन कर प्रार्थना एवम् प्रणाम करके सकल कामनाओं की सिद्धि के लिये विसर्जन करे। यह तिथि फलसप्तमिका भी कहलाती है। इसका विधान सुनो—नारियल, बैंगन, सन्तरा, बिजौरा, नींबू, कुम्हड़ा, छोटा बैंगन और सुपारी—इन सात फलों को महादेव के आगे रख कर ॥३३-३६॥ सात तंतुओं एवम् सात गाँठियों से युक्त डोरे का पूजन करके परम भक्ति से बायें हाथ में बाँध ले। बुद्धिमान् स्त्री बायें हाथ में और पुरुष दाहिने हाथ में एक वर्ष तक उस डोरे को बाँधे रहे। व्रतपूर्ति के लिये बुद्धिमान् व्यक्ति सात ब्राह्मणों को खीर खिला कर स्वयं भोजन करे। तत्पश्चात् सातों फलों को सात ब्राह्मणों को दान करे।

एवं तु सप्त वर्षाणि कृत्वोपास्य यथाविधि । सायुज्यं लभते विप्र महादेवस्य तद्व्रती ॥३९॥
आश्विने शुक्लपक्षे तु विज्ञया शुभसप्तमी । तस्यां कृतस्नानपूजो वाचयित्वा द्विजोत्तमान् ॥४०॥
आरभ्य कापिलां गां च संपूज्य प्रार्थयेत्ततः । त्वामहं ददामि कल्याणि प्रीयतामर्यमा स्वयम् ॥४१॥
पालय त्वं जगत्कृत्स्नं यतोऽसि धर्मसम्भवा । इत्युक्त्वा वेदविदुषे दत्त्वा कृत्वा च दक्षिणाम् ॥४२॥
नमस्कृत्य स्वयं विप्र विसर्जेत्प्राशयेत्स्वयम् । पंचगव्यं व्रतं चेत्थं विधाय श्वो द्विजोत्तमान् ॥४३॥
भोजयित्वा स्वयं चाद्यात्तदन्नं द्विजशेषितम् । कृतं ह्येतद्व्रतं विप्र सुभाव्यं श्रद्धयान्वितः ॥४४॥
देवदेवप्रसादेन भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । अथ कार्तिकशुक्लायां शाकाख्यं सप्तमीव्रतम् ॥४५॥
तस्यां तु सप्तशाकानि सस्वर्णकमलानि च । प्रदद्यात्सप्तविप्रेभ्यः शाकाहारस्ततः स्वयम् ॥४६॥
द्वितीयेऽह्नि द्विजान्भोज्य दत्त्वा तेभ्योऽन्नदक्षिणाम् । विसृज्य बंधुभिः सार्द्धं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥४७॥
मार्गस्य सितसप्तम्यां मित्रव्रतमुदाहृतम् । यद्विष्णोर्दक्षिणं नेत्रं तदेव कृतवानिह ॥४८॥
अदित्यां कश्यपाज्जज्ञे मित्रो नामा दिवाकरः । अतोऽस्यां पूजनं तस्य यथोक्तविधिना द्विज ॥४९॥
कृत्वा द्विजान्भोजयित्वा सप्तैव मधुरादिना । सुवर्णदक्षिणां दत्त्वा विसृज्याश्नीत च स्वयम् ॥५०॥
कृत्वैतद्विधिना लोकं सूर्यस्य व्रजति ध्रुवम् । द्विजो ब्राह्मे तथा शूद्रः सत्कुले जन्म चाप्नुयात् ॥५१॥
पौषस्य शुक्लसप्तम्यां व्रतं चाभयसंज्ञितम् । उपोष्य भानु त्रिःसन्ध्यं समभ्यर्च्य धरास्थितः ॥५२॥
क्षीरसिक्तान्नसंबद्धं मोदकं प्रस्थसंमितम् । द्विजाय दत्त्वा भोज्यान्यात्सप्ताष्टभ्यश्च दक्षिणाम् ॥५३॥

विप्र ! इस प्रकार सात वर्षों तक विधिवत् इस व्रत की आराधना करने से व्रती को शिव-सायुज्य-मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥३७-३९॥

आश्विन-शुक्लपक्ष की सप्तमी बहुत उत्तम है। उसमें स्नान-पूजा कर उत्तम द्विजों को आमंत्रित करे। फिर कपिला गौ की पूजा कर उससे यह प्रार्थना करे—"कल्याणि ! मैं तुम्हें दे रहा हूँ, स्वयम् अर्यमा देव प्रसन्न हों। तुम जगत् का पालन करो; क्योंकि तुम धर्म से उत्पन्न हुई हो।" इतना कहकर वेदवेत्ता को दक्षिणापूर्वक उसे समर्पित कर नमस्कार करके विदा करे। पश्चात् स्वयं भोजन करे। दूसरे दिन उसी तरह पंचगव्यव्रत करना चाहिये ॥४०-४३॥ ब्राह्मणों को खिला कर उनसे बचे अन्न को स्वयं भोजन करे। विप्र ! जो श्रद्धापूर्वक इस व्रत को करता है, वह देवदेव की कृपा से मुक्ति-भुक्ति को प्राप्त करता है। कार्तिक-शुक्ल में शाक नामक सप्तमीव्रत किया जाता है। उस दिन स्वर्णकमल सहित सात प्रकार के शाक सात विप्रों को देकर व्रती स्वयं शाकाहारी हो। दूसरे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें अन्न-दक्षिणा दे, पश्चात् भाई-बंधुओं के साथ मौन होकर स्वयं भोजन करे ॥४४-४७॥

अगहन-शुक्ल-सप्तमी में मित्रव्रत कहा गया है। विष्णु का जो दाहिना नेत्र है, वही साकार होकर कश्यप के तेज और अदिति के गर्भ से मित्र नामक दिवाकर के रूप में उत्पन्न हुआ है। द्विज ! इसलिये उस तिथि में विधिपूर्वक भास्कर की पूजा करनी चाहिये। पश्चात् सात ब्राह्मणों को मधुर आदि भोजन कराकर [illegible] को दक्षिणापूर्वक विदा करके स्वयं भी भोजन करे। विधिवत् इस व्रत को करने से मनुष्य निःसंदेह सूर्य-लोक को प्राप्त करता है और द्विज ब्राह्मणकुल में तथा शूद्र सत्कुल में जन्म लेता है ॥४८-५२॥

पौष-शुक्ल-सप्तमी में अभयव्रत करना चाहिये। उस दिन उपवास करते हुए तीनों संध्या सूर्य की अर्चना करे। पश्चात् सात-आठ ब्राह्मणों को दूध और अन्न के योग से बने हुए मधुर [illegible]

पृथ्वीं वा सुवर्णं वा विसृज्याश्नीत च स्वयम् । अभयाख्यं व्रतं त्वेतत्सर्वस्याभयदं स्मृतम् ॥५४॥
मातंडाख्यं व्रतं नाम कथयंति द्विजाः परे । एकमेवेति च प्रोक्तमेकदैवतया बुधैः ॥५५॥
माघे तु कृष्णसप्तम्यां व्रतं सर्वाप्तिसंज्ञकम् । समुपोष्य दिने तस्मिन्संपूज्यादित्यबिम्बकम् ॥५६॥
सौवर्णं गंधपुष्पाद्यैः कृत्वा रात्रौ च जागरम् । परेऽह्नि विप्रान्संभोज्य पायसेन तु सप्त वै ॥५७॥
दक्षिणां नालिकेराणि तेभ्यो दत्त्वा गुरुं ततः । सौवर्णं तु रवेर्बिम्बं युक्तं दक्षिणयान्यया ॥५८॥
समर्प्य च भृशं प्रार्थ्य विसृज्याद्यात्स्वयं ततः । एतत्सर्वाप्तिदं नाम संप्रोक्तं सार्वकामिकम् ॥५९॥
व्रतस्यास्य प्रभावेण द्वैतं सिध्येद्धि सर्वथा । माघस्य शुक्लसप्तम्यामचलाख्यं व्रतं स्मृतम् ॥६०॥
त्रिलोचनजयंतीयं सर्वपापहरा स्मृता । रथाख्या सप्तमी चेयं चक्रवर्तित्वदायिनी ॥६१॥

अस्यां समर्च्य सवितुः प्रतिमां तु हैमीं,
हैमाश्वयुक्तरथगां तु ददेत्सहेमाम् ॥
यो भावभक्तिसहितः स गतो हि लोकं, ॥६२॥
शम्भोः स मोदत इहापि च भुक्तभोगः

भास्करी सप्तमी चेयं कोटिभास्वद्ग्रहोपमा । अरुणोदयवेलायामस्यां स्नानं विधीयते ॥६३॥
अर्कस्य च बदर्याश्च सप्त सप्त दलानि वै । निधाय शिरसि स्नायात्सप्तजन्माघशांतये ॥६४॥
पुत्रप्रदं व्रतं चात्र प्राहादित्यः स्वयं प्रभुः । यो माघसितसप्तम्यां पूजयेन्मां विधानतः ॥६५॥
तस्याहं पुत्रतां यास्ये स्वांशेन भृशतोषितः । तस्माज्जितेंद्रियो भूत्वा समुपोष्य दिवानिशम् ॥६६॥
पूजयेदपरे चाह्नि होमं कृत्वा द्विजांस्ततः । दध्योदनेन पयसा पायसेन च भोजयेत् ॥६७॥
अनेन विधिना यस्तु कुरुते पुत्रसप्तमीम् । लभते स तु सत्पुत्रं चिरायुषमनामयम् ॥६८॥

दक्षिणा देकर बिदा करे। अनन्तर स्वयं भोजन करना चाहिये। यह अभयव्रत सबको अभयदान देता है। कुछ विद्वान् ब्राह्मणों का कहना है कि उस दिन एक मार्तंडव्रत ही किया जाता है, जिसके एक ही देवता हैं। माघ-कृष्ण-सप्तमी में सर्वाप्तिसंज्ञक व्रत करना चाहिये ॥५२-५५½॥ उस दिन उपवास करते हुए गंध, पुष्प आदि से स्वर्णमयी सूर्यप्रतिमा की पूजा कर रात्रि में जागरण करे। दूसरे दिन सात ब्राह्मणों को पायस-भोजन कराकर उन्हें नारियल-दक्षिणा दे। पश्चात् गुरु को वह सूर्यप्रतिमा तथा अन्य दक्षिणा भी देकर प्रार्थनापूर्वक बिदा करके स्वयं भोजन करे। यह सर्वाप्तिव्रत समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला है। इस व्रत के प्रभाव से सर्वथा द्वैतसिद्धि होती है ॥५६-५९½॥ माघ शुक्ल-सप्तमी में अचलव्रत करना चाहिये। यह सप्तमी त्रिलोचनजयंती नाम से प्रसिद्ध है, जो सकल पापों का नाश करने वाली है। यह रथसप्तमी भी कहलाती है, जो चक्रवर्तित्व देने वाली है। उस तिथि में जो व्यक्ति भक्ति-भाव से सुवर्ण के अश्व से युक्त रथ पर अवस्थित सूर्य की स्वर्णमयी प्रतिमा का पूजन कर ब्राह्मण को समर्पित करता है, वह इस लोक में समस्त भोगों को भोग कर शिवलोक को जाता है तथा वहीं आनन्द करता है। यह सप्तमी भास्करी सप्तमी कहलाती है, जो करोड़ों देदीप्यमान ग्रहों के तुल्य है ॥६०-६२½॥

इस तिथि को अरुणोदयवेला में स्नान करना चाहिये। सात जन्मों के पाप के नाश के लिये आक तथा बेर के सात-सात पत्तों को सिर पर रख कर स्नान करे। स्वयं प्रभु आदित्य ने कहा है कि यह व्रत पुत्रदायक है। जो व्यक्ति माघ-शुक्ल-सप्तमी में विधिपूर्वक मेरा पूजन करता है, उसके ऊपर मैं अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने अंश से उसका पुत्र होता हूँ। इसलिये इंद्रिय-संयमपूर्वक अहोरात्र उपवास करके भास्कर की अर्चना करे और दूसरे दिन हवन करके ब्राह्मणों को दही-भात तथा खीर खिलाये। इस विधि से जो पुत्रसप्तमीव्रत करता है,

तपस्यशुक्लसप्तम्यां व्रतमर्कपुटं चरेत् । अर्कपत्रैर्यजेदर्कमर्कपत्राणि चाश्नुयात् ॥६९॥
अर्कनाम जपेच्छश्वदित्थं चार्कपुटव्रतम् । धनदं पुत्रदं चैतत्सर्वपापप्रणाशनम् ॥७०॥
त्रिवर्गदमिति प्राहुः केचिदेतद्व्रतं द्विज । यज्ञव्रतं तथाप्यन्ये विधिवद्धोमकर्मणा ॥७१॥
सर्वासु सर्वमासेषु सप्तमीषु द्विजोत्तमः । भास्कराराधनं प्रोक्तं सार्वकामिकमित्यलम् ॥७२॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थितसप्तमीव्रतनिरूपणं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११६॥

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

सनातन उवाच

शुक्लाष्टम्यां चैत्रमासे भवान्याः प्रोच्यते जनिः । प्रदक्षिणशतं कृत्वा कार्यो यात्रामहोत्सवः ॥१॥
दर्शनं जगदम्बायाः सर्वानंदप्रदं नृणाम् । अत्रैवाशोककलिकाप्राशनं समुदाहृतम् ॥२॥
अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबंति पुनर्वसौ । चैत्रे मासि सिताष्टम्यां नतेशोकमवाप्नुयुः ॥३॥
महाष्टमीति च प्रोक्ता देव्याः पूजाविधानतः । वैशाखस्य सिताष्टम्यां समुपोष्यात्र वारिणा ॥४॥

उसके दीर्घायु तथा नीरोग पुत्र उत्पन्न होता है ॥६३-६८॥ फाल्गुन-शुक्ल सप्तमी में अर्कपुटव्रत करना चाहिये। उस दिन आक के पत्तों से सूर्य की पूजाकर आक के पत्तों को ही खाये और निरन्तर रूप से सूर्य-नाम का जप करे। इस प्रकार किया जाने वाला अर्कपुटव्रत धन तथा पुत्र को देने वाला और पाप का नाश करने वाला है। द्विज! कोई तो इस व्रत को त्रिवर्गदायक कहते हैं और कोई यज्ञव्रत। द्विजश्रेष्ठ! सब मासों की समस्त सप्तमियों में विधिपूर्वक हवन करके भास्कर की आराधना करने से सकल कामनायें पूर्ण होती हैं ॥६९-७२॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में द्वादश मास स्थित सप्तमीव्रत निरूपण नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥११६॥

अध्याय ११७

बारह मासों का अष्टमी-व्रत

सनातन बोले—चैत्रमास की शुक्लाष्टमी में पार्वती का जन्म हुआ था। उस दिन सौ बार प्रदक्षिणा करके यात्रामहोत्सव करना चाहिये ॥१॥ जो ऐसा करता है, उसे जगदम्बा की कृपा से सब प्रकार के आनन्द प्राप्त होते हैं। उसी दिन अशोक की कलियाँ भी खानी चाहिये। जो व्यक्ति पुनर्वसुनक्षत्र से युक्त चैत्र-शुक्ल-अष्टमी में अशोक की आठ कलियों को खाता है, उसे शोक कभी नहीं होता। उसको महाष्टमी भी कहते हैं, जिसमें देवी का विधानपूर्वक पूजन किया जाता है। वैशाख-शुक्ल-अष्टमी में उपवास करते हुए शुद्ध जल से

स्नात्वापराजितां देवीं मांसीबालकवारिभिः । स्नापयित्वार्च्य गन्धाद्यैर्नैवेद्यं शर्करामयम् ॥५॥
कुमारीर्भोजयेच्चापि नवम्यां पारणाव्रतः । ज्योतिर्मयविमानेन भ्राजमानो यथा रविः ॥६॥
लोकेषु विचरेद्विप्र देव्याश्चैव प्रसादतः । कृष्णाष्टम्यां ज्येष्ठमासे पूजयित्वा त्रिलोचनम् ॥७॥
शिवलोके वसेत्कल्पं सर्वदेवनमस्कृतः । ज्येष्ठशुक्ले तथाष्टम्यां यो देवीं पूजयेन्नरः ॥८॥
स विमानेन चरति गन्धर्वाप्सरसां गणैः । शुक्लाष्टम्यां तथाऽऽषाढे स्नात्वा चैवं निशांबुना ॥९॥
तेनैव स्नापयेद्देवीं पूजयेच्च विधानतः । ततः शुद्धजलैः स्नाप्य विलिपेत्सेंदुचंदनैः ॥१०॥
नैवेद्यं शर्करोपेतं दत्त्वाऽऽचमनमर्पयेत् । भोजयित्वा ततो विप्रान्दत्त्वा स्वर्णं च दक्षिणाम् ॥११॥
विसृज्य च ततः पश्चात्स्वयं भुंजीत वाग्यतः । एतद्व्रतं नरः कृत्वा देवीलोकमवाप्नुयात् ॥१२॥
नभःशुक्ले तथाष्टम्यां देवीमिष्ट्वा विधानतः । क्षीरेण स्नापयित्वा च मिष्टान्नं विनिवेदयेत् ॥१३॥
ततो द्विजान् भोजयित्वा परेऽह्नि स्वयमप्युत । भुक्त्वा समापयेदेतद्व्रतं संततिवर्धनम् ॥१४॥
नभोमासे सिताष्टम्यां दशाफलमिति व्रतम् । उपवासं तु संकल्प्य स्नात्वा कृत्वा च नैत्यिकम् ॥१५॥
तुलस्याः कृष्णवर्णाया दलैर्दशभिरर्चयेत् । कृष्णं विष्णुं तथाऽनन्तं गोविन्दं गरुडध्वजम् ॥१६॥
दामोदरं हृषीकेशं पद्मनाभं हरिं प्रभुम् । एतैश्च नामभिर्नित्यं कृष्णदेवं समर्चयेत् ॥१७॥
नमस्कारं ततः कुर्यात्प्रदक्षिणसमन्वितम् । एवं दशदिनं कुर्याद्व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥१८॥
आदौ मध्ये तथा चांते होमं कुर्याद्विधानतः । कृष्णमंत्रेण जुहुयाच्चरुणाऽष्टोत्तरं शतम् ॥१९॥

स्नान कर अभिनव जटामासी के रस से अपराजिता देवी का स्नपन करके गंध आदि से पूजन करे और शक्कर नैवेद्य चढ़ाये। नवमी में कुमारिका को भोजन कराकर स्वयं पारणा करे ॥२-५½॥ विप्र! ऐसा करने वाला व्यक्ति देवी की कृपा से ज्योतिर्मय विमान पर सूर्य की तरह चमकता हुए तीनों लोक में विचरण करता है। ज्येष्ठ मास की कृष्णाष्टमी में शंकर की पूजा करने वाला मनुष्य सर्वदेववंद्य होकर एक कल्प तक शिवलोक में वास करता है। ज्येष्ठ-शुक्ल-अष्टमी में जो नर देवी की अर्चना करता है, वह गंधर्वों तथा अप्सराओं के साथ विमान से विचरण करता है ॥६-८½॥

आषाढ़-शुक्ल-अष्टमी में निशांबु (रात को ही रखे जल) से स्नान कर उसी जल से देवी का स्नपन कर विधिपूर्वक पूजा करे। तदनन्तर शुद्ध जल से पुनः स्नपन कर कर्पूर तथा चंदन का लेप करे, शक्कर का नैवेद्य चढ़ाकर आचमनीय दे और ब्राह्मणों को भोजन कराकर सुवर्ण दक्षिणा देकर विदा करे। पश्चात् मौन होकर स्वयं भोजन करे। इस व्रत के करने से देवीलोक की प्राप्ति होती है ॥९-१२॥ श्रावण-शुक्ल-अष्टमी में विधानपूर्वक अंबा देवी की अर्चना कर दूध से स्नपन करके मिष्टान्न भोग लगाये। दूसरे दिन ब्राह्मणों को खिलाकर स्वयं भोजन करे। इस तरह व्रत संपन्न करने से संतान की वृद्धि होती है। भादों की कृष्णाष्टमी में दशाफल नामक व्रत करना चाहिये ॥१३-१४½॥ उस दिन उपवास करने का संकल्प कर नित्य स्नान आदि करके श्याम-तुलसी के दश पत्रों से कृष्णदेव के कृष्ण विष्णु, अनन्त, गोविन्द, गरुडध्वज, दामोदर, हृषीकेश, पद्मनाभ, हरि तथा प्रभु—इन नामों को पूजा करे। अनन्तर प्रदक्षिणा करके नमस्कार करे। इस प्रकार दश दिनों तक इस उत्तम व्रत को करना चाहिये। आदि, मध्य और अन्त में कृष्णमंत्र को पढ़ते हुए चरु से एक सौ आठ बार विधिपूर्वक हवन करे। होमांत में विद्वान् व्यक्ति सम्यक् प्रकार से आचार्य का पूजन करे ॥१५-१९½॥

होमांते विधिना सम्यगाचार्यं पूजयेत्सुधीः । सौवर्णे ताम्रपात्रे वा मृन्मये वेणुपात्रके ॥२०॥
तुलसीदलं सुवर्णेन कारयित्वा सुलक्षणम् । हैमीं च प्रतिमां कृत्वा पूजयित्वा विधानतः ॥२१॥
निधाय प्रतिमां पात्रे ह्याचार्याय निवेदयेत् । दातव्या गौः सवत्सा च वस्त्रालंकारभूषिता ॥२२॥
दशाहं कृष्णदेवाय पूरिका दश चार्पयेत् । ताश्च दद्याद्द्विजाय स्वयं वा भक्षयेद्व्रती ॥२३॥
शयनं च प्रदातव्यं यथाशक्ति द्विजोत्तम । दशमेऽह्नि ततो मूर्तिं सद्रव्यां गुरवेऽर्पयेत् ॥२४॥
व्रतांते दशविप्रेभ्यः प्रत्येकं दश पूरिकाः । दद्यादेवं दशाब्दं तु कृत्वा व्रतमनुत्तमम् ॥२५॥
उपोष्य विधिना भूयात्सर्वकामसमन्वितः । अंते कृष्णस्य सायुज्यं लभते नात्र संशयः ॥२६॥
कृष्णजन्माष्टमी चेयं स्मृता पापहरा नृणाम् । केवलेनोपवासेन तस्मिञ्जन्मदिने हरेः ॥२७॥
सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः । उपवासी तिलैः स्नातो नद्यादौ विमले जले ॥२८॥
सुदेशे मंडपे क्लृप्ते मंडलं रचयेत्सुधीः । तन्मध्ये कलशं स्थाप्य ताम्रजं वापि मृन्मयम् ॥२९॥
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं ताम्रं तस्योपरि स्थिताम् । हैमीं वस्त्रयुगाच्छन्नां कृष्णस्य प्रतिमां शुभाम् ॥३०॥
पाद्याद्यैरुपचारैस्तु पूजयेत्स्निग्धमानसः । देवकीं वसुदेवं च यशोदां नंदमेव च ॥३१॥
व्रजं गोपांस्तथा गोपीर्गाश्च दिक्षु समर्चयेत् । तत आरातिकं कृत्वा क्षमाप्यानम्य भक्तितः ॥३२॥
तिष्ठेत्तथैवार्द्धरात्रे पुनः संस्नापयेद्धरिम् । पंचामृतैः शुद्धजलैर्गंधाद्यैः पूजयेत्पुनः ॥३३॥
धान्याकं च यवानीं च शुंठीं खंडं च नारद । साज्यं रौप्ये धृतं पात्रे नैवेद्यं विनिवेदयेत् ॥३४॥
पुनरारार्तिकं कृत्वा दशधा रूपधारिणम् । विचिंतयन्मृगांकाय दद्यादर्घ्यं समुद्यते ॥३५॥

ताँबे या मिट्टी या बांस के पात्र में सुवर्ण के मनोहर तुलसीदल से सुवर्णमयी प्रतिमा की विधिपूर्वक पूजा कर आचार्य को आमंत्रित करके वस्त्र तथा अलंकारों से विभूषित सवत्सा गौ उन्हें प्रदान करे ॥२०-२२॥

कृष्णदेव को दश पूरियाँ चढ़ाकर किसी विद्वान् को दे दे या स्वयं भक्षण करे। द्विजवर्य ! यथा-शक्ति शय्यादान भी करना चाहिये। दशवें दिन द्रव्य सहित वह मूर्ति गुरु को अर्पित करे। व्रतांत में दश विप्रों को दश-दश पूरियाँ समर्पित करनी चाहिये। इस प्रकार दश वर्षों तक उपवास करके विधिपूर्वक इस व्रत को संपन्न करने से सकल कामनायें पूर्ण होती हैं। अंत में कृष्णसायुज्यमोक्ष मिलता है, इसमें संशय नहीं ॥२३-२६॥ यह कृष्णाष्टमी मनुष्यों के पाप को नष्ट करने वाली है। इस दिन केवल उपवास करने से सात जन्मों का पाप नष्ट हो जाता है, इसमें संदेह करने की आवश्यकता नहीं। उपवासी जन तिल का तेल लगाकर नदी आदि के विमल जल में स्नान करे। तदनन्तर सुन्दर प्रदेश में बनाये हुए मंडप में मंडल की रचना करे। उसके मध्य में ताँबे या मिट्टी के कलश की स्थापना कर उसके ऊपर ताँबे के पात्र में कृष्ण की मनोहर स्वर्ण प्रतिमा को स्थापित करे ॥२७-३०॥

उस मूर्ति को एक जोड़े वस्त्र से ढक कर पाद्य आदि उपचारों से श्रद्धापूर्वक पूजन करे। पश्चात् सब दिशाओं में देवकी, वसुदेव, यशोदा, नंद, व्रज, गोप, गोपी तथा गायों की अर्चना कर आरती करे। फिर भक्तिपूर्वक क्षमाप्रार्थना कर प्रणाम करे। अर्धरात्रि के समय ही उठकर पंचामृत तथा शुद्ध जल से हरि को स्नान कराकर गंध आदि से पुनः पूजन करे ॥३१-३३॥ नारद ! उन्हें धान्याक, यव, सोंठ, चीनी तथा घी चांदी के पात्र में रखकर नैवेद्य चढ़ाये, पुनः आरती करके उनके दश स्वरूपों का ध्यान करते हुए चंद्रमा को अर्घ्य दे। तदनन्तर व्रती देवेश से क्षमायाचना कर पौराणिक स्तोत्रपाठ तथा गीत-वाद्यों से रात्रि के अवशेष भाग को

ततः क्षमाप्य देवेशं रात्रिखंडं नयेद्व्रती । पौराणिकैः स्तोत्रपाठैर्गीतवाद्यैरनेकधा ॥३६॥
ततः प्रभाते विप्राग्र्यान्भोजयेन्मधुरान्नकैः । दत्वा च दक्षिणां तेभ्यो विसृजेत्तुष्टमानसः ॥३७॥
ततस्तां प्रतिमां विष्णोः स्वर्णधेनुधरान्विताम् । गुरवे दक्षिणां दत्वा विसर्ज्याश्नीत च स्वयम् ॥३८॥
दारापत्यसुहृद्भृत्यैरेवं कृत्वा व्रतं नरः । साक्षाद्गोलोकमाप्नोति विमानवरमास्थितः ॥३९॥
नैतेन सदृशं चान्यद्व्रतमस्ति जगत्त्रये । कृतेन येन लभ्येत कोटिच कादशीफलम् ॥४०॥
शुक्लाष्टम्यां । नभस्यस्य कुर्याद्राधाव्रतं नरः । पूर्ववद्राधिकां हैमीं कलशस्थां प्रपूजयेत् ॥४१॥
मध्याह्ने पूजयित्वेनामेकभक्तं समाचरेत् । शक्तो भक्तश्चोपवासं परेऽह्नि विधिना ततः ॥४२॥
सुवासिनीर्भोजयित्वा गुरवे प्रतिमार्पणम् । कृत्वा स्वयं च भुंजीत व्रतमेवं समापयेत् ॥४३॥
व्रतेनानेन विप्रर्षे कृतेन विधिना व्रती । रहस्यं गोष्ठजं लब्ध्वा राधापरिकरे वसेत् ॥४४॥
दूर्वाष्टमीव्रतं चात्र कथितं तच्च मे शृणु । शुचौ देशे प्रजातायां दूर्वायां द्विजसत्तम ॥४५॥
स्थाप्य लिंगं ततो गंधैः पुष्पैर्धूपैश्च दीपकैः । नैवेद्यैरर्चयेद्भक्त्या दध्यक्षतफलादिभिः ॥४६॥
अर्घ्यं प्रदद्यात्पूजांते मंत्राभ्यां सुसमाहितः । त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि सुरासुरनमस्कृते ॥४७॥
सौभाग्यं संततिं देहि सर्वकार्यकरी भव । यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले ॥४८॥
तथा विस्तृतसंतानं देहि मेऽप्यजरामरम् । ततः प्रदक्षिणीकृत्य विप्रान्संभोज्य तत्र वै ॥४९॥
भुक्त्वा स्वयं गृहं गच्छेद्दत्वा विप्रेषु दक्षिणाम् । फलानि च प्रशस्तानि मिष्टानि सुरभीणि च ॥५०॥
एवं पुण्या पापहरा नृणां दूर्वाष्टमी द्विज । चतुर्णामपि वर्णानां स्त्रीजनानां विशेषतः ॥५१॥

बिताये । प्रातःकाल उत्तम ब्राह्मणों को मिष्टान्न भोजन करा कर दक्षिणा देकर प्रसन्न मन से विदा करे ॥३४-३७॥ तदुपरान्त सुवर्ण की धेनु-प्रतिमा सहित वह मूर्ति गुरु को दक्षिणा देकर बिदा करके स्त्री, पुत्र, मित्र तथा भृत्यों के साथ स्वयं भोजन करे । इस प्रकार व्रत करने वाला मानव उत्तम विमान पर चढ़कर साक्षात् गोलोक को जाता है । तीनों लोक में इस व्रत के समान दूसरा व्रत नहीं है । इसके करने से एक करोड़ एकादशी व्रत करने का फल मिलता है ॥३८-४०॥ भादों के शुक्ल पक्ष की अष्टमी में मनुष्य को राधाव्रत करना चाहिये । पहिले की तरह राधा की स्वर्णमयी प्रतिमा को कलश पर रख कर पूजा करे । मध्याह्न में इनकी पूजा कर एक भुक्त करे । व्रती यदि उपवास कर सके तो बहुत अच्छा । दूसरे दिन सौभाग्यवती वनिताओं को खिलाकर प्रतिमा गुरु को समर्पित करके स्वयं भोजन करे । इस तरह व्रत की समाप्ति होती है । विप्रर्षे ! विधिपूर्वक इस व्रत के करने से मनुज व्रज के रहस्य को जान कर राधा के समीप वास करता है ॥४१-४४॥

द्विजश्रेष्ठ ! उक्त तिथि में दूर्वाष्टमीव्रत भी किया जाता है, उसका विधान मुझसे सुन लो । पवित्र स्थान में उत्पन्न हुए दूर्वा पर शिवलिंग की स्थापना कर गंध, पुष्प, धूप, दीप तथा दही, अक्षत और फल के नैवेद्य से उनकी पूजा करके अर्घ्य प्रदान करे। पूजांत में समाहित चित्त होकर "·······त्वं दूर्वे !·······भव" "यथा········अजरामरम्" इन दो मंत्रों को पढ़ते हुए प्रदक्षिणा करे ॥४५-४९॥ पश्चात् सुन्दर, सुगंधित तथा मीठे फल खिलाकर उन्हें दक्षिणा दें और स्वयं भी भोजन करे, द्विज ! यह दूर्वाष्टमी मनुष्यों को पुण्य देने वाली तथा पाप नाश करने वाली है । इस व्रत को चारों वर्ण के लोग कर सकते हैं । विशेष

या न पूजयते दूर्वां नारी मोहाद्यथाविधि । जन्मानि त्रीणि वैधव्यं लभते सा न संशयः ॥५२॥
यदा ज्येष्ठर्क्षसंयुक्ता भवेच्चैवाष्टमी द्विज । ज्येष्ठा नाम्नी तु सा ज्ञेया पूजिता पापनाशिनी ॥५३॥
अथैनां तु समारभ्य व्रतं षोडशवासरम् । महालक्ष्म्याः समुद्दिष्टं सर्वसंपद्विवर्धनम् ॥५४॥
करिष्येऽहं महालक्ष्मीव्रतं ते त्वत्परायणः । तदविघ्नेन मे यातु समाप्तिं त्वत्प्रसादतः ॥५५॥
इत्युच्चार्य ततो बद्ध्वा डोरकं दक्षिणे करे । षोडशग्रंथिसहितं गुणैः षोडशभिर्युतम् ॥५६॥
ततोऽन्वहं महालक्ष्मीं गंधाद्यैरर्चयेद्व्रती । यावत्कृष्णाष्टमी तत्र चरेदुद्यापनं सुधीः ॥५७॥
वस्त्रमंडपिकां कृत्वा सर्वतोभद्रमंडले । कलशं सुप्रतिष्ठाप्य दीपमुद्द्योतयेत्ततः ॥५८॥
उत्तार्य डोरकं बाहोः कुंभस्याधो निवेदयेत् । चतस्रः प्रतिमाः कृत्वा सौवर्णीस्तत्स्वरूपिणीः ॥५९॥
स्नपनं कारयेत्तासां जलैः पञ्चामृतैस्तथा । उपचारैः षोडशभिः पूजयित्वा विधानतः ॥६०॥
जागरस्तत्र कर्तव्यो गीतवादित्रनिःस्वनैः । ततो निशीथे संप्राप्तेऽभ्युदितेऽमृतदीधितौ ॥६१॥
दत्त्वार्घ्यं बंधनं द्रव्यैः श्रीखंडाद्यैर्विधानतः । चन्द्रमण्डलसंस्थायै महालक्ष्म्यै प्रदापयेत् ॥६२॥
क्षीरोदार्णवसम्भूत महालक्ष्मीसहोदर । पीयूषधाम रोहिण्याः सहितोऽर्घ्यं गृहाण मे ॥६३॥
क्षीरोदार्णवसम्भूते कमले कमलालये । विष्णुवक्षःस्थलस्थे मे सर्वकामप्रदा भव ॥६४॥
एकनाथे जगन्नाथे जमदग्निप्रियेऽव्यये । रेणुके त्राहि मां देवि राममातः शिवं कुरु ॥६५॥
मंत्रैरेतैर्महालक्ष्मीं प्रार्थ्य श्रोत्रिययोषितः । सम्यक्संपूज्य ताः सम्यग्गंधयावककज्जलैः ॥६६॥
संभोज्य जुहुयादग्नौ बिल्वपद्मकपायसैः । तदलाभे घृतैर्विप्र गृहेभ्यः समिधस्तिलान् ॥६७॥
मृत्युंजयाय च परं सर्वरोगप्रशांतये । चंदनं तालपत्रं च पुष्पमालां तथाऽक्षतान् ॥६८॥

करती है वह तीन जन्मों तक विधवा होती है, इसमें संशय नहीं ॥५०-५२॥ विप्र जब यह अष्टमी ज्येष्ठा नक्षत्र से संयुक्त हो तब इसका नाम ज्येष्ठाष्टमी समझना चाहिये। यह पापनाशिनी है। इस दिन से लेकर सोलह दिनों तक सर्वसंपत्तिवर्धक महालक्ष्मीव्रत करना चाहिये। "महालक्ष्मि! मैं एकनिष्ठ होकर आपका व्रत करूंगा। आपकी कृपा से वह निर्विघ्न समाप्त हो।"—यह कहकर दाहिनी भुजा में सोलह ग्रंथियों तथा सोलह गुणों से युक्त डोरा बांधे। वस्त्र का मंडप निर्माण कर सर्वतोभद्रमंडल में कलश की स्थापना करके दीपक जलाये ॥५३-५८॥ भुजा-बांह से डोरक निकाल कर कलश के नीचे रख दे। सुवर्ण की एक जैसी चार प्रतिमाओं को वहां स्थापित कर पंचामृत से स्नपन करे। अनन्तर विधिपूर्वक षोडशोपचार पूजन कर गाना-बजाना करते हुए जागरण करे। रात्रि में चंद्रोदय होने पर "क्षीरोदार्णवसंभूत। ....में" इस मंत्र को पढ़ते हुए श्रीखंड आदि द्रव्यों से विधिपूर्वक चंद्रमंडलस्थित महालक्ष्मी को अर्घ्य दे। तदनन्तर क्षीरसागर से उत्पन्न होने वाली! कमले! कमलालये! विष्णु के वक्षःस्थल पर अवस्थित होने वाली! मेरी समस्त कामनाओं को पूर्ण कीजिये। एकनाथे! जगन्नाथे! जमदग्निप्रिये! रेणुके! मेरी रक्षा कीजिये। राममातः! मेरा कल्याण कीजिये।"—इस तरह महालक्ष्मी की प्रार्थना कर इत्र, अलता, अंजन आदि से श्रोत्रिय ब्राह्मण की पत्नियों का सम्मान करते हुए उन्हें भोजन कराये। पश्चात् बेल, कमल तथा पायस से अग्नि में हवन करे ॥५९-६६½॥ यदि उनका अभाव हो तो घी, लकड़ी तथा तिल से होम करे। अखिल रोगों के नाश के लिये मृत्युंजय की आहुतियां दे। व्रती नये सूप में चंदन, तालपत्र, पुष्पमाला, अक्षत, दूर्वा, कुसुम के रंग में रंगा सूत, दो बिल्वफल और विविध भक्ष्य पदार्थों को

प्रतिद्रव्यं त षोडश ॥६९॥
दूर्वां कौसुम्भसूत्रं च युगं श्रीफलमेव वा । भक्ष्याणि च नवे शूर्पे लक्ष्मीश्चन्द्रसहोदरा ॥७०॥
समाच्छाद्यान्यशूर्पेण व्रती दद्यात्समन्त्रकम् । क्षीरोदार्णवसंभूता श्रोत्रियेभ्यः समर्पयेत् ॥७१॥
व्रतेनानेन संतुष्टा भवताद्विष्णुवल्लभा । चतस्रः प्रतिमास्तास्तु विसृजेत्ताः सदक्षिणाः ॥७२॥
ततस्तु चतुरो विप्रान् षोडशापि सुवासिनीः । मिष्टान्नेनाशयित्वा तु कृत्वा विप्र विधानतः ॥७३॥
समाप्तिनियमः पश्चाद्भुञ्जीतेष्टैः समन्वितः । एतद्व्रतं महालक्ष्म्याः पूर्णं रमाव्रतम् ॥७४॥
भुक्त्वेष्टानैहिकान् कामांल्लक्ष्मीलोके वसेच्चिरम् । एषाऽशोकाष्टमी चोक्ता यस्यां शोकजन्मनि ॥७५॥
अत्राशोकस्य पूजा स्यादेकभक्तं तथा स्मृतम् । कृत्वाऽशोकव्रतं नारी ह्यशोका महाष्टमी ॥७६॥
यत्र कुत्रापि संजाता नात्र कार्या विचारणा । आश्विने शुक्लपक्षे तु प्रोक्ता विप्र विधाय तु ॥७७॥
तत्र दुर्गार्चनं प्रोक्तं सर्वैरप्युपचारकैः । उपवासं चैकभक्तं महाष्टम्यां, व्रतं स्मृतम् ॥७८॥
सर्वतो विभवं प्राप्य मोदते देववच्चिरम् । ऊर्ज्जे कृष्णादिकेऽष्टम्यां करकाख्यं व्रतिभिः सदा ॥७९॥
तत्रोमासहितः शंभुः पूजनीयः प्रयत्नतः । चंद्रोदयेऽर्घदानं च विधेयं धवले दले ॥८०॥
पुत्रं सर्वगुणोपेतमिच्छद्भिर्विविधं सुखम् । गोपाष्टमीति संप्रोक्ता कार्तिके संपदः ॥८१॥
तत्र कुर्याद्गवां पूजां गोग्रासं गोप्रदक्षिणाम् । गवानुगमनं दानं वांछन्सर्वाश्च बहुपुत्रसमन्वितम् ॥८२॥
कृष्णाष्टम्यां मार्गशीर्षे मिथुनं दर्भनिर्मितम् । अनघां चानघं तत्र पृथग्विधैः ॥८३॥
स्थापयित्वा शुभे देशे गोमयेनोपलेपिते । पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैरुपचारैः विधिपूर्वकम् ॥८४॥
संभोज्य द्विजदांपत्यं विसृजेल्लब्धदक्षिणम् । व्रतमेतन्नरः कृत्वा नारी वा ॥८५॥
पुत्रं सल्लक्षणोपेतं लभते नात्र संशयः

रख उन्हें दूसरे सूप से ढककर "क्षीरोदार्णवसंभूता.........." इस मंत्र को पढ़ते हुए दान कर दे। वे चारों
मूर्तियां श्रोत्रिय ब्राह्मणों को समर्पित करे ॥६७-७१॥ तदुपरान्त चार विप्रों और सोलह सधवाओं को मिष्टान्न
भोजन करा कर दक्षिणापूर्वक बिदा करे। व्रत-समाप्ति के बाद इष्ट-मित्रों के साथ भोजन करे। विप्र! महालक्ष्मी
के इस व्रत को विधिपूर्वक करने से मनुष्य ऐहलौकिक भोगों को भोग कर चिरकाल तक लक्ष्मीलोक में वास करता
है। इसका नाम अशोकाष्टमी भी है, जिसमें रमा व्रत संपन्न किया जाता है। इस दिन अशोक की पूजा कर
एकभुक्त करना चाहिये। जो नारी अशोक व्रत करती है, उसे जन्मान्तर में कभी शोक नहीं होता, यह निःसंदेह
है ॥७२-७५½॥ विप्र! आश्विन-शुक्ल-पक्ष में महाष्टमीव्रत कहा गया है। उस दिन अखिल उपचारों से दुर्गा
की आराधना करनी चाहिए। महाष्टमी में उपवास तथा (उसके पूर्व दिन) एकभुक्त ही करे। जो ऐसा करता
है, वह सकल विभवों को प्राप्त कर चिरकाल तक देवताओं के समान आनन्द करता है ॥७६-७७½॥
कार्तिक-कृष्ण-अष्टमी में करकव्रत किया जाता है। उस दिन उमा सहित शंकर की विधिपूर्वक अर्चना
करनी चाहिए। विविध सुख तथा सर्वगुण संपन्न पुत्र का इच्छुक व्रती चंद्रोदय होने पर अर्घ्य दान दे। कार्तिक
शुक्ल-अष्टमी का नाम गोपाष्टमी है। उस दिन गो-पूजन विहित है। गौओं को ग्रास देकर उनकी प्रदक्षिणा
तथा अनुगमन करे और दान दे। ऐसा करने से सकल संपत्तियों का लाभ होता है ॥७८-८१॥ अगहन-कृष्ण
अष्टमी में कुशों की अनेक मूर्तियों को जिनमें दो दम्पति की और अन्य पुत्रों की हों, गोबर से लीपकर पवित्र
स्थान में स्थापित करके गंध, पुष्प आदि उपचारों से उनकी पूजा करे। पश्चात् द्विजदंपती को खिलाकर
दक्षिणा देकर उन्हें बिदा करे। विधिपूर्वक इस व्रत को करने वाला नर या नारी सर्वलक्षणयुक्त पुत्र को

मार्गशीर्षशिताष्टम्यां कालभैरवसन्निधौ । उपोष्य जागरं कृत्वा महापापैः प्रमुच्यते ॥८६॥
यत्किञ्चिदशुभं कर्म कृतं मानुषजन्मनि । तत्सर्वं विलयं याति कालभैरवदर्शनात् ॥८७॥
अथ पौषसिताष्टम्यां श्राद्धमष्टकसंज्ञितम् । पितृणां तृप्तिदं वर्षं कुलसंततिवर्द्धनम् ॥८८॥
शुक्लाष्टम्यां तु पौषस्य शिवं सम्पूज्य भक्तितः । भुक्तिमुक्तिमवाप्नोति भक्तिमेकां समाचरन् ॥८९॥
कृष्णाष्टम्यां तु माघस्य भद्रकालीं समर्चयेत् । भक्तितो वैरिवृन्दघ्नीं सर्वकामप्रदायिनीम् ॥९०॥
माघमासे सिताष्टम्यां भीष्मं संतर्पयेद्द्विज । संततिं त्वव्यवच्छिन्नामिच्छंश्चाप्यपराजयम् ॥९१॥
फाल्गुने त्वसिताष्टम्यां भीमां देवीं समर्चयेत् । तत्र व्रतपरो विप्र सर्वकामसमृद्धये ॥९२॥
शुक्लाष्टम्यां फाल्गुनस्य शिवं चापि शिवां द्विज । गंधाद्यैः सम्यगभ्यर्च्य सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥९३॥
फाल्गुनापरपक्षे तु शीतलामष्टमीदिने । पूजयेत्सर्वपक्वान्नैः सप्तम्यां विधिवत्कृतैः ॥९४॥
शीतले त्वं जगन्माता शीतले त्वं जगत्पिता । शीतले त्वं जगद्धात्री शीतलायै नमोनमः ॥९५॥
वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् । मार्जनीकलशोपेतां विस्फोटकविनाशिनीम् ॥९६॥
शीतले शीतले चेत्थं ये जपंति जले स्थिताः । तेषां तु शीतला देवी स्याद्विस्फोटकशांतिदा ॥९७॥
इत्येवं शीतलामन्त्रैर्यः समर्चयते द्विज । तस्य वर्षं भवेच्छांतिः शीतलायाः प्रसादतः ॥९८॥
सर्वमासोभये पक्षे विधिवच्चाष्टमीदिने । शिवां वापि शिवं प्रार्च्य लभते वांछितं फलम् ॥९९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थिताष्टमीव्रतकथनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥

प्राप्त करती है, इसमें संशय नहीं । अगहन-शुक्ल-अष्टमी को कालभैरव के समीप उपवासपूर्वक जागरण करने से महापातक का नाश होता है ॥८२-८६॥ मनुष्य-जन्म में जो कुछ भी कुत्सित कर्म किया जाता है, वह कालभैरव के दर्शन से विलीन हो जाता है । पौष-कृष्ण-अष्टमी में अष्टकाश्राद्ध करने से एक वर्ष तक पितरों को तृप्ति मिलती है तथा वंश की वृद्धि होती है । पौष-शुक्ल-अष्टमी में भक्तिपूर्वक शिव की पूजा करने से भोग मोक्ष की प्राप्ति होती है । माघ की कृष्णाष्टमी में शत्रुसमूह का नाश करने वाली तथा समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली भद्रकाली की अर्चना करनी चाहिये ॥८७-९०॥ द्विज ! माघ-शुक्ल-अष्टमी में भीष्म तर्पण करने से अक्षय्य वंश तथा विजय की प्राप्ति होती है । फाल्गुन-कृष्ण-अष्टमी में भीमा देवी की अर्चना करने से सकल कामनायें पूर्ण होती हैं । द्विज ! फाल्गुन-शुक्ल-अष्टमी में गंध, पुष्प आदि से शिव तथा गौरी की अच्छी तरह पूजा करने से मनुष्य सकल सिद्धियों का स्वामी होता है ॥९१-९३॥ फाल्गुन शुक्ल की अष्टमी में पुआ, पकवान आदि से विधिपूर्वक शीतलादेवी की अर्चना करे । पकवान आदि सप्तमी को ही बना लेना चाहिए । जो व्यक्ति "शीतले ! . . . ." इस मंत्र से शीतला देवी की आराधना करता है, उसका अरिष्ट शांत हो जाता है । जो व्यक्ति जल में खड़ा होकर, गधे पर चढ़ने वाली, नंगी रहने वाली, हाथ में झाड़ू तथा कलश रखने वाली और विस्फोट रोगों का नाश करने वाली शीतला देवी का ध्यान करते हुए 'शीतला, शीतला' जपता है, उसे विस्फोट (फोड़ा) का भय नहीं होता । समस्त मासों के दोनों पक्षों की अष्टमियों में शिव या पार्वती का पूजन करने वाला मनुज वांछित फल को प्राप्त करता है ॥९४-९९॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में द्वादश-मास-स्थित-अष्टमी-व्रत-कथन नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥११७॥

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

सनातन उवाच

अथ वक्ष्यामि विप्रेंद्र नवम्यास्ते व्रतानि वै । यानि कृत्वा नरा लोके लभंते वांछितं फलम् ॥१॥
चैत्रस्य शुक्लपक्षे तु श्रीरामनवमीव्रतम् । तत्रोपवासं विधिवच्छक्तो भक्तः समाचरेत् ॥२॥
अशक्तश्चैकभक्तं वै मध्याह्नोत्सवतः परम् । विप्रान्संभोज्य मिष्टान्नं रामप्रीतिं समाचरेत् ॥३॥
गोभूतिलहिरण्याद्यैर्वस्त्रालंकरणैस्तथा । एवं यः कुरुते भक्त्या श्रीरामनवमीव्रतम् ॥४॥
विधूय चेहपापानि व्रजेद्विष्णोः परं पदम् । उक्तं मातृव्रतं चात्र भैरवेण समन्विताः ॥५॥
स्रग्गंधवस्त्रनैवेद्यैश्चतुःषष्टिस्तु योगिनीः । अत्रैव भद्रकाली तु योगिनीनां महाबला ॥६॥
ब्राह्मणश्रेष्ठ सर्वासामाधिपत्येऽभिषेचिता । तस्मात्तां पूजयेच्चात्र सोपवासो जितेन्द्रियः ॥७॥
राधे नवम्यां दलयोश्चंडिकां यस्तु पूजयेत् । विधिना स विमानेन दैवतैः सह मोदते ॥८॥
ज्येष्ठशुक्लनवम्यां तु सोपवासो नरोत्तमः । उमां संपूज्य विधिवत्कुमारीर्भोजयेद्द्विजान् ॥९॥
स्वभक्त्या दक्षिणां दत्त्वा शाल्यन्नं पयसाऽश्नुयात् । उमाव्रतमिदं विप्र यः कुर्याद्विधिवन्नरः ॥१०॥
स भुक्त्वेह वरान्भोगानंते स्वर्गगतिं लभेत् । आषाढे मासि विप्रेंद्र यः कुर्यात्पक्षयोर्द्विज ॥११॥
नक्तं चैंद्रीं समभ्यर्चेदैरावतगतां सिताम् । स भवेद्देवलोके तु भोगभाग्देवयानगः ॥१२॥

अध्याय ११८

नवमी सम्बन्धी व्रतों की विधि और महिमा

सनातन बोले--द्विजवर्य ! अब मैं नवमी व्रतों के संबंध में कहूँगा, जिनके करने से मनुष्य को इस लोक
में वांछित फल की प्राप्ति होती है । चैत्र के शुक्ल पक्ष में श्रीरामनवमीव्रत किया जाता है । शक्तिशाली पुरुष
उस दिन विधिवत् उपवास करे । यदि अशक्त हो तो एक भुक्त करे और मध्याह्न में उत्सव मनाते हुए राम की
प्रीति के लिये विप्रों को मिष्टान्न खिलाकर गो, भूमि, तिल, सुवर्ण, वस्त्र तथा आभूषण उन्हें दक्षिणा दे । इस
प्रकार भक्ति से जो रामनवमी व्रत करता है, वह निष्पाप होकर विष्णु के परम पद को प्राप्त करता है ॥१-४½॥
उस दिन मातृव्रत भी किया जाता है । माला, गंध, वस्त्र तथा नैवेद्य से भैरव सहित चौंसठ योगिनियों की पूजा
करनी चाहिये । विप्रश्रेष्ठ ! समस्त योगिनियों की अधिनायिका महाबली भद्रकाली की है । इसलिये उनका
पूजन और उपवास इंद्रियनिग्रह पूर्वक करना चाहिये । वैशाख के उभय पक्षों की नवमियों में जो विधिपूर्वक
चंडिका की अर्चना करता है, वह विमान पर आरूढ़ होकर देवताओं के साथ आनन्द लेता है । ज्येष्ठ-शुक्ल-
नवमी में उत्तम मनुष्य विधिपूर्वक उमा की पूजा कर कुमारियों तथा द्विजों को भोजन कराकर दक्षिणा दे तथा
स्वयं खीर खाये । विप्र ! जो नर विधिपूर्वक उमाव्रत को संपन्न करता है वह इस लोक में उत्तम भोगों को भोग
कर अंत में स्वर्ग को जाता है ॥५-१०½॥ जो आषाढ़ के दोनों पक्षों के नवमीव्रत को करते हुए रात्रि में ऐरावत
पर अवस्थित शुक्लवर्णा इंद्राणी का ध्यान करके पूजन करता है, वह इस लोक में निखिलभोग-भोक्ता होकर

श्रावणे मासि विप्रेन्द्र यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । पक्षयोरुपवासं वा कौमारीं चंडिकां यजेत् ॥१३॥
एवं पापहरां गंधैः पुष्पैर्धूपैश्च दीपकैः । नैवेद्यैर्विविधैश्चैव कुमारीभोजनैस्तथा ॥१४॥
एवं यः कुरुते भक्त्या कौमारीव्रतमुत्तमम् । स विमानेन गच्छेद्वै देवीलोकं सनातनम् ॥१५॥
भाद्रे तु नवमी शुक्ला नंदाह्वा परिकीर्तिता । तस्यां यः पूजयेद्दुर्गां विधिवच्चोपचारकैः ॥१६॥
सोऽश्वमेधफलं लब्ध्वा विष्णुलोके महीयते । आश्विने शुक्लनवमी महापूर्वा प्रकीर्तिता ॥१७॥
अपराह्णे शमीपूजा कार्याऽस्यां प्राग्दिशि द्विज । ततो निशायां प्राग्यामे खड्गं धनुरिषून्गदाम् ॥१८॥
शूलं शक्तिं च परशुं छुरिकां चर्म खेटकम् । छत्रं ध्वजं गजं चाश्वं गोवृषं पुस्तकं तुलाम् ॥१९॥
दंडं पाशं चक्रशंखौ गंधाद्यैरुपचारकैः । संपूज्य महिषं तत्र भद्रकाल्यै समालभेत् ॥२०॥
एवं बलिं विधायाथ भुक्त्वा पक्वान्नमेव च । द्विजेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा व्रतं तत्र समापयेत् ॥२१॥
एवं यः पूजयेद्दुर्गां नृणां दुर्गतिनाशिनीम् । इह भुक्त्वा वरान्भोगानंते स्वर्गतिमाप्नुयात् ॥२२॥
कार्तिके शुक्लनवमी याऽक्षया सा प्रकीर्तिता । तस्यामश्वत्थमूले वै तर्पणं सम्यगाचरेत् ॥२३॥
देवानां च ऋषीणां च पितॄणां चापि नारद । स्वशाखोक्तैस्तथा मंत्रैः सूर्यायार्घ्यं ततोऽर्पयेत् ॥२४॥
ततो द्विजान्भोजयित्वा मिष्टान्नेन मुनीश्वर । स्वयं भुक्त्वा च विहरेद्द्विजेभ्यो दत्तदक्षिणः ॥२५॥
एवं यः कुरुते भक्त्या जपदानं द्विजार्चनम् । होमं च सर्वमक्षय्यं भवेदिति विधेर्वचः ॥२६॥
मार्गे तु शुक्लनवमी नंदिनी परिकीर्तिता । तस्यामुपोषितो यस्तु जगदंबां प्रपूजयेत् ॥२७॥
गंधाद्यैः सोऽश्वमेधस्य फलभाङ्नात्र संशयः । पौषे शुक्लनवम्यां तु महामायां प्रपूजयेत् ॥२८॥
एकभक्तपरो विप्र वाजपेयफलाप्तये । माघमासे तु या शुक्ला नवमी लोकपूजिता ॥२९॥

(अंत में) विमान से प्रयाण करता है। विप्रेन्द्र ! श्रावण के उभय पक्षों की नवमियों में जो दैनिक उपवास कर रात्रि में भोजन करता है तथा कुमारी चंडिका को पूजता है, वह सनातन देवी लोक को जाता है ॥११-१५॥

भादों की शुक्ल नवमी आनंदा कहलाती है। उसमें विधिपूर्वक दुर्गा की सोपचार पूजा करने से मनुष्य अश्वमेध का फल प्राप्त कर वैकुण्ठ में पूजित होता है। आश्विन-शुक्ल की नवमी महापूर्वा कहलाती है। उस दिन मध्याह्न के बाद पूर्व दिशा में शमीवृक्ष का पूजन करना चाहिये ॥१६-१७½॥

रात्रि के प्रथम प्रहर में खड्ग, धनुष, बाण, गदा, त्रिशूल, शक्ति, परशु, छूरिका, चर्म, खेटक, छत्र, ध्वज, गज, अश्व, गो, वृषभ, पुस्तक, तराजू, दंड, पाश, चक्र तथा शंख की गंध आदि उपचारों से पूजा कर भद्रकाली को भैंसे की बलि दे। अनन्तर द्विजों को पकवान आदि खिलाकर दक्षिणा देकर व्रत समाप्त करे। इस प्रकार जो मनुष्य दुर्गा की आराधना करता है, उसकी दुर्गति नहीं होती; प्रत्युत इस लोक में अखिल भोगों को भोगकर अंत में वह स्वर्ग को प्राप्त करता है ॥१८-२२॥ कार्तिक-शुक्ल-नवमी का नाम क्षया है। उस दिन पीपल के मूल में देवों, ऋषियों तथा पितरों का तर्पण कर अपनी शाखा के मंत्रों से सूर्य को अर्घ्य समर्पण करे। मुनीश्वर ! तदुपरान्त द्विजों को मिष्टान्न खिला कर उन्हें दक्षिणा दे और स्वयं भोजन करे। इस प्रकार जो जप, दान, द्विजपूजा तथा हवन करता है, उसके किये हुए सकल कर्म अक्षय्य होते हैं, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है। अगहन की शुक्ल-नवमी नंदिनी कहलाती है। उस दिन जो उपवास करके गंध आदि से जगदम्बा की पूजा करता है, उसे अश्वमेध का फल मिलता है, इसमें संशय नहीं ॥२३-२७½॥ विप्र ! पौष-शुक्ल-नवमी में जो एक भुक्त करते हुए महामाया की पूजा करता है, उसकी वाक्सिद्धि होती है। माघमास के शुक्ल पक्ष की जो लोकपूजिता नवमी

महानंदेति सा प्रोक्ता सदानंदकरी नृणाम् । तस्यां स्नानं तथा दानं जपो होम उपोषणम् ॥३०॥
सर्वमक्षयतां याति नात्र कार्या विचारणा । फाल्गुनामलपक्षस्य नवमी या द्विजोत्तम ॥३१॥
आनंदा सा महापुण्या सर्वपापहरा स्मृता । सोपवासोऽर्चयेत्तत्र यस्त्वानंदां द्विजोत्तम ॥३२॥
स लभेद्वांछितान्कामान्सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥३३॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थितनवमीव्रतकथनं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सनातन उवाच

अथ तेऽहं प्रवक्ष्यामि दशम्यां वै व्रतानि च । यानि कृत्वा नरो भक्त्या धर्मराजप्रियो भवेत् ॥१॥
चैत्रशुक्लदशम्यां तु धर्मराजं प्रपूजयेत् । तत्कालसंभवैः पुष्पैः फलैर्गंधादिभिस्तथा ॥२॥
सोपवासो वैकभक्तो भोजयित्वा द्विजोत्तमान् । चतुर्दश ततस्तेभ्यः शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ॥३॥
एवं यः कुरुते विप्र धर्मराजप्रपूजनम् । स धर्मस्याज्ञयागच्छेद् देवैः साधर्म्यमच्युतः ॥४॥

है, उसका नाम महानंदा है। वह मनुष्यों को सदा आनन्द देती है। उस दिन स्नान, दान, जप, होम, उपवास आदि जो कुछ किये जाते हैं, वे अक्षय होते हैं, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं। द्विजवर्य ! फाल्गुन-शुक्लपक्ष की जो नवमी है, उसका नाम आनंदा है। वह महापुण्यदायिनी तथा अखिलपापहारिणी है। उस दिन जो उपवास करते हुए नंदा देवी की अर्चना करता है, उसका अभीष्ट सिद्ध होता है, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥२८-३३॥

श्रीनारदीय पुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में द्वादशमासस्थित नवमी व्रत कथन नामक एक सौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११८॥

अध्याय ११९

बारह मासों का दशमी व्रत

सनातन बोले—अब मैं तुम्हें दशमी के व्रतों को बतलाऊँगा, जिनके भक्तिपूर्वक अनुष्ठान से मनुष्य धर्मराज का प्रिय होता है। चैत्र-शुक्ल-दशमी में उपवास या एक भुक्त करते हुए सामयिक पुष्प, फल एवम् सुगंधित द्रव्यों से धर्मराज की पूजा कर चौदह उत्तम ब्राह्मणों को खिलाकर यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये ॥१-३॥ विप्र ! जो इस प्रकार धर्मराज का पूजन करता है, वह उनकी आज्ञा से देवलोक को जाता है। वैशाख-शुक्ल-

दशम्यां माधवे शुक्ले विष्णुमभ्यर्च्य मानवः । गंधाद्यैरुपचारैश्च श्वेतपुष्पैः सुगंधिभिः ॥५॥
शतं प्रदक्षिणाः कृत्वा विप्रान्संभोज्य यत्नतः । लभते वैष्णवं लोकं नात्रकार्या विचारणा ॥६॥
ज्येष्ठे शुक्लदशम्यां तु जाह्नवी सरितां वरा । समायाता धरां स्वर्गात्तस्मात्सा पुण्यदा स्मृता ॥७॥
ज्येष्ठः शुक्लदलं हस्तो बुधश्च दशमी तिथिः । गरानन्दव्यतीपाताः कन्येन्दुवृषभास्कराः ॥८॥
दशयोगः समाख्यातो महापुण्यतमो द्विज । हरते दश पापानि तस्माद्दशहरः स्मृतः ॥९॥
अस्यां यो जाह्नवीं प्राप्य स्नाति संप्रीतमानसः । विधिना जाह्नवीतोये स याति हरिमन्दिरम् ॥१०॥
आषाढशुक्लदशमी पुण्या मन्वादिकैः स्मृता । तस्यां स्नानं जपो दानं होमो वा स्वर्गतिप्रदाः ॥११॥
श्रावणे शुक्लदशमी सर्वाशापरिपूर्तिदा । अस्यां शिवार्चनं शस्तं गन्धाद्यैरुपचारकैः॥१२॥
तत्रोपवासो नक्तं वा द्विजानां भोजनं जपः । हेम्नो दानं च धेन्वादेः सर्वपापप्रणाशनम् ॥१३॥
अथो नभस्यशुक्लायां दशम्यां द्विजसत्तम । व्रतं दशावताराख्यं तत्र स्नानं जलाशये ॥१४॥
कृत्वा संध्यादिनियमं देवर्षिपितृतर्पणम् । ततो दशावताराणि समभ्यर्चेत्समाहितः ॥१५॥
मत्स्यं कूर्मं वराहं च नरसिंहं त्रिविक्रमम् । रामं रामं च कृष्णं च बौद्धं कल्किनमेव च ॥१६॥
दशमूर्तीस्तु सौवर्णीः पूजयित्वा विधानतः । दशभ्यो विप्रवर्येभ्यो दद्यात्सत्कृत्य नारद ॥१७॥
उपवासं चैकभक्तं कृत्वा संभोज्य वाडवान् । विसृज्य पश्चाद्भुंजीत स्वयं स्वेष्टैः समाहितः ॥१८॥
भक्त्या कृत्वा व्रतं त्वेतद्भुक्त्वा भोगानिहोत्तमान् । विमानेन व्रजेदंते विष्णुलोकं सनातनम् ॥१९॥

दशमी में सुगंधित श्वेतपुष्प तथा गंध आदि उपचारों से विष्णु की अर्चना कर सौ वार प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणों को यत्नपूर्वक खिलाना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसे विष्णुलोक की प्राप्ति होती है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं। ज्येष्ठ-शुक्ल-दशमी में सरित्-श्रेष्ठ जाह्नवी स्वर्ग से पृथ्वी पर आई थी। इसलिये वह तिथि पुण्यदायिनी मानी जाती है। ज्येष्ठ मास, शुक्ल पक्ष, हस्त नक्षत्र, बुध दिन दशमी तिथि, गर करण, आनन्द योग, व्यतीपात, कन्या राशि के चन्द्रमा और वृष राशि के सूर्य इन दश योगों का जब समावेश होता है तब वह दिन महापुण्यदायक माना जाता है। वह दश प्रकार के पापों का हरण करता है। इसलिये वह 'दशहर' कहलाता है ॥४-९॥

उस दिन जो प्रसन्नचित्त से विधिपूर्वक गंगा में स्नान करता है, वह वैकुंठ को जाता है। आषाढ़-शुक्ल की दशमी पुण्यदायिनी होती है। उसमें किये जाने वाले स्नान, जप, दान तथा होम स्वर्ग को देते हैं। श्रावण-शुक्ल दशमी समस्त आशाओं को पूर्ण करती है। उस दिन गंध आदि उपचारों से शिवार्चन करना प्रशस्त है। दैनिक व्रत, ब्राह्मण-भोजन, जप, सुवर्णदान तथा गोदान करने से निखिल पापों का नाश होता है। द्विज-श्रेष्ठ ! श्रावण-शुक्ल-दशमी का नाम दशा है। उस दिन दशावतार-व्रत करना चाहिये। जलाशय में स्नान कर संध्या और देव, ऋषि तथा पितरों का तर्पण करे ॥१०-१४½॥ पश्चात् समाहितचित्त से मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, त्रिविक्रम, राम, परशुराम, कृष्ण, बौद्ध तथा कल्की—इन दश अवतारों की दश सुवर्णमयी प्रतिमाओं का विधिपूर्वक पूजन कर दश उत्तम ब्राह्मणों को सम्मानपूर्वक प्रतिमायें समर्पित कर दे। उस दिन उपवास या एक भुक्त करना चाहिये। ब्राह्मणों को खिलाकर पश्चात् सावधानी से स्वयं भोजन करे। जो व्यक्ति भक्ति से इस व्रत को करता है, वह ऐहलौकिक उत्तम भोगों को भोग कर अन्त में विमान से सनातन विष्णुलोक को जाता है ॥१५-१९॥

आश्विने शुक्लदशमी विजया सा प्रकीर्तिता । चतुर्गोमयपिंडानि प्रातर्न्यस्य गृहांगणे ॥२०॥
चक्रवालस्वरूपेण तन्मध्ये रामलक्ष्मणौ । तथा भरतशत्रुघ्नौ पूजयेच्चतुरोऽपि हि ॥२१॥
सपिधानासु पात्रीषु गोमयीषु चतसृषु । क्लिन्नं धान्यं सरौप्यं तु धृत्वा धौतांशुकावृतम् ॥२२॥
पितृमातृभ्रातृपुत्रजायाभृत्यसमन्वितम् । संपूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्नैवेद्यैश्च विधानतः ॥२३॥
नमस्कृत्याथ भुंजीत द्विजान्संभोज्य पूजितान् । एवं कृत्वा विधानं तु नरो वर्षं सुखान्वितः ॥२४॥
धनधान्यसमृद्धश्च निश्चितं जायते द्विज । अथापराह्णसमये नवम्यां संनिमंत्रिताम् ॥२५॥
पूर्वं दिक्षु शमीं विप्र गत्वा तन्मूलजां मृदम् । गृहीत्वा स्वगृहं प्राप्य गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥२६॥
संपूज्य तां विधानेन संज्जीकृत्य स्वकं बलम् । निर्गत्य पूर्वद्वारेण ग्रामाद्बहिरनाकुलः ॥२७॥
ततः शत्रुप्रतिकृतिं निर्मितां पत्रकादिभिः । मनसा कल्पितां वापि स्वर्णपुंखशरेण वै ॥२८॥
विध्येदिति भृशं प्रीतः प्राप्नुयात्स्वगृहं निशि । एवं कृतविधिर्वापि गच्छेद्दा शत्रुनिग्रहे ॥२९॥
एषैवं दशमी विप्र विधिनाऽऽचरिता सदा । धनं जयं सुतान् गाश्च गजाश्वं अजाविकम् ॥३०॥
दद्यादिह शरीरांते स्वर्गतिं चापि नारद । दशम्यां कार्तिके शुक्ले सार्वभौमव्रतं चरेत् ॥३१॥
कृतोपवासो वैकाशी निशीथेऽपूपकादिभिः । दशदिक्षु बलिं दद्याद् गृहाद्ग्रामाद्बहिः ॥३२॥
मंडलेऽष्टदले क्लृप्ते गोविड्लिप्तधरातले । मन्त्रैरेभिर्द्विजश्रेष्ठ गणेशादिकृतार्चनः ॥३३॥
यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा । तमिन्द्रो देवराजोऽद्य नाशयत्वखिलेष्टदः ॥३४॥
यो मे वह्निगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा । तेजोराजोऽथ वह्निस्तं नाशयत्वखिलेष्टदः ॥३५॥

आश्विन की शुक्ल-दशमी विजया नाम से प्रसिद्ध है। उस दिन प्रातःकाल आंगन में गोबर के चार पिंड मंडलाकार रखे। उनके भीतर राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न की प्रतिमाओं का पूजन करे। उन गोमयपिंडों के ऊपर भीगा हुआ धान तथा चांदी रख कर धुले वस्त्र से ढक दे। फिर पिता, माता, भ्राता, पुत्र, स्त्री तथा नौकर समेत गंध, पुष्प, नैवेद्य आदि से विधिपूर्वक पूजा कर नमस्कार करके सम्मानित विप्रों को भोजन कराये। द्विज ! जो नर एक वर्ष भी विधिपूर्वक इस व्रत को करता है, वह निश्चय ही सुखी एवम् धनधान्यसंपन्न होता है ॥२०-२४½॥ उक्त तिथि को मध्याह्न के बाद पूर्व दिशा में जाकर नवमी तिथि को ही निमंत्रित किये गये शमीवृक्ष के मूल से मृत्तिका लेकर अपने घर को लौटे। तदनन्तर गीत-वाद्य के साथ मृत्तिका की बनी प्रतिमा का पूजन कर वाहन पर चढ़कर गाँव से बाहर पूर्व दिशा में प्रसन्नतापूर्वक यात्रा करे। पश्चात् पत्र आदि से निर्मित या मन से परिकल्पित शत्रु की प्रतिमा को सोने के अनेक बाणों से बार-बार वेध करे। फिर रात्रि में प्रसन्नतापूर्वक अपने घर को लौट आये। विप्र ! उक्त दशमी में जो व्यक्ति इस प्रकार आचरण करता है, वह धन, जय, पुत्र, गौ, हाथी, घोड़ा, बकरी तथा भेड़ प्राप्त करता है और देहावसान होने पर उसे स्वर्ग मिलता है ॥२५-३०½॥

नारद ! कार्तिक-शुक्ल-दशमी में सार्वभौमव्रत करना चाहिये। उस दिन उपवास या एकभुक्त करते हुए रात्रि में चतुर्दिक्षु पुए आदि की बलि चढ़ाये। बलि घर या नगर से बाहर चढ़ानी चाहिये। द्विजश्रेष्ठ ! मंडप की भूमि को गोबर से लीप कर अष्टदल कमल का विन्यास करें। उस पर गणेश आदि की अर्चना कर "पूर्व दिशा में जो मैंने पापकर्म किया है, उसे अखिल कामनादायक देवराज इंद्र नष्ट करें। अग्नि-दिशा में जो मैंने पाप किया है, उसे सकलकामनादायक तेजोराज अग्नि नष्ट करें ॥३१-३५॥ दक्षिण-दिशा में जो मैंने

यो मे दक्षगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा । तं यमः प्रेतराजो वै नाशयत्वखिलेष्टदः ॥३६॥
यो मे नैर्ऋतिगः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा । रक्षोराजो नैर्ऋतिस्तं नाशयत्वखिलेष्टदः ॥३७॥
यो मे पश्चिमगः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा । यादःपतिस्तं वरुणो नाशयत्वखिलेष्टदः ॥३८॥
यो मे वायुगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा । वायुस्तं मरुतां राजो नाशयत्वखिलेष्टदः ॥३९॥
यो मे सौम्यगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा । सोमस्तमृक्षयक्षेशो नाशयत्वखिलेष्टदः ॥४०॥
यो मे ईशगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा । ईशानो भूतनाथस्तं नाशयत्वखिलेष्टदः ॥४१॥
यो म ऊर्ध्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा । ब्रह्मा प्रजापतीशस्तं नाशयत्वखिलेष्टदः ॥४२॥
यो मेऽधःसंस्थितः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा । अनंतो नागराजस्तं नाशयत्वखिलेष्टदः ॥४३॥
इत्येवं दिक्षु दशसु बलिं दत्त्वा समाहितः । क्षेत्रपालाय तद्बाह्ये क्षिपेद्बलिमतंद्रितः ॥४४॥
एवं कृतविधिः शेषं निशायां निनयेत्सुधीः । गीतैः सुमंगलप्रायैः स्तवपाठैर्जपादिभिः ॥४५॥
प्रातः स्नात्वा समभ्यर्च्य लोकपालान् द्विजोत्तमान् । द्वादशाभ्यर्च्य संभोज्य शक्तितो दक्षिणां ददेत् ॥४६॥
इत्थं कृत्वा व्रतं विप्र भोगाभुक्त्वैहिकान्छुभान् । युगं स्वर्गसुखं भुक्त्वा सार्वभौमो नृपो भवेत् ॥४७॥
मार्गशुक्लदशम्यां तु चरेदारोग्यकं व्रतम् । गंधाद्यैरर्चयेद्विप्रान् दश तच्चरणोदकम् ॥४८॥
पीत्वाऽथ दक्षिणां दत्त्वा विसृजेदेकभोजनः । एतत्कृत्वा व्रतं विप्र ह्यारोग्यं प्राप्य भूतले ॥४९॥
धर्मराजप्रसादेन मोदते दिवि देववत् । पौषे दशम्यां शुक्लायां विश्वेदेवान् समर्चयेत् ॥५०॥
क्रतुं दक्षं वसुं सत्यं कालं कामं मुनिं गुरुम् । विप्रं रामं च दशधा केशवस्तान्समास्थितः ॥५१॥

निर्ऋति-दिशा में जो मैंने पातक कुत्सित कर्म किया है, उसे सर्वकामनादायक प्रेतराज यम नष्ट करें ॥३१-३६॥ निर्ऋति-दिशा में जो मैंने पाप किया है, उसे समस्तकामनापूरक रक्षोराज नैर्ऋति नष्ट करें। पश्चिम-दिशा में जो मैंने पापकर्म किया है, उसे अखिलकामनादायक यादःपति वरुण नष्ट करें। वायु-दिशा में जो मैंने पाप किया है, उसे निखिलकामनादायक मरुत्-स्वामी वायु नष्ट करें। सोम-दिशा में जो मैंने पाप किया है, उसे समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले नक्षत्रों एवम् यक्षों के राजा सोम नष्ट करें। ईश-दिशा में जो मैंने पाप किया है, उसे भूतनाथ रुद्र नष्ट करें। जो मैंने ऊर्ध्वदिशा में ऊपर पाप किया है, उसे प्रजापति ब्रह्मा नष्ट करें ॥३६-४२॥ जो मैंने अधोदिशा (नीचे) में पाप किया है, उसे अखिलेष्टदायक नागराज अनंत नष्ट करें।" यह उच्चारण करते हुए दशों दिशाओं में समाहितचित्त से बलि दे। मंडप से बाहर क्षेत्रपाल को निरालस्यपूर्वक बलि देनी चाहिये। सुधी व्यक्ति मांगलिक गीत, स्तुति, पाठ तथा जप आदि से उस रात्रि को व्यतीत कर प्रातःकाल स्नान के बाद लोकपालों की अर्चना करें। पश्चात् बारह उत्तम ब्राह्मणों को सम्मानपूर्वक भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा दे। विप्र! जो इस तरह व्रत संपन्न करता है, वह ऐहलौकिक उत्तम भोगों को भोग कर एक युग तक स्वर्गसुख प्राप्त करता है और अन्त में चक्रवर्ती राजा होकर जन्म लेता है ॥४३-४७॥

अगहन-शुक्ल-दशमी में आरोग्यकव्रत करना चाहिये। उस दिन गंध आदि उपचारों से दश विप्रों की पूजा कर उनका चरणोदक पान करें। पश्चात् उन्हें दक्षिणा देकर बिदा करके एक भुक्त करें। विप्र! इस व्रत का करने वाला व्यक्ति भूतल पर आरोग्य लाभ कर धर्मराज की कृपा से स्वर्ग में देवतुल्य आनन्द का उपभोक्ता होता है। पौष-शुक्ल-दशमी में विश्वेदेवों की अर्चना करनी चाहिये। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल,

स्थापयित्वा दर्भमयानासनेषु च संस्थितान् । गंधैर्धूपैस्तथा दीपैर्नैवेद्यैश्चापि नारद ॥५२॥
प्रत्येकं दक्षिणां दत्त्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत् । दक्षिणां तां द्विजाग्र्येभ्यो गुरवे वा समर्पयेत् ॥५३॥
एवं कृतविधिश्चैकभक्तो भोगी व्रती भवेत् । लोकद्वयस्य विप्रर्षे नात्र कार्या विचारणा ॥५४॥
माघशुक्लदशम्यां तु सोपवासो जितेंद्रियः । देवानंगिरसो नाम दशसम्यक्समर्चयेत् ॥५५॥
कृत्वा स्वर्णमयान्विप्र गंधाद्यैरुपचारकैः । आत्मा ह्यायुर्मनो दक्षो मदः प्राणस्तथैव च ॥५६॥
बर्हिष्मांश्च गविष्ठश्च दत्तः सत्यश्च ते दश । दश विप्रान्भोजयित्वा मधुरान्नेन नारद ॥५७॥
मूर्तीस्तेभ्यः प्रदद्यात्ताः स्वर्गलोकाप्तये क्रमात् । अंत्यशुक्लदशम्यां तु चतुर्दश यमान्यजेत् ॥५८॥
यमश्च धर्मराजश्च मृत्युश्चैवांतकस्तथा । वैवस्वतश्च कालश्च सर्वभूतक्षयस्तथा ॥५९॥
औदुम्बरश्च दध्नश्च द्वौ नीलपरमेष्ठिनौ । वृकोदरश्च चित्रश्च चित्रगुप्तश्चतुर्दश ॥६०॥
गन्धाद्यैरुपचारैश्च समभ्यर्च्याथ तर्पयेत् । तिलांबुमिश्रांजलिभिर्दर्भैः प्रत्येकशस्त्रिभिः ॥६१॥
ततश्च दद्यात्सूर्यार्घं ताम्रपात्रेण नारद । रक्तचंदनसंमिश्रतिलाक्षतयवांबुभिः ॥६२॥
एहि सूर्यसहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भक्त्या मामनुकंपय ॥६३॥
इति मंत्रेण दत्त्वाऽर्घ्यं विप्रान्भोज्य चतुर्दश । रौप्यां सुदक्षिणां दत्त्वा विसृज्याश्नीत च स्वयम् ॥६४॥
एवं कृतविधिर्विप्र धर्मराजप्रसादतः । भुक्त्वा भोगांश्च पुत्रार्थानैहिकान्देवदुर्लभान् ॥६५॥
विमानवरमास्थाय देहांते विष्णुलोकभाक् ॥६६॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थितदशमीव्रतनिरूपणं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥११९॥

काम, मुनि, गुरु, विप्र, राम तथा केशव की कुशमय प्रतिमाओं को आसनों पर अवस्थित कर गंध, धूप, दीप तथा नैवेद्यों से उनकी पूजा करें पश्चात् प्रत्येक को दक्षिणा देकर प्रणाम करके विसर्जन करें। नारद ! वह दक्षिणा उत्तम ब्राह्मणों को या गुरु को समर्पित करनी चाहिए। जो व्यक्ति एक भुक्त करते हुए उपर्युक्त प्रकार से व्रत को संपन्न करता है, वह ऐहलौकिक तथा पारलौकिक सुखों का भोक्ता होता है, इसमें सोचने की आवश्यकता नहीं ॥४८-५४॥

माघ-शुक्ल-दशमी में उपवास तथा इंद्रियसंयम करते हुए आत्मा, आयु, मन, दक्ष, मद, प्राण, बर्हिष्मान्, गविष्ठ, दत्त तथा सत्य नामक दश आंगिरस देवों की स्वर्णमयी प्रतिमाओं का गंध आदि उपचारों से पूजन कर दश विप्रों को मिष्टान्न खिलाये। नारद ! वे मूर्तियाँ उन्हीं लोगों को दे देनी चाहिए। ऐसा करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। फाल्गुन-शुक्ल-दशमी में चौदह यमों की पूजा करनी चाहिये। यम, धर्मराज, मृत्यु, अंतक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र, और चित्रगुप्त की गंध आदि सामग्रियों से पूजा कर कुश, तिल, जल से तर्पण करे। पश्चात् ताम्रपात्र में रक्तचंदन, तिल, अक्षत, यव तथा जल रखकर "एहि···अनुकंपय" इस मंत्र से अर्घ्य दे। फिर चौदह ब्राह्मणों को खिलाकर सोना-चाँदी दक्षिणा देकर बिदा करे। अनन्तर स्वयं भी भोजन करे। विप्र ! जो इस प्रकार व्रत करता है, वह ऐहलौकिक दिव्य भोगों को भोग कर अन्त में उत्तम विमान से विष्णुलोक को जाता है ५५-६६॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थ पाद में द्वादशमास स्थित दशमी व्रतनिरूपण नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥११९॥

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सनातन उवाच

नानापुष्पैर्मने कृत्वा विचित्रं मण्डपं शुभम् ॥१॥
एकादश्यां तु दलयोर्निराहारः समाहितः । संपूज्य विधिवद्विष्णुं श्रद्धया सुसमाहितः ॥२॥
स्नात्वा सम्यग्विधानेन सोपवासो जितेंद्रियः । स्तोत्रपाठैर्बहुविधैर्गीतवाद्यैर्मनोहरैः ॥३॥
उपचारैर्बहुविधैर्जपैर्होमैः प्रदक्षिणैः । रात्रौ जागरणं कृत्वा याति विष्णोः परं पदम् ॥४॥
दंडवत्प्रणिपातैश्च जयशब्दैर्मनोहरैः । कृत्वा च नियमान्सर्वान्वक्ष्यमाणान्दिनत्रये ॥५॥
चैत्रस्य शुक्लैकादश्यां सोपवासो नरोत्तमः । उपचारैः षोडशभिस्ततः संभोज्य बांधवान् ॥६॥
द्वादश्यामर्चयेद्भक्त्या वासुदेवं सनातनम् । इयं तु कामदा नाम सर्वपातकनाशिनी ॥७॥
दत्त्वा च दक्षिणां तेभ्यो विसृज्याश्नीत च स्वयम् । वैशाखकृष्णैकादश्यां समुपोष्य विधानतः ॥८॥
भुक्तिमुक्तिप्रदा विप्र भक्त्या सम्यगुपोषिता । स्वर्णान्नकन्याधेनूनां दानमत्र प्रशस्यते ॥९॥
वरूथिनीं परदिने पूजयेन्मधुसूदनम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवं लभते पदम् ॥१०॥
वरूथिनीव्रतं कृत्वा नरो नियमतत्परः । स्नात्वा परेऽह्नि संपूज्य गंधाद्यैः पुरुषोत्तमम् ॥११॥
वैशाखशुक्लैकादश्यां समुपोष्य च मोहिनीम् । ज्येष्ठस्य कृष्णैकादश्यां समुपोष्य परां नृप ॥१२॥
संभोज्य विप्रान्मुच्येत पातकेभ्यो न संशयः । ततो द्विजाग्र्यान्संभोज्य दत्त्वा तेभ्यश्च दक्षिणाम् ॥१३॥
द्वादश्यां नैत्यिकं कृत्वा समभ्यर्च्य त्रिविक्रमम् । ज्येष्ठस्य शुक्लैकादश्यां निर्जलां समुपोष्य तु ॥१४॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ।

अध्याय १२०

बारह मासों का एकादशीव्रत तथा दशमी आदि तीन दिनों के पालनीय विशेष नियम

सनातन बोले—मुने ! दोनों पक्षों की एकादशी तिथि में निराहार तथा सुसंयत होकर सुन्दर मंडप को बहुविध पुष्पों से सुशोभित करे । अच्छी तरह उपवास तथा इंद्रिय संयम करते हुए विधिपूर्वक स्नान करके श्रद्धा एवम् भक्ति से विष्णु की आराधना करे । जप, होम, प्रदक्षिणा, स्तोत्रपाठ, मनोहर गीत-वाद्य, दंडवत्प्रणाम, सुन्दर जयशब्दोच्चारण आदि उपचारों से उनकी आराधना करते हुए रात्रि में जागरण करे । ऐसा करने से विष्णु के परम पद की प्राप्ति होती है ॥१-४॥

चैत्र-शुक्ल-एकादशी में उत्तम मानव उपवास करते हुए वक्ष्यमाण नियमों का तीन दिनों तक पालन करे । द्वादशी में भक्ति से सनातन वासुदेव की षोडशोपचार पूजा कर ब्राह्मणों को भोजन कराये । पश्चात् उन्हें दक्षिणापूर्वक बिदा करके स्वयं भोजन करे । विप्र ! इस एकादशी का नाम कामदा है । इसमें सम्यक् उपवास करने से सकल पातकों का नाश तथा भोग-मोक्ष का लाभ होता है ॥५-८॥

वैशाख-कृष्ण-एकादशी का नाम वरूथिनी है । उसमें विधिपूर्वक उपवास कर दूसरे दिन मधुसूदन की पूजा करनी चाहिये । उस दिन सुवर्ण, अन्न, कन्या तथा धेनुओं का दान भी प्रशस्त माना गया है । जो नर

उदयादुदयं यावद्भास्करस्य द्विजोत्तम । प्रभाते कृतनित्यस्तु द्वादश्यामुपचारकैः ॥१५॥
हृषीकेशं समभ्यर्च्य विप्रान् संभोज्य भक्तितः । चतुर्विंशैकादशीनां फलं यत्तत्समाप्नुयात् ॥१६॥
आषाढकृष्णैकादश्यां योगिनीं समुपोष्य वै । नारायणं समभ्यर्च्य द्वादश्यां कृतनित्यकः ॥१७॥
ततः संभोज्य विप्राग्र्यान्दत्त्वा तेभ्यश्च दक्षिणाम् । सर्वदानफलं प्राप्य मोदते विष्णुमन्दिरे ॥१८॥
आषाढशुक्लैकादश्यां यद्विधानं शृणुष्व तत् । उपोष्य तस्मिन् दिवसे विधिवन्मंडपे शुभे ॥१९॥
स्थापयेत्प्रतिमां विष्णोः शंखचक्रगदांबुजैः । लसच्चतुर्भुजामग्र्यां कांचनीं वाथ राजतीम् ॥२०॥
पीतांबरधरां शुभ्रे पर्य्यंके स्वास्तृते द्विज । ततः पंचामृतैः स्नाप्य मन्त्रैः शुद्धजलेन च ॥२१॥
पौरुषेणैव सूक्तेन ह्युपचारान् प्रकल्पयेत् । नीराजनांतान्पाद्यादींस्ततः संप्रार्थयेद्धरिम् ॥२२॥
सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम् । विबुद्धे त्वयि बुद्धं च जगत्सर्वं चराचरम् ॥२३॥
इति संप्रार्थ्य देवाग्रे चातुर्मास्यप्रबोदितान् । नियमांस्तु यथाशक्ति गृह्णीयाद्भक्तिमान्नरः ॥२४॥
ततः प्रभाते द्वादश्यां समर्चेच्छेषशायिनम् । उपचारैः षोडशभिस्ततः संभोज्य वाडवान् ॥२५॥
प्रतोष्य दक्षिणाभिश्च स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः । ततःप्रभृति विप्रेंद्र गन्धाद्यैः प्रत्यहं यजेत् ॥२६॥
कृत्वैवं विधिना विप्र देवस्य शयनीव्रतम् । भुक्तिमुक्तियुतो मर्त्यो भवेद्विष्णोः प्रसादतः ॥२७॥

नियमपूर्वक वरूथिनी व्रत करता है, वह सकल पातकों से मुक्त होकर वैकुंठ को जाता है। वैशाख-शुक्ल-एकादशी का नाम मोहिनी है। उस दिन उपवास करते हुए दूसरे दिन स्नानोपरान्त गंध आदि उपचारों से पुरुषोत्तम की पूजा कर ब्राह्मणों को खिलाये। ऐसा करने से पापों का नाश होता है, इसमें संशय नहीं। ज्येष्ठ-कृष्ण एकादशी का नाम परा है। उस दिन उपवास करते हुए द्वादशी में नित्यकर्म करने के उपरान्त त्रिविक्रम को पूजा करे। पश्चात् उत्तम ब्राह्मणों को खिला कर उन्हें दक्षिणा दे। ऐसा करने से मानव समस्त पापों से निवृत्त होकर विष्णुलोक को जाता है ॥९-१३½॥ ज्येष्ठ शुक्ल-एकादशी का नाम निर्जला है। उस दिन निवृत्त हो हृषीकेश की सोपचार पूजा करे। पश्चात् भक्ति से विप्रों को भोजन कराये। ऐसा करने से चौबीस एकादशी-व्रतों का फल प्राप्त होता है ॥१४-१६॥

आषाढ़-कृष्ण एकादशी का नाम योगिनी है। उस दिन उपवास करते हुए द्वादशी को नित्यकर्म करने के उपरान्त नारायण की अर्चना कर उत्तम ब्राह्मणों को भोजन तथा दक्षिणा दे। ऐसा करने से मनुष्य निखिल दानों का फल प्राप्त कर वैकुंठ को जाता है ॥१७-१८॥ आषाढ़-शुक्ल'एकादशी का जो विधान है, वह सुनो। उस दिन उपवास करते हुए पवित्र मंडप में शंख; चक्र, गदा तथा कमल से युक्त चार भुजा वाली विष्णु की सुवर्णमयी या रजतमयी प्रतिमा को निर्मल आसन पर स्थापित कर पुरुषसूक्त पढ़ते हुए पंचामृत तथा शुद्ध जल से स्नान कराये। पश्चात् आचमनीय से लेकर नीराजन पर्यन्त उपचारपुर्वक पूजन कर हरि की प्रार्थना करे—'जगन्नाथ! आपके सो जाने पर संपूर्ण जगत् सो जाता है और आपके जागने पर सकल चराचर जगत् जागरित होता है।' इस प्रकार प्रार्थना करके भक्तिमान् मनुष्य चातुर्मास्य के नियमों का यथाशक्ति पालन करने के लिये प्रतिज्ञा करे। प्रातःकाल द्वादशी में शेषशायी भगवान् का षोडशोपचार पूजन कर ब्राह्मणों को खिलाये, उन्हें दक्षिणा से संतुष्ट कर स्वयं वाक्संयमपूर्वक भोजन करे। विप्र! तब से लेकर प्रत्येक दिन गंध आदि से भगवान् का पूजन किया करे। जो मनुष्य इस प्रकार हरिशयन-एकादशी करता है, वह विष्णु की कृपा से भोग-मोक्ष को प्राप्त करता है ॥१९-२७॥

कामिकां समुपोष्यैव नियमेन नरोत्तम ॥२८॥
श्रावणे कृष्णपक्षे तु एकादश्यां द्विजोत्तम । उपचारैः षोडशभिस्ततः संभोज्य वै द्विजान् ॥२९॥
द्वादश्यां कृतनित्यस्तु श्रीधरं पूजयेद्धरिम् । एवं यः कुरुते विप्रकामिकाव्रतमुत्तमम् ॥३०॥
दत्त्वा च दक्षिणां तेभ्यो विसृज्याश्नीत बांधवैः । एकादश्यां नभःशुक्ले पवित्रां समुपोष्य वै ॥३१॥
स सर्वकामाँल्लब्ध्वेह याति विष्णोः परं पदम् । उपचारैः षोडशभिस्ततः संभोज्य वाडवान् ॥३२॥
द्वादश्यां नियतो भूत्वा पूजयेच्च जनार्दनम् । याति विष्णोः पदं साक्षात्सर्वदेवनमस्कृतः ॥३३॥
दत्त्वा च दक्षिणां तेभ्यः पुत्रं प्राप्येह सद्गुणम् । अर्चेदुपेन्द्रं द्वादश्यामुपचारैः पृथग्विधैः ॥३४॥
नभस्यकृष्णैकादश्यामजाख्यां समुपोष्य वै । एवं कृतव्रतो विप्र भक्त्याऽजायाः समाहितः ॥३५॥
विप्रान्संभोज्य मिष्टान्नैर्विसृजेत्प्राप्तदक्षिणान् । नभस्यशुक्लैकादश्यां पद्माख्यां समुपोष्य वै ॥३६॥
भुक्त्वेह भोगानखिलान्यात्यंते वैष्णवं क्षयम् । पूर्वं संस्थापितायास्तु प्रतिमाया द्विजोत्तम ॥३७॥
कृत्वा नित्यार्चनं तत्र कटिदानमथाचरेत् । कृतांबुस्पर्शनां तत्र संप्रपूज्य विधानतः ॥३८॥
समुत्सवविधानेन नीत्वा तां सलिलाशये । ततः प्रभाते द्वादश्यां गन्धाद्यैरर्च्य वामनम् ॥३९॥
आनीय मण्डपे तस्मिन् वामपार्श्वेन शाययेत् । एवं यः कुरुते विप्र पद्माव्रतमनुत्तमम् ॥४०॥
संभोज्य वाडवान्दत्त्वा दक्षिणां च विसर्जयेत् । इषस्य कृष्णैकादश्यामिंदिरां समुपोष्य वै ॥४१॥
भुक्तिं प्राप्येह मुक्तिं तु लभतेंऽते प्रपंचतः । विष्णोः प्रीतिकरं विप्र ततः प्रातर्हरेर्दिने ॥४२॥
शालग्रामशिलाग्रे तु मध्याह्ने श्राद्धमाचरेत् । विसृज्य दक्षिणां दत्त्वा तांस्ततोऽश्नीत च स्वयम् ॥४३॥
पद्मनाभं समभ्यर्च्य भूदेवान्भोजयेत्सुधीः ।

द्विजश्रेष्ठ ! श्रावण-कृष्ण-एकादशी का नाम कामिका है। उसमें नियमपूर्वक उपवास कर द्वादशी में नित्य कर्म करके श्रीधर भगवान् का षोडशोपचार पूजन करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को खिलाकर दक्षिणापूर्वक बिदा करे और स्वयं भाई-बंधुओं के साथ मिलकर भोजन करे। विप्र ! इस प्रकार जो उत्तम कामिका व्रत करता है, वह समस्त कामनाओं को प्राप्त कर वैकुंठ जाता है। श्रावण-शुक्ल-एकादशी का नाम पवित्रा है। उसमें उपवास कर द्वादशी को नित्यकर्म करने के उपरान्त जनार्दन का षोडशोपचार पूजन करे। पश्चात् ब्राह्मणों को खिला कर उन्हें दक्षिणा दे। ऐसा करने वाला व्यक्ति गुणवान् पुत्र को प्राप्त कर सर्वदेववंद्य होकर वैकुंठ जाता है। भाद्र-कृष्ण-एकादशी अजा कहलाती है। उसमें उपवास कर दूसरे दिन विष्णु को पृथक्-पृथक् उपचारों से अर्चना करे। अनन्तर विप्रों को मिष्टान्न खिलाकर दक्षिणापूर्वक बिदा करे। विप्र! जो सावधान होकर भक्ति से अजा-व्रत करता है, वह अखिल भोगों को भोगकर अंत में विष्णुलोक को जाता है ॥२८-३५½॥ भाद्र-शुक्ल-एकादशी का नाम पद्मा है। उस दिन नित्यपूजन कर मंडप का निर्माण करे। अनन्तर पहले से बनी-बनाई प्रतिमा को उत्सव के साथ जलाशय ले जाकर जल से परिमार्जित करे। फिर विधिपूर्वक पूजा कर मंडप में ले जाय। वहाँ बायीं करवट सुला दे। प्रातःकाल द्वादशी में गंध आदि उपचारों से वामन की अर्चना कर ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा दे बिदा करे। विप्र ! जो इस प्रकार उत्तम पद्माव्रत को करता है, वह इस लोक में भोगों को भोगकर अंत में संसार से मुक्ति पाता है। आश्विन-कृष्ण-एकादशी का नाम इंदिरा है। उस दिन मध्याह्न में शालग्रामशिला के समीप श्राद्ध करने से विष्णु प्रसन्न होते हैं। प्रातःकाल द्वादशी में पद्मनाभ की अर्चना कर सुधी व्यक्ति ब्राह्मणों को भोजन करावे। पश्चात् उन्हें दक्षिणापूर्वक बिदा करके स्वयं भोजन करे। इस प्रकार

एवं कृतव्रतो मर्त्यो भुक्त्वा भोगानिहेप्सितान् । पितॄणां कोटिमुद्धृत्य यात्यंते वैष्णवं गृहम् ॥४४॥
एकादश्यामिषे शुक्ले विप्र पाशांकुशाह्वयाम् । उपोष्य विधिवद्विष्णोर्दिने विष्णुं समर्चयेत् ॥४५॥
ततः संभोज्य विप्राग्र्यान्दत्त्वा तेभ्यश्च दक्षिणाम् । भक्त्या प्रणम्य विसृजेदश्नीयाच्च स्वयं ततः ॥४६॥
एवं यः कुरुते भक्त्या नरः पाशांकुशाव्रतम् । स भुक्त्वेह वरान्भोगान्याति विष्णोः सलोकताम् ॥४७॥
कार्तिके कृष्णपक्षे तु एकादश्यां द्विजोत्तम । रमामुपोष्य विधिवद्द्वादश्यां प्रातरर्चयेत् ॥४८॥
केशवं केशिहंतारं देवदेवं सनातनम् । भोजयेच्च ततो विप्रान्विसृजेल्लब्धदक्षिणान् ॥४९॥
एवं कृतव्रतो विप्र भोगान्भुक्त्वेह वांछितान् । व्योमयानेन वैकुण्ठं लभते स रमापतेः ॥५०॥
ऊर्जस्य शुक्लैकादश्यां समुपोष्य प्रबोधिनीम् । केशवं बोधयेद्रात्रौ सुप्तं गीतादिमंगलैः ॥५१॥
ऋग्यजुःसाममंत्रैश्च वाद्यैर्नानाविधैरपि । द्राक्षेक्षुदाडिमैश्चाम्रै रंभाशृंगाटकादिभिः ॥५२॥
समर्पणैस्ततो रात्र्यां व्यतीतायां परेऽहनि । स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा नरो दामोदरं यजेत् ॥५३॥
उपचारैः षोडशभिः पौरुषेणापि सूक्ततः । संभोज्य विप्रान्विसृजेद्दक्षिणाभिः प्रतोषितान् ॥५४॥
ततस्तां प्रतिमां हैमीं सधेनुं गुरवेऽर्पयेत् । एवं यः कुरुते भक्त्या बोधिनीव्रतमादृतः ॥५५॥
स भुक्त्वेह वरान्भोगान्वैष्णवं लभते पदम् । मार्गस्य कृष्णैकादश्यामुत्पन्नां समुपोष्य वै ॥५६॥
द्वादश्यां कृष्णमभ्यर्चेद्गंधाद्यैरुपचारकैः । ततः संभोज्य विप्राग्र्यान्दत्त्वा तेभ्यश्च दक्षिणाम् ॥५७॥

व्रत करने वाला मनुष्य अभिलषित भोगों को भोगकर करोड़ों पितरों का उद्धार करके अंत में विष्णुलोक को जाता है ॥३६-४४॥

विप्र ! आश्विन-शुक्ल-एकादशी का नाम पाशांकुशा है। उस दिन उपवास कर द्वादशी में विधिपूर्वक विष्णु की अर्चना करे। पश्चात् उत्तम ब्राह्मणों को खिलाकर दक्षिणा दे और भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हुए विदा करके स्वयं भोजन करे। जो नर इस प्रकार पाशांकुशाव्रत करता है, वह इस लोक में उत्तम भोगों को भोगकर विष्णु के सालोक्यमोक्ष को प्राप्त करता है। द्विजश्रेष्ठ ! कार्तिक-कृष्ण-एकादशी का नाम रमा है। उस दिन विधिवत् उपवास कर प्रातःकाल द्वादशी में केशी नामक राक्षस के मारने वाले, देवस्वामी, सनातन, केशव भगवान् की अर्चना करे। तदनन्तर विप्रों को खिलाकर दक्षिणापूर्वक उन्हें विदा करे। विप्र ! इस प्रकार व्रत करने वाला व्यक्ति ऐहलौकिक इष्ट भोगों को भोगकर विमान से वैकुंठ को जाता है ॥४५-५०॥

कार्तिक-शुक्ल-एकादशी का नाम प्रबोधिनी है। उस दिन उपवास करते हुए रात्रि में माँगलिक संगीत, ऋग्, यजु तथा साम-मंत्र और विविध वाद्यों से केशव को जगाये। उन्हें दाख, ईख, अनार, केला और सिंघाड़ा आदि फल चढ़ाये, रात बीत जाने पर दूसरे दिन स्नानोपरान्त नित्यक्रिया करके पुरुषसूक्त को पढ़ते हुए दामोदर की षोडशोपचार अर्चना करे। पश्चात् विप्रों को खिलाकर दक्षिणा से उन्हें संतुष्ट करे और सुवर्णमयी विष्णु की प्रतिमा धेनुसहित गुरु को समर्पित कर दे। जो मनुष्य इस प्रकार प्रबोधिनी व्रत को आदरपूर्वक करता है, वह इस लोक में उत्तम भोगों को भोगकर विष्णुपद को प्राप्त करता है। अगहन-कृष्ण-एकादशी का नाम उत्पन्ना है ॥५१-५६॥ उस दिन उपवास करते हुए द्वादशी में गंध आदि उपचारों से कृष्ण की अर्चना करे। तदनन्तर उत्तम ब्राह्मणों को खिलाकर उन्हें दक्षिणापूर्वक विदा करके इष्ट-मित्रों के साथ स्वयं भोजन करे। जो इस प्रकार भक्तिभाव से उत्पन्नाव्रत करता है, वह अन्त में विमान पर आरूढ़ होकर विष्णुलोक को जाता

विसृज्य पश्चाद्भुंजीत स्वयमिष्टैः समाहितः । एवं यो भक्तिभावेन उत्पन्नाव्रतमाचरेत् ॥५८॥
स विमानं समारुह्य यात्यंते वैष्णवं पदम् । मार्गस्य शुक्लैकादश्यां मोक्षाख्यां समुपोष्य वै ॥५९॥
द्वादश्यां प्रातरभ्यर्च्य ह्यनंतं विश्वरूपकम् । सर्वैरेवोपचारैस्तु विप्रान्संभोजयेद्द्विजः ॥६०॥
विसृज्य दक्षिणां दत्त्वा स्वयं भुंजीत बांधवैः । एवं कृत्वा व्रतं विप्र भुक्त्वा भोगानिहेप्सितान् ॥६१॥
दश पूर्वान्दश परान्समुद्धृत्य व्रजेद्धरिम् । पौषस्य कृष्णैकादश्यां सफलां समुपोष्य वै ॥
॥६२॥
द्वादश्यामच्युतं प्रार्च्य सर्वैरेवोपचारकैः
संभोज्य विप्रान्मधुरैर्विसृजेत्सदक्षिणान् । एवं कृत्वा व्रतं विप्र सफलाया विधानतः ॥६३॥
भुक्त्वेह भोगानखिलान्यात्यंते वैष्णवं पदम् । पौषस्य शुक्लैकादश्यां पुत्रदां समुपोष्य वै ॥६४॥
द्वादश्यां सकलं प्रार्चेदर्घाद्यैरुपचारकैः । ततः संभोज्य विप्राग्र्यान्दत्त्वा तेभ्यस्तु दक्षिणाम् ॥६५॥
विसृज्य स्वयमश्नीयाच्छेषान्नं स्वेष्टबांधवैः । एवं कृतव्रतो विप्र भुक्त्वा भोगानिहेप्सितान् ॥६६॥
विमानवरमारुह्य यात्यंते हरिमंदिरम् । माघस्य कृष्णैकादश्यां षट्तिलां समुपोष्य वै ॥६७॥
स्नात्वा दत्त्वा तर्पयित्वा हुत्वा भुक्त्वा समर्च्य च । तिलैरेव द्विजश्रेष्ठ द्वादश्यां प्रातरेव हि ॥६८॥
वैकुण्ठं समभ्यर्च्य सर्वैरेवोपचारकैः । द्विजान्संभोज्य विसृजेद्दत्त्वा तेभ्यश्च दक्षिणाम् ॥६९॥
एवं कृत्वा व्रतं विप्र विधिना सुसमाहितः । भुक्त्वेह वांछितान्भोगानंते विष्णुपदं लभेत् ॥७०॥
माघस्य शुक्लैकादश्यां समुपोष्य जयाह्वयाम् । प्रातर्हरिं दिनेऽभ्यर्च्य च्छेकोभोति पुरुषं द्विज ॥७१॥
भोजयित्वा दक्षिणां च दत्त्वा विप्रान्विसृज्य च । स्वयं भुंजीत तच्छेषं प्रयतो निजबांधवैः ॥७२॥

है । मार्ग-शुक्ल-एकादशी मोक्षा कहलाती है। उस दिन उपवास करते हुए प्रातःकाल द्वादशी में सकल उपचारों से विश्वात्मा अनंत की अर्चना करे। पश्चात् ब्राह्मणों को खिलाकर दक्षिणापूर्वक उन्हें बिदा करके भाई-बन्धुओं के साथ स्वयं भोजन करे। विप्र ! जो इस प्रकार मोक्षाव्रत करता है, वह ऐहलौकिक वांछित भोगों को भोगकर दश पूर्व पुरुषों और दश भावी वंशजों का उद्धार करके हरिलोक को जाता है। पौष-कृष्ण-एकादशी का नाम सफला है ॥५७-६१॥ उस दिन उपवास करते हुए द्वादशी में समस्त उपचारों से अच्युत की पूजा कर ब्राह्मणों को मधुर खिलाये पश्चात् दक्षिणा देकर उन्हें बिदा करे। विप्र ! इसप्रकार जो विधि पूर्वक सफलाव्रत करता है, वह ऐहलौकिक सकल भोगों को भोग कर अंत में वैकुंठ को जाता है। पौष-शुक्ल-एकादशी का नाम पुत्रदा है। उस दिन उपवास करते हुए द्वादशी में अर्घ आदि उपचारों से विष्णु की अर्चना करे। तदनन्तर उत्तम ब्राह्मणों को खिलाकर उन्हें दक्षिणा देकर बिदा करे और उनसे बचे अन्न को इष्ट मित्रों के साथ स्वयं भोजन करे। विप्र ! जो इसप्रकार व्रत संपन्न करता है, वह इस लोक में अभिलषित भोगों को भोगकर अंत में उत्तम विमान से विष्णुलोक को जाता है ॥६२-६६॥

माघ-कृष्ण-एकादशी का नाम षट्तिला है, उस दिन उपवास करते हुए स्नान, दान, तर्पण, हवन, तथा अर्चना करे। द्विजश्रेष्ठ ! द्वादशी में प्रातःकाल तिल तथा अन्य समस्त उपचारों से विष्णु की पूजा कर द्विजों को खिलाकर दक्षिणापूर्वक उन्हें बिदा करे। विप्र ! इस प्रकार सावधानी से विधिपूर्वक व्रत करने वाला व्यक्ति इस लोक में अभिलषित भोगों को भोग कर अन्त में वैकुण्ठ को जाता है। माघ-शुक्ल-एकादशी का नाम जया है। उस दिन उपवास करते हुए प्रातःकाल द्वादशी में पुरुषोत्तम विष्णु की अर्चना कर विप्रों को भोजन कराये। पश्चात् उन्हें दक्षिणापूर्वक बिदा करके उनसे बचे अन्न को अपने भाई बन्धुओं के साथ स्वयं भोजन करे। विप्र !

य एवं कुरुते विप्र व्रतं केशवतोषणम् । स भुक्त्वेह वरान्भोगानन्ते विष्णोः पदं व्रजेत् ॥७३॥
तपस्यकृष्णैकादश्यां विजयां समुपोष्य वै । द्वादश्यां प्रातरभ्यर्च्य योगीशं गंधपूर्वकैः ॥७४॥
ततः संभोज्य भूदेवान्दक्षिणाभिः प्रतोष्य तान् । विसृज्य बांधवैः सार्द्धं स्वयमश्नीत वाग्यतः ॥७५॥
एवं कृतव्रतो मर्त्यो भुक्त्वा भोगानिहेप्सितान् । देहांते वैष्णवं लोकं याति देवैः सुसत्कृतः ॥७६॥
फाल्गुनस्य सिते पक्षे एकादश्यां द्विजोत्तम । उपोष्यामलकीं भक्त्या द्वादश्यां प्रातरर्चयेत् ॥७७॥
पुण्डरीकाक्षमखिलैरुपचारैस्ततो द्विजान् । भोजयित्वा वरान्नेन दद्यात्तेभ्यस्तु दक्षिणाम् ॥७८॥
एवं कृत्वा विधानेनामलक्यां पूजनादिकम् । सितैकादश्यां तपस्ये व्रजेद्विष्णोः परं पदम् ॥७९॥
चैत्रस्य कृष्णैकादशीं पापमोचनिकां द्विज । उपोष्य द्वादश्यां प्रातर्गोविंदं पूजयेत्तथा ॥८०॥
उपचारैः षोडशभिर्द्विजान्संभोज्य दक्षिणाम् । दत्त्वा तेभ्यो विसृज्याथ स्वयं भुंजीत बान्धवैः ॥८१॥
एवं यः कुरुते विप्र पापमोचनिकाव्रतम् । स याति वैष्णवं लोकं विमानेन तु भास्वता ॥८२॥
इत्थं कृष्णे तथा शुक्ले व्रतं चैकादशीभवम् । मोक्षदं कीर्तितं विप्र नास्त्यस्मिन्संशयः क्वचित् ॥८३॥
यतस्त्रिदिनसंसाध्यं कीर्तितं पापनाशनम् । सर्वव्रतोत्तमं विप्र ततो ज्ञेयं महाफलम् ॥८४॥
त्यजेच्चत्वारि भुक्तानि नारदैतद्दिनत्रये । आद्यंतयोरेकमेकं मध्यमे द्वयमेव हि ॥८५॥
अथ ते नियमान्वच्मि व्रते ह्यस्मिन्दिनत्रये । कांस्यं मांसं मसूरान्नं चणकान्कोद्रवांस्तथा ॥८६॥
शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने । दशम्यां दश वस्तूनि वर्जयेद्वैष्णवः सदा ॥८७॥
द्यूतक्रीडां च निद्रां च तांबूलं दंतधावनम् । परापवादं पैशुन्यं स्तेयं हिंसां तथा रतिम् ॥८८॥

जो इसप्रकार केशव को संतुष्ट करने वाले व्रत को करता है वह इस लोक में उत्तम भोगों को भोग कर अन्त में वैकुण्ठ को जाता है ॥६७-७३॥

फालगुन-कृष्ण-एकादशी का नाम विजया है । उस दिन उपवास करते हुए द्वादशी में प्रातःकाल ही गंध आदि उपचारों से योगेश्वर विष्णु की आराधना कर ब्राह्मण-भोजन कराये । पश्चात् उन्हें दक्षिणा से संतुष्ट कर बिदा करके बांधवों के साथ वाक्संयमपूर्वक स्वयं भोजन करे । इस तरह व्रत करने वाला मानव ऐहलौकिक वांछित भोगों को भोग कर देहांत में देवसंमानित होते हुए विष्णुलोक को जाता है । द्विजवर्य ! फाल्गुन-शुक्ल-एकादशी का नाम आमलकी है । उस दिन उपवास करते हुए द्वादशी में प्रातःकाल निखिल उपचारों से पुंडरीकाक्ष की अर्चना कर ब्राह्मणों को उत्तम अन्न खिलाये । पश्चात् उन्हें दक्षिणा देकर बिदा करे । इसप्रकार आमलकीव्रत करके विधि-पूर्वक पूजन आदि करने से मनुष्य विष्णु के परम पद को प्राप्त करता है । चैत्र-कृष्ण-एकादशी करने से पापों का नाश होता है ॥७४-८२॥

विप्र ! शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष का एकादशीव्रत मोक्षदायक है, इसमें संशय नहीं करना चाहिये । द्विज ! जिसलिये यह व्रत तीन दिनों में किया जाता है इसलिये यह पापनाशक तथा महाफलदायक माना गया है । नारद ! इन तीन दिनों में चार समय का भोजन परित्याग कर दे । प्रथम दिन तथा अंतिम दिन एक-एक संध्या भोजन छोड़े; परन्तु बीच के दिन दोनों संध्या भोजन न करे ॥८३-८५॥

अब मैं इस दिनत्रयात्मक व्रत के नियमों को तुमसे बता देता हूँ । कांस्यपात्र, मांस, मसूर, चना, कोदों, शाक, मधु, परान्न, पुनर्भोजन तथा मैथुन—इन दश वस्तुओं को वैष्णव जन दशमी के दिन बिलकुल त्याग दे । जुआ, निद्रा, तांबूल, दंतधावन, परनिंदा, चुगली, चोरी, हिंसा, रति, क्रोध, और मिथ्याभाषण—इनको एकादशी के

कोपं ह्यनृतवाक्यं च एकादश्यां विवर्जयेत् । कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं तैलं विण्म्लेच्छभाषणम् ॥८९॥
व्यायामं च प्रवासं च पुनर्भोजनमैथुने । अस्पृश्यस्पर्शमाशूरे द्वादश्यां द्वादश त्यजेत् ॥९०॥
एवं नियमकृद्विप्र उपवासं समाचरेत् । शक्तोऽशक्तस्तु मतिमानेकभुक्तं न नक्तकम् ॥९१॥
अयाचितं वापि चरेन्न त्यजेद्व्रतमीदृशम् । ॥९२॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थभागे द्वादशमासस्थितै-
कादशीव्रतकथनं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सनातन उवाच

अथ व्रतानि द्वादश्याः कथयामि तवानघ । यानि कृत्वा नरो लोके विष्णोः प्रियतरो भवेत् ॥१॥
चैत्रस्य शुक्लद्वादश्यां मदनव्रतमाचरेत् । स्थापयेदव्रणं कुम्भं सिततंदुलपूरितम् ॥२॥
नानाफलयुतं तद्वदिक्षुदंडसमन्वितम् । सितवस्त्रयुगच्छन्नं सितचंदनचर्चितम् ॥३॥
नानाभक्ष्यसमोपेतं सहिरण्यं स्वशक्तितः । ताम्रपात्रं गुडोपेतं तस्योपरि निवेशयेत् ॥४॥

के दिन छोड़ दे । कांस्यपात्र, मांस, मदिरा, मधु, तेल, धूर्त तथा म्लेच्छ के साथ भाषण, व्यायाम, परदेशगमन, पुनर्भोजन, मैथुन, अस्पृश्यों का स्पर्श तथा मसूर——इन बारह चीजों को द्वादशी के दिन छोड़ देना चाहिए । विप्र ! समर्थ पुरुष उपर्युक्त नियमों से युक्त होकर उपवास करे । जो असमर्थ हो वह एकभुक्त करे; किन्तु रात्रि में भोजन न करे । अथवा अयाचित वस्तु को खाये । परन्तु ऐसे व्रत का त्याग न करे ॥८९–९२॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में द्वादश-मास-स्थित-एकादशीव्रत-कथन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२०॥

अध्याय १२१

बारह मासों का द्वादशीव्रत

सनातन बोले——निष्पाप ! अब मैं तुमसे द्वादशी-व्रतों के संबन्ध में कहूँगा, जिनके अनुष्ठान से मनुष्य इस लोक में विष्णु का प्रिय होता है । चैत्र-शुक्ल-द्वादशी में मदनव्रत करना चाहिये । उस दिन उपवास करते हुए उजले चावल से परिपूर्ण तथा अनेक फलों और इक्षुदंडों से युक्त अखंड घट को स्थापित कर एक जोड़े स्वच्छ वस्त्रों से उसे आच्छादित करे । फिर श्वेत चंदन, अनेक भक्ष्यपदार्थ तथा अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण

तत्र संपूजयेद्देवं कामरूपिणमच्युतम् । गंधाद्यैरुपचारैस्तु सोपवासो परेऽहनि ॥५॥
पुनः प्रातः समभ्यर्च्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् । ब्राह्मणान्भोजयेच्चैव तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥६॥
वर्षमेवं व्रतं कृत्वा घृतधेनुसमन्विताम् । शय्यां तु दद्याद्गुरवे सर्वोपस्करसंयुताम् ॥७॥
कांचनं कामदेवं च शुक्लां गां च पयस्विनीम् । वासोभिर्द्विजदांपत्यं पूजयित्वा समर्पयेत् ॥८॥
प्रीयतां कामरूपी मे हरिरित्येवमुच्चरन् । यः कुर्याद्विधिनाऽनेन मदनद्वादशीव्रतम् ॥९॥
स सर्वपापनिर्मुक्तः प्राप्नोति हरिसाम्यताम् । अस्यामेव समुद्दिष्टं भर्तृद्वादशिकाव्रतम् ॥१०॥
स्वास्तृतां तत्र शय्यां तु कृत्वात्र श्रीयुतं हरिम् । संस्थाप्य मंडपं पुष्पैस्तदुपर्युपकल्पयेत् ॥११॥
ततः संपूज्य गंधाद्यैर्व्रती जागरणं निशि । नृत्यवादित्रगीताद्यैस्ततः प्रातः परेऽहनि ॥१२॥
सशय्यं श्रीहरिं हैमं द्विजाग्र्याय निवेदयेत् । द्विजान्संभोज्य विसृजेद्दक्षिणाभिः प्रतोषितान् ॥१३॥
एवं कृतव्रतस्यापि दांपत्यं जायते स्थिरम् । सप्तजन्मसु भुंक्ते च भोगान् लोकद्वयेप्सितान् ॥१४॥
वैशाखशुक्लद्वादश्यां सोपवासो जितेंद्रियः । संपूज्य माधवं भक्त्या गंधाद्यैरुपचारकैः ॥१५॥
पक्वान्नं तृप्तिजनकं मधुरं सोदकुम्भकम् । विप्राय दद्याद्विधिवन्माधवः प्रीयतामिति ॥१६॥
द्वादश्यां ज्येष्ठशुक्लायां पूजयित्वा त्रिविक्रमम् । गंधाद्यैर्मधुरान्नाढ्यं करकं विनिवेदयेत् ॥१७॥
व्रती द्विजाय तत्पश्चादेकभक्तं समाचरेत् । व्रतेनानेन संतुष्टो देवदेवस्त्रिविक्रमः ॥१८॥
ददाति विपुलान्भोगानंते मोक्षं च नारद । आषाढशुक्लद्वादश्यां द्विजान्द्वादश भोजयेत् ॥१९॥
मधुरान्नेन तान्पूज्य पृथग्गंधादिकैः क्रमात् । तेभ्यो वासांसि दंडाश्च ब्रह्मसूत्राणि मुद्रिकाः ॥२०॥

उसमें डालकर गुडयुक्त ताम्रपात्र उसके ऊपर रखे। उस पात्र में गंध आदि उपचारों से कामरूपी अच्युत की पूजा कर दूसरे दिन प्रातःकाल पुनः अर्चना करके घट ब्राह्मण को दे दे। ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे ॥१-६॥ एक वर्ष इस प्रकार व्रत करके घृतधेनु सहित सोपकरण शय्या गुरु को समर्पित करे। यथाशक्ति द्विज-दंपति की पूजा कर "कामरूपी हरि मेरे ऊपर प्रसन्न हों" यह कहते हुए कामदेव की स्वर्णमयी प्रतिमा तथा उजली दुधार गौ उन्हें समर्पण करे। जो व्यक्ति इस विधि से मदन द्वादशी-व्रत करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर हरि के सादृश्यमोक्ष को प्राप्त करता है। उसी दिन भर्तृद्वादशिकाव्रत भी किया जाता है। सुन्दर ढंग से बिछाई हुई शय्या पर लक्ष्मी सहित हरि को स्थापित कर ऊपर पुष्पों का मंडप बनाये। तदनन्तर गंध आदि से उनकी पूजाकर व्रती नृत्य, गीत, वाद्य आदि से रात्रि में जागरण करे। दूसरे दिन प्रातःकाल चांदी सहित सुवर्ण की विष्णु-प्रतिमा उत्तम ब्राह्मण को दे दे। विप्रों को खिलाकर दक्षिणापूर्वक उन्हें विदा करे। इस प्रकार व्रत करने वाला व्यक्ति स्थायी दांपत्य की प्राप्ति करता है तथा सात जन्मों तक दोनों लोक के अभीष्ट भोगों को भोगता है ॥७-१४॥

वैशाख-शुक्ल-द्वादशी में उपवास तथा इंद्रियसंयम करते हुए गंध आदि उपचारों से भक्तिपूर्वक माधव की पूजा कर 'माधव प्रसन्न हों' यह कहते हुए जलपूर्ण घट, मधुर तथा तृप्तिजनक पकवान विप्र को प्रदान करे। ज्येष्ठ-शुक्ल-द्वादशी में गंध आदि से त्रिविक्रम की पूजा कर ब्राह्मण को मिष्टान्न खिलाये और स्वयं एक भुक्त करे। नारद! इस व्रत से संतुष्ट हो कर देवस्वामी त्रिविक्रम विपुल भोग तथा अन्त में मोक्ष भी देते हैं। आषाढ़-शुक्ल-द्वादशी में दश विप्रों को मधुर खिलाकर गंध आदि से पूजन करे। पश्चात् 'विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हों' यह कहते हुए उन्हें वस्त्र, दंड, यज्ञोपवीत तथा मुद्रिका प्रदान करे ॥१५-२०॥ श्रावण-शुक्ल-द्वादशी में व्रती

पात्राणि च ददेद्भक्त्या विष्णुर्मे प्रियतामिति । द्वादश्यां तु नभःशुक्ले श्रीधरं पूजयेद्व्रती ॥२१॥
गंधाद्यैस्तत्परो भक्त्या दधिभक्तैर्द्विजोत्तमान् । संभोज्य दक्षिणां रौप्यां दत्त्वा नत्वा विसर्जयेत् ॥२२॥
व्रतेनानेन देवेशः श्रीधरः प्रीयतामिति । द्वादश्यां नभस्यशुक्ले व्रती संपूज्य वामनम् ॥२३॥
तदग्रे भोजयेद्विप्रान्पायसैर्द्वादशैव च । सौवर्णां दक्षिणां दत्त्वा विष्णुप्रीतिकरो भवेत् ॥२४॥
द्वादश्यामिष शुक्लायां पद्मनाभं समर्चयेत् । गंधाद्यैरुपचारैस्तु तदग्रे भोजयेद्द्विजान् ॥२५॥
मधुरान्नेन वस्त्राढ्यां सौवर्णां दक्षिणां ददेत् । व्रतेनैतेन संतुष्टः पद्मनाभो द्विजोत्तम ॥२६॥
श्वेतद्वीपगतिं दद्याद्देहभोगांश्च वांछितान् । कार्तिके कृष्णपक्षे तु गोवत्सद्वादशीव्रतम् ॥२७॥
तत्र वत्सयुतां गां तु समालिख्य सुगंधिभिः । चंदनाद्यैस्तथा पुष्पमालाभिः प्रार्च्य ताम्रके ॥२८॥
पात्रे पुष्पाक्षततिलैरर्घ्यं कृत्वा विधानतः । प्रदद्यात्पादमूलेऽस्या मन्त्रेणानेन नारद ॥२९॥
क्षीरोदार्णवसंभूते सुरासुरनमस्कृते । सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते ॥३०॥
मातर्मातर्गवां मातर्गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते । ततो माषादिसंसिद्धान्वटकांश्च निवेदयेत् ॥३१॥
एवं पञ्च दशैकं वा यथाविभवमात्मनः । सुरभि त्वं जगन्माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता ॥३२॥
सर्वदेवमये ग्रासं मया दत्तमिमं ग्रस । सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते ॥३३॥
मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नंदिनि । तद्दिने तैलपक्वं च स्थालीपक्वं द्विजोत्तम ॥३४॥
गोक्षीरं गोघृतं चैव दधि तक्रं च वर्जयेत् । द्वादश्यामूर्जशुक्लायां देवं दामोदरं द्विज ॥३५॥
समभ्यर्च्योपचारैस्तु गंधाद्यैः सुसमाहितः । तदग्रे भोजयेद्विप्रान्पक्वान्नेनार्कसंख्यकान् ॥३६॥
ततः कुंभानपांपूर्णान्वस्त्राच्छन्नान्समर्चितान् । सपूगमोदकस्वर्णांस्तेभ्यः प्रीत्या समर्पयेत् ॥३७॥
एवं कृते प्रियो विष्णोर्जायतेऽखिलभोगभुक् । देहांते विष्णुसायुज्यं लभते नात्र संशयः ॥३८॥

गंध आदि से भक्तिपूर्वक श्रीधर की पूजा कर उत्तम ब्राह्मणों को दही और भात खिलाये । अनन्तर इस व्रत से 'देवेश श्रीधर प्रसन्न हों' यह कहते हुए उन्हें चाँदी दक्षिणा दे और नमस्कार करके बिदा करे । भाद्र-शुक्ल-द्वादशी में वामन की पूजा कर उनके आगे बारह विप्रों को खीर का भोजन कराये । पश्चात् उन्हें दक्षिणा देकर विदा करे । इससे विष्णु प्रसन्न होते हैं । आश्विन-शुक्ल-द्वादशी में गंध आदि उपचारों से पद्मनाभ की अर्चना कर ब्राह्मणों को मधुर खिलाये । अनन्तर उन्हें वस्त्र तथा सुवर्ण दक्षिणा देकर बिदा करे । द्विजश्रेष्ठ ! इस व्रत से संतुष्ट होकर पद्मनाभ श्वेतद्वीप का निवास तथा वांछित शरीर-भोग देते हैं ॥२१-२६½॥ कार्तिक-कृष्णपक्ष में गोवत्सद्वादशीव्रत करना चाहिये । उस दिन सवत्सा गौ की आकृति लिखकर पुष्पमाला तथा सुगंधित चंदन आदि द्रव्यों से उनकी पूजा करे । तदनन्तर ताम्रपात्र में अक्षत, तिल तथा जल रख कर "क्षीरोदार्ण-वसंभूते......ते" यह मंत्र पढ़ते हुए गौ के चरणमूल में अर्घ्य दे । फिर अपनी शक्ति के अनुसार उड़द आदि के बने हुए पाँच या ग्यारह बड़े गौ को खिलाये । ग्रास देने के समय यह मंत्र पढ़ना चाहिये—"सुरभि !...... नंदिनि !" द्विजवर्य ! उस दिन तैलपक्व, स्थालीपक्व, गोदुग्ध, गोघृत एवम् दही-तक्र को भी छोड़ देना चाहिये । द्विज ! कार्तिक-शुक्ल-द्वदशी में समाहित होकर गंध आदि उपचारों से दामोदर देव की अर्चना कर उनके आगे बारह विप्रों को पकवान खिलाये । तदनन्तर जल से परिपूर्ण और वस्त्र से आच्छादित घट, सुपारी, लड्डू तथा सुवर्ण सहित ब्राह्मणों को आदरपूर्वक दे दे । ऐसा करने वाला व्यक्ति विष्णु का प्रिय तथा अखिल-भोगभोक्ता होकर देहान्त होने पर विष्णुसायुज्यमोक्ष को प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं ॥२७-३८॥ उस दिन

नीराजनव्रतं चात्र गदितं तन्निबोध मे । सुप्तोत्थितं जगन्नाथमलंकृत्य निशागमे ॥३९॥
अलंकृतो नवं वह्निमुत्पाद्याभ्यर्च्य मन्त्रतः । हुत्वा तत्र समुद्दीप्ते रौप्यदीपिकया मुने ॥४०॥
गंधपुष्पाद्यर्चितया शनैर्नीराजयेद्धरिम् । तत्रैवानुगतां लक्ष्मीं ब्रह्माणीं चंडिकां तथा ॥४१॥
आदित्यं शंकरं गौरीं यक्षं गणपतिं ग्रहान् । मातॄः पितॄन्नगान्नागान्सर्वान्नीराजयेत्क्रमात् ॥४२॥
गवां नीराजनं कुर्यान्महिष्यादेश्च मंडलम् । नमो जयेति शब्दैश्च घंटाशंखादिभिःस्वनैः ॥४३॥
सिंदूरालिप्तशृङ्गाणां चित्राङ्गाणां च वर्णकैः । गवां कोलाहले वृत्ते नीराजनमहोत्सवे ॥४४॥
तुरगांल्लक्षणोपेतान् गजांश्च मदविप्लुतान् । राजचिह्नानि सर्वाणि छत्रादीनि च नारद ॥४५॥
राजा पुरोधसा सार्धं मंत्रिभृत्यपुरःसरः । पूजयित्वा यथान्यायं नीराज्य स्वगृहमादरात् ॥४६॥
शंखतूर्यादिघोषैश्च नानारत्नविनिर्मिते । सिंहासने नवे क्लृप्ते तिष्ठेत्सम्यगलंकृतः ॥४७॥
ततः सुलक्षणैर्युक्ता वेश्या वाथ कुलांगना । शीर्षोपरि नरेंद्रस्य तथा नीराजयेच्छनैः ॥४८॥
एवमेषा महाशांतिः कर्तव्या प्रतिवत्सरम् । राज्ञा वित्तवतान्येन सर्वारोग्यमिच्छता ॥४९॥
येषां राष्ट्रे पुरे ग्रामे क्रियते शांतिरुत्तमा । नीराजनाभिधा विप्र तद्रोगा यान्ति संक्षयम् ॥५०॥
द्वादश्यां मार्गशुक्लायां साध्यव्रतमनुत्तमम् । मनोभवस्तथा प्राणो नरो जातश्च वीर्यवान् ॥५१॥
चितिर्हयो नृपश्चैव हंसो नारायणस्तथा । विभुश्चापि प्रभुश्चैव साध्या द्वादश कीर्तिताः ॥५२॥
पूजयेद्गंधपुष्पाद्यैरेतांस्तंडुलकल्पितान् । ततो द्विजाग्र्यान्संभोज्य द्वादशाथ सुदक्षिणाः ॥५३॥
दत्त्वा तेभ्यस्तु विसृजेत्प्रीयान्नारायणस्त्विति । एतस्यामेव विहितं द्वादशादित्यसंज्ञितम् ॥५४॥

नीराजन व्रत भी किया जाता है, उसके बारे में मुझसे सुनो। सोकर उठे जगन्नाथ को प्रदोषकाल में अलंकृत कर
मंत्रपूर्वक अग्नि की पूजा करे। तदनन्तर गंध, पुष्प आदि से अर्चित रजतदीपिका से अग्नि जला कर उसमें हवन
करे। फिर हरि तथा उनका अनुगमन करने वाली लक्ष्मी, ब्रह्माणी, चंद्रिका, आदित्य, शंकर, गौरी, यक्ष,
गणपति, ग्रह, मातृगण, पितर, नगों एवम् नागों की आरती करे। गायों की आरती तथा भैंस आदि की प्रदक्षिणा
करे। घंटा, शंख आदि को बजाये। नमः शब्द तथा जयशब्द का उच्चारण करे। गौओं के सींगों में सिंदूर लेपे
और उनके अंगों को गेरु आदि से चित्रित करे। इस तरह नीराजन महोत्सव में जब गौओं का कोलाहल होने
लगे तब राजा, मंत्री, पुरोहित तथा भृत्यों के साथ सुलक्षण अश्वों, मदस्नात गजों तथा छत्र आदि समस्त राज-
चिह्नों का यथोचित पूजन करे ॥३९-४६॥ पश्चात् शंख, ढोल आदि के बजते रहने पर सम्यक् प्रकार अलंकृत
राजा अनेक रत्नों के बने नवीन सिंहासन पर बैठ कर सुलक्षणा वेश्या या कुलांगना से अपने सिर पर शनैः-शनैः आरती
उतरवाये। आरोग्य के इच्छुक नृप तथा अन्य धनवाली व्यक्ति को इस तरह की यह महाशांति प्रतिवर्ष करनी
चाहिये। विप्र! जिस राष्ट्र, नगर तथा गाँव में यह उत्तमा नीराजना शांति की जाती है, वहाँ रोगों का क्षय
होता है। अगहन-शुक्ल-द्वादशी में अत्युत्तम साध्यव्रत करना चाहिये। मनोभव, प्राण, नर, जात, वीर्यवान्, चिति,
हय, नृप, हंस, नारायण, विभु तथा प्रभु—ये बारह साध्य कहलाते हैं। तंदुल की बनाई हुई इनकी प्रतिमाओं का
गंध, पुष्प आदि से पूजन कर बारह ब्राह्मणों को भोजन कराये, पश्चात् उन्हें अच्छी दक्षिणा देकर 'नारायण
प्रसन्न हों' यह कहते हुए विदा करे। उसी दिन द्वादशादित्य नामक व्रत भी किया जाता है। उसमें श्रीमान्
व्यक्ति बारह आदित्यों की अर्चना करे। धाता, मित्र, अर्यमा, पूषा, शक्र, अंश, वरुण, भग, त्वष्टा, विवस्वान्

व्रतं तत्रार्चयेद्धीमानादित्यान्द्वादशापि च । धाता मित्रोऽर्यमा पूषा शक्रोंऽशो वरुणो भगः ॥५५॥
त्वष्टा विवस्वान्सविता विष्णुर्द्वादश ईरिताः । प्रतिमासं तु शुक्लायां द्वादश्यामर्च्य यत्नतः ॥५६॥
तर्थं नयेद्व्रतान्ते तु प्रतिमा द्वादशापि च । हैमीः संपूज्य विधिना भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥५७॥
मधुरान्नैः सुसत्कृत्य प्रत्येकं चार्पयेद्व्रती । एवं व्रतं नरः कृत्वा द्वादशादित्यसंज्ञकम् ॥५८॥
सूर्यलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगांश्चिरं ततः । जायते भुवि धर्मात्मा मानुषे रोगवर्जितः ॥५९॥
ततो व्रतस्य पुण्येन पुनरेव लभेद्व्रतम् । तत्पुण्येन रवेर्भित्त्वा मंडलं द्विजसत्तम ॥६०॥
निरंजनं निराकारं निर्द्वंद्वं ब्रह्म चाप्नुयात् । अथैवाखंडसंज्ञं च व्रतमुक्तं द्विजोत्तम ॥६१॥
मूर्तिं निर्माय सौवर्णीं जनार्दनसमाह्वयाम् । अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैस्तदग्रे भोजयेद्द्विजान् ॥६२॥
द्वादश प्रतिमासं तु नक्ताशी स्याज्जितेन्द्रियः । ततः समाप्ते तां मूर्तिं समभ्यर्च्य विधानतः ॥६३॥
गुरवे धेनुसहितां दद्यात्संप्रार्थयेत्तथा । शतजन्मसु यत्किंचिन्मयाखंडव्रतं कृतम् ॥६४॥
भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखंडमिहास्तु मे । ततः संभोज्य विप्राग्र्यान्सखंडाढ्यैस्तु पायसैः ॥६५॥
द्वादशैव हि सौवर्णीं दक्षिणां प्रदद्यान्नमेत् । इति कृत्वा व्रतं विप्र प्रीणयित्वा जनार्दनम् ॥६६॥
सौवर्णेन विमानेन याति विष्णोः परं पदम् । पौषस्य कृष्णद्वादश्यां रूपव्रतमुदीरितम् ॥६७॥
तस्यां तिथौ विधिवत्स्नात्वा गृह्णीयाद्गोमयं व्रती । श्वेताया वैकवर्णाया अंतरिक्षगतं द्विज ॥६८॥
अष्टोत्तरशतं तेन पिंडिकाः कल्प्य नारद । शोषयेदातपे धृत्वा पात्रे ताम्रेऽथ मृन्मये ॥६९॥
एकादश्यां सोपवासः समभ्यर्च्य विधानतः । सौवर्णीं प्रतिमां विष्णोर्निशायां जागरं चरेत् ॥७०॥

सविता तथा विष्णु—ये बारह आदित्य कहे गये हैं ॥४७-५५½॥ प्रत्येक मास की शुक्ल-द्वादशी में इनकी बारह स्वर्णमयी प्रतिमाओं का यत्नपूर्वक पूजन कर बारह उत्तम ब्राह्मणों को मधुर भोजन कराये। प्रत्येक को आदरपूर्वक एक-एक प्रतिमा समर्पित करे। इस प्रकार द्वादशादित्यव्रत करने वाला मानव सूर्य-लोक को जाता है। वहाँ चिरकाल तक अखिल भोगों को भोगकर पृथ्वी पर धर्मात्मा तथा नीरोग मनुष्य होकर जन्म लेता है। द्विजश्रेष्ठ! तब व्रत के पुण्य से वह पुनः उस व्रत को प्राप्त करता है। फिर उसके धर्म रवि मंडल को भेद कर निरंजन, निराकार तथा निर्द्वंद्व ब्रह्म को प्राप्त करता है। विप्रवर्य! उस तिथि में अखंडव्रत भी किया जाता है ॥५६-६१॥

सुवर्ण की विष्णु-प्रतिमा बनाकर गंध, पुष्प आदि से पूजा करे। प्रतिमा के सामने ही बारह ब्राह्मणों को खिलाये। एक वर्ष तक उक्त तिथि में इन्द्रिय-संयम करते हुए केवल रात्रि में ही भोजन करे। वर्षान्त में विधिपूर्वक प्रतिमा की अर्चना कर गुरु को धेनुसहित प्रतिमा दे दे। तदनन्तर प्रार्थना करे—"भगवन्! सौ जन्मों में जो कुछ मैंने खंडव्रत किया है, वह आपकी कृपा से अखंड हो जाय।" फिर बारह विप्रों को चीनी एवम् खीर खिलाकर सुवर्ण दक्षिणा देकर प्रणाम करे। विप्र! जो व्यक्ति इस व्रत को करके जनार्दन को संतुष्ट करता है, वह स्वर्णमय विमान से वैकुंठ जाता है। पौष-कृष्ण-द्वादशी में रूपव्रत किया जाता है ॥६२-६७॥ व्रती दशमी तिथि में विधिवत् स्नान कर श्वेत गौ या एकवर्णीया गौ के गोबर के, जो भूमि पर गिरने से पहले ही थाम लिया गया हो, एक सौ आठ पिंड बनाये। उन पिंडों को तांबे या मिट्टी के पात्र में रख कर धूप में सुखाये। एकादशी में उपवास करते हुए विष्णु की स्वर्णमयी प्रतिमा का विधानपूर्वक पूजन कर रात्रि में मांगलिक गीत, वाद्य, स्तोत्रपाठ तथा जप आदि से जागरण करे। प्रातःकाल द्वादशी में जलघट पर तिलपात्र के ऊपर प्रतिमा

सुमंगलैर्गीतवाद्यैः स्तोत्रपाठैर्जपादिभिः । ततः प्रभाते द्वादश्यां तिलपात्रोपरि स्थिताम् ॥७१॥
अंबुपूर्णे घटे न्यस्य पूजयेदुपचारकैः । ततोऽग्निं नवमुत्पाद्य काष्ठसंघर्षणादिभिः ॥७२॥
तं समभ्यर्च्य विधिवदेकैकां पिण्डिकां सुधीः । होमयेत्सतिलाज्यां च द्वादशाक्षरविद्यया ॥७३॥
वैष्णवाय च पूर्णां च शतमष्टोत्तरं ततः । भोजयेत्पायसैर्विप्रान्प्रीत्या सुस्निग्धमानसः ॥७४॥
सहितां च घटेनैव प्रतिमां गुरवेऽर्पयेत् । विप्रेभ्यो दक्षिणां शक्त्या दत्त्वा नत्वा विसर्जयेत् । ॥७५॥
नरो वा यदि वा नारी व्रतं कुर्वन्समादरात्
लभते रूपसौभाग्यं नात्र कार्या विचारणा । सहस्ये शुक्लपक्षे तु सुजन्म द्वादशीव्रतम् ॥७६॥
तत्र स्नात्वा विधानेन गृह्णीयाद्वार्षिकव्रतम् । पीत्वा गोशृंगवारीदो तां च कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥७७॥
प्रतिमासं ततः शुक्ले द्वादश्यां दानमाचरेत् । घृतप्रस्थं तच्चतुष्कं क्रमाद्व्रीहियवस्य च ॥७८॥
द्विरक्तिकं हेम तिलाढकार्द्धं पयसां घटम् । रौप्यस्य माषकं च तृप्तिकृन्मिष्टपक्वकम् ॥७९॥
छत्रं माषार्धहेम्नश्च प्रस्थं फाणितमुत्तमम् । चंदनं पलिकं वस्त्रं पंचहस्तोन्मितं तनुम् ॥८०॥
एवं तु मासिकं दानं कृत्वा प्राश्य यथाक्रमम् । गोमूत्रं जलमाज्यं वा पक्त्वा शाकं चतुर्विधम् ॥८१॥
दधियुक्तं यवान्नं च तिलाज्यं शर्करान्वितम् । दर्भांबुक्षीरयुक्तं प्राशनं प्रतिमासिकम् ॥८२॥
एवं कृतव्रतो वर्षं सौवर्णीं प्रतिमां रवेः । कृत्वा वै ताम्रपात्रस्थां न्यस्याभ्यर्च्य विधानतः ॥८३॥
गुरवे धेनुसहितां प्रत्यर्प्य प्रणमेत्पुरः । विप्रान्द्वादश संभोज्य तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥८४॥
एवं कृतव्रतो विप्र जन्माप्नोत्युत्तमे कुले । नीरोगो धनधान्याढ्यो भवेच्चाविकलेन्द्रियः ॥८५॥
माघस्य शुक्लद्वादश्यां शालग्रामशिलां द्विज । अभ्यर्च्य विधिवद्भक्त्या सुवर्णं तन्मुखे न्यसेत् ॥८६॥
तां स्थाप्य रौप्यपात्रे तु सितवस्त्रयुगावृताम् । प्रदद्याद्वेदविदुषे तं हि संभोजयेत्ततः ॥८७॥

को स्थापित कर सोपचार पूजन करे। तदनन्तर काष्ठसंघर्षण से नवीन अग्नि उत्पन्न कर उसकी विधिवत्
अर्चना करे। फिर उस अग्नि में तिल-घृत सहित एक-एक पिंड को द्वादशाक्षर मंत्र से हवन करे। हवन के
बाद प्रेम से ब्राह्मणों को खीर खिला कर घट सहित प्रतिमा गुरु को समर्पित कर दे। ब्राह्मणों को दक्षिणा दे
नमस्कार करके विदा करे। नर या नारी जो कोई इस व्रत को आदर पूर्वक करेगा, उसका रूप एवम् सौभाग्य
बढ़ेगा, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥६८-७५½॥ पौष-शुक्ल में सुजन्म द्वादशीव्रत किया जाता
है। उस दिन विधिपूर्वक स्नान कर वार्षिकव्रत करने का संकल्प करे। जल को गाय के सींग से छुआ कर पी ले।
फिर उसकी प्रदक्षिणा कर प्रत्येक मास की शुक्ल-द्वादशी में दान करना आरंभ कर दे। एक सेर घी, चार सेर
यव, दो तोले सोना, सवासेर तिल, एक घड़ा दूध, एक माशा चाँदी, तृप्तिजनक मिष्टान्न, छत्र, आधा माशा सोना,
एक सेर उत्तम फाणित (राब) एक पल वज़न का चंदन और पाँच हाथ सूक्ष्म वस्त्र मासिक क्रम से दान कर
गोमूत्र, जल, घी, चार प्रकार के शाक, दही में पकाया हुआ यव, शक्कर युक्त तिल-घी, कुशोदक तथा दूध प्रत्येक
मास में क्रमशः प्राशन करे। इस प्रकार सम्पूर्ण वर्ष तक व्रत करके सूर्य की सुवर्णमयी प्रतिमा को ताम्रपात्र में
रख कर विधिपूर्वक पूजा करे। अनन्तर धेनुसहित वह प्रतिमा गुरु को समर्पित कर प्रणाम करे, बारह ब्राह्मणों
को खिला कर दक्षिणा दे। विप्र! इस तरह व्रत करने वाला व्यक्ति उत्तम कुल में जन्म पाकर नीरोग, धन-
धान्यसंपन्न तथा सुदृढ़ अंगों वाला होता है ॥७६-८५॥
माघ-शुक्ल-द्वादशी में विष्णुचिन्तन-परायण व्यक्ति ऐहलौकिक वांछित भोगों को भोग कर वैकुण्ठ जाता

हितेन च । एवं कृत्वैकभक्तः सन्विष्णुचिंतनतत्परः ॥८८॥
पायसान्नेन खंडाज्यसहितेन हितेन च । एवं कृत्वैकभक्तः सन्विष्णुचिंतनतत्परः ॥८८॥
वैष्णवं लभते धाम भुक्त्वा भोगानिहेप्सितान् । अंत्ये सितायां द्वादश्यां सौवर्णीं प्रतिमां हरेः ॥८९॥
अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैर्दद्याद्वेदविदे द्विज । द्विषट्कसंख्यान्विप्रांश्च भोजयित्वा च दक्षिणाम् ॥९०॥
दत्त्वा विसर्जयेत्पश्चात्स्वयं भुंजीत बांधवैः । त्रिस्पृशोन्मीलिनी पक्षवर्द्धिनी वंजुली तथा ॥९१॥
जया च विजया चैव जयंती चापराजिता । एता अष्टौ सदोपोष्या द्वादश्यः पापहारिकाः ॥९२॥

श्रीनारद उवाच

कीदृशं लक्षणं ब्रह्मन्नेतासां किं फलं तथा । तत्सर्वं मे समाचक्ष्व याश्चान्याः पुण्यदायिकाः ॥९३॥

सूत उवाच

इत्थं सनातनः पृष्टो नारदेन द्विजोत्तमः । प्रशस्य भ्रातरं प्राह महाभागवतं मुनिः ॥९४॥

सनातन उवाच

साधु पृष्टं त्वया भ्रातः साधूनां संशयच्छिदा । वक्ष्ये महाद्वादशीनां लक्षणं च फलं पृथक् ॥९५॥
एकादशी निवृत्ता चेत्सूर्यस्योदयतः पुरा । तदा तु त्रिस्पृशा नाम द्वादशी सा महाफला ॥९६॥
अस्यामुपोष्य गोविन्दं यः पूजयति नारद । अश्वमेधसहस्रस्य स फलं लभते ध्रुवम् ॥९७॥
यदारुणोदये विद्धा दशम्यैकादशी तिथिः । तदा तां संपरित्यज्य द्वादशीं समुपोषयेत् ॥९८॥
तत्रेष्ट्वा वासुदेवाख्यं सम्यक्पूजाविधानतः । राजसूयसहस्रस्य फलमुन्मीलिते लभेत् ॥९९॥

प्रतिमा का पूजन कर वेदवेत्ता द्विज को
है । फाल्गुन-शुक्ल-द्वादशी में गंध, पुष्प आदि से हरि की स्वर्णमयी प्रतिमा का पूजन कर वेदवेत्ता द्विज को
समर्पित करे । पश्चात् बारह ब्राह्मणों को खिलाकर दक्षिणापूर्वक उन्हें बिदा करके भाई-बंधुओं के साथ स्वयं
भोजन करे । त्रिस्पृशा, उन्मीलिनी, पक्षवर्धिनी, वंजुली, जया, विजया, जयंती और अपराजिता—ये आठों
द्वादशियां पापहारिणी हैं । इनमें सदा उपवास करना चाहिये ॥८६-९२॥

श्री नारद बोले—ब्रह्मन् ! इन द्वादशियों का क्या लक्षण है, क्या फल है ? सब बातें मुझे बता
दीजिये, और भी जो दूसरी पुण्यदायिका द्वादशियां हों, उन्हें भी कह दीजिये ॥९३॥

सूत बोले—द्विजवर्यवृन्द ! इस प्रकार नारद के पूछने पर मुनि सनातन महाभगवद्भक्त भ्राता (नारद)
की प्रशंसा कर कहने लगे ॥९४॥

सनातन बोले—भाई ! साधुओं के संशय को मिटाने वाला तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया । मैं महा-
द्वादशियों का पृथक्-पृथक् लक्षण एवम् फल बता रहा हूँ । नारद ! जब सूर्योदय से पहिले ही एकादशी बीत
जाती है तब त्रिस्पृशा नामक द्वादशी होती है, जिसका फल अत्युत्कृष्ट होता है । उसमें जो उपवास करके गोविन्द
की अर्चना करता है, उसे सहस्र अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है, इसमें संदेह नहीं । जब अरुणोदय काल
में दशमी तिथि से एकादशी विद्ध हो जाय तब उसका परित्याग कर द्वादशी में उपवास करना चाहिये । उस
उन्मीलिनी द्वादशी में वासुदेव की विधिपूर्वक पूजा करने से सहस्र राजसूय यज्ञ करने का फल प्राप्त होता
है ॥९५-९७॥ जब सूर्योदय काल में दशमी एकादशी का स्पर्श करती हो तब उसको छोड़कर द्वादशी में उपवास
करे, जिसका नाम वंजुलिका होता है । उस दिन निरंतर भक्तिपूर्वक गंध आदि उपचारों से अभयदान देने वाले

प्रदोषे तु समिवृर्यस्य ह्येकादशीं समर्चेत् । तदा उन्मीलिका नाम सा तु [illegible] ॥१००॥
अस्यां संकर्षणं देवं गंधाद्यैरुपचारकैः । पूजयेद्वास्तवं स्वस्था सर्वे [illegible] ॥१०१॥
एषा महाद्वादशी तु सर्वर्तुफलदा [illegible] । सर्वपापहरा [illegible] ॥१०२॥
कुहूराके यदा वृद्धे स्यातां विप्र तदा [illegible] । पक्षवर्धिनिका नाम द्वादशी सा [illegible] ॥१०३॥
तस्यां संपूजयेद्देवं प्रद्युम्नं जगतां पतिम् । सर्वैश्वर्यप्रदं [illegible] ॥१०४॥
यदा तु शुक्ले पक्षे द्वादशी स्यान्मघान्विता । तदा प्रोक्ता जया नाम [illegible] ॥१०५॥
अस्यां संपूजयेद्देवमखिलं रमापतिम् । सर्वकामप्रदं नृणां सर्वसौभाग्यवर्धनम् ॥१०६॥
श्रवणर्क्षयुता चेत्स्याद्द्वादशी शुक्ले [illegible] । तदा सा विजया नाम [illegible] ॥१०७॥
सर्वसौख्यप्रदं [illegible] । सर्वतीर्थफलं विप्र [illegible] ॥१०८॥
यदा स्याच्च सिते पक्षे प्राजापत्यर्क्षसंयुता । द्वादशी सा महापुण्या जयंती [illegible] ॥१०९॥
अस्यां समर्चयेद्देवं वामनं [illegible] । उपोषिता [illegible] ॥११०॥
सर्वदानफला चापि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी । यदा तु स्याच्छिते पक्षे द्वादशी [illegible] ॥१११॥
तदापराजिता प्रोक्ता सर्वज्ञानप्रदायिनी । अस्यां समर्चयेद्देवं [illegible] ॥११२॥
संसारजालविच्छेदकारणं [illegible] । [illegible] ॥११३॥
यदा त्वाषाढशुक्लायां द्वादश्यां मैत्रभं भवेत् । तदा व्रतद्वयं [illegible] न [illegible] ॥११४॥
श्रवणर्क्षयुतायां च द्वादश्यां [illegible] । [illegible] ॥११५॥

संकर्षण देव की पूजा करे ॥९८-१०१॥ यह महाद्वादशी सब ऋतुओं में सुफला, सर्व-पाप-हारिणी तथा सर्व-संपत्-दायिनी है। जब अमावास्या और पूर्णिमा बढ़ जाती हैं तब पक्षवर्धिनिका नामक द्वादशी महाफल-दायिनी होती है। उसमें सकल ऐश्वर्यों को देने वाले, पुत्र-पौत्रों को बढ़ाने वाले जगत्पति प्रद्युम्न देव की आराधना करनी चाहिये। जब शुक्ल पक्ष में द्वादशी आदिसषा (पूर्वाषाढ़) नक्षत्र से युक्त हो तब समस्त शत्रुओं का नाश करने वाली जया नामक द्वादशी होती है। उस दिन अखिलकामनादायक तथा सर्वसौभाग्यवर्धक रमा (उपा)-पति की पूजा करनी चाहिये ॥१०२-१०६॥

जब शुक्ल पक्ष में द्वादशी श्रवणनक्षत्र से युक्त हो, तब वह विजया द्वादशी कहलाती है। विप्र! उसमें उपवास करके सब सुखों को देने वाले, निरन्तर रूप से भोगों में निरत रहने वाले और सकल तीर्थों के फल प्रदान करने वाले गदाधर देव की अर्चना करनी चाहिये। जब शुक्ल-पक्ष की द्वादशी प्रजापति-नक्षत्र से युक्त हो तब वह जयंती कहलाती है और महापुण्यदायिनी होती है। उसमें मनुष्यों को सिद्धि प्रदान करने वाले वामनदेव की पूजा करनी चाहिये। विप्रवर्य! उसमें उपवास करने से समस्त व्रतों का फल प्राप्त होता है। वह निखिल दानों का फल देने वाली और भोग-मोक्ष को प्रदान करने वाली है। जब शुक्ल पक्ष में द्वादशी बृहस्पति-नक्षत्र से युक्त हो तब वह पराजिता कहलाती है, जो सर्वज्ञानदायिनी है। उसमें उपवास कर ब्राह्मण-भोजन कराने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। उस दिन संसार रूपी जाल को तोड़ने वाले, ज्ञान के समुद्र और निर्विकार नारायण देव की अर्चना करनी चाहिये ॥१०७-११३॥ जब आषाढ़-शुक्ल-द्वादशी मैत्र नक्षत्र से युक्त हो तब दोनों दिन व्रत करना चाहिये। दोनों व्रत एक ही देवता के निमित्त किये जाने के कारण कोई दोष नहीं लगता।

एताभ्योऽन्यत्र विप्रेन्द्र द्वादश्यामेकभुक्तकम् । नियतैः समुद्दिष्टं व्रतं पातकनाशनम् ॥११६॥
एकादश्या व्रतं नित्यं द्वादश्या सहितं यतः । नोद्यापनमिहोद्दिष्टं कर्त्तव्यं जीविताावधि ॥११७॥
इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने पूर्वभागे चतुर्थपादे द्वादशमासस्य द्वादशीव्रत-
निरूपणं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सनातन उवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि त्रयोदश्या व्रतानि ते । यानि कृत्वा नरो भक्त्या सुभगो जायते भुवि ॥१॥
चैत्रे शुक्लत्रयोदश्यां मदनं चन्दनात्मकम् । कृत्वा संपूज्य यत्नेन वीजयेद्व्यजनेन च ॥२॥
ततः संप्रीतः कामः पुत्रपौत्रविवर्द्धनः । अनंगपूजाप्युक्ता तां निबोध मुनीश्वर ॥३॥
सिन्दूररजनीरागैः फलकेऽनंगमालिखेत् । रतिप्रीतियुतं श्लक्ष्णं पुष्पचापेषुधारिणम् ॥४॥
कामदेवं वसन्तं च वाजिवक्त्रं वृषध्वजम् । मध्याह्ने पूजयेद्भक्त्या गंधस्रग्भूषणांशुकैः ॥५॥
भक्ष्यैर्नानाविधैश्चापि मन्त्रेणानेन नारद । नमो माराय कामाय कामदेवस्य मूर्तये ॥६॥

भाद्र-शुक्ल की श्रवणनक्षत्र से युक्त द्वादशी, कार्तिक-शुक्ल-द्वादशी तथा फाल्गुन-शुक्ल द्वादशी में दोनों व्रत करने चाहिये। इनके अतिरिक्त द्वादशियों में एकभुक्त के लिये कहा गया है। यह व्रत सकल पातकों का नाशक है। द्वादशी सहित एकादशीव्रत जीवन पर्यन्त करना चाहिये। इसमें उद्यापन करने की आवश्यकता नहीं है ॥११४-११७॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वार्द्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में बारह मासों का द्वादशीव्रतनिरूपण नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२१॥

अध्याय १२२

बारह मासों का त्रयोदशी-व्रत

सनातन बोले—अब मैं त्रयोदशी के व्रत तुमसे बतलाता हूँ, जिनके अनुष्ठान से मनुष्य पृथ्वी पर सौभाग्यवान् होता है। चैत्र-शुक्ल-त्रयोदशी में चंदन का कामदेव बना कर यत्नपूर्वक उनकी पूजा करके पंखा झले। ऐसा करने से अत्यन्त प्रसन्न मदन पुत्र-पौत्रादि को बढ़ाते हैं। मुनीश्वर! उस दिन अनंगपूजा भी की जाती है ॥१-३॥ उसके विषय में सुनो। सिंदूर को घोलकर शलाके से कामदेव का ऐसा चित्र बनाये, जो मनोहर, रति की प्रीति से युक्त और पुष्पचाप एवम् कुसुमशर धारण करने वाले हों। अश्वमुख तथा वृषध्वज वसन्त का भी चित्र बनाये। नारद! मध्याह्न काल में "नमो माराय......" इस मंत्र को पढ़ते हुए गंध, माला,

ब्रह्मविष्णुशिवेंद्राणां मनःक्षोभकराय वै । ततस्तस्याग्रतो भक्त्या पूजयेदंगनापतिम् ॥७॥
वस्त्रमाल्यविभूषाद्यैः कामोऽयमिति चिंतयेत् । संपूज्य द्विजदांपत्यं गंधवस्त्रविभूषणैः ॥८॥
एवं यः कुरुते विप्र वर्षे वर्षे महोत्सवम् । वसंतसमये प्राप्ते हृष्टः पुष्टः सदैव सः ॥९॥
प्रतिमासं पूजयेद्वा यावद्वर्षं समाप्यते । मदनं हृद्भवं कामं मन्मथं च रतिप्रियम् ॥१०॥
अनंगं चैव कंदर्पं पूजयेन्मकरध्वजम् । कुसुमायुधसंज्ञं च ततः पश्चान्मनोभवम् ॥११॥
विषमेषुं तथा विप्र मालतीप्रियमित्यपि । अजाया दानमप्युक्तं स्नात्वा नद्यां विधानतः ॥१२॥
अजाः पयस्विनीर्दद्याद्दरिद्राय कुटुंबिने । भूयस्त्वनेन दानेन स लोके नैव जायते ॥१३॥
यदीयं शनिना युक्ता सा महावारुणी स्मृता । गंगायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहाधिका ॥१४॥
शुभयोगः शतर्क्षं च शनौ कामे मधौ सिते । महामहेति विख्याता कुलकोटिविमुक्तिदा ॥१५॥
राधशुक्लत्रयोदश्यां कामदेवव्रतं स्मृतम् । तत्र गंधादिभिः कामं पूजयेदुपवासवान् ॥१६॥
प्रतिमासं ततः पश्चात्त्रयोदश्यां सिते दले । एवमेव व्रतं कार्यं वर्षांते गामलंकृताम् ॥१७॥
दद्याद्विप्राय सत्कृत्य व्रतसांगत्वसिद्धये । ज्येष्ठशुक्लत्रयोदश्यां दौर्भाग्यशमनं व्रतम् ॥१८॥
तत्र स्नात्वा नदी तोये पूजयेच्छुचिदेशजम् । श्वेतमंदारमर्कं वा करवीरं च रक्तकम् ॥१९॥
निरीक्ष्य गगने सूर्यं प्रार्थयेन्मंत्रतस्तदा । मंदारकरवीरार्का भवंतो भास्करांशजाः ॥२०॥
पूजिता मम दौर्भाग्यं नाशयंतु नमोऽस्तु वः । इत्थं योऽर्चयते भक्त्या वर्षे वर्षे द्रुमत्रयम् ॥२१॥
नश्यते तस्य दौर्भाग्यं नात्र कार्या विचारणा । शुचिशुक्लत्रयोदश्यामेकभक्तं समाचरेत् ॥२२॥

आभूषण, वस्त्र तथा अनेक प्रकार के भक्ष्यों से उनकी अर्चना करे। तदनन्तर उनके आगे साक्षात् कामदेव समझकर भक्तिपूर्वक वस्त्र, माला, आभूषण आदि से द्विजदंपति की पूजा करे ॥४-८॥ विप्र ! जो इस प्रकार प्रतिवर्ष वसंतसमय में महोत्सव करता है, वह सदा हृष्ट-पुष्ट रहता है। विप्र ! अथवा प्रतिमास, यावत् वर्ष समाप्त हो, हृद्भव, काम, मन्मथ, रतिप्रिय, अनंग, कंदर्प, मकरध्वज, कुसुमायुध, मनोभव, विषमशर तथा मालतीप्रिय की पूजा करे। उस दिन अजादान का भी विधान है। नदी में विधिपूर्वक स्नान कर दुधारू बकरी दरिद्र कुटुंब को दे दे। इस दान के करने से पुनर्जन्म नहीं होता ॥९-१३॥

यदि यह त्रयोदशी शनि दिन पड़ जाय तो महावारुणी योग लगता है। कोटिसूर्यग्रहणों में स्नान करने की अपेक्षा महावारुणी में गंगास्नान करना अधिक फलदायक होता है। चैत्र-शुक्ल-त्रयोदशी-शनि को यदि शुभयोग तथा शतभिषा नक्षत्र पड़ जाय तो महावारुणी हो जाती है। उसमें स्नान करने से एक करोड़ कुल को मोक्ष मिलता है ॥१४-१५॥

वैशाख-शुक्ल-त्रयोदशी में कामदेवव्रत किया जाता है। उस दिन उपवास करते हुए गंध आदि से कामदेव की पूजा करे। पश्चात् प्रत्येक मास की शुक्ल-त्रयोदशी में इसी तरह व्रत किया करे। वर्षान्त में व्रत की पूर्णता के लिये अलंकृता गौ ब्राह्मण को सत्कारपूर्वक प्रदान करे। ज्येष्ठ-शुक्ल-त्रयोदशी में दौर्भाग्यशमनव्रत करना चाहिये। उस दिन नदीजल में स्नान कर पवित्र स्थान में उत्पन्न हुए श्वेतमंदार, आक तथा लाल करवीर की पूजा करे। गगन में सूर्य की ओर दृष्टि लगाये "मंदारकरवीरार्काः......." इस मंत्र को पढ़कर प्रार्थना करे। जो इस प्रकार प्रतिवर्ष तीनों वृक्षों का पूजन करता है, उसका दौर्भाग्य नष्ट हो जाता है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं ॥१६-२१½॥ आषाढ़-शुक्ल-त्रयोदशी में एक भुक्त करते हुए जगत्पति शंकर तथा उमा की

पूजयित्वा जगन्नाथावुमामाहेश्वरी तनूः । हैम्यौ रौप्यौ च मृन्मय्यौ यथाशक्त्या विधाय च ॥२३॥
सिंहोक्षस्थे देवगृहे गोष्ठे ब्राह्मणवेश्मनि । स्थापयित्वा प्रतिष्ठाप्य देवमंत्रेण नारद ॥२४॥
ततः पंचदिनं पूजा चैकभक्तं व्रतं तथा । तृतीयदिवसे प्रातः स्नात्वा संपूज्य तौ पुनः ॥२५॥
समर्पणीयौ विप्राय वेदवेदांगशालिने । वर्षे वर्षे ततः पश्चाद्विधेयं वर्षपंचकम् ॥२६॥
तदंते धेनुयुग्मेन सहितौ तौ प्रदापयेत् । इत्थं नरो वा नारी वा कृत्वा व्रतमिदं शुभम् ॥२७॥
नैव दांपत्यविच्छेदं लभते सप्तजन्मसु । नभःशुक्लत्रयोदश्यां रतिकामव्रतं शुभम् ॥२८॥
वैधव्यवारणं स्त्रीणां तथा संतानवर्धनम् । कृतोपवासा कन्यैव नारी वा द्विजसत्तम ॥२९॥
ताम्रे वा मृन्मये वापि सौवर्णे राजते तथा । रतिकामौ प्रविन्यस्य गंधाद्यैः सम्यगर्चयेत् ॥३०॥
ततस्तु द्विजदांपत्यं चतुर्दश्यां निमंत्र्य च । सत्कृत्य भोज्य प्रतिमे दद्यात्ताभ्यां सदक्षिणे ॥३१॥
एवं चतुर्दशाब्दं च कृत्वा व्रतमनुत्तमम् । धेनुयुग्मान्विते देये व्रतसंपूर्तिहेतवे ॥३२॥
भाद्रशुक्लत्रयोदश्यां गोत्रिरात्रव्रतं स्मृतम् । लक्ष्मीनारायणं कृत्वा सौवर्णं वापि राजतम् ॥३३॥
पंचामृतेन संस्नाप्य मण्डलेऽष्टदले शुभे । पीठे विन्यस्य वस्त्राढ्यं गंधाद्यैः परिपूजयेत् ॥३४॥
आरार्तिकं ततः कृत्वा दद्यात्सान्नोदकं घटम् । एवं दिनत्रयं कृत्वा व्रतांते मासमर्च्यं च ॥३५॥
सम्यगर्घ्यं च संपाद्य दद्यान्मंत्रेण नारद । पंच गावः समुत्पन्ना मथ्यमाने महोदधौ ॥३६॥
तासां मध्ये तु या नंदा तस्यै धेन्वै नमो नमः । प्रदक्षिणीकृत्य ततो दद्याद्विप्राय मंत्रतः ॥३७॥
गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः । गावो मे पार्श्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥३८॥
ततश्च द्विजदांपत्यं सम्यगभ्यर्च्य भोजयेत् । लक्ष्मीनारायणं तस्मै सत्कृत्य प्रतिपादयेत् ॥३९॥

सोने या चांदी या मिट्टी की प्रतिमा बनाकर सिंह तथा बैल के रहने के स्थान, देवालय, गोष्ठ तथा विप्रगृह में देवमंत्र से स्थापित करे। तदुपरान्त पांच दिनों तक एकभुक्तव्रत करते हुए तीसरे दिन प्रातःकाल स्नान पूजा करके मूर्तियां वेदवेत्ता ब्राह्मण को समर्पित कर दे। इस तरह पांच वर्षों तक प्रत्येक वर्ष इस व्रत को करते हुए अंत में दो गौओं सहित प्रतिमायें दान किया करे। जो नर या नारी इस पवित्र व्रत को करती हैं, उनका सात जन्मों तक दांपत्यविच्छेद नहीं होता। श्रावण-शुक्ल-त्रयोदशी में कल्याणमय रति-काम-व्रत करना चाहिये। यह व्रत स्त्रियों के वैधव्ययोग को नष्ट करता है तथा संतानों को बढ़ाता है ॥२२-२८½॥ द्विजश्रेष्ठ! उस दिन उपवास करती हुई कन्या या नारी तांबे, या मिट्टी, या सोने या चांदी की रति और काम की प्रतिमायें बनाकर गंध आदि से अच्छी तरह अर्चना करे। तदनन्तर चतुर्दशी में द्विजदंपति को सत्कारपूर्वक भोजन कराकर दक्षिणा सहित प्रतिमायें दे दे। इस प्रकार चौदह वर्षों तक इस उत्तम व्रत को करके अंत में व्रत की पूर्णता के लिये दो गायें दान करे ॥२९-३२॥

भाद्र-शुक्ल-त्रयोदशी में गोत्रिरात्रव्रत करना चाहिये। उस दिन सोने या चांदी की लक्ष्मीनारायण की मूर्ति बनाकर शुभ अष्टदल मंडल में पीठ पर अवस्थित करके पंचामृत से स्नपन करे। पश्चात् गंध आदि से अर्चना करते हुए आरती करके अन्न-जल-पूर्ण घट उत्सर्ग करे। इस तरह तीन दिनों तक व्रत कर अंत में "पंच गावः ....." इस मंत्र से गौ की पूजा कर प्रदक्षिणा करे। पश्चात् "गावो ....." इस मंत्र को पढ़ कर गौ विप्र को समर्पित कर दे। फिर द्विजदंपती की पूजा कर भोजन कराये और लक्ष्मीनारायण की मूर्ति

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । कृत्वा यत्फलमाप्नोति गोत्रिरात्रव्रताच्च तत् ॥४०॥
इषे शुक्लत्रयोदश्यां त्रिरात्राशोककव्रतम् । हैमं ह्यशोकं निर्माय पूजयित्वा विधानतः ॥४१॥
उपवासपरा नारी नित्यं कुर्यात्प्रदक्षिणाः । अष्टोत्तरशतं विप्र मंत्रेणानेन सादरम् ॥४२॥
हरेण निर्मितः पूर्वं त्वमशोक कृपालुना । लोकोपकारकरणस्तत्प्रसीद शिवप्रिय ॥४३॥
ततस्तृतीये दिवसे वृक्षे तस्मिन्वृषध्वजम् । समभ्यर्च्य विधानेन द्विजं संभोज्य दापयेत् ॥४४॥
एवं कृतव्रता नारी वैधव्यं नाप्नुयात्क्वचित् । पुत्रपौत्रादिसहिता भर्तुः स्यात्सुवल्लभा ॥४५॥
ऊर्ज्जकृष्णत्रयोदश्यामेकभक्तः समाहितः । प्रदोषे तैलदीपं तु प्रज्वाल्याभ्यर्च्य यत्नतः ॥४६॥
गृहद्वारे बहिर्दद्याद्यमो मे प्रीयतामिति । एवं कृते तु विप्रेंद्र यमपीडा न जायते ॥४७॥
ऊर्ज्जशुक्लत्रयोदश्यामेकभोजी द्विजोत्तम । पुनः स्नात्वा प्रदोषे तु वाग्यतः सुसमाहितः ॥४८॥
प्रदीपानां सहस्रेण शतेनाप्यथवा द्विज । प्रदीपयेच्छिवं चापि द्वात्रिंशद्दीपमालया ॥४९॥
घृतेन दीपयेद्दीपान्गंधाद्यैः पूजयेच्छिवम् । फलैर्नानाविधैश्चैव नैवेद्यैरपि नारद ॥५०॥
ततः स्तुवीत देवेशं शिवं नाम्नां शतेन च । तानि नामानि कीर्त्यन्ते सर्वाभीष्टप्रदानि वै ॥५१॥
नमो रुद्राय भीमाय नीलकंठाय वेधसे । कपर्द्दिने सुरेशाय व्योमकेशाय वै नमः ॥५२॥
वृषध्वजाय सोमाय सोमनाथाय वै नमः । दिगंबराय भृंगाय उमाकांताय वर्द्धिने ॥५३॥
तपोमयाय व्याप्ताय शिपिविष्टाय वै नमः । व्यालप्रियाय व्यालाय व्यालानां पतये नमः ॥५४॥
महीधराय व्योमाय पशूनां पतये नमः । त्रिपुरघ्नाय सिंहाय शार्दूलायार्षभाय च ॥५५॥

उन्हें संमानपूर्वक प्रदान करे। सहस्रों अश्वमेध यज्ञ और सैकड़ों राजसूय यज्ञ करने से जो फल होता है, वह फल गोत्रिरात्रिव्रत से मिलता है ॥३३-४०॥ आश्विन-शुक्ल-त्रयोदशी में त्रिरात्राशोकव्रत किया जाता है। उस दिन उपवासपरायण नारी सोने का अशोक वृक्ष बनाकर विधिपूर्वक पूजा करे। "हरेण......" इस मंत्र से आदरपूर्वक उस अशोक की एक सौ आठ बार प्रदक्षिणा करके तीसरे दिन उस वृक्ष में शंकर की विधिपूर्वक पूजाकर ब्राह्मण को खिला कर उन्हें वह दे दे। यह व्रत करने वाली नारी कभी विधवा नहीं होती तथा पुत्र-पौत्रादि से युक्त होकर स्वामी की प्रेयसी होती है ॥४१-४५॥

कार्तिक-कृष्ण-त्रयोदशी में एकभुक्त तथा इंद्रिय-संयम कर प्रदोष काल में दीप जलाकर "यम मेरे ऊपर प्रसन्न हो" यह कहते हुए घर के दरवाजे के बाहर रखे। विप्रवर्य! ऐसा करने से यमपीड़ा नहीं होती। द्विजश्रेष्ठ! कार्तिक-शुक्ल-त्रयोदशी में एकभुक्त करते हुए प्रदोषकाल में पुनःस्नान कर वाक्संयम तथा सावधानतापूर्वक एक हजार या एक सौ दीप शिव के समीप जलाये, बत्तीस दीपमालिकायें प्रज्वलित करे। घृत से दीपों को जलाकर गंध आदि द्रव्य, फल एवम् बहुविध नैवेद्यों से शिव की अर्चना करे। तदनन्तर शंकर के सौ नामों से उनकी स्तुति करे। वे नाम अखिल कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। उनको सुनो ॥४६-५१॥

रुद्र, भीम, नीलकंठ तथा वेधा को नमस्कार है। कपर्दी, सुरेश तथा व्योमकेश को नमस्कार है। वृषध्वज, सोम तथा सोमनाथ को नमस्कार है। दिगंबर, भृंग, उमाकांत, वर्धी, तपोमय, व्याप्त तथा शिपिविष्ट को नमस्कार है। व्यालप्रिय, व्याल तथा व्यालपति को नमस्कार है। महीधर, व्योम तथा पशुपति को नमस्कार है। त्रिपुरहन्ता, सिंह, शार्दूल, ऋषभ, मित, मितनाथ, सिद्ध, परमेष्ठी, वेदगीत, गुप्त तथा वेदगुह्य को नमस्कार

सिद्धाय परमेष्ठिने । वेदगीताय गुप्ताय वेदगुह्याय वै नमः ॥५६॥
सिताय सितनाथाय दीर्घार्थाय महीयसे । नमो जगत्प्रतिष्ठाय व्योमरूपाय वै नमः ॥५७॥
दीर्घाय दीर्घरूपाय शिष्टाय परमात्मने । गजकृत्तिधरायाय अंधकासुरभेदिने ॥५८॥
कल्याणाय विशिष्टाय चण्डमुण्डप्रियाय च । भक्तिप्रियाय देवाय यज्ञान्तायाव्ययाय च ॥५९॥
नीललोहितशुक्लाय महादेवहराय च । त्रिनेत्राय त्रिवेदाय वेदांगाय नमो नमः ॥६०॥
महेशाय नमस्तुभ्यं परमार्थाय वै नमः । विश्वरूपाय विश्वाय विश्वनाथाय वै नमः ॥६१॥
अर्थायार्थस्वरूपाय कालावयवरूपिणे । अरूपाय विरूपाय सूक्ष्मसूक्ष्माय वै नमः ॥६२॥
शंकराय च कालाय तुभ्यं नमस्ते कृत्तिवाससे । शशांकशेखरायाय रुद्रभूमिश्रिताय च ॥६३॥
श्मशानवासिने दुर्गावयवसाक्षिणे । लिंगरूपाय लिंगाय लिंगानां पतये नमः ॥६४॥
दुर्गाय दुर्गपाराय ॥६५॥
नमः प्रभावरूपाय प्रभावार्थाय वै नमः

नमो नमः कारणकारणाय मृत्युंजयायात्मभवस्वरूपिणे । ॥६६॥

त्रियंबकाय शितिकंठभर्गिणे गौरीयुजे मंगलहेतवे नमः

नाम्नां शतमिदं विप्र पिनाकिगुणकीर्तनम् । पठित्वा दक्षिणीकृत्य प्रायान्निजनिकेतनम् ॥६७॥
एवं कृत्वा व्रतं विप्र महादेवप्रसादतः । भुक्त्वेह भोगानखिलानंते शिवपदं लभेत् ॥६८॥
मार्गशुक्लत्रयोदश्यां योऽनंगं विधिना यजेत् । त्रिकालमेककालं वा शिवसंगमसंभवम् ॥६९॥
गन्धाद्युपचारैस्तु पूजयित्वा विधानतः । घटे मंगलपट्टे वा भोजयेद्द्विजदंपती ॥७०॥
ततस्त दक्षिणां दत्वा स्वयमेकाशनं चरेत् । एवं कृते तु विधिवद्व्रती सौभाग्यभाजनः ॥
जायते भुवि विप्रेन्द्र महादेवप्रसादतः ॥७१॥

है। जगत्प्रतिष्ठ को नमस्कार है। व्योमरूप को नमस्कार है। दीर्घ, दीर्घरूप, दीर्घार्थ तथा महीयान् को नमस्कार है। अंधकासुर का नाश करने वाले, व्याघ्रचर्मधारी को नमस्कार है। कल्याण, विशिष्ट, शिष्ट, परमात्मा तथा चंडमुंडप्रिय को नमस्कार है ॥५२-५८½॥ भक्तिप्रिय, देव, यज्ञांत, अव्यय नील, रक्त तथा शुक्ल वर्ण वाले और त्रिनेत्र, त्रिवेद तथा वेदांग को नमस्कार है। अर्थ, अर्थस्वरूप तथा महादेव, हर, तथा महेश को नमस्कार है। विश्वरूप, विश्व तथा विश्वनाथ को नमस्कार है। शंकर, काल, कालावयवरूपी, अरूप, परमार्थ को नमस्कार है। श्मशानवासी को नमस्कार है। चर्मधारी को नमस्कार है। चंद्रशेखर विरूप तथा अतिसूक्ष्म को नमस्कार है ॥५९-६३॥ दुर्ग, दुर्गपार, दुर्गावयवसाक्षी, लिंगरूप, लिंग तथा लिंगपति को एवम् रुद्रभूमिश्रित को नमस्कार है। कारणों के कारण, मृत्युंजय, आत्मा तथा नमस्कार है। प्रभावरूप तथा प्रभाव के अर्थरूप को नमस्कार है। गौरी से संबन्ध करने वाले और मंगलों के कारण-भवस्वरूप वाले, तीन नेत्र वाले, कालकंठ वाले, भर्गनाम वाले, भूत शिव को नमस्कार है।

विप्र ! जो व्यक्ति शिव के इन शतनामों का पाठ करके प्रदक्षिणा करता है, वह उनके लोक को जाता है। द्विज ! उक्त रीति से उक्त व्रत करने वाला व्यक्ति महादेव की कृपा से ऐहलौकिक सकल भोगों को भोगकर अंत में शिवलोक को जाता है ॥६४-६८॥ अगहन-शुक्ल-त्रयोदशी में विधिपूर्वक अनंग की पूजा करनी चाहिये। तीनों काल या एक काल शिव के संगम से उत्पन्न अनंग की घट पर या मंगलपट्ट पर गंध आदि उपचारों से विधानपूर्वक पूजा कर द्विजदंपती को भोजन कराये। पश्चात् उन्हें दक्षिणा देकर स्वयं एकभुक्त करे। विप्रर्षे ! ऐसा करने से अनेक कामनायें सफल होती हैं ॥६९-७१॥

पौषशुक्लत्रयोदश्यां समभ्यर्च्याच्युतं हरिम् । घृतपात्रं द्विजेन्द्राय प्रदद्यात्सर्वसिद्धये ॥७२॥
माघशुक्लत्रयोदश्यां समारभ्य दिनत्रयम् । माघस्नानव्रतं विप्र नानाकामफलावहम् ॥७३॥
प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नातस्य यत्फलम् । नाश्वमेधसहस्रेण तत्फलं लभते भुवि ॥७४॥
तत्र स्नानं जपो होमो दानं चानंत्यमश्नुते । फाल्गुने तु सिते पक्षे त्रयोदश्यामुपोषितः ॥७५॥
नमस्कृत्य जगन्नाथं प्रारभ्भे धनदव्रतम् । महाराजं यक्षपतिं गंधाद्यैरुपचारकैः ॥७६॥
लिखितं वर्णकैः पट्टे पूजयेद्भक्तिभावतः । एवं शुक्लत्रयोदश्यां प्रतिमासं द्विजोत्तम ॥७७॥
संपूजयेत्सोपवासश्चैकभुक्तो भवेन्नरः । ततो व्रतांते तु पुनः सौवर्णं धननायकम् ॥७८॥
विधाय निधिभिः सार्द्धं सौवर्णाभिर्द्विजोत्तम । उपचारैः षोडशभिः स्नानैः पंचामृतादिभिः ॥७९॥
नैवेद्यैर्विविधैर्भक्त्या पूजयेत्तु समाहितः । ततो धेनुमलंकृत्य वस्त्रस्रग्गंधभूषणैः ॥८०॥
सवत्सां दापयेद्विप्र सम्यग्वेदविदे शुभाम् । संभोज्य विप्रान्मिष्टान्नैर्द्वादशाथ त्रयोदश ॥८१॥
गुरुं समर्च्य वस्त्राद्यैः प्रतिमां तां निवेदयेत् । द्विजेभ्यो दक्षिणां शक्त्या दत्त्वा नत्वा विसृज्य च ॥८२॥
स्वयं भुंजीत मतिमानिष्टैः सह समाहितः । एवं कृते व्रते विप्र निर्धनः प्राप्य वैभवम् ॥८३॥
मोदते भुवि विख्यातो राजराज इवापरः ॥८४॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने द्वादशमासस्थितत्रयोदशीव्रतकथनम्
नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२२॥

पौष-शुक्ल-त्रयोदशी को भगवान् विष्णु की अर्चना करके घृतपूर्ण पात्र ब्राह्मण को दान करने से सकल कामनायें सिद्ध होती हैं। विप्र! माघ-शुक्ल-त्रयोदशी से लेकर पूर्णिमा तक माघ-स्नान का व्रत करने से अनेक कामनायें पूर्ण होती हैं। माघमास में तीन दिन प्रयागस्नान से जितना फल होता है, उतना सहस्र अश्वमेधयज्ञ करने से भी नहीं होता। वहाँ स्नान, जप, होम तथा दान करने से अनंत फल होता है। फाल्गुन-शुक्ल-त्रयोदशी में उपवास करजगन्नाथ को नमस्कार करके कुबेरव्रत प्रारम्भ करे। पट्ट पर गेरू से लिखित महाराज यक्षपति की गंध आदि उपचारों से भक्तिपूर्वक पूजा करे। द्विजश्रेष्ठ! प्रत्येक मास की शुक्ल त्रयोदशी में उपवास कर पूजा करने से मनुष्य यक्षभक्त होता है। व्रतांत में सुवर्ण का कुबेर बनाकर (उसका) विधिपूर्वक षोडशोपचार पूजन करे। द्विजवर्य! पंचामृत आदि से स्नान कराकर विविध प्रकार के नैवेद्य चढ़ाये। तदनन्तर समाहित होकर वस्त्र, माला, गंध तथा आभूषणों से युक्त सवत्सा गौ वेदवेत्ता ब्राह्मण को प्रदान करे, बारह या तेरह विप्रों को मिष्टान्न खिलाये, गुरु को वस्त्र आदि से सम्मानित कर प्रतिमा समर्पित करे और द्विजों को दक्षिणा देकर प्रणामपूर्वक विदा करे। पश्चात् मतिमान् व्यक्ति सावधानतापूर्वक स्वयं भोजन करे। विप्र! इस व्रत का करने वाला निर्धन व्यक्ति ऐश्वर्य पाकर पृथ्वी पर महाराज की तरह आनन्द करता है ॥७२-८२॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में द्वादशमासस्थित त्रयोदशीव्रतनिरूपण नामक एक सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२२॥

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सनातन उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि चतुर्दश्या व्रतानि ते । यानि कृत्वा नरो लोके सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥१॥
चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां कुंकुमागरुचन्दनैः । गन्धाद्यैर्वस्त्रमणिभिः कार्यार्चा महती शिवे ॥२॥
वितानध्वजछत्राणि दत्त्वा पूज्याश्च मातरः । एवं कृत्वार्चनं विप्र सोपवासोऽथवैकभुक् ॥३॥
अश्वमेधाधिकं पुण्यं लभते मानवो भुवि । अत्रैव दमनार्चा च कारयेद्गंधपुष्पकैः ॥४॥
समर्पयेत्सुपूर्णायां शिवाय शिवरूपिणे । राधकृष्णचतुर्दश्यां सोपवासो निशामुखे ॥५॥
लिंगमभ्यर्चयेच्चैवं स्नात्वा धौतांबरः सुधीः । गंधाद्यैरुपचारैश्च बिल्वपत्रैश्च सर्वतः ॥६॥
दत्त्वा मंत्रं द्विजाग्र्याय भुंजीत च परेऽहनि । एवमेव तु कृष्णासु सर्वासु द्विजसत्तम ॥७॥
शिवव्रतं प्रकर्तव्यं धनसंतानमिच्छता । राधशुक्लचतुर्दश्यां श्रीनृसिंहव्रतं चरेत् ॥८॥
उपवासविधानेन शक्तोऽशक्तस्तथैकभुक् । निशामुखे तु संपूज्य नृसिंहं दैत्यसूदनम् ॥९॥
उपचारैः षोडशभिः स्नानैः पंचामृतादिभिः । ततः क्षमापयेद्देवं मन्त्रेणानेन नारद ॥१०॥
तप्तहाटककेशांत ज्वलत्पावकलोचन । वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते ॥११॥

अध्याय १२३

वर्ष भर के चतुर्दशी-व्रतों की विधि और महिमा

सनातन बोले—नारद ! सुनो, मैं चतुर्दशी के व्रतों को बता देता हूँ, जिनके अनुष्ठान से मनुष्य ऐहलौकिक सकल कामनाओं को प्राप्त करता है। चैत्र-शुक्ल-चतुर्दशी में कुंकुम, अगर, चन्दन, गंध, वस्त्र, मणि, चँदवा, पताका और छत्र आदि से शिव की पूजा कर मातृगण की अर्चना करे। विप्र ! व्रती उस दिन उपवास करते हुए एक भुक्त में यव भोजन करे। पृथ्वी पर ऐसा करने वाला मानव अश्वमेध आदि यज्ञों का पुण्य लाभ करता है। उसी दिन दमनार्चा भी की जाती है। गंध, पुष्प आदि से दंड की पूजा कर पूर्णिमा में कल्याणरूप शिव को समर्पित करना चाहिये ॥१-४½॥ वैशाख-कृष्ण-चतुर्दशी में उपवास करते हुए प्रदोषकाल में शिवलिंग की अर्चना करे। अर्थात् स्नान कर स्वच्छ वस्त्र पहन कर गंध आदि उपचारों से एवम् बिल्वपत्रों से शिव की आराधना कर दूसरे दिन उत्तम ब्राह्मण को खिलाकर स्वयं भोजन करे। द्विजवर्य ! जो व्यक्ति धन एवम् संतान के इच्छुक हैं, उन्हें प्रत्येक मास की कृष्ण-चतुर्दशी में इसी तरह शिव व्रत करना चाहिये। वैशाख-शुक्ल-चतुर्दशी में श्रीनृसिंहव्रत करना चाहिये ॥५-८॥ समर्थ व्यक्ति उस दिन उपवास करे और यदि अशक्त हो तो एकभुक्त करे। नारद ! प्रदोष काल में दैत्यों के विध्वंसक नृसिंह को पंचामृत आदि से स्नान कराकर षोडशोपचार पूजन करे। तदनन्तर "तप्तहाटककेशान्त...." इस मंत्र को पढ़कर क्षमा प्रार्थना करे। प्रार्थनोपरान्त इसी भूमि पर

इति संप्रार्थ्य देवेशं व्रती स्यात्स्थंडिलेशयः । जितेन्द्रियो जितक्रोधः सर्वभोगविवर्जितः ॥१२॥
एवं यः कुरुते विप्र विधिवद्व्रतमुत्तमम् । वर्षे वर्षे स लभते भुक्तभोगो हरेः पदम् ॥१३॥
ओंकारेश्वरयात्रा च कार्यात्रैव मुनीश्वर । दुर्लभं दर्शनं तत्र सर्वपापप्रणाशनम् ॥१४॥
किमत्र बहुनोक्तेन पूजाध्यानजपेक्षणम् । यद्भवेत्तत्समुद्दिष्टं ज्ञानमोक्षप्रदं नृणाम् ॥१५॥
अत्र लिंगव्रतं चापि कर्तव्यं पापनाशनम् । पंचामृतैस्तु संस्नाप्य लिंगमालिप्य कुंकुमैः ॥१६॥
नैवेद्यैश्च फलैर्धूपैर्दीपैर्वस्त्रविभूषणैः । एवं यः पूजयेदिष्टं लिंगसर्वार्थसिद्धिदम् ॥१७॥
भुक्तिं मुक्तिं च लभते महादेवप्रसादतः । ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां दिव्याः पंच[illegible] निशाः ॥१८॥
मुखे दद्याद्धेमधेनुं रुद्रव्रतमिदं स्मृतम् । शुचिशुक्लचतुर्दश्यां शिवं संपूज्य मानवः ॥१९॥
देशकालोद्भवैः पुष्पैः सर्वसंपदमाप्नुयात् । नभःशुक्लचतुर्दश्यां पवित्रारोपणं मतम् ॥२०॥
तत्स्वशाखोक्तविधिना कर्तव्यं द्विजसत्तम । शताभिमंत्रितं कृत्वा ततो देवं निवेदयेत् ॥२१॥
पवित्रारोपणं कृत्वा नरो नार्यथवा यदि । महादेवाः प्रसादेन भुक्तिं मुक्तिमवाप्नुयात् ॥२२॥
भाद्रशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतमुत्तमम् । [illegible]कपक्वं हि गोधूमप्रस्थकल्पितम् ॥२३॥
विपाच्य घृतशर्करासंस्थं निवेदयेत् । गंधाद्यैः प्राक् समभ्यर्च्य कार्पासं पट्टजं तु वा ॥२४॥
चतुर्दशग्रंथियुतं सूत्रं कृत्वा सुशोभनम् । ततः पुराणं तत्सूत्रं [illegible] जलाशये ॥२५॥
निबध्नीयान्नवं नारी वामे दक्षे पुमान्भुजे । विप्राय [illegible] तत्समं[illegible] ॥२६॥

शयन करे । उसे जितेन्द्रिय, जितक्रोध तथा सकल भोगों से रहित होना चाहिये । विप्र ! इस प्रकार जो उक्त व्रत को प्रतिवर्ष विधिपूर्वक करता है, वह सकल भोगों को प्राप्त कर शिवलोक को जाता है ॥९-१३॥

मुनीश्वर ! उस दिन ओंकारेश्वर की यात्रा भी की जाती है । उनका दुर्लभ दर्शन-पूजन पापों का नाशक है । बहुत क्या कहा जाय, उनके पूजन, ध्यान, जप तथा दर्शन से मनुष्यों को ज्ञान एवम् मोक्ष की प्राप्ति होती है । उस दिन पापनाशी लिंगव्रत भी करना चाहिये । पंचामृत से शिवलिंग का स्नपन कर कुंकुम लेप कर फल, धूप, दीप, वस्त्र तथा आभूषण अर्पित करे । इस प्रकार जो सकल कामनादायक शिवलिंग का पूजन करता है, वह महादेव की कृपा से भोग-मोक्ष को प्राप्त करता है । ज्येष्ठ-शुक्ल-चतुर्दशी के प्रदोषकाल में पाँच सुवर्ण-धेनु दान करे, यह रुद्रव्रत कहलाता है । आषाढ़-शुक्ल-चतुर्दशी में देश-कालोत्पन्न पुष्पों से शिव की पूजा करने वाला मानव सकल संपत्तियों को प्राप्त करता है ॥१४-१९½॥ श्रावण-शुक्ल-चतुर्दशी में पवित्रारोपण करना चाहिये । द्विजश्रेष्ठ ! अपनी शाखा में बताई हुई विधि से पवित्रारोपण करना चाहिये । सौ बार पवित्री अभिमंत्रित कर देवों को समर्पित करे । पवित्रारोपण करने वाला नर या नारी महादेवों की कृपा से भोग-मोक्ष को प्राप्त करता है ॥२०-२२॥

भाद्र-शुक्ल-चतुर्दशी में उत्तम अनंतव्रत किया जाता है । उस दिन एक शुभ करते हुए एक सेर गेहूँ के आटे को घी एवम् शक्कर में पका कर अनंत भगवान् को समर्पित करे । पहिले गंध आदि से अनंत की पूजा कर कपास या रेशम का सुन्दर डोरा, जिसमें चौदह गाँठें हों, बाँह पर बाँध ले और पुराने डोरे को उतार कर जलाशय में फेंक दे । नारी नवीन डोरे को बायीं भुजा में और पुरुष दाहिनी भुजा में बाँधे । दक्षिणा सहित पक्वान्न विप्र को देकर स्वयं भी उसी परिमाण में भोजन करे । पुनः क्योंकि चौदह वर्षों तक

हितसर्वपर्यंतं तत उद्यापयेत्सुधीः ॥२७॥
स्वयं च तन्निशतं कालोधं कुर्याद्व्रतोत्तमम् । सुशोभने न्यसेत्तत्र कलशं ताम्रजं मुने ॥२८॥
मंडलं सर्वतोभद्रं धान्यवर्णैः प्रकल्प्य च । पीतपट्टांशुकाच्छन्नां तत्र तां विधिना यजेत् ॥२९॥
तस्योपरि न्यसेद्धैमीमनंतप्रतिमां शुभाम् । ततो होमं हविष्येण कृत्वा पूर्णाहुतिं चरेत् ॥३०॥
गणेशं मातृकाः खेटाँल्लोकपांश्च यजेत्पृथक् । प्रदद्याद्गुरवे भक्त्या द्विजानन्यांश्चतुर्दश ॥३१॥
शय्यां सोपस्करां धेनुं प्रतिमां च द्विजोत्तम । एवं यः कुरुतेऽनंतव्रतं प्रत्यक्षमादरात् ॥३२॥
संभोज्य मिष्टपक्वान्नैर्दक्षिणाभिः प्रतोषयेत् । कदलीव्रतमप्यत्र तद्विधानं च मे शृणु ॥३३॥
सोऽप्यनंतप्रसादेन जायते भुक्तिमुक्तिभाक् । स्नात्वा संपूजयेद्गंधपुष्पधान्यांकुरादिभिः ॥३४॥
नरो वा यदि वा नारी रंभामुपवनस्थिताम् । एवं संपूज्य मंत्रेण ततः संप्रार्थयेद्व्रती ॥३५॥
दधिदूर्वाक्षतैर्दीपैर्वस्त्रपक्वान्नसंचयैः । शरीरारोग्यलावण्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥३६॥
अप्सरोभिः कन्याभिर्नागकन्याभिरर्चिते । संभोज्यांशुकसिंदूरकज्जलालक्तचर्चिताः ॥३७॥
इति संप्रार्थ्य कन्यास्तु चतस्रो वा सुवासिनीः । एवं कृते व्रते विप्र लब्ध्वा सौभाग्यमुत्तमम् ॥३८॥
नमस्कृत्य निजं गेहं समाप्य नियमं व्रजेत् । इषकृष्णचतुर्दश्यां विषशस्त्रांबुवह्निभिः ॥३९॥
इह लोके विमानेन स्वर्गलोके व्रजेत्परम् । चतुर्दश्यां क्रियाश्राद्धमेकोद्दिष्टविधानतः ॥४०॥
सर्पश्वापदवज्राद्यैर्हतानां ब्रह्मघातिनाम् । तर्पणं च गवां ग्रासं बलिं चैव श्वकाकयोः ॥४१॥
कर्तव्यं विप्रवर्गं च भोजयेन्मिष्टपक्वकैः । एवं यः कुरुते विप्र श्राद्धं संपन्नदक्षिणम् ॥४२॥
कृत्वाचम्य स्वयं पश्चाद्भुंजीयाद्बंधुभिः सह । इषशुक्लचतुर्दश्यां धर्मराजं द्विजोत्तम ॥४३॥
स उद्धृत्य पितॄन्गच्छेद्देवलोकं सनातनम्

मुने ! धूम्रवर्णों से मनोहर सर्वतोभद्रमंडल बनाकर उसके
इस उत्तम व्रत को करके उद्यापन करे । मुने ! धूम्रवर्णों से मनोहर सर्वतोभद्रमंडल बनाकर उसके पीले रेशमी-वस्त्र से आच्छा-
ऊपर तांबे का कलश रखे । उसके ऊपर सुवर्ण की पवित्र अनंत-प्रतिमा रखकर उसे पीले रेशमी-वस्त्र से आच्छा- पृथक्-पृथक् पूजन करे।
दित कर विधिपूर्वक अर्चना करे । यजमान गणेश, सूर्यादि पंचदेवता तथा लोकपालों का पृथक्-पृथक् पूजन करे। प्रतिमा गुरु को भक्तिपूर्वक
तदनन्तर हविष्यान्न से हवन कर पूर्णाहुति दे । द्विजवर्य ! सोपकरण शय्या, धेनु एवम् प्रतिमा गुरु को भक्तिपूर्वक ॥२३-३१½॥ इस प्रकार जो
समर्पित कर अन्य चौदह ब्राह्मणों को मिष्टान्न खिला कर दक्षिणा से संतुष्ट करे ॥२३-३१½॥ इस प्रकार जो प्राप्ति होती है । उस दिन
प्रत्यक्ष अनंतव्रत को आदरपूर्वक करता है, उसे अनंत की कृपा से भुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है । उस दिन धान्य के अंकुर, दधि,
कदलीव्रत भी किया जाता है, उसका विधान सुनो । नर या नारी स्नान कर गंध, पुष्प, धान्य के अंकुर, दधि, "अप्सरा..." इस मंत्र से
दूर्वा, अक्षत, दीप, वस्त्र तथा पकवानों से उद्यान-स्थित कदलीवृक्ष का पूजन करके "अप्सरा..." इस मंत्र से तथा अलता से विभू-
प्रार्थना करे । तदनन्तर चार कुमारिकाओं या सधवाओं को खिलाकर अगर, सिंदूर, काजल तथा अलता से विभू-
षित करे । फिर उन्हें प्रणाम करके व्रत समाप्त करे ॥३२-३७½॥

विप्र ! इस प्रकार व्रत करने वाला व्यक्ति इस लोक में उत्तम सौभाग्य को प्राप्त कर विमान से स्वर्ग-
लोक को जाता है । आश्विन-कृष्ण-चतुर्दशी में विधिपूर्वक क्रियाश्राद्ध तथा एकोद्दिष्ट करने से उन जीवों का भी
उद्धार हो जाता है, जो विष, शस्त्र, जल, अग्नि, सर्प, व्याघ्र, वज्र आदि से निहत हुए हों या ब्रह्मघाती हों ।
उस दिन ब्राह्मणों को मिष्टान्न खिलाकर गौ, कुत्ते एवम् कौए को बलि दे । उसके बाद आचमन करके बंधुओं के
साथ स्वयं भोजन करे । विप्र ! इस प्रकार जो प्रचुर दक्षिणा देकर श्राद्ध करता है, वह पितरों का उद्धार करके
सनातन देवलोक को जाता है ॥३८-४२½॥ द्विजश्रेष्ठ आश्विन-शुक्ल-चतुर्दशी में गंध आदि उपचारों से धर्मराज

गंधाद्यैः सम्यगभ्यर्च्य सौवर्णं भोज्य वाडवम् । दद्यात्तस्मै धर्मराजस्त्रायते पुंसि नारद ॥४४॥
एवं यः कुरुते धर्मप्रतिमादानमुत्तमम् । स भुक्त्वेह वरान्भोगान्दिवं धर्माज्ञया व्रजेत् ॥४५॥
ऊर्जकृष्णचतुर्दश्यां तैलाभ्यंगं विधूदये । कृत्वा स्नात्वार्चयेद्धर्मं नरकाभयं लभेत् ॥४६॥
प्रदोषे तैलदीपांस्तु दीपयेद्यमतुष्टये । चतुष्पथे गृहाद्बाह्यप्रदेशे वा समाहितः ॥४७॥
वत्सरे हेमलब्धाख्ये मासि श्रीमति कार्तिके । शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामरुणाभ्युदये प्रति ॥४८॥
स्नात्वा विश्वेश्वरो देवो देवैः सह मुनीश्वर । मणिकर्णिकतीर्थे च त्रिपुंड्रं भस्मना दधत् ॥४९॥
स्वात्मानं स्वयमभ्यर्च्य चक्रे पाशुपतव्रतम् । ततस्तत्र महापूजां लिंगे गन्धादिभिश्चरेत् ॥५०॥
द्रोणपुष्पैर्बिल्वदलैरर्कपुष्पैश्च केतकैः । पुष्पैः फलैर्मिष्टपक्वैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥५१॥
एवं कृत्वैकभुक्तं तु व्रतं विश्वेशतोषणम् । लभते वांछितान्कामानिहामुत्र च नारद ॥५२॥
ब्रह्मकूर्चव्रतं चात्र कर्तव्यमृद्धिमिच्छता । सोपवासः पञ्चगव्यं पिबेद्रात्रौ जितेंद्रियः ॥५३॥
कपिलायास्तु गोमूत्रं कृष्णाया गोमयं तथा । श्वेतायाः क्षीरमुदितं रक्तायाश्च तथा दधि ॥५४॥
गृहीत्वा कर्बुरायाश्च घृतमेकत्र मेलयेत् । कुशांबुना ततः प्रातः स्नात्वा संतर्प्य देवताः ॥५५॥
ब्राह्मणांस्तोषयित्वा च भुञ्जीयाद्वाग्यतः स्वयम् । ब्रह्मकूर्चव्रतं ह्येतत्सर्वपातकनाशनम् ॥५६॥
यच्च बाल्ये कृतं पापं कौमारे वार्द्धकेऽपि यत् । ब्रह्मकूर्चोपवासेन तत्क्षणादेव नश्यति ॥५७॥
पाषाणव्रतमप्यत्र प्रोक्तं तच्छृणु नारद । सोपवासो दिवा नक्तं पाषाणाकारपिष्टकम् ॥५८॥

की स्वर्णमयी प्रतिमा का पूजन कर "धर्मराज मेरी रक्षा करें" यह कहते हुए विप्र को भोजन कराकर वह प्रतिमा दे दे । जो इस प्रकार प्रतिमादान संबन्धी उत्तम धर्म करता है, वह इस लोक में दिव्य भोगों को भोग कर अंत में धर्मराज की आज्ञा से स्वर्ग को जाता है ।।४४-४५।।

कार्तिक-कृष्ण-चतुर्दशी में चन्द्रोदय होने पर तेल लगा कर स्नान करने के उपरान्त धर्मराज की पूजा करने से नरक नहीं जाना पड़ता है । उस दिन प्रदोपकाल में समाहित होकर यम की प्रसन्नता के लिये घर के बाह्य-प्रदेश में तेल से दीपक जलाये । मुनीश्वर ! हेमलब्ध नामक वर्ष के शोभन कार्तिक मास के शुक्लपक्ष को चतुर्दशी में अरुणोदय के समय विश्वेश्वर देव ने देवताओं के साथ मणिकर्णिक तीर्थ में स्नान कर त्रिपुंड्र धारण करके पाशुपत व्रत करते हुए स्वयं अपनी पूजा की थी । इसलिये, उस दिन गंध आदि से तथा द्रोणपुष्प, बिल्वपत्र, अर्कपुष्प, केतकीपुष्प, मीठे एवम् सुपक्व फल और विविध नैवेद्यों से शिवलिंग की महापूजा कर एक भुक्त करते हुए विश्वेशतोषणव्रत को समाप्त करे । नारद ! जो इस व्रत को करता है, वह इस लोक में तथा परलोक में वांछित फलों को प्राप्त करता है ।।४६-५२।। धन के इच्छुक व्यक्ति को उस दिन ब्रह्मकूर्चव्रत करना चाहिये । उपवास एवम् इन्द्रिय-संयम करते हुए रात्रि में पंचगव्य पीना चाहिये। कैली गौ का मूत्र, काली गौ का गोबर, उजली गौ का दूध, लाल गौ का दही और चितकबरी गौ का घी एकत्रित कर देने से पंचगव्य बनता है । प्रातःकाल कुशोदक से स्नान कर देवतर्पण करे । फिर ब्राह्मणों को संतुष्ट कर स्वयं वाक्संयमपूर्वक भोजन करे । इस तरह ब्रह्मकूर्चव्रत करने से सकल पातकों का नाश होता है । बाल्यावस्था, कौमार-अवस्था और वृद्धावस्था में जो पाप किये गये हों, वे ब्रह्मकूर्चव्रत करने से तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं । नारद ! उस दिन पाषाणव्रत भी किया जाता है, उसके बारे में सुनो । दिन में उपवास कर रात्रि में गंध आदि से गौरी की पूजा कर घी में पकायी हुई पाषाण के आकार की पिट्ठी उनको भोग लगाये । द्विजवर्य ! इस व्रत के यथोक्तरीति से करने से

गाङ्गीं गन्धादिभिर्गौरीं घृतपक्वमुपाहरेत् । व्रतमेतच्चरित्वा तु यथोक्तं द्विजसत्तम ॥५९॥
ऐश्वर्यसौख्यसौभाग्यरूपाणि प्राप्नुयान्नरः । मार्गशुक्लचतुर्दश्यामेकभुक्तः पुरोदितम् ॥६०॥
निराहारो वृषं स्वर्णं प्रार्च्य दद्याद्द्विजातये । परेऽह्नि प्रातरुत्थाय स्नात्वा सोमं महेश्वरम् ॥६१॥
पूजयेत्कमलैः पुष्पैर्गंधमाल्यानुलेपनैः । द्विजान्संभोज्य मिष्टान्नैस्तोषयेद्दक्षिणादिभिः ॥६२॥
एतच्छिवव्रतं विप्र भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । कर्तॄणामुपदेष्टॄणां श्राव्याणामनुमोदिनाम् ॥६३॥
पौषशुक्लचतुर्दश्यां विरूपाक्षव्रतं स्मृतम् । कपर्दीश्वरसांनिध्यं प्राप्स्याम्यत्र विचिंत्य च ॥६४॥
स्नात्वागाधजले विप्र विरूपाक्षं शिवं यजेत् । गंधमाल्यनमस्कारधूपदीपान्नसंपदा ॥६५॥
तत्स्वं द्विजालये दत्त्वा मोदते दिवि देववत् । माघकृष्णचतुर्दश्यां यमतर्पणमीरितम् ॥६६॥
अनर्काभ्युदिते काले स्नात्वा संतर्पयेद्यमम् । द्विसप्तनामभिः प्रोक्तैः सर्वपापविमुक्तये ॥६७॥
तिलदर्भांबुभिः कार्यं तर्पणं द्विजभोजनम् । कृशरान्नं स्वयं चापि तदेवाश्नीत वाग्यतः ॥६८॥
अंत्यकृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रिव्रतं द्विज । निर्जलं समुपोष्यात्र दिवानक्तं प्रपूजयेत् ॥६९॥
स्वयंभ्वादिकं लिंगं पार्थिवं वा समाहितः । गंधाद्यैरुपचारैश्च सांबुबिल्वदलादिभिः ॥७०॥
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः स्तोत्रपाठैर्जपादिभिः । ततः परेऽह्नि संपूज्य पुनरेवोपचारकैः ॥७१॥
संभोज्य द्विजान्मिष्टान्नैर्विसृजेल्लब्धदक्षिणान् । एवं कृत्वा व्रतं मर्त्यो महादेवप्रसादतः ॥७२॥
अनर्घ्यभोगान् लभते दैवतैः सुसभाजितः । अंत्यशुक्लचतुर्दश्यां दुर्गां संपूज्य भक्तितः ॥७३॥
गन्धाद्यैरुपचारैस्तु विप्रान्संभोजयेत्ततः । एवं कृत्वा व्रतं विप्र दुर्गायाश्चैकभोजनः ॥७४॥

मनुष्य को ऐश्वर्य, सुख, सौभाग्य तथा रूप की प्राप्ति होती है ॥५३-५९½॥ अगहन-शुक्ल-चतुर्दशी में एकभुक्त या उपवास करते हुए सोने के वृष की पूजा कर विप्र को दे दे। दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर स्नानोपरान्त कमलपुष्प, गंध, माला तथा लेप से उमा और महेश्वर की अर्चना कर द्विजों को मिष्टान्न खिलाकर दक्षिणा आदि से संतुष्ट करे। विप्र! यह शिवव्रत कर्ता, उपदेष्टा, श्रोता तथा अनुमन्ता को भोग-मोक्ष देता है ॥६०-६३॥

पौष-शुक्ल-चतुर्दशी में विरूपाक्षव्रत किया जाता है। उस दिन "मैं शिव के समीप जाऊँगा" ऐसी चिन्ता करते हुए अगाध जल में स्नान करे। तदुपरान्त गंध, माला, नमस्कार, धूप, दीप, अन्न आदि वस्तुओं से विरूपाक्ष शंकर की अर्चना करे। फिर सब सामग्रियाँ द्विज को अर्पित कर दे। ऐसा करने वाला व्यक्ति स्वर्ग में देवता की तरह विहार करता है ॥६४-६५½॥ माघ-कृष्ण-चतुर्दशी में यमतर्पण किया जाता है। उस दिन सूर्योदय होने से पहले ही स्नान करके अखिल पापों के नाश के लिये चौदह नामों से यम का तर्पण करे। तर्पण तिल, जल, कुश से करना चाहिये। अनन्तर ब्राह्मण को खिचड़ी खिलाये और स्वयं भी मौन होकर वही खाये। द्विज! फाल्गुन-कृष्ण-चतुर्दशी में शिवरात्रिव्रत करना चाहिये। दिन में निर्जल उपवास कर रात्रि में गंध आदि उपचारों से तथा जल, बिल्वपत्र, धूप, दीप, नैवेद्य, स्तुतिपाठ एवम् जप आदि से स्वयंभू शिवलिंग या पार्थिव लिंग की पूजा करे। दूसरे दिन पुनः उपचारपूर्वक शंकर का पूजन कर ब्राह्मणों को मिष्टान्न खिलाकर दक्षिणा दे बिदा करे। इस प्रकार व्रत करने वाला मानव महादेव की कृपा से देवताओं के साथ दिव्य भोगों को भोगता है ॥६६-७२½॥ फाल्गुन-शुक्ल-चतुर्दशी में भक्तिपूर्वक गंध आदि उपचारों से दुर्गा की पूजा कर ब्राह्मणों को भी भोजन कराये। नारद! इस प्रकार एकभुक्त करके जो दुर्गा का व्रत करता है, वह इस लोक में तथा

लभते वांछितान्कामानिहामुत्र च नारद । चैत्रकृष्णचतुर्दश्यामुपवासं विधाय च ॥७५॥
केदारोदकपानेन वाजिमेधफलं भवेत् । उद्यापने तु सर्वासां सामान्यो विधिरुच्यते ॥७६॥
कुंभाश्चतुर्दशैवात्र सपूगाक्षतमोदकाः । सदक्षिणांशुकास्ताम्रा मृन्मयाश्चाव्रणा नवाः ॥७७॥
तावंतो वंशदंडाश्च पवित्राण्यासनानि च । पात्राणि यज्ञसूत्राणि तावंत्येव हि कल्पयेत् ॥७८॥
शेषं प्रागुक्तवत्कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥७९॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थितचतुर्दशीव्रतवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२३॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सनातन उवाच

अथ नारद वक्ष्यामि शृणु पूर्णाव्रतानि ते । यानि कृत्वा नरो नारी प्राप्नुयात्सुखसंततिम् ॥१॥
चैत्रपूर्णा तु विप्रेंद्र मन्वादिः समुदाहृता । अस्यां सान्नोदकं कुंभं प्रदद्यात्सोमतुष्टये ॥२॥
वैशाख्यामपि पूर्णायां दानं सर्वस्य सर्वदम् । यद्यद्द्रव्यं ददेद्विप्रे तत्तदाप्नोति निश्चितम् ॥३॥

परलोक में अभिलषित फलों को प्राप्त करता है ॥७३-७४½॥ चैत्र-कृष्ण-चतुर्दशी में उपवास कर शिवलिंग के चरणोदक के पान करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

अब मैं समस्त चतुर्दशियों के उद्यापन करने की सामान्य विधि बता रहा हूँ। उद्यापन में मिट्टी के या तांबे के चौदह नवीन घड़े होने चाहिये, जो सुपारी, अक्षत, मिष्टान्न, वस्त्र तथा दक्षिणा से युक्त हों। उतनी ही संख्या में वंशदंड, पवित्र आसन, पात्र और यज्ञसूत्र का प्रबंध रहे। शेष बातें उन-उन व्रतों के साथ जैसी कही गई हैं, उसी प्रकार करें, परन्तु धन रहते कृपणता न करे ॥७५-७९॥

श्री नारदीय पुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में द्वादशमासस्थित चतुर्दशीव्रत वर्णन नामक एक सौ तेईसवां अध्याय समाप्त ॥१२३॥

अध्याय १२४

बारह मासों की पूर्णिमा का व्रत-निरूपण

सनातन बोले--नारद! अब मैं पूर्णातिथि के व्रतों को तुमसे बतला रहा हूँ, जिनके अनुष्ठान से नर या नारी को सुख-संतानों की प्राप्ति होती है। विप्रवर्य! चैत्र की पूर्णा तिथि मन्वादि कहलाती है। उस दिन चंद्रमा की प्रसन्नता के लिये अन्न-जल-पूर्ण घट दान करना चाहिये। वैशाखी पूर्णिमा में जो द्रव्य दान किया जाता है, वह निःसंदेह प्राप्त होता है। उस दिन धर्मराजव्रत भी किया जाता है, उसे सुनो। वैशाख की पूर्णिमा में

धर्मराजव्रतं चात्र कथितं तन्निशामय । श्रुतान्नमुदकुंभं च वैशाख्यां वै द्विजोत्तमे ॥४॥
दद्याद्गोदानफलदं धर्मराजस्य तुष्टये । अत्र कृष्णाजिनं दद्यात्सखुरं च सशृङ्गकम् ॥५॥
तिलैः सह समाच्छाद्यवस्त्रैर्हेम्ना द्विजातये । यस्तु कृष्णाजिनं दद्यात्सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥६॥
सर्वशास्त्रविदे सप्तद्वीपभूमिप्रदः स वै । मोदते विष्णुलोके हि यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥७॥
कुंभान्स्वच्छजलैः पूर्णान्हिरण्येन समन्वितान् । यः प्रदद्याद्द्विजाग्र्येभ्यः स न शोचति कर्हिचित् ॥८॥
अथ ज्येष्ठस्य पूर्णायां वटसावित्रिकं व्रतम् । सोपवासा वटं सिंचेत्सलिलैरमृतोपमैः ॥९॥
सूत्रेण वेष्टयेच्चैव सशताष्टप्रदक्षिणम् । ततः संप्रार्थयेद्देवीं सावित्रीं सुपतिव्रताम् ॥१०॥
जगत्पूज्ये जगन्मातः सावित्रि पतिदैवते । पत्या सहावियोगं मे वटस्थे कुरु ते नमः ॥११॥
इति संप्रार्थ्य या नारी भोजयित्वा परेऽहनि । सुवासिनीः स्वयं भुंज्यात्सा स्यात्सौभाग्यभागिनी ॥१२॥
आषाढस्य तु पूर्णायां गोपद्मव्रतमुच्यते । चतुर्भुजं महाकायं जांबूनदसमप्रभम् ॥१३॥
शंखचक्रगदापद्मरमागरुडशोभितम् । सेवितं मुनिभिर्देवैर्यक्षगंधर्वकिन्नरैः ॥१४॥
एवंविधं हरिं तत्र स्नात्वा पूजां समाचरेत् । पौरुषेणैव सूक्तेन गंधाद्यैरुपचारकैः ॥१५॥
आचार्यं वस्त्रभूषाद्यैस्तोषयेत्स्निग्धमानसः । भोजयेन्मिष्टपक्वान्नैर्द्विजानन्यांश्च शक्तितः ॥१६॥
एवं कृत्वा व्रतं विप्र प्रसादात्कमलापतेः । ऐहिकामुष्मिकान्कामांल्लभते नात्र संशयः ॥१७॥
कोकिलाव्रतमप्यत्र प्रोक्तं तद्विधिरुच्यते । पूर्णिमायां समारभ्य व्रतं स्नायाद्बहिर्जले ॥१८॥
पूर्णांतं श्रावणे मासि गौरीरूपां च कोकिलाम् । स्वर्णपक्षां रत्ननेत्रां प्रवालमुखपंकजाम् ॥१९॥

धर्मराज को संतुष्ट करने के लिये उत्तम ब्राह्मण को सुस्तीर्ण अन्न तथा जल-पूर्ण घट देना चाहिये। उससे गोदान का फल मिलता है ॥१-४½॥ उस तिथि में जो व्यक्ति सकलशास्त्रवेत्ता द्विज का सत्कार कर विधिपूर्वक कृष्ण-मृगचर्म प्रदान करता है, उसे सातों द्वीप समेत वसुंधरा दान करने का फल मिलता है और वह विष्णुलोक में तब तक आनन्द करता है जब तक सूर्य-चंद्रमा रहते हैं। उक्त तिथि में जो स्वच्छ जल पूर्ण घट सुवर्ण समेत उत्तम ब्राह्मण को समर्पित करता है, उसे कभी शोक नहीं होता ॥५-८॥

ज्येष्ठ-पूर्णिमा में वटसावित्रीव्रत किया जाता है। उस दिन उपवास करते हुए अमृतोपम जल से वटवृक्ष को सींचे। फिर सूत से वृक्ष को लपेट कर एक सौ आठ बार प्रदक्षिणा करके सुपतिव्रता सावित्री देवी की प्रार्थना करे—"जगत्पूज्ये! जगन्मातः! सावित्रि! पतिदैवते! वटवृक्ष पर रहने वाली! मुझे पति से कभी वियोग न हो, ऐसा आप करें।" इस प्रकार प्रार्थना कर जो नारी दूसरे दिन सधवाओं को खिला कर स्वयं भोजन करती है, वह सौभाग्यशालिनी होती है ॥९-१२॥ आषाढ़ की पूर्णिमा में गोपद्मव्रत किया जाता है। उस दिन स्नान कर पुरुषसूक्त को पढ़ते हुए गंध आदि उपचारों से चतुर्भुज, महाकाय, सुवर्णसदृशकान्तिमान्, शंख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मी तथा गरुड़ से सुशोभित, मुनि, देव, यक्ष, गंधर्व तथा किन्नरों से संसेवित हरि की अर्चना करे। अनन्तर प्रसन्नचित हो वस्त्र, आभूषण आदि से आचार्य को संतुष्ट करे और अन्य विप्रों को मिष्टान्न खिलाकर यथाशक्ति दक्षिणा दे। विप्र! इस तरह व्रत करने वाला व्यक्ति कमलापति की कृपा से ऐहलौकिक एवम् पारलौकिक फलों को प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं ॥१३-१७॥ उक्त तिथि में कोकिलाव्रत भी किया जाता है। उक्त तिथि से लेकर श्रावण की पूर्णिमा तक प्रतिदिन जलाशय आदि के जल में स्नान कर गौरी रूप कोकिला की पूजा करे। कोकिला॰

कस्तूरीवर्णसंयुक्तामुत्पन्नां नंदने वने । चूतचंपकवृक्षस्थां कलगीतविनोदिनीम् ॥२०॥
चिंतयेत्पार्वतीं देवीं कोकिलारूपधारिणीम् । गंधाद्यैः प्रयजेद् गौरीं लिखितां वर्णकैः पटे ॥२१॥
ततो व्रतान्ते हैमीं वा तिलपिष्टमयीं द्विज । दद्याद्विप्राय संकल्प्य सस्वर्णं दक्षिणाम् ॥२२॥
देवि चैत्ररथोत्पन्ने कोकिले हरवल्लभे । संपूज्य दत्ता विप्राय सर्वसौख्यप्रदा भव ॥२३॥
द्विजं सुवासिनीश्चापि एकं वा भोजयेत्ततः । वस्त्रादिदक्षिणां दत्त्वा प्रणम्य च विसर्जयेत् ॥२४॥
एवं या कुरुते नारी कोकिलाव्रतमुत्तमम् । सा लभेत्सुखसौभाग्यं सप्तजन्मसु नारद ॥२५॥
अथ श्रावणपूर्णायां वेदोपाकरणं स्मृतम् । यजुर्भिस्तत्र कर्तव्यं देवर्षिपितृतर्पणम् ॥२६॥
ऋषीणां पूजनं चापि स्वशाखोक्तविधानतः । बह्वृचैस्तु चतुर्दश्यां [illegible] करे ॥२७॥
रक्षाविधानं च तथा कर्तव्यं विधिपूर्वकम् । ॥२८॥

सिद्धार्थाक्षतराजिकाश्च विधृता रक्तांशुकांते सिताः
कौसुंभेन च तंतुना च सहितैः [illegible] कृताः ।
गंधाद्यैरभिपूज्य देवनिकरान्विष्ण्वादिकान्- ।
[illegible] ॥२९॥

ततस्तु दक्षिणां दत्त्वा द्विजेभ्योऽध्यायमाचरेत् । विसृज्य च महर्षींश्च धारयेद्यज्ञसूत्रकम् ॥३०॥
रंजितं कुंकुमाद्यैश्च नवीनं निर्मितं स्वयम् । भक्त्या संभोज्य विप्रांश्च [illegible] समाचरेत् ॥३१॥
कृते ह्यस्मिन्व्रते विप्र वार्षिकं कर्म वैदिकम् । विस्मृतं विधिहीनं च न च क्षतं सुकृतं भवेत् ॥३२॥
प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यामुमामाहेश्वरव्रतम् । एतस्मिन्व्रतवत् [illegible] शिवं संपूज्य यत्नतः ॥३३॥

रूपधारिणी पार्वती देवी की इस प्रकार चिंतना करे कि उनके पंख सोने के हैं, नेत्र रत्न के, मुखकमल प्रवाल (मूंगा) के, वर्ण कस्तूरी के समान है, उत्पत्ति नंदनवन में हुई है, आम तथा चंपा के वृक्षों पर वे ठहरती हैं, मधुर एवम् अव्यक्त शब्दों में गीत गाती हैं। ध्यानोपरान्त "देवि..." इस मंत्र को पढ़ते हुए वस्त्र पर रंग आदि से लिखित गौरी की गंध आदि से पूजा किया करे। द्विज! व्रतांत में सुवर्ण की या तिलचूर्ण की बनी कोकिला-प्रतिमा विप्र को समर्पित कर सुवर्ण दक्षिणा दे। तदनन्तर तीन या एक ही ब्राह्मण तथा सधवाओं को खिलाकर वस्त्र आदि दक्षिणा दे प्रणाम करके विदा करे। नारद! जो नारी इस प्रकार उत्तम कोकिलाव्रत को करती है, वह सात जन्मों तक सुख-सौभाग्य को प्राप्त करती है ॥१८-२५॥

श्रावणी पूर्णिमा में वेदोपाकरण व्रत किया जाता है। उस दिन यजुर्वेद के मंत्रों से देवों, ऋषियों तथा पितरों का तर्पण करे। अपनी शाखोक्त विधि से ऋषियों का पूजन भी करे। रक्षा-बंधन के दिन ऋचाओं तथा साम-मंत्रों से विधिपूर्वक पूजा आदि करनी चाहिये। तदनन्तर कांस्यपात्र को जल से प्रक्षालित कर उसमें उजला सरसों, अक्षत, रक्तवस्त्र तथा कुसुम्भी रंग से रंगा डोरा रख कर गंध आदि से विष्णु आदि देवसमूह का पूजन करे। पश्चात् प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मण के हाथ से डोरा बँधा ले। अनन्तर द्विजों को दक्षिणा दे वेदों का स्वाध्याय करे, सप्तर्षियों का विसर्जन करे, कुंकुम आदि से रंगे नवीन यज्ञसूत्र का धारण करे और यथाशक्ति उत्तम ब्राह्मणों को खिला कर स्वयं भोजन करे। विप्र! इस व्रत के कर लेने पर वार्षिक वैदिक कर्म विस्मृत हो जाय या सविधि न हो सके तो भी कोई क्षति नहीं ॥२६-३२॥

भादों की पूर्णिमा में उमा-महेश्वरव्रत करना चाहिये। चतुर्दशी में व्रत शुरू करते हुए शंकर की यत्नपूर्वक

कृतांजलिः प्रार्थयेच्छम्भो करिष्ये च व्रतं प्रभो । एवं निवेद्य देवं तु गृह्णीयाद्व्रतमुत्तमम् ॥३४॥
रात्रौ देवान्तिके सुप्त्वा उत्थायापरयामके । कृतनैत्यविधिस्तु भस्मरुद्राक्षधृक् ततः ॥३५॥
पूजयेच्छंकरं सम्यगुपचारैः पृथग्विधैः । बिल्वपत्रैः सुगंधाढ्यैर्नैवेद्यैर्धूपदीपकैः ॥३६॥
ततश्चोपवसेद्विप्र आप्रदोषं विधूदये । पुनः संपूज्य तद्देवं रात्रौ जागरणं चरेत् ॥३७॥
एवं पंचदशाब्दांतं कृत्वा व्रतमतंद्रितः । वर्षे वर्षे तदुत्सर्गे विदध्याद्विधिपूर्वकम् ॥३८॥
उमायास्तु महेशस्य सौवर्णीं प्रतिमाद्वयम् । हैमा रौप्या मृण्मयाश्च घटाः पंचदश स्मृताः ॥३९॥
तत्रैकस्मिन्घटे स्थाप्य सवस्त्रं प्रतिमाद्वयम् । पंचामृतेन संस्नाप्य जलैः शुद्धैस्ततोऽर्चयेत् ॥४०॥
उपचारैः षोडशभिस्ततः पंचदश द्विजान् । भोजयेच्चैव मिष्टान्नैर्दद्याच्चैव दक्षिणाम् ॥४१॥
कुंभैकैकसमेतस्य मूर्त्याढ्यं गुरवेऽर्पयेत् । एवं कृत्वा व्रतं चैव उमामाहेश्वराभिधम् ॥४२॥
जायते भुवि विख्यातो निधानं सर्वसंपदाम् । अथास्मिन्नेव दिवसे सत्यव्रतमपि स्मृतम् ॥४३॥
प्रातः स्नात्वा विधानेन संपूज्य सुरनायकम् । गंधाद्यैरुपचारैस्तु नैवेद्यान्तैश्च शक्तितः ॥४४॥
ततो निमंत्रितान्विप्रान्संभोज्य विधिवद्द्विज । अभ्यागतांस्तथैवान्यान्दीनानप्यन्नेन भोजयेत् ॥४५॥
एतच्छक्रव्रतं विप्र कर्तव्यं प्रतिवार्षिकम् । राज्ञा वा धनिनान्येन धनमिच्छता ॥४६॥
आश्विने मासि पूर्णायां व्रतं कोजागराभिधम् । तत्र स्नात्वा विधानेन सोपवासो जितेंद्रियः ॥४७॥
लक्ष्मीमभ्यर्च्य सौवर्णीं घटे संस्थाप्य ताम्रजे । मृन्मये वा सवस्त्रां तामुपचारैः पृथग्विधैः ॥४८॥
ततः सायंतने कालेऽभ्युदिते तारकाधिपे । हैमान्रौप्यान्मृन्मयान्वा घृतपूर्णान्प्रदीपयेत् ॥४९॥
लक्षं तदर्धमयुतं सहस्रं शतमेव वा । घृतशर्करसंमिश्रं निवेद्य बहु पायसम् ॥५०॥

पूजा करके हाथ जोड़ते हुए प्रार्थना करे—'प्रभो ! कल मैं आपका व्रत करूँगा ।' इस प्रकार शिव से निवेदन करके उत्तम व्रत को प्रारंभ करे । रात्रि में देवता के समीप शयन कर अंतिम प्रहर में उठकर नित्यकर्म से निवृत्त हो भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करके बिल्वपत्र, सुगंधित द्रव्य, नैवेद्य, धूप, दीप आदि उपचारों से शंकर की अर्चना करे । तदनन्तर प्रदोषकाल तक उपवास करके चंद्रोदय होने पर पुनः शिव की अर्चना कर रात्रि में जागरण करे । इस तरह पंद्रह वर्षों तक निरालस्यपूर्वक व्रत करना चाहिये । उसके उद्यापन में शिव तथा गौरी की स्वर्णमयी प्रतिमाओं को सुवर्ण या चाँदी या मिट्टी के पंद्रह घटों के बीच एक घट पर सवस्त्र स्थापित कर पंचामृत से स्नान करा कर पुनः शुद्ध जल से स्नान करावे । पश्चात् षोडशोपचार पूजन कर ब्राह्मणों को मिष्टान्न खिला कर दक्षिणा दे और प्रतिमा सहित समस्त घट गुरु को समर्पित करे । इस प्रकार उमामाहेश्वर नामक व्रत करने वाला व्यक्ति पृथ्वी पर सकल संपत्तियों का निधान होता है । उसी दिन शक्रव्रत भी किया जाता है । प्रातःकाल स्नान कर गंध आदि उपचारों तथा नैवेद्यों से शक्ति से देवराज की पूजा करके निमंत्रित विप्रों, आगन्तुकों तथा अन्य दीन-दुखियों को खिलावे । विप्र ! यह इंद्रव्रत राजा, धनी तथा अन्य धनाभिलाषियों को प्रतिवर्ष करना चाहिये ॥३४-४६॥

आश्विन की पूर्णिमा में कोजागरा व्रत किया जाता है । उस दिन विधिपूर्वक स्नान कर उपवास तथा इंद्रिय-संयम करते हुए ताँबे या मिट्टी के घट पर अवस्थित लक्ष्मी की स्वर्णमयी प्रतिमा को वस्त्र से विभूषित कर षोडशोपचार पूजन करे । संध्याकाल चंद्रोदय होने पर लाख या पचास हजार या दस हजार या एक हजार या एक ही सौ सुवर्ण या चाँदी या मिट्टी के दीपों में घी भर कर जलावे और शक्कर तथा घृतयुक्त पायस [illegible]

बहुपात्रेषु संस्थाप्य कौमुद्यां शीतदीधितेः । यामजाते गते रात्र्या लक्ष्म्यै तद्विनिवेदयेत् ॥५१॥
ततः संभोजयेत्तेन विप्रान्भक्त्या ततश्च तैः । सहैव जागरं कुर्यान्नृत्यगीतसुमंगलैः ॥५२॥
ततोऽरुणोदये स्नात्वा तां मूर्तिं गुरवेऽर्पयेत् । अस्यां रात्रौ महालक्ष्मीर्वराभयकरांबुजा ॥५३॥
निशीथे चरते लोके को जागर्ति धरातले । तस्मै वित्तं प्रयच्छामि जाग्रते पूजकाय मे ॥५४॥
वर्षे वर्षे कृतं चैतद्व्रतं लक्ष्मीप्रतोषणम् । समृद्धिमैहिकीं दद्याद्देहान्ते पारलौकिकीम् ॥५५॥
कार्तिक्यां पूर्णिमायां तु कुर्यात्कार्तिकदर्शनम् । विप्रत्वलब्धये भूयः सर्वशत्रुजयाय च ॥५६॥
अत्रैव दीपदानेन विधेयस्त्रिपुरोत्सवः । निशामुखे द्विजश्रेष्ठ सर्वजीवसुखावहः ॥५७॥

कीटाः पतंगा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरंति जीवाः ।
दृष्ट्वा प्रदीपान्नहि तेऽपि जन्मिनः पुनश्च मुक्तिं हि लभंत एव च ॥५८॥

तत्र चन्द्रोदये विप्र संपूज्याः कृत्तिकाश्च षट् ॥५९॥
कार्तिकेयस्तथा खड्गी वरुणश्च हुताशनः । गन्धपुष्पैस्तथा धूपदीपैर्नैवेद्यविस्तरैः ॥६०॥
परमान्नैः फलैः शाकैर्विप्रब्राह्मणतर्पणैः । एवं देवानसमभ्यर्च्य दीपो देयो गृहाद्बहिः ॥६१॥
दीपोपांते तथा गर्तश्चतुरस्रो मनोहरः । चतुर्दशांगुलः कार्यः सेकश्चंदनवारिणा ॥६२॥
गवां क्षीरेण संपूर्णं हैमं तत्र विनिक्षिपेत् । मुक्ताक्षिसमायुक्तं मत्स्यं सर्वांगशोभनम् ॥६३॥
महामत्स्याय च नम इति मंत्रं समुच्चरन् । गन्धाद्यैस्तत्र संपूज्य द्विजाय प्रतिपादयेत् ॥६४॥
क्षीरसागरदानं ते मयोक्तं द्विजसत्तम । दानस्यास्य प्रभावेण मोदते हरिसन्निधौ ॥६५॥

बना कर बहुत पात्रों में रखकर एक पहर रात बीत जाने पर चंद्रज्योत्स्ना में लक्ष्मी को भोग लगाये । पश्चात् भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को खिलाकर नृत्य, गीत तथा मंगल-स्तुतियों से जागरण करे । प्रातःकाल अरुणोदय होते ही स्नान कर मूर्ति गुरु को समर्पित कर दे उस रात्रि में वरदायिनी महालक्ष्मी कर कमलों को उठाकर यह कहती हुई विचरण करती हैं कि जो आज रात जागरण एवम् पूजन करेगा, उसे मैं धन प्रदान करूंगी । इस लक्ष्मी-तोषण व्रत को प्रतिवर्ष करने से इस लोक में संपत्ति मिलती है और परलोक में सुगति ॥४७-५५॥

कार्तिकी पूर्णिमा में कार्तिक के दर्शन करने से विप्रत्व तथा शत्रुओं से विजय की प्राप्ति होती है । उसी दिन प्रदोष काल में दीपदान से त्रिपुरोत्सव मनाना चाहिये, जो समस्त जीवों के लिये सुखदायक है । कीट, पतंग, मशक, वृक्ष, जलचर एवम् स्थलचर जितने जीव हैं, वे सब कार्तिकी पूर्णिमा के दीपदान के प्रताप से मुक्ति को प्राप्त करते हैं। विप्र ! उस रात चंद्रोदय होने पर छः कृत्तिकाओं की पूजा करनी चाहिये । गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, खीर, फल तथा शाक से खड्गधारी कार्तिकेय, वरुण तथा अग्नि की पूजा कर ब्राह्मणों को तृप्त करे । इस प्रकार देवों की अर्चना कर घर से बाहर दीपक जलाये । दीप के समीप चौदह अंगुल विस्तृत एक मनोहर चौकोर गर्त (गड्ढा) खोदे । उसे चंदनमिश्रित जल से सिक्त कर गौ के दूध से भर दे । तदनन्तर 'महा मत्स्याय नम ...'' इस मंत्र को पढ़ते हुए एक सुवर्ण का मत्स्य, जिसकी आँखें मोती की हों और देखने में सर्वाङ्ग सुन्दर हो, उसमें डालकर गंध आदि से पूजा करके ''द्विजश्रेष्ठ ! मैं क्षीरसागर का दान आपको दे रहा हूँ ।'' यह कहते हुए द्विज को समर्पित कर दे ॥५६-६४½॥ इस दान के प्रभाव से मनुष्य हरि के समीप आनन्द करता है । नारद ! उस दिन वृषोत्सर्ग तथा नक्तव्रत करने से रुद्रलोक की प्राप्ति होती है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं । अगहन की पूर्णिमा में सकल कामनाओं की प्राप्ति के लिये सुवर्ण तथा लवण दान विप्र

अथ कृत्वा वृषोत्सर्गं व्रतं नक्तं च नारद । रुद्रलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥६६॥
मार्गशीर्ष्यां पूर्णिमायां स्वर्णाढ्यं लवणाढकम् । देयं विप्राय शांताय सर्वकामसमृद्धये ॥६७॥
इदं जगत्पुरा लक्ष्म्या त्यक्तमासीत्ततो हरिः । पुरंदरश्च सोमश्च तथा तिष्यो बृहस्पतिः ॥६८॥
पंचैते पुष्ययुक्तायां पौर्णमास्यां जगद्बलात् । अलंकृतं पुनश्चक्रुः सौभाग्योत्सवकेलिभिः ॥६९॥
तस्मान्नरः पुष्ययोगे सर्वसौभाग्यवृद्धये । गौरसर्षपकल्केन समालभ्य स्वकां तनुम् ॥७०॥
स्नायात्सर्वौषधिजलैर्धारयेच्च नवांशुके । दृष्ट्वा च मंगलं द्रव्यं स्पृष्ट्वा नत्वा ततोऽर्चयेत् ॥७१॥
हरिशक्रेंदुपुष्येज्यान्गंधाद्यैरुपचारकैः । विधाय होमं विप्रांश्च तर्पयेत्पायसाशनैः ॥७२॥
एतत्कृत्वा व्रतं विप्र रमाप्रीतिविवर्द्धनम् । अलक्ष्मीनाशनं चैव मोदतेह परत्र च ॥७३॥
पौर्णमास्यां ततो माघ्यां तिलकार्पासकंबलम् । रत्नानि कंचुकोष्णीषपादत्राणानि वा धनम् ॥७४॥
दत्त्वा प्रमोदते स्वर्गे दानं वित्तानुसारतः । यस्त्वत्र शंकरं देवं पूजयेद्विधिपूर्वकम् ॥७५॥
सोऽश्वमेधफलं प्राप्य विष्णुलोके महीयते । फाल्गुने पूर्णिमायां तु होलिकापूजनं मतम् ॥७६॥
संचयं सर्वकाष्ठानामुपलानां च कारयेत् । तत्राग्निं विधिवद्धुत्वा रक्षोघ्नैर्मंत्रविस्तरैः ॥७७॥
"असृक्पाभयसंत्रस्तैः कृत्वा त्वं होलि बालिशैः । अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव' ॥७८॥
इति मंत्रेण सन्दीप्य काष्ठादिक्षेपणैस्ततः । परिक्रम्योत्सवः कार्यो गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥७९॥
होलिका राक्षसी चेयं प्रह्लादभयदायिनी । ततस्तां प्रदहंत्येवं काष्ठाद्यैर्गीतमंगलैः ॥८०॥
संवत्सरस्य दाहोऽयं कामदाहो मतांतरे । इति जानीहि विप्रेंद्र लोके स्थितिरनेकधा ॥८१॥
पक्षांते द्वे पृथग्देवे ततोऽमाव्रतमुच्यते । पृथक्छृणुष्व मे विप्र पितृणामतिवल्लभम् ॥८२॥

को दान देना चाहिये। प्राचीनकाल में जब लक्ष्मी ने इस जगत् का परित्याग कर दिया तब सौभाग्य, उत्सव तथा केलि के प्रिय हरि, पुरंदर, सोम, तिष्य एवम् बृहस्पति ने पुष्ययुक्त पौर्णमासी में फिर से इस जगत् को अलंकृत किया। इसलिये सौभाग्य-वृद्धि के अभिलाषी मानव पुष्ययुक्त पौर्णमासी के दिन अपने शरीर में श्वेत सरसों का उबटन लगाकर सर्वौषधिजल से स्नान करे। तब नवीन वस्त्र धारण कर मांगलिक द्रव्यों का दर्शन एवम् स्पर्श करके गंध आदि उपचारों से हरि, शक्र तथा चंद्रमा की पूजा करे। पश्चात् हवन कर ब्राह्मणों को खीर से परितृप्त करे। विप्र! जो व्यक्ति इस रमाप्रीतिवर्धक व्रत को करता है, वह दरिद्रता से मुक्त हो इस लोक में तथा परलोक में आनन्दित होता है ॥६५-७३॥

माघी पूर्णिमा में वित्तानुसार तिल, कपास, कंबल, रत्न, कंचुक (कुर्ता), उष्णीष (पगड़ी), जूता तथा द्रव्य दान करने से स्वर्ग में आनन्द मिलता है। जो उस दिन विधिपूर्वक शंकर देव की पूजा करता है, वह अश्वमेध का फल प्राप्त कर विष्णुलोक में पूजित होता है। फाल्गुन की पूर्णिमा में होलिका पूजन किया जाता है। सब प्रकार की लकड़ियाँ एवम् गोइठे एकत्रित कर राक्षसनाशक मंत्रों को पढ़ते हुए उसमें विधिपूर्वक आग लगा दे। "अष्ट..." इस मंत्र को पढ़ते हुए लकड़ी आदि डालकर अग्नि प्रज्वलित करके परिक्रमा करे। फिर गाने-बजाने के साथ उत्सव मनाये। होलिका नामक राक्षसी प्रह्लाद को डराती थी। इसलिये लोग गाना-बजाना करते हुए लकड़ी आदि से उसे इस प्रकार जलाते हैं। विप्रवर्य! किसी के मत में यह संवत्सर-दाह कहलाता है तो किसी के मत में कामदाह! क्योंकि लोक में स्थिति अनेक प्रकार की मानी जाती है ॥७४-८१॥

पक्षान्त तिथियाँ दो होती हैं—पूर्णिमा तथा अमावास्या। दोनोंके देवता पृथक्-पृथक् हैं! इसलिए अमावास्या

चैत्रवैशाखयोरस्य दर्शे [illegible] ॥८३॥
द्विजानां भोजनं दानं [illegible] ॥८४॥
ज्येष्ठामायां व्रतं प्रोक्तं [illegible] ज्येष्ठपूर्णिमावद्विप्र [illegible] ॥८५॥
शुचौ नभसि भाद्रे च दर्शे पूर्णाखिलं [illegible] पितृश्राद्धं [illegible] ॥८६॥
भाद्रदर्शेऽपराह्णे तु [illegible] हुंफट् [illegible] ॥८७॥
सर्वदा सर्वकार्येषु [illegible] इषमायां विशेषेण पितॄणां [illegible] ॥८८॥
विशेषं [illegible] ऊर्जमायां दीपदानं [illegible] ॥८९॥
नद्यारामतडागेषु चैत्यगोष्ठापणेषु च । लक्ष्मीं तथा [illegible] ॥९०॥
द्यूतं च [illegible] ॥९१॥
[illegible] ॥९२॥
ब्रह्मचर्यादिनियमैर्जपहोमार्चनादिभिः [illegible] पितृश्राद्धं [illegible] ॥९३॥
अमायां व्यतीपातार्कयुक्तायां तु [illegible] । फाल्गुने श्रवणे श्राद्धं द्विजानां भोजनं तथा ॥९४॥
दानादि सर्वकार्यं [illegible] । इत्थं संक्षेपतः प्रोक्तं तिथिकृत्यं मुने तव ॥९५॥
सर्वत्रापि विशेषोऽस्ति स तु पुराणान्तरे स्थितः ॥९६॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे पूर्वभागे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे द्वादशमासस्थितपूर्णिमास्य-
व्रतकथनं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२४॥

के व्रत को पृथक् रूप से सुनो, जो पितरों को अतिप्रिय है। चैत्र और वैशाख की अमावस्या में पितृपूजा करनी चाहिये। विधानुसार पितरों का पार्वणश्राद्ध कर द्विजों को भोजन तथा गायें दे। पूर्णि के दोनों चीजें प्रत्येक अमावास्या में बहुत पुण्य देने वाली है। ज्येष्ठ की अमावास्या में सावित्रीव्रत किया जाता है। ज्येष्ठ-पूर्णिमा की तरह ही इसका भी विधान है। द्विज! आषाढ़, श्रावण तथा भादों की अमावास्या में पितृश्राद्ध, दान, होम तथा देवार्चन करने से अनन्त फल होता है ॥८२-८९॥ भादों की अमावास्या के दिन अपराह्ण में तिल के खेत में उत्पन्न हुए कुशों को "हुंफट्" इस मंत्र से उखाड़ कर रख छोड़े। वे कुश सब काल सब कार्यों में काम आते हैं। आश्विन की अमावास्या को विशेष रूप से गंगाजी तथा गया क्षेत्र में किया जाने वाला पितरों का श्राद्ध-तर्पण मुक्तिदायक माना जाता है। कार्तिक की अमावास्या में देवालय, गृह, नदी, उपवन, तालाब, गाँव के प्रसिद्ध महावृक्ष, गोष्ठ तथा दुकान में दीप जला कर सोने तथा चाँदी की बनी लक्ष्मी की पूजा करे। उस दिन जूआ खेलना भी वर्षफल को देने वाला है। गौओं की भी पूजा की जानी चाहिए। उनके सींग आदि अंगों को रंग करवाये और अन्न खिलाना चाहिये। पश्चात् नमस्कार और प्रदक्षिणा करे ॥८०-९१॥ अगहन की अमावास्या में भी पितृपूजा की जाती है। उस दिन ब्रह्मचर्य आदि नियम, जप, होम, अर्चना तथा ब्राह्मण-भोजन के साथ श्राद्ध करना चाहिए। विप्रवर्य! पौष तथा माघ की अमावास्या में पितृश्राद्ध करने से अधिक फल होता है। फाल्गुन की अमावास्या में श्रवण, व्यतीपात और सूर्य का योग होने पर सामान्य श्राद्ध और ब्राह्मणभोजन गया श्राद्ध से अधिक फल देने वाला है। सोमवती अमावास्या में दान आदि करने से प्रचुर फल मिलता है। मुने! इस प्रकार संक्षेप में तिथियों का कृत्य मैंने तुमसे बताया है। समस्त तीर्थों में कुछ विशेष विधि है, जो अन्य पुराणों में वर्णित है ॥९२-९६॥

श्रीनारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में द्वादशमासस्थित पूर्णिमा अमावास्याव्रत कथन नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२४॥

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

इत्येवमुक्त्वा मुनिना हि पृष्टास्ते वै कुमाराः किल नारदेन ।
संपूजिताः शास्त्रविदां वरिष्ठाः कृताह्निका जग्मुरुमेशलोकम् ॥१॥
तत्रेशमग्न्यर्कनिभैर्मुनीन्द्रैः श्रीवामदेवादिभिरर्चितांघ्रिम् ।
सुरासुरेन्द्रैरभिवंद्यमुग्रं नत्वाज्ञया तस्य निषेदुरुर्व्याम् ॥२॥
श्रुत्वाथ तत्राखिलशास्त्रसारं शिवागमं ते पशुपाशमोक्षणम् ।
जग्मुस्ततो ज्ञानघनस्वरूपा नत्वा पुरारिं स्वपितुर्निकाशम् ॥३॥
तत्पादपद्मे प्रणतिं विधाय पित्रापि सत्कृत्य समाजितास्ते ।
लब्धाशिषोऽद्यापि चरन्ति शश्वल्लोकेषु तीर्थानि च तीर्थभूताः ॥४॥
जग्मुस्ततो वै बदरीवनान्ते सुरेन्द्रवर्गैरुपसेव्यमानम् ।
विष्णुपदाब्जमव्ययं ध्यायन्ति यद्यतयो वीतरागाः ॥५॥
नारदोऽपि ततो विप्रा कुमारेभ्यः समीहितम् । लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं भृशं प्रीतमना ह्यभूत् ॥६॥
स तस्मात्स्वर्णदीतीरादागत्य पितुरन्तिके । प्रणम्य सत्कृतः पित्रा ब्रह्मणा निषसाद च ॥७॥
कुमारेभ्यः श्रुतं यच्च ज्ञानं विज्ञानसंयुतम् । वर्णयामास तत्त्वेन सोऽपि श्रुत्वा मुमोद च ॥८॥

अध्याय १२५

सनकादि और नारदजी का प्रस्थान, नारदपुराण का माहात्म्य-वर्णन

सूत बोले—नारदमुनि से सम्मानपूर्वक पूछे जाने पर शास्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ कुमारवृन्द पूर्वोक्त प्रकार से वर्णन कर शिवलोक को चले गये। वहाँ सूर्य तथा अग्नि के समान तेजस्वी श्रीवामदेव आदि मुनियों से पूजित चरण वाले और सुरों एवम् असुरों से स्तुत होने वाले अतितेजस्वी शंकर को प्रणाम कर उनकी आज्ञा से भूमि पर बैठ गये। अनन्तर महादेव से अखिल शास्त्रों के सार तथा यमपाश से बचाने वाले शिवपुराण को सुनकर ज्ञानस्वरूप कुमारवृन्द त्रिपुरारि को प्रणाम कर अपने पितृलोक के लिये प्रस्थित हुए। वहाँ पिता के चरणकमलों में प्रणाम कर उनसे सस्नेह आशीर्वाद प्राप्त कर तीर्थ रूप कुमार त्रैलोक्य के तीर्थों की यात्रा करने लगे। वहाँ से वे बदरिकाश्रम पहुँचे, जो देवेन्द्रवृन्दों से संसेवित है। बदरीवन में वे अविनाशी विष्णु के चरणारविन्दों का ध्यान करने लगे, जिनका संस्मरण वीतराग यतिगण किया करते हैं ॥१-५॥

विप्रवृन्द! नारद भी कुमारों से अभिलषित ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदनन्तर वे स्वर्गंगा के तीर से प्रस्थान कर पिता (ब्रह्मा) के समीप पहुँचे। उनको प्रणाम कर आज्ञानुसार बैठ गये और कुमारों से जो ज्ञान-विज्ञान प्राप्त किया था, उसका वर्णन करने लगे। ब्रह्मा भी सुनकर प्रमुदित हुए। अनन्तर

अथ प्रणम्य शिरसा लब्धाशीर्मुनिसत्तमः । आजगाम च कैलासं मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥९॥
नानाश्चर्यमयं शश्वत्सर्वर्तुकुसुमद्रुमैः । मंदारैः पारिजातैश्च चंपकाशोकवंजुलैः ॥१०॥
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैर्नानापक्षिगणावृतैः । वातोद्धूतशिखैः पांथानाह्वयद्भिरिवावृतम् ॥११॥
नानामृगगणाकीर्णं सिद्धकिन्नरसंकुलम् । सरोभिः स्वच्छसलिलैर्लसत्कांचनपंकजैः ॥१२॥
शोभितं सारसैर्हंसैश्चक्राह्वाद्यैर्विनादितम् । स्वर्द्धुनीपातनिर्घुष्टं क्रीडद्भिश्चाप्सरोगणैः ॥१३॥
सलिलेऽलकनंदायाः कुचकुंकुमपिंगले । आमोदमुदितैर्नागैः सलिलैः पुष्करोद्धृतैः ॥१४॥
स्नापयद्भिः करेणूश्च कलभांश्च समाकुले । अथ श्वेताभ्रसदृशे शृंगे तस्य च भूभृतः ॥१५॥
वटं कालाभ्रसदृशं ददर्श शतयोजनम् । तस्याधस्तात्समासीनं योगिमण्डलमध्यगम् ॥१६॥
कपर्दिनं त्रिनेत्राक्षं व्याघ्रचर्मांबरावृतम् । भूतिभूषितसर्वांगं नागभूषणभूषितम् ॥१७॥
रुद्राक्षमालया शश्वच्छोभितं चंद्रशेखरम् । तं दृष्ट्वा नारदो विप्र भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥१८॥
ननाम शिरसा तस्य पादयोर्जगदीशितुः । ततः प्रसन्नमनसा स्तुत्वा वाग्भिर्वृषध्वजम् ॥१९॥
निषसादाज्ञया स्थाणोः सत्कृतो योगिभिस्तदा । अथापृच्छच्च कुशलं नारदं जगतां गुरुः ॥२०॥
स च प्राह प्रसादेन भवतः सर्वमस्ति मे । सर्वेषां योगिवर्याणां शृण्वतां तत्र बाडवः ॥२१॥
पप्रच्छ शांभवं ज्ञानं पशुपाशविमोक्षणम् । स शिवः सादरं तस्य भक्त्या संतुष्टमानसः ॥२२॥
योगमष्टांगसंयुक्तं प्राह प्रणतवत्सलः । स लब्ध्वा शांभवं ज्ञानं शंकराल्लोकशंकरात् ॥२३॥

चतुरानन को प्रणाम कर आशीर्वाद पा मुनिश्रेष्ठ नारद मुनियों और सिद्धों से सुसेवित कैलास पर्वत पर चले गये, जहाँ अनेक आश्चर्यजनक वस्तुएँ हैं। सब ऋतुओं में होने वाले पुष्प वहाँ सदा खिले रहते हैं। मंदार, पारिजात, चंपा, अशोक, मौलसिरी तथा अन्य विविध वृक्षों की शाखायें जब वायु में हिलती हैं तब ऐसा प्रतीत होता है कि वृक्ष पथिकों को बुला रहे हैं। वहाँ नाना प्रकार के पक्षी एवम् पशुओं के झुंड विचरण करते हैं। सिद्ध और किन्नर गण निवास करते हैं ॥९-११½॥ निर्मल जल वाले सरोवर स्वर्णिल कमलों तथा सारस, हंसों और चक्रवाक आदि पक्षियों के कलरव से सुशोभित हैं, आकाशगंगा की धारा का कलकल निनाद होता रहता है, अलकनंदा में अप्सरायें क्रीड़ा करती हैं, जिनका जल उन लोगों के कुचकुंकुम से पीला हो जाता है। हाथियों का समूह जलविहार से आमोद-प्रमोद करते और अपने-अपने सूंडों में पानी लेकर हथनियों एवम् बच्चों को नहलाते हैं। उसी कैलाश पर्वत के श्वेत मेघ के समान धवल शिखर पर श्याम बादल के सदृश एक वट वृक्ष सौ योजनों में विस्तृत है। उसके नीचे त्रिनेत्र, व्याघ्रचर्मधारी, सर्परूपी आभूषणों से आभूषित, रुद्राक्षमाला से सदा सुशोभित, जटा धारण करने वाले और सर्वांग शरीर में विभूति रमाने वाले चंद्रशेखर शिव योगिमंडल के मध्य समासीन थे ॥१२-१६॥ विप्रवर्य ! उन शंकर को देखकर भक्ति से नारद की ग्रीवा झुक गई। तब उन्होंने जगदीश के चरणों पर शिर रखकर प्रणाम किया और प्रसन्न मन से उनकी स्तुति की। अनन्तर योगियों से संमानित हो नारद शिव की आज्ञा से आसनासीन हुए। तब जगद्गुरु शंकर ने नारद से कुशल पूछा। 'सब आपकी कृपा से कुशल है'—यह नारद ने उत्तर दिया। इसके बाद समस्त योगिवर्यों के समक्ष नारद ने पशुपाशविमोक्षण नामक शांकर ज्ञान के संबंध में जिज्ञासा प्रकट की। उनकी भक्ति से संतुष्ट हो प्रणतवत्सल शिव ने आदरपूर्वक अष्टांगयोग का उपदेश किया। तब लोगों के कल्याण करने वाले शंकर से शांकर ज्ञान प्राप्त कर सुप्रसन्न मन

। तत्रापि नारदोऽभीक्ष्णं गतागतपरायणः ॥२४॥
सुप्रसन्नमना नत्वा ययौ नारायणांतिकम् । एतद्वः कीर्तितं विप्रा नारदीयं महन्मया ॥२५॥
सेवितं योगिभिः सिद्धैर्नारायणमतोषयत् । चतुष्पादसमायुक्तं शृण्वतां ज्ञानवर्द्धनम् ॥२६॥
उपाख्यानं वेदसमं सर्वशास्त्रनिदर्शनम् । समाजे द्विजमुख्यानां तथा केशवमंदिरे ॥२७॥
य एतत्कीर्तयेद्विप्रा नारदीयं शिवालये । सेतौ काञ्च्यां कुशस्थल्यां गंगाद्वारे कुशस्थले ॥२८॥
मथुरायां प्रयागे च पुरुषोत्तमसन्निधौ । स लभेत्सर्वयज्ञानां तीर्थानां च फलं महत् ॥२९॥
पुष्करेषु नदीतीरे यत्र कुत्रापि भक्तिमान् । उपवासपरो वापि हविष्याशी जितेंद्रियः ॥३०॥
दानानां चापि सर्वेषां तपसां वाप्यशेषतः । शिवभक्तिरतो वापि शृण्वन् सिद्धिमवाप्नुयात् ॥३१॥
श्रोता चैव तथा वक्ता नारायणपरायणः । कथितः सर्वपापघ्नः पठतां शृण्वतां सदा ॥३२॥
अस्मिन्नशेषपुण्यानां सिद्धीनां च समुद्भवः । सर्वेषामीप्सितं चेदं सर्वज्ञानप्रकाशकम् ॥३३॥
कलिदोषहरं पुंसां सर्वसंपत्तिवर्द्धनम् । तथैव गाणपत्यानां वर्णाश्रमवतां द्विजाः ॥३४॥
शैवानां वैष्णवानां च शाक्तानां सूर्यसेविनाम् । मंत्राणां चैव यंत्राणां वेदांगानां विभागशः ॥३५॥
तपसां च व्रतानां च फलानां संप्रकाशकम् । य एतत्पठते भक्त्या शृणुयाद्वा समाहितः ॥३६॥
तथागमानां सांख्यानां वेदानां चैव संग्रहम् । श्रुत्वेदं नारदीयं तु पुराणं वेदसंमितम् ॥३७॥
स लभेद्वांछितान्कामान्देवादिष्वपि दुर्लभान् । भूमिदानैर्गवां दानैः रत्नदानैश्चवस्त्रतः ॥३८॥
वाचकं पूजयेद्भक्त्या धनरत्नांशुकादिभिः । यस्तु व्याकुरुते विप्राः पुराणं धर्मसंग्रहम् ॥३९॥
हस्त्यश्वरथदानैश्च प्रीणयेत्सततं गुरुम्

से उन्हें प्रणाम करके वे नारायण के समीप चले गये ॥१७-२३½॥ वहाँ भी गमनागमन में समर्थ नारद ने योगियों एवम् सिद्धों से सुसेवित नारायण को संतुष्ट कर लिया।

विप्रवृन्द ! यह नारदीय उपाख्यान, जो अखिल शास्त्रों का निदर्शन, चार पादों से युक्त, वेदतुल्य और श्रोता[illegible]बढ़ाने वाला है, आप लोगों को सुना दिया। द्विजो ! जो भक्तिमान् मनुष्य इस नारदीय उपाख्या[illegible]वालों, उत्तम ब्राह्मणों के समाज, विष्णुमंदिर, मथुरा, प्रयाग, पुरुषोत्तम क्षेत्र, सेतु, कांची, द्वारका, हरिद्वार, कुशस्थल और पुष्कर में या जहाँ-कहीं भी नदी तट पर बाँचता है, उसे निखिल यज्ञों, तीर्थों, दानों तथा तपों का महान् फल प्राप्त होता है। उपवास, हविष्य-भोजन तथा इंद्रियसंयम करते हुए नारायण या शिव के भक्त वक्ता तथा श्रोता सिद्धि को प्राप्त करते हैं। इस उपाख्यान में निखिल धर्मों तथा सिद्धियों की उत्पत्ति बताई गई है, जो पढ़ने तथा सुनने वालों के समस्त पापों का नाश करती है ॥२४-३२॥ यह उपाख्यान मनुष्यों के कलिजन्य दोषों का हरण करने वाला, सकल संपत्तियों को बढ़ाने वाला, निखिल ज्ञानों को प्रकाशित करने वाला और सब को अभीप्सित फल देने वाला है। द्विजगण ! यह शैव, वैष्णव, शाक्त, सूर्यसेवी, गणपति के उपासक, वर्णाश्रमी सभी को अभीष्ट है और यह समस्त ज्ञानों एवं तप तथा व्रतों के फलों का प्रकाशक है। इसमें मंत्रों, यन्त्रों, वेदांगों, आगमों, सांख्यों एवम् वेदों का संग्रह है। जो व्यक्ति सावधान होकर भक्तिपूर्वक इसका पाठ या श्रवण करता है, वह देवदुर्लभ वांछित फलों को प्राप्त करता है। इस वेदानुकूल नारदीय-पुराण को सुनकर धन, रत्न, वस्त्र, आदि से भक्तिपूर्वक वाचक की पूजा करे। भूमिदान, गोदान, रत्नदान और हाथी, घोड़े तथा रथदान से गुरु को सदा संतुष्ट करना चाहिए। विप्रवृन्द ! जो इस चतुर्वर्ग के फल को देने

चतुर्वर्गप्रदं नृणां कोऽन्यस्तत्सदृशो गुरुः । कायेन मनसा वाचा धनाद्यैरपि संततम् ॥४०॥
प्रियं समाचरेत्तस्य गुरोर्धर्मोपदेशिनः । श्रुत्वा पुराणं विधिवद्धोमं कृत्वा सुरार्चनम् ॥४१॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छतं मिष्टान्नपायसैः । दक्षिणां प्रददेच्छक्त्या भक्त्या प्रीयेत माधवः ॥४२॥
यथा श्रेष्ठा नदी गंगा पुष्करं च सरो यथा । काशी पुरी नगो मेरुर्देवो नारायणो हरिः ॥४३॥
कृतं युगं सामवेदो धेनुर्विप्रोऽन्नमंबु च । मार्गो मृगेंद्रः पुरुषोऽश्वत्थः प्रह्लाद आननम् ॥४४॥
उच्चैःश्रवा वसंतश्च जपः शेषोऽर्यमा धनुः । पावको विष्णुरिंद्रश्च कपिलो वाक्पतिः कविः ॥४५॥
अर्जुनो हनुमान्दर्भश्चित्तं चित्ररथोऽम्बुजम् । उर्वशी कांचनं यद्वच्छ्रेष्ठाश्चैते स्वजातिषु ॥४६॥
तथैव नारदीयं तु पुराणेषु प्रकीर्तितम् । शांतिरस्तु शिवं चास्तु सर्वेषां वो द्विजोत्तमाः ॥४७॥
गमिष्यामि गुरोः पार्श्वं व्यासस्यामिततेजसः । इत्युक्त्वाभ्यर्चितः सूतः शौनकाद्यैर्महात्मभिः ॥४८॥
आज्ञप्तश्च पुनः सर्वैर्दर्शनार्थं गुरोर्ययौ । तेऽपि सर्वे द्विजश्रेष्ठाः शौनकाद्याः समाहिताः ॥४९॥
श्रुतं सम्यगनुष्ठाय तत्र तस्थुश्च सत्रिणः ॥४९॥

कलिकल्मषविषनाशनं हरिं यो जपपूजनविधिभेषजोपसेवी ।
स तु निर्विषमनसा समेत्य यागं लभते सततमभीप्सितं हि लोकम् ॥५०॥

इति श्रीबृहन्नारदीयपुराणे बृहदुपाख्याने चतुर्थपादे पुराणमहिमावर्णनं नाम
पंचविंशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१२५॥

वाले धर्मसंग्रहभूत पुराण का उपदेश करता है, उसके समान अन्य कोई गुरु नहीं होता। शरीर, मन, वाणी तथा धन आदि से प्रिय आचरण करना चाहिए ॥३३-४०½॥ पुराणश्रवणानन्तर विधिपूर्वक हवन तथा देवार्चन करके सौ ब्राह्मणों को मधुर तथा खीर खिलाये। पश्चात् उन्हें भक्तिपूर्वक दक्षिणा दे; क्योंकि भक्ति से माधव प्रसन्न होते हैं। जैसे नदियों में गंगा, सरोवरों में पुष्कर, पुरियों में काशी, पर्वतों में मेरु, देवों में नारायण, युगों में सत्ययुग, वेदों में सामवेद और अपनी अपनी जातियों में धेनु, विप्र, अन्न, जल, योग, सिंह सारस, हंसों आह्लाद, मुख, उच्चैःश्रवा, वसंत, जप, अनंतशेष, अर्यमा, धनु, पावक, विष्णु, इंद्र, कपिल, बृहस्पति होता रहता है हनुमान्, कुश, चित्त, चित्ररथ, कमल, उर्वशी तथा सुवर्ण श्रेष्ठ हैं, उसी तरह समस्त पुराणों में नारदपुराण श्रेष्ठ है। द्विजवर्यवृन्द! आप लोगों का कल्याण हो, शान्ति मिले! अब मैं अमिततेजस्वी गुरु व्यास के समीप जाऊँगा ।४१-४७½॥

इतना कहकर, महात्मा शौनक आदि से संमानित हो, पुनः उनसे विदा ले, गुरु के दर्शनार्थ सूतजी चले गये। शौनक आदि द्विजवर भी सावधान होकर सुने हुए पुराण के अनुसार यज्ञानुष्ठान में प्रवृत्त हुए। जो व्यक्ति कलि-पातक रूप विष को नष्ट करने वाले हरि के जप-पूजन रूप औषधि का सेवन करता है, वह विष (पाप) रहित मन से सतत याग (के पुण्य) को प्राप्त कर मनोवांछित लोक को जाता है ॥४८-५०॥

श्री नारदीयपुराण के पूर्वार्ध में बृहदुपाख्यानयुक्त चतुर्थपाद में पुराण-महिमा-वर्णन नामक एकसौ
पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२५॥

(नारदीयपुराण का पूर्वभाग समाप्त)

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

द्वारा प्रकाशित

पुराण साहित्य

•

(मूल-पाठ, हिन्दी अनुवाद एवं पाठान्तर सहित)

१. ब्रह्मपुराणम्

अनुवादक—श्री तारिणीश झा १५०.००

२. ब्रह्मवैवर्तपुराणम् [१, २, ३]

अनुवादक—श्री तारिणीश झा २६०.००

३. अग्निपुराणम् [१, २]

अनुवादक—श्री तारिणीश झा १५०.००

४. वायुपुराणम्

अनुवादक—डा० रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री १२०.००

मुद्रणाधीन

१. बृहन्नारदीयपुराणम् (उत्तर भागः)

२. मत्स्यपुराणम् (पूर्व भागः)

•

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ○ प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग • इलाहाबाद